

श्रीहरिः

# श्रीमदानन्दरामायणस्थविषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
<b>सारकाण्ड</b>		राम-लक्ष्मणको लेकर विरवामित्रका जयक-	
<b>प्रथम सर्ग</b>		पुरको प्रस्थाप और महत्त्वोद्धार	११
मङ्गलाचरण	१	रामके ज्ञापनसे जनकपुरनिवासी लल-	
रघुवंशकी संक्षिप्त वंशावली	२	गाओंका हर्षोल्लास	१२
रामका महामहिम बताने करणका हेतु		राजा जनक द्वारा अपनी प्रतिज्ञाकी शोषणा	१४
पुत्रता, महामहिम रामके हाथों रामका मरणका		राज्य द्वारा मनुष्य उठानेका प्रयास और उसमें	
अविष्य फलाना और रामका कौशल्याकी		विफलता, तबमें रामका आगमन	१५
सद्वृत्तिमें बंद करके समुद्रनिवासी श्रियिगलकी		सीताका रामको देखना और मुग्ध होकर बन	
सौंपना		ही बन देवताओंसे प्रार्थना करना	१७
महाराज दशरथके साथ कौशल्याका माधव-		रामके हाथों शिवकुण्ड छूटना	१८
विवाह		राजा जनकके आज्ञानुसार सीताका राजसभामें	
दशरथजीका सुमित्रा-कैकेयीके साथ विवाह, महा-		जाना और रामके गलेमें बरसाऊ डालना	१९
राज्य दशरथका देव-दानवयुद्धमें जाना		राजा जनकका महाराज दशरथके पास निमंत्रण	
तब युद्धमें कैकेयीका रथकी टूटी पुरीमें बचना		भेजना, रामादि चारों भ्राताओंके विवाहका निश्चय	
होय लगाकर राजा दशरथके प्राण बचाना, जिससे		और सीताके जन्मका वृत्तान्त	२६
दशरथजीका कैकेयीकी से बरदाय देना तथा		राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नका क्रमशः सीता-	
अयोध्याको सकुशल लौटना		उत्तिला-भाण्डवों और धृतराष्ट्रके साथ विवाह	
राजा दशरथ द्वारा जनकका वध और जनकके		और एक मास बाद महाराज दशरथका अयोध्याको	
अंधे भाता-पिताका साथ देना		प्रस्थान	२८
ऋष्यमूक द्वारा पुत्रैश्च का सम्पन्न होना और		मार्वमें राम-परशुरामका साक्षात्कार	३१
अग्निप्रकट होकर हवि देना		राम द्वारा परशुरामका गर्वमञ्चन और परशुराम-	
<b>द्वितीय सर्ग</b>		का रामको आत्मकथा सुनाना	३२
पृथ्वीका दुःखित होकर देवताओंके पास		महाराज दशरथका अयोध्यामें पहुँचना और	
जाना और सब देवताओंका श्रीरामपर		उत्सव मनाना	३३
याकर विष्णुमण्डपाकी स्तुति करना और		<b>चतुर्थ सर्ग</b>	
भगवान्की वाकाश्रयणों सुनना, राम-लक्ष्मण-		दीपावलीके अवसरपर गुप्त राजा जनकका	
भरत-शत्रुघ्नका जन्म और उन पुत्रोंकी		महाराज दशरथको बुलाना और सदनुसर उसका	
बाल-कीर्ति		प्रस्थान	३४
गुप्त मतिष्ठका रामादि चारों भ्रात्योंको		जनकपुरमें राजा दशरथका उत्कार और जनक-	
शास्त्रीय शिक्षा देना		पुरसे लौटते समय रास्तेमें उनको बहुतेरे बँदों	
<b>तृतीय सर्ग</b>		राजाओंके घेरना	३५
महामुनि विरवामित्रका राजा दशरथकी		रामका उन राजाओंके साथ और युद्ध और	
रुपायें जाकर दशरथाय राम-लक्ष्मणको भोगना,		भरतका मूर्च्छित होना	३६
मार्वमें विरवामित्रका दोनों बालकोंकी सहाय्यकी		रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणका मुद्रा	
शिक्षा देना और सीताके हाथों ताडुकावध	३७	मुक्तिके आश्रयमें सञ्जीवनी बूटी लेने जाना	
		और आश्रमवासियों द्वारा उपरिबल की गयी	

विषय	पृष्ठ
बापामोंकी दूर करने हुआ संजीवनी लाकर मरठके जोड़ित करना	३७
महाराज दशरथका पुनि मुदलसे रामके मनिष्यका प्रश्न और उत्तरका संतोषजनक उत्तर पाना	३८
बृंदाका वृत्तांत और उसके द्वारा विष्णु मगवान्-के साक्षित होनेका इतिहास	३९
सौराष्ट्रके एक मित्र साहाय्य तथा उसकी स्त्री कलहका उपासधान	४१
<b>पञ्चम सर्ग</b>	
वर्मदत्त विप्र द्वारा कलहका उद्धार	४५
रामका सीताके साथ अयोध्यामें आनन्द निवास	४८
रामकी संक्षिप्त दिनचर्या	४९
महाराज दशरथका रामसे आनोपदेश सुनाने की प्रार्थना करना और रामका आनोपदेश देना	५१
<b>षष्ठ सर्ग</b>	
नारदका रामको देवताओंका संदेश सुनाना	५१
राम-सीताका परस्पर वनगमनसम्बन्धी परामर्श	५४
रामके राजगाम्बिककी संधारी, भुव वसिष्ठका रामके भट्ठीमें आना और उपदेश देना, अग्निविककी संधारी देखकर मन्यराका दुःखित होना	५५
मन्यराका कैंकेरीके पास जाकर उसे उत्तेजित करना और घरोहरस्वरूप रखे दोनो वरदान भंगितेकी प्रेरित करना, तदनुसार कैंकेरीका कोपजनप्रवेश, राजा दशरथका उसके पास पहुँचना और वरदानकी बात सुनकर विकल होना, प्रातःकाल रामका पिताके पास जाकर प्रार्थना देना	५६
कैंकेरीके रामवनगमनसम्बन्धी वरदान भंगितेके समाचारसे पुरवाधियोंकी व्याकुलता दूर करनेके लिए कामदेवकी रामकी प्रतिज्ञा तथा नारदके आगमनकी बात बताना	५७
राम-लक्ष्मण-सीताका नवमन	५७
प्रयाग होते हुए रामका विश्वकूट पहुँचना, अजंतकी कथा तथा वदारथमरण	५८
मरठका ननिहालसे आकर पिताकी क्रिया करनेके बाद विश्वकूट जाना और रामके अनुरोधसे उनकी परमपादुका लेकर अयोध्या लौटना	६०
रामका अग्निमें आश्रयपर जाना	६०

विषय	पृष्ठ
<b>सप्तम सर्ग</b>	
रामके द्वारा विराधका वध	६२
सुतीक्ष्णके आश्रयपर रामका जाना और वहीँ अगस्त्यके आश्रयपर होते हुए पञ्चवटी पहुँचना, वहाँ जटायुसे मिलना और लक्ष्मणके हाथों सूर्यवक्त्राके पुत्र आश्वका मरण	६३
लक्ष्मणका सूर्यवक्त्राके नाक-कान काटना	६४
रामके हाथों सरदूषण-निशिरा और उनकी चौदह हजार राक्षसी सेनाका विध्वन तथा सूर्यवक्त्राका लंकामें रावणके पास जाना	६५
सीताके अनुरोधसे रामका मृग मारीचके वधको जाना और रावण द्वारा सीताका हरण	६७
जटायु-रावणयुद्ध, पञ्चवटीकी कुछ विशेष कथाएँ	६८
राम-लक्ष्मणका लौटकर आश्रय पहुँचना, वहाँ परम्योन्मुख जटायुसे रावण द्वारा सीताहरणका वृत्तांत सुनना और रामका मृत जटायुकी अपने हाथों दार्ढ्यकरना	६९
सीताकी व्यग्रभावसे लोभते हुए रामको देखकर पार्वतीका वहाँ पहुँचना और उनके ईश्वरत्वकी परीक्षा करना, कबन्धवध और कबन्धकी वादमकथा	
रामका खनरीके आश्रयपर पहुँचना और खनरीकी मुक्ति प्राप्त होना, वहाँसे रामका सम्पातरोवर जाना	७१
<b>अष्टम सर्ग</b>	
राम-सुग्रीवकी मित्रता और सुग्रीवका रामको खपना दुःख सुनाना	७२
बालि-सुग्रीवयुद्ध और रामके हाथों बालिका मरण तथा रामका बालिकी वरदान	७५
रामका प्रमर्दय पर्वतपर निवास, कालोत्तरमें सुग्रीवकी सेनाकी लोभके विषयमें निश्चित देखकर रामका लक्ष्मणकी भेजना	७६
सुग्रीवका बहुतेरे खनरीकी सीताकी लोभके लिये भेजना और हनुमान्-मङ्गल बाविका एक लपस्वित्नीसे मिलना	७७
मङ्गल बाविका सम्पातीसे मिलना और सम्पातीका खपना पूर्ववृत्तांत बताते हुए सीताके मिलनेका उपाय बताना	७९
<b>नवम सर्ग</b>	
हनुमान् द्वारा समुद्रलङ्घन और मार्गमें नागमाता सुरसासे साक्षात्कार	७९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
हनुमान्जीके द्वारा सिंहकावध, समुद्रपार पहुँचकर रात्रिके समय हनुमान्जीका लङ्का में प्रवेश और लङ्कनीसे शाखाकार	८०	बादसे मिलना और वहाँसे चलकर मनुवन होते हुए रामके पास पहुँचकर उन्हें सीताका हाल सुनाना	९८
हनुमान्का रावणके भवनमें जाकर उसकी दाढ़ी-भूँछ जलाना, मन्दोदरीको सीताके सहस्र मुन्दरी बेलकर हनुमान्का बकराला, सीता और मन्दोदरीके साहस्यका कारण	८१	<b>दशम सर्ग</b>	
हनुमान्जीका सीताके समक्ष पहुँचना उसी समय रावणका सीताके पास जाकर विविध प्रलोचन देना और सीताका रावणको फटकारना	८२	हनुमान्का रामको लङ्काका स्वरूप बतलाना	९९
बातोंसे हारकर रावणका सीताको मारनेके लिए ज्वाह होना और मन्दोदरीका रोचना	८४	रामका लङ्काको प्रस्थान	१००
बहुतेरी राक्षसियोंको सीताको डराने-भयकानेके लिए नियुक्त करके रावणका अपने घर जाना	८५	उधर लङ्का में हनुमान्का पराक्रम देखकर रावणका बहसना और रावणसमक्ष जाकर परामर्श करना, विमोक्षणका समझना और रावणसे शिरस्कृत होकर रामको धरणमें जाना	१०१
त्रिजटाका सीताको आश्वासन, हनुमान् द्वारा रामवश वर्चन और प्रकट होकर राममुद्रिका-प्रदान	८५	राम-विमोक्षणमें श्रीजी, रामका क्रुपित होकर समुद्रपर क्षाण्येय बाण चलानेको उद्यत होना और समुद्रका सेतुबन्धके लिए उपाय बताना, रामका समुद्रतटपर शिर्वालङ्क स्थापित करनेका निश्चय करके हनुमान्को शिर्वालिङ्क लानेके लिए काशी भेजना	१०२
हनुमान्का मञ्जुकवाटिका उजाड़ना	८६	शिवजीका हनुमान्को एक प्राचीन इतिहास बताना	१०४
हनुमान्का रावणके भेजे हुए बहुतेरे सैनिकोंको मारना	८७	विध्यपर्वतकी वृद्धिसे देवताओं तथा मनुष्योंकी बनराहत और बजरत्न मुनिका विष्णुके कोपको शांत करनेके लिए काशीका त्याग	१०६
मेघनादके बहुपाशमें बँधकर हनुमान्का रावणके समक्ष जाना	८८	राम द्वारा हनुमान्का गर्वहरण	१०७
हनुमान्का रावणको समुद्रपदार्थ और रावणका दैत्योंको हनुमान्जी वृँछ जलानेका आदेश देना	८९	हनुमान्का अपनी लागी मूर्तिकी अंक्षण स्थापित करना और रामका बरखान देना	१०८
हनुमान् दास लङ्कादहन	९१	शिवजीका रामको एक प्राचीन इतिहास बताना और रामके आत्मानुसार भक्तका सेतुरचना करना	१११
लङ्का मत्न कर देनेपर सीताके भी जल मरनेकी बात सोचकर हनुमान्का दुःखी होना और आकाशवाणी सुनकर धीरेज धरना	९२	रावणको शुकका समुद्रपदार्थ और उसके दास शुकका शिरस्कृत होना, शुकके पूर्वजन्मकी कथा	११२
लङ्काका प्राचीन इतिहास, गज-ग्राहकपाके प्रसंगमें राहके पूर्वजन्मकी कथा, गज-ग्राहका सहस्रवर्षव्यापी युद्ध और गणपत्य द्वारा गजका उद्धार	९३	रामके आदेशसे बज्जरका लङ्का जाना और बौदते समय रावणका एक महल उखाड़े लगाना	११३
गहड़का एक गजको लेकर भक्षण करनेके लिए विकृत पर्वतपर पहुँचना और हनुमान्का मञ्जुक-वाटिकामें सीतासे फिर मिलना	९४	बज्जरके मुखसे रावणकी वर्णोक्ति सुनकर मुग्धकर रावणके पास जाना और उसके साथ बल्लमुद्ध करना	११४
लङ्कासे छोटते समय एक मुनिके द्वारा हनुमान्का गर्वोपहार	९५	मात्स्यवाक्का रावणको उपदेश	११५
समुद्रके इस पार जाकर हनुमान्का मङ्गल	९६	<b>एकादश सर्ग</b>	
	९७	राम-रावणका मृडारम्भ	११६
		बावरी सेवापर मेघनादका धातिप्रयोग और रामकी आज्ञासे हनुमान् द्वारा सभी हुई श्रेणगिरि-की जीवपिते सबकी मूर्च्छा दूर होना	११७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
रावणका लक्ष्मणपर वक्तिप्रयोग और हनु- मानका द्रोणगिरि लहे समय कालनेमिसे भेंट	११८	रामका राज्याभिषेक	११९
सत्रागणपर जल पीनेके लिए गये हुए हनु- मानकी मगरीका पकड़ना, हनुमान्के हाथों काल- नेमिका बंध और वहीसे बलकर हनुमान्का भरत- के बाणप्रहारसे भूँझित होकर गिरना	१२०	श्रीशिवजीके द्वारा रावको स्तुति	१४०
ऐरावत-मैरावत द्वारा राव-लक्ष्मणका हरण	१२०	राज्याभिषेकौत्सवपर स्वर्गसे महाराज रघुव- का साना, रामका बाह्यणों-मित्रों तथा परिवारके लोगोंको उपहार देना	१४१
हनुमान्का राम-लक्ष्मणको सौजने पाताळ जाना, वहाँ मकरध्वजसे भेंट, मकरध्वजका अपनी अन्धक्या सुनाना और हनुमान्का कामाक्ष्यादेवीके मंदिरमें प्रवेश	१२१	हनुमान्को रामके विविध वरदान और मोहनके समय हनुमान्का कौतुक	१४२
हनुमान्का मैरावणकी पत्नीसे ऐरावत-मैरावण- के मरणका उपाय पूछना और उस नागकन्याका उन दोनोंकी मृत्युका उपाय बताना	१२२	पुष्पक विमान, सुग्रीव तथा विमोदणकी विश्रांति	१४३
रामके द्वारा ऐरावत-मैरावणका बंध	१२४	रामके रघुवर्षकी समाप्तिका वर्णन	१४४
उस नागकन्याको रामका वरदान, रावणका कुम्भकर्णको बगाना, रावणकी रैरगासे उसका रामरूपिये जाना और रामके हाथों कुम्भकर्णका निधन	१२५	<b>त्रयोदश सर्ग</b>	
मेघनादका त्रिकुम्भिष्ठा देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमान् तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	रामके वहाँ जगत्पति जादि भूमियोंका जग- पति, रामका जगत्पतिसे मेघनादका वृत्तान्त पूछना और उसका बताना	१४६
लक्ष्मण द्वारा मेघनादका बंध	१२७	रावण-कुम्भकर्ण जादिकी बन्धक्या	१४७
सुलोचनाका सती होना	१२८	भाताकी आगसे रावणका शिवस्त्रिण लेने कैलाश जाना और अपने मस्तक काटकर शिवजीको प्रसन्न करना तथा वरदान पाना	१४८
रावणका सीताको रामका कटा हुआ गळी छिर दिखाना	१२९	रावण कुम्भकर्ण-विभीषणका रूप करके ब्रह्मा- की प्रसन्न करना और उनसे वरदान पाना	१४९
मन्दोदरीका रावणकी समझाना और रावणका रामके समझ गळी सीताको काटना	१३०	रावणकी कुनेरपुत्र बलह्वरका ध्यान, मेघनाद- का इन्द्रको पराजित करना और उसका इन्द्रवि- नाश पड़ना	१५०
राम-रावणका भीषण युद्ध	१३१	रावणका बालिसे लड़ने जाना और बालिका उधे अपनी काँधमें रख लेना	१५१
रामके हाथों रावणका बंध	१३२	रावणका मानरराज बालिसे युद्ध करते जाना और परास्त होना	१५३
<b>द्वादश सर्ग</b>		रावणका राज्य जनरूपसे युद्ध और उसका रावणकी श्राप	१५३
राम-सीताका मिलन	१३३	रावण-वनस्तुमारका मार्गान्तर, रावणकी श्वेत- होमयात्रा और वहाँकी स्त्रियोंके हाथों पिटना	१५४
रामकी अयोध्या लौटनेकी तैयारी और विभीषणके प्रसन्न	१३४	बालि-सुग्रीवकी बन्धक्या	१५५
रामका विषदाको वरदान	१३५	ब्रह्मका बालिको किष्किंधाका राज्य देना और हनुमान्को बन्धक्या	१५६
उसका व्यवस्था-प्रस्थान, मार्गमें सम्पातीसे भेंट और रामका सीताको विविध रत्न दिखाना	१३६	हनुमान्का सूर्यको निगलना, हनुमान्पर इन्द्रका बन्धप्रहार, बन्धनका कोष और हनुमान्को ब्रह्माका वरदान	१५७
उपर बन्धि सीतसे रत्नकर भरतका पितामें रुदनेको तैयार होना और उसी समय हनुमान्जी- का पहुँचना	१३७	इन्द्रका राहुको खुरद देना और हनुमान्को भूमियोंका शाप मिलना	१५८
राम-भरतका मिलन	१३८	रामराज्यके सुखका वर्णन	१५९



विषय

पृष्ठ

**यात्राकाण्ड****प्रथम सर्ग**श्रीविष्वजीसे पार्वतीसे प्रश्न और वास्तव-  
जीका उत्तर

१६१

सहस्र पातलीकिके पुष्पसे कविताका प्रादुर्भाव  
ब्रह्माका पत्नीकिके आश्रमपर जाकर राम-  
चरित्र लिखनेका आग्रह करना

१६२

१६३

**द्वितीय सर्ग**वाल्मीकिका रामायणनिर्माण, उसे सुननेके  
लिए देवता-भक्ष-नगादिकोंका आगमन

१६४

रामायण प्राप्त करनेके लिए उनमें परस्पर  
कलह और विष्णुमदवान् द्वारा रामायणकी  
विभाजन

१६५

नारदजीके द्वारा आद्यजीको चार लोक  
प्राप्त होना

१६७

**तृतीय सर्ग**पार्वतीका शंकरजीसे रामदास विष्णुदासके  
परिचयविषयक प्रश्न और छिनजीका उत्तर

१६९

सीताका रामसे गङ्गातटपर चलनेकी प्रार्थना  
रामका लक्ष्मणकी यात्राकी तैयारी करनेका  
आदेश देना

१७१

१७२

गङ्गायानासम्बन्धी समाचारसे राजाजनमें  
सन्तासकी लहर

१७३

**चतुर्थ सर्ग**रामचन्द्रका ज्योतिषी बुलाकर उत्तम मुहूर्त  
पूछना

१७४

रामचन्द्रका गंगतटको प्रस्थान  
यात्राकासीत उल्लासका वर्णन

१७५

१७६

रामका महर्षि मुद्गलके आश्रमपर पहुँचना  
महर्षि मुद्गलका अपने नवीन आश्रमसे

१७८

रामके दर्शनार्थ प्राचीन आश्रमपर आना  
और पूछनेपर दाशमत्यागका कारण बतलाना,रामका मुनि मुद्गलसे सरसूकी श्रेष्ठताके विषयमें  
प्रश्न और मुनिका उत्तर

१७९

रामके आदेशसे लक्ष्मणका बाण चलाकर  
सरसूके की भाग करके एक भागकी मुद्गलके पूर्व  
आश्रमपर आना

१८०

**पञ्चम सर्ग**सीताका गंगापूजनकी तैयारी करना, कीसल्या  
बारि साधुओं, श्रीहस्तिन स्थिनों तथा बहूतेरे

विषय

पृष्ठ

बाह्यणोंके साथ सीताका सप्तमारोह संभारपूजन  
करना

१८१

रामके दर्शनार्थ व्यवन मुनिका आस और  
भाग्यसे प्राप्त होनेवाले कष्टोंका वर्णन करना,  
उनका दुःख दूर करनेके लिए रामका अपने बाणसे  
अलक्ष्य साईं होना

१८२

कुम्भोदर मुनिका रामदूतसे वार्तालाप, वृत्तोंके  
आग्रह करनेपर भी उन्का बिना संवत्न किये  
जोटना और पूछनेपर कारण बताना

१८३

कुम्भोदर मुनिके आशेष सुनकर रामका तीर्थ-  
यात्राकी तैयारी करना, पुण्यक विमानका रामके  
आदेशसे दस योजन विस्तृत और सो बंधका  
ऊँचा होना

१८४

रामका तीर्थयात्राके लिए प्रस्थान

१८५

रामकी चार ध्वजायोंका वर्णन

१८६

**षष्ठ सर्ग**रामका अद्वयबल प्रमाण पहुँचना, वहाँसे  
चलकर काशी पहुँचना और विविध लोकोप-  
कारी कार्य तथा दान करते हुए एक साल  
वहाँ रहना

१८७

काशीमें रामका अनेक तीर्थोंकी स्थापना  
करना

१८८

रामकी गयायात्रा, वहाँ फल्गुनदीमें सीताके  
बाजूकाकी दुर्गा बनाते समय राजा दशरथका अपने  
हार्थों आलूकापिष्ट लेना

१८९

पिताको पित्रवान् देते समय राजा  
दशरथका हाथ में धोखेपर रामका विस्मित होना,  
लक्ष्मण और सीतासे पूछनेपर सीताका कारण  
बताना

१९२

सीताका आश्रमार्जन, फल्गुनदी, गयावाल  
वाहणों, बिल्ली तथा बन्धकी छली देने-  
के लिए कहना और उनके इनकार करनेपर  
श्राव देना, अन्तमें कुर्यकी सत्सीसे प्रसन्न रामके  
पिता दशरथका प्रत्यक्ष प्रकट होना

१९३

**सप्तम सर्ग**रामकी दक्षिण भारतकी तीर्थयात्राका विवरण  
सीतादिमें कन्यकुमारीका रामसे सेंट और

१९५

रामका उसे बरदान देना

१९८

**अष्टम सर्ग**भारतके पश्चिमी प्रदेशके तोषोंकी यात्राका  
विवरण, त्वारीभर बैठकर यात्रा करनी चाहिए या

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
गहों, इस विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर पुष्पक विमानपर निवृत्त करोड़ों बाह्यभोगोंके भोजनका प्रबन्ध	२०० २०१	सभी देशोंमें अन्धकार गतिसे घूमकर घोड़ेका अयोध्या छोड़ना	२२०
रामके पुष्पक विमानको देखकर मन्थान्ध सीधेबासियोंकी विविध रूपनारें	२०३	<b>चतुर्थ सर्ग</b>	
<b>नवम सर्ग</b>		रामके अन्धमेघ यज्ञमें सब देवताओं तथा शिवजीका आगमन, राम द्वारा सबका स्वागत- सत्कार होना और राम तथा शिवजीमें कुछ नवी- रञ्जक वार्तालाप	२२१
उत्तर दिशाकी सीधेबासिका विवरण, राम- की बदरोनारायण तथा मानसरोवरकी यात्रा, वहाँसे कैलास जाना और यहाँपर सीताका कामधेनु गौ पालना	२०४	अन्धमेघ यज्ञमें कुम्भोदर मुनिका आग- मन, रामके साथ वातघोत और कुम्भोदर मुनिका अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रसे रामकी स्तुति करना	२२३
सब सीधेबासियोंकी यात्रा करके रामका अयोध्या छोड़ना	२०५	<b>पञ्चम सर्ग</b>	
अयोध्यामें रामका मन्त्र त्वागत यात्राकाण्डकी फलश्रुति	२०६ २०७	विष्णुदासका गुरु रामदाससे अष्टोत्तरशतनाम- विषयक प्रश्न और उनका उत्तर	२२४
<b>यागकाण्ड</b>		रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र	२२५
<b>प्रथम सर्ग</b>		रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रका बाह्यारम्भ	२२७
अन्धमेघ यज्ञके लिए रामका गुरु वसिष्ठसे परामर्श	२०८	<b>षष्ठ सर्ग</b>	
वसिष्ठका लक्ष्मणको यज्ञकी तैयारीके लिये निदेश देना	२१०	यज्ञके समय रामकी वितर्पणा	२२८
यज्ञकी साधनियोंका विवरण	२११	<b>सप्तम सर्ग</b>	
<b>द्वितीय सर्ग</b>		अन्धारीपणवृत्तके विषयमें प्रश्नोत्तर	२३१
राम-सीताका यज्ञकी दीक्षा लेना	२१३	अन्धारीपणवृत्ति, माहात्म्य एवं फलश्रुति	२३२
क्षामकर्म घोड़ेकी पूजा करके भृश्रमणके लिये छोड़ना और शत्रुघ्न-सुमन्त आदिका उसको रक्षाके लिये जाना	२१४ २१५	<b>अष्टम सर्ग</b>	
यज्ञसमारोहमें बहुतेरे ऋषियोंका आगमन	२१५	अन्धमेघ यज्ञकी समाप्तिपर रामको भवभूष- स्नानके लिए यात्रा	२३६
वहाँ आए हुए ऋषियोंका रामके द्वारा स्वागत- सत्कार और कामधेनुकी पूजा करके शकुन्तलामें बैठना तथा उससे मनचाही वस्तुयें प्राप्त करके सब अम्बागणोंकी इच्छा पूर्ण करना	२१६	यात्राकालमें रामके दर्शनार्थ जनताकी व्यवस्था और रामका लक्ष्मणको सुप्रबन्धके लिए निर्देश	२३७ २३८
<b>तृतीय सर्ग</b>		रामका घरमें सपरिवार अधभूषस्नान	२३८
क्षामकर्म घोड़ेके साथ शत्रुघ्नका अस्त्रावर्त पहुँचना, वहाँ गौकाकी रक्षावदसे दुसरी होकर बङ्गाकी प्रार्थना करता और बङ्गाका प्रसन्न होकर सन्धे मार्ग देना	२१७	कामधेनु गौ देनेकी उल्लत रामसे वसिष्ठका सीताको दानमें माँगना	२३९
क्षामकर्म घोड़ेका गणमें पहुँचना और वहाँके राक्षसे उच्छ्वार पालना	२१८	तदनुसार रामका सीताको दान देना और गुरुः वसिष्ठकी वतायी योजनाके अनुसार सुवर्णराशि देकर सीताको वापस लेना	२४०
		<b>नवम सर्ग</b>	
		अन्धमेघ यज्ञकी समाप्तिपर शिवजीका रामसे वचन माँगना और उनका देना	२४१
		पार्वतीका सीताजीसे वर माँगना और उनका देना	२४३

विषय	पृष्ठ
यज्ञके श्रुतिज्योंको रामका शत्रु और अति- विषोंको उपहार भेंट	२४४
सिंहासनासीन रामको नदी-समुद्र तथा अन्यान्य देवताओंके विविध प्रकारके उपहार मिलना	२४५
अयोध्यामें रामका दरबार	२४६
पक्षमें जाये हुए अतिथियोंका प्रत्याग	२४७

—:०:—

## विलासकाण्ड

### प्रथम सर्ग

शिवहृत रामस्तवराज	२४९
-------------------	-----

### द्वितीय सर्ग

रामके द्वारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन और पक्षियों द्वारा रामकी स्तुति	२५७
---	-----

### तृतीय सर्ग

सीतासे प्रजन करनेपर रामका वैहराभावण- वर्णन	२६१
अर्जुन दिये हुए मानके विषयमें रामका प्रजन और सीताका उत्तर	२६३

### चतुर्थ सर्ग

रामकी दिनचर्या और नन्दीजनोंकी स्तुति	२६६
सीताके अर्गलित अलंकारोंका वर्णन	२६८

### पञ्चम सर्ग

राम-सीताका अलविहार	२७३
--------------------	-----

### षष्ठ सर्ग

राम-सीताके वयनका वर्णन, राम-सीताका विहार	२७६
राम और सीताका एक छत्रपरसे बाजारके कोतुक देखना, सीताका एक हीन-हीन ब्राह्मणीको अपना वस्त्रा लिये भील माँगनेपर उद्यत देखना, सीताका उससे उसकी वरिष्ठताका कारण पूछना और उसका बताना, सीताका उस ब्राह्मणीको एक लाख स्वर्णमुद्रा दिलवाना	२७७
सीताका लक्ष्मणके द्वारा सारे देशमें यह घोषणा करवाना कि कोई भी स्त्री बिना वस्त्रान्मूषणके विला- सको न दे। यदि वह वनामावके कारण वस्त्रान्मूषण न कारण कर पायी हो तो उसे राज्यसे दिया जाय	२७८
मगवान् रामकी तत्कालीन विलम्बिता	२७९

विषय	पृष्ठ
<b>सप्तम सर्ग</b>	
रामके यहाँ व्यासजीका आगमन	२७९
व्यासजी रामके एक बत्तीसहकी प्रशंसा करना	
रामका व्यासजीसे अगली वन्धुमें बहुत-सी स्त्रियोंका प्राप्त करनेका उपाय पूछना	२८०
व्यासजीके आज्ञानुसार रामका चोरह सीताकी सुवर्णमूर्तियों दान देना, रामके सम्मुख कितनी ही देवदेवानाओंका आकर रामपर मुख होना	२८१
उन स्त्रियोंको रामका वरदान	२८२

### अष्टम सर्ग

गुणवतीका वृत्तान्त, अरण्यमें गुणवतीके पतिका मरण	२८३
गुणवतीका अयोध्यामें रामके सम्मुख पहुँचना, रामकी तत्कालीन सोमाका वर्णन	२८४
गुणवतीको रामका वरदान मिलना	२८५
विगल नामकी बेध्याका रामके वनवास पहुँचना, राम द्वारा विगलाका वृत्तान्त सुनकर सीताका क्रुपित होना	२८६
क्रोधवश सीताका भरनेके लिए सद्यत होना, रामकी विकलता, आधी रातके समय रामका गुरु वसिष्ठकी बुलावनेके लिए लक्ष्मणको भेजना, गुरुके चरण छूकर रामका क्षय माना	२८८
सवेरे सीताका पिगला बेध्याकी बुलाकर बाँटना और मारना, विगलाको सीताका क्षाप और उससे उद्धारका समय निर्धारित करना	२८९

### नवम सर्ग

रामकी कृष्णव्याज, लोषामुद्रा और आनकी- नीकी गतघोष	२८९
लोषामुद्रासे शास्त्रार्थमें सीताकी विजय	२९०
विलासकाण्डका आद्भुत एवं विलासकाण्डके पाठकी विधि	२९१

—:०:—

## जन्मकाण्ड

### प्रथम सर्ग

यात्रीके मुखसे रामका सीताके अभिप्रेत होनेका समाचार सुनना	२९३
सीताका जंगलोंमें खीर करनेकी इच्छा प्रकट करना और इसकी संपादनेके लिए रामका लक्ष्मणको वाचक देना	२९४

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पालकीपर चढ़कर रामका सीता तथा सब परिवारको साथ लेकर बनको जाना करना	३१५	पुष्पक विमान द्वारा उस समय रामका जो वहाँ पहुँचना और बादमें रामका जो व्यवस्थापन करनेका विषय करना	३०९
इस क्षेत्रगोत्रा वनमें पहुँचना और बनको जोमाका वर्णन	३१६	स्वर्णमयी सीता बनाकर रामका यज्ञारम्भ, रामके नन्हे राजा पूर्ण होना और कुशको उत्पत्तिका वृत्तान्त	३१०
<b>द्वितीय सर्ग</b>		बाल्मीकि कुश-लवको रामायणकी शिक्षा देना और अल्प समयमें उनका सीसना	३११
राम-सीताका वनविहार	३१८	<b>पञ्चम सर्ग</b>	
छठे मासमें श्रीवन्ताश्रयनसंस्कारऔर जनकजीसे रामका सोदाख्यानसम्बन्धी वार्त्तालाप	३१९	विष्णुदासका रामदाससे रामरक्षास्तोत्रके विषयमें प्रश्न और रामरक्षास्तोत्रका पार	३१२
वनमें, कहाँ कि सीता भाकर रहनेवाली थीं, वहाँपर जनकजीका व्रम्भ	३२०	रामरक्षास्तोत्रका आहारम्भ	३१३
<b>तृतीय सर्ग</b>		रामनामके स्मरणका फल	३१५
रामका सीताको त्यागनेका कारण बतलाना	३२१	<b>षष्ठ सर्ग</b>	
रामका विषय नामक गुठ भरसे भगताके गुठ विचार पूछना	३२२	सीताका बाल्मीकसे पतिवियोग दूर करनेके लिए कोई व्रत पूछना और उनका बतलाना	३१६
उसके मुखसे प्रजाके हृदयकी यह बात भासूम करना कि सीता फितने ही सर्व रावणके यहाँ रह चुकी थी, फिर भी उसे रामने अपना लिया। यह अच्छा नहीं किया। विद्वयका रामको एक शोबीनी काष्ठ चुनाना। कैकेयिका सीतासे रावणकी बाहुति पूछना और सीताका दोबारमें केवल रावणके एक अंगूठेका आकार बनाना	३२३	सीताका बगीचेके रक्षकोंसे मुठभेड़ और विजयी होकर लौटना	३१८
सीताके चली जानेपर कैकेयिका उस अंगूठे के अनुसृत रावणके सारे सरोरको तसवीर बना देना और इसी समय रामका पहुँचना, तसवीरके विषयमें रामके पूछनेपर कैकेयिका सीताकी बनायी बात बतलाना	३२४	दूसरे दिन फिर उसका उन सीनेसे थुड़ और लवकी विजय	३१९
प्रातःकालके समय सीताको वनमें त्यागनेके लिए लक्ष्मणका प्रस्थान	३२५	रामका लवको पकड़नेके लिये बाल्मीकि ऋषिके आश्रमपर दूत भेजना, इसपर बाल्मीकिदा यह उत्तर देना कि चलो, मैं रामके अपराधीकी लेकर स्वयं वहाँ जाता हूँ	३२०
बाल्मीकिके आश्रमपर पहुँचकर बदगद भागी-में लक्ष्मणका सीताको सब वृत्तान्त बतलाना	३२६	<b>सप्तम सर्ग</b>	
<b>चतुर्थ सर्ग</b>		रामका अन्तिम व्रतके लिये स्वामर्कण पोषा छोड़ने और गुप्तरीतिसे बाल्मीकिना सीताके साथ रामके यज्ञमें जाना	३२१
रामको उस राजा पालन करनेके लिए लक्ष्मणका विचार करना—त्रिभुमें उन्होंने कहा था कि लौटते समय सीताके दोनों हाथ काट ले जाना। उस निर्मम कार्यको करनेमें असमर्थ लक्ष्मणका प्राण त्यागनेपर अश्रुत होना और बड़की रूपमें विश्रमसि भेंट	३२७	कुश-लवका रामायणगत सुनकर सबका मुग्ध होना और बादमें रामकी कृपासे लक्ष्मणका रामा-वर्णमान	३२२
विश्रमकर्मिका सीताकी मुखा बनाकर देना और उसे लेकर लक्ष्मणका अयोध्या लौटना	३२८	रामका उन दोनों बालकोंको पुत्नार बिल-राना और उनका लेनेसे इनकार करना	३२३
अर्धरात्रिके समय सीताके कर्त्तव्य पुनरुत्पन्न होना	३२८	लक्ष्मण रामके स्वामर्कण पोषेको पकड़ना और लव तथा सुभुजका संग्राम, लवका हनुमान्, सुमन्त और बरह्मकी कक्षामें स्वाकर माता सीताके पास ले जाना	३२४
		रामके आज्ञानुसार लवको पकड़नेके लिये	

विषय	पृष्ठ
लक्ष्मणका जाया, लव और लक्ष्मणमें युद्ध	३२५
लक्ष्मणका लवको सहपात्रमें बाँधकर राम- के समक्ष ले जाना, रामके आज्ञानुसार लोनों- का लवपर जरूरी सड़े उड़ेलना और लवका लक्ष्मण	३२६
लवको छुड़ानेके लिए कुशका जाना	३२७
राम-लक्ष्मण और कुशका युद्ध	३२८

### अष्टम सर्ग

रामका एक मन्त्रीकी वाल्मीकिके पास भेजना	३२९
रामकी समामे वाल्मीकिका सीताको साथ लिये हुए जाना	३३०
रामके प्रति वाल्मीकिकी उक्ति और सीताको हाथी सहित देखकर रामका सन्देश	३३१
सीताकी शपथ, सीताका पृथ्वीमें श्वेद करना और पृथ्वीसे रामकी आर्चना	३३२
पृथ्वीपर रामका कोप और रामका पृथ्वीसे सीताको वापस जाना	३३३
यज्ञमें आये हुए राजाओं और ऋषियोंकी विराई	३३४

### नवम सर्ग

वर्मिला, माण्डवी तथा धृतराष्ट्र आदिका गमिणी होना और यथासमय पुन उत्सव करना, पुत्रोंकी जागतिके अवसरपर रामका उत्साह	३३५
रामका कुलगुरु वशिष्ठसे सब ऋषियोंके पुनाधुम लक्षण पूछना और वशिष्ठका सब बालकोंके लक्षण बतलाना	३३६
पुत्रपत्नी बहियोंके साथ सीताका आनन्दमय जीवन बिताना	३३८
गुरु वशिष्ठसे रामका लव-कुशके उपनयनका परामर्श और अतनयको तैयारियोंके लिये रामका लक्ष्मणकी आदेश	३३९
उत्तमन्य ( उपनयन ) संस्कार समारोह	३४०
उत्तमन्यसंस्कार	३४१
लव-कुश आदि बालकोंका वेदाध्ययन, बालकोंका गुरुवृहसे वापस आनेपर अयोध्या नगरीके उत्साहका वर्णन	३४२
वन्मकोंके सुन्दरीका फल और इसकी महिमाका वर्णन	३४३

विषय	पृष्ठ
<b>विवाहकाण्ड</b>	
<b>प्रथम सर्ग</b>	
रामकी समामे महाराज भूरिकीलिका स्वयंवर पथ जाना	३४५
पथ पड़नेके अनन्तर रामका स्वयंवरमें जानेकी तैयारी करना, रामकी स्वयंवरयात्रा	३४६
रामका अपने पुत्रोंके साथ स्वयंवरमें पहुँचना	३४७
रामका आगमन सुनकर राजा भूरिकीलिकी नगरनिवासिनी महिलाओंकी प्रसन्नताका वर्णन	३४८

### द्वितीय सर्ग

दूसरे रोज रामका स्वयंवर-समामे जाना और रामके इतोंका वहाँ आये हुए राजाओंका परिचय देना	३४९
समामे वम्पिका रामकी राजकन्याका प्रवेश	३५०
वम्पिकाको साथ लिये सुमन्वाका सब राजाओंके समक्ष जाना और वम्पिकाको उन राजाओंकी स्थिति समझाना	३५१
वम्पिकाका सब राजाओंके सामनेसे होकर रामके सम्मुख पहुँचना	३५२
अन्तमें वम्पिकाका कुशके सामने पहुँचना और कुशके गलेमें बरमाला डालना	३५४

### तृतीय सर्ग

सुमन्वाका सुगति रामकी दूसरी राजकन्याको साथ लेकर पहलेकी तरह सब राजाओंका यज्ञ सुनाना	३५५
सुमन्वाका सब राजाओंके सामनेसे होकर लवके समक्ष पहुँचना और उनके गलेमें बर- माला डालना, दूसरे दिन भूरिकीलिका रामके पास आकर विवाहके लिए मुहूर्त निश्चित करना	३५७
विवाहकारोंका शारङ्ग	३५८
लव-कुशका विवाहसमयमें पहुँचना और विवाह सम्पन्न होना	३५९

### चतुर्थ सर्ग

विवाहके अनन्तर होनेवाले कोलाहल	३६०
भूरिकीलिकी नगरीसे राम आदिकी विवाह, रामका अयोध्या पहुँचना और अयोध्यावासियों द्वारा उनका स्वागत	३६१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
विषादोत्सवमें आये हुए बन्दागतोंकी विवाह, रामदासका विष्णुदासको कुत्ते विषयमें कुछ मतिव्यक्ति बातें बतलाना	३५२	का विह्वल होना और नारदका सब झाल बतलाना, यूपकेतुका अपने मोहनस्वसे सब राजाओंकी मोहित करके मदनसुन्दरीकी वरमा	३७५
<b>पञ्चम सर्ग</b>		यूपकेतुका सब राजाओंके साथ युद्ध	३७६
सीता तथा सजाओंके साथ रामका वनमें अगस्त्यके आश्रमपर जाना	३६३	यूपकेतुका बहुत बड़ाकर अपने कपूर कन्दु- कण्टकी नाखनेके लिए उद्यत होना और मदन- सुन्दरीकी प्रार्थनासे छोड़ देना, भारतमें एकुब्जसे यूपकेतुका साक्षात्कार और वहाँसे लौटकर फिर कान्तिपुरीकी जाना	३७७
अगस्त्य ऋषि द्वारा रामका सुत्कार और वनमें रामको पाँच अम्तराओंका भिन्नता	३६४	<b>षष्ठम सर्ग</b>	
अगस्त्यसे उन अम्तराओंके विषयमें रामका प्रश्न और उनका उत्तर, रामके बाप भारतके लिए उद्यत होनेपर अजनेविषीका प्रकट झूठा और करतूत कन्यायें रामकी अपित करना	३६५	इतके मुखसे यूपकेतुका सब समाचार जात होनेपर रामका कान्तिपुरीके लिए प्रस्थान, कान्तिपुरीमें आतंकपूर्वक रामका पहुँचना	३७८
<b>षष्ठ सर्ग</b>		यहाँ यूपकेतुका विवाह होना, भगवान्की स्तुति करके नारदका प्रस्थान, विवाहकाण्डका अन्तमकल	३७९
सदुससे मधवी और पक्षियोंका जाना और रामकी स्तुति करना, अपने एक स्वयम्भ आदिश पुत्रोंकी कुछ मतिव्यक्ति बातें अगस्त्य ऋषिसे रामकी बालूम होना	३६६	विवाहकाण्डके अनुष्ठानकी विधि	३८०
मधवीकी अयोध्या आनेके आता देकर रामका अपनी पुरीकी वापस लौटना	३६७	<b>राज्यकाण्ड (पूर्वार्द्ध)</b>	
अयोध्यामें पहुँचकर उन कन्याओंकी बखिड़के सही रखना, मधवी और नामीका अयोध्यापुरीमें पहुँचना तथा विवाहके सुदृढता निश्चित होना	३६८	<b>प्रथम सर्ग</b>	
<b>सप्तम सर्ग</b>		रामसहस्रनामके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और रामदासका उत्तर	३८१
उन कन्याओंके साथ राम आदिश पुत्रोंके विवाहकी तैयारी	३६९	सन्ध्याभार और पक्षीका बालांलाप	३८२
कन्यकायनी मायकी कन्याके सग सक्ता विवाह, अन्य कन्याओंके सङ्ग अन्य पुत्रोंका विवाह, राम आदिश आनन्दका वर्णन	३७१	राम सहस्रनाम	३८३
<b>अष्टम सर्ग</b>		रामसहस्रनामका माहात्म्य	३८४
रामके पास कन्दुकक नामक राजाका पत्र आना, कन्दुकककी कन्या मदनसुन्दरीके पास नारदजीका पहुँचना	३७२	<b>द्वितीय सर्ग</b>	
मदनसुन्दरीका नारदजीसे रामचन्द्रजीकी पठेहुँ बयनेका उपाय पूछना और नारदका उडे उपाय बतलाना	३७३	कल्याणके विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर	३८२
नारदका अयोध्या पहुँचना और उनके मुखसे सब हाल सुनकर यूपकेतुका कान्तिपुरीकी बल देना	३७४	रामके पाँच सौ हजार शिष्योंके साथ दुर्वासा- का आगमन और सबके लिए भोजन तथा पूजनके लिए ऐसे फल भोगना, जिन्हें संसारमें किसीने न देखा हो	३८३
यूपकेतुको न देखकर परिवार समेत राम-		रामका पत्रके साथ एक साथ इन्द्रके पास देखना और इन्द्रका कल्पवृक्ष तथा वारिजात स्वर्ग आकर अयोध्यामें राखना देना	३८४
		सीताका कल्याणकी स्तुति करके उसके द्वारा प्राप्त सातप्रोष्ठ शिष्यों सेहत दुर्वासाकी भोजन कराना	३८५
		भोजनके बाद प्रकृत दुर्वासाका रामकी स्तुति करके प्रस्थान	३८६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
<b>तृतीय सर्ग</b>		सीताके हाथों मूलकासुरका वध	
रामोपासक तथा कृष्णोपासक को विशेषमें परस्पर मधुर विवाद	४२७	ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा सीताकी स्तुति	४२२
दोनों काष्ठपत्रोंका विवाद निपटानेके लिए आकाशवाणीका होना	४०६	रामके हाथों विभीषणका राजसार्मिक	४२३
<b>चतुर्थ सर्ग</b>		विभीषणके द्वारा मसीभाँति सम्मानित होकर रामका विचटाका सत्कार करना	४२४
एक कोएकी रामका वन्दन	४०७	रामका अयोध्या छोटना	४२५
रामपर आसक्त हो नागरिक स्त्रियोंका आगमन	४०८	लवणामुरसे अस्तु मुनियोंका रामके पास जाना और अवन भुनिका लवणामुके पूर्वजन्मका वृत्तान्त	४२५
उन स्त्रियोंकी अनुचित प्रार्थनापर रामका उत्तर और वरदान	४०९	रामको मायासे शत्रुघ्नका लवणामुरको मारनेके लिये मधुवन जाना	४२६
रामका दास-वासियोंको बुलाना, किन्तु वहाँ किसीका उपस्थित न रहना, लवणका अवनने दूत भेजकर उन्हें बुलवाना और दास-वासियोंका हरिकीर्तन सुँइकर आनेसे इन्कार करना	४१०	<b>सप्तम सर्ग</b>	
मध्य रात्रिमें एक स्त्री ( मित्रा ) का अवन सुनकर पुष्पक द्वारा रामका उसके पास जाना और उसे वरदान देना	४११	शत्रुघ्न द्वारा लवणामुरका वध	४२८
कुम्भकर्णके दोष पीड़ककी लंकारपर चढ़ाई करके विभीषणको परास्त करना और विभीषणका रामके पास आकर अपना कुल सुनाना	४१२	अपना सेनाके साथ रामका दिगम्बरके लिए प्रस्थान	४२९
रामपर कंक आकर पीड़ककी परास्त करके विभीषणको राजगद्दीपर बिठाना कुछ काल बाद मूलकासुरसे परास्त होकर विभीषणका रामकी शरणमें जाना	४१३	पुष्करदा आदि तीन राजाओंके साथ रामका गुप्तगम	४३०
सम्पन्न राजाओंके साथ रामकी मूलकामु-पर चढ़ाई और मोषण युद्ध होना	४१४	उन्हें जीतकर रामका मधुरा जाना और वहाँमें यक्षनादि विविध देशोंकी राजा	४३१
ब्रह्माजीके द्वारा मूलकासुरके मरणको शुभ पुस्तिका जास होना और रामका सीताको लानेके लिए गवहको भेजना	४१५	<b>अष्टम सर्ग</b>	
<b>पञ्चम सर्ग</b>		रामकी किम्बदन्त आदि देशोंकी विषयवस्तु, अरुणार्णवके विविध द्वीपों, द्वीस्थ नदियों और पर्वतोंका वर्णन	४३१
रामके विरहसे सीताकी अवसाद वर्णन	४१६	<b>नवम सर्ग</b>	
रामसे मिलनेके लिए सीताका विविध मन्त्रोत्पत्ति मानना	४१७	रामकी मन्त्रादि द्वीपोंकी विषयवस्तु	४३५
सीताका मरुद्वीपर आरुढ़ होकर प्रस्थान, राम-सीताका मिलन और मूलकासुरका वध करनेके लिए रथपर सवार होकर सीताका रथ-सुमिकी प्रयाण	४१८	विविध द्वीपोंपर विजय प्राप्त करते हुए रामका द्रोणद्वीपर पहुँचना	४३७
<b>षष्ठ सर्ग</b>		रामकी शाकद्वीप यात्रा	४३८
सीता-मूलकासुरका शक्तता और धार्ढ्यलाप	४२०	रामका पुष्करद्वीप पहुँचना	४३९
		लंकाप्रतीक एवंत तक जाकर रामका अयोध्या छोटना	४४०
		जैसे हुए द्वीपोंपर राम द्वारा अपने माइकों और पुत्रोंकी नियुक्ति	४४१
		<b>दशम सर्ग</b>	
		रामका लक्ष्मणसे एक कुरोंके रोदनका कारण पूछना	४४१
		पूछनेपर कुत्तेका व्यर्थ पारनेवाले एक संन्यासी-को अपराधी कहना	४४२
		रामका संन्यासीको बुलवाना और होष प्रमाणित हो जानेपर मुत्तेके ही अपराधीको	

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
दण्ड देनेके लिए कहना और कुत्तेका संन्यासको कहनेका मर्यादा बननेका समय देना	४४३	उत्तका काव्यजिक मारीजिक सुनकर रामका पकड़ होना और वरदान देना	४६०
इस दण्डपर अधिक लज्जाका फलसे कारण पूछना और उत्तका बतलाना, एक दिन एक निश्चय करने के हुए बन्धको लेकर रामके समक्ष आना और गेला	४४४	उन सबको साथ लेकर रामका लक्ष्मण आदिके पास आना और वहाँसे एक वरोवरपर पहुँचना	४६१
रामका उसे आश्वासन देना और बन्धके सबको तैलकी दायमें प्यवाना	४४५	रात्रिके समय रामका धाराहृमय कराना वहाँसे रामका मयुरा जाना, वहाँ एकान्तमें रामके पास रात्रिके लरीकर पारण करके समुद्राका वापस	४६२
उसी समय भृङ्गवेरदुग्धे एक और सबका जाना	४४६	कालिन्धी ( यमुना ) को राम वरदान	४६४
उसकी विषयको आश्वासन देकर रामका दुल्लभ मित्रानपर पहुँकर बाहर निकलना, लगे फले जानवर और पक्षि आदि अयोध्या आना	४४७	<b>राज्यकाण्ड ( उत्तरार्द्ध )</b> <b>त्रयोदश सर्ग</b>	
रामका दुल्लभबन्धने एक पत्रपत्रे उस रूप करते देना, उमसे बात करना और वापस देना	४४८	समामें बैठे हुए रामका एक मनुष्यको हँसो सुनकर चबाराणा	४६५
रामके समक्ष एक गुह्य और उल्लूकता अति-योग दया रामका ग्याम	४४९	रामका अपने राज्यमें हँसनेकी भनाही करना	४६६
रामका पूर्वोक्त मातो मृदुकोकी अविष्ट करना	४५०	रामके इस आवेदने मनुष्यों तथा देवताओंमें आतंक छा जाना और विशेष-परमेश्वरमें भयानका अयोध्याके एक पीढ़ल वृद्धमें अविष्ट होकर सोरोसे हँसना	४६७
<b>एकादश सर्ग</b>		एक दिन समामें किसी दूतको हँसते देखकर रामका हँसना और बाधने बज्जात हुए अपनी हँसीपर दिवार करना	४६८
मृगबाधे लिए रामकी भाषा और वनवर्णन	४५०	कारण ज्ञात होनेपर अनुचरोंको हँसनाला पीढ़ल काट डालनेकी आज्ञा देना, उसे काटनेकी गये हुए देवकोंका बह्मकी उल्लङ्घनासे बाढ़त होकर पीढ़ल करना	४६८
रामका एक मित्रका बोझा करते हुए अपने साथियोंसे विलुप्तकर वनमें दूध निकल आना वहाँ सिंहका भारना और मृत सिंहकी अपनी आत्मकमर भुजाना	४५२	बादमें रामकी भाजासे सुनचना जाना, वहाँ पक्षियोंको मारते उनका ही मूर्च्छित होना और रामका अविष्टकी मुलाकर कारण पूछना	४६९
रामका एक काटगामे भुजना वहाँ पार विजयका भुजगाय इशामें देना और अहं कीवित करना	४५२	अविष्टका कारण बतलाना, बह्मकी भृष्टता सुनकर रामकी कुण्ठ होना और कुत्र रामकी बह्मि बालीकिका समझाना	४७०
रामका उन निजबलसे पात्रालक्ष्य उनका रामपर मोहित होना और उनको रामका वर देना	४५३	आनन्दराजराजकी महिमा	४७१
<b>द्वादश सर्ग</b>		बालीकिका बह्मकी कुलवाना	४७२
उन वारीके साथ बने चसकर एक स्थानपर रामका साक्ष्य हुआ विजयोंकी देवका	४५५	बह्मका रामकी स्तुति करना और अविष्टकी को विष्णुगणोंके विषयमें जान	४७३
उन सब चित्तका रामपर मोहित होना	४५६	<b>चतुर्दश सर्ग</b>	
उन सबका वरण करनेके लिए रामकी विचार करना और रामका बसवधान होना	४५७	अविष्टके प्रस्ता इत्या द्वारा उत्तर, अश्विनो-कुमारका विष्णुके गम अय-विजयकी साथ देना और	४७४
रामके विषयमें उन द्विजोंकी करण-वशाच्छि वर्णन	४५८		



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उद्धारके समयका निर्देश	४७४	कंकण देना उस कंकणकी प्राप्तिके विषयमें	
वय-विषयके अंगले जन्मकी कथा, वृद्धा- की स्मृतिसे रामका प्रसन्न होना, महर्षि वाल्मीकिके रामके कुछ प्रश्न	४७५	अनन्यसे लवका प्रश्न और उन मुक्तिका उत्तर	५००
वाल्मीकिका लवसे पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, लवकरवृत्तिपरमाणु वाल्मीकिका एक विप्रका शब्दकमकल्ल तथा नूतने आदि छानना बादमें तपती रेतपर चलते हुए वाद्यका दुःखी देखकर दमयन्त जूने लौटा देना	४७६	एक शत्रुगीत प्राणीको मरे हुए दुर्देका मांस खाने देखकर काश्रुदका विस्मित होना, उसके कारण पूछना और उसका बतलाना	५०५
वाल्मीकिका शत्रु विप्रसे अपने पूर्वजन्मका हाल पूछना	४७७	लवकारणके विषयमें महर्षि अवस्थसे लवका प्रश्न और कृषिका उत्तर	५०९
शत्रुका वाल्मीकिके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, केरवासल वाल्मीकिकी स्त्रीकी सेवा और मायासन वाल्मीकिका देहान्त और लवकी स्त्रीका सती होना	४७८	लवकारणकी कथा, राजा शत्रुका भृगुकी कन्य के साथ बलात्कार और राजाकी भृगुका शाप	५०२
उनके अंगले जन्ममें कुश नामके कृषि- का भाई एक शत्रुगीतका खाना और उसका वाल्मीकिका अन्य किराणों द्वारा पालित होनेके कारण वाल्मीकिका व्यापवृत्ति स्वीकार करना	४७९	<b>अष्टादश सर्ग</b>	
वाल्मीकिकी गहमियोंका उपदेश	४८०	रामघटाकी रचनाविधि	५०३
उत्तेके उपदेशमें वाल्मीकिका 'मरा-मरा' यह मन्त्र बोलने हुए कठार तप करना और बहुत वर्षों बाद महाविषाका फिर मही खाना और उन्हें बाँवसे बाहर निकालना, वाल्मीकिके मुत्रसे शत्रुका जन्म	४८१	विष्णुदासका रामबाणपुरके ब्राह्मणोंको राममुद्रा दूत शिला दिलाना कारण पूछना और रामदासका उत्तर	५०४
अकारादि क्रमसे रामनामकी महिमा	४८२	बहुत समय बाद एक दुष्ट राजा द्वारा सन्धि ज्ञानेपर उस ब्राह्मणों द्वारा वह शिला एक मरावाम फेंकना	५०७
<b>पञ्चदश सर्ग</b>	४८३	उस शत्रुवरको बाँटते हुनुमान्जीका उन ब्राह्मणोंकी रक्षा करना और राममुद्रावित्त शिलाको संरक्षितमें निकालना	५०८
रामराज्यकी विशेषतायें	४८५	वह शिला दिसाकर हुनुमान्जीका उस दुष्ट राज को शूलोपर चढ़ाना और ब्राह्मणोंको मायासन देना	५०९
<b>षोडश सर्ग</b>		<b>एकोनविंश सर्ग</b>	
रामका लव-कुश आदि पुत्रों तथा भरत- लक्ष्मण आदि ब्राह्मणोंको राजनीतिक उपदेश	४९०	रामकी दिनचर्या	५१०
<b>सप्तदश सर्ग</b>		बैद्य और ज्योतिषीसे रामका वास्तुलाप	५११
कुशकी पुत्री हेमाका स्वयंवर	४९५	रामकी समा और उसकी घोभा	५१२
विजयवर द्वारा हेमाका उपहरण और उसके साथ लव कुश आदिका भीषण युद्ध	४९७	कुशकी उत्पत्तिके बाद सीताके बर्न न रहनेका कारण	५१५
उस युद्धमें कुशका विजयी होना और प्रसन्न होकर रामका उन्हें एक कंकण देना उस कंकण की प्राप्तिके विषयमें कुशका महर्षि अवस्थसे प्रश्न और उसका उत्तर	४९८	<b>बीसवाँ सर्ग</b>	
हुनुमान्जीका मुद्रगल शूलिके नामसे सीजीवनो बूटी लकर लवकी मूर्छा दूर करना	४९९	लवका वसिष्ठसे रात्रिमें सोते समय कानमें धीकधीक सभल होनेवाले सम्बन्ध कारण पूछना और वसिष्ठका उत्तर देना	५१८
लवकी भी रामका एक अंगस्थप्रवेश		रामका रामावतारकी श्रेष्ठ बतलाना	५१९
		मन्थ, कुर्म, वासाह नृसिंह, शायन, पञ्चुराम, हृष्ण, लोह तथा कल्कि अवतारके दोषोंका वर्णन	५२०
		राम के रामवतारके सुखाका वर्णन	५२२
		<b>इक्कीसवाँ सर्ग</b>	
		चैत्रनामके समय सीताका दर्शन करनेके लिए बहूतेरी स्त्रियोंका जाना	५२५
		रामका पूर्वजन्मके काशीका सिंहावलोकन	५२६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
लवका गुरु बहिससे पोषियोंके प्रत्येक वनमें एक ओर था तथा दूसरी ओर राम लिखनेका कारण पूछना और उनका बताना	५२७	सूर्यका वनको ले जाकर रामसे लवका मंगलाना	५२६
रामका एक दासको बरदान देना, रामका एक ही समय ही रूप धारण करके विधायिनी और मात्सीकिके यहाँ जाना	५२८	रामका अपने राज्यमें धार्मिक आदेश राज्यका उनके पारायणका साहाय्य	५२७ ५५१
<b>चाईसवाँ सर्ग</b>		<b>मनोहरकाण्ड</b>	
राजा मूरखीकिके यहाँसे बहुतरा छोटाग बनाओर बिना रामको मर्पण किये सीताका उसमेंसे एक फूल छुँच लेना	५२९	<b>प्रथम सर्ग</b>	
एकादशीके दोन सीताको साढ़ीसे ढँक कर एक तुलसीका पत्र दूटना और उसी समय भारद्वाज का पहुँचना	५३०	रामदाससे विष्णुदासका मारदकपित रामायण ( कचुरामायण ) का सार पूछना	५५५
सोजन परासनेपर मारदक सीतासे संसृष्ट जीवन करनेसे इस्कार करना और रामक पुछने पर कारण बताना	५३३	<b>द्वितीय सर्ग</b>	
सीताका दूटा तुलसीराम टहनीके ओरनेके प्रयासमें विफल होना	५३४	अवध्यावासियोंका रामसे कुछ उपदेश देनेके लिए प्रार्थना करना	५६०
मारदकी बसायी पुलिसके फिर सीताका प्रयास करना और तुलसीपत्रका कुछ जाना	५३५	राज्यके समय दूरीका प्रभावोंकी उपदेश	५६१
मारदका रामस्तुति	५३६	शावनाष्ट पून प्रकाशियोंका रामसे मात्सीकिक एक दिन कंचियोंका रामसे उपदेश देनेकी प्रार्थना करना और रामका कंचियोंकी भेंटसे उपदेश लिखवाना	५६२ ५६४
<b>तेईसवाँ सर्ग</b>		भेड़ोंत प्राप्त ज्ञानके विषयमें रामका हँकियोंसे प्रश्न	५६५
मानन्दरायणका पाठ करनेसे एक साधारण सिपाहोका रामभाजी हो जाना	५३८	भुमिशका रामका ज्ञानावदेश	५६६
उसका अन्वय देखकर सब सिपाहियोंका मानन्दरायणके आराधनमें लग जाना, सिपाहियोंके कनासे भयङ्कर सब राजाओंका रामके पास जाना	५३९	पाता कोमल्याकी रामका गीते बसकोंसे आत्मज्ञानका उपदेश दिलाना	५६८
मानन्दरायणके अवशसे यमपुरका सूना होना और यमराजका बहुत शिव आदि देवताओंके साथ धियोत्वा जाना	५४०	कामान्दरमें कौसत्वा भुमिश आदिका दहत्याग	५६९
उनकी दुःखाया सुनकर रामका मानन्द-रामायणपर प्रतिबन्ध लगाना	५४१	<b>चतुर्थ सर्ग</b>	
<b>चौबीसवाँ सर्ग</b>		विष्णुदासका रामदाससे रामकी मानसी पूका-विधि पूछना	५७०
रामका मृत सुम्नकी यमदूतोंसे सीनकर वापस लाना	५४२	रामदासका उत्तर और गुरुके लक्षण बताना	५७१
सुम्नकी जन्मकाजोन राधा	५४३	विभिन्नसत्यक असरोंवाले रामायण	५७२
कृपित यमराजकी बयोभापर चढ़ाई	५४४	मानसी पूजाका विधि-विधान	५७३
सब और यमराजमें बयावत पुत्र, सबके रक्षात्वकी मारसे यमराजकी बबराहट और सूर्य गजबासका काकर सबको संभलाना	५४५	नन्यकाराष्टकमन्त्र	५७५
		बहिसूत्राविधान	५७७
		मन्त्रपुष्पांजलिके विषयमें विष्णुदास-रामदासका प्रलोभन और बन्ध-व्यतिचन्द आदि नौ मर्कोंकी कथा	५८२
		उन नौ मर्कोंका कठोर तप करना और उन्हें रामका प्रत्यक्ष दर्शन मिलना	५८३
		उन नौ मर्कोंकी रामका बरदान	५८४
		<b>चतुर्थ सर्ग</b>	
		अष्टोत्तरशत रामस्मितीपर आदिके विषयमें विष्णुदासका रामदाससे प्रश्न और उसका उत्तर	५८५
		रामदासका विष्णुदासको आध्यात्मिक उपदेश	५८६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
राममुद्राको पूर्ण करनेकी विधिर्था	५९१	किस कामनाकी पूर्तिके लिए किस देवताकी	
महोत्तरगत रामस्मिन्तोमत्रके चेत	६०९	आराधना करनी चाहिए	६७०
<b>एकम सर्ग</b>		रामके रक्षाराशि नामोंका महत्त्व	६७१
रामस्मिन्तोमत्र कादि विविध मन्त्रोंकी		रामवारक मन्त्रका माहात्म्य	६७२
रचनाविधि	६०४	<b>दशम सर्ग</b>	
<b>धृष्ट सर्ग</b>		बेचबाधकी महिमा	६७३
रामतोभद्रमें उत्तदैवताओंकी स्थापनाविधि	६२७	चैनस्नान करनेवालोंके लिए कुछ विशेष नियम	६७४
श्रीरामकी प्रिय वस्तुओंका विवरण	६३०	स्त्रियोंके लिए क्षीरक्षर गोरोहण तथा पूजन	
वृत्तिविश्रामकी प्रभावविधि	६३२	विधि	१७९
रामनवमीका उत्त करमेवाले एक विप्रकी कथा	६३७	रामनवमीको रामचन्द्रके पूजनका विधान चैन-	
एक राजामें राजसेवकोंका आकर उस		में आनन्दरामायणके पारामर्शका विधान	६८०
विप्रकी स्ताना	६४०	वन्द्य विधि-विधान	६८१
इनुमान्जीके गर्भनसे राज्यके सब पुरुषोंका		<b>एकादश सर्ग</b>	
मरण, तभीसे उस राज्यमें स्त्रीराज्य होना	६४१	चैनमासके महत्त्वका कारण	६८३
उस राज्यमें पुरुष उत्पन्न न होनेका कारण	६४२	रामका देवताओंको चरवान	६८४
रामनवमी व्रतकी फलश्रुति	६४६	चैनस्नान करनेवाले नृसिंह ब्राह्मणकी कथा	६८५
<b>सप्तम सर्ग</b>		शम्भु ब्राह्मणकी कथा	६८६
रामशतनाम आदि स्त्रियोंकी रीति और		शम्भु विप्रका एक बहुलियेकी उपदेश	६८९
उपायनविधि	६४४	शम्भु द्वारा वहाँ आये हुए एक राक्षसका उद्धार	६९१
रामनामकी महिमा	६४५	शम्भु विप्र तथा व्यापकी अयोध्यायात्रा	६९२
राजा बुधितिकी श्रीकृष्णसे रामनामजप तथा		शम्भुके मार्गमें एक सिद्ध तथा हाथीका सामने	
पुरस्कारविधि पूरना और श्रीकृष्णका वचन	६४७	जाना, उस सिद्ध तथा हाथीके पूर्वजन्मकी कथा	६९३
आनन्दरामायणके पाठ और रानका माहात्म्य	६४९	शम्भुका उन दोनोंके उद्धारका आश्वासन	६९४
रामनामजपकी महिमा	६५०	आगे बढ़नेपर शम्भुकी एक कार्पटिका	
कवित्तोंका लक्षण और कवियोंकी श्रेणी	६५२	( चर्चकारकी ) से भेंट और मार्गछाप	६९५
<b>अष्टम सर्ग</b>		शम्भु द्वारा अयोध्याकी शोभाका वर्णन	६९७
देवादिओंके पाठका माहात्म्य	६५३	कार्पटिकके साथ शम्भु विप्रका अयोध्यासे झटकर	
दानपात्रके विषयमें रामदास-विष्णुदासका		उक्त पूर्व आश्वसित राक्षसका उद्धार करता	७०१
प्रश्नोत्तर	६५४	<b>द्वादश सर्ग</b>	
आर्योंके अध्ययनकी महिमा	६५५	मृगयाके प्रसंगमें रामकी एक खरीदे भेंट	७०२
विविध रामायणोंकी चर्चा	६५६	रामका दुर्गामन्दिरमें आकर बहुतेरे स्त्रियोंकी	
रामभयसके पाठ और रामसम्बन्धी कविता		पूजा स्वीकार करना और बरदान देना	७०५
करनेका फल	६५८	रामनामकी महिमा	७०६
आधुनिककवियोंके अध्ययनका फल	६५९	रामका मुनियोंकी उपदेश	७०७
मानियोंकी दानपात्रका विचार करना ही		<b>त्रयोदश सर्ग</b>	
चाहिए और ब्राह्मणका भव हृदयनेका कुफल	६६०	इनुमत्कवच और उसका माहात्म्य	७०८
विष्णुदास-रामनाममें रामकी विशेष पूजाके		रामकवच	७१४
विषयमें प्रश्नोत्तर, रामकी पूजाके मास तथा स्त्रि-		<b>चतुर्दश सर्ग</b>	
योंका निर्देश	६६१	सीताकवचके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और	
श्रीरामपूजनकी विधि	६६२	सीताकवच	७१७
महान् पञ्चमीकी यात्रा और पीनेका माहात्म्य	६६७	सीताहोत्तरगतनामस्तोत्र	७२०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
विषयोक्ति लिए कुछ उपयोगी कल	७२२	वज्राका + सोमवशी राजाओंको साथ लेकर	
रामनामतोषस्थी रचनाविधि	७२३	रामके पास जाना और जंगल में गठाना	७७१
<b>पंचदश सर्ग</b>		रामका इन्द्रको बालमोक्षके पास भेजना और	
लक्ष्मणकवच	७२५	जालमोक्षके पराजयसे सोमवशी राजाओंको ईश्वरीय	
भरतकवच	७२७	सीताके पास जाना	७७२
सुगुह्यकवच	७२९	सीताके अनुरोधपर युद्धविराम वज्राका रामसे	
भोजन एवं कौशल करने योग्य राममन्त्र	७३१	वैकुण्ठधाम पधारनेके आर्षणा करना और रामकी	
<b>षोडश सर्ग</b>		स्वीकृति	७७३
रामविषयवचनके बादके कर्तव्य	७३८	<b>पञ्चम सर्ग</b>	
गणेशकी शंका और रावके द्वारा समाधान	७३९	रामको परम धाम जानेके लिये जयलक्ष्मण	
मानवीय उत्पत्तिका इतिहास और अन्तरीको		दुपण, दुर्धन, विमोक्षण आदिको अपने साथ ले	
जहाका वरदान	७४०	बलनेके लिये सावधान करना	७७४
हनुमन्तसकारोपणविधान	७४१	सङ्गम आप हनु राजाओं, मित्रों तथा पुत्रोंको	
<b>सप्तम सर्ग</b>		दिवादि और उनकी शान्त स्थानपर निपुष्टि	७७५
श्रीरामचन्द्रोपनिषद् और रामायण	७४३	रामके आशानुसार नृपका वसोछात्र जाना	७७६
<b>अष्टादश सर्ग</b>		रामकी लक्ष्मणकी वरदान	७७७
अर्जुनक रूषिपुत्र माधव वरदानका कारण	७४६	<b>षष्ठ सर्ग</b>	
<b>पूर्णकाण्ड</b>		दूसरे दिन सुबहे रामका वज्रमोक्षका नृपका	
<b>प्रथम सर्ग</b>		अपने परम धाम जानेकी बात बतलाना	७७८
रामको सरासि हस्तिनापुरसे दूतका आना	७५७	रामके आशानुसार बात आगकर स्वर्गके देव-	
बाहरीयिका रामकी वेदवशी राजाओंका		राजोंके उत्तराह्वय सुचार	७७९
इतिहास सुनाना	७५८	भीतिवशीका रामके समक स्तुति करना	७८०
<b>द्वितीय सर्ग</b>		गणेशपर बैठकर रामनाम संकुण्डलधामसे जाना	
रामका सामन्त राजाओंको बुलावना	७५९	और रामका साथ दये सभी अयध्यावासियोंको	
रामका भरतकी सहयोगिताके पदपर अभिहित		सान्त्वानिक लोक प्राप्त होना	७८१
करनेका संकल्प करना, किन्तु भरतका यह पद		<b>सप्तम सर्ग</b>	
स्वीकार न करना आत्मसे उस पदपर कुछका अभिप्रेत	७६२	नृपके वादग्रस्त मयवंशी राजाओंकी वसन्ततो	७८३
हस्तिनापुरीपर कर्णके जिज्ञा परामर्श, राजका		वन्धु समानगी तथा अरुन्धतरामायणमें भेदका	
सत्य और अयोध्याको वरदान	७६४	कारण	७८३
रामका हस्तिनापुरकी प्रणाम	७६५	<b>अष्टम सर्ग</b>	
<b>तृतीय सर्ग</b>		विष्णुदासका रामदाससे आनन्दरामायणकी	
रामका हस्तिनापुर पहुँचना	७६६	अनुप्राणिका पूछना और रामदासका अनुक्रमणिका-	
राम और सोमवशी राजाओंका युद्ध	७६७	सर्ग कहना	७८४
उस मीथवा युद्धकी देखकर देवताओंमें भव-		<b>नवम सर्ग</b>	
राहत और शान्तिका उपाय सोचना	७६८	आनन्दरामायण सुनकर फल	७८८
<b>चतुर्थ सर्ग</b>		अनुप्राणविधि	७८९
कुलका ब्रह्मरथ संधान करना और ब्रह्मका		परायणविधि	७९०
कारण रोका	७७०	आनन्दरामायणका संक्षिप्त माहत्म्य	७९२
		पार्वतीजी और शिवजीका रामदास-विष्णुदास-	
		इति आनन्दरामायणविषयानुक्रमिका समाप्ता	७९३

श्रीसीतापतये नमः  
श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्सर्गतं

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ह्या भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## सारकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( दशरथ-कौसल्यापित्राह तथा ऋष्यशृङ्ग द्वारा पुत्रोष्टि पठ )

श्रीवाल्मीकिहवाच

राये भूमिसुता पुंस्तु हनुमान् पृष्टे सुमित्रामुतः

शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्गर्वादि कोणेषु च ।

सुप्रीचश्च विभीषणश्च सुवराट् तारासुतो जाम्बवान्

मध्ये नीलसरोजकौमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥ १ ॥

आदौ रावणमर्दनं द्विजगिरा तीर्थार्दनं सीतया साकेते दशबाजिभेदकरणं पत्न्या विलासटनम् ।

स्त्रीपुत्रग्रहणं स्नुषार्थमटनं पृथ्वाश्व मरक्षणां रामार्चादिनिरूपणं दयितया स्वीय स्थलारोहणम् ॥ २ ॥

एकदा पार्वती देवी शंकरं ग्राह्यं दर्शिता । कैलासवासिना नत्वा राममन्त्रार्थैकवत्परा ॥ ३ ॥

पार्वत्युवाच

शंभो त्वया पुराणानि कथितानि ममांतिके । रघुनाथस्य चरितं जन्मकर्मसमन्वितम् ॥ ४ ॥

कथयस्वाधुना देव मम प्रीतिविवर्द्धनम् । आनन्ददायकं कर्म रघुवीरेण यत्कृतम् ॥ ५ ॥

श्रीवाल्मीकि मुनि कहते हैं कि जिनके बायें भागमें सीताजी, सामने हनुमान, पीछे लक्ष्मण, दोनों दागल शत्रुघ्न और भरत बायव्य ईशान अग्नि तथा नैऋत्यकोणमें कमराः सुप्रीच, विभीषण, तारापुत्र युवराज रुद्रद और जाम्बवान् हैं उनके बीच विराजमान श्याम कमलसदृश मनोहर कान्तिवाले परमपुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ १ ॥ इस ग्रन्थके सारकाण्डमें ऋषिवाक्यसे दुष्ट रावणका हनन, दूसरे पात्राकाण्डमें सीताके साथ रामकी तीर्थयात्रा, तीसरे पात्रकाण्डमें अयोध्यामें दस अश्वमेध यज्ञ, चौथे विलासकाण्डमें पत्नीके साथ विलास, पाँचवें जन्मकाण्डमें लव-कुशकी उत्पत्ति तथा सीताकी पुनः स्वीकृति, छठे विवाहकाण्डमें लवकुशके विवाहके लिए प्रस्थान, सातवें राज्यकाण्डमें अर्मपूर्वक पृथ्वीका रक्षण, आठवें मनोहरकाण्डमें रामकी पूजा आदिका वर्णन और नवें पूर्णकाण्डमें सीतासहित भगवान् रामचन्द्रके स्वधाम पधारने आदिका सुन्दर चरित्र वर्णित है ॥ २ ॥ एक समय रामचन्द्रजीकी भक्तिमें लक्ष्मण देवी पार्वतीने कहा हूँ शम्भो ! आपने बहुतसे पुराणोंकी सुन्दर कथा मुझे सुनायी । हे देव ! अब आप कृपा करके मेरी प्रीति बढ़ानेवाले रघुवीर रामचन्द्रके आनन्ददायक कर्म और उनके जन्म आदिकी मनोहर

सम्यक् पृष्टं त्वया कान्ते रामचन्द्रकथानकम् । कथयामि सविस्तरं महामंगलकारकम् ॥ ६ ॥  
 आदिनारायणात्प्रसङ्गाऽभून्मरीचिर्विधेः सुतः । मरीचैः कथयथः पुत्रस्तन्सुतः सूर्य उच्यते ॥ ७ ॥  
 सूर्यपुत्रः श्राद्धदेवो मनुर्वरस्वतस्त्विति । स एव प्रोच्यते तस्यैश्वराक्षः पुत्रः प्रतापवान् ॥ ८ ॥  
 इश्वराक्षोऽस्तु विकुक्षिर्हि शशादथ स एव हि । विकुक्षेऽस्तु ककुत्स्थश्च स एवात्र पुरञ्जयः ॥ ९ ॥  
 स एवोक्तश्चन्द्रबाहः ककुत्स्थनृपतेः सुतः । अनेनास्त्रस्य पुत्रोऽभूद्विश्वरन्ध्रश्च तन्सुतः ॥ १० ॥  
 चन्द्रश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूत्पुत्रनाथः प्रतापवान् । शाबस्तो पुत्रनाथस्य शाबस्तस्य सुतो महान् ॥ ११ ॥  
 बृहदश्व इति ख्यातस्तस्माज्जज्ञे नृपोत्तमः । कुवल्याधो नृपतिर्दृढाशस्तन्सुतः स्मृतः ॥ १२ ॥  
 हर्षश्च इति तन्पुत्रो निकुम्भस्तन्सुतः स्मृतः । बर्हणाशो निकुम्भस्य बर्हणाश्चनृपोत्तमान् ॥ १३ ॥  
 कृताश्वो नृपतिः प्रोक्तः श्वेनजित्स्मृतः स्मृतः । युवनाश्वः श्वेनजितो युवनाश्वनृपोत्तमान् ॥ १४ ॥  
 मान्धाना त्रयदस्युर्हि स एव कथितो भुवि । पुरुकुत्स्थश्च मान्धातुः पुरुकुत्स्थस्य च पुत्रः ॥ १५ ॥  
 त्रसदस्युर्गिति ख्यातोऽनरण्यश्चापि तन्सुतः । अनरण्यस्य हर्षश्चो हर्षश्चम्याकृणः सुतः ॥ १६ ॥  
 त्रिवन्धनोऽरुणाज्जातश्चिवन्धनसुतो महान् । सत्यव्रतः स एवात्र त्रिशङ्कुर्गिति च स्मृतः ॥ १७ ॥  
 सत्यव्रतस्य पुत्रोऽभूद्विश्वरन्ध्रः प्रतापवान् । रोहितस्तन्सुतः प्रोक्तस्तस्मान्न हर्षिः स्मृतः ॥ १८ ॥  
 हरितस्य सुतश्चम्पः मुदेवश्चम्पदेहजः । मुदेवाद्रिजयः प्रोक्तस्तन्पुत्रो भरुक स्मृतः ॥ १९ ॥  
 भरुकस्य वृकः पुत्रो वृकपुत्रस्तु बाहुकः । बाहुकान्मथरो जज्ञेऽसमञ्जः समराज्यजः ॥ २० ॥  
 असमञ्जसश्च पुत्रोऽभूदंशुमार्गिति नामतः । तस्य पुत्रो दिलोपस्तु दिलोपाच्च भर्ग्याश्च ॥ २१ ॥  
 भर्ग्यारिश्चाच्छुत्रो जातः श्रुताश्वामः प्रकीर्त्यते । नामस्य सिन्धुर्द्वीपश्च अयुतायुश्च तन्सुतः ॥ २२ ॥  
 श्रुतपर्णस्त्वयुतायोः सुदासस्तस्य कीर्त्यते । मित्रमहः स एवात्र कल्माषांघ्रिः स एव हि ॥ २३ ॥  
 सुदामस्याश्वमकः पुत्रो मूलकोऽश्वमकदेहजः । स एव नारीकवचो मूलकस्य सुतो महान् ॥ २४ ॥  
 नाम्ना दशरथः प्रोक्तस्तस्य पुत्रः प्रतापवान् । नाम्ना त्वंहविहः प्रोक्तस्तस्य विश्वसहः स्मृतः ॥ २५ ॥  
 तस्य पुत्रस्य खट्वाङ्गः खट्वाङ्गादीर्षवाहुकः । दिलीपश्च स एवात्र तस्य पुत्रो रघुः स्मृतः ॥ २६ ॥

कथा मुनाइये ॥ ३-१ ॥ शिवजी बोलें-हे कान्ते । तुमने श्रीरामचन्द्रका कथाविषयक बड़ा अच्छा प्रश्न किया है । मैं उस भङ्गलकारिणी कथाको विस्तारपूर्वक कहता हूँ ॥ ६ ॥ आदि नारायण विष्णुमें शशाजी जायमान हुए । शशासे मरीचि, मरीचिसे कथय, कथयसे सूर्य और सूर्यसे श्राद्धदेव हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन्हाको धैर्यस्वत मनु जी कहते हैं । उनक बड़े प्रतापी इश्वराक्ष, इश्वराक्षमें विकुक्षि अथवा शशाद और विकुक्षिके ककुत्स्थ अर्थात् पुरञ्जय हुए । ककुत्स्थसे इन्द्रबाह, इन्द्रबाहमें अनेना, अनेनासे विश्वरन्ध्र, विश्वरन्ध्रमें चन्द्र और चन्द्रका युवनाश्व नामक प्रतापी पुत्र हुआ । युवनाश्वसे शाबस्त, शाबस्तसे बृहदश्व तथा बृहदश्वसे कुवल्याश्व सत्यव्रत राजा हुए । कुवल्याश्वसे दृढाश्व, दृढाश्वसे हर्षश्च, हर्षश्चमें निकुम्भ, निकुम्भसे बर्हणाश्व, बर्हणाश्वसे कृताश्व, कृताश्वसे श्वेनजित्, श्वेनजित्से युवनाश्व, युवनाश्वसे मान्धाता हुए । जो मनारामे त्रसदस्यु नामसे प्रसिद्ध थे । मांषाहासे पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे फिर दूसरे त्रसदस्यु हुए । त्रसदस्युसे अनरण्य, अनरण्यसे हर्षश्च, हर्षश्चसे अरुण, अरुणसे त्रिवन्धन, त्रिवन्धनसे सत्यव्रत हुए । उनका नाम त्रिशङ्कु भी था ॥ १६-१७ ॥ सत्यव्रतसे हरिश्चन्द्र नामक बड़े सत्यवादी और प्रतापी राजा हुए । हरिश्चन्द्रमें रोहित, रोहितसे हरित, हरितसे चम्प, चम्पसे मुदेव, मुदेवसे विजय, विजयसे भरुक, भरुकसे वृक, वृकसे बाहुक, बाहुकसे सगर, सगरसे असमञ्जस, असमञ्जससे अंशुमान्, अंशुमान्से दिलोप, दिलोपसे भर्ग्याश्च, भर्ग्याश्चसे श्रुत, श्रुतसे नाम, नाममें सिन्धुर्द्वीप, सिन्धु-र्द्वीपसे अयुतायु, अयुतायुमें श्रुतपर्ण और श्रुतपर्णसे सुदास हुए । वे मित्रमह और कल्माषांघ्रि नामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ १८-२३ ॥ सुदाससे अश्वमक, अश्वमकसे मूलक, मूलकसे नारीकवच, नारीकवचसे दशरथ,

रथां द्रुतो यज्ञः प्रोक्तस्तस्मादश्वरथः स्मृतः । रातो दशरथान्जलिः श्रीगमः परमेश्वरः ॥२७॥  
 यस्य तामान्यनन्तानि गृणन्ति मुनयः सदा । विष्णोरारभ्य कथिता एकवर्तिर्नृपा मया ॥२८॥  
 एकवर्तिर्नृपायात्रं मध्ये रामो विराजते । तस्य ते चरितं कुत्सन संक्षेपाच्च त्रीम्यहम् ॥२९॥  
 इक्ष्वाकुनृपमवरः श्रियो लोकविभूतः । बलवान् सारयुनारोऽप्योप्यार्या पार्थिवो नमः ॥३०॥  
 नाम्ना दशरथः श्रीमान् जम्बूद्वीपनिमग्नान् । अश्वाम गजय धर्मण मन्त्रेण महताऽऽवृतः ॥३१॥  
 अयोध्यायास्तु माभिध्वे देशे श्रीकौमलद्वये । कौमल्याया महापुण्यः कौसल्याख्यो नृपो महान् ॥३२॥  
 तस्यार्मोबुदुदितारम्भा कौमल्या पत्निकायुका । तस्या दशरथेनेह विवहो निश्चिनो बृदा ॥३३॥  
 लग्नार्थं तं मयाज्ञेनु दत्ता दशरथं नृपम् । पयस्विनिश्रयं कृत्वा विवाहदिवसस्य च ॥३४॥  
 तदा दशरथश्चापि साकेते मरयजले । नौकास्थो जलजां कीडां चकं च मन्त्रिवर्धुभिः ॥३५॥  
 निशार्या सेनया युक्तः स्तुतो वागपचरिभिः । स्मरदानप्रकार्यश्च नमस्तुवर्गियोपितः ॥३६॥  
 तस्मिन्काले तु लंकार्या विधिं पश्यन् रावणः । कम्पान्मे परणं ब्रह्मन् नन्व मां वक्तुमर्हमि ॥३७॥  
 तद्वाचणवचः श्रुत्वा कथयामास तं विधिः । कौमल्याया दशरथाद्रामः साक्षाज्जनार्दनः ॥३८॥  
 चतुर्धा पुत्ररूपेण भूत्वा च निहनिष्यति । वंशमेऽहनि लग्नस्य गतो दशरथस्य हि ॥३९॥  
 दिवधो निश्चिनो विधेः कौसल्याख्येन राजेण । बहिर्धेर्वचनं श्रुत्वा पुष्पकस्थो दशाननः ॥४०॥  
 अयोध्यां सन्वरं श्रुत्वा गतमैः परिदष्टितः । नौकास्थं तं दशरथं क्रियत पृष्ठः सुदारुणः ॥४१॥  
 वमज निजपादेन तां नौकां सरयजले । तदा सर्वे मृतास्तत्र मरयवा निपले जले ॥४२॥  
 दशरथसुमन्त्रौ द्वौ नौकालण्डोपरि स्थितौ । शनैः शनैः प्रवाहेण गत्वा च गार्गशीं नदीम् ॥४३॥

दशरथसे ऐदविड लेटनितस निधरट, निधनहमे सटवा हू, सटवा हूसे रापेगाहू हूए । उन्होका नाम रिन्निन  
 भी था । रिन्निन स रपु रपुने कज और मजसे बहे प्रताया महार ज दशरथ हूए । दशरथसे मासात् परमेश्वर  
 मर्वादापुषीतम रामचन्द्रजा जयमान हूए ॥ २८-२७ ॥ उनके अवनत नाम है । जिनका मुनिलग्न सदा  
 गम्या करते हैं । विष्णुसे लेकर ६१ ( इकसठ ) राज पैस जिनाये । उन राजाभोक बाब रायचन्द्रजा  
 प्रकट हूए । उनका बापच मै तुमका लक्ष्मण बटाटा हू ॥ २८ ॥ २९ ॥ इक्ष्वाकुकुलसे अष्ट, लग्नाथ  
 प्रसिद्ध बलवान् सारिय, सारयु नदीके किनारे बसा हुई अयोध्या नगरीके राजा जम्बूद्वीपके स्वामी, बड़  
 भारी श्रीमान् राजा दशरथ विशाल सेना रखकर धर्म तथा व्याघ्रपूर्वक राज्यका शासन करते थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥  
 अयोध्याके पास हू कौमलदेवकी कौमल्यापुरीसे कौसल नामका एक बड़ा पुष्पारवा राजा राज्य करता था  
 ॥ ३२ ॥ उसकी विवाहके माग्य एक सुन्दरा कौसल्या नामकी स्त्री थी । उसका उसका पिता कौमल्य  
 दशरथके साथ विवाह निश्चिन किया । बादमे आनन्दक साथ विवाहके दिनका निश्चिन करके उन्होने  
 लग्नके निमित्त राजा दशरथको मुनानके लिए दूतको भेजा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उस समय राजा दशरथ  
 सारयुनदीके बीच नौकापर बैठकर इष्टमित्रों तथा मान्दवोंके साथ जलक्रीडा कर रहे थे । रात्रिका समय था,  
 चारो ओर सैनिक लट्टे थे, चारगण स्तुति का रहे थे और रत्नाके दीपके प्रकाशसे समस्त नाव जगमगा  
 रही थी । बाबाजूनाये नानप्रकारके नृत्य बान कर रही थीं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसी समय लक्ष्मणसे राजा रावणने  
 बह्मसे पूछा — हे बह्मन् ! मेरा किसक हाथो मरण होगा ? वह आज स्पष्ट कहिये ॥ ३७ ॥ रावणका बचन सुनकर  
 बह्मने कहा कि दशरथकी स्त्री कौमल्यासे साक्षात् जनार्दन केशवाम राम यदि चार पुत्रोंके रूपसे उत्पन्न  
 होंगे उनमसे राव तुमको मारेगे । कौमलराजने साक्षुणोसे पूछकर राजा दशरथके कल्पका जाजसे  
 पाँचवाँ दिन निश्चिह किया है । बह्मका यह बचन सुना तो रावण बहुतसे राक्षसोंको साथ लेकर माघ  
 अयोध्यानगरीको चल पड़ा । वहाँ पर और धार बुद्ध करके उसने नौकापर बैठे राजा दशरथको पराजित  
 किया और पारप्रहारसे नावको तोड़कर सरयुके जलमें डुबो दिया । उस समय और सब तो जलमें डुबकर  
 मर गये । परन्तु राजा दशरथ तथा सुमन्त्र नामका मन्त्री ईवेच्छासे नावके टुकड़ोंपर बैठकर पीरे-पीरे

नतः समुद्रमध्ये हि जीवितार्वाश्वरच्छया । रायणः कामलं गन्दां कुन्वा परममगरम् ॥४४॥  
 कौमल्यास्य नृपे शिखा कौमल्या नां जहार म । नतः प्रमुदिनो लकां यथावाकाशवर्त्मना ॥४५॥  
 दृष्ट्वा तिमिगिन्दे मन्थं वसनं लक्षणाण्ये चित्ते विचारयामास देवास्ते यम क्षयवः ॥४६॥  
 लकायाश्च दृष्ट्वान्ति कौमल्या गुप्ताविग्रहाः । अनास्तिमिङ्गलापेमां न्यामभूतां करोम्यहम् ॥४७॥  
 इति निश्चिन्य ननमि पेटिकायां निधाय ताम् । मन्थं समर्प्य हृष्टात्मा ययौ लकां दशाननः ॥४८॥  
 तिमिङ्गिलोऽपि तामास्ये धृन्वाऽऽर्षो व्यचरन्मुग्धम् । अग्रे दृष्ट्वा त्रिषु र्धायं तेन पुद्गार्धमुद्यतः ॥४९॥  
 द्वापे नां पेटिकां स्थाप्य मग्नं त्रिषुणाऽहमेन एतस्मिन्नन्तरं नौकाम्बुडं त द्वापमागतम् ॥५०॥  
 तदा नौ मन्त्रिनुवर्ता द्वापं तमाकुरुतु । तत्र नां पेटिका दृष्ट्वा समुद्रात्पतिविस्मिता ॥५१॥  
 तस्यां दृष्ट्वाऽथ कौमल्यां ज्ञत्वा वृत्तं परस्परम् । तया मुहूर्तमस्ये द्वापे दशरथो वृषः ॥५२॥  
 मान्धर्वाण्यं विदाहं च चकार मृदिताननः । ततो राज्ञाऽथ कौमल्या सुमन्त्रो मन्त्रिसचमः ॥५३॥  
 प्रपत्तिं धत्वा पेटिकायां तद्द्वारं पिदतु पुनः । तिमिगिलो त्रिषु जित्वा चक्ररास्यं तु पेटिकां ॥५४॥  
 लकायां रावणश्चापि समाहूय विधिं पुनः । उवाच प्रदमन्वाक्यं तभायां संस्थितः सुष्ठु ॥५५॥  
 विधु तव मृषा वाक्पे रावणेन मया कृतम् । इतो दशम्यस्तोये कौमल्या मोषिता मया ॥५६॥  
 तदावणवचः श्रुत्वा मभायां पप्रमभवः । दीधम्बरेण शोभाय अंशुण्याहमिति स्फुरत् ॥५७॥  
 राणा मञ्जुमान्प्राह किमिदं व्याहृतं त्वया । विधिं प्रोवाच तर्जं तु जात दशरथस्य हि ॥५८॥  
 तदा विधिं मृषा कर्तुं दशान्मग्नं मद्गम् । तिमिङ्गिला ममार्जाय पेटिकां मग्नोऽन्तिके ॥५९॥  
 समुद्रादथ ददर्शमी एव तस्यां दशाननः । तदाऽन्तिचकिनः क्रुद्धस्तान् हतं खड्गमाददे ॥६०॥

रावणवचन सहित गीतानदीम का पट्टच । ३८-५३ ॥ वहीम बहन हुए वे दोनों समुद्रमें जा मिले । उधर नावण अ. १६५ में चलकर कामलनगर में जा पहुँचा और अश्विनक बुद्ध करके राजा कोसलको जीत लिया । तदनन्तर कौमल्याका हरण करके वह आनन्दक साथ आकाशमार्गसे लड्डाको चला ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ राजनस बहन समुद्रमें रहकर तिमिङ्गिल मछलीको देखकर उसने सोचा कि सब देवता मेरे शत्रु हैं । वही मय बटकर वे लड्डा कोसल्याका नरा न ले जायें । इसीलिए इसको यहीं इस तिमिङ्गिलको घरायश्याम सो दू ला टाक हा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ऐसा सोचकर उसने कोसल्याको पिटासीमें बन्द करके तिमिङ्गिल मछलीको साथ लिया और मय आनन्दक साथ लड्डा चला गया ॥ ४८ ॥ वह मछली उस पिटार की मुखमें चकर मुखपूवक समुद्रमें घूमने लगी । सहसा अपने शत्रुको सामने देखकर उसने बभ्रुक साथ युद्ध करनेका निश्चय किया । ४९ ॥ तदनुसार पिटासीका एक टापूपर रककर वह तपुसे युद्ध करने लगी । उसा समय वह नावका टुकड़ा भी उसी टापूक किनारे आ लगा ॥ ५० ॥ तब राजा दशरथ तथा मन्त्र उवाच ५१ म उवाच ५२ । वही उनकी दृष्टि उस पिटासीपर पड़ी । सोचकर देखनपर उसमें कौमल्याको देखकर उन्त बड़ा आश्चर्य हुआ । ५३ ॥ बादमें एक दूसरेसे सब बालाको बान करके प्रसन्न हुए और अन्त्य मुहूर्तमें वहीपर राजा दशरथने प्रसन्नतापूर्वक कौमल्याके साथ नावमें विवाह कर लिया । ५४ ॥ राजा, कौमल्या तथा मन्त्रिबोमें श्रेष्ठ मन्त्री मुमन्त्र ये तीनों पुन पिटासीमें घुस गये और वकला बन्द कर लिया । मछलीने भी शत्रुका जीतकर उस मन्त्रुकको फिर अपने मुखमें रख लिया । ५५-५६ ॥ उधर लड्डाम राजन मुखपूर्वक मग्नके बीचमें बैठा और बल्लजीको मुलाकर हेरते हुए बोला— ५७ ॥ हे बहान् ! मैं आपक बचनको भी सड़ा कर दान्ता । दशरथको जलमें डुबाकर कौसल्याको छुपा दिया ॥ ५८ ॥ परी सभाम रावणक इस वचनको सुनकर ब्रह्माने जोन्से स्पष्ट शब्दोंमें “अंशुण्याह” ऐसा कहा ॥ ५९ ॥ यह सुनकर रावणने पूछा कि यह मानने क्या कहा ? ब्रह्माजी बोले—मरे ! राधा दशरथका विवाह हो गया ॥ ६० ॥ रावण ब्रह्माक वचनको अमन्थ प्रमाणित करनेके लिये दूसों द्वारा मछलीसे पेटो मंगवायी और उधो ही खान्दकर ब्रह्माका दिल्लाना चाहा त्यों ही उसमें मुमन्त्रके साथ दशरथ कौमल्याको देखकर



तदाऽनिमभमादेवा सवर्णं चक्रमवर्त्तयत् । हिं करोषि दशास्य त्वं माऽभूना माहमं कुरु ॥६१॥  
 कौन्त्येन स्थापिताऽस्या पेटिकायां स्वयं पुरा । त्रयस्तत्र तु संजाना भविष्यन्पत्रं कोटिशा ॥६२॥  
 भविष्यति कथस्तेऽथ गयोऽर्चं अनिष्यात् । माहमं कुरु माऽग्रं मन्यायुषि दद्यान्नन ॥६३॥  
 यज्ञविष्य तद्भवतु तदग्रे माऽस्य माघनम् । एतान्दत्तः प्रेपयाय माकेन त्वं सुखी भव ॥६४॥  
 न भविष्यति मद्राणी सृषा जार्नाहि निभयम् । यद्वाप्यं तद्भवन्नेव मदना कर्मणो गतिः ॥६५॥  
 तद्विधेर्वचनं तन्यं मन्वा भानो दशमनः । पेटिकां प्रेषयामास माकेन स्वभट्टजैरातु ॥६६॥  
 साकेते पेटिकां गच्छन्वा मद्रास्ते गवय गताः । अयोध्यायाः महानायास्यत्रो ज्ञेयददनात् ॥६७॥  
 अयोध्यावामिनां नृणां कोमलाधिपतेर्गपि । ततः पनविवाहस्य मन्त्रम कोमलाधिपः ॥६८॥  
 कृष्ण स्वगज्यं जामावे ददौ मान्या हि पुत्रिकाय् । तदारभ्य कोमलेन्द्रा प्रानन्दने गवयगताः ॥६९॥  
 ततो राजा दशम्यः सुमित्रा समधेयजाम् । विवाहसपरा पन्ना सकर दायगां विषाम् ॥७०॥  
 कैकेयनृपतेः हन्या कैकेयीं पद्मलाचनम् । विवाहेनाङ्गोद्गाय्यां दुर्गाया परमादरान् ॥७१॥  
 एषाऽन्वानि सप्तसुतकलआप्यकरोन्नुपः । एवं राजा दशम्यः दशम्यं जगर्भावहम् ॥७२॥  
 दानेभोगर्हभरो बभूव जगदो महान् । नाभवत्सन्निभस्तस्य धार्मिकस्यावर्त्तनपतेः ॥७३॥  
 कोमल्या च सुमित्रा च कैकेयी च गिराद्रजे । एताः दुर्गाराः सुभगा रूपयौवनमयताः ॥७४॥  
 तस्मिन् शसति राज्यं तु स्थितेऽपोष्यापुरि मिव । देवानां दानवानां च तज्जगत् विग्रहो महान् ॥७५॥  
 तत्र रायभवच्छ्रेष्ठा वरायोप्यर्पितमहान् । जयस्तत्र न संदेहानां भुक्त्वा पचनो जगान् ॥७६॥  
 प्राचयामास नृपात् गत्वा बुद्धाय मादरम् । ततो मन्वा दशम्यश्चकार कटनं मदम् ॥७७॥  
 एतन्ने तो वृत्तं चकितं बुद्धा । किं कुरु शक्यं उक्तं मान्दकं त्विदं उमते सन्ततारं निकामं स्त्री ॥७८॥  
 तत्र वृत्तान् राविककां राविकरं कथा । अरं दशम्येन बहु कथा कथिता है ? इमं समयं तमां साहसं मतं कर  
 ॥७९॥ देख दुन केवल कोसलवाकी ही इसमें रक्खा था । किन्तु ये एकस एक तान हो गये । वैसे हा इन  
 तानोंसे कन् हो हा जायेग । ८० ॥ राम सा आज हा जन्म ले जग और नू भाग जायगा । आयु क्य मृत  
 क्या अर्थ मरना आहता है ? इसलिये नू एसा मन्त्रम व्याह द ॥८१॥ जो हानी होंगी सा भाग हागी ।  
 कभी नू कुछ मत कर और कन तानोंका दुत हाग इनक स्यान्का अनवाकर मुग हा ॥८२॥ मग कम  
 कभी झूठ न होंगे । इस बातका निश्चय रख । कर्मका र्पित कही गहन हागी है । व मंत्र अनुसार जा होनगाना  
 हाता है, सो होकर ही रहता है ॥८३॥ इस घटनाका र्पित हाय इन्कर राजा कुछ डर गया और  
 ब्रह्माजीको बातका सच्ची मानकर वह पिटारी जयन दुता हाग जीम जयाया भेज दी ॥८४॥ राजा दशम्य  
 आदिकी सकुशल आयि देखकर जय ध्याय रियो तथा कास्यदशक राजा आदिका बडा समझना हुई और  
 आश्रय भी हुआ । आदिम कास्त्याधिपतिने वन मदारहके साथ फिरसे विवाह करके अपनी कमनीय कन्या  
 कोहत्या तथा कन्या रूपी राज्य अपन दायाद राजा दशम्यकी दृष्टरूपसे दे दिया तबल कास्यदशक  
 राजा भी सुखवशी कहलान लग ॥८५-८६॥ तदन्तर राजा दशम्यन मगधदशक राजाका कन्या सुमित्राका  
 स्वाहकर अपनी दूसरा कन्याप्रिया स्त्री बनाय । ७० ॥ ककर इसक राजाका कमलन्दना कन्या ककयाकी  
 स्वाहकर जन्हेन वह आदरपूजक तामरा पला बरागी ॥७१॥ इन तीनके अतिरिक्त अन्य भी उनकी सात  
 स्त्री सिधे री । इस प्रकार आनन्दपूजक राजा दशम्य दान-दान-भाग-ऐश्वर्य आदिक द्वारा पुष्पाका शायन  
 कलत हुए पृष्ठ हो गय । परन्तु उन परम धार्मिक राजा दशम्यक कोई सत्ता नही हुई ॥७२॥ ७३ ॥  
 इ प्रिय वाचता । पुत्रक रिना राजाको कण्ठीदम मुक्त मजग बोसन्पा, कैकेयी तथा सुमित्रा आदि स्त्रिय,  
 राजा और विजाल अयोध्यापुरी मूना तथा अन्य राजके मगा । उसी समय देवताओं और राजकाय राज्य-  
 क लिए बडा भारी कुछ आरम्भ हा गया ॥७४॥ ७५ ॥ उस बुद्धमे यह आकाशवाणी हुई कि 'जिसके कान्त  
 अयोध्यावाँ राजा दशम्य हाये, उसी दशकी विजय होगी । उह बाणोंको सुनकर पचनपचने लीज जाकर

एतस्मिन्-दन्तरे तत्र संप्राप्तेऽतिभयान्वहे । भिक्षार्थं स्वस्थं राज्ञा नाविद्विष्टमंभमात् ॥७८॥  
 गङ्गाऽन्तिके विधत्ता मुमुक्षुः कैकेयी स्पर्शकौतुकम् । पश्यन्ती स्वस्थं भिक्षं ददन् समरांगणे ॥७९॥  
 प्रभवन्मा निज हस्तं चकार जयहेतवे । तथा तु पूर्वं वान्यन्त्रात्मस्यास्य कस्याचेन्मुनेः ॥८०॥  
 कृष्णवर्णं कृतं तेन कथा नेऽप्यवदानः । सुखमग्रे निर्गच्छन्ति नैव लोकाः कदाचन ॥८१॥  
 ततस्तं गन्तुमुद्युक्तं कैकेयी वामहस्ततः । दंडादिकं ददौ तस्य मुनेर्हस्तेऽतिमोक्षितः ॥८२॥  
 तस्य ददौ वरं विप्रस्तव वामकरा वरम् । भविता वज्रकटिनः कदापि नाश न चक्ष्यति ॥८३॥  
 कैकेयी तं वरं स्मृत्वा स्वं चकाराक्षयः कम् । अथ जित्वा रणे दैन्यान् दृष्ट्वा तत्कर्म णथिवः ॥८४॥  
 ददौ वरं ददौ तस्य म न्यामभूरी कृता तथा । यदाऽहं पार्श्वयस्यामि तदा त्वं देहि तौ मम ॥८५॥  
 तथेव्युक्त्वा नृपः एन्तो यया स्वनगरीं प्रति । एकदा म निशायां तु मृगयायां महारणे ॥८६॥  
 चकार वाग्विधं चावधीदनचगन् बहून् । एतस्मिन्नन्तरं तत्र रणे वाराणसीपथा ॥८७॥  
 कण्डक्या स्वपिनरी स्वम्कथे भ्रवणो बहून् । काशीं नेतुं यया वैश्यो धर्मवाधामयान्निधि ॥८८॥  
 नीरं पातु शिशो देहि चान्वयोधेति यथिनः । तस्यां कण्डके न्यस्य तटाके जनसंनिधौ ॥८९॥  
 गत्वा जले स्वयं कुम्भं न्युज्जतस्थौ जले क्षणम् । कुम्भस्य न्युज्जतः शब्दो बभूव कणिणो यथा ॥९०॥  
 एतद्विधौ न हंगम्यधेति जानन्नपि नृपः । वैश्यं राजा द्विषं मन्वा विख्याध म एतन्विणा ॥९१॥  
 वपात भ्रवणम्लोघे हा केन हं प्रनाडितः । मननधेनि तद्वाक्यं श्रुत्वाऽभूदिह्लो नृपः ॥९२॥  
 गत्वा जलाद्वत्तवशात् कुत्वाऽऽकुर्यं ताद्रुग । मयं वृत्तं विशुन्यं नं चकार भयविह्वलः ॥९३॥

राजा दशरथस्य युद्धम समाप्तोत्त हनका स दर प्रायया का । तन्नुसार राजा दशरथ वहाँ जाकर दानशेख  
 धर युद्ध करके ॥ ७९ ॥ ७७ ॥ उस भयानक संघामय समय राजा के रथका धुग टूट गया, किन्तु देववध  
 णा का का फता नहीं लगा ॥ ७८ ॥ ७८ ॥ तब पाशु वैश्य मुन्तर भी जाना गनी कैकेयी संग्रामका कौतुक देख रही थी ।  
 उसने सहसा रणम अपने रथका धुग टूटने देख लिया ॥ ७९ ॥ तब काल उसने विजयधामके लिए अपने बाधे  
 हाथका धुरक जगह लगा दिया । वचनम कैकेयीन किसी मोने हुए पुनिका मुह व्याहसे काल कर दिया  
 था । तब मुनिने उसे शाप दे दिया कि जा, तब मुँह भा अपयथाके कारण ऐसा काल्य होगा कि कोई दक्षता  
 नहीं चाहता । ८० ॥ ८१ ॥ जब मुनि वहाँ चले लगे, तब कैकेयन प्रसिद्धक काय हाथसे उनका  
 दण्ड कमण्डल डक दे दिया ८२ ॥ इस खाम प्रगल्भ हाकर पुनिने उसे वरदान दिया कि जा तब बाधा हाथ  
 समय पहनपर वध जमा कठोर हो आयगा और किसी तरह भायल न होगा । ८३ ॥ कैकेयाने उस वरका  
 स्मरण करके हो खरने हाथको धुरक सही बनाकर रथमे लगा दिया था । रणम देवताको जासनेके बाद  
 राजा दशरथम कैकेयीक इस माहम मरे कार्यका देवदर प्रमनतापूवक उससे दो वर मागनेके लिए कहा ।  
 उसने भी उन दोनों वरको राजाके पास ही परात्तरूपमे रख दिया और कहा कि जब ये मागू तब  
 आप ये दो वर मुझे दे दीजियेगा ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ 'बहुन अच्छा कहकर राजा अपना दवाक साथ अयाधय  
 लौट आये । एक दिन रात्रिक समय राजा दशरथ जिकार भवनक लिये सनयुके किनारे गहन वनम जा पहुँचे ।  
 वहाँ उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके नदीका जलप्रवाह गक दिया और बहुतसे वनपशुओंको मारा ।  
 उसी समय अथन अपने बूढ़ तथा अं भता पिताका कविरम दिहाकर कांधपर उठाये हुए उस वन्य  
 भागसे काशी ले जा रहा था । तभी गर्भति पीडित होकर बूढ़ माता-पिताने अपने पुत्रसे जल मिलानेकी  
 कहा । उनकी सहा ९ ठे ही अथन कांधरको जलके किनारे रख तथा घड़ेकी टंका करके जल घरने  
 लगा तो उस घड़ेमे हाथीके शब्द जैसा शब्द निकला ॥ ८६—८७ ॥ बनेमे हाथीको नहीं मारना  
 चाहिये' इस बातको जानते हुए भी राजा दशरथने उस वैश्य भ्रवणको हाथीके अमसे कण्ठवेधी  
 धाक मारकर बीच दिया ॥ ९१ ॥ 'हाथ मुझ निरपराधको किसने मारा' ऐसा चित्काकर अथन प्रदामसे  
 अलमे गिर पड़ा । अनुप्राकी बोली सुनकर राजा दशरथ घबड़ा उठे और दौड़कर वहाँ गये । उसको बच-

वारं धावपि तपुत्रवधं भुत्वा लोदनुः । कारयित्वा नृपतिना चिति पुत्रममन्विनी ॥ ९४ ॥  
 दशम्याय तौ शपथं ददतुः पुत्रदुःखिनौ । पुत्रशोकादावयोर्हि यथा मृत्युमवाप्तिवनि ॥ ९५ ॥  
 यथौ नृपोऽपि नगरीं गुरुं हनन्त्यवेक्ष्यन् । वसिष्ठो नृपतेर्दोषज्ञान्यर्थं तुंगाध्वजम् ॥ ९६ ॥  
 नृपेण कार्यामाय माहेते मय्यनृते । रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशम्यः सखा ॥ ९७ ॥  
 शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छत्तच्छास्त्रेऽभ्युदयधम् । विमादकाधर्मं चारुवागीः संप्रेष्य तन्नुतम् ॥ ९८ ॥  
 रोमपादो मोहयित्वा श्रम्यमृगं समानयन् । वारं स्वयो वने गत्वा ममानिन्पूरुषेः सुतम् ॥ ९९ ॥  
 नाट्यमंगीतवादिर्नविभ्रमातिगानाहर्णः । तन्प्रतापादभ्युदयिः पुत्रोऽपि नृपतेर्भून् ॥ १०० ॥  
 तन्महो रोमपादस्तस्मै शान्तां ददौ मुनाम् । उग्रशब्धोऽपि स्वपुर्णमानपायाम तं मुनिम् ॥ १०१ ॥  
 स तु शब्धोऽनपस्यस्व निरूप्येष्टं भरुन्वनः । प्रणक्षं हि चकाराग्निं दक्षकुण्डान्वपायमम् ॥ १०२ ॥  
 आविर्भूत्वा स्वयं बह्निर्ददौ शब्धे सुपायमम् । शक्ता विभक्त स्त्रीम्यस्तर्ककेर्या दृष्टमावनः ॥ १०३ ॥  
 अहरण्यायम हन्तादृगृध्रो शापविमोचकम् । सुवर्षताऽप्यग्रेयुःकन्या नृम्यभंगारुचयभुजा ॥ १०४ ॥  
 शक्ता जाना तु सा गृध्री तथा वेधः मुनोपिन । तस्यै मुष्टौ विधिः प्राह कैंकेरीपायमं ददा ॥ १०५ ॥  
 प्रक्षिपस्वजननिर्गतां तदा तै भविता भतिः । अप्सरा त्व पूर्ववच्च भविष्यति न यद्रयः ॥ १०६ ॥  
 तस्मात्ता पायस नीत्वाऽक्षिपदन्ननिपर्वने । निज स्वरूपं सा लब्ध्वा जगाम सुरमदिरम् ॥ १०७ ॥  
 नतस्तामसां तु कैंकर्यै हनं किंचित् पायसम् । अथ सा भक्षयामासुतर्गभस्तिदाऽभवन् ॥ १०८ ॥

ते बाहर निकालकर उसको मुंहमें सब वृणाम्भ नृपा तां चयन करके हुए राजान उस वीर्यवाक्यकर  
 शरत्तस बाण निकाला ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ राजाके मुखमें पुत्रप्राप्तकी वन मुनकर वे दोनों अथ अतिशय  
 निराश करने लगे और राजासे चिता बनवाकर पुत्रके साथ जलकर राजाके मित्राए गये । मरते समय  
 पुत्रविद्यागसे दृष्टि से दोनों अन्धी-अन्ध राजा दशम्यको यह शपथ दए मय कि जैसे हम दोनों पुत्रप्राप्त  
 कर रहे हैं, वैसे ही तुम भी पुत्रप्राप्त हो मरोगे ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ राजान नगरमें आकर यह सब हुआ मुन-  
 बलिजकाको सुनाया । कुछ दिनों बाद वसिष्ठ राजाको दार्शनिक तथा पुत्रप्रदिक गिया उनसे  
 वरपुत्रके लिये क्रमशः पुण्यकर जगमग यज्ञ करवाया । राजा दशम्यके मित्र जगदशक  
 राजा रोमपादने अपनी शान्ता नामकी कन्या श्रम्यभृङ्गको द दायी । कर्मके एक बार राजा  
 रोमपादने रंजन वर्षा न होन तथा उन्हें कोई पुर न होनके कारण मन्त्रियोंके कष्टानुसार कष्टभृङ्ग  
 गिला विभादकके आश्रमसे वेष्टाओंके द्वारा मोहित करवाकर उन्हें अपने देशमें बुलाया । वेष्टाये वनमें  
 बगी और साचकर, गाया गाकर, खाते बजाकर हावभाव, आदिभूत तथा पूजा आदिक द्वारा मोहित करके  
 श्रम्यभृङ्गको ले आयी । उनके यह करानेसे राज्यमें बहिर्द्वार और राजाको पुत्र भी प्राप्त हुआ  
 ॥ ९६-१०० ॥ तब प्रसन्न होकर राजा रोमपादन श्रम्यभृङ्गको अपनी शान्ता नामकी कन्या  
 दान करके दे दी । अनन्तर दशम्य भी उन श्रम्यभृङ्गका अपने नगरमें ले आये ॥ १०१ ॥ उन मुनिने  
 संतानरहित राजा दशम्यसे इष्टि यज्ञ । करवाकर सार लिये हुए अग्निदेवको यज्ञकुण्डमें प्रत्यक्ष प्रकट  
 किया । ॥ १०२ ॥ इस प्रकार अग्निने स्वयं प्रकट होकर राजाको सुन्दर पुत्र देनेवाला पायस त्वार दिया । राजने  
 यह खीर लेकर तीनों मित्रोंमें बाँट दी । तभी कैंकेरीके प्राणको एक गृध्री यह साचकर कि यदि इसका मै ले  
 जाऊँगी तो मेरा शपथ छूट जायगा । इस स्वार्थसे खीर छीन ले गयी । कथान्तरः एक समय गुवर्षा नामकी  
 अप्सराओमें उत्तम अप्सराको श्रम्यभृङ्गके अपराधसे बह्निने गृध्री होनेका शपथ दे दिया । अब फिर उसने  
 स्तुतिके द्वारा बह्निाको प्रसन्न किया । तब बह्निाजने कहा कि अब तुम कैंकेरीके पायसका छीनकर  
 अजनिपर्वतपर फकीगी । तब गुम्हारी पुन पुनर्गि हो जायगी और पूर्ववत् तुम मासय हो जाओगी  
 ॥ १०३-१०६ ॥ इस कारण उस गृध्राने खीर लेकर अजनिमिरिपर दाम दी जिससे वह अपने अप्सरा-  
 रूपको प्राप्त होकर पुन स्वर्ग चली गयी ॥ १०७ ॥ बादमें कौसल्या तथा मुनिजाने अपने-अपने शरमसे

आमंस्तासां दोहदास्ते पुत्राणां भारिकर्मभिः । पुत्राणां भारिकर्माणि विदुस्ते दोहदैर्जनाः ॥१०९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे प्रथमः सर्गः । १ ।

## द्वितीयः सर्गः

( राम लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नका जन्म )

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्वतरे भूमिर्दशस्यादिप्रपीडिता । ब्रह्मणा प्रार्थयामास विष्णुं सोऽपि तदाऽब्रवीत् ॥ १ ॥  
भूम्यामवतरिष्यामि भवतु कपयः सुगः । गंधर्वी दृढमीनाम्नी भूम्याः कार्पार्यसिद्धये ॥ २ ॥  
मथराऽग्रे भवत्स्वदा राम्यविघ्नार्थमिद्धये पश्चात्पुनर्द्वापराते कृन्वात्वं कसमदिरे ॥ ३ ॥  
अथ त्रिष्णुर्धनमासि नवभ्यां मध्यमे रवौ । मुनिकागृहमध्येऽथ कौमल्यायाः पुरोऽभवत् ।

चतुर्भुवः पीतवामा मेघश्यामो महायुतिः ॥ ४ ॥

माऽपि दृष्ट्वा बालमात्र प्रार्थयामास तं हविम् ततो जातस्तदा बालः सनाद्रुक्मविभूषितः ॥ ५ ॥  
हेमवर्णः कंजनेत्रधन्वाभ्यस्तपनप्रभः सतः मुमित्रापुरतः शेषोऽभूद्बालरूपधृक् ॥ ६ ॥  
आशिर्मनो द्वौ शमलौ कंकेर्याः श्लवचक्रके एवं ते जनिता बालाश्रित्वारः सभरे शुभे ॥ ७ ॥  
देवदंभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाऽधननु ज्ञानकर्मादिमेष्कारान् गुरुणा नृपतिस्तदा ॥ ८ ॥  
करायामास विधिवन्नृत्तुर्वारणोपितः । ज्येष्ठे राम तु कौमल्यात्मनयं प्राह वै गुरुः ॥ ९ ॥  
सुमित्रात्मनयं नाम्ना लक्ष्मणं गुरुव्रवीत् । ततो भरतशत्रुघ्ननामनी प्राह वै गुरुः ॥१०॥

घोडा-घोडा पापस कंकेरीको दे दिया इस प्रकार सबसे पापस लाया और तबन गर्भ धारण किया ॥ १०८ ॥  
माँजी पुत्रोत्पत्तिके कर्मचिह्नोको देख लया मनकर हावहार पुत्रक द्वारा किये जानेवाले अर्धभन कार्योको लोग पहले ही समझ गये ॥ १०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे माषाष्टीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इसी बीच शवण आदि दस राक्षसोंसे घेरित होकर पृथ्वी माता ब्रह्माके साथ विष्णुभगवान्के पास गयी और उनसे अपनी तथा धर्मकी रक्षाके लिये प्रार्थना की । तब विष्णुभगवान्ने कहा कि 'मैं तुम्हारे लिये भूमिपर अवतार लूँगा' । ऐसा कहकर उन्होंने देवताओंसे कहा है दधताओ ! तुम लोग भी महाव्रतके लिये वानररूपसे पृथ्वीपर जन्म लो । हनुमन्नी गंधर्वी पृथ्वीकी रक्षाके लिये पहिलेसे जाकर सम्पराहणसे जन्म ले और रामके राक्षसाभियेकमें विघ्न डाले । हनुमन्के जन्मसे बड़ी जाकर कर्मके बड़ा कृन्ना बनेगी ॥ १-३ ॥ कुछ काल बाद साक्षात् विष्णुभगवान् चैत महीनेके कृष्णपक्षकी नवमी तिथिको मध्य रात्रिके समय प्रसूतिगृहमें कौसल्याके सम्पत्ते चार भुजाधारी पीताम्बर पहिने हुए वर्षाकिन्तुकाशीन मेघके समान श्यामगरीर तथा तेजस्वी रूपमें प्रकटे ॥ ४ ॥ कौसल्याने वह रूप देखकर भगवान्से बाल्यभाव स्वाकार करनेकी प्रार्थना की । तब भगवान् अर्ध परमे स्वर्णभरणोंसे भूषित, सुवर्णके सटण कान्तिसम्पन्न, कंधलके समान नेत्र तथा चन्द्रतुल्य मुख एवं सूर्यके समान तेजस्वी बालके बन गये । बादमें मुमित्राके गर्भमें शेषावतार लक्ष्मणजी बालभावसे प्रकट हुए । फिर कंकेरीके गर्भसे विष्णुके शंख-चक्र अवतार लेकर एक साथ भरत-शत्रुघ्न पदा हुए । इस प्रकार वे चारों बालक शुभ समय, अच्छे लग्न और शुभ नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ॥ ५-७ ॥ देवताओंने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये और पुष्पवृष्टि की । राजाने गुरु बसिष्ठसे बालकोंका जातकर्म ( संतानके उत्पन्न होनेपर किया जानेवाला कर्म ) आदि संस्कार विधिपूर्वक करवाया । उस उत्सवपर वेण्याओ द्वारा जनक प्रकारका नृत्य भी करवाया गया । बसिष्ठजीने कौसल्याके सबसे बड़े पुत्रका नाम राम रक्खा । सुमित्राके पुत्रका नाम लक्ष्मण और कंकेरीके दोनों पुत्रोंके नाम भरत तथा शत्रुघ्न

रक्षणद्रव्य एवामौ लक्षणैर्लक्ष्यमिष्यति । भग्नाद्भस्मत्वेन अनुष्णः शयनार्थनाम् ॥११॥  
 भयं धृष्टिरे मर्त्ये लक्ष्मणो गघवेण हि अनुष्णो भग्नेनपि चकार कौडनादिकम् ॥१२॥  
 लक्ष्मणकृष्णमर्जोर्गन्धर्वस्तौ विभूषिताः । केश्यग्नानाह्वात्कुण्डलैर्गन्धोभिनाः ॥१३॥  
 मृग्यलावङ्गलक्ष्मादिनिमित्तेषु वरेषु च । दोलकेषु च ते मर्त्ये दोलिता रेजिरे सुखम् ॥१४॥  
 मन्त्रे स्पर्शमयासुन्धणान्धतिमदांनि च । मुक्ताफलप्रत्यर्पति शोभयति स्म बालकान् ॥१५॥  
 कृते स्नानमणिजानमध्यर्द्धीपिनस्त्राचनाः । कर्णयोः स्वर्णमपभ्रान्तार्जुनमुनालकाः ॥१६॥  
 मित्रानमणिमर्जोर्गन्धर्व्यांगदेयुना । मितवक्त्रान्पद्मशुभा इन्द्रनीलमणिपद्माः ॥१७॥  
 अग्रे रिग्माणाश्च मस्कारः मस्कृताः शुभाः । ने नानं रजयामागुर्मान्धापि विशेषतः ॥१८॥  
 कौमल्या नृपतिश्चापि नानावस्त्रः सुभूषणः । शोभय मामनुर्वालाचानाव्याघनवादिभिः ॥१९॥  
 गमः स्वपितरं दृष्ट्वा भोजनस्य स्वगन्धिनः । दृष्ट्वा कवल् पात्राद्वृत्तेन्या म पुनर्विहिः ॥२०॥  
 कौमल्या पालकं धर्तुं दृष्ट्वा नृपतोहिना । न तस्याः कर्मधर्माद्योगितामप्यगोचरः ॥२१॥  
 पवित्रस्य स्वयं गमः कसेण भृद्वेत्त च । कौमल्यास्ये नृपकवेऽपि कवन्तकरोन्मुदा ॥२२॥  
 गव नानाकौतुकैश्च रजयामास गघवः । नानाशिशुक्रोदनकैश्चाष्टैर्मैत्र्यधर्मापनैः ॥२३॥  
 बालकृत्रिमपुङ्खश्च गमर्त्येभ्यश्च नृपतः । पितरौ निजचारिर्गर्वादनरोहणादिभिः ॥२४॥  
 तनस्ते बालकाः मर्त्ये वस्त्रालङ्कारभूषिता । मध्यायां पितरं वन्द्या नम्युः मित्रामनोपरि ॥२५॥  
 अत्र पित्रोपनीताग्ने गुरुणा पुनिभिर्मुदा । मर्त्यान्मन्त्रमरे पष्टे जन्मतः पञ्चमे ममे ॥२६॥  
 जगद्वर्चमकाशस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । तसौ बालार्थिनः पष्टे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे ॥२७॥

रक्ष ॥ २० ॥ मनोहर तथा आनन्ददायक होनेसे राम, शुभ लक्षणोंसे युक्त होनेसे लक्ष्मण, प्रजाका भरण-  
 पोषण करनेवाला होनेसे भरत और जयनाथक होनेसे वीरमन्त उनका अनुष्ण नाम रक्खा । ॥ ११ ॥ लक्ष्मण  
 रावके साथ और लक्ष्मण भरतके साथ साथ हुए वन्द्य हुए । ॥ १२ ॥ लक्ष्मणके काने तथा नगुरोंमें भूषित  
 हो लक्ष्मण दृष्ट, मन्त्रोंकी तथा कुण्डलोंमें सुगन्धित होनेसे लक्ष्मणके गणमपहन हुए । व बालक सुगन्ध  
 चर्चिन, गन्धार्थिन तथा वन्द्या बालकसे जो हुए हित कारण । ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥  
 जगद्वर्चमकाशसे जो हुए, पञ्चमर्त्यमर्त्य गणमर्त्य एव तिमिक अरकागम च वडै मोक्षी लक्ष्मण  
 रक्ष, तमे मन्त्र आभूषणोंमें उन बालकोंकी जाया और भी बडै बडी ईश्वरी जो । उनके कष्टमें विविध  
 क्षति तथा वचनसे सुगन्धित हो रहे थे । नाना कनकके बने हुए स्नानार्थ कुण्डल पहना रहे थे । मित्रपर  
 पुनर्वाले दात पहना रहे थे । पौर्वोर्ध्वे मणिर्मणित जाया लक्ष्मणसे रहे । सुगन्ध बालक और कमरमें  
 कष्टमो लक्ष्मणसे रहे थे । वन्द्या क लक्ष्मण शुभ हाथ भरे भुवन चित्तोंके समान छोटे छोटे दात घनकमा  
 रहे थे । इन्द्रनीलमणिके समान उगम कान्तिवान्, गन्धार्थ पञ्चमर्त्य बालक बने हुए, मस्कारोंसे  
 मस्कृत और वेदनमार्थसे मन माहू लक्ष्मणसे वे कुमार अपने माता-पिताके मनको सुख करने लगे । ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥  
 कौमल्या और राजा दशरथ भी अनेक प्रकार के वस्त्र तथा वधनसा आदि अलङ्कारोंसे अपने बालकोंकी  
 भूषित करने लगे । ॥ १९ ॥ राम अपने पिताको बाल्य भाजन करते देखते तो आकर उससेसे एक  
 ग्राम हाथसे लेकर बहुर भाग जाते । राजाके बहनपर कौमल्या रामका पकड़नेके लिए जब दौड़ती तो  
 दात्योंकी भी अगम्य राम उनके हाथ नहीं आने थे । बालक वस्त्रवर्धन आकर पीछे आनन्दपूर्वक  
 अन्त मोक्ष हाथसे माता पिताके नृप बडै कौर रव रव थे । ॥ २०-२० ॥ ऐसी अनेक कौतुकयुक्त बालक्रीडा,  
 वन्द्या मन्त्रमन्त्राभाषण, बालकाके वृत्ति पुष्ट, नाना प्रकारकी चालें पुत्रपुम्बन और तरह तरहकी  
 इनावडा सवारिदिपाय सवार होकर राम आदि चले बालक माता पिताके मनको सुखान तथा आनन्दित  
 करने लगे । ॥ २३ ॥ ॥ २ ॥ कालान्तरमें सब बालक वस्त्र-आभूषण आदिसे भूषित हो पिताको प्रणाम करके  
 पञ्चमे सिंहासनपर बैठने लगे । तब राजाने कर्षियों द्वारा सानन्द उनका यमोपवीत संस्कार करवाया ।

विद्वद्भिश्चोपनयनमेवं शास्त्रेषु निर्णयः । गुणैरस्यान्सुश्रुतं वेदान् सांगायतुर्विधान् ॥ २८ ॥  
 चन्द्रमूर्तोद्भूतानव बालाः शास्त्रादिकान्यपि । भ्रष्टचर्यसमाप्ता ते तीर्थानि जम्भरादरात् ॥ २९ ॥  
 सेनया संविमहिता वसिष्ठेन समन्विताः । क्षमायैः पुनरागत्य साकं तु विविशुर्मुदा ॥ ३० ॥  
 एवं ते मतिमन्तश्च प्रिया गतो वशे म्रियताः । पितरं रंजयामासुः पौरान् जानपदानपि ॥ ३१ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

## तृतीयः सर्गः

( ताड़कविष-अहन्योद्धार तथा सीताभरणम् )

श्रीशिव उवाच

एनिस्मरन्तरेऽयोध्यां विश्वामित्रो वर्यो मुनि । यज्ञसप्तगार्वाय गजानं मुनिरब्रवीत् ॥ १ ॥  
 गर्भं च लक्ष्मणं चापि मया देहि कियदिदम् । गुरुनामस्य राजाऽपि प्रेक्ष्यामाम तौ तदा ॥ २ ॥  
 जन्मतुर्पञ्चशार्धं गाधिपुत्रं रथस्थिनी । ततः प्रहृष्टो गाधेयः स्थित्वा कामाश्रमे पथि ॥ ३ ॥  
 प्रभते स्नानयोः स्नानः प्रादाद्विद्यास्तयोर्मुदा । माहेस्वर्गे च मद्विद्यां वतुर्विद्यापरमराम् ॥ ४ ॥  
 शास्त्रीमास्त्रीं लौकिकीं च गन्धविद्यां गजाद्वयाम् । अश्वविद्यां गदाविद्यां मन्त्राह्वानविसर्जने ॥ ५ ॥  
 छुनुर्धूमविलोपिनीं बलामनिबलामपि । सर्वविद्यास्तत्त्ववाग्याथ ह्युभौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ६ ॥  
 वनैकमां द्विताधाय जघनतुभ्यत्र राक्षसान् । पथि पांथवनध्वंसकारिणीं ताम तादिकाम् ॥ ७ ॥  
 राक्षसीमेकवाणेन ब्रह्मण रघुनन्दनः । अस्त्रं सा मुनि एवं शोभयापास कानने ॥ ८ ॥

गात्रिका सा यही मिहान्त है कि बहुविध ( बहुनेत्र की इच्छाकले ब्रह्मणकुमारका यज्ञोपवीत गमने छटे अथवा जन्मसे पांचव वर्ष होना चाहिये । उस बाहुनवाले साक्षिकका छठ और घन बाहुनवाले वैश्य-कुमारका यज्ञोपवीत आठ वर्ष अवश्य हो जाना चाहिये ॥ २४ २५ ॥ तदनन्तर अच्छे गृहमें गुरुके मुखसे राम-लक्ष्मण समा ( शिक्षा, नृत्य, रणकरण, निहत, छन्द और उद्योग सहित ) चारों वेद, छ. शास्त्र ( वाय-वेदान्त आदि ) और चौगुन कला गाना वज्राना आदि ) लोक-पढ़कर हृदयंगम कर लिया । लक्ष्मणकी समान्तिसे बाल राम आदि चारों भगना भगनाको, मन्त्रियोंकी तथा गुरु वसिष्ठकी साथ लेकर सहर्ष तीर्थयात्रा करने गये । छ. महान्त वृद्ध और अंधे और आनन्दपूर्वक ययोध्यामें रहने लगे । २६-३० ॥ इस प्रकार बुद्धिमान्, भगना गिनाक परम मन्त्र, परम प्रिय तथा उनकी आज्ञापर चरनेवाले से चारों बालक पिताको, तमके लागेको तथा उस देशकी प्रजाको अपने लक्ष्यचक्षुषके द्वारा मोहित करने लगे ॥ ३१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे पंच रामतेजपाष्टेयकृतेमाया-टीकायां रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीशिवजी बोलि—हे पार्वती ! तदनन्तर मुनि विश्वामित्र अश्वघ्न आदि और राजा दशरथसे कह्य कि यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम तथा लक्ष्मणको आप मुझे दे दीजिये । गुरु वसिष्ठके तमसानेपर राजाने व चाहुते हुए भी दोनों बालकोंको उनके साथ कर दिया ॥ १ ॥ २ ॥ तदनन्तर गाधिपुत्र विश्वामित्रके स य रणपर बैठकर उनके यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम-लक्ष्मण चल दिये । रास्तेमें कामाश्रममें सबेरे स्नान करके प्रसन्न विश्वामित्रजीने स्नान किये हुए राम-लक्ष्मणको विविध विद्यार्थे मिलायीं । महेश्वर ( निम्नजीसे प्राप्त महेश्वरी वतुर्विद्या, वाक्विद्या, अश्वविद्या, लौकिकी विद्या रथविद्या, गजाविद्या, अश्वविद्या, रथ विद्या, छन्द बलानेकी विद्या, मन्त्रके द्वारा अश्व-आदि आवाहन और विसर्जन करनेकी विद्या, भूत-व्यासको मिटानेवाली बल और अतिबल नामकी दो विद्याएँ तथा अथान्व सब विद्याओंको प्राप्त करने राम-लक्ष्मण वनवासी अधि-मुनियके मुखके लिये गक्षसोंको मारने लगे । रास्तेमें पाँवकोंको आरकर ला जानेवाली ताड़का नामकी राक्षसीको रघुनन्दन रामचन्द्रने एक ही बाणसे मार डाला । सुन्दकी स्त्री और सुकेतु यक्षकी

गङ्गयो तस्य शपेन कभूय मुदकामिनी । मार्गचक्षु मुवाङ्मुख मुदात्तस्थाः सुतायुधौ ॥ ९ ॥  
 रामघण्टाद्रतिस्त्रिभ्याः कीर्तिता मुनिना पुन मा प्राप्य तद्व्यदहन्वं नन्वा गम्य दिवं गता ॥ १० ॥  
 विश्वामित्राश्रमं रामो गच्छा तद्यज्ञयातकान् । गङ्गयान्निशिर्नैर्वाणैर्जवान् रघुनन्दनः ॥ ११ ॥  
 प्रारम्भं रणयज्ञस्य अकार रघुनन्दनः । हन्वा महमशः धीमान् गङ्गमान् निशिर्नैः शरैः ॥ १२ ॥  
 क्षिप्त्वा बाणेन मार्गचं शतयोजनमगारे हन्वा मुवाङ्मुखं चैकेन बाणेन रघुनन्दनः ॥ १३ ॥  
 स कृत्वा गाधियज्ञस्य ममामि रघुनन्दनः । नाकरोट्टपयज्ञस्य ममामि स्वकृतस्य च ॥ १४ ॥  
 कालानलमग्नौ तं दृष्ट्वा तनूषिहेतवे । धृत्वा जनकगोहे च तन्कन्यायाः स्वर्ययम् ॥ १५ ॥  
 रामलक्ष्मणसंयुक्तौ मुनिस्तं जगाम वर्या । गमनावसरे मार्गे भर्तृश्रमां शिलां मुनिः ॥ १६ ॥  
 मुनिरुषिमहेन्द्रेण भुक्ता रहसि शोभनाम् । गौतमस्यांगनां नाप ह्यहन्या चानदस्योः ॥ १७ ॥  
 नदना निर्मिताऽहन्वा हिमुक्तो गोः परिक्रमात् । दत्ता पुन गौतमाय विमृज्यंष्टादिकाम्भुरान् ॥ १८ ॥  
 तन्ममरन् मधवा वर ना भुङ्क्वा मुनिशापनः । महया भगवान् जातः सहस्रलोचनस्ततः ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्रो निजपादपद्मपद्मन तां गौतमघर्मपत्नीम् ।

निष्कन्मपामङ्गुतस्त्वयुक्तां चकार देवः कल्पाममृदुः । २० ॥

नदाह्वा जनभ्यानेऽहन्वा गौतमशापनः । गमेण भ्रमनाऽग्रे स्त्रीप्रित्वज्ञान्ममुद्भूता ॥ २१ ॥  
 कल्पभेदाद्वदन्ति च नपश्चापि केचन । तैव श्रापेऽस्मि मरुतु कल्पेण सन्कथा तथा ॥ २२ ॥  
 तवर्त्मा मुग्गन्धर्ववर्त्तनो धुष्यदृष्टिभिः । दृष्ट्वाऽहन्वा गौतमाय जस्मनुर्जाह्वी शनि ॥ २३ ॥

गृही ताटका पहिले बहो मुन्दर अपसरा थी । परन्तु बादमे जब उमने भगवन्त क्रोधना वनमे मलाया  
 नन उनके शापसे यह कृष्ण रश्मिमा बन गया । उसमे मागेच और मुवाङ्गु प दा गताम पुन उरगत हुए  
 । १-९ ॥ 'रामके बाणसे नही गति प्राया । इसा अग १० मुनिने 'समे कहे' थी । इसाके रामबाणसे इस  
 नमय भ्रमर तथा दिव्य शरीर धारण करके वहे स्वर्गका चला गया ॥ १० ॥ सत्यमेव तथा विश्वामित्रके  
 भाधममे जाकर रघुनन्दनमे यज्ञमे निम्न दा-नवानले सागरे गङ्गामेको अपने ताल बाणसे मार डाला ॥ ११ ॥  
 'पुनहि रामचन्दने वही रणयज्ञ ( मुदकामिनी वन ) प्रारम्भ कर दिया । धीमान् रामने हजार राक्षमाका ताडण  
 व पासे मारकर मार्गचका एक बाणका मागसे सौ योजन ( चार सौ कोस ) दूरपर समुद्रमे फेक दिया ।  
 इहाने दूधरे बाणसे भारचक भई मुवाङ्गुका मार डाला ॥ १२ ॥ १३ ॥ विश्वामित्रवाचे राजका तो उन्होंने  
 राजासेको मारकर निविधन समाप्त कर दो । परन्तु अपने द्वारा प्रारम्भ दुष्टाजय । समाप्त नही का अधीन  
 उनका क्रोध जानते नही हुआ । १४ ॥ आरामको प्रत्यकात्माने अग्निके मद्दम उग्र तथा गुडसे अत्रिज दहकर  
 दुनि विश्वामित्रमे उनकी मृतिके लिए रामा जनकके यहां उनकी कन्या का स्वयवर मुन्दर राम लक्ष्मणको लेकर  
 जनकपुरको प्रयाण किया । चलने-चलने रास्तेमे मुनिने अन्त्याको देखकर कहा कि यह मुनिवधवारा इन्द्रके  
 द्वारा पाणी बर्या परममुन्दर गौतमका स्त्री है । यह नद विश्वामित्रने राम लक्ष्मणका बनाया ॥ १५-१६ ॥ इस  
 नाहुर मुग्गवासी महन्त्याका बनाकर ब्रह्माने गृध्राका पत्निमा कान्तेवाले बीलमे ऋषिको दे दिया किमी  
 इन्द्रदि देवताको नही दी ॥ १७ ॥ इन्द्रने उस रीका धारण करके कपटमे एकान्तमे उसके साथ भाग  
 किया । तदनन्तर गौतम मुनिके शापसे इन्द्र हजार भग ( येनि ) बाने हो गये । फिर श्रावना कान्तेपर  
 गौतमकी कुवासे ये हजार नैषवासे बन गये । अब विश्वामित्रके क्षुण्णधम करणनिधि एवं सक्षान्  
 दवतास्वरूप रामचन्द्रने दया करके अपने चरणकमलको स्पर्शसे उस शिखाम्बुर्णिमा गौतमका घर्म-  
 न्नी आहृताको दोषसे मुक्त करके अति अद्भुत स्वरूपवाला मुन्दरी स्त्री बना दिया । १९ । २० ॥  
 रणयज्ञ वनके पास एक स्थानसे मुनिके बाणसे कापित नगररूपा महन्त्याका अरण्यमे प्रमण करते हुए  
 रामचन्द्रने अपने परम पवित्र चरणस्पर्शसे उद्धार कर दिया । २१ ॥ कुछ लोग इस कथ को कल्पमरुसे  
 मानते और कहते हैं कि वह कल्पोमे यह शापका बात एक बीसी मही मिष्टी ॥ २२ ॥ इसके बाद

रामं नीकां फांशुमणं नीकां वाक्यमवर्त्तान् ।

न, विक लघाच

आदावहं क्षालयित्वा पादरेणुं स्तव प्रभो ॥ २४ ॥

यथान्नीकां सशोभामि नव पादां स्पृष्टुह । नोचेरन्पादरजसा स्पृष्टा नारी भविष्यति । २५ ॥

क्षालयामि नव पादपङ्कजं नाथ दारुदपद्मैः किमन्तरम् ।

मानुषीकरणवर्णमस्मि ते तति लोके हि कदा प्रसीयसी ॥ २६ ॥

अस्मि मे गृहिणी गेहं किं करेभ्यवर्त्तन्निषम् । इति तद्वचनमाकण्य विहस्य स्पृष्टुहस्तः ॥ २७ ॥

तेन संक्षालितपदौ नीकां तामारलोह सः । ननम्नीकां जाह्नवीं मे भिक्षितां मुनिभिर्ययुः ॥ २८ ॥

मिथिलार्या ममाहूताः कौटिल्यः पाथिवा वयुः । चण्डाम्याह क्षाम्योऽपि श्रुत्वाऽप्यच्छस्त्रमत्रिभिः ॥ २९ ॥

अनहूतः पुष्पकेण सैन्या परिवारितः । न यया पुत्रविशदाद्राजा दशरथस्तदा ॥ ३० ॥

अन्यादरेर्विदहन ममाहूतोऽपि भक्तिनः । श्रीगमलक्ष्मणाम्या च विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ ३१ ॥

शर्नपुदा स मिथिली वहिधोपवन यया विश्वामित्रं समानेतुं जनको मन्त्रिभिः सह ॥ ३२ ॥

यावद्वन्तु सनधक्रे तावच्छिष्यः ममायया । विश्वामित्रस्य न रष्ट्रा ननाभ जनकस्यदा ॥ ३३ ॥

ततः शिष्यः वरं धृत्वा जनकस्य करण हि नीकां रूढिं श्रोत्राच वचन स्वगुणैः स्फुटम् ॥ ३४ ॥

त्वासाह माध्विजो राजन् राज्ञो दशरथस्य हि यया पुरा ममाननीनां वीर्यं श्रीगमलक्ष्मणी ॥ ३५ ॥

तौ मीनोर्मिलयोः पाणिग्रहणं हि करिष्यतः । पर्णकृतं स्वरा खापं रामोऽयं स्वपदयिष्यति ॥ ३६ ॥

अतो वरविधानेन तौ पुरीं नेतुमर्हमि गनुहूतं चापमेवपर्यन्त मा स्फुटं कुरु ॥ ३७ ॥

देवताओं और गन्धर्वों ने तिनके ऊपर दिग्भ्रष्ट पुरुषों की वृष्टि का था, ऐसे राम तथा लक्ष्मण भीतगर्भी महारथ सोपकर जाऊँगा ( गंगा ) का आर चत पद ॥ २३ ॥ गङ्गातट पर पहुँचकर रामचन्द्र पार उत्तरतन्के स्थिते नाव खोज रहा था कि इतनाम एक साववाला बन्दा - र प्रभो ! २ स्पृष्टुह रामचन्द्रजा । यदि आप कहें तो मैं कहूँ कि आपका चरणको छुँने का सु, बादम आपका नाभपर बसाकर पार उत्तरा हूँ । क्योंकि ऐसा न करनेपर कही आपकी पदरज छुँने मरे नाह भी मर्या न बन जाय । क्योंकि पत्थर और लकड़ाम कोई बहुत अन्तर नहीं होता । यह बात अन्तर्मे समिद्ध है कि आपका करणकी रजस जड़की भां यतुष्टय बनातकी सामर्थ्य है । इसीलिये आपका चरण स्थाना आवरणक है ॥ २४-२६ ॥ वधाक कर छत्रम एक स्त्री है । अतएव मैं दूसरीको लेकर नया कहूँगा । इस अदृष्टे बाणको मुनकर आनन्दकन्द रामचन्द्र हंस पड़े ॥ २७ ॥ बादमे जब उस धोषरने पाँव को लिया, तब रामचन्द्रजा मुनियोंक साथ नाभपर खड़ा होकर गङ्गा पार हुए और वहाँमे मिथिलापुगीक, ओर चले ॥ २८ ॥ मिथिलस्य मिथिलस्य राजा, आपका एक प्रकीरता छोटा सा समुद्र एकत्र हो गया था । रावण भी बिना बुलाये चारपाक बुन्दसे मुनकर हा लेता तथा मंजिमासे थिरा हुआ गुपक विमानपर चढ़कर वहाँ जा पहुँचा । उस समय राजा दशरथ आदर तथा भक्तिपूर्वक जडकक द्वारा बुलाये जातपर भी पुत्रविहसे दया हाथके वारण नहीं आये थे । उसी समय मुनियोंके ईश्वर विश्वामित्र भी राम और लक्ष्मणक साथ धोष धीरे आनन्दपूर्वक मिथिलाके बाहर एक उपवनमे जा पहुँचे । राजा जनक विश्वामित्रको दिखा लानेक लिए जाता हुआ चहुँते थे एक विश्वामित्रका एक शिष्य नहीं आ पहुँचा । उसकी विश्वामित्रका शिष्य जानकर राजाने नमस्कार किया ॥ २९-३३ ॥ शिष्यन राजाका हाथ पकड़ तथा एकलम मे आकर अपने दुल्हा भोजा हुआ सन्देश भणामात कह सुनाया ॥ ३४ ॥ उसने कहा - पथिगुण विश्वामित्रने कहा है कि मैं अपने साथ राजा दशरथके दो गुरवोर पुत्रों राम-लक्ष्मणका यहाँ ले आया हूँ ॥ ३५ ॥ ये दोनों सीता तथा जलिकाका पातिग्रहण करेदे और आपका पणकृत वनुष रामचन्द्रजा लाय ॥ ३६ ॥ इसलिये वरको ले आनेके विधानसे इन दोनोंको नगरमे लाना चाहिये । अबतक वनुष भङ्ग न हो, अबतक यह वृत्तान्त किसीको न बताइया ॥ ३७ ॥ राजा



न्युक्त्वा जनकं शिष्यः स्वगुरुं प्रार्थमाययौ । जनकोऽपि मुनिं युक्तस्त्वर्णामेव पुनो निजाम् ॥३८॥  
 तीर्त्वाद्यैः शोभायित्वा मन्थेन परिवेष्टिनः । चरणेन्द्रं पृथक्कृत्य समारम्भेनृषेः सह ॥३९॥  
 सुमेधादिप्रमदाभिर्नानभ्यार्थैर्मनोहरैः । विद्यार्थित्रातिकेयना नन्वा संपूज्य त मुनिम् ॥४०॥  
 यत्नान् इव तौ वृष्टा भुज्वा नद्वृणमादरात् । रत्नालङ्कारभूषार्थैः सन्कृत्य विधिवन्नुपः ॥४१॥  
 गजपोरुषी ममागेष्व चाभगर्षं सुवीजिनां । विश्वामित्रेण मुनिना निनाय मिथिला पुरीम् ॥४२॥  
 ननृत्तुर्वार्यार्थं तुष्टुर्वीन्द्रमहाधाः । नैदूनानाम्वाद्यत्रि जगुन्मे तु नटादिषुः ॥४३॥  
 तदा तौ वृष्टागेष्व जम्भतुश्चानिजो भित्तौ । भुज्वा च पुनर्नृषेभ्यः शर्म आगमन्कश्यपौ ॥४४॥  
 ममाभनवचिति मुदा जम्भतुश्चानिजो भित्तौ । जंजनेप्रदेदुश्चर्णां वरतुः पृथग्दृष्टिभिः ॥४५॥  
 तदा परस्परं प्रोचुः मीनायोग्या चरन्वयम् । गमोऽस्माकं रोचने त्रि रगेन्वेवं विधिस्तु नः ॥४६॥  
 उभिलायास्तु योभ्योऽयं लक्ष्मणोऽस्मिन् गलभ्रातः । अस्माकं मुकुनरस्य तपोरतां पतां शुभा ॥४७॥  
 आगमन्कश्यपाः शर्मो भवनार्थेनमौलमौ । एव तामां कामिनीनां वचनानि नृपान्मजौ ॥४८॥  
 शुभ्रवतुः शुभान्येव शृङ्घार्यौ तौ ददशतुः । ननृत्ने मिलिताः सर्वे नृपाः शेषुः परस्परम् ॥४९॥  
 एतादृशो विदेहेन यदाऽस्माभिः ममागतम् । तदोन्मत्तः कुतो नैव हानयोः क्रियते कथम् ॥५०॥  
 किमृतः स्येन राज्ञोऽयं तीर्त्वा रायाय ताऽपिना । किमस्माकं मम हृदयं मानमगोऽयं नः कृतः ॥५१॥  
 एवं तेषां नृपणां च वचनानि नृपान्मजौ । जनको गार्धित्तथादि शुभ्रवृत्ते समदतः ॥५२॥  
 ततः शनैः शनैर्वीरौ यवक्षैः स्वभिगीक्षितौ । जम्भतुर्वीरौपाद्येज्जनकस्य मभा इति ॥५३॥  
 ततोऽनन्तरमुर्वीरौ गजाभ्यां मुनिना सह । तन्मयवशशाल्यामुर्वीरिष्टु रात्रसु ॥५४॥

जनकजीसे यह कहकर शिष्य ज.स. अपने गुरुजीके पास लौट गया । राजा भी इस बातको मनमें रखकर वहाँ प्रमदनाके साथ अपना मिथिला नहराकी तारण तथा गार्धित्तजी वनकाजी आदिले हजारकर गहन, कनोकी मृग तथा सन्निक होदके मुनाभित्त उत्तम एवं दमन व हार्योको आगे करके सेना, मयी राजाया, सुवधा आदि स्त्रिया और जनक प्रकारके मनाहर भागनिक बात लेकर अपनी मारीक माय विभाजित मुनिक पास गई और उनका नमस्कार करके पूजा की । ३८-४० । मुनिसे अनजानकी तरह उन दोनों बालकोका परिचय पूछकर विधिवन् शर्म-आरूपणम उनका सन्कार करके हाथपोर चहाकर चमर इत्यादि हुए जनकजी विश्वामित्रके साथ दोनों पाइयाका मिथिलापुरीम ले चले ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उस समय कदुवरा शाशवतम् सुन्दर नृप करने लगे । चारण तथा भाट लाग्गुत्पिडा एवं अजजकार करने लगे । नाना प्रकारके राजाके मधुम स्वरय दसों तिलाने पूज उठी । गायकजन सनहूर गायन गान लगे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार जगजग हुआ और मुन्दर राम-लक्ष्मण बाजारकी सड़कापर आ पहुँच । उन्हें आनंद हो गया और तौसे मुनकर प्राजन्तक मार वहिनस हा नगरक सह त्रिष्व नगरके प्रधान दरवाजपर, अपन-अपन पार्की छत्राण, शरायो और बटागिधेभर आ बैठी और अपने कणससुक्त जेबासे उन्हें बह चावल दलती हुई उनपर फुलाका वर्षा करने लगे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ फिर वे आपसमें कहने लगे कि य राम सताक यात्र कर है । हमको जो भय बहुत प्रिय भवत है । इस लिए ईश्वर मा बैसा ही करे ता अच्छा हो । वे पुन मयागोके युक्त लक्ष्मण उभिलाके योग्य कर है । हुआर चापधम के शला उत्तम, रमणीय तथा सुन्दर बाणबाण राम और लक्ष्मण सीता तथा उभिलाके दति हा तौ बहुत अच्छा हो । इस प्रकार उनके मनाहर जनकोकी मुनकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई ऊपर युक्त उठाकर उन्हें देखने लगे । कहने के सह राम परस्पर कहने लगे—॥ ४६-४९ ॥ जब हुन सब वहाँ आये, तब तौ राजा वनवने ऐसा उत्सव मही किया । जब हुन बालकके लिये ऐसा मही किया । ५० ॥ राजाने कही बुधकसे सीता रामका तो मही दे दी है ? ऐसा ही वा तो हुन लोगोंको बुनाकर कथमनिह क्यों किया गया ॥ ५१ ॥ उनकी बातें राम-लक्ष्मण, राजा जनक तथा विश्वामित्रजीने भी सुनी ॥ ५२ ॥ इपर सारीकीमें बैठी हुई स्त्रियोंके हाथ कवलोकित वे दोनों वीर गने एवं राजेकी क्वनि

विद्यामित्रानुगो तौ दि मुनिभ्राता प्रवामतुः । कदापि मुनिभ्राताया मुनेश्वरे निषीदतुः ॥५२॥  
 एवं सभायामृदाया राज्ञा कन्याप्रतिग्रहे । प्रतिज्ञान मम धनुस्तन्तुज्व त्वमुपस्थितम् ॥५३॥  
 यदाऽर्धात्मा धनुर्विद्या मम परशुधारिणा । तदा दत्तं मया तस्मै धनुस्त्रिपुण्ड्राङ्कम् ॥५४॥  
 तेन कर्विषादार हि निःश्रवा वृषिर्वा कुना । सहस्रबाहुनिहतः स्वपितुर्घातकारिणात् ॥५५॥  
 तन्मथिलो गणे म्हाप्य जामदग्न्या नृपं धयी । अश्वत्थद्वन्दुः कृत्वा जानकी कोटन व्यधाय ॥५६॥  
 जामदग्न्यन्नेन मीनां शान्त्वा लक्ष्मीं तदिच्छया ददौ नृपं षण्णार्यं नन्ददुरन्यैर्दगमदम् ॥५७॥  
 पर्णिकृता धनुस्तन्त्रं सिद्धेन स्वयम्वरे । ततः सभायामृदाया जनकः प्राह शक्तिः ॥५८॥  
 तस्माप्य राज्ञा पुरतस्तन्मे चापमनुममम् । शस्त्रागमममानीन वृषेः पञ्चशतम् तु वत् ॥५९॥  
 मीसास्त्रयवगर्थं यन्त्यस्तं परशुधारिणा । नृपः प्राह सभासभ्यो यो वीरस्त्वय सदसि ॥६०॥  
 करिष्यति धनुः मज्जं त वै मीना वशिष्यति । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा धनुर्दृष्ट्वाऽचलोपमम् ॥६१॥  
 अधामुशस्तदा सर्वे वधुवः पथिवोत्तमाः । केचिन्मूमेः समुद्रोदु धनुः शक्ता न चाभरन् ॥६२॥  
 मूमेरुष्वालिते केचिदूर्ध्वं नेतुं न चाशकम् । सर्वेऽप्युष्वालिते तस्य नृपः शक्ता न चाभरन् ॥६३॥  
 मज्जीकारः कुनस्तस्य मनसाऽप्यविचितित । धनुः मज्जीकृती सर्वाणिषाम् शान्त्वा पगह्मुवान् ६४॥  
 नदानिगर्वसंरुद्धः सभायां रावणोऽब्रवान् । धनुषः सन्निधिं गन्धो विहसन् जनकं प्रति ॥६५॥  
 येन वै निर्जिता देवास्त्रैलोक्यं स्वयज्ञे कृतम् । आन्दोलितो वृजामिहि कैलसो येन वै मया ॥६६॥

भावार्थः साधु वीर-धरे राजा जनकः सभासभ्यस्यैव या पृष्ठे ॥ ५२ ॥ वहाँ कीर राम-राममन्त्र तथा मुनिगण  
 हाथसे नीचे उतरे । पञ्चानु सभासभ्यस्यैव राजाजोके सभास्थान बैठ जानेपर विद्यामित्रजोके  
 साधु जाकर वे वालक भी मुनिमण्डपमें मुनिके आगे बैठ गये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इस प्रकार सभाकी  
 पर जानपर कन्यादानके लिये निमन्त्र किये हुए धनुषगर उठा । नीचे या डारी ) चक्रानके लिये राजाजोसे  
 राजा जनकसे कहा ॥ ५५ ॥ श्रीविश्वजी कहते हैं—हे पावर्त ! जब परमुराजजीने मुझसे धनुर्विद्या  
 प्राप्त की, उस समय मैंने उनको बहु विपुलको जलानवाला वस्त्र दिया था ॥ ५६ ॥ तबसे द्वारा उन्हींने  
 इसकासु वस्त्र पृथ्वीका क्षत्रियोसे हूय कर वाला और अपने पिताके गालक सहस्रबाहुके भी उधने  
 मारा ॥ ५७ ॥ तदनन्तर परशुरामजी उस धनुषको राजा जनकके अंगनमें रख जाये । वनपत्तमें जानकाकी  
 उस धनुषकी लकड़ीका धोरा बनाकर लेना करती थी ॥ ५८ ॥ इस व्यवहारसे परशुराम सीताको  
 लक्ष्मी समझने लग और इसी अभिप्रायसे हर एकके लिये दुर्गम बहु धनुष राजा जनकको प्रतिज्ञागलनाथ  
 दे दिया ॥ ५९ ॥ तदनुसार सिद्धेने उस धनुषको मोताम्वयम्बरस प्रणकी जगहपर नियत किया ।  
 पञ्चानु भी सभासभ्योंके आगसे जनकजीने इस मेरे सर्वोत्तम धनुषको सबके सामने रखकर राजाजीको  
 अपने प्रतिज्ञा कह सुनायी । यह धनुष शस्त्रागारमें धारि भी बीजो द्वारा निचोकर राजा जनकने गेला  
 स्वयंवरके लिये वहाँ स्थापित किया था । परा सभाके अन्त्यमें राजा जनकने राजाजोसे कहा—‘जो राधा  
 इन सभासभ्योंके सामने इस धनुषकी सज्जित करेगा, उसीको मीना करेगी ।’ राजाके वचनको सुन तथा  
 गवमके समान अकल उस धनुषकी दम्भकर सबके सब राजाजो तथा महाराजाजोने मुख नीचे कर  
 लिया । उनमेंसे कुछ ही उस धनुषकी उपयोगसे तन्त्रिक भी नहीं उठा सके ॥ ६१-६३ ॥ कुछ लोगोंने  
 कुछ ऊँचा/भी किया तो जमीनसे चिन्तक नहीं उठा सके । बादमें सबके सब चिन्तकर उठाने लगे लो लो  
 भी वह जमीनसे उठ नहीं सता । तब फिर उसपर डोरी चढ़ाया तो और भी कठिन काम था । सभामें धनुष  
 चढ़ानेसे सब राजाजोको पराह्मण देखकर रावण सबसे साथ धनुषके पास गया और हँसकर रावण  
 जनकसे कहने लगा—‘६४-६५ ॥ हे राजन् ! जिस रावणने समस्त देवताजोको जोह किया है, जिसने  
 हीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया है तथा अपने ही ही वृजामीसे जिसने शिवजीके निवासस्थान  
 कैलास पर्वतको हिल दिया है, उस रावणका यदि तुम राजाजोसे जो सभामें सब देखना चाहते

तस्य मे जनकाय त्वं वत् पार्थिवममदि । इष्टमिच्छामि किञ्चिन्मित्रं लघुचापे सुगोपये । ७० ॥  
 एवं वदन् दशस्यः स नमो भूत्वा महदनुः । गृहीतुं वामहस्तेन चालयामास वै तदा । ७१ ॥  
 न तच्चाल किञ्चिच्च तदा दक्षिणमन्कम् । पुरः कृत्वा गृहीन् तच्चालयामास वै पुनः ॥ ७२ ॥  
 न तच्चाल तदपि तदाभयं गणः । भुजाभ्यां चालयामास तदा चापं चाल न । ७३ ॥  
 एवं क्रमेण सर्वाभिर्भुजाभिश्चालयन् धनुः । विशदोर्मिकदेशं चापम्योर्ध्वं चक्र सः ॥ ७४ ॥  
 एकोनविंशदोर्मिश्च धृत्वा चैव महदनुः । गुणं धूम्यां निपतितं गृहीन् हि दशाननः ॥ ७५ ॥  
 किञ्चिद्भुत्वा विनम्रः स दोष्णा जज्ञाह तं गुणम् । एतस्मिन्महते तच्च पपात तद्भृदये धनुः ॥ ७६ ॥  
 न तद्विशतिर्भुजाभिश्च चाल दद्यादनुः । तदा सभायामुर्ध्वम्यः पपात स दशाननः ॥ ७७ ॥  
 मुकुटः पठितो मूर्धौ मूलकच्छोऽप्यभूत्तदा । तदा विजयमुः सर्वे सभायां पार्थिवोत्तमाः ॥ ७८ ॥  
 तदा प्राणान्तिर्कं चाभीद्रावणस्य सभागणे । अर्क्षामि आमयामास तान्ताम्येभ्यो विनिर्ययी ॥ ७९ ॥  
 तदा तं वेष्टयामासुर्मन्त्रिणो राक्षसास्तदा । धनुस्तच्चालने शक्तास्तेऽभरन् नैव ममदि ॥ ८० ॥  
 मदश्रेणु दशस्यः स विष्टभुवै तदाऽकरोत् । ततः सभायां जनकः पुनः शतानि शक्तिनः । ८१ ॥  
 कोऽपि रीतेऽस्ति मूर्धौ न किं निर्वीरं हि भूतलम् । चेदस्ति कश्चिन्मदमि तर्हि सोऽयममगणं ॥ ८२ ॥  
 ज वदानं करोत्वस्मै दशस्याप नृपाग्रतः । इति नाक्यशगधानमिन्द्रो तौ समस्मर्षी । ८३ ॥  
 ददर्शतुर्गाधिपस्य मुखं तौ स्फुटिभ्रुवौ । विश्वामित्रस्तदा प्राह राम नोत्तिष्ठ राघव । ८४ ॥  
 किमस्य रावणस्यास्य स्व पश्यामि सभागणे । जीवयन् राक्षसेन्द्रं सज्जं कुरु धनुस्त्रिदम् । ८५ ॥  
 तन्मुनेर्वचनं धृत्वा तथैव्युक्त्वा स राघवः । तदोपायामनाद्रेणारप्रथनाय मूर्ध्निश्वसम् ॥ ८६ ॥  
 निष्कास्य कटाद्वागर्दान् कटं च धृत्वा तदा प्रभुः । मुकुटादि दृढं कृत्वा क्षुरैः प्राप सभागणम् । ८७ ॥

हा ता भने ही इस ला, किन्तु इस क्षणवक समान हन्के धनुषमे क्या वीरता देखाने ॥ ८२ ॥ ७० ॥ ऐसा कह कर दशमुख रावणने उस बड़े भारी धनुषको पहिले अपने बायें हाथसे ही हिलाना चाहा ॥ ७१ ॥ लेकिन वह उतक भा नहीं लिया । तब उसने दाहिने हाथसे पकड़कर हिलाना चाहा, तिसपर भी जब वह नहीं लिया, तब रावणको बड़ा आश्चर्य हुआ और एक माय सेना हाथसे उठाना चाहा । फिर सोनसे फिर बारसे इस प्रकार करत-करते जब न गो भुजाय ऐक साथ लगा दी, तब वहीँ वह एक ओरसे कुछ ऊँचा हुआ ॥ ७२-७४ ॥ तब उसने उसीस भुजाओंसे उस महान् धनुषको सम्हाला तथा बीसवीं भुजासे जमानपर लटकती हुई सोनको पकड़कर ऊँचे ही उपरको उठाना चाहा क्यों ही वह धनुष उछटकर उसकी सातोपर गिर पड़ा ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ सब बीसो हाथोने भी रावण उस धनुषको अपनी छातापरसे नहीं हटा सका और उपर मुख किये पृथ्वीपर घडाससे गिर पड़ा ॥ ७७ ॥ उसके सिरका मुकुट हूर जा गिरा और घातकों लाग खन गयी । यह देख सबके सब राजे थिलथिलाकर हँस पड़े ॥ ७८ ॥ रावण बेचारके पमाना निकलने लगा, भँस घुमने लगी और मुखसे लार गिरने लगी ॥ ७९ ॥ उसके सब मन्त्रियों तथा सैनिकोंने आकर घेर लिया, परन्तु जब सबसे भी धनुष नहीं उठा ॥ ८० ॥ पहिले हुए सुन्दर रम्भाय रावणका मल-मूत्र निकल पड़ा रावण जैसे वीरको यह दशा देख राजा जनकको और भी शंका हुई और वे पकड़कर कहने लगे— ॥ ८१ ॥ क्या कोई भी दोर पूर्य इस मूलपर नहीं रहा ? क्या पृथ्वी वीरसे मूख हो गयी ? यदि कोई हो तो इस सभामें राजाओंक सामन रावणको जीवमदान इकर बचाये उनके इस बाकदरूपो बाणसे पॉइल होकर राम तथा ब्रह्मराज तिनकी भीहें कोषके भारे पकक रही थीं, विश्वामित्रके मुखभी ओर देखने लगे । तब विश्वामित्र बोले—हे राघव लड़े हो धात्रो और इस रावणके प्राण बचाओ । तुम्हारे दस्तो रावण मर रहा है । लो ठीक नहीं है । इसे बचाकर धनुषको भी वज्रित करो ॥ ८२-८५ ॥ बुनिके शक्य मुन तथा बहुत बक्का कहकर राम तुम्हें बाबनसे उठ लड़े हूर और बुनिके इनाम किया ॥ ८६ ॥ उन्होंने गसेसेसे हूर जावि जाबूबन उतारकर एस दिवे, कमको कस लिया,

संशयमारुतं दृष्ट्वा जनाः सर्वेऽतिविस्मिताः । शक्तिः पार्थिवः सर्वे ददुर्गैर्वचकजैः ॥८८॥  
 एतन्महं तत्र प्रोचः किमुत्प्रेक्ष्यति शिशुम्ब्रयम् । यत्रास्माभिः स्थितं तृणीं नवायं किं करिष्यति ॥८९॥  
 केचिदःशूरेशास्यं हि दृष्टुं बालः समगतः । केचिद्वर्षास्त्रयेष्टा क्रियते शिशुनाञ्च हि ॥९०॥  
 केचिद्वचः किमर्थं हि द्वारा यत्काम्ब्रनेन हि । केचिद्वर्गाधिपेन चापं ग्रन्थिं सुयोजितः ॥९१॥  
 केचिद्वर्षावृद्धया चोदितः किं शिशुम्ब्रयम् वधार्थं चापशमेन विश्वामित्रेण राक्षसः ॥९२॥  
 केचिद्वर्षलं स्वयं मुनिनाञ्च निर्गन्धितम् । चोदितोऽस्यत्र श्रीरामश्चापेऽयं किं करिष्यति ॥९३॥  
 एवं नानाविधास्तर्कान्यावन्कुर्यन्ति पार्थिवः । तावद्दृष्ट्वाश्रुतो गमं जनकः प्राह वाधिदम् ॥९४॥  
 किमर्थं प्रेषितम्ब्रव मने बालः समगतो । लप्तेने रावणाञ्च नृपाः सर्वेऽपि कुण्डिताः ॥९५॥  
 तस्मिन्नापे त्वयं बालः किमाह्वयं करिष्यति । यत्तया शिष्यशक्येन पूर्वं चाहं प्रचोदितः ॥९६॥  
 तन्महं तु मृषेनाद्य चापाद्ये मुनिमत्तमः । कथं बालः कोमलांगः कथं चापं मुद्वर्धय ॥९७॥  
 किं चातकस्तृषाक्रांतः मामहं जोगिष्यति । एतस्मिन्नन्तरे सर्वाः मृषेवाद्याः स्त्रियश्च ता ॥९८॥  
 द्विजराजानन्य बालदोर्हण्डदयशोभितम् । हेमवर्णोपमरुचिं गुंजलानुपगंग्रिणम् ॥९९॥  
 मृत्खलाकंककभट्टयशोभितमन्कम् । दिव्यकुण्डलमुक्तरन्नालकाशोभितम् ॥१००॥  
 सुजंघं सुषदं शूरं सुगतुं सुन्दरोदरम् मुक्कवं सुहनुं कंचुकं चित्रलिङ्गोभितम् ॥१०१॥  
 म्पितान्यं कोमलोष्ठं च मुदंतावलिगजितम् । सुनातं मुक्कवं च कञ्जपद्मयिनेक्षणम् ॥१०२॥  
 सुश्रुत्वा च सुस्मिन्महं कुचिन्मलकशोभितम् । मुक्तामणिक्कयन्नादिनानाऽलकाशोभितम् ॥१०३॥

कुण्डको जन्ती प्रकार कांच लिंगा और वॉरमे मभाके बीचमे आ खड हू ॥ ८७ ॥ राकको वहाँ खड़े देख सब लोग वच विस्मयम दख गये और शक्ति होकर सबके सब राज राज अपने कामसदृश नानोसे देखने हुए गम्यार कहन या कि यह बालक कौता मय है । अर, कहाँ इन लोगोके नृप होला वहा वहाँ यह क्या करेगा ? ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ कोई बहुत लम्बा कि यह बालक कबल रावणका दखनके लिए आया है । किमने कहा कि यह बालक तो मानो मन्त्र न्या है । मन्त्र लगता है ॥ ९० ॥ कोई बालक सब इसने गलेसे हार तथा माना क्या उतार दी है । किमने उत्तर दिया कि इसको विश्वामित्रन धनुष से देव लिए भेजा है ॥ ९१ ॥ कोई बाला कि इस बालकको विश्वामित्रन पाशुतपम भेजा है, जिससे यह धनुषसे दखकर मर जाय ॥ ९२ ॥ दूसरा ने कहा कि मन्त्रो मुनिने इसका कल इन्नेके लिए भेजा है । चान्तु राम इस धनुषके विषयमे क्या कर सकता है ॥ ९३ ॥ इस प्रकार राजा राम अनेक तरहके तर्क विमर्क कर हो रहे थे कि रामको देखकर जनकने विष्वामित्रसे कहा—हे मुनिराज आपने इस बालकको क्यों भेजा है ? जिस धनुषके विषयमे बड़े-बड़े राज-महाराज तथा मन्त्रकी भी शक्ति कथित हो गयी वहाँ यह बालक आकर क्या करेगा ? जो आपने पन्च ब्रह्म जिनके द्वारा कहला भेजा था, मा सब आज इस धनुषके सामने मूठा हाथ । मरान्कि कहाँ यह ब्रह्म आका बालक और कहाँ यह बलि दुर्घय तथा महान् धनुष । शक्ति यह है मिलना ही प्यसा नही न हो ता था क्या वह समुद्रका रोख सकता है ? इसी समय पुष्पा आदि शिवसे तरोन्नीस, जालिगोस, चोको और छत्रपरसे मन्दर तथा कामल अङ्गुलि, कमलके सदृश नेत्रवाले, चन्द्रगके समान मन्दर मुखवाले, बड़ा बड़ी भजाओंसे शोभित, सुवर्णसदृश कान्तिसम्पन्न, तुर और सिक-हियोका पावेष पहिने । ९४-९५ ॥ जिसके हाथोंमे सिकड़ा और कड शोभित हो यह थे । जिनके सिर-पर दिव्य मुदृद कानाम दिव्य कुण्डल, हृदयपर रुने तथा मणिशेके विशाल हार झलक रहे थे, पैर तथा जलदमे त्रिवली पड़े हुई थी । जेयके समान कड इन्नेमे बड़ा ही अच्छा लगता था । जिनकी भिक्की ठोड़ी, कोमल कपोल, हसता हुआ मुखचन्द्र अनाक की धनिके समान दांत, सुन्दर लम्बी और पतली नाक तथा आल-ल ल हाड थे । माणस्य, मोली रत्न तथा हीरो आदिते बड़े हुए अनेक जन्मकरीसे जन्मवृत्त,

मुक्तास्त्रपुष्पमालान्यस्तमप्यतिशोभितम् । न्यस्तहारं न्यस्तवस्त्रं बद्धपीताम्बगन्धितम् ॥१०४॥  
 दिव्यमुद्रागुलिलसत्पंकजद्वयसन्करम् । एव दृष्ट्वा स्त्रियो राम सभाङ्गमविराजितम् ॥१०५॥  
 न्यस्तकोदन्तनृणारं शिवघापाभिममुक्षम् । शार्धयामासुप्ताः सर्वा ऊर्ध्वास्य ऊर्ध्वमन्कराः ॥१०६॥  
 वश्यन्त्यो गमने शुभं मोहान्नासायणं विधिम् । साक्षान्नारायणं रामं न ज्ञात्वा ताश्च वै स्त्रियः ॥१०७॥  
 हे शम्भो हे रमाकान्त हे विधेऽस्मत्पुत्राहृतः । व्रतदानादिपुण्यं च चापं सज्जीकरोन्वयम् ॥१०८॥  
 पुष्पाभिर्नः सुकृतं च कर्तव्यं पुष्पवद्धनुः । अयास्य कटुदेशेऽत्र मालां सीता दधान्वियम् ॥१०९॥  
 नो भवत्स्व नेत्राणां साक्षित्यं दृश्यं न दिदृ । मोनया रामचन्द्रस्य वेदिकायां स्थितस्य हि ॥११०॥  
 एतस्मिन्नतरे सीता रामं दृष्ट्वा सभाङ्गणे । दिव्यप्रासादमच्छ्वा सखीभिः परिवेष्टिता ॥१११॥

मोचन्तलामनाद्देगादानंदस्वेदमंत्नुता ।

सख्यास्तुलस्याः कटे स्त्री दीर्घतां क्षिप्य सादरम् ॥११२॥

अवशीन्मधुरं वाक्यं रत्नालंकारमंडिता । किंपणोऽत्र कृतः पित्रा मम अमुष्मरूपिणः ॥११३॥  
 एव रामः सुकुमारगणः कवेदं चापं जगोपयम् । हा विधे किं करोत्पद्य किमस्त्यंतर्गतं तव ॥११४॥  
 गमादिनाऽन्यं पुरुषं मनमाऽहं न गोचये । यदि तानो वलादन्य मां दास्यति तदा हृदम् ॥११५॥  
 न्यजामि जीवितं त्वद्य प्राप्तादवतनादिना । हे शम्भो हे विधे दुर्गे हे साक्षित्रि सरस्वति ॥११६॥  
 हे माधवत्रि स्वरे मानो मधवन्पम वीर्यम् । हे कुरोत्तम रामे हे विष्णो सगनायक ॥११७॥  
 हे फणींद्र निशानाथ हे सर्वे निर्जगदपः । पुष्पाकं शार्धयाम्यथ प्रमार्थं करपल्लवम् ॥११८॥  
 सर्वरेनन्महद्वापं करपीवं तु पुष्पयन् । प्रवेद्यनीयं पुष्पाभिः श्रीरामभुवदंडयोः ॥११९॥  
 चतुर्दश वन्मराणि मुनिवृत्त्याऽनुवर्तिनी । निचगामि वने चाहं धनुः सज्जं करोन्वयम् ॥१२०॥

रक्षा, आन, पुत्रराज, मुक्ता तथा हरे-बोले अनेक रत्नका पुष्पमालाओंसे मनोहर, पीताम्बर और शूकर  
 बस्त्रोंकी पहिने हुए, शङ्ख चक्र गदा धनुष आदि शुभ चिह्नोंसे चिह्नित करकमलवाले, सभासण्डपके बीच  
 बैठ, दोनों कन्धापर धनुष और तूणारकी शींसे तथा शिवधनुषके सामने मुन्न किये हुए रामकी दल-  
 कर उन्हें साक्षात् नारायण न समझता हुई वे महिताय जाकागमे विपक्ष शिव, विष्णु और ब्रह्माओं के  
 उनमें हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी-॥ १००-१०३ ॥ हे शम्भो ! हे रमाकान्त ! हे बहान् हमारे  
 पूर्वोपार्जित स्व-ज्ञानजन्य पुण्योसे यह बानक धनुष च्छानमें समर्थ है । १०८ । आप साग हमारे पुष्पप्रतापसे  
 इस धनुषको पुराके समान हुन्का बना दें । जिससे हमारा सीता आज इनके गलेमें बरमान्ग डाले ॥ १०९ ॥  
 हमलोग सीतामहित रामचन्द्रका विशाहका वेदोंपर बैठे हसकर अपने नेत्रोंको सफल करें ॥ ११० ॥ ठसी  
 समय बम्भो तथा बलद्वारोसे सुगोभित छलियेके साथ दिव्य भवनको छतपर बैठो हुई सीता रामकी सभाके  
 बीच खड़े देख आनन्दके स्वेसे परिप्लुत होकर जोध आसनसे उठ खड़ी हुई । अपनी प्रिय सखी  
 मुन्सीके गलेमें हाथ डाल तथा तनिक भगाडा बंदक आदम्पूर्वक यह मधुर वाक्य बोली-साधुस्वरूप  
 मेरे खिलाने यह कैसे प्रतिज्ञा की है ? वहाँ वे कमल भट्टवाले बालक राम और कहीं यह ध्वस्तके  
 समान जारी तथा कठिन धनुष । यह इनमें कैसे बंध सकेगा ? हा ईश्वर ! तुमने यह क्या किया और क्या  
 करनेका विचार है ? चाहे ओं हां, मैं रामकी छोड़कर दूसर किसीको नहीं रखेगा । यदि मेरे पिता मुझे दूसरे  
 किसीको दें तो मैं महाम्बरसे गिरकर मयज मित्र भादिके द्वार श्राघ्र प्राण त्याग दूंगी । हे शम्भो ! हे  
 विधे ! हे दुर्गे ! हे सरस्वती ! हे माधवा ! हे स्वरे ! हे धूर्ध्व ! हे इन्द्र ! हे जलपति वरुण ! हे कुबेर !  
 हे बम्भे ! हे रमे ! हे विष्णो ! हे गण्ड ! हे फणीन्द्र ! हे चन्द्र ! हे समस्त देवताओं ! मैं आज्ञा करके  
 प्रार्थना करती हूँ कि आप सब इस धनुषको फूलके समान हुन्का बना दें और रामचन्द्रके भुजदण्डमें  
 बंधकर उन्हें बल प्रदत्त करें । जिससे राम धनुष च्छानमें समर्थ हो और मुनिवृत्ति धारण करके रामकी

एवं नानाविधैर्वाक्यैः सीतां देवानतोपयत् ।

एवं प्रामादसंस्थायाः सीताया विविधानि च ॥१२१॥

तथा तामा हि नारीणां भृपाणां जनकस्य च ।

वाक्यानि शृण्वन् श्रीरावः किञ्चिन्नुवा स्मिताननम् ॥१२२॥

मयी चापं नमस्कृत्य कृत्वा तं च पदक्षिणम् । पुनर्नन्वा शिवं ध्यान्वा गुरुं दशम्यं नृपम् ॥१२३॥  
 कीधर्या च गुरुं ध्यान्वा वासहस्तेन तद्धर्षा । मन्दहस्तेन चापस्य गुणं ध्यान्वा भूजयः ॥१२४॥  
 वामहस्तेन तत्रं तच्चक्रं मदमि क्षणात् । तदा निनेदुर्वाधानि सुष्टुपूर्वोन्दिमागधा ॥१२५॥  
 एनस्मिन्नन्तरे गमो वामहस्तचलादनुः । मध्येऽभयन्त्रिखड्गं तच्छुभं प्रार्चनमुत्तमम् ॥१२६॥  
 चापमद्वात्महानादस्नदाऽभ्युदयनागणं चक्रपेक्षणी त्वं चानिहयन्मम कयाद्दृष्टम् ॥१२७॥  
 चक्षुः सागराः सर्वे निनेदुन्ता दिग्धा दृष्ट्वा । तामा निपेतुर्धर्षणी शिरः शोषोऽप्यचालयत् ॥१२८॥  
 वनुगताः सुगन्धाश्च देशस्ते गगने स्थिताः । वाद्ययामगुंराद्यानि सर्पाद्यैः समवाहिरन् ॥१२९॥  
 स्ववश्या ननृतुः स हि देवास्तोष प्रपेदिरे । तदा निनेदुः मदमि मेधो ददमयो रराः ॥१३०॥  
 नववाद्यम्वताः नव चभृजयनिःस्वनाः । ननृतुर्वरनार्यश्च तुष्टुमार्गधादयः ॥१३१॥  
 स्त्रियो गवाक्षर्ध्वं गम पर्वपश्चाद्विरत्नं तदा म गवणाम्पूष्णी लज्जयाऽऽनतमस्तकः ॥१३२॥  
 हुकुटैरपि हीनश्च मुक्तकल्पाऽनिविह्वलः । ममायां न सुखं तस्मै नृपे नृकापुर्गे पर्या ॥१३३॥  
 गमेषु मद्र तच्चापं दृष्ट्वा नार्यो मुदान्विताः । चक्रुर्ज्येष्ठ्यनेयोपान्कर्ष्य कर्तालिकाः ॥१३४॥  
 सीताऽपि मुदिता जाता हर्षरोमाचनिर्मग । अनिमेषा कंजतेश्च गममुत्कठिता स्रभृत् ॥१३५॥  
 एनस्मिन्नन्तरे राजा जनकः प्राद्व वन्त्रिणः । करिणाम्प्रामय सीतादानवध्वं समुत्सर्गः ॥१३६॥

अनुगामिनी बनकर उनके साथ चौरहू वर तक वनमें भ्रमण करी ॥ १२१-१२० ॥ इस प्रकार विविध वाक्यों से सीता देवताओंको मनाने लगी । प्रामादपर स्थित सीताको, उन स्त्रियोंको, राजा जनकको तथा अम्बास्य राजाओंको ऐसे ऐसे वाक्योंको सुनकर मुसकत हुए श्रीराम धनुषको पान गये । वहाँ जाकर उन्होंने धनुषको नमस्कार किया, प्रदक्षिणा की और शिवजीका मन ही मन ध्यान धारके प्रणाम किया बादमें राजाजामें और राजा दशरथ माल्य कौसल्या तथा गुरु वसिष्ठका मन ही मन ध्यान धार प्रणाम किया । फिर वायु हाथसे धनुष और दाहिने हाथसे उनको तीन पकड़कर जणभर में सभाके गमने वाले हाथसे धनुषको मुकाकर हाँस चला दी । उस समय जाते बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी और धारणागण गमका यह मान लगे । इससे रामको बड़ा बाहुबलसे उस चलन तथा पुगतक जियधनुषको खींचते तीन टुकड़ हो गये ॥ १२१-१२६ ॥ धनुषको टूटनेसे बड़ा घनघोर शब्द हुआ । जिससे समस्त वनमण्डल गुँज उठा । चरती काप रटा । हे पार्वती ! तुम भी इस सन्ध्या मागे चले हमसे बिपट गयी हो । सब समुद्र चलायमान हो गये दिशायें धुंधिल हो गयीं । नारे टूट-टूटकर पुर्जोपर दिग्ने लगे । लेखनागका सिर घूमने लगा । सुगन्धयुक्त वायु बहने लगे । देवता आकाशसे फूट नरसाने और बोधे बजाने लगे । स्वर्गकी खिड़ी आकाशसे नष्ट करने लगी और देवता आनन्द मनाने लगे । उस समय सभाघरमें भी उत्तम दोल तथा नगाड़े बजने लगे ॥ १२७-१३० ॥ मये-नये बजने लगा जयजयकारका शब्द होने लगा । बाराहनाएँ नाचने लगीं । धाँह आदि श्रुति करने लगे । क्षरोक्षेपे स्त्रियें रामपर कुल बरसाने लगीं । तब रावण सुषचाप लज्जामें सिर नीचा किया हुए चिन्ता लगी आगमें सुफुट रहित हो घबराहटके साथ शीघ्र मियिस्त्रपुरीसे निकलकर लड़ाका भाग गया । वहाँ वह जणभर भी नहीं रुका ॥ १३१-१३३ ॥ रामने धनुषको तोड़ दिया, यह देखकर स्त्रियें हर्षतिरेकसे जयजयकार करने और तानियाँ बजाने लगीं ॥ १३४ ॥ सीताको तो शरीरमें मारे आनन्दके रोमांच हो गया । उत्कण्ठापूर्वक निम्बरहित होकर कमलसदृश नयनोंसे वे रामको निहारने लगीं ॥ १३५ ॥ सभी राजा जनकने

क्षणाया निर्जः सैन्यैर्बेष्टयित्वा समन्ततः । नक्षेति ते मग्निश्च यधुरंगेन जानकीम् ॥ १३७ ॥  
 प्रोचुस्ते यधुरं वक्ष्ये प्रयद्वह्मपुत्राः । हे राने कञ्जनयने धन्याऽसि यज्जगदिमनि ॥ १३८ ॥  
 विचक्षोर्द्वेनाथ दशम्यमुनेन च । रामेण धर्मं मदसि चाधुनिष्ठ वगतः ॥ १३९ ॥  
 कर्णिगृष्टमारुह्य राम न्व गंतुमर्हसि । रामकण्डोपयस्वाय हन्मर्यातां मुदान्विता ॥ १४० ॥  
 हन्मत्रिणां वनः भुञ्जामाता नन्वा स्वमातरम् । सखामः काणपुष्टे मग्निनामान्मुदान्वित ॥ १४१ ॥  
 तदग्रे नयवापानं निनेदुमधुर्लानं वै । निनेदुः पृष्टमागेऽपि न नावापानं वै मुहुः ॥ १४२ ॥  
 चित्रार्णष्टाः कचुकिनः शनयो वज्रपाणयः । रानाकर्णियाधारे हे कुतुबुदीपेतिःस्वनाः ॥ १४३ ॥  
 शयन् नममर रानां दृष्टं जनैः कृतम् । नमृतुवाग्नायश्च बभूवुर्धन्वनिःस्वनाः ॥ १४४ ॥  
 तुष्टुवृषागथाश्च नटा गानं वचकिर । कर्णिगीं वेष्टयामासुः रानादाभ्यः सहस्रशः ॥ १४५ ॥  
 अथाकृद्वाभामर्गाद् विभ्रन्त्यो रुक्मशोभिनाः । तनोऽधर्मस्थाः शनश्र्वा यधुशोषमातरः ॥ १४६ ॥  
 जम्हा शम्भुशर्मिण्यः स्वर्णदन्त्यमन्काः । ततः पुरुषवद्वर्णान्निभ्रन्त्यः प्रमदात्मना ॥ १४७ ॥  
 ययुस्तकथयः शनशः शमहन्ताः सभूषिताः । गोषिताभ्याः कचुकिन्यस्तुग्मादिषु मस्थिताः ॥ १४८ ॥  
 ततस्ते मग्निश्च सखे न नाशहनमस्थिताः । स्वर्मैर्यरहयामासुः रानायाः कर्णिगीं मुत्रा ॥ १४९ ॥  
 चामर्ष्यजनैः मरुगो मुहुः रानामरीतयन् । मियो गवाक्षरश्नेश्च राना पुष्पैर्वाकिरन् ॥ १५० ॥  
 एव नानामधुन्माहैः शनैः राना तडिप्रभा । नरन्मर्यातां मालां विभ्रती दक्षिणे करे ॥ १५१ ॥  
 रावं नेत्रकटाक्षश्च पश्यन्ती मुदितानता । ममार्या रात्रिं गन्वा कर्णियाधारकक्ष च ॥ १५२ ॥  
 शनैः पद्मणी ययी राम तद्गवापां मुलांजना । सुमोच निजवाहूभ्या रानमाला मुदान्विता ॥ १५३ ॥  
 चक्रा नमनं रावं पादयोः स्थाप्य वै शिरः । तस्थान्वाहमुर्वा राना मधायामनिलान्विता ॥ १५४ ॥

अथ नान्यमाना राजा ही कि मुन्दर हथिनपर केटकर हेमाया दश-वन्धम राना हक म य सातावा यता न  
 माया ॥ १३६ ॥ 'वदुन अन्ध' कटकर मान्गण नरन्त जनन'जोक पास मय ॥ ॥ ३ हाथ मा'र  
 इस प्रकार यधुर बाणाम बहून गे-र नजना'मना और समन्तयदा साता मुम वन्य ह ॥ १३७ ॥ मु'र'र  
 दशरथपुत्र रामन सभाम यधुर पाद डाला । ज'री उटकर सता ही माया ॥ १३८ ॥ हृथिनपर यधुर अना  
 रामके पास चलती है । वहा चलकर अनन्दपुत्रक अना उनके गलेम यह रन्तली माला ( वरमाता )  
 टाक दी ॥ १४० ॥ म'ताम मन्त्रिपार दस वाक्यका मुन्दर मानाक घरणाम नयस्कार दिया और सहस्र  
 मुनिशोक साथ हथिनाका पाटपर सवार ही गयी ॥ १४१ ॥ तनक आग तथा पाट माना वज्रक  
 मनाहूर वीर वतने लग ॥ १४२ ॥ वदु-विराडा पगाटर बा'र और हाथम बत लिये अन्त पुरक संकटां  
 दरबार हथिनाक अग आग आग विन्धान हु'र चलने लग ॥ १४३ ॥ न रानम रानाका दशमक लिय सदा  
 भीरका हटा रहे वे । केवलय माचन लगी । विपक्ष बायाक निवार हुन यम । अट लुलि काने और नट मान  
 लग । साताका हजारो दक्षिणत उन्ध चर लिया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ उनके पीछे अश्वपर सवार तथा हथिन'मुदित  
 यधुर भादि लिये हु' वदुनसी मिय तथा उनके पक्ष यन्त्रपर सवार संकटा उपमाता ( तादर्या ) बनी  
 ॥ १४६ ॥ उनके पीछे अस्वधर्मिणी तथा सोनका छडिय लिये हु' संकटो पूरा मिय चली ॥ उनके बाद जवान  
 शिरय पुरषका वेपवनाये और हाथम इस्त्र लिये हु' चले । उनके बाद उसा वेपम मुष डाके री' कूरता पहिने  
 य'गोदर सवार हाकर मन्त्र लिय हु' कुछ मुन्दरी मिये चली ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ मयके पाद विविध व हनापर  
 सवार मन्त्रिगण अर्या-अपरा मयाक द्वारा साताकी हथिनीको चरे हुए चले ॥ १४९ ॥ सजाणन यधुर तथा  
 एवं साताजीपर इन्द्रात लगी । मगरवा लिय गवाक्षमामंन उनपर फुल बरहाने लगी ॥ १५० ॥ इस तरह  
 जनक प्रकारसे सज-यत्रकर धीरे-धारे विजलांके मद्गत क्षमिवाली तथा रूहिनु हाथम मयग्मोका हार  
 लिये हु' अपने नेत्रकटाकासे रामका देखती हुई सीता सभामण्यके पास जा लया हथिनासे उत्तरकर धीरे-धीरे  
 रामके पाद यदी और लम्बापुर्वक रूपसे हाथीसे उनके गलेम बहु रन्तीली माला टाक दी ॥ १५१-१५३ ॥

ददर्श सीता गतोऽपि हारगोमितहृन्म्वलात् । जराय तं च निजरा ननाम गाधिच प्रभुः ॥१५६॥  
 तदा तमं समालिख विश्वामित्रो मुनीश्वरः । निवेशयामि त्रिकेतं च प्रेम्णाऽऽघ्राय मस्तके ॥१५६॥  
 तदा च जनकः सीतां गाधित्रिकेतं न्यवेशयत् । सीतया गृणार्थेन हृष्टमे स मुनिस्त्वदा ॥१५७॥  
 मानयामास च मुनिर्जन्यमत्फल्यतां हृदि । ततः सयायां जनको विश्वामित्रं वचोऽब्रवीत् ॥१५८॥  
 प्रमानात्मन रामस्य नामो जानोऽद्य मे मुने । धन्योऽस्म्यहं कुरु धन्यं च यो तौ पितरौ मम ॥१५९॥  
 योऽहं श्रीरामश्च शुभ्रेति लोके प्रभा गतः । इत्युक्त्वा गाधित्रं नम्रा प्रणनाम रघुपथम् ॥१६०॥  
 तदा ते पार्थिवाः सीतां हृष्टा तत्र तद्विप्रभाम् । चित्रोर्ध्वा चंद्रवदनां नक्षत्रश्रृंगताडिताः ॥१६१॥  
 बभूवुर्बिकलास्तत्र दुर्दैव मेनिरे निजम् । केचिन्मूर्छां पशुस्तत्र तान्समागत्य मैथिलः ॥१६२॥  
 शार्ध्वकामाय नृपतीन्विपण्णान् मदमि स्थितान् । बह्वश्रम्यान्वदनान् लज्जसा ननु बभूव ॥१६३॥  
 शुष्माभिर्भेऽहं कन्याया विवाहं विनिवर्त्य च । गंतस्य स्वपुराण्येव कर्णीया कृषा मयि ॥१६४॥  
 तदा ते पार्थिवाः सर्वे मन्त्राश्चक्रुः परस्परम् । यदि यदं विजैतव्यः श्रीरामोऽद्य रणागरे ॥१६५॥  
 गर्धाम्भम् नमये दुष्टे जपे नो न भविष्यति । कुमुदहं नम पाताम्नूणीं गन्वा पुराणि हि ॥१६६॥  
 मुमुहूतं पुनर्योद्धुं याम्पामः मकला बलेः । भविष्यति तदा जम्माकं त्रयो पृष्ठे विनिश्चयात् ॥१६७॥  
 पदा गमं बाणभिन्नं पश्यामः चित्तं तणे । भविष्यामः कुनकन्यास्तदा सर्वे वय नृपाः ॥१६८॥  
 गर्दरास्यपमानस्य दुर्त्य मर्मम्यलं गतम् । त्यजामः पार्थिवाः सर्वे त्रेप्यामो राघवं पदा ॥१६९॥  
 किमर्थमधुना वैरं दर्शयामः शृणु वै । इति संमन्त्र्य ते सर्वे नयन्युक्त्वा नृपौचमम् ॥१७०॥  
 कुन्वा सीतारिवाहं च गच्छामः स्वस्थलानि हि । तदा तान् मकलं रन्तु मृताणि जनको मुदा ॥१७१॥

तत्पश्चात् रामकं चरणोपर अगती सिर राम तदा रामबाबू काक सभाये राज राज कुछ नीचा मुख बिजे हुए  
 मंडा हा गयी ॥ १५६ ॥ उस क्षण मृगभित्तद्वय राजने श्री सीतानी और देखा और मरगन्त बन्नु  
 होकर उन्होंने विश्वामित्रजीका प्रणाम किया ॥ १५६ ॥ मुनिके ईश्वर विश्वामित्रने रामको कानि जून  
 करके प्रेमसे मादम बिठाया और तनका मिर सूया ॥ १५७ ॥ तब रामा जनकने सीताका भी ले बाकर  
 विश्वामित्रजीका गंदम बेठा दिया । उस समय सीता तथा रामके सहित विश्वामित्रजी बरां हो सीताको  
 प्राप्त हुए ॥ १५७ ॥ वे मन ही मन अपने जन्यका सफल समझने लग । तदनन्तर राजा जनकने सभाके  
 विश्वामित्रसे कहा— ॥ १५८ ॥ हे मुनिराज ! मापकी कृपासे आज मुझे रामचन्द्र बैसा रामाद प्राप्त हुआ  
 है । मे अनेको, अपने माल पिलाका तथा अपने कुछने वन्य समझता है ॥ १५९ ॥ क्योंकि मैं रामचन्द्रके  
 अनुमानसे तत्कारने विश्वास हुआ । ऐसा कहकर उन्होंने विश्वामित्रका तथा रघुनाथरामादि  
 रामचन्द्रको प्रणाम किया ॥ १६० ॥ उस समय वही एकजिन अन्धान् राज बगनाके समान बगनवाले मिर  
 अर्थात् एके हुए दुंदरुफलके सदृश स ३ और चन्द्रमाके सदृश कुलवाण सीतानी दबते ही उसके  
 नेचकी बाणस बायन हाकर म्पाकुन हो गये और अपना दुर्भाग्य समझन लगे । कुछ वही मुछित  
 हो गये । तब मिथिलक भविष्यति राजा जनकने वही बाकर उन कानि नष्ट हो जानसे मरगन्तुस,  
 दुखी, मरगन्तुसे नार्थी गरहन करके समझे बैठे हुए राजाजस प्रार्थना की— ॥ १६१—१६३ ॥ कृपा करके  
 मेरी कन्याके विवाहका उत्सव सथापन करके ही मापयोग अपने-अपने नगरीको वाइयेगा ॥ १६४ ॥ तब वे  
 राजे विचार करने लगे कि यदि रामका गुदम जीतन ही हो तो भी इस कुमममसे हमलोगको विजय  
 लाभ नहीं होना । क्योंकि हमलोग कुमुदराज बाये हैं । अतएव कभी यहाँसे वरनाम अपने-अपने स्थानको  
 जान्ने फिर किसी अन्धे मुहूर्तमें दलकाके सहित जायेंगे । उस समय रामका रत्नमूर्तिमें बाधकर और  
 विजय प्राप्त करके हम सब कलहम होय तथा सम्मानजनित हृदयवत् दुखको मान्य करेंगे । इसलिए इस  
 समय राजा जनकसे वैर करना अच्छा नहीं है । सीताके विवाहका करवाकर ही चले । ऐसा विचार करके  
 सब राजाजोंने राजा जनकसे 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा ॥ १६५—१७० ॥ इन्हें राजा जनकने सदैव रघुनाथ



कल्पयामास चिद्विबुधैर्नाश्नापि शृणुष्वम् ततो गाधिजवाक्येन तिरिहः प्रेष्य मयिणः ॥१७२॥  
 नमानेतु दशरथं तत्प्रतीक्षां चकार मः नेऽपि तन्मम मन्त्रमथ दृष्ट्वा दशरथं नृपम् ॥१७३॥  
 पुनः निवेद्य सकलं तं नन्वा तन्पूरःस्थिताः । वृष दशरथः धृष्टा तुनोऽपि निवरा नरा ॥१७४॥  
 मेन्येन पाण्डुरैः सर्वैः पूर्वाविर्जानन्दैः सह । मिथिलासगमच्छेद्य नरा दशरथो नृपः ॥१७५॥  
 तदा महोत्सवेनैव नृपं दशरथं पुरम् नेतुं मन्त्रं पुनश्च ननकः पार्थिवैर्वचो ॥१७६॥  
 तदा दशरथाय ली दृष्ट्वा कैकेयशत्रुनी । श्रीगमन्धमणास्य कुरः प्रसी व्यर्चिनयम् ॥१७७॥  
 तावद्वायलक्ष्मणाभ्यां युक्तं तं गाधिजमुनिम् स्वोदनायां नृपो नृष्टा निम्नयं वार मधिष्ठः ॥१७८॥  
 ततो दशरथं नन्वा नमिषु प्रणिपत्य च । गाधिजं जनकः प्राह कावेर्ता समक्षापगा ॥१७९॥  
 ततस्य गाधिजः प्राह समीपाद्भुवनमनयम् । लक्ष्मणाक्षान्ध शत्रुजः कैकेया नन्दनविभो ॥१८०॥  
 तच्छ्रुत्वा जनकः प्राह राजानं गाधिजगुरुम् । सीता रामाय दास्यामि लब्धा भूमिद्वयाननाम् ॥१८१॥  
 देहजापुर्मितानाम्नी लक्ष्मणापापस्याम्हम् । दृष्ट्वायस्य मे कन्धोऽश्रुनर्कानिध मांडवी ॥१८२॥  
 वतसे वातिके रम्ये रूप्यावनमण्डिते । सीतोर्मिलाभ्यामपि ये कथा निन्य प्रश्रुतिने ॥१८३॥  
 दास्याम्यहं भरताप मांडवी मंडनान्निनाम् शत्रुज्जाय श्रुनर्कानिमर्षयाम्यहमादम् ॥१८४॥  
 एवं प्लुषाश्रुतमथ स्वमर्गाकुरु पार्थिव । तथेति जनकः प्राह राजा दशरथो मुदा ॥१८५॥  
 ततो दशरथः प्राह सनानंदं पुनश्चितम् । महत्प्राजतोद्भूतं मधिल्लामे भिरनं मुनिम् ॥१८६॥  
 कथं लब्धा सुवः सीता तत्पर्वं वक्तुमर्हसि । गतानंदस्तथैवपुक्त्वाऽब्रवीद्दशरथं नृपम् ॥१८७॥

गतान्द उवाच

मध्यक् पूर्णं त्वया राजन् शृणुष्वैकाग्रमानसः । आमानुषा रूपः कश्चिन्मया इति विभुनः ॥१८८॥

रामके लिये, पुनर्मन्त्रे लिये तथा राजा जनक लिय सब प्रकारकी वस्तुओंका यथापेक्ष प्रकल्प कर दिया ॥ १७१ ॥ तदनन्तर विश्वामित्रक वस्त्रोपर राजा जनकन अश्विनरत्न महाराज दशरथका बुनानका निग्रय करके अन्धयोकी अयोध्या भेजा । तदुपार में राजा दशरथक पास गया और सब वस्तु, तत् निवेदन करके बाद नमस्कार करके सीमन खड़े हो रहा । इस बुनानकी मुनकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७२-१७४ ॥ फिर राजा दशरथ विश्वोका सेनाके, नगर तथा देसके सब लोगोंको साथ लेकर आनन्दपूर्वक लाल मिथिलापुरीको चले गये ॥ १७५ ॥ तब राजा जनक लड़े समारोहपूर्वक सीतेनामके साथ एक हाथकी सज्जकर सब राजाओंक संग उनकी आकांक्षीके लिए सामने जाये ॥ १७६ ॥ महाराज दशरथके साथ कैकेयोंके पुत्र भात तथा शत्रुजको देखकर राजा जनक विचारने लगे कि ये गमन्धमण जहाँ बड़ासे आ गये । बादमें जब विश्वामित्रक साथ रामलक्ष्मणको अपनी सेनामें देखा तो आश्चर्यचकित होकर राजा जनकने महाराज दशरथ और मुनि वसिष्ठको प्रणाम करके विश्वामित्रसे पूछा कि ये दोनों रामलक्ष्मणके समान रूपवाने दूसरे बालक कौन हैं ? ॥ १७७-१७९ ॥ विश्वामित्रजीने उत्तर दिया कि रामके अज्ञस्वरूप भग्न तथा लक्ष्मणके अज्ञ कान्ध में दोनों कैकेयोंक पुत्र हैं ॥ १८० ॥ यह सुनकर राजा जनक गुरु विश्वामित्र तथा राजा दशरथसे कहने लगे कि अयोनिजा, योनिके नहीं उत्पन्न ) तथा पृथ्वीसे प्राप्त भौतकों में रामके लिए देता है तथा बारेंरसे उत्पन्न उर्मिलको लक्ष्मणके लिए दे रहा है । उन्हें साथ रहना करे । मेरे भाई कुशकाजकी अटकानि तथा माण्डवी नमर्क मन्दर तथा रूपवीरनसे सम्पन्न हो बच्यार है । जिसका कि साता तथा उर्मिलके साथ-साथ बालकर मैंन नहीं की है ॥ १८१-१८३ ॥ उनसे पूछनासे भूविष मांडवीकी भरतके लिए तथा श्रुनर्क सीको शत्रुजके लिए देता है । हे पार्थिव ! आप इन बारोंपुन-वस्तुओंके स्वीकार कर । तब राजा दशरथने सर्व 'तपोस्तु' कहा ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ तदनन्तर राजा दशरथने राजा जनकके सामने लड़े महत्प्राजकी कोससे उत्पन्न पुनश्चित मुनि सनानन्दको पूछा कि सीता भरतसेस कैके जाय हुई । तो तब दशरथ जाय कहे । सनानन्दने बहुत अच्छा कहकर बताया आरम्भ किया ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

य दृष्टु मकलौट्टोक त लक्ष्मीकर्मकृत-परात् चित्तयामास मनसि लक्ष्मीं कन्यां कोम्यहम् ॥१८९॥  
 नृपसत्र निजाके तां रजयामि निगनम् हान निधिन्य स नृपगतत्वा त्वां महत्तपः ॥१९०॥  
 दृष्ट्वा प्रमत्तामग्र तु लक्ष्मीं वननमत्रां । दुहिता मे भव न्य हि मा प्राह नृपति प्रति ॥१९१॥  
 परतत्राऽप्यहं राजन् विष्णु-व-प्र-र्धयाधुना । स चेदाप्यनि मां ते हि नर्दहं दुहिता तव ॥१९२॥  
 भविष्यामि न मदेहमन्धेऽपुस्तका नृपः पुनः । तज्ज्वा नीत्र तपो विष्णुं चकार वरदोन्मुक्तम् ॥१९३॥  
 नन्वा त नृपतिः प्राह दहि कन्या रथा मम तद्राजवचन श्रुत्वा मानुमुत्तकलं हरिः ॥१९४॥  
 पद्मासाय दत्तां श्रेष्ठ स्वयमनर्धे विभुः । तद्विन्वा नृपतिः कन्यां ददश कनकप्रमाम् ॥१९५॥  
 तां दृष्ट्वा माभिलाषः स कन्यां मेने निजां शुभाम् । पमाधनृपतेः कन्यां यथां लोका रदंति च ॥१९६॥  
 आह्वयामासुस्तां रम्यां मवानिर्नैकं जनाम् । श्रुत्वा मानुमुत्तकलं भूर्वक्त्र कलं पुनः ॥१९७॥  
 जानं दृष्ट्वा दधागथ स्वदम्ने नृपतेः मुना । सा त्ववर्धन नृपतेरके चन्द्रकला यथा ॥१९८॥  
 मुकुक्ते च तां दृष्ट्वा पद्मलोऽर्चितयद्वरे । कर्म देवामया कन्यां हस्यं योग्यो वरोऽत्र कः ॥१९९॥  
 ततः ममंश नृपतिः स्वयंवरमधारभत् । स्वयंवरेऽथ पद्माया पक्षारम्यं चकार सः ॥२००॥  
 स्वयंवराय यथाय पत्रराकारयन्नृपान् । तेषुपि मृज्जारयुक्ताश्च ययुः पद्मास्वयंवरम् ॥२०१॥  
 पद्मास्वयंवरं श्रुत्वा ययुस्तत्र मुनीश्वराः । ययुर्देवाः सर्गधर्वा दानवा मानवाः खगाः ॥२०२॥  
 नगा नयः समुद्राश्च भूरुहाः कामरूपिणः । ययुर्यक्षाः किकिराश्च राक्षसा रावणादयः ॥२०३॥  
 सर्वान् समगतान् दृष्ट्वा पद्माक्षः प्राह तान् प्रति । आकाशनीलवर्णेन यः स्वर्गं परिलेपयेत् ॥२०४॥  
 ददामि तस्मै पथं यः कथं श्रेयं वचो मम । तद्राजपथनं श्रुत्वा दुर्घटं नृपसत्तमाः ॥२०५॥

गलानन्द होमे हे राजन् आपने जो वृत्तान्त पूछा सो बहुत अच्छा किया । मैं कहता हूँ आप बकलसे  
 मुन । पूवकालमें पद्माक्ष नामका एक प्रसिद्ध राजा था ॥ १८८ ॥ उसने सब लोगोंका लक्ष्मीको कामनामें  
 लेकर उसका मतम साधा कि मैं एक हाथ लक्ष्मीका पुत्र बनाऊँ और अपना गोदमें लाइ-व्यार करके  
 बड़ा करूँ । ऐसा निश्चय करके उसने लक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिए बड़ा कठोर तप किया ॥ १८९ ॥ १९० ॥  
 जब प्रसन्न होकर लक्ष्मी सम्मन आ बही हुई तो उसने कहा कि तुम मरी पुत्री बनो । यह सुनकर  
 लक्ष्मीन राजासे कहा ॥ १९१ ॥ हे राजन् ' मैं तो विष्णुपुत्रान्तर्क भवोन हूँ—स्वतन्त्र नहीं हूँ । इसलिए कुछ  
 विष्णुकी प्रार्थना करो । मैं यदि कुछ नु-हूँ र नियो दे दूँ तो मैं मृज्जारा पुत्रा हाऊँगी । इसमें सन्देह नहीं  
 है 'बच्छी बात है कहकर राजा पद्माक्षने ताल तब करके विष्णुपुत्रपदातुका प्रसन्न किया । ॥ १९२ ॥ १९३ ॥  
 विष्णुने उस एक श्रेष्ठ मानुमुत्तकल ( विजौर नील अथवा नारंगका फल ) दिया और स्वयं अस्तर्षान हो गये ।  
 राजा पद्माक्षने उस फलका फल । तो उसमें सुवर्णक समान जगमगाती कन्याका चिह्नमान देला ॥ १९४ ॥ १९५ ॥  
 कन्याभिलाषी राजाने बालिकाको देखकर उसे अपनी कन्या ही माना । तबसे चित्तकी आनन्द देनेवाला उस  
 रमणीय कन्याको देखकर वहाँके सब लोग भी सत्य 'यह राजा पद्माक्षका कन्या लक्ष्मी है' ऐसा कहने लगे ।  
 तभी उस विजौरके टुकड़ोका मिश्रकर फिर समूचा फल बन गया । यह देखकर राजाकी पुत्रीने उसे अपने  
 हाथमें ले लिया । यह बालिका राजाके अंक ( गोद ) में शूलपक्षकी चन्द्रकलाकी भाँति बढ़ने लगी । उसे  
 देखकर राजाके मनमें चिन्ता हुई कि 'यह कन्या मैं किसको दूँ, इसके योग्य वर कौन है' ॥ १९६-१९७ ॥  
 तदनन्तर राजाने विचार करके उसका स्वयंवर रचाया । उसी समयमें उन्होंने मल का आरम्भ कर दिया  
 ॥ २०० ॥ स्वयंवर तथा पत्रके लिए निमन्त्रणपत्र भेजकर पद्माक्षने राजाजीको बुलाया । वे लोग मृज्जार करके  
 बड़े हाड-बाटसे तथाके स्वयंवरमें जाकर सम्मिलित हुए । स्वयंवरका समाचार सुनकर बड़े-बड़े मुनीश्वर, देवता,  
 गन्धर्व, राक्षस, मानव, वंशा चहें वेला रूप वारण करनेवाले हन, पर्वत, नदी, समुद्र, यज्ञ, किन्नर और  
 यक्षचरि राक्षस भी वहाँ आ पहुँचे ॥ २०१-२०३ ॥ उन सबको जाया हुआ देखकर राजाने उनसे कहा कि जो

पद्मावीन्वर्षमभ्रातास्तां हर्तुं ते सन्ध्याः । तान् कन्याहरणोद्युक्तान् नृपान् दृष्ट्वा मनिर्जगत् ॥२०६॥  
 चकार संग्रहं तैः स पद्माक्षो लोमहर्षणम् । तद्वाणपीडिता देवा मानवा विष्ण्वा रणे ॥२०७॥  
 बभूवुस्तत्र दैन्यैश्च पद्माक्षो निहतो रणे । तत्तन्ने मिलिताः सर्वे नां धर्तुं वृष्टुर्नृपान् ॥२०८॥  
 सा दृष्ट्वा घर्तयद्युक्तान् जुहावाग्नी कलेवरम् । तामदृष्ट्वा नृपाद्यान्ने विचिन्वन्नगरे तदा ॥२०९॥  
 शमत्रुन्धगेदानि भूमिं चक्रुर्गिम्मतः । श्मशानतुल्यं नगरं तानं वै क्षणमात्रतः ॥२१०॥  
 पद्माक्षनृपतेर्लक्ष्मीसगाज्जलेदृशीं दत्ता तस्मान्न मुनयो लक्ष्मीं शमयन्ति कदाचन ॥२११॥  
 लक्ष्म्याश्चिनस्य चांचन्यं भयं शोका बभूवपि च । भवत्येव महदःसं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥२१२॥  
 पद्माक्षो निहते पुट्टे मृपयन्त्यः सहस्रतः । भर्ता महदं शमनं चक्रुस्मा भयनिर्भरः ॥२१३॥  
 ततन्ने दैन्यवर्षाद्या पयः स्वं स्व स्थलं प्रति । एकदा दहिकुंडान्मा पद्मा शक्तिः स्थिरा हरेः ॥२१४॥  
 बह्निर्निर्गन्धः कुटम्बः सर्मपे नमृषानिश्च । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पुष्पकस्थो दशाननः ॥२१५॥  
 विधस्तु जगतीं त्रेनुमाकाशवर्मना ययौ । माग्न्या दृष्ट्वाश्च दहिकुंडे बहिः स्थिताम् ॥२१६॥  
 माग्नो दर्शयामास गवणाय वसोऽब्रवीत् । पुनः पुनः पुनः पुनः यो धर्तुं ममस्थिता ॥२१७॥  
 तैर्यं पद्माक्षनृपतेः कन्या पद्माऽपिमन्निर्धौ । तन्दाग्नयश्चः श्रुत्वा तां दृष्ट्वा काममोहितः ॥२१८॥  
 यानाज्जवादुन्धपानं तां धर्तुं माऽनयेऽविद्वन् । तामनये मप्रविष्टां स दृष्ट्वा हान्वाऽहं तत्फलम् ॥२१९॥  
 तत्र प्राह दयाक्यः स स्वयां देशं नृपादयः । कृत्वाऽग्नौ वमन्ति पद्मे भ्रमग्रन्थाः कृताः पुनः ॥२२०॥  
 तदयं वागम्यानं ते मया ज्ञातं वनोदये । पद्मंऽभूत्तदहं त्वां धर्तुं शोधयाम्यनलस्थलम् ॥२२१॥

काई अपने शरीरको आकाशक नीले रंगसे रंग लेगा अर्थात् जो ऐसा बर सकेगा ) उसे ही मैं यह अपने पद्मा नामकी कन्या दूँगा । वह मेरी हउ प्रसिद्धा है । राजाके इस दुर्घट बचनको सुनकर वे नृपश्रेष्ठ पद्माके मोदरूपमें मोहित होत हुए उसका बखर हास करतक लिए उद्यत हो गये । देवताओ साहित उन राजाओको कन्याहरणके लिए उत्तम देखकर राजा पद्माक्षन उनके साथ लाम्हलंग अर्थात् रक्षावलीके युद्ध किया । उनके आगसे पीड़ित होकर दहन होत सदा देवता रणसे भागने लगे । परन्तु अन्तमें देवताके हाथ राक्ष पद्माक्ष रणमें मारा गया । तत्पश्चात् वे सब भिन्नकर पद्माको पकड़नेके लिए बड़ बगसे लोटे । उनको पकड़नेके लिए जान देखकर पद्मा अग्निमें कूद पड़ी । उसको मैं देखकर राजाआने उक्त साते नगरमें दृष्ट्वा अचम्भ किया । राजमहल छोड़कर गिरा दिया और बहुतसी इधर उधरकी जमीन खाद ईर्षी । अणधर्म सात नगर श्मशान बन गये ॥ २०४-२१० ॥ लक्ष्मीके समस्त राजा पद्माक्षकी ऐसी इना हई । इसीलिये मुनि साग लक्ष्मीको कभी नहीं चाहते ॥ २११ ॥ लक्ष्मीसे चितका चंचलता बढ़ती है भय बढ़ता है गल बढ़ता है, मन्द्य मारा जाता है और बड़ा भारी दुःख पाता है । इस बापसे लक्ष्मीसे दूर रहना चाहिए ॥ २१२ ॥ मुझे राजा पद्माक्षके भाते जातेपर राजाका राजागे श्रिये भयभीत होकर राजाके साथ ही मतो हो गये ॥ २१३ ॥ बादमें वे सब देव भी आने अपने स्थानको चले गये । एक समय श्रीहृत्की स्थिराग्निकन्या लक्ष्मी अग्निकुण्डसे बाहर निकलकर पुण्डके समीप बैठी थी । तन्नेमें रावण पुष्पक विमानपर बैठकर भिचरता हुआ अपनाको बालकके लिए आकाशमागसे उपर ही निकला । तत्र रावणका भ्राता सरण पद्माको अग्निकुण्डके बहुर बैठी देख रावणको दिखलाकर कहने लगा कि पूर्वकालमें तिम राजा पद्माक्षकी कन्याके लिए दवताओ और बमुराओ राजाके साथ युद्ध करना पड़े था, वही कन्या अग्निकुण्डके पास बैठी है । सागणके इस बचनको मन तथा पद्माको देख कामसे मोहित होकर रावण उठो हो वेगसे उसको पकड़नेके लिए नीचे कूदा, एते ही बड़ किर अग्निमें प्रवेश कर गयी । उसकी अग्निमें प्रवेश करती गया उस स्थानको देखकर रावण कहने लगा— ॥ २१४-२१६ ॥ हे पद्मे । तुमने रहिते भी अग्निमें प्रवेश करके राजाओ तथा देवताओको बड़ा भारी दुःख दिया है । हे वनोदये ! तुम्हारा निवास स्थान जान देने देख लिया है । अब मैं तुम्हो सोभनेके लिये सात अग्निकुण्ड आन कालूँगे



दशास्यपत्नी तानाह कार्या भूमिगता त्वियम् । स्थापनीया बहिर्नेयं दर्शनाद्व्यकारिणी ॥२४०॥  
 गृहस्थाश्रमयुक्तो यस्तथा च विजितेन्द्रियः । हृदिभेष्यति तद्गोदं कुमारीयं शुभानना ॥२४१॥  
 अगच्छेषु सर्वत्र आत्मरूपेण यः स्थितः । तस्य गेहे चिर कालं स्थास्यनीयं न संशयः ॥२४२॥  
 इति मन्दोदरीवाक्यं श्रुत्वा दूताः भविस्तरम् । यावन्ते गंतुमुक्ताम्यावन्कन्या वचोऽनवीत् ॥२४३॥  
 यावत्पाम्यहं पुनर्लङ्कां राक्षमानां बधाय च । निधनाय दशास्यस्य सपुत्रस्य समन्त्रिणः ॥२४४॥  
 अथ तृतीयवेलायामागम्यहं पुनश्चिह्नम् । निकुम्भजं पौंड्रकं तं शनर्दीर्घं च रावणम् ॥२४५॥  
 इति श्यामि पुनर्गत्वा पुनर्यास्यामित्कपुरीम् । उह चतुर्थवेलायामगृह्यत मूलकामुग्म् ॥२४६॥  
 कुम्भकर्णमूर्तं शूरे महं पिश्याम्यहं पुनः । वत्तस्था वचनं श्रुत्वा हृदि विडो दशाननः ॥२४७॥  
 ज्ञातास्ते राक्षसाः सर्वे भयभीताः शबोयमाः । रावणधिनयामाम् हतव्याऽयं बालिका ॥२४८॥  
 नीक्ष्यं तद्गच्छं कुरु पत्नी दुष्टार रावणः । हतुकामं पतिं दुष्टा मयकन्या न्यवारयन् ॥२४९॥  
 मादमं कुरु माऽयं सन्यायुषि दशानन । भविष्यति बधस्त्वद्य तव नास्या वचो मृषा ॥२५०॥  
 यद्भविष्यति भवतु तवमे न्यत्र कानने । कालान्तरेण यो मृत्युममद्य त्व किमिच्छामि ॥२५१॥  
 इति भार्यावचः श्रुत्वा दूष्णीमाम् दशाननः । ततः सा पेटिका दूर्तनीनां यानेन वै जवान् ॥२५२॥  
 पश्यन् वजानि सर्वाणि मीनापै र्मथिलस्य च । कृता भूमिगता दूर्तस्नदा सर्वः करडिका ॥२५३॥  
 ततो ययुः पुनर्लङ्कां दूतास्ते रावणस्य च । न्यवेदयन् रावणाय सर्वं वृत्तं यथाकृतम् ॥२५४॥  
 सा भूमिः सूर्यग्रहणे विदेहेन मथपिता । ब्राह्मणाय द्विजश्रादि तां कर्षयितुमुद्यतः ॥२५५॥  
 पश्यन् मुहूर्तं प्रियः स प्रत्यब्दं वै पुनः पुनः । चिरकालेन दुष्टाऽथ हर्तुं परमोदयम् ॥२५६॥

रावणकी गर्भ से उनसे कहा कि तूरांगमात्रसे बंध करनेवाली इस पत्निकीको बाहर खली न रखना, बल्कि प्रमानमं गाड़ आना ॥ २४० ॥ गृहस्थाश्रमी होने हुए भी जो शितन्द्रिय होगा, उसके घरमें यह शुभानना कुमारी वृद्धको प्रीति दायी ॥ २४१ ॥ सब बराबरके साथ अपनी आत्माके समान बर्ताव करनेवाली जा होगा, उसके घरमें यह चिरकाल स्थित रहगी । इसमें संन्देह नहीं है । (अर्थात् समदर्शी तथा शितन्द्रियके घरमें ही सद्गुणी चिरकाल तक रहती है—इसके यहाँ नहीं) ॥ २४२ ॥ इस प्रकार मन्दोदरीकी बात सुनकर जो ही तब लोग बल्लेवा उद्यत हुए, त्यों ही कन्या कहने लगी—॥ ३४३ ॥ मैं फिर राक्षसों तथा भयभी और पुनर्लङ्का रावणका बंध करनेके लिए लक्ष्मी आऊँगी ॥ २४४ ॥ पुनः तीसरी बार यहाँ आकर निकुम्भपत्र पौंड्रकको तथा सी मित्रवासे रावणकी भाली ॥ फिर बादमें पुनः चौथी बार आकर तुम्हारे कुम्भकर्ण तथा मूलकामुग्मको भालूँगी । उनके बचनकी सुनकर दशाननका हृदय विद्व हो गया ॥ २४५-२४६ ॥ अब राक्षस भी भयभीत होकर मूलक समेत हो गये । रावणन सोचा कि इस बालिकाको अभी मरवा डालना चाहिये । यह विचार तथा तर्क तत्त्व र हाथमें लेकर वह पश्चात्की तरफ दीडा । पत्निकी इस प्रकार कन्याका माग्नके लिए लक्ष्मी देवकर मयदानवकी कन्या मन्दोदरीने कहा—॥ २४८ ॥ २४९ ॥ दशानन ! आयु केवल रहलपर भी आज ही तुम यह मार्ग मल करो । इसमें तुम्हारी मृत्यु हो जायगी । इसका वचन श्रुत न होगा ॥ २५० ॥ जाने जो हँसेवाला होगा सो होगा । अभी तो तुम इसे बन्ध मूढवा ॥ कालान्तरे ही मरवाली तुम्हारे आद ही क्या तुलान्त हा ? ॥ २५१ ॥ भार्याके इस वचनकी सुनकर दशानन बह हो गया । ब्रह्मण् इस उस सपुत्रवाकी मोक्ष विधानमें रसकर से गये ॥ २५२ ॥ सोताने, यह मिथिला नगरके वनोंको देखने हुए, वहीपर सब दूतोंन उस करडिकाकी भूमिम गाड़ दिया ॥ २५३ ॥ तदनन्तर वह श्रुती लौट गये और जो किया था, सो सब भूलान्त रावणसे निवेदन कर दिया ॥ २५४ ॥ राजा विद्वत् वह अर्मान मूर्खदृष्टके बबमपर एक ब्राह्मणकी दान दे दी थी । ब्राह्मणने उस प्रदानकी जूनवानकी विचार किया ॥ २५५ ॥ प्रतिपक्ष कुम्भ मुहूर्त देखते-देखते बहुत बड़ी बाद

शङ्केषु कर्षयामास भूमिं कृष्यर्थमादरात् । तदा हलनिवाश्रेण निर्गता सा करंडिका ॥२५७॥  
 ता गृहीत्वा स शङ्कोऽपि ययौ भूमिपतिं द्विजम् । स मन्वा तन्निधानं तु हर्षात्प्राह द्विजोत्तमम् ॥२५८॥  
 श्रेष्ठस्तत्र गृह्णीतुं महासाम्यं तत्र द्विज । इमां इत्याशंसंभूतां गृहाण त्वं करंडिकाम् ॥२५९॥  
 निधानपूर्तितां शुभ्रां श्या यन्नेन वाहिताम् । तत्र स द्विजवर्यस्तु तां जमाह करंडिकाम् ॥२६०॥  
 तामार्चाय विदेहाय समामधे ददौ मुदा नृपतिं प्राह वृत्तं तद्विप्रः श्रन्वा नृपेऽपि सः ॥२६१॥  
 उवाच भ्रातृण वक्ष्याम्यथा भूमिः समर्पिता तस्यां लब्धा न्वया चेत् तत्रैवास्तु करंडिका ॥२६२॥  
 विदेहनृपतेवाक्यं श्रुत्वा गच्छ द्विजं पुनः । मया समर्पिता पूर्वं भूमिर्यथा श्या नृप ॥२६३॥  
 नैव करंडिका श्या वसुपूर्णा समर्पिता । यद्भूमौ वृत्तं तन्न तन्नुपस्था न सशयः ॥२६४॥  
 सा सापधर्मैः शृणु गृहाणेवा करंडिकाम् एव नृपस्य विप्रेण कलहोऽभून्मुदाकणः ॥२६५॥  
 तदा मधामदा सर्वं नृपतिं वाक्वदमब्रवीत् । सा कायः कश्चो राज्ञः पश्यास्था किं नुवर्तते ॥२६६॥  
 ता तदोवाटयामास दूतनृपतिमनमः । तस्या दूष्टा वात्सिकां नृ विस्मय प्राप पार्थिवः ॥२६७॥  
 द्विजस्य कन्वा ययौ मेह पालयामास तां नृपः । तदा स्वेच्छयाश्रितं नेतुः वसुधवृष्टिभिः ॥२६८॥  
 ववपुः सुरमयाश्च तां कन्वा जनकं नृपम् । मधतां गायनं चक्रन् नृनुधाप्सरोतणाः ॥२६९॥  
 तदा येन निजा कन्वा जनकस्तोषमाय सः । उतकं कात्यामाय विप्रस्तस्याः भविष्यति ॥२७०॥  
 ददौ दातारिणं विप्रेभ्यो ननुतुर्गोपयोगितः । मातुलङ्गमभिर्गता या मातु दुर्ज्ञानेना मृता ॥२७१॥  
 अग्निदासादग्निगर्भा तथा रत्नावलीनि च । रत्नातर्गनवासाश्च शोच्यन्त जगतीतले ॥२७२॥  
 धरण्या निर्गता यस्मात्तस्माद्गरणिजेति च । जनकेनायिना यस्याऽजानर्वाति प्रकीर्त्यते ॥२७३॥

उक्तान् तेषां वचनं श्रुत्वा दौ वरुणदाया मुनिः देवकर ॥ २५८ ॥ उस ब्राह्मणने आदन्पूवक शूंस उस लभेजय सन्तान निदा हउ चलाया । उसी समय हउके फालसे वन सन्तान निनउ आसी ॥ २५७ ॥ उसको नेरउ वह गृह अभीतके स न्दिकके पास गया और उसको दहे ल गनद समझकर मुहपं ब्राह्मणर कहने लगा हे द्विज ! जाय वदे भाग्यशाली है आपन अज्ज मुहनम सना आरम्भ करवायो । यह हउके अग्रभागसे ( अर्धेन फालसे द्विजका मन्तुनम मीना करने है ) मन्तुन ( प्राप्त ) मन्तुषको गिने । मे लजलमे मने हुउ वडा भाग हउ निदागको लहे कछिन लग ली न आता है । उस द्विजने उसको ले लिया ॥ २५९-२६० ॥ उसका ले जाकर ब्राह्मणने सध के सामने राजा विदेहको दिया और सब समाना कर मन ग । राजा भा यह मुक्कर ब्राह्मणर कहने लगे कि मैने लो भर्तिस भूमि आपकी समर्पण कर दी है । तब उनमम किला हुई यह पिटाग भी आप ही की है ॥ २६१ ॥ २६२ ॥ राजा विदेह वचनका मुनकर ब्राह्मण उनसे बहेन लगे—हे नृप आपने मुझे भूमि दी दी है ॥ २६३ ॥ यह वनपूर्ण मन्दर तटक गरी दी थी । हमरिय जे भूमिमे वन है वह निविवाद राजाका ही होता है । २६४ ॥ मुझ अवसम न दल और इस पिटागका अल न बरु कर । इस प्रकार राजा तथा ब्राह्मणर वदा झगडा होने लगा । तब सब मधामदान राजासे वना—हे राजन् ! कलहको छोड़ें और देग कि हमस बरा है ? ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ तब नृनिवेस श्रेष्ठ नृपति विदेहने दुतेष सनूक बुलवायो । उसमे बालिकाको समार राजा वदे विस्मित हुए । ब्राह्मण गने देही छुडकर घर चला गया । तब राजासे ही उस कन्वाको पाध लिया । तब दैवताश्रके काय बडे और उन्होने उस कन्वा तथा राजाके ऊपर पुण्यवृष्टि की । मन्थर्व गाने लगे । अस्तरावे नृप्य करन लगीं ॥ २६७-२६९ ॥ तब राजा जनकने शसत्र होकर उसको अपनी पुत्री श्या । ब्राह्मणके द्वारा विस्तारपूर्वक उसका जातकर्मणकर ( सन्तानके उत्पन्न होनेपर करनेका संस्कार ) करवाया ॥ २७० ॥ विप्रको बहुतसे दान दिये और वनयाओंका गायन करवाया गया । अगत्मे वह कन्वा मातुलङ्गफलसे निकलनेक कारण मातुलङ्गी, अग्निमे बस करनेसे अग्नि-गर्भा तथा रत्नोद निकल करनेसे रत्नावली कही जाने लगी ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ वरणीसे निकलने-

संग्राह्यशिवेना यस्यासीनेन्यथ प्रसीयते । रथाभभृदनेः कन्या तस्मान्पथे हि सा स्मृता ॥२७४॥  
 एवं नाभान्पनवानि सीतायाः सति सो नृप । आकाशनीलवर्णान्वयुषाऽनेन जानकी ॥२७५॥  
 लब्धः रामेण पद्माक्षप्रविजः सफलकृता । एवं त्वया यथा शृष्टं तथा स्वां विनिवेदितम् ॥२७६॥

अतस्त्वं स्तुतास्त्वत्र कर्तुमर्हसि भो नृप ।

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तव पूर्वं दशरथेन च ॥ २७७ ॥

ममभूतः ययुः पैन्यः सौपुर्वः अशुगश्च ते । कोमलो मगधेशश्च कंकुयश्च युधाजिनः ॥२७८॥  
 मानवसामानान् राजा जनकोपि मुत्तान्वितः । ततो दशम्यं पूज्य भीमं लक्ष्मणं तथा ॥२७९॥  
 मगतं चापि अशुभं नृपुज्याभरणैर्दभिः । निनाय जनकस्तुष्टः स्वपुरीं परमोत्सवः ॥२८०॥  
 तदा रामे नृपं नृपरागद्वा चालिषितो मुहुः । यमिष्टं मभिज नृपः कोकल्यादि प्रणम्य च ॥२८१॥  
 गच्छे दशरथस्याग्रं हं । स्त्रीभिर्वन्दुषि, मह । गजाकूटो यथावप्रे तेऽप्यभूदन् गजस्थिताः ॥२८२॥  
 नदन्तु वायसपु स्तुवन्तु मागधदिपु मनेन्तु वाग्नाथिपु विवेध नगरीं प्रभुः ॥२८३॥  
 तदाऽऽसीत्समभ्रमः परित्यागा आगच्छदन्ते । विष्टुय स्वापठन्यानि ददुवुर्गापुरादिषु ॥२८४॥  
 कथा निधय बालाश्च ददुर्गं रघुनन्दनम् । राजमार्गगतं गम्य वनगुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२८५॥  
 एवं महोत्सवर्गमस्थलं दशरथः सुतः । यथा वसन्ततोषार्धः परिपूर्णं मनोरमम् ॥२८६॥  
 कृत्वा ज्योतीर्विदा लज्जार्द्रमस्य विनिश्चयम् । मंडराश्च तोरणानि पलाकाश्च ध्वजास्तथा ॥२८७॥  
 रावणप्रागु सचर मावणो म्भिलां पुरीम् । पागाश्चन्दनलिप्ताश्च पुष्पगच्छादिता अप ॥२८८॥  
 गल्लाम्भलाणः पुष्पशोषावस्त चकाशर । ततो मुहुर्दसमये शृणुष्विष्टां निषां शुभाम् ॥२८९॥

क क रण ध ॥२७४॥ जनक के ह ॥ पालित हानस जानकी साता ( फल ) क अयभागसे प्रकट  
 हनके करण साता और राजा अशुगकी कथा हानस बहु पथा कहलायो ॥ २७३ ॥ २७४ ॥ हे  
 म्हाराज दशरथ इस प्रकार साताक जनक नाम हैं । आकाशक समान नाभचणक रङ्गवाले  
 रामने साताका प्राप्त करके राजा पद्माक्षका प्रवृत्ता पूज्य कर दी । इस प्रणय जा भवने पुष्प सो मेने निवेदन  
 कर दिया । अब मावका व चाग पुष्पवृष्टि रचकार करणा चाहिये । शिवसे बोल—हनेमे पहिलस  
 राजा दशरथके द्वारा बुद्ध्याने गये जनक अमर कालराज तथा मगधराज युधाजित् नामके कंकयराज  
 अना स्वा और एनाका साथ लकर बहे आ पढ़ने । राजा जनकने भी उनको प्रेमपुत्रक स्वागत किया ।  
 पश्चात् राजा दशरथका वस्त्र अ नृपण आदने आ राम लक्ष्मण भगत तथा मनुष्यकी पूजा करके राजा जनक  
 महान् उत्सवक साथ अपन नगरमे ले गये ॥ २७२-२८० ॥ तदनन्तर रामने राजा दशरथको प्रणाम किया ।  
 राजाने उहे हृदयक लगाया । फिर रामने वृं बालकक तथा बालरथ आदि साताओंको प्रणाम करके राजा  
 दशरथक आगे उत भित्रया तथा वस्तुशाक सहित हाथियोंपर चढ़कर आगे-आगे चले । उनक पाछे और सब  
 गान गव, हठ्ट हुकर चल गये । इस प्रकार बाणसमूहक मन्दका तुलत, पारणोकी स्तुतिवाका श्रवण करत  
 तथा घेउआओंके नाचका दन्दत हुए प्रभु रामने नगरमे प्रवेश किया । उस समय रामके दशरथके लिये  
 नगरकी स्थिति द्योतुट हो उठी । अपन-अपन गृहकार्योंका छोड़ सबका सब बाणकोको नोचने लिये  
 नगरके दशरथ आगेपर आकर रघुनन्दन रामका वसन करने लगी । राम भय लडकपर आ गये, तब  
 उन्होंने उत्तर पुष्पवृष्टि की ॥ २८१-२८५ ॥ इस तरह महोत्सवके सब राजा दशरथ राम आदिको  
 लकर भद्र ( भोजनका सामान , वस्त्र ( आड़ने-विछानेका सामान ) तथा व्रज ( नहाने-खोने तथा रीने  
 का पानी ) आदिसे वर्जपूर्ण मनाहु बासस्थानपर ( बरके दहानके स्थानपर ) गये ॥ २८६ ॥ अन्तिमोने  
 ज्योतिषोंके द्वारा समनक दिन निश्चय करीकर समस्त मिथिलापुरीको मण्डरोसे, तोरणोंसे, पलाकाओंसे  
 तथा रङ्ग मिरङ्गी पञ्जाओंसे सजका दिया बड़े-बड़े राखोंको चबनसे सिपनाया गया । उनपर जाति-

मुनिसाक्षां स्त्रियः सर्वाः कौमल्याद्यान्तु मानसः । रामादान् परिगल्पादौ नीलगजनपुरःसम् ॥२९०॥  
 कर्कुभांसोपपूर्णश्चतुर्दिक्षु मदीपकम् । सम्भारं स्नापयामासुमेहाद्यधुरःसम् ॥२९१॥  
 नटाभ्यंगं स्वयं चापि कृत्वा मन्दुश्च भातरः । रामादान् पुनः कृत्वा वस्त्रलेकाभूषिताः ॥२९२॥  
 अभ्यर्च्यैकं पद्मं राजा दक्षिणोऽपि यः । ममाहूय वृषस्त्रीश्च सभायां स्वस्तिके गुरुः ॥२९३॥  
 मृत्काचिर्निर्मिते राज्ञः पार्श्वे गगने न्यवेशयत् । अग्रे गभाद्रिहस्तकं वा नाः स्त्रियोऽननसज्जनाः ॥२९४॥  
 हरिद्राकुकुमास्त्रिचरणा रंजितरङ्गणे । रसिगो ब्राह्मणैर्गुप्तो राजा रामादिभिर्बुधाः ॥२९५॥  
 कृत्वा गणपतेः पूजां पुष्पाब्जादित्रयं कमलम् । कारयामास दिव्यवस्त्रनिष्ठा देवकस्य च ॥२९६॥  
 ग्रामाचारं कुलाचारं वृद्धाचारं तथा पुनः । देशाचारं च प्रमदाचागदीनकरोन्नुपः ॥२९७॥  
 गोपकृष्णं मण्डपादिकानां पूजयवाचयत् । कौमल्याद्याः स्त्रियः सर्वा हरिणीवकृणोररः ॥२९८॥  
 हेमनन्तैर्दिव्यैर्वस्त्रैर्गुम्फपांगण । जलकश्च नृपैर्गुप्तो महावाद्यपुरःसम् ॥२९९॥  
 रामादीन्म पित्रं गेहं चेतुकावः समाययो । मण्डपे पूजयामास रामादान् जलकस्तदा ॥३००॥  
 हेमनन्तैर्दिव्यैर्वस्त्रैर्गुम्फपांगणदिभिः । तदा विरेजन्ते बालाः सर्वे प्रमुदिताननाः ॥३०१॥  
 तनूस्ते वाग्भेदस्था दिव्यवासर्वाज्जिताः शृण्वन्तो वाद्यघोषांश्च श्रपन्तः पुष्पवृष्टिभिः ॥३०२॥  
 हरिद्रांकितधान्यैश्च मागल्यैर्भीक्तिकादिभिः । मातृभिवर्णस्त्रांश्च संस्मिताभिर्भुङ्क्षु मनुः ॥३०३॥  
 एव ते गणवाश्च पुरस्त्रोभिर्निरीक्षिताः । प्रमादोपरि संस्मार्गमर्लाजाभिर्वर्षिता मनुः ॥३०४॥  
 ददृशुर्नैनान्वयग्रे शस्त्राणां स्मिराननाः । वाटिकाः पुष्पवृक्षानां वरमृन्पात्रनिर्मिताः ॥३०५॥

मूर्तिके पुष्प विखर दिये और साक-सात स्थानोंमें मोलण तथा लारण करवा दिये । पुष्पलताओं और  
 मार्मिक शब्दों द्वारा उस समय वह नगरी जोदही दिव्य मांस गहन लगी । हरनन्तर शुभ मुस्तम  
 जिन रातको मलाके कभीरम स्त्रियोंके द्वारा बेल-हस्ता आदि मन्त्र गथा । उमा रातय कौमल्या  
 यदि बालाओंमें जीवन जंगल तथा रामका शान्ति स्त्रिकर जगपण देवक सहित चार सुन्दर घण्टी  
 चारों दिशाओं में स्थापित करके राम चमण मन्त्र और वाष्पनको वातच्छदिक साथ मातृस्त्रि स्नान कराया  
 ॥ २९०-२९१ ॥ फिर बेल आदि मन्त्रों जग जग भा सब मागल्य आन स्नान किया । पहिले गन्त  
 आदिको कथ तथा मन्त्राओंसे पूरित करके लाल-हस्ता आदि का शरीरमें अम्बुज करके मन्त्रों ) राजा  
 दक्षिणमें भी स्नान किया । पश्चात् गुरु वज्रिभ रामका सब मित्रोंसे ममागल्यम बुलाकर राजाके  
 बायभागमें मुनानिर्मित स्वस्तिक अंकित । बायें मा मासन , पर वेदया । उस समय मन्त्रोंके आनम स्त्रिये राम  
 आदि वात्कता समन वटाकर निम्न मुन किम तथा लक्ष्मी और लक्ष्मी चणाम लगीये अत्यन्त मृशो-  
 मित होन लगी । बाह्योंके सहित परिणजीन राजा दक्षिण तरा रामादिके द्वारा गणनिर्जन तथा  
 गथाहवाचन से दोनों कर्म प्रमम करवाये और लीला कर्म निषिक्त दाताकी प्रतिमा करवायी ।  
 राजा दक्षिणमें भी चारों प्रसन्नतापूर्व रामचार कुलाचार, वृद्धाचार वयाचार तथा प्रमदाचार  
 आदि किया ॥ २९२-२९६ ॥ तदनन्तर जगपूर्ण कृष्ण तथा मण्डप आदिकी पूजा की । मण्डपके आनम  
 हरी लाल, पीली तथा जरादार साँड़ियोंकी पहनकर कौमल्या आदि स्त्रिय बड़ी सुन्दर दीसन लगी ।  
 बड़े बड़े बालोंको वज्रवान हुए अन्य राजाओंके सहित राजा जलक भी राम आदिके अपने भवनमें  
 लिखा से जानके लिये बहाँ आये । मण्डप आकर राजा जनक नाम आदिका पूजन किया ॥ ३०० ॥  
 उस समय प्रसन्न मुखवाले से सब वाचक उत्तार दिव्य कथों तथा आभरणोंका पहने हुए बड़े सुन्दर  
 लगने लगे । ३०१ ॥ बायें वे सब जे कि उत्तम हान्दियों पर बँडे हुए थे, जिनपर सुन्दर चँवर कुल  
 रहे थे । हान्दियों पर बँडा हुई मातृ चणों तरफम बायें चार जिनपर मोलियों, माङ्गलिक हृदयमिश्रित  
 चान्दो तथा पुष्पोंकी वोझार कर रही थीं । जिनके आगे नगरकी स्त्रिये बड़े चाणसे देन रही थी तथा  
 मनोपरसे बानका लावा बरसा रहा थी । आनन्दधर मुखसे वहाँके दास्तेसे वेस्याओंके मुख



तथा कृत्रिमवृक्षाश्च पलाकाश्च ध्वजास्त्वथा । वह्निमग्नौषधीनां पुष्पवृक्षविनिर्मितान् ॥३०६॥  
 तद्विन्मधोषमाश्रावि गमनान्निर्गन्तवान् । वह्निमग्नौषधाम्यः प्राकागन् विनिधान् वरान् ॥३०७॥  
 चन्द्रज्योत्स्नाकृत्रिमाश्च दीपवृक्षान् महामयः । दीपमान्नाश्च व्याघ्रादीन्कृत्रिमान् रघुमन्त्रितान् ॥३०८॥  
 शोषधोमिः पूरिताश्च केकोचकोपमादितान् । इदंशुवाग्नेन्द्रिया एवं ते राघवादयः ॥३०९॥  
 तदा देवा विमानस्था इरगुः कौतुकं मृदा । एव नानोन्यैर्वशांता यपुर्जनकर्मदिरम् ॥३१०॥  
 अवलम्ब्य गजेन्द्रैभ्यस्तस्थान्ने मडपागणं । मधुपर्कावधानानि विष्णुगदानि च क्रमात् ॥३११॥  
 तयोर्गुरु चक्रतुर्ह्यौषधिमृगोत्तमगमर्जा । वाग्धाक्यादिमूनिगणैर्बोधितौ तुष्टमानभौ ॥३१२॥  
 ततः पूजां वृणां च पुनः दशमो नृपः । चक्रा गुरुणा पुस्तक्यदा य वडपाङ्गणे ॥३१३॥  
 ततो लग्नमुहूर्ते तान् वर्धयिष्य प्रथमवत् । वदिकासु स्थितान् कृत्वा दम्पत्योऽग्नौ वरान् ॥३१४॥  
 कृत्वा मङ्गलघोषाश्च मुनिभिश्चक्रतुर्गुरु । तदा नृणां सभायां ते शुभ्रतुः सकला जनाः ॥

दुष्पौषः शोषधान्यैश्च वटपुष्पनीन् शिवः ॥ ३१५ ॥

श्रीदेवाननयो शिवः सुखकरो मित्रः शशा रूपनः सर्वं ते पुनययन्ता दत्त दिवः सर्वां सृगोद्गाः क्षमाः ।  
 नद्यःपुष्पमग्नौषगाणि दिनिजास्तीर्धानि कंजामनश्रेष्ठो बह्वयमग्नौ उल्लवयः कुर्वतु वो ममन्तम् ३१६॥  
 तदेव तमे मुदिन तदेव तमावर्तं चद्रवर्तं तदेव । चिदावर्तं देववर्तं तदेव कार्द्वःपतेर्यत्परज विषेयम् ३१७॥  
 एवं बंगालशूर्पश्च महाबाहूपुरःसरम् । तेषामतः परान्मुक्ता अंगुष्ठयोऽस्तूनतुर्गुरु ॥३१८॥  
 तामां ते पाणिद्वयविधानं विधिपूर्वकम् । लाजाहोमादिकं सर्वं चक्रमङ्गलपूर्वकम् ॥३१९॥  
 तदा महानाघघोषा निजेदुर्गदपागणं । वनतुरारिनायैश्च अगुर्मागधवदिनः ॥३२०॥

मनोहर मिट्टा आदि के दत्त हुए गमलो, वृक्षो तथा फूल फलियेन बनी हुई बाटिकाओंको, कृत्रिम वृक्षोको, पलाकाओंको, ध्वजाओंको, बालिक सज्जम जन्मवान, तद्विन्म के समान रागनाबल और आकाशम धमकनेवाले नाना प्रकारकी अस्त्रबाजासहित सब गुणवृक्ष-लता आदिको, हजारों ध्वजमाओंको चन्द्रज्योत्स्ना कृत्रिम रागवृक्षोको, रागमाओंको, रघुमन्त्रित हुए वनाखड़ा व्याघ्रमग्न आदिका, शोषधिसहित इरे हुए बोध तथा बली आदिको देखने लगे ॥३०६-३०८॥ सब देवता भी आनन्दसे उस कौतुकका देख रहे थे । इस प्रकार विविध उत्सवो महिल से राम आदि बालक राजा जनकके भवनका गये । ३१०॥ वहाँ श्री तथा हाथियोंसे उत्तरकर वे मण्डपके आगनमे लड्ड हा गये । बाह्यार्क आदि पुनःपुनः धिर हुए दानो वचक हुए वीज- तथा वीटसपुत्र शतानन्दके प्रयत्नासे मधुपर्क ( मधुनिष्ठित रह ) का विधान और आसन आदिका विधान समस्त करवाया । ३११॥ ३१२॥ पश्चात् राजा दशरथने पुनः वीज-का साथ लेकर महर्षि बापी पुनःवृक्षोको पूजा की । फिर पुनः मुहूर्त तथा मण्डपमे मुनियो तथा दुर्दान्त-उन-उन वधुजो और उन उन बार बालकोंका पृथक् पृथक् बेदियापर बेठाकर उन दम्पत्योके बापमे वन्दना अह करके मङ्गल-मय मन्त्रोका उच्चारण किया । सभाके कर्धे अनुष्ठान पुनः हाकर उसे मूत्रमे गये । तत्रय कहरमे गये पाम बावक तथा फूल वरवधूके ऊपर बरसाने लगे ॥ ३१३-३१४॥ तदन्तरा देवालयमे रघुपति, सुखकारक शिव, सूर्य, ब्रह्म शंभु, सब मुनि, धन-अचल जीव, वसा दिग्गज, सप, मृगन्द, लज्ज, नदी, पवित्र सरावर, रत्न, शाय, वट्टा, इन्द्र, अग्निस्वहा तथा मदी-समुद्र आदि तुम लोगोंका कल्याण करे ॥ ३१५॥ काशीवासी आदिभक्तोंमे सम्मानका स्मरण हो तुम्हारे लिए मुन्दर लज्ज, शुभ दिन, महकल, विद्यालज्ज तथा शिवके सब आय ॥ ३१६॥ ऐसे भागलक शब्दों और मार्वालक बाजोंके ध्वनि हुआ गया । उसके बाद जीवमे वरे हुए वृक्षोंको हटा दिया गया और दानो वारके गुरुमाने "अंगुष्ठयोऽस्तून" ऐसा कहा ॥ ३१७॥ इस प्रकार उन लोगोंने निकलकर विधिपूर्वक अपना विमलकार्य तथा लाजाका हवन आदि सभी कुर्य मङ्गलपूर्वक संपादित कर दिया ॥ ३१८॥ तब मण्डपका वंगदार्धमे बट-कई बाजोका विचार होने लगा, वेस्वारे तापने लगी, आदि आदि बर्दाबद यदागाव करने लगे ॥ ३२०॥

नदा मंगलमालय हृष्टमुक्ते महाज्वरः तदा दानान्यनकाभि चक्रतुम्नौ नृपोत्तमौ ॥३२१॥  
 अथ ते बालकाः भवे दशः स्थाप्य कटीषु च । दानस्य दिवनिताभिर्जमुम्ने भोजनगृहान् ॥३२२॥  
 यत्रासिञ्चने चक्रुः संपूय तथा च सम्पूय । गे रामादिकाः सर्वे स्वस्वपत्न्या पृथङ्मुखः ॥३२३॥  
 चक्रुस्ते भोजनं दृष्ट्वा स्त्राभिः सर्वत्र बाण्टना । गजा दशम्यश्वाधि सुहृद्भिश्च नृपाचमैः ॥३२४॥  
 पौरजानपदानष्टमुनिभिः परिवारिभिः । जनकस्य गृहं गन्ता चकार भोजनं मृदा ॥३२५॥  
 कौसल्यश्च श्रियः स्त्राभिश्चकुर्भोजनमृत्तमम् । सुमेधया आर्धिकास्ता यदिताश्च मृदुमृदु ॥३२६॥  
 एव जनसमस्याह्वयकार जनसो मृदा । अथ ते बालकाः सर्व स्त्रावाकयान्मामृमभिर्धौ ॥३२७॥  
 स्वस्वपत्न्याः पादयोः स्वातिगाभिर्नमनं मृदु । चक्रन्त्यष्टचेतमस्ते तस्मा नैमः पृथक् पृथक् ।

कुङ्कुमाभिरुपदाश्च तेषामकेषु ता ददुः ॥३२८॥

श्रीरामः समशय्य भूमिनश्च तमाया जगन्मूर्तिर्नी मरान्मा चरहतुमुन्दरवनुः कारुण्यपूर्णक्षणः ॥  
 त्रिगुह्य ॥ ३२८ ॥ जमान जननस्य लोक रचुडाभिः शोभामाय जगन्मूर्तिरनुपमा मुक्तागिराजद्वयः ॥३२९॥  
 चतुर्धे दिवसे रात्रौ वंशपात्रभिर्गाजिनैः । क्षैपैर्नीगजिनाः सर्वे चिरेनू राधवादयः ॥३३०॥  
 रामादीनां परिवहन्त ददौ म जनकस्य ददौ । निगृहान् राष्णेन्द्राश्च शिविकाश्चापि तन्मिनाः ॥३३१॥  
 तुम्हान् दशरथाश्च त्रिगुहान् स्वेदनात् ददौ । नानालङ्कारवासाभि मोदार्थमेव दिशान् ॥३३२॥  
 ददौ म राध्यादिभ्यो वेषां मरुदा न विद्यते । एव सम्मानितास्तन ते बाला जनकेन हि ॥३३३॥  
 पूर्वचतुन्मव शैश्च स्वस्वपत्न्या समन्विताः । गजाकृदा नृत्यगार्तस्तराभिः स्वसंहय ययुः ॥३३४॥  
 ततो गजा मामपकं निनाय नृपवाक्यतः । ततः सैन्येन स्वपुरीं गन्तुं पुरीं बहिर्ययौ ॥३३५॥  
 साताया निर्ययुर्मैधाः माशुनेषाः सुविह्वलाः । सुमेधास्ता मघातिथय मौन्वयित्वा व्यसजंयत् ॥३३६॥

नद ॥ ३३६ ॥ जमाने मङ्गलमालय न कच नुत्त वरन मर्ग और दानो कृष्णे नि अन्तः दान दिव ॥ ३३७ ॥  
 तदनन्तर व सब जानक अपनी अपन दहको कमण्य चराचर लोक । अ दि मान जाक साथ भोजनान्मयम  
 भये ॥ ३३८ ॥ हे जनक ! वही आश्रयेचन करके लुह्यरा मर्ग दमारा ( शिव-पारवर्तव्य ) पुत्रा करनेके  
 बाद र म के दिन अवना-अपनी गतिस्थिति मार आन्तरतुलक भाजन निवा और सब स्त्रियाँ ऊन्हे  
 धनकर लड़ा हो गयी । गजा इन्द्र व भी मरुदे गजाक्रेक, मर्ग, क, नगर तथा देशक मर्गोको  
 और मूर्तिगोको साथ न तथा जनका घाटन नगर मर्ग म जनक ॥ ३३९-३४० ॥ सुमेधसे वार-  
 वार प्रार्थित तथा न लीदन कोमला आदि स्त्रियाँ व भी व मर्ग स्त्रियाँ, न मान ज वर भोजन किया ॥३४१॥  
 राजा जनक ददा जनक मर्गोत्त हृष्ट । फिर उन बालकों प्रसन्न होक शिवको कहनसे मातओंके  
 सन्मुख अवर्त आनी शिवको रोगीपर आना जाना मित्र रमकर लहना र किया । पञ्चान नन स्त्रियाँने  
 र्म जनका अलग-अलग सम्स्कार करके उनका ग रोग पुत्रुसे र नत पर्व रनन् ॥ ३४२ ॥ ३४३ ॥  
 समस्त सत्कारि अलग रम्यद मन्दर मराचक, कारण किसे हृष्ट करणापूर्ण नेत्रावाते, त्रिगुहके समान  
 वर्तकाले, रोग वरगोका भाजन विद्ये हृष्ट शिवार्षर्षे वृत्तादिस्त्रियाँ गलम मर्गोको माता पत्न हृष्ट और म  
 जगत्की आदि वार्धिन, और भूमिलतया माताको आज गन्त गिरा ने न अगुमेर शासकी प्रप्त हृष्ट  
 ॥ ३४४ ॥ चौधे दिन वीनके पावन जग्ये हृष्ट दातकोमे रं राजिन तथा पूजित राम आदि चारा  
 आई करे हृष्ट शाभादमान हृष्ट रग ॥ ३४५ ॥ गजा जनक राम अदिका ये दहेज दिव दस लहक हृष्टी, दस  
 लाख पालकियाँ रम लहक छोडे तथा रम लहक रम धर्मर अलंकार, पोशाक, गीर्ने तथा दास-दासिण  
 ही । इस प्रकार राजा जनकके द्वारा सम्मानन ये बालक ॥ ३४६-३४७ ॥ अपनी अपनी स्त्रियोंको साथ  
 से लया हृष्टोपर सवार होकर नृपगान तथा वरक माय अपने मण्डको लौट वाये ॥ ३४८ ॥ पञ्चात्  
 राजा दमारम राजा जनकके नाराइन एक महेना वही व्यतीत करक अपन पुत्रको जानेके लिय रोगके साथ  
 उह पुरीसे बाहर वाये ॥ ३४९ ॥ संज्ञा आदि अभ्युर्ग गेरोम बहुत विह्वल हाकर चली । सुमेधाने उनको

अथ राजा दशरथो जनकं विन्यस्त्यतः । तदा दशरथं प्राह जनकः माधुर्यलोचनः ॥३३७॥  
 अमरं कदाप्यमलानास्यो विरहाद्दृढाक्षरः । एतावच्छतवर्षेभ्यः मीनाद्याः साक्षिणी मया ॥३३८॥  
 अभुना न्वमिमाम्बुधौ लालयाम्य कृतेक्षणैः । इत्यकम्बुनर्पतिरन्यथा मिथिलां जनको दधी ॥३३९॥  
 ततो दशरथस्यापि स्तुतास्तोत्रपादिभिः । सूर्यः सन्नेन कर्पुणं वर्षां मार्गं जनैः सुतैः ॥३४०॥  
 अथ मञ्जुनि श्रीगमै र्मथिलश्रीजनवधम् । निमित्तान्यविधोरपि ददश नृपमनसः ॥३४१॥  
 नन्वा वसिष्ठ प्ररुष्ट किमिदं नृनिपुण्य । निमित्तानीह दृश्यते विदमपि ममन्ततः ॥३४२॥  
 वानप्रस्थमपि प्राह भयमागांमि मृच्यते । पुनरप्यपि नेऽथ क्षीधमेव भविष्यति ॥३४३॥  
 मृगाः प्रदक्षिणयांति त्वां पश्य शुभमृचकाः । एवं वै वदनमनस्य वयो धीरतमोऽर्जितः ॥३४४॥  
 मुणश्चक्षुषि सर्वेषां पामुर्वाहभिरर्ह्यम् । ततो ददशे परम कामदम्बं महाप्रभम् ॥३४५॥  
 नीलमेघनिभं प्राञ्चो जटामण्डलमण्डितम् । धनुःशुद्धस्तं च माक्षान्कात्प्रमिव स्थितम् ॥३४६॥  
 कर्त्तव्यार्थिकं गाय रम्यप्रियमर्हन्म् । प्राप दशरथस्याग्रे रत्नाम्यं रत्नलोचनम् ॥३४७॥  
 तं दृष्ट्वा मयस्त्रस्ता राजा दशरथश्चरदा । प्रत्यादिपुत्रां विस्मृत्य पाहि राहीति चाभवीत् ॥३४८॥  
 ददन्प्रवर्णितस्याह पुत्रप्रणान्प्रयच्छ मे । इति ब्रुवन् राजारमनादप्य रघुनमम् ॥ ४९॥  
 उवाच निष्ठुर वाक्यं क्रोधान्प्रदलितेन्द्रियः । न्व गम इति गच्छाम्ना चरमि क्षत्रियावधम् ॥३५०॥  
 इदं वृद्धं प्रयच्छाशु यदि न्व क्षत्रियोऽपि मे । पुगणं जर्जरं चाप भङ्गना न्वं दत्तमे मुधा ॥३५१॥  
 इदं तु रथेन आपमामोचति चेदमुगम् । यदि वृद्धं स्वयं मादुं न ज्ञेयमि नृपन्मते ॥३५२॥  
 नो चेत्सर्वान्हनिप्यामि क्षत्रियानश्नन्वश्चम् । इति तदुच्यन् सृन्वा राक्षसो बक्ष्यमनवीत् ॥३५३॥

छातीसे लगाया तथा आभ्यासन देकर बिना किया ॥ ३३६ ॥ तब राजा दशरथ राजा जनक लौटकर लिये कहा । राजा जनक आखिरीं मर्षि भरथर का नाम जानकर तेरा पुत्र । तब मुझ विषे पुत्रियोंके वियोगसे गद्गदस्वर होकर राजा दशरथसे कहने लगे कि आज तक मेरा साता आदिपुत्र राजा जनक ने न किया और अब आजसे आप अपनी कृपादृष्टिसे इनका पालन-पोषण करें । मेरा बेटा और राजाको सम्मान करने के राजा जनक मिथिलाको लौट गये ॥ ३३७-३३९ ॥ राजा दशरथ भी पुत्री, पुत्रपुत्री तथा भी, राजाओ तथा सेनापति साथ लेकर बीरे-बीरे अपनी नगरोंको चले ॥ ३४० ॥ जब श्रीगम मथिल देशमें पहुँचल, राजा कीस नाम वड़े । तब राजा दशरथको अविधोर आज्ञानुन लिखी दि ॥ ३४१ ॥ तब वे नमस्कार करके वसिष्ठजीसे कहने लगे—हे मुनिपुमव ! यह बात धरम है कि चाहे सरक से धरमपुन मिलाई दे रहे हैं ? ॥ ३४२ ॥ वसिष्ठ तब बोला कि ये भाग्य प्राप्त सुख है । राजा जो यह ही आपका भय निवृत्त हो जायगा ॥ ३४३ ॥ देविया, शुभम्बु के जल शक्ति जाय लो यह है । राजा यहना ही था कि धीरतर साबु वहने लगे ॥ ३४४ ॥ तब राजा से सबकी आव भर गी । राजा वड़े नेजस्त्री, नीले वेधके समान रंगरामे ऊँची उमारीने सोनार, राजा घुड़ लोय करवा निने, साक्षात् राजके समान लाल गुड़ किए हुए राजा पं महुक्यहु वा मरने ल, दृढ़द मया घमण्टी क्षत्रियोंका नाश करनेवाले परशुरामजी दशरथके लगे लगे ही ॥ ३४५-३४६ ॥ राजा जब दशरथ भासे विव्वल हो सत्कार पूजा भुत्कर आदिआदि करन लगे ॥ ३४७ ॥ इति न दृश्यते राजा के कह कि आप मेरे पुत्र रामके प्राण बचावे परन्तु दशरथ मने ओषातुर कर राजाका भय-भर मने रघुनम रामसे इस प्रकार निष्ठुर वचन कहा भारे क्षत्रियावध गम ! तू मेरा नामो ममारम ३५-३५ वरीं अन्तिह दृष्टा किया है ? ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ यदि तू सच्चा क्षत्रिय हो तो मेरा माय मुड़ कर । पुगना सदा दृष्टा घुड़ तोड़कर मया अपनी बगईकी मूड़ी दोग दीक रहा है ? ॥ ३५१ ॥ ओ रघुनमज । यदि तू इस क्षत्रियोंके अनुपमर सारी पहा दे तो मैं भरे साथ मुड़ न कहंगा ॥ ३५२ ॥ नहीं तो मैं तुम तकको मार डायूंगा । क्योंकि क्षत्रियोंका नाश करना ही मेरा काम है । परशुरामका यह वचन सुनकर रामने कहा— ॥ ३५३ ॥

वयमेकगुणाः स्वामिन् पुरं चैव गृणाधिकाः । गोविप्रदेववर्गीषु राक्षसा नाम्नप्रभिनः ॥३६४॥  
 मर्यतेष्व जीवितानि तव पाशपितानि हि । यथेच्छं घातयन्माकं विप्रैर्पुष्टं करोमि मे ॥३६५॥  
 इति भुवति रामे वै चक्षस्व दशुधा मृगम् । कृष्टं दृष्ट्वा जामदग्न्यं क्षत्रियात्समुपस्थितम् ॥३६६॥  
 अवक्रमो बभूवाथ कुलुषुः यत्तु मामराः । गम्भी दाशगर्धिवीगे दीक्ष्य तं मार्गं च कथा ॥३६७॥  
 धनुगच्छिष्य तद्वृत्तादसौप्य गुणमजया । तुणीगट्टाणमादाय सधायाकृष्य बोध्यवान् ॥३६८॥  
 उवाच मार्गं रामः मृणु ब्रह्मन् वचो मम । लक्ष्य दर्शय बाणस्य ह्यमोघो गममायकः ॥३६९॥  
 लोकान् पादयुगं वापि वद र्णयं यमाज्ञया । एव वदति श्रीगमे मार्गो विवृताननः ॥३७०॥  
 संस्मरन् पूर्वधर्मात्तमिदं वचनमब्रवीत् । राम राघ महाबाहो जाने त्वा परमशरम् ॥३७१॥  
 पुरम्पुष्पं विष्णुं जगन्मर्गतयोद्धवम् । बान्धयेऽहं तपसा विष्णुमागधयितुमजया ॥३७२॥  
 गत्वा हि तीर्थे गोमन्दास्तपसा सोम्य श्राङ्गिणम् । अहनिंश्च महान्मानं नारायणमन्यधीः ॥३७३॥  
 यस्याग्नेन मया भूम्याप्यवतारो धृतोऽस्ति हि । भूभाद्रग्याथाप कान्तवीर्ययपेक्षया ॥३७४॥  
 ततः प्रसक्तो देवेशुः शंसन्तक्रमदाधरा । उवाच मां गृध्रेण मगन्मपुस्तर्पकजः ॥३७५॥

श्रीमद्भागवतम्

इतिष्ठ तपसो ब्रह्मन् विहितं ते तपो महद् मच्छिष्यद्वेगेन युक्तस्त्व प्रहि ईदृगपुमवम् ॥३७६॥  
 कान्तवीर्यं पिबृहणं पदर्थं तपसा श्रमः । तनन्निःसप्तकृत्वस्त्वं ह्यस्या क्षत्रियमडलम् ॥३७७॥  
 कृत्स्नो भूमि कश्यपाय दत्ताश्रान्तिवृषावह । त्रेनायुगे दाशगर्धमन्वा रामोऽहमव्ययः ॥३७८॥  
 जगत्स्ये परया यकन्या सदा रह्यमि दा पुनः । मनेजः पुनरादास्ये न्ययि इत्तं मया कृतम् ॥३७९॥  
 वदा तपश्वरैर्लोके तिष्ठ त्वं मक्षणो दिनम् । हन्युक्त्वाऽन्नर्द्धे देवस्त्वया सर्वं मया कृतम् ॥३८०॥  
 स पर विष्णुश्च राम जातोऽस्मि ब्रह्मणाऽर्पितः । यति स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वैव पुनराह्वयम् ॥३८१॥

हे स्वामिन् ! हम एक गुणवाले तथा आप जनेक गुणवाने हे । रघुवर्ज, राम जी, काश्यान्, देवता तथा स्वीगर  
 शास्त्र नही उदात्त ॥ ३६४ ॥ ऐसे और इन सबने आपका चरित्रोंमें आपका अरण कर दिया है । आप जैसे चाहें  
 सेवा करें । यदि चाहे तो मार डालें परन्तु मैं आपका साथ कुछ करानि नही कहेंगा ॥ ३६५ ॥ रामक  
 ऐसा कहनेपर क्षत्रियोंक नाशकरवचन आनन्दस्य ( परशुराम ) को कुछ शयकर इमथा सीपने लगी ।  
 मार्ग और अन्वकार छत्र गण तथा मालों समुद्र दुर्धित हो उठे । तब तत्परशुराम और रामन श्री परशुरामको  
 देखत देखकर उनके हृदयसे बहुत सज्ज लिया और दोनों मन्त्र तथा भयंभमे बाण निकाल और उत्तपर मन्त्र  
 तथा उन्मृष्टके से स्मरन जलव परशुरामसे कहने लगें हे ब्रह्मन् । श्री ब्रह्म मुनि और मुनि लक्ष्य  
 बताइए । मैं । बाण लाली नली जा सकता ॥ ३६६-३६८ ॥ शत्रु हो पुन या तो लोकोको विद्ध करनेकी  
 आशा दासिए भयवा अपने ही मरगोको । रामक इस वचनको सुनकर विष्णुमुख हंस हुए परशुरामने  
 पूर्वं वृत्तान्तको स्मरण करने हुए कहा-हे राम । हे महाबाहो । मैं आपको जगन्को उत्पत्ति,  
 विपत्ति तथा प्रलयके कारणस्वरूप पुराणपुरा साक्षात् परमेश्वर विष्णु समझता हूँ । वधपन्थ सेन गोमन्ता-  
 तीर्थे जाकर बाणशत्रुघ्नारी विष्णुमगवानुको जिनके एक अंशसे सेन संसारम भूवार हनन करने तथा  
 कान्तवीर्यको धारनके लिए प्रयत्नार लिया है, उन्हें अपने तपसे प्रसन्न किया । तब प्रसन्नमुख होकर राज-  
 चक्रवर्त्तापवाधारी उन देवाने पूछते कहा ॥ ३६९-३७१ ॥ श्रीमद्भागवतं वति - हे ब्रह्मन् । तप करना आदिक त  
 उठ कहा हो । मैंने तेरे तपोवन्त्रको जान लिया है । नरे चिदरस युक्त होकर तू हैद्वयश्रेष्ठ तथा अपने शिष्यको  
 मारनेवाने कान्तवीर्यको मार । जिसके लिए तूने तपका परिश्रम किया है । बादमे इकनिस बार कनिय-  
 सदुदायका नाश करके समस्त पृथिवी कश्यपका राज देकर जान्त हो । पश्चात् त्रेतायुगमे मैं धर्षितानी  
 दाशरथी राम होकर उत्पन्न होऊँगा । तब तू परम भविषे मुझे देखगा । उस समय मैं तूसे दिया हुआ  
 छत्रना तेज लौटा लूँगा ॥ ३६६-३६८ ॥ तदनन्तर ब्रह्मणे एक दिन तक तू तप करवा हुआ संसारम

भव मे सफल जन्म प्रतीनोऽसि मम प्रभो । नमोऽस्तु जगतां नाथ नमस्कृत्य भक्तिभावन ॥३७२॥  
 तमः कारुणिकानत राघवचन्द्र नमोऽस्तु ते । देव यद्यन्कुत पुण्य मया लोकजिगीयसा ॥३७३॥  
 तन्मर्त्यं नव बाणाय भूयाद्राम नमोऽस्तु ते । तनो मृक्त्वा शरं गमयन्कर्म भस्ममान्करोत् ॥३७४॥  
 ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः करुणामयः । जामदग्न्यं तदा प्राह ररं शरं येन मः ॥३७५॥  
 ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो रामप्रवर्त्तन् । यदि मेनुःप्रहो गम तवाम्नि मधुसूदन ॥३७६॥  
 त्वद्भक्तभगवन्त्वाहं मम मक्तिः पदाऽस्तु र्वं । तथेति राघवेगोक्तः परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥३७७॥  
 पूजितस्त्वदनुज्ञातो महेंद्र चलमन्यगात् । राघवेन त्रिना देवाः मगरो गवधो महान् ॥३७८॥  
 महम्मवाद्भुता बद्धः सोऽर्जुनो भार्गवेण हि । इतः क्षणेन समरे सोऽद्य श्रीभार्गवोऽपि च ॥३७९॥  
 जितस्त्वदनुपा बाणमोचनाद्राघवेण हि । एवं श्रीरामचन्द्रस्य परीक्षं किं वदाम्यहम् ॥३८०॥  
 अथ राजा दशरथो राम मूर्तमिवागतम् । दृष्ट्वास्मिन्त्य शरणे नेत्राभ्यां जलमुत्सृजम् ॥३८१॥  
 ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचितः पुर्णं ययौ । अयोध्याया मुमन्त्रोऽपि नृप श्रुत्वा समागतम् ॥३८२॥  
 नगरीं शोभयामास पताकाभ्रजतीरणाः । शार्ङ्गोदं पुष्पकुन्धं गमं प्रपृथयौ जवान् ॥३८३॥  
 भयो नदन्तु वायेषु राजा पुत्रः गुहजनः । विवेश नगरं पौरैः वश्यन्तुग्यादिक पथि ॥३८४॥  
 रामादयः स्वपत्न्या ते राजभार्या ययुः पुमीम् । ननुतुर्वाग्नयार्थं नृपतुर्मागभादयः ॥३८५॥  
 एव राजा गुहं गन्वा शतर्कः स्वीयमग्रनि । रामपूजाः कारयन्वा ददौ दानान्यनकथः ॥३८६॥  
 तदाऽन्तःपुरप्रसार्यः सुरदः पार्थिवदपः । रामार्दान्पूजयामागुस्तथा दशरथ नृपम् ॥३८७॥

३८१. ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्द्वार ही गये । मेन भी तब वंश ही किया ॥ ३७७ ॥ हे राम वही आप ब्रह्मासि  
 प्रसिद्ध होकर पृथिवीपर अवतीर्ण हुए हैं । मेरे तनम स्थित अपना तज आपन तो फिर आज साहस्य  
 कर लिया है ॥ ३७८ ॥ आपको दर्शनमें मेरा जन्म सफल हो गया । हे भक्तिभावन ! हे जगन्नाथ ! हे  
 करुणाताम्र ! हे रामचन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे देव ! लोकोको जीतनेकी इच्छासे मेन औ जो कम  
 किया है, वे सब आपके बाणको समर्पित है ( मर्थात् उन्हे आप अपने बाणका लक्ष्य बनाकर मर्त्य कर दें ) ।  
 तब रामने बाण छोड़कर उनके नमोका भजन कर दिया ॥ ३७९-३८० ॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर करुणामय  
 भगवान् व रामन परशुरामसे कहा कि तुम कर मगो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ ॥ ३८१ ॥ यह सुनकर प्रसन्न  
 मनस भार्गवने रामसे कहा—हे मधुसूदन राम ! यदि आप मेरपर अनुग्रह रमन हों तो मुने सदा आप  
 अपने भक्तका मम तथा अपने विषयमें मिले भक्ति प्रदान कर । तब रामचन्द्रजाने 'सवागु' कहा । तदनन्तर  
 परशुराम उन्हे नमस्कार तथा परिष्कार करके ओर बाजा लेकर महेंद्राचलकी ओर चल दिये । जिस  
 रावणसे दवताओंको जंता था, उस मगर्व महान् रावणका महम्मवाद्भु भगुन बांध लिया था । उन्ही  
 भर्तुनको वंशुगामन बुद्ध करके क्षणभंगव मार डाला था । उन परशुरामको भी रामने ऊहीके  
 दिये हुए धनुषपर बाण चड़ाकर जीत लिया है पार्वती । इस प्रकार रामके पुण्यार्थका वर्णन भी  
 कहा तक कर । उनके वस्त्र-उंका आन नही है ॥ ३८६-३८७ ॥ पश्चान् राजा दशरथ रामको मन्कर  
 लौट हुए की ताह आदिगन करने त्वंके बागु बहने लगे । ३८९ ॥ वारंसे प्रसन्न मन होकर व स्वस्थ  
 चिन्तम भगवत्पुर्णको चल पड़े । उधर अयोध्यामें समन्वने जब राजा दशरथके आगमनकी बात मनी तो  
 उन्हाने दशरथका वनाका, धजा तथा सौरणासे खूब सज्जाया और हाथी लेकर रामको लेनेके लिए आये  
 भाये । ३८२-३८३ ॥ राजा दशरथने पुष्प-मिश तथा तपस्विनिवासिथेके साथ रामसे नृप्य आदि  
 दत्तन हुए बाजि-गायके साथ नगरमें प्रवेग किया ॥ ३८४ ॥ राम आदिने भी अपनी मित्रोंके  
 साथ हाथियोंपर बैठकर पुरामे प्रवेग किया । वेक्षायें नृत्य करने लगीं तथा भाद आदि स्तुति करने लगे  
 ॥ ३८५ ॥ राजाने घर जाकर बालकोसे लक्ष्मीका पूजन करवाया और अन्नक प्रकारके दान दिये ॥ ३८६ ॥  
 पश्चान् सुहृदों कथा राजाओंने कस्त-अलद्वारसे राम धारिकी और राजा दशरथकी पूजा की ॥ ३८७ ॥

दशरथोऽपि तान्सर्वान् पूजयामास वैभवं । ततस्ते सुहृदः सर्वे नृपाश्च स्वस्थलं ययुः ॥३८८॥  
 ग्रीत्वा युष्माजितं राजा स्थापयामास स्वर्गतिकम् । रामाद्या रमयामासुः स्वस्वदारैः स्वसद्यसु । ३८९॥

पान्त्युवाच

श्रीविष्णोस्तु चिदंशेन जामदग्न्यस्त्वया स्मृतः ॥३९०॥

तद्वचनं श्रुत्वा किं ब्रुव मे सद्यसं प्रभो ।

श्रीशिव उवाच

अष्टावंशेन पिष्टुता अवताराश्च विष्णुता ॥३९१॥

रामकृष्णवतारी च पूर्णरूपेण तौ धृतौ । वरिष्ठौ सकलेष्वेवावतारेषु हि तानुभौ ॥३९२॥

तयोरेपि वरः पूर्वः सत्यसदो जितेन्द्रियः । ज्ञेयो रामावतारो हि नानेन सदृशः परः ॥३९३॥

कृष्णः कृष्णरुचिर्ज्ञेयः श्रीरामो रुक्मसंरुचिः । एवं गिरिन्द्रजे प्रोक्तं सीतायाश्च स्वयंवरम् ॥

अस्य सर्गस्य श्रवणान्मंगलं लभ्यते नरैः ॥३९४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे सीतास्वयंवरौ नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

### चतुर्थः सर्गः

( रामका सत्रु राजाओंके साथ युद्ध तथा विष्णुको वृन्दाका शाप )

श्रीशिव उवाच

अथ सीतायुतः भीमान् रामः साकेतसंस्थितः । बुभुजे विविधान् भोगान् राजसेवापरोऽभवत् ॥ १ ॥

शरत्कालाश्विने माम्नि जनकेन स्वमन्त्रिणः । आह्वानाय च राजानं प्रेषितास्त्वरितं ययुः ॥ २ ॥

तानामतान्दशरथः शीघ्रं सत्कृत्वा सादरम् । पप्रच्छागमने हेतुं तेऽपि नत्वा तस्मृचिरे ॥ ३ ॥

दीपावस्त्रस्तवार्यं त्वां स कुटुम्बं समन्त्रिणम् । पौरजानपदैः साकमाह्वयामास ते सुहृत् ॥ ४ ॥

तत्प्रेषां वचनं श्रुत्वा दूतानाज्ञापयन्नुपः । कथ्यतां नगरे राष्ट्रं गमनं मिथिलां प्रति ॥ ५ ॥

राजा दशरथने भी उन समय आनेक विभवोंसे सत्कार किया । बादमें वे सब सुहृद् तथा राजा लोग अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ३८८ ॥ किन्तु राजाने प्रीतिपूर्वक युष्माजित्की रोक लिया । राम-लक्ष्मण तथा भरत आदि भी अपनी-अपनी मन्त्रियोंके साथ आकर अपने-अपने महलोंमें रमण करने लगे ॥ ३८९ ॥ पावतीजी कहने लगी—हे शिवजी ! श्रीविष्णुके चिदंशसे परशुरामजीका अवतार आपने बताया और उसीसे आपने रघुपति रामचन्द्रजीका भी अवतार बताया है । फिर इन दोनोंमें क्या अन्तर है ? सो कहकर मेरी प्रार्थना कर लीजिये । श्रीशिवजीने उत्तर दिया कि विष्णुभगवानने अपने अंशसे कुछ आठ अवतार धारण किये थे । उनमेंसे राम तथा कृष्णका पूर्ण अवतार था । सब अवतारोंमें से दो अवतार श्रेष्ठ थे ॥ ३९०-३९२ ॥ उन दोनोंमें भी सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय रामावतार उत्तम था । रामके समान और कोई नहीं था ॥ ३९३ ॥ कृष्णको कृष्णरुचिवाले तथा रामको रुक्मरुचिवाले जानो इस प्रकार शिवजीने गिरिन्द्रतमया ( पावती ) को सीताका स्वयंम्बर कह सुनाया । इस सर्गको सुगमेवाले अनुष्योंको मङ्गल लाभ होता है ॥ ३९४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना-भाषाटीकायां सारकाण्डे सीतास्वयंवरौ नाम तृतीयः सर्गः' ॥ ३ ॥

श्रीशिवजी बोले हैं देखि । श्रीमान् राम सीताके साथ अयोध्यामें विविध राजभोगोंका सुख भोगने लगे ॥ १ ॥ शरत्कालके आश्विन महीनेमें राजा जनकने अपने मन्त्रियोंको महाराज दशरथको बुलानेके लिये भेजा । वे शीघ्र अपोष्या जा पहुँचे ॥ २ ॥ राजा दशरथने उनका आदर सत्कार करके आनेका कारण पूछा । मन्त्रियोंने नमस्कार करके कहा— ॥३॥ आपके मित्र राजा जनकने सुकुटुम्ब आपको मन्त्रियों, पुत्रवासियों तथा

नुमहुते ततो राजा हस्त्यश्वपतिभिः । पौरजानपदैः शक्यैः कविभिर्गजैः ॥ ६ ॥  
 गजैः पृष्टे समाजगुर्गजैश्च विगजितः । रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाम्ने स्वलंकृताः ॥ ७ ॥  
 कीयस्पाद्या राजदागः स्नुषाभिस्तः पृथक् पृथक् स्नन्माणिक्यमुक्तादिशोभितासु वरासु च ॥ ८ ॥  
 काष्ठीषु समामाना दौहिता वेश्मणर्णवैः । धातुकाभिः स्वदाम्नीभिर्ययुर्वस्वादिभूषिताः ॥ ९ ॥  
 प्रायत नृपतिं श्रुत्वा जनकः पौत्रवासिभिः । प्रत्युज्जगाथ हर्षेण निनाय नगरीं प्रति ॥ १० ॥  
 राघवोपनिनादथ कुन्दुमाना महास्वनेः । शरान्नाना नृत्याद्यैर्गोपकानां च गायनैः ॥ ११ ॥  
 शार्ङ्ग मार्ग महामोक्षारुढ्याणां कदम्बकैः । पुष्पवृष्टिविवर्षाभिर्ययौ नृपगृहं नृपः ॥ १२ ॥  
 ततो गृहाणि स्म्याणि पूरितान्यभ्युदयिभिः । प्रविशेत् नृपश्रेष्ठो जनकेनातिमानितः ॥ १३ ॥  
 ततो नानासमुत्साहमिष्टार्कनृत्यगायनैः । वसंगभरणं सर्वान् ज्ञातान् च विशेषतः ॥ १४ ॥  
 मणिरत्नादिदीपैश्च हृद्गुर्नीराजनैरपि । जनकः पुत्रगामास दीपावल्यां महादिने ॥ १५ ॥  
 दीपोत्सवमहापुण्यवर्त्मिणाञ्च प्रवर्तते । आनन्दः सर्वलोकानां मंगलानि गृहे गृहे ॥ १६ ॥  
 मध्यमोद्वर्तनाद्यैश्च वरपक्षाभ्योन्नतैः । गोदामदामोदनाद्यैश्च हस्त्यश्वपतिभिः ॥ १७ ॥  
 चकार तुष्टान् ज्ञातान् जनको नृपतिं तथा । नृपपत्नी स्वदुहितृगोप्यास्थादिकान् कमान् ॥ १८ ॥  
 उतः प्रस्थानमकरोद्गुरौ दशरथो नृपः । ततो राजा दशरथः सैन्येन परिवेष्टितः ॥ १९ ॥  
 पथो वनेः सुनेमोऽग सुहृन्मन्त्रिपुरसरः । एतस्मिन्नवरे मार्गे पीतार्थं धनुषा वरा ॥ २० ॥  
 मग्नमाना नृपतयः पूर्वैरेवमुत्स्रजन् । अमरुवाताः ससैन्यास्ते रुक्मधूर्नुपतिं पथे ॥ २१ ॥

दशरथस्योक्तं सहितं दोष्वालीक उत्सववर वृत्ताया है ॥ ४ ॥ उनका यह वचन सुनकर राजान हुतो  
 द्वारा मिथिला जल्लेका समचार सारे मार्गो तथा नगरोंमें कहला दिया ॥ ५ ॥ फिर गुप्त मुहूर्त देखकर  
 राजा आचारुव, राजारुव तथा पैदल सैनिकको साथ लेकर नगर तथा राष्ट्रके लोगोंके साथ हाथपर  
 लवाह हुकर चले ॥ ६ ॥ राजाके पीछे सुन्दर जनकाद वारण करके हाथीपर सवार होकर राम,  
 लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चले ॥ ७ ॥ उनके पीछे कौसल्या आदि राजाकी सभए की अपनी-  
 अपनी पुत्रवधुओंके साथ रत्न मणिमय-माली आदिसे सुशोभित उत्तम हथिनियोंपर अलम-अलम सवार  
 न बैठचारी सिवाहियों, वाद्यों तथा वासियोंस चिरी हुई वस्त्र आदिसे सज्जित होकर चल गयी  
 ॥ ८ ॥ ११ ॥ राजा दशरथका अग्रमन सुनकर राजा जनक पुरवासियोंको साथ लेकर स्वागत करनेके लिए  
 रथ और राजा दशरथको नगरमें ले आये ॥ १० ॥ रास्तेमें जगह-जगह वाद्योंका घोषनाद और नगाहोना  
 मयुक्त निनाद होने लगा, वागमलार् नाचने लगी, गायकों गान हान लगे तथा बड़े बड़े महत्वाकी  
 बटारियोंपर स्थित स्त्रियोंके मण्ड फूलोंको बीजार करने लगे । इस प्रकार राजा दशरथ राजवचनमें पढ़ये

११ ॥ १२ ॥ पञ्चान् जनकसे सम्मानित हुकर मन्त्र-जल आदिसे परिपूर्ण भवनोमें पधारे ॥ १३ ॥  
 बादमें विशेषरूपसे राजा जनकने सब आमाताओंके विविध उत्सवोंमें, मिष्ठान्नमें, नृत्यमें, गायनमें, वस्त्रमें,  
 अलंकारमें तथा मणिरत्नमय वस्त्रोंका आरतीसे दीपावलीके शुभ दिन बारम्बार पूजन तथा सत्कार किया  
 ॥ १४ ॥ १५ ॥ दीपोत्सवक महापुण्यसे राजा बलिष्ठा राज्य आरम्भ हुआ था । इससे सब लोगोंके आनन्द  
 हुआ तथा घर-घर मंगल होने लगा ॥ १६ ॥ राजा जनकने उन आमाताओंके अंदरमें लेस और चन्दन आदि  
 लगा तथा गुलाबजल छिड़ककर इत्र आदि लगाया और उन्हें सुन्दर पकवान जिम्मा तथा हथी, घोड़े, रथ,  
 गादें, व्याधे, वास तथा वासिएं देकर अजाद्यों और राजा दशरथका सन्तुष्ट किया । तदनन्तर क्रमशः  
 राजको, स्त्रियोंको, अयोध्यानिवासियोंको और अपनी सखियोंका भी राजा जनकने मण्यञ्ज कसूरुं देकर  
 हन्तुष्ट किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनन्तर अब कि राजा दशरथ राजाओं, मन्त्रियों, सेना तथा मित्रोंके साथ  
 बार-बार अयोध्याको जा रहे थे । उसी समय उन राजाओंने जिनका कि सीतास्वयम्बरमें मल्लभंग हुआ  
 था, उस वरका स्मरण करके असह्य सेनाओंके साथ आकर राजा दशरथका घेर लिया । उनको देका

तान्द्रष्टा नृपतीश्वार किमर्थादात्तमिदम् । मन्त्रिभिर्मन्त्रयामास जनकः स्वजनरपि ॥२२॥  
 १॥ लक्ष्मन्तरेण रामः श्रुत्वा चिन्तागरे निजम् । निमग्नं पितरं शीघ्रं वर्या लक्ष्मणसंयुतः ॥२३॥  
 नन्वा दशरथ रामः किञ्चिन्नम्र हृदं जगौ । तान गजन्न कर्तव्या चिन्ता सति मयि स्वया ॥२४॥  
 क्षणादत्र बोधयामास पश्य त्वं कर्तुम् मम , ततो रामवचः श्रुत्वा राजाऽऽलिरय गृह्यतमम् ॥२५॥  
 प्राड पट्वापकां बालस्त्व कथं योद्धामच्छमि । अरण्ये सकुटुम्बोऽहं वेष्टेनोऽस्मि नृपाधर्मः ॥२६॥  
 अहमेव गर्मिष्यामि योद्धुं गम्य चार्दिनीम् । तत्रात्रवचनं श्रुत्वा रामस्तं पुनरजर्वात् ॥२७॥  
 यदा मे कुठितो अक्षक पठ्यामन्त्र गार्ग्यणे । तदा मे कुरु साहस्यं तद्वदत्र स्थितो भव ॥२८॥  
 म्यां चार्दिनीं सकुटुर्वा त त न्व गच्छ मद्विना । इन्धुवन्वा पितरं नन्वा सज्जीकृत्य शरासनम् ॥२९॥  
 जगाम गम्यमाकूटो लक्ष्मणोऽपि तमन्वगान् । ता दृष्ट्वा भरतश्चाप शत्रुभ्योऽपि जगाम सः ॥३०॥  
 तान्द्रष्टा दशसाहस्यो राजसेनामचोदयत् । तनस्ते गार्ग्यवाः सर्वे रथस्थं न गृह्यतमम् ॥३१॥  
 निर्गम्य दशबाणसुः स्वसेनायां परस्परम् । समागतोऽयं श्रीरामः स्वपितृस्यन्दनस्थितः ॥३२॥  
 एष र्हे मुमहच्छ्रीमान् पितर्यो मम्यकाग्रते । पिराजन्त्युज्ज्वलस्कन्धः कोविदारध्वजो रथे ॥३३॥  
 दशगणाह्वया तम्य रथे चर्खापूरिते ध्वजचदपताकोच्चकोविदारो स्थितस्त्रयम् ॥३४॥  
 एवं वदन्नस्ते मय रथेयैर्बुधु समाययुः । ततोऽभवन्महद्युद्धं धीर तन्त्र परस्परम् ॥३५॥  
 असः शस्त्रामन्दिपालं क्षतध्मभिः परस्परैः । रामस्य मानकान् हृत्वा गजानो राममन्वयुः ॥३६॥  
 तं चरुर्मेहाशस्रबाणव्याप्य दिगम्बरम् । तान्द्रष्टा नृपतीन् सर्वान् राममेवाभिसम्पुखान् ॥३७॥  
 लक्ष्मणः प्राट्पञ्चोद्य भरतोऽपि च शत्रुहो । स्वामितारकद्वोरयसीयुद्धं सुदारुणम् ॥३८॥  
 शतो नृपतयः सर्वे शस्त्रैर्मर्तत तदा । ते विष्वा भूर्च्छितं वक्रुः स्पन्दनास्पतितो धुवि ॥३९॥

१०। चनगर राजा दशरथ मन्त्रियों तथा स्वजनोंको पास बुलाकर विचार करने लगे कि यह क्या बात है ? ॥ २२-२३ ॥ अपने पिताको चिन्तासमुद्रमें डूबा मनवर राम लक्ष्मणके साथ उनका पास गया ॥ २३ ॥ पिता दशरथको नमस्कार करके राम नम्रतापूर्वक कहने लगे—हे नात ! हे राजन् ! मेरे रघुसे हुए मापका चिन्ता नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥ मे अणभरम इन तबना मार जाऊंगा । आप मर कोकाल दक्षिण । रामके वचनको सुनकर राजाने उनका आलिंगन करके कहा हे राम , छ वर्षका बालक तु क्या युद्ध करेगा ? इस अरण्यमें सकुटुम्ब मुझको इन नीच राजाभोंत का प्राण है । इसलिये मैं ही इनको मारूँगा और तू सेनाका रक्षा कर । पिताके इस वचनको सुनकर राम उनसे फिर कहने लगे—॥ २५-२७ ॥ जब आप मेरी मातृकी रणाङ्गणमें कुच्छिन्न हाते दस, सब मेरी सहायता करिएगा । तबतक आप मर रहनेसे यहीं रहकर सकुटुम्ब अपना सनाकी रक्षा कर । ऐसा कहकर रामने पिताका नमस्कार किया और धनुषकी ठोक करके रथपर चढ़कर चले दिये । उनके पीछे लक्ष्मण भी गये । उन दोनोंका जाते देख भरत और बाबुछ भी उनके साथ चल दिये ॥ २८-३० ॥ इन सबकी जाते देखकर राजा दशरथने दस हजार मानकीर्त्तिक सना उनके साथ भजी । तबसे सब राज रथस्थित रामको आते देख अपनी सेनामें एक दूसरेका दिकाने लग कि यह राम अपने पिताके रथपर चढ़कर आ रहा है । यह बड़ा तजम्बी है । विजाल शालावाने पेड़के समान कोच तथा गार्ग्यत कर्त्तव्याल राम रथमें कोविदार , कथनार या रत्नकाञ्चन ) के ध्वजा लग गे हुए अपने पिताकी आज्ञासे उनका ही रथपर सवार होकर आ रहा है । ऐसा कहकर वे सब राज युद्ध करनेके लिए रथ लेकर चले । पश्चात् परस्पर बड़ी भारी युद्ध होने लगा ॥ ३१-३५ ॥ वे सब एक दूसरेपर अश्व, गान्ध, तीर, शीप तथा करते बलाने लगे । वे राजे रामके सेनिकोंको छोड़कर रामपर सपटे ॥ ३६ ॥ वे लोग आकाशको व्याप्त करके बड़े-बड़े शस्त्रों तथा बाणोंकी वर्षा करने लगे । इन सब राजाजाको अकेले रामके साथ युद्ध करते दस लक्ष्मण, भरत तथा बाबुछ भी दौड़ पड़े और उनमें शरकासुर तथा कर्त्तिकेयकी तरह भयानक युद्ध होने लगा । तब कुछ



मरुतं ववितुं दृष्ट्वा शत्रुध्वं विन्यधुः शरैः । तं चापि विगृह्य कृत्वा दृढकुर्मणं नृपाः ॥४०॥  
 ववर्तुनिर्गन्तव्यं शत्रुध्वं व्याकुलं गणे । तपसं गपयन् चापि संरक्षन्त्यन्वृपाः ॥ १॥  
 ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि लीलया समरायणः । पश्यन्तु जालरथश्च कौमल्याद्याः सातृषु ॥४२॥  
 सीतया भ्रातृपत्न्याषु पित्रा मन्त्रिकेष्वप्येव । दृष्ट्वा कुन्त्यं महत्तया ज्ञायन्त्यात्मनो नान्वृपान् ॥४३॥  
 शुष्कवर्णनदुःखं प्राधिपदान्भरोधमि । मोहनाखण्डेषान् हि मोहयामास राघवः ॥४४॥  
 लुप्तं सक्तं सैन्यं हस्त्यश्वाभ्यसक्तम् । ततो मूर्च्छितमालोक्य मरुतं कैकेयी गणे ॥४५॥  
 करिष्याः शीघ्रमुत्प्लुत्य शुशोचाकं निधाय तम् । ततो दृष्ट्वाप्यपि कौमल्याद्या नृपत्रियः ॥४६॥  
 सात्वचिन्वाऽथ तान् गमः सौमित्राग्रहं व्रजत । हता विदूरे सौमित्रे मुद्रलभ्य तपोनिधेः ॥४७॥  
 आश्रमोऽस्ति हि तत्र न्व गन्वा बहोः युमानहा । सर्जो विन्यादिकाः सर्वा शीघ्रमानय लक्ष्मण ॥४८॥  
 मुनेस्तपःप्रभावेण बहवः सति तत्र वै । तथेति लक्ष्मणो गत्वा स्पन्दनस्थस्त्वगान्वितः ॥४९॥  
 अवलम्ब्य स्याद्दीरः सचिवेशाश्रमं मुनेः । निशान्तिः स बहुर्कः समाधिचिरमे मुनेः ॥५०॥

याथा कृत्वा शुभा वल्लीः प्राप्यसे त्वं न चान्यथा ।

कालातिक्रममीत्या स लक्ष्मणोऽपि रघूत्तमम् ॥५१॥

पुत्रं निवेदयामास हुनस्तं राघवोऽनर्वात् । निवारयित्वा बहुकान् विना मुक्तेस्त्वरान्वितः ॥५२॥  
 आनय त्वं शुभा वल्लीमां पृच्छं च मुनेः कुतः । सोऽपि राम ज्ञया गत्वा निवार्यं बहुकान् क्षणात् ॥५३॥  
 बलात्कारेण वा वल्लीमूर्च्छित्वा राममागतः । मरुतं शीरयामास विशल्यं कुन्त्यं सानुजम् ॥५४॥  
 ततः समुत्थितं दृष्ट्वा कैकेयी व्रजत मुदा । ततोऽपि परमं चक्रे कैकेयी पितरं तदा ॥५५॥  
 राघवे मां समालिख्य मरुतं पक्षिपन्नजे । ततो राज्ञोऽतेमदृष्टः समालिख्य रघूत्तमम् ॥५६॥

राजाश्वीन जन्मोष्ठं वरतकां वधकरं मूर्च्छित कर दिया और वरदसे विरपद । ३७-३९ ॥ भरत-  
 को पृथ्वीवर गिरा देकर राजाश्वीन जन्मोष्ठं गणपतको भी निद्रा किया । उनको भी गिराकर वे राज  
 लक्ष्मणको और सीत ॥ ४० ॥ उपर भी बाणोंकी वर्षा करके व्याकुल कर दिया । इस प्रकार राघव  
 रामको भी राजाश्वीन बाणोंसे बाण्डादित कर दिया ॥ ४१ ॥ बादमें भारामचन्द्रने समरके वेदान्त  
 पाल्कियोंकी विवर्कियोंमें लगी हुई चिकामसे देखती हुई कौमल्या आदि माताआके, सीताके तथा  
 अपने भाइयोंको स्त्रियोंके समक्ष राजाको और मन्त्रियोंके सामने अपने बड़े भाई रघुवका टंकोर करके उत-  
 पर वायव्यासन बढ़कर उससे उन राजाओंको सुख पत्नीको तरह उठाकर समुद्रके किनारे फेंक दिया । बाकी  
 लोगोंका गमने महुंकारसे मूर्च्छित कर दिया ॥ ४२-४४ ॥ हथी, घोड़े, रथ तथा वेदमोको समस्त सेना-  
 को बर्बाद कर दिया । रणमें भरतका मूर्च्छित देल कैकेयी हथिनील बतरी और उनका गाधमें  
 लेकर बिलाप करने लगी । तदनन्तर राजा वज्राय तथा उनकी स्त्रिये कौमल्या आदि भी बिलाप करने  
 लगी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तब रामने सबको आश्वासन देकर कहा—लक्ष्मण ' यहाँसे कुछ दूरपर एक हरीनाथ  
 पुच्छपुनिका आश्रम है । वहाँ जाकर तुम कल्याणकारिणी शर्मावती आदि बूढ़ियोंको ले जाओ  
 ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ मुनिक लयके प्रभावसे वहाँ अनेक प्रकारका अस्त्र उरी हुई हैं । बहुत अच्छा' कहकर बाद  
 लक्ष्मण राघव पर बढ़कर शीघ्र मुनिके आश्रममें गये । वहाँके वृद्धाचार्योंने उनका बूढ़िये सेनेसे  
 राका और कहा कि तुम मुनिके समाधिसे उठकर उनसे पूछकर ही बूढ़िये ले जा सकते हो—अन्यथा  
 नहीं । समय बीत जानेके डरसे लक्ष्मणन आकर रामसे सब हाल कहा । रामने फिर कहा कि उन  
 बड़कोंको अस्त्रके बिना हाथसे हटाकर छोड़ ही उन गुप्त अस्त्रियोंको ले जाओ । मुनिके मत करो । रामको  
 आज्ञा पाकर वे वहाँ गये तथा बलश्रमोंके बिना ही बड़कोंको हटाकर उन अस्त्रियोंको लेकर रामके पास  
 लौट आये । तब रामने भरतके शरीरसे बाण निकालकर उन्हें अङ्गीक्षे भीषित किया । बाणोंको रक्तसे देखकर  
 कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई । उसने रामको आर्क्षित करने के बलको छातीसे लगा लिया । राजा ने भी वृद्ध

दर्शान्नानोन्यवस्तुष्वचकार गुरुणा द्विजैः । ननस्ते करवः सर्वे हाहाकृत्य मुनीश्वरम् ॥५७॥  
 इव निवदयामासु ममाधिविगमे मुनेः । स मुद्रतोऽपि तच्छ्रुत्वा विस्मयेनामर्षीदृष्टुम् ॥५८॥  
 कोलक्षमणः किमर्थं कस्याश्नुयातोऽहम्द्रुमम् । विदित्वा सकल वृत्तमागच्छन् स्वराश्विताः ॥५९॥  
 वधेति ते दशम्यं गन्वा प्रोचुस्त्वगान्विताः । कस्त्वं किमर्थमार्नाता वल्ल्यो लक्ष्मणहन्तवः ॥६०॥  
 तान्द्रुद्रा क्रोधसंयुक्तास्त राजा चिन्तातुरोऽमर्षात् । अहं दशम्यो वल्ल्यो भरतार्थं ममाश्रया ॥६१॥  
 आर्नाता मुनये सर्वे प्रुध्व नतिपूर्वकाः । अहमप्यागमिष्यामि मुनिं सांत्वयितुं ब्रवात् ॥६२॥  
 ननस्ते मुनये सर्वे वृज्जामाद्यवर्णयन् । ध्रुत्वा गमस्य पितर कोषं सहस्य केगतः ॥६३॥  
 दर्शनाय मातं चक्रे तावद्दृष्टो नृपः पुरः । वदध्वा करसपुटं तं प्रणमंत नृपोत्तमम् ॥६४॥  
 श्राययन्तं समुन्ध प्य पूजयामास सादरम् । गमाद्या नृपपुत्राश्च कौमल्याद्या नृपस्त्रियः ॥६५॥  
 श्रणम्याथ मुनिं स्तुत्वा तस्यमुद्रलभार्यया । सुमत्या पूजिताः सर्वा राजदारा विशेधतः ॥६६॥  
 ततो दशम्यः प्राह मुनिं स्तुत्वा पुनः पुनः । मयाऽपराधितं राजा क्षम्यतां तत्त्वया मुने ॥६७॥  
 मुनिर्दशम्यं प्राह क्षुपकारो महान् कृतः । नोवेत्स्वर्षं दर्शनं मे ध्यानस्थस्य सुतस्य ते ॥६८॥  
 भ्रातृमस्य मर्षीतस्य नृपेणस्य हि मायया । इति तस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तुष्टं मुनीश्वरम् ॥६९॥  
 उवाच नृपतिर्नरवा किञ्चित्प्रष्टुमना मुनेम् । श्रुत्वा नृपस्य स मुनिर्हृद्रतं प्रष्टुकायुक्म् ॥७०॥  
 एकस्मिन् तुलसीखट्वर्नीत्वा तं नृपमेव सः । वप्रच्छ किं ते वांछाऽस्ति वदस्व कथ्यते मया ॥७१॥  
 विसर्षीदशम्यः श्रीरामस्य हि माचि यत् । शिवाहितं सविस्तारं ज्ञातुमिच्छे मुनीश्वर ॥७२॥  
 नृपस्य वचनं श्रुत्वा राजानं मुनिरमर्षीत् ।

मुद्रल उवाच

साक्षान्नारायणो विष्णुः सर्वव्यापी जनार्दनः ॥ ७३ ॥

हाकर रामका हृदयसे लगाया । उस समय उम्हाने आनन्दसे गुप्त तथा काहूणो द्वारा जनक उत्सव कराये ।  
 उधर ममाधिवस निवृत्त हाथपर सब बटुकाने हाहाकार करके मुनिका सब हाल सुनाया । तब मुद्रल मुनि  
 निरिमल हाकर बटुकांसे कहने लगे—॥ ५९-६० ॥ जानो, यह लक्ष्मण यौन है, किस लिये और किसके  
 कहनसे घृष्टियां से गया है । शाश्व इस बातका पता लगाकर जानो ॥ ६१ ॥ 'अच्छा कहकर उन्होंने  
 दशम्यके पास जाकर पूछा कि तुम कौन हो और तुमने लक्ष्मणक द्वारा जादिय क्यों मंगवायीं है ? ॥ ६० ॥  
 उन्हें कुछ रखकर राजा चिन्तापूर्वक कहने लगे कि मैं राजा दशम्य हूँ । लक्ष्मण मेरे कहनसे भरतके लिये  
 जादिये ले आया है । मेरा नमस्कार कहकर मुनिसे यह सब वृत्तान्त कह दें । मैं भी मुनिको सम्मानके  
 लिये शाश्व ही आ रहा हूँ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ लोटकर बटुकाने मुनिका राजाका नाम आदि बहुत सुनाया । रामके  
 पिताका नाम मुना सा मुनिने आशको राक तथा शाश्व जाकर राजासे मिलनेका विचार किया ही था कि  
 इतनेमें राजा दशम्य स्वयं आकर सामन सबे हा गये और हाथ जाह प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे ।  
 तब यह होकर मुनिने उनका सादर वजा का । राम आदि राजाके पुत्र तथा कौमल्या आदि राजाकी  
 स्त्रियो भी मुनिका प्रणाम करके उनका स्तुति करना हुई मरी हो गयी । मुद्रल मुनिका भार्या सुमतिने  
 विशेषरूपसे राजाकी स्त्रियांका सम्भार किया ॥ ६३-६५ ॥ राजाके वारम्बार स्तुति करके मुनिसे कहा—हे मुनि !  
 मुझसे जो अपराध हुआ है । उसको क्षमा करें ॥ ६७ ॥ मुनिने महाराज दशम्यसे कहा कि नहीं, तुमने  
 मेरा बड़ा भारी उपकार किया है । नहीं तो ध्यानयोग्य और मायासे मनुष्यका रूप धारण किये हुए हीताके  
 सहित आपके पुत्र रामका दशन मुझे कैसे मिलता ? मुनिके वचन सुन तथा उन्हें प्रसन्न देखकर राजाके  
 नमस्कार करके उनसे कुछ पूछना चाहा । इतनेमें मुनि राजाके हृदयकी बात जान गये और एक और  
 तुलसीकी छाडीमे से जाकर वे स्वयं राजासे कहने लगे—हे राजा ! कही, तुम्हारी क्या पूछनेकी इच्छा  
 है ? उसका उत्तर देगा । ६८-७१ ॥ राजाके कहा—हे मुनीश्वर ! रामका परिष्य कंसा है ? मैं उसका

भूभारहरणार्थाय तत्रापि वरदानतः । मयतीर्णोऽस्ति न्वतो हि तत्र पुण्यमहोदयान् ॥७४॥  
 अधर्मस्य विनाशं च वृद्धिं धर्मस्य सादरम् । निर्दलनं हि दुष्टानां मज्जनानां च पालनम् ॥७५॥  
 कर्मिष्यति सहानेप तत्र पुत्रो रघूरमः । दशवर्षमहम्राणि दशवर्षशतानि च ॥७६॥  
 कर्मिष्यति महद्राज्यं गते स्वयि दिवं नृप । समर्द्धोपपत्तिभ्यां भविष्यति नृपो महान् ॥७७॥  
 इी तो भविष्यतः पुत्रौ चतस्रश्च स्नुषास्तथा । चतुर्विंशतिर्षोत्राश्च पौन्यस्तु द्वादशैव हि ॥७८॥  
 भर्मण्याणां प्रपौत्राद्या भविष्यन्ति सुतस्य ते । कियद्दिनैरयं वृंदाक्षरं भोक्तुं हि दंडके ॥७९॥  
 गमिष्यति ततः पथान्महद्राज्यं कर्मिष्यति । ततश्च वचनं श्रुत्वा नृपः प्राह मुनिं पुनः ॥८०॥

दशरथ उवाच

का वृंदा कस्य भार्या सा कथं शसो हरिस्तया । तन्मयं विस्मरेणैव कथयस्व मुनीश्वर ॥८१॥

मुद्रल उवाच

पुनः जलधरेणामोद्यद् भ्रीशंकरस्य च । वृंदापतिव्रतबलादभिनं विष्णुना तदा ॥८२॥  
 शान्त्वा तद्दृष्टितपसा पार्वत्या धर्मणादिना । जालंधरपुरं गत्वा तदन्यपुटमेदनम् ॥८३॥  
 पातिव्रत्यस्य संगाय वृंदायाश्चाकरोन्मनिम् । अथ वृंदाकरा देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह ॥८४॥  
 मर्तारं महिषारूढं तैलाम्यक्तं दिगंशम् । दक्षिणाशागतं मुण्डं तमसाऽप्यावृतं तदा ॥८५॥  
 ततः प्रवृद्धासा शाला तं स्वप्नं स्वं विचिन्तती । कुत्रापि नालभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु ॥८६॥  
 वनः सखीद्वययुक्ता नगरोद्यानमायता । वनाद्वनान्तरं याता ददर्शान्तां च भीषणी ॥८७॥  
 गङ्गायौ मिहवन्मादौ दष्टानयनभीषणी । तौ दृष्ट्वा विह्वलाऽनीव पलायनपरा तदा ॥८८॥  
 इदं सापमं शान्तं सक्षिप्य मौनमास्थितम् । ततस्त्वनकदम सज्ज्य निजशाहुलतां मयात् ॥८९॥  
 मृने मां रक्ष शरणमागतामिव्यभाषत । ततश्चा वचनं श्रुत्वा दयान मुकत्या स र्वं मुनिः ॥९०॥

हेतु-अहित जानना नाहता ह ॥ ७२ ॥ राजाको तात शनकर मुनि पृच्छ कहने को—साक्षान् नारायण तथा सध्यागो पमार्दन विष्णुभगवान् पृथ्वी सा सार उतावने तथा पूर्वजन्ममें आपको वरदान देनेके कारण आपका पुण्य-प्रतापसे स्वयं अन्तर है । वे भयभया नाश करके वरुका वृद्धि करगे । रामचन्द्रजी दुष्टका दहन करके भोजन-चा पत्तम भरण ले लगे ! आपके देवलोक चल जानेपर ये दस हजार दस सौ वर्ष तक राज्य करते । वे समर्द्ध-पति भविष्यति और महान् राजा हो ॥ ७३-७७ ॥ इनके दो पुत्र भी बार पुण्यवर्धन होगी चोखेस गान और वाह्य पातिव्र होगी । आपके पुत्र रामके पत्नीसे असम्भवे भवे । कुछ दिनोंके लिए वे दण्डकारण्यमें वे दस मास शांति पण्डित जायस उसके बाद विनाल राजा बनने वह मुनिक राजाके फिर मुनिसे कह ॥ ७८-८० ॥ राजा दशरथ बोले वृंदा कौन थी तथा किसकी पत्नी थी ? तमसे भगवान्की तथा शाप दिया ? हे मुनि-श्वर ! वह सब विस्तारपूर्वक कहें ॥ ८१ ॥ मुद्रल उवाच—दुर्जकारणसे जलधर नामका एक देव था । नृपति उसका बड़ा पतिव्रता स्वी थी । उसके पतिव्रतक वरसे वह राजा के साथ युद्ध करके भी नहीं हारा । तब भगवान् विष्णु पार्वतसे उसका कारण जानकर उनके कथनानुसार जालन्धरपुर गये । वहाँ वे रामचन्द्रका भजन करके वृन्दाका पतिव्रत भङ्ग करनके लिए उन्होंने उसके साथ भोग करनका विचार किया । तभी वृन्दादेवीने स्वप्नमें अवन पति के तस्से नहाये, मने शरीर, भीमपर चढ़कर दक्षिण दिशाको आले, फिर मुड़ाव तथा तमसे आच्छादित देखा । जब वह वाला जागी तो स्वप्नपर विचार करने लगा । गोपुर छत तथा अंदारी आदिपर उस कहीं चढ़ नहीं मिला ॥ ८२-८६ ॥ तब वह अपनी दो पत्नियोंको साथ लेकर नगरके बाहर आगम मन बहुलान लगे । वहाँ एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे के वने वह जब फिरने लगी, तब उसकी भयानक मिहक समान गर्जन करनेवाले और भयंकर दंत तथा नखवाले दो राक्षस दिखाई दिए । उनका दल तथा विह्वल होकर वह इधर-उधर भागने लगी । उन्हें उहाँ सहसा शिखोंसे युक्त एक मौनव्रतधारी शांत तपस्वी दिखायी दिये । तब वह अपनी दोनों भुजारूपिणी

उन्मील्य नयने वृंदा हृदि दृष्ट्वाऽत्रकःकृतः । निष्ठु त्वं बालिके क्षत्र मा मयं कुरु सर्वथा ॥९१॥  
 इत्युक्त्वा पुरतो दृष्ट्वा राक्षसां मुनिसत्तमः । निर्भर्त्सयतीं हुंकारैः क्रोधेन महता वृतः ॥९२॥  
 तौ तद्दुर्कारतस्तौ पल्लवपत्रौ तदा । तन्मध्यं मुनर्दष्टा वृंदा सा विस्मयाच्युता ॥९३॥  
 प्रणम्य ईदृशबभूवौ मुनि वचनमब्रवीत् ।

वृन्दीवाच

रक्षिताऽद्य त्वया घोरान्नयादस्मात्कृपानिधे ॥९४॥

किञ्चिद्विह्वलमिच्छामि कृपया तद्वदस्व याम् । उलंघने हि मे मर्ता रुद्र योद्धुं शक्तः प्रभो ॥९५॥  
 न तत्रान्ते कथं वृद्धे तन्धे कथय सुश्रुतः । मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वपर्वक्षत ॥९६॥  
 तावन्कृपा समायाती तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ । उतस्तद्भूलतामंशाभयुक्ता गगनांतराद् ॥९७॥  
 शय्या कणाधोदागत्य वानगावग्रतः स्थितौ । क्षिरःकवंचदन्तौ च दृष्ट्वाऽन्धितनयस्य सा ॥९८॥  
 पपाव मृच्छिता भूयौ भर्तृव्यसनदुःखिता । कर्मदण्डव्रतैः मित्ता मुनिनाऽऽधासिता तदा ॥९९॥  
 रुदित्वा सुचिरं वृंदा तं मुनि वाक्यमब्रवीत् ।

वृन्दीवाच

कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीव्यर्त्त मुने प्रियम् ॥१००॥

त्वमेवास्य पुनः शक्तो जीवनाय मयो मम ।

मुनिस्त्वाच

नाय जीवयितुं शक्तो रुद्रेण निहतो युधि ॥१०१॥

तथापि त्वत्कृपायिष्टा पुनः सजीवयाम्यहम् । इत्युक्त्वा तर्द्धं यावत्तावत्सागरनंदनः ॥१०२॥  
 वृंदाबालिग्य तद्वचनं चुर्चुरं प्रीतमानसः । अथ वृंदाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हृषितमानसा ॥१०३॥  
 रेमे तद्वचनमभ्युत्था तद्युक्ता बहुवामरम् कदाचित्पुनस्तस्याने दृष्ट्वा विष्णु तमेव हि ॥१०४॥

लताएँ उसका गलम डालकर भयमत्तभावसे कहने लगी। हे मुने ! आपकी करुणसे आया हूँ मुझे अवस्थाकी रक्षा करिए । उसके हम आर्त वचनको सुना तो श्याम छोड़कर मुनिने उसे अपने हृदयसे छिपटी हुई पाया । अब वे उससे रहने लगे—बालिके ! तुम यही निर्भय होकर रहो । ८९-९१ ॥ उसने इस प्रकार सामक्षात्तर मुनिसे भेरे डराने तथा हुंकार करत हुए उन दोनों राक्षसोंको अपने सामने देखा । तब क्रुद्ध होकर वे भी हुंकार करने लगे । उनका हुंकारसे घबरा कर वे दोनों राक्षस भाग गये । मुनिके इस अद्भुत सामर्थ्यको देखा तो वृंदा आश्चर्यचकित होकर भूमिपर दण्डवत् प्रणाम करके कहने लगी, वृन्दा खोली है कृपानिधे । मुझे वापस इस घर संकटसे बचा लिया । अब मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ । सो कृपा करके कहिये । हे शम्भु ! मेरा गति जलंधर शिवजीसे गुड करने गया है । हे सुबल ! वह वहाँ किस वृथापे है, यह मुझे बताइए । मुनिने उसको बात सुनकर कृपापूर्वक ऊपरकी ओर देखा तो उपरसे दो बन्दर बाये और मुनिको प्रणाम करके सामने खड़े हो गये । उनके हाथोंमें वृंदाने अन्धितनय जलन्धरका कट्टा क्षिर, हाथ तथा घड़ देखा । यह देखतेने साथ ही वह पतिविगोचके दुःखसे दुःखित तथा पर्युषित होकर घरतीपर गिर पड़ी । तब मुनिने उसके मुँहपर कण्ठमुका जल छिड़का और तत्वेत करके गीत किया । ९५-९६ ॥ बहुत समय तक रोनेके बाद वृंदा कहने लगी—हे कृपानिधे ! हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मेरे प्रिय पातकों जीवित कर दें ॥ १०० ॥ मेरी भयमय आण ही इसको जिलानेमें सफल है । मुनि बोले—कुछमें शिवजीके द्वारा निहत जलन्धरको जीवित करना असम्भव है । फिर भी तुमपर दण्ड करके मैं इसे जीवित करता हूँ । ऐसा कहकर वे अन्तर्याम हो गये । इतनेमें सागरनन्दन जलन्धर प्रकट हो गया और आनन्दसे वृन्दाका आलिङ्गन करके मुझ चुम्बन करने लगा । वृन्दा ने भी अपने पतिको देखा तो प्रसन्न होकर उस वनमें बहुत दिनतक उसके साथ रमण करती रही । एक दिन सयोगके अनन्तर उसी जलन्धरको विष्णु के रूप से

निर्बन्धः क्रोधमपुनः वृद्धा वचनमब्रवीत् ।

पुनोवाच

तव ज्ञानं हरे शीलं परादाराभिगामितः ॥ १०५ ॥

स्व ज्ञानोऽसि मया मय्यङ्गमायी ग्रन्थधनापम । यो न्वया मायया ह्यो तो म्वकोयो दशितौ मय ॥ १०६ ॥  
 नावेव राक्षसी भून्वा तव भार्या विनेष्यतः । जयविजयनामानां शाली कृत्रिमरूपिणी ॥ १०७ ॥  
 च चापि भार्याद् ज्ञानो वने कायेमहायया । अत्र सर्वेश्वरोऽपि त्वं यत्ने त्रिष्वौ ममागता ॥ १०८ ॥  
 पुण्यशीन्मुशीनीं तौ कपिरूपधरावुभी । प्रहस्ये वानरगन्तु संगतिर्दंडके वने ॥ १०९ ॥  
 रुरूपधरः शिष्यो यन्नाश्च्येति वेषग्रहम् । हन्युक्त्वा मा तदा वृद्धा प्रविवेश हुताशनम् ॥ ११० ॥  
 वनो जालधरो दैव्यो निहतो युधि शशुना । तस्माद्वाजभिदानीं तौ कुम्भकर्णदशाननौ ॥ १११ ॥  
 जनीं मायामय्ये तौ लकायामधुना स्थितौ । नीन्वा वनकर्जा बलां पंचरथास्तु मातृवत् ॥ ११२ ॥  
 शालयिन्वाऽथ पण्मामान् रामबाणान्मरिष्यति । समोऽपि बालिनं हन्वा सुग्रीवण समन्वितः ॥ ११३ ॥  
 क्रियाभिः सागरं बध्नुष्व मीतामादाय यास्यति । यात्रापहविलासांश्च समर्द्धपप्रक्षणात् ॥ ११४ ॥  
 कर्षिष्यति दयितया बंधुभिश्च यथाभुक्षम् । इदं गोप्यं न्वया राजन् कथनीयं न कुत्रचित् ॥ ११५ ॥

श्रीगणेश उवाच

हन्युक्त्वा मुद्रलः सर्वं भावि गमय्य कौतुकात् । चरित् वक्ष्यामाम्य पदा यद्यन्कणिष्यति ॥ ११६ ॥  
 तन्मर्वं नृपतिः श्रुत्वा तुष्टः पप्रच्छ तं पुनः । पूर्वजन्मनि कश्चाहं किं मया सुकृतं कृतम् ॥ ११७ ॥  
 तन्मर्वं वद मां ममन यस्मात्तानो इतिः पुनः । मम साक्षाद्रामचंद्रो लक्ष्मीः सीता न्वभूत्स्तुषा ॥ ११८ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नृपमाह पुनर्मुनिः ।

मुद्रल उवाच

आसीन्मद्याद्रिदिपये करवीरपुरे पुनः ॥ ११९ ॥

बाह्यणो धर्मविन्दश्चिदमदन इति श्रुतः । विष्णुव्रतकरः सम्पत्तिवर्णपूजारतः सदा ॥ १२० ॥

राम तौ श्रुद्ध होकर चिन्कारतो हुई बुन्दा बाली-हे हर ! तुम्हारे इस परमप्रेममनवशी व्यवहारको चिन्कार है ॥ १०१ ॥ मैंने अब जाना कि तुम मायावी तथा बनावटी तपस्वी हो । तुमने अपने निजी दो दूतोंको वानर-समूह मुद्रा दिखलाया था, वे ही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी रक्षाका हरण करेंगे । वे दोनों कृत्रिमरूपधारी उग्रवज्रय तुम्हारे पार्षद थे ॥ १०२-१०३ ॥ सर्वेश्वर हानपर भी तुम स्त्रीके वियोगसे दुःखी होकर वानरोंके साथ वनमें बसकर लगाभोग । तुम्हारे वे दोनों पुण्यशील-स्थूल शिष्य भी वानर बनने । उनमेंसे तार्क्य नामका शिष्य बध्नुष्य मारण करेगा । और भी बहुतसे वानर दंडकवनमें तुमका भ्रमण । इतना कहकर बुन्दा अग्निमें प्रविष्ट हो गया ॥ १०८-११० ॥ इस प्रकार बुन्दाका पालित स्वहित होनेके बाद जलान्धर वास्तविकरूपमें जनक द्वारा भाग गया । हे महाराज दशरथ ! इस भाषक कारण इस समय रावण कुम्भकर्ण जन्म लेकर समुद्रके बीच लक्ष्मी विवास करने है । वे गन्धर्वासे जनकको पुत्री सीताका ले जाकर छ भाग तक मायाको तरह चरन करनेके पश्चात् रामके बाणोंसे मारे जायेंगे । राम भी वालीकी मारकर मयीवके साथ पत्थरोंसे समुद्रको रंग तथा उस पार जाकर सीताको ले आयेंगे । पश्चात् प्राणप्रिया सीता तथा बध्नुषोंके साथ राम सीधणका, रक्त तथा विनाश करते हुए समर्द्धोंको मत्ता करेगा । हे राजन् ! यह गोप्य बात किसीको न बतलायेंगा ॥ १११-११५ ॥ श्रीकृष्णजी बोले—हे पार्वती ! इस प्रकार मुद्रलने रामका समस्त भावो चरित्र बता दिया ॥ ११६ ॥ इन सब वानरों पुन तथा प्रसन्न होकर राजा दशरथने फिर पूछा कि मैं कौन था और मैंने कौनसे मन्त्र किसे थे कि जिससे साक्षात् भगवान् रामरूपमें मेरे पुत्र बने तथा साक्षात् लक्ष्मी सीता होकर मेरी पुत्रवधू बने । हे महाराज ! यह सब हाथ मुझे कह गुणाहवे ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ यह पुनकर मुद्रल मुनि राजासे फिर कहन लगे । मुनि बोले—हे राजन् ! सहाय्यपर करवीरपुरमें परम धर्मज्ञ धर्मवत्त नामसे विख्यात एक ब्राह्मण

आदशाक्षरविद्यायां जगनिष्टोऽविधिप्रियः । कदाचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः ॥१२१॥  
 गच्छां तुर्यावशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् । हरिपूजोपकरणान् प्रगृह्य व्रजता तदा ॥१२२॥  
 नेन दशा समायाता रक्षर्भी भीमनिःस्वना । चक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निनग्ना रक्तलोचना ॥१२३॥  
 दिग्भ्रम शुष्कमाभा तयोष्ठी घर्षस्वना । तां दृष्ट्वा भयमंत्रस्तः कपितावयवस्तदा ॥१२४॥  
 पूजोपकरणैः सर्वैः पयोमिश्राहनदलात् । संस्मृत्य यदरेर्नाम तुलसीयुक्तवाग्निना ॥१२५॥  
 मोऽहनद्वारिणा तस्मात्तन्पापं लयमागतम् । अथ संस्मृत्य मा पूर्वजन्मकर्मविपाकजम् ॥१२६॥

म्यां दशायजवीतीत्रं दंडवच्च प्रणम्य सा ।

कलहोवाच

पूर्वकर्मविपाकेन दशमेर्ता गताऽस्म्यहम् ॥१२७॥

मन्त्रं तु पुनर्विप्र याम्यहं गतिमुत्तमाम् ।

दुःखल उवाच

तां दृष्ट्वा प्रणतामार्तां वदमानां स्वकर्म च ॥१२८॥

अतीव विन्मिक्तो विप्रस्तदा वचदमब्रवीच्च ।

वर्मदत्त उवाच

केन कर्मविपाकेन त्वं दशार्मीदृशीं गता ॥१२९॥

कुतः प्राप्ता च किंशीला तन्मयं विस्तराह्वद ।

कलहोवाच

मौराष्ट्रनगरे ब्रह्मण भिक्षुनामाऽभवद्विजः ॥१३०॥

नस्याहं गृहिणी भवतु कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा । न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाऽपि शुभं कुतम् ॥१३१॥  
 नापितं तस्य मिथ्यान् भर्तुर्वचनभगया । पाककाले यथा नित्यं यद्यच्चान्नं मनोरमम् ॥१३२॥  
 तत्तत्पूर्वं स्वयं भुक्त्वा पश्चाद्भर्त्रे निवेदिनम् । एकदा स पतिमित्रं समं हृतं न्यवेदयत् ॥१३३॥  
 नैव शृणोति मे पत्नी यदाकथं किं करोम्यहम् । तेन श्रन्वा तु सकलं क्षणं मंचित्य वै हृदि ॥१३४॥  
 उवाच भर्तृनि किंचिच्छ्रुत्वा तां ते वदाम्यहम् । निषेधोक्तया वदस्व त्वं गृहिणी सा करिष्यति ॥१३५॥

रहता था वह विजयपुर के राजाको करनेवाला, भली प्रीति विष्णुपूजामें रत, सदा कारुण्य बक्षारके मन्त्र ( श्रीमते भगवते नाम्नेवाच । के श्रमे निष्ठा रखनेवाला तथा अश्यागतोका प्रेमी था । एक बार वह कार्तिक-  
 में राजजागरण करके लीपे गह्वर पूजाकी सामग्री लेकर हरिमन्दिरमें जा रहा था कि रास्तेमें सहसा उसने  
 एक भयानक यन्त्रधर भङ्गर करते हुई, टेढ़े रातोवाली, जीमकी हिलामी, नितान्त नाम लाल नेत्रोंवाली, जिसके  
 गरीरका खद मोह मुख गया था—ऐसी लम्बे होठों और नन्न शरीरवाली एक राजशाको आते देखा । उसको  
 देखकर काह्मण घणसे काँप उठा । तब वह समस्त पूजाकी सामग्री तथा जल आदि कँक-कँककर उसको रखने  
 लगा । वह नागायणका नाम लेता हुआ उसके ऊपर तुलसीपत्र तथा जल फेंकता जाता था । वस, इसीसे  
 अनीयास उस राजशाके सब पाप धुल गये और उसको पूर्वजन्मके कर्मोंका रमरण हो आया ॥ १२६-१२८ ॥  
 तब वह काह्मणको दंडवत् प्रणाम करके कहने लगी । कलहा बोली—हे विप्र । मैं पूर्वजन्मके कर्मोंके कलस्वरूप  
 इस रक्षाको प्राप्त हुई हूँ । हे महार्जु ! मौराष्ट्रनगरमें भिक्षुनामका एक काह्मण रहता था । मैं उसकी कलहा  
 नामकी बड़ी निष्ठुर स्त्री थी । मैंने कभी वचनसे भी पतिकी भलाई नहीं की ॥ १२७-१३१ ॥ इसीमें कभी  
 मैं मिथान बनाती तो पतिसे झूठा बहाना करके तथा उसकी बात टालकर भिठाई नहीं देती थी । भोजनके  
 समय प्रतिदिन जो जो बच्ची खींच बनाती पहिले उसको मैं खा लेती थी तब पतिको देती थी । एक  
 दिन मेरे पतिने आकर अपने एक मित्रसे कहा कि मेरी स्त्री मेरी बात नहीं मानती । मैं क्या करूँ ? उसके



एवं मया कदा भर्तुर्वचने न कृतं तदा । कलहप्रियया नित्यं मरुद्विषममना यदा ॥१५३॥  
परिणेतु ततोऽन्यां वै मनश्चक्रे परिर्मेम । ततो यत् समादाय प्राणस्त्वको मया द्विज ॥१५४॥  
अयं वदन्वा वक्ष्यमाना मां नित्युर्यमर्किकराः । यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमवृच्छत ॥१५५॥

यम उवाच

अनया किं कृतं कर्म फलं शुभमथाशुभम् । प्राप्नोन्मेषा च तत्कर्म चित्रगुप्तावलोकय ॥१५६॥

कच्छहोवाच

चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं बन्धयेन्मामुवाच ह ।

चित्रगुप्त उवाच

अनया तु शुभं कर्म कृतं किञ्चिन्न विद्यते । १५७॥

मिथुनात् सृज्यमानेषु न मर्तमि तदपितम् । अतश्च वसुकीयोन्मां स्वनिद्रायाञ्च तिष्ठतु ॥१५८॥  
एति ह्रंष्टि मदा नृषा नित्यं कलहकाणिणी । विष्टुता शूकरीयोन्मां तस्मात्तिष्ठन्वियं यम ॥१५९॥  
पाकमांडे सदा भुक्ते गुप्ते चैका पतन्तः । तस्माद्दोषाद्विडालाऽन्तु स्वजाताऽन्यमक्षिणी ॥१६०॥  
भर्तारमपि चोद्दिष्य हान्मघातः कृतोऽनया । तस्मान्प्रेतशरीरंऽपि तिष्ठन्वेक्यऽभिनिदिता ॥१६१॥  
मनश्चैषा मरुदेशे प्राप्तिव्या हरेर्भट्टेः । तत्र प्रेतशरीरस्या चित्रं निष्ठन्वियं तमः ॥१६२॥

ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा ब्रुवन्वशुभकारिणी ।

कच्छहोवाच

ततो दूर्तः प्रापिताऽहं मरुदेशं क्षणाद्द्विज ॥१६३॥

दत्त्वा मेतक्षरीरं मां गतास्ते स्वस्म्यतं प्रति । साऽहं पंचदशाब्दानि प्रनंदं ह स्मिता किल ॥१६४॥  
सुखं दुःखं पीडिताऽत्सर्वदुःखिता स्वेन कर्मणा । ततः धूर्त्वाडिता नित्यं शरीरं वणिजस्त्वहम् ॥१६५॥  
प्रतिश्व दक्षिणे ग्रामा कृष्णवर्ण्यास्तु संयमे । तत्रार संभ्रिता यावत्सावतस्य शरीरतः ॥१६६॥  
उच्यतेऽणुगर्णदूर्मपाकुरा बलादहम् । ततः क्षुब्धामवा दृष्टो ममत्या न्वं मया द्विज ॥१६७॥

॥ १५१ ॥ फिर पतिव कहा—दत्ता, कहीं इनको किसी साथिय न डालना । तब येन ल जाकर उस पिंडोका बड़ आदरपूर्वक साथ-जलम डाल दिया ॥ १५२ ॥ इस तरह मुझ बन्धुविशामे जब कसी मां पतिव लीघा लोचन कहा हुआ काम नहीं किया, तब दुःखित हाकर उसल अपना दूसरा बगल करला निश्चित किया । हे द्विज ! अब येने जहर खाकर अपने प्राण त्याग दिये ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ तब यमदूत मुझ बोधकर यमराजक पास ले गये । यमराज मुझे बोलकर चित्रगुप्तसे कहने लगे ॥ १५५ ॥ यमराजने कहा—चित्रगुप्त दखो, इसल अन्ध कर्म किया है या बुद्धि, जिससे इसको वैसा ही फल दिया जाय ॥ १५६ ॥ कलहा कहने लगा—यह सुनकर चित्रगुप्त मुझ घमकात हुए कहने लगे कि इसलें तो कोई अच्छा कर्म कमा किया नहीं । यह मिष्टान्न बनाकर खाली था परन्तु अपने पतिव नहीं देली थी । इसलिये यह बगुनीको योनिम जाकर अपना हां बिछा आनवाधे वर्जितता बने प्रतिदिन मरुका तथा पातल द्वय करनेके कारण यह मिष्टान्न भक्षण कनवाले बूक-ग्यानिम पड़ा है । हे यम इसल-उधर छिपकर आज्ञा कनानके पासमें अकली हा आनवाली यह बिल्ली बने ॥ १५७ ॥ १६० ॥ पातल उद्देश्य इसल आत्मघात किया है । इस कारण यह अभिनिन्दित प्रेतयानिमे अकली रहे ॥ १६१ ॥ हे यम ! इसल दूतोंके द्वारा मरुदेशमें भेज दवा चाहिये, वहाँ जा मया प्रेत बनकर यह बहुत काल पर्यन्त निवास कर ॥ १६२ ॥ यह पापिनी उपर्युक्त सभी धर्माधिको भागे । कलहा बोली—हे द्विज ! तब यमदूतने आज ही भस्म मुझ मरुदेश पहुंचा दिया ॥ १६३ ॥ वहाँ प्रेतयोनिमें डालकर वे अपने स्थानको चले गये । मैं पन्द्रह वर्ष तक प्रेतयानि रहे ॥ १६४ ॥ अपने किए हुये कमाके अनुसार मैं सदा भूख-प्याससे अत्यन्त दुःखिनी रहने लगी । इस प्रकार नित्य भूखसे पांडल ही एक बनिमकी दहम घंठकर मैं दाक्षायम कृष्णवर्णाक संगमपर आसीं । वहाँ आकाश तया विष्णुके गगान मुझे बरबस उस वर्णकके शरीरसे अलग करके दूर भाग दिया । तदनन्तर हे द्विज



त्वद्वस्तुलसीवारिमंस्पर्शाद्भतपातका तन्कृपां कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्ता भवाम्यहम् ॥१६८॥

योनित्रयादग्रभावाद्दस्माच्च प्रेतभावतः । मामुद्धर मुनिश्रेष्ठ त्वामहं शरणं गन्तुम् ॥१६९॥

इत्थं निश्चय्य कलहावचने द्विष्य तत्पारकमयविस्मयदुःखयुक्तः ।

तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिष्यान्वा चिरं मुवचनं निजगाद दुःखात् ॥१७०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतं श्रीमद्भगवद्गीतासहितं श्रीमद्भगवद्गीतासहितं श्रीमद्भगवद्गीतासहितं

वृन्दाशापकलहाख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

## पञ्चमः सर्गः

( धर्मरत्न द्वारा कलहाका उद्धार )

धर्मरत्न उवाच

विलयं याति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः । प्रेतदहं स्थितायाम्ने तेषु नैवाधिकारिता ॥१॥

त्वद्ग्लानिदर्शनदस्मात् स्थिन्नं च मम मानसम् । नैव निर्वृतिमायाति त्वामनुद्वृण्य दुःखिताम् ॥२॥

पातकं च त्वान्पुत्रं योनित्रयानपाकजम् । नैवानर्पैः क्षीयते पुण्यैः प्रेतत्वं चातिगर्हितम् ॥३॥

तस्मादाजन्मजनितं यन्मया कार्त्तिकव्रतम् । तत्पुण्यम्यार्धभागेन मद्व्रतित्वमवाप्नुहि ॥४॥

कार्त्तिकव्रतपुण्येन न सामर्थ्यं याति सर्वथा । यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतान्यपि ततो ध्रुवम् ॥५॥

मृगतल उवाच

इत्थुक्त्वा धर्मरत्नोऽसौ पापतामस्यवेषयत् । तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन् द्वादशाक्षरम् ॥६॥

तावत्प्रेतत्वं निर्मुक्ता ज्वलद्गनिशिखापमा । दिव्यरूपधरा जाता लावण्येन यथोर्वशी ॥७॥

ततः सा दंडवज्जुषी प्रपन्नाम यदा द्विजम् । उवाच सा तदा वाक्यं इषमद्भुदमाषिणी ॥८॥

कलहावाच

त्वत्प्रमादाद्द्विजश्रेष्ठ विमुक्ता निरयादहम् । पापाकर्षी भजमानायास्त्वं नोभूनाऽसि मे ध्रुवम् ॥९॥

मुखो भरती एवं भ्रमण करतो हुई मैंने यहाँ तुमका देखा । १६५-१६७ ॥ यहाँ तुम्हारा हाथक जल तथा तुलसीमे मेरे सब पाप दूर हो गये हैं । इस कारण है विप्रेन्द्र ! अब ऐसी कृपा करो कि जिससे भावो नीन योनियोंसे मेरी मुक्ति हो जाय । हे मुनिश्रेष्ठ मैं तुम्हारी शरणमे आया हूँ । तुम मेरा इस प्रेतयोनिसे भी उद्धार करो । ब्राह्मणने कलहाके वृत्तान्तका सुना तो उसके पापकमस भव विस्मय तथा दुःखमे इस और उसकी इस ग्लानिपूर्ण वक्ताको उन्वकर कृपासे चञ्चलचित्त हो और बहुत दग्तक सोचकर दुःखसे इस प्रकार सुन्दर वचन कहना आरम्भ किया ॥ १६८-१७० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमद्भगवद्गीतासहितं श्रीमद्भगवद्गीतासहितं श्रीमद्भगवद्गीतासहितं

(१) धर्मरत्न बोले—तीर्थ, दान तथा व्रतके द्वारा पाप सीण होता है, परन्तु प्रेतशरायमे रहनेसे तुम्हारा उनपर अधिकार नहीं है ॥ १ ॥ तुम्हारी इस दुर्दशाका देखकर मरत मन बहुत दुर्लभ हो रहा है । अबतक तुम्हारा इस दुःखमे उद्धार न होया, तबतक मुझको शान्ति नहीं मिलेगी ॥ २ ॥ यह मैंने प्रेतत्व और तीन योनियोंको भोगनेवाला तुम्हारा महान् पाप साधारण पुण्योस क्षण न होगा ॥ ३ ॥ इस कारण जन्मसे लेकर अबतक किये हुए अपने कार्त्तिकव्रतके पुण्यका अर्ध भाग मैं तुमको देता हूँ । उससे तुम सद्गतिको प्राप्त होओगी ॥ ४ ॥ कार्त्तिकव्रतके पुण्यके समान यज्ञ-दान-तीर्थ आदि कोई भी नहीं हो सकता । यह बात निश्चित है ॥ ५ ॥ मुनि मुझल कहने लगे-हे राजन् ! इतना कहकर धर्मरत्नने ज्यों ही उसके ऊपर तुलसीदल तथा जल छिड़ककर द्वादश अक्षरोंका मंत्र सुनाया । यों ही प्रेतयोनिसे मुक्त होकर वह जलती हुई अग्निको लपटके समान दिव्य रूप धारण करके उर्वरोंके सदृश सुन्दर हवी बन गयी ॥ ६ । ७ ॥ तब वह ब्राह्मणके शरणोंको दण्डवत् प्रणाम करके सहर्ष गङ्गा काशीसे कहने लगी ॥ ८ ॥ कलहा बोले- हे द्विजोमें श्रेष्ठ हिंवा । आपकी कृपासे मैं नरकमें जानेसे बच गयी । पापसमुद्रमें डुबती हुई मुझ पापिनीको बचाकर आपने

मदन उवाच

इत्थं मां वदतीं विप्र ददशादानमदरात् विमानं मुन्दरं पूज्यं विष्णुरूपधर्मयोगैः ॥१८॥  
अथ सा तद्विधानस्यैविमानं चाश्रमेपिता । पुण्यशीलसुशीलार्थव्ययोगणसेविता ॥१९॥  
तद्विमानं तदाऽऽवश्यद्वन्द्वतः सविस्मयः । पथान् ददशसूचीं दृष्ट्वा तौ पुण्यरूपिणौ ॥२०॥  
पुण्यशीलसुशीला च समुत्थाप्यान्तं द्विजम् । समन्वयनस्वयम् बानी प्रोचतुर्धर्मसमुत्तमा ॥२१॥

गंगाधर उवाच

माधु ताम्र द्विजभेदं यस्मिन् विष्णुतः मदा । दीनानुकर्षी धर्मो विष्णुवनपरमेश्वरः ॥२४॥  
आनन्दान्तर्यामिणोऽस्य कर्तृकृतं कार्तिकव्रतम् । तत्र तत्पार्थदत्तेन पुण्यं द्विगुण्यमागतम् ॥२५॥  
स्नानपुष्पस्यार्चभागेन यदम्प्यः पूर्वकर्मजम् । जन्मान्निगद्यतोद्भूतं त्वं नन्दितव्यं मतम् ॥२६॥  
स्नानेनैव गते पार्थ यदम्प्यः पूर्वकर्मजम् । हविर्ब्रह्मणाशंस्य विमानमिदमागतम् ॥२७॥  
वैकुण्ठं नायते माधो नानाभोगयुता न्वियम् । दीपदानधर्मः पुण्यं स्तौज्यं रूपमाश्रितम् ॥२८॥  
तुभ्योऽप्यनार्थं कार्तिकव्रतकैः शुभैः । विष्णुमाभिष्यता ब्रह्मा त्वया दत्तैः कृपानिधि ॥२९॥  
स्वमप्यस्य भवस्थान्ते मायया सह पास्पमि । वैकुण्ठहवनं विष्णोः मान्निष्यं च तत्पुण्यताम् ॥३०॥  
ते धन्याः कृतपुण्यमात्रे तेषां च मकरा मयः । यैर्नैकपाऽऽश्रितो विष्णुर्धर्मदत्त त्वया यथा ॥३१॥  
सम्पत्पाराधितो विष्णुः किं न यच्छति देहिनाम् । औत्तानपादियेनैव ध्रुवोऽपि स्थितिः पुरा ॥३२॥  
यस्मात्सम्पत्पाराधय दहिनीं पतिं मनुमानिम् । ब्राह्मणहोतौ नारदेन्द्रौ बन्वायामगच्छामुग ॥३३॥  
विमुक्तः सन्निधिं प्राप्नो जानीऽन कवचं ब्रह्म । ब्राह्मोऽयं द्विजयो नाम्ना भीविष्णोश्चिन्तादभूत् ।  
एतन्मन्त्राऽविता विष्णुस्तुत्तान्निष्यं प्रसास्यासु । बहुमदमरध्यानि मायार्थवयुतस्य ते ॥३४॥

भावका कामे किया है ॥ १॥ मुझे भुक्त करने लग कि इस बातका कहना हा कहना उरने लगा कि आकाशमगने विष्णुरूपधारी गंगाधर मुक्त एक सुधा विमान उतर रहा है ॥ २०॥ बादमे विमानसे बंटे हुए पुण्यशील तथा पुण्यशील आदिने बल्लह का विमानमे बैठा सिया और अस्मय उरवा तथा बोलने लगी ॥ २१॥ धर्मदानको यह विमान देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उसमे पुण्यरूप तथा पुण्यशील सुशीलका देखकर उनसे परमाण्व स्वरूप ज्ञानमे किया ॥ २२॥ उन दोनाने भी उस विमान द्विजको लका देख बया अधिनन्दन बरक धर्मयुक्त वातामे कहा ॥ २३॥ दोनों गये कहने लग — हा द्विजधरा वहेन्द्र, तुम बन्ध हो । तुम दीनापर दया करत हो, बधका जानने हो जो सदा विष्णुधर्ममे रत रहने हुए विष्णुक स्तव तत्पर रहते हैं ॥ २४॥ तुमने जो वैष्णवसे ही कार्तिकमासका व्रत बरक ब्रह्म उस पुण्यका श्राधा ध्यानात्म दिव्य है, इससे तुम्हारा पुण्य दुगुणा हो गया है ॥ २५॥ तुम्हारे आज पुण्यमे इसका स्तवो जन्मके कायकमोका भाग हो गया ॥ २६॥ तुम्हारे करार हुए तुम्हारीद्वयुक्त जलके स्नानसे ही इसके पुण्यमे किये हुए सब पाप दूर हो गये हैं । अब विष्णु-पादरगक पुण्यसे इसके लिए यह विमान आया है ॥ २७॥ हे माधो ! तुम्हारे दाददानके पुण्यसे इस तपस्वी रूप धारण करनेवालाको हम विविध रूप भगवन्त लिए वैकुण्ठ के वा यह है ॥ २८॥ हे कृपानिधि ! तुम्हारे दिए हुए तुम्हारीपूजन तथा कार्तिकव्रतक पुण्यसे यह विष्णुधर्मवानके सौन्दर्यका प्राप्ता हुई है ॥ २९॥ तुम भी इस जन्मके अन्तमे स्वामिन्त वैकुण्ठमे जाकर विष्णुक सौन्दर्य तथा सत्पताको प्राप्त होवा ॥ ३०॥ हे ब्रह्मदत्त ! वे लोग बन्ध है और बड़ धर्मरामा तथा सपथ अस्मकास है, जिन्होंने कि तुम्हारी तत्पु विष्णुकी आराधना की है ॥ ३१॥ सत्य शक्ति पूजित विष्णुधर्मवान् मनुष्यको क्या नहीं देते ? त्रिद्वान पूर्वधर्मय राया उत्तानपादक पुनका ध्रुवपर स्थानित किया ॥ ३२॥ जिनके नामस्मरणमात्रसे ही मनुष्य सत्पताका श्राधा हो जाता है । प्रार्थन समये मन्त्रसे एकदा दया गवन्त जिनके नामका स्मरण करनेमे मुक्त हुए विष्णुके सौन्दर्यको प्राप्त हुआ और अब नामका आर्याल बना । ब्रह्म भी विष्णुका चिन्तन करके विष्णु नामका स्मरणसे बड़ा वा ॥ ३३॥ ३४॥ इसी प्रकार तुमने भी विष्णुधर्मवानका पूजन किया है ।

तन ुषे क्षयं प्राप्ते यदा यम्यसि भूतलम् । धुर्यवशोऽङ्गवो गता विरयानस्त्वं भविष्यसि ॥२६॥  
 नाम्ना दशम्यस्तत्र आयां द्वययुतः पुमान् हर्तायेवं तदा मार्या पुण्यस्यैवार्धभागिनी ॥२७॥  
 कलहा कैकेयी नाम्नो भविष्यति न सप्तमः । तथापि नव मासिष्यं विष्णुर्दाम्यति भूतले ॥२८॥  
 आन्मान तद् पुत्रस्त्वं प्रकल्प्यामकार्यकुत गमनाम्ना रावणादीन् हन्वा राज्यं हरिष्यति ॥२९॥  
 तवाजन्मव्रतादस्माद्विष्णुर्मनुष्टिकारणान् न यहा न च दानानि न तीर्थान्यधिकारि वै ॥३०॥  
 जनस्त्वग्नेऽपि धर्मज्ञ त्रिष्यं विष्णुव्रते स्थितः । त्यक्तवात्सल्यैर्दमोऽपि भूत्स्वं स्वदर्शनः ॥३१॥  
 कार्तिके माघवे माघे वैश्वे ममवतुष्टये । प्रन्यन्दं त्वं धर्मदत्तं प्राणभ्यामी मदा भव ॥३२॥  
 एकादशीव्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः । माघपानपि शाश्वदि वैष्णवांश्च सदा भज ॥३३॥  
 वसुधैकधरात्सर्वं भूनाकादीनि साद मा । एवं त्वमपि देहानि वद्विष्णोः सर्वं वदम् ॥३४॥  
 शान्तोपि धर्मदत्तं न तद्वक्तव्यं यथा वयम् । पुण्यशीलमुशीलाकृतौ जयश्च विजयस्तथा ॥३५॥

धन्योऽमि विप्राश्च यतस्त्रयंतद्व्रतं कृतं तुष्टिकं जगद्गुणैः ।

यद्वर्धभागान्मफलान्मुगारेः प्रणीयतेऽस्माभिर्गिरिं मलोकनाम् ॥३६॥

मुदल उवाच

इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुचदिश्य विमानगौ । तथा कलहया माहूँ वैकुण्ठभुवन गतौ ॥३७॥  
 धर्मदत्तोऽप्यसौ गजन् प्रन्यन्दं तद्व्रते स्थितः । देहानि परमं स्थानं मार्याम्यामन्विनोऽम्भगात् ॥३८॥  
 बहून्यन्दमहसावि स्थित्वा वैकुण्ठमचनि । ततः पुण्यक्षये जाते जानोऽमि त्वं नृपो महान् ॥३९॥  
 त्रिभिः स्त्रीभिर्देशरथ ते विष्णुः पुत्रर्ता गतः । समोऽयं लक्ष्मणः तेषो भरतेऽञ्जोऽरिश्चन्द्रहा ॥४०॥  
 एवं सर्वं यथाऽऽख्यातं यथा पृष्टं त्वया मम । धन्यस्त्वं यस्य ननय माधवान्नागयणोऽभवत् ॥४१॥

इसलिए तुम भी दोनों स्त्रियों के साथ कई हजार वर्ष परोक्ष उनका सानिध्यको प्राप्त होओगे ॥ ३५ ॥ तत्पश्चात् पुण्य क्षान होनेपर जब तुम पुनः पृथ्वीपर आओगे, तब सूर्यवंशमें बड़े प्रख्यात राजा बनोगे ॥ ३६ ॥ दोनों स्त्रियाँ तुम्हारे साथ रहेंगी और तुम श्रीमान् दशरथ नामके राजा बनोगे । उस समय यह आध पुण्यकी आगिनी कलहा नि स दह कैकेयी नामकी तुम्हारी बीमारी खोती होगी । वहाँ पृथ्वीपर भी भगवान् सदा तुम्हारे सन्निकट रहेंगे ॥ ३७ । ३८ ॥ वे प्रभु ब्रह्माओकर कार्य साधन कानक लिए अपने बापको तुम्हारा पुत्र बनाएंगे तथा रामनाम धारण करके रावण आदिको मारकर राज्य करेंगे ॥ ३९ ॥ विष्णुकी प्रसन्न ब्रह्मबाल तुम्हारे जन्मसे लेकर किये हुए इस व्रतसे बहकर कोई उज्र, दान तथा तथ्य आदि नहीं है । ३० ॥ इस कारण भारी भी तुम भगवन्, निम्न निम्नलोक व्रतमें स्थित और मातृगर्भस्थ आदिमें रहित होकर समदर्शी बनो ॥ ३१ ॥ हे धर्मदत्त ! प्रतिवर्ष कार्तिक, वैशाख, चैत तथा माघ इन चारों महानौम प्रातःकाल ज्ञान करके तुम एकादशीका व्रत और तुलसीका पूजन करो । श्राद्धाणि, गौ तथा विष्णुभक्तोंकी सेवामें तत्पर रहो करो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ भक्त, सीनोर तथा रंगन आदिका खाना छोड़ दो । हे धर्मदत्त ! ऐसा करनेसे तुम भी वय-विजय तथा पुण्यशाल-सुशाल आदि हम लोगोंकी तरह विष्णुके उस परम पदकी उनको भक्ति प्राप्त हो पावेगा हा प्राप्त होजाओगे ॥ ३४ । ३५ ॥ हे शाहज्येश्वर ! तुम धन्य हो क्योंकि तुमने जगद्गुरु विष्णुकी स तुष्ट करनेवाला यह व्रत किया है, जिसके अभाव पुण्यमागर प्रभावत हमनाम भी मुर्गानि भगवान्की सन्निधित्वको ( ममानलोकको ) प्राप्त हुए है ॥ ३६ ॥ मुदल बोले—इस प्रकार वे दोनों धर्मदत्तकी उपदेश दे तथा विमानमें बैठकर कहलाके साथ वैकुण्ठधामको चले गये ॥ ३७ ॥ हे गजन् ! वह धर्मदत्त भी प्रतिवर्ष उस व्रतको करने देहान्त होनेके बाद दोनों स्त्रियोंके साथ वामपदको प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ बहुत वर्षों परोक्ष वैकुण्ठ-धाममें रहकर पुण्यसम होनेके बाद वहाँ आकर वहाँ तुम इतने बड़े राजा बने हो । ३९ ॥ तुम अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ वहाँ आये । विष्णुभगवान् तुम्हारे पुत्र राम बने, वैश लक्ष्मण बने, बह्म भरत बने तथा ब्रह्म जम्बुध्व बने ॥ ४० ॥ जो तुमने पूछा था, वह सब मैंने तुमको कह सुनाया । तुम धन्य हो । क्योंकि साक्षात् नाशयण तुम्हारे पुत्र हुए हैं ॥ ४१ ॥ श्रीशिवजी

इष्टकथा नृपतिं वृज्य विममर्जं मुनिमतम् । आश्रित्य गणं भूमिषि मेने च कृतकृत्यताम् ॥४३॥  
 तदा राजा स्वयैन्द्रेण महार्षिममन्त्रितः । अयोध्यामगमच्छ्रद्धां गोपगृहात्संदिताम् ॥४४॥  
 नृपसत्तममात्राय मन्त्रिणः परवामिनः । एताकानोरणार्थं च दिव्यचन्द्रसेवनेः ॥४५॥  
 नगरीं भूयगित्वा ने नृन्यासादिपंगवैः । निन्यः कन्दमहिनं गजानं नगरीं प्रति ॥४६॥  
 गमयामासमात्राय गोपगृहात्संदिताम् । कट्यां निधाय चान्द्रश्चित्रः सिन्धुः निजैः कर्तैः ॥४७॥  
 स्वर्णकुम्भार्थं च वर्षः पुष्पकृष्टिभिः । कुशस्त्रिन्माभोषति स्थित्वा वंसदीपादिपंगवैः ॥४८॥  
 आनिकागार्थं च गजानं मगधं आनिकार्कः । पूजयति स्म मां मत्वा गजमार्गे पृथक् पृथक् ॥४९॥  
 एवं नानाममृताहैर्नैर्नैर्वाभोषिताम् । इक्ष्वाकूनां निनार्थं च मायकानां च गायकैः ॥५०॥  
 भीमोद्धवमवार्थं च स्त्रीमकपुष्पकृष्टिभिः । ययौ स्वमिविर गजा दीप्यमानः सुचामरैः ॥५१॥  
 ततस्तान् जनकामात्यान् वञ्चालकारवाहनैः । सन्कृत्य भोजनांश्च श्रेयसाम्भ्यैः ॥५२॥  
 एवं ययौ नृपतेः पृथक् पृथक् पृथक् । निन्यः सिन्धुः गमयान्तिभिः पार्थिवेन च ॥५३॥  
 उत्तमोत्तमः पूज्य लोकनामस्य गायकम् । गमोऽपि गमयामास लोकाभिर्नृपतिं तदा ॥५४॥  
 धामं पृथुमिर्जनकजा लक्ष्मी श्रीगन्धर्वलक्ष्मा । लग्नाश्वेकदशे ययौ रजोयुक्ता ययौ च ॥५५॥  
 तदा तर्जनीकः भूत्वा पृथ्वीधिर्मन्त्रिभिः सह । अयोध्यामगमच्छ्रीं राजा प्रपूज्यगन्धर्वम् ॥५६॥  
 परस्परं ममानिभ्यः साकेतमिधिकाधिपौ । नृपराजसमन्महैर्मयोध्यां विविशुः सुखम् ॥५७॥  
 ततो महाभक्त्याहैर्नानामंडपनोरणैः । कटलीम्भमानाभिर्भित्तुर्द्वैः सुचामरैः ॥५८॥  
 अतर्जनीयं पृथक् च पृथक् च । किंकिणीचालयोर्पथं च विनानदीवरजिभिः ॥५९॥

बोले कि लेका कहकर प्रतिने राजाकी पूजा को और कह विना किया । राम महाराजका आभिज्ञान करके उन्होंने अपनेको कृतकृत्य समझा ॥ ४३ ॥ तब राजा दशरथ अपने पवित्र अपनी सेवाके साथ पुरंदर तथा अटारिगमे गये और रामकी अयोध्यापुगीको गये ॥ ४४ ॥ राजाका आगमन सुनकर भक्तिभयों तथा पञ्चामियाके वनाकाओं तथा नगरोंमें गयेको राजा तथा महोपर चन्द्र विहकवाकर नव्य और माणिक्य साथ गाँवके साथ महाद्वार राजाको नगरमें गे अथ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रामकी आरा जनिक स्त्रियें अपने बालकोंका कमरपर उठाकर पुरंदर तथा अटारिगको पस्त्रिओपर जाकर सड़ा हो गयी और अपने हाथसे उत्तर मुवर्ण-पुष्पयोकी वृष्टि करने लगी । कुछ मित्रगो पार्थ से भग्न अंगुलिक करण और कुछ माणिक्य दीप लेकर रास्तेमें भागने लगी हो गयी और कुछ राजमाधमे जगह-जगह अतिक्रान्त आगनी आगसे रामके सहित राजाकी पूजा करने लगी ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इस प्रकार अनेक उत्सवोंमें पुन वैष्णवोंके नृत्य तथा नगाडोंके गानों एवं गाँवकोंके गाँवोंके साथ मयलोक सरोयोंमें मित्रों द्वारा की गया पुनःपुनः आकादिस तथा सुन्दर धमरोंमें रोजगमाय हुए हुए राजा दशरथ अपने मित्रियों गये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तदनन्तर कश्यप, कश्यप, अश्वनादि बाहन तथा भाजन आदिमें राजा जनकके मन्त्रियोंका मन्त्र करके उन्हें सिधिया भेज दिया ॥ ५० ॥ इस प्रकार राजा जनक उत्तम उत्तम उत्सवोंमें रामका उनकी सेनाओं तथा राजा दशरथकी मिथिलापुगीमें सुलले गे ॥ ५१ ॥ राजा जनक रामको महा सन्तुष्ट राजनकी सेवा करत था । राज भी अनेक स्त्रीयों द्वारा राजाको आनन्दित करने से, सुन्दरी तथा शुभा जानकी रामसे छः महेंता छटा यी । विपन्नके ग्यारहवें वर्षमें के राजस्वना हुई ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ यह समाचार सुनकर राजा जनक अपनी स्त्रियों तथा मन्त्रियोंके साथ अयोध्या गये । राजा दशरथ भी उनका अगवानों की ॥ ५४ ॥ अयोध्यागति तथा मिथिलाधिपति दोनों परस्पर जी भग्नकर गले मिले । तदनन्तर नृत्य साथ आदि उत्सवोंमें सुलले अयोध्यामें प्रविष्ट हुए ॥ ५५ ॥ पञ्चान् विविध मण्डपों, त्रोरणों, केचक स्तम्भों, पुष्पोंकी मालाओं, ईजक दण्डों, चामरों, चार दरवाजोंके लण्डों, पण्डा-विदिवाचक शब्दों, छंदा छंदा घण्टियोंके समुदायके शब्दों, शीशों, चंदों तथा दीपपत्तियों द्वारा

वसिष्ठो मुनिभिः स ह्येव गर्भानविधिं शुभम् कारयामास रामेन सीतायाश्चानिदपेक्षः ॥६९॥  
 तदा वस्त्रमलकारजनेनको नृपतिं मुदा । पूजयामास सर्वाङ्गे स्तुतापुत्रममन्वितम् ॥६०॥  
 मायमेकमनिकम्पय यथा स्वनगरी मुखम् । गमाऽपि सीतया सार्द्धं नानाभोगान्गुणुकान् ॥६१॥  
 वृधुजे हेमगन्धारिनिमितेषु गृहेषु सः । रुक्ममण्डनयुक्तानिदो गोमयीं जितः सुखम् ॥६२॥  
 एव तायां नृपतुल्यवर्त्मानां च पृथक् पृथक् । यथाकालं निधानेषु गर्भाधानादिकेषु च ॥६३॥  
 आभ्यस्य जनकश्चक्रे नानान्यादान्मुदाञ्चितः । अयाध्यानगरीमथै वाद्यवापो गृहे गृहे ॥६४॥  
 मंगलानि च सर्वत्र न कृत्वाभ्यस्यमगलम् । न दण्डिं श्रुत्वा नार्थान्नाविश्याधिप्रपोडितः ॥६५॥  
 गमादिभिश्चतुर्भिर्नरैर्बुभुक्षुः ॥६६॥ । पृथग्गृहेषु सार्याभिर्गार्हस्थ्यमध्यनुष्ठितम् ॥६६॥  
 रामः श्रान्तः समुत्थाय कृतशीलादिमन्त्रिकयः । आरुह्य शिविका दिव्यां स्नानार्थं मग्नुं नदीम् ॥६७॥  
 गन्धाङ्कुरैः वाहनादि विभूज्य स्नानदनः । गरुडस्नय्याः पावनार्थं मग्नुः शुलिनं मुदा ॥६८॥  
 सविभिरवहितो गन्धा नन्धा तां मग्नुनदाम् । स्नान्वा निन्यविधिं कृत्वा प्राक्षर्णः परिवारितः ॥६९॥  
 दत्ता दानान्यनेकानि गोभूधान्यामादिभिः । संपूज्य मग्नुं पुण्यां ज्ञानगङ्गां पूज्य मादग्नुम् ॥७०॥  
 यया रवे ममारुह्य रुक्मवन्धनवधिनम् । रुक्मननुदन्तुर्नम्र सर्वतः परिवर्ष्टितम् ॥७१॥  
 पद्महस्तादिवसनैर्गङ्गाद्विजितं शुभम् । राजिनाहं मार्गवता गुम्फालेन प्रचोदितम् ॥७२॥  
 त्रिकिर्णोपरमाणाभिर्षराभिर्गन्धार्जितम् । रुक्मवद्वर्षादुत्तम्य दार्द्र्यनसम्पथम् ॥७३॥  
 पथि नगराजिनः स्वामिभार्षितः पुण्ड्रवाष्टिभिः । प्राप स्नाय गृहं रामः सूर्यकोटिममप्रभम् ॥७४॥  
 अवहृष्ट रवाद्रासः पादयोरुत्थं पादुके दिवसं । संतापदणपादाभ्याचक्ष्णो गृहम् ॥७५॥  
 गत् ॥ ५॥ सिद्धोऽवशालया सानयाऽऽमनसाञ्चलः । आशुहोत्रादर्शोभना दक्षिं दृष्ट्वा ततः पश्चम् ॥७६॥

महान् उत्सवके सायं गृहं वसिष्ठेन मुनियुक्ता सायं लकर गमनं कृत्य सायं आनन्दः कृत्य पुत्र गर्भाय न-  
 संस्कार किया । ६०-६२ ॥ तदनन्तर राजा जनक वसिष्ठो पुत्रा तथा पुत्रवधो रहित गमा इमारपको वर-  
 ङ्क हार आदिसे प्रवर्त्तनापुनरुक्त कृत्वा ॥ ६० ॥ इस प्रकार 'क' मास अष्टम्यामे गृहकर आनन्दसे वे अपने  
 नगरका लोह मय । राम भी सत्कार साथ गृहगण-रत्ना आदिसे विभूषित भवनाथ अत्यन्त प्रकारके भोगोप-  
 भोगा लगा उस समय राजक वरनाथ पुत्रावत दर्शित गया ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसी प्रकार प्रत्येक  
 रात्रिपुनरुक्त स्नान वस्त्रमलकारकाम आनन्द राजा जनक शिरस्थ उससे किय और अयोध्या नगरीमे  
 घर घर जाते वत । ६३ , ६४ , सारी अयोध्या मङ्गलमयी हो गया । सही भी अमङ्गलका नाम न था । उस  
 नगरमे कई शिष्ट, श्रद्धा, मानसिक तथा धार्मिक दृष्टसे पवित्र सही था ॥ ६५ ॥ पश्चात् राम आदि  
 चरो माई अपना-अपना निजोक्त साथ अलग-अलग मृत्सेन गृहस्वधर्मका पालन करने लग्य ॥ ६६ ॥ राम  
 प्रवर्त्तित श्रान्त उठते तथा शीवादि कृत्यसे निवृत्त हो दिव्य पात्रकापर सवार होकर स्नान करनेके लिए  
 गङ्गामु न्दरापर जान थे । सशरी आदिको किनारे छोड़ आनन्दमे सङ्गुकी पवित्र करनेके लिये बालुकापर  
 हुन हुन वही जाने थे । ६७ ॥ ६८ ॥ सवि प्रोक्त मङ्गल लाकर थे सङ्गु नदीको नमस्कार करके स्नान तथा  
 निजकर्म करने और प्राक्षणाका भी भूमि, क्षान्त तथा मर्दन आदिका दान देकर पवित्र मग्नु और कङ्कणीकी  
 मरत पूजा करने थे । ६९ , ७० ॥ तदनन्तर स्नानके उपनयोके रीति हल चलानेके मागको रजिमासे एक वेष्टन  
 तथा मलमलके उत्थन नम्र हुन जाने आगे प्राक्षर पवित्र मग्नु सङ्गुमे प्रेरित आनन्द मग्नुपर सवार  
 हुनर नीटते थे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ पुनरुक्त गङ्गाओ तथा शिवी के उपरसे पवित्र दान रखके अगे मोलकी  
 सिद्धिदोहासे छुड़दार होकर मार्ग दिक्कतने चलन थे । ७३ ॥ गमनमे द्विष में हुन पवित्र तथा पुण्ड्रवृष्टिमे  
 आनन्दान्त राम कङ्कणी मृत्सेन समान पद्ममयपत्र आने गङ्गापर पसारने ७४ सर्वा रथमे उत्तरकर नमस्कार-  
 का सहज पवित्रकर वरध जाने । सही सीमाती हुन उन्हें पवित्र नगर साथ दैत चलेका मल देती थी । ७५ ॥  
 पश्चात् सीता समेत राम वसिष्ठोक्तमागमे जा तथा सोमनपर बैठकर अग्निहोत्रकी विधिमे अग्निम् हुन



पुनरिस्त्राणि मगधं लब्ध्वा सुस्त्राण मद्रिम् धनुर्गोष्ठीं करं धृत्वा रथे पश्यन्वाऽथ बहुभिः ॥९६॥  
 पुनरागमोद्यानकं दानं दृष्ट्वा तु कानुकम् च । राधयः पतननश्चगन्वा स्वार्थं गृहं पुनः ॥९७॥  
 मायंमध्यादि मध्याद्यं पुनर्दृष्ट्वा मायस्मिन्मध्यां श्रुत्वा भवत्या पुनः पूज्यं कृत्वा चैवापहारकम् ॥९८॥  
 गन्तकांचनमणिवपनिर्मितं संचके चरं दिव्यशामादनं च मं मानया स्तुनायकः ॥९९॥  
 हास्यमानांविनोदयान्द्रा चक्रे ततः परम् । एव नानावसुधमर्हनिनायाकममाः सुखम् ॥१००॥  
 एकदा राधय राज्ञा ज्ञात्वा सुहृन्वाक्यतः । चापहृत्वाकयनश्चापं चारित्र्याप्यमानुषः ॥१०१॥  
 माताचार्यायणं विष्णु मन्त्रादृष गृहं क्रियत । पश्यन्तु राजधनेव हार्द भवं विधाय च ॥१०२॥  
 राम नागपणस्थं हि भूयस्हरणाय च । मत्ता जाताऽस्य तं लोकं वदन्त्यज्ञानबुद्धयः ॥१०३॥  
 भनः पृच्छामि ते राम मया माहितस्मिन् किंचिच्छ नापदशनं नाजपाज्ञानज्ञां कर्तुम् ॥१०४॥  
 रागवत्यादिगेषु त्वयि नैवोपशम्यति । तन्निस्तु ननं धृत्वा गजानं राधनोऽन्वर्त्तु ॥१०५॥

योगम उक्त्वा

मृष गजानं प्रवक्ष्यामि तव ज्ञानार्थमुत्तमम् । पृणोतु मम मानसं कौमल्याऽपि तव प्रिया ॥१०६॥  
 नश्यन् भ्रामते चैनदविद्यया मायाद्वयं नृप । यथा शुक्रो गीर्धमानः काचभूम्या जलरूपं च ॥१०७॥  
 यथा गजो मर्षमायो भृगुर्नये जलमृदा । तद्वदान्मनि भ्रामोऽप्य कल्प्यते नश्यतोऽनुर्थः ॥१०८॥  
 प्रज्ञानदष्टिर्भ्रान्त्य मन्यते न तु पादतः । आत्मा छुट्टा निर्यतेर्लोकः सच्चिदानन्दभ्रमः ॥१०९॥  
 पम्पाशाक्षेन विश्वेशा व्रज्यायाः सकला वयम् । स्थित्युत्पत्तिविनाशार्थं नानारूपाणि मायया ॥११०॥  
 वाचते नटवद्राजन्त तेष्वामक्त एव मः । यथा पद्म न स्पृशति जलं मायां तथा बलः ॥१११॥  
 आत्मा निर्यो न स्पृशति परमानन्दप्रदः । वेदागाग्नुवर्त्माषु मामर्केति च या मतिः ॥११२॥

तथा तस्मात्स्वभावः लोचनं दृष्ट्वात्मात्मा साक्षात् सायं नारायणं कर्तुं ये ॥ ९५ ॥ फिर वस्त्र पहिन तथा

नाग आदिमं वसुष आण नकर वस्त्र आ क माय रथपर सवार हुकर बुद्धिमान वग वग आकर इच्छत, मानस

तु न गायन सुनन तथा न च ध्वज दृष्ट पुन अर्पन पर आ ना सध्यादि नित्य काम करत और

माय रथन वरक धनिश गितजाका पूजा करन थे सा कल्पका भ्रामन करन गन्तकानन तथा मायने

मन्त्र रथगवर दिव्य महत्त्व साक्षात् सायं दृष्ट्वात्मात्मा तथा विन स्फुरक गयन करत थे । इस प्रकार

न गजाने सुखप्रद कोरु वयं वंत्त एव ॥ ९६-९७ ॥ एक समय सुनि हुकर तथा गुरु वासतक वन नि

जोर रामक वन चरिकाका देख राजा दशरथने रामका माधन् नागपण समसकर एकान्तम बुनवा और

ध नभाव तथा विन स्फुरक कहत लगे- ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ इतमं तुम स क्षन् मारायण हा तुमन भूमि

धार इरण कल्पक जिय मर घर अवनार जिया है राम अज्ञानहुक बुद्धिवाले लग कहत है । इस कारण

है राम । तुम्हारे मायासे मोहेन मे पश्यना करता है कि त्वम ज्ञातका उपदेश टकर मेरा अज्ञान दूर कर दे

॥ १०३ ॥ १०४ ॥ हय, सुन तव गुरु आदिम भ्रातृत्वं मेरा बुद्धि कर्क जालि तथा सुखका अनुभव नहं करवा ।

मिताके हम वचनको सुनकर राम राजा दशरथसे ज्ञान/ १०५ ॥ योगमते कहा - हे राजन् । मैं आगता —

ज्ञ नलाभक जिय उत्तम उगदज दता हैं । तमे आष तथा आपका प्राणायाम और मेरी माता कौमल्या भी ध्य नसे

मन ॥ १०६ ॥ हे नृप । मायासे उत्पन्न यह समस्त सत्त्व आत्माय उसी प्रकार मूत्र मारित होता है जैसे

कि क्षीरार्ध सारा, रतामे जल, रत्नार्ध मोष तथा भृगुमर्याचिकाय मलिन मारित जाता है । अज्ञानों लग

वन् आभ सकी भी निरु तथा अनवर समजने हैं परन्तु दृष्टित माय तो इससे विभक्ते ही मानते हैं । उनके

मनम अरमा बुद्ध निर्य तथा सच्चिदानन्दस्वरूप है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ उनको अगमानसे समस्त जितके

स्वामी ब्रह्मादि स्या हम मद्र प्राणों मायाके अपान हुकर जगत्का मियति उत्पत्ति तथा विनाशक जिय नटनी

तर्ह विविध रूपोंको धारण करने है किन्तु आत्मा स्वयं जिस म आभन नही होता । जिस प्रकार कमल

एव जलका स्पर्श नही करता उसी प्रकार असक, निर्य और परम आनन्दस्वरूप आत्मा भी मायासे निर्लिप्त

उपसंहृत्य बुद्ध्या मन्यम्य ब्रह्मणि चिह्नते । यद्यनिकानिष्ठायनेऽथ नन्दन्मारायणममम् ॥११३॥  
 एवम् त्वं सधर्मावन मुच्यसे भवमकटान् मन्य शीत्वं दया जातिः क्षमा चेद्विगनिग्रहः ॥११४॥  
 अहिंसा भयवृद्धेऽक्षयदमाराधनुषनम इत्याद्या ये गुणा राजन मान् भजस्य तिरंगम् ॥११५॥  
 शीर्षं धृतं विवाद च मान्यर्थे दंसमय च । शीर्षं तन्मम भय त्रै च शोक निषवर्जनम् ॥११६॥  
 चेन्निषययतां च सत्पुत्रा मानभजनम् । निदा पेशुन्यमानया न्यत्र दूर स्वनी नृप ॥११७॥  
 त्वं स्वया नपस्तम् पुनश्च यर्षधन मम नमस्तद्वानोऽस्म न्वचोऽह कोपन्यायानृपो नम ॥११८॥  
 यन्मया कथ्यते चैन्द्रीनमस्तन्यतम् । सापत्नोऽपि प्रयत्नेन कथनीय न कुत्रचित् ॥११९॥  
 नशमयचनं धृत्वा न्याय्यादन्ता नृपः । सङ्गजपरिपूर्णम् गोमाक्षितवपुषः ॥१२०॥  
 प्रणमाम राधवम्य च । बृहन्मोचनः । तला रामः पुनः प्रह पित्रं निर्दलाशयम् ॥१२१॥  
 नेद यम्य न्यया न जन्तु नदनादि शिशु मने कायया न्तेभ्यः मम उपशमकायम् ॥१२२॥  
 ननुमव च मां नित्य भज नोवन गावाम् । मन्त्रिस्तो मदनपाणो मणि भक्ति ददा कुरु ॥१२३॥  
 इन्दुकवा पिनेगी नत्वा गृहान्वाजा नयोः प्रभुः । ययौ कथमगाहः श्रुतामः मन्त्रिकेनम् ॥१२४॥  
 कदा सातुर्गृहे गत्वा सीतया भोजनं व्यवधान् । कदा आगृहेऽप्येव कदा पत्नीः पितुः स्वयम् ॥१२५॥  
 कदा दशरथं दातुं भोजनार्थं निजे गृहे । भार्यापुत्रादिभिर्पुत्रं पौत्रैर्विप्रेः ममन्विनम् ॥१२६॥  
 कदा रामः समाहित्य भोजयामास मादरम् । श्रुतामदशेवार्थं ते तपोवननिवायिनः ॥१२७॥  
 अयोध्यानगरीमन्य द्वारपरिनिषेधताः । शनैः प्रत्यहं रामं दृष्ट्वा स्तुत्या पुनः पुनः ॥१२८॥  
 आनिध्यं गृह्णाथस्य गृहान्वा तुष्टमानसाः । ममपचादनान्येव इस्थन्वा पुष्पकथादिभिः ॥१२९॥  
 रमयित्वा ग्यानाथं जपुः स्वं स्व वराश्रमम् । यत्र यत्र हि ममस्य प्रानि जीन्वा विदेहजा ॥१३०॥

पृष्ठो हे । अहं पुनः स्मां आशिषस ममया ह्येवम् अन्ता नृपम नोऽपि द्वार, ममस्त प्रवन्ताभवा छात्र-  
 कर यत्र जा ह्यमने ममया हे । उसयो चिन्तन द्वासा अभिज्ञ सा, राम नन्त जान तथा जो शिवाको मवय  
 भात दसैकर आय इस भवम् पुनः पुनः हो जायेंगे । हे राजन ! पहले ज्ञान मयभाषण, पवित्रता, दया  
 शान्ति, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, भगवद्भक्त तथा इतने सगल प्रवृत्तन अदि गुणाकी निरालस व्यापण  
 कर ॥ १०६-११५ ॥ इ नृप शीर, दुःखा, दुःखी, पीडित, मन्त्र, लोक भय, दास ज्ञान निम्नवाप कामम  
 दृष्टि, नद-विष माधु रन्यास आदिक, मानभ, निन्दा और चुल्लानकी आदिना अपन पिता दूर कर द  
 ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ इ नृप आपन पुत्रोक्तम लय करक पुत्रक, पुत्रकम गोमा श । इसी कारण से आपके  
 द्वारा कोसल्याक ममसे पुत्ररूपम मागमाद हुआ है ॥ ११८ ॥ वह जो मैंने आपकी आज्ञासूची मन्त्र नम वचन-  
 दाना उपदेश दिया है, उसे आप ज्ञान मनम हो मन्देगा किमासे रहितगा नही ॥ ११९ ॥ रामके इस  
 उपायका भूतसे ही राजाके मनस मावावृत्त भाद दूर हो गया और सङ्ग वसे परिपूर्ण तथा गोमाक्षित मरीर  
 द कर हृद भानभावसे राजा दशरथने रावक चरणार्क करन, की । इस प्रकार निम्न ज्ञानसे पितासे  
 राम फिर कहते लग - ॥ १२० ॥ १२१ ॥ हे राजन ! एक प्रणाम करनी आपका अनित मही है । मावासे  
 मनुष्यदह्या की मरा इससे उपाहात हाण । इस कारण अब सदा आदरभावम मनम हा मंगा भजन किया  
 कर । मन तथा प्रणको पुत्रे भयण करके भेगे हृद भक्ति कर ॥ १२२ ॥ ऐसा कह तथा माता पिताकी  
 आज्ञा लेकर औरामने उनकी नमस्कार किया और रथया सकार होकर अपने भवनका बन गये ॥ १२४ ॥  
 वे सीताके साथ कभी माताके महलमें आकर भोजन करते, कभी माद्योंके भवनमें और कभी पिताके साथ  
 वलिभ बेटकर भोजन करते थे । कभी पिता पुत्रो ब्राह्मणों तथा नायिकोंके साथ पिता दशरथको अपन भवगम  
 बुलाकर सादर हृदयपूर्वक भोजन कराते थे । प्रान्दित सैकड़ोंकी सख्याम वनवासो मुनिजन भी श्रीरामचन्द्रका  
 दशन करनेके लिये अयोध्या आते रहते थे । वे विना रोकटोक मातर जाकर रामका दर्शन तथा स्तुति करते  
 और रामके द्वारा किये हुए सत्कारको ग्रहण करके प्रसन्नतापूर्वक बीच-सात दिन सही रहकर अपने-अपने



तस्य चकार सा साध्वी हास्यक्रीडाभनादिकम् । विवाहानन्तरं रामः ममा द्वादश सीतया ॥१३१॥  
 रमयापास साकेते महाक्रीडाभुजःसम् । महस्रवर्षविज्ञेयं श्रेष्ठ वर्षं कृते पुणे ॥१३२॥  
 शतवर्षं च त्रेतायां द्वापरे दशवर्षजम् । कलेमानेन चोद्धृत्य शुन्यद्वयान्त्रिकमाह ॥१३३॥  
 एवं श्रीरामचद्रेण भोगा श्रुताः सुगेषमाः । पश्मिन् श्रुतौ च यदुद्धृत्य फलपुष्पादिकं शुभम् ॥१३४॥  
 नत्सर्वं सर्वदेशमाद्रामे साकेतमस्थिते । अनावृष्टिर्न वै कुत्र नस्कराणां भयं न हि ॥१३५॥  
 हिमार्दानां भय नार्मोदयोध्याविषय प्रिये । युधाजिनाम कंकरीयाभ्याना मग्नमातुल्य ॥१३६॥  
 निनाय भरतं स्वर्ग्यराज्ये शत्रुघ्नमश्वतम् । कौतुकेन नृपं पृष्ट्वा कंकरीयां प्राणिपत्य च ॥१३७॥  
 एवं रामस्य मागल्यं बालन्वेडापं सुखावहम् । वे नृध्यात् नरा भक्त्या न नेषामस्त्यमगलम् ॥१३८॥  
 एवं यथा त्वया पृष्टं तथा सर्वं मयोद्दिनम् । रामेण चरितं यच्च नृणां मागल्यदायकम् ॥ ३९॥  
 एवं गिरौद्रजे प्रोक्तं बालर्लालादिकौतुकम् । रामचन्द्रस्य संक्षेपात्तत्र ग्रन्थं सुखावहम् ॥१४०॥

इति श्रीमत्काटिरामचरितातर्पणे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

रामदिनचयावर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( रामका दण्डकवनमें प्रवेश )

श्रीशिव उवाच

एवं त्रेतायुगे रामं नगर्षा सीतया सुखम् । क्रीडत नारदोऽर्केन्द्रे ययावाकाशवर्त्मना ॥१॥  
 अथ रामो मुनिं पूज्य सीतया लक्ष्मणेन च । शुश्राव वचनं तस्य सुरैर्विज्ञापितं च यत् ॥२॥  
 निहत्य रावणं युद्धे ततो राज्यं कुरुष्व हि । अंगीकृत्य रघुश्रेष्ठस्तं मुनिं च व्यसर्जयत् ॥३॥  
 अथ रामोऽब्रवीत्सीता मम राज्यमभिषेचनम् । कर्तुं कामोऽस्मि तत्राहं विघ्नमुन्पाद्य दण्डकम् ॥४॥

अधमको भले जाते थे । जो काम करनेसे राम प्रसन्न होते थे, पतिव्रता सीता उन-उन हस्य-क्रीडा तथा भासनादिका विधान करती थीं । विवाहके बाद रामने बारह वर्ष तक सीताके साथ अयोध्यामें आनन्द पूर्वक विलास किया । कलियुगके हजार वर्षोंके बराबर सत्ययुगका एक वर्ष जानना चाहिये । कलियुगके सो वर्षोंके बराबर त्रेतायुगका एक वर्ष और कलियुगके बारह वर्षोंके बराबर द्वापरका एक वर्ष होता है ॥१२५-१२३॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रन बारह वर्ष तक देवताओंके योग्य भोगोंका भोग । रामचन्द्रजीके अयोध्यामें रहते समय जिस ऋतुमें जो पुष्प-फल आदि होना चाहिए, वह सब नियमसे उत्पन्न हुआ करते थे । कभी अनावृष्टि नहीं हुई और भरोका भय नहीं रहा । हे प्रिये पार्वती ! उस राज्यमें कभी किसीको हिंसक पशुओंका भय नहीं हुआ । एक दिन युधाजित् नामक कंकरीया आई तथा भरतका मामा बड़ा आया और राजासे पूछतया कंकरीयाको मनाकर शत्रुघ्नसहित भरतका अपने राज्यमें ले गया । ॥१३४-१३५॥ बाल्यावस्थामें ही मङ्गलस्वरूप तथा सुखदायक रामके अरिदको जो मनुष्य भक्तिभावसे सुनता है उसका कभी अमङ्गल नहीं होता । ॥१३८॥ इस प्रकार मनुष्यमात्रके लिए कल्याणकारी श्रीरामचन्द्रका चरित्र मैं तुमको कह सुनाया ॥ १३९॥ १४०॥ इति श्रीमत्काटिरामचरितातर्पणे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये बालचरित्रे भाषाटीकराया सारकाण्डे रामदिनचयावर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीशिवजी बोले—इस तरह अयोध्यानगरीमें सुखपूर्वक सीताके साथ क्रीडा करते हुए रामके पास बारहवें वर्षमें एक दिन आकाशमार्गसे नारद मुनि प्यारे, १॥ सीता तथा लक्ष्मणके साथ रामने मुनिकी पूजा की और उनके मुखसे देवताओंका यह संदेश सुना कि आप पहले रावणको मारकर पश्चात् राज्य करें रघुश्रेष्ठ रामने भी 'बहुत अच्छा' कहकर उद्द विदा किया ॥ २॥ ३॥ तदनन्तर राम सीतासे कहने लगे—हे सीते

गच्छामि गयपादना वधार्थं लक्ष्मणन च । अगच्छायां वमत्र न्यं कौमल्या पारिव भक्त ॥५॥  
 नदीमवचनं श्रुत्वा प्रणिपत्य गच्छनमम् उवाच सा वारुणं वनं मां त्वं नय प्रभो ॥६॥  
 कौमल्या त्वं त्रैलोक्यं मति तानि वदाम्यहम् । मन्त्रवयं प्रयाणं मे दंडकं हि श्रुत्वा सह ॥७॥  
 धनप्रयाणं मामाह भर्ता मे अन्यद्विदितः । वानजं कर्मवत् मे दृष्ट्वा कश्चिद्विजप्रणीः ॥८॥  
 अन्यन्मयं च पूर्वं गुरानपि मयादिदम् । बडा चापानिकं शायः यज्जितुं न्यं ममांगण ॥९॥  
 चतुर्दश वनमराणि मुनिपुत्रपुत्रवर्तिना । विदग्धिष्याम्यस्येह धनुः मज्जं करोम्वयम् ॥१०॥  
 तन्मन्यं कुत महावयं प्रयाणादंडकं न्वयाः । अन्यच्छुभं मया पूर्वं गयायनमनुनमम् ॥११॥  
 तत्र मीनां त्रिनां गयो न गतोऽस्मि हि दंडकम् । तस्यान्वं मां गृह्येष्टं दंडकं नेतुमर्हसि ॥१२॥  
 नम्योनावचनं श्रुत्वा दक्षिणैर्विद्वोऽब्रवीत् । विहस्य गच्छः श्रमात् सवाल्लेख्यं विदेहजाम् ॥१३॥  
 अथ राजा दशरथः श्राममस्यामिपेचनम् । वावर न्यपदे कतुमुपुक्तः पादं वै गुरुम् ॥१४॥  
 यथिगजपदे राममभिषक्तं त्वमहाय । तद्वाजवचनं श्रुत्वा गुरुर्दशरथः नृपम् ॥१५॥  
 कौमल्यागृहमानीय बोधयामास वै गदः । गजदं नृणु न्यं कौमल्यामुमित्रं गृणुतं त्रिमे ॥१६॥  
 श्रवणस्य वधार्थं हि रामः श्रो दंडकं यनम् । गमिष्यात लक्ष्मणेन मीनरा कैकयीवर ॥१७॥  
 तस्यान्वमवचनं पर्या ममागनमिपचिनुम् । कायस्य मुमंत्रेण ममाहूय नृपादिकान् ॥१८॥  
 आशमविहताद्राजन् नाक्षणम्यापि क्षाप्तः । अचिरादेव स्वर्त्तं न्यं यमिष्यमि पार्थिव ॥१९॥  
 कामिष्वेथ रामराज्यान्मरं पश्यतु वै पुनः । अनास्थाद्विमानम्यन्त्रं पश्यमि महोत्सवम् ॥२०॥  
 दुर्लभा भाविनी रम्यं वक्ष्यामीनां नृपेक्षम् । इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं तेन राजा सभां वर्या ॥२१॥  
 रामराज्याभिषेकाय ममागनकरोन्मृदा । दूतां आख्यामाम नृपान् दशरथस्तदा ॥२२॥

पितृजी मेरा राज्याभिषेक करना चाहते हैं, वरन् मेने उनसे बिछन राजा करके गवय आधिकः सायनक लिए लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्य जानेवाले हैं। तब य. गृहपर माता कौमल्याका और महारानीकी सेवा करती ॥ ४ ॥ ५ ॥ रामकी यह वचन सुनकर न तो श्रुतम रादक चरण पर गिर पड़ी और वह बहुत बचन बोली—इ प्रभा ! मुझ भा अन्ते तब्य अनक ले लिये ॥ ६ ॥ इसमें लोच कारण है । उन्हे मे वनना है । एक ही यह कि अन्वयवस्थामें मेरे हावका तब्य वनकर गक जाणनासे न रक हो कि तुम अपने दंतिक साथ बचवासे करणा । मा आपक साथ वनम जानेसे इस वहाजका बात कल्प हो जाववा ॥ ७ ॥ ८ ॥ दूसरा कारण यह है कि जब आप सभाक बीच स्वयंवरन समय घुष्य चक्षते चले थे । तब मेम देवताओंसे प्रार्थना की थी—हे देवताओं ! यदि राम पुत्र वहा लो के चोख नय तक सुमिपुति जाय करके वनप विवर्ण करेया ॥ ९ ॥ १० ॥ अतएव आप मुने वनम ल जाकर मरी प्रणिजाक भी मया वनम । मगरा कारण यह है कि मेने सुर्वातम गमायन वहाजम यह मुवा है कि सोनाह बिना राम अब तकभी वनम नहीं गये । सो जागो मुने दण्डकारण्यम साथ न चगना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ सोनाके उचन मुनकर गमन उनका मालिङ्गन करके "नपातु" कहा ॥ १३ ॥ इधर राजा दशरथ रामका गुरगजपदपर भणिक करतवा निश्चय करके गुरु वमिप्य कहा कि आप श्रीरामका पुत्र गजपदपर अधिपक कर । इस बातको सुनकर वे राजा दशरथका कौमल्याके प्रवम ल हाथ और एकान्त कहने लगे— ॥ १४-१५ ॥ हे रामम् । आप तथा मे कौमल्या और मुमित्रा मेरे वचनको मुने । राम केन्द्रीक वरस सीता तथा लक्ष्मणको साथ लेकर रावका मरनेक लिए कल हा दण्डकारण्य अले जायेगे ॥ १६ ॥ इसलिय अन्जानकी तरह अप चुपचाप रामका अधिपक करनेके लिए मुमन्त्रक कहकर तब नामयी भेजवाए और समस्त राजाओंको निमन्त्रित कीए ॥ १७ ॥ हे पार्थिव ! श्रीरामके विरुद्ध तथा वहाणक गारसे अप कीष्ट स्वर्ग सिधायन ॥ १८ ॥ बादमें कौमल्या रामके राज्यात्मनको देखेगी और स्वर्गीय विमलमं कैटर आप भगदरिसे वह उरकव देखेगी ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर ! भविष्यकी रक्षा बहुादिकोंके लिए भी दुःखनीय होती है । गुरु वमिप्य यह वचन

कपोलशयः मयाद्रमुर्नानाश्रयनिवासिनः । नगरीं शोभायामासुर्नानाभिन्नपञ्चलोत्तमैः ॥२३॥  
 वनाकाशिकोर्णध्वज हेमदृम्यमनोरमैः । गुम्फास्तारयामास सुमध्रं नृपमणिषम् ॥२४॥  
 यः प्रभाने मध्यकाले कन्यकाः स्वर्णभूषितः । निष्ठन्तु पौड्य गताः स्वर्णगन्तदिभूषिताः ॥२५॥  
 चतुर्दन्तः मयाशानु ऐरणनकुलोद्भवः । नानार्ताधोदकैः पूर्णाः स्वर्णहस्ताः सहस्रशः ॥२६॥  
 स्थाप्यतां तत्र वैद्ययज्ञमणिं क्रीडित्वा नव । श्वेतच्छत्रं गन्तव्यं मृत्कामणिगिराजितम् ॥२७॥  
 दिव्यमाल्यानि वस्त्रादिदिव्याभूषणानि च । मूनयः संस्कृताभ्यश्च निष्ठन्तु कुक्षपाणयः ॥२८॥  
 नर्तकशो चारुमन्याश्च गायका वैदिकान्मथा । नातावादिप्रदुःखा शङ्कयन्तु नृपांगणे ॥२९॥  
 हस्तयज्ञयज्ञादाता सहस्रिन्निष्ठन्तु मायुधाः । नगरे गानि निष्ठन्ति देवनायननानि च ॥३०॥  
 तेषु प्रवर्तन्तां पुत्रा नानाचरित्रभिगाहताः । राजानः शीघ्रमापान्तु नानोपायनपाणयः ॥३१॥  
 ह्यादिदप रमिष्ठन्तु रथेन स्युनन्दनम् । गन्वा मम्मन्तिनस्नेन सर्वं हृषं न्यवेदयन् ॥३२॥  
 निषितवावरुक् गाय शो गमिगसि ददकात् । चतुर्दश ममाभ्यश्च म्पिन्वा महन्व गवणम् ॥३३॥  
 वधुना मोक्षया सार्वं नतो गजपं कमिग्यामि । लौकिको ज्ञानमादन्व स्त्रीकुरुष्व पितुर्वचः ॥३४॥  
 अथ त्व सीतया सार्यमूपवामं यथाविधि । कृत्वा युविर्भूमिश्चारी भव राम त्रिनेद्रियः ॥३५॥  
 इत्युक्त्वा रथमकुरु दृष्ट्वा राम मन्त्रक्षणम् । जानकीं चापि य गुरुर्षयी गजगृहं पुनः ॥३६॥  
 कीमल्या च सुमित्रा च रामगज्याभिषेचनम् । मृगार्शपं धुन्वा श्रागुगोरास्वान्कन्दममन्त्रिते ॥३७॥  
 यस्तुः पूजनं देव्याभ्यर्चिध्नोपशममृष्टे । इतिदानं शान्तिपाठमृनिर्दममन्त्रिते ॥३८॥  
 अथापगच्छे सौभर्या दास्यां पुत्रीं तु संयता । शोभितां नमरीं दृष्ट्वा पृष्ट्वा दृष्ट्वा यथि स्मिताम् ॥३९॥

मूनकर राजा दण्डवत् सभाय गये ॥ २३ ॥ वडा मन्त्राच रामक राजाभितकक वास्ते सब सामग्री बुटचार्य  
 और प्रमन्नतापूर्वक दूताया भेजकर राजाआका रत्नवाण ॥ २४ ॥ उस समय आभ्यर्चने गृहवाले अनेक  
 मन्त्राभर भी वही आ पत्र व दूताने चित्र कीचित्र छत्रा, पताका और तारगोन नगरीको मजाग ॥ २५ ॥ राजान  
 ॥ नगर उत्तर तथा मन्त्रोदर मन्त्रक बल्लभ मन्त्रादिजि जिने गये । राम देखि न मन्त्रो मन्त्राचको आका रं कि  
 च सबर ही सुनकर बल्लभमन्त्रो अनेकृत कल्याण और चार चार गलाकल लेगवत कुन्तु अन्तर मन्त्र तथा  
 ॥ २६ ॥ अदिम अन्त्रुन सोलह हर्ष मन्त्रबल्लभ उपाधिय रहन अहिर्ष वही अनेक लीचोंके जन्तुं दाम्प्युज  
 मन्त्राच ॥ २७-२८ ॥ तन या नौ बंधुवर, मन्त्री और मन्त्रागम सुशोभित रत्नजटित दण्डवाले छेत लच  
 सन्द, सुन्दर मन्त्रा, सुन्दर बन्ध तथा दिव्य आभूषण भी लैगव ॥ २९ ॥ राजान आदि मन्त्रागोले मन्त्रुत  
 न नजन हाथसे वृत्ता म्पि दृष्ट लैगव ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ननकिच केवारी, गायक, वैद्योष करमन्त्राल विद तथा  
 मन्त्र प्रकार राजा बहानमे कुगर शिल्पा मिलकर राजमन्त्रक सामन माना-बजाना प्रारम्भ कर ई ॥ ३२ ॥  
 राजा, राजे, रथ और दण्ड मन्त्रा बल्लभ चारण काके वाहर लई रहे । नगरन वही वही देवाम्प्य है, वही-वही  
 मन्त्रक सामाग्योले प्रेमपूर्वक पूजा का भाव और सब राज मन्त्र लेनेकर उपस्थित हो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इन  
 मन्त्रकर वामिन् रथपर सवार हुए और स्युनन्दन रामक पास गये । रामन उनको आदरपूर्वक आमन स्थित  
 कर बुनि ले उन्हें सब मन्त्राल मन्त्राच दृष्ट करा — ॥ ३५ ॥ हे राम । तुम निर्मितनाम हो । बल्ल तुम दण्डबल्लक  
 चले आओगे । वही चीन्हा सब रत्नकर गलाको सारगे । उनके बल्ल भई मन्त्रमन्त्र तथा मीनाके साथ  
 मन्त्रतापूर्वक राज्य करण । मन्त्राल मन्त्राचवहार निधानक लिए पिनाक बचनको मान ओ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥  
 मन्त्र तुम मीनाक साथ पवित्रतापूर्वक विधिवत् बहाकर रह और पृथ्वीपर गयन करो ॥ ३८ ॥ ऐसा कह  
 और राम-दण्ड तथा कात से मिलकर गुणदेव रथपर सवार हुए और वहीसे राजमन्त्रको बल्ल दिये ॥ ३९ ॥  
 मन्त्राल कोसल्या और सुमित्रा गुरुदत्तक मुनसे रामक रज्याभिषेकको मन्त्रा मुनकर भी स्नेहवत् विधियोंको  
 मन्त्राच दृष्टाये मुनियोंको साथ मन्त्र पूजाहथी तथा शान्तिपाठसे देवीका पूजन करने मन्त्री ॥ ४० ॥ ४१ ॥  
 राजाके समय छत्रपर लड़ी दासीपुत्री संवरने नगरको सुशोभित देखकर रामकी एक बुद्धियासे इसका

भुन्वा भ्रामगगज्याधौ ययौ केकेन कैकयम् मयै वृत्तं निवेद्याय तूष्णीमामीत्तदा क्षणम् ॥४०॥  
 न च द्रुत्वा कैकयी चापि नय्यै भूषणमययन । तन्मिन्नन्तरे वाण्या देववाक्यान्नुमोदिता ॥४१॥  
 नृप इष्टा तु कैकेयी भन्मयैन्याह तत्र पुनः मृदं कथं न च नृप इमि हतभाभ्याऽमि देवयदम् ॥४२॥  
 गमे गजपदं रामे कीमन्यापात्र कैकयि दार्या भवेत्पामि न च हि अतो मद्रचनं कुरु ॥४३॥  
 वरणं न्यामभूतेन गजय श्रीभगनाय हि । नृपं प्रार्थय गमस्य द्वितीयेन वरेण च ॥४४॥  
 दंडकारण्यगमनं चतुर्दश समाः पदा । ओषागारं प्रविश्याद्य कुरुष्व यन्मयेस्मिन् ॥४५॥  
 नन्मयैरेक स्मदित मन्त्रा सापि नयाऽकरोन् । मोहिता साऽविवेकेन श्रीगणधमुरेच्छया ॥४६॥  
 ततो निशया रक्षा सा ज्ञाना कोपशृङ्खलता गन्वा तत्र नृपः शीघ्रं ददर्श कैकयीं तदा ॥४७॥  
 विर्कायमाणकेशां तां त्यक्त्वाऽन्तकामदनाम् । भूमौ अगता तां दृष्ट्वा ज्ञान्वा तस्या मनोमनम् ॥४८॥  
 रामाय दंडकारण्यं यौवराज्यं मुताय च वराभ्यां याचिन ज्ञान्वा हेन्युक्त्वा मूर्च्छितोऽभवत् ॥४९॥  
 पदाने तन्मुमंत्रेण वृत्तं द्रुत्वा नृप ययौ । कैकेयी मदिता पृष्ट्वा मुमंत्रं प्राह सा तदा ॥५०॥  
 श्रवानयस्य भ्रामग इष्टं न वाञ्छिते नृपः सोऽप्याह रामं नृपानेमपृष्ट्वा नानयाम्यहम् ॥५१॥  
 तदा धनैर्जुगः प्राह शीघ्रपानय गधवम् । मुमंत्रोऽप्यनयामाम गधवै पार्थिवारुया ॥५२॥  
 तता तपे नृप गन्वा भुन्वा कैकेयजागिरा । आन्मार्तं दंडके वाम वन्दानं पितुः पुत्र ॥५३॥  
 नयेऽपर्गाचकारुषु नृपं वचनमवर्षात् । मा ते शोकोऽस्तु हे नान क्वं गन्त्वामि दंडकान् ॥५४॥  
 नृपमवचन भुत्वा हाहेन्युक्त्वा नृपेऽब्रवीन् । मा विहाय कर्षं धारं विपिनं सन्तुमिच्छामि ॥५५॥  
 तस्य तद्वचन भुत्वा मान्वयामात्र गधवः । ब्रह्म प्रतिज्ञा निस्तीर्णं शीघ्रं यास्यामि ते पुत्रम् ॥५६॥

+ राम पूछा ॥ ३९ ॥ उसके पुत्रन रामन राजग भित्तिका नाने सुनकर वह भी झ पंक्त्याक पास गयी और सत्र  
 ५० ॥ न सुनकर सत्र भर चुनकर स्वयं गये ॥ ४० ॥ इसका ज्ञान सुनकर कैशान उसका आना एक आशु-  
 ल्य न दिया । इतनेव देवताओंका प्र ग तथा मानवतास साहित्य मंदरा कैकेयीका प्रमृष्ट धरकर उस इरातो  
 दुई कहने लगी । अर मृदु गगन गज्यामियेकरा समानात्र सुनकर तू प्रसन्न क्यों हुई ? ऐसा ज्ञात होता है  
 कि तूरा भाव तुझन मरु गये है । यदि सानका श्राव्य मरु गया तो आ कैकेयी । तूरा कैकेयीका दाता  
 बनका पत्नी । इस कारण ज से बड़ी, वैसा कर ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अपने पति राजा दशरथक पास घातक रक्षक दो  
 ब्रामगमे एकक द्व ग नु भवतन लिए गये की और दूसरे वरक द्व ग चौदह बरक लिए रामका पंडित दण्डका  
 रणमन भी तू अभा नापभवतस चली जा ॥ ४३-४४ ॥ उसने भी आनमचन्द्र तथा देवताओंका दृष्टसे  
 और अविवेक कारण मोहित मन्त्राह उस कथनका मयता हितकारक सपन्नकर बैरा हो विचा ॥ ४५ ॥  
 मायराजक समय जब राजकी ज्ञात हुआ कि कैकेयी कावमचनस है, तब व उनर प स गये और दया कि  
 कैकेयी मित्रक ज्ञात प्राप्त, भूषण तथा वरणाका कवकर धर्मीपर एही हुई है । पश्चात जब राजा दशरथने  
 उसने अभिप्रायका ज्ञात तो उसके कथनानुसार दो बगीचस एक द्वारा रामका दण्डकारण्यवास और  
 दूसरक द्वारा भरतकी यौवराज्य दनका काल स्वाकार करके पृष्टि हो गये ॥ ४७-४९ ॥ प्रातः काल मंत्रो मुमंत्र  
 इस वृत्तान्तकी सुनकर राजाके पास गये । मुमंत्रके पृष्ठोपर कैकेयान कहा ॥ ५० ॥ राजा रामनो दनका  
 चाहते है । याथा, उन्हें यही दुला ल्यो । मुमंत्रने कहा कि राजासे बिना पड़े कै रामका यही नहीं ले आ  
 सकता ॥ ५१ ॥ तब राजात धर्मके कता कि 'रामको शांति न आओ ।' मुमंत्र भी महागजकी आज्ञास शीघ्र  
 रामको ले आये ॥ ५२ ॥ तमने राजाके पास आकर कैकेयीकी वाणीमे अपने दण्डकारण्यवास तथा पिताका  
 पूर्वकालमे बरवान वरका हाल सुना तो 'सभास्तु' कहकर स्वीकार किया । उन्होंने राजासे कहा--हे तात !  
 आप शोक न करें, मैं अभी दण्डकारण्य जाता हूँ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ रामका वचनसुनकर राजा दशरथ कहने लगे-  
 हे राम ! तुमको छोड़कर तुम बनये कैसे जाओगे ? ॥ ५५ ॥ पिताके इस कला वचनकी सुनकर राम उन्हें

इदानीं गंतुमिच्छामि ज्येष्ठे मातुश्च हृच्छयः । मातरं च समाश्रित्य सानुनीय च जानकीम् ॥५७॥  
 अतान्य पादौ हंदिन्वा नव यास्य सुखं वनम् । हन्युक्त्वा तौ परिक्रम्य मातरं द्रष्टुमाययी ॥५८॥  
 नत्वा स्वमातरं रामः समाश्रित्य पुनः पुनः । नत्वा प्रदक्षिणाः कृत्वा तामार्धं च ययौ गृहम् ॥५९॥  
 सर्वं वृत्तं तु सीतां च कथयामास गणयः । सीतया लक्ष्मणेनापि वने गतुं पुनः पुनः ॥६०॥  
 प्रार्थितश्च तथेन्मुक्त्वा न्वययामास गणयः । सर्वस्वं ब्रह्मणान्दत्त्वा सीतयाऽग्निममन्वितम् ॥६१॥  
 पद्भ्यामेव शनैर्भ्रात्र ययौ रामो नृपान्निकम् । गच्छतं पथि आगम्य पद्भ्यां दृष्ट्वा पूर्णकम् ॥६२॥  
 शम्परेण ते वृत्तं श्रुत्वा व्याकुलमानसाः । चतुर्वक्ष्यामि त्वामदेव, कथयामास सादरात् ॥६३॥  
 नागदागमनं रामपतिज्ञौ शरणाय च । वृषादिकं सविष्कारं विष्णु मनुजरूपिणम् ॥६४॥  
 सीताः श्रुत्वा मत्कलेशा ह्यभूवन्पथि संस्थिताः । ननौ नत्वा नृप रामः कंकरी वाक्यमब्रवीत् ॥६५॥  
 अम्यामतोऽहं शिपिनं गतुम ज्ञां हृदय म म् । तवः सा बलकलादीनि दर्शयामादिकांश्च ॥६६॥  
 गमन्तान् परिधायाथ स्वयं मानामश्लेषयन् । तद्दृष्ट्वा कंकरीं प्राह गुरुः कोपेन मन्मथयन् ॥६७॥  
 अहं शिपिनि दुर्वृत्ते राम एव त्वया वृत्तः । वनवामास दृष्टे त्व सीतायै किं प्रदाम्यामि ॥६८॥  
 हन्युक्त्वा दिव्यरश्माणि सीताय न गुरुर्दयी । राज्ञा दशरथोऽप्यहं मुमत्र स्थमावय ॥६९॥  
 गन्धमारुह्य गच्छन्तु वने वनचरप्रियाः । रामः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरौ स्थमरुहन् ॥७०॥  
 सीतया लक्ष्मणेनाथ चोदयामास मागथिम् । कौमन्यां च मुमित्रां च तातमाश्रित्य वै पुनः ॥७१॥  
 समाश्रित्य जनान् रामश्चममानीशमाययौ । मादवाये मिते पते पंचम्यां परमेऽहनि ॥७२॥  
 प्राप्य साष्टादशं वर्षं गणवाय महात्मने । आयातद्वनप्रयाणं हि स्वपुण्याश्रममावृतम् ॥७३॥

मानवता देने का बल कि ये आपका इतिहास पूरा करके जाय गुरुंष लोड जाऊगा ॥ ५६ ॥ परन्तु इस समय तो मैं जाना ही चाहता हूँ । जिससे कि सीता कंकरीयों के हृदयका शाक दूर हो सके । माताको आश्वसन दे तथा मानवा समझावर मे आ रहा हूँ । तब आपका चरणोंकी प्रणाम करके मुखसे वनको प्रधान कहूँगा । यह कहकर राम उन दोनोंकी परिक्रमा करके स्थान करनेके लिये सीता कीगन्यांक पास गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ मानवा समझावर कामका बाद वाग्यशर समझा तथा प्रदक्षिणा करके उनको आज्ञा न अपने महत्त्वमें गये ॥ ५९ ॥ वहाँ ज कर आगमन सीताको मन्मथ वृत्तान्त कह सुनाया । जब सीता और लक्ष्मण वाग्यशर अपने माद वनय न जलतकी प्रायश की, तब 'अवस्था' कह तथा शीघ्र काश्याको सर्वस्व दान इकर सीता तथा शिपिनी साथ लेकर माद लक्ष्मणन साथ बैसत ही राजाके पास आये । गमनेमे पुरवानीवन रामकी पैदल आने दख तथा एक दुसरेमें सब वृत्तान्त जानकर तब चिन्ता पुर हूँ । तब मादव मुजिने प्रेमसे उन लोगोका नागदका आगमन, रामका इतिहास गणनका वच तथा विष्णुका मनुष्यकथ धारण करना यदि वृत्तान्त चिन्तासे कह सुनाया ॥ ६० ६१ ॥ गमनेमे तब चतुर्वक्ष्यामि उनकी यह बात सुनकर मान्त हो गये । गमने राजाके पास जा तथा अहं लक्ष्मण करके कंकरीसि कहा ॥ ६५ ॥ हे मन्मथ मैं वन जानके लिए नकार हा गया हूँ । आप मुत्र आता ह । तब उमने राम सीता तथा लक्ष्मणको पहिनेके स्त्रिय वन्कन रहस्य दिव ॥ ६६ ॥ राम स्वयं अहं पदितकर सीताका वन्कन पहिना लियलाने लगे । यह देखकर मुनि वसिष्ठ कह हुकर कंकरीकी घमकाने हूँ पहने लगे—॥ ६७ ॥ ओ नड ! अरी शिपिनि ! अयि दुवृत्ते ! तूने केवल रामक वनवामका वर मोगा है । तब सीताको पाहेनेके लिय वन्कन कटो देखा है ? ॥ ६८ ॥ यह कहकर सीताके पैर लुके दिव्य कथ दिव्ये । राजा दशरथ व ने—हे मन्मथ । तब ले जाओ । उस स्थपर सवार होकर वनचरोके प्रिय वे सीता वनकी ज पड़े । बादमें गमने माना पितकी प्रदक्षिणा की और माना तथा लक्ष्मणको साथ लेकर स्थपर सवार हुए । तब सादवाका रथ चलानेकी आज्ञा दी । कौमन्या, मुमित्रा, पिता तथा अन्य जनोकी न ड गन लेकर राम बल पड़े और सीता ही तमसा नदीके तीरपर जा पहुँचे । अकारहमे धरोंके माद गुकन वन्कनयश्चमीकी शुभ दिविकी महात्मा रामने अपने नगरसे चलकर तमसाके किनारेकी ओर प्रयाण किया था

इत्याद्या निर्जगद्धृस्नदा नन्मार्गमन्त्रिक्याम् । अमन सुभाषे श्रुतना रामस्य ब्रह्मो वनम् ॥७४॥  
 उपर्वकां निशां तत्र भृगुकेपुर यथा । गुहेन नानिवभाषि तत्र गर्त्रि निनाय सः ॥७५॥  
 गुहानर्तवैरुक्षावैर्यथैव गणयो जटाम् । प्रभने सानयाऽऽह्य नीकापी लम्पणेन सः ॥७६॥  
 प्रययामास मरुत् सुमत्र नगरी प्रति । गुहेन्दं वाहयामास नीकां चञ्चलानिभिस्तदा ॥७७॥  
 गमायध्यगतां गंगां प्रायेयामास जलकीं । देवि रामे नमस्तेऽस्तु शिवृत्ता वत्तकमनः ॥७८॥  
 रामेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजने । सुगमाभोपहारैश्च नानाचक्षिभिर्गहना ॥७९॥  
 ह्युक्त्वा पश्यतु गन्धा गमो गुह नदा । विमर्षविद्या त्वंकां निशां नान्या शनैः शनैः ॥८०॥  
 बाण्डाजाश्रमं गन्वा तस्यां तेनानिमानिधः । तत्रः पयाने यमुना सान्वां गन्वा महाननम् ॥८१॥  
 बल्लर्षकेराश्रम गन्वा तस्यां तेनानिपुत्रिधः । चित्रकूटे लक्ष्मणश्च पण्डिताका मनोमाम् ॥८२॥  
 कृन्वा सांसेमुमां दुर्नेपिं दन्वा गृध्रनमः । तस्यां नम्यां मुन्य प्राया मानया स्वगृहं यथा ॥८३॥  
 गयनामनपाकादिदेककीना प्रयक् पृथक् तत्रामान्यविधाः शालास्मरुवन्निविगर्जितः ॥८४॥  
 ईर्मेलेपेनो दुर्नेपिं मानकलादिभिः । सृतांश्चरणामानिधश्च चक्रन्ते दग्धुहे यथा ॥८५॥  
 एकदा निद्रित राम भानाके सन्निगोक्ष्य च । गन्तः काकम्पदागन्त्य तन्वस्वुडंन चणकृन् ॥८६॥  
 सानांगुणं मृदु रक्तं विददागमिपाजया । निद्रामगमपाद्रुते सानया न निरागिनः ॥८७॥  
 सानांगुणं तु काकेन भिन्नं दृष्ट्वा गृध्रनयः । अभिद्रवन् रक्तस्यर्भापिकान् धुमोच सः ॥८८॥  
 कृताप्यर्गतिनम्याम्रमयाद्रुकांडतोलेके । स्वशरणमागतस्यस्य पुनरागदवाक्यनः ॥८९॥  
 ईषिकाक्षेण काकस्य चिमेद नयन क्षणान् । एव सानाकीनुकाति कुर्वन्तस्यां भूत प्रभुः ॥९०॥

॥ ६९-७६ ॥ इस समय हज़ारों इन्सानों में मायम इतना फैलकर गया कि वन में ही इस समय का अन्तक  
 समय आगुन होना ॥ ७४ ॥ २ वही एक रात्रि निवास करके ३३ हज़ारों गण । तत्र निवास करके हाग  
 मरमानित प्रकर इस समय का वृद्धि विद्या ॥ ७५ ॥ सत्रा रामर निरदक हाग लय दृष्ट वृद्धि के दृष्टि से जट  
 काय । गन्तकर सीता तथा लक्ष्मणक साथ सीते पर गहरा दुःख ॥ ७६ ॥ वहाँ से स्वसहित सुमन्त्रको  
 आँछना लौटा दिया तब निवासगतन मरुत् कान्ते तानिधाने क साथ चित्रकूट नायका लना आगम्य किया  
 ॥ ७७ ॥ सानाकाने दोष घातन जाकर ग हागनी प्रयाना का औं कना । ई ईवि गम । आपका नमस्कार है ।  
 मे राम तथा लक्ष्मणके साथ वनमें सरजन्त नीलकण्ठ आरम त्र ग नडाऽपुनक मम-मदिरा आदिके उपहासों आपकी  
 पना ईर्ष्या ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ इस रात्रि ही तथा वहाँ एक गन्त निवास करके गमने निवासका लौटा दिया और  
 पीरे पीरे च कर आगुन के आगम्य जा पहुँच । वहाँ इतना अगन्त अपिद दृष्टि से गहर सय । सय प्रयानमे  
 यमुनाको पर करके चने वीर महारम । विवन्द । मे स्थित वा-भारिक आश्रम का पहुँच । वहाँ उनसे  
 प्रतिन होकर दृष्ट । चित्रकूट ममन लक्ष्मणके एक सदाहर पण्डिता पुनवायो ॥ ८० ८१ ॥ मुमों के सांसकी  
 ईर्ष्य कर गृध्रनय । मे कृता तथा भारिक साथ मन्त्रजक भरका तरह उसमें रहने लय ॥ ८२ ॥ गयनका  
 वैदनेका, खानिका, जलिका तथा इतना आरिक् स्थान विविध वेलों और चलाओर निमेषण किया गया । वे  
 स्थान इति रम्योक्त लयन थ । ८४ । वहाँ उपज हागनीले बंद मृद फल तथा भूतमाम आगम्य, जैसे अपने  
 मयनमे सुभाषणोंका सत्कार करन से जैसे ही सत्कार करन गम ॥ ८५ ॥ एक समय सीताका गान्धे सिर रख-  
 कर रामका साने देख इन्द्रका पुत्र जयन्त कीजा बनकर वहाँ आया और अपन राम तथा सीतेसे बारम्बार  
 मोताक बादके खाल आँकेका मांस खानकी इच्छाम उस विचारों करने लगा । सीताव एतकी निदा भग हा जात्रके  
 भयसे उसकी नहीं हटाया ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ जागनेके बाद रामने सीताके भगुना कोरु दृष्ट निवारित देखकर  
 रत्त रज्जित सुखवाले प्र गते दृष्टीपर सीकका अग्न हाँडा ॥ ८८ ॥ वहाण्ड मरने उस अग्नके धामे जव किरीने  
 ब्यस्तकी रक्षा नहीं की । तब नारदके कहनेपर वह रामकी शरणमे आया । उस समय क्षणभरमें रामने  
 सीकके अग्नसे अग्नका केवल एक भाँख काइकर इसे जीवनेदान दे दिया । इस प्रकार सबके प्रभु राम विविध

मुमत्रोऽपि पूर्णं गत्वा नृपं हृतं न्यवेदयन् । मोक्षये राजा राघवेति जपन्स्त्वं जीवितं अर्हो ॥९१॥  
 नृपं मृतं गुरुर्ज्ञान्वा तैः श्रोण्या निधाय नमः । पूजानिमगगद्गर्नः कंकेत्याप्तनयानुषी ॥९२॥  
 आनयामास मरुतशुश्रूणी वेगमन्वदा । नातुभावापि वेगन स्त्रीं पूर्णं मन्त्रिवेशनुः ॥९३॥  
 मायावशादितं कृप्य शान्ता विष्कुरुष्य मानसम् । मरुता पितरं बहि ददौ सगुणमकरो ॥९४॥  
 योगिणां मानरस्ताश्च जग्मुर्न म्यायिना दिग्म् । पितुरुक्तकार्यादि कर्म कृत्वा सन्निभम् ॥९५॥  
 संवेगं ताडयामास मातुरग्र पुनः पुनः । प्राधनोऽप्यभिवेकार्थं राज्यमर्ताचकार न ॥९६॥  
 ततो मन्त्रिजनैः साकं मातृभिः पूजामिभिः । परावर्तयितुं रामं ययौ न मरुतस्तदा ॥९७॥  
 गुह्यं न मानिवश्चापि भारद्वाजाधमं ययौ । तपोवलेन भूयर्गं निर्धाय मरुतं मुनिः ॥९८॥  
 ममन्य पूजयामास तं नन्वा भगतोऽपि यः । मुनिमदांशनपथा चित्रकूटेऽग्रजं ययौ ॥९९॥  
 दृष्ट्वा रामं तु शालायां मीडया च पुनः स्थितम् । कन्दा तेन लिङ्गितश्च सर्वं पृथ न्यवेदयत् ॥१००॥  
 रामः भूत्वा मृतं त्रावं मन्वा मदादितं तदाम् । स्नान्या विज्ञाजति कृत्वा ययां शान्तां निजागमरौ १०१॥  
 तनून् प्राधयामास भगतो गुरुणा सह राज्यार्थं गधवश्चारे नेत्युवाच पुनः पुनः । १०२॥  
 प्र सोपवेश्वर तत्र हर्षेण भगवन्मदा । चकार निग्रहं तस्य शान्ता गुरुमचोदयत् ॥१०३॥  
 रामास्तथा गुरुभक्तं 'मरुतं राधयन्मदा । भूभास्वण्याधाय विष्णुः पाक्षत्रपूजयः ॥१०४॥  
 अथ जातार्थेन देवानां वचनाद्धारणदिकान् । हनुं मच्छन्ति रामोऽयं मा त्वं निग्रहमाचर ॥१०५॥  
 ततो शान्ता हरिं रामं भगतो राममब्रवीत् । राज्यार्थं पदके देहि तयाः सेवां क्रोम्यद्दम् ॥१०६॥  
 जगत्कलधारी च वमापि नमगद्गदिः । प्रताप्यो तव राजेन्द्र त्रयाणि च चतुरस्र ॥१०७॥

चान्यथ करने लग्यो ॥ ९१॥ उपर मुमन्त्रन अनपसुन्म जाकर राजा उवाचयता सब वृत्तान्त सुनाया । राजाने  
 र्मः हा राघव हा राघव ' करने-करने प्राण छुड़ दिये ॥ ९२॥ तब गुरु वसिः ने मृत राजा के परीरका तलक  
 नाकमें रखकर दिया और गुणजित्क नामक टिक दानो पुनः धरन प्रयुक्तका दनाक द्वारा दूरस्त बुझाया । वे  
 शान्ता शान्त भगवत नगरमें जाये तथा मानक गुरुवका मुनकर उम विस्वात्मन लगे । भरतन मित्तक काररका  
 मरुत नदीकी बाग्यामें अतिमस्वार दिया ॥ ९२-९४ ॥ चार गुरुयोकी माताएं स्वर्गमें साध स्वर्गलोक  
 का नष्टी गयी । भरतने शिवाकी उत्तरदिशाच विस्तार महिष की ॥ ९५ ॥ नदन-नर भरत जग्मुन्मन माताके  
 मानन मयराकी बाग्यवार प दा और माताक बहुत कटापर भी भरतने राज्य रही स्वीकार किया ॥ ९६ ॥  
 पद नृ वे मन्त्रिया, माताओ तथा दूरवापि तके साथ रामकी लौटा जानेके हेतु बनकी गये ॥ ९७ ॥ १००॥ भरत  
 निग्रहगज द्वारा मन्त्रानित इका भारद्वाजक आश्रमन पधार । मुनि अपन तपावलिसे पृथ्वीपर स्वर्गकी रचना  
 करने सेना महि भरतका सरदार किया । तदगन्तर भगवत उसको प्रणाम करके उनके वतलाये हुए रास्तसे  
 चित्रकूटमें अपने बड़े भाई रामके पास गये ॥ ९८ ॥ १०१ ॥ पदशालमें सीता तथा लक्ष्मण सहित रामका देखकर  
 भरतने उन्हें प्रणाम किया तदनन्तर रामने आनिहित हुआ उन्होंने सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया ॥ १००॥  
 शिवाकी कृपु मुनकर राम मन्दविला नदीपर गये । वही स्नान करके विलाज्वात दी और भरतपर  
 मित्त अपन पणशालामें लाट आय १०१ ॥ गुरु वसिष्ठकी साथ लेकर भरतने रामसे राज्य स्वीकार करने-  
 का लिय वाग्यवार प्रार्थना की । तिसपर भी राम उसका बार-बार अस्वीकार ही करते गये ॥ १०२॥ तब भरत  
 कृष्णक आसनपर बैठकर मनन ( उपवास ) करने लग । उनकी कृपा तथा अहन्नीय देखकर रामने गुरु  
 वसिष्ठसे भरतकी सम्झनाके लिय कहा ॥ १०३ ॥ रामकी आज्ञासे गुह्य भरतका सम्झाने हुए कहा कि ये  
 विष्णुस्वरूप पृथुलम राम भूधार हृष्ट करनेके लिये इस पृथ्वीपर अवतरे हैं । ये दत्तात्रेयक जनुरोधसे  
 गवण आदिनी मानने जा रहे हैं । इस कारण तुम हठ मन करो ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ तब भरत रामसे साक्षत  
 स्वर जावकर उनसे बोले-हे राम ' राजकार्य करनेके लिए आप अपनी सदाई दे दें । जटावत्कलधारी  
 वे उनकी निस्व सेवा पूजा करता हुआ स्वर्गके जाहू रहूँगा । पश्यु हे राजेन्द्र । यदि कर

कृत्वा चतुर्दशे वर्षे पूर्णे गुह्ये रवी त्वहम् । प्रवेक्ष्याम्यनलं ताम्रं सन्यमेतद्भुजो मम ॥१०८॥  
 तप्तस्य वचने भुक्त्वा तथेभ्युक्त्वा रघून्ममः । राज्ञार्यं स्वीयपदयोः पादुके रत्नभूषिते ॥१०९॥  
 बद्धौ रामस्तदा हर्म्ये तनस्तं स व्यमर्जयन् । गृहीत्वा पादुके दिव्ये मरनो रत्नभूषिते ॥११०॥  
 मस्तकोपरि ते वदुष्व कृतकृत्यममन्यत । तनो नत्वा रघुश्रेष्ठ परिक्रम्य पुनः पुनः ॥१११॥  
 सैन्येन मातुमिः शीघ्रं राममामन्त्र्य सो ययौ । सप्रार्थयन्कंक्यां वा रामचन्द्रं पुनः पुनः ॥११२॥  
 मयाऽपराधितं ताम्रं तन्संवर्ष्यं रघून्मम । ताम्राह रामचन्द्रोऽपि न त्वया मेऽपराधितम् ॥११३॥  
 मच्छदान्मथराज्याश्च वाण्या मोहितातदा । सुप्तं राज्ञश्च स्वपुत्रीं न क्रोधोऽस्ति मम त्वयि ॥११४॥  
 इत्युक्तं रामचन्द्रेण भरतेन न्यवर्तत । भरतः पूर्वमार्गेण ययौ स्वनगरीं मुदा ॥११५॥  
 सर्वान् स्थाप्य नगर्यां तु नदिग्राममकल्पयन् । तस्यैव स भरतस्तत्र स्थाप्य सिंहासनोपरि ॥११६॥  
 रामस्य पादुके दिव्ये फलमूलाग्रनः स्वयम् । राजकायाणि भवाणि यावन्ति पृथिवीपतेः ॥११७॥  
 तानि पादुकयोः सम्यङ्निवेदयन्ति राघवः । गणपन्दिबमान्येव रामाममनकाक्षया ॥११८॥  
 स्थितो रामार्पितमनाः माक्षारक्षमुनिर्यथा रामोऽपि चित्रकूटादौ नमन्मुनिभिर्गदतः ॥११९॥  
 चकार मीनया क्रीडां विपिने रम्यपर्वते । मनःशिलासुनिर्मुक्तं वीनाया मालकंजकोत् ॥१२०॥  
 गन्धयोश्चित्रवल्लीः स चकार निवहन्ततः । पुष्पाकण्डर्पध्वजः कोमलैः कुसुमदिभिः ॥१२१॥  
 एवं क्रीडन्मुखं रामस्तस्यैव पत्न्यान्नुजेन च । नागराम्नां तदा जायते रामदर्शनलालसाः ॥१२२॥  
 दृष्ट्वा सज्जनमहार्घं रामस्तन्याज्ज तं गिरिम् । अन्वगन्मनोतया स्रात्रा क्षत्रेराश्रममुत्तमम् ॥१२३॥  
 नत्वाऽत्रिंशानितस्मेन तस्यैव तत्र दिनप्रथम् । गृहस्थामनुभूया तां सीताऽत्रर्वचनाचदा ॥१२४॥

निश्चयन ममधरम बहुतों नीटगं ता मे चोदह वय समाप्तक दिन सूर्यास्तक समय अनिम प्रवेश कर जाऊंगा । हे राम ! मेरी इस प्रतिज्ञा का अर्थ सत्य समझे ॥ १०६-१०८ ॥ उनके इस वचनका सुनकर रघून्मम रामने 'तथाग्रतु' कहा और राज्यक लिए अपने पादुके रत्नभूषित पादुकाएँ लेकर उन्हें बिछा दिया । भरतने उन रत्नभूषित पादुकाओंका लेकर माथे चढ़वा और अपने आपका कुन्तुष्य सम्पत्ता । पश्चात् रघुश्रेष्ठ रामको बारम्बार प्रणाम करके परिक्रमा की और उनका आता लेकर भारत माला और सेनाके साथ तुरन्त अयोध्याको ओर चल दिगे । उस समय कैकयी पुनः पुनः रामसे प्रार्थना करने लगी—॥ १०९-११२ ॥ हे राम ! हे पुत्र्योत्तम ! मेरा जो अपराध किया है, उसे क्षमा कर दो । रामने कहा—माताजी ! तुम्हारा कोई अपराध नहीं है ॥ ११३ ॥ परी इच्छासे ही सरस्वतान मेघराके वाक्यसे तुम्हको मर्झित कर दिया था । हे अम्ब ! अब तुम शुभपूर्वक अयोध्या जानो । मुझ तुमपर कुछ भी काय नहीं है ॥ ११४ ॥ ऐसा कहनेके बाद कैकयी रामके कथनानुसार भरतके साथ नगरका लौटी । भरत भी सत्य जिस मागसे आये थे, उसी मार्गसे अपनी नगरीको लौट गये ॥ ११५ ॥ वहाँ जा तथा सबका नगरमें पहुँचाकर उन्होंने नन्दोपास वसाया । वहाँ भरत सिंहसनपर रामको दिव्य सह्याङ्गे रम्य तथा फलमूल आकर रहने लगे । राज्यक जो-जो काम आते थे उन सबको भरत-जी सह्याङ्गेके सामने लाकर प्रतिदिन निवेदन कर दिया करते थे । इस प्रकार रामसे मन लगाकर रात्रि-दिवसको गिनप हुए भरत साक्षात् ब्रह्मभूतकी भाँति समय व्यतीत करने लगे । उसपर राघव भी पुत्रियोंसे सत्कार प्राप्त करके सानन्द चित्रकूट पर्वतपर रहने लगे ॥ ११६-११८ ॥ उस पवित्र लया मनोहर वनमें राम सीताके साथ क्रीडा करते थे । मैतिलिकी सुन्दर गिलापर चन्दनादि विसरकर राम सीताके मस्तकपर तिलककी रचना करते थे ॥ ११९॥ अपने कोमल हाथोंसे सीताके कोमल गालपर चित्रावलीका निर्माण करते थे वृक्षोंके कोमल-कोमल लाल फलों और अनक प्रकारके फूलोंसे सीताको सजाने थे ॥ १२० ॥ इस प्रकार क्रीडा करते हुए राम अपनी आशुप्यारी पत्नी तथा अनुज लक्ष्मणके साथ सुखपूर्वक रहते थे । वहाँ अनेक नागरिक रामके दर्शनकी अभिलाषासे सदा उनके पास आते रहते थे ॥ १२१ ॥ इस प्रकार लोगोंका आवागमन देखकर रामने उस पर्वतको छोड़ दिया और पाई अश्वमेध तथा सीताको लेकर अश्वमेधके उत्तम आश्रमकी ओर चल



नत्वा तथाऽऽलिङ्गिता सा तदंके मकुपाविशत् । अनुसूया तदा सीता पूजयामास मादरम् ॥१२५॥  
 दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा । दृष्ट्वा द्वे ददौ तस्यै निर्मिते मक्तिमंयुता ॥१२६॥  
 अंगरागं च सीतार्यं ददावन्नेभ्यः सा प्रिया न त्यज्यतेऽङ्गगोभा त्व कदापि जनकात्मजे ॥१२७॥  
 शान्तिव्रत्यं पुष्पकृत्यं राममन्वेहि जानकि कुशली मयको धातु न्यया आत्रा पुनर्गृहम् ॥१२८॥  
 भोजयित्वा यथाल्पमायं रामं सीताममन्वितम् । अविर्विमर्जयामास रामो नत्वा ययौ वनम् ॥१२९॥  
 एवं वर्षमतिक्रांतं, रामस्य गिरिकामिनः । यथासुखं लक्ष्मणेन जानक्या सहितस्य च ॥१३०॥  
 एवं गिराद्रजेऽयोध्यापुर्यां रामेण यत्कृतम् । चरित्रं तन्मया किञ्चिद्वदन्ने विनिवेदितम् ॥१३१॥

इति धोषतकोटिशामनरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

अयोध्याचरित्रे दण्डकवनप्रवेशो नाम अष्टः सर्गः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

( रामके द्वारा विराध और खर-दूषणका वध )

श्रीशिव उवाच

अथ रामः सीतया तु लक्ष्मणेन समन्वितः । ययौ स दंडकारण्यं मज्जं कृत्वा मनद्वजुः ॥ १ ॥  
 अत्र ययौ स्वयं रामस्तनुयुः जानका ययौ । तस्याः पृष्ठं स सीतारिष्यया पृथक्परासनः ॥ २ ॥  
 वने दृष्ट्वाऽथ कासारं स्नान्वा पीत्वा जलं मुखम् । भुक्त्वा फलानि पक्वानि तस्थुस्तत्र क्षणं त्रयः ॥ ३ ॥  
 एतस्मिन्नतरे तत्र विराध नाम राक्षसम् । तं च दृष्ट्वा तयां च महामत्स्यं भयानकम् ॥ ४ ॥  
 करालदंष्ट्रावदनं दापयत स्वर्गावनतः । कामामव्यस्तशूलप्रश्रवितानंकमानुषम् ॥ ५ ॥  
 मक्षयत गज व्याघ्रं महिषं वनगोचरम् । उपरापितं धनुर्व्या रामो लक्ष्मणमवर्षीत् ॥ ६ ॥

दिय ॥ १२३ ॥ अत्रि ऋषिका नमस्कार करनेके बाद वनस सम्मानित हुकर व वही तीन दिन ठहरा । अत्रिके कहनसे सीता कुट म स्थित मनसूयाक पास गयी ॥ १२४ ॥ नमस्कार करनेपर उन्होंने सीताका आलिङ्गन किया और सीता उनके गौरम बँड गयी । पश्चात् मनसूयान उनका आदर-सत्कार करके पूजन किया ॥ १२५ ॥ तदनन्तर विश्वकर्माके बनाय दो दिव्य कुण्डल और दो स्वच्छ मूषम वस्त्र प्रेम तथा भान्तपूर्वक सीताको दिये ॥ १२६ ॥ अत्रिका प्रिया मनसूयाने सीताका महाभर आदि रत्न भी अङ्गाम लगानेके लिए दिये और कहा— हे जनकात्मजे । यह रत्न तुम्हारे अङ्गावरण कभी नहीं छोड़ेगा ॥ १२७ ॥ हे जानकी ! पतिव्रत धर्मकी निभाती हुई तुम रामको अनुगामीनी बना । यथासमय राम तुम्हारे तथा भाई लक्ष्मणक साथ सकुण्ड पर लौट जायेंगे ॥ १२८ ॥ तब अत्रिन सीता सहित रामकी यशोवित भोजन कराकर विदा किया । राम भा नमस्कार करके चले दिये ॥ १२९ ॥ इस तरह रामका सीता तथा भाईके सहित मुखपूर्वक पर्वतोपर निवास करते हुए एक वर्ष बीत गया ॥ १३० ॥ हे गिरिन्द्रज ! अयोध्यापुरीमें रामन जा काम किया था, वह मय मैंने तुम्हारे सामने कृत मूनाया ॥ १३१ ॥ इति धोषतकोटिशामनरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे अयोध्याचरित्रे २० रामायणाण्डेयकृतं अयोध्यामायाटाकाया दण्डकवनप्रवेशो नाम अष्टः सर्गः ॥ ६ ॥

शिवजी बोल—हे गिरज ! इसक बाद राम बड़ भारी सज्जकृत धनुषको हाथमें लेकर सीता तथा लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें गये ॥ १ ॥ भाई भागे स्वयं राम, पीछे सीता और उनके पीछे हाथमें धनुष धारण करके लक्ष्मण चले ॥ २ ॥ वनमें एक सरोवर देखा तो मुखपूर्वक स्नान करके जल पिया और पके कन्का खाकर अंगवर लीनाम वहाँ विभ्राम किया ॥ ३ ॥ इतनहीमें उन्होंने अपनी ओर आते हुए बड़े घमानक विराध नामके राक्षसको देखा ॥ ४ ॥ वह अपने बिकराल दंतवने मुखकी फँस तथा अमानक गर्जन करता हुआ सब लोगोंको डराने लगा । उसने अपने भालेकी नोकमें दीधकर बहुतसे मनुष्योंको घारण कर रक्खा था । वह वनचर व्याघ्र, हाथी और महिष आदिको भी मार-मारकर जा रहा था । यह देख राम

रश्मि त्वं जानकीमत्र मंहनिष्यामि राक्षसम् । म हू दृष्ट्वा रमानाथ लक्ष्मण जानकीं तदा ॥७॥  
 कीं युगमिति ते तौ ब्रूह ततो रामस्य मन्त्रशतान् । नामकर्म निरु मन्त्रं कैकेयपात्रे च पन्थनम् ॥८॥  
 नद्रामवचन श्रुत्वा विहस्य राक्षसाऽब्रुवात् । मां जानामि त्वं राम विराधं लोकत्रिभुवनम् ॥९॥  
 मङ्गलान्मुनयः सर्वे त्यक्त्वा वनमिति मेवताः । यदि चित्ते तु भिज्जास्मिन् त्यक्त्वा सीता निरयुधौ १०॥  
 पलायितां न चेच्छीघ्र मथर्थाणि पृथग्विभू । इत्युक्त्वा राक्षसः सीतामात्रं तु मभिदूतुचे ॥११॥  
 रामश्चिच्छेद तच्छीघ्र शरेण प्रहसन्निव । ततः क्रोधितराताम्ना व्यादाय विकटं मुखम् ॥१२॥  
 राममस्य द्रवद्रामश्चिच्छेद पवित्राक्षतः । पदद्वयं तदा मय इवाभ्येन यया पुनः ॥१३॥  
 उत्तोर्यचन्द्राकारेण निहतो राक्षसेण मः । ततः पाता समालिख्य प्रशशम रघूत्तमम् ॥१४॥  
 देवदुन्दुभ्यां नेदुर्दिवि देवगणमिताः । ननो विगच्छावात् पृथक् विमानगतः ॥१५॥  
 नन्वा राम निजं वृत्तं कथयामास मदम् । दुर्भाग्याऽहं जगन्तु पुन विराधः शुभः ॥१६॥  
 इदानीं मीचितः श्रापान्धया कालांशुगदने । इत्युक्त्वा राक्षसः स्तुतः विमानेन ययौ दिशम् ॥१७॥  
 विराधे स्वर्गते गमो लक्ष्मणेन च मीनया । जगाम शरभगस्य वन सर्वमुखारहम् ॥१८॥  
 शरभगः पतो नन्वा तेन सम्मानितो बहू । तस्यो तत्र निशामेक्षी शरभगो मुनीश्वरः ॥१९॥  
 तस्मै समर्प्य स्यं पुण्यमारुहेह विदि तदा । स्तुत्या तं न विमानेन वेदुण्डं परमं ययौ ॥२०॥  
 ततः शरैः सुतीक्ष्णस्य ययावाधममुत्तमम् । नन्वा तं पुजितस्तेन मुनः सस्यो रघूदहः ॥२१॥  
 एतस्मिन्नतरे तत्र नानाधमविधामिनः । पुनयो राक्षसं द्रष्टुं समाजगम् । महमदाः ॥२२॥  
 सर्वे ते राक्षसं नन्वा स्तुत्वा निन्युनिजं निजम् । आधम सीतया भ्राता चक्रुः पूजां मां वस्तुगम् ॥२३॥

वसुधैव कुटुम्बकम् । रामानुजः । ५ ॥ ६ ॥ हे - रामण ! तुम यहाँ जाकर सीता को रक्षा करो । मैं इस दुष्ट  
 राक्षसको मारूँगा । यह राक्षस समर्पित राम, लक्ष्मण तथा जानकीका दोषकार वाला तुम को मार ही लेगा  
 रामने अपना नाम, नाम तथा कंकरीका कृप्य सब कुछ कह सुनाया ॥ ७ ॥ ८ ॥ राक्षस वचनक सुनकर राक्षस  
 हँसा और कहने लगा-हे राम ! क्या तू लोकविद्यात विराधक नही जानता ? ॥ ९ ॥ परे इस डरसे राक्षस मुनि  
 इस वनका छोड़कर भाग गये हैं । यदि तुम देना जाना चाहते हो तो मात तथा मन्त्रको छोड़कर भाग जाओ ।  
 नही तो तुम जानकी के अधीन जाओ । इतना कहकर वह राक्षस सीताका पकड़ने लडा ॥ १० ॥ ११ ॥  
 तब हँसन हुए रामने उसके दोनों हाथोंका अपने बाणस काट दिए । तब विराध दुष्ट हा तथा विकट मुख  
 फैलाकर रामको ओर दौडा । तब रामने आत बगा दौडकर उसके दोनों पैरोंका भा काट डाला । फिर वह  
 सर्पकी तरह मुसस खानेक लिये प्रस्था ॥ १२ ॥ १३ ॥ तब रामने अपने अस्त्र-शस्त्रोंको व शर वनक निकाली  
 श्री काट डाला और वह मर गया । यह देख साता रामका आलिङ्गन करके उसके प्रशंसा करने लगे ॥ १४ ॥  
 तभी आकाशमें देवताओंके नगाडे बजने लगे । पद्मात् विराधके शरीरमें एक दिव्य पुष्प प्रकट हुआ ॥ १५ ॥ वह  
 रामको प्रणाम करके बड़े आदरसे अपना कहानी सुनाते हुए कहने लगा-पूव समयमें मैं एक सुन्दर विद्याधर  
 था, परन्तु दुतामा अधिन मुझका शपथ दकर इस दुताका प्राप्त करा दिया ॥ १६ ॥ आज बहुत बालक बाद  
 आपने मुझका इस आदर युक्त किया है । यह कह और रामका स्तुति करके वह विमानमें बैठकर स्वर्ग चला  
 गया ॥ १७ ॥ विराधके वन जलेश्वर राम लक्ष्मण तथा सीताके साथ सर्वमुखदायक शरभग मुनिक वनमें  
 पधारे ॥ १८ ॥ उनको सम्भारकर उनके तथा उनसे सम्मानित हुकर वे एक रात्रि वही ठहर । मुनिश्रेष्ठ शरभगने  
 अपना सब पुण्य उनक चरणोंमें समर्पण करके रामके सामने ही विनाश प्रण किया और उनको स्तुति करके  
 विमानपर बैठकर दिव्य रूपसे वेदुण्ड धामको चला गया ॥ १९ ॥ २० ॥ तभीसे रामने मुनीश्वर मुनिके सुन्दर  
 आधमकी आराधना किया । वही पदचतुर रामने पुनिकी नमस्कार किया । पुनिके उनका बहू शक्तिक  
 करके अपने वही ठहराया ॥ २१ ॥ वही आरामके वन-मार्ग चिचित आनमसे हजारों युनि आवाये ॥ २२ ॥  
 व सब सीता तथा लक्ष्मणके सहित रामको नमस्कारकर और उनको स्तुति करके उन्हें अपने-अपने सम्भामन से

एकस्मिन् त्रिगते वा पंच सम दिनानि वा । पञ्चवारं तु मासं वा मार्गशामयथापि वा ॥२४॥  
 त्रिमासान्पचमासं वा पञ्चाष्टकादशायथा । मासं संवत्सरं वापि स्वाश्रमेषु स्मृतम् ॥२५॥  
 सम्प्राप्य चक्रुर्गतिर्व्यपारिकं चोत्तमैवम् । पञ्चदासुतेन धीगन्धैव पूज्य भिमर्जयन् ॥२६॥  
 अमर्त्यं हि गमेन न च रपाणि दृढके । आश्रमेषु मृगीनां च सतिस्त्रीनानि च मृतम् ॥२७॥  
 बहवो निहतास्तत्र राक्षसा अभवा तदा । राक्षसेण सह आत्रा क्रीडताऽऽनिर्जन्यवा ॥२८॥  
 नानाधाराशमपुष्पवनोपवनभूमिषु । नदीजलनटकट्टिदिग्गदिस्थलेष्वपि ॥२९॥  
 जन्वाग्रभाट्टाक्षुदिनानादृक्कलेषु हि । चकार मीनया क्रीडां रामो देव्या यथा शिवः ॥३०॥  
 अप गमो यथा कुम्भसंभवस्यानुजश्रमम् । मुसक्तिः पूजयामास राघवं मीनयान्निभम् ॥३१॥  
 ततः सीतापुतो गमः शनैर्भ्राता मृदान्वितः । भगम्नेरश्रमं प्राप नानावृष्टिगिराजितम् ॥३२॥  
 प्रत्युद्गम्य मृनिधार्पि मृनिभिरदुर्भर्तुनः । राघवं तं समाल्लिख्य स्वाश्रम तेन सो यथा ॥३३॥  
 अथ तं पूजयामास राघवं कुम्भसंभवः । रामोऽपि मानिगम्नेन तस्थौ न च कियदिनम् ॥३४॥  
 ततः स्तुत्वा रामनाथमगस्त्यो मुनिमनयः । ददौ चापं महेन्द्रेण रामार्थं व्यापितं पुनः ॥३५॥  
 अश्रुयौ बाणतूणां तद्गन्धधूपितम् । ततो रामो मुनेर्वंशशर्द्दालभ्या उत्तरे तटे ॥३६॥  
 यथा पंचवटीं गम्यां रामो दृष्ट्वाऽथ पक्षिणम् । जटायुषः तमाकारमरुणात्मजमुत्तमम् ॥३७॥  
 मन्वाप स्मरितुंवापि सभाप्याथ विदेश तम् । तत्र कृत्वा महाशालां यथा पूर्वं कृत्वा गिरिं ॥३८॥  
 मृगमार्गैर्शाल दत्त्वा तस्थौ रामो यथासुखम् । मीनां संरक्षयामास जटायुः पक्षिणम् स्वयम् ॥३९॥  
 राघवस्य पंचवटीयां मीतया क्रीडनः सुखम् । मार्गैर्शालां संरक्षयि स्त्रिकान्तानि पार्वति ॥४०॥  
 चने शूर्पणखापुत्र तपत गांधनामकम् । भवा ददौ दिव्यगन्तु तं मावो न ददर्श सः ॥४१॥  
 तद्गृत्वा लक्ष्मणाः शङ्क वृथान्वह्यार्थंभक्त सः । वृथगुल्मे हतः सांघततो राघवमब्रवीत् ॥४२॥  
 जान और विधिवत् पूजा करने थे ॥ २३ ॥ वे एक ही दिन, पांचवट मास अथवा पूरे वर्ष भर आपन आश्रममें रहकर स्मृतमें रामका प्रतिविम्ब अतिरधिक प्रेम्से आतिथ्य करने और अन्नम पत्नी तथा मातृक सहित रामका पूजन करके शिव करने थे ॥ २४-२५ ॥ इस तरह मुनियों के आश्रमोंमें प्रमत्तकर रामसे मिलने की इच्छा किया ॥ २६ ॥ वहाँ भाई लक्ष्मणके साथ आश्रम करते हुए रामसे बहुतसे राक्षसोंकी मार केली ॥ २७ ॥ रामने अनेक आश्रमोंमें, दामोद पुत्र भर वनामें नदीके जलमें, तानाशोभ पर्वतके शिवद आदि स्थानोंमें, जामुन, आम, केला, दाल आदि अनेक फलों तथा लवङ्गजोमें सीताके साथ शिव-पार्वतीकी तरह क्रीडा की ॥ २८ ॥ २९ ॥ तत्पश्चात् राम कुम्भज श्रृंगके छोट भाई मार्कण्ड मुनिके आश्रमपर गये । उन बुद्धिमान मुनिके भा संन्यासहित रामकी पूजा की ॥ ३१ ॥ वहाँमें पत्थर सीता तथा भाईके साथ राम विविध वृक्षांश मंडित अगस्त्य मुनिके आश्रमपर गये ॥ ३२ ॥ वहाँ मुनि अगस्त्य अन्य मुनियों और ब्रह्मचारियोंके साथ आग आर्य और रामका अतिश्रुत करके आश्रममें ले गये ॥ ३३ ॥ उन्होंने रामकी विविध पूजा की । उनसे पूजित होकर रामने वहाँ कुछ दिन निवास किया ॥ ३४ ॥ मुनिश्रेय भगम्यने रामकी प्रशंसा की और इन्द्रके द्वारा प्रदत्त तथा उसके लिये पहिलेसे ही रक्ता हुआ घनुष रामको दिया ॥ ३५ ॥ अक्षय आगवासे ही तूणीय (तम्बक) तथा तनूजटित सम्पदार दी । पश्चात् रामने मुनिके कथनानुसार गीतमी नदीके उत्तरी किनारेपर स्थित भगवत्क पंचवटीकी ओर प्रस्थान किया । रामनेम उनको पर्वताकार अरुणपुत्र एवं उनके पितृका श्रेष्ठ भिव जटायु नामका पक्षी मिला । उससे सम्भाषण करके वनमें भागे बड़े । चित्रकूटकी नगरी बह्मेश्व भी उन्होंने पणकुटी वनवासी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ मृगोंके मांसकी बलि देकर राम ब्रह्मन्त्रसे रहने लगा । पक्षिराज जटायु तब मीनको रक्षा करने लगा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे पार्वती ! पंचवटीमें रामको सीताके साथ कीडा करते हुए सन्ने तीन वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४० ॥ उस वनमें शूर्पणखाका पुत्र साम्ब एवं करता था । वह देखकर ब्रह्मने एक दिव्य अस्त्र उसे दिया, पर इस बातका साम्बकी पत्नी नहीं लगी ॥ ४१ ॥ जब लक्ष्मणने

प्रायश्चित्तं प्रकथयन् मां वदस्व रूपं त्वं । रामोऽप्याह हतः पावो राक्षसो न मुनिर्हतः ॥४३॥  
 तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणस्तुष्टमात्रमाश्रयितश्चतुर्नभः । तन्ममरणी पुनर्दुःखं राक्षसी कायरूपिणी ॥४४॥  
 विचंचार शूर्पणखा नाम्नी च मर्ववातिनी । एकदा पचवट्यां सा रामं दृष्ट्वाथ रामसी ॥४५॥  
 पुनर्दुःखमवाकांता धृत्वा रूपं मनोहरम् । कापय्यदृष्ट्वा श्रीरामं सानुजं हनुमन्तम् ॥४६॥  
 उवाच मयूरं वाक्यं वञ्जालकास्मंडिता । कौ पुनर्वा का स्त्रियं रम्या किमर्थमागता वनम् ॥४७॥  
 कुतः समागतावत्र वञ्जधुना गच्छतः पुनः । तनस्या वचनं श्रुत्वा रामः सर्वं न्यवेदयन् ॥४८॥  
 ततः सा राघवं प्राह भर मर्ता मम प्रभो । सोऽप्याह दयिता मेऽस्ति बहिस्तिष्ठति लक्ष्मणः ॥४९॥  
 प्रार्थयामास भीमिषि सा तं सोऽप्युत्तर ददौ । अहं दासोऽस्मि रामस्य त्वं तु शर्मा भविष्यसि ॥५०॥  
 ततः क्रोधेन सा सीतां धर्तुं वेगेन दुदुवे । तदा ता राघवः प्राह ममाय शर उत्तमः ॥५१॥  
 चिह्नार्थं लक्ष्मणाय त्वं नीत्वा दर्शय वेगतः । मद्भाणदर्शनाकार्यं सिद्धिं नेष्यति लक्ष्मणः ॥५२॥  
 हन्युक्त्वा राघवो बाणं ददौ नय्यं क्षुमेपथम् । मन्यं मन्वा गमवाइष सा ययौ लक्ष्मणं पुनः ॥५३॥  
 लक्ष्मणाय रामबाणं दर्शयामास राक्षसी । स बुद्ध्वा दृष्ट्वा त्रयोमल संघातं शगयने ॥५४॥  
 हृषीच बाणं वेगेन रामनाम्नाकितं शुभम् । स शगे गथसी गन्वा घ्राणकर्णौष्ठद्वयान् ॥५५॥  
 संछिन्वा रामतूणीर विरेष कणमाश्रयः । घ्राणकर्णौष्ठद्वयान्नातगहिता माश्रयि राक्षसी ॥५६॥  
 हाहनाम्पीति जल्पती ययौ बभूवृषगदिकान् । दृष्ट्वा स्वमां तारुणीं ते विशिरगन्तृषणाः ॥५७॥  
 तन्मुखात्सकलं वृण श्रुत्वा ते क्रोधमंश्रुताः । चतुर्दश महाधौरान् गक्षमान्प्रेषयस्तदा ॥५८॥

उस सखगद्दी नेवर उस घने वनके सब वृक्षों और लताओंको काट डाला । उस वृक्षपुत्रके साथ साम्प्रभो मारा गया । यह देखकर लक्ष्मण रामसे कहने लगे — ॥ ४२ ॥ हे रघुनाथ । आप मुझे प्रत्याश्रयान्निवारक कोई प्रायश्चित्त बतायें । तब रामने कहा - तुमने तो राम नामके राक्षसको मारा है, न कि मुनिको ॥ ४३ ॥ ४४ । यह सुनकर लक्ष्मण प्रसन्न हुए । उधर पचवट्ट रुख घाटण करवाली रामकी माता सुगन्धा राजधानी जव यह सुना तो पुनर्मरणक दुःखसहित होकर बारम्बार गुणका स्मरण करती हुई क्रोधसे सबका मार डालनेकी इच्छासे इधर-उधर विचरने लगी । एक दिन पचवटीन रामकी देखकर वह राजसी पुनर्दुःखसे व्याकुल हो उठी और मनोहर रूप घाटण कर सीता-लक्ष्मण सहित रामकी मारनक लिए उद्यत हो गयी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वह वरष तथा अन्यकारसे मनकर उनक पास जा पहुँचा और इस प्रकार मयूर वचन ब्रह्म सता तुम जानो तथा यह सुन्दरी स्त्री कीत है और यहाँ वनस तुम सब जिस लिए आये हो ? ॥ ४७ ॥ कहते आ रहे हो और अब मात कहें जनका विचार है ? उसक प्रश्न सुनकर रामन अपना सब वस्त्र-वस्त्र कह सुनाया ॥ ४८ ॥ तब वह बोली हे प्रभो कृपा करके आग मेरे पति वन । उनसे रागने कहा कि मेरे पास तो यह मेरा प्रिय पति विद्यमान है । इसलिए तुम बाहर लड़े मेरे छोटे भाई लक्ष्मणके पास जाओ । ४९ । रामके कथनानुसार शूर्पणखाने बाहर जाकर लक्ष्मणसे अपनी इच्छा प्रकट की । लक्ष्मणने कहा कि मैं तो रामका दाम हूँ तुम मेरी स्त्री बनकर क्या करोगी । मेरे साथ तुम्हें भी दानी बनना पड़ेगा । ५० । यह सुनकर शूर्पणखा आरस लौठ हो गयी और सीताको पकड़नेके लिए बड़ वेगसे आगई । रामने उसे रोककर कहा कि यह मेरा सुन्दर बाण वह बाणके लिए ले जाकर लक्ष्मणका दिवाआ । मेरे बाणको देखते ही लक्ष्मण तुम्हारा इच्छा पूरा करेगा । ५१ ॥ ५२ । यह कहकर रामने छुरच अमान तोरण एक बाण उसको दिया । रामकी बातको मत्स्य सम्प्रभ यह राक्षसी बाण लेकर फिर लक्ष्मणके पास गयी ५३ ॥ वहाँ जाकर उसने लक्ष्मणको रामका बाण दे दिया । लक्ष्मण बड़े भाईका अभिप्राय समझ गये और अनुपपन्न सहाकर रामनामसे अकित उस शुभ बाणको छोड़ दिया । वह बाण राक्षसक पास गया और उनक नाक, कान, भेड़ नाक मतोंको काटकर पुनः क्षण भरमे रामकी तरफमम लौट गया । कान, नाक आठ तथा स्तनोंमे रहित वह राक्षसी ॥ ५४-५६ ॥ 'हाथ में मारी गया' इस प्रकार चिन्ताता हुई सर-दूषण आदि अपन भाइयोंके पास जा पहुँची । बाहुनकी यह

तान् रामः क्षणमात्रेण चतुर्दशशर्ममम् । संवदस्य निजं लोकं प्रेषयामास लीलया ॥६९॥  
 तान् राक्षसान् मृतान् ध्रुत्वा स्वगन्धाम्ने त्रयः क्रुधा । पुद्गलं निर्ययुः सैन्यैः सहस्रं च चतुर्दश ॥६९॥  
 रामोऽपि बभूव सीतां च गुहायां स्थाप्य वेगतः । चकार राक्षसैर्धृष्टं शस्त्रैर्धृष्टवावहम् ॥६९॥  
 चतुर्दशमहस्याणि स्त्रीरूपाणि गवतः । कृत्वा तेषां च पुनः शरैस्ताम्रार्द्रपल्लवात् ॥६९॥  
 हन्ता स्त्रियं दूषणं च तथा त्रिशिरस्य ग्रैः । तनुश्चमहसांस्त्रान्प्रेषयामास स्व पदम् ॥६९॥  
 मुहूर्तेन तु रात्रेण महस्याणि चतुर्दश । मित्रा सेना स्वराष्ट्रं निहता मौनमीडटे ॥६९॥  
 स्वरायाः कटकाश्च स्थिताम्नश्च विकटहम् । क्षेत्रं स्यात्तं श्वं चकार तदेव प्राप्सते भुवि ॥६९॥  
 जनस्थानं भूमिगणां हरीं वस्तुं गृह्णहः । अथ सीता समानिश्च शश्वत् प्रशशस सा ॥६९॥  
 अथ तां जानकीं प्राह रामो गृह्णि मादहम् । सीते त्वं त्रिविधा ध्रुत्वा रजोरूपा वमानले ॥६९॥  
 राक्षसं मे मन्त्ररूपा वम छाया तमावपी । पचवत्यां दशरथस्य मोहनार्थं वमात्र वै ॥६९॥  
 तद्रामवचनं ध्रुत्वा तथा सीता चकार सा । ततः शूर्पणखा लंकां गन्वा रावणमवसीत् ॥६९॥  
 धिकं त्वा राक्षमराजान् कृतं चार्जनं वेन्मि यः । चतुर्दशमहस्या मा सेना स्वद्वन्द्वभूमिः सह ॥७०॥  
 मानुषेणैव गमेन जनस्थाने निषानिना । तत्तस्या वचनं ध्रुत्वा तां मृष्टा तादृशी तदा ॥७०॥  
 मिहामनाश्च बालाश्च पुनः वसन्तु मां स्वमात् । नट किं कारणं मुद्रे प्राह सा राक्षसेधरम् ॥७०॥  
 कृत्वा जानकीं मृष्टा मया चित्तं त्रिविधं । गवणार्थं विनेष्यामि धनुं तां तन्पूरीयता ॥७०॥  
 गारुडानेन सीताऽहं दशमेन तु रावण । सीमित्रिणा पचवत्यामाहवा रावणस्य च ॥७०॥  
 मायोऽपि मे हनः पुनश्चादमानो निषर्कम् । मचापार्थं कृतं मुद्रे वधूमिस्ते निषानिनाः ॥७०॥

इस देखकर विजिरा, और और दूषण उसक पुनः सब मयाकार मुनकर क्रोधवुत्त हो बौद्ध भयानक  
 गालियोंको उसी समय समझे लड़कत लिये बंजा । ५७ । ५८ ॥ तब रामने बौद्ध बाणासे क्षणमात्रमे लीला-  
 पुनक उनको मारकर अपने लोक भेज दिया ॥ ५९ ॥ उनके मारे जानकी मयाकार मुनकर स्त्रि अदि  
 मानो राक्षस मुद्रे हाकर बौद्ध हजार मरिजोंक काय मुद्रे मिरा निकल परे ॥ ६० ॥ राम भा सोता तथा  
 लक्ष्मणका एक क्षणमे स्त्रिकर सीता मन्त्र-रूपासे प्रहार करत हुए, राक्षसोंक साथ भगनक मुद्रे करने लगे  
 ॥ ६१ ॥ उस समय राम अपने बौद्ध हजार रूप बनाकर उनके सामने गय और समभूमिमे उन सबका  
 मर मर्दन कर डाला ॥ ६२ ॥ उन्मुने स्त्रि, दूषण, विजिरा तथा बौद्ध हजार राक्षसोंक बाणोंसे मारकर  
 अपने काम भेज दिया । ६३ । इस प्रकार मुनमानस रामने बौद्ध हजार मरिजों तथा चर आदिकों बीतसी  
 नराक मितारे मार डाला ॥ ६४ ॥ जहाँ ये स्त्रि दूषण विजिरा जानकी भाई कटकरसे रहने थे । वह स्थान विकटक  
 न मसे चन्द्रिदा और उसीका लोग आम्नश्च भी कहने थे ॥ ६५ ॥ तदनन्तर समुन्दन रामने बहु स्थान  
 विकटक ( श्वम्नश्च ) बाह्यलोंको निषाम करनेक लिए दान दे दिया । यह सब देखकर सीता रामका आलिंगन  
 करके उनकी प्रणमा करने लगी ॥ ६६ ॥ एक दिन राम एकान्तमे सातास मन्दर कहने लग्य—हे  
 मान ! मुझ सीते कियों कारण करके रजोरूपमे अग्निमे सप्तकपसे जगती तरह मेरे कार्य  
 जगमे और तमावपी बनकर रावणको मोहित करनेके लिये यही पचवत्यामे निवास करो ॥ ६७ ॥ ६८ ॥  
 तब उस वचनको सुनकर सागान वंसा ही किता । तब सीता लंकामे जाकर रावणसे  
 बात — ॥ ६९ ॥ हे रामसंगत ! मुझरे जैसे राजाको धिक्कार है, जो दूनोंके हाथ मुझे रावणकी दशाका वसा  
 मज लगता । बौद्ध हजार सेना सहित मुझरे भाइयोंको मनुष्यरूपवाणे रामने वण्डकारण्यमे मारकर मिरा  
 दिया । उसक इस वचनको सुन तथा उसका बहु दगा देन मिहामनसे कुछ ऊँच हाकर यह मजनी बहिनसे  
 बुदने तथा कि मुद्रे होनेका क्या कारण है, मो बनजाओ । तब यह राक्षसेधर रावणसे बोली— । ७०-७२ ॥  
 निषयोमे स्त्रि मन्त्ररूपाके देखकर मेने मित्रद मित्रा या कि इनको रावणके लिये ले आऊँगी । यह विचारकर मैं  
 हाथको पचवत्या लिये कामने बनी ॥ ७३ ॥ हे रावण ! इतनेहीमे एक वणने मेरी यह दगा कर दी । रावणके

यद्यस्ति पौरुषं किञ्चित्तादौ सीतां ममानय । नोपेदधोमुत्तुस्त्रिष्ठ यथा श्री महामर्कका ॥ ७६ ॥  
 तनस्या वचनं श्रुत्वा मान्वयामास तां स्वसाम् । तौ रामरश्मणी हन्वा तव शोकाग्रमार्जनम् ॥ ७७ ॥  
 करोम्यहं लोहिनेन तयोः मेदं भवस्व मा । एत नानाविधैर्वाक्यैः मान्वयित्वा स्पर्सा ब्रुहुः ॥ ७८ ॥  
 स्वहितस्यापदेष्टारं मानुलं वपसि स्थितम् । ययौ रथेन मार्गञ्च तस्मै वृत्तं न्यवेदयत् ॥ ७९ ॥  
 सोऽथ तं वीपयामास भागिनयं मुहुर्मुहुः । विश्वामित्राध्वरे त्यक्तपात्मानं न न्यवेदयत् ॥ ८० ॥  
 रामारूपया एवं रत्नं रजतं लक्ष्मभूषितम् । श्रुत्वाऽत्र रादि वन्किचिद्रामं गन्वा विभेम्यहम् ॥ ८१ ॥  
 केन ते शिक्षिता बुद्धिर्विषं लकाविवातिनी । आत्मरूपोऽस्मि कः शत्रुपेनेयं शिक्षिता मतिः ॥ ८२ ॥  
 कथां न कुरु रामस्य तं दृष्ट्वा न्य मग्निभ्यमि । ततः क्रोधेन त आह वदि नायादि कथयम् ॥ ८३ ॥  
 मया तदि वविष्यामि त्वामतः कुरु महचः । धृत्वा त्वं सुगरूपश्च रावस्त्यामनुयाम्यति ॥ ८४ ॥  
 त्वं शब्दं कुरु रामस्य लक्ष्मणस्तेन गाम्यति । ततस्तां जानकीं वेगान्तरुद्धा स्वामानगाम्यहम् ॥ ८५ ॥  
 लकायस्तद दास्यामि स्वीयगज्यादुमादात् । इति तस्यावदं दृष्ट्वा मार्गचीं दृष्टविनयन् ॥ ८६ ॥  
 रामहत्यान्मृतिः श्रेष्ठ माऽस्तु रावणहस्ततः । इति निधित्य मार्गचण्डेयमुक्त्वा पयौ तदा ॥ ८७ ॥  
 रावणेन त्वं स्थित्वा गन्वा पञ्चवटीं शनि । धृत्वा हेममयाधिप्री मोहयामास जानकीम् ॥ ८८ ॥  
 सा छाया तामनी रष्टा मृग रावणमनरीत् । कीडावर्षं मां मृग पैम धृत्वा देहि स्मृतम ॥ ८९ ॥  
 मृगश्चक्षुषाभिर्भागः करोमि कंचुकीं स्वयः । ततस्तदा चन्दर धृत्वा ज्ञान्वा मयं रघुनम ॥ ९० ॥

बहुरूप लक्ष्मणने पंचवटीय मेने यह रमा को है ॥ ७६ ॥ उन्होंने बिना किसी कारण तपस्या कर । हुए भरे प्राण-  
 प्रिय पुत्र साम्बको भी मार डाला । तब मुक्त लक्ष्मण केने स्थिर मर-भ्रमणादि भाइयोंन रामके साथ पुष्ट किया ।  
 किन्तु उसने उन्हें भी मार डाला ॥ ७७ ॥ यदि रत्ने कुछ भी बल है तो सीताका दण्ड कर नहीं तो पतिक मर  
 जानपर विश्वास नहींको त ह नीचा मुहू आक भेडा रह ॥ ७८ ॥ उसने वचन सुनकर रावण अपनी बहिनको  
 समझान लगा और बोला कि मैं राम-लक्ष्मणका मारकर उनके मुँहसे तुम्हारे नाकाधुका साजन कर्कश-नृम  
 हन्वा न हारा । इस प्रकार अन्तक वाक्योले उसने मगिनको जोरजोर समझाया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥  
 ब्रुह्मन् सान्ना । तथा रमणी आदि नामोके एकार अक्षर मुनये आरम्भ हो कर जाना है । अर्थात् रामके  
 भयसे मैंने इन सब चीजोंसे प्रेम करता भी छाड़ दिया है ॥ ८१ ॥ लकाका नाम करनवासी यह भवना तुमको  
 किसने दी है ? वह मित्ररूपमें छिपा हुआ दुम्हारा मनु ही है, जिसने तुमको यह मति दी है ॥ ८२ ॥ उसकी  
 बात मन पनी, नहीं तो वारे जायागे । यह सुना तो मुहू होकर रावण मार्गचमे वाला-यदि तुम रामके  
 पास नहीं जायाग तो मैं तुम्हें मार डालूँगा । इसणये मरा कहा जान सो । मृग मृग बनकर जय रामके  
 पास जायाग तो राम मुझ से पछ चल द्य । बनमे दूर से जानर तुम रामके जैसा स्वर बनाकर 'हो लक्ष्मण'  
 ऐसा चिल्लाया । तब लक्ष्मण भा आधम छोडकर तुम्हारे ओर चल गये । इस समय मे भाव सँतको अपनी  
 लका उठ लाऊँगा ॥ ८२-८३ ॥ यदि मेरा कार्य सिकु हो जायगा तो मैं तुमको लकाका साथ राज्य दे  
 दूँगा । उनके आग्रहका सुनकर मारीचने मनमे विचार किया कि रावणके हाथमे मरनेको अपना रामके हाथसे  
 मरना अच्छा है । यह मित्ररूप करक मारीच 'बहुन अच्छा' कहकर रावण सवार होकर रावणके साथ पञ्च-  
 वटीको उनी समय चल पडा । वही जाकर समने सुवर्णका पुग बनकर सोलका मोहित कर लिया ॥ ८६-८८ ॥  
 तब समीपगमयी छायास्वरणी मंता मृगको देखकर रामसे बोली—हे स्मृतम राम । इस मृगको पकडकर मुझे  
 दे दो । मैं उसके साथ प्रडा करूँगी ॥ ८९ ॥ और यदि जानके माकर ल हो तो मैं उसके चन्देकी सोझी  
 बनाऊँगी । सीताके वचन सुन गया कुछ सोर-समझकर स्मृतम राम सीताकी रक्षाके लिये माई लक्ष्मणको

सीताया रक्षणं वधुं मरुतोप्याशु मृगं ययौ । ततः पलायनं चक्रे मृगो गमं विकल्पेण ॥१०१॥  
 रामशरणेन भिरांगः शब्दं दीर्घं चकार मः । हा सीमित्रे यमागच्छ हा हागच्छस्व कानने ॥१०२॥  
 इत्युक्त्वा रामवदावा ममारुह धिरं ययन् । व शब्दे जानका भुञ्चा चोदयामास लक्ष्मणम् ॥१०३॥  
 सोऽप्याह रामवचन मेदं नीत्ते भयं त्यज । ततः सा न पुनः प्राह जानाति तत्र वेष्टितम् ॥१०४॥  
 अग्नस्तोपदेशेन मूर्तिं रामस्य वीक्ष्य हि । अथवा मेऽस्मिन्तोन्नि र्हि प्राणास्ववाग्म्यहम् ॥१०५॥  
 तन्कुरुचचनं पश्याः भुञ्चा वाग्वा महद्वयम् । जानकीं ग्रह सीमित्रिर्वाणः मृगु यचो मम ॥१०६॥  
 रामवादी सुरकुन्द रञ्जनस्यो मम न्वया । ताडितं वाक्शरणाच्च भोक्ष्यक्यस्याचमत्कृतम् ॥१०७॥  
 तथापि शृणु मडाक्षय यन्मयाऽप्योप्यते हितम् । मर्त्यतां धनुषो रेखा कृतां स्वप्नगोऽधुना ॥१०८॥  
 न्वदभगार्थं दुरासो दुर्बलगतं महजमाम् । मा ममकुलं वयस्त्रेधां प्रार्णः कुरुगदंरपि ॥१०९॥  
 इत्युक्त्वा धनुषः कृत्य कृन्दा रेखा ममनतः । बाणदेशे पचयन्ताः सीमित्रिः परिपोषणम् ॥११०॥  
 नन्वा सीतां ममभ्युत्था यथा राम नृगान्वितः । गन्तस्मिन्नगरे तत्र रावणो बिलुहपशुकु ॥११०१॥  
 गन्वा पचयन्ताः रेखाय च धिः स्थितः । बाणयणेति च चोदयामृषीं मरुतो म रावणः ॥११०२॥  
 ताञ्छायामयी मता भिक्षा तस्मै मर्यापतुम् । यथा दार दीर्घदम्ना गृहाप्त्वन्यत्रवीच वम् ॥११०३॥  
 तदा बिलुः पुनः प्राह सीतां पकडलोचनाम् । अर्णोऽकरोम्यन्तरेण बिलामेतां मयाऽपिताम् ॥११०४॥  
 गार्हस्थ्य क्षेत्रघवज्य गश्चिनु न्व ममिच्छामि । तदि रेखां ममकुलस्य मा भिक्षां दानुमर्हसि ॥११०५॥  
 तद्विधुवचन भुञ्चाऽवमोऽधुमेति शक्तिना । रेखावहिं सत्यपादं दम्बा दीर्घेलपम्भरा ॥११०६॥  
 गृहाप्तेमा वगं भिक्षामिति ते प्राह जानकी । तनादशाध्यस्तां धुञ्चा भिभूरुषं विसृज्य च ॥११०७॥  
 मरवाहे रथे सीतां नम्य प्याव न्वयतं च । यवदृष्टति पेपेन तावदुदृष्टो वटाधुषा ॥११०८॥

निपुण करके सीमै मृगक पीछे चल ॥१०१॥ दृष्टि मा रामक आगे दीगता हुआ उन्हें बहुत दूर जंगलमें दीड़ा  
 ले गया ॥१०१॥ १०२॥ वही वगले कपल हकड़ वह सीमै रामक स्वरमें चिल्लाते लगा हा नम्रमण मे चनम  
 मग गया ज छ आओ ॥ १०३॥ इनका कहकर मार च न्व वमन करता दुध मर गया । उस जवदर ननन  
 जानक न नममका ज नक रिच कह ॥ १०४॥ १०५॥ बाण-ह सीते ! यह रामका वानव नहीं है, मत रग ।  
 मग रिच कहने लगे कि सीमव कुहारे अमिच्छका जान गया ॥ १०४॥ गुम चरतके कहेके अनुसार  
 रामका मग्न अवता । मक मर जनवर मुझ सीमना च हत हो । परन्तु बाद गया, मे दुहाग अभिल गा  
 गुने लगे होत गुी और जभा मर न कगी ॥ १०६॥ सीताक इस वचनक मुनकर मुभित्तात्र सक्षम जानका  
 जान है मता । मरी वान मर ॥ १०६॥ रामकी आज्ञासे गृहहरी रक्षासं स्वर पुनका तुमन जा बाणम्भी  
 बाणम लायि किआ है । उमका फल गुम जीय पाआगा ॥ १०७॥ तो सी मरे कहे हुए इस हिनकारी वचनको  
 न लता । मे पुपुले गुहारे कान्ने आग वह रेखा सीते का है ॥ १०८॥ यह गुहाग रक्षाके लिए और दुहाके  
 पण्ड कुम्भनीय तथा महादुभर कलत्र करदेवानी हा ॥ १०९॥ प्रणोके मठम का मनेवर सी गुम इस रक्षाका  
 उन्मदन नहीं करता ॥ ११०॥ ऐसा कहकर वन्दुका करस पक्षमणन वचकटाक बाहर साईका भक्ति सीताकी  
 कान और रक्षा सीध ही ॥ ११०॥ तदनन्तर सीताको प्रणाम करक वपचय सीमै रामकी ओर चम दिव ।  
 गुम समव रामका भिभूरुषा न्व मग्न करके वमनहात हाववर जाकर रक्षाक बाहर खड हो गय और  
 मर वमहरि कडकर चर हा रहा ॥ १११॥ ११२॥ तब छपाया सीता उनको भिक्षा रनेके लिये बाहर  
 छापी और हाथ बहाकर भिक्षुसे 'भिक्षा ओ' ऐसा कहा ॥ ११३॥ तब कमलके ममान मेजोवासी सीतासे विधुने  
 कहा कि मे रेखाक भिक्षाम वचं हुई आते नहीं लता ॥ ११४॥ यदि तुम रामक मृत्स्याधमकी रक्षा करना  
 चाहती होओ तो रेखाके बाहर आकर भिक्षा दो ॥ ११५॥ धिपुके इस वचनका नुनकर 'कली काव र लगे'  
 इस शकसे बाये चारेको रेखास रात न्व और स्मर हाथ करके ॥ ११६॥ जानकी 'वह भिक्षा ओ' ऐसा  
 व गी । तभी रावणने उनके पकड़ लिया और भिक्षुका न्व पाव उवा सीताको गणोके न्ववर विग्रमकर पीछे

चक्रत तुमुलं पुङ्खं गवणेन स पक्षिगद् । निजपद्भ्यां मदेनाथ चूर्णीकृत्य रपोत्तमम् ॥१०९॥  
 मगवर्षो विनिष्पित्य बभञ्ज तदनुमोदतु । मुकुटं न दश मंदिद्य कृत्वा देहं तु जर्जरम् ॥११०॥  
 भूछिदं गवणं कृत्वा तां सीतां मन्यवनेयम् । स्वस्थाभूतो दशाम्योऽपि ताडयामास तं पदा ॥१११॥  
 क्रोधेन मदनाद्रिष्टः पक्षिणा जर्जरीकृतः । ततो जटायुः पतितो यमन् रक्तं मुखेन सः ॥११२॥  
 ततो विहायमा सीतां निनाय रावणः पुनः । रावणमेति अल्पनी सीताऽभून्पस्तलोचनम् ॥११३॥  
 उद्योगे चरधाथ पथि स्वाग्रणानि सा । दृष्ट्वाऽथ पर्वते प्रोर्ध्वः मस्तिनान् पच वानरान् ॥११४॥  
 प्राप्तिपत्कपिमध्येऽथ पूवनार्थं गच्छन्मम । ततो दशाम्यस्तां नीत्वा क्षत्रके अन्यवेशयद् ॥११५॥  
 प्रार्थयामास तां सीतां नोत्तरं मा दर्शय नदा । तस्याः संरक्षणार्थाय गक्षमांश्च महम्भशः ॥११६॥  
 आशयदक्षस्थः स स्वयं मेहं विवेकं ह । नदेन्द्रो अक्षवाक्येन पायसं वर्षेत्पुष्टिदम् ॥११७॥  
 दर्शय हस्तिं सीतार्थं तेन तुष्टा बभूव सा । ममर्ष्य पायसं किञ्चिद्रामाय लक्ष्मणाय च ॥११८॥  
 मुरान्निधये दत्त्वा दृष्ट्वा धेनुं च खेचरान् । हन्वाऽथ विजटां किञ्चिद्रक्षयामास जानका ॥११९॥  
 ममज्य गवणेनापि राक्षसार्थं चोडय । प्रेषिता रामवानार्थं ते कवधेन भक्षिताः ॥१२०॥  
 यत्र यत्र पचवट्यां रामराणभयान्मृगः । चक्षुरा गीतगीतारे मस्थानि तत्र तत्र हि ॥१२१॥  
 स्थानसङ्गान्यनेकानि जायन्ति च पुगणि हि । मृगस्य पतितं यत्र नूपुरं परिभावत ॥१२२॥  
 नूपुराख्यो महाग्रामः प्रोच्यते गीतगीतारे । रामराणप्रहारिणः पचलाभोऽप्यतद्भुवि ॥१२३॥  
 मृगो यत्र महोत्तमं चापल्यग्राय द्यते । गीतगीतारे ग्रावभूष्यो रामवानहतो मृगः ॥१२४॥  
 पतितो यत्र तज्जिह्वं दृश्यतेऽद्यापि मानवः । मौमित्रचापजा रेखा पचवट्याः समन्ततः ॥१२५॥

सीता । वह भावा जा मृग था, तभी जटायुन उसे देख लिया ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ तब पक्षिराज जटायुन रावणके साथ तुमुल बुद्ध किया । अपने पाँवों और चारों तरफ मार-मारकर उसके रथका चुर-चुर कर दिया ॥ १०९ ॥ अर्ध गवहाका पीठ डाला । उसका बड़ा भारी घुष लाड़ दिया । मुमुक्षुकी काट डाला और उसके शरीरको जर्जरित कर दिया ॥ ११० ॥ इतना ही नहीं, गवणका मुष्टित करके वह सीताका सीटा लान लगा । तभी गवण भी खरब होकर उसका पक्षम मारने लगा ॥ १११ ॥ बड़ा क्रोध करके रावणने पक्षीको और पक्षीने गवणको जर्जर कर दिया । अन्तम जटायु घायल होकर चरनगर गिर पड़ा ॥ ११२ ॥ तब गवण सीताको लेकर अकाशमार्गे लङ्काकी ओर चल पड़ा । रावण हाँसा मोची मौलिस 'हा राम-हा राम' चिन्तने लगी ॥ ११३ ॥ उसी समय उन्होंने तीन एक उन्नत पर्वतक शिखरपर बैठ हुए पाँच जनर सुषीय-दुष्मान् आदिवा केवा और अपनी माँट की काढ तथा उसके दुक में अपने गहने बाँधकर वही गिरा दिए । उधर दक्ष-मुख रावणन सीता को ले जाकर लंकाके अमाकवास्त्रिम रखा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ प्रेम करनेके लिये उधने सीतासे बड़ी प्रार्थना की, परन्तु सीता किसी प्रकार सहमत नहीं हुई और न उसकी बातोंका कुछ उत्तर ही दिया । उनका रक्षाके लिये रावणने वहाँ हजारों लक्षसिय निगुप्त कर दीं ॥ ११६ ॥ उनको रक्षा करनेकी आज्ञा देकर रावण अपने मङ्गलम पसा पड़ा । इसी अवसरपर बट्टाके कहनेसे इन्द्रने वहाँ जाकर वद घर तक भूखको मिटाकर सन्तुष्ट रखनेवाला पायस ( सीर ) एकान्तमें सीता को दिया । इससे सीता बड़ी प्रसन्न हुई । उन्होंने राम तथा लक्ष्मणके नाम उसमने कुछ पायस निकाला ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ कुछ वेवताओंको दिया । कुछ गीतों तथा पक्षियोंकी खिलाया और बाँट-सा विजटाको देकर वादय बची हुई फोड़ीसी छोर जानकीने स्वयं खाया ॥ ११९ ॥ उदनन्तर रावणने सलाह करके सोलह राक्षसोंको रामको मारनेके लिये देवा, परन्तु वे सब रास्तेमें ही ककश-के द्वारा का डाले गये ॥ १२० ॥ उस समय पचवटोंमें रामके दाणके भयसे जहाँ-जहाँ मृगख्यी मारीच गया था, तैसीके किनारे वहाँ सर्वत्र अनेक कामवाले स्थान स्थापित हुए । जिस जगह रौखने हुए मृगका नूपुर गिर गया था, वहाँ नूपुरपुर नामका बड़ा भारी गाँव बस गया । रामके राणसे ताडित होकर चपल नेत्रोंवाला मृग जहाँ मृगकीनर गिर गया था, वहाँ बड़ा भारी चापल्य नामका गाँव बस भी गया हुआ दोकता है । गीतगीतोंके किनारे



अद्यापि दृश्यते स्पष्टा नदीरूपा भयस्त्रया पाषाणभूम्भ्या तत्रैव रावणस्य पदं महत् ॥१२६॥  
 अद्यापि दृश्यते सीमं गतंरूपं नतोन्मः । स्वराद्यैर्बुद्धममये पञ्चवट्या विदेहजा । ॥१२७॥  
 गुराणां गोपिना मर्मा मलयापि तत्र दृश्यते । तथा गमो लक्ष्मणोऽपि पञ्चवट्यां सदेव हि ॥१२८॥  
 दृश्यतेऽद्यापि भो देवि नञ्जनर्तान्दर्शिभिः । अज्ञानदृष्टिभिर्मे तु दृश्यते प्रावरुप्तिभिः । ॥१२९॥  
 रामतीर्थं राघवकृतं सीतान्द्रक्ष्मणपङ्कजैः । तीर्थं तत्र तु सीतभूम्भ्यां दृश्यतेऽद्यापि मानवैः ॥१३०॥  
 गयेन सीतया पत्रं स्यात्सीतं पञ्चवट्यां परि । कुत्र पूर्वं तु सपत्नं रामस्यस्यागिरेः स्मृतम् । ॥१३१॥  
 अस्याकृपाणि दृश्यतेऽद्यापि तत्र तृणानि हि । गमोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा भुञ्ज्या सीताचरोऽप्युग्रम् ॥१३२॥  
 निवेदिता लक्ष्मणेन कोशाभूष्मपञ्चयेनया । निमित्तान्यनिधोरापि दृष्ट्वा चैव समवतः ॥१३३॥  
 पत्नी पञ्चवटीं पञ्चस्त्रयं सीतां दर्शयन् न । ततो बालुभक्त्यं तु दर्शयन् सकलाञ्जनान् ॥१३४॥  
 विचिन्वन्मन्त्रैः सीतां शुभराजं ददयन् मः । ततः स पश्चिन्नमया रावणन हर्ता प्रियाम् ॥१३५॥  
 ज्ञात्वा तं योजयामास बहिना जंविनक्षत्रे । तत्पृथग् कन्यमांसं क्षिप्त्वा स्नान्वा रघूत्तमः । ॥१३६॥  
 यया दक्षिणमार्गेण विचिन्वन्मृदुप्रभम् । पूर्वदग्निहोत्रं स चकार हृषभार्थया ॥१३७॥  
 गतस्त्रिचतुरे देवि त्वया प्रोक्तम्वद पुनः । त्वया यद्य जपो नित्यं क्रियते गद्यवस्य हि । ॥१३८॥  
 सोऽयं स्त्रीदिरहात्स्वस्य मृदादध्रमते वने । तत्रेति वचनं भुञ्ज्या तदा त्वामनुवं त्वदम् ॥१३९॥  
 देवि पाशान्महाविष्णुभ्यश्च रामो बहवते । शिशुार्थं सकलांल्लोकान् मृडयन्प्रवते वने ॥१४०॥  
 नार्गमणो दर्शयाम्यः सर्वदाऽत्रेति शिशुयन् । नर्माविषयजं दुःस्वमीदृशं भयकारकम् । ॥१४१॥  
 दर्शयन् सकलांल्लोकानिति सोऽत्राटते वने । इति मद्रचनं श्रुत्वा तन्परीश्वरार्थमुपवा ॥१४२॥

यहां रावणभूमि, पदराल, घटना, वा रामवापसि निहृत हृ कर मृग गिरा वा ॥ १२६-१२७ ॥ उसका चिह्न वहाँ ज्ञान भी मनुष्यको दिखाई देता है । मुमित्रगुप्त लक्ष्मणक समुप डाटा सीता हृद रेल पञ्चवटीक बायीं ओर जात भी चकानक नदीक रूपको घाटत हुए गगद दिखाई देता है । उस पाषाणमयी भूमिमें रावणक वहा वाली पदचिह्न एक बंद भी गडके रूपमें अब भी दिखाई दे रहा है । पहले लरके राघव कुछ करके समय पञ्चवटीमें बिदहजा क्षातको जिस गुफामें उनके प्रति रामने श्रियाया था, वहा भी विद्यमान है ।  
 १. इति 'तत्रचन' तथा सीता महारामभाँद हरेव राम लक्ष्मणका वहाँ बहान होता है और सीताक स्थापित होचें इस समय भ. दिख.ई देते हैं ॥ १२६-१३० ॥ जिस पवनपर रामन लक्ष्मणनिर्वाच करके सीताके साथ लवन किया था वह रामलक्ष्मणभारिक वापस प्रमिष्ट है ॥ १३१ ॥ वहाँक दुर्ग मात्र भी लक्ष्मणकर दिखाई देते हैं । इधर रामने लक्ष्मणको आया देखा तब उसने मुझसे सीताक वहा बुनवनको गुप्त । १३२ ॥ यह सन हुआ लक्ष्मणन कामपूवक सीमा बहता हुए तथा विस्मयके साथकहा था । राम आरा आर बल्यन्त पवनक बकुलीको दक तथा बकाकर शोभ हा पञ्चवटीमें गद्य तो वहाँ सीता नहीं दिखाई दी । पञ्चात् मनुष्यमवसे वे समस्त कनके पनु-रका तथा जड़ वृक्षों आदसे से ताक पला पूछन और सीताको सर्वथ दुँडन गये । इतनमें गृध्रराज बटावु दिखायी दिया । उस पक्षीके मुँहसे गुनः कि रावण प्रिया सीताका हरण कर ले गया है ॥ १३३-१३५ ॥ मरणोपरान्त जगद्गुरु कपलागुप्तर रामने उसका अग्निवस्कार किया । उसको शक्ति तथा तुलिक लिए रामने अन्य गुन मर्दक मांससे पिण्डबान किया और स्नान आदि किया था ॥ १३६ ॥ पञ्चात् सर्वेभर राम कुछ वृक्षको उध सीताको जोजते हुए दक्षिणक ओर बने । रस्तमें से ताक लक्ष्मणमें कुहाकी सीता बनकर उसाके साथ रामने अग्निहोत्र किया ॥ १३७ ॥ इसी बीच हे देवि पावता ! तुमने मुझसे प्रवन किया था--हे प्रभो 'आप नित्यप्रति जिन रामका नाम जपा करते हैं ॥ १३८ ॥ वहा राम स्नाक विष्टसे वृक्षकी तरह बनने मारे-मारे फिर रहे हैं । पुन्हा वह कथन सुनकर मैंने तुमसे कहा-- ॥ १३९ ॥ हे देवि ! यह क्षात्वा विष्णु भगवान् राघव बनकर पृथ्वीमण्डलके सींगोंकी भिक्षा देनेके लिए वनर गूडका तरह भ्रमण कर रहे हैं ॥ १४० ॥ वे सबको यह उपदेश देते हैं कि मनुष्यको लक्ष्मण भासक रही होना चाहिए । स्थाविचक आसक्ति ऐसे ही दुःख

त्वं गताऽसि समीपं श्रीराघवस्य तदा वने । सीतारूपेण तं रामं त्वया प्रोक्तं शुभं वचः ॥ १४३ ॥  
 रामं राजीवपद्मस्य मायये पश्य जानकांम् । कीदृश्याप्र मया मार्धमेहि शीघ्रं मुनी मव ॥ १४४ ॥  
 त्वदुक्तं राघवः श्रुत्वा विहस्य त्वां वचोऽब्रवीत् । जानाम्यहं त्वं कार्याति सीतान्त्वं मामि वेपथयम् ॥ १४५ ॥  
 त्वं किं सीतारूपेण मोहयस्यस्व मां वने । एवं पुनः पुनः प्रोक्ता पदा स्वं राघवेण हि ॥ १४६ ॥  
 तदा त्वया तत्स्वरूपं तत्तं मूर्ध्नि मयेतिम् । ततो नन्वा राघवद्रं प्रार्थयिष्या पुनः पुनः ॥ १४७ ॥  
 मायनाऽसि पुनर्मां न केनाप्यभिसरेष्यसे । त्वं का त्वं किमिति प्रोक्ता राघवेण पुन पुनः ॥ १४८ ॥  
 या त्वं सा दंडके जाना त्वं क्व नाम्नांशिका वने । त्वं लज्जिताऽसि राघवेण यत्र तत्र नय स्यसे ॥ १४९ ॥  
 तस्मिन्नापुनरात्मनाऽऽसीन्नगरं दंडके वने । ततस्मां राघसीमेयः जन्मतुर्दासेणां दिशम् ॥ १५० ॥  
 यद्वतो निदता मामं राक्षसा धाररुणिणः । एतस्मिन्नतरेऽरण्ये कर्षधेन धृती तदा ॥ १५१ ॥  
 श्रीरामलक्ष्मणौ मार्गे योजनापतपादुना । दृष्ट्वा तं शिरसा हंसं बाहू निच्छेदनुमदा ॥ १५२ ॥  
 ततः स दिव्यरूपोऽभून्नन्वा रामं वचोऽब्रवीत् । पदा राघवेण जोडं मन्त्रणो वरदानतः ॥ १५३ ॥  
 केनाप्यवध्यन्महामायाकं मुनीश्वरम् । रक्षो भवोऽन शमोर्द्धं मुनिना प्राह मां पुनः ॥ १५४ ॥  
 त्रेतायुगे यदा रामलक्ष्मणौ योजनापतौ । छेन्नयनस्ते महाबाहू नदा शयान्प्रमोक्षयसे ॥ १५५ ॥  
 ततो राक्षसदेहोऽहमन्द्रमन्यद्रवं रुपा । संऽर्पि व सं ग मा राम शिगदेशं कृताडपत् ॥ १५६ ॥  
 तदा कुक्षौ शिरःपादपुगलं च गतं क्षणात् । त्रयदत्तगान्धर्व्युनभून्मे वचनाडनात् ॥ १५७ ॥  
 सुखाभावः कथं जीवेदगमिन्पमगाधिपः । तदा मा प्राह कृपया जठरे ते मुख भवेत् ॥ १५८ ॥  
 बाहू ते योजनापाभावघ शीघ्रं मथिष्यतः । तदारब्धात्र दहृष्या लब्धं वद्वक्ष्याम्यहम् ॥ १५९ ॥

तया अमर्यादा काय वनती है ॥ १४१ ॥ इस बातोंका वनत ने तथा लज्जित शिरा दन्तक लिए राम वनमें  
 दधर-ज्वर भ्रमण कर रहे हैं । मेरे इस उत्तरको सुनकर तुम उनकी परीक्षा, लेनका उद्यत हुई ॥ १४२ ॥ उस  
 समय तुम सीताका रूप बनाकर श्रीरामके पास गयी और उनसे कहा—॥ १४३ ॥ हे कमलसदृश  
 मेथोजाल राम अपने सामने खड़ी मुझ जानकीको देखा । अम्मा, मेरे साथ इस वनमें कौंडा करके  
 मुक्त प्राप्त करो ॥ १४४ ॥ तुम्हारे कवनको सुनकर राम हैस और कहा मैं जानता हूँ कि तुम कीन हो  
 ॥ १४५ ॥ अपने सीताका रूप धारण करके मुझ यद्यो मैं हिन नरका हूँ ? इस प्रकार जब रामन वारम्बार  
 कहा ॥ १४६ ॥ तब तुमने मेरे कहनेके अनुसार रामका वाग्वचन स्वरूप पहिचान और उनकी पुनः पुनः  
 मायना करके कहा मां ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ तदनन्तर तुम रजनीक केलात पर्वतक शिखरपर मेरे पास लौट  
 आयी । जहाँपर रामन तुमसे पूछा था कि तुम कीन हो ? वहाँ क्या आयो हो और तुम्हारे नामका अम्बिका तो  
 दम्बकारण्यम रहती है । यह सुनकर तुम रुज्जित हुई । जिससे वहाँपर लज्जित नामका एक नगर बस गया ।  
 उदन्तर से राम-लक्ष्मण वीरगणों और सब दिशे ॥ १४९ ॥ १५० ॥ उन्होंने मायम बहुतसे धार  
 राक्षसोंको मारा । कसी जङ्गलमें कर्षधेन हन वनोंको पकड़ लिया ॥ १५१ ॥ उसमें चार-चार कोसके  
 लम्बे हुए थे । उधे सिरसे रहित देखकर उसका घालो हुए राम-लक्ष्मणन काट काटे ॥ १५२ ॥ तब वह दिव्य  
 रूप धारण करके नमस्कारपूर्वक रामसे कहने लगा—पहले मैं राघवोंका राजा था । बहुतसे मुझे मर दिया था  
 कि तुमकी कोई नहीं नाश सकेगा । इस सर्वसे मैं एक दिन मुनीश्वर अष्टावक्रका बुद्धि दन्तकर हूँ पदा ।  
 हृदयर उन्होंने बुद्ध होकर मुझका काप दिया कि तू राक्षस हो जायगा । मेरे प्रार्थना करनेपर फिर व जाने—  
 ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ तदा पुनः जब राम-लक्ष्मण तैरी इन योजना मर विस्तारवाली भुजाओंको काटने, तब तु  
 कापसे मुक्त हो आसगर ॥ १५५ ॥ राक्षस होकर एक दिन मैंने इन्द्रक ऊपर थावा भिषा । उ होने कुम्भ  
 होकर मर मस्तकपर वज्र मारा ॥ १५६ ॥ जिससे मेरा सिर और शरीर पीर पेटमें घुस गये । परन्तु चक्र का  
 वरदान प्राप्त होनेसे मेरी मृत्यु नहीं हुई ॥ १५७ ॥ तब मैंने इन्द्राशोक अचिरानि इन्द्रसे प्रार्थना की कि मैं बिना  
 मुक्तके किस प्रकार की सङ्गा । तब उन्होंने कृपा करके कहा कि जा, तेरे पेटमें मुख हो जायगा ॥ १५८ ॥

तिष्ठन्त्यग्रे मत्तगादिमुनीनां परिचारिकाः । श्वरीदर्शनार्थं स्वं तत्र याहि रघूक्ष्म ॥१६०॥  
 कथयिष्यति सा सीताशुद्धिं ते रघुर्नन्दन इन्दुक्त्वा राघवं नत्वा स्तुत्वा स्वर्गं ययौ मुवा ॥१६१॥  
 ततो रामो लक्ष्मणेन श्वरीसंनिधिं ययौ । साऽपि सपूज्य भ्रातारं विद्वेर्ष्वनसम्भवेः ॥१६२॥  
 चित्तमारोदुमुधुक्ता राघवः प्राह हर्षिता । ऋष्यमूकगिरिवग्रे सुग्रीवो मन्त्रिभिः सह ॥१६३॥  
 वर्तते तस्य सख्येन सीताशुद्धिं लभिष्यति । गच्छ राम इतस्त्वग्रे पंचानाम् सरोवरम् ॥१६४॥  
 तत्तटके तु वृक्षाणां फलानि विविधानि च । भक्ष्यस्व त्वं जलपीम्भा याहि सुग्रीवसंनिधिम् ॥१६५॥  
 इन्दुक्त्वा श्वरी रामं नत्वा बद्धिं यिवेश सा । रामसदर्शनान्मुक्तिं प्राप्ता वैकुण्ठमाययौ ॥१६६॥  
 ततो रामः शूनैर्भ्रात्रा ययौ पंचामरोवरम् । फलानि भक्षयामास पीन्वा तज्जलप्लुतमम् ॥१६७॥  
 ततः शूनैर्ययौ मार्गे ऋष्यमूकाचलं प्रति । पश्यन्वनानि सर्वत्र चितयामास जानकीम् ॥१६८॥  
 एव गिरीन्द्रजे प्रोक्तमागम्यं स्मरितं तव । श्रीरामस्य ससीतस्य लक्ष्मणेन युतस्य च ॥१६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितावर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( राम-सुग्रीवसंघी और वाल्मिक )

श्रीशिव उवाच

अथ रामो लक्ष्मणेन ऋष्यमूकाचलं प्रति । ययौ घृतधनुर्वणिने नेत्रे सर्वत्र चालयन् ॥ १ ॥  
 ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वे गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवेणाथ तौ दृष्टौ ऋष्यमूकस्थितेन हि ॥ २ ॥  
 सुग्रीवस्तौ तदा दृष्ट्वा चतुर्भिर्मन्त्रिभिर्धृतः । संशय्य मारुतिं प्राह चालिना प्रेषिनाशुभौ ॥ ३ ॥

जीव ही तेरे हाथ भी गाजन-गोजन भर लम्बे हो जादंगे । तबसे मैं जो कुछ इन हाथोंके बीच आ जाता है, आ जाता है ॥ १५२ ॥ यहाँसे आगे मतङ्ग आदि मुनियोंकी परिचारिकायें रहती हैं । हे रघुक्ष्म ! आप वहाँ जाकर श्वरीसे मिलें । १६० । हे रघुनन्दन ! वह आपको सीताका पता बतायेगी । इतना कहकर उसने आपकी स्तुति की और नमस्कार करके वह सानन्द स्वर्गको चला गया ॥ १६१ ॥ तदनन्तर राम लक्ष्मणको लेकर श्वरीके पास गये । श्वरीने उनके अच्छे-अच्छे पुष्पों तथा फलोंसे उनका पूजन-सत्कार किया ॥ १६२ ॥ बादमें चित्तारोहण करते समय हृष्यपूर्वक वह रामसे बोली कि आगे ऋष्यमूक पर्वतके शिखरपर मन्त्रियोंके साथ सुग्रीव रहता है । १६३ ॥ उसकी मित्रता प्राप्त करनेसे आपको सीताका पता मिल जायगा । हे राम ! आप यहाँसे चलकर पंचामरोवर जायें ॥ १६४ ॥ उसके किनारेपर लगे हुए वृक्षोंके विविध फल खा तथा जलपान करके आप सुग्रीवके पास जाइएगा ॥ १६५ ॥ इतना कहकर श्वरीने रामको प्रणाम किया और अग्निमें प्रवेश कर गयी । इस प्रकार रामके दर्शनमात्रसे मुक्त होकर वह वैकुण्ठवाम सिधारी । १६६ ॥ तदनन्तर राम भाई लक्ष्मणके साथ पम्पासरोवर गये । वहाँके सुन्दर फल खाकर सरोवरका निर्मल जल पिपा ॥ १६७ ॥ पश्चात् धीरे-धीरे ऋष्यमूक पर्वतको ओर चले । रास्तेमें चारों ओर दूरे-भरे वनोंकी शोभा देखकर राम वास्वदार जानकीका स्मरण करने लगें । १६८ । हे गिरीन्द्रजे ! यह मैंने तुमको सीता लक्ष्मण तथा श्रीरामका किया हुआ चरित्र कह सुनाया । १६९ ॥ इति शतकोटिरामचरितावर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इस तरह राम हाथमें धनुष बाण लिये और नेत्रोंसे चारों ओर देखते हुए लक्ष्मणके साथ ऋष्यमूक पर्वतके पास पहुँचे । १ ॥ वहाँ शिखरपर बैठे सुग्रीवने पर्वतके पास जाते हुए राम-लक्ष्मणको देख लिया । २ ॥ उन्हें देखकर सुग्रीवने अपने चारों मन्त्रियोंकी बुलवाया और उनसे मन्त्रणा

मां हनुं पृथक्कोऽडौ मन्त्रीरौ नगकुर्वी । इतोऽस्माभिः प्रगन्ध्य मत्रं भृशु मयोच्यते ॥४॥  
 गच्छ जानीहि मत्रं नै बहुभूत्वा द्विजाकृतिः । ताभ्यां समापण कृत्वा जानीहि इदं तपोः ॥५॥  
 यदि नो दृष्टहृदयो मन्त्रां कुरु कगमनः । माभुन्वे स्मितवक्त्रोऽभूरेवं जानीहि निश्चयम् ॥६॥  
 तथेति बहुरूपेण गन्वा नन्वा गृध्रमम् । कौ पुनः पुरुषस्याघविति पश्यच्छ आकृतिः ॥७॥  
 नन्दनं लक्ष्मणः प्राह पूर्ववृत्तं सन्निधनम् । शरणीनपनाद्रामः सख्यं कर्तुं समागतः ॥८॥  
 गुह्यवैणाथ तच्छ्रुत्वा स्वरूपं आकृतिध्वजा । अकार नञ्जे प्रकट स्वीयं वृत्तं न्यवेदयत् ॥९॥  
 मन्त्रकंधमधिराश्रय पर्वतं शंभुमहयः । तथेति आकृतेः स्तब्धे मस्मिन्तौ नौ बभूवतुः ॥१०॥  
 उपशान्तिं गिरिपूथिन क्षणादेव महाकपिः । वृक्षच्छायां समाश्रित्य तौ स्मिन्तौ गमन्लक्ष्मणौ ॥११॥  
 गुह्याय साहसिगन्वा गमधूर्तं न्यवेदयत् । ततः प्रशान्त्य शब्दं च सुप्रानो गववेम हि ॥१२॥  
 अकार मन्त्र्य योगेन समालिख्य पश्यन् ॥ वृक्षच्छायां स्वयं शिष्टा निष्टगर्भं ददौ कपिः ॥१३॥  
 दर्शय मइतादिष्टाः सर्वे श्वातन्त्रियरे । लक्ष्मणस्त्वमवीन्मर्त्त सुग्रीवं वृत्तमन्मनः ॥१४॥  
 तच्छ्रुत्वा मकलं वृत्तं सुग्रीवः स्व न्यवेदयत् । सखे गणुष्व मे वृत्तं बालिना यत्कृतं पुरा ॥१५॥  
 मयपुत्रा दुर्मदश्च किङ्किधामेकदा गतः । कृत्वा च दीर्घशब्दं तु बालिनं ममुपाह्वयत् ॥१६॥  
 न चन्वा निर्वेयी बाली जपान दृढमुष्टिना । बुद्धाव तेन संविद्यो जगाम स्वगुहां प्रति ॥१७॥  
 अनुद्गात तं शाली बालिपृष्ठं त्वहं गतः । बालो ममाह निष्ठं त्वं बाह्यगच्छास्वहं गुह्याम् ॥१८॥  
 अनुकन्वाऽऽविश्य म गुहां मामसंकेन नियेयी । गुहाद्वारमनया त्वं निर्गतं सन्निरीक्ष्य च ॥१९॥

पर ४ । हममान्ने कहा कि इन दोनोंकी बालीने बजा है, ऐसा ज्ञात हुआ है ॥ ३ ॥ वे दोनों तरुण कारण कर भाग्य बांध कर घन्य लेकर मुझे मानने आ रहे हैं । इस कारण हम लोगोंको दर्शन कहीं अन्यत्र मान जाना शक्ति है, अथवा तुम मेरा बात माना और बाह्यणका रूप धारण करके बह्मचारी बनकर उनके पास आओ और उनके साथ जानचान करके उनके हृदयका अधिपत्य जान लो ॥ ४ ॥ यदि उनके हृदयका विचार इच्छित हो तो पहली माहमें आकर हाथकी अंगुलीमें करने करना और यदि अच्छा विचार रखत हो तो हंसकर मरी और निहारना । वय यही मनेन निर्धिन है, याद रखना ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदनुसार हनुमान् बहुत अच्छा कर और बह्मचारीका रूप धारण करके रामके पास गये और नमस्कार करके कहा — 'पुरुषोंमें सिद्धके समान राम आप जाना कौन हैं ?' ॥ ७ ॥ तब लक्ष्मणने उनका आगमन भूषण वृत्तों कह भुनाया और कहा कि शत्रुओंके कहनेसे ॥ ८ ॥ मय मुग्रीवके साथ मित्रता करनेके लिये गही काये है ॥ ९ ॥ यह सुनकर हनुमान्ने अपना अहली स्वरूप प्रकट किया और अपना भी सब हाल कह भुनाया । १० ॥ साथ ही वह भी कहा कि आप दोनों मेरे कन्धेपर बैठकर गवतार चल । 'मयाहनु' कहकर वे दोनों साकृतिके कन्धेपर बैठ गये । ११ ॥ महाकपि हनुमान्जी बुद्धकर क्षणभरमें पर्वतके शिखरपर आ गये वहाँ राम-लक्ष्मण एक वृक्षकी छायामें बैठे ॥ १२ ॥ हनुमान्ने बाहर रामका सब समाचार सुनेदमों कह सुनाया । पश्चात् सुनावने अग्नि जलादी और उसे वाली बनकर रामके साथ शीघ्र मित्रता कर ली और परस्पर वे दोनों गले मिले तब स्वयं सुनावने अपने हाथोंसे वृक्षकी शाखा लोडकर रामको बिछानेके लिए दे दी । तब तब लौंग प्रहस्य हुए और बैठ गये । लक्ष्मणने अपना सब वृत्तम मयावको सुनाया ॥ १३-१४ ॥ यह सुनकर सुग्रीवने भी अपना सब हाल बतान हुए कहा—हैं मय ! पण बालिने मेरे साथ जो कुछ किया है, वह सब आप सुन ल ॥ १५ ॥ एक समय मय दानवका पुत्र दुर्मद किङ्किष्का शरीरमें गया । वही आकर वह जोरसे चिन्तावा और बालिको मुठके लिये ललकारा ॥ १६ ॥ सो नमकर बालि बाहर आया और दुर्मदका दहन आरम्भ तक भुक्ता मारा । इससे धक्काकर वह अपने गुफाकी ओर भागा ॥ १७ ॥ उसके पीछे बालि और बालिके पीछे भी भी भागा । वही आकर बालिने मुक्त कहा कि गुफाका कह रहा, मैं गुफाके भीत जाता हूँ ॥ १८ ॥ यदि एक रूहोंमें मैं बाहर आ जाऊँ तो मुझे मरा समझ लीना । ऐसा कहकर वह गुफामें चला गया । उसके कथनानुसार एक महीना बीत गया,

निधेयं मनसा वाली दुर्मदेन हनस्मिन्नि । हनस्मिन्ननरे भुम्बा किञ्चिद्वा विपुवेदिनाम् ॥२०॥  
 गुहाद्वारि शिखामेका निधाय दुर्मदस्य च । यन्नतो मार्गगेथार्थं किञ्चिदामागतः स्वयम् ॥२१॥  
 मां दृष्ट्वा विपवः मुने वेगाच्चक्रुः पलायनम् । अनिच्छन् मन्त्रिणो मां तन्ददे मन्थवेशयन् ॥२२॥  
 ततो इत्था विपु वाली दृष्ट्वा मां स्वपदस्थितम् । मृगाश्च नगरान्मां च दहिन्यध्यावत्तदा ॥२३॥  
 ततः स सखदेशेन शदयामास दुन्दुभिम् । भूम्पां मुग्धारणाना पः स वप्यो भवेदिति ॥२४॥  
 ततो लोकान्वरिकस्य शृण्वमूको मयाऽऽश्रितः । एकदा दृष्ट्वाभिनान् ईश्वरो मां हि भूयःशृक ॥२५॥  
 बुद्धाय बालिनं रावो ममाह्वयन् मीनयः । ततो बालो समागत्य धू-श मृग कोण ॥२६॥  
 हस्ताभ्यां तच्छिगच्छिन्वा नोत्थिन्वाऽक्षिपद्भुवि । पपात तच्छिगो शान मन्मथाश्रममात्रथा ॥२७॥  
 रक्तवृष्टिः पपातोर्ध्वमनङ्गोऽप्यग्रपङ्कुथा । यथागतोऽग्नि मे वारिन् गिरि शाय ममापने ॥२८॥  
 एवं समस्तदारभ्य ऋष्यमूकं न यान्यमौ । प्रतिज्ञां नै क्रोष्यद्य मीना श्वात्र ममान् ॥२९॥  
 यदा नीता रावणेन तदा दृष्ट्वा मयाञ्च मे । कृष्णोत्तरीये शिखानि पश्यत्य भूयगान् हि ॥३०॥  
 ह्युक्त्या दर्शयामास मुग्धोऽथ भूषणानि हि । तानि दृष्ट्वाऽचरोऽबभूव समस्य निधय यद ॥३१॥  
 त्वयारुणानि मीनायास्तच्छृन्वा लक्ष्मणोऽभ्ररोन । न वैश्वहं समस्तान् वैश्वय मुनिमशानि हि ॥३२॥  
 वदते यानि दृष्टानि मया निव्य मृद्वह । ततो रामोऽतिमत्तुष्टो लब्ध्वा मीनामन्यत ॥३३॥  
 मुपोऽवचनाद्भामः प्रत्ययार्थं तदा क्षणम् । पादांगुष्ठेनाक्षिपत्तदूदं दुभे शिर उचमम् ॥३४॥

किन्तु वह बाहर नहीं आया । मैं जब गुहामें निकलता हुआ स्थिर रहा तो मनस निधाय कर ।  
 कि दुर्मद दानवन बालीको मार डाला । उसी समय यह मुनकर कि शयदान शिखियाका घा ।  
 एक दारक एक बड़ा भारी शिलास लौक दिया और निधाय कर दिया कि अब दुर्मदका मार्ग रुक गया है ।  
 वह चल करके भी बाहर नहीं निकल सकेगा । तब मैं अपनी चिन्तिया मग्निका चला आया ॥ १५-२१ ॥  
 मुने देवनके साथ ही सब सब भाग गये और मेरी इच्छा न रहनेपर भी शिखी ने मुझे माई दे ।  
 देता दिया ॥ २२ ॥ पछान् वारि भी मुझे मारकर घर आया और मुझे अपने घरपर खेता दखा ला मुने ।  
 नरकर उसी समय नगरमें बाहर निकल दिया । २३ ॥ तब ही तब दशाव उसमें टिपारा पिटवाकर दखा दि ।  
 दि जो कोई मुझे नको करण देकर क्षमा करण, वह मेरा अग्रायी होगा और मार डाला जायगा ॥ २४ ॥  
 यन्नतो सब दशाव पुनकर मैंने इस क्रूरमूक गिरिका आश्रय लिया । यहाँकी क्या यह है कि एक दिन  
 बुद्धा नामक ईश्वर मेमका स्व घरका रात्रि ममय बाल का यही मम और उसका पुत्रक निवे लखकार ।  
 बाल अकर अपने हाथमें उसकी सीप एकद ला और खींचकर उसका मिर बडम उठा डलवा पुनार द  
 दश 'हे राम' उसका वह मिर मलङ्ग कपिके आक्रमण जा गिरा ॥ २५-२६ ॥ इससे मम दूकालिक ऊन भी  
 द कर दिया । तब उन्होंने न प करके इस बात दिया कि 'अरे बालि' यदि मम पत्रत मया आश्रमक बाव तु आवेगा  
 न मुक्त कर जायगा' ॥ २७ ॥ इस बातसे डरकर वाली 'यहाँ' कभी नहीं जाता । हे राम' मैं प्रतिज्ञा करता हूँ  
 कि न तका शाय हो ले जाऊँगा ॥ २८ ॥ उस रावण उनका ले जा रहा था, तब वही वंछे हुए मैं आकाशम  
 दल था । उस समय स तान अपनी साड़ी द बांधकर कुछ आलूयन नाचे कर थे । व यहाँ है, अब उत  
 देन ॥ २९ ॥ इसका कहकर सुग्रीवने आभूषण निवारा । उन्हें देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा—'हे भाई'  
 मुने इन्हें देखकर डक डक बनला कि ये मन्मक है या नहीं । वने क तनन ले मन्मके आभूषण दल दे  
 ए यह मुनकर सम्मनन कह कि ये सबका ना नही पहचानता, पर तु पावनी मंगुलीके मुनके बा म  
 कः यह कह सकता है कि ये सीत के ही हैं । कारण कि मैं प्रणाम का उ समय कवा उनके पाव देते हैं —मन्म  
 कह नो दल । यह मुनकर राम प्रमन हुए और 'अब सावा 'मल मया' ऐसा समझा ॥ ३१-३३ ॥ तदनन्तर  
 मुनका विश्वास दिलानके लिए, उसी समय रामने मम दाँवके नेट्टेसे मारकर बुद्धाके बने शिला शिरको

दशयोजनपर्यन्तं तथा शणेन वै पुनः । चक्राकागन् मम तालान् दृष्ट्वा देहे सहेः प्रभुः ॥ ३५ ॥  
 म्यायान्मुष्टेन मीमित्रेः पदे किञ्चिद्विषये च । अत्र कृत्वा पदमर्गं तु शेषांशेन स्थित भुवि ॥ ३६ ॥  
 मग्रीवप्रन्वयार्थं हि मम तालान् विभेद मः । शुश्रूषामेकदा तालकलादि स्थापितानि हि ॥ ३७ ॥  
 बलिना मम नीतानि तेन परं ददर्श मः । नमोऽपन्वयि शुभाश्व मविन्ध्यतीति बानरः ॥ ३८ ॥  
 न्यपिग्राह्यं तान् छेत्ता यस्मै हना न संशयः । तद् दृष्ट्वा गमयामन्त्यं तस्मिन्प्रन्वयमपि मः ॥ ३९ ॥  
 मुग्रायस्त पुनः प्राह गघवं तुष्टमानसः । बालिन मुग्नाधेन पुन दत्ताऽपि मालिका ॥ ४० ॥  
 यां दृष्ट्वा विष्वो मुष्टं तनूयार्थं भवन्ति हि । या पुन कडपर्यन्तं तपसा दुःकरणं च ॥ ४१ ॥  
 शिवाह्वया पिता पुत्रमिन्द्रं तेनापि बालिने । प्रान्य पिता मालिकास्तं बालं कटे दधान्यसौ ॥ ४२ ॥  
 तस्यास्त्वं दग्धनाद्राम गतमर्थो भविष्यसि । तत्राशयं चिन्तयस्व चेन्न तेऽद्य जयो भवेत् ॥ ४३ ॥  
 त्वस्य वचनं श्रुत्वा गमः स्वै तमब्रवीत् । यः आगन्माचनः पूर्वं मम तालान्विमिश्रं च ॥ ४४ ॥  
 शब्दं त्वमम शब्देन किञ्चिद्विषयां च बालिनव । निश्चये निद्रितं दृष्ट्वा हर तन्वर्षादिको शुभाम् ॥ ४५ ॥  
 नयेन गघवश्चपेन किञ्चिद्विषये पश्य गः । मचकृत्वा कदाचन तामला वाग्वं दर्श ॥ ४६ ॥  
 ततो गमाज्ञया गन्ता ममाह्वयाथ बालिनव । मुष्टं चक्रार मुग्रावः श्रं गमां अपि ददर्श तम् ॥ ४७ ॥  
 नमानस्यो नो दृष्ट्वा शिवपातविशङ्कया । न श्रुत्वा च तदा चणो गमः संदर्श न्यवर्तत ॥ ४८ ॥  
 मुग्रावो गघव प्राह मां घातयामि बालिता । यदि मदनं दाह्यं त्वमयं अहि मा विषो ॥ ४९ ॥  
 त्वस्य वचनं श्रुत्वा मुग्रायस्य गघूनमः । बन्धय माम् मुग्रावकटे मालां तु बन्धुना ॥ ५० ॥

इस एक दिया ॥ ३४ ॥ वह इस दोहनकी दूरेपर जा गया । तब आकाशमें सारे जगत्पर जय हुन सात  
 लाखवृक्षोंको दग्ध तो रामने मुष्ट पर देवक अंशसे स्थित आसने नीतिन अथवा नीतिन अंगुलि दवाकर उस  
 शपको सीधा किया और वापस उस गाना कुशला एक हा बागव बाह बाह ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ऐसा करके  
 इन्द्रके सुग्रीवका विश्राम किया कि गध मी मरतक वरन और बालीको गानेस समर्थ है । तब समझके  
 बात है कि पा नीम अपनी गुणसे लालक कुछ पल गये थे । उनसे जान कर कोई उदा ने गया । बालीने दत्ता तो  
 उस वहाँ कलकी जगत् मयांसात दिया । तब जागत मणकी शप दे दिया कि तो तेरे ऊपर सात लाखवृक्ष  
 जोगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तब गघन भी कहा कि उ मुष्ट कुशला काटगा, कहा मुष्ट मारगा इमम मन्दह  
 मती है । इसी समयसे आता गाना दवाकर मुष्ट कका निश्चय हो गया । ३९ । तब समझ होकर मुग्राव  
 कहा - मुग्रावमें इन्द्रने दालीक एक माला दी थी । ४० ॥ तब दवाकर उसके शप मुष्ट वान्त हो जाये है  
 नीतिन वागव तब कान्तर वर गाना कथनको निश्चयसे मिली थी । कथनसे म कान्तर अंगुलि दवाकर दो  
 और इन्द्रने बालीको अंगुलि दी । नीतिपूर्वक अपित की हुई यह मालाका जाती मदी । गधम पडिने रहत है  
 ४१ । ४२ ॥ हे राम ! तमको दलनक साथ ही जय भी कर्तव्य हो जायेगे । अलगह हर विषयने नोई  
 उपय मंगला । जिससे आपका विजय हो ॥ ४३ ॥ मुग्रावका इन वचनका सुनकर गम, जिसका व फके  
 द्वारा मम लाखवृक्षोंको काटकर शपम मुक्त किया था उस गानेसे कहा कि तुम मेरे कथननुसार निश्चित्या-  
 म जाकर नीतिने समझ जय कि वा ले गोता रहे तब उसने गधसे उन मुन्दर मालाको चुन ली ॥ ४४ ॥  
 ४५ । तथान्तु कटकर दह सीप रामका ज आवे अनुसार निश्चित्या नीतिम गान और गानद्वय से उल  
 मालाका चुनकर इन्द्रको दे जाय ॥ ४६ ॥ तत्पन्तर रामका अंश से मुग्रावने बालीक पास जाकर उसको मुष्ट  
 के लिये लालका और मुष्ट किया । उस मुष्टका गम देत रहे थे किन्तु उन दोनों भाइयोंको समान स्वयान्त  
 देव धोनेन कही मित मुग्राव हो न मारा जाय इस आशङ्कके कारण रामने बागोपर बाग नहीं छोड़ । तब  
 मुग्राव रामके पास लोट आया और रामसे बोला कि मुझे आप बलीके हाथों बंदी मरदाना चाहते हैं ? यदि  
 मुझे मारनकी हो इच्छा हो तो हे विषो ! आप ही मार डाल ॥ ४७-४८ ॥ सुग्रीवक इस वचनका सुनकर

पुनश्च श्रेयसामाम नोऽपि वालिनमाह्वयन् ततः श्रुत्वा ययौ वाला त ताराऽप्राथयत्तदा ॥५१॥  
 क्षुमयदमाकवेन मया रामः समागतः चकार मेवी किं तेन मा कुरुष्वाय संगरम् । ५२॥  
 गच्छ नन्दा रमानाथ वधु मानय सादरम् योऽराज्यपदं दोह नम्य मे वचन शृणु ॥५३॥  
 तत्तारावदनं श्रुत्वा वाला तां वचनमब्रवीत् । जानाम्यहं गच्छ त नररूपधर हरिम् ॥५४॥  
 तस्य हस्तान्सृतिर्मोक्षि गच्छामि परम पदम् । मुख्यं च तिम्र तारेऽत्र मुग्धा च भद्र मवदा ॥५५॥  
 यदा त्वया म मुग्र वः कश्चिन्मि रति प्रिये तदा तन्पत्निमागस्यानुष्यं गच्छाम माभिनि ॥५६॥  
 अत एव मालिका ये मुग्धाऽभून्पश्य मन्त्रिये । अद्याहं रामबाणेन पातित्यामि रणागणे ॥५७॥  
 अद्य वन्द्याऽस्म्यहं तारे धन्यौ नो पितरौ मम । योग्य श्रं रामहस्तेन मग्ध्यामि रणागणे ॥५८॥  
 एवमाश्च त्वया तां मार्गं ययौ वाला न्यगन्तिर । दृष्ट्वा वाला महोन्पातान् सन्तोषं परम ययौ ॥५९॥  
 चकार बन्धुना मुहं तदा बाणेन गच्छतः । वृत्रपण्डे निरोधून्वा पानयामाम त भुवि ॥६०॥  
 ततस्तारा समागत्य शुशोच वालिनं प्रति । वाला दृष्ट्वा रमानाथ तदा प्राह स गच्छतः ॥६१॥  
 वृत्रपण्डे निरोधून्वा न्ययाऽहं त द्वितो हृदि । तदाद्य दूयतां जालं मम जानो महोदयः ॥६२॥  
 ।। मयाऽवकृतं ते हि त्वया यस्मार्त्तिपार्तवः । रामः प्राह चान्दिन न्य रमाया लम्पटः सदा । ६३॥  
 वन्धुभार्या गृहं स्थित्य वन्धु हन्तु त्वांमच्छामि । दृष्ट्वा तं तदा ममात्मावव मया तस्मार्त्तिपार्तवः ॥६४॥  
 यथा त्वया रुमा मुक्ता तथा तारा तव प्रियाम् । मेऽप्यप्य हि मुग्धाया वचनान्म कर्पाधर । ६५॥  
 यदापि च दुराचारा निहताऽपि । तथापि । भल्लहपेग हावगनाऽऽग्रण मम ॥६६॥  
 चिरम् प्रभासे बाणेन पूर्ववरेण वातर । तदा सद्गुणमरणम्यास्थ काश्यामोन्वात् । ६७॥  
 पुनक्ति गच्छामि चं वालिन शुभां तस्मात्तग हि । ततः प्राह पुनर्वाला मऽभवावध्यदुदास्तम् ॥६८॥

[illegible]

श्रीगणेशाय नमः पूर्वं धनेन शत्रुणेन हि । इति अभिषेकान्तरात् । तव मया तदा ॥६९॥  
 अधुना प्रार्थयामि स्वामिन् । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥७०॥  
 अहं तदा गमः । कार्यान्तः शत्रुणां । अथ गमं म युगेनो गम्यार्थं प्रार्थयन्तदा ॥७१॥  
 गमस्तमेव गमः । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥७२॥  
 प्रवर्षणान्तरं । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥७३॥  
 तदाय वापि कान् । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥७४॥  
 साधिका मीनया युक्तमन्तरात् । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥७५॥  
 एवं तामीतदा मीनया युक्तमन्तरात् । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥७६॥  
 एकदा । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥७७॥  
 एतस्मिन्न्तरे गमो । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥७८॥  
 मोक्षे गम्यात् । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥७९॥  
 शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥८०॥  
 एतस्मिन्न्तरे गमो । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥८१॥  
 लक्ष्मण । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥८२॥  
 सुग्रीवे च न्या । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥८३॥  
 ददा । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥८४॥  
 वाली येन हतो वीरः । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥८५॥

हावो मरनेके शत्रुसे जन्मान्तरगतत्वं शुभ मतिर्वा प्रप्तं हावा । वालोने फिर कहा—यदि आप मेरे पास  
 आते तो मैं तुम्हें आपका संताका बना दवाना तथा शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥८६॥  
 ॥८७॥ ॥८८॥ ॥८९॥ ॥९०॥ ॥९१॥ ॥९२॥ ॥९३॥ ॥९४॥ ॥९५॥ ॥९६॥ ॥९७॥ ॥९८॥ ॥९९॥ ॥१००॥  
 तदाय वापि कान् । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥१०१॥  
 साधिका मीनया युक्तमन्तरात् । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥१०२॥  
 एवं तामीतदा मीनया युक्तमन्तरात् । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥१०३॥  
 एकदा । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥१०४॥  
 एतस्मिन्न्तरे गमो । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥१०५॥  
 मोक्षे गम्यात् । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥१०६॥  
 शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥१०७॥  
 एतस्मिन्न्तरे गमो । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥१०८॥  
 लक्ष्मण । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥१०९॥  
 सुग्रीवे च न्या । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥११०॥  
 ददा । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥१११॥  
 वाली येन हतो वीरः । शत्रुणां स तदा दानं । तद्गोपान् रणायणे ॥११२॥



त्रिमन्यन्तपरुषं वदन्तं लक्ष्मणं तदा उवाच हनुमान् वीरः कथमेवं प्रभाषसे ८३ ॥  
 गणकार्यार्धमनिशं जामनिं न तु विष्मयः । इच्छुस्त्वा तं पूजयित्वा सूर्यवेणुं च मरुतिः ८४ ॥  
 चकार लक्ष्मणं शान्तं सुग्रीवोऽप्यथ वानरैः । शान्ता न राघव नन्वा दशयामास वानरान् ८५ ॥  
 राघव म तदा ब्राह्म सुग्रीवः प्लवगाधिपः । देव पश्य यमायां नो वानराणां महाविभूम् ८६ ॥  
 अथ गुहाधिपतयः पञ्चान्यष्टदश स्मृताः । ततो र माजया सीताशुदधयं तान् दिदेश सः ८७ ॥  
 तेषु सर्वान्तु विविधान् वानरान् प्रेष्य मन्त्रयाम् । यस्यां दिशि जाम्बवानमङ्गदं वायुनन्दनम् ८८ ॥  
 नल सुपेण शुभं मेदं मन्त्रेपयत्तदा । मामाङ्गदनिवर्तय नचिदुष्य भविष्यथ ८९ ॥  
 ततो रामो मुद्रिकां स्वी ददौ चारुविषम्करेः । भजामाक्षयुक्तये सीतार्यं दायतां रहः ९० ॥  
 ततो रामो निजं मन्त्रं ददौ तस्मै हनुमते । तन्मन्त्ररूपं लक्ष्मिने कृत्वा तु जपलेखने ९१ ॥  
 ल-घ्वा सामर्थ्यमतुलं लकां गन्तुं न मरुतिनः । नन्वा रामं परिक्रम्य जगाम कपिभिः सह ९२ ॥  
 यदन्त राघवः ब्राह्मः चित्रगटे पुगं कृतम् । मनःशिलाशाम्भिलक सीताभास्त्रे विनिर्मितम् ९३ ॥  
 ण्डयोः पञ्चवल्क्यादि र्सीतार्यं कथयन् गृहम् । तवस्ते प्रारथनां सर्वे पश्चिमादिषु दिक्षु च ९४ ॥  
 तपितास्ते समापाना न दृष्टा मेति न त्रसन् । तदापदायाः प्लवगा, र्सीतार्यं चक्रमुर्वते ९५ ॥  
 मन्वाऽप्य व वणश्चेति राक्षसाञ्छ शोऽर्पयन् । साद्राक्ष्यान्ते वगन्दद्गः गुहाद्रागद्विनिर्गतान् ९६ ॥  
 जगार्थं मप्रविष्टस्ते गुहाया वानरोत्तमम् । तस्या तान् सञ्छन्मनूष्यो दिशान्गदार्शव हि ९७ ॥  
 अजिह्वतानि निर्मिर वध्रमस्तु इनस्तनः । तत्र रत्नमयं दिव्यं गेहं दृष्ट्वा खयं शुभाम् ९८ ॥

रामजी भूत गये हो । ८४ । जिस वज्रमे तब जाह्नवा मारा गया था , तभी जाण गन्तना का प्रतीका कर रहा  
 ८५ । आज मैं तुम्हें मारकर जन सागि आकाशवा है सीता म मार भंज दूंगा । ८६ । लक्ष्मण जब स प्रकार  
 गान्त कठोर वदन कहने कर तब हनुमान् कह कि आप हम कठोर वदन नए पय निकाल रहे हैं ?  
 ८७ ॥ रामके कारक लिए पूरा व रान दिन पंचे गहना है । उनका कहकर त गान् । ८८ । राग लक्ष्मणको पुजा  
 तन्वाय श्री उनको शान्त कावाग । तन्वाय सर्व व वानराको लेकर र मव । ८९ । वहाँ जा लय,  
 न रागो लिखलाकर प्लवगा अप मरुति कहा— देव दावत, वानरात, वन भारी सता आ रहा है  
 ९० । इसमें अठारह पद तन्वाय है । नरवानर गान्वा अ जाम । व वाताको खोज करके  
 ९१ । सब दिशाआम वहुतसे जान का तमा ममद नेज दिया । उनमेंसे जाम्बवान, अंगद, हनुमान् नल  
 ९२ । गुण तन्वा मैदना दक्षिण दिक्षाम अजा ओर कह दिया कि एक मासके अतर राताको सुधि लेकर लोट  
 आ , तभी तं तुम मवका मर गहना जायगा । ९३ । तब रामन ज , गी हनुमान्के हाथोंम  
 ओर कहा कि यह मर नागन अचित्त अग्रे नान्त नलाका रता । ९४ । वदमे अपना मंत्र  
 मानुहा दिया । जिसक कि एक आख कर जग गया लिखकर तु गान् अनुल सामर्थ्य प्राप्त  
 ९५ । पञ्चात् हनुमान्ने रामका प्रणाम कि । लो । निज करक नरेक मास चल दिये ॥ ९४ ॥ ९५ ॥  
 नन्त ममरा रामन विषयूम किता हुका गउ पत्रि हनुमान्को सताने हुए कहा कि एक समय मैं सीताक  
 ९६ । मन्त्रम मैनिष्ठिका लिए तवा करलोपर पलवलाका रवण की था । उ वनका तुम सीतासे  
 ९७ । पकान्तम कहत । जिसमे कि उनका तुम्हारा विद्या ही जय । इसके बाद व न , विभिन्न दिशाओं क  
 ९८ । दिये । ९९ । १०० ॥ कुछ कालके बाद वहुतसे वानरोत्तम आकर सुग्रीवसे कह कि तको सीता व  
 नही दिखई दी , उपर अङ्गद दि वानर सी सीताको खोजन हुए वनन डगर-डगर भ्रमण कर रहे थे । १०१  
 १०२ । गोमी खोजवाले वहुतसे पक्षा दह ॥ १०३ । १०४ । यह इतकर चारसे पीडित वानरोंम उत्तम वे वानर  
 १०५ । उनकी अभिलाषासे उर गुफामे घुसे , उनमें जाव जाते उन्हें अठारह दिन बंन गये । १०६ । वे उस  
 १०७ । अकारम इधर उधर घटकनेलगे अचानक वहाँ उन्हें रत्नमय दिव्य दो भवन तथा उनमें एक सुन्दरी स्त्री दिखाली

नञ्चावशतं निजं वृत्तं न्यद्रुतं धोतुमुग्रताः । तान्पूज्य कथयामास चैनं वृत्तं तु योगिनी ॥१०२॥  
 हृष्यानाम्ना मुना विश्वकर्मेणः सा बहुधनम् नृनान लोपयामास ददौ तस्यै पुरं महत् ॥१०३॥  
 अत्र स्थित्वा चिरं कालं यदा गतुं समुद्यता । सा सा प्राहात्र रामस्य प्रसीक्षां कुरु गच्छति ॥१०४॥  
 समागच्छन्त्य रामस्य कृत्वा पूजनमुत्तमम् । इन्द्रकवा मादित्र यानां राघव सम्यक्ते भया ॥१०५॥  
 स्वयदभेति नाम्नाऽहं हेमायाः परेषारिका । अभुता वन पुष्पाकवाहायं किं करोम्यहम् ॥१०६॥  
 तनय्या वचनं श्रुत्वा मन्त्रा स्मीयदिनवश्यम् । तामृत्तुशान्ताः सर्वे नस्त्वं कुरु गृहाद्वहिः ॥१०७॥  
 इन्द्रकवा सा सपैतद तैः सहैव ययी बहिः । तद्विगच्छादिकर्मायनयनैर्वानैश्चिदा ॥१०८॥  
 न ज्ञातं च तथा केन सागणं च बहिः कृतम् । मां वि मन्त्रा पूज्य राम देहं त्यक्त्वा दिवं ययी ॥१०९॥  
 तनस्ते वानरा ज्ञान्वा गुहायां स्वदिनव्ययम् । शिषणा, सामरं दृष्ट्वा तस्थूः प्राप्याश्चरन्ते ॥११०॥  
 जटायोः कीर्तनं चक्रं रामकार्यं स्मृतं पुरा । तच्छ्रुत्वाऽहं स यपातिः तान्दत्तु यः समुद्यतः ॥१११॥  
 तेषां श्रुत्वा मूर्तिं वयोर्दत्तशतस्य जज्ञावल्किम् । तेषां श्रुत्वा पूज्यं न मानावृत्तं न्यवेद्यत् ॥११२॥  
 ननराजतमयेऽन्येऽन्यैर्लोक्याः वर्ततेऽभुता । अशोकविकाशानु तान्नाऽन्येनां प्रपश्यथ ॥११३॥  
 अहं पक्षवहानां नाम मया गन्तुं न शक्यते । गृध्रान्वाद्दृष्ट्वाऽहं सीतां मन्दस्यते मिते ॥११४॥  
 आशा जटागुपा पूर्वगृहीयाहं बलाद्विभू । स्पृष्ट्वा मन्त्रा तामस्त्रानो बंधुमथा मखे ॥११५॥  
 पक्ष्मया भस्मसाक्षात्तां मे पक्षी पतिताकुर्मो । जटागुः स मयश्च गतो देवानां पुनः ॥११६॥  
 अहं तदा वसुदेवश्चन्द्रशर्मणमुत्तमम् । मुनिं नन्वा तदा तस्मै निजपुत्रं निवेदितम् ॥११७॥

टी ॥ १०१ ॥ इसका वृत्तान्तवा गुननक अस्मिन्नाम वनराज कहा—अपना वृत्तान्त मुनाया, तम कोन ह  
 ओर दुम्हाया गया नाम है ? यह कारणा उन सबका सम्मान करने कहत गया—॥ १०२ ॥ विश्वकर्माका हमा-  
 नामय प्राप्त है एक कथा थी । उसका एक महादेवजाका पुत्र गान बरक प्रसाद किया । तब उन्होंने उसका  
 यह बड़ा भार नगर दिया ॥ १०३ ॥ यहाँ वृद्धा कालवक निवास करे जब यह जान गया । तब उसने मुसका  
 कहा कि यह वृद्ध कालवक निवास करता है तुम रामके आज्ञानुसार प्रसादा करी ॥ १०४ ॥ उन  
 रामका उत्तम प्रकारसे पूजन करके बाद तुम भी चले आना इतना कहकर वह चली गयी । इस कारण  
 अब मैं भी रामक पास जाना चाहता हूँ ॥ १०५ ॥ उमा हेमवत के स्वयंभवा नामका दया है । अब आप  
 लोग यह कह कि मैं अतः जहाँवाँ कोनसे सहायता करूँ ॥ १०६ ॥ उसको इस बातका सुन तब बहुत  
 दिग्विध अन्तर्गत हुआ अखबर से सब उत्ती बल कि हुनका इस प्रकारसे बहुर कर शी ॥ १०७ ॥ यह  
 गुनकर उसने उन सबका अचना अचना आज्ञा मुझसे लिए वह । उमा कालपर वानराका यह नहीं भा म  
 हा पाया कि उमा अस्मिन्ना ओर किम मां न कह करी ॥ १०८ ॥ यह भा रामक पास चला गया तथा उसका  
 पुत्रा करके स्वयं दिया ॥ १०९ ॥ १०९ ॥ यत्र तु मे मय वानरा अपने अवधि दिने का दन देख उदास हो  
 स हक विनार । य ओर उपाय करे ॥ ११० ॥ वानराजक प्रसाद रामके लिए प्रजापति देवनाल  
 जटागुहं च चर पटो । वहा रह्यवाया सवाग जो उनका स्व जगक दिने उदास था यह उनक मुख्य  
 रजक कायक लिए जटागुहा मरण तथा प्रजापति सुनकर भाई जटागुह । जटागुहाय हक दिने समुद्रतटपर गया ।  
 पश्चात् त वानराका वृत्तान्त सुनकर उनका मरतका समाचार बह मुनाया और वह ॥ १११ ॥ ११२ ॥  
 यहाँ समुद्रका पार करके ही वानराका द्वारापर तुम यह दत्त सकत ही ॥ ११३ ॥ मे पान्तस रहित हूँ ।  
 इस कारण वहाँतक नहीं जा सकता । गृध्रका हाथ नख होता है । अतएव मैं सीताका पर्वतपर बैठा हुई  
 लज्जामें यहाँसे दान रहा हूँ ॥ ११४ ॥ मर गले न हुनका कारण वह हाव मैं एक बार अपने बम्के दर्पसे भाई  
 जटागुके साथ उठकर मृत्तका स्पर्श करके लिए आकाशम उठा । रह्य मुझका गमास जटागु जलम लया ।  
 तब मैंने अपनी पीछसे दानकर उसका रक्षा की । जिससे कि मया दाना पावे मरम हा ययी ओर मैं  
 गया जटागु दोनों ऊपर गिर पड़े । जटागु तब भी सकत था । मुझसे मुझने मैंने चन्द्रशर्मा नामक मुनिके

तदा सां स मुनिः प्राह यदा त्वं जानरोत्तमान् । सीताशुद्धिं कथयसि तदा पक्षौ सविष्यतः ॥११८॥  
 पश्यतां निर्गदी पक्षी कोमलौ सां क्षणादिह । यदा नीता रावणेन पुनः सीता विहायमा ॥११९॥  
 मन्दुत्रेण तदा दृष्टः कथितः चापि सां तदा धिक्कृतः स मया क्रोधात्मा त्वया न विमोचिता ॥१२०॥  
 तदागम्य गतः क्रोधादप्यपि न सभागतः । इन्धुस्त्वा तान् कर्षान् पृष्ट्वा स मया तिसृगन्धदा ॥१२१॥  
 अथ ते जानराः सर्वे प्राचुः स्वं स्वं यत्नं तदा । न कोऽपि गमने शक्तः शनयोजनमागरे ॥१२२॥  
 तदा स जांबवान् वृद्धः स्तुत्वा तं मारुतिं ब्रुवः । जन्मकर्मादि संश्रद्धयलकां गेनुं दिदेश नम् ॥१२३॥  
 सोऽपि श्रुत्वा मधुघोशं चकार रुह्य पवतम् । निजभगवद्भूमिगतं कृत्वा मग्धात् राधवम् ॥१२४॥  
 एवं गिरीन्द्रजे प्रोक्तं किञ्चिद्वाचिषये कृतम् । अग्निं रावरेणैवं पुनः पापप्रणाशनम् ॥१२५॥

इति श्रीषातकोटिगमचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दगमादजे सायकाद विट्किन्वाचरित्रोद्धृतः सर्गः १ ८ ॥

### नवमः सर्गः

( हनुमान्का लंकारमें जाकर सीताका पता लगाना और लंका जलाना )

शोणित इवाच

अथ उद्गीय हनुमान् यथावाकाशवर्त्मना । तद्दृष्ट्वा न ठले ज्ञातुं सुगमां नागपातम् ॥ १ ॥  
 प्रेषयामासुरभगाः सा शीघ्रं तन्पूगे यथा । न न सा मारुतिं प्राह रिशं न्वं वदत मम ॥ २ ॥  
 स प्राह स्फुरीरस्य कार्यं कृत्वा त्रिषाम्पदम् । दृष्ट्वा तस्यास्तु निर्वन्ध उपर्येत तदा कथिः ॥ ३ ॥  
 विवर्धितं तथाऽप्यास्यं तदा सप्तमो बभूव हः । अगुष्टमावन्मम्याः स वक्ष्ये गन्तव्यं विनिर्गतः ॥ ४ ॥

पास जाकर प्रणाम किया और अपना वृत्तान्त उन्हें सुनाया ॥ ११५-११७ ॥ तब मुनिने कहा कि जब तुम जानरोको सीताकी खबर मनाओगे । उर्दी ममर तुम्हीग पाव्य पुन तम लावोंगे ॥ ११८ ॥ दृष्ट्वा, मेरे शरीर-मे देखे कोमल पोखे क्षणभरमें निकल आयी । उस गमर जब रावण सीताका आकाशमार्गमें ले जा रहा था ॥ ११९ ॥ उधी समय नरे पुनत उसका देखा ता आकाश मुखमें कह । तब मैं उसका बहुत बिकराना और कहा—खरे दृष्ट ! तूने सीताका घुड़या क्यों नहीं ? ॥ १२० ॥ तब यह कृत्रित हवाग मरे नामसे चला गया और आजतक नहीं लौटा । इतना कह तथा जानराग पूछकर सगानो भी वहाँसे चला गया ॥ १२१ ॥ तब जानरोग परस्पर एक दूसरेमें अपना-अपना बल पूछा तो पता लगा कि लो ५ जन विस्तारमान मधुघोको लोंघनेके लिये कोई समर्थ नहीं है ॥ १२२ ॥ तब वृद्ध जाम्बवान्ने हनुमान्को बारंबार प्रशंसा की । उनका जन्म तथा वंश कह सुनाया और उन्हें लज्जा जानेका अ दश दिवा ॥ १२३ ॥ हनुमान्जो भी जाम्बवान्के शब्द सुन तथा अपना पुष्टार्थ समझ करके परतपर बढ़कर कृत्रन्की उलत हुए । अपने भासों उन्होंने परसको जमीनम घमा दिया और रामका स्मरण करने लगे ॥ १२४ ॥ हे विरुद्धत्र , इस प्रकार पहिल किया हुआ रामका दिविकन्वाचस्त्रि मैंने तुमको सुना दिया । जो कि अवलमायसे पापोका नाश कर देता है ॥ १२५ ॥ इति आशतकः।टि।मचरितांतर्गत श्रीमदानन्दगमादजे सायकाद विट्किन्वाचरित्रे आयाटीकायः।एव सर्गः ॥ ८ ॥

शिवजी बोल—तदनन्तर हनुमान् उड़कर आकाशमार्गसे लंकाकी गले यह देखकर उनके बलकी जोश लनके लिये देवनाओंने नामोंकी माता मूर्माका भजा । वह शीघ्र मर्ममें हनुमान्जी के सामने जाकर बजो हो यही और मुख फाड़कर हनुमान्तम कहने लगे कि तू आकर मेरे मुखमें प्रवेश कर मैं तुझे ख.ऊँगी ॥ १ ॥ २ ॥ हनुमान्ने उत्तर दिया कि मैं श्रीरामका कार्य संपादन करनेके धन आकर तुम्हारे मुखमें प्रवेश करूँगा । परन्तु उसका अधिक आग्रह देखकर बसिने अपना शरीर बढ़ाया ॥ ३ ॥ यह देखकर सुरस ने भी अपनी काया और अधिक बढ़ायी । तब हनुमान् आंगुष्ठमायका सूक्ष्म रूप धरके उसके मुखमें प्रविष्ट होकर

ज्ञान्वा साऽपि बल तस्य स्तुत्वा त प्रययौ दिवम्, अथाधिचचनान्मार्गे मैनाकः पर्वतो महान् ॥ ५ ॥  
 जलमध्यान्प्रादुरभूद्विश्रान्त्यर्थं हनुमतः । नानामणिमयैः नृहस्तस्योपनि नगकृतिः ॥ ६ ॥  
 भूत्वा यान्त हनुमन्तं प्राह मैनाकपर्वतः । आगच्छासुतकल्पानि जग्वा पक्ककल्पानि च ॥ ७ ॥  
 विश्रम्यात्र क्षणं पश्चाद्विश्रम्यसि यथासुखम् पुरा गिराणामिद्रेण युद्धमार्गात्सुदारुणम् ॥ ८ ॥  
 तदा दशरथेनाह मोचिनोऽस्म्यत्र मन्विनः अतस्तदुपकारं हि निस्तर्तुं निर्गतोऽस्म्यहम् ॥ ९ ॥  
 गच्छतो रामकार्यार्थं न च विभ्रान्तिहेतवे तदा न हनुमानाह रामकार्यं न मे श्रमः ॥ १० ॥  
 विश्रामः श्यामिकार्येऽत्र न कुरोम्यद्य भक्षणम् । मैनाकस्त पुनः प्राह स्वस्पर्शान्पावयस्व माम् ॥ ११ ॥  
 तथेति स्पृष्टक्षिप्रः कराग्रेण ययौ कपिः । किञ्चिददूरं गतस्यास्य छाया छायाग्रहोऽग्रहीत् ॥ १२ ॥  
 सिंहकाशम सा घोरं जलमध्ये स्थिता मदा । आकाशगामिनां छायामाकम्पाकुम्भ्य मक्षती ॥ १३ ॥  
 तथा गृहीतो हनुमोऽश्विनयामास वीर्यवान् केनेदं मे कृत वंगरोधनं विघ्नकारिणा ॥ १४ ॥  
 एवं विचिन्त्य हनुमानधो दृष्ट प्रमारयन् । तत्र दृष्ट्वा सिंहिकां तां तदस्ये न्यपतत्कपिः ॥ १५ ॥  
 तस्यात्रजाल निष्काम्य तां हत्वाऽग्रे ययौ पुनः तमोऽग्नेर्दक्षिणे कूले लंकां कृत्य तु पार्श्वतः ॥ १६ ॥  
 पयान् पार्लकार्या तत्र तां रावणम्वसाप् । कौचं हत्वा सिंहिकावल्गुकां गर्वा विवेक्ष मः ॥ १७ ॥  
 तदा लङ्कापुरी नाम्नी राक्षसी त व्यनर्जयन् । हनुमानपि तां वाममूर्ष्टिनाऽवजयत् ॥ १८ ॥  
 तदा स्मृत्वा ब्रह्मावयं सा प्राहभ्रमूरी पुरी । ब्रह्मणोक्ता पुरा चाह यदा त्वां धर्षयेत्कपिः ॥ १९ ॥  
 तदा रामो रावणस्य वधार्थमत्र यास्यति । ज्ञातं मया रावणस्य वधं रामः कुरिष्यति ॥ २० ॥  
 जिनं त्वया गच्छ लंकांमहोके पश्य जानकीम् ततो विवेश हनुमोल्लङ्कां पश्यन्त्ययौ तदा ॥ २१ ॥

पाठ बाहर निकल आये ॥ ५ ॥ तब सगसा नन्दवा बल जान और मृति फाँके स्वर्गको चली गयी ।  
 पश्चात् समुद्र के कहनेसे महेन्द्र मैनाक पर्वत जलके बीचसे हनुमान् के विश्राम की स्थिति आश्रय देकर उठ  
 मड़ा हुआ । जाना मणिमय शिखरान् ऊपर मनुष्यका स्थ धारण करके मैनाक पर्वत क्षान् हुए हनुमन् ने  
 जाना कि आहूँ और गंग लानेके लिये फाँको लड़ा ॥ ५-७ ॥ तब पश्चात् रावणपर विश्राम करने सुखपूर्वक  
 क्षान् जाहगगा । पूर्वजन्म पर्वताका इन्द्रके साथ दक्षिण युद्ध हुआ था ॥ ८ ॥ उस समय राजा दशरथने मुझे  
 दक्षिण था तबसे मे वही आकर रहता है । मे उनके उपकारने उक्त हानके लिये ही आपक समयसे  
 उपनियत हुआ हूँ ॥ ९ ॥ मो इमलिये कि रामकार्य के लिये आते हुए आप घर ऊपर विश्राम करके जाये तब  
 नम हनुमान् के कया कि क्या रामके कारण मुझे श्रम होगा ? अब त्वमोके कार्यमे तो सदा विधान ही  
 रहता है । इमलिये मे वही महरकन धावन आदि नहीं कर सकन । तब फिर मैनाकन कहा-अच्छा, कपस नम  
 आपन हाथसे श्रम करके ला मुझे पवित्र कर ॥ १०, ११ ॥ 'तथापि यह हनुमान् ने उसे उक्त श्रित्तियाँ कर  
 चढ़ पड़ । जब कुछ दूर आ । वह तो उनका छायाका किसे छायाहने पकड़ लिया । १२ ॥ वह सि हकी  
 नायकी धार राक्षसा थी । वो सदा जलमे रहा कान्त वो और आकाशमागमे उड़ने हुए परियोंको छाया  
 पक्षीकर खीच नीचे और ला जाता थी ॥ १३ ॥ उसके पकड़नेपर वल्वान् हनुमान् सोचने लग कि किमन रामके  
 कामके विघ्न डालनेके लिये मेरा घर तक दिया । १४ ॥ यह विचारकर हनुमान् ने मोन देखा तो सिंहिका  
 भक्षणको देखकर उसके पक्षमे ही चढ़ पड़ ॥ १५ ॥ उन्हने उसका आँख निजाल ली और नम मार बाँका ।  
 वहने भागे वह तो समुद्रके दक्षिण किनारे स्थित लङ्काका वल्वमे स्थित पार्लहामे जा पहुँच । वहाँ  
 रावणको लड़की खीचनी सिंहिकाके ही समान मारकर रात्रिक समय लङ्काम प्रवेश किया ॥ १६ ॥ १७ ॥  
 तब उक्त लङ्का नामकी राजाई डगने लगा । हनुमन् ने उसकी भी अवज्ञाम बाँई हाथका एक मुक्का मारा  
 ॥ १८ ॥ उस समय ब्रह्माके वाक्पक स्वरण करके लका आँखोमे भी मरकर बोली कि वृकालमे ब्रह्माने  
 मुझे कहा था कि जब कोई वातर तेरा अपमान करगा ॥ १९ ॥ अब राम रावणका वध करनेके लिए यहाँ

ददर्श लङ्कां तां रम्पां गोपुगाटालम्बिताम् । दृष्ट्वाभीचतुष्काट्यां त्रिकटुशिसरस्थिताम् ॥२२॥  
 पश्यन्ममन्ततः सीतां प्रतिमेहं स मारुतिः । गुहायां निहितं कुम्भकर्णं दृष्ट्वा मयानकम् ॥२३॥  
 दृष्ट्वा विभीषणं रामकीर्तने हृष्टमानवम् । दृष्ट्वा सुलोचनायुक्तं निहितं मेघनिःस्वनम् ॥२४॥  
 ययौ राजगृहं राज्ञौ गवणं मदसि स्थितम् । दृष्ट्वा स्वयं वायुदेवो दीपरात्रीर्च्यलोकयन् ॥२५॥  
 अकरोद्वस्त्रहीनास्तान् रावणदोन्म मारुतिः । उत्पुकेनाकरोद्धस्व हूर्चं च रावणस्य च ॥२६॥  
 राक्षसीः कोटिशो नद्याः कृत्वा तोयधराज्यविः । वधं ज लीलया तृणीं दृष्ट्वा तृच्छेत् न तर्जयन् ॥२७॥  
 मदाऽनिविह्वलाः सर्वे प्रोनुस्तेऽथ परस्परम् । क्रुद्धाऽथ जानकी सन्त्य नः प्राणात्ममुपागताम् ॥२८॥  
 नन्तुन्वा तुष्टचित्तः स ययौ रावणमद्गुहम् । अदृष्ट्वा जानकीं तत्र ययौ पुष्पकमुत्तमम् ॥२९॥  
 गवणं निहितं दृष्ट्वा वेष्टितं स्त्रीकदम्बकैः । दृष्ट्वा मन्दोदरीं तत्र मातुषमिति शक्तिनः ॥३०॥  
 लक्ष्मणोक्तादिचिह्नानि पर्यस्तुम्यां ददर्श न , तथापि सीतामदृशी दृष्ट्वा वयग्रमताम्बुभूम् ॥३१॥

पार्श्वपुराण

कथं मन्दोदरी सीतामदृशी राक्षसीमिता । मानांशांशाशजाः सर्वाः स्त्रियथेति भृतं मया ॥३२॥

श्रीशिव उवाच

पुण्यं कारणं देहि सीतेष्व विष्णुना चिता । तेनैव विष्णुना पूर्वपियं मन्दोदरी चिता ॥३३॥  
 एकदा कैकसी मत्ता रावण प्राह दुःखिता । शेषोच्छ्वासो न तल्लिङ्गं गतं चाद्य रमानलम् ॥३४॥  
 शिवादानोय मां देहि आत्मलिङ्गमनुत्तमम् । तन्मासुचर्चनं भुञ्ज्या गाणनादरदोन्मसम् ॥३५॥  
 मामाह रावणो वाक्यं द्वौ वरौ देहि मां प्रभो । आत्मलिङ्गं च मन्त्रात्रे पन्थयं पार्श्वतो यम ॥३६॥

अन्वय । सो अब मैंने जान लिया कि राम रावणका मारेगा ॥ २० ॥ तुमने लङ्काको जित लिया । जाओ, लङ्कामें पुष्पकर अणोकवाटिकामें जानकीकी सेवा । तब हनुमान सीताकी गोजने हुए लङ्कामें पुष्प ॥ २१ ॥ उन्होंने पुष्पहार तथा अतिरिक्तोंसे माँगल रम्य लङ्कापूरीकी सेवा । वह त्रिकूट पर्वतके पितरग्वर स्थित वाजारों, महकी तथा औरतोंसे रमणीक लग रही थी ॥ २२ ॥ हनुमान स्व और प्रत्येक घरमें जाताको दौटकर मुक्तम भोग हुए कुम्भकर्णको देख ॥ २३ ॥ उन्होंने रावणामक काँतसे यमसमस्त विभ पणको और सुलोचनाके साथ साथ हुए मेघनादको देख ॥ २४ ॥ तदन्तर राजभवनमें जाकर रात्रिके समय सभामें स्थित रावणकी सेवा ; वह देखकर वायुपुत्र हनुमान्ने दीपकोको बुला दिया ॥ २५ ॥ हनुमान्ने उन रावणारिको नगन वरके रावणकी बाड़ी-मुछ आदिको सुझाओंसे जलाने शुरू कर दिया ॥ २६ ॥ कराड़ो राक्षसियोंको नग्न कर दिया ; सेकबेलमें गजके पड़ोको फोड़ डाला और तृणोंसे इतर सिगाहियोंको पूलमें खूब पीटा ॥ २७ ॥ अतिशय दिह्वल होकर वे सब परस्पर कहने लगे कि सबमूच सीताका हम सींगोपर बद्ध हुई है । अब हम आपको प्राणान्तकाय निकट आ गया है ॥ २८ ॥ यह सुता तो संतुष्टचित्त होकर हनुमान् रावणके मदमें गये । वही भी जानकीको न देखकर पुष्पकविमानमें गये ॥ २९ ॥ वही रावणको द्विषोंके साथसे वेष्टित होकर सोता हुआ देखा । साथ ही मन्दोदरीका दृष्टकर 'यही सीता है क्या ?' ऐसी आनका बोले लगे ॥ ३० ॥ परन्तु जब लक्ष्मणके कथनानुसार सीताका मुखाकृति मिलाते लगे तो तन्नी गिनी । फिर भी उसको सीताके समान देखकर आश्चर्यचकित हुए ॥ ३१ ॥ वावर्तजीने पूछा—हे सराशिव ! राक्षसी मन्दोदरी सीताके महज कैसे थी ? मैंने तो सुना है कि उसकी सब स्त्रिये सीताके अंशांशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ श्रीशिवजी कहने लगे—एक बार रावणकी माता कैकसीने दुःखित होकर रावणसे कहा कि शेषनागके चक्षुषसे मेरा लिय पूजा करनेका शिवलिंग जानात्म चला गया है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सो तुम एक उत्तम पुरुष शिवजीसे सौकर पुष्प ला दो । माताके वचनको चला न अपने गायनसे वरदान देनेके लिए राजी करके मुझसे रावणने कहा—हे प्रभो ! मुझको दो वर दीजिए । एवसे मरी माताके लिए आत्मलिङ्ग और इससे

तस्यैव यत्नं श्रुत्वा त्वं दत्ताऽसि गिरिगृजे । दत्त्वाऽऽत्मलिङ्गमप्रोक्तो मया त्वं यदि रावण । ३७।  
 मार्गे लिङ्गं भूमिमस्थं करोषि तद्दृष्ट्वा पुनः । नाग्रे गच्छामि तत्स्थानात्तत्रैव च वसाम्यहम् ॥ ३८।  
 तथेति रावणश्चोक्त्वा देव्याः लिङ्गेन सो ययौ । तदा त्वया स्मृतो विष्णुर्लेनाङ्गचन्दनादिना । ३९।  
 कृत्वा मन्दोदरी नारी मयदहस्तेऽर्पिता शुभा । मां निनाय मयः शीघ्रं पाताले स्वीयमदृष्टहम् ॥ ४०।  
 ततो द्विजस्वरूपेण विष्णुः प्राह दशाननम् । प्रतापितः शिवेन त्वं दत्त्वा दुर्गां तु कृत्रिमाम् ॥ ४१।  
 पाताले मयगेहे मां गोपिताऽस्ति शिवेन हि । विविच्यमि त्वं स्वर्लोकं भूलोकं चेति संकया । ४२।  
 स्वीयं मत्त्वा तु पातालं तत्र त्वं न मवेक्ष्यसि । त्वजेमां कृत्रिमां दुर्गां पश्य तां मयमद्यनि । ४३।  
 गिरिद्वजां महारम्यां पत्नीं कृत्वा मुखं भज । तद्विप्रवचनं मयं मत्वा मामेवैव पुनः । ४४।  
 विहस्य रावणः प्राह ज्ञातं तेऽन्तर्गतं मया । अर्पिता कृत्रिमा देवी मां तां गोपय स्यात्तले ॥ ४५।  
 त्वैवाम्बुधृता चैवं त्वद् नेष्यामि गोपिताम् । ह्युक्त्वा त्वां विमृज्याथ पातालं गन्तुमुद्यतः ॥ ४६।  
 तावन्मार्गे सन्पशुकाग्रतः शतं द्विजं तदा । आत्मलिङ्गं धृण हस्ते शुद्धं च वचनात्मजम् ॥ ४७।  
 यात्राश्ववर्धं शकां स्वाग्रहमेध्यामि वेगतः । द्विजवेणुधरो विष्णुस्तदा प्राह दशाननम् । ४८।  
 अनिक्रान्ते मुहुर्नऽप्य लिङ्गं स्थाप्य ब्रजाम्यहम् । तथेति रावणश्चोक्त्वा तत्करे लिङ्गमर्पयत् । ४९।  
 ततो मूरस्य मां वागप्रवहिताऽभूच्चिरं प्रिये । अनिक्रान्ते मुहुर्नऽप्य लिङ्गं मागम्येधामि । ५०।  
 पश्चिमे स्थाप्य भूधरां स ययौ स्वीयम्यलङ्घरिः । तदा स रावणश्चापि मूरं कृत्वा पथाविधिः । ५१।  
 लिङ्गं दृष्ट्वा भूमिमस्थं तच्छिञ्चात्तदधरा । तदा भूधरां गतं लिङ्गं शिरः किञ्चिच्चालनं । ५२।  
 अभूद्वर्गा कर्णध्रुमदृशी तच्छिञ्चःस्थले । गर्तायां तच्छिञ्चाश्चापि कर्णध्रुमं कृतम् । ५३।

पत्नी खदानके लिङ्गमुद्धे पार्वतीको दे दीक्षा ॥ ३५ । ३६ ॥ हे 'रावण' उक्तं वरदाता नन्दन मेने तुमको  
 उसे दे दिया और आत्मलिङ्ग भी देकर उससे कहा—हे रावण ! देव यदि तू इस लिङ्गको माग्य नहीं भी  
 रावण दिग नो दे आगे न जाकर वही गृह जाऊंगा ॥ ३७ । ३८ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर रावण देवी पावती  
 तथा लिङ्गको लेकर चला गया उस समय तुमने विष्णुभगवानका स्मरण किया तब उन्होंने अपने अङ्गक चन्दन  
 आदिगैऽमन्दादर का मन्दरी रम्य बनाकर मय दानवका दिया । उस लेकर मयदानव पालाया अपने मनाहर अवनवी  
 रता गया ॥ ३९ । ४० । तब विष्णुभगवानो साक्षात्कार कर धारण करके रावण रावणसे कहा—हे दशानन !  
 शिवजी ने तुम्हको उम लिया उन्होंने यह भक्तो पावती तुमका दी है ॥ ४१ ॥ असत्यो तो शिवजीने  
 पातालम मगदानवत धरम लिङ्ग नवा है । उन्होंने यह सच्चा कि तुम स्वर्ग तथा भूलोक ही नालोने  
 ॥ ४२ । अपना वसनाकर पातालसे न खानासे इस कारण तुम इस कृत्रिम दुर्गा को तो छोड़ दी और मय-  
 दानवत धर जेकर अथवा पावतीको देहु निकालो । ४३ । उम अथवा मन्दरी पार्वतीका पत्नी बनाकर  
 रख भागो । विश्वके उस वचनका सच मानकर पुनः रावण मेर पास आया ॥ ४४ । वह हैवकर चाला कि  
 मेने अपना हृदयगत अभिप्रायको जान लिया है । आपने अमल पावतीको रसतलम दिखाकर मुझे तकली  
 पावती दे दी है ॥ ४५ । इसका अब अपने पास हा रलिए । मैं तो उस लियो हुई पार्वतीको ही से जानता  
 इनका वह तका तुमको देने स्मरणकर वह पातालमे जानके लिए लटन हुआ ॥ ४६ ॥ रावण लघुशङ्का करनेकी  
 इच्छावश उराने साक्षात्कार कहा—हे द्विज मेरी प्रार्थना स्वीकार करके सगणके लिए इस शिवलिङ्गको अपने  
 हाथमे लिये रहा ॥ ४७ ॥ मैं अभी लघुशङ्का करके तुम्हारे पास आ रहा हूँ । द्विजनेध धारण करनेवासे  
 विष्णुतन कहा—हे दशानन ! यदि अधिक देर लागेगी तो मैं लिङ्गको वहीपर रखकर चला जाऊंगा । अच्छी  
 बात है, कहकर रावणने शिवलिङ्ग तनके हाथमे दे दिया ॥ ४८ । ४९ ॥ रावण अब लघुशङ्का करने लगा तो  
 बहुत देर तक मूरकी अवण्ड घाग धरने रहा । अधिक समय बीत जानेपर सागरके पश्चिम किनारे लिङ्गको  
 रखकर विष्णुभगवान अपने स्थानको चले गये । उसने पश्चात् रावण भी विविधत् मूरदण्ड करके वही छाया  
 ॥ ५० ॥ ५१ । लिङ्गको जमीनपर रखवा देखकर उसके सिरकी हिलाया, परन्तु भूमगत लिङ्गका सिर नहीं हिल्य

भुजः कर्मोर्मिं लिङ्गं गच्छन् तद्वदिति हि । नतः शिखमनाभ्यूषो पातालं रावणो ययौ ॥५४॥  
 मयमेहे निगेऽप्यथ देवीं मन्दोदरीं व्रजम् । मयं सप्रार्थयामास ददौ तां रावणाय सः ॥५५॥  
 ततो विवाहं निर्दम्य पाणिहं ददौ मयः । रावणाय ददौ शक्तिममोघां शत्रुघानिनीम् ॥५६॥  
 दृष्ट्वा मन्दोदरा मयः प्राह मन्दोदरीमिति । तां नाम्ना रावणस्तुष्टमया स्वीयपथलययी ॥५७॥  
 ततो माता धिक्कृतः स पुनस्तत्रुं श्यरान्वितः । शोकर्णं रावणो गन्वा तप्त्वा लब्ध्वा शिधेश्वरान् ॥५८॥  
 त्रैलोक्यं स्ववशे कृत्वा लंकायां राज्यमाप यः । तस्मान्मर्मानामुमानेयं दृष्ट्वा मन्दोदरा प्रिये ॥५९॥  
 लंकायां चापुपुत्रेण रावणाद्रे विनिद्रिता । मयोऽप्यासीम लंकायां गृहं कृत्वा यथामुत्थम् ॥६०॥  
 मययं पुर्णयो नाम महान् धीरः प्रतापवान् । रात्रीं विनिद्रितो गेहे ब्रह्मदत्तवरणमुधाः ॥६१॥  
 दशस्यहस्तातन्मन्युर्विधिर्मातुर्विचित्र्य च । तस्य वस्त्रं मारुतिना हृतं सदसि वै पुरा ॥६२॥  
 तन्निक्षपद्वं मयपदेकं रावणस्य कपिस्तदा । विर्माणस्य पर्यंकं वसनं रावणस्य च ॥६३॥  
 शिखण्डस्यजानरी म लंकाया च भुहुः कपिः । यथावशो कर्त्तव्यं वृक्षमादमडिताम् ॥६४॥  
 ददर्श तत्र प्राशुं च शिशुपामास पादयम् । तन्मूलं राक्षसमध्ये ददर्शानिकन्यकाम् ॥६५॥  
 एकवेणी कृशां दीनां मलिनाश्चधारिणाम् । भूर्मा श्यामा शोचती रामगमेति भाषिणीम् ॥६६॥  
 कृताथोऽहमिति प्राह दृष्ट्वा मीनां स मारुतिः । शिशुपामगशास्त्राग्रपल्लवाभ्यन्तरे स्थितः ॥६७॥  
 पुरा दृष्टानलंकारान् तस्य देहे ददर्श न । कनः किलकिलाशब्दवर्षयी तत्र दशाननः ॥६८॥  
 ददर्श रावणः स्वप्ने कपिः कश्चिन्ममारुतः । अशोकवर्त्तिकाया सा दृष्टा तेन विदेहजा ॥६९॥

॥५४॥ उसका गिराभागवा जगह कानक देवकी तरह गलहा हो गया । तब उस शिशु भी कर्णशंभुकी तरह  
 कृश हो गया । ५५ । अतएव पृथ्वीक कर्णक सदृश बहु निद्रा शोचने नामसे विख्यात हुआ । जब लिखमन  
 हार रावण बुझाव पाताल चला गया । ५६ ॥ मयक वरम गुह्यरा मन्दोदरीको देखकर मयसे रावणन  
 प्रयत्न की । तब मयने रावणको बहु कन्या दे दी । ५७ । इस प्रकार मयन कन्याका विवाह करके रावणको  
 दृष्टम बहुत सा वस्त्र आपन आदि दिया और शत्रुघानिनी, अमाघ दृष्ट गति भी दी ॥ ५८ ॥ उस दवाका  
 दृष्ट मन्दोदरा अर्थात् सुख दलकर रावणन उसका काम सम्पादन रत्ना और उसका लोभस सन्तुष्ट होकर  
 रावण अपने रथानका चला गया ॥ ५९ ॥ वही माताक धिक्कारकेपर रावण फिर गावणके पास जाकर  
 न करन लगा । अन्तम अपनी सन्ध्याक चलन रावणने ब्रह्मसे वर प्राप्त करके तानी लोक व्रजन कर लिया  
 और लंकास राज्य करने लगा । हे प्रिय पावती इसी कारण हनुमान् सँतक समान मन्दोदरीको रावणके  
 दे लंकास सीत दृष्ट दास्य । बादम ता मय दास्य न लंकास घर बनाकर स्वपूर्वक रहने लगा  
 ॥ ६० ॥ प्रताप मयका भाई मय रावणके समक्ष अपन भवनस सा रहा था । विचारशील हनुमान्  
 दृष्ट दास मयका रावणके हाथ मृत्यु करनक विचारन उसक कर्णक ले जाकर सभासुमे रावणके  
 ॥ ६१ ॥ तब और बादम रावणके वस्त्र न जानर विनायकके पल्लवर रख दिया ॥ ६२-६३ ॥ पुन हनुमान्  
 दृष्टम जानकीजाको खोजन लग । खोजने-खोजने वृक्षों तथा पालादीसे मृग भित अशोकबादिनाम गये ॥ ६४ ॥  
 दृष्ट उह एक अश्वक जिष्वा ( शरम ) क वृक्ष दिक्षापी दिवा । उसके नीचे राक्षसियोंके बोधमे अननि-  
 कन्या उनके जीका विराजमान दवा ॥ ६५ ॥ उस समय शुष्क तथा दीन मुख होकर भलीन वस्त्र धारण  
 कर हुए भूमिपर मावी हुई सीता दुर्लभ मन्त्र रामका नाम जप रही थी । उनके सिरके बालोंमे  
 मृत्यु आदि घर जानेने सेहुन बंद गर्व था ॥ ६६ ॥ सीतक दर्शनस अपनेको कृतार्थ समझते हुए हनुमान्  
 दृष्ट शिशुपामुकी एक गच्छाके जगभागस पत्तीमे छिन्कर बैठ गये ॥ ६७ ॥ उस समय सँतक करीवर  
 र नन्दार गही दिक्षार्थ दिव, मितको कि हनुमान् पहिले सूर्यवके पास देखा था । इतनमे कुछ कोलाहलके  
 साथ रावण वहाँ का पहुँचा । ६८ ॥ क्योंकि रावणकी स्वप्नमे दिक्षार्थ दिया कि कोई बलर छाया है और उसने

रासहस्ताभ्याम्भुजैः शीघ्रं लब्धुं तां धनयास्यदम् । कपिर्हृष्टः राघवाय निवेदयन् मुकुतम् ॥७०॥  
 आगमिष्यति उच्छ्रित्वा रामो मां निहनिष्यति । इति निश्चिन्त्य स ययौ श्रीभिः मवेष्टितो मुदा ॥७१॥  
 नृपुत्राणां धरति भुञ्जति विहृत्याऽऽसीद्विदेहजा । रावणो जानकांमाह मां दृष्ट्वा किं विलम्बसे । ७२॥  
 राघव वनचरं राज्यमष्ट न्यक्तगुहजतम् । पित्रा हन भोगहीन यदा न्यरपतिनिष्ठुम् ॥७३॥  
 एकान्वामिनः पितृभ्यश्चकलधामिणम् । न न्यक्का मां स वज्रवाद्य त्रैलोक्येऽपि महाबलम् ॥७४॥  
 अमरगैः लेखितं मां भाग्ययुक्तं पदमिदम् । स्त्रियो मन्दोदरामुत्पशन्त्या भक्तिपत्त्यहर्निशम् ॥७५॥  
 मया राज्यं न्यदर्शनं कृतमग्नि भजम्ब मायम् । मया स्वर्गायनं च पि त्वदर्शनं कृतं महत् ॥७६॥  
 इति नानाविधवाक्यैः प्राथयामास रावणः । उवाचाऽभ्युदयी सीता निभाय तृणमन्तरे ॥७७॥  
 राघवादिभ्यः नूनं भिक्षुवत् कृतं न्यायः । रहिते राघवाभ्यां न्व शुनीव हविस्त्वो ॥७८॥  
 हतवानपि मां नाकतन्फलं प्राप्स्यसेऽपि वा । यदा रामशराणां विद्वानिव दूर्भवान् ॥

भविष्यति एषे राम जानकीं पानुष तदा । ७९ ।

शुन्वा रक्षोऽधिपः क्रुद्धो जानक्याः पुरुषाक्षरम् । वाक्यं क्रोधमभावेष्टः पुनर्वचनमब्रवीन् ॥८०॥

भविष्यती लक्ष्म्यां विद्वान्दत्तातार्त्तनिर्वाणम् रामोऽपि स्थिता न पुंश्च पुनरो लक्ष्मणवत्सः ।

तथा यास्यन्पुनर्विषदमनुनेनाश्रमटिलो जयः श्रीरामे स्थात्र मम बहुगणेषु तु भवेत् ॥८१॥

तद्वाचनवच. शुन्वा जानकीं प्राह तं पुनः । पृष्ट्वाक्षरपरागरेव यत्पुंश्च चम्पेऽपि ॥८२॥

स्वमक्षरार्ण चन्दारि लोच । ओकमसुं पठ । एवं तथा जतो वाक्यमाश्रयः स दशाननः ॥८३॥

अत्र, कवचम जाकर राजा निहता पुनः संवत् ३॥१॥ ६२ ॥ 'गमनं तु यम पौंथ मारुतं लिप्ते मे चयकेन साताका निगम्यार कम्पिता ता मेरी दन्तन दावकर बह वानर राजमे बहना ॥ ७० ॥ सी मुनकर राघव धत्री आयेग ओ' मुस माने' । एका लिखित करके १ वर पित्रा मां माय त्कन साभन्द उधर चन्द पला ॥ ७१ ॥ नृपुत्रैर्भः पृथग्वचनं हा सीताता धवडा गडा और इन्द्रान मुस नाच कर लिया । तब राघवाने सीतासे कहा- तु मुससे लजवा बोले है ॥ ७२ ॥ वनम अरुण कर्मनाच राजमे नय मुनकरनाच राहत, मित्रान, भाग- हान, तदा मय लिप्ते निवेष्ट ॥ ७३ ॥ तदाजानका ये १ जय और वन्दन भ जय अ दि मुसक छिन्नबोको ) यास्य बन्धवाने रामपो छानकर तु लिप्तेवर्षावे और महाबलवान् मुस रावणका भाधयल और यने मेला कर ॥ ७४ ॥ मे अस्त्राओमे लेखित ओर भाग्ययुक्त होकर महान् पदार स्थित है । मेरी सेवा करनसे मेरी मन्दोदरा आदि विधवे भी रात दिन मेरी इमिगी बनना रहेगा ॥ ७५ ॥ मेने अपना राज्य तथा अपना भाग्य मुझका दे दिया है । तु मेरी वनकर रहे ॥ ७६ ॥ इस तरह अनय प्रचारक वाक्यसे रावण प्रारना करने लगा । तब सीतम तिनका आह करके तथा लीच मुख निच हा संवत् कहना ॥ ७७ ॥ अर बाबा । वज्र डोम शक्तिता है । रामके डरमे तू भिक्षुका मय चरण करके और २ मल्लमण का अनुमिर्मानय वज्रमे जेव कुना हवि बर्षाद दयवना रामरा पुनश्चा अग्नि लेकर भावे, जः प्रकार तू पुंश्च लेकर मग आया है । अर लीच । तबका फल मुझको शीघ्र मिल जायगा । अब रामके वरणमे विद्वानिनगर हाकर तू गिरया तब तुने यह पना जम जायगा कि राम मनुष्य है या और क ई यह मुन का मन्त्रनाचिप रावण मुसित हाकर जानक को कटोरे धवन कहता हुआ बोला- ७८-८० ॥ 'इस लक्ष्मण आकर इवत ओके धी, मुस मन्त्रन हो जायेगे । परमगर्हाहत वह राम भी मय समझ दुद्धमे नही खड रह सकना । यहाँ आग पो मनुष्यके सहित वह बड़ी भारी विपत्तिमे पड जागा । यहाँ उस जगधारी रामको जत नही जाये और मुझे भी आनन्द न प्राप्त होगा' ॥ ८१ ॥ रावण- की इस बातको मुनकर जानकांम कहा-बारी चरणोमे छटे अक्षर तथा जाववाने भारी चपतम अशरोका लोच करके मुस इसी लक्ष्मणको फिरसे पढी । वही हल मुस जागोका होता । इन्हेका भाग्य यह है कि ८२वें श्लोकमेसे भारी चरणोके की न वि और न ये चार अक्षर निकल जायेंगे यह अर्थ होगा कि मनुष्ये दयावदन रावणके ऊपर भीध हो विपत्ति आ येगे अर्थात् वह दूर जागा । लक्ष्मणके साथ राम मुठसे भा हटेगे ।



द्वाभ्यो भौतवर्ज्यानां त्वद्गुणस्थसम्भरः । धृष्ट्या करेण तत्प्राणिं मन्दोदर्या निषेधितः ॥८३॥  
 नादृष्टः सति बह्वर्जन्यजनां कृपाकृशाम् । ततोऽवरोदश्यावो राक्षसाविकृताननाः ॥८४॥  
 यथा मे वसता मता मविध्यति सकामना । तथा यतश्च त्वरितं तर्जनादरणादिभिः ॥८५॥  
 यदि मायद्वयादभ्ये मच्छय्यां तर्जिनन्दने । तदा मे प्राणगन्नाय हन्ता कुरु मातुषोम् ॥८६॥  
 तदा मीना पुनः ग्राह्यवचनं न दद्यामि नम् । वान्यन्वेऽहं समानीता पेटिकास्था त्वया पुनः ॥८७॥  
 तदा मे वा वचः प्रोक्तं न च किं विस्मृताऽसि हि । अपुनःऽहं सम्भ्रूयामि यास्यामि त्वरितं पुनः ॥८८॥  
 त्वेवं पुनर्मे पादनिर्दन्तु च मयेगिणम् । तत्स्त्राय वचनं सत्यं कर्तुमशक्यताऽस्मदहम् ॥८९॥  
 या चन्तुपासन्पार्यन्तिह्ययं समदम्भतः । ततोऽव्याप्यापुरी गत्वा पुनर्यास्यामि त्वम्पुरा ॥९०॥  
 ननु मज्ज शोडशं न मातामह्युद्दिम्वितम् । शतशीर्षं रावणं च तापोदरनिवासिनम् ॥९१॥  
 न दास्याहर्षं पादुकेन लसथामागतं पुनः । अहं तृतीयवलायां सर्वाभ्र्यामि तानुभ ॥९२॥  
 तदा रक्षायस्थलं गत्वा पुनयं व्याप्यहं जवान् । कुम्भकर्मोद्भवं वीरं मूलकासुरनामकम् ॥९३॥  
 अथ वृत्तवन्तापामागं पृथगेकं हि । अहमव हनिष्यामि शिवशणं रणागण ॥९४॥  
 अन्यथापि स्मरता त्वं पुनः पादोद्वनोदितम् । यद्वा त्वया च त्वया गत्वा कौसल्यानृपता इतो ॥९५॥  
 मृद्वीकास्थो पुनस्त्यक्ता भ्रातृते देवयागतः । अनुम्व मलुकामोऽसि यतोऽहमाहता त्वया ॥९६॥  
 गच्छ महे सुखं भुञ्ज गमः शोच हनिष्यति । इति सीतावाक्यवाणाभक्षममस्थलोऽपि सः ॥९७॥  
 तथा तृतीया निजं मेहं लाजतश्च दशाननः । एव दशानने पाते राक्षस्यो रावणाज्ञया ॥९८॥  
 जितकीं तो स्वशब्दश्च तथा भ्रातृकमिन्दुः । आभ्यावदीपस्यार्द्धार्धभयन्त्यः करार्दाभः ॥९९॥

अनुज सहित राम श्री परमा प्रेमा करण ३० व रीर मका विजय मार्ग, तत्र मुक्त बड़ा हृष हाता । इस  
 प्रकार वाताय संशयान करक मीनर दशानन के जात हिण । ८३ । ८४ ॥ तब रावण तलवार उठाकर  
 सीता के लिये आगे बढ़ा । ८५ । उस समय मन्दिर के उसका हाथ पकड़कर रावण और कहा कि तुम्हारे  
 मातामह का हाथ मेरे हाथ में है । ८६ । इस वचन के मज्जारे तथा रावण मानुषी नाराज छाड़ दा । तब रावण  
 को मुखाशी लाजतापीना जजाद । कि तब निज तरह वमभयस मर वक्षम हा, बेसा तुमलाप  
 गान अथवा समलका बेला जनी करा ॥ ८७ ८८ ॥ यदि दा महानक भातर वह मर, शय्यापर न आये  
 नीला सानुर्गोकी भारकर मर जलानक भिन्ना तैयार करना, तब मे इस खा आऊंगा ॥ ८९ ॥ साता  
 निज दशमुख रावणसे बहुत रणा-जय पू बत्वावस्थाम मुझ पेट री साहत यहाँ ल आया था ॥ ९० ॥  
 न समर्थ जावान मीन कह था, क्या उसे मूल मय ? मीन कहा था कि अभा मे जातो हूँ परन्तु फिर यहाँ  
 जा रहा आऊंगा । ९१ । और वह इसलिये कि मे भाई, पुत्र तथा सना सहित तुझे मार डालूंगा । अब  
 मे जगत पथन सत्य करन आया हूँ । ९२ ॥ रामके हुये तुझकी और तर वन्धुआ तथा सेनाका मरवा-  
 कर व्याप्य पुनः आया, पुनः मे तसरी बार भी तया नगराम आऊंगा । ९३ ॥ उस समय मातामह  
 मीन मीन के घाम स्थित निधुम्भक पुत्र पीठुका तथा द्वीपातरमे रहनवाल से सिरवाल रावणकी जा कि  
 तेवकी सहयत लेल दूना आया, ते मीनी बार आकर उन दातोका मारुंगा ॥ ९४ ॥ ९५ । पञ्च तु अपने  
 मीनकी जाकर फिर कीया बार मे जाऊ आऊंगा और कुम्भकणक पुत्र और मूलकासुरका वध करुंगे ॥ ९६ ॥  
 तबकि विधानसे यहाँ आपर मे इसे रणागणन मारुंगा । ९७ ॥ पूर्वकालम जा बह्यजने कहा था, वह भी  
 मीनण कर ले । जिन्के कहनेसे मीन कीमल्य और राजा दशरथका हरण किया था । ९८ ॥ देवयोगसे  
 फिर पुनः उन्हें अयाध्यास दूधवा दिया था । इससे पता लगाता है कि तू मरना चाहता है । इसीलिए तूने  
 तुझसे प्रेम करना कहा है । ९९ ॥ अब धर जा और सुखम भोजन कर । राम तुझे शाय मारये । इस प्रकार  
 रणाके वक्ष्यरूपी वाणसे विशाद्विदय हाकर दशानन लज्जासे चुनबाप अपने घर चला गया । दशाननके  
 ने जानेपर उसकी आत्मासे राक्षसमे अपने भयानक शब्दोंसे, मूर वाक्यसे, मुँह काड़कर, तलवार तथा

नित्रयं त्रिजटाभार्या विर्मण्यप्रापिषाऽनुगा । ताः सर्वा राक्षसावेगद्वारपमाहाय मादरम् ॥१०१॥  
 न भीषयन्व रुदन्ती नमस्कृत्य जानकीम् मुनिर्हृगवन् । स्वप्ने स्या इष्टोऽष्ट जन्तुकीम् ॥१०२॥  
 मोचयामास दृष्ट्वेमां लक्ष्मीं हन्वा तु गवणम् । राक्षसो गोमयहृदे तैलाभ्यक्तो दिग्भरः ॥१०३॥  
 यथाऽष्ट दृष्टः स्वप्ने हि तस्माद्विना न साहसम् । कार्यं सेव्या सदा चेयं रामादमयदायिनी ॥१०४॥  
 पुष्पाभिदुःखिना चेष्टा भयेषु घानयिष्यति । इति तत्त्रिजटायाकपं श्रुत्वा तस्यभुवेगकुलाः ॥१०५॥  
 तृणीमेव तदा माना दुःखार्त्तिकविदुषाश्च सा । इदानीमेव मरणं कैरागयेन ये भवेत् ॥१०६॥  
 दंष्ट्रां वेणीं समान्यधर्महन्त्राय मांस्प्यति । यन्मया स्वीयशार्ङ्गलेख्यमस्ताडितः पुनः ॥१०७॥  
 तस्माद्विनाः पीडयति योऽयने स्वकृतं मया । मया विनागः सोमिषिस्त्राविनी गीतमावृत्ते ॥१०८॥  
 प्रायश्चित्तं करोम्यद्य तस्य त्वक्त्वाच्च ज्ञातम् । एवं निश्चिनर्तुं तां मरणायाय जानकीम् ॥१०९॥  
 दृष्ट्वा शनैर्वापुर्भुवो रामवृत्तं न्यवेदयन् । आमाकननिर्गमाच्च स्वसाक्षादर्शनावधि ॥११०॥  
 मविस्तारं कथं नर सीतातोपाशमादरात् । मीमांसे कथं तन्मये श्रुत्वा साक्ष्यमानया ॥१११॥  
 किं भवेत् श्रुतं यदास्मिन् भव्यो वृष्टोऽधवा निधिः । येन ये कर्णपीयूषश्चनं समुदीरितम् ॥११२॥  
 न दृश्यतां महाभागः शिखादीं समग्रतः । तच्छ्रुत्वा नभुमे गन्धा नत्वा नामवर्षात्पुनः ॥११३॥  
 रामदूतो दरी तस्यै गयवर्षागुदायकम् । तां राममुद्रिकां दृष्ट्वा नत्वा नामवर्षात्कविम् ॥११४॥  
 सर्वं कथय तद्वृत्तं यथा दृष्टं स्वयाञ्च हि । तदा तां सांत्वयामास रामो मन्त्रकथयस्थितः ॥११५॥  
 शानोद्रेः समागत्य हन्वा राक्षणमाहरे । त्यां नम्यति मय साने त्यजन्त्वं मय वाक्यतः ॥११६॥

भोजनार्थं सबेलास स ताका दगन लगी ॥ १०० ॥ उदा समय विभाषण का प्रसंग अनुगतमना त्रिजटा  
 गमन न अब सबकी ऐसा करनसे राका और उन सबकी समझाकर कन कि इस गीत हुई जानकीजाका तुम  
 लोग दगन्रा नही प्रभुन नमस्कार कर । ये अ ज स्वप्नव रामकी सुन्दर चित्तास मुन दखा है और यह  
 भा दखा है कि उम्हा जानकी लुडाकर लुडाको अन्ध्या सथा राक्षणकी मर डाला है । तब लगाये हुए  
 गवण गवणक महिम दिख गया है ॥ १०१ १०२ ॥ मेरे आज यह स्वप्न दखा है । इस कारण हन् सतानका  
 साहस नही करना चाहिए । रामसे कथय दिखानवाया इस जानकी मुन्ह स्वा वरवा चाहिए ॥ १०४ ॥  
 यदि तुम लोग जो दुख रागी तो यह अजन पान रामके द्वारा मुन्ह मन्वा डाला । त्रिजटाक हम वाक्यकी  
 मुनकर सब राक्षसिय म्पुल होकर तुम हो गयी ॥ १०५ ॥ उन सबके भा जानेपर दु शित होकर सत्ता  
 धारे-धारे कहने लगी कि इसी समय मेरा मन्त्र जिस उपायसे हो सकता है ॥ १०६ ॥ हाँ, यह मेरे सिरके  
 दाँतकी लम्बी लट पाला लगाकर लिए बहुत अच्छा तरह काट आऊँ । उस समय जो मैं बदनरूपों बाणों-  
 से ललनगका बाँधा था ॥ १०७ ॥ उमेक करनवर य राक्षस मूत्र रक्त रहा है । यह मैं अपने किये हुए  
 कर्मोंका फल प्राप्त रहा हूँ । मेरा ग मता नदक किनारे शुभवाक निर्दाय पुन नमस्कारों आ अम्वाग था ॥ १०८ ॥  
 उमेरा मैं आज प्राण धर प्रायश्चित्त करेगी । इस प्रकार मरवा निश्चय किये हुए जानकीको दगन राक्षस  
 हनुमान्ने धरे धरे रामका वृत्त ता स्तामा प्रणम्य किया । उम्हा राक्षे अम्वागसे जानन मगधके सेकर  
 सत्ताको देखन नकन । सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक प्रमसे र्म तान सतायके लिए सुन दिया । वह सब वृत्तान्त  
 सुनकर सत्ता वाक्प्रचकित होकर सोचन लगी कि क्या यह मे कोई मन्त्र सत्ता मुन रहा हूँ अथवा राक्षिक  
 समयका स्वप्न देख रहा हूँ । जिसने मेरे कलाक लिए अमृतके सभास यह नकन सुनया है ॥ १०९-११२ ॥  
 वह शिखादी मर सामन अकार दर्शन ड । यह मुना तो हनुमान् उनके सामने प्रकट हो गये और नमस्कार  
 करके उम्हा रामका वृत्तान्त पुन सुनाया । ११३ ॥ फिर विधास दिखानके लिए रामकी अगुशे निकाल-  
 कर सत्ताको दो । रामकी मुद्रिकाकी देख तथा नमस्कार करके सत्ता यारी ॥ ११४ ॥ हे कवि । जेसा  
 कि मुझे दखा है, मेरा सब हाल आकर रामसे कह गया । अब हनुमान् सत्ताको वाक्पासन कर कहने लगे  
 कि राम मेरे कन्धपर सवार हो वाकरसनापतिदीक साथ यहाँ आकर दुद्धमे राक्षणको मारेगे और बापको





तत्र उत्प्लुत्य हनुमान् तोरणेन समन्ततः । निष्पिपेष क्षणादेव सगक्रान्तिव पुरयः ॥ १५१ ॥  
 हृत्वा तान् राक्षसान् सर्वास्त्रिभो वेगेन मारुतिः । तालवृक्षं समुत्पद्य जघान जंबुमलिनम् ॥ १५२ ॥  
 तान् सर्वान्निहताञ्छुन्वा पञ्चसेनापर्वन्पुनः । गवणः प्रेषयामास हनस्ते तोरणेन च ॥ १५३ ॥  
 वायुपुत्रेण वेगेन लक्षराक्षससंघताः । स तानापि पृताञ्छुन्वाऽथ पुत्र प्रेषयत्तदा ॥ १५४ ॥  
 कपिना मारितः सोऽपि मर्षन्त्यो मृदुरेण च । ततः स प्रेषयामास पुत्रमिद्वजितं पुनः ॥ १५५ ॥  
 ततः स रथमारुहः कीदृगश्चमवेष्टितः । पृष्ठं चकार कपिना जत्वेरसं स दुर्धरः ॥ १५६ ॥  
 तदा पुच्छेन सैन्यं कृत्वा प्राकारमुत्तमम् । निष्पिपेष तोरणेन राक्षसान्मारुतिः क्षणात् ॥ १५७ ॥  
 ततो बृहत् समुत्पाद्य मेघनादमनादयन् । वृक्षेण भिन्नमर्वागो मेघनादोऽविशद्गुह्यम् ॥ १५८ ॥  
 एतन्मिन्नन्तरे प्रया प्रार्थयामास मारुतिम् । ब्रह्म तु मानयन्नेऽद्य त्वं लङ्कां याद्वि राक्षसम् ॥ १५९ ॥  
 नक्षेत्र्यसीचक्रं गमौ मेघनादं ययौ विधिः । विधिः प्राह मेघनादं कं गतोऽद्य पराक्रमः ॥ १६० ॥  
 गच्छ मेऽस्तेन तं वदस्वा विदुग्ने समानय । स ब्रह्मवचनं श्रुत्वा मेघनादः पुनर्ययौ ॥ १६१ ॥  
 ब्रह्माश्वेनाथ वदस्वा समानयामास राक्षसम् । ततो राक्षसाश्वेन ब्रह्मन्तः प्राह मारुतिम् ॥ १६२ ॥  
 कम्प्यं तुनः समाशानः प्रेषितः केन वा वद । ततः स रामवृत्तं हि कथयामास विस्तरात् ॥

ततस्तं वाधयामास राक्षसं वायुनन्दनः ॥ १६३ ॥

विमुक्त्य मीन्याद्भृदि शत्रुभावनां शत्रुत्वं गमं शरणागतप्रियम् ।

सीतां पुष्कल्य मपुत्रवन्धवो राक्षसं नमस्कृत्य विमुक्त्यसे भयात् ॥ १६४ ॥

यादन्तगाभाः क्षयो महाबला इर्मिदुतुल्या नखदंष्ट्रयोधिनः ।

गया । १४९ ॥ उसकी सेनाको देखकर कपिसेम कुञ्जर हुआ) व समान दोर हुआन्त बहुत जोरसे गर्जन किया । तब राक्षसोंने वायुनाम हनुमान्का अस्त्रकोश गहरा आच्छाद कर दिया ॥ १५० ॥ हनुमान् भी रणमें दूर पड़े और मरठनेका लड़ू उन सैन्यापत्तियों तथा राक्षसोंको धारा धारस तारणक द्वारा क्षणभरमें पीस डाला । १५१ ॥ उन सबको मारनेके बाद मारुतिन वेगसे एक ताड़का वृक्ष उखाड़कर उससे जम्बुमालीको समाप्त कर दिया ॥ १५२ ॥ उन सबका मार गये मुनकर राक्षसान् पाँच और सैन्यापत्तियोंको भेजा । हनुमान्ने तोरण मार ॥ १५३ ॥ से उन्हें भी मार डाला । १५४ ॥ वायुना हनुमान्ने साक्षा राक्षसों साथ उन पाँच सैन्यापत्तियोंको भी मार डाला, वह मुनकर राक्षसान् आगे अक्षयनामक पर्वतों भेजा ॥ १५५ ॥ तब हनुमान्ने उसको भी पुन्दरमे मार डाला । अब राक्षसने क्षान्ति इन्द्रजित मुन मेघनादको भेजा । १५६ ॥ वह एक कण्ड राक्षसास वीर्यवान् तथा शयपर मंदार होकर वहाँ आया । वह अपने दुर्गम मन्त्राश्रयसे हनुमत्को साथ युद्ध करने लगा ॥ १५७ ॥ हनुमान्ने स्तंभको शोकतन किया अपने। पुलका हो गई बनया और तोरणमें उन सबका क्षणभरमें मार डाला ॥ १५८ ॥ वायु एक वृक्ष उखाड़कर उसमें मेघनादको मारा । जिससे पायल होकर वह एक पुनर्न जा पुता ॥ १५९ ॥ उस समय ब्रह्मान् हनुमान्म प्रार्थना की कि तूम धरे ब्रह्मास्त्र ब्रह्माशत्रु, का मान लो रा और उसमें बँधकर लंकाय राक्षसों पास जाओ । १६० ॥ उन्होंने न्यास्तु कहकर अङ्गीकार कर लिया । तब ब्रह्मा मेघनादको पास गया और कहा—हे मेघनाद ! तुम्हारा पणकम आज कहाँ चला गया ? ॥ १६१ ॥ मर मे वाणमे उन बानरको वीर्यकर अपने पिताके पास ले जाओ ब्रह्माके वचनको मुनकर मेघनाद चला वहाँ गया और हनुमान्को ब्रह्माशत्रु वीर्यकर राक्षसोंके पास ले आया । तब राक्षसोंके कथनानुसार ब्रह्मन्त पुच्छने लगा— ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ बतला तु कौन है, कहाँ आया है और तुज किन्ने भेजा है ? तब विस्मयसे रामका वृत्तान्त मुनकर हनुमान् राक्षसोंके समन्तान् स्तंभे— ॥ १६४ ॥ आ रावण ! तुम्हारे प्रपन्न हनुमान्को हूँ हृदयसे निकाल द और शरणागतोंके प्रिय रामका ध्यान कर । यदि स ताको भाने करके पुन तथा बन्धकोंके साथ जाकर रामको तमस्तार करेगा तो तू निर्मय हो जायगा ॥ १६५ ॥ सिहके समान महाबलवान्

लक्षा ममाक्रम्य त्रिधासुरेति ने नाथद्रुतं देहि रघुनमाय ताम् ॥१६५॥

जीवन् रामेण विमोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सुद्वैरपि शंकरेण ।

न देवराजांशगतो न मृत्योः पाताललोकादि संप्रविष्टः ॥१६६॥

शुभं हितं पवित्रं च वायुपुत्रवधः स्वतः । प्रतिजग्राह नैवमीं त्रियमाण इवापधिम् ॥१६७॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा मारुतः प्राह राक्षसः । विनिश्चिता येन देवान्मन्य मे पौरुषं त्वया ॥१६८॥

न दृष्टं रत्नासै न्यथै गृणु किञ्चिदुदादि ने । पचाज्जपादुश्वाय पठ्य ब्रह्मा कुतो मया ॥१६९॥

प्रतीहारम्वयं सूर्यः शशी चन्द्रवराः कुतः वरुणोऽयं जलप्रहो मार्जकः पवनस्त्रिह ॥१७०॥

अग्निः कुतोऽयं रजको मानाकारः शवापतिः । इडवाणि नैवात्र क्षाप्यश्वात्र सुरस्त्रियः ॥१७१॥

मार्तण्डो नापिध्रुव गणपः स्वर्गलोकः । मन्दाग्रा ग्रहाः यम मे सोपातीयतामने ॥१७२॥

शिशुवेवान्परैश्च पृष्टो देवी मया कृतः आश्लिष्य कैशवः कुमेरोपि निनिनेनः ॥१७३॥

कश्च ममग्रे विलप्यमीन्वत्प्ल गमातामवमांमि दूरधीः ।

क ९४ गमा कनयो वनेचरो मिदन्मि मुत्रावपुत नरधरम् १७४॥

इत्युक्त्वा हनुमन्कस्त्वं दशस्य ममास्थितः । तदा निवाम्यामम गवणं य विमोषणः ॥१७५॥

परदूतो न हन्तव्य इत्यादिवचनंस्नदी । ततः क्राधममारिष्टो राक्षसो लोकगवणः ॥१७६॥

दूताताशापयामास छेदनीयं तु कांगुसम् । उद्गमणवचः श्रुत्वा रक्षताम्ने महस्वजाः ॥१७७॥

स्वायुर्ध्वच्छेदयामासुः कुशरककचादिभिः । आयुधान्येव जनद्वन्द्वच्छात्रावमवतः ॥१७८॥

बभूवुः श्वेच्छूर्णानि तस्य गोम्णोऽपि न व्यथा । तन्निभ्य दशकयः मम रुति वाक्पनवर्षान् ॥१७९॥

न शीघ्र गोपयन्त्यत्र स्त्रीष मृत्युमपि कर्तुम् । यतस्त्वं च दृष्टव्यं येन वानोऽयं मे भवेत् ॥१८०॥

और लखे तथा दीतमे लहन्वान कानर काजर रक्तान प्रथम नर काजर, मरने पड़ने का न माताका ल जाकर रामको द दे ॥ १६५ ॥ अब तुम राम जीतित नहीं छुड़ोगे । यह हमें हमें मरने के ल हे करके करें, चाहे तु अपन प्राण बचाके लिये देवराजको अलग न जा । चाहे यधराज या पाताललोकमें जाकर लिये, चहे कुछ कर ले ॥ १६६ ॥ निम्न उस दृष्ट रावणने हनुमानकी शुभ हितसे त ही प वय बालका नहीं माना । जैसे मुझसे पुरख और्वय नहीं खाता । १६७ ॥ रावणने हनुमानको बल मनकर कहा कि मेन सब देवगओका जोज लिया है । मेरे पुरुषार्थको तु वही बनता । इसलिये उधरे बकवास कर रहा है । मून मैं तुम कुछ मुगता हूँ । देख, कहुआको मेने पञ्चाङ्गशत्रु बना दिया है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ लखेको प्राद्वेय, चन्द्रमान छिप्यारा, वरुण को जल धरनेवाला, पवनकः आदू, लकाववायव, अग्निको सोडा, गन्धोपनि इहको माली, कडवाग यगराजको हारपाल देवताओकी स्त्रियोकी दुःखिय, मर्त्यपडका नाहे, गन्धर्तियो गन्ध का रखक लहन् और मंगल-मूच आदि तासी ग्रहाको मेन अपन आसनकी सँविय बना लिया है । वयो दवा सतगमनाको मेन लखेको खलनेवाली चाहे बनाया है । कैलसकी मेन हरे हिलाया था । कुशरक भा मेन जोज लिया है । १७० १७१ ॥ त पञ्चदूओमे अधम वानर । त मर आग क्या तुया प्रलाप करता है ? तु बडा हा मई जायता है । अरे ! जनकाया राम मेरे सामने क्या बीज है । मनुष्यमे नाथ रायका तो नुशान लहे । मे मा ही जावूंगे ॥ १७४ ॥ इतना कहकर दशानन रावण बाज सुमाम उनको मारने दोडा । तब तिमिरा ने खबर, रोककर कहा कि तुमने दूतको मारना खत्याव है । पछा, लीगोहा इतानदान राजान राव नरक निराहिय बा । आज्ञा दी कि इस वानरकी पूछ कार डाल । रावणने राजा पाकर हुजारा राजन अरु-अरुन हुजारी और नकष ( नारा ) आदि हथियारोमे उनका पूछ काटने लगे । इतने समय हनुमानजने जेदक अपनी पूछ हिला दी । त्यक हिलनमात्रसे उन हथियारोक सेकडो दुःख डोकर निर पर ॥ १७५ ॥ नाथ तू नून हा मये परन्तु हनुमानजीका बाल भी बाँका नहीं हुआ । यह खबर दशानन मारतिस कह लग - ॥ १७६ ॥ और पुरुष अपनी मृत्युके उपायको भी लियाकर नहीं रहल । इसलिये साफसाफ बता दे कि तरो कुछ किस उपायसे नष्ट होगी ॥ १८० ॥

तदाऽपरन्वं स्वं प्राह कपित्थञ्च मृपां नः । मन्वा दशस्यन्त प्राह पुनः सन्त्यं वदेति च ॥१८१॥  
 तदा स माहतिस्नृणी क्षणचित्ते क्यचित्तयन् । मन्पितुश्च सखा वहिस्तस्मान्नास्ति भयं मम ॥१८२॥  
 तस्मान्पुच्छ दीपयित्वा लंकां दग्धा कपोदहम् । तन्मन् रावण प्राह माहतिः सदसि स्थितः ॥१८३॥  
 पुच्छं मे वह्निना दाघ भविष्यति न चक्ष्णः । तत्तस्य चचनं श्रन्वा गवणो निजकिंकमन् ॥१८४॥  
 आज्ञापयामास पुच्छं दीपयित्वा प्रयत्नतः । लङ्कार्यां दहंतीत्युच्यं दृष्टुं न मद्भय भवेत् ॥१८५॥  
 सर्वेषां मद्विपुणा च तथा चक्रस्वगन्धताः । तैलार्जैः क्षणपट्टैश्च राक्षसा वमनैरपि ॥१८६॥  
 पुच्छं सवेष्टयामासुस्तदा पुच्छं व्यवर्द्धत । ततो वमनद्विज्ज्वल इव कोशान्पितुश्च च ॥१८७॥  
 तन्पुच्छं देष्टव्यामासुर्गृहवर्धनेकतः । ततः पुरुषनारीणां लंकास्थानां नृपास्तथा ॥१८८॥  
 बलादच्छिद्य वस्त्राणि चक्रुः सवान्दिगन्धगतः । ततः शय्यामडयाश्च कचुर्काः कचुकानपि ॥१८९॥  
 पौराणां राजगोष्ठान्च ने वसुभिः समनयन् । दृष्ट्वाऽपूतिस्तु पुच्छस्य ममास्थानां नृपस्य च ॥१९०॥  
 दक्षमात्रैः समर्प्यैश्च लांगुलं वेष्टयस्तदा । स्वजोर्णापपताकाभिधिप्राणा वमनैरपि ॥१९१॥  
 मन्दोदर्यादिवर्मैश्च विक्षणा वमनादिभिः । वेष्टयन्कपिलांगुलं ततः मीनां यगृथराः ॥१९२॥  
 नज्जान्वा माहतिश्चापि पुच्छं प्रति प्रदर्शयन् । तदा कलद्रलक्ष्मार्कद्रुक्षार्थं प्रतिमन्वति ॥१९३॥  
 तैलार्थं च घृतार्थं च स्नेहपार्श्वं समनयन् । नारीभिर्गया दीपार्थं शिशूनामपि नो घृतम् ॥१९४॥  
 आमन्त्र्योपुरुषा नम्रा लज्जा नारीन्परस्परम् । तन्मन्दोदयामासुर्बद्धना भक्तकर्मणः ॥१९५॥  
 प्रदीप्य नावाग्नपुच्छं ततो माहतिश्चर्चिद् । यदा स्वीदमुखेनार्थं लज्जमानेऽयं राजतः ॥१९६॥  
 बाह्व प्रज्वालयेदत्र तदा ज्वाला भविष्यति । तन्माहतिवचः श्रुत्वा दयच्छ्र दशाननः ॥१९७॥  
 शान्तपुच्छकार्यं न म तन्पुच्छं नन्दमाननैः । तावत्तच्छिद्यताः श्वश्रुकृर्चा दग्धा तद्भवन् ॥१९८॥

तिसपर जब हुनुमान्ने अपने-के अन्तर बतलाया तो भा बानक, मम न माकर रावणने फिरसे कहा कि मच-मच बतला ॥ १८१ ॥ तब माहति मानस विचारन लग निजनि सर पिताके मित्र है इसलिये पुत्र उतकी कोई बात नहीं है ॥ १८२ ॥ इसी-लिये अपनी पूँछ जलवाकर मैं लङ्काकी ही जला खाऊँगा । यह चिन्तनकर समाधि स्थित रावणने हुनुमान्ने कहा-॥ १८३ ॥ मेरी पूँछ जमिसे जल सक्ती है, यह पक्की बात है । यह सुनकर रावणने अपने मोक्षकी कुराकर आज्ञा दी कि प्रयत्नपूर्वक इसकी पूँछ जलाकर इसे नगरभरम घुमाकर दिखाना दो । जिसमें कि समस्त शत्रुओंका मेरा डर लगन लगे । मोक्षरोगे भी वैसा ही भिय और शास्त्रों राजमान सन तथा वस्याका तैलम भिाकर पृच्छपर लपट दिया । वरन जब कुछ कम हो गये, तब बाजारके गोशामेसे कपड़े नुकाकर घाक तस्य लाकर और रावणका आज्ञासे उन्हीसे लकान कर न गिरेके वस्त्र छानकर हुनुमान्की पूँछम लपटा । ऐसा करके उन्हीन सार तस्यके लोगोंका नगर कर दिया । तथापि जब पूँछ नहा लंका तो जग्गाके मध्य । मज्जरा । कचुर्कयाक बागे, पुरवसियों तथा राजाके मन्त्रिक दाघ लाकर लपट दिये । सिक्कर भी जब दग्ग नहीं पडा तः ममासदो तथा राजाके दाघ लाकर लपट दिये गये । ध्वजारें तथा पताकाएँ जालाकर लपटी गयी । गनी मन्दोदरी, स धु-महात्माओ तथा भिक्षुकीके दाघ उतार-उतारकर लपट दिये और सीताकी भा साड़ी उतारनेके लिए कुछ दत्त दौड़े ॥ १८४-१८५ ॥ यह सबकर हुनुमान्ने पूँछ बहाना बन्द कर दिया । तब प्रथम घर्मे तल जादिके लिए कोलाहल होने लगा । वे दैत्य सबके यहाँका घा नुवा लेल उठा लये । यही तक कि किसी घरमें दाघकके लिए शैल और बान्नीर लिए भी भी नहीं दच पाया । १८६ ॥ १८७ ॥ समस्त ग्यो-नुर्योकी लज्जा हाहकर नङ्गा हुना पडा । जब व हुनुमान्की पूँछ घीवनासे घीकर जमिसे दग्ग जलान लगे ॥ १८८ ॥ परन्तु जमि प्रदीप्त नहीं हुई । उस समय हुनुमान्ने कहा कि यदि लज्जित रावण स्वयं अपने मुखसे फूँककर जलाये तो जमि बच सकती है । हुनुमान्की बात सुनकर रावण तुरन्त आगे बढ़ा । १८९ ॥ १९० ॥ गयो ही उसने अपने मुखसे जग्गा फूँकना प्रारम्भ किया, यही हो उसके सिरोके बाल तथा दाढ़ी-मूँछ जल गयी ॥ १९१ ॥ रावण जब अपने

तदा विशद्भुजैः स्वीयमुखोपरि दक्षाननः । ताडयद्बहिर्गांघ्र्यं जहृ राक्षसस्यदा ॥१९९॥  
 हास्य चकार हनुमान्मदा क्रुद्धः स रावणः । नीयतां मर्कटशायमिते दूतान्वरोऽवतीव ॥२००॥  
 ततो दूताः कपिं निन्पुर्लङ्कायां ते समन्ततः । शृङ्खलाभिर्दृष्टुं वदुष्व आगयामागुदगत ॥२०१॥  
 बाधघोषदीर्घशब्दैर्द्वैष्टिनं शम्भुधारिभिः । एवं देवा सर्वलङ्कां दृष्ट्वेहोष स मारुतिः ॥२०२॥  
 धृत्वाऽनिष्टस्वरूपं तु दृढवधविनिर्गतः । यथाम्यान् नम्रणाञ्च तद्ययौ ध्रुवेव हि ॥२०३॥  
 ततः पश्चिमदिक्मंस्थं लंकाद्वारं समानयत् । दिष्काम्य तोष्णं द्वागजधानं द्वागसकान् ॥२०४॥  
 हत्वा स्वरक्षकांश्चापि प्रासादेषु समन्ततः । ददावर्गिनं सपुच्छेन लङ्कां दग्धां चकार सः ॥२०५॥

तदा कोलाहलधामीन्लङ्कायाः प्रविशन्नेव ।

निद्रितानपि बालांश्च त्यक्त्वा नार्यो गृहाद्वहिः ॥ २०६॥

दुःखुः प्राणरक्षार्थं दग्धनखलकाम्भुदा क्रमेण रावणार्दीनां प्राभादान् ज्वालयन् कपिः । २०७॥  
 तां रावणमयीं दग्ध्वा जलान् पुच्छेन ताडयन् । अभवन् राक्षसा दग्धा मुनयश्चानि चक्रिरे ॥२०८॥  
 तदा स रावणः क्रुद्धो राक्षसैर्दशकोटिभिः । ययौ घोरैर्धु मारुतिना तान् ययान् तोरणेन सः २०९॥  
 धातयामास पुच्छेन चदुष्वार्चकोटिभुः । नर्धय लालया पुच्छं रावणस्य च ममके ॥२१०॥  
 मन्तव्यं तत्रैव दग्धामकरोन्मारुतिः सुगान् । तन्पुच्छवह्निना दग्धो भूडिोऽभूदक्षाननः ॥२११॥  
 कपिः शौराधकीर्त्यर्थं रावणं न जघान सः । यतिनं पित्रं दृष्ट्वा दृष्ट्वा दग्धान्स्वगक्षयान् ॥२१२॥  
 आन्मनः प्राणरक्षार्थमिन्द्रजिद्विभरं ययौ । कपिलक्ष्मणप्रीत्यर्थं मेघनादं जघान न ॥२१३॥  
 एव सर्वान्निनिज्जिन्य मोघुरष्टालमण्डिनाम् । दग्ध्वा लङ्कां सविध्वानं ययौ भाग्यमुनमम् ॥२१४॥

बाँसो हाथोसे आग बुझानेक लिए अपन मुखोपर परापर धपड़ मारने लगा । तब राक्षस जागोसे खिलखिलाकर हँस पड़े ॥ १९९ ॥ हनुमान भी हँसन लगे । यह देखकर रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और आज्ञा दी कि इस दृष्ट वानरको पकड़ ले आओ ॥ २०० ॥ तब दून लोग हनुमान्क बड़ी मजदूत सौकणोंसे बाँधकर ले गये और नगरमें चारों ओर घुमया ॥ २०१ ॥ घुमाने समय उनक साथ बड़ बड़ बाजे बजे रह थे । बहुतसे बालक तथा राक्षसारी लोग उनको घेर हुए थे । इस प्रकार दिनेन भारी लंका देखकर सायकालके समय हनुमान् धूम रूप बाधन करके झटपट बधनमसे निकल गये और कूदकर दग्धावतार जा मड़े । उसके पूर्व ही बह्मपास भी अपने स्थानपर छोट गया ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ वहाँस चल्कर ये पश्चिमी द्वारपर जाये । वहाँ फाटकका सम्भा उखाडकर उससे समस्त द्वारपालों को मार डाला ॥ २०४ ॥ अनक रक्षक राक्षसोंको भी मार मिश्या और अपना पूछकी अग्निसे सब महलीय आग लगाकर सारी लंकाको जला दिया ॥ २०५ ॥ उस समय लंकाके प्रत्येक घरमें बड़ा भारी कोलाहल होने लगा । निद्रा कपने बालकोंको सोने हुए छोड़कर ही घरोंसे बाहर निकल पड़ी ॥ २०६ ॥ उनके घरों तथा बालोंमें आग लगी हुई थी और वे अपने प्राण बचानेके लिए इधर उधर भागने लगे । हनुमान्ने क्रमशः आग जकर रावणक महलीय भी आग लगा दी ॥ २०७ ॥ रावणकी सभाको जलाकर वहाँक राक्षसोंको अपने पूछसे खूब पाटा और सब राक्षस जलने तथा अनेक प्रकारके शब्द करके खिलजाने लगे ॥ २०८ ॥ तब रावण क्रुद्ध हो दह करोड़ राक्षसोंको साथ लेकर हनुमान्से लड़नेके लिए गया । हनुमान्ने उन सबको उमो लहके छनेसे आघ डाला और करोड़ोंको एक साथ पूछमे बाँधकर लंकापूर्वक रावणक मिरपर दे मारा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ इस प्रकार मारनेसे उधकी चमड़ी क्षणपरमें जल उठी । उनकी पूछको अग्निमें जलकर दजानत भूडिज हो गया ॥ २११ ॥ परन्तु हनुमान्ने यह सोचकर उसको जानसे नही मारा कि यदि रामके हाथसे मारा जायगा तो उनका यश बढ़ेगा । पिताको गिरा हुआ तथा अपने राक्षसोंको जलने देख इन्द्रजित मेघनाद अपने प्राणोंकी रक्षाने लिए एक गुफा में चले गया । हनुमान्ने लक्ष्मणकी प्रसन्नताके लिए उसको भी जाबित छ डू दिया—मारा नहीं ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ इस तरह सबको जीत तथा पुरस्कार और अंतरियोंसे मंहित विशाल लंकाको जलाकर हनुमान् उसमें



तटे पुच्छं स्थापयित्वा जलजान् रक्षन् कपिः । तत्रैवैः शान्तं स्व कृत्वा लास्यमुत्तमम् ॥२१५॥  
 निजकृष्णञ्च धृष्टेण श्रेष्ठेण मायरेऽक्षिपत् । ननः कपिः क्षणं नृप्यो स्थित्वा सती त्वनिन्द्य ॥२१६॥  
 दाहयामास हृदये मत्वा दग्धा विदेहजाम् । आत्मानं गर्हयामास स्थित्वा मागररोधसि ॥२१७॥  
 धिम्धिष्णुमां शनरं घृष्टं स्वामिपन्थाश्च दाहकम् । निश्चयनं मया दग्धा आनकी रामरोषदा ॥२१८॥  
 न विचारः कृतः पूर्वं लङ्कादाहेऽवशेकिना । आत्मवानं कोम्यद्य पुच्छवधेन चात्र वै ॥२१९॥  
 किं रामदेवकं स्वाभ्यं दशयेऽथ विगर्हितम् । गमन्तु श्रुत्वा भीमाया वृत्तं दीर्घं मरिष्यति ॥२२०॥  
 हृदुःखेन स मौर्मिशर्मिष्यति न मथयः । तयोदुःखेन सूर्यावप्यदर्शं ता च वै रुमा ॥२२१॥  
 तं श्रुत्वा सोऽङ्गदश्वापि मरिष्यन्त्यलिलातिनः । तारऽपि पुत्रशोकेन नृपे तष्टेऽव वानराः ॥२२२॥  
 प्रार्त्तं पंचदशे वर्षे मग्नोऽपि मरिष्यति । गमद्-सेन कोमल्या मुमिका पुत्रदुःखतः ॥२२३॥  
 तथा मा कैकेयी दुष्टा मवानधेकरी नु या । शत्रुघ्नो बहुदुःखेन रामार्थं मृनयश्च तै ॥२२४॥  
 राघवा रामवक्ताश्च मविगः सुहृदमन्या । मातापितुः कुल सर्वे कोमल्याः पितुः कुतप् ॥२२५॥  
 मुमित्रायाश्च कैकेयास्तेषां सवधिनमन्या । नष्टं राजकुले जाते प्रजा स्वच्छानुवातिना ॥२२६॥  
 मरिष्यति न महेदमनः म्थाभजगमम् । भूमिक्याः प्राप्तिनः सर्वे यदा नष्टास्तदा दिशि ॥२२७॥  
 इत्यकन्यविहीनानां देवा नाशं मना इव । अकाले प्रलयं ह्युत्तमो मृष्टिः प्रनिर्मिता ॥२२८॥  
 पश्चात्तापेन धाताऽपि मरिष्यति न मथयः । एवं कमेण मद्मांडं नश्यत्येव न संशयः ॥२२९॥  
 एतद्वाननिमित्तोऽहं विधिना निश्चितः पुनः । इत्युक्तवान् संदेन वेदस्यामार्थपुयनम् ॥२३०॥  
 दृष्ट्वा माऽऽकाशजं वाणीं दभूरं बहुदपंता । मा कुरुन्व कपे संदं न दग्धा आनकी शुभा ॥२३१॥

मागरके किनारे गया ॥ २१४ ॥ वही नृप्यो पुच्छ वडे प्रायको किनारेपर रखकर जलजन्तुओंको बचाते हुए  
 हनुमान् त समुद्रकी तरङ्गोंमें अपनी टंघें तथा उत्तम पुच्छको गंतव्य किया ॥ २१५ ॥ वही उन्होंने दुर्योधन के नाम  
 नम नमन का त्याग किया । तदनन्तर ने क्षणकर शांति रह । बादमें वे सीताका सोच तथा उनकी कुल नपी  
 समझकर आर-जीरसे छूती पीटने लगे । समुद्रतटपर खड़े होकर उन्होंने अपने निन्दा की ॥ २१६ ॥ २१७ ॥  
 न्याय की स्त्री सातका जलानवान मुझ संगेव मुख टनरका दरम्यार धिक्कार है । रामको संतव देनेवाली  
 उनकीको मैंन मममे जमा दिया ॥ २१८ ॥ अविनको मैंन लङ्का अलानेसे पहिले यह विचार नहीं किया ।  
 जब मैं नमन पुछ बांधकर मात्मघात कर दूंगा ॥ २१९ ॥ मैं अब अपने इस निन्दित मुखको कसे दिखाऊंगा ।  
 मैं मायाका यह हाल सुनने ही प्राण त्याग देगे ॥ २२० ॥ उनके दुःखसे दुःखित मुमित्रापुत्र लक्ष्मण भी अवश्य  
 कर आवेगे । उन दानोके दुःखसे सूर्याव और सूर्यावर्क दुःखसे उनका स्त्री रुमा भी प्राण त्याग देगी ॥ २२१ ॥  
 यह समाचार सुननेके साथ ही मरुन्त प्यारसे पला हुआ प्राण भी प्राण छोड़ देगा । तब पुच्छलोकसे  
 कुरु और राजको विद्योगसे सब वातर भी प्राण दे देगे ॥ २२२ ॥ पन्द्रह वर्ष कीत जानेपर भरत भी मर  
 जागे । रामके विद्योगह कोमल्या पुत्रविगीरसे मुमित्रा तथा भरतके विद्योगसे यह मनर्थकारिणी तथा दुष्टा  
 कैकेयी भी मर जायगी । भाईके दुःखसे शत्रुघ्न, रामके दुःखसे मुनिलोच एवं दधुवशी रामके भक्त मन्त्रिजन  
 ह्यो मित्रवर्ग भी प्राण दे दंग । सीताके शिवा जनकका मृत, कोमल्याके पिताका कुल, मुमित्राके मित्रका  
 कुल कैकेयके पिताका कुल तथा उनके भा संगे सम्बन्धो लाभ प्राण त्याग देगे । राजकुल नष्ट हो जानेपर प्रजा  
 मरुन्त कारिणी हो जायगी ॥ २२३-२२६ ॥ तब यह निमन्हेह स्थावर-जङ्गम तथा प्राणियोंका नाश करने  
 लग्य । जब पृथ्वीपर सब प्राणी मार डाले जायेंगे । तब स्वर्गलोककामी देवता और पितर भी हव्यकवच  
 छोड़ होकर मृतक संगे हो जायेंगे । अवश्यका प्रलय तथा अपनी रत्ना मृष्टिका बिनाश देखकर पद्मासायसे  
 केन्द्रह विधाता भी मर जायगा । इस प्रकार क्रमशः समस्त ब्रह्माण्ड ही नष्ट हो जायगा । इसमें सन्देह  
 नहीं है ॥ २२७-२२९ ॥ ब्रह्माजीने इनके विनाशका कारण मुझ ही बनाया । हनुमान् ऐसा संदपूर्वक कहने  
 का जो मरनेके लिए उत्पन्न हो गये ॥ २३० ॥ उसी समय यह आनन्ददायिकी आकाशवाणी हुई कि मैं

आम्भानं दर्शयित्वा तां शीघ्रं गच्छ रघूदहम् । तां वार्तां हनुमज्जुत्वा बभूव हर्षपूर्वितः ॥२३२॥  
 द्रुमं तां जानकीं द्रष्टुमशोकवनिकीं ययौ । तावददर्शं संकायां सुवर्णवेष्टितां सुवम् ॥२३३॥  
 उत्कारणं वदाम्यद्य तच्छृणुष्व गिरीन्द्रजे । अर्म्मद्विरित्रमे देवि त्रिकुट इति विश्रुतः ॥२३४॥  
 क्षीरोदेनःपुनः । श्रीमान्पूजनायुतशुद्धिस्तनः । तारुणं विस्तृतः पर्यंकं त्रिभिः मृगैः पर्यानिधिम् २३५  
 दिशः स रोचयन्नास्ते रौप्यायमदिरम्भयैः । तस्य द्राण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ॥२३६॥  
 उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीड सुग्योपिदाम् । दम्बिन्मरः सुविपुलं लसत्काचनपंकजम् ॥२३७॥  
 कुमुदोपमकङ्कहारकृतपत्रश्रियोर्देवम् । नैनन्कृतम्वा पदयति न वृक्षमा न नास्तिकाः ॥२३८॥  
 तस्मिन्मरमि दुष्टान्मा विरूपोऽन्तर्जलाग्रयः । बाभोवृक्षदो गजेन्द्राणां दुग्धधर्षो महावतः ॥२३९॥  
 अथ दंतोज्ज्वलमुतः कदाचिद्भ्रमयुधपः । आतमाम हवाकानः कण्ठेणुपरिवारितः ॥२४०॥  
 दृष्टितः पानकामोऽयमवतीर्णश्च तत् सगः । पिननस्तस्य ततोयं ग्राहस्तसुरपथतः ॥२४१॥  
 सुतीनः पकजवृते सुवमप्यमनः करो । गृहीतस्तेन गैट्रेण ग्राहणादिवकीवसा ॥

गतो आकर्षते तीरं ग्राह आकर्षते जलम् ॥२४२॥

पञ्चर्त्तिनां कण्ठेनां कोशतीर्त्तां सुदारुणम् । नीयते पंकजवने ग्राहेणान्यन्तमूर्तिना ॥२४३॥

तथाऽऽहुर युगपति कण्ठेनां त्रिकुण्ठमाणं तन्मा बलीयसा ।

त्रिकुण्ठशुर्त्तिनाधयोऽपरं गत्रा, पार्थिवप्रदास्तरयितुं न चाशकन् ॥२४४॥

तवोर्पुदमधूदोरं दिव्यवर्षनदम्भकम् । शक्यैः सयतः पार्थिविप्रयन्नगतिः कृतः ॥२४५॥

वेष्टयमानः सुपारंस्तु पार्थिवार्गदृष्टिधया । विस्फूर्जितमहाशक्तिर्निर्गच्छ महांतवान् ॥२४६॥

कविश्रेष्ठ ! श्रेष्ठ न करो । कल्याणकारिणी जानकीका नहीं जली है ॥ २३१ ॥ उनसे मिलकर तुम शीघ्र रघूदह  
 रामके पास जाओ । उस गहनवाणीकी सुनकर हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३२ ॥ वे जानकीको स्वर्णके  
 लिए शीघ्र अशोकवनमें गये । वहाँ जाकर हनुमान्ने कुछ सुवर्णपाण्डित घर्त्ती देखी ॥ २३३ ॥ हे गिरीन्द्रजे ।  
 उमक्य कारण मैं बताता हूँ, सुनी-हूँ दीव ! त्रिकुट नामके पासके शीघ्र पर्वत था ॥ २३४ ॥ वह चारों  
 ओर तीरसमारसे घिरा हुआ सुन्दर शाष्पागुल तथा इस हजार योजन ऊँचा था । वह उतना ही गालाईमें  
 भी था । वह आँदा, लाल और मानक तीन शिखरोंसे इसी दिशाओं तथा आकाशकी व्याप्त किये हुए था ।  
 उसके एक भागमें महात्मा भगवान् वरुणका अनुमान् नामक दक्षिणोंका श्रीहरिस्थान एवं उद्यान था ।  
 उसमें विजय सुवर्णकमलसे युगाभित्त एक तालाब था ॥ २३५-२३७ ॥ जो कि बुढ़ा, लाल कमल प्रदेत  
 कमल तथा आलपय जैसे कमलोंसे अतीव सुन्दर प्रतीत होता था । उनको कुलधन, वन और नग्निक लोग  
 नहीं देख सकते थे ॥ २३८ ॥ उसी जगाममें ठिया हुआ महावर्णवान् बड़ा कठिनाईमें पकड़ा जानेवाला  
 तथा गजेन्द्रोंकी भी प्रसन्न बनाने एक दुष्ट अमरमच्छ रहता था ॥ २३९ ॥ जिसी समय प्रेत राति तथा  
 प्रेत सुखवाला भजोमें मुख्य एक गजराज पानसे आकुल होकर हर्षनिधाम पहरा हुआ वही आया ॥ २४० ॥  
 वह पानी पीनेकी इच्छासे च्यो ही पानीमें उतरा और पानी पीन लगा र्यो ही ग्राह उसके पास आ पहुँचा  
 ॥ २४१ ॥ कमलवनसे डूंक तथा हाथियोंके मुखोंके बचन स्थित उस हाथोंको उस भगवानक तथा अति सम्मान  
 चाहने एकड़ लिया ॥ २४२ ॥ जब वह हाथी ग्राहका तीरकी ओर खींचन लगा । उसके माँवकी हृदयिणी  
 देखती और दुःखमें चिल्लाती ही गृह पई और जलमें ठिया हुआ ग्राह हाथीका कमलके वनमें दूर खींच ले गया  
 ॥ २४३ ॥ जब भगवाणे हुए उस सुवर्णित गजका ग्राह बन्धूक बोले जलमें खींच रहा था, तब हृदयिणी  
 पत्नीन मुखसे शब्दन करने लगी और दूसरे तथा पछे रहनवाने हाथी दीन होकर चिल्लाते लगे, पर कोई उसे  
 जवा नहीं सका ॥ २४४ ॥ उस पत्र तथा ग्राह दोनोंमें देवनाजोंके हजार भयें मक और मुट होता रहा ।  
 अन्तमें गजराज जैसे वरुणपाल तथा अति भयानक एवं बड़ नागपाशमें बँधकर सर्वथा असमर्थ हो  
 गया । तब लम्बकल वर्ष तथा महाशक्तिसम्पन्न होता हुआ भी वह गजराज चिल्लाते तथा महान् चीत्कार

व्यथितः स निरुन्वाहो गृहानो धोःकर्मणा । परमापदमागतो मनवादर्शनयद्विम् ॥ २४७ ॥  
 एकाग्रो निगृहीतात्मा विशुद्धेनावरान्मना । प्रगृह्य पुष्कराग्रं कौचं कमलोत्तमम् ॥ २४८ ॥  
 नैवेद्यं मनसा यन्मा पूजयिष्य जनादेनम् । आप द्विबोधमन्दिच्छन्नाजः श्रोत्रमुदीरयत् ॥ २४९ ॥  
 दन्कृतेन स्तब्धेनैव मुषीतः परमेश्वरः । आरुह्य गरुडं त्रिष्णुगजगाम सुरोत्तमः ॥ २५० ॥  
 श्राह्यस्तं गजेन्द्रं च न ग्राह्यं च कलाश्रयान् । उज्ज्वलपद्मेनात्मा तरसा मधुसूदनः ॥ २५१ ॥  
 अलम्ब्य दारपाणाम् नम्रं चक्रेण माधवः । मोचय मम न गेहं पाशेभ्यः श्रवणागतम् ॥ २५२ ॥  
 आसीद्विजः पुरा पांड्य इन्द्रसुम्न इति श्रुतः । एकदा स तपोनिष्ठो बभूव ध्यानतत्परः ॥ २५३ ॥  
 यदृच्छया ययौ तत्र कुम्भजन्मा वृषाधिकम् । ध्यानस्थः स तपो नैव मुनिं वेद समागतम् ॥ २५४ ॥  
 ददौ श्रापं मुनिर्भूय दृष्ट्वात्मन तु नोन्वितम् । तपोमदेनमभ्यात्मन्यवस्थान्नोन्वितोऽपि माम् ॥ २५५ ॥  
 अतो भव गजो आतो मदेन विरिनेऽपि च । स अभ्यस्य तृपतिं श्रापं च प्रणम्य पुनः पुनः ॥ २५६ ॥  
 विचारं प्रार्थयामास मुनिः प्राह हरेः कृपाया । अविर्भाते त्रिमुक्तिस्ते यदा ग्राहो परिष्यति ॥ २५७ ॥  
 पुरा तदैव गधवंस्त्रध्मगणमेवितः । सः स्यात्सिद्धनर्क्रीडां कर्तुं हृद्ः समागतः ॥ २५८ ॥  
 मरस्यधमर्पणार्थं न दृष्ट्वा स देवतं विभुम् । मन्थितं च यद्देहं कर्तुं गन्धर्वैः स व्यचिन्तयत् ॥ २५९ ॥  
 स्वयं भूम्या जले लान्कस्यादी स्वकरोष हि ददुः प्रुम्भा कथयन् शास्त्रात्मनः प्रभुभिः ॥ २६० ॥  
 ग्राहवन्मे घृणी वादी तस्माद्ग्राहो भवाच्च वै । तेन यदायितः प्राह इगिस्त्वामुदरिष्यति ॥ २६१ ॥  
 एवं तौ पूर्वश्रापेन एनिनावतिसकटे । इगिरुदभृत्य तौ नाभ्यां ययौ स्वीयस्थलं पुनः ॥ २६२ ॥

करने लगा ॥ २४७ ॥ २४८ ॥ उस आ पुरातन ग्राहसे अब न होकर मजगत् दुष्पी और निरुसह हो गया ।  
 उस समय इस प्रकारकी परम विपत्तिको प्राप्त हुकर अब श्री इन्द्रिका चिन्तन करने लगा ॥ २४७ ॥ तदनन्तर  
 इन्द्रियोंका निबह करके उगने एकाग्र मन तथा गूढ़ अन्तःकरणस गुणोंके समान उत्तम एक कमलगुम्फ  
 मूँडके अयथागसे पकड़कर जालत भादमे मन ही मन जनार्दन भगवान्का अर्चन, पूजन, ध्यान तथा नैवेद्य  
 अर्पण करके विपत्तिसे छुटकारा पानेके हेतु मनःशुद्ध किया ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ उसका स्मृतिसे प्रसन्न परमेश्वर  
 स्मृतोत्तम भगवान् विष्णु स्वयं गरुडवर सवार होकर वहाँ आये ॥ २५० ॥ उन अवसर आत्मा मधुसूदन  
 भगवान् उस ग्राह तथा नम्रका जलसे पीये ही बाहर निकाला ॥ २५१ ॥ उन्होंने जलमें रहनेवाले  
 जलका आने चपसे मार डाला और गरणगत मजगत्को पाशोंसे छुटा दिया ॥ २५२ ॥ यह हाथी पूर्व  
 जन्मसे पांड्यवंशी इन्द्रसुम्न नामका राजा था । एक बार उसने छलन करके तप करना आरम्भ किया  
 २५३ ॥ जब यह तप कर रहा था, तभी उसके पास अगस्त्य मुनि एकाएक जा पहुँच । ध्यानमें स्थित  
 राजाको मुनिके आनेका कुछ पता न था ॥ २५४ ॥ मुनिने भयन आनेपर राजाको बड़े होते न देखकर  
 शाप दे दिया कि तपक क्षमण्डसे मेरे आनेपर भी तुम बड़े नहीं हुए ॥ २५५ ॥ इसलिए काँझ ही तुम बनमें  
 नदन्मत्त हाथी ही जाओ । यह सुनकर राजा इन्द्रसुम्न बारम्बार मुनिको प्रणाम करके शापसे मुक्त  
 करनेकी प्रार्थना करने लगा । तब मुनिने कहा कि तुमको ग्राह ( मगरमच्छ ) पकड़ेगा, तब प्रभुके हाथसे  
 मन्मथी मुक्ति होगी ॥ २५६ ॥ २५७ ॥ उन्हीं दिनों हृह नामक गन्धर्व विशिष्ट अप्सराओंको साथ लेकर उस  
 राजावसे अलकीडा करनेके लिए आया ॥ २५८ ॥ उसने देखा कि उस सगरके अलम्ब्य बड़े होकर देवक  
 मुनि बहुत देरसे अधमर्षण अर्थात् तम्बुर्ष पाषोको मष्ट करनेवाले मन्थका कप कर रहे हैं और अभी बाहर  
 निकलना नहीं चाहते । तब यह उनका बाहुर निकालनका उपाय सोचने लगा ॥ २५९ ॥ तदनन्तर स्वयं  
 जन्मे दुबकी मारकर वह अपने हाथसे उनके पाँवोंको पकड़कर खींचने लगा । यह देखकर मुनि उसको  
 चिन्तान गये और शाप दिया-॥ २६० ॥ तुम ग्राहकी तरह मेरे पाँव पकड़े हैं, इसलिए तू यहाँपर मगर-  
 मच्छ बनेगा । पुनः अन्धर्वके प्रार्थना करनेपर मुनिने कहा कि धीरे धीरे तेरा इस शापसे उद्धार करोगे ॥ २६१ ॥  
 इस प्रकार पूर्व जन्ममें प्राप्त शापके कारण बसिगाय पीषण सकटमें पड़े हुए उन गधप्रभुका भगवान्ने उद्धार

क्षुधितेनाथ ताक्ष्यं प्रापितः प्राह तं इति । गच्छ भयम् वसिष्ठे मत्प्रसादकलेवरे ॥२६३॥  
 ययौ ताक्ष्यः सरः पुष्पं तावद्भ्रमंगृधराट् । कलेवरांतिकं प्रापस्त निहन्त्य स्वमेघराः ॥२६४॥  
 पदेनेकेन भ्रमंगमपणेन कलेवर । पुन्रा ताक्ष्यं शुद्धदेशं मक्षगार्धमवश्यम् ॥२६५॥  
 तावन्धीमार्णवे त्रिवृन्दवृक्षं समीक्ष्य सः । आपामचिस्त्रगोच्चैस्तु सदस्ययोजनं शुभम् ॥२६६॥  
 वृच्छास्त्राणां विशालाणां यावत्तर्था म पश्चिमाट । तावद्भ्रमजं तच्छास्त्रां बालविन्दपरधोघुस्तः ॥२६७॥  
 तपस्विः वह्निमाहर्षिश्चिकालं मम श्रिताः । तांस्त्वाहशान्तिनिके कथायं तच्छास्त्रमयशक्तिनः ॥२६८॥  
 पुन्रा स्वचक्षुना शास्त्रां वत्राम गमने पुनः । ततो दृष्ट्वा कश्यपं स्वतानुं नन्वा व्यजिहपन् ॥२६९॥  
 वद शुद्धां भुवं मेऽद्य कुर्वेऽहं यत्र भोजनम् । तदा तं कश्यपः प्राह शनयोजनमागरे ॥२७०॥  
 लोकानास्त्री शुद्धभूमिस्तत्र त्वं कुरु भोजनम् । तपितुर्वचनाद्वृद्धौ ययौ ताक्ष्यः क्षणेन सः ॥२७१॥  
 प्रोषयोः पभयोः शास्त्रां म्याप्य तान्मक्षयन्मुदा । तस्यकौशिकिर्विस्मयत्रयुगाणि त्रीणि चाभवन् ॥२७२॥  
 त्रिकुट इति नाम्ना म लङ्कायां गिरिराडभूत् । तेषु भूमेषु तां शास्त्रां ताक्ष्यः संस्थाप्य संपयौ ॥२७३॥  
 बालस्त्रिष्याम्मपोऽन्ते ते वयुर्विष्णोः परं पदम् । त्रामाच्छास्त्रां जन्तुगान्ते या लङ्कायां भृगुमूर्ध्वगु ॥२७४॥  
 प्रावभूतां चैवनेन न विदुस्तां तु राक्षसाः । लङ्काऽग्निना द्रव्यभूता मर्दयन्तां क्षपाचरान् ॥२७५॥  
 एषान् तदमेतामो लङ्काभूमिर्द्विगुणमयी । तां दृष्ट्वा चक्रिती वेगादने मानी ययौ कपिः ॥२७६॥  
 दृष्ट्वाऽघोके पुनः सीतां तामाह कपिकुञ्जरः । मन्त्रकन्धमंस्थिता गममयं वक्ष्यन्ति जामकि ॥२७७॥  
 सा प्राह मोक्षितामन्यमर्मां रामो न सहिष्यसि । नीचा पुनर्मृद्रिकां त्वं रापवाय समर्पय ॥२७८॥

किया और दोनोंको साथ लेकर अपने घास पत्रार । २६३। तदनन्तर भूम गहन श्रीहरीसे आहारकी प्रार्थना की । श्रीहरीने कहा कि जाओ, सरोव क लक्षण घरे हुए मज साहके शरीरकी ला म्मे । २६३ ॥ गच्छ महा वये हो उन कलेवरीके पास भ्रमंग नामक एक गृधराजकी इला । दानव हो पश्चिमोक्त ईश गच्छमे उस मार दाला । २६४ । तन्वभ्रान् एक टीगस आ भङ्गका तथा दूसरी टीगस मज पात्रक शीरीकी पकड़कर उन्हें आत्मके लिए कोई शुद्ध स्थान लोजमे लगे । २६५ । उत्तरम बरुठकी श्रीसागरमे एक जम्बूनद ( सुवर्ण ) का वृक्ष दिमायी दिया । सह लम्बाई चौडाई तथा ऊंचाईमे हजार योजन परिमाण वाला था और दन्तम बड़ा ही सुन्दर मगता था ॥२६६॥ पार्श्वराज गरुड जाकर उगी हो उसको एक शाखापर बैर, तैमे ही उसको बह शाखा टूट पड़ी । उसके टूटनेमे उसपर बहुत काजम रहनकले साठ हजार बालस्त्रिष्य शक्ति छपे वृक्ष हाकर गिरने लगे उनकी यह दशा देखकर पश्चिमराज गरुडके मनमे क्षयिषाक शापकी शका समर गया ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ अतएव उस शाखाको नीचमे पकड़कर ये आकाशमे फिर प्रथम करने लगे । तभी इन्द्र अपने पिता कश्यप दिमायी पडे । तब तमस्कार कन्के उनमे निवेदन किया— २६९ ॥ आप कई ऐसी पवित्र जगह पालणारी, जहाँ मैं भोजन कर सकूँ । तब कश्यपने कहा कि सौ योजन विस्तृत लका नामकी विशुद्ध भूमि है, वहाँ जाकर तुम भोजन कर सकते हो । अपने पिताकर बात भङ्गाकार करके गच्छ क्षणपरमे लङ्का जा पहुँच ॥ २७० ॥ ॥ २७१ ॥ बालस्त्रिष्य श्रुतिथी सहित मासाको अपनी ईवी पालापर घरे हुए वे आनन्दसे उन भूम शरीरोंकी स्ताने लगे, जिन्ह पवित्रमे पकड़ लये थे । उन मज ग्राह तथा गीषके शरीरसे निकली हुई हड्डियाँ वहाँ तीन बड़े बाली गिरार खड हो गये ॥ २७२ ॥ उन तीनोंका लङ्काम पवनराज त्रिकुट नाम पद गया । गरुडने उन्हीं शिखरापर उस शाखाका रख दिया और चले गये ॥ २७३ ॥ वहींपर तपस्या पूरी करके ये बालस्त्रिष्य शक्ति विष्णुके परम पदकी प्राप्ति हो गये । लङ्काम उन शिखराके मध्यमे स्थित शाखा पादाशके समान हो गया था । इसी कारण रक्षस लोग उसे नहीं पहचान पाये थे । जब हनुमान्ने लङ्काको अग्निसे जलाया, जब वह इवित होकर राक्षसोंका मर्दन काही हुई गिर पड़ी । उसके रखमे लङ्काकी भूमि सुवर्णमयी हो गयी । यह लोका देखकर हनुमान् चकित हो गये और गर्ज्य हो संताके समीप आये ॥ २७४-२७५ ॥ लङ्केकवचमे सीताकी नृपपद स्थित देखकर कपिपुञ्जर हनुमान् सीतासे बोले हे जानकी ! आप मेरे कन्धे-

इत्युक्त्वा तत्करे सीता ददौ श्रीराममुद्रिकाम् । ततस्तां मारुतिः पृष्ट्वा नन्वां शत्रुं ययौ पुनः ॥२७९॥  
 आरुह्य सुवेलाद्रिं पूर्णं तमकरोद्भिषिम् एतस्मिन्नतरे नक्षा ददौ पत्रं सविस्तरम् ॥२८०॥  
 यथाकृतं मारुतिना लकार्थं तस्य सूचकम् । तद्गृह्य मारुतिर्वैशान्त्या पृष्ट्वा विधिं पुनः ॥२८१॥  
 तत उद्गीय वेगेन यथावाकाञ्चक्येना । कुर्वन् शब्द महाघोरं कर्षीनामूर्ध्वतस्तदा ॥२८२॥  
 उद्भिष्यत्तग किञ्चिन्पपात भुवि मारुतिः । ततो दृष्ट्वा कर्षीन्तत्र दृष्ट्वा मुनिमत्तमम् ॥२८३॥  
 किञ्चिद्वैममाविष्टस्य मुनिं प्राह मारुतिः । यथा श्रीरामकार्यं तु कुतमस्ति मुनीश्वर ॥२८४॥  
 यानीयं पातुमिच्छासि दर्शयस्व नलाश्रयम् । तर्जन्या दर्शयामास मुनिस्तस्मै जलाश्रयम् ॥२८५॥  
 ततः स मारुतिर्मुद्रां मणिं पत्रं मुनेः पुरः । मन्थाप्य नीरं पातु वै ययौ कामारमुत्तमम् ॥२८६॥  
 ततस्तत्र कपिः कश्चिन्मुद्रिकां मुनिमनिवौ । कमण्डलीं प्राक्षिपन्त्य पर्या तावच्च मारुतिः ॥२८७॥  
 गृहीत्वा त मणिं पत्रं मुनिं पप्रच्छ मुद्रिकाम् । मुनिभ्रमं ज्ञया तस्मै कमण्डलुमदर्शयत् ॥२८८॥  
 ततः कमण्डलीं नृणां मुद्रिकामवलोकयन् । तावददर्शान्वनेयस्नस्मिन् श्रीराममुद्रिकाः ॥२८९॥  
 दृष्ट्वा महत्प्रशस्तत्र चकितः प्राह तं मुनिम् । कुतस्त्विमा मुद्रिकाश्च वद का मम मुद्रिका ॥२९०॥  
 एतासु त्वं मुनिश्रेष्ठ तदा तं मुनिप्रवीन् । यदा यदा वायुपुत्रः सीतां तां राघवावृषा ॥२९१॥  
 लकां गन्वा समानीता घृष्टमुद्राम्नातदा तदा । मदग्रे स्थापितास्नाथ कपिभिश्च कमण्डली ॥२९२॥  
 निक्षिप्तास्नाम्निवमाः यदा पश्यताम् स्वमुद्रिकाम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा यतगर्वस्तमजवीन् ॥२९३॥  
 कियंतो राघवाश्चात्र ममापाता मुनीश्वर । मुनिस्तं प्राह निष्कारस्य गणपस्वाद्यमुद्रिकाम् ॥२९४॥

पर सवार हो जायें, तो मैं आपको ले चलकर आज ही रामका दर्शन करा दूँ ॥ २७७ ॥ जानकीने कहा—मुख दूसरा कोई छुड़ाकर ले जाय, इस बातको समझाने राम सहन नहीं कर सकेगे। इसलिए तुम इस अंगूठीको ले जाकर रामका दे दो ॥ २७८ ॥ इतना कहकर सीताजाने हनुमानके हाथमें वह मुद्रिका दे दी। तब हनुमानजी सीताकी आज्ञा ले तथा नमस्कार करके श्रीराम ही लौट पड़े ॥ २७९ ॥ उन्होंने समुद्रके किनारे वाले पर्वतपर चढ़कर उसे घूर्ण कर डाला। उस समय बहामैन विस्तारपूर्वक एक पत्र लिखकर उन्हें दिया ॥ २८० ॥ जिसमें यह लिखा था कि लयाप अकर मारुतिने क्या-क्या काम किया है। उसको लेकर बहामैनी बाला ले तथा उन्हें नमस्कार करके हनुमान् पुनः वहाँ उड़कर श्रीराममांसिघार तथा महान् वानरोकी तरह चल करते हुए जंगलसे चल पड़े ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ उत्तर दिशा की ओर कुछ दूर आगे जाकर सीते उत्तरे में वहाँ उन्होंने एक मुनिको चिराममान देखा ॥ २८३ ॥ तब कुछ भयम भावमाने कहा हे मुनीश्वर! मैं श्रीरामका काम करके आ रहा हूँ ॥ २८४ ॥ वहाँ मैं पानी पीनेकी इच्छासे आया हूँ मुझे कोई जलाशय बतलाइये। तब मुनिने उन्हें तर्जनी अंगुलि से जलाशय बतला दिया ॥ २८५ ॥ तदनन्तर हनुमान् अंगूठी, सूत्रामणि तथा पत्र मुनिक पास रखकर उस उत्तम ताम्बाकी ओर चल पीने गये ॥ २८६ ॥ इतनेमें किसी बन्दरने आकर रामकी मुद्रिकाकी मुनिक पास रख कर कमण्डलुमें डाल दिया। उपरस हनुमान्जी आ आ पहुँचे ॥ २८७ ॥ सूत्रामणि तथा पत्रके विषयमें उन्होंने मुनिसे पूछा कि मुद्रिका कहाँ गयी? मुनिने भौंटेके सनेतसे कमण्डलु दिखाया ॥ २८८ ॥ जब हनुमान्ने कमण्डलुमें देखा तो उसमें श्रीरामकी हजारों मुद्रिकाएँ दिखायी दीं। तब हनुमान्ने आश्चर्यवक्ति होकर मुनिसे पूछा कि इतनी अंगूठियाँ कहाँसे आयीं, सो बताइए ॥ २८९ ॥ २९० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आप यह भी कहिये कि इनसे मेरी मुद्रिका कौन-सी है? मुनिने उत्तर देना कि जब-जब श्रीरामकी आज्ञासे हनुमान्ने लका में जाकर सीताका पता लगाया है और अंगूठियों मेरे नामने रखी हैं तब-तब बन्दरोंने उन्हें इस कमण्डलुमें डाल दा है। वे ही ये सब हैं। इनमेंमें तुम अपनी अंगूठी लौज लो। मुनिक इस वाक्यको सुनकर हनुमान्का गर्व खर्च हो गया। तब उन्होंने मुनिसे कहा— ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ हे मुनीश्वर! यही जिसने राम जाय है? मुनिने कहा—कमण्डलुमेंसे अंगूठियाँ निकालकर

कमंडलोरंजलिमिन्ददाऽथ मुद्रिका मुहुः । बहिः क्षिपन्माहति स नानं नामा ददर्श सः ॥२९५॥  
 पुनः कमंडलीं कृत्वा मुनिं नम्या कपिः क्षणम् । चिन्तयामास मनसि मातृजैः शतशः पुनः ॥२९६॥  
 समानीतास्ति सीतायाः शुद्धिः का गणनाऽद्यमे । इति निश्चिन्त्य मनसि गतगर्वमदा कपिः ॥२९७॥  
 पुनर्दक्षिणमर्षेण ययौ यत्रांगदक्षिणः । प्रायोपवेदनमथास्त्रे त दृष्ट्वा तुष्टमानसः ॥२९८॥  
 बभूवुर्वाक्यैः सर्वे समालिख्य तं मुहुः । ज्ञान्वा तन्मुमुक्षतः सीता दृष्ट्वाऽप्योक्त्वान्त्विति ॥२९९॥  
 ययुस्ते गधवर्मांश्च मार्गे सुग्रीवपालितम् । दृष्ट्वा मधुवतं सर्वे दृष्ट्वा तु वालिनंदनम् ॥३००॥  
 फलानि मलयामामुर्धधिवक्त्रो न्यपेययत् । तन्यते ताडयामामुर्धधिवक्त्र कपीश्वरम् ॥३०१॥  
 ज्ञान्वा तं मानुष्यपि सुग्रीवस्यांगदादयः । स गन्वा सकलं वृत्तं सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥३०२॥  
 सोऽपि श्रुत्वा जनकज्ञा दृष्ट्वा तैरिन्धमन्यत । नोचेन्मधुवनं रम्यं कथमश्नन्ति वानराः ॥३०३॥  
 ततो विमर्जयामास दधिवक्त्रे कपीश्वरः । मा निपेयस्त्वया कार्यं क्वं शीघ्रं प्रेषयस्व तान् ॥३०४॥  
 समीतकं ततो गन्वा दधिवक्त्रस्तथाऽकरोत् । ततः सुग्रीववचनं धृत्वा तेन समीक्षितम् ॥३०५॥  
 ययुस्ते वानराः सर्वे गमन्त्वा पुरःस्थिताः । ततो दर्शयन्माहतिः स ब्रह्मपत्रं न्यवेदयत् ॥३०६॥  
 दत्त्वा मृडामणिं रामं काकवृत्तं न्यवेदयत् । लब्ध्वा सकलं वृत्तं ज्ञात्वा माहतिना कृतम् ॥३०७॥  
 लकायां वायुपुत्रेण गमस्तुष्टो बभूव सः । समालिख्य हनूतं गधवो वाक्यमत्रयात् ॥३०८॥  
 तवोपकारिणमहं न पश्याम्यस्य माहते । कर्तुं प्रत्यूषकारं ते धन्योऽसि जगन्नाथ ॥३०९॥  
 परिश्रमो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः । अतस्त्वममं भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुत्र ॥३१०॥

यत्पादपत्रपुगलं तुलसीदत्ताद्यैः संपूज्य विष्णु पदार्धमनुत्तमं प्रेषति ।

गित लो ॥ २९३ ॥ २९४ ॥ अब हनुमान् कमण्डलुमें अजली भर-भरकर बरम्बर अंगूरों वहर निकालने लगे । पर वही जनकी भक्त नहीं हुआ ॥ २९५ ॥ तब फिरसे ऊन्ह कमण्डलुमें भर दिया और मुनिका तमस्कार करके क्षणभरके लिए वे मनमें विचार करने लगे कि आह ! पहिले मेरे जैसे सैकड़ों हनुमान् जाकर सीताकी खबर ले आये हैं तो मेरी कीन-सी गिनती है यह निश्चय करके धीरे-धीरे मार्गमें घबड़घबड़ी त्यागकर दक्षिणमर्गमें नहीं अङ्गुठादि बानर बंडे से, वहाँ गया । उपवासो दणमें बैठे हुए वे सब बानर हनुमानकी देवकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २९६-२९८ ॥ वे सब उम्भ-वारवार हृदयमें लगाने लगे और उनके मुखसे यह मुनकर कि मैं सीताकी प्रणोकवाटिकामें देख आया हूँ ॥ २९९ ॥ तब सबके सब तुलसी रामका और बल पड, रास्तेमें ऊन्ह सुग्रीवका भूर्धिल मधुवन दिखाई दिया । तब सब बानर वालिक पुत्र अङ्गुलसे पूछकर ॥ ३०० ॥ उस वनके फल खाने लगे । जब उसके रखक दधिमुवन रोका तो वे उसको मारने लगे ॥ ३०१ ॥ यह जननपर भी कि यह सुग्रीवका मामा है तबपि उस पंडकर ही छोडा तदनन्तर दधिमुवन जाकर सब हाल सुग्रीवको कह सुनाया । यह सुनकर सुग्रीवने समस्त लिखा कि ऊन्हे जनकहन राका पता पानिगा है नहीं तो वे लगे मधुवनके फल बाँटकर खाते ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ पश्चात् कपीश्वर मुद्रावने दधिमुवनको ॥ ३०४ ॥ मुद्राकर गेलगा और कहा कि उन्हे रोका मत, यही भेज दो ॥ ३०५ ॥ सुग्रीवकी बात मानकर उमने ॥ ३०६ ॥ लिखा । पश्चात् वे सब बानर दधिमुवन सुग्रीवका आदेश सुनकर ॥ ३०७ ॥ रामके पास गये तथा ॥ ३०८ ॥ उनके उनके समस्त खंड हे गये । तब हनुमान्ने सहर्ष ब्रह्मका दिया हुआ पत्र रामको अर्पण किया ॥ ३०९ ॥ दधिमुवन जनककी वृत्त कह सुनाया । सो मुनकर राम ब्रह्मम हनुमानका किया हुआ ॥ ३१० ॥ ३०६ ॥ ३०७ ॥ ब्रह्मके पत्रसे राम क्षतिग्रस्त समुष्ट हुए तदनन्तर राम हनुमान् ॥ ३१० ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥ ३१८ ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥ ३२१ ॥ ३२२ ॥ ३२३ ॥ ३२४ ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥ ३३० ॥ ३३१ ॥ ३३२ ॥ ३३३ ॥ ३३४ ॥ ३३५ ॥ ३३६ ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥ ३४० ॥ ३४१ ॥ ३४२ ॥ ३४३ ॥ ३४४ ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥ ३४७ ॥ ३४८ ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ ३५१ ॥ ३५२ ॥ ३५३ ॥ ३५४ ॥ ३५५ ॥ ३५६ ॥ ३५७ ॥ ३५८ ॥ ३५९ ॥ ३६० ॥ ३६१ ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ ३६८ ॥ ३६९ ॥ ३७० ॥ ३७१ ॥ ३७२ ॥ ३७३ ॥ ३७४ ॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥ ३७७ ॥ ३७८ ॥ ३७९ ॥ ३८० ॥ ३८१ ॥ ३८२ ॥ ३८३ ॥ ३८४ ॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥ ३८७ ॥ ३८८ ॥ ३८९ ॥ ३९० ॥ ३९१ ॥ ३९२ ॥ ३९३ ॥ ३९४ ॥ ३९५ ॥ ३९६ ॥ ३९७ ॥ ३९८ ॥ ३९९ ॥ ४०० ॥ ४०१ ॥ ४०२ ॥ ४०३ ॥ ४०४ ॥ ४०५ ॥ ४०६ ॥ ४०७ ॥ ४०८ ॥ ४०९ ॥ ४१० ॥ ४११ ॥ ४१२ ॥ ४१३ ॥ ४१४ ॥ ४१५ ॥ ४१६ ॥ ४१७ ॥ ४१८ ॥ ४१९ ॥ ४२० ॥ ४२१ ॥ ४२२ ॥ ४२३ ॥ ४२४ ॥ ४२५ ॥ ४२६ ॥ ४२७ ॥ ४२८ ॥ ४२९ ॥ ४३० ॥ ४३१ ॥ ४३२ ॥ ४३३ ॥ ४३४ ॥ ४३५ ॥ ४३६ ॥ ४३७ ॥ ४३८ ॥ ४३९ ॥ ४४० ॥ ४४१ ॥ ४४२ ॥ ४४३ ॥ ४४४ ॥ ४४५ ॥ ४४६ ॥ ४४७ ॥ ४४८ ॥ ४४९ ॥ ४५० ॥ ४५१ ॥ ४५२ ॥ ४५३ ॥ ४५४ ॥ ४५५ ॥ ४५६ ॥ ४५७ ॥ ४५८ ॥ ४५९ ॥ ४६० ॥ ४६१ ॥ ४६२ ॥ ४६३ ॥ ४६४ ॥ ४६५ ॥ ४६६ ॥ ४६७ ॥ ४६८ ॥ ४६९ ॥ ४७० ॥ ४७१ ॥ ४७२ ॥ ४७३ ॥ ४७४ ॥ ४७५ ॥ ४७६ ॥ ४७७ ॥ ४७८ ॥ ४७९ ॥ ४८० ॥ ४८१ ॥ ४८२ ॥ ४८३ ॥ ४८४ ॥ ४८५ ॥ ४८६ ॥ ४८७ ॥ ४८८ ॥ ४८९ ॥ ४९० ॥ ४९१ ॥ ४९२ ॥ ४९३ ॥ ४९४ ॥ ४९५ ॥ ४९६ ॥ ४९७ ॥ ४९८ ॥ ४९९ ॥ ५०० ॥ ५०१ ॥ ५०२ ॥ ५०३ ॥ ५०४ ॥ ५०५ ॥ ५०६ ॥ ५०७ ॥ ५०८ ॥ ५०९ ॥ ५१० ॥ ५११ ॥ ५१२ ॥ ५१३ ॥ ५१४ ॥ ५१५ ॥ ५१६ ॥ ५१७ ॥ ५१८ ॥ ५१९ ॥ ५२० ॥ ५२१ ॥ ५२२ ॥ ५२३ ॥ ५२४ ॥ ५२५ ॥ ५२६ ॥ ५२७ ॥ ५२८ ॥ ५२९ ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥ ५३४ ॥ ५३५ ॥ ५३६ ॥ ५३७ ॥ ५३८ ॥ ५३९ ॥ ५४० ॥ ५४१ ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥ ५४४ ॥ ५४५ ॥ ५४६ ॥ ५४७ ॥ ५४८ ॥ ५४९ ॥ ५५० ॥ ५५१ ॥ ५५२ ॥ ५५३ ॥ ५५४ ॥ ५५५ ॥ ५५६ ॥ ५५७ ॥ ५५८ ॥ ५५९ ॥ ५६० ॥ ५६१ ॥ ५६२ ॥ ५६३ ॥ ५६४ ॥ ५६५ ॥ ५६६ ॥ ५६७ ॥ ५६८ ॥ ५६९ ॥ ५७० ॥ ५७१ ॥ ५७२ ॥ ५७३ ॥ ५७४ ॥ ५७५ ॥ ५७६ ॥ ५७७ ॥ ५७८ ॥ ५७९ ॥ ५८० ॥ ५८१ ॥ ५८२ ॥ ५८३ ॥ ५८४ ॥ ५८५ ॥ ५८६ ॥ ५८७ ॥ ५८८ ॥ ५८९ ॥ ५९० ॥ ५९१ ॥ ५९२ ॥ ५९३ ॥ ५९४ ॥ ५९५ ॥ ५९६ ॥ ५९७ ॥ ५९८ ॥ ५९९ ॥ ६०० ॥ ६०१ ॥ ६०२ ॥ ६०३ ॥ ६०४ ॥ ६०५ ॥ ६०६ ॥ ६०७ ॥ ६०८ ॥ ६०९ ॥ ६१० ॥ ६११ ॥ ६१२ ॥ ६१३ ॥ ६१४ ॥ ६१५ ॥ ६१६ ॥ ६१७ ॥ ६१८ ॥ ६१९ ॥ ६२० ॥ ६२१ ॥ ६२२ ॥ ६२३ ॥ ६२४ ॥ ६२५ ॥ ६२६ ॥ ६२७ ॥ ६२८ ॥ ६२९ ॥ ६३० ॥ ६३१ ॥ ६३२ ॥ ६३३ ॥ ६३४ ॥ ६३५ ॥ ६३६ ॥ ६३७ ॥ ६३८ ॥ ६३९ ॥ ६४० ॥ ६४१ ॥ ६४२ ॥ ६४३ ॥ ६४४ ॥ ६४५ ॥ ६४६ ॥ ६४७ ॥ ६४८ ॥ ६४९ ॥ ६५० ॥ ६५१ ॥ ६५२ ॥ ६५३ ॥ ६५४ ॥ ६५५ ॥ ६५६ ॥ ६५७ ॥ ६५८ ॥ ६५९ ॥ ६६० ॥ ६६१ ॥ ६६२ ॥ ६६३ ॥ ६६४ ॥ ६६५ ॥ ६६६ ॥ ६६७ ॥ ६६८ ॥ ६६९ ॥ ६७० ॥ ६७१ ॥ ६७२ ॥ ६७३ ॥ ६७४ ॥ ६७५ ॥ ६७६ ॥ ६७७ ॥ ६७८ ॥ ६७९ ॥ ६८० ॥ ६८१ ॥ ६८२ ॥ ६८३ ॥ ६८४ ॥ ६८५ ॥ ६८६ ॥ ६८७ ॥ ६८८ ॥ ६८९ ॥ ६९० ॥ ६९१ ॥ ६९२ ॥ ६९३ ॥ ६९४ ॥ ६९५ ॥ ६९६ ॥ ६९७ ॥ ६९८ ॥ ६९९ ॥ ७०० ॥ ७०१ ॥ ७०२ ॥ ७०३ ॥ ७०४ ॥ ७०५ ॥ ७०६ ॥ ७०७ ॥ ७०८ ॥ ७०९ ॥ ७१० ॥ ७११ ॥ ७१२ ॥ ७१३ ॥ ७१४ ॥ ७१५ ॥ ७१६ ॥ ७१७ ॥ ७१८ ॥ ७१९ ॥ ७२० ॥ ७२१ ॥ ७२२ ॥ ७२३ ॥ ७२४ ॥ ७२५ ॥ ७२६ ॥ ७२७ ॥ ७२८ ॥ ७२९ ॥ ७३० ॥ ७३१ ॥ ७३२ ॥ ७३३ ॥ ७३४ ॥ ७३५ ॥ ७३६ ॥ ७३७ ॥ ७३८ ॥ ७३९ ॥ ७४० ॥ ७४१ ॥ ७४२ ॥ ७४३ ॥ ७४४ ॥ ७४५ ॥ ७४६ ॥ ७४७ ॥ ७४८ ॥ ७४९ ॥ ७५० ॥ ७५१ ॥ ७५२ ॥ ७५३ ॥ ७५४ ॥ ७५५ ॥ ७५६ ॥ ७५७ ॥ ७५८ ॥ ७५९ ॥ ७६० ॥ ७६१ ॥ ७६२ ॥ ७६३ ॥ ७६४ ॥ ७६५ ॥ ७६६ ॥ ७६७ ॥ ७६८ ॥ ७६९ ॥ ७७० ॥ ७७१ ॥ ७७२ ॥ ७७३ ॥ ७७४ ॥ ७७५ ॥ ७७६ ॥ ७७७ ॥ ७७८ ॥ ७७९ ॥ ७८० ॥ ७८१ ॥ ७८२ ॥ ७८३ ॥ ७८४ ॥ ७८५ ॥ ७८६ ॥ ७८७ ॥ ७८८ ॥ ७८९ ॥ ७९० ॥ ७९१ ॥ ७९२ ॥ ७९३ ॥ ७९४ ॥ ७९५ ॥ ७९६ ॥ ७९७ ॥ ७९८ ॥ ७९९ ॥ ८०० ॥ ८०१ ॥ ८०२ ॥ ८०३ ॥ ८०४ ॥ ८०५ ॥ ८०६ ॥ ८०७ ॥ ८०८ ॥ ८०९ ॥ ८१० ॥ ८११ ॥ ८१२ ॥ ८१३ ॥ ८१४ ॥ ८१५ ॥ ८१६ ॥ ८१७ ॥ ८१८ ॥ ८१९ ॥ ८२० ॥ ८२१ ॥ ८२२ ॥ ८२३ ॥ ८२४ ॥ ८२५ ॥ ८२६ ॥ ८२७ ॥ ८२८ ॥ ८२९ ॥ ८३० ॥ ८३१ ॥ ८३२ ॥ ८३३ ॥ ८३४ ॥ ८३५ ॥ ८३६ ॥ ८३७ ॥ ८३८ ॥ ८३९ ॥ ८४० ॥ ८४१ ॥ ८४२ ॥ ८४३ ॥ ८४४ ॥ ८४५ ॥ ८४६ ॥ ८४७ ॥ ८४८ ॥ ८४९ ॥ ८५० ॥ ८५१ ॥ ८५२ ॥ ८५३ ॥ ८५४ ॥ ८५५ ॥ ८५६ ॥ ८५७ ॥ ८५८ ॥ ८५९ ॥ ८६० ॥ ८६१ ॥ ८६२ ॥ ८६३ ॥ ८६४ ॥ ८६५ ॥ ८६६ ॥ ८६७ ॥ ८६८ ॥ ८६९ ॥ ८७० ॥ ८७१ ॥ ८७२ ॥ ८७३ ॥ ८७४ ॥ ८७५ ॥ ८७६ ॥ ८७७ ॥ ८७८ ॥ ८७९ ॥ ८८० ॥ ८८१ ॥ ८८२ ॥ ८८३ ॥ ८८४ ॥ ८८५ ॥ ८८६ ॥ ८८७ ॥ ८८८ ॥ ८८९ ॥ ८९० ॥ ८९१ ॥ ८९२ ॥ ८९३ ॥ ८९४ ॥ ८९५ ॥ ८९६ ॥ ८९७ ॥ ८९८ ॥ ८९९ ॥ ९०० ॥ ९०१ ॥ ९०२ ॥ ९०३ ॥ ९०४ ॥ ९०५ ॥ ९०६ ॥ ९०७ ॥ ९०८ ॥ ९०९ ॥ ९१० ॥ ९११ ॥ ९१२ ॥ ९१३ ॥ ९१४ ॥ ९१५ ॥ ९१६ ॥ ९१७ ॥ ९१८ ॥ ९१९ ॥ ९२० ॥ ९२१ ॥ ९२२ ॥ ९२३ ॥ ९२४ ॥ ९२५ ॥ ९२६ ॥ ९२७ ॥ ९२८ ॥ ९२९ ॥ ९३० ॥ ९३१ ॥ ९३२ ॥ ९३३ ॥ ९३४ ॥ ९३५ ॥ ९३६ ॥ ९३७ ॥ ९३८ ॥ ९३९ ॥ ९४० ॥ ९४१ ॥ ९४२ ॥ ९४३ ॥ ९४४ ॥ ९४५ ॥ ९४६ ॥ ९४७ ॥ ९४८ ॥ ९४९ ॥ ९५० ॥ ९५१ ॥ ९५२ ॥ ९५३ ॥ ९५४ ॥ ९५५ ॥ ९५६ ॥ ९५७ ॥ ९५८ ॥ ९५९ ॥ ९६० ॥ ९६१ ॥ ९६२ ॥ ९६३ ॥ ९६४ ॥ ९६५ ॥ ९६६ ॥ ९६७ ॥ ९६८ ॥ ९६९ ॥ ९७० ॥ ९७१ ॥ ९७२ ॥ ९७३ ॥ ९७४ ॥ ९७५ ॥ ९७६ ॥ ९७७ ॥ ९७८ ॥ ९७९ ॥ ९८० ॥ ९८१ ॥ ९८२ ॥ ९८३ ॥ ९८४ ॥ ९८५ ॥ ९८६ ॥ ९८७ ॥ ९८८ ॥ ९८९ ॥ ९९० ॥ ९९१ ॥ ९९२ ॥ ९९३ ॥ ९९४ ॥ ९९५ ॥ ९९६ ॥ ९९७ ॥ ९९८ ॥ ९९९ ॥ १००० ॥

तेनैव किं पुनरमौ परित्यज्यमूर्ती रामेण वायुपुत्रयः कृतपुण्यपुंजः ॥३११॥

रामं स मारुतिः प्राह भानुमीनोऽतिक्रुपितः मयाऽपगाधितमिति सुद्रावृत्तं मुनेर्वचः ॥३१२॥

तच्छ्रुत्वा रामचन्द्रोऽपि विहस्योवाच मारुतिम् ' मयैव दर्शितं मार्गं कौतुकं मुनिरूपिणा ॥३१३॥

त्वद्दर्शपरिहारार्थं मुद्रिकां मन्करे त्विमाम् । कनिष्ठिकायां त्व पश्य समानीता स्वयाद्य वै ॥३१४॥

ता राममुद्रिकां दृष्ट्वा श्रीरामस्य करागुलौ । ननाम कृतवर्गः स रामं विष्णुममन्यत ॥३१५॥

मन्यन्त्यस्यैव कृपया पौरुषं चेत्यमन्यत । एवं गिरीद्वजे प्रोक्तं चरित्रं सुंदराभिधम् ॥३१६॥

रामार्थं वायुपुत्रेण कृतं सर्वार्थदायकम् ॥३१७॥

इति श्रीमत्तकोटिरामचरितार्तांगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे  
सुन्दरचरित्रे सीतामुद्रिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

## दशमः सर्गः

( राम-रावणसेनाका संघर्ष )

श्रीशिव उवाच

अथाह मारुति रामो मां वदस्व सविस्तरम् । लंकास्वरूपं ज्ञात्वा च प्रतीकारं करोम्यहम् ॥ १ ॥

तद्रामरचनं श्रुत्वा कथयामास मारुतिः । लंका दिव्यपुरी देव त्रिकूटशिखरे स्थिता ॥ २ ॥

सर्गाप्रकाशमहिता स्वर्णाङ्गलकमधुना । परिखामिः परिश्रुता पूर्णभिर्निर्मलोदकैः ॥ ३ ॥

नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीमिश्रश्रुता । गृहैर्वैचित्रशोभाढ्यैर्मणिरत्नभमयैः शुभैः ॥ ४ ॥

पश्चिमद्वारमापाद्य गजवाहाः महस्रजः । उत्तरद्वारि तिष्ठन्ति वाजिवाहाः सपत्नयः ॥ ५ ॥

दशकोटिमिता सना विविधायुधमण्डिता । लंकायाः परिता व्याप्ता सतर्का रक्षते पुरीम् ॥ ६ ॥

कारक मनुष्यमात्रं विष्णुक अनुपम पदको प्राप्त करता है। उन्हीं साक्षात् रामके द्वारा आलङ्कित होकर वायुपुत्र हनुमान् यदि महान् पुष्पशाली वन जायें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ३११ ॥ तदनन्तर उसके शरीर कापते हुए मारुतिने रामसे अपना गर्वरूपी अपराध, मुद्रिकाका वृत्तान्त तथा मुनिका वचन कह सुनाया ॥ ३१२ ॥ यह सुना तो रामचन्द्रने हँसकर कहा कि यह कौतुक मेने ही मार्गमें मुनिरूप धारण करके दिखलाया था ॥ ३१३ ॥ यह काम मैंने तुम्हारे गर्वको छुड़ानेके लिये ही किया था। यह देखो, जिस मुद्रिकाको तुम ले आये थे, यह तो मेरे हाथका कनिष्ठिका अंगुलीमें विद्यमान है ॥ ३१४ ॥ रामके हाथमें रामकी अंगुली देखो तो गवें छोड़कर हनुमान्ने समस्कार किया और उन्हें साक्षात् विष्णु माना ॥ ३१५ ॥ और यह भी माना कि इन्हींको कृपासे पुत्रमें भी पौरुष आ गया है। हे गिरीद्वज ! रामके लिये वायुपुत्रके द्वारा किया हुआ सर्वार्थसाधक सुन्दर चरित्र मैंने तुमको इस प्रकार कह सुनाया ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥ इति कवकोटिरामचरितार्तांगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे भाषाटीकायां सुन्दरचरित्रं सीतामुद्रिर्नाम नवमः सर्गः ॥ १ ॥

शिवजी बोले—हे पार्वती ! रामने मारुतिसे कहा—तुम हमको विस्तारसे लंकाका स्वरूप बताओ। लङ्काका स्वरूप जानकर मैं प्रताकारका उपाय सोचूँगा ॥ १ ॥ रामकी बात सुनकर मारुतिने कहा—हे देव ! त्रिकूट पर्वतके शिखरपर यह लङ्का नामकी दिव्य पुरी बसी हुई है ॥ २ ॥ उसके चारों ओर सोनेका गढ़ है तथा यह सोनेकी अँदरियोंवाले पवनोसे सुगंधित है। निर्मल जलसे परिपूर्ण खाईसे यह नगरी घिरी हुई है ॥ ३ ॥ अनेकानेक उपवनोसे सुन्दर, दिव्य वाक्लिपोंसे आवृत तथा चित्र विचित्र शोभावाले मणियोंके समूहोंवाले सुन्दर महलोंसे सजी हुई है ॥ ४ ॥ उसके पश्चिमी द्वारपर हजारों गजवाहक तथा अभ्यारुह लिपिवाही लड़े रहते हैं ॥ ५ ॥ इस करोड़ पैदल तथा सशस्त्र सैनिक विविध शस्त्रास्त्रासे सुसज्जित होकर लङ्काका

निष्ठुर्यर्षुदमंख्याना गताश्चर्यवत्तयः । रक्षयनि मदा लका नानाक्षकुशलाः प्रजा । ७ ॥  
 यत्कर्णवैविधैर्लका शतज्जाभिश्च संयुता । एवं स्थितायां देवेश मृगु त्वहामचेष्टितम् ॥ ८ ॥  
 दशाननवर्लाघम्य चतुर्धाशो मया हरः । दम्बा लकापुरीं स्वर्णप्राकारं धरित्वा मया । ९ ॥  
 शतान्यः संक्रमाश्चैव नाश्रुता मे रघुदह । देव नरदशेनादेव लका मरुतीभवेनृनः । १० ॥  
 सुवेलादिशोचरेऽस्मि पुरतःकाऽस्ति पश्चिमे । त्रिकुम्भिला दक्षिणेऽस्ति तत्रास्ते योगिनीवटः ॥ ११ ॥  
 पूर्वे च लघुलङ्काऽस्ति सा मध्ये कालिमडिता । त्रिकुटाशेखरं रम्ये मनुजानलधरिणा । १२ ॥  
 प्रस्थानं कुरु देवेश गच्छामो लवणार्णवम् । तन्माकर्तुर्वचः श्रुत्वा सुग्रीवं प्राह राक्षसः ॥ १३ ॥  
 मृग्यावमन्त्रिकान् सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय । इदानीमेव विजयो मृहृतस्त्वद्य वर्तते । १४ ॥  
 आभिनी शुक्लदशमी प्रवर्णधूममन्विता । शुभाश्व बाणरथेषु गच्छामो लवणार्णवम् ॥ १५ ॥  
 रक्षन्तु गृधराः सेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयोः । नलो भयम्प्रथमः पृष्ठे नीलोऽथ रक्षतु ॥ १६ ॥  
 मुपेयः मन्व्यपार्श्वे मे जांघवाग्निरे मम । गजो गवाक्षो गवयौ मैदर्वतेऽथ वानराः ॥ १७ ॥  
 रक्षितेभित्वाऽश्वोश्च चतुर्दिक्षु समन्ततः । रक्षन्तु दानवीं सेनां दिविदावास्तथाऽधरे ॥ १८ ॥  
 सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनायाः हस्तपातिनः । आरुह्य भार्गवं चतुर्गच्छाम्यर्धेऽङ्गदं ततः ॥ १९ ॥  
 आरुह्य लक्ष्मणो यानु सुग्राव स्व मया मद् । आगच्छस्वेति चाज्ञाप्य हारीन्द्रासः मलयम्पणः ॥ २० ॥  
 प्रतस्थं दक्षिणाश्रयां सेनामध्यगतो विभुः । तदा ते कपयश्चक्रर्धुःकारान् भयानकान् ॥ २१ ॥  
 वादयामासुवाद्यानि पणधानकणोद्धृतैः । बाणैर्द्रुनिनाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ॥ २२ ॥  
 गतास्तदा दिवागत्रं क्वचित्तस्थुर्न ते क्षणम् । अभवच्छक्रुः लकां गच्छतो राघवस्य हि ॥ २३ ॥  
 ते सर्वे समनिक्रम्य मलयं च तथा गिरिम् । आयुश्चानुपूर्व्येण ते सर्वे दक्षिणार्णवम् ॥ २४ ॥

आगे आकर रक्षा कर रहे हैं ॥ ९ ॥ उनमें विजय गुरुग लका है और उसके गढ़पर अनेक लोप भी रखे हुई हैं । हे देव ! इस दण्डमें भी आपको इस दामने वहाँ आकर जा कुछ विचार, सा गुनार ॥ ७ ॥ ८ ॥  
 मैंने वहाँ आकर रावणकी चौलाई सेना मार डाली है । लङ्कापुरीके ऊपर स्वर्णप्राकार गिरा दिया है ॥ ९ ॥ हे रघुदह ! मैंने तब तब मृगु ताड डाला है । हे देव ! अब आपके आनमायको ही लका पुनः मरम्मत हो जायगी ॥ १० ॥ उसे लकाके उत्तर सुवेलादि है । पश्चिम पालंका है । दक्षिण त्रिकुम्भिला है । जहविर योगीनीवट दिखमान है । ११ ॥ पूर्वकी ओर लघु लंका है, जिसका मध्यभाग बड़ा ही रक्षणीक है । उस त्रिकुलके निखरपण वसी हुई लक्ष्मणको मैंने अपनी पूर्वोक्त आगसे जला दिया है ॥ १२ ॥ हे देवेश ! सब भाग प्रस्थान कर । हम लक्ष्मण सार मनुष्यकी धार बले । माहलिके बाण सुनकर रामने सुग्रीवने कहा— ॥ १३ ॥  
 हे सुग्रीव ! समस्त यानिकोको प्रस्थान करनेके लिए आजा द दो । आज इसी समय विजयप्राप्तिका शुभ मूर्त है ॥ १४ ॥ आज भयजनक्षत्रके शुभ आश्विन शुभ दशमीकी शुभ तिथि है । हे वनरभ्ये ! हमराय आज लक्ष्मणवन्दरी और भयपय प्रस्थान कर ॥ १५ ॥ बड़े बड़े ययानि वानर सेनाकी आज गेहे और वगैरह रक्षा कर । आगे मलय तथा पीछे नाल रक्षा कर ॥ १६ ॥ मुपेय मेरा बाई और तथा आम्बवान् मरी द द्विती बगलमें रहे । गज गवाक्ष, गवय और मैद के सब वानर अग्निकोण, नैऋत्यकोण वायव्यकोण तथा ईशानकोणम रहकर वानरी सेनाकी चोतरका रक्षा कर । शत्रुकोका मारनेके निपुण द्विविद आदि वानर भी सेनाकी सब ओरसे घेरकर चले । मायलिक कन्धपर सवार हाकर भी आगे चल्ता है और मरे पीछे अंगदके कन्धपर सवार होकर लक्ष्मण चले । हे सुग्रीव ! तुम भी मेरे साथ चलो । इसी प्रकार अन्य सब वानरोंकी 'बलो' ऐसी आज्ञा देकर लक्ष्मण सहित राम सेनाके बीच होकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये । उस समय वे वानर सपानक भूमिकार करने लग ॥ १७-२१ ॥ वे होय, मृदंग तथा गीके सुन्न सहज बाजे बजाने लगे । कृशकृष्ण धारण करनेवाले तथा श्रेष्ठ हाथिलोक समाप्त कीर सब वानर दण्डपर भी विश्वास न करके चल्ने लगे । लंकाके लिए प्रस्थित रामको अच्छे-अच्छे राहुम दोल पड़े ॥ २२ ॥ २३ ॥ वे लक्ष्मणवैल तथा



कृतः सेनानिवामश्च राक्षसाभिर्मरुते । चकूर्मन्त्रं सागरस्य तरणार्थं प्लवंगमाः ॥२५॥  
 लंकायां वायुपुत्रेण कृतं दृष्ट्वा स रावणः । प्रहृष्टादीर्भदा प्राह कथमग्रे भविष्यति ॥२६॥  
 एकेन कपिनाऽऽमाकं पुरतो ज्वालित्वा पुगी । दष्टा मीना वनं भयं राक्षसा निहता रणे ॥२७॥  
 ममानिलाश्लिखः पुत्रः कर्मायाबिहतो रणे । तदा ते मन्त्रिणः सर्वे ददुर्घये दशाननम् ॥२८॥  
 गजन्तुपेक्षितोऽस्माभिर्मरुतोऽवमिति स्फुटम् । वयं तवाश्रया कुर्मा जगन् कृत्स्नवानरम् ॥२९॥  
 कुम्भकर्णभदा प्राह रावणं राक्षसेश्वरम् । त्वया योस्य कृतं नैनघ्नद्रवा जानक्ये हता ॥३०॥  
 यद्यप्यनुचितं कर्म त्वया कृतमजानता । सर्वं सम करिष्यामि स्थस्थचित्तो भव प्रभो ॥३१॥  
 देहि देव ममानुहा इन्वा रामं सलक्ष्मणम् । सुग्रीवं चानराधैवागमिष्यामि पुनः शृणु ॥३२॥  
 कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा तदा प्राह विभाषण । महाभागवतः श्रीमान् रामभक्त्यैकतन्परः ॥३३॥

विलोक्य कुम्भश्रवणादिर्दैन्यान्वचमनाननिर्विस्मयेन ।

विलोक्य कामानुष्मममत्तां दशाननं प्राह विशुद्धवृद्धिः ॥३४॥

न कुम्भकर्णेन्द्राजतो च राजस्त्वया महापार्श्वमहोदरां ती ।

निकुम्भकुम्भा च तयाऽतिक्रियः स्यात्तुं न शक्ता युधि राधयाग्रे ॥३५॥

सीतां च सत्कृत्य महाधनन दत्त्वाऽभिरामाय सुखा भव त्वम् ।

नोचेन्न रामेण विमोक्षसे त्वं शुभः सुरेन्द्ररपि शंकरेण ॥३६॥

अथ शुभं रावणः स विभाषणवचो हितम् । आत्मनः प्रतिजग्राह नैत्रार्थो मील्यकाग्रम् ॥३७॥  
 कान्तेन नोदितो दैन्यो विभाषणमथाप्रसीद् । श्वधुरूपेण शत्रुस्त्वं जातो नास्त्यत्र संशयः ॥३८॥  
 योज्यस्त्वैवविधम्यादृत्य दन्निं तदेव तम् । उचिष्ट मच्छ दुर्बुद्धे धिक् त्वां रक्षःकुलाश्रम ॥३९॥  
 रावणेनैवमुक्तः स श्रुत्वा विभाषणः । चतुर्भिर्मन्त्रिभिर्युक्तां ययौ शिराधवातिकम् ॥४०॥

अन्वचन होने हुए प्रमथ दक्षिण समुद्रपर जा पहुँच ॥ २४ ॥ रामन उस वानरी सेनाको समुद्रक किनारे  
 बाल्य तहुरा दिया और सब वानर मिलकर समुद्रक पार करनेकी समस्यापर विचार करने लगे ॥ २५ ॥ उधर  
 लंकावा वायुपुत्र हनुमान्च कुम्भको रत्नकर रावणन प्रहृष्टादि मन्त्रियोंको बुलाकर पूछा कि अब आगे क्या  
 होगा ॥ २६ ॥ एक हा वानरने हमारी सम्पूर्ण लंका तगरा जल्य दी । उमने सीताको देख लिया, वनकी उबाड़ा  
 और राजाको मार डाला ॥ २७ ॥ मेरा अनिश्चय प्रिय छोट पुत्रको भी रणमें उमने समाप्त कर दिया ।  
 मैं सब मन्त्रों दशाननको घेर लिया हूँ कहन लगे ॥ २८ ॥ हे राजन् ! यह तो हम लोगोंने वानर समझ-  
 का मरका उल्लास कर दी थी । अब यदि आप आज्ञा दें तो हम समस्त सनारको वानरमून्य कर दें ॥ २९ ॥  
 तब कुम्भकर्ण राक्षसेश्वर रावणसे कहा—आपने यह उचित नहीं किया, जो जाकर जानकीको उल्ला लाये ॥ ३० ॥  
 उमने आपन अजाननम यह अदुचित काम किया है । क्योंकि मैं सब कुछ ठीक कर दूँगा । हे प्रभो !  
 मैं मन्त्रिन्त रहे ॥ ३१ ॥ आप मुझका आज्ञा दें तो लक्ष्मणसहित राम, सुग्रीव और भव वानरोंको मारकर  
 मैं भयम लौट आऊँ ॥ ३२ ॥ कुम्भकर्णकी बात सुनकर भगवद्भक्तोंमें धैर्य तथा भयान् रामकी भक्तिमें लौकीन  
 उमने प्रमत्त कुम्भकर्ण और दैत्यको और दृष्टि डालते हुए कामानुर दशाननसे विचारपूर्वक कहा—

३३ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! कुम्भकर्ण, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ और अतिक्रिय भी युद्धमें  
 मैं नहीं डहर सकती ॥ ३५ ॥ इसलिए आप रामका दबुर धनसे स्तब्ध कर और उन्हें सीता  
 सम्पन्न करके सुखसे रहे । नहीं तो सुरेन्द्र तथा शंकरका शरणमें जानेपर भी आपकी ये अव्यति नहीं छोड़ने  
 ३६ ॥ इस प्रकार शुभ तथा हितभर विभाषणक वचनको भी रावणने अपने प्रतिकूल ही समझा ॥ ३७ ॥  
 कान्ते प्रेरित देव रावणने विभाषणसे कहा—नि सन्देह तू शत्रुरूपमें मेरा शत्रु है ॥ ३८ ॥ यदि और कोई  
 कुम्भ ऐसा कहता तो मैं उसका क्या समय मार डालता । जो दुर्बुद्ध ! मेरे राक्षसाश्रम । तुझे धिक्कार

रावणश्चापि तं ज्ञात्वा तेन मार्गं चकार सः । इन्मतोद्धरेत्सारे लंकां च सिद्धतोभवात् ॥४६॥  
 कारयित्वा तृणं पुस्तकं मित्रं विभाषणम् । लंकायाश्च राज्यायं वानरैरभ्यषेचयत् ॥४७॥  
 तदा विभीषण आह रामचन्द्रो विदस्य च । न्यासभूता त्विदं लंका तावन्कालं तवास्ति मे ॥४८॥  
 राज्ञा रावणे इन्वा तव दास्याम्यहं शुभम् । इन्मतास्त्वय नाम्ना लङ्का ख्यातिं गमिष्यति ॥४९॥  
 इन्मल्लङ्काद्धरेत्सारे वर्ततेऽद्याप पावात । विभीषणाद्रावणान्ते रामस्तां मोक्षयिष्यति ॥५०॥  
 एतद्विचारे तत्र गगनस्थः शुकोऽब्रवीत् । प्रेषिता रावणनेत्रं मुग्धां प्राह वेगतः ॥५१॥  
 न्दमाह रावणो राजा तव नास्त्यर्थोऽप्यलभः । अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य किं तव ॥५२॥  
 किञ्चिन्नां याद्रे हरिभिस्त्वं वैरं कुरु मामया । तं धृत्वा वानराः शीघ्रं वचन्धुर्लोकधनेः ॥५३॥  
 शार्दूलश्चापि सेनां तां दृष्ट्वा धर्मभाषत । तच्छ्रुत्वा रावणश्चापि दीर्घचिन्तापरोऽभवत् ॥५४॥  
 गमः समग्रयत्नाय वदं कान्ते स्थितः क्षणम् । विभाषणेन सुग्रीवमकलिभ्यां समान्वतः ॥५५॥  
 तीरदोषं जलधेर्गुणं सस्थितो वन्धुना युतः । सर्वतां वचनं भ्रातु रावणाय सागरः ॥५६॥  
 मेघवद्भजनां कुर्वन् कामहस्तैव धिक्कृतः । अद्यापि सागरस्तत्र तूष्ण्यामेव न विद्यते ॥५७॥  
 उतः समज्य रामस्तु तदा सागररोधसि । प्रायोपवेशने चक्रं दर्शनास्तीर्य वेगतः ॥५८॥  
 दिनद्वयमतिक्रम्य तृतीयदिवसे तदा । उत्थाय दमोदयनान्पुनरलक्ष्मणमब्रवीत् ॥५९॥  
 पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधमाधुपागतम् । नर्ममनन्दति दुष्टात्मा दयनार्थं वमानध ॥६०॥  
 जानाति मानुषोऽयं मां किं करिष्यत् वानरैः । अथ पश्य महाबाहा शोषयिष्यामि वारिधिम् ॥६१॥  
 पञ्चषाण्डेवाय गच्छन्तु वानरा विगतजराः । त्वय्युक्ता चारमाकृत्य सदधे वीणमुत्तमम् ॥६२॥

है । उठ, यहाँसँ निकल जा ॥ ३६ ॥ रावणक इस प्रकार धिक्कारनेपर विभीषण अपने चार मन्त्रियोंको साथ  
 लेकर आरामक समाधि चला गया ॥ ४० ॥ रामन पारधय पृष्ठपर उसके साथ मित्रता कर ली । तदनन्तर  
 रामने हनुमान्के समुद्रके किनारे रताकी लंका बनवाकर उसमें अपने मित्र विभीषणका लंकाराज्यके राजाके  
 पदपर वानरो द्वारा अभिषेक करवा दिया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तब रामने हुम्कर विभीषणसे कहा—मित्र ! यह  
 लंका तुम्हारे पास स्वतन्त्र पराङ्मुखमें रहनी ॥ ४३ ॥ जबतक मैं रावणका भारकर तुम्हें लंका न दे  
 दूँ, यह लंका हनुमान्के नामसे शासित होगी ॥ ४४ ॥ हे पावता ! वह हनुमान्का लंका अभी भी समुद्रके  
 किनारे विद्यमान है । रावणका अन्त हो जानपर राम उस विभीषणसे दुड़ा लगा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर आकाश-  
 में स्थित कुछ बाला—हं मुग्धा ! मुल बड़ा र्ण्यवत सँ रावणन तुम्हारे पास भजा है ॥ ४६ ॥ रावण रावणने  
 कहा है कि हमने तुम्हारा कोई हानि नहीं की है । यदि मैं राजपुत्र रामका स्वाका हरण कर लाया तो इससे  
 तुम्हारा क्या हानि हुई ॥ ४७ ॥ उन्होंने कहा है कि तुन हमार साथ वधुता न काकें वेदाकी लेकर  
 भागकर भाग लो जाओ । इतना कहना था कि वानरोने उस राक्षसका पकड़कर लट्का देज गेमे जकड़  
 दिया ॥ ४८ ॥ उसके साथ गुणरूपसे आया हुआ दूसरा शार्दूल नामका राक्षस उस विचाल सत्ताके देखकर  
 रावणक पास गया और वानरी सेनाका पराक्रम कह सुनाया । सो सुनकर रावण रडो भरी चिन्ता  
 में पड़ गया ॥ ४९ ॥ इधर रामचन्द्रजी भी एकान्तमें जाकर विभीषण, सुग्रीव तथा हनुमान्के साथ मंत्रणा करने  
 लगे ॥ ५० ॥ तदनन्तर वे समुद्रके जलमें कुछ दूर जाकर सबका बात मुनिकें लिये सड़ हा गये । बादमें रामने  
 मेघकी तरह गर्जन करके बाल हाथसे सागरका धिक्कारा और कहा कि तू अभी तक चुप हँ है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥  
 मंत्रणा पूरा करके राम सागरके किनारेपर आगब और कुशा बिछाकर बसतान करने लगा ॥ ५३ ॥ दो  
 दिन बिताकर तीसरे दिन कुणसनसे उठ लड़े हुए और मध्मगह कहा— ॥ ५४ ॥ हे अन्ध लक्ष्मण ! देखा,  
 यह दुष्टात्मा वारिधि मुझ यही आका जानकर भी मुझसे मिलने या मेरा दर्शन करने नहीं आया ॥ ५५ ॥  
 यह समझता है कि यह मनुष्यमात्र है । यह पराङ्मुख कर लेगा और मैं वानर भी क्या कर लूँगे । हु महा-  
 बाहा ! देखा, मैं आज इसका साक्ष लूँगा ॥ ५६ ॥ तब तानर बिना किसी कठिनाईके पीवसे चल्कर उस पार

तदा चञ्चल वसुधा दिग्ध्व सममृताः । चुल्लुभे मागरो वेदां भवाद्योन्नमन्यसार ॥५८॥  
 निमिषकृष्णा भीताः प्रवसाः पवित्रसु । एतस्मिन्चतरे साक्षान्मागरो दिग्ध्वरूपधृक् ॥५९॥  
 शनैरुपायन रामं समर्प्य प्रणनाम सः । अथ तुष्टाव दीनान्मा प्रार्थयामास राघवम् ॥६०॥  
 यमयं देहि मे राम संकामार्गं ददामि ते । इति नदन्तं श्रुत्वा राघवः प्राह सागरम् ॥६१॥  
 असौशोऽय महाबाणः कस्मिन्देहे निपात्यनाम् । लक्ष्यं दर्शय मे शीघ्रं बाणस्यास्य पयोनिधे ॥६२॥

सागर उवाच

गमोक्तप्रदेशोऽस्ति द्रुमकल्प इति श्रुतः । प्रदेशस्तत्र बहवः पापान्मानो दिवानिहम् ॥६३॥  
 श्रावन्ते सां रघुश्रेष्ठ तत्र ते पान्यता शरः । गमेग मृक्तो घाणोऽसौ क्षणादार्थमंडलम् ॥६४॥  
 हत्वा पुनः समागत्य तूष्णीरे पूर्ववन्निधतः । ततोऽबर्षाद्रघुश्रेष्ठ सागरो विनयान्वितः ॥६५॥  
 मयि सेतुं कारयस्व नलेनोपलनिर्मितम् । विश्वकर्मेभुनश्चायं वरं लब्धोऽस्त्यनेन हि ॥६६॥  
 द्विजस्य जाह्नवीतोये शालिग्रामस्यनेन हि । त्यक्तस्तदा तेन सप्तः पपाणादि तर्पित्यनि ॥६७॥  
 नन्दमादिति शापोऽयं वा पश्या स स्मृतः । हन्युक्त्वा राघव नन्वा ययौ मिधुनदृश्यताम् ॥६८॥  
 नन्दमाहाप्यामास सेनार्थं रघुनन्दनः सेतुमयममाणस्तु विनेन श्वाप्य राघवः ॥६९॥  
 नवग्रहाणां पूजार्थं पापणाश्रय वादरम् नन्दहस्तेन मस्याप्य पूतं तत्र भद्रोदधी ॥७०॥  
 ततः सागरसंपोगे स्वनान्मा लिङ्गमुत्तमम् । स्थापयार्थानि निश्चिन्य मारुतिं वाचयमन्वीत् ॥७१॥  
 काशीं भन्वा शिरालिङ्गमाननीयमनुत्तमम् । मुहूर्तस्ये नौचेन्मे मुहूर्तात्तक्रमो भवेत् ॥७२॥  
 नद्रामवचनं श्रुत्वा तथेभ्युक्त्वा स मारुतिः । यथावाक्यमाशेषं क्षणाद्वागमर्षी मम ॥७३॥

मा सकल । इतना कहकर रामने वसुधपर बाण चढ़ाकर टीरी सीची ॥ ५७ ॥ उस समय पृथ्वी न पि उठी, सब दिशाओंमें अँधेरा छा गया, समुद्र भयसे झुँच हाँकर अपने किनारेसे चार कोस भागे बढ़ गया ॥ ५८ ॥ खीन, तिमि तथा क्षय नामकी मछलिये और मगरमच्छ आदि जलजंतु स तप्त तथा व्याकुल हो गये । तब समुद्र दिव्य रूप धारण करके प्रकटा और रामको रत्नकी भेंट द तथा नमस्कार करते दौतभावसे प्रार्थना करने कहने लग्य ॥ ५९ । ६० ॥ हे राम ! कृपा करके आप मुझ अवशमानसे । मैं जानकी लज्जा जानका गप्ता अभी देना है । तमके वचनका सुनकर रामने कहा— ॥ ६१ ॥ हे पयोनिधे ' यह मेरा महाबाण ममोम है, छपे नहीं जा सकता । बलगाओं इसे कहाँपर मिराऊँ । इस बाणका कोई लक्ष्य बताओ ॥ ६२ ॥ सागरने कहा हे राम ! उसर दिशामें द्रुमकल्प नामका देव है । वहाँ बहुतर पापी आभर रहत हैं । वे द्रुमको रात-दिन सताते हैं । हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस बाणको वही ही गिराएँ । तबतुम्हारे रामने बाण उड़ा तो उसने जाकर क्षणभरम समस्त आभारमण्डलको मार डाला और पुन, वापस लौटकर रामके तरकसमें जड़वन् स्थित हो गया । बादमें सागरने विनयपूर्वक रघुश्रेष्ठ रामजसे कहा— ॥ ६३ - ६५ ॥ हे राघव ! आप मेरे हृदय नरके द्वारा पत्थरके पुस बँधवाएँ । नल विश्वकर्माका पुत्र है । उसने जलपर पत्थर तरानेका वर प्राप्त किया है ॥ ६६ ॥ एक बार इनने एक काष्ठणका धूँध शालिग्रह उत्खर गङ्गाजीके प्रस्ये फेंक दिया था । तब इनने आप दिया कि जो, तेरा राजा कथर की वानीसे लेंगा । ६७ ॥ यह बाण भी वर मन्ता जायगा । तबने कहा तथा रामको नमस्कार करके समुद्र अदृश्य हो गया ॥ ६८ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन रामने नलको एक शीघ्रन्की आज्ञा दी । सेतु बाँधने समय पहिले गणीपुत्रीकी स्थापना की गयी ॥ ६९ ॥ पश्चात् नवग्रहाकी पुनके लिए नलके हाथसे सागर नौ पाषाणोंको समुद्रमें स्थापना करवाई गयी ॥ ७० ॥ इसके बाद 'अपने नाम- ७३ मे सागरके सङ्गमपर उसमें शिवलिंग स्थापित करेगा' ऐसा निश्चय करके रामने मारुतिसे कहा— ॥ ७१ ॥ हे मरुताव ! तुम काशी जाकर शिवजीसे एक उत्तम जिन मुहूर्तमाघमें माँग ले जाओ । नहीं तो मेरा यह दुष्ट युद्ध टक जायगा ॥ ७२ ॥ रामकी आज्ञा सुनकर हनुमान्ने 'स्वास्त्यु' कहा और क्षणभरमें उड़कर

तत्रागत्याय मां नत्वा रामकार्यं न्यवेदयन् । तच्छ्रुत्वाऽथ मया देवि राघवाय हनूमते ॥७४॥  
 द्वे लिप्ते द्यपिते श्रेष्ठे तनोऽहं कपिमब्रुवम् । मयाऽपि दक्षिणे गंतुं पूर्वमेव विनिश्चितम् ॥७५॥  
 अगस्मिन्ना विदोषेण यास्यामि राघवाश्रया । एवं तद्वचनं श्रुत्वा मारुतिः प्राह मां पुनः ॥७६॥  
 कदा विनिश्चितं पूर्वं त्वयाऽत्र कुम्भजन्मना । तत्पर्व मां वदस्वाद्य कृपां कृत्वा ममोपरि ॥७७॥  
 तन्माकृतिवचः श्रुत्वा तनोऽहमब्रुवं कपिम् । मारुते त्वं मृणुष्याद्य पूर्ववृत्तं वदामि ते ॥७८॥  
 कदाचिन्मार्गः श्रामान्स्नान्वा श्रानर्मदांभनि । श्रमदोक्तामम्यर्थ्यं सर्वदेहिनाम् ॥७९॥  
 तत्रन्विलोकयाचक्रे पुरो विध्वं धराधरम् । ममास्तापसहारी रेवावागिपरिष्कृतम् ॥८०॥  
 रूपद्वयेन कुर्वतं स्थावरेण धरेण च । माभिरुपेन यथार्थाख्यामुर्चयितुमतीनिमाम् ॥८१॥  
 अथ त्वं नारदं दृष्ट्वा विनश्यत् प्रपुञ्जगाम मः । गृहमार्गाय विधिवन्पूजयामास सादरम् ॥८२॥  
 गन्धममथालोक्य नभापेज्जनतो गिरिः । अधमघः परिहृतस्त्वदधिरजसा मम ॥८३॥  
 त्वदशमशिमहसा महमाप्याततं तमः । मङ्गलाधिकरं चाद्य सुदिनं चाद्य मे मुने ॥८४॥  
 प्राकृतं सुवृत्तरथ फलितं मे विगर्धितः । धराधरत्वं कुलिशु मान्यं मेऽद्य भविष्यति ॥८५॥  
 इति श्रुत्वा तदा किञ्चिदुच्छ्रुत्य स्थितरान्मनिः । पुनरुच्ये कुलिनरः ममप्रापनमानसः ॥८६॥  
 उच्छ्रामकवर्णं वक्षन् ब्रूहि सर्वाथकोविद । नवार्हं मार्जयाभ्यद्य हन्येदं क्षणमाश्रितः ॥८७॥  
 धराधरणागामर्थ्यं मेवादी पूर्वपुरुषः । वप्यते समुदायानदहमेको दधे धराम् ॥८८॥  
 गौरीगुरुत्वाद्विमयानाधिपस्यास्य भृशताम् । सम्यन्धिन्वापशुभनेः स एको मानभृत्सताम् ॥८९॥  
 न मेरुः स्वर्णपूर्णव्याघ्रन्नमानुनयाऽधवा । सुगन्धनया वाऽपि कपि मान्यो यतो मम ॥९०॥

आनन्दाश्रमांसे ( शिवकी ) नाराणसा ( काशी ) नगरीमें आया ॥ ७३ ॥ वहाँ आकर उन्होंने मुझको  
 नमस्कार करके रामके कापके लिये निवेदन किया । हे देवि ! उस निवेदनका सुनकर मैंने रामके लिए  
 हनुमान्को दो उत्तम लिपि दिये और कहा कि हे कपि ! मैं भी दक्षिण दिशामें जानका बहुत दिनामें निश्चय  
 कर रक्खा है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ यह निश्चय अगस्त्य मुनिक समझ हुआ था । पर बादमें सोचा कि जब विष्णु-  
 रूपसे रामको आज्ञा होगी तभी जाऊँगा । मेरे मुखसे यह सुनकर मारुतिने मुझमें फिर प्रश्न किया— ॥ ७६ ॥  
 आपने पहिले कब और कहाँपर कुम्भजन्म ( अगस्त्य ) क साथ यह निश्चय किया था । यह सब हाल कृपा  
 करके कह ॥ ७७ ॥ मारुतिकी बात सुनकर मैंने कहा हे मन्त्र । मैं तुम्हको पूर्ववृत्तान्त बताता हूँ, सुनो  
 ॥ ७८ ॥ एक समय श्रीमान् नारदमुनि नेर्मदा नदीके पवित्र जलमें स्नान करके समस्त देवुधारी प्राणियोंको  
 सब कुछ देनेवाले श्रीवाराहेश्वर शिवकी पूजा करके जा रहे थे । रास्तेमें संसार भयके तापको दूर करने-  
 वाला तथा रेवाके जलमें परिणत विध्वपर्वत सामने दिखाई दिया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ वह स्थावर तथा जंगम  
 इन दो रूपांसे इस वभूमती पृथ्वीको यथार्थ ताम प्रदान कर रहा था । ८१ ॥ नारदका देखकर वह पर्वत  
 शायने आवा तथा उन्हे अपने घनपर ले जाकर सादर विविध पूजन किया ॥ ८२ ॥ नारदजीका थम दूर  
 हो जानेपर विष्णुचक्र विभ्र होकर कहने लगा कि आपके चरणरजसे मेरा पापपुञ्ज नष्ट हो गया ॥ ८३ ॥  
 हे महापुने ! आपके दैहिक तनके संगसे अनेक मनोव्यथा पैदा करनेवाला मेरे हृदयका अन्धकार दूर हो  
 गया । आज मेरे लिए बड़ा शुभ दिन है ॥ ८४ ॥ चिरकालसे अजाजित मेरे प्राकृत गुण आज सफल हो  
 गये । आजसे मैं पर्वतोंमें माननीय पर्वत माना जाऊँगा । ८५ ॥ यह सुनकर मुनिने कुछ लम्बो साँस ली ।  
 यह देखा तो घबराकर पर्वतने कहा हे सब अर्थोंको जाननेवाले ब्रह्मन् ! इस अद्भुतका क्या कारण है ?  
 आपने हृदयका संद मैं अणभरमें मार्जित कर दूँगा ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ पूर्व पुरुषोंने यह आदि सब पर्वतोंको  
 मिलाकर पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ बतलाया है, पर मैं अकेला ही उसको धारण कर सकता हूँ ॥ ८८ ॥  
 अभी गौरीका पिता होनेसे पर्वतोंका अविर्पति होनेसे तथा पशुपति शिवका मध्यवर्ती होनेके कारण केवल  
 हिमाश्व ही सज्जनोके मानका पात्र है ॥ ८९ ॥ मेरी समझमें तो सोनेसे बना हुआ तथा रत्नमय शिखरोंवाला

परं शतं न किं शैला इलकलनकैलयः । इह संति मनां मान्या मान्यास्ते तु स्वभूमिषु ॥९१॥  
 महेददेहमंदोहा उदरैकयाश्रिताः निषधश्रीषधिधोऽश्वत्थोऽप्यम्लमिषप्रभः ॥९२॥  
 नीलश्च नीलानिलपो पदगो पदलोचनः । सर्पाक्षयः स मलयो गगनं नद्याप रंजनः ॥९३॥  
 हेमकूटविहङ्गायाः कूटोत्पदास्तु ते । किञ्चिदर्थोऽप्ययाशा मायमया न ते सुखः ॥९४॥  
 इति विषयवचः श्रुत्वा नागदो दयचिन्तयत् अहंशंशंशंमगो न महत्प्राप कन्दर्पे ॥९५॥  
 श्रीशैलपुरुषाः किं शैला नेह सन्धपलश्रियः येषां शिखरमात्रादित्येन मुक्तये मनाम् ॥९६॥  
 प्रयास्य बलमालोच्यमिति ध्यान्वाऽम्रवांमुनिः सन्धयुक्तं हि मयता गिरिगर्भं विदुष्वता ॥९७॥  
 परः शैलेषु शैलेन्द्रो मेरुस्त्वाभवमन्यते । मया निश्चायितं चैवत्रयं चापि निवदितम् ॥९८॥  
 मयवा मदिधानां हि कैव चिन्ता महान्मनाम् । प्वयस्वन्तु तुभ्यमित्युक्त्या यया स ध्योमवन्मना ९९॥  
 गतं मुनीं निनिदं स्वमताशोद्विषमानयः । चित्ते विचारयासाम मगं ध्येय्य कथं विनि ॥१००॥  
 मेरु प्रदक्षिणं कूर्पाभिरध्वमेव दिशकरः । सप्रहसंगमो नून मन्दमानो बलाधिकम् ॥१०१॥  
 इतः निश्चिन्य विद्याद्विर्वृधे य मृधेक्षणः । निरुध्य त्राध्वमध्वान स्वमोऽभूद्भगनागणे ॥१०२॥  
 ततः प्रयाते सूर्योऽर्जो दिशि वास्यां समुद्यतः । गंतुं रुद्धं स्वपथानं दृष्ट्वाऽभ्यस्योऽभयविरह् ॥१०३॥  
 योजनानां महसं द्वे द्वे शते द्वे च योजने । यः स्वस्थयनिमेषार्द्धाद्यानि नापि सिं स्थितः ॥१०४॥  
 गते बहुतिथे काले प्राप्नोर्दाच्या भृशार्द्रताः । चण्डरभ्यः कर्मज्ञानशानमत्तापनाप्तिः ॥१०५॥  
 पाश्चात्या दक्षिणान्याश्च निद्राप्लुहितलोचनाः । धमिता एव दृश्यते मत्तग्रहमवगम् ॥१०६॥  
 स्वाहास्वधावप्युत्तरवर्जिते जपनीतने । पंचयज्ञक्रियालोपाचक्रभ्य भूवनत्रयम् ॥१०७॥

क्या दयताआका निवासस्थान हलकर भी परु विनय माननीय नहीं है ॥ ९० ॥ क्या पृथ्वीका धारण करने-  
 का मन्त्र संकरो पवन इस मन्त्रप्रवृत्ति है ? क्या वे सभी पवते सज्जनसु मान्य है ? नहीं, यदि है तो  
 स्वयं स्वयं-अपन स्थानपर ॥ ९१ ॥ उदयाचल मन्द है । वह राक्षस का आश्रय दनका कृपा करने में ही समर्थ  
 है । विषमतिरि ओषधिमात्र धारण करता है । अन्धानल निम्न हो गया है ॥ ९२ ॥ नीलाग्निर नासं  
 चण्डिका सज्जनमात्र है । मन्दराचल मन्दहृष्टि है । मलय पर्वत सूर्योका पर है । रंजित निर्धन है ॥ ९३ ॥ हेमकूट  
 मय विकूट आदि केवल कूट उत्पदावाले ही है । किञ्चिदा, कोश ओ सत्य पर्वत भी पृथ्वीके बलको  
 धारण करने में समर्थ नहीं है ॥ ९४ ॥ विन्ध्याचलकी इस बातको सुनकर नारादन मनमें विचार किया कि  
 क्या इस प्रायो महत्त्वके योग्य नहीं होता ॥ ९५ ॥ क्या इस मन्त्रम श्रीलोक आदि पर्वत निम्न कास्ति-  
 मन्त्रम तथा मन्त्रकी नहीं है ? किन्तु किन्तुका दयनमात्रसे शुद्ध अन्त करणवाले महान् पुरुषोंको मुक्ति मिल  
 सके है ॥ ९६ ॥ अतएव आज इसके बलको परीक्षा करनी चाहिए । ऐसा विचार करके नारद मुनिने कहा —  
 कूट पर्वतोंका हल डंक उठाने किया है ॥ ९७ ॥ पर पर्वतोंमें अत्र मेरुपर्वत तुम्हारा अपमान करता है । वह  
 मुझे भी अपनको बटकर मानता है । बस, गद्दी कागज है कि मैं सत्त्वा जात स्थितिमा और यह वाद  
 मुझ में बह रही ॥ ९८ ॥ अथवा हम जैसे महात्माओंको इस बातकी क्या विता है । तुम्हारा कल्याण  
 है । इतना बड़बड़ के ध्योपमार्गसे चले गए ॥ ९९ ॥ नारद मुनिने चले जानपर बलिशय चिन्ताबुल होकर  
 चिन्तित करने अपने कापका बड़ा निन्दा की और साचने लगा कि मेरी इतनी बड़ा महिमा क्यों है ? ॥ १०० ॥  
 इस बात मन्त्रों सहित मुरनागण प्रतिदिन उसकी परीक्षा करते हैं । सम्भवतः इसीसे उसको अपने  
 कर्मद्वय तथा महत्त्वका अभिमान है ॥ १०१ ॥ ऐसा निश्चय करने विन्ध्याचलने उसकी समृद्धि देखने-  
 के लिये अपना करीब बहुत ऊँचका चढ़ाया और मूर्ख रास्तेका राहकर आकाशकी वागवसे लडा हो गया  
 ॥ १०२ ॥ प्रातःकाल सुनिं दक्षिण दिशकी ओर जानेका प्रस्थान किया । वह जम्मा रुका देखकर वे नहीं  
 रुकते । जब बहुत दिन बीत गये, तब सुनिं प्रचण्ड किरणमयके छाये पूर्व दशा उमर दिशाके लोच  
 रुक गये ॥ १०१-१०२ ॥ पश्चिम तथा दक्षिण दिशाके लोचोंकी आँखें निद्रासे दूदी रही । वे जब

मयः सुग विधेर्जङ्गपादगमि तद्विनेर्गुहम् । प्रार्थयाम'मुधात्रैस्य स मुनिर्विहृतोऽभवत् ॥१०८॥  
 तदाऽगमिर्मयोक्तः स वज्रं त्वं दक्षिणदिशम् प्राक्पाशेन गिरिं बद्ध्वा मां सिद्धं त्वं मयस्त्वमाप् ॥१०९॥  
 अहमप्यचिरेणैव तव मेदास्तुतये सेनो श्रीगणपतये याच्यानि दक्षिणां दिशम् ॥११०॥  
 इति मद्रचनं श्रुत्वाऽगमिस्तुष्टमनान्तदा । मुक्त्वा कार्णी ययौ विष्य लोपायुद्रामपन्वितः ॥१११॥  
 तमगम्य सपत्नीकं दृष्ट्वा विष्णोऽतिक्रान्तः । अतिस्वर्गतो भूत्वा विनिमुग्धनीमित्र ॥११२॥  
 आश्वासमादः क्रियतां किं करोमोति च प्रदीप्तु तद्विन्ध्यवचनं श्रुत्वाऽगमिः प्राह च मादरम् ॥११३॥  
 चिन्ध्य साधुगमि प्राज्ञो मां च जानामि ॥११४॥ पुनरागमनं चेन्मे तावन्स्वर्गतो भव ॥११४॥  
 इत्युक्त्वा दक्षिणामाशमगमि स ययौ तदा । वेपमानो गिरिः प्राह पुनर्जन्माद्य मेऽभवत् ॥११५॥  
 उच्छिन्नो द्वादशार्द्धः स मुनि पश्यति दक्षिणे । नागमं तं मुनि दृष्ट्वा पुनः स्वर्गोऽवतिष्ठते ॥११६॥  
 प्रथमो वा वायव्यो वा द्वागमिष्यति वै मुनिः । इति चिन्त्यमहामात्रोर्मिगिराकान्तवन्धितः ॥११७॥  
 नासापि मुनिगणानि नाद्यपि गिरिरस्थते । अरुणेऽपि च तन्काले कालताऽश्वात्कालयत् ॥११८॥  
 जगन्मार्गपदवापोर्नृ- एवं बह्वानुमचरैः । स मुनिर्दण्डकं गत्वा मद्रकं मय्यन्ददि ॥११९॥  
 करोति मन्त्रनीक्षां च तस्माद्यस्याम्यहं कपे । इत्युक्तो माकतिः कट्यां मया देवि विमर्जितः ॥१२०॥  
 जगायाकाशमार्गेण शोभं गच्छ स माकतिः । किञ्चिद्वर्ममाविष्टो विषद्वयमपन्वितः ॥१२१॥  
 दृष्ट्वा गयवो ब्रान्वा मुग्धीवारीन् उच्येऽमरीन् । इहान्तिक्रमो मेऽद्य मरिष्यति मयम्वहम् ॥१२२॥  
 कुन्वा तिमं मेकतं च सेनादौ स्थापयामि वै । इत्युक्त्वा वानगान् मर्शन्मुनिभिः पग्निष्टितः ॥१२३॥

श्री देवता सा अन्ताद्वय एह और मलय ही विद्यमान निम्न दो देव थे । १०८ ॥ मत्तारम मद्राहा मयपाका-  
 दवत्वार, अग्निहोत्र तथा पंचमयकी क्रियाओंके लिए हो जानम होनाः एक हीय उर ॥ १०९ ॥ अमन्  
 कट्याकीके कहनेसे देवता अग्नि जाकर विन्ध्य पर्वतके गुरु आश्रय मुनिसे प्रार्थना की । तब मुनि पश्चात्तर यहाँ  
 काजाय आवे ॥ १०८ ॥ मैने (गिरिजाने) आश्रय मुनिसे कहा कि तुम दक्षिण दिशाकी ओर जाओ, वहाँ जाकर  
 विन्ध्यपर्वतको अपने आश्रय होकर निश्चिन्त भावसे मेरा भजन करना ॥ १०९ ॥ कट्यास्तारमे ही को  
 मुहूर्तमे देह करके लिए मेतुक्वयपर रामको पूजा प्राप्त करनेके लिए मैं प्र ही दक्षिण प्रवेशमे जाऊँगा  
 ॥ ११० ॥ मेरे इस कदनका मुनकर अमन्मयुनि समग्रदुर्गतर उमी समय वाकी छोटकर अपना ही  
 मोपायुद्राके साथ विन्ध्यपर्वतको और चल पड़ ॥ १११ ॥ स्वर्गाक मुनिका दक्षक विन्ध्यपर्वत कोपन  
 लता और मन्त्रा पृथ्वीमे पुन जाना चाहता ही, इस प्रकार अन्धविद्या छोट कर पापय वत्त कोना कि  
 ये आपका राम है । मुझे कुछ आशा दनका वृत्ति कर । विन्ध्यका वात मुनकर अमन्मय मुनि बोले— ॥ ११२ ॥  
 ॥ ११३ ॥ हे विन्ध्य तुम मानु पर्वत तथा बर्द्धमन् ह और मुझे अभी भगत जानने हो । अल जवनक मे  
 उपमस होटकर पुन यहाँ न आऊँ, तब तक तुम इस प्रकार वाधवन्म कोषा सिर पिउ कर रहा ॥ ११४ ॥ इना  
 कहकर अगस्त्य दक्षिणकी ओर चले गए । तब कम्पित होकर विन्ध्यने कहा कि आजक दिन मेरा पुनजन्म  
 हुआ है ॥ ११५ ॥ बाव्हू वर्ष बाद जब उतने सिर उठकर दक्षिणकी ओर देखा तो मुनि नहीं दिखायी दिये ।  
 तब फिर उसके बीसे ही मोषा सिर कर लिया ॥ ११६ ॥ आज, कल या परसोतर मुनिको यहाँ अवश्य  
 भा जाना चाहिये । इस प्रकार तावथा हुआ विन्ध्य इन्ही चिन्ता करने लगा । ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥  
 तब फिर उसके बीसे ही मोषा सिर कर लिया ॥ ११८ ॥ तब मुनिके मषान्मे उदय पूर्ववत् पुन स्वस्थ हुआ । ने अगस्त्य  
 मुनि दण्डकवनमे जाकर मेरे कवनका स्मरण करने हुए मेरा प्रणोता कर रहा है, इस कारण है अपि हुआ ।  
 मैं यहाँ अलग जाऊँगा । हे दाव । इना कहकर मैंने वादन्तिका काजीमे बिदा किया ॥ ११९ ॥ १२० ॥ तब  
 माकति कीय आकाशमार्गेण रामके रास चले । उस समय मेरे ही लिए प्राप्त करके उनक मनमे कुछ अधिमान  
 हुआ ॥ १२१ ॥ रामने इस गयको जान लिया और मुग्ध भावमे कहा कि प्रतिकाका मुहूर्त काता जा रहा  
 है । इसलिए मैं बाधुका लिए वनाकर सेनके इस ओरपर स्थापित किये देता हूँ । तदनुसार भव मुनियों और

सैकतं स्थापयामास लिङ्गं रामो विधानतः । तदा तस्मात् नमसि क्षीप्तुम् रघुनन्दन ॥१२४॥  
 शत्रुघ्नो मणिः शोभे स्तारकोटिपनोपमः । तं वरुण मणिं कण्ठे क्षीप्तुम् रघुनन्दनः ॥१२५॥  
 वरुणपुङ्गवैर्भर्तृवैरैरक्षामणैर्भुविः । दिग्वाधैः पावसाद्यैश्च पूजयामास तान् हृतीरु ॥१२६॥  
 ततस्तु हनयस्तुष्टा राघवेणातिपूजिताः । ययुः स्वीयाभ्यान् मागे शान्ददौ स माकृतिः ॥१२७॥  
 पश्येत् कारुतिर्विमान् पुय केन शूजिताः । तेऽप्यनुतिष्ठमाराधय राघवेर्णव पूजिताः ॥१२८॥  
 तत्तं वा वयनं भुन्वा कोषाविष्टोऽभ्यर्चितयत् । इवाऽहं भमितस्तोन रामेणय प्रवारितः ॥१२९॥  
 इदं वदन्ययौ राम क्रोधात्स्वीयं पदद्वयम् । भुवि स्तुताद्य पतितस्तदा भूम्या पदद्वयम् ॥१३०॥  
 गतं कविस्तदा रामममरीकिं न मे स्मृतः । मीनाशुशिर्षया लको मत्पार्श्वेति साऽयं हि ॥१३१॥  
 तस्य मेऽघोषवापोऽत्र कशीं प्रेष्य त्वया कृतः । किमर्थं भमितश्चाहं वदीन्यं ते इति स्थितम् ॥१३२॥  
 वमदिम्यन्मया शत चैत्पूर्वं दृष्टं तव । कशीं पदं तद्दि गत्वा किमर्थं लिङ्गमानये ॥१३३॥  
 एकं स्वदर्थमार्जुनमशरं लिङ्गमवमम् । नयाऽप्यन्यं समानीतं तवाग्रे किं करोम्यहम् ॥१३४॥  
 नव क्रोधयुतं शक्यं किञ्चिद्दर्वममन्वितम् । रामः भुत्वा कदि प्राह कथं त्वं वृत्त्यवागसि ॥१३५॥  
 पथतन्कणपितं लिङ्गं समुत्पाटय त्वं बलात् । स्थापयामि त्वपार्श्वे त्वया विष्टेश्वरादिषु ॥१३६॥  
 गन्धर्वकत्वा कारुतिः स संकतस्येश्वरस्य च । पश्येत् मस्तके पुनः क्लेशान्दोलयन्मुहुः ॥१३७॥  
 भुवि तत्कथं पुच्छ वपात इति भूजितः । जटसुर्वानतः सर्वं न वचस्तेजस्तदा ॥१३८॥  
 पश्यो भुन्वा माकृतिः स गतगर्वस्तदाऽभवत् । ननाम परया मन्त्रया प्रार्थयामास तं मुहुः ॥१३९॥  
 भायाऽपराधितं शत्रु तत्कथं कथानिधे । तदाह माकृतिं राघवस्त्वं मर्हिलगोचरे निवदम् ॥१४०॥

कनरको बुलाकर रामने विधिवत् दाम्बुक लिङ्गको स्थापित कर दिया । पश्चात् मगवान् रामने क्षीप्तुम् मन्त्रिका  
 गणन किया ॥ १२२-१२४ ॥ स्मरण करते ही करोटी सुर्पके समान प्रभुशाली बहु मणि आकाशमातसे आ  
 गया । तब रघुनन्दन रामने उस मणिका कठम बीच लिया ॥ १२५ ॥ उस मणिसे प्राप्त धन, वर, आभरण,  
 अन्न, धनु, दिव्य वस्तुओं तथा पायब आदिसे रामने मुनिपाका पूजन-संस्कार किया ॥ १२६ ॥ क्षीरामणे  
 दुःख प्राप्त करके उससे वे मुनि ज्ञान-जपसे आत्मपौष्टे जा रहे थे, तभी रघुनाथ उन्म कारुतिन देस लिया  
 ॥ १२७ ॥ तब हनुमान् उनसे पूछा कि आपकी पूजा किसने की है ? उन्होंने उनसे दिया कि रामन  
 निर्वालयकी आराधना तथा स्थापना करके हम लोलेका पूजा की है ॥ १२८ ॥ हनुमान् उनकी बात सुनो लो  
 ग्द हम्कर विचारन श्रमे कि रामन आज मुझसे मर्प इतना परम्यम कराके उठा है ॥ १२९ ॥ यह विचारने  
 हुन व क्रोधम रागके पाछ गये और जानसे उन्होंने अपने बानो बाँकोंकी जमीनपर पटक । इससे उनके दोनो  
 पाँव पुर्णतः धंस गये । बादमे हनुमन् रामसे कहा कि क्या आपका मेरा स्मरण नहीं था ? जिस हनुमान्ने  
 जब मैं सेताकी लाय की थी और लौटकर अपना उनको खबर दी थी ॥ १३० ॥ १३१ ॥ तब हनुमान्का  
 जत्र आपन कशी भेजकर ऐसा उपहास किया ? यदि आपके मनमे यह था तो फिर मुझे इस तरह  
 मर्प क्यों सताया ? ॥ १३२ ॥ यदि मुझ मर्पका अभिप्राय सत्य हो जाता तो मैं कभी कशी जाकर  
 मैं को निर्वाज्य न करता ॥ १३३ ॥ इनसे एक आपके लिए और दूसरा उत्तम निर्वाज्य जपन जिये से  
 न था है । अब मैं इस आपका निर्वाज्यका बड़ा कई ! ॥ १३४ ॥ इस प्रकार कुछ शेष तथा बर्बदुक  
 रघुनाथका वाक्य सुनकर रामने कहा कि हे कथ ! तुम्हारा कहना सत्य है ॥ १३५ ॥ अब तुम यदि  
 इस मेरे मर्पचित लिङ्गको पूँठमे स्पर्शकर उल्लास को जो मैं तुम्हारे काजसे मर्प हुए विश्वेश्वरलिंगको यही  
 तुम स्थापित कर दूँ ॥ १३६ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर हनुमान्ने उस बालके लिङ्ग उपरा भागमे पूँठ  
 परकर बारम्बार धुब जोरसे झिलमया ॥ १३७ ॥ जिससे सहसा उनकी पूँठ टूट गयी । वे जमीनपर निर पड़े  
 और मूर्छित हो गये । परन्तु बालुका लिङ्ग तनक भी नहीं हिला । यह देखकर सब वावर हुंनने लगे ॥ १३८ ॥  
 तब नु कारुति स्वस्थ हो तथा सर्व जाँझकर जलसे रामको नमस्कार करके प्रायना करन लगे ॥ १३९ ॥

विश्वनाथमिदं लिङ्गं स्वीयं मस्थापयामास सादरम् ॥ १४१ ॥  
 मारुतेर्ध्वं लिङ्गाय दत्तं रामो वरं तदा अमरं विष्णुनाथ मारुते न्वन्प्रतिष्ठितम् ॥ १४२ ॥  
 यमादी पूजयन्त्यत्र ये नगं लिङ्गमुत्तमम् । रामेऽवगाभिध सेतौ तेषां पूजा कृता भवेत् ॥ १४३ ॥  
 इत्युक्त्वा न पुनः प्राह रामो गजोदलोचनः । मर्त्यं यन्ममार्जीतं त्वया लिङ्गं महत्तमम् ॥ १४४ ॥  
 जिह्वयाऽस्य तच्छृणामस्तु देवालये त्वरम् । अनर्चितमवन्त्यां तदप्रतिष्ठितमक्षयम् ॥ १४५ ॥  
 अग्न कालान्तरेणाह नन्वापि स्थापयामि वै । तत्र च वर्तनेऽद्यापि लिङ्गं विश्वेश्वरान्तिके ॥ १४६ ॥  
 अग्रनिष्ठायितं भूम्यां न केनापि प्रयोजितम् । पुनः प्राह कपि रामस्त्वमत्र टिक्ताङ्गुलः ॥ १४७ ॥  
 वस भूम्यां गुमपादः स्मरन्स्वर्गायितं त्विदम् । नतः कपिः स्वीयमूर्ति स्थापयामास स्वाश्रितः ॥ १४८ ॥  
 छिन्नपुच्छा गुमपादा सा तत्राद्यापि वर्तते । पतिनो मूर्च्छिता यत्र मारुतिस्तत्र तद्वत् ॥ १४९ ॥  
 बभूव मारुतेर्नाम्ना तीर्थं पापप्रणाशनम् । रामस्तत्राकरोन्पुण्यं स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥ १५० ॥  
 स्वाश्रितेन स्थापयामास मूर्तिं तत्र रघुद्वजः । सेतुमाधवनाम्नी सा वर्तनेऽद्यापि पार्वति ॥ १५१ ॥  
 स्वनाम्ना लक्ष्मणापि चकार तीर्थमुत्तमम् । ततो रामः स्वहस्तेन स्पृष्ट्वा मारुतिर्लाङ्गुलम् ॥ १५२ ॥  
 चकार पूर्ववद्रूपं दृढगन्धिमसादितः । तन्पुच्छवेष्टनाज्जातः कृशो रामेश्वरस्तकः ॥ १५३ ॥  
 स तर्ध्वं कृशोऽद्यापि तत्रास्ति शिवमस्तकः । तदारभ्य न्यक्तगर्वश्चाभूद्रामे स मारुतिः ॥ १५४ ॥  
 ततोऽहं संकृताल्लिङ्गादाविर्भूय रघुद्वजम् । अत्रुचं देवि तत्सर्वं मृणुष्व ते वदाम्यम् ॥ १५५ ॥  
 गणवेन्द्र मृषेष्ठ मृणु वृत्तं पुगानम् । एकदाऽहं पुनः भूम्यां मलिनाम्बरसंयुतः ॥ १५६ ॥  
 मिथार्थं कीर्तुकादिप्रसूपादिचरं सुखम् । श्वर्षाणामाश्रमायेषु द्यतदतं सां चिकीर्षय च ॥ १५७ ॥

हे राम ! मग्न हो गया था हुआ ही, उसे क्षम कर । वरदानक भगवान् भूगर्भनिधि है । तदनन्तर रामने कहा कि मारुति ! तुम मर गये हो लिङ्ग के अन्तर्को और इस विष्णुनाथ नामक अपने लिङ्गको स्थापित करो । 'तथास्तु' कहकर मारुतिने सादर शिर्वालिङ्गको स्थापना कर दी ॥ १४० ॥ १४१ ॥ तब रामने उस मार्गलिङ्गको वरदान दत्त हुए कहा हे माम्म ! तुम्हारे द्वारा स्थापित विष्णुनाथलिङ्गकी पूजा 'नये' बिना जा सेतुबधराभे-  
 श्वरकी पूजा करोगे । उसकी पूजा 'नये' ही जायेगी ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ इतना कहकर रामने फिर हनुमान्से कहा कि जो तुम मेरे लिए उत्तम लिङ्ग लाये हो ॥ १४४ ॥ वह विश्वनाथलिङ्ग यो हो इस देवालयमें पड़ा रहे । बहुत ही शक्ति वह उत्तम लिङ्ग परलोपर अपूर्जित हो पड़ा रहेगा । ॥ १४५ ॥ आगे चलकर बहुत दिनों बाद उसकी भी मैं अवश्य स्थापना करूँगा । वह लिङ्ग अभी भी वहाँ विश्वेश्वरलिङ्गके पास पड़ा हुआ है । ॥ १४६ ॥ न अभी उसका प्रतिष्ठा हुई है और न कोई उसकी पूजा हो करना है । रामने फिर हनुमान्से कहा कि तुम्हारे पृष्ठ पर ही रह जाओ । अब तुम मर्त्यपर भूमिमें छिन्नपुच्छ तथा गुमपाद होकर अपने गर्वका समाप्त करते हुए रह जाओ । तब हनुमान्ने अपने आस वही आगे मुनि स्थापित कर दी । ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ कभी भी वहाँ हनुमान्की विपश्यत और गुन पाँचका मूर्ति विद्यमान है । जहाँपर मारुति मूर्छित होकर गिरे थे, वह उनमें स्थापित मारुतिके नामसे पवित्र तथा पापोंका नाश करनेवाला तीर्थ प्रसिद्ध हुआ । वहाँ ही रामने भी अपने नामसे एक उत्तम तीर्थ बनाया ॥ १४९ ॥ १५० ॥ रामने वहाँ आगे अगका एक मूर्ति भी स्थापित कर दी । सेतु माधव नामकी वह मूर्ति अभी भी वहाँ प्रस्तुत है ॥ १५१ ॥ हे पावति ! लक्ष्मणन भी वहाँ अपने नामका उत्तम तीर्थ स्थापित किया । पश्चात् रामने अपने हाथसे छूकर हनुमान्की पृष्ठकी पूर्ववत् सुन्दर तथा हृद सन्धिपुक्त बनाकर हनुमान्को प्रसन्न कर लिया । पृष्ठमें लपटे जाकेक कारण रामेश्वरका मस्तक कुछ दब गया था ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ वह शिवमस्तक अभी भी वंसा ही बिपटा है । तबसे हनुमान् रामके समक्ष सर्वथा गर्वरहित हो गये । ॥ १५४ ॥ हे देवि ! उस समय जानुक लिङ्गमें प्रकट होकर मेने रघुद्वज रामसे जो कुछ कहा था, वह सब तुमको सुनाता हूँ । ज्ञान देकर मुने ॥ १५५ ॥ मैंने कहा - हे रघुवन्ध ! हे रघुश्रेष्ठ ! तुम्हें मैं एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ । एक समय कीमुक्ताक्ष ने पुगाने कपड़े पहिन तथा ब्राह्मण



मद्रूपमोहिताः सर्वा अपिपत्न्यः सहस्रशः । भग्नपृष्ठे ताः समात्तमुत्सृज्य भिवांशिताः अदि ॥१५८॥  
 तदा ते चुचुभुः सर्वे मामहात्वा मनीष्वराः । ददुः शापं महाघोरं क्रोधसन्निभमानसाः ॥१५९॥  
 स्वयं मोहिताः कार्यस्त्वया नृणां दुष्टिनाम । पतन्वद्य ग्नेरंगं लिगं हवि च नो गिरा ॥१६०॥  
 एवं द्वित्रिपदाः शमोऽस्तलिगं तदा हवि । द्वित्रिचतुष्टयं मे राम मनोऽहं शुभलां तदा ॥१६१॥  
 द्विजनाथोऽप्यदृष्ट्वा मां आमुः स्व स्व गृहं प्रति । तस्मिन् वदुषे भूष्यां गगनं व्याप्य तस्मिन् ॥१६२॥  
 तद्दृष्ट्वा चकिना देवास्तुत्यान् द्रष्टुमर्हताः । पश्यन्त्यस्य कोऽनन्दवान्मर्माकच वेधयः ॥१६३॥  
 तदा मामेत्य स विधिभंशद्वयं न्यवेदयत् । अकल्पे प्रलयस्य च शम्भोऽनेन परिच्यति ॥१६४॥  
 तदा मया पूर्ववत् त्रिविधं मथान्य मादयम् । विशूनां वेधसे दत्तान् छेत्तुं सोऽब्रवीच्च माम् ॥१६५॥  
 कथं तेऽहं दाम्नेऽहं स्वमेव छेत्तुमर्हसि । ततो मया कर्त्तव्यानि कृतानि तस्य सख्ये ॥१६६॥  
 विशूलेनापि क्षिप्तानि भूष्यां निर्वाणानि हि । न ज्ञानान्वयं लिगादिर्जोतिर्यशानि द्वादश ॥१६७॥  
 कर्त्तारः सीमनाधश्च ज्येष्ठश्चो मल्लिकार्जुनः । नागेनो वैद्यनाथश्च कार्पासिधेश्वरस्त्वहम् ॥१६८॥  
 केशरेशो महाकाशो मयेशो घृष्मणेश्वरः । एषमेकदश ज्ञया उपातिलिङ्गमयाः शुभाः ॥१६९॥  
 गन्धमादननाम्नेशो मेरोरीशानदिक्स्थितः । आर्षाधिपः न कन्यापि मानसस्यासिगोचरः ॥१७०॥  
 तदा तं मुनयः सर्वं शिखं बुद्ध्या तु लङ्घनः । ददुः शापं पुनर्लिङ्गं मया तु गिरिजाप्रिय ॥१७१॥  
 ततः प्रलयवतिष्ठ गन्धमादननामकम् । तन्मेरेकत्रये भूक्तमेकदशापनद्वयं ॥१७२॥  
 तदिदं द्वात्रिंशद्वयं दातव्यं मामनाम । गन्धमादननाम्नेऽहं भग्न पश्यन्तं शयनं ॥१७३॥  
 गन्धमादननाम्नेऽहं लिगं द्वादशम् निदधुः । अन्यनिष्ठलिङ्गस्य हं प्रत्यामन्तिके स्थितम् ॥१७४॥

मम धरकर आनन्दसे भिक्षाक लिए पृथिवीपर विचर रहा था । इस प्रकार कृपितक आश्रममें प्रसूता हुआ  
 पुत्र देवमन्त्र सेवन कृपिपत्न्य' मर करपर साहित हो गया । पातयाक राजनपर भी व नही रही और मर  
 पड़ कर दूधमन लगी ॥ १५६-१५७ ॥ तब वे सब मुनें जो मुन्य न पहिचलकर बहुत बरदाप और क्रुद्ध होकर  
 तहाने मुझ बड़ा भयानक शाप दे दिया ॥ १५८ ॥ उन्होंने कहा—अरे कथम आहूय ! तुने रति कलक लिए  
 ज्ञाना सिद्धाका साहित कर लिया है । हमस तर रतिका साधन अहं अयान् लिङ्ग हमारे कहारा कटकर ममान  
 पर गिर पड़ ॥ १५९ ॥ हे राम ! उनक मयसे द्वित्रिचतुष्टय भग्न लिङ्ग कटकर तुमस जमानपर गिर पड़ा ।  
 गन्धम मे अन्तर्धान हो गया ॥ १६० ॥ मुन्य न देखकर वे द्विजान् शिवभा अपन-अपन पर सती भरी ।  
 मदनन्तर बहुत लिङ्ग इस प्रकार बड़ा कि आकाश तक व्याप्त हो गया ॥ १६१ ॥ यह देखकर बह्या बहुत चौकत हुए  
 जो उनका अन्त दलनेक लिए उदा हो गया । कर डा बर तब दना लदानपर भी बला । जब मर लिङ्गका  
 मय नही मिली ॥ १६२ ॥ तब मर मय आकर दान हुए उन्होंने कहा—हे राम ! इसमें ही अकारुम हो  
 गया हुआ आहूता है ॥ १६३ ॥ मने क्रुद्धाका पूर्ववृत्तान्त मुन्य पर सादर उनक हाथमें उस लिङ्गका कादनक  
 ॥ अपना जिह्म दा दिया । सब क्रुद्ध लकही— ॥ १६४ ॥ मथया भाषक अयका कम कट सकता है । कथ  
 ॥ म बाई । हे राम ! तब मने उन लकके बरहु दुष्ट कर डाल ॥ १६५ ॥ फिर जसु उस हा उठाकर उनका  
 ॥ जपर हथर उठाकर एक दिया । वे हा ब 'हा दुष्ट बहारे बारहु उपातिलिङ्ग नान्त प्रस्थापि हुए ॥ १६६ ॥  
 अकारुम, सीमनाथ, पश्यकभर, मल्लिकार्जुन, नाग, वैद्यनाथ, काशी विश्वनाथ केशरेश, केशरेश्वर, महाकाश,  
 और शुभलाश्वर ये मयारहु मुन्य उपातिलिङ्ग ॥ १६७ ॥ १६८ ॥ बारहवा लिङ्ग गन्धमादन पञ्चक शान कायवान  
 मयपर बहुत काल तक लिये रहकर भा ॥ मया ममुपरा उपातिलिङ्ग मया ॥ १७० ॥ तब मुनयाने लिङ्गक  
 ॥ शिवका पहिचलकर पुन. दर दिया—हे गिरिजाप्रिय ! तुम्हारे फिर लिङ्ग हुआ जाय ॥ १७१ ॥ तदनन्तर  
 ॥ सभय नही मरका गन्धमादन नामक उत्तरी शिखर प्रलयवायुस उठकर यहाँ आ गया ॥ १७२ ॥ हे राम !  
 म गन्धमादन शिखरकी तुम बड़ा रतिमी समुद्रक संगमपर जलमें डूब सकते हो ॥ १७३ ॥ आहूता ममानपर

एतावन्कालपर्यन्तं नैदं केशिद्वन्द्वोक्तिम् । अयं त्वया शब्दार्थद्वन्द्वं स्पष्टं विमोक्षयम् ॥१७५॥  
 स्वप्रतिष्ठितसिंहास्यं प्रमदादवनीतले । स्याद्विंशतं त्विदं लिखं यस्मात्तस्माद्रूपतम ॥१७६॥  
 अस्य लिख्यं यज्ज्योतिर्मदीयं स्वप्रतिष्ठिते । याम्यम्यद्य संकतेऽत्र लिखे हेतौ मिरा मय ॥१७७॥  
 ज्योतिर्लिख्यं द्वादशमं तव रामेश्वराभिषेकम् । इदं त्वया जनाः सर्वे ज्ञायाम्यं रूपतम ॥१७८॥  
 पूजात्म्यादिकं कर्म यच्चरिंश्चरिद्रिरा मय । त्वैव लिखे त्वत्तर्कमस्तु रामेश्वरे मया ॥१७९॥  
 अहं चापि पुनेर्वाक्यादगस्त्येवद्विरापि च । स्वकृत्वा कार्त्तमागतोऽस्मि त्वत्स्थितेऽस्मिन्वसाम्यहम् ॥  
 प्रथमेस्तेषु वने यः पुमान् रामेश्वरं शिवम् । शब्दरन्त्यादिसापेक्ष्यो मुच्यते तदनुग्रहम् ॥१८१॥  
 सद्यं ददाय रघुश्रेष्ठं वरं येन जनाः मया । एतानां र्थमादयिष्यन्ति मणिकर्णेश्वरं मय ॥१८२॥  
 मनेतद्वचनं श्रुत्वा प्रमत्तो रघुनायकः । जगाद स्वाम्या सेतुवधे रम्येष्टं परिषयति ॥१८३॥  
 संकल्प्य निपतो भूत्वा गृहीत्वा सेतुवन्मुक्ताम् । करदिकामिर्यन्नेन गत्वा वारम्भसीं दृष्ट्वा ॥१८४॥

शिव्या तां रात्रुतां त्यक्त्वा वेण्यां बान्दुकगदिकाम् ।

आनीय गगारलिलं रामेश्वरमभिषिष्य च ॥१८५॥

समूहे स्थकवद्भारो ब्रह्म प्राप्नोन्मसद्वयम् । संकल्पेन विना गंगा रामेश्वरं नामभिष्यति ॥१८६॥  
 जागता चैवदा ज्ञेयः संकल्पः पूर्वजन्यनि । कुतोऽस्तीत्यत्र मद्राकपात्रात् कार्पा विचारणा ॥१८७॥  
 एवं नानावरान्तामो यावद्विजगत् सोऽजगीत् । तावच्चत्र समापातः कुम्भजन्ता मुनीश्वरः ॥१८८॥  
 जनाय सकरो रामं रामोऽपि प्रलयाय तम् । वदा मुनिः पादं गमे प्रमोदात्तरं राघव ॥१८९॥  
 दर्शनं विद्वन्नायस्य त्रातं मेऽथात्र वै विगात् । जघात्र तुष्टिर्जोवा वै लिख्यं करोम्यहम् ॥१९०॥  
 इन्दुकृत्वा स्थापयावाप्तुं स्वनाम्ना लिख्यं तमम् । रामेश्वरमिदं भाषे कुम्भजन्ता मुदान्वितः ॥१९१॥

जिन गुम्हारे प्रतिष्ठित मणिकी ईशानदिगाय वाम ही विद्यमान है ॥ १७४ ॥ इतन समय तक इसकी किसीने  
 नहीं देखा था । पर आज बान्दुकहिन तुमने इस मोक्षप्रद लिखकी स्पष्ट देखा लिया है ॥ १७५ ॥ गुम्हार द्वारा  
 स्थापित लिखकी यहमासे ही पृथ्वीपर इसकी प्रतिष्ठा हुई है । इस कारण है रघुनाथ । इस लिखकी जो स्थापित  
 है, वह ज्योति गुम्हारे द्वारा स्थापित बान्दुकप्रद निगम भरे बटुनसे आज ही चली आयागी ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ है  
 रूपतम । आजके बान्दुकी ज्योतिर्लिख गुम्हारे स्थपित रामेश्वर ही दुनिराकिसब अनुयाय प्रीतिवद्द होया ॥ १७८ ॥  
 मेरे कवनसे दूषा आदि सब उपचार तदा गुम्हारे रामेश्वर जिनमा ही होगा ॥ १७९ ॥ मे था आगम्य मुनिक  
 तथा गुम्हारे कहनेसे काजी कीकर यहाँ का गया है और अब गुम्हारे इस लिखके ही निगम करुता ॥ १८० ॥  
 जो अनुया सेमुक्ता रामेश्वरको प्रणाम करेगा, वह मेरी कृपासे बहुरथा आदि उपायक योसे भी मुक्त हो  
 पायगा ॥ १८१ ॥ हे रघुश्रेष्ठ । आप मुझे यह वर दें कि सब लोग मुझ स्नान करानके लिए सदा काशिका  
 मणिकर्णिकाका जल लाकर बहाया करें ॥ १८२ ॥ हे पृथ्वी ! मेरे इस वचनके मुनकर भीराय हविष होकर  
 होने कि जो अनुया सेमुक्तासे स्नान करके रामेश्वर लिखका दर्शन करमे ॥ १८३ ॥ फिर इस संकल्पसे सेतुकी  
 बान्दुकाके काँवरमे रखकर प्रेम तथा यत्नसे कार्त्तामे ले जाकर गंगाके प्रवाहमे डालने और उस काँवरको वही  
 छोड़कर दूसरी काँवरक द्वारा गंगाजल लाकर उससे रामेश्वरका अभिषेक करेगी ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ कहाँ उस  
 काँवरको की समुद्रमे फेंककर निःसंदेह बहूपदको प्राप्त होये । जकाक इस संकल्प व होगा, सब सब रामेश्वर  
 जाना व होगा ॥ १८६ ॥ कदाचित् कोई जागया हो वही जानना चाहिए कि उसके पूर्वजन्यता उपत्यक था ।  
 मेरे कहनेसे आप यह बातमें लगेक भी संदेह न करें ॥ १८७ ॥ इस प्रकार राम बच-जनक हर दे रहे थे, तभी  
 वही कुम्भजन्म ( कास्थ ) मुनि आ पहुँचे ॥ १८८ ॥ उन्होंने वहाँ जाकर जिन तथा रामको प्रणाम किया ।  
 सब रामने भी मुनिसे प्रणाम किया । कास्थ मुनि रामसे कहा— हे राघव ! नामके अनुग्रहसे मुझे आज  
 बहुत बिनके बाद निम्ननायका दर्शन प्राप्त हुआ है । इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है । इसलिये मैं भी  
 वहाँ एक लिख स्थापित करता हूँ ॥ १८९ ॥ १९० ॥ इसका स्मरण आगम्य मुनिने भी अपने नाथसे एक उत्तर

पूजयामास तल्लिगमगस्तीश्वरनामकम् । नन्वा स्तुत्या विश्वनाथं रामं रामेश्वरं तथा ॥१९२॥  
 दृष्ट्वा पुगतनं लिङ्गं गंधमादननामकम् । पत्नी स्वीयाश्रमं सुहृः कुंभजन्मा हुनीश्वरः ॥१९३॥  
 सेती रामेश्वरस्यैव देवि देवालये ह्युभे । दिव्याग्नेय्यामगस्तीश्वमीशान्यां गंधमादनम् ॥१९४॥  
 वर्तेतेऽद्यापि द्वे लिङ्गे कश्चिज्जानाति वा व वा । प्रविद्धोऽभूच्च रामेश्वरः स्वर्गमृन्वुरमावृते ॥१९५॥  
 ततो रामाश्रया सेतुं नतः कर्तुं मनो दधे । किञ्चिद्द्वर्तसमाविष्टस्तत्तत् राघवेण हि ॥१९६॥

पावदेकां शिलां त्यक्त्वा नलोऽन्यां प्राक्षिपच्छिलाय ।

तावत्परंगकछोर्धः सागम्य इतस्ततः ॥१९७॥

गच्छतिस्म शिलाः सर्वास्ता दृष्ट्वा विस्मयानमः । गदगर्वस्मदा गमं नलो वृत्तं न्यवेदयत् ॥१९८॥  
 राघवः ध्रुवा नलं प्राह रामनि द्वेऽश्वरे मम । दृषदोः संधिसिद्धयर्थं पृथग्विलिखतां द्वयोः ॥१९९॥  
 सर्वत्रैव लिखित्वा हि दृढः मधिर्मणिस्थिति । तथेति रामवचनानया शक्रे नलस्तदा ॥२००॥  
 कृतः षड्दिनैः सेतुः सप्तयोजनमुत्तमः । कृतानि त्रयमेवाह्वा योजनानि चतुर्दश ॥२०१॥  
 द्वितीयेन तथा चाह्वा योजनानां च विंशतिः । तृतीयेन तथा चाह्वा योजनान्वेकविंशतिः ॥२०२॥  
 चतुर्थेन तथा चाह्वा द्वाविंशतिरिति श्रुतम् । पंचमेन त्रयोविंशयोजनानां चतुर्विंशतिः ॥२०३॥  
 विस्तृतो द्वादश प्रोक्तो योजनानि दशम्ययः । एव एवध सेतुं य नलो वानरमत्तमः ॥२०४॥  
 ये मञ्ज्वंति निमज्जयति च वरान् ते प्रसन्नं दुस्तरे वार्ध्या येन तरति वानरभटान् संतारयतेऽपि च ।  
 नैते प्रावशुणा न वारिधिगुणा नो वानरगणा गुणाः भीमराघरधेः प्रतापमहिमा नोऽयं सप्तज्जम्भते ॥२०५॥  
 तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां सप्त द्रुतम् । आरुह्य मारुतिं गमो लक्ष्मणोऽप्यंगदं तथा ॥२०६॥  
 जगाम बाधुबल्लकासंनिधिं सेनया वृरः । अमरुयाताः सुवेलाद्रिं करुद्दुः प्लवगोलमाः ॥२०७॥

नलः स्थापित किया । नुनिम आनन्दक साथ रामेश्वरक अग्निकाणन उसका म्यापना की ॥ १९२ ॥ इस प्रकार नुनिने अग्निकाणन नामक 'लमका' पूजा करके विधनाय, रामेश्वर एवं श्रीरामकी स्तुति तथा प्रणाम करनेके अनन्तर पुगतन गंधमादन निगका दर्शन किया और प्रसन्न होकर अपने आश्रमको चले गये । ॥ १९२ ॥ १९३ ॥  
 ६ देवि । सेतुबंध रामेश्वरके देवालयमें ही आग्नेयकोणमें अमरुतोश्वर तथा ईशानकोणमें गन्धमादनेश्वरका 'लम' अभी भी विद्यमान है । उन्हें कोई इन नामोंसे जानता है और कोई नहीं भी जानता । रामेश्वरका लिङ्ग पर्व, बाताल तथा मृग्य इन तीनों लोकोंमें प्रतिष्ठ हो गया ॥ १९४ ॥ तदनन्तर रामकी आज्ञासे नलने कुछ पर्वयुक्त होकर पुल बांधना आरम्भ कर दिया । रामको इस गर्वका पता लग गया ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ इसके बाद नलने जलमें एक पत्थर डालकर दूसरा ऊपर ही रह्य, 'वो ही नमुवकी तरंगित लहरियोंसे सब जिलाई' उपर-उपर छितराने लगे । यह दृष्टा हो लिखमन हो तथा पर्व टपककर नल रामके पास गये और सब वृत्तान्त निवेदन किया । १९७ ॥ १९८ ॥ यह सुनकर रामने नलसे कहा कि मेरे माथके 'रा म' से दो अक्षर उतरोको एक साथ मिलानेके लिये दोनो गिलाओकी बगलमें लिख दो । १९९ ॥ ऐसा लिख देनेसे नल एक दूसरेके साथ हड़तासे जुड़ जायेंगे और संधि ( मीम ) न रहेगी । नलने भी 'तथास्तु' कहकर रामके स्थानानुसार ही किया ॥ २०० ॥ ऐसा करनेपर पाँच दिनमें ही योजन लम्बा, सुन्दर और दृढ़ सेतु बन गया ।  
 पहिले दिन चौदह योजन, दूसरे दिन बीस, तीसरे दिन दत्कीस, चौथे दिन बाईस और पाँचवें दिन सैंईस योजन पुल बंधा । इस प्रकार ही योजन पूरे हो गए । २०१-२०३ ॥ उसमें भी बाग्दु योजन एकमात्र पत्थरका ही धक्का पुल बनाया गया । इस तरह वानरोत्तम नलने सेतु बांधकर तैयार किया ॥ २०४ ॥ जो पत्थर पर्व चूने और दूसरोंको चुकाते हैं, वे ही दुस्तर नमुदमें स्वर्ग तरंगे तथा दूसरोंको सारने लगे मये । यह गुण व पत्थरका है, न समुद्रका और न वानरोंका । परन्तु यह गुण ही केवल दत्तरथतमय रामका ही है । जिनकी महिमा सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥ २०५ ॥ उस युद्धके बाद वानरगण ही शेष सब शहर की रण कर गये । राम हनुमान्के कंधे तथा लक्ष्मण भद्रके कंधेपर चढ़कर वायुदेवसे सेनाके साथ लम्बाके पास

सतः सैन्ययुक्तो रामः सुवेलार्द्रि ययौ युद्धा दिव्यं गणयो लंकापारोहायम् शुभम् ॥२०८॥  
 सुवेलार्द्रि महारम्यं तरुवाहिविराजितम् । ददर्श लंकां विस्तीर्णां रामश्चित्रजङ्गलम् ॥२०९॥  
 चित्रशामादयवाधौ स्वर्णप्राकान्तोरणाम् । परिस्त्राभिः श्वघ्नीभिः सकर्मैश्च विराजिताम् ॥२१०॥  
 प्रामादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धरम् । पश्यन्त कपिसैन्यं तं सन्दर्शं रघुद्वजः ॥२११॥  
 सतो रामेण मुक्तः स शुको गन्वा दशाननम् । कपिसैन्यं दर्शयन्त बोधयामास रावणम् ॥२१२॥  
 सीतां प्रयच्छ रामाय लंकागज्ये विभीषणम् । कुत्वा तं शरणं याहि नो चेदामास मोक्षसे ॥२१३॥  
 तच्छ्रुत्वा रावणः क्रोधान्मृकं धिक्कृत्य वै मुहुः । दूर्तैर्गहाद्वहिः कुत्वा रामसेनां व्यलोकयन् ॥२१४॥  
 शुकोऽपि ब्राह्मणः पूर्वं वरिष्ठो जस्रचित्तमः । त्रयजन् कृतुनिर्देशान् विगेवो राक्षसैर्भूत् ॥२१५॥  
 वज्रदष्ट इति ख्यातस्तर्दको राक्षसो महान् । मांमास याचितं दृष्ट्वा मुनिना कुमजन्मना ॥२१६॥  
 शुकभार्यावपुर्ज्ज्वा नगर्मासं समर्पयन् । तदा शमः शुकस्तेन त्वं श्यो मवमा विष् ॥२१७॥  
 रक्षःकृतं पुनर्ष्यान्नाज्ज्ञात्वा तन्प्राथितोऽमरीत् । रामस्य दर्शनं कृत्वा बोधयित्वा दशाननम् ॥२१८॥  
 न्यं प्राप्स्यसि निजं रूपं तस्माज्जानः शुको द्विजः । सुवेलशिवरे मंस्थः ममञ्च कपिभिन्नतः ॥२१९॥  
 सचनार्थं गिषु रामोऽङ्गदं लंकाप्रोदयत् । सोऽपि रामाज्ञया गन्वा नानानीन्युत्तरैस्तदा ॥२२०॥  
 भवणं बोधयामास सुभाषां लांगुलामने । मंस्थितोऽमीतवद्वालिननयः स्वस्थमानसः ॥२२१॥  
 शृणु रावण मद्वाक्यं हितं ते प्रवदाम्यहम् । सीतां सत्कृत्य सधनां प्रयच्छ राघवं जवान् ॥२२२॥  
 मयं नागयणं विद्धि विद्वं स्यन्न राघवे । यन्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो यवसागरम् ॥२२३॥  
 तस्मिन् मक्तिपूतास्ते ह्यतो रामो न मानुषः । मद्वाक्यं कुरु राजेन्द्र कुलकौशलहेतवे ॥२२४॥

का पट्टे । वानरोंमें उत्तम अमरुद वानर सुवेल पर्वतपर जा चढ़े ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ उनके पीछे राम भी  
 घणना सेनाके साथ सहर्ष सुवेर्गगिरिपर गये । वहाँ जाकर राम लंकाके देवाओं के लिए उसने एक गुम्फर  
 मिलरपर चढ़ा ॥ २०८ ॥ वह पर्वत बड़े मनहर वृक्षों तथा लतओंसे भंडित था । वही रामन बड़ा विस्मृत,  
 रंग विरगी स्वजाओसे व्याप्त, अनेक प्रकारके भवनोंसे मधन, स्वर्णरु गड तथा तोरण युक्त सार्ई, सुगों तथा  
 संगोसे विराजित लंकाका देखा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ वहाँसे रामने एक प्रासाद ( महल ) के ऊपर विस्तीर्ण  
 प्रदेशमें बैठकर कपिसेनाको देखते हुए दशकन्धर रावणको देखा ॥ २११ ॥ तदनन्तर रामन कैद किये  
 हुए शुकको छुड़वा दिया उसने जाकर रावणको वानरा सेना दिखानी और भयभाषा— ॥ २१२ ॥ नुम  
 सीता रामनो वै यो, लङ्काका राज्य विभीषणको दे दो और रामकी शरणमें चल जाओ । नहीं तो राम  
 नुमको जंघित नहीं छोड़ेंगे ॥ २१३ ॥ यह सुनकर ब्राह्मण पागल रावणन शुकको बार-बार धिक्कारा और  
 दूर्तसे बाह्य निकलकर रामकी सेना देखने लगा ॥ २१४ ॥ शुक पहिले एक भेष ब्राह्मण था । उसने वज्र  
 हाथ देवताओंको प्रसन्न किया था । इस कारण राक्षसोंसे उसका विरोध ही गया ॥ २१५ ॥ तदनन्तर एक  
 दिन वज्रदष्ट नामक राक्षसन भगस्त्व मुनिको शुकसे भासात्र भाँगने देखकर शुकको स्वर्णका रूप धारण  
 करके मनुष्यका मास पकाकर मुनिको परास दिया । तब मुनिने क्रुद्ध होकर शुकको भाष दे दिया कि जा,  
 तू सीधे राक्षस हो जा ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ पुनः शुकने प्रार्थना करनेपर मुनिने ध्यान धरके देखा तो मानुस  
 हुआ कि यह तो एक राक्षसका कृत्य है । तब मुनिने कहा—हे शुक ! तू रामका दर्शन करके और रावणको  
 समझाकर फिरसे अपने स्वस्वको प्राप्त हो जायगा । इसी कारण जब वह शुक पुनः ब्राह्मण हो गया ।  
 तब रामने सुवेल पर्वतके मिलरपर बैठकर वानरोंको आमन्त्रित किया और शुकको सूचना देनेके  
 लिए अंगरको लंका भेजा । उसने जाकर रामकी आज्ञासे अनेक नोतिवाक्यों द्वारा रावणको समझाया  
 ॥ २१८ ॥ २२० ॥ उसने अपनी पूँछका मोड़ा बनाकर उसपर बैठे हुए अंगवने निर्भय होकर स्वस्व मनसे  
 रावणको समझाते हुए कहा— ॥ २२१ ॥ हे रावण ! मैं तुमको हितका उपदेश देता हूँ, मुनी । मेरी कलाह  
 मानी और मनसे सीताका सत्कार करके कटपट समको दे जाओ ॥ २२२ ॥ रामकी आज्ञाद नारायण रामनो

एवं नानाविधैर्वाक्यैरंगदेनानिबोधितः सोऽथ नैन्युत्तराण्यप्य नाशृणोद्दानस्य च ॥२२५॥  
 उवाच क्रोधमयुक्तो वानरः स दशाननः । भीषयमेऽद्य किं मां त्व रावणं लोकगवणम् ॥२२६॥  
 येन सर्वं जित्वा देवाः कैलासः कपित्थो मया । तस्य मेऽग्रं मर्कटं त्व कथ्यसे किं मुधाऽद्य हि ॥२२७॥  
 क्षणेन राघवो हन्वा हन्वा सूर्यावमारुहती । हन्वा विभीषणं चान्नं च वानरान् मक्षयाक्यहम् ॥२२८॥  
 रावणस्य वचश्चेन्ध श्रुत्वा ग्राह्यादश्च तम् । जानाक्यहं पीडयं ते बलिपशुविनूर्णित ॥२२९॥  
 शिवपादांगुष्ठं मारुतप्रकलमरीचिनः । सहस्रार्जुनवीगन्ममभवक्रीडनमृग ॥२३०॥  
 श्वेतद्वीपस्थप्रमदाक्षरताडितमन्मथः । विष्णुपुत्रोऽथ वै ब्रह्मा मरीचिस्तन्मुक्त स्मृतः ॥२३१॥  
 नन्मुतः कथयस्वस्य पुत्रोऽभूदिदं नामकः । तेनैव पुत्रकाले तु बभूव्वा कागशूहस्थित ॥२३२॥  
 पर्यकोपरि सचदमन्मूत्रक्षालिताननः । इति तद्वाक्यं श्रुत्वा वानरजितः स दशाननः ॥२३३॥  
 दूतानागावयामास ताडनीयो मुखे न्वयम् । तथैन्युक्त्वा राक्षसाग्ने स्रष्टवस्ताः महस्रशः ॥२३४॥  
 अगदं दृष्टुः शीघ्रं तान् दृष्ट्वा वानरोत्तमः । सर्वशामास पुच्छेन तान्मर्वान् क्षणमात्रतः ॥२३५॥  
 रात्रिणाभ्येषु सताड्य स्वकराभ्यां मुहुर्महूः । तद्वस्तपादौ पुच्छेन पूर्वं बभूव्वा सविस्तरम् ॥२३६॥  
 ततश्चोड्य वेगेन पर्यां प्रामादमस्तकः । मुवेलादौ राघवेन्द्रं तारियः स विहायमा ॥२३७॥  
 अगदं राघवो दृष्ट्वा प्रामादान्वितमस्तकम् । उवाच किं कृतं बाल प्रामादोऽयं न्वया कथम् ॥२३८॥  
 ममानीवोऽत्र लकाया मित्राण्येष पुगी मया । त्रिपिताऽस्मि ततो मित्रवन्निव द न सृष्टास्यहम् ॥२३९॥  
 मद्राक्षवचः श्रुत्वा चक्रिन्ः स तदांगदः । प्रामादमस्तके दृष्टोर्ध्वाक्षिभ्यामाह राघवम् ॥२४०॥

और उनसे द्वेष करने छाड़ ११ । जिनके चरणमगदकी जहाजका आश्रय लेकर जानी लोग भूलिते पवित्र  
 मन होकर इस समारुहों समुद्रको अनायास पार कर जान है, वे राम मनुष्यमात्र नहीं है । हे राजन्द्र !  
 १२ अपने कुलकी कुशलता चाहते होओ तो परा बहा करो ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ इस प्रकार विविध वाक्योंसे  
 अहूरे उसे बहुत हमसाया, परन्तु उमने अहूदका एक भी नीतिपूर्ण वाक्य नहीं मना ॥ २२५ ॥ प्रत्युत  
 उड़ होकर रावणन अहूदने कहा—अर नीच ! तू आज सब जागोरो ह्मनेवाले मुझ रावणको डराने आया  
 है ? ॥ २२६ ॥ मरे । येन सपूर्ण देवताओंको जीतकर कैलास तकका बंधा दिया है । ऐसे मुझ बीरके सामने  
 तू मर्कट । तू क्यों व्ययक, बकवास कर रहा है ॥ २२७ ॥ मैं क्षणभरमें राम, लक्ष्मण, सुग्रीव,  
 हनुमान, विभीषण तुझे और सब वानरोंको मारकर खा मरना दूँ ॥ २२८ ॥ इस प्रकार रावणका गर्वचरा  
 तकर मुनकर अहूदने कहा हे बलिपशुमे विनूर्णित । हे शिवपादांगुष्ठसे मानस कैलाससे पीडित ! हे  
 जानाक्य ! तू तूने भूत ' हे श्वेतद्वीपक' त्रिपिताके हाथसे लाडित मुनवाने रावण ! मैं तेरे बलको जानता  
 हूँ । तू मां मुझ मानस है कि विष्णुके पुत्र ब्रह्मा, ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिक पुत्र कश्यप, कश्यपके पुत्र इन्द्र  
 की उहके पुत्र बालिने तुमके दुहके समय बांधकर कारागारमें डाल रखवाया । वही तुम्हारा मुख चारपाईमें  
 १३ रहनेके कारण मरे मर भूतसु भर जाता था । अहूदके इन वाक्यकी बाजोंन विठ होकर रावण  
 नन्मुत हो उठा ॥ २२९-२३३ ॥ उमने इनको आभा दी कि मार मारकर इसका मुंह बाल कर दो । तब  
 अहूद कहार हुआगो राजस हाथमे शस्त्र लेकर अहूदकी ओर मरते । उन्हें देखकर वानरीसम अहूदने अपनी  
 १४ की मांस उन सबको क्षणभरमें घराबायी कर दिया ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ तदनन्तर पुच्छसे रावणके हाथ नीच  
 कर भालि बांधकर अहूदने उसके मुखपर खूब तमाच लगाये ॥ २३६ ॥ तत्पश्चात् कहांसे उड़कर  
 १५ अहूद अकाशमार्गसे मुवेला पर्यंतपर रामके पास लौट गया । उड़ते समय रावणका  
 १६ भी उनके सिरपर बैठकर चला आया ॥ २३७ ॥ गमने अहूदकी मस्तकपर बहुत निचे जाते देखकर  
 १७ अहूद ' बलिपुत्र ' तुम इस महलकी क्यों उठा लाये ? ॥ २३८ ॥ मैंने लंकापुरी मित्र विभीषणकी अर्पण  
 १८ की है । इसलिए मैं ही मित्रकी इस बातको छु ली नहीं सकता ॥ २३९ ॥ रामकी यह बात मुनकर  
 १९ अहूद चकित हो गये जब अहूदने स्मरकी ओर भांसे की थी अपने सिरपर बकान देखकर रामसे

न जालोऽयं यथा राम प्रामादो मन्दकेन मे । स्थापितश्च तंकायाः समानीतस्त्रांतिकम् ॥२४१॥  
 पुनर्नीत्वाऽयं लंकायामेनं संस्थापयाम्यहम् । इत्युक्त्वा पश्चिन्नाथ रावणस्याज्ञयागदः ॥२४२॥  
 प्रामादं पूर्ववत्स्थाप्य लंकायां स ययौ पुनः । सुवेलादौ रावणेन्द्रं मत्वा ह्यसं न्यवेदयत् ॥२४३॥  
 यच्चकृतं तु लंकायां संवादं रावणस्य च । रामोऽपि भुत्वा उत्सवं शिष्यत्वं तं परिप्लवजे ॥२४४॥  
 अथ आगमचक्रोऽपि सुवेलादौ स्थितस्तदा । लंकया चापमादाय सुभोच अग्रमुत्तमम् ॥२४५॥  
 तेन छत्रसदस्यापि किरीटदशकं तथा । लंकायां राक्षसेन्द्रस्य प्रामादे तस्थितस्य च ॥२४६॥  
 चिच्छेद निमिषार्धेन कर्षानां पश्यतां प्रभुः । एतस्मिन्संतरे तत्र रामाग्रं तस्थितो मरान् ॥२४७॥  
 न दत्तं जानसीं भुत्वा रावणेनांगदाप्यतः । क्रोधेन महताधिष्टः सुग्रीवः प्लवगाग्रणीः ॥२४८॥  
 यथावृक्षीय लङ्कायां दशार्ण्यं राक्षसपुत्रम् । प्रामादमस्थितं छत्रहीनं प्रव्यदमानवम् ॥२४९॥  
 सुग्रीवो रावणं मत्वा जघान दृढमुष्टिना । पतयामास भूम्यां तं परमिहामनामदा ॥२५०॥  
 पकतुस्तो बाहुपुटं तुमुनं गेयहर्षणम् । उर्ध्वार्धिकगद्गदस्तः कर्षाशतश्लेदेवरी ॥२५१॥  
 तदानीञ्जर्जरांगः स रावणः कविपलनः । दुद्रुचे बाहुपुटं वन्यस्त्वा गेहं विलज्जिता ॥२५२॥  
 तदाऽऽच्छिद्य तन्मुकुटं ययौ रामं कर्षाश्वः । ननाम रावणं भक्त्या हृषं सर्वं न्यवेदयत् ॥२५३॥  
 तं समालिख्य रामोऽपि सुग्रीवं प्राह सादरम् । मामपुटं कथं बन्धो यतस्त्वूर्ध्वं दक्षाननम् ॥२५४॥  
 त्वजीवितं विषमं चेत्तर्हि किं सीतया मम । भविष्यति न सौख्यं हि मेऽद्य साहसं कुरु ॥२५५॥  
 ततो मेरीभृदंगाधैर्यैस्ते वावरोचमाः । लङ्कां स्पृष्टयामासुश्चतुर्द्वारिषु संस्थिताः ॥२५६॥  
 तदा तं मुकुटं रामोऽङ्गदाय रावणस्य च । ददौ तुष्टो दशेन्द्राय लङ्कां रोहू प्रचोदयत् ॥२५७॥

बोले—॥ २४० ॥ हे राम ! मुझे तो इस बातका पता भी नहीं था कि मेरा मन्त्रकपूर भक्तान है और मेकसे उलझकर वहाँ आपके पास तक चला आया है ॥ २४१ ॥ मैं इसको फिरले जाकर लङ्का में रक्ष आता हूँ । इतना कह और रामजी आका पाकर अगद गुरन्त लीटे ॥ २४२ ॥ वे उस प्रसादकी पूर्ववत् लङ्का में रक्षकर पुन रामक पास आ गये और नमस्कार करके सब वृत्तान्त लिखदत किया ॥ २४३ ॥ लङ्का में जाकर उन्होंने वो कुछ किया था और रावणके साथ जो संवाद हुआ था, वह सब रामसे कहा । तो मनकर रामने उनको हृदय-से लग लिया ॥ २४४ ॥ तदनन्तर श्रीगमचन्द्रजीने सुवेलादिपर लड हाकर लानापूर्वक एक उत्तम वण भद्रपत्र चढाकर छोड़ा ॥ २४५ ॥ उससे लंकाके मङ्गलपर स्थित राक्षसेश्वर रावणक इसी मुकुट तथा हजारों छत्र कहकर अणभरम वातुनके समक्ष आ गिरे । इतनेके रामके सामे बड़े मुग्धवने जब अमरके मुखसे यह सुना कि रावण सीताको देनेके लिये तैयार वही है । तब आनन्द कृपित हांकर वावरोमे भप्रणी सुगव उठकर लंका में वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कि मङ्गलपर छत्र तथा किरीटरोहित प्रत्यस्त स्पष्ट मनसे रावण बैठा था ॥ २४६-२४७ ॥ वहाँ जाकर सुगवने रावणको ओरसे एक मुक्का मारा । जिससे दक्षानन सिंहासनसे जसीनपर गिर पड़ा ॥ २४८ ॥ तदनन्तर कर्षाश्व स्पर्श तथा राक्षसेश्वर रावणका आपसमे घात भक्त्युद्ध होने लगा । वे एक दूसरेको उठा-उठाकर चित्त-रट करने लगे । जिससे कि उनके हाथ-पाँव तथा छाती लग निमंम प्रहारके कारण बड़ी घाट लगती थी ॥ २४९ ॥ अन्तमे सुग्रीवकी दारसे रावणके सब अंग अर्जित हो गये । लड रावण बाहुपुट करके लङ्काके मारे चरमे चला गया ॥ २५० ॥ उसी समय उसका मुकुट छीन्कर कर्षाश्वर सुग्रीव रामके पास आ गये और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके सब समाचार कहा ॥ २५१ ॥ रामने सादरके साथ सुग्रीवका आलिखन किंदा और कहा—हे बन्धो ! तुम हमसे बिन कह चुकस रावणके साथ युद्ध करने क्या चल गये ? ॥ २५२ ॥ वही तुम्हारे प्राण संकटमें पड़ जात तो हम सीताका पा करके भी कोन-सा रुक मानन । अरम कर्म ऐसा साहस नहीं करना ॥ २५३ ॥ बादमे वगाडा मृदंग तथा तुम्हारे भावि बाव वज्रत हुए सब वावरोपडाआदे लंकाको घेर लिया और चारो दरवाजोंको रोककर लडे हो गये ॥ २५४ ॥ तत्पश्चात् रामने वह रावणका मुकुट प्रसन्न होकर सेनापति अगदको दे दिया और लंकाको घेरनेके लिये

अङ्गदं दक्षिणद्वारं वायुपुर्बं तु पश्चिमम् । नतं येन्येव प्राग्द्वारं सुपेगं दक्षमौलरम् ॥२५८॥  
 ययुस्ते राघवं नग्वा लंकां स्वस्वयत्नैर्पुनाः । तां लंकां कुरुषुः सर्वं चतुर्दारेण वानराः ॥२५९॥  
 दशार्धोऽपि गृहं गत्वा सुर्यावज्ज्वलिकृतः । वस्यी तूष्णीं स रहसि स्मरन्मुप्रायपौरुषम् ॥२६०॥  
 माली मुमाली च तथा मान्यवान्मान्यवासायः । मातामहा रावणस्य ते समन्वय परस्परम् ॥२६१॥  
 दशाननं बोधयितुं तेभ्यस्त्वेको ययौ जरात् । मान्यवानिति नाम्ना यो बुद्धिमान्नेदमयुतः ॥२६२॥  
 प्राह तं राक्षसं वीरं प्रशान्तेनातरात्मना । मृणु राजन् वधो मेऽद्य भन्ता कुरु यथेष्टमितम् ॥२६३॥  
 यदा प्रविष्टा वगरीं जानकां रामयस्तथा । तदादिं पुण्यां दृश्यते निमिचानि दशानन ॥२६४॥  
 घोरानि नाशहेतूनि तानि मे वदतः गृणु । स्वराः स्वनिर्निधोया मेघाः प्रतिघणकराः ॥२६५॥  
 शोणितान्पमिवर्षन्ति लंकायुष्मेन सर्वदा । मीदन्ति देवलिङ्गानि स्थिद्यन्ति प्रचलन्ति च ॥२६६॥  
 कालिका पादुर्दंतैः प्रहसतेऽग्रतः स्थिताः । स्वरा गोपु प्रजापते मृषका नकुलैः सह ॥२६७॥  
 काजारेण तु पुरुषते पद्मगा गरुडेन च । कगलो विकटो बृंडः पुरुषः कृष्णपिंगलः ॥२६८॥  
 कातो गृहाणि सर्वेषां काले काले त्ववेक्षते । एतान्यन्यानि दृष्टानि निमित्तान्युद्भवति च ॥२६९॥  
 अतः कुलस्य रक्षार्थं शान्तिं कुरु दशानन । सीतां सन्कृत्य सधनां रामायाश्च प्रयच्छ भोः ॥२७०॥  
 मातामहवचश्चेन्ध आत्मा तं रावणोऽजवीन् । रावेण प्रेषितो नूनं मायमे त्वमवर्गलम् ॥२७१॥  
 गच्छ बुद्धोऽपि रभुस्त्व सोढुं सर्वं त्वयोदितम् । इतो वा कर्णपदवीं दहन्येतद्रथस्तव ॥२७२॥  
 इत्युक्तः स रावणेन मान्यवान्स गृहं ययौ । रावणापि ममां गत्या चोदयामास राघवान् ॥२७३॥  
 पूर्वद्वारं तु पूषाञ्च वज्रदंष्ट्रं तु पश्चिमम् । नरान्तकं दक्षिणं तम्रचरं च महोदरम् ॥२७४॥

वना ॥ २५७ ॥ अङ्गदको दक्षिणी दरवाजा, वायुपुर्व हुनुमानको पश्चिम द्वारपर, नतको सेनाके साथ पूर्वद्वारपर और धुवमको उत्तरी दरवाजापर जानेका कथा ॥ २५८ ॥ वे सब राघवको नमस्कार करके अपनी-अपनी सेना लेकर गये और लंकाके चारों दरवाजाका रानकर खर हो गये ॥ २५९ ॥ उपर रावण भी सुभीकक हाथसं पार स्तारक घायल हो घर जाकर एतन्तम मन मारक बैठ गया और सुग्रीवके पुत्र्य थका स्मरण करने लगा ॥ २६० ॥ तब रावणक माना माली, मुमाली तथा मान्यवान् इन तीनों आइयोंन आदसम गये की और रावणका समझानेक लिए इन तीनोंसे बुद्धिमत् तथा हलके मान्यवान् उनके पास गया ॥ २६१ ॥ ॥ २६२ ॥ बड़े शान्तिपूर्वक वार राक्षसावर रावणका समझाते हुए कहने लग - हे राजन् 'मरी मात तुम न, फिर जेवा आपकी इच्छा हो वेंसा करिएगा ॥ २६३ ॥ हे दशानन । जबसे राघवकी प्यारी सीता लंकामें जायी है, तबसे यही बराबर अपशकुन हो देखनेमें आत है ॥ २६४ ॥ वे सब मयानक और नाजके निमित्त है । उनका मैं कहता हूँ, आप सुन । मय तीव्र गजनक बन्द करने हुए लंकामें गरम खूनको सतत वर्षा करता है । निर्बालग सिद्ध रखनग आत है । वे कभी वसीगत है और कभी काँपने लगत है ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ माग लड़ा कालीकी मूर्तिएँ पीने पीते दीव निकालकर हँसती हैं । गाधोक पेटके गधे पंदा हाड हैं । बूढ़े न्याली तथा बिलियोंसे लड़त है, माँप गरुडक साथ युद्ध करत है । कभी-कभी कराल काल मिर मुझए काल-पीले पुरुषका रूप धारण करके लोगोंको पकड़ता हुआ बीजता है । इनके अतिरिक्त और भी अनेक अशकुन उकट हुत दाखत है ॥ २६७-२६९ ॥ इसलिए हे दशानन 'कुलकी रत्नाके लिये मास्ति पारण करो और सीताका आदर सत्कार करके घनुर घनक सहित शीघ्र राघवका सोप जाओ ॥ २७० ॥ यह सुनकर रावणने अपने दावासे कह कि मगरव तुम रमक द्वारा यही इस प्रकार अवर्गल (उपपठार) बातें करनेके लिये भेज दिये हो अस्तु, जो हुआ सा हुआ । अब तुम यहाँसे निकल जाओ । बुद्ध तथा सगे नाश होनेके जाने इन्की वल्ले मैंन सह ला । तुम्हारा बातें हमारे कानोंको जगाये दे रही है ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ रावणके एना कहुनपर मान्यवान् अपने घर चला गया । रावणने भी लंकामें जाकर रक्षकोंको आज्ञा दी ॥ २७३ ॥ हरनन्तर लंकाके पूर्वद्वारपर पूषाका, पश्चिमी द्वारपर वज्रदंष्ट्रको, दक्षिणी द्वारपर नरान्तकको और उत्तरी

प्रेषयामास सैन्येन वस्त्रार्थेनोपिताम् जवात् सन्वाग्नेऽपि नन्वा न रावणं संगरं ययुः । २७५ ॥  
एवं रामगवणयोः सैन्यानि च परस्परम् । ययुस्तानि सम्मुखानि संगगर्भं महास्वनैः ॥ २७६ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय सारकाण्डे  
युद्धपरिते रामरावणसेनासंगीनाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

## एकादशः सर्गः

( श्रीरामके द्वारा रावणका वध )

श्रीशिव उवाच

अथ ते राक्षसाः सर्वे द्वारेभ्यः क्रोधमुन्मिष्टाः । निर्गत्य सिन्धुपालैश्च स्वर्गः कुलैः परस्परैः ॥ १ ॥  
कुन्तैः शरैः शतघ्नीभिः संक्रम्यैः शक्तिभिर्दृष्टम् । निजधनुर्वानरानीकं महाकाया महाबलाः ॥ २ ॥  
राक्षसांश्च तदा जघ्नुर्वानस जितकाशिनः । पूर्वैर्द्रावैः पर्वतैश्च मुष्टिभिः कर्ताडनैः ॥ ३ ॥  
ते हर्षश्च गजैश्चैव रथैः काञ्चनसन्निभैः । रक्षोब्धघ्ना युयुधिरे नन्दयन्तो दिशो दश ॥ ४ ॥  
एवं परस्परं चक्रुर्बुद्धं वानरराक्षसाः । नलो जघान पद्माश्च वज्रदंष्ट्रं स मारुतिः ॥ ५ ॥  
नरातकं स तारेयः सुपेणस्तं महोदरम् । चतुर्भाशिवशेषेण निहतं राक्षसं बलम् ॥ ६ ॥  
तदांमदाद्याश्चत्वारो महाबाधमहोत्सवैः । प्रणेमु राममगन्ध जयघोषप्ररुहिताः ॥ ७ ॥  
स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा मेघनादो ययौ तदा । सर्पास्त्रद्वयाकुलं रामं चकार वंशुवानरैः ॥ ८ ॥  
रामः सम्मार दाक्ष्यं च ताक्ष्यैः सार्पैर्न्यवारयत् । ततः स्वस्थो ब्रह्मवगदतर्धानं गतोऽधुरः ॥ ९ ॥  
सर्पास्त्रहृशली व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समन्ततः । चवर्षं शरबालानि मृष्टास्त्रं मानयस्तदा ॥ १० ॥  
क्षणं तूष्णीमुवासाथ रामः स वंशुवानरैः । ततः स्वस्थो रघुवैष्टो ददष्ट पतितं बलम् ॥ ११ ॥  
मूर्च्छितं ब्रह्मपाशैस्तदा लक्ष्मणमब्रवीत् । चापमानय सौमित्रे ब्रह्मास्त्रेणासुरान् क्षणात् ॥ १२ ॥

द्वारपर महोदरको वस्त्रार्थके वानसे लघुबुद्ध करके भीष्म सेनाके साथ वन दिया वे लोग भी रावणको नमस्कार करके युद्धभूमिपर गये ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ इस प्रकार राम-रावणकी सेनाएँ परस्पर युद्ध करनेके लिए प्रीत्य गजंन करती हुई एक दूसरेके सम्मने जा दटी ॥ २७६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे 'यथोक्ता' अष्टाष्टकायां रामरावणसेनासंगीनाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

शिवजी बोले—बादमें वे सब महाकाय तथा महाबली राक्षस बड़े क्रोधक साथ दरवाजोंसे निकल-निकल कर बछीं, तलवार, त्रिशूल, म ला, बाण, तीर तथा कत्तिव लेकर वानरो सेनाको रहताक साथ मारने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ विजयो वानर भी वृषा, परशर, पर्वत, भुक्क तथा शम्पकास राक्षसोंको पीटने लगे ॥ ३ ॥ उधर राक्षस भी दशों दिशाओंको भुज्जते हुए धीड़े, हाथी तथा सुवर्णमयूर तथापर आरुह होकर युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार वानर और राक्षस आपसम मड़न लग । नलन धूम्राक्षकी और मारुतिने वज्रदंष्ट्रको मारा ॥ ५ ॥ तारेयसुत बज्रदने नरात्तकको मारा और सुपेणने महोदरका मार डाला । इस प्रकार राक्षसोंकी सेना चार भागोंसे केवल एक भाग बाकी रही और सब मार डी गयी ॥ ६ ॥ तब अंगदार्द चारों बीरोने जयज्वनि करते हुए सोल्हाह बाकेगाजेके साथ रामके पास जाकर प्रणाम किया । ७ ॥ अपने सैन्यको निहृज देखकर मेघनादने सर्पास्त्रसे अधिकार थाई लक्ष्मण तथा वानरो सहित रामको आकुल कर दिया ॥ ८ ॥ तब रामने गारुडास्त्रका स्मरण किया । उसने आकर उस सर्पास्त्रका निवारण किया । तब वह अमुर मेघनाद ब्रह्माके वरक प्रतापसे अन्तर्धान हो गया और सभी राक्षसोंकी चलायेके कुशल इन्द्रजित् बलशित होकर आकाशसे चारा तरफ ब्रह्मास्त्र द्वारा बाणोंकी वर्षा करने लग । उस समय ब्रह्मास्त्रकी सर्पादा रसनेके लिये कधु तथा वानरो सहित राम रावणके लिए भुप हो गये । तदनन्तर जब स्वस्थ होकर रावणने निहारा तो अपनी सेनाकी



भस्मीकरोमि तच्छुन्या तद्भूमिद्वजशो ययौ । दिव्यपत्नी स्वनाम्निन्दे यत् वारुजगधसौ ॥१३॥  
 वरदानाद्भक्षणम्नौ दृष्ट्वा रामः स जीविनौ । तावुवाच स्युश्चतौ युवाभ्यां यावद्वान् रणे ॥१४॥  
 गत्वाऽस्ति जीवितश्चेद्वि चाज्यस्तर्हि मिरा मम । उपायं विनयस्याद्य वानगणां मुर्जायने ॥१५॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तौ विभीषणमारुतौ । निश्राव तौ निचिन्वतौ जावयित प्रज्जम्भतुः ॥१६॥  
 उल्मुकहस्तौ त दृष्ट्वा प्रोचन्त राघवेरितम् । जीवितानपि न रामगिर श्रुत्वाऽतिहृषितः ॥१७॥  
 निर्मालिताक्षः प्रोवाच कौ युवा वायुजौ रणे । चेदस्ति जीवितस्तर्हि जीवयिष्यति वानरान् ॥१८॥  
 तदा विभीषणः प्राह त्वया न्यक्त्रांगदादिकान् । पुच्छयनेऽय कथं वायुपुत्रस्य परमादरात् ॥१९॥  
 तदा विभीषणं प्राह जावयानृक्षमत्तमः । रुद्रावदारः मज्जन् वायुपुत्रः प्रधापवान् ॥२०॥  
 न ज्ञेयः कपिरेवात्र तस्मात् त्वं विमोक्षय तदाऽत्रवीज्जावयत नन्वा स वायुनन्दनः ॥२१॥  
 यं त्वं पृच्छसि सोऽद्याह जीविनोऽस्म्यथ मारुतिः । विभीषणोऽद्वर्तय्याऽयं यस्त्वया परिभाषते ॥२२॥  
 तदा स जावयान्तुष्टौ मारुतिं वाक्यमब्रवीत् । गन्वा शीर्गनिधि वेगाद्द्रोणादि त्वं समानय ॥२३॥  
 तथेत्युक्त्वा त्वरन् गन्वा राधरंगोऽपि नमः कथधेनवा स्तोयधर्मेनेत्रलेपात्प्रदक्षिणम् ॥२४॥  
 उत्पात्य पुष्पवद्भृत्वाऽऽनयामास कपिजवान् पर्वतोद्भववल्लीनामवघ्रायाम्नीपमम् ॥२५॥  
 मुग्धं च जावयिष्यति राक्षसाञ्चेति शक्या । निहन्तान् राक्षसान्मर्वास्तदा तादयविभीषणौ ॥२६॥  
 विक्षिप्तुं सागरे तान् राघवस्यासृता क्षणान् नदीनीं च गिरि दृष्ट्वा सुपेणः स भिषावरः ॥२७॥  
 पर्वतोद्भववल्लीभिर्जावयामास तन् कर्षणम् । ततः शान्वाभृताः सर्वे समुत्तस्युर्विजृम्भिताः ॥२८॥  
 द्रोणाचलं यथास्थाने स्थापयामास मारुतिः । कुवेरार्चितदिव्यांसः प्रसृज्य नयनयु च ॥२९॥

रुद्राणां शस्त्रे मूर्ध्नि हंकार जमानपर पडा देखा । सो दमकर उन्हीन नरुमणसे नहा । ह सोमरे । वपुष  
 ग्राभी, से इन सब जगत्का भय कर दूगा । यह मनकर मेषवाः लङ्काका भाग गया । उस समय रामने  
 अपने पास ही विष्णु व काल दृष्ट तदा दृष्ट्वाक वन्दानस जहित व युष्म और विभं यणका दमकर उन दोनोंमें  
 कहा—तुम लोग गणागणम च यवद्वक पास जाओ और यदि वे जीवित हों तो उन्हें मेरा सन्देश सुनात हुए कहा  
 कि वानरोके जीवित होनेका कोई उपाय हो सक तो स.च. १. १५ ॥ रामकी आज्ञा सुनकर माइति तथा  
 विभीषण कर्षणविक समय जावयान्का आज्ञेन निरन ॥ १६ ॥ वन्दान हावाप मणाछ ले ली । यात्रत-यत्र जत्र  
 जत्र जम्बवान् मिने तो चन्द्र रामकी मदम सुना दिया । जवन्त यह मनकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥  
 आज्ञाको निर्धारित किया हुए हा व व न कि तुम्हें जाना कौन हो ? यदि वायुपुत्र हनुमान् इस रणक्षेत्रमें जीवित  
 है तो वे सब वानरोको जिला मग ॥ १८ ॥ अब विभीषणन कहा—ह जावयान् ! तुमने भयव आदि वीरको  
 उठकर बड़े आदरक साथ वायुपुत्रकी हो क्यों पूजा ? ॥ १९ ॥ चक्षुमि श्रुत जावयान् विभीषणको  
 इतर दिया कि घनवा वायुपुत्र हनुमान् साक्षान् रुद्रव जगम उत्पन्न हुए है ॥ २० ॥ उनका केवल कपि ही  
 न ममको । अब तुम उनका पत लो ॥ २१ ॥ तब हनुमान् मनस्कार काक जावयान्स कहा—॥ २२ ॥  
 जगका आप पूछ रह है, वह म मित जावयत खडा है । दूसरा जा आपसे दात कर रहा है, वह विभीषण  
 है ॥ २२ ॥ तदनन्तर प्रथम हुकर जावयान् मागतम कहा—तुम शान्वाभृता आकर मेरे द्रोणाचलका ले  
 जा ॥ २३ ॥ 'तथास्तु' कहकर हनुमान् शीघ्र चल दिव्य और गन्धर्वों द्वारा सुरक्षित तथा कथधेनुका  
 चना लगे नेत्रोंसे दिख दै दन हुए उस पर्वतक उछाड़कर कूल्की तरह शीघ्र उठा ले भाग । इधर  
 इस गच्छासे कि पर्वतोत्पन्न वीरोंको मरुतागम गुर्जावन राक्षस भी जो आयेगे, गरुड तथा विभीषणन  
 इन्हें रामकी आज्ञासे उठा उठाकर समुद्रमें फेंक दिया अब संक्षेप रूपायने द्रोणागिरिको देखकर पर्वतोत्पन्न  
 इन्द्रोंमें उन बरे हुए वानरोंको जिलाता आरम्भ किया । मरुता वे सब वानर जमाई ल लेकर खड़े हान  
 ॥ २४-२५ ॥ तदनन्तर मारुति पुनः द्रोणाचलको पर्यटन रक्त आवे और कुवेरके दिये हुए दिव्य जलको  
 बरिसाव लगाकर वे रणमें राम आई अन्तर्हिताको देखने लगे । उसी समय रावणने भी अतिनाव, प्रहस्त,

अन्तर्हितानां समाद्या दशने आपुमहवे । ततः सरोजपाथाय गच्छतः स्वयमत्रिणः ॥ ३० ॥  
 अतिनादः प्रहसन्तश्च महानाददगमुखाः । दनप्रभुर्नकुम्भश्च देवान्कनरान्तर्का ॥ ३१ ॥  
 सारणाद्यः धर्मेभ्यः युक्तः सन् । तान्मर्षानिगदाशस्ते हत्वा तस्यैव त्रिजिताः ॥ ३२ ॥  
 तदा कुम्भनिकुम्भो ह्यो कुम्भकर्गोमुनेर्नर्मा । रक्षणः प्रेषयामास युद्धार्थं नौ प्रजगमतुः ॥ ३३ ॥  
 तदा कुम्भो प्रमत्तवता निहतश्च रणानिरे । अगदेन निकुम्भश्च दनः श्रुत्वा दशाननः ॥ ३४ ॥  
 अतिकायं स्वायपुत्रं प्रेषयामास मयाम् । अतिकायेन र्मात्रिभिः कृत्वा संगममुन्वयाम् ॥ ३५ ॥  
 शरेण धानयामास लङ्कायां तच्छिखरे महत् । तदा यथा गच्छतः स स्वयं युद्धाय वेगतः ॥ ३६ ॥  
 मुहूर्त्तमत्रनर्त्यको देष्टुम् पुण्यामभिः । रणे विर्मपण दृष्ट्वा कोपाच्छक्तिं मुमोच सः ॥ ३७ ॥  
 पृष्ठे विर्मपण कृत्वा यदाग्रं स लक्ष्मण । हृदि मर्ताडितः शक्त्या पपान भुवि लक्ष्मण ॥ ३८ ॥  
 लक्ष्मण नगरीं नेतुं न यथा स दशाननः । न च वाल्मीकिस्तस्य र्मात्रिभिः शेषरूपाः ॥ ३९ ॥  
 न नेतुकामं हनुमान् हृदि मृष्ट्वा व्यपहृत्य । तेन मुष्टिप्रहारेण पपान रुधिर वसन् ॥ ४० ॥  
 आनयामास र्मात्रिभिः कारुणिकैर्दाम् । ग्वाहृदो रावणाऽपि चिन्त्याम कारुणैर्शरैः ॥ ४१ ॥  
 ततः कुट्टन सरोजं वापेन हृदि तडितः । माश्वरज रवं गुरुं गच्छो धनुरोजसा ॥ ४२ ॥  
 छत्रपताकां तरणा विच्छेद शिरसायकैः । प्रथमं च विच्छेद तत्किराटं रविप्रभम् ॥ ४३ ॥  
 ततस्तं व्याकुलं दृष्ट्वा रामो गच्छतमवर्तमानम् । गच्छाद्य लङ्कायाश्चतः शतम् एव बलं मय ॥ ४४ ॥  
 ततो लञ्जानतश्चिन्ता यथा लङ्का दशाननः । रामोऽपि लक्ष्मण दृष्ट्वा मुञ्चतः प्राह कारुण्यम् ॥ ४५ ॥  
 द्रोणावल ममार्थाय जीवयन् तथा कथाम् । तथेति स रामो ब्रूवात्तस्मान्वा स दशाननः ॥ ४६ ॥  
 मार्थयित्वा कालमेव तद्विज्ज्ञापयन्चोदयत् । स गच्छादिमवपार्श्वं तपोवनमकल्पयत् ॥ ४७ ॥  
 तत्र शिष्यः परितृप्तो मुनिवपधरः स्थितः । कारुणिकश्च दृष्ट्वा जलं पानु चिवेश तम् ॥ ४८ ॥

महानाद दगापुत्र ददगपुत्र निकुम्भ, देवान्तर्क तथा नरान्तर्क आदि त्रिजिताका भन्ता ॥ ३०-३१ ॥ सारणादि  
 देशोने भा बहू नर्मा भन्ता लक्ष्मण वापनके साथ युद्ध किया । बहू द आदि वापन उन सबको मारकर पर्वत करने  
 लगे ॥ ३२ ॥ तब कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भ तथा निकुम्भको रक्षण न युद्ध न किया भन्ता ॥ ३३ ॥ मुनिव पुत्र लक्ष्मणने  
 उनके साथ यत्र युद्ध करके उनके मिराका वापन काटकर लङ्काय फाट दिया । तब राम को लक्ष्मणके लिए  
 निजल पडा ॥ ३४-३५ ॥ उसके साथ मिय मुहूर्त्त तथा पुण्यामी लाग भा गया । रक्षण न रूपे विभीषणको  
 देखकर उपर शक्ति प्रहार किया ॥ ३६ ॥ यह देखकर लक्ष्मणन विभावणको पछे कर लिया और स्वयं  
 आग स्वयं हा गया । तिससे वह शक्ति लक्ष्मणके हृदय में लगी और वे घट नसे पृथ्वपर गिर पडे । ३७ ॥ उन्हे  
 मगरम उट स ज तेक लिय दशानन आग बढ़ा और उनका उठाना चाहा, पर प्रयावता स्वरु लक्ष्मणका एक  
 हाथ भा रावणसे नहीं गया ॥ ३८ ॥ उस समय अथनर दयकर हनुमान् रावणकी छत्र में एक मुक्ता  
 मारा । उस मुष्टिप्रहारम रावणक मुखस रुधिर निकलन लगा और वह भरतागर गिर पडा ॥ ४० ॥ तदन तर  
 मरुति लक्ष्मणका कोपरेभाभ उठा न आय । तपो रावण रक्षण स्वार होकर महतिका बगोंसे बीचन लगा  
 ॥ ४१ ॥ यह देखकर युद्ध रामने रावणके हृदयम वापन मारा और अथ तथा ध्वजा सहित रथका, सारथीको,  
 ननुयका छत्रका तथा पताकाको नेपन ताथण बगोंसे काट मिराया अर्धचन्द्राकर वापनसे उठान उसका सूर्यके  
 समान तमस्वा किगट भा पाट डाला ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ पश्चात् रावणका व्याकुल देखकर रामने कहा—जा,  
 लङ्कामे जा जा और आश्वस्त हाकर कल फिर भरा वल देखना ॥ ४४ ॥ तब रावण नीचा मुख किये लङ्काम  
 चला गया । रामने लक्ष्मणका मुष्टित दयकर मारुतिसे कहा— ॥ ४५ ॥ पुष्यवत् द्रोणावल लाकर लक्ष्मणको  
 जिन्ताओ । 'तथापु' कहकर हनुमान् घट पडा । इस बातका पता लक्ष्मणपर दशाननने कालनमसे प्रार्थना  
 काके उसका हनुमान्के रास्तमे दिष्ट जन्ते न लिए भन्ता । उसने मारकर दिमवात् पक्षके पास एक तपो-  
 वनकी रचना की ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ वही बहुतसे शिष्योंको साथ लेकर वह स्वयं मुनिवप धारण करके बैठ गया ।

मुनिना मानितमपि जरकुम्भः उद्दृष्टः । शरुतिः प्राह हसिमे देव तेन भविष्यति ॥४९॥  
 तं पुनः प्राह स मुनिस्तटाकं निकटस्थितम् । शरुतिक्षिणी विधाय त्व जलं विव यथास्तुतम् ॥५०॥  
 आगच्छाशु पुनश्चात्र सुमं निष्ठु इमां निवसम् । जानामि न नदृष्टाऽहं लक्ष्मणश्चेन्निवस्यति ॥५१॥  
 गृह्णाण यत्रान् मत्सम्भवं यत्र परपत्नि नं गतिम् । गोपितं त्वय शर्धर्वयं नं नदं नेतुमिच्छामि ॥५२॥  
 प्लवगानां जीवनार्थं लङ्कायां वेगनः कपे । मनस्व लब्धविद्यं मन ददम्य गुरुदक्षिणाम् ॥५३॥  
 तथेति शरुतिर्गन्वा कासारमपिवज्जलम् । विधाय नेत्रे तापस्वप्नवन्मकरं तदा ॥५४॥  
 सोऽपि तां दारुणामाश धृत्वास्मे मा ममार ह । वनोऽन्तरिक्षे मा प्राह दिव्यरूपा तु शरुतिम् ॥५५॥  
 पुनर्वा मुनिना स्पृश्या प्रार्थिता न रतिर्मया । दत्ता समाऽस्मिन् त्वनो मे निष्कृतिस्तेन कीर्तिता ॥५६॥  
 धान्यमालीति विरुपक्षाऽप्यगः पूर्वं भगवतरे । प्राश्रमे यस्त्वया दृष्टः शालने मर्महामुरः ॥५७॥  
 रावणप्रेषितो मार्गे स्थितस्त जहि वेगतः । तथेति शरुतिर्गन्वा मुनिं प्राह चरान्वितः ॥५८॥  
 मुष्टिं बद्ध्वा दृढां योगां गृह्णाण गुरुदक्षिणाम् । हस्त्युक्त्वा ताडयामास हृदि न मुष्टिना नदा ॥५९॥  
 पपात भुवि रक्तं स वमन् प्राणान् जहौ क्षणान् । गतः क्षारानधि गत्वा जिह्वा च यत्रमन्मया ॥६०॥  
 शोणाचलं गृहीत्वा स चायदूच्छति शरुतिः । विहायमाऽन्त्रेमेव लङ्कां तावच्च वं पति ॥६१॥  
 भरतेन शूरं मुञ्चन्वा पर्वतो भुवि पतितः । मर्तं शरुतिर्दृष्ट्वा समोऽयमिति विह्वल ॥६२॥  
 उवाच मधुरं वाक्यं कथमत्र ममागतः । जितं किं रावणेन न्वं गण न्यक्त्वा पलायितः ॥६३॥  
 एवमुक्तोऽपि भगवः पुनस्त मरुतिं वरम् । मत्वाऽयं राक्षसश्चेति तदधे निशित शरम् ॥६४॥

शरुति रचनमें मुनिका जायस देखकर उसमें जल पीनेके लिए गये ॥ ४९ ॥ मुनिने शरुतिके सम्मान  
 किया और जल पीनेके लिये उनको एक भरा घड़ा दियाया । तब हनुमानने कहा कि इतनसे मेरी तृप्ति नहीं  
 हुआ ॥ ५० ॥ तब मुनिने उन्हें एक तालाब दिखाया और कहा कि यहाँ जाकर तुम जीखेको बन्द करके  
 आनन्दपूर्वक जल पी लो ॥ ५० ॥ बादमें आकर यहाँ मर नाम शरुतिके बैठा । मुत्र जानदृष्टसे पता लग  
 गया है कि लक्ष्मण उठ खड़ा हुआ है । इसलिए अब चिन्ताका कोई बात नहीं है ॥ ५१ ॥ दूसरी बात  
 यह है कि मैं तुम्हें कुछ ऐसे मन्त्र पलाऊँगा कि निजने तुम्हें कम्बों डार। शक्ति बहुत पल्ल दिखलाई दे  
 जायगा, जिसका कि तुम ल जाना चाहते हो ॥ ५२ ॥ उसको लक्ष्मण से जाकर तुम बाबरोंको गोद्व जिला  
 स्केन हो । इस प्रकारकी विद्या मूमसे ग्रहण करनेक बाद तब पुन गुरुदक्षिणा भी देनी होगी ॥ ५३ ॥ 'दहन  
 च्छ' कहकर शरुतिने लान्छपर जाकर जल लिया परन्तु तब वह होनक कारण उस समय एक ककरने  
 जाकर उन्हें पकड़ लिया ॥ ५४ ॥ तब शरुतिने उसका मुँह पकड़कर चीर डाला । जिससे वह मकरी भर  
 गयी । पश्चात् वह दिव्य रूप धारण करके आकाशमें चक्कर मारने लगे ॥ ५५ ॥ पूर्वकालमें एक मुनिने  
 उसको दुराचार करनेके लिए कहा परन्तु जब मैंने उन्हें रति नहीं दी । तब उन्होंने मुझ मकरी होनेका शाय  
 दकर कहा कि तेरा निस्तार शरुतिसे होगा ॥ ५६ ॥ पूर्वजन्ममें मैं द्रवमाली नामकी विरुपक्ष अक्षरा यो ।  
 ३० आयममें जो एक मुनि बैठा हुआ आपसे देका है, वह शालनेमि नामकी महाकु राक्षस है । ५७ ॥ रावणने  
 उसको आपके मार्गमें बिज्ज हाथके लिए भेजा है । आप लक्ष्मण जाकर उसको मार डालें । 'मच्छी वात  
 है' कहकर शरुति मुन्त वहाँ पहुँचे । ५८ ॥ उन्होंने दृष्ट मुक्का बँधकर 'यह लो अपनी गुरुदक्षिणा' ऐसा  
 कहते हुए उसको छातामें बोरते मुक्का मारा ॥ ५९ ॥ उस प्रहारमें वह जर्मकार लुटक पड़ा । उसके मुँहमें रक्त  
 बहने लगा और सणघटमें वह मर गया । तदनन्तर क्षारमोवर जा तथा गन्धर्वोंको बँतकर द्रोणाचलको  
 जिसे हनुमान् आकाशमार्गसे जा रहे थे कि रावणमें भरतने जाण मान्छ उनके हाथमें वह पवद गिरा दिया ।  
 हनुमान् चरतको देख उन्हें अगमन सम समझकर खबर गये ॥ ६०-६२ ॥ उन्होंने मधुर वाणीमें कहा—हे  
 मम ! आप यहाँ कहसि और क्यों जा गये ? क्या आपको रावणने जेल लिया ? अगला रण छेड़कर आप  
 यहाँ भाग बचे हैं ॥ ६३ ॥ शरुतिके इतना कहनेपर भी भरतने उन्हें राक्षस समझकर मारनेके लिए एक

बाणहस्तं तमालोदयं ह्यभुकारं विधाय सः । नैवारं गणधधेनि मत्वा प्यात्वा क्षणं हृदि ॥६५॥  
 भर्तुं मारुतिः प्राह रामदत्तोऽद्य मे बलम् । रक्षयिष्ये त्वं तद्भिर ता भ्रुत्वा तं भरतोऽब्रवीत् ॥६६॥  
 बंधुता मयं रामेण कुतो नृप सभासमः । तव जातं मारुताय दंडकाण्यवामिना ॥६७॥  
 तत्तत्तं मारुतिश्चेत् सञ्जायते रघवस्य तु । भरतेनेषुणा दत्तं गिरिं धृत्वा ययौ पुनः ॥६८॥  
 लङ्कां गन्वा न बह्विभिर्जीर्यामस्य लक्ष्मणम् । जानकांश्च भरतस्य रामं वृत्तं न्यवेदत् ॥६९॥  
 पुनर्नीत्वा यथास्थानं तं संस्थाप्य सदाचलम् । लक्ष्मणो जीवितश्चेति संभाव्य भरत पुनः ॥७०॥  
 पयासाकाशमागेण लङ्कां गन्तुं मनो दधे । नृपानाकाशायामास साकेव भरतोऽपि सः ॥७१॥  
 साहाय्यार्थं रघवस्य लकां गन्तुं मनो दधे । ततः नमोऽपामर्शिनो रावणः प्राह राक्षसान् ॥७२॥  
 गच्छध्वं त्वरितं दत्ताः पानाले तौ महाबलौ । ऐरावतो महाबलश्च तथा मैरावणो महान् ॥७३॥  
 तयोर्मे कथनीयं हि युद्धवृत्तं वयस्ययोः । तथेति ते गता दत्तास्ते तद्वृत्तं न्यवेदयन् ॥७४॥  
 तौ श्रुत्वा विह्वलात्मानौ लङ्कार्या समरस्थितौ । रामं च लक्ष्मणं हनु निशार्या तौ समागतौ ॥७५॥  
 ददधनुस्तौ पुरुषस्य परिधे हि हनुमनः । कर्पानां तत्र सेनायास्तदाकाशान्महाबलौ ॥७६॥  
 निपेततुः कपानां तु सेनायां रामलक्ष्मणौ । किंचिद्विनिद्रितौ दृष्ट्वा शिलार्या मगरथमान् ॥७७॥  
 निन्यतुस्तौ शिलां क्षीय पानालं भिजमन्दिताम् । एतस्मिन्नन्तरेऽपि सेनायां रामलक्ष्मणौ ॥७८॥  
 मारुतिः पादमार्गेण तयोः पातालवापरी । एतस्मिन्नन्तरेऽपि राम लङ्कादिक्षिणदिक्कटे ॥७९॥  
 त्रिकुम्भिलार्यां स्वरपतिं कपोतीं प्राह सुरिणोः । नाथाय नमोऽस्य मे भोक्तुं स्पृहयते मनः ॥८०॥  
 स प्राहाय समानीतौ वर्तते रामलक्ष्मणौ । रमानलं हि दत्ताभ्यां देव्यग्रैर्नो वधिष्यतः ॥८१॥  
 अथ श्वस्तद्वये जाते माममानीय तेष्वप्ये । तदाकथं मारुतिः श्रुत्वा किञ्चित्तोषयुनो ययौ ॥८२॥

और तेज बाण अनुपपर बहाया ॥ ६४ ॥ उनको हाथमें बाण लिये उस मारुति भू भू करके मनमें यह सोचकर कि ये राम नहीं है ॥ ६५ ॥ भरतसे बोल कि 'हे रामका दत्त है । आज तुम देख लो ।' उनका यह वारय मनकर भरतने कहा ॥ ६६ ॥ दण्डकाण्यवामो मेरे भाई रामके साथ नम्रहान समायण कहाँ हुआ ? मी विमता पूर्वक कहो । तब मारुति भरतका सब हा मुनाकर भरत द्वारा दिये हुए उस पर्वतको पूरा उठाकर चल गये ॥ ६७-६८ ॥ लङ्का में जा तथा मरिचोग लक्ष्मण तथा जानकां जीवित करके उन्होंने रामकी भरतका समानार नष्ट मवाया ॥ ६९ ॥ फिर उन्होंने तै जाकर दत्ता के उमके स्थानपर गल आय जीत भरतको लक्ष्मणक जीवित हो उन्नका शुभ समाचार भी सुना दिया ॥ ७० ॥ उनका काम करके हनुमान पुन वही नेत्रोंके साथ लङ्का में लोट आये । तब भरतने अर्ध दाम सब राजाओंको एकत्र करके तत्पुत्र जाकर रामको सहायता देनेका विचार किया । तभी सभामें तै रावणने भा रामकोका वृत्तकर कहा- ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ हे दत्तो ! तुम शीघ्र कीय पातालमें जाकर वहाँ रहनेवाले महान् उग्र ऐरावण तथा महात् महारावण इन दोनों मेरे मित्रोंका मदक युद्धका समाचार पनाओ । 'नाथाय' कहकर बहुत वहाँ गये और उन दोनोंको सब धृत्वा लिवकर कर दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ यह सुनकर व दोनों वही अनुरक्त साथ लङ्का में आ पहुँच और रात्रिके समय रामलक्ष्मणका दृष्टा करनेके लिय रामक आगिरम गये ॥ ७५ ॥ वहाँ सब दोनोंने जानकीकी सेनाके चारों ओर हनुमान्को पू डका बना हुआ दृष्टा परिध दखा । सब महाबलान् उर दत्ताने आकाश मागेसे कूदकर कर्पियोंका सेनासे प्रवण किया । वहाँ रामलक्ष्मणको एक शिलापर युद्धभूमि सेकर सोन हुए देख उन दोनोंने उस शिला समत रामलक्ष्मणका गहा लिया और पानालमें ले गये । रास्तेमें लङ्काके दक्षिण किनारे त्रिकुम्भिला गुफामें स्थित एक गणवता कपोलिका अपने पतिसे कह रही थी कि हे नाथ ! आज पुनो नरभास सानेकी इच्छा हो रही है ॥ ७६-८० ॥ पतिने कहा-आज दो दत्त रामलक्ष्मणकी रसातलमें ले जाये हैं । ये दोनों देखीके सम्मुख मारे जायेंगे ॥ ८१ ॥ कल उनका वध हो जानेपर मैं

नावददृशं तद्द्वारि संस्थितं मकरध्वजम् म धृत्वा तं हनुमन्तं पश्यन् मकरध्वजः ॥८३॥  
 कम्बं कुतः समावातः स्ववृत्तं प्राह मारुतिः गमदूतम् तु लङ्कायाश्चार्जनीं रामलक्ष्मणौ ॥८४॥  
 निद्रितौ निशि दैन्याभ्यामथ पातालमद्य हि । तयोः शोधार्थमायातश्चेन्न वेन्मि वदस्व तौ ॥८५॥  
 तन्मारुतिवचः श्रुत्वा न प्राह मकरध्वजः । पिता मे चनेने तत्र भेदेर्णाजनिस्संभवः ॥८६॥  
 मत्तुल्या चकितः प्राह हनुमान् मकरध्वजम् । हनुमतः कुतः पत्नी नोऽब्रवीन्मारुति पुनः ॥८७॥  
 यद्वादाहं पुरा कृत्वा सागरे शनिलं कृतम् । यदा पृच्छं मारुतिना तदा तद्रूपमिदम् ॥८८॥

कठाल्लेभ्या बहिस्तपक्तः सागरे सोऽपततदा ।

मरुर्वा मक्षिनः सोऽपि तस्यां जातः सुतोऽस्यदम् ॥ ८९ ॥

मत्तुल्या मारुतिः प्राह सोऽयमेव न संशयः । तदा ननाम पितरं तथा वृत्तं न्यवेदयत् ॥ ९० ॥  
 कामाख्यां वलिं कर्तुं निधितौ पूर्वमेव हि । तत्रानेन यदोद्युक्तं तद्गुं गन्वा सुगेतयो ॥ ९१ ॥  
 यः कामाख्याः पुनः कर्तुं नयोर्दानं विनिधितम् । गच्छ देवालये गन्वा तत्र स्थित्वा हाम्ब तौ ॥ ९२ ॥  
 ततः स मार्गतिर्गत्वा प्रमरणुध्वरूपयुक् । देवालये प्रविश्याथ कषायानि स्वध मः ॥ ९३ ॥  
 नावदैन्यौ मरायानीं पूजार्थं द्वारि संस्थितौ । शनैर्देव्याः स्वर्णैश्च मारुतिम्नौ वचोऽब्रवीत् ॥ ९४ ॥  
 पूजा कार्या यथाशेष मतीरौ गमयस्वमी । वनोद्भवैः फलैः पुष्पादिभिः सम्पक् प्रपूजितौ ॥ ९५ ॥  
 वृन्कोटण्डनूर्णागी वन्यगुप्पैश्च शोभिनीं देवालयस्य किञ्चिद्दि द्वाग्मुद्रास्य वै शनैः ॥ ९६ ॥  
 मनुष्यैश्च प्रेषणीयास्तत्र मामद्य मानवी येन केन प्रकारेण यो मामद्य प्रपश्यति ॥ ९७ ॥  
 मविष्यति निश्चयेन मे ऽश्वो नाम्नयेव संशयः । तदेव्यं वचनं श्रुत्वा तहां गान्वाऽम्बिकां मुदा ॥ ९८ ॥

नर निर नरनाम ला हुआ । इस बातको सुनकर मारुति कुछ समुद्र द्वार आगे बढ़े ॥ ८२ ॥ आगे जाकर  
 उन्होंने उसका द्वारपर मकरध्वजका बड़ा दान । उस मकरध्वजका मारुतिका बकड़ लिया और पूछा—॥ ८३ ॥  
 तुम कौन हो और कहीं आये हो ? मारुतिने अपना परिचय दिया कि मैं रामका दूत हूँ । सोते हुए राम-  
 लक्ष्मणको लङ्कासे दूर दक्षिण उतारकर यहाँ पातालमें अज ही ले आये है । मैं उन दोनोंकी खोज करने यहाँ  
 आया हूँ । यदि तुमको उनका कुछ पता हो तो बताओ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ मारुतिके इस वचनको सुनकर मकरध्वजने  
 पूछा कि मेरी पिता अम्बिकाक्या हनुमान् वही कुण्डलोमें है ? ॥ ८६ ॥ यह सुना तो हनुमान्ने चकित  
 होकर पूछा—अरे हनुमान्की स्त्री ही कौन सी थी कि जिससे तु पैदा हुआ ? उसने मारुतिको उनसे  
 कहा—॥ ८७ ॥ उस हनुमान्ने उवाची जाकर अपनी पूछ मुकुन्द-छन्द की थी । उस समय उन्होंने  
 तुम जमा हुआ वस्त्रों का एक जन्म पूक दिया था । उसे एक-सच्छीन ला लिया । वस्त्र, उसीसे  
 बनाये मैं उनका पृथक् हूँ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ यह सुनकर मारुतिने कहा कि यदि ऐसा है, तब तो मैं ही  
 अम्बिकापुत्र हूँ । यह बात सच्चा सत्य है । तब मकरध्वजने अपने पिता हनुमान्को प्रणाम किया  
 और सब समाचार भी कह-नाया ॥ ९० ॥ उसने कहा कि जब वे दोनों असुर महर्षि राम-लक्ष्मणको  
पत्त लिख लका गये थे, उससे पूर्व ही उन दोनोंने राम-लक्ष्मणको कामाक्षी देवीके सामने बलिदान देनेका  
प्रणव कर लिया था । तदनुसार कल उन दोनोंका देवीक सम्मुख बलिदान देना निश्चित हो चुका है ।  
तब ही, देवालयमें जाकर खड़े हो जाओ और वहाँसे उन दोनोंको उठा ले जाना ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ तत्पश्चात्  
हनुमान् जहरणके समान झट्टा हव धारण करके देवालयमें घूम गये तथा बन्दर आकर बुधबाप लड़े  
गये । उनी समय मारुतिने भीतासे खोले जैसा स्वर बनाकर कहा—॥ ९३ ॥ ९४ ॥ बाबू तुम कौन  
देवत्वसे हो भगे पूजा कर लो और बादमें धनुष तथा तूणीरकी धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण नामके  
दो मनुष्योंको बन्धक तथा फल और पुष्पमालासे सुगोभित करके जीवित हो मेरी  
ऽम्बिकाके लिए तनिक-सी निवाह सोलकर चोरसे चोरकर कर दो । कोई मनुष्य परि धात्र  
 कामा प्रकार शनिक भी मुझको देखेगा तो वह अवश्य मर्या हो जायगा । देवीके इस आदेशको

वनभौ पूजनं दैन्यौ गवाक्षेणैव चक्रतुः । पकाभपायसादीनां राक्षसीन् प्रमुषोचतुः ॥१९॥  
 ग्रंथामृतपटांश्चापि कोटिशस्त्रौ मुमोचतुः । कोटिशः फलमारैश्च गवाक्षेण मुमोचतुः ॥१००॥  
 तन्मर्व मक्षयित्वा स मारुतिः प्राह नौ पुनः । किं दत्तं ग्रसमात्रं ये भोजनं क्षुधिनाऽऽम्बरम् ॥१०१॥  
 ददंष्या वचनं श्रुत्वा तौ दैन्यावनिस्मितौ । दूतैर्वलुश्च दडाश्च तथा स्त्रीयपुरोकमाप् ॥१०२॥  
 मक्षणीपवदार्यान्तौ गिरिनिव मुमोचतुः । राजगृह दिषु स्वेषु यद्यदस्त्वस्मि मंचितम् ॥१०३॥  
 तथापि दूतैर्गनीव देव्यं क्षीयं मुमोचतुः । तदा कोलहलआसीन्प्रतिगेहे पुरोकमाम् ॥१०४॥  
 रामोऽप्येव बालकानां मक्षयवस्त्वप्यपि कश्चिद् । ततस्तौ वन्यपुण्याद्यैर्मृषिनौ रामलक्ष्मणौ ॥१०५॥  
 धनकोदंडनूरीणौ द्वारेणैरारिनी भ्रिये । तौ दृष्ट्वा मारुतिर्नन्वाऽऽलंग्य श्रीगमनलक्ष्मणौ ॥१०६॥  
 कपाटानि तदोकाय्य दैन्ययोः स प्यनजंयन् । ततो रामो लक्ष्मणेन बहिर्देवालयतदा ॥१०७॥  
 निर्गत्य शृङ्गालेस्त्रौ जपान क्षणमावतः । सेनकान् सुहृदादींश्च तयोवाणेर्जपान सः ॥१०८॥  
 पुनस्तौ जीवितौ दैन्यौ पुनश्चेन निषानितौ । शतवारं हतावेव नामीन्मृन्युमनयोऽनरा ॥१०९॥  
 ततोऽनिविस्मितौ भूत्वा त्वरन्गन्त्वा स मारुतिः । इतस्तनो भ्रमन्पूर्यां नारीं रहसि सन्धिनाम् ॥११०॥  
 ऐरावतभोगपत्नीं पप्रच्छ मरणं तयोः । सा प्राह नागकन्याश्च क्लेनानेन धरिता ॥१११॥  
 मैरावतोऽपि सां नित्यं दुष्टबुद्ध्याश्च पश्यति । उभाभ्यामपि च कौडां दानं नास्ति बलं मयि ॥११२॥  
 मित्रं त्वेको विपुस्त्वेकस्त्रिति दःस्तं तयोर्मम । अनस्तयोर्वधे तुष्टिर्मम वापि मविष्यति ॥११३॥  
 मारुते यदि रामो मां स्वस्त्रियं हि करिष्यति । तर्हि कथयाम्यद्य तयोमृत्युर्पतो भवेन् ॥११४॥  
 तच्छ्रुत्वा मारुतिः प्राह यदि श्रीगममारतः । न मविष्यति ममस्ते मचकस्तर्हि ते पतिः ॥११५॥

मुनकर दोनों देवोंने समझ लिया कि आज देवी भौ को मारि हमार मरुत हई है ॥ ११५ ॥ बादम  
 दोनोंने गवाक्षभांसे ही देवाका पूजन किया । बतागे, मिठाई, मा-पूए तथा खीर आदि भी मगराक्षसे  
 भीतर डाल दिया ॥ १०० ॥ करोड़ों पञ्चायृतके घरे मन्दर डंडने और करोड़ों फलोंके डेर वहीसे भीतर  
 डाल दिये ॥ १०१ ॥ वह सब खाकर मारुति कुतः उनसे कहने लगे—क्या तुमने कवलमात्र भोजन दिया  
 है । मैं तो अभी बहुत भूखी हूँ ॥ १०२ ॥ देवीके इस वचनकी मुनकर के दोनों दैत्य बड़े विस्मयमें पड़ गये  
 और अपने दूतों द्वारा दूकानोंका माल तथा मगराक्षियोंके मख खाद्य पदार्थ मृगवाकर उसके पर्वतमहा  
 डेरको भीतर डाल दिया । अपने राजगृहमें भी जो कुछ खानेपीनेकी चीजें संचित कर रखी थीं, वे  
 भी नीकरोसे मंगवाकर देवीको समर्पण कर दीं । इसमें पुरवासियोंके प्रत्येक घरमें बड़ा भारी कोलाहल  
 मच गया । बच्चोंको खानके लिए भी कहों कुछ नहीं बचा । तदनन्तर कोदण्ड ( वलुष ) तथा सूगौर ( तरकस )  
 धारण करिरे हुए रामलक्ष्मणकी धम्प पुण्यांसे पूजा करके द्वारके रास्ते वीरमें देवीको मर्षण कर दिया ।  
 उन्हें देखकर मारुतिने नमस्कार किया और उन दोनोंने हनुमान्को हृदयसे लगाया । अब हनुमान् निवाह  
 कोलकर बाहर आये और उन दोनों दैत्योंको ललकारा । बारम्बार म-लक्ष्मण भी देवानयसे बाहर निकल  
 आये और उन्होंने गरसबुदायकी वर्षा करके उन दोनों राजसोंको क्षणभरमें मार डाला । १०८—१०९ । पर  
 वे दोनों राखल फिर जी गये । रामने फिर उन्हें मारा तो फिर जी गये और फिर मारा । इस प्रकार उन  
 दोनोंको उन्हने सौ बार मारे । परन्तु उनकी मृत्यु नहीं हुई ॥ १०९ ॥ तब चकित होकर भावति उनकी मृत्युके  
 उपायकी कांजमें हथर-उधर भ्रमण करने लगे तो नारीके एक एकान्त स्थानमें स्थित ऐरावतकी भागपत्नी  
 ( रावत ) को देखा और उससे उन दोनोंके मरणका उपाय पूछा । उसने कहा कि मैं एक नागकन्या हूँ । मेरे  
 साथ ऐरावतने कन्यात्कार किया है ॥ ११० ॥ १११ ॥ वैरावण भी मुझे कुदृष्टिसे देखता है । इन दोनोंको रतिदान  
 देनेकी सामर्थ्य मेरेमें नहीं है ॥ ११२ ॥ एक मेरा मित्र है और एक मनु है । पर उन दोनोंमें मुझ दुःख ही  
 मिश्रता है । अतः इन दोनोंके मारे जानेपर मुझको तो आनन्द ही होगा ॥ ११३ ॥ किन्तु हे मारुते ! यदि राम  
 मुझे अपनी स्त्री बतावे तो मैं वह उपाय बताऊ सकती हूँ, जिसमें कि वे दोनों मारे जा सकें ॥ ११४ ॥ यही

भविष्यति रामचन्द्रश्चक्षेन्पुङ्गवा तमाह मा । अमरानकदा पूर्वं वालं कटकगोपितान् ॥११६॥  
 मोक्षयामासतुम्ही हि तेन तुष्टाश्च पटवदाः तावचुस्ते युशब्धं हि मग्नाद्रक्षितं वयम् ॥११७॥  
 यथा तथा युवा चापि ग्लामो मग्नाद्वयम् इवपुङ्गवा ते मित्राश्चात्र ते नीत्वाऽमृतमृतमम् ॥११८॥  
 नट्टकविद्वन् स्पृष्ट्वा ते प्रकुर्वन्ति मनीषिणो । अमरगन्ते तयोर्निद्रास्थाने मन्यधुना कपे ॥११९॥  
 कोटिशब्दान्मर्दयन्मोऽपि तान्मर्दयन्क्षणात् । तत्रैकं शरणं प्राप्य अमरं माह मारुतिः ॥१२०॥  
 कुरु बन्धकगर्भं त्वं यत्तुभुक्तकविन्दयन् । तैराश्रयभोगपत्न्याः पदुपशोऽपि तथाऽकरोत् ॥१२१॥  
 ततो निहन्त्य तो दैत्यो पुनर्वर्णं गृह्णहः । अर्धिपितृ तयोः क्वान्ते राज्ये तमकरध्वजम् ॥१२२॥  
 यावद्गतुं मनश्चक्रे तावन्मरुतिनाऽर्धितः । नगकन्यागृहं गन्वा नानाविश्वविचित्रितम् ॥१२३॥  
 दृष्ट्वा तां वारुणदत्तां वन्द्यलङ्काश्मण्डिताम् । शृत्वा करेण तद्वस्त्रं किञ्चिन्मृत्वा स्मिताननम् ॥१२४॥  
 सक्करं मक्षकं भग्नं स्वयान्तेन गृह्णतः । तनयनया प्रार्थितः स रामश्चोऽपुनश्चवीत् ॥१२५॥  
 त्यक्तवा देहं भुवः गन्तुं भूया ब्राह्मणकन्यका । तद्वद्वज्रा चिरं कालं तृतीये न्वत्तु जन्मनि ॥१२६॥  
 द्वापरे द्वापकयां हि सप्त पत्नीं भक्षिष्यमि । तद्वामचक्रं धृत्वा रामाग्रेऽग्रे प्रविश्य सा ॥१२७॥  
 कन्याकुसुमी नाम्नायां कृद्धिब्रकन्याऽदिभोगेभमि । मारुतेः स्तब्धपत्न्योऽभून्दागमो मुदान्वितः ॥१२८॥  
 राज्ये कृत्वा यन्त्रिणं च लक्ष्मणमकरध्वजः । अकरोत्तं स्तब्धपत्न्यं शेषं अन्त्याण्डधारकम् ॥१२९॥  
 ततः क्षणात्तुष्टुमर्त्तुर्नौ लंकां भोगमलक्ष्मणा । भोगमलक्ष्मणा दृष्ट्वा गुर्याशयांश्च गततः ॥१३०॥  
 नावातिष्ठ मुहुनन्वा रभून्तोऽपूरिताः । रामोऽपि सकलं वृत्तं मुप्राशदीन्यवेदयत् ॥१३१॥

एतत्परं मरुतिने कहा कि यदि भोगमलक्ष्मण राज्य कुशाग्र गच्छतः तदा तदा ना राम तुष्टुदे पति वर्गे ॥११५॥  
 एवं 'तुष्टु' कहकर उसने कहा कि पूर्व समयमें एक बार य. ५० के द्वारा काट कर व्यापित अमरीको  
 त्त तैराश्रय-भोगपत्न्या दृष्टा दिता था । इसमें समुद्र होकर उन अमरीको उन क्षाम कता कि मुझ दाना  
 ने हम लोपांका यन्त्रो बकाश है ॥११६॥ ११७॥ इत्यन्ति वेस भा होगा, हम तुम दानोको मु-पुमे रवा  
 करगे । एतत्ता कहकर वे सब भैवर वहीं रहने लगे । वह, ये भैवर ही हम समय उत्तम अमृत लाकर  
 हमको विन्दुओंसे इस दोनोके रक्तके रस करके वायस्व न मजीव का दिया बरन १ । ह रूप 'व भैवर अनी  
 को उन दोनोके शयनक्षेत्रों विद्यमान है ॥११८॥ ११९॥ वे द्वापकया मन्ताम है । तुम उह मार दाना ।  
 तत्त कहनाल्लगा इतमान्ते उकर सणभगमे उन सब भैवरोको मार दाना । उनमसे शरणन व य दृष्ट एक  
 दैवतसे माहतिव कहा - ॥१२०॥ तुम जाकर गवागका भोगपत्न्य, क पल्लवका भोगमलक्ष्मण द्वापक द्वारा  
 गवा दुर कंधेकी वन्धु बन्दर हो अ-दगमे लक्ष्मणा बर हो । रैवरेमे वेसा ही दिता । ॥१२१॥ वादम राम-  
 कन्दमे वाणसे उन दोनो राक्षसों को मार दाना और उनके स्थानमें गजरासनपर मकरध्वजम् अभिविष्ट कर  
 दिया ॥ १२२॥ इसका करके उन्हीने इस ही वहीने कन्दके वीरगो की, यो ही मरुतिने रामसे प्रार्थना का कि  
 शप नागकन्यके घर चलकर अनक चिर विचित्र माता देखे ॥ १२३॥ यत्ता तथा अन्त्याण्डागमे पण्डित मुन्दर  
 दृष्टवाली इस कन्याका हाथ पकड़े तथा कुछ हेमकर उसके पल्लु कर बैठकर अपने भारसे उसक पल्लुको तोड़  
 जाती । यह सब कर लेनेके बाद इस कन्यासे प्रार्थित रामने उनसे कहा- ॥१२४॥ १२५॥ तू इस दहको छोड़-  
 कर पृथ्वीपर जा । जहाँ ब्राह्मणकन्याना शरीर धारण करके बहुत कालक तप कर-के बाद तामने जन्म तथा  
 दानके युगमें तू मेरी पत्नी बनगी । रामके सुन्दर तथा अश्वर वायुके, मुनकर वहु रामके साधन ही अग्निम  
 उत्पन्न कर गये । ॥१२६॥ १२७॥ जन्मान्तर्गमे बहु व-पु-कुमारों नामकी द्वि-व-या होकर पृथ्वीपर उत्पन्न हुई ।  
 एवं राम मरुतिके कन्देपर प्रसन्ननाम्नक आकृष्ट हुए ॥ १२८॥ मरुतिनेनर भकरध्वजन भी अपने राजका  
 पत्त मन्त्रीको सौध दिया और अन्त्याण्डको शरण करनेवले शेषके अवतारस्वरूप लक्ष्मणको अपने कंधेपर  
 बैठा लिया ॥ १२९॥ इस प्रकार दोनों भाई राम-लक्ष्मण क्षणभंग्य लड्डा जा पड़े । श्रीराम तथा लक्ष्मणकी  
 स्तम्भर गुप्ताव मोहि सब जानर वह प्रसन्न हुए और बारम्बार भालिङ्गन तथा प्रणाम करने लगे । रामने श्री

दैन्यौ रामेण निहन्तौ श्रुत्वा सदासि रावणः । गक्षमाश्चकितः प्राह पूर्वकृतं मयान्वितः ॥१३२॥  
 मानुषेणैव मृन्मये छादं पूर्वं पिनामहः । अतो नारायणः मां शान्मानुषोऽभून्ममंशयः ॥१३३॥  
 रामो दशरथिर्भूत्वा मां हतुं समुपस्थितः । यदाऽनरण्यः पूर्वं हि मम हन्तौ दीक्षितो मया ॥१३४॥  
 शमश्च तदा तेन क्षयवशोऽहमेव हि । उत्पन्नमेव मम शत्रुं परमात्मा सनातनः ॥१३५॥  
 मम गत्र त्वां पुत्रपौत्रवर्धनं न हनिष्यति । इत्युक्त्वा मम गच्छ । नाहं योऽनुना ममयो मम ॥१३६॥  
 भयागतो गधवो मां समरे ग हनिष्यति । शिरोऽथ कुम्भकर्णं तमानयध्व न्यरान्विताः ॥१३७॥  
 वतस्ते तां गुहां गन्वा वच्छासेन विकर्षिताः । यानायाते प्रचक्रम्णे कुम्भकर्णोदरे मृदुः ॥१३८॥  
 तदेकत्र बाहुपार्श्वेऽलं कृन्वाऽथ गक्षमाः । गन्वा तदनिर्गम्य नित्यमुत्सृज्य द्रुमैः पदैः ॥१३९॥  
 शिलाभिस्ताडयामासुश्चाश्वैरुर्ध्वचूर्णयन् । काष्ठभारैर्बहादाह देहे चकुन्नुपाश्रया ॥१४०॥  
 तदा प्रबुद्धथोत्थाय सूकरान् महिषान् वगन् । कोऽपि स्वमुखे भिष्यत् जलवापीर्निशोप्य सः ॥१४१॥  
 गन्वा नन्वा राक्षसेन्द्रं बोधयामास रावणम् । एकदाऽहं वनं गच्छात्त नारदं मुनिम् ॥१४२॥  
 पृष्टवांस्त्वं कुत्र यासि कुतश्चागमनं कुतम् । ममां प्राह देवलोकादयोध्यां प्रति गम्यते ॥१४३॥  
 रावणादीन् स्थे हतुं विष्णुर्जानोऽत्र मानुषः । देववाक्यान्वर्गयितुं रामं मन्त्राभ्यहं जयान् ॥१४४॥  
 इत्युक्त्वा मां गतः सोऽथ प्रेषयामास रावणम् । इति श्रुत्वा मया पूर्वं तवाग्रे तस्मिन्नेदिनम् ॥१४५॥  
 अतोऽप्येताद्य रामाय सीतां सस्य कुरु प्रभो । इति तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्तं यचोऽनवीत् ॥१४६॥  
 निद्राव्यामेऽक्षिणी तेऽथ गच्छ निद्रां मुखं कुरु । तद्वधाः क्रुधचने भुज्या नन्वाऽथ रावणम् ॥१४७॥

वहीना रावण रावणाचार मुख्य कर्तिकी कह सुनाया । १३० ॥ १३१ ॥ उपर भर। सभाम रावणने जब ऐ। रावण  
 तथा मंगवणकी भुत्तुवा रसाचार मना ती धरराकर मयभान भावन अयना पदवृत्तान्त राक्षसोस कहने  
 लगा ॥ १३२ ॥ उसने कहा कि पिनामह यद्वाने मुझे पहचने हैं यह मन्त्रा है कि तेरा भरण मनुष्यके द्वारा  
 होगा । इससे शक होता है कि ये राम स ज्ञान नारायण ही मनुष्यरूप धारण करके आये हैं , इससे संदह  
 नहीं है ॥ १३३ ॥ इन रामने मुन नारदके लिए हा दशरथपुत्र वतना स्वाकार किया है और यहाँ आकर  
 उपस्थित हुए हैं । जब मैं पुत्रवत्सल्य ( दीक्षाको प्राप्त या मन्त्रद्वयनिरत ) अनरण्य नामके सुदक्षी  
 राजाका मार डाला था । १३४ ॥ उस समय राजने मुझे शाप दिया था कि मेरे वंश सनातन मुख्य  
 परमात्मा उत्पन्न हुए ॥ १३५ ॥ वे तुम्हें पुत्रपौत्र तथा वाचवो सहित मारेंगे । इतना कहकर रावण  
 स्वर्ग चले गये । बरा, अब वहा मम आ गया है १३६ ॥ राम गुन स्मरण अवश्य मारगे तुम्हें  
 आकर शीघ्र भू-भरणको भणकर यहाँ ले जाओ ॥ १३७ ॥ वाचमव सब जब उस गुफामें गए, जहाँपर  
 कुम्भकर्णका मारा था । तब तो उसके लम्ब तथा शल्वान् ज्वायमें आनर्पित हुँकर वे सब वग्न-वार उसके  
 गेटमें आने जाते रहे ॥ १३८ ॥ यह देखकर वे बड़े चकराये और एक एक से मिल तथा बाहुबलका आश्रय  
 लेकर किसी प्रकार उसके शरीरके पास पहुँचे । वहाँ जाकर इतने हुए वे रातो तथा पड़ोस पाटकर उसे  
 जमाने लगे ॥ १३९ ॥ तबपर बहूतरे पत्थर फट पाड़े तथा अट्टासे चुचकवाया, पर उसकी नींद नहीं टूटी ।  
 तब राजापां आग स उसपर बहुतस लकड़ीक डर डालकर जलाने लगे ॥ १४० ॥ तब वह किसी प्रकार उठा  
 और कनोडो सुअर तथा भाट-भाट भैंसाका साथ तथा जलपान करके उसने एक आवलीको मुखा दिया ॥ १४१ ॥  
 तत्पश्चात् वह राक्षसेन्द्र रावणके पास गया और समझाकर कहने लगा कि एक बार मे वनमें गया था । मैंने  
 वहाँ नारद मुनिको देखकर पूछा- ॥ १४२ ॥ है मह मुने ! आप कहींसे आये और कहाँ जा रहे हैं ? उन्होंने कहा  
 कि मैं देवलोकासे आया हूँ ॥ १४३ ॥ वहाँ रावणादिको मारनेके लिए साक्षात् नारायण अवतरे  
 हैं । उन भगवान् रामको देवताओंके कथनानुसार जन्म करीया स्मरण करानेके लिए मैं योसे आ रहा  
 हूँ । १४४ ॥ इतना कहकर वे चले गये । उन्होंने ही रामको भेजा है । इस प्रकार जो मैंने सुना था, सो कह  
 सुनाया ॥ १४५ ॥ इसलिए तुम सीता रामको सम्पण करके वनमें भिषता कर लो । यह सुनकर



जत्राद्यर्थो म युद्धापोल्लघ्व प्रयादमुन्नतम् । कुम्भकर्णं नतो दृष्ट्वा कृपणा भयत्रिहलाः । १४८॥  
 चक्रुः पलायनं यत्नं समपाद्यैमुपगताः । कुम्भकर्णं नत्र दृष्ट्वा प्रणतम विभाषणः । १४९॥  
 उद्यच्च प्रणतो भूत्वा सथा राज्ञोऽतिशोभितः । सोऽन्ता रत्नाय देहानि तेन धिग्धिक्कृतम्वहम् । १५०॥  
 तच्छ्रुत्वाऽहं गायत्रय गेहा कर्ममुपगतः । तच्छ्रुत्वा चतुरचनं कुम्भकर्णमनमववात् । १५१॥  
 सम्पत्कृतं नराय प्रत्य मय्ये म । स्थिता भव युद्धस्थायः परो वाऽथ ज्ञायते न मयाऽद्य हि ॥ १५२॥  
 स्तो कथु नमस्कृत्य गानपाद्यमुपगता । कुम्भकर्णोऽपि दृष्ट्वाभ्यां पादाभ्यां पेशयन्दहन् । १५३॥  
 चचार वानरी सेनां तत्र दृष्ट्वा कर्मधर्मम् । विशूकेनाथ न भित्वाऽऽनयादाम पुर्णं तुल्यः । १५४॥  
 मार्गोऽस्वस्थ म सुप्राय कर्णो घ्राण गिरानेव । शिवा यया गघरदं सोऽपि पार्श्वमजितः । १५५॥  
 पुनर्पथी रणभुर तं दृष्ट्वा रघुनन्दन । विद्याच निशिर्नेत्राणः सोऽपि गघं द्रुमेर्नेत्रैः ॥ १५६॥  
 ताडयामास सान् वीर्यतिवये रघुनन्दन । वायव्याभ्येण चिच्छेद नदस्ता मयुधा क्षणत् ॥ १५७॥  
 शिवाद्युपवायानं नन्दन वीर्य गघव । दानद्वन्द्वो निशिर्वादायस्थ पदद्वयम् । १५८॥  
 चिच्छेद पतिनी पादो लङ्का द्वारि मदास्थनी । निकृ तस्मिन् गदाऽपि कुम्भकर्णोऽतिभाषणः । १५९॥  
 उडवामुखवदकश्च वदाद्य गघनन्दनम् । अभिदुष्ट र विनदन् गद्वन्द्वयम् यथा ॥ १६०॥  
 अपूरयच्छिराग्रं माधवेन्द्रदृष्ट्वा न । शम्भूरितवक्रोऽपि चुक्रोशानिभयकरः ॥ १६१॥  
 अथ सूर्यप्रतीकशर्मद शर्मनुत्तमम् । मुनीव तेन चिच्छेद कुम्भकर्ण शरी मद्म् ॥ १६२॥  
 तथा खे देववाय नि नद कुमुदमुद्राभिः । वरुणस्य गघं नृपुत्रादिवैः सवः ॥ १६३॥  
 पितृव्य निडन श्रुत्वा विपरा चारि रङ्गलम् । गद्वन्द्वे मास्ययामास स्वं म पश्याय र्म यलम् ॥ १६४॥

'वर्णो' कहा । १४९, 'अन्ता' का अर्थ 'अन्त'। 'रत्नाय' का अर्थ 'रत्न'। 'देहानि' का अर्थ 'देह'। 'धिग्धिक्कृतम्' का अर्थ 'धर्म'। 'तच्छ्रुत्वा' का अर्थ 'श्रुति'। 'गायत्रय' का अर्थ 'गायत्री'। 'गेहा' का अर्थ 'गो'। 'कर्ममुपगतः' का अर्थ 'कर्म'। 'तच्छ्रुत्वा' का अर्थ 'श्रुति'। 'चतुरचनं' का अर्थ 'चतुर्भुज'। 'कुम्भकर्णमनमववात्' का अर्थ 'कुम्भकर्ण'। 'सम्पत्कृतं' का अर्थ 'सम्पत्'। 'नराय' का अर्थ 'नर'। 'प्रत्य मय्ये म' का अर्थ 'प्रत्य'। 'स्थिता भव' का अर्थ 'स्थिति'। 'युद्धस्थायः' का अर्थ 'युद्ध'। 'परो वाऽथ' का अर्थ 'पर'। 'ज्ञायते' का अर्थ 'ज्ञान'। 'न मयाऽद्य हि' का अर्थ 'न'। 'स्तो कथु' का अर्थ 'स्तो'। 'नमस्कृत्य' का अर्थ 'नमस्कार'। 'गानपाद्यमुपगता' का अर्थ 'गान'। 'कुम्भकर्णोऽपि' का अर्थ 'कुम्भकर्ण'। 'दृष्ट्वाभ्यां' का अर्थ 'दृष्ट'। 'पादाभ्यां' का अर्थ 'पाद'। 'पेशयन्दहन्' का अर्थ 'पेश'। 'चचार वानरी' का अर्थ 'चचार'। 'सेनां' का अर्थ 'सेना'। 'तत्र दृष्ट्वा' का अर्थ 'तत्र'। 'कर्मधर्मम्' का अर्थ 'कर्म'। 'मार्गोऽस्वस्थ' का अर्थ 'मार्ग'। 'म सुप्राय' का अर्थ 'म'। 'कर्णो घ्राण' का अर्थ 'कर्ण'। 'गिरानेव' का अर्थ 'गिरा'। 'पुनर्पथी' का अर्थ 'पुनर्पथ'। 'रणभुर' का अर्थ 'रण'। 'तं दृष्ट्वा' का अर्थ 'तं'। 'रघुनन्दन' का अर्थ 'रघुनन्दन'। 'ताडयामास' का अर्थ 'ताडयामास'। 'वीर्यतिवये' का अर्थ 'वीर्य'। 'रघुनन्दन' का अर्थ 'रघुनन्दन'। 'शिवाद्युपवायानं' का अर्थ 'शिवा'। 'नन्दन' का अर्थ 'नन्दन'। 'वीर्य' का अर्थ 'वीर्य'। 'गघव' का अर्थ 'गघव'। 'दानद्वन्द्वो' का अर्थ 'दान'। 'निशिर्वादायस्थ' का अर्थ 'निशि'। 'पदद्वयम्' का अर्थ 'पद'। 'चिच्छेद' का अर्थ 'चिच्छेद'। 'पतिनी' का अर्थ 'पतिनी'। 'पादो' का अर्थ 'पाद'। 'लङ्का द्वारि' का अर्थ 'लङ्का'। 'मदास्थनी' का अर्थ 'मदास्थनी'। 'निकृ तस्मिन्' का अर्थ 'निकृ'। 'गदाऽपि' का अर्थ 'गदा'। 'कुम्भकर्णोऽतिभाषणः' का अर्थ 'कुम्भकर्ण'। 'उडवामुखवदकश्च' का अर्थ 'उडवा'। 'वदाद्य' का अर्थ 'वदाद्य'। 'गघनन्दनम्' का अर्थ 'गघनन्दन'। 'अभिदुष्ट र' का अर्थ 'अभिदुष्ट'। 'विनदन्' का अर्थ 'विनदन्'। 'गद्वन्द्वयम्' का अर्थ 'गद्वन्द्वय'। 'यथा' का अर्थ 'यथा'। 'अपूरयच्छिराग्रं' का अर्थ 'अपूरयच्छिराग्र'। 'माधवेन्द्रदृष्ट्वा न' का अर्थ 'माधवेन्द्र'। 'शम्भूरितवक्रोऽपि' का अर्थ 'शम्भू'। 'चुक्रोशानिभयकरः' का अर्थ 'चुक्रोशानिभयकर'। 'अथ सूर्यप्रतीकशर्मद' का अर्थ 'अथ'। 'शर्मनुत्तमम्' का अर्थ 'शर्मनुत्तम'। 'मुनीव तेन' का अर्थ 'मुनीव'। 'चिच्छेद' का अर्थ 'चिच्छेद'। 'कुम्भकर्ण शरी मद्म्' का अर्थ 'कुम्भकर्ण'। 'तथा खे देववाय नि नद' का अर्थ 'तथा'। 'कुमुदमुद्राभिः' का अर्थ 'कुमुदमुद्राभि'। 'वरुणस्य गघं' का अर्थ 'वरुणस्य'। 'नृपुत्रादिवैः' का अर्थ 'नृपुत्रादिवै'। 'सवः' का अर्थ 'सव'। 'पितृव्य निडन' का अर्थ 'पितृव्य'। 'श्रुत्वा विपरा चारि' का अर्थ 'श्रुत्वा'। 'रङ्गलम्' का अर्थ 'रङ्गलम्'। 'गद्वन्द्वे' का अर्थ 'गद्वन्द्वे'। 'मास्ययामास स्वं म पश्याय र्म यलम्' का अर्थ 'मास्ययामास'।

हनुष्का स्मरितं गन्धा मेघनादो निकुम्भिलाम् । रक्तमाल्याभारधरो हननापोषचक्रमे ॥ १६६ ॥  
 स्थूथं दिव्यशस्त्रार्थं जयार्थमभिचारकैः योगिनां वष्टाघोभृश्या गुहायां सस्थितो रहः ॥ १६६ ॥  
 तोयानिलानलव्याघ्रमर्षराक्षसकटकैः आत्मनः पणितः कृत्वा पारिधानं सप्त दुर्गेमान् ॥ १६७ ॥  
 होमकुण्डाध्वजैः सर्पैश्च कृष्णभोमुखम् । रक्तपुष्पांवरधरो रक्तचदनलेपितः ॥ १६८ ॥  
 रक्तपुष्पाभरा गुह्या सर्पैश्च दनेच्छाभिः । सर्दिगम्रपलाशोदुम्बरभल्लानकास्थिभिः ॥ १६९ ॥  
 समिद्धमोषमोषादिभल्लानकफलैरपि । अकृतिवचाजपूरकृष्णधनुर्गोचरैः ॥ १७० ॥  
 अपामर्गवदरिकानलदालकैर्बभूवैः । नरमुण्डः समामैश्च विभीतकफलादिभिः ॥ १७१ ॥  
 सर्पपण्डैश्च मण्डूकैस्त्वरिदुस्तापुलोमभिः । नानावनचराणां च भार्मरपि समन्त्रकम् ॥ १७२ ॥  
 इत्थं चकार होमं स निर्माण्य नयने रहः । विभाषणीऽपि तं दृष्ट्वा होमभृशं मयावहम् ॥ १७३ ॥  
 प्राह रामाय सकलं होमार्थं दुरात्मनः । समाप्यते चेद्दोषोऽयं मेघनादस्य दुमतः ॥ १७४ ॥  
 स चाजस्यो भवेद्राम मेघनादः सुरासुरैः । अतः श्लाघ लक्ष्मणेन घातयिष्यामि रावणिम् ॥ १७५ ॥  
 यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः । तेनैव मृष्ट्यानादृष्टा जहाणाऽस्य दुरात्मनः ॥ १७६ ॥  
 लक्ष्मणोऽयं यदाऽयोध्यापुर्यास्त्रामतुर्निर्गतः । तदादि निद्राहारादाम्र प्राप्तः स रघूत्तम ॥ १७७ ॥  
 सेवार्थं तव गजेन्द्र शार्तं मयामिदं मया । तवा रामा तथा गन्वा लक्ष्मणेन विभाषणः ॥ १७८ ॥  
 हनुमन्मण्डूकैर्वीरैर्यथैः सर्वदा हृतः । लक्ष्मणं दर्शयामास होमस्थानं निकुम्भिलाम् ॥ १७९ ॥  
 अङ्गदस्कंधपाकृष्टं बहुयस्त्रेणाश्व कंटकान् । उदालयामास सीमात्रजघान राक्षसाच्छरैः ॥ १८० ॥  
 गारुडास्त्रेण सर्पाश्च पर्वतास्त्रेण दाहूणः । अनलं श्वातमकरोत्पञ्चन्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥ १८१ ॥  
 प्राशयामास हनुमाननिलं क्षणमाश्रितः । जलं संशोषयामास वायव्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥ १८२ ॥

मेरा थल दख ॥ १६४ ॥ इतना कहकर मेघनाद नुरन्त निकुम्भिला नामकी पश्चिमी गुफामें गया । वहाँ लाल फूलाकी माला तथा लाल यस्त्र धारण करके वह हवनकी तयारी करने लगा ॥ १६५ ॥ दिव्य रथ, दिव्य अस्त्र तथा अजलाश्व लिए अभिचारक्रिया करनेका निश्चय करके वह गुफाके भीतर सांगीर्जाकटक पास एकान्तमें जा बैठा ॥ १६६ ॥ उसने वहाँ अपने सुरक्षाके लिये अग्नि जल वायु सिंह सप्त राक्षस तथा कांटोमें मगने बागी और सात दुर्गे बना लिये ॥ १६७ ॥ होमकुण्डके ऊपर भागमें अघोमुख करके एक काला सर्प बाँध दिया । तदनन्तर रक्त पुष्प तथा रक्तचक्र धारण करके कराराम रक्त वन्दन लगाया ॥ १६८ ॥ लाल फूल, अदोह, गुजा, सन्तो, चन्दन, ईल, बेर, आम पलाश तथा मलयवका लकड़िये, समिधा, उई, मास, भल्ल तलकी गुडली, आक, नम, मोक्षपूर, कृष्ण धनुरा नैद्यु, चिचिडा, वर, चित्रक, दालक, बभूक, नरमुण्ड, चरवा, विभीतकफल, सपसण्ड, मण्डूक, चर्म, दात, स्तापु, आत, मर्म तथा नाना वनचरोके भास आदिस दसने मन्त्राञ्जनापूर्वक एकान्तमें हवन प्रारम्भ कर दिया । सहसा विभाषणने होमके प्रधानके घुँकी उड़ने देखा ॥ १६९-१७३ ॥ तब उन्होंने रामसे कहा-दर्शिये, उस दुरात्माने होम आरम्भ कर दिया है । यदि उस द्रुवुद्धि मेघनादका होम निर्विघ्न समाप्त हो गया तो फिर ह राम ! वह दैत्यो तथा दक्काग्राम भी अगेय हो जायगा । इसलिए शीघ्र लक्ष्मणके द्वारा मैं उसका मरवा दूँगा ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ जो मनुष्य बारह वर्षतक निद्रा तथा आहारस रहित रहा हो, उसीस सहजान मेघनादकी भृशु कहाँ है ॥ १७६ ॥ लक्ष्मण जब अयोध्यासे निकले है, तबसे निद्रा तथा आहार त्यागकर इन्होंने आपका सेवा की है यह मैं माला मालि जानता हूँ । पञ्चान् रामकी आज्ञासे लक्ष्मण तथा हनुमान आदि वीर सनापतियोंका साथ लेकर विभाषण वहाँ पथ और लक्ष्मणको निकुम्भिलाका होमस्थान बताया ॥ १७७-१७९ ॥ वही जाकर लक्ष्मणने अङ्गदके कन्धपर सवार होकर अग्निबाणसे कांटोको जलाकर राक्षसोंको मार डाला ॥ १८० ॥ उन्होंने गारुडास्त्रसे सर्पों तथा पर्वतास्त्रसे दातवाले सिंह आदि जन्तुओंका समाप्त कर दिया । उन्होंने मेषास्त्रसे अग्निकी शान्त किया । हनुमानने लगभरमें

परिषेच्यपि नष्टेषु तत्राट्ट्या रिपोः स्थलम् । यथाबुन्वाटितु कोधाद्बुभान्वोभिनीयटम् ॥ १८३ ॥  
 तदा तं दर्शयामास चटस्थं योगिनांगुहम् । गुहापिधानपपाणं हनुमान्वादघट्टनः ॥ १८४ ॥  
 चूर्णीकृत्य गुहामध्यं मेघनादं व्यनर्जयन् । तदा स मेघनादोऽपि न्यक्त्वा होमं स्वराजितः ॥ १८५ ॥  
 कोधाविष्टो रथे स्थित्वा ययौ लक्ष्मणममुत्तमम् । शर्मन्तः पर्वतार्थमर्मभिर्द्रिनिर्जोकिभिः ॥ १८६ ॥  
 चकार लक्ष्मणेनैव युद्धं तत्तारकामयम् । सौमित्रिरपि घण्टीघ्नं रथमध्वान्धनुर्ध्वजम् ॥ १८७ ॥  
 तद्बृद्धं कवचं सूर्यं विभेदं सप्तमं वनः । ततः सोऽन्येन धनुषा मुक्त्वा शणान्महामशः ॥ १८८ ॥  
 पद्मशमेवास्मिन् भूम्या चिच्छेद कवचं रिपोः । तदा बृद्धः स सौमित्रिवाणेनैद्रजितश्च हि ॥ १८९ ॥  
 सशरं दक्षिणधुरं धारयामास नद्गुह्ये । तदा स कामहर्षेण मेघनादोऽतिविह्वलः ॥ १९० ॥  
 दृष्ट्वा लक्ष्मणं हनुं घृत्वा शुलमनुजमयम् । तं चापि मार्गणेनैव यश्रुतं चापमन्कम् ॥ १९१ ॥  
 मेघनादस्य सौमित्रिश्छिन्वा गवणमभिधौ । धारयामास लकाया तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १९२ ॥  
 तदा स्वादाय स्वमुक्तं शवणिलक्ष्मणं ययौ । लक्ष्मणोऽपि शरं दिव्यं गमनं मार्कतं शुभम् ॥ १९३ ॥  
 सुषोच रघुनीकस्य कृत्या चित्तमदागतम् । स शरः सशिरश्चाप श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ॥ १९४ ॥  
 प्रमथ्येद्रजितः कायान्पातयामास तच्छिरः । ततः प्रमुदिता देवाः सौमित्रे पतितुष्टुः ॥ १९५ ॥  
 पुष्पाणि विकिरन्ती वै चकूनीगजनं मुहुः । गतधमः स सौमित्रिः शम्भमापूरयद्रणे ॥ १९६ ॥  
 भ्रुत्वा मीना शंखनादं त्रिजगत् प्रेम्ण सादरम् । शुभाय सकलं वृत्तं तदा कथामनुतोष मा ॥ १९७ ॥  
 ततस्त्वन्मेघनादस्य शिरः संगृह्य मारुतिः । राघवाय दशयितुं स्वयामास लक्ष्मणम् ॥ १९८ ॥  
 तदा स वानरैर्युक्तोऽद्भुतस्थः सविभीषणः । नानावायनिनादंश्च सौमित्रौ गणवं ययौ ॥ १९९ ॥  
 नत्वा तं दर्शयामास मेघनादस्य तच्छिरः । तद्बृद्धाऽऽदिश्य सौमित्रि रामस्तुष्टोऽभिरुचदा ॥ २०० ॥

बाबु पी लिया और लक्ष्मणने बायध्वान्वमे जलको सुन्वा दिया ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ उन सब घण्टों नष्ट हो  
 जानपर भी जब अमुका स्थान नहीं दिखाया दिया तो हनुमान बुद्ध होकर योगिनावरको ओर गये वहाँ  
 उभे योगिनेबटवल्लो गुहा दल गये, सुरल गुणने द्वारपर लगे हुए, बाबरको हनुमानने आत बाबर  
 नृप कर डाल्य और भीतर जाकर मेघनादका मन्करा । तब मेघनादने भी तुरन्त होम छोड़ दिया  
 , १८३-१८५ ॥ तदनन्तर काचक साथ रथपर सवार होकर वह लक्ष्मणके समक्ष गया और अत्यन्त शक्ति, पर्वत  
 तथा मन्त्रजाली नाचकारे उनको जीतनेको इच्छासे आवाक बुद्ध करने लगा । लक्ष्मणने भी अत्यन्त शक्ति  
 छोड़कर उसके अश्व, रथ, धनुष, वदना, हनु काच नग सायपाका क्षणभरमे छिन्न भिन्न कर दिया । तब  
 मेघनाद भी दूमरा बाण से लया नीच हो खड़े हो द्वाारा क्षण छोड़कर अपने यवचको काटन लगा । उस  
 समय लक्ष्मणने कृपु होकर अपने बाणसे द्वाजितका बाणके मल्लि दाहिना ह.५ काटकर हथीके घस्मे गिराया  
 वह विह्वल होकर मेघनादने बाय हाथमे विष्णु स्मृत्वा ॥ १८६-१८७ ॥ वह उनमे विजय लेकर लक्ष्मणका  
 मानके लिए रौश । तब मेघनादके विष्णु मल्लि बाणें लणको भी विष्णु मुख लक्ष्मणन बाणसे ही काटकर  
 मेघणके दास गिराया । यह देखकर लक्ष्मणे मदक बड़ा आश्चर्य हुआ । १८८ । १८९ । तब मेघनाद मुँह फाड़-  
 कर लक्ष्मणका आर सपटा । तब लक्ष्मणन भी रामका ध्यान करके मेघनादसे अक्रिय दिव्य बाण छोड़ा । उस  
 व गन जाकर गगरो सहित, शोभायुक्त तथा शरीरान्तर कृतज्ञान से मेघनादके शिरका घडसे अलग करके घरतीपर  
 गरा दिया । यह देखकर देवतागण अतीव प्रसन्न हुए और लक्ष्मणका स्तुति करने लगे ॥ १९३-१९५ ॥ वे  
 नन्तर अमुकोकी वृष्टि करके आरता उतर्जन लगा । तब लक्ष्मणने शान्त होकर निजयज्ञस्य वज्रया ॥ १९६ ॥  
 वह शोभनाय मुनकर सीताने मित्रताको लेना और उसके मुहमे युद्धका समय समाचार सुनकर वे बहुत  
 ही प्रसन्न हुई ॥ १९७ ॥ इधर हनुमानजीने मेघनादका शिर लेकर रामका दिल्लानक लिए लक्ष्मणसे शोध  
 बाणको कहा ॥ १९८ ॥ तब लक्ष्मण विभीषण और वानरोंको साथ से तथा सङ्गदके कंठपर सवार होकर  
 अमक बाणे-बाणके साथ रामके पास गये ॥ १९९ ॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामको प्रणाम किया और

रावणोऽपि भुजं दृष्ट्वा श्रुत्वा पुत्रवधं तथा पशान् पुत्रदूषेन सभार्या मृजितो भुवि ॥२०१॥  
 क्रोधान्न सङ्गमुद्यम्य ययौ हंतुं चिद्दृष्ट्वा । सुशर्धो नमः संधार्या मयी तं मन्यवारयन् ॥२०२॥  
 ममङ्ग तन्करं धृत्वा मरुद्वने स न्यगन्धिवनः । उवाच नानिमपुक्तं वचनं रावणं तदा ॥२०३॥  
 कथं नाम दशग्रीवः क्षीणस्त्रीवधमिच्छामि प्रम्माभिः सहितो युद्धं कृत्वा रामं मरुद्वणम् ॥२०४॥  
 प्राप्स्यसे जानकीं शीघ्रमिन्पुक्तः स न्यवर्तन् । मुलौचनाऽपि कांतस्य सुतं कैदुर्भूषितम् ॥२०५॥  
 दृष्ट्वा यमार्णवं स्वीयपुत्रः पतितः सुवि तज्ज विलापमकरोत्सृज्या तन्वीरुपाणि सा ॥२०६॥  
 भुजोऽपि मांस्त्वयनुतां स लब्ध्वा भूम्या क्षणेन हि । स्थलोद्दिवाश्रितं प्राह मां खेदं भज भामिनि ॥२०७॥  
 साक्षाच्छेषशमधर्तुर्दोऽहं मुक्तिमागतः । न्व चापि गन्वा श्रीरामं तन्वा याचस्व सच्छिरः ॥२०८॥  
 तच्चांदास्पर्शितं रामोऽपि तेतां न विज्य याहि माम् । मुलौचना पटित्वा सा लिखितान्यक्षराणि हि ॥२०९॥  
 नृणां पृष्ट्वा रावणाय मदादर्थं विभूषिता । यया गार विविरुषा ना हृष्टा वानराचमाः ॥२१०॥  
 मीनेयं रावणेनाद्य भयाद्रमं विमार्जिता । इति मन्दादृष्ट्वा गीताया दर्शनेच्छया ॥२११॥  
 शिविकां वेष्टयामासुस्तान्वा तां न मुलौचनाम् । शिविकावाहशम्पेनाययु श्रीगारवं पुनः ॥२१२॥  
 मुलौचनाऽपि श्रीरामं वनाम शिरसा मुहुः । भर्तुः शिरः कांतमार्णां तां गमो राक्षसमवधीत् ॥२१३॥  
 कृपया तव भर्तारं करोम्यस्य सज्जोषितम् । मा निश्रम्बाद्यवद्वत्त्वं रोचते चेददस्य मम् ॥२१४॥  
 तदा सा प्राह श्रीरामं पुनः मीमित्रिहस्यतः । कुतो भवेन्नन्मरणं मोक्षदं शीघ्रम्य मा ॥२१५॥  
 इत्युक्त्वा राघवं दन्वा सभिर्न कपिराकृतः । कृत्वा शिरः पतेन्नत्र लब्ध्वा ना भर्तुमिति ताः ॥२१६॥  
 लङ्कायास्तौ समानीय भुजौ गत्वा त्रिकुम्भिलाम् । भर्तुर्देहेन सयोज्य विवेश प्रि यथाविधि ॥२१७॥

मेघनादका चटा सिर दिखाया । उस उल्लसत रावण लक्ष्मणकी छत पर तथा शिव की बहुत आनन्दित  
 हुए ॥ २०० ॥ रावणने पत्नी पुष्पा कटा दृष्टा होकर दया । दया उसको मृत्यु मृत ना मृति होकर मर्याद  
 ही जमीनपर गिर गया । २०१ । नारद वह पशुपतिवतः स्वतः स्वरूप । नारद गिर गया । उस  
 समय मणार्णव नामके युद्धमान भवेन उसका । गीता और मन्दादृष्ट्वा होकर प्रगत होकर उस पकड़कर  
 नानिपुक्त लब्धेश्वर इन हुए कथा । २०२ ॥ २०३ । तं दशग्रीवः श्रीरामायण आगत नवहवा करना पाप  
 है । हमारे साथ चलकर युद्ध करने । राम के साथ पशुपतिवतः मन्दादृष्ट्वा होकर प्रगत होकर उस पकड़कर  
 सममानेपर रावण शान्त हो गया । उधर मुलौचना जगत् पात्र मरुद्वतः का कृत्यनिर्माण तथा बाणपुक्त  
 होय अपने स मन पृथ्वी पर दण्ड दण्डकर राज पुण्यादिक । मरुद्वत का शिरः काट कर लाने । २०४ । २०५ ।  
 तब इस कटी भुजा पर जगत् जगत् अपने समान जमानपर न भागने । तब दशग्रीव तं दशग्रीव । तब दशग्रीव  
 मुलौचनाका अश्व मन दिश । २०६ ॥ २०७ । उसने यह भी किया कि मैं साक्षात् गोपावतार लक्ष्मणके  
 बाणस मरकर पुष्पिका परत हुआ हूँ । अब तुम मेरी काम करके मर गिर सीता । ये तुमको अवश्य  
 मर गिर दे दगा । इस निष्कर्ष ल तथा अग्नि में प्रवेश करने मर । मुलौचना उन रक्षाशिरः  
 दशग्रीवों पकड़कर प्रवेष्ट हुई । तत्पश्चात् रावण और मन्दादृष्ट्वा आगत ले तज्ज अश्व धारण करके तह  
 व अश्व म औकर धारणा पास चली । वानरागण उसको देखकर यह समझा कि रावण ने दण्डकर सीता रामके  
 पास भेज दी है । ऐसा समझकर वे इनके दर्शनको इच्छा से दौड़ पड़े ॥ २०८ २०९ ॥ पास जगत् धारणाको  
 पर लिया पर अब पशुपति होकर लगे पकड़कर कि गद दशग्रीव है तो वे सब वानर रामके पास दौड़ गए  
 । २१० । मुलौचना श्रीरामके पास पहुँची तो शिर नवाकर प्रणाम किया और पशुके शिरको प्राणिक लिये  
 प्रार्थना की । तब रामने कहा—॥ २१३ ॥ मैं तुमपर कृपा करके कुम्भार पशुका अग्नि कर देता हूँ । तुम अग्निमें  
 प्रवेश करनेका विचार छोड़ दो । बल्कि, यह पशु है ? ॥ २१४ ॥ उसने कहा । हे गृहगज ! फिर ऐसे मोक्षप्रद  
 लक्ष्मणके हाथसे मृत्यु इन्हे कहाँ प्राप्त होगी ? इसलिये अब आप कहें न जिलाएँ । २१५ ॥ इतना कहकर उसने  
 फिर रामको प्रणाम किया और कपिराज मुगधके आज्ञाद्वारा पशुके शिरको पाकर हमने हुई वह भवति

सुलोचना दिव्यदेहा वैकुण्ठ पतिना ययौ । रावणोऽपि मुहन्मित्रैः पुनर्योद्धुं ययौ गम् ॥२१८॥  
 ततो रामेण निहताः सर्वे ते राक्षसा युधि । लङ्कायां रावणः क्षिप्तः शरेण राघवेण यः ॥२१९॥  
 ततः कुन्वा रामाग्निः कृत्रिम मयहस्तनः । ययौ मीनां दशयिर्न रावणोऽशोककाननम् ॥२२०॥  
 एतस्मिन्मन्तरे ब्रह्मा बोधयामास जानकीम् । कुनमस्ति रावणेन कृत्रिमं गममच्छिरः ॥२२१॥  
 तद्दृष्ट्वा मा भजन्मया स्वेदं स्वमधुनाऽधले । इति मयाप्य तां मीनां ब्रह्माऽन्तधानमाययौ ॥२२२॥  
 रावणोऽपि समागच्छ दशमामास नच्छिरः । मीनां प्राह हतो रामस्त्वधुना स्व भजन्मयाम् ॥२२३॥  
 तदा साऽधोमुखी प्राह नयवाह शिरोनि हि । रामवर्णश्च पश्यामि पतिशानि रणांगणं ॥२२४॥  
 इति तद्वाक्शराधाननाडितः स दशाननः । ययौ तूर्णं स्वयं मेढं लङ्कायाऽवनमन्दा ॥२२५॥  
 अथ रामाङ्गया सर्वे लङ्कां प्राकटमडिताम् । ईषिताश्चऽहस्तास्ते वानराः कोटिशः क्षणात् ॥२२६॥  
 ज्वालामायसुः सप्त दशाना वहिं मुहूर्गदुः । तदा कोलाहलमार्वाञ्जलादाहं पुनः यथा ॥२२७॥  
 दग्धां स्वनर्गां दृष्ट्वा स्वगृहाण्यपि रावणः । दृष्ट्वा दग्धानि कपिभिमंघास्त्रं समुने जवान् ॥२२८॥  
 तेनासीदनलः शान्तमददृष्ट्वा कषयो ययुः । ततः स रावणः शुक्रवचनाद्विदमि स्थिताम् ॥२२९॥  
 गुरां प्रविश्य चैकाने मीना हे मं प्रवक्रमे । लङ्काद्वारकपाटादि वदुष्या सर्वत्र यस्तनः ॥२३०॥  
 होमद्वय्याणि सगृह्य यान्मुक्तानि यथा पुनः । रक्तावगादिनो मुण्डमाक्षी मेनस्तनम्विनः ॥२३१॥  
 परिस्तीर्षाथ शुश्राणि होमकुण्डमवनतः । आदशाहवालकानां शिरोभिर्ममिलोहितैः ॥२३२॥  
 एव स विपुषानार्थं चकार हवनं गृहः । उन्मिथ धुत्रमालोक्य राम प्राह विभीषणः ॥२३३॥  
 यदि होमममाभिः एषाक्षदाऽज्ञेयो भवेद्यम् । ततो रामो हरीन्मवर्त्तप्रपणामास सादगम् ॥२३४॥

गलेपर रखकर जोड़ दिया । २१६ ॥ पश्चात् नकाय पतिनी के लिये उसे गिलाकर मयानिष्ठ पतिके कलेरके साथ अग्निमें जलकर ली ही गयी ॥ २१७ ॥ तदनन्तर सुलोचना दिव्य देह धारण करके पतिक साथ वैकुण्ठ चली गयी । ऊपर रावण पुनः बन्धुओं तथा मित्रोंको साथ लेकर रणभूमिमें मुट्ट करने गया । २१८ ॥ वहाँ रामने तब राजाको जो मारकर रावणका राणमें उठाकर नकाय पैक दिया ॥ २१९ ॥ तदनन्तर रावण मयदावके हाथसे रामका नकली मस्तक बनवाकर सीताको दिव्यरातेके लिए अशोकवनमें गया । २२० ॥ वहाँ इसी बीच ब्रह्माने सीताको पहले ही बता दिया था कि रावण रामका नकली सिर मुझे दिखायेगा । यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये । इसका बाद रावण उनका पास पहुँचा और रामका मस्तक दिखलाते हुए कहा—हे सीता ! देखा, मेरा रामका प्यार इतना है । अब तूमे मेरी सेवा करनेके लिये तैयार हो जाओ ॥ २२१-२२२ ॥ यह सुनकर सीताने न वे मुख करके कहा—मैं तो रामके बाणसे कहकर गणमल्लीमें गिरे हुए गम हो सिरोको दसना चाहता हूँ । २२३ ॥ सीताके इस वाक्यकी वागमें ताड़ित होकर दशानन उन्मिथ हो मोर दूँह नीचा करके चुन्वाय अपन महत्तम चला गया ॥ २२४ ॥ तबो रामकी आज्ञासे करोड़ों वानर रावण पासके पूले से लेकर प्रागाँव ( हवमियों ) से युधित रंजित नगरीमें पुन चले ॥ २२५ ॥ उन्होंने अचानकसे बाणों औरसे आग लगा दी । उस समय नकाय प्रथम नकादहनकी ही तरह महान् कोलाहल तथा इहोकार मचान लगा ॥ २२६ ॥ रावणने मगर तथा अपन मकानाको जलने देखकर बेधाम्ब छोड़ा ॥ २२७ ॥ उससे रामका गान्त देखकर कर्पिसमूह धाम गया । पश्चात् रावण दैत्यगुरु कुम्भकार्यके कथनानुसार एकान्तकी एक गुफामें गया और मौन धारण करके होम करने लगा । उसने बीतरफासे लंकाके दरवान अष्टी तख्त बंध कर लिये ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ पहले मेरा जो-जो हवनके द्रव्य बहे है, वे सब एकट्टे कर लिये । उसने अपने गम करीरमें लोह सपट लिया । गलेमें मुण्डोकी माला पहिन ला । मृत पुरुषके गर्दनको आसन बनाया ॥ २३० ॥ होमकुण्डके चारों ओर मय रख लिये और इस दिनमें प्रथम उत्पन्न बलकोके सिर तथा मांस और स्मिर म एकान्तमें जगुओंके नज़रके लिये हवन आरम्भ कर दिया । ऊपर उर होमके धुँओंको देखकर विभीषणने नमसे कहा—॥ २३१ ॥ २३२ ॥ हे राज ! यदि होम निर्विघ्न समाप्त हो गया तो रावण सर्वथा जयेय हो

प्राकारं लक्षयित्वा ते गन्वा रावणमन्दिरम् । हन्वा गश्ममृन्दं नद्गुहायुक्ततत्परम् ॥२३५॥  
 न ददृशुर्गुहाडारं यत्र होमं चकार सः । तत्र च भग्मानाम् प्रभाते कर्मव्रतया ॥२३६॥  
 विभीषणस्य भार्या तान् होमस्थानममुष्ययन् गुहापिधानपाषाणानगदः पदघट्टनैः ॥२३७॥  
 मूर्ध्नि यित्वा रावणञ्च ताडयामास मूर्ध्निना वानगमनेऽपि तं धुर्धनद्वयमामृगद्वयम् ॥२३८॥  
 न दत्तं वानरा दृष्ट्वा सूर्णीमिव स्थितं त्रिषु ममानयन्केशपाशे घृन्वा मदोदरी शुभाम् ॥२३९॥  
 विलपतीं मुक्तनीवीं विह्वलां हनकचुकीम् दृष्ट्वा त्यक्त्वा तदा होममुदतिवृत्तगन्धिवः ॥२४०॥  
 ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रोतृवातातिकम् ततो मदोदरी प्राह कुरु न्वचनं मम ॥२४१॥  
 दत्त्वा सीतां राघवाय राज्ञ्ये कृत्वा विभीषणम् तदर्थं मयारुण्य कर्तुमर्हमे वै मुखम् ॥२४२॥  
 ततस्या वचनं श्रुत्वा तं न प्राह दशाननः रामो विष्णुश्च मामीना जानामि प्राणवृद्धये ॥२४३॥  
 रामहस्तादर्थं लब्धुं हता सीता पुरा मया । रामहस्ताभ्यक्तदेशे गच्छामि परमं पदम् ॥२४४॥  
 त्वया कार्या क्रिया मे हि प्रविशुस्वानल ततः । ततः सुखं मया मुक्ता गमिष्यमि पर पदम् ॥२४५॥  
 हन्युक्त्वा प्रपयी धौर्ध्वं रथे स्थित्वा त्वगन्धिवः । राजद्रोहादिनिर्गच्छभये मुण्डी चिलोक्तिः ॥२४६॥  
 मुकुटः पतिनाश्रिप्तः सरिशो रावणो हृदि । ततो ययौ रथभ्रष्टं चक्षुः निशितः शरैः ॥२४७॥  
 विधाय कुत्रिणीं सीतां मयेन स दशाननः । पडयता वानराणां च स्वयमेव तं वधान वै ॥२४८॥  
 दिव्येन शितसंज्ञेन दृष्ट्वा ते तु प्लवगमाः । हाहंत्युक्त्वा दुःखितस्ते ययुः रामं निवेदितुम् ॥२४९॥  
 तावद्वेधाः समामन्य रामादीन् प्राह सादरम् । कुत्रिमेव हता सीता या स्वेदं भजनाय हि ॥२५०॥  
 ततोऽप्लवर्धनमभमद्विधिक्षेपेऽपि प्लवगमाः । रामादा मयवचनेन तुष्टा मुह्यन्ति निरयूः ॥२५१॥

आर्यमा । तब रामन सब वानरोका सादर बुलाकर मुहूर्ते नियम सेना ॥ २३४ ॥ वे सब वरवोत्सा लीचकर रावणके मन्दिरमें चले गये । उन्होंने वहाँ उस गुफाकी रक्षा करनेमें जे राजाको मार डाला ॥ २३५ ॥ परन्तु जहाँ रावण हवन करता था, उस गुफाकी दरवाजा किसीको नहीं मानेगा या । तब प्रातःकालके समय विभीषणकी स्त्री मरमान हाथके मन्त्रके जे सबको हामस्थानका दरवाजा बना दिया । द्वारपर लग हुए पाषाणकी छान मारपर अगले पीछे दिना और भीतर जाकर रावणको मुक्कीसे मार डाला । अन्यान्य वानर भी उस वृक्षमें पाटने लग , २३६-२३७ ॥ फिर भी रावणकी चपचाप बैठा दबकर वानर सबकी स्त्री मन्दादरीकी केश पकड़कर वहाँ खिंच लाये । २३८ ॥ अगला मुन्दरी स्त्रीका जोना टूट, मुक्तकच्छ वानरहित तथा विह्वल देखकर रावण शमन अउरी ७ क ३३५६६ दृष्ट्वा २४० । इस प्रकार एक राजका भङ्ग करके सब वानर रामके पास भाग गये । तब मन्दोदरीन कह-हे नाय । तुम अब भी मरी वान भान लो । २४१ ॥ सीता रामका देकर विभीषणको लंकाका राज्य दे दो और वर साथ चरकर परम लय करो । तुमको रत्न में भस्म प्राप्त होगा । स्त्रीका बात सुनकर दशाननन कह हे प्राणवन्धु । मैं जानता हूँ कि राम साक्षात् विष्णु तथा सीता साक्षात् लक्ष्मी है ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ यह जानकर ही मैं रामके हाथसे मरनक लिए सत्ताका यहाँ ले आया हूँ । रामके हाथसे मरकर मैं राम पर प्राप्त करूँगा ॥ २४४ ॥ बादमें तुम भी मेरी क्रिया करके तथा अग्निमें सगा दे कर सावपूर्वक भरे साथ परम धाम प्राप्त करोगा ॥ २४५ ॥ इतना कह तथा रथपर मँडार हाकर वह लडाईके लिए चले पड़ा । राजमहजस निकलत ही उसका फिर मुहूर्ते हुए एक मुन्दी दिखायी दिया ॥ २४६ ॥ जमता चित्त विचित्र मुकुट भी गिर पड़ा । यह देखकर रावण मनमें धवगया । फिर भी तुमने समझभूमिसे आकर बहुत नजासे वाणीकी वर्षा की । २४७ ॥ तदन्तर मयदानवसे एक सबका सीता बनवाकर उसने वहाँ वानरीक सामने अपने रथपर रखकर बाट डाला , २४८ ॥ तब पारवान्ता उल्लाससे सीताको कटती देख हाहाकार करते हुए सब वानर यह समाचार रामके पास निवेदन करने गये , २४९ ॥ इतनमें सहजाने आकर राम आदिकों सबे आदरसे समझाकर कहा कि यह कुषिण सीता मारो गयी है । तुम लोग कुन्ती मत होओ ॥ २५० ॥ इतना कहकर बड़ाजा मन्तर्धान हो गये और वे सब वानर और राम आदि वीर बहुधाक्य-

तदा त मानलिः क्षीय देवेन्द्रचचनारुधम् । शशास्त्राजिमहिनमहानिप्लजशोभितम् ॥२५२॥  
 वञ्छप्रममायुक्त राघवाय न्यवदयन् तमारुह्य तदा रामश्चकार कदन मदनम् ॥२५३॥  
 आश्रयेन तदाश्रये देव देवेन राघवः । अस्त्रं राक्षसजस्य जघान परमाश्रुचिम् ॥२५४॥  
 ततस्तु तसृजे घोर राक्षसः सार्वभौमम् । गमः सर्पास्तनो दृष्ट्वा मोषणांश्च मुपौच सः ॥२५५॥  
 असीः प्रविहने युद्धे रामेण दशकधरः । पातन्यं समृजे घोरं वायव्यास्त्रेण राघवः ॥२५६॥  
 तदस्त्रं विनिवार्यामो बह्वयस्त्रं यमृजे पुनः । पर्जन्यास्त्रेण पोलस्त्यश्चकार विफलं तदा ॥२५७॥

नामानामयुतं तुरगनियतु मार्द्वस्थानां शतं पत्तानां शतकोटिनाशमपये त्वेका कथया नृतिः ।

एवं क्षोटिकचघनर्तनविधावका प्वनिः क्रिक्रिणेविंशताः महारथेनाभ्युज्जितेः कोददघटाग्रे ॥२५८॥  
 तदा ये कौतुकं द्रष्टुं समाजगम् । मुग मुदा । राघवाः क्रियमायथा विमानशून्यस्थिताः ॥२५९॥  
 तदाऽशनिध्वजं रम्य शार्णाक्षिच्छद राघवः । न दृष्ट्वा रामचन्द्रोऽपि ध्वजहीनं तथ निजम् ॥२६०॥  
 मारुतिं प्राह वेगेन क्षण निष्ठु भवजोषणि । तथेभ्युक्त्वा मारुतिः त गालमुत्पात्य वंगतः ॥२६१॥  
 यत्ना रामस्य दिग्बे तस्मिन्मर्था स्वयं मुदा । न मारुतिप्लजं दृष्ट्वा राघवः मधमंगणे ॥२६२॥  
 तलं लभ्य मातलिनं तुरगान्शायुनदनम् । एन्द्रं धनुस्तच्चच्छद नवचाणसवगान्धवः ॥२६३॥  
 वातात्मजमातलिनीं मृच्छतीं पतितीं भुवि । क्षणमात्रेण स्वस्थोऽभूत्तदा स बाधुनन्दनः ॥२६४॥  
 तदा रामो वायुपुत्रकन्धे स्थित्वा ग्णातजरे । चकार तुमुलं पृष्ठं राघवेन भयावहम् ॥२६५॥  
 राघवः परिधण्य मन्ताद्यं मारुतिं हृदि । चकार भूच्छनं वगात्पपात स पुनश्चाव ॥२६६॥  
 तदा सस्मार रामोऽपि स्वरश्च ममंगंगणे । तावद्वयः शृगादयायया खदद्यतः स्थितः ॥२६७॥

स सृष्ट हाकर बुद्ध करनक' निकर पद ॥ २५१ ॥ इसी समय एन्द्रक जाड़ा-सार उनका सागरी मात  
 अम्भ गम्भाम अर नया घाटीमें तुन हूँ, रमका अकर रमक कास आरा और इनसे रमयर सकार हाकर  
 करनक लिए कहा तब रामन उस रमयर सव रह कर महान् बुद्ध किया ॥ २५२ ॥ २५३ ॥ बरवाका बा  
 वालाम परमधन रामन रक्षसाक राज. रावगका आनय अम्भ अपन आनय अम्भस तथा देवात्त दशर  
 शान्त किया ॥ २५४ ॥ तब अम्भविन् रावणन धार गगन्य छाडा । रामन सर्वाका दलकर गारुडारण छ  
 ॥ २५५ ॥ इस प्रकार जब रामन बुद्धका अवन अम्भ स प्रविहृत कर दिया, तब रावणने एक दूसरा भय  
 मयाम्भ फका । रामन उनका उतर बाधुभन्धम कर दिया ॥ २५६ ॥ इस अम्भका निवारण करके रामने उर  
 आनयारन सठपा । तब रावणन उस चपा अम्भस पिपन कर दिया ॥ २५७ ॥ दस हुमां हाथा, दस लाल घाड  
 डेडु सी रथ तथा एक कर्गह चल सतकाव नष्ट हातपर एक कथ-बवा नुय हाया है । इस प्रकारक कराड  
 कथन्धन्य हातपर एक किकर्गिण र घटका को धवन हुया है, परन्तु रगुपति रामक कथन आधे प्रहरनक  
 घण्टका अटारव करनम हा बासा किकर्गियाका दजि हूँ ॥ २५८ ॥ इस समय इन कौतुकका दर्शनक लिए  
 आक राम सटका विमानपर आरुह्य दवना, गन्धर्व, विन्नर तथा यलन्नाग इकट्ठे हो गये ॥ २५९ ॥ तभा  
 गवणन अपन आणस रामक वज्र तथा ध्वजाका काट दिया । रामचन्द्र अपन रमक ध्वजासे हीन दलकर  
 मारुतसे दाल कि गुम जयभरक लय मन्द से सर रवका ध्वजाक पास बैठ जभा । 'तथास्तु' कहकर मार्द्व  
 कट एक तटका वृक्ष उखाडकर रामक दिव्य रथपर रख दिया और आनन्दसे उसीपर आ बैठ । मारुतकी  
 ध्वजाका दलकर रावणन रणगणस बडा पुरतक सान तात्तवृक्षका, छमकी मातलि सारणीका, जम्भोका,  
 बाधुनन्दन हनुमान्क तथा एन्द्र धनुषका नी बणस काट डला ॥ २६०-२६३ ॥ तब वातात्मज हनुमान्  
 तथा मातलि मृच्छन हाकर जमालपर गिर पड़े, परन्तु क्षण हा भग्ने बाधुनन्दन सचत हो गये ॥ २६४ ॥  
 तब राम हनुमान्क कन्धपर सवार हाकर रावणक साथ रणागणसे सनामक युद्ध करने लगे ॥ २६५ ॥ एकाएक  
 रावणन मारुतका छ नापरमदा मारकर मृच्छित कर दिया और हनुमान् उसी समय फिर वृक्षोपर गिरपड़े ॥ २६६ ॥  
 तब आनन्दामन अपन रथका स्मरण किया । भणवरम आकाशस आकर बहु रथ युद्धभूमिमें उनके सामने

दारुकः सारधिर्ब्रज यत्र शस्त्राण्यनेकशः । तदा पर्व तु यत्राग्नि मर्वदा गहडो ध्वजे ॥२६८॥  
 यस्मिञ्छल्यश्च सुग्रीवस्तथा चैव बलाहकः । मेघपुष्पश्च चन्वागो वायुवेगा ह्योत्तमाः ॥२६९॥  
 यत्र छत्रं चरं दिव्यं हेमदण्ड विराजते । आसरे च शुभ्रे यत्र शार्ङ्गं च भ्रतुमददे ॥२७०॥  
 ततो गमः शरैस्तीक्ष्णैर्दशस्यस्य रथं क्षणात् । चकार चूर्णं साहचं तु रावणं चापनर्जयन् ॥२७१॥  
 तदाऽन्यग्धमारुहो रावणो राघव ययौ । ततो राघः शरैस्तीक्ष्णैर्दशाननशिरीसि सः ॥२७२॥  
 चिच्छेद तानि भगने मन्वा तोषयुतानि हि । रामहस्तान्मृतिर्जायाऽस्माक चेति विविन्य च ॥२७३॥  
 चन्दनं कर्तुकामानि भगन्नाथ रणाजिरे । सस्मिन्नानि पतन्ति स्म राघवस्य पदोपरि ॥२७४॥  
 राघः शिरांसि दृष्ट्वाश्च विदीर्णाभ्यानि स्यान्पुनः । मां हन्तुं प्रदवंतीति मन्वा भीत्याच्यनाडयत् ॥२७५॥  
 शरीरैः शतशः क्षीयं तदद्भुतमिवामयत् । शतमेकोत्तरं छिन्नं शिरसां चैकवर्चसाम् ॥२७६॥  
 शतभूर्जो रावणस्य चैकोत्तरसहस्रकम् । छिन्नं तत्कल्पभेदेन वदन्तान्यपि केचन ॥२७७॥  
 दृष्ट्वा तु रावणस्यान्तं विभीषणमतेन सः । नाभिदेशेऽमृतं मस्य कुण्डलाकामस्थितम् ॥२७८॥  
 पावकास्त्रेण तच्छीघ्रं शोधयामास राघवः । ततः शिरासं बाहुभिर्यच्छेद रावणस्य सः ॥२७९॥  
 एकेन मुख्यशिरसा बाहुभ्यां रावणो बभौ । तयोर्युद्धमधूदोर तुमुल रोमहर्षणम् ॥२८०॥  
 ततो दारुकवाक्येन मर्मदेशे व्यताडयन् । ब्रह्मास्त्रेण रघुश्रेष्ठः समरे दशकन्धरम् ॥२८१॥  
 स शूरे हृदय भिन्ना हन्वा न तु दशाननम् । रामतूणीरमाविश्य मेने न कृतकृत्यताम् ॥२८२॥  
 रावणस्य च देहोऽन्य ज्योतिर्गादित्यवस्फुरत् । प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम् ॥२८३॥  
 तदा देवास्तुष्टबुस्तं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । नेदुः स्वे देववार्धनि ननुश्राव्यगोगणाः ॥२८४॥  
 तदा मंदोदरी भर्ता सह देहं विसृज्य सा । यया वैकुण्ठमयनं रावणेन मुदान्विता ॥२८५॥

सटा हा गया ॥ २६७ ॥ जिस रथका दारुक सारथी था, जिसपर अनेक शस्त्र थे, जिसपर गदा-यश्च तथा  
 अजापर गहड विराजमान थे । २६८ ॥ जिस रथमें उत्तम वायुवगवाले शीघ्र, मुदाव, बलाहक तथा मेघपुष्प  
 थे चार घोड़े जुते थे ॥ २६९ ॥ जिसमें दिव्य तथा सुन्दर सुवर्णदण्डवाला छत्र विराजमान था । जिसमें दो  
 मनोहर चमर तथा रक्षणीय शार्ङ्ग नामका धनुष रत्ना हुआ था । तब रघुनन्दन राम उस रथको देख तथा परि-  
 क्रमा करके सानन्द उसपर सवार हो गए और अपने शार्ङ्ग धनुषका हाथमें ले लिया । अब राम अपने तीक्ष्ण  
 बाणोंसे क्षणभरमें रावणके अस्त्र सहित रथको चूर्ण करके रावणका लज्जकारने लगे । तब रावण दूसरे रथपर  
 सवार होकर रामके सामने गया । रामने पुनः तीक्ष्ण बाणोंसे रावणके दसों शिरोंको काट दिया । वे सिर  
 गगनमंडलमें जाकर 'हमारी मृत्यु रामके हाथोंमें हुई है' यह साबकर ईमान हुए आकाशमें रणक्षेत्रमें रामके  
 पाँवोंपर जा गिरे ॥ २७०-२७४ ॥ रामने आकाशत मुख फाड़ हुए उन शिरोंको अपनी ओर आते देखकर यह  
 समझा कि ये मुझे खा जानका आ रहे हैं । इस प्रकार रामने डरकर भट सैकड़ों बाण उनपर बला दिये । यह  
 दृश्य बड़ा ही अद्भुत था । इस प्रकार एक सौ एक बार उसके शिरको रामने काटा ॥ २७५ ॥ २७६ ॥ कोई-  
 कोई विद्वान् कल्पभेदसे यह भी कहते हैं कि सौ सिरवाले रावणके शिर रामने एक हजार एक बार काटे थे  
 ॥ २७७ ॥ परन्तु जिसपर भी जब रावणको मृत्यु नहीं हुई, तब विशेषणके कहनेके अनुसार रामने उसके  
 नाभिदेशमें स्थित अमृतकूण्डको अपने अग्निमस्त्रसे सुझा डाला और बादमें उन्होंने रावणके शिरों तथा  
 बाहुओंको काटा ॥ २७८ ॥ २७९ ॥ इस प्रकार जब रावणके एक सिर तथा दो हाथ बाकी रह गये, तब पुनः  
 राम-रावणका रोमांचकारी तुमुल युद्ध हुआ ॥ २८० ॥ तदनन्तर रामने दारुक सारथीके कहनेपर ब्रह्मास्त्रसे  
 क्षणभरमें दशकन्धरको नाभिमें मारा । २८१ ॥ उस बाणने उसके हृदयको छेद तथा रामके तरक्तमें जाकर  
 अपने आपको कुतकृत्य समझा ॥ २८२ ॥ उस समय रावणके मृत शरीरसे सूर्यके समान प्रदीप्त तेज निकल-  
 कर देवताओंके सामने ही रघुनन्दन रामके दह्य प्रवेश कर गया ॥ २८३ ॥ तब देवताओंने स्तुति करके



ततो विभीषणेनैव रामो रावणमन्त्रिक्याम् । कारयित्वा लक्ष्मणेन लङ्कायां त विभाषणम् ॥ २८६ ॥  
नीत्वाऽभिषेकयित्वाऽथ न्यामभूना तदन्तिके । वायुपुत्रकृता लङ्का माचयामास राक्षसान् ॥ २८७ ॥  
विभीषणादिभिः शीघ्रमशोकं प्रेष्य माहतिम् । मीनार्पे सकल वृत्तं श्रावयामास राघवः ॥ २८८ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे  
युद्धचरिते रावणवधो नामकारणः सर्गः ॥ १२ ॥

## द्वादशः सर्गः

( रामकाण्डाभिषेक )

श्रीशिव उवाच

अथ तां दिव्यवस्त्रैश्च धूपयित्वा विदेद्वाम् । सुस्नातां शिविकामस्थां वेष्टितां चित्रपाणिभिः ॥ १ ॥  
निन्युः श्रीरामसामिष्य सुग्रीवाद्यास्त्वसन्विताः । नानाराद्यसमुत्साहैर्नर्तनैर्वारयापिताम् ॥ २ ॥  
ततोऽधरुक्षयानात्मा पङ्कश गत्वा शूनैः पतिम् । ननाम साता श्रीराम लज्जिताऽऽस्तास्पतेः पुरः ॥ ३ ॥  
रामोऽपि दृष्ट्वा तां सीतां शुद्धां शान्वापि तां पुनः । सर्वथा प्रत्ययार्थं हि तदा वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥  
यथेच्छं गच्छ भंडेहि त्रिपुरेहनिवासिना । न त्वाममाकराम्यथ वक्ष्यामि प्रार्थितोऽप्यहम् ॥ ५ ॥  
तद्रापवचनं श्रुत्वा कारयित्वा चितां शुभाम् । लक्ष्मणनाथ सुस्नाता साता वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥  
रामादन्यं चेतसाऽपि नाहं जानामि पापक । यद्ददमि वचः सन्ध्यां तर्हि त्वं शतला भव ॥ ७ ॥  
इति सा शपथं कृत्वा त्रिविशालमुत्तमम् । ततः स दशगव्यं च तथा दशगव्यं च ॥ ८ ॥  
वचनाच्छानर्क्यं शुद्धां ज्ञात्वा तामग्रहन्निभुः । सुभूषितां पावकं स्वाकं संस्थापता शुभाम् ॥ ९ ॥  
पञ्चरट्यां स्वयं तत्र पुरा भस्वतां च पावकं । आलिङ्ग्य जानका रामा मनजाक सन्ध्यावशवत् ॥ १० ॥

पुनः वेश्याये, गगनमण्डलम दिव्य म, न वजने लग तथा अप्सराएं नृत्य करत सर्गा ॥ २८४ ॥ उवर मन्दादरा  
म नन्दसे पातक साथ अपना पाञ्चशौतन दह छडेकर वैकुण्ठधामका प्रस्थान कर गया ॥ २८५ ॥  
नाना रामन लक्ष्मणका भजा और विश्वामयम रावणका क्रिया करवाया और लङ्काके विभाषणका अभिषेक  
करवाकर उमक पास वायुपुत्रका न्यास ( घरहूर ) रक्षा हुई लङ्काका राक्षसाल छुड़व, दिया ॥ २८६ ॥ २८७ ॥  
तदनन्तर रामने विभीषणादक साथ हुनुमान्की सातीक पास भजकर सब समाचार कहलाया ॥ २८८ ॥  
ततः श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे बालमाकाण्डे सारकाण्डे युद्धचारित्र्य उपरलना भाषाटकाका  
रावणवधो नामकारणः सर्गः ॥ १२ ॥

श्रीशिव उवाच—हे प्रिय ! तदनन्तर नुगाव आदि वानर सुमनाहूर वस्त्रों तथा भूषणसे भूषित, स्नान कर-  
के पालकोपर सवार, वत हाथमें लिय हुए सिपाहियोंसे घिरा हुई वैदेहीका अनेक बाजाके सुन्दर शब्दोंके  
सहित तथा वेश्याओंके भृत्यके साथ शान्त रामके पास ल आये ॥ १ ॥ २ ॥ साता कुछ दूर ही सवारसरसे  
आकर घारेघारे अपने पति रामके पास गया तथा उन्हे प्रणाम करके कुछ लज्जित होता हुई उनके सामने  
कहती हों गयी ॥ ३ ॥ राम सीताको शुद्ध चरित्रवाला समझकर भी मंत्रसाधारणका विश्वास दिलानेके लिए  
कहे लगे— ॥ ४ ॥ हे शत्रुके घरसे निवास करनेवाली वैदेही ! तुम जहाँ चाह, वहाँ चला जाओ । धाकात् बह्या  
कह ता भी मैं तुम्हें अपने पास नहीं रख सकता । ५ ॥ रामका ऐसा वाक्य सुनकर साताने स्नान किया और  
अनन्त सुन्दर चिता रखवाकर आनन्दकी प्रार्थना करता हुई बाली— ॥ ६ ॥ हे पावक ! यदि मैंने रामके  
केन्द्र में अन्य पुरुषका चित्तसे भी चित्तन न किया हो तो तू शतज हो ना ॥ ७ ॥ साता ऐसा कहकर अग्निमें  
जल कर गयी । तब प्रभु रामने अग्निदेव तथा राजा दशरथके कहनसे जानकीका पवित्र तथा पतितता  
कहकर स्वीकार कर लिया । यह बात सीता जानती थीं जिनको कि रामने पञ्चवटामें स्वर्ण अग्निको छोड़

तामसी राजसी चैव सार्विकी या त्रिधा पुरा । जाता रावणवानार्थं मा जार्तिकत्र वै तदा ॥११॥  
 ततो देव-स्तुतो रामश्चेन्द्रेण समरे मृतात् । यानगादीन् सुधावृष्ट्या जीवयामास सादरम् ॥१२॥  
 तत्रैक वानरं रामोऽदृष्ट्वा पप्रच्छ मारुतिम् । राघवं मारुतिः प्राह कुम्भकर्णेन भक्षितः ॥१३॥  
 यदि क्षिचित्तस्य कपर्दखकेशस्थितोहितम् । तणेऽभविष्यत्पतितं तद्व्यासृतवृष्टितः ॥१४॥  
 अभविष्यज्जोषितः स सर्वं विद्धि रघूत्तम । सुधावृष्ट्या राक्षसान्ते जीवयिष्यति वै पुनः ॥१५॥  
 इति भीत्या पुराऽस्माभिः सर्वं त्यक्त्वा महादर्शः । तन्मारुतेर्बचः श्रुत्वा यमराजं वपलोकयत् ॥१६॥  
 यमोऽपि भान्या रामाग्रोर्ध्वं च प्लवमानमम् । त दृष्ट्वा राघवस्तुष्टस्तदाऽऽहो नमःकुत्तमम् ॥१७॥  
 गतुं ददौ मातलिने सोऽपि नत्वा रघूत्तमम् । रथेन वाजियुक्तेन ययौ मध्वतः पुरीम् ॥१८॥  
 रामस्तु मंगलस्नानं कर्तुं संश्रायितोऽपि हि । विभीषणेन मग्नं स्मृत्या नांगीकार सः ॥१९॥  
 ततः सर्वैर्नारैश्च पुष्पकं चारुणोह सः । रथेन दारुकश्चापि गरुडो मकरध्वजः ॥२०॥  
 विभीषणश्चाराह पुष्पकं राघवाङ्गया । ततस्ते निर्जगाः सर्वे राममाभ्युप स ययुः ॥२१॥  
 दृष्ट्वा रामे दशार्थो विमानेन ययौ दिवम् । अथ तं राघवं प्राह पुष्पकस्य विभीषणः ॥२२॥  
 राघव ते श्रुत्वास्मिच्छ मि तच्च मा वक्तुमर्हसि । ऐरावणगृहे राम यदा पातालमुत्तमम् ॥२३॥  
 पुन गतस्तदा तूष्णीं किमर्थं त्वं स्थितः प्रमो । कथं तौ न दत्तौ दृष्टौ तदेव क्षणमावतः ॥२४॥  
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा विद्वस्य राघवाऽश्रवात् । भ्रमराणां वधः पूर्वं विधिना मारुतेः करात् ॥२५॥  
 प्रोक्तस्तस्मान्मया तूष्णीं प्रताप्य मारुतः कुतः । अन्वच्छापि जगत्या हि मारुतेः पौरुषं जनाः ॥२६॥

दिया था । इस समय भगवान् रामचन्द्रन जन्हा जानकाका आलापन करके अपनी गोदमें बैठे स्थित  
 ॥ १-१० ॥ जिस साताने पूषकात्मक रावणवधक लिए लामरा, राजसी तथा सार्विकी ये तीन भूर्तिर्ये  
 धारण का थी, वह उस समय पुनः एक हो गयी । ॥११॥ पश्चात् सब देवताओंने मिलकर रामकी  
 स्तुति की । रामने इन्द्रसे कहकर समरमें मर हुए वन-का सुधावृष्टिज जलित करवाया ॥ १२ ॥  
 उनमें एक घानरका न देखकर रामने आर्क्षसि पूछा माहत्तन उत्तर दिया कि माहूम होता है, उसे  
 कुम्भकर्ण खा गया । १३ । हे रघूत्तम ! यदि उस वानरका नाव, कस अथवा लाहित आदि कुछ भी  
 रणभूमिमें शेष हाता तो वह अवश्य इस अमृतवर्षामें जलित हो जाता । यदि कह कि अमृतवर्षामें राक्षस क्यों  
 नहूँ आये तो इसका उत्तर यह है कि उनका तो आदिष्ट हो जानक डरसे हम आगेन पहुँचें हो समुद्रमें फक  
 दिया था । मारुतिक इस वचनका सुनकर रामने यमराजका आर दत्ता उनके देखनेसे हो यमराज डर  
 गया और उस बन्दरका रामके आग लाकर खड़ा कर दिया । यह देखकर राम प्रसन्न हो गये । बादमें रामने  
 मातालेक स्वर्ग जलिका आज्ञा दे दी । वह भा रामका प्रणामकर तथा अश्वयुक्त रथ लेकर इन्द्रपुरीकी चला  
 गया । १४-१५ । तदनन्तर विभीषणन रामका विघ्नशान्तिकारक मङ्गलान्नान करनेके लिये कहा । जो किसी  
 विघ्न, आपात तथा राग आदिक बाद किया जाता है, पर रामने भारतका स्मरण करके उस अंगीकार नहीं  
 किया । १६ ॥ बादमें समस्त बन्दराके साथ रामका पुष्पक विमानपर सवार हो गये । रथसहित दारुक, गरुड  
 और मकरध्वज भा उसपर चढ़ गये ॥ २० ॥ रामका आज्ञा पाकर विभीषण भा विमानाङ्ग हो गया । तभी  
 सब देवता रामका आदेश पाकर स्वर्गका चले गये ॥ २१ ॥ राजा दशरथ या कि जनकचन्द्रिकाके अग्निप्रवेशके  
 समय विमानपर बैठकर अ, वी, ष, भा रामस पूछकर स्वर्गका चला दये । इसके उपरान्त पुष्पक विमानपर  
 स्थित विभीषणन रामसे कहा— ॥ २२ ॥ हे राम ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । कृपा करके आप उसका  
 उत्तर दें । हे राम ! अब आप पातालमें ऐरावणके पहुँच गये थे । २३ ॥ उस समय हे प्रभा ! आप चुप क्यों  
 हो गये थे । उस क्षण आपन उन दुष्टोंका मर का नहीं डाला ? ॥ २४ ॥ यह प्रश्न सुन ता राम कुछ मुस्करा-  
 कर बाने कि पूर्वकालमें किसी समय ब्रह्मान 'उन भन्दराका वध हुमायुके हाथसे हुना' ऐसा कह दिया  
 था ॥ २५ ॥ इसी कारण मैंत चुप होकर वह काम मारुतिपर ही छोड़ दिया था और इसीलिये मैंने मारुतिकके

मदंतु येन श्रीरामलक्ष्मणौ मोक्षितौ पुनः । प्रमुगध्यां हि वानात्ते सोऽयं श्रीरामसेवकः ॥२७॥  
 इति पौरुषवृद्धयर्थं मारुतेर्जगतीतने मम दामस्य बलिनस्तथा नूणी स्थितं मया ॥२८॥  
 नोपेधुर्भूतारमात्रेण पयि हतुं न किं क्षमः । ईषिकस्येण काकस्य येन नेत्रं विदारितम् ॥२९॥  
 क्षतपोजवर्षन्तं मारीषोऽर्धौ पतत्रिणा । पुनः येन मया मयक्तः सोऽहं किं कुण्ठितस्तदा ॥३०॥  
 तयोर्वधे तु वानात्ते न शम्भार्यं प्रतोलितम् । मारुतेः पौरुषार्थं हि सत्यं वेदं विभीषण ॥३१॥  
 इति रामवचः ध्रुत्वा मारुतिः स विभीषणम् तदा प्राह विद्वद्वाच किं त्वं तदिष्मृतोऽसि हि ॥३२॥  
 सेंतुकात्ते राघवेण यदे दृष्टं मयि स्थितम् लांगूलं खड्गितं पूर्वं त्रिगोन्पाटनहेतुना ॥३३॥  
 तस्य मे राघवाग्रे हि किं बलं मन्यसेऽत्र हि । किं विलम्बो राघवाय तयोस्मुग्धयोर्वधे ॥३४॥  
 वधिता निजदामस्य कीर्तिश्च विभीषण । इति तन्मासनेवाक्यं ध्रुत्वा रामं विभीषणः ॥३५॥  
 ननाम परया भक्त्या ततः सम्यगपूजयन् । अथ रामः पुष्पकस्यः मीनया प्रार्थितो मृदुः ॥३६॥  
 तद्वाक्पथगौरवान्पटुसिजदार्यं वरान्ददौ । वस्त्रात्क्रूरभूषाभिः पूर्वं तष्टौ विधाय स ॥३७॥  
 त्रिजटे वचनं मेऽयं शृणु मंगलदायकम् कार्तिके माधवे माघे चैत्रे माघचतुष्टये ॥३८॥  
 स्नान्वाञ्च विदिनं स्नानं न्वर्प्रीन्यर्थं नरोत्तमाः । करिष्यन्ति हि तेनैव कृतकृत्या परिध्यामि ॥३९॥  
 यैर्नस्त्रिदिनं स्नानं न कृतं पूणिर्मोर्ध्वतः । तेषां मामकृतं पुण्यं हरं च वचनान्मम ॥४०॥  
 मन्यन्वापि शृणुस्व त्वं दीपते यो वने मया । प्रशुर्भानि गृहाण्येव तथा आद्वहर्षापि च ॥४१॥  
 क्रोधानिहंनं दद्यानि विचित्रतन्हुतान्यपि । त्रिजटे तानि नुभ्यं हि शृण्वन्त्यत्वं मयोच्यते ॥४२॥  
 पादप्रीचमनम्यगं तिलहीनं च तर्पणम् । सर्वं तन्त्रिजटे नुभ्यं तथा आदृतमदक्षिणम् ॥४३॥

यहाँ प्रतीक्षा की। दूसरी इच्छा यह थी कि समाज में लोग मार्कटिके बलकी भी जान जायें कि मार्कटिके पासालमें रामकी हत्याराम-लक्ष्मणकी सुहाया था, वही यह रामका सेवक हनुमान् है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस प्रकार जगन्मने अपने बलवान् सेवक हनुमान्के पुण्य रंकी प्रसिद्धि करनेके लिए ही मैं वहाँ था ही गया था ॥ २८ ॥ नहीं तो क्या मैं उनको रामनम ही दृष्टारमात्रसे नष्ट नहीं कर सकता था ? जिमने सीकके अम्त्रसे ही काक जयन्तका नेत्र फोड़ डाला ॥ २९ ॥ जिमने ज्ञानसे मानेवरने भी योजनाकी दूतेपर समुद्रमें फल दिया । वह मैं तब क्या कुण्ठितशक्ति हो गया था । कभी नहीं । मैंने पासालमें उनको मार्कटिके नियम किमो शम्भरकी राह नहीं देखी थी । हे विभीषण ! तुम सब मानो कि मैं उस समय केवल हनुमान्के बलकी शक्ति करनेके लिए ही चुप हो गया था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ रामका यह वचन सुनकर हमने हुए मार्कटिके विभीषणसे कहा-कहा तुम उस बलकी भूल गये, जब सेंतु वीषनक ममय रामन मृतको कुछ गंवयूक्त देखकर स्थापित त्रिजटिक उगाहनेके बहाने मेरा पूँछ तोड़वा डालो गो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐस मुझ निवर्त्यका बन् रामचन्द्रके सम्मुख किसी शिक्कीसे नहीं है । रामचन्द्रको उन दोनों मसुरीकी मारनेमें क्या देर लगती ? कदापि नहीं । हे विभीषण ! रामने कबल अरन दामकी ( मरी ) कीर्ति बहानक लिए ही वीष किया था । मार्कटिकी बात सुनकर विभीषणने रामकी परम धनिसे प्रणाम करके प्रेममें अच्छा तरह पूजन किया । पश्चात् रामने विमान पर बैठे हुई सीताके कहनेसे उनके वाचयका आदर करन हुए प्रसन्न होकर त्रिजटाको बरदान दिया । पहले उसको वस्त्र-अन्नकार आदिस संतुष्ट करके कहा-हे त्रिजटे ! तुम मेरी प्रङ्गलमयी वाणी सुनो । कार्तिक, मंगाल, माघ और चैत्र इन चार महानोमें पहलेक तीन दिन सभी मन्थ्रेषु तुमको प्रसन्न करनेके लिए के स्नान करोगे । इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगी ॥ ३४-३९ ॥ जो मनुष्य इन चार महानोमें पुण्यसे लेकर तीन दिन स्नान न करे, उसका सारे महीनेका फिदा हुआ पुण्य मेरे कहनेसे तुम दण्ड कर मेना ॥ ४० ॥ और यह भी बर बता है कि जयविज स्नानमें विविधवस्तु किये हुए आद्व तथा रुचन आदि भी यदि क्रोधसे किये गये हों तो वे भी तुम्हारे ही होंगे । और भी सुनो, बिना तेल सब पक्ष घेजे तथा बिना जिल्के तर्पण करनेके पुण्य भी तुम्हारे होंगे । हे त्रिजटे ! वधितासे

इति दत्त्वा वरान् रामस्त्रिजटायरमान्वितः । म विभीषणसुग्रीवमकरष्वज्जवानरैः ॥४४॥  
 ययौ विहायसा सीता दशयन् कौतुकानि सः पश्य भीते पुरीं लङ्कां तथा रणभुवं शुभाम् ॥४५॥  
 पश्य सेतुं मया बद्धं शिलाभिर्नवणार्णवे एतच्च दृश्यते तीर्थं सेतुवधमिति स्मृतम् ॥४६॥  
 इत्युक्त्वा गृहीयन् राक्षसेन्द्र्यं ब्रह्मणः । वृषकाट्टुवि चोत्तार्य धृत्वा कौटुम्बमुत्तमम् ॥४७॥  
 धर्मं च सेतुं तत्कौटुया धनुःकोटिरितीर्यते । अतएव हि तर्तीयं स्नानान्कैवल्यदायकम् ॥४८॥  
 कौटुम्बपाणिर्नाम्नाऽऽर्याद्राममुनिश्च तत्र हि । एतस्मिन्ननरे तत्र अपातिः स ययौ तदा ॥४९॥  
 तमालिङ्ग्य रामचन्द्रम् प्राह च्छिनःपूर्वकम् । चधोर्नाम्नाऽत्र तीर्थं त्वं कुरु सेतौ महत्तमम् ॥५०॥  
 तथेति रामवचनाद्भानुः मनोषकाम्यया । तीर्थं चकार मष्पानिर्जटागुमिति विधुनम् ॥५१॥  
 ततो रामाज्ञया यानं वेशनिश्चाकरोह सः ततो यानेन तां मातां दर्शयन् कौतुकानि हि ॥५२॥  
 ययौ रामेश्वरं पश्य तथा श्रीरघुनन्दनः सीतेऽत्र पश्य भद्रार्थमेकाने मस्थितं पुनः ॥५३॥  
 अत्र दर्शेषु शरणं कृत् पश्य विदेहजे नवग्रहार्थं प्रक्षिप्तान्पाषाणान्पश्य सागरे ॥५४॥  
 तूष्णामेव स्थित पश्य सागरं मम ब्रह्मणः एव तां दर्शयन् रामः किष्किषां प्रययौ भवान् ॥५५॥  
 वानराणां त्रियः सर्वा विमाने स्थाप्य राघवः । ययौ तां दर्शयन् सोतां कौतुकानि समततः ॥५६॥  
 प्रवर्षणगिरिं पश्य अथ्यसूकाचलं तथा । पंपासरोवरं पश्य कृष्णं भीमरथीं शुभाम् ॥५७॥  
 पश्य पचवटीं रम्यां गोदातीरनिगजिताम् । अगस्नेराश्रमं पश्य सुनीक्ष्णस्याश्रमं तथा ॥५८॥  
 पश्चादत्रराश्रमं सीते चित्रकूटं समीक्ष्य कालिदां जगद्धीं पश्य भाद्रा ज्ञाथम तथा ॥५९॥  
 इत्युक्त्वा जानकीं रामो भारद्वाजार्थिनस्तदा तस्यां तस्याश्रमे यानादवरुह्य यथासुखम् ॥६०॥

इत्युक्त्वा सब श्राद्ध भी तमहीको प्राप्त हुंगे । ४१ ॥ ४२ ॥ इस तरह दहतर दर दर राम त्रिजटा सरमा, निरीन्जन सुग्रीव, मकरध्वज तथा वानरोंके साथ भगवान् रामसे सौभाग्यसे सम्पर्क कौतुक दिखाने हुए चल दिष्टे । राहमें राम वीन हे सीते ! इस लता लगरीकी तथा इस गुन्दर रणभूमिकी देखो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ यह कारसमुद्रमे मेरा बाँधा हुआ मित्यओका विशाल सेतु है । यह सामने सेतुवन्य नामका प्रसिद्ध तीर्थ दिखाई दे रहा है ॥ ४५ ॥ इतना कहते ही बाद रामचन्द्रजी राक्षसेन्द्र विभीषणके वचनानुसार विमानसे नीचे उतरे और अपना उत्तम शयन लेकर उसकी लोकसे सेतुको तोड़ दिया । वहाँपर स्नान करनेसे मोक्षपद देनेवाला धनुषकोटि नामका तीर्थ बन गया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ दारपाणि नामकी रामका मूर्ति भी वहाँ स्थापित हो गयी । इतनेमें वहाँ संपाती आ पहुँचा । ४९ रामने उत्तकी आरिगन करके प्रसन्न मनसे कहा कि तुम यहाँ सेतुपर अपने भ ईके न भका एक महान् तीर्थ स्थापित करो । ५० ॥ तब तब कटकर रामकी आज्ञाके अनुसार संपातीने अपने भाईकी आज्ञाकी मान्य करके वरुणसे वहाँ जटायु नामका प्रसिद्ध तीर्थ बनाया ॥ ५१ ॥ बादमें रामजी जजमे मष्पान धो भी वृषक विमानपर चढ़ा लिया गया । श्रीरघुनन्दन राम सीताके साथ रामेश्वरकी पूजा करनेके विमानपर नवार हारकर सीताका मय दुष्ण दिवान हुए बाद—देखो सीते ! इस एकान्त जगहपर मैं भवणा करनेके लिए देस्ता था । ५२ ॥ ५३ ॥ हे विदेहजे ! इन कुशाओंपर मैं सीता था । देखो, ये नौ पाषाण सेने समुद्रमे नवग्रहेके, पूजाके लिए रहने थे । ५४ ॥ देखो, मेरे कहनसे यह समुद्र अब भी वृष है । इस प्रकार वरुण वरुण हुए तबुनन्दन राम क्षणभरमे किष्किषा आ पहुँचे । ५५ ॥ वहाँमे सुग्रीव आदि वानरोंकी मित्रोंको विमानपर बैठाकर पुन रुद्र स्थल स ताको दिखाने हुए दे जाने बड़े ॥ ५६ ॥ रामने सीतासे कहा देखो यह प्रवर्णन गिरि है, यह अथ्यसूक पर्वत है, यह पंपासरोवर है यह पवित्र कृष्ण तथा भीमरथी नदी है । ५७ ॥ भाद्राजके नगर विराजमान यह रमणीक पक्ष्मही है । ऊपर अगस्त्य तथा सुनीक्ष्ण मुनिके आश्रमका देखो । ५८ ॥ हे सीते ! अत्रि मुनिके इस आश्रमको तथा चित्रकूट पर्वतकी शोभाका देखो । समुद्रा नगा तथा भारद्वाज जीके आश्रमका देखो । ५९ ॥ जानकीसे यह कहकर राम विमानसे नीचे उतरे और भारद्वाज जीके आश्रम करके वरुण उनके आश्रममें सुखसे

माघशुक्लचतुर्थ्यां हि पूर्णं वर्षं चतुर्दशं भास्वाजोऽपि तपसा स्वर्गं निर्माय भूतले ॥६१॥  
 पूजयामास श्रीगमं भीतिघ्नानममृतम् । रामोऽपि हृदि समन्वयं पारुतिं वाक्यमब्रवीत् ॥६२॥  
 अयोध्यां गच्छ भग्नं मद्भुजं कथयस्व तम् । मावायं मृद्वेरे मे पूर्णं कथय केवटम् ॥६३॥  
 नधेति गृहकं गन्वा केषिणं न्यवेदयन् । गृहकांऽपि मुदा युन्मन्त्रा गमानिकं ययौ ॥६४॥  
 ततोऽयोध्यां दृष्ट्वा वीरान्पारुतिः स विहायमा नदिग्रामेऽपि भग्नः पूर्णं वर्षं चतुर्दशं ॥६५॥  
 नागते रायसे यदि मन्त्रद्वोऽभून्प्रवेशितम् । शत्रुघ्नं भग्नः प्राह गवणेन गणां गणे ॥६६॥  
 भीतामलक्ष्मणीं शीघ्रं हतो मन्त्रेऽथ नागनी । अकस्मिन् मया मर्त्यं नृपा एते वर्तयन्ताः ॥६७॥  
 लकां गन्वा रघवस्य साहाय्यं कर्तुमिच्छता । मोक्षमग्निं विश्वाभ्यथ श्वावस्वानलं गते ॥६८॥  
 त्वं गच्छ पार्थिवलैकां हन्वा पृष्ठे दशाननम् । मोक्षयेन्वा जनकजां ततो नः पाग्लोकिकम् ॥६९॥  
 रामादीनां त्रिषुभूतां कर्तुमहमि सादरम् । इति वृद्धाकथमाकर्ण्य पांग जानपदा नृपाः ॥७०॥  
 शत्रुघ्नीं मातरः सर्वा उर्मितायां त्रिषथ ताः । मूर्धजाया मज्जिणश्च पौग्नार्थश्च सेवकाः ॥७१॥  
 भग्नं वेष्टयामासुः स्वेदादिह्लमान्मासाः । भग्नं सान्त्वयन् सर्वान्यर्थां तां मर्त्यं नदीम् ॥७२॥  
 त्रिषां कृत्वा ततः स्नान्वा दृष्ट्वा दानान्यनेकदाः । यत्र प्रदक्षिणाः कृत्वा यदि प्यान्वा रघुनमम् ॥७३॥  
 मोक्षां तां लक्ष्मणं वीरं तत्त्वा मातृगुरुं मुनीन् । अरुण्यदेवतां प्यान्वा श्वनगभिमुखः स्थितः ॥७४॥  
 ग्वा न्यस्नेक्षकः सायं प्रतीक्षन् सन्ध्यां सणम् । मरान्कोलाहलभ्रागीनदा श्रीगुरुषोः कृतः ॥७५॥  
 ग्नमिमज्जनरे स्वस्वम् दद्यात् वापुनरुतः । प्रवेष्टुमुत्तमं वैराग्यं शत्रुदम्बनः ॥७६॥  
 अत्र शान्तभूतं शक्यं सुषथा सेवयन्निव । मा विशम्भानलं वीरं रघवोऽथ समागतः ॥७७॥

१२-६० । उस गोज चौदह वरको माघ शुक्ल चतुर्दश थी । भास्वाजने अपने तपोवृत्तिसे पृथ्वीपर  
 १२-६१ ॥ समस्त स्वर्ग पराधीन उन्हात मता तथा वानरा समस्त आरामका  
 १२-६२ ॥ अयोध्या  
 १२-६३ ॥ अयोध्या  
 १२-६४ ॥ अयोध्या  
 १२-६५ ॥ अयोध्या  
 १२-६६ ॥ अयोध्या  
 १२-६७ ॥ अयोध्या  
 १२-६८ ॥ अयोध्या  
 १२-६९ ॥ अयोध्या  
 १२-७० ॥ अयोध्या  
 १२-७१ ॥ अयोध्या  
 १२-७२ ॥ अयोध्या  
 १२-७३ ॥ अयोध्या  
 १२-७४ ॥ अयोध्या  
 १२-७५ ॥ अयोध्या  
 १२-७६ ॥ अयोध्या  
 १२-७७ ॥ अयोध्या

सीतया लक्ष्मणेनापि भाग्यद्वजाश्रमे प्रति । वानरैः सहितं रामं श्रम्य पश्यसि निश्चयान् । ७८ ।  
 रामोऽत्युत्कृष्टितस्त्वां हि द्रष्टुमस्ति जटाधर । इति तद्वाक्पुष्पावृष्टिसेचिनो भरतो मुदा । ७९ ॥  
 बह्विं नत्वा परावृण्व ननाम राघुनन्दनम् । मानं मारुतिश्चापि नन्वाऽऽलिख्य मविस्तरम् । ८० ॥  
 श्रावयामास श्रीरामपुत्र मनोषकारकम् । तच्छ्रुत्वा भरतस्तपः शोभयामास नां पुरीम् । ८१ ॥  
 अयोध्यां नीरणाद्यैश्च पौरैः प्रपुञ्जयाम तम् । मस्तके पादुके वद्ध्वा पुष्कल्याथ धारणम् ॥ ८२ ॥  
 माघस्य मितपंचम्यां श्रमे पंचदशेऽब्दके । प्रधाने भरतो याम्ये ददर्श पुष्पकं स्वयम् ॥ ८३ ॥  
 ननाम राघव दृष्ट्वा साष्टांगं भरतस्तदा । गमोऽप्यालिख्य भरतं कुन्वा रूपायनैकशः । ८४ ॥  
 एककाले जनान् सर्वान्पुष्पकं च परिपश्यजे । आदौ पश्चाच्च रामेण कृतमालिगन तदा । ८५ ॥  
 रामान् दृष्ट्वा ह्यवगमयानां ननाश्रामन्मुचिस्मिताः । समाश्रयाथ भग्न राघवः सख्यलोचनः ॥ ८६ ॥  
 ननाम शिरसा मातृशोभां चाप्पकृन्धनम् । ततो वाद्यनर्तनाद्यनन्दग्रामं यया शनः । ८७ ॥  
 इमश्चकर्मोद्धिननं च तैलभ्यश्च तु वधुभिः । तदिष्टमिच्छकरोद्राप्तो नानामागन्धवस्तुभिः । ८८ ॥  
 नवनाद्यमुद्याराश्च नेदुः सर्वत्र मृन्मगः नायो नीराजयामासु स्तनीषु गघुनमम् । ८९ ॥  
 ततः सीता तमस्कृत्य कौसल्याद्याश्च मानरा । वसिष्ठं ब्राह्मणान्ब्रह्मन्वदनीयान्यथाक्रमम् ॥ ९० ॥  
 ततः सीता ममालिख्य कौसल्याद्याश्च मानरा । स्नापयामासुर्मग्न्यद्वयैश्चिपुःसरम् । ९१ ॥  
 वस्त्रालकारभूषाभिः सुशुभे जानकी तदा । भरतः पादुके ते तु राघवस्य मुपविते । ९२ ॥  
 योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिययुतः । ततोऽनिविनयाग्रह भरतो गघुनदतम् । ९३ ॥  
 राज्यमनन्यासभूतं मया निर्याप्तं तव । कोष्ठसारं च लं कोशं कुतं दक्षगुण मया । ९४ ॥

आज आ गये हैं । आप वानरो समेत उन्हें कल सज्जित देखते हैं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥  
 देखनेके लिए घर ही उत्कृष्टित हो रहे हैं । इस प्रकार हनुमानकी वाक्पुष्पावृष्टिसे सिंचित होकर भरत सदैव अग्निके पाससे लीट आये और वायुनन्दनकी प्रणाम किया । मारुतिने भी भरतको नमस्कार तथा आलिङ्गन करके श्रीरामकी मनोषकारक तथा मविस्तर सब समान्यार गना दिया । गत गुना ही भरतने प्रसन्न होकर अयोध्या नगरको नीरणा पत्ताकी आदिसे समुचितकर तथा पत्र मित्रिक साथ ले और हाथीको आने करके रामकी लहाल्ला मनकपर वधुकर रामकी अगवाना करन गये ॥ ९० ॥ पन्द्रहवें वर्षका माघ शुक्ल पञ्चमीका प्रातःकाल आहू मुननं भरतने पुष्पकर्षितानको आकाशसे देखा । ८३ ॥ भरतने रामके दशन करतक साथ ही उनको सादर प्रणाम किया । रामने भरतकी आशान करनेक शरणाक साथ अनेक हव धारण करके एक ही समय सब लोगोंके साथ अन्त्य अन्त्य मिले । किसीके साथ आनिगत आये ता पड़े नहीं होते पाया ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ बहुतसे रामाकी दस्कर रागोंको बना धारा विस्तर हुआ । रामने भरतको दृढ़ उन वैवाया और उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ८६ ॥ पश्चात् उन्होंने नाताओंकी मन्त्रक सज्जकर प्रणाम करके गुरुपत्नी अरुण्वतीका प्रणाम किया । बादम नाव गाना तथा बाजोंके साथ छोरे छोरे राम मन्दीरामय पवारे । ८७ ॥ वहीं जाकर रामने क्षौर कराया और शरीरमें पन्नादि सुगन्धित द्रव्य मल तथा तेल लगाकर अनेक भगवत्कारी वस्तुओंमें सब वस्तुओंके साथ मंगलस्नान किया । ८८ ॥ चाने सरफ नवेनये बाजोंके सुन्दर घोष होने लगे । शिष्ये रत्नमय दीपकोंसे कौमल्यानन्दन रामकी आरवी उतारने लगीं ॥ ८९ ॥ सीताने भी अपनी शोभाका अरुण्वतीका, वसिष्ठको, ब्राह्मणोंको तथा और-और वन्दनीय जनोंको यथाक्रम प्रणाम किया ॥ ९० ॥ इसमें अनन्तर कौसल्या आदिन सीतका छापीसे लाकर मणालिक दृष्टसे स्नान कराया ॥ ९१ ॥ उस समय जनकनन्दिनी नये नये अलङ्कारोंमें सज्जकर बड़ा सुन्दर लगने लगीं । भरतने रामकी पादुकाका पूजन करके रामसे पांवाम नमस्कारके पहिना दी । तदनन्तर अगि दिनत भावसे भरत गघुनायजीसे कहने लगे- ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ है प्रभो ! आपका पराहृस्वरूप राज्य मेन आजतक चलाया । है जगप्राथ ! आपके पुण्य प्रतापसे मेने यहाँके कोठार, कोश तथा सेनाको वडाकर दसगुना कर दिया है । अब आप अपने इस मगरका, देशका तथा

त्वयेज्ज्वा जगन्नाथ पालयस्व पुरं स्वकम् । तथेति राघवञ्चोक्तवा भरतं सन्पदेशयत् ॥१५॥  
 ततः स दिव्यवस्त्राणि परिधाय रघूत्तमः । सीतया रथमारुह्य शयनोपैर्जनस्थनैः ॥१६॥  
 वार्तागनानृत्यगीर्तयौ निजपुरीं प्रति । पाग्नःपैश्च लीधम्या यवर्तुः पुष्पचूटिभिः ॥१७॥  
 चकुरीगजनं भार्गवं नानाजलिपुरःसरम् । रामो रथात्तदोत्तीर्य सीतां मप्रप्य वै गृहम् ॥१८॥  
 पुष्पकं ग्राह्य गच्छत्तं कुवेरं बहू सर्वदा तथेति रामवचनाञ्जगाम पुष्पकं तु तत् ॥१९॥  
 अथ रामः समामभ्ये विवेश कपिभिः सह । ददौ कपिभ्यो मोहानि वस्तुं रम्याणि मादरम् ॥२०॥  
 अथ रामस्य राज्याभिषेकं गुरुस्तदा । चकार सुगृह्णै वै महाभगलपूर्वकम् ॥२१॥  
 हनुमत्प्रमुखापैश्च चतुर्विधुजल शुभम् । सनानीष नृपः सर्वैर्महाबाहवपुःसरम् ॥२२॥  
 उग्र च तस्य जग्राह पृष्ठसत्यः स लक्ष्मणः । दधार मन्दपार्श्वस्थश्चामरं अतस्तदा ॥२३॥  
 शत्रुघ्नो वामपार्श्वस्थो दधार व्यवजन शुभम् । हनुमन्पादुके दिव्ये दधार पुस्तः स्थितः ॥२४॥  
 वायव्यादिचतुष्कोणमस्थितस्ते महीजमः । सुर्यावाद्यास्तदा चर्म्मश्चत्वारो राघवेक्षणाः ॥२५॥  
 सुर्यायो जलपात्रं च वरादर्शं विभीषणः । दधार हस्ते तां कूलपात्रं स बालिनन्दनः ॥२६॥  
 रत्नकोशं जांबवाश्च दधार वेगवचनः । नस्थौ मिहामने रामः स्पृष्ट्वां कोषवर्हणः ॥२७॥  
 सीमात्रचामपार्श्वेऽथ सत्तानिः सस्थितोऽभवत् । वायवार्श्वे भग्नस्य गृहकः सस्थितोऽभवत् ॥२८॥  
 शत्रुघ्नचामपार्श्वेऽथ सस्थितो मकरध्वजः । हनुमद्दाम्पार्श्वं च गरुडः सस्थितोऽभवत् ॥२९॥  
 सुपादादिचतुर्णां ते चामपार्श्वेषु सस्थिताः । आचित्रगथाविजयसुमित्रसरुकास्तथा ॥३०॥  
 नानागजोपकरणवृत्तहस्त्य महीजनः । ययुर्दयासुगः सर्वे यक्षगर्भकिन्नराः ॥३१॥  
 औषध्यः पर्वता वृक्षाः सागराश्चाथ निम्नराः । मालाश्च कांचना वायुर्देदौ वामवचोदितः ॥३२॥

राज्यका पालन त्वयं करें । यह सब और 'तपान्तु' कहकर रामने भरतको अपने पास बैठा लिया  
 ॥ १५ ॥ १६ ॥ तदनन्तर राम और सीता दिव्य वस्त्र धारण करके रथपर सवार होकर अथ-जयकार तथा वाज  
 गानेके साथ नारांगनाओंका ताच-गान देतेन मुनने हुए अपनी शिव अवाध्यापुत्राको चले । नगरम प्रवेश करनेपर  
 नगरकी नरियोंने छुले तथा वाज पर चढ़कर भक्त प्रवारके पुष्पोत्ती र्पण की ॥ १६ ॥ १७ ॥ वे रास्तम विविध  
 पूजाकी सामग्रसे रामको आगता उतारने लगी । रामने विमानम उतरकर सीताकी महत्त्वम भेंट दिया और  
 पुष्पक विमानसे कहा कि तुम कुवेरके पास जाकर सदा उन्हीकी सेवा करा ' रामको आज्ञाका स्वीकार करके  
 पुष्पक विमान कुवेरके पास चला गया ॥ १८ ॥ १९ ॥ अथ राम सब कपियोंका साथ लेकर सभाभवनम गये ।  
 पश्चात् कपियोंका निष्पन्न करनके लिए उत्तम-उत्तम भक्तान दिये गये ॥ २० ॥ तदनन्तर गृह र्भक्तिने शुभ  
 मुहूर्तमे बड़े धूम-धामसे रामका राज्याभिषेक ठाना ॥ २१ ॥ हनुमान् बादिल भंडार चाने शत्रुघ्नका शुभ  
 जल भेंटवाया । दश-देशाक्षरके राज-महाराजे बुलाये गये । नाना प्रकारके वाज बजे लक्ष्मणन पीछे खड़े  
 होकर रामके ऊपर छत्र लगाये । रामकी पादुका हाथमे लेकर हनुमान् उनको सामने खड़े हो गये ।  
 शम्भो और सुन्दर पत्नी लेकर शत्रुघ्न सड़े हुए और रामकी बांहोंने और चंदर लेकर भरत खड़े हो गये  
 ॥ २२-२४ ॥ रामके नेत्रसदृश शिव तथा भोजस्त्री मृग्रीव आदि मित्र वायव्य आदि चार कोनामे  
 विराजमान हो गये ॥ २५ ॥ मयावने जलपात्र, विभीषणन सुन्दर दण्ड, बालिनन्दन अंगदन पात्रदान  
 तथा मेघवाज् जंबवानने अपने हाथम श्रीरामको वस्त्रोंकी पिटाती ले ली । तब श्री राम जाकर महा-लकिय  
 लगे हुए शत्रुघ्नके मिहामनपर निद-जमान हो गये । लक्ष्मणके वामभागमे लंपाती, भरतके रामभागमे  
 निपादराज, शत्रुघ्नके वामभागमे मकरध्वज तथा हनुमान्के वामभागमे गरुड खड़े हुए । पुष्पक आदि चारों दिनोंके  
 वामे चित्रग, विजय सुमित्र तथा शार्ङ्ग खड़े हुए । १०६-११० । बड़े-बड़े राजस्त्री राजे हाथमे भक्त  
 प्रकारकी भेंटें लेकर आये । सब देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नरगण वहाँ आकर उपस्थित हो

सर्वरत्नममापुक्तं  
प्रजगुर्देवगंधर्वा

मणिकंचनभूषितम् । ददौ हारं नन्देन्द्राय स्वयं शक्रस्तु यत्किनः ॥११३॥

नन्दतुर्वारयोपिनः । देवदन्दमयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात सात ॥११४॥

ततोऽकम्बं स्तुतिमहं भरतेनाभिपूजितः । ११५॥

श्रीशिव उवाच

सुग्रीवमित्र परमं पवित्रं गीतकलत्रं नरमेघनाम्रम् ।

काकपयपात्रं क्षुण्णप्रनेत्रं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११६॥

समागमार निगमप्रचारं धर्मावतारं हनभूमिभारम्

सदाऽधिकारं सुखमिषुमारं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११७॥

लक्ष्मीविलासं जगतीं निवासं लक्षाविनाशं भुरनमकाशम्

भूदेववासं हरदिन्दुहासं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११८॥

मन्दारमालं पद्ममे रमालं गुणविशालं हनममृतालम् ।

कल्याणकालं मृगलोकपालं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११९॥

वेदांतगानं सकलैः समानं हुताग्निमानं त्रिदशप्रधानम्

मर्नेन्द्रयानं विमतायमानं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२०॥

इषामाभिगमं नयनाभिगमं गुणाभिगमं वचनभिगमम् ।

विश्वप्रणामं कुतभक्तकामं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२१॥

लीलाशरीरं रणरङ्गधारं विश्वैकमारं रघुवंशहारम् ।

गंभीरनादं जितमयंवाद् श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२२॥

खले कृतानं स्वचने विनीतं गामोर्णानं मनसा प्रवीतम् ।

गये । ओषधि, पर्वत, वृक्ष, समुद्र तथा नदियाँ भा भा पहुँचा । हन्द्रक द्वारा भज हुए वायुन आवर रामकी एक गुल्मर कंचनका माला पहनाया । १११ । ११२ ॥ पञ्चांग स्वयं इन्द्रन श्री भास्वर सख गन्धोसे युक्त तथा सोनस सुशोभित द्वारा राजा रामको सम्पन्न किया । ११३ ॥ इन्द्र, और गन्धर्व उनका गुण मन लगा । सब अप्सराय और क्षाण्णनार्ये भास्वर लगी देवताओंके नगर वज्रने लगे और आकाशस कूनोंकी मर्दी होने लगी ॥ ११४ ॥ बादमें भरतके द्वारा पूजित होकर मैं ( शिव ) रामकी स्तुति करने लगा । ११५ । श्रीशिवजी बोले—सुग्रीवक मित्र, परमपावन, सीताक पति, मेघक समान प्रियम अरावधाले करुणाके मिधु और कमलके सहस्र तैयोंवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ । ११६ । सम रमागरसे कृतोन्मी पार करनेवाले, वेदीका प्रचार करनेवाले, धर्मके साक्षान् अवतार, भूभास्वकी हरण करनेवाले, अद्विष्ट स्वल्पवाले और सुखके सर्वोत्तम सागर श्रीरामचन्द्रको मैं बड़ा नमस्कार करता हूँ ॥ ११७ । लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले, जगत्के निवासस्थान, लक्ष्मिका विनाश करनेवाले भयनोंको प्रवर्णाशत करनेवाले, ब्राह्मणोंको शरण देनेवाले और आर्यदीय चन्द्रमाके समान शुभ हास्य करनेवाले श्रीरामचन्द्रका मैं सतत नमस्कार करता हूँ ॥ ११८ । मन्दारको माण्ड धारण करनेवाले, रसाल वचन कालजवाने गुणोम महान् सात काल वृक्षोंका भेदन करनेवाले, राक्षसोंके काल तथा देवलोक्तके पालक रामचन्द्रको मैं सदा नमस्कार करता हूँ । वेदांत्के गेय, सबके साथ समान वर्ताव करनेवाले, शत्रुके मालका मर्दन करनेवाले, गज्जदका सवारी करनेवाले तथा अन्तरहित श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ । ११९ । १२० ॥ उगमरूपसे मनाहर मनोहर, गुणोसे मनोहर, हृदयग्रही वचन जोलनेवाले, विश्वचन्द्रमाय और भक्तजनोंकी कामनाओंको पूरी करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ । १२१ ॥ लीलाभाषक लिए शतर धारण करनेवाले, रणस्थलीमें धीर, विश्वभरके एकमात्र सारभूत, रघुवंशमे श्रेष्ठ, गंभीर वाणी बोलनेवाले और समस्त शत्रुओंकी जीतने वाले श्रीरामचन्द्रको मैं प्रतिक्षण प्रणाम करता हूँ । १२२ ॥ दुष्टजनोंके लिए कठोर हृदयवाले, अपने भक्तोंके प्रति



राक्षस्य शीतं वचनाद्वीक्ष्य श्रीरामचन्द्रं मननं तमासि ॥१२३॥

श्रीरामचन्द्रस्य वगाष्टकं त्वां सवेगं देवि मनोहर खे ।

पठन्ति भणन्ति गृणन्ति भक्त्या ते स्वीयकामान्प्रलभन्ति निन्यम् ॥१२४॥

इति स्तुत्या रामचन्द्रं तमासि पश्चित्तस्त्रहस्रम् । एतस्मिन्मन्तरे तत्र राजा दशरथो महान् ॥१२५॥

दृष्ट्वा रामं मयीत न विमानस्योऽर्धमाश्रितः । स्तुत्या राम परान्मान राज्यस्य न ध्रुवेष्टितम् ॥१२६॥

उवाच राम संतुष्टः सुगतीकविराजितः ।

दशरथ उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं धन्यो तौ पितरौ मम ॥१२७॥

धन्यो देशः कुलं धन्यं यस्यां राज्याभिषेचनम् । पश्याम्यद्य महाबाहो धन्या मा जननी तव ॥१२८॥

पा कौसल्या ममुस्माद् नेत्राभ्यां तेष्वपि पश्यति । हृत्पुत्रवत् राजानं नमाम न रघुनमः ॥१२९॥

कौसल्याया राजदाराः सर्वे ते पररागिनः । लक्ष्मणो भरतश्च शत्रुघ्नस्तेऽव मन्त्रिणः ॥१३०॥

नमस्काराभूयं चक्रुर्विमानस्य युदन्विताः । तान् राजाऽपि पृथक् पृष्ट्वा सर्वदेवगणैर्गुणैः ॥१३१॥

पूजितो रामचन्द्रेण मया सह न्यवर्तन । ययुः स्व स्व पदं सवे मया राज्ञा सुरास्तदा ॥१३२॥

गमेऽभिषिक्ते गजेन्द्र सर्वलोकमुवावहे । यगुधा मरुवर्मपन्ना कलवतो महारुहाः ॥१३३॥

गवर्धानानि बुध्वाणि गधयन्ति चक्राश्विरे । महस्य शतमथानां धेनूनां रघुनदनः ॥१३४॥

ददौ शतं वृषाणां च द्विजैर्मयो वसु कौटिल्यः । सर्वकारिसमप्रख्यां सर्वरत्नमयीं अजम् ॥१३५॥

मुद्रोवाय ददौ प्रीत्या राघवो हर्षसंपुनः । अवतनं ददौ भेष्टं राक्षसेद्राय राघवः ॥१३६॥

अंगदाय ददौ दिव्ये गधवो बाहुभूषणे । चद्रकौटिप्रतीकांश्च मणिरत्नविभूषितम् ॥१३७॥

मानावे प्रददौ हारं प्राप्या रघुकुलोत्तमः । ना तं हारं ददौ वायुगुवाय सा मनास्विनी ॥१३८॥

वितस्त्रमाववाप्य सामवेद त्रिनका गुणगान करत है, मनमात्रक विषय, प्रेमस गान करने योग्य तथा वचनोंसे पहलू करने स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी से समस्त नमस्कार करना है ॥ १२३ ॥ ते रति । गुहारे प्रति कहें हुए श्रीरामके इस सुन्दर अष्टककी जो मनुष्य भक्तिसे पढ़ा अथवा सुने सुनायेगा, वह अपनी अभिप्रेत कामनाओंको निज प्रान्त करेगा । १२४ । रामचन्द्रकी इतनी स्तुति करके ज्यों ही मैं उस सभामें बैठा, यों ही मैंने समस्त नेत्रस्वा राजा दशरथ विमानपद सवार होकर मूलमुद्रावके साथ वहाँ आकर सत्तक सहित चन्द्रभोसे बैठित तथा राजाशेपर स्थित पुष्पवर्ण राम परमान्माका देखकर स्तुति करने लग्य ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ दवनाओक समूहके परिवर्धित राजा दशरथ प्रसन्न होकर जान । उन्होंने कहा—मैं धन्य हूँ, मैं कृतकृत्य हूँ मेरे माता-पिता धन्य हैं । १२७ ॥ मेरा देश तथा कुल भी धन्य है कि जो मैं आज तुम्हें राजाशेपर अभिषिद्धित देख रहा हूँ । हे महाबाहो । तुम्हारी माता कौसल्या भी धन्य है, जो तुम्हें इसाहूतके अपने नेत्रसे देख रहा है । तदवन्तर रामने उन राजा दशरथको प्रणाम किया । १२८ । १२९ ॥ स्व कीमन्ता आदि राजाकी मित्रगने पुरवासिदोने, भरत अश्वघने तथा मन्त्रियोंने प्रसुद्धित होकर विमानमें विमान राजा दशरथको प्रणाम किया । राजाने भी एक-एक करके उन सबसे कुशल पूछा । फिर देवताओं तथा पुत्रों साथ लै और रामचन्द्रसे पूजित होकर उन्होंने वहाँसे प्रस्थान कर दिया । भर तथा रामके सहित के सब देवता अपने अपने काम सिधारे । १३०—१३२ ॥ सब लोगोंका सुख देनेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा रामका अभिप्रेत हो जानकर पृथ्वा धन-धान्यपूर्ण हो गयी और नही कल्पनेवाले भी वृक्ष कल्पने लगे । १३३ ॥ सुषम्बरहित पुष्प भी सुगन्धित होकर सुगन्धित होन लगे । रघुनन्दन रामने सैकड़ों बैल, हजारों घोड़े तथा करोड़ों रत्न राजाका दान दिये । उन रामने प्रसन्न होकर मूलक समस्त चक्रनेत्र तथा अन्य प्रकारके रत्नोंसे निमित्त एक माता प्रीतिपूर्वक मुद्रोषको दौ और एक सिररत्न राक्षसेन्द्र विभीषणको दिया । १३४—१३६ ॥ उन्होंने अंगदको दिव्य बाहुबन्द दिये । रघुकुलमणि रामने सीताको करोड़ों चन्द्रमाके समान चमकाते बजियों तथा

नेन हारेण शुश्रूमे मारुतिगारिवेण च । तदा दृष्ट्वा हनुमन्तं रामो वचनमब्रवीत् ॥ १३९ ॥  
 मारुते त्वां प्रसन्नोऽस्मि वर दय्य कांक्षितम् । हनुमानपि तं प्राह तत्त्वा रामं ब्रह्मृषीः ॥ १४० ॥  
 त्वन्नाम स्मरतो राम मनस्तुष्यति नो मम । अतस्त्वन्नाम मननं स्मरन्स्थास्यामि भूतले ॥ १४१ ॥  
 यावन्स्थास्यति ते नाम लोके तावन्कलेशम् । मम तिष्ठतु राजेंद्र वरोऽयं मेऽभिकांक्षितः ॥ १४२ ॥  
 यत्र यत्र कथा लोके प्रचरिष्यति ते शुभा । तत्र तत्र गतिर्मेऽस्तु श्रवणार्थं सदैव हि ॥ १४३ ॥  
 देवालयान्नदीतीरतीर्थाद्यापि जलाशयात् । विनाऽन्यत्र स्थले वेस्तु कथा पङ्कटिकोर्ध्वतः ॥ १४४ ॥  
 रामस्तथेति तं प्राह मुनस्तिष्ठ यथामुखम् । कल्पाने मम मायुज्यं प्राप्स्यमनात्र संशयः ॥ १४५ ॥  
 तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते । स्थितं स्यामनुयासूँति भोगाः सर्व ममाश्रया ॥ १४६ ॥  
 श्रमागमपणनेषु प्रजसेटकमयसु । वनदुर्गपर्वतेषु सर्वदेवालयेषु च ॥ १४७ ॥  
 नदीषु क्षेत्रतीर्थेषु जलाशयपुष्पेषु च । वाटिकोपवनाश्वन्धवटवृन्दावनादिषु ॥ १४८ ॥  
 त्वन्मूर्तिं पूजयिष्यन्ति मायया विघ्नशानये । भूतप्रेतपिशाचाद्याः नश्यन्ति स्मरणान्नव ॥ १४९ ॥  
 ये चान्ये वानराश्च ह्ययोध्यां समुपामताः । अमून्यामरणैस्त्रैः पूजिता गयवेण ते ॥ १५० ॥  
 सुर्यावप्रमुखाः सर्वे वानराः मविर्भाषणाः ।

मकरध्वजमपातिगुहकाः पथिवादयः । यथाहं पूजितास्तेन रामेण वमनादिभिः ॥ १५१ ॥  
 ततः सर्वभोजनार्थं गयवः संस्थितोऽभवत् । रामेण प्राणादूनयो गृहीताश्चेति मरुतिः ॥ १५२ ॥  
 निर्गह्योर्हीय चेमेन रामाग्रे भोजनस्य च । त्रिपदायां स्थित पार्श्वे हंस पक्वान्नपूरितम् ॥ १५३ ॥  
 निनाय वामहस्तेन धृत्वा च विहसन्मुदा । स्वयं भुक्त्वा रामशेषं प्राक्षिपद्धानशर्नापि ॥ १५४ ॥

रत्नासे विभूषित हार सत्रेण समर्पण किया । मरुतिवर्मीसीतान भी रामका दिया हुआ वह हार वायुपुत्र हनुमानको दे दिया ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ उस हारके पीरवस हनुमान बड़ ही मगामित होने लगा । वह दबकर रामने हनुमानसे कहा— ॥ १३९ ॥ हे मारुते ! मे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ जो चाहो सो वर माँगो । तब प्रसन्न हनुमान् रामको नमस्कार करके कहा— ॥ १४० ॥ हे प्रभा ! आपका नाम स्मरणने मेरा मन अब भी तृप्त नहीं हुआ है । अतएव जबतक आपकी नाम भूतलमें विहमान रहे जबतक मैं आपका नाम स्मरण करता हुआ इस लोकमें अवित रहूँ हे राजन्द्र ! यहाँ मेरा अभिलषित वर आग पुत्र हूँ ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ लोकमें जहाँ कहीं भी आपकी यावत्र कथा हातो हो, वहाँ वह कथा मुनिक स्थित जलमें मरी अप्रतिहत गति हो ॥ १४३ ॥ देवालय, नदीतीर, तीवस्थान तथा शिवली आदि जलाशयको छूटकर अन्य स्थानों पर छः घड़ोंके बाद नित्य आपकी कथा हुआ करे ॥ १४४ ॥ रामने कहा अच्छा, तुम मुक्त होकर सुखसे भ्रमण्डलपर निवास करो कल्याणक समय तुम मरी मायुज्य पुनिकी प्राप्ति होगी, इसमें संदह नहीं है ॥ १४५ ॥ इसके पश्चात् जानकीजी प्रसन्न होकर बोलीं हे मारुते ! तुम जहाँ कहीं रहोगे, वहाँपर मेरे आर्णावर्दिसे तुमका सब मन्त्र वदार्थ प्राप्त हो जायगा करन ॥ १४६ ॥ ग्राम बाग, नगर, गोशाला, रास्ता, ठाँठ गाँव, घर, वन, जिला पर्वत, सब देवालय, नदी, तीर्थक्षेत्र, जलाशय, पुर, वाटिका, उपवन, पौधल, वट तथा वृन्दावन आदि स्थानोंमें प्रमुख अपन विघ्नाका शान्त करनके स्थित तुम्हारी मूर्तिकी पूजा करेंगे । तुम्हारा नाम स्मरण करनसे ही भूतप्रेत तथा पिशाच आदि दूर भाग जावेंगे ॥ १४७-१४८ ॥ इसके बाद रामने अगच्छाम जो अन्य वानर आय वे, उस सबका भी बहुमुख्य भूषण तथा सम्पत्ति सरकार किया । १४९ ॥ श्रीरामने रत्नादिसे सुवीर आदि वानरो विभीषण, मकरध्वज, संपाती तथा निषादराज आदि राजाओंका भी यथायोग्य पूजा की ॥ १५१ ॥ उसके पश्चात् सबको साथ लेकर रामचन्द्रजी आश्रित करने बैठे । रामके पाँच ग्राम ग्रहण करके तृप्त हो जानके साथ ही हनुमान् सब दृढकर रामके पास भा पहुँच और उसका सामने पाँवर खड़ा हुआ पक्वान्नेसे परिपूर्ण सुवर्णका थाल बाएँ हाथसे उठाकर आकशमें चले गये और रामके उस भोजनशयका स्वयं आनन्दसे

तदा विभीषणाद्याश्च स्वीयवाचाणि वेगनः । विमृष्य मरुतिं मृग्या स्वया वस्य कुरुतं स्थितिः ॥ १५५ ॥  
 तन्निभं गयचोच्छिष्टं बुधुनुः सभ्रमान्विताः । महान् कोनादलक्षार्मात्रामोच्छिष्टार्थमावगतः ॥ १५६ ॥  
 मानसामो तन्निगद्य दृष्ट्वा जहननुस्मदाः । एवं नानाकौतुकानि कुरुन्तो राघवोन्निवे ॥ १५७ ॥  
 सुग्रीवाद्याः सुतं तन्भुजोपवनः क्रियद्दिनम् । एतन्मित्रान्नरे तत्र पुष्पकं च समपुनः ॥ १५८ ॥  
 प्राह देव कूवेरेण प्रेषितं न्यामह पुनः । मामाह पन्कुवेष्वनष्टपुत्रश्च स्व गृध्रतम ॥ १५९ ॥  
 जिनस्त्वं रावणेनादौ पश्चाद्रामेण निजिनः । जनस्त्वं गयच निन्य वह यावद्वेदेहनि ॥ १६० ॥  
 यदा गच्छेद्रघुश्रेष्ठो वैकुण्ठं याहि मां तदा । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह सुग्रीवादीन्यथास्थिते ॥ १६१ ॥  
 स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्वहिर्वस तथेति । रामवचनाद्दानराद्यान्यथास्थिते ॥ १६२ ॥  
 स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्वहिः स्थितम् । चकार राज्य धर्मेण लक्ष्मणां च विभीषणः ॥ १६३ ॥  
 अग्राम राज्यं पानाले धर्मेण मकरध्वजः । चकार तार्क्ष्यः मरुतिं यौगजदण्डे जिने ॥ १६४ ॥  
 दाशाम राज्यं कपिभिः किष्किन्ध्यायां कर्षाश्वरः । मृङ्गवेरपुरे राज्यं मुहुकथाकरोन्मुदा ॥ १६५ ॥  
 नन्या राम दायुपुत्रो ययौ तप्तुं हिमालयम् । सर्वे विभीषणाद्याश्च वचसे समसेहतनि ॥ १६६ ॥  
 दर्शनार्थं राघवस्य साकेतं प्रययुः सदा । पञ्च मय दिनान्यत्र स्थित्वा भोगघर्षानिरुक् ॥ १६७ ॥  
 यातायातं सदा चक्रुः स्वम्यराजशाद्वृत्तमम् । रामोऽपि राज्यमखिल अग्रामाखिलवन्मलः ॥ १६८ ॥  
 अनिच्छत हि मौमित्रि यौवरा.देऽभ्यवेचयन् । लक्ष्मणः वरया भक्त्या रामसेवायगोऽमवत् ॥ १६९ ॥  
 विश्वामित्राध्वरे पूर्वं रणयागस्य पूजना ।

न कृता या राघवेण सा कृता स्वपदे तदा । रणयागः मयिस्त्वासाद्वर्ष्यते मृणु चार्चति ॥ १७० ॥

स्थाने तथा नीच बानरोके आगे पंक्ते लगे ॥ १५२-१५४ ॥ यह देखकर विभीषण आदि भक्त भी जोर अवन-प्रवने वालोंको छोड़कर हनुमान्की प्रशंसा करके कहने लगे कि तुमने बहुत उत्तम काम किया ॥ १५५ ॥ यह कहकर वे स्वयं भी सड़े आदमोंसे मार्जिका केरा हुआ रामका उच्छिष्ट प्रणाम करने लगे । उस समय रामकी बूझके लिये बड़ा भारी कालहस्त भव गया ॥ १५६ ॥ राम और सीताने यह दस्ता ता प्रकल्प होकर दूरने लगे इस प्रकार विजिघ्र कोटावे करके सीता और रामको प्रमत्त करने हुए गुणिव आदि मित्र कुछ दिन रह्यो रहे । इसलिये पुष्पक विमान पुनः वहाँ आया ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ वह रामन कहने लगा—हे देव । कूवेरेने मुझको आपक पास वापस भेज दिया है । हे गृध्रतम ! कूवेरेने आ कुछ मुझसे कहा है, वह मुनिने ॥ १५९ ॥ उन्होंने कहा है कि पहले तो रावणने तुमको मुझसे जीता था और बादमें रामने तुमको रावणसे जीता है । इस कारण तुम आकर तबतक राम ही को सब री देनेका काम करो, जबतक कि भूमण्डलम रह्यो ॥ १६० ॥ जब रघुश्रेष्ठ राम वैकुण्ठ घाम चले जायें, तब तुम मेरे पास चले जाना । यह मृतकर रामने विष्णुको आज्ञा दी कि शृंगार आदि मेरे मित्रोंको उनके स्थानपर पहुंचाकर जोर ही अयाध्या लौट आओ और राजमहलके दरवाजेक बाहर खड़े रहो । तदनन्तर विभीषण जाकर लक्ष्मणे समपूर्वक राज्य करने लगे ॥ १६१-१६३ ॥ मकरध्वज पानालमें धर्मपूर्वक राज्य-शासन करने लगे । मरुदने युवराजपरपर शृंगारोंका अभिषेक किया ॥ १६४ ॥ किष्किन्ध्याने कर्षाश्वर तृतीय राज्य करने लगे । मृङ्गवेरपुरमें निषादराज आनन्दने राज्य करने लगा ॥ १६५ ॥ दायुपुत्र हनुमान् रामका नमस्कार करके तप करनेको हिमालय चले गये । फिर भी विभीषण-सुग्रीव आदि मित्र पौनर्व अथवा साठवें दिन अयोध्यामें भीरामका दर्शन करनेके लिए आया करते थे और वे श्रीरामके पास पौन-सात दिन निवास करके चले जाते थे । इस प्रकार उन लोगोंका अपने-अपने राज्यसे श्रीरामके पास जाना जाना लगा रहता था । सभी लोगोंके प्रिय राम भी सम्पूर्ण राज्यका चालन करने लगे ॥ १६६-१६८ ॥ न चाहतेपर भी रामने लक्ष्मणका युवराजके पदपर अभिषेक कर दिया और वे भी रामको सेवामें तत्पर हो गये ॥ १६९ ॥ रामने पूर्व समयमें विश्वामित्रके यज्ञके समय जिस युद्धरुची यज्ञकी समाप्ति नहीं की थी, उस रणयज्ञको इस समय अपने राज्यपदपर स्थित हो जानेपर पूर्णाहुति की । हे पार्श्वती ।

रणांगणं यत्कुण्डं तत्र वै स्यलप्यनम् । तच्च वेदविधानं हि ब्रह्ममखं प्रकीर्तितम् ॥१७१॥  
 कर्मणश्च पटाटोपो ज्ञेयः शम्भुवणस्त्रयः । संघात्रेन स्रक्स्वयमोज्ञेयं पाषाणवर्षणम् ॥१७२॥  
 शस्त्राणां मन्त्रोद्धार्यं क्रियते यदृणांगणे । भूमौ शराणां विस्तारः परिस्तरणमुत्तमम् ॥१७३॥  
 परिसमूहनं चैवै यदिक्षालानलो महान् । श्वेदेण बाणरूपेण मानादुनिममर्षणम् ॥१७४॥  
 रक्तधारा वयोधारा हाहाकारो भयानकः । मञ्जुकारवपटकारोपो ज्ञेयो रणाध्वरे ॥१७५॥  
 अग्नेज्वाला शम्भुनेत्रोपुष्पः स्वेदमृगो रणे ज्वालात्रिचयग्रान्तर्यं पृथदाज्यस्य सेननम् ॥१७६॥  
 यत्तद्वत् तु वीराणापस्त्रपांचनमुत्तमम् । ज्ञानेन सह जीवस्य बलिदोषवलिः स्मृतः ॥१७७॥  
 वै देवलोभिनो जीवा बलिदोषहराः स्मृतः । रामहस्तान्मूर्तिन्यक्का ये कुर्यन्ति पलायनम् ॥१७८॥  
 देहवन्धश्च मुक्तास्ते बलिमक्षणदोषतः । पूर्णादुतिः सिरोभिर्हि ज्ञेयास्तत्र अदक्षिणाः ॥१७९॥  
 उच्चाटने हि सन्धेन वीराणां जयहेतवे । नञ् यदप्रदानं च ज्ञेया मा दक्षिणाऽध्वरे ॥१८०॥  
 मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिस्तुष्टं विश्वामिवेषनम् । जयमन्त्रादनं पुष्टं श्रेयःसंपादनं हि तत् ॥१८१॥  
 चराचरणामानन्दो ज्ञेयः स निजमोजिगाम् । भूतानां नयेन विश्वमोजनं सम्प्रकीर्तितम् ॥१८२॥  
 एव मुवाहुना युद्धं राघवस्य रणाध्वरः । तथा गाधिजयस्तपि दौ नो ज्ञेयो महेश हि ॥१८३॥  
 कृताञ्जनासमाप्तिस्तु विश्वामिवेषनं वै पुरा । विमर्जिनो न रामेण दृष्टाज्जयं रणाध्वरे ॥१८४॥  
 कालानलं पुनस्तस्य सुन्दरं राउकरोन्मतिम् । कृत्वा भूमेर्महन्वात्रे विश्वरूपधरेण हि ॥१८५॥  
 पात्रस्य प्रोक्षणं कृत्वा विश्वाहुन्यर्थमादरात् । रामः शूर्पणखायाश्च घ्राणं वर्णां विभेदयत् ॥१८६॥  
 श्राणादुतिर्गो गमेण त्रिशिराः खण्ड्यणी । मार्गश्च कवन्धश्च पंच ते निहताः क्षणात् ॥१८७॥

उस रणरूपी यज्ञका में विस्तारमें वर्जन करता है, पुनः ॥ १७० ॥ उस रणयात्रामें युद्ध कुण्ड था । नमस्सं न  
 पागना ही वेदविहित बहुसन्न था ॥ १७१ ॥ शम्भुकी मन्त्रवाट ही कर्मकी सागरा थी । रणांगणमें मन्त्रोका  
 मेल सुनानेके लिये उनपर जा पत्थर धिसे जन थे, वही मुक्तस्वयमोज्ञेय, मर्जित था । भूमिमें बाणोंका फैला-  
 फेंलाकर रखना ही उत्तम कुण्ड आदिका आस्तरण था । शीरवा ही उनका परिसमूहन ( वन्दन ) था । महान्  
 कालरूपी मर्जि ही यज्ञकुण्डका भाग था । उसमें बाणरूपी सुवाम भावका आहुतिदेसमर्पण की जाती थी  
 ॥ १७२-१७४ ॥ श्विदकी घागी ही वसुधा थी । भयानक हाहाकार ही ओंकार तथा वधूकारका नाद था  
 ॥ १७५ ॥ शम्भुकी चमक ही क्षमकी जलर था । परमोक्तका बहना ही धुमी था । शीर पुष्पोंका उत्तम  
 मन्त्रमोजन ही अधिक ज्वालाकी मर्जिवा पृथदाज्य मीषनरूपी उपाय था । नमस्कृत्य ज्ञेयोंके शरीर-त्याग  
 ही दीपदान था ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ जो शरीरमें ममता रखनेवाला है, वे ही पूजाका सामग्री तथा दापवा ले  
 भागनवाले माने जाते थे । ओ रामके हाथसे न मरकर बहूंस भाग जाते थे । वे दन्धिधरण करनेके दावसे  
 वेदरूपी वधनमें ही बड रत जाने थे-पुन मर्दों होने थे । उस युद्धरूपी यज्ञमें सिरोका बट कटकर गिरना ही  
 नारियलके द्वारा ही जानबाली पूर्णाहुति थी । चित्रजन्मभक्त लिये अपनी दाहिनी ओरसे बाँरीको दूर करना  
 ही अदक्षिणा थी । उस यज्ञमें मृत पुष्पोंका विजयवन ( वृक्षारक का प्रति ) ही दक्षिणा थी ॥१८०-१८१॥ देवता-  
 लोके द्वारा जो पुष्पवृष्टि की जाती थी, वह बाह्यलोका अभिवेषन था । युद्धमें विजय प्राप्त करना ही यज्ञका  
 फल था ॥ १८२ ॥ चर अवरका आनन्दलाभ ही ज्ञान गात्रवालेका आनन्द समझा जाता था । पशुपती  
 आदि जलोकी मूर्ति ही विश्वमोजन कहा जाता था ॥ १८३ ॥ इस प्रकार रामका जो मृगारुमे युद्धरूप यज्ञ राक्ष-  
 साँके साथ आरम्भ हुआ, वह जोर गाधिपुत्र विश्वामित्रका यज्ञ दोनों साथ ही आरम्भ हुआ ॥ १८४ ॥ उनमेंसे  
 विश्वामित्रजीने तो अपना यज्ञ समाप्त कर लिया था । परन्तु रामने अपने यज्ञमें कालानलको अनुष्ट टलकर  
 अपना युद्धयज्ञ समाप्त नहीं किया था । अतएव उसका वृत्त करनेवा इच्छा करके रामने विश्वरूपी रक्षि-  
 से पुष्पोंरूपी पात्रका प्रोक्षण ( पुष्टि ) करके शूर्पणखाके नाक-कान कटकर प्रेममें विश्व-विचित्र आहुतियें  
 की ॥ १८५-१८६ ॥ रामने त्रिशिरा, सर, दूधण, मानोच तथा कवन्धको क्षणभरमें मारकर पंचघाणा-

शिखाबन्धविमोक्षार्थं शयरी भवबंधनात् । कृता मुक्ता तु रामेण जलस्पर्शनहेतवे ॥१८८॥  
 नैश्योर्निहतो बाली दत्तं तदुधिरं तदा । काथिलंकापुरं दग्धा कुम्भकर्णस्तथौदनः ॥१८९॥  
 पक्वान्निर्मिद्रजिह्व ज्ञेयः शाकार्थं राक्षसा हताः । वरान्नं सारणो ज्ञेयः प्रहस्तो वट्टकः स्मृतः ॥१९०॥  
 निकुम्भः पर्यटो ज्ञेयः कुम्भस्तु लवणं स्मृतः । पायसार्थं कालनेमिस्त्वतिकायः स शर्करा ॥१९१॥  
 क्षीरमैरावणो ज्ञेयो घृतं मैरावणः स्मृतः । दध्यौदनः ममामौ तु आहवे च स रावणः ॥१९२॥  
 हत्वा निवेदितः पात्रे तस्य कालानलस्य च । उच्छिष्टेष्वलिमत्पानः केशवकीकसादिनाम् ॥१९३॥  
 संन्यातोऽत्र रणे ज्ञेयस्तदा तृप्तो बभूव सः । ततो रणाञ्चरस्मात्र राघवेण विसर्जनम् ॥१९४॥  
 अयोध्यायां प्रवेशो हि कृतस्तत्ते वदाम्यहम् । अध्वगवभृयस्थानं ज्ञेयं राज्याभिषेचनम् ॥१९५॥  
 भगलानि समस्तानि यज्ञांगविहितानि हि । ज्ञातव्यानीति रामेण रणयागो विसंज्ञितः ॥१९६॥  
 एवं प्रोक्तो मया देवि रणयागः सविस्तरः । रामोऽथ परमात्मापि कार्यान्वहोऽतिनिर्मलः ॥१९७॥  
 कर्तृत्वादिविहीनोऽपि निर्विकारोऽपि सर्वदा । स्वानन्देनापि संतुष्टो लोकानामुपदेशकृत् ॥१९८॥  
 चकार विविधान् धर्मान् गार्हस्थ्यमनुलब्धं च । न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥१९९॥  
 न व्याधिजं भय चामीद्रामे राज्यं प्रशासति । औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत् प्रजाः ॥२००॥  
 सीतया बन्धुभिः मारुतैः साकेतं सुखमाय सः । इदं युद्धचरित्रं ते प्रोक्तं देवि मया तव ॥२०१॥

इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

युद्धचरिते रामराज्याभिषेकवर्णने नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥



इति धर्म दी ॥ १८७ ॥ जिसका गाँव खोलनेकी जगह रामने शयरीको संसारबन्धनसे छुटाकर मुक्त कर  
 दिया । रामने बालीको मारकर उसके रुधिररूपी जलसे नेश्रोमें स्पर्श किया । लंकाको जलाकर कालानलके  
 लिये ढाल तथा कटो बनायी । अर्थात् लंका ढाल-कटोके स्थानमें गिनी गयी । कुम्भकर्णरूपी मात,  
 मेघनादरूपी पकवान और सब राक्षसोंका शाक बना । अन्य उत्तम पदार्थोंके स्थानपर सारण मारा गया ।  
 प्रहस्त बड़ा, निकुम्भ पायस, कुम्भ नमक, कालनेमि खीर, अतिकाय शक्कर, ऐरावणरूपी दूधमे  
 मैरावणरूपी घी तथा अध्वगवभृयके स्थानपर रावणको मारकर रामने कालानलके पालमें परोस दिया ।  
 कालानलने इन सबका भोजन करके बेश, चर्म तथा अस्थियोंका जूठन रणमें छोड़ दिया । तब वह तृप्त हुआ ।  
 उसके पश्चात् रामका अयोध्यामें प्रवेश करना ही रणरूपी यज्ञको समाप्ति अर्थात् रणयज्ञका विसर्जन हुआ ।  
 वही रामका राज्याभिषेक ही यज्ञके अन्तका अध्वभूयस्थान था ॥ १८८-१९१ ॥ अव्याप्य मांगलिक कार्य  
 उस यज्ञके अंग थे । इस प्रकार रामने सांगोपांग रणयज्ञ पूरा किया ॥ १९६ ॥ हे देवि ! मैंने तुमको उपयुक्त  
 प्रकारसे समस्त रणयाग कह सुनाया । तदनंतर साक्षात् परमात्मा, कार्यमनुदायके अचिष्टात्ता, कर्तृत्वादि  
 अभिमानसे रहित, सदा निर्विकार स्वरूप, निज आनन्दसे ही संतुष्ट तथा सब प्राणियोंको सदुपदेश देनेवाले  
 राम भी बृहस्पतिवर्मा धालद करने हुए अनेक धर्मोंका आचरण करने लगे । उनके राज्यकालमें कोई भी  
 स्त्री विधवा होकर रोती नहीं थी । किसीको सौंप तथा व्याज आदिका भय नहीं था और न किसीको  
 रोगका डी भय था । रामने भी समस्त प्रजाको, पिता जिस प्रकार अपने सगे लड़कोंका पालन करता है,  
 उसी प्रकार पालन किया । हे देवि ! यह मैंने तुमको रामका युद्धचरित्र कह सुनाया ॥ १९७-२०१ ॥ इति श्रीमत्त-  
 कोटि शतचरितंतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे युद्धचरिते रामराज्याभिषेकवर्णने नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

## त्रयोदशः सर्गः

( अगस्त्य-रामसंवादः )

श्रीशिव उवाच

एकदा राघवं द्रष्टुं मुनिभिः कुंससमवः । ययौ रामेण समानमानितः स उपाविशत् ॥ १ ॥  
 उपविष्टाः प्रदृष्ट्वा च पुनर्यो रामपूजिताः । संदृष्टकुशलाः सर्वे रामं कुशलमब्रुवन् ॥ २ ॥  
 कुशलं ते महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन । दिष्टयेदानीं प्रपद्यामो हतशत्रुपर्दिम ॥ ३ ॥  
 दिष्टया त्वया हताः सर्वे मेघनादादयोऽसुराः । हन्वा रभोगणान्सर्वान् कृतकृत्योऽद्य जीवसि ॥ ४ ॥  
 इति तेषां वचः श्रुत्वा रामस्तान्प्राह सुम्पितः । किमर्थमादौ पुष्पाभिर्मेघनादोऽद्य कीर्तितः ॥ ५ ॥  
 इति रामवचः श्रुत्वाऽगस्तिस्तरुवलोकितः । कुंसयोनिस्तदा रामं प्रीत्या वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥  
 शृणु राम यथा वृत्तं मेघनादस्य चेद्दिनम् । जन्मकर्मवशाप्राप्तिं सक्षेपाद्ब्रूयामि ॥ ७ ॥  
 पुरा कृतयुगे राम पुलस्त्यो मङ्गणः सुतः । तृणविदुमुतायां स पुत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ८ ॥  
 निर्ममे विश्रवा नामधेयं वेदनिधिं शुभम् । भगद्वाजमुतायां च विश्रवा निर्ममे सुतम् ॥ ९ ॥  
 श्रेष्ठं वैश्रवणं तस्मै प्रमत्तोऽभूद्विधिश्चिरात् । विधिर्वैश्रवणायाध तृष्टस्तनयमा ददौ ॥ १० ॥  
 मनोऽभिलषितं यानं धनेश्वरमखंडितम् । पुष्पकं चाप्येकदाऽमौ द्रष्टुं विश्रवमं ययौ ॥ ११ ॥  
 पुष्पकेण धनाध्यक्षो ब्रह्मदत्तेन भास्वता । नय्या तातं तदा प्राह न स्थानं ब्रह्मणा मम ॥ १२ ॥  
 दत्तं मध्ये मया कुत्र तद्विचार्यं ब्रूयामां । विश्रवा सपि तं प्राह विश्वकर्मविनिर्मिता ॥ १३ ॥  
 लंका नाम्नी पुरी श्रेष्ठा यागरेऽस्ति सुमङ्गिता । त्यक्त्वा विष्णुभयार्द्रया विविशुस्त रसावलम्बम् ॥ १४ ॥  
 सुखं त्वं वस तस्यां हि तथेष्ट्युक्त्वा धनेश्वरः । गत्वा तस्यां चिरं कालमुत्तमं पितृममतः ॥ १५ ॥

श्रीशिवजी बोले— हे प्रिये ! एकदिन बहुतसे मुनियोंके साथ अगस्त्यमुनि श्रीरामका दर्शन करने आये । रामसे सम्मानित होकर वे सब बैठे ॥ १ ॥ अन्यान्य मुनि भी रामसे पूजित होकर प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये । रामके वृक्षोंपर सबने अपना कुशल संनमनाया ॥ २ ॥ और कहा— हे रघुनन्दन ! बड़े हर्षकी बात है कि शत्रुको मारकर सकुशल आपको हम लोग राज्यसिंहासनपर विराजमान देख रहे हैं । हे भरिन्दम ( शत्रुओंको भँसा दिखलानेवाले ) ! आपने बड़े चापसे मेघनाद आदि सब असुरोंको मार गिराया है । उन्हें मार तथा कृतकार्य होकर आप विराजमान हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ उसका ऐसा वचन सुनकर राम कुछ मुसकराते हुए बोले— आपलागाने सब राक्षसोंसे मेघनादका नाम पहले क्या लिया ? रामका यह प्रश्न सुनकर वे सब मुनि अगस्त्य मुनिका मुख देखने लगे । यह देखकर अगस्त्य बहुत प्रेमपूर्वक रामसे बोले— ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राम ! मैं आपसे मेघनादका चरित्र, जन्म, कर्म तथा ब्रह्मापस्तिका वृत्तान्त संक्षेपमें कहता हूँ, आप सुनें ॥ ७ ॥ हे राम ! सत्ययुगमें पुलस्त्य नामके ब्रह्मपुत्रने तृणविन्दुकी पुत्रोंस तीनो लोकोंमें प्रसिद्ध वेदवेत्ता विश्रवा नामका पुत्र उत्पन्न किया । विश्रवाने मारुताओंको पुत्रोंसे वैश्रवण नामक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया । कुछ दिनोंके बाद वैश्रवणकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माने उसको उसका मनोवांछित पुष्पक विमान, अखंड धनेश्वर तथा कुबेरकी पदवी प्रदान की । एक दिन ब्रह्माके दिये हुए तम सुन्दर पुष्पक विमानपर सवार होकर धनाधिप कुबेर अपने पिता विश्रवाका दर्शन करने गये । वहाँ आकर कुबेरने पिताको नमस्कार करके कहा— हे पिताजी ! ब्रह्माने मुझे निवासके लिये काई स्थान नहीं दिया है । अतः आप विचार करके कोई भेरे रहने योग्य स्थान बताइए । विश्रवाने कहा— विश्वकर्माकी बनायी हुई एक सुन्दर और श्रेष्ठ लंका नामकी नगरी समुद्रके बीचमें विद्यमान है । विष्णुके शरसे दैत्य लोग उसे छोड़कर पातालमें चले गये हैं ॥ ८-१५ ॥ तब जाकर उसमें सुखपूर्वक निवास करो । 'तथास्तु' कहकर कुबेर पिताके कथनानुसार जाकर बहुत काल

कस्मिंश्चित्काले हि सुमार्त्तानाम् राक्षसः । दृष्ट्वा व्यवचक्षूसां पुण्यकेतु ददर्श यः ॥१६॥  
 हिताय चित्तयामास राक्षसानां महायनाः । केकसीं ननयामाह गच्छ विश्रवसं मुनिम् ॥१७॥  
 वरयस्व मुनेस्तेजःप्रतापात्ते मुनाः शुभाः । मविष्यन्ति घनाभ्यक्षतुल्या नो हितकारिणः ॥१८॥  
 सा मंज्यायां ययौ शीघ्रं मुनेश्वरे व्यवस्थिता । लिखन्ती भुवि शार्दापुष्टेन चाधोमुखा स्थिता ॥१९॥  
 तामपृच्छमुनिः का त्व साप्सह भवं वेनुमहमि । तनो ज्ञान्वा मुनिः सर्वे ज्ञान्वा तां प्रन्यमायत ॥२०॥  
 ज्ञातं तवामिलपितं मत्तः पुत्रानभाष्यमि । दाहणायां तु वेलायामागतामि मुमक्ष्यमे ॥२१॥  
 अतस्ते दारुणां पुत्री गच्छयौ समविष्यतः । साऽत्रवीन्मुनिशार्दूलं स्वर्णोऽप्येयंविधौ सुगौ ॥२२॥  
 तामाहान्तिमजो यस्ते भविष्यति महावतिः । ततः सा मुपुत्रे पुत्रान् यथाकाले सुमक्ष्यमा ॥२३॥  
 रावणं कुम्भकर्णं च कौचीं शूर्पणखां शुभाम् । कुम्भीनर्भो कनार्याम् तृतीयां न विभीषणम् ॥२४॥  
 रावणः कुम्भकर्णश्च त्रयो दहितरक्तया । द्यूताः प्राणिमन्त्राश्च यधुर्मुनिहिमकाः ॥२५॥  
 एकदा रावणो मात्रा लिगार्थे प्रपितः शिवम् । कर्तुं प्रमत्तमरुगेत् यत्कामं कम दुष्करम् ॥२६॥  
 किञ्चित्स्त्रीयं शिरश्छित्त्वा वीणां पटञ्जस्वर्गमुदुः । कृत्वा पाठं हि देहस्य तन्मूत्रं शिरसस्तथा ॥२७॥  
 तदयं पादयोः कृत्वा शकृन्गुल्लामस्तथा । तत्रोः कृत्वाऽन्त्रमालाभिः श्वनशोऽय सहस्रशः ॥२८॥  
 एवं कृत्वा स्वदेहस्य वीणां पटञ्जस्वर्गमुदुः । चकार स्वसुखेनैव गाधिवं वायनं शुभम् ॥२९॥  
 तदा नदीश्वरं प्राह शकरो लोकशकरः । शिरः संधाय हस्तेन न्वया वान्पोऽय रावणः ॥३०॥  
 आन्मल्लिगं गक्षमं त्वां शकरो न प्रदाम्यति । हृदयं हि मया ज्ञातं शोभोस्त्वं याहि स्वस्थलम् ॥३१॥  
 हत्युक्त्वा प्रेषणीयः स रावणः स्वस्थलं न्वया । इति शोभोर्वचः श्रुत्वा ययौ नदीं स रावणम् ॥३२॥

तक बहो रहे ॥ १५ ॥ पश्चात् निम्नो समय गुमा यो राक्षसने अपनी पुत्रोंको साथ लेकर पृथ्वीपर भ्रमण  
 करते समय पुण्यकेतुको देखा । १६ । तब मशान्वा सुमार्त्ताने राक्षसोंका हित सोचकर अपनी लड़की  
 केकसीसे कहा कि तुम विश्रवा मुनिके पास जाकर पुत्रके नज-प्रतापसे सुन्दर पुत्रोंको प्राप्तिके लिये वर  
 माँगे । वे पुत्र वृषरक्त समान प्रतापी तथा हमलोभोरे हितकारी होंगे । १७ ॥ १८ ॥ तदनुसार सायकालके समय  
 मुनिके पास जाकर सोवक अट्टेया घृतकं कुरंदता हुई वह नाचा मुख करके खड़ी हो गयी ॥ १९ ॥ मुनिने  
 उससे पूछा—तुम कौन हो ? उसने कहा कि आप स्वयं इस बातको समझ सकने हैं । तब मुनिने ध्यान करके सब  
 कुछ जान लिया और उससे बोले—॥ २० ॥ मुझे मन्त्रम हो गया कि मुझसे तू पुत्र पाता चाहती है, परन्तु  
 हे मुमक्ष्यमे । तू इस भयानक समयमें यहाँ आयी है । इसलिये तुझमें दो भयानक राक्षस पुत्र उत्पन्न होंगे ।  
 तब वह पुनिशार्दूलसे बोली—हे महागुरु ! क्या आपसे भी मुझे ऐसे ही पुत्र प्राप्त होंगे ? ॥ २१ ॥ २२ ॥ तब  
 मुनि बोले—ब्रह्मा जा, तेरा आशिरी पुत्र बड़ा वृद्धिमान होगा । पश्चात् उस सुन्दर कमरवाली केकसीने  
 यथासमय तान पुत्र उत्पन्न किये ॥ २३ ॥ रावण कुम्भकर्ण, कौची, शूर्पणखा, कुम्भीनसी और तबसे छोटा  
 तीसरा पुत्र विभीषण उससे उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ उनमेंसे रावण, कुम्भकर्ण और तीन लड़कियें वही वुराखा-  
 रिणी, जाकमर्तिनी तथा मुनिहृषिक हुई । २५ ॥ एक दिन रावणको माता केकसीने रावणको शिवजीके पास  
 स्निग्ध लेने भेजा । केकसीपर जाकर रावणने शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये बड़ा दुष्कर काम किया । २६ ।  
 उसने अपने सिरका कुछ भाग काटकर बाँधा बनायी । सिरसे वीणाका मूलभाग बनाकर अपनी देहसे उसका  
 पृष्ठभाग तैयार किया । बाँधस उस बाँधाका अग्रभाग बनाया और अँगुलियोंसे बाँधाकी छोटियें तैयार  
 की । अपने पेटके भीतरकी भाँतोने सँजड़ों एवं हज्जरी तार बनाकर अपने शरीरसे ही बाँधा रची । पश्चात्  
 पक्ष आदि स्वरोसे रावणने अपने मुखसे ही गंधर्वके समान सुन्दर वादन आरम्भ किया ॥ २७-२९ ॥ तब शोभोका  
 कल्याण करनेवाले भगवान् शंकर नन्दीश्वरसे बोले कि तुम अपने हाथसे रावणका सिर संधान करके उससे  
 कहो कि शंकरजी तुम जैसे राक्षसको मारमर्त्या रक्षो न होने । मैं शिवजीके भूदसकी बात मानता हूँ ।

शिरः मरोज्य हस्तेन शिवोक्तं न न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा रावणश्च पि ममतिक्रम्य तां निशाम् ॥३३॥  
 चकार पूर्वज्ञानं द्वितीयविभक्ते पुनः । नन्दिना शकरश्चापि पूर्वज्ञानं न्यवेदयत् ॥३४॥  
 इत्थं दश दिनान्येव गतानि रावणस्य च । अथ तन्कर्मणा तुष्टः शकरो गायनेन च ॥३५॥  
 भूत्वा प्रमत्तस्तं प्राह वर वाय वेति वै । दृष्ट्वा शङ्खं गरणोऽपि शिवा तेन संधितः ॥३६॥  
 वरयामास मन्मात्रे क्षान्मलिंगं तथा मम पत्न्यर्थं पावनीं देहि तथेत्थुक्त्वा ददौ शिवः ॥३७॥  
 गृहीत्वा गंतुकामं तं पुनः प्राह हस्मदा मतोमार्थं न्वया कीर दशवार निर्ज शिरः ॥३८॥  
 लङ्घनं छेदित यस्मात्तस्मात्तेऽद्य शिरांसि हि दत्तं विशङ्खन्वापि भविष्यन्ति गिरा मम ॥३९॥  
 ततः स रावणस्तुष्टो मिमिक्षालिंगमयुतः । विनश्यतो दशग्रीवः सारथ्येन गन्तुमुद्यतः ॥४०॥  
 कल्पमेदाञ्छतशिराः शनगरं प्रवर्द्धितः । स शोकः स्वशिरोभिर्हि शनद्वयभुजः कचिन् ॥४१॥  
 तस्माद्दि हनवान् विष्णुस्त्व त मार्गं प्रतार्य च । तथैवाब्धेस्वटे त्रिंशं शोकपूर्णं रावणास्वया ॥४२॥  
 गृहीत्वा स्थापितं पूर्वं रावणोऽपि गृहे पर्या । मन्दोदरीं हरेर्वाक्यमल्लञ्छा मयमुनां शुभाम् ॥४३॥  
 मानुः कार्यममपाद्य तूष्णीमेवातिलज्जितः । मन्दोदयाऽकमन्ध्वीयं निवाहं तोषपूरितः ॥४४॥  
 दृष्ट्वा कदा धनाभ्यस्य पुष्पकस्यं तु कैकसी । पुत्रान् धिकारयामास पूर्वं पदा मृतोपवाः ॥४५॥  
 मापत्न्यवधु ये दृष्ट्वा जायते नात्र लज्जिताः । ते मानुश्चनं ध्रुव्या ययुर्गोक्षमृगमनम् ॥४६॥  
 दशवर्षमद्वयाणि कुम्भकर्णोऽकरोत्तपः । विभीषणोऽपि धर्मात्मा सत्यधर्मपरः पथः ॥४७॥

‘मन्त्रिण तुम अपने स्थानेको वापस चले जाओ’ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ऐसा कहकर उसको उनके स्थानपर भेज  
 दा । तब रावण शिवका यह वचन सुनकर रावणके पास गये ॥ ३२ ॥ उन्होंने अपने हाथसे उसका सिर  
 घड़से जोड़कर शिवका वचन उसको कह सुनाया । रावण यह सुनकर भी उस रानको वहीं रहा और दूसरे दिन  
 फिर उसी विधिसे शिवजीका गुणगान करने लगा । शिवजीने उस दिन भी अपना संदेश नन्दोके द्वारा रावण  
 को कहला भेजा । परन्तु रावणने फिर भी अपना गायन उसी प्रकार दस दिनतक जारी रखा । तब शंकरजी  
 ‘सारा उम भयानक क्रम तथा मनोहर गायनसे प्रसन्न हो गए और उसमे कहा-वर मांगो । ऐसा कहकर  
 शिवजी ने उसका वह सिर भी घड़से जोड़ दिया । तब उसने शंभुसे वर मांगा कि आप मेरा माताके लिए वारिम-  
 लिंग तथा पत्नी बनायेके लिए मुझे पार्वती जोको दे दीजिये । ‘तथाऽन्तु’ कहकर शिवजीने उसको वे दोनों चीजें  
 दे दी ॥ ३३-३७ ॥ जब उनको लेकर रावण चलने लगा, उस समय शिवजी कहने लगे-हे वीर ! तुमने  
 मुझको प्रसन्न करनेके लिये अपना सिर बंधु बंधु सत्यवारसे काटा है । इसलिये मेरे कथनानुसार तुम्हारे बंधु  
 सिर तथा बीस भुजायें हो जायेंगी ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तब रावण प्रसन्नतापूर्वक दस सिर और बीस हाथवाला  
 बनकर पार्वती तथा शिवलिंग लेकर अपने स्थानकी ओर चला ॥ ४० ॥ कहीं-कहीं कल्पभेदसे रावण सौ बार  
 मरतक काटनेसे सौ सिर तथा सौ हाथवाला भी कहा गया है । ४१ ॥ बादमें रास्तेसे ही विष्णुमगवान्  
 रावणके हाथसे तुमको ( पार्वतीको ) छोन ले गये । तब तुम ( पार्वती ) भी श्रीहरिको घोषा देकर उनसे  
 क्षमा हो गयीं । विष्णुकी तरह तुमने रावणके हाथसे शिवलिंग भी छोन लिया और उस लिंगको समुद्रके  
 किनारेपर ही भोक्कण नामसे स्थापित कर दिया । तब रावण खाली हाथ लौट गया और विष्णुके कानागुहार मम  
 राक्षसकी सुन्दरी पुत्री मन्दोदरी उसको प्राप्त हुई ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ माताके कार्यका सम्पादन न कर सकनेके कारण  
 वह बहुत लज्जित हुआ और कुछ भी नहीं कह सका । पश्चात् मन्दोदरीके साथ विवाह करके वह मनुष्ट हुआ  
 ॥ ४४ ॥ एक समय उसकी माता कैकसी घमपति कुबेरको पुष्पक विमानपर बैठा देखकर अपने पुत्रको विस्कार-  
 कर कहने लगी कि तुम लोग नरुहक तथा मृतक सारा ही ॥ ४५ ॥ अपने सोतेसे भाईका उत्कर्ष देखकर  
 तुम छोटीकी लज्जा नहीं खाती ? माताके इस कटु वचनको सुनकर वे दोनों भाई दूनहीस भोक्कण महादेवके पास  
 गये ॥ ४६ ॥ वहाँ कुम्भकर्णने दस हजार वर्ष तपस्या की । तबसेसा विभीषणने श्री सत्यवतंधपुत्र होकर



पंचवर्षमहस्याणि पादांशुष्टेन तस्थिधान् । दिव्यवर्षमहस्य तु व्रमाहरो दशाननः ॥४८॥  
 पूर्णे वर्षमहस्ये स्वं शीर्षमग्नौ जुहाव मः । एवं वर्षमहस्याणि नव नस्यानिचक्रमुः ॥४९॥  
 मध्य वर्षमहस्ये तु दशमे दशमं शिरः । छेत्तुं कावक्ष्य धर्माग्न्या प्रवक्षोऽभूश्चमापतिः ॥५०॥  
 उथाव वचनं ब्रह्मा वरं वस्य कौक्षितम् । तदोवाच दशास्यम्नमवस्यन्व कुण्डोप्यहम् ॥५१॥  
 सुपषणागयज्ञेभ्यो देवेभ्यश्चामुर्गयि । त्वक्तः शमोर्महाविष्णोर्मानुषा मे तुणोपमाः ॥५२॥  
 तथेत्युक्त्या विधिस्तस्मै दश शीर्षाणि मदीदी । विर्भाषणाय मद्बुद्धिममगन्वं ददी मुदा ॥५३॥  
 विमोहितं मरस्यत्या देवेद्रादकांक्षिणम् । कुम्भकर्णं विधिः प्राह वरं वरय वांछितम् ॥५४॥  
 सोऽपि न वरयामास्य निद्रांमणानिर्कीं शुभाम् । पाण्यार्माये चैकदिनेऽशनं मत्ताऽपि दत्तवान् ॥५५॥  
 ततोऽन्तर्द्धानमगमद्विधिस्तैऽपि गृहं ययुः । सुमाली वरलब्धांस्तान् ज्ञान्वा दीद्रेत्रमनमान् ॥५६॥  
 पलाहान्निभंयः प्रायान्प्रहस्ताद्यैर्भुव सुखम् । मधिकाकयादश्वस्योऽपि निष्कास्य धनद यन्मादृशः ॥५७॥  
 लकापुर्या राक्षसस्तु लकागज्यं चकार मः । धनदः स्तिग्धं पृष्ठां स्पृश्या लङ्कां महादशाः ॥५८॥  
 गन्वा कैलासशिखरं तपस्याऽप्युपस्थिताम् । तेन सम्यगनुग्राह्य तेनैव परिनदिनः ॥५९॥  
 अलका नगरी तत्र निर्मम विष्वक्कर्मेणा । दिक्पादन्वमनुग्राह्य शिवस्य वरदानतः ॥६०॥  
 रावणो विद्युज्जिह्वाय ददी शुषणस्यां तदा । पारिवर्द्धं ददी तस्मै दंडकारण्यमुत्तमम् ॥६१॥  
 मातृत्वसुः सुतान् शंभुं शिशिरःखरदूषणान् । माहाययार्थं ददी तस्मै तन्कांते तु मृतेऽचिरात् ॥६२॥  
 कुंभीनमीं ददी हर्षान्मधुर्देत्याय गवणः । ददी मधुवनं तस्मै पारिवर्द्धमनुनमम् ॥६३॥  
 खड्गजिह्वाय तां क्रीचीं ददी प्रेम्णा दश ननः । परलङ्कां पारिवर्द्धं ददी तस्यै मनोरमम् ॥६४॥

पार्विके अगुप्तेर पांच हजार वर्षतक लड़ा म्हुम्ह तप किया और उस हजार वर्षतक नेवन्त धूम्र पकर दशाननने तपस्या की ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हजार वर्ष पूरे हो जानेपर वह अपना एक भिर क टकर अग्निमें होम देता था, ऐसा करत करत नौ हजार वर्ष चल गया ॥ ४९ ॥ अब दस हजार वर्ष पूरे हुए और रावण अपना दसवीं भिर काटकर आगमें हमन करतक लिए तीसरा हुआ, तब प्रज,पति सह्या उसपर प्रसन्न हुए ॥ ५० ॥ ब्रह्माने कहा—ह उत्स । तू अपना इच्छित वर मांग । तब रावणने कहा कि मैं गण्डम, मर्षाम यज्ञांसि, देवताकोसे, अमुंगेसे आर ( ब्रह्मा ) से, शंभुसे तथा विष्णुसे भी अडकल्लका वर मांगता हूं और मधुवन तो मेरे लिए तिनरक बराबर है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तयाम्नु कहकर ब्रह्माने रावणकी दस भिर दिये और विर्भाषणको मुबुद्धि तथा अमरत्व दिया ॥ ५३ ॥ इन्द्रपदका इच्छा रखनवाले कुम्भकर्णसे ब्रह्माने कहा कि अपना अमिर्णयित वर मांगो ॥ ५४ ॥ तब सरस्वतीके द्वारा माहुमें पडकर कुम्भकर्णने छः महान तकको न द मांग । तदनन्तर ब्रह्माने उसकी छः महोनेतक सना और फिर भोजन करना तथा छः महोनेतक फिर तपनना वर दिया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी अन्तर्धान हा गया और वे जोय भी अपने घर चले गये । सुमाली अपने शौहिनोंको वर प्राप्त किए हुए जानकर प्रसन्न आदिके साथ व नालने निकलकर निर्मम मादम पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ ५६ ॥ कथनानुसार रावणने लंकान कुशका निकलवा दिया और वहाँ स्वयं गण्डसाका लेकर लंकाका राज्य करने लगा । सब महान् यशस्वी कुशने अपने पिताने पृथुवर लङ्काको छोड दिया और कैलासके भिक्षापर जाकर तपभ्रमसे किवक प्रसन्न किया । उन्होने उनसे मित्रता जोड़ी और उन्हें के कहनेसे वहाँ विश्वकर्मा द्वारा बालका पुरी बनवायी और शिवजीके वरदानके निष्पादकी बदवी प्राप्त की ॥ ५६-६० ॥ बादमें रावणने अपनी सुपणसा नामकी बहिन विद्युज्जिह्वाकी इजाह दी और उससे दंडकारण्य उसको रहेजमें दे दिया ॥ ६१ ॥ बाह हो दिनों बाद जब उसका पति मर गया । तब रावणने अपनी बीसीके लडके शिशिरा खरदूषण आदिको उसकी सहायताके लिए भेजा ॥ ६२ ॥ रावणने कुम्भीनमी नामकी बहिन मधु देत्याको ग्याही तथा मोष्ठ मधुवन उसको रहेजमें दिया ॥ ६३ ॥ दशाननने अपनी क्रीची नामकी बहिन खड्गजिह्वा रावणकी

वैरोचनस्य दौहित्रीं वृक्षज्वालेति विष्णुनाम् । स्वयंदत्तां वृद्धोवाह कुम्भकर्णाय रावणः ॥६५॥  
 गन्धर्वराजस्य मुनीं शैल्यस्य महान्मनः । विभीषणस्य भार्यायै सगमां स मुदाऽवहत् ॥६६॥  
 ततो मन्दीदरीं पुत्रं मेघनादमजीजनत् । जानमात्रस्तु यो नादं मेघवनप्रचकार ह ॥६७॥  
 ततः सर्वं ऽश्वत्थमेघनादोऽयमिति वै जनाः । मुदायां कुम्भकर्णोऽपि निद्राव्याप्तो विनिद्रिवः ॥६८॥  
 ततः स रावणश्चापि देवगन्धर्वकिन्नरान् । दत्त्वा कपोशान्नागान् द्विपस्तेषामपाहरत् ॥६९॥  
 घनदोऽपि च तच्छ्रुत्वा रावणस्याक्रमं तदा । अधर्मं मां कुरुष्वेति दूतवाक्यैर्न्यवारयत् ॥७०॥  
 ततः क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदलयम् । विनिजिन्त्य धनाध्यक्षं जहार तस्य पुष्पकम् ॥७१॥  
 अलकायां यदाऽऽसीन्म सैनया रावणस्तदा । निशायामेकदा आनुः कुबेरस्य सुतेन हि ॥७२॥  
 प्रायिषा सा पुरः रम्भा सकार नियतं दिनम् । अज्ञानवृत्ता वेगेन ययौ स्वान्पुगस्वना ॥७३॥  
 रावणोऽपि च तं दृष्ट्वा बलादिव प्रभुक्तवान् । चिगन्मुक्ताऽथ वृत्तं सा क्रीवेर संन्यवेदयत् ॥७४॥  
 क्रुद्धः सोऽपि ददौ आप रावणाय महान्मनः । अवामभ्य दशास्यश्चेद्देवतां स्त्रियमुनयाम् ॥७५॥  
 हठाच्छोक्ष्यति चेन्नहि क्षणमात्रान्मरिष्यति । इति शपथं रावणोऽपि शुश्रूव चरवाक्यतः ॥७६॥  
 तदारभ्य स्त्रियं काममनिच्छन्तीं न धरयेत् । ततो गर्भं च ब्रह्मं निर्जिन्य ममरेऽसुरः ॥७७॥  
 स्वर्गलोकमगात्पुनः देवराजजिषायया । ततो रावणमभ्येत्य ब्रुवन् त्रिदशेश्वरः ॥७८॥  
 तच्छ्रुत्वा सहसाऽऽगत्य मेघनादः प्रतापवान् । कृत्वा वृद्धं महाशेरं जिन्वा त्रिदशपुङ्गवम् ॥७९॥  
 इन्द्रं घृत्वा दृढं बद्ध्वा मेघनादो महाबलः । मोक्षयिष्याम्यपि नरं गृहोन्वेन्द्रे ययौ पुरीम् ॥८०॥  
 ब्रह्मा तु मात्स्यामाम देवेन्द्र मघनादनः । दत्त्वा वरात्राशुसायं ब्रह्मा स्वभवनं ययौ ॥८१॥

ती तथा उसको इहेजमें अविष्णु मन्तोहर परलका पुरी दे दी । ६४ । वैरोचनकी दौहित्री ( नतिनी ) प्रसिद्ध  
 वृक्षज्वालाका उसका पितान कुम्भकर्णक रिये रावणका दी । ६५ । महाराम गन्धर्वराज शैल्यकी मुता  
 सगमाको रावण विभीषणके लिय ल आया । ६६ ॥ तदनन्तर मन्दीदरीसे मेघनाद पुत्र उत्पन्न हुआ । जो  
 निर्पेश होनेके साथ ही मेघको तरह गर्जन करने लगा था । ६७ । इसीलिए सब लोग उसका मेघनाद  
 कहने लगे । कुम्भकर्ण गुफामें जाकर सो गया । ६८ । उधर रावण भेड़, गन्धर्व, किन्नर, क्षत्रोच्चर और  
 नागवां मार मारकर उत्तका शिरोका व्यवहरण करने लगा ॥ ६९ ॥ जब कुबेरने रावणका इस प्रकार  
 दुराचार सुना, तब उन्होंने अपने दूता दत्ता कहेला भज्य कि हे रावण ! तू ऐसा अधर्म करना छूट दे  
 ७० ॥ यह सुना ही रावण और भी क्रुद्ध होकर कुबेरके यही गया तथा उत्तको जीतकर पुष्पक विमान  
 छत लाया ॥ ७१ ॥ जब रावण अपनी सेनाके साथ अलकापुरीमें था । उसी समय रावणके भाई कुबेरके  
 पुत्र नलकुबेरकी प्रार्थना स्वाकार करके रम्भा अप्सरा पुङ्गके वातावरणको न जाननेके कारण एकाएक  
 नियत दिनपर आकाशसे वही आ पहुँची । उसके पीछेने सुन्दर एवं मन्तोहर नृपूरकी श्वनि हो रही था  
 । ७२ । रावणने उसको सहसा देखकर उसके साथ हठान् भोग किया । बहुत देरके बाद उससे मूल हो  
 रम्भाने जाकर वह सब हाल कुबेरके पुत्रको बहू बुलाया ॥ ७३ ॥ तब क्रुद्ध नलकुबेरने रावणको साथ दठे  
 हुए कहा—' हे दशास्य ! आजसे यदि तूमें किसी भी तुम्हको न चाहनेवाला बली स्त्रीसे हठान् भोग करोगे  
 तो उसी क्षण मर जाओगे ।' इस शपथको दूतके मुखसे रावणने भी सुन लिया । ७४ ॥ ७५ ॥ तबसे  
 रावणने अपनेसे विमुख स्त्रीका अवमान करना छूट दिया । तदनन्तर पुङ्गमें यमराज तथा ब्रह्मको  
 जीतकर वह देवराज इन्द्रका मारनका इच्छासे शास्त्र ही स्वर्ग गया । त्रिदशेश्वर इन्द्रने रावणके सामने  
 जाकर उसको कैद कर लिया ॥ ७६-७८ ॥ पित्तको कैद किया हुआ सुनकर प्रतापी मेघनाद शास्त्र वहीं  
 आ पहुँचा तथा मयानक पुङ्ग करके इन्द्रको जीत लिया ॥ ७९ ॥ तब महाबलवान् मेघनादने अपने पित्त-  
 को छुड़ा लिया और इन्द्रको पकड़ तथा बाँधकर अपने नगरमें ले लाया ॥ ८० ॥ पश्चात् ब्रह्माने इन्द्रको

इन्द्रजिह्वाय तस्याभूजदारम्य गधुनम् । रावणादपि यश्चाभीहलिष्ठः ममरपियः ॥८२॥  
 मेघनादादयश्चेति तस्मान्प्रोक्तं तवाग्रतः । एतन्मेनीश्वरैः पूर्वं तन्निमित्तं मयेरितम् ॥८३॥  
 रावणो विजयी लोकान्सर्वान् जित्वा क्रमेण तु । जित्वा बह्वैर्निर्झरैश्च वायुर्मांशं ययौ मुदा ॥८४॥  
 कैलासं तोलयामास बाहुभिः परिधोपमैः । तदा भीता शिवं देवी दोम्प्या सा वसिष्ठावजे ॥८५॥  
 शिवोऽपि बाष्पादाद्गुणैर्न कैलासमूर्धनि । भारं दत्त्वा गिरिं स्वयं चकाराथ सूरः शुभे ॥८६॥  
 तदा तद्गिरिमम्भन्वलिमंधिषु दोर्लभाः । विंशश्चापि रावणस्य नाशयन्वर्हिता क्षणात् ॥८७॥  
 स तेनाक्रन्दयामास स्वस्ममम्भद्वयोर्ययुः । तदा नन्दीश्वरेणापि शमोऽयं रावणेश्वरः ॥८८॥  
 चक्षुर्लं कर्म यस्याचे कपितुन्वपनोऽगुर । वानरैर्मर्षितुर्पथैव नाशं गच्छामि कोपितैः ॥८९॥  
 ततः कालान्तरेणायं शम्भुर्नैव विमोचनः । शमोऽप्यगमयन्वाश्रयं ययौ हृदयपत्तनम् ॥९०॥  
 बहिर्गतं नृपं श्रुत्वा सहस्राजुर्ननमकम् । मध्याह्ने रावणध्वके गेशयां शिवराजनम् ॥९१॥  
 अधस्तस्मात्सर्मदायां भुजपाशैश्च सेतुवत् । स्वस्मयामास नीमेष जन्मकांडां गतोऽर्जुनः ॥९२॥  
 वेष्टितोऽयुननागमिस्नतोय रावणं तदा । प्लावयामास ध्यानस्थं ज्ञानस्वन्कर्मणाऽर्जुनः ॥९३॥  
 मृक्त्वा ध्यानादिकं सर्वं युद्धं चक्रेऽर्जुनेन सः । तेन बद्धो दशग्रन्थः कण्ठे रन्तु मुनाय तम् ॥९४॥  
 ददौ दशाननं प्रीत्या काष्ठनिमित्तहरितवत् । कियत्कालान्तरेणैव पृथक्स्वनं स नोचितः ॥९५॥  
 ततोऽनिवन्धनायासं त्रिषांमुर्हतिपुङ्गवम् । ममरे ध्यानमापीनं पथाङ्गं नैवैर्ययौ ॥९६॥  
 धृतस्तेनैव कक्षेण बालिना दशकन्धरः । आभयित्वा तु चतस्रः समुद्रान् रावणं हरिः ॥९७॥

मेघनादसे छुड़ाया और रोससोको बर देकर बह्म अपने घबनको सले गये ॥ ८१ ॥ हे रघुनय ' तबसे मेघनाद-  
 का इर्झिन् नाम पड़ा । जो कि रावणसे जो अधिक बलवान् तथा युद्धनयुध था ॥ ८२ ॥ इन्द्रजिह्वा मेने  
 आपक सामने मेघनादका पहले नाम लिग । इन अष्टिरीने इसका कारण एहन ही बता दिया था ॥ ८३ ॥  
 निजगर्भिल रावणने कम्मणः सब लाकेवा जानकर बह्वि निर्झरि, वायु तथा ईशानको जोत लिया और तारसे  
 अपनी अंगरक समान भुजाशेस कैलास पवनका उडासे गया । उस समय डरकर पार्वती दवा शिवज से  
 लिपट गयी ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ पश्चात् शिवने अपने बाय पाँवक अंगुठसे उस एवंगको दवा दिया । जिससे  
 कैलास घीरे घीरे नीचे बंसेने लगा ॥ ८६ ॥ उस समय पर्वतके नीचे आ आनेसे रावणकी बीसों भुजावें  
 दब गयी और वह स्वप्नेसे बँधे हुए चोरकी तरह चिल्लाने लगा । उस समय नन्दीश्वरने भी रावणकी  
 शाप देने हुए कहा— ॥ ८९ ॥ ८८ ॥ हे अमुर ' तुम्हारे कानरके समान चंचलता होतके कारण ब्रह्मवानगे तथा  
 मनुष्योंसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी ॥ ८९ ॥ बहुत कालके बाद शिवजीने उसे छुड़ा दिया । छूटनेके साथ ही  
 वह आपका घुल गया और शिवजीक वचनका तिरस्कार करके युद्ध करनेके लिए हैद्वयराजके नगर-  
 का गया ॥ ९० ॥ बह्म जाकर पूछ तो ज्ञत हुआ कि सहस्राजुन नामवाला वहाँका राजा वहाँ उपस्थित  
 नहीं है । तब रावण समझा नदीके किनारे जाकर उसके बीचसे एक टापूपर बैठकर मध्याह्न समयमें शिवजी-  
 का पूजन करने लगा । ९१ ॥ उससे नीचकी ओर राजा सहस्राजुन अलकोडा कर रहा था । उसने अपनी  
 भुजाशेस सेतुसे खेन-खलम उस नदीके जलप्रवाहको रोक दिया । उस समय हजारों पित्तों उसे घेरकर  
 जलकोडा कर रही थीं । परन्तु उस अलप्रवाहके रुक जानेसे शिवके ध्यानमें स्थित रावण जलमें बहने  
 लगा । इस घटनाको देखकर उसने जान लिया कि यह काम सहस्राजुनका है । यह जानते ही वह तुरन्त  
 ध्यान छोड़कर सहस्राजुनके पास गया और उनको युद्धके लिए ललकारने लगा । तब उसने रावणके गलेमें  
 रस्सी डालकर बाँध लिया और अपने पुत्रको खेनके लिए लकड़ों के बने हुए हाथीकी तरह दे दिया । कुछ  
 दिनोंके बाद पुलस्त्य मुनिने जाकर उसको वहाँसे छुड़ाया ॥ ९२-९३ ॥ बादमें रावण बल सचय करके  
 वानरसेत बालीको मारनेकी इच्छासे समुद्रके किनारे ध्यान भरकर बैठे हुए वातराजके पास जाकर घीरेसे घेरे

किंकिणीं स्वीं ययौ वेगादग्रे दृष्टुंगदं विशुम् । प्रीत्या नं चुंबनं दातुं दोम्प्यां कथीं न्यवे शयन् ॥९८॥  
 तदा बाहोश्चननान्कक्षाम्य पतितो भुवि । तं दृष्ट्वा स्वजनान् स्वीय दर्शयामास वै मुदा ॥९९॥  
 प्रेक्षस्योपरि पुत्रस्य वचनभाषीभुव चिरम् । आमान्माऽङ्गदम्बस्य धारधीनान्नोऽसुरः । १००॥  
 स्वयमेव ततो बाली प्रधृक्काले गते मनि । ददावार्जुं दशाम्याय तेन सग्न्यं चकार सः । १०१॥  
 रावणः स पुनः स्थित्वा पुष्पके व्यचरन्मुखम् । पश्यन्ननाविधान्नीमन् ययौ पलाशमुनमम् ॥१०२॥  
 तत्र दृष्ट्वा पुं रम्पं बलः काटिसिद्धप्रमम् । तत्तत्तद्वनेजस्रान्पुष्पकं न चनाल वै ॥१०३॥  
 ततः स्वयं ययौ तूर्णामक एव दशाननः । पुं प्रीत्यवतृडाार त्वा ददर्श च वामनम् ॥१०४॥  
 कोटिसूर्यप्रतीकाशं पातकोशेयवामनम् । चतुर्भुजं सप्तर्त्तीकं हाररक्षणतन्परम् ॥१०५॥  
 त्वां प्राह स दशग्रीवः कोऽयं राजाऽस्मि मां वद । तूनी स्थितो बाधनस्त्वमपि नोत्तरं रिपोः । १०६॥  
 तदा त्वां वधिर मन्वा स विवश्र वनेर्गुदम् । तत्र दृष्ट्वा वलिं वन्द्या मारिकीडनकम्पम् ॥१०७॥  
 तस्यौ तत्र श्रृणं तूर्णीं बलेर्लक्ष्मीं व्यलोकयतु । तावद्दूरे बलेर्हस्तान्क्रोडापामोऽनङ्गवि ॥१०८॥  
 तमनेतुं रावणाय बलिराज्ञापयत्तदा । रावणोऽपि तमनेतुं ययौ पाषाणिकं जवात् ॥१०९॥  
 प्रोच्चचल भुवः पासं करेण न चनाल सः । विशहोभिः क्रमेणार्थी यावन्पासं प्रचालयन् ॥११०॥  
 तावदंगुलयः सर्वाः पापभागेण पीडिताः । न निध्रमु पापनलाच्चूर्णिना रुधिराण्डुनाः ॥१११॥  
 तदा शुभ्रोऽस दीर्घे स चिरकल दशाननः । ततो विहस्य दास्या तं पापमार्तीयं वै बलिः ॥११२॥  
 धिग्धिक् कृत्वा रावणं तं गृह्णाग्निष्कापयद्धहिः । ततो धृतो राजदूर्नस्तदुच्छिष्टैस्तु पोषितः ॥११३॥

की ओर जा लडा हुआ ॥ ९९ ॥ तब बालीने उसको काँखत उठता देवाकर चारों समुद्रोंक चौतरफा घुमाया ॥ १०० ॥ पश्चात् अपनी किंकिणीया पुरासे ले गया । वहाँ जाकर उसने अपने पुत्र अङ्गदको देखा । ज्यों ही वह अङ्गदको प्रेमसे चूमकर लिय अपनी भताओमें उसे कगरपर बैठाने लगा ॥ १०१ ॥ त्यों ही हाथोंके दित्तनेसे गणन बाँसमें नैने जमीनपर गिर गया । उसको दम्बर गिरये प्रगन्तापूर्वक स्वजनोंको दिखाने लगी ॥ १०२ ॥ उसके ऊपर पुत्र अङ्गदकी पालना बाँधकर नैच रावणकी मुख करके उन्होंने बहुत दिनोंतक बाँधकर रक्खा । तिस रावणका मुख अङ्गदका मुखचराम धुलता रहा ॥ १०३ ॥ तदनन्तर स्वयं बलीने ही रावणका आर्त आजा बे दी ओर उसने मित्रता कर ला ॥ १०४ ॥ गच्छ पुन पुष्पक विमानपर सवार होकर आनन्दके साथ विचरने लगा । अनेक बीरीका देखता हुआ वह पालाम जा पहुँचा ॥ १०५ ॥ वहाँ काटिसूर्यके सदृश प्रकाशमयी उस नदरीके तजसे प्रतिहत होकर मुखव दिमानको गति रूक गया ॥ १०६ ॥ तब उससे उत्तरकर दशानन वृषबाप अवेला हाँ पुरीकी आर धल पडा । उसने पुरान प्रवेश करनेके बाद वामनरूपधारी आपका देखा ॥ १०७ ॥ कराला सूर्यक समान तजम्बा आपने पाताम्बर धारण कर रक्खा था । आप चतुर्भुज हाकर लक्ष्मीके साथ वहाँ रहत हुए राजा बलिके द्वारकी रत्ता कर रह थ ॥ १०८ ॥ उस दशग्रीवत आपसे पूछा कि इस नगरका राज कीन है, बताओ । रावण कुछ देर वृषबाप खडा रहा, पर आपने उस अपना शत्रु समझकर कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ १०९ ॥ तब आपका बहुत समझकर वह बालिके सधनमें धुसा । वहाँ उसने राजा बलिके अपने लक्ष्मीके साथ चौपर खेलत देखा ॥ ११० ॥ वहाँ वृषकेसे खडा होकर वह बलिकी राजधलामोको क्षणभर देखता रहा । इतनेमें राजा बलिके हाथसे छटककर सीसा दूर जा गिरा ॥ १११ ॥ उसी समय बलिके रावणको उस पानको उठा लानेके लिए कहा । रावण भी उसे उठानेके लिये सीध ही उसके पास जा पहुँचा ॥ ११२ ॥ वह उसे एक हाथसे उठाने लगा । पर वह पाँसा हिल्य सक नहीं । तब रावणने दो, तीन, चार करके वनों हाथोंमें उन पाँसोंको उठानेकी चेष्टा की, परन्तु ती भी वह नहीं हिला ॥ ११३ ॥ प्रयुक्त उसके सब हाथोंकी अंगुलियों पामेके दाहसे दब गयी और कुचल जानेसे खून निकलने लगा परन्तु वे निकली नहीं ॥ ११४ ॥ अतएव दशानन बहुत जोरसे चिल्लाने लगा । जब

अश्वानां शकुतं नीत्वा प्राक्षिपत्प्रत्यहं बहिः । एकदा द्वापरे गन्वा प्रार्थयामास त्वां मुहुः ॥ ११४ ॥  
 त्वया स्वपादलग्नः स्वपदांगुष्ठेन खेड्विनः । तदाऽगिमुदितो लकां चिरकालेन गवणः ॥ ११५ ॥  
 ययौ मेने निजं जन्म द्वितीयं जातमय वै । रावणः परमप्रीत एव लोकान्मन्यमानः ॥ ११६ ॥

कर्तुं तान्स्ववशाभिन्यं नभ्राम दुष्पकस्थितः ।

दृष्ट्वाकदाऽत्र माकृते पूर्वजं तव दीक्षितम् ॥ ११७ ॥

अनरण्यं संगरेण चकार पतितं रणे ।

तदा शमोऽनरण्येन सदृशे रघुनन्दनः ॥ ११८ ॥

भूत्वा त्वां संगरेणैव सकुटुम्बं बधिष्यति इत्युक्त्वा स गतो नाक गवणोऽपि पुनर्न ययौ ॥ ११९ ॥

सनत्कुमारमेकांते मन्त्रिगणैकदाऽभ्युः । नत्वा पप्रच्छ देवेषु को यश्चेति सादरम् ॥ १२० ॥

मुनिः प्राह महाविष्णुं तच्छ्रुत्वा प्राह तं पुनः ।

विष्णुना ये हता युद्धे राक्षसाद्या लभन्ति काम् ॥ १२१ ॥

गतिं चेति मुनिः प्राह ते मुक्तिं यानि दुर्लभाम् ।

पुनः पप्रच्छ तं नत्वा केनोपायेन वै हरेः ॥ १२२ ॥

मविष्पत्पत्र मे मृत्युम्यदा तं मुनिगन्त्रीन् । त्रेतायां नररूपेण रावो विष्णुर्भविष्यति ॥ १२३ ॥

अपोष्यायां तदा तेन कृत्वा वैरं सुदारुणम् । मन्मादृशं कुरुष्व त्वमात्मनः परमात्मनः ॥ १२४ ॥

तेन गच्छामि मुक्तिं त्व तच्छ्रुत्वा स दशाननः ।

विरोधार्थं जनकजामहरद्वीपमीनयान् ॥ १२५ ॥

प्रदोके रक्षिता तेन मातृवत्स्ववधेच्छया ।

राजा बलिकी एक राखीने शीघ्र पत्तिकी उठाकर राजाको दे दिया ॥ ११४ ॥ बलिके उसी समय रावणको विककार-  
 कर अपने महलसे निकाल दिया । बाहर राजा बलिक दूतोंन लसकी फिर पकड़ लिया और अपने जूठनसे  
 उसका पोषण करने लगे ॥ ११५ ॥ रावणको सोढोकी लीर उठा-उठाकर बाहर फेंक आनेका काम सोंपा गया ।  
 कुछ दिनों बाद एक दिन रावण द्वारपर स्थित आप विष्णुके पास आकर नगरके बाहर जाने देनेकी प्रार्थना  
 करने लगा और आपके चरणोंपर गिर पड़ा । तब आपने अपने पाँवके अंगुलि उसको आकाशकी ओर  
 उछाल दिया । जिससे रावण बहुत मारके बाद प्रसन्नतापूर्वक अपना लङ्काज जा पहुँचा ॥ ११६ ॥ ११७ । यह  
 आज मेरा दूसरा जन्म हुआ है, ऐसा मानन लगा । तब बन्दी रावण पुनः प्रसन्न होकर पूर्ववत् सब लोकोंको  
 अपने बसाव करनेकी इच्छासे पुष्पकपर चढ़कर निरगति इधर उधर भ्रमण करने लगा । उसने एक दिन  
 अयोध्यामें आपके पूर्वज दीक्षित ( सामान्यकी दीक्षा लिये हुए ) राजा अनरण्यको देखा । उनके साथ युद्ध  
 करके रावणने रणमें उन्हें हरा दिया । तब अनरण्यने उसका शाप दिया कि मेरे वशमें जन्म लेकर रघुनन्दन  
 नाम सकुटुम्ब तुमको मारेंगे ॥ ११९ ॥ १२० । इतना कहकर वे स्वर्ग सिंघार गये तथा रावण अपने नगरको चला  
 गया ॥ १२१ ॥ उस राक्षसने एक दिन सनत्कुमारकी नमस्कार करके एकान्तमें पृच्छा-हे मुने ! कृपा करके मुझे  
 यह बताइए कि देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ देवता कौन है ? ॥ १२२ ॥ मुनिने विष्णुको श्रेष्ठ बताया । यह सुनकर वह  
 असुर रावण फिर बोला कि विष्णुने आजतक जिन राक्षसोंको मारा है, वे किस गतिको प्राप्त हुए हैं ? ॥ १२३ ॥  
 मुनिने कहा-वे सब उत्तम तथा दुर्लभ मुक्तिकी प्राप्त हुए हैं । उस राक्षसन फिर प्रश्न किया कि किस उपायसे  
 मेरी मृत्यु श्रीहरिके हाथों हो सकती है ? मुनिने उसक प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि त्रेतायुगमें विष्णु  
 अयोध्यामें मनुष्यका रूप धारण करेंगे ॥ १२४ ॥ १२५ । उस समय उनसे घोर वैर करके उन परमात्मा  
 नामके हाथों तुम अपना वध करवा लेना ॥ १२६ ॥ इससे तुम मुक्तिपत्रको प्राप्त हो जाओगे यह बात  
 मन्में रसकर रावणने रामके साथ विरोध करनेके लिए ही गौतमी नदीके छेदसे जनकनन्दिनी सोढाका

एकदा नारदं दृष्ट्वा नत्वा पप्रच्छ रावणः ॥१२६॥

भगवन् ब्रूहि मे योद्धुं कुत्र सन्ति महाबलाः ।

योद्धुमिच्छामि बलिभिस्त्व जानामि जगत्त्रयम् ॥१२७॥

मुनिर्ष्यान्वा चिरान्प्राह श्वेतद्वीपनिवाaminः । महाबला महाकायास्तत्र याहि महामते ॥१२८॥

विष्णुपूजार्ता ये वै विष्णुना निहताश्च ये । त एव तत्र सज्जता सजेयाश्च सुरासुरैः ॥१२९॥

तच्छ्रुत्वा रावणो वेगान्ममप्रिभिः पुष्पकेण तेः ।

योद्धुकामो यस्यै गवश्चैतद्वीपान्तिकं युदा ॥१३०॥

तत्प्रमाहननेज्जम्कं पुष्पकं नाचलपुः ।

त्यक्त्वा विमानं प्रययौ स्वयमेव दशाननः ॥१३१॥

प्रवितन्नेव तद्द्वीपं घृतो हस्तेन योषिता ।

भञ्जन्त्या कस्यचिदास्या पुष्पाण्यानयितुं वनम् ॥१३२॥

तया पृष्टः कुतः कोऽपि प्रेषितः केन वा वद । इत्युक्त्वा लीलया र्धाभिर्हर्मतीभिर्मुहुर्मुहुः ॥१३३॥

मुखेषु ताडितो हस्तैर्भ्रांमिनोऽधोमुखं विभ्रम् । ध्रुवैकं तत्पदं तारिभिः क्षिप्तः कन्दुकवन्मुहुः ॥१३४॥

परस्परं हि कीडद्भिः कया त्यक्तस्तु लीलया । पयान परलंकायां शौचायाः शौचदूषके ॥१३५॥

कृच्छ्रादस्ताद्विनिर्मुक्तस्तामां स्त्रीणां दशाननः ।

आधर्यस्तुल्यं लब्ध्वा चिन्तयामास दुर्मतिः ॥१३६॥

विष्णुना ये हता युद्धे तेषामेतादृशं बलम् । तर्ह्यत्र निहतस्तेन श्वेतद्वीपं वज्राम्बुदम् ॥१३७॥

मायं विष्णुर्यथा कुप्येनथा कार्यं कोऽयमहम् ।

इति निश्चिन्त्य श्वेदेहीं जहार रावणो वनात् ॥१३८॥

हरण कर लिया था ॥ १२५ ॥ अपन दबकी इच्छासे ही उसने सीताको अभीक्ष्णमें रखकर माताके समान रक्षा की थी । एक बार रावणने नारद मुनिसे देखकर ताम्रकार किया और पूछा — ॥ १२६ ॥ हे भगवन् । आप कृपा करके यह बताइये कि मुझसे लड़नेवाले कयान् लोग कहाँ है ? मे वलवानोंसे युद्ध करना चाहता हूँ आप तीनों लोकके लोगोंका जानते हैं ॥ १२७ ॥ मुनिने सन्निक देर ध्यान करके कहा कि श्वेतद्वीपके लोग लड़े भारी शरीरवाले होते हैं और वे निज भगवान्की पूजासे लगे रहते हैं जो लोग विष्णुके हाथों मारे जाते हैं, वे ही सुरी तथा असुरोंसे लज्ज हाकर वहाँ जन्म लेते हैं । १२८ ॥ १२९ ॥ यह सुनकर प्रसन्न रावण अपने मन्त्रियोंके साथ पुष्पक विमानपर सवार होकर सर्व तथा वनके साथ उन लोगोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे श्वेतद्वीपकी ओर चल पड़ा । १३० ॥ परन्तु उस द्वीपकी कान्तसे चौं चकाकर उसका विमान रुक गया । तब रावण विमान छोड़कर पैदल चलने लगा । १३१ ॥ द्वीपमें धूमन ही एक स्त्रीने उसको एक हाथसे पकड़ लिया । वह किसीकी दासी थी और वनमें पुष्प लेने जा रही थी ॥ १३२ ॥ उस स्त्रीने रावणसे पूछा कि तू कौन है और तुझे यहाँ किमने भेजा है ? वना । इतना कहकर कुछ स्त्रियाँ बारम्बार दौंसकर लीलापूर्वक उसके मुखपर तमाचे लगाने लगीं । बादमें उसका शीव पकड़ तथा उसको ओंछे सिर घुमाकर गेंदकी भाँति दूर फेंक दिया । १३३ ॥ १३४ ॥ अन्तमें एव दूसरके साथ खेलती हुई किसी एक स्त्रीने ही यह काम किया था । इस प्रकार पैदलपर रावण परलंकासे शौच के शौचालयमें जा गिरा । १३५ ॥ इस प्रकार रावण उन स्त्रियोंके हाथोंसे बड़ी कठिनईसे फूटा और आश्चर्यचकित होकर यह दुष्ट विचारने लगा— ॥ १३६ ॥ ओहो ! विष्णु जिनको मारते हैं, वे लोग निजने बलवान् हो जाते हैं । इसलिए मैं भी उनसे मारा जाकर श्वेतद्वीपमें जाऊँगा ॥ १३७ ॥ अब मैं वही काम करूँगा कि जिससे विष्णु मेरे ऊपर क्रुद्ध हों यही सोचकर वनमें रावणने

बानभेवं महालक्ष्मं स जहारावनीतुनाम् ।

माद्वन्पालयामास स्वयः काङ्क्षन्वधं निजम् ॥१३९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

वालिमुप्रीवयोर्जन्म श्रोतुमिच्छामि न्वन्मुखात् । स्वीदो बानराकारौ जहात इति तच्छ्रुतम् ॥१४०॥

अगस्त्य उवाच

मेरौ स्वर्णमये पूर्वं सनाथां वक्ष्ये कदा । नेत्राभ्यां पठितं दिव्यमानंदाश्रुजलं तदा ॥१४१॥

तद्गृहीत्वा करे बद्ध्वा व्यान्वा किञ्चिदत्यजत् ।

भूमी पठितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः ॥१४२॥

तमाह दृष्टिषां वन्त न्वमत्र वस सर्वदा ।

एवं बहुलये काले गतेर्भस्मिन् सुधीः ॥१४३॥

कदाचित्पर्वटन्देरी कलम्कार्भन्नुद्यतः । अपश्यदिव्यमलिलां वार्ध्यां मणिशिलाचिताम् ॥१४४॥

पानीयं पातुमममवशं छायाय कपिम् । दृष्ट्वा प्रतिकर्षि मन्त्रा निपपात जगत्तरे ॥१४५॥

तत्रादृष्ट्वा हर्षि शीघ्रं बहिरुत्फुल्लं संययौ । अपश्यत्सुन्दरीं नरामात्मानं विष्मयं गतः ॥१४६॥

ततो दर्शय मन्त्रवा सोऽन्यजद्वीर्यमुत्तमम् । तामपार्प्यैव तद्वीर्यं बालदेशेऽप्यतद्गुपि ॥१४७॥

बाली सममवत्तत्र शुकतुल्यपराक्रमः ।

आतुरप्यागपत्तत्र तदानीमेव भामिनीम् ॥१४८॥

दृष्ट्वा कामनशो भूत्वा प्रीत्यादेहेऽमृतजन्मदत् । बाजं तस्यास्त्रजः सद्यो सुप्राप्तो बलवानभूत् ॥१४९॥

अहं यं समादाय गत्वा सा निद्रिता कर्माचिन् । प्रभातेऽपश्यदान्मानं पूर्ववदानराकृतिम् ॥१५०॥

तद्गृह्यं तु विधिः श्रुत्वा किञ्चिदाराध्यमुत्तमम् ।

ददौ स बानरेन्द्राय पुत्राभ्यां तत्र संस्थितः ॥१५१॥

वैदेहोका हाण कर लिया ॥ १३८ ॥ उसने यह भी जान लिया था कि ये हाथालू बननिगुता लक्ष्मो हैं ।  
 १३९ ॥ उसने अपने वधनी इच्छा करके बातीको माताक सनान वाला था ॥ १३९ ॥ श्रीरामचन्द्र  
 बोले हे मुने ! मैं जानके मुँहसे बालि और गुमारके जन्मकी कथा सुनना चाहता हूँ । मैंने सुना है कि स्वयं  
 सूर्य तथा इंद्र बानराकार बालि-गुमारके स्वयं उत्पन्न हुए थे ॥ १४० ॥ अगस्त्य मुनि बालि—मेरे पर्वतके  
 स्वर्णशेखरपर एक बार भरी सपने सहसा बह्मके नक्स दिव्य मानन्दाश्रु निकल पड़ा ॥ १४१ ॥ बह्मज्जाने  
 उसको हाथमें ले तथा कुछ ध्यान धरनके पश्चात् अमानवर डाल दिया । गिरनेके साथ ही उससे एक  
 महान् कपि उत्पन्न हो गया । १४२ ॥ तब बह्मान उससे कहा—हे वस ! तुम सदा यहीं रहो । नहीं रहते हुए  
 कुछ दिन दोहनेपर वह अश्रुनिर्गम कपि किसी समय मेरे पर्वतपर पुनर्जातिमान फल मूल आदिके लिए एक समय  
 मा पहुँचा । उसने वहाँ मणिकी शिलाभामिनी दृष्टि स्वच्छ जलवाली एक बावली देखा ॥ १४३ ॥ १४४ ॥  
 जब वह बाली पीने लगा तो उसे अपना छाया दिखाई दी । उसे अपना प्रतिपत्ता समझकर वह जलमें  
 गूँद पड़ा ॥ १४५ ॥ किन्तु उसने जब उसको दूसरा बानर नहीं दिखाई पड़ा, तब वह उछलकर बाहर निकल  
 भागा । बाहर निकलनेके साथ ही वह एक सुन्दरी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया । यह देखकर उसको बड़ा  
 आश्चर्य हुआ ॥ १४६ ॥ बादमें जब इनने उसकी सेवा हो कामवश उनका वीर्य निकलकर उस स्त्रीके बाली-  
 रर जा गिरा ॥ १४७ ॥ उससे इन्द्रनुम्य पराक्रमी बानर बालि पैदा हुआ । उनी समय सूर्यवध भी वहाँ जा  
 पहुँच ॥ १४८ ॥ उस सुन्दरी कामिनीको देखकर वे भी कामादुर हो उठे और उस स्त्रीके गर्दनपर उनका  
 मट्ठा पीस गिर पड़ा । जिससे उसी समय बलवान् बानर सूर्यवध उत्पन्न हुआ ॥ १४९ ॥ उन दोनों पुत्रोंको कहीं  
 न जाकर वह स्त्री सो गयी । प्रातःकाल होतेपर उसने फिर अपने आपका बानररूपमें पाया ॥ १५० ॥

मृतेर्ध्विरजस्याभूद्वाली पूर्वा कपाश्वरः । एवं ते कथितं राम यथा पृष्टं त्वया यम ॥१५२॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

पदाऽनौ बालिना बंधुः किष्किन्धाया बहिष्कृतः ।

तदा तस्यैव सचिवः श्रीमज्जपवननन्दनः ॥१५३॥

न वेद किं बलं नैजं बालितुन्यपगक्रमः । इति रामवचः श्रुत्वा पुनस्तं प्रतिब्रवीत् ॥१५४॥

अगस्तिगवाच

केयरीनाम विख्यातः कपिरञ्जनपर्वते ।

तस्यास्तां च शुभे पत्न्यौ बान्धविकदा गिरौ ॥१५५॥

प्लवंगस्थाञ्जनीनाम्नी स्थिता तावच्च खागदा ।

पपात रायमभवः पिष्टो गृध्रोमुखान्द्रुचि ॥१५६॥

यदा नीतस्तु कैकेय्या कराङ्गुश्रया शुभः पुत्र । तं पिष्टं मक्षयामास वानरी वामृगोपसम् ॥१५७॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र मार्जारास्या समागता । पतिना रहिते ते द्वे क्रीडत्यौ वसतः तपोः ॥१५८॥

अदरत्पवनो बंगावृष्ट्या वायुस्तद्वरः ।

अञ्जनीं प्रार्थयामास तथा मोगं चकार सः ॥१५९॥

तथैव प्रार्थयामास मार्जारास्यां च निर्भर्तिः । तयाऽकरोद्वर्तिं तत्र सोऽपि पर्वतमूर्धनि ॥१६०॥

तपोस्ताभ्यां समुत्पन्नो बानर्षी मातृमात्मजः ।

मार्जार्याः समभूद्वोरः पिशाचो धर्षरत्ननः ॥१६१॥

चैत्रे माति सिते पक्षे हरिदिन्यां मषार्धमिधे । नक्षत्रे स समुत्पन्नो हनुमान् रिपुवदनः ॥१६२॥

अर्धार्चत्रीपूर्णिमायां समुत्पन्नोऽञ्जनीकुतः । बदन्ति कल्पभेदेन पुधा इत्यादि केचन ॥१६३॥

बालभारेणपि च पूर्वं दृष्टोद्यत विभावसुम् ।

मत्वा एकफलं चेति त्रिपुल्लुर्लितयोत्प्लुतः ॥१६४॥

वह वृत्तान्त सुनकर इन्द्राग्निने बानरेन्द्र ऊँझविष्णुको किष्किवा नगरीका उत्तम राज्य दे दिया । तद्दीपर वह अपने दोनो पुत्रोंके साथ रहने लगा ॥ १५१ ॥ उस ऊँझराजके मर जानेपर किष्किन्धापुरीका राजा बलीश्वर बाली हुआ । हे राम ! जो आपने पूछा, मेरे वह सब कह दिया ॥ १५२ ॥ श्रीरामचन्द्र बोले—मम शत्रुओंको बर्हाने किष्किन्धासे बाहर निकाल दिया था, उस समय इनके मन्त्री थे वायुनन्दन हनुमान् भी साथ थे ॥ १५३ ॥ पर इनकी बालीके समान अपना बल क्यों नहीं दाद आया ? रामके इस वचनको सुनकर मुनि अगस्त्य फिर कहने लगे—॥ १५४ ॥ अञ्जन पर्वतनिवासी केठरी नागसे दिव्याल कपिकी से वानरी लिये थी ॥ १५५ ॥ किसी समय उस कपिकी अञ्जनी नामकी स्त्री पहली बेटी थी । इतनेमे आकाशसे किसी गृध्रोंके मुखसे छूटकर वायसका एक पिण्ड आ गिरा ॥ १५६ ॥ यह पिण्ड गरी था जो कि पहले कैकेयीके हाथसे एक गृध्रों छीन ले गयी थी । उस अमृततुल्य पिण्डको वानरीने खा लिया ॥ १५७ ॥ इतनेमे वही वह दूसरी मार्जारास्या वानरी भी था पहुँची । पतिकी अनुपस्थितिमें वे दोनो क्रीडा कर रही थी । तभी उन दोनोके कसबोंको पवनने उड़कर उँचे उठाया तथा उनकी जीघोंको देस लिया । पश्चात् अञ्जनीके प्रार्थना करनेउसके साथ बाहुने भोग किया ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ उसी प्रकार निर्भर्तितने मार्जारास्यामें प्रार्थना कर्के एवंतके शिखरपर उसके साथ रति की ॥ १६० ॥ उन दोनोसे उन दोनोय—वानरीसे मातृमात्मज हनुमान् तथा मार्जारीसे मोर धर्षरत्नन पिशाच उत्पन्न हुआ ॥ १६१ ॥ वैश्व शुक्ल एकादशीके दिन ममानक्षत्रमें रिपुवदन हनुमान्का जन्म हुआ था ॥ १६२ ॥ कुछ पण्डित कल्पभेदसे वनकी पूर्णिमाके दिन हनुमान्का वृष जन्म हुआ, ऐसा कहते हैं ॥ १६३ ॥ वे हनुमान् बाल्यकालमें ही सूर्यको देस तथा उर्ध्व पक्षा पक्ष छान्नकर उसको लेनेकी



योजनानां पञ्चशतं वायुवेगेन मारुतिः । राहुस्तस्मिन्दिने दशं ययौ सूर्यं रघूत्तम ॥१६५॥

तत्र दृष्ट्वा धर्तुकामं रवेरग्रे कपिं स्थितम् । तदा रादुर्मयादेव रविं हुक्त्वेन्द्रमाययौ ॥१६६॥

राहुः प्राह शर्चानाथ सव पीडां कतोम्यहम् ।

दत्तः पूर्वं त्वया सूर्यः पीडां कर्तुं सुरेश्वर ॥१६७॥

तत्र विघ्नं समुत्पन्नं तन्मं शीघ्रं निवारय । तत्राहुवचनादिहः समाकृत्य गोपि ॥१६८॥

देवेयुतो ययौ वेगाद्दर्शं प्लवगं पुरः । तदा मुमोष तं वज्रं मथवा मारुतिं प्रति ॥१६९॥

वज्रशतान्मारुतिः स्वाह पपात गिरिकन्दरे ।

तदा भग्नो हनुस्त्वस्य हनुमानिनि वै यतः ॥१७०॥

कुर्याति गतोऽयं सर्वत्र तदा वायुश्चक्रोप ह ।

सात्वयित्वा हनुमत् स्वव स्तुम्भोऽभवत्तदा ॥१७१॥

वायुस्तस्माज्जनाः सर्वे निपेतुर्धर्णीतले त्रैलोक्यं श्ववज्रात् हाहाकारोऽभवदिवि । ॥१७२॥

तदा भिक्कृत्य देवेन्द्रं वैष्णवा वायुं ययौ जवात् ।

प्रार्थयामास तं जत्वा पुनर्वायुं बध्नीऽब्रवीत् ॥१७३॥

देवेन्द्रस्यापराधं त्वं सन्तुमर्हसि कंषन । तव पुत्राय दास्यामि वरानप्य हनुमते । ॥१७४॥

तदा तुष्टोऽभवद्वायुश्चालः पूर्ववत्पुनः । अभून्सर्जीकृतं सर्वं त्रैलोक्यं क्षणमात्रतः । ॥१७५॥

तदा ददौ वगन् जज्ञा मारुतिं पुरतः स्थितम् ।

मविष्यसि स्वममरो वज्रदेहो वरान्मम ॥१७६॥

ते कुण्ठिता गतिर्माजस्तु कुशाप्यंजनिसंभव । मविष्यसि हरौ भक्तिस्तव नित्यमनुत्तमा ॥१७७॥

त्वं विष्णोरपि साहाय्यं करिष्यसि वरान्मम ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे वैष्णवा राहुः सूर्यं ययौ पुनः ॥१७८॥

इच्छते लीलापूर्वक ऊपरको उछले ॥ १६४ ॥ उस समय मारुति वायुवेगसे पाँच सौ योजन ऊपर उठ गये थे । हे रघूत्तम । उसी दश ( अमावस्या ) के दिन राहु भी प्रसन्नेके लिए सूर्यके पास गया, किन्तु उन्हें एकड़नकी इच्छासे करे हनुमान्को देखा । तब राहु डरा और सूर्यको छोड़कर इन्द्रके पास जा पहुँचा ॥१६५॥१६६॥ मची-पति इन्द्रसे राहु बोला—आप मैं आपको ही सताऊँगा । क्योंकि पूर्वकालमें आपने मुझे सतानेके लिये सूर्यको दिया था । ॥१६७॥ परन्तु उसमें इस समय विघ्न उपस्थित हो गया है । अतः उसका आप निवारण करें, नहीं तो मैं आपहीको दुःख दूँगा । इस प्रकार राहुके कथनानुसार इन्द्र गजपन सवार होकर देवताओंके साथ सूर्यके पास गये तो वहाँ उनके सामने हनुमान्को खड़ा देखा । तत्काल इन्द्रने उनके ऊपर वज्रप्रहार किया ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ वज्रके बाधातसे हनुमान् नीचे गिरिकन्दरामें जा गिरे और उनको दृढ़ी देवी हो गयी । जिसमें कि उनका हनुमान् नाम पड़ा ॥ १७० ॥ उनका यह नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया । यह देखकर उनके पिता वायुदेवने क्रुपित होकर अपनी गति बन्द कर दी ॥ १७१ ॥ वायुके बन्द हो जानेसे सब लोग मर-मरकर धरती-पर गिरने लगे । तीनों लोक मृतक जैसे हो गये और देवलोकमें भी हाहाकार मच गया ॥ १७२ ॥ तब वज्रा इन्द्रको भिक्कारकर शीघ्र वायुके पास गये और नमस्कार करके प्रार्थनापूर्वक कहा—॥ १७३ ॥ हे कंषन ! तुम देवेन्द्रके अपराधको क्षमा कर दो । मैं तुम्हारे पुत्र हनुमान्को बर देता हूँ ॥ १७४ ॥ तब प्रसन्न होकर वायु पुनः पूर्ववत् बहने लगा । अतः क्षणमात्रमें तीनों लोक फिर जीवित हो गये ॥ १७५ ॥ पञ्चान् बहाने सामने खड़े मारुतिको बर दिया कि तुम मेरे वचनसे कथ्यवेह होकर समर हो जाओगे । ॥ १७६ ॥ हे अंजनीपुत्र ! तुम्हारी गति कहीं भी प्रतिहत न होगी और नित्य श्रीहरिमें तुम्हारी उत्तम भक्ति बनी रहेगी ॥१७७॥ मेरे वरदान-से तुम विष्णुकी सहायता करनेमें भी समर्थ होओगे । इतना कहकर वज्रा अन्तर्धान हो गये और राहु पुनः

श्रीराम उवाच

देवैरेण कथं दत्तो रविस्तस्मै स गृह्ये । तत्सर्वं विस्तरंैव कथयस्व भगवतः ॥१७९॥

अगस्तिरुवाच

सुधापात्रादयं राहुर्देवोऽभूदमरः स्वयम् । प्रहोऽष्टमोऽमकसोऽपि यदाऽवांछदद्य सुगन् ॥१८०॥

पीडां कर्तुं तदा देवाः सूर्यं सौमं ददुस्तु वै । ज्ञात्वा धर्मजनाः सर्वे निजकमादिदेतदे ॥१८१॥

मोचाधम्यन्ति राहोश्च अग्निं भास्करं प्रति । यदा यदा मय्यत्रापरागो जगतीतले ॥१८२॥

तदा तदा जना धर्मनिजप्रत्यर्थमादरात् ।

तोषयित्वा सदा राहुं तौ तस्मान्मोचयन्ति हि ॥१८३॥

एतत्सर्वं मया प्रोक्तमुपशमस्य कारणम् । जन्म कर्म चरादानं पारुतेद्यापि विस्तृणु ॥१८४॥

अनन्तद्वलमादान्मयं को वा छक्नोति वर्णितुम् । स एकदा मुनानां हि चाश्रमेषु कुशादिकान् ॥१८५॥

चकारेतस्ततः सर्वान्धर्षयन्मुनिनालकान् । तस्य तत्कर्म मुनिविदेषु अमोऽज्ञानश्रुतः ॥१८६॥

अधारमव कपिश्रेष्ठ न शास्यसि स्वपीठम् ।

यदाऽन्यस्य सुवात्स्नीयं क्लृप्तं श्रोष्यसि विस्तृणु ॥१८७॥

मविष्यति तदा पूर्वस्मृतिस्तौ रौरुषं पुनः । अतः सुप्रविशसिन्धवे विस्तृतः स्वपात्रकमः ॥१८८॥

यदा स्तुतो आरवता पुरा प्रायोपवेशने तदा स्मृतिस्तस्य ज्ञाता स्वचलस्य हनुमतः ॥१८९॥

इतत्तं सर्वमाख्यात त्वया पृष्टं मया तव । यथा तथा साविस्मरं कपिश्रेष्ठोऽष्टितम् ॥१९०॥

तम त्वं परमेश्वरोऽपि सकलं जानासि विद्वानदृक्

भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलनामाक्षौ विक्रान्बोज्झितः ।

भक्तानामनुवर्त्तनाय सकलां कुर्यान् क्रियामहति

चाशृण्वन् मनुजाकुतिर्मम एवो भासीश्व लोकाधिपः ॥१९१॥

सूर्यके पास गया ॥ १७९ ॥ श्रीरामजीने पूछा कि इन्द्रने सूर्य राहुका क्यों द दिया था ? हे मुनीश्व ! यह क्या आप विस्तारसे कहें ॥ १८० ॥ अगस्ति ऋषि बोले — हे राम ! देव राहु सुधापात्रमें सुधापान करके अमरत्वको प्राप्त हो गया था । बादमें जब वह अष्टम घर हो गया, तब उसने देवताजनों से छुट्ट देना चाहा । यह देखकर देवताजोंने सूर्य तथा चन्द्रमा राहुका दे दिया और यह सोचा कि संतारके लिये अपने कामके लिये धर्मके द्वारा राहुमें मूढ तथा चन्द्रमाको छुड़ा लेंगे । उसाके अनुसार सूर्य-चन्द्रको जब-जब ग्रहण लगता है, तब-तब मनुष्य अपने कार्यसंघनक लिये आदरपूर्वक दान-धर्मसे राहुका मनुष्य करके उससे सूर्य-चन्द्रको छुड़ा लेते हैं ॥ १८०-१८३ ॥ इस प्रकार मैंने ग्रहणका कारण तथा माहात्म्य जन्म-कर्म आदि बुलाने लक्षितार आपको कह सुनाया ॥ १८४ ॥ पूरी तरह हनुमान्‌के बल-प्रतापका वर्णन कौन कर सकता है । उन्होंने एक दिन मुनियोंके आश्रममें जाकर उनका बालकको चराया धमकाया और कुशा आदि सब सामग्री इधर-उधर बिखेर दी । उनके इस कामका देखकर मुनियोंने अजनीमूल हनुमान्‌का आप देखे हुए कहा — ॥ १८५ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! आपसे नुम अगर पृथ्वीवर्त्तनी भूल जानोंगे और जब कभी हमारे मुखमें अपना बल विस्तारसे सुनाने ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ तब स्मरण होगा । जे सूर्यके पास रहने समय इसी कारण आपसे पृथ्वीवर्त्तनी भूल भये थे । बादमें समुद्रमंथन के समय जब जलका दूध उनका स्तुति करके उनके बालका स्मरण विनाश, तब हनुमान्‌को तुरन्त अपना बल याद आगया था । १८८ ॥ १८९ ॥ यह सब मैंने आपके पूछनेके अनुसार विस्तार करके हनुमान्‌ तथा रावणका कार्यकलाप कह सुनाया ॥ १९० ॥ हे राम ! आप परमेश्वर हैं, ज्ञानदाइसे सब कुछ देखते हैं, भित्तिवर्त्तित आप भूत-मनिस-वर्तमान तीनों कालका क्रियाके विज्ञ और सबके साक्षी हैं । सबके अनुरोधसे आप समस्त क्रियाकलाप करते हुए मनुष्य बनकर मेरे वचनको

धीशिव उवाच

स्तुन्वैव राघवं तेन पूजितः कुम्भसंभवः । स्वाश्रमं मुनिभिः सार्धं प्रययौ शुभविग्रहः ॥१९२॥  
विन्ध्याचलं निजं रूपं स मुनिर्नैव दर्शयत् । पुनरुन्वास्यति गिरिधेति मन्वा तु तद्वपान् ॥१९३॥

रामस्तु सीताया सार्द्धं भ्रातृभिः सह मंत्रिभिः ।

ससारीय रमानायो रममाणोज्ज्वलगृहे ॥१९४॥

अनासक्तोऽपि विषयान् बृहज्जे प्रियया सह । हनुमन्प्रभूतैः सङ्गिर्वाजरैः परिसेवितः ॥१९५॥  
गणधेः क्षामति भुवं लोकनाथे रमानयो । वसुधा मम्यमंयथा कलवतश्च भूरुहाः ॥१९६॥  
जनाः स्वधर्मनिन्ताः पतिभक्तिपराः स्त्रियः । नाशयन्पुत्रमरण कश्चिद्राजनि गणधे ॥१९७॥  
समाकृष्ट विमानावप्य गणधः सीताया सह । वानरैर्भ्रातृभिः सार्द्धं मंचपारावनि प्रभुः ॥१९८॥  
अमानुषाणि कर्माणि चकार बहुशो भुवि । लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूनमः ॥१९९॥  
कोटिशः शिवलिंगानि स्थापयामास सर्वतः ।

अज्यमेधादिविविधान् यज्ञान् विपुलदक्षिणान् ॥२००॥

चकार परमावन्दो मानुषं वसुगस्थितः । सीतां ना रमयामास सर्वभोगैरमानुषैः ॥२०१॥  
अज्ञाय रामो धर्मस्य राज्यं परमधर्मवित् । कथाः सस्थापयामास्य सर्वलोकमलापहाः ॥२०२॥  
एकादशमहर्षाणि सैकादशसमानि च । त्रेतायुगमवान्येव वर्षाणि रघुनन्दनः ॥२०३॥  
चकार राज्यं धर्मेण लोकवन्द्यपदांशुजः । कलेर्मानेन हेवानि लक्ष्मण्येकादशैव हि ॥२०४॥  
सैकादशव्रतान्वज्र रामो राज्यं चकार सः । एकपत्नीयतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः ॥२०५॥  
यस्यैकमेव लक्ष्मीर्मातुः पत्नीवाक्यं श्रुतस्तथा । गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षितुं नरान् ॥२०६॥  
सीता त्रेम्याऽनुवृत्त्या च प्रभवेण रमेन च । भर्तुर्जनोद्धारसार्धं भावज्ञा सा हिवा मिया ॥२०७॥

सुनते हैं । हे ईश ! सब लोगोंसे पूजित हुंकर आप बड़ी ही गोप्यतासे प्राप्त हो रहे हैं । १९१ ॥ धीशिवजी बोले-  
इस प्रकार रामकी स्तुतिपर तथा उनसे पूजा-सम्कार प्राप्त करके गुप्तविग्रह आस्य मुनि, सब धुनियोंकी  
साथ लेकर अपने आश्रमको चले गये ॥ १९२ ॥ जात समय मुनिने अपना रूप विन्ध्याचलको इस तरह  
नहीं दिखाया कि वह कहीं फिर उठकर न लडा हो जाय ॥ १९३ ॥ उधर रामचन्द्रजी सीता, मन्त्रिगण  
तथा भ्राताओंके साथ संसारी जीवोंके समान कौडा करते हुए अपने घरमें रहने लगे ॥ १९४ ॥ आसक्त न होते  
हुए भी अपनी प्रिया सीताके साथ ऐहिक विषयोंका आनन्द लेने लगे । हनुमान् यदि अच्छे वानर बीड़रि-  
की सेवामें लग गये ॥ १९५ ॥ रमानयति तथा लोकनाथ रामके शासनकालमें चरा घन-आनन्दपूर्ण हो गयी, भुव  
खुब फलने लगे ॥ १९६ ॥ मानवगण अपने-अपने धर्मपर कलने लगे और स्त्रिये पतिभक्तिपरायणा होकर  
रहने लगीं । रामके राज्यमें माता-पिताके जीते जी कहींपर पुत्रमरण नहीं होता था ॥ १९७ ॥ वे प्रभु राम-  
सीता, स्वमन आदि पाद्यों तथा वानरोंके साथ विमानपर सवार होकर अबनीसन्धर विचरते थे ॥ १९८ ॥  
पृथ्वीपर उन्होंने अनेक लोकोत्तर कार्य किये । परमात्मा रामने लोगोंको उपदेश देनेके लिए सर्वत्र करोड़ों  
शिव-लिंग स्थापित किये । परमाणन्दस्वरूप परमेश्वर रामने सन्तुष्टका रूप धारण करके बहुतेरी दक्षिणावाजे  
विविध अज्यमेध यज्ञ किये । वसुधाको दुर्लभ अनेक योगसाधनोंसे रामने सीताको सन्तुष्ट किया ॥ १९९ ॥ २०० ॥  
॥ २०१ ॥ परम धर्मज्ञ रामने न्यायपूर्वक राज्यका शासन करके लोगोंके पापोंको दूर करनेवाली अनेक कथाएँ  
स्थापित कीं ॥ २०२ ॥ त्रेतायुगके ग्यारह हजार वर्ष पर्यन्त लोगों द्वारा बन्दनाय चरनकमलवासे रघुनन्दनने  
धर्मपूर्वक राज्य किया । कलिगुणके द्दिशावसे रामने पद्मी-आनन्द-आनन्द-आनन्द-वर्षातक राज्य किया ।  
राजर्षि राम सर्वदा पवित्र रहकर एकपत्नीयत्वमें स्थिर रहे ॥ २०३-२०५ ॥ जिनके लिए पत्नीसा भाव्य और  
साथ एक समान था । उन्होंने समस्त गृहस्थाश्रमक कार्य एकसाथ लोगोंको शिक्षा देनेके लिए किया था

युक्ता तं रंजयामास राजानं राघवं मुदा । एवं गिरीन्द्रे प्रोक्तं रामराज्योन्नरोद्धवम् ॥ २०८ ॥  
परितं रघूनाथस्य यथा पृष्टं त्वया मम । श्रवणात्सर्वपापघ्नं महामंगलकारकम् ॥ २०९ ॥

सारकाण्डमिदं देवि वे शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।

तेषां मनोरथाः सर्वे परिपूर्णा भवन्ति हि । २१० ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे  
अर्गस्तिरामधिवनार्वतीसंवादे त्रयोदशः सर्गः । १० ॥

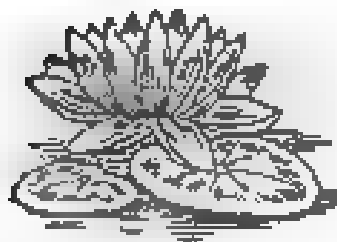
प्रथमसर्गे श्लोकाः ॥ १०९ ॥ द्वितीये ॥ ३१ ॥ तृतीये ॥ १९४ ॥ चतुर्थे ॥ १७० ॥ पंचमे ॥ १४० ॥  
षष्ठे ॥ १३० ॥ सप्तमे ॥ १६६ ॥ अष्टमे ॥ १२५ ॥ नवमे ॥ ३१० ॥ दशमे ॥ २७३ ॥ एकादशे  
॥ २८८ ॥ द्वादशे ॥ २०२ ॥ त्रयोदशे ॥ २१० ॥ एवं सारकाण्डस्य पूर्णश्लोकसंख्या ॥ २५५८ ॥

॥ २०६ ॥ सीता प्रेमके अनुकूल वर्तवसे, नश्वरासे, लज्जासे, डरसे, पातिव्रत वर्मसे, मनोहरभावसे तथा  
परिके मनोभावकी जानकर उसके अनुसार व्यवहारसे राजा रामकी प्रेमपूर्वक आनन्दित करने लगीं ।  
हे गिरीन्द्रजे ! इस प्रकार मैने तुमको रामके राज्यकालके कादका सब वृत्तान्त कह सुनाया, जंसा कि तुमने  
पूछा था । यह रामचरित श्रवणमानसे सब पापोंका नाशक तथा महामंगलकारी है ॥ २०७-२०८ ॥ हे  
देवि, जो लोग इस सारकाण्डको श्रद्धासे सुनते हैं, उन नरश्रेष्ठोंके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं । इसमें तर्क  
भी सन्देह नहीं है ॥ २१० ॥ इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे  
अर्गस्तिरामधिवनार्वतीसंवादे पं० रामतंजपाण्डेयकृत 'जपोत्तमा' भाषाटीकाया त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस सारकाण्डके पहिले सर्गमें १०९ श्लोक दूसरेमें ३१, तीसरेमें ३६४, चौथेमें १७०, पंचवेंमें  
१४०, छठेमें १३०, सातवेंमें १६६, आठवेंमें १२५, नवेंमें ३१०, दसवेंमें २७३, ग्यारहवेंमें २८८, बारहवेंमें  
२०२ तथा तेरहवेंमें २१० श्लोक हैं । इस प्रकार इस सारकाण्डमें कुल २५५८ श्लोक हैं ।

✽ इति श्रीमदानन्दरामायणे सारकाण्डं समाप्तम् ✽

श्रीरामचन्द्रार्पणम्स्तु



श्रीरामचन्द्रो विजयतेतराम्

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽहया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

—॥३२॥—

## यात्राकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( रामायणकी उत्पत्तिका वृत्तान्त )

सं'पावत्युवाच

सारकांडं त्वया शंभो कीर्तितं बहुपुण्यदम् । मया श्रुतं तु पृच्छामि यत्तद्वक्तुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥  
कथं कृता वाजिमैथा राघवेण बलीयसा रामादीनां चतुर्णां हि सन्ततिं वद । २ ॥  
स्वपुत्रचन्धुपुत्राश्च कथं स्त्रीभिः सुयोजिताः । दशवर्षपदम्पणि दशवर्षशतानि च ॥ ३ ॥  
तथैकादश वर्षाणि त्रेतायुगभवानि हि राज्यं कुत त्वया प्रोक्तं विस्तचराद्वस्व माम् ॥ ४ ॥  
यानि यानि चरित्राणि राघवेण कृतानि हि । ताति तानि हि कृत्स्नानि विस्ताराद्वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥  
इति देविवचः श्रुत्वा शंभुस्तां पुनरब्रवीत् ।

श्रीमहादेव उवाच

मम्यक् पृष्टं त्वया देवि राघवस्य कथानकम् ॥ ६ ॥

ममापि हर्षः संजातस्त्वद्वदानि तद्वान्तिकम् । चरितं रघुनाथस्य षटकोटिश्विस्तरम् ॥ ७ ॥  
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् । वाल्मीकिना कृतं पूर्वमेकदा तद्वदामि ते ॥ ८ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीपार्वताजी बोली—हे शंभो ! आपने अतिपुण्यदायक सारकाण्डकी जो कथा कही, सो मैंने सुनी परन्तु अब मैं जो आपसे पृच्छती हूँ, वह कृपा करके कहें ॥ १ ॥ अश्वमेधयज्ञ किस प्रकार किये ? राम आदि चारों बाह्योकी कौन-कौन-सी सन्ततियां हुईं ॥ २ ॥ रामने अपने पुत्रों तथा बाह्योके पुत्रोंका किस प्रकार और कौन-कौन सी स्त्रियोंके साथ विवाह किया ? आपने कहा है कि रामने त्रेतायुगमें प्यारह हजार प्यारह वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । अतएव ये सब बातें विस्तारपूर्वक कहें ॥ ३ ॥ ४ ॥ रामने जो जो चरित्र किये हों, वे सब आपके द्वारा सविस्तार कहनेके योग्य हैं ॥ ५ ॥ देवीके इस वचनको सुनकर शम्भुने कहा । श्रीमहादेवजी बोले—हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा किया कि जो रामकी कथा पृच्छी ॥ ६ ॥ इससे प्रसन्न होकर मैं तुमको रघुनाथजीका सौ करोड़ एलोकमें कहा हुआ चरित्र सुनाता हूँ । ७ ॥ जिसका कि एक-एक अक्षर पुरुषोंके सहान् पापोंको नष्ट करनेवाला है । वाल्मीकिने जो कथ्य

बाल्मीकिस्नेहदा स्नानं जगाम नमसां नदीम् । शिष्येण सहितो गन्वा भूमौ स्थाप्य कर्महन्तुम् ॥ ९ ॥  
 आचम्यकं तु मंषाद्य कृत्वा शीघ्रदिधि नवः । पादद्वन्द्वानि स्नानार्थं दर्शयति स वै मुनिः ॥ १० ॥  
 नवहर्द्वौ नमसां नदीं कौतुकमुत्तमम् । कौचयुग्मे हतः कौचो निषादेन पतन्निषा ॥ ११ ॥  
 कौचीं शोभयमानिष्टां दिक्कपापानिदुग्मितां । विवृक्ता पतिना तेन द्वित्रेण महचरिणा ॥ १२ ॥  
 ताम्रशीपेण मनेन पन्निषा मा हनेन च । तथाविधं द्विजं रुष्टा निषादेन निषानिनम् ॥ १३ ॥  
 ऋषेर्धर्मान्मनस्तस्य कावच्यं समवयत नवः करुणयाऽऽदिष्टस्यधर्मोऽपमिति द्विजः ॥ १४ ॥  
 निशम्य रुदतीं कौचीमिदं वचनमब्रवीन् । ना निषादमतिर्ना न्वमममः श्रायतोः ययः ॥ १५ ॥  
 यत्कौचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् । तस्यैव ध्रुवध्विन्ना यभूव हृदि वीक्षतः ॥ १६ ॥  
 शोकार्त्तनाम्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया । चित्तयन्म महाशयश्चकार मनिसान् मतिम् ॥ १७ ॥  
 शिष्यं चैवाजवीडाकमिदं स मुनिर्भुम्बरः । पादद्वन्द्वोऽभ्रमभातवीन्मममन्त्रिनः ॥ १८ ॥  
 शोकार्त्तम्य प्रवृत्तो ये शोको भवतु नन्यथा शिष्यस्तु तस्य श्रुतौ मुनेर्वाक्यमनुत्तमम् ॥ १९ ॥  
 प्रविजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः सोऽभिषेकततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्वधाविधिः ॥ २० ॥  
 तमेव चित्तपथार्थमुपावर्तनं वै मुनिः । पादद्वन्द्वजम्भनः शिष्यो विनीतः भुजवान् भुरोः ॥ २१ ॥  
 कलत्रं पूर्णमादाय ग्रहपथं जगाम ह । स प्रविजग्राहमपदं शिष्येण सह धर्मवित् ॥ २२ ॥  
 उपविष्टः कृपाशान्ध्याश्चकार ध्यानमास्थितः । तत्राजगाम लोकादी कर्ता ब्रह्मा स्वयं प्रभुः ॥ २३ ॥

पहिले एक ममयने किया था, सो पुनः गुनगा है ॥ ९ ॥ एक समय बाल्मीकि मुनि अपने शिष्य भारद्वाजको साथ लेकर तमसा नदीपर स्नान करनेके लिए गये, वे रास्तेमें जमानपर कर्महन्तु रम तथा आचम्यक शी- चादि कर्ममें निवृत्त होकर उठे हैं हाथमें कृपा पत्रण करके स्नान कर के लिए चले ॥ ९ ॥ १० ॥ त्यों ही उन्होंने तमसा नदीके तटपर एक उत्तम कोठक बना। बहुत बहुत नि एक निषादेने बाणने और तथा कौचोके ऊँड़से ओच ( वृत्ते ) को मार डाल्य ॥ ११ ॥ नव ओंतां गोशानुर होकर अनिदुःखसे विलाप करने लगी । यह बेचारी अपने सहचर, तामेके समान लाल मस्तकवाने, मत और बाणसे मारे गये अपने पनि पक्ष से विवृद्ध गयी थी । निषादके द्वारा मारे गये उस पक्षीकी बसा दम्बर धमरिणा बाल्मीकि ऋषिके मनमें बड़ा करुणा उत्पन्न हुई । पञ्चान उस ओंतांके दयाजनक रुदनको मनमेंसे करुणावान्त ही और 'यह बड़ा खषम हुआ ऐसा विचारकर मुन बोले- ॥ १२-१४ ॥ अरे निषाद तुन एक कामायक जोहके कौच पक्षीको मार डाला है । इसलिए तू भी मलक बघौतक प्रतिष्ठाको नहीं प्राप्त होगा मर्णा बहुत काल पर्यन्त शोचित नहीं रहगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार अनुष्टुप्-छन्दोबद्ध बाणों सहसा अपने मुखसे निकल पड़नेके कारण अश्रु-पावन तथा ओचके गमकस पीडित उन ऋषिके मनमें 'मोह । इस निषादको मैंने यह क्या कहु दिया । कर्मों हा मुझे बड़ा भारी पान लग गया' ऐसी चिन्ता होने लगी ॥ १६ ॥ ओह ! यह तो मुझसे क्या भारी अपयश देनेवाला काम ही गया । ऐसी चिन्ता करते हुए मनमें कुछ निश्चय करके महामतिमान् मुनिश्रेष्ठ बाल्मीकि अपने शिष्य भारद्वाजसे कहा- ॥ १७ ॥ बन्स ! शोकवश होकर मैंने निषादको साथ दे दिया । यह हुआ तो अनुचित, तथापि शोकसे मुक्ति होनेके कारण धेरे-मुखसे आठ ममरोवाने बार-बारणोयुक्त समान पक्षोसे विनिष्ट तथा लाल-रक्तपर गाने योग्य यह अनुष्टुप् छन्द श्लोकस्वरमें ( यक्षस्वरमें ) ही प्रवृत्त हो अपयशस्वरूप न ही ॥ १८ ॥ पञ्चान मुनिके इन श्रेष्ठ वाक्यों सुनकर उनके प्रसन्नवदन शिष्य भारद्वाजने 'यह श्लोक आपके इच्छानुसार यक्षस्वर में होगा' ऐसा कहकर उनकी बातका सम्मनन किया । इससे बाल्मीकि उनके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ तदनन्तर तमसा नदीके जलमें यथाविधि स्नान आदि कृत्य करके वे महर्षि 'मेरा अपयश कैसे यक्षस्वरमें परिणत हो जाय' ऐसा विचार करते हुए अपने आश्रमकी ओर चल गये ॥ २० ॥ उनके पीछे उनके विद्वान् और विनम्र शिष्य भारद्वाज भी बल्ल्या बड़ाधरकर चल पड़े ॥ २१ ॥ आश्रममें पहुँचनेपर भी वे 'निषादको दिया हुआ शाप यक्षस्वरमें कैसे परिणत हो' इसी बातका मनमें

चतुर्भुजा महाभोजा इष्टं च मुनिपुंगवम् । शार्ङ्गार्द्धैश्च तं दृष्ट्वा सहस्रोन्माद्यं वास्यतः ॥२४॥  
 प्रजित्तिः प्रयतो भूत्वा तस्यो परमविस्मयः । पूजयामास तं देव पादाभ्यां सनवदनैः ॥२५॥  
 अगम्य निधिरञ्जनें पृष्ट्वा चैव निगमयम् । अयोपविश्वं वगवामस्तनं परमाचिरे ॥२६॥  
 महर्षये वाष्परीकये तदिदेशमयं ततः । मशया समनुष्ठानः सोऽप्युवाविग्रहामने ॥२७॥  
 उपविष्टे तदा तस्मिन् साभान्नलोकगितामहे । तद्रूपेणैव वनसा कान्त्योकिभ्यां नमोऽस्थितः ॥२८॥  
 पाशान्विता कृतं कृतं वैश्याणवृद्धिना यस्तारुणे शारुवं कौच इत्यदक्षरणम् ॥२९॥  
 शोचभेवं पुनः कौचीमुपलोकपिमे जगौ पुनरतर्गतमना भूत्वा लोकप्राप्यतः ॥३०॥  
 तमुवाच ततो ब्रह्मन् महमन् हृदिपुंगवम् । श्लोक एव त्वया ददौ नात्र कुर्यां निचरणा ॥३१॥  
 मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् बभूवेयं सगस्वरी । रामस्य चरितं हृत्पन्नं हृत् सभृषिसद्वन ॥३२॥

धर्मान्मनो गुणचरो लोके रामस्य धीमनः ॥३३॥

पूवं कथय धीरस्य यथा ते नाददन्तु नम् । रक्षस्य च प्रकाशं च यद्दृष्टं तस्य धीमतः ॥३४॥  
 रामस्य सह सौमित्रैः कीदृशानां रक्षसां तथा । वैदेह्याभैव यद्दृष्टं प्रकाशं यदि वा रदः ॥३५॥  
 तन्वाप्यविदितं मयं विदितं ते भविष्यति । न ते रागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ॥३६॥  
 इह रामकथां पुण्यां श्लोकवद्धा मनोरमाह । पाशान्वाप्यति गिरवः सरितश्च महोत्तले ॥३७॥  
 तत्र द्रामारणकथां ताकेषु प्रचरिष्यति । पावद्रामारणकथां त्वत्कृता प्रचरिष्यति ॥३८॥

विचार करने हुए वे धर्मिक मुनि शिष्टाके साथ बैठकर अन्त्याम्य हाते करने लगे ॥ २४ ॥ इननेसे बड़ी समस्त लोकके कर्ता चतुर्भुज प्रभु महानिबन्धी बड़ा उन मुनिप्रेम्से मिलनेके लिए जा बुँचि ॥ २५ ॥ उनको अचानक आते देखकर वास्पोकि मुनि विस्मयान्वित तथा डरक् हो गये । परन्तु वे दुरन्त हाथ जोड़कर नम्रतासे उनके सामने जाते गये ॥ २६ ॥ पाशान् चोरसे मन्त्रो स्मिर करके मुनिने बड़ाजोसे कुशल समाचार पूछा तथा वाद्य, आभूष, भासन, मूर्ति, प्रवास आदिसे उनका हलकार किया । बड़ाजीने भी उनके साथ आदिका कुशल पूछा और अको लिए बिठाये हुए आसनपर धर्य बैठकर वास्पोकिजीसे जो आसन्नपर बैठनेके लिए कहा । लोकोके साजान् पिनामह बड़ाजीके आसनपर बैठ आनपर उनकी आज्ञासे वास्पोकि जमि से बैठ गये ॥ २६-२७ ॥ किन्तु उस समय भी उनका मन जीवपक्षके विषयमें ही लाग रहा था कि पावो अन्त करण तथा निर्दोष जेकोर मिथ्या वैभवाय रत्नवाले उस आशने यह बड़ा कष्टप्रद काम किया ॥ २८ ॥ जो कि सुन्दर बोली जोम्नेजामे, निर्दोष तथा कामके बगीभूत उस पक्षीको बिना कागज ही मार हाथा और मैने भी उस आशनेके साथ वे विरा, जो भी बड़ा लगाव काम हुआ । ऐसे विचारमें मान और लोकमें दुःख हुए वास्पोकि जीबका शोक करने हुए फिर पक्षी हाल करने सोचने लगे । बादमें उन्होंने आशनेके साथ ऐसे समय जो लटक कहा था, उसीको उन्होंने बड़ा जीके सम्मुख कहा । उसको सुकर बड़ाजी हँसकर मुनिसे कहने लगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे बड़ान् ! तुम्हारे एकाएक कहा हुआ यह क्लक यगचे कामे परिपत हो जायगा । इसमें तुम शक्ति भी मंजव न करना । यह तो मेरी इच्छा तथा प्रेरणासे ही तुम्हारे मुखसे यह सरस्वती प्रवृत्त हुई है ॥ ३१ ॥ हे पुरोश्चर ! तुम मेरी आज्ञासे पश्चिम घातार् अग्निज्योत्कके ग्यामी वर्य वृद्धिभान् राजा रामका संपूर्ण चरित रचो ॥ ३२ ॥ वैजंताली क्या बुद्धिमान् नम्रका जो चरित तुमने नारकसे सुना है, वह तथा और जो गुप्त या प्रकट चरित हो, उसको तुम रचकर प्रकाशित करो ॥ ३३ ॥ सुभिमानुत लक्ष्मण उद्विग्न रामचन्द्र, हानरीका, सब राजसोका तथा सीताका कुल जयथा प्रकट की जो मृलान्त तुम न जानते हुमे, वह सब की मेरी कृपासे जान जाओगे और रामके चरित्रसे भरे हुए उस काव्यम निर्मित तुम्हारी राणी वसन्त नहीं होगी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तुम ऐसे ज्योत्कहे हो मनको आनन्द देनेवालो पवित्र रामकथा लिखो । बचनक संसारमें मयोन्मत्त रहेंगे, उक्तक तुम्हारे रची हुई रामकथा की जोरायें प्रकाशित होंगे रहेगी । ज्योत्क तुम्हारी रचो हुई रामकथा पुष्पीवधसपर विस्त रहेंगी, तबतब तुम मेरे ऊपरके लक्ष भीरेके सब लोकोमें

तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मन्त्रलोकेषु निवन्स्यसि । इन्पुष्पका भगवान् ब्रह्मा स्वयं रामस्य धीमनः ॥ ३९ ॥  
 चरित्रं श्रावयामास देववाचयैः सुपुण्यदैः । तत्स्वनर्गादिना ब्रह्मा तत्रैवांतरधीयत ॥ ४० ॥  
 ततः सन्निभ्यो भगवान् मुनिर्विस्मयमाययौ । तस्य शिष्यास्ततः सर्वे जगुः श्लोकमिमं पुनः ॥ ४१ ॥  
 मुहुमुहुः प्रोपमाणाः आहुश्च भुस्तविस्मिताः । समाक्षरं शतभिर्मैः पादैर्गीतो महर्षिणा ।

मोघनुव्याहृणाज्जुयः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥ ४२ ॥

तस्य बुद्धिरियं वाता महर्षेर्भावितात्मनः । कुन्तं रामायणं काम्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥ ४३ ॥

उदात्तवृत्तार्थपदैर्मनोर्मैस्तदाऽप्य रामस्य चकार कीर्तिमान् ।

समाक्षरैः श्लोकवैर्यशाध्वनो मुनिः स काव्यं शतकोटिममितम् ४४ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितास्तोत्रं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये याज्ञकाण्डे

श्लोकोन्वितिरामायणकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

श्रीशिव उवाच

वाल्मीकिना कृतं देवि शतकोटिप्रविस्तरम् । रामायणं महाकाव्यं अमृदुर्मुनयश्च ते ॥ १ ॥  
 आभमे उत्पठति स्म कथयति स्म ते मुदा । तच्छ्रोतुममगः सर्वे विमानैश्च दिवि स्थिताः ॥ २ ॥  
 ध्रुत्वा सर्वे सविस्तारं वाल्मीकिं पुण्यवृष्टिम् । वयमुज्ज्वलवर्द्धस्ते प्रशंसन्तुर्मुनीश्वरम् ॥ ३ ॥  
 एतो देवाः सगंधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नरा । मुनीश्वरा गुह्यकाश्च वारिध्याः पद्मभस्त्वहम् ॥ ४ ॥  
 परस्परं ते कलहं चक्रुः कार्ष्णार्धमादगाद् ब्रह्माद्या निर्जराः सर्वे पन्नगान्दित्तिजान्नराः ॥ ५ ॥  
 वयं काव्यं विनेष्यामो दिव वाल्मीकिना कृतम् । दिविजाः पन्नगाः प्रोचुर्विनेष्यामो रसातलम् ॥ ६ ॥

सुखसे रहोने । इतना कहकर स्वयं भगवान् ब्रह्माने पुष्पध्रुव देववाच्यों द्वारा बुद्धिमान् रामका चरित्र उन्हें कह  
 सुनाया । पश्चात् मुनिसे पूजित होकर ब्रह्मा वहींपर अन्तर्धान हो गये ॥ ३९-४० ॥ तब शिष्यों सहित भगवान्  
 वाल्मीकि मुनिको बड़ा भारी विस्मय हुआ और उनके शिष्य उस श्लोकका बारम्बार आनन्दसे गान  
 लगे ॥ ४१ ॥ महर्षिने समान अक्षरवाला तथा बार चरणों युक्त जिस श्लोकको गाया था, उसको ये शिष्य भी  
 प्रसन्न होकर आश्रयसे परस्पर कहने-सुनने लगे ॥ ४२ ॥ उस श्लोकका मुनि शोकवश बार-बार कहते थे ।  
 अन्तमें वही शोक श्लोक ( यह ) रूपमें परिणत हो गया । पश्चात् उन श्रद्धालु महर्षिकी यह इच्छा हुई  
 कि मैं इस प्रकारके श्लोकोंमें समस्त रामायणका निर्माण करूँ ॥ ४३ ॥ अन्तमें उन कर्त्तिमान् मुनिने मनको  
 आनन्द देनेवाला तथा जिसमें उचार चरित्र भरे अपौरुषेय ज्ञान प्राप्त हो, ऐसे पद और समान  
 अक्षरोंवाले सौ करोड़ श्लोकोंवाला महाकाव्य ( रामायण ) रचा ॥ ४४ ॥ इति श्रीशतकोटि-  
 रामचरितास्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये याज्ञकाण्डे याज्ञिकायां श्लोकोन्वितिरामायणकथनं  
 नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे देवि । वाल्मीकि मुनिका बनाया हुआ सौ करोड़ श्लोकसमक उस महाकाव्य रामा-  
 यणको सब मुनिधोने अपकाया और मेहपूर्वक उसे अपने आश्रममें पढ़ने तथा सुनने लगे । उसको सुननेके लिए  
 सब देवता विमानोंमें बैठकर आकाशमें छा गये ॥ १ ॥ २ ॥ उन लोगोंने विस्तारपूर्वक सम्पूर्ण रामायण सुना  
 और मुनीश्वर वाल्मीकिकी स्तुति करके अयजवकार करते हुए उत्तम पुण्यवृष्टि की ॥ ३ ॥ बादमें देवता, गंधर्व  
 यक्षा, नाग, किन्नर, मुनिमण्ड, गुह्यक, राजे-महाराजे, ब्रह्मा तथा मैं सब एक साथ उस रामायण महाकाव्यकी  
 प्राप्तिके लिए परस्पर आदरपूर्वक झगड़ने लगे । ब्रह्मादि देवता पन्नगों, दैत्यों तथा मनुष्यों कहने लगे  
 कि इस वाल्मीकीय काव्यको हमलोग स्वयंसे ले जायेंगे देख तथा पन्नग कहने लगे कि हम



कथं काव्यं गद्यस्य चाग्रे वाचनं शुभम् । अपाश्रयाः सधूयानाः प्रोचुः काव्यं हि भूतलान् ॥७॥  
 नेतुं त्मानजं स्वर्गं न दास्यामां वयं त्विदम् । काव्यापेक्षिति ते चक्रः कलहं रामदूषणम् ॥८॥  
 ततो देवि ज्ञानात् मर्शान्नैवार्थं यथैवनिर्जितः । गन्ताऽहं तन्तुं क्षीरान्धौ शेषदयंकुशयिनम् ॥९॥  
 विष्णुं स्तुत्वा तु बभौर्नैवन्वैनानाविशेगवि । नानादूतोपहारंश्च पूजयित्वा सविस्तरम् ॥१०॥  
 कृतवान् गंतवाद्यादि तेन विष्णुर्वदयन् । पप्रच्छ मां तदा विष्णुः कियत्वं वै धिनोऽस्म्यहम् ॥११॥  
 पूज सर्वं मया देवे कश्चित् नृस्यविस्मयम् । काव्यायं कलहं भुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः ॥१२॥  
 त्रिधा विभज्य काव्यं तद् दूषयन् भक्तवन्मलः । त्रयस्त्रिंशत्कोटिलक्षमहर्षाणि पृथक् पृथक् ॥१३॥  
 क्षतानि स्त्राणि श्लोकाश्च त्रयस्त्रिंशदुभयद्वयान् । दशाक्षरानिनाम्नदान्पथजयन् रमापतिः ॥१४॥  
 द्वेऽधरे वाचमानाय मयं देवे ददौ हरिः । उपदिशाम्यहं कारणां सेज्जकालं मृगां भूमी ॥१५॥  
 रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्थिव । लक्ष्मीगरुडशेपेभ्यो वाचमानेभ्य आदरान् ॥१६॥  
 मन्त्रत्रयं पृथक् विष्णुर्ददौ तेभ्योऽनिहयिनः । शपान् निनाप पातलं लक्ष्मीर्ददुर्गुणमदरान् ॥१७॥  
 पृथिव्यामेव गरुडस्तं दधर महामनुम् । शपुः शेषान्पन्नगाद्याः सर्वे पातालशामिनः ॥१८॥  
 स्वर्गे प्रागुर्महालक्ष्म्यान्त मनुं निजराटपः । ताक्षपात्प्रापुर्महामन्त्रं सर्वं भूतलवामिनः ॥१९॥  
 मन्त्रशालात्तन्मन्त्रं त्रयं गुह्यं भाग्यन्दत्ते । ततः पूर्ववद्भागान्म ददौ विष्णुः पृथक् पृथक् ॥२०॥  
 एवं विभागं देवेभ्यो द्वितीयं पामध्याः । पुनोऽधरेभ्यो नागेभ्यश्चतुर्थं च गन्धुगमम् ॥२१॥  
 ततो देवा निजं भागं स्वर्गे निन्दुर्मुदा न्यदाः । पातले पन्नगाद्याश्च निन्दुर्मां गं मुदा निजम् ॥२२॥

श्लोक इमं रमापत्यमं न जानय । ८-९ । कौतुक इतः पाठयन् पार्थिव तयोः सुन्दर रामचन्द्र विजित द्वे ।  
 तत्र राजा प्रमा और आदि जानोय कन कि हय इय काव्यका भूतलवर्गं न त स्वर्गं ते जान द्यो और  
 नहीं पालायम् । इत प्रकार व पत्र पालकक लिए परस्पर रामदूषक कायूज नान लो ॥ ७ ॥ ८ ॥  
 ह दाव । पश्चात् येन उन सबको समस्त दयाकर इन्द्र करनेसे रोका और उन सबका भाव लेकर वे क्षत्र-  
 सभुषे शेषकाव्यका भाजन करनवाने विष्णुधर्मवासक पास गया और राजा प्रकारका पुत्र ही कन्दर्पम  
 विस्तारपूर्वक पूजा करके अनेक वेदमन्त्रोंसे उनका स्तुति की ॥ ९ ॥ १० ॥ तदनन्तर उनसे लामने बात राजा-  
 बाना शरभ किया । उससे विष्णु भगवान् जान और कहने लगे कि तुमने मुझका बगो जगता ? ॥ ११ ॥  
 हरि ! तब मैं सब हाल साफ साफ कह चुका हूँ । उगन्निवना विष्णुभावात् रामाज्ज मशकाठाक लिए हो-  
 जाने कलहका मुनकर हैं पद ॥ १२ ॥ उन भक्तवन्मल भगवान्से जगत्परम उल काव्यक शीत भाग कर दिये ।  
 उनमसे अनेक भाग लेनाम कराह लेनास लाल, लेनाम हजार तान सो लेतास लक्ष्मीका बना उन रमापतिने  
 रस रस भक्तरोवाले मन्त्रका का विभाजन किया ॥ १३ ॥ १४ ॥ दावी दो अक्षर श्री हर्षिने व ह अक्षरोंका  
 वाचना करन लगे मुझ ( शिव ) का द दिया । वे कालोंमें बहुत दुहा अनकालमें उन्हीं को लक्ष्मीका  
 मनुष्योंके कानमें उपदान करता हूँ ॥ १५ ॥ ह पावेना ! उन ही अक्षरोंको ही तुम 'राम' नामका तारक-  
 मन्त्र समझो । अर्थात् उही दो अक्षरोंका 'राम' उह तारक मन्त्र है । पश्चात् इहे आरम्भमें मन्त्रने-  
 पर विष्णु भगवान्ने भविष्य प्रसन्न होकर लक्ष्मी गरुड और शेषनका भी जलन-जलन लेने मन्त्र प्रदान  
 किये । शेष भगवान् जवन मन्त्रका पातलम लक्ष्मीर्ददुर्गुणमं और गरुड उस महाभक्तकी बड़ी वाचसे पृथ्वीपर  
 ले लये ॥ १६ ॥ १७ ॥ शेषक द्वारा पातालम गया हुआ मन्त्र पातालवामी मन्त्रोंका प्राप्त हो गया ॥ १८ ॥  
 स्वर्गमें लक्ष्मीके द्वारा वह मन्त्र सब दयतामका किया और भूतलवामी लोगोंको वह मन्त्र पदकर प्राप्त  
 हुआ ॥ १९ ॥ ह शिवेन्द्र ! उन मन्त्रोंका गुणमन्त्र मन्त्राद्वयस जाना जा सकता है । तदनन्तर रामावर्णके  
 किये हुए राजा भागोंको विष्णुने जलन-जलन कर दिया ॥ २० ॥ उनमसे लेनास करोड़ लेतास लाल  
 लेतास हजार तान सो लेतास २२२२२२२२२२२ मन्त्रोंका एक भाग उन्हींने वेदमन्त्रोंको दिया । २२२ २२२२२ का  
 दूसरा भाग मुनीश्वरोंका पृथ्वीतलक लिए दिया और २२२२२२२२२२ का तीसरा भाग नागोंको दिया । २३ ॥

आर्माद्भागो मुनीनां द्विष्टुचक्षुर्गिरिर्विरात्मजे । तस्य वि विस्तर वक्ष्ये विभक्तो विष्णुना यथा ॥२२॥  
 समद्वयं सवपु विभक्तः सवधा पुनः । सप्तद्वयं च लक्षाणि पर्यस्यन्तेमिनानि हि ॥२३॥  
 सद्वर्णाणि तर्थात्तन्निष्ठानि च तथा पुनः । सद्वर्णा विभक्तानिः श्लाकाश्चेति पृथक् पृथक् ॥२४॥  
 विभक्त सवधा उरि सवद्वयं विष्णुना । चक्षुःश्लेष्माः शेषभूता माधमाकाय वेवसे ॥२५॥  
 ददा विष्णुस्तुष्टमना । न सवक्तव्यं भोक्तव्यः । पुष्पाद्वापमाय वपयोर्द्विविधः कृतः ॥२६॥  
 कोट्यो द्वे द्विष्टुचक्षुश्च लक्षाणि हि तथा पुनः । सद्वर्णाणि नवधा तथा पचशतानि हि ॥२७॥

प्रयाविशाथ ने श्लाकाः षाडशाक्षरज्ञो मनुः ।

एव विधा कृतो भार्गो विष्णुना वपयोस्त्विह ॥२९॥

शाकडापार्दवाफानां पंचानां च पृथक् पृथक् ।

समस्यपि च वपुः समस्य दर्शिता यथा । तप्तद्रागा विभक्ताश्च ताञ्छृणुष्व ब्रवीम्यहम् ॥३०॥  
 अथपि हि लक्षाणि सदसं द्वे शतानि हि । सर्वत्र च तथा श्लोका एकरिश्चलुभप्रदाः ॥३१॥  
 विभक्त्य पर्यु द्वीपेषु द्विर्णः स्वाकिसम् । तन्मृदापगनो भूना नववर्षेषु सादरम् ॥३२॥  
 विभक्ता विष्णुना दत्ति यथा र्था च त्वीन्वहम् द्विपचशात् लक्षाणि तथा गिरिवरात्मजे ॥३३॥  
 सद्वर्णाधिकनवतिश्लाकाः एव तथा पुनः । सप्तभरामना मवास्वय हि नवधा कृतः ॥३४॥  
 शेषमकमक्षर श्रीर्गिनि सर्वत्र विष्णुना । नववर्षेषु तत्पक्ष तत्सर्वत्र न्योजयन् ॥३५॥  
 नानानामनु मयेषु न तस्य नियम कृतः । विमज्ज्येति महाविष्णुर्दृश्यमगमयदा ॥३६॥  
 अग्रे कलावरे देवि दशम्यो बुद्धिमत्तरः । निजबुद्धिक्लादे वंदानां च पृथक् पृथक् ॥३७॥  
 शतश्रेयः खण्डानि कश्चिपि क्रज्जने च । ज्ञान्या मर्दाधिका विप्रा भविष्यन्तीति वै कली ॥३८॥

देवता अग्रे भागकी खड़ी प्रमप्रनाम देवताकर्म ज गये । पञ्चगवण अग्रे भागकी सप्त पातालमे ले गये । हे गिरि वरज । उसका सोलह हिस्सा पृथगावर २२ भाग । चक्षुः, श्लेष्मा, कोचभूता या जिस प्रकार विष्णु भागवान् बाँटा । स हम् पुष्पा । कितने स कहें मनुष्य है ॥ २२ ॥ २३ ॥ उस पृथ्वीतलके भागको विष्णुने ३२ व भाग द्वापाम बाँटा । उनमेंसे हर एक द्विपका चार कर ड छिहत्तर लाख उर्ग्रास द्वार सेनाल स ॥ २४ ॥ २५ ॥ पलाक दिव । उन भागमेंसे नव द्वा चार पलाक विष्णु प्रसन्न होकर अपने भक्त सत्त्वको भागपूर्वक माँगनपर द दिव । उन भाग मेंसे भाग पुनः द्विपवाल भागका भाग किये ॥ २४-२७ ॥ पुष्कर-द्रागक अंगना दो वर्षों खड़ी, का शाकडा अङ्गना लक्ष नौ हजार पाँच सौ तईस (२३८९५२३) षोडशाक्षर मय ३००० क दश-वर्णा करके द दिव ॥ २८ ॥ २९ ॥ पञ्चा विष्णुवावागद शाकडाप, कोचभूत, श सप्तद्वय, पञ्चद्वय और कुण्डाव इत पाँच द्वापक हिस्साका भी उसमेंसे हर एकके अन्तर्गत नौ-नौ देश में बाँट दिया । उनका कितना कितना मिला स, कहता हूँ ॥ ३० ॥ उनमेंसे हर एक वर्षको अङ्गना लक्ष दो हजार सौ सौ एकतास (६००२७२९) गुन्दर श्लोक प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ इस प्रकार ओहतिने छः द्विपक भागको विभक्त करके अन्तर शब्दों जवद्विपक भागको भाग उनक अन्तर्गत भारत आदि नौ वर्षोंका बड़े प्रमस बाँट दिया ॥ ३२ ॥ हे देवि, जेना विष्णुन उसका विभाजन किया वह तुमसे कहता हूँ । हे गिरि-वरात्मजे । आवन सप्त पञ्चद्वय द्वार पाँच (५२३९००२) सप्ताक्षरश्लोक मयरूप पलाक उन्होंने बराबर-बराबर नौ भागमें बाँटकर नवा खण्डाका द दिव । ३३ ॥ ३४ ॥ शेष वच "श्री" इस एक अक्षरको विष्णुने नवी खण्डोंक लिए छान दिया । यह सब प्रकारक सन्ध्याम न्याय जा सकता है । इसका कोई नियम नहीं है । इस प्रकार विध जन करनेसे वह विष्णुभगवान् अदृश्य हो गये । ३५ ॥ ३६ ॥ हे देवि । भागे चलकर कश्चिपुम बुद्धिमानोंम अष्ट दशवदन रावण कम बुद्धवान्, व्याकुलचित्त सया अत्याहु काहूणोंको देखकर अपनी बुद्धि प्रभावसे वेदाक संकड़ा भाग अलव-अलव करके उन काहूणोंके

धीमायुषो व्यग्रचित्तास्तेषां योग्यानि रम्यं श्रीरुद्रोऽपि पुनरेति व्यामदवधौ भुवि ३०  
 भाववानो हि नर्थाय काव्याश्रयागणान्पुनः । भगद्गुणचर्चान्तरैश्च विविधानि हि ३१  
 पृथक् पृथक् समदशं पुण्यं हि कर्मिभ्यः । भागं विनिह्य च सह-द्रुष्टुं कर्मिभ्यः ३२  
 भागाद्भारतवर्षान्तर्गतान्गारं विभूष्य च । मद्यमो यममर्थश्च यदा शासनं न शक्नुयति ३३  
 मरुत्स्यास्तटे व्यस्यो व्यग्रचित्तो भविष्यति । एतन्निजन्दरे वशा नशदाय महान्तरे ३४  
 चतुःश्लोकैर्विष्णुर्दत्तैरुपदेशं कर्मिभ्यः । लब्ध्वा तान् नाम्दधादि गर्दितां गणयन्मुहः ३५  
 कीर्तयन् मुख्यं गन्वा मुनिं म- इतीश्वरम् । न इत्येकान् व्याममुनये गन्वा व्यपदेशयति ३६  
 लब्ध्वा व्याममुनिः श्लोकास्तान् यथैव गच्छति । शान्तिं लब्ध्वा तन्मतेषां विस्तारं च कर्मिभ्यः ।  
 तेषामेवार्थमादाय पुण्यं पश्येदयम् अष्टादशमहसं हि श्रीमद्भागवतमिदम् ३७  
 कर्मिभ्यस्तथादशमं रम्यं उन्मनोहरम् । भगवत्कथान् एव शशी भिन्ना भविष्यति ३८  
 पुराणानां च सर्वेषां शान्तिर्लोकैर्वै रीतिरे । पृथक् च स्मृतौ व्यसः श्रीमद्भागवतं शतम् ३९  
 कर्मिभ्यति तथाऽन्यानि स व्यासो विविधं हि च । सप्तपुण्यपुराणमपि मां मया विभूष्य च ४०  
 भागाद्भारतखण्डान्तर्गताद्रामायणादुचि । कर्मिभ्यति तथान्येऽपि पटुणस्त्राणि मुनीश्वराः ४१  
 तस्माद्रामायणादेव मास्तुद्धृत्य मादगन् । पश्चिच्चिह्नितेभ्यस्तु कीर्तयेत् कथानकम् ४२

गमायणांशजं विद्धि श्लोकमायमपीह यत् ।

पार्वत्युवाच

शशो ते द्रष्टुमिच्छामि नः त्वयः वारदो मुनिः । ४३ ।

स्वयं ज्ञान्वा विधिमुखाद्भगवन्पानकनाशनात् । तन् गमचरितश्लोकांश्चतुश्चोपदेशयति ४४  
 यः कर्मिभ्यति स व्यासो मुनिर्भागवत वम् । तान्श्लोकाश्चतुश्च मां कृपया वक्तुमहसि ४५

योग्य वक्तव्येण । इत्येव ! इसके अतिरिक्त स्वयं धीकृष्ण भी पृथ्वीवर व्यासका रूप धरकर अवतार लगे और मनुष्यके कहलानक लिए भारतवर्षके भागवान् रामायण के अर्थसे विविध प्रकारके पृथक् पृथक् सवह पुराण रचने । वे सर्वोत्तम तथा वडा भारी महाभारत नामका सुन्दर इतिहास भी लिखने ॥ ३०-४१ ॥ जो भारतवर्षीय रामायणके भागका मारण होगा । उन भारत आदि श्लोका निर्माण करनेपर भी जब व्यासजीको समझ न होगा, तब वे व्यास होकर सख्तती नदी के किनारे बैठने उसी अवसरपर ब्रह्माजी भी विष्णुप्रदत्त चार श्लोकोका नारदको उपदेश करने । नारदजी उन श्लोकोको प्राप्त करके अपनी सख्त वीणाको आरम्भ कर बजान तथा मुन्दर स्वरसे गाते हुए पद्मपत्रोंके पुत्र व्यास मुनिके पास जाकर उनको उन श्लोकोका उपदेश देने ॥ ४२-४५ ॥ व्यास मुनि उसी रामायणके चार श्लोकोका प्राप्ति करके बड़ शान्त चित्तसे उनका विस्तार करेंगे । उनके अर्थका आशय लेकर वाम उदात्त अर्थवाले, अष्टादह हजार श्लोकान्तक, रामायण और मनुष्योंके मनको मोह लेनवाले अष्टादह 'श्रीमद्भागवत' नामक सप्तपुण्यका निर्माण करेंगे । इसकेलिए भागवतका भाषा भी भिन्न प्रकारकी होगी अर्थात् अन्यन्त्र पुराणोंमें उनका लेख विवक्षण होगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे शिवे ! सब पुराणोंकी भाषा वास्तीकांशके समान ही है । तथापि भूतरामायणके कर्ता व्यास अलग ही गिने जायेंगे । वेदव्यास सूक्ति भारतवर्षीय रामायणके भाषका मार ग्रहण करके और भी बहुतसे मनोहर उपपुराण बनायेंगे इसी प्रकार उस रामायणका मारभाग लेकर अन्यन्त्र मुनीश्वर छ. शम्भुका निर्माण करेंगे । हे तिरिजे ! पृथ्वीमण्डलपर और भी जा कुछ श्लोकात्मक तथा पद्यरमक कथा मिले तो उसे भी तुम रामायणके अर्थसे ही उत्पन्न समझो । पावतीजी वाली --- हे शंभो ! मैं आपके मुखान्निन्दसे रामचरित्रके उन चार श्लोकोको सुनना चाहती हूँ, जिन पापनाशक श्लोकोको नारदन ब्रह्माके मुखसे सुनकर व्यासको सुनाया था ॥ ४६-४८ ॥ जिनके भावावयव व्यासमुनि अपूर्व भागवत अर्थका रचने, उन चार श्लोकोको कृपा करके

श्रीशिव उवाच

मम्यकं पृष्टं त्वया देवि मावधानमनाः शृणु । नवदोक्तं शतुःश्लोकांस्तवाग्रे प्रवदाम्यहम् ॥६६॥  
 नागदायापि कथिता विधिना ये पुनः शुभाः । ब्रह्मण विष्णुना पूर्वं आरभ्य चरितं यदा ॥६७॥  
 त्रिमूर्तं हि तदा दत्ताः शेषभूताः सुपुण्यदाः । तान् शृणुस्व चतुःश्लोकान् विष्णुलोकान्स्वयंभुवे ॥

श्रीभगवानुवाच

ग्रहमेवाममेवाग्रे ज्ञान्यन्मन्मन्मन्मन्म् । पश्चादहं यदेनञ्च योजयिष्येत् सोऽहम्पहम् ॥६९॥  
 शूनेऽर्थं यन्प्रर्तायेत् न प्रर्तायेत् चान्मनि । तद्विद्यादान्मनो मायां यथाऽऽभ्यसो यथा तपः ॥६०॥  
 यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥६१॥  
 एतावदेव जिज्ञास्य तत्त्वज्ञानमुनाऽऽत्मनः । अन्यथैव निरेकाभ्यां यन्म्यान्मयैत्र सर्वदा ॥६२॥

श्रीशिव उवाच

एवं श्लोका भगवता चन्त्याग्र प्रकीर्तिताः । वेधसे ये नराग्र्ये ते कर्त्तिता देवि वै यथा ॥६३॥  
 तने पवित्राः पापघ्ना मर्त्यानां ज्ञानदायकाः । प्रज्ञाननाशनाः मया कौतुकीया नगेनमैः ॥६४॥  
 एव देवि त्वया पृष्टं यथा तत्ते निवेदितम् । कथामार्गभिना प्रमत्ता शृणु वक्ष्यमहम् ॥६५॥  
 तनो रामायणं व्यासो विष्वम्न मुनिभिः पुनः । कूर्त्तुं कत्र शेषभूतं ममकादभिन शुभम् ॥६६॥  
 चतुर्विंशति माहस्य रक्षिष्यन्ति मुनिस्तदा । अदायन्ते तन्मनस्य श्लोकास्त्रयक्रियन्ति हि ॥६७॥  
 चतुर्विंशतिमाहस्य व्यासस्य रक्षिता अपि । रक्षिष्यन्ति गिरिजेऽग्रे मंगलाचरणादिषु ॥६८॥

आम अग्रज्य मुहमे बहे ॥ ६१ ॥ गिरिजाने कहा— १ बाब । तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । अब उन १२ नारदा मावधान होकर मने । मैं उन नारदान् चार श्लोकी मुनता हूँ ॥ ६२ ॥ उमसे श्री पवित्र नारद-  
 क ममसे श्रीरामके चरित्ररूप से हो चार श्लोक विष्णुने कहासे कहे थे ॥ ६३ ॥ तू विष्णुने कहासे उम  
 समय कहा था, जब कि उन्होंने रामायणका विभाजन किया था । उस नारद ने पुनः पुनः तथा विष्णुक द्वारा  
 कहासे मिले हुए चार श्लोकीको मन लगाकर ध्यान करो ॥ ६४ ॥ व्यासजीने कहा था इस चारचर  
 ग्रन्थामक तथा पाचश्लोकि ममामक उपम होतक पूरा न कोई मद्रन्तु भी और न असद्रन्तु केवल सबका  
 रक्षण तथा मृष्टिका रक्षणरूप मैं ही था । उता प्रकर प्रसन्नक पन्थान भी जो कुछ कायममूहक रक्षितान-  
 र्त्तक्य अवशिष्ट रहता है, वह भी एकमात्र मैं ही हूँ ॥ ६५ ॥ जो ब्रह्मतावक वस्तु न होतपर भी सद्बिचारके  
 द्वारावस्था वास्तविकरूपसे ज्ञान पहन्ता है, पर नु जब आत्म-अनात्मोदयक तत्त्वविचार किया जाता है,  
 तब आत्मको जतिरिक्त जिसकी कोई सत्ता नही जान पड़ता, जह स्वभावार्थ, भ्रातृत्वकान् आत्मको  
 आत्मरहित करनेवासी, आत्ममन्त्रिणी मायाको मृगमर्चिकक आभागकी तरह तथा आकाश-  
 की तालिमाका तरह मिथ्या जानना चाहिये ॥ ६६ ॥ जिस तरह पृथ्वा आदि पञ्चमहभूत अन्धान् शीतल  
 कर्मममूहक मृगमृग आपर भी उनसे अलग दिमाई दन है । उता तरह से पञ्चमहाभूतान् अग्रत हानेपर भी  
 उनसे अर्थात् समस्त भौतिक संसारसे अलिप्त रहता हूँ ॥ ६७ ॥ वस, आत्मतरके त्रिजामुत्रोको सदा और  
 सब जगह अन्वय-अतिगम्य उपपुष्ट बातोंका निश्चय करके आत्मतन्त्र तथा मायाका पूयक पूयक विरुद्ध-  
 चर्मवासी जान लेना चाहिये । यहा व्यासक निवस है ॥ ६८ ॥ गिरिजा बाब-हं देवि । भगवान् नारायणने जो  
 चार श्लोक कहासे कहे थे, वे मैंने तुम्हें कह सुनाये ॥ ६९ ॥ ये श्लोक पवित्र, पापनाशक, मृगमृगक प्रणि-  
 योको तत्सम ज्ञान देनदान तथा पाप अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेवाले हैं । अब समस्तदर मनुष्याको  
 निरन्तर इसका ध्यान, मनन और कीर्तन करने रहना चाहिये ॥ ७० ॥ हे देवि । जो मने पूर्वम आरम्भिक  
 कथा पृष्टी, सो मैंने तुमसे कही । आगे जो कहना है, सब था सुना ॥ ७१ ॥ बादम मुनियाके द्वारा इधर उधर  
 बिखरे हुए रामायणको व्यासमुनि फिरसे एकत्र करके सुन्दर सात कांडोंमें बाँटा है हजार श्लोकयुक्त  
 बनाकर उसकी रक्षा करेंगे । इसी कारण बीबीस हजार श्लोकवाली उस रामायणके आदि तथा अन्तमें  
 मंगलाचरण आदिके प्रकरणमें व्यासरचित और और भी कुछ श्लोक दृष्टिगोचर होंगे ॥ ७२-७३ ॥ हे देवि ।

रामायणान्यनेकानि पृथग्ग्रे मुनीश्वराः । भागाङ्गारतखण्डान्तर्गतत्कुभोद्धवाद्यः ॥६९॥  
 करिष्यंत्यत्र शनशस्तानि सर्वाणि पार्वति । चान्मर्कायादिना देवि न हेयानि मर्माणिभिः ॥७०॥  
 सारकाण्डं पुन देवि यदुक्तं च मया तत्र वाल्मीकीयाश्च तच्चापि सारमुद्धृत्य वै मया ॥७१॥  
 निषेदितं च सधुना पृष्टं रामकथानकम् सुविस्तारं वदाम्येति त्वया तस्मान्नयोदितम् ॥७२॥  
 भानं रामचरित्रस्य शनकोटिप्रविस्तरम् पचाननाङ्गपदं देवि दिव्यैर्वर्षार्तुदैरापि ॥७३॥  
 रामायणं सविस्तारं व्याख्यातुं न क्षमस्मिन् । यन्निमित्तं च मुनिना स्वतपोभिरनुत्तमम् ॥७४॥  
 अतः संक्षेपमात्रं हि सारं सारं निगूह्य च । कथयिष्यामि न्वर्थात्परं यात्राकाण्डं शुभावहम् ॥७५॥  
 रामदासो यथाऽग्रे हि विष्णुदास इदं विनि । शनकोटिमितान्न ज्ञानदृष्ट्या चाहं तथा तव ॥७६॥

इति श्रीशनकोटिरामचरित्रासंगतर्थात्मदानंदरामायणे यात्राकाण्डे

रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

### तृतीयः सर्गः

( गंगा-समुद्रगमपर जानेका तैयारीके लिए दोनोंको रामकी आज्ञा )

पांचतुवान

को रामदासः कुत्रस्यो विष्णुदासश्च कः स्मृतः । कथं वर्तयति गुरुमन्त्रमां कथय विस्तरात् ॥ १ ॥

भाषितं चान्

भारते दण्डकाण्ये गोदानाभौ विराजिते । संवेज्जके नृमिह्वाण्यो मुनिग्रे भविष्यति ॥ २ ॥  
 रामनामा तु सत्पुत्रस्तच्छिष्यो विष्णुगित्यपि । गुरुशिष्यौ गममेवामक्तौ नित्यं भविष्यतः ॥ ३ ॥  
 दास्यत्वाज्ञानकीजानेस्तावुभौ धूमरोजसा । रामदासाविष्णुदासायिनि लोके परां प्रथाम् ॥ ४ ॥  
 समिष्यतोऽग्रे भो देवि गौतम्या दक्षिणे तटे । रामदासं पितुः श्राद्धं गुयायां भविष्याय च ॥ ५ ॥  
 पृथिव्यां यानि नाथानि तानि गत्वा यथाक्रमम् । अध्यापयिष्यति अज्ञानं गोदानाभौ गृहप्रेम्भी ॥ ६ ॥

भारतवर्षमें प्रचलित रामायणक भागक आधारपर अगस्त्य आदि अन्य न्य मुनि भा मेकडो रामायण लिखेंगे । पर विचारशील पुरुषोंको उन्हें वाल्मीकीय रामायणमें पृथक् न समझना चाहिये । ६९ ।, ७० । हे पार्वती । पहले जो मैंने तुमको सारकाण्ड सुनाया वह भी चान्मात्रास रामायणका सार ही था ॥ ७१ । उसके बाद जो तुमने रामकी सविस्तर कथा पढ़ी वीर मैंने सुनायी, उसका एक अंग्र इतोंकोमे विस्तार है । हे देवि । पञ्चमुत्रसे मैं दिव्य अस्त्र वर्षोंमे भो सम्पूर्ण रामायणका व्याख्या करतम समर्थ नही हूँ तब फिर औरोंका तो कहना ही क्या है । इसका रचना वाल्मीकि ऋषिने अपने तपोबलम का था ॥ ७२-७४ । इसलिये सारमात्र लेकर संक्षेपमे मे तुम्हारी मननताके हेतु मनोहारा यात्राकाण्ड सुनाऊंगा , ७५ । जिस सी करोड़ इलोंकोकी रामायणकी आगे चलकर रामदास विष्णुदासको सुनाएंगे, वही मैं ज्ञानदृष्टिसे देख कर तुमको सुनाता हूँ ॥ ७६ । इति श्रीशनकोटिरामचरित्रासंगतर्थात्मदानंदरामायणे यात्राकाण्डे 'क्योत्स्ना' भाषाटीकायां रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ ।

पार्वतीजीने पूछा—हे महाराज । रामदास कौन और कहाँके हैं ? ये विष्णुदास कौन हैं ? रामदास विष्णुदासको क्यों विस्तारसे रामायण सुनायेंगे, यह भी कह सुनाइये ॥ १ ॥ शिवजीने उत्तर दिया कि भारतवर्षक दंडकारण्यमें गोदावरीके मध्यप्रदेशीय बन्धक क्षेत्रमें आगे चलकर नृसिंह नामके एक मुनि होंगे ॥ २ ॥ नृसिंहमुनिके पुत्र रामदास और रामदासके शिष्य विष्णुदास होंगे । ये दोनों गुरुशिष्य निरन्तर रामकी भक्ति करनेवाले होंगे ॥ ३ ॥ सीतापति रामके मदन्य दास होनेके कारण ही ये दोनों रामदास तथा विष्णुदास नामसे संसारमें परम प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे । हे देवि । आगे चलकर ये ही रामदास नीलमती नदीके दक्षिण तटपर तथा गद्यामे पिताका श्राद्ध करके पृथ्वीके समस्त तीर्थोंका भ्रमण करनेके बाद गृहस्थाश्रम स्वीकार करके

एकदा विष्णुदामः स श्रुत्वा नानाविधाः कथाः । रामदाममुष्मात्माकाण्ड रामायणोद्भवम् ॥ ७ ॥

श्रुत्वा किञ्चित्प्रष्टुमना रामदाम वदिष्यति ।

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वक्तुमिहार्हम् ॥ ८ ॥

सायकाण्डं मया स्वतः श्रुतं रामायणस्थितम् । न किञ्चित्स्मोक्ष्यते शोर्जपि जानक्या गपयम्य च ॥ ९ ॥

श्रुतोऽत्र कापि राज्यस्य विस्तारोऽपि च न श्रुतः । कथं यागाः कुनास्तेन मन्तनिष्पत्त्य न श्रुता ॥ १० ॥

मुनानां वधुपुत्राणां विवाहादिकमश्रुतम् । तत्सर्वं विष्णुगच्छतः श्रान्तमिच्छामि मे गुरो ॥ ११ ॥

तत्त्वं वद महाभाग रघुर्वारस्य चैष्टितम् । रम्यं पवित्रमानन्ददायकं पातकापहम् ॥ १२ ॥

रामदास उवाच

सम्पक् पृष्टं त्वया वन्म रामचन्द्रकथानकम् । भगलं रघुनाथस्य प्रोच्यते वन्मविष्णुम् ॥ १३ ॥

मायधानमनाम्ब तच्छृणु पातकनाशनम् । यथा श्रुतं मया पूर्वं तृष्ट्यर्थं ते वदाम्यहम् ॥ १४ ॥

इत्थां दशाननं रामो राज्यं निहतकटकम् । अयोध्यायां मुक्तिपुष्पं ममाम नीतिमनसः ॥ १५ ॥

न दुर्भिक्षं न चौर्यं च मायमृग्युर्न चेतयः । न दुर्दृष्टिश्च भयं चिन्ता जयाधयश्च कदाचन ॥ १६ ॥

न मिथार्थी न दुर्धनो न पापात्मा न निन्द्यः । न क्रोधो न हृतघ्नोऽपि रामे राज्यं प्रशामति ॥ १७ ॥

एकदा जानकी कान्तमेकान्ते ग्राह लज्जिता । स्मितवक्त्रा चाकृन्तामा दिव्याञ्जुष्माग्निउता ॥ १८ ॥

सायकव्यग्रहस्तां सा विनयावतलानना । शम राज्ञायपत्राध रावणाने मम प्रभो ॥ १९ ॥

किञ्चिद्विस्तुमिच्छामि यद्यनुज्ञां करोषि हि । विशापयामि तर्हि त्वां धर्ममूल महीदयम् ॥ २० ॥

गोदावराके गडवर्ती गोविन्दे छात्राकी अनेक शास्त्रोका अध्ययन करारंगे ॥ ४-६ ॥ उभी अक्षरपर किसी दिन विष्णुदाम रामदासने बहुतों की कथा सुनते-सुनते सायकाण्ड सायकाण्ड मन्तर कुछ प्रश्न करनेकी इच्छासे कहते हैं 'गुरो' ये आपस जो प्रश्न करवका इच्छा करना है, उसका पूर्णकर्तव्य उत्तर देनेमें आप समर्थ हैं । हे गुरो 'मैंने आपसे रामायणका सायकाण्ड जो सुन लिया, पान्तु उन्नीसे देने की भी महाराजी जानकी अवस्था राजा रामचन्द्रका कोई सुखद सवाद नहीं सुना और न उनके राज्यका विवरण ही सुन पाया । उन्होंने कैसे और किस प्रकार यज्ञ किये ? उनकी सेवताका विवरण भी नहीं सुनाने मिला । राम तथा उनके भाइयोंके पुत्रोंके विवाह आदिक वर्णन भी मैं नहीं सुन सका । गुरो । यह सब मैं आपसे श्रीभगवते विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ ७-११ ॥ इसलिये हमें मन्त्राभागे श्रावणचन्द्रतोका वर मनोहर पावन, आनन्ददायक तथा गानाञ्जुष्मा चरित आप सुखान्ते सुनार्गे ॥ १२ ॥ रामदास राजा 'हे वन्म' तुम रामचन्द्रकी कथा-विषयक यह वडा ही उत्तम प्रश्न किया है । रघुनाथजी के इस भावविशेष चरित्रको मैं विष्णुगच्छे वर्णन करता हूँ ॥ १३ ॥ उनकी कथा ध्वजमाश्रम जन्म जन्मान्तक सायक' सप्तक' देने है । उनके सेने जैसे सुना है, वैसा ही तुम्हारी प्रशंसनाके लिए कहता हूँ, जब सायकाण्ड शासन सुना ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजी दशानन रावणको मारकर मोक्षदायिनी अयोध्यानगरीमें रहने हुए नातिपूर्वक मिथार्थक राज्य करने लगे ॥ १५ ॥ उनके राज्यमें कभी भी अकाल नहीं पड़ा और चोरा नहीं हुई । किन्तु अकाल या कृत्स्न मरण नहीं हुआ । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी तथा मूगासे सताया नाश पतितम लज्जा का चिन्ता और राजविद्रोहोंसे आसमान ईशिये ( विधनिये ) भी उनके राज्यकारणमें लगापर नहीं आया । उनके राज्यमें कोई दुर्दृष्ट, मयभीत चिन्तानुर या रोगपीडित नहीं रहता था ॥ १६ ॥ उनके राज्यकालमें कोई भ्रष्टारी, दुराचारी, पापी क्रूर, माया और कुलघ्न भी नहीं होता था ॥ १७ ॥ गये सुख-शान्तिक समय एक दिन हास्ययुक्तमुख-वाली, सुन्दर नासिकायुक्त एवं देवियोंके योग्य अर्द्धकान्तिसे सिम्पित जानकी कुछ लज्जावृद्धक एकान्तमें अपने पिय पति रामसे रहने लगे । उस समय जानकीके हाथमें मनोहर चमर था । ऐसी दशामें वे चित्तसे नंगा सुन किये हुए बोलो-हे कमलपत्रके समान नयनोंवाले रावणके शत्रु तथा मेरे पाय राम । यदि

तत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकीं प्राह गधरः । हे माने कजनयने मम प्राणहृत्पदे ॥२१॥  
 शीघ्र वदस्व यनेऽस्मिन्नेति तत्काव्याप्यहम् । इति गधरमभ्यानवचनैर्जनकाम्बजा ॥२२॥  
 निवर्गं सोपगुणैषपरेपूर्णाऽन्योत्पतिम् ।

श्रीसोतोवाच

यदा त्वं राघवश्रेष्ठ दण्डकं वचनापितुः ॥२३॥

मया सीमित्रिणा साकं पूर्वं म्यनम्राटनः । मृगधेगपुत्रं बन्धा जगद्व्यास्रगणे यदा ॥२४॥  
 नौकायां स्थितमभ्याभिर्माग्राभ्यां तदा पृग । मकन्धित मया किञ्चिन्मर्वां वक्ष्याम्यहं प्रभो ॥२५॥  
 देवि गमे नमस्तेऽस्तु निवृत्ता वनयागतः । गर्भेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये ॥२६॥  
 सुगमांमोपहारैश्च नानाबलिभिर्गृह्णा । इत्युक्तं वचनं पूर्वं तज्ज्ञानं भवताऽपि च ॥२७॥  
 ततश्चतुर्दशैः वर्षैः विमानेन यदाऽऽगतम् । तदा भगवन्शुधनर्कामन्याविहातुरा ॥२८॥  
 अहं तद्विष्मृता रामा स्मृतिर्जानास्य मे प्रभो । तन्मन्त्रकल्पपूर्वमेव गतुमर्हसि जाह्नवीम् ॥२९॥  
 मया मातृचपुत्रिभिरुत्पत्ति ते श्रावयाम्यहम् । तेचने यदि ते चिके न न्यामाज्ञापयाम्यहम् ॥३०॥  
 इति सीतावचः श्रुत्वा गधस्य रघुनन्दनः । सीतामालिङ्ग्य बाहुभ्यां हर्षवन् तामुवाच सः ॥३१॥  
 एतद्वचनवातुषं कुतो जानासि मेधिलि । न तने वचनं देवि गङ्गा प्रति मर्मव ननु ॥३२॥  
 वचनापव वेदहि श्वो गन्ता जाह्नवीं प्रति । क ते बाह्यार्जन् दापये गङ्गां यन्तु वदस्व मे ॥३३॥  
 तच्छ्रुत्वा तत्रैव स्थातुं सेनायोम्यसमं मृदु । शत्रुं कर्तुं हि फथानं दानाज्ञापयाम्यहम् ॥३४॥  
 यतः सीताऽनर्वाहक्यं पुनः शीगमचोदिता । पत्रं गङ्गा च सगमं गताऽस्ति रघूदह ॥३५॥

बाप मुझे आज्ञा है तो मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ । वह योग निवेदन धर्ममामन मया कर्म्यु  
 वचकारो होगा । १८-२० । राम सीताका वचन सुनकर कहने लगे हे कमलनयनो हे मम प्राणहृत्पद  
 सीते । तुम जो कहना चाहो, सो शीघ्र कहो । मैं उस अभ्यापन करनेकी तैयार हूँ । इस प्रकार राजक मभ्यानभर  
 वचनास जनकनन्दिनो नानाप्रका सहस्रसं नित्यसं लक्ष्मणे उठा और दापित करने लगे—श्रीमानाज्ञा बोली—हे  
 राघवश्रेष्ठ । जब बाद निनाक बहुनपर दण्डकाण्डय जानक लिए मुझे तथा मुनिवापुष लक्ष्मणको साथ लेकर  
 अयोध्या गये, मैं चले गे और जब मृगधेगपुर में रात्रि जागृवी मदास मावपर हमलोग मदाह हुए थे । उस  
 समय भगवन्तो भाग्यशायकी बीच घानासे मन गो मकन्द किया था । हे प्रभो ! वह मैं आज आपका सुनाता  
 हूँ ॥ २१-२५ ॥ मैं गंगाको नमस्कार करके कहा था—हे देवि । जब मैं गम तथा लक्ष्मणक साथ  
 वनयावन लौटता, उस समय तुमसे, मलने तथा जनक प्रकाशको पूजाकामपान तुम्हारी पूजा करनेको ।  
 उस समय कह रहा था इस वचनका जानने भी मना था ॥ २६ । २७ ॥ पश्चात् चोदह वय बाद जब हमलोग  
 विमान द्वारा हमने लगे तब भरत शत्रुघ्न और माना कोवन्ताके वियोगसे अनुर होकर कश्यप से उस बातको  
 पूछ गयी । हे प्रभा ! आज मुझे उस बातका पुनः स्मरण आया है । मत्तएव मरे उस संकलरको पूरा करनेके लिए  
 माताओं, भाइयों तथा मुझे लेकर आपको बंगाल के तटपर चलना चाहिये । यही मेरा आपस प्रार्थना है ।  
 यदि आप उचित नमस्से नो करेंगे । मैं आपका म जानका आज्ञा नहीं दूँ । कदाकि सीता पनिरो आज्ञा देना  
 मयसे है चान्तु उचितव उचित परामर्श देना न्याय्य और धर्मशुभत है । २८-३० ॥ आज्ञाक इस  
 बातको सुनकर राम बड़े प्रसन्न हुए और आनन्दित करके मातासे सहर्ष कहने लगे—॥ ३१ ॥ हे मेधिली !  
 इस प्रकारका वचनवातुषं सुनमे कदासि आ गया ? तुम्हारा वह वचन मंगाके प्रति वही, प्रत्युत मरे ही प्रति  
 था ॥ ३२ ॥ हे वेदहि ! तुम्हारे कथनानुसार मैं वस ही बंगाली चलनेके लिए सेनाव हूँ । हे शिवे !  
 तुम्हारी जिस अम्ह और जिस लोचको चलनेको इच्छा हो, वह कहो ॥ ३३ ॥ इस बातका जानकर  
 मैं वही सेनाको ठहलनेके लिए स्थान और मार्ग साफ-सुथरा करनेके लिए दूतोंको आज्ञा दे दूँ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार  
 रामके वृत्तनेपर सीताने कहा—हे रघुनन्दन ! जहाँ गंगा और सरयुनीका संगम हुआ है, वहीपर गंगाको

तत्र गङ्गाक्षरं देवे गतुमिच्छति मे मतः इति श्रीगोपचः श्रुत्वा तथेन्दुक्त्वा गृध्रहः ॥३६॥  
 द्वागालु समाहूय पर्यगच्छाथ जानकाम्, अज्ञापयन् तं रामः क्षीत्र गच्छ ममाज्या ॥३७॥  
 लक्ष्मणं वचनं मे रर कथयन् सविस्मरम् । शायथ्यः सो ममोद्योगः सीतायार्थं कौतुकान् ॥३८॥  
 मरुगुमङ्गलं गङ्गापूजनार्थं नया मह । मान्भिर्मन्त्राभिः सैन्यः सुदृढिर्भस्तेन च ॥३९॥  
 गजुत्पेन रुग्स्थिम् जनैर्विप्रपञ्चानुसम् । सेनानिवेकस्थानानि योयनाद्धान्तगाणि च ॥४०॥  
 रूग्ताममनोयायैः कल्पनीयानि च पृथक् । इति गमवचः श्रुत्वा म मवति त्वगन्वितः ॥४१॥  
 आत्ताप्रमाणमिन्दुक्त्वा नन्वा गम पुनः पुनः । कथयामास सीमंवि सभवाक्य भविस्तरम् ॥४२॥  
 तद्वाक्यवचनं श्रुत्वा सीताज्यपदस्थितः । समाया मन्त्रिभिर्दुर्को लक्ष्मणा दूतमब्रवीत् ॥४३॥  
 अङ्गीकृत गमनाक्यमिति गम वदस्व तन् । तच्छ्रुत्वा त्वग्नि दूतः कथयामास गद्यवम् ॥४४॥  
 समाया लक्ष्मणश्चापि दूतानातापयन्दा । रुक्मदण्डकान् त्रिवोष्णापपुनः नु विभूषितान् ॥४५॥  
 गच्छन् त्वग्निता गुपं कथयन् अनान्पुरि । जयोध्याया सभवाप सो मायार्थं ममुद्यमः ॥४६॥  
 हथेन्दुक्त्वा जवाद्वा गजवार्मांश्च सर्वतः । दीर्घस्दरेण ते प्रोचुश्चाध्वं कृत्वाऽऽत्मनन्करान् ॥४७॥  
 हे जनाः मृगुन स्वस्थाः श्वः सीतागमयोर्मृग । मय्योगोऽस्मि दूतार्थं मग्वाः सङ्गम शति ॥४८॥  
 मागीरध्याः सुदृढिश्च सावरोध्वर्तः मह । इति सभवाक्य मकन्दा जनान् माकेतवामिनः ॥४९॥  
 ते दूता राजमवने लक्ष्मणं न पुनर्ययुः । मथाक्य ते जनाश्चाग गमोद्योग न्यवेदयन् ॥५०॥  
 समाया लक्ष्मणश्चापि समहृयन् जनैः पान् । तप्तकानिष्टिकाकागन्दुष्कमसु नैष्टिकान् ॥५१॥  
 लोहकभांश्चर्मकारान् मिलिकमार्दिनैष्टिकान् । कणविकयकनूश्च काहनिर्जावकाणिः ॥५२॥  
 वागोष्टुष्टिदग्धाश्च मर्दिपञ्चवर्दिनः । नानाकर्मसु निष्णाना रज्जुकुटालधारिणः ॥५३॥

उक्त होते तद्वर जानेका पर मनच इच्छा है । सत्ताका इस इच्छावा सुनकर रामन 'तुम अच्छा' ऐसा कहा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तदनंतर जानकीको बहुतक भीतर भेज तथा द्वागालको बुलाकर गमने कहा—तुम मेरी आज्ञाने अभी लक्ष्मणके पास जाकर मेरा आदेश उनसे कह दो, जन्मे कहना कि बल प्रातः काल माताको इच्छामे तुम्हारे, मानका, मन्त्रियों, सेनाका, भरतशपुष्प, पुत्रवर्गी जना तथा आश्रमके साथ मरुगुके संगम-पर गङ्गाका पूजन करनेके लिए सूच मायमे मेरा जाना निश्चित हुआ है । इस लिये मस्त्व दे दो कागज पत्र अस्त्र परिपूर्ण गिरि तैयार कराओ, साथके इस वचनको सुनकर वह दूत बहुत अच्छा, जो आज्ञा कह तदा रामकी आज्ञाकार मस्कार करते वहीसे सोच चल पड़ा, लक्ष्मणके पास जाकर उनसे विस्तारसे रामकी आज्ञा सुना दो । ३८-४९ ॥ सुवरज्यवदपर स्थित तथा मन्त्रियों, साथ सभामे विराजमान रुक्मणने जब रामके आदेशको दूतके मुखसे सुना तो उससे कहा— ४० ॥ तुम जाकर श्री रामसे कहा कि आपकी आज्ञाक अनुसार सब कार्य ठीक हो जायगा । दूतने जाकर सीधे ही रामको यह सन्देश सुना दिया । ४१ ॥ तब लक्ष्मणने सोनेके दण्ड धारण करनेवाले रज-विर्गो वगैरे विरपर दण्डे तथा मृगुन वगैरे बहिने हुए बहुतसे विवाहियोंको बुलाकर उन्हें यह आज्ञा दी— ४२ ॥ तुमलाग सीधे नगरभरम घूमकर सब नगरवासियोंको रामचन्द्रजीके कल बाजाके लिए प्रस्थान करनेका समाचार सुना आओ । ४३ ॥ तेषामनु कहकर वह दूत नगरकी सड़कोपर घूमघूम तथा हाथ उठा उठाकर ऊँच स्वरसे सब लोगोंको सुनाने लग— ४४ ॥ 'हे नगरवासीयो ! आज्ञा देकर मुझे राम और सीता कल अन्तःपुरवासीकी श्रिया, संग-संनिधियों और सेनाको साथ लेकर मरुगुनदोंके संगमपर गङ्गाका पूजन करके लिए जाते आयेछावावामी लोगोंको यह समाचार सुनाकर वे पुन लक्ष्मणजीके पास जायये और बोल कि हमनेच नगरके सब लोगोंको रामजीकी आज्ञाका समाचार सुना आये । ४५-५० ॥ तदनन्तर लक्ष्मणने नौकरोंके द्वारा एकजण बढ़ाई हुई पाषाणवाल कुम्हार, लकड़ोंके कामसे हुए ल संगतरास ॥ ५१ ॥ लोहार, चमार, भौत-मकान कादि बनानेमे बहुत राजगीर, सीधे बेचने तथा सरोदनेवाले बनिसे, लकड़हारे, कपड़ेके धेरा-समूहके



एतानां कृपायामास तोषणाद् वीर्यादिभिः । समानितान्म संभिन्वि कृत्यामास मादग्म् ॥५४॥  
समुद्योग राधवस्य सोतायाः श्यो बलः सह । श्वटुर्मागो विधानव्यः समः कर्कशजिनः ॥५५॥  
निम्ना भूमिः समा काया उवा भूमिः समानवि च । छिद्यता पावता वृथा मार्गस्था दुःखदायकाः ॥५६॥  
राप्यः कृपास्तडागाश्च मोधनाया सहस्रशः । नवीनाश्चापि कृतव्याः सतोया निर्जले बने ॥५७॥  
सेनानिवेशस्थानानि याजनादे मविस्तरे । कल्पनं पानि पुमाभिः पूतिनान्यमवारिभिः ॥५८॥  
सुख्यो गम्य विधानव्याः पाकगाला माभलयः । वर्मगृहाणि कायाणि तूर्णश्चापि महस्रशः ॥५९॥  
आरक्तसुपर्णगच्छादितानि चित्रितानि हि । नानागृहाणि कायणि पूतिनान्यमवारिभिः ॥६०॥  
पुष्पाणां वाटिकाः कायाः शनभोऽप्य महस्रशः । मार्गं मार्गं कौतुकार्यं भिर्गो वित्राण्यनेकशः ॥६१॥  
हरस्कथगताश्चित्रवाटिकाश्च महस्रशः । पुष्पाणां वाटिकाश्चारुसूपात्रनिर्दिताः सुभाः ॥६२॥  
मार्गं मार्गं गाधकानां स्थलान्यपि महस्रशः । समानिशमस्थानेषु हस्त्यश्तरथवाजिनानाम् ॥६३॥  
सहस्रशो विधातव्याः शालाः पर्णान्मुषादिभि । मुगधचर्दनमार्गाः सेधनीयाः समंततः ॥६४॥  
नेमिरेखाजपि मा मार्गं विचित्रमर्नगृहाः । पुष्पगच्छादनीयास्ते हृदाः सन्तु समततः ॥६५॥  
मृगभिरनिचित्रैश्च हस्त्युष्टरथवाजिनः । वखालङ्कारवण्टाभिः सेधनीयाः सहस्रशः ॥६६॥  
शकटेषु तथोष्ट्रेषु चरणेषु गच्छादेषु । शनव्यः परिक्षा वाणाः शकयः कार्मुकान्यपि ॥६७॥  
स्थापर्नायानि शनशो विधानव्या ध्वजा अपि । चतु रपि विधानव्या भवजा रामरथेषु हि ॥६८॥  
हनुमरक्यविदागण्टजैश्च वाणाकिताः शूबाः । चतु रपि रधनीयाः पताकाः स्पन्दनेषु हि ॥६९॥  
हरितश्चेतपातन लक्षणाः परमनीमनाः । गजपृष्ठं राधवार्थं हरिद्वर्गाङ्कितान्नम् ॥७०॥

निर्मलमे निदुष दती, भंगर दान जल दानवान भिक्षा तना अगान्य नाना कर्मोंमें कुशल, रस्ती बटने-  
बल और कुशल चलावना । भाग्य प्रति । भूतों में नाम दुलाकर बस्त्र आदिसे नत्कार करके प्रसन्न किया  
और आद-पू-क उतार मही- ॥ ५० ॥ बल राम ग ॥ ॥ ॥ एक गाय मोर्धनवाके लिए जानेवाले  
हैं । सो तुम लोग उनके सम्पूर्ण सम्पत्ति बँकड़ पकड़ कर लाफ-मुहरा कर दो । ५५ ॥ रास्तेको जँची-  
नीची जमीन बराबर कर दो । मोर्धन दान दाय पकड़ कर वृक्षोंको काट डालो ॥ ५६ ॥ रास्तेकी बावड़ी,  
होते तथा तावादीको नफा कर दो और निर्जन वन में सेकड़ा तावा वृक्ष आदि खारो ॥ ५७ ॥  
बाधेआधे होजानेवा रैनाक जित भिक्षा दनाकर अन्न जलस सम्पूर्ण कर दो ॥ ५८ ॥ सुन्दर दवा  
तही काके भोजन लभ और गृह नयाद करे । जगह जगह बस तथा घासके मन्तार लगा दो ॥ ५९ ॥  
पके हुए लाल खण्डास दाय हुए विच विचित्र वगैरे प्रचुर मन्त्र अन्न मन्त्र मंचित करके रखना दो  
॥ ६० ॥ मन्त्रम दान स्थान पर सेकड़ा लवा हुआ । लक्ष्य में दान दान के लिए दीवारोंपर रंग बिजो  
विच लोच दो तथा भक्तविरादके लिए बच शायम पुष्पवाटिकाएँ लगा दो । ६१ ॥ नर पृतलियाँ  
कंधेपर रख हुए कूर्चम मन्त्र अथवा जमानद । हो कूर्चम मन्त्र लो मन्त्रक स्थान स्थानपर  
सेकड़ा हुजारी वाटिकाएँ लवार कर दो । ६२ ॥ पथपथपर गायवाको गायनगलाये रख दो ।  
सेनाके हर एक सन्निवगस्थानमें दान तथा घासमें पूर्ण अन्नक अन्नगलाये और हस्तिगलाये तैयार  
कर रखो, बन्दन तथा गुल्म आदिक रगदित जल हर राहोंमें छिड़कवा दो तथा भिक्षा-  
विपिन पारीवाले स्वयंके लम्ब बनाकर जगह जगह गाड़ दो और उनपर विविध रंगका पुष्पमाकई  
दाग दो । उनके चारों ओर चानार लगा दो ॥ ६३-६५ ॥ लमाम हाथी धोरे, कँट तथा रथोंको बस  
बलकारसे अलङ्कृत करके तथा घण्टे आदि बाधकर सुनजित कर दो ॥ ६६ ॥ बैलगादियोंमें कँटोपर और रथ  
आदिपर धनुष-बाण, सुदूर, शक्तिधरे, तीप अथवा बम्बूके रख दो । ६७ ॥ रास्तेके चोतका और घरवाले  
आदिपर खजारे गाड़ तथा बाध दो । रामजीके चारों ओर भी खजारे बाध दो ॥ ६८ ॥ उन चारों  
स्थानोंपर हनुमान, कोविदार, गहर और बाणक बिह्वावाली रताकारे होनी चाहिये ॥ ६९ ॥ व ध्वजाएँ हरे,

रुक्मसाणिकयश्चितं सितच्छत्रोपशोभितम्, स्थापनीय महादिव्य मुक्ताहारविराजितम् । ७१॥  
 सीतार्थं करिणीपृष्ठे नीलवर्णं महासनम् । रुक्मनिद्रुमवदूर्यग्नमुक्ताविराजितम् । ७२॥  
 मुक्ताफलहेमसंतनुगुणैराच्छादितं वस्त्रम् । सिद्धं कार्यं महादिव्यं स्वर्णकुम्भविराजितम् । ७३॥  
 पुष्पमालास्तोत्राणि वधनीयानि वै पथि । नृत्यंतु वारवेद्याश्च स्तुतिं कुर्वन्तु वन्दनः । ७४॥  
 द्रव्यैर्वस्त्रैरामरणैः पूजाद्रव्यश्च गौरसः । पार्जनानातिर्धैर्यं पूर्णाया शोचमाः । ७५॥  
 अन्यथापि मया नोक्तं पद्यघोम्य हि तत्पथि । सिद्धं कार्यं हि योगेन येन तुष्यति राघवः । ७६॥  
 इति सन्दिश्य मेधावी लक्ष्मणः सह भविभिः । गाय मन्त्र्यादिकं कर्तुं जगाम निजमन्दिरम् । ७७॥  
 सौमित्रेराज्ञया तऽपि तथा चकुर्यधोदिताः । सतुष्टान्ते यथायोग्यं राममन्त्रोपदेतव । ७८॥  
 रामोऽपि सीतया सार्द्धं मन्दिरे रत्ननिर्मिते । मञ्चके पुष्पगव्यायां सांतामालिग्य वै दृढम् । ७९॥  
 रुक्मनेपथ्यमुक्ताभिर्दासीभिश्च मुहुर्मुहुः । श्रीजिनो बालव्यजननिशि मुष्टः सुखं तदा । ८०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाचाकाण्डे दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः सर्गः । ३ ।



### चतुर्थः सर्गः

( रामका सरयूके दो खण्ड करना )

रामदास उवाच

तत्रः प्रातः समुत्थाय ध्रुत्वा वाद्यध्वनिं तथा । गायनं वदिभिर्भातं सांतया महं राघवः । १॥  
 कृत्वा नित्यविधिं सर्वं दत्त्वा दानानि विस्तरात् । ज्योतिर्विद् समाहूय गोपालाभिधमनमम् । २॥  
 नमस्कृत्याञ्च सपुत्रं गणकं गवयोञ्जयीन् । मे गोपाल महाबुद्धे त्वरे वृत्तेऽहं द्विजानमः । ३॥

पीले, खेत और नीले रंगकी सुन्दर बनी हूँ। गगनरुद्र तोक लिंग हाथोंपर हर रंगक मस्तमस्तकी महा-विष्णु लगाकर उसपर मुक्तके हार डाल देने चाहिये और सोना तथा माणिक्यसे रचिन बहुभूषण, दिव्य, गरम सुन्दर तथा खेत छत्र भी लगा देना चाहिए । ७०-७१ । ७२ दुमरा हविगणा पाठपर साक्षात् दिव्य मृगण, विद्रुम (सूते), वैदूर्यमणि, रत्न मोती तथा गजमुक्ता लगा हुआ हूँ। जरीदार एवं बहुभूषण आम् । विष्टाहर तैयार करो और उसके होदेपर बहुतसे छोटे छोटे मृगणक काटन ही जगा दो जिससे कि वह अधिक सुन्दर प्रतीत होन लगे ॥ ७२-७३ । रास्तेमें फूलोंकी मालाएं और तोरण बाँट दो । श्रद्धालु नाचन तथा वदामण स्तुतिपाठ करने लग जायें ॥ ७४ ॥ बहुतसे रथाम चर, अभूषण सुध दहा, पूजाके द्रव्य तथा अच्छे अच्छे वस्त्रन आदि सर लिये जायें ॥ ७५ ॥ जो कुछ दिने र कहा हो, गो भी सब जरूरी सुविधाएँ सुलभ रहना चाहिये । जिन्हें देखकर रामचन्द्रजी प्रसन्न हो जायें ७६ बुद्धिमान् लक्षण रंग आता देकर सायंकालीन मन्त्र्या-वन्दन करनेक लि' मंत्रियोंक साथ मनामवनसे बाहर आकर अपने मङ्गलमें भले सधें ॥ ७७ । लक्ष्मणकी आज्ञाके अनुरार कार्यागर लोगोंन प्रसन्नतासे रामदाके गृहक लिये पश्चायोग्य सब सामान ठीक कर दिया । ७८ । उपर रामचन्द्रजी भी अपने रत्ननिर्मित भवनमें कुलोका अवस्थापर सीताजीको दृढ़ आलिंगन करके राधिकी मुखपूर्वक सोये । सोतेकी जरीदार साड़ियाको पहिन दार्भिय बार बार उनपर बालव्यजन ( पंखा ) डुलाने लगीं ॥ ७९-८० । इति श्रीमदानन्दरामायणे वाचाकाण्डे वाचाटोकायां दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः सर्गः । ३ ॥

रामदास बोले—प्रातः कालके समय वन्दियके गायन और वाजोंके मधुर शब्दको सुनकर सीतामहिन् राम जाने । १ ॥ तब नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उन्होंने अनेक तरहके दान दिये और गोपाल नामके ज्योति-सीको बुलवाकर रामने नमस्कार तथा पूजा करके कहा—है ब्रह्मगानं श्रेष्ठ और महाबुद्धिमान् गोपाल महाराज ।

यात्रार्थं जाह्नवीतीरं गन्तुमिच्छामि शीघ्रतः । अतो बृहतीं दानव्य मय्यभ्युदयाविधिर्य च ॥४॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा गोपालः प्रह गाययम् । पञ्चाङ्गपटु विचार्य नम दृष्ट्वा बलावलम् ॥५॥  
 गम्य शर्जावपवाक्ष मूर्ध्निस्त्वय्य वतने । रवेचामे महाङ्घ्रिपुः पुण्यनक्षत्रमण्डितः ॥६॥  
 तस्य वक्ष्ये फलं गङ्गान् मायधानमना मृण । भृष्यन्तु पुनयः सर्व मृणोतु ते गुरुमहान् ॥७॥  
 न योगयोगं न च लग्नलग्नं न वास्काचद्रवल गुरोश्च ।

योगिन्य गङ्गान् तद्वर काले सर्वानि कार्याणि करानि पुनः ॥८॥

अप्यञ्जाम मुनसत्रं प्रस्थानं कुरु मातया । दत्तो मया बृहतींश्च यात्रार्थं श्रुनायक ॥९॥  
 इति तस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मण गायकोऽब्रवीत् । सर्गमृदगणयकाडलाऽऽनकगोमृतैः ॥१०॥  
 तालघण्टदृढभिर्मध्वभिश्च नवभिर्महान् । सेनायाः सूचनायै हि कर्तव्यः प्रथमो ष्वनिः ॥११॥  
 नर्थेन गमयन्नाद्दुर्लभांश्चपयनदा । नवबाणध्वनिं तेऽपि चक्रमञ्जलसुध्वरम् ॥१२॥  
 ततो गमो द्विजयुक्तो वामपटेन पुगेधसा । धृतेन प्रचुर आह मणेशादीन् प्रहृष्य च ॥१३॥  
 चकार प्रोक्तविधाना रमिष्ट प्राह वै ततः । अग्निहोत्राणि मेऽद्ये त्व स्यापितानि तु पुष्पके ॥१४॥  
 नेतुमर्हमि मे मानुर्वभूभिः पुण्याभिनः । विमानं कर्मण्यवष्टा पुष्पमालागतिशोभिता ॥१५॥  
 मोतांगम्यर्शनां मार्गे मां स्पर्शतु गजैरिध्वम् । ततः पप्रच्छ वैदेही केन यानेन मेधिलि ॥१६॥  
 गमिष्यसि वद त्व मां तदवाज्ञापयाम्यहम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा माता ध्यात्वा क्षण हृदि ॥१७॥  
 मा प्राह भृष्टिना गम्य कर्मण्या गमनं यम । गेचने यदि नै चिते तर्ह्यस्तु श्रुनायक ॥१८॥  
 नलप्या वचनं श्रुत्वा यानमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । सीतार्य दिव्यवस्त्राणि ददा मानुस्तथैव च ॥१९॥

ये आपसे एक प्रश्न पूछता है ॥२॥३॥ आज मे ताध्यायक केसेव लिग संगीजीके तटपर आना चाहता हूँ । अतः त्वं सूत्र विचारकर कोई अच्छा मूर्त बतलाइए ॥४॥ रामचन्द्रजीका प्रश्न सुनकर गोपाल परिश्रितने पञ्चाङ्ग दखे तथा प्रहोकर कलाबलवा विचार करके रामसे कहा— ५ ॥ हे रामचन्द्रलक्ष्मण सपान सुन्दर नवनौकासे राम ! आज प्रथम प्रहरम गणनक्षत्रमे युक्त बहा अच्छा इराव है ॥६॥ उसका फल मे भापसे कहता हूँ । हे गङ्गान् । आप, मत्र भुति लोग तथा आपके गुरु बलिष्ठता भा उमकी ध्यानसे सुने ॥७॥ अच्छे योगसे युक्त न गङ्गापर भा, अच्छे लालमे मेकरन न होनपर भा तारा चन्द्रमा और पुष्पक बलसे धूम्य हानपर भी, शुभ योगिनीके अभावमे भी तथा बलिष्ठकारी राहूके सशिकट धन्यपर भा बवल एक पुष्प नक्षत्रक रहनेमात्रसे ही यात्राके सब इष्ट कार्य सिद्ध होजा है ॥८॥ हे राम इस समय लक्ष्मण आप सीताक साथ प्रस्थान करे । हे तपनायक ! यात्राक लिए मेरे यह अच्छा मूर्त बतलाया है ॥९॥ उनका यह समय सुनकर रामजीने लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण ! मय्य सवाकी सूचना देवक ॥१०॥ भो, यदग, पणव नगाडे कोल सुडहो, प्र मे छेता तथा दु-दुबा मे ना प्रसारक बाज ओरसे बजाय जाय ॥१०॥११॥ 'अहो अच्छा' कहकर रामकी आज्ञाके अनुसार लक्ष्मणने दूतासे आना दो । उन्ह ने मधुर रीतिसे नवीं बाजे बजवाये ॥१२॥ रामक बाई रामन पक्ष्मण तथा अपने पुनोहित बलिष्ठकी साथ कर गणपतिपूजन किया और भीसे परिश्रित आहू करके बलिष्ठतामे कहा कि मेरा बहाक लाइस न्यापित का है अग्निशोकी, माताआकी तथा बहूति पुत्रबलिष्ठकी निमानपर चढ़ाकर भा चल । राम लक्ष्मण अलिख्य सुशोभित तथा मोतासे बलिष्ठने गङ्गापर सवार हपकी मार्गमे निक । शत्रु गणन सानत पूजा—हे मेधिलि । तूम किस स्वारीपर बजना रे जो पवनन्द हो, उस सवाक लिए न आज्ञा द है । रामजीके इस वाक्यको सुनकर सीताजीने हान लक्ष्मण विचार किया ॥१३-१७॥ फिर प्रहस होकर रामसे कहा—हे तपनायक ! यदि आप कहें तो मैं अच्छा हृद्यनापर चलमेकी है । १८ सीताजी इस हृद्यकी आज्ञाकर रामजीने लक्ष्मणकी सीताके साथ रीतिसे ज्वार बजवानेकी आज्ञा दी । तथान् गङ्गा सीताकी तथा अपनी माताआकी पहिजनके लिए

तथा दत्त्वा वंधुपन्नादेत्या च पि नरोः त्रिसह । ततो दत्त्वा वसिष्ठं च विप्रान्दत्त्वा ततः परम् ॥२०॥  
 दत्त्वा चत्वारि वंधुभ्यः स्वयं नम्राह सप्ततः । तत्पुत्रा शम्बाप्यनेकानि स्वयित्वा विदेहजाम् ॥२१॥  
 नत्वा मानुंरूपां प मरिचिभिः फलेष्वर्चिताम् । आरुह्य विधिकं रामः सभां प्रति समापयौ ॥२२॥  
 ततः सिंहासने तिष्ठन्वा लक्ष्मण पाह गच्छः । द्वितीयं मन्त्रनायं द्विजप्राशस्त्यतिः पुनः ॥२३॥  
 आज्ञापनायः स मित्रं तन्नुत्तमा गद्यधरितम् । आज्ञा प्रमत्तं निन्त्स्व्या गताः पदुष्वभिमुखमाम् ॥२४॥  
 कर्तुं दत्तान्तेऽपि बहुधा न मेघपथा गतः । ततः प्राठं स्पृष्टुः पुनः सावित्रिमादगन् ॥२५॥  
 सुमन्त्रः स्थाप्यतां पुर्यां लक्ष्मणाय ममाक्षया । मन्त्रनाये न भगता पश्चादागतुं श्रुदा ॥२६॥  
 मन्त्रपृष्ठे स्वं समागच्छ ततः संतापतुच्छतु । तस्यापृष्ठे च न्याप्यन्तं सुमित्रा मानुगच्छतु ॥२७॥  
 मन्त्रपृष्ठे पादवी रम्या दर्शिता ममाक्षय मा । अनुगच्छतु तन्त्रदे अतर्कान्यनुगच्छतु ॥२८॥  
 शत्रुघ्नस्य प्रिया भार्या विमानः पुर्यां यतः । मानु विस्ताः समयां तुष्यत्यः कर्तुं कं मुदा ॥२९॥  
 संताप्याः कर्णिणां च स्वार्थयित्वा मरिचिभ्यः । आरुह्य स्वया शत्रु ततोऽहं गजमाधये ॥३०॥  
 तथेति रामवचनान्ध्या ताः कर्णिणः पु मः । प्रमोहाय वा श्रमं समायच्छन्त्यगन्विनः ॥३१॥  
 सप्तमगतं लक्ष्मणं त दृष्ट्वा रामो पटामताः । सुमन्त्राय ददौ वस्त्रं तदर्धानां पुर्यं न्यधान् ॥३२॥  
 ततो मूर्तगमये धृत्वा लक्ष्मणमन्त्रकम् । सिंहासनास्मृत्प्राये महानागान्तिकं ययौ ॥३३॥  
 गजं प्रदर्शय कृत्वा मोषानेन स गवयः । गजदन्ताद्वेनास्त्रोहं नागं सुसु शनैः ॥३४॥  
 तदा दृष्ट्वा निधोपाम् नयवायस्यगन् ययान् । वादयामासुर्गोमोगान् गजदन्ताः सहस्रशः ॥३५॥  
 कभृयुञ्जच्छब्दश्च नमृनुर्वर्धयोपिनः । वादयति स्म वाणानि गजवाजिरथापि ॥३६॥  
 जयशब्दान् वेदपोषान् द्विजाश्च कर्महास्वनेः । केऽपि पिच्छोद्भूय चित्रं गजदण्डविगानितम् ॥३७॥

दिव्य वस्त्र दिये ॥२९॥ अतः भाज्याका, उनका श्रियको और गुरुपन्नाकी मन्दर वस्त्र दिये । उनके बाद गुरु-  
 रगिपुत्री, अथवा वादणकी तथा अतः चतुर्जाकी नये कण्डे देकर स्वयं रामने भी नूतन वस्त्र पहना । अनेक  
 प्रकारके शस्त्र भी बांध लिये और सीनाको बाँधवा करनक लिये देहा ॥ २० ॥ २१ ॥ तदनन्तर रामजी गुरु  
 नया मानुआकी समस्त २४०० तला मन्त्रियको साथ ७ पालकीपर सवार होकर सभाभवन ( कचहठी )  
 गये ॥ २२ ॥ वही सिंहासनपर आरुह्य होकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि दूमरा दूधना देनेके लिए पुन भी  
 शकारके राजे वज्रानवा आता दे दो । लक्ष्मणने 'जो आज्ञा वस्त्र दूताको उत्तम रीतिसे बाजे बजवानेकी  
 आज्ञा की । आदेश पाते ही तब दूतोंने मेघद्वाराके समान वाज्याका निनाद किया । इसके उपरान्त रामने  
 पकः लक्ष्मणसे कहा—॥२३-२५॥ हे भाई ! मेरी आज्ञाके अनुसार तब वही नगरकी रक्षा करनेके लिए  
 सुभवका छोड दो । आदेश भन्त और उनके पाछे शत्रुग्न चले तथा मेरे पीछे सुम चलो । तुम्हारे पीछे तोला  
 और सानाक पाठ तुम्हारा भी उमित्रा २० ॥ २६ ॥ २७ ॥ उनके पीछे भरतया प्राणप्रिया सुन्दरी मांढवी  
 और मारकाक पाछे शत्रुघ्नक प्रिया भार्या धृतिवीरि वन् ॥ २८ ॥ नगरकी श्रियाके साथ मातां विमान-  
 पर सवार होकर आनन्दसे समागच्छ देनेकी हुई आय २९ । तूम जाकर सीता आदि सब दियोकी हवि-  
 नियोपर चढा आओ । तबक बाद मैं गजवर सवार होऊँगा ॥ ३० ॥ तो सुनकर लक्ष्मण गुरन्त चले दिये और तब  
 सबकी हविनिधोपर सब र करारकर वा धृ ही रामके पास लोट आये ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणके मा जानेपर यस्तिमाव  
 रामने नन्वा समन्त्रकी विह्वस्वरूप वस्त्र दिय तथा आकाके लिये नगर जीप दिया ॥ ३२ ॥ उसके बाद शुभ  
 मुहूर्तमें लक्ष्मणके मन्दर हाथकी पकडकर र म सिंहासनम उठ और उत्तम हाथीक पास गये ॥ ३३ ॥ हाथीकी  
 प्रदक्षिणा करनेके राम गजदन्तकी रानी हुई सीटापर पांच रखकर सुसुपूर्वक धारसे उसपर सवार हो गये  
 ॥ ३४ ॥ उस समय हजारों राजसेवक सुन्दर एवं मशहोर शब्द करनेवाले हुन्दुपि आदि नवविध वाद्योंको बजाने  
 लगे ॥ ३५ ॥ वहीपर अनेक प्रकारके शब्द होने लगे, वेदवाणें नाचने लगा और हाथी तथा घोड़ोपर नाना  
 प्रकारके वाजे बजये जाने लगे ॥ ३६ ॥ विप्रलोक उल्लेख से जयजयकार और वेदध्वनि करने लगे । एक

चापरं वीजयामास विजयः पार्श्वमस्थितः । अन्यस्तु बालम्वजनं वीजयामास पृष्ठतः ॥ ३८ ॥  
 कलत्रैः श्वत्साहमर्ककाहारैस्तु शोभितम् । रत्नदण्डं सुविस्मृणं शयमन्यो दधत् तत् ॥ ३९ ॥  
 तापुष्टं गजमारुह्य लक्ष्मणः शीघ्रमापयी । सीतायास्ताः समाजग्मुः सान्निभिराजपुत्रैः ॥ ४० ॥  
 परस्यत्यः कीतुकान्मेव जलरर्घः समंततः । पुष्पकं चापि गगनमार्गेष्वत्र शूनैः शूनैः ॥ ४१ ॥  
 जगाम संस्थितास्तत्र पुनार्यो रघूत्तमम् । पश्यन्गोऽथ कीतुकानि रत्नैः पुष्पकदिग्भिः ॥ ४२ ॥  
 ततस्ते तुरगारूढा गजारूढा रथे स्थिताः । नेपिरेस्त्रोपमाः सर्वे स्थिताग्ने रावणार्थयोः ॥ ४३ ॥  
 चक्रुः प्रणामान् भ्रूंगमं सस्थिता हारश्चक्रुः । रामोऽपि कञ्जदस्ताभ्यां प्रणामानम्यनदयन् ॥ ४४ ॥  
 एव मञ्जुदि राजेन्द्रे रावणन्द्रे शूनैः पथि । गजोपरि सर्वाणाम्हे नटा गगने प्रचकिरे ॥ ४५ ॥  
 परं पश्यन् स रामोऽपि पुष्पागमदिकीतुकम् । इहान् चित्राणि वेष्ट्यानां नृन्यानि विविधानि च ॥ ४६ ॥  
 सुस्वरागव्यं वाद्यानि शृण्वन् मार्गे शूनैः शूनैः । वेष्टितमसुराङ्गिण्या सेनया च समंततः ॥ ४७ ॥  
 प्राप सेनानिशामाव कल्पितां श्रवमुत्तमाम् । अपोष्णामिदं तां दृष्ट्वाऽवतरद्वायवो गजान् ॥ ४८ ॥  
 अश्विनं च प्रणामांश्च पुनर्भारकृणान् ब्रुहुः । लक्ष्मणस्य करं धृत्वा स्वकरेण रमापतिः ॥ ४९ ॥  
 कस्यमेहं संप्रविश्य कस्यो विद्वामने पुनः । सीतायास्ताः स्त्रियः सर्वा विविधुर्वस्त्राणि च ॥ ५० ॥  
 ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । साकाशाः क्रोशमात्रेऽथ शतान् पृथक् पृथक् ॥ ५१ ॥  
 पार्श्वेऽस्यां दिशि स्थ मे रचनात्स्थापयस्व भोः । योजनोपरि सार्धमत्र त्वर्हादितु समततः ॥ ५२ ॥  
 नियोजयस्व शतशो बाजिवाहान् ममाश्रया । तयैरपूरय्य लक्ष्मणोऽपि तथा सर्वं चकार तः ॥ ५३ ॥  
 सरो रिपैः सुहृद्भिश्च विविधान्निर्मनोरथैः । धृतेन श्राद्धश्रेण भोजनं गणयो व्यधान् ॥ ५४ ॥

और कहा होकर विजय रत्नजड़ित इन्द्रबाल्य तथा मयूरपंखसे निर्मित चपर लेकर रामके ऊपर स्थान  
 लगा पीछेकी ओर दूसरा जयनामक सेवक एका क्षणने लगा ॥ ३८ ॥ सीससे सेवक मयूरपंखकास  
 मुणोपित, हुकारों मुन्नाममामोदे बणिज्य तथा रत्नजड़ित रथदेवाला मुनिगाम मन्त्र तान्कर कहा हो  
 गया ॥ ३९ ॥ उनके पीछे हाथीवर सवार होकर लक्ष्मण भीमतासे चल दिये । लक्ष्मणके हाथोंके पीछे  
 सीता आदि स्त्रियों जालियेमेसे चारी औरके दृष्टोंको देखती हुई चली । पुष्पकविमान भी पीछेपीछे  
 आकाशमार्गसे उड़ता हुआ गया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तत्पर बैठी नगरनिवासिनो स्त्रियें कोनक देगता हुई  
 रामचन्द्रजीके ऊपर ज्ञानन्दने पुष्पवृत्ति करने लगी ॥ ४२ ॥ तदनन्तर बृहस्पतिवार, गजसवार और रथसवार  
 सैनिक रामके दोनो ओर पलिवट्ट होकर चले हो गये ॥ ४३ ॥ हाथकी तरह बलावट्ट सरे उन संनिधौने  
 रामको प्रणाम किया । रामने भी अपने करकमलोंसे उनके प्रणामोको स्वीकार किया । ४४ ॥ जब इस प्रकार  
 श्रीराम इजेन्द्रपर सवार होकर पीर घं रे बने, तब दूसरे गजोंपर बैठे हुए गायकगण अपनी-अपनी बीणा  
 लेकर मधुर गान करने लगे ॥ ४५ ॥ रामचन्द्रजी राक्षस पुष्पक महाबल बागीकर इन्द्र, अनेक तापुहके  
 आचार्योंका अवलोकन करने, देवताओंके विविध नृत्योंके देखने, मनको हर्षण करनेवाले जाशायो सुनते,  
 आशान्व कीतुकोनो निहारत तथा चारों ओर कतुर्गमणी सेनाके घिरे हुए घोरघोरे सेनानिशामके निर  
 कल्पित उत्सव द्विबिरमें आ पहुँच । उस स्थानको दूसरी प्रयत्नके समान सुरक्षित देखकर रावण हाथोंसे  
 उतर पडे । ४६-४८ ॥ उस समय रथो संनिकाके द्वारा बारम्बार किये हुए प्रणामोको स्वीकार करके अपने  
 हाथसे लक्ष्मणका हाथ पकडकर रमापति राम तापुने गये और वहाँ सिंहासनपर विराजमान हो बये ।  
 सीता आदि स्त्रियें भी अपनी-अपनी गवार्थोसे उतरकर सम्बुजोंमें आ विराजि ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पश्चात्  
 श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा कि तुम मेरे आज्ञानुसार सीमाकी सब निशाओंमें एक-एक क्रोशकी दूरीपर मैकट्टे  
 कियाही बछर आलग सड़े कर दो और बाटो दिशाओंमें एक-एक यजनकी दूरीपर तंकड़ों पुष्पा  
 नियुक्त कर दो । "ओ बाजी" कहकर लक्ष्मणने सब ऐसा ही प्रबंध कर दिया ॥ ५१-५३ ॥ पश्चात् बाह्यणों

तापुर्लक्ष्मिणां दत्त्वा नानाविधं च आदरात् । मुखशुद्धिं स्वयं कृत्वा तस्यां मिहामने पुनः ॥२२॥  
 श्रुत्वा शास्त्रपुराणानि वेदान्तांश्चारि मादरम् । सार्यमध्यादिकं कृत्वा हृत्वा होमं यथाविधि ॥२३॥  
 मिहामने समासीनो वेश्यानां नृत्यगुत्तमम् । पश्यन् शृण्वन् गायन् च नीत्वा यामद्वयां निशाम् ॥२४॥  
 ततः सुप्वाप पर्यङ्गे सीतया सह राघवः । द्वितीयं दिवसे तत्र स्थित्वा रामस्तु कौतुकैः ॥२५॥  
 नीत्वा समग्रं सुदिनं तृतीये दिवसे पुनः । पूर्ववद्वाद्यघोषाद्यैः शनैः स्थानांतरं ययौ ॥२६॥  
 कचिदिनमतिक्रम्य कचिद्द्वे त्रीणि राघवः । स्थित्वा पश्यन्कौतुकानि शृण्वन् जनकात्मजाम् ॥२७॥  
 शनैः शनैर्ययौ मार्गं मासेनैकेन राघवः । प्राप जाणं मुद्रयेन त्यक्तमाश्रममुत्तमम् ॥२८॥  
 राममागतमाश्रय मुद्रलो नूतनाश्रमात् । भार्गीण्या दक्षिणतः प्राप रामान्तिकं तदा ॥२९॥  
 तं दृष्ट्वा राघवश्चापि नत्वा सम्पूज्य सादरम् । रामो मे हे समार्मान पप्रच्छ चित्तयान्मुनिम् ॥३०॥  
 त्वयाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं मुनिमत्तम । तत्त्वं वद महाभाग यथावच्च मयिस्तरम् ॥३१॥  
 तद्गमयचनं श्रुत्वा मुद्रलो वाक्यमब्रवीत् । अथ धन्योऽस्म्यहं राम निवृण्वन् वनवासिनः ॥३२॥  
 यस्यां पश्यामि नैवार्म्यां चिरकालेन रागव । भग्नप्राणरक्षार्थं यदा नीता ममाश्रमात् ॥३३॥  
 दिव्यौषध्यस्तदा जातं पूर्वं ते दृष्ट्वेन मम । मयाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं तद्वर्षाणि ते ॥३४॥  
 मन्निच्य मात्र गङ्गायाः परम्वा जपे नात्र वै । इति मत्वा मया त्यक्तमाश्रमोऽय महत्तमः ॥३५॥  
 अत्र सिद्धिं गताः पूर्वं शतशोऽथ सहस्रशः । मुनीश्वरा मयाप्यथ तपस्तपः कियद्दिनम् ॥३६॥  
 इति राम समाख्यातमाश्रमस्य च मोचने । कारणं च त्वया पृष्टं किमग्रं श्रोतुमिच्छामि ॥३७॥

तथा शिवके साथ बैठकर रामने चतुर्विध साधना प्रकारक आदेश पकवानोका भोजन किया । २४ ॥  
 आदरस साहसको तान्त्रिक तथा अनेक प्रकारकी शिक्षण देकर रामने मुखशुद्धि लिए ताबूल साथ  
 और पुन मिहामनपर आ विराज । २५ ॥ तदनन्तर वेदान्त आदि सत् शास्त्रों तथा पुराणोंको कथाको  
 प्रेम और श्रद्धासे शान्तिपूर्वक सुना । सार्यकाक होमेपर पुन यथाविधि संध्यावदन तथा हवन  
 आदिस निवृत्त होकर मिहामनपर आ सुभाषित हुए । वहाँ रात्रिके दो पहर तक वेश्याओंका नृत्यगान  
 देखन सुनन रहे ॥ २६ ॥ २७ ॥ तदनन्तर राम सीताके साथ चलमगर शान्त करनेको चले पड़ दूसरा  
 भी सारा दिन रामने आनन्दसे वही शहर विराणा तीसरा दिन आनन्द कावनाजेक साथ धीरे धीरे  
 दूसरे पड़ावकी ओर बढ़े ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसी प्रकार कहीं एक दिन, कहीं दो और कहीं तीन दिन तक निवास  
 करने हुए राम जानकोंको प्रसन्न करने तथा विविध कौतुकोंको देखते रहे ॥ ३० ॥ इस प्रकार एक मास  
 यात जानपर वे मुद्रल आपिके छोड़ हुए एक पुराने तथा पवित्र आश्रममें आ पहुँच ॥ ३१ ॥ रामको अपने  
 पुरान आश्रमपर आये सुनकर मुद्रलकाय भार्गीणोंके दर्शन तदपर स्थित अपने नवगत आश्रमसे दर्शन  
 करनेके लिए उनके पास आये ॥ ३२ ॥ राघवने उन्हें दम्बर नमस्कार किया और उनकी विधिवत् पूजा की ।  
 पञ्चान तान्त्रिक देकर आदरपूर्वक आसनपर बैठाया और उनसे सप्रस्तापूर्वक कहा— ॥ ३३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !  
 आपने इस आश्रमको क्यों छोड़ दिया / हे महाभाग इसका कारण विस्तारसे आप हमें कह सुन दिये  
 ॥ ३४ ॥ यह सुनकर मुद्रलमुनि कहने लगे—हे राम ! मेरा घन्य धाम्य है कि जो मैं आज बहुत दिना बाद  
 वनवाससे लौट हुए आपको अपनी आँखों देख रहा हूँ । पूर्वकालमें मरतेके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिए जब  
 आप मेरे आश्रममें दिव्य औषधि ले गये थे, तब मुझे आपका दर्शन मिला था । अब मैंने इस आश्रमको  
 क्यों छोड़ दिया, इसका कारण आपसे कहता हूँ । ३५-३७ ॥ हे प्रभो ! मैंने इस विशाल आश्रमका केवल  
 इतिहास छोड़ दिया है कि यहाँपर रंगा भग्ना सरपु इन दोनों पवित्र नदियोंमें कोई भी नदी नहीं  
 है ॥ ३८ ॥ इस आश्रममें निवास करके हजारों मुनीश्वरोंने सिद्धि प्राप्त की है और मैंने भी कुछ दिनों  
 तक यहाँ रहकर तपस्या की है । परन्तु क्या करें, किसी तीर्थके न होनेसे इस स्थानपर बड़ा  
 कष्ट है ॥ ३९ ॥ हे राम ! यह तो मैंने आपके पूछनेके अनुसार इस आश्रमको छोड़नेका कारण कह

तन्मुनेर्बचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः । किं कृत्वा तेऽत्र वसतिर्भविष्यति मुने वद ॥७१॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवं प्राह मुद्रलः यद्यत्र ममग्रनद्याः संगमो हि भविष्यति ॥७२॥  
 जाह्नव्या मय्येह सार्धं बन्धुं राम यथाशुभम् नक्तस्य वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तं पुनः ॥७३॥  
 किमर्थं ममग्रः श्रेष्ठा कुनः प्राप्ता भगवन्तम् तत्रं वद महाभाग भविस्तारं मयाग्रतः ॥७४॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मुद्रलो वाक्यमब्रवीत् । तत्रं व शक्तिं राम मन्मुखान्छोतुमिच्छामि ॥७५॥  
 तर्हि ते सप्रवक्ष्यामि नृच्छृणुष्व रघूनमः । शंखासुरो बहान्दन्वो वेदान् पूर्वं जहार हि ॥७६॥  
 क्षिप्त्वा तंश्च समुद्रे हि स्वयमार्मान्महोदधौ । तदर्थं च त्वया मानस्यं वधुर्नृन्वा महत्तमम् ॥७७॥  
 इतः शंखासुरो वेदास्त्वया दत्तास्तु वेधसे । ततो हर्षेण महता पूर्वरूपं त्वया धृतम् ॥७८॥  
 तदा हर्षेण नेत्राचं पतिताश्चाश्रुमिदवः । हिमालये ततो जाता नदी पुण्या मुहोदका ॥७९॥  
 साक्षान्नारायणस्यैव आनन्दाश्रममुद्भवा । धर्मेर्बिन्दुमरः प्राप तस्मान्च मानसं ययौ ॥८०॥  
 एतस्मिन्नन्तरे राम पूर्वजन्मे महत्तमः । वैवस्वतो मनुर्धृष्टमुक्तो गुरुमब्रवीत् ॥८१॥  
 अनादिमिदाऽप्योध्येय विशेषेणापि वै मया रचिता निजदासाधमत्र यज्ञं करोम्यहम् ॥८२॥  
 यदि ते रोचते चित्ते तच्छ्रुत्वा गुरुर्ब्रवीत् । अत्र तीर्थं वरं नास्ति नास्ति श्रेष्ठं महानदी ॥८३॥  
 यद्यत्रवाप्सि ते चित्तं यष्टुं नृपतिमत्तम । आनयस्व नदीं रम्यां मानसान्पातकाह्वयम् ॥८४॥  
 तद्गुरोर्वचनद्विजा मनुर्वैवस्वतो महान् । टण्डकस्य महश्चापं सन्दधे शरमुत्तमम् ॥८५॥  
 स शरो मानसं क्षिप्त्वा तस्माद्विष्कास्य तां नदीम् । अयोध्यामानयामाव वधानं दर्शयन्निव ॥८६॥  
 शम्भानानुसारेणायोध्यायां प्राप वै नदी मुहोदधीं पूर्वदशं मिलिता रघुनन्दन ॥८७॥

मुनाया । आगे क्या पलना है, मा कहिये ॥ ७० ॥ मुनिज इस बातपर स्तब्ध रह गये—हे मुने आप यह बताइये कि क्या करनेसे आप फिर इस आश्रममें निवास कर सकत हैं ? ॥ ७१ ॥ रामके प्रेमपूर्ण वचनको सुनकर मुद्रल क्रोधित कहा—यदि वहाँपर सरयू और गंगाका संगम हो जाय तो मैं बड़े मुश्किल से रह सकता हूँ । इस बातको सुनकर रामने पुनः उनसे पल्ल किया— ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ हे महाभाग ! सरयू नदीका इनका भोग माह्वाम्य क्यों है और यह कहाँसे भगवन्तर आयी है ? इन बातोंका निस्तारसे वर्णन करिए ॥ ७४ ॥ मुद्रलन कहा है प्रभी ! अब अपना ही चरित्र यदि मेरे मुखसे सुनना चाहते हैं ॥ ७५ ॥ तो हे रघूनम ! मैं आपकी स्तुता हूँ, मुनिग पतिव्रत कथा शंखासुर नामका एक बड़ा धारो राक्षस हुआ था । वह सब वेदोंको हर ले गया ॥ ७६ ॥ उसने उर में जाकर समुद्रमें उड़ो दिया तथा स्वयं भी उसी महासागरमें छिप गया उसको मारनेके लिए आपन बड़े भारी मन्त्रक रूप धारण किया ॥ ७७ ॥ और उसको मारकर वेदोंकी रक्षा की । वेदोंको लेकर आपन सदाका दिया और प्रमत्ततापूर्वक पुनः अपना पूर्वरूप धारण कर लिया ॥ ७८ ॥ उस समय आपके भेषोक्त मानसाश्रुकी बंद टपन पड़ी । हिमालयपर गिरी हुई आप नारायणके उग हर्षाश्रुको बूँदोंने एक पवित्र तथा निर्मल जलखला नदीका रूप धारण कर लिया । आगे चलकर वे कासार और कामारसे मानसरोवरके रूपमें परिणत हो गयी ॥ ७९ ॥ ८० ॥ हे राम ! उसी समय आपके पूर्वज महात्मा वैवस्वत मनुने व्रत करनेकी इच्छा करके अपने गुप्तसे कहा— ॥ ८१ ॥ इस अयोध्यापुराके अनादिकालमें स्थित रहनेपर भी मैंने अपने निवासके लिए इसकी कुछ विधेयतापूर्वक रचना करवायी है । इस कारण यदि आप कहें तो मैं इस नगरीमें यज्ञ करूँ । तब गुप्तने कहा कि इसलिए, मैं तो यहाँ कोई पवित्र तीर्थ है और मैं कोई बड़ी नदी ही हूँ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इसलिये यदि आपकी यही व्रत करनेकी इच्छा हो तो हे नृपतियोमें श्रेष्ठ नृप ! मानसरोवरसे सुन्दर तथा पार्यकी नष्ट करनेवाली एक नदीको यहाँ ले जाइए ॥ ८४ ॥ गुप्तके इस वचनको सुनकर महान् राजा वैवस्वत मनुन अपने विशाल धनुषका चढ़ा तथा टंकोर करके बाण चलाया ॥ ८५ ॥ वह बाण मानसरोवरको घेदकर उसमेंसे निकला नदीके आगेआगे चलकर रास्ता बिलाने हुए अयोध्या ले गया । बाणके मार्गका अनुसरण करती हुई वह नदी अयोध्या आयी तथा बहसि आगे जाकर पूर्वी महा-

आनीता सा शरैर्भव शरयुश्चेति कथ्यते । सरावगन्तमुद्गता सरयुश्चेति केचन ॥८८॥  
 नतो मर्गाग्धेदेयं कथितकोषवद्दिना । विनिर्दग्धान् पूर्वज्ञानं वै सागरान् प्रेषितुं दिवम् ॥८९॥  
 भार्याग्धो समानीता स्वल्पाद्राज्यममुद्गता । तपसा सकृदं तोष्य सरयुः मिलिताऽथ सा ॥९०॥  
 वरदानाच्छ्रुत्वा जभोगेष्वा स्थापितं त्रिविधम् । अग्रे सागरपर्यगमेनां गङ्गां वदति हि ॥९१॥  
 तत्र पारसमुद्गता सा विष पाति जाह्नवी । इयं तु नेत्रमभूता किमद्याग्रे वदाम्यहम् ॥९२॥  
 काटिर्वर्षमहस्रम् कोटिर्वर्षश्चैतर्गाय । महिमा सरयुनद्याः कोऽपि वक्तुं न वै श्रमः ॥९३॥  
 इति राम सवालुपान यथा पृष्टं त्वया मम । मुनेभ्यश्च नं धृत्वा लक्ष्मण ग्राहू राघवः ॥९४॥  
 सरयुमानयस्वात्र शरं मुक्त्वा ममाक्षया । तथेति रामवचनाद्भूत्वा चाप स लक्ष्मणः ॥९५॥  
 शरं मुक्त्वा तटं विष्वा सरयुमानयन्धृणात् । सरयु मा दिधा भूत्वा मुद्गताध्रममाययौ ॥९६॥  
 जाह्नव्या मिलिता सापि तां दृष्ट्वा राघवोऽब्रवीत् । अत्र स्थित्वा लक्ष्मणेन दारितेयं महानदी ॥९७॥  
 अनो दद्रीनि नाम्नाऽत्र त्वगि स्थापितमेष्वनि । दद्रीयं जगतीमप्ये वदर्याध यवाधिका ॥९८॥  
 भविष्यति न संदेह्यन्त रायाद्विभेदः । ननः सीतां समाहूय राघवो वाक्पमब्रवीत् ॥९९॥  
 मुद्गलस्याश्रमेऽत्रैव मा वीता सरयुर्नदी । पश्य मौषिषिणा मुक्त्वा शरं मन्नामचिह्नितम् ॥१००॥  
 नार्गभिर्मातृभिः सीते पुष्पकेणानिभाक्षणा । वृद्धा मा सरयुर्वत्र संगताऽस्ति महानदी ॥१०१॥  
 जाह्नव्या मगधे स्वं हि गच्छस्व गुरुणा द्वित्रैः । पुनरित्वा सविस्मरं यथोक्तं वचनं पुरा ॥१०२॥  
 आगच्छस्व ततः शीघ्रमत्र त्वं मम मन्निधौ । विशेषान्मुद्गलस्यापि मन्निधावष्ट वै पुनः ॥१०३॥  
 नर्गानसरयुनद्या भार्याध्यास्तु मगधे । पूजनं च मया साकं कर्तुमर्हसि मैथिलि ॥१०४॥

सागरस मिल गयी ॥८८॥८९॥ शरके द्वारा अपनी आनम लोग उसको सरयु नदी कहने लगे । जबवा सरोवरसे निकलकर आनेक कारण उसका 'सरयु' नाम पड़ा, कुछ लोगका ऐसा कथन है ॥८८॥ उसके बाद राजा भगवत् पाकिष्ठ मुनिका कोषागिनय जलाये तप जपन पूर्वज सागरगुप्तोका स्वर्ग भेजनेकी इच्छासे आपके चरणारविन्दसे प्रादुर्भूत मासीरयी गंगाको ले आय । बादम शकरजीको तपसे प्रसन्न करके उस नदीको सरयुसे ला मिलवाया ॥८९॥ शकरभगवान्के वरदानसे गंगाको बड़ी भारी प्रसिद्धि हुई तथा समुद्र तक उसको लाय गया कहने लगे ॥९०॥ हे प्रभा ! आपके चरणकमलोंसे निकला हुई गया समस्त विष्वको पवित्र करने लगी । वैसे ही आपके वज्रजलसे उत्पन्न होकर यह सरयु भी लोगोंको पावन करने लगी । हे भगवन् ! अब मैं आगे क्या कहूँ ? ॥९१॥ कराड़ी वर्षोंसे भी इस सरयु नदीकी महिमाका वचन कोई नहीं कर सकता ॥९२॥ हे राम ! आपन आ पूछा था, सीतें कह सुनया । मुनिके इस वाक्यको सुनकर रघुर्जित राघवन्दजीने स्तब्धपणसे कहा— ॥९४॥ सुम बाण छोड़ तथा सरयुके तटका भेदन करके उसे यहाँ ले जाओ । लक्ष्मणने वेंस हो किया और वह सरयु दो भावोंमें विभक्त होकर सागरमें मुद्गलकृष्णिके प्राचीन आश्रममें जा पड़्या ॥९५॥९६॥ उसको अकेली ही नहीं, किन्तु जाह्नवीके सबम सहित आयी हुई देखकर राघवने कहा कि लक्ष्मण दारण (चौर) करके इस नदीको यहाँ ले आये है ॥९७॥ इस लिए इस अगहपर दही नामकी प्रसिद्ध नगरी बसगी । वह दही नगरी पृथ्वीतलमें बदरीनाथ नामके श्री जीधर बड़कर पुनीत होगी ॥९८॥ इसमें संदेह नहीं है । विशेष करके आपके यहाँ निवास करनेसे इसकी और भी अधिक श्राद्ध होगा । पश्यन् रामने सीताको बुलाकर कहा— ॥९९॥ सीत ! देखो, सुमियापुत्र लक्ष्मण लेने नामसे चिह्नित बाण छोड़कर सरयु नदीको यहाँ मुद्गल मुनिके आश्रममें ले आय है ॥१००॥ अब सुम हमारी माताओं, अन्य स्त्रियों, गुरुजनों तथा भ्रातृणोंको साथ स तथा इस पुण्यक विमानपर स्वार होकर जहाँ सरयु तथा गंगाका संगम है, वहाँ जाओ और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार विधिवत् उनकी पूजा कर जाओ ॥१०१॥१०२॥ वहाँसे लौटकर सीत ही मेरे तथा इन मुद्गल मुनिके सम्मुख इस नवीन सरयु तथा मन्वही सागरीरयीके संगमका



तथेति रामवचनमयीकृत्स्न विदेहजा । पूजार्थंभारवादानु रिवेश वसनगृहम् ॥ १०५ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकण्डे सरयूद्रिषाकरणं नाम चतुर्थं सर्गः ॥ ४ ॥

### पञ्चमः सर्गः

( कुम्भोदरोपाख्यान )

श्रीरामदास उवाच

ततो गृह्णन्वा समारात् पूजार्थं जानकीं जवात् । कौसल्यादिश्च भूभिस्तु पुष्पकं चारुगोद सा ॥ १ ॥  
 कणेन हृदा सारपूर्वत्र सा गङ्गाया शुभा । सङ्गवाऽस्ति महाभेष्टः तत्र प्राय विदेहजा ॥ २ ॥  
 पतिं विनाऽग्नित्वा नारी सीमामुल्लङ्घ्य न व्रजेत् । स दोषोऽत्र न विज्ञेयः सीतायात्रा विदामसा ॥ ३ ॥  
 उचीर्ष सा विमानाग्रयान्नमस्कृत्वाऽप्य सङ्गमम् । पुरोभसा चोदिता सा नारिकेल सवायमम् ॥ ४ ॥  
 यणीरिष्यै समर्प्याश्च स्नात्वा चैव यथाविधि । सगमं पूजयामास चोपस्कारैर्यथाविधि ॥ ५ ॥  
 सुगमासोपहारैश्च पक्वान्नेर्बलिमिस्तथा । पट्टकूलादिभिर्वस्त्रैर्बुध्नाहारैः सन्वदनैः ॥ ६ ॥  
 दिव्यैरभरणैर्मित्रैर्वीर्यनादैः सविस्तरम् । ततः सुवासिनीः पूज्य पूजयित्वा त्वरुभतीम् ॥ ७ ॥  
 वसिष्ठं ब्राह्मणांश्चापि भोजयामास विस्तरैः । पट्टकूलादिभिर्वस्त्रैर्दिव्यैरभरणादिभिः ॥ ८ ॥  
 सुवासिनीर्ब्राह्मणांश्च तोषयामास मेधितो । स्वयं कृत्वोपहारं न राघवार्थमुपोषिता ॥ ९ ॥  
 यया यानेन शीघ्रं सा राघवस्थान्तिकं मुदा । ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि सीतया गुरुणा द्विजैः ॥ १० ॥  
 गङ्गायोः सङ्गमे चक्रे पूजनं स यथाविधि । यथा कृतं च विदेहा तस्माच्चापि श्रुताधिकम् ॥ ११ ॥  
 ततः सहस्रशो विप्रान् भोजयामास सादरम् । दत्त्वा दानान्पनेकादि गोदस्तिरयवाजिनाम् ॥ १२ ॥  
 एतो ह्युक्त्वा स्वयं तमः सीतया चन्द्रभिर्जनैः । सिंहासने समासीनो सीमिश्रिमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥

मेर साथ मिलकर पूजन करो ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ तब विदेहराजकी पुत्री सीता "ओ माया" कहकर पूजाकी सामग्रियों केनेको संवत्स गयी ॥ १०५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकण्डे भाषाटीकायां सरयूद्रिषाकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासजीने कहा—आजमें जानकी पूजका सब सामान लेकर कौसल्या आदि वासुकी तथा अन्य बहुतोंके साथ श्रीमतासे पुष्पक विमानपर आ बेंछें ॥ १ ॥ क्षण भरमें विदेहराजकी पुत्री सीता उस पुराने सङ्गमपर जा पहुँचीं, जहाँपर कि सरयू पवित्र गङ्गा नदास मिली हैं ॥ २ ॥ पत्नीको पतिके बिना जागेकी सीमा नहीं लाधनी चाहिये । यह दोष उहाँ सीताको नहीं कम सकता । क्योंकि सीताका गमन आकाशमार्गसे हुआ था । ३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीता विमानसे नीचे उतरती और सङ्गमका नयस्कार किया । पश्चात् पुरोहितके कथनानुसार सीताने वाहन ( ऐपन ) सहित नारियल भागीरथोंको समर्पण करके उसमें बिभित् स्नान किया । फिर सुरा मांस-पकवान आदिका बलिसे दुपट्टा आदि सुन्दर वस्त्रोंसे, दिव्य आभूषणोंसे, मुक्ताके हारसे, चन्दनसे तथा शायन आदिकी पूजाके उपकरणोंसे विधिवत् तथा विस्तारपूर्वक सीताने संगमका पूजन किया । नदप्रभार परितुषमसी लोहागिन सिंघोंको पूजा करके सीताने अकम्बलीका पूजन किया ॥ ४-७ ॥ तब उनकी तथा वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मणोंको भोजन कराके सुवासिनी सिंघोंको दुपट्टे, बोटियों तथा दिव्य आभूषणोंसे सीताने सजुष्ट किया । स्वयं निराहार रहकर सीताने रामके कल्याणार्थ उपवास किया ॥ ८-९ ॥ तदनन्तर विमानपर सवार होकर आनन्दसे सीतापूर्वक रघुनन्दन रामके पास आ गयीं । रामने भी सीताको, गुरु वसिष्ठकी तथा मित्रोंको साथ लेकर सीताजी की हुई पूजासे लोगुने धूम-धाम तथा विधिले गङ्गा-सरयूके सङ्गमको पूरा की ॥ १० ॥ ११ ॥ वहाँ उन्होंने बड़े आचरमसे हजारों मित्रोंको भोजन कराया । अनेक नार्यें, हाथी, घोड़े तथा

ज्ञानव्यो मम कामोऽत्र गर्जनं च गच्छाम । ममाचारान् कुरुष्व न्वं श्यामनं यन्मयोच्यते ॥ १४ ॥  
 प्रसन्नो गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यातः । यः कश्चिद्वा ममायाति यधिकः स ममाज्या ॥ १५ ॥  
 मया मपूजितो नैव मनु देवः समन्ततः । मयाऽदृष्टो गतः कश्चिन्दा वः श्यामनं मम ॥ १६ ॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तथा चक्रे स लक्ष्मणः । च्यवनो मुनिवर्षेभ्यु हान्वा गमं समागतम् ॥ १७ ॥  
 दशनाथे ययौ शीघ्रं गमैर्णार्षि मपूजितः । स्थित्वा मम वस्त्रमेहे राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥  
 गम गर्जानपत्राश्च गङ्गायाः दक्षिणे तटे । आश्रम कीकटे देशे ममास्ति परमः शुभः ॥ १९ ॥  
 कंदमूलफलार्थं हि विघ्नं कुर्वन्ति माताधाः । ममाश्रमे गजदाम्नेभ्यो रक्षा विधीयताम् ॥ २० ॥  
 च्यवनस्य वचः श्रुत्वा टण्डुलस्य महद्भुजः । वारणमुक्त्वाऽऽश्रमं तस्य वग्नितः ५ गिस्लोपमाप् ॥ २१ ॥  
 चकार तैसां वाणेन दूष्टैर्गतं च दक्षमाम् । गमत्राणकृता रेखा यत्र तत्र पुरी शुभा ॥ २२ ॥  
 गमरेन्द्रेति नाम्नाऽऽर्सातया चैव मता नदी । च्यवनश्च गतो हृष्टो राघव वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥  
 निधः स कीकटो देशो वर्तते गघनदज नव वाक्याद्भविष्यन्ति तत्र पुण्यस्थलानि हि ॥ २४ ॥  
 गहि त्वयाऽथ दक्षव्यं वचनं मे मुवाप्पदम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वाक्यं गमममब्रवीत् ॥ २५ ॥  
 कीकटेषु गया पुण्या नदी पुण्या तु पुनपुन । आश्रमस्ते महद्विष्णुः पुण्यं गजवन परम् ॥ २६ ॥  
 नविष्यति न मन्द्रेतो मम वाक्यान्मूर्त्तिम् । च्यवनस्तेन मनुष्टो गम रष्ट्राऽऽश्रमं ययौ ॥ २७ ॥  
 गमस्मिन्नन्तरे तस्य मन्त्रे गमैर्ण निधिते । प्रत्यहं कीटिप्रो विप्रा भुञ्जन्ति यतिभिः सह ॥ २८ ॥  
 कुमोदरो मुनिः प्रागन्तर्माचारानिकं तदा । गङ्गायात्राप्रसंगेन गयी गन्तुं समुद्यतः ॥ २९ ॥  
 ममागतः प्रयागान् च दूतान्तृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः । हे दूता उन्नयं देशं गृह्यं कस्याजया स्थिताः ॥ ३० ॥

यह उद्ग दानम दिये ॥ १३ ॥ उनका भोजन कराने के बाद भाई-बन्धुओं तथा अन्योन्य स्नानके साथ सीता तथा  
 स्वयं रामने भी भोजन किया । तत्पश्चात् सिद्धाश्रमपर चैत्रकर उद्गाने लटमगाते कहा—॥ १४ ॥ हे रघूनाथ ! मे  
 इस जगह तो दिन तक निवास करोगा । इसलिय मेरे कहनेसे तूम सीमापर मह दूताका आज्ञा दी कि कोई  
 भी यात्री, वृद्धाश्रम गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा गन्यासी चित्ता मेरी पूजा गठन किये न जान पाय । यदि कोई  
 मया गया और मुने ज्ञात हुआ तो मे दूतोंको दण्ड दूंगा ॥ १४-१६ ॥ रामने वचन ममकर लक्ष्मणन देसी ही  
 आज्ञा दे दी । उधर च्यवन मुनिने जब गुना कि जहाँ रामचन्द्र आगे हुए हैं तो वे रामके दशनाथ  
 वरी आए । रामने उनकी पूजा की । पश्चात् तत्रमे मुन्दर आमनयर विराजमान होकर मुनिन रामसे  
 कहा—॥ १७ ॥ १८ ॥ हे कर्मवचके ममाय मेचोचने राम ! ममय देजम गङ्गाके दक्षिणी तटपर मेरा एक  
 परम समर्पक आश्रम है । १९ ॥ वरन् मेरे उस आश्रममे ममय दशक दूत फल-मूल आदि लेनमे बड़ा  
 निधन इकट्ठा है । इसलिय आप उन विध्वंसे मेरी रक्षा करें । २० ॥ च्यवनकी बात सुनकर रामने मनुष्यका  
 दर्शन करके एक बाण छेंटा । जिसमे च्यवन आश्रमके चारों ओर गार्हके समान गहरा लफोर खिच गयो,  
 जिसको लघनता उन दूतोंके लिए असंभव हो गया । जहाँ रामके बाणकी रेखा खिची थी, वहाँपर “राम-  
 रेखा” नामकी सुन्दर नगर बसी और गमरेखा नामकी नदी भी प्रवर्तित हो गयी । इसके बाद च्यवनकवि  
 प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीसे बोले—॥ २१-२३ ॥ हे रघुनाथ ! कभी कीकट देश निरा माना जाता है ।  
 आपके कहनेसे वह भी पुण्यस्थान अवश्य बन जायगा । इसलिय आप मुझे रुख देनेवाला कोई वचन आज  
 कह । मुनिक इस वचनकी सुनकर रामजीने महर्ष कह्य—॥ २४ ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वर ! मेरे कहनेसे कीकट  
 देशमे गया, पुनपुनी नदी, आपका आश्रम तथा गजवन ( गजगृह ) पुण्यस्थल होंगे । इसमे आप कुछ भी सदेह  
 न मानें । श्रीभगवान्के इस वचनसे मंगल होकर च्यवनकृपि रामजीने आज्ञा लेकर अपने आश्रमकी चले  
 गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके बाद रामजीके द्वारा स्थापित अग्रक्षेत्रमे प्रतिदिन करोड़ों बाह्यण और धति  
 भोजन करते रहे । २८ ॥ ऐसा होनेपर एक दिन गङ्गायात्राके प्रसङ्गमे कुम्भोदर नामके मुनि प्रयागसे  
 रामजीकी भोजनशालाके लिए नियत की हुई सीमापर आये । वहाँ दूतोंको देखकर वे बोले—हे दूतो !

आकाशचुबिनन्विता इमेऽग्रे कस्य च खडाः । हनुमन्कोविदामडजेप्रकाशोकिताः शुभाः ॥ ३१ ॥  
 संतनीलहरिर्बीतरणाः परमशोभनाः । दृश्यतेऽग्रे पताकाश्च भूयते जयनिःस्वनः ॥ ३२ ॥  
 ततस्तु वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा प्रोचुस्त्वगन्विताः । रामो राज्ञोऽपराधोऽयोध्यायाः पालकः प्रभुः ॥ ३३ ॥  
 सोऽग्रे यात्रार्थमायानो वयं तस्यास्तथा स्थिताः । सप्रसन्नस्य रामेण निर्मितं चात्र रत्नैः ॥ ३४ ॥  
 सुधारस्तु सुखं गच्छतु कृत्वा शीघ्रा मुर्व प्रव्र । तमेवां वचनं श्रुत्वा परिहृत्य मुनिः पुनः ॥ ३५ ॥  
 आगतो येन मार्गेण तेन मार्गस्य मयपौ । गच्छन्तं न मुनिं दृष्ट्वा रामदूताम्बगन्विताः ॥ ३६ ॥  
 स्मृत्वा मार्गे मुनेस्तस्य वचनं प्रोचुगदगन् । क्रियते त्वं परावृ-य मुने गच्छसि च पुनः ॥ ३७ ॥  
 आगतोऽसि पथा येन तेनैव त्वं वदस्व नः । इति तेषां वचनं श्रुत्वा निवन्धान्मुनिरप्ययौ ॥ ३८ ॥  
 तूष्णीं स्थित्वा क्षणं ध्यात्वा निश्चयं कृतवान्मुदि । इदानीं राक्षसोऽश्वोऽप्या यात्रां कृत्वा गमिष्यति ॥ ३९ ॥  
 नानादेशेषु सर्वत्र नृणां तद्दर्शनं कथम् । भविष्यति तदाऽन्यत्र गमतीर्क्षानि भूतले ॥ ४० ॥  
 भविष्यन्ति कथं नृणां महत्पापपराणि च । कथं रामेश्वरा भूम्नां भविष्यन्ति गतिप्रदाः ॥ ४१ ॥  
 अतः किञ्चिन्करोम्येषं येन रामस्तु भूतले । यात्रोद्देशेन सर्वत्र सातया मदं याचयति ॥ ४२ ॥  
 अनेन लोकश्रेष्ठोऽपि मतिष्यति न मशयः । इति निश्चिन्य स मुनिः प्राह दूतान्मयचिद ॥ ४३ ॥  
 दृष्ट्वा मृणूत ये वाक्यं कृतो येन दशाननः । नम्रपुत्रो मन्थुपुत्रं कुत तार्थसेवनम् ॥ ४४ ॥  
 तथा यज्ञः कुतो नैव तस्यान्नं नादमडिनयाम् । दानानां यम मार्गां हि स्वस्तिर्वचनं मम ॥ ४५ ॥  
 कथनीयं गवनाय यात्रायज्ञान् करिष्यति । इति तस्य वचनं श्रुत्वा विमस्याविष्टमानसः ॥ ४६ ॥  
 दत्त्वा मार्गं ज्ञापमान्या दृष्ट्वा रामांतिकं ययुः । रामं जन्तां सुनेस्तस्य कर्णे श्रुत्वा न्यवेदयन् ॥ ४७ ॥  
 राक्षसोऽपि मुनेस्तस्य श्रोत्रार्थमिमांशमुत्तमम् । मर्दं दृष्ट्वा सभामध्ये चकार स्तम्भितः स्फुटम् ॥ ४८ ॥

राम लोग जिसकी आज्ञास यहाँ रहते हैं ? ये मामान गमनस्पर्शों तथा चित्र विचित्र हनुमान्, कोविदार, गहर और बाणम जिह्वित इवेन मीन, हरित एवमं शेन रंगका दशम मन्दर वलाकार जिसको पदरा खी है ? यह प्रसन्नद निसका मुनई दे रहा है ? ॥ ३६-३७ ॥ मुनिक वचन सुनकर दूत वाले — कमलमयन और अयोध्याके राजक धनु रामचन्द्रजी यात्राके लिए यहाँ आय हुए हैं । उनको मत्त से ही हम लोग यहाँ उपरिपन है । उन्हीं रामजीके द्वारा स्थापित अभयधन यहाँ है । यदि आप भूत हैं तो सुखसे वहाँ बसिए और भोजनदिक करके जायें । उनके वचन सुनकर मुनि लोट पड़ और त्रिन मागसे आवे थे, उसी मार्गसे फिर आने लगे । बात हुए सातवीं दण हाथ दूत लोग उनको राह राककर मादर जान — इ मुने । आप जिस मार्गसे आवे थे, उसी मार्गसे फिर लोट क्यों जा रहे हैं ? आप जिस मार्गसे आय हो, उस हम लोगोंको बताएँ । दूतोंके इस आग्रह पर वचनको सुना तो बुधबाय लड़ होकर बायें दर हनुमन्त बोध करके मुनिको विचार किया कि यदि इस समय गणचन्द्रजी यात्रा करके अयोध्या चले जायें ॥ ३३-३९ ॥ तब जयप्राप्त दशोक मन्थुपुत्रोंको उनका दर्शन कैसे मिलेगा और दूसरे स्वामीपर मन्थुपुत्र वरुण वड वामाको लड़ करनेवाला रामतीर्थ कैसे बनेगा ? अनेक मोक्ष-दायक रामेश्वर कैसे स्थापित होंगे ? इस लिए आज मैं कोई ऐसा उपाय करता हूँ कि जिससे रामचन्द्रजी संसारमें सब स्वामीपर यात्राके उद्देश्यसे संप्रदायक साध जायें ॥ ४०-४२ ॥ इस यात्रामे लोगोंको भिक्षा भी मिलगी । इन्त मदह नही है । एका विचार करके कुछ ईमान हुए मुनिन दूतासे कहा — ॥ ४३ ॥ हे दूत । मेरे वचन सुनो । जिसने बाह्यपुत्र दशानन राक्षसको मारा और मार्ग एव पुत्राक सहित न सावसेवन किया और न यज्ञ द किया, उस रामके अन्नको मैं नहीं आऊँगा । आप लोग मुझ जाने दें । मेरी बात रामसे कहियेगा । इस प्रकार वे अन्नप्य तीर्थयात्रा तथा यज्ञ करने । मुनिक इस वचनको सुनकर वे सब जाये हुए दूत शापके दरसे मुनिको मार्ग देकर रामचन्द्रजीके पास गये । वहाँ पहुँचकर रामजीको प्रणाम करके उनके कानमें उस मुनिकी वचनको कहते निवेदन कर दिया ॥ ४४-४७ ॥ श्रीरामने भी मुनिक उस राम भविष्यकी बातकर सब बात

मन्त्रिभिर्वन्द्युभिर्वन्द्य चक्षिणं गुणेश्वरम् । मन्त्रयित्वा पुनर्वाक्यं मन्यं मेने रमापतिः ॥४९॥  
 ततो निश्चितवान् रामः समामध्ये पुण्यधरा । श्रद्धां कार्यां तीर्थयात्रां यथाः कार्यास्ततः परम् ॥५०॥  
 ततो रामाज्ञया दृष्ट्वा गत्वाऽधोऽध्यां पुनर्वाक्यं । तद्गृहं च सविस्तारं सुमंत्राय न्यवेदयन् ॥५१॥  
 सुमन्त्रोऽपि च तद्गृहं श्रुत्वा वस्त्रधनानि च । उष्ट्राश्चरथनागाश्चः श्रेयसासाह सागरम् ॥५२॥  
 पुष्पकं च तदा प्राह रामः शक्तिस्त्वामिदं हि । यद्यप्यथ गिरा मे त्वं शीघ्रमेव यथानलम् ॥५३॥  
 उष्ट्राश्चरथनागाद्यैर्निवाह्यं च ततोदरे । करिष्यमि सविस्तारं तथा विस्तीर्णतां मज्ज ॥५४॥  
 सर्वथा कारसाहार्थं शक्तिस्तु यथामुत्तमम् । क्षमिन्काले ह्यस्मिन्महद्वपुः कदापि च ॥५५॥  
 यथाकामा मया शक्तिस्तव दत्ता न संशयः । तच्छ्रुत्वा रामवचनं पुष्पक इक्षयोजनम् ॥५६॥  
 ममवस्त्रधनान्च हि ऽपवर्धत द्वियोजनम् । इनादालेश्च सोपानैर्हैमरत्नान्कूर्चैश्चितम् ॥५७॥  
 कोटिभूर्यश्रनोकाश्च नानाधातुविशिष्टम् । कलशैः शतसाहसैर्हैमग्नविषद्वितैः ॥५८॥  
 जालरजैर्गवार्जैश्च धुन्काहर्गिर्वधूपितम् । कपटैर्दपैर्णैः कूर्तैर्जलैर्वज्रशतैर्वृतम् ॥५९॥  
 पुष्पाणां वाटिकाभिश्च नानावर्णिनिनादिनम् । वर्षमस्तकृत्वा यत्र यत्रशेषः सहस्रशः ॥६०॥  
 त्रिधायां वणवर्णिना प्रमा विस्मार्ग्यति हि । गोपुर्गाणि च भासन्ते शतशोऽप्य सहस्रशः ॥६१॥  
 तत्र प्राथमिकायां तु पर्त्ता श्रीराघवाक्षया । उष्ट्राश्चरथनागादीन् दृष्ट्वा शोभयन्तदा ॥६२॥  
 द्वितीयायां कण्टकधानं तृतीयायां मृगजम् । तृतीयायां चान्तराशीन् पाकामत्राणि वै ततः ॥६३॥  
 पचम्यां तु श्वध्वनीच ततः श्रुत्वा पचनेकशः । तत्र ऊर्ध्वं राजशहानश्चेष्टुर्धवाणाम् ॥६४॥  
 अष्टमायां राजकोट्यान् वस्त्रधान्यविनिमिगन् । इदृशालास्ततः श्रेष्ठा दासीदामास्ततः परम् ॥६५॥  
 नटादीनां ततः सार्वत्रिकार्थानां ततः परम् । ततो वीरानघिर्मात्रं तैम्यः श्रेष्ठोस्ततः परम् ॥६६॥  
 गच्छति तुमर्ग्ये तान् पचदशयपिना ततः । रथयोर्व्याप्तनोऽप्यूर्ध्वं गजार्थैश्च ततः परम् ॥६७॥

सभामे मुसकाते हुए कहो ॥ ४८ ॥ मन्त्रियो, बन्धुआ तथा पुराहित वशिष्ठजीके साथ परामर्श करके रमापति  
 रामन कुम्भोपर मुनिके वाक्यको सत्यममन माना ॥ ४९ ॥ इसक बाद सभामे पुराहितके साथ परामर्श करके  
 रामचन्द्रजीने निश्चय किया कि बहुतसे तीर्थयात्रा और उत्सव बाद यज्ञ करना चाहिए ॥ ५० ॥ ऐसा निर्णय  
 हुआ जातके बाद रामचन्द्रजीकी आज्ञासे दूतने मयाध्या जाकर गन्त्री सुपन्नस सब हाल विस्तारपूर्वक कहा ।  
 सुमन्त्रने जो उत्तर समाचारको सुनकर सादर वस्त्र-धन आदि ऊँट, घोड़ा, रथ और हाथी आदिपर सज्ज-  
 कर रामजीके पास भेजा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तब रामने पुष्पकविमानसे कहा—तुम्हारेमे जगार गति है । अतएव  
 तुम अपने बलके अनुसार विस्तृत बनो । क्योंकि तीर्थयात्राके समय ऊँट, घोड़ा, रथ और हाथी जादि भी  
 पुष्टाने जरूर ही मिलाव करंगे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ कामके अनुसार अर्थात् जैसा कार्य हो, वैसा तुम्हारा बल भी हो  
 जाय । ऐसी बात तुम्हें मैने बो है । इसमे संशय नहीं है । रामजीके इस वचनको सुनकर सो मट्टालिकामों  
 और छाने तथा रत्न आदिसे सज्जकोवाला, कराटा मृगोंकी कान्तिवाला, अनेक प्रकारको धातुमोसे  
 चिपित, सुवर्ण तथा रत्नजटित सहस्रशः कलशसे युक्त, श्रेष्ठियोक द्वारा विभूषित, सिद्धियों तथा चिकोसे  
 युक्त, काषधके फलको तथा संकड़ी फख्खारेसे जामित भिन्न-भिन्न प्रकारके पल्लवों द्वारा कलरवित, पुष्पवाटि-  
 काखसे वणित, जिनमें संकड़ी-हजारोंकी संख्यामे प्रशान द्वार बासित हो रहे थे, इस प्रकार यह पुष्पकविमान  
 सर्वविध सज्जनोसे सम्पन्न, शत शोजन लम्बा तथा दो बाजन ऊँचा हो गया ॥ ५१-५२ ॥ ऐसा हो जातेपर  
 मयाध्या रामचन्द्रजी आज्ञासे दूतने गहलो रत्नका मट्टालिकामे ऊँट, घोड़ा, रथ तथा हाथी आदिको चढ़ा दिया ।  
 दूसरी पल्लिको मट्टालिकामे काष्ठका ढेर तथा घास, आबलो-मसल आदि तीसरी मट्टालिकामे बलसमूह,  
 चौथीमें बाजनास्थके पात्र, पाँचवांमे शीप आदि, छठीमे अन्य विविध प्रकारके गन्ध, साठवीं मट्टालिकामे राज-  
 धरानेके बाहुन, आठवींमें राजकीश, नवीं मट्टालिकामे वस्त्र-वस्त्र आदिसे युक्त श्रेष्ठ वाजार, रथकी मट्टालिकामे

आरोहयस्ततो दूतान् राज्ययोग्याधिकारिणः । सुहृन्पुत्रजनस्य भिन्नुपाभ्यादलिकान्ततः ॥६८॥  
 ततोऽप्यूर्ध्वं राघवस्य सुहृदश्च पुनोक्तमः । ततो भोजनशालाश्च विशिष्टचैव मनोरमाः ॥६९॥  
 पाकशालास्ततः पञ्च स्त्रीणां शौक्तं ततो रजः । तत उर्ध्वं हि कर्भूनां मानुषां च गृहाणि च ॥७०॥  
 तत उर्ध्वं राघवस्य मया सिंहासनान्विता । ततोऽप्यूर्ध्वं च सीताया मेहं नानामखावृतम् ॥७१॥  
 ततोऽप्यूर्ध्वं राघवस्य क्रीडास्थानं तु सीतायाः । ततोऽप्यूर्ध्वं पट्टिमार्गा राज्ञा सुहृदां स्त्रियः ॥७२॥  
 ततः स्त्रीणां सभायं हि सप्त शालाः शुभावहाः । चित्रशाला द्वादशश्च वयसां पञ्च वै ततः ॥७३॥  
 पुष्पासमदीकानां हि पञ्च शालास्ततः शुभाः । ततोऽप्यूर्ध्वं तु शालायां घटीयत्रादिकौतुकम् ॥७४॥  
 कृपाघादीनां ततः शाला न्येका रम्याऽतिविस्तृता । ततोऽप्यूर्ध्वमग्निहोत्रशाला भोगघवस्य च ॥७५॥  
 ततः शिवार्चनभ्यैका शाला श्रेया शुभावहा । विप्राणां च ततः शालाः शाला विद्यार्थिनां ततः ॥७६॥  
 यतीनां च ततः शाला पाथशाला ततः परम् । जलशाला ततः श्रेष्ठा जलपत्रान्विता ततः ॥७७॥  
 ततोऽप्यूर्ध्वमार्द्रवस्रशोणार्धमनुत्तमाः । शतशालास्त्रिंशः पूर्णाश्चकुस्ते रामसेवकाः ॥७८॥  
 रामोऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वा आरोह स्वयं तदा । ततो नदत्सु राघवेषु स्तुवन्सु मायधदिषु ॥७९॥  
 नर्तन्सु वारनारीषु पताकासु चलन्सु च । प्रकाशयन् दश दिशो विमानं राघवाज्ञय ॥८०॥  
 अगमन्पूर्वदिग्भागात् प्रतीर्षा तपनोपमम् । विहायमा वायुवेग किंकिणीजालमण्डितम् ॥८१॥

यथा प्रयातमिमूर्ध्वं श्रीरामस्त्वजचिह्नितम् ।

विष्णुशस उवाच

कथं रामस्य चत्यागो ध्वजाः पौक्ताः पुरा न्वया ॥८२॥

तन्मयं भित्तरेणाद्य श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।

श्रीरामस्य उवाच

शेषेणैव स्पृणुष्यन्तु स्वपितृस्यदनस्थितः ॥८३॥

राम तथा राज्ञिषाको, भारहवीर अटारिषाको, बारहवीर वेण्याषाको, तेरहवीर पहलवानोको, चौदहवम वेण्ड चलनेवालोको, पंद्रहवीर श्रेष्ठ पुत्रसवारानो, सान्द्रह्वम हाथियो तथा हाथोपर सब रो करनेवालोको, सप्तहवीर बन्दूक आदि छाननेवालाको अठारहवीर राजवक अधिकारी दूतको और उन्नीसवीर रामचन्द्रक मित्र गदाअने अस्त्र तथा एवं रिपवा आदिक साथ स्थान पाया । बासुवी कक्षास नगरके भित्तोके स्थान मिला । इसके बाद वीर भारतनशाला बननी, भारतनशालाअंक ऊपर पांच पाकगृहको स्थान मिला और उनके ऊपर रिपयोके दम भाजनगृह बन । उनके ऊपर बाहरी तथा माताओंके गृह, बादमें तद्वासनसे अष्टकृत राजसभा, राजसभाके ऊपर बहुदन्त्या सखियारं युक्त सीत ज का गृह बना और सीताजीके गृहके ऊपर सीता सहिद रामका श्रेष्ठ-स्थान बनाया गया । श्रीहस्त्यानक ऊपर भिक्षाको रिपयोको स्थान मिला । इसके बाद मित्रियोंकी रक्षासे स्थि-  
 त्वदायक मान अट्टालिकादि निमित्त क गयी । स्वसभास्थानक बाद बारह विजयालाये और पाँच पक्षि-  
 गालात्र निमित्त क गयी । पक्षिशालाक बाद सुन्दर पुष्प आदिकें पांच स्थान बनाये गये । उसके ऊपर श्रीरामके सात घटीयन्त्र आदि रखे गये । बादमें अग्नि विस्तृत एवं रम्य एक शाला द्वाघादि जन्तुओंके स्थि-  
 त्वात् क गयी । उसके ऊपर अग्निहोत्रगृह और अग्निहोत्रगृहके ऊपर शिवजीके पूजनका स्थान, इसके बाद  
 जल निशाला, विद्यार्थीशाला, मन्वासाशाला, पाठशाला, जलमन्त्रारि युक्त पृन्दर जलशाला और  
 जलशालाके बाद नीले करतियों सुवर्णका उत्तम स्थान बना । इस प्रकार रामचन्द्रजीके सेवकोंने इस सी-  
 ताशालासे इन अट्टालिकाओंके पूर्ण किया ॥ ६२-७८ ॥ इस प्रकार सर्वदा पूर्ण देखकर रामचन्द्रजी स्वयं  
 विमानपर बैठे । रामचन्द्रजीके बैठनेके बाद बाजे बजने और आटोके द्वारा स्तुति करने एवं वेण्याओंके  
 बजनेपर दूसरे दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ सूर्यके समान तेजस्वी तथा वसनके समान वेगवाला राम-  
 चन्द्रजीको अज्ञाते चिह्नित बहु विमान रामके आशानुसार पूर्वदिशासे पश्चिमकी ओर प्रयागके लिए चला

अतः सोप्यस्य रामस्य कोविदारध्वजः स्मृतः । बाणध्वजाकितरथमारुह्य तादिकां वने ॥८४॥  
 जघानैकेन बाणेन तस्माद्बाणध्वजः स्मृतः । छिन्नं वज्रध्वजं दृष्ट्वा रावणेन स राघवः ॥८५॥  
 ध्वजेःकोट्यापुपुत्रं तस्मान्प्रोक्तं कपिध्वजः । रणे विमूर्छितं दृष्ट्वा रामो मातलिन तदा ॥८६॥  
 स्थितः स्वीयरथे दिग्धे तस्मान्च गरुडध्वजः शुक्लायां हि पताकायां कोविदारोऽस्ति वै शुभः ८७॥  
 बाणःशुभोऽस्ति नीलायां हरितायां तु माकलिः पीतायां गरुडो ज्ञेयः श्रीरामस्यदनोपरि ॥८८॥  
 चतुर्णु स्यदनेष्वेवं चत्वारः कीर्तिता ध्वजाः । कोविदारध्वजो रामः श्रीरामो सार्गणध्वजः ॥८९॥  
 कपिध्वजो राघवेन्द्रो भूपेशो गरुडध्वजः । एवं नामान्यनंतानि प्रोक्ष्यते राघवस्य हि । ९०॥  
 तस्माद्रामध्वजाः प्रोक्ताश्चत्वारश्च मया नव । वज्रध्वजांकितरथे स्थित्वा रामेण संगतः ॥९१॥  
 कुतस्तस्माद्बाणवेदं तं वदन्त्यशनिध्वजम् । अतो रामध्वजस्यैकमेव चिह्नं न विद्यते ॥९२॥  
 तस्मान्छिष्य मया प्रोक्ताश्चत्वारो गधत्रप्रियाः । कोविदारंकितरथे सुमनः सारथिः स्मृतः ॥९३॥  
 बाणध्वजांकितरथे सुतश्चित्ररथः स्मृतः । बाधुपुत्रांकितरथे सारथिर्विजयः स्मृतः ॥९४॥  
 रामस्य दारुकः सप्तः स्यंदने गरुडाकिते । एव शिष्य त्वया पृष्टं श्रीरामध्वजकारणम् ॥९५॥

तथा पूर्वं मया तच्च त्वामेव निवेदितम् ॥९६॥

इति श्रीमदानन्दनामावर्णे याज्ञिकाष्टे भूभोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( पूर्वदेशके तीर्थोंकी यात्रा )

श्रीरामदास उवाच

तनो रामो विमानेन गन्वा किंचित् पश्चिमाम् । दिशं यथो प्रयागं च त्रिवेणीं यत्र वर्तते ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा कि आप ( रामदास ) ने रामकी चार ध्वजार्यें जो पहले कहीं थीं, उन्हें अब विस्तारसे कहें । श्रीरामदास बोले बाह्यकालमें रघुनाथजी अपने पिताके रथपर बैठे थे ७२-८३ । इसलिये वह रामका रथ कोविदारध्वज कहा जाता है । बाण-ध्वजासे चिह्नित रथपर बैठकर एक ही बाणसे वनमें ताड़काको मारनेके कारण वे बाणध्वज कहलाये । रावणके द्वारा वज्रध्वजा कटनेके बाद महावीर हनुमान्का ध्वजापर बैठानेसे वे कपिध्वज नामसे प्रसिद्ध हुए । रथमें मातलिको मूर्छित देखकर अपने रथपर गरुडको बैठानसे गरुडध्वज हुए । किस ध्वजामें किसका चिह्न है, सो बताते हैं । यथैव पताकायां कोविदार, नील पताकायां बाण, हरितायां माकलि, पीत पताकायां गरुड । इस प्रकार रामजीके रथपर स्थित चिह्नोंको जानना चाहिए ॥ ८४-८८ ॥ इस तरह चारों रथोंपर चार ध्वजार्यें देने कहीं ॥ कोविदार ध्वजावाले राम बाण ध्वजावाले श्रीराम ॥ ८९ ॥ कपिसे चिह्नित ध्वजावाले राघवेन्द्र और गरुडसे चिह्नित ध्वजावाले भूपति । इस प्रकार रामचन्द्रके अनन्त नाम हैं ॥ ९० ॥ इसलिये मैंने तुम ( विष्णुदास ) से रामकी चार ही ध्वजार्यें कहा है । वज्रसे अंकित ध्वजावाले रथपर बैठकर रामचन्द्रजीने युद्ध किया था । राघवेन्द्र नामवाले रामकी अशनिध्वज कहते हैं । रामचन्द्रकी ध्वजाका एक ही चिह्न नहीं है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसलिये मैंने छोटकर रामकी अति प्रिय ध्वजाओंको ही कहा है । कोविदार ध्वजासे चिह्नित रथपर सुमनः, बाणध्वजसे चिह्नित रथपर चित्ररथ और कपिध्वजसे अंकित रथपर विजय नामके सारथी कहे गये हैं । रामकी गरुडांकित रथपर दारुक सारथी रहता है । इस प्रकार ओ तुम (विष्णुदास) ने श्रीरामकी ध्वजाका कारण पूछा, तो मैंने आज तुमसे कहा है ॥ ९३-९६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे याज्ञिकाष्टे भाषाटीकायां भूभोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम विमान द्वारा कुछ पश्चिम दिशाकी ओर जाकर प्रयाग पहुँचे ।

कोशभावे विमानं तन्मुक्त्वा गघः ममीनया । पद्भ्यां शनैः शनैरेव त्रिवेणीमगम ययौ ॥ २ ॥  
 नारिकेलं वायनेन समर्प्य रघुनन्दनः पतुर्गुल्मानं हि केशवन्धं सभूषणम् ॥ ३ ॥  
 इदौ सखिष सीतायाः स्वं सौम्यधाकरोत् । तक्षणाद्यैर्बन्धुभिश्च वपनं रघुनन्दनः ॥ ४ ॥  
 मातुमिः कारयायाश्च कृत्वा चैकमुपायगम् । द्वितीये दिवसे प्राप्ते कृत्वा भ्रातृं सतर्पणम् ॥ ५ ॥  
 वायवायं नायमासे कामं कृत्वा सविस्तरम् । अष्टवीथीं ततो गत्वा दत्त्वा दानान्बनेकैः ॥ ६ ॥  
 दृष्ट्वाऽतपवटं रम्यं निद्रास्थानं निजाकये । किञ्चिद्दिहस्य भोरायः सैन्या आशुभिः सह ॥ ७ ॥  
 पूजां कृत्वा त्रिवेण्याश्च वर्ज्जितैर्घैः सुभूषणैः । गगाजलैः कान्तदुग्धमान् शलशोऽथ सदस्ययः ॥ ८ ॥  
 पूरयित्वा विमानाग्र्यं दधाप्य शीघ्रं पुरोहिद्वान् । पूजयित्वा सविस्तरं नत्वा चैव पुनः पुनः ॥ ९ ॥  
 तान् पृष्ट्वा पुष्पके स्थित्वा वयावकाशवर्मना । विन्ध्याचलं समाश्रित्य यत्र दुर्गा तु वर्तते ॥ १० ॥  
 तत्र स्नान्वा तीर्थविधिं पूर्ववच्च विधाय सः । तं विन्ध्यावासिनीं पूज्य वर्मराक्षणादिभिः ॥ ११ ॥  
 कृत्वा दानान्बनेकानि शोष्य तीर्थपुरोहितान् । ययौ काश्यां पुष्पकस्थः भ्रातायः मीनया मुमुक्षुः ॥ १२ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे काश्यां काशिकायाः पुष्पकं तु नत् । कोटिसूयप्रतीकाशं दृष्ट्वा पश्चिमतो दिशम् ॥ १३ ॥  
 यत् प्राचीं काश्याभिमुखमगच्छन्त महोन्नतम् । चक्रम्यकान्दिकीं च शलशोऽज्ञानयंस्थिताः ॥ १४ ॥  
 केचिद्नुश्च दावाग्रिम्भश्च परतमस्यके सूर्यं धिम्भूतः पथा भ्रमणाद्भ्रातिमाश्च सः ॥ १५ ॥  
 इति केचिन्ननाः श्रेष्ठः केचिद्नुश्च य मुनिः । वारदस्तु तमापाति केचित्तत्र वभापिरे ॥ १६ ॥  
 वान्धमौ गविः स्पर्षात् केचिद्गोणा वत्तान्वितः । वातुपुत्रोऽपमिति ते श्रेष्ठः काशीनिवासिनः ॥ १७ ॥  
 केचिद्नुः शशी स्पर्गान्भूमेऽ विनिवातिनः । केचिद्नुश्च विश्वश्च केचिद्नुः सुदर्शनम् ॥ १८ ॥

अक्षरपर वि पतिमरावना त्रिकोण विद्यमान है ॥ १ ॥ त्रिवेणी से एक कस दूर भोराम जानकोडाके  
 साथ विमानसे उतर गये और चारे चारे करके ही निक्कीके सगमपर गये ॥ २ ॥ वही जाकर रघुनन्दनने  
 त्रिवेणीको नारियल समर्पण करके भूषणसे गुना हुआ जानकाका कक्षकाश ( पूजा ) चार  
 शीगुल लगा काटकर त्रिवेणीमें प्रवाहित कर दिया । पश्चात् स्वयं भी "प्रयत्ना मुग्धने श्रेष्ठ" के अनुसार  
 और करवाया । रामने उसी प्रकार माताजी, मादवी तथा बन्धान्च सबे-सर्वान्बन्धोक्त की और कर  
 वाया । तदनन्तर सबने उपवास करके दूसरे दिन तपण तथा धातु किया । पश्चात् दयार्थिधि साथ महाने-  
 भर वही कल्पवास दिया । उसके उदगन्त प्रवाणक प्रसिद्ध "त्रिवेणी", वर्मराक्षस, मामनाय, भोरहाज, नाग-  
 बाणुकी, जसवट, राज भूमय आदि आठ तीर्थों ( महानाथों ) की पूजा की और विप्राका जनेक प्रकारके शान्त  
 दिये । १-६ ॥ वपन शलवकादीन निद्रास्थान अक्षवटको देखकर राम कुछ मुस्कराये । पश्चात् सीता तथा  
 मादवीके साथ मिलकर सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों त्रिवेणी महाराजके पूजा की । उसके बाद हजारों  
 वक्षवट गङ्गाजलसे भरवाकर जल विमानपर बरखा दिये । तीर्थक पुरोहितोंका विमानसे पूजा तथा सत्कार  
 दिया । तदनन्तर उनको नमस्कार किया और उनका अग्रा लेकर राम विमानपर सवार हो गये । तत्पश्चात्  
 अकाशवासे किञ्चनकल्प पधारे । वही किञ्चनवासिनी दुर्गातीका त्रिवेणी मन्दिर है ॥ ७-१० ॥ वही रामने  
 स्नान किया और पूर्ववत् वहीवर भी तथैर्विधिसे पूजन किया । वस्त्र तथा आभूषण आदि सामग्रियोंसे  
 विन्ध्यावासिनी देवीकी पूजा की ॥ ११ ॥ अनेक दान देकर वहीके पुरोहितोंको प्रसन्न किया । पश्चात् श्रीराम  
 भोताके साथ पुष्पकविमानपर सवार होकर मुसुसुक्क काश्याके चले ॥ १२ ॥ उस समय काशीनिवासी जन  
 उठ करेकी सूरके समान अवकाशमात्र तथा अग्निउदयवल विमानको पश्चिम दिशासे बलीली और आते देखकर  
 हजारोंकी संख्यामें महलोंकी छतोंपर बह गये और उसके दियवम अनेक तर्क-विमर्क करने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥  
 कोई कहने लगा कि यह पर्वतके ऊपर बसालि जा रही है । कोई कहता कि सूर्य राखडा धूमकर दधर-उधर  
 घटक रहा है । १५ ॥ कोई कहता कि यह तो तारक बुद्धि भाषेको जा रहा है । किसीने कहा कि स्वर्गसे सूर्य  
 नीचे गिर रहा है । कोई कहता कि यह शान्तवन्धु लिये हनुमान् भी जा रहे हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ कोई कहने

केचिद्भुः सुरर्णादि केचिन्मोक्षरुन्धतम्, केचिन्मोक्षत्रिगजानं केचिन्मोक्षप्रलयानन्दम् ॥१९॥  
 केचिन्मोक्षानुर्बदाधोर वदन्मोक्ष केन मोक्षितम् । केचिन्मोक्षः सहस्राम्बुस्वरूपं मणिमिश्रजितः ॥२०॥  
 एवं वदन्तस्ते यानं ददन्तुः पुष्पकं महत् । महाकोलाहलं चक्रुः प्रान्तस्त्रयं समागतः ॥२१॥  
 रामोऽयोध्यापतिः भीमान् मानं कर्तुं मनोहर । विधनयोऽपि वन्द्यन्तः पावन्या रूपमस्थिताः ॥२२॥  
 प्रायुज्जमानं श्रीरामं काशीस्थैः पवित्रैः । उपायनं राघवस्य गृहान्वा बहुविस्तरम् ॥२३॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामस्तैः देहलीविनायकम् । पूज्यं विश्वेश्वरं दुष्टं नराम शिरसा तदा ॥२४॥  
 आलिंगितः क्षिप्तेन च गृहीत्योपायनं शिवात् । स्वयं परमराभर्णः पूजयामास सुकरम् ॥२५॥  
 शिवेन काशिनधस्य घृत्वा इस्तेन मन्त्रकम् । तत्पुत्रो वाहनं मुक्त्वा जम्भतुमणिकणिकाम् ॥२६॥  
 ततः सीतापुत्रो रामश्चकपुष्पकरिणीजले । समर्प्य श्रीफलं स्नान्वा सर्वं श्रीरूपकम् ॥२७॥  
 नित्यदाश्रीं विधायाथ कृत्वा चैकमुपोषणम् । तीर्थश्चाद्यादि सप्तय पञ्चार्था विधाय च ॥२८॥  
 अन्तर्गृहीं महायात्रां मानवद्वयमेव च । दिवन्तर्माश्रितानि सप्तलिंगानि चै ततः ॥२९॥  
 पश्यन्मोक्षं गणेशंस्तदाऽष्टीं रंगवान् पुनः । योगिनीश्च चतुर्षष्टीस्तथा दुर्गाश्च वै नव ॥३०॥  
 ततोऽष्टदिक्पदीषाणि तथा चैव नवग्रहान् क्षेत्रप्रदक्षिणो पञ्चक्रांशपाशं रघुनमः ॥३१॥  
 चतुर्दशेना यात्रास्तु कृत्वा चैव तस्मिन् ॥ रामेश्वरं महालिङ्गं बहणापास्तटे शुभे ॥३२॥  
 काश्या वायव्यदिग्भागे सीतायां स्थाप्य धूमम् । रामनाथं स्वायनाम्ना मार्गारण्यां चकार मः ॥३३॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र वायुपुत्रः समागतः । इत्थं भुत्वा राघवस्य यात्राः कर्तुं गतश्चिन्ति ॥३४॥  
 सीतारामौ नमस्कृत्य स्नान्वा भक्तैर्बन्धुजले । स्वनाम्ना सुकरं तीर्थमकरोऽग्राहसीतटे ॥३५॥

क्या कि गृहने स्वर्गसे चन्द्रमाको नीचे गिरा दिया है । कोई उसको विष्णु, कोई मुनेरु पर्वत, कोई अरुन्धती  
 मरु, कोई गण्ड जीव कोई प्रलयार्ति बताय लया ॥१९॥२०॥ कोई कहने लगा कि बिहोने महाघोर बान्धवास्त्र  
 छोडा है । कोई कहने लगा कि यह सहस्रमुख इव है ॥ २० ॥ इस प्रकार वे सब एक वितक कर ही रहे थे कि  
 पुष्पकविमान उनके पास आ पहुँचा । यह देखकर सब लोग कालाहल करत हुए आश्चर्यपूर्वक एक-दूसरेसे कहने  
 लगें कि यह तो साक्षात् अयोध्यावर्षति श्रीमान् राम नगरवासियोंके साथ यही यात्राके लिये प्यारे हैं । यह  
 सुनकर स्वयं काशीविश्वनाथजी कहनेगे भले लकर बेलघर सवार हुए और नगरवासियोंको साथ लेकर रामके  
 समक्ष आ उपस्थित हुए ॥ २१-२३ ॥ इस बीच रामने देहलीविनायक तथा दुष्टिरामके दर्शन कर ही लिये । जब  
 उन्होंने गिनजीको प्रत्यक्ष देखा तो फिर नवाकर प्रणाम किया ॥ २४ ॥ गिनजान रामका आलम्बन किया ।  
 गिनजीकी जो हुई घंट स्वीकार करके स्वयं रामने जो वस्त्रोपय अलङ्कारसे गिनजीको पूजा की ॥ २५ ॥  
 तदनन्तर अपने हाथसे काशीनाथके सुन्दर हाथको पकड़कर रामने काश्यामें प्रवेश किया । पश्चात् वे दोनों  
 बाहुत छोड़कर मणिकर्णिका गये ॥ २६ ॥ वहाँ साता संहित रामने और आदि करवाकर चक्रवर्त्तिकारणा कुण्डमें  
 श्रीफल समर्पण करके सहस्र स्नान किया ॥ २७ ॥ नित्ययात्रा करके एक दिनका उपवास किया । ऋषिराज  
 तीर्थश्चाद्यादि कर्म करनेके बाद पञ्चतोर्दी की ॥ २८ ॥ बादम अन्तर्गृही, महायात्रा, दोनो मानसोकी यात्रा तथा  
 ब्यालीस और आठ लिङ्गोंकी यात्रा की ॥ २९ ॥ छम्पन गणेशजीकी यात्रा, आठ घेरोंकी यात्रा, चौदह  
 योगिनिजोंकी यात्रा नव दुर्गाओंकी यात्रा, ॥३०॥ आठ दिग्पालोंकी यात्रा और क्षेत्रको प्रवर्तितपादोंका पञ्चको-  
 शीकी यात्रा की ॥ ३१ ॥ इस प्रकार रामने उपर्युक्त चौदहों यात्राओंको विधिवत् पूर्ण किया । तदनन्तर  
 काशीके वायव्यकोणको, सीतामें बरुणा नदीके तटपर आरामन परम पवित्र तथा मनोहर रामेश्वर नामके  
 महालिङ्ग स्थापित करके अपने नामसे समस्त मार्गार्थके तटपर रामतीर्थ अर्थात् रामघाट भी स्थापित किया  
 ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ राम यात्रा करने निकल हैं, यह समाचार सुनकर वायुपुत्र हनुमादजी ने वहाँ आ पहुँचे  
 ॥ ३४ ॥ वहाँ उन्होंने सीता तथा रामको प्रणाम करके गंगामें स्नान किया । फिर आहुतीके किनारे उन्होंने



धर्तुं वर्षधं गणायाम्पटे रथं दृष्टव्यम् । कारयामघापि तन्नाम्ना धनुःस्ति परमः शुभः ॥ ३६ ॥  
 तथा चकार रामोऽपि धनुर्वधनमुत्तमम् । दृश्यते प्रव्यहं यत्र काश्यां रामः ससीतया ॥ ३७ ॥  
 चकार पंचममायां कार्तिकम्नानमुत्तमम् । काशींशमं वपयेकं चकार धर्मवत्परः ॥ ३८ ॥  
 तीर्थयात्राभिः सर्वान् सन्तर्प्य च पूयकं पूयकं । रत्नैर्द्विरर्प्यर्वाभ्योमिरश्चापरणधेनुभिः ॥ ३९ ॥  
 निवित्रैश्च दशाऽपत्रैः स्वर्णगोप्यादिनिर्मितैः । अमृतस्नादुपकान्तैः वापसेश्च सशर्करैः ॥ ४० ॥  
 सगोमयैश्चान्नदानैर्धान्यदानैरनेकधा । गन्धचन्दनकपूरैस्ताम्बूलैश्चारुधामरैः ॥ ४१ ॥  
 सतुल्यैर्दुपयैर्कंदीपिकादर्पणासनैः । शिविकादापदार्थाभिराहुनैः पशुभिर्गृहैः ॥ ४२ ॥  
 निमज्जजपनाकामिहस्तोच्चैश्चंद्रचक्रभिः । नानावर्तमहाभङ्गैः सध्वजराफणादाभ्यः ॥ ४३ ॥  
 वर्षाग्नमदानैश्च गृहोपमकरमयुनैः । उपानयनादुपकभिश्च यतैश्चापि तपास्वनः ॥ ४४ ॥  
 योग्यैः धनुर्दुर्लभैश्च मृदुलैश्चित्रकम्बलैः । दण्डैः कमण्डलुयुतैश्चार्जुनैर्मृगमम्भरैः ॥ ४५ ॥  
 कोपार्दैर्हन्त्रमर्चैश्च पञ्चवारककाञ्चनैः । मण्डपिण्यादिनाम्नैरातप्यैश्च महाधनैः ॥ ४६ ॥  
 धनुर्वीर्यदानैश्च मिषजां जीवनादिभिः । महपुष्पकसधारलेसकानां च जावनैः ॥ ४७ ॥  
 रमादर्शनमृन्मयैश्च पत्रदानैरनेकशः । प्रहस्य प्रपाथद्राघणं हंसन्तंऽन्नदण्डकेभ्यनैः ॥ ४८ ॥  
 उवाञ्छादनकाञ्चनैर्वाकालोचितैर्वहु । रात्रौ पाठप्रदपेष वादाभ्यजनकादाभ्यः ॥ ४९ ॥  
 पुष्पगणपाठकांश्चापि प्रतिदेवालय धनैः । देवालये नृत्यगात्रकरणापरनकशः ॥ ५० ॥  
 देवालये सुधाकार्यजीर्णोद्धारनैकशः । चित्रलेखनमूर्त्यश्च रङ्गशालादमण्डनैः ॥ ५१ ॥  
 आरत्निकैर्गुग्गुलैश्च दशांघादिमुधूपकैः । कपूरैश्चार्जुनैश्च दवाचापरनकशः ॥ ५२ ॥

एक कन्याणकारो तोष बनाया ॥ ३६ ॥ गतात्रोक वटपर उहोने सुन्दर पंचरात्राका एक पाट बनवाया, जो कि  
 अभी जो काशीमें हनुमानपाठके नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ ऐसा प्रकार रामचन्द्रन मा उत्तम पाट बनवाया, जो  
 कि आज दिन मा काशे में रामधरक नामसे वर्तमान है । पश्चात् रामन सताक साथ पञ्चगङ्गाय स्नान  
 किया । उस समय कार्तिकका उत्तम मास था । इस प्रकार रामने पंचमर काशे में धर्मवत्पर हाकर लनास किया  
 ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पश्चात् समस्त तीर्थयात्रियोंको पृथक् पृथक् रात सुषण, वरुण, अश्व, भाभरण, गान, सतीर्चन आदि  
 विविध पत्र, अमृतगुण्य पकवान तथा शर्कराभिजित दुग्धदानस प्रसन्न किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥  
 नय आनन्दानस भी उन्हु संतुष्ट किया । बहुतोंका मुगधित चन्दन, कपूर, ताम्बूल, अनाहूर चमर, कामल  
 मः धरे हुए गदे सकिए, दौवट, दर्पण, भासन, पाछक, दासदमा, बहने, पशु तथा धवन दकर प्रसन्न  
 किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥  
 बहुतोंको चित्र-विचित्र वस्त्र-व्यताका, चापका औरनाक समानानमल औरना, शक्ति-  
 याना, बड़बड़ शंख बन करके ध्वजारोपण, वर्षाग्नदान तथा गृहस्थाका सामग्री दकर प्रसन्न किया । विप्रोंको  
 उपजट तथा संन्यासी यतियों और तपस्वि गेका लड़ाई, उनका वाय क मल रेसका बरत, कम्बल, दण्ड-कमण्डलु,  
 चित्र-विचित्र मृन्मय, कोपान, ऊँचे-ऊँचे लठोले, सरक मठ, उसका रत्नाक लिए तथा इवसानों और शक्ति-  
 सत्कारक लिए सुवर्ण तथा बहुन-सा धन दकर संतुष्ट किया ॥ ४१-४६ ॥ देवाका उनका जादिकाक साधनमूत्र  
 बहुतोंसे औषध दान देकर, लेसकोंको औचिकके साधनमूत्र बहुतसे गुस्त्रकसमूह देकर, बहुतोंका बहुमूल रक्षाघर  
 दान देकर और बहुतोंके लिए अन्नक्षेत्र खोलकर सन्तुष्ट किया । बहुतोंका चापमश्रुम पीसरक वाला बन  
 दकर तथा बहुतोंको हेमन्तक पाण्य काष्ठ आदिके वास्तु दण्ड देकर प्रसन्न किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥  
 वर्षाकालोचित छत्र तथा आच्छादन देकर आनन्दित किया । बहुतोंका रात्रिके समय पकनेके लिए  
 दवादिका प्रबन्ध कर दिया । बहुतोंको शरीरमें अभ्यङ्ग ( मालिश ) करनेके लिए उल भादि सुवन्धित  
 द्रव्योंका दान देकर राजी किया ॥ ४९ ॥ हर एक देवालयमें पुराणपाठ करनेवालोंको धन देकर संतुष्ट  
 किया । देवालयोंमें अनेक नृत्य गीत करवाये । उनका जीर्णोद्धार करवाकर नूना पुतया दिया । उनमें बहुतोंसे मिष  
 बनवा दिये । उनमें केशर आदि रङ्ग तथा माला आदिका प्रबन्ध करवा दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ देवदूतोंको

पञ्चावृत्तानां स्नपनैः सुगन्धस्तपनैरपि । देवार्थं मुखयार्थं च देवाद्यानर्गनकशः ॥५३॥  
 महापूजार्थं मान्वादिगुम्फतार्थं च कालवः । शस्त्रमेरीमृदगादिवाद्यनादैः शिवालये ॥५४॥  
 घण्टामडुककुम्भादिस्नानोपकरणैः । स्नेहमाज्जनस्त्रैश्च सुगन्धैर्बलकर्मभिः ॥५५॥  
 जपहोमैः स्तोत्रपाठैः शिवनामोच्चभाषणैः । रामकीडादिमयुक्तध्वजैः समप्रदक्षिणैः ॥५६॥  
 एवमादिभिरुदण्डैः क्रियाकाण्डैर्गनेकशः । वर्षमेकमुपित्वा तु कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥५७॥  
 दीनानाथांश्च सत्पुत्र्यं नन्वा विश्वेश्वरं त्रिभुम् । नम्रचर्यादिनियमैर्भक्तानामप्येन च ॥५८॥  
 मन्यमभ्यासणेनापि तीर्थमेवं श्रमाद्य च । नन्वा पुनर्विश्वनाथं कालगजं गणाधिपम् ॥५९॥  
 अमपूर्णां दण्डपाणिं दृष्ट्वा स्तुत्या प्रणम्य च । अनुज्ञातः शिवेनाथं त्रिमानेन गच्छतमः ॥६०॥  
 यथावाकाशमार्गेण गमाया दर्शने तटे । कर्मनाशां नदीं दृष्ट्वा क्यवनस्याश्रमं ययौ ॥६१॥  
 रामचन्द्रः पुण्यकस्थः स्नान्वा नत्वा मुनीश्वरम् । रामतीर्थं च रामेशं चकार तत्र राघवाः ॥६२॥  
 निजराणकुली रेखां दर्शयामास तान् जनान् । कण्ठ्या अप्यधिकान्यत्र दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥६३॥  
 ययौ यानेन दिव्येन स्वर्णभद्रस्य सममम् । यानि यागे हि तीर्थानि गच्छन्तं गामप्यति ॥६४॥  
 उत्तरोत्तरतप्तेषु दानाधिक्यं कश्चिदिति । यत्र यत्र गच्छन्तेषु समिप्यति समीपया ॥६५॥  
 तत्र तीर्थान्यनेकानि मन्त्रिष्यन्ति महान्ति च । केचोऽपि तेषां संरुपां दिव्यकुंजांश्च धूमो भवेत् ॥६६॥  
 तेषु तीर्थाविश्रंष्टानि षड् ज्ञेयानि मर्तापिभिः । रन्ध्रानां चैव चन्दारि सीतायाः शश्वसं स्मृतम् ॥६७॥  
 षष्ठमजनिपुत्रस्य सर्वत्रैव विनिश्चयः । रामः स्नान्वा स्पर्शभद्रगगयोः सममे मुदा ॥६८॥  
 त्रिरात्रं समतिक्रम्य गण्डकीसंगमं ययौ । कस्मिंस्तीर्थे त्रिरात्रं च पञ्चरात्रमथ कचिन् ॥६९॥

नित्यं आशुती गुग्गुलु दण्डां, घृण, दीप, बध्म आदि जनक वस्तुमें निन्दितार्थी ॥ ५२ ॥ देवताओंके लिए  
 पंचावृत्तके स्नानका प्रवन्ध, मुर्गा-पुत गुल्फवजल आदिसे स्नानका प्रवन्ध मुखकामर्थं पान आदिका प्रवन्ध,  
 तथा उनके लिए उद्यान आदिका प्रवन्ध आदि करना दिया ॥ ५३ ॥ मन्त्र शिवालये पिकाल पूजाके लिए माला  
 गूँथनेका प्रवन्ध, शस्त्र, तगाडा नृदण आदि वाजोवा प्रवन्ध एवं षडो घंटा कलश गड्ढा तथा श्नास्के सामानका  
 प्रवन्ध कर दिया । मार्जनके लिए प्रवेन दम्भ तथा मुग्धचित्त द्रव्य चन्दन, वैश्वर, अगर, लगर, बध्म आदिके  
 स्नेहना भी इस भी प्रवन्ध करवा लिया । इसी प्रकार देवालये पज, हाम, स्तोत्रपाठ, उच्च शिवनामोच्चाराण  
 प्रदक्षिणा तथा चैवर लेकर रामकीडा आदि अन्धान्य क्रियाएँ करते हुए रामने कार्त्तिके एक वष विनाया  
 वहाँके अनेक तीर्थ किये । उन्होंने दीनानाथ विश्वेश्वर भस्वान् शिवका संनृष्ट किया । अनुकालमें भी  
 कृतार्थ्यं धारणकर तथा दण्डपाणिका अनुष्ठान करके तीर्थके नियमोंका पालन किया । अन्नम विश्वनाथको,  
 कालशेरवका, गणाधिपको, अमपूर्णाको तथा दण्डपाणिका बारंबार नमस्कार करके तथा उनकी स्तुति करके  
 सदैम आनेकी आज्ञा माँगी । उनसे अनुज्ञात होकर रघूनम राम विमानपर सवार हुए ॥ ५४-६० ॥ और  
 मान्वादिगार्त्तिके गण्डकीके दक्षिण तरकी ओर चल दिये । राधेमें उनको कर्मनाशा नदी मिली । बादमें  
 क्यवनमुनिके आश्रमपर पहुँचे ॥ ६१ ॥ पुरस्क त्रिमानसे उत्तरकर रामचन्द्रभी व स्नान करके मुनिके दर्शन किये और  
 वहाँ अपने नामसे रामेश्वर तथा रामतीर्थ स्थापित किया ॥ ६२ ॥ वहाँ अपने मायवालीको अपनी बनायी हुई  
 आणका रत्ना दिखलायो अन्तमें वहाँपर कार्त्तिक भी आधिक दान पुण्य कके दिव्य विमानके द्वारा शोणभद्र  
 तथा गङ्गाके संगमपर गये । उसी प्रकार आगे भी राम जिन-जिन तीर्थोंमें जायेंगे, वहाँ-वहाँ उत्तरात्तर अधिक  
 दान करेंगे वहाँ-वहाँ राम सीताके साथ प्यारेगं वहाँ-वहाँ अनेक बड़े-बड़े तीर्थ वनेंगे । जिनकी संख्याको शेष-  
 नाग भी नहीं बता सकते ॥ ६३-६६ ॥ परन्तु विवागशील लोगोंको उनमें भी छ तीर्थोंको मुख्य समझना चाहिये ।  
 चार चार भाइयोंके, बीच-बीच सीता तथा छडी हनुमानका । इनके विषयमें कभी भी संदेह नहीं करना चाहिये ।  
 और राम शोणभद्र तथा गङ्गाके संगमसे स्नान करनेके पश्चात् वहाँ तीन रात निवास करते प्रसन्न मनसे

समरात्रं कचिच्छापि पक्षमेकमथ कचिन् । अष्टादशैकविष्टुहा त्रिमासं च कचिन्प्रभुः ॥७०॥  
 चकार वासं तीर्थेषु धर्मान् कुर्वन् यथासमम् । गंडकीप्रगमे कात्या नेपाळे जगदीश्वरम् ॥७१॥  
 दृष्ट्वा हरिदाक्षेत्रं ययौ रघुकुलोद्भवा । गर कुन्तम् नीर्धनि मर्तोनि रघुनन्दनः ॥७२॥  
 पुनः पुनः समम् च ययौ जाह्नविदक्षिणे । वैकुण्ठनगरं गत्वा जरासन्धपुरं ययौ ॥७३॥  
 वैकुण्ठाया जले स्नात्वा ततो रामो ययौ श्याम् । पद्मगुणधाम्नते पुरे मृक्त्वा तद्यानमुचमथ ॥७४॥  
 नत्वा विष्णुपदं दिव्यं पुनर्यानान्दिकं ययौ । तां निशा ममनिकम्प प्रभाते रघुनन्दना ॥७५॥  
 स्नातुं फल्गुनदीतोये ययौ तीर्थं द्विजैः सह । एतस्मिन्नन्तरं सीता मर्त्याभिः परिदेहिता ॥७६॥  
 ययौ स्नातुं फल्गुनद्यां स्नात्वा पूज्य मुयामितीः । मैकते मा क्षण तस्थौ पूजनार्थं महेश्वरीम् ॥७७॥  
 बालुकापचपिर्दधे दुर्गां कर्तुं समुद्यता । गृहीत्वा रामहस्तेन पाद्रीं मा सिकतां तदा ॥७८॥  
 सव्येन कुन्दा पिंडं तु यावन्मा पाणिना धृत्वा । व्यापयामास तारत्तुं ददर्श जगतीतन्त्रात् ॥७९॥  
 विनिर्गतं दृष्ट्वाश्वशुभम् कर्तुं शुभम् । दक्षिणं विजयन्मानं च गृहीत्वा विष्णुपदम् ॥८०॥  
 गच्छन्तं धूलं रथं नदृष्ट्वा कीर्तुकं पुनः । द्वितीयं व्यापयामास भुवि पिंडं तु वैकृतम् ॥८१॥  
 मोऽपि नातः पूर्ववच्च श्रवणश्रोत्रं शनम् । ददां पिडान् कीर्तुकं ततः श्रान्ता विदेहजा ॥८२॥  
 मनसा पूज्य दुर्गां मा ययौ वान स्वगन्धिनः । नदृष्ट्वा न मर्त्याभिस्तु ज्ञात रामेन वाऽपि न ॥८३॥  
 तथापि कथिनं नैव किं रामो मां वदिष्यति । इति भान्या ततो गमः पवनार्थं विगाय च ॥८४॥  
 प्रेतपदेतमायाय पिडदानमथाश्रितम् । कनिष्ठिकाया निष्कारण निजनामाकितां शुभाम् ॥८५॥  
 काचनीं मुद्रिकां गत्वा दक्षिणाभिमुखस्तदा । अपहन्तेति मंत्रेण चकार भुवि राषयः ॥८६॥

गंडकीक सङ्ग्रामकी ओर मिथारे । श्लोकस प्रसन निम ग्यानेपर लेन रात, नही पांच रात कहीं मात रात, कहीं  
 एक पक्ष, कहीं मठारह दिन, कहीं इकानेस दिन और कजे तीन मास पर्यन्त मुलसे निवास किया । गंडकीके  
 सङ्ग्राममें स्नान करके श्रीहरी नेपालम् पगुर्पनिव, वर दशानवं मये । ६७-७० ॥ बादन रघुकुलभूषण राम  
 हरिहरसेव गये । इस प्रकार रघुनन्दन रथ तं वं करने समद बांच बीचम बार-बार गङ्गाके दक्षिण सङ्ग्रामपद  
 पधारत थे । बारम वैकुण्ठ नगर हो गङ्गा जगसायक राजनृज नगर गये ॥ ७१-७३ ॥ पञ्चान् वैकुण्ठके जलमे  
 स्नान करके गयाजी गये । फल्गु नदक पुरीर नदरर विमानको छोड़कर दिव्य विष्णुपदके दर्शनार्थ गये ।  
 दशान कातिक बाद पुन यातके पास लोट आय और गतिवा जगे व्यतीत करके मंथरे बाहुणिके साथ  
 फल्गुनदीके पवित्र तीर्थमे स्नान करने गये । इनमे क्षत्रियेस धिम जुई साताजी फल्गुनदीपर स्नानार्थ  
 पथ री । वही उन्होंने स्नान करके मोहगिन क्षत्रियोंकी पूजा की । पञ्चान् देवी महेश्वरीकी पूजा करनेके लिए संकत-  
 प्रदेशमें जाकर बालुके पांच पिण्डोंमे दुर्गाजीकी प्रतिमा बनानेको उत्तन हुई । जायें हाथमें नीली बालुका लेकर  
 उन्होंने बाहिने हाथसे पिण्ड बनाकर ज्यों ही पुरवापर रखना चाह, त्या ही उन्हें पृथ्वीवल्लो निकलता हुआ अपने  
 समुद्र महाराज दशरवक्र सुन्दर हाथ दिखायी दिया । उनका दाहिना हाथ सीताके हाथसे उस उत्तम पिण्डको  
 लेकर पुन धरतीमे प्रविष्ट हो गया । यह देखकर सीताक मनमें बड़ कीर्तुल्ल हुआ । बादमें फिर सीताने पिण्ड  
 बनाकर जमीनपर रखार, उसको भी पूर्ववत् वह हाथ से गया । इस प्रकार सीताने एक-एक करके एक ही  
 बाठ पिण्ड दुर्गाकी पूजाके लिये रखे और उन सबको मधुका हाथ से गया । यह देखकर सीता द्वार गयीं  
 ॥ ७४-८२ ॥ अन्तमें उन्होंने दुर्गाका मन हो मन पूजा की और विमानके पास लोट आयीं । उस वृत्तान्तको  
 न ही सखियें जान सकी और न राम हो जान पाये । ८३ ॥ सीताने भी राम हमको क्या कहेंगे, इस तरहके  
 भारे उस वृत्तान्तको छिपा रखा । बादमें रामने जब पञ्चतीर्थ करनेके बाद प्रेतशितापर जाकर पिण्डदान दिया  
 और उन्होंने अपने हाथका अनामिका भेगुनास रामनाम खुदा हुई सुन्दर मुद्रणकी अंगुठी निकालकर दक्षिण-  
 की बांच मुद्र करके 'अपहृता' इत्यादि मंत्रसे जमानपर तांच रेखाएँ कांची, जो कि वही जमीनी स्नत

रेखाश्रयं नदद्यापि दुःखते तत्र वै स्फुटम् । आस्तीर्य स कृष्णस्त्र पिण्डान् मन्त्रमुवाञ्छुः ॥८७॥  
 तिलाग्रिमधुमं युक्तां दानुं रामः समुद्यतः । सध्वेन पाणिना पिण्डं गृहीत्वा रघुनन्दनः ॥८८॥  
 यादव्यदयति भूम्यां तु न ददर्श पितुः करम् । तदाश्रयेण निरास्ते रामपुत्रस्तत्राश्रिताः ॥८९॥  
 निष्कामस्यत्र मर्षेण पितृणां दक्षिणाः कराः । न दृश्यते तत्र पितुः कारणं नात्र विग्रहे ॥९०॥  
 रामोऽपि विस्मयाविष्टश्चकितः प्राह लक्ष्मणम् । जानीये कारणं किञ्चिदत्र त्वं बुद्धिमानमि ॥९१॥  
 स प्राह राघवास्माभिर्यदा मोदावर्गे गतम् । इन्दुदीपकपिण्याकपिण्डदाने तदा करः ॥९२॥  
 अस्माभिः स्वपितुर्दृष्टः सोऽत्र नैव प्रदृश्यते । ममापि जानमाश्रयं सानां त्वं प्रष्टुमर्हसि ॥९३॥  
 तच्छ्रुत्वा जानकी शीघ्रं प्राह किञ्चिद्भयानुरा । मयाऽपराधितं किञ्चिन्नख्यम् रघुमम ॥९४॥  
 वनस्या वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तौ पुनः । उद तच्छ्रेयं न मेतन्म्यं कारणं किं ममातिकम् ॥९५॥  
 यथा वृक्ष तया सर्वे राघवाय निवर्तितम् । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह कः माभी तत्र कर्मणि ॥९६॥  
 सा प्राह पुत्रपुत्रोऽस्ति दृष्टः स नेन्युवाच ह । तदा शमः सोतया स फलहीनः स कीवटः ॥९७॥  
 मय मे वचनाञ्चूत यतो मिथ्या त्वयेरितम् । पुनः सा राघव प्राह फलगुः साक्ष्यं प्रदास्यति ॥९८॥  
 साऽपि रामेण पृष्टाऽथ नेन्युवाच भयानुरा । साऽपि शमा रामस्तस्याऽश्वोमुखी मम वाक्यतः ॥९९॥  
 बहु यस्मान्मृषा चोक्तं त्वया मन्येपि कथये । ततः सोता पुनः प्राह साक्ष्यं मेऽत्र निवापिनः ॥१००॥  
 दास्यंति मे द्विजाः सर्वे तदा मन्निकटस्थिताः । तेषु पृष्टा राघवेण नेन्युवर्धयविह्वलाः ॥१०१॥  
 दद्याः साक्ष्यं नहिं तामः शपे नम्रु प्रदास्यति । निवारिता कथमेयं तदा सीतेने चिन्त्यते ॥१०२॥  
 तौस्तदा जानकी शपे ददौ तीर्थनिवासिनः । भुम्भाकं नात्र मदृष्टिः कदा द्रव्यैर्मविष्यति ॥१०३॥

दिखायी देती हैं । उन्होंने कुशा बिछाकर उसपर तिल धूप मधुआदिसे युक्त सक्नुका पिण्ड रखना प्रारम्भ किया । रामने जब दाहिने हाथसे पिण्ड लेकर अमानकी ओर देखा तो उन्हें अपने पिताका हाथ नहीं बीछा । वहकि बाह्यण भी आश्रयान्वित होकर रामसे कहने लगे—॥ ८८-८९ ॥ यहाँ सब लोगोंके पितरोंके दाहिने हाथ पिण्ड लनके लिये निकलते हैं, पर आपक पिताका हाथ क्यों नहीं निकला । इसका कारण समझमें नहीं आता ॥ ९० ॥ तब रामने विस्मित होकर लक्ष्मणसे पूछा—हे लक्ष्मण ! तुम बुद्धिमान् हो, क्या कुछ इसका कारण जानते हो ? ॥ ९१ ॥ लक्ष्मणने कहा—हो माई ! जब हम लोग गंगे द्वारा गये थे, तब तो इन्दुदीपकके पिसानका पिण्डदान दते समय अपने पिताका हाथ दिखाई दिया था, वह यहाँ नहीं दिखाई देता । इस बातका हमको भी आश्चर्य है, आप इसका कारण जानकीसे तो पूछें ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ यह सुनकर जानकीने पचकड़ा उठ्यो और बोली—हे रघुनाथ ! आप खभा कर । मुझसे कुछ अपराध हो गया है । ९४ ॥ वह सुनकर रामने कहा कि घराने तथा दरजनकी कोई बात नहीं है । ओ हाँ, सौ साफ-साफ कहो ॥ ९५ ॥ तब जानकीने जो घटना बतली थी, सो स्पष्ट कह सुनायी । यह सुनकर रामने गुम्फा-इस बातका शाखी कौन है कि हमारे पिताने मुझसे हाथसे पिण्डदान ग्रहण किया है ? ॥ ९६ ॥ सीताने अपना बवाह पासके आश्रवृक्षकी बताया, परन्तु उससे पूछनेपर वह इनकार कर गया । तब सीताने उसका शाप दिया कि अरे दुष्ट ! तू झूठ बोलता है इसलिये मगघटेशम तू फलशून्य होकर रहेगा ॥ तब सीताने कलगुनदीको अपना साखी बढाया ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ परन्तु रामके पूछनेपर वह भी जमसे इन्कार कर गयी । इनपर सीताने उसको भी शाप दिया कि तू सत्य बातमें भी झूठ बाला है, इसलिये तू मघामुखी (अन्तर्मुखी) होकर अश्रेणी । तब सीताने कहा कि मेरी साखी गहक रहनेवासे उस समय मेरे पास खड़े बाह्यण देने । उन्होंने भी बिल्कुल होकर रामके पूछनेपर ना कर दिया ॥ ९९ १०१ ॥ वे लोग विचारने लगे कि “यदि ऐसा ना हो तुम लोगोंने सीताकी उस समय पिण्ड देनेसे रोका क्यों नहीं । ऐसा कहकर कही सत्य कहनेपर राम हमसे शाप दे दे” सीताने उसको भी शाप दिया कि आखो, तुमछोक इन्धते कभी लूट न होकर आरेखने किरने । तब जानकीने

द्रव्यार्थं सकलान् देवान् ब्रह्मणं दीनरूपिणः । ततः सा जानकी प्राह ओतुःसाक्ष्यं प्रदास्यति ॥ १०४ ॥  
 सोऽपि पृष्टो नेत्युवाच रामं सीता सशप ताम् । पुच्छाम स्वपुरः कृत्वा पत्रा मन्त्रिकदोऽपि तन् ॥ १०५ ॥  
 मृपेरितं यतस्तस्मात्पुच्छे षम्पुश्यतां भव । ततः सा जानकी प्राह गीर्मे साक्ष्यं प्रदास्यति ॥ १०६ ॥  
 सोऽपि पृष्टा नेत्युवाच रामं सीता सशप ताम् । अपवित्रा भवास्ये त्वं यम वाक्येन धेनुके ॥ १०७ ॥  
 ततः सीताश्चत्थपुच्छं साक्ष्यार्थं प्राह राघवम् । स पृष्टो नेत्युवाचाश्च सं सीताऽप्यावपुच्छा ॥ १०८ ॥  
 भवाचलदलरुचि हि मद्रिराऽयन्यपादप । पुनः सीता पक्षिं प्राह यम मार्गी प्रमाकरः ॥ १०९ ॥  
 स पृष्टः प्राह सुध्यं हि सुष्टिर्जाता पितुम्नव । एतस्मिन्नतरे तत्र विमानेनार्कवर्चसा ॥ ११० ॥  
 राजा दशम्यो रामभाग्यपालिष्य वै पदम् ॥

प्राह स्वया तारितोऽहं नरकादपिदुस्तरात् । मेधिन्याः पिण्डदानेन जाता मे तृप्तिरुचमा ॥ १११ ॥  
 तवापि लोकशिषार्थं गवाभ्राद्धं त्वमाचर । पितरं प्राह रामोऽपि किमर्थं हि त्वयाऽत्र वै ॥ ११२ ॥  
 स्वया सिक्तापिण्ड सगृहीतो वदस्व माम् । स प्राहात्र गवायां तु बहुविधानि राघव ॥ ११३ ॥  
 मरुं हि आद्रुममये कृता तस्मात्परा भवा । इति रामं समाभाष्य गृहीत्वा राघवादपि ॥ ११४ ॥  
 किञ्चित्कन्यं विमानेन यया दयश्चस्तदा । ततो गमः प्रेतगिरौ पिण्डदान विधाय च ॥ ११५ ॥  
 गन्वा प्रेतशिनायां च दत्त्वा काकवलि ततः धर्माग्न्य ततो गत्वा कुर्वकोनपदेषु हि ॥ ११६ ॥  
 सक्तुना च तिमार्ग्यश्च पायमैश्च सशर्करैः । पृथग्वै पिण्डदानानि वटभ्राद्धं विधाय च ॥ ११७ ॥  
 अष्टमीर्धौ ततः कृत्वा ततः मध्यां स्थलत्रये कृत्वा यथाविधानेन दत्त्वा दानान्यनेकराः ॥ ११८ ॥  
 गदाधरं ततः पूज्य महाविभनपूर्नकम् । सेनयामाम तोयंश्च नूतनृक्षं सर्वाकटम् ॥ ११९ ॥

एको मुनिः कुमकुशाग्रहस्तभृतस्य यूने मलिनं दधार ।

आम्रश्च मिक्तः पितरश्च नृमा एका क्रिया द्वयर्थकरो प्रपिदा ॥ १२० ॥

चितारकी साजी बेनेके लिए कहा । उसने भी पूछनेपर ना कह दिया । सीताने उसे भी जाप देने हुए कहा कि उस समय मेरे समझा पूछ किसे खड़े रहनेपर भी आ मुन ना कह दिया है । इसलिए जा नही पंछ भक्षुन हो जायगी । तब जानकीजीने गौका साक्षी दत्तेर लिए कहा । १०२-१०६ ॥ रामके पूछनेपर उसने भी ना कह दिया । सीताने कहा हे धनु । पर शपसे तेरा मुख अरबित हो जायगा । १०७ ॥ पश्चात् सीताने पीपलके वृक्षकी साती दनक लिए रामके मधुमुख उपस्थित किया । जिसका नाम अश्वत्थ था, परन्तु जब वह भी इन्कार कर गया तो सीताने जाप करने भाव दिया कि तू भाजसे जन्मलदल हो जायगा । तब क्षणमे सीताने कहा कि मूर्ख मेरी साक्षा दम । रामके पूछनेपर मूने कहा कि यह बात सत्य है । इस कायसे आदक पिता अवश्य मनुष्ट हुए है । इतन्म सूयक सनात कर्त्तमान विमानपर खडा होकर स्वयं महाराज दशम्य नहीं भा पड़वे । रामका दृष्ट आर्चिजन करके ने जाते हे राम ! तुमने यशार्थम नृमको पार दिया है । मेबिनीके पिण्डदानसे हम बड़ो ही नृत्ति मिली है ॥ १०८-१११ ॥ तो भी लोकशिषाके लिए नृम मरुश्च द्रु अवश्य करो । रामने पिताम पूछा कि आगन पढ़ इतनी जल्दी शालुकपिड़ क्यों ग्रहण किया ? इसका क्या कारण है ? दशरधने कहा हे राम ! गगन पितृदानके समय ब्रह्म बड़ निम्न उपस्थित होत है । इसीलिए मैने स्वरा की थी । इतना कहकर राजा दशम्य रामके हाथमे भी कुछ द्रव्य । मित्र-अम्र ग्रहण करके विमान द्वारद वहाँसे चले गये । पश्चात् रामने प्रेतपर्वनपर पिण्डदान दिया ॥ ११२-११५ ॥ वहाँसे वे प्रेतशिना मये । वहाँ काकवलि देनेके बाद पर्वनवन मये । वहाँ एकानपद मयानमे तिल-पावस तथा शकरारो मुक्त सक्तुके पृषक्-पृषक् करके अनेक विष्ट दिये और वटभ्राद्धवा भी सम्पदन किया ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ तदनन्तर अष्टमीयो की । तीनों नियतस्थानोंमे सम्ध्यावन्दन करनक बाद विधिबन् बहुमसे दान दिये ॥ ११८ ॥ अनेक मिश्रमोसे गदाधरकी पूजा की और मधवरेणस्य आम्रनृमका जलसे सेवन किया ॥ ११९ ॥ कहा भी है किसी

कृत्वा विष्णुपदे पूजां विमानागोपणादिभिः । सावत्रयमनिक्रम्य यथायां रघुनन्दनः ॥१२१॥  
 विमानेन ययौ शार्चां दिशः संतोषयन् जनान् । कल्गुनद्याम्नटे पूर्वं विमानं यत्र मस्थितम् ॥१२२॥  
 तत्र रामगयानाम्ना भूमिभिर्गुरुतार्यन् । रामेश्वरी रामतीर्थं वनेने तत्र पावनम् ॥१२३॥  
 रामोऽपि कल्गुनद्याश्च गङ्गायाः संगमं ययौ । गयावहिः कल्गुरेव शेका सा तु महानदी ॥१२४॥  
 ततो ययौ दृढरूप नूतनाश्रमपुनमम् । यस्मिन्नुदम्बहा गङ्गा जाह्नवी शोषनाशिनी ॥१२५॥  
 ततोऽग्रं ज्ञान्दी नाम्ना भूमौ दिव्यं प्रदाम्यते । तस्या दिव्यरुद्धे रामतीर्थपादौ चक्रार सः ॥१२६॥  
 ययौ च पृथक् तत्र सति तीर्थानि सर्वतः । मातया च कुत तत्र स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥१२७॥  
 ज्ञान्द्या भविष्यत्यग्रे मतीर्थं चेति मविस्तरम् । यदा भूमौ यदास्थामि दिश्य तार्थं तदाऽस्तु मे ॥१२८॥  
 रामस्वनेन विमानेन गतश्चोत्तरादिर्नृम् । ज्ञान्द्या पुरो तथा गङ्गा यत्रास्ति परमार्थदा ॥१२९॥  
 ययौ यत्र गङ्गायामस्ति विन्वेश्वरोऽपि च । ततः शर्वजनायेश नन्दा रावणनिमित्तम् ॥१३०॥  
 ततः क्षुण्णविमानेन पर्यन्तानास्थलानि सः । ययौ भागीरथीमस्यायत्र भिन्ना मिता पुनः ॥१३१॥  
 प्रयागाद्यात्रनक्षत्रमान देजे रघूदहः । ततो गङ्गा शिखमशोकमहम पुष्पकेन सा ॥१३२॥  
 गत्वा स्नात्वा ततो यत्र कालिदीर्गगताऽग्रहे । तत्र गत्वा रघुशुस्ततः पर्यन् स्थलानि सः ॥१३३॥  
 नानापुण्यानि तीर्थानि दृष्ट्वा श्रीगुरुतेजसम् । पूर्वमागन्तीरस्थं दृष्ट्वा दानान्पुनरेकशः ॥१३४॥  
 ततः श्रुतेः पुष्पकेन दृष्ट्वा नानाविधान् सुगन् । दृष्ट्वा नाना नदीः सर्वा नानादेशान्विलस्य च ॥१३५॥  
 गोदातीरे स्वनाम्ना तु कृत्वा गिरिमनुत्तमम् । सप्तगोदावरीमेदमंगमेषु महोदधी ॥१३६॥

एक मुनिने तुषागुन् हाथ जल्का पहा लेकर आसुपृथक मूलमे जल दिया । उसमे आसुपृथक मित्र गया और  
 गिरा भी दृष्ट हो गये । इसोके आधारपर 'एक त्रिया इषयं वती' का कहावत प्रचलित हुई ॥ १२० ॥  
 इसा प्रकार प्रतिदत्त विष्णुपदकी पूजा करती और विमानपर बैठकर घूमते फिरते हुए रामन गयामे एक  
 दर्श करातीत किया ॥ १२१ ॥ पञ्चान् सब लोकोको आभासन दे तथा विमानपर सवार होकर रघुनन्दन पूर्वकी  
 ओर चल दिये । कल्गुनदीके किनार जहाँ रामका विमान रुका हुआ था । १२२ ॥ उस जगहको वहाँके विज  
 गम्गया कहन लग । पवित्र रामेश्वर नामका रामतीर्थ अभी भी बह' विद्यमान है ॥ १२३ ॥ राम वहाँमे चल  
 पर पङ्गु तथा गंगाके सङ्गमपर आये । गयाके बाहुगे घावमे पङ्गु नदी है । उसका विस्तार बहुत बड़ा  
 है । १२४ ॥ बादमे मुपुल स्थिके वर्जित आश्रमका ओर गये । जहाँपर पाप हरण करनेवाला गंगा  
 उत्तरवाहिनी होकर बहता है ॥ १२५ ॥ आगे चलकर एक जगह जहाँ कि उहाँ विश्वास था कि यहाँ जानकी  
 भूमिमे प्रवेश करके दिव्य रूप धारण करती, अपने नामका एक उत्तम तीर्थ स्थापित किया ॥ १२६ ॥ उसके  
 बाद रुद्रमण आदि आहवाके नामसे भी जन्म तीर्थ स्थापित दिये । लीनाने भी वहाँ, यह विचारकर  
 कि भविष्यमे सर नामका यहाँ बड़ा भारी तीर्थ होगा एक आन नामका तीर्थ स्थापित किया । उन्होंने यह  
 विचार कि जब मे दिव्य रूप धारण करेगी, सब यहाँ दिव्य तीर्थ होगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ पञ्चान् राम  
 विमानमे बैठकर उस जगह गये, जहाँ कि बरपाणकारिणी उत्तरवाहिनी नामकी गंगा तथा एक नगरी विद्यमान  
 थी । १२९ ॥ और जहाँपर शोच गंगामे विन्वेश्वर नामका पवत खड़ा है । वहाँसे आगे चलकर शारामने  
 नखण ज्ञान स्थापित वैद्यनाथजीका दर्शन किया ॥ १३० ॥ तदनन्तर विमानमे बैठकर अनेक बनाकी शाभा  
 दखन हुए वहाँ गये, जहाँमे कि ज्येजजल पुष्प गंगा बीचो बीचसे दो भागमे बँट गयो है ॥ १३१ ॥ वह स्थान  
 प्रयागसे ली योजनका दूरापर था । पञ्चान् राम विमानके द्वारा वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कि गंगा सहजमुखी हो  
 कर समुद्रमे मिली है ॥ १३२ ॥ उस जगह गंगा-मनुदमङ्गमसे स्नान करनेके बाद कालिन्दी-समुद्रके  
 सङ्गममे स्नात किया । वहाँपर रामन अनक मनोहर पुष्पित बनोपवन देखे, अनेक तीर्थोंके दर्शन किये  
 और साथ ही पूर्वी सागरके तटपर स्थित जगदान् परमपुरुषोत्तमके भी दर्शन किये तथा अनेक दान दिये  
 ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ वहाँमे चलकर अनेक देवताओंके दर्शन करते हुए अनेक लड़िकोंको साथकर गोदावरीके

स्नान्वा दक्षिणमार्गेण ततो रामो ययौ पुनः । पूर्वदेशे नृपनिर्मितानिः पूजितोऽपि च ॥१३७॥  
गृहीत्वा स्वकर्त्रेभ्यस्तैः सहैव पुनैः शनैः । विमानेन मुखेनैव तीर्थान्यन्यानि सेवितुम् ॥१३८॥  
श्रीरामो याम्यदित्रानि दक्षिणार्धमुखो ययौ । एवं प्रोक्त्वा पूर्वदेशयात्रां रामेण या कुता ॥१३९॥

इति श्रीमदनन्दरायामण्येन चक्रकाण्डे पूर्वदेशयात्रायाः नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

## सप्तमः सर्गः

( श्रीरामके द्वारा दक्षिणभारतकी तीर्थयात्रा )

श्रीरामदास उवाच

ततो रामः समुल्लस्य मनस्यनीध मनोरमम् । तान्तां महानदीं कृष्णां पश्यन् पुण्यस्थलानिमः ॥ १ ॥  
ततो ययौ नार्गमिह रामः पानकनामकम् । कृष्णाऽऽदिः सगमे स्नान्वा दत्त्वा दानं निः ॥ २ ॥  
पश्यन्नातास्यलज्जयेव ययौ शशङ्कया । स्नान्वा स नोऽप्यद्वापि दृष्ट्वा श्रीमन्महोदधेनम् ॥ ३ ॥  
तत्रैव कृष्णायां जेगा मीनगङ्गेरि नमः । श्रीलङ्कायां दृष्ट्वा पुनर्जन्मद्वारकम् ॥ ४ ॥  
शिवरेखरस्य शिखरादुन्नतकुण्डे विमलं च भीमकुण्डे ततः स्नान्वा नद्या निवृत्तिनगरे ॥ ५ ॥  
तुङ्गभद्राश्रममेऽपि महानदीमग्रेषु विमलं भवनाश्रितं ततो दृष्ट्वा सहस्रवल् ॥ ६ ॥  
नारसिंह ततो गन्वा कुन्ता स्वध्वजदक्षिणाः । गन्वा पुण्यगिरीं तत्र विनाकीर्णगङ्गायां च ॥ ७ ॥  
पश्यन् पुण्यस्थलानीशान् दृष्ट्वा पद्मशय्यम । किष्किषायां ततो गन्वा सूर्याश्रयः सूर्याश्रितः ॥ ८ ॥  
सूर्याश्रयान्नरेण विमानेन विहायवा । प्रवर्षणगिरौ स्नान्वा सुदीर्घां प्रदत्तवन् ॥ ९ ॥  
वैदेहीं कौतुकाट्टामः किञ्चिन्कुत्वा विमाननम् । द्वितीये भीमकुण्डेऽप्यस्नान्वा गन्वा पद्माननम् ॥ १० ॥  
स्नान्वाऽप्यस्यकुण्डमध्ये पश्यन्तीर्थान्यनेकशः । कनकगिरिस्थं शम्भुं गन्वा सपृथग् राघवः ॥ ११ ॥

किंवारे आये । वहाँ उन्होंने अपने नामवा एक उत्तम पर्यटन नियत किया । बादमें सगरके साथ गङ्गातीरे सङ्गममें स्नान किया । पश्चात् वे दक्षिणमार्गमें पूर्वका ओर आ गये । वहाँ अन्य राजाओंका पुजित नाम सम्मानित होकर और उनसे कर लत हुए उनको भी साथ लेकर छोटे छोटे विमानक द्वारा अन्यान्य तीर्थोंको देखनेकी इच्छासे दक्षिण भारतकी ओर बने । इस प्रकार रामकी पूर्वप्रदेशकी यात्रा समाप्त हुई ॥१३५-१३९॥  
इति श्रीमदनन्दरायामण्येन चक्रकाण्डे ज्याम्बुनाभायागेकायां पूर्वदेशयात्रावर्णने नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—वहाँसे राम मनोहर मन्वस्य र्व हात हुए महानदी तथा कृष्णाका पार करके अन्याय पवित्र स्थानोंका देखत हुए पानक नामहतीथ गये । पश्चात् कृष्णा तथा समुद्रके सङ्गममें स्नान करके उन्होंने अनेक दान पुण्य किये ॥ १ ॥ २ ॥ वहाँसे विविध वनोंके सौन्दर्य देखते हुए राम श्रीलङ्का पर्वतपर पधार । वहाँ माल्यगामे स्नान करके श्रीमन्महोदधके दर्शन किये ॥ ३ ॥ वहाँपर कृष्णा नदीका ही नाम नीलगात्र पड़ गया है । पुनर्जन्मके निवारक श्रीलङ्काशिवरको देखकर शिवरेखरके शिखरसे निकले हुए ब्रह्मकुण्डमें स्नान किया । इसके अनिरुक्त भीमकुण्ड, निवृत्तिसङ्गम, तुङ्गभद्राके सङ्गम, महानदीके सरोवर और भवनाश्रितमें स्नान किया । वहाँ महाप्रतापी नरसिंहजीका दर्शन किया तथा स्तम्भकी प्रदक्षिणा की । वहाँसे श्रीम पुण्यगिरिपर आकर विनाकिरी नदीमें स्नान किया ॥ ४-७ ॥ बादमें अनेक आश्रमों तथा विविध पुण्यवनोंको देखते हुए पद्मशय्या और वहाँसे किष्किषा गये । वहाँ सुग्रीव आदिन रामका विविधन् पूजन-साकार किया ॥ ८ ॥ वहाँसे सुग्रीव आदि वानरोंका साथ ले तथा विमानपर आरुढ़ होकर आकाश-मार्गसे प्रवर्षण गिरिपर पचारे । वहाँ जानकीको अपना निवासगुफा दिखताकर आराम कुछ हुई । फिर भीमकुण्डमें स्नान करके ब्रह्मान्न कार्तिकेय स्वामीका दर्शन करतक लिए गये ॥ ९ ॥ १० ॥ अगस्त्यकुण्डमें

धीमदः कवा दृष्टुः मन्त्राद्विदेहः पुनः परिदा ज तं नन्वा तृमिपननमभियन्तम् ॥१२॥  
 स्नानं काभ्यधारायां नाथप्राद्वि राय च । ततः शेषचरं गन्वा स्नान्वा पुष्करिणीजने ॥१३॥  
 यद्दृष्टुं पूर्वादिना पंचनीशः रितात्त म । तृणैर्वृषद्वयनाभयं श्रीकालहस्तिनम् ॥१४॥  
 पूजाय च यदीकार्त्ता गमः शिवद्वाराय च । एकाग्रश्च पश्य सर्वतोर्थं विनाश च ॥१५॥  
 कामक्षामयिका गन्वा स्नान्वा शेषाजीजने । ततः वरदराजं च परितोषे नतो ययौ ॥१६॥  
 पश्चात्पुनः पश्चिमां पश्चिमां पश्य नीयता पुष्पकं नतः शीघ्रं क्षीरनद्यां विगाढ च ॥१७॥  
 नन्वा त्रिशिखम तत्र नगेशादराजं च य । मुक्तिर्नमस्तदाश्च नन्वा गन्वा चलयम् ॥१८॥  
 मणिमुक्तानर्द्धनारे वृद्धाचलमगानतः वृद्धाचलेन संपृच्य वटपालं नता ययौ ॥१९॥  
 वटपालेश्वरं पश्य ततः श्रीमुष्टिमस्थानम् । तत्र यत्पराद च संपृच्य जगदीश्वरम् ॥२०॥  
 चिदम्बरमध्यागच्छद्गङ्गादेव मुक्तिदम् । लिखिता पत्रं शृणुय शिलायां ताण्डशकुनिः ॥२१॥  
 काशीं च तमस्मिन्त्यां गिरिक्षेदं नतो ययौ । नन्वा अश्वपूरेण च वैद्यनाथं प्रणम्य सः ॥२२॥  
 श्वेताग्र्यं नतो गन्वा शंखमुत्तरां विगाद्य च । छायावनं नतो दृष्ट्वा ययौ गौरीश्वरकम् ॥२३॥  
 वेदाग्र्यं नतो गन्वा नन्वा मध्याजनेन शिवम् । स्नान्वाऽथ वृद्धकावेरीं कुवकोणं विलोक्य च ॥२४॥  
 श्रीनिवासं नतो दृष्ट्वा दृष्ट्वा वृन्दावनं शुभम् । मार्गनाथं नतो दृष्ट्वा भीष्मं च ददर्श सः ॥२५॥  
 प्रयागमाध्वं गन्वा गन्वाऽऽम्रशिखः स्थिरम् । द्वितीयां कक्षनीलां च गन्वाऽथ कमलालयम् ॥२६॥  
 त्र्यम्बकं समभ्यर्च्य गयार्वाधे विगाद्य च । दक्षिणद्वारकायां च श्रीगोविन्दं प्रणम्य सः ॥२७॥  
 जैपालस्य पुरं गन्वा गन्वा चागम्येश्वरम् । त्रिदनेश्वरं नमस्कृत्य पुनः सध्यापितं स्वयम् ॥२८॥  
 स्नान्वा वै नवरात्रौ ययौ देव्याश्च वननम् । गन्वा वेतालनीये वै तीर्थीणि सागरस्थ च ॥२९॥

स्नान करके अनेक नये देखे । कनकाशिखर विशालमाने गङ्गाका दर्शन करके उत्सवा पूजा की ॥ १२ ॥ बादमें धीमदका दर्शन करके पश्चिमां प्रसिद्ध अक्षवेदनाको नमस्कार किया । तदनन्तर तृमिपनन ( तिरुपति नगर ) में स्थित गौविन्दराजको दर्शन किया ॥ १३ ॥ वहाँ कपिलधाराय स्नान करके त्र्यम्बकाद्वि किया । वहाँसे शेषाचलपर जाकर पुष्करिणीक जलमें स्नान किया ॥ १४ ॥ वेदुश्वर भगवानको पूजा-अर्चा करनेके बाद पश्चतोर्ध्व स्नान विगाह प्राप्त मुक्तमूलरुकीके तटपर विराजमान भाकालहस्तीश्वरका पूजन करके राम शिव तथा त्रिपुको शिव शिवके जो और विष्णुपूजा गये । वहाँ एकाग्रेश्वरकी पूजा करके सभी तीर्थोंमें भगवान् को किया ॥ १५ ॥ तब कामाक्षी देवीको नमस्कार करके वेणुदत्ताक शिव जन्म स्नान किया । वहाँसे आगे वरदराजका दर्शन करके पश्चिमाय गये ॥ १६ ॥ वहाँ पुनः तथा विद्यानाथ नामक दो पक्षियोंकी पूजा करके शीतलक साथ विमानपर बैठकर शीघ्र ही क्षारनदीपर पधारे, वहाँ स्नान कर और त्रिविक्रमका दर्शन करके अश्वपूरे गये । स्मरणभारसे मुक्ति देनेवाले अकलाशकको नमस्कार करके मणिमुक्त । नदीके तटपर स्थित वृद्धाचलपर गये । वहाँ वृद्धाचलेश्वरकी पूजा करके वटपाल गये ॥ १७-१८ ॥ वहाँ वटपालेश्वरकी पूजा करके मुक्ति-लार्थ गये । वहाँ गजेश्वरकी पूजा करके दर्शनभारसे निर्वाण भद देनेवाले चिदम्बरेश्वरके दर्शनार्थ पधारे । वहाँपर शिलायें जलनाथकी लिखी हुई ताण्डवचित्रावली देखी ॥ २० ॥ २१ ॥ पछत्तु कावेरीको पार करके सिद्धोज गये । बादमें अश्वपूरेण और वैद्यनाथकी प्रणाम करके भ्रमण श्वेतारण्य पधारे वहाँ कालमुक्तीमें स्नान किया । वहाँसे छायावन हालत गौरीश्वर गये । वहाँसे वेदारण्य जाकर मध्याहुन शिवका दर्शन किया । पछात्तु वृद्धकावेरीय स्नान करके रुक्मकागन देखा । २२-२४ ॥ वहाँसे आगे श्रीनिवासका दर्शन करके चिन्ताकर्षक वृन्दावनकी आर गये । तदनन्तर मार्गनाथका दर्शन करके अचलके दर्शनार्थ आये गये ॥ २५ ॥ वहाँ प्रयागमें वेणीश्वरका दर्शन करके जाऊनिगम राजक स्थानपर गये । वहाँकी भेंटमें आकाशके समान लीलाकमलालय देखा ॥ २६ ॥ बादमें देवार्थेश्वरकी पूजा करके गयार्वाधमें स्नान किया और दक्षिण द्वारका और श्रीगोविन्दकी प्रणाम किया ॥ २७ ॥ वहाँसे जैपाल नामक नगरमें आकर



स स्नात्वा भैरवे तीर्थे प्रार्थकांनस्थित निजम् । अवरुह्य विमानाद्यन्वद्वयौ भवैर्जनैः सह ॥३०॥  
 गन्वा लक्ष्मणकुण्डेऽथ स्वरुडेऽपि विगाह्य च । अग्नितोषे ततः स्नात्वा धनुष्कोट्यां विगाह्य च ॥३१॥  
 स्नात्वा जटापुनीर्थे हि गन्वा त गधमादनम् आसी नत्वा विभवाय पुगाऽऽर्चनं हनूयता ॥३२॥  
 रामेश्वरं ततो नत्वा कृत्वा गंगामिषेचनम् काचरुमादिकं न्यक्त्वा धनुष्कोट्यां रघूचमः ॥३३॥  
 कोटितीर्थं धनुष्कोट्यां चकार कृपमुनमम् । क्षेत्रपापप्रज्ञांनर्थं दृष्ट्वा श्रीसेतुमाधवम् ॥३४॥  
 नानादानादिकं कृत्वा सममेकं विलिख्य च बाहनाकटदेवानां महोन्माहान्विधाय च ॥३५॥  
 क्षेत्रपापप्रज्ञांनर्थं कोटितीर्थं विगाह्य च । नत्वा द्वागन्धगगन नीन्वीथ जलधेः पुनः ॥३६॥  
 विहायस्त विमानेन स दर्भशयनं ययौ । स्नात्वा निक्षेपिकान्तोषेऽन्नाम्रपर्वच्छिखरगमे ॥३७॥  
 गन्वा स्नात्वा रामचंद्रो दत्तो दानान्पनेकशः स्नात्वाऽऽध्वेन्यग्मस्थं तं स्कन्दं मयज्य राघवः ॥३८॥  
 ताम्रपर्णीतटेनैव पश्यन्पुष्पस्थलानि सः । नवरैकटनाथांश्चाकृत्वा सोतोद्रिमाययौ ॥३९॥  
 कन्याकुमारिकां दृष्ट्वा सिन्धुतीरनिवापिनीम् । प्रतीक्षतीं शीघ्रमार्गं विभ्रतीं मालिकां करे ॥४०॥  
 तामाह रघुवीरश्च वरं वरय सुव्रते । सा प्राद राघवं नत्वा चिगमस्मि वनस्थिता ॥४१॥  
 अहं बुभुक्षुता पित्रा सुरेद्राथ विनिश्चिताः । विशदर्थं यमानान् सुरेद्रो योजन स्थितः ॥४२॥  
 तव पाशोचमं भूत्वा यया विते विनिश्चितम् । आगमिष्यसि रामोऽत्र परपिथ्याम्बह तदा ॥४३॥  
 पित्रा मन्निष्यसे शान्त्वा सुरेद्रो विनिश्चितः । योऽपि मन्सेद्विषास्तु योजनेऽप्यापि वर्तते ॥४४॥  
 विवाहोपकृष्णादि मन्मात्रा यत्कृतं पुरा । पित्रा तत्सागरे क्षिप्तं कोषाविष्टं राघव ॥४५॥

अमरेश्वरका वर्चन किया । पश्चात् रामचन्द्रने पूर्वसमरमे कपन द्वारा स्थापित विष्णेश्वरका दर्शन किया ॥ ३८ ॥ वहाँके लक्ष्मणानगरमे स्नान करके दक्ष नगर गये । फिर वैनायकीर्थमे स्नान करके सागरके जगह जल-प्रवाहको पार करके ॥ ३९ ॥ एकान्तमे स्थित भैरवतीर्थ गये । वहाँसे पैदल चलने हुए सबक साथ साथे गये । जाने जाकर लक्ष्मणकुण्ड, रामकुण्ड, अग्नितोष, धनुष्कोटिसिंधु और जटापुनीर्थमे स्नान किया । वहाँके गधमादन पर्वतपर गये । वहाँ पूर्वसमरमे हनुमानका क द्वारा स्थापित हुए विभवायका दर्शन किया ॥ ३०-३२ ॥ पश्चात् रामेश्वरको नमस्कार करके उन्हु पक्ष जलसे स्नान कराया । बभ्रुव रामन नामो काचके एकोको धनुष्कोटि तीर्थमे फेंक दिया ॥ ३३ ॥ उस धनुष्कोटि तीर्थमे रामन काटितर्थ नामका एक कूप खुदवाया । बादमे क्षेत्रपापकी शक्तिके लिए श्रीसेतुबंध माधवका दर्शन किया ॥ ३४ ॥ वहाँपर जनक दानपुण्य करते हुए रामने एक माय निवास किया । जनक बाहनाम्ब देवताओका बहुन्मव भी वही मन्मात्रा ॥ ३५ ॥ पश्चात् पुनः क्षेत्रपापकी शक्तिके लिए कोटितीर्थमे स्नान किया । द्वागन्धाल वननाथको नमस्कार कर तथा विमानके द्वारा समुद्र पार करके दर्भशयन नामके तीर्थको गये वहाँ निक्षेपिकान्त जलमे और ताम्रपर्णी तथा सागरके संगममे स्नान किया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ भी जनक दान दिदे । पश्चात् रामने समुद्रके तटपर विराजमान कालिकेय स्वामीको पूजा की ॥ ३८ ॥ बादमे ताम्रपर्णीके किनारे किनारे राम जनक पवित्र स्थानको देखते तथा नवरैकटेश्वरीकी पूजा करते हुए तांताद्रि गये ॥ ३९ ॥ पश्चात् सिन्धुतीर-निवासीनो कन्याकुमारिके दर्शन दिये, जो कि हाथम माला लिये उन्हीं ( राम ) की राह देख रही थीं ॥ ४० ॥ राजकीये उससे कहा हे सुव्रते ! वर मांगो सब उसने रामको नमस्कार करके कहा हे राघव ! मे बहुत दिनाये सब वारण करके आपकी प्रतीक्षामे यहाँ लड़ी हूँ ॥ ४१ ॥ मे एक मुनिकन्या हूँ । मेरे पिताने मुझे सुरेन्द्रकी देना निश्चित किया और उनको विवाहके लिए बुलाया भी था । जो कि अब भी यहाँसे एक योजनकी दूरीपर विद्यमान है ॥ ४२ ॥ परन्तु मेने जब आपकी तीर्थयात्राका समाचार सुना तो मनमे यह निश्चय कर लिया कि राम जब यहाँ दाशके निमित्त आयेमे, तब मे उन्हींसे विवाह करुंगी ॥ ४३ ॥ पिताने जब मेरा यह हृद निश्चय देखा तो सुरेन्द्रको छोटा दिया । वह मेरे लिए दुःखित होकर एक योजनपर जब भी बका है ॥ ४४ ॥ हे राघव ! मेरी माताने विवाहके लिए जो सामग्री एकत्रित की थी, वह सब मेरे

अत्रापि दृश्यते पश्य तरुर्नैतिर्गतं वृद्धिः । अथ स्वया तारिनाऽह मां दार्मीं कर्तुमर्हसि ॥४६॥  
 जन्वा मय्या ह्यभिप्राय तावाह रघुनन्दनः । एकपर्णाश्वर्न मेऽपि ज्ञेयमन्यसि कुमारिके ॥४७॥  
 अथ कृष्णावतारं स्वं भक्त मां नात्र मयायः । तद्रामवचनादेव यमस्य नियमैरपि ॥४८॥  
 यावद्वापः स्थिता भूम्या तावद्धन्वा कलेवरम् । तशब्देन दहाने जायवती जनिष्यति ॥४९॥  
 जायवतीति नान्ता सा कृष्णपर्णा भविष्यति । रामो ययौ सुतेन्द्र च पयोऽर्णी सविगद्व मः ॥५०॥  
 आद्यननं ततो गन्वा तास्रपर्णीतटे स्थितम् । विनिद्रितं क्षेपटुष्टे लक्ष्मीगुरुदसेवितम् ॥५१॥  
 ज्ञानव्या तास्रपर्णी मां स्वस्या पश्चिमव हिनी । अनन्तशयने गन्वा पयतीर्थ विगाद्य च ॥५२॥  
 जयतीर्थे मन्मथतया विगाद्य सीतया प्रभुः । ततो गन्वा विमानेन धर्माधर्मसरोवरे ॥५३॥  
 स्नान्वा जनादेन गन्वा पश्चिमे स्थितगोधमि । दर्शेऽथ र्धर्जिमाया च गंगाधराब्धिगमम ॥५४॥  
 स्नान्वा जनादेन पूज्य नारीगान्धर्विलोक्य च । अथ श्रीरामचन्द्रं स न ययौ लोकशिक्षया ॥५५॥  
 परिदृश्य ततो रामो घृतमालां विगाद्य च । कृतमालां ततः स्नान्वा मिन्धुनद्यां विगाद्य च ॥५६॥  
 गन्वा गजेन्द्रमोक्ष च तास्रपर्णीतटस्थितम् । तस्रपर्णपुद्गे नान्ता गन्वा मैगलतीर्थकम् ॥५७॥  
 गन्वा चन्द्रकुमाररूप गिरि श्रीरघुनन्दनः । ततो ययौ विमानेन दृष्ट्वा दक्षिणकाशिकाद् ॥५८॥  
 नन्वा काशाविश्वनाथं चंपकाण्यमाथयौ । चित्रगंगाजले स्नान्वा नन्वा हरिहरौ शुभौ ॥५९॥  
 ततो रामो विमानेन मधुपुर्णां विवेद्य मः । वेगवती जले स्नान्वा नन्वा तं गौन्देश्वरम् ॥६०॥  
 मोनाक्षीमाचिका नन्वा वक्रट द्वावदे गिरौ । कावेगमध्यतिलपं श्रीरामशयनं ययौ ॥६१॥  
 मानुभूतेश्वरं नन्वा नन्वा तं जयुकेश्वरम् । रगनाथ ममभूतस्य हरिनारी ततो ययौ ॥६२॥

पिलान कष्ट शक्य मगृह्य ककवा ली ॥४५॥ सप्त मास ॥ अत्र भीमराज द्वारा नद्वर नद्वर कर लाहर आ  
 रहा है । हे प्रभा ! आज यहाँ आकर आगन मुजरा नाह विगाह है । अब आप इसी नद्वर मुज अपनी दामो  
 खना ॥४६॥ उसको अभिप्रायको जानकर रघुनन्दन समने कहा—हे कुमारिके ! हम जन्मम तो मित अविचल  
 एकपत्न्य वर धारण कर रहवा है ॥४७॥ अथ यत्रचन्द्र कृष्णावतारम मे त्व अवता प्राप्त हाऊगा । हममे  
 संकट गती है । रामचन्द्रके कथनानुसार जयलक र म गृहीतकर चहु, तबतक चहु यम निरभयकालमूर्त्यक  
 जीला रहा । तदनन्तर अपने तपोव्रतसे जमीर हूँ वरक जाऊँगा रहा । पत्र ह कर ज. पयवती न. मकी कृष्ण-  
 पत्नी वने । वहीमे राम नुरन्द मय तथा पयोऽर्णीमे स्नानकर त. स्रपर्णीर तटपर स्थित अ. लानन्त धेवर  
 पधार, जहाँ भगवान् विष्णु मयसा तथा गण्डत मेविन द्वारा शयनागार शयन कर रह थे ॥४८-४९॥  
 उनको दशन करके पश्चिमकाशिको त. साणीर मटपर गये । वही स्नान करके पयतीर्थपर अनन्तशयनके दर्श-  
 नाथ गये ॥५०॥ मन्ता महित भगवान् ज. दून र ज. कर करगमद. म स्नान किया और वारमे नदीमे विमान-  
 पर सवार होकर धर्माधर्मनामक सरोवरपर गये । वहाँ राम करके पश्चिम समुद्रतटपर विराजमान जनादेन-  
 के दर्शन किये । अमावस्या तथा पूर्णिमाको गंगा तीर समुद्रके सङ्गमपर स्नान करके इन्होंने जनादेन भगवान्-  
 की पूजा की । उनके आगे स्वं राज्य देखकर श्रीराम त्यागका शिक्षा दत्तक निर्मित आगे नहीं बढ़े । ५३-५४ ॥  
 वहाँसे लौटकर रामन भूतमाया, कृतमाया तथा मिन्धुनदम गान किया ॥५६॥ वर तास्रपर्णीके तटपर  
 स्थित गजेन्द्रमोक्ष गये । जहाँसे त. स्रपर्णी निकली है उस जाहू स्नान किया । वहाँसे मैराज तीर्थ गये ॥५७॥  
 वहाँसे चन्द्रकुमार पयतपर गये । पश्चात् विमानके द्वारा दक्षिणकाशा गये ॥५८॥ वहाँ विश्वनाथका  
 वसन करने चम्पकाण्य पधार । वहाँ चित्रगङ्गामे स्नान करके दशनमायसे कथ्यण करनेवाले हरिहरका  
 दर्शन किया ॥५९॥ वदमे गमने विमानपर बैठकर मधुपूरीमे प्रवेश किया । तदनन्तर वेगवतीके पवित्र  
 जलमे अवताहन करके जगदिवाह सौंदर्यकर दर्शन किया ॥६०॥ तदनन्तर सीतेश्वी देवीके दर्शन किये ।  
 श्रीविदगिरिपर वक्रटेश्वरके दर्शन किये और वावराक मण्यमे निवास करनेवाले श्रीरामशयनका दर्शन  
 किया ॥६१॥ पश्चात् मानुभूतेश्वरका दर्शन करके जयुकेश्वरके दर्शनार्थ पधार । वहाँसे रजनाप आकर

श्रीगणेशाय नमः स्नात्वा हैमवर्णं तले । शान्तिप्रार्थनं नमस्कृत्य रामनाथपुरं ययौ ॥ ६३ ॥  
 स्नत्वा कृष्णधारया मुनिसूक्तं प्रपूज्य च । उदयगिरौ ततः कृष्णं नत्वा लुंणाचमयौ ॥ ६४ ॥  
 तुमन्तदावष्टे भूमिगिरौ नत्वा तं शारदाय । कृष्णधार्या नत्वा गन्वा गन्वा कोटेश्वरं शिवम् ॥ ६५ ॥  
 मत्वा सूक्तदेवीं देवीं नत्वा मुद्देश्वरं हरम् । गुणवेश्वरं नत्वा नत्वा धारेश्वरं ततः ॥ ६६ ॥  
 गौरीश्वरं नमस्कृत्य नत्वा भगेश्वरं शिवम् । गोकर्णं च ततो गत्वा तं प्रणम्य महाबलम् ॥ ६७ ॥  
 हरीहरेश्वरं नत्वा पश्यन्महाबलमेकशः । तदग्रमग्नं मन्देन्द्रादौ नत्वा भीमेश्वरं ययौ ॥ ६८ ॥  
 धौलं महाबलं नत्वा ययौ कोलपुरं ततः । करवीरपुरं गत्वा कृष्णधार्यास्तु मगध ॥ ६९ ॥  
 स्नात्वा रामो विमानेन गदालक्ष्मीश्वरं ययौ । स्नात्वा घटप्रभाया तु पश्यन् पुण्यस्थलानि हि ॥ ७० ॥  
 महादेवं नमस्कृत्य नत्वा महागिरीश्वरम् । काशानन्दोदयं च चक्रवर्तं विनोदकं च ॥ ७१ ॥  
 नारायणोदये स्नत्वा नारसिंहं प्रपूज्य च । पांडुरंगं नमस्कृत्य चन्द्रवतीं शिवम् च ॥ ७२ ॥  
 ययौ भीमार्जुनं तु चदक्षां च ततो ययौ । ततः प्रेमपुरं गत्वा नत्वा सार्धं दशभिरम् ॥ ७३ ॥  
 नीलदुर्गां विलोकयथ नाना पश्यन्महाबलानि हि । तुलजापुरमस्थां तां देवीं नत्वा ययौ ततः ॥ ७४ ॥  
 माणिक्यामिकां दृष्ट्वा पश्यन्नीलां च शिवः । यार्गाधर्मं धामयर्गां दृष्ट्वा तत्राष्टमिथिताम् ॥ ७५ ॥  
 पंचनाथं नमस्कृत्य वज्रगणेशं ययौ । नगेशं च विलोकयथ विमानेन च शिवः ॥ ७६ ॥  
 स्नात्वा पूर्णबगमे तु गोदाया उतरे तटे । स्वनाम्नाश्च पुनः कृत्वा मुदलं श्रममाययौ ॥ ७७ ॥  
 बाणनाथं ततः स्नात्वा विष्णुकेनामुषगमे । गोदानाभावव्रतकेश्च स्नत्वा नत्वा त्रिविक्रमम् ॥ ७८ ॥  
 कृत्वा परां स्वनाम्ना तु पुनः गोदावरीतटे । अंबिकां तु नमस्कृत्य चडिकां परिपूज्य च ॥ ७९ ॥

उनकी पूजा की । बादमें अंबिकाजी की चर्चा और गये ॥ ६३ ॥ श्रीगणेशाय नमः करके स्नान किया । पश्चात् शान्तिप्रार्थना नागवार करके रामनाथपुर पड़ा ॥ ६३ ॥ वहाँ कृष्णधार्या नाम अवगाहन करनेके अनन्तर मुद्देश्वरदेवीको प्रार्थितपूर्वक पूजा की । पश्चात् उन्हीं नामक कृष्णकी मूर्ति करके शान्तिप्रार्थना करके और चले ॥ ६४ ॥ वहाँ मुद्गभद्रा मदीम स्नान करके भृङ्गिगिरिपर विराजमान शारदादेवीके दर्शन किये । पश्चात् कृष्णधार्या होने हुए कोटेश्वर गये ॥ ६५ ॥ वहाँसे एक बिका दुर्गेके दर्शन करने हुए मुद्देश्वर शिवके दर्शनार्थ पधारे । पश्चात् गुणेश्वर और धारेश्वरके दर्शन करने लगे ॥ ६६ ॥ फिर गौरीश्वर तथा भगेश्वरके दर्शन किये । फिर मन्देन्द्रादौ पर्वतपर विराजमान भीमेश्वरके दर्शन किये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ तदग्रमग्न यौग और मन्देन्द्राका दर्शन करके श्रीराम काशपर पधारे । पश्चात् करवीरपुर जाकर कृष्ण और घण्टाके सङ्गममें स्नान किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर विमानारुह होकर राम गदालक्ष्मीश्वरके दर्शनार्थ पधारे । वहाँ घटप्रभाम स्नान करके वहाँके अन्यत्र पुण्यस्थल देखे ॥ ७० ॥ फिर महादेवको नमस्कार करके महागिरीश्वरके दर्शनार्थ गये । बादमें काशानन्दके तटपर विद्यमान अर्णवशायन वरमुदके दर्शन किये ॥ ७१ ॥ बादमें नीला मदीम स्नानकर तथा नरसिंहका पूजन करके पांडुरङ्गका पूजन और चन्द्रमणम स्नान किया ॥ ७२ ॥ तदग्रमग्न भीमानदीके सङ्गम तथा चन्द्रकेश्ये स्नान किया । फिर प्रेमपुरमें जाकर उन्हीं सार्धं दश प्रभुका दर्शन किया ॥ ७३ ॥ वहाँ नीलदुर्गाका दर्शन करके बहुतसे स्थानोंका अवलोकन किया । पश्चात् तुलजापुरमें जाकर वहाँ देवीके रूप दर्शन किये और बादमें धौल देवी ॥ ७४ ॥ धौल जाकर माणिक्य बंधके दर्शन करके अन्यत्र बंदिष तीर्थोंमें श्रीरामने भ्रमण किया । पश्चात् अंबापुरमें विराजमान धामेश्वरी प्रभुका दर्शन किया ॥ ७५ ॥ बादमें वंशनाथको नमस्कार करके वज्रगणेशपर पधारे । वहाँसे विमान द्वारा नगेश्वरके दर्शनार्थ गये ॥ ७६ ॥ पूर्णके संगममें स्नान करके नादवरीके उत्तरी किनारेपर अपने नामसे रामने एक पुरी बनायी । वहाँसे मुदल अधिक आश्रम पर होते हुए बाणसीर्थ गये । वहाँ स्नान करके विष्णुकेनाक मनोहर भीमेश्वर गये । तत्पश्चात् गोदावरी और अम्बिका नदीमें स्नान करके त्रिविक्रमके दर्शन किये ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ वहाँपर जो गोदावरीके तटपर

आत्मतीर्थेऽतः स्नान्वा नत्वा विज्ञानमीश्वरम् । महालक्ष्मीं विलोकयाम्य बडवासंगमं ययौ ॥८०॥  
 प्रतिष्ठानं विलोकयाम्य स्नान्वा वृद्धैल्लसगमे । शिवनंदासंगमेऽथ नृसिंहं पतिपूज्य सः ॥८१॥  
 रत्नयनाम्ना स्नातनीर्थे प्रवरामंगमं ययौ । सिद्धेश्वरं नमस्कृत्य निवासाख्यं पुरं ययौ ॥८२॥  
 तद्वासं पुरं गत्वा पश्यन्नानाभ्यलानि मः । ययौ गोदातटेनैव पुण्यस्थलं रघूदहः ॥८३॥  
 गत्वा कद्रुसंगमे तु विनतासंगमं ययौ । जनस्थानं ततो गत्वा ययौ त्र्यम्बकमीश्वरम् ॥८४॥  
 दाक्षिणार्ण्यनृपतिभिर्मणितः पूजितोऽपि च । गृहीन्वा करमारुखं तेभ्यस्तैः सहितो ययौ ॥८५॥  
 एवं दक्षिणपार्श्वे या कुतः राघवेण वै । सा मया विस्तरेणैव कथिता त्र्यम्बकावधि ॥८६॥  
 इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे दक्षिणतीर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

### अष्टमः सर्गः

( राम द्वारा भारतवर्षके पश्चिमी प्रदेशकी तीर्थयात्रा )

विष्णुदास उवाच

गुरो जातोऽस्ति सदेहो मम विषे वदान्यहम् । स त्वया लिखतां स्वाभिन् साधवो हि कृपालवः ॥ १ ॥  
 यानारूढः न कर्तव्या यात्रा चेति श्रुतं मया । कथं यानेन रामेण कृता यात्रा स्वयेरिता ॥ २ ॥  
 इति जातोऽस्ति सदेहो मम त त्वं निवारय । इति शिष्यवचः श्रुत्वा गुरुः प्राहाम्य तं पुनः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

यदा यात्रा न कर्तव्या छत्रचामरधारिणी । गता द्वीपाधिपत्येन कार्या मांडलिकेन तु ॥ ४ ॥  
 पृथिवीशस्य देवस्य लग्नोदकवरस्य च । तथा मत्तधिपस्यापि गमनं न पदा स्मृतम् ॥ ५ ॥  
 तस्मात्तावत् त्वया कार्यः सदेहो राघवं प्रति । आहवा रामन्दरस्य कृपाऽपि च तैर्जनैः ॥ ६ ॥

अपने नामकी पुरो बसायी । फिर अम्बिका तथा चंडिकाकी पूजा की ॥ ७९ ॥ पश्चात् आत्मतीर्थमें आकर स्नान किया । दादमें विज्ञानेश्वरका दर्शन करके बडवासंगमपर स्नान किया ॥ ८० ॥ फिर प्रतिष्ठानपुरको देखकर वृद्धैल्लसगममें स्नान किया । शिवनंदादे संगममें स्नान करके उन्हींमें नृसिंहकी पूजा की ॥ ८१ ॥ तदनन्तर अपने नामके रामतीर्थको देखकर प्रवराम संगमपर गये । वहाँ सिद्धेश्वरको नमस्कार करके निवासस्थपुर गये । ८२ ॥ वहाँसे नुपुरनगर गये तथा और भी बहुतसे स्थान देखे । गोदावरीके तटपर होते हुए रघूदह राम पुण्यस्थल गये । ८३ ॥ वहाँसे कद्रुके संगमपर गये । वहाँसे आगे विनताके संगमपर गये । वहाँसे जनस्थान और वहाँसे त्र्यम्बकेश्वर गये ॥ ८४ ॥ रास्तेमें दाक्षिणात्य राजाओंके द्वारा सम्मानित और पूजित होते हुए राम उनसे अपना कर उगाहते और उनका साथ नते हुए आगे बढ़े ॥ ८५ ॥ इस प्रकार त्र्यम्बकावधि की हुई रामकी दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा मैं तुमको कह चुनायी ॥ ८६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'जोत्था'मममतीकार्या दक्षिणतीर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो मेरे हृदयमें एक संशय है । वह मैं आपके सम्मुख कहता हूँ । आप उसको दूर करें । क्योंकि साधु महात्मा स्वभावसे कृपानु हैंते हैं ॥ १ ॥ मैंने सुना है कि मवारोपर बैठकर यात्रा नहीं करनी चाहिये । फिर आपने जो कहा कि श्रीरामने विमानपर सवार होकर यात्रा की सो क्यों ? ॥ २ ॥ यही मुझ संदेह है, इसे आप निवृत्त करें । शिष्यके वचनको सुनकर गुरुने कहा । ३ ॥ श्रीरामदास बोले—  
 शास्त्रमें यह भी लिखा है कि ऐसे छत्रचामरधारी पुरुषका पैदल यात्रा नहीं करनी चाहिए, जो किसी द्वीपका अधिपति राजा हो । हाँ, मांडलिक अर्थात् किसी एक मंडलके राजाको तो पैदल हो यात्रा करना उचित है ॥ ४ ॥ वड़े पृथ्वीपतिको, देवताको, जिसका विद्वह होना हो ऐसे सरको तथा मन्त्रधोणको पैदल चरकर यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥ ५ ॥ अतः तुमको श्रीरामकी विमान द्वारा यात्रामें कितो प्रकारका संदेह नहीं

अभिष्टिष्ठ पुण्यं तु यो वेदेवगच्छेदितम् । इदानीं रामचन्द्रस्य शृणु तं प्राक्तनीं कथाम् ॥ ७ ॥  
 पर्वकालाभ्यन्तरेऽस्तु पुनः यत्र तु निद्रितम् । योन्या पर्वते तत्र गन्वा स्थित्वा दिनप्रथमम् ॥ ८ ॥  
 मन्मथगङ्गां गत्वा गन्वाऽगस्तेऽस्तु चाश्रमम् । सूर्यश्च गन्वाश्रमं गन्वा ययौ चैतपुत्रं ततः ॥ ९ ॥  
 पुण्येश्वर नमस्कृत्य शिवलीये विगच्छ च । शृणु तस्य देवगिरिं विज्जालेनमाययी ॥ १० ॥  
 मन्तापुरस्थां देवीं तां कथा पश्यन्त्यतानि वा । देवताष्टे नारायणं नन्वा रामश्च योनदा ॥ ११ ॥  
 यकार विधिवत्स्नानं पयोज्यां च धुमिर्जनैः । स्नान्वा ताप्युद्गमं गमः स्नान्वाभ्यन्तः पर्वतोलमम् ॥ १२ ॥  
 गन्वा स्नान्वाऽथ रेकयागोक्तं परिपूज्य च । पश्चिमाभिमुखः पञ्चदशानां पुण्यस्थलानि हि ॥ १३ ॥  
 ताप्याश्च संगमे स्नान्वा नमदायाश्च संगमे । महानदीजले स्नान्वा प्रभातं च नदीं ययौ ॥ १४ ॥  
 पञ्चसप्तमीनां च संगमेषु विगच्छ च । सौराष्ट्रस्य सोमनाथं दृष्ट्वा म भ्रमती नदीम् ॥ १५ ॥  
 पञ्चदशानां स्थलान्येव दृष्ट्वाऽपि ययौ ततः । गाम्भ्यां विधिवत्स्नान्वा द्वापरान्यां विदेशं यः ॥ १६ ॥  
 अनादिभिर्दा समस्तु पुगीषु प्रथितं शुभम् । दृष्ट्वा कन्वा तीर्थविधिं दत्त्वा दत्तान्यनेकजः ॥ १७ ॥  
 पञ्चमूर्तीर्षानि मन्त्रानि पुण्यानि त्वनन्दनः । शायमान्येनैव विधिभिर्मन्त्रितः पूजितोऽपि च ॥ १८ ॥  
 शृङ्गिणा कश्चात् स्व मेघमनैः सहितो ययौ । पश्यन्त्यस्तदेतत् पश्यन्पुण्यस्थलानि सः ॥ १९ ॥  
 पुष्पकन्धः शनैः यया दशवनं केलुकानि च । यया पुष्करार्थं वै नृपः सर्वत्र मवृत्तः ॥ २० ॥  
 विमाने वन्यं गमः कोटिशो बालगान् मदा । भोजयाम्नाम दिव्यान्नैः पायसैः शर्करादिभिः ॥ २१ ॥  
 विमाने वै स्थिताः पूर्वमयोध्यापुरवासिनः । तथा ये पूर्वदेवताया दक्षिणान्या नृपाश्च ये ॥ २२ ॥  
 वाचिमात्वा नृपा एवं ते वनं वाहनैः सह । रामेणार्तिविशम्भवं वसन्नाथणादिभिः ॥ २३ ॥

करना चाहिए । उसी रामचन्द्रकी आज्ञाके अनुसार और लोग भी विमानपर सवार हुए ॥ ६ ॥ ईश्वरकी जला  
 की तीन समझ सकना है ? भयं कृम कोणमकी प्राचीन कथा सुनी ॥ ७ ॥ पञ्चमूर्ती नामके चत्वार औरत  
 १५ पर्वतपर गये, वहाँ सोताके साथ उन्होंने प्रथम निद्रा ली थी । वहाँपर उन्होंने तीन रात्रि निवास किया  
 ॥ ८ ॥ सप्तशृङ्ग पर्वतपर जाकर उनके मनहूर स्थानोंमें प्रथम बिठा । वहाँसे भगवत्स्य पूर्विके आश्रमको गये  
 शृङ्गिणी गङ्गा मुनिके आश्रममें यथा ॥ पञ्चान् चैतपुत्रं गये ॥ ९ ॥ वहाँ पुण्येश्वरका नमस्कार किया, शिवलीयेमें  
 स्नान किया, रामलीक देवगिरि देवा और वहाँसे विज्जालेनमाययी गये ॥ १० ॥ वहाँ मन्तापुरनिवासिनी देवीको  
 नमस्कारकर उनके स्थानोंकी देखने हुए देवतागण जाकर भगवत्स्यको प्रणाम किया । सीता सहित रामने  
 शृङ्गिणी जाकर यथाशक्ति नदीमें विधिवत् स्नान करके वन्यमहिन तापीके उदमण्डलमें स्नान किया । पञ्चान्  
 पञ्चमूर्तीके पर्वतपर जाकर देवाओं स्नान करके भोजनभक्षणको पूजा के और दक्षिणकी ओरके अनेक स्थान देखे,  
 जो कि उनके पवित्र थे ॥ ११-१३ ॥ महानदी तापी तथा नमदाके सामने स्नान करके महानदीके जलमें स्नान  
 किया और वहाँसे प्रभातसेच गये ॥ १४ ॥ वहाँ पञ्चसप्तमीके साधने स्नान करके सौराष्ट्र ( गुजरात )  
 केही मांमनाथजाका दर्शन किया । वहाँसे भ्रमती नदी गये । रास्तेमें अनेक स्थानोंको देखने हुए राज्यदार  
 दृष्टं गये । वहाँ गोपलीये विधिपूर्वक स्नान करके द्वारवासी ( द्वारिका ) में प्रवेश किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो कि  
 राजा पुरिषोमें अनादिभिर्दा, प्रसिद्ध और बड़ी ही सुन्दर पुरी है । वहाँ तीर्थविधि सम्पन्न करके अनेक दान दिये  
 ॥ १७ ॥ इस प्रकार अनेक लीलोंको देखते तथा पश्चिमके राजा-महाराजाओंसे सम्मानित और पूजित  
 हुए तथा उनके भजना कर लेते और उनके साथ पुण्य स्थानोंको देखने हुए राम सरस्वतके किनारे-किनारे  
 खड़े रहे । पुष्करपर स्थित राम महाराजी सीताको रास्तेमें अनेक कौतुक दिखाने तथा राजाओंको साथ  
 करे हुए पुष्करराज का पर्व ॥ १८-२० ॥ रामचन्द्रजी विमानपर भी प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मणोंको सुन्दर  
 और भोजन भोजन मालपूर्वा आदि तथा मिषाद्युक्त और भोजन कराने थे ॥ २१ ॥ इतना ही नहीं, बल्कि  
 लो भी जो वन्योध्यापुरवासी लोग विमानपर चढ़ेते ही गये हुए थे तथा जगज्जी जो बलिब वैद्यके

पूजिता मानिता प्रापन् मादर ते यथाशुक्लम् । न कश्चिद्विन्तारकं हि चकार पुष्पके नरः ॥२४॥  
 चित्वा कण्टवृणदीनां जलस्यापि न कस्यचित् । एका चिता तु तत्रास्ति क्षुद्रोद्यो मे कथं भवेत् ॥२५॥  
 वाञ्छन्ति सर्वे तत्रैकं भिषकं चूर्णं प्रदास्यति । निद्रायास्तत्र शान्तिद्वयं चाद्यद्योर्निरंतरम् ॥२६॥  
 शानस्तत्र महानामाद्रिमानं वाक्यापिनाम् । गंतैर्नैव कटाक्षश्च कण्ठाभिर्वचनादिभिः ॥२७॥  
 मणिदीपैर्दिने रात्रिं न जानाति स्म तत्र वै गच्छद्दिने कदा यानं याति रात्रावपि क्वचित् ॥२८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे शिष्यं पुष्करभोजनस्तदा महानादः श्रुतो गम्यो धनुलः श्रुतितोषकृत् ॥२९॥  
 शार्ङ्गान्निपुरोद्धतः कवणः कण्ठाक्षीपि च । कन्ताडनगोतादिसृदंगवणवोद्धतः ॥३०॥  
 नववाद्यममुद्धतो घटीयत्रममुद्धतः । यानवशात्किंकिणीनां पनाकारवसभवः ॥३१॥  
 वार्गगताकर्पितनटकिंकिणीसंभवोऽपि च । वाग्गणाश्चायुधोऽपृष्टिद्वयशृङ्गकपिसम्भवः ॥३२॥  
 वीरभ्यो वेदशेषव्यः शिष्येभ्यश्च समुन्वितः । नटनारक्यदिभ्यो मायधेभ्यः समुन्वितः ॥३३॥  
 गोदोहसंभवश्चापि स्याजामहिपिदोहत्र । दधिसंयनमभूतः शिशुना रोदनोद्धवः ॥३४॥  
 शिशुमवकमकद्वयसलाम्यः समुन्वितः नानान्त्रोद्धरश्चापि पिष्टचक्रसमुद्धवः ॥३५॥  
 धुनपाचिनपक्वान्नप्रकाशकणोद्धवः । नारदादिमुनिश्रेष्ठधुनवीणादिमभवः ॥३६॥  
 पुगणकथनोद्धतो हरिकीर्तनसंभवः । गमनाममहमादिस्तोत्रपाठसमुद्धवः ॥३७॥  
 नारीपुरुषपेषणकार्यं ककणसंभवः । सादप्रक्षालनाद्यादिनानाकार्यसमुद्धवः ॥३८॥

राजा श्रीम, पुण्डरीक राजा लाग तथा पश्रिम देशक राजागण ए उन सबका भी सेनाजी और दाहनी सहित  
 रामने विधिवत अन्न-वस्त्र-आभरण आदिसे सब सन्चार किया । उन्हें पूर्ण आदर और मुक्त दिया । पुष्पक-  
 विमानपर कोई भी मनुष्य पृथक् भोजन नहीं बनाया था । सब रामहृदय भाजनालयमें भोजन करने थे ।  
 इसलिए न तो किसीका काष्ठ तथा मृणाल चिता थी जो न जलती यदि वहाँ किसीको कोई चिन्ता थी तो  
 स्वल्प गर्हा नि अच्छी भूख कैसे मग । जिससे कि तब अन्त्या अच्छा भोजन करें ॥ २२-२५ ॥ वहाँ सब लोग  
 रेशम चूक पागको इच्छा रखते थे । वह रसिद्रवा था तो केवल निद्राकी । क्योंकि हर समय नाना प्रकारके  
 वाजोली ध्वनि हुआ करता था ॥ २६ ॥ वहाँ यदि कोई भय था तो केवल वारागताओंका विमानस्य लोगो  
 का आवाजोन भीत, नेत्रकटाक्ष, अनेक प्रोत्साह, मधुर वचनो तथा मणिमय हाथोके कारण रात-दिन एक-  
 था प्रणत हुंता था । यान कभी दिनसे धावा करना था और कभी रातमें ॥ २७ ॥ २८ ॥ इतनेमें हे शिष्य  
 पुष्करनाथक आसवागक बड़ा कीमती, मनहर और धुनमन्त्रकारा घण सुनायो पडा ॥ २९ ॥ जिसमें  
 वरपाञ्चक मधुर वजन थे ककण वजन थे तारिण वचनी थी गान हे रहा था, मुदह तथा मगहें आदि  
 वाद्यसमूह बज रहे थे, घटिय बज रही थी, यानके घट बज रहे थे और अर फडफडा रहे थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥  
 वारागताओंका कथल कथन वेंची हुई अद्वैतिकाट वज रहा था और हाथी विघ्नाह रह थे । कोई  
 द्विर्गहना रहे थे । आयुष सनखता रह थे । ईश मन्त्रग्या रह थे । मार केका बाणी बान रहे थे ॥ ३२ ॥  
 गच्छा लोग हाँक लवा रहे थे । वेदवाष हा रहा था । छात्रगण अध्ययन कर रहे थे । नटोका नाटक हो  
 रहा था । वाग्ग तथा भाट विरदावली बजान रहे थे ॥ ३३ ॥ गौआक शङ्कना घघर शब्द हा रहा था ।  
 वक्त्रियों तथा धैर्य के दाहनका शब्द भी सुनाया दे रहा था । हाछ विद्योनेका घर-घरर निनाद हो रहा था ।  
 नाटक मे रहे थे । नाट्योके शृंगोकी शिवाडियों का शब्द हो रहा था । अनेक वाद्य बज रहे थे । आटा पीसनेकी  
 चविकरीका घरघरहट हा रहा थी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ शीर्ष पकथे जान तथा तले जान पक्वानोंका छू छू शब्द हो  
 रहा था । नारदादि मुनियोंका वाग्गदिका मधुर शब्द हा रहा था ॥ ३६ ॥ पुगण वांच जा रहे थे  
 हरिकीर्तनी ध्वनि हो रहा थी । विष्णुसहस्रनाम तथा शिवमहिम्नामोवादि के पाठका शेष हो रहा था ।  
 नारिकेली कोई कन्तु कुत्ते तथा मेहवा आदि पोसनेके समय ककणका शब्द हो रहा था । उनके बाद-  
 प्रक्षालनक समय शंखरका शंकार, कडोकी कणकणाहट, छड़ोंका छलछलाहट, बिजुओंकी छमछम-

एवं नानाविधं भुत्वा पुष्करस्था जना ध्वनिम् । निशति पश्चिमामाशां किमेतदिति विह्वलाः ॥३९॥  
 केचिद्भुर्नन्दिघटास्त्रराड्यं ध्रुपते महान् । केचिद्भुविमानेन गच्छतींद्रो दिवं प्रति ॥४०॥  
 केचिद्भुः समायाति रंभाघण्टरसश्च खे । केचिन्मेषध्वनिं श्रोतुः केचिर्देरावतं त्विति ॥४१॥  
 केचिन्मेषुः समायाति सागरः किं लयं विना । केचित्मेषुस्त्विदं शेषं वायुपुत्रस्य शब्दितम् ॥४२॥  
 केचिन्मेषान्त्रिराजस्य शब्दितं प्रोचुरुत्तमम् । केचित्प्रोचुश्च गधर्वा विमानस्था भटति खे ॥४३॥  
 केचित्प्रोचुर्नामिकन्याः कुर्वन्तीदं मुगापनम् । कुर्वन्तश्चेति तर्कश्च ददृशुः पुष्पकं महत् ॥४४॥  
 राममागतमाज्ञाय तोषपूर्णां बभूविरे उषायनानि संगृह्य प्रेमनिर्भरमानसाः ॥४५॥  
 प्रस्पृज्यगुस्तदा रामं दृष्ट्वा नत्वा रघूत्तमम् । मेनिरे जन्मसाफल्यं राघवेणाविमानिताः ॥४६॥  
 राघवोऽपि विमानाघयादवरुह्य द्विजोत्तमान् प्रणिपत्य समाभाष्य प्रतिपूज्य सविस्तरम् ॥४७॥  
 तैस्तीर्थवासिभिर्गुक्तो ययौ पुष्करमुत्तमम् स्नात्वा सचैल विविना तीर्थश्रद्धा विधाय च ॥४८॥  
 दत्त्वा दानान्यनैकानि काश्याः कोट्यधिकानि तु । द्रव्यालंकारवस्त्रार्चस्तोषयामास भूतुरान् ॥४९॥  
 ततस्त्वंरम्यतुङ्गादो विमानेन ययौ पुनः । एवं पश्चिमयात्रा ते वर्णिता राघवस्य हि ॥५०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे पश्चिमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८॥

## नवमः सर्गः

( रामकी उत्तरभारतीय तीर्थयात्रा और वहाँसे लौटकर अयोध्या आगमन )

रामवास उवाच

उत्तराभिमुखो रामस्ततः पश्यन् स्थलानि सः । ययौ पर्वततीर्थं च ततो ज्वालामुखीं ययौ ॥ १ ॥

हट तथा पापघेयका मनोहारी निनद हो रहा था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके जन्दावे मिश्रित तथा बनीभूत ध्वनिको शान्तिके शांत समयमें पश्चिमकी ओर सुनकर पुष्करनिवासी लोग चकित हो गये ॥ ३९ ॥ कोई कहने लगा कि नन्दोदरके घंटका यह सज्ज सुनाई देता है । कोई कहने लगा कि इन्द्र विमानपर बैठकर स्वर्ग जा रहे हैं ॥ ४० ॥ कोई कहने लगा कि रम्भादि अम्भराट् आकाशमें जा रही है । कोई मेषकी गर्बना बतलाने लगा । कोई ऐश्वर्यकी घिघाह कहने लगा ॥ ४१ ॥ कोई कहने लगा कि विशा प्रलम्बबाणके हो समुद्र उमड़ा आ रहा है । कोई कहने लगा कि वायुपुत्र हनुमान्का गर्जन हो रहा है ॥ ४२ ॥ कोई कहने लगा कि पश्चिमराज महदका शब्द हो रहा है । कोई बोला कि ये तो मन्वरे मेष विमानपर बैठकर आकाशमें घूम-फिर रहे हैं । ४३ ॥ कोई कहने लगा कि गगनधाराएं गान कर रही हैं । इस प्रकारके अनेक तर्क-वितर्क करत हुए वे लोग पुष्पकको देखने लग ॥ ४४ ॥ बादमें जब रामचन्द्रजाको आते देखा तो सब लोग बड़ ही प्रसन्न हुए । रामको देखकर सब लोग हाथमें अनेक तरहकी भटे ले-लेकर प्रेमपूर्वक उनके सामने गये । श्रीरामको प्रणाम करके उन्होंने अपना जन्म उपल्ल माना श्रीरामने भी उन सबका सरकार किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ पश्चान् श्रीरामने विमानसे नीचे उतरकर द्विज लोगोमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका नमस्कारपूर्वक पूजन किया और बादमें उन शायबालिपोंके साथ विस्तारसे वार्तालाप करते हुए उत्तम पुष्कर नगरमें अवेश किया । वहाँ सबस्त्र स्नान करके विविधन् तोषश्राद्ध किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वहाँपर रामने काशीसे काटिगुणा अधिक दान-पुण्य किया द्रव्य अलंकार, वस्त्र तथा अन्नादिसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया बादमें उनसे आज्ञा लेकर वे विमरन द्वारा आगे बढ़े । इस प्रकार हे पाषाणो ! मैंने रामकी पश्चिम भारतकी तीर्थयात्रा कह सुनायी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे श्योत्सनांषाष्टीकायां पश्चिमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम अनेक स्थलों एवं उत्तरके पर्वतों तथा तीर्थोंको देखते हुए वहाँसे

पश्यन् स्थलानि सप्राप तमौ श्रीमणिकर्णिकाम् । करतोयानदीनोद्ये स्नान्वाऽग्रे न ययौ विभुः ॥ २ ॥  
 तम्यो दीपमाकर्ण्य पर्यवर्त्तत गघनम् । कर्मनाशानदोस्पर्शान्करतोयाविक्रमन् ॥ ३ ॥  
 गङ्गीयात्पङ्कजाद्वयः स्खलन्ति कीर्त्तनात् । गन्त्रा देवप्रयागं चालकनन्दानटेन वै ॥ ४ ॥  
 नरनारायणो गन्त्रा दर्शनान्मुक्तिर्दी नृणाम् । बदरिकाश्रमे रामः केदारेश लिलोक्य सः ॥ ५ ॥  
 हिमाद्रौ देवगर्भवर्मेयिते धातुमडले । महापथं ततो गन्त्रा ययौ तन्मानस सरः ॥ ६ ॥  
 यम्पद्भिर्मिता गङ्गा सरयुः पापनाशिनी । कर्जानि यत्र हेमानि यत्र ईमाः महस्रसः ॥ ७ ॥  
 रक्तनेत्राघ्रिवदना मुक्ताभक्षणतन्पराः । यन्प्रदेशे चित्रभूम्प्रा देवगर्भवर्किसराः ॥ ८ ॥  
 अप्सगोभिस्तथा सूर्गभिः कीडां कुर्वन्पर्वतशम् । तत्र स्नान्वा मानसेऽथ गन्त्रा चिन्दुसरोवरम् ॥ ९ ॥  
 स्नान्वा दानादिर्दत्तं कृत्वा हिमालयगिरिस्थिताम् । दृष्ट्वा जलप्रभां दिव्यां मेरुश्चमदृशीं पगम् ॥ १० ॥  
 गघनः सीतया मर्दन्गवस्त्वा स पुष्पकां प्रणमन् । सुरेन्द्रार्द्रगतिम् चतुर्गतनम् ॥ ११ ॥  
 प्रक्षणा सहितान्देवान्पूजयामास विस्तरः । विधिर्न पूजयामास कामधेनुं न्यवेदयत् ॥ १२ ॥  
 विमानाग्रे कामधेनु मस्थाप्य रघुनन्दनः । सुगन्धार्द्रादिभिः साकं कलासमगमनदा ॥ १३ ॥  
 रामभागनमाप्ताय कलाहे गिरिजापतिः । प्रत्युज्जगाम पार्वत्या रामचन्द्र वृषभ्वितः ॥ १४ ॥  
 शशुभागनमाप्ताय गघनः पुष्पकाज्यात् । अवलम्ब नमस्कृत्य शिवनालिंगिनः स्थितः ॥ १५ ॥  
 उमासपि र्भातामालिष दिव्यालंकारचन्दनैः ।

पूजयामास वस्त्रार्द्रः सूर्यकोटिमप्रभः । तारके नूपुरे दिव्ये केयूरे चूडकदम्बम् ॥ १६ ॥  
 किकिणीयमपुष्कगुणां चन्द्रभाष्करी । र्भातवभूषणी हरान्मणिमुक्ताचिचित्रितान् ॥ १७ ॥

ज्जान्यामुत्री गये ११. वहाँसे आता वहूँरे स्थलको देखन हुए श्रीमणिकर्णिका तीर्थवर का पहुँच । वहाँ करताया नदामें स्नान किया, परन्तु उसको पार करके आगे नदी गये ॥ २ ॥ श्रीराम करतायाका पार करनेमें प्रायश्चित्त मुक्तकर रहूँसे लौट पड़े । क्योंकि कारदोष यिम्ना है—कर्मनाशा नदामें स्पर्शमात्रसे करतोयाके लीघनसे, गङ्गीमें हाथोद्वारा तीरनसे तथा घमका अपन मुक्तम बलान करनम प्राप्तोका किया हुआ धर्म मह हो जाता है । वहाँसे वे देवप्रयाग गये । पञ्चान् अलकनन्दाके किनारे किनारे चलकर अनुष्णाका दर्शनमात्रसे मुक्ति देनवासे नरनारायणका दर्शन किया । श्रीरामने बदरिकाश्रमके बाद केदारेश्वरका दर्शन किया ॥ ३-५ ॥ इसके अनन्तर राम अनेक घातुओम मंडित हिमाद्रिपर गये, अहाँ कि अनेक देवता तथा गन्धर्व निवास करते हैं । बावमें महापथ गये और कहते उस मर्वमिद्ध मानमरचगपर पधारे ॥ ६ ॥ जहाँ कि पापाका मष्ट करनेवाले पंग तथा सरयु निकली है । उस मानमनानरमें अनेक भुवर्गकमल बिजे हुए थे वहाँ मोठी गुप्तनधे तत्पर, लाल मेरु, लाल पग तथा लाल मुखवाने हजारी राजहम निवास करत थे । उस प्रदेशकी पिप बिचित्र भूमिपर अप्सरसा तथा निवासे सहित अनेक दक्षगधर्व और किशराक समूह आड़ा कर रहे थे । उस मानसरोवरमें स्नान करके श्रीराम चिन्दुसरोवर गये ॥ ७-९ ॥ वहाँपर स्नान करके तथा अनेक दान देकर हिमालयपर गये । वहाँ मेरुपर्वतपर स्थित बहुसभाके समान एक दून्नी मनोहर अटारुमा देखी ॥ १० ॥ वहाँ राम सीता तथा अन्य सब लोमाके साथ विमानपरसे उतर पड़े और इन्द्रादिकाका साथ लेकर प्रणाम करत हुए चतुर्मुख ब्रह्माका आर्तिद्वन किया । ब्रह्मा सहित अन्य सब देवताओकी रामन विस्तारमें पूजा की । पञ्चान् ब्रह्माने श्री श्रीरामका विधिपूर्वक पूजन किया और उन्हें सादर कामधेनु समर्पित की ॥ ११ ॥ १२ ॥ बावमें रघुनन्दन सब देवताओं सहित ब्रह्माकी तथा उस कामधेनुकी विमानपर चढ़कर कैलास पर्वतपर पधारे ॥ १३ ॥ कैलासपर श्रीरामको आगे पुनकर गिरिजाके पति शिवजी पार्वतीके साथ तन्दीश्वरपर सवार होकर रामचन्द्रको लेने आये ॥ १४ ॥ राम शिवजीको आते देखकर पुष्पकपरसे नीचे उतर गये और शिवजीको प्रणाम किया । शिवजीने रामका आर्तिद्वन किया । पार्वतीने भी सीताका आर्तिद्वन करके दिव्य चन्दन आदिके पूजा की । अनन्तर प्रसन्न होकर उमादेवीने सीता महारानीको भूयंके समान शीजिवलि अनेक माभूषण और वस्त्र दिये ।



ददौ जनकनदिन्यै पार्वती तीव्रपूरिता । ततः शमुस्मदा प्राढ राघव पूज्य वैभवैः ॥१८॥  
 राम स्वभाविकमले मञ्जाऽयं चतुराननः । ततो जातो विधेयार्ह नन्दनाट्टद्वयवृत्तः ॥१९॥  
 पौत्रस्तव रघुभेष्ट तत्राज्ञापयिष्यलोकः । महारः कियते राम आतया तव मादरात् ॥२०॥  
 यदा मया तु प्रत्ये तदा पार्प कर वे मयम् । परशास्यवभाज्जीनेस्तोषेराभा करोषि वि । ॥२१॥  
 कीदृशं तव राजेद सुख कांडस्व सीतया । कियत लोकाद्व्यर्थं जानामि तव चेष्टम् ॥२२॥  
 एव नानाविधस्तस्य चारिष्यमीदृश राघवम् । ददां विदध्मनं छत्रं चामने वषट्कोत्तमम् ॥२३॥  
 पात्रपात्र भोजनस्य पात्रं हंस मनोगमम् । करुणे कुण्डले बाहुभूषणे मृदुटोचमम् ॥२४॥  
 राघ प्रस्थापयामास चतुष्पा चिन्तामणं हृदि । हृदि चिन्तामणिं दृष्ट्वा राघवस्य विदेहजा ॥२५॥  
 प्राद्वतिलज्जिता राघं शीघ्रं चिन्तामणिस्तव । नृधेति राघवोऽप्युक्त्वा विमानेन जनः सह ॥२६॥  
 ययौ बत्वा शंकरं हि कृत्वा यज्ञाधेष्टवनाम् । भाकारयित्वाऽप्य विधिं मार्तकेनाश्वराय हि । ॥२७॥  
 भागीरथ्यास्तटेनैव हरिद्रात्र ययौ जवाद् , कुरुक्षेत्रं विगाथाय इन्द्रप्रस्थं ततो ययौ ॥२८॥  
 दृष्ट्वा वधुवनं रम्यं ययौ वृन्दावनं ततः । गाकुलं वांश्च रामस्तु गोवर्धनमगाच्छनः ॥२९॥  
 गत्वाऽधारविकां पुण्यां क्षिप्रान्नरविगारिताम् । महाकालं पुरस्कृत्य पश्यन्तीर्धान्यनेकशः ॥३०॥  
 दृष्ट्वा गजद्वयं क्षेत्रं सागरं कृपमंक्ष्य च । ययौ मु नैमिषाम्पथे गोमत्यां स विगाथ च ॥३१॥  
 सूतं पौराणिकं दृष्ट्वा सीतकादीन् प्रपूज्य च । स्नात्वा तद्वनवर्तसंस्थाय रघूत्तमः ॥३२॥  
 तमसां तां विगाथाय ददर्श नगरीं निजाम् । रामभागतमाश्रय सुमयो वेगवधरः ॥३३॥

दां कर्णपूल, दो सुन्दर चुड़िएँ, छोटछोट धुवन्नाक गालस युक्त करवनी, चन्द्रलके समान कालि-  
 मान से सीमन्तभूषण और मणि तथा मोतियाक हार आदिय । पञ्चानु शिवर्जनेत भी अनक विषमदोष  
 रावणा पूजन करके उनसे प्रप्त किया ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे राम ! आपके नाभिकमलस से चतुरानन बह्ना हुए ।  
 इन बह्नासे मे पैदा हुआ और रावन करनके कारण मया नाम रख पडा ॥ १६ ॥ हे रघुनाथ ! इस प्रकार मे आप-  
 का पौत्र हुआ । हे राम ! आपका आज्ञाका पालन करत हुए आपके आज्ञाक अनुसार मे प्रत्येकालमे तीनो  
 भाकाका सहार करता हूँ । तब क्या बहु पापे आपका रही लगना, जो आज आप हाक्षाभार वग होकर  
 भी रावणवधमे बहुदुःखपूर्ण ओकापवादक भयस नाशयथा बरन भिन्न है ? ॥ २० ॥ २१ ॥ अबवा ठीक हो  
 है, मे समझ गया । हे राम ! आप बहु तब लानशिक्षाके निये कांड मान कर रह है । यदि ऐसा है तो आप भले  
 हों सीताक सहित काहा कर । लोकमर्षाशको स्थापित करनके अनारण्य और कुछ भी आपकी प्रीतिभा प्रया-  
 जन नहीं है ॥ २२ ॥ इस प्रकार अनक रामचरितस आगमका स्तुति करनके बाद शिवजीने उन्हें सिहावन,  
 एक छत्र, हा चमर, एक उत्तम घागा, पानकन डिब्बा, भोजन करनके लिए सुन्दर सानका पाल, कण्ठ, कुण्डल,  
 कड़े और मुकुट दिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ उदनन्तर रामक गलमे चिन्तामणि बाँधकर उन्हें विदा किया । सताने रामक  
 हृदयमे चिन्तामणि रखकर उनसे कुछ लज्जपूर्वक कहा- अच्छा, यह चिन्तामणि आपका रही  
 और यह कामऽनु मेरी । श्रीराम जो 'बहुन अच्छा' कहकर क्हास सब लायाके साथ विमानपर सवार हो शंकर  
 भावान्को नमस्कार करके बल दिये । बलन समय वे शंकर भगवान्की भावी वज्रकी मूर्चना दत गये । बह्नाका  
 भी एक मासके बाद होनेवाले यज्ञमे अयोध्या आनेके लिए कहा ॥ २५-२७ ॥ यहाँमे भागीरथीके किनारे-  
 किनारे हरिद्रा गये । वहाँसे शीघ्र ही कुरुक्षेत्रमे स्नान करके इन्द्रप्रस्थ ( दिल्ली ) गये ॥ २८ ॥ वहाँसे मनोहर  
 मयुरीपुरी होकर वृन्दावन पधारे । गङ्गाके दमकर वे गोवधन पर्वतपर गये ॥ २९ ॥ बाइमे शरीर बने,  
 परमे पवित्र अवन्तिका ( उज्जैन ) मणिको गये, ज कि सिता नदीके किनारेपर विद्यमान है । वहाँ म्हा-  
 कालेश्वरका वीरभूजन करके अनक शुभ तीर्थ देखन हुए गजद्वय ( हरिनाथपुर ) और तथा सागरकूपको  
 ॥ ३० ॥ ३१ ॥ पश्चात् नैमिषारण्य गये । वहाँ गोमतीमे स्नान किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ फिर पौराणिक सूतका वीरभूजन करके

अयोध्यां भूपयामास घोर्षेनानःविधध्वजैः । लोम्पञ्च पताकाभिः पुष्पहारैर्मनोरमैः ॥३४॥  
 शोधयित्वा राजमार्गान् सेषयित्वा तु चंदनम् । विकीर्णं द्रुमुर्मदं चैवेलिहीपैर्विगजितान् ॥३५॥  
 वारणं द्रुं पुरस्कृत्य मेनया परिवेष्टितः । पत्न्युज्जगाम राजेंद्रं पुष्पकस्थं तरान्वितः ॥३६॥  
 दंडवत्प्रणिमन्याथ दत्त्वा चोपायनानि तन् । भ्रात्रिणो राघवेण मेने स कुतकृत्यताम् ॥३७॥  
 ततो वागनिनादैश्च नर्तनं वारयोपिताम् । वेदधोर्षेदिजानां च राभतीर्षं ययौ शर्मा ॥३८॥  
 स्नात्वा तन्मरयूतोये यत्र तीर्थं सुपुण्यदम् । स्वयमेव कृतं पूजं नित्यकर्मार्दमादरात् ॥३९॥  
 वमिश्रोक्तविधानेन कृत्वा वैकुण्ठोपणम् । दधिधातुं विधायथ दत्त्वा दानान्पनेकशः ॥४०॥  
 तृतीये दिवसे रामो विमानेन विहायमा । पुर्यां विलम्ब्य प्राकरान् हेमरत्नविनिर्मितान् ॥४१॥  
 अयोध्यां प्रोमितां गम्या गोपुगद्वालमंडिताम् । वीथीहट्टममावृत्तां चतुष्पथविराजिताम् ॥४२॥  
 पश्यन् स्त्रीयं राजममाद्वारं प्राप रघूत्तमः । यानं भूमडलं प्राप्य सुवभातीन्स्विरं तदा ॥४३॥  
 ततः सुमंत्रपत्नीमिर्दध्योदन्विनिर्मिताः । बलयः कर्म्यपावस्था जलनैलघटाम्बुधा ॥४४॥  
 सीताराघवयोर्देहादुत्तार्य शतशम्भदा । नीत्वा न्यक्त्या विदूरेतु स्नात्वा रामगृहं ययुः ॥४५॥  
 ततो रामो विमानद्वयादवरोह्य स रघुभिः । नगरैस्तनूषनिमिः सभायां सविषेध ह ॥४६॥  
 तस्थौ मिहासने राश्रितामणिविराजिनः । तस्थुर्नृपाः सभायां श्रीराघवेणानिमानिताः ॥४७॥  
 सीताऽपि निजगेहं सा दिचित्रगन्तनिर्मितम् । कामधेनुं पुरस्कृत्य प्रविवेशाविद्वर्षिता ॥४८॥  
 ततो रामः कामधेनुमभूतैरपाधितः । परमान्नैः पदसंघं मोलयामास भूगुरान् ॥४९॥

शौनकादि ऋषियोजित पूजन और जहूँ-वंत नामके करोड़ोंमें स्नान किया । ३२ । तमसा नदीमें अथवाहूत करके राम अपनी नगरीको चल गये । ऊपर आराधको जाते मुत्तकर भुपवने शटवट अनेक प्रकारकी बड़ी बड़ी पताकाओं तथा भजार्थमें अयोध्या नगरीको सजवा दिया । अनेक नोरण बँधवा दिये । ३३ । ३४ ॥ राजमार्गोंको साफ कराकर चन्दनक अगसे छँडकाव करा दिया । उनपर लिप्य और नाना रंगके फूल बिछवा दिये । जगह-जगह घोगाहोपर दीपक तथा पूजाकी सामग्री रखवा दी । ३५ । पश्चात् सुमंजस कारणेन्द्र (होषी), को आगे करके सेनामहिन् स्वयं पुण्यकस्थित राजा रामकी भगवानो करने गये ॥३६॥ उन्होंने उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके अनेक उपहार दिये । बादमें मंत्री सुमंत्र नामसे लानिगित हाकर अपने आपको कुतकृत्य समझने लगे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर राजेराजे करारागतात्रक कृत्य तथा सारहाणोंके वेशघोषके साथ राम धीरे-धीरे रामकीर्षपर गये ॥३८॥ वहाँ जाकर उन्होंने सगुरुके जगसे स्नान किया । वह बड़ा पवित्र तथा उत्तम तीर्थ स्वयं रामके ही नित्यकर्मके लिये निर्मित हुआ था ॥ ३९ ॥ वहाँ उन्होंने वमिश्रोजीके कथनानुसार विधिमान् एक उपवास किया, दधिधातु किया तथा अनेक दान दिये ॥ ४० ॥ तोंमरे लिख भोगाम विमानके द्वारा आकाशमार्गसे नगरके मुखनिर्मित प्राकारोंको नौकर पुरहार तथा मुन्दर अटारियोसे मुशामिट मनोहारिणी अयोध्यामें पधारे । ओ मल्लियो, गड़कों, बाजारों तथा घोगाहोमें बड़ी ही भली लग रही थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ बहुत दिनों बाद आज उन्हें अपनी राजसभाके द्वारका दर्शन प्राप्त हुआ । वहाँ जाकर वे यानपरसे उतर पडे । विमान की भूतलपर उतरकर सुतपूवक खड़ा हो गया ॥ ४३ ॥ तब सुमंत्रकी निषेध दधि-ओदक-से युक्त काँसेके पात्रमें रखी हुई बलिर्ष तथा जल-तलसे पूर्ण सैकड़ों घट सीता तथा रामके देहपरसे उतार तथा दूर से जाकर छाड आयी और स्नान करके रामके चदनमें गयी ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अंतराम भी विमानपरसे उतरनेके बाद नगरको तथा अन्य नगरोंके साथ समाभवनमें गधारे ॥ ४६ ॥ चित्रामणिसे सुरोमित हृदयवाले राम मिहासनपर आ विराजे तथा उनके सम्मर्गत होकर अन्य राजे भी यय-स्थान बँठ गये ॥ ४७ ॥ महारानी सीता भी कामधेनुको लेकर प्रसन्नतापूर्वक चित्र-विविध रत्नोंसे निर्मित अपने जहूँमें गयीं ॥ ४८ ॥ पश्चात् श्रीरामने कामधेनु से प्राप्त वृत्से निर्मित घड़समय उत्तम पकरानों द्वारा

अर्वाङ्गलांस्तर्पयित्वा स्वयं कृत्वाऽश्वं नदा । निद्रार्थं नृपरीन् पाप्ने कथञ्चाप्यपनदा ॥५०॥  
 पचरात्रं नृपान् प्रीत्वा स्थापयित्वा स्वयमिधौ । बभ्राजन्नागानुगैरन्योपयित्वा मनिस्नग्म् ॥५१॥  
 तान् प्रोवाच रमानाथः प्रवदकरमपुरान् । मम यज्ञागनुगं दृष्ट्वा तन्पृष्टर्गः पुनः ॥५२॥  
 आगन्तव्यं जानपदैः स्वसैन्यैर्नागरैः सह । इत्थं ज्ञां गृहीतव्यं क्षीणीकृत्य नृपोत्तमाः ॥

ययुः स्वं स्वं पुरं देशं स्ववर्तः परिवेष्टिताः ॥५३॥

मुग्धीवाद्यान्वानराश्च परिव्राजममन्त्रितान् याज्ञापयित्वा वयानि श्यापयामास स्वानिकैः ॥५४॥  
 राजिमेषामन्तरं हि प्रेषयिष्याम्यहं निरति । ऊनो दुदुभिनिर्घोषं स्वपुर्वं घोषयनदा ॥५५॥  
 मकारम्य जनैः सर्वैरगोष्ठानगरीन्दिनैः । यैः कश्चिदत्र पथिकैर्मित्रपार्जनैः पूज्यताम् ॥५६॥  
 पारङ्कगोम्यहं भूम्यां राज्यं सीताममन्त्रितः । निजगार्हस्थ्यमालम्ब्य ये व्रतन्ते नरोत्तमाः ॥५७॥  
 ते हर्षन्तु सुखं पाकं स्वस्वमेहेषु भक्तितः । निर्वन्धो मम व ह्येयो वर्तितव्यं वधामुखम् ॥५८॥  
 इत्थाञ्चाप्य जनान् गमः सुखं तर्थां त सीतया । ययोध्यायां तु सर्वत्र वेदपोषो गृहे गृहे ॥५९॥  
 वगस्तानि सङ्गृह्णाहा वर्तनं वाग्योषिताम् । बभूवुश्च वृग्णानि कीर्तनानि हरेः कथाः ॥६०॥  
 एवमासीन्सुमं तुष्टा साकेतनगरी शुभा । एवं प्रोक्तं मया शिष्यं यात्राकाण्डमनुत्तमम् ॥६१॥  
 ये नृपवृत्तिं नरा वक्ष्या तेषां यात्राफलं भवेत् । यात्राधनार्जनोद्योगे यात्राकाण्डमिदं स्मृत् ॥६२॥  
 पठित्वा ये तु गच्छन्ति सुखेनायाति ते गृहम् । ममद्वन्द्यादिपापानि कृतानि भवनरैः सकृत् ॥६३॥  
 यात्राकाण्डमिदं जप्त्वा शुद्धिस्तेभ्यो भविष्यति । सर्वतीर्थावगाहैश्च वत्फलं परिकीर्तितम् ॥६४॥  
 यात्राकाण्डमिदं श्रुत्वा तत्कृतं प्रतिपद्यते । धनार्थं धनमाप्नोति क्षापी कामानराध्नुयात् ॥६५॥

राष्ट्रगोत्रि सेकर बाण्डाल लकड़ों वपोंचित भोजन कराके लूट लिया । बादमें राजाओं के हाथ स्वयं यात्रा करके राजाओंको सम्मानार्थ विमानसे तथा अन्यत्र महुँमें जायेगी आज्ञा दी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस प्रकार पाँच दिन तक उन स्थानोंमें बड़े ही प्रेम तथा सत्कारसे रहने अपने भजनमें रक्खा । बादमें वस्त्र, अन्नकर तथा अन्न आदि दे और उन्हें घली घँति प्रमत्त करके अपने-अपने स्थानको आनका आज्ञा दी । जब वे हाथ जोड़कर जानेके लिए तन्मुख लड़े हुए, तब रमानाथ रामने फिरसे ऊँट वज्रके मुखमध्यपर वज्रक संगभूत अश्वके पीछे-पीछे चलनेके लिए समन्वय और प्रजा सहित आनक लिये कहा । वे गये उस आज्ञाको स्वीकार करके अपनी-अपनी मैनके साथ अपने-अपने देश तथा नगरकी ओर चल गये । परिवार सहित मुण्डव आदि आनरीको रहनेके स्थाने बहुतसे भवन देकर अपने वहाँ रहना और कहा कि जन्मभक्त वज्रके पञ्चाङ्ग तुम मातेको धिदा करने । बादमें भोगरामने अपने मकरन्द दिहारा पिठवत्कर कहना दिया कि आजमे सेकर मेरे नगरवासियों तथा अन्य वासी लोगोंको अन्न भोजन बनाकर वहाँ जाना चाहिये । सब लोग तबतक हमारे भोजनालयमें भोजन कर, जब तक कि मैं भूमिपर राज्य करूँ । हाँ, जो गृहस्थाश्रमी हो, वे अपने ही भवन-अपने घरोंमें अन्नपूर्वक मुखमें भोजन बनाएँ । उनके लिये भोग मागहु नहीं है । ५१-५८ ॥ यह आज्ञा देकर राम सीतके साथ मुखपूर्वक चले गये । तबमे अयोध्या नगरीमें घर-घर घेरघरनि होने लगे । ५९ ॥ प्रगल्भान होने लगे, सोनसहू बागभाओंका नृत्य होने लगा तथा पुराणपाठ और हरिकथाएँ होने लगीं ॥ ६० ॥ इस प्रकार पशु समस्त पुरो धानन्ति हो उठी । ह शिष्य मैंने तुम्हको घली घँति उनम यात्राकाण्ड सुनाया ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस यात्रा-कारको अतिपूर्वक अध्ययन करेगा, उसे समस्त यात्राये करनेका फल प्राप्त होगा । यदि मनुष्य राजासे जानेके पक्षमें अपना धन कमानेके लिये जाये तबमें इसकी पुनकर जाय तो वह मुखपूर्वक और कृतार्थ होकर चलेगा । यदि मनुष्यने बहुहत्यादि जैसे घोर पाप किये हों तो वे भी इसकी मन्त्रसे दूर हो जाते हैं और क्षम हो गये होते हैं । सब तीर्थोंकी यात्रा करनेसे जो फल होता है, वह इस यात्राकाण्डको पढ़ने तथा सुननेसे प्राप्त हो जाता है । चन्की इच्छावालेकी धन और कामकी इच्छावालेकी काम मिलता है ॥ ६२-६५ ॥ इस

पापी धूतो भवेत्सद्यो यत्राकाण्डश्रवादिना । यः कश्चिन्प्रातर्कृत्याय कृतशौचविधिर्नरः ॥६६॥  
 तीर्थानां च वरं काण्डमिदं पुण्यं पटिष्यति । तस्य रामश्च संतुष्टः पूरयिष्यति वाञ्छितम् ॥६७॥  
 सर्वतीर्थाविगाहस्य फलं तस्य भवेद्भुवम् । यानि कानि च पापानि जन्मांतरकृतानि च ॥६८॥  
 तानि सर्वाणि नश्यन्ति यात्राकाण्डश्रवादिना . ६९ ।

इति श्रीमत्कोटिरामचरितस्तोत्रगतश्रीमदानन्दरायायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे  
 रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

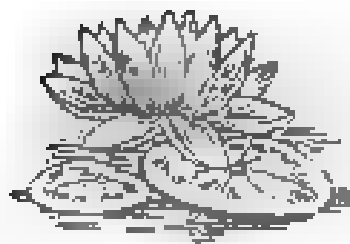
यात्राकाण्डे च सर्गो वै नवः प्रोक्तः मनोविधिः ।  
 पञ्चविंशोत्तराः सप्तशतश्लोका भवापहः ॥ १ ॥

काण्डको सुननेसे पापी पुरुष भी पवित्र हो जाता है । जो प्राणी प्रातःकाल उठ तथा स्नानादि करके इस पवित्र यात्राकाण्डको पढ़ेगा तो श्रीरामकी अनुकम्पासे उसके सब मनोरथ पूरे होंगे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उसे सब तीर्थोंकी यात्राका फल मिलेगा बन्ध-जन्मान्तरक जो कुछ पाप हों वे सब इस यात्राकाण्डको सुननेसे अवश्य नष्ट हो जायेंगे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितस्तोत्रगतश्रीमदानन्दरायायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे १० राम-तेजपाट्यवृत्त'ज्योत्स्ना'भाषाटोकायां रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

इस यात्राकाण्डमें नौ सर्ग और भवभयको दूर करनेवाले ७३५ सात सौ पन्तीस श्लोक कहे गये हैं ॥ १ ॥

❀ इति श्रीमदानन्दरायायणे यात्राकाण्डं समाप्तम् ❀

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु



श्रीरामचन्द्रो विजयवेरगाम्

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## यागकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( अश्वमेध यज्ञके लिए सामग्री एकत्र करनेका निर्देश )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समामध्ये एकदा गुरुपञ्चमीम् । कुम्भोदरमुनेर्गायत्रीर्ध्यानां यथा कृता ॥ १ ॥  
इदानीं तस्य वाक्येन वाजिमेषं करोम्यहम् । यज्ञोपकारणानि त्वं लक्ष्मणाप नदस्व हि ॥ २ ॥  
समुद्रवै शुभे लग्ने श्यामकर्णाग्निपुच्छकः । तुरङ्गो दिव्यवस्त्राद्यभूषणिव्या विमुक्तताम् ॥ ३ ॥  
पृथ्वीप्रदक्षिणार्थं हि तत्पृष्ठेऽधुतसंख्यया । सेनया सह शत्रुघ्नः सुमंत्रेण महाशिरात् ॥ ४ ॥  
तद्रामवचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिसत्तमः । ज्योतिर्वित्सहितो दृष्ट्वा समुद्रवै शुभोदयम् ॥ ५ ॥  
आज्ञापयत्स सौमित्रि सभायां राजसन्निधौ । सौमित्रेऽद्यदिनाज्ज्ञेयो सुहृत्तः सप्तमेऽहनि ॥ ६ ॥  
दीक्षार्थं रामचन्द्रस्य वाजिमेषाल्यकर्मणि । रामतीर्थे यरुभूमिः शोचनीया हलादिभिः ॥ ७ ॥  
सुवर्णनिर्मितैर्दिव्यैर्वाक्षणैः सह सन्वरम् । दशकोशमिताऽयोध्यासहिः सर्वत्र लक्ष्मण ॥ ८ ॥  
समा कर्करहीना तु लिप्ता चन्दनजातिभिः । मण्डपश्च विधातव्यः सर्ववाग्निदितः शुभः ॥ ९ ॥

श्रीरामदासने कहा : इसके अनन्तर एक दिन सभामें रामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठसे कहने लगे — हे गुने । कुम्भोदर ऋषिके कथनानुसार मैं तीर्थयात्रा की । अब उन्हींकी बातसे मैं अश्वमेध यज्ञ भी करना चाहता हूँ । यज्ञकी ओ-जो आवश्यक वस्तुएँ हों, कृपया आप लक्ष्मणको बतला दीजिए ॥ १ ॥ २ ॥ किसी अच्छे मुहूर्त और शुभ लग्नमें श्याम रङ्गवाले जिसके कान, पैर और पूँछ हों, ऐसे घांटेकी मुन्दर बत्तों और आभूषणोंसे सुसज्जित करके पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए छोड़ा जाय ॥ ३ ॥ तदनन्तर उस यज्ञीय घोड़ेकी रक्षा करनेके लिए दस हजार सेनाके साथ सुनस्त और शत्रुघ्न प्रस्थान करें ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजी को इन बातोंको सुनकर वसिष्ठजीने ज्योतिर्विद्योंके साथ अच्छे लग्न तथा अच्छे नक्षत्रसे संयुक्त एक वदिया । मुहूर्त बेला और सभायँ हा रामचन्द्रजीके सामने लक्ष्मणजीसे बोले—हे लक्ष्मण ! रामचन्द्रके यज्ञकी दीक्षा लेतेना शुभ मुहूर्त आजस ठीक सातवें दिन है ॥ ५ ॥ ६ ॥ सबसे पहला काम यह है कि इस अश्वमेध यज्ञके लिए रामतीर्थके भूमि सुवर्णके बने हुए हलों द्वारा साड़ियोंके साथ जोतकर शुद्ध की जाय । अयोध्याके चारों ओर दस कास तककी जमीन परतारकर बराबर कर दी जाय और ऐसी साफ की जाय कि उसमें कहीं कुछ भी कङ्कड़-पत्थर न रहने

जम्बाघ्रादिनगानां च शाखामिः कुसुमैरपि । पल्लवैश्च विचित्रैश्च कदलीस्तम्भमण्डितः ॥१०॥  
 समन्ततस्तोरणानि बन्धनीयानि यत्नतः । पुष्पदाराः फलादीनां मालाश्च विविधाः शुभाः ॥११॥  
 वेद्यः सहस्रशः कार्याः सुधया श्लेषकादिभिः । करणीयं महकुण्डं सन्सामिध्येन मृन्मयम् ॥१२॥  
 कुंडोपरि महत् कार्यं गोमुखं च मनोरमम् । सुदिरम्य विचित्रं हि वसोधारार्थमुत्तमम् ॥१३॥  
 मितरक्तामिनैश्चैव नीलपीतादिभिः शुभैः । नानादृषदचूर्णैश्च क्षुपधातुविनिर्मितैः ॥१४॥  
 ननावर्णैर्विलेख्यानि स्वस्तिकानि समन्ततः । कमलानि विचित्राणि तथा श्लेषदलानि च ॥१५॥  
 सङ्कुचकगदापद्मवल्लुपश्च सहस्रशः । कुसुमानि विकीर्णानि यद्बभूव्यां समन्ततः ॥१६॥  
 चतुर्विंशच्छुभाः कार्या यज्ञस्तम्भा महोच्छ्रिताः । विनिर्मिताः सुवर्णेन युक्ताहारविभुङ्किताः ॥१७॥  
 त्रितयं सर्वतोभद्रं कुण्डमध्येऽभ्यर्चयतम् । लेखनीयं तथा कुडं नानावर्णैर्विचित्रितम् ॥१८॥  
 द्रुतं कार्याणि पात्राणि यज्ञार्थं मम पश्यतः । दैवाः किलोपकृणा वरुणस्य यथाऽऽवरे ॥१९॥  
 आमनानि श्रुयाणां च निद्रार्थं च सहस्रशः । वासोगेहानि कार्याणि तूर्णैः पर्णैश्च स्वर्पदैः ॥२०॥  
 पाकशाला विधातव्या कार्या शालाऽश्ननस्य च । आपिशाला विधानव्याः शोशालाश्च शुभावदाः ॥२१॥  
 यज्ञोपकरणानां च शाला परमसुन्दरी । सभा कार्या नृपाणां च वरदूर्वाविचित्रिताः ॥२२॥  
 आमनार्थं महार्हाणि वस्त्राणि च समन्ततः । आस्त्रीर्याणि तथा राजपुत्रभागाभूषाणि च ॥२३॥  
 पश्चिपिच्छैः सुकापांसभेदैः सम्पूरितानि हि । कश्चिपूषर्हणानि विचित्राणि महान्ति च ॥२४॥  
 स्थावरीयानि मदसि महार्हाणि तु लक्ष्मण । स्थावरीयानि पानार्थं पात्राणि विविधानि च ॥२५॥  
 नानारसैः पूरितानि तथा पक्वकलादिभिः । नानासुगन्धद्रव्यैश्च सर्वानानाविधैरपि ॥२६॥

पार्श्वे । फिर केसर-चन्दनसे स्त्रीपकर वह भूमि पवित्र करनी होगी । उस भूमिपर ऐसे मण्डप बनाये जायें, जो सुन्दर हों और कहींसे कटे-फटे न हों । ७-९ ॥ जामुन-आम आदि फूलोंकी शाखाओं तथा फूलों-पत्तोंसे खूब अच्छी तरह सजाकर केलके आम्बोके फाटक बनाये जायें और मण्डपके चारों ओर फूलों और फलोंकी भाँछाएँ लटकाई जायें ॥ १० ॥ ११ ॥ मण्डपके भीतर ईंट और चूनेको पक्की जोड़ाई करके एक हजार वेदियों बनवायी जायें । वहाँ ही मिट्टीका एक बड़ा घारी कुण्ड बनाया जाय । लेकिन यह मैं अपने सामने बनवाऊँगा । कुण्डके ऊपर खैरकी लकड़ोंका एक सुन्दर गोमुख बनाया जाय, जो ब्रह्माचार्योंके काममें आवेगा । सफेद लाल, कासे, नीले और पीले पत्थरोंका चूर्ण तथा उपधातु ( गेरु-बंधक आदि ) के चूर्णसे जगह-जगह रङ्ग-बिरङ्गे स्थानिक लिखे जायें और श्लेषदल कमल बनाये जायें ॥ १२-१५ ॥ जहाँ वहाँ शस्त्र सत्र, गदा पद तथा फूल-पत्तियोंकी चित्रकारी की जाय ॥ १६ ॥ सोंलके चौड़ीस यज्ञस्तम्भ बनाय जायें, जो सूत्र ऊँचे हों और उनपर मोती-भाण्डिक आदिक काम किया गया हो । कुण्डके पास बन्धवेवराके निमित्त सर्वतोभद्र बनाया जाय और वेदोंके चारों ओर अच्छे-बच्छे चित्र बनाय जायें । यज्ञके लिए जितने पाशोंकी आवश्यकता होगी, वे सब घेरे सामने बनाये जायेंगे । प्रायः वे सब पात्र सोनेके होंगे, जैसे ब्रह्मादेवके यज्ञमें वे ॥ १७-१९ ॥ व्याघ्रोंको बैठने और सोनेके लिए घरके, अण्डोंके अथवा छप्परेके हजार घर तैयार करने होंगे ॥ २० ॥ मण्डपकी एक ओर पाकशाला ( रसोईघर ) रहेगी, दूसरी ओर अन्नशाला ( भोजनभवन ), तिसरी ओर श्रुति-शाला ( मुनियोंके ठहरनेकी जगह ) और एक ओर सुन्दर शोशाला ( स्त्रियोंके रहनेकी जगह ) बनेगी ॥ २१ ॥ एक बड़ा या और सुन्दर भक्तान पक्षकी सब सम्पत्तियें रखनेके लिए बनेंगी । बच्छे-बच्छे कपड़ोंसे सजाकर राजाओंके लिए कई महफिलें बनायी जायेंगी । बैठनेके लिए बड़ियां बड़ियां कालेन-गलोचे आदि मंगाकर बिछाये जायेंगे । पशियोंके पख्तों या रुईसे घरी कितनी ही सुन्दर तकियायें राजाओंकी लगानेके लिए रखी जायेंगी । सबको जल पीनेके लिए विविध प्रकारके पात्र रखे जायेंगे ॥ २२-२४ ॥ सभाभवनमें जल पीनेके लिए सुन्दर तथा बहुमूल्य बर्तन रखे जायेंगे । कितने ही पके हुए फलोंके तरबतरसे भरे

मर्द्यविचित्रैर्मधुरैस्तथा मादकवस्तुभिः । नानासुगन्धैर्लेख्यैश्च कृत्वा कुम्भाः सहस्रशः ॥२३॥  
 स्थापनीयाश्चन्दनैश्च सुगन्धैश्चानि वि नानोपकल्पकानां नाम्बूनाना महस्रशः ॥२४॥  
 स्थापनीयानि पात्राणि चायगणि सहस्रशः । व्यञ्जनानि वि चित्राणि तथादर्शविचित्रिणाः ॥२५॥  
 स्थापनीयाश्च कीठार्थं कीडोपकरणानि च । स्थापनीयानि मृदमि नृणाणां निजिगानि च ॥२६॥  
 मृन्पात्रममराः कार्याः शतशः पुष्पशटिकाः । जलपात्राणि कार्याणि सर्वत्र विविधानि च ॥२७॥  
 मानाविचित्रवर्णानां वयसां पञ्चमाः शुभाः । हेमगन्धैर्लेख्यैश्च प्रजालनमनेर्ले ॥२८॥  
 कमनीयाश्च भूषणमिस्त्रोयाश्चापिः प्रपूजिताः । वधनीया मंडपेषु नानैर्लेख्यैश्चाम्भरोमणः ॥२९॥  
 भूषयंतु सुपुष्पाश्च सुगायन्तु हि गावकाः । वादनीयानि वाद्यानि बहूनि विविधानि च ॥३०॥  
 पूजोपकरणार्थं च शस्त्राणि पूजितानि हि । पृथक् पृथक् मन्त्रास्त्रैश्च स्थापनीयानि लक्ष्मणः ॥३१॥  
 तथा ऋषिपत्न्यास्तु द्वाभ्यां च ममिधमथा । दण्डाः कमण्डलुपुलाः स्थापनीयाः सहस्रशः ॥३२॥  
 बहिर्वासांश्च कोपीनान् चन्दनैश्चानि वि । पूजाद्रव्याणि हव्यानि जलकुम्भाः सहस्रशः ॥३३॥  
 शीतार्थं मृत्तिकाः शुद्धा दंतकाष्ठानि पादुकाः । गैरिकश्च मुस्तशुद्रपत्रं नानावस्तूनि कल्पये ॥३४॥  
 तथा नराश्वपार्श्वे तु पूजकशस्त्रवनेरुजः । सौभाग्यद्रव्यवर्णानि सुगन्धैः पूजितान्यपि ॥३५॥  
 वायनाजं विचित्राणि स्थापनीयानि लक्ष्मण । कुर्यात् कञ्जलानां च पात्राणि कुरुमानि च ॥३६॥  
 करठस्थानिरम्पाणि भूषणान्पुञ्जवस्तूनि च । ठगिद्रादीनि वस्तूनि कनुकयो वस्त्रानि च ॥३७॥  
 स्थापनीयानि च यज्जनचमरादीनि सादरम् । सुहृदा लेखनीयानि पात्राणि च समस्ततः ॥३८॥

॥ २३ ॥ जड़ कड़ाह वनी उपस्थित रहे । अनेक प्रकारके द्रव, कण्डावजल, कण्डावजल, कस्तूरी और कसरका  
 चन्दन सहसा लगायके लिए तैयार करना चाहिए ॥ २५ ॥ २६ ॥ विविध प्रकारके स्थापित मद्य तथा अन्य  
 मद्यक वास्तुएं तैयार की जायें । बहुत किम्बड़े सुगन्धित तन्वीस धरे हुए कान्ठके द्वारा तो पड़ सदा तैयार  
 रहे । बहुतसे बलवान् सुगन्धित चन्दन और मद्यक रखे रहें । विविध सामग्रियोंके साथ हारों तन्त्रियोंके  
 जानके जोड़ लगायके रखे जायें ॥ २७ ॥ २८ ॥ हजारों चमर हारके लिए मँग भेजे चाहिये । सातके  
 लिए गरुड तन्त्रके पात्राण्ड तैयार रहें । पुष्ट तैयारके लिए अनेक अनेक दर्पण भेजना लिये जायें  
 केवलके लिए जिहनी भी सामग्रियाँ हो सकें भेजनाकर रख ली जायें । देव विदेशके राजाओंके विष  
 भेजकर सभाश्रवणमें बागे और दण्ड दिये जायें ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे पुष्पोंके समान भेजनाकर बहो-  
 वर रखे जायें । कोली-दीने दूधपर हजारों कोहरे बनने जायें, जिनसे तथा जलकी धारा बहुत रहें  
 लाल, पीले, हरे तथा बैंगनी आदि रंगोंके पत्रोंके विजड़े लाकर भव्यपत्र बागे और लटक दिये जायें और  
 हीरा, मोता पत्ता और मृगा आदिके कड़ाह वनी द्वारा वे सजावे जायें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ विजयवा  
 इन पक्षियोंके आसन करके सब सामग्री धरी रहे । बहोवर नाचनेके लिए सुन्दर सुन्दर वेष्टाव वस्त्राणो  
 जायें । दूध देनेवाले लाव सामग्रिय पुष्प देनेके लिए नियुक्त किये जायें । मानवाले योग गाय और ब्रह्मावस्था  
 विविध प्रकारके वाद्य बजायें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सब राजमन्त्रज्ञान प्रत्येक अलग पूजन करके सामग्रियोंसे पुष्प  
 लंघन रखे रहें । ऋषिपत्न्याओंके लिए कुला, वस्त्र, कमण्डलु तथा समिधाका विशेष प्रबन्ध रहे । ऊपर  
 श्रवणके लिये बस्त्र और नीचे पहननेके लिये कीपील, बल्कल बस्त्र, भृगुचर्म, पूजनकी सब सामग्रियाँ, हवत  
 करनेकी सब वस्तुएँ, जलसे धरे हुए हजारों मड़े आदि बहोवर ला-लाकर रखे जायें । हाथ पवित्र करनेके  
 लिए शुद्ध मृत्तिका, दानील, लवङ्ग तथा मुस्तशुद्रिके लिये बहुतसे मजन आदि बहोवर रखे रहें ॥ ३५-३६ ॥  
 ऐसे तरह नारीतभासे वा पूजाके बहुतसे पात्र रहने चाहिये । कोहलके लिये सुमसूचक रोख-सेदुर आदि  
 सुगन्धित वस्तुओं की रखनी रहे । सुन्दर दर्पण लाकर रखे जायें । काण्डके दुमदुमधरे बलान् आदि भी  
 बहो उपस्थित रहें ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ बहुत-सी वामकी बनी हुई सन्तुकोम सुन्दर और बमवभासे हुए बाबूचक  
 रखे रहें । हन्दी-लोखी आदि चीजे और कनुको आदि बस्त्र लाकर रखे जायें । ऐसे और बमरादिक

गन्धमुद्राङ्गितान्यद्य तथा दत्ता महाजनाः अनकाय प्रेषणायाः कंकणनूपमभिधौ ॥४३॥  
 मन्त्रायाः सृष्टिवागाः पितरं प्रति रुक्मण । श्यामाङ्घ्रिः श्यामकर्णश्च श्यामपुच्छः पितः शुभः ॥४४॥  
 महाहस्तेभ्योऽस्त्रे द्रव्यशोभासनेन च शोभनीयश्चापगर्भमुक्ताहारिणेनोरपः ॥४५॥  
 हर्षाभिः शुक्लाभिश्च वेर्णावधविभूषणैः । तस्य भाले हेमपत्रे लेखनाप स्फुटाक्षरैः ॥४६॥  
 क्रोमलेन्द्रस्य रामस्य यतांगतुरगो हयस्य । ज्ञेयः सर्वैर्नृपैर्मुक्तः कर्तुं भूम्याः प्रदक्षिणाम् ॥४७॥  
 वस्त्राभित्तयार्त्तं तेनाश्वो बंधनीयोऽयमुत्तमः । मोचेत् क्रोडाश्च निजान् पुरस्कृत्य नलैः सह ॥४८॥  
 स्वकुटुम्बनागर्भश्च तथा ज्ञानपदैः सह । आगन्तव्यं नृपतिभिर्प्रेक्षां गच्छानुवर्ततभिः ॥४९॥  
 यज्ञधूर्तमयोप्यायां युद्धैर्जित्वा महोद्धतान् । एवं यत्र बंधयित्वा मुक्तमणिविचित्रितैः ॥५०॥  
 अवनमैः दाभयित्वा मिदुः कार्यश्च मदपे मिदुः कार्यः स शत्रुघ्नः सैन्येन परिवेष्टितः ॥५१॥  
 श्यामद्वेष्टाश्चार्थं सुप्रवेण समन्वितः नानापुष्पनटानां च जलकुमान् महस्रजः ॥५२॥  
 नानाद्रव्याम्बुदश्चापि शत्रुघ्नेनानयस्य हि । शोभनीया पुरी रम्या पताकाध्वजतोरणैः ॥५३॥  
 दशमस्य मुधा देया तथा प्राप्तादमस्तके । देवालयस्य तरेऽयं चित्रशाला मनोरमाः ॥५४॥  
 लेखनाया विधानव्या रत्नदीपाः सदैव हि । पूजापकरणादीनि प्रतिदेवालयेष्वपि ॥५५॥  
 श्यामपस्य पद्मस्तानि वायान्याज्ञापयस्य मेः । राजमार्गाः शोभनीयाः सेवनीयाश्च चदनैः ॥५६॥  
 मोक्षमार्गेषु सर्वत्र चित्राणि चित्रिधानि च । लेखनीयानि रम्याणि मुक्ताहाराः समन्ततः ॥५७॥  
 प्रवालमणिवैद्युत्काष्ठीमरुफटिकादिभिः । नानाविधाश्च कुसुमहाराः पद्मफलादिभिः ॥५८॥  
 बंधनीयाश्च सर्वत्र जालमंत्रविशेषतः । एवं यद्यन्मया प्रोक्तं तन्कुरुष्वधिधारतः ॥५९॥

नाकर रक्ष जाय और अपन मित्रार्क आय हई चिट्ठियां भेजत रहौ रवर्सा रह ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ आब  
 ह रामचन्द्रजीकर मुद्रा तथा हुआ पत्र लेकर दूत मिथियेन जनक, कामर तथा चक्रप आदि राजाभोके  
 पास जाय । तदनन्तर क्याम पुच्छ तथा क्याम पैयाल छोडैका ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ बहुभूष्य पस्वो और आभूषणोसे  
 गजाद जाय । उसे स नवी जगार और वणावत्र आदि गहन पतन से जाय । एक मन्त्रपत्रपर से स से साफ  
 अक्षराम लिखकर घड़क भाषपर वीर दिया जाय-॥ ४५ ॥ ४६ ॥ "कासचन्द्र महाराज रामचन्द्रन ! यह  
 राजार पाउ भूमिर्ष प्रदक्षिणा करनेक लिए छात्र गया है । सद्य दश-दशान्वरक राजाआका जान हो कि  
 जिसम बल हो, वह इस सुन्दर पौरको बंध ले, नहा ता अपन दशवासिया, अपना मना तथा कुटुम्बिकाके  
 साथ इस घटक पौष्ट-पौष्ट चलता हुआ हमारी राजभूमि धर्यान् अगच्छाम आकर मुझसे मिले" ॥ ४७-४९ ॥  
 इस आशयका पत्र लटकाया जाय । रात्रतम जा जा उच्छ्वस राज मिले । इनसे युद्ध कर-करके इन्हें परास्त कि ।  
 जाय अनेक प्रकारके झाड़-फातूस आदिस सजा करके एक सिद्धमंडप बनाया जाय । इसक अनन्तर  
 अपना पुरी सनाका साथ शत्रुघ्नजी मुमन्त्रका साथ लिये हुए घाटपर सवार होकर उस घाट घाटैकी रक्षा  
 वरनक किए प्रस्थान कर । उसक पश्चात् बहुत सी पवित्र नरियोकी मूर्तिका और हजारो यद्योम जल  
 भर भरकर शक्लजोंके द्वारा मंगाया जाय ॥ ५०-५२ ॥ अगच्छाम जितन मा दवालय हा, उन सबको  
 चुनेसी पुतवाया जाय । सद्य मयानोंकी भी सफाई की जाय । देवालयोरु घाटपर नाना प्रकारको चित्रकारियों  
 की जाय । हर एक देवालयस हूँ दोन पूजन करनेकी साधनियां भेजी जाय ॥ ५३-५५ ॥ हे रुक्मणजी !  
 भाज ही आप सब प्रकारके वाज मंगाकर रखनेकी आज्ञा दे दीजिए । अगच्छाके सब राजमार्ग खूब अच्छा  
 तरह साफ किया जाय और उनपर अन्दनका लिहवाव किया जाय । राजमार्गके सब बड़े-बड़े महलोंकी  
 दाखलापर विविध प्रकारके चित्र बनायेकी आज्ञा दे दी जाय । जगह जगहपर मोतियोंकी मालाये लटकाये  
 जाय ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ प्रवालमणि, वैद्युत्मणि, काष्ठीय और स्फटिकादि मणियाकी मालाये, फूलोंकी मालाये  
 तथा पद्मफला मालाये हर एक मकानोपर लटकाई जाय । इस प्रकार मैने जो कुछ बतलाया है, उसे कर



तद्गुणैर्वचनं श्रुत्वा तथेन्युक्त्वा स लक्ष्मणः । काम्य माय नम्यते गुणैर्वाक्याच्छ्रुताधिकम् । ६० ।

इति श्रीभक्तकाटिरामचरितानाम् श्रीमदनन्दरामायणे बालमीकीय पाणकाण्डे  
योगोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( पञ्चमें सावधानी रखनेके लिए राम का लक्ष्मणको आदेश )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समीपस्तु मुहुर्ने मममेतदिति । मदनीतोद्धर्तनायैः स्नान्ना कुन्वाञ्जनादिकम् ॥ १ ॥  
तूर्णनादैर्द्विजानां च वेदयोगैर्विशेषतः । पौष्पाणां गायनंश्च पौष्पाणां च जयस्वनैः ॥ २ ॥  
आगत्य मङ्गले रम्ये तस्यां चित्रामनोपारि । ददौ कौशेयवस्त्रापि गुरुं रामस्वरुन्धनीम् ॥ ३ ॥  
पौर्वांश्च पौरपत्नीश्च मातृश्वश्च मुवापिनाः । क्षत्रूश्चापि विजानु सर्वान् जनकं मुहुर्नम्यथा ॥ ४ ॥  
वधूंश्च वधुपत्नीश्च वयस्यश्च ततः परम् । मन्त्रिणश्चाथ बीगंश्च दामदामीनांभ्यथा ॥ ५ ॥  
नरनर्तकवद्यादीन् सारथ्याश्च ततः परम् । आच्छादालादिकान् दद्यात् ततः सीतां ददौ वरम् ॥ ६ ॥  
हेमतन्तुमण्डितं सूक्ताभाषिकं मुक्तिनम् । रत्नकाऽर्माजनीलार्धमध्ये मध्ये विचित्रितम् ॥ ७ ॥  
सूक्तापशालघोषार्धमणिभिः सर्वतो वृतम् । आदशचिम्बमटसं विष्टं चैवोपमं महत् ॥ ८ ॥  
ततः स्वयं रामचन्द्रः पतङ्गशेषमुत्तमम् । हेमतत्त्वाकृतं नानावल्लीपुष्पाविविचित्रितम् ॥ ९ ॥  
दधामन्यत्तत्परीयं वामोऽस्तकारमण्डितः । व्यञ्जितशेषमात्रार्थमणिद्वयविराजितः ॥ १० ॥  
केयूरकुण्डलैर्मुक्ताहारैश्च कटकैर्धृतः । ततो नशिपुर्धर्मस्तं सूक्तानां स्वस्तिकोपरि ॥ ११ ॥  
निवेष्ट्य राघवः सीतामाहूय बहुकैर्निजैः । निवेष्ट्य रामवामांगे मुनिभिः परिवेष्टितः ॥ १२ ॥  
शयेन काश्यामाम्य विघ्नश्चादिपूजनम् । पुण्याहादिवयं चापि ददौ दीक्षां ततस्तथोः ॥ १३ ॥

भावार्थः । तुम उनके विषयमें कुछ मत तोचा बिचरो । मैं स्वयं सब सोच लिया है । इस प्रकार गुरुवरको आज्ञा पाकर लक्ष्मणने सिर झुकाकर स्वीकार किया और सब काम उसस भी सौगुना बढ़-बढ़कर किया, ऐसा कि गुरु बसिष्ठजीने कहा था ॥ ५८-६० ॥ इति श्रीभक्तकाटिरामचरितानाम् श्रीमदनन्दरामायणे बालकाण्डे पाणकाण्डे टीकायां योगोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने कहा — इसके बाद सातवें दिन सीताजीके साथ-साथ रामचन्द्रने मकलन आदिका उबटन लगाकर स्नान किया, अजन लगाया और तुड़ही आदि बाजो, वेदध्वजों, नगरकी शिष्टियोंके गंगा और पुष्पाभियोको जयध्वनिके साथ ॥ १। २ ॥ जाकर उस सुन्दर मंडपमें एक विशालतपर बैठे । तब गुरु बसिष्ठ तथा अरुण्यतोको उन्होने सुन्दर-सुन्दर रेझमी वस्त्र दिये । इसके अनन्तर पुरवासियोंको, पुरवासिनी भारियोंको, माता-सोको, बहुओंको, साधुओंका, नगरनिवासा सब विप्रोंका, मित्रोंका, बान्धवोंको, परिवारके लोगोंको, दान्धवों-का, नारियाँका, समवयस्क मित्रोंका, मन्त्रियोंका, सेनपतियोंको, सैनिकोंको, दास-दासियाँको, ॥ ३-५ ॥ नटो-नतनोंको, बन्दीजनोंको, वेश्याओंको और बाण्डाऊसे लेकर ऊँच जाति तकके प्रत्येक मनुष्यको अच्छे-अच्छे कपड़े देकर जिसमें सुनहले तारकर काम बना हुआ था, मंती-मणिक आदिके सुन्दर पारो और लटक रहे थे, ऐसे नीलम तथा पुष्पराज आदि मणियोंसे सुज्जित एक सुन्दर वस्त्र सीताजीको दिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब वर्पणकी तरह चमकती हुई एवं विजलीकी तरह जिसमें नेत्र था और सुवर्णके तारका जगह-जगह बेल-बूझ बना हुआ था, ऐसे एक वस्त्रको लेकर रामचन्द्रजीने स्वयं पहना ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऊपरमें एक छपरना धारण किया । तरह-तरहके आभूषण पहने । जब रामचन्द्र के कानोंमें कुण्डल सुनने लगे, माताकी मालाएँ बलमें बढ़ गयीं और हाथोंके सब गहने हाथोंमें पहन गये गये । तब बसिष्ठजीने सीतियोंके चौहके ऊपर रामचन्द्रजी तथा

ध्वजागपविधानेन स्थापयन्वाध्वजाचमन् । रामेण दग्धायाश्च दुरुः शोडश भृत्विजः ॥१४॥  
 गानधुज्ज्वल मज्जतोऽप्ययुः सकलकर्मायुः । अन्नाऽभूच्च स्वयं ब्रह्मा होना मार्धमुतो द्यभूव ॥१५॥  
 उडनऽभृच्छानिदा गुरुयो जनकस्य च । यमे चभूच्च शर्मिना कश्यपाया मुनीश्वराः ॥१६॥  
 वृषाणा राजिमेष हि राघवेण महामना । अन्विजः पाटश शुभास्मवाऽज्ये नवकर्मसु ॥१७॥  
 एवम् पृथक् संज्ञाताः अनयस्ते मुनाधराः । कुण्डेऽभिस्थ पते कृत्वा पात्राण्यामाद्य विस्तरान् ॥१८॥  
 दशमकर्णं जपित्वा मोचयामास भूतले । मण्डं प्रदक्षिणां कर्तुं तस्य संरक्षणाय हि ॥१९॥  
 मय्यरुदं मुमन्त्रेण सैन्येनापुनरुपया । शत्रुघ्ने प्रेषयित्वाऽप्य नृणां तस्थौ द्विजेगुरुः ॥२०॥  
 यज्ञघाटे मुनिगणपुरिते वरपूजते । रामोऽपि सानया नृणां तस्थौ मण्यन कथाः शुभाः ॥  
 कृत्वा जिनयगे दासः कुशपाणिः कृतोचितः । कोटिधूमप्रनाकाशस्तन्धो म गुरुमन्त्रिधी ॥२१॥  
 तदासायां प्रहृषायां भ्रातरः पुष्करच्छत्रः । स्नाताः सुवासना मयं रेत्रिरे मुष्टयल्लङ्घनाः ॥२२॥  
 तन्महिष्यस्य मुदिता निष्कयस्यः सुवाससः । दीक्षाशालापुरात्रमुधालिमा वस्तुपाणयः ॥२३॥  
 तदा विनेदुवाद्यानि ननृतुरारिषोषिनः । एतस्मिन्नन्तरं तत्र मयायना मुनीश्वराः ॥२४॥  
 दिने दिनेऽध्वमेधस्य वार्ता भूवः महश्चतुः । कश्यपोऽत्रिभरद्वाजौ विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥२५॥  
 माकण्डेयो मूकण्डश्च कननो मुद्रलोऽसितः । जमदग््न्यो देवलश्च व्यासो नागपणः क्रतुः ॥२६॥  
 विशाङ्को नारदश्च तुम्बुरुगालवो मुनिः । शिवदासो भानुदास्यो हरिदासो महानयाः ॥२७॥  
 शिववर्मा रुद्रवर्मा शिवधर्मा मुनाधराः । एकभृगश्चतु मृङ्गः समभृङ्गश्चिभृङ्गकः ॥२८॥  
 तिकमांडा भृगुश्चैव भार्गवो पाशपतिस्तथा । धौम्यः क्षण्डर्षकपादस्त्रिपादधोर्ध्वबाहुकः ॥२९॥

सानाओंको बिठ्ठाया और अपने शिष्यों तथा ऋषियों के साथ-साथ सबसे पहले रामचन्द्रजीके हाग मण्ड-  
 गोश आदिका पूजन तथा पुष्पाहुज्जन कराया और सीता तथा रामचन्द्रजीका यज्ञघं दहता दी। ध्वजारक्षणको  
 जो विधि होता है, उसके अनुसार दशजातेण और रामचन्द्रज के हाग साल्ल भृत्विजोंका वरण कराया  
 ॥ १०-१४ ॥ सम्पूर्ण कर्मोंका जाता बसिष्ठ स्वयं अस्पृश्य बने । तब बहुत ज पढ़ा बने और हाता के  
 निश्चायिपत्तों। एतानन्त उद्घोषा बने, जो जनकज के पुत्र थे। इसके अनन्तर कश्यपादि मुनियोंका राम-  
 चन्द्रजीके आरिक् बनाकर वरण किया ॥ १५-१८ ॥ इनकी अतिरिक्त, जो सकेटो आदिवाका रामचन्द्रजीके  
 अन्यत्र कायोंको करतक लिए वरण किया। उन सबने अचानक मुण्डद अ प्त वापन करके दशके पासोंका अपने-  
 अपने स्थानपर रखवा, विविधवृक् दशमर्ण घाटका पूजन कराया और वृक्षोंका राजिणावर्त परिक्रम करनेके  
 लिए उसे छात्र किया ॥ १९ ॥ २० ॥ उसको रक्षाके लिए पुनन्तके साथ ध्रुवज्ज्वली भजकर भगवान् रामचन्द्रजी  
 अपने गुरुजनके पास चुपचाप न बैठे। उस दलभूमिमें जहाँ हाग ऋषि आकर बैठे हुए थे  
 रामचन्द्रजी भी सानाओंके साथ एक किनारे बैठकर सुप्त कर्मायें सुनने लगे। उस समय रामचन्द्रजी केवल बाते  
 मृगका चर्म धारण किये और हाथमें कुत्रा लिए हुए एक सारण वणम थे फिर भी उनमें कर्मोंको सुनें  
 का तज था और वे गुह बसिष्ठक पास बैठे थे ॥ २०-२२ ॥ यज्ञकी दीक्षा हो जानेपर सब आता  
 पूजका भालाये तथा अण्ड अण्डे चपडे पहले बहुत ही सुन्दर दाख पड़ते थे। उनकी स्त्रियाँ  
 भ गलमें सोनेके कण्डे और हाराम सुन्दर वस्त्र पहन हम गाल्लता अनेक वस्तुओंका उपहार लिये हुए उसी  
 यज्ञशालाम आ पहुँचें ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर राजे बने और रेवार्ड नाचने लगे। उसी समय  
 बहुतसे ऋषिगण आ पहुँचे । अश्वमेध यज्ञका खबर पाकर हजारों महर्षिगण आ-आ कर एकत्रित होते जा  
 रह थे। जैसे कश्यप, अग्नि, चन्द्राज, विश्वामित्र, गौतम, मार्कण्डेय, मूकण्ड, कश्यप, मुद्रुड, असित, जाम-  
 दग्न्य, देवल, व्यास, नारायण, क्रतु, विम पंडक, नारद, तुम्बुरु, गालव, शिवदास, भानुदास, महानयस्वी  
 हरिदास, शिववर्मा, रुद्रवर्मा, मुनाधर शिवधर्मा, एकभृग, शिभृङ्ग, चतुभृङ्ग, समभृङ्ग ॥ २५-२८ ॥ विष्णुवाच,

ऊर्ध्वपादधोर्ध्वनेत्रधोर्ध्वस्यस्त्रिदिगम्बधा । वृद्धगौतमनामाऽथ । पर्णादधद्रमस्तकः ॥३१॥  
 अपरशृङ्गो मनेशोऽथ जात्रालिः कुम्भमंभवः । दधीचिः शौनकः सूतः मुनीश्वरो लोमशस्तथा ॥ ३२ ॥  
 वाल्मीकिश्चापि दुर्वासा मुनिर्वेदनेधिर्महान् । एते चान्ये च मुनयः स्त्राशिष्यवृन्दयादिभिः ॥३३॥  
 केचित्पर्णाशनाः केचिद्वायुभक्षस्तथाऽपरे । कुशाग्रजल्पानाथ केचित्पक्षाशनास्तथा ॥ ३४ ॥  
 मिश्राशनास्तथा केचिन् पद्मसाशनाः परे । अयश्चाग्रनिनः केचित्पक्षमभाषणाः परे ॥३५॥  
 केचिद्वल्कलपत्रीताः केचित्कायापवास्त्रिणः । मृगचर्मभगः केचिन् कौचदाकाशवास्त्रिणः ॥३६॥  
 वृषपल्लववस्त्राश्च केचित्पंचाग्निमाधकाः । धूम्रपानवराः केचिन् केचित्पक्षेपणाः परे ॥३७॥  
 एवं नानावनागमगिरिदिग्गांश्रमादिषु । रामिनस्ते ममायानाः सदागमः सवालकाः ॥३८॥  
 सशिष्या रामचन्द्रस्य द्रष्टुं यतोन्मथ वरम् । दशदिग्भ्यो मुनिश्रेष्ठाः कोटिशश्च दिने दिने ॥३९॥  
 तान्मयान् रामचन्द्रोऽपि प्रत्युन्धानामनादिभिः । मधुपर्कादिपूजाभिस्नोषयामस्य सादरम् ॥४०॥  
 यत्तवाटे महारम्ये कामधेनुं मृत्तमः पूजयामास । विधिवद्वस्त्रमभरणैरपि ॥४१॥  
 सुवर्णमृगभूषाभिः किंकिणान् पुगादिभिः । एव ता शोभयित्वाऽथ प्रार्थयामास राघवः ॥४२॥  
 धेनो मागमभूने त्वमश्वानि द्विजदिकान् । दानमर्हस्यध्वरे मे प्रसीद जगदधिके ॥४३॥  
 एवं संप्रार्थ्य सां कामधेनुं रामः प्रणम्य च वयम् । पाकशालायां पट्टकुलामनोपरि ॥४४॥  
 अथ मां सुरभिस्तुष्टा पट्टमाश्रानि सादरम् । दर्श जनकनन्दिन्य सा देवाभ्यर्चकर्मणि ॥४५॥  
 नार्तिनकार्यं च तत्रार्त्नीत् पाकशालायां चैकदा । इच्छाशनेः सदा पुष्टा बभूवुर्मुनिमनसाः ॥४६॥

शृंगु मार्गक वृहस्पति, पौष्य, कृष्ण एकलाद, त्रिषाद, ऊर्ध्वपाद ऊर्ध्वनेत्र ऊर्ध्वस्य, त्रिजिगा वृद्धगौतम, पर्णादि, चंद्रमंशक, । ३० । ३१ ॥ कप्याभ्रग, मरुद्ग, जात्राल, अमस्त्य, दधाचि, शौनक, सूत मुनीश्वर, लोमश, वाल्मीकि दुर्वासा य एकसे एक विद्वान् मुनिगण तथा और भी कितने ही ऋषि अपने स्वामुखी तथा शिष्योंके साथ आते जा रहे थे ॥ ३२ । ३३ ॥ उनमें वृहस्पति ऐसे थे, जो केवल पत्ते खाकर रहते थे । कोई वायु पीकर रहते थे । कोई कृष्ण अथवागम जल लेकर पाल और उससे बाल पावन कर रहे थे । वृहस्पति भी थे जिन्होंने भोजनको त्याग ही दिया था ॥ ३४ ॥ कुछ ऋषि भिक्षाएँ खाते थे, कोई दूसरेके बसले भोजनको खाते थे ( अपने हाथसे खाए नहीं चूते थे ) और कितने ही ऐसे थे जो किसीसे माँगना पसन्द नहीं करते थे । कोई कोई तो किसीसे संपादन हीं नही करते थे ॥ ३५ ॥ कुछ मुनि बल्कल वस्त्र पहने हुए थे कोई गेरुआ कपड़ा धारण करते थे, कोई मृगचर्म पहने थे और कोई दिगम्बर ( नंगे ) थे ॥ ३६ ॥ कुछ मनुष्य पृष्ठके पत्तोंसे शरीर ढाँके हुए थे, कोई पञ्चाग्नि तापस्वानाम थे, कोई धूम्रपान ( गाँत्रे और चरस ) का रस पिये थे और कोई-काई ऐसे थे, जिनका सब प्रकारका इच्छार्थ समाप्त हो गयी थी ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार कितने ही जङ्गलों बगीचों पर्वतों, किलों और आश्रमोंके निवासों ऋषि अपनी रभी तथा बच्चोंके साथ नहीं आ पहुँच थे । ३८ ॥ रामचन्द्रके उस अधोमुख राजका देखनेके लिए दसों दिशाओंसे करोड़ों ऋषि इसी तरह अपने शिष्यादिकोंके साथ वहाँ प्रतिदिन आ रहे थे । रामचन्द्र भी उनका प्रत्यक्षन सासन, मधुपर्कदिन पूजन तथा सादर करन थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसी मङ्गभूमिमें रामचन्द्रने विविधपूर्वक अनेक वस्त्रों और जाभूषणोंसे कामधेनुका पूजन किया । उसकी सींगें सोनेके मट्टाई तथा किंकिणी और नूपुर भादि पहनाये । इसी तरह उसकी अन्वृत करके रामचन्द्रने प्रार्थना की— ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे सूरसागरसे उत्पन्न होनेवाली कामधेनो तुम हमारे अतिथिरूपमें आये हुए साहस्रोंको अत्यादिक दानसे कृपित रखना । हे जगदधिके ! तुम मेरे पर प्रसन्न होओ ॥ ४३ ॥ इस प्रकार विनती करके एक गलीवा विद्याकर भोजनशाला ( रसोईघर ) में ले आकर कामधेनुकी दूध दिया । ४४ ॥ इसके पश्चात् उस सूर्यने प्रसन्न होकर भादगपूर्वक छहों रमके भक्ष शीलाको दिये । सबसे पाकशालामें न ही कोई मट्टी मल्लो भी और न कोई पदार्थ बनाया जाता था । लेकिन

य न्यान्कामान् रामचन्द्राश्चतयामास चेत्तमि । तान्तिनुभौ मणी आद्य कल्पयामासतुर्दुनम् ॥४७॥  
 तथा भ.ताऽपि यान् कामाश्चिन्तय.मास चेत्तमि । कामधेनुर्ददा तान्तिज्जलान् त्रैलोक्यदूलमान् ॥४८॥  
 मन्त्रे यमकाटे हि हिजार्थे सप्ततः । पत्तिषु भूमिजादीनां परिवेषणकर्मणि । ४९॥  
 स्त्रोणां कल्पनदश्च शुश्रुवे नृगुणधनिः । अथ र.मथ मीयिधिं समहृयेदपन्नरीत् ॥५०॥  
 र्माचाचारान्यमाहृय मम वाचराच्च सादग्म् । आज्ञापयस्व श्रीप्र त्वं शासनं यन्मयोच्यते ॥५१॥  
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थश्चर्मा पतिः । यः कश्चिद्दाममायानि पयिकः स समाजया । ५२॥  
 निवासार्थो गुप्ताभिर्न कदाप्यध्वरे मम । समाज्ञां न प्रतीक्षस्व कोपः कार्यो न कस्यचित् । ५३॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तथेत्थ कवा स लक्ष्मणः । र्माचाचारान् समाहृय राघवोक्तं न्यवेदयत् । ५४॥  
 ततो रामः पुनः प्राहः समाहृयास लक्ष्मणम् । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्चर्मा पतिः । ५५॥  
 मुनीनां दीपना शलाः शिष्याः सम्यन्धनस्तथा । पीरा जानपदस्थास्तु तेषां सवधिनः स्त्रियः ॥५६॥  
 दार्मादामज्जनाः सर्वे यद्यद्राजने लक्ष्मण । मामपृष्टा तु तन्नेपां दत्तव्यं ह्यविचारितम् । ५७॥  
 अन्यजायधि सर्वाद्धि तोषयध्व निरस्तुम् । न केषामभिलाषा च विकला हि विधीयताम् ॥५८॥  
 मयोध्यां कामधेनुं च जानकीं कीर्तुमर्णम् । नितामणिं गुप्पकं च राज्यं कोशः दिकं च मे ॥५९॥  
 एतेष्वपि च धो यद्वा याचयिष्यति तन्नया । न दत्तं चेत्ति वै श्रुत्वा ममानोपो भवेच्चयि ॥६०॥  
 अनो ज्ञात्वा भयं मनो ददस्व पविचारम् । पाञ्चामङ्गः कृतश्चेद्धि मच्छिगंहा भविष्यति । ६१॥  
 सदा स्मर गिरं मे न्वमिमां लक्ष्मण सादग्म् । इति रामकृता शिक्षामर्गीकृत्य स लक्ष्मणः ॥६२॥

तथा चकार तत्सर्वं यथा रामेण शिक्षितम् ॥६३॥

इति श्रीभक्तकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदामन्दसमायणे प्रागुक्तपदे

लक्ष्मणाज्ञाकारणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

वहापर आय हूए सब जगधि इच्छा साजन कर करके प्रसन्न हो रह थे । ४५ । ४६ ॥ जिन जिन वस्तुओंका राम-  
 चन्द्रजीन अपने मनमें चाहा उन सबका उनका ही मालिकी ( बौद्धधर्मणि तथा चिन्तामणि , न जानकी वातमें  
 पूज कर दिया । ४७ ॥ इसी तरह सातजान जो कुछ चाहा, सो कामधेनुमें त्रैलोक्यकी दुर्लभ वस्तुओंको भी  
 दकर उनको इच्छा पूरी क । यज्ञभूमिके चारों ओर जब बाह्यांगक मण्डला साजन करनेके लिए बैसी थी  
 और स्त्रियां उनका सजन परसनके लिए आती थी तब उनके भूषणोंकी प्रचुर ध्वनि सुनायी देती थी । इसके  
 सदनकेर रामचन्द्रजीन लक्ष्मणकी बुलाकर इछ प्रकार समझाया - । ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हमारी यज्ञभूमिके आस-  
 पास रहनेवाले निवासियोंको सादर बुलाकर हमारी तरफत यह समझा दो कि आजम नकर जा कोई  
 ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ सन्यासी मुनियोंकी पत्तिरों, उनके बच्च, मित्र सम्बन्धी, पुरवासी, देशनिवासी और  
 उनके सम्बन्धी, जो कोई यहीं आ जाय, उसे कोई न राके । उसका सत्कार करनेके लिए मेरी आज्ञाकी प्रतीक्षा  
 करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ५१—५३ ॥ रामचन्द्रजीन आजानुसार लक्ष्मणजीन सब आस-पासके  
 निवासियोंको जाकर समझा दिया । कुछ देर बाद रामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणको बुलाकर कहा कि मुनियोंकी  
 स्त्रियों तथा बच्चों आदिका अथवा जग रक्षणका जिस किसी वस्तुको आवश्यकता हो, वह बिना हमसे पूछे  
 उनके इच्छानुसार देते जाओ ॥ ५४—५७ ॥ बागडालसे लेकर विप्रनके प्रत्येक प्राणिक सन्तुष्ट कर । किसीको  
 किसी प्रकारका कष्ट न हान पाये । किसीका कोई अभिलाषा विकल न हो । मयाया, कामधेनु, साता,  
 बौद्धधर्मणि गुप्पक विमान, राज्य तथा कोशःदिक इन सब वस्तुओंको भी हमसे यदि तुमने इनकार किया  
 तो मैं तुम्हारे ऊपर बहुत न राज होऊंगा । इसलिय धी काधस उरते हुए बिना किसी प्रकारका विचार  
 किए सब अभ्यासोंको उनकी अभिच्छित वस्तु देते जाओ । तुम किसीको मांग साक्षी करोगे  
 तो तुम्हें मेरा छिर फाड़नेका पातक सगेरा ॥ ५८—६१ ॥ हे लक्ष्मण ! सदा मेरी इन बातोंका हवाल

## तृतीयः सर्गः

( रामके यज्ञीय अश्वका मय ओर घूमकर अयोध्या लौटना )

श्रीरामदास उवाच

अथ शुक्रप्लवा वार्ता राघवेण महात्मना । यज्ञांशः श्यामकूर्मः स पूर्वदेशं पयो जहात् ॥१॥  
 शत्रुघ्नेन च सैन्येन प्राप्तो भर्गवर्धनतटम् । एतस्मिन्नन्तरे रामः स्वप्रतापं प्रदर्शयन् ॥२॥  
 चकार कौतुकं तत्र शत्रुघ्नस्य पुगे महत् । तस्मात्तर्ने महदेशं त्यक्त्वा गङ्गादटं प्रति ॥३॥  
 यावत्प्राप्तः । श्यामकूर्मस्यावदार्मदुर्नेषिना । गङ्गायां च महापूगे यत्र नैकाऽपि कुटिता ॥४॥  
 शत्रुघ्नेनापि तद्दृष्ट्वा कुटितां गतिर्वीक्ष्य च । कालातिक्रमर्भान्या स निवृत्तिनं व्यवितयन् ॥५॥  
 आदादेशापि मे विघ्नमुत्पन्नं गमने मदम् । प्राप्ते प्रादुर्भिके यदुत्पन्नमिहावतनं तथा ॥६॥  
 महीदानीं राघवचन्द्रप्रतापेनाम्नु मे सतिः । निश्चिन्त्येभ्य स शत्रुघ्नो रथस्थो जाह्नवीतटे ॥७॥  
 स्थित्वा प्रोवाच गङ्गां प्रतिपद्य मविरुग्म् । शृण्वन्सु सर्वलोकेषु मुनिदेवगणेषु च ॥८॥  
 देवि मङ्गे महापूगे यदि सन्त्ये शृणुमे । दीयता यदि संथा मे श्रापं सैन्ययुतस्य च ॥९॥  
 इति शत्रुघ्नवचनं श्रुत्वा सा जाह्नवी तदा स्ववेगं गन्धायामाय रगेदरं चाप्रदर्शयन् ॥१०॥  
 पङ्क्तिर्वाञ्जो तदा श्रापं परं तीरं ययो क्षणम् । तथा सैन्येन शत्रुघ्नः समुपव्रतः समावर्त ॥११॥  
 मागधारव्यं महादेशं स एव कीकटः स्मृतः । पूर्ववत्स्य महापूगे जाह्नव्यां मयभूव ह ॥१२॥  
 प्रतापं राघवचन्द्रस्य सर्ववृक्षा महाहृतम् । चक्रुस्ते जपयन्दांश्च सीतारामाग्नयया मुदः ॥१३॥  
 इत्यश्वकूर्मस्ततः शीघ्रं पयो पूर्वदिशं प्रति । मगधेशो नृपश्चाथ श्रुत्वा तुरगमागतम् ॥१४॥  
 प्रत्यृज्जगाम सैन्येन पुरस्कृत्याथ वारणाम् । नितायाश्च पठित्वा गङ्गातटपत्र पुरं निजम् ॥१५॥

रथना नूतना नहीं । रामचन्द्रजीका शिक्षाका बङ्गाकार करने लदमणजले बीमा ही पिवा, जेता रामन कहा था ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ दोन आश्रितवाटिज मनजितानुभव, महान् इत्यादिपणे १० रामचन्द्रजीके विदित 'अयोध्या' मगधाटीवात्समन्विते योगकाण्डे लक्षणानुक्रमेण नाम द्वितीयं सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदासजी फिर कहत लगे - रामचन्द्रजीक द्वारा छोड़ा हुआ वह यज्ञका अङ्गस्वरूप अश्वकर्मा घोड़ा अयोध्यासे बड़े जोकें साथ पूर्व दिशाका आर चलत ॥ १ ॥ चलत चलते शत्रुघ्न, समस्त तथा विशाल सैन्य के साथ वह अश्व आकर भागीरथा गंगाके तटपर पहुँचा । उधर रामचन्द्रजीने अपनी मोहमा दिखानेका इच्छासे शत्रुघ्नजीके सामने एक विचित्र कौतुक उपस्थित किया । यह यह कि गङ्गा जल दशाको आगकर गङ्गातट पहुँचत-पहुँचते उनका नाम जो कुछ भी बन या यह सब सम्मान हो गया । गङ्गाका बाढ़से एक स्थानपर उनकी नौका भी रुक गयी ॥ २-४ ॥ शत्रुघ्नने उस दारुण समयका दत्ता तो दा ही जानके भयस सन ही मन सोचने लगे । मोह ! यह ही आशय इनका महा विघ्न का पहुँचा । यह वही महावत चग्गिनाथ हुई कि 'बहने ही आसने २ बर्षों का निर्गो' ॥ ५ ॥ ६ ॥ अब मुझे इस समय कदल रामचन्द्रजीक प्रतापका भराता है । उसीसे मेरा निवार होगा । इस प्रकार निश्चय करके शत्रुघ्नजी रथपर बैठ ही बड़े जाह्नवीके तटपर आकर कहने लगे— ॥ ७ ॥ हे महापूज्यालिनो मेरे । इति राघव । यदि मगदान् रामचन्द्रजी सन्चारित हो तो आप सेनासहित मुझे रास्ता दे दीजिए । ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस प्रकार शत्रुघ्नके वचनको सुनकर बङ्गाजीने वेदको सन्द करके अपने पथ परासे शत्रुघ्नको रास्ता दे दिया । ॥ १० ॥ तब सणमरम आइ और पैदल सैनिक आकर गङ्गाके उस पार पहुँच गये । इस तरह समस्त शत्रुघ्न समुपव्रत साथ महादश याचय जा पहुँच, जिस देशको वाक्य था कहने हे उन को गोवे पार उतर जानके बाद गङ्गाका प्रवाह पूर्ववत् बहावा हो गया ॥ ११ ॥ १२ ॥ मगधनिवासी जोर रामचन्द्रके भाग्य प्रतापकी समझकर सीतारामके नामका जपयकार करने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ वहाँसे अश्वमेध यज्ञके लिए छोड़ा हुआ अश्वकर्मा घोड़ा पूर्व दिशाकी आर चलत । राम मगधेश छोड़के आया हुआ सुनकर द्वारकी स्वराजपर चढ़ तथा सेनाको लेकर मगधानोंके लिए गये । जोड़के परतकर रथे हुए पशुको पकड़कर उसकी नगरसे ले दये

पूज्यादरात्मयैर्न्य तं अनुष्णं विभवैर्निजैः । समस्तं निजकोशादि ममर्प्य भगधाधिपः ॥१६॥  
 पांगन् जानपदान्स्वस्त्रीः सुहृत्तनयमग्निः । पौरपत्नीर्जानपदपरनीर्विश्राम् पुणेधमम् ॥१७॥  
 प्रेषयामास माकेने बाह्वैरश्वः प्रति । स्वयं सैन्येन तुंगपणाननुलक्ष्य च ॥१८॥  
 अनुष्णवागनुवर्ती वद्महन्पुटो ययौ । एवं सवेऽपि राजानो ज्ञातव्याः सर्वदिविस्थिताः ॥१९॥  
 न केनापि श्यामकर्णो वद्धो नृपतिना भुवि । इन्द्रार्घ्यनिर्जरेर्नापि नासुरार्घ्यैः कदाचन ॥२०॥  
 ततो राज्ञी पूर्वदेशानगरमकलिगकान् । तथा नानाविधान्देशान् विलम्ब्य जलधेस्तटम् ॥२१॥  
 दृष्ट्वा नृपकुलैर्पुको दक्षिणाभिमुखो ययौ । गोदावरीं नदीं तीर्त्वा देशमीश्र च द्वाविडम् ॥२२॥  
 अतिक्रम्यारवाराख्यं देशं समतिक्रम्य च । काश्चाप्रदेशान्सकलान्पश्यन्नानाविधान्शुभान् ॥२३॥  
 कान्चरीं समतिक्रम्य चोलदेशं विलम्ब्य च । संतुवधं ततो दृष्ट्वा पश्चिमाभिमुखो ययौ ॥२४॥  
 ताम्रपर्णीं विलम्ब्य च समतिक्रम्य कैलान् । द्विषट्प्रकारान् देशांश्च गोकर्णं च ततो ययौ ॥२५॥  
 कृष्णार्तीरप्रदेशांश्च समतिक्रम्य षोटकः । कर्णाटकं महादेशं समतिक्रम्य सत्तरम् ॥२६॥  
 कोकणं समतिक्रम्य उत्तरेऽनुपेः सह । भीमान्देशान् समकलाञ्छयामकर्णः शुभावहः ॥२७॥  
 पश्यन् ययौ महाराष्ट्रं गौतमीं तं विलम्ब्य च । विदर्भं समतिक्रम्य पयावामीरमण्डलम् ॥२८॥  
 मालव समतिक्रम्य तीर्त्वा पुण्यां महानदीम् । तीर्त्वा स भ्रमर्णीं पुण्यां समतिक्रम्य गुर्वरम् ॥२९॥  
 प्रमार्भं च ततो गत्वा ययावानर्तमुत्तमम् ।

मौवीगन् समतिक्रम्य ययौ राज्ञी स माथुरान् । मौराष्ट्रान्यमतिक्रम्य मरुदेशं ययौ हयः ॥३०॥  
 धन्वदेशमतिक्रम्य ययौ मागस्वतानह । मत्स्यान् देशानतिक्रम्य ययौ राज्ञी स माठरान् ॥३१॥  
 शूरसेनानतिक्रम्य पांचालान्तुगो ययौ । कुरुक्षेत्रं ततो गत्वाऽतिक्रम्य कुरुजंगमान् ॥३२॥  
 देशं कैकेयमुल्लंघ्य ययौ काश्मीरमुत्तमम् । मिल्हदेशं गौडदेशं यक्देशं ययौ हयः ॥३३॥  
 धवर्नाम्नाप्रदेशांश्च समतिक्रम्य वैगनः । पश्यन्नानाविधान् देशान् करतोयातटेन वै ॥३४॥

और बट भारवक साथ अपना संपत्तिसे राजकुमारी पूजा की । समस्त निज कोशादि राजकुमारी अर्पण करके पुरवासियोको, अपने बटुभक्तों, जनपदवासीसोंका एवं अपने मित्र-बान्धवोंका वाहनोंक साथ अश्वमेष यज्ञमें अगध्या भज दिया । किन्तु स्वयं सेनाके साथ अनुष्णके दशवर्ती होकर ययौय अश्वके चरणोंको लक्ष्य करके साथ-साथ चले । इसी तरह सब देशोंके राजा लोग राजकुमारी दशवर्ती होकर अश्वके पीछे-पीछे चले ॥ १४-१९ ॥ पृथ्वीपर किमी भी राजाने श्यामकर्ण बाहुको नहीं बाँधा । न स्वयंमें इन्द्रादि देवताआने और न पाताललोकमें अतुराने उसे बाँधा । २० ॥ उसके बाद थोड़ा बहुत बटुकलिगादि अनेक देशोंमें होना हुआ समुद्रसटपर पहुँचा । २१ ॥ वहाँसे नृपसमूहके साथ बहु दक्षिण दिशामें गया । फिर गोदावरी नदीको पार करके आंध्र, द्विषड, कारवार नामक देशोंका अतिक्रमण करके नाना प्रकारके मनीहर प्रदेशोंमें घूमता हुआ कावरी नदीको पार करके चोलदेशमें आ पहुँचा । वहाँमें समुद्रसटपर सेतुबन्ध रामेश्वर होकर पश्चिम दिशामें गया ॥ २२-२४ ॥ वहाँसे बहु थोड़ा ताम्रपर्णी नदीको लाँघ तथा कैल देशका अतिक्रमण करके गोकर्ण तीर्थमें आ पहुँचा ॥ २५ ॥ वहाँसे कृष्णा नदी उत्तरकर बहु थोड़ा कर्णाटकमें पहुँचा ॥ २६ ॥ वहाँसे कोकण देशको पार करके उत्तरेऽशीय राजाओंक साथ मीमा नदीको लाँघता हुआ महाराष्ट्रमें आ पहुँचा ॥ २७ ॥ वहाँपर गौतमी नदीको लाँघकर विदर्भ देशमें होता हुआ आमीरमण्डलमें पहुँचा ॥ २८ ॥ वहाँमें मालवा होता हुआ महानदी पुण्याका अतिक्रमण करके गुजरातमें पहुँचा ॥ २९ ॥ वहाँसे प्रमास तीर्थमें आकर जानत देशको गया । फिर सोवाण आदि देशोंको पार करके थोड़ा मथुरा प्रदेशमें गया । वहाँसे सीताष्ट्र देशको लाँघकर मरुदेश ( मारवाड ) में पहुँचा ॥ ३० ॥ उसके बाद धन्व नामक देशका अतिक्रमण करके सरस्वतीके तीरपर गया । वहाँसे मत्स्य देशमें घूमता हुआ माठर देशमें गया । ३१ ॥ उसके बाद बहु श्यामकर्ण थोड़ा कुरुक्षेत्र, पंचाल, कुरुक्षेत्र, पांगल एवं कैकेय देशमें भ्रमण करता हुआ कश्मीर गया । वहाँसे मिल्हदेश,

ययौ राज्ञो वायुमत्या शोभ ज्वलामूर्त्तीं प्रसि । दोषमास्या कर्मोयां तीन्वा नैवाद्रतो गतः ॥३६॥  
 कर्मनाशानदोषशान्त् कर्मोशचलवनान् । गंडर्को राहुनग्णादमः स्खलति कीर्तनाद् ॥३६॥  
 हरिहारं ययौ राज्ञो ततो गङ्गातटेन हि । हिराद्रेः मन्त्रिभ्यो देशान् सुमतिक्रम्य वेमतः ॥३७॥  
 यद्विकाभमयालोक्य कलापशायकाग्निभिः । संमानित्यदा भार्जो गन्वा तन्मानसं सरः ॥३८॥  
 रष्ट्रा हरिहरभेदे मिथिनां प्राप सेनया । नानादेशानतिक्रम्य ह्यर्पावर्तं ययौ ह्य ॥३९॥  
 रष्ट्रा कःशीं त्रिदेणी च ह्यनर्वदी ययौ जवान् । शृङ्गेधुं गन्वा तमसां तां विलम्प च ॥४०॥  
 यत्वा स नैमिषारण्यं मधुन्तल्याथ गोमर्तम् । जलावर्तं गतो गन्वा पश्यन् देशान् मनोरथान् ॥४१॥  
 कोमलाकृत्य महादेशं रष्ट्रा राज्ञो मनोरथम् । ततः मार्केतुविषये पश्यन्मे प्राप चाप्सरम् ॥४२॥  
 नानादेशान्वृषः साधं शृङ्गेनाभिराश्रितः । अगर्तं श्यामकणं तं ज्ञान्वा सीतावतिस्तदा ॥४३॥  
 जाहावपय च सौमित्रिं सौमित्रिं प्रपुञ्जगाम तम् । पश्येद्द्रुं पुरस्कृत्य मेरीदुर्दुमिनिःस्वनः ॥४४॥  
 वाग्म्योणां नृम्यगर्वित्वेदोषाद्विजोर्गवः । सङ्ख्याथ श्यामकणं नृपतींश्च मत्विष्मत् ॥४५॥  
 मानपामाम सौमित्रिः शनैरभ्यगमदपम् । महात्मसो महानमजदा तुरगदर्शने ॥४६॥  
 दक्षयोजनपर्यंत सर्वत्र जगत्तलम् । व्याप्तं सर्वं ततोऽधोऽपारहिर्नृपगणैस्तदा ॥४७॥  
 तत्र सर्वत्र राजानः पूर्वमपेक्षितान् । पश्यन् ज्ञानपदान्स्त्रांश्च वडगंभो भ्रमरावमाः ॥४८॥  
 सैन्येन वध्नन् सर्वे स्वीयदर्शनशान्दसाः । न प्रापुःस्ततः तेषां त्रयीषेऽप्सरमदपे ॥४९॥  
 केचिपे दर्शनं स्वानां प्रपुञ्जन् परेऽहनि । केचिन्मृगोदरे दिवसे पश्यन्मे मममेव वा ॥५०॥  
 केचिद्दुर्दुमिपोषेण प्रापुः स्वानां पश्यन्म् । केचिन्ममानन्तरं हि मासेनानतरं जनाः ॥५१॥  
 केषां त्रिषाण एवापान्चिरकालं तदाऽप्सर । तज्ज्ञान्वा गमचट्टांश्च लक्ष्मणं प्राप मादरम् ॥५२॥

गोहृदय, शरदण, ज्योतिष, दण, एव सायदणस निवन्कर करताया नदीक तरवती नानाविध सनाहर  
 रूपकाय दम्पता दुष्टा वरे जन्मे उज्जयिन्त्याक पावय प्रदणम गता ॥ ३६-३८ ॥ बर्जित करताया नदीका पर  
 करक मन्त्रिक प्रदण म गता गता । नदीक व मन्त्रिका नदीका मन्त्रिक करतो, वा गता वा मन्त्रिक व मन्त्रिके, गताकी  
 नदीका व दृष्टा दृष्टा तं गता और धार्मिक व मन्त्रिके उनका वाचन करनेसे दम्पता क्षय होता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥  
 महति बहु गङ्गाक तल ही नर ह कर हरिद्वार वर । वर म हिमालयके प्रदणम जाकर वादिकाभम पट्टा ।  
 महति कलापशायनिकासिद्धिका । अत्रिभ्य नरक बहु पादा आर्पावत दणम गता ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ महति राज्ञो  
 और गङ्गातटपर धूमता दुष्टा वरगुणक जगत्तलम गता । फिर शृङ्गेधुनयमे जाकर लक्ष्मणाको पार करक  
 सौमित्रारण्यम गता । महति गामना और महावर्तं कलापयका जाकर मन हर दणम उज्जयिन्त्या दुष्टा कास्य  
 दणमे पट्टा । इस प्रकार छ म्हा गते धूमता दुष्टा बहु भय विर जगत्तलके निगन्तर्गे अन्धमधके पश्यन्तम मा  
 पट्टा ॥ ४०-४२ ॥ अन्त दणक राजात्रीक माव मन्त्रिभ्य अभिराश्रित दणम गता ॥ ४३ ॥ दणम कर्ण ५ देको माव  
 दुष्टा मुनकर सीतावति गमचट्टावत उसको नानक विर लक्ष्मणाका आज्ञा ही । लक्ष्मणाकी हार्दपर चरकर  
 बडे उत्साहक साथ उनको जगताया करक निरगव, २ विचित्रक न मन्त्रिकावता और राजाभेको पुन करके  
 उस धर-धारे पश्यन्तम म गता । उस समय पांडवा देखनेके निर प्रजाकर्तमे बड़ा उत्साह वा ॥ ४३-४५ ॥  
 उज्जयिन्त्याके दणम अन्धकाके बाहर दम गामनतक कर्ण्य पुण्यामण्डल राधा मन्त्रिकाओ तथा अमाव-उम-  
 रावसे भदा वा ॥ ४७ ॥ यजम दणमे भ द वा कि ग्यामकर्ण अन्धके पाव भ्रमण करक लोट हुए राजा लोम  
 पहिलेसे बर हुए अपन म्भ भुव वाचिकाक लावन हुए उनको देखनेकी इच्छामे दूसर दूसर धूमन रहे वा उन  
 गजकायिक मनमदुदायमे उन लावोवा प्राप्ति नहीं कर सके ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ कोई लावन म्भ उन दूसर दिन मित्र-  
 वाग्म्यसे मित्र सका । कोई लान्ते दिन कोई पांचव राज और कोई लावन गम मिला ॥ ५० ॥ किन्तीको  
 गताइका धर्मिक स्वर्गनाका पता लला । किन्तीको एक पश्यन्तके बाद और किन्तीको एक दणको बाद  
 गता गता ॥ ५१ ॥ किन्तीको चिरकाल तक पता ही नहीं लगा । यह मुनकर भगवान रामचन्द्रजाने लक्ष्मणसे

परस्परं वियोगोऽयं ममर्हेन तु लक्ष्मण जायते तत्र युक्तिं त्वं मत्तः श्रुत्वा कुरुष्व ताम् ॥५३॥  
 तमसापास्तरे शालां कुन्वाऽयं महर्ता शुभाम् घोषणीयश्च सर्वत्र महाद्दुर्भिनःस्वनैः ॥५४॥  
 येषां वियोगस्तर्गन्वा तमसातटशोभिनाम् । शालां प्रवेशयस्व हि स्वानां योगोऽस्तु तत्र हि ॥५५॥  
 चतुष्पदादिवस्तूनि ज्ञान्वा यस्य लघून्यपि । तत्रैव स्थापनीयानि स्वं स्व गृह्णन्तु ते जनाः ॥५६॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तथैन्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा सकारं तन्मर्गे येन योगः परस्परम् ॥५७॥  
 मर्गे तत्र जनाः प्रापुः स्वानां स्त्रीचालमत्रिणाम् । चतुष्पदादिवस्तूनां तत्र लाभो बभूव ह ॥५८॥  
 यत्किञ्चिद्विस्मृतं येन वद्दुष्टाऽभ्येन च तदा । शालायां स्थापितं दृष्ट्वा त्वयं जग्राह तत्र सः ॥५९॥  
 एव आरामयते हि ममर्हः संश्रूय ह । न तत्र शुश्रूवे हृन्दः कर्णेऽप्युक्तो जनेस्तदा ॥६०॥

तनन्ते पार्थिवाः सर्वे तस्यैव मनसि च सु ॥६१॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतांतथोमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय यागकाण्डे अष्टादशमोऽध्यायः नृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

### चतुर्थः सर्गः

( रामका कुम्भोदर मुनिसे साक्षान्कार )

श्रीरामदास उवाच

अथ ते ऋत्विजः सर्वे मंगलविधिषु शुभैः । यम्यक् प्रवर्तयामासुर्वाजिमेधं यथाविधि ॥ १ ॥  
 तत्रर्षिजो वाजिमेधे गन्तव्योऽयं वामनः । ममदस्या विरेजुम्ने यथा दृष्टहृणोऽध्वरं ॥ २ ॥  
 एतस्मिन्मन्त्रे तत्र सुरेशसहितैः सुरैः । स्वामिना विष्णुराजेन पार्वत्या वृषमस्थितः । ॥ ३ ॥  
 महेश्वरो यज्ञघाटं रामाहूतो यथा गणैः । शिवमागतमाज्ञाय मन्त्र्युद्गम्याथ लक्ष्मणः । ४ ॥  
 वारणेंद्र पुरस्कृत्य पनाकाध्वजतारणैः । नानावाद्यमुद्योपश्च वारस्त्राणां प्रनर्तने ॥ ५ ॥

कहा—॥ ५२ ॥ यहाँ भोटक कारण परस्पर त्यागका विभाग हो जाता है । अतएव मैं एक युक्ति बतलाना हूँ । उसको कहे । ५३ ॥ तमसा नदीके तटपर एक लड़ी या तो शाला वनवासी या तो दुष्टदुष्टी पिष्टवा वो कि भूने-भटकोको खोजना हो तो तमसा नदीके तटपर जहाँ नयी शाला बनी हुई है, वहाँ जाओ । वहाँपर भूले-भटकों-को खोज पाओगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ लोगोंको खड़ीम लेकर छांटो छांटो भां खोयो हुई वस्तुएँ खोज-खोजकर वहाँ रखी हैं । वहाँ जिस-जिसकी जो-जो वस्तु हो, वह अपनी-अपनी वस्तु ले ले । इस प्रकार रामजीके वचन सुनकर लक्ष्मणने कहा—अच्छा महाराज ! ऐसा ही करेगा । इसके बाद लक्ष्मणजीने ऐसी व्यवस्था की, जिससे सबका अपने निवृत्त वाग्धवासे मिलाने होत लगा । ५६ । ५७ । विपुल वस्तु वहाँ गयी और सबको अपने अपने स्त्रो-पुत्र-मिनादि और लक्ष्मणजीके पाशु सभी मोई हुई चीजें मिल गयी । जहाँ-कहाँपर जिससे जो वस्तु बूझसे छूट गई, उस वस्तुको राजानुधरने तथा जिसने देखी एवं जिसको मिली, उसने वहाँ शालामें रखवा दी और जिसकी वह वस्तु थी, उसने वहाँ जाकर ले ली । ५८ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार श्रीरामजीके यज्ञमें ऐसी भोट हुई कि जिसके कारण कानमें कहा हुआ भी शब्द मनुष्योंका नहीं सुनाई पड़ना था । ६० ॥ राज भगवान्के दशन करके सब राजा लोग अपने-अपने स्त्री-पुत्र मित्रादिकोका लेकर अलग-अलग तन्मुखों ( लेखों ) में रहने लगे । ६१ । इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तान्तथोमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय यागकाण्डे अष्टादशमोऽध्यायः नृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर सब ऋत्विक् मंगलमय कुन्वोंके साथ-साथ शास्त्रानुसार सन्धमेध यज्ञ करवाने लगे ॥ १ ॥ उस समय यज्ञमें रत्नमय आभरणों और धरुनाको पहिने हुए ऋत्विक् ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे इन्द्रके यज्ञमें सुशोभित होते थे ॥ २ ॥ उसी समय वहाँ रामजी के कुन्वोंसे बैलपर चढ़कर महादेव और पार्वतीजी आयीं । उनके संग इन्द्रादि देवता, स्वाधिकारिकेय, गणेशजी एवं प्रमदादि सब गण भी आये ॥ ३ ॥ महादेवजीका आगमन सुनकर सम्पूर्ण नगर भवजा-पत्तिका आदिसे सजाया गया ।



संपूज्य शंकरं भक्त्या चानयामास महत्तमम् । एवं नम एवान्यथे गन्धा समोऽपि शंकरम् ॥ ६ ॥  
नमस्कृत्य सप्तान्निभ्य विश्वेश गिरिजाश्रितम् । ह्येमांस्तु मन्त्रिभ्य देवपात्रे स्वहस्ततः ॥ ७ ॥  
पादप्रक्षालन शर्मोश्चकार सौम्या प्रभुः । हस्तानामिदं दत्तवान् मर्माग्नादिनिवृत्त्या ॥ ८ ॥  
अलभार्गं यथायोग्या मोचयामास जनान् । तारके गतं मन्त्रं शृत्वा दधमणास्वरा ॥ ९ ॥  
अनिमेषाः कञ्जनेत्रकटाक्षाः सन्निगच्छन् । ततोऽत्रोपमं ब्रह्मन् न विदुः के वयं न्वित ॥ १० ॥  
तुष्टुस्मन्त्रं कश्चिन्ने सुगः श्रागधरं मुदा । च नर्तः तुष्टु केचिन् प्रवद्वक्त्रमम्बुदाः ॥ ११ ॥  
एव निजैर्मद्यानां सर्वोपमन्त्रं वै स्रभुन । अर्नोपमं तयं दृष्ट्वा रूप कोटिप्रतिप्रभम् ॥ १२ ॥  
अथ गमः सौम्या हि शंकरं गिरिजामपि । स्वयं मधुसूय सकलान् देवान् सौमित्रिणा कर्षयन् ॥ १३ ॥  
पूजयित्वाऽत्र वाङ्मयं शंकरं लोकशंकरम् । अथ पन्थोऽस्म्यहं वद दशनात्तरं सौम्या ॥ १४ ॥  
अथ मे सूर्यवरीऽस्मिन् जन्म म कल्पयतः शतम् । इति गमस्य वचनं श्रुत्वा स इतिभूषणः ॥ १५ ॥  
विदुष्य राघवं प्राह वेत्ति माया हरं तव । त्वन्तः भिकमन्त्रे ब्रह्मा ज्ञानमन्त्रमाम्बुनामराः ॥ १६ ॥  
मरीच्याद्याः मन्त्रभूतः पोत्राः मन्त्रहर्तात्रयः । परमिन् कश्यपः पुत्रः सृष्ट्युत्पत्तिवैधापकः ॥ १७ ॥  
कश्यपात्मविता जज्ञे योऽप्योपमन्त्रं प्रभा । स्वेजानः सूर्यश्चन्द्रश्च तव जन्म वै ॥ १८ ॥  
अद्वयमभवः सूर्यः किं मां मोहयामि प्रभो । देवानां कार्यमिदृशं यमार्त्ताणोऽपि मायया ॥ १९ ॥  
कुरु क्रीडां यथेच्छ त्वं यात्रापत्रादिभीतुर्कः । शिषां करोषि लोकान्ना वदुम्यहं वेष्टितं तव ॥ २० ॥  
इति श्रुत्वा शंभुवाक्यं सौम्यागमो विदुष्य च । अक्षरं इममपि तु तुष्टुतुष्टुमन्त्रिर्भा ॥ २१ ॥  
एतस्मिन्नन्तरे तत्र न भजामु महाम्रजः । गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धास्तथा चाप्यमर्मा मयाः ॥ २२ ॥  
लोकपालाश्च दिक्पालाश्च समानलनिरगिनः । नवग्रहाः पटुतवाः पश्चिमवर्गगस्तथा ॥ २३ ॥

[illegible]

ऋक्षाणि त्रिदशयोगा कर्णानि च राज्ञयः । सर्वान्तरः सर्वे मगगश्च नदा अपि ॥२४॥  
 मगगराणि नद्यश्च वायुः कृशकृष्णधरः । घृन्वा जगमरुपाणि यद्युक्ते यज्ञमण्डपम् ॥२५॥  
 ममामृतञ्च संपत्तिर्गुदको मकरध्वजः । ममापर्यो म लङ्काया राजर्षेश्च विभीषणः ॥२६॥  
 मर्निना राघवेणापि यज्ञं तस्युः प्रयुजिताः । त्वन्निके स्थापिताः पूर्वं सर्वशम्भु प्लवंगमाः ॥२७॥  
 एतांस्मन्नन्तरे तत्र ममाशानो मुनिश्चरः । कुम्भोदरो महानेत्राः सीमाचारैर्विलोकितः ॥२८॥  
 तं दृष्ट्वा मयभीतास्ते सर्वे प्रोचुः परस्परम् । हा कष्ट पुनरागतः सोऽयं कुम्भोदरो मुनिः ॥२९॥  
 यात्राश्रमो राघवस्य यन्मिस्तो बभूव ह । यद्वाक्यादश्वमेधोऽपि सर्वेषां यज्ञभूव ह ॥३०॥  
 महान् भ्रमोऽयं पुंस्तु भ्रमतां जगतीदले । अयुनाऽपि ममाशानः किमग्रे वै पुनश्चयम् ॥३१॥  
 कर्मण्य न न तद्विप्रो राघवस्यापि विदकः । एष नानाविधा राज्ञः सीमाचारगणैरेतः ॥३२॥  
 मृण्मयं कुम्भोदरस्तुर्णी ययो यज्ञभूव प्रति । सदागमनपूर्वं स सीमाचारैर्विवदितः ॥३३॥  
 धावद्विर्धमानश्च स्थलद्वान्निन्दरात्रिवैः । राम राम महाबाहो हे लक्ष्मण मृणु प्रभो ॥३४॥  
 याचायज्ञश्च यद्वाक्यात् समाशानः स वै पुनः । कुम्भोदरो मुनिभृष्टो राम त्वमपि निष्ठुरः ॥३५॥  
 तद्दुश्मन्वचनं श्रुत्वा सर्वे तरङ्गीनीन्सुकाः । त्यक्त्वा स्त्रीषानिकर्माणि चोत्सृज्य स्तुतिदृष्टया ॥३६॥  
 कान्तिजो राघवः सीता न भयं मेतरे मुनेः । कुम्भोदरो यज्ञवाट ययो सविविर्लोकितः ॥३७॥  
 अतिस्वर्गः स्थूलशिराः उपामकणः मण्डूकः । म्यलेदरः पिगनत्रः सर्पिणीनां जटाधरः ॥३८॥  
 चीरवासाः स्वपादः खड्गभ्रमो महामुनिः । पुत्रा किंभिन् समुपुनो घृतदण्डकमण्डपः ॥३९॥  
 तं दृष्ट्वा मरुता लोका मयं प्रादुः स्वचेताम् । पूनकथं न सम्मृज्य मथुन्य च पराधम् ॥४०॥  
 एतांस्मन्नन्तरं राघः शीघ्रं प्रत्युज्जगाम नृप । माष्टाणि प्रणयन्वाच करे घृन्वा तु मण्डपम् ॥४१॥

हिंदू-नगरण एवं मगगराओवा गण आया ॥ २४ ॥ समूह लक्ष्मण, दत्तात्रेय तथा मन्मथ, कवासी भी भाव । नवी  
 यह, छत्ता अंगुली, सातो सम्बन्धर एवं तिथि नक्षत्र याग करण रास पवत वृद्ध सप्तुद नद नदी कृष्ण लालाव तथा  
 अन्य सुखम प्राणी सभा आने जलम कर घाटण करक गणक यज्ञम अय ॥ २५-२४ ॥ मृधगज सभाति, निषादराज  
 एवं मकरध्वज अ ये तदनन्तर सभा राजसोक स व लकास विषयण ना आयी ॥ २६ ॥ मगवान् रामन सबको  
 पूजा का ओर भवन समाप्त वेटाया कदर पहनस हा वही टिक थे ॥ २७ ॥ इयं समय महातेजा  
 कुम्भादर मुनि आये । गुरु भूमिका साम पर निवास करनवालोने उन्ह भले हुए देखा ॥ २८ ॥ वे देखकर बड़े  
 मयभ त हुए और बोले अह ! बड़ कष्टका यात है । यज्ञ ता फिर व कुम्भादर मुनि का भये ॥ २९ ॥ जिनके  
 कारण मगवान् रामका यात्रका कष्ट हुआ था, जिनके कारण हम सबको अश्वमेध हो गया ॥ ३० ॥ धड़के  
 पोरदवस मगगन इधरसे उधर उधरसे इधर घूमन हुए अत्यन्त कष्ट भाग । अब यह फिर आये है । अब  
 बाग क्या करण, सा हमलाग नही जानत । यह रामवाना नडा निन्दक है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सीमाचारी  
 लोकी वणिवाकर मुनत हुए, कुम्भादर बुधच प यज्ञभूमिम आये ॥ ३२ ॥ उनका अनेक पूर्व हा बड़ वेगसे  
 भागल-कापत हुए दूतीने आकर राघव निवेदन किया- ॥ ३३ ॥ हे राम ! हे महाबाहो लक्ष्मण हे प्रभा ! आप  
 लोग मुने, जिसके वाक्यस अ पन गाथा और वज्रिका है वही कुम्भादर मुनि फिर आये है । हे राम आपके  
 ऊपर इनका बड़ा कठर भाव है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस तरह इनके वाक्य सुकर सब अपने अपने कायोंका  
 छोटकर उन्ह दावतका उठे ॥ ३६ ॥ कानिदक लग, सातो तथा रामजी मुखस मयभ, नही हुए । उनके देखते-  
 देखते वे कुम्भादर मुन यज्ञभूमिम आ पहुँच ॥ ३७ ॥ जा बड़ नाट थे जिनका मस्तक बड़ा था जिनका नाड़ियाँ  
 उमड़ा थी, जिनके शिरास कण थे । ना सटाई पहन हुए तथा स्तूल उदरवाले थे पेलवाल जिनके नत्र थे । वे  
 कीर्पन पहिन तथा जटा घाटण किए थे ॥ ३८ ॥ फिर पहिन हुए व छोट छोट हाथोवाल थे । कुवा हेनस  
 जिनके मुँह का गही थो और जा दण्डकमण्डनु घाटण किए हुए थे ॥ ३९ ॥ उनका दलकर सम्पूर्ण अनसमुदाय  
 बचक पहिनके कुवाको मुन गुन और स्मरण करकरक मन हु मन भदधीत हुआ ॥ ४० ॥ उसी समय राम

आनयामास श्रीगणो ददौ ईशमन वरम् कुम्भोदरो धुनिः प्रीतिं भूमौ वडकमडम् ॥४२॥  
 स्थापयामास श्रीराणि ननाय रघुनायकम् । रामः प्रीतिं कराम्णां तं प्रपुन्यात्पु मुनीश्वरम् ॥४३॥  
 गाढमालिङ्ग्य ब्राह्मणां ततो मुनिमभ्यषत् नाह योऽसौ वदनार्थं त्वया रात्रययातकः ॥४४॥  
 इति रामश्चोर्वैश्यानिः संताडिनो हृदि । कुम्भोदरस्ततोवाच यद्गच्छे रघूत्तमम् ॥४५॥  
 राम राम महानाहो न क्रोधः किमनो मयि । प्रपरात्यस्म्यहं ते हि क्षमस्व रघुनायक ॥४६॥  
 न मया स्वार्थमिदमर्थं दोषारोपः कृतस्त्वयि । कृतः परोपकारार्थं तथा कीर्त्यं त्वयपि च ॥४७॥  
 शिक्षार्थं सकलान्लोकात् उच्छ्रितं च त्वयापि हि । यत्ते सुतयः सर्वे तव मन्त्रेऽन्ननिर्मिते ॥४८॥  
 श्वश्रो भोजनं चक्रुस्तथा धुक मयाऽपि च । तदा कुतो महत्कीर्तिस्त्वन मे रघुनन्दन ॥४९॥  
 इति निश्चिन्त्य हृदये मया पूर्वं हिताय हि । लोकाणां च कुतो यन्नमन्यपि दोषानुकीर्तनैः ॥५०॥  
 नोन्नेषान्नाममुद्योगः कथं राम भवेत्तव । यत्र यत्र च देशेषु तीर्थेषु वनेषु च ॥५१॥  
 आश्रमाश्रमश्रावेषु नदीयनगिरिष्वपि । ये ये जनाश्च सर्वत्र नानाकर्मसु तत्पराः ॥५२॥  
 तव दर्शनलामस्तु तेषां जतः सुखप्रदः । तत्राहं कारण मन्ये चान्मानं रघुनन्दन ॥५३॥  
 ममालमुपकारस्तु जनैः सर्वत्र कीर्त्यते । कुम्भोदरप्रसादेन नः सीतलामदर्शनम् ॥५४॥  
 ज्ञातं विषयलुब्धानामिति मे कृतकृत्यता । जानासमन्तं कीर्तिस्त्वयि दोषानुकातं नान् ॥५५॥  
 तवापि कीर्तिः सर्वत्र जानाश्च रघुनन्दन । रामेश्वरश्च सर्वत्र रामतीर्थान्यनैकशः ॥५६॥  
 यावदुभूय्यां प्रसीयेत तावत्कीर्तिस्तथापि च । अन्यच्च लोकशिक्षार्थं जाना मद्रक्षरकारणात् ॥५७॥  
 कुम्भोदरेष धुनिना राघवस्य महान्मनः । दोषारोपः कृतः पूर्वं कथं नो न भविष्यति ॥५८॥  
 स्वदोषपरिहागर्थं राघवेण महान्मना । तीर्थयात्रां कृत्वा पूर्वमस्माकं का कथा पुनः ॥५९॥  
 इति स्मृत्वा भयं चित्तो सर्वत्र जगतीयते । कम्पिन्नि जना यात्रां स्वदोषशालनाय हि ॥६०॥

बड़ा गाथावाले आये और कुम्भादरको गालाजू प्रणाम करके हाथ में हाथ मिलाते हुए, यज्ञमण्डपमें न आये  
 और उन्हे सुवर्णनिर्मित आसन बैठनेके लिए दिया ॥ ४२ ॥ कुम्भादरने भी आश्र ही भूमि पर उष्य नमनकन रख  
 कर रघुनायक रामको प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ रामने मोंद्र मूलको हाथसे उठा लिया और बहुतआस हृदालिङ्गन  
 करके बान हे भगवन् । रात्रययातक मे आपकी खन्दता कर्त्त याग नही है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ राम तरह रामक  
 वाक्यवाणसे हृदयमे विद्ध कुम्भोदर रामसे कहने लगे ॥ ४६ ॥ हे राम । हे महाबाहो ! आपकी इस तरह  
 मेरे ऊपर क्रोध नही करना चाहिए । मे आपका अपगधी है । मुझ क्षमा कर ॥ ४७ ॥ मेने स्वार्थमिदिके  
 लिए आपके ऊपर दोषारोपण नही किया था । किन्तु संसारका उपकार करनेके लिये, आपकी कार्त्तिकृति-  
 के लिए और संसारकी शिक्षित करनके लिए ही मेने ऐसा किया था । सो आपन जान ही लिया होगा ॥ ४८ ॥  
 ॥ ४९ ॥ जैसे इन मुनिगोन आपक अन्नअंशम सकडा दार भोजन किया है वैसे ही मेने भी भोजन किया है ।  
 आपकी और मेरी कीर्ति कैसे हो, पहलेसे ही यह निश्चय करके मनाके हितके लिए मेने आपकी निन्दा की  
 थी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अन्यथा हे राम । विभिन्न तीर्थों तथा देशोंके लिए आपकी यात्रा नही होनी । विविध तीर्थ,  
 तथा, वन बर्गचा तथा आश्रमोंम जा मनुष्य नाना कर्माने लिख हा रहे है, उनका जो आपका सुखप्रद दर्शन-  
 लाभ हुआ । उसमे मे अपनेको ही कारण मानता है ॥ ५१-५३ ॥ सब मनुष्य सभी जातु मेरे इस उपकारका  
 कीर्तन करते है । वे कहने है कि कुम्भोदरको कुत्राम ही हम लोगको संतापनके दर्शन मिल गये ॥ ५४ ॥  
 आपके ऊपर दोषारोपण कर दस विषयी जनाका भी आपका दर्शन प्राप्त हुआ । इससे मे कृतकृत्य हो गया  
 और चारो तरफ आपकी कीर्ति फैल गयी ॥ ५५ ॥ जवनक भूमण्डलपर विविध राघवर महादेव और रामतीर्थ  
 रहेने, तावतक आपकी कीर्ति संसारमे स्थिर रहेगा ॥ ५६ ॥ और फिर मेरे दुर्वचिके कारण ही यह लोकशिक्षा  
 भी हो गयी कि कुम्भादर मुनिने अब रामबाहो दोष लगाया तब हमलोको कैसे न लगेगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥  
 प्राचीन समयमे महात्मा रामचन्द्रने दोषको नष्ट करनेके लिए तीर्थ किया था तो फिर हमलोको ही कहना

स्वपि ब्रह्मणि पूर्णे च दोषारोषं कथं भवेत् । परमत्रे जलस्थर्षो न घटेव यथा तथा ॥६१॥  
 यस्य भ्रमगमात्रेण ब्रह्मादप्रलयो भवेत् । ब्रह्मादांतमकान् जीवान् हर्गमि त्वं यदा मुहुः ॥६२॥  
 तदा दोषानुरोपन्ते किं घटेन जनार्दन सर्वपां च ह्य मृत्युर्दिदधानि तवाज्ञया ॥६३॥  
 तत्र संख्यात्र का कार्या न्यया दोषः कुतस्मिन्निति यथा चित्राणि कुड्ये हि निर्जीवनानि सहस्रशः ॥६४॥  
 संसर्जितानि तेनैव तत्र दोषो मयंकथम् । तथा स्वमपि श्रीगाम त्रिधा भूत्वा त्रिभिर्गुणैः ॥६५॥  
 सृष्टिं करापि रजसा सत्त्वरूपेण पालनम् । तमोरूपेण सहारं विधिरिण्युञ्जितान्मकः ॥६६॥  
 अस्माभिस्तत्र तोषार्थं तीर्थयात्रा विधीयते । तव तीर्थस्तु किं राम तीर्थीभूतगुणस्य च ॥६७॥  
 सवतीथयु मुरुया या कीर्त्यते स्वधुनी भुवि । तव दक्षिणपदस्यांगुष्ठाग्रजनिता तु सा ॥६८॥  
 त्रयोद्विरजसः स्वर्गान्पश्चिदा कीर्तिना भुवि । तव पादरजोमिश्रा दृश्यतेऽद्यापि सा मिता ॥६९॥  
 रजोत्पद्यापि दृश्यन्ते तव भार्गवर्षोजले । इति नानादिर्धार्क्यस्तोषयामास राघवम् ॥७०॥  
 अष्टोत्तरशतं यावत् श्रीमद्रामस्तनेन च । स्तुत्वा राम राघवण पूजितः स्थितवान्मुनिः ॥७१॥  
 तमोऽपि गुरुसान्निध्ये तम्यो र्गनामपन्वितः । निद्रामनेषु सर्वत्र तस्मिन्ने सकला जनाः ॥७२॥

इति आगतका दृगभर्चरितास्तगतश्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे

कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

## पञ्चमः सर्गः

( रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र )

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद सविस्तरम् । कुम्भोदरेण मुनिना यस्तोत्रं समुदीरितम् ॥ १ ॥

अष्टोत्तरशतं नाम्नी राघवस्य शुभप्रदम् । श्रवणे तस्य मे प्रीतिर्जाताऽस्ति कथयस्व तत् ॥ २ ॥

हा भैया है ॥ ५९ ॥ इस तरह पृथ्वीतलपर मनुष्यमात्र अपने चित्तमें सदका अनुभव करके स्वदासपरिहाराय  
 तार्थयात्रा करेगा ॥ ६० ॥ जैसे कमलके पत्रेपर जख्म स्पष्ट नहीं हो सकता, वैसे ही आप पूर्ण रह्य़ा दोषारीय  
 नहीं हो सकता ॥ ६१ ॥ जिसके भ्रम द्रुमात्रसे ग्रहणाण्डमें प्रत्यक्ष हो जाता है वही आप ब्रह्माण्डास्तगत सब जीवो-  
 क्तों अन्तर्में विज्ञान करने हैं ॥ ६२ ॥ तब है जनार्दन भगवर कायागत कैसे हो सकता है ? अब आप ही  
 की आज्ञासे मुझे सबका सब काती है ॥ ६३ ॥ तब आपन कितने दोष किये ह ? इसकी गणना कीन कर  
 सकता है ॥ ६४ ॥ जैसे किसी ने मिट्टीपर चित्र लिखा और फिर च्यान अपन हाथसे मिटा दिया । तब उसमें  
 क्या रस्य हो सकता है । उसी तरह आप भी तीनों गुणोंसे तीन तरहके अर्थों सह्य-विद्यगु-णितरूपमें  
 परिणत होकर रजोगुणसे सृष्टि, सत्त्वसे पालन और तमोगुणसे सहार करने हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इस काम  
 आपकी प्रसन्नताके लिए हम तार्थयात्रा करते हैं । स्वतः तार्थस्थाय आपका तीर्थोंसे क्या प्रयोजन है ॥ ६७ ॥  
 जिस गङ्गाको याग सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ मानत है, वह गङ्गा आपके दाहिने पोरके अग्रदेस उत्पन्न हुई है ॥ ६८ ॥ वह  
 यागके चरण रजस्वशसे ही पवित्र माना गया है । इसी कारण यह आज तक श्वेत दिखाई पड़ती है ॥ ६९ ॥  
 आज भी गङ्गाजीमें आपकी चरण-शु दाख रहती है । इस प्रकारक वात्सवीसे कुम्भोदरमुनि भगवान् रामको  
 प्रसन्न किया ॥ ७० ॥ इसके बाद रामाष्टोत्तरशतनामसे रामकी स्तुति करके और रामके द्वारा पूजित  
 होकर वे यथास्थान बैठ गये ॥ ७१ ॥ रामजी भी गुरुके समीप हीनांक स्नाय जा बैठे । अन्याय स्नाय भी अपन-  
 अपन आसनोपर विराजमान हो गये ॥ ७२ ॥ इति श्रीशतकोटरामचरितास्तगतश्रीमदानन्दरामायणे  
 कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीविष्णुदास बोल -हे गुरु । मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । जो प्रश्न मैं पूछना चाहता हूँ, उसका  
 आप विस्तृत उत्तर दीजिए ॥ १ ॥ कुम्भोदर मुनिने रामके जी अष्टोत्तरशत नामोंका शुभप्रद स्तोत्र कहा

श्रीरामदास उवाच

मृषु शिष्य महाबुद्धे सम्यक् पृष्टं त्वया मम । अष्टोत्तरशतं नाम्नां त्वदस्य वदाम्यहम् ॥ ३ ॥  
 सर्वेश्वरः सर्वेश्वरः सर्वभूतोपकारकः । सर्वेषामुपायार्थं यः साकारो निराकारः ॥ ४ ॥  
 स मन्त्रयेव लोकेऽस्मिन् समस्तभयनाशनः । यदा यदा हि लोकानां भयमुत्पद्यते तदा ॥ ५ ॥  
 अरुणीर्पाकरोन्मूर्त्तमान् दृष्टेऽपरिमदेनन् । मन्त्रपद्वर्षवराहादिरूपेण परमार्थदृक् ॥ ६ ॥  
 तच्छालेषु च सर्वेषु सर्वगद्विपाकृत् । पापुनां ममपिपासां मलानां भक्तशमकः ॥ ७ ॥  
 उपकर्तुं निराकारः सदाकारेण जायते । अत्राप्य जायतेऽनन्तो विभुनो भूः प्रभवनः ॥ ८ ॥  
 यदा तदाऽवतरति भक्तानामनुकम्पया । धीमान्धी देवदेवेशो लक्ष्मीनारायणो विभुः ॥ ९ ॥  
 अशेषैः शत्रुचक्षुष्यां देवदेवादिभिः सह । शेषोऽभूलक्ष्मणो लक्ष्मीनारायणो शत्रुचक्रके ॥ १० ॥  
 जातो भगवत्पुत्रो देवाः सर्वेऽपि मानसाः । मानसं पुरं सर्वेऽपि देवानां भयशान्तये ॥ ११ ॥  
 तत्र नारायणो देवः श्रीराम इति विश्रुतः । सर्वलोकपद्मागव भूमी स्वयमवानरत् ॥ १२ ॥  
 ध्यानपात्रेण देवेशो महापातकनाशकृत् । कीर्तनभक्त्याभ्यां च हृत्पाकोटिनिवाणः ॥ १३ ॥  
 कलौ स कीर्तनेनैव सर्वं पापं ह्वयोदति । राम रामेति रामेति च वदन्त्यतिपापिनः ॥ १४ ॥  
 चापकोटिमदस्यभ्यस्तानुदरति तान्पथा । अष्टोत्तरशतं नाम्नां तस्य स्तोत्रं वदाम्यहम् ॥ १५ ॥

ॐ अक्षय श्रीरामचन्द्रनामाष्टोत्तरशतमंत्रस्य मन्त्रा ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । जानकीवल्लभः  
 श्रीरामचन्द्रो देवा । ॐ बीजम् । नमः शक्तिः । श्रीरामचन्द्रः कीलकम् । श्रीरामचन्द्रश्रीमर्थ  
 मये विनियोगः । ॐ नमो भगवते राजाधिगजाय परमात्मने हृदयाय नमः । ॐ नमो भगवते  
 विद्याधिराजाय हृदयश्रीवाय शिष्ये स्वाहा । ॐ नमो भगवते जानकीवल्लभाय नमः शिष्यायै वषट् ।

है, उनके सुननेकी मरी प्रबल इच्छा है । वह कहिए ॥ ३ ॥ श्रीरामदास बाल-हं महाबुद्ध शिष्य ! मुनी !  
 तुमने अच्छा सवाल पूछा है । मैं तुम्हें रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र सुना रहा हूँ ॥ ३ ॥ राम सबभर है, सर्वेश्वर है  
 और सब प्राणियोंका उपकार करनेवाले है । वे निराकार होते हुए भी संहारक कात्यायनार्थ साकार  
 मनुष्यदेह धारण करते हैं ॥ ४ ॥ जब जब प्रजाको भय होता है, तब-तब उस भयको नष्ट करनेके लिये वे  
 इस लोकमें अवतार होते हैं ॥ ५ ॥ अवतारों होकर वे मत्स्य-वर्म-वराहादि रूपसे धनशत्रुमाका विनाश  
 करते हैं । भगवान् जो कुछ करते हैं, वह सब परमात्माकी इच्छासे ही करते हैं ॥ ६ ॥ वे भक्तवत्सल प्रभु  
 हृदयशील हैं । साधुओं और भक्तोंके उपकारार्थ निराकार होते हुए भी अत्यन्तकाल ही साकार हो जाते हैं ।  
 वे भूतभावान् प्रभु अनन्त एवं अज हैं और इन्ही नामोंमें प्रसिद्ध हैं । वे समय समयपर भक्तोंपर अनुकम्पा करके  
 अवतारों होते हैं । वे देवदेव इन्द्रके भी पातक हैं । वे द्यौस्तानमें उड़ने करते हैं और सर्वत्र व्यापक हैं  
 ॥ ७-९ ॥ वे हैं लक्ष्मीनारायण जिसके देवाके साथ वीराज्यके भवशान्तिार्थ रामरूपसे संसारमें अवतारों हुए ।  
 जेय लक्ष्मण बने । लक्ष्मी जानकी बनी और भगवान्के पार्श्व शम्भु अक्षय भगवान्के रूपमें उल्लस रहे  
 और सब देवता मानस बन ॥ १० ॥ ११ ॥ जो श्रीराम एही नामसे प्रसिद्ध हैं, वे साक्षात् नारायण हैं और  
 लोकोपकारार्थ संहारक स्वरु अवतार हैं ॥ १२ ॥ उन भगवान् रामके ध्यानमात्रसे भयानक भी नष्ट  
 हो जाते हैं । वे कीर्तन ध्वज कहलसे कोटि हृत्पाकोटि पापका भी निवारण कर रहे हैं ॥ १३ ॥ वे भगवान्  
 कलिय नाग कीर्तन करनेसे ही सब पापोंको नष्ट कर देते हैं । जो पौर पापी जो रामरूप उच्चारण करते हैं ती  
 राम उनका सहस्रकोटि पापोंसे उद्धार कर देते हैं । उन भगवान्के बड़े सांभालनामस्तोत्रकी कहना है ॥ १४ ॥ १५ ॥  
 रामचन्द्रके इस महानर रामनाम मंत्रके बड़ा ऋषि है । अनुष्टुप् छन्द है । जानकीवल्लभ ध्यानचन्द्रमः  
 इतक रहता है । ॐ बीज है । नमः शक्ति है । श्रीरामचन्द्र कीलक है । श्रीरामचन्द्रार्थ हृदयक विनियोग है ॥ १॥  
 है । ॐ हृदयमें बैठे हुए राजाधिराज परमात्माम्बरुप भगवान्को बारम्बार नमस्कार है । मस्तकमें विराजमान  
 विद्याधिराज हृदयश्री भगवान्को नमस्कार है । शिष्यायै विराजमान जानकीवल्लभ भगवान्को नमस्कार और

ॐ नमो भगवते रघुनन्दनायामित्वेजसे कवचाय हुम् । ॐ नमो भगवते क्षीराश्विनप्यस्याय  
नारायणाय नेत्रत्रयाय त्रीषद् । ॐ नमो भगवते सत्प्रकाशाय रामाय जज्ञाय फट् । इति षडंगन्यासः ।  
एवं अंगुलिन्यासः कार्यः ।

अथ ध्यानम्

मन्दारकृतिपुण्यधामविलसद्वधःस्थलं कोमल छातं फांतमहेन्द्रनीलचिराभामं सहस्राननम् ।

वर्देऽहं रघुनन्दन सुरपाते कोदण्डदीप्तः । गुरुं रामं सर्वज्ञमनुसेवितपदं सीतामनोवह्नुभम् ॥१६॥  
सहस्रशीर्ष्णं वै तुभ्यं सदस्त्राक्षाय ते नमः । नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च ॥१७॥  
नमो जीमूतवर्णाय नमस्ते विश्वतोमुख । अच्युताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शेषशायिने ॥१८॥  
नमो हिरण्यगर्भाय पञ्चभूतान्मने नमः । नमो मूलप्रकृतये देवानां हितकारिणे ॥१९॥  
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वदुःखनिपूदन । शंसचक्रमदापभ्रजटमुकुटधारिणे ॥२०॥  
नमो गर्भाय तप्त्राय ज्योतिषां ज्योतिषे नमः । ॐ नमो वासुदेवाय नमो दशरथान्मने ॥२१॥  
नमो नमस्ते राजेन्द्र सर्वमम्पद्दाय च । नमः कारुण्यरूपाय कैकेयीप्रियकारिणे ॥२२॥  
नमो दांताय शोभाय विधाभिप्रियाय ते । यज्ञेश च नमस्तुभ्यं नमस्ते क्रतुपालक ॥२३॥  
नमो नमः केशवाय नमो नाथाय शार्ङ्गिणे । नमस्ते रामचन्द्राय नमो नारायणाय च ॥२४॥  
नमस्ते रामचन्द्राय माधवाय नमो नमः । गोविन्दाय नमस्तुभ्यं नमस्ते परमान्मने ॥२५॥  
नमस्ते विष्णुरूपाय रघुनाथाय ते नमः । नमस्तेऽन्नाधनाथाय नमस्ते मधुसूदन ॥२६॥  
त्रिविक्रम नमस्तेऽस्तु सीतायाः पतये नमः । वासनाय नमस्तुभ्यं नमस्ते राघवाय च ॥२७॥  
नमो नमः श्रीधराय जानकीवह्नुभाय च । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश कर्पाय नमो नमः ॥२८॥

षट्पदाय है । बाहुओम कवचरूपेण विद्यमान अमिततंजा उन रघुनन्दनको नमस्कार है, जिनके हुम्कारमात्रसे सब वस्तु नष्ट हो जाते हैं । नेत्रोम त्रीषद् अर्थात् त्र्योतिस्त्वंग विद्यमान तथा क्षीरसागरमें स्नान करनेवाले भगवान्को नमस्कार है । अस्त्रस्वरूप फट्स्वरूप और सत्प्रकाश स्वरूप रामको नमस्कार है । इस प्रकार भगवान्को छहों अक्षरोंमें न्यास अर्थात् विराजमान करे । इसी तरह अंगुलियामें न्यास करे । अब यहूँसे एक पल्लोकमें रामका ध्यान करके स्तौति आरम्भ होता है । जिनकी मंगोहर आहुति है । जो पश्याम है । मालाओसे जिनका वस्त्रस्थल सुगोमित हो रहा है । जो कोमल एवं कोमल है । जो सुन्दर महेंद्रने लमणिकी कान्तिकें समान मुखोमित हैं । जो घटवदकी शिखामें संसारके गुरु हैं । ममार जिनके चरणोंका पूजना है, उन मुखवति तथा सीताके प्राणमल्लभ रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१६॥ हे राम ! सहस्र भक्तकवले आपको नमस्कार है । मेघके समान कान्तिवाने आपको वमस्कार है । हे विश्वतोमुख ! आपको नमस्कार है । अच्युतको नमस्कार है । शेषशायीको प्रणाम है ॥१७॥ हे हिरण्यगर्भको प्रणाम है । पञ्चभूतान्माको प्रणाम है । मूलप्रकृतिको नमस्कार है ॥१९॥ हे सर्वलोकनाथ । सब दुःखकों दूर करनेवाले ! आपको प्रणाम है । हे शंस चक्र गदा पद्म तथा नट-मुकुट धारण करनेवाले राम ! आपको नमस्कार है ॥२०॥ गुरुस्वरूप आपको प्रणाम है । तत्त्वस्वरूपको प्रणाम है । त्र्योतिषों-की भी ज्योतिषीको नमस्कार है । वसुदेवके पुत्रको प्रणाम है । दशरथपुत्र रामको प्रणाम है । २१॥ हे राजेन्द्र ! सब संरक्षित देनेवाले आपका प्रणाम है । हे दयाके मूर्तस्वरूप तथा कैकेयीके प्रिय करनेवाले ! आपको नमस्कार है ॥२२॥ दात, शाल एवं विश्वामित्रके प्रियकर्मी आपको प्रणाम है । हे यज्ञेश ! हे क्रतुपालक ! आपको प्रणाम है ॥२३॥ केशवको नमस्कार है । शार्ङ्गिकी नमस्कार है । रामचन्द्रके निम्न नमस्कार है । नारायणके लिए नमस्कार है । २४॥ हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है । हे माधव ! आपको प्रणाम है । हे गोविन्द ! हे परमानन्द ! आपको नमस्कार है । २५॥ हे विष्णुस्वरूप रघुनाथ ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे दोनोंके नाथ मधुसूदन ! आपको प्रणाम है ॥२६॥ हे त्रिविक्रम ! हे सीतापते ! हे वासव ! हे रामचन्द्र ! हे

नमस्ते वसन्तीभाय कम्पनशहस्रारिणे । नमो राजानय न नमस्ते नन्दनयन ॥ २० ॥  
 नमो नमस्ते काकुत्स्थ नमो दासदशाय च । विधापनपरिश्रमनमः मन्त्रनाथ च ॥ २१ ॥  
 धामुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते शक्राग्रि । प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिन्दु-च ते नमः ॥ २२ ॥  
 सदसद्भक्तिरूपाय नमस्ते गुरुपीनय । यथाज्ञाय नमस्तेऽस्तु ममलान्तराय च ॥ २३ ॥  
 सरदूषणवद्वेगं श्रौतुमिदं ते नमः । अस्तुनाथ नमस्तुभ्यं नमस्ते सेतुबन्धक ॥ २४ ॥  
 जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमो हनुमदाय च । उपेन्द्रचन्द्रशंकाय प्राणेश्वरधनाय च ॥ २५ ॥  
 नमो बालिवहस्य नमः सुप्रोदरान्वद् । कामदम्भमदम्भवेदराय शरये नमः ॥ २६ ॥  
 नमो नमस्ते कृष्णाय नमस्ते मन्त्राग्रज । नमस्ते विनृम्भकाय नमः शत्रुघ्नपूर्वज ॥ २७ ॥  
 अयोध्याधिपते तुभ्यं नमः शत्रुघ्नमेव च । नमो निम्बाय सत्याय वृद्धपादितारकाय च ॥ २८ ॥  
 अद्वैतप्रकाशाय ज्ञानगम्याय ते नमः । नमः पूर्णाय रम्याय साधकाय चिदात्मने ॥ २९ ॥  
 अयोध्येष्टाय श्रेष्ठाय चिन्माश्रयाय परमने । नमोऽनयोद्धारकाय नमस्ते पाषाणिजने ॥ ३० ॥  
 सीतागमाय लेखाय स्तुत्याय वामेष्टिने । नमस्ते बाणहन्ताय नमः कोदण्डधारिणे ॥ ३१ ॥  
 नमः कवचबद्धने च बालिवहने नमोऽस्तु ते । नमस्तेऽस्तु दशश्रीवप्रणसहस्रकारिणे १०८ ॥ ३२ ॥  
 अष्टोत्तरशतं नाम्नां शम्भुबन्धुस्य पावनम् । रत्नप्रोक्तं भक्त भक्त सर्वपातकनाशनम् ॥ ३३ ॥  
 प्रचरिष्यति तल्लोके प्राणवष्टवशान्वितम् । तस्य कीर्तनमात्रेण जना पापपति सद्गतिम् ॥ ३४ ॥  
 तावद्विजृम्भने नव अग्रदन्त्यपुरःसरम् । पावनापाष्टक्यवतं पुरुषो न हि कीर्तयेद् ॥ ३५ ॥  
 तावन्कलेमंहोन्माहो निःशक्तं मयवर्तते । वाचच्छ्रावणचन्द्रस्य शतनाम्नां न कीर्तनम् ॥ ३६ ॥  
 तावद्यममेटाः शून्याः सचरिष्यन्ति निर्मयाः । वाचच्छ्रावणचन्द्रस्य शतनाम्नां न कीर्तनम् ॥ ३७ ॥  
 तावन्स्वरूप शम्भुस्य दुर्बोधं माण्डिनी स्फुरद् । पावकं निष्ठुता रामनाममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३८ ॥  
 आपका बारम्बार प्रणाम करता है ॥ २० ॥ हे आपका ! हे जानकावल्लभ ! हृषीकेश ! कन्दर्प ! मे आपको बारम्बार प्रणाम करता है ॥ २१ ॥ हे पद्मनाभ ! हे कीर्तन हृदयकारिन् ! कमलनयन ! लक्ष्मणनयन ! मे आपको पुनः पुनः प्रणाम करता है ॥ २२ ॥ हे काकुत्स्थ ! दासादर ! सकण्ठ ! विधापनमर्यादक ! आपका मे पुनः पुनः प्रणाम करता है ॥ २३ ॥ हे धामुदेव ! शक्राग्रि ! प्रद्युम्न ! अनिन्दु ! मे आपको पुनः पुनः प्रणाम करता है ॥ २४ ॥ हे सदसद्भक्तिस्वरूप ! पुरुषानन्द ! यथाज्ञाय ! सत्तात्पर्य ! आपको कीर्ति प्रणाम है ॥ २५ ॥ हे सरदूषणहन्ता ! श्रौतुमिदं ! अस्तु ! सेतुबन्धकारिन् ! तम ! आपको कीर्ति प्रणाम है ॥ २६ ॥ हे जनार्दन ! हनुमदाय ! उपेन्द्रचन्द्रशंका ! नारायणधनकारिन् ! आपको कीर्ति प्रणाम है ॥ २७ ॥ हे बालिवहस्य ! सुप्रोदराग्रज ! कामदम्भ ! महद्युक्तर हरे ! आपको कीर्ति प्रणाम है ॥ २८ ॥ हे कृष्ण ! शरदाग्रज ! शत्रुघ्न ! शत्रुघ्नपूर्वज ! मे आपको सहस्रो बार प्रणाम करता है ॥ २९ ॥ हे अयोध्याधिपते ! शत्रुघ्नमेव च । निम्बाय । वृद्धपादितारकाय ! आपको प्रणाम है ॥ ३० ॥ हे अद्वैत महात्म्य ! ज्ञानगम्य ! साधक ! पूर्ण ! रम्य ! चिदात्मन् ! मे आपको प्रणाम करता है ॥ ३१ ॥ हे अयोध्येष्ट श्रेष्ठ ! चिन्माश्र ! परमशम्भु ! महानकारक ! शत्रुघ्नजन्तु ! आपको प्रणाम है ॥ ३२ ॥ हे सीतासेध ! स्तुत्य ! परमेष्ठिन् ! बालिवहस्य ! शत्रुघ्न ! मे आपको अनेक प्रणाम है ॥ ३३ ॥ हे कवचबद्ध ! पापिहन्ता ! दशश्रीवप्रणसहस्रकारिन् ! मे आपको पुनः पुनः बारम्बार करता है ॥ ३४ ॥ सम्युक्तं वाचां नष्ट करनवास्य श्रेष्ठ एवं पावन रामचन्द्रका बहु अष्टोत्तरशतनामरत्नाय मेने तुमसे कहा ॥ ३५ ॥ हे शिवा ! जो प्राणी अपने दुर्गतिवश इस श्लोक प्रमाण करते हैं । उस स्तोत्रके पठनमात्रसे व सद्भक्तिको प्राप्त होगे ॥ ३६ ॥ ब्रह्माहमदि सब तमोक्त उपाय करते हैं, जब तक पुरुष इस स्तोत्रका पठ नहीं करता ॥ ३७ ॥ प्राणायाम तथा सक कर्मका फलन रहता है जब तक वह रामचन्द्र ! इस स्तोत्रका भजन व्रतन नहीं करता ॥ ३८ ॥ तम नक मन्तर यमराजके पादा विषय विवरण करते हैं, जबतक प्र गो इस स्तोत्रका पाठ नहीं करता ॥ ३९ ॥ जब तक रामका स्वयं राजाको

संतिनं रक्षितं चित्तं धृतं संस्मारितं मुदा । अन्यतः शृणुष्वन्मर्षाः सोऽपि मुञ्च्येद पानकात् ॥ ४८ ॥  
 उग्रहत्यादिपापानां निष्कृतिं यदि वाञ्छति । रामस्तोत्रं साममेकं पठित्वा मुञ्च्यते मरः ॥ ४९ ॥  
 इत्यप्रतिग्रहदुर्भान्ज्यदुर्गलायादिवम्भतम् । पापं सकृन्कीर्तनेन रामस्तोत्रं विनाशयेत् ॥ ५० ॥  
 श्रुतिस्मृतिपुगणनिहायामवशकानि च । अर्हति नाम्नां श्रीरामनामकीर्तिकलापपि ॥ ५१ ॥  
 अष्टोत्तरशतं नाम्नां सोनारामस्य पावनम् । अस्य संकीर्तनदेव सर्वान् कामोल्लभेश्वरः ॥ ५२ ॥  
 पुत्रार्थं लभते पुत्रान् धनार्थं धनमाप्नुयान् । स्त्रियं प्राप्नोति पत्न्यर्थं स्तोत्रपाठश्रवादिना ॥ ५३ ॥  
 कुम्भोदरेण मुनिना येन स्तोत्रेण राघवः । स्तुतः पूर्वं यज्ञवाटे तदेनर्वा मयोदितम् ॥ ५४ ॥

इति श्रीमत्तपोदिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आगच्छाण्डे

श्रीरामनामाष्टोत्तरशतस्तोत्रं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( रामकी दिनचर्या )

श्रीरामदास उवाच

मथ कुम्भोदरे दिश्ये आसनोपरि संस्थिते । यज्ञस्तम्भे श्यामकर्णं ध्वजध्वस्तं हि श्रुत्विजः ॥ १ ॥  
 तस्याङ्गानि सपस्तानि पृथक् मन्त्रैर्यथाविधि । सङ्गन्त्यपि शमित्रा तं निहन्पूर्दिं जपुः कवाः ॥ २ ॥  
 तन्मासखण्डराज्यात्कैर्होमं चक्रुः सविस्तरम् । तथा नानाविधैर्द्रव्यैः सकृपायमगोधृतैः ॥ ३ ॥  
 मध्वाकतिलद्वयैः समिधाभिश्च सादरम् । गोधूतेन वसोर्धारां बह्वै र्गूलामसृण्डिताम् ॥ ४ ॥  
 गोमुखेनोर्ध्वचक्षुः ददुर्मर्षैः सविस्तरम् । चिकाल होमकुण्डे यावद्यज्ञसमापनम् ॥ ५ ॥  
 मदा धूमचर्यन्यासमाकाशं च समन्ततः । नद्यापि दृश्यते शुभ्रं नीलार्णं प्रहस्यते ॥ ६ ॥  
 चैत्रश्रास्त्रं महापुण्यं वसन्तर्तौ सुखावहे । एवं प्रवर्तयामासुर्वाजिमेधं मुनीश्वराः ॥ ७ ॥

दुर्वाण्ड रहना है, जबतक इस उत्तम स्तोत्रमें निष्ठा नहीं होती ॥ ४७ ॥ जो इसकी पढ़ता और कीर्तन करता है, जो इस चिन्तन धारण करता है, श्रेयसे स्मरण करता है और जोरोंसे सुनता है, वह भी पापकोसे छूट जाता है ॥ ४८ ॥ जो ब्रह्महत्यादि पापोंकी निवृत्ति चाहता हो, वह पुरुष एक महीने इसका पाठ करे ॥ ४९ ॥ इसके एक बार कीर्तन करनेसे मनुष्य दुर्लभिच्छ, दुर्लभ्य तथा बुरायादित्रय बापोंसे छूट जाता है ॥ ५० ॥ श्रुति-स्मृति पुराण-इतिहास-आगम (देव) और स्मृति इसकी चोलहूँ कलाको भी नहीं पहुँचते ॥ ५१ ॥ आसीतारामके इस एवम अष्टोत्तरशतनामका जो मनुष्य पाठ करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । इसका पाठ एवं ध्यान करनेसे पुत्रपत्नीको पुत्र, धनार्थीको धन और स्त्री चाहनेवालेको स्त्री मिलती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अगस्त्य मुनिने जिस स्तोत्रके द्वारा लक्ष्मेश यज्ञमें रामचन्द्रकी स्तुति की थी, वही स्तोत्र मैंने तुमसे कहा है ॥ ५४ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आगच्छाण्डे श्रीरामनामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदास बोले - इसके अनन्तर कुम्भोदर मुनि दिश्य आसनपर बैठ गये । उधर श्रुतिवक्त्र लीगोंने यज्ञस्तम्भमें श्यामकर्ण अश्वको बाँध दिया ॥ १ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसक अंगोंको शास्त्रानुसार मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणोंने उसका वध किया ॥ २ ॥ तब धूमध्वने हुए धौंड़के मालखण्डों एवं सकृपायस गोधृत आदि नाना द्रव्योंसे श्रुतिवक्त्र लोग हवन करने लगे । ३ ॥ वे हँ मधुम घने हुए तिल, दूध, समिधा तथा गोघृतकी अखण्ड एवं स्थूल वसोर्धाराको अग्निमें छौंड़ने लगे ॥ ४ ॥ चिकाल प्यन्त जब तक यज्ञ समाप्त नहीं हुआ, तबतक वे ऊपर बैठे हुए गोमुखक द्वारा होमकुण्डमें समस्त आहुति देने रहे ॥ ५ ॥ इसके सम्पूर्ण आकाश-मंडल धूमध्वनियोंसे व्याप्त हो गया । उसीके कारण आज भी आकाश भवत नहीं, नीला ही दीखता है । सुखावह वसन्त ऋतु एवं पुनीत चैत्रमासमें इस तरह वे पुनीश्वर लोग वह अभ्येय यज्ञ कर रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥



त्रिभुक्ते यत्तद्विधिना हविर्गन्धोष्णादिलक्षणैः । राहुत्वात्कृते त्रैलोक्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ १० ॥  
 श्रावहं शान्तरुन्धाय रामचन्द्रः सर्वतया । नन्वागच्छेत्तदेकान्तमुत्तमार्गिप्रसङ्गम् ॥ ११ ॥  
 क्रीडन्नावायामानुष कामधेनु हृदि स्थितम् । चित्तामणि कौस्तुभ च कटे बद्ध गन्धिनम् ॥ १२ ॥  
 पुष्पक यत्तवाटस्य देवतां यत्तपुरुषम् । मनो गन्धारागमनार्थे वशाब्जान्मा यथाविधि ॥ १३ ॥  
 कृत्वा निन्यविधिं सर्वं पूजयामास शंकरम् । उपहारात् समन्वय्य कामधेनुममुद्रायत् ॥ १४ ॥  
 समानीतान् रत्नपात्रैः सोमया श्चतुर्दशतः । ततः संपूज्य तां धेनुं विधिं पूज्य स यश्चरम् ॥ १५ ॥  
 अन्विस्मृतं तु संपूज्य तच्छ्रीं स गुरुमभिर्धा । प्रधाने अन्विता सदा यदा ॥ मुः ॥ १६ ॥  
 स्नान्वा नित्यविधिं कृत्वा तन्मयपुत्रस्य महर्षे । गमात्तयाऽऽव सावित्रिनुगादीनां प्रपूजनम् ॥ १७ ॥  
 दिग्भ्यर्नानोपहारायैः कामधेनुममुद्रयैः । तत्प्रकारं सावित्रिनुगादीनां प्रपूजनम् ॥ १८ ॥

तथा मोनितुया स्त्राण सुमिता लक्ष्मणश्रिया ॥ १७ ॥

मांडवी मनुर्कानिश्च पर्वशक्रः प्ररुजनम् । अथ ते ऋत्विजश्चक्रुः कदाहा हार्यं वापिधि ॥१८॥  
होम नानाविधैर्द्रव्यैः सुगन्धैश्चमडपे । पुण्डाहान् वर नृदिष्यान्मन्त्रमोऽपि मानया ॥१९॥  
वाजिमेशे राघवस्य मातादेवाः स्वयं मुदा । इतीषि भक्षयामासुस्त्वक्कमात्राणि पावके ॥२०॥  
अस्तु धीपदिति प्रोचुराद्यथापः स मेषवन् । धूयते यज्ञशस्त्रासु मन्त्रान्वज्रहाननः ॥२१॥  
मन्ये कुष्ठमहारस्य क्वाप्तमुन्निजर्जने शुभम् । ततो मुनाश्वराः सर्वे ततो देवाः समनतः ॥२२॥  
ननः सतोः स्त्रियः श्रेष्ठास्ततो विधाधराः स्थिताः । ततो यभाध मधर्वाः किशराः प्लवगाश्चमाः ॥२३॥  
तनस्ते क्षत्रियाः सर्वे तनस्तेषां तु सेवकाः । क्तः स्थिता ब्रह्मनार्यस्त्वतो मातृधर्वादिनः ॥२४॥  
ददशुः संस्थिता यज्ञमडपे यज्ञर्तुक्रमम् । मयाहावधि हुन्वा ते ऋत्विजश्च अविस्तरन् ॥२५॥

अथ श्राद्ध एवं विवाहोपनिषत् । वैदिक श्राद्ध ४ दिनों आठुग एव वैदिक विधिसे मन्त्रों आदि १२  
 रहे थे ॥ ८ ॥ रामचन्द्रजी निध्म प्रातःकाल उठे तथा शीवादि विवाहोपनिषत् निवृत्त होकर शंभु, ब्रह्मा एवं अश्वि  
 देवताओंका, मुनिश्रीका, कामधेयका, हृदयस्थ निन्नामिका, कडवट्ट सुतक समान का लतमान् को-नुभान् ग  
 का, पुत्रक विमानका, यज्ञक दयता तथा यज्ञ भगवान्का प्रणाम करत थे ॥ ९ ॥ १० ॥ इसके बाद दयता वि  
 गमतायने जाकर स्नान करत थे ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर सम्पूर्ण दिनक कृत्त करत और कामधेय प्रल  
 न्नामिका धेय देने थे ॥ १२ ॥ सोनक द्वारा रत्नरत्नम मास मय सब रसे कामधेयका पूजा करनेक  
 बाद विलासपूर्वक ब्रह्माका पूजा करत थे ॥ १३ ॥ तदनन्तर अश्विजीको पूजा करके आचार्यक पास बैठ जाते  
 थे । अश्विक्, होना एवं सब मुनीश्वर भी निध्मकर्माको समारोह करके यज्ञमण्डपमें बैठ जात थे । रामका अङ्गसे  
 यज्ञमण्डपको स्नानो पूजा करत थे ॥ १४ ॥ १५ ॥ बादमें कामधेयसे उत्पन्न ज्ञाना प्रकारके स्वर्गीय उपहारसे  
 यज्ञमण्डपको पूजा करते थे ॥ १६ ॥ विश्व कक्षाधरणी तथा विविध पक्वान्नेत लक्ष्मणप्रिया विनिन्द्य एवं  
 माण्डवी-पुष्पाति प्रभृति स्त्रियाँ भी सीताके आशानुसार सब स्त्रियोंका पूजन करता थी ॥ १७ ॥ इस तरह  
 दयक अनुष्ठानों यथायोग्य पूजा हो चुकनेके बाद अश्विक् साग स्वाहाकारो तथा विविध सुगन्धित द्रव्योंत  
 यज्ञमण्डपमें हुक्म करने थे ॥ १८ ॥ संज्ञा और नाम इष्टियोंकी समर्पितपर धेय एवं दिध्म पुरादमोंको कर्त  
 ॥ १९ ॥ रामचन्द्रजीके आश्रममें यज्ञम दयता प्रत्यक्ष प्रकट हुकर बड़े आनन्दसे अग्निम प्रक्षत्त दद्याको  
 जानत थे ॥ २० ॥ अश्विक् जोब 'धस्तु धीषद्' इस प्रकार बोलत थे और जाने बजाते थे । निन्दका यज्ञपरिष्कार  
 गृह पत्नीर बाय सबस्य यज्ञमालासे सुनायी पड़ता था ॥ २१ ॥ मध्यमें रमणीय एवं अश्विक्जीके अङ्ग  
 हृदयकृष्ट था । उनके पास मुनीश्वर बैठे थे । चारो तरफ दयता बैठे थे ॥ २२ ॥ इसके बाद सम्पूर्ण स्त्रियाँ थी ।  
 उनके बाद विद्याधर बैठे थे । उनके बाद यज्ञ, यज्ञोक्त बाद गन्धर्व, गन्धर्वोंक बाद किमर, किमरोंके बाद  
 गन्धर्व, उनके बाद अश्वि, उनके बाद त्रैलोक्य, उनके बाद वरुणादे, उनके बाद मातृव और ब्रह्मजन  
 बैठे थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस तरह अपने-अपने स्थानपर बैठे हुए सब लक्ष यज्ञका कौतुक देख रहे थे ॥ २५ ॥

न तो माषाह्निक कर्तुं यगुरनां यगु नदीषु । कृत्वा माषाह्निकं कर्म मन्त्रा तु यज्ञमदपे । २६॥  
 इमं मनं तु मन्त्रं नामरत्नं एव स्थितः । दशश्रीवाश्रागशक्तं तस्यैदं व्यामनोपरि । २७॥  
 नक्षत्रमणान् प्रपूज्याथ भरतेन स शत्रुदा । मन्त्रं च हेमपात्राणि सर्वथा पुनस्तदा ॥ २८॥  
 जानकीं त्वरयामास परिक्षणकर्मणः । मधु सोमोर्जिता रम्पा नवा सा मांढरी शुभा । २९॥  
 धूनकानिर्मलविषमयः मुहुःपन्थः महस्रशः । परिक्षणकर्मणि चक्रस्ता यज्ञमदपे ॥ ३०॥  
 नानाविधदार्ढ्यं चामधेनुमुद्धव । गुनाश्रयादकाः सर्वे तोषभापुस्तदाऽध्वरे ॥ ३१॥  
 मातादीनां हि न रीगां तदा यज्ञस्य मदपे । नृपुण्णा किंकिणीनां शुश्रूषे यवतो ध्वनिः ॥ ३२॥  
 यथेच्छं तुजतां सर्वं धान्यतां यद्वदि स्थितम् । मां शुका भोजने कार्यं न्यक्तव्यं यत्नं रोचते ॥ ३३॥  
 अथाचिन्तानि देवानि पक्षाशानि यथाह्वयं । असंहिताज्यधाराऽथ कार्या राघवशासनात् ॥ ३४॥  
 गृधरां किंचिद्भुज्जे नेति नेति द्विजाः पुनः । इति भोजनकाले वै शुश्रूषे सर्वतो ध्वनिः ॥ ३५॥  
 किंचिदपेक्षितं स्वामिन्निति तमेण प्रार्थिताः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वं राजता व्यघ्रनादिभिः ॥ ३६॥  
 उत्तरुणोर्दक्षकः कश्चुदि मुनीश्वरैः । ततो गृह्णावताश्ला मुनयस्ते तु निर्जराः ॥ ३७॥  
 गृह्णावता इममुद्रां हि राघवेण पृथक् पृथक् । ममर्षितां दक्षिणार्थं जगमुर्वायस्थलानि हि ॥ ३८॥  
 ततः पृथिव्यारार्यैः कथितैरेव पार्थिवैः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वं चक्रुर्ब्रह्मस्तवः परम् ॥ ३९॥  
 स्नातां भोजनशालासु पूर्वं धुक्त्वाऽधरस्त्रियः । सारता मुनिपत्नीभिस्ततस्ताः भर्त्रियस्त्रियः ॥ ४०॥  
 चक्रुर्ब्रह्मभोजनं सर्वाः सोमया प्रार्थिता मुहुः । ततो वैश्यास्त्रयश्चक्रुः पौन्यस्ततः परम् ॥ ४१॥  
 ततः शूद्रास्त्रयश्चापि मुदा चक्रुश्च भोजनम् । शालासु पुष्पाणां च ततो बान्गराक्षताः ॥ ४२॥  
 कक्षाः पौरा ज्ञानपदाश्चक्रुर्भाजिनमुत्तमम् । ततः शूद्रादयः सर्वे ततः पार्थिवसुत्रकाः ॥ ४३॥

कृत्वा च माषाह्निकं कर्म मन्त्रा तु यज्ञमदपे । २६॥ माषाह्निकं कर्म करके से यज्ञमण्डपमें लाकर स्थापित करके निमित्त आसन पर बैठ जाता है । इस तरह  
 अपना अपना कर्तव्य समाप्त करके देवता भा । २७॥ वदमे मन्त्रं, नक्षत्रमण एव शत्रुघ्न  
 उत्तरा पूजा करके गुवणक भाजनपत्र उत्तरक साधन २८॥ वद मे ॥ २८॥ तब भगवान् रामचन्द्र भोजन परासनके  
 लिए सततकी आज्ञा देते थे । तब साता, जानकी, मांढरी, श्रुतकर्ति एवं हजरा मित्रपत्नीयां परासता थीं  
 । २९॥ ३०॥ नाना प्रकारका उन उत्कृष्ट भोजनसामग्रियों से मुन आदीक अत्यन्त प्रसन्न होत थे । ३१॥  
 जिस समय साता प्रभुओं विषयीयजमण्डपमें भाजन परासता थी, उस समय नुपुगे एवं किंकिणीनाका मधुर ध्वनि  
 सब सुनाई पड़ता था ॥ ३२॥ सब लोग यथेष्ट भोजन करें, जा इससे हा सा मणि, भाजनक विषयमें वह किसी  
 तरहका शका न कर और जिसका जा पदार्थ न रुक, उस छान्द ॥ बिना मांग ही यथेष्ट पक्वान्ना श और उनका  
 कोशिक अलण्ड पृथ्वारा डाली । इस प्रकार रामचन्द्र पारवषकाका आज्ञा देते थे ॥ ३३॥ ३४॥ परारावसे ले  
 कहते थे और लाजय, ब्राह्मण कहते थे 'नही' । इस प्रकार भाजनकालमें सबसे बड़ी ध्वनि सुनाई पड़ता थी । ३५॥  
 भगवान् रामचन्द्रजा कहते थे-भगवन् ! क्या चाहिये ? इससे उत्तरमें ब्राह्मण सब पाण्डूना है' ऐसा कहते  
 थे । इस प्रकार आनन्दक से सब पक्षका हुवा सात हुए विप्रगण भाजन करत थे ॥ ३६॥ भाजनांतर ठण्ठे  
 एवं उणादिकसे हस्त-कस्त शुद्ध करके वे ताम्बूल खात थे ॥ ३७॥ इससे बाद राम द्वारा दक्षिणाथ समर्पित  
 स्त्रणमुद्राका लेकर वे मुन आर एवं हजरा दरपर बस जात थे ॥ ३८॥ इससे बाद पृथक् उपचारास राजालाग  
 भाजन करत थे । तदुपरांत यथायथ भाजन करता था ॥ ३९॥ स्त्रयोका भाजनशालामें पहुँच दवाङ्गनायक,  
 किं मुनिपत्नीया और उनसे बाद स्त्रीनपत्नीया भाजन करत थी । तदनन्तर सभी स्त्रियां साताको आर्चना-  
 पर भाजन करत थी । इससे बाद वणिक्स्त्रियों तदुपरांत गुरनारियां एवं गृहस्थिकां भाजन करत थी ।  
 पुष्पाक भाजनालयमें बानर, राक्षस, ऋक्ष, पुरवासा, दूदाद एवं राजनयक से सब क्रमसे भाजन करत थे

न कश्चित् क्षुधितस्तत्र नामीत्स्य निषेधनम् । ततो रामः सुहृन्मित्रैर्वंधुभिः सचिवैर्दामिः । ४४ ।  
 चकार भोजनं स्वस्थः सीतया प्रायितो मुहुः । पावतो भूमिकणिका धार्जनस्तोषविद्वः ॥ ४५ ॥  
 यावत्पुद्गलि गगने तावन्तो राघव ध्वरे । प्रन्यहं भोजनं चक्रुर्विप्रास्तान्निहयोऽपि च ॥ ४६ ॥  
 सभूमिर्मन्त्रिपत्नीभिस्तथा देवपत्निभिः । चकार भोजनं सीता दिव्यान्नैः स्वस्थमानसा । ४७  
 ततश्चतुर्थप्रहरे मयी कृत्या तु मंडपे । कथं विः कीर्तनगीतिः शास्त्रवादैः सुपुण्ड्रैः ॥ ४८ ॥  
 वातस्त्रीणां नृत्यगीतैर्भिन्ने रामो दिनभयम् । नृत्यः पथ्यादिकं कुरु । पुनर्नृत्या यथाविधि । ४९ ।  
 पूर्वोक्तैस्तु कथाद्यैश्च निशायाः प्रहरद्वयम् । मर्गाक्रम्य निद्रार्थं मर्वाज्ञापयत्तदा । ५० ।  
 भत्वा स्वस्वस्थत्वं सर्वे निद्रां चकुर्यथामुदम् । पटुर्गुलामने धूम्या सीतया स त्रिोद्वेगः । ५१ ।  
 चकार निद्रां श्रीरामो हृदि चिन्त्येष्टदेवताः । आत्मामग्रे नरेन्द्राणां विप्राणां मानवमंडलम् ॥ ५२ ॥  
 पृथक् पृथक् च नारीणामशस्त्रवध उज्यने । यतः स सीतया युक्तश्चकार धारणं प्रभुः । ५३ ।  
 एवमासीन्प्रन्यहं वै दिनचर्याऽध्वरे प्रभोः ॥ ५४ ॥

इति श्रीभट्टकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे  
 यज्ञ रश्मे रामदिनचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

## सप्तमः सर्गः

( अज्जारोपणव्रतकी भाँझिमा )

श्रीरामदास उवाच

सौत्वेऽहन्यवनीपल्लो याजकान्सदमस्पतीन् । अद्भुजयन्महाभागान् यथावत्सुसमाहितः ॥ १ ॥  
 अथ चैत्रे सिते पक्षे राजानः प्रतिपत्तिथौ । अज्जारोपणायामसुविधिनाऽध्वरमंडपे ॥ २ ॥  
 श्रीविष्णुदास उवाच

आरोपिता अज्जाः प्रोक्ताः पार्थिवैर्यज्ञमंडपे । गुरो तेषां विधानं वा सम्यग्ब्रूतुं त्वमर्हसि ॥ ३ ॥

॥ ४०-४३ ॥ किसीके लिए भोजनका निषेध नहीं था । वहाँपर कोई भूखा नहीं रहता था । सबके भोजन कर लेनेके बाद रामचन्द्रजी स्वयं सीताके साथसाथ प्रार्थना करनेपर अपने पुत्र, मित्र, बन्धु एवं सचिवोंके साथ भाजत करते थे ॥ ४४ ॥ पृथ्वीमें जितनी शैकुण्ठ हैं जितने अलखिन्दु हैं तथा आकाशमें जितने नक्षत्र हैं उतनी संख्यामें ब्राह्मण प्रभृति पुरुष एवं स्त्रीसमूह रामचन्द्रके यज्ञमें प्रतिदिन भोजन करते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रामचन्द्रके भोजनोपरान्त श्रीसीताजी भी साम, मन्त्रिपत्नी तथा देवपत्नीयोंके साथ दिव्य अन्न खाती थीं । ४७ ॥ पुनः ओषे पहर यज्ञमण्डपमें सभा करके कथा, हरिकीर्तन, पुण्यप्रद आश्मचर्चा तथा वेदशास्त्रोंके मुख्यगान द्वारा राम अवशिष्ट समय बिताते थे । ४८ ॥ पुनः सायंकाल मन्त्रया एवं हवनकृत्य पूर्ण करके कथारिके द्वारा रात्रिके दो प्रहर बिताकर सब लोगोंकी रायन करना आज्ञा देत थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ सब सब लोग अपने अपने स्थानोंपर सानन्द शयन करते थे । राम भी अपने इष्टदेवताका हृदयमें स्मरण करके भूमिपर पट्टदुकुलासन बिछा तथा जितन्द्रिय होकर सीताके साथ सोते थे ॥ ५१ ॥ राजाओंकी आज्ञा तोड़ना, ब्राह्मणोंका मानमर्दन एवं स्त्रियोंकी पृथक् कथ्या करना अशस्त्रवध कहलाता है । अतः भगवान् रामचन्द्र सीताके साथ ही सोते थे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इस प्रकार यज्ञमें भगवान्का यह प्रतिदिनका काम था ॥ ५४ ॥ इति श्रीभट्टकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे दशारम्भे रामचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—सौत्यपर्वके दिन राजा रामचन्द्रने सावधान होकर याजकों एवं सुरस्योंकी यथावत् पूजा की ॥ १ ॥ चैत्र शुक्लपक्ष प्रतिपदाके दिन राजालोग विधिपूर्वक यज्ञमण्डपके ऊपर अज्जाओंकी स्थापना की । २ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने कहा कि राजा लोग यज्ञमण्डपके ऊपर अज्जा



वतो गोचर्ममात्रं तु स्थण्डिलं चावलिप्य च । माषावाग्निं स्वगृहोक्त्या धनवागादिकं क्रमम् ॥ २३ ॥  
 नृशुयान्पायसेनैव घृतेवापोचर अन्नम् । प्रथमं धीरुषं सक्तं विष्णोर्नुकं च यवनः ॥ २४ ॥  
 ततश्च वैनतेयाय स्वाहे-पष्टदुर्वास्तदा । म.कनेष्टादुर्वाश्च कुन्वा स्वाहेति होमयेद् ॥ २५ ॥  
 सोमो धेनुं मधुमार्यं शुद्धपात्रयनमन । कौमनं मयत्रं जपेनत्र शान्तिपूजयति मन्त्रिणः ॥ २६ ॥  
 रात्रौ आगणं कुर्यादुपकट इरेः शुचिः । एवं नवदिनं कार्यं पूजनं परमोन्मत्तैः ॥ २७ ॥  
 तथैव आगणं कुर्यान्निष्यं सुकीर्तनैः । ततो दशम्यामृषयि मधुःपायं ब्रवी शुचिः ॥ २८ ॥  
 प्रातः स्वस्वत्वा निष्यक्तं नमोऽप्याय ततः परम् । गन्धपुष्पादिभिर्देवानर्चयेत्पूर्वशुक्रवान् ॥ २९ ॥  
 ततो मंगलवाचैश्च शुक्लपाठैश्च शोचनैः । नृत्यैश्च स्तोत्रपठनेनैवेद्विष्णुराज्यं स्वयम् ॥ ३० ॥  
 देवस्य द्वाग्देवो वा शिम्बरे वा हृदान्वितः । सुम्भिर स्थापयेन्त्रयं चतुस्तमं मुष्मोर्मिमम् ॥ ३१ ॥  
 पथपुष्पाद्यर्तदोर्गैर्दि०५५धूपैर्मनोरमैः । वक्ष्यमोजपादिसंपूक्तैर्नैवेद्यैश्च हरिं यजेत् ॥ ३२ ॥  
 आपनिवर्धमारुष्य दक्षम्यवपि सयवि । पञ्चयोः पूजनं कुन्वेकादृष्यो हरिमिषयि ॥ ३३ ॥  
 आरोपणीयौ शिम्बरे पुनो वा यथामुखम् । अथवा रोपणीयो द्वि दक्षम्यां नौ चजोत्तमौ ॥ ३४ ॥  
 नवम्यां वा द्वितीयायां चतुर्थ्यामष्टमीं दिने । एतयां वा रोपणीयो तौ पूर्वं पूज्य तथाविधि ॥ ३५ ॥  
 ततश्च प्रतिपद्येव मार्गो नैवरे दिने । पूर्वोक्तैश्च इरेः कार्यं न मासेत्पितृभ्यु च ॥ ३६ ॥  
 माषाग्निचतुर्दश्यामेवं शमोर्गृहे चजो । नदीभूयश्चित्तौ कुन्वा रोपणीयो तथाविधि ॥ ३७ ॥  
 आश्विनस्य विनाष्टम्यां मधोर्वा गिरित्रागृहे । नवम्यस्य चतुर्थ्यां द्वि श्लोको गणपयवगृहे ॥ ३८ ॥  
 मार्गशीर्षे हृष्टपष्ट्यामेवं मार्गहमगृहे । एव हि सर्वदेवानामुन्माहविचसेष्वपि ॥ ३९ ॥

१. धन और विधानकी पूजा करे । तत्पश्चात् गोचर्ममात्र स्थण्डिलके ऊपर परिसमूहनादि पञ्चधूमस्कार करके स्वशास्त्रोक्त गृहोक्त विधानसे कुण्डमें अग्नि स्थापित करे ॥ २०-२३ ॥ पुनः क्रमशः पायस और यवने आचार-आज्यभाग नामकी अष्टान्तकृत जादूति दे । अथवा माषाराज्यभागकी जादूति लेकर पुनः क्रमशः पथक जोड़े घृतकी अष्टोत्तरकृत जादूति दे । प्रथम जादूतिर्वा पुरुषमुनके मर्गसे और दूसरी जादूतिर्वा विष्णोर्नुक इत्यन्तसे दे ॥ २४ ॥ फिर वरुणके निर्मित आठ जादूतिर्वा और वास्तुके निर्मित आठ जादूतिसे हुक्म करे 'नरुहय स्वाहा' मन्त्रसे वरुण की आठ जादूतिर्वा एवं 'माकनये स्वाहा' इत्यन्तसे दूसरी आठ जादूतिर्वा दे ॥ २५ ॥ पुनः 'सोमो धेनु' मन्त्रका उच्चारण करके संपन्नपूर्वक हुक्म करे । तदनन्तर सौर मन्त्रोका अथ और आग्निहोत्रका पाठ करे ॥ २६ ॥ १. प्रिय'में श्रीहृदिके समीप आगरण करे । फिर दशमीकी परमश्रमणके साथ भगवान्की पूजन करे ॥ २७ ॥ निष्य हरिकीर्तन करके नवरात्रि पञ्चम्य आगरण करे । द्वाग्वे दिने प्रातः स्नान-संध्यादि निष्यक्त्योमे निवृत्त होकर पूर्ववत् पूजनसम्भारसे भगवान्की पूजा करे ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसका बाद मंगलमय वाक्-वाक्के साथ स्तावपाठ करते हुए स्वजाकी विष्णुमन्दिरमें ले जाय ॥ ३० ॥ मन्दिरके द्वार तथा मन्दिरपर पुष्पमालामें सुगंधित पञ्चक स्थापित करे । ३१ ॥ वहाँ गन्ध, पुष्प, जलत, धूप, दक्ष एवं मधु-मोज्यादि पुष्प नैवेद्यमें श्रीहृदिका पूजन करे । अथवा प्रतिपदासे लेकर दशमी तक चरमे पञ्चाङ्गोंकी पूजा करके एकादशीकी विष्णुमन्दिरके शिखर या द्वापर उन पञ्चाङ्गोंका स्थापित करे । अथवा दशमाकी ही स्थापित करे । ३२-३४ । अथवा द्वितीया, चतुर्थी, पञ्चमी, अष्टमी तथा नवमीकी सुविधानुसार समय देखकर उपर्युक्त विधानसे पूजा करके स्वजा स्थापित करे ॥ ३५ ॥ किन्तु इनका प्रारम्भ प्रतिपदाकी ही होता है । श्रीहृदिके निर्मित स्वजारोपण पर्वान्त मामोमें ही करे, अन्य मामास नहीं । ३६ ॥ इसी प्रकार माघकृष्ण चतुर्थीका शिवालयपर पञ्जारोपण करे । उस पञ्चाङ्गमें वर्षाविष मन्दी और ऋद्धीकी अंकित करे ॥ ३७ ॥ आश्विन शुक्ल अष्टमीकी या वैश्वके नवरात्रमें मार्गशर्ष के मन्दिरपर पञ्चाङ्ग फहराये । मार्गशर्ष चतुर्थीकी अष्टमके मन्दिरपर पञ्जारोपण करे । ३८ ॥ मार्गशर्ष शुक्ल अष्टमीकी मन्दिरपर पञ्चाङ्गस्थापन करे । इस दिवस वैशवाङ्गके उत्सवदिनमें ही यह कार्य सम्पन्न करे ॥ ३९ ॥

मधुर्जाश्विनमासेषु विना विष्णोर्न चेतरे । एव देवालये स्थाप्य शीमनौ तौ स्वज्ञोत्तमौ ॥४०॥  
 मध्वज्य विष्णुं विधिवत् चित्तघाटय विना ततः । प्रदक्षिणमनुव्रज्य स्तोत्रमेवदुदीरयेत् ॥४१॥  
 नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वमयन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥४२॥  
 येनेदमनिल जातं यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् । लयमेष्यति यत्रैतत् प्रपत्तोऽस्मि माधवम् ॥४३॥  
 न जानति यं देव सर्वं भक्तादयः सुगः । योगिनो यं प्रवृत्तति तं वदे शानरूपिणम् ॥४४॥  
 अनर्गलं तु यस्माभिर्धाम्भो यस्य चैव हि । वादादभूच्च वै पृथ्वी तं वदे विश्वरूपिणम् ॥४५॥  
 यस्य भ्रंशे दिशः सर्वा यश्चतुर्दिनकृच्छरी । ऋक् यामयजुषो येन तं वदे नमरूपिणम् ॥४६॥  
 यन्मुखाद्वाक्प्राणा जाला यद्वाहोर्मयन्नृपाः । वैष्णवा यरुषोरुतो वाताः पृथ्व्या वृद्धस्त्वजापत ॥४७॥  
 मनमश्रुता जानो दिनेशश्चक्षुष्यन्तया । प्राणेष्वः पवनो जानो मृषादग्निराजयत ॥४८॥  
 पापमदाहमात्रेण वदन्ति पुरुषं तु यम् । स्वभावविमलं शुद्धं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥४९॥  
 धीर्गांधिग्रायिन इव मनश्चक्षुष्यन्तया । सङ्कल्पस्मरं विष्णुं भक्तिगम्यं नमस्कृत्य ॥५०॥  
 प्राणव्यादीनि भुजानि नन्माध्वनीन्द्रियाणि च । सुशुक्लाणि च येनायन्त वदे सर्वतोमुखम् ॥५१॥  
 यद्ब्रह्म परमं धाम सर्वलोकोत्तमोत्तमम् । निर्गुणं परमं सूक्ष्मं प्रपत्तोऽस्मि पुनः पुनः ॥५२॥  
 निर्विकारमजं शुद्धं सर्वतो वह्निर्माधवम् । यस्मायनति योगीन्द्राः सर्वकारणकारणम् ॥५३॥  
 एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः । श्रीष्टोकाच्च ग्याप्य भूतात्मा भुक्तं विषयगम्यम् ॥५४॥  
 निर्गुणः परमानन्दः स मे विष्णुः प्रसीदतु । इदमस्थोऽपि दुष्कपो मायया मोहितोऽत्मनाम् ॥५५॥  
 शान्तिर्ना सर्वधर्मस्तु स मे विष्णुः प्रसीदतु । चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पंचभिरेव च ॥५६॥  
 हृद्येन च पुनर्दाम्भ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु । शान्तिर्ना कर्मणा चैव तथा भक्तिमता नृणाम् ॥५७॥

चेत्र आश्विन तथा कार्तिक इन तीन मासों में विष्णुको शिवाय अन्य देवताओं के लिए स्तुति कराना चाहिए ॥ ४० ॥ इस प्रकार चित्तघाटय ग्यानकर देवालयपर स्तुति करके विधिवत् विष्णुको पूजा करे । तदनन्तर प्रदक्षिणा करके इस स्तोत्रका पाठ करे— ॥ ४१ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! हे हृयाकण ! हे महापुरुषपूर्वज । आपकी जनकणः प्रणाम है ॥ ४२ ॥ जिससे यह समस्त उत्पन्न हुआ है, जिसके आधारपर टिका हुआ है और जिसमें सब होकर, मैं उन माधव भगवान्को प्रणाम करता हूँ ॥ ४३ ॥ जिसका महादि देवताओं से बना होता है न तो जानने और योगी जिनकी प्रशंसा करने हैं, उन परब्रह्म परमात्मा का मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४४ ॥ अर्वाक्ष जिसकी नाभि है आकाश जिसका मयंक है और जिनके चरणों में भूमि उत्पन्न हुई है, मैं उस महाकाय प्रणाम करता हूँ ॥ ४५ ॥ विष्णुए जिनके कान हैं, मुख एवं चन्द्र जिनके नभ हैं, ककुत्साम एवं यजुर्वेद जिनसे जगत् उत्पन्न है, उस देवताओं मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४६ ॥ जिसके मुखसे वायु, वाहसे अग्नि, उत्तरवल्गु से वात और गैराक्ष शुद्ध उत्पन्न हुआ है, उन ईश्वरों मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४७ ॥ मध्यावतः निर्मल, निरञ्जन, निर्विकार एवं शुद्ध परमात्मक नामरूपरसगुणने समस्त पापमृद्ग मष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥ जिसके मनमें चन्द्रमा, चक्षुष्य में प्राणोंसे पवन एवं मुखमें अग्नि उत्पन्न हुआ है, उस परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४९ ॥ आरम्भोत्तम गायन करनेवाले, भक्तोंके प्रेमा, भक्तिगम्य, अयराजित और अनन्त-स्वरूप विष्णुका मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५० ॥ पृथिव्यादि पञ्चभूत, तन्मात्रा, एकादश इन्द्रियाँ और सूक्ष्म प्राणिसाह जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उन सर्वतोमुख भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५१ ॥ जो बहुत है, सर्व-लोकोत्तमोत्तम है निर्गुण है एवं परम सूक्ष्म है, उस परमात्माको मैं पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥ योगेन्द्रज जिसकी निर्विकार अज, शुद्ध, ईश्वर एवं ससारका भादि कारण कहे हैं, उस परब्रह्मको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५३ ॥ जो विश्वमाता और अण्वय है, जो एक होता हुआ भी अलग-अलग पञ्च महाभूतों एवं तीनों लोकोंमें व्याप्त है, उस भूतात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५४ ॥ जो निर्गुण है, परमानन्दस्वरूप है और हृद्यमें रहने हुए जो जिस प्राणीकी आत्मा मायासे पुरुष है, वह उससे दूर है ॥ ५५ ॥ जो शान्तिबोका सर्वत्र है । वह विष्णु

गतिदाता विश्वधुवाः स मे विष्णुः प्रसीदन् । जगद्धितायै यो देवमाश्रित्यतया ॥५८॥  
 यमर्चयति त्रिविधाः स मे विष्णुः प्रसीदन् । यम मनसि च मनः सर्वदाऽऽनन्दविग्रहम् ॥५९॥  
 निर्गुणश्च गुणाधारः स मे विष्णुः प्रसीदन् । परोक्षः परमहंसः परान्परतरः प्रभुः ॥६०॥  
 भिन्नपद्म परिशेषः स मे विष्णुः प्रसीदन् । य ईदं कोनरेत्तिन्य स्तोत्राणामुत्तमम् ॥६१॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं मरीचने । य इदं कोनरेत्तिन्यं ब्रह्मज्ञं प्रपूजयेत् ॥६२॥  
 आचार्यं पूजयेत्पञ्चाभिषिक्तः इनादिभिः । ब्राह्मणान्मे जयेन्वश्यं कृत्स्नः सन्ध्याभरण ॥६३॥  
 पुत्रमित्रकलत्रार्घ्यैश्चभूमिः सह वाचनः । कुर्वीत पाण्यां शिष्यं नारायणपरायणः ॥६४॥  
 यस्त्वेतन्कर्म कुर्वीत ध्वजरोपणममम् । तस्य पुण्यफलं ब्रह्मे मृणुष्व सुममादितः ॥६५॥  
 ध्वजं ध्वजस्य सर्वज्ञं वाचयन्तं वायुना । तच्चन्द्रपण्डितानि नश्यन्त्यत्र न सशयः ॥६६॥  
 भद्रापाकपुष्पो वा युक्तश्चेत्पत्रपातकः । ध्वजं विष्णुगृहे कृत्वा पर्वण्यैः प्रपूजयेत् ॥६७॥  
 वावहिनानि वसन्ति ध्वजो हविर्गृहोपरि । तावद्यमहत्माणि इरेः समीपमाश्रुयाम् ॥६८॥  
 आरोपितं ध्वजं दृष्ट्वा येऽभिवदन्ति धार्मिकाः । तेऽपि सद्यो विमुक्तये सुखपातकहोदिभिः ॥६९॥  
 आरोपितं ध्वजं विष्णुगृहे पुन्यन्वक्तव्यम् । कर्तुः सर्वानि पापानि पुनानि निमित्तायेन ॥७०॥  
 एवं शिष्यं यथा प्रोक्तं यथा गृहं स्यात् यमः । ध्वजरोपणमाहन्त्य मविधानं मनोरमम् ॥७१॥  
 सप्तगतां प्रानेषद् ध्वजा चैश्वर्यां नुरैः । आरोपिता ध्वजाः सर्वे द्वितीयायां पृथक् पृथक् ॥७२॥  
 ध्वजा राम महाविष्णुं तर्पयन्ध्वजमंडपे । कृत्वा चैकदिनं स्तब्धवापगोरेषु पूजनम् ॥७३॥  
 ध्वजस्य पूजनं गेहे नवगच्छ सपाचरेत् । पदाशक्त्यनुसारं वा चैकगत्रमथापि वा ॥७४॥  
 यज्ञोष्मादर्शनायै कृतमेकदिनं नृपैः । चक्राश्च राघवापि पूर्वमेव ध्वजोत्थम् ॥७५॥  
 माघमासे कृष्णपक्षे चार्द्रमासे द्विवाग्रतः । तदा ध्वजमंडोर्चयैः शुशुभे गगनागणम् ॥७६॥

मुझपर प्रसन्न हो ॥ ५८ ॥ बार-बार प्रविष्ट् जिनको प्रत्यय हुवन करत है, कभी दादा और कभी रीति-पाँच तथा फिर दादा श्रुतिक हुवन करत है, वे विष्णु पर ऊपर प्रसन्न हो ॥ ५९ ॥ जो जानिया, कभी एवं भक्तिको गति है जो विधनुष्ट है, वे विष्णु पर ऊपर प्रसन्न हो । जो संसारक निकर निष्ट गरीर धारण करते है ॥ ६० ॥ जिनको निदान् पूजा करत है । मन्त्रालय जिनको सदा भावन्तविग्रह कहते हैं, वे विष्णु मुझपर प्रसन्न हो । जो निर्गुण है और मरुण भी है । जिनका सवण, परमानन्द, परमहमा एवं विद्वत् इत्ये वि नामोसे पांचव मिश्रता है, वे विष्णु पर ऊपर प्रसन्न हो ॥ ६१ ॥ ६० ॥ जो पुरुष इस जन्म स्तत्रिक' पठ करत है, वह समस्त पापोंसे विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोक में पुनित होता है । जो इसका कोमल करना चाहें वह पत्र-पत्र-कक्या'दिक साथ सत्यपरायण होकर इस स्तत्रिका कांतन करे पञ्चान् रिक्त ब्रह्म एवं आचार्योको पूजा करे । बारमे ब्रह्मणप्राशन कराये ॥ ६२-६४ ॥ जो पुरुष ध्वजारोपण करता है । इसका पुण्यफल सावधान होकर सुनो ॥ ६५ ॥ आरोपित ध्वजाका दम्य वायुम जैसे-जैसे हिलता है तैसे-तैसे उस पुरुषका सब पाप नष्ट हुआ जाता है ॥ ६६ ॥ विष्णुमन्दिरक ऊपर ध्वजारोपण करनेसे एक महापातक तथा सभी पाप नष्ट हो जात हैं । वह आरोपित ध्वजा जितन दिनों तक हरिमन्दिरपर मूर्तस्थित रहती है, उतने सहस्र पुनर्पन्त ध्वजारोपणकर्ता श्रौहविके समीप रहता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ जो व पितृ पुरुष ध्वजाकी वन्दना करते हैं, वे कोटि उपपातकोसे दूर जात है । ६९ ॥ ब्रह्म आराधित ध्वजा जगने ध्वज कीगती हुई विविधाधम आरोपितक पापोंको नष्ट कर रती है । हे शिष्य ! तुमने जो बनीहर ध्वजारोपणमाहन्त्य पृथ, वह सब विविधपूर्वक मैने कहा ॥ ७० ॥ इसलिये ध्वजपूजन प्रतिपदको अथवा हुआ जानकर राजाजान द्विर्जाको ध्वजमेका आरोपण किया यज्ञमण्डपम स्थित राम का महाविष्णु मण्डपपर ही वे रात्रे ध्वजाका मकनेमकने सम्बुजोने ब्रह्म-ब्रह्म पूजन करने स्या । ७१-७३ ॥ पूजा नहराव पर्यन्त कथवा अपनी शक्तिसे अनुसार करे । अथवा एक ही रात बने ७४ ॥ यतो

इदं चरित्रं परमं मनोहरं श्रीमद्भक्तानुसंगिवात्मजितम् ।

परंति शृण्वन्ति नगः सुपुण्यद भवेच्च तेषां नियतं विचिन्तनम् ॥७७॥

१। न श्रीशानकादिरामचरित्रातर्गने श्रीमदामन्दराम पुजे वात्माकीयं योगकाटे

अक्षारोपणग्रन्थं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( अवभृथस्नानोत्सवका वर्णन )

श्रीरामदास उवाच

अथ चैत्रमिने पक्षे नवम्यां रामतन्मनि तदाऽवभृथस्नानार्थं वाजिमेषकनाम्नये । १ ॥  
चक्रात् सूचनां शङ्खे गधवाय गुरुः स्वयम् । न्वरथ माम् तं राम रचिताभयान्मुनिः । २ ॥  
वसिष्ठवचनं श्रुत्वा रामो लक्ष्मणमधवीत् । मद्यावभृथस्नानार्थमुन्मर्षमनं मम ॥ ३ ॥  
रामतीर्थं स्वयां ज्ञान्वा करणीयं मयोच्यते । आहापनीया राजानो निजैर्न्यैर्गजादिभिः ॥ ४ ॥  
मञ्जीवनाः मावरोधास्तिष्ठध्वमिति महपे । मिदं कार्यं निजं सैन्यं शिवकारयवाराणम् ॥ ५ ॥  
अक्षपतिसमायुक्तं तुरगोष्टमर्जयुतम् । नवधाध्वनिः कार्या तूर्यादीनां स्वनोऽपि च ॥ ६ ॥  
पताकाश्च ध्वजाश्चापि तोरगादि वमततः । मुक्ताश्चालपुष्पाणि हाराश्चाध्वरमडपात् ॥ ७ ॥  
हन्धर्तापा रामतीर्थपर्यंतं मेकदेऽपि च । कदलीनां मदास्तंभाश्चेधुदङ्गाः समंततः ॥ ८ ॥  
पुष्पाणि वाटिकाश्चापि मृन्पात्रादिषु निर्मिताः । स्थापनीयाश्च सर्वत्र नृत्यंतु शायोपिताः ॥ ९ ॥  
संचर्तापो रामतीर्थभागश्चन्दनरारिभिः । पुष्पैश्चाच्छादनीयो हि पट्टकुन्दादिभिस्तथा । १० ॥  
अन्यच्चापि यथायोग्यं यत्नोक्तं च मया तव । तत्कुटुम्बावलिभिरन्यैः मायपट्टाद्विचारितम् । ११ ॥  
तथैन्पुष्पा लक्ष्मणोऽपि तथा सर्वं चकार मः । अथ ते अन्विजश्चक्रुर्ममनोऽष्ट सविस्तरम् ॥१२॥

राम दासनक निमित्त राजाओं तथा राजर्जों ने एक ही दिनमें सब कृत्य सम्पन्न कर लिये था । ७५ ॥ इसी तरह मायकृष्ण चतुर्दशीको शिवजीके सम्मुख ध्वजारोपण किया । उस ऊँचा ध्वजासे गगनमण्डल अचल सुशोभित हुआ ॥ ७६ ॥ ध्वजारोपणविधानसूत्रके इस परम मनोहर एवं पुण्यत्रय चारदका जो लाग पड़न और और चलत है उनका चिन्तितार्थ अवश्य पूर्ण होता है ॥ ७७ ॥ इति श्रीशानकादिरामचरित्रातर्गने श्रीमदामन्दरामायणं योगकाटे उवात्सनां मायाटोकाया ध्वजारोपणग्रन्थं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहते लगे—चैत्रशुक्ल रामनवमाका अवसंध घटके कलप्राप्त्यर्थं अवभृथ-स्नानके लिये स्वयं गुरु वसिष्ठन रामको सूचना दी और सूर्यनाथके भयसे डरता करनक निद्रा कहन लग । १ ॥ २ ॥ वसिष्ठके वाक्य सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा—आज अवभृथ स्नानके लिए मैं उत्सवपूर्वक रामतायकी जाऊँगा अतः उस समयका जो कर्तव्य है, सो सुनो । ३ । राजाओं की आज्ञा दी कि वे अपना-अपनी सेना एवं हाथी-बाघोंके साथ अन्तःपुरकी स्त्रियोंका लेकर यत्रमण्डपमें आएँ ॥ ४ ॥ इसी तरह जब सब बाहरी लोग भी आ जायें, तब अपनी सेना, हाथी, घोड़े, शिविका एवं ऊँटोंकी भी ल आओ । नवान तथा प्राचीन बाघोंकी ध्वनिके साथ सब लोग रामतीर्थ चले । ५ ॥ ६ । उज्जमण्डपके चारों ओर पताका ध्वजा, तोरण, मुन्नामाला, प्रवाल एवं पुष्पोंके हारोंसे सजावट कर दी जाय ॥ ७ ॥, रावतीचं पर्यंत रतले प्रदेशमें से हजारों पताकाएँ बाँध दी जायें और चारों ओर हस्तदण्ड एवं कदलीके महान् स्तम्भ खड़े कर दिये जायें । ८ । गमनोंकी कूडकारी सजा दी जाय और सबव वेश्याएँ नृत्य कर । ९ । रामनवमका माय मन्दनके जलसे मिचकाकर पुष्पों तथा पट्टपुष्पोंसे आच्छादित करा दिया जाय ॥ १० ॥ और जो जो कुल करने योग्य है, किन्तु जिसको मैंने नहीं कहा है, वह सब बिना पूछे ही विचारपूर्वक सब व्यवस्था कर दो । इस प्रकार रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने



राजिवाहे रथे बद्धि पात्राणि म्याप्य गन्धर्व मर्ता चामेव न दुरुवाधोदन्विजः तद् ॥११॥  
 मुनयो वेदघोषाश्च सर्वे चक्रुः समन्ताः न सत्र दूधपाकदु सन्ध्व कक्वमाजिनम् ॥१२॥  
 यमो जनेः जनैर्मर्गे सुरा वन्दिजनैः स्तुतः अग्रे गताः पत्न्यकभिजम्पुश्च स्तः पाम् ॥१३॥  
 ततस्तौ नूर्यघोषाणां कर्तारस्तुतमभिगताः । ततस्ते राजदत्ताश्च त्रिवोष्मीपः मुदङ्गिनः ॥१४॥  
 ततो बंदिनद्याश्च वारस्त्रिणा ततो गणाः । ततो देवाः सगन्धर्वगन्तो गमः स र्मावयः ॥१५॥  
 ऋषिभर्जनैर्ययौ बह्विमधुनः स्यन्दनम्विनः । ततो मुनिध्वजः सर्वे ऋषिपत्न्यम्विनो ययुः ॥१६॥  
 ततः सत्रियपत्न्याद्याः द्विपः सर्वाः जनैर्ययुः । ततस्ते सत्रियाः सर्वे नाना हवमम्विनाः ॥१७॥  
 ततस्तेषां हि सैन्यानि ततोऽन्ते राजमेवकाः । भद्रशाश्वत्कर्णानां च वारस्त्रिणास्ततः परम् ॥१८॥  
 ततश्चोष्टास्तु वागानां शकटाः शक्रपूरिताः । तद्वदकास्तश्चक्रव चक्रकर्मन्तः परम् ॥१९॥  
 भूमिमानप्रकर्तारो रज्ज्वकुट्ट लहस्तकाः । ययुर्व्याक्रम सर्वे तदा परमोन्मर्गः ॥२०॥  
 तदा निनेदूर्वाद्यानि ननुदुर्वाद्योपितः । मुनिपदिवपत्न्यम्वन्तं ययुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२१॥  
 यामे वन्दिजनाद्याश्च तुष्टुव स्तुनन्दनम् । पद्मादिस्वरान् गन्धर्वाः प्रवृत्तुः पथि ते मुदा ॥२२॥  
 चक्रुस्ते वेदघोषाश्च मुनयः स्तरस्त्रेकम् । तत्र गमः जनैर्मर्गा कौतुकानि ममन्ततः ॥२३॥  
 चक्रुन् अनकनन्दिन्या ययौ चामर्वाञ्जतः । तत्र रामस्य मार्गं हि सीताया मुत्सृज्युवम् ॥२४॥  
 द्रुष्टुं कोलाहलं चक्रुः भंसर्दान्मकला जना । तनन्तास्नादयामासुः घनगो चेजपाणयः ॥२५॥  
 विश्लेषेण तदामीन्म महान् कोलाहलो द्विजः । तन्मर्गं गायो द्रुष्टुं श्रुन्वा च प्राद लक्ष्मणम् ॥२६॥  
 एते सर्वे पुष्पकस्याजनाः सीतां च सा सुखम् । पश्यन्तु कलहो माऽभ्यु नथाम्ब्विति स लक्ष्मणः ॥२७॥  
 सत्तानारोहयामास पुष्पके तान् जनान् मुदा । ततस्ते पुष्पकाग्रहा जना राम मनोरमम् ॥२८॥

'कच्छा महागज' कच्छर संपूर्ण शक्तिवाला गज हो । इसके बाद कच्छिनी नाम का गन्धर्व गमनी हुआ करता था ॥ ११ ॥ १२ ॥ षोडश मुनि ययम क्रमि रूप तथा पशु का परम्परा जमना मान और नामका तथा पद करार गुरु वसिष्ठ भी रथम बैठ गया ॥ १३ ॥ जज्ञमन्ता रामचन्द्र सुवर्णानां जल रथपर चढ़े, तब ऋत्विक् लोग वेदघोष करने लगे । १४ ॥ चन्द्र नन्दास स्तुतयन ज्ञान हुए राम षोडशवारे रामर्षिदेका चले । आगे-आगे पताकाधोसे मुक्त हाथा, उसके बाद षोडश, उसके बाद काडीरर सः हुए मुदमन्ता तथा वाजा वजालेवाले और उनके बाद सुन्दर पगखी पहने हुए दण्डवत् राजा मन चले ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसके बाद वन्दिजन, उसके बाद वीरगवृन्द, उसके बाद देवता तथा गन्धर्व चले ॥ १७ ॥ तदनन्तर स्यन्दनम् तथा बह्विमधुक ऋत्विक् जनसे परिवर्धित राम और सीता चली । उसके बाद क्रमि और कपिपत्नियां चली ॥ १८ ॥ उसके बाद राजपत्नी प्रभृति सम्पूर्ण स्त्रियां चली । उसके अनन्तर विविध व हनापर चढ़ हुए गाय चले ॥ १९ ॥ उसके बाद उनकी सेना तथा अन्य राजसेवक चले । उसके बाद वाद्यवादक चले ॥ २० ॥ उसके बाद वाणेशे स्तर फ्रेट और गहरोसे भरे शकट चले । उसके बाद लोहक र गन, चटई तब चर्मक र चलने लगे ॥ २१ ॥ उसके बाद भूमिकी ताप-जाल करनेवाली रस्सी एवं कुदाल हथके लिए मजदूर चले लगे । इस तरह आनन्दमय बहु सम्पूर्ण जनसमुदाय चलने लगा ॥ २२ ॥ उस-बाद बाद वज्रगजा और मेरुगर्भ नाचने लगी । मुनिपत्नियां और राजपत्नियां रामपर पुष्पवृष्टि करने लगी । २३ ॥ मागम वन्दिजन स्तुति करते हुए, गन्धर्व गमने लगे और मुनिद्वीग उन्मत्तस्वरासे वेदघोष करने लगे ॥ २४ ॥ इस प्रकार जनकर्तान्दिन सातक साथ विविध कौतुक देखते हुए राम चले ॥ २५ ॥ उस समय राम एक नीताक वसंतके लिए परम्परा रथमना हुई जनम से कोलाहल मच गया । उसका शान्त करनेके लिए पुलिन्द डंडम जनताको ताडना दमे लगा ॥ २६ ॥ २७ ॥ जब अधिक कोलाहल होने लगा तब रामने देवा और कुटुम्ब के वक्ता स्वयं गमने लगे ॥ २८ ॥ तुम ऐसी व्यवस्था करो कि जिससे जनता हमारा दर्शन कर सके और कलह शान्त हो जाय । इन सबकी पुष्पक विमानपर सदा लगे । लक्ष्मणने कहा 'बहुत अच्छा' ॥ २९ ॥ इस प्रकार रामकी आज्ञासे सबकी पुष्पकपर चढ़ा लिया गया । तब

जानकीमहितं यास्ति ददशुः पतिं वै शनः । केचिद्विचर्यन्ते धन्याः परिपूर्णमनोरथाः ॥३१॥  
 अथ रामं दर्शयन् च पञ्चमोऽप्य महोत्सवः । केचिद्विचरन्ते नो पश्यन्ति विनम्रं न सुजन्मदा ॥३२॥  
 ययोः पुण्यचर्यस्य नः सागरावदशनम् । एतं ददशुः । आनये स्त्रियः सर्वाः परस्परम् ॥३३॥  
 सर्वं न्य पुष्पके स्थातुं प्रार्थयन्ति स्म जानकीम् । तदा सा जानकी प्रहृलक्ष्मण पुरतः स्थितम् ॥३४॥  
 स्त्रियः सर्वास्त्वया शीघ्रं नार्गदाशामु पुष्पके । आगेहर्णाया मे वाक्यान् प्रार्थयन्त्यत्र मां मुहुः ॥३५॥  
 लक्ष्मणोऽपि नश्येन्पुष्पाताः स्त्र्याः सर्वाश्च पुष्पके । स्वस्याऽऽगोहयामास साशिलासु यथासुखम् ॥३६॥  
 ततस्तां पुष्पके रुढास्तु गजालपटान्तरैः । ददशुः सीतया रामं वषट्पुः पुष्पवृष्टिभिः ॥३७॥  
 मृदङ्गशङ्खपणवन्पुष्पांनकगोष्ठ्याः । वारिणाणि विचित्राणि नेदुश्वाचमृधोत्सवे ॥३८॥  
 नर्तक्यो ननु नृहरा गायका गृधरा जगुः । वीणा वणु लोहनादकृतेषां स दिवसः पूजितः ॥३९॥  
 चित्रवज्रजाताकार्यैरेवेन्द्रम्यन्दनार्चभिः । स्वलंकृतैर्महामृषा निर्ययुः रुक्ममालिनः ॥४०॥  
 यदुसृजपकाम्योत्तुकुलकैर्यकोपकाः । कम्पयन्तो भुवः सैन्यैर्यजमानपुङ्गवैः सराः ॥४१॥  
 सद्यश्चित्रविट्जघ्रेहा जघ्रपापग भूयसा । देवापामृगमन्थवास्तुगुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४२॥  
 स्वलंकृता नरा नार्यो गन्धमगृण्यन्त्यैः । चित्रिपन्थाऽभिपिचन्त्या विजडविचित्रै रसैः ॥४३॥  
 तैलगोरवगन्धोदहग्निमान्द्रकुंकुमैः । पुष्पिलताः प्रलिपन्त्यो विजडवर्चसोवितः ॥४४॥  
 एव नानामयुग्माहै श्रीरामश्च दर्शयथा । पश्यन्तानाकौतुकानि स्यन्दन्ते न जनैः सनैः ॥४५॥  
 अगमन्त्यर्थतीरे रामवीर्यं शुभावहम् । अवकृष्ट रथाद्रामः सीतया सरयुजले ॥४६॥  
 स चकार जेहेति तैर्जतिविभिः परिसारतः । पद्मनाभजावभृथ्वधरित्वा ते वसुत्विजः ॥४७॥  
 सर्वे रामहृदे निष्ठा यजमानपुङ्गवरा । आचान्त रनाथयाञ्चक्रुः सरयवां सह सीतया ॥४८॥

पुष्पकस्य जनता रास्तेमे जाते हुए सप्त रासका प्रसन्न दशान लगे ॥ ३० ॥ वे कहते लगे—हम घन्य हैं और परिपूर्ण मनोरथ हैं, जो अपने गेजान सीता के सम दम्प रह ह । कोई काल कि हमारे जन्मवाता माता पिता क्षय है । जितके पुष्पके हमको मेलारामके दशन ह । यह है ॥ ३१ ॥ इस तरह कौतुक देखते हुए श्रीराम समे जा रहे थे सब आनन्द रिचरों परस्पर चित्र वज्रके पुष्पके बैठकर लिए जानकीसे प्रार्थना करने लगे ॥ ३२ ॥ ३३ इसको प्रार्थना पुष्पके सोत जे न रामने जेडे लक्ष्मणसे कहा — ३४ ॥ ये स्त्रियां नारम्भार पुष्पसे प्रार्थना कर रहा है । अब मैने आज से इनको भी पुष्पके जमानेवा स्वाग्र लाम बैठा दो ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणजीने उत्तरमें बहुत आच्छा कहकर उन स्त्रियांका शत्रु पणवका नारीशालाम बैठा दिया ॥ ३६ ॥ लक्ष्मण जानहु शहर व सरासोमसे सीताको डेवन और पुष्पानी वषो करने लगी ॥ ३७ ॥ उस अवधुवस्तानो-न्यवके उपलक्षसे लगन मृदङ्ग, शक्ति, पणव ( डोल ), वधुर्धानक नगाई एवं गोमुख ( मेरी ) प्रभृति विचित्र विचित्र वाद्योको बजान लगे ॥ ३८ ॥ नर्तक्य प्रसन्न होकर नाचन लगीं । गायकसमूह गायन गाने लगे और कोषायण प्रनृत घंटावा शब्द आरागता गुञ्जित करने लगी ॥ ३९ ॥ चित्र-विचित्र पद्मावता-काशीसे सुगोष्म हाथी पीड तथा रथोंके द्वारा सजे हुए घोड़ाशोक साथ सब राजे चल रहे थे ॥ ४० ॥ यदु, सुजग, कामवज, कुल केकय एवं कामलवंशी राजाकोका वृन्द श्रीरामको आगे करके पृथ्वीमण्डलको कपाता हुआ चल रहा था ॥ ४१ ॥ सद्य, कूर्चिक एवं काह्णवृन्द वदपोष करने लगी और देवता, ऋषि, मित्र एवं गन्धर्व परवृष्टि करने लगे ॥ ४२ ॥ गन्ध, माला, ज सुवर्ण एवं वस्त्रोंके जलंकृत नारियां विविध रसोंको छिड़कती हुई वृक्षोंके साथ विहार करने लगी ॥ ४३ ॥ वस्त्रार्थ भी तैल, गौरस, गन्धाक इरिद्रा तथा गोश्र कुमकुम पुष्पोंपर उडनी हुई उनके सप लज्जे लगी ॥ ४४ ॥ इस तरह अनेक प्रकारके आनन्दमय कौतुक देखते हुए श्रीराम और सीता रथके द्वारा घरे घीरे मन्त्रोंके तैरस्य शुभावहर महीधर पहुँचे और वहां उतर पड़े ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ऋत्विजोंसे परिवहित श्रीराम सन्यके जलम अर्पित करने लगे । ऋत्विज लोगोंने उनके साथ सवात्र एवं अवधुव स्नान करवाया ॥ ४७ ॥ काह्ण लग रामतीर्थके सन्युबलमें सीताके



मीनायाः स्वकरेणैव घृत्वा वामकरं मुदा । ममायां गधत्रां प्राह तमिष्टं नोपयन्मुदा ॥६७॥  
 स्त्रीदानमन्त्रो वक्तव्यः सीताशत करोमि ते नद्येति पत्निवृन्देषु वमिष्ठश्च यथाविधि ॥६८॥  
 महीवकरं स्त्रीदानं गधपेण ममपिबन् । चक्षित च तदाऽभूर्द्धं सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥६९॥  
 ददमानं न कश्चामातदार्थादतिचित्रवन् । तदा सीतां मुनिः प्राह मन्वृतेतिष्ठ बालिके ॥७०॥  
 मम पिनाऽपि गधेण त्वां मन्येऽहं मुनोपमाम् । तन्मृतेवचनं श्रुत्वा सीता सा त्विन्नमानया ॥७१॥  
 गजन्धनेक्षणा माधवी मुने, पुष्टे हासप्रियन् । वभूजश्रपूर्णनेत्रा सा रोमांचितदिग्धा ॥७२॥  
 मनो रामः पुनः प्राह तमिष्टं विनयाच्चित्तम् । गृह्णाण मुग्धे चापि सीतायै हृदिनां पुनः ॥७३॥  
 मया तेषेण कैलासे मन्मथेऽनोपदायिनी । ममऽपि दातुमानीता न चक्षुन्वा गुरुव्रतीन् ॥७४॥  
 राम राम महाप्राज्ञो त्वरोदायै च दक्षितम् । याचिता त्वं चन्तोष मया तेऽहम् पुनः शुभा ॥७५॥  
 अग्राः कुरु तुल्यधनं सुवर्णनं गृह्णतम् । अष्टगणं प्रतुलितं सीतया रुक्ममुत्तमम् ॥७६॥  
 सां दत्तव्यं न्वया प्राज्ञा पुनः सपदि मद्विरा । अन्यत्किंचिच्छृणुष्व त्वं वचनं यन्मयोच्यते ॥७७॥  
 धेनुं चितामणिं सीतां कीम्बुधं पुष्पकं पुर्गम् । स्वयं राज्यं मयोध्य त्वां त्वं चेत्कस्य प्रदाम्यमिह ॥७८॥  
 अग्रे कदा तदाऽऽता मे रथ्या त्वया भविष्यति मम लाभहृदोपेण बहुकनेशा भविष्यसि ॥७९॥  
 मर्कटः ममर्धो राजन् विना यश्चरामिच्छति । तन्न ददस्य विप्रेभ्यो न्वं मुखं परिचारतः ॥८०॥  
 तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा मथन्पुष्पया रघूत्तम । सीतां तुल्यधामारोप्य सुवर्णेनाष्टसंख्यया ॥८१॥  
 तस्मिन् प्रनिजग्राह गुरोः माधवी स्मिताननाम् । दिव्यालङ्कारहीनां तां कंचुर्कान्तस्त्रयगुताम् ॥८२॥  
 तदा निनेर्द्वार्यानि चतुर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । मुग्धक्षणे विषाजग्धाः सीताराधौ मुदान्विता ॥८३॥

व्या—“तब, अब रामजी क्या करते हैं” ॥ ६५ ॥ इस तरह गुप्तका वचन सुना सी रामजीने हँसकर संकेतसे  
 सनका और गुरु दोनों को बुझाया ॥ ६६ ॥ इह गुप्तकर सभाय हा आनन्दपूर्वक अपन हाथसे सीताका  
 धन = १ रुक्मकर मन्मथलगा प्रसन्न करने हुए था ॥ ६७ ॥ ‘गुप्तेव’ आप स्त्रीदानका मन्त्र बालिके,  
 मे सुनता था तब कहे = वमिष्ठजन भा = यद्गु’ कहकर रामक द्वारा दिये हुए स्त्रीदानका यथ विधि  
 स्वीकार कर लिया । म गधण सम्पुण रघुवर-जङ्गम जगत् आश्रय चक्षित रह गया ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उस  
 शासन सार समार चित्रलिखित सा सा गया किसे का प्रपत्ता दशकी भा मुनि नहीं रहो । तब मुनि वलिष्ठ  
 सातव्य बले —सीने । मरे पीछे आकर बैठो ॥ ७० ॥ रामजीने मर गिये तबहुं दान किया है । मैं तुमको  
 पुन सा तरह प्रसन्नता है । इस तरह मुनिक वचन मनकर दृष्टिवा साध सता मुनिके पीछे अंकर बैठ गयी ।  
 इस समय उग्रद गौरव गये हो गये और वे दृष्टकूटनर होने लगे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तदनन्तर चित्तव रामजी  
 त गधपेण व = मिन प्रसन्न होकर कैलास पवनपर सीताका मन्मथो ग र दी थी । अत इस मनस्तापदायिनी  
 मन्मथका ही लालने र । च कि आपका दनर लिख हा मिन दक्षको मगाया था । यह मुनकर गुरु वलिष्ठ  
 बले— ७३ ॥ ७४ ॥ हे राम ! हे महाप्राज्ञ मैं आपकी उपायता बलनेके लिए ही स्तनको मंगाया था ।  
 अग्राव अथ मेरे द्वारा दी हुई अष्ट सता ८३ अ पकी या जाय । ७५ ॥ हे रघूत्तम ! सुवर्णके बराबर इसको  
 लीजिए । आप दात सीतान्तर चित्तवा स्वयं हो, उन दन दकर मे । क्रात्रासे आग पन सीताको ले लें । और  
 भी जा मे कहना है ममपुन ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ परे रामक म = चित्तमणि, सीता को पुष्प रत्न, पुष्पक विमान,  
 अष्टसंख्यपरिव मन्मथा रज्य यदि आप किसे को दो तो मेरे अनामगजन्म दोषसे अत्यन्त दुखी होगी ।  
 क्योंकि आनन्दक आपने कभी मे मन्मथ जा कह नहीं की है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ अत हे राजन् ! मुनिनिर्दिष्ट  
 ग न वमिष्ठका लोचन आ रच्यो हा, विना चित्तार कल्याण के देकर आप सुखी हो ॥ ८० ॥ इस तरह गुरुके  
 वचन मनकर रघूत्तम ने मने कहा— वदन् अन्ता पुद्गल’ और सीताका अठ बार सुवर्णने लीकर उनसे  
 वापस ले लिया । ८१ ॥ तब केवल कंचुका वरत्र पहने तथा दिव्य लङ्कारोंसे रजित भी सीता प्रसन्न हो गयी । इसके  
 अनन्तर बाज बजने लगे और विमानपर बैठो हुई देवागन्तव प्रसन्न होकर सीताराधके ऊपर पुष्पवृष्टि करने

पूर्वाधिकानलंकागन्धदेहे जानकी दधौ । जनाः सर्वे सुसन्तुष्टास्तदाऽऽमन्मुदिताननाः ॥८४॥

अथ सीता पतिं नम्या तन्पार्श्वे सस्थिताऽभवत् । स्मिताननाऽऽनन्दमग्ना लज्जिता गमलोचना ॥८५॥

नवो रामोऽप्यनेकानि कृत्वा दानानि विस्तारान् । कृत्स्निकमदस्य गृह्यादीनामप्यभिगणार्चनैः ॥८६॥

स्वीयतार्तामृपांश्चित्रमुद्गदोऽन्याश्च सर्वशः । अर्भीक्ष्णं पूजयामास वस्त्रार्चकाभूषणैः ॥८७॥

सर्वे जनाः सुललितोन्मणिकुण्डलस्रगुष्णीपकचुकदुकूलमहापद्माङ्गाः ।

नार्यश्च कुण्डलयुगलकवृद्धनुष्टम्बत्रयः । कनकमेखलया विरेजुः ॥८८॥

इति श्रीजितवातिरामचरितसत्तमने श्रीमदानन्दरामायणे वाग्मीकाये यागकाण्डे

अवभृथोत्सववर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

## नवमः सर्गः

( अश्वमेध महायज्ञकी समाप्ति )

श्रीरामदास उवाच

श्रीरामेऽवभृथस्नाते शंभुर्ब्रह्मादिभिः सुरैः । रामै वैदमन्त्रैः स्तुत्या प्रन्युवाच पुनः स्थितः ॥ १ ॥

अथ धन्या वयं सर्वे यच्चो म्नात सुमंगलम् । पश्यामो वाज्यवभृथे मातया वधुभिः सह ॥ २ ॥

अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव दयानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठकालो भविष्यति ॥ ३ ॥

त्वं चाप्यंगीकुरुष्वाय देहार्मै सुवहन्धरान् । अन्यस्मश्चात्र प्रन्यवद् येन ते दर्शनं भवेत् ॥ ४ ॥

तथा कुरु रघुश्रेष्ठ तीर्थार्यान्मं वगन्वद । अन्यानि च त्वया पूर्वयानि भूम्या कृतानि हि ॥ ५ ॥

यात्राकाले मुनीर्थानि लिंगान्यपि निजारूढया ।

तेषामपि वरानय वद त्वं मम वाक्यतः ॥ ६ ॥

पुरीषु श्रेष्ठाऽयोध्येय त्वया वाच्याऽद्य राघव । नदीषु सरयुः श्रेष्ठा वर्गः कार्पाऽद्य मद्गिरि ॥ ७ ॥

तच्छुश्रूवचनं श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । हर्षकालेऽब्रवीद्राघवं यन्त्रैर्लोकयोपहारकम् ॥ ८ ॥

लगी ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ अब जानकीजाने पहलेसे भी अधिक आभूषणोंको अपने शरीरमें पहना तो उससे जनता अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ ८४ ॥ इसके बाद पतिका प्रणाम करके बैठता हुई सीताजी आनन्दमग्न होकर लज्जापूर्वक रामके पास बैठ गयीं । तदनन्तर रामजीने खूब दान दिये एवं कृत्स्निक, सदस्य, राजे, मित्र, सहज तथा अपने भाई बन्धुओंका वस्त्राभूषणोंसे भली भाँति सत्कार किया ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय रामजीके यज्ञमें सब पुष्प मनोहर मणियोंसे अटित कुण्डों एवं मालाओंका पहिन तथा बहुतमन्य पगड़ी कन्की ओर दुषट्टीमें सुशोभित हो रहे थे । इसी तरह कुण्डल, रत्नअटित आभूषण तथा स्नानका मेखला ( तागड़ी ) से सुशोभित निगने भी विराज रही थीं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे नव रामोत्सववर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—श्रीरामने जब अवभृथ स्नान कर लिया, तब वहूनादि देवोंके साथ महादेव रामजीकी स्तुति करके कहने लगे—॥ १ ॥ आज हम लोग धन्य हैं, जो सीता एवं बन्धुओंके सहित आपको यह अश्वमेधका अवभृथ स्नान किये हुए देख रहे हैं, जो अत्यन्त मंगलकारक है । २ 'ह देवदेव' हे कृपानिधे ! यह समय हम लोगोंके लिए बड़ा हर्षप्रद है । अतः यह सदा अत्यन्त श्रेष्ठ और पुण्यवर्द्धक क्षण है । ३ ॥ आप भी इसकी अच्छाई करे और इसके लिए अच्छे एवं बहुतसे ऐसे वस्त्र कि जिससे हमलोगोंका प्रतिबन्ध आपका दर्शन मिलता रहे ॥ ४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस तीर्थोंके लिए भी बहुतसे वस्त्रोंका दान प्रणाम करते समय पहले भी आपने जिन तीर्थों एवं लिंगोंकी स्थापित किया है, उनको भी मेरे कहनेसे आप वन्दान द ॥ ५ ॥ हे राघव ! आप मेरे कहनेसे आप ऐसा कह दीजिये कि सब नागरिकोंके लिए श्रेष्ठ यह अवोष्या नगरी है एवं

श्रीराम उवाच

यत्प्रार्थितं त्वया शंभो तदेव हृदि मे स्थितम् । मृणुष्व वचनं मेऽथ यदुपनिषोक्तं सुखम् ॥ ९ ॥  
सर्वेषामेव पाप्मानं श्रेष्ठं चार्थं मयैवेन । वैजान्त्यं कार्त्तिकः श्रेष्ठः कार्त्तिकान्वाय एव च ॥ १० ॥

वाघमासाद्धर्मार्थं चैत्रमासो भविष्यति ।

चैत्रमासेऽप्यवज्जन्म मम यस्मात्तथा पुनः ॥ ११ ॥

राजिनेश्वरभूषेषु स्नानेऽपि विशेषतः । सर्वेषामधिकथाम्पु ननु मे वाक्यमौघात् ॥ १२ ॥

चैत्रमासे कृतं दत्तं हुतं स्नानं निश्चिन्तितम् । सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमप्युच्चार्या विशेषतः ॥ १३ ॥

सर्वसु प्रथमा चेयं पुगीषु नगरी मम । अयोध्या मुक्तिदात्री तु भविष्यति गिरा मम ॥ १४ ॥

अन्यत्र यत्कृतं पुण्यं यत्प्रियवचनैः शुभम् । तदत्र दिग्भक्तैः परिष्यति नृणां सदा ॥ १५ ॥

पुगीर्णां नधुरा संया राजधानी शुभप्रदा ।

त्वयाऽस्यैवाचितो यस्मादुत्तममहमादरात् ॥ १६ ॥

तव वाक्याद्गौरवेण तव कारयाः शतविका । भविष्यति पुगी चैत्रमासोऽप्यत्र मम वल्गवा ॥ १७ ॥

नदीषु मरुदेव्यं श्रेष्ठाऽस्तु कचनान्मम । मरुद्वृद्धा नाम्ना नदी भूता भविष्यति ॥ १८ ॥

अस्मदपि मया चेदं रामतीर्थं निर्निर्मितम् । निजनेत्र प्रकाशेन तीर्थेषु मुकुटोपमम् ॥ १९ ॥

भविष्यति न सदेहः सर्वपातकनाशनम् ।

तथा यानि पृथिव्यां हि मया तीर्थानि वै पुनः ॥ २० ॥

लिङ्गान्यपि स्वीयताम्ना कृतानि तानि शक्य । स्नाने दर्शनाचार्यैर्मुक्तिराऽप्यत्र संतु वै ॥ २१ ॥

रामतीर्थे चैत्रमासे प्रत्यब्दं भुवि मानदं । स्नानेऽप्यविधित्वा मय्यदृतिर्यत्रैर्मम वक्ष्यता ॥ २२ ॥

यत्कुङ्कुमाश्रमेऽथ यदोमेषेन वै कुरुम् । एकलं सोमयागन तत्तत्तत्रैवैवमादरात् ॥ २३ ॥

सूर्यश्रेष्ठे कुरुश्रेष्ठे यत्कुङ्कुमः स्नानदाननः ।

तत्कुङ्कुमः स्यान्मयी स्नानादयोऽप्यर्था सुरेश्वर ॥ २४ ॥

नदिवाय उत्तम सरयु नदी है । शिवदेव का यह कथन सुनकर इतना हुए राम स्वयं शिवकुनोपकारिणों वाणी बोलें ॥ ७ ॥ ८ ॥ और प्रमत्त कहल-है रामों । आप ज्ञा बाधन है, वही मेरे भी भनप है । आप मेरी बात सुनिये । मैं हरेपुत्रक यह कल्याणमय वाक्य कहला हूँ । ९ । मय्युक्तं पासोऽपि नैव वर सख प्राप्त हागा । वैजान्तसे कार्त्तिक, कार्त्तिकसे माघ एवं माघ महानस भी चैत्र आउ हागा । इसी मासमें मरा जन्म हुआ है । इसलिए भी यह जन्म मास श्रेष्ठ है । १० । ११ । अस्वर्गवाय अवश्य स्नान करने तथा आपके व नगरीयसे भी यह महोना स्वयं श्रेष्ठ होगा ॥ १२ ॥ चैत्र मासमें यत् स्नान-दान आदिमा कोटिगुण प्राप्त हागा । अयोध्यामें किया हुआ मुक्ति तो और भी अधिक पुण्यदा हागा ॥ १३ ॥ यह मेरी पुगी सब कारिणिए उत्तम है तथा मेरी वाणासे यह मुक्तिदात्री भी अवश्य होगी । १४ । और जगह किया हुआ कृतार्थ २० वर में फलदायक होता है, किन्तु यहाँ किया हुआ पुण्य एक ही दिनमें फलदायक हागा ॥ १५ ॥ वर पुत्रराम शुभप्रद पुगी यद्युक्त स्वयं स्पर्श आपन मुझसे कर मांग है ॥ १६ ॥ अतएव आपने वाचयोग्यसे यह मरा शिवा अपाङ्गपुगी मुणोंव आपको कार्त्तिकसे भी सौगुना श्रेष्ठ हागा ॥ १७ ॥ मेरे वचनमें मर्यु सब नानिबोस श्रेष्ठ हागी । समु जैसी नदी न है और न हागी ॥ १८ ॥ इसमें भी मेरी वनाय हुआ यह २ मासमें स्नान प्रदायक सम्पूर्ण लोकोव मुमुट सद्यः हागा ॥ १९ ॥ हे शक्यजी । मैंने अपने नामसे भू-मपर त्रिभुजा तार्ज एवं त्रिर्वाङ्गम्यपित्त किये हैं वे सब स्नान-दर्शन एवं पुण्यसे मुक्ति दत्तनाय तथा सर्वपापनाशक हाग । इसमें कोई सन्देह नहीं है । २० । २१ ॥ मनुष्योंकी प्रतिवर्ष चैत्र मासमें विष्णुपूर्वक, यम निरमादिके साथ रामतीर्थसे स्नान करना चाहिये ॥ २२ ॥ अश्वमेध, गामेष एवं सोमयाग करनेसे जो फल प्राप्ता होता है, वही फल रामतीर्थपर स्नान करनेसे मिल जाता है ॥ २३ ॥ सूर्यप्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें स्नान-दान करनेसे जो फल हागा है, वही फल चैत्रम अयोध्यास्नान करनेसे

अयोध्यायां रामतीर्थे सरयुजलध्वजः । तस्मिन् स्थितः सन् शोभमानः ॥२५॥

यथा मार्गे प्रयागे हि स्नानार्थं तुल्यमिह । अत्रिकेचनः स ह्यश्वो पंचमंगाजले स्मृतः ॥२६॥

द्वारकायां यथा प्रोक्ता वैशम्पेयैः ।

अयोध्यायां नमस्कृत्य तथा श्रीः सहायम् ॥२७॥

कृष्णार्थं नरैर्मन्यता वचनान्मम नरेन्द्र । सर्वेषां च मासेषु प्रथमः सकलैर्जनैः ॥२८॥

एतावत्कालपर्यन्तं मार्गशीर्षेः प्रयागे । अत्रारभ्य मनुष्याः प्रथमः स्नानातिथेः ॥२९॥

यथा देवेषु प्रथमस्त्वं महेश्वरतथा मनुः ।

मासेषु प्रथमश्चास्तु तथाऽश्वेषां पुराणेषु ॥३०॥

चैत्रे मासे तु संप्राप्ते सर्वे देवाः मवासवाः । बहिर्जलं समाश्रित्य तिष्ठन् हि ममाश्रया ॥३१॥

प्रत्यहं चैत्रमासेऽथ यथेदानीं समागताः । आगतव्यं तथा सर्वैर्लोकपातक्यामिभिः ॥३२॥

सहैगतुरैः स्त्रीभिर्वैषां यन्मनेषां मम । रामतीर्थे प्रगतव्यं सर्वम् भुवि शकर ॥३३॥

चैत्रमासेऽप्यगाहार्थं वचनान्मम सर्वदा ।

इति रामवचनः श्रुत्वा गिरिजा प्राह जानकीम् ॥३४॥

मीने वरास्त्वगा देवा इदानीं वचनान्मम । नरीणां च हितार्थं हि सर्वलोकोपकारकाः ॥३५॥

पार्वत्या वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह सादरम् । पृथिव्यां मम तीर्थानि यानि सन्ति सदृशशुः ॥३६॥

अत्रापि च सदृच्छ्रेष्ठं यत्र स्नानं मयाऽधुना ।

तेषु चैत्रतीर्था या यावद्वैशाखसमवा ॥३७॥

मिता तृतीयाऽप्यग्राह्या तावत्सींश्चस्तु सादरम् । स्नातव्यं श्रीतलमौरीयद्वक स्थानमुत्तमम् ॥३८॥

वीरभयदं ममैकं पुत्रपीत्रप्रवर्द्धनम् । सर्वत्र रामतीर्थस्य नामे तीर्थे ममास्ति हि ॥३९॥

इति दत्ता वरान्मार्गानांऽपीक्षुर्गौ रामपत्निर्धा ।

ततो गमं गुरुः प्राह शनैर्यं यत्प्रवक्ष्यम् ॥४०॥

प्राह होता है ॥ ३८ ॥ जो जो छत्राक सरयुजलध्वज रामतीर्थमें स्नान करत है, वे मोक्ष प्राप्त करत हैं ॥ ३५ ॥ जो कठ माघमासमें प्रहस्मानका है कानिचन कजोका पंचमंगाम स्नान करनेका है और द्वारकायें चक्रार्थपर वेङ्गाव्यवस्थाका जगत् है, वहां फल अर्थात् रामतीर्थपर चैत्र मासमें स्नान करनेका है ॥ २६ ॥ २७ ॥ आगमें उनका भेर कहलसे सरयु सत रोम चैत्रका पहला महीना समझे ॥ २८ ॥ आज तक मार्गशीर्ष ( जगहन ) सबसे प्रथम मास माना जाता था, पर आजमें चैत्र प्रथम मास समझा जायगा ॥ २९ ॥ जैसे देवताओं पर पहले आप ( गिर ) हैं, इसी तरह मासोंमें प्रथम चैत्र और पृथिवीमें प्रथम अयोध्या समझी जायगी ॥ ३० ॥ जैन इस समय आप लोग यह आये हैं अभी तरह प्रतिवर्ष चैत्र मासमें आये और मेरी आज्ञासे सरयु तटपर आश्रम बनाकर निवास करें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ बड़े आतुर ( रोगी ) एवं स्त्रियों भी जिसके पास जो कुछ हो, उसी मनुष्यको भद्रा प्रसिद्ध भद्र देने तथा चैत्रमासमें स्नानार्थ यहाँ आया करें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर पार्वती ने सोन से बोली—हे मीने ! आप भी इस समय मेरे कहनसे सर्वलोकोपकारक एवं विशेष करके स्त्रियोंका हितकर खर प्रदान करें ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पार्वतीके वचन सुनकर सीताजी बोली—पृथिवीपर जिनने भी भद्र सर्व है और यहाँ जो महाश्रेष्ठ तीर्थ है, जिनमें मैंने स्नान किया है, उन सब तीर्थोंमें चैत्रकी—चैत्रार्थ लेकर ईश्वरजी अथवा पृथ्वी पर्यन्त स्त्रियोंको स्नान करना चाहिये । यह श्रुतश्रवण स्नान कहलगा ॥ यह स्नान एक मास होता है । यह स्नान सौभाग्य देनेवाला एवं पुरुषोंपर उत्तमवाला है । मम कहा जगत्मासके माघमासमें मेरा तीर्थ है ॥ ३६-३९ ॥ इस प्रकार कर देकर सीताजी चुप हो गयीं, इनके बाद गुरु वशिष्ठ रामजीसे बोले

तद्गुरोर्वचन श्रुत्वा तथेष्टमुक्त्वा मृदुदः आरुगोह मथ शीघ्रं मानपान्निर्जनैः सह । ४१॥  
ततो नेदुर्दुन्दुभयो मेरोणा निःस्वनास्तनः मृदंगपणवादीनां महाघोषाः समन्तनः । ४२॥

वेदघोषाश्च मधश्च जयशब्दा द्विजेभिः ।

वभूवुर्मंत्रप्रबन्दाश्च ननुतुथाऽन्मरोमगाः । ४३॥

नानोत्सवैः पूर्वैरुच्य कौतुकादि समन्तन । पश्यन्त्यसौ रामचन्द्रः शनैरन्तरमडपम् । ४४॥  
अवस्था रथान्छीर्ष नीत्याऽग्निं प्राक्षिपन्पुनः । यत्कुण्डे रामचन्द्रः सीतयात्विज्जनैः सह । ४५॥

पूर्णावृत्तिं ततो दत्त्वा वस्त्रैरभरणैः फलैः ।

कुत्वाऽथ पूजनं चापि यज्ञपात्राणि तथैव । ४६॥

ततो विसर्जयामास यज्ञाने दक्षिणां सह दातुं तानुत्विज-सर्वांश्चौमिद्रिगणैश्च उब्रवीत् ॥ ४७॥  
कोशागारं लक्ष्मणयाः पर्वमेष्टुत्विजस्तथा नीत्या दत्ताभिगङ्गान्य नृणां स्थेष ततः पाम् । ४८॥

गद्येच्छयाऽमिर्तं येन गृहीतमुत्तमं वसु ।

तस्याश्रमे प्रापणीयं बाहूनाद्यश्च तत्त्वया ॥ ४९॥

ततो मुनिजनान् सर्वान् देयं त्रिपुल्लहन्तवः । तद्रामवचनं श्रुत्वा लक्ष्मणोऽपि तथाऽकरोत् ॥ ५०॥  
ततो विसर्जयामास भोजयित्वा मधूतपः । कन्विग्नान् सवृणान् राजिमेषाख्यक्रमेण । ५१॥  
ततो राशेऽमरान्सर्वान् शिवाद्यान्त्रिवैविजैः । पूजयामास विधिवद्वस्त्रालकास्वाहनैः । ५२॥

ददौ कोशान्मनुग्मान् केषां च शिबिकां ददौ ।

केषां रथान्गजान्केषां ददौ दम्भण्यर्षाधरः ॥ ५३॥

एवं पृथ्वीपतीश्चापि सायरोषान् मसेवकान् । वस्त्रैरभरणैर्यानैः पूजयामास भोजनैः ॥ ५४॥  
ततो रामः स्वशरीरे दिव्यवस्त्राणि सन्दर्शौ । तदा तं पूजयामासुर्बालिभिर्विविधा नृपाः ॥ ५५॥

किं अथ यज्ञमण्डपको घटना बाहिये ॥ ४० ॥ इस तरह गुरुजीके वचन सुने तो राम 'नथास्तु' कहकर शीघ्र सीता एवं कौशिक, लोणीक साथ मधुपर चढ़ ॥ ४१ ॥ उस समय गंगादे देवमे लग्न, मेरीके मन्द होने लगे और मृदंग-पणव प्रभृति वाद्योंके धधके एवं दिग्गयें द्योतित हो गयीं ॥ ४२ ॥ बाह्येण वेदघोष तथा जयजय-कारके शब्द करन हुए वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण कान लगे और मधुशय नासन लगी ॥ ४३ ॥ पहलेकी तरह विविध उत्सवों एवं कौतुकोंका ऐलन हुए राम शनैः शनैः यज्ञमण्डपमें गये ॥ ४४ ॥ वहाँ उन्होंने शीघ्र रथसे उतरकर सायकी अग्निको यज्ञकुण्डमें छोड़ दिया । आरम्भ मन्त्रा एवं ऋत्विजोंके साथ पूजा हुित करने लगे । उन्होंने दम्भ-आभूषण एवं फलोंसे अग्निको पूजन करके यज्ञपात्रोंका विसर्जन कर दिया और यज्ञाश्रमे ऋत्विजोंको विपुल दक्षिणा देनेकी आज्ञा देन हुए, रामने लक्ष्मणसे कहा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण ! इन सब ऋत्विजोंका कोषागारमें ले जाकर कहकि पहरेदारोंकी हटा दो और तुम चुपचाप अलग खड़े हो जाओ ॥ ४८ ॥ जिसको जिसको इच्छा हो, उसको बिना शक टोक उतना द्रव्य ले लेने दो । लिया हुआ द्रव्य बाह्योंके द्वारा इनके अश्रमपर पहुँचवा दो ॥ ४९ ॥ फिर खुनहाथ मुनियोंको दान दो । इस तरहका वचन सुनकर लक्ष्मणने भी रामजीके कथनानुसार ही दान दिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर अश्वमेध यज्ञमें जिनका वरण हुआ था, उस ऋत्विजोंको भोजन कराके रामजीने विभक्षित किया ॥ ५१ ॥ इसी तरह समस्त देवताओंको भी विधिवत् वस्त्र-अलंकारोंसे पूजित करके विभक्षित कर दिया ॥ ५२ ॥ उनमेंसे किसीको रामचन्द्र-जीने स्वजानेके साथ धोड़े दिये, किसीका अच्छः-अच्छी पालकी दी, किसीको हाथी, किसीकी घोड़ और अच्छे-अच्छे कपड़ों तथा गहनोंका उपहार कर सम्मानित किया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने स्वयं कुण्डे रहने । उस समय समस्त देवताओं तथा रागाजीने माना प्रकारकी भेट दे-देकर रामचन्द्रजीका



सरिस्सद्गुहा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ।

घोः क्षितिः सर्वभूतानि समाजहुरुपायनम् ॥५६॥

सीतया न महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः । बभूविः सेव्यमानः स विरजेऽग्निरिवापहः ॥५७॥

तस्मै जहार चन्द्रो हंस वीरवरात्मनम् । वरुणः सलिलम्रात्रि ह्यातपत्रं शशिप्रभम् ॥५८॥

वायुश्च बालम्भजने धर्मः कीर्तिमयी सजम् ।

इन्द्रः किरीटमुःकट दण्डं संपन्न यमः ॥५९॥

नद्या मग्नमय धर्म मारुती ह्यामुत्तमम् । दशचन्द्रमसि रुद्रः शतचन्द्रमशाम्बिका ॥६०॥

सोमोऽमृतमयानन्धास्त्वष्टा रूपाश्रय रथम् । अग्निराजगर्व चापं सूर्यो रश्मिमयानिपुण् ॥६१॥

भूः पारुके योगमयी घोः पुष्पावलिपन्वहम् ।

नाट्य सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च सेचराः ॥६२॥

ऋषयश्शशिवः सायाः समुद्रः शंखमाश्रयम् । सिन्धवः पर्वता नद्यो रथधीर्धर्महान्मनः ॥६३॥

ततो ददुर्नृपाः सर्वे स्पन्दनास्तुरगान् गजान् । त्रिविकागोशृपान् खड्गान् दाम्पोर्दासोपूषेतरान् ॥६४॥

सीतायै नृपपन्नपथ देवपन्नपथः महामताः ।

वसुलकारयानानि मातृन्वान्यथ कंचुकीः ॥६५॥

कीटोपकरणादीनि ददुस्नाः पक्षिपजगन् । ततस्तैः पूजित सर्वैः सीतया रघुनायकः ॥६६॥

आकरोह रथ दिव्यं वद्विना वन्दिभिः स्तुतः । स्वस्त्राभिनृपपरनारिमानेन मुनीश्वराः ॥६७॥

विहायसः ययुः सर्वेऽयोध्यायां नृपतेर्गृहम् ।

ततो रामो रथेनैव पूर्वोक्तैरुपर्वैः शनैः ॥६८॥

विदेशं नगरीं रामः स्तुतः स्तुतेश्च मागधैः । छत्रं दधार सौमित्रिर्मुक्तजालविराजितम् ॥६९॥

भरतस्तालन्यवनं अनुधन्यामरद्वयम् । ताम्बूरपात्रं सुश्रीवस्तोषपात्रं तु वायुजः ॥७०॥

नलः ह्रीविनपात्रं च बालिजो मुकुरं चरम् ।

वामःकोश गन्धमेद्रो भूपपात्रं द्वि जाम्बवान् ॥७१॥

पूजन किया । ससारकी नदियां, पर्वत, समुद्र हाथी, घड़, मृग, पक्षी, आकाश और पृथ्वीपर रहनेवाले सब प्राणियोंने अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार भगवान्‌को भेंट दी । उस समय रामचन्द्रजी सीताजीके साथ सिंहासनपर बैठे हुए थे । चारों ओर उनका सेवामे तन्तून थे । रामचन्द्र उस समय दूसरे वर्गिके मद्रुग देवीप्यमान दीख रहे थे । १५-५७ । उस समय भगवान्‌को कुवरने एक सोनका सिंहासन दिया । वरुणदेवने जलकी वर्षा करनेवाले और चन्द्रमाली नाई इज्जत छत्र दिया । वायुने चमर दिया । धर्मराजने माला दी । इन्द्रने एक बहुमूल्य किरीट दी । यमराजने दण्ड दिया । ब्रह्मने कवच दिया । हरस्वतोने हार दिया । उसी तरह रहने दस बारवानी एक तलवार, पार्वतीने शतचन्द्र तलवार, चन्द्रमाने अमृतमरे घड़े, त्वष्टा ( विश्वकर्मा ) ने एक सुन्दर रथ, अग्निने अग्निकी तरह चमकता हुआ आजगद नामक एक धनुष, सूर्यने नमोमय बाण, पृथ्वीने योगमयी पारुकाएँ, आकाशने कुन्तीके डेर, गन्धर्वोंने ताप-गाने-बाजे आदि, ऋषियोंने मन्त्र अशोर्वादि, समुद्रने कल, नदियों लया बड़े-बड़े मछी और पर्वतोंने भगवान्‌की रथके रास्त दिये । ५८-६९ ॥ इसके अनन्तर राजाओंने रथ हाथी, घोड़े, पालक़े, गधे, बैल, कड्ग, दास और रैत आदिके उपहार दिये । फिर राजाओंकी रानियों और देवताओंकी देवियोंने नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण, गन्धकी आदि भाङ्गलिक वस्तुयें, खेलके सामान, ढोलनेवाले सुन्दर पसियोंके पीजरे आदि सीताको दिये । इस तरह सीताके साथ रामचन्द्र सबसे पूजित हुंकर एक दिव्य रथपर सवार हुए और बन्दीजनोंने भगवान्‌की श्रुति धारण की । बहुतरे मुनिजन अपनी स्त्रियों और राजाओंकी स्त्रियोंके साथ विमानपर चढ़कर

मानाफलानां पात्राणि पूजापात्राण्यनेकजः । सुगन्धद्रव्यपात्राणि दधुस्ते सन्निवचमाः ॥७२॥

एवं सुगन्धवस्तूनि प्रक्षिपन् धारयोषिताम् । वृक्षेषु सीतया रामो विरेजे स्यन्दने स्थितः ॥७३॥

सुगन्धद्रव्यपूर्णैश्च जलपत्रैः करे धृतैः ।

वारुङ्गनानां वस्त्राणि नृपादीनां च राघवः ॥७४॥

चित्रितान्यकौद्रवैः किंशुकानिव माधवे । स्नेहैः सुगन्धैः सद्योऽर्चद्रव्येषु राघवः ॥७५॥

क्षिप्त्वा परिमलादीनि चित्रितान्यङ्गोन्पुनः । नर्तन्सु धारयोषित्सु बाधेषु निनदन्सु च ॥७६॥

स्तुवन्सु वदितुं वृक्षेषु पुष्पवृष्टिविराजितः ।

ययौ राजगृहद्वारं रामो राजपथा शनैः ॥७७॥

भार्गो कुम्भप्रदीपैश्च दध्योदनविनिर्मितैः । बलिदीपैः पूर्णकुम्भैः राजभार्गो पुरस्त्रियः ॥७८॥

अक्रुर्नाराजनं रामं स्वस्त्यर्थं सीतया वृतम् । अवस्तु रथाद्रामो सीतयाऽग्निं निजे गृहे ॥७९॥

स्थाप्य स्त्रीरामभां गत्वाऽऽरोह स्वयमामनम् ।

ततस्ते पार्थिवः सर्वे प्रणम्य रघुनन्दनम् ॥८०॥

राजा मुकुटरत्नौषधप्रभाभिः पदपंकजैः । विरेजतु रघवस्य वदा सिंहासनोपरि ॥८१॥

मुकुटस्थावतसानां परागैः पूजिते चरैः । प्रपतुर्नितरां शोभां रक्तोत्पलनिभे परे ॥८२॥

सीमतस्थचन्द्रसूर्यस्तमागिषवदीप्तिभिः ।

सुरपार्थिवपत्नीनां सीतायाः पादपङ्कजे ॥८३॥

विरेजतुः परमैश्च केशधधप्रसूनजैः । सुस्पष्टितपत्नीर्गमः पूजिते कनकोज्ज्वले ॥८४॥

ततः सभायां भीरामं स्तुत्वा देवैर्महेश्वरैः । धारमस्तधराजेन धारामेण वि पूजितः ॥८५॥

आकाशमार्गसे अयोध्याकी ओर चल इन्द्र राजचन्द्र भी पूजाके उन्सवांके साथ रथपर सवार होकर राज-महलकी ओर बढ़े। जब रामचन्द्र आकाशमार्गीय दक्षिण दृष्टि हुए उस समय भगवान्‌की एक भतृङ्गी शोका थी। रामजी सीताजीके साथ रथपर बैठे थे। लक्ष्मण अपने हाथोंमें छत्र भरत पंथा, भानुभक्त चमर, सुरीय शानदान, हनुमान्‌जी जलकी लारो, नन्द उगलदान आहुत आदिना विधीपण कपड़ोंकी घेटी और आम्बवान्‌ पुष्पदानी लिए दृष्टे थे। इसी प्रकार उनके पुरोके पात्र पूजाकी सामग्री और अनेक सुगन्धद्रव्यक पात्र वहाँके अच्छे-अच्छे मन्त्री ले-लेकर चले। मन्त्रियों के मन्त्री वेण्याओंके ऊपर सुगन्धकवड़ा आदिके इत्रोंकी वर्षा करते जा रहे थे। उस समय विविध प्रकारके सुगन्धित तथा रङ्गीन फौवारे छूट रहे थे, जिससे सबके कपड़े एक विचित्र रङ्गके दिखाई दे रहे थे। इन्हीं भीम हुए और रङ्गीन कपड़ोंपर रह रहकर रामचन्द्रजी स्वयं गुलालकी वर्षा करके उन्हें और भी विचित्र बना देते थे। इस तरह वेण्याओंके नृत्य, बाजे-बालोंके बाजों, वन्दीजनोंकी स्तुतियों और देवताओंकी प्रणवृष्टिके साथ राज राजमार्गसे चलते हुए रामचन्द्रजीके महलकी ओर जा रहे थे। ६४-७७॥ रास्तेमें स्थान स्थानपर जगसे करे कलश और वही भास आदिकी बलि दिखलायी पड़ती थी। सीतागामके बल्लाणकी काशन में अर्धे आकाशिनी निवर्षा भगवान्‌की भारती उतार रही थी। महलके फाटकपर पहुँचकर रामचन्द्रजी रथसे उतर पत्र और सीताजीके साथ अपने यज्ञ-धवनमें गये। राजीय अग्निकी देशगृहमें स्थापित करके वे राजसभामें जा पहुँचे, सभाके सुन्दर सिंहासन-पर भगवान्‌ जासीम हुए। तब देश देशान्तर्गसे आये हुए राजाओंने उन्हें प्रणाम किया। जिस समय वे राज अपनां मस्तक झुकाकर अपने मुकुटका रामचन्द्रजीके चरणाम् स्पर्श करा रहे थे, उस समय भगवान्‌की एक विचित्र शक्ती दिखानी देती था। जब उन राजाओ, शनिवों और दैत्योंने सीतारामको प्रणाम तथा

प्राप्याज्ञां रामचन्द्रस्य सागरोधैः सुगदिभिः ।

प्रस्थानं स्वस्थलं गतुं चकार वृषमण्डितः ॥८६॥

नृपेन्द्रियोऽपि सीतायाः प्राप्याज्ञां पूजितास्तथा । यानान्याऽऽदुः सर्वास्त्वयोध्याया विनिर्गम्युः ॥८७॥

अथ ते पार्थिवायाश्च प्राप्याज्ञां गच्छन्त्य च । सावगाधाः सर्वेऽप्यश्वस्योयराज्यानि वै यकुः ॥८८॥

अपौ शिवोऽपि कैलाशं सम्पलोकं विधिर्वपौ ।

इन्द्राद्या निजैः सर्वे स्वर्गलोकं ययुर्मदाः ॥८९॥

अथर्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मादिनः । सर्वे मुनीन्धगयाश्च स्वभामानि ययुस्तदा ॥९०॥

ततो रामः पूर्ववच्च शशम जगतीतलम् । रेमे जनकनदिन्या चिरकालं यथासुखम् ॥९१॥

चपन्तिरेण कालेन वाजिमेषाः पृथक् पृथक् ।

उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठा विशद्वर्षेः कृता दश ॥९२॥

इत्थं श्रीरामचन्द्रेण दशमे तुगाध्वरे । प्रतिपाज्य गुरोर्वाक्यं सर्वस्वमपि भूमुरान् ॥९३॥

दत्तं किल महाराज्ञा तथा च दिक्चतुष्टयम् । अग्निश्चन्द्रो दक्षिणार्धं हि दत्तं चेति मया श्रुतम् ॥९४॥

अग्निभिस्तस्त्वनर्द्धं गवगार्धं सादरम् ।

कृपाकुम्भिः पालनार्थमिति शिष्यानुभूयते ॥९५॥

एव शिष्य त्वया पृष्टं गच्छद्रस्य मंगलम् । अर्चितं तन्मया किञ्चित्तवीर्यं यत्तत्समम् ॥९६॥

इदं यः प्रातरुत्थाय यागकाण्डं मनोऽस्मिन् । पठिष्यति नरः पुण्यं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥९७॥

पुनार्थी प्राप्नुयान्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयान् ।

यागकाण्डमिदं श्रुत्वा वाजिमेषफलं लभेद् ॥९८॥

होमकाले श्राद्धकाले चातुर्यास्यादिकेष्वपि । जपध्यानार्चनारमे पूर्वं नित्यं पठेद्दिदम् ॥९९॥

पुनः कर लिया और जब वचनाओंके साथ शत्रुगजने रामस्तवराजसे रामचन्द्रजी स्तुति और पूजा कर ली । तब रामचन्द्रजीसे आज्ञा ले नेकर सब लोग अपने-अपने घरोंको प्रस्थान करन लगे । ७८-८६ ॥ राजाओंकी रानियाँ भी सातार्ज की आज्ञा पाकर अपने-अपने रथोंपर सवार हुई और अयोध्यासे अपने घरोंको जाने लगी । इसी प्रकार सब राजे रामकी आज्ञा पाकर अपनी-अपनी राजधानीको छोड़े । तब शिवजी अपने कैलासकी, कृष्ण सम्पलोककी और इन्द्रादि देवता स्वर्गलोकका चल गये ॥ ८७-८९ ॥ इसके बाद श्रीरामानु अग्निक् और सूर्य्य आदि भी अपने-अपने आश्रमोंको विदा हुए । रामचन्द्रजीने फिर पूर्वोक्तिसे अपना राजकाज संभाल लिया और विरमाळ तक हीताजीके साथ विहार करते रहे । प्रति दूसरे वर्ष इसी तरह अश्वमेध यज्ञ करते हुए रामचन्द्रजीन बीस वर्षमें दस अश्वमेध यज्ञ किये । दसवें अश्वमेधमें गुरु वसिष्ठके आज्ञानुसार भगवान् अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान दे दी । मैने तो पढ़ांतक सुना है कि रामने पारो दिशाये दक्षिणाक्ष्यमें ऋत्विजोंको द डाली थी ॥ ९०-९४ ॥ किन्तु उन दयालु ऋत्विजोंने फिर इसे बड़े आदरके साथ भगवान्को लौटा दिया और कहा — 'हे प्रभो ! इसकी रक्षा आप ही कर सकते हैं-हम नहीं । इस कारण यह सब आप अपने ही पास रखिए' । इस प्रकार हे शिष्य ! जैसे तुमने रामचन्द्रजीके मङ्गल-कार्यका प्रश्न किया वैसे ही मैने भी तुम्हें बतलाया और रामचन्द्रके यज्ञसम्बन्धी चरितोंको सुना दिया । जो कोई सबेरे उठकर इस सुन्दर यागकाण्डको सुनेगा, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी । वह यदि पुनार्थी होगा तो उसे पुत्र मिलेगा और धनार्थी होगा तो धन प्राप्त होगा । इस यागकाण्डको सुननेसे अश्वमेध

रम्यं पवित्रं रघुनायकस्य श्रीमन्चरित्रं तुरगाध्वगेह्वरम् ।

पठन्ति शृण्वन्ति जनाः सुपुण्यं लभन्ति नैत्रं खलु वाञ्छितं हृदि ॥ १०० ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे

रामोत्तररामानगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

यागकाण्डोद्भवाः सर्गा नवैव परिकीर्तिताः । सपादषट्शतश्लोका रामदासेन वर्णिताः ॥ १ ॥

यज्ञका फल प्राप्त होता है किसी प्रकारका हवन आदि करते समय, आहुतिकालमें, ज्ञानुर्मासिमें, व्रतमें, अप, क्षयान और पूजनके पहले तथा इस यागकाण्डका पाठ करना चाहिए इन रम्य तथा पवित्र अश्वमेध-यज्ञसम्बन्धी रामचरित्रको जो लोग पढ़ते और सुनते हैं, वे अपनी अभिलषित कामनाओंको पूर्ण कर लेते हैं ॥ ९५-१००

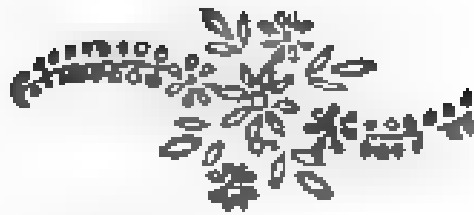
इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना' -

मायाटीकासमन्विते यागकाण्डे यज्ञसमाप्तिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ।

इस यागकाण्डमें कुल तो सर्गों और ६२५ श्लोकोंका रामदासने वर्णन किया है ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्ड समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्राय नमस्तु



श्रीमीतापाये नमः  
श्रीबाल्मीकिमहामुनिवृत्तशतकादिरामचरितान्तर्गत—

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽह्वया भाषाटीक्याऽऽटीकितम्

## विलासकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( शिवकृत रामस्तवराज )

विष्णुदास उवाच

गुरो ते श्रद्धुमिच्छामि तद्वदस्व सविस्तरम् स्तुतो रामः शिवेनात्र येन रामस्तवेन हि । १ ॥

त रामस्तवराजं मे विस्तरेण प्रकाशय ।

श्रीशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदासोऽज्यवीद्वचः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स मावधानमनाः शृणु । प्रोच्यते रामचन्द्रस्य स्तवराजो मयाऽधुना ॥ ३ ॥

यत्परं यद्गुणाधारं यज्ज्योतिर्मल शिवम् । तदेव परमं तत्त्वं केवल्यपददायकम् ॥ ४ ॥

श्रीरामेति परं ज्ञाप्यं ताम्बकं ब्रह्मयज्ञिनम् । ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥ ५ ॥

श्रीराम राम रामेति ये वदन्त्यपि सर्वदा । तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥

स्तवराजः पुरा प्रोक्तः शिवेन परमान्मना । तमहं मयवक्ष्यामि हरिश्चयानपुरःसरम् । ७ ॥

तावद्वयाग्निशमनं सर्वघ्नोघनिहन्तनम् । दारिद्र्यदुःखक्षमनं सर्वसपत्न्यदायकम् ॥ ८ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो । मैं यह जानना चाहता हूँ कि शिवजीने किस रामस्तवराजसे राम-चन्द्रजीकी स्तुति का घो ॥ १ ॥ कृपा करके आप मुझे वह रामस्तवराज बताकर दीजिये । इस तरह अपने निष्यकी वत सुनकर श्रीरामदासने कहा— । २ ॥ हे वत्स । तुमने तुमसे बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हें वह स्तवराज बतलाया हूँ, मावधान होकर सुना ॥ ३ ॥ जो सत्तारम सबसे श्रेष्ठ है, जो सब रुद्गुणोंका आधार है, जो एक निर्मल एवं एविश ज्योति है, वह ही परम प्रधान तत्त्व है और भो शपददायक है ॥ ४ ॥ बड़े-बड़े विद्वानोंका कहना है कि ‘श्रीराम’ यह सर्वोत्तम ताम्बक मन्त्र है और ब्रह्महत्या प्रभृति ग्हात पातकोंका नाशक है ॥ ५ ॥ जो सज्जन सर्वदा ‘श्रीराम’ नामका जप करते हैं, उन्हें जन्मक में से -मारये रहत है, तदनक सामारिक भोग मिलते हैं और शरीर स्वाम करनेपर मुक्ति मिल जाती है ॥ ६ ॥ जो मैं तुमसे कहनेवाला हूँ, इस स्तवराजको शिवजीने स्वयं मुझसे कहा था । उसीको आज मगवानुक्त श्रान करके मैं तुमसे कहूँगा ॥ ७ ॥ यह तीनों ( वैदिक, दैविक और भौतिक ) तापोंको नष्ट करनेवाला,

विज्ञानफलदं पुष्पं मोक्षफलदायकम् । नमस्कृत्य प्ररक्ष्यामि रामं कुम्पमनासयम् ॥ ९ ॥  
 अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे । द्यायेन्मन्दपद्मरोर्मले रत्नसिंहासने शुभे ॥ १० ॥  
 तन्मध्येषुदलं पद्मं नानारत्नोपशोभितम् । स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्यतेजसम् ॥ ११ ॥  
 पितृरासनमार्मीनमिन्द्रनीलवसनधनम् । कोमलांशं विशालाक्षं विद्युद्वर्णाङ्गराश्रुतम् ॥ १२ ॥  
 भानुकान्तिप्रतीकाशं किरीटितं वराजितम् । रत्नशैवेयकैर्गुणवस्कुडलमञ्जितम् ॥ १३ ॥  
 रत्नकंकणमजीमन्तिपुत्रैरलङ्कितम् । श्रीवन्मर्कटभूभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम् ॥ १४ ॥  
 चिन्तामणिपद्मायुक्तं रत्नमालाभिगञ्जितम् । दिव्यरत्नममायुक्तं मुद्रिकाभिरलङ्कितम् ॥ १५ ॥  
 कर्पूरमण्डपस्तूरीदिव्यरत्नानुलेपनम् । तुलसीकुटुम्बदागुण्यमाल्यैरलङ्कितम् ॥ १६ ॥  
 गन्धवं दिभुजं वीरं रामसौपत्तिकाननम् । योगशास्त्रप्रमिस्रं योगेश योगदायकम् ॥ १७ ॥  
 सदा सौमित्रिभस्वमनुष्यैरुपसेवितम् । विशाधरसुराधीशमिन्द्रमर्षवर्चिभरः ॥ १८ ॥  
 योगोद्देनारदारक्ष मनुयमानमहर्निशम् । विश्वामित्रवसिष्ठार्चकं पथिः परिसेवितम् ॥ १९ ॥  
 सनकादिमुनिश्रेष्ठैर्योगिभिरुन्दैः समावृतम् । रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ॥ २० ॥  
 मंगलायतनं देव राम राजीवलोचनम् । सर्वज्ञास्त्रार्थतत्त्वज्ञमनन्दमतिमुन्दरम् ॥ २१ ॥  
 कौसल्यातनयं रामं धनुर्बाणधरं हरिम् । एवं सर्वदिग्देषेदिप्युं यज्ज्योतिर्ज्योतिषां परम् ॥ २२ ॥  
 प्रहृष्टमानसो भूत्वा सभायां वृषभध्वजः । सर्वलोकहिनार्षेयं तुष्टाव रघुनन्दनम् ॥ २३ ॥  
 कृताञ्जलिपूतो भूत्वा चिन्तायन्तुष्टं हरिम् ।

श्रीनिव सभाय

पदेकं तत्परं नित्यं यदनन्तं विदात्मकम् ॥ २४ ॥

पापसमूहका नाशक, दारिद्र्य और दुःखका दमन करनेवाला तथा समस्त सम्पदाओंका दाता है ॥ ९ ॥  
 यह विज्ञान (ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान) का फल देनेवाला पवित्र और मोक्षका साधक है । ये श्यामस्वरूपवर्णी राम-कृष्णका ध्यान करके यह स्तवगान रम्यको बतला रहा है ॥ १० ॥  
 अयोध्यानगरी-के रम्योत्तरे सुसज्जित एक मन्दार भवनमें कल्पवृक्षक नीचे एक रत्नसिंहासन, जिसमें नाना प्रकारके मणियोंसे सुशोभित अष्टदल कमल है, उसके ऊपर बड़े हुए राजाके मुखोर्ध्वी भाँति तेजोमय रामचन्द्रजीका ध्यान करे ॥ १०-११ ॥  
 रामचन्द्रजी अपने पिता (महाराज उग्रसेन) के आसनपर बैठे हैं । इन्द्रसेन मणियों भाँति जिनकी श्याम मूर्ति है, जिनके कोमल अङ्ग हैं, बड़ी बड़ी आँखें हैं । विशालाक्षी ताँह काफला पंताम्बर पहिन हुए हैं, जिसमें करोड़ों सुषोंके समान प्रकाश है, अमृतकरा किरीट धारण किये हैं । इस लक्ष्म अचन्द्रम तथा कोमलम मणि है और गलेमें चिन्तामणि तथा किनने हो रत्नोक्त मालाएँ पहिन हैं । उनकी रत्नसिंहासन बहुमूल्य रत्नोत्तरे बड़ी श्रेष्ठियाँ पहिनी हैं ॥ १२-१५ ॥  
 कर्पूर, लज्ज और कस्तूरी से मिला गया चन्दन । इसके सारे शरीरमें लगा हुआ है । तुलसी तथा कुन्द-मन्दार आदिके पुष्पोंसे जिनका श्रद्धापूर्वक विष्णु पूजा है । जिनके चेहरे से भजनों हैं, होठोंपर मन्द मुस्कान है, जो योगशास्त्रके ज्ञानों पर प्रसन्न हैं । अथवा भरत-शास्त्र जिनकी सेवामें लगे हुए हैं, विद्याधर, दशरथ, मिथु, गन्धर्व और नासद्विदिगं देवदूत । जो जिन जिनकी स्तुति किया करता है विश्वामित्र-वसिष्ठादि महर्षि जिनकी परिचर्यामें लगे हुए हैं । मनुक राम इन चमत्कृत, सनत्कुमार आदि मुनि वर्णनाथ स्वदे हैं । जो रघुवंश-में सर्वप्रधान वीर तथा धनुर्वेदमें निपुण हैं । जो मंगलभरत हैं । नमस्कृत समान जिनके नेत्र हैं, जो सब शास्त्रोंके सत्यत, आनन्दमूर्ति, अतिशय मुन्दर कोमलकाके सुवन हैं और धनुष-बाण धारण किये हैं ऐसे भगवान् रामचन्द्रका ध्यान करे । जो सब ज्योतिषोंमें श्रेष्ठ हैं । ऐसे अद्भुत स्वस्वका ध्यान करके इससे श्रद्धा होकर शिवजीने संसारके कल्याणार्थ बानों हाथ जोड़कर भगवान् रामचन्द्रकी स्तुति की ॥ १६-२३ ॥

यदेकं व्यापकं लोके नृपं चिन्तयाम्यहम् नमोऽस्तुतेऽयं व्यापकं राममकन्यविबुधये ॥२५॥  
 विज्ञानहेतुं विमलयतामं प्रज्ञानसंदिग्धगुरुरेव ह्यहम् ।  
 अरामचन्द्रं हरिनादिदेव विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥२६॥  
 कविं पुराणं पुरुषं परेशं मनननं योगिनर्मथितारम् ।  
 अणोरणीयांममनन्तरीवं प्रपेश्वरं राममहं भजामि ॥२७॥

नारायणं जगन्नाथमभिगमं जगत्पतिम् । कविं पुराणं चर्मादां गद्यदशमाम्बुजम् ॥२८॥  
 राजगजं रघुवंशं कौमन्वानदवर्द्धनम् । भगं करेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् ॥२९॥  
 सत्यं सत्यप्रियं श्रेष्ठं ज्ञानकीवल्लभं प्रभुम् । ममिद्विपूर्वजं ज्ञानं कामरं कमलेश्वरम् ॥३०॥  
 आदित्यं रविमोक्षनं धृतिं सुयमनामयम् । आनन्दरूपिणं योग्यं राघवं करुणाकरम् ॥३१॥  
 जगद्गन्धं गोमूतिं रामं वरशुभाग्निम् । वाक्पतिं वरं वाच्यं भाग्यतिं पक्षिवाहनम् ॥३२॥  
 श्रीशङ्खधारिणं रामं चिन्तयानदावग्रहम् । हलधरिणमोक्षानं वल्लभं कृपानिधिम् ॥३३॥  
 श्रीवक्त्रं कलानाथं जगन्मोहनमन्युम् । मन्त्रपदमं वरदादिस्वभागीमन्यम् ॥३४॥  
 रामदेवं जगद्योनिमनादिानघनं हरिम् । गोविन्दं गोपतिं विष्णुं गोपीजनमनोहरम् ॥३५॥  
 गोपानं गोपरीश्वरं गोपकन्यामपावृणम् । विष्णुपुंज्यं त्रिकाशं तमं कृष्णं जगन्मयम् ॥३६॥  
 गो-गोपिकायमाक्षीपं वेणुवदननन्धम् । कामरूपं कलावंतं कामिनीं कामरं प्रभुम् ॥३७॥  
 मन्त्रधं मधुगन्धं माधवं मकरध्वजम् । श्रीधरं श्रीकरं श्रीशं श्रीनिवासं परत्वरम् ॥३८॥

शिवजीने कहा—जो एक है, जिससे बहुत सारा मंत्र और कुछ है ही नहीं । जो अमर, नित्य एवं अविनाशो है । जो अकेला रहता हुआ भी समस्त विश्व व्याप्त है, मैं भगवान् के गो स्वरूपका उपासक हूँ ॥ २४ ॥ २५ ॥ जो विज्ञानके लक्षण है, जिसकी निर्मल और विज्ञान भाव है जो पूरा मनको अवस्थापनादियोंको निश्चय होकर दर्शन देता है ऐसे श्री हरि, आदिदेव तथा विश्वेश्वर रामवन्द्यो मैं वन्दना करता हूँ ॥ २६ ॥ जो स्वयं कवि हैं, सबसे बृद्ध हैं, सबको स्वाधी हैं, कनातन हैं तथा योगियोंके भी स्वाधी हैं । जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, जिनमें अमर पराक्रम है, जो समस्त परमेश्वर जाकार श्रेष्ठ हैं, मैं रामचन्द्रका मैं भजन करता हूँ ॥ २७ ॥ नारायणस्वरूप, समस्त जगत्के स्वामी अविनाश मुन्दर वराध तथा दशरथजीके तनय रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ जो राजाओं के भी राजा हैं, जो रघुवंशमन्त्रधरे हैं, जो कौमन्विकोंका आन्त बहानेवाले हैं, जो मेजामय हैं जो समस्त जगत्कर्ता हैं, जो संसारके गुरु हैं, जो सत्यस्वरूप हैं, जिनको मत्प हो प्रिय है जो मोक्षदाक पति हैं जो लक्ष्मणके वर भ्राता हैं, जिनका कान्त स्वभाव है, जो अपने भक्तोंको कामनाओंको पूर्ण करने हैं कमल सर्वेश जिनका तप है, जो आदित्य पुत्र हैं, जो सूर्यरूप हैं, जो शिवरूप और श्रीगणेशमय हैं जो आनन्दके मास्त्रा मूर्ति हैं, जो सौम्य प्रकृतिके हैं और जो करुणाके भण्डार हैं ॥ २९-३१ ॥ जो जगद्विभक्त पुरुष ( परपुरुष ) हैं, जो अभिप्रेत कामनाओंको पूर्ण करते हैं, जो लक्ष्मीपति हैं, जिनका पत्नी ( गङ्गा ) वास है, जो लक्ष्मी और शारङ्गनामक वनुष धारण करते हैं, जिनका नित्य आनन्दमय शरीर है जो हृन्को धारण करने के जगन्मन्त्रधरे हैं, जो लक्ष्मीके प्रिय हैं, जो सब कलाओंको जानते हैं जो मन्त्रोंको पृथक् करने में समर्थ हैं, जिसके वरों बिनाश नहीं होता जो मन्त्र-कर्म-वत् ह वादि ह्य धारण करते हैं और जो अविनाशो हैं ॥ ३२-३४ ॥ जो अमरके पुत्र, समस्त मन्त्र जगन्मन्त्रधरे रहित, इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाले, इन्द्रियोंके पति, जगन्मन्त्रधरे, तानियोंके मनको धारण करनेवाले और गोओंके रक्षक हैं, ऐसे राम-कृष्ण तथा जगन्मन्त्र भाङ्गवों मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो गौओं और गोपियोंसे विरे रहते हैं, जो वशी ब्रह्ममें सत्पद रहते हैं जो जड़ जैसा बाह्यो वैसा अपना स्वरूप बना लेते हैं, जो समस्त कलाओंसे पूर्ण हैं, जो कामनावाले मन्त्रोंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं और कामदेवरूपसे सबको

भूतेश भूपति मङ्ग भूतिर्द भूरिभूषणम् । बहुदुःखहर वीरं दृष्टवानवमर्दनम् ॥३९॥  
 श्रीनृसिंह महाधिपं महातं दीप्तनेत्रमम् । चिदानन्दमय नित्यं प्रणव ज्योतिरूपकम् ॥४०॥  
 आदित्यमण्डलगतं निखिलाधिस्वरूपिणम् । भक्तिप्रियं वरुनेत्रं भक्तानामोषितप्रदम् ॥४१॥  
 कौमल्येय कलामूर्तिं काकुत्स्थ कमलाप्रियम् । सिंहासने समार्यतनं नित्यव्रतमकल्पयम् ॥४२॥  
 चिन्तामित्रप्रियं दातृ स्वदाग्नियतव्रतम् । यत्तत्र पञ्चपुरुष यज्ञपालननृपम् ॥४३॥  
 सत्यमथ जितक्रोधं शरणगतवन्मलम् । परैकलेशपहरणं त्रिबीषणवरप्रदम् ॥४४॥  
 दशग्रीवहर रुद्रं केशव केशिमर्दनम् । बालिप्रशमनं वीरं सुर्यावेष्टितराज्यदम् ॥४५॥  
 नरवानरदेवंश्च सेवितं हनुमन्प्रियम् । शुद्धं सूक्ष्मं परं शीतं सारकनद्वारूपिणम् ॥४६॥  
 सर्वभूतान्मभूतस्य सर्वधारं सनातनम् । सर्वकार्यकर्तारं निदानं प्रकृतेः परम् ॥४७॥  
 निरामयं निराभासं निरवयुं निर्गुणम् । निर्यानन्दं निगकारमर्दनेन तपसः परम् ॥४८॥  
 परात्परतरं नित्यं सत्यानन्दचिदान्मकम् । मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥४९॥  
 भूतोद्भव वेदविदां वसिष्ठमादित्यचन्द्रानिलमुषभावम् ।  
 सर्वात्मकं सर्वगतम्वरूपं नमामि राम तमसः परम्नाह ॥५०॥  
 निरञ्जन निष्प्रतिमं निरीहं निराश्रयं कारणमादिदेवम् ।  
 नित्यं प्रबं निषिष्यस्वरूपं निरतरं राममहं भजामि ॥५१॥  
 भवाधिपतिं भगवाञ्जने तं भक्तिप्रियं भानुकुलप्रदीपम् ।  
 भूताधिनाथं भुवनाधिपत्यं भजामि रामं स्वर्गोपदेवम् ॥५२॥  
 सर्वाधिपत्यं रणमर्षारं सत्यं चिदानन्दमुत्तम्वरूपम् ।  
 सत्यं शिवं सञ्जनहृषिवासे ध्येयं पगनन्दमहं भजामि ॥५३॥

मनको उद्दिष्ट किया करता है । जो भयुर क रूप में है सो लक्षण क पात्र ? जो एकाग्रवज्र, श्रीधर, श्रीकर, श्रीम, श्रीनिवास, परात्पर, भूतेश, भूपति, मङ्ग ( कल्याणमय ), भूतिर्द ( सर्वसम्पत्ति क दाता ), भूरिभूषण, । बहुत से भूषणोंका वाचन करनेवाला । सब प्रकारके दुस्त्रोको हरनवाले वीर और दुष्ट दानवोंका विनाश करनेवाला है, जो श्रीनृसिंह महाधिपणु, महान् दीप्तिशाल चिदानन्दमय, नित्य, प्रणव, ज्योतिरूप, आदित्यमण्डलगत विराजमान, निखिलाधिस्वरूप भक्तिप्रिय, वमललाचन, भूतोकी कामना पूर्ण करनेवाले, कौमल्यका सुवन, कलामूर्ति, काकुत्स्थ, कमलाप्रिय, सिंहासन सीन, नित्यव्रतों ओर पाप रहित है । जो चिन्तामित्रके प्रिय, दातृ ( चितन्दिम और एकवचनावत है । जो यत्तत्र, पञ्चपुरुष, पञ्चकी रक्षामि तत्त्व, स्वयस्वरूप, जितक्रोध शरणगतवन्मल, सब मलजोश हरनवाले विमोक्षणकी वरदान देनेवाले, रावणका विनाश करनेवाले, रुद्र, केशव, केशिमर्दी, बालिप्रमर्शक, वीर सुर्यावकी ईश्वर राज्य देनेवाले, नर-वानर और दैवताओंसे सेवित, हनुमान्से सेवित, शुद्ध, सूक्ष्म, शान्त महास्वरूप, सब प्राणियोंके हृदयमें गृहमन्त्रों, सर्वधार, सनातन सब कुछ वर्तमान, प्रकृतिके मूल कारण, निरामय, निराभास, निरवयु, निरञ्जन, निर्यानन्द, निराकार, वर्द्धत, तमोगुणके परे, सर्वश्रेष्ठ, नित्य, सत्य, आनन्द और विमलस्वरूप हैं । उन श्रीरामचन्द्रोंकी मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ । ३९-४९ ॥ जो संस्कृतक जन्मदाता है, विद्वानोंमें श्रेष्ठ है, सूर्य-चन्द्रमा और ब्रह्म में त्रिकोण प्रकार है, जो सत्त्वमा स्वस्वरूप और तमोगुणके पर है । ऐसे रामचन्द्रोंके मैं प्रणाम करता हूँ । ५० ॥ निरञ्जन, निष्प्रतिम निरीह, निरश्रय सर्वगण आदिदेव नित्य, भूत, दिव्य और स्वरूपसे परे रामचन्द्रोंका मैं प्रणाम करता हूँ ॥५१॥ जो रागरूपका महासागरके लिए महाजक सहज है, जो भरतके बड़े आता, भक्तिप्रिय, भानुकुल प्रदीप, भूताधिनाथ, भुवनर्षी ब्रह्मणके अधिपति और भवरूप योगके देव हैं, उन रामचन्द्रोंका मैं प्रणाम करता हूँ ॥५२॥ जो सबके अधिपति, शुद्धविद्यामें कुशल, स्वयस्वरूप



कार्यक्रियाकारणप्रमेय कवि पुगण कमलायताभम् ।  
 कुमारवेष करुणामयं तं कल्पद्रुमं राममहं भजामि ॥५४॥  
 प्रेतास्वनाथं सर्पाकृतां दयानिधिं दम्बविलासहेतुम् ।  
 महाचक्रं घटनिधिं मुरशं महावनं राममहं भजामि ॥५५॥  
 वेदान्तेश्वरं करिमांशिताश्मनादिमध्यान्मच्चिन्त्यमाद्यम् ।  
 जगोच्चरं त्रिमलमेकरूपं परात्मा राममहं भजामि ॥५६॥  
 अक्षोपशदान्धस्पर्शदिद्वयमजं हृदि राममनन्दमूर्तिम् ।  
 अपारम्प्यं दम्बस्पर्शमेकरूपं नमोऽभि राम नमसः परस्मान् ॥५७॥  
 सत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुगणं स्वतंत्रं पुरितविधायकम् ।  
 राजाधिगतं राममहजस्य विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥५८॥  
 योगाद्रस्यैवमीं मेव्यमानं नागयणं त्रिमलमहाददेवम् ।  
 लताशस्मिन्निधं जगदकलाधरां चिदानमयं मुकुन्दम् ॥५९॥  
 अक्षोपविद्याविपत्तिं नमामि राम पुगणं नमसः परस्मान्  
 विष्णुं नटं विश्वमूर्तं परमं सत्तद्रसाद्यं रघुवक्त्रनाथम् ॥६०॥  
 अचिन्त्यमव्यक्तमननरूपं ज्योतिर्मयं राममहं भजामि  
 अक्षयमगारविकारहानमानन्दमूलं सुखाभिगमम् ॥६१॥  
 नारायणं विष्णुमहं भजामि ममभगार्क्षि नमसः परस्मान् ।  
 मुनींद्रगुह्यं पापेपूर्णमेकं कलानिधिं कल्मषनाशहेतुम् ।  
 परात्मा यन्त्ररूपं पवित्रं नमामि रामं महतो महानम् ॥६२॥

यथा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो दत्तनायकश्च । आदिन्यादिप्रदायश्च न्वमेव रघुनन्दन ॥६३॥  
 तापसा ऋषयः मित्राः साध्याश्च गुरुपत्नया विप्रा वृद्धाश्च यज्ञाश्च पुगण धर्मसाहिताः ॥६४॥

सचिदानन्द सुखस्वरूप, सत्त्व, जिव सत्त्वजन्य रूपात्म त्रिविध करतबाल और परमानन्दस्वरूप रामचन्द्र-  
 जन्मा मे प्रणम करता है ॥ ५३ ॥ ३। कलानि नागण अक्षय, कवि, घाणाया, पुराण पुरुष, कमलसराक्ष  
 विलास नयनी मुक्त, निधुं कुम्ब रत्नप्रधान, करुण मय तारा कल्पवृक्ष समान मयका अभिलाषा पूरा करनेवाले  
 है, उन रामचन्द्रका मे प्रणाम करता है ॥ ५४ ॥ विलासक नयन रह (कमल, क समान नयनाले, दयानिधि दम्ब  
 त्रिमासक एकमात्र दंड, महाव चक्राके निवान, पुरुष और सत्त्वतत्त्वस्वरूप रामचन्द्रजाको मे प्रणाम करता  
 है ॥ ५५ ॥ वेदान्तेश्वर कवि इत्येत, अदि मध्य ओ भक्तसे रहित, अचिन्त्य, सवक आदिम उत्पन्न  
 होतवान्, चतुर्गदि इन्द्रियास आवाचक त्रिमल एकरूप और नागयणस दत्त रामचन्द्रजाको मे प्रणाम करता  
 है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ सत्त्वस्वरूप, पुराण पुरुष केवल अरुण प्रकाशस समस्त विषयका प्रकाश देनेवाले, राजा-  
 धिराज, रविमण्डलमे निवास करनेवाले और दिव्य उदयरत्न रामचन्द्रजाको मे प्रणाम करता है । योगाद्राके  
 समूहसे सेवावान्, नारायण, निर्मल, आदिदेव, निधु, जगत्क एकमात्र स्वामी, हार, चिदानन्दमय और  
 मुकुन्दस्वरूप रामचन्द्रका मे प्रणाम करता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ समस्त विद्याओंके सम्भार, तमसे परे, पुराणपुरुष,  
 भर्मातिमाका दत्तवाल, नमोऽक दिवारास पुण्य और सवकी आनन्द देनेवाल रामचन्द्रजाको मे प्रणाम  
 करता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ नागयण विष्णु सर्वज्ञ सत्त्व पर कृदिकोक दयानम मा कठिनाईसे आनेवाले,  
 परिपूर्णरूप एक, कलानिधि, कल्मषनाशक, परम पवित्र और वडास भी बड़े रामचन्द्रजीको मे प्रणाम करता  
 है ॥ ६२ ॥ हे रघुनन्दन । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवेंद्र देवता तथा आदित्यादि यह सब कुछ तुम्ही ही । तपस्वी,

वर्णाश्रमास्त्वथा धर्मा वर्णधर्मास्तथैव च । नागा यक्षाश्च गन्धर्वा दिक्पाला दिग्गजा दिग्गः ॥६५॥  
 वयमोऽष्टौ त्रयः काला रुद्रा एकादश स्मृताः । ताराका द्वादशादित्यास्त्वमेव रघुनायक ॥६६॥  
 सम द्वीपाः समुद्राश्च नदा नद्यस्तथा द्रुमाः । स्थावरा जंगमाश्चैव त्वमेव रघुनन्दन ॥६७॥  
 देवनिर्घृणस्तुष्टाणां दानवानां दिवौकषाश्च । माता पिता तथा भ्राता त्वमेव रघुनन्दन ॥६८॥  
 सर्वेशस्त्वं परं ब्रह्म त्वद्रूपं विश्वमेव च । त्वमश्वरं परं ज्योतिस्त्वमेव रघुपुंगव ॥६९॥  
 शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् । राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥७०॥

ततः प्रसन्नः श्रीरामः प्रोवाच वृषभध्वजम् ।

श्रीराम उवाच

तुष्टोऽहं गिरिजाकांत वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥७१॥

श्रीशिव उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश श्रीराम करुणानिधे । तवाद्य दर्शनेनैव कृतार्थोऽहं न संशयः ॥७२॥  
 धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पुण्योऽहं पुरुषोत्तम । अद्य मे सफलं कर्म सद्य मे सफलं तपः ॥७३॥  
 अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलं ध्रुम् । अद्य मे सफलं सर्वं त्वत्पदाभोजदर्शनात् ॥७४॥  
 अद्वैतं विमलं ज्ञानं त्वमज्ञानम्मरणं तथा । त्वत्पदाभोरुहद्वन्द्वे सद्भक्तिं देहि राघव ॥७५॥  
 ततः परं सुसंप्रीतो रामः प्राह सदाशिवम् । गिरिजेश महामाया पुनरिहं ददाम्यहम् ॥७६॥

श्रीशिव उवाच

वरं न याचै रघुनाथ युष्मत्पदान्वभक्तिः सततं ममास्तु ।

इदं प्रियं नाथ वरं प्रयच्छ पुनः पुनस्त्वापिदमेव याचे ॥७७॥

श्रीरामदास उवाच

इत्येषमीडितो गमः प्रादानस्मै परांतरम् । तेनोकल्पवराजाय ददौ नानावरान् बहून् ॥७८॥

कृषि, मित्र, साध्व, मुनि, विप्र, वेद, दक्ष गुरु, जल, घर्मोत्ता सहिता ये सब तुम्हीं हो ॥ ६३ ॥ ६४ ॥  
 हे रघुनायक ! वर्ण आश्रमधर्म, वर्णधर्म, नाग, यक्ष, गन्धर्व, दिक्पाल, दिग्गज, दिग्गण, वसु, दोनों काल,  
 एकादश रुद्र ताराएँ और द्वादश आदित्य ये सब तुम्हीं हो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ साली द्वार, समुद्र, नद, नदियाँ  
 तथा वृक्ष आदि स्थावर जङ्गम समस्त वस्तु तुम्हीं हो । देव, त्रिपैकु, मनुष्य, जानवर, वृत्ता, माता,  
 पिता, भ्राता, मैं भी सब तुम्हीं हो । ६७ ॥ ६८ ॥ तुम्हीं सर्वेश हो, स्वराज्य स्वराज्य ब्रह्म हो, वहु संसार भी  
 तुम्हारा ही रूप है, तुम अक्षर हो, परम प्रधान अनादि हो । और मैं कहीं तक बलछाऊँ हे रघुपुंगव ! मर सब  
 कुछ एकमात्र तुम्ही हो ॥ ६९ ॥ शान्त, सर्वगत, सूक्ष्म, परब्रह्म सनातन, जगत्पति और राजीवलोचन  
 रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ । इस प्रकारको भक्ति सुनकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे कहा—हे गिरिजाकांत !  
 मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ । जो भी चाहो, सो उत्तम वर माँग ला ॥ ७० ॥ ७१ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे  
 राम ! हे करुणानिधे ! जहाँ आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मैं आपको इस प्रसन्न मूर्तिको ही देखकर कृतार्थ  
 हो गया ॥ ७२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! मैं घम है और अनिशय पवित्र है । आज मेरे सब कार्य सफल हो गये ।  
 मेरी तपस्याएँ सफल हुई, मेरा ज्ञान सफल हो गया और शास्त्रोक्त ध्यान करना भी सार्थक हो गया । आपके इन चरणकमलोंका दर्शनसे ही मेरा सब कुछ सफल हो गया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे कृपानाथ ! यदि आपको वर ही  
 देना हो तो मुझे अपना अद्वैत तपा विमल ज्ञान दंजिए । मुझ अपने नामका वातन करानेकी शक्ति और अपने  
 इन चरणकमलोंका सद्भक्ति दंजिए ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर अतिशय प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे  
 कहा—हे गिरिजेश ! हे महाभाग ! मैं तुम्हारे अभिलषित वरोंको देनेके लिए प्रसन्न हूँ, माँगो ॥ ७६ ॥ शिव-  
 जीने कहा—हे रघुनाथ ! मैं कोई वरदान नहीं चाहता । मैं चाहता यही हूँ कि सदा आपके चरणोंमें मेरी भक्ति  
 बनी रहे । हे नाथ ! मुझे यही वर प्रिय है और यही देनेके लिए मैं आपसे बारम्बार अनुरोध करूँगा

एवं शिवेन यः प्रोक्तः स्तवराजः शुभावहः स एवाद्य त्वया पृष्टस्तवाग्रे कथितो मया ॥७९॥  
 जयं श्रीरघुनाथस्य स्तवराजो ह्यनुत्तमः । सर्वमौभाग्यसंप्रदायको मुक्तिदः स्मृतः ॥८०॥  
 कथितो गिरजेऽनेन तेनादौ सारसंग्रहः शुद्धाशुशुक्लवरो जित्यस्त्राव स्नेहान्त्रकीर्तिदः ॥८१॥  
 यः पठेच्छृणुयादापि त्रिमन्थ्यं श्रद्धयान्वितः । ब्रह्महत्यादिपापानि तन्ममानि बहूनि च ॥८२॥  
 हेमस्नेयसुरापानगुरुतृन्पापुनानि च । गोवधश्चुपपापानि चित्तान्संभवानि च ॥८३॥  
 सर्वैः प्रमुक्त्यते पापैः कल्पायुःशतौघवैः । मानसं पापैकं पापं कृमणा समुशर्जितम् ॥८४॥  
 श्रीरामस्मरणेनैव व्यपोहति न यशसः इदं मन्यमिदं सन्यं मन्यं नैवान्यदुच्यते ॥८५॥  
 रामः सत्यं परं ब्रह्म रामान्किञ्चिन्न विद्यते । तस्माद्रामस्वरूपं हि रामः सर्वमिदं जगत् ॥८६॥

श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव रावर्ष्य राजेन्द्र राम रघुनाथक राघवेश ।

रानाधिराज रघुनाथक रामचन्द्र दामोदरमय भवनः शरणागतोऽस्मि ॥८७॥

अङ्गुलामलकोमलोत्पदलज्जामास रामाय चक्रामाय प्रशमामाय निर्मलगुणशामाय रामान्मज ।  
 ध्यानारुढमुनीन्द्रमानमगरोद्देशाय संसारविध्वंसाय स्फुरदीजसे रघुकुलोत्तमाय पुंसे नमः ॥८८॥  
 एवं शिष्य मया प्रोक्तो यथा पृष्टस्त्वया मया । स्तवराजो राघवरूप शरणान्पापनाशनः ॥८९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डं बाह्योकाद्यै

शंकरकृतरामस्तवराजो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( राम द्वारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन )

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि त्वयं मां वक्तुमर्हसि । त्रयोध्यायां राघवेण सीतयाऽतिसुरूपया ॥ १ ॥

॥ ७७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार स्मृति कान्यक रामचन्द्रजी ने शिवजीके इच्छानुसार वर दिया और अपने मनसे भी उनको बहुतसे ऐसे वर दिए, जिनको जिनजीने मंगा ही नहीं था ॥ ७८ ॥ इस प्रकार शङ्करजीका कहा हुआ शुभदायक 'रामस्तवराज' मैंने तुम्हारे पूछनेपर कह सुनाया ॥ ७९ ॥ यह रामचन्द्रजीका स्तवराज सब स्तोत्रोंमें श्रेष्ठ है । यह सब प्रकारके नीमाय, सम्पत्ति और मुक्तिकी देनेवाला है ॥ ८० ॥ शिवजीने वेदोंका सारअंश निवासकर इसमें रख दिया है और यह अत्यन्त अलङ्कारयुक्त है । किन्तु तुम्हारे सन्ने प्रेमके वशीभूत होकर मैंने तुमको बतलाया है ॥ ८१ ॥ जो प्राणा पृथक् गाम या तंतों कालमें इसका पाठ करता है, उसके ब्रह्महत्या जैसे महान् पापक तथा सुवर्णका चुराना महापाप गुरुके विछोड़पर सेटना, गोवध, किसी प्रकारके मानसिक पाप आदि जो संकटों कलमें एकत्रित हो गये हो, वे सब श्रीरामस्तवराजके स्मरणमात्रसे नष्ट हो जाते हैं । यह खान बिल्कुल सच है । इसमें किसी प्रकारका धोखा न समझना चाहिए ॥ ८२-८५ ॥ रामचन्द्र सत्य परब्रह्म हैं । उनसे बढ़कर और कोई है ही नहीं । अतएव यह समस्त ससार रामका ही स्वरूप है ॥ ८६ ॥ हे रामचन्द्रजी ! हे रघुपुङ्गव ! हे राजाजीमें श्रेष्ठ ! हे रघुनाथक ! हे राघवेश ! हे राजाधिराज ! हे रामचन्द्र ! मैं एक अकिञ्चन राम आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ८७ ॥ नवविकसित निर्मल नील-कमल-रस सरोवरे जितना आनन्द स्वरूप है, जिनको किसी प्रकारकी कामना नहीं है, जो पूर्ण मान्तमूर्ति हैं, जो निर्मल गुणोंके राशिस्वरूप हैं जो ध्यानालङ्कार मुनियोंके मनमानसक हल हैं, जो अपने भ्रूभङ्गमात्रसे संसारको विध्वंस करनेमें समर्थ हैं, ऐसे रघुवंशधर तथा परम पुरुष रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ हे शिष्य ! इस तरह मैंने तुम्हारे आत्मानुसार यह वापराशिनामक स्तवराज तुम्हें सुना दिया ॥ ८९ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे पंच रामनेत्रपांडेस्कृत 'व्योम्ना' भाषाटोकासमन्विने विलासकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि त्रयोध्याम परम रूपवती सीताके

कथं मुक्ता वग भोगाः किं क्रियाचरितं शुभम् । चरितं तस्य सकलं वद पंगलदायकम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पूर्णं त्वया कथं मातृधानमदाः शृणु । रणदीपां वाजिबेधदाश्रीं च रघुनन्दन ॥ ३ ॥

निर्वाण्य सान्ध्या मेघेष्वोष्णायामधुभिः सुखम् । जानका रजयमाय नानावर्गमनोहरं ॥ ४ ॥

तुल्यचिच्छृणु मांसमयं विलासचरितं शुभम् । सान्ध्या कावचेन्द्राय भद्रगन्धमङ्गलवदम् ॥ ५ ॥

कः कुम्भं चरितं वक्तुं नयाः क्वाडांश्च नुमः । अतः मत्सेवनः किञ्चिद्विधायि तव मुनिधी ॥ ६ ॥

अथ सीतयूतो रामः पार्वत्या शङ्करो यथा । तं डां चकार कल्येस्योपपायां सत्कृत्यते ॥ ७ ॥

हेमस्तनमये दिव्यगेहे चतुष्टयमग्निमे । निद्रास्थान राधकस्य ननोक्तं यशिमग्निमम् ॥ ८ ॥

भित्तौ स्तनोपला यत्र हेमनः पंक्तोऽस्ति यत्र हि । यत्र स्तन्याः स्फटिकाश्च यत्र मारकतोदराः ॥ ९ ॥

प्रतोन्यः सुतश्च रम्याः केषु नालादिभिश्चिनम् । सुदृग्गुञ्जयला यत्र भित्तयश्चिचिचिनाः ॥ १० ॥

यत्र हेमययी भूमिर्यत्र मुक्ताभयं शुभम् । विनान पुष्पहारैश्च मुक्तागुच्छैर्विभजितम् ॥ ११ ॥

हेमतंतुमयान्ध्रमित्र भित्तवस्त्राण्यनेकशः । यथायुनमनुभवेत्तु समदो नैव जायते ॥ १२ ॥

एव तद्विस्तृतं रम्यं स्तनदीपैर्विभजितम् । हेमकुम्भा विगतजले प्रपादाश्रेषु चित्रिनाः ॥ १३ ॥

यत्र चित्राण्यनेकानि मोहयन्ति सुगीदृशम् । यत्र हेममया रम्याः पर्वताश्च वचिचिनाः ॥ १४ ॥

हेमकौशेयसम्पन्नतनुपद्मविभुजिताः । महादेवमनैः पुष्पजालैश्चान्द्राश्रिताः शुभाः ॥ १५ ॥

चतुष्कोणे लोमानमुक्ताचारैर्विभजिताः । येषु दिव्याः काशपवन्त्योपवहेणानि च ॥ १६ ॥

कैशिकक्षमयान्येषु चामराणि महानि च । गोपुच्छास्त्रास्त्रनेत्रिमभवादीनि मणि हि ॥ १७ ॥

साथ रहने हुए रामचन्द्रजीने किस प्रकारके भोगोंके भाग और कोन-कोनसे गुप्त काम किये । क्या प्रकारके समस्त भोगलयायक रामचरित काय मुक्तके गुनदिए ॥ १ ॥ २ ॥ अब रामदासने कहा — हे भक्त ! तुमने बहुत ही सनम प्रश्न किया है । मातृधन होकर मना । रामचन्द्रजीने जब रणदीपा और कावचेन्द्रा यज्जति होकर इन रामदासका काम पूरा कर दिया । तब सीता तथा कपल सब आनाआव साथ राम मुक्तपूर्वक रहने लगे । उसने विविध प्रकारके भागस सातको प्रतप्त किया । ३ ॥ ४ ॥ उनमें दिव्य ललाके कल्येस्योपपायां का परम मङ्गलदायक है हे भक्त मुक्ता हैं । सकारमका यह चरित्र श्रवण करनेसे कायण रसित है ॥ ५ ॥ सीता तथा रामके समस्त चरित्र कहनेका शक्ति नहीं हमारे अथवा विज्ञान भी नहीं है । अतएव मैं उनका सक्षत रातिस मुम्ह गुनाहूँगा ॥ ६ ॥ अन्तमधयक अन्तररामचन्द्रजः शङ्करोपनयक सुमन्मम वक्तुं मीध कल्येस्योपपायां अशेषतामे । सकल विज्ञान करने लग ॥ ७ ॥ मुदण तथा जनक प्रकारके भागय मे रचित एवं चतुष्कोके समस्त दिव्य भवनका चन्द्रमा राजा स्वच्छ तथा सुन्दर रामचन्द्रज का मङ्गलदायक ॥ ८ ॥ जिसकी दावानास रत्नाके पङ्क्त नालाके परम जनक से । जिसमें चारों ओर स्फटिक और मारकत भागके अम्भलने हुए थे ॥ ९ ॥ जिसमें मारक अदि विभिन्न कलज वन हुए थे । जिसमें चारों ओर दाणोंके लगे रहनेसे वह भवन विस्तृत रत्नजालका दिवाण बना था । दावारमन्त्रितने ही चित्र लगे हुए थे ॥ १० ॥ उन भवनकी मूर्त सीतकी पा, जिसमें कतिपयोंके शालसे हँके हुई चाँदनी लगी थी । ११ ॥ जिसमें सौतक तारसे वन हुए, कपडोंके आदरे जलजलाइ होती हुई थी । वह भवन इनका विभाव था कि उसमें दर हजार मुरारिकों से इतनेहुके कम आता था ॥ १२ ॥ उस प्रकार वह भवन वहाँ 'वन्द्य तथा' मारक-मुदर' था और उसमें रत्नके दाणके जला करते थे । दासदक अशेषतामे मानक कलश चित्रित किये हुए थे ॥ १३ ॥ एक हजारों चित्र पङ्क्तका गुण कर देते थे और कुछ शेषकर विविधोंका अपन नन-वदनकी भी सुवि नहीं रहे आती थी । वहाँ मुदणके पङ्क्तोपद सनेक विन्दर विन्दे हुए थे ॥ १४ ॥ चिनवर मुदणके तार और रजमकी इती श्रुई चादरे पडे थी । जो भवन कीमती कपड़ा और धूनीसे बना हुआ था ॥ १५ ॥ जिसके चारों ओर कनोम मातियोंके बड़े-बड़े मुखे लटके हुए थे, जिसमें मङ्गलको जकाऊ लकियाये लगे हुई थी ॥ १६ ॥ सही मरके पङ्क्तोंके वङ्कड़

चतुष्कोणेषु सर्वेषां मन्चकानां महोज्ज्वलाः । रत्नदीपाः प्रकाशन्ते सदैवाग्निशिखोपमाः ॥ १८ ॥  
 उशीरव्यज्जनादीनि चामरादीनि सन्ति हि । यत्र साम्बूलपात्राणि हेमग्लोद्भवानि च ॥ १९ ॥  
 तथा निष्ठीमनार्थं हि पात्राणि रुज्ज्वलानि च । यत्र रंभोपमा दाम्प्यः शतशो रत्नभूषिताः ॥ २० ॥  
 चामरैर्वीजयन्त्यश्च सीतारायावहनिर्गमः । यत्र हेममयाधिरा वद्वास्ते रंजनाः शुभाः ॥ २१ ॥  
 ये यामे नृपपन्नोभिः श्रीसीतायाः समर्पिताः । येषु वै केकिनो वंशाः सारसाः सारिकाः शुकाः ॥ २२ ॥  
 लावकाः कीकिलायाश्च नामा येऽस्य पतत्रिणः । नामाश्चन्दान्प्रकुर्वन्तः शतशस्तेषु सन्धिताः ॥ २३ ॥  
 तेषां शब्दस्य शिष्य न्वा किं प्राकट्यं वदाम्यहम् । ये रामस्मरणेनैव जीवन्मुक्ता न मंशयः ॥ २४ ॥

पक्षिण ऊचुः

जयतु राघवो जानकीयुतो जयन्वसिलराजराजकेसरः ।  
 दशस्थात्मजो लक्ष्मणाग्रजो जयतु मापतिस्तटिकांतकः ॥ २५ ॥  
 जयतु कौशिकस्याध्वरं मनो जयतु रक्षसां भागको महान् ।  
 जयतु गौतमाहव्ययास्तुतो जयतु जानकीनाममानितः ॥ २६ ॥  
 जयतु नः पतिश्चापमंडनो जनकजावगेन्मुक्तमालया  
 नृपमभागणे कौशिकानुगः परमशोभितश्चादिहर्षितः ॥ २७ ॥  
 जयतु भूमिजग्नयोस्तदा मुदा निजकरोत्पले स्थाप्य राघवः  
 कमलहस्तकनाकरोक्षति स ग्धूनन्दनः धातु नः सुखम् ॥ २८ ॥  
 जयतु भूमिजालिंगितो महान् जनमनोहरश्चातिशोभनः  
 पाशुगमदं घृत्य वै धनुर्निजपितुस्तदाऽदर्शयन् बलम् ॥ २९ ॥  
 जयतु सीतया भोगकृच्चिरं जयतु कैकर्याप्रेरितो वनम्  
 जयतु पर्वतैः वासकृच्चिरं जयति योऽत्रिणः पूजितो वने ॥ ३० ॥

चमर रखे हुए हैं । कहीं सुरमायका चमर रखता है । कहीं सालके और कहीं खरूरके बहुतसे पंखे रखे हुए हैं ॥ १७ ॥ फलंगके चारों ओर अच्छी रोशनी देनेवाले अग्निशिखा महा रत्नमय दीपक रखे हुए हैं ॥ १८ ॥ बहुतसे खय आदिके पंखे तथा चमर रखे हैं भगवान्के उस विद्यासुधवनके पात्रदान सुवर्णके हैं उसमें अगह-जगह होरा-यथा आदि रत्न अड़े हुए हैं ॥ १९ ॥ जितने जगालदान हैं, सब चांदीके हैं । वहाँ अनेक प्रकारके गहने पहने रंभा जैसी सैकड़ों सुन्दरी नागियाँ राम और सीताको पखा हाकन करती हैं । त्रिमं मोंतके कितान ही पिण्डरे बैठे हुए हैं ॥ २० ॥ उनको धूम्र कापी हुई रानियोंने तोताजीका उपहारमें दिया था । जिनमें मयूर, हंस, सारस, मैना, बटेर, कोयल आदि सैकड़ों प्रकारके पक्षी जिनकी ही तरहकी आँखें होन रहे थे ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे गिर्य ! वे पक्षी क्या बोलते थे वह मैं तुम्हें स्पष्ट बतके बतलाता हूँ । शब्दों के मन्देह नहीं कि वे पक्षी बारम्बार रामका नाम लनसे जीवन्मुक्त हो गये थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ पक्षी बहुत से मोतापति रामचन्द्रजीकी जय हो, जसिलराजराजेश्वरकी जय हो वशरधारमज रामचन्द्रजीकी जय हो । लक्ष्मणाग्रज रामकी जय हो । श्रीपति और साइकके नाशक रामचन्द्रजीकी जय हो ॥ २५ ॥ विद्यानिर्गके यक्षमें जानेवाले, राक्षसोंके विनाशकारी, गौतम-अहंता तथा जनकजीसे सम्मानित रामचन्द्रकी जय हो ॥ २६ ॥ हमारे स्वाकी, पंकरके पशुको खण्डन करने तथा सीताजीके हाथकी जयमाळा पहिननेवाले, वरगुराभके दिये हुए धनुषको बढ़ाकर भिन्न वशरधकी अपना पराक्रम दिखानेवाले ॥ २७-२८ ॥ सीताके साथ विद्यास करनेवाले, कैकेयीको प्रेरणासे वनको जानेवाले, धिरकाल तक धिक्कृतपर निवास

जयतु स विराधस्य धानकुञ्जयतु दूषणादिप्रमर्दना ।

जयतु यो भृगं मोक्षयद्भवाज्जयतु यः कबंधं क्षणाज्जहौ ॥३१॥

जयतु वालिहा सेनकारको जयतु रावणादिमर्दकः ।

जयतु स्य पद प्राप सीतया मगलान्नानकृन्मुदा ॥३२॥

जयतु वाक्यनो भृगुस्य यः सकलभूतल पर्यटनं विरम् ।

जयतु यासकल्लोकक्षिप्तया जयतु जानकी रंजयन् स्थितः ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

रघुवत्स्य पन्थाभिभिः कृतं नवकमुनमं यः पठिष्यति ।

तपननिर्गमे भक्तितन्पने निजमनोऽर्पितं मंगमिष्यते ॥३४॥

एतादृशे रम्यगेहे मया शिष्यं प्रवर्णिते । सीतया स सुखं रेखे चैकपत्नीवत्स्थितः ॥३५॥

अथ सा जानकी देवी रंजयामास राघवम् । स्थितं मंचकवर्ये तं निजकीडादिकौतुकं ॥३६॥

मंचकस्थं श्रीरामस्त्वेकदा सुखनिर्भरः । मंतामार्दयमालोक्य वर्णयामास तां मुदा ॥३७॥

हे सीते कञ्जन्पने जगन्ना त्वं कथं स्थिता । जानाम्यहं विलम्बेन तेन न्व निमिताऽपि न ॥३८॥

त्वद्रूपमरुतीं नान्धां पश्यामि जगतीतले । प्रतिपन्नद्रकलया स्पर्शयन्ति नखानि ते ॥३९॥

नखमध्या रक्तवर्णाः शुभा दादिमकीजवद् । अमुं चोर्चुर्लोक्य रम्यौ शिष्यमुष्टोपमौ तव ॥४०॥

मृदूले तु पादगले कञ्जपत्रांतरोपमे । समे रेखाश्च जयते स्वस्तिकादिसुचिह्निते ॥४१॥

सीते तेष्वर्च्यभागौ तौ तिलोमौ मांसलो गुर्मा । अश्रितौ मृदूलौ पीतौ नृपस्त्रावदनोचितौ ॥४२॥

पादमूले दधिजेन स्पर्द्धते रक्तवतुले । पादपृष्ठं समे पाने कोमले लोमवर्जिते ॥४३॥

करनवाले, जत्रि बादि कृषियोंसे पूजित रामचन्द्रजीका जय हो ॥ ३० ॥ जिन्होंने विराधको मारा था और दूषणादि राक्षसोंका संहार किया था । जिन्होंने मृगस्थधारी मारीचको मृच्छि दी थी और क्षणमात्रमें कबंधका विनाश कर दिया था, ऐसे रामचन्द्रका जय हो ॥ ३१ ॥ वालिका मारनेवाले, समुद्रमें सेतु बांधनेवाले, रावणादिके नाशक सीतको लंकसे वापस लाकर अपने राजमहिमामण्डप मृगभिन और मगल-स्तन करके पवित्र रामचन्द्रको जय हो ॥ ३२ ॥ कुम्भोदर काष्ठधकी अज्ञासे चिरकालतक समस्त पृथ्वीका पर्यटन करनेवाले लार्काहिदके निर्मित जम्बुमण्डप ज्ञ करनवाने और सानाजीको प्रसन्न करते हुए स्थित रामचन्द्रको जय हो ॥ ३३ ॥ आरामदासजी कहन लगे—महं राजाओं द्वारा किए हुए, नौ करोड़ोंका स्तौत्र वर्धाश्रुतुमें जो कोई पाठ करेगा, उसकी मनाऽमिलवित कामना पूरी होगी । जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ, ऐसे सुन्दर मदनम रामचन्द्रजी सीताके साथ मुम्बुपुत्रक एकपत्नी वत् प्रारण करके विहार करते थे । उसी प्रकार सीताजी भी नाना प्रकारक कौतुक कर-करके रामचन्द्रजीको प्रसन्न करती थी ॥ ३४-३६ ॥ एक दिन रामचन्द्रजी पर्वणपर बैठे थे । सहसा वे सीताके सौन्दर्यको देखकर कहने लगे—हे कमलनयने सीते ! मैं अपने मनम बार-बार यही सोचता रहता हूँ कि तुम्हें ब्रह्माजीने कैसे बनाया होगा । मेरा तो जहाँतक स्थान है कि तुम्हारी रचना ब्रह्माजीने नहीं की है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जबकि कोई दूसरा कारणकर तुम्हारी रस शोभाको बनानेक लिए नियुक्त किया गया होगा । क्योंकि तुम्हारे सदन करवनी नारी मैंने संसारमें कहीं देखी हो नहीं । तुम्हारे पैरोंके नाखून अपनी अनुपम छत्रा द्वारा चन्द्रकलासे राजा मारनेके लिए उतावले हो रहे हैं ॥ ३९ ॥ नाखूनोंकी लाली बनारदानेकी तरह ललक रही है । तुम्हारे बर्तुलाकार और सुन्दर अंगूठे बच्चोंके मंगुठोंका नाई कोमल दासत है ॥ ४० ॥ तुम्हारे चरण कमलकी पद्मदिव्यते सदा कोमल और सुन्दर हैं । उनमें पत्रादिकी शुभ रेखाएँ स्थित हैं और मेहावर लगी हुई है । पाँवोंके ऊपरका भाग सुन्दर तथा सुकोल है । उनमें नखें नहीं दिखाई देती । इसीसे तो वे चरण बड़ी-बड़ी राजपियोंके पूज्य हो रहे हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तुम्हारे पैरोंके नीचेका हिस्सा मन्थनकी तरह मुलायम है, दोनों गुच्छ लाल-लाल बर्तुलाकार और मध्ये

तत्र गुम्फौ रक्तवर्णौ वर्तुलौ श्यामलौ शुभौ । अथे गोपूष्पमदुशे वर्तुले मांसले शुभे ॥४४॥  
 निलोद्रे मृदुले पीने क्षशिरे मृगले वरे वर्तुलौ ने महाजान् मायनौ चीजस्वरत् ॥४५॥  
 भास्तंभोपमे चीरु मायनौ न्वतिकोमलौ दानौ धनौ वर्तुलौ तौ विलासौ मे मुखोचनौ ॥४६॥  
 जषनं मांसलं रम्यं वर्तुलं गजकुम्भवत् । पान विलास सुमित्र्यं मम चिषैकमोहनम् ॥४७॥  
 नाइ ते वर्णने शक्तो रतिम्यानस्य भाविनि । गंभीरा वर्तुला नाभिस्तद रम्या प्रदश्यते ॥४८॥  
 रतिप्रप तु जटरे दृश्यते निमृषेगिवत् । मृगराजस्य कटिना तुन्यस्ने कटिकलमा ॥४९॥  
 रम्यं त्रयोदश सुधर्म मृदुलं मांसल शुभम् । विलासं पीतवर्णं च पुत्रोत्पत्तिविश्ववक्त्रम् ॥५०॥  
 वक्षस्य शकलेनेष स्पन्दते एव मांसलः । पृष्ठस्त्र्यंशः कोमलश्च निम्नो लोमविर्वर्जितः ॥५१॥  
 पार्श्वेऽतिमृदुले पीते मांसले लोमवर्जिते । कुक्षी पीने लोमहीने मांसले किंचिदुच्यते ॥५२॥  
 इदं कोमल रम्यं मांसलं रतिमुन्नतम् । विस्तारणं लोमहीनं च सुद्वेजश्च मीर्यदं मम ॥५३॥  
 हंसकुम्भमानी द्रौ कुक्षौ पीनौ धनौ शुभौ । गजसुडादंतुल्यौ पीनौ ने कोमलौ धृजौ ॥५४॥  
 कुशा रम्याः कोमलाश्च तेऽहुन्धो जनकात्मजे । रक्ते पाणिजले शम्भरजमन्व्यादेविहिते ॥५५॥  
 मांसले कोमले प्रोन्चः सुरस्वामण्डने वर । कपृष्ट लोमहीने मांसल कोमले शुभे ॥५६॥  
 पीनौ स्पर्धी वर्तुलौ ते जत्रुस्ने मांसपूरितः । कर्कशंऽतिपीनश्च मयलिप्रप उन्नतः ॥५७॥  
 वक्ष्ये निम्नं सुपीनं ते त्र्यधुक्तं वर्तुल मृदु । प्रवालविमलशम्भरक्तः कोमलो धनः ॥५८॥  
 सीते तेऽधोऽधो जाति मृगोऽमृतमन्त्रिमः । कुटपुष्पकलिकया स्पन्दन्ते दशनाम्बर ॥५९॥  
 सांद्राः कृत्रिमवर्णश्च कृष्णवर्णा सनोदगः । हंसपुष्पैर्हंसतुल्यैश्चित्रविचित्रिताः ॥६०॥

हैं । जंघाये लोको पूँछके समान गायदुम एवं माटी लाली हैं । ४३ । ४४ ॥ उनमें न तो कहीं एक भी रीज दिखाई देते हैं न शरीरकी नसे हो । दानो जपन कामरूर ( विलोहे नावू ) की तरह मोटे और वर्तुलाकर हैं ॥ ४५ ॥ तुम्हारे दाँता ऊँठ केवक मन्मदा नाई मट और कायल हैं । उनका सुन्दर वर्ण और उनकी सुन्दर कटा मुझे बहुत अच्छी लगती है ॥ ४६ ॥ मग्नभाग भी माटा, सुन्दर और हाथाक पस्तकनी तरह वर्तुल है । वह पीतवर्ण, लामहुँन, गुच्छिकण तथा मनोमोहक है ॥ ४७ ॥ हे सीते ! तुम्हारे रतिम्यानकी वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ । तुम्हारा नाभी भा गहरी बटुलाकार और सुन्दर है । ४८ ॥ तुम्हारे पेटमें तीन रेखाएँ होन बेनीक समान दिखती पड़ती हैं । तुम्हारी कमर घृगराज (विह) की तरह पतली है ॥ ४९ ॥ तुम्हारा उदर सूक्ष्म, मृदुल और मांसल है । इसमें कहीं भा लाव नदी सिव ई पड़ता । वह तीन वर्णका है और उसकी देखनेमें भावी पुष्पवर्तिका मृचना मिलती है । ५० ॥ वक्षस्त्रण्डकी तरह माटी लाली तुम्हारी पीठकी रीढ़ है । दोनों पार्श्वभाग लो अतिकोमल होनेसे झगड़ ही बनत है । काय की पीठवर्ण, लोमहीन, कुष्ठ ऊँकी एवं मोटी लाली है । ५१ ॥ ५२ ॥ हृदय कोमल, रम्य, मांसल, पीला और ऊँचा है । वह लोमहीन है और बहुत दूर तक फैला हुआ है । वह हृत्तमें विकना साम्य होना है । इसलिए मुझे वह बहुत सुन्दर प्रियता है । ५३ ॥ स्वर्णकलशकी नाई मोट और बटोर तुम्हारे दोनों कुक्ष हैं । तुम्हारे दोनों भुजाएँ हाथोंकी सूँडकी तरह मोटी, कोमल और सुन्दर है ॥ ५४ ॥ पतली सुन्दर और कोमल तुम्हारे हाथोंकी उँगलियाँ हैं । लव, धवज, मकर तथा मन्व्यादि चिह्नो युक्त लालस्याल तुम्हारी दोनों हथेलियाँ हैं ॥ ५५ ॥ उभरी तरह उनका घृमपाव भी लोमहीन, मांसल, कामल और सुन्दर है ॥ ५६ ॥ वर्तुलाकार, मोटे तारे, मांससे अच्छे तरह भरे हुए और शङ्खकी नाई तुम्हारे दोनों कंधे हैं । पीठमें तीन सुन्दर रेखाएँ हैं । ५७ ॥ तुम्हारा मध्यभाग भी निम्न, पीन एवं कोमल है । प्रवाल और दिग्दण्डका तरह लाल, कामल और रसमय तुम्हारा चिबुक है ॥ ५८ ॥ हे सीते ! मृगको तरह मधुर तुम्हारा मधरोष्ठ है । कुशका कलिकाकी समित्त करनेवाले तुम्हारे दाँत हैं ॥ ५९ ॥ उनमें बत्तीसी पड़ी हुई है । पान खाने खाते वे काने हो गये हैं । उनमें जहाँ-तहाँ मुखर्णने लारकी

ऊर्ध्वाधरः कोमलस्ते रक्तवर्णो विभान्ययम् । अंशु घ्राणमुन्नमं ते दिव्यं भाति मनोहरम् ॥६१॥  
 तव नेत्रं कंजपत्रनुव्ये दीर्घं मनोहरे । हरिणानेत्रमदृशे कामवाणाविव प्रिये ॥६२॥  
 तप कर्णौ घनौ पीनौ बहुभारमहौ वरौ । तव सीतेर्जतिमुद्दिनस्ये प्रोच्ये गण्डस्थले शृणु ॥६३॥  
 कृशे भ्रूवौ चापनल्ये कृष्णवर्ण मुकोमले । ललाटं तव विस्तीर्णं मांसल हि समं मृदु ॥६४॥  
 गङ्गाकुलोपमः सीते सीमतस्तव सुन्दरः । हेमन्ततृप्तमानास्ते केशाः स्निग्धाः सुकोमलाः ॥६५॥  
 मस्तकस्तव सूक्ष्मश्च वसुलो मांसलः शुभः । वेशावन्धो वरः सीते जघने पतितस्तव ॥६६॥  
 चण्डपुष्पोपमो वर्णः सौकुमार्यमपि प्रिये । माते तवाननस्पृष्टौ शशाङ्कः क्षयमाप सा ॥६७॥  
 त्वन्नन्त्रविजिता सीते मृगी धावति कातने । सीते त्वद्भ्रुकुटिर्भृङ्गि चाप भग्न मया पुरा ॥६८॥  
 तव नेत्रकटाक्षेण मुनीनां मदनोद्धवः । नेत्रयोस्तव चांचल्यं मकरान् लज्जपत्यहो ॥६९॥  
 तव ग्राणं शुको दृष्ट्वाऽऽन्मानं धिक्करोति हि । दृष्ट्वाऽप्युः शोणिमां ते सौकुमार्यमपि प्रिये ॥७०॥  
 तद्विकारतरोश्चापि रक्तः कोमलपल्लवः । लज्जया हरिदो भाति त्यक्त्वा सर्वाथां सुरक्तताम् ॥७१॥  
 सौकुमार्यं तथा त्यक्त्वा लज्जया ते घनोऽपि सा । एव किं किं मया कान्ते र्मोदये तव जानकि ॥७२॥  
 वर्णनीयं महर्दिव्यं तव ब्रह्माऽपि कुण्ठितः । हन्युकन्या राघवः मीनां प्रीन्या तां परिषम्बजे ॥७३॥  
 तच्छ्रुत्वा वर्णनं श्रापं लज्जयाऽधः कुलानना । किञ्चिन्निस्पृहाननं कृत्वा तस्थार्धकं पथेऽथ सा ॥७४॥

श्रीश्री श्रीमद्विक्रमचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकीये  
 सोतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

लिककारी की हुई है । इससे वे और भी सुन्दर मान्य होत हैं ॥ ६० ॥ तुम्हारा ऊपरा हाँठ भी कोमल और रक्तवर्ण है । कोमल और ऊँची तुम्हारी नासिका है, जो वरों सुन्दर दीखती है ॥ ६१ ॥ कमलकी पशुद्वियोंकी नाँदें सुन्दर तुम्हारी दानों आँख हैं । उन्हीं बाह हरिणीक नयनोंको तरह कहूँ या कामवाणको भाँति विनाकपोंक कहो ॥ ६२ ॥ तुम्हारे दानों कान भी घन और पीन हैं । वे दहतस गहनोंका खोस सह सकते हैं । तुम्हारे गण्डस्थल भाँति कोमल और उँच हैं ॥ ६३ ॥ पल्लव-पल्लवों और काले रंगको तुम्हारी दोनों भीह धनुषाकार दीखती हैं । तुम्हारा ललाट खूब चौड़ा और बराबर है ॥ ६४ ॥ तुम्हारी माँग गंगाके तटको तरह सुन्दर दीखती है । सोनके तारवले भीत सुन्दर, चिकन और कोमल तुम्हारे केशोंका कटाव है ॥ ६५ ॥ तुम्हारा मस्तक सूक्ष्म, वसुन्ध, मांसल और सुन्दर है । तुम्हारे केशोंका श्रेणीबन्ध अभिनव झूलता है ॥ ६६ ॥ चम्पाक फूलकी तरह तुम्हारा सुन्दर वर्ण है । उसी तरह उसम कामलता भी है । हे सीते ! तुम्हारे मुखसे होठ करनेक कारण चन्द्रमाकी क्षयरोग हो गया ॥ ६७ ॥ तुम्हारी आँखाम हार मानकर मृगियाँ वनको भाग मपीं और जघर-उधर दौड़ती फिरती हैं । हे जनकात्मज ! सब पूछो तो उस समय धनुषयज्ञम तुम्हारी इन पीँहोंसे स्वर्धा करनेके ही कारण मैंने धनुषको तोड़कर उसके टुकड़-टुकड़े कर दिये थे ॥ ६८ ॥ मुझे पुरा विश्वास है कि तुम्हारे नेत्रोंके कटाक्षसे बड़े बड़े तपस्वियोंके हृदयम भी कामका वेग प्रादुर्भूत हो जायगा । तुम्हारे नेत्रोंकी चंचलता मच्छाजिनोनों भी भात कर रही है । तुम्हारी नाक देखकर सीते अपनेको बार बार चिक्कारत हैं । तुम्हारे हाँठोंका लालिमा और कोमलता देखकर आश्वत्थका लाल और नया पत्ता लज्जाके मारे हरा हो गया है । तुम्हारी लालिमाके आगे उसको लालिमा नहीं टहर सकती । हे कान्ते ! मैं तुम्हारी सुन्दरताका कहीं तक वर्णन नहीं करूँ, ६९-७२ ॥ इसक वर्णनम धनुषमुख ब्रह्मा भी हार मान लीं । ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने सीताको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ ७३ ॥ इस तरह अपनी बड़ाई सुनकर सीता भी लज्जासे नीचा मुँह करके बैठ गयीं । फिर थोड़ा धुमकाकर पतितवकी गानम जा बैठी ॥ ७४ ॥ इति श्रीमद्विक्रमचरितान्तर्गते श्रीमदानन्द-रामायणे पंच रामलक्षणवाच्यविरचित ज्योत्स्ना भाषाटीकायां सोतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥



## तृतीयः सर्गः

( सप्तमं कृतं आध्यात्मिकं प्रदत्तं ते उत्तरं रामका देहमायया-वर्णनं )

श्रीरामदास उवाच

अथ सा जानकी राम विनयाहुजिनाऽब्रवीत् । राम राजीवपद्मां किंचिन्प्रष्टुं मम प्रभो ॥ १ ॥  
 वांछाऽस्ति चेन्मङ्गोष्णाह्नां तर्हि पृच्छाम्यहं नव । मन्मानावचनं श्रुत्वा रघवः प्राह जानकीम् ॥ २ ॥  
 पृच्छस्व सीते यत्तंऽस्ति प्रष्टव्यं मां मुखेन ननु । सा शक्ता मम रम्भोऽहं गुह्यं चापि वदामि ते ॥ ३ ॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तस्या न प्राह जानकी । मम मम महाबाहो किंचिदुपदिशस्व माम् ॥ ४ ॥  
 येन मम तव मन्त्रानं भवेन्नेव मदीयफलम् । तन्मन्त्रावचनं श्रुत्वा रामचन्द्रोऽब्रवीद्ध्रुवः ॥ ५ ॥  
 सम्यक् पृष्टं त्वया मीते मृणुर्वैकाग्रमानसा । मम ज्ञानाय ते वक्षिष्ये परं कौतूहलं शुभम् ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सुखिदानन्दरूपाद्यदमागम्य तदिच्छया । उद्वेगवशाऽऽर्मांश्चिद्दुः शुद्धो विनिर्गतः ॥ ७ ॥  
 आत्मनामा मातृभूतबुद्धेर्नेष्टमभयः । शुद्धमन्त्रांतंकरणं विना चान्मन इति ॥ ८ ॥  
 तस्यान्मनस्य चन्वरो भेदास्ते त्रयवः स्मृताः । तृयावस्थस्तत्र त्रस्तो जाग्रदवस्थकः ॥ ९ ॥  
 स्वप्नावस्थस्तृतीयश्चावयः सुषुप्त्यवस्थकः । हृदयाकाशस्थस्थान मनोवेगो बहिर्गमः ॥ १० ॥  
 मनोदुर्बुनिषातश्च मनोवेगस्य खडनम् । मायायोगस्तनस्तस्य पूर्वसंस्कारनिग्रहः ॥ ११ ॥  
 ततः कुबुद्धिहेतौर्हि भवाण्यष्टनं चिरम् । दमस्य निग्रहस्तत्र पंचभूतात्मिका स्थिरा ॥ १२ ॥  
 आत्मनः पर्णकृटिका विश्रान्तिस्थानमरिक्ता । कामक्रोधलोभमपस्तथाशक्तुत्तनं स्मृतम् ॥ १३ ॥  
 मोहस्य निग्रहस्तत्र शुद्धमायाभयस्तवः । रजारूपा तु सा माया जठरगम्यी तदा स्मृता ॥ १४ ॥

श्रीरामदास कहते लग- कुछ देर बाद राजा और विनयसे सलूचाती हुई सीताजी रामधरसे बोली-  
 हे प्रभो ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ । १ ॥ यदि आप आज्ञा दें तो पूछूँ । सीताजी वाणी सुनकर राम-  
 चन्द्रजाने कहा- ॥ २ ॥ हा प्रभो ! ज- कुछ भी तुम्हारी इच्छा हो, आनन्दपूर्णक पूछो । किसी प्रकारकी शङ्का  
 मत करो । यदि कोई गुप्त बात होगी, वह भी मैं तुम्हें बतल दूँगा । ३ ॥ इस तरहकी बात सुनकर  
 सीताने कहा- हे महाबाहो राम ! मुझ आप कोई ऐसा उपदेश द, जिससे मैं आपको अच्छी तरह समझ  
 लूँ । इस बातका सुनकर रामने सीतासे कहा । ४ ॥ ५ ॥ हे देवि सखे ! तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी  
 है । मैं अपने वास्तविक तत्त्वको तुम्हें अच्छी तरह समझाता हूँ मत एक म करके सुनो । आत्मज्ञान प्राप्तिके  
 लिए मैं तुम्हें कौतूहलजनक बान बना रहा हूँ । ६ ॥ रामचन्द्रजी कहने लगे- हा, चित् और बानन्दरूप एक  
 महान् सगर है । उनकी इच्छारूपा तरङ्ग एक परम पवित्र आत्मावास्वरूप बिन्दु निकला । इसका नाम  
 पड़ा 'आत्मा' उसका माता हुई बुद्ध, बुद्ध और तन्वमय अन्तःकरण उसका पिता हुआ ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस  
 आत्माके चार भेद हुए हैं । आत्माके चार भाई कहलाये । उनमें सबसे श्रेष्ठ हुई तृतीयावस्था, उससे कुछ  
 स्थूल जाग्रदवस्था, फिर स्वप्नावस्था और सबसे निम्न श्रेणीकी सुषुप्ति अवस्था हुई इन सबका हृदयाकाश  
 स्थान है और मनावासे ये अवस्थाएँ कभी कभी बह- भी हो जाती हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ मनकी दुष्ट सियोंका खण्डन,  
 उनके आवेगपर आधान और मायाक पावसे पूर्वसंस्कारकी दमन करना हाता है ॥ ११ ॥ यदि बुद्धि किसी  
 तरह दूषित हुई तो इस तंताग्रूपो घोर जलमें बहुत दिनों तक आत्माको भटकना पड़ता है । उस समय  
 पंचभूतात्मक आत्माको स्थिर करके दम्भका निग्रह करनेकी आवश्यकता होती है । १२ ॥ केवल आत्मा-  
 रक्षिणी ही एक ऐसी पर्णकृटी है जहाँ कि गान्ति मिलती है । अन्यत्र सब जगद् बलेश ही है । उस  
 पर्णकृटीमें काम, क्रोध, लोभ, माहादि शत्रु नहीं जाने पाते । आशाकी भी वहाँ गति नहीं है । वहाँ मोहका  
 भी निग्रह हो जाता है । वहाँ ही शुद्धसात्त्विकी मायाका आश्रय प्राप्त होता है । उस समय जब कि रजोगुणमयी

नाम्नाश्चिन्मायायाः विशेषश्च तत्र स्मृतः । सुखात्कामो महाभक्तेषां लोकाभ्यस्ततः परम् ॥१५॥  
 विवेकस्याश्रयस्तत्र भक्त्युद्देश्यमागमः । अविवेकवधभाषि ह्युन्नादेन समागमः ॥१६॥  
 अज्ञानतमोपायसिगुणाश्रयमर्थानि । लिङ्गमयनिग्रहस्तत्र महस्य रूपकीर्तितः ॥१७॥  
 निग्रहो मय्यहम्भाषि ततोऽद्वैतानिग्रहः । विधोमो लिङ्गद्वैतरूप मायाभर्मकयत्ता ततः ॥१८॥  
 हृदयाकाशगमनमानर्ककमुत्तमं ततः । मायान्यायस्वतन्त्र्येव सान्निभ्या प्रहण स्मृतम् ॥१९॥  
 सान्निभ्यया मायया सार्धं हृदयाकाशमुत्तमम् । महाकाशे प्रणयनं सच्चिदानन्दमञ्जके ॥२०॥  
 प्रवेष्टुन सागरं हि मुक्तिरूपोऽज्जमानः शुभा । मापुज्या सा परिच्छेया मुक्तिर्मुक्तैवतुष्टये ॥२१॥  
 एव मयेव ते मोक्ष्या भीते सञ्ज्ञानपेटिका । वेदवर्गं गृहार्थं ज्ञानमतिनाशकैः ॥२२॥  
 मञ्जानन्दैः रञ्जदशलोकरुणैः प्रसूतिना । मन्त्रपिता गृहाथ त्वमस्मां वृद्ध्याऽवलोकय ॥२३॥  
 भविष्यति मम ज्ञानमप्याः सम्यग्विचारतः । तद्रामवचनं धृत्वा मोक्षं मञ्जानपेटिकायाम् ॥२४॥  
 निजहृन्मन्दिरे स्थान्य बुद्धिदृष्ट्या मुहुर्मुहुः । मय्यमुद्राटय तूष्ण्यां मा मुहूर्तमवलोकयतु ॥२५॥  
 तदा ज्ञानवत्स्य मकली निजकीर्त्या विदेदजा । विदम्य शृणु मय्य मा ननामर्धिमकजे ॥२६॥  
 आनन्दनिमगा ज्ञाना सानराध्रुवमन्विता । आनन्दोऽकुल्लोभाश्चा गूर्णामासीत्तदा क्षणम् ॥२७॥  
 आनन्दनिर्वरी भीता दृष्ट्वा हां राघवोऽब्रवीन् । पेटिकाया त्वया साते किं दृष्टं लोपकरकम् ॥२८॥  
 कल्विद्रन दशज्ञानं कश्चिच्छुद्धं मम त्वया । सञ्ज्ञानं वद मां संते यथा ज्ञानं त्वया हृदि ॥२९॥

माया कदराभिर्भं रहती है ॥ १३॥ १४॥ तब तमोगुणयो मायाका वियोज हो जाता है । इसमें सुखका भाव नहीं रहता और चारों ओर कराल दुःखकी घटाई घिरो दिखाई देती है । उसके जाने मोक्षमञ्जुका दर्जा जाता है ॥ १५॥ उसी समय हृदयमें त्रिवक् उपजता है । साथ ही भक्तिका भी उत्पन्न होता है । अज्ञान मल हो चलता है । उन्मादसे रन्ह हो जाता है । तब एतन्नाम इस कदरीकेका सबसे प्रधान बलम्ब यह है कि जिस तरह भी हो मम अज्ञानसे जबकी मुक्तिकेका चार्ता करे । जब ज्ञानी मरका निग्रह कर सता है जब अदि लिङ्गनिग्रहा कहमाने लगता है ॥ १६॥ १७॥ माया निग्रह करके मस्तरका और मस्तरक बाद अह भूतका निग्रह करना चाहिए । जिस समय सधन निजनिग्रही हो जाता है अर्थात् मदकी वक्षय कर जाता है । उसी समय मायाके परारण होगया समय जाता है ॥ १८॥ आनन्दम माया और है ही क्या, इन्ही कान-कादिदृष्टीके संघसे मायाका निर्माण हुआ करता है । इसके परारण हो जानेपर प्राणीका आनन्द ही आनन्द रहता है । जब पापादा र ग हो जाता है, उस समय सान्निभ्या भागका प्रादुर्भाव होता है । उस सान्निभ्यी मायाके साथ प्राणी उत्तम हृदयाकाशका भुव अगुच्य करने लगता है । उससे भी उत्कण्ठ होनेपर महाकाशका निर्माण होता है । मत्, चित और आनन्द ये तमो वही सदा जियमान रहने हैं ॥ १९॥ २०॥ इसी महान् अनुग्रह बूढ़ जानका आत्माकी कल्याणदक्षिणी मुक्ति कहने है । धार प्रकाशकी वही हुई मुक्तियोंसे उपायका साधुज्य मुक्ति कहते हैं । हे साधु ! मुह्यार स्नेहवत्ता येन यह जानका पिढारी सोलकर रत्न सी । इसमें वह सर्ववाले बदके सारक परिपूर्ण तथा अज्ञानकृद्धको नष्ट करनेवाले यह वह ग्लोकस्पी रत्न भी हुए है । इन्हीके द्वारा मेरा मुख्य लप्प जाना जा सकता है । यह पिढारी मे मुष्म अर्पण करता है । इसे समुत्तली और आनन्ददृष्टिसे रखी । बारबार इन बातोंका समन करो तो मुझे अच्छी तरह समझ लाया ॥ २१-२४॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर सतने उस जानकी पिढारीकी अपन हृदयमें रत्न लिया । फिर उसे सोलकर बुद्धिदृष्टिमें कुछ देर देखनी रही ॥ २५॥ तब सोचने अपने सब आडाओंका नद जाना और हैमकर रामकदरीकी प्रणाम किया ॥ २६॥ सोलाका उस समय एक महान् आनन्दका अनुभव हुआ । उनकी आँखोंमें आँसू आ गये, गारारक रोमट खंड हा गय और बाँजे दक के लिए स तज्जा अपन आपकी मा भूषकर रूप हो गयी ॥ २७॥ इस प्रकार सोलाकी आनन्दित देखकर रामचन्द्रजान पूछ — हे सोन ! तुमने उस पढीय क्या क्या नृत्तिदामक काँजे देखी ? जिससे तुम्हें ऐसी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ २८॥ क्यों, अब तो मुह्यार अज्ञान बूढ़

ज्ञानं त्वया वा न ज्ञानं येषु मन्द्यामि च्छुभुवन् ।

यदि किञ्चिन्वया नाभ्यां ज्ञानं तद्दोषायाम्यदम् ॥ ३० ॥

इति रामवचः श्रुत्वा निमग्नाऽऽनन्दयागरे मंचकभ्यां रामचन्द्रं जानकी वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

श्रीनरनाम

राम रामणदर्पणं त्वद्वत्ता ज्ञानपेटिका । मयाऽवलीकिता बुद्ध्या लब्धं ज्ञानं तव प्रभो ॥ ३२ ॥

निर्गुणो निर्विकारस्त्वं कीदृशं सकला न्वया । मयगृहीता भूष्यां कृपया लाकटिनाय हि ॥ ३३ ॥

पेटिकायां यथा ज्ञानं मया तत्प्रवृत्तादि ते त्वया पचदशउल्लेख्यं गुह्यमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

प्रकटं तत्करोम्यद्य तवाग्रे रघुनन्दन । सर्वेषां मन्दवृद्धानां हिताय ज्ञानमिदमे ॥ ३५ ॥

अनानां सम्बोधयितुं चमित्रं भवताऽत्र यत् । कुत तस्य विशारेण ह्यात्मशूनं लभेश्वरः ॥ ३६ ॥

सन्निधानन्दरूपी यो विष्णुर्ज्ञेयः स सागरः । भृशरहस्यादीन्वा विष्णोर्थां ज्ञापये शुभा ॥ ३७ ॥

स वै ज्ञेयस्तरंगोऽत्र तथान्मांशुलवः शुभः । बहिः कुतः सागरान्म आन्मात्स्यः कथ्यते भुवि ॥ ३८ ॥

बुद्धिस्तु जपनी चैव कीमत्या साऽत्र कथ्यते । शुद्धमर्थातःकरण विना तस्यात्मनः स्मृतः ॥ ३९ ॥

रात्रा दशमो ज्ञेयः धामान्मन्वपरक्रमः । तस्यान्मनश्च चत्वारो भेदास्ते बन्धवः स्मृताः ॥ ४० ॥

रामभौमिनिभरतशत्रुघ्ना एव चार हि । तयैवमध्यस्तपु वरः स त्व दशरथान्मजः ॥ ४१ ॥

ततो जाग्रदवस्थश्च लक्ष्मणः सोऽत्र कथ्ययते । स्वप्नावस्थश्चतुर्थीयश्च भरतोऽपि निगद्यते ॥ ४२ ॥

अक्षरः सुषुप्त्यवस्थस्तु ज्ञेयः सत्रय एव सः । द्वयकाशं तन्म्यानमयोप्याऽत्र स्मृता तु ता ॥ ४३ ॥

मनोवेगो बहिर्यात्रा विश्वमित्राश्वरे ममः । मनोदूर्वातिघानश्च तार्जिकाया वधोऽत्र सः ॥ ४४ ॥

मनोवेगस्य यो मगः स धनुर्भग उच्यते । मायायोगमनस्तस्य मयापिग्रहणं स्मृतम् ॥ ४५ ॥

पूर्वसंस्कारनिशदो ज्ञामदरनेचनिग्रहः । ततः बुद्धिहेतोहि कैकेय्या वरदानतः ॥ ४६ ॥

हुआ ? अच्छा, अब बताओ कि ये तीन हैं - मुख नृपत आगर मनस कया सम्पत्ता है ? ये तारतरे पुँतरे यह पुरना आहता हैं । तुमने मुझे आगर का नहीं ? यदि हमें हमको जाननेम सब भी एक कतर हाँगी तो मैं समझाईगा ॥ २६ ॥ ३० ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीकी आज्ञा सुनकर साताजी और जो आदित हा यहाँ और रामचन्द्रसे कहने लगीं ॥ ३१ ॥ माताजी हाली-हे रघुनन्दन । हे रामणके बनेका नष्ट करनेवाले राम ! आपने मुझ जो यह ज्ञानकी पिटरी दी है, उसे मैं आपकी जालदृष्टिमें धूस गौर करके देखा और मुझे आपका ज्ञान प्राप्त हो गया । ३२ ॥ आप निर्गुण और निराकार हैं । फिर भी मर साथ सगारमें आपन आ जा लीलाते की है, उनका उद्देश्य एवमात्र लोकाहन है । मैं इस पिरारमें आ जा देता है, यह बतलाते हैं । आपने पन्द्रह ग्लानियोंमें मुझे जो उत्तम ज्ञान दिया है उसे मैं आपके सम्मुख प्रकट करती हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उससे सगारके समस्त जलानियोंका उपकार होगा अर्थात् उन्हें जो ज्ञानका प्राप्त हो जायगी । ३५ ॥ शत्रुघ्नांको समझानेके लिए आपन इस आत्मीयतामें आ जो चमित्र जिसे है उनपर बड़ी सगह विचार करनेसे नि सन्वेह आत्मज्ञानकी प्राप्त हो सकती है ॥ ३६ ॥ सच्चिदानन्दस्वरूप विष्णु भगवान् ही सागर हैं । भगवान् भी पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छा करते हैं, वही उस सागरकी तरंग है । उसका जो एक बिन्दु आत्मास्वरूप होकर बाहर आ जाता है । वही आत्मा कहलाता है । उसकी बुद्धिरूप अनन्त कीमत्या है । शुद्ध और सलो गुणय अन्तःकरण उस आत्माका निवास होता है, सो साक्षात् श्रीऽशक्तजी हैं । उस आत्माके चार भेद आपने कतसाये हैं । वे चार भाई राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नसब हीकर विद्यमान हैं । उनमें तुरायावस्थाको श्रेष्ठ कहा है । सो इन चारों भाइयोंमें बड़ आप ही हैं ॥ ३७-४१ ॥ जो एतदवस्थाम्बरूप लक्ष्मणजी हैं, स्वप्नावस्थास्वरूप भरतजी तथा सुषुप्ति अवस्थास्वरूप शत्रुघ्नजी हैं । हृदयकाज न्याय जो आपने कहाया है, यह यही अवस्था है ॥ ४२ ॥ मनोवेगका दूर होना जो आपने कहा, वही मनो विश्वामित्रके बजने आपकी यात्रा है । मनकी दूर्वातिघाका घात ही तार्जिकावध है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ मनोवेगका संजम ही अनकपुरमें धनुष दूरना है । वही मेरा पापिग्रहण होना ही मायाव

भवारण्येष्टनं प्रोक्तमटनं दंडकेष्ट तै । इभस्य निग्रहस्तत्र विराघस्यात्र निग्रहः ॥४०॥  
 आत्मनः षण्णकुटिका पंचमनान्यकश्च सः । देहोऽयं पंचवरिका विश्रान्त्यर्थं तदाव मा । ४१ ।  
 कामस्य निग्रहः प्रोक्तः खरम्यात्र विनिग्रहः । क्रोधस्य निग्रहश्चापि दूषणस्यात्र निग्रहः ॥४२॥  
 लोभस्य मर्दनं तुत्र त्रिशिगनिग्रहोऽत्र हि । तत्राशाकुनन प्रोक्तं प्राणेनात्र विरूपणम् ॥४३॥  
 तस्याः सूर्यणापाश्च मोक्षस्य निग्रहः स्मृतः । मृगमार्गचपाभोऽत्र शुद्धमायाश्रयजनः । ४४ ।  
 ममाश्रयस्ते तामागि सात्त्विक्या दंडके वने । रक्षोऽपि न या माया जडागर्भे स्मृता शुभा । ४५ ।  
 मम रजस्वरूपायाः प्रवेशश्चानलेऽत्र मः । तामस्याश्चैव मायाया रियोमश्च तदा स्मृतः । ४६ ।  
 मम तमःस्वरूपाया हरणं रावणेन हि । सुखाकाभो महान्वदेष्टस्त्वतो मद्विग्रहस्ततः । ४७ ।  
 शोकवेगस्तत्र प्रोक्ताः कवचस्य वधोऽत्र मः । त्रिवेकस्याश्रयस्तत्र सृजोवस्याश्रयोऽत्र मः ॥४८॥  
 मन्त्युद्रेकस्यामश्च तव लाभो हनुमतः । अत्रिवेकवधः प्रोक्तश्चात्र वालिवधस्तथा । ४९ ॥  
 उन्माहेन तव संराः सा विभीषणमैत्रिकी । अज्ञानतण्डलोपायः सेतुबंधो महोदधौ ॥५०॥  
 त्रिगुणाश्रयमेव वै लिङ्गदेहादये श्रमे । त्रिकृपाचक्रगम्यायां लकायां रघुनन्दन । ५१ ।  
 मदस्य निग्रहस्तत्र कुमकर्णवधस्त्वया । निग्रहो मन्मत्स्यापि मेघनादवधोऽत्र मः ५२ ॥  
 तत्र दृक्कारण्यातश्च रावणस्य वधस्त्वया । मायानामैक्यता चापि त्रिविधा या ममैक्यता ॥५३॥  
 विषोमो लिङ्गदेहस्य लकास्यागस्त्ययाऽत्र मः । इदयाकाशममगमनमयोध्यायमत पुनः ॥५४॥  
 आनन्दैकमुखं तत्र राज्यभोगस्त्वया योऽत्र हि । मायास्यागस्तत्त्वैव वाल्मीकेनाश्रमे मम । ५५ ।  
 न्यायोऽत्र भावि श्रीराम त्वया योऽत्र प्रकाशितः । सात्त्विक्या ग्रहणं पञ्च पुनर्मे ग्रहणं स्मृतम् । ५६ ॥  
 सात्त्विक्या मायया सार्द्धं तवोद्योगो मया सह । तत्रश्च इदयाकाशे महाकाशे विलापयतु ॥५७॥

योग है ॥ ४५ ॥ परमपुराणका दर्पवज्जलन ही पूर्ववत्स्वरूपा निग्रह है । इसका अन्तर दंडकेष्टरूपिणी वैष्णवीके  
 बरदानसे आपका दंडकारण्यामे घुसना ही भव गणम भटकना है । दम्भका शोक लगा ही विराघवध  
 है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पंचमनान्यक आत्मरूपिणा षण् कुटी का आपने बललायी, वह यह शरीर ही है । तो आपके  
 विहार करनेके लिए एक उपयुक्त स्यात् है । ४८ । कामका निग्रह करना ही खर गणमका वध है और क्रोधका  
 निग्रह दूषणका वध है ॥ ४९ ॥ लोभका निग्रह त्रिशिगका वध रहा मया है । आशाका पिच्छर ही आपने बगलाया,  
 वह ही सूर्यणापा विरूप करना है । मायाच मृगका वध करना ही मोक्षका निग्रह है । उन्माहेनममे आपने  
 जो तन्त्रगुणमयी मुख्य आपने वामभागम परमका कला या वह ही जोड़ माय का आश्रय है । रजोगुण-  
 रूपम मेरा अग्निसमे प्रवेश करना ही त ममी मायाका विनाश है । न ॥ गणममे मेरा रावणके द्वारा हरण हुंता  
 ही सुखाभाव है । उन्माहाराहमारा विनाश होना ही महावध है ॥ ५०-५४ ॥ इसके बाद कवचका वध करना  
 ही शाकभङ्ग है । सुप्रवका मित्रता ही आश्रय है । ५५ ॥ भान्तके उदरका व्याघ्र आपको उग्रमायाकर मिलना  
 है । वालिका वध करना ही अज्ञानका वध करना है । ५६ । इसके बाद विभीषणका साथ मेरा हुंता ही  
 उन्माहका नष्ट है । समुद्रमे सेतुबन्धन ही अज्ञानन उदरका हार है ॥ ५७ ॥ आपका त्रिकुट पवनपर उग  
 हावना ही लिङ्गारमम दहमे त्रिगुणका आश्रय करता है ॥ ५८ ॥ दुम्भकगता वध मे मदका निग्रह है ।  
 मेघनादका वध मन्मत्स्या निग्रह है ॥ ५९ ॥ आपन का रावणका वध किया है वह ही अहकारका नाश है  
 मायाकी एकता जो आपने कही, वह इस लोनाका एकर हो जाना है । ६० । लकाका न्यायता ही लिङ्गदेहा  
 नियोग है । फिर जयोध्याके लिए दयान करना ही इदयाकाशका भवन है । ६१ । आपका राज्यभोग  
 करना ही एकमात्र आनन्दका अनुभव करना है । फिर मायाका व्याघ्र जो आपने बगलाया ही सात्त्विक्य  
 वाल्मीकिके आश्रममे मेरा रक्षण देना ही होगा । सात्त्विकी मायाका ग्रहण जो आपने बगलाया ही मेरा  
 पुनर्ग्रहण कर मेरा होगा । ६२ ॥ ६३ ॥ सात्त्विकी मायाके साथ उद्योग जो आपने कहा, सो धरे साथ आपका

अधोऽध्यातर्गामग्रे वैकुण्ठं प्रणि नेष्यमि । प्रवेशत मगरे हि सच्चिदानन्दमंशके ॥६२॥  
 नमस्त्वं परित्यज्य निःशुक्लवर्णीयम् चूर्णां नम्या सैव मुक्तिं वागुदयाम्भवे ईमेता ॥६३॥  
 एवं ददन्त्या राम कृतं कर्म सुदृशम् नमस्कृत्य तत्रोद्यतं सौम्यं च दिवाय हि ॥६४॥  
 कर्तव्यमप्यकर्मस्य कर्माणि नमस्कृत्य किं नमः निर्गुणस्य नमः सच्चिदानन्दरूपिणः ॥६५॥  
 इत्येव त्वयोपदिष्टा मे श्रुता मज्जानपेक्षिता । अहं नम्या दिवायेव ज्ञानमुक्ता न संशयः ॥६६॥  
 इति रामायणं मयैव पञ्चमं मयैव दक्षिणम् । एतद्व्याख्यासूत्रं कथं नमस्कृत्य नमः ॥६७॥  
 श्लोकरत्नमयं यो वै कथयेद्वा विप्रान् हि । तत्रैव मुक्तः क्षणदेव भविष्यति नमोत्तमः ॥६८॥  
 देहगमायणं नाम तम यन्वक्षितं स्वया । नेच्छां कथितं केन न कोऽप्यग्रे वदिष्यति ॥६९॥  
 मम प्रीत्योपदिष्ट हि स्वयैवद्वयनन्द्य । इत्येव कोऽपि न जानाति ब्रह्मदानामराचरम् ॥७०॥  
 गुरुं गम्य सुदर्शनं स्वयं ज्ञानप्रकाशिनम् । देहगमायणं चैतच्छ्रुत्वा नानाकायदम् ॥७१॥  
 इति श्रीरामायणः प्रथमः प्रश्नः शेषः ॥७२॥  
 तस्याग्निनाग्निं चोदयः तस्या मज्जानपेक्षिता । विदेहानवे साधिय धन्याग्निं गजगामिनि ॥७३॥  
 चोदयः ज्ञानं मम ताने मेहज्जानपेक्षिता । विदेहानवे साधिय धन्याग्निं गजगामिनि ॥७४॥  
 मज्जानपेक्षिता श्लोकः त्वं श्रीरामा विदेहे । विदेहानवे साधिय धन्याग्निं गजगामिनि ॥७५॥  
 मज्जानपेक्षिता श्लोकः त्वं श्रीरामा विदेहे । विदेहानवे साधिय धन्याग्निं गजगामिनि ॥७६॥  
 कर्त्ता नतनु वै गुणं भविष्यति न संशयः । मज्जानपेक्षिता श्लोकः त्वं श्रीरामा विदेहे । विदेहानवे साधिय धन्याग्निं गजगामिनि ॥७७॥  
 नमोदेवतामार्गं हि मया ते मनुजैर्गताम् । देहगमायणं चैतच्छ्रुत्वा नानाकायदम् ॥७८॥

विहार करना है। उनके बाद आपने दूरयावशको महाकाशम भिया देवकी जो कहा है, यह ही आपका  
 २१-२२ ॥ अपने साथ वैकुण्ठ के कमल लीने होगा। इन स्वयंका परिभाषा करके फिर आपने विष्णुसुखस्यको  
 २३-२४ ॥ स्वयंका ही भविष्यत्काल में मरण कराने का उपाय है। २५-२६ ॥ स्वयंका ही उपाय है। २७-२८ ॥ स्वयंका ही उपाय है। २९-३० ॥ स्वयंका ही उपाय है। ३१-३२ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ३३-३४ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ३५-३६ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ३७-३८ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ३९-४० ॥ स्वयंका ही उपाय है। ४१-४२ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ४३-४४ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ४५-४६ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ४७-४८ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ४९-५० ॥ स्वयंका ही उपाय है। ५१-५२ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ५३-५४ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ५५-५६ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ५७-५८ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ५९-६० ॥ स्वयंका ही उपाय है। ६१-६२ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ६३-६४ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ६५-६६ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ६७-६८ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ६९-७० ॥ स्वयंका ही उपाय है। ७१-७२ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ७३-७४ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ७५-७६ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ७७-७८ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ७९-८० ॥ स्वयंका ही उपाय है। ८१-८२ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ८३-८४ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ८५-८६ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ८७-८८ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ८९-९० ॥ स्वयंका ही उपाय है। ९१-९२ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ९३-९४ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ९५-९६ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ९७-९८ ॥ स्वयंका ही उपाय है। ९९-१०० ॥ स्वयंका ही उपाय है।

इत्युक्त्वा राघवः सीतां पर्यङ्के मन्मथिहते । सुष्याप सीतया रात्रौ दामीमिर्वीजितः सुखम् ॥ ८२ ॥

इति श्रीमद्भक्तिकीर्तनाचार्यविरचिते श्रीमदानन्दरामायणे आनन्दरामायणे विष्णुसकाण्डे

देहरामायणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ १ ॥

### चतुर्थः सर्गः

( सीता के विविध अलङ्कारों का वर्णन )

धीरामदास जयस

चतुर्नाभ्यवशिष्टायां निशायां रघुनाथकम् । उद्वेगवन्तार्थं सप्राज्ञा निशायावहिः स्थिताः ॥ १ ॥

वन्दितो मागधाः पुनः नर्तकश्च नटादयः । वाद्ययामामुर्वाद्यादि ननुश्राव्यमोगणाः ॥ २ ॥

जगद्भक्तगीतानि स्तोत्राणि विविधानि च । प्राधानिकीं स्तुतिं श्रोतुः कलकण्ठैर्ननोरसैः ॥ ३ ॥

शिवेश्वर, पञ्चविम्बविनाशदशो दशम्बजा भगवती हि सरस्वती च

दशाष्टमोत्सवणा नव दिव्यदुर्गा देव्यः सुगन्तु नृपते तव सुप्रभातम् ॥ ४ ॥

भानुः शशी इक्ष्वाक्य गुरुशुकचन्द्रा गङ्गाः सकेतुरदिर्दिशिरादिनेयाः

जलादयः फल्गु, पुरुषोत्तमेन्द्रो, रुद्रः क्रोतु मन्त्र तव सुप्रभातम् ॥ ५ ॥

पृथ्वी उल ज्वरमरुतपुष्कराणि समद्रपोऽपि भुवनानि चतुर्दशैव ।

शैला वनानि मरुतः परितः पवित्रा गङ्गादयो विदधन्ता तव सुप्रभातम् ॥ ६ ॥

दिक्पद्मेनदग्विल दिशिभा दिगीशा नगाः सुपर्णभुजगा नगरीरुचश्च ।

पुष्पानि देवगदनानि विलानि दिव्याम्यन्यादृशं विदधन्ता तव सुप्रभातम् ॥ ७ ॥

वेदाः षडङ्गमहिमाः स्मृतयः पुराण काव्यं महागमपथो मुनयोऽपि दिव्याः ।

व्यासादयः परमकारुणिका ऋषयः गात्राणि वै विदधन्ता तव सुप्रभातम् ॥ ८ ॥

चंदानका निचाड सैन गुप्त बल्ला दिवा । यहू देहरामायण भुक्ति तथा मुक्ति दोनोंका फल देनेवाला है ॥ ८१ ॥

इत्यादि कहकर रागचरित्तो सोनाक भाष रत्नजाटन पलङ्कपर मा गय और दक्षिणी पना जलने लगीं । ८२ ॥

इति श्रीमद्भक्तिकीर्तनाचार्यविरचिते श्रीमदानन्दरामायणे आनन्दरामायणे विष्णुसकाण्डे देहरामायणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

आनन्दरामजी कहने लग्य — जब रात्र राहो रत्न बाकी रत्न जानो थी, तभी भावनाका जगानेके लिए बंदीबन्ध, मागध, मृत, नाथनवाली केपारं और नर आदि लोग रगिजलाते बाहर आकर बाजे बजाते थे और नर्तकों नाचना थी ॥ १ ॥ २ ॥ अन्य लोग मा मङ्गलगायन विविध प्रकारक स्तोत्र प उन्हा अपने कोमल कण्ठमे प्रान बालका स्तुतिगी किया करने व । वे कहन थे ॥ ३ ॥ हे नृपते ! समस्त विधनसमूहको नष्ट करनेमे निपुण विष्णुेश्वर ( गणेश ) दशरामजी भगवती पार्वती, सरस्वती, अग्निमानकी मूर्ति अष्टभैरव-गण, ती दिव्य दुर्गाएं तथा अगस्त्य देवतागण व सब जयका प्रभात मङ्गलमय करे ॥ ४ ॥ गुरु, चंद्रमा, मङ्गल, बुध, पुन शुक्र, शनि गङ्गा, वेद, विश्व तथा अतिरिक्त पुत्र देहादि देवता, अष्टा विष्णु और भद्रेश के सब आपने प्रभात मङ्गलमय करे ॥ ५ ॥ पृथ्वी उल आगे वयु तडाग, सप्त पर्वत, चतुर्दश भुवन, सैन्, वन और भुवनविष्णु गङ्गा आदि नदियां आपका प्रभात मङ्गलमय करे ॥ ६ ॥ समस्त दिक्पद ( दशों दिशाएं ), दिग्भज, विष्णु नाम, सुपर्ण, वरुणोना लन्ताएं पवित्र हवालय और निराल्दराएँ ये सब सर्वदा आपका प्रभात मङ्गलमय करे ॥ ७ ॥ षडङ्ग साहित्य चारों वेद, स्मृति, पुराण, काव्य, अष्टमे अष्टमे गताथ साहाय्य आदि ग्रन्थ, व्यास आदि दिव्य मुनिगण तथा ऋषियोंक गात्र आपका प्रभात मङ्गलमय करे ॥ ८ ॥

इति वदित्तैः सूर्यः स्तोत्रैर्भागादभिः स्तुतः । नानाप्रभैर्भुजैश्च सुवीर्यैः । पञ्चस्थितैः ॥ ९ ॥  
 स्तुतो चादित्रयिनैर्दर्शनैश्चासम्भवेनपि । सुप्रबुद्धो बभूवाय गमचन्द्रः सर्वतया ॥ १० ॥  
 आदौ प्रबुद्धा मा भीमा पञ्चबुद्धो गच्छतः । रामः सुरगणनाथान् सन्तर मारुं गुरुम् ॥ ११ ॥  
 चित्तमग्निं कामधेनुं चित्तवामास चैवपि । ततः सोऽपि स दूर्गां गतां च तीर्थं गच्छन् ॥ १२ ॥  
 चित्तवामास कौसल्यां गुरुपत्नीं स्वमन्त्रम् । ततो नन्वा गमचन्द्रं दित्यवन्तं स्थिता ॥ १३ ॥  
 आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शीघ्रविधिं कमान् । दंष्ट्रुद्वि चक्रागश्च रामचन्द्रः सविस्तरम् ॥ १४ ॥  
 आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शीघ्रविधिं कमान् । हस्तद्वयेऽङ्गैश्च कृत्वा देवार्चनं गृहे ॥ १५ ॥  
 ददौ दानान्यनेकानि मातृगणैर्भ्यो यथाक्रमम् । एतन्मित्रचतुरे स्नात्वा सोऽपि द्वयोः प्रपूज्य च ॥ १६ ॥  
 देवान्तरर्नान्द्रिजान्श्च शश्वर्तन्या यथाक्रमम् । ततो नन्वा गमचन्द्रं संपाद्यैः यन्ननः स्थिता ॥ १७ ॥  
 अथ रामो वसिष्ठस्य मुवात्पौराणिको कथाम् । सातथा मातृभिर्युक्तो बहुभिश्च सहजनेः ॥ १८ ॥  
 मन्त्रकं श्रुत्वा कचित्तेन पूजयामास तं गुरुम् । ततो नन्वा गुरुं रामो गुरुपत्नीं च मानम् ॥ १९ ॥  
 सर्वां मारुश्च विशेषं पट्टितान् वैदिकान् गुर्नान् । योगनिष्ठान् योगिणान् विप्रान् ज्योतिर्विद्वन्धरा ॥ २० ॥  
 मामां रक्षांस्तार्किकांश्च मन्त्रशास्त्रविशारदान् । धर्मशास्त्रविद्वन्श्च ज्ञानान्यान् वयोविकान् ॥ २१ ॥  
 पूजयामास श्रीगमः सातथा प्रणामान् नृन् । अथ साता द्वेनपात्रे पूजोपकरणैश्च सा ॥ २२ ॥  
 गृहीत्वा स्वमूर्तीभिश्च नन्वा सुभिमर्षयत् । न तोययत् सः संपूज्य पञ्चार्चनैरतिपिहितैः ॥ २३ ॥  
 विविधैः पायभासैश्च सा तां धेनुमर्षयत् । ततः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रार्थयान्न ग जानकी ॥ २४ ॥  
 कामधेनो नमस्तुभ्यं पञ्चान्तादीनि वेगतः । दिव्यान्नानि भूतुरभ्यो गार्वादिभ्यस्त्वमर्षय ॥ २५ ॥  
 इति सा प्रार्थनां कृत्वा कामधेनोस्तु जानकी । तद्वयो रुक्मबाजाणि स्थापयामास कोटिदा ॥ २६ ॥

इस प्रकार बहुतसे बन्दीजन, भयार्थ, मृत आदि तथा पाण्डु परिक्षिप्तक मृदु वचनो द्वारा जगद्ये जानवर संताके साथ-साथ रामचन्द्रजी साकर उठ जात थे ॥ ९ ॥ १० ॥ चन्द्र सत्ताजी उठती, फिर रामचन्द्रजी जागते थे । साकर उठनेपर रामचन्द्रजी देवताओंका, मुनियोंका, पितृका, मनाको मरु, गृह ( वसिष्ठ ), चित्ता-मण और कामधेनुकी मन ही मन स्मरण करने लगे । उन्होंने सातजा भा दूर्गा, गङ्गा, सरस्वती, गङ्गा-मन्त्र ( दशरथजी ) अपनी माता गृहपति प्रदत्ता और अपनी मास कोनन्वा आदिका सबरे सों उठकर स्मरण किया करती थीं । इसके अनन्तर नमस्तुभ्यं कामचन्द्रजीकी प्रणाम करके वे अपन नित्यकर्मम लग जता थी ॥ ११-१३ ॥ उधर रामजी भी प्रोवाह कृत्वा स निष्ठु हाकर अच्छा तरह दातोन करने थे । १४ । तदनन्तर रामजी पर नाकर गानादि निष्कृतिम करके धरपर पीट जान और अग्निहावविधिक साथ देवताओंका पूजन करते थे ॥ १५ ॥ तब बह्मजीके राज इन थे । इसी बीच माताजी भी स्नान करके द्वापूजनसे निवृत्त होकर देवता अग्नि, ब्राह्मणों और कोमन्वा आदि साधुओंको क्रमशः प्रणाम करके पञ्चान् रामचन्द्रजीकी परचन्दना करती और उनके पास जा बैठती थीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर रामचन्द्रजी गृह वसिष्ठके मुखसे पुराणोंकी कथा सुनने थे । उन समय सदैव माताजी, भाई तथा मित्रमण्डल रामचन्द्रजीके साथ ही रहता था । १८ ॥ तब सावधानीके साथ कथा सुनकर गम गुरुवसिष्ठकी पूजा करते थे । फिर गृह, गुरुपत्नी तथा अपनी माताओंका प्रणाम करके माताओं, ब्राह्मणों, पंडितों, वैदिकों, मुनियों, जलनिष्ठ तथा तप निष्ठ, ब्राह्मणों, ज्योतिषियों सांसारिका, नाविका, मन्त्रशास्त्रम निपुण विद्वाना और वयोवृद्ध पञ्चशास्त्रियोंकी साताके साथ-साथ रामचन्द्रजी विविध पूजा करने थे । इनके पञ्चान् साताजी एक लवणके पात्रम पूजनको सामग्रियों लेकर । १९-२० ॥ स्त्रियोंके साथ सुरभा ( कामधेनु ) की पूजा करती थीं और उनके पक्षवान तथा विषय रातेसे तैयार किये गये हावप्यात्रोंको खिलाकर उसे प्रसन्न करती थीं । फिर प्रदक्षिणा करके इस प्रकार कामधेनुकी स्तुति करती हुई कहती थीं—॥ २३ ॥ २४ ॥ हे कामधेनो ! आपकी

दिव्याग्नेः परिपूर्णानि चक्रा सुगमिस्त्वरे ।

ततः शीघ्रं हेमवार्तशृङ्गाभानि पृथगजवान् ॥

परिवेषणार्थं सन्तुष्टा ययौ नूपुरगजिनः ॥२७॥

एतस्मिन्नन्तरे रामधोपाहारार्थमादगतु । विप्रनिष्ठान्मन्त्रिणश्च ममहूर महेयशः ॥२८॥

उपाविशद्भोजनस्य शालायां तैः समन्वितः । रुद्रमण्डले तु मर्ये ते तैमिरे देवमा. स्थिता. ॥२९॥

पीतकीशेषरुक्माभेपिना रुक्ममण्डनः । पूजिता गदवेणापि गन्धमन्त्रादिभिर्बुद्धा ॥३०॥

सुभी रुक्मरूपिण्यसु रुक्मपात्राणि च पृथक् रंभायन्त्रिचित्रायां भूमौ न्यस्तानि तनपुरः । ३१॥

हेमोद्भवानि पानीयपात्राण्यपि पृथक् पृथक् । सोमपात्रानि चित्राणि रत्नदीपयुक्तानि च । ३२॥

स्थापयामासुः श्रीरामवन्द्युपन्यस्वगान्विताः । एतस्मिन्नन्तरे सर्वैः श्रुतो मनुजनिस्वनः ॥३३॥

नूपुराणां किकिर्णानां ककणानां मनोरमः । रत्नवीर्यकमालानां धर्षणादुन्धितो महान् । ३४॥

तं मनुलस्वनं श्रुत्वा कम्पायं श्रुते स्वनः । इति मदिग्धचिन्ताम्ये व्यग्रनेत्रैस्तेस्ततः । ३५॥

अपश्यन् आकुणाद्याभतावर्णानां न्यलोकयन् । तडिभूतोपमां दिव्यां शनकोटिरविमयाम् ॥३६॥

धर्म्याशुलिषु सर्वत्र पादयोर्विविधानि च । मन्त्र्यकच्छपनकादिचिह्नान्युज्ज्वलानि च ॥३७॥

ददशु रत्ननिष्ठाणि हैमाभ्यामरत्नानि ते । तत्र ऊर्ध्वं किकिर्णानां पादपोरूपाणि च । ३८॥

शूलला विविधा रम्यास्तथा गुर्जरदेशजाः । नानानूपुरमेवाय ककणान्युज्ज्वलानि च । ३९॥

रत्नककणगर्भाणि दिव्यरुक्मकोट्रवानि च । मदृशुप्ते हि मीतावा मणिकयचित्रितानि च ॥४०॥

तस्याः कट्यां ददशुप्ते पीतकीशेषमुज्ज्वलम् । सुक्तजालरुक्मननुपुष्पराजिभिर्जितम् । ४१॥

नवीनं गतिर्वाचन्यान्वहतमंजुलनिःस्यतम् । आदर्शैर्विधर्मयुक्तं गुणवामोदमोदितम् ॥४२॥

बभ्रौपरि ददशुप्ते रशनां रुक्मनन्तुनाम् । रत्नकङ्कुगर्भाभिः किकिरीर्भावाजिताम् ॥४३॥

नमस्कार है कृपा करके आप साधु-ब्राह्मणोंके लिए बरकरार तथा दिव्य लला प्रबन्ध कर दे । ज नवीजी इस प्रकार प्रार्थना करत कराहा मुद्रणक पात्र कामधे, क पास भोगवाकर रखवा दती थी और कामधेनु उन सबका विविध प्रकारके पकवानोस भर दिया करती थी । उहो हेमपात्रोभसे सब परार्थ ले लेकर युवतियों नूपुरके शब्दसे उस रत्नमण्डपका शब्दावमान कन्ती हुई अभागिनोका परीमती थी । २४-२७ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजी अपने साथ हजारो ब्राह्मणो तथा हित-मित्रोको सादर बुलाकर पाकशालासे मुद्रणक पौडापर बैठ-समय पाल कोणय रहत तथा मुद्रणसे विभूषित विप्रमण एवं मणिमण्डपका रामचन्द्रजी

अनेक उपचारोस पूजन करत थे ॥ २८-३० ॥ वही मुद्रणको निपाहयोपर घडोमें जल भर भरकर रखी था । पास ही जल धनके लिए छ ट-छोट बहुतसे मुद्रणक बनत रखे हुए थे । उनको भटपट उठा उठाकर रामचन्द्रजीकी आदृत्यपूर्ण लोकर उनके सामने रख दिया । इतनाम सबको एक मनहूर ध्वनि सुनाई दी । जो नूपुर, किकिणी और ककणके मयथसे निकला हुआ शब्द मानूम पड़ता था ॥ ३१-३४ ॥ उस मञ्जुल मल्लका धुनकर यह कैसा शब्द सुनाई दे रहा है । इस तरह सोचते हुए व्यग्र नेत्रासे लोग उधर-उधर देखने लगें ॥ ३५ ॥ ३६ . पृष्ठ डेर बाइ ललाय साताजोको आते देखा । या अनेक विभूत्युज्ज्व एवं सेकहो सूयेकी भाँति प्रकाशमयी थी । जिनके पाशोंको अगुनियोंसे मञ्जुली-कमल आदिके आकारवाने देखाव्यमान आभूषण परे थे ॥ ३७ ॥ रत्नोका चमकसे चित्र विचित्र स्वर्णके आभूषण सुर भित हो रहे थे । किकिणीके ऊपर दोनो पैरोसे नूपुर थे । उससे छार विविध प्रकारका सुन्दर मेललागे पड़ा थी । अनेक सरदक नूपुर और नाना प्रकारके उज्ज्वल ककण हाथोंसे पड़ हुए थे । सीताजीकी कमरन एक रेशमी बस्त्र था जिसमे मातिगाकी झालर लगे हुई थी और मुद्रणके सारे म फूल-पत्तीकी चित्रकारी बनो हुई थी ॥ ३८-४१ ॥ गतिकी चंचलतापन्न उससेसे एक मधुर ध्वनि निकल रही थी । उनको साड़ीमें जगह जगह मयूर, सिंह, वृष,



कैटिमिहृष्यान्नर्गाचित्रादिचित्रनाम् । पान्थकहर्मिभान्कृष्णमाण्डप्रमण्डिताम् ॥४४॥  
 तस ऊर्ध्वं ददृशुस्ते पदकान्युज्ज्वलानि हि । रत्नकलापमान्येषु हैनान्गमणानि च ॥४५॥  
 मङ्गाचनमृगलानि काचद्रुमयुतानि च । नान्यस्तन्निविचित्राणि मुकुटमहिमान्यनि ॥४६॥  
 नानामाणिक्यमुक्तानि दीप्तिमन्पुञ्जस्त विहि तन् ददृशुस्ते दिग्गजान् रत्नमहापद्मविचित्रिनाम् ॥४७॥  
 तपस्वन्नुतान्हातामुक्ताहारान् मृगलान् । मुनिनाम्न ह्वयमजस्रं यवमाला विचित्रिनाः ॥४८॥  
 पुष्पमालाः कांचनजः मारिका रत्नमण्डिताः । रुक्ममुतान्त्रिका माला हेमजात्रिकलाञ्जिताः ॥४९॥  
 प्रवालमणिमुक्तामम्बिथिनाश्चित्रविचित्राः । चतुर्वर्गकलिका मरुता हेममालिकाः ॥५०॥  
 कण्ठे मंगलवृक्षं च पेटिका रत्नभूषिता । कांचनानां मुखमण्डलं मणोनां विविधानि च ॥५१॥  
 गुच्छैः कण्ठभूषणानि मुक्तामुच्छुपुनान्यपि ददृशुस्ते हि यानायाः कण्ठे हेमन्यनेकशः ॥५२॥  
 रत्ननामदृशान्येव ग्रीवायां भूषणान्यपि । प्रवालमणिमाणिक्यरचिगन्धपुञ्जकानि च ॥५३॥

मुक्तागुच्छान् कांचगुच्छान् प्राणगुच्छैर्विवित्रिनाम् ।

प्रवालमणिगुच्छाश्च

रत्नपुष्पादिगुक्तितान् ॥५४॥

ततो ददृशुस्ते सर्वे धातुलङ्घकचुकीम् । हेमन्तुमवा चित्रा मुक्तामाणिक्यगुक्तिताम् ॥५५॥  
 आदर्शविवसमुक्तां पुष्पगार्ज्जिवर्गजनम् । मयूरमुकटशेषं लवणैस्तनुनिर्मितैः ॥५६॥  
 चित्रिनां श्रमपमणाद्रौ मलयनां दृढं नवी । ततो ददृशुर्भूजयोः केयुरे रत्नमण्डिते ॥५७॥  
 वज्रकंकणसादृश्ये हेममाणिक्यनिर्मिते । रत्नविशचित्राश्च धृजयोः पेटिकाः शुभाः ॥५८॥  
 हेमदन्तुमवर्तवमानगुच्छैः सुमण्डिताः । प्रवालमणिमुक्तानां नानागुच्छैरुक्ता अपि ॥५९॥  
 तदधः करयोः सर्वे ददृशुर्भूषणानि ते । रत्नमाणिक्यमुक्तानिश्चित्रिणी हेममम्बरी ॥६०॥  
 करचूडी दीप्तिमती हेमपुष्पादिचित्रिणी । काचकंकणधरणी चन्द्रवर्षावर्मा निषा ॥६१॥

व्याघ्र और मृग आदिके चित्र बने थे । पान्थ, कृष्ण, हरे, नैऋत और काले मणि स्वाकस्थानपर लगे हुए थे ॥ ४२-४४ ॥ उनके ऊपर लामान देता कि भस्मिभालके आभूषण पड़े हैं । कहीं सोनकी तनीरें हैं, कहीं कांचन काज खरा है और कहीं तरहरतहक रत्नोंकी सजावट है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कई तरहक मणियोंक आभूषण देखायमान हो रहे हैं । नी रत्नीय जडा हुआ हार है । मातियाका माला है । सोनकी जंजीर है । मातमाला, गुच्छ एव रत्नका मातम पड़ा हुआ है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ मृगोंकी माला, रुक्मकी माला, रुक्म और गुञ्जाका मिश्रित माला, मुक्तेनमिन प्राक्मका माला, पक्षाल तथा अन्यान्य मणियोंसे मिश्रित माला चपाकी कर्णिक मक्षण बने हुई सुवर्णके भाजा, पलेकी मंगलसूत्र, रत्न-जटित पेटो, मुखर्ष तथा नूरा मणियोंके बने हुए गुच्छ और मातियोंक मुक्ताको आगेन साताके गलेमें देता ॥ ४९-५२ ॥ डीक कण्ठक ममान हास लका धातक आभूषण भी दाख पड़ते थे । उनमें भी प्रवाल और मणि माणिक्य आदि लगे थे । मातियोंके गुच्छे कांचके गुच्छ और रत्नके गुच्छोंसे वे रत्न-विरंगे मालूम होते थे । इसके अन्तर लामान सोनजकी मोली देता । वह भी सुवर्णके तारामे बनी, मुक्ता-मणि-माणिक्य आदिसे सजा और कलास गुम्फन था जिसमें मयूर और तोनोंक चित्र बन थे, ऐसे वृक्षोंसे चित्रित एवं चन्द्रविन्दुओंसे भोगी तथा अगम चिपटा हुई बड़े सोन की । इसके बाहर सातक रत्नमण्डित का गुम्फनपर लामोंकी लट्ट पड़े ॥ ५३-५७ ॥ यह भी विचित्र प्रकारके रत्नोंसे जटित थी और उनकी भाष से चित्र-विचित्र मालूम दनी थी । फिर जिसमें जरीके काम किये हुए थे सोनका उस कमन्टिकापर लामोंकी लट्ट पड़ी ॥ ५८ ॥ उसमें भी सुवर्णके तारोंके बड़े-बड़े गुच्छ लटक रहे थे । जगह-जगहपर प्रवालमणि-मुक्ता आदिकोंके गुच्छे लटक दाख रहे थे ॥ ५९ ॥ फिर दाया हाथमें भी और आभूषण थे उन्हें लगेने देता । वे भी रत्न-माणिक्य और भीती आदिसे चित्रित सुवर्णके बने थे ॥ ६० ॥ हत्योके दोनों कंकण सुवर्णके पुष्पसे सजे हुए

तदुक्तं यः ककुपानि हेमजानि घनानि च । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिधित्रिजान्मुञ्चन्तलात्रि च ॥६३॥  
 प्ररालम्बे मुक्तानां कण्ठावाशिचित्रेभान् । कर्णयोः सारिके दिव्ये ह्यर्वायो रत्नमण्डिते ॥६४॥  
 तदूर्ध्वं ककुपान्येव पुष्पवल्ग्वकिनानि हि । दन्ताज्जुषमार्दने रत्नहेमोज्ज्वलानि च ॥६५॥  
 अमुलीषु ददृशुस्ते मुद्रिका रुक्मनिर्मिताः । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिर्नीलपारकतैरपि ॥६६॥  
 प्ररालचन्द्रकूर्तैश्च सूक्तैर्विचित्रैः । नानापुष्पोपमा दिव्याः प्रतिपर्वयमाभिराः ॥६७॥  
 ततो ददृशुः सीताया रम्यं जण्डेतिमोज्ज्वलम् । दिव्यं मयूरं चित्रं च वररुक्मचिनिर्मितम् । ६७ ।  
 मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्विभक्तैः । सुमण्डितम् । लविर्भौक्तिकादीनां वरगुच्छैः सुवेष्टितम् । ६८ ॥  
 ततो ददृशुः सीतायाः कर्णयोर्मणानि ते । मकरध्वजमारुह्ये तादृके रत्नचित्रिते ॥६९॥  
 मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्गुम्फिते सोज्ज्वले वरे । रत्नपुष्पादिभिश्चित्रैश्चित्रिते रश्मिमास्वरे । ७० ॥  
 ततो भ्रमरिके दिव्ये रुक्मरत्नविचित्रिते । मुक्ताभिर्गुम्फिते रम्ये हेमपुष्पाणि च तथा ॥७१॥  
 कर्णयोः मृत्तलाश्चित्रा ददृशु रुक्मनिर्मिताः । मुक्तागुच्छैर्गुम्फिताश्च रत्नमाणिक्यमण्डिताः ॥७२॥  
 आकर्णायामां च सीमन्तपर्वन्त मालयाश्रयोः । हार्त्तदृक्ममालानि माणिक्यमण्डितानि हि ॥७३॥  
 मुक्तागुच्छैर्गुम्फितानि वैदूर्यचित्रितान्यपि । तनून्तदूर्ध्वं सीताया ददृशुः शिरसि द्विजाः ॥७४॥  
 सीमन्तरोचरे याम्ये केतोषु सञ्चिरात्करो । रुक्मज्जो रत्नवैदूर्यमणिमुक्ताविचित्रितौ ॥७५॥  
 नीलकाशपीरकूर्तैश्च निद्रमैरतिशोभिनी । चन्द्रयूगाविव स्वीयभामा दारयतो दिशः । ७६ ॥  
 निद्रिले तिलक रत्नमणिमुक्ताविभजितम् । दैवं दिव्यमुज्ज्वलं च कोटिदूर्ध्वमवधम् ॥७७॥  
 ततो ददृशुः सीतया मुक्तहार्महेमोज्ज्वलम् । नागरत्नविचित्रं च सर्वाभूतिनकावधि । ७८ ॥  
 वृद्धावणि च ददृशुस्ते जनकेन समर्पितम् । नानारत्नविचित्रं च मुक्तागुच्छविराजितम् ॥७९॥

ये । कौशकी बनी हुई बुद्धिगोक मध्यम वे सूर्य और चन्द्रमाकी नाई म लूम पड़ते थे ॥ ६१ ॥ उनके ऊपर-  
 नीच सुवर्णके माट म ट कड़ पड़े थे , वे भी नाना प्रकारके रत्नसे विभूषण दाहि घारण कर रहे थे ॥ ६२ ॥  
 उन्होंने ऊपर प्ररालमणि मुक्त आदि रत्नोत्त एक-एक दिव्य सारिकों बना थी ॥ ६३ ॥ उनके भी ऊपर  
 रत्नविभिन पूनी और लताकासे काटत कंकण पड़े थे ॥ ६४ ॥ उन्मलिमोद सुवर्णकी बनी रत्न, माणिक्य,  
 मीलम, मरकत मीष आदिसे काटित अनेक अंशु देवी थी । वे भी प्रवाल, चन्द्रलान्द और सूर्यकान्त आदि  
 रत्नकासे विचित्र म नुम हुआ थी ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर सब लगान सीताकी नासाभणिकी देखा,  
 जिससे एक दिव्य स्वर्णमयूर बना हुआ था । वह भी नाना प्रकारके मणियों म अलंकृत था ॥ ६७ ॥ उससे भी  
 मणि-माणिक्य और माणिक्यक भूषण लटक रहे थे ॥ ६८ ॥ इसके बाद ज्योति सीताके कर्णभूषणोंको देखा । जिनसे  
 मकरध्वजके सदृश विविध रत्नोंसे चरित शुभके थे । उनसे भी मणि-माणिक्य और वातिदोष लुब्धे लटक  
 रहे थे । रत्ननिर्मित पुष्पोस वे मूरके समान ददृश्यमान हू रहे थे । ६९ ॥ ७० ॥ फिर ज्योति सीताके कानोंसे  
 पड़ी दो भ्रमरिकामोको देखा । वे भी दूर्ध्वर्णकी बनी तथा रत्नोक्त जड़वसे विचित्र विचित्र मनुम होती थीं  
 ॥ ७१ ॥ फिर उन्होंने सीताकी उस रत्नगुच्छावलिदेखा, वो सुवर्णकी बनी तथा रत्नजटित थी और उसमें  
 भी माणिक्यक गुच्छे लटक रहे थे ॥ ७२ ॥ कानसे लेकर सीमन्त पर्वन्त ललाटके जगल-जगल स्वर्ण मणिपत्रके  
 बाधूषण हारके समान मालूम पड़त थे ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर सबन सीताके दन्तककी और देखा, जहाँ केशसे  
 सूर्य और चन्द्रमा दिखार पड़ने थे । वे भी सुवर्ण-रत्न-वैदूर्यमणि-मुक्तासे विचित्र थे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ नीलम कतमार  
 कोशदिक् मणिशाले वे कतिवय जामित हो रहे थे , वे अपनी अनुपम कानिसे हमरे दूर्ध्व-चन्द्रमाके समान दसों  
 दिशाओंकी प्रकाशित कर रहे थे ॥ ७६ ॥ ललाटम रत्नो और मणि मुक्ताओस बना हुआ तिलक था । वह भी  
 सुवर्णका बना था और कोटि सुवर्ण समान उसका प्रकाश था ॥ ७७ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने सीताके सीमन्तमे  
 प्रतिष्ठित सीतामात्र एक बुद्धामणि देखा, जो वेणीसे लेकर तिलक पर्वन्त अपनी छटा दिख रहा था ॥ ७८ ॥

ततो ददशुः शिरसि मुक्ताजालानि भूसुराः । हेमस्ततन्तुमुफितानि रत्नपुष्पसुतान्यपि ॥८०॥  
 मणिर्वैद्यकार्श्वीरविद्रुमैश्चित्रितानि हि । तदूर्ध्वं पुष्पजालानि सुगन्धीनि व्यलोकयन् ॥८१॥  
 ततो वेण्यां भूषणानि ददृशुस्ते नराणि हि । नानावभूषणमान्येव मणिव्यचित्रितानि हि ॥८२॥  
 पल्लवांतरवर्तीन्यतिदीप्तयुज्ज्वलानि च । हेमस्तन्तुमयान् गुच्छान् मुक्ताहारविमिश्रितान् ॥८३॥  
 लम्बमानान् ददृशुस्ते मणिमाणिक्यसंयुतान् । वेण्यग्रेमस्थितान् रम्यान् पुष्पापाडममन्वितान् ॥८४॥  
 एवं सीतां ददृशुस्ते श्रमन्त्यस्तविभूषणाम् । सर्वालङ्काररहितां तां द्रष्टुं कोऽपि न क्षमः ॥८५॥  
 दिव्यालंकारस्नानां प्रभया हतलोचनाः । वामहस्तेन पात्रं च दत्वा दक्षिणसंकरे ॥८६॥  
 दधानां पद्मचरणां रत्नोत्पलकरां वराम् । पद्मास्यां पद्मपत्रक्षीं पद्मगर्भस्वरूपिणीम् ॥८७॥  
 दिव्यकर्पूरगन्धैश्च चन्दनैरपि चर्चिताम् । स्फुरन्मजीरचरणां दिव्यकंकणमण्डिताम् ॥८८॥  
 स्वपदालक्तवर्णेन गतिं दर्शयतीं निजाम् । रत्नागदधरां सीतां ददृशुस्ते द्विबाहवः ॥८९॥  
 गजेन्द्रगमनां रम्यां दिव्यपुष्पैः सुशोभिताम् । दिव्यमदारकुसुममालाभिश्च सुशोभिताम् ॥९०॥  
 कस्तूरीकृततिलकां कुंकुमेन सुशोभिताम् । हरिद्रया कज्जलाद्यर्चमण्डितां च स्मिन्नाननाम् ॥९१॥  
 इति दृष्ट्वा जानकीं तेऽभूवन् वित्रोपमास्तदा । आत्मानं न विदुः सर्वे सीतापौर्णव्यविमिताः ॥९२॥

इति श्रीपातकोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे

सीताञ्जकारवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥



इसके अनन्तर उन राजाओंने शिरपर मुशोभित मोतियोंको देखा, जो मुवर्णके तारमें गुंथे थे और उनके बीच-बीचमें रत्ननिर्मित पुष्प पत्रे हुए थे । ७९ ॥ ८० ॥ वे भी मणि वैद्य कार्श्वीर-विद्रुम आदिस चित्रित थे । उसके बाद उनके ऊपर लगे हुए सुगन्धित फूलोंको देखा ॥ ८१ ॥ तदनन्तर वेणीमें लगे हुए सुन्दर आभूषणोंके ऊपर लगे हुए अतिशय दीप्तिमान् हो रहे हुए सुवर्णके तारोंसे बने गुच्छ मातियोंके हारसे मिले तथा मणि-माणिक्यसंयुक्त थे । वे वेणोंके अवभागमें लटक थे और उनमें नाना प्रकारके फूल गुंथे हुए थे ॥ ८२ ॥ ८४ ॥ सीताने बोलके इतने बहुतसे आभूषणोंको निकाल दिया था । फिर भी सब प्रकारके अलङ्कारीको धारण किये हुएके सहस्र देखनेवाली सीताको लोगोंने देखा नहीं, किन्तु कोई भी अच्छा तरह नहीं देख सका ॥ ८५ ॥ क्योंकि उन अलंकारोंके प्रभाके आगे लगती दृष्टि ही नहीं ठहरती थी । सीताके धारें हाथमें एक पाद पा और दाहिने हाथमें समझा था ॥ ८६ ॥ उनमें चरण कमलसराखे थे । रत्नोंसे बने हुए कमलकी नाई सीताके हाथ थे । कमलक समान मुख, पद्मपत्रके समान आँखें तथा करलीके लम्बेके मोहरी भागके समान कोमल स्वरूप था । दिव्य कर्पूर तथा चन्दनसे उनका समस्त शरीर चर्चित था । समझम करता हुआ मंजीर पाँवोंमें था और दिव्य कंकण सीताके पाँवोंमें पड़े थे । ८७ ॥ ८८ ॥ रत्नवर्णके चरणोंसे वे अपनी मन्द गति दिखा रही थी । रत्ननिर्मित विजायड हाथमें पड़े थे । इस प्रकारकी सीताको लोगोंने देखा ॥ ८९ ॥ गजेन्द्रके समान उसकी मन्द गति थी । दिव्य पुष्पोंसे मुशोभित तथा दिव्य मंदार चित्रित मालाओंसे अलंकृत होकर करतूरोंका तिलक लगाये हुए थी, उनकी आँखोंमें काजल लगा था और वे मन्द-मन्द मसका रही थीं । इस प्रकारकी सीताको देखकर देखनेवाले चित्रलिखित जैसे हो गये और उनके सौन्दर्यसे विस्मित होकर वे सब अपने आपको भूल गये । ९०-९२ ॥ इति श्रीपातकोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः  
( रामसीताका जलविहार )

श्रीरामदास उवाच

अथ सीता क्षणेनैव चकार पश्विषणम् । देमवात्रेण मर्षेण पक्षाभिविधिर्धर्मदा ॥ १ ॥  
कापधेनुद्वैतैश्च मण्डकान् पूर्णपूतितान् । वटकान् फेनिकांश्चापि पायमान्युज्ज्वलानि च ॥ २ ॥  
पण्डकान् लङ्दुकांश्च कृष्णान्दण्डकान्स्तथा । मुष्टपुनन्दुकुतान् दारिणीं धृतं मधु ॥ ३ ॥  
पृथक्कान्तद्रोणेषु जानकी पर्यवेपयन् । शर्कराः क्षेतर्णाश्च नदीं गण्डशर्कराः ॥ ४ ॥  
मणिचयुपचारैश्च संभूतं तक्रमुत्तमम् । धृतपाचितशाकाश्च क्षुद्रक्षुद्रा कविप्रदाः ॥ ५ ॥  
तिलवस्मिन्नश्चटकानार्द्रकं नीजपूरकम् । आज्ञादीनां रमांश्चापि रमादीनि कलान्यपि ॥ ६ ॥  
एवमादीन्यनेकानि चोपयनि विविधानि च । तथा मेढानि पेयानि जननी पर्यवेपयन् ॥ ७ ॥  
वतो रामः महन्मित्रैः कथां कुर्वन् सुमेन मः । अकरोदुपहारं च कणशुद्धिं विधाय सः ॥ ८ ॥  
सर्वेषां निजहस्तेन ददौ तावुलमुत्तमम् । स्वयं भुक्त्वाऽथ तावुलं वापायि पश्विषणमः ॥ ९ ॥  
बद्ध्वा वस्त्राणि सर्वाणि दृष्ट्वादर्शं निजं मुत्तम् । अकथं शिविकां दिव्यां मुक्तागुच्छविगडितम् ॥ १० ॥  
हैमी रत्नादिभिश्चित्रां ययी निजगृहाद्वदिः । चन्दुभिः सचिवैर्गिरैर्मर्म्भिः सर्वत्र देशितः ॥ ११ ॥  
स्तुतो वन्दिजनैः सर्वैर्ययी स जानकीगृहम् । तत्र नन्वाऽथ कौमल्यां तथा मानयथाक्रमम् ॥ १२ ॥  
आशीर्षितोऽतिसन्नाभिर्ययी रामः समां वगम् । तत्र विहामने स्थित्वा स त्रिभिर्नक्षत्रैर्गिरादिभिः ॥ १३ ॥  
राजकार्याणि सर्वाणि चकार नीतिमतरः । शृङ्गाम राज्यं धर्मेण बुद्धिमाध्याकलोचनः ॥ १४ ॥  
आर्क्षन्वा स्थितिं सर्वं स्वराज्यस्य च सर्वथा । शृङ्गाम राज्यं धर्मेण गणयो दीपलोचनः ॥ १५ ॥  
अथ सीतोपहारं स्वसर्गाभियोधिलादिभिः । देवगणां कामिनीभिः स्वसृष्टिआकरोन्मुत्तम् ॥ १६ ॥  
कणशुद्धिं विधायैव भुक्त्वा तावुलमुत्तमम् । परिधाय हविहर्म्यं तथा रत्नां तु कञ्चुकांश्च ॥ १७ ॥

श्रीरामदासने कहा—हे मित्र ! इनके अन्तर सन्तान क्षण भरमें सबके अथ रत्न हुए सुवर्णके पात्रोंमें विविध प्रकारके पक्वान् परोसे । वे पक्वान् काष्ठ, मुक्त, दान, लवण, निषे ह्वा थे । उनमें मण्डक, पूतनपूत, वटन, फेन, दण्डका बनी सार, क्षारि, पण्ड, लङ्, कुम्भ, पण्ड, निद्रा, अहो, दूध घो, गह्व, अदिकोका जानकी ने ने अत्यन्त प्र स्वर्णनिमित्त पार्श्वोंमें पराया ॥ १-८ ॥ मर्षेण मकर, लाज मकर, जीरा मिने आदि समाला डाडकर बना हुआ राज्या, धर्म छोड़ हुए ताना प्रकारके शाक, चटनी तिलकी बना हुआ टिकिया, मुक्ता वाजपूरक, अमक रस, कम आर्द्रक फल, रमा प्रकार नूमने लायक तरह-तरहके अन्धार, चान्द लवक किनना हुआ तरहकी चटनी और पनक लायक तन्मई आदि वस्तुओंको मानाजाने पराया ॥ ४-७ ॥ इसकी प्रद रानवद्वतान मित्रोंके साथ बंधक-जुत हुए भावनेकिया और हाथ बाकर सबका आगे हाथसे पान दिया । फिर स्वयं भी पान खाया और कपड़े बदले ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके बाद सब प्रकारके अरुण जन्म बांधकर आश्वमेध मुख प्रका और मानिलोके पुच्छामे सजाई हुई पालकोपर सवार हुंकर घासे बाहुर निकले । बन्धव, मन्त्र, मित्र तथा दूत, वे सब चरी औरसे रामचन्द्रजीको घेरे हुए थे ॥ १० ॥ ११ ॥ वदोजन गन्धध भगवान्की स्तुति करते चलते थे । इस तरह मन्दकी अपने साथ लिये हुए वे मानाके भवनमें जा पहुँचे, वहाँ राजा कौमल्या तथा अन्य मन्त्रियोंको आगम करके उनसे आशीर्वाद लिय और उन मानाका भा साज लिय हुए सभामवनमें पहुँच । वहाँ सन्निधये तथा लक्ष्मणदिक आताओंके साथ मिहामनगर से ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर राज्यमन्त्रियों समस्त कार्यको खूब अच्छी तरह सोचविचारकर किया । रामचन्द्रजी मुत्तचरो द्वारा आने राजाके सब सनाचार मान्य करके धर्मपूर्वक शासन करते थे ॥ १४ ॥ उपर सीताजीने भी अपनी देरराजियो बहिनो तथा सखियोंके साथ भोजन किया, हाथ धोया और ताम्बूलका उत्तम बोझ खाया । हर रंगकी साड़ी तथा लाल रङ्गकी चाली जिसमें सुवर्णके

हेमतन्तमुष्णाद्या मुक्ताजालवगुम्फिताम् । गेहान्तर्देश्युपवनशालायां सस्थिताऽभवत् ॥१७॥  
 मखीभिर्वेष्टिता रम्या घृताऽधोकोरपर्यया ततो दिव्यामलङ्काराभिजदेहे दधार मा ॥१८॥  
 ये मया कथिता नैव पूर्वव्यस्तान् भवेण नान् । कस्मैषां वर्णने मको मयेदत्र नमोऽयम् ॥१९॥  
 चतुरास्यः कुण्डितोऽभून्पञ्चास्यश्च षडाननः । उन्नतःश्रवाश्च मग्रास्यः महसास्योऽपि वर्णने ॥२०॥  
 श्रुत्वा सीतामुपवने गतां ते जलधन्विणः । जलधन्वाणि सर्वाणि चकर्मृत्कानि वेगतः ॥२१॥  
 गन्धमधकमस्या सा सीता चामरवीजिता । जलधन्वाकौतुकानि वदन्तं नगरीरुधः ॥२२॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामो राजकार्याणि कुम्भनशः । कुम्भा यथो ममाशः स निजगेह तु रन्तुभिः ॥२३॥  
 तदा दुन्दुभिनिघोषा नववाद्यम्बना अपि । शुक्लानां गोमुखानां च मेरीणां तुमुकस्वनाः ॥२४॥  
 वधूपुर्यश्च सन्दाश्च न्यादीनां स्वनाः शुभाः । नन्तुवोरनार्यश्च तुष्टुवुर्मागधादयः ॥२५॥  
 न स्वन जानकी चाप श्रुत्वा चोपवने स्थिता । मध्रमेण मयुर्जीयं मञ्जकाधो वरानना ॥२६॥  
 वामहस्ते कर्माणीं तां घुपपात्रं च दक्षिण । धृन्वा करे मा वैदेही रामं प्रन्युज्जगाम वै ॥२७॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामस्यकन्वा नां शिञ्जिकां वदि । रिमज्ज्य सकललोकान विवेश धन्धुभिर्गृहे ॥२८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे दाम्यः जनशो रुद्रमभ्युपनिः । गधवाग्ने दूतवृन्ता स्वम्भकर्मसु तन्पराः ॥२९॥  
 काचित् व्यजनेनैव बीजयामास वेगतः । दधार चामरे काचिन्काचिशमनमूनमम् ॥३०॥  
 काचित् बलपात्र सा काचिन्निघ्नीवनम्य च । पात्र दधार काचिन्तु जलकुम्भ मनोरमम् ॥३१॥  
 काचिदधार रत्नाणां कोशं काचितु कर्मकम् । काचिदधार तूर्णार काचिन्मङ्गलं दधार मा ॥३२॥  
 एवमादीन्यनेकानि तदोपकरणानि ताः । जगृहू रामचन्द्र तं वेषयामागुगदाम् ॥३३॥  
 ततो रामः सुनैःपङ्कजां यथो जनकनन्दिनीम् । स्थितां तत्र प्रतीक्षन्तीं पतिं जलरुहेक्षणम् ॥३४॥

गरींसे जगह जगह बेल-बूटे बने थे, उसे पहिना और उसके माथ मचनके भीतर ही बने हुए उपवनमें जाकर  
 बैठी ॥ १७-१७ ॥ यहीं सखियोंने उनके चारों आस पंग लिया और सीताने विविध प्रकारके आभूषण पहने  
 ॥ १८ ॥ जिन कोइस संकरीको से बड़ परिचयक राम साजकर पहने कह आया है उस यही पूर्ण-  
 रूपमें वर्णन करनेमें कोई श्रेय पुण्य मयवी होगा ॥ १९ ॥ सीताकी इस अलौकिक आभाका वर्णन करनेमें  
 चतुरासन सहज, पञ्चवक्त्र शिख, षडानन स्वात्मिक निवेद्य, नान मुत्तवाने उन्नत श्रवा और हठार मुख ताने शेषनाग-  
 न भी बुद्धि कुण्ठित हो गया ॥ २० ॥ जलधन्वक अधिर्कार्योत्त जब सुना कि माताजी उपवनमें आ गयी हैं, तब  
 उन्होंने सब कोरारोको बरं बेगके साथ छुड़ दिया ॥ २१ ॥ तदनंतर मणिकी बनी हुई चौकीपर बैठकर  
 सीता कोरारोको कौतुक तथा वृद्धोकी आभा देखन लगी और दक्षिणी मताक ऊपर खंजर दुखाने लगी ॥ २२ ॥  
 इतनमें रामचन्द्र भी राज्यमन्त्र को सब काम करके पाद्योंके साथ अर्चन भजनमें आये ॥ २३ ॥ उस समय  
 दुन्दुभोके शब्द, नवीन बाजोंकी ध्वनि और शङ्ख, ताम्र, बेली आदिका घनघोर प्रहर होने लगा ॥ २४ ॥  
 विविध बन्धवन्त्राके मन्द और तुम्ही आदिकी ध्वनि सुनाई देने लगी, वेगवार नाचन लगीं और बन्दोजन  
 वाजानको स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ इन बाजोंक स्वर सुनकर सीता भी घबड़ाइके साथ चौकीपरसे  
 उतरकर बायें हाथमें सारी तथा एक उपपात्र लेकर रामकी ओर चली ॥ २६ ॥ २७ ॥ इतक  
 रामचन्द्रजी भी पालकोसे उतरे और मंत्र लागोका विद करके आलाभाक साथ घरके भीतर गये ॥ २८ ॥  
 इतनमें विविध प्रकारके मलङ्कारोंकी पहने हुए सैकड़ दासियां भरण भरना काम करनेके लिये बौड़  
 रहीं ॥ २९ ॥ कोई भगवान्को पंखा चलाने लगी । किसीने खमर ले लिया । कोई आसन बिछाने लगी ।  
 जिने पानदान किसीने उगालदान किसीने सुन्दर उज्जवात्र और किसीने कपड़े रखनेकी पैटी सम्हाल ली ।  
 ममा दासोंने रामजीको घनुष से लिया । किसीने तरकस लिया और किसीने लखनार से ली ॥ ३०-३२ ॥  
 इन तरह रामकी सब भक्तियोंकी सब दासियोंने चारों ओरसे घेरकर सम्हाल लिया ॥ ३३ ॥ इसके बाद

गृहगंगागममये संस्थिता संस्मृताननाम् । दृष्टुन्मानं विलज्जन्ती मुनः सौ चालोचनाम् । ३५।  
 कटाक्षिवाक वक्ष्यन्ती सखीभिः परिवेष्टिताम् । तं दृष्ट्वा गयवधापि किञ्चिद् कृत्वा स्मिताननम् । ३६।  
 चक्रावाचमनं सम्यक् गीतार्पितवलेन सः । ततः स्निग्धाऽऽवने पीन्या जलमग्रे यया पुनः । ३७।  
 जलयन्त्रमर्मपम्पा झान्ता रीत्याममन्त्रिणः । तस्या मिहामने स्थित्वा लक्ष्मणं ग्राह गयवः । ३८।  
 गच्छ भोजनशाला त्वं सर्वानाहूय वेगतः । प्राक्षणादानुमितदिनर्वाणं स्वरगस्व हि ॥ ३९।  
 सर्वं कृत्वा यथागम्य ततो मां कुरु वृत्तनाम् । तथेति रात्रचनाद्वयेन स शत्रुहा । ४०।  
 लक्ष्मणस्त्वरितो गन्वा सर्वानाहूय वेगतः । वसिष्ठदिमुनीन्मित्रमन्त्रिणः सुहृदन्वया ॥ ४१।  
 न्वग्यामासोर्मिलां च मांडवीं भरतप्रियाय । भ्रुकंति च मोर्धनि श्रीगमवचनाचदा । ४२।  
 एतस्मिन्नन्तरे रामः केशवादर्चिर्नामतेः । चित्ररंगः पूगितानि जलयन्त्राण्यनेकशः ॥ ४३।  
 कारयित्वा तेषु सीतां वादृषाश्चैव मुदा । धृत्वाऽक्षिपन्पृथग्दस्यादिषु पदपद्मं च मूषम् ॥ ४४।  
 ततः स्वयं पयानोर्जलवज्रेषु चैव पृथक् । जककोटीं च मधिलया चकार स्पुनन्दन । ४५।  
 धुजाभ्यां च ममालिङ्ग्य ता मुहुः प्राक्षिपन्मुदा । रज्जवाम्बु वेदहा मुगमाग्नलिसचनैः ॥ ४६।  
 ततः मयन्धतलानि तथा परिमलानि हि । न नाममन्धद्रव्याणि मङ्गलानि बहुनि च ॥ ४७।  
 दासाभिः प्रोचमान्नीय तावुमौ हि परस्परम् । ववर्षतुः सम यौध काटाद्वर्गमनोरमैः ॥ ४८।  
 कगम्यां जलयन्त्राणि मिधरतां यमुमाचतुः । रामाधुमन्त्रया दाम्यः स तासाम्योऽपि सूचिताः । ४९।  
 वसुमिधिविहिर्दरे गन्वा तस्युदिलज्जिताः । काञ्चिद्द्वारेषु तस्युस्तास्वूर्णी प्रमुदिताननाः ॥ ५०।  
 अदृष्ट्वाऽप्यं ततः सीतारामौ रहसि सादरम् । जलयन्त्रेषु ती क्रीडां चकतुः सुचिरं मुदा ॥ ५१।  
 मुष्टिभ्यां जानकी गम नाडयामास कौतुकात् । सार्षप तां ताडयामास मुश्या पुष्पमानया । ५२।

रामजी धीरवीर सीताजी को आर चन, जा पढ़न ह्य स मह खडा रामचन्द्रजीक आत्मको प्रन भा कर रही थी ।  
 जिनका मातका राम का दायकर लज्ज से मुक्त हुआ था, वे सीता गृहगंगा से बने गंगासे बेंडा थी । मुमकता  
 हुआ उनका पुत्र था । रामचन्द्रजीने दस कि. म. दूर काँची और मुडौल नामिका दो सीत हम दायकर लजा रही  
 है । उनके चारा आर सावरी घर लडा हे और रह रहकर सीता अपना कर्नामवास हमका देखता आता  
 है । इस प्रकारकी साहाजा लज्जकर रामचन्द्रजी मुमकते हुए उनके पास पहुँच और सीताके हाथसे प्राप्त जलको  
 लेकर आचमन किया । फिर आसनपर बैठ, जल पीया और स हाक साथ उस बंगलका तमक चले, जो  
 पीदारक व वम सता हुआ था । धर्मा पढ़कर राम एक दिव्य महामन्त्र पढ़ और लक्ष्मणसे कहने  
 लग- ॥ ३८-३९ ॥ हे लक्ष्मण हम भोजनशाला जाओ और सब वा सुना लया मित्रगणिक नरियों से कहो कि  
 जन्दी भोजन लेंगार कर जैसा बंद बनवाया है, वैसा करके बाद फिर हम लूचना है । बहुत अच्छा कनु-  
 कर लक्ष्मण शत्रुहन्त लया भरतका मोह लेकर भोजनशाला पहुँच, वहाँ वसिष्ठादि मुनियों, मन्त्रियों तथा  
 मित्रावा बुलाकर शाला लेंगार दान्य कर ॥ ३९-४१ ॥ तब तब लक्ष्मणने मांडवी, भ्रुकंति, जामला  
 आदिका रामचन्द्रजीक आज ग्यार वर स उप दिष्ट १५ मूषों से भोजनदा लेंगारा कर्गे ॥ ४२ ॥ इसके  
 अनंतर रामचन्द्रजीने कम- ॥ ४३ ॥ स्निग्धा जल- ॥ ४४ ॥ पृथक् गेय मुनाआवी मोहसे लेकर पक  
 दिया सस्य ॥ ४५ ॥ ॥ ३६ ॥ ४६ ॥ तबके अनन्तर वे दस भा रसम दूद पर और सीताके  
 साथ जलपाश बन्दी लग ॥ ४७ ॥ वे चार पाश ल गता उठा उठाकर जलम पारने, फिर स्वयं पून और सीता-  
 पर जल उल्लास था । तब तब दसि ॥ ४८ ॥ मुष्टिवृत्तन लज निवित्र प्रकाक परिमर से साकर अणमसे  
 एक दूसरेपर छालने लगे । वे हाथमें पिचकारी लेकर एक दूसरेपर कसा ज दि मिले हुए जलका बगी करत  
 थे । ४९-४९ ॥ रामचन्द्रजीसे बने लगे मन्त्रिणी लज्जाके माग बगीसे लज लगी और दूसरी जगह जा बैठी उनसे  
 कुछ मिया प्रसन्नतापूर्वक सम्पूर बने हुए उनके काटनपर जा बैठी इस प्रकार एकलम साहाके साथ राम-  
 चन्द्रजी बहुत देरतक पीडा करत रह ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कभी बंद बंदम सीताजी रामचन्द्रका मुक्ता पार देती थी,

चुचुम्ब सन्वा दिवोष्टु पूर्णयामाव तन्तुर्त्तौ । मुक्त्वा तत्कञ्चुर्लसधधन्निव हृदयेन ताम् ॥६३॥  
 हुमाच कच्छुर्धगमः सोनायाः स्वचरेण सः । उद्गाथ वन्त इन्द्रेण तद्वर्धोरु ददर्श यः ॥६४॥  
 ततः करेण तर्क्ष्यो रामश्चाकरोन्मुदा । मान्वाकरोषेवदृशाद्रामर्त्तयो स्मिन्ननतः ॥६५॥  
 एवं पम्पार क्रीडां चक्रतुर्दम्पती युता । कः समर्थस्त्वयोः त्राडां यद्विस्तारं निवेदितुम् ॥६६॥  
 यत्स्मिन्नन्तरे तम केजनाथं तु मुक्त्वात् । कर्तुं ययौ स गौमित्रिः समग्रं सुहृत्तनाम् ॥६७॥  
 निषेधितः स दार्ढ्याभिर्वनङ्गागच्छतिः स्थितः । ता जनुः समसो नार्थं तम गन्तुं च न क्षणम् ॥६८॥  
 स्थितो भवति सौमित्रे तमो र्हर्षि मीनया । कर्गेति जलपन्थेषु जलक्रीडां यथाशुक्लम् ॥६९॥  
 पुनस्तथाः शब्दं सौमित्रेयुष्माभिर्वचनेन मे । निवेदनाय तमः प्र गृह्णत, यै हि लक्षणाः ॥७०॥  
 समागतस्यामर्त्तान्तिनो यास्याम्यहं गृहम् । तत्तस्मात् तदा लंकां दामो यन्वा रघूत्तमम् ॥७१॥  
 वल्लभितेर्नहिः स्थित्वा भवर्थातः शनैश्चित्रा । हययामस्य सौमित्रेर्हर्षि सावयनं शून्यः ॥७२॥  
 तदासीश्चनं श्रुत्वा जलपन्थात् जलक्रीडम् । वज्रैः कुन्ता निगन्तश्च गम्यतुष्टमनाः स्वयम् ॥७३॥  
 जलस्थोः प्रभुः स्नात्वा देहमुद्धतं नदिभिः । सुगन्धद्रव्यगार्दीन् गृह्णा रुर विपान्तिनः ॥७४॥  
 रीतकोशेषवर्त्तमानि परिधापय्य दम्पता । ददुश्चन्द्रेस्त्र्याण हंसतन्वकितानि च ॥७५॥  
 दार्ढ्यापथाप दामेभ्यो गगार्थेभिरत्रानि हि । तौ जामतुः कृष्णविरभागणाश्चनगृहम् ॥७६॥  
 तत्र पूर्वोत्तराधिकैर्दानावचरकैः । अमितादानरत्नं यन्काम्येदुममुद्रवम् ॥७७॥  
 देवीभिः स्वर्णजभिश्च पत्रेषु वसिष्ठितम् । हृन्नाथं च गुरुणा महन्विषयमन्वितः ॥७८॥  
 सन्निभिर्नृगुमश्वादि तामोऽन्नस्तोषमाय सः । तन्वात्र धीजयामस्य आनन्दी यामरेण सा ॥७९॥  
 मन्विनोर्दश्चादुग्धवै रज्जुयापाम राधयम् । पत्रं कृत्वा मोजनं तु कृत्वा काञ्चलचरणम् ॥८०॥

तब राम भी हमने हुए कुछ समय कादल मूलक सजाके मार देत थे ॥ ६३ ॥ सीता के विश्वसद्धा लाल  
 हाथोंको शयनस्थान में कई बार चमा, उनका चुवासा करने लगा और सीताका कान लालकर अपनी छातीमें  
 निपटाता ॥ ६४ ॥ रामने स लकी कोष्टु आकर पम्पको हटा दिया जिसमें कदलाक सम्भ्रक समान उनकी  
 कायस्थ चमत्तें लियेई पहले लगी ॥ ६५ ॥ तब रामने भी हुमाचकर रामका माना लाने डाली । इस तरह राम  
 और सान्वा में विष प्रकारका लड़ाई हो गई ॥ ६६ ॥ सीता और रामको कोडाके अविस्तार वर्णन करनेकी  
 आवश्यकता मन्त्र किमर्थ है ? इस शिष्टा गृहमें आराम करने के लिये पुष्पों का बाग है ॥ ६७ ॥ इसके अन्तर्गत  
 मोहन लंका हाथोंके सुखना दृश्य । तब लक्ष्मणने लम्बे-छोटे पत्थरों को भी चुलवा लिया ॥ ६८ ॥  
 लक्ष्मण रामको मुक्तके लिये आगे बढ़कर आकर पहुँचे, तबसे ही सुखियोने उन्हें राका और कहा कि कभी  
 रामचन्द्रका पाव आनेका आशा नही है । क्योंकि वे इस समय गलतीका कर रहे हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥  
 उनसे लक्ष्मणने कहा—अच्छा, मुझा आकर रामसे कहा कि हारकर लक्ष्मण भोजनको सूचना देनेके लिए सहें  
 हैं ॥ ७१ ॥ तुम्हारे ऐसा कह देनेपर भी अन्तर चला जाऊगा, लक्ष्मणके आशानुसार उनसेसे एक दासी  
 रामको समीप लगी और लजाती हुई पदोंको छुटस पीर धीरे उनसे लक्ष्मणके आनेको खबर सुनायी  
 ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ दासीको दास सुनकर रामने लक्ष्मणके हाथोंको अचानक बाहर निकाला और स्वयं  
 भी निकल आये ॥ ७४ ॥ तब गरम अण्डे मीना और रामने गरमसे लगे हुए सुगन्धित उबड़न आदिकी  
 पीया ॥ ७५ ॥ उसके बाद रेशमके पीले कपड़े पहन । उस गृहस्थ में स कपड़ोंको दास-दासियोंको दे दिया ।  
 फिर पुष्पोंसे सुगन्धित आंगसे चलकर दोनों भोजनमात्र में आ पहुँचे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ वहाँ पूर्वोक्त भोजन-  
 सामग्री का अर्पण काममें लगे लक्ष्मण तथा उदित। आदिके हुए सुगन्ध-पान्थे सुगन्धों की चमचोंसे  
 परोते हुए भोजनके बनेक सुगन्ध, मिष्ट, मन्त्रिका एवं वन्धु आदिकोंके साथ साथ हुए रामचन्द्रजी बहुत  
 प्रसन्न हुए । भोजन करते समय साहसी पत्नी भरती हुई दो-दो-दो-दो चित्त प्रसन्न करनेवासी कितनी

सीताममपित राक्षसस्यो मृगवन् कथाः सुखम् । मन्त्रिभिर्यन्धुसिधिरैर्गोहातः सुदमि प्रभुः ॥७१॥  
सीताऽपि भोजनं कृत्वा दिव्यफलंकारमण्डिता । निद्राशालां सभासीनां सखीभिः परिवहिता ॥७२॥  
चकार सारिभिः क्रीडां दामीभिर्वीजिता सुदा । कुर्वन्ती रघुनाथस्य प्रतीक्षां द्वास्त्रोचना ॥७३॥

इति श्रीमच्छतकादिरामचरितगतो श्रीमदनन्दरामायणे वाल्मीकीये आश्वमेधे

वाल्मीकीयवर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## पष्ठः सर्गः

( राम तथा सीताकी दिनचर्या )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो यन्धुमिश्र निद्राशालां ययौ पुदा । स्तुतो वदिजनाद्यैश्च विवेकैकान्तमन्दिरम् ॥ १ ॥  
विषज्यै लक्ष्मणादींश्च दामीभिः परिवारितः । ददर्श जानकीं निद्राशालायां रघुनन्दनः ॥ २ ॥  
याऽपि कालाऽज्जनं राम सातेक्रीडां विहाय च । प्रत्युज्जगाथ गमाय सखीभिर्नृपुण्यना ॥ ३ ॥  
नत्वा राम करे धृत्वा मन्त्रके मन्यवेशयन् । दत्त्वा पातुं जलं तस्मै ददौ सांचूलमुत्तमम् ॥ ४ ॥  
ततश्चकार श्रीरामो निद्रां सीताममन्त्रितः । दामीभिर्वीजित्वापि पर्यङ्गे रत्नभूषिते ॥ ५ ॥  
मुहूर्तमाशुदुत्थाय घृणार्थोक्तोपवर्हणा । तस्यौ सीता मन्त्रकाधस्ततो रामोऽप्यबुध्यत ॥ ६ ॥  
दृष्ट्वा समुन्मिषत राम दग्धा पातुं जलं पुनः । ददौ सीताऽयं तांचूलं राघवायानिद्वर्षिता ॥ ७ ॥  
रामदास्यस्तथा रामं वीजयामासुरादरात् । केकिपक्षममुहूर्तंशामरं हृष्यभूषितं ॥ ८ ॥  
सीतादाम्यस्तथा सीता वीजयामासुरादरात् । धेनुपुच्छाङ्गवैदिर्यश्चामरैर्द्वयमहितैः ॥ ९ ॥  
ततः सीताकरं धृत्वा द्वास्त्रावल्या तुमण्डपम् । ययौ गमोऽङ्गणोद्भूतं तस्यौ तदथ आमने ॥ १० ॥

हो धर्म भी करतो जाता यो । इस प्रकार भोजन करके रामने सीताके हाथोंसे दिया हुआ पान खाया ॥ ६३-७० ॥ तदनन्तर मन्त्रियों वन्धुओं तथा गिर्यादिकोंके साथ विविध प्रकारकी बातें कहने-सुनते हुए सभाभवनमें पधारे ॥ ७१ ॥ तदनन्तर सातान भा भोजन किया । कपड़े बदले और नाना प्रकारके झलकारीको पहनकर अपने शयनागारमें जा बैठे । यहाँ सीताको मलियाँ भी उन्हे चारी आरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ ७२ ॥ सीतावहाँ बैठे हुई सारिका / मैना, के साथ खिली तथा हथ-हथरकी बातें करता हुई रामचन्द्रजीके आनका प्रतीक्षा कर रही थीं । यह सब करते हुए भी सीताकी ओर रामको दखनके लिए द्वारपर ही लगी हुई थीं ॥ ७३ ॥ इति श्रीमच्छतकादिरामचरितगतो श्रीमदनन्दरामायणे वाल्मीकीये 'अदोत्सना'भाषाटीकायां विष्णुशर्मादे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—सभाभवनमें कुछ देर बैठेके अनन्तर राम अपने वन्धुओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शयनागारकी ओर चले । बंदाजन भगवान्की स्तुति करने लगे । निद्राशालाके पास जाकर रामने लक्ष्मण आदिकोंके विदा कर दिया । दासियोंके साथ वे भोजन गये और वहाँ बैठे हुई सीताको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ सीताने भी जब देखा कि रामजी आ गये हैं, तब अपना मैनाके साथका लेल दान करके सीरे-धोरे उनकी ओर कही । उन्हें प्रणाम किया और हाथ एकदकर पलंगपर बैठा लिया । फिर पीनेके लिए अल दिया और उत्तम तांबूल खिलाया ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजी रत्नभूषित पलंगपर सो गये और दासियाँ पंखा चलाने लगीं ॥ ५ ॥ अग भरके बाद सीता पलंगमें नीच उठरी, तब रामजी भी आग गये ॥ ६ ॥ सीताने जब देखा कि वे भी उठ हैं, तब फिर पीनेके लिए जल और खानेकी पान दिया ॥ ७ ॥ रामकी दासियाँ रामकी और सीताकी दासियाँ सीताकी पंखा चल रही थीं । उन दासियोंके हाथमें मोरके पंखोंका बना हुआ पंखा था और उत्तमें सुवर्णके मूड लगी हुई था ॥ ८ ॥ कुछ देर बाद रामचन्द्रजी सीताका हाथ अपने हाथमें पकड़े हुए एक अंगूरी लताओंके बने सुन्दर मण्डपमें पहुँचे और उसके आँगनमें एक आसुवपर बैठे



उपमर्दणसंस्पृष्टः सीतारामस्थितो मुदा । हस्मिन्प्राप्तमप्रिगजदूतैः कृत्रिमनिर्मितैः ॥ ११ ॥  
 हेमरत्नहस्तिदन्तसंभूतैरनिचित्रिनैः । काडो घृद्वक्त्रेनैव चकार मीनया मुनय् ॥ १२ ॥  
 ततः पक्षिकुनैः सर्वैः पञ्चार्थैः समानया । क्रीडा चकार आरामो दामोन्निवित्रो मुदुः ॥ १३ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतयाऽऽकृष्टिताः पुनः । ममावपुष्पारवाणो ननृतुः शनकसादा ॥ १४ ॥  
 चक्रुर्गीतं सुस्वरं ताः पद्मवस्त्रमयनिवृत्तम् । तनूनाभ्यो बलकूटान् दक्षत रम्यणि जनकी ॥ १५ ॥  
 निमज्जयामास ताः सर्वास्ततो राघवमब्रवीत् । स्थित्वा प्रसादवर्षेऽयं कौतुकं हृज्जं त्वया ॥ १६ ॥  
 इष्टमिच्छाम्यहं राम शीघ्रमुत्तिष्ठ गयत्र । तन्मार्गावधनान्नामः प्रसादं प्रते सीतया ॥ १७ ॥  
 गत्वा दिव्यायने स्थित्वा गवाक्षं रुक्मभूषिनैः । रत्नोद्भरकपाटैश्च मृकाजामविमर्शिनैः ॥ १८ ॥  
 राजर्षीभ्यां हृदयत ददर्श जनकौतुकम् । सीतार्पं दशेयमाय कौतुकात्रिंशु गयत्रः ॥ १९ ॥  
 स्वीयदक्षिणहस्ताय तर्जण्या मुदिताननः । एतस्मिन्नन्तरे हृदं द्विजवन्ती तु भीक्षया ॥ २० ॥  
 दृष्ट्वाऽलङ्कारवस्त्रार्थहीना कटिपुष्पाश्चका । गच्छन्ती राजमार्गेण कुशा भिक्षार्थमुद्यता ॥ २१ ॥  
 तौ तादृशौ निरुह्याय दाम्यद्वयं विदेहजा । वयन्तु भूषणाद्येभ्यश्च किमर्थं रहिता ह्यसि ॥ २२ ॥  
 मा प्राह तार्थयात्रार्थं न्यक्त्वा मां तानलालिना । तानमेहे मनो मर्ता ततोऽपि जरठो मृतः ॥ २३ ॥  
 गुरुमेहेऽनिकायां वसेते आनगे मम । न शोकः कोऽपि मेहेऽप्युना सीतेमरिचि वै मम ॥ २४ ॥  
 गम्मान्न मन्थलङ्कारवामासि जनकान्मते । इति तस्या वचः श्रुत्वा रामरुचं वन्निरीक्ष्य सा ॥ २५ ॥  
 निजालङ्कारवामासि ददौ तस्यं विदेहजा । बाष्पार्थो मा पुनः प्राह गच्छ न्वं लक्ष्मणं यदि ॥ २६ ॥  
 हेममुद्रा लक्ष्मणतान्त्रं गुराण मम तथा । तथेति जानकीं पृष्ट्वा सा ययौ लक्ष्मणं तदा ॥ २७ ॥

६ ॥ १० ॥ रामकी सीतार तर्किया समे ये और सीता रामके सामभावम बैठी थी । वहाँ तकली हाथी, पार, ऊँट मंत्री और राजदूत आदिक भवनीन प्रथम हुए थे । उनक साथ राम तथा सीतान बड़ा दैरतक सेन्वाह किया । उनमे बहुतसे मिन्तोन सुनार, शरीरहीन एवं गन्नाके वन हुए थे और उनपर बहिया रंग ई का हुई थी ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर पिमडम बैठे हुए बहुतमे पक्षियाक साथ रामन क्रीडा की । उस समय भी तन्मिर्ष पक्षा श्रवण रहो थी ॥ १३ ॥ इसके बाद सीता द्वारा बुलई हुई बहुतमे नताकया आकर वही बाचने-गाने लगी । १४ ॥ ये वरणात पदमन्त्रमे सुन्दर भीम गानाकर बहुत दर तक उड़ गुनानी रहो । इसके बाद सीतान उनको बहुतमे वन्त्र-अलकार आदि ददर्श विदा किया ॥ १५ ॥ उनको विदा करके सीता रामसे कृतम लगी — आज इमाने यह इच्छा है कि आपके साथ छनपर बैठकर बाजारका कौतुक देखूँ ॥ १६ ॥ उन्हे और जन्ती बलिय । तदनुसार राम सीताके साथ प्रसादपर गये । १७ ॥ वहाँ एक दिव्य भासनपर बैठकर भवर्षके बने हुए शरीरमेस जिनमे विविध प्रकारके रत्नोक दरवामे लगे थे और मोद्रियोकी सासरें लटकी हुई थी ॥ १८ ॥ उनमेसे ही ये राजमार्गके जनमनुशयका कौतुक देखने लगे और सीताकी भी दर्हिने हाथ-की तर्जनी अंगुलीके सनेरसे चिखाने लगे ॥ १९ ॥ इसी बीच सीताने देखा कि एक बाहुगकी पत्नी बरन मल-दुआकी स्वागे नङ्गी बन्ती था रही है । उसकी कमरपर एक बण्वा है, उसकी दुबली-मलली देह है और उसके बाकारसे मालूम पड़ता है कि वह पिता मांगनक लिए बाजार भापी है ॥ २० ॥ २१ ॥ उसको यह दशा दन्दकर सोताने रामी द्वारा उसे अपने पास बुलवाया और पूछा कि तुम इस तरह बिना बरन और आभूषणके बाजारमें किसलिए घूब रही हो ? ॥ २२ ॥ उसने कहा कि मेरे पतिदेव बरमे मुझे बकेली छाड़कर लीध-लगाके लिए चले गये । मैं अपने पिताकी बड़ी दुष्टागे बैठी थी । इसलिए अपना घर छाड़कर पिताके पास लगी तो वहाँ पिताकी बुद्धावस्थाके कारण परतोक चले गये थे ॥ २३ ॥ बरन्तोपुत्रीमे मेरे पिताके कई छोटे छोटे बच्चे बर्वाग् मेरे भाई है, किन्तु मेरा तथा बन्धोका पालन करनेवाला इस बंसारमें कोई नहीं है ॥ २४ ॥ इसी कारण है जनकायज । भरपास बरन और आभूषण नहीं है जिन्ह मैं पहनूँ । इस प्रकार उसकी बातें सुनकर सीताने एक बार रामको और देखा और अपने सब वस्त्राभूषण उत्तारकर उस विधवाकी

पूषाधिकानलकायन् स्वदेहे जानकी पुनः । तथार दिव्यवासांसि हेमनूद्रवादि सा ॥२८॥  
 लक्ष्मण ब्राह्मणा गन्वा सीतावत्क्यं न्यवेदयन् । ददौ तस्य लक्ष्मणोऽपि हेममुद्रास्त्रैव सः ॥२९॥  
 सीतारकपाह्वमिता मृषा येने न तद्वचः । कः समर्थो रामगजये मृषां वक्तुं मनेदिति ॥३०॥  
 अथ सीताऽपि सौमित्रि स्वां शर्पां प्रेष्य वै तदा । प्रयोधवायां नद्या गच्छे घोषयामास दुन्दुभिम् ॥३१॥  
 सप्तर्षीषेषु सचत्र पृथग्दर्शेषु सादरम् । काशिमारा पुमान् वारि विना सदस्रभूषणः ॥३२॥  
 पृथ्वारैर्बया कातो यदेवे यन्पुरे कदा । तद्राक्षसास्तु मे दण्डो रामस्यापि विशेषतः ॥३३॥  
 इति मथिष्ठितं शान्वा स्वकोशैः स्वां वरः पृष्ठे । वस्त्रालङ्कारभूषाविर्ममशांवा द्वित्रादयः ॥३४॥  
 सप्तर्षीपुनृपतमश्चेत् सीतामुपिष्ठितम् । मत्रदुन्दुमिषोषणं भृत्वा चक्रुस्तथैव च ॥३५॥  
 तदारभ्य जगन्त्यां न कश्चिद्विगतभूषणः । नारी वा पुरुषो वाऽऽप्यात् कुत्राप्यवनिजानवात् ॥३६॥  
 एवं नानाकीतुकानि भूष्यां सीताऽकरोन्मृश । अथ रामः सर्वां गन्वा पुनर्यामे वतुषके ॥३७॥  
 चकार राजकर्मणि धर्मेणैव स्वबन्धुभिः । जटनाटक्वेड्यानां कौतुकानि महानि च ॥३८॥  
 ददर्श स समासम्ये स्तुतो मागध्वदिभिः । ततः सर्वान्विमृज्यवाथ पयो सीतापुद्गलम् ॥३९॥  
 सापसत्त्वादिकं कृत्वा दुग्धा होमं पद्याविधि । उक्तो मघादिभिः पूज्य मास्रणांश्चापि रावनः ॥४०॥  
 नानोपहारनेषेयं दत्त्वा तैम्यः स्वयं प्रभुः । कुञ्जोपहारं शीगमः मृन्वा पीराणिही कषात् ॥४१॥  
 कार्त्तनैर्हरिदासाणां वंश्यानां नर्वनैरपि । पीरोदितामिर्वाताभिर्गायकानां च गायनैः ॥४२॥  
 सार्धस्यानां निश्चा नीरवा पयो निद्रास्वर्गं धनैः । उक्तो गहनप्रकारैः स जगाम जानकीं प्रति ॥४३॥

६ दिव्य और कहा कि तुम लक्ष्मणक पास चला आया और उनसे मेरे ब्राह्मणों के एक लाख स्वर्णमुद्रा ले लो ।  
 'बहुत अच्छा' कहकर वह ब्राह्मणों लक्ष्मणके पास गया ॥ २८-२९ ॥ इसके अलावा सत्तान फिर उससे  
 दुस गहन महार लिख और गुणगन वागमन बन हुए बहुतसे सुन्दर वस्त्रोंको भी चारण किया । २८ ॥ तब  
 ब्राह्मणों लक्ष्मणक पास गया और सीताको आज्ञा मुराजी , लक्ष्मणने जानकीके कपड़ानुसार उसे एक लाख  
 स्वर्णमुद्रा दे दी ॥२९॥ ब्राह्मणोंको बातपर लक्ष्मणका दुस भा सधु नही हुआ । क्योंकि रामचन्द्रजीके राज्यमें  
 किसीका कुछ बालनका साहस ही बस हा बनता था ॥ ३० ॥ इतने पश्चात् सत्तान लक्ष्मणके पास एक  
 दासा हाथ यह कहला बना कि मेरी मातास सबके समस्त राजासे दिदास पिटावा दी और सातों  
 दास तथा विश्वामित्र दक्षाय भी कहला दी कि कोई स्त्रा और पुरुष ऐसा न दिवाजी वे कि जिसके सारापर  
 बाढ़वा वस्त्र और आभूषण न हो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ मेरे पुतबर इस बातसे डाह नेनकी सर्वत्र घूमते  
 रह । पौर कहा किस दश या कितना राष्ट्रमें कोई वस्त्र भूषणाविहीन देला जायगा ही उस देशके राजाकी  
 सेवा तथा रामचन्द्रजीका आज्ञाके अनुसार घर दण्ड भुगतन पड़ता । ३३ ॥ मेरी यह आज्ञा सुनकर  
 सब राज जयन दहका प्रजाका अपन स्वजानके इच्छास उत्तम वस्त्राभूषण तैयार करवाकर बंधवा रे ।  
 समस्त ब्राह्मणादि द्विजातिजोको अच्छे अच्छे वस्त्र-अलङ्कारोंसे अलङ्कृत करायें ॥ ३४ ॥ तदनुसार सत्तों  
 दासके नुरातयाने राजदुन्दुभ द्वारा धायन साताजकी उस धायणाका मुन-मुनकर विविधत् उसका पालन  
 किया ॥ ३५ ॥ तबसे सत्ताक भयसे जगतालमें कोई ऐसा मनुष्य नही दिजाई देता था, जो सुन्दर  
 वस्त्राभूषण न पहन हा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार सीताजीन प्रथामण्डलमें न जाने कितने कौतुक किये ।  
 तदनन्तर चौथे प्रहर रामचन्द्र अपने धानाजोके साथ सप्ताध्वजमें गये ॥ ३७ ॥ वहीं धनुष्यक राजके  
 आदेशक कार्य सम्पन्न किये । फिर गदोक नाटक और धेरमाजोंके विविध प्रकारके नृत्य देखे, बन्दीजनोको  
 स्तुतिप्री सुनी और सबकी विदा करके फिर सत्तोंके जयनकी लौट गये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ रामकी  
 अष्टादिक नित्यकृत्य करके विविधन् हुवन किया । गन्धादिक अनेक उपचारोंसे शिवजी तथा ब्रह्मणों-  
 का पूजा की ॥ ४० ॥ उन सबकी विविध पकवानोका तैयार देकर स्वयं भोजन किया । पुराणोंको कथारें  
 सुनीं । तदनन्तर भगवद्गुणोंका कर्तन सुना और वेम्पाओंके नृत्य देखे । जयवदवाहियोंके गुणल-प्रसन्न पक्षे और

साऽपि श्रुत्वा नाशय रत्नदीपैः मखीयुता । ततः स सीतया दामः पर्वङ्गे रत्नविश्रिते ॥४४॥  
 चकार सीतया क्रीडां रञ्जयामास जानकीम् । ततस्तीक्ष्णपती निद्रां चक्रतुर्वीजितौ युधुः ॥४५॥  
 दासीभिर्व्यजनैश्चित्रैश्चामरैर्द्वैमधूषितैः । एवं रामेण सा सीता सुसुमाय पतिव्रता ॥४६॥  
 सीतया राघवश्चापि सुखमाय चित्रेणैः । एवं नानाकौतुकानि प्रत्यहं रघुनन्दनः ॥४७॥  
 चकार सीतया सार्द्धं परिपूर्णनोरयः । कदा चन्द्रस्य ज्योत्स्नावामरणे सञ्चनः प्रभुः ॥४८॥  
 चकार सीतया निद्रां कदा प्राप्तादमरुतकं । कदा प्राप्तादन्तरे वाऽपि गवाक्षपत्रनैः शुभैः ॥४९॥  
 सुसुमाय कदा रामः कदा रहसि मदिरैः । कदा कनकमृङ्गलामवितानमुमंचके ॥५०॥  
 कदा द्राक्षामण्डपाधो जलमञ्चमपीपतः । काचभूम्यां रुक्मभूम्यां मणिभूम्यां कदाऽपि वा ॥५१॥  
 स्फटिकादिमुभूम्यां हि कदा सुष्वाय राघवः । कदा स पुष्पके वाऽपि रमणालान्तरं कदा ॥५२॥  
 कदा स चित्रशालायां कदोर्नीलग्नये गृहे । कदा पुष्पमये मेहे कदा रंभावनये वरे ॥५३॥  
 कदा पुष्पवाटिकायां कदा वृक्षोर्ध्वमञ्चनि । मृङ्गलावृक्षसंबद्धदोलके रत्नविश्रिते ॥५४॥  
 कदा काष्ठमये दिव्ये मंचके रत्नभूषिते । कदा चकार तुलसीवाटिकायां रघुनन्दनः ॥५५॥  
 निद्रां जनकनदिन्या समापामभवा कदा । कदा द्वारोर्ध्वप्रासादे कदैकस्तम्बमञ्चनि ॥५६॥  
 कदा स्वगृहदेहन्यां कदा वृदावनैऽपि च । एवं स सीतया रेमेऽज्योत्स्नायां रघुनन्दनः ॥५७॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितातर्गणे श्रीमदानन्दरामायणे विष्णुशकण्डे वाल्मीकायै

सीतारामयोर्दिनचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

( रामके द्वारा वेषांगनाशौको वरदान )

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं दृष्टुं तथा स्नातुं सधावपि । सिध्यैः समागमौ व्यगमौ पुनिभिः परिवेष्टितः ॥ १ ॥

गायकोके गायन सुनने-नृतने आधी रात बिताकर वे गायनाशरम मयन करनेका बन । हुरि आदि रत्नों द्वारा प्रकाशित मार्गसे चलते हुए राम सीताके पास पहुँचे ॥ ४१-४३ ॥ सीता भी रत्नविभूषित वेषांगके प्रकाशमें अपनी अनेक रुक्तियोंके साथ रामचन्द्रके पास गयी और राम सीताके साथ एक रत्नजाटित फलङ्गपर बैठ गये ॥ ४४ ॥ रामने कुछ देर तक सीताको प्रसन्न करनेके लिए कुछ खेल किया । फिर दोनों सो गये और दासियाँ वला मल्लें लगी ॥ ४५ ॥ इस तरह रामके द्वारा सीता तथा सीताके द्वारा राम विविध प्रकारका आनन्द लुटते रहे । जिनकी सम्मत् कारनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं, ऐसे भगवान् रामचन्द्रजीकी यह नित्यकी दिनचर्या थी । उनके यहाँ निम्न ऐसे ऐसे कोतुक हुआ करता थे । कभी विशाल मञ्चनके आँगनमें, कभी प्रासादपर और कभी खिहकीदार बरिण कमरेमें राम सीते थे ॥ ४६-४९ ॥ कभी जहाँ अनेक प्रकारके मणियोंकी मृङ्गलायें लटकती थीं ऐसे चाँदनीकले किसी एकान्त कमरेके सुन्दर मंचपर, कभी बंगुरकी साड़ीके नीचे, कभी जलध्वजके समीप, कभी काचभूमिपर और कभी स्फटिकादिसं निर्मित सुन्दर मणिभूमिपर रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कभी पुष्पक विमानपर कभी रञ्जशालामें, कभी चित्रशालामें, कभी छसकी टट्टियों-वाले घनेमें, कभी फूलोंके घरमें, कभी कदलीवनमें, कभी पुष्पवाटिकामें, कभी वृक्षके ऊपर बनी हुई शोषलीमें, कभी वृक्षके बेंधी अंजोरोंसे बने हुए झूलपर, कभी काष्ठोंके बने हुए दिव्य मंचपर और कभी तुलसीकी बनी हुई वाटिकामें रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५२-५५ ॥ कभी रामचन्द्रजी सीताके साथ समापामञ्चमें, कभी द्वारके किसी एक ऊँचे प्रासादपर, कभी केवल एक स्तम्भपर बने हुए मकानमें, कभी अपने घरकी देहलीपर और कभी वृदावनमें सीताके साथ शयन करते थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति आभातकोटिरामचरितातर्गणे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये श्रीरामदेवपाण्डेयविरचितेऽज्योत्स्नावामाटीकसुमन्विते विलासकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

ममामृतं मुनिं भुञ्वा तं प्रत्युद्गम्य गधवः । ननाम शिख्या मक्या निनाय निजमदिगम् ॥ २ ॥  
 दत्त्वा च गमनं तस्मै द्विजेभ्यश्चापि वै पृथक् । दत्त्वाऽऽमनानि दिव्यानि चकार पूजनं पृथक् ॥ ३ ॥  
 कामधेनुं दूर्वा रत्नैर्वणिग्धां मयैवगधि । व्यासं तं शोचयामास मुनिभिर्मानकीपतिः ॥ ४ ॥  
 तांशुन दक्षिणां दत्त्वा प्रवदुकासम्पुटः । पप्रच्छ कुशलं तस्मै व्यासाय रघुनन्दनः ॥ ५ ॥  
 सीता तं शोचयामास वयसं पश्यवतीकृतम् । दक्षिणामन्तरे व्यासो रामाय कुशलं निषम् ॥ ६ ॥  
 निवेद्य पृष्ट्वा तन्मेष तमाह कीदृकान्धुनः । राम राम महाबाहो यथा राज्यं न्वया मुनि ॥ ७ ॥  
 भुञ्जते न तवाऽन्धेन केनापि पृथिवीभृता । पुनः भुक्तं न कोऽप्यग्रे भोक्ष्यते पृथिवीपतिः ॥ ८ ॥  
 अन्धत्वेऽथ महर्द्धमेकपत्नीयत्वं प्रति । दृष्ट्वातिविस्मयधिते जायते मे रघूत्तम ॥ ९ ॥  
 कः सङ्गताश्च तारुण्यकामदावानलं दृष्टः । पदस्थे धीयने कपि न्यवेनास्मिन्वते क्षमः ॥ १० ॥  
 इति व्यासवचः श्रुत्वा रामो व्यासवचोऽञ्जरीन् मया त्रयः कृताः सति नियमा मुनिमत्तम ॥ ११ ॥  
 सुवादिनिर्गतं वाक्यमेकमेव विनिश्चिन्तम् । न कियते मृगा तच्च लोचयते ह्यवरं पुनः ॥ १२ ॥  
 अन्यस्मीता विनाऽन्या स्त्री कीमलवामदशी मम । न कियते पतयन्ती मनसाऽपि न चितये ॥ १३ ॥  
 तथा पं हन्तुमिच्छामि वशेनैकेन कोपतः । निहन्त्यने तर्दकेन तान्य बाण सुक्राम्यहम् ॥ १४ ॥  
 इत्थं त्रयः कृताः पूर्वं नियमान्दश भो मुने । मत्प्रा एव बध्न्वमेऽप्यङ्गितास्तव वाक्यतः ॥ १५ ॥  
 तथैवास्मिन्वति योऽप्याह व्यासः श्रीगधवं तदा । पुनराह मुनिः श्रीमान् व्यासः श्रीगधव प्रति ॥ १६ ॥  
 एकपत्नीयतस्यास्य कलेनापरजन्मनि । त्वं कृष्णरूपेण बह्वीर्नारीभोक्ष्यसि गधव ॥ १७ ॥  
 तन्मुनेर्दत्तं भुञ्वा विदुष्य गधरोऽध्वरीन् । यद्वाथ कामिर्नाभोक्तुं कृष्णरूपधरोऽप्यहम् ॥ १८ ॥

श्रीरामदास कल—एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करा तब चैत्र रामनवमीको स्नान करनके लिए अपने शिष्योंके साथ व्यासजीके आश्रम आये। उनके माथ बहुतसे मुनि भी थे ॥ १ ॥ मुनिका आगमन सुनकर राम स्वयं आगवाती करनके लिए गये। उनके पास बहुतबड़े रामचन्द्रजीने बड़ा भक्तिके माथ प्रणाम किया और अपने भवममे ले गये ॥ २ ॥ उन्होंने व्यासजीको एक उत्तम आलापन बिछाया। इसके बग़ाए अन्य ऋषियों एवं शिष्योंको भी मन्दिर आसनपर बठाकर और विधिपूर्वक कामधेनु तथा रत्नों द्वारा उत्तम बस्तुओंसे उन मुनियोंकी अलग अलग पूजा की और सब मुनियोंके साथ व्यासजीका रामने भोजन कराया ॥ ३ ॥ ४ ॥ बारम्बे सीता और दक्षिणा दी। तब रामने हाथ जोड़कर भगवान् व्याससे कुशल-मङ्गल पूछा ॥ ५ ॥ सीताजी उस समय व्यासजीका कन आल रही थी। इसके बाद व्यासजीने रामको अपना कुशल-मङ्गल सुनाया और बहुत रमे—हे महाबाहो राम। आप जैसा राज्य हम पृथ्वीपर कर रहे हैं, वैसा किसी राजाने नहीं किया और कियेकम भी कोई नहीं करेगा ॥ ६-८ ॥ उनके अनिच्छित आप जैसे महिवालका एक पत्नीयत पालन करना देखकर मेरे मनमें तो बड़ा आश्चर्य होता है। ९ ॥ इस ज्ञानमें ऐसा कीन राजा है, जे तरुणाईन रामरूपी दावानलको सहनेमें समर्थ हो। मेरे जब बड़पा रहकर जवान का न्यारुमे एकजन्मगतवारी केवल आप ही हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार व्यासजीका बात सुनकर रामने कहा हे मुनिमत्तम। मैं अपने लिए तोन नियम बना लिये है। एक यह कि—॥ ११ ॥ एक बार मेरे मुत्तसे जो बात निकल जाय वह भ्रष्ट हुंको है। प्राणमन्दुट जानेपर भी बात नहीं बदलगे। दूसरी बात यह कि—सीताकी सादर सत्कारकी सम्मत्ति स्वीकार मेरे लिये कीसलनके समान जाता है। दूसरी स्त्रीको मे अपने मनमें भी नहीं पावता। १२ ॥ १३ ॥ तीसरी बात यह कि—मे जिसे शोध करके मानता चाहता है उसपर केवल एक बाण छोटता है। उससे उसे मार डालता है, दूसरी बाण नहीं उड़ता ॥ १४ ॥ हे मुनिराज। ऐसा मेन नियम बना रक्खा है। आपके आशर्वादसे मेरे ये नियम आविर्भूत मानसे चल रहे हैं। वेदव्यासने कहा—हे राजन्। जैसी आपकी इच्छा है, वैसा हो होगा। और मुनिये, जो आप इन जन्ममें एकपत्नीयतका पालन कर रहे हैं इसके कन्से दूसरे जन्ममें आप बहुतसी स्त्रियाँ पारंगे ॥ १५-१७ ॥ इस कार व्यासजीकी बात सुनकर रामने कहा—हे महामुने!

द्वारिकायां यदाऽत्र हि द्वापरे मुनेष्वनम । येन जनेन दनेन निषमेनावशा मुने ॥१९॥  
 बहुनारीनिधयेन प्राक्कर्मोनि वदन्व मा । इति रमयचः श्रुत्वा वृषामो राधवमजरीन् ॥२०॥  
 सम्यक्पुष्टं त्रया राघ दानं ते पवडभ्यदत् ॥ एकपन्तात्रनादेव यद्यपि न्व न स्त्रीर्वाह ॥२१॥  
 लभिष्यसि तथाप्यथ दानं तव वदाम्यहम् । शान्तावाग्मुखाणम् मुनिमेकां गधूनम् ॥२२॥  
 एव षोडशमूर्तीषु काश्य एवं पृथक् पृथक् । देहि न्व मरयुनद्याम्नोरे विधेय आश्रय ॥२३॥  
 वसालकृष्णभूषार्थदेक्षिणाभिध ताः शुभाः । अनेन बहुनारीन्व लभिष्यस्यस्य वन्मनि ॥२४॥  
 तथेति राधवश्चापि मूर्तीं कृत्वा मनोरमाः । ददौ ताः सम्युनद्यां ब्राह्मणेभ्यस्तु षोडश ॥२५॥  
 ततस्ते मातृष्वास्तुष्टा रात्रायाजोद्देर्मुदा । दत्तमेकगुणं गजन् महस्यगुणित पुरा ॥२६॥  
 अन्त्यकं वचनादानकलं तव भविष्यति । षोडशस्त्रामहस्याणि न्व लभिष्यसि निधयन् ॥२७॥  
 तथास्तिवन्धाद्वरामोऽपि तनो विप्रान्द्वयमजेयत् । श्रगम्य पूजितं व्यास ददावाक्तां स्पृष्टहः ॥२८॥  
 अर्धकदा रामचन्द्रः सोतया मरयुनटे । मधुपामे वसुगेहे स्थितः कीडां चकार मः ॥२९॥  
 एतस्मिन्नेतरेऽयोध्यां नानादेशनिवाधिनः । गमतीर्थे मधौ ज्ञातुं समाजम्भुः सदस्यताः ॥३०॥  
 सुरा यक्षाः किन्नराश्च गन्धर्वाः पन्नगा नगाः । बह्वक्ष्यश्च परितः मवास्तीथानि हुतया नृपाः ॥३१॥  
 अप्सरस्यः पन्नगाश्च खगाः क्षेत्राणि शनराः । अर्धका देवपत्न्यो ज्ञान्वाऽस्पृष्ट्यां विदेहजान् ॥३२॥  
 परम्परं ताः समन्व दिशांघे राधर्ष मति । समाजम्भुर्दिन्यवस्त्रन्ताभरणभूषिताः ॥३३॥  
 राममादर्यसभ्रान्ताः कामबाणप्रर्षाडिताः । ता दृष्ट्वा रामदूताग्ने पप्रच्छ रक्षगस्थिताः ॥३४॥  
 युवं किमर्थं सभ्रामा निशांघेऽथ मयावहे । कथयस्व हि नः सर्वं मा शङ्कां कुरुतत्र हि ॥३५॥  
 ता उचू राधव द्रष्टुं सभावाता नयं स्त्रियः । अधुना चेद्वाधवस्य दर्शनं न भविष्यति ॥३६॥

७.११ द्वापदम कृष्णकालसे से बहुत सी त्रिविक्र साय भोग करीया सही, लेकिन वह कौन-सा ऐसा वत अबदा दान है जिसका करनेम में प्राक्क जन्मम बहुत सा नाशिका का या मकूण ॥ १८ ॥ १९ ॥ द्य मरयच कहा—  
 है राम । आपने बहुत ठाक मन्त्र किया है मैं आपको यह दान दनलाया हूँ । यद्यपि एक नाशिकके पुण्यम  
 हा आपका कितनी ही त्रिविक्र मिलेगी । तथापि वह दान बन मे देता हूँ । सोन के समान भारत मुवर्गकी  
 एक मूर्ति बनव द्य । फिर उसी तरह सान्त्र मूर्तियां तैयार करा के और इन्हे विविध प्रकारके बम्भो-पूजगान  
 भूयत करके समू नदीके तटपर ब्राह्मणोंको दान दे राखिये । २०-२३ ॥ ऐसा करनेसे आप आपसे जन्मम  
 बहुत सो त्रिविक्र पायने । २४ । रामचन्द्रन उसे स्वीकार किया । तदनुसार उन्होंने कानाको कान्हू मूर्तियां  
 बनायी और मरयु नदीके तटपर ब्राह्मणोंको दान दिया । २५ ॥ उन ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर राघवकी यह  
 आज्ञावाद किया कि आप इस समय जा कुछ हम लोगोंको दे रहे हैं मां सदस्यगुणा होकर आपका प्राप्त हो  
 ॥ २६ ॥ हम लोगोंके आशीर्वादसे आपको यह फल अवश्य प्राप्त होगा । इसके बाद मन्त्र नही है कि  
 ३ वरों भविष्यमे सालहू हजार त्रिविक्र मिलेगी ॥ २७ ॥ रामजाने भा कहा कि राज है मेरा हा है । और  
 उन त्रिविक्रों तथा ब्राम्हणोंको भली भाँति पूज करके बिदा किया । २८ ॥ एक बार राम येनमानम सम्यु-  
 न्दर सीताजीके साथ पटगुह ( तम्बू ) में विहृत कर रहे थे । सभी चैत्र रामनवमीपर मरयुनद्यत करमक  
 लिये हजारों रात्रो अशोष्या आ पहुँच ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे देवता, यक्षा, किन्नर, गन्धर्व, वज्रग, पर्वत,  
 त्रिविक्र, समस्त तार्य, मुनि, राजे, भक्षरादे, खग, क्षेत्र, नन्दर आदि वही लोग करनेके निमित्त आये ।  
 क दिन देवताओंकी त्रिविक्र सब कि सोत जो न पिक घर्मम भी, सब आपगत न यह करके विविध प्रकारके  
 वन्धाभूषण बहुतकर रामचन्द्रजीके साथ गयीं । ३१ ॥ ३२ ॥ वे सबकी सब रामके सौन्दर्यको देखकर पागल  
 हो गयी थीं । उन्हें देखकर रसकोन पूछा— ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तुम लोग कौन हो ? आर्यो रासके सबक वही कि  
 लिये आयो हो ? साफ-साफ बतला दो, धवड़ाओ नहीं ॥ ३५ ॥ उन्होंने कहा कि हम सब त्रिविक्र रामचन्द्रको

जातो वधस्तदाऽप्यमाकं जीवितानि नदीजले इति तामां वचः श्रुत्वा दूताग्ने राघवं जवात् ॥३७॥  
 दास्या निवदयामासुः स्त्रीवृत्तं तन्मविस्तरम् । श्रुत्वा दासीमुखोद्गमः सैकते मन्त्रके स्थितः ॥३८॥  
 समाहूय स्त्रियः सर्वा ददर्श रघुनायका । ताश्चापि दृष्ट्वा श्रीगमं मेनिरं कृतकृत्यताम् ॥३९॥  
 नतस्मा राघवं श्रुत्वा लज्जयाऽधोमुखः स्त्रियः । पाङ्तिनाः कामवाणैश्चतस्रः श्रीगममन्त्रिणौ ॥४०॥  
 ताः पप्रच्छ राघवोऽप्यागमदम्पथाथ करणम् । सा राघवं तदा प्रोचुः सर्वं वेत्ति स्वर्मेश्वर ॥४१॥  
 श्रुत्वा तामां गमचन्द्रो हृदयं प्राह ताः पुनः एकपत्नीव्रतं मेऽस्मि चैतज्जन्मनि मेः स्त्रियः ॥४२॥  
 न श्रेय मे मृषा वाक्य गम्यातां स्वस्थलं जवात् । माऽभूदवमो मद्राज्ये राजा वै निरयप्रदः ॥४३॥  
 इति राघवशब्दागौर्भिन्नमर्मस्थलाः स्त्रियः । ययुर्मुखां क्षणादेव मिकतायां सहस्रशः ॥४४॥  
 सा मुखाविह्वला दृष्ट्वा रामो विह्वलमानसः । नारीः संशेषवद् प्राह हे नार्यः अपतां मम ॥४५॥  
 वाक्यं श्लेधापहं बोधय दापरे कृष्णरूपशृङ्ग । अहं ब्रजे भविष्यामि नन्दगोपेशपालिने ॥४६॥  
 तदा देवास्तु गोपाला भावि मद्वरदानतः । भविष्यन्ति सुरेशश्च नन्दस्तत्र भविष्यति ॥४७॥  
 भविष्यथ तदा युय गोपिकाः सकला ब्रजे । कुन्ताकपूरिष्यामि पथेच्छं वाञ्छितं तदा ॥४८॥  
 रागकीडां हि पुष्पाभिः कशिष्णामि न मशयः । बुन्दावने तु कालिद्यां सैकते निशि वै चिरम् ॥४९॥  
 भवन् स्वस्थचिन्ताश्च गच्छन्त्वं स्वस्थलं मुन । इति रामवचोरूपसुधया जीविताः स्त्रियः ॥५०॥  
 किञ्चिन्नृपहृदो रागं नत्वा जम्बुनिजं स्थलम् । एतस्मिन्तरे तत्र मधुस्तानार्थमादरात् ॥५१॥

मायापुर्याः समायाना रम्या गुणवती शुभा ।

श्रीरामचन्द्रे उवाच

का मा प्रोक्ता गुणवती किशीला कस्य कन्यका ॥५२॥

देखनेके लिए आयी है । यदि इसी समय हमको राग्यक दर्शन नहीं मिले तो हम सब इस सुरयू नदीमें कूदकर  
 अपने प्राण दे देंगे, ऐसी बात सुनकर दूतगण तुरन्त रामके पास गये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ पहुँचकर  
 उन्होंने दासियों द्वारा रामचन्द्रजीके पास गये समाचार कहनाया और स्त्रियोंके उस वृत्तान्तको दासियोंने  
 विस्तारपूर्वक रामको सुना दिया । दासियोंके मुखसे यह सुनकर रामने उन सब संयाज्ञनाओंको बुलवाया ।  
 पास पहुँचकर स्त्रियोंने भगवान्‌क दखा । दवाङ्मनाओंने उनको उस सत्यको छावकी दखकर अपनेको कृत-  
 कृत्य समझा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उन्होंने अजित्म होकर भगवान्‌की प्रणाम किया और कामवाणमे पीड़ित होकर  
 वहीपर बैठ गयीं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ रामने उनके अगमनका कारण पूछा । उन्होंने कहा—माय सबके ईश्वर हैं, मला आपसे  
 कौन बात छिपी रह सकती है । आप सब कुछ जानते हैं ॥ ४२ ॥ उनमें गनकी बात जानकर रामने कहा—हे  
 हे स्त्रियो इस जन्मसे ता मे एकपत्नीव्रतवाणी है ॥ ४३ ॥ मैं जा कह रहा हूँ उसे मित्रता सब समझना ।  
 अच्छा, अब तुम लोग अपने-अपने ईश्वर जाओ । ऐसा करा कि जिससे मेरे द्वारा किसी प्रकारका अक्षम  
 न हूँ । क्योंकि जिस राजाक राज्यमें अधम हाता है, उसे नरकगमा होता रहता है ॥ ४४ ॥ इस तरह  
 रामको जाते सुनकर कामवाणसे पीड़ित वे दवाने स्थित क्षणभंगम पहुँच हो गये ॥ ४५ ॥ उनको मूर्ख  
 देखकर विह्वलमनस्क रामचन्द्रजी उनका सन्ताप दत्त हुए कहने लगे—हे नारियो ! मेरी बात सुनो, इस तरह  
 क्षणैर मत होओ ॥ ४६ ॥ जो मैं कहता हूँ, उसे सुनकर तुम्हारा सब लह हार हो जायेगा । दापरसे मैं  
 कृष्णरूपसे गोपश नन्द द्वारा पालित लज्जमे जन्म लूँगा । उस समय समस्त राजा मेरे आशीर्वादसे मोप  
 होंगे । इन्द्र नन्दरूपसे जन्म लगे और तुम सब उन गोपालोवा गोपिणी होओगी । उस समय मैं तुम लोगोंकी  
 समस्त कामनाएँ पूर्ण करूँगा ॥ ४७-४८ ॥ कृदावनमें ययुनाकी रतीमें शत्रिके समय तुम लोगोंके साथ मैं  
 रासकीडा करूँगा ॥ ४९ ॥ अब तुम लोग स्वस्थ दाकर अपने-अपने स्थानको जाओ । इस तरह रामके वचन-  
 रूपी सुवासे जीवित और किञ्चित् सन्तुष्ट दाकर वे अपने-अपने स्थानको लौट गयीं । इसके अनन्तर माया-



ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहताबुधौ । विदुर्मर्जदुःस्वार्ता निललाप भृशतुल्य ॥१२॥  
 सा गुदारस्फुरान्मशान्विक्रीप शुभकर्मकृन् । तपोश्रक्ते यथाशक्ति परलोकक्रियां तदा ॥१३॥  
 तन्निष्करोर पुरे वाम चक्रं प्रसूनेजीविनी । विष्णुपक्तिरग शांता सन्पशूना जिनेन्द्रिया ॥१४॥  
 प्रतापक नया मध्यमानन्ममरणात्कृन् । एकादशीश्रव मध्यक् सेवन कार्तिहरण च ॥१५॥  
 माये चक्रं नाभदेऽपि स्नानानि प्रतिवस्मरम् । मेमाज्जनं विष्णुगेहे स्वस्तिकादिनिवेशनम् ॥१६॥  
 नित्यं विष्णो पूजनं च मकन्या तत्परमानसा । इत्थं प्रतापक मध्यक् सा चकारातिभक्तिनः ॥१७॥  
 एकदा सा गुणवती पौराणिकमुवेन हि । श्रुत्वा महत्फलं शिष्य साकेते समुज्जले ॥१८॥  
 चक्रस्नानस्य केवलपदायक जनसंयुता ययौ श्रावणनगरीं रामतीर्थेऽवमच्छुभा ॥१९॥  
 मैकदा रायत्रं द्रष्टुं मरुसैकतस्थितम् । वामोमेहे रदः पन्था ययौ वंशुममन्त्रितम् ॥२०॥  
 पूजापात्राणि हस्ताभ्यां चित्रतीं द्वाग्दम्भिता । प्रतीहारेण रामाय वेदिना सा विवेकः ॥२१॥  
 वामोमेह ददर्शाथ मातया रघुनायकम् । रत्नमंचकमलजन धृताधोकोपवर्धणम् ॥२२॥  
 क्राउन्तं सारिभिः शार्थैः पीतया लक्ष्मणेन च । कैकेयीनयाम्भ्यां च सस्त्रीभिः परिवारितम् ॥२३॥  
 मगुरपिच्छमभूतचामरैः परिवर्जितम् । रत्नचित्ररुक्मपदे नूपरे पदयोर्वरे ॥२४॥  
 विभ्रन्तं रथनां कय्या रत्नरुक्मविभूषिताम् । रत्नरुक्मपदे दिव्यकङ्कण कययोर्वरे ॥२५॥  
 विभ्रन्तं भुजयोर्दिव्यकेयूरे रत्नमुपिते । कण्ठदेशे हीम्तुम च हृदि चित्तामणिं शुभम् ॥२६॥  
 विभ्रन्तं विविधान्हागन् रत्नवाणिक्यनिर्मितान् । तथात्र लक्ष्मणज्योतिषं मुक्ताहारान् विचित्रान् ॥२७॥

मे कानो मेनुष्मभुवनम् रहते यान् । उम्हे विमानसी सज्जगी मिले यी और मूयंके समान उनका तेज था ।  
 विष्णुके संगान उनका रूप था और उनके मरीरमें दिव्य चन्दन लगा रहता था ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् जब  
 गुणवतीने मुना कि मेर गिता और वलि दोनों विभी राक्षस द्वारा मार जाने गये है । सब उसे अतिशय दुःख  
 हुआ और वह विषाद कारण रग्यो ॥ १२ ॥ फिर धरम को कुछ माल-मताह था, सब सब जाला और अपनी  
 भक्तिके अनुसार उनका पारलौकिकता निरा पूर्णका । तबसे वह मोक्ष मागकर स्वामी हुई उसी तगरमें रहकर  
 अपना जेवन बिताते लगी । गुणवती विष्णुका भक्ति करती हुई सत्य-गौच जिनेन्द्रितादि गुणोंसे पूर्ण हो  
 गयी ॥ १३ ॥ १४ ॥ उभने अपन मावन भरम कवल अछ प्रत विषे थे । वह एकादशी व्रत, कार्तिकका  
 सेवन मागंशाग, चैत्र तथा माघमें प्रतिवर्ष स्नान लिया करता थी ; वह विष्णुके मन्दिरमें बहारी देती तथा  
 मर्त्यिकादि रचने थी ॥ १५ ॥ १६ ॥ भक्तिसे और माविधान हृदयमें वह नित्य विष्णुका पूजन करती थी ।  
 इस तरह इन आठो प्रतीकों श्रद्धासमन करती रहा । हे शिष्य ! एक दिन उसने एक पौराणिकसे सुना कि  
 चैत्रमासमें कर्णाश्रक सरयूजलका बड़ा माहात्म्य है और चैत्रमासमें तो वहाँ स्नान करनेमें महज ही में मुक्ति  
 मिल जाता है । यह सुनकर बहुतसे आदमियोंको साथ लेकर गुणवती चैत्रस्नानके लिए अयोध्या आयी  
 और उसी रावन नगरमें टिक गयी । १७-१८ ॥ एक दिन गुणवती जहाँ सरयूकी रेलीम रामचन्द्रजी  
 ठेरा डाले हुए थे, वहाँ जा पहुँची । उस समय रामचन्द्रजी पटगृहके किसी एकान्त कमरेमें लक्ष्मण और  
 सीताके साथ बैठे थे । फागुनपर पहुँचकर गुणवतीने प्रतीहारी द्वारा सन्देश भेजा और स्वयं पूजापात्र हाथमें  
 लिये बाहर ही खड़ा रहा । प्रतीहारोंके लौटनेपर वह अन्दर गयी ॥ २० ॥ २१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने  
 देखा कि रामचन्द्र सीताके साथ रत्नजटित मक्षपर चतुं थे और तर्किया लगी थी ॥ २२ ॥ भगवान्  
 राम सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न मारिका और पक्षिके साथ खेल रहे थे । सबियाँ सारी औरसे  
 धेरकर खती थी । २३ ॥ मयूरके पक्षनाके बने हुए पक्षे चल रहे थे । उनके दोनों पक्षोंमें रत्नजटित नूपुर  
 और कमरमें रत्नजटित मञ्जला पहनी थी । दोनों हाथोंमें जडाऊ कंकण पड़े थे । २४ ॥ २५ ॥  
 हाथोंमें सुवर्णके रत्ननूतिल दिव्य केयूर थे । कंठमें कीम्बुभण्णि तथा हृदयमें विस्तामणि था । राम विविध  
 रत्नोंके जडाऊ हार पहन थे । सुनहले तथा चित्र विविध मोतियोंके हार उनके गलेमें पड़े थे ॥ २६ ॥ २७ ॥



तुलसीकाण्डहाराश्च पु पङ्कगननेकशः प्रवालमणिद्वाराश्च मुद्रयाः कान्तनोद्धवाः ॥२८॥  
पद्मानि विवित्राणि रत्नमणिश्च रत्नचरि । रत्नाकलाः रत्नदृशात ईकानि विविधे वत् ॥२९॥  
रत्नमणिकश्मयुक्तान्मुकुटानि विविधे वत् । रत्नमणिकश्मयुक्तान्मुकुटानि विविधे वत् ॥३०॥  
अमुलीष्वपि विभ्रन्तं हस्तप्रोमृदिकाः शुभाः रत्नमणिकश्मयुक्तान्मुकुटानि विविधे वत् ॥३१॥  
गमनामांकितश्चापि पवित्रा उज्ज्वला अपि । रत्नमणिकश्मयुक्तान्मुकुटानि विविधे वत् ॥३२॥  
विभ्रन्तं महिमादृशानलं कान्तनेकशः । विभ्रन्तं महिमादृशानलं कान्तनेकशः ॥३३॥  
नानामणिमयुक्तं कलशैर्निर्गोमनम् । मुक्ताप्रवालैर्द्वययुक्तं हंसमयं वरम् ॥३४॥  
एव गुणवती राम कोटिवृक्षमवप्रभम् । हस्तप्रोमृदिकाः शुभाः रत्नमणिकश्मयुक्तान्मुकुटानि विविधे वत् ॥३५॥  
सौमनस्यं कञ्जहस्तं दृष्ट्वा तं पणनमसा । रत्नमणिकश्मयुक्तान्मुकुटानि विविधे वत् ॥३६॥  
तद्वत्तैरुपहृताद्यैः सुप्रीतश्च । तदा उच्यते । राम इत्येतं नाम यत्तु मनसि वर्तते ॥३७॥  
इति रामवचः श्रुत्वा सा तुष्टा राममवप्रभम् । राम इत्येतं नाम यत्तु मनसि वर्तते ॥३८॥  
दास्यः संति तथा मोन्वमर्गाकतुमिहाहोम् । इति तदुच्यते श्रुत्वा राधवः प्राह स संमतः ॥३९॥  
कथं त्वं ब्राह्मणी चेन्महदस्यद्य शुभवदे । मन्मथां कतुमिहाहोम् तदा तदि वदाम्यहम् ॥४०॥  
शृणुष्व त्वं गुणवति कुण्डलधरे वदम् । दापरे द्वारकायां हि भविष्याम्यन्यजन्मनि ॥४१॥  
भविष्यमि तदा मा न्व स्वरूपेण न सक्षयः । मया जिह्वयश्च ते भविष्यति तदा पुनः ॥४२॥  
यश्चन्द्रनामा सोऽङ्कगे भविष्यति मया मया । मया जिह्वयश्च ते भविष्यति तदा पुनः ॥४३॥  
तदा कुरुष्व दास्यं मे यत्ते मनसि वर्तते । इति रामवचः श्रुत्वा तदा गुणवती मुहुः ॥४४॥  
नत्वा श्रीराधयं सांतां यया सा स्वस्वन्तं प्रेति । पदमनामानन्तरं सा हरिद्वारं यया वर्तते ॥४५॥

वे गुल्लकी, कादरी, गंधा, गुगरी, मल्ल, प्रवाल और गणिकी बनीं माला पहने हुए थे। गले में विचित्र प्रकारके पदक पहने थे, जिनमें रत्न और पत्थर, नाम किए जाया था। रत्न, पत्थर तथा कमलकी नाई उनका आकार था। वन में जगह-जगह रत्न और मणिसे लगे हुए लकड़ों पर शांति के हुए थे। वन में नमकमणि वहु चित्र-विचित्र माला पहना था। उनमें जहाँ-तहाँ रामके पद लिखे हुए थे। २०। २१। वन में हाथोंकी लँगणियोंके सुन्दर आकृतियाँ पहने थे वे भी रत्न मुक्तामणि और मणि लगे हुए थे। वन में ही रामका नाम जाता था और वन में ही रामके पद लिखे हुए थे। रत्न तथा मुक्तामणि जड़ित मुण्डल उनके कानों में लगे रहे थे। वे गुल्लकी, कादरी, गुगरी, मल्ल, प्रवाल तथा मूषक समान पत्थरों द्वारा धारण किये थे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मुकुटमें विचित्र प्रकारके गन्धक वस्त्र लगे रहनेसे वह और भी सुन्दर लग रहा था। उसमें भी जगह-जगह मुक्तामणि-जड़ित आदिक सुन्दर काम बना हुआ था ॥ ३४ ॥ इस तरह करके सुबोके समान राजकी तथा सुवर्णकी भाँति जिनका वर्ण था, कमलवर्णके समान जिनके नेत्र थे, चन्द्रमय समान जिनका मुख था और कमलकी भाँति हाथ थे। इस रामका गुण ज्ञान शक्ति और प्रणय किया। रामस्वरूप उस उठाया और उसमें विविध प्रकारके उपचारोंसे रामकी पूजा का ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और धेड़ दिये। जिसके साथ अतिशय प्रसन्न होकर कहने लग कि "मुम्हारी ओ इच्छा हो सो कर लीग ली" ॥ ३७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वह बोली—हे राजाद्वारा राम ! मैं आपकी ये हजारों शक्तियाँ हैं, बैसे ही मुझ में अपनी एक दासी बना लाजिए। इसकी ऐसा करने सुनकर मुषकराने हुए राम कहने लगे— ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तुम शक्त्यपी हाँकर ऐसी अशुभ बात क्यों कह रही हो ? यदि मुझे मेरी सेवा करनेकी इच्छा है, तो मैं बनकर ना हूँ ॥ ४० ॥ हे गुणवती ! मुनी, दार्पण्य में कृपारूप धारण करके अवतार लीया। तब दार्पण्य में तुम मेरी स्त्री होकर इच्छानुसार मेरी सेवा करोगी। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उस समय देवप्रसाद पादध्यान सदाजित् मुम्हारा मिले होगा, चन्द्र अक्षरनामका मेरा मित्र होगा और तूम सत्यसोभा नामका मेरी पदरानी होओगी

आयुःशेषं समाप्त्वाथ गंगायां कृण्वन्निजम् । सन्त्रस्तनामययथे न्यक्त्वा नाकं चिरं गता ॥४६॥  
 ततः कालान्तरेष्वात्मन्यवाजितनया भुवि । बभूव पत्नी कृष्णस्य दूषणे द्वाकापुरि ॥४७॥  
 एकदा पिण्डलानाम्नी वक्ष्या राज्ञी विनिद्रितम् । पीनया दिव्यवर्यैश्च ययौ सा राघवं सहः ॥४८॥  
 विहाय नृपरादीनि स्वनवन्ति पदोः झतः । हस्तगतो निर्गन्धनी दिव्यस्त्रैर्दिभूषिता ॥४९॥  
 सीतामयान्वकपन्तो कामषाणप्रपीडिता । मण्डिता पुष्पमालाद्यैर्मण्यैरतिशोभिता ॥५०॥  
 अज्ञाता द्वाग्यार्जः सा निद्रितैर्मन्त्रकं ययौ । स्वकरेण पदस्पर्शं कृत्वा राघवं प्रबोधयत् ॥५१॥  
 तदा प्रभुदः आशमन्तां ददर्श पुनःस्थिताम् । सा घृत्वा हृदये शार्दूलं प्रार्थयामास राघवम् ॥५२॥  
 राम राजावपत्रक्ष मया तेऽद्यापराधितम् । त्वं भूमय कृपां कृत्वा मयि चानुग्रहं कुरु ॥५३॥  
 त्वत्पया वचनं भूया ज्ञानं नां कामपीडिताम् । तां समाश्रयितुं ग्राह्य राघवः कञ्जलोचनाम् ॥५४॥  
 एकपत्नीयत मेऽस्मिन्भवे त्वं वैन्मि पिण्डले । अनन्त्यस्कांमपूर्वये वदामि तच्छृणुष्व हि ॥५५॥  
 यदाऽहं मथुरामये अजात्यौकृष्णरूपघृष्टः । पाश्यामि मानुलं कस्य हन्ता स्याम्यामि नन्पुंगवम् ॥५६॥  
 तदा भक्तिर्यामि त्वं मां कृत्तारूपेण पिण्डले । गच्छ दाम स्वरूपेण निष्ठु त्वं क्रमवेक्ष्यनि ॥५७॥  
 आयुःशेषं निवर्तये देहं विमृश्य बहुश्रुतम् । इत्युक्त्वा पिण्डलां गतो दशकाक्षां भगान्निद्रिताम् ॥५८॥  
 शिक्षयासासु द्वारम्यान्दासान्दामीर्विनिद्रिताः । ततः मार्गं प्रवाप्याथ वंश्याहृतं न्यवेदयत् ॥५९॥  
 तच्छ्रुत्वा जानकी कृष्णस्यैवा पवङ्गमुत्तमम् । राघवं प्राद मकोशा कथं न हं प्रबोधिता ॥६०॥  
 तदवगम्य मया तातमेकपत्नीयतं मुखा । भुगदी गिरिर्गङ्गा नृपी त्रपाण्डु बोधिता ततः ॥६१॥

॥ ४१-४३ ॥ इस समय जेना मुहुरा इच्छा होनी चेसा मरा सेवा कर जना इस प्रकार रामकी बात सुनकर गुणमयी बहुत प्रसन्न हुई । ४४ ॥ यह रामचन्द्र तथा साताकी प्रणाम करके अपने द्वाररह लौट गया । इस प्रकार वह अ० ४१ मे चरनात करके अपने माचरीन साथ हस्तिना चली गयी । वहाँरह उसकी जितनी आयु शेष थे, उस समय करके एक दिन स्नात करनेकी गंगाया गयी और वही लहर हासकर स्वर्नात्मना चली गये । ४५ । ४६ ॥ अस्मान्तरमे गुणवती सभाजितुकी पुरी होकर जन्मों और कृष्णकी पत्नी बतकर द्वारकामे निवास करने लगी ॥ ४७ ॥ एक दिन पिण्डला नामकी एक वक्ष्या रात्रि के समय रामचन्द्रके पास पहुँची । उस समय राम साताके साथ एक दिव्य पद्मनगर से रह थे । वह वही गयी ॥ ४८ ॥ नृपराजि की बातनेवाले जाभूषणानी पैरोस उनाकर वह सुन्दर कपड़े पहने मयवश हथर उथर देवता आ रही थी । साताके भगम उसके अङ्ग अङ्ग वरि रहे थे और वह कामके बाणसे पीडित थी । उसने मुर्गान्त पुराका मान्ता तथा अनक आभूषण पहन रखी थी जिससे वह बड़ा सुन्दरी मानूस पड़ती थी । ४९ ॥ ५० ॥ जिस समय द्वारम्यान्दासांदिनिद्रित थे तब पृथग्मे मान्तर चला आयी और रामचन्द्रकी मचके पास जा पहुँची । उसने हृदयम रागके गैर शृंकर उन्ह उगाया ॥ ५१ ॥ राम आज गये और सामने उस पिण्डला वक्ष्याकी दया, तब वह जागस रामके पैरोका एकद्वार प्रार्थना करने और कहने लगी—हे राम ! हे राजावपत्रक्ष ! आज मैं बड़ा भारी अवरुच किया है । मेर ऊपर कृपा करके आप उस कामा कर दें और मेरेपर दया कर ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उसकी यह बात सुनकर रामने सम्मस्त स्थिति कि वह कामपीडित है । तब उस आश्रितन दनके लिए कहने लगे— ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ कि इस जन्ममें मैं गच्छन्तीवमयानी हूँ । अनन्त नृपराजी कामकायका अन्तिक आ उपाय बनलाना है, उसे साधसान होकर मुना । ५५ ॥ जिस समय कृष्णरूपवाग मे जन्म मथुरा माऊगा और कसको भरकर उस गुरीमे ठहरेगा तब हे पिण्डले ! तुम वृत्त के रूपमे मेरा सेवा करोगा । जात्री, मेरे आशीर्वादसे तुम इस गङ्गारवीण्य आयु वितारकर कसके यहाँ दासी हाजगी म्वा मता । के भयसे रामने केवल इतना कहकर उसे विदा कर दिया । ५६-५८ ॥ तब उन्होंने द्वारम्या तथा दाम दासी आदिकाकी जगकर डाँटा-फटकारा और साताकी जगकर उस वैश्याका सम्मन बमान कह सुनाया । ५९ ॥ सो सुना तो आश्रित होकर जानकी बाव्या छोड़कर उठ खड़ी हुई और रामसे कहने लगी कि वह आर्या थी, तब तुमने मुझे

तां विमुञ्च्य चिरादद्य ज्ञातुं ते चरितं मया । मृषा त्वया प्रतिज्ञातं पुरा वराममुनेः पुरः ॥६२॥  
एकपत्नीश्रवणं मेऽस्ति कौमल्यामदृशी मम । प्रन्यास्त्रीणि मृषा वाक्यं कथ्यसे त्वं पुनः पुनः ॥६३॥  
क गतं तद्भवस्तेऽद्य क गतं तद्वचनं तव । अर्थैव जीविह स्त्रीयं त्वजानि सम्युज्जले ॥६४॥

वेश्यायाः पृष्ठसल्लानां शय्यां नाय स्पृशाम्यहम् ।

वेश्यामक्तस्थामिन त्वां दृष्ट्वा द्वेषो भवेत्त्वयि ॥६५॥

मृगयां मयि च दृश्य वेश्यामक्तस्य ते भवेत् । वेश्यामक्तपवित्रस्य चिरं गच्छेत् न विप्रुनि । ६६॥  
इत्युक्त्वा राघवं नन्वा देहत्यागयमुग्रता । पर्या वेगेन मयं वस्त्रमेहानिहिम्बता । ६७॥  
गच्छतीं राघवो दृष्ट्वा मुक्तकञ्जः प्रदुर्बलः । मन्त्रमाज्जानर्त्ता शृण्वो मुञ्चन्त्या मकनेऽप्यले ॥६८॥  
अत्ररीन्मधुरं वाक्यं म रूपं न विदहते । शृणुष्व वचनं मे त्वं दिव्य ने प्रवक्ष्याम्यहम् ॥६९॥  
मयि ते श्रवणं प्रत्ययो न भवेत्त्वयि । दुष्टं यद्वर्त्तापि त्वं न दृश्यं प्रवक्ष्याम्यहम् ॥७०॥  
वद शीघ्र जनकजे मा क्रोध भज भारिनि । हात रामयन् शृन्वा जानर्त्ता प्राह राघवम् ॥७१॥

जानकबुवाच

राम मृषामह किं ते येन दिव्यं ददामि ते । अनलम्बन्मुरोद्धतो नयने शशिमाङ्गरी ७२॥  
रामस्ते जलार्धं राम पृथ्वीय विभृता त्वया । शेषरत्नमयवशात् लङ्घयामिपुनः बहिः ७३॥  
शास्त्राणि त्वमस्तजानि सर्वाण्यत्र न संशयः । दृष्टव्यमिह तन्मयं तव रूपं न संशयः ७४॥  
न दुष्टं ते दिव्यार्थं किञ्चित्प्रश्यामि राघव । किं ब्रूयामधुना तेऽत्र येन मे प्रत्ययो भवेत् ७५॥  
एकमेवास्ति जानेऽहं तन्कुरुष्व रघुनम । इदानीमेव स्वगुरुं समाह्वय रघुदह ७६॥

बड़ी नहीं जगया ? ॥ ६० ॥ आगे तुम्हारा एकपत्नीश्रवण मान्य हो गया । विन्या आयी, उसके मण चुस्केस श्रवण कर लिया और जब वह बड़ी गयी, तब मृषा जगया ॥ ६१ ॥ बहुत दिनों बाद आज तुम्हारी यह पाल खरा है । इस दिन राममुक्तिराममान जा एकपत्नीश्रवण पारण करनेकी कसम खायेगी, सो सब दाग था ॥ ६२ ॥ 'नही न न' राघव - अर्थात् पूर्वक कहा - 'वास्तवमें मैं एक पत्नीश्रवणकारी हूँ । तुम्हारे सिवाय संसारकी सम्स्त निर्वा मरे लिए कोमलदाक समान है । तुम अर्थ मरे ऊपर रह रही हो' । ६३ । तब साता और भी तमककर कहने लगी कि तुम्हारी यह प्रतिज्ञावाली बात कही गयी ? वह बात कहाँ गया ? अज हाँ मैं सन्देह जगम दृक्कर प्रणवा जवन समाप्त कर दूँगी ॥ ६४ ॥ मैं ऐसी शायदापर अब नहीं सोना चाहती, जिसपर कि एक वेश्याको बैठ लग चुकी है । तुम्हारे जैसे वेश्या-मक्त राजाकी जो दशा होनी होगी, सी होगी । लेकिन यह सम्मरस्त्रियता कि वेश्यामक्त राजाका राज्य जगदा दिन नहीं ठहरना ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इतना कहकर सीताने रामको प्रणाम किया और अपना वह स्वाग करनेक लिए पटगृहसे बाहर होकर सन्मुखे तीरकी ओर चली ॥ ६७ ॥ सीताको जाती देखकर राम भी पीछेसे दौड़ पड़े और जल्दक उस पहुँचनेसे पहले ही उन्हें रोकने पकड़ लिया । ६८ ॥ तब वे सीठ-माठ बातों कहने लग-हे बिदेहजे । पर ऊपर इतना ताराज मत होओ । मरी बात मुनो-यदि मेरी बातपर विश्वास न हो तो मैं शायद जानेको भी लेवार हूँ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ हे सीठ ! बादा, क्या कहता हा ? हे भारिनि ! इस तरह क्यों काँप करती हो ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर सीताने कहा-मैं तुम्हें कुछ कहना तो हूँ नहीं । फिर तुम कसम किसलिए मानको तैयार हो ? क्यों दिव्य पराक्षा कराना चाहते हो ? फिर यदि मैं विव दरीक्षा लेना भा चाहूँ, तो मैंने हूँ । अग्नि तुम्हारे मुखसे निकला है, सूर्य-चाप्रमा तुम्हारे दाँवों में है, समुद्र तुम्हारा निवासस्थान है, पृथ्वीको तुमने अपने ऊपर रख छोड़ा है, राघ तुम्हारी शय्या है, सो व भी रक्षयणके रूपमें बाहर बने हुए हैं । ७१-७३ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सम्मस्त शास्त्र तुम्हारे जलसे जागमान हुए हैं, मैं जिनर दस्तों हूँ, वो कुछ भी देखती हूँ, तब तुम्हारा ही रूप है ॥ ७४ ॥ मैं कोई भी दुष्ट दिव्य ( कसम ) नहीं देखती,

पद्मोत्तस्य शयनं कृत्वा ने प्रणम्यो मम । भविष्यति न सदेहमनं कुरुष्व रघूनाम ॥७३॥  
 इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । दिव्यं मीमांसितमहयं वसिष्ठं प्रपद्यतदा ॥७४॥  
 लक्ष्मणः शिविकारुद्धः पुरद्वारान्निवृत्तः यथा । मम कथावद्वाक्यं श्रुत्वा द्वाग्मुद्राटवत्तदा ॥७५॥  
 गत्वा पुनर्या लक्ष्मणः स मुनेर्द्वारं स्थितोऽभवत् । वसिष्ठद्वारगो दाम्प्यं वसिष्ठाय न्यवेदयत् ॥७६॥  
 तनूग्रीधे लक्ष्मणं द्वाग्मागतं त्वयि सभ्रमान् । प्ररुधन्वा वसिष्ठोऽपि तच्छ्रुत्वा विह्वलोऽभवत् ८१।  
 निगीधे लक्ष्मणश्चात्र किमर्थं मां समागतः । इति विह्वलचित्तः स तपमाहूयाथ लक्ष्मणम् ८२  
 पप्रच्छ रामनम्प्राथ कारणं मुनिवत्तमः । न कथा लक्ष्मणः प्रहृष्टं येन समागतोऽसि हि ८३॥  
 कारणं तत्र जानीमि समुचितं त्वयैव हि । शिविकार्जुनार्जुना द्वाराद्वाहिने मुनिवत्तम ८४ ।  
 इति श्रुत्वा गणवाक्यमरुधन्वाऽनिप्रार्थितः । शिविकापामरुधन्वा स्थित्वा श्रीशयनौ गुरुः ८५।  
 तन्पुष्टे शिविकामस्थः सीमित्रेन्यर्चितो यथा । गन्तव्यमकाशं घेष्टितो धैर्यपाणिभिः ८६  
 ममागतं गुरुं ज्ञात्वा प्रपद्येऽहम् रघुनामः । दत्तामनं वसिष्ठार सीतया प्रणनाम मः ॥८७॥  
 कृत्वा पूजां मविस्तारं वस्त्रैरामरणादिभिः । कथयामास सकलं पिपलापूतमादगतं ८८।  
 कथयामास सीतायाः क्रोधराजशान्तिप्रभुः । दिव्यं राहुं न किञ्चित् दृष्ट्वाऽन्यत् सीतया मम ॥८९॥  
 विनिश्चितं ते पद्मोर्दिव्यं तने पदाम्बुदम् । मनसाऽपि न धुन्ता मा मया वेद्याऽथवा वरा ॥९०॥  
 इदं चेद्वचनं सत्यं स्पृशामि तर्हि त्वत्पदं । इन्मृक्त्वा राघवः शीघ्रं वसिष्ठपदयोः करौ ॥९१॥  
 स्वीयौ सम्स्थाप्य शिखा प्रणनाम गुरुं पुनः । स्रष्टुं लज्जिता सीता ज्ञात्वा शुद्धं रघुनामम् ॥९२॥

जिससे मर मनम विचारम हो ॥ ७३ ॥ बहूँ न ७ मात्र विचारकर मीन ना यही निश्चय किया है और आप  
 भी वही करें । आपने गुरु , वसिष्ठ ) को बुलाकर यदि आप इतक पैरोंकी साथ या ल को मुर विश्वास  
 हो जायगा । हे रघुनाम । ऐसा करतम मर हृष्टता किन्ती प्रकाशका मया मही रह सकया । अतएव आप यही  
 करें ॥ ७४ ॥ ७३ ॥ इस प्रकार सीताका वचन ममकर रामन भुज्ज डाली द्वारा लक्ष्मणको बन्धना और  
 किसमजक पास भजा । ७४ ॥ पायकोपर चत्कर मयाण राजकुमार मरुद । वही पहलद राम फटक  
 लायवाकर सरन्त रघु वीरपुत्र हवा मर आ मरुद । डालाये दाना द्वारा लक्ष्मणको आनेका म दश वसिष्ठ  
 क पास भजवाया ॥ ७५ ॥ ८० . प्राची रतक समर रदनको द्वारपर आन मुरकर वसिष्ठ तथा अरु  
 मनी दाना पदराहम विह्वल हो गये ॥ ८१ ॥ वे सोचने लगे कि आधी रातकी लक्ष्मण मेरे पास क्यों  
 जाय । इस प्रकार व्याकुलताक साथ उन्होंने लक्ष्मणको अपने पास बुलाया ॥ ८२ , और आनेका कारण  
 पूछा । वसिष्ठका प्रणाम करके लक्ष्मणने कहा कि आपका रामने स्पर्श किया है ॥ ८३ ॥ आपको बुलाने  
 का कारण मैं भी नहीं जानता । हाँ, यह जानता हूँ कि आप अभी उठकर मेरे साथ चले । बाहर पालकी  
 सँवार है ॥ ८४ ॥ इस तरह लक्ष्मण द्वारा रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने का प्रार्थना करनेपर वसिष्ठ उठ भा  
 अपने साथ लिये हुए सटपट चल दिये ८५ ॥ उनके दाएँ-बाएँ लक्ष्मणनी पालकी चला जिस समय  
 वसिष्ठ राजभवनपर पहुँच तब चारों ओर रतने के दापकोका प्रकाश फैल रहा था । अनेक पहोदार अपने-  
 अपनी मीकरीपर उठ हुए थे और बहुतसे वसिष्ठका धनन्त साथ चले गये थे ॥ ८६ ॥ अब रामने सुना कि  
 गुरुजी आ गये हैं तो उठ तथा बाँझ दूर आगे जाकर मिले और संतके साथ उनको प्रणाम किया ।  
 फिर एक निष्ठ आसनपर बैठकर अस्त्रभूषणोंस विधिवत् पूजन करनेके पश्चात् उस पिपला वेण्याका  
 वृत्तान्त कह दिया ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ फिर यह बात भी जानागयी, जो कोषमे सीताने रामका कहा थीं । फिर  
 कहन लगे कि सीताको विश्वभक्त के किसी भी शान्तिपर विश्वास नहीं है ८९ । अतसे आपके चरणोंकी  
 शयन खिलानपर राजा हुई है । मैं कभी मनस भी इस वेण्या तथा अन्य विसा म्माके साथ रनमङ्ग नहीं  
 किया है ॥ ९० ॥ यदि मेरा ये बात सच है तो मैं आपके पैर दूर र साथ लाता हूँ । ऐसा कहकर सटपट रामने  
 वसिष्ठजीके पैर पकड़ लिये ॥ ९१ ॥ फिर अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । यह देखकर सीता लज्जित हो

प्रणम्य वेङ्गपादं तं लभस्वेति प्रमादयत् । ततः सीता गुणेः पत्न्येदौ चित्राणि भक्तितः ॥१३॥  
 भूषणादि पराज्येन दिव्यरत्नानि सादात् । रामेण पूजितवापि वसिष्ठः पूर्ववन्निष्ठा ॥१४॥  
 सहितः शिषिकामस्थस्तुष्टः स्वीयगृहं ययौ । तत्र सीतां समालिङ्ग्य रामो निद्रां चकार सः ॥१५॥  
 प्रभाते विंगतां दास्या समाहूयाय जानकी । धिग्निषकुन्वा सख्यं धिस्तां ताजयामास वंशिताम् ॥१६॥  
 सीतोवाच तदा वेश्यां वस्मान्मंघापरश्वितम् । मदिष्यसि त्रिवक्त्रा त्वं मधुरार्या हि कुम्भिका ॥१७॥  
 वेङ्गपादं प्रार्थिता प्रहृ कृष्णस्त्वमुदगिष्यति ॥१८॥  
 श्रुत्वा तौ वंशिता वेश्या मोषयापराप्त राघवः ।

एवं नाराकोतुकानि चकार रघुनन्दनः । सीतां सम्ज्जयामास स्वचरित्रैर्धनोर्मिः ॥१९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे सीताञ्जकारवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

### नवमः सर्गः

( सूर्यग्रहणपर रामकी कुरुक्षेत्रयात्रा )

श्रीरामदास उवाच

एकदा शीतया रामः कुरुक्षेत्रं स्ववंधुभिः । ययौ सूर्योपरात्रे वै स्नातुं गुष्पकसंस्थितः ॥ १ ॥  
 तत्र देवाः सगन्धर्वाः किंसराः पन्नया ययुः । नानाऽऽभयेभ्यो हृत्तवः पार्थिवाश्च सहस्रशः ॥ २ ॥  
 तत्र स्नात्वा रवौ प्रस्ते राघवः सीतया सह चकार नानादानानि हस्त्युष्ट्रस्थवाजिनाम् ॥ ३ ॥  
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे नानोपायनपाणयः । ययुस्ते राघवं दृष्टुं राजपत्न्यश्च जानकीम् ॥ ४ ॥  
 अथ सीता राजपत्नीः समालिङ्ग्य वरामने । सखीभिर्मुनिदारैश्च सुखं चोपाविशतदा ॥ ५ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतया पूजिता स्थिता । लोषामुद्राञ्जवीढाकथं जानकी रंजयन्मुदा ॥ ६ ॥  
 हे सीते कञ्जनयने धन्याऽसि गजगामिनि । किञ्चिद्वर्णय रामस्य शौर्यं श्रुतितोषदम् ॥ ७ ॥

गयीं और उन्हे विश्वास हो गया कि रामचन्द्रजी परम पवित्र हैं ॥ १२ ॥ तब सीताने प्रणाम करके रामसे प्रार्थना की कि मेरे भूख भी, थोप मुझे क्षमा करें । इसके अनन्तर सीताने गुष्पत्नी अरुन्धतीको विविध प्रकारके आभूषण भस्त्रादि दिये । रामचन्द्रजीने छिन्न वसिष्ठजीकी पूजा की । मोड़ी देर बाद गुरुत्नीके साथ-साथ बालकीपर बैठकर वसिष्ठजी अपने घरको चले गये । तदनन्तर राम भी सीताका आर्जजन करके सो रहे ॥ १३-१४ ॥ सबरे दासी द्वारा सीताने विंगला वेश्याको बुलवाया । उसे बार-बार विश्काय और बांधकर ससियोंके हाथों पिटाया ॥ १६ ॥ इसके पश्चात् उस वेश्यासे कहा कि तूने आज बड़ा भारी अपराध किया है । हमसे मदिष्यमें अब तु जन्म लेगी, तब तेरे शरीरमें तीन कुबह होंग और तुझसे सब घृणा करेगें ॥ १७ ॥ तदनन्तर उस वेश्याने अनेक प्रकारसे सीताकी प्रार्थना की । तब सीताने कहा—'अच्छा, वा तेंरा उदार कृष्णके हाथों होगा' । तब जब रामने सुन कि विंगला बँधी पिट रही है, तब उसे दृढ़ता दिया ॥ १८ ॥ इस तरह राम विविध प्रकारके कौतुक करके अपने मनोहर चरित्रसे सीताको प्रसन्न करने रहते थे ॥ १९ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये १० रामतेजपाण्डोपरचित्त'व्याख्या'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक बार रामचन्द्रजी सीता तथा अपने समस्त भ्राताओंके साथ कुरुक्षेत्र विमानपर सवार होकर सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्र गये । १ ॥ वही समस्त देवता, गन्धर्व, किन्नर, पद्मर तथा कितने ही आश्रमोंके मुनि और हजारों राजे आये हुए थे ॥ २ ॥ जब सूर्यग्रहण लगा, उस समय सीताके साथ रामने स्नान किया तथा हाथी-घोड़े ऊँट और रथ आदि सब दिया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर वहाँ आये हुए राजे अनेक प्रकारके उल्लास से लेकर रामका दर्शन करने आये और रानियाँ भी सीताको देखनेके लिए उनके साथ आयीं ॥ ४ ॥ जब रानियाँ सीताके पास पहुँचीं तो उन्होंने बड़े आदरके साथ उन्हें उनकी सखियों और मुनिपत्नियोंके साथ एक सुन्दर आसनपर बिठलाया ॥ ५ ॥ सीताके विविध वस्त्र पहन कर लेनेके बाद मुनिपत्नियोंके साथ एक सुन्दर आसनपर बिठलाया ॥ ६ ॥ सीताके विविध वस्त्र पहन कर लेनेके बाद मुनिपत्नियोंके साथ एक सुन्दर आसनपर बिठलाया ॥ ७ ॥

तपस्या यचनं श्रम्या वर्णयामास जानकी । स्वपाणिग्रहणान्तर्युः कुरुक्षेत्रावधि कथाम् ॥ ८ ॥  
 लोपासुद्राऽपि तन्नुन्वा विहस्य प्राह जानकीम् । सर्वं योग्यं कृतं सीते राघवेण महान्मता । ९ ॥  
 एक एव वृथा क्लेशः कृतस्तेनेति वेदुम्यहम् । महान् श्रमः सेतुबधे किमर्थं हि कृतः पुनः । १० ॥  
 कथं न कथितं कुम्भजन्मने गण्येण हि । सगार्धं चुटुकं कृत्वा पीत्वेन लवणार्णवम् । ११ ॥  
 शुष्कं कृत्वा कर्पीन्मार्गोऽभविष्यदन एव हि । वृथा ते भविताः सर्वे जानताः सेतुबधने ॥ १२ ॥  
 इति तस्या वचः श्रुत्वा समस्तं जानकी तदा । लोपासुद्रां विहस्य ह लोपासुद्रे पतिव्रते । १३ ॥  
 मम्यवकृतं राघवेण धनसेतोर्बधनं वरम् । तत्कारणं वदाम्यद्य मृणु त्वं स्वस्थमानमा ॥ १४ ॥  
 मृणुन्विता ममाधत्ता महावधं पाषाणस्त्रियः । बाणेन शोषणीयध्रेन्मामगो राघवेण हि ॥ १५ ॥  
 मविष्यति तदा इत्या बहुवधेति संकितम् । उल्लसनीयो जलधिधेद्रामेण विहायमा ॥ १६ ॥  
 नदा समं मनुष्यं च कदा ज्ञास्यति राघवः । इनुमपृष्टमात्रं मन्तव्यं येनपरे तटे ॥ १७ ॥  
 लक्षां प्रति नदा रामपीड्य किं वदन्ति हि । यदि तीर्त्वा प्रमत्तव्यं बाहुभ्यां राघवेण हि ॥ १८ ॥  
 नोत्सृज्यतीयं विप्रस्य मृतं चेति विशंकितम् । चेन्मूनिः कुम्भजन्मा च प्रार्थनीयः पतिस्तव । १९ ॥  
 रामेण चुटुकं कर्तुं तदा तल्लवणावुधेः । मन्त्रित राघवेणापि तदा हि मविस्तारम् । २० ॥  
 पीतोऽयं जलधिः पूरे भूतं क्रोधादगमिना । मयद्रागद्विस्मयको यस्यान्धारन्वमागतः ॥ २१ ॥  
 सर्वथा मृगयन्सारः स कथं पतुमहेति । स ऋषिर्धमं वक्ष्येन चुटुकं तु कश्चिप्यति । २२ ॥  
 मविष्यति ममार्कतिः सर्वत्र जगतां तले । मृतपानं बाह्यगेन स्वकायापि निजोन्निभिः ॥ २३ ॥  
 कारित येन रामेण सोऽयं धेनोति शक्तिः । न मूनिं प्रार्थयामास राघवो धर्मतन्परः ॥ २४ ॥  
 एवं यमस्य रामेण स्वर्कान्त्यं सेतुबधनम् । कृतं कृतापि न कृतं न कोऽप्यग्रे कश्चिप्यति । २५ ॥  
 येन रामेण जलधौ शिलाः सतारिताः पुरा । सोऽयं दाशरथी रामधेति रुपाति गतो हवि । २६ ॥

सीते ! हे राजर्षामिनि ! तुम धन्य हो । हमारे कानोको मानन्द होनेवाले रामजीके किसी पीसवला से  
 बर्णन करो ॥ ७ ॥ लोपासुद्राक बहुत बहानपर सीताजी अपने विवाहके लेकर चुटुकावकी मना पर्यन्तका समयत  
 धृतान्त कह सुनाया ॥ ८ ॥ लोपासुद्राके क्या सुनकर सीताजी कहा—हे सीत ! महात्मा रामचन्द्रन  
 छलक जो कुछ किया वह बहुत हीक किया । केवल एक जानम चुक दये और उन्हाव इतना कोस  
 उठाया । मैं नहीं समझ पाया कि मनुष्यपर चढ़ाई क्यों समय रामके समुद्रमें सेतु बनानेका कह क्यों किया  
 ॥ ९ , १० ॥ उन्होंने आश्वजोमे क्या नहीं बहुत दिया । मैं एक अजन्म में मन्दिर लणभरमें उस सारे समुद्रको  
 पीया ॥ ११ ॥ समुद्र सूख जाता और ऋषियोंका लक्ष्म जलक निम्न मार्ग मिल जाता । नाहक सेतु बांधनके  
 लिए उठो उन जानमको कह दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार लोपासुद्राकी बात सुनकर समस्त प्राण में सीताजी कहने  
 लगीं हे राजर्षामिनि ! रामने जो मनु बांधा, वह बहुत अच्छा किया । मैं उनका कारण जो  
 बतलाती हूँ, मैं एक खान होकर मृत ॥ १३ , १४ ॥ वहाँ माया हुई ये राजर्षानिर्वाणी भी शक्तचित्तसे मेरी  
 बात सुने । यदि राम अपने बाणसे समुद्रका भूतान तो उठाने प्रक्षिप्तकी दृष्टा होनेकी आज्ञा देता ।  
 यदि राम आश्वजोमे समुद्रको लाध जाने तो राक्षस और जानर यह कैसे जानने कि राम मनुष्य है  
 यदि हम मान की पीठपर बैठकर चल जाते ॥ १५-१७ ॥ तब रामका वर दगदग देम पड़ता ? यदि  
 हमसे तेजस युग युग बार चल जाते ॥ १८ ॥ तब उन्हें यह लज्जा होता कि बाह्यके मन्त्रको कैसे लपू ।  
 यदि आपन गति में रामके उमे सीतेका प्रार्थना करनेकी सीतने तो यह विचार होता कि एक बार अमरत्व इस  
 समुद्रका जो पुत्र है और मृतमार्गमें बाधर निकाला है । इससे यह लरा है । १९-२१ । उसी मन्त्रके  
 समान तारे समुद्रकी आश्वजोमे कम पियेगे । मान लिया जाय कि रामक कहनेसे अमरत्वकी समुद्रकी जो  
 जान तो ममारमें रामका वर अग्रयण होता कि रामने अपना मतलब साधनके लिए एक बाहुणकी  
 मृत लिख दिया । इन्ही जानकी साचकर बर्णित्या रामने अमरत्वसे समुद्र पीनेकी नहीं कहा ॥ २२-२४ ॥  
 इन बातोंका खूब अच्छा तरह सोच विचारकर हो रामचन्द्रजीने अपनी कीर्तिश्रुतके लिए समुद्रपर सेतु

इति सीतायामिहः पा लोचामुद्रा जिता तदा । नृणीमाप क्षणे नवीनमायां लक्षितः उभयम् । २७।  
 नतो विहस्य वैदेही लोचमुद्रां प्रवृत्तयम् । मुनिपत्नीश्च सपूज्य प्रार्थयामास तां मुद्राः ॥ २८॥  
 मयाऽपराधित तैऽद्य तत्त्वमस्य वनिप्रणे । स्नेहान्प्रसंगवधोक्तं मयद्वये गमयौहयम् । २९।  
 मय्यर्तुगणिना गमे पौरुषं चेति चेद्भूम्यहम् । इति संप्राप्य ताः मया मुनिपत्न्यन्वर्णमर्जयम् । ३०॥  
 पूजिता नृपपत्नीभिर्ययौ सीता मधुचमम् । नतो गमोऽपि पृथ्वीर्धौ, पूजितो गजवन्निधिः ॥ ३१॥  
 ययौ स नगरीं तुष्टः सौमया गरुडे स्थितः । ये ये समानतास्तत्र कुरुक्षेत्रे राघवेहे ॥ ३२॥  
 ते सर्वे स्वस्थानं आसु रामदर्शनदृष्टिनाः । गमोर्जपि नगरीमध्ये पुरस्त्राभिषुद्रुः पथि ॥ ३३॥  
 नीगाजिनः कुम्भदापैर्ययौ निजगृहं मुता । रेमे जनकनन्दिन्या चिरकालं यथामुत्तमम् । ३४॥  
 एवं रामेण माकेनपुर्णामनिकन्यया । नानाकीडाकीनुकानि कृतान्यनिमग्नान्यपि ॥ ३५॥  
 यथा कुना राघवेण सुतं कीडा च सौमया । तर्धर्वाभिलया रेमे लक्ष्मणोऽपि यथामुत्तमम् । ३६॥  
 मांडव्या सातव्यापि रेमे रामो यथा स्त्रिया । तर्धैव श्रनकीन्यापि द्रष्टुमः कीडनेन्यभ्याम् ॥ ३७॥  
 एवं ते स्त्रीपपत्नीभिः पौराः कृताः वचकिरे । तर्धैव विविधद्वीपास्मानादेशनिगमिनः ॥ ३८॥  
 रेमिरे तैऽपि पत्नोभिः स्वीयामिर्मृदिताः सुखम् । सौमया राघवो रेमे यथा गीर्वा म शक्रः ॥ ३९॥  
 गमे आसितसज्ज्येऽत्र न कोऽपि जगतीगले । परद्वारतो वैश्यागर्भा मादकवस्तुभुक्त ॥ ४०॥  
 न दग्धिर्नैव रोमी चिन्ताग्रस्तो न विह्वलः । न पापान्मा जडो नावीन गीरो नार्थ मिमकः ॥ ४१॥  
 एवं शिष्य मया प्रोक्त त्रिआषवति वरम् । सौमया रामचन्द्रस्य माकेने मादकदर्श नृणाम् ॥ ४२॥  
 विलासकाण्डमेतद्दे पः पठिस्थिति मानवः । शान्तः काले च मध्यं ह्ये निशायां रामपत्निर्वा ॥ ४३॥

यथाया या । जिस कालक न तथालक जिस न किया था और न आज कोई वर मया, इस उन्होंने कद दिया था । २९ । अब सब कोई परस्पर कहते हैं कि जिन रामन मनुजस जिना तैग दिया था वै ही य उपायक पुत्र राम है ॥ २९ ॥ इस प्रकार मानाही वाचोम लाणाबुद्ध पराम्भ हो गयी । शीघ्र एक निद्र इस २९ सभाक चर्चाप बैठा हुई न कुछ लज्जित-सा हो गयी ॥ ३० ॥ फिर हुमकर स नाम लाणाबुद्धा तथा अन्य मुनिपत्नियोंकी पुत्रा का और बारम्बार प्रार्थना करके कहा—॥ ३० ॥ मन या पुत्र को है, उस आप प्रमा कर । आप ई मनेह तथा प्रमन आ जानकर मेने इस प्रकार रामक वीरगका वणन किया है ॥ ३१ ॥ हमारे पतिदेव रामसे भी कुछ पराजय है, यह सब आपक स्वामी आगम्यके हे । आश वांछित है । इस प्रकार विनती करके सोतावे उन मुनिपत्नियोंकी विदा किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर राजानिया द्वारा पूजित हुकर सता रामक पास आयी गयी । राम भी उन दश-देश-सगस म ये हुए राजाभस विलन हो हावा- पाहोका उनहार लकर पूजित हुए और प्रसन्नतापूर्वक सागाके साथ गरुडवर सवार हुकर अवोषवाक चले पडे । ३१ ॥ ३२ । सुवन्दनके समर कुक्षजम जो लग स्नान कन अ य थ न रामक दगनस हाथित हा-हाकर अपने-अपने घरकेका आपस बये । राम भी सयारामे पदुचकर दार्मिक नियोक द्वारा मोशजित हुन हुए अपन मङ्गलोम गय । इनके बाद फिर बहुत कालपरन्त रामचन्द्रजी सलाक साथ विहार करते ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस तरह रामने सोताक मार अद-दाम विविध प्रकारक काहा-कोनक किय ॥ ३५ ॥ इस तरह राम सोताके साथ आनन्द करने थे, ठीक इसा तरह लक्ष्मण उमलाके साथ युधपूर्वक विलस करने थे ॥ ३६ ॥ इस तरह भरन मादारीके साथ तम कपुत्र पुनकोनिक साग के हा करने थे ॥ ३७ ॥ पुनवासी- गन न न विविध दूर और दशके नगामी या अवनी-गना विरजाके साथ प्रसन्नतापूर्वक भोग-विलास करते थे । राम भी साताके साथ इसी तरह आनन्द करते थे जैसे ईश्वर पर्वतोंके साथ शंकरजी स्वच्छन्द विहार करते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ रामके शासनकालम कोई भी मनुष्य दूसरेकी नियोपर आसक्त तथा वैश्यागर्भो नहीं था । न कोई किसी तरहकी मादक वस्तु ही खाता-पेता था ॥ ४० ॥ रामके राज्यमें कोई दग्धि, दगो, चिन्तातुर, विह्वल पापी, मर्ल, चोर जयथा हिमक नहीं था ॥ ४१ ॥ हे शिष्य ! मेने तुम्हें इस प्रकार रामका सुन्दर विलसकाण्ड कह नूनाया । जिसम राम और सीताका सबके लिए सुन्दर चरित्र मरा हुआ है ॥ ४२ ॥

स ज्ञेयो राघवः साक्षाद्भुवि मानवरूपयुक् । विलासकाण्डपडनादनार्थं वनमाप्नुयात् ॥४७॥  
 भोगानाप्नोति मोगार्थी पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् । विलासकाण्डमेतद्वै गमयकन्येकमानवः ॥

यः शृणोति नरः कश्चित्स्य सुखं प्राप्नुयाद्भुवि । ४५ ।

विलासकाण्डश्रवणाक्षरः वागारम्भमुच्यते । विलासकाण्ड परमं रम्यं जनमनोहरम् ॥४६॥  
 आनन्ददायकं चित्रं श्रुतिमौख्यप्रदं महत् । ये पठत्पथे शृण्वन्ति सर्वान्कामान् लभन्ति ते । ४७॥  
 धर्मार्थी प्राप्नुयाद्दुर्मान्धनार्थी प्राप्नुयाच्चिरम् । कामानाप्नोति कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥  
 निशापो मंचके स्थित्वा निजपत्न्या पठेत्तु यः विलासकाण्डं वचसां तस्य पुत्रो भविष्यति ॥४८॥  
 अथवा मंचके स्थित्वा सुखिवेश्याय तत्पूजः । द्वितीये मंचके स्थित्वा स्वयं दयितव्यः सह ॥४९॥  
 यः शृणोति निशापां हि विलासकाण्डं मनोरमम् । एककाण्डं पवित्रं च परमामान् पुनः पुनः ॥५०॥  
 तस्यापुत्रस्य पुत्रः स्यात्पात्रं कार्यं विचारणा । पुत्रार्थमेव भोजन्यं मञ्चके क्षपरिष्य च । ५१॥  
 भोजन्यं नान्यकामेषु मञ्चकस्यैव नरैः कदा । विलासकाण्डमेतद्वै स्त्रीकामस्यैः पठेन्नरः ॥५२॥  
 त भाष्यं प्राप्नुयाद्रूपी नवमार्गैर्न संशयः । कुमारी शृणुयादेतन्पथं काण्डमुच्यते ॥५३॥  
 पुनः पुनस्तु वचसां लक्षिष्यति नरं पतिम् । विलासकाण्डमेतद्वै यः शृण्वन्ति वराः स्त्रियः ॥५४॥  
 मौल्यलक्ष्या न कदा हा विहीना भवन्ति हि । मर्तुगपुष्पपुटयर्थं क्षीमिन् स्नानपूर्वकम् ॥  
 भवर्णाय विलासकाण्डमेतन्काण्डं मनोरमम् ॥५६॥

रम्यं चित्रं मधुरं पवित्रं विलासकाण्डं हि यथैतदुदंडम् । पात्रादिना पश्यन्पथप्रदं धर्मैककुंडं भवरोगदहं ॥  
 इति श्रीशत साठिगमचरिततामने श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे कुरुक्षेत्राशरणेन नाम नवमः सर्गः ॥ ५ ॥

जो मनुष्य इस विलासकाण्डका प्रालम्बन मन्वात् नयथा रात्रिके समय रामचन्द्रक समीप पाठ करता है, उसे मनुष्यरूप मान्य विषे हुन सञ्जान् राम हो सम्पत्ता चाहिये । मनका इच्छा रखनेवाला मनुष्य विलासकाण्डका पाठ करनेसे मन पाता है, भोगार्थी भोग पाता है, पुत्रार्थी पुत्र पाता है और जो व्रणी इसकी सुनता है, वह मन्वात्त पुत्रो रहता है ॥ ४७-४८ ॥ विलासकाण्डका श्रवण करनेसे पापों पापसे दूट जाता है । यह विलासकाण्ड बड़ा सुन्दर और मनको मनको सुगन्धेवाला काण्ड है ॥ ४९ ॥ यह आनन्दरामक एवं विचित्र कथाकोसे मरा हुआ है । इसको सुननेसे मनको आनन्द मिलता है, जो लग्न इसे सुनते अथवा पाठ करते हैं, उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं । ४७ ॥ इसमें धर्मार्थी धर्म पता, धनीर्षी मन पाता, कामार्थी काम पाता तथा मोक्षार्थी मोक्ष पाता है ॥ ४८ ॥ रात्रिके समय जो मनुष्य छः एहीमेसक अपनी स्त्रीके साथ बैठकर इस विलासकाण्डका पाठ करेगा, उसका पुत्र मिलेगा ॥ ४९ ॥ एक मन्वन्तर व्यासको बैठाकर उसके आगे स्वयं अपनी पत्नीके साथ एक दूसरे भस्वर बैठकर रात्रिक समय जा इस मनोरम विलासकाण्डको भी महीनेतक बार-बार सुनता है, उस मनुष्यके भी पुत्र होता है । इसमें किसी मनुष्यका बन्धु करनेकी आवश्यकता नहीं है । पुत्रको कामनावालेको मन्वन्तर बैठकर इसे सुनना चाहिये । ५०-५२ । किसी दूसरी काष्ठनामानेको मन्वन्तर बैठकर यह कथा न सुननी चाहिये । जो स्त्रोका इच्छाम इसका पाठ करता है, उसका नौ महोनेष स्त्री भवम् मिल जाता है । यदि कुमारी कन्या पतिको कामन्तसे इस काण्डको सुने तो उसे सुन्दर पति मिलता है । जो वयथा स्त्रियाँ इसको सुनेंगी वे सभी भी अपना ही मायलक्ष्मीसे विहीन न होगी कर्षति उनका सोहाग अटल रहेगा । समस्त नारियाँ अपने पतिको आयुष्य बढ़ानेके लिए स्नान करके यह विलासकाण्ड सुनना चाहिये ॥ ५३-५६ ॥ क्योंकि यह विलासकाण्ड डैलके कण्डकी तरह मीठा विचित्र, मधुर तथा पवित्र है । यह पाठदि करनवालेके पत्नीको मार भगनेवाला और भस्मका एकवाज कुण्ड तथा भवरोगके लिये दंडके समान है । इस काण्डमें नौ सर्गकुल २७८ पञ्चक है ॥ ५७ ॥ इति श्रीशतसाठिगमचरिततामने श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे नाम नवमः सर्गः ॥ ५ ॥

❀ इति श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डं समाप्तम् ❀



श्रीसीतापदये नमः

श्रीशाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

# आनन्दरामायणम्

‘उपोत्सना’ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## जन्मकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( रामका उपवनदर्शन )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सीतया स साकेते बंधुमिश्रितम् । क्रोडां चकार विविधां दुर्लभां त्रिदशैरपि ॥ १ ॥  
एकदा रघुवीरस्तु सोऽन्तर्वत्नीं विदेहजाम् । ज्ञात्वा धात्रीमुखानुष्टो ददौ दानान्त्यनेकशः ॥ २ ॥  
भाक्ष्यान् भाजयामास कोटिशः प्रत्यहं मुदा । चकार नानालंकारान्वीनान् रत्ननिर्मितान् ॥ ३ ॥  
सीतायै दिव्यवामांसि हेमतन्तूद्भवान् च । हरितान्यथ पीतानि रक्तानि चात्रितान्यापि ॥ ४ ॥  
कारयित्वाऽथ कुशलैर्जनैः सूक्ष्माण्य रथवः । विस्तृतान्यतिदीर्घाणि पुष्पवत्सुलधून्यपि ॥ ५ ॥  
महर्षाण्यतिरम्याणि ददौ कन्यै मुदान्वितः । अभ मासे द्विर्नायेऽद्वि रामो द्विजवरैः सह ॥ ६ ॥  
वसिष्ठेन पुंसवनसंस्कारं विधिपूर्वकम् । स चकारोत्सवैर्दिव्यैः सीतायाः परमादरात् ॥ ७ ॥  
सुमेधां जनकं चापि समाहूय सविस्तरम् । जनकः परमर्षतुष्टः सोऽन्तर्वत्नीं निजां सुताम् ॥ ८ ॥  
दृष्ट्वा पुंसवनोत्साहे सीतारामौ प्रपूजयत् । नानालंकारवामांसि हेमतन्तूद्भवानि च ॥ ९ ॥  
हरितान्यथ पीतानि सूक्ष्माण्यथ लघूनि च । विस्तीर्णान्यथ दीर्घाणि सीतायै स ददौ मुदा ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—श्रीरामचन्द्रजी सीता भरतादिक भ्राताओंके साथ चिरकाल तक देवताओंको भी दुर्लभ करारें करते रहे ॥ १ ॥ एक दिन रामचन्द्रजीने किसी भायके मुखसे सीताके गर्भिणी होनेका समाचार सुना तो विविध प्रकारका दान दिया ॥ २ ॥ सबसे लेकर प्रतिदिन करोड़ों खाद्योंको हर्षपूर्वक रामचन्द्रजी भोजन कराते थे । वनेक प्रकारके रत्नोंसे जटिल नखीन अलंकार, सुवर्णके तारोंके कामदार दिव्य वस्त्र और हरे, लाल तथा छींटके कपड़े बनाकर रामने सीताजीको दिये, जो घड़े लम्बे चौड़े और फूलसे हल्के थे ॥ ३-५ ॥ वे वस्त्र बहुमूल्य और सुन्दर थे जब एक मास व्यतीत हो गया और दूसरे महीनेका दूसरा दिन आया, तब रामचन्द्रजीने भूद वसिष्ठ तथा बहुतसे ब्राह्मणोंके साथ दिविपूर्वक और सोत्साह सीताका पुंसवनसंस्कार किया ॥ ६-७ ॥ उस पुंसवनसंस्कारके उत्सवमें रामचन्द्रजीने सीताके पिता दुहिमान् जनकजी तथा माता सुमेधाको भी बुलाया । यह समाचार सुनकर जनकजी बहुत प्रसन्न हुए और सीताको गर्भिणी देखकर पुंसवनसंस्कारके समय ही सीता तथा रामचन्द्रजीकी पूजा भी, वात्सा

हस्तपुष्टस्यतुरगं नृ दार्ढ्यादायान्यनोगमान् । त्रिविकाखापि वाक्पाणि ददौ गमाय भादरम् ॥११॥  
 एव तपूज्य श्रीगमं मोक्षं च जनकः स्त्रियाः । मय्यानिनो गववण ययौ स्वां मिथिलां पुगीम् ॥१२॥  
 अथ रामः भीतया म रेमे सन्तुष्टमानसः । गमांतिभाराकाता सा भीता मन्यस्तभूषणा ॥१३॥  
 पादुषणानिना दीना कृपापि निनगं ययी । एकदा गधवे पाज्या धूवयायाम जानकी ॥१४॥  
 मयन्त्राऽगममद्यस्य रतुमस्ति त्वया सह । तथोपवनमच्छेदपि माकेतनागगट्टहि ॥१५॥  
 तदाज्याभ्यान्निपाय कर्षं श्रुत्वा साहृष लक्ष्मणम् । गमोऽश्वीन्नुमां वाचं मधुगं स्मिन्पूर्विकम् ॥१६॥  
 हे सीमवेद्य मीनया जताऽगममृतास्तहि । मया रतु तनस्त्र हि सूचिनोऽपि मयाधुना ॥१७॥  
 मधेति रामवाक्यं मोऽप्युगं कृत्य लक्ष्मणः । गन्वा सभायामाहृष ह्यस्यामाम सेवकान् ॥१८॥  
 चित्रोष्णीषान्देशपाणीन्शह वाक्यं स्मिन्नाननः । कथनीयं हृदमध्ये द्यारामं यानि जानकी ॥१९॥  
 राषवेण नतो यूयं त्रणिहन्वररर्चिकनि । ननः सीमित्रिवचनाच्छ्रुत्वा ते वेत्रपाणयः ॥२०॥  
 चित्रोष्णीषा रुक्मदण्डा राजमार्गं चतुष्पथे हृद्री वीक्ष्यामूर्ध्वहस्तास्तदा प्रोचुर्महाध्वरैः ॥२१॥  
 पीगथं वणिजं सर्वे तथाऽप्ये व्यवसायिनः । मृष्वंतु हृष्टहृदयाः सीतोद्यानं प्रगच्छहि ॥२२॥  
 राषवेणाभ्यनुज्ञानैर्भवद्विगम्यतां पुरः । एवं सर्वानिवेशय जामुने रुक्मण चराः ॥२३॥  
 दूतनाज्ञापयामास पुनः सीमित्रिगदगन् । गमोगेहानि विशाणि क्षागवेणु समंततः ॥२४॥  
 कल्पनीयानि वेगेन शोधनीया भुवः शुभाः । जनयन्त्राणि सर्वाणि शोधनीयानि सादरम् ॥२५॥  
 मानापांमप्यवस्तूनि सुग्रीबानि महाति च । स्थापनीयानि च तत्र वन्नाप्यनिलघूनि च ॥२६॥  
 एवमदीन्यनेकानि कल्पनीयानि सादरम् मृगावणीयाः शमादाः सर्वे क्षारामभमवाः ॥२७॥  
 दिव्यवस्त्रस्तोत्राद्यर्पिकागुच्छं वंगतिनाः । तथेति दूताग्ने सर्वे लब्धा चक्रुस्त्वगान्विताः ॥२८॥

प्रकारके मुनद्वैत गहने तथा मयतु आहारे पीले, लाल रंगसे रंग हुए तथा फूलका तरुह हलक धे । उन्हें प्रसन्नतापूर्वक सताजो दिया । साथ ही दावो पीर रथ कीर, मुदर दाम-दामो तथा पालकी आदि रामचन्द्रजीको दिया । ॥ ११-१२ ॥ इस प्रकार राम और सीताको गुमा करने जलकजी अपनी स्त्रीके साथ मिथिलापुगीक लौट गये ॥ १३ ॥ उधर रामचन्द्रजी प्रसन्नतापूर्वक सीताके साथ विहार करते रहे यथके भासे लदो तथा स्मरत भूषणाका स्थली पीन मुख और इन्द्र अद्भुताली भी सीताजी बहुत ही सुन्दर दीखती थी । एक निम सीताने किमी घाटके द्वारा रामचन्द्रजीके पास गह सन्दन कहला वजा कि आज आपके साथ बाहरक दर खेमे दूमनकी मरी इच्छा है ॥ १३-१५ ॥ उस बातके सुखसे यह सवाद सुनकर रामचन्द्रने रुक्मणक वृत्तया और मुन्दराने हुए कहलैल्ले ह लक्षण । आज जाना गये साथ नगरके बहुरवाले बगीचन भूमने जाना चाहती है, सो उसका सब प्रन से ठीक कर दता । रुक्मणजी 'नपाशु' कहकर सभावे गये और सेवकीको बुलाकर जन्दी तैयारी करनक आज्ञा दी रंग-विरंगा पगड़ी पहने तथा हाथमें सेतके दण्ड लिये सिपाहियोंसे रुक्मणने कहा कि आज रामचन्द्रजी सासाक साथ बगिचे आरंग । नृपत्यम आकर नगरके क्षपाखियोंसे कह दो कि वे लाल अलङ्कार अपनी दूकान बदाकर भागे खाली कर दें । इस प्रकार रुक्मणकी आज मुनकर ॥ १६-२० ॥ रंग विरंगी पगड़ी पहने तथा नुमहरे डंड लिये हुए सिपाही पीरास्ते, पलो, बाजार और बूचोंमें हाथ उठाकर जंग जंगसे बहने लग ह पुरवासियों, व्यापारियों तथा व्यवसायियों । आप लोग प्रसन्नतापूर्वक हमारी आज्ञा सुनन जायें । आज सीताजी बगिचन जायेंगी । इसलिए आप सब पहले ही से वहाँ चयें । इस प्रकार सबको मुनाकर वे दूत लोग फिर अपने दपोड़ीपर बघांन रुक्मणके पास लौट जाये । २१-२३ रुक्मणजीने फिर उनको आज्ञा दी कि बगीचन तुम लोग जाओ और स्थान पर जाना प्रकारकी रहनेकी जगहे बनाओ और दगिचके चारों ओरकी जमीन धूध अल्लो भरह माफ करा दो । व्यवसायीकी भी परीक्षा करके उन्हें ठीक कर दो ॥ २४ । २५ ॥ विविध प्रकारकी मांगसिक वस्तुये और महीन कपड़े आदि लाकर वहाँ रखी । जो जो चीजें आवश्यक समझी जायें, वे सब प्रस्तुत रहें । बगीचके

लक्ष्मणो राघव गत्वा नन्दा त आह भारद्वाज । श्रुत्वा राम गोपयैव वर्तते श्रुतन्द्वय ॥२९॥  
 कुर्यात्सिद्धं हि क्रियान् सीतापाम्भवः प्रियो । सुन्दीमित्रैश्चः श्रुत्वा ज्ञानकी राघवोऽजयीव ॥३०॥  
 भीते यान् वदाद्य न्वं वत्ते मनसि रोषणे । पद्ममयवनं श्रुत्वा शिविका आह ज्ञानकी ॥३१॥  
 रामोऽपि रोचयामास शिविकामेव वै तदा । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणश्चापि शिविके गन्तुमिच्छते ॥३२॥  
 हेमन्तनूतनैर्वस्त्रैः सर्वत्र वेष्टिते शुभे । आनयामास हतैः मन्मुकाजाल वगाजने ॥३३॥  
 आरुगोहाय श्रीगमः शिविकां वन्या मुदा । वनः सीता पण्डुराया पश्मिपविभूषिता ॥३४॥  
 कृशमयष्टिदांशमिदं गृह्णा यया सूनैः । शिविकामारुगोहाय पृष्टुलमनोपवर्धणः ॥३५॥  
 दार्म्यमिषीजिज्ञा चापि पुरार्थोऽङ्कुरवर्धणः । दधान शिविकामारुगोहाय पृष्टुलमनोपवर्धणः ॥३६॥  
 निमुक्तं च मुक्ताभिः सीता स्वीयकरेण तम् । मुक्ताजालगदाक्षेत्र पश्यन्ता मा मुहुर्मुहुः ॥३७॥  
 राजमार्गमन्येव कर्तुकानि समन्ततः । ददशे नृप्य वेङ्गानां सखाभिः पतिता वृता ॥३८॥  
 गतरणे बान्धवाः सर्वे वन्धुरान्यथ मानवः । शिविकापूरतविष्टा दिव्याम् च पृथक् पृथक् ॥३९॥  
 अग्रे ते भ्रातरः सर्वे ततः सर्वाश्च भार्यः । कान्त्याः चन्द्रवन्धवश्च सर्वेषां पुरतो गुरुः ॥४०॥  
 पर्व ते प्रपद्युः सर्वे पश्यन्तो गधर्वं मुहुः । ननुतुर्वागवार्थश्च नेदुवागन्त्यवेकशः ॥४१॥  
 तपुर्वुरदिनः सर्वे सीतां च गृन्नायकम् । एव नानासमुन्वाहरागम म यया मुदा ॥४२॥  
 राघवः सीतया युक्तः सैन्यं सर्वत्र वेष्टितः शिवञ्च वामागेर म समीतो गृन्तन्दनः ॥४३॥  
 वामोर्गेहेषु सर्वे ते तप्युः पौराः समन्ततः । इडाः समन्ततश्चापन्ननृनुर्वागवार्थितः ॥४४॥  
 वामोर्गेहरूप सीताया भित्तयो वस्त्रनिर्मिताः । पञ्चकोशमितायामाश्रयनं स्नातोऽपि च ॥४५॥  
 पञ्चकोशमितागमे मत्र रेमे विरेहज्ञा । ददर्श ज्ञानकी मन्मथगाम म नृपसीकरदम् ॥४६॥

सब भवन अच्छी तरह सजाये जायें । उनमें कपड़ों की झालरें, तोरण और मानिक के गुच्छ लटकाने जायें ।  
 वहाँ पहुँचकर दूतोंने लक्ष्मणजीके आज्ञानुसार सब गूँठ तुल्लन डोक कर दिया । २६-२८ ॥ तब लक्ष्मण राम-  
 चन्द्रजीके पास गये और ज्ञापन करके सादर कहन लग्य—हे गृन्तन्दन ! मैंने भाईकी आज्ञास पूरी लेवारी  
 कर दी है । अब वगैर आप और सीताजीके लिए सवारी लानेका भा आता दूँ ? इस प्रकार लक्ष्मणको वणी  
 सुनकर रामचन्द्रजीने सीतासे कहा—सीत ! बन्ध्यामा, आज तुम्हें कौनसी सवारी चाहिए ? सीताजीने  
 रामजीकी बात सुनकर पाप्की पमन्द की और रामजीन अपने लिए भी पालकी हो माँगी । रामचन्द्रजीकी  
 आज्ञासे लक्ष्मणन रानोम विभूषित श मानिकियाँ मैकवायो, जिनका सुनहन कामक ओहार पड़ से ओर  
 बाये ओर गातिवोक मन्मथलटक रहे थे ॥ २९-३३ ॥ तब प्रसन्नपूर्वक रामचन्द्रजी पाप्कीपर सवार  
 हुए और पीछेसे भूषणका पहन हुए सता भी दासियोंके हाथक सहारे सने सने जाकर पालकपर  
 बैठे । उसमें चारो ओर तकियन लगा हुई थी । दासियाँ पीछे चलने लगी । ओहार डाल दिया गया  
 और पालकी चम पड़ी । गल्लेमें सीताजी पालकीन सगेलेसे उन हथ्योका देखती वाली  
 थी, जो वहाँपर थे । उससे अनन्तर रामचन्द्रजीके ओर भाई भी तथा उनकी क्रियें और मातायें  
 अलग-अलग दिव्य पालकियोंपर बैठ-बैठकर चली । अगे आगे भाइयोकी, फिर माताओता, फिर सीतादिक  
 पत्नियोंकी और सबसे आगे गुरु वसिष्ठजीका पालका चली ॥ ३४-४० ॥ इस प्रकार सब जात रामचन्द्रजीका  
 वधान करते हुए चल जा रहे थे । वेङ्गाने नाच रङ्गी थी और नाना प्रकारके दात्रे मच रहे थे । बन्दीगण  
 सीता और रामजीकी बन्दना कर रहे थे । इस प्रकार किसने हें तपके उत्साहेन साथ से सब बरीचे पहुँच ।  
 रामचन्द्रजी सीताके साथ साथ सेनाजने धिरे हुए एक समूहमें उतरे । ४१-४३ ॥ इसका बाद भीर लोग  
 भी तम्बुजीने टिके । साथ ही समस्त गतरवसी लोग भी चारों ओर तम्बुजीमें इहर गये । चारों ओर हल्ल रुम  
 पयो थी । वैज्यायें नाचने लगीं । ४४ । जिस स्थानपर रामचन्द्रजी अपने पुरवासी मानिकियोंके साथ लहरे थे,

रसालयं रमालम्भैश्चोक्तैः शोकवाणम् । तलैर्ममार्द्धैर्हिनारैः शलैः सर्वत्र शालितम् ॥४७॥  
 सपुणैः सपुण्यकारैश्चोक्तैः श्रीकरैश्चिह्नैः । दुर्गाभयं स्वपुरुषैः कपिर्विशं करिष्यकैः ॥४८॥  
 यत्नश्च यः कृष्णकारैर्लङ्घ्यश्च मनोरमम् । सुधाकलममारमिरभाभिः परिभाषितम् ॥४९॥  
 सुरैर्गन्धापि नारदैश्च रत्नमण्डपवन्धुयः । शार्ङ्गैश्चापि जम्बुर्बोद्धपुः प्रपूरितम् ॥५०॥  
 मन्दान्दोलितवर्षकदलीदलयशया । विश्वभाष भमापनानाह्वयनमिवाध्वगान् ॥५१॥  
 पुष्पाग इव पुष्पागपल्लवैः कम्पद्वयैः । कलपन्नमिवलोलैर्मल्लिकाभ्यकम्पनम् ॥५२॥  
 त्रिदीपंदाडिमैः स्थापितं दर्शयन्नुरागवत् । माधवीध्वरूपेण श्लिष्यतमिव कानने ॥५३॥  
 उद्वर्गवर्गैर्ननकलशालिभिः । नक्ष्त्राण्डकण्टिकविघ्नमननमिव सर्वतः ॥५४॥  
 पनमैर्वननामार्गैः शुक्लार्गैः पलाशकैः । फलाशनादिरहिणो पचन्यक्तैर्विवाहृतम् ॥५५॥  
 कटववादिनो नीशान्दष्टा कंटकिर्नमिव । समन्तो भ्राजमानं कटवककटवकैः ॥५६॥  
 ममेकमिव मंगेश शिखरैरिव राजिनम् । राजादनेश्च मदनेः सदनेरिव कामिनाम् ॥५७॥  
 ममन्तः पटुवर्तकृच्चैः पटुवर्तकृतम् । कटवस्त्ववकैर्भक्तिमधिष्ठितवकैरिव ॥५८॥  
 कम्पद्वयैः करैश्च करैश्च कटवकैः । मदकटवकैश्च मधिष्ठितवकैश्च ॥५९॥  
 नीशजिनमिदोर्दीपैः गजचक्रकोरकैः । सपुष्पशालमलीभिश्च जितपद्माकारभ्रियम् ॥६०॥  
 कश्चिन्नलदलेरुच्चैः कश्चिन्काञ्चनकेतकैः । कुतमार्त्तनकमालैः शोभमानं कश्चिन् कश्चिन् ॥६१॥  
 कर्कन्धुवन्धुजीर्वाश्च पुनर्जीर्वाविरजितम् । मर्तिरुकेरुदीभिश्च करुणैः करुणालयम् ॥६२॥

उसका विस्तार गाँव कायका था । गाँव कालके समस्त योद्धा मनोरमे जहाँ रामचन्द्रजी उद्भूत थे, सोनाजी प्रसन्नभावसे विहार करने और उस सुन्दर वन चकोरखुब अलङ्कृत करके देखने लगे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ उसमें रमालक वृक्ष वास्त्वजस रत्नके आलम्ब और कणोक्तके वृक्ष शोकका दर्श करनेवाले थे । ताल, तमाल, द्विस्ताल और शालक वृक्ष चारों ओर गुणाभिन हो गये थे ॥ ४७ ॥ सपुण्यके वृक्षोंमें वज्र बगोचा वपुः (स्वर्ग) मरण लय रह गया और यन्त्रयमें भी कलके उद्भूत था । अगस्त्यके वृक्षोंमें रम्भोर शांभवाला तथा कन्दके वृक्षोंमें कपिल-वर्गका हो रहा था ॥ ४८ ॥ वनलक्ष्मीके वृक्षोंके समान सङ्घन । वरद्वय ) के वृक्ष लगे हुए थे, अमृतकम्पका नाई देखनेसे लज्जा लगे हुए थे ॥ ४९ ॥ सुन्दर गङ्गातले नारकीके वृक्षोंमें गङ्गाधरपत्नी शायी हो गयी थी । शानीर, अशीर, वीजपूर आदिके वृक्ष भी उत वगैराम दुष्ट वन नहीं थे ॥ ५० ॥ धीरे-धीरे बाधुक शोकसे झूमता हुआ कैतका पत्ता मानो एक हुए वनद्विगाको हाथके समानसे विश्राम करने के लिए चुन्ना रहा था ॥ ५१ ॥ पुष्पागको तरह पुष्पागक पल्लव कम्पल्लवक समान थे और मल्लिकाके गुच्छे स्वनके समान दीखत थे । ५२ । मनारके कट हुए कल मानो अपना हृदय फाड़कर हार्दिक प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे । मूचरका खूब लम्बान्चीहा वृक्ष था, जिसमें असंख्य फल लगे हुए थे । वह कम्पटा वज्र कलकी धारण किये हुए साक्षात् मन्त्रज्ञ वगैरानुके सदृश मालूम पड़ता था । उपवनकी नारक समान वनलक्ष्मीके वृक्ष तथा नारकी नाकके समान पद्मागके वृक्ष लगे हुए थे । कष्ट-वित्त पुष्पवाले कदम्बके वृक्षों को देखकर रोमांच हो जाता था ॥ ५३-५४ ॥ नयेकके वृक्ष को देखकर ममेरुशृङ्गकी पेट आ जाती थी । राजाइनक वृक्ष कामोदीकी भदनक भवन मण्डप देखने थे ॥ ५५ ॥ चारों ओर लगे हुए पटुवर्तके वृक्ष पटुवर्तके मरण दीखत थे । वृक्षके गुच्छे जैसे हुए अणुके सदृश मालूम पड़ने थे ॥ ५६ ॥ जहाँ जहाँ कौँद, करौँर, कौँर, कदम्ब आदिके वही-वही शाखाओवाले वृक्ष हुआ है हाथ उठाये पाचकोके समान मानुष पड़ने थे ५७ ॥ गजचक्रक तथा कोरौँरक वृक्ष मानो आरना बनकर उस बगोचकी माग्ती उभार रहे थे । पुण्यके लगे हुए ममरके कम्पकम्पल्लवको लोभावा भी पराजित कर रहे थे ॥ ५८ ॥ कहीं कम्पकमाने हुए बलौवाले कम्पके बड़े-बड़े वृक्षोंसे, कहीं सुनहली वनकी छोटे छोटे पौधोंसे, कहीं कुतमाल और मलमानके वृक्षोंसे वह बगोचा गुणाभित हो रहा था ॥ ५९ ॥ वज्र, वपुजाय तथा पुष्पागक वृक्ष लगे थे । तटु, श्वरी, कदण आदि वृक्षोंसे वह बगोचा करुणालय हो रहा था । एकले हुए मङ्गलके पुण्यको देखकर मालूम होता

गलन्मधुककुसुमैर्धराह्वयधरं हरम् । स्वदन्तमुक्तमुक्ताभिरर्पयन्मिवानिशम् ॥६३॥  
 सर्जार्जुनाञ्जनैर्वीजैर्व्यञ्जनैर्वीज्यमानवत् । नारिकेलैः ससर्जैर्गुहृतच्छत्रमिवांबरैः ॥६४॥  
 जमदैः पितुमन्दैश्च मंदारैः कोविदारकैः । पाटलातिविर्णीधौटाशाखोटैः करहाटकैः ॥६५॥  
 उदङ्गैश्चापि शेदुङ्गैर्गुडपुष्पैर्विराजितम् । वकुलैस्तिलकैश्चैव तिलकांकितमस्तकम् ॥६६॥  
 अक्षैः प्लक्षैः सल्लकीभिर्देवदारुहरिद्रुमैः । सदाफलसदापुष्पवृक्षवल्लिविराजितम् ॥६७॥  
 एलालवंगपरिचकुलंजनवनावृतम् । जम्बूआम्रातकमल्लगशेलुश्रीपणिर्वर्णितम् ॥६८॥  
 शकशखवन रम्यं चन्दनै रक्तचन्दनैः । ह्रीतकीकर्णिकारधात्रीयनविभूषितम् ॥६९॥  
 द्राक्षावल्लीनागरल्लीकर्णवल्लीशतावृतम् । मल्लिकायूथिकाकुन्दमदयन्तीसुगन्धितम् ॥७०॥  
 तुलसीवृक्षपङ्क्तिश्च शिवन्त्यगस्तिद्रुमैर्धृतम् । भ्रमरभ्रमरमालाभिर्मालतीभिरलंकृतम् ॥७१॥  
 अलिच्छलागतं कृष्ण गोपी रत्नमनेकशः । सुगन्धवार्तं सुस्वदं कामसञ्जनकं परम् ॥७२॥  
 नानाभृगवणाकीर्णं नानापक्षिनिनादितम् । नानासरित्सरःस्रोतैः पल्लवैः परितो घृतम् ॥७३॥  
 उत्सृजतमिवार्थं वै पतन्पुष्पैरितस्ततः । कैकिकेकारवैदूगत्कुर्वन्तं स्वागतं किल ॥७४॥  
 एतादृशं पुष्पवनं जानकी तद्दर्श सा । हृष्टाऽभूदर्शनेनैव विचचार त्वितस्ततः ॥७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्गते श्रीमद्वाल्मीकीये

अन्नकाण्डे नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

था कि मानो जिनकी घण्टीका रूप धारण किये हुए हैं और अपने ही हाथसे अपनेपर मोलियोंकी वर्षा कर रहे हैं । ६३ ॥ ६३॥ सर्ज, अर्जुन, बीजपूर आदिके वृक्षोंसे ऐसा मालूम होता था कि वे सब बगीचोंकी पंखा झल रहे हैं । नारियल तथा खजूरके वृक्ष छत्र धारण करनेवाले सेवक जैसे थे । अमर, पितुमन्द, मन्दार, कोविदार, पाटल, तिलिगी, धौटा, शाखाट, करहाटक, ऊँचे चण्डेवाले शेदुङ्ग और गुडहलक वृक्ष भी उस बगीचमें यत्र-तत्र लगे हुए थे । वकुल और तिलकके वृक्ष उस बगीचके मरतकपर तिलकके समान मालूम पड़ते थे ॥ ६४-६६ ॥ अक्ष, प्लक्ष, सल्लकी, देवदारु, हरिद्रुम, सदाफल, सदापुष्प और वृक्षवल्ली आदिके वृक्ष भी उस बगीचमें लगे हुए थे ॥ ६७ ॥ इलायची, लौंग, मरिच तथा कुलंजनके वृक्षोंसे वह समस्त बगीचा भरा हुआ था । जामुन, आम, भल्लातक, श्रीपणी आदि वृक्षोंसे उस बगीचकी रंगीली शाखा देखते ही बनती थी ॥ ६८ ॥ शक तथा शखवनके वृक्षोंसे रमणीक एवं चन्दन, हरीतकी, कर्णिकार, आंबला आदिके वृक्षोंसे वह विभूषित था ॥ ६९ ॥ जिनमें सैकड़ों अंगूरकी लताएँ तथा पानकी बेलें लगी हुई थीं । मल्लिका, जूही, कुन्द और मदयन्ताके वृक्षोंसे वह बगीचा सुगन्धित हो रहा था ॥ ७० ॥ उसमें कितने ही नुस्सा, सहिजन तथा वगस्तके वृक्ष लगे हुए थे । जिनपर औरोंकी श्रेणी बनकर काट रहो थी, ऐसी मान्दतीके वृक्षोंसे वह अलंकृत था ॥ ७१ ॥ जिस समय मान्दतीके समीप औरा आता था, तब देखनेवालेके हृदयमें यह उद्बेला होती थी कि मानों श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ विहार करनेके लिए आये हैं ॥ ७२ ॥ उस बगीचमें बहुतसे दूध पीकड़ियाँ भरा करते थे, विविध प्रकारके पक्षी बोलते रहते थे, कितनी ही नदियों झालावों, स्रोतों तथा गडहोंसे वह बगीचा घिरा हुआ था ॥ ७३ ॥ बगीचके वृक्षोंसे गिरे हुए फूल कितनी बानीकी बनरागिने समान लगते थे । मयूरोंकी आवाजसे ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों वह बगीचा अपने यहाँ आनेवालोंका स्वागत कर रहा है ॥ ७४ ॥ इस प्रकारके उस सुन्दर उपवनको सीताने देखा । देखते ही उनका चित्त प्रसन्न हो गया और वे इधर उधर घूमने लगीं ॥ ७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्गते श्रीमद्वाल्मीकीये

अन्नकाण्डे ९० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( रामसीताका उपवनविहार )

श्रीरामदास उवाच

अथ सीता राघवेण रम्योपवनभूमिषु । क्रीडन्त्यकां विविधाम्बिदरैरपि सस्तुताः ॥ १ ॥  
 कदा वनानःश्रमं रे कदा पद्मगुह्येष्वपि । कदाऽऽम्रवृक्षच्छायायां कदा पुष्पवनेषु सा ॥ २ ॥  
 कदा मा जलयन्त्राणां सम्यक्पद्मद्वारामने । कदा सरोवरतटे कदा नद्यान्तरेऽपि च ॥ ३ ॥  
 नौकास्था मरुतोद्ये मा रामेणकरोकदा । कदा रात्री जनकांडा मा रिताऽपि कदा मुदा ॥ ४ ॥  
 कदा तटके नौकास्था कदा रमावनेषु मा । कदा वृक्षोपशमेषु कदाशीतगुह्येष्वपि ॥ ५ ॥  
 कदा मा सगुनश्रां निर्मिनेषु गुह्येषु वा । कदा कृत्रिममंदेषु पुष्पमंदेषु मा कदा ॥ ६ ॥  
 कदा मा चित्रशलायां पुष्पकेश कदा मुदा । कदा मा केतकीपण्डे दर्दकम्पममवनि ॥ ७ ॥  
 कदा नौकोपशमैरुक्ता गम्याः मैकने कदा । एकस्मिन्मोर्धममंदेषु मार्गभिः परिवेष्टिता ॥ ८ ॥  
 कदा रामेण रम्यि कदा दोलकसंस्थिता । पर्वतपुष्पकमध्यस्था कदा मा दाडिर्मावने ॥ ९ ॥  
 वृक्षमरुदपर्वद्वारमिथ्या राघवेण हि । चकार मा कदा क्रीडां पौटुगंभी वृष्टुदरी ॥ १० ॥  
 हरिद्वयपुत्ररक्तजपुष्पा जानकी वर्मा । गोपविन्दा निज देहं मोना वृक्षदर्शनेः ॥ ११ ॥  
 सकार न्याकुल रामं विनोद्रेन स्मिरानना । ज्ञान्वाभ्मान राघवेण मुष्टां मम्यमिवविष्णु च ॥ १२ ॥  
 दृष्ट्वा गन्धमाद्रामं नन्दते दोलनेऽकरोन् । एवं सीताराघवयोः क्रीडनं परमाद्भुतम् ॥ १३ ॥  
 विस्मारेणैव को दत्तुं समर्था युधिर्वाते । एक एव ममर्थोऽभूदान्मोक्तिर्बुनिष्पन्नः ॥ १४ ॥  
 शूनकोटिमितं तेन चरितं दर्शितं तपोः । मारुतारमया यस्माद्विचिध्य त्वां प्रवर्षति ॥ १५ ॥  
 वारम्भीणां कदा नून्य सीताऽऽगमे ददर्श सा । कदा शुश्राव वाद्यानि मञ्जुलानि महतीं च ॥ १६ ॥

श्रीरामदासजी कहते हैं— इसके बाद सीता रामचन्द्र दोनों साथ उस रमणीक उपवनमें देवताओं द्वारा प्रणीत विविध प्रकारकी वृक्षाएँ बनने लगीं ॥ १ ॥ कभी उस वर्गीयके रंगलेप, कभी तन्मूके भीतर, कभी शाखपुष्पके छायामें कभी फूलोंकी झरझरमें कभी फोंवारीके समीप बने हुए किसी एक सुन्दर आसनपर कभी सरोवरके तटपर और कभी नदीके समीप जाकर विहार करती थीं ॥ २ ॥ ३ ॥ कभी वे नौकापर सवार होकर सरयुकी प्रागम रामके साथ विहार करती थीं । कभी रात्रिके समय और कभी दिनमें ही बालकों के साथ बाल बाली थीं ॥ ४ ॥ कभी सरोवरमें नौकापर कभी बालक बरम कभी वृक्षके ऊपर बने हुए मन्दपमें, कभी पर्वत इत्यादि जगत् कभी मरुदके भाग इत्यादि भवनमें, कभी वनावटी मकानोंमें, कभी पुष्पमन्दों कभी विष्णु मन्दों कभी पर्वत विमानपर कभी मन्दक नयों और कभी एक स्थानके ऊपर बने मन्दपमें रामचन्द्र साथ-साथ रहती थीं ॥ ५ ॥ ६ ॥ कभी नौका के ऊपर बने रंगलेप, कभी मरुकी बेलोंमें कभी अवनी रंगलेपोंमें तथा एक स्थानके ऊपर बनी हुई जगत् अन्तरात्मा कभी रामके साथ एकान्तमें कभी झुलेपर बैठकर, कभी चक्राकार पर झुपके कभी जगत्के चर्चचर्च और कभी किसी वृक्षके समीप पड़े हुए पल्लवपर गारे-गारे मञ्जुलाल सीता रामके साथ साठ क्रीडा करती थीं ॥ ७-१० ॥ वे कभी हरे रङ्गके कण्ड तथा लाल कंचकी पहनकर रामके साथ क्रीडा करती हुई वृक्षोंके समीप जाकर रामकी व्याकुल कर देने वाली स्मृति की किसी मुक्त्या रहती थीं । जब वे मञ्जुषी किं रामने तब निज देहं दोरती हुई आतीं और रामके शरीरमें गन्धर्वहोयां उल्लसकर उनके शरीरमें निज देहं जाया करतीं । इस प्रकार सीता तथा रामका अद्भुत कोनूष हुआ करता था ॥ ११-१३ ॥ इस विस्मयपूर्ण कानकी माधुर्य क्या किसीमें है ? हाँ एकमात्र महर्षि वाल्मीकिजी समर्थ हुए हैं । जिन्होंने ही कलोट गलकोण उनके चरित्रोंका वर्णन किया है । उनसेसे काय भाव लेकर मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥ १४ ॥ १५ ॥ कभी जेतानी उस वर्गीयके वेद्याओंके नृत्य देखती को

कदा विप्रकथा रम्यारवेन्द्रजातानि वा कदा । कदा दशगोहणादिकीपुकाणि ददर्श मा ॥१७॥  
 कदा सन्मोह्यं दिव्यं ददर्श कीपुं कं महत् । कदा राजानं सौमित्रं नृपसन्धेर्विनिर्मितम् ॥१८॥  
 कदा कुत्रिग्रहन्शादिनानाकपाणि वै वने । सीता ददर्श कुशलधृशान्यान्मयुतान्यपि ॥१९॥  
 एवं सीताऽन्नाममये मायमेकं निनाय सा । ययी रामेव नगरो नृपयोगीनादिभिः श्रुतैः ॥२०॥  
 सौधस्थाभिः पुष्पतीभिर्वणिना कुमुदादिभिः । सीताजिना कुम्भदर्पदीपदर्पोदनोद्भवैः ॥२१॥  
 मायर्नलमर्षणाद्यैर्नानाचलितमिरादगन् । ययी निजगृह सीता राघवेण यमन्विता ॥२२॥  
 एवं नानाकीपुङ्गव नानादीहदरुणैः । रामानां रञ्जयामास माऽपि रामं स्वलीलया ॥२३॥  
 षष्ठे मासे स्वयं प्राप्ते सीताया राघवो मुदा । सीमन्तोन्मयं चैव वसिष्ठेन चकार सा ॥२४॥  
 सुमेधा जनक चापि समाहृषादरेण हि । दृष्ट्वा रानान्यनेकानि मास्त्रणेभ्यो स्थूतमः ॥२५॥  
 जनकः पूजयामास रामं सौमित्रसुतम् । कीमन्त्याश्च सकेनवासिनो वसनादिभिः ॥२६॥  
 पीराश्च मुहदः सर्वे भोजनार्थं विदेहजम् । स्वस्वमेह पृथङ्निन्युः श्रीराधादिभिर्हस्तवैः ॥२७॥  
 नानावाद्यनिर्वाहं चारुसौन्दर्यगायनैः । स्त्रीभुक्तपुष्पपर्णभिर्नानाकीपुङ्गवैर्नः ॥२८॥  
 नानादेशानिवासिन्यः कीटिश्रुता नृपट्टिवयः । मध्याजगूरुष्याप्यापी सीता द्रष्टुं मुदान्विताः ॥२९॥  
 तस्मा सैन्यं च सर्वत्र वेष्टेना नगरं ययी । ताः मया नृपसन्धेय्य सीतायाः परमान् वरान् ॥३०॥  
 देहवान् पूजयामासुदिग्धपादादिभिरादगन् । ददृशेऽप्यतः कारुण्यं दिव्याभिविचित्रितान् ॥३१॥  
 स्वस्वदशोत्तमैर्दक्षिणैर्नानाशस्तुभिरादगन् । जनकी पूजयामासुः सर्वैः पाशिवस्त्रियः ॥३२॥  
 स्थित्वा सा मायमेकं तु जग्मुर्दशं निजं निजम् । अर्धकदा तु श्रोगमः सुमेधा जनक तथा ॥३३॥  
 सीतायाः पुरतः जाह गुह्य रहसि हस्मिन्मम् । सीतामदृष्ट्वा साभिभ्ये तप्याश्च विरहेण तासु ॥३४॥

कभी मरुत तब चरणों में अनामक राजाका पुत्र मृत्यु हो । कब विविध प्रकारक चित्र देखती थीं, कभी बाजीगरी और चालीपर चढ़कर नन्दरवण के अद्वय खेद देखा करता था ॥ १६ ॥ १७ ॥ कभी स्तम्भके सुन्दर कोठरी तथा पुष्पवनमें बैठ कर मयुज्याक जास तब कभी बनाबटा हाथ आदिके विविध रुपाको देखा करती थी ॥ १८-१९ ॥ इस तरह सीता ने उस वीरवत एक महाना बिताया । फिर नृप-प्रीतिादिक देखती-सुनती हुई रामचन्द्रके साथ अरुण नगरी अयोध्याका गेट छोड़ी ॥ २० ॥ जब सीता और रामने नगरमें प्रवेश किया, उस समय नगरके मित्रोंने अंगारवत चढ़कर उन दोनोपर कुन्तीकी बर्ण की, आगती उतारी और पड़ी, भाग, उड़, एक तथा मरमो आदिके वचन दिये । तब राम सीता के साथ अपने मरुतको गये ॥ २१ ॥ २२ ॥ इस तरह विविध प्रकारका नृपरास रामन मताकी तथा मतान रामको मानन्दित किया । २३ ॥ जब गंधका छत्र पहना जाया तब गंधन खाने कुलगुण वसिष्ठके द्वारा साक्षात् सीमन्तोन्मयन संस्कार कराया । २४ ॥ सुमेधा और जनकके पास निमग्न नृपकर उन्हें अपने वही कुलगुण और बाह्यगोंको रामने विविध प्रकारक देव दिये । २५ ॥ जनकने आकर सता तथा आने सब पाइयोंके साथ बैठे हुए राम और कीमन्तार्थ माताभोजा नाना प्रकारके वस्त्रपूजना द्वारा स्त्कार किया ॥ २६ ॥ अर्धकपाली नागरिकों तथा मित्रोंने रामचन्द्र और सीताको आने पड़ी भोजन करनेके लिए बुलाया ॥ २७ ॥ अनेक बरोंके साथ-साथ वरगणोंके नृप-मान हुए मित्रोंके हाथसे पत्रोंका वर्यो हुई और कितने ही तरहके सेन-नमाजे हुए ॥ २८ ॥ उस समय सीताको दम्भके लिए अनेक रुपाको राजन-विर्ग अयोध्या बाधे । २९ ॥ उनके साथ कभी हुई सेनासे विश्वर बहु अवाधत नगरी और भी सुन्दर खाने ल्या । उन रामिने अन्नादि देदेकर सीताकी इच्छा पूर्ण की और आनन्दपूर्ण बहुतम वस्त्र-अन्धार तथा अपने देशोंका विभिन्न वस्तु देकर सीताकी वृत्ता की ॥ ३०-३२ ॥ वे रात्रिमें एक पड़ीना अर्धकपाले रहकर खाने खाने बेसोको लौट गयी । एक दिन जब कि सुमेधा, जनक, सीता तथा रामचन्द्र एकात्ममें बैठे थे । तब रामने कहा - हे महाराज ! सीताको अपने पास न क्षण तथा अवसर भी उनसे विमुख होकर मैं नहीं रहूँ गा । जब सीताके पास पड़ेव

मयाऽऽगत्य तन्मुनेन्द्रमुधया स्वास्थ्यमाप्स्यते । आत्मानं विद्वत् दृष्ट्वा सीतामात्रिष्यमाश्रये ॥ ३५ ॥  
 अधुना जानकी दृष्ट्वा कामो मेऽतीव बाधते । पञ्चमाशोर्ध्वतः सग गर्हयन्ति मुनीश्वराः ॥ ३६ ॥  
 प्रसृत्यमे पञ्चमार्गं रवी स्वाम्भ्यं प्राप्यते पुनः । पञ्चमार्गैर्युतः सङ्गादवन्धोः क्षाणनेति ॥ ३७ ॥  
 अत्र किं करणीयं हि वद त्व शशुराद्य माम् । चेन्म्रेपर्णाया सीतेपं मिथिलां प्रति वै मया ॥ ३८ ॥  
 उहिं तत्रापि मे गन्तु मविष्यति समुद्यमः । किञ्चिन्कालं तु सीताया वियोगो येन मे भवेत् ॥ ३९ ॥  
 उवाच स विधानव्यधिन्तिनोऽस्ति मयाऽपि च । लोकापवादमन्याऽह रजकोक्तच्छलादपि ॥ ४० ॥  
 गङ्गाया दक्षिणे तीरे वाल्मीकेगश्रमे शुभे । न्यजायि जानकीं शुद्धां किञ्चित्कालानरात्पुनः ॥ ४१ ॥  
 एका ममानयिष्यामि प्रत्यय सां प्रदास्यति ततोऽनया चिर कालं नानामोक्षान भजाम्यहम् ॥ ४२ ॥  
 जनकाय न्यया तत्र निजपत्न्या सुमेधया । वाल्मीकेगश्रमे गन्वा स्थेवं वर्षाणि पञ्च वै ॥ ४३ ॥  
 तथेन्धगोचकाराथ जनकोऽपि सुमेधया । मोक्षोऽप्यर्थाश्चकाराथ विदम्य नद्वचः पतेः ॥ ४४ ॥  
 अथ गयो ददाशज्ञां मस्त्रिय जनकं मुदा । म गन्वा मिथिलाराज्ये स्वाय मम्याप्य मंत्रिणम् ॥ ४५ ॥  
 यया सुमेधया शीत्रे वाल्मीकेगश्रमे मुदा । किञ्चिदार्मादामनैन्यवातिवारणवेष्टिनः ॥ ४६ ॥  
 नानोपवारात्मनार्थं मगृक्ष शकटादिभिः । चकार गेह विपुलं वाल्मीकेष्व सुखावहम् ॥ ४७ ॥  
 मर्मसंनिमग्नं बहुगोमहिर्षायुतम् । पूरितं धान्यसंपेक्षं वर्मगभरणादिभिः ॥ ४८ ॥  
 कामारोपवनागमपुष्पवाटिशतावृतम् । गवाक्षैश्चन्द्रकान्तानां कषाटैश्च समन्वितम् ॥ ४९ ॥  
 कृष्णागुरुसकर्पूरीशीमाल्यादिमोदिभम् । काचिर्नाश्वनारद्वरन्नपर्यङ्कमण्डितम् ॥ ५० ॥  
 हम्पागवतपिक्केकांशुकनिनादिभम् । मुक्तशुच्छविनानार्थैः क्षाभिन चित्राश्चायतम् ॥ ५१ ॥

जाता है तो इनके मुखचन्द्रकी सुधासे स्पर्श्य हो जाता है । जिस समय मुझने कुछ भी भवराहत होता है, उस समय मैं सीताके ही समीप रहता हूँ ॥ ३५-३६ ॥ इस समय सीताका दन्तकर मुख कामपाक हो रही है और मुनियोगी सलाह यह दे कि यथ वक्त हो जानपर पाँच महीने बाद स्नाप्रसङ्ग करना निन्दित है ॥ ३६ ॥ प्रसव हो जानपर पाँच महीने बाद हो स्त्री स्वस्थ होती है । बिना पाँच महीने बात प्रसङ्ग करनेसे बालोंका हानि हो जान है । ऐसे असमयप्रसक्त समय मुख बचा करना चाहिए, सो आप बताइये । यदि मैं सीताका मिथिला भज दता हूँ तो कुछ भी वहीं जाता पढ़ना । किन्तु मैं कुछ दिन तक सीतासे छला रहना चाहता हूँ । जिस तरह मेरा इच्छा पूर्ण हो, वही इस समय करना चाहिए । येन तो यह साच स्वस्था है कि लोकापवादके दरसे जनका यह आशय ध्यातसे गङ्गाके दक्षिण सटगर वाल्मीकिक गाँवमें आश्रममें कुछ समयन लिए परम शुद्ध जानकीको छोड़ दूँ । थोड़ा दिन बाद वापस ले आऊँगा । फिर मैं इनके साथ चिरकालतक नाना प्रकारके भागाकी भागुंया ॥ ३७-४२ ॥ उस समय आपका अपनी सुमंत्राक साथ वाल्मीकिक आश्रमपर जाकर पाँच वर्ष परान्त निवास करना होगा ॥ ४३ ॥ गुमथा और जनकने रामका सलाह स्वाकार की और सीताने भी हैसकर पालिका कहना मान लिया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामने जनकको अपने दश आनकी आज्ञा दी । वे अपने दश गर्द और राज्यका सब भार मंत्रीपर छोड़कर अपनी स्त्री सुमेधाके साथ बालोंकी ऋषिक आश्रमको चल दिये । चलते समय अपने साथ कुछ वास, शाली, सैन्धिक तथा हाथी-घोड़े भी ले लिये । ४५ ॥ ४६ ॥ सीताके लिए बहुत सी सामग्रियाँ गन्धमापर लदवाकर साथ ले गये । महर्षि वाल्मीकिक आश्रमका जनकने सब सुखाकी भण्डार बना दिया । ४७ ॥ जनकजीके वहाँ पहुँचनेपर वह आश्रम सब सम्पत्तियों एवं बहुत सा गोशाला और भेगास भर गया । विविध प्रकारके अन्न और मीठि-मीठके वस्त्राभूषण से वह पूरा हो गया । ४८ ॥ अन्नके पाल सेकड़ो पसर, जपवत्, बगीच वगैरह तथा कुर्छेदार हो गया । चट्टकने मीठके मीठावा तथा फटकावाल भव्य भवन बने । ४९ ॥ कृष्णागुरु, कपूर, लस तथा विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पास वह आश्रम सुगन्धमय हो गया । जगह जगह पर सीनेकी जलाराम सत्र रत्नोक पञ्च पद हुए थे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कवूतर, काष्ठल मधूर तथा तीव्रके मन्दोसे



एवं मनोहर गेहं सीतार्थं जनकोऽकरोत् । श्रीः साक्षाद्-तुमुद्युक्ता यस्मिन्निवसितुश्चिरम् ॥५२॥  
किं दुर्लभं हि तत्रास्ति वर्णनीयं मयाऽद्य किम् । यस्या नैश्वक्यक्षेण शक्रादीनां विभूतयः ॥५३॥  
बाल्मीकीये सर्वज्ञं जनकोऽपि न्यषेदयन् शुनिधायतिमंतुष्टो मने स्वतपनः कठम् ॥५४॥

इति श्रीमत्कौटिलिरामचरितान्तर्नि श्रीमदनन्दरामायण बाल्मीकीये जन्मकाण्ड द्वितीयः सर्गः । २ ।

## तृतीयः सर्गः

( राम द्वारा सीताका त्याग )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामं तु कौसल्याञ्जरीद्वहसि मस्थिता । सीतां सीमोल्लवनायै शीघ्रं प्रेषय राघव ॥१॥  
तस्मात्पूर्वचनं श्रुत्वा तथेन्पुनन्वा मविस्तरात् । सलक्ष्मणा निजाम्बु प्राह यन्मन्त्रिनं पुनः ॥२॥  
बाल्मीकेश्वरं भीताभ्यागादि च सकाशम् । अथ मासेऽष्टमे प्राप्ते गधां गर्जावलोकनः ॥३॥  
एकति जनकं प्राह वीजना लक्ष्मणेन हि । कल्पयित्वा मेष देवं रजकोक्तं त्वदश्वयम् ॥४॥  
न्यजामि त्वां बने लोकवादाद्भात इवपरः । त्रिमामान्पंचमामाढां सम् मामान्सुषुद्धमिः ॥५॥  
अन्तर्वत्नी न गम्येति शास्त्राज्ञां रजकच्छन्नात् । त्वां त्यक्त्वा पालयिष्यामि निकटे वस्तुमश्रमा ॥६॥  
त्वां दृष्ट्वा चंदनदनां कामो मंशान् बाधते । त्वद्विपागस्तु निर्वन्धादिना मंश्वरं कथं भवेत् ॥७॥  
तस्मात्कृताऽयं निर्वन्धः सत्यंविद्धि मनोरमं । पचयपानवरणं पुनरागन्धं मंडान्तकम् ॥८॥  
लोकाणां प्रत्ययार्थं त्वं शपथं हि करिष्यसि । भूमोर्ध्वरमारोह्य स्थित्वा मिहामनोपरि ॥९॥

यह आश्रम शब्दावमान हो रहा था । यत्र तत्र मर्त्यलोकां साल्परवाजी चौरनियी टेंगा हुई थी और बहुत-सी तसबीर भी जहाँ-तहाँ टेंपी थी ॥ ५१ ॥ जनकजी ने सत्यक लिए इस प्रकारका सुन्दर भवन बनाकर तंगार कर-  
वाया । यदि ऐसा दिव्य भवन साताजाक बाग्य बन गया तो इसमें आश्रय हो गया है । जहाँ निराह करतके निर्मित साक्षात् लक्ष्मणा जानबाला हा, वहाँ कौन बरगु बुर्ख हा सकती है । जिसके कट-क्षमात्रसे इन्हादि देवताभीकी था सम्पत्तिही बनत-व्यवहारा है । उसकी विषयमें मैं कहा तक बगन करूँगा । जनकजी ने महर्षि बाल्मीकिवा भी वह सब बात बतला दी, जिन्हें सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुए और साताक उस चावी भाग्यमनको उन्होंने अपनी सप-राका फल समझा ॥ ५२-५४ ॥ इति श्रीमत्कौटिलिरामचरितान्तर्नि श्रीमदनन्दरामायणे ५० समस्तवर्षाण्यवचित्वा ज्ञान्ना भाषाट कासरुन्वित जन्मकाण्ड द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन एकान्तमें कौसल्याने रामसे कहा कि अब समय हो गया है । शीघ्र सीताको अपनी सामास कहो अलग भेज दो । माताकी बातका रामने स्वीकार किया और वह भी बतलाया, जिसका निर्णय बहुत दिनों पहले कर चुक थे ॥ १ ॥ २ ॥ फिर वह भी कहा कि मेरा इस समय सीताका त्याग करना उचित है । कुछ दिन बाद आठवीं महाना लगनपर रामने सीताका एकान्तमें बुलाकर समझाते हुए कहा—देवि ! इस दिन एक छोटीसे तुम्हारे विषयमें बड़ी कुतूहल भालाचन का भी उसीक बहाने मैं तुम्हें कुछ दिनोंके लिए बगम छोड़ दूँगा । इससे दुनियां समझेगी कि मैं लाकाववादमें बहुत भरता हूँ । दूसरी एक बात यह है कि गमस तंगारे, पांचवें भयना सातवें महानेसे स्त्रिका चलन नहीं करना चाहिए । यह शास्त्रोंकी आज्ञा है । इसलिए उस चावीकी बातोंक आधारसे तुम्हें दूर रखकर मैं शास्त्रोंक आज्ञाका पालन करूँगा और पास रहनेसे यह न हो सकेगा कि मैं तुमसे न दूँ ॥ ३-६ ॥ क्योंकि तुमका बेलनसे मुझे काम सगाने लगता है । तुम्हारा विदाग भी दिया किमी बहानेक गदी हो सकता था । इसलिए मैंने ऐसा प्रबन्ध किया है और इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे अक्षरशः सत्य समझो । पांच वर्षके मोतब हो तुम फिर यहाँ आजायी और संसारको दिखानेके लिए तुम्हें शपथ मनी होगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ अब

यदा गच्छामि वातात् जगत्या एजिता तदा भुवं स्तुन्वा मीषयित्वा त्वामके स्थापयाम्यहम् ॥१०॥  
 पुत्राभ्यां च मया सीते ततो मोगानवाक्यमि मत्स्वकः कुडो ज्येष्ठस्तन पुत्रो भविष्यति ॥११॥  
 सुभक्तवः प्रभावेन भविष्यन्परां लवः । बान्धीकेराश्रमे चैव कुमारी द्वौ भविष्यतः ॥१२॥  
 अग्रे गन्वा च त्वन्निष्ठा त्वद्यागं च गुहादिकम् । मसुमेधन सकलं कुतमस्ति ममाश्रया ॥१३॥  
 कुहूश्वाद्य मया पञ्च मुच्यते जनकात्मजे । सात्त्विकी त्वं पथापूर्वं दंडके भीतमानदे ॥१४॥  
 मद्वाभागे स्थिता यद्वन्मे बाभागे च बाधुना । बान्धीकेराश्रमे गन्तुं शुभद्वयविमिश्रिता ॥१५॥  
 भूत्वा स्वमाश्रमे स्थित्वा मद्रिधारां प्रदर्शय । तत्रापि त्वां कुक्षोन्पनीं दास्यामि दर्शनं गृहः ॥१६॥  
 तथेति रामवचनाजानकी सा मितानना रजस्तमोमयीं स्वयां छाया निमाय सावरम् ॥१७॥  
 आशयस्य बाभागे मन्वरूपा लयं ययौ ततो रामः मर्मा गन्वा रत्नां ज्ञानकविग्रहः ॥१८॥  
 मद्रिधिर्यशस्वाश्चंदलमुहूर्तयोर्वैरः । ममनो वेष्टितः संस्तुयीं विहासनीपरि ॥१९॥  
 तत्रोपविष्ट राजानं सुहृदं पश्यन्पारि । हास्यप्रायकयाभिश्च हासयन्तः स्थिताः प्रभुम् ॥२०॥  
 कथं प्रसगात्प्रच्छ रामो विजयनामकम् । धीरा जानपता ना म किं वदन्ति शुभाशुभम् ॥२१॥  
 सीतां तां मातरं रा मे भानुना केकर्यामथ । न येनद्य त्वया ब्रूहि क्षापितोऽपि ममापरि ॥२२॥  
 इत्युक्तः प्राह विजयो देव सर्वे वदन्ति ते । कृतं सुदुष्करं कर्म रामेणाविदितात्मना ॥२३॥  
 तयाप्येवं वदन्ति स्वी क्षनाशये वदाम्यहम् । कितुं हन्वा दशग्रीव सीतामाहूय राघवः ॥२४॥  
 अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेद्यं प्रत्यपादयन् । कान्दुय इदं तस्य मतामभागज सुखम् ॥२५॥

समय तुम अब एक दिग्ग्य सिंहासनपर बैठकर सूत्रिके विनयमार्गसे वातात्को जाने लगाना । तब मैं भूमिकी प्रार्थना करके या धमकाक तुम्हें वापस ले लूंगा और अपने गोदमें बिठाऊँ ॥ १० ॥ १०॥ उस समय तुम अपने दो बेटोंको लिये हुए मेरे साथ रहकर विविध प्रकारके नृत्य आगाता । मेरे द्वारा तुमसे एक पुत्र होगा, जिसका नाम पत्नेय पुत्र और दूसरा बेटा त्वयि व त्वया वके प्रभावसे उत्पन्न होगा, जिसका नाम होगा लव । इस प्रकार बान्धीकेराश्रमपर तुम्हारे दो पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ तुम्हारी मात के साथ जनकजी पहले ही उस आश्रमपर जा चुके हैं और उन्होंने तुम्हारे आश्रमकी सब समस्यायों प्रस्तुत कर दी है । १३ ॥ आज मैं तुमकी जैसा कह रहा हूँ व अन्तर्गत ' तुम्हें यही करना पड़ेगा । जहाँ जहाँ समय गंतियोंके लक्ष्य पर तुम अपनी दो भृतियों बनाया यों । उसी प्रकार इस समय भी अपना दो स्वयं बनाओ और पहलकी माई इस समय भी तुम सात्त्विक रूपसे मेरा साथ आगे निवास करा ॥ १४ ॥ १५ ॥ और दूसरे स्वरूपसे बान्धीकेराश्रमपर रहकर ससारकी मेरे विशेषता दुःख दिखलाओ । आश्रमपर भी जब कुशकी जन्म होगा, उस समय आकर मैं तुम्हें एकस्तीमें दर्शन दूंगा । १६ ॥ रामकी बात सुनकर सातान मन्त्र मुनकराहटके साथ 'सवास्तु' कहा और रजाशुभमयी तथा तमःशुभमयी संत' अपना छाया रामके दाक्षिण भागमें बैठ करीं और सत्वरूपसे रामके बायें भागमें किलान हो गयीं ॥ १७ ॥ इसक बाद रामचन्द्रजी समासनमें गए । वहाँ मन्त्रणाशुभल मन्त्रियों तथा कितने ही दरबारियोंसे वेष्टित होकर बैठे । गिनती उस समय षण्णवान्को विविध प्रकारसे पूजा की । तत्पश्चात् तद्गुरुगुरुको हंजी-दिस्सगाका वात कर-करके वे परस्पर मनोबिनीद करने लगे । १८-२० ॥ प्रसंगवश रामने विजय नामक एक मुत्तवरस पुष्टा कि इस समय भयाव्वाहसा आंग मुत्र किस हीटस देखते हैं ? उनका दृष्टम मेरा शासन अच्छा है या खराब ? इनक मतिरिक्त सत्ता मेरा मातृभा, माइया अथवा केकराक प्रोत्त आगत हृदयमें कमा भव है ? किता प्रकार दरी मत, जो कुछ मायूम है साकसाक बनला दा । तुम्हें मेरा शयन है । इस प्रकार रामके पृष्ठनपर विजयन कहा—हे देव ! आपकी कथे भवान् काशीकी सराहना करते हुए लय प्रशंसा हा करते हैं ॥ २१-२३ ॥ फिर भी आपकी विषयमें कुछ लोगोंका जा दूसरा राय है । उसे भी महत्ताता हूँ व कह रहे कि रामने रावणका मारकर सीताको उससे छुड़ाया और बिन कुछ साधन-वचार अपने घरमें बिठाकर लिया । हम नहीं समझते कि रामका

या हता विजने पूर्वं रावणेन बने तदा । अकम्पादपि दुष्कर्मं योपि न्यमर्षदं भवेत् ॥२६॥  
 यादृग्भवति नै राजा तादृश्यो नियताः प्रजाः । इति नानाविधा वाक् । प्रवदन्ति पुनैकमः ॥२७॥  
 अन्पत्किंचिन्प्रवक्ष्यामि सन्निवृत्तकोदिनम् । दूर्मागंगा स्वराजकी भार्या कीधवद्वेन मः ॥२८॥  
 रजकः प्राह भो गंडे योऽहं रामो न मेभिर्काप् । रावणस्य गृहे दृष्टं स्थिताममीचकार य ॥२९॥  
 यथेच्छं गच्छ गंडे न्व नाहं रामवदाचरे । गच्छता च मया मार्गे रजकेन मर्षाग्निम् ॥३०॥  
 इति राम श्रुत्वा पूर्वं त्वया दृष्टं निरेदितम् । वन्पश्यमि हितं च त्र ननु सख रघू नम ॥३१॥  
 श्रुत्वा गडचरं रामः स्वजगन्पर्ववृक्षतः । नेऽपि तन्वाऽत्रवन् राममेयमेव नम संशयः ॥३२॥  
 नतो विमृज्य सचिवान्विजयं सुहृदस्मथा । प्राह्य लक्ष्मणं रामो वचनं येदममवीत् ॥३३॥  
 लोकापवादस्तु महान्मर्तामाधित्य येऽप्रयत्नः । मर्ता प्रातः सवार्ताय वात्स्योक्तेऽधर्मातिके ॥३४॥  
 त्यक्त्वा सीर्यं रथेन त्वं पुनरप्याहि लक्ष्मण । दक्षमे यदि वा किंचिदत्र वा हनवानमि ॥३५॥  
 छिन्वा सीताशृजं लोकमन्ययार्थं ममानय । हन्तुं कदा लक्ष्मणं रामः कैकेयीं द्रष्टुमाययौ ॥३६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे सीतां कैकेयी गृहमि स्थिता । पप्रच्छ कीदृक्कान्वाते भिनीलेख्य दशाननम् ॥३७॥  
 मामत्र दर्शयस्वाथ तां प्राह जानकी तदा । मयाऽवलोकिनो नैव कदाऽपि स दशाननः ॥३८॥  
 यदा हतुं पंचनदयां मां प्रप्तो गौतमातटे । तदा दृष्टस्त्वंगुप्यो मया दक्षिणपादजः ॥३९॥  
 तन्मीतावचनं श्रुत्वा कैकेयो प्राह तां पुनः । यथा दृष्टं त्वया गुप्यन्मथा भिनी लिख्यस्व हि ॥४०॥  
 तथेति जानकी लेख्य तदंगुष्ठं भवानकम् । कैकेय्यं दर्शयामास तामार्मंश्च गृहं पर्या ॥४१॥

हरम कैसा है जो इतना भार्य होकर भी लोटा हुई माताके साथ निहार करते हुए सुखी हो रहे है ॥२६॥ २७॥ जो सीता उस दुष्टके द्वारा हरी गयी और कई वर्ष तक उसका प्रेम रही, उसका लिए रामकी कुछ शास्त्रने विचारनेकी आवश्यकता क्योंकर नहीं मान्य हुई । उनका बात बिलग वे पाते एक बार कोई दुष्कर्म जो कर में तो कोई इति नहीं उठा सकता । लेकिन इसका प्रसन्नता तो प्रजाके ऊपर पड़ेगा । बहुत साधारण नियम है कि जिस देशका जैसा राजा होता है, प्रजा भी वैसी ही हुआ करती है । इस प्रकारको वाने बहुतोंके धर्मसे मुक्ति गयी है । एक घोड़ीने भी एक बात आरके दारमें कही थी सो भी कहता है । उसने काश्चित् अवनी अभिचारिणीका सरोचित करके कहा । मरी भी गये । मैं यह राम नहीं है, जिन्होंने क्यों रावणके घरमें रही हुई सताको अङ्गीकार कर लिया है । नहीं जहाँ इच्छा हो जा मैं रामकी तरह कभी नहीं कहेगा और तुम नहीं स्मूंगा ॥२६-३०॥ मैं रावणसे कहा जा रहा था, तब घोड़ीकी बात सुनी थी । सो पुनःनेपर आदमी बतलाती । अब आप जो अच्छा समझें, वह करें । निजकी बातें सुनकर रावणकाजीने अपने मित्रसे भी इस विषयमें पछ-ताछ की । उन जानीने भी रही कहा जो विजयने बतलाया था । इसके बाद रावणभटजाने मंत्रियों तथा विजयको बिदा कर दिया और लक्ष्मणको बुलाया । लक्ष्मणसे राजने कहा—  
 त लक्ष्मण सीताके कारण मरारमें लोग हमारी बातें निन्दा कर रहे हैं । हमसे भी बहकर अवधार होनेकी आशंका है । इसलिये कल मगरे तुम सीताकी रथमें बिठाकर मुनि बान्सीकिके आश्रमपर छंड आओ । इस वादक विपरीत यदि तुम कुछ कहने तो मुझे हमारी हत्या करनेका वाव समझा । हाँ, इतना और करना । सबसे लोटते समय सीताकी एक भुजा भी काटकर सेवा करना जिसे दिनाकर मैं आयोऽपानालोको विश्वास दिला हूँगा । इतना कहकर राम कैकीके पास चल दिये । इसी बीच कैकेयीने आश्रममें बीठी बने करतेकरने सीतासे कहा—मित्र । इस दोवारपर रावणका चित्र लिखकर हमें दिखाओ कि वह दितना बड़ा था । इसके उत्तरमें सीताने कहा मैंने रावणको कभी देखा ही नहीं ॥ ३१ ३२ ॥ हाँ, जब वह पंचवटीमें मुझे हातेके लिए गया था, तब मैंने उसके दाहिने पैरका अंगूठा देखा था । सीताका उत्तर सुनकर कैकीने कहा—अच्छ, उसका अंगूठा जैसा रखा हो, वही इस दोवारपर लिख दो । जानकीने कैकेयीके कथनानुसार दोवारपर उसके भवानक अंगूठेका चित्र लिखकर रिया दिया और बोली देह बाद अपने

अगुष्ठोपरि कैकेय्या वधायोग्यो दशाननः । लिखितः स्वेन हस्तेन रामं द्रष्टुं कुबुद्धितः ॥४२॥  
 हावडार्थं समापार्तं दृष्ट्वा सा सभ्रमान्विता । भिक्षुनिके राधराय ददायामनमुत्तमम् ॥४३॥  
 रामोऽपि नन्वा कैकेयीमामने सम्पितोऽभवत् । ददर्श भिनौ लिखितं विचित्रं तं दशाननम् ॥४४॥  
 रामः पप्रच्छ केनात्र लिखितोऽर्थं दशाननः । कैकेयी कथयामास सीतया लिखितस्त्विति ॥४५॥  
 यत्र यत्र मनो लभ्य रमयते इदि तत्सदा । स्त्रियाश्चरित्र को वेति शिराया मोहिताः स्त्रियाः ॥४६॥  
 कैकेयीवचनं श्रुत्वा रामो मदाप्रनाः । सीताश्रयं समावृत्तं कैकेयीमाह विस्तरान् ॥४७॥  
 लक्ष्मणेन त्यजाम्यम्भ श्व. सीतां जाह्नवीतटे । सीताश्रयं वने छित्वा समानयतु पट्टिरा ॥४८॥

सीमित्रिस्त्वां तथा पौरान्दर्शयिष्यति निश्चयात्

सीतया लिखितो यस्मान्स्वभुजेन दशाननः ॥४९॥

सीहत्यामयमालस्य नद्रुचे लक्ष्मणो मया । न चोदितश्च तां हिम्रा मञ्जयिष्यति वै क्षणात् ॥५०॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा कैकेयी मुदिताऽभवत् । सीताया विरहाद्रामो नेदं गन्धं प्रश्लास्यति ॥५१॥  
 सेवायं रामचन्द्रस्य लक्ष्मणोऽपि न शास्यति । तदा भोरामराज्येन मगतो मे प्रश्लास्यति ॥५२॥  
 इति मचिन्त्य हृदये कैकेयी मुदिताऽभवत् । रामोऽपि नन्वा कैकेयीं सुमित्रां स्वां च भातरम् ॥५३॥  
 सभावृत्तं च कैकेयीगेहे यजाममादरान् । श्रावयामास सकलं वृत्तं सीताश्रयं प्रभुः ॥५४॥  
 नन्वा सुमित्रां कौमल्या रामः सीतागृहं ययी । सीतया दत्तपाद्यार्घ्यासनमर्गचकार सा ॥५५॥  
 सभावृत्तं च कैकेयीगेहे यददृष्टमादरान् । श्रावयामास तत्कुन्म्वं वृत्तं तं जानकी मुदा ॥५६॥  
 तच्छ्रुत्वा जनकी प्राह कैकेय्या वचनान्मया । अगुष्ठ एव लिखितस्त्वयोर्ध्वं लिखितो धिया ॥५७॥  
 अगुष्ठस्यानुरूपेण दशारूपो दुष्टबुद्धिनः । मन्वीनावचनं श्रुत्वा जानकीमाह रावणः ॥५८॥

महलोको नसी गयी । सीताको बली जानेपर द्वेषवश कैकेयीने रामको दिखानेके लिए उस अगुठके अनुसार रामके पुरे शरीरका चित्र अपने हाथसे बना दिया । ॥ ३९ ५२ ॥ इसमें कैकेयीन चेला कि राम हमी ओर आ रहे हैं । सब झटपट उसने उस दीवारके पास ही रामजीको बैठनेके लिए आसन बाल दिया । रामने वही पहुनकर कैकेयीको प्रणाम किया । फिर आसनपर बैठ गये । थोड़ा ढर बाद रामका दृष्टि उस धने हुए रावणक चित्रपर पड़ी ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ रामने पूछा वहाँपर रावणका चित्रकिसने बनाया है ? उत्तरमें कैकेयीन कहा कि आपकी बहू सीताने यह चित्र लिखा है । जहाँ जिसका मन लगा रहता है, वार बार उसीको याद आती रहती है । यह एक माधारण निरम है । और फिर स्त्रियोंके चरित्रको कोन जान सकता है । निवर्द्धिक दशान भी तो स्त्रीचरित्रका पार नहीं पा सक और वे चा मोहित हो गये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ कैकेयीकी बातें सुनकर मनस्वी रामचन्द्रजीने कैकेयीकी वह बातें भी बहलायीं जो सभामें विजयक मुँहसे सुनी थीं । इसी सिलसिलामें उन्होंने यह भी कहा — माता ! कल सबरे लक्ष्मणके साथ मैं सीताको गंगाजाके तटपर भेज रहा हूँ । वह उसे वही छोद देगा और भय तथा गुरुवर्षियोंको दिखानेके लिए भेर कतुन्से सीताका एक हाथ भी काट लायेगा । बदीकि सीताने उसी हाथसे तो रावणका यह चित्र बनाया हुआ । म्पीहत्याक भयसे मैं उसे मारनेकी आज्ञा नही दूंगा । लेकिन जब उसके हाथ नही रहेंगे तो वह जियेगी कैसे ? वनके हिसक जोश ही उसको छा जयेंगे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई और मनही मन सोचने लगी कि सीताके विरहने दुखी हाकर राम राज्यका काम नहीं कर सकेंगे । लक्ष्मण भी रामकी सेवामें लगे रहनेके कारण राज्यका पार अपने ऊपर नहीं लगे । उस दशामें विषम होकर राव वरे बेटे भरतसे राज्यका काम करनेके लिए माग्रह करेंगे । यह सोचकर कैकेयी प्रसन्न हुई । रामजा भी कैकेयीको प्रणाम करके अपने महलोंको चले गये । वहाँ अपनी माता कौमल्या तथा सुमित्राको आदिसे अगतक सीतासन्ध्याभी सब धृत्वा कह सुनाया । फिर कौमल्या और सुमित्राको प्रणाम करके वे सीताके भवनमें जा पहुँचे । सीताने पाद्य-अर्घ्य-आसनोयादिसे उनकी पूजा की और रामजी एक आसनपर बैठ गये । इसके

कौटिल्यबुद्धिर्कंकेत्याः समग्रां वंशपदं प्रिये । इत्युक्त्वा राघवः सीतामादिरयाम्ये चञ्चुव मः ॥५९॥  
 सीतया हेमपयङ्गे भुक्त्वा मोगान्मपुष्कलान् । विनोदार्थं स्पृणनिः प्राह रात्रौ विदेहजाम् ॥६०॥  
 स्त्रीणां माने मगमर्णां वाञ्छितं वाञ्छने मनः । काते वाञ्छावद्भवन्त्येव तत्ते दास्यामि निश्चिनम् ॥६१॥  
 इति राघवचः श्रुत्वा भाविकार्येण गत्रिता । मा प्राह गणर्वं गमे नमोर्स्तिरस्थितांस्तकृत् ॥६२॥  
 मुनीनामाश्रमाश्चापि ऋषिपन्नाश्च तद्वनम् । वाञ्छने मे मनो दृष्टुं शोच प्रेषय तत्र माम् ॥६३॥  
 इति सीतावचः श्रुत्वा तथाऽस्मिन्निष्ठे रघून्म । प्राह र्षाने लक्ष्मणः आ तेष्वपि स्या मयज्ञया ॥६४॥  
 पुनः प्राह रघुधेष्टुः माने ने कौडनादिभिः । जयस्थासादिकं सर्वं विस्मृतं तन्मया पुरा ॥६५॥  
 तन्करोम्यधुना माते गताया न्वपि कानरम् । इत्युक्त्वा जनका रामः मुखं मुखाप मंचके ॥६६॥  
 सीतापि चित्तयापाम यत्र माता पिता मम । किं मां न्यूनं हि तत्रास्ति किञ्चिद्वस्त्वादिकं मह ॥६७॥  
 नाहनेन्या विद्यन्तुर्गो मरुता दास्या ममन्विता । लक्ष्मणेन रथे स्थित्वा गन्तामि मुदिता मुन्मत् ॥६८॥  
 इति निश्चिन्त्य मा रात्रौ मुखं मुखाप मंचके । अथ प्रभाते मान्धाप स्नात्वा स्नानं रघून्मम् ॥६९॥  
 पक्कान्नादानि सन्दात्रे पयवेपथुनमम् उपहारे कुने मर्षा स्वयं कुन्वोपहारकम् ॥७०॥  
 पृष्ट्वाभिन्नादिकाः श्रौत्वा तवः श्रुतः प्रगल्भ च । सज्जानोरस्थितान् पृष्ट्वाऽमुनीन्द्रं समुद्यता ॥७१॥  
 वाः पश्यन्तु र्गर्वापुक्ता दास्या मस्मात् लक्ष्मणम् । ततोऽसौ लक्ष्मणो भ्रात्रा चोदितस्त्वा ययो जराकुण्ड ॥७२॥  
 दास्यामस्या तुल्यया योती कृत्वा रथस्थिताम् । ययो दक्षिणामार्गेण च युवंमान्म जगद्गरीम् ॥७३॥  
 इन्द्राया निर्जेताश्वकः सीतायन्मामेपन्क्रियाम् । उल्लस्य तमसां पुण्यां गोमतीं जाह्नवीमपि ॥७४॥  
 यमुनां तां महापुण्यां तथा मंदारकिर्ना नदीम् । द्वितीयां तमसां पुण्यां समुल्लस्य म लक्ष्मणः ॥७५॥

बाद उन्होंने वह वृत्तान्त सुनकर, जो मन्थाम तथा कंकयाक धवनम हुआ था। सीताने कहा कि माता कंकयाके कहनुम सेन केवम रावणरा गैरका अग्रा बनाया था। बाकी उन्हा अगला कननाम रावणका सारा शरीर बनाय होगा। इस तरह सीताके वचन सुनकर राघव कहा प्रिये ! मैं कंकयाका कुन्वित्वाको चली-याति जानता हूँ। इसका बहुतकर समस्त सीताका अगला छुलावे लगा लिया और वह दूरतक उनका मुँह चूमने रहे। फिर विनोद करने करने रही निक गये। अन्ही दर बाद राघव सीताको कहा—प्रिये ! मैं जहाँतक जानता हूँ, मन्थिणी मन्थने मिलता हूँ च मे चला करके । कुन्हासी भा किन्ती धनपुकी छपटा है ? यदि हा हा बनलाया, मैं अवाप दूँगा ॥५९-६०॥ इस प्रकार राघव का लक्ष्मण धनवज सीताने गङ्गातटनिवासो ऋषिपत्त आश्रमो और बनाका समस्तका दूरता एकद की और कहा कि मुख जोत नही भत्र ही जये। राम सीताका सीत रक्षाकार करके कानन म-माने कम ही लक्ष्मण पुष्ट गङ्गातटपर ले जावने। थोटा देर बाद फिर वापे—सीत बहुत दिनम तुम्हारे साथ भाग-विवाहमे मैं इसका स्थित हो गया कि तप, तप, ध्यान, धारणा और सब कुछ दूख गया था। यदि तुम कुछ मिके लिए कहा चला जाओगी तो मैं कुछ भजन-ध्यान कर दूँगा। इस प्रकार बात करके राम में गया सीता भा अगल मनमे मान्य लगी कि जहाँपर मेरा पिता माता आदि परिवारके सब लोग चिटम न है वही किन्ती वन्के सदना न ही नही सकी। अगल मैं साथ कुछ न ले जाऊँगी ॥६०॥ ६१॥ अब कन्का दिन मैं सीत नहं मान्य दूँगी, वरि अगली मन्थियो दक्षिणी और लक्ष्मण साथ दूँगी। कुली उनको अवश्य आऊँगी। यह निश्चय करके सीता सी अगल-पुनक मा गयी ॥६६॥ ६७॥ सबसे सीताने उठकर स्नान किया और भजन बनाया। उधर राघव भी स्नान कर लिया और भजन करने बैठे। सीताने बने प्रेमसे प्रेमसर उठे आत्रव रागव। तदनन्तर राग भजन किया ॥६८॥ फिर उभिला आदि बहुत ने पूछकर सीताको प्रणाम किया और गङ्गातटके बनाव रहनेवाले मुनिवोको देखनके लिए जानके सारा हा गयी ॥६९॥ उन्होंने सब मानके लिए लक्ष्मणका बुलाया। रामचन्द्रके ज्ञानानुसार लक्ष्मण और रथ लेकर आ पहुँच ॥७०॥ सीता अपनी रुखियो, दासियो तथा तुलसावृक्षके साह मयमें सीटी और लक्ष्मणमे दक्षिण मानमे गङ्गातटकी ओर पवनवेगके समान रथको चलाया ॥७१॥ ७२॥

चित्रकूटोपन्यकारां वाल्मीकेगन्धर्वातिके । पिप्पलाधो मैथिलीं तां सरुपा दास्या वरासने ॥७६॥  
निवेद्य नत्वा स ग्राह साश्रुनेत्रः सगद्गदः । लोकापवादमर्त्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने ॥७७॥

दोषो न कश्चिन्मे मातर्मञ्छाश्रमपदं मुनेः ।

इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य सख्या दास्याऽपि वीजिताम् ॥७८॥

ययौ रथेन मौमित्रिः पूर्वभागैर्ग आहूतीम् । शिष्यैः श्रुत्वाऽथ वाल्मीकिर्जनकेन सुमेधसा ॥७९॥  
ययौ स्त्रीभिर्द्विजैर्पुक्तः पूजयामास जानकीम् । शिषिकायां सभिवेदय वीजितां वामरादिभिः ॥८०॥  
नागावाघनिनादैश्च श्वेदधानां नर्तनैर्वरैः । स्वधनैर्मङ्गवादीनां नटादीनां सुमायनैः ॥८१॥  
निनाय अमकः सीतां वाल्मीकेगन्धर्वे मुदा । मुनिपत्न्यो वन्यपुष्पैर्वैवर्तुर्जानकीं मुदा ॥८२॥  
जानकीशिविकाद्यै र्हे दूदुर्बुर्वैवर्तुण्यः । एव विवश सा सीता वाल्मीकेगन्धर्वं मुनेः ॥८३॥  
चमूर्त्तराजन दीपैर्मुनिपत्न्यश्च जानकीम् । जानकी हेमपर्यङ्के घृताधोकोपरहर्षणा ॥८४॥  
सुसमायाभमे तस्य वाल्मीकेश्च शफस्विनः । जानकीं पूजयामासुर्मुनिपत्न्यः पृथक् पृथक् ॥८५॥  
दिव्यास्तेर्वनमंभूतैर्वन्यपुष्पैर्निरन्तरम् । श्रुत्वा परान्मनो लसार्णे मुनिवाक्येन भक्तितः ॥८६॥  
दोहदान् पूजयामासुः सीतपास्ता मुनिस्त्रियः । शिविकासंस्थिता सीता ददर्श वनकौतुकम् ॥८७॥

यथापूर्वं तु साकेते सुसमाय विदेहवा ।

तथा मुनेराभमेऽपि सुसमाय पतिव्रता ॥८८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये  
अन्मकाण्डे सीताया वाल्मीक्याश्रमगमनं नाम तृतीयः सर्गः । ३ ॥

जब वे वरम पवित्र यमुना, मंदाकिनी तथा लमसा नदीको पार करके चित्रकूटकी तलेटोमें वाल्मीक्याश्रमके समीप पहुँचे, तब लक्ष्मणने रथको रोक और एक पीपल वृक्षकी छायामें आसन बिछा दिया । तब सुखिपोंके साथ सीताजी तसपर जा बैठी ॥७५॥ ७६॥ तब आखिरीमें आसु भरकर नदी कछस लक्ष्मणजी कहने लगे—माता ! लोकापवादके भयसे रामचन्द्रजीने आपकी इस वनम छोड़नेके लिए मुझे आज्ञा दी है । इसमें मेरा कोई दोष नहीं है । जब आप पहलें ऋषि वाल्मीकिके आश्रमपर चली जायें । इतना कहकर लक्ष्मणने सीताको परिक्रमा की और प्रणाम किया , उस समय दासी और सखियाँ सीतापर पला झल रहें थी ॥७७॥७८॥ फिर वे अपने रथपर बैठकर उमी भागसे अयोध्याके लिए लौट पड़े, जिधरसे गये थे । उधर वाल्मीकिने कुछ शिष्योंसे यह वृत्तांत सुना तो जनकजी, सुमेधा तथा कितनी ही स्त्रियों और ब्राह्मणोंके साथ वहाँ पहुँचे, जहाँ सीता बैठी थी । वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताको पूजा की । फिर उन्हें सुन्दर पालकामें बिठाया और अपने आश्रमकी ओर चले । राममें बनेक प्रकारक बाजे बज रहे थे । वैश्यग्ये नाच रही थीं और माट विस्दावली बखान रहे थे । मट-परयक आदि सुन्दर गायन गा रहे थे ॥ ७९-८१ ॥ जब सीताजी आश्रमपर पहुँच गयीं, उस समय मुनिपत्नियोंने सह्य उत्तपर विविध प्रकारके वनफूल बरसाये ॥ ८२ ॥ उन्होंने आरती उतारी और एक सुवर्णनिर्मित पलंगपर बिठाया ॥ ८३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीताको बड़ा आनन्द मिला । आश्रमकी ऋषिपत्नियोंने अलग-अलग सीताको पूजा की ॥ ८४ ॥ उस दिनसे कितने ही तरहुके दिव्य वन, वनके सुस्वाद फल तथा फूल आदि दे-देकर सीताको सब स्त्रियें प्रसन्न किये रहती थीं । क्योंकि उन स्त्रीगोंने वाल्मीकिसे सुन रक्खा था कि साता कोई साधारण स्त्री नहीं साक्षात् विष्णुभगवानकी भार्या लक्ष्मी हैं । जब इच्छा होती सब सीता पालकोपर सवार होकर वनको देखनेके लिये जाया करते थीं । सीताजी जो सुख वयोध्यामें मिलता था, वही वहाँपर भी मुलम था ॥ ८५-८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये अन्मकाण्डे ९० रामतेजपाण्डेयविरचितभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

## चतुर्थः सर्गः

( बाल्यौकिके आश्रममें लव-कुशका जन्म )

श्रीरामदास उवाच

मम मङ्गातटं मन्दा लस्यपोऽचिन्तयद्बुद्धि । स्वेच्छया कौतुकास्मीनां मया शुद्धां सत्यक्तवान् ॥ १ ॥  
 मय्येकाग्रशान्त्यर्थं प्राप्ताशौ प्रतिपद्यन् । एवं सति पुनस्तेन किं मयाकृतं तदः ॥ २ ॥  
 वनारसीशायुजं शिष्या मयस्त्वेन्यतिदुर्बलम् । मयापि शपथं धुन्वा न दृष्टः स निश्चित्य च ॥ ३ ॥  
 मधुना किं करोम्यत्र कथं राघवं प्रगम्यते । सीताशुभं विना दृष्ट्वा रामो मां किं वदिष्यति ॥ ४ ॥  
 छेत्तुं सीताशुभं शक्तो यविष्यामि कथं त्वहम् । यथाऽहं पुत्रवन्निर्घं पालितो लालितस्त्वपि ॥ ५ ॥  
 मधुनाऽपि विशास्यत्र रामायास्त्वं न दर्शये । एवं निश्चित्य सौमित्रिभिर्वा कर्तुं मनो दधे ॥ ६ ॥  
 एतस्मिन्मन्तरे लव विश्वकर्मा त्रिषेर्गिरा । कुन्दाग्रहस्तो त्रिषिन्ने बभ्राव वल्लभपुत्रम् ॥ ७ ॥  
 तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः प्राह त्वं मे साहाय्यमाचर । कुन्दारेण तर्ह्यश्लिन्वा चितार्थं वेदि मां वचात् ॥ ८ ॥  
 पश्येच्छं वसु दास्यामि त्वामहं निषयेन हि । सोऽप्याह लक्ष्मण वीर चितार्हेतुं वदस्व माम् ॥ ९ ॥  
 मौमित्रैः कथयामास पूर्वदृष्टं सौमनस्यम् । तच्छ्रुत्वा मरुत नम्रः मौमित्रि प्राह तस्मिन्तः ॥ १० ॥  
 अन्धार्थे स्त्रीयकुमरं वा सुहाव स्वराशुत्र । ब्रह्म सीताशुभं कृत्वाऽधुना दास्यामि ते वचात् ॥ ११ ॥  
 हन्तुवत्या लक्ष्मणं कृत्वा जानकीशुभं शुचमम् । गच्छामास्यिष्यनायुक्तपूरिवं कंचुकोपुत्रम् ॥ १२ ॥  
 सीतालङ्कारमहितं सस्याधिष्ठुर्विचिहितम् । ददौ लक्ष्मणहस्ते तं स्वयमनर्दधे शणात् ॥ १३ ॥  
 सीताशुभं समादाय लक्ष्मणोऽपि पुरीं गच्छ । वतभिर्यं निरुन्माहौ वात्पातिभूतिभूतसम् ॥ १४ ॥  
 दर्शय नगरीं मयीषां मारीहीतगृहोपमाम् । विवेशाधोमुखः पुर्यं गत्वा मदसि राघवम् ॥ १५ ॥

श्रीरामदास उवाच उपर मङ्गातटके समाप्त पट्टबकर सम्मग्नान् जाने वनव क्षात्रा किं अर्थं लक्ष्मणे लोटनेपर मेने ही जग्निमे दलकर सीताको पवित्र किया था । फिर भी रामचन्द्रजीन सीता माताका परिद्वान कर दिया है ॥ १ ॥ इसमें दा करण है । एक तो रामचन्द्रजीका अपनी कायवासना कम करनी है, इससे कामको आज्ञाका पालन करना है । जन्तु, रामके आदेशानुसार येन सीताका परिद्वान तो कर दिया, किन्तु एक और आज्ञा थी कि 'लोटन समय सनाको एक भुजा भा काटकर लेते जाना' । यह बहुत ही कठिन काम है । उस समय रामजीने कसम देखा दिया था, इसलिए विलय बातचीत भी नहीं कर सका ॥ २ ॥ ३ ॥ जब मे क्या कहें ? कैसे मधुन पास लोटकर जाऊँ ? यदि मे बिना हाथ लिये मुझे लोटने तो क्या बहुत मोर फिर यदि हाथ काटना चाहूँ तो कैसे कहूँ । किन्तुने करने जबके समान धरा हुन्कार किया, उन सीताके साथ यह कमईका काम करनेके लिये मे वगैरे आगे बढ़ सकूँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसलिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि यही आज्ञासे चमकर घर जाऊँ । रामको कुछ हो न दिखाने तो अच्छा हो । इस प्रकार विचार कांके लक्ष्मणन पिटा बनानेका निश्चय किया ॥ ६ ॥ इसी बीचमे कक्षाके आज्ञानुसार विश्वकर्मा एक बड़ईका रुख चारण करके हाथमे कुन्हु ही लिये वनमे घूमते फिरते वहाँ जा पहुँच । ७ ॥ एक जने विश्वकर्मासे कहा—कृपया आप अपनी कुन्हुआसे थोड़ीसी ककड़ी काटकर मुझे पिटा बनानेको दे दीजिये ॥ ८ ॥ आप जितना घन मींगो, दूँगा । बड़ईने कहा—हे वीर आप अपने लिये पिटा बन लेका कारण हा हूँ बताइये ॥ ९ ॥ लक्ष्मणन जाइसे अल्लक तारा पुतान्त बता दिया । उसे लुनकर मुरकगते हुए विश्वकर्माने कहा ॥ १० ॥ इसको तो बातके लिये आप अपने इस बहुतसरे लसीरको आगमें पत जलाइये । मैं अभी क्षणभरमे सीताका हाथ बनाकर आपके देता हूँ ॥ ११ ॥ तबनुसार तनिक ही देरमें विश्वकर्माने सीताका ऐसा हाथ बना दिया, जिसपर हाथर बह रहा था, मांसके सोखने जल रहे थे और कन्धकी वही हुई थी ॥ १२ ॥ सीताके इस हाथमे सब चिह्न निष्प्रमाण थे और अलङ्कार पड़े थे । उस हाथका लक्ष्मणके हाथमे लेकर विश्वकर्मा अन्धधौन हो गये ॥ १३ ॥ तब लक्ष्मण ने मुझा लेकर अयोध्यापुरीकी

दशरामाय सीताया भुजं कङ्कणमण्डितम् । तं निरीक्ष्य भुजं गमोऽर्धोमुखः प्राह लक्ष्मणम् ॥ १६ ॥  
 कैकेयी सुरदः पौगन्धुमर्षान् जानपदाश्रितान् । सीताभुजा दर्शनीयकम्बयाऽथ मम शामनात् ॥ १७ ॥  
 तथैत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि स चकार यथोदितः । भुजं संक्षयामास पेटिकायां निधाय सः ॥

कैकेयी हं भुजं दृष्ट्वा तुतोष निवर्गं हृदि ॥ १८ ॥

रानीऽपि सीतारहितः परान्मा विज्ञानरक्तवन् आदिदेवः ।

मन्यन्त्य भोगानखिलान्निर्गतो मुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविनाधिः ॥ १९ ॥

अथ सीताऽपि वाल्मीकेर्मुनिपत्नीमिराभवे । प्रपद्यं पूजिता अन्यैः सुखं तस्यै मुदान्विता ॥ २० ॥  
 एवं पश्यद्वयं नञ् नीन्वा सीताऽऽश्रमे मुनेः । सुदिने मृगुचे रात्रौ पुत्रवन्न रचिषमम् ॥ २१ ॥  
 गतस्मिन्नन्तरे गत्री तात्वा तं ममर्थं प्रभुः । राघवः कैकेयीमात्राघटां मुह्यन्वाऽथ वधुता ॥ २२ ॥  
 पुत्रकस्य ततस्तस्मिन् स्थित्वाकाशयथा ययौ । वाल्मीकेराश्रमे वेसान्मवन्धुम्नं तनाम सः ॥ २३ ॥  
 तुतो वान्मीकिना विप्रार्पणैरेव रघुनमः । जनकमादिवम्काराधकार विधिपूर्वकम् ॥ २४ ॥  
 मातायाः पुरतः पुत्राननमालोकयन्मुदा । ददौ दानान्यनेकानि मयस्त्रामरणान्यपि ॥ २५ ॥  
 चकार विधिवन्नुदा पुत्रजन्यमहोन्मये । देवदूतमयो नेद्वर्वधुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ २६ ॥  
 स्याः सीतां शिशु रामं नन्तु से मुरस्त्रियः नेदुजेनकवायानि नन्तुवार्शोषितः ॥ २७ ॥  
 तद्वदुमागवाथाश्च सीतां रामं शिशु मुहुः । ऋषिपत्न्यः शिशुं सीतां रामं दीपैः मधूषिकाः ॥ २८ ॥  
 पृथङ्नीराजनं कुन्वा जगुर्भीतं हि सुस्वयम् । वस्यार्थैः पूजयामास ताः मत्रा रघुनन्दनः ॥ २९ ॥  
 सातागर्भा विदेहोऽपि पूजयाशम विस्तरान् । वान्मीकिस्तु कुर्वन् आर्तिं चकार विधिना शिशोः ॥ ३० ॥

अ २ उक्त पढ़े अयोध्यामें धुनन ही लक्ष्मणन दखा कि एक ही दिनमें अयोध्यापुरी सबया ओहने हो गयी है । ज ३० ॥ उक्त पढ़े उक्त पढ़े है और सारी भूल उतनी दीक्षसी है । यह मन्त्र मित्कर उस दिन अयोध्यापुरी ठेसो लग रही थी, जैसे बिना शोका बिना घर । लक्ष्मण जान जाते महलोंमें पहुँचे और २ मन्त्रद्वज की सीताका साथ दियेलाया । इस कङ्कण विमान्त सीताका भुजाको देखकर रामन अपना मन म, पुका मिया और १४-१६ ॥ इस ल जाकर माना कैकय, मरे मियो, राजाओ एवं पुत्रवासियो-का निम्नता ना, यह मेरी आज्ञा है ॥ १७ ॥ 'पुत्रात्' कहकर लक्ष्मणने भी आज का वालन किया और एक पेटामे सम्हालकर सीताकी भुजा रत ला ॥ १८ ॥ कैकयन सीताका भुजा देखो तो बहुत प्रमथ हुई । इवर २ मन्त्रद्वज सीतास दिगुक हाकर सब सासारिक आयाक त्याग दिया और लक्ष्मणको समान आता जीवन विमान्त ॥ १९ ॥ उवर मन्त्र जो भी बन्मतिके आश्रमपर यहाँकी मुनिपतियोमें पूजित है, वे हुई मानन्द जीवन वितान लगी ॥ २० ॥ इस तरह ही महानी यत्नपर सीतान शुभ दिन और शुभ घड़ामे एक पुत्रवन्तका जन्म रता ॥ २१ ॥ उसी समय रामनन्दका भी घर ममान्तर मिल गया और रात्रिको अतः पुष्पक विमानपर पहुँकर लक्ष्मणजोक साथ आकाशम गत भीद न्मीकिजोक आश्रमपर जा पहुँच और लक्ष्मण तथा रामन मुनिका प्रणाम किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर वान्मीकिन आश्रममें उपोषित थाइसे साहसिक साथ वन्नका विधिवन् जात्यमोरे संस्कार किया ॥ २४ ॥ सीताक समस्त राम-पादम हर्षपूर्वक बैठका मुख दखा और अनेक प्रकारक वस्त्र-आभरण आदि दान करके साहसिको दिये ॥ २५ ॥ उस पुत्र-जन्मका प्रसन्नताम रामन नान्दानुस्त्र-आहार्द किया । दवताआन प्रसन्न होकर दुन्दुभी वजायो और उनपर कूल बरसाये ॥ २६ ॥ सीता और सीताके पुत्रका मुख दखकर दवाहूनाव नाचने लगी । उवर जनकजोक द्वारा नियुक्त व वजाते बाल वजाने रग और दराव नाचने लगी ॥ २७ ॥ वन्दीजन सीता और रामको स्नान करत लगे । ऋषीकिनेने मुन्दर धान्य घनका टावक जन्मकर राम, सीता तथा नवजात शिशुक आस्ता उतार, और विविध वस्त्ररत्न महुआन गये । रामन अनेक तरहक वस्त्र, मूदणोसे वनका संस्कार किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ महायज जनकन भी राम और सीताका विविचन् पूजन किया और वान्मीकिने



शान्तिर्धर्मोहितो वस्मान्कुर्वन्ध्याःकुसुमाह्वयः । सन्तोषिता राघवाग्रं शिबितो बालकस्य हि ॥३१॥  
 एवं बालममुन्मादेनीत्वा सप्त निशा सुप्तम् । तत्रस्थान् मञ्जुनाडं सप्तत्राणमनस्य हि ॥३२॥  
 दस्माद्गर्भा बहिर्गन्धेदाभयादस्मा वै मुनेः । स वै दशमो महेदव अनुसूया न सञ्जयः ॥३३॥  
 इत्युक्त्वा सकलान्दृष्ट्वा मुनीन्मन्त्रा पुनः पुनः । सीतामामभ्य धीरासो बाल आत्राऽऽरुणोद सः ॥३४॥  
 विहायसा कृणाम्याप साक्षं नृनुनन्दनः । प्रवक्ष्य विमानात्म पूवत्रिदिना शुद्धे ॥३५॥  
 अथ राघो वातिनेधशतं कर्तुं मनो दधे । कु वा स्तनमर्थी मीना वक्तात्तकारभूषिताम् ॥३६॥  
 पापनीं भलिनां दृष्टां भनुर्निदरायताम् । भनुर्विद्वेषिणीं वृत्तां चारुक्रमाज तन्वसाम् ॥३७॥  
 भर्तारं वातुमिच्छन्तीं मदा कलहकारिणीम् । परभुक्तां वावरणां भनुर्विवायलोपिनीम् ॥३८॥  
 कृषीपेच्छवर्तिनीं नष्टां मुनीं नन्तां मनां श्रियम् । व्यक्त्वा कुशमयीं विप्रैः कार्या पन्ना स्वकनमु ॥३९॥  
 ईमी कार्या राहुर्वध रक्ष्यैः कार्या तु राजर्षीः । शूर्तः कार्या ताम्रमयीं स्वस्वकर्ममस्मिद्धये ॥४०॥  
 अथवा सर्ववर्णैश्च कार्या पन्नी तु कांचनी । रामोऽपि कृत्वा सीकर्णमग्निहोत्रं चकार सः ॥४१॥  
 राघवेन यदा नीता सीता या ददके तदा । हेम्नोऽभावात्पुत्रमयी कृता राघवेण जपको ॥४२॥  
 अन्ये कुशमयीं पन्नी विधाय गृहमेधिनः । अग्निहोत्रमुपामन्ते बित्थस्थानोऽनेगर्हितः ॥४३॥  
 व्यभिचारवतीं वाधा भनुर्विद्वेषिणीं तथा । अभाने वा पत्न्याज्जान कान्थाज्या मतांशदा ॥४४॥  
 पक्षे पक्षे नवम्बां हि स्नानं धरभूधाविधम् । कर्तुं निधितवान् रामस्तदा विप्रैः पुरोधमा ॥४५॥  
 मातृगेभ्यस्तरे तीरे वज्रधूवि चकार सः । अप्रयागान्मुद्गलस्थाश्रमो यावच्च दक्षिणे ॥४६॥

त्रिभिर्गुणैः कुशासे अभिनेक करते हुए शान्ति-वाट किया ॥ ३० ॥ शान्तिके निमित्त शान्तादिन कुशासे शान्ति की थी । इसीकार उन्होंने रामक सम्बद्ध ही उस वस्त्रका लम्ब कुश रखी ॥ ३१ ॥ इस तरह गाना प्रकारके उत्साहम वह रात वही बितायी और पिछली रातका रामने अप्रमदके लोकोहें कही कि जो कोई मनुज मेरे यहाँ मानका सम्पादन कियाग करवा, वह मेरा शत्रु होगा और मैं उसका दंड दिव बिना न रहूँगा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर रामने अवाध्या वायस आनक लिए जागते आका मीत और मुनिगोका प्रणाम किया । फिर सीताम दूतका राघवद्वी लक्ष्मणके साथ विमानपर आकड़ हुए और बाढ़ा दरम लयोजन जाकर निजका दण्ड अगती मन्त्रापर सा गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कुछ दिव बादनक बाद रामने सी अभ्यमेष वज्र करनेका विचार किया । उस समय सीताला भी नही । इसलिए रामने सुप्तकी सीता बनाकर वज्र करना निश्चय किया । क्योंकि तात्पर्ये निम्ना है कि वापिन मैला कुपेली, दुष्ट स्वभ वकी, निन्दा करनेवाली, दातसे लड़ाई करनेवाली, क्रूर प्रकृतिकी, मोट्टिन, स्वाधीनो मारनकी इच्छा रखनेवाली, सदा लड़ाई करनेवाली, कलटा, स्वामीको आजाक प्रतिकूल करनेवाली और स्वच्छाचारिणी स्वा यदि ला जाय, मेरा जाय वा किसीक द्वारा भगा हो जाय अवका स्वयं भग जाय तो उसको त्यागकर ब्राह्मण कुशाकी शपथ सुवर्णकी, वैश्य धौडीका और शूद्र नासकी स्त्री बनाकर वज्र दि कर्म करे ॥ ३६-४० ॥ अथवा समर्थ्य हाथपर सब शान्तिके लोग सुवर्णकी नाती बनाकर अपना काम चलायें । इन्हीं शास्त्रीय मान्यमोस रामने सुवर्णकी सीता बनाकर अपना वज्र प्रारम्भ किया ॥ ४१ ॥ पहले जब दण्डक बनमें सीता दूर ली गयी थी और रामकी रामेश्वर स्थापनाके समय साताकी सावश्यकता पड़ी थी, तब उन्होंने सुवर्णके अभावसे कुशाकी ही सीता बनाकर रामश्राका स्थापना की थी ॥ ४२ ॥ कुछ गुरुम्य नारीके अभावसे कुशाकी स्त्री बनाकर अत्यहोष करने हैं, वह भी ठीक है । कहनेका मतलब यह कि स्त्रीके अभावमें किसी प्रकारकी स्त्री व्यवस्था बना लेनी चाहिए । क्योंकि स्त्रीके बिना कोई भी दार्जिक कार्य सम्पन्न नहीं होता । कुछ आचार्योंका मत है कि — “व्यभिचारिणी, पार्ष्णिता तथा स्वाधीनसे दण्ड करनेवाली स्त्रीका बुराके लिए परिहृत्य कर देना चाहिए” कुछका यह मत है कि “परिहृत्य न मी करे तो कोई हानि नहीं ।” ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ रामने अरुणक नवमीको एक अभ्यमेष वज्र पूर्ण करनेका निश्चय किया और भागीरथीके उत्तरी तटपर बजराजल बननेकी बात

अहंपुनस्तस्माच्चकार स्वर्णलंगलैः । यस्याश्वमस्य सामिष्ये मागीरध्वस्युदम्बहा ॥४७॥  
 स्वयमवस्थाञ्च जानक्या यद्धार्यं चकार सः । उज्जानदरभ्यो द्रुपदु ई चकार स्वर्णनिर्मिताम् ॥४८॥  
 वामांगस्थां गुणरूपां जानदरम्यश्च सार्विकीम् । विभ्रन्मर्देव श्रौंगमो जानकीं लोकमातुरम् ॥४९॥  
 यत्रान्ते स्वर्णमूर्त्तां सीतां ददौ स्वगुणैः प्रभुः । एवं यज्ञज्ञानेश्वरं गुरवे सप्तमूर्तयः ॥५०॥  
 याः समर्पिता रामेण तामां दानफलैर्न हि वेदशसीमदसंस्पृशेध्वं श्रीणां शत पुनः ॥५१॥  
 द्वारकायां कृष्णरूपो विवाहेनोद्दिश्यति । प्रतियज्ञे कथामकर्णमश्वं रामो गुणोच ह ॥५२॥  
 चतुर्दिनाश्चतुर्दिक्षु परिक्रम्य ययौ हवः । एवं सर्वेषु यामेषु च यौ बाभौ पृथग्जवान् ॥५३॥  
 पुष्पकस्थः स शत्रुघ्नो ह्यगस्त्यौ चकार ई । एवं मदा यज्ञराटे विरेत्रे दीक्षया विभुः ॥५४॥  
 एवं च नवतिसख्यां रामेण नर ई कुतः । स्वयमवस्थापि प्राग्म्य रामो यज्ञस्य मौडकोत् ॥५५॥  
 गंगाया दक्षिणे तीरे सुदृढस्याश्वमोडस्ति हि तत्र नस्यान्तिके गंगोदरतीरे च वदन्वहे ॥५६॥  
 दिनानि दश बान्मोकिर्निशायां सज्ययोरपि । श्रौंगमरक्षया चक्रं बालकस्यभिर्मन्त्रणम् ॥५७॥  
 कुम्भं नाम तदा चक्रं मुनिरकादशे दिने चकार सर्वसंस्कारान् मुनिः श्रीगणेशाज्ञया ॥५८॥  
 एवं स बालकस्तत्र ववृधे मातृलालितः जनकश्च सुमेधा च नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥५९॥  
 धोभयामास दौहित्रं नानास्वाग्रवत्सादिभिः । बालोऽपि रञ्जयामास स्वकोडाभिर्विहङ्गात् ॥६०॥  
 एकदा निद्रितं प्रेते दृष्ट्वा बालं मुनेः पुरः अन्यक्रमेणि व्यग्रा च मर्त्री स्त्रीयाश्चरमावताम् ॥६१॥  
 जनकं चापि सा सीता दृष्ट्वा सर्वान्वदिमन्तान् । आश्विने रविवारे च तर्था स्नान्तुं समुद्यता ॥६२॥  
 मुनिं च बालरथायां कुन्वाड्य समर्था ययौ । दास्यां मागेण गन्तुं ददर्श यपि वानरीम् ॥६३॥  
 कर्तिष्कधम्मकेषु विप्रतीं पच बालकान् न दृष्ट्वा श्रद्धितुं स्मृत्वाऽचितयज्जनकीं हृदि ॥६४॥

द्वाराया गया । प्रत्येक सप्तर मूर्तय मुनिं आध्वर्यवन्तं जितना स्वान् पा, वह सुवर्णक हस्त जाता गया ।  
 रामकी उस पञ्चगव्याके पास गंग की एक उत्तरका ओर वह रुही थी । ४६-४७ ॥ इसके अनन्तर रामने  
 भूर्भुवः स्वो सीताक साथ यज्ञकार्य प्रारम्भ किया । वह सुवर्णकी सीता अज्ञानी कोणाको देखनेके लिए खड़ी  
 गयी थी, किन्तु अज्ञानिवाकी हीष्टम सा सुनिबकी जानकी संग रामक वामभागम निवास करती थी ॥४८-४९॥  
 प्रत्येक पञ्चक समाप्त हो जानेपर राम वह स्वर्णमयी सीता अपने एक वसिष्ठीकी आज्ञा दे दिया करते थे । इस  
 प्रकार प्रत्येक पञ्चकी पूर्णतापर स्वर्णमयी सीता दनन्त र मत सी मा तावाका दान किया । उस दानके फल-  
 स्वरूप आज वृष्णादितारम उनका मानहु ॥ ५० ॥ एक सी विप्रती मिली । प्रत्येक पञ्चक राम अपना ध्यामकर्ण  
 छोड़ा दिविसजयक लिए छोटन थे । वह चार दिनें च ग और धूमकर लोट अर्था करता था । सायसे शत्रुघ्न  
 पुष्पक विमानपर बैठकर बाइकी रक्षाके लिए आया करते थे और रामचन्द्रजी दाज लेकर यज्ञशालाम बैठे  
 रहते थे ॥ ५०-५४ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीन निमानव यज्ञ पूर्ण किया और अन्तिम सोर्वा यज्ञ का प्रारम्भ  
 कर दिया । ५५ ॥ गंगाक दक्षिण तटपर मुदगन्त नामक एक अदिका माधम बा और उत्तरवाहिनी गंगाक  
 तटपर ही नाम कि सन्ध्याक समय रामके पुत्र कुशका रामरक्षा-भरत अभिवेक कर रहे थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥  
 गवारुह्ये दिन बान्मोकिने बन्वका नामकरण करके रामक आजानुसार सब मस्कार किया ॥ ५८ ॥ बन्वा  
 भी बड़ लाहन्वारक साथ समय विलास हुआ करने लगा । जनक और मुन्वा अनेक प्रकारके सुन्दर वस्त्रों  
 और ध्यान्तस आदि तरह तरहके अलङ्कारान अलङ्कृत करके रत्न थे । बन्वा अपने कौतुके से जानकीजीके  
 प्रसन्न किया करता था । एक दिन कुश बान्मोकिने पास पालनपर सी गया । सन्धिर्वा अन्य कामाम व्यन्त  
 थी । सीताके माता-पिता कहीं धूमन चल गये थे । उस राज आश्विन मासके रविवारका दिन था ।  
 इसलिए सीताने नराम रत्नान करनकी इच्छा की । सप्ताने बान्मोकिर्जाके बन्वको देखने रहनेके लिए  
 कह दिया और स्वयं एक दासीका साथ लेकर हमसाकी आर चल बड़ी । रास्तेने सीताने देखा  
 कि एक वानरी अपने पाच बन्वाको कमर-बन्धे और मस्तकपर बैठाये बनी जा रही है । उसे

शिष्ययोनीं जन्मवन्मा शान्त्या बालकानहो । स्नेहात्महेतु मीपन्ने विद्मर्षा मानवदेहजाम् ॥६५॥  
 एकं चापि निजं बालस्यकत्रा गेहेऽप्यगम्यन्ते मया विमृष्टया स्नानं धुम्यत्र भणिकं मुसम् ॥६६॥  
 इति धिक्कृत्य चन्मान परिवृत्ताश्रमं पर्या । एतस्मिन्नन्तरे गेहे बालर्षादिर्मुनिपुंगवः ॥६७॥  
 गतः स लघुशकारं कार्थार्थं बटरो सताः गृहीत्वा सा कृतं प्रत्याघ्नौ मीना बहिः पुनः ॥६८॥  
 हास्या मदं नदीं गन्तव्यसि स्नानं चकार वै । मष्ट्याऽऽ मुनिपालं दार्षं निःश्वस्य वै मुहुः ॥६९॥  
 मीनाशापमयाचकं लव्वांलं स पूर्ववत् तपोवनेन तं प्रोक्ष्य जीवयामास वेगनः ॥७०॥  
 शान्तदृष्ट्या तीव्रतया मुनिना नावलोहितम् । ततः सीताऽपि मुस्नाता दाम्प्या गेहं शनैर्ययौ ॥७१॥  
 कर्त्ता गृहीत्वा तं बालं स्वयन्पुंगवैःस्वना । प्रोक्षेऽप्यं बालकं दृष्ट्वा मुनिं वप्रवृत्त जानकी ॥७२॥  
 प्रोत्वे कस्याः शिशुश्राय मोऽपिरष्ट्वा नदा कुशम् । कटिप्रदेशे जानक्या रिक्तमयं परमं यतः ॥७३॥  
 नमस्कृत्य ततः सीतां परं वृत्तं न्यवेदयत् । अंके निधाप तं बालं मीनाया दमरीन्मुनिः ॥७४॥  
 प्रसादान्मम वैदेहि द्वितीयोऽप्य गुनस्तत्र । यच्च तद्य लो बालना लव्यस्माद्विनिर्मितः ॥७५॥  
 बालर्षाकैर्वचनान्माऽपि शिशुं जप्याद् जानकी । मुनिस्त्रयोनाम चक्रे कुशो ज्येष्ठोऽनुजो लवः ॥७६॥  
 जानक्यादिर्मस्कागन् लवभ्यापि चकार मः । तदा निनेदृशानि भूयसा मेऽपि दिव्यकृपाम् ॥७७॥  
 बर्षजानकीं बालीं बालर्षाकिं कुसुमैः मुराः । चकार जनकभ्रात्रि सुवेधा परमोन्मदान् ॥७८॥  
 कर्मण विधायकन्तो मोनपुत्री विरेजतुः । धनुर्विद्यामश्वविद्या शिक्षयामास तौ मुनिः ॥७९॥  
 कुन्तं रामारण स्वीयं कृतं तौ शिक्षयन्मुदा यस्मिन्नानन्दगर्भं च चरित्रं गवयस्य हि ॥८०॥  
 कुमारौ स्वरसपन्नौ मुन्दरावधिनारि । तन्त्रीलयममाधुक्तौ भाषतौ चैतुर्वने ॥८१॥  
 तत्र तत्र मुनीनां तु समाजेषु मुकरिणौ । सायन्तारपि नो दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽनुवन् ॥८२॥

देखकर उन्होंने अपने मनमें साक्षात् कि निर्जयानका स्त्री होकर भी यह जानकी कितन प्रेमसे बच्चोंको अपने साथ रखती है । कुछ मानवचारिकी शान्तिहीनो धिक्कार है जो अपने एक लवकेको बाध्यगपर छोड़कर हमसा स्नान करने जा रहा है ॥ ६९-७५ ॥ इस तरह अपनेका धिक्कारकर सीता वहाँसे फिर बाध्यमकी लौट पड़ी । इसी बीच बालर्षीकिजा स्वयंदा बालके लिये बाट्ट चले गये थे । विद्यार्थी भी अपने अपने कामसे पड़ने ही चले जा चुके थे । शान्तम सारा पहुँची । उत्तम पुत्रको उठा लिया और बालीके साथ हमसाकी आर भण्य गयी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उधर बालर्षीकि लौटकर आये तो उनकी निगाह बाळनेपर पड़ी । उसपर बच्चेको नदी देखा । ऐसी अवस्थामें मुनिगत्रन एक लवकी सीमा ली और सीताके हाथके अपने अपने लपोक्ष्य हाथ लवसे कुशके लगान ही एक बालक और बना दिया ॥ ६८-७० ॥ परराष्ट्रके कारण उन्होंने अपनी आनदृष्टिसे यह नदी दख कि सीता कुशको अपने साथ ले गयी है । कुछ दूर बाइ स्नान करके सीता भी दार्षके साथ वीरे धीरसे कुटियाम आयी ॥ ७१ ॥ वहाँ उन्होंने दखा कि कुशके समान ही भस्कावादिके जिधुधित एक बालक बाळनेपर बड़ा सो रहा है ॥ यह देखकर सीताने कपिसे पूछा कि यह किण्का बच्चा है ? उधर जड़िने देखा कि कुश ही सीताकी कमरपर है, यह उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ फिर उन्हें नमस्कार करके बालर्षीकिने यह वृत्तान्त बतलाया, जिसके कारण उन्मदमग बच्चा बनाना पड़ा था । उसके पञ्चान् मुनिन प्रियकारकर लवकी सीताकी मोहम दे दिया और कहा— ॥ ७४ ॥ रवि । हमें भी मुहान्ता । तब सीताने उम बच्चको भी बलीकार किया । मुनिन कहा— हम दोनोंमें उदष्टकुश हीना और वनिष्ठ (छोटा) लव ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने स्वका भी जातकम आदि संस्कार किया । इस समय विविध प्रकारके जात्र गत्र । स्वर्गम देवताओंने भी मंगलवाद्य बजाकर जानका, जिणु तथा शान्तिभक्तिके उधर कुशोकां बर्षा की । दुमेधा तथा जनकन विविध उपसर्ग दिये । प्रमता दोनों पुत्र बड़े हुए । उन्होंने अनेक निशाओंका अध्ययन किया और महर्षि बालर्षीकिने उनको अनुविद्या तथा मन्त्रविद्या भी सिखायी ॥ ७६-७९ ॥ फिर अपनी बनायी सम्पूर्ण रामायणकी भी उन्हें शिक्षा दी । जिसने रामचन्द्रजीका आनन्ददायक चरित्र वर्णित था ॥ ८० ॥ अश्विनीकुमारकी मूर्ति सुन्दर देखनेवाला बालक मधुर स्वरसे

गन्धर्वेजिह्व किमरेषु भुवि वा देवेषु देवालये  
पातालैष्वथ वा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सवषु च ।  
अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरं दृष्ट्वा दिशः सर्वतो

न शयीदृशमीतवाद्यगरिमा नादशि नाश्रवि च । ८३ ॥

एव स्तुतश्चिरस्थितैर्मुनिभिः प्रतिवासरम् । आसते सुखमेकांते वाल्मीकेराश्रमे चिरम् । ८४ ॥  
रुक्मकं कणमञ्जुपुष्पं विभूषितौ । केयूरमल्लहारकुण्डलैर्गतिशोभितौ । ८५ ॥  
निजक्रीडाकौतुकैश्च बालवाक्यैर्मनोहरैः । सीतां सुमेधां जनक रञ्जयामासतुर्मुनिम् । ८६ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे

कुशलवज्रजन्मकथनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

## पञ्चमः सर्गः

( रामरक्षा-महामंत्र )

विष्णुदास उवाच

श्रीरामाश्रया प्रोक्तं कुशलं अभिमंत्रणम् । कुत तेनैव मुनिना गुरो तं मे प्रकाशय ॥ १ ॥

रामरक्षां वरं पुण्यां बालानां शक्तिकारिणीम् ।

श्रीशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदामोऽध्वरीद्वयः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्भक् पृष्ट त्वया शिष्य रामरक्षाऽधुनोच्यते । या प्रोक्ता शशुना पूर्वं स्कंदार्थे तिरिजां प्रति । ३ ॥

श्रीशिव उवाच

देव्यञ्च स्कंदपुत्राय रामरक्षाभिमंत्रणम् । कुरु तारकघाताय समर्थोऽयं भविष्यति । ४ ॥

हन्तुक्त्वा कथय मम रामरक्षां शिवः स्त्रियै । नमस्कृत्य रामचन्द्रं शुचिर्भूत्वा वितेन्द्रियः ॥ ५ ॥

बीणाको सनकादिक साय वनम् रामचरित्रं गथां करते यः ॥ ८१ ॥, जहाँ-तहाँ मुनियोंकी मण्डलीमें जब वे दोनों सुकुमार बालक रामचरित्रका गायन करन थे तो सबके मुँहसे सहसा यह वाक्य निकल पड़ता था कि हम लोगोंने अपनी लम्ब आधुनै गंधर्वों किल्लरों, मनुष्यों, देवताओं पाताललोकवासियों, ब्रह्मलोकवासियों एवं सारे ब्रह्माण्डवासियोंका अनक गायकाके गायन सुन है लेकिन उनका कहीं न हा मैने इस प्रकार वाक्यकाकी निपुणता देखी और न गायनमें ऐसी विद्यास हो पायी । ८२ ॥ ८३ ॥ इस तरह सब ऋषियोंसे प्रशंसित हाकर वे दोनों एकान्तमें बालमीकिक आश्रमपर रहा करते थे । गुवर्णक कङ्कण, तूपूर, केयूर, करमनी, हार तथा कुण्डल पहननेसे वे और भी गुन्दर दाखत थे । ८४ ॥ ८५ ॥ प्रतिदिन उनकी मनोहर बाललीला देख देखकर मुनि, सीता, सुमेधा और जनकजी मारे खुशीक फूले नहीं समाते थे । ८६ । इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतजपाण्ड्यकृष्णमायादे कासमन्विते जन्मकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

विष्णुदासने कहा है मुन्दर । जिस रामरक्षा-मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिमंत्रण किया था, उसे हमको बताइए ॥ १ ॥ क्योंकि मैने सुना है कि वह रामरक्षामंत्र बड़ा पवित्र सुन्दर और वासकोंकी शक्ति प्रदान करनेवाला है । शिवजीने कहा—इस प्रकार शिवकी प्रायना सुनकर श्रीरामदास कहने लगे—हे प्रिय शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है मैं तुम्हें वह रामरक्षामंत्र बतलाता हूँ, जिसे एक बार शिवजीने कार्पतीको स्वामिकारितिकेयकी रक्षाके लिए बतलाया था ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीशिवजी बोले—हे देवि ! आज एशामन्दके

अथ ध्यानम्

वामे क्रीडददं निजकरकमले दक्षिणे बाणमेकं

पद्माङ्गागे च निरयं दक्षतममिमं सासितूपीरभारम् ।

वामेऽवामेव सङ्ख्या मह मिलिततनु जानकीलभ्यणाभ्यां

इयामं रामं भजेऽहं प्रणतजनमनःसेदविच्छेददक्षम् ॥ ६ ॥

अथ भीमरक्षास्तोत्रमंत्रस्य बुधर्कादिककविः श्रीरामचंद्रो देवता राम इति बीजम्

अनुष्टुप् छन्दः आरामार्थान्यर्थ जपे विनियोगः ।

चरितं रघुनाथस्य अनकोटिमविस्तरम् । एकैकमक्षरं पुनो महापातकनाशनम् ॥ ७ ॥

स्यान्न नीलोत्पलश्याम राम रजर्विलोचनम् । जानकीलक्ष्मणोपेनं जटाबुकुटमदितम् ॥ ८ ॥

सामितूणधनुर्बाणशणिं नकचगन्धकम् । ध्वनीलया जगन्वाहुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥ ९ ॥

रामरक्षां पठेन्मातुः पश्यन्तो मरंकावदाम् । शिरो मे राघवः पातु मातं दशरथान्मजः ॥ १० ॥

कीमन्वेदो हर्षो पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुता । प्राणं पातु मत्प्रशता मुखं सीमित्रिवन्मलः ॥ ११ ॥

जिह्वां विद्यानिधिः पातु कंठ भरतवदितः । स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ॥ १२ ॥

करीं सौतपतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् । पार्श्वे रघुवरः पातु कुक्षीं इन्द्राकुन्दनः ॥ १३ ॥

मध्यं पातु खड्गधर्मी नाभिं जांबवदाश्रयः । सुग्रीवेशः कटिं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ॥ १४ ॥

ऊरु गधूनमः पातु पुच्छं रक्ष कुल्यानकृत् । जानुनीं सेतुकृन्पातु जपे दशमुखांतकः ॥ १५ ॥

कर्दीं विर्भाषगश्रीदः पातु रामोऽखिल वपुः ।

एतां गमयलापेता रक्षां यः सकृत् पठेत् । स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥ १६ ॥

पातालभूरलन्धोमन्त्राग्निहस्त्यन्त्राग्निः । न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥ १७ ॥

गमेति राममद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् । नरो न लिप्यते पापैर्भूतिक मुक्तिं च विंदति ॥ १८ ॥

रक्षाय तृप्तं रामरक्षामन्त्रं कथया रहा है । अथ ध्यानम् । जिन रामचन्द्रजीक बाग हाथमे वनुष, दाहिने हाथमे एक बाण और बाँयापर बाणमे भरा हुआ तरकस है । जिनकी बायी तथा दाहिनी ओर लक्ष्मण और सीता हैं । भक्तोंक मनको पढ़ा नष्ट करनेमे निष्ण आरामचन्द्रजीका ये मन्त्र करता है ॥ ४-६ ॥

विनयांगक अनन्तर—सी करंठ लंबोमे विस्तारसे वर्णित भगवान् रामके चरित्रका एक एक अक्षर महान् गणेश भी नाश करता है । तालकमलकी नाई प्रशम तथा राजीवलोचन, जिनके आसपास लक्ष्मण तथा जानकाजी विराज रही हैं । जिनका मस्तक जटा बुकुटसे अलंकृत है । तन्दवार, तरकस, वनुष और बाणको लिये जो राक्षसोंको यमराज महेश भीषण दीन्वत है । जो जगत्को रक्षाके निमित्त अपने डच्छानुसार जगतोत्तलपर अवतरण हुए हैं, ऐसे राजकी ध्यान करके सब कामनाओंको पूर्ण करने तथा पापोंका नाश करवाने रामरक्षामन्त्रका पठ कर । राघव यह रामचन्द्रजीका नाम मेरे सिरकी रक्षा कर ॥ ७-१० ॥

दशरथमजे ललाटकी रक्षा करे । कीमन्वेद मन्त्रकी, विश्वामित्रप्रिय कानोंकी, मत्प्रशता नाककी और सीमित्रवन्मल मुखकी रक्षा कर ॥ ११ ॥ विद्यानिधि जिह्वाकी, भरतवदित कंठकी, दिव्यायुध दोनों कन्धोंकी, भगवत्कार्मुक भुजाओंकी, सौतापति हाथोंकी जामदग्न्यजित् हृदयकी, रघुवर पार्श्वभागकी इन्द्राकुन्दन पेटकी, खड्गधर्मी शरीरके मध्यमावली, जांबवदाश्रय नाभिकी, सुग्रीवेश कमरकी, हनुमत्प्रभु हृदयकी, गधूनम दोनों पुच्छकी रक्ष कुल्यानकृत् गुदाकी और दशमुखांतक मेरी जाँधोंकी रक्षा करे ॥ १२-१५ ॥

विर्भाषणकी राम कनकासे रंठोका और राम सार गदरेका रक्षा करे । जो मनुष्य रामके वन्तसे परितुष्ट इस रामरक्षामन्त्रका पाठ करता है वह चिरायु, सुखी, पुत्रवान्, विजयी और विनयी होता है ॥ १६ ॥ पाताल-चागे, भूमिचारा, व्योमचारी और छमचारा कोई भी भूत श्रेतादि बाधा रामरक्षा-मन्त्रसे अभिमर्शित बनपर दृष्टका नहीं कर सकते । जो मनुष्य राम, रामभद्र अथवा रामचन्द्र इस नामका स्मरण करता है, वह पापसे

अगजैर्ब्रह्मवैष्णवैः रामनाम्नाभिभक्षितम् । यः कंठे धारयेत्तस्य करम्याः सर्वमिदम् ॥१९॥  
 अथपञ्चजानमेदं यो रामकवचं पठेत् । अप्याह्नातः सर्वत्र लभते अयममलम् ॥२०॥  
 आदिष्टवान् यथा स्वप्ने रामःश्यामिमां हरः । तथा लिखितवान् प्रातः प्रबुद्धो बुधर्काशिकः ॥२१॥  
 रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली । ककुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौमल्यानन्दवर्धनः ॥२२॥  
 वेदानवेष्टो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः । जानकीवल्लभः श्रीमान्प्रमेयपराक्रमः ॥२३॥  
 हृष्येतानि जपेन्नित्यं मङ्गलकः भद्रयऽन्वितः । अश्वमेधायुक्तं पुण्यं संप्राप्नोति न संशयः ॥२४॥  
 सन्नदः कवची मङ्गो चापवृणधरो युवा । गच्छन् मनोरथोऽस्माकं रामः पातु मनहस्रणः ॥२५॥  
 सहर्षो रूपमपन्नो मृकुमारो महाबली । पुण्डरीकविशालाक्षी श्रीरक्ष्णाजिनीधरी ॥२६॥  
 कमललाशनी दातो सायसी ज्ञानाग्निर्गौ । पुत्री दक्षप्रसूते भ्रातरो रामलक्ष्मणौ ॥२७॥  
 धन्विनी वदनिहिंशी काकपक्षधरी श्रुती । वीरो मां पथि रक्षेतां तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥  
 सूर्ययोः सर्वमन्त्रानां श्रेष्ठो सर्वधनुष्मताम् । रघुःकुलनिहारी शयेतां नो रघूत्तमौ ॥२९॥  
 आत्तमज्जधनुवात्रिपुष्पशानधयाद्युगानिपगमगिर्ना ।

रघुनाथ मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि मदैव गच्छताम् ॥३०॥

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सुकलापदाम् । अमिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान्म नः प्रभुः ॥३१॥  
 रामाय रामभद्राय रामचद्राय वैषसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥३२॥  
 श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम श्रीराम राम राम भगवान्ज राम राम ।

श्रीराम राम रणकर्कश राम राम श्रीराम राम शरणं मर राम राम ॥३३॥

लोकाभिरामं रणरंघधीरं राजीवनेत्रं रघुवज्जनाथम् । कारुण्यरूपं करुणाकरं त श्रीरामचंद्रं शरणं प्रपद्ये ॥  
 दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य रामे च वनकान्तमजा । पुण्डरी माहतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥३५॥

विष्णु होकर मुक्ति और मुक्ति का भागी होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ सम्स्त जगत्को जीतवाने इस रामरक्षा-  
 मन्त्रको जो कर्ण्य कष्टम्य कर नेता है तो संसारकी सारी सिद्धियाँ उसके हाथमें पा जाती हैं ॥ १९ ॥  
 जो प्राणी इस वज्रपंजर रामकवचका पाठ करता है, उसकी आज्ञा कहीं भी नहीं टूटती और सर्वत्र उसकी  
 विजय होती है ॥ २० ॥ स्वप्नमें यह रामरक्षामंत्र शिवजीने जैसा बतलाया था, स्वप्ने सोकर उठते ही विष्णु-  
 भित्रने उसी तरह लिख दिया ॥ २१ ॥ राम, रामर्षि शूर, लक्ष्मणानुचर, बली काकुत्स्थ, पुरुष, कौमल्या-  
 नन्दवर्धन, वदन्तवेद्य यज्ञेश, पुराणपुरुषोत्तम जानकीवल्लभ, श्रीमान् तथा अप्रमेय पराक्रम इन नामोंका श्रद्धा-  
 पूर्वक जप करनेवाला भक्त इस हजार अक्षमय यज्ञ करवा कर पाता है । इसमें कोई संशय नहीं है  
 ॥ २२-२४ ॥ सन्नदकवची, मङ्गो, चापवाधधर, युवा और लक्ष्मणके साथ जाते हुए श्रीरामचंद्र हमारे मनो-  
 रथोंको रक्षा करें ॥ २५ ॥ नरम, रूपमपन्न, मृकुमार महाबली, कमलकी नाई बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, पीतांबरधारी,  
 कल-मल खानेवाले, उदारप्रवृत्ति मण्ड्यो, इन्द्रचरो, धन्वी, निर्यशघारी तथा काकपक्षीको धारण किये दक्षरथके  
 दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण रातमें जाते समय हमारी रक्षा करें । संसारी जीवोंके माधार, चतुर्धरिषों-  
 में श्रेष्ठ, राक्षसकुलके विनाशक राम और लक्ष्मण मेरा रक्षा करें ॥ २६-२८ ॥ त्रिंकुल तैयार धनुष जिसपर  
 बाण बड़ा है, उसे लिये और अक्षय बाणवाले तूर्णरको कहे रामलक्ष्मण रक्षा रास्तेमें हमारे अग-आगे चलें  
 ॥ २९ ॥ जो कलावृक्षके आश्रम ( वनीका ) सम्स्त विपत्तियोंके निगम ( समाप्ति ) और हीनों लोकोंमें  
 श्रीभिराम ( सुन्दर ) है, वे श्रीमान् रामचन्द्रजी हमारे प्रभु हैं ॥ ३१ ॥ राम, रामभद्र, सर्वत्रेश, रामचद्र, रघुनाथ,  
 तथा सीताके पति रामचन्द्रजीकी मैं प्रणाम करना हूँ ॥ ३२ ॥ हे श्रीराम, हे रघुनन्दन राम, हे भरताम्रज  
 राम, हे रणकर्कश श्रीराम, हे राम, हमको करण दीनार ॥ ३३ ॥ संसार भरमें अतिशय सुन्दर, संप्रामर्शे विष्णु,  
 कमल तरीके नेत्रोंवाले, रघुवशक स्वामी कहणाकी मूर्ति और दयाके चण्डार श्रीरामचन्द्रकी मैं शरणमें हूँ ॥ ३४ ॥  
 जिनकी राहिली और लक्ष्मण, बाई और सीता और सामने हनुमानजी उपस्थित हैं, ऐसे रघुनन्दन रामकी मैं

गोष्पदीकृतवारीशं वधकाकृतगजमधु रामायणमहामालारन्नं वदेऽनिलत्मजम् ॥३६॥

अशेष तिष्ठ दूरे त्वं रोगास्तिष्ठतु दूतनः । शरीरार्थं मदाऽस्माकं हृद् रामो धनुर्धरः ॥३७॥

मनोजवं मास्तुल्यवेगं त्रिनेत्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।

वानात्मकं वानस्पृश्यमुखं भोगमर्तुं क्षणं प्रपद्ये ॥३८॥

राम राम तव पादपङ्कजं धिक्प्रियमि मय्यवन्धमुक्तये ।

वन्दितं सुगन्धेद्रुमालिनिष्करोयितं मनसि योगिमिः मदा ॥३९॥

रामं लक्ष्मणपूर्वजं शृण्वरं मीनारतिं सुन्दरं काकुत्स्थं कलुषार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।

रामेन्द्रं सत्यमन्त्रं दशमधनुर्यं उग्रामन्नं शान्तिवर्धिं वन्दे लोकाभिगमं शृङ्खलनिनकं गणवं रावणारिम् ।

एतानि रामनामानि प्रातुर्लक्ष्य यः पठेत् । अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥४०॥

माता रामो मन्विता रामचन्द्रः स्वामी रामो मन्मथा रामचन्द्रः ।

सर्वम् मे रामचन्द्रो दद्यात्तु नान्यं जने नैव जान न जाने ॥४१॥

भीरवनामासृजमन्त्रं यो जपेत्त्रावती चेन्मनसि प्रविष्टा ।

हालाहलं वा प्रउपान्तनं वा घृणोमुत्त वा विष्टतां प्रविष्टा ॥४२॥

भीमचन्द्रं जयचन्द्रमथ जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःपञ्चकुन्वो शृणुयादनाम जयत्रिहन्त्याद्वित्रिकोटिहन्त्या ॥४३॥

एव गिरीन्द्रं प्रोक्ता रामश्च मया तव । मयोददिष्टा या स्वार्थैर्विश्यामिवाथ वै पुरा ॥४४॥

श्रीरामदास उवाच

इति शिवेनोपदिष्टा भूषा देवी गिरीन्द्रजा । रामश्चो पठित्वा सा स्कन्दं समभिमतयत् ॥४५॥

बन्दना करता है ॥ ३५ ॥ जिह्वा स मुद्रका गीके खुरमर जलवाला बनाया, राख्मोंका मच्छहोके समान मछ किया और जो रामायणका महापात्राक मुख र नहूँ, ऐसे बरबकुमार हनुमाइजोंका मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥ हे पाणोंके समूह ! तुम हमसे दूर रहो और ह योग्य । तुम हमारे पाससे भाव जाओ क्योंकि हमारे हृदयमें धनुर्धारी रामचन्द्रजी बैठे हुए हैं ॥ ३७ ॥ मनके सरल जिनकी गति है, वायुके सरल जिनका वेग है, जिन्होंने दृष्टियोंको बणाये कर दिया है जो बुद्धिमानोंमें भ्रम है ऐसे वायुके पुत्र, रानरी सेनाके सेनापति और धारासचन्द्रजीके दूत हनुमानकी मैं शरण में हूँ ॥ ३८ ॥ हे राम ! हे राम ! साक्षात्क बन्धनोंसे मुक्त होवक लिए सुरनर इन्द्रादि तकके मस्तक में पूजन आयेके चरणोंका मैं मदा दान करता हूँ । क्योंकि योगी लोग भी सब सर्वथा उन चरणोंके बिछरम छान रहते हैं ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणके ज्येष्ठ भ्राता, शृणुनामेश्वर, सोताके पति, परमस्ववानु, कनुरस्वके वगज, कलुष के वाग्नि, गुण के निधि, बाहुणोंके प्रिय, धर्मके उत्पन्न, राजाकाके राजा, सत्यप्रतिमं दशरथके पुत्र, ध्यामकथ, शान्तिके मन्त्रिष्वम्य, संहारक आवन्ददाता, शृणुनामके तिलक-स्वरूप, शृणुनाम एवं रावणके शत्रु रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥ जो प्राणी सबरे उठकर इन नामोंका पाठ करता है, वह यदि अपुत्र हो तो उस पुत्र मिलता है और धनकी इच्छा रखनेवाला हो तो धन मिलता है ॥ ४१ ॥ राम ही मेरे पिता हैं, राम ही माता हैं, वे ही मेरे स्वामी और मन्त्रा हैं । दयालु श्रीराम-चन्द्रजी ही मेरे सर्वस्व हैं । उन्हें छोड़कर मैं और किसीको नहीं जानता—किसीका नहीं जानता ॥ ४२ ॥ जिसके हृदयमें रामनामासृजमन्त्र ज्यों संशोधनो विद्यमान रहता है, वह हालाहल, प्रलानल अथवा मृत्युके मुखमें भी शयों न कूद जाय, उसको कहीं भी भय नहीं है ॥ ४३ ॥ पहले कामन्द, बादमें रामनाम फिर जय चन्द्र, फिर रामनाम, फिर ही बार जयचन्द्र जोड़कर ( जयन्ति भाराम जय राम जय जय राम ) इत्कील बार जय कथनेवाला प्राणी कलेहों कष्टहृत्पात्रों जैसे महात् पातकोंको भी नष्ट कर देता है ॥ ४४ ॥ हे पावर्ती ! मैंने दुम्हे वह रामरक्षामन्त्र बतलाया है, जिसे एक बार स्वप्नमें मैंने मद्रुधि विश्वामित्रको बतलाया था । श्रीराम-दासने कहा—इस प्रकार शिवजीके बतलाये हुए रामरक्षामन्त्रको गुत्कर पावर्तीजोने स्वर्गलोकलोकेश्वर उन्हीं

सम्यास्तेजोवलेनैव लघान तारकासुग्म् । यडाननः खणादेव कुतकुन्योऽमवन्पुरा ॥४७॥  
 सैवेयं रामरक्षा ते मयाऽऽख्याताऽतिपुण्यदा । यस्याः श्रवणमात्रेण कस्यापि न भयं भवेत् ॥४८॥  
 वाल्मीकिनाऽनया पूर्वं कुशाय ह्यभिषेचनम् । कृतं बालप्रहारां च शान्तिपथं मा मयोदिता ॥४९॥  
 बालानां ग्रहशान्त्यर्थं जपनीया निरन्तरम् । रामरक्षा महाभेष्टा महाधौघनिवारिणी ॥५०॥  
 नास्याः परतरं स्तोत्र नास्याः परतरो जपः । नास्याः परतरं किञ्चिन्मन्यं मन्य वदाम्यहम् ॥५१॥

इति श्रीमत्तकोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे

रामरक्षाकथनं नाम पंचमः सर्गः ॥



## षष्ठः सर्गः

( लवका अयोध्यासे कमलपुष्प लाकर माता सीताको देना )

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकी प्राह वाल्मीकिं मुनिर्पुंगवम् । कथयस्व ब्रतं येन रामयोगो भवेन्मम ॥ १ ॥  
 तत्सीतायचनं भुज्वा वाल्मीकिस्तां नचोऽजकीद् । प्रतिपदिनमारभ्य यावन्मा नवमीं मिता ॥ २ ॥  
 तावत्प्रदिनं माने ब्रतं कुरु मयोच्यते । प्रतिपदि रामचन्द्रपादुके धातुनिमित्ते ॥ ३ ॥  
 कृत्वाऽर्च्यं नवकमलैर्दंदि मंत्राञ्जलिं शुभाम् । ततः पुत्राननाभ्यां त्वं जन्मकाण्डं शुभं शृणु ॥ ४ ॥  
 अष्टादशकमलैश्च द्वितीयायां शुभाञ्जलिम् । मंत्रैर्दंदि पूजनान्ते पतिपादुकेभ्योर्मुदा ॥ ५ ॥  
 पतिं विना ह्यिया नान्यत्पूजनीयं हि देवतम् । जन्मकाण्डं द्विवारं तु शृणु भक्त्या शुचिव्रते ॥ ६ ॥  
 एवं वृद्धिर्नवाब्जैश्च कार्या माते दिने दिने । नवम्पामेकाशीत्यब्जैः पूज्यस्व भर्तृपादुके ॥ ७ ॥  
 नववारं जन्मकाण्डं पुत्राभ्याभ्यां सुखं शृणु । ततो दशम्यां सुस्नानैर्कार्पातिं द्विजदंपर्षन् ॥ ८ ॥  
 संपूज्य वस्त्राभरणैर्भोजयस्वाग्र भैर्यालि । दत्त्वा तेभ्यो दक्षिणास्त्वं विसर्जय प्रणम्य तान् ॥ ९ ॥

मंत्रोंमें अभिमन्त्रण किया ॥ ४५-४६ ॥ उसी मन्त्रके तज और बलसे यडाननने तारकासुर जैसे महान् रात्रुको मारकर अपनी काम पूरा कर लिया था ॥ ४७ ॥ वही रामरक्षणमंत्र मैने तुम्हें बतलाया है । जिसके एक बार श्रवण कर लेनेसे संसारमें किसीका मर नहीं रह जाता ॥ ४८ ॥ इसी रामरक्षा मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिषेक किया था । वाल्मीकीका दुःख दूर करनेके लिए इसे मैने तुम्हें बतलाया है ॥ ४९ ॥ वाल्मीकीका यह शास्त्र करनेके लिए सदा इसका जप करना चाहिये । यह महान् मंत्र है । यह बड़े बड़े पापोंके समूहको नष्ट कर देता है । इससे बढ़कर कोई स्तोत्र है ही नहीं । मैं तुमसे सच सच कहता हूँ कि इससे श्रेष्ठ और कोई मंत्र नहीं है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीमत्तकोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमः रामनजपाब्देव-विदधित्प्योस्ताभापाटीकासम्बन्धिते जन्मकाण्डे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा - एक दिन सीताजी मुनियोंने श्रेष्ठ वाल्मीकिसे कहने लगीं कि हमें कोई ऐसा ब्रत बतलाइए, जिससे मैं फिर अपने पतिदेव ( राम ) को प्राप्ति कर लूँ । १ । सीताकी उस प्रार्थनाको सुनकर वाल्मीकिने कहा कि प्रतिपदा तिथिसे लेकर नवमी पर्यन्त अर्थात् नौ दिनका मैं जो ब्रत बतला रहा हूँ, उसे करो । प्रतिपदाकी धातुसे बनी रामकी चरणपादुकाका पूजन करके नौ कमलोंके फूलोंसे मंत्राञ्जलि दो । इसके अनन्तर अपने पुत्रोंके मुखमें आनन्दरामायणके जन्मकाण्डकी कथा सुनो । २-४ ॥ फिर द्वितीयाकी पादुकाकी पूजा करके अठारह कमलोंकी पुष्पाञ्जलि दो । स्त्रीके लिए पतिके अतिरिक्त दूसरा कोई पूज्य देवता नहीं है । बादमें द्वितीयाकी दो बार जन्मकाण्डकी कथा सुनो ॥ ५ । ६ । इस तरह प्रतिदिन कमलोंके फूलोंकी संख्या बढ़ाती हुई नवमीको ८१ फूलोंसे पतिकी चरणपादुकाको मंत्राञ्जलि दो और कथाकी भी संख्या बढ़ाती हुई दशमीको अपने पुत्रोंके मुखमें नौ बार जन्मकाण्डकी कथा सुनो । दशमीको स्नानादि नित्यकर्म करनेके



अनेन प्रसूतेन जन्मकाण्डश्चादि । अविगन्पनिना योगं प्राप्स्यसि त्वं त्रिदेहजे ॥१०॥  
 संयोगीकरणं नाम व्रतं चेदं सुगुण्यदम् । ये कुर्वन्त्यत्र मनुजाः स्त्रीर्मेघोर्लभन्ति ते ॥११॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह तं पुनः । बह्व्यञ्जानि साकेने पुण्यागमजलाशये ॥१२॥  
 सन्ति कल्पत्रयं गन्तुं समर्थस्मिन्निह वनेते । रामाक्षया गमर्तुः क्रियते रक्षणं सदा ॥१३॥  
 उन्मीतापचनं श्रुत्वा तत्पुनः संस्थितो लवः । अन्नजीन्मातरं माक्य पञ्चदशवयःस्थितः ॥१४॥  
 अम्बाराक्षस व्रतभ्याद्य त्वं कुरुष्वानिगादिह । अन्नान्यहं प्रदास्यामि समानीय निरन्तरे ॥१५॥  
 तल्लवस्य वचः श्रुत्वा त्रिहस्यालिभ्य बालकम् । चतुर्भ्य तन्मुत्तं सीता लवं वचनमब्रवीत् ॥१६॥  
 पद्मजानि कथं वन्त त्वं समानीय दास्यमि । त्रयस्त्रयानं रामर्तुः क्रियते रक्षणं सदा ॥१७॥  
 तन्मातृवचनं श्रुत्वा लवः प्राहाथ मातरम् । अम्ब न्वन्त्यन्यपानेन बालमीकेः शम्भुविद्यया ॥१८॥  
 तथाशीर्षिर्मुनेश्चापि रामस्यापि भयं न मे । पश्याम्य पराक्ष भेदश्च मामनुज्ञानुमर्हसि ॥१९॥  
 इत्युक्त्वा मातरं कृत्वा बालमीकिं परिपश्य च । शशीभिरीडितस्ताम्यया वृत्तग्रीवाकामुक्तः ॥२०॥  
 वस्त्रालंकारसयुक्तस्त्वेकाकी स्थमादिधनः । यया लवस्त्रयोध्याया श्रीविहीना जवेन सा ॥२१॥  
 क्रीडोपरि स्थं स्थाप्य पद्मजामागममायया । नावन्मन्त्राद्भयमये गता आगमरक्षकाः ॥२२॥  
 भोजनाय स्पृगेहानि लयोऽञ्जानि तदाऽहरम् । पुनः स्वस्यदने स्थित्वा गन्वाऽऽश्रमपद मुनेः ॥२३॥  
 नन्वा मुनिं मातरं स्वीं पकजान्यर्पेयन्मुक्ता मुदिता जानकी चापि वनागम्यमथाकरोत् ॥२४॥  
 एवं सप्तदिनान्यञ्जान्यानिशमाय बालकः । न त्रिदशमर्तुनाम्ने नोपनेऽञ्जानं चैन हि ॥२५॥  
 अथाष्टमीदिनेऽपोध्या पृथक्त्व लवो यया । आगमस्य बहिः स्थाप्य स्थं पद्मजा यथा लवः ॥२६॥

पश्चात् ८१ द्विजदम्पतीकी वस्त्राभूषण आदिन दूजा करके उन्हें भोजन कराओ और दक्षिणा देकर विदा करो । उस व्रतराजक करन तथा जन्मकाण्डकी कथा सुनने से जोश हो तुम्हारे प्रति तुम्हें निश्च जायेंगे ॥७-१०॥ इस व्रतका नाम ही संयोगीकरण व्रत है । जो रात्रि व्रत पूर्ण करने करता है उसे अपने भ्रियजनकी प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥ जान्मीकि मुनिकी बात सुनकर सन्तान कष्टात्र अन्त्येष्टक व्रतचवाल पर दस बहुत कमल होता है, बड़ी ही इतन फूल मिल सकत कि जिनके से अपना व्रत पूर्ण कर सकें । लेकिन कहते उन्हें लायेगा कौन ? रामचन्द्रजीकी भाताम वही बहुत रक्षक उन पश्या रक्षकाकी करत हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ स ताकी बात सुनकर पास से उलने, जिनकी अवस्था पाँच बड़की हो चुका थी, मातासे कहाना ॥ १४ ॥ बी । तुम आजसे अपना व्रत प्रारम्भ कर दो, मैं निश्च करार कर फूल लाकर तुम्हें दूँगा ॥ १५ ॥ लवकी बीरतापूर्ण राणी सुनकर मन्ता हैतो और छतीसे लगकर उसका मुख नमसी हुई कहने लगी— ॥ १६ ॥ बेटे तुम फूल कैसे लाओगे ? वही रामके कमल्य सिपाही उनकी रक्षा करत हैं ॥ १७ ॥ सीताकी बात सुनकर लवन कहा—माता ! तुम्हारे पंचव स्तनीके दुग्ध, महर्षि बाल्मीकिसे मिलायी हुई ताम्रविद्या और उनके आशीर्वादके प्रभावसे मैं रामसे भी नहीं डरता । आप मुझे आज्ञा दी और मेरा पुरस्कार देखें ॥ १८ ॥ १९ ॥ इतना कहकर लवने माता तथा बाल्मीकिसे प्रणाम किया । फिर उनका आगावाँद लेकर अश्रु-क्षण सहित एक रथपर जा बैठे और उस जयशङ्काकी ओर बढ़े, जो बहुत शिरोसे नानिहान हो चुकी थी ॥ २० ॥ २१ ॥ बनीनके एक कोस आगे ही लवन अपना रथ रोक दिया और पैरु ही बराचम जा पहुँच । शीतहरका समय था । बमारके रक्षक भोजन करनेक लिए अपने-अपने घर जा चुके थे । इसलए लवका फूल लेनेमें कोई बाधा नहीं हुई फूल लेकर लवन अपने रथपर रखा और आधमकी ओर चल दिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ वही पहुँचकर खबने माता और बाल्मीकिसे प्रणाम करके फूलकी सामने रखा । जानकीने भी इसव्रतके साथ व्रत प्रारम्भ किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार सात दिन तक लव बराबर फूल ले गये, लेकिन रामके दूताको कुछ भी पता नहीं लगा । आठवीं दिन अष्टमी तिथिकी रोमकी तरह लव फिर वही गये । रामको बाहर राका और सरोवरदय पहुँचकर निर्भीक भावसे फूल लाकर लाने लगे । संयोगवश उस दिन सिपाही लोग भोजन करके बगीचेमें पहुँच

गन्वाऽऽरामस्य काशर गृहीत्वाऽञ्जानि निर्मयः। शनैर्यावद्वय प्राप गावदारामपाऽऽययुः ॥२७॥  
 ते न दृष्टुं लब्ध साध्यं पप्रच्छुर्विष्मयान्विताः। न त्व दृष्टः कदाऽस्माभिः श्रीगमानुचरेषु हि ॥२८॥  
 कदारम्य रामसेवा त्वया चार्क्षीकृता रद। यदस्त्वं निर्मयोऽञ्जानि गृहीत्वा गच्छामि प्रभुम् ॥२९॥  
 राघदूतवधः श्रुत्वा विहृष्याद् लवोऽपि सः। वाग्मीवपनुबग्धार्हं न रामदर्शनं वय ॥३०॥  
 दासोऽहं मुनिराजस्य वाग्मीकेः शुद्धचेतसः। तदाज्ञया वै नीयन्ते कमलानि मया मुदा ॥३१॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा वाग्मीकीय लब्धं तदा। ज्ञात्वा दूताः पार्श्वीय क्रोधाद्जनमश्रुवन् ॥३२॥  
 तमस्त्वया न दृष्टोऽयं न नः पृष्टस्त्वया पुनः। ताञ्जापिर्वाऽमि रामेन नीयतेऽञ्जानि प्रत्यहम् ॥३३॥  
 न हातमेतदस्माभिस्त्रिदानीं निष्ठु मा व्रज। अषराष्यसि रामस्य त्वां नेष्यामी रय प्रभुम् ॥३४॥  
 इत्युक्त्वा तस्य पन्थानं कुरु रामसेवकाः। चतुर्दश शस्त्रहस्ता सशका रामगो वदा ॥३५॥  
 तान्दृष्ट्वा ह्यनन्दनश्च त लवोऽप्याह विहृष्य च। दूयं गच्छतु भाग्यं यद्वृत्तं मन्मादरात् ॥३६॥  
 यद्यस्ति शौक्यं रामे कर्हि याष्यति मां प्रति। तत्तस्य वचनं श्रुत्वा क्रोधाद्दूता वचोऽश्रुवन् ॥३७॥  
 कथं वत्स मर्त्यकावस्त्वमित्थं वल्गसे मुधा। वदन्ता त्वां वयमंवाद्य विनेष्यामी रयूचमम् ॥३८॥  
 इत्युक्त्वा ते लब्धं धर्तुं यदुस्तस्य रथातिकम्। तान्दृष्ट्वा निकटं प्राप्तान् रामदूतान्सर्वोऽपि सः ॥३९॥  
 दमस्कृत्य महत्वाय श्रगन्मवाय वेगनः। अब्रशत्तान्पुनर्वाक्यं माऽऽगन्तव्यं समान्तिवम् ॥४०॥  
 मार्गवैरथुना पुष्पान् रयजाये राघवान्तिके। इत्युक्त्वा तान्पुनर्दृष्ट्वाऽऽन्मानं धर्तुं समुपगतान् ॥४१॥  
 रागाग्रं माधिवद्भार्गसीलयाऽन्वरमण्डपे। चतुर्दश रामदूता लवमार्गगतार्चिताः ॥४२॥  
 विप्रेर्मुर्च्छन्ताः सर्वे रामाग्रे जाह्नवीतटे। शतशो रामदूतास्ते दृष्ट्वा चक्रुः पलायनम् ॥४३॥  
 लवोऽपि विजयी शीघ्रं पूर्ववत्साध्रव यथा। समर्पाऽञ्जानि मीतार्यै सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥४४॥

मये ये ॥ २५-२७ ॥ लवको फुट लिय देखकर विष्मयपुर्वक से बोले—इसने तुम कमा रामचन्द्रजीके सेवकोंमें बहुत देखा है ॥ २८ ॥ तुमने कब नौकरी की है ? जो इस तरह निर्धन होकर कमलके फूल ले जा रहे हो ॥ २९ ॥ उन दूतकी बात मनकर हमने दुःख लवने कहा—मेने जो अभी तक रामको देखा भी नहीं है ॥ ३० ॥ रामका नहीं मैं मूर्ख विचारमयिका मजक है । उन्हीके आज्ञानुसार मैं यहासे फूट ले जाता हूँ । किन्तु तुमने आज ही हमको देखा है । इसके पहले कभी नहीं देख पाया ॥ ३१ ॥ इस तरह अपनेको वाग्मीकिका सेवक बतलानेपर हुनोको समझमें आया कि यह कोई वजतकी मनुष्य है । यह जानत हो के मारे कोषके समतला लठे । उन्होंने कहा—॥ ३२ ॥ तुमने न रामकी आज्ञा ली, न हम लोगोंसे पूछा और रोज फूल ले जाते हो ॥ ३३ ॥ यह बात हमको मान्य नही थी । लग्न, सब ठहरो । तुम रामचन्द्रजीके अग्रणी हो । अतएव हम तुम्हें उनके पास ले चलेंगे ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर उन लोगोंने लवका चाला रोक लिया । जब एक मी चौडह मशम्र मंजिकेने लवको घर लिया । तब लवने रथपर बंटे ही बंटे उनकी ओर देख तथा हुँसकर कहा तुम लोग रामके वश जाकर हमारा नृनान्त करो । ३५ ॥ यदि राममे कुछ सामर्थ्य होगी तो वे स्वयं मेरे सामने आवेंगे । एक पीप वर्यके वचनकी ऐसी बातें सुनकर दूतोंने कोषपूर्वक कहा—॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे वचने ! तुम क्यों मरना चाहत हो, जो ऐसी बड़बड़का बर्न करत हो ? तुम्हो बांधकर हमों लोग उनके पास अभी लिये चलते है ॥ ३८ ॥ ऐसा कहकर लवको पकड़नेके लिए कई दून आगे बढ़े । उनकी निकट देखकर लवने तुरन्त अपने अनुषका टंकोर करके उसपर एक बाण चलाया और उनसे कहा—सावधान ! मेरे पास न आना ॥ ३९ ॥ ४० ॥ नहीं मानगे तो मैं इसी घटुप और बाणसे तुम लोगोंको उठाकर रामके पास फेंक दूंगा । ऐसा कहकर लवने देखा कि वे लोग फिर भी उन्हें पकड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ ऐसी वसामे लवने बाणोंसे दूतोंको लड़ाकर कत्ता और वे गङ्गाके समीप रामकी पत्तमा कार्ये मूर्च्छित होकर जा गिरे । इस प्रकार लवका पराक्रम देखकर रामके जो सैकड़ी सैनिक बहुत बचे थे, वे सब हृषद-जवद जान गये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तब विजयी होकर वे अपने आश्रमकी ओर गये । वहाँ पहुँचकर लवने कमल

चतुर्दश रामदत्ताः स्वरूपचिन्ताश्रयेण ते । सर्वे वृक्षं राघवाय कथयामासुगदरात् ॥४५॥  
 उच्छ्वसा तत्रचन्द्रोऽपि विस्मयाविष्टमानसः । सहस्रदूतानागरामन्त्रणायै यचोदयत् ॥४६॥  
 लोकोऽप्यथ नश्यौ स साकेतं पूर्ववत्तथैव । मह्यं रामदत्तास्ते तत्र योद्धुं समुद्यताः ॥४७॥  
 लवस्तानाह युष्माकं स्वामिना राघवेण हि । यदा नीता वने त्यक्ता अवश्रीय गता तदा ॥४८॥  
 युष्माकं राघवस्यापि एच्छर्ष राघवं पुनः । युष्माभिर्वा मया युद्धं कर्तव्यं मरणोन्मुखैः ॥४९॥  
 सीतारयागे तु युष्माकं स्वामिनः पौरुषं न वाम् । इति ते लवदाम्बार्थमिन्त्यममंस्यलाभदा ॥५०॥  
 दूताः श्रुत्वाणि सुमुगुर्लसोपरि महस्वनैः । लोकोऽपि व्यापमकृष्ट रामदूतान्स्वमार्गजैः ॥५१॥  
 प्राक्षिपन्पूर्वद्वारं तच्छस्योद्य निक्षर्य च । आश्रमो यदा दूताश्चक्रुः सर्वे पलायनम् ॥५२॥  
 ययौ लवः स चित्रवी रूपायन्कमलान्वितः । आश्रमं जातरं नन्वा सर्वं वृक्षं न्यवेदयत् ॥५३॥  
 पुत्रस्य पौरुषं भ्रुत्वा लुलोप आनकी तदा । वृक्षं निवदयामासु रामदत्ता मधूचमम् ॥५४॥  
 मूर्च्छां लवशरैः प्रक्ष्पा मित्स्वदेहा मन्त्रागणे । राम राम महाबाहो मृण्मयपूर्वमादरात् ॥५५॥  
 पञ्चवर्षपत्रालेन वधस्थं पराजिताः । राज्ञीकेर्नक्षत्रविद्यः स न ज्ञेयो लक्ष्मणादिभिः ॥५६॥  
 तद्वदे मंत्रयस्त्राय त्वमुपायं रघूत्तम । सीतान्यागादिवचनैर्नस्त्वपि च बालकः ॥५७॥  
 चकार निन्दा श्रीरामं सन्मीस्त्रैक एव यः । लोकोऽपि न्यवेदयत् कृन्तनमालम्ब्य राघवः ॥५८॥  
 ममस्थं सचिर्वदन् बाल्मीकिं प्रेषयज्जवान् । नन्वा मुनिं रामदूतो राघवाकथं न्यवेदयत् ॥५९॥  
 एते सिन्धो महावीरः लोप्यशप्यन्ति नैव मम । तं प्रेषयायवा तेन त्वमागच्छस्व मन्मथम् ॥६०॥

सीताको दिया और उस दिनका सारा हाल कह सुनाय ॥४५॥ जो दूत रामको राजास्थानमें गिरे के, वे बहुत  
 देर तक मूर्छित पड़े रहे । जब जेतना बाणी, सब सादा उन्होंने रामको लम्का सब समासार सुनाय ॥४६॥  
 जो मुनकर रामचन्द्रजीको से, बड़ा आश्चर्य हुआ : उन्होंने किससे एक हजार दूतोंको बाणीवकी रस्सवालीके  
 लिए निगुन कर दिया ॥ ४९ ॥ दूसरे दिन अर्थात् नवमीको जब फिर पून लेनेके लिए बाणीव का पट्टे ।  
 लवने दूतोंको देखकर कहा कि जिस दिन तुम्हारे प्रभु रामने सीताका वनमें लेव दिया उसी दिन उनकी  
 लवभी भी निरा हो गयी ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ मूर्छे पाहिए कि तुम राघवके पास जाकर लड़ाई करनेसे इनकार  
 कर दो । तुम मरणोन्मुख हो । अथर्व ई मूर्छी पाहता कि तुम्हारे साथ युद्ध करे ॥ ४९ ॥ सीतावने  
 शरणनेवाले तुम्हारे प्रभु रामके साथ सणम करना मुझे उचित नहीं प्रचन । इस प्रकार लवके बचनकी  
 बाणोंसे मंत्रिकोंके हृदय विदीर्ण हो गये ॥५०॥ तब उन्होंने लवपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी । उपर लवने भी  
 अपने बाणोंसे मंत्रिकोंके प्रहार बचाते हुए अपने बाणोंसे उनको उठा-उठाकर रामके बाण फेंकना आरम्भ  
 किया । बोलीं देरमें ही जब दूत बाणीवा छोड़ छ डकर भाग निकले । तब लव अपनेको विजयी मानते हुए रोजकी  
 तरह पून लेकर आश्रमको लोट गये । वही पट्टेकर लवने सीता माताका प्रणाम किया और उस दिनका  
 भी बारा हाल सुनाय ॥ ५१-५३ ॥ बैठका दुष्यार्य मुनकर सीता परद प्रमत्त हुई । इधर रामचन्द्रके दूतोंने  
 लवके पास जाकर सब अपनी माणखोटी कह सुनायी ॥ ५४ ॥ जिनको लवने अपने बाणसे उठाकर  
 रामके पास फेंका था, वे लीज बायन हुंकर बहुत देर तक मूर्छित अवस्थाम ही गड़े रहे । जब होषमें आये  
 तो कहन लगे हे राम ! हे महाबाहो । मैं जो कह रहा हूँ, उसे तनिक कान देकर सुनिए । आज हम सब  
 बाल्मीकिके एक शिष्यसे, जिनको अवस्था अभी राँव बर्यकी है, परास्त हो गये । मेरा तो गहनिक विश्वास  
 है कि बाणके ज्ञाता लक्ष्मण आदि भी उसे नहीं हरा सकते । ५५ ॥ ५६ ॥ हे रघुत्तम ! उसे माणोंके लिए  
 माय कोई उपाय कोचिए । सीतात्याग बाणिकी बातें दुम्हत्कर उस एकाकी बालकने हमारी और मावकी  
 भी भरपूर निन्दा की है । उनको बातें सुनी नी मंत्रियोंसे परामर्श करके रामने तुरंत वई दूतोंको बाल्मीकिके  
 आश्रमपर भेजा । वे दूत बाल्मीकिके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके रामका मन्देश इस तरह सुनाये लगे  
 ॥ ५७-५९ ॥ रामचन्द्रने कहा है कि आजका महावीर मिथ्य सब हमारा अपराधी है । उसे या तो हमारे

विस्मृत्या पूर्वमेव त्वं नाहूतोऽसि क्षमस्व तत् । तद्दुदत्तवचनं श्रुत्वा तमीयं मुनिरब्रवीत् ॥६१॥  
 शिष्याभ्यां च । अहमेव याचयामि त्वं व्रज । तथेति शमदुतोऽपि मुनिं नत्वा ययौ मत्सम् ॥६२॥  
 जनमेव मावि ह तमादौ रामो मुनिं मत्सम् । नाहूयामास शिष्याभ्यां लौकिकीं रीतिमाश्रितः ॥६३॥  
 स्वीयव्रतसमाप्तिं साऽकरोत्सीताऽपि सादरम् ।

विष्णुदास उवाच

अशक्तश्च कथं कार्यं मनमेतद्वदस्व माम् ॥६४॥

श्रीरामदास उवाच

काचिनस्यापवा रौप्यस्याथवा ताम्रनिर्मिते । कार्ये द्वे पादुके रम्ये राघवस्य यथासुखम् ॥६५॥  
 अकारे कमलानां च पुष्पैरञ्जलिरीति । एकाशीतिदंतीनां न शक्तिः पूजने तदा ॥६६॥  
 पूजनीयानि पुष्पानि न च शक्याऽथवा सुखम् । स्वशत्रुस्था पूजनं कार्यं विमिश्रितं परित्यजेत् ॥६७॥  
 अनेकदूरगस्यापि संयोगश्च भवेद्भवान् । भाविकार्याणि वेगेन भविष्यन्ति न संशयः ॥६८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये

जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

## सप्तमः सर्गः

( राम लक्ष्मण आदिका लव-कुशके साथ युद्ध )

श्रीरामचन्द्र उवाच

अथ रामोऽपि धर्मान्मा चरमे तुरगाध्वरे । हयं शृणोच शत्रुघ्नस्तस्य पृष्ठे ययौ ब्रवान् ॥१॥  
 दक्षिणां पश्चिमामाशामुत्तरां तुरगोत्तमः । अतिक्रम्य तथा प्रार्ची यज्ञस्थानं न्यवर्तत ॥२॥  
 नृपतिभ्यः समस्तेभ्यः शत्रुघ्नो वसु कोटिशः । गृहीत्वा तेनृपैर्युक्तस्तूरगस्यानुगो ययौ ॥३॥

दूतोंके साथ भोज सीजिए अथवा आप स्वयं अपने साथ लेकर हमारे यज्ञमण्डपमें आइए ॥ ६० ॥ भूलसे मैंने आपको पहले निमन्त्रण नहीं दिया था, सो क्षमा कीजिएगा । इस प्रकार दूतोंके मुखसे रामका संदेश सुनकर महर्षि वाल्मीकिने कहा— ॥ ६१ ॥ हम अपने शिष्योंके साथ स्वयं यज्ञमण्डपमें आगेंगे, तुम लोग जाओ । रामके दूतोंने ऋषिराजके वचन सुनकर प्रणाम किया और वहाँसे प्रस्थान करके रामको यज्ञशालाको चल पड़े ॥ ६२ ॥ राम इस भावी घटनाको पहिलेसे ही जानते थे । इसीलिए लौकिक रीति निभाते हुए शिष्योंके साथ वाल्मीकिजीको पहले यज्ञमें नहीं बुलाया था । ॥ ६३ ॥ उधर सीताने भी नौ दिनवाला व्रत समाप्त कर लिया । विष्णुदासने पूछा जो लोग भाग्यवर्धन हैं, वे इस व्रतको कैसे करेंगे ? सो बताइए ॥ ६४ ॥ श्रीरामदासने उत्तर दिया— यदि सुवर्णकी पादुका न बनवा सके तो चांदीको बनवा ले, वह भी न हो सके तो लोहेकी दो चरवापादुकाई बनवाना चाहिए ॥ ६५ ॥ यदि उतने कमलक फूल न मिल सकें तो साधारणतया किसी भी फूलकी अजली दे । यदि इक्यासी द्विजदम्पतीको पूजा करनेकी सामर्थ्य न हो तो नौ द्विजदम्पतीको ही पूजन करे । उसके भी अवयव अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करे, लेकिन उनमें कजूवीं न होने पाये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ इस व्रतको करनेसे चाहे कितनी ही दूरीपर रह-बाव भी प्रियजनका मित्राद्य अवश्य हो जाता है इसके अतिरिक्त जितने भी भविष्यके कार्य होंगे वे सब सम्पन्न हो जायेंगे । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचरामतेजपाण्डेयकृत ज्योत्स्ना भूपादौकासमन्विते जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास बोले—इस प्रकार रामचन्द्रने ९९ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर लिये, अन्तिम सीधे यज्ञके लिए भी थोड़ा अभिविक्त करके छोड़ा और गणपति उसको रक्षा करनेके लिए उसके साथ गये ॥ १ ॥ दक्षिण, पश्चिम, पूर्व और उत्तर दिशाकी प्रदक्षिणा करके थोड़ा रामचन्द्रजीके यज्ञमण्डपकी ओर लौट पड़ा ॥ २ ॥ रास्तेमें कितने ही राजाओंसे अनेक प्रकारकी भेंटें ले लेकर उन राजाओंको अपने साथ लिये शत्रुघ्न अश्वमेध



विशेषं नाधिशच्छामो गघनस्याग्नयोस्तदा । एवं गंधदनां तेषां विस्मितानां परस्परम् ॥२२॥  
 तदाऽऽह रामदूतोऽपि लवचाणलवं स्मरन् । रामचंद्रं यतुवाटस्थितं वै मध्रमेण हि ॥२३॥  
 लवमंगुलिना वीरं दर्शयन् मुहुर्महः राम राम महाबाहो तमेन पश्य वै लवम् ॥२४॥  
 येनाम्माकं शरीरं प्रक्षिप्य तव मणिर्धौ । नीलानि कनकाञ्जनानि मुगंधानि निरंतरम् ॥२५॥  
 मीनान्यागनिमित्तेन वेन नेनापि वा मुहुः । कृता निंदा गरिनेन त्वदण्डकार्थना प्रभो ॥२६॥  
 तव दण्डभयादेव परैरेव विलोपितः । स्थवाभ्रभणानि शस्त्राण्यपि विहाय च ॥२७॥  
 धूनानि वल्कलादानि दीनरूपोज्ज्वलं दृश्यते । त्वयाऽयं दण्डनीयोऽयं यधुमारानिमर्षितः ॥२८॥  
 इति स्वदूतवाक्यानि मृण्मयपि मृण्मयः । प्रेम्णाऽवलोकयामास सुधाक्षिप्यां शिशू मुहुः ॥२९॥  
 मालाधरि मभागस्थानमकृन्व यथाक्रमम् । राघवं स्वयितृव्यांश्च वमिष्टु प्रणिपत्य च ॥३०॥  
 उपाचक्रमतुर्गातुं वीणे गणयतः शुभे । ततः प्रवृत्तं मधुरं गांधर्वं गीतमुनमम् ॥३१॥  
 श्रुत्वा तन्मधुरं गीतं राममोहमवाप ह । ताम्भ्यां श्रुतं स्वचरितं विलासादप्यनुक्रमात् ॥३२॥  
 ययदाचरितं पूर्वं सीतया सह मौल्यदम् । ततोऽपराधं श्रीरामः प्रसन्नवदनावुजः ॥३३॥  
 उवाच तौ समग्रं वै श्वो मेघं मम मन्त्रिभ्यो । तवेति रामवचनं तावंगीचक्रतुम्भदा ॥३४॥  
 तनो रामो लवं ग्राहं मे यद्यप्यपराधितम् । त्वया पूर्वं तथापि न्यां तुष्टोऽहं नात्र शिष्ये ॥३५॥  
 त्वद्गीतिमचन्त्रिादि श्रवणादयं मे मनः । परां विश्रान्तिमापन्नं त्वत्कृतं क्षमिन् मया ॥३६॥  
 अभुना मद्भयं त्यक्त्वा न्वं सुखं विनरात्र हि । तद्रामवचनं श्रुत्वा नयो गघनमनीत् ॥३७॥  
 मयाऽपराधितं राजस्तव दर्शनकाम्यया । मदपराधिनं मृन्वाग्राहनीऽहं यनस्त्वया ॥३८॥

और वे आपसमें कहते लगे—२०। एक बिस्मसे निकले दूसरे प्रतिबिम्बका भीत में दोनों बालक विचुल  
 रामचन्द्रके समान हैं। यदि इनके परस्पर अटान रहे और बल्लल बल्ल हलार जिये जायें तो इनमें तथा  
 राममें कोई अन्तर ही नहीं रहे जाता। जब सब लोग विस्मित होकर परस्पर इस प्रकार बात कर  
 रहे थे। तभी तबके बागोंमें बगचवाले गारकी पाटका हमरण करता हुआ रामका एक दूर घबड़ाकर  
 बोला—२१-२३॥ हे राम! हे महाबाहो! बोलए, यही लव है। जिसने अपने बाणोंसे लठ्ठकर  
 मुझ आपके पास फेंक दिया था और मृगशिव कनककमलके कूलोंको हटाने सोडकर मे जाया करता  
 था ॥२४॥२५॥ आपकी मोनत्परादयक बातक लेकर इसीत बने परस्पर साथ आपकी निन्दा की की ॥२६॥  
 जाम होता है कि आपके दण्डस डरकर इसी रथ तथा वर्याभरण त्याग दिए हैं और वल्कल्यसम  
 आदि पहन तथा दीनरूप धारण करके आया है। किन्तु मेरा यह परामर्श है कि इस अस्मिमानोंकी अवश्य  
 दण्ड दीजिए ॥२७॥२८॥ इस प्रकार इनकी बातें सुन करके भी रामाण्ड अपना अमृतमरी तौमोसे  
 उन बच्चोंको प्रेमपूर्वक रख रहे थे ॥२९॥ लठकीन तथापि पहुंचकर वहाँ बैठे हुए लोगोंको प्रणाम करके  
 रामको, लक्ष्मण आदि अपने चाचरोंको तथा वमिष्ट आदि मुहजनोंको प्रणाम किया और सीता  
 वजाने हुए रामचरित्र मान लिया। उस समय मध्याम जैसे गांधर्व गायनका श्रम बरसने लगा ॥३०॥३१॥  
 राम उनका मधुर गान सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। गायनमें रामके उस चरित्रका वर्णन था, जो अन्तसे लेकर  
 विलासकाण्ड पर्यन्त सीताके साथ उन्होंने किया था ॥३२॥ गान-गति दीपहृका समय ही गया। लव  
 रामचन्द्रम प्रसन्नतापूर्वक उन बच्चोंसे कहा—अच्छा, आज समय अधिक बीत चुका। इसलिये रहने दो। कम  
 मेरे पास फिर आना और मुझ सारी गमायण सुनाना। रामकी बातको उन्होंने ज़ट्टीकार कर लिया  
 ॥३३॥३४॥ इसके अनन्तर रामने लवसे कहा—यद्यपि तुम हमारे अपराधी हो फिर भी मैं तुमपर प्रसन्न  
 हूँ। तुम्ह कोई दण्ड देनेकी इच्छा ही नहीं होती। तुम्हारे गायनोंमें अपनी चरित्रचली सुनकर मेरा हृदय  
 मान्य हो गया है और तुमने जो कपराय किया था, उसे क्षमा करता हूँ ॥३५॥३६॥ अब तुम मुझसे  
 करो नहीं निर्भय होकर जहाँ चाहो चलो ॥ इस प्रकार रामकी बातें सुनकर लवने उत्तर दिया—राजन्! उस समय

अथ ते दर्शनं नैव पश्यन् वृद्धिर्न गतम् । कानिर्न मदनी जना नवाद्यं गायनादपि ॥३९॥  
 इत्युक्त्वाऽऽर्च्योद्धृतस्त्वर्णो वन्धुना पटमुद्यतः । मन्त्राचार्यो मृतुकामो ह्यलं श्रीय निरीक्ष्य च ॥४०॥  
 रजोऽप्युतं द्रुमु सयोर्भवेन प्रदाययन् । दीपमानं सुवर्णं तौ न गच्छन्तुमुत्तमा ॥४१॥  
 राजन् हेम्ना किमेतन् धात्री वै वन्द्योर्भोजनं । कृशरजोऽकलनेन वाहि न्यमानयोः सदा ॥४२॥  
 इति सत्यस्य तदथ जन्मदुर्मृतिमश्लिषिषु । आर्यान्कृत्वा स्वचक्षितं रामो दृष्टति त्रिस्मितः ॥४३॥  
 कुशोऽपि सकलं पुन चान्मोर्किं मानसं तथा । निरेद्य बाह्वी स्नातुं कौतुकेन वर्या मुत्तम् ॥४४॥  
 लघो धूनोनां शिशुभिः शिशुकांडनमाचरन् । एतस्मिन्ननरे यत्र तत्रः कीडां चकार ह ॥४५॥  
 बालकैस्तत्र सत्राप्तान्तरंग भ्रष्टकारिणः । व्यक्त्वा कीडां तत्रः शीघ्रमग्रे धृन्वीर्यजातिके ॥४६॥  
 पुत्रे वरेषु शिशुभिः पूर्वम् मीडनं व्यधात् । ततः खे पुण्यकं प्राप्तं दृष्ट्वा वदं तुम्हवम् ॥४७॥  
 शान्ता बालकान् सर्वे शकुन्नाया विद्वन्व ने । दूनानां क्षापयामासुर्मुन्यतां तुरगः सुवम् ॥४८॥  
 लवस्तानागतान् दृष्ट्वा शयस्यासुग वै वृणुम् । समन्त्रं नान् सुमोवाथ नीलपा शिशुमयुतः ॥४९॥  
 सप्तार्चस्तदा पानं द्रव्यध्वजधरितम् । शकुन्नेनापि र्दन्तः खेऽभूत्तदुभयगोपमम् ॥५०॥  
 तद्वृत्त्वा रामचन्द्रोऽपि प्रेषयामास मादम् । सुग्रीवमद्भुतं नील र्भन्दं जाम्बवन्तं वलम् ॥५१॥  
 सुषेनं भरतं वायुपुत्रं तार्क्ष्यं विभीषणम् । सुषेणं पार्थिवान्मर्यान् स्वस्वामिन्वलेषुतान् ॥५२॥  
 द्विविदं दधिधवनं च बानगन्धकाश्वजम् । ते लव दृष्टुमर्थाद्युद्धं चक्रुस्त्वरान्विताः ॥५३॥  
 तानागतान् लघो दृष्ट्वा कस्यचिन्वितं भुवि । दूनाभ्यामोचनार्थमायतस्य वरासनम् ॥५४॥  
 तूणीरं च स्वयं धृन्वा वर्या रौद्रं न्यगन्वितः । दण्डकृत्यं महबाणं चितयामास चेतसि ॥५५॥

मेन जा अपराध बिना था, उसका उद्देश्य एकमात्र यही था कि मैं किसी प्रकार आपसे मिलूँ। आपसे भी मेरा अपराधका क्षमाग करके भी मुझे क्षमाया हो वर्या हुआ की ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ भाव भावक दर्शन करने ही मेरा मुख्यार्थ था वर्या भी मैं एक साधक रामचरित्र गानन करी करति भी बड़ा ॥ ३९ ॥ इसका कटकर लव पुत्र हुआ और अपने भ्रातर साथ साथमका जानकी तैयारी करने लगा। उसर रामने उन बच्चोंके लिए दस हजार स्वयंप्रदाय भस्मन दितवादी। किन्तु उन्होंने बहू सब नहीं लिया। उन्होंने कहा—राजन् अरध्वज फलमन्तर आपसे बितानजाले हम समराक्षालान आपकी इस सुवर्णशक्तिको लेकर क्या करते। वस, आप अपनी हुंसादीहस हमारी रक्षा करने दीजिए ॥ ४०—४२ ॥ इस प्रकार उस दानद्रव्यका पारव्याग करके वे दोनों बाल्या कि बालक पास बने गये। जन्माके मृत्मे भरना शक्ति सुनकर रामचन्द्रजा भी विस्मित हुए ॥ ४३ ॥ उसर कुल आश्रमपर पहुँच ला वहाँ बाल्याकि तथा साक्षात् उस दिनका वृत्तान्त सुनकर और मनन करनेके लिए बाल्याका वस गये ॥ ४४ ॥ इसर लव कुंड वृन्तवृत्तागके साथ सन्तन लगा। इसी बीच वहाँ वे सब मरत रहे, उमा तपस्त आधमेचकर घोडा चारों ओर घूमकर रामकी मन्त्रालामे जा रहा था। उसे दलत ही को कुलवध अन्तर्ने भेज लिया। लवन जागे कटकर घोडका पकड़ा और अपने कुटिराक बिनार ल जाकर एक वृक्षमे बाँध दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ लवके फिर मल्लत लगा। उमा समथ सप्तार्चम पुण्यक विमानपर बैठी हुए शकुन्नेन दक्षा ला बहुत हस। उन्होंने बोला कि यह बाल्याने सेलवन्द किया है। शकुन्नेन इतनेसे कहा जायो और पारका वहाँमे छान ल म लो। इत लवके पास पहुँच। लो ही लवन एक तिनका वृक्षया और वायव्य मन्त्रम अभिमन्त्रित करके उनपर दाल दिया। उमके दालने ही बड़ा जोरस जोधा चलन लगी और शकुन्ने तथा उनके सोनके हाथी, घोडे, रथ और बाकाजय भीरीकी तरहू उरने लगे ॥ ४७—५० ॥ यह समाचर सुनकर रामने अपने गद्दीके मुखा, बाङ्ग, नील, जाङ्गवान् मल, द्रुमन्, भरत, हनुमान्, परशु, विभीषण, सुषेण तथा देव-देवतान्तरसे शय हुए राजासोको शकुन्नेकी दहायताके लिए भेजा। इनके अतिरिक्त द्विविद-दीधवन्व आदि बानर तथा मकरध्वज आदि भीर गर्वके साथ मुद्गधूमिकी ओर बौद परे ॥ ५१—५३ ॥ इसी वरी सेनाको साथने देकर लवने एक साधारण बन्धुको, जो पाला छुटानेके लिए आये हुए किसी संनिका गिर परा पा,







दृष्टेति व्यग्रचित्तः सः क्षणं सञ्चिन्त्य च दृष्टे । मत्प्राप्तेन लब्धं वदन्वा माश्वं गच्छे न्यवेदयन् ॥ ८८ ॥  
 मत्प्राप्तं मानयस्तूर्णी ययौ गम लक्षोऽपि सः । गधवस्य समानीतं दृष्ट्वा लक्ष्मणमनघोत्तु ॥ ८९ ॥  
 आनयति सुखं स्वीयं कौतुकं दर्शयञ्जनान् । मद्यन्नायं कुत बन्धो त्वयन् विद्रि बहुजम् ॥ ९० ॥  
 द्विजहत्यामय स्पन्द्या धानयस्त्वनमश्च हि । गम प्रोवाच मौक्तिकिर्नाथं लक्ष्मणं स्थिति ॥ ९१ ॥  
 भक्त्याद्यर्थया चापि नाय किं ताडितोऽसिभिः । अयम् देहे धनं चैकमापि किं दृश्यते त्वया ॥ ९२ ॥  
 तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह प्रष्टव्यो बान्धकश्च यः । केनोपायेन ते मृत्युर्भवेदिति समाग्रतः ॥ ९३ ॥  
 गोपायन्ति निर्जं मृत्युं न शूरा बधशङ्कया । न वदन्त्यनृतं कदापि स्ववलेनैव जीविनाः ॥ ९४ ॥  
 ततः पृष्टो लक्ष्मणेन लवः प्राहाथ लक्ष्मणम् । जलस्य सेचनमृद्धिं स्वीयां ज्ञात्वा पुनर्गता ॥ ९५ ॥  
 कपय्यदृष्ट्या लोकान्निर्दश्यन् स्वपराक्रमम् । जलस्य सेचननाथ मृत्युर्मे निश्चितो भवतु ॥ ९६ ॥  
 ततस्तु वचनं भुञ्ज्या शिलायां तं निवेश्य च । सेवनं तोयकलशैः कायामास लक्ष्मणः ॥

अयोध्यावासिनिर्वाणपुरुषः परमादरात् ॥ ९७ ॥

चतुर्मुखश्च षट्शृणोर्निर्वाण कोटिशः । तथा कर्पटिर्द्वैश्चापि स्थोष्टृवारणादभिः ॥ ९८ ॥  
 आनयित्वा अलं शीघ्रं निषेच लवबान्धकम् । यथा यथा जलेन हि सेचनं चाक्रिरे जनाः ॥ ९९ ॥  
 तथा तथा लवस्तथ व्यवर्द्धनं घनो यथा । ममत्तल्लक्ष्मणोऽधुदृष्ट्या भामपराक्रम ॥ १०० ॥  
 ततस्तं लक्ष्मणः प्राह त्वया लव मृषेरितम् । नाप तव बधोपायः स्वदृष्ट्यर्थं कुतः सतु ॥ १०१ ॥  
 लवोऽप्यादाय मौक्तिकं कौटिल्येन प्रतापयन् । यथा तैलधने दीपो प्राद्विपते प्रगच्छति ॥ १०२ ॥  
 तथायुयः क्षये मेऽपि वृद्धं वश्य भूयन्निवम् । नद्राज्यं मानयन्मन्य सेचयन्तं स लक्ष्मणः ॥ १०३ ॥  
 अलेर्गर्गैः समानीतैः पूर्ववच्च पुनः पुनः । कष्टमोषानमार्गेण सेचनं चाक्रिरे जनाः ॥ १०४ ॥

बहुल हो उठ । उन्होंने कई शाय लवपर चलाये, लेकिन जब - हे बंधार हान धरती तो घबरा उठ ।  
 एक बार उन्होंने न जान बूझा साँचा और लव बन्धु मयस लवका साथ लिया और बाँधका भी साथ लेकर  
 मयाध्यामे रागक वास ल लाय ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ बद्धारणको मयाध्या रत्नक लिए लव भी पुपयाय लक्ष्मणक  
 साथ चल रये । जब रामन लवका दस्ता गा ८८ मगन बहो । यद्यपि मे जानता हूँ कि यह मेरा ही पुत्र है ।  
 फिर भी मसारणी मिट्टी दनक लिय मे ला रहा है कि । इज्जतयाक भयका दूर करक आज ही इस माय  
 दानो । इसन बहो अदराय निय है । लक्ष्मणने उनर दिना कि यह मिट्टी शम्भामयस बहो भरेण ॥ ८९-९१ ॥  
 हमने तथा चरतर्जने इसपर कितना हुँ ब र लम्बाएक प्रहार किय है, किन्तु दक्षिण न । इसक गरीरमे बहो  
 कोई घाव दाखना है ॥ ९२ ॥ रामन कहा - इससे पछा कि नू निम इक र मर सकेगा । जो सच्च घुरधार  
 हात है, वे अपने मृत्युके उपायका भी नहीं छिपात । सन्न बार कभी झूठ नहीं मानत ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ इस  
 प्रकार पूछनेपर लव कुछ सोचत लग । एक बार महर्षि वाल्मीकिने लवसे कहा था कि तुझ्दारे ऊपर जितना  
 अस डाला जायगा, तुम उतने ही बढ़ोग । इना बातका हवाले करके लवने ममारको अपना पराक्रम दिखाने-  
 के लिए लक्ष्मणसे कहा—जलसे संचनपर मेरी मृत्यु होगी ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ सबसे बात सुनवर लक्ष्मणने  
 लवको पास ही एक पत्थरपर बिठाया और पानक भकास नहलाने लग । अयोध्यावासि क्षत्रुसे नरनारा  
 बड़े मोहरके साथ लवपर जल डालने लग । बार मुँहवाले बड़-बड़ कमजक फाट बेल रये हाँ, हाँ,  
 और औरपर लट-लटकर कराहोका स्रव्यास वहाँ आन लग और वे सब जगक ऊपर डाल दिय गये । जैसे-जैसे  
 पानी पड़ता था, त्यो त्यो लव मेयक समान बढ़ने जात था । बहु परम बार बड़-बड़ने जब सात ताड़की ऊँचाई  
 तक बढ़ा ॥ ९७-१०० ॥ तब लक्ष्मणने कहा - लव ! जान हाता है कि तूम झूठ बोल हो । तुमने मरनके लिये  
 नहीं, अपने बढ़नेका उपाय बताया था ॥ १०१ ॥ लवने भी लक्ष्मणका बहकाकर कहा—तू एक खद बुझनेवाला  
 होना है तो उसकी ली किलमी बड़ जाया करता है । उसी तरह आनुके फल हानसे मे भी बड़ रहा हूँ । अबकी बार  
 भी लक्ष्मणने लवका बात सब मानी और उसी तरह लवक ऊपर जलक कलसे डालते रहे ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ बद्धारणीसे

अस्मान्नेन विनिर्मुक्तः प्रचक्षत लयन्तः । भुजावाक्कलयाभाम् मधोः काललीलया ॥१०५॥  
 तं दृष्ट्वा दृढवुः सर्वे न्यक्त्वा तोयघटानपि । शकुन्मूत्र प्रमुच्यन्तो हृत्ककलया लवेक्षयाः ॥१०६॥  
 एतस्मिन्मन्त्रे कीदृशं गगायां गच्छन्तान्कुशः । पञ्चञ्चासं मुहूर्तींश्च किमर्थं नीयते उवाच ॥१०७॥  
 जनाः प्रोचुर्नर इत्युपस्थाभिर्दोषने जलम् । विस्मर्त्तनरवाक्येन तच्छ्रुत्वा न ययौ कुशः ॥१०८॥  
 मंगुलं स्वाश्रमाच्छाप तूर्णारं देगवत्तरः । लव योवपितुं चापं दण्डकृन्वाऽध्वरम्यले ॥१०९॥  
 कुशचापञ्चनि भूत्वा सभ्यौ तूष्णीं लवः क्षणम् । मनो दृष्ट्वा कुशं शप्त ययौ योर्दं न लक्ष्मणः ॥११०॥  
 तं दृष्ट्वा न कुशः प्राह छलिनी जानकीलवौ । त्वया गमेण लोकेष्वनयोः कर्तुं विनिर्मुक्तिम् ॥१११॥

अहं आहोर्दंश्च मां बाल लवरञ्च न मानय ।

बुवयोः दीक्षुषं भार्यां शिशुवर्त्नीति वेदमयम् ॥११२॥

गन्तकदेशान्कलन्वलासदर्थं पुरयोर्वलम् । न ममाग्रं स्फुटं कार्यं पुत्राभ्यामुपहासकम् ॥११३॥  
 वाग्मार्कशिखिभ्यां विद्यां गम्यन्वाग्र्यं दृष्ट्वे । इत्युक्त्वा तमुल्लस्य दृष्टं पितृभ्यो न चकार मः ॥११४॥  
 आगन्तुं वृथा जानकीवे लक्ष्मणोन्मृष्टमार्गयाः । गमायषान्कुशो ज्ञत्वा द्वेष एवात्र लक्ष्मणः ॥११५॥  
 जानोऽर्पति यथे मय्य गच्छतां मुसौष मः । सायधर्मं पुनश्चकृन्व न मद्विमान्यं दधे ॥११६॥  
 जानन्तु दृष्टं पितुर्दंष्ट्रा जाना येन मय विनि । तदूरया स्वगगनात्सं योमिवः कुठेना मनिः ॥११७॥  
 भयभीनः पृथिव्यां हि पषाण लक्ष्मणो ग्धान् । व्यूतं दृष्ट्वा श्वयं तत्र दीक्षायाकोऽपि वेगतः ॥११८॥  
 धृत्वा चापं च तूर्णारं यज्ञकुण्डाग्रतः स्थितः । चाप संघातं जज्ञाण योमिवैर्जीवेनाशया ॥११९॥

जल भर-भरकर आता जा रहा था और स ही लगाकर लवरण जलकी जाग दाला जाता था ॥ १०५ ॥ उसी समय सबके देखन हा इसन सब बह्मस्त्रक मुट गदा और भजार् गया ताल डीवत हुआ दीहने लगा । उसको देखकर वहाँके सार नर-नाग अपने अपने कमरानो छ ड-छारकर भाग गये । उसक उस बिकराम कपका देखकर बहुनोकी बालियां मुन्न गयी । कई गजका सो सारे डरके गमाय टट, तब हा गयी । १०५ ॥ १०६ ॥  
 उपर कुश बज्ज्याको तरङ्ग प्रसन्न-कुरता गङ्गाजाक किनारे गया । वहाँ उसन देखा कि बहुतसे लोग पानी भर रहे हैं । उनमे कुमन पुत्र—कुमन्ता जनना पानी को भरे लिये जा रहे हो ? ॥ १०७ ॥ उन्होंने कहा—  
 सबकी मारनेके लिए । यह मुनकर कुश अपने आधमपर गया और बनुष-बाण लेकर लवको छुटानेके लिए रावकी यज्ञशालाके समीप जा पड़ा और घ-घका भक्षण रकार किया ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ कुशके बनुषकी टंकार मुनकर जब कुछ देखके लिए जान लड़ा हा गया और रगमे मुट करकेके लिए लक्ष्मणके सामने जा पहुँच । ॥ ११० ॥ लक्ष्मणको देखकर कुमन कहा—कुमन और रामन लव तथा स ताके साथ बड़ा छल किया है । उसका बह्म सनके लिए मैं आया हूँ । मुझको लवका तरह साधारण बालक न समझना । तुम लोगोंको बीरता रवा और छान छट बन्वोपर ही चर सकती है यह मैं जानता हूँ । सीमाके बज्ज्याकी बहकना अस्मिन् मुहारा बल जब कुमन है । अब जगता उपहास करानेके लिए मेर मामने लड़नेको अपेक्षे अपने हैं । अच्छा, यदि मुहारा यज्ञ इच्छा है तो वाग्मार्किका भियादी सिवा मात्र मैं मुझे और रामका दिमाता हूँ । ऐसा बनुकर कुशने लक्ष्मणके साथ तुरन्त कुछ पागंध कर दिया ॥ १११—११४ ॥ लक्ष्मणने मुझपर जितने राज बनाये, वे सब भय गये । लक्ष्मणकी मदिव्यवर्त्तने कुमनने जात हो गया था कि अब लक्ष्मणके मिश्र और कोई वार बाकी बचा हा नहीं है कि, जिसके साथ मुट करके मारनेकी आवश्यकता है । यह सीचकर आधमके अनुसार उसने जानाका मारनेमे कई अग्राध न समझकर उन्हें मारनेके लिए गच्छास्त्रका प्रयोग किया ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ उस गच्छास्त्रको अपने उपर आते डालकर लक्ष्मण सिटपिटा गये उनको सारी बाजुरी भूल गयी और भूँछित हजर रवसे पृथ्वीपर गिर पड़े । लक्ष्मणकी रपसे गिरते देखकर राम रोक्षित होते हुए भी बनुष बाण लेकर दौड़े और लक्ष्मणको बचानेके लिए उन्हाने कुशके छेदे हुए गच्छास्त्रपर अपना बह्मस्त्र छेद दिया । बह्मस्त्रके पहुँचनेपर गच्छास्त्र आकासमे ही ठंढा हो



भविष्यति समस्तं हि वृत्तं बालकयोः शुभम् । ततो मन्त्री मुनेर्वाक्यं राघवाय न्यवेदयत् ॥ १३९ ॥  
कुशं लव समाहूय बाल्मीकिरपि तौ मुदा । समालिख्य कथाभिस्तौ निनाय रजनीं सुसम् ॥ १४० ॥

इति श्रीभक्तकोटिरामचरितावर्गि श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये जन्मकाण्डे  
कुशलकयोः पराक्रमवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( रामका सीताको पुनः स्वीकार करना )

श्रीरामदास उवाच

अथ प्रभाते रामेण समहूतावुभौ शिशू । नन्वा मुनिं मानस्य सभायां त्वमतुर्मुदा ॥ १ ॥  
बाल्मीकिराहूय बालौ जटाकृष्णाजिनावर्गः । जन्मकाण्डं न्वेकमेव जगामुभौ पितुः पुरः ॥ २ ॥  
जनैः श्रुत्वा स्वचरितं रामोऽभूदतिविस्मितः ॥ ३ ॥

ब्राह्मन् जनाश्चपि सर्वे विस्मयाविष्टमानसाः । ज्ञात्वा साराकुमारौ तौ सन्तोषं परमं ययुः ॥ ४ ॥  
एतस्मिन्नन्तरे सर्वे लवबाणस्रपीडिताः । शत्रुघ्नाद्या ययुन्नत्र यानस्थायास्त्रजीविताः ॥ ५ ॥  
अंगदाद्याः पार्थिवाश्च मोहनासैकजीविताः । ययुः सवान्ताः सर्वे लक्ष्मणोऽपि ययावरुक् ॥ ६ ॥  
सर्वे नत्वा रामचन्द्रं तस्युन्मत्स्यतिकै मुदा । अथ समन्व रामोऽपि तौ विसृज्यादरेण हि ॥ ७ ॥  
राक्षसेन्द्र लक्ष्मणं च शत्रुघ्नं मकरध्वजम् । खगगात्र गुपेण च ज्ञातवन्तं वचोऽनवीत् ॥ ८ ॥  
आनयध्वं मुनिवरं समीतं देवममितम् । अद्यास्तु पर्यदा मये प्रत्ययो वै सभागमे ॥ ९ ॥  
संगाया दक्षिणे तीरे सभाकार्याऽऽयत्वा शुभा । करोतु शपथं सीता ममाग्रे जाह्नवीतटे ॥ १० ॥  
मुनीधरायाः सर्वे तौ जानन्तु गतकल्मषाम् । तथा ममापि बाल्मीकिं शुद्धिं जानंतु वेगतः ॥ ११ ॥

अथ मसाम ये दोनों रामायण गाने पहुँचग, उस समय सारा वृत्तान्त ज्ञात हो जायगा । ॥ १३८ ॥ तदनुसार मन्त्री सीता आया और बाल्मीकिने जो कुछ कहा था, सो रामको बतला दिया । उधर बाल्मीकिने लव और कुशको पास बुलाकर हृदयसे लगाया और अनेक प्रकारकी कहानियाँ कहते हुए रात बितायी ॥ १३९ ॥ १४० ॥ इति श्रीभक्तकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणं प० रामस्तजपाण्ड्यकृत-  
'व्यासकृत'भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास बोले--दूसरे दिन सबरे रामने उन दोनों बाल्मीकीकी बुलवाया और वे अपनी माता तथा मुनि बाल्मीकिको प्रणाम करके रामकी सभामें गये ॥ १ ॥ बटा एवं बलकल वस्त्र धारण किये हुए उन बच्चामें उस दिन बाल्मीकिके आज्ञानुसार केवल जन्मकाण्डका गान किया । ॥ २ ॥ रामने जब अपना चरित्र सुना तो बड़े विस्मित हुए । सभामें बैठे हुए लोगोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और जब यह जाना कि ये सीताके बेटे हैं सो बहुत ही प्रसन्न हुए । ॥ ३ ॥ ४ ॥ उसी समय लवके बाणोंसे पीड़ित लक्ष्मण-शत्रुघ्न आदि भी वहाँ आ पहुँचे । उनके साथ अङ्गद-हनुमान् आदि जो लवके मोहनास्त्रसे मूर्छित हो गये थे, वे भी आये । वहाँपर सबान रामको प्रणाम किया और उनके समीप आकर बैठ गये । तब रामने अपने मंत्रियोंसे सलाह करके लव कुशको विदा कर दिया ॥ ५-७ ॥ तदनन्तर विभीषण, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, मकरध्वज तथा अङ्गदको सम्बंधित करके राम बोले--तुम सब आकर बाल्मीकिके साथ सीताको यहाँ ले आओ । आज इस सभामें यह निश्चय किया जायगा कि सीता का क्या अपराध है । इसी पुनीत जाह्नवीके तटपर सीता गणपति स्वीयगी । यहाँपर आये हुए समस्त श्रुतिगण जिससे यह समझ जाय कि सीता सर्वथा निष्कलंक तथा पापोंसे रहित है । साथ ही हमारी जोरसे बाल्मीकिभी भी परीक्षा होगी । इस प्रकार रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणादि बाल्मीकिके पास गये और उन्होंने

इति तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणाद्या महीं गताः । ऊचुर्यथोक्तं रामेण वाल्मीकिं लक्ष्मणादिकाः ॥ १२ ॥  
 रामस्य हृदयं सर्वं ज्ञात्वा वाल्मीकिरब्रवीत् । समर्चयन्तु मुमंत्राद्यान् लक्ष्मणाय नमस्कृत्य च ॥ १३ ॥  
 गुप्ताग्निः कश्चनीयं यद्वाक्यं श्रीगणेशं प्रते । श्वः करिष्यति वै मीमांसा श्रवणं जनममदि ॥ १४ ॥  
 योगितां परमो देवः पतिरेको न चापरः । इति विना गतिः काञ्च्या भार्याश्चान्तिं जगन्त्रये ॥ १५ ॥  
 लक्ष्मणाद्यास्ततः सर्वे राममाश्रित्य ते पुनः । मुमंत्रादीन्वतुर्वीराप्राधवाय नमस्कृत्य च ॥ १६ ॥  
 वाल्मीकिवचनं श्रुत्वा त्रिभुवनं । श्रुत्वा त्रिभुवनं श्रुत्वा त्रिभुवनं श्रुत्वा त्रिभुवनं ॥ १७ ॥  
 मुमंत्रं भरतं वायुपुत्रं शान्तनाथकः । समाश्रित्य चतुर्वर्गं न पुनर्यत्नमवत ॥ १८ ॥  
 सीतया पालिताः सर्वे वयं लवजितास्त्विति । कथयामासुः शंभवे मुमन्त्राणां कश्चिन्नर ॥ १९ ॥  
 द्वितीये दिवसे कृत्वा सर्वां श्रेष्ठां मनोरमाम् । सर्वांशस्या समाहृत्य रामां यत्नमवाब्रवीत् ॥ २० ॥  
 मृगयः पार्थिवाः सर्वे भृशतः स्वयमभ्यसमाः । मीमांसाः श्रवणं लोकां विजानन्वतुर्न तु वत् ॥ २१ ॥  
 इत्युक्त्वा राघवेणाय लोकाः सीतादिदम्बः । ब्रह्मणा धर्मज्ञा यदा नृणां भूतानां यत्नमवा ॥ २२ ॥  
 सवानराः समाश्रित्यस्तद्विषयं दृष्टुमुद्यताः । तदा मुनिवत्सुर्न नमः । श्रुत्वा तत्र ॥ २३ ॥  
 अग्रतस्तं मुनिं कृत्वा यांनी किं शिदधाश्मुदी । शान्तनाथकः शान्तनाथकः शान्तनाथकः ॥ २४ ॥  
 दृष्ट्वा लक्ष्मीमिरायांतीं श्रीविष्णोर्नुयायिनीम् । वाल्मीकिं पुनर्यत्नं यत्नं यत्नं यत्नं ॥ २५ ॥  
 तदा मन्त्रे जनीधम्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः । समाश्रित्य वाल्मीकिं कृत्वा श्रवणमब्रवीत् ॥ २६ ॥  
 इयं शश्वरये सीता सुवृत्ता धर्मचारिणी । श्रवणं पापान्मुगं न्यक्त्वा समाश्रममपीषत ॥ २७ ॥  
 लोकापवादमीतेन यमुनादक्षिणे तटे । प्रत्यर्थं दास्यते मास्य तदनुज्ञात्तुमर्हसि ॥ २८ ॥  
 इमौ तु सीतावनयो कुशम्बतो लवो मया । लवोऽर्चिर्मितः । सीतामयात्र्यस्यप्रचेनमा ॥ २९ ॥

जो कुछ कहा था, सो कह सुनाया ॥ ८-११ ॥ रामके मनकी बात जानकर वाल्मीकि कहता — आज तुम लोग जाओ और रामसे कह दो कि कल मन्त्रादि जाकर सीता सब लोगोंके सामने शपथ खाएंगे ॥ १२-१४ ॥ त्रिभुवोंके लिए पतिके सिवाय और कोई देवता नहीं होना । सभी अवस्था, सीता और नर ही क्या सबकी है । पतिके बिना स्त्रीके लिए लोकमें और कोई गति भी नहीं है ॥ १५ ॥ तब लक्ष्मण और बहूमे लौट आये । रामने उनके मुखसे वाल्मीकि का संदेश सुना तो राम प्रसन्न हुए । वे लोग वहाँसे लौटने समय मुमन्त्र आदि करों बीरोंकी, जिनको कि रखने बन्दी बना बध्मना । सीतामयात्र्यस्यप्रचेनमा ॥ २४ ॥ उन सबकी अपनी छान्नीसे जाकर मिले और यह समझा कि इन लोगोंका राजम हुआ है ॥ २५-२८ ॥ तब सबने अपना हाथ आगपान हुए कहा कि यद्यपि राज हम लोग का है पर कि या न किन्तु सीताने पूर्णरूपसे हमारी रक्षा की ॥ २९ ॥ हमने दिन एक विशाल सभा आयोजित की गति । उसमें सब लोगोंको सम्मोहित करके रामने कहा—हे देशविद्वजसे आये हुए श्रवणों आज हम सभा आप लोगोंके समक्ष सीता शपथ खायगी । इससे आप लोगोंको उसके गुरुत्व तथा पुण्यतया तथा नमज वगा । इस प्रकार रामके वचन सुने ही सब लोग मन्त्रादि देखनेके लिए उठावने हुए । नन्व भी यह समाचार पहुँच गया । अतएव इस दिव्य शपथकी देखनेको छालमासे बिलने ही पापुण, कर्मिय, वध्य तथा श्रव वहाँ आ पहुँचे ॥ २०-२२ ॥ थोड़ी देर बाद सीताके साथ वाल्मीकि भी सभामें पहुँचे । आगे आगे वाल्मीकि थे और उनके पीछे नीचा सिर किये सत्ता मन्दगतिसे सभामें आयीं । उस समय सीता और वाल्मीकि देखकर ऐसा समझा था कि मानों विष्णुके पंखे पीछे लक्ष्मी चली आ रही हैं । सीताका दन्त ही लोमान जयजयकार किया और वाल्मीकिजी सभाके बीचमें पहुँचकर रामसे कहने लगे— ॥ २३-२५ ॥ हे राम ! कुछ दिन हुए जब आपने लोकापवादके भयसे सीताको मेरे आश्रमके समीप लौटवा दिया था । आज वह ही सीता आपके सामने शपथ खायगी, आप इसके लिए आज्ञा दें । सीताके इन दोनों पुरुषोंमें कुछ आपका तथा कुछ ( वाल्मीकि वृद्धोंके ) बनाया हुआ मेरा वटा है । उसे मैंने सहसा सीताके इतर बनाया था । ये दोनों बेटे

मुनाजिमौ तु दूषणौ तथ्यमेवब्रवीमि ते । प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो रघुकुलोद्भवः ॥३०॥  
 अनृतं न स्मराम्युक्तं यथेमी नव पुत्रधी । वदन्त्यर्पणान् कल्पकं तपश्चर्या मया कृता ॥३१॥  
 नोषडनोयां फल तस्या शृण्वेययादि मे धेनो । इन्द्रकन्या गयनस्य किं दक्षिणे स्थाप्य वै कृण्वम् ॥३२॥  
 तत्र विन्दस्य रामाकं तस्यानप्याप्रता मुनिः । रामोऽपि तौ समालिख्य गूढ्यवप्राय सादरम् ॥३३॥  
 लक्ष्म्य वस्तके हस्त संस्थाप्य आदीश्वरः । प्रतिस्वतरे बालं पूर्ववन्मोऽकरोन्व तम् ॥३४॥  
 तनो रामोऽपि तौ मीना दृष्ट्वा व दृष्टवान्निनाम् । अज्ञात इव मग्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥३५॥  
 स्वया धुनः समानातः मीनायाः मां पदर्शितुम् । पुनः तमानयन्नाथ वेदस्ति तद्धितस्त्वया ॥३६॥  
 नयेन्मुक्त्वा लक्ष्मणोऽपि पेटितान्निहितं भुजम् । मीनायाः पुनो राम दर्शयामास सादरम् ॥३७॥  
 मीनाभुजोषमं दृष्ट्वा भुज मासादिभिर्युतम् । पञ्चदशान्तरे काले क्षामन् सर्वेऽतिविस्मिताः ॥३८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र पश्यन्तु मकरेणापि । भुजः स मुपगतां प्राप्नो विश्वकर्माद्वयः क्षणात् ॥३९॥  
 तद्दृष्ट्वा कीनुक्तं लोकाः प्रभुदमर्तिसंभवाः । रामोऽपि विस्मितः प्राह वान्मीकिं प्रणिमस्य च ॥४०॥  
 एवमेव मङ्गप्रजं पदुम् मां स्वयं दृष्ट्वा । पन्थायो जन्तो मया तत्र वाक्यैरकिल्बिषैः ॥४१॥  
 लक्ष्मणमपि दृष्ट्वा मे धेनोः । प्रत्यक्षे मया च । ईदृशीं पुनस्त्वेन मन्दिरं समवेक्षिता ॥४२॥  
 सेव्यं लोकाः दृष्ट्वाऽपि तत्र नृपः । पुनः । मां च मया दन्त्यका नद्वयान् सन्तुमर्हति ॥४३॥  
 मया जनेभ्यः । तस्मिन्नुपगतां च लक्ष्मणम् । लक्ष्मणम् । कुतो वेति मीनाशपमपान्मुने ॥४४॥  
 तथापि लाक्षा नरान्द्रष्टुमान् उदय रवन् । कदापुं क्षपणं नापि मयादा तत्र ममिषी ॥४५॥  
 दृष्ट्वा उदयान्तरे मातामर्गादस्मिन् । तदा तच्छपरे द्रष्टुमामल्लोकाः समुत्सुकाः ॥४६॥  
 तत्रया ज्ञानका चाप तदा कीदृशकारिना । उदङ्मुखो ह्यधोदृष्टिः प्रजिह्वाकपममवीत् ॥४७॥

अमाध्याय काण्ड है । कांड भयंका इतक समान नहीं टिक सका । विवालाका में दसवीं पुत्र है । आज तक मैं कभी पंड नहीं बना । इतक बड़ी तक मैंने धार लपट्या की है । यदि सोता किसी तरह भी बाधाधर्मि है । तो मैं इसे हरीता नष्टकर न पालन करता । इतना कहकर बादमांकिने मुनाको रामके दाहिना बगल तथा लक्ष्मणो बायीं बगल बिठला दिया और स्वयं उसके सामने एक ऊँचे भासनपर बैठे । रामने इस अनृतम उक्त कथाका आलोकन किया, माया, मुषा और लक्ष्मणके मस्तकपर अपना दाहिना हाथ रखकर मुनाके सहाय हो अवतरक उल्लास भरा दिसा ॥ ३०-३८ ॥ इसके अनन्तर रामने सीताकी धोर देखा तो सीताको दानी मग्रा उषा की ओर देखी । उन्होंने मग्रा तथा लक्ष्मणका आशा दी कि उस समय भी सीता व भुज वादर इन्द्रजित् पुत्र दिव्यान्त्यवे, यदि वह बुराधिन रात्रिसे रस्सी हो तो बड़ी से लाभो ॥ ३९ ॥ ४० ॥ लक्ष्मणने 'वदन्त्यर्पण' कहकर पदाम रखती भुजा लाकर रामके सामने रख दी ॥ ४१ ॥ इतने दिन बसंतार भी टंक सीताकी अज्ञातीके समान लटकते मांके लोचने तथा रुधिरसंप्लुत भुजाका दृष्टकर समस्त जितने जग वेदे से वे बरे विस्मित हुए ॥ ४२ ॥ इसी बीच लोगोंके देखते ही वेमछे बहुत विश्वकर्माकी बनायी भुजा गायब हो गयी । यह गीतुक देखकर लोगोंकी ओर भी आश्चर्य हुआ । तब रामने विस्मित हाकर व आश्चर्य कहा—हे महाशय ! मुझे तो मायकी बातोंसे ही विश्वास हो गया था कि सीता वरय दन्ति है ॥ ४३-४४ ॥ लक्ष्मण भी मैंने सीताका कथन दलो थी । उस समय देवताओंके समस्त कथन लेनेपर ही मैं इसे अङ्गीकार किया था ॥ ४५ ॥ तबपि लोकपवादके भयसे पवित्र समस्तकार भी मैंने सीताका परित्याग किया । माय नर इम अग्रायकी क्षमा कर ॥ ४६ ॥ यह भी मैं जानता हूँ कि कुछ मेरा पुत्र है और लक्ष्मणको मायने मैं ताके न पछासे बनाया था ॥ ४७ ॥ यह सब हुने हुए भी इन संसारवालोंका विवाध दिलानेके लिए सीता इस सभ में लपव ल ॥ ४८ ॥ यदि हम जनसमाजम और इस संसारने सीता कुछ निवृत्त ही नहीं तो मैं इसकी किससे अङ्गीकार कर लूँगा । उस समय सीता को लपटको देखनेके लिए बड़ी बैठे हुए सब लोग उत्सुक हो रहे थे ॥ ४९ ॥ तदनन्तर सभमें रोगी कपड़े पहने सीता कड़ी हो गयी और हाथ

राधादयमहं चेद्वि मनसाऽपि न चिन्तये । तर्हि मे धरणी देवि विवर्त दातुमर्हसि ॥४८॥  
 एव शय्याः सीतायाः प्रादुर्गम्यन्महादुनम् । भूतलादिव्यमन्वर्थं सिंहासनमनुनमम् ॥४९॥  
 हुतो विचरमाणेण समानात् मनोरमम् । जगन्त्रिभयमाण तद्व्यदेहं रविप्रथम् ॥५०॥  
 मूर्द्ध्वा आनक्तो दोर्भ्यां भृश्या दृष्टितर निजाम् । स्वायत्तर्षाणि तामुक्त्वाऽऽमने मा मन्यवेशयन् ॥५१॥  
 वस्त्रालङ्कारमग्नयसुगन्धं पूज्य मैथिलीम् । मपान्निग्राथ मदेवी बीजयापाम् सखम् ॥५२॥  
 उदा शनैः शूनैर्मर्यादा गुप्तं पिक्वामन त्वभूत् । सिंहासनस्थं वेदेहीं प्रविशन्तीं रम्यतलम् ॥५३॥  
 इष्टाऽऽकाशस्थिता दधत्स्व सदास्तु मन्त्रमन्त्रं निगन्तुमिदं देहीं वरपुंः पुष्पवृष्टिभिः ॥५४॥  
 साधुवादश्च सुमहान्वभूद्य सुर्कोर्किता । वन्नरिषे च भूषो च सर्वे स्थावरजङ्गमम् ॥५५॥  
 तदा यभूव चक्रितं सीताक्षपणदर्शनान् । ऊचुस्ते वसुधा वान्धो वानराश्च नगदिकाः ॥५६॥  
 केचिच्चिन्तापरः केचिदासन्ध्यानपरायणाः । केचिद्रासं निरीक्षन्तः केचित्सीताप्रचेतयः ॥५७॥  
 गृह्णन्तं वाचं तन्सर्वं तूष्णींभूतमचेतनम् । प्रविशन्तीं भुवं सीतां दृष्ट्वा समोदितं जगत् ॥५८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रविशन्तीं ह भूतले । विदेहतां तदा स्पृष्ट्वा वामहस्तेन संभ्रमान् ॥५९॥  
 यां दधात करेणादौ घृन्त्या हस्तेन त्रै भुवम् । ततश्चां प्रार्थयामास भुवं स रघुनन्दनः ॥६०॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

देवि त्वं सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम् । अमि लोकेकमात्रा त्वं महानीगोर्ध्वतः सदा ॥६१॥  
 वर्तसे पुष्परूपा त्वं वसुधा सकलान् जनान् । स्वजन्मगर्दपथान्त्व करोषि विश्वतुषिदाः ॥६२॥  
 एवं भूर्मा त्वं स्वराजलक्ष्मीमम विष्णोः प्रिया शुभा त्वमेवास्तत्र मे शक्तिर्निमिताऽमि सर्वेव हि ॥६३॥  
 निजोद्गाहदासि त्वं धानूर्प्राग्या जगन्मदा भ्रमापुक्ता त्वमेवासि सूक्तापुक्तादिकर्मसु ॥६४॥

जोरपर सीता ने निगाह लगा उत्तर भूत करके बोली—॥ ४७ ॥ हे पृथ्वी माता ! यदि रामके सिवाय अन्य किसीको मैं अपने हृदयसे भी न चाहती हूँ तो आप मुझे ऐसी आद दानिए कि जिससे मैं आपके समा जाऊँ ॥ ४८ ॥ इस प्रकार सीताके प्रार्थना करनेपर दुर्लभ एक द्वार सिंहासन पृथ्वीके भीतरसे निकला । उसको बड़े-बड़े नाग अपने शिरपर उठाये हुए थे । सूक्त समाज दर्शयमान उन नागका शकाक था ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इतनेमें सीता पृथ्वी देवीने अपना दानो भूजर्भसे सीताका स्वागत किया । फिर छानेसे लगा तथा गेदमें सेकर उन्हें उस गिहासनपर बिठाकर दिया । इसके अनन्तर वज्रअलंकार माला-मल आदिसे सीताकी पूजा की और छानासे आकर गंगा मलन लगी ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इसके बाद सीरे-सीरे वह गिहासन पृथ्वीके भीतर धुमने ल ॥ ५३ ॥ सिंहासनपर गड़ी हुई सीताको पातालमें जाती देखकर आकाशमें स्थित सारी देवागना, उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५४ ॥ आकाश और पृथ्वीमें देवताओं और मनुजोंने साधुवाद किया । सीताकी उस शय्यको देखकर समस्त स्थावर-जंगम प्राणी चकित हो गये और अपनी सुधि-बुधि भूलकर परस्पर बात करने लगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उनमें कुछ लोग चिन्तित थे और कुछ स्वाममान । कुछ लोग रामकी देख रहे थे । कुछ लोग अपनी सुधि-बुधि भूलकर सीताकी ओर निहार रहे थे ॥ ५७ ॥ गृह्णन्तंभरके लिए वही सारा समाज स्त्र हो गया । सीताको पृथ्वीके भीतर समीप देखकर समस्त संसार सुख हो गया ॥ ५८ ॥ राम सीताका पृथ्वीमें घेनती देखकर अपने सिंहासनसे कूद पड़ और पृथ्वीके पास जा पहुँचे । वे उनका हाथ अपने हाथसे पकड़कर इस प्रकार पृथ्वीसे प्रार्थना करने लगे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ श्रीरामचन्द्र बोले—हे देवि ! आप सारे संसारकी निवासभूमि हैं । समस्त जगत्की माता होकर महानोरके ऊपर आप स्थित हैं ॥ ६१ ॥ आप पुष्परूपा हैं । समस्त जनोंको हर प्रकारकी सम्पत्तियाँ देनेकी स मध्य रखती हैं । आप अपने उदरसे अनेक प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न करके सबको रक्षा करता हैं । आप दुःख, सदरा और विषयोंको प्रिया रखती हैं । आप आदिर्लक्ष हैं और देने ही आपकी बनाया है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ आप अपने उदरसे भोजन-प्राप्तिके धातु निकालकर



जानकी तब कन्येयं सभूषणं मेऽधूना ग्रिह । कन्यादानं कुरु मुदा न्वया पूर्वं कृतं न हि ॥६५॥  
प्रसोदं देवि नोनेन्ये न्वयि कंथा भविष्यति ।

श्रीरामदास उवाच

इति मंत्रादिना चापि गन्धर्वेण महात्मना ॥६६॥

जारी काठिन्यभावाभ्यां नाशृणोद्गच्छवेगिनम् । उर्ध्वः शनैः सन्नामयति सा जमाय ह ॥६७॥  
तां गच्छन्ती पुनर्दृष्ट्वा भूय रामो धृतामाय । रभूय कोपनाग्राश्रयन्तदा लक्ष्मणमब्रवीत् ॥६८॥  
आपमानय मौमित्रं शिक्षयेद्भूय भविष्याम् । मन्त्रुगेपमशेषेन वसुधेयं विदेहशत्रु ॥६९॥  
यामय दास्यति भिप्रमस्य घात न रोच्यते । ततोऽग्रे लक्ष्मणनान्तं करे कोरुण्डमुत्तमम् ॥७०॥  
धृत्वा न्यारोपय कृत्वा शर्मन्धानमातनोत् । तदा वयो महन्नावुशुभुमे लवणार्णवः ॥७१॥  
तासां निपेतुर्धरणीं मधुवुः सरजा दिशः । चक्रम्य धर्णी मार्गं प्राहास्त वदती मृदुः ॥७२॥  
कृतम्यां जानकीं धृत्वा रामस्यांकं न्यसेद्यत् । भोगमधर्योः पृथ्वी श्रिमा नमनं व्यधात् ॥७३॥  
तदा मे देववासानि नेदुः कुमुदवृष्टिभिः धवर्जुजानकीं राय देवमया मृदन्विताः ॥७४॥  
ततो रामोऽपि तां दृष्ट्वा पदयोर्नमनीं भुवम् । स्वक्रोधं शान्तमकरोत्कगभ्यां चापमार्गणौ ॥७५॥  
विसृज्योत्थापयामास स्वकरेणानिं प्रभुः । ततः सा गधवं नरश प्रमाद्य च पुनः पुनः ॥७६॥  
दत्त्वा विदेहकन्यार्यं च मिहामनमुत्तमम् । सार्तां स्तुत्राऽथ तां दृष्ट्वा तथा मंजुनिनार्षि च ॥७७॥  
आमन्त्र्य रापवं पृथ्वी क्षणादनदिताऽभवत् । तदा सीता जनाः सर्वे पुनर्जानां तु मेनिरे ॥७८॥  
अथ हर्म्यैः प्रणमुस्तां चक्रुः पूर्वां वृषक् वृषक् । ददौ दानान्वनेकांश्च तदा गतो मुदा न्वितः ॥७९॥  
नववायनिनभ्राश्च सम्बभूवुः समन्ततः । ननुतुर्गदनायथ तुष्टुर्बन्दिमामयाः ॥८०॥

ममारी लावाका प्रातिपूर्वक प्रदान करती है । सूक्त और अमूक्त जितन भा कम है, उनमें माय क्षमरुका है ॥ ६४ ॥ यह सीता आपका कन्या है । इस नाते आप मरा सात है । आपने विवाहके समय कन्यादान नहीं किया था, तो अब कर दीजिए ॥ ६५ ॥ हे देवि ! आप मरपर प्रसन्न हो जायें । नहीं तो मैं आपको ऊपर धुड़ ही जाऊंगा । श्रीरामदास कहते हैं—रामके इस तरह शर्मना करनेपर भी पृथ्वीने उनको एक न सुना । क्योंकि लवणावस हा नारिकेली हस्त काठिन हुआ करता है । सीता भी देखीं पृथ्वीतलम समाती जा रहा थी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ अनन्तर करनवर भा जब रामने देखा कि पृथ्वी मेरी बातोंपर कुछ ध्यान नहीं दे रहा है तो मार शत्रुक उनका अंग्रि लाल हा गयी और लक्ष्मणसे बोला—॥ ६८ ॥ लक्ष्मण ! मरा वसुध ता उठा लाया, मे पृथ्वीका उसका दुताग्रहण कर दे हूँ । मेरे छूरे पदम तीक्ष्ण आपसे डरकर यह सीताको लौटा देग । इस से मारना नहीं चाहता, चाहता हूँ केवल साक्षात् स्पर्श हाथोंसे लौटना । तदनुसार तुरन्त लक्ष्मण धनुष उठा लाये । रामने उस लेकर राधा ठाक किया और बाण चढ़ाया । उस समय आरास आप चलन लगा, सज्जम प्रलम्बदसकी लहर उठने लगी, सारे दूट-दूटकर गिरने लगे और चारों दिशाएँ धूलसे आन्धरादित हो गयी । ऐसी अवस्थासे ‘जाहि जाहि’ करती हुई पृथ्वी काँपने लगी और उरने लपने हाथों साताका उठाकर रामकी गोदमें बिछा दिया । इसके बाद पृथ्वीने सिर मुकाकर रामके चरणोंको बन्दना की ॥ ६९-७० ॥ उस समय स्वर्गमें दक्षताक्षोन इन्द्राक्ष वनर्षी और राव गया सीतापर पुलोकी वर्षा की ॥ ७१ ॥ इसके बाद जब रामने देखा कि पृथ्वी मेरे चरणम मुकी हुई बिनती कर रही है तो आपना कंस शान्त कर लिया तथा वसुध-बाणका पारत्याद करके अपने दलो हाथोंके पृथ्वीको उठाया । इसके अनन्तर पृथ्वीने फिर भगवान्‌को दाद-बाद नमस्कार किया, शर्मना की और सीता तथा वह पुष्पगन्धर्व सिंहासन रामको समर्पण कर दिया । फिर सीताका स्तुति की । चाहाने भी पृथ्वीकी विधिवत् पूजा का । तत्पश्चात् रामकी आज्ञा लेकर क्षण भरके भीतर ही पृथ्वी मन्त्रधान हो गयी । उस समय राजाके बैठे हुए लोगोंने सीताका पुनर्जन्म खयला ॥ ७२-७३ ॥ सब लोगोंने सीताकी विधिवत् पूजा की और बक-भक्तिकार करके प्रणाम किया । तब रामने अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ७४ ॥ माँति-माँतिके रबीज हाथे दिये,

सीतायाः स्रवथो यत्र जाह्नव्या दक्षिणे तटे । सीताकुण्डमिति ख्यातं तत्र त्रीणि वभूव ॥ ८१ ॥  
 पातालस्यै जलं पुण्यं सन्ततमनलोपमम् । दर्शनेऽपि नहीरौ भीमोष्णश्चाप्यङ्गणान् ॥ ८२ ॥  
 तत्र जानकीदण्डं स्मरणञ्जयनाशनम् । चतुर्मुखपुण्ड्रपर्वं स्त्रिभिः सेव्यं तदा मुनिः ॥ ८३ ॥  
 ततः सीतायुतो रामः पुत्रश्च महतो मुदा । वस्त्रहस्तपुष्पाभ्यां स्नानं क्षयभृत्क्षरम् ॥ ८४ ॥  
 चक्र कथितानि हि पूर्वञ्च सविश्रमम् । अथ पञ्चशतं पूजयत् कृत्वा स्तूपपः ॥ ८५ ॥  
 जानक्यादिर्महत्कारान् लब्ध्वय विधिनाऽकरोत् । चकार जनादातृनि दत्तान् सपुण्ड्रं भक्तितः ॥ ८६ ॥  
 ततो मुनीषां पञ्च पूजयामास पथिमान् । जनकं च मुनेर्षां च पूजयामास राघवः ॥ ८७ ॥  
 विमर्ज्य शरीरमर्थान् कण्डिवज्रो ये क्षमामताः । द्विजाद्यास्तान् च नार्पेत् क्षेमयामागुणदरात् ॥ ८८ ॥  
 ततो त्रिसुखं विप्रांश्च पदिवैः सह राघवः । इमाराम्या सीताया च बन्धुभिश्चागमन्पुगेम् ॥ ८९ ॥  
 नीराजितः पुण्ड्रीभिर्वाग्म्यो रघून्मथः । भीमया जनयाभ्यां च ययौ निजगृहे प्रति ॥ ९० ॥  
 तदा मदीन्मवश्यामीदयोऽप्यायां समन्वतः । विशङ्कालेन वैदद्या दर्शनं च जनैः कृतम् ॥ ९१ ॥  
 ततो नृपादिकान् पूज्य विमर्ज्य रघुदहः । जनकं च मुनेर्षां च ददायासी निजं पुंगवम् ॥ ९२ ॥  
 ततः सीतायुतो रामः पुत्राभ्यां बन्धुभिः सह । पूर्वञ्च सुप्तं रेव विशङ्कालं रघुदहः ॥ ९३ ॥  
 रामेन सीतया सार्धं सहस्राणि त्रयोदश । वपाण्यत्र कृतं राज्यं कस्मिन्कल्पे द्विजात्मनः ॥ ९४ ॥  
 एकादशं सहस्राणि वप्सुणां महान्नि च । तथैकादशं वर्षाणि माया एकादशं तु ॥ ९५ ॥  
 दिनान्श्चादर्शयत् रामेन सीतया सह । त्रयोऽप्यायां कृतं राज्यं कस्मिन्कल्पे द्विजात्मनः ॥ ९६ ॥  
 एकादशं सहस्राणि चैकादशं दिनानि च । समदोषवर्षापाका रामेऽप्युत् कल्पभेदेन ॥ ९७ ॥  
 दशवर्षद्वयाणि दशवर्षशतानि च । गयणं सीतया राज्यं कस्मिन्कल्पे कृतं द्विज ॥ ९८ ॥

इति श्रीमत्कोटिशम्भरित्तर्गने श्रीमदाश्वत्थामादये श्रीरामायणे

अन्तर्गतं जानकीग्रहणं नामाष्टमं सर्गः ॥ ८ ॥

वेदशास्त्रोंमें नृसंहिता और बन्द जनों तथा मागवानों विशेष उपास्य स्तुति का ॥ ८० ॥ जानकीके रहिणी तटपर जहाँ सीताके बाध ली थी, वहाँ सीताकुण्डक नामसे एक विशाल तीर्थ बन गया ॥ ८१ ॥ सीताके उष्ण उन्मत्तास निकलनेके कारण आज भी वहाँ जलिके सरस तरता हुआ पवित्र जल निकलता रहता है ॥ ८२ ॥ इस जानकीकुण्डके स्मरणमात्रसे सब भय नष्ट हो जान है । अपने पतिकी आनुर्मुखा लिए विधियोंको इरामे स्नान करना चाहिये ॥ ८३ ॥ इसके बाद सीता तथा अपने पुत्राक साथ रामने यज्ञलका अवश्य स्नान किया । यह अवसुष स्नान भी पूर्वकृत स्नानके सरस ही । जन्महुक साथ हुआ । इस प्रकार रामने सो यज्ञ पूरा करके त्रिषुर्वर्क लवका जलकर्मोद संस्कार किया । सनेक प्रकारके दान दिये और देवताओंका विधिवत् पूजन किया । इसके अनन्तर यज्ञमें भाग हुए समस्त ऋषियों तथा राजाओंकी पूजा की और जनक तथा मुनेषाका भी पूजन किया । इसके बाद ऋषियों तथा कन्दियोंका चर्चार्चसे सन्तुष्ट करके विदा किया ॥ ८४-८८ ॥ साथ ही जाह्नवी तथा रेवाओंको भी विदा किया और सोया, गेहूँ तथा बाण्डूकाओंके साथ राम जानकी क्षयाध्यापुगका गये ॥ ८९ ॥ अयोध्यामें उठे ही राम हाथ पर सवार होकर पहुँचे, तथा ही नगरका मिश्रण उनकी ओरती उतारी और सब लोग अपने महलोमें गये । उस समय अयोध्यामें चारों ओर महान् उत्सव हो रहा था । बहुत दिनोंसे विपुल सौताका ज्योतिर दर्शन पाया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ कई दिनों बाद रामने जनक, दूमरा तथा अन्य राजाओंका अपने-अपने नगर जानेकी आज्ञा दी ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर फिर बहनेके समान रामबन्धुजी सीता तथा पुत्रोंके साथ जानक्युर्वक अयोध्या में रहने लगे ॥ ९३ ॥ किसी कल्पमें रामने सीताके साथ लगभग हजार वर्ष तक राज्य किया, किन्तु कल्पमें लगभग हजार वर्ष तथा किसी कल्पमें ग्यारह हजार वर्ष ग्यारह बार और ग्यारह दिनतक राज्य किया ॥ ९४-९७ ॥ किसी कल्पमें रामने दस हजार वर्ष सो वर्ष तक राज्य किया है ॥ ९८ ॥ इति श्रीशम्भुवाटिरामचरितार्णव श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः पूज्य श्रीरामायणसहिते अन्तर्गतं अष्टमं सर्गः ॥ ८ ॥

## नवमः सर्गः

( रामादिके व लक्ष्मीका उपनयन-संस्कार ।

श्रीरामदास उवाच

अधोभिन्ना मांडवी च भुतकीर्तिः मर्हव ताः यधुवृत्तगान्कचिदनर्चन्त्यो महोदराः ॥ १ ॥  
 नामां चकार मीमासा कौतुकानि च मादयत् तामां पुमवन्तादीनि विविधानि स्थूयमः ॥ २ ॥  
 आहूय पन्था वनकं काश्याम स चन्धुभिः दौष्टान् पूग्मातामुक्तामां पौंसुहृन्मियः ॥ ३ ॥  
 तायां सर्वान् समुत्सहान्तेव कृन्ता स्थूयमः वन्दलसार्धुषाभिन्नेषणाय ताः सुवृक्ष ॥ ४ ॥  
 अधोभिन्ना मा तनय सुपुत्र परमोदयम् । ततः सा मण्डरी पुत्र सुपुत्रे परमे दिने ॥ ५ ॥  
 वता सा भुतकीर्तिश्च सुपुत्रे यमकी कृता दत्तां रेकोमिलाया द्वितीयस्तनयोऽभवत् ॥ ६ ॥  
 तथाऽवस्थु मांडव्याः पुत्रः कान्तागन्दर्वत् तत्राहं दिगम्बरात्त कन्तागमः पुत्रक पुत्रक ॥ ७ ॥  
 चकार गुरुषु विप्रमोन्मादं यत् ॥ ८ ॥ तदन्तर्गतामदो जगत्त्रिदशके कनिष्ठकः ॥ ८ ॥  
 मांडव्याः पुत्रं ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ॥ ९ ॥  
 एवं कृत्वा च लमा ल सुकृपा विप्रश्च ॥ १० ॥ ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ॥ १० ॥  
 तेऽर्चयन् मया प्रोक्ताः पलेपेगां ॥ ११ ॥ ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ज्येष्ठः ॥ ११ ॥  
 सारयामागुर्वायानि चरुः पुष्पवृष्टिनिः । म वृक्षैः पितृभिर्वृक्षान् बालकान् सूर्यसन्निभान् ॥ १२ ॥  
 राजद्वारि महानागादुन्मयश्च नृपज्ञाता । निनेर्द्वं वजाया नि ननु श्राप्यरोमणाः ॥ १३ ॥  
 वादयन्ति स्म नृगणि तद्वृत्तिन्दिमागभाः । नगरी शोभयामासुः पनाकाध्वजकोरर्णः ॥ १४ ॥  
 सुहृदः पारिवः सर्वे रामादीनां च पूजनम् । सर्वे गभरणाश्च चक्रिरे ते पृथक् पृथक् ॥ १५ ॥  
 ददुर्दानानि विप्रेभ्यो रामायां चैव च ते । वाद्यान् भाजयायामुः ध्यातानि चकुरादयम् ॥ १६ ॥

श्रीरामदास बाले—कुछ काल बाद उमिला, माण्डवी तथा भुतकीर्तिने साथ साथ गर्भ धारण किया ॥ १ ॥  
 सोत ने इस समयपर बड़ा स्वागतार्थी की ओर र मन विधिवतक पुनवनादि संस्कार किये ॥ २ ॥ इस संस्कारके  
 समय जनक तथा भूमिकाको भी रामने बुलवा दिया और इन्हीके हाथ यह कार्य सम्पन्न हुआ । पुरवासिनी  
 मित्रों ने उमिला, सीता तथा इण्डा हुई, सब पूर्ण किया ॥ ३ ॥ रामने इस प्रकार उत्सव करके अनेक तरहके  
 भोजन और दायाएँ दी ॥ ४ ॥ इसका बाद समय पूरा होनेपर उमिलान एक परम तेजस्वी पुत्र उत्पन्न  
 किया और तब वह मित्रोंके साथ भी एक पुत्रम्पत् उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर भुतकीर्तिक एक साथ रो  
 गत उत्पन्न हुए । कुछ दिनों बाद उमिलाने एक पुत्रा पुत्र और उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ इसी प्रकार कलालारमें  
 मण्डवी के भी एक और पुत्र हुआ । रामने अपने कृत्तरह रामके साथ उन पुत्रोंका जातकवर्मादि संस्कार  
 किया । तबमलक ज्येष्ठ पुत्रका नाम अक्षय और ज्येष्ठ बेटका नाम चित्रवत्तु पड़ा ॥ ७ ॥ ८ ॥  
 माण्डवीके ज्येष्ठ पुत्रका नाम पुत्रर तथा वनिष्का तप्त नाम पड़ा । इसी तरह भुतकीर्तिके ज्येष्ठ पुत्रका  
 नाम सुवाह तथा कनिष्ठ बेटका नाम सुपुत्रे पड़ा ॥ ९ ॥ १० ॥ गुह रसिष्ठने विविधवर्क सबका नामकरणदि  
 संस्कार किया । हे शिष्य । गृहोंपर मैंने कुछ बर्तन एक ही एक पुत्रका नाम बतलाया है । इनके सिवाय भी  
 बहुतसे पुत्र हुए । प्रत्येक पुत्रके जन्मसमयपर देखतागन हर्षपूर्वक अपने बाजे वज्र से और उनपर तथा उनके  
 मला-पितरपर पुष्पांकी वृष्टि किया करत थे । रामचन्द्रजीके आज्ञानुसार राजद्वारपर बड़े-बड़े उत्सव रचाये  
 गये, नये-नये बाजे बजते और वेग्याएँ कूद करता थीं । ज्योत्स्न तथा सुहृद गण्य आ-आकर विविध  
 प्रकारको भुतिर्वा किया करते थे । पताका-ध्वजा तथा तोरणदिनोंसे अधोभ्या नवरीका शृङ्गार किया बहता  
 था । रामके मित्र हमस्त राजे जनक प्रकारके वस्त्राभूषणोंको देसकर जनका पूजन करत थे ॥ ११-१५ ॥  
 राम-लक्ष्मण भादि चारों भ्राता भी शाहूणोंको धार देते उन्हें भोजन कराते एवं नान्दीभात्यादि हस्तोंको



ललाटकदिवसोभिसिखिचिस्तीर्णो यथा समौ । सर्वनेत्रो मर्देत्रयं तथा प्राप्स्यति नान्यथा ॥३३॥  
 अस्त्रिर्धा तर्जनी प्राप्य तथा रेखाऽरुव दृश्यते, कनिष्ठपुनर्निर्गता दीर्घाग्रिष्ठं यथा भवेत् ॥३४॥  
 कमठपृष्ठकठिनावकर्मकणौ कर्णौ । तन्मर्देन गिरीरुक्थ पादौ चाप्यनि कोवलयौ ॥३५॥  
 पादौ समामर्शौ रक्तौ समौ सूक्ष्मौ सुशोभनौ । ममगुणैः स्वदेन स्निग्धार्चदशमूलकौ ॥३६॥  
 स्वप्नपामिः कररेखाभिश्चारकभिः सदा सूर्या । निरुक्तं स्वदेन राजमात्रो भविष्यति ॥३७॥  
 उन्मत्तावनमुन्मत्तकिङ्कनाभिरस्थामि चतुर्णां दाक्षिण्यं तन्ममम् । महर्देत्रयं सूचकम् ॥३८॥  
 धारिका मूत्रके रस्य दक्षिणारांतनो यदि । यद्यश्च मानमधुनोर्पदि शीघ्रं तदा सृपः ॥३९॥  
 विस्तीर्णो बाधिलौ स्निग्धौ भुजावस्थ सुखोचितौ । वामावर्तौ सप्रलंभौ भुजौ भूरक्षगोचितौ ॥४०॥  
 श्रीरत्नस्रग्धचक्रान्वमस्थकोदंडदंडभृन् । तथाऽरुव कणा रेखा यथा स्तरास्त्रिदिवम्पतिः ॥४१॥  
 द्वात्रिंशदशनधायं वत्संबुद्धिगेषरः । कोचदुर्मुहंमाभ्रम्बरः सर्वेभ्यगधिकः ॥४२॥  
 मधुपिगलनेत्रोऽपी नैनं श्रीमन्यत्रनि कचिन् । पंचरेखा ललाटध्वु तथा सिद्धोदगः शुभः ॥४३॥  
 ऊर्ध्वरेखांकितपक्षो निःशमन्यचगन्धवान् । आन्तरुपाभिः सुनमो महान्धनवानपम् ॥४४॥  
 एव कुशं निरीक्ष्याथ सर्वान् रष्ट्रा क्रमेण सः । ललाटानां मन्त्रिहानि पूर्ववन्प्राह रथपम् ॥४५॥  
 ततः प्रीतमना रामः पूजयाम स तं गुरुम् । वर्णगमर्णश्च ययौ हर्षांतनो गृहम् ॥४६॥  
 एतस्मिन्तरे सीता भूमिदण्डयामने । मन्त्रिणा चामर्दित्पदोर्ध्वयोमिः परिर्वीजिता ॥४७॥  
 सखीमि सेविता रम्या धृताभोकोपवर्णा । सुतु म्व निगमर्तौ युग्मं चन्द्रनिभं वरम् ॥४८॥

हाथ, पसलियाँ और मुँह में साँ जान दगा है । नाथ, नाथ । एक हाता है ॥३२॥ मस्तक, कमर और छाती  
 में होन विस्तीर्ण हैं, जो सब दिश में समान रूप से सन्दर्भ नहीं है । ३३ ॥ हाथकी एक  
 रेखा ठीक तर्जनी पर्यन्त चला गया है । नाथ, नाथ । ३४ ॥ कनिष्ठकी पीठके समान कड़े-कड़े इसको  
 हाथ राजप्राप्तिकी सूचना दे रहा है । इसके कामल, यशस्वर, लाल, पतले, सुन्दर और बराबर एंडीवाले पैर  
 को इसके राजप्राप्तिकी सूचना दे रहा है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ पादौ और ललाट रेखाएँ यह बतलाती हैं कि यह  
 सदा मन्त्री रहेगा । इसका निगमन और निगम है । इससे यह जाना जाता है कि यह बच्चा भविष्यमें  
 राजाश्रीका भी राजा होगा । इसका निगमन तथा धर्म सज्जन है और नाथ गहरी तथा सक्षिणावत हाकर  
 लाल रेखाकी है । ये सब भी महान् ऐश्वर्यकी सूचना दे रहा है । मन्त्रिणा चामर्दित्पदोर्ध्वयोमिः कहा गया है कि मन्त्रिणागके समय  
 जिसके निगमन सूत्रको केवल एक बार दक्षिणार्धतः दक्षिण और उत्तर की ओर मड़ली गया साहूके समान गन्ध  
 निगमने ही यह मनुष्य राजा होता है ॥ ३७-३९ ॥ ४० ॥ बड़ी मटा और चिकनी भुजाएँ मुख भोगने लायक  
 हैं । ललाट और वामावर्त हाइड्रन पदों की रेखा । ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥  
 हाथ तथा पण्ड आदि के आकारको देखी रेखाएँ दक्षिणार्धतः लायक हैं । जिससे जाना जाता है कि यह देव-  
 ताओंका भी राजा होगा ॥ ४१ ॥ इसके मुखमें पूरा उन्मत्त रूप है । हाइड्रन समान सुन्दर इसकी शोभा है ।  
 शीघ्र यही जगाहा, हम तथा मधुके समान गन्ध है । इसका स्वर है । इससे जान पड़ता है कि यह संसारके  
 समस्त राजाओंसे बहाकर होगा ॥ ४२ ॥ मधु ( शब्द ) के समान निगल वर्ण इसको आने हैं, इसके  
 ललाटमें पाँच रेखाएँ हैं, सिंहके समान उदर है, इसके पैरोंकी रेखाएँ उदरकी मरी है, इसके श्वासस कमलकी  
 गन्ध बाड़ी है और सुन्दर-सी नासिका है । इन सब लक्षणोंसे जाना जाता है कि यह ब्रह्माचार्य मन्त्रिसम्पन्न  
 बालक है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इस प्रकार कुशके लक्षणोंका बतलाकर बसिष्ठने बाकी लव आदि बालकोंके भी लक्षण  
 बतलाये । सुवन्तार रामने अनेक प्रकारके बन्धों और आधुपणोंसे बसिष्ठकी पूजा की और उनकी आज्ञा लेकर  
 रामचन्द्रजी अपने महलमें चले गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बड़ी साजाजी पुरीके दिने हुए सुन्दर सिंहासनपर बैठी थी ।  
 किन्नरी ही शायियाँ चँबर पक्षे आदि सब रही थीं । बहुत सी सखियाँ सरह सरहका सेवानें लगी थीं ।  
 उस समय सीताजी भी वहीं सकिया लगाकर बैठी हुई दर्पणमें अपना मुख देखा रही थीं । अब उन्होंने सुना कि

रामस्यागमनं श्रुत्वा सचचालासुनाम्बवात् । ततो ददर्श श्रीरामं बालकैः परिवेष्टितम् ॥४९॥  
 स्वकन्यां पुष्पकेतुं च दधानमनरं शिशुम् । तथैव दक्षिणे हस्ते दधानं चागदं शुभम् ॥५०॥  
 कुशं लवं पुरस्कृत्य सुभाषां तं जनैः सुनैः । तन्पृष्ठे सा ददर्शाथ लक्ष्मणं बालकान्वितम् ॥५१॥  
 तर्धं कन्यां पुष्करं च दधानं दक्षिणे करे । तन्पृष्ठे मग्नं सीता ददर्श हृदितामना ॥५२॥  
 चित्रकेतुं शिशुं कन्यां दधानं लक्ष्मणमग्नितम् । तथैव दक्षिणे हस्ते सुबाहुं चन्द्रजेषणम् ॥५३॥  
 तन्पृष्ठे सा ददर्शाथ सङ्गुप्तं जनकान्मजा । रामश्चापि विध्वंसं ममापातं सुनैः सुनैः ॥५४॥  
 एवं सा राघवं दृष्ट्वा सीता प्रपुञ्जगाम तम् । क्षिप्रन्मञ्जीरञ्चना पौतकीरोषधारिणी ॥५५॥  
 कराम्बां पुरतो यातं लवं धृत्वा चुतुं च सा । निधाय तं लवं कन्यां धृत्वा हस्तेन तं कृपम् ॥५६॥  
 ययौ सुनैः सा रामेभ्य चदनी स्वस्थलं पुनः । सतीर्धर्वेहिना मीमांसा रजयामास राघवम् ॥५७॥  
 अथ रामोऽपि भीतायाः स्थित्वा मिहामनोपरि । अक्रुषोः पुनश्चापि बालकान्मग्निधारां च सः ॥५८॥  
 सीतायै दर्शयन् प्रीत्या लातयामास सादरम् । सीतायै राघवः प्राह ममापां गुरुणा पुरा ॥५९॥  
 यान्पुक्तानि सुचिह्नानि शिशूनां तानि चिह्नान् । धृत्वा राममुवाचानि माता तावत् परं ययौ ॥६०॥  
 राघवः प्रह्वं वैदेहोर्मिलापांवाजिनम् । सीतेऽङ्गदं चित्रकेतुं लक्ष्मणाके निवेशय ॥६१॥  
 तन्नामरत्नं धृत्वा सीता धीमं शिशू ययौ । तावदुन्वाय सीमिविलज्जया संतुमुद्यतः ॥६२॥  
 तं मन्तुकामरामोऽपि दृष्ट्वा तौ मादृर्वा तथा । श्रुतकंति कजनयमञ्जवाऽचादयत्तदा ॥६३॥  
 ताम्बां धृतोऽथ सीमित्रिः स्मितस्माभ्यामुपाविशत् । तावत्तदक्रुषोः सीता तन्पुत्री सन्त्यवेशयत् ॥६४॥  
 तदुच्च मग्नस्पर्शके निवेशय तद्यपुष्करी । छत्रपुष्पाके सुबाहुं च पुष्पकेतुं न्यवेशयत् ॥६५॥  
 ततः सीता पुनः प्राह स्मिताभ्यः न रघूदहः । राउशतूर्मिलायाश्च स्वैस्व स्वाभिनयादरात् ॥६६॥

राम आ रहे हैं तो आसनसे उठ खड़ी हुई । उभरसे राम भी बालकोंके साथ सीताके समक्ष आगये । ४९-५९ ।  
 उस समय वे अपनी बायीं बाँधने ध्याननु तथा बाहिनी गोदमें लक्ष्मणको लिये हुए च और सब कुश बाने-बाने चल  
 रहे थे । उनके पीछे बालकोंको लिये लक्ष्मणको भी आने हुए सीताने देखा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लक्ष्मण सबको गोदमें  
 लिये थे और पुष्करका मग्न दर्शने हाथकी उँगली पकड़ाये चल आ रहे थे । उनके बाद सीताने भरतको आते देखा  
 ॥ ५२ ॥ व भी चित्रकेतु नामक बच्चको बायीं गोदमें लिये और दाहिना बाँधमें कन्यको नाई बाँधोवन्ते सुबाहु  
 नामक बेटको लिये हुए थे । ५३ ॥ उनके पीछे सीताने सङ्गुप्तको देखा । वे रामजाके शस्त्रोंको लिये धीरे-धीरे  
 म्हुँकी ओर आ रहे थे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार उन्हें आते देखकर सीता रामका आग बढ़ी । कमरकी कसबनी  
 और शूद्रर्षटिका अपनी कमरुतको धारि कर रही थी और गरीब रजमों सीताम्बर सुशोभित हो रहा था  
 ॥ ५५ ॥ उन्होंने रामके पास पहुँचते ही लवका मुझ पुत्र । फिर गाँधमें उठा लिया और कनको दाहिने हाथ-  
 की उँगली पकड़ाकर रामसे बात करना हुई चली । उस समय भी च, रों आगसे कितने ही सखियाँ घेरकर सीता  
 छपा रामको प्रसन्न करतो हुई चल रही थीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजी सीताके मिहासनपर  
 बैठ गये और बच्चोंको गाँधमें लेकर खेलाने लगे । कुछ देर बाद रामचन्द्रजीने सीताको बहिष्ठले मुने हुए  
 बालकोंके मुख लक्षण कह मुनाये । जिन्हें सुनकर सीता बहुत प्रसन्न हुई । ५८-६० । उमिखा सीताके ऊपर  
 पला मल रही थीं । इसी समय रामने सीतासे कहा कि अङ्गद और चित्रकेतुको मे आकर लक्ष्मणकी गोदमें  
 बिठा दो ॥ ६१ ॥ रामकी यह बात सुनकर सीता मटपट बच्चोंके पास पहुँची और उन्हें लक्ष्मणकी गोदमें  
 बिठाना ही चाहती थी कि लक्ष्मण राजाके मारे चलनेको तैयार हो गये ॥ ६२ ॥ लक्ष्मणको आते देखकर  
 रामने बाँधोये संकट कर दिया, जिससे धृतिकीर्ति और माण्डवीने लक्ष्मणको पकड़ लिया । तभी सीताने  
 चल दोनों बच्चोंको लक्ष्मणकी गोदमें बिठा दिया । ६३ ॥ ६४ ॥ इसी प्रकार भरतकी गोदमें सब और पुष्कर  
 तथा सङ्गुप्तकी गोदमें सुबाहु और पुष्पकेतुकी बिठलवाया ॥ ६५ ॥ इसके बाद मुस्कराह हुए रामचन्द्रने

सतस्ता दृष्टुः सर्वाः यन्मभिलक्षिता धृताः । व्यजनैर्वाजपयासुः स्वं स्व कांठ सुनञ्जिताः ॥६७॥  
 एवं नानाकौतुकानि भोजनामनकर्मसु । कारयामास वैदेह्य बंध्यादीनां रघूत्तमः ॥६८॥  
 अथ रामो वसिष्ठ म एकदा प्रापयमग्रवीम् । कुशस्थां लवस्यापि वतवन्धो विधीयताम् ॥६९॥  
 तथेति गुरुणा प्रोक्तस्ततो रामः शुभे दिने । गणकान् स समाहूय मंत्रयामास सादरम् ॥७०॥  
 कुशाय पंचमं वर्षं क्वचिन्न्यूनं लवाय च । ज्ञात्वा तै वणकाः सर्वे गुरुमुकादिकं बलम् ॥७१॥  
 दृष्ट्वा पंचांगपट्टेषु राशयं राक्षसमग्रम् । मासपस्याहमे प्रोक्तो द्वादशे वसिष्ठस्य च ॥७२॥  
 वैश्यस्य षोडशे वर्षे वतवंधो मुनीश्वरैः । जन्मात् पट्टे तथा गर्भान्मममेकमेव रूपस्य च ॥७३॥  
 वतवंधो त्रिधातव्या यन्नतश्च वनाधिपः । मत्त्वर्चमकामस्य कार्यो विप्रस्य वचमे ॥७४॥  
 रातो बलधितः षष्ठे वैश्यस्यार्थाधिपः ॥७५॥ विद्वद्भिषोपमपनमेव शास्त्रेषु निर्णयः ॥७६॥  
 जतो गर्भान्च षष्ठेऽहरे पुत्रयोश्चैव रघूत्तम । मुखं कुरुपनयनं गृह्यते ऋणु सादरम् ॥७७॥  
 अथारभ्य पंचदशदिने दशं कुशाय ॥७८॥ पश्चात्तरेण त श्रुत्वा मुहूर्तं रघुनंदनः ॥७९॥  
 गणकान् धनराशयैः पूज्य लक्ष्मणमग्रवीम् । आकांक्षीया राजानाः सुहृदश्च मुनीश्वराः ॥८०॥  
 सतिपुराः सर्वराशे स्तम्भज्ञानपदैः गृह । गृह्णीयाद्योध्येय वसिष्ठाः सप्त सादरम् ॥८१॥  
 धोषनीयाश्च तथा मांघममूहेषु सुधाः शुभाः । दद्याच्चित्राणि लेख्यानि प्रासादेषु समंततः ॥८२॥  
 देशालयेषु सर्वेषु सुधा देवा मनोरमा । लेखनीयानि चित्राणि स्यात्पर्वता वलयः पृथक् ॥८३॥  
 वधनीयाः पलाकश्च रोषणीया वरजा अरि । मयद्वयस्तोरणानि वधनीयानि लक्ष्मण ॥८४॥

सीतासे कहा—अब उमिला, अतकोति तथा माण्डवी अपने-अपने पति-योको पंखा झुलें ॥ ६६ ॥ इस बातको सुनकर वे रिजली करनेके लिये बढ़ते भाग लगी हुई । किन्तु ससियी चौककर उन्हें पकड़ लामों और अन्तमें उन्हें रामके आज्ञा-नुसार अपने-अपने पति-गेपर पंखा झूलन पड़े ॥ ६७ ॥ इस तरह भोजन, भासन तथा भासनके समय गणचन्द्रजों कोना तथा भ्राता-जोंके साथ विविध प्रकारके कौतुक किया करते थे । ६८ ॥ कुछ दिन के उपर एक दिन वसिष्ठसे रामने कहा—अब कुश और लवका वतवन्ध ( यज्ञोपवीत-धरकार ) कर दालना चाहिये ॥ ६९ ॥ वसिष्ठने कहा—अधश्री बात है । एक पवित्र दिवसको रामने बहुतसे ज्योतिषियोंको बुलाकर हल्लाह की ॥ ७० ॥ जब ज्योतिषियोंका यह बात मानुष हुई कि कुशका पौषर्ष वर्ष चल रहा है और लवका पुष्य वर्ष है । सब उन्होंने गुरु कुशदिका बलादस दला ॥ ७१ ॥ पंचांगमें सब देख-सुनकर उन्होंने रामसे कहा—आहुणका उपनयन आठवें वर्षमें, सत्रियका बारहवें वर्षमें और वैश्यका सोलहवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार होना चाहिये । यह बत-बत कथि-योंने कहा है । अपना वस्त्र-वस्त्र-वस्त्रकी इच्छा रखनेवासी विप्र-को गर्भसे पौषर्ष वर्षमें, वसुधृष्टिकी कामलावासे राजाको छठ वर्षमें एवं वनवृष्टिकी इच्छा रखनेवासी वीरको ब.ठवें वर्षमें ही उपनयन-सांकार करना उचित है । यह सास्त्रोका निर्णय है ॥ ७२-७३ ॥ अतएव हे रघू-नन्दन ! आपके बच्चोंका गर्भसे लेकर यह छटां वर्ष चल रहा है । इनलिए इस समय इनका कतबन्ध करना अतिव्यय आवश्यक है । अब बच्चोंके वतवन्धके लिए सुन्दर गृह-वस्त्राला हैं, सो मुनि ॥ ७४ ॥ आपसे पन्द्रहवें दिवस कुशके यज्ञोपवीतका पवित्र मुहूर्त मिलता है । इस प्रकार एक पक्षके बाद यज्ञोपवीतका मुहूर्त सुनकर राम-चन्द्रजोंने अनेक प्रकारके वस्त्र-वस्त्रसे उन बच्चोंका पूजा की और लक्ष्मणसे कहा कि समस्त राजाओं, विप्रों तथा मुंशियोंके पास विप्र-जगत् भेजकर कहना दो कि सब लोग अपनी रिज्यो, पुरवांसियों तथा देशवासियोंके साथ इस उपनयन-संस्कार के उत्सवमें मेरे यहाँ पधारें । इस अवधि-रा नगरीका अच्छी तरह तयवजो । इसी आस-व-स्की हातो साइयोकी साफ करवा दो ॥ ७५-७६ ॥ महलोंको घनेसे पुतवा दो । बटारियों और कीचियोंपर नाना प्रकारके चित्र बनवाओ । अयोध्याके समस्त देवालयोंको घूनेसे पुतवाकर उनमें नाना प्रकारकी चित्रकारीयां करवाओ और तरह-तरहके पुजनका प्रबन्ध कर दो ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ चारों ओर पलाका

वेशः कार्या रुक्मस्यसौ बन्धनायाश्च यस्याः भु. र्गो. ॥ १८३ ॥  
 अन्येष्वपि यथायोग्यं यद्यजानामि लक्ष्मणः तन-कुम्भ- ॥ १८४ ॥  
 सद्रूपवचनं भुत्वा तथेत्युक्त्वा म. लक्ष्मणः । तथा चकार तन्मयं यथा गमेण शिशिरः ॥ १८५ ॥  
 ततो मुहूर्ते श्रीरामः स्नानसम्पत्पूर्वकम् कृत्वा कुमारैर्देवा यभुक्तोभिश्च चभुक्तिः ॥ १८६ ॥  
 नानालंकारवस्त्राणि परिधाय तैः सह पुण्याहवचनं चक्रे गुरुं पूज्य ऋषीश्वरान् ॥ १८७ ॥  
 नांदाभाङ्गादिकं कृत्वा प्रतिष्ठां देवतस्य च । चकार मंगलैस्तूर्ध्वनारैः सीताममन्त्रितः ॥ १८८ ॥  
 ततो ययुः कोटिशस्ते पार्श्वे वाथ मुनीश्वरा । यमदोषां त्यक्त्वाथ यशोभाः मशहनाः ॥ १८९ ॥  
 तैः साऽयोध्या तदा व्यसमा विरेजे निवर्ततदा । ततो मुहूर्ते दिवसे वसिष्ठो माह्वर्णयुतः ॥ १९० ॥  
 रामस्याथ कुशस्याथ मध्ये घृता वर ददम् । उवाच पञ्चान्येव सुस्वर्गमभुगभूरैः ॥ १९१ ॥

प्यान्वा श्रीगणनायक विधियुतां शंसु विधि माधव

लक्ष्मीं शैल्युता विधेस्तु दयितामिदं सुगम्यान् ग्रहान् ।

पुण्यान्स्वावरनिम्नगाथ मुमुर्नाम्स्त्रयोऽंशुलभ्यादिकां

तान् मानग्मादरेण वटव भूषणमदा मंगलम् ॥ १९२ ॥

तदेव लग्नं सुदिन तदेव नागवत् चन्द्रवत् तदेव ।

विद्यामलं देववत् तदेव सीतापतेर्यन्मरण विषेयम् ॥ १९३ ॥

एति नानामंगलशरैस्तूर्ध्वोर्ध्वमनोहरैः । ओंकारचोर्ध्वः म गुरुर्मौचात्रः पट तदा ॥ १९४ ॥  
 रतस्तं राघवस्याङ्गे निवेश्य हवनादिकम् । विधिं कृत्वाऽथ कौषं न दण्डं चाथ कमण्डलुम् ॥ १९५ ॥  
 बहुध्वादी रुक्मजो मौजो वबन्ध्याजिनं तदा । ततः कुशाथ म गुरुर्गायत्रीमुपदिष्टवान् ॥ १९६ ॥  
 मण्यर्चयन्नदीनि स कुशाथोपदिष्टवान् । कुम्भोक्तवाधेना शीघ्रं कुर्यादाचमनं तथा ॥ १९७ ॥  
 सगवामो और जगह-जगहपर आज्ञा अ. र. रित करो । मुख्यका वंशिका बनवायो जायै ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ इनके सिवाय भी आज्ञा बात तुम्हें मानुम है और अन्न न बनवाय है, उन्हें भी ठीक कर देना ॥ १९४ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनो तो 'जो आज्ञा' ऐसा बतका । १९५ ॥ पन गय और लगने जेगा बनवाया था, बहु रत्न प्रवध कर दिया ॥ १९६ ॥ जिस दिन मुक्त था, उस रोज उबटन लगाकर उन कुम री तथा सीता और माद्योंके साथ रामने स्नान किया । नाना प्रकारके वस्त्र-अलंकारोंसे पहन । सोमत्र तथा निम्नजगमें भाव हुए ऋषियोंका पूजन करके पुण्यान्नान्न नान्द्राधाद, देवमाओंको स्थापना आदि कार्य पूर्यो और नगादेके बंगलम्ब निमादके साथ राम तथा सातान सम्पादित किये ॥ १९६-१९७ ॥ इनके बाद सानों हीपोंके करोड़ों राजे तथा ऋषि अपने-अपने परिवार एवं वाहनाके साथ वहाँ आ पहुच । उन लोगोंने सारी बयोंका भरकर बड़ी सुन्दर मानुष पड़ने लगे । पञ्चापर्वत मुहूर्तके अवसरपर बहुतसे शाहूणाके साथ बसिष्ठजी राम और कुशके मध्यमें एक सुन्दर कपड़ेका पर्दा बाँधकर बाँडे तथा स्पष्ट स्वप्ने मन्त्रोपाठ करने लगे ॥ १९८-१९९ ॥ उन मन्त्रोपाठ अलाकाका अर्थ इस प्रकार है- एषोत्त, सरस्वती, शिव, कदा, विष्णु, छत्ती, पार्वती, ब्रह्माणी, इन्द्र, समस्त देवता, सम्पूर्ण यह, पवित्र पर्वत तथा नविर्मा, अन्धे-अन्ध ऋषि, अपनी कुलदेवी तथा माता पिता इन सबको प्रणाम करके आगलोग प्रायश्चित्त करें कि जिस अन्धेका यज्ञोपवीत सत्कार होनेवाला है, उसका कल्याण हो ॥ १९९ ॥ वही लग्न लग्न है, वही दिन दिन है वही विद्याबल तथा देवबल है, जिसमें सातापात रामचन्द्रका स्मरण किया जाय ॥ १९९ ॥ इस तरह विविध प्रकारके मन्त्रोपाठ पाठ करके गुरु बसिष्ठने ओंकार चक्रके साथ पर्दा लाल दिया । तदनन्तर बसिष्ठन लव-कुशको रामकी मोदमें बिठाकर हुक्मादि विधियोंका सम्पन्न किया । इससे अनन्तर कुशका सुवन्दन तागास रती करवनी पहनायी, मृगचर्म बाँधा और कौपीन पहनायी । फिर उन्नयनपञ्चक दक्ष २ ६४२.२०० कुशको रागयनी मक्का उपवेश दिया । १९४-१९६ ॥ फिर ब्रह्मचर्यव्रतको नियम आदि बतलात हुए कहन लगे कि शास्त्रोंमें जो नियम बतलाये



इन्वान् जिह्वा विशोषाय कृत्वा मलविशोधनम् । स्नान्वाऽभ्युद्वैर्तर्मन्त्रैः प्राणानायम्य पत्नयः ॥९८॥  
 उपस्थानं रथेः कृत्वा संशययोरुभयोरपि । अग्निर्कार्यं ततः कृत्वा ब्राह्मणानभिवाचयेत् ॥९९॥  
 मृतममुकगोत्रोऽहमभिवाचय हन्यपि । धारयन्मेतन्नां दण्डापवीताजिनयैश्च ॥१००॥  
 अनियेषु चरेद्भैरवं ब्राह्मणेभ्यस्तृचये । वाचयतो गुर्वनुहातो भुञ्जीताश्रमकृन्मयन् ॥१०१॥  
 एकान्नं च मयवनीयाण्युद्धेऽभनीयाचथाऽऽरदि । द्विशा नैव भुञ्जीत दिवा कापि द्वि श्रोतमः ॥१०२॥  
 सायवातद्विजोऽर्ज्यायादग्निहोत्रविधानमिन् । यधु माय प्राणिर्दिवा मास्कगलोकर्तुं जले ॥१०३॥  
 क्षियं ययुषिरोऽन्तिष्ठे परिवादं विमर्जयेन् । यद्येष्टचेष्टो न भवेद्गुरोर्नयनगोचरे ॥१०४॥  
 न नाम परिगृह्णीयान्परोक्षेऽभ्यविशेषम् । गुह्यनिदा भवेद्यत्र पारवादस्तु यत्र च ॥१०५॥

भुक्ता पिपास स्थानस्य शान्त्यर्थं वा तनोऽभ्यतः ।

न माश्रा न पितुः स्वस्त्रा न स्वर्मेकान्तर्गतता ॥१०६॥

बलवर्तीन्द्रियाप्यत्र मोहवत्स्थितिकोविदान् । एवमादान्यनेकानि ब्रह्मचारित्रतानि हि ॥१०७॥  
 तर्मे गुरुभोषदिव्य रवी दानान्यनेकशः । भोजयामास तं माश्रा सह मानोत्सर्वस्तदा ॥१०८॥  
 कारयिन्वाऽथ पालाशपूजनं विधिपूर्वकम् । तेनापि कुशशब्देन देवकस्य विमर्जनम् ॥१०९॥  
 चकार राघवेर्गैव सीतया स गुरुस्तदा । ततो रामो नृपतिभिर्जनकेनापि पञ्चिजः ॥११०॥  
 चकार धनवस्त्रार्थस्तुष्टान् रिषान् नृपादिकान् । आर्चाङ्गालोत्पला रामस्तोषयाग्राम मादरम् ॥१११॥  
 एवं नानाभयुन्मार्हर्मायमेकं निनाय सः । रामा विमर्जयामास नतस्तान्पार्थिवदिकान् ॥११२॥  
 एवं कालांतराशमो ब्रतवधं लघस्य च । चकार पूर्ववद्वर्षत्समाहूय नृपादिकान् ॥११३॥

गये हैं, उनके अनुसार जोचसे निवृत्त होकर दाँत तथा जोष साफ कर लेनेके बाद बहुत देवत से सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्रोक्त पाठ करता हुआ स्नान करे । फिर आचमन-प्राणायामादि करके दोनों बायकी सूर्यका उपाख्यान करना चाहिये । इसमें पश्चात् हवन करके ब्राह्मणोंका प्रणाम करे ॥ ६७-९९ ॥ प्रणाम करते समय यह भी कहना जाय कि अनूक्त काशका अनूक्त अग्नि मैं आपको प्रणाम करता हूँ । उन्मकालिके मोक्षों अथवा जहाँ तक हो सक, सुपाय ब्राह्मणोंके यहाँसे निष्ठा प्रोत्साहन अपना जीविका बनाय । किसीकी निन्दा न करे तथा मोनसतकी पालन कर और जब गुह्यकी अनुमति मिल जाय, तभी भोजन करे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ सदा केवल एक ब्रह्मका भोजन करे । ध्यादाँत तथा किसी आपत्तिमय कार्यका आगेपर भी दिनमें दो बार भोजन न करे । ब्राह्मणको चाहिये कि केवल सूरह शास्त्र भोजन करे । यधु तथा पातका ब्राह्मण, ब्राह्मिहिसा, जलमें सूर्यक प्रतिबिम्बका दर्शन, स्त्रीप्रसंग, वासी और बूझा भोजन तथा दूसरेकी निन्दा इन कामोंको छोड़ दे । गुह्यके सामान भजन इत्यानुसार जो चाह, सो न कर दाल ॥ १०२-१०४ ॥ पराजमे भी बिना विशेषण लगाये गुह्यका नाम न ले । जहाँपर गुह्यकी निन्दा हो रही हो अथवा उनकी ठठोली की जाती हो, वहाँ काम टाँककर बैठे या दूरसे उठ जाय । अपनी माता, बुद्धा अथवा बहिनके साथ भी एकान्तमे न बैठे ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं । वे बहुत-बहुत पाण्डित्यको भी बातकी बातमें विचलित कर देता है । इस प्रकार गुह्यके बहुतसे उपाख्य ब्रतसम्बन्धी नियम बतलाये ॥ १०७ ॥ इसके अनन्तर अनेक तरहका दाँत दिये गये । भुक्ताको माताके साथ भोजन कराया गया ॥ १०८ ॥ एवं विधिपूर्वक पालाशका पूजन कराया । फिर कुश, सीता तथा रामके द्वारा ब्राह्मण देवताओंका पूजन कराया ॥ १०९ ॥ इसके बाद बहुतसे राजाओं तथा जनकजाने रामका पूजन किया । रामने बहुतसे जन-वर्षों द्वारा जाये हुए राजाओं तथा ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करके अयोध्यानिवासी ब्राह्मणोंसे लेकर ऊँचसे ऊँचे कुल उनके लोगोंको सादर प्रशंसा किया ॥ ११० ॥ १११ ॥ इस तरह माना प्रकारके उत्सवोंके साथ एक महानका समर्थ बिलाकर वेदमानीमें जाये हुए राजाओं और ब्राह्मणोंकी निन्दा किया ॥ ११२ ॥ कुछ समय बीतनेके बाद बड़ी तरह उत्सवोंके

ततस्तौ बालकौ रम्यौ वेदाध्ययनमुत्तमम् । चक्रतुर्गुरुमाचिष्ये विधिवद्द्विसप्तमौ ॥११४॥  
 एव तेषां तु बालानां सर्वेषां रघुनन्दनः । अत्रवधविधानानि यथाकाले महोत्सवैः ॥११५॥  
 चकार गुरुषां विधेः समाहूय नृपादिकां । विशेषेणैजपुत्राभ्यां चकार स महोत्सवैः ॥११६॥  
 अकरोदाधिकं किञ्चिन्न न्यूनमकरोद्विभुः । ततस्ते बालकाः सर्वे नम्रचर्यवते स्थिताः ॥११७॥  
 चक्रन्ते गुरुभान्निधौ वेदाध्ययनमुत्तमम् । अथ रामोऽपि वैदव्या बालकैः परिवारितः ॥११८॥  
 विरेजे स्कन्दगणपादिभिर्देव्या यथा छिवः । अथ ते बालकाः सर्वे कृत्वाऽध्ययनमुत्तमम् ॥११९॥  
 वेदादीनां गुरुमुत्ताल्लब्ध्या ज्ञानं गुरोस्त्वनतः । जगृह्मन्त्यानि वै कर्तुं सेनया गुरुमन्त्रिभिः ॥१२०॥  
 पृथिव्यां भरते स्रष्टे यानि तान्यानि तानि ते । कृत्वा समायतुः पञ्च मार्गैः स्वां नगर्गाश्वनैः ॥१२१॥

बालान्समागतान् श्रुत्वा शोभयिष्या निजं पुगीम् ।

अन्युज्जगाम सौमित्रिः पुष्कृत्याश्च वारजम् ॥१२२॥

ते दृष्ट्वा लक्ष्मण नेमुप्तेनानिमित्ता अपि । नानोन्मर्षययुर्बाला अयोध्याया गृहं गति ॥१२३॥  
 मार्गे मार्गे पुगसांभिः सौधस्थामिस्तु वपिनाः । वृष्टिभिः कुसुमार्शना दीपैर्नार्गाज्जिता अपि ॥१२४॥  
 ततस्ते बालकाः सर्वे सभायां रघुनन्दनम् । नेमुप्तेनानिमित्ताश्च ययुः सीतागृहं ततः ॥१२५॥  
 एतस्मिन्नन्तरे सीतोर्मिला सा बाह्वी यया । श्रुतकान्तिश्च वेगेन चक्रनीराजनं पृथक् ॥१२६॥  
 दम्पोदनधर्यदीपैः पकानैर्भर्तुलवाधितैः । सर्पैर्लवणमार्पणोयकुर्मैश्च सादरम् ॥१२७॥

ततस्ते बालकाः सर्वे नेमुः सीतां पृथक् पृथक् ।

ततो नेमुः स्वमानस्य पूर्वं नन्वा पितामहोः ॥१२८॥

ततस्ते बालकाः सर्वे ददुर्दानान्यनेकशः

ब्राह्मणान् भोजयामासुः कोटिशस्ते पृथक् पृथक् ॥१२९॥

साथ सब लालको बुलाकर लवका यज्ञोपवीतसंस्कार किया ॥ ११३ ॥ फिर वे दोनों बालक गृह वसिष्ठके पास विधिपूर्वक वेदाध्ययन करने लगे । इसी रीतिसे रामचन्द्रने रामयन्मण्यवर लक्ष्मण भरत आदिके बन्धु-का भी व्रतबन्ध-संस्कार कराया और अपने लड़कोंसे कहकर उत्सव-दानादि किये । उसमे किसी प्रकारकी स्थिरता नहीं हान दी । वे बच्चे भी संकृत होकर विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करने हुए गुरुके पास वेदाध्ययन करने लगे । यह सब हुआ जानके साथ साक्षा तथा पुत्रोंके साथ बैठे हुए रामचन्द्रजी पार्षतो, नणेश तथा स्वामिकांतिकेयक साथ बैठे । राजाके सहज सुन्दर लगते थे । इसके बाद सब उन बालकोंसे अच्छी तरह विद्याध्ययन कर लिया तो एक विंगाल सेना, गुरु तथा किनने हो मन्त्रियोंको साथ लेकर तीर्थयात्रा करनेको निजसे ॥ ११४-१२० ॥ पृथ्वीके भरतनरुद्धमे मिलने तीर्थ है, उत्र करके बीच महीनेमें वे सब ब लक अयोध्या वापस आ गये ॥ १२१ ॥ लक्ष्मणने जब सुना कि लवके तीर्थयात्रामे अयोध्या लौट आये है तो बहुतसे गार्जे-गार्जे तथा हाथी-गोरे साग लेकर अगवानी करने गये ॥ १२२ ॥ जब उन्होने लक्ष्मणको देखा तो मस्तक झुका-झुकाकर प्रणाम किया और लक्ष्मणने उनको अपनी छत्तीसे श्या-स्याकर आलिंगन किया । फिर अनक प्रकारके उत्सवोंके साथ उनका महलामे ल घसे । रास्तेमे अयोध्याकी नगरियां अटारगियोपर चढ़-बढ़कर उभरकर फूलोंकी वर्षा करतीं और आरती उतारतीं थीं । इसके बाद बालकोंने राजदरबारमें जाकर रामको प्रणाम किया और बहुते सीताके बहुलोक गये । वहाँ पहुँचनेपर सीता, उषिला, माडवी तथा वृत्तकीतिने बल्लग-बल्लग उन बालकोंकी आरती उतारी । पकवान, दही, पान, तुलके बने पकवान, सरसों, भेमरु, जड़व तथा पानी भरे कलश आदि ढरकाकर नमि दी गयी । इसके बाद उन सबोंने कौसरवा बादि तथा पिता और माइयोंको प्रणाम करके सीता आदि माताओंको प्रणाम किया ॥ १२३-१२६ ॥ उसके बाद जब बालकोंने मांति-भौतिके दान दिए और अलग-अलग करोड़ों शत्रुओंको भोजन कराया ।

एवं नानोत्सवास्तत्र बभूवुः रामभक्तानि । अथ ते बालकाः सर्वे स्पर्शनारिषु सस्थिताः ॥१३०॥  
 दिव्यवस्त्राणि चित्राणि परिधाय समंततः । अयोध्यागजमार्गेषु हृदेषु च चतुष्पथे ॥१३१॥  
 आराधोपवमारण्यशटिकासु नदीतटे ममनागमने चक्रुः सेनया मंत्रिबालकैः ॥१३२॥  
 एवं साकेतनगरे बालकैः सीतया सुभम् । रेमे स बंधुभिर्भुक्तभिरं राजा रघुवहः ॥१३३॥  
 एवं शिष्य मया प्रोक्त जन्मकांडमिदं तव । कृशद्दीनां च जन्मानि वर्धितान्यत्र विस्तरात् ॥१३४॥  
 रम्यं पविशमानंददायकं च मनोहरम् । पुत्रपौत्रप्रदं जन्मकांडमेतत्सुखावहम् ॥१३५॥

जन्मकांडमिदं पुण्यं ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।

तेषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च वियोगो न भविष्यति ॥१३६॥

जन्मकांडमिदं ये श्रुत्वा शृण्वन्ति मानवाः ।

तेषां स्त्रीणां वियोगो हि न कदाप्यत्र जायते ॥१३७॥

जन्मकांडमिदं पुण्यं याः शृण्वन्त्यत्र वै स्त्रियः । स्वपुत्रवियोगो न तां गच्छति यथा समा ॥१३८॥

श्रायं देशान्तरं तीर्थं ये गताश्च चिरं नराः । तेषामगमनार्थं हि जन्मकांडं पठेद्विदम् ॥१३९॥

येषां भार्याणि कार्याणि लब्धुं न्यस्यते मनः ।

तैर्नरैः पठनीयं वै जन्मकांडं दिने दिने ॥१४०॥

पूर्वं दिने चैकवारं द्विवारं चापरे दिने ।

एव नवदिनं त्रिद्विंशत्येकं क्षयोऽपि हि ॥१४१॥

कार्यं नरैः स्वस्थचित्तस्तेषां कार्यं भविष्यति ।

वर्षमेकं पठेद्देवपुत्रोऽपि सभे सुतम् ॥१४२॥

पुत्रार्थं शत्रुशत्रुश्च धनार्थं धनमाप्नुयान् ।

एतान् कार्याश्च कर्माणि जन्मकाण्डमवलम्बेत् ॥१४३॥

इस तरह रामचन्द्रजीके भवनमें बनेक प्रकारके उत्सव हुए । वे सब रथ, हथी, घोड़े आदि सवारियोंपर सवार हो-होकर बगीचे, उद्यान, वन तथा नदीतट आदिपर अयोध्याके चौराहों तथा बाजारमें बनेक प्रकारके वस्त्र-आभूषण पहनकर मन्त्रियोंके लड़कोंके साथ आते जाते लगे ॥ १३६-१३९ ॥ इस तरह उस साकेतपुरीमें उन बालकों तथा सीताके साथ मानन्दपूर्णक रामचन्द्रजी रहने लगे । हे मित्र ! यह जन्मकाण्ड पढ़ने तुम्हें सुनाया । जिसमें कुश आदि बालकोंकी विस्तृत जीवनी वर्णित है । १३३ ॥ १३४ ॥ यह जन्मकाण्ड पढ़ने रम्य मानन्ददायक, मनोहर, सुखसौभाग्यका देनबाला और पुत्रपौत्रादिका दाना है । जो लोग जन्मकाण्डको सुनते हैं, उनका कभी अपने पुत्रपौत्रादिके वियोगका दुःख नहीं उठाना पड़ता । जो लोग भक्तिपूर्वक इस जन्मकाण्डका श्रवण करने हैं, उनका अपना स्वर्ग का भी विभाग कभी नहीं होता । यदि स्त्रियाँ इसे सुनती हैं तो उन्हें अपने स्वामीसे कभी वियुक्त नहीं होना पड़ना बलिक लड़कोंके समान वे अन्यधर कामन्दसे अपना जीवन वितातीं हैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ यदि किसीके परिवारका कोई अनुप्य किसी तीर्थ या परवेशको चला गया हो तो उस लौकिक लिए इस जन्मकाण्डका पाठ करना चाहिए । जिसको अपना कोई भारी कार्य सिद्ध करना हो उसको चाहिए कि पहले दिन एक बार, दूसरे दिन दो बार, तीसरे दिन तीन बार, उस भक्तसे बहुत-बढ़ते नवें दिन नौ बार जन्मकाण्डका पाठ करे । तबें जितसे एक-एक पाठ पढ़ता हुआ फिर नवें दिन केवल एक पाठ करे । इस तरह यदि स्वस्थचित्तसे इसका पाठ किया जाय तो प्रत्येक कार्यकी सिद्धि हो सकती है । यदि इस विधिसे एक वर्ष पर्यन्त जन्मकाण्डका पाठ किया जाय तो पुत्रहीन व्यक्ति भी पुत्र प्राप्त कर सकता है । १३७-१४२ ॥ कहतेका

आनन्दरामायणमध्यसंख्यं आजन्मकार्त्तं दुनयप्रदे च ।

पारायणं संश्रवणं तथा वा करोति यो ना स लभेत्सुपुत्रम् ॥१४४॥

इति श्रीमच्छनकोटिरामचरितार्णवे श्रीमदानन्दरामायणे बालमोक्षोदे जन्मकाण्डे

कुशलयादौनां जन्मकथनप्रसन्नविस्तारो नाम दशमः सर्गः ॥ ९ ॥

— — — — —

जन्मकाण्डे सर्ग आनन्दरामायणे नवमेऽंशः । चतुस्तराष्टशतश्लोका विष्णुदास रामदासाभ्यामुपदिष्टः ॥१॥

उपवनदर्शनम् ॥ १ ॥ उपवनश्रीङ्गा ॥ २ ॥ सीताख्यामः ॥ ३ ॥ कुशलवोत्पत्तिः ॥ ४ ॥ रामरक्षा ॥ ५ ॥

कमलहरणम् ॥ ६ ॥ पुत्रार्थी संग्रामः ॥ ७ ॥ सीताग्रहणम् ॥ ८ ॥ बालानामुपनयनम् ॥ ९ ॥

मतलब यह कि जन्मकाण्डका पाठ करनेसे पुनर्जन्म, पुनर्जन्मार्थी घन तथा किसी भी प्रकारकी कामनावालेकी कामनापूर्ण हो सकती है इस आनन्दरामायणके मध्यमें स्थित जन्मकाण्ड सत्त्वगुणाधिक है । श्री मनुष्य इसका पारायण करता या सुनता है, उस सपुत्रको प्राप्ति होती है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरित-  
संस्मरते श्रीमदानन्दरामायणे बालमोक्षोदे पञ्च रामलेखणकाण्डेऽविस्मृतजयोत्तरनामाष्टोकासहिते जन्मकाण्डे  
दशमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस जन्मकाण्डके कुल नौ सर्ग तथा अष्ट सौ चार श्लोकों द्वारा श्रीरामदासने विष्णुदासको उपदेश दिया है ।  
॥ १ ॥ उन नवों संगोप से कपानें वर्णित हैं । ( १ ) उपवनदर्शन, ( २ ) उपवनश्रीङ्गा, ( ३ ) सीताख्याम,  
( ४ ) कुशलवकी उत्पत्ति, ( ५ ) रामरक्षा, ( ६ ) अथ द्वारा कमलहरण, ( ७ ) पुत्रोंके साथ रामका संग्राम,  
( ८ ) सीताका पुनर्ग्रहण और ( ९ ) बालकाका उपनयनसंस्कार ।

इति श्रीमदानन्दरामायणे जन्मकाण्ड समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

— — — — —

श्रीमदीश्वरदेवे नमः

श्रीबाल्मीकिमहासुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत—

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## विवाहकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( स्वयंवरके प्रसंगमें रामका राजा भूमिकीर्तिको पुरीको प्रस्थान )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सभापथ्ये सविभिः परिवेष्टितः । तस्यो मिहामने रम्ये ब्रह्मोपशोभितः ॥ १ ॥  
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्दूतः समायया । नन्वा ममाया श्रीरामं प्यामिदुत न्यवेदयत् ॥ २ ॥  
पूर्वदेशाधिपतिना राज्ञा श्रीभूमिकीर्तिना । श्रेयिनोऽस्मि महत्तु द्रष्टुं स्वपादपङ्कजे ॥ ३ ॥  
पत्रं पाठन्वा श्रीरामं कार्या मत्स्वामिने कृणु । इत्युक्त्वा समदूतस्य करे पत्रं समर्पयत् ॥ ४ ॥  
रामदूतोऽपि सौमित्रेः पुरस्कारपत्रमाह्वत् । स्थापयामास वेगेन गन्वा तस्यो निजस्थलीम् ॥ ५ ॥  
ततः स लक्ष्मणः पत्रं चरन्धनवेष्टितम् । समुद्रादय राघवः प्रपथात् सज्जलस्वनः ॥ ६ ॥  
हृदयकुशिमपुष्पं चैरङ्कितं कुकुमान्वितम् । दर्शनादेव मांगल्यसूचकं तोषकारकम् ॥ ७ ॥  
उवाच पत्रलिखितरक्षसलक्ष्मणः जनैः । स्थितः श्रीरामपुत्रोऽपरमहासनातिके ॥ ८ ॥

श्रीमान् श्रीगणेशेन्द्रो जयतु दशशिरस्तेजसार्थं जगत्पते

कौतुकायां नृपेशो दक्षयतनयश्चेति नाम्नाऽवतौणः ।

तस्याहं भूमिकीर्तितं पदजलहृद्योगन्धमावातु कामः

कृन्वा नैज शिरस्तु अमरवदनिष्ठं शार्थनां प्रार्थयामि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास बोले—एक दिन रामचन्द्र सभाम अपने राजसिंहासनपर बैठे थे । उनके ऊपर सुन्दर छत्र लगा हुआ था और उनके चारों ओर कितने ही मंत्री बैठे हुए थे । इसी समय एक दूत आया और वह अपने प्रभुका संदेश सुनाने लगा । उसने कहा—पूर्व देशके अधिपति महाराज भूमिकीर्तिने आपके परणोका दर्शन करनेके लिए मुझे भेजा है । आप मेरे स्वामीपर कृपा करके यह पत्र पढ़ लीजिए । इतना कहकर उसने वह पत्र रामके दूतको दे दिया । उस दूतने लक्ष्मणके हाथमें दिया और प्रणाम करके पुरार पद चला गया ॥ १-५ ॥ लक्ष्मणने सुन्दर कपड़ेमें बैठे हुए उस पत्रको खोला और मधुर स्वरसे बीचकर रामको मनाने लगा । पत्रपर दुर्गाके पूज्य होने हुए थे और कुसुमसक्त छोटें पड़ें थे । जिसे देखनमात्रमें वह मांगल्यसूचक तथा आनन्ददायक प्रतीत होता था ॥ ६ ॥ ७ । पत्रमें जो लिखा था, उसे रामके पास जाकर बीरेबारे लक्ष्मण नाने लगे— ॥ ८ ॥ रघुवंशमें छपे श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, जो राम रावणको मारनेके लिए दशरथके पुत्र

मम पीत्र्यावुमे राम चपिका सुमतीति च । तयोः स्वयंवराय सायाताश्च बहवो नृपाः ॥ १० ॥  
 नभुपुत्रैर्वधुभिस्त्वं स्वमुताभ्यां च संविधिः । सुहृन्नैम्लथा पौरैः सावरोधः स्वसेनया ॥ ११ ॥  
 अगच्छस्व मम पुरं यधि कृत्वा महत्कृपाय् । विक्रान्तं प्रार्थनां मे त्वं वा कुरुष्व त्विमां प्रभो ॥ १२ ॥  
 इति पत्रार्थसाकर्ण्यं स्वस्थचित्तो रघूनमः । स्वयंवरं ततो गन्तुं गुरुणा निश्चयं व्यधात् ॥ १३ ॥  
 ततोऽमरीन्म मौमित्रिमद्य सेनां प्रषोदय । शोऽहं गच्छामि पुत्रार्थां स्वया मंत्रिजनैः सह ॥ १४ ॥  
 भ्रातेनार्थं पुष्पाक पुत्रैः शत्रुघ्नमप्युतः । स्वयंवरं सावरोधः पौरैर्जनैर्ददौः सह ॥ १५ ॥  
 विजयो नगरीं गन्तुं शक्तितुं स्थापितो मया । अयं वै वसुमेहाजि बहिर्नेपथिनि लक्ष्मण ॥ १६ ॥  
 पथान् शोधयन्वद्य नानादत्तास्त्ररान्विताः । गच्छन्तु सकला नार्यः पुष्पकेण विहायसा ॥ १७ ॥  
 तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा चक्षत स यथोदिनम् । राघवेण समामध्ये प्रवदुर्हरमपुटः ॥ १८ ॥  
 ततो द्वितीयदियसे प्रसाधे रघुरन्दनः । स्नानं निन्द्यविधिं कृत्वा निनाया शीतं स पुष्पके ॥ १९ ॥  
 स्थापयामास कुण्डेषु भुज्ज्वा सह नुरञ्जनैः । ततः सीतां समाहूय स्वयंभास राघवः ॥ २० ॥  
 ततः त्रिपस्तदा सर्वाः दीनाया रुक्मभूषिताः । यानमभिरुह्यः शीघ्रं दिव्यवस्त्रादिमण्डिताः ॥ २१ ॥  
 ततो रामो गजारूढो वरच्छत्रोपगोभितः । यथाश्रे चामरावैर्जीवितश्च मुहूर्तद्वयः ॥ २२ ॥  
 रामाग्रे चाग्नारूढो ययी शीघ्रं गुरुक्षदा । राघवस्य पृष्ठभागे करिस्थो लक्ष्मणो ययौ ॥ २३ ॥  
 ततः कुशायास्ते सष्टौ बाला जम्भुर्गजस्थिताः । ततो भरतश्चक्रुः प्रो जामतुर्गजमस्थिनौ ॥ २४ ॥  
 ततः सर्वे मंत्रिणश्च पौग जानपदादयः । नानाकहजमस्थास्ते ययुः सर्वे स्वरान्विताः ॥ २५ ॥  
 चतुर्दन्ते शुक्लवर्णं वारणमवमोद्भवे । मस्थिनो राघवो रेजे मुक्तामालाविराजिते ॥ २६ ॥  
 एवं रामः सुनैर्माणैर्बन्दिमगाधमप्युत । कृष्वत् वाद्यनिनादाश्च ययौ पूर्वदिशं सनैः ॥ २७ ॥

होकर कीर्तन्यायी काचमे प्रसन्न है । मैं सूर्यकिर्णों के भ्रमणकी नाईं उनका चरणकमलोंको सौधन्वी कामन्दसे  
 राव-दिन प्रार्थना करता गृहता हूँ ॥ १० ॥ हे राम । मेरी चपिका तथा भुमति नायकी दो पीत्रियाँ हैं । उनके  
 स्वयंवरमें बहुतसे राजे आवे हुए हैं । अतएव आपस की प्रार्थना है कि अपने भ्राताओं पुत्रों, भ्राताओंके  
 पुत्रों, मंत्रियों, मित्रों, घरकी मारिणों, पुरवासियों तथा मेनाके साथ घेरे इहाँ ग्वारं हे प्रभो । मेरी इस  
 प्रार्थनाको विकल मत कीजिए ॥ १०-१२ ॥ इस प्रकार उस पक्षी जागेका स्वस्थचित्त होकर रामचन्द्रजी-  
 ने सुना और स्वयंवरमें आयेक लिए गुरु बहिरुम निश्चय किया । इसके बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि आप  
 मेनी भेज दो । कल हम, तुम, अथ, कुजा, मंत्रियों, घन्ते तथा भुम पीगोंके पुत्रों, मित्रों तथा पुरवासियोंको साथ  
 लेकर स्वयंवरमें चलेंगे । विजयको आगच्छना तथा दम्पती रत्नाक लिए नियुक्त कर दिया जाय । हे  
 लक्ष्मण ! तुम आज सभी दम्पू कनात आदि भज दो ॥ १३-१५ ॥ अग्यष्ट कुछ दूतोंको रालता डाक  
 करनेके लिए आगे भेज दो । चन्की सारी स्त्रियोंको पुष्पक विमान द्वारा पहल ही भेज दो ॥ १७ ॥ लक्ष्मणने  
 रामको सब बातें मान लीं और जैसा उन्होंने कहा था, सो सब करक कर दिया । १८ । दूसरे दिन रामने  
 सबरे उठकर स्नान और नित्यकार्य करनेके अनन्तर सब भ्राताओंके साथ बैठकर आज्ञन किया ।  
 मभिर्होत्रकी अग्नि बँगाकर पुष्पक विमानपर चलो ॥ १९ ॥ इसके बाद सीताको चुनाया और बन्दी  
 तैयार होनेके लिये कहा ॥ २० ॥ सीता आदि नारियोंने सुनहले वस्त्र तथा आभूषण पहने और पुष्पक विमान  
 पर आ बैठी ॥ २१ ॥ इसके बाद राम एक मुन्दर हाथीपर बैठकर चले । उस समय उनके ऊपर ज्येष्ठ छत्र  
 लगा हुआ था और सेवक उनपर चैवर डाल रहें थे ॥ २२ ॥ सबसे आगे गुरु बसिठका हाथी था, उसके पीछे  
 राम और रामके पीछे लक्ष्मणथा हाथी था ॥ २३ ॥ उनके पीछे भुम आदि प्राणी इन्हीं कीर भरत-शत्रुघ्नका  
 हाथी चल रहा था ॥ २४ ॥ इन सबके पीछे मन्त्री तथा पुरवासी अनेक प्रकारको सवारियोंपर सवार होकर  
 पीछतासे चले जा रहे थे ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजी ऐरावतके कुलमें उत्पन्न चार दातवासे तथा मोतियोंके शुभो-  
 दयोंमिष्ठ हाथीपर बैठे हुए बड़े सुन्दर लग रहे थे ॥ २६ ॥ इस तरह धन्दीवन-आगाध आदिकोंके हाथ

लवार्चनेश्वरा बला सुनन्दा वाक्पद्मश्रीन् पदयेन शालिक बाल लव श्रीगणेशाय नमः ॥३२॥  
 श्रीकर्म स्वल्पवर्षं मीनालालिपुनमम् वान्मीक्षिकुपया लब्धविद्धं रम्प कुशानुजम् ॥३३॥  
 पुनोर्वनं मुखेनैव कण्ठेऽस्य मालिकां दृष्टुः । कुशाके चपिकेर ते श्रमा पङ्क्तिस्त्वताऽथ हि ॥३४॥  
 तथा स्वमपि मो भुम्भे लवाके मस्थिता भव इति तस्यां च श्रुत्वा सुनन्दायाः स्मिन्तानना ॥३५॥  
 लवस्य कण्ठे हर्षेण लज्जयाऽयननानना । समलित्तित्रयाद्भ्यामपयाभास मालिकाम् ॥३६॥  
 तदा निनेदुर्वाणानि जगुन्मं मायकास्तदा । ननुर्वारिणार्यथ तुदुर्वन्दिमागधाः ॥३७॥  
 भूरिकर्तिवृत्तुष्टो लवाके सुमतिं नदा । शीघ्र निनेययामास पञ्चपूर्णमनोन्मः ॥३८॥  
 तोषमाप रघुश्रेष्ठः पीता ग्रामादसंस्थिता । जालरघ्रः सपत्नाक लव दृष्ट्वा तुतोष सा ॥३९॥  
 ततः सर्वभूषान् पूज्य मूरिकर्तिनृपोत्तमः । प्रार्थयामास शिखरवर्चनमगुम्भः स्थितः ॥४०॥  
 विवाहकीतुक दृष्ट्वा भवद्विगम्यतामिति । तथेते ते नृपाः प्रोचुर्गुणमस्थलाणि हि ॥४१॥  
 रामासं मयं कर्तुमयमर्थां गतश्रियः । श्रानानना गनोन्मादाः कामवापप्रपीडिताः ॥४२॥  
 रामोऽपि बन्धुभिर्वाक्ययथी वामस्थल मुदः । प्रथमं दिनं गत भूरिकर्तिः ममाययौ ॥४३॥  
 पुनोपसोपविष्टः ममन्वा राम रचोऽववान् । द्रष्टुं लज्जिताऽयमः मुमुहूर्तः मुस्तावदः ॥४४॥  
 माममीदृक रामाय तन्नादाश्रयकमुकम् । उमयोम्व मण्डपयाः कायाप्यावापय प्रमो ॥४५॥  
 तथेति राघवशोकत्वा वभिष्टु चादयत्तदा । सोऽपि गमाकृया ज्योतिःशास्त्रज्ञः परिवेष्टितः ॥४६॥  
 मुहूर्तं कथयामास पञ्चमंडलानि राघवम् । ततस्तुष्टो भूरिकर्तिगणेशं लग्नपदिकाम् ॥४७॥

सुनन्दाकी आसं चलनका सुकल किया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सुबाहु, पुंकर, तेल, भिन्नकेतु तथा अंगदको छद्मता हुई वह लवके पास पहुँची ॥ ३१ ॥ जब सुधात लवका आर दमन लगा तब सुनन्दा बाला न्हे बोले । इस बालकको देख, यह रामका पुत्र है । यह प्रणम विमान करना चाहता है । इसकी यादो उमर है । सीताके द्वारा इसका पालन-पोषण हुआ है । वाल्मीकिजी वृद्धाश्रम इस जन्म में इस प्राप्ति हुई है और यह कुशका छोटा भाई है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तू मानन्द इस अपना दात बनाकर इसके गले में बरमाणा डाल दे जिस तरह तुम्हारी बहिन चम्पिका नृपकी मादम बेटी ने ऐसा तरह आ सुजा तू भी लवकी गोदमें बैठ जा इस प्रकार सुनन्दाकी बात सुनकर वह मुस्कगया और सज्जावत मस्तक मुकाकर उसने अपने हाथोंसे लवके गले में बरमाणा डाल दी ॥ ३४-३६ ॥ उस गाय मस्तक प्रकारक बान बज, गाववाने गाने गाये, वेमार्थे नाचने लगी और चन्द्रोन्नत स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ महागज भूरिकर्तिने प्रसन्न होकर सुमतिको लवकी मादम बिठा दिया ॥ ३८ ॥ वह देखकर रामचंद्रजी तमा अटारीपर बैठी सीता दोनों प्रसन्न हुए । जब सारीजोसे सीताने लवका मादम मुमतिको बैठा देख ता उनकी प्रमथनाका ठिकाना मही रहा ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर राजा भूरिकर्तिने वही आये हुए गव राजाओंका पूजा करके विनम्रपूर्वक प्रार्थना की—॥ ४० ॥ जब माप लोग विवाहका भी उत्सव देखकर आ द्या । राजाओंने भी उनकी बात स्वीकार कर ली और अपने-अपने देवदेव चल गये ॥ ४१ ॥ वे सब राज रामसे मुद्र करमम असमये प । अतएव उनकी श्री नेष्ट हो गया था, मुख दृष्ट्वा गया था, उससे भग हो गया था और बेचार कामक बाणोंसे पादित हो रहे थे ॥ ४२ ॥ राम भी अपने भाइयों और बचचोक साथ प्रमथतापूर्वक डेरेपर गये । इसक बाद दूसरे दिन राजा भूरिकर्ति रामके पास पहुँचे ॥ ४३ ॥ पुराहित उनक साथ था । वे रामके समक्ष बैठे और कहा कि कोई अच्छा लभ-दिग्गज तथा सुत्रदायक मुहूर्त विचारिए । फिर कहा है राम । मने बरणाके भक्त मुक्त रासकी प्रार्थनाकी अलीकाद करके दोनों मण्डपोंके लिए जो कार्य करने हो, उनक लिए माता दीजिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ “अच्छा” कहकर रामने बसिष्ठकी आर सक्त किया । बसिष्ठने रामकी आज्ञासे उपतिवशास्त्रको जाननेवाने किहने ही पंडितोंके साथ विचार करके उनके पाँचरे दिन विवाहका शुभ मुहूर्त बतलाया । इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे भूरिकर्तिने गणेशजी, लग्नपदिका, गणकी, पण्डितों, वैदिक आदिकों तथा रामके साथवाले बंधुजनों को

काचिन्पक्वो भोजनं तु काचिन्पाकस्य मत्किंवाप ।

काचिन्मकरादप्युक्तं पुनः केशं ययौ जगत् ॥४६॥

धाननासिगिना कारिणिष्कास्य ऋपने कम्प । ययौ वंगेन लज्जना चरत्रावाटनस्यकम् ॥४७॥  
 क्षालयन्ती ययौ पादावेकं प्रक्षाल्य कामिनी । पञ्चजयं ह माज्यं तु नावच्छ्रया मवापयम् ॥४८॥  
 मीनया समचन्द्रं हि शीघ्रं दृष्ट्वा मा तदा । काचिद्दर्शं नृस्यमाना दूरं कृत्वा पतेर्मृगम् ॥४९॥  
 दृष्ट्वा राक्षसं द्रष्टुं ग्रामादेः दक्षतदृष्ट्वा । काचिद्विनिर्दिष्टा मत्री स्वकस्या निद्रां नराभिरता ॥५०॥  
 विनिर्गन्धकज्जना मन्दजं च निद्राकान्धिता । नेत्रं च यौ कुचिनान् केशान् चामयन्ती जराश्रयी ॥५१॥  
 स्वकचाऽप्युक्तं हि काचिन्पा कुर्वन्तं करमांशधिप । ययौ वंगेन ग्रामाद् अन्त्रा रासवयवा यम् ॥५२॥  
 काचिद्भजे कनुकीं मा कर्तव्यं चापरे कुजे । कर्तुकामा ययौ शीघ्रं तथैव प्रसदोत्तमा ॥५३॥  
 काचिदेकै पदे कृत्वा नृपुणर्दानि भाषिनी । अपरे कर्तुकामा स तथैव कृत्वा त्रयमाययौ ॥५४॥  
 कथयन्ती शुभां वार्तां सापन्त्यः पृथः स्थिता । श्रुत्वा रामे मवापन्ति दृष्ट्वा मत्राणां विनी ॥५५॥  
 कचिन्मित्रपतिं पात्रे कुर्वन्ता पश्यपश्यं धूमो न्यक्त्वाऽप्यवात्रं मा ययौ रामं निर्गक्षितम् ॥५६॥  
 काचिन्मत्वा दिव्यत्रया कुर्वन्ता म प्रदक्षिणा । नृक्षीं च महादेवं श्रुत्वा राम ययौ जगत् ॥५७॥  
 काचिद्रज्जुयुग्मं कुर्ये कृत्वा तं ययौ मुमुक्षुना । स्वकचा मन्त्रयुग्मं कुर्ये दृष्ट्वा दुर्निमानना ॥५८॥  
 काचिन्मत्वा एक स्तन्यं सह पश्यपश्यी वधः कुचरोवालकं श्रुत्वा तथैव मा ययौ जगत् ॥५९॥  
 काचिन्मा परिधायान् चम्रं कच्छं करेण मा । कर्तुकामा ययौ वंगान्धवाटुलपल्लवम् ॥६०॥  
 एव कर्मापनेकानि कुर्वन्त्याः पुनश्चिन्ता । चिन्तयन्ति मवापि ययौ राम निर्गक्षितम् ॥६१॥  
 दृष्ट्वा रामं यजमर्थं ना यवधुं पुनश्चिन्ता । उन्मत्ता एव नार्यः शत्रोऽप्युत्तमस्थिताः ॥६२॥  
 भन्या सा रामजनेनी कीमन्त्या या स्थूतवम् । सुपुत्रं मन्त्राजितं परिपूर्णजीरथा ॥६३॥

भोजन का तो धीरे धीरे खाई भोजन बना रही थी मा उसको आका एक छोटका भागी । कोई कालोको  
 रोशनी रहा थी, वह केशक हाथसे धाँधे हो रोह पड़ा । किमोका पति अचानक कर रहा था । इससे  
 उसका आगमन सुना तो स्वास्ती हो गई छिड़ककर रोह आया । कोई अपने पतिके पैर धीरे धीरे, इसने  
 एक पैर धीरे धीरे दूसरा पकटा हुआ था कि उसे खबर लगी कि सँ राके गहिर गम्य था रहे है, वह नृगन्त  
 ओहकर आनापुन चढ़ गया । कोई पतिक साथ कथापर मंत्री थी ॥४८-५०॥ इससे उसको ओमोका कात्रक  
 सुनेरमे पक गया । वह भी यह समाचार पावे ही ओमोका सामनवाले आका इटाही हुई दोरी ॥५१॥  
 कोई उदहन त्या रही थी, वह एक हाथसे सडां मट्टानता हुई रोह पड़ा । किमोका पति कामोन्मत्त होकर  
 आगमन करता चला था । वह भी एक हाथसे सडां मट्टानता हुई चली आयी । ५१॥ ५३॥ कोई  
 कामिन नृपुण रहन रही थी । वह केवल एक ही पैरसे उसे पककर मरना ओमोका रोह पड़ी ॥५४॥ कोई  
 पतिव्रत का रही थी । वह जहाँ तक बात कर चकी थी वहाँ ही छोटकर रोह आयी ॥५५॥ कोई पतिक  
 लिए भोजन बना रही थी, वह भी पायको ओका सगे छोटकर मरको देखने लिए रोह पड़ी ॥५६॥  
 कोई मान कर नृपुणो त्या । महादेवको प्रदक्षिणा कर रहा था वह भी रामका आगमन सुनकर उसे मन्त्रा  
 हो छोटकर भाग चली । ५७॥ कोई चन्द्रनृप मन्त्रां वरदा पाना करने गया थी, वह रम्भा और दश  
 कुम्भे ही एककर चढ़ पड़ी ॥५८॥ कोई एककात्रक मन्त्रा देव पला रही थी, वह मन्त्रकका पियो हुए ही रोह  
 आयी ॥५९॥ कोई भोजन ओमोका कामोन्मत्त कर रहा था आका पाशो धीरे, वह मादे काह पते  
 हुए ही चली आयी ॥६०॥ यह प्रकार उनक लगन का रम्यो हुई मित्रों अपना अपना काम छोटकर  
 रामके दमानके लिए छोटकर और छोटकर आ खड़े हुए ॥६१॥ दृष्ट्वा रामको देखकर रिश्या  
 उनपर फूटोकी बर्षा करता हुई आपसमे इस प्रकार बातें करती थी—॥६२॥ रामका मत्ता पीछला मन्त्र



काश्चिद्वृक्ष सा धन्या सीता जनकनदिनी । यस्या विव धरममुरीकृत्नेऽत्र सा ॥६४॥  
 काश्चिद्वृक्षस्तथा तर्हि जानकया दृष्टः तपः । पूर्वजन्मनि यन्पुत्राद्वानतः प्रियाऽभवत् ॥६५॥  
 काश्चिद्वृक्षं च मन्दमारुपास्तु जगतीतले म तादृश्यो न जा ॥ स्व गन्धेन इत्यपगः ॥६६॥  
 इति नानाविधा वाचस्तर्हि शृण्वन् शृणुमः । यत्रैव स गजमगम नृपकल्पितमन्दिरम् ॥६७॥  
 तत्रावहत् सागेन्द्राद्विदेशे व्रजमदिग्म् । तस्थौ मृगेन जनिव्रगा वंदुमिवालके प्रभुः ॥६८॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरिततर्जने श्रीमदनन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

स्वयंवरार्थं भूरिकोक्तं पुनः प्रति श्रीमद्विष्णुभक्तं मास प्रथम सर्गः । १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( राजा भूरिकीर्तिकी पुत्री चम्पिकाका स्वयंवर ,

श्रीरामदास उवाच

अथापरदिने तामै भूरिकीर्तिः समाययौ । नन्वा प्राद रघुलेष्ट मभामागन्तुमर्हसि ॥ १ ॥  
 तथेति राघवश्चोक्त्वा बालकं स्वमभूषितं । कनकनूतनयथेष्ट कचुकोष्णापमण्डितः ॥ २ ॥  
 द्रुह विधाय त्रिमुखं कटेवचोत्तरयकः । भूषितगर्हनिः क्षात्र शिबिकास्थः समाययौ ॥ ३ ॥  
 मनाथा ये नृपाः पूर्वमावनेषु च सस्थिताः । श्रुत्वा राम ममागन्तं सधनकलन्पुरो ययौ ॥ ४ ॥  
 चक्रः सर्वे राघवाय प्रणामस्वाधिवेत्तमाः । नेपां नामानि रामाय दार्ढ्यशब्दं प्रथक् प्रथक् ॥ ५ ॥  
 विशाखाया रामदूतः श्रोतुं क्षेत्रपाथयः । वसुलकरभूषाभिभूषितः सुदिताननाः ॥ ६ ॥  
 गजगज नृपधाय कर्णार्द्रपथ स्थितः । विजयस्ते प्रणामाश्च करोति त्व विलोकय ॥ ७ ॥  
 राघवेन्द्र नृपधाय श्रीमान् द्रविडदेशजः । नृकुण्ठो प्रणामास्ते करोति त्व विलोकय ॥ ८ ॥  
 दोनानाथ नृपधाय विदर्भेऽपथे स्थितः । अयनाथः प्रणामास्ते करोति त्व विलोकय ॥ ९ ॥

जिनहोंने १४ विराज राम जैसे पुनरो जन्म दिया ॥६३॥ कोई कहन लगी कि जनकनन्दिनी सीता  
 यही है कि रामचन्द्रजी जिनके अवरगमक जान करन हे ॥६४॥ कोई नाथ-जगत हाता है कि सातान  
 -जन्ममें दुष्कर स्वप्न का ची, तिमिक प्रमादस से आज राजराज रामचन्द्रजी त्रिश दशू बना हैं ॥६५॥  
 दृष्ट निजों कहने लगी कि हम लन वडा अमागिना हैं, जो साताका दसा होकर भा रामका सेवा तहो कर  
 नेकी ॥६६॥ इस तरह नाता प्रकारका बात सुनत हुए रामचन्द्रजी राजभास खडकर हावासे उत्तर और  
 न ना भूरिकीर्ति द्वारा सजाम हुए जवनमें गये और सजाता, अजाता तथा बालकोक साथ दिक ॥६७॥ ६८ ॥  
 इति श्रीमत्कोटिरामचरित तर्जने श्रीमदनन्दरामायणे विवाहकाण्डे प्रथमः सर्गः । १ ॥

श्रीरामदास बोले इससे बाद दूसरे दिन राजा भूरिकीर्ति स्वयं रामक पास पहुँचे और प्रणाम करके  
 राम को—हे रघुचैत्र ! अब समास चालए । 'अच्छा' कहकर रामन को सुवर्णक आभूषण पहने,  
 नृप के सुवसने बने अच्छे-अच्छे दास धारण किधे, परतलेमें सज्जित कमरबन्द कसा और शिबिकापर बैठकर  
 बालकोक साथ सभाभवनका आर चले । १-३ । जो राजे बहुत हास समामे बकर बैठे हुए थे, वे  
 राजका आगमन सुनकर सकचका उडे जाय रामक सामन जा पहुँचे । ४ ॥ उन्होंने भगवानको प्रणाम  
 किए । राजा विरही एक ही बोले और हाथमें बात नियो हुए रामक दूत ऊपर-ऊपर बालकर इस प्रकार जनका  
 नन वनस्थान लगे—हे राजाओंके भा राजा राम ! देखिए कषाटक देशका रहनवाला यह विजय नामका राजा  
 बन्दका प्रणाम कर रहा है । ५-७ ॥ इसर दसिए हे रामदेव ! यह द्रविड देशका निवासी कम्बुकुण्ड नामका राजा  
 बन्दका प्रणाम कर रहा है । यह विदर्भ देशका अधिपति अनाथ नामका राजा आपका



अथोपमात्ता वृद्धा सा धृतहस्ताग्रयष्टिका ममाया चपेकानाम्यै दक्षिणम्यान्पृथक् पृथक् ॥२८॥  
क्रमेण वर्णयामास तदा नृपतिस्ततमान् । तथाऽन्वा च ममाप्राध धृतहस्ताग्रयष्टिका ॥२९॥  
मुनन्दाक्याऽतिउग्रहा सुमर्यै नृपतीन्कमान् । रणयामयोऽसम्भानुत्तमाना पृथक् पृथक् ॥३०॥  
अथ सा चम्पिकां प्राह नीन्वा तां नृपतेः पुरः । ज्ञातव्यार्थां चपमाना नन्दा सामर्ग्याजिता ॥३१॥  
राजकन्ये अपिकेऽथ मृणुष्व यच्चतं मम । एत नृप रणयाम पश्य त्व मदनोपमम् ॥३२॥  
पांश्याऽयं मतिमात्राया नागपत्नयमस्थितः । शूरा रथ्या नृपश्रेष्ठः प्रज्जवालनतपसः ॥३३॥  
यदि ते रोचते चित्ते वरयैत्यमनुत्तमम् । अथ त्वं मदिरा भूत्वा नागपत्नयमस्थिता ॥३४॥  
कीदृक् सुदिताऽनेन वप्रायःपराजित् । नन्दीक्तं चपिता भूत्वा इत्यर्थं वाक्पमनुत्तमम् ॥३५॥  
न ववस्थ मनस्तस्मिन्नृपती मतिमत्तया । बोधयामास नन्दा तमग्रे गन्तुं नृपत्न्यम् ॥३६॥  
तदाऽन्यं नृपतिं नन्दा नीन्वा तां शिविकास्थिता । चपिकां प्राह वेलेन पश्यतं शान्तिके नृपम् ॥३७॥  
कलिकविषयस्योऽयं नाम्ना हेमाङ्गदो मदान् । को दृशो वागण्डाणां तस्य गण्डव्यालादिषु ॥३८॥  
मुक्ताजालानिगुच्छाश्च राजन्ने कमलानने । तस्य नागपत्नयः । गच्छतिः सागरस्य च ॥३९॥  
पश्यन्ती कौतुकं बाले कमेपि कण्डनादिचक्षुः । तस्य साङ्गस्य दे त्व मा मुञ्चताऽन्य कन्यके ॥४०॥  
त्युक्ताऽपि तथा तन्यी नन्दया चपिका नृपे । तस्य नन्दी न यवन्ध न्य गन्तुं नामचोदयत् ॥४१॥  
सपत्नीमयमालस्य सपत्नीकस्यजिप्यति । अमहानिति शक्यं नन्दया सुचिन्ताऽपि सा ॥४२॥  
ततोऽन्य नृपतिं गन्वा नन्दा प्रोवाच चपिकाम् । पश्यतं नृपतिं मुपे दग्दितानिवापिनम् ॥४३॥  
नीशान्वयममुद्धत हस्तधामिव निशाकरम् । यदातां नृपत्न्यं कान्यां जयति मण्डले ॥४४॥  
यज्ञकीर्तिरिति ख्यातः पृथ्वीश्वः प्रमदाप्रियः । यथैत नृप पति रुक्मभूषणभूषितम् ॥४५॥

॥ २२-२७ ॥ चम्पिकाके साथ एक जहाज़ / धई । गङ्गा में, जो नयन एक छाटा नी। लड़ा दिखे थी । वह दक्षिणको तरफ घड़े राजाओंक वृणन करने लगी । २८-३० ॥ मुकुन्द, चम्पिकाकी एक राजाके सामने लायी । उस समय भी चम्पिका पालसीपर बैठा था और चमर चमर कर रहा थे ॥ ३१ ॥ मुकुन्द चम्पिकाका सम्बोधन करके कहत लगा—हे राजकन्य चम्पिके ! तू बहुत सुता इला, यह कामदेवके समान सुंदर अति बुद्धिमान् पाण्डुप नामक राजा नागपत्तनमें रहकर बड़ा पराक्रमी, रथा, सब राजाओंमें श्रेष्ठ और प्रजापालनमें उत्तम है । ३२ ॥ ३३ । यदि तुझे अच्छा लग तो इसको मन्त्र कद लो । तुम इसकी राजरानी बनकर नागपत्तनमें आनन्दक साथ आ-इ-आते मस्तीमें जीना एकगयी । मुकुन्दकी ये बातें उसे दुर्घर्षक तथा व्यर्थ-सां जान पड़ी । उस राजापर उसका व्यवसन नहीं उठता और दूसरे राजाके पास चम्पिका संकेत किया ॥ ३४-३६ ॥ फिर मुकुन्द जिसेकाय वैरा चम्पिकाका दूसरे राजाके सामने ले जाकर कहने लगी । ३७ ॥ हे वालिके ! इसे देखो यह महान् काश्यप देशका रहस्यवाण, हेमाद्रिवंश नामका राजा है । इसके गण्डमधुल्लार हाथियोंका गजमुक्ताओंमें बने मूर्च्छित रखत रहत है । इसकी रातो बनकर तुम गङ्गामें छिड़किपीस सनुदकी लहरोंक बीचुक डलना हुई बिहार करागो । अब, अब इसे पण्डित करके तुम हमकी समस्त मित्रोंकी प्रधान बन जाओ ॥ ३८-४० ॥ इतना कहते-जनमपर भा उसका मन उस राजापर गया जमा और बाग बहनोंका संकेत किया । ४१ । क्योंकि चम्पिका यह स्वीकार हुआ कि इसके यहाँ सचली मौन का दर है । दूसरे “अमहान् शब्दका प्रयोग करके नन्दान भी खट्टा-सा संकेत कर दिया था ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर दूसरे राजाके पास पहुँचकर मुकुन्द कहने लगी—हे मुखे ! इस राजाको देखो, यह हरिद्वारका नवासी है ॥ ४३ ॥ जैसे सनुदसे चन्द्रमाका उत्पत्ति हुई है उसी प्रकार यह पवित्र तीर्थ राजाक वंशमें उत्पन्न हुआ है । जनक वज्रोंकी करमसे जवान् भरमे इसकी कति फल चुकी है ॥ ४४ ॥ इसलिए लोग इसे मलकीति कहत हैं । सुवर्णके आभूषणोंसे सज्जित इस राजाको तुम घर लो । यह बिलसत भूमादका मालिक है और

अस्याद्य महिषी भूत्वा गङ्गार्यागिषास्परा । नैकास्मा पश्यमि त्वं ह वर्येन नृपोत्तमम् ॥४६॥  
 अस्य पत्नी वरिष्ठा त्वं मय माऽग्रे व्रजावले । इत्युक्तं त्रि तया तस्मिन्मन्त्रवचन्ध निजं मनः ॥४७॥  
 त्वं वरिष्ठा मा भवेति नन्दयाऽग्रे व्रजेत्या चोदय नाम मा नन्दासग्रे गन्तुं नृपोत्तमम् ॥४८॥  
 नन्दाऽप्यन्यं नृपं नान्ता चरिकां प्राह वंगतः । पश्येन नृपतिं सुधे शृङ्गेनाह्वये वरे ॥४९॥  
 द्वेषं कमेति वै राज्यं सुपेणोऽमनुजमः । तुमसा वायुपेमाश्च यस्य पत्नी गृहं द्रुष्टः ॥५०॥  
 यस्यांगणे वारनागेनृपघ पम्पहानशम् वर्येन चापिके यं नाननवदानमम् ॥५१॥  
 अस्य च महिषी भूत्वा जन्मना कल्पवर्षां कुरु । तस्मिन् लब्धं भूत्वा तथा वाक् समनुजमम् ॥५२॥  
 न वचन्ध मनस्तस्मिन् नृपती ता न नो दयतु मय मा चेदिति नन्दा तयाऽन्य नृपतिं क्षणात् ॥५३॥  
 निनाय त्रिविक्राम्भां तां चरिकां प्राह मादम् ॥ पश्येन नृपतिं वल्गुं त्वयत्तं दृश्यपतने ॥५४॥  
 महस्य नृपवशस्य भूषणं कल्पवर्षमम् प्रकाश इति नन्दा तं कृतवानः शूरा महार्थी ॥५५॥  
 वर्येन नृप माऽन्य गच्छ हेमवत्सुविणि । अन्तः पश्येन भूत्वा रेवायां पतिता मह ॥५६॥  
 करिष्यामि जलजोडां चरिषिक्कं शृणु मद्रज । इत्युक्तं त्रि तया नन्दा न वचन्ध मनो नृपे ॥५७॥  
 वर्येन नृपं मेति नन्दास्याऽमहारथी । नृपतिं ते कथं द्वे श्रेया इत्यथ वदन्तमा ॥५८॥  
 पृथु सा नानृपाणां सा वर्णनं नि पृथक् पृथक् स्तुतिष्य नन्दा । शुभ्रवर्णा नृपान्महा ॥५९॥  
 जगाम शिवाकामस्या सतन्दा भरतानुजम् । सुमन्त्रादीन् तस्य भूत्वा र्थं ताममान्त्रणा ॥६०॥  
 ततः प्रोवाच मा नन्दा पश्येन भरतानुजम् । कोमलेन्द्रस्य रामस्य गन्धमकोदरोपमम् ॥६१॥  
 अपेक्ष्याचामिनं रामराजकाक्यानुवर्तिनम् वर्येन तस्मिन्केऽयं वनहीनर्षा स्वमा भव ॥६२॥  
 इत्युक्तापि तया तन्वी शत्रुघ्ने तिज्जमानमम् । न वचन्ध भृशं संशयं गतुं चकार ताम् ॥६३॥

त्रिवर्णोत्तम वस्त्रा प्रेम करता है । आज यदि तुम हमरा साथ रह करोगे तो मैं बहुत बड़ाकर तुम्हें जानकी अतुल्य कर्तारिणीया देखानी । मेरी जान माननी जीव इसी जगता पति बन कर जागे । अब आगे मत चला ऐसा कहतेपर भी उसका मन उस राजपर नहीं रमा और जगें चलेगा महल किया । ४५-४८ । नन्दा भी दूसरा राजाके सम्मुख पहुँचकर कहते लयो दृमुद्रा' इस राजाकी आर टन्ना । यह राज्य में नामिक दशमे रत्ना हुआ राज नरसी है । इनका गुणन नाम है । ननुक मारन देगवान बहुतसे घाटे दसके पक्ष हैं किन्तु ही गृणीको तरुत नेवावालो निगी भी इनके ॥ ४९ ॥ इसके आगे राम वर्यायें सोचने रहती है । हे चरिषिके नृ इस पश्य कर ले । देख मेरे राजा नृपक राज न इसका भी मुँह है । राजमर्दिनो बनकर तु अपना जीवन मुक्त कर ले । उस राजाको वर्यागण्ड न पकर लियेजारा मन । न राजापर भी नहीं रमा और नन्दाको लगे चरुके लिए भोले किया । उसके संजतन न ॥ चरिषिके को स्वस्थ पिय क्षण भरमे एक दूसरे राजाके पास पहुँचकर बोली है जान इस राजाको देखो यह दैवप्रपन्नका रहनवरा, कमलक रुद्रा कायल तथा सरस्वतीनका वंशज है । यह वस्त्रा पाँडा लय महारथी है और प्रत्यक्ष हम नामसे विमान है । ॥ ४९-५५ ॥ इसको वरकर तु अपने साथ सम्मन्य पश्यर पहुँची । इसकी महिषी बनकर तु पतिके साथ नर्मदानदीपे सानन्द विहार करोगी ॥ ५६ ॥ ॥ ५७ ॥ कहतेपर भी वह चरिषिकाको ऊँझा नहीं लया । क्योंकि नन्दाज भी कहा था— 'जं नृपमा वर' याने इसे यत्त पसन्द कर' दूसरे 'समहारथी' शब्दसे भी तिस्कार ही किया था । इसलिए वह भी अन्ता नहीं लगा । नन्दाक दुष्टक वर्याको यह श्रुत मरुती थी ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इस प्रकार जलक राजाका पृथक् पृथक् वर्णन तथा स्तुतिक अन्तर्गत लयव्याख्याका सुनती हुई पालकीपर बैठा हुआ चरिषिके रामके मन्त्रा मुन्त्रादिकोंकी लपकर अवगतक पास पहुँची ॥ ५९ ॥ ६० ॥ नन्द ने कहा— ये भरतके लड़ भई है किन्तु रामके संगे भाई जैसे मान्य पश्य है ॥ ६१ ॥ ये लयोऽयामे रहते है और राजा रामको आज्ञाका पालन करते है । चरिषिके । नृ इन्हीक साथ विवाह करके धुनकीतिके बहिन बन जा ॥ ६२ ॥ इन्ना कहनेपर भी शत्रुघ्ने उसका मन नहीं

ततः सा भरतं नीत्वा नन्दा तामाह मञ्जुलम् । शत्रुघ्नस्याग्रं चैनं हँकेषा जट्रोद्भवम् ॥६४॥  
 रामसेवारतं शतं पुषानं दयित्वाप्रियम् । वर्येन बालिकेऽथ माहम्या मरयुजले ॥६५॥  
 करिष्यमि जलकीडां नौकाया भग्नेन हि । तनयन्मन्त्रया नन्दा लक्ष्मणं चपिकां जवात् ॥६६॥  
 नीत्वा सौमित्रिकीनि तां वर्षयामास मादगम् । पश्येनं लक्ष्मणं बाले सुमित्राजट्रोद्भवम् ॥६७॥  
 जयोष्मत्तामिनं रामसेवाभक्तं मनोहरम् । वर्येन चपिकेऽथ मेघनादप्रमर्दनम् ॥

शेषांशमभवं सौमित्राया वीरस्वया मव ॥६८॥

सर्वान् भुन्वा रामसेवाभक्तान् पन्वीपुनानपि । छत्रचामादीनां च रोचयामास ताम् सा ॥६९॥  
 ततस्तन्मज्ञप्ता नन्दा श्रीगमाद्ये स्वयवरम् । नीत्वा तामाह मधुरं स्तोतुं तं ग्युनन्दनम् ॥७०॥  
 मइते चपिके देव येन पश्यमि राघवम् । धन्योऽहमपि या रामं दृष्ट्वा स्तोतुं पुरः स्थिता ॥७१॥  
 काहं मंदमतिर्नामि क रामो गुणसागरः । नाहं नन्मवने शुक्ला बाष्पीकिर्यत्र कुण्ठितः ॥७२॥  
 छतकोटिमितः श्लोकैश्चरित्र राघवस्य च । सुमित्रा दर्शितं तच्च श्रुतकोट्यश्रुतमितम् ॥७३॥  
 तस्याह वर्णनं किञ्चिन्करोमि यच्छृणुस्व तत् । सूर्यवशभूषणं श्रीदशमयनुदात्मजम् ॥७४॥  
 कौमल्यातनयं रामं माध्वाभागत्यगं विभुम् । ताटिकास्तकरं वीरं गाधिराष्ट्रपालकम् ॥७५॥  
 महन्योद्धारिणं श्रेष्ठं शिवनार्यकण्ठदनम् । जानकीवन्द्यं च रघवं जामदग्न्यदवानलम् ॥

नृपवर्द्धकज्ञेनार भगवदणदयिनम् ॥७६॥

ताताबापालकं भ्रात्रा वीनयाऽप्यवामिनम् । विराधमर्दनं इवाशं सारद्वयमर्दनम् ॥७७॥  
 त्रिशिराशृगमारीचकरन्धवालमर्दनम् । समुद्रवधनं लकराभशान्तकरं प्रभुम् ॥७८॥  
 रावणतपप्रहारीं सीतया राज्यकारिणम् । तीर्थपूजप्रकर्तारं रत्नाकीडजनन्याम् ॥७९॥

जगत् और जगत् चालनकारकत किया ॥ ६३ ॥ इसका बंद नन्दा चामिकाको लिय हुए भरतक सामने पहुँचकर कहते लगी —ये शत्रुघ्नक बड़ भाई अन्न के लोको गमने उत्पन्न हुए हैं ॥ ६४ ॥ ये भी रामकी सेवा करते हैं । इन मान्ते युवा एवं दयित्वाप्रिय भरतको घर ले तो तुम इवी तथा भरतके साथ समूक जलमें विहार करोगे । हे भी शोक नहीं अब नो चपिकका लकेन पकर नन्दा लक्ष्मणके सामने पहुँची ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वह चपिकासे कहते लगी—तुम चपिक के गमने उत्पन्न लक्ष्मण हैं । ये अयाऽगमे उत्पन्न हुए चामकी सेवा करते हैं । तुम इन मन्दर, मेघनादका नाश करनेवाले और श्रेष्ठ भगवान् के अंगमें उत्पन्न लक्ष्मणके साथ ग्राह करके अमिलाकी महिम्न बन जा ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ मंड आइनेको रामक मेजक, छत्रचमर्दहीन तथा ग्राह मृनकर उसने लीनो चाडपोसने किमें, का भी लही पलाइ किया ॥ ६९ ॥ इसका बंद चर्तके मकेत करनेपर वह भागे बरती हुई रामचन्द्रजीके सामने जा पहुँची । तब श्री रामकी स्तुति करती हुई इस तरह बोली— ॥ ७० ॥ हे चम्पिके ! मुहुरा महोभय है, जो तुम रामचन्द्रजीको रक्ष रही हो और मैं भी चन्द हूँ जो रामकी स्तुति करनेके लिए इनके सामने उपस्थित हुई हूँ ॥ ७१ ॥ जहाँ मैं एक मादमनि गर्रा और वहाँ गुणोंके सागर रामचन्द्र । मैं इसकी स्तुति कानम कैसे समझ हा सकती हूँ जब कि वन्द्याकि जैसे महान् कवि भी पूरी सीरसे वर्णन नहीं कर सके ॥ ७२ ॥ जन्तों से करोड़ प्रजापान भी बचन किया है भी केवल इनके भी करोड़ अशोकी स्तुति हुई है ॥ ७३ ॥ मैं अपनी बुद्धिके अनुसार यहाँ मैं स्तुति कर रही हूँ, सो मम । ये सूर्यवशके भूषण, महाराज वंशरथके पुत्र, कौमल्याके ननय और सवठरायक मञ्जु नारायण है । इन्होंने दृष्ट तादकाका वध करके विश्वामित्रक यमकी रक्षा की है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इन्होंने अहंन्याका आपस मुक्त किया और शिवधनुष तोड़ा है । ये सीताके वत्सल, वरगुराणके कोपकपी बनके दयामय, राजाओंके समूहको ओतनेवाले तथा भरतके जीवनदाता है ॥ ७६ ॥ ये पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले, काई तथा सीत के साथ कनोंमें रहनेवाले, विराधके नाशक, श्यामरूपधारी और कर-दुपगके नाशक हैं ॥ ७७ ॥ त्रिशिरा तथा मृगस्य धारण करनेवाले मासीचके वधकर्ता, कदम्ब तथा वातिकी मारनेवाले, समुद्रम सेतु भीपनेवाले और लंकाविवासी एकसेके पिता-

जानकीन्यासकर्तारं भीताग्रहणतन्त्रम् । कुशलवत्सजाश्रयां च पाउपर्यं पुष्टकारिणम् ॥८०॥  
 एकपत्नीयत्वं ज्ञानं सन्ध्यायनतन्त्रम् । एकवाणसमन्वयाननामानं मरुनिश्वजम् ॥८१॥  
 कोविदारध्वजं वराध्वजं वज्रध्वजं शुभम् । तार्क्ष्यध्वजं पुराकर्म्यं तार्क्ष्यवायुज्वहनम् ॥८२॥  
 नानागजावतगम्भसुनादीन्मन्त्रिजोभितम् । वारिहामनामीनं छत्रवाणसमण्डितम् ॥८३॥  
 वरयैतं चामिकेशं सीतया यत्नं गन्तव्यम् । नवर्षश्चाश्रयं मण्डोपाधिपेशपि च ॥८४॥  
 बाणः दन्तीचो यस्य सान्ध्यां सः सेदंश्च , नवरत्नमालिहास्य श्रीरायां कुरु मा व्रज ॥८५॥  
 हनुका नद्या वाला नरकापुण्या विधेर्वनम् । न वरन्ध्र मयै रामे सीतां ममृत्य चपिका ॥८६॥  
 एकपत्नीयत्वं सप्त सीतया क्षयजेनि च ।

खेदं मा चर तन्कण्ठे मालां मा रुरु चादिना ॥८७॥

तत्पत्न्यसंतया नद्या तां निनाय कुशं प्रति । श्रीरायं मधुरं शक्यं कुशवर्णनद्विपित ॥८८॥  
 एन एड्यान्पवयस श्रीरायतनयं कुशम् । ननकीन्धुरे दुर्गं जोगुं मार्यानिनं शुभम् ॥८९॥  
 लवाग्रतं धनुर्दनिगुणं विनयान्वितम् । पित्रा नमामकनरं वान्मीकिनिश्विषितम् ॥९०॥  
 एनं हृणीष्व वाले त्वं सुरमानसस्तुतम् । नवरत्नमयीं मालामय्य कण्ठे सुखं कुरु ॥९१॥  
 इति नन्दावचः श्रुत्वा चपिका सा स्मितान्वया ।

मुमोच मालिकां कण्ठे मयकगम्पां कुशस्य हि ॥९२॥

तदा निनेदूर्वाधानि तुष्टुर्बन्दिमानध्या । लज्जपाउधोमुनी गेते सभायां कुशवालकाः ॥९३॥  
 तदा सुखे भूरिकीर्तिः कुशकिं चम्पिकां शुभाम् । स्थापयाम म वेगेन पश्यन्मु नृपनीपु च ॥९४॥

शक महाप्रभु है । ८० ॥ रावणको मारनेवाले सीताके साथ राज्य करनेवाले, तीर्थ-यशकर्ता एवं सीताके साथ विहारकारी है । ८१ ॥ इन्हीं सीताका त्याग किया और फिर वापस बुला लिया इन्हीं अपना यज्ञ पूर्ण करनेके लिए अपने बेटों सब कुशके साथ भी पुष्ट किया था ॥ ८२ ॥ ये एकपत्नीयत्वं, गान्त, सन्ध्यायात्री, एक वाण तथा अस्तमयन-मधारी है । ये व. वराध्वज, बाणध्वज मयध्वज तथा गरुडध्वज हैं । पुराक, गरुड तथा हनुमान्जी इनके वाहन हैं ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ये बहुतसे राजाओंके मुकुटमणि है और मालिकाके प्रकाशसे इनका चरण सुर्माधित रहता है । ये एक अन्धे रिहामनवर वैद्यन है और उसपर सुन्दर छत्र चमर गोमिष छता है ॥ ८५ ॥ हे चम्पिके ! तू इन्हें वर ले और सीताके साथ रहनी हुई इनकी सेवा कर । ये नवी मण्डा एवं सातों द्वीपोंके अधिपति हैं ॥ ८६ ॥ ये किम् अन्य रथाविषयक वालाका वाणकी नाई समझत है । अब तू किसी प्रकारका सोच-विचार न करके यह नवरत्नोंकी माला इनके गन्धर्व डाल दे ॥ ८७ ॥ इस प्रकार नन्दाके समझाने-पर भी भाग्यवश तथा सीताका स्मरण करके राम था उसे पसन्द नहीं जाय । ८८ ॥ दूसरे नन्दाने भी अपने दण्डनमें कहा था कि एकपत्नीयता है, दुर्मन्त्र, सीतया अभय, सीताके साथ रहना पसन्द न कर ॥ ८९ ॥ तत्पत्न्या चम्पिकाके सन्तान नन्दा उसे वशके सामने ले गया और इस तरह कुशकी भी वर्णन करती हुई कहने लगी- ॥ ९० ॥ इनकी देखो, इनका अभी थोड़ा उमर है । ये रामके तनय तथा सीताके पुत्र हैं । इनका नाम कुश है । ये लवके बड़े भाई हैं । अभी इनका विवाह नहीं हुआ है । इसलिए ये भार्याही हैं, ये धनुर्वदम निगुण, विनीत स्वभाव पिताके साथ सम्राट् करनेवाले और महानृत्ति वान्मीकिके शिष्य हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ अतएव मनुष्यों और देवताओंसे सम्मान इन कुशको पसन्द करके तू इनके कंठमें यह नवरत्नमयी माला डाल दे । ९३ ॥ इस प्रकार नन्दाकी बात सुना तो हँसकर उसने अपने हाथोंसे कुशके बलेमें डरमाला डाल दी ॥ ९४ ॥ उस समय विविध प्रकारके वाज वज उठे और बन्दीजन तथा भ्रातृ ने खुश हो । उस सभामें लज्जासे नीचा गुन बिसे बैठा हुआ बालक कुश ही सुन्दर लग रहा था ॥ ९५ ॥ उस समय प्रसन्न होकर राजा भूरिकीर्तिने सब राजाओंके सामने ही चम्पिकाको कुशकी गोदमें बिठा

इदं जालप्रैव प्रसारया वेदेहा मुषोद निना स्त्रीभिमुषोद राघवोऽपि स । १५॥

इति श्रीभक्तकविरामचरितानमते श्रीमदानन्दरामजी वार्त्ताकाय विवृत्तकाण्डे

अम्पिकास्वयंवरी नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

## तृतीयः सर्गः

( द्वितीय गजकन्या सुमतिके स्वयवरका वचन )

श्रीरामदास उवाच

अथान्या सा सदाश्रय्य सुमतिश्चोत्तराणि । नृशार्नयानदिमागान्मुनदा धनयष्टिका । १ ॥  
 क्रमेण वर्णयामास शिवकास्थां सुलेचनाम् । दाले मृण्मूत्र देवाक्यं इत्यनेन नृपोत्तमम् ॥ २ ॥  
 अदन्तिरूपं चोपहादुतामानं च अनुत्तमम् । ज्ञानेन मद्गुणः कश्चिन्पृथिव्यां वर्तने नृपः ॥ ३ ॥  
 वरयेनं नृपं माऽग्रे मल्लं न्व गजनामनि । अथ न्व महिषा भूया त्रिभानयश्च मेकमे ॥ ४ ॥  
 इत्युत्तराभिधायनेन मुपं काडम्बं धामिनि । अनुत्तमं चेन वाक्यं दत्तं सा सुमतिः पुरा ॥ ५ ॥  
 भूया मेनं वरयेति मुनदाया वचः पुनः । श्रुत्वा तां चन्दवामास मा तां नोत्वा नृशार्नरम् ॥ ६ ॥  
 मुनन्दा सुमतिं प्राह पश्येनं न्व मुपं वरम् । प्रयत्नाद्यद्वयं संष्टं सिद्धिर्भविष्याम्यनम् ॥ ७ ॥  
 इत्युत्तरा सा दाले वृषाध्वेन नृपोत्तमम् । स्त्रुत्वा न्व स्वयवयसं भुजकेष्वगजितम् ॥ ८ ॥  
 अथ न्व महिषा भूया पयोर्णाड्यमिति । मुपं वृक जन्मकाडा नृपेणानेन धामिनि ॥ ९ ॥  
 एव वृषाध्व मा चेन मृण्मूत्रा मुनोदता । अथ गन्तु मुनन्दा मा नोदयामास मत्तया ॥ १० ॥  
 ततोऽप्यनृपनि नोत्वा मुनदा तां च नोत्तमम् । पश्येनं नृपनि दाले देशे मागधमवके ॥ ११ ॥  
 राज्ञः कोट्यर्थं श्रोयान्नाम्ना सधानं पर । वरयेनं नृप माऽग्रे मल्लं न्व पाथिवोत्तमम् ॥ १२ ॥  
 अथ न्व महिषा भूया नमूनाऽप्युत्तमे । अमर्त्यं नदा कडां हेमन्ते भव धामिनि ॥ १३ ॥

विश ॥ १४ ॥ अग्राहक रम्य न न न न न म दृश्यते कां दान न । बहुत प्रसन्न हृद ओर रामचन्द्रको भ  
 प्रादुर्भाव प्रसन्न हृद ॥ १५ ॥ इति श्रीभक्तकविरामचरितानमते श्रीमदानन्दरामजी वार्त्ताकाय विवृत्तकाण्डे  
 शिवकास्थिकावली नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदास धामि-नदमन्तर मुनन्दा इत्येव कथा सुमतिके स्वयवरका आरंभे गजावली सामन ले जाकर  
 शिवकास्थिकावली एक-एक राजाका विस्थाकर इस प्रकार प्रणय करती हुई कांती—हे बाबू! मेरी बाउ  
 नन्दी, राजाभाम भाम इस राजाको देख ॥ १ ॥ २ ॥ यह प्रवान्त देगका रहनवाला है । उदवाह इसका नाम  
 है । वृषोत्तमर इसका स्वाम काई राजा नही है । ३ ॥ गजनामिनि ! तु माग भले बड हवाको बर ले ।  
 इसका राना बनकर नु क्षिप्रा नदाक तटपर बने हुए दगम आनन्दार्थक विहार करण । मुनन्दाते “अनुत्तमम्”  
 तथा “एन मा वरय” इन दो वाक्योंका दो अर्थ प्रयोग किया था । उत्तम एकसे प्रणत और रम्य  
 निम्न होता थी । इस व रम्य सुमतिके बहु रादी पसन्द नही आता और उमन आने वरनका संकल किया  
 ॥ ४-६ ॥ मुनन्दा उसे दूसरे राजाके सम्मुख लाकर कहत थी—यह विदधं देगका निवास अ दूनवा नामका  
 राजा है ॥ ७ ॥ ८ ॥ इस मत छार । इसको अरुण धमि उना ले । यह देगका इका रथता है । इसका धोही  
 उमर है और बाहुओंके रेपुन बड दुख देग ॥ ९ ॥ एवका व न वनाकर नु पत्रावा नदीक तरङ्गय इसके साथ  
 सान्द्र नलविहार कर ॥ १० ॥ वही थी बाबूको “ए मा नृपोत्तम ( इस मत कर )” यह वाक्य मुनका उकते आगे  
 कहनेका संकल किया ॥ ११ ॥ लदनर मुनन्दा उसे दूसरे राजाके गमने ले जाकर धामि हे बाबू यह  
 राजाको देख, यह करणि माग देगके गज करण है । यह बडा धोमातु है । इसे लोग परणय कहते हैं ।  
 मस, नु इसी धोमा राजाको मपना पति बना ले—और निर्मलक पास मत जा ॥ १२ ॥ १३ ॥  
 इसको जयता पाटि बनाकर मातेके दिनोंय नु सदा बहनेवाले गम उरने कीदा किया करेगी ।

मैत्रं नृपं वर्यानि शिशिना सा मुनन्दया । ओदयामास तां वृद्धा माता निन्दे नृपात्मजम् ॥ १४ ॥  
 मुनन्दा राजिकामाह मृणुन्द मृगलोचनं । पश्येत् नृपतिं मय्ये द्रविदं विषये स्थितम् ॥ १५ ॥  
 कम्युकठाक्षयं मेष्टं कान्तिपुर्यां निशान्ननम् । एनं नृपं पूर्णाध्याय मां व्रतन्त्यं दर्शयन् ॥ १६ ॥  
 कान्तिपुर्यामननं त्वं सर्वलोचनोन्मये । क्रौञ्चं मत्तस्य निर्वीणं हेमकञ्जिगारिते ॥ १७ ॥  
 विष्णुं चरदग्जानन्द शिवोक्तमवकाशम् । पूजयन् सदास्तेन कम्युर्यावनृपेण च ॥ १८ ॥  
 पूर्णाध्यायं त्वं मां मां मां मां नृपस्य ज । दत्तिं वृद्धाक्षः श्रुत्वाऽग्रे तां गन्तुं प्रचोदयन् ॥ १९ ॥  
 मुनन्दाऽन्यं नृपं नीन्दा मुमतिं राक्षसमन्वितम् । पश्येत् नृपतिं मृगये मत्तमानङ्गमिति ॥ २० ॥  
 कर्णाटविषयस्थं स्य विजये चादिगोनम् । कमलस्य कञ्जहस्तं कमलमणिमनुजम् ॥ २१ ॥  
 क्षिप्तार्थं कनकपत्रं विजयस्य पुरस्मितम् । मृणुन्द वचनं श्रुत्वा पूर्णाध्यायं नृपोत्तमम् ॥ २२ ॥  
 अक्षयं त्वं महिषः सन्ता वने कृत्वा नृपदंजलम् । मुग्यं नृपेण कीदृशं मद्राक्ष्यं मृणु मां यज ॥ २३ ॥  
 मद्राक्ष्यं मृणु मेन्मुक्तां श्रुत्वा शक्यमनुजम् । गेति मुनिता राजा चोदयामास तां पुनः ॥ २४ ॥  
 एवं जानातृपणां च वर्णनानि पृथक् पृथक् । स्तुतिरूपनिषेधीनि श्रुत्वा द्वयर्थानि वालिका ॥ २५ ॥  
 न वरय मेवः कामिभूपती तेषु सा नदा । तनूनां शिवाकासम्पां मुनन्दा च सुतः क्रमान् ॥ २६ ॥  
 अतिक्रम्य रामप्रतिपालकानपि पुनश्च । युपकेतुं शिशुं नीत्वा वालिकां राक्षसमन्वितम् ॥ २७ ॥  
 अनुजन्मनयं बालं युपकेतुं मनोहरम् । पितृव्यं रामतनयद्वयवाक्यानुवर्तिनम् ॥ २८ ॥  
 एनं पश्य वालिके त्वं सावधानमना भव । वरयेत् नृपकेतुं प्राग्ग्रे मच्छ नृपात्मजे ॥ २९ ॥  
 मैत्रं वरय मच्छाग्रे वृद्धया केति चोदिता । मुनन्दा वादयामाग्रे गन्तुं सुमतिः पुनः ॥ ३० ॥  
 सुवाहं पुष्करं लघमेवं सा सुमतिः पुनः । विप्रकेतुपुङ्गव न न्यक्त्वा सा तु त्वं ययी ॥ ३१ ॥

॥ १३ ॥ यही सा मुनन्दाने "एनं नृप मा वरय ( इस राजाको मत कर, ) यह दृष्यन्क राक्षस कहा था जिससे सुमतिने आगे चलकर का संकल किया। तब वह उसे दूसरे राजाके समान ले गयी ॥ १४ ॥ और कहने लगे—हे मृणुन्दन ! इस मुरार राजाका दल, यह द्रविददेशका निवास है ॥ १५ ॥ इसका कम्युकठा नाम है। यह कान्तिपुर्याम है। यह इस मय के अब किसी अन्य राजाको दलनको इच्छा मत कर ॥ १६ ॥ कान्तिपुर्याम में अतिशय शिवाल गुपकमलसे युक्त अनन्त सचताम्य इसका साथ सानन्द विहार करती और इसका साथ वरदराज नामक विष्णु भगतात् तथा "मोदय न मक शिवका पूजन करयी। साधारण राजाओंको तरह हों भी न छोड़, इसको घर ले। इस प्रकार वृद्धा मुनन्दाकी बात सुनकर सुमतिने उस आगे चलकर संकल किया ॥ १७-१९ ॥ तब मुनन्दा उस दूसरे राजाके पास ल जाकर कहने लगी—हे मुनि ! हे प्रसमात्तममिति । हे इस राजाका दल ॥ २० ॥ यह कर्णाटक देशका रत्ननाया विजय नामक राजा है। कमलके समान इसका मुख है और कमलके ही समान इसका रूप-रंग भी है ॥ २१ ॥ इसका मुख सदा मुस्कुराता रहता है। कमलकी कलियोगी नई इसकी आँख है। यह विजयपुङ्गव नामकी है। तू मेरी बात मानकर इसे अपना पति बना ले ॥ २२ ॥ इसकी राजमहिषी बनकर तू बना तथा कृष्णा नदीके जलसे सानन्द विहार करेगी। मेरी बात मानकर तू और आगे मत बढ़ ॥ २३ ॥ "मद्राक्ष्य मां मृणु ( मेरी बात सुन )" यह बात सुनकर उसने मुनन्दाकी बातें धन्यकर संकल किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार अनेक राजाओंके वर्णन जो वालिकामें निषेधमय थे, किन्तु ऊपरसे अनुवर्तक्य मात्राम पड़ते थे। ऐसे दृष्यक वाक्योंको सुन-सुनकर वालिकाने उन राजाओंमें किसीका भी नहीं पसन्द किया। तब मुनन्दा शिवाकास वंशी हुई सुमतिका लेकर छोटे-बड़े रामक मन्त्रिगणोंको लाँघकर युपकेतुव सामन गयी और कहने लगी— ॥ २५-२७ ॥ ये अनुजके सुन्दर पुत्र युपकेतु है। ये विष्णु ( ताऊ ) रामके शाने पर कृगल्लके अनुगामी हैं ॥ २८ ॥ हे वालिके ! तू अब अपना मन सावधान करके इन्हें देख। हे नृपात्मजे ! अब आगे न जाकर तू इन्हींको अपना पति बना ले ॥ २९ ॥ "मां एन वरय अग्रे मच्छ ( इसे न कर, आगे न ले )" यह सद्युक्त पकर सुमतिने



लक्ष्मिनेश्वरा बालां सुनन्दा वाकरमन्त्रशान् । पश्यन् बालिके बाल लव श्रीगणेशान्मन्त्रम् ॥३२॥  
 श्रीकामं स्वल्पवयसं सीतालालितमुत्तमम् । वाष्पभीतिकुर्या लववक्षि गम्य कुशानुवम् ॥३३॥  
 कृणोर्ष्वनं सुखेनैव कण्ठेऽस्य मालिकां वृरु । कुशांके चपिकेय वे स्वया यद्वत्स्थिताऽय हि ॥३४॥  
 तथा स्वमपि यो मृगधे लवांके मास्थिता भव । इति वक्ष्या वचः श्रुत्वा सुनन्दायाः स्थितानना ॥३५॥  
 लवस्य कण्ठे हर्षेण लज्जयाऽवननानना । मुमन्तिर्निजराहुभ्यामपेयामाम मालिकाम् ॥३६॥  
 तदा निनेदुर्वायानि जगुस्ते गायकास्तदा । नन्तुर्वाग्नापथ तदुर्वाग्विन्दिकागथाः ॥३७॥  
 भूरिकर्तिर्नृपस्तुष्टो लवांके मुमन्ति तदा । शीघ्र निवेशयामाव रत्निपूर्णमनोमयः ॥३८॥  
 तोयमाप ग्धुशृष्टः सीता प्रामादसंस्थिता । जालरश्मैः सपन्नोऽक लवं दृष्ट्वा तुनोष सा ॥३९॥  
 ततः शर्माण्णान् पूज्य भूरिकानिर्नृपोत्तमः । प्रार्थयामास पितृवयचर्नस्तपुस्ततः स्थितः ॥४०॥  
 विवाहकौतुकं दृष्ट्वा यवद्विर्गम्यतामिति । तथेति ने नृपा प्रोत्तुर्पदुर्वागस्थलानि हि ॥४१॥  
 रामायं मगरं कर्तुमममर्था गनश्रियः । स्नानानना मनोमहाः कामवाणप्रपीडिताः ॥४२॥  
 रामोऽपि बन्धुमित्रालेख्यो वासस्थान मुदा । अथापरे दिन गम भूरिकानिः समापयौ ॥४३॥  
 पुणेधसोपविष्टः सञ्ज्वा राम वचोऽवर्तान् दृष्ट्वा जम्नादामः मुमुहूर्तः सुखावहः ॥४४॥  
 मायर्माकुल रामाश्च त्यक्ताश्चयकामकम् । उभयोश्च मण्डपयोः कायापवासापय प्रभो ॥४५॥  
 तथेति राघवश्चोक्त्वा पविष्ट चोदयतदा । सोऽपि गमाङ्गया ज्योतिःशास्त्रतः रत्निप्रेष्टितः ॥४६॥  
 मुहूर्तं कथयामाव पञ्चमंऽहनि राघवम् । ततस्तुष्टो भूरिकानिर्गणेश लज्जपत्रिकाय् ॥४७॥

सुनन्दाकी आगे बन्दनका सकल किया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सुवाहु, मुष्कर, तदा, शिरकेतु तथा भगदको छाड़ती हुई वह लवके पास पहुँचा ॥ ३१ ॥ जब मुमन्ति ने लकी आर दयन लगी सब सुनन्दा बाल्य-हे बाले । इस बाल्यको पस यह शम्भका पुत्र है, यह अपना विवाह करवा चाहता है, इसको थोड़ी उमर है । सीताके द्वारा इसका पालन-पोषण हुआ है, य लव १५ वर्ष का है, इसका नाम है उत्तम । या प्राप्त हुई है और वह कुशाका छोटा भाई है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तू सागरद्वीप अपनी पोत बनाकर इसका गलेमें बरमाणा डाल दे, जिस तरह तुम्हारी बहिन भगिष्ठा कुशकी गलेमें चोरी है उसी तरह या तुम्हारे ! तू भी लवकी गोदमें बैठ जा । इस प्रकार सुनन्दाकी बात सुनकर वह मुस्कगदी और लज्ज दश मस्तक झुकाकर उसने अपने हाथोंसे लवके गलेमें बरमाणा डाल दी ॥ ३४-३६ ॥ उस समय अन्क प्रकाश कर बज, गायत्री गाने गाये, वेश्यायें नाचने लगी और बड़ीजन स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ महाराज भूरिकानिने प्रसन्न होकर मुमन्तिको लवकी गोदमें बिठा दिया ॥ ३८ ॥ यह देखकर रामचन्द्रजी तथा भेटरेवर बैठ सीता दोनों प्रसन्न हुए । जब करीबोसे सीतान लवकी बादम मुमन्तिका बैरा देख, लवकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर राजा भूरिकानिने वहाँ बादे हुए सब राजाकाका पूजा करके दिनपूर्वक प्रार्थना की— ॥ ४० ॥ जब आप लोग विवाहका भी उत्सव देखकर आइएगा । राजाश्री भी लवकी बात स्वीकार कर ली और अपने-अपने डेरेपर चले गये ॥ ४१ ॥ वे सब राज राजस मुहूर्त करनमें असमर्थ थे । अतएव उनकी भी नष्ट हो बसी या, कुछ मुहूर्त गवारा बनाह भग हो गया या और कनारें कामके बाणोंसे दीप्त हो रहे थे ॥ ४२ ॥ राम भी अपने भाइयों और बन्धुके साथ प्रसन्नतापूर्वक डेरेपर गये । इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकानि रामके पास पहुँचे ॥ ४३ ॥ पुर्गाहने उनका हाथ पक । वे रामके समक्ष बैठे और कहा कि कोई अच्छा समय दिवस तथा सुखवाक्य मुहूर्त निम्नादि । फिर कहा—हे राम ! अपने चरणोंके भक्त मुम दासकी प्रार्थनाको स्वीकार करके दोनों मण्डपोंके लिए जो कार्य करने हैं, उनके लिए आज्ञा दीजिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ "मच्छा" कहकर रामने बलिष्ठकी ओर लक्षित किया । जिसने रामकी आज्ञासे स्थितिस्थावकी जाननेवाले कितने ही पण्डितोंके साथ विचार करके उनके दायरे दिन विवाहका शुभ मुहूर्त बतलाया । इसके अनन्तर प्रसन्न बनने भूरिकानिने गणेशजी, लज्जपत्रिका, गणकी, पण्डितों, वैदिक आदिको सब रामके साथवाले बंधुओं और



सीतादिभिर्वर्णीषु संस्थितामस्नवा पथि । प्रामादोपरि संस्थाभिर्नारीभिः पुष्पवृष्टिभिः ॥ ६६ ॥  
हरिद्रापीतधान्यैश्च मागल्पैर्मौक्तिकैरपि लाजाभिर्होमपुष्पैश्च वसिन्वावीक्षिता मुहुः ॥ ६७ ॥  
लम्पतुर्वालिकावेवं पद्मम्नौ कौतुकानि हि । ददर्शतुर्वादिकाश्च पुष्पैर्वृष्टिभिर्निर्मिताः ॥ ६८ ॥  
तथा कृत्रिमवृथाश्च एतावाश्च ध्वजस्त्रया तथोपश्रिम्भवान्पुष्पान् वह्निस्पर्शविदीपितान् ॥ ६९ ॥

शतदस्थानेष्वधीभिः पुरितान्कृत्रिमान् जनान् ।

नथा व्याज्रादिकान्हिम्नानेष्वधीभिः प्रपूरितान् ॥ ७० ॥

तडिन्मम नान् गगने प्राकाशनीष्वधीभगान् ।

कैकेचक्रोपमादीश्च चन्द्रज्योत्स्नानास्तु कृत्रिमाः ॥ ७१ ॥

एव ददर्शतुर्नानाकौतुकानि नृपात्मजौ तमम्नौ भूरिकीर्तेश्च मन्वा मण्डपमुत्तमम् ॥ ७२ ॥  
नानाप्रहोन्मयैर्वालो चापमच्छत्रमण्डितौ अवलम्ब्य मत्तेन्द्राभ्यां नस्थतुर्मण्डपागणे ॥ ७३ ॥  
मधुपर्कविधानानि विष्टादीनि वै क्रमम् । तैर्गुरु चक्रवर्त्तौ ब्राह्मणैः पारिवोष्टौ ॥ ७४ ॥  
ततो वस्त्रैः पूजनं च सर्वतः परमं रघुनन्दनः । चकार गुरुण युक्तमन्दा म मण्डपागणे ॥ ७५ ॥  
ततो लम्पमुहूर्तं न कुशं चम्पिदयं गुरुः । तथा लवं गुपत्यापि पृथग्वेदिकयोस्तदा ॥ ७६ ॥  
कृत्वा मुमक्षिर्ता चोदी दपन्योरन्तरे पटौ । धृन्शोभयोः पृथक् चित्रौ नूतनौ हेमततुजौ ॥ ७७ ॥  
नानाममलतोषांश्च मुनेदिशकमुर्मुराः । आगन्मर्वे जनागत्स्फी शृण्वतो मंगलस्वनान् ॥ ७८ ॥

इति श्रीमत्कौटिल्यामचरितम् । ३० । मदानन्दर ३ । ३० । राज्ञोऽन्मोकीये

१ । कौटिल्यामचरितम् । ३० । मदानन्दर ३ । ३० । राज्ञोऽन्मोकीये

एवं वन्दोजनोंकी स्तुतियां सुनत हुए राजा भूरिकीर्तिके मन्मोकी खोर चले जा रहे थे ॥ ६५ ॥ सीतादिक माताएँ हरिनि गोवर बैठे थीं । अर्जुनगोवर बैठे हुए भगवन्मोक्तिक, वातके हावे और मरणके बने फूल भी बरसते जा रहे थे । वे नागिना कुश लक्ष्मी प्रेमधरा हरिम निहार रही थीं । इस तरहके कौतुक देखत हुए वे दोनों बालक चले जा रहे थे । परमेश्वर कृपाकी वर्ण ज्ञास सभी वाटिकाएँ, कृत्रिम वृक्ष, पताका, ध्वजा, तमालेंक बने हिम वृक्ष ज्ञा आगकी चिनगारी पाकर जलने लगत थे ॥ ६६ ६६ ॥ उन्हें और पादोपर बैठे हुए लोर्वाष्टिपूष, अनाजरी मनुष्यो, भस्मासे भरे हुए व्याज आदि हिंस जन्तुओं, औषधिके संयोगसे बिजलीकी भाई चमकत हुए मगलशर्णी जन्मो तथा मयूर आदिके छूटने हुए चक्रोको वे राजे कौतूहल भरी आँखोंसे देखते जा रहे थे । ७० । ७१ । इस प्रकार मागम अनेक कौतुकाका देखते हुए वे राजा भूरिकीर्तिके उत्तम मंडपमें पहुँच । उस समय लोग म महान् उत्साह दिवायो पहना था । उन दच्चोपर लव लगे थे और दिव्य चमक चल रहे थे । वहाँ पर्वचक्र से शर्य से उलने और मण्डपाद्वकस पहुँचे ॥ ७२ ॥ ७३ । उनके गुरुजनोंने ब्राह्मणोंके साथ मरणके दिष्टर धादि विश्व सम्पन्न किये । ७४ ॥ इसके अनन्तर गायने साता हवा गुहजनोंके सार उस मण्डपमें उन नानो बह्म की पूजा की ॥ ७५ ॥ तदनन्तर लानका मुहूर्त आनेपर गुरु वसिष्ठने कुशकी चम्पिकाके साथ एवं लवकी नूतनिके साथ अश्व-अश्व वेदीपर बिठाया ॥ ७६ ॥ इस तरह दोनों बर-वचनकी मकली तरह विडकारके उनके बीचमें एक-एक पर्दा डाल दिया और सब लोग चुरचाप गुरु वसिष्ठके मुखसे उच्चरित नाना प्रकारके मागलिक शर्णोंको सुनने लगे ॥ ७७ । ७८ । इति श्रीमत्कौटिल्यामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दर मागने राज्ञोऽन्मोकीये पं० रामनेमपाण्डेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते विवाह-काण्डे तृतीये सर्गेः ॥ ३ ॥

## चतुर्थः सर्गः

( लव-कुशके विवाहका वर्णन )

श्रीरामराम उवाच

श्रीसीता रघुनायकश्च गिरिजा अम्बुगणेशम्नया

नन्दीपण्डुवल्ग्वक्ष्णौ च भरतः कजोज्ज्वलः शशुदा ।

सर्वे ते सुनयः सुराश्च दिनिकाग्र्योर्धादिनद्यो नवाः

दिवरात्राः शशिभाम्कर्गो च हनुमान् कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥ १ ॥

तदेव लयं सुदिनं तदेव ताराचल चद्रवल तदेव । विद्याचल दैत्यल तदेव मीनायतेयन्मरण विधेयम् ॥

एवं मंगलघोषैश्च नानावाद्यपुरःसरम् । तनुस्त्रयैः पटैः सुकृत्वाऽम्पुष्पादभिति स्मरन् ॥ ३ ॥

तयोस्ते पाणिग्रहणविधान विधिपूर्वकम् । लाजहोमादिक सर्वं चक्रुर्मंगलपूर्वकम् ॥ ४ ॥

तदा महावाद्यघोषा निनेदुर्मण्डपागणे । ननुतुर्वागनायश्च तदा मागधचन्देनः ॥ ५ ॥

तनुर्मंगलगीतानि तुष्टुवृत्ते महाध्वनैः । तदा दानान्यनैकानि चक्रतुभौ नृपो नमौ ॥ ६ ॥

भूरिकीर्तिरामचन्द्रौ महानां पशुर्गतिः । अथ तौ बालकौ वक्ष्यौ निजकटगोनिषेयम् वै ॥ ७ ॥

सीतौर्मिलादिभिः स्नेभिर्जम्भतुर्भाजनगृहम् । तत्र गौरीदेवी पूज्य चक्रतुश्चाग्रमिचनम् ॥ ८ ॥

ततः कुशश्चपाशिया सुमत्या स लोचने च । चक्रतुर्मोजनं चोभौ स्त्रीभिः सर्वत्र वेष्टितौ ॥ ९ ॥

भात्रा सहोपनयने विवाहे भार्यया सह । अन्येन नैव भोक्तव्यं भुक्तं चेत्पतिः स्मृतः ॥ १० ॥

रामोऽपि पशुभिः पौरैः सुहृद्भिः पार्थिवोत्तमैः । चक्रात् मोजनं भूरिकीर्तैः समन्नि वै मुदा ॥ ११ ॥

एवं सीताऽपि नारीभिश्चकार भोजनं तदा । भूरिकीर्तैः स्नुषाभिः सा प्रार्थिता वृद्धिता मुदा ॥ १२ ॥

ततो नानागमुन्माहान् भूरिकीर्तिश्चकार सः । अथ तौ बालकौ वक्ष्यौ स्त्रीवाक्यैर्मार्तुगन्धिभौ ॥ १३ ॥

स्वस्थश्चमिधौ चापि स्त्रीभिः सर्वत्र वेष्टितौ । स्वस्वपत्न्याः पदयोः शिरोम्भ्यां नमनं मुदा ॥ १४ ॥

श्रीरामराम कहते हैं—रामा, राम, गिरिजा शिव, गणेश, नन्दी, स्वापिकर्तिकर, लक्ष्मण, भरत, शशुप्न, महारा, समस्त रुष्य देवता देव्य मार ताई, तदा त्रिवाणल, चन्द्रमा, सूर्य एवं हनुमान्जी के साथ साथ सोमाका करणण करें ॥ १ ॥ वही लगन है, वही मदिन है और ताराचल तथा चन्द्रवल भी वही है, त्रिवाल कि लीलापति र मन प्रनका स्मरण किया प्राय ॥ ~ अनेक प्रकारक वाजोंके साथ इस तरह मंगल-घोष करनेके अनन्तर "अम्पुष्पाहम्" ऐसा उच्चारण करत हुए वनिजत्र न अन्न पत्रका दूर कर दिया ॥ ३ ॥ विधिपूर्वक हुवनदि हुवनक साथ साथ उन दोनों वर वपुजाके पाणिग्रहण करवार किले ॥ ४ ॥ उस समय यन्त्रपक्ष महावाद्यघोष हुए वेणु एवं लो मागध और चन्दी जनके मुनिपाठ हुए और गाने गाये गये । उस समय उस दोनों राजाओं ( राम और भूरिकीर्ति ) ने अनेक प्रकारक दान दिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ दोनों सम्बन्धी उस समय दहे आनन्दित थे । तदनन्तर दोनों बालक अपनी अपनी स्त्रियों को कमरपर बिठलाकर सीता-सीतादिनाके साथ भोजनगला गये । वही उन्होंने शिव पर्वत की पूजा की और अयस्त्रिचन-विधि सम्पन्न की ॥ ७ ॥ ८ ॥ तब सब त्रिवासे वेष्टित चमिकाके साथ वैष्णव कुशन और सुमनिक साथ लवने भोजन किया ॥ ९ ॥ क्योंकि शास्त्रका कहना है कि ज्यनयन काममें माताके साथ एवं विवाहमें अपनी स्त्रीके साथ वैष्णव घर भोजन करे और कितोंके सह नहो यदि किसी औरके साथ भोजन करे तो गुरु अतिव कहा जाता है ॥ १० ॥ उधर राम भी अपने भाइयों, पुरवारियों, सम्बन्धियों और राजाओंके साथ महाराज भूरिकीर्तिके भवनमें गये और वही भोजन किया ॥ ११ ॥ उसी तरह सीताने भी स्त्रियोंके साथ जाकर भूरिकीर्तिकी वक्षोंके प्रार्थना करनेपर उन्हींके वही भोजन किया ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् राजा भूरिकीर्तिने विविध प्रकारक उत्सव

चक्रतुम्बोषमण्यौ ते तत्रापि स्मितमनः । वधुराश्च ते सर्वे निष्कपीना विरेजिरे ॥१६॥  
 कृकृमांक्षितपादौ ते ददतुर्ब्रह्महृषीः । एव नानामधुम्यद्देगतेर्ज्ञानं दिनप्रथम् ॥१७॥  
 चतुर्थे दिवसे गर्वा वधवाश्रितगतिर्न । दापैर्नीलगतिर्न चापौ वाञ्छकीर्तौ विरेजतुः ॥१८॥  
 ततस्तौ बालकौ पन्थौ स्वमण्युषु निवेश्य च चक्रतुम्बां उव नृपं कुशकी मण्डपांगणे ॥१९॥  
 मातृश्रृङ्गादिकास्तु पश्यन्तु च मयादम् । पार्श्वे भूरिकानिः कुशाय च लताय च ॥२०॥  
 ददौ तुष्टमना शीघ्रं गमयन्मधुदणितः । निधुनाम्बुजमेन्द्राश्च शिशिकाश्चापि तन्मिताः ॥२१॥  
 तुरंगान्यश्च निवृत्तं निवृत्तान्मन्दानन्ददौ । डाभ्यां पृथक् पृथक् पीवीषशम्भा द्रव्यपुरितान् २२॥  
 नानालङ्कारवामांसि गा दायाः सैजकांस्तथा । ददौ नाभ्यां भूरिकानियेषां सम्पन्नान्विते ॥२३॥  
 एवं मन्मथानितुस्तेन श्रीगणेशे भूरिकीर्तिना । सपत्नीकाभ्यां पुत्राभ्यां सज्जन्ताभ्यां मधुनितः २४॥  
 सीतया च भूमिः परैः सुदृष्टिर्भातिभिर्नृपैः । पृथक्पृथक् स ययौ स्वीयमण्डपम् ॥२५॥  
 चतुर्थी ततो गमो मयमेकं निनाय सः । चक्रा सीतया कीडां नीकासंस्थौ महोदधौ ॥२६॥  
 ततः स्नुषाभ्यां श्रीरमौ ययौ निजपुरीं सुखम् । अयोध्याया रिजयोऽपि भुज्या गमं मयागतम् ॥२७॥  
 यः पुरीं रक्षणार्थं हि गमेगातापितः पुरा । स पुरीं शोभय माय पताकाध्वजदीर्घाः ॥२८॥  
 वरमेव पुरस्कृत्य नृपं नृपपुरःसरम् । रिजयो गमयांशो राम प्रयुष्यतौ जवात् ॥२९॥  
 अथो नदन्तु वाद्येण गमो बालैः सुदृज्जनैः । स्नुषाभ्यां सीतया च भुज्याभिर्भातिभिः पुरीम् ॥३०॥  
 निवेश्य सीतया परैः पश्यन्मण्डपं पथि । तदा वेद्या नननुस्त्पुत्र्येन्द्रमागधाः ॥३१॥  
 स्वस्वपत्न्युतौ बालौ वर्याम्बयोः स्थितौ । तदा विरेजतुम्बां श्रीभिः पुष्पैः सुवर्षितौ ॥३२॥

वि० :- उन दोनो बालकों के निवेश के बाद गमना के बाद वेद तथा भजना साथ मण्डप में बैठ कर अपनी-अपनी स्थिति की वन्दना की ॥ १६ ॥ १७ ॥ उस समय व वरवा कतिपय प्रसन्न होकर मन्मथ मुसका रहे थे । बाद के गमे प्रकारसे वे बने मन्मथ दास्यन ॥ १८ ॥ इसके बाद उन दोनों बहुमोल कुमकुम-हारा हुए अपने-अपने पणिकों के साथ रत्न दिए । इस तरह ताला मन्मथ के उसवीक साथ तीन दिन बीते ॥ १९ ॥ चतुर्थ दिन मन्मथ वाञ्छित वर पावने के बाद गमकर वह कुशकी आरती की गयी । उस समय व उनकी स्नुषागत होकर ही जगमगे ॥ २० ॥ व निजपुरी ने दत्ता काटक अथवा अपनी गमकी गठना के बिना कल नापड़ने तक करने लगे ॥ २१ ॥ मातामह आदि निजो मण्डपमें बैठे यह कौतुक देख रही थीं । वधुराश्च भूरिकीर्तिन अपन दोनों आमाताओं को खूब सज्जक आदि भी दिये ॥ २२ ॥ रामके सम्बन्धमें मन्मथ होकर उन्होंने उन्हें एक लाख हाथी, इतनी ही गजोंकरों, पाँच लाख घोड़े, एक लाख रथ, अस्त्र-शस्त्र आदि सम्पत्ति के जड़ द्रव्यम भरकर दान करवा देनेवाले ॥ २३ ॥ २४ ॥ इनके सिवाय विद्वत्-जनों के प्रचार, वरवा गम, राम दत्ता आदि की दत्तन दिये कि जिसका गिनती सम्भव नहीं थी ॥ २५ ॥ २६ ॥ चतुर्थी दिन मन्मथ मन्मथित होकर आगमन करने लगते तब पुत्रों के साथ हाथीवर सवार होकर वे लगे लगे, पुत्र सिने, नन्दन की वया राजाजोगा न गमने का पूर्ववत् उत्साहक साथ अपने मण्डप-में गये ॥ २७ ॥ २८ ॥ इसवे उत्तर गमने उस वटपुरी में एक साथ विताया । वही वे कभी कभी नौकापर-पर गमने का साथ पड़ने से रोक दिया ॥ २९ ॥ इसके बाद उत्तर दोनों पत्नीकुओं को साथ आनन्दपूर्वक-क गमने प्रसन्न किया । उत्तर अयोध्या में जड़ दिजाने, जिसकी राम नगरकी रक्षा के लिए छोड़ आये थे, वरवा आगमनका बाद पुत्री लो उसने वरवा-दत्ता-दत्तिका आदिसे नगरकी गृह दत्तया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ एक-दूसरे हाथोंका लगा करके रामका मन्मथ विजय रामकी आमाता करने का पड़नेवा ॥ ३२ ॥ इसके आगमनक-क कि विविध प्रकारके कतिपय रहे थे तब राम अपने पत्नी, मन्मथन पत्नीकुआ, मन्मथ, पुत्रों-सिने तथा वरवा साथ पुरी में प्रविष्ट हुए ॥ ३३ ॥ उस समय वधवा गम रही थी और मन्मथ लगे बन्दीजन-संग रह रहे थे ॥ ३४ ॥ अपनी-अपनी पत्नीके साथ दोनों काटक ( कुश और लव ) हाथीवर बैठे हुए

एवं रामो गृह गत्वा बालाभ्यां स्वीयमग्रनि । कामयित्वा गमाचौ न ददौ दानान्यनेकशः ॥३२॥  
 तदाऽर्त्तकाम्यव्याघ्रं संपूज्य हृत्पुनन्दनः । मुहुः सकलाऽर्थाणिष्ठान् जानपदाभ्रवान् ॥३३॥  
 आचोऽहलदिकान्मर्दान् संनुष्ठानकर्ममुदा । ततः गभूरिकीर्तनान् संश्रुणुः सैन्यमयुतान् ॥३४॥  
 सम्पूज्य प्रेक्षायाम्य स्वदश हृत्पुनन्दनः । ततः यजान् जानपदान् महदश्व पञ्चगमान् ॥३५॥  
 त्रिभीषणादिकांश्चाकौ संनु स्नास्यस्यल ददौ । ततः सर्वे राघवं ने ब्रह्माभरणसादृतैः ॥३६॥  
 स्वस्वकोशैश्च संपूज्य तस्या राम गपुमंदा । सर्वं रंजिष्य निर्जः निर्जः श्रीगणेश त्रिप्राजिताः ॥३७॥  
 अध रामः स्नुषाभ्यां पुषाभ्यां यन्धुर्मास्रिया । रुच्य चकार राजयं न भूदेणप्रतिम चिरम् ॥३८॥  
 ततः आचणसामस्य दर्शमाभ्य पोडक । आभ्यस्यन्ते यानि य नि समुत्सवहृदिनानि हि ॥३९॥  
 तेषु सर्वेषु तं राम मागेषु सचातकम् । संपूर्ण भूरिकीर्तनं न दिनान्य परमत्मान ॥४०॥  
 पूजयामास विधिवदस्त्रालकाशदरैः । क्रियदूर्दिनानि सकलाभ्य दद्यात्ताज्ञा पुनः पुनः ॥४१॥  
 सवन्त्यरममुत्सवहृदिनानि पोडकाभुजा । विष्णुदस मया तेऽग्रे कल्पने काले च शृणु ॥४२॥  
 आचणस्याप मागस्य कदा श्रेष्ठा प्रकीर्तता । सद्रमुक्कचचतुर्यो नु विजया ददायी तदा पुनः ॥४३॥  
 द्वापानन्दश्च चन्वारि दिनान्यनिमर्त्तितः । मागस्यै पदमा च जना पट्टा च पुनः ॥४४॥  
 सकान्तिमकरादौ नु तथा च स्वना । हृत्पुनः स्वदशकलत्रं चन्वारि पुनः ॥४५॥  
 अश्ववास्या तुरीया च तथा वै ज्येष्ठतामसा । पञ्चमी च दशमी शुक्ला पड्यैव स्मृतानि हि ॥४६॥  
 सवन्त्यरममुत्सवहृदिनानि च । उक्तं चारकात् न म राय जीना ग्रपूजयत् ॥४७॥  
 एवं कृत्वा च तथा लवस्यपि सविस्तारम् । विरहो रमिषी शिष्य मया परै श्रुतौ मया ॥४८॥  
 यदा श्रीगामचन्द्रस्य वेङ्कटगोदणं शुभम् भविष्यति तदाऽगोष्ठापुर्गा चै मय्युज्ये ॥४९॥

सुसोभित हुआ रहे मे और मागस्य नगरकी महिमा के समस्त पुत्र वरस रहा हो ॥ ३२ ॥ इस तरह बड़े उत्साहके साथ वे अपने राजभवनमें गये वहाँ रामने दोनों धर्मके हुषा रुधिरात्त पूजल करवाये और छतके तट्टके दाव दिष्टे ॥ ३३ ॥ उस समय रामने अपने सम्बन्धियों, समस्त परचारियों, मित्रों जन्मपरासियों और राजसेने के लिये शायकल शेषाकाले पाण्डाजो रक्का जना प्रकारके वाग्यो और कृष्णपीथ भस्कार करके समस्त प्रमद किया रामने पञ्चांग सहाराज भूरिकीर्तिके मंत्रियों तथा सेनाकी पड़ा करके उग्र विदा कदा इसक बाद जनपदों के सम्बन्धियों, वासियों तथा विभीषण आदि मित्रोंका जन्म भरण नगरके शायक समझातल करके अत अत नगरका जानकी आज्ञा दी ॥ ३३-३६ ॥ इस प्रकार रामने आपन सत्कारका स्वीकार करके उन लोगोंके लिये अपने रामका पुत्र का और अपने-अपने देवकी दीटे ॥ ३७ ॥ इसके बाद राम सेना पुत्रों एवं पुत्रव सोच नाय रहने हुए युद्ध शिरो तक धमकी कुल राज्य करते रहे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर आचणका अमावस्याके नैकर वदमें मोरह वदवडे लोहाने और उत्सवहृदिनानि स्त्रार च आचणके जन्म पर समस्त रामका अपने यहाँ सादर कुलत थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वहाँ पट्टाचण के शायक अलकागोद मकरंन करके रामकी पूजा करते थे ॥ कुछ दिव राम वहाँ रहकर फिर आचण के लिये आगे और दूरा आनयन किया पहुँच जाया करते थे ॥ ४१ ॥ हे विष्णुदस अब मैं तुम्हें वर्षके उन दश दूर्दिनो के वृत्तान्त कहूँ निजकी चर्चा करना कहूँ ॥ ४२ ॥ आचण मागकी अमावस्या, भाद्रपद शुक्लपक्षके चतुर्थी कृष्णकी चित्तवा दशमी ॥ ४३ ॥ और अमावसीय अने पालकाल चार दिन बड़े महान्यक होते हैं ॥ ४४ ॥ मागके एक शुक्लपक्षकी पंचमी तथा पड्ये, मकरकी संक्रान्ति रघुमानसी और चैत्र शुक्लकी द्वातमने प्रतिपदा भी बड़ा पवित्र तिथि होगी है ॥ ४५ ॥ अतएव नव वा उत्तकी पुर्णिमा और आचणके शुक्लपक्षके मागपंचमी ये चार मासहृदिन महान् हैं ॥ ४६ ॥ ये ही सवन्त्यके बड़े बड़े उत्सवहृदिन सामे पड़े हैं इन्हीं दिना आचण के सपरिवार रामके अपने यहाँ शुभाकर पूज्य करते थे ॥ ४७ ॥ हे शिष्य ! जैसा कि मैं आजक बहुत दिनों पहले कृष्ण तथा लवका विवाह वृत्तान्त सुना था, इसी तरह वर्णन किया ॥ ४८ ॥ इसके

कुशः स्त्रिया चंपिकया जलक्रीडां करिष्यति । तस्य दक्षिणहस्तस्य कर्कणं रुक्मनिर्मितम् ॥५०॥  
 सरयूजलमध्ये तु पतिष्यति महोज्ज्वलम् । तत्र तोये कुमुदस्य वक्षस्य कुमुदती ॥५१॥  
 स्वसां दृष्ट्वा कंकणं तद्गृहीत्वा सप्र यास्यति । कुशोऽपि संकणार्थं हि वाणं सन्धारयिष्यति ॥५२॥  
 सरयूक्षीपणार्थं हि मनद्वयं भविष्यति । ततः सा कुमुदं गत्वा सरयुः प्रार्थयिष्यति ॥५३॥  
 सोऽपि दृष्ट्वा कुशं कुमुदं स्वसामादाय सादरम् । कुजमागत्य तं नत्वा स्वसां तस्मै प्रदास्यति ॥५४॥  
 रत्नानि कर्कणं दत्त्वा तेन सरयुं कर्तिष्यति । एवं कुमुदनीभार्याऽपि नस्यान्या भविष्यति ॥५५॥  
 तस्यां कुशान्मुननयोऽतिविनाम्ना भविष्यति । चंपिकाया दुहितरः सभविष्यन्ति नो सुताः ॥५६॥  
 अतियेः ध्रुववंशोऽपि चिरं विस्तारयेष्यति । एवं कुशस्य द्वे पत्न्यौ वर्धिते शिष्य वै मया ॥५७॥  
 अयस्वीयगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां कुशः सुखम् । तथा स्वोपगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां लयोऽपि च ॥५८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दराधायगे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे  
 कुशलवयोर्विवाहवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

### पञ्चमः सर्गः

( रामका अर्घ्यकन्याओं और नामकन्याओंको जलदेवीके वंशसे छुड़ाना )

श्रीरामदास उवाच

एकदा स्यूरीरः स सीतया बालप्रभुभिः । पौर्मन्त्रिजनैरिष्टैः पुष्पकस्थो ययौ वनम् ॥ १ ॥  
 वक्ष्यमानार्कलुकांश्च रजयन् जानकीं मुदा । ययां स दण्डकारण्यमगस्तेराश्रमान्तिकम् ॥ २ ॥  
 रामभागामाकर्ष्य कुम्भजन्मा सुतीक्ष्णः । प्रत्युद्गम्य रघुश्रेष्ठं निनाय कराभ्रमं प्रति ॥ ३ ॥  
 ततः स गुनिवर्यस्तु स्नात्वा गह्वरि संस्थितः । अक्षपूर्णं महालक्ष्मीं चिंतयामास चेतमि ॥ ४ ॥

शरीर जब कि रामचन्द्रजाका अंग अराहण हो जायगा । तब एक समय अयोध्यापुरीके सरयूजलमें कुश अपनी स्त्री, चम्पिकाके साथ जलक्रीडा करत रह्यो । उसी समय कुशके दक्षिण हाथका सुवर्णकर्कण जलमें गिर पला । उसी जलमें कुमुद नामक सर्पों की बहिन कुमुदती उस कर्कणको लेकर सरयू जली जायगी और कुश अपने कर्कणके लिए बहुतबड़ा शोक उठावने ॥ ५०-५२ ॥ इस प्रकार कुछ कुश सरयूकी सुखा देना चाह्यो । इसपर सरयू कुमुदके पास जाकर प्रार्थना करनी ॥ ५३ ॥ दूर भी सरयूके कथनानुसार कुशको कृपित देखकर उनसे पास आया और उन्हे प्रणाम करके अपनी बहिन कुमुदती कुशको दे देगा और बहुतसे रत्न तथा वह खोया हुआ कर्कण दकर कुशसे मित्रता कर लेगा । इस तरह कुछ समय बाद कुशकी कुमुदती नामकी एक दूसरी भार्या भी होगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इससे कुशका सुन्दर पुत्र अतिथि होगा । चम्पिकासे कन्यायें ही होंगी, पुत्र नहीं होंगे ॥ ५६ ॥ आगे चलकर उसी अतिथिके सुवर्णवंशका विस्तार होगा । हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने कुशका दोनों पत्नियोंकी कथा कह सुनायी ॥ ५७ ॥ वह सब ही जानेपर कुश अपनी स्त्री चम्पिका तथा लव सुमातके साथ आनन्दपूर्वक जीवनयन करने ॥ ५८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्द-रामायणे षष्ठ्यध्यायमगस्तेराश्रमवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदास बोले - एक बार रामचन्द्रजी बालप्रभुओं, पुरवासिनों, मन्त्रियों तथा इक्ष्वाकुके साथ पुष्पकविमानपर बैठकर अनेक प्रकारके कोनूक देवत और सीताको प्रसन्न करते हुए दशरथ गये । वहाँ दण्डकारण्यमें आगत्य ऋषिक आश्रमपर जा पहुंचे ॥ १ ॥ २ ॥ जब कि अगस्त्यजाकी रामके जानेका समाचार मिला तो अगस्त्यजीके लिए स्वयं गये और उन्हें आश्रमपूर्वक अपने आश्रममें ले आये । ३ ॥ इसके अनन्तर स्नान करके अगस्त्यजी एकान्तमें बैठ गये मन हो मन महालक्ष्मी अक्षपूर्णका आराधना किया ॥ ४ ॥

तदा तत्रैव तदाऽऽविर्भवत् सुरेश्वरी । ददौ तस्मै पाथवेन पूरितं पाथगुणम् ॥ ५ ॥  
 अक्षरपूर्णा मुनिः प्राह मध्याह्न्यान्तु विप्रधातुं हि । पटाक्षानि यथेष्टानि निष्काम्य तव मर्मिणी ॥ ६ ॥  
 सर्वेषामग्रतः शीघ्रं कर्मेतुं परिशेषणम् । इत्युक्त्वा साऽन्नपूर्णा त मुनिमन्तरिणे तदा ॥ ७ ॥  
 लोणमुद्रा पुनः पत्नी मध्याह्न्यान्तिकास्थवेशतः । विचिन्तयन्नि विचित्राणि सर्वेषां कुर्यात्तदा ॥ ८ ॥  
 सर्वाचिन्तानां विप्रणां चकार परिशेषणम् । अथ पुनं पृथुमेतुं कंकणं रत्ननिर्मले ॥ ९ ॥  
 ददौ मुदा कुम्भजन्मा मीनार्यं दिव्यकण्डले । एव संपूजितस्तेन मुनिना रघुनन्दनः ॥ १० ॥  
 सहितोऽगस्तिना स्थिन्दा पुष्पके पूर्ववत्पुनः । पश्यन्तीं दण्डकारण्ये कीतुकानि सप्ततः ॥ ११ ॥  
 विचिन्तां रघुश्रेष्ठो दर्शयामास मैथिलीम् । नानावृक्षान्यर्वाश्वं नदीः पक्षिकुलान्मृगान् ॥ १२ ॥  
 पञ्चाभ्यारमरो नास ददृशौ मीं भ्रमत् सः । तप्तटे राघवो रात्रौ निवस्यमङ्गोच्छ्रुता ॥ १३ ॥  
 एतस्मिन्ततरे रात्रौ नृपसमस्तर्मा शुभम् । शुभाच मधुर मीनं सीतया मंचके प्रभुः ॥ १४ ॥  
 तेजदि सर्वे शुभ्रवृक्षस्तन्मृगं गीतं च सुस्वरम् । अदृष्ट्वाऽभ्यारमस्तत्र तदा स रघुनन्दनः ॥ १५ ॥  
 पप्रच्छ कुम्भजन्मानं मीनं नृपं कुनस्त्रिदम् । श्रुत्वा मुनिनार्दकं वदन् नव सविस्तरम् ॥ १६ ॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तमर्गस्तत्रैवोऽजयीत् । रास राज्ञोवचश्च किं न्वं वेत्ति न वै त्रिदम् ॥ १७ ॥  
 गर्वानेतान्मन्मथेन वृत्तं आदायितुं मुदा । येन्मां पृच्छसि तर्ह्यत्र तवाग्रे प्रोदान्यहम् ॥ १८ ॥  
 पुन गन्धर्वराजस्य पुत्र्यः पच मनारमा । अजगत्का मुदा कीडां चक्रुश्च सरोवरे ॥ १९ ॥  
 एतस्मिन्ततरे राम नागकण्ठाः सरोवरात् । कीडार्थं निर्वयूः सप्त बहिराशयैरनाः ॥ २० ॥  
 तागां परस्परं मैत्रीं बधून् रघुनन्दन । तत्र तां नागकन्वाथ तथा गन्धर्वकन्यका ॥ २१ ॥  
 धामायानं सदा चक्रुः कीडार्थं समस्तटे । मया मुनिना तत्र मुदुर्वाक्यनिवारिताः ॥ २२ ॥

उही समय तक तपस्या में प्रसन्न हो रहे देवताकाका भी अचानक ही देवी अन्नपूर्णा प्रकट हो गयीं । उन्होंने  
 भगवन्मोहनो मोरस गण्ड एक पाथ दिया ॥ ५ ॥ और कहा कि इस दण्डकारण्यमें विविध प्रकारके एकलान निकाल-  
 निकालकर पुष्पादीकी सबके आगे पगस दे । इत्या कहकर अन्नपूर्णा अन्नघानि हा गयी ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके  
 अकसर जब कि भगवन्मोहन ने साधिवी नया निप्रो समय रामकी पूजा कर ली, तब भगवन्मोहनकी पत्नी  
 लोणामुद्रान उही पाथमेसे एकलान निकाल निपातकर सबके आगे पगस दिया । मोहनोपरान्त प्रमत्त मनवासे  
 रामको भगवन्मोहन एक जोड़ा बच्छुन और दोनाका कुण्डल दिये ॥ ८-१० ॥ इस प्रकार आह्मिरसे संस्तुत हाकर  
 राम भगवन्मोहन अपने साथ कि इस सबके साथ पुष्पाक धिमलपर जा बडे और दण्डकारण्यमें चारो ओर विविध  
 प्रकारके कीतुक इतने हुए इपर-उपर भ्रमन् लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ रागत्त नाना प्रकारके वृक्ष, पर्वत, नदी,  
 पत्ती आदि साक्षात दिखाने हुए वे पञ्चासर नागक गानागण पर पहुँच और वहाँपर रामने रात्रिपर निवास  
 किया ॥ १३ ॥ रात्रिक समय जब कि राम संकोच साथ अपनी शय्यापर सोने, तब उन्ह मोठे-मोठे  
 गोत और नृपकी च्चनि मुन पडा ॥ १४ ॥ उनक भिन्न-भिन्न नामके साथकालने आ बह मुन्वर धरति मुनी  
 किन्तु अक्षरावे नहीं दात पही । तब तमने अन्नपूर्णा पूजा ह पुनिधे ॥ आप मुन यह बतलाए कि  
 यह नृप मानकी च्चनि बहोसे लानी लानी द रू है स विस्तरपूरक हम बतलाए ॥ १५ ॥ १६ ॥  
 रामकी बात सुनकर महर्षि अगस्त्यन बहुत ह रावाक्याचन राम । तब अत यह वृत्तान्त नहीं  
 जानते ? ॥ १७ ॥ अन्त्या यदि नमोस कहलाना चाहत है तो मे आका मुन रहा ह ॥ १८ ॥ आजस  
 बहुत दिनों पहले गन्धर्वराजकी पाँच सुन्दर कन्या । जिनका कि राजोषमं भी नहीं हुआ था, अन्नपूर्णाके  
 इस सरोवरमें जलरोछा निकाल करले ॥ १९ ॥ हे राम ! जो समय एक बार उस सरोवरसे सात नग-  
 कन्याये भी अलक्रीडा करनेको निकलीं । उनको भी व-व-क-व-जी और यौवनका रंग अभी नहीं क्या था  
 ॥ २० ॥ तदनन्तर उन गन्धर्वकन्याओं और नागकन्याओं परस्पर मित्रता हो पया और वे नित्य उस सरो-  
 वरमें अलक्रीडा करनेको आने-जान लगे । उसी सरोवरपर तपस्या करते हुए एक तपस्वीने उनको कई बार



भाऽऽमन्त्रं पन्निकुटे रोते ता जलभायतः । जना यन्मन्त्रं कथं यथाज्ञाभ्युत्तरन्तम् ॥ २३ ॥  
 इन्द्रेण बोधिताश्चापि तत्तपोधमनं प्रति । मुनिव्यधि नवीनाश्च दृष्ट्वा स्थापार्थिना नदा ॥ २४ ॥  
 विना स्थापेन तासां न दण्डं सम्मन्त्रयद्गुरुः । अन्वयं ह्यराभ्युक्तं जलद्वीपः प्रचीदयत् ॥ २५ ॥  
 तद्वाक्याजलदेव्यस्ता मप्याह्वे स्वीयमदिभ्यु । निन्वृष्टं च बलदेव यश्च केषां गतिर्न हि ॥ २६ ॥  
 गंधर्वाः पन्नगा यत्र गतुं शक्ता न चाभवन् । ततोऽन्ते न मुनिः स्वर्गं गतस्तत्र सस्थिताः ॥ २७ ॥  
 ताः सर्वा जलदेवीनां मेदं मन्त्रयुता प्रयाः । तत्र वृत्तमाधुनिकं प्रादु राम स्मयप्रदम् ॥ २८ ॥  
 ता सद्य जलदेवीनां जलाभगतमस्य ते । कुर्वन्त नृन्यगीतानि तासां संश्रूयते ध्वनिः ॥ २९ ॥  
 एवं राम यथा गृहं तदपि सर्वं मया तदा । वृत्तं तत्रापि कथितं कुरु येन हितं भवेत् ॥ ३० ॥  
 मर्वाभिर्नागकन्यानां गांधर्वीणां तथा विभो । मुनिना सोदितथैव्य तदा रीनापतिर्मुदा ॥ ३१ ॥  
 लक्ष्मण प्राह मे चावमानयाश्च क्षणादह । मुक्त्या वाणमात्र्यापि दग्ध्वा देवी उल्लसिताः ॥ ३२ ॥  
 कन्यकाः पन्नगानां च तथा गंधर्वकन्यकाः । इति तद्वाक्यं कथं न श्रुत्वा सीमित्रिरादरात् ॥ ३३ ॥  
 श्रीवं स्थापं सत्पूजारं ददीं च गव्यं प्रति । नतः कोदण्डशृङ्गस्य दण्डकृत्य रघूदहः ॥ ३४ ॥  
 श्वरं जग्राह तूर्णानि निजनामार्तिना शिरः । तदा चत्वाल धरणा चुल्लुभं सम सागराः ॥ ३५ ॥  
 वही घोमरो वायुः प्रोव्यः क्षा दिशोऽप्यन । तामा निपतुर्वरणी द्रुतुर्वनचागणः ॥ ३६ ॥  
 पन्नगाः कपना आयन् वनपुलोहतं घना । तत्रज्ञाया जलद्वयस्ताः भुक्त्वा चावप्यनि बहत् ॥ ३७ ॥  
 भयभीताः समजमुस्ताभिः सर्वाभिरादरात् । वनमृन्ताम्यदा राम शालिकास्तास्तु ह्लादय ॥ ३८ ॥  
 राधवायापयामासुदिव्यभूषणभूषिता । राधेन जलदेव्यस्ताः प्राथयामासुगदरात् ॥ ३९ ॥  
 राम राम महाशङ्काऽस्माभिवदपराधितम् । तन्क्षमस्व रघुश्रेष्ठ मा मृवं स्वपतत्रिणम् ॥ ४० ॥

राककर कहा—॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

न कश्चिन्मर्यादशोऽभून्स्त्रीषु शस्त्रप्रहारकः । त्वयाऽपि रक्षिता पूर्वं स्त्रीन्वाद्भूर्जाह्वीजटे ॥४१॥  
 यदाऽनया तु क्षपयः कृतो मैथिलकन्यया । ताटिकादिराक्षमपु यत्कृतं बाणमोचनम् ॥४२॥  
 मलयानीषु न्वया पूर्वं वन्सर्वेषां हिनाय च । इति तामां वचः श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दनः ॥४३॥  
 स्थापयामास तूणीरे पूर्ववत्तं स्वभार्यमाणम् । ततस्तमिः पूजितः स तदा दृष्टो ग्धूतमा ॥४४॥  
 जलदेवीर्ददावाज्ञां स्वस्थलं गम्यतामिति । एतस्मिन्नन्तरे तत्र संधर्वाश्चाथ पन्नगाः ॥४५॥  
 विदिन्वा सकल रामकृतं रामानिकं धनुः । नन्वा रामं समीतं च तथा तं कुम्भसंभवम् ॥४६॥  
 जपान्नान्यनेकानि समर्प्य रघुनन्दनम् । उचुस्ते संजुल वाक्य प्रवृद्धकरमण्डाः ॥४७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

जलदेवाज्जबदान् वालिकाभोचनं तामं पञ्चमः सर्गः । ५ ॥

### पष्ठः सर्गः

( गन्धर्वों तथा नागोंकी वारह कन्याओंका लक्ष्मणादिके पुत्रोंके साथ विवाह होनेका निश्चय )

गन्धवपन्नगा ऊचुः

राम कञ्जानन स्वामिन्मोचिता वालिकास्त्वया विवाहान्नाजस्कानां पुत्रैस्त्वै कर्तुमर्हसि ॥ १ ॥  
 अथ धन्या त्वं सर्वे नः कुलं पवनं कृतम् । त्वया राम महात्रहोतारिताः स्मो वयं प्रभो ॥ २ ॥  
 तप्तजन्मसु यत्पुण्यं कृतमस्ति रघूद्वह अस्माभिस्त्वेन सम्बन्धस्ययाऽद्य भवतु प्रभो । ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा सीतया स रघूद्वहः । अङ्गाकुम्भं वचस्तेषामगमितिसरलोकयन् ॥ ४ ॥  
 तदा प्राह कुम्भजन्मा राघवं वचनं मुनिः । रामान्यास कुमुदस्य स्वयां नाम्ना कुमुदती । ५ ॥  
 त्वयि प्राप्ते हि वैकुण्ठं कुशपत्नी मरिष्यति । चापिकायां न तनयो भविष्यति रघूद्वह । ६ ॥

कर दें । हमपर इन बाणोंकी क्षाप मत छोड़िये । ४॥ अब तक आपक पुत्रोंका नाम ही यक्षोंपर शस्त्रका प्रहार करने-  
 वाला कोई भी नहीं हुआ है । आपने भी वत रामचन्द्र के बिना भीताका लिये जाते हुई वृक्षोंकी इसी  
 लिये रक्षा की थी कि वह स्त्री थी । इसके लिये आपने जो ताड़कापर शस्त्र छेड़ा उसका कारण यह था कि  
 वृक्षोंका प्रतिगोष्ठो । उसे तो आपने रात्राणोंके कल्याणार्थ मरवा था । उनके ऐसा करनेसे बात सुनी तो  
 मुमुक्षुसकर रामने अपने बाणोंकी फिर तरफसे रक्ष लिये । इसके बाद उन जलदेवियोंसे पूजित रामने  
 प्रसन्न होकर उनसे कहा कि अब तुम लोग अपने स्वामीकी उज्जा । इसके अन्तर उन गन्धर्वों और  
 पन्नगोंने ( जिनकी कार्यार्थ जलदेवियोंके कहेसे थी ) अब पड़ समानता समा तो रामने पास अपने और  
 सीता, राम तथा अगस्त्यकी प्रणाम करके उन्होंने रामकी विविध प्रकारकी नेट दी । तदनन्तर हाथ जोड़कर  
 इस प्रकार कहने लगे—॥ ४१-४७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये  
 पष्ठः रामतेजपाण्डेयकृत ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे पञ्चमः सर्गः ५ ॥

गन्धर्वों तथा पन्नगोंका कहने लगे है कमल सरोवर तेषांवालि राम आपने हमारा पुत्रियोंको उन  
 जलकन्याओंके हाथसे जैसे छुड़ाया है, उसी तरह अब इनका विवाहभी अपने पुत्रोंके हाथ कर लीजिए  
 ॥ १ ॥ आज हम अपनेको बच्य समझते हैं । आज हमारा कुल पवित्र हो गया । हे प्रभो ! आपने हमारा  
 बचाव कर दिया ॥ २ ॥ हमने अपने मातृ जन्ममें जो पुण्य किया था, उसके प्रतापसे आज हमारा और  
 जन्मका सम्बन्ध हो जाय । ३ ॥ श्रीरामदासनं कहा—हम प्रकटकी बात सुनकर महारानी सीता और रामने  
 उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अगस्त्यकी ओर निहारते लगे ॥ ४ ॥ अगस्त्यने कहा है राम जब  
 आप वैकुण्ठधामको चले जायेंगे, तब कुमुदती कुशकी पत्नी होगी । हे रघूद्वह ! कुशकी वर्तमान स्त्री चम्पिकाके

कुशान्पुत्रः कुमुदन्धामविधिस्तु भविष्यति । राज्यकर्ता वंशकर्ता स एवाहं भविष्यति ॥ ७ ॥  
 अतस्त्वमधुना राम नागकन्याः कुरु विना । मम स्वममपुत्रेभ्यः प्रयच्छ विधिना द्विजैः ॥ ८ ॥  
 पञ्चगन्धर्वकन्याश्च यूपकेतुं कुरु लग्नम् । विना स्वपञ्चपुत्रेभ्यः प्रयच्छ रघुनन्दन ॥ ९ ॥  
 रामसेन विवाहेन यूपकेतुः शिशुस्तनः । अग्रे वन्ती मदनेन कस्मिन्पक्षरां शुभाम् ॥ १० ॥  
 एव रामसुताः सर्वे स्वभर्ताभ्यां यथामुसम् । कौटिल्यिदमिति पौत्राप्तवान् भविष्यति प्रपौत्रकाः ॥ ११ ॥  
 प्रपौत्रस्य प्रपौत्रं त्वं दृष्टुः सीताममन्वितः । सुखं यास्यसि वैकुण्ठं बन्धुभिर्नमरीभ्यर्तैः ॥ १२ ॥  
 एव ध्रुवा मुनेर्वाक्यमर्माहृत्य रघूदृढः । तामां नामानि पश्यन् गन्धर्वान्पञ्चगानवि ॥ १३ ॥  
 तदाऽब्रवीन्म गन्धर्वः स्वपूर्वाणां भविष्यताम् । तामां नामानि रामाग्रे पञ्चानां सम्मन्त्रये ॥ १४ ॥  
 चट्रेका चंद्रवदना चञ्चला चपला चला । एवं नामानि पञ्चानां क्रमेण रघुनन्दनः ॥ १५ ॥  
 भन्वाऽवलोकयामास पञ्चगान्तेऽपि चाब्रवीन् । कज्जानना कज्जनेया कज्जोषी च कज्जावती ॥ १६ ॥  
 कलिशा कमला चैव मालवी मम कर्मिनीतः । एवं नामानि पञ्चानां क्रमेण रघुनन्दनः ॥ १७ ॥  
 ध्रुवा ताः पुष्पके स्थाप्य तैर्निद्रामकरोन्निति । प्रथममने श्रीरामः दृष्ट्वा स्नात्वा यथाविधि ॥ १८ ॥  
 गन्धर्वस्तनमाध्वारि तदा च चन्ममर्मात् । ए भर्तृनेमयोः साकं विवाहार्थं स्थानलग्नम् ॥ १९ ॥  
 नैव योग्यं समागन्तुं नन्मल्लिकान्वाहिना । ताम्भारदृणुष्व मडाकर्म सुहृदः सकलाः शुभम् ॥ २० ॥  
 यत्नं गत्वा निजस्थानं स स्त्रीभिश्च सहजनाः । आगतव्यं विवाहार्थमयोध्यां मे यथासुखम् ॥ २१ ॥  
 अबुताऽहं तु गच्छामि पुनर्मग्न क्षयेन हि । विद्यायमा दिक्षानेन पद्माकाश्वजमालिना ॥ २२ ॥  
 तथेति रामवचनात्त गताः सःस्थले नि हि । र मोऽपि मुनिना नाभिर्वालिकाभिः सुतैः स्त्रिया ॥ २३ ॥  
 विहायसा पुष्पकस्यो ययी पश्यन्वनानि मः । ययीपथां प्रदरेणैव मुदा प्राप रघूदृढः ॥ २४ ॥

कोई पुत्र नहीं होगा ॥ ५ ॥ ६ । हाँ, कुमुदतसे कुशके अतिथि नामका पुत्र उत्पन्न होगा और वही पुत्र  
 राज्यकर्ता एवं वंशका सहनेव ला होगा । इससे है राम । कुशका छोड़कर बाकी सब कुमारोका  
 विवाह दन कन्याओंक साथ कर दोजिए । इनमें से पाँच गन्धर्वन-वाओंको यूपकेतु तथा कुश लग्नके अतिरिक्त  
 पाँच पुत्रोका व दोजिए । ९ ॥ पाँच पञ्चपुत्र पुत्रेण राजसविवाहके क्रमसे एक अच्छे स्त्रीके साथ विवाह  
 करेगा ॥ १० ॥ हाँ राम ऐसा करनेसे सब घर अदन-अदनी स्थायिक साथ सुखपूर्वक विहार करने । उनके  
 पीछे प्रपौत्र बर्हि भी होंगे ॥ ११ ॥ दकार जाय अगे प्रपौत्र प्रपौत्रोका जगकर सीता अपने बन्धुओं को  
 पुत्रवासिवासे साथ वैकुण्ठयामको जायगे । इस घर से आनन्दयशसा बात सुनी ला उन्होंने बड़ीकार कर लिया  
 और इन गन्धर्वों-पद्माव तदा कन्याओंक नाम पुछने लग्य ॥ १२ ॥ १३ । गन्धर्वराज अपने पाँच कन्याओंका  
 नाम बतलाने दूग ये व—चान्दवा, चन्द्रवदना, चञ्चला चपला और कला ये इनके नाम हैं ॥ १४ ॥ कन्याओंका  
 नाम सुनकर राम उनके बाद देखने लग्य फिर पत्रग दन प्रकार अपनी सात कन्याओंके नाम बतलाने लगे—  
 कज्जानना कज्जनेया, कज्जाया, कज्जावती, कलिशा कमला और मालती ये सात नाम हैं । इस रीतिसे सबका  
 नाम सुनकर रामने इन कन्याओंको पुष्पक विमानपर चढ़ा लिया और सब सविन्योक साथ सोगये । इसके  
 बने घर शान्तवायक नभय राम दृष्ट और दक्षिणपक्ष स्थान-दृष्टन आदि किया ॥ ११-१८ ॥ फिर वे इन गन्धर्वों  
 तथा पद्मावोंको बुलाकर कहने लग्य है गन्धर्व तथा पद्मसमता । मे गन्धर्वोंका विवासी बनूँ है । इस कारण  
 मे अपने बन्धुओंक भय न ला पद्माव । मैं कलालका आ सकूँगा और न गन्धर्वोंक यहाँ स्वर्गलोकको  
 ही अपने बन्धुओंका विवाह करने जा सकूँगा । इसमें जाय रघूदृढ बेसी बात सुनें ॥ १९ ॥ २० ॥ सप्तकोश  
 अपने-अपने घर जायें और इनका विवाह करनेके लिए वहाँसे स्त्रिया तथा बन्धु-वायकों साथ आनन्दपूर्वक  
 मगदग वधार्थ ॥ २१ ॥ कुछ देर बाद मे अपने विमान द्वारा अकालयामसे अपना नारोका बला चान्दवा  
 ॥ २२ ॥ “बहुत अच्छा” कहकर वे गन्धर्व तथा पद्मग अपने अपने स्थानको चले गये । इसर रामचन्द्रजी भी

नीराजितः पुस्तुभिर्विशेषं निरुमंदिरम् । वसिष्ठुर्दे तां सर्वाः प्रेषयामस राघवः ॥२५॥  
 अथ गमः पञ्चमण्ये मीनिश्चिमिदमर्थात् । आत्मा नीरा राजनः सुदृढश्च सुनीक्षरः ॥२६॥  
 सतिपुराः सर्वाश्च स्वस्वज्ञानपदैः सह । शृङ्गस्त्राण्यप्येधेयं परिष्ठाः सम् सदाशम् ॥२७॥  
 शोधनीयास्तथा शोधनपदैः नृपा शुभा । तथा चित्राणि लेख्यानि प्रापादेषु मर्मतः ॥२८॥  
 देवालयेषु सर्वेषु नृपा देवा मनीषमा । लेखनीयानि चित्राणि स्वयः स्थापयता पृथक् ॥२९॥  
 वपनीयाः पञ्चाङ्गाश्च शेषाणीवा स्वता अपि । नमः तान्तेभ्योऽपि यथर्थायानि लक्ष्मण ॥३०॥  
 बधः कर्षां कृममरुदयो वधनायाश्च मण्डपाः । शृङ्गस्त्राणि इत्यप्यपि विक्रयं सहस्रतः ॥३१॥  
 कर्धर्वाभ्यः पद्मगेभ्यो वस्तुं गृह्णाति वै पृथक् । कुरुष्व नृपताभ्यश्च पत्तार्थः पूरितानि च ॥३२॥  
 अन्येषां यथायोग्यं यद्यज्ञानाणि लक्ष्मण । तत्र कुरुष्व यथाकं मया तव रघुदह ॥३३॥  
 तत्रापचर्चनं श्रुत्वा तथेष्टकृदा स लक्ष्मणः । तथा चकार तत्परं यथा शेषेण शिक्षितः ॥३४॥  
 अथ गन्धर्वराजं नृपा वै मम पत्नगाः । महादुःखं पद्मगेभ्यस्तं ययुर्ज्ञायं मुदान्विताः ॥३५॥  
 सर्वा मानवरूपेण हसन्त्यश्चरन्स्थिताः । गन्धर्वावपि गन्धर्वेभ्यो गणकेतोपवन ययुः ॥३६॥  
 तत्र स्नानागतान् श्रुत्वा प्रत्युद्गम्य रघुदहः । नानायायानि नदिश्च नृप्यंशरमां पुगम् ॥३७॥  
 नान्वा सन्धापयामास निष्कर्णेषु गृहेषु यः । अथ त्रेहदा राघः यमाया संस्थितः सुखम् ॥३८॥  
 ज्योतिर्विदः समाहूय वसिष्ठु तन्पुनोदयः । पृथग्विशद्वान्कतं स गृहर्ताननिगलान् ॥३९॥  
 सम्यक् विचारयामास वपमण्ये मर्विज्जम् । ज्योतिर्विदस्तदा पोचुर्गृह्णति यौग्यवान् ॥४०॥  
 पश्चात्तरेण वैशाखे द्वौ महर्तौ शुभाश्वदी । तथा ददुर्गद्वौ द्वौ ज्येष्ठे पश्चात्तरेण ते ॥४१॥  
 श्रुत्वेन मार्गशीर्षेऽपि वीर्यं मार्गशान्मुनेश्वरे च । तौ ददुर्गद्वौ तौ चक्रुर्जगन्निनिश्चयम् ॥४२॥

उन बाँलकाआ अवन पुगी त । एत कि मय एत ॥३५॥ एकर आकाशमगत रातक घनाका  
 सेगते हुए बहामि बल दिये और एक घण्टा में अब हम आ गये ॥३३॥ ३४॥ सर्वां शृङ्गवेप  
 पुस्तुभिर्विशेषं निरुमंदिरम् । वसिष्ठुर्दे तां सर्वाः प्रेषयामस राघवः ॥२५॥  
 अथ गमः पञ्चमण्ये मीनिश्चिमिदमर्थात् । आत्मा नीरा राजनः सुदृढश्च सुनीक्षरः ॥२६॥  
 सतिपुराः सर्वाश्च स्वस्वज्ञानपदैः सह । शृङ्गस्त्राण्यप्येधेयं परिष्ठाः सम् सदाशम् ॥२७॥  
 शोधनीयास्तथा शोधनपदैः नृपा शुभा । तथा चित्राणि लेख्यानि प्रापादेषु मर्मतः ॥२८॥  
 देवालयेषु सर्वेषु नृपा देवा मनीषमा । लेखनीयानि चित्राणि स्वयः स्थापयता पृथक् ॥२९॥  
 वपनीयाः पञ्चाङ्गाश्च शेषाणीवा स्वता अपि । नमः तान्तेभ्योऽपि यथर्थायानि लक्ष्मण ॥३०॥  
 बधः कर्षां कृममरुदयो वधनायाश्च मण्डपाः । शृङ्गस्त्राणि इत्यप्यपि विक्रयं सहस्रतः ॥३१॥  
 कर्धर्वाभ्यः पद्मगेभ्यो वस्तुं गृह्णाति वै पृथक् । कुरुष्व नृपताभ्यश्च पत्तार्थः पूरितानि च ॥३२॥  
 अन्येषां यथायोग्यं यद्यज्ञानाणि लक्ष्मण । तत्र कुरुष्व यथाकं मया तव रघुदह ॥३३॥  
 तत्रापचर्चनं श्रुत्वा तथेष्टकृदा स लक्ष्मणः । तथा चकार तत्परं यथा शेषेण शिक्षितः ॥३४॥  
 अथ गन्धर्वराजं नृपा वै मम पत्नगाः । महादुःखं पद्मगेभ्यस्तं ययुर्ज्ञायं मुदान्विताः ॥३५॥  
 सर्वा मानवरूपेण हसन्त्यश्चरन्स्थिताः । गन्धर्वावपि गन्धर्वेभ्यो गणकेतोपवन ययुः ॥३६॥  
 तत्र स्नानागतान् श्रुत्वा प्रत्युद्गम्य रघुदहः । नानायायानि नदिश्च नृप्यंशरमां पुगम् ॥३७॥  
 नान्वा सन्धापयामास निष्कर्णेषु गृहेषु यः । अथ त्रेहदा राघः यमाया संस्थितः सुखम् ॥३८॥  
 ज्योतिर्विदः समाहूय वसिष्ठु तन्पुनोदयः । पृथग्विशद्वान्कतं स गृहर्ताननिगलान् ॥३९॥  
 सम्यक् विचारयामास वपमण्ये मर्विज्जम् । ज्योतिर्विदस्तदा पोचुर्गृह्णति यौग्यवान् ॥४०॥  
 पश्चात्तरेण वैशाखे द्वौ महर्तौ शुभाश्वदी । तथा ददुर्गद्वौ द्वौ ज्येष्ठे पश्चात्तरेण ते ॥४१॥  
 श्रुत्वेन मार्गशीर्षेऽपि वीर्यं मार्गशान्मुनेश्वरे च । तौ ददुर्गद्वौ तौ चक्रुर्जगन्निनिश्चयम् ॥४२॥

लवस्याथामदस्यापि विवाहौ तैर्विनिश्चिनौ । ज्योतिर्विद्विर्विष्टेन वैशाखे सप्तमाग्रतः ॥४३॥  
 चित्रकेतुः पुष्करस्य विवाहौ तैर्विनिश्चिनौ । ज्येष्ठे मासि क्रमेणैवं पक्षे पक्षे पृथक् पृथक् ॥४४॥  
 तक्षस्याथ सुबाहोश्च विवाहौ मार्गशीर्षके । पञ्चांग्रेण रामाग्रे ज्योतिर्विद्विर्विनिश्चिनौ ॥४५॥  
 यूपकेतोरामदस्य चित्रकेतोर्विनिश्चिताः । माघमास्ये विवाहाश्च ज्योतिःशास्त्रविशारदः ॥४६॥  
 पुष्करस्याथ तक्षस्य सुबाहोः फाल्गुने शुभे । विवाहा निश्चिताः स्निग्ध रामाग्रे गणकैस्तदा ॥४७॥  
 एवं विनिश्चिताः सर्वे विवाहा द्वादश क्रमात् । ज्योतिर्विद्विर्विनिश्चिताश्च श्रुत्वा तानर्चयन्निभुः ॥४८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

द्वारमन्विवाहविनिश्चयो नाम अष्टः सर्गः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

( नागों तथा गंधर्वराजकी कन्याओंका विवाह )

श्रीरामदास उवाच

अथ तै गणकाः सर्वे वसिष्ठस्य पुण्यधमः । कुमारीणां विभागोश्च चक्रुः श्रीराघवाग्रतः ॥ १ ॥  
 कज्जाननां लवस्याथ कज्जार्धमगदाय च गणका निश्चयं चक्रुः कज्जार्धौ चित्रकेतवे ॥ २ ॥  
 कलावतीं पुष्कराय तथा तक्षाय कालिकाय सुबाहवे च कमलां मालतीं यूपकेतवे ॥ ३ ॥  
 गणकैः सप्त ता एव नगरकन्या विनिश्चिताः । चंद्रिकामगदायथ चन्द्रास्यां चित्रकेतवे ॥ ४ ॥  
 चञ्चलाकन्यां पुष्कराय तक्षाय चपलां तथा । सुबाहवे तु सचलां प्रोचुस्ते गणकादयः ॥ ५ ॥  
 एव गंधर्वकन्यास्ताः एव विप्रैर्विनिश्चिताः । एव हि निश्चयं कन्या गणकादीन् रघून्तमः ॥ ६ ॥  
 विसृज्य मैथिलीं मत्वा सर्वं शूचं न्यवेदयत् । ततो ययुः कोटिश्रुत्वे पार्थिवश्च सुनीश्वराः ॥ ७ ॥  
 समद्वीपांतरस्थाश्च सावरोधाः स च लकाः । नानावाहनमस्थाश्च पौर्वर्जानिपर्दनिर्जैः ॥ ८ ॥

मुहूर्तं मार्गशीर्षमे तौन मुहूर्तं माघमे और तौन तौ मुहूर्तं फाल्गुनमे बनगया । इस तरह उन बारहो कन्याओंके विवाहका लगन चल गया । तबतक धर्मिक साधनाय उन ज्योतिर्विदोंने वैशाखमासी लगनमें लव और अक्षुदके विवाहका मुहूर्त निश्चित किया । चित्रकेतु और पुष्करका विवाह ज्येष्ठमासी लगनमें निश्चित हुआ । तब और सुबाहुका विवाह एक पक्ष बाद मार्गशीर्षके पुनः पक्षमें निश्चित किया ॥ ४२-४५ ॥ यूपकेतु, अक्षुद तथा चित्रकेतुका विवाह माघ मासमें निश्चित हुआ । ४६ । पुष्कर, तक्ष तथा सुबाहुका विवाह रामके समक्ष देवे हुए ज्योतिर्विदोंने फाल्गुन मासकी शुभ रात्रिमें निश्चित किया ॥ ४७ ॥ इस तरह क्रमशः बारहो विवाहोंके निश्चित हो जानेपर रामने ज्योतिर्विदोंको विनियत पूजा की ॥ ४८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पञ्चमोऽध्यायविनिश्चयकाण्डे काण्डे विवाहकाण्डे अष्टः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे - उपर्युक्त प्रकारसे निश्चित हो जानेपर रामके सामने ही वसिष्ठ तथा ज्योतिर्विदोंने उन कन्याओंके विवाह के कर्क रहने के लिए कि कौन सी कन्या किसको दी जाय ॥ १ ॥ कज्जानना नामकी कन्या लवके लिए, कज्जार्ध के लिए पञ्चमासी चित्रकेतुके लिए, कलावती पुष्करके लिए, कालिका तक्षके लिए, चपला सुबाहुके लिए और सचला सुबाहुके लिए देनेके लिए उन ज्योतिर्विदोंने निश्चित किया । इस तरह उन पाँचों कन्याओंका बनाका निश्चित हो जानेपर रामने सादरपूर्वक ज्योतिर्विदोंको विरा किया और स्वयं सत्तक पाद पादुका ना कुछ सधामें निश्चित हुआ था, सो उन्हें कह देनाया । इसके बाद सातों द्वीपोंमें रहनेवाले कन्योके मुहूर्त और तथा रात्रि अपने परिवार और प्रजा समेत नागा प्रकारको सवारियापर सवार होकर अवोध्य आये ॥ ४-८ ॥ उस समय उन लोगोंसे सारी अवोध्य भर

रैः साऽयोध्यापुगे न्यासा विरेजे निरर्ग तदा । ययौ विभोपणश्चाथ मुग्धाकोऽपि प्लवंगमैः ॥ १९ ॥  
 ययौ स भूरिकर्तिश्च पुत्राभ्यां र्ज वसादगतः । ययौ स जनकश्चापि युधात्रिन्म ययौ तदा ॥ २० ॥  
 कौमल्यायाः सुमित्राया चैवकायाः समाभ्युः । अध गमन्तु वैशाखशुक्ले द्वित्रयैः सह ॥ २१ ॥  
 पुगेथगा सुहृद्भिश्च स्नानमभ्यगपूर्वकम् । कृत्वा लवाय मागन्वम्लानार्थं स्त्रीः प्रबोदयन् ॥ २२ ॥  
 ततो मुहूर्तमभये वधुच्छिष्टं निद्या लवम् । सम्पन्नं किञ्च मुनेकाद्रीं सीताया मागन्तदा ॥ २३ ॥  
 स्वयं मन्तुर्मुदा तवाभ्युपनादैः मन्त्रालकाः । अथ रामो देवकस्य प्रतिगो ब्राह्मणैः सह ॥ २४ ॥  
 आदौ कृत्वा गणपतेः पूजां सम्प्रत्यक्षाविधिः । पुण्याहादिवर्षं चपि कृत्वा पूर्वं सविस्मरम् ॥ २५ ॥  
 अकार विधिवन्नुष्टः पूजयामास वै मुनीन् । ततो मुहूर्तमभये गत्वा पञ्चगमदिग्म् ॥ २६ ॥  
 लवस्य कञ्चनयनाविवाहं विनियतयन् । चतुर्थे दिवसे वशावस्थे रत्नदीपकैः ॥ २७ ॥  
 नीराजितस्तदा रामो विरेजे मण्डपे स्थिता । ततो निमग्नं गत्वा पूर्वोक्तैरुन्मत्तादिभिः ॥ २८ ॥  
 लवेन कात्याभास लक्ष्मीपूजनमुत्तमम् । ततो दानान्यनेकानि दत्तं स रघुनन्दनः ॥ २९ ॥  
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तथा ते पञ्चगा अपि । सुहृदश्चाथ गंधर्वाः पौगन् जनपदादयः ॥ ३० ॥  
 पूजयामासुः श्रीरामं रत्नैरामरगादिभिः । तथा नान् लक्ष्मणादीश्च कृष्णाद्याश्चापि बालकान् ॥ ३१ ॥  
 ततस्तान् नृपवन्द्यश्च सुहृत्पत्न्यः पृथक्पृथक् । नागवन्द्यश्च गंधर्वपत्न्यश्चान्य कृत्वा त्रिपः ॥ ३२ ॥  
 सीतायाः पूजयामासुर्वर्गैर्गणैरगादिभिः । सीताऽपि ताः सुहृत्पत्नीस्तथा पार्थिवकामिनी ॥ ३३ ॥  
 पूजयामास विधिवद्वस्त्रैरामरगादिभिः । रामोऽपि सुहृदः पौगन् गन्धर्वान्पन्नगाभूषान् ॥ ३४ ॥  
 रत्नैरामण्यैर्नैः पूजयामास स दम् । एवं वैशाखामासे तु मिने पक्षे लवस्य च ॥ ३५ ॥  
 कृत्वा विवाहं रामः स कृष्णपक्षे तु माधवे । अकार परेद्वर्गाद्विवाहं अगदस्य च ॥ ३६ ॥  
 चित्रकेतोः पुष्करस्य विवाहो रघुनन्दनः ज्येष्ठमासे शुक्लकृष्णपक्षयोःकरो-मुदा ॥ ३७ ॥

ययौ और नह बहुत ही मुन्दर दीखने लगे । बहुतस वनगोको साथ लिए हुए मुग्धा, अपन दोनों बेटोके साथ राजा भूरिकर्ति, इनके सिवाय विभोपण, जनक, मुग्धाजन्, कौमल्या तथा सुमित्राके बन्धु-बान्धव आदि भी अयोध्याये आ पहुँचे । इसके बाद वैशाखके शुक्लपक्ष १ पुनर्वसु तारा विरोंके हाथ रामो अष्ट-पूर्यंक स्नान किया और लवको कञ्चनयन कर देने लिए निजपंक्त करी । १९-२० ॥ सात दिव माताजीने जब मुहूर्त आया, तब सबके जड़े रत्नदी-नेत्र लगा उबरन लेकर लवक जरीनम लगाया और बड़ा नग नमड़े आदि आशोक तथा आम्बुशोक से नु स्नान भी करा । किया । २१-२२ ॥ ब्राह्मणों के साथ पुण्याहाका स्थापना की । २३ ॥ २४ ॥ स्नानके पूर्व यथाविधि गणपतिकी पूजा की और निम्नगत तीन प्रकारका पुण्याहवास्य किया । इसके अनन्तर महुषानोष आये हुए मुद्रिकाका पूजा करके जह सन्तुष्ट किया । राम मुहूर्तमे पञ्चगोके वहाँ गये और वहाँ कञ्चनयनके साथ लवका विधिवन् विवाह सम्पन्न किया । चौथे दिन रामकी छिटनीमें ७ बूँद हुए रत्न-दीपकास रामकी आगती उत्तरी गयी । उस समय राम संताके साथ बहुत ही मुन्दर दीख रहे थे । इसके अनन्तर पूर्वोक्त डाराको साथ राम अपने घर गये वहाँ लवके हाथसे अच्छी तरह लक्ष्मीपूजन कराया और अनेक प्रकारके दान दिये । २५-२६ ॥ इसके बाद उन दान दानान्तरसे आये हुए राजाभा, पन्नगों, सम्बन्धियों, पुत्राभिया और जनपदवासियोंने विविध प्रकारके दस्तों और आभूषणोंसे राम-कृष्ण तथा सब बालकाका पूजा की । इसके पञ्च ग रानियों, सम्बन्धियोंकी स्त्रियों, गामपत्नियों तथा गंधर्व आदिकी स्त्रियोंको सोता आदि स्त्रियाँ वस्त्र और आभूषण दे दकर विधिवत् वस्त्रत किया । रामने भी सम्बन्धियों, पुत्राभियों, गन्धर्वों और पन्नगोंको वस्त्राभूषणसे अच्छी भाँति पूजा की । इस तरह वैशाख मासके शुक्लपक्षमे लवका विवाह सम्पन्न किया और कृष्णपक्षमे पूर्ववत् उत्साह समेत अङ्गरका विवाह किया ॥ २७-२८ ॥ उसी प्रकार ज्येष्ठक शुक्ल और कृष्ण-

ततः सर्वान्नुपादीश ददावज्ञां सुहृद्भिः । ततः पुनस्तादाह्वय पूर्ववन्मार्गशीर्षके ॥२८॥  
 तमस्याथ सुवाहोश्च विवाहानकगोत्राभ्यः । ततः सर्वान्नुवान् रामो ददावज्ञां सुहृज्जनान् ॥२९॥  
 ततः पुनस्तादाह्वय माधवास सुहृन्नुवान् । गुरुरेताश्च गदग्य चित्रकेनोर्महोन्मर्दः ॥३०॥  
 विवाहानकगोत्राभ्यः पश्चिदन्न व्यसर्जयत् । पुष्करस्याथ लक्ष्म्य सुवाहोश्च महोन्मर्दः ॥३१॥  
 अकारकाङ्गुने भानि विवाहान् जानकीधरः । एवं कृत्वा विवाहांश्च रामो ददावज्ञां सादरम् ॥३२॥  
 नृपैः संपूजितः सर्वान्पूज्याह्नां नृजनान् ददौ । पूजयित्वा मुनींश्चापि विममर्त स्मृद्गहः ॥३३॥  
 गंधर्वपन्नगाः सप्त ते सकेनेऽत्र मन्थिताः । राम मुहुरा न ते नैज स्थल जग्मुर्मृदान्विताः ॥३४॥  
 मन्त्रिणः प्रेक्षयन्मातुः स्वस्वरान्तेषु ते पृथक् । पदा रामः स वैकुण्ठमग्रे गच्छति कालतः ॥३५॥  
 तदा सातानिकेन्द्रोकोन्मे गच्छन्ति न मलयः । अथ रामः पन्नगानां गन्धर्वानां च सद्यतु ॥३६॥  
 वाधिकेषु महेस्वत्र सारंगधः सुहृज्जनैः । शीरः स्वायम्भोजनादे गन्वा हर्षाकरोन्मदा ॥३७॥  
 तदा महोत्सवश्चामनसोऽप्याया गृहे गृहे । आनन्दः सकलानाम्योआमीन्कुत्राप्यमगतम् ॥३८॥  
 अथ तेषां गणान् पुत्राणां च पृथक् पृथक् । अष्ट कृत्वा तु गेहानि पृथक्कृत्वा च शान्तयः ॥३९॥  
 तेषु ते स्थापिताः स स्वयम्भोऽस्मां पृथक् सुखम् । तथा त लक्ष्मणायाश्च पृथग्गेहेषु नाथवा ॥४०॥  
 पर्वमेव स्थापिताश्च स्वयम्भोऽप्यः सुहृन्विताः । सुमित्रायाः स र्माभिश्च स्त्रीषु गेहेऽवसन्सुखम् ॥४१॥  
 केकेयी भरतस्याथ गेहे पृथगुत्तराया वा । तस्यौ सवृत्तमेहेऽपि नाममेकं पद्यापुस्तम् ॥४२॥  
 एवं सा पुत्रयोर्गेहोऽकर द्वयं सुहृन्विता । कामन्या ना रामगेहं तस्यौ सीतानिसेविता ॥४३॥  
 ते सर्वे च विवाहः पुत्रा निजयनैश्च संकेतः । स्वदासीगोपनाद्यैश्च सुखमायुः पृथक् पृथक् ॥४४॥  
 अथ ते लक्ष्मणायाश्च कुशाया चानद्या अपि । स्वस्वगेहेषु वै प्रातः स्नात्वा होमाम् शिवार्चनम् ॥४५॥

पक्ष्म विवाहत् के पुष्करा विवाह ३८ अ कि ॥ २७ ॥ इसके बाद सब राजाओं और मुनियों को अपने अपने घर अपने आज्ञा दी । फिर म माधव सब पुष्कर राज और मुहुरा विवाह किया । बादमें सबको अपने घर आ का अ मन्त्रि दत्त माधव म मम मुत्ताय और सुषकुका विवाह म म म किया ॥ २८-३० ॥ माधवे माधव सेतम नाका विवाह करके अपने प पुत्र माधव पुष्कर, तथा तथा पुवाटका विवाह किया । इस तरह के ही विवाहों का करके अपने सब महामाने के साथ पूजा की और उनका पूजन स्वीकार किया । सब सब अ म म, अपना राजा, तथा का जनका अनुमान का । इसी तरह उन मुनियों का भी विधिपूर्वक पूजन का करके अपने माधव का आज्ञा का ॥ ३१-३३ ॥ किन्तु गन्धर्व और वल्लभगण अथ माधवे ही रहे । वे अपने अपने मुनियों का राजा की भेंटकर रामके पास रहने लगे । वे सब तक अथ माधव रहने जब तक राम अपने वैकुण्ठराजा नहीं चले जायेंगे । रामके घर जानेपर वे भी सातानिके र कको पने जायेंगे । इसके अ म रिल कापिक उत्तराय और लोहारावर राम अपने घरके मित्रों मित्रों तथा सवृन्दि के साथ पदों और गंधर्वगणके यहाँ जाकर आज्ञा आदि करते थे ॥ ३४-३७ ॥ उन दिनों अथ माधव पृथक् पृथक् स्वयं अ त थे : उस समय सब मानद था । कही भी किसी प्रकारका अमगन नो दिव्य दार् पठता था । ३८ ॥ इसके पश्चात् रामने उन बारहों पुत्रोंके लिए अलग-अलग घर बनवाये और विधिपूर्वक स्थापित करके उनको अपनी अपनी मित्रोंके साथ उन घरोंमें बसा दिया । उसी माह लक्ष्मण अ दि आता रहने राम अलग अलग महलमें अपने-अपनी मित्रोंके साथ सुखपूर्वक रह रहे थे । मुत्तायके पुत्र लक्ष्मण अपने महलमें आनन्दपूर्वक रहते थे ॥ ३९-४१ ॥ केकेयी एक महोत्ता भरतके यहाँ और एक महोत्ता शत्रुघ्नके यहाँ रहा करती थी । इस तरह अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहती हुई वह सुखे समय बिता रही थी । कौसल्या से ताका सेवा सट्टण करती हुई रामके महलमें रहती थी ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वे सब प्रातः और उनका पुत्र अलग-अलग अपनी सवारों, सेवक, दासी, गोपन आदि अपाः सम्पत्तियाँ रखकर आनन्द से रहे थे ॥ ४४ ॥ यह सुनकर विद्वत्ता कि लक्ष्मण आदि सब प्रातः और कुल आदि

गोद्विजार्चादि संपाद्य तनस्ते शयनं ययुः । नन्वा रामं जानकीं ते तस्युर्दिव्याभनोपरि । ४६ ॥  
 तेषां मर्वाः स्त्रियश्चापि स्नान्वा दुर्गा प्रपूज्य च । गन्वा सीतां प्रणेष्टुम्नास्तस्युः सीताञ्जयाऽऽवने । ४७ ॥  
 तनस्ते लक्ष्मणाद्याः कुशाद्याः स्वगुरोर्भुव्यात् । कदा पीतागिर्की श्रुत्या जामुः स्वं स्वं गृहं प्रति । ४८ ॥  
 ततः सर्वे रामगेहे समाहूता मुदान्विताः । उपाहारान् पृथक् चक्रुर्मध्याह्ने भोजनायपि ॥ ४९ ॥  
 एवं तेषां स्त्रियश्चापि समाहूतास्तु सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुः सीतागृहे सदा । ५० ॥  
 कदा मुदा स्वीयगेहे राधवेणाथ सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुस्ते ब्रह्मणादिभिः । ५१ ॥  
 एवं तेषां भुविर्वालिः प्रापतुर्निर्गमः सुखम् । सीतागर्भा कदा नामोन्मल्लः कापि कस्य हि । ५२ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितम्सर्गः श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय विवाहकाण्डे

हाराविवाहवर्णने नाम सप्तमः सर्गः । ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( शशुभनतनय रूपकेतु द्वारा मदनमुन्दरीका हरण )

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा दक्षिणे हि शिवकात्यां महापुरि । कबुकटो नृपः श्रीमान्निजकन्यास्वयंवरम् । १ ॥  
 कर्तुंकामो नृपान्सर्वानाह्वयामास सादरम् । तदा ते पार्थिवः सर्वं पत्राणि हि पृथक् पृथक् ॥ २ ॥  
 पूर्वैरमनुस्मृत्य कुशस्यापि स्वस्य च । स्वयंवरे स्वीयमानभगेनोद्भूतहृन्निश्चितम् । ३ ॥  
 प्रेषयामासुर्नृपति न ययुश्च स्वयंवरम् । तेषां पत्राणि सर्वाणि कबुकटो ददत्त सः । ४ ॥  
 सर्वेषु लिखितस्वेक एवार्थस्त्वं वदाम्यहम् । यदि नायानि रामस्य बालकास्ते स्वयंवरे ॥ ५ ॥  
 वयं सर्वे तर्हि यामो जंचुद्वीपान्तरस्थिताः । तेषामेवमभिप्रायं ज्ञात्वा स नृपतिस्तदा ॥ ६ ॥  
 न ममाहूय श्रीराममाह्वयामास पार्थिवान् । स्वयं चापि स्मरन्तं तदेव रामधुवयोः । ७ ॥

बालक मयरे स्नान करके हूयन, शिवार्चन एवं गो-हृत्पुष्पोंकी पूजा करत थे, तब रामके पास जाते और वहाँ सीता तथा रामकी प्रणाम करके निष्प्राप्त करके लेते थे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उसी तरह उनकी स्त्रियाँ भी स्वयं स्नान और दुर्गापूजनसे निवृत्त होकर सीताके पास जाती ऊँह प्रणाम करती और आज्ञा पाकर दिव्य आरात्तापत्र बँटती थीं । ४८ ॥ इसके बाद वे सब लोग गुरु नमस्के मुक्तसे पुराणोंकी कथा सुन सुनकर अपने भवनोंकी जाया करत थे । दोपहरको रामके नृत्यांशपर साथ साथ जलपान तथा भोजन करत थे । उसी तरह उनकी स्त्रियाँ भी सीताके नृत्यांशपर सीताके वहाँ ही आकर जलपान तथा भोजन करती थीं ॥ ४९-५० ॥ कभी-कभी वे लोग राम और बहुतेके बाह्यणोंको अपने वहाँ बुलाकर भोजन कराते थे ॥ ५१ ॥ इस तरह उन बन्धुओं और बालकोंके साथ सीता तथा राम बड़े सुखसे जीवन व्यतीत कर रहे थे । किसीके साथ कभी किसी तरहका झगडा नहीं होता था ॥ ५२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः समाप्तः ।

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय दक्षिणकी शिवकांतपुरीमें वहाँके राजा कम्बुकण्ठने अपनी कन्याका स्वयंवर करनके विचारसे सब राजाआके वहाँ निमन्त्रणपत्र भेजकर बुलवाया । किन्तु कुश-लवके कारण वे महाराज कम्बुकण्ठके वहाँ नहीं आये और एक-एक पत्र लिखकर भेज दिया । कम्बुकण्ठन एक-एक करके सब राजाआका पत्र देखत । १-४ ॥ उन सब पत्रोंन एक ही चर्चा थी । वह यह कि यदि रामचन्द्रके छठके तुम्हारे स्वयंवर न आय तो हम सब जम्बूद्वीपके राज तुम्हारे वहाँ आयेंगे—अन्यथा नहीं । राजा कम्बुकण्ठन उनके अभिप्राय समझकर रामचन्द्रजाके पास निमन्त्रण पत्र भेजकर बाकी सब राजाओंकी बुलाया । कम्बुकण्ठकी स्वयं भी वह बात बाद था गर्भा कि रामके पुत्रोंने चम्पिका और सुमतिके स्वयंवरसे



चापिकासुमनिपाणिग्रहर्षाय ॥ ८ ॥  
 वृगमनम् । ततस्ते पार्विणाः सर्वे भुचाराव हिनगरम् ॥ ८ ॥  
 समद्रीपानरम्भाश्च ययुः कानिपुगी प्रति । अथ तां कञ्चुकुष्ठम् कन्यां यदनमुन्दरीम् ॥ ९ ॥  
 प्रासादसंस्थितां दृष्ट्वा नारदः स्वात्ममाययी । सखीभिः सा मुनिं पूज्य विनयान्पुनः स्थिता ॥ १० ॥  
 पप्रच्छ नारदं प्रकम्पा रिनयावनता शूनः । कुतः समागतः स्वामिन् गम्यते काधुना यद ॥ ११ ॥  
 ययतां दर्शनेनाथ पात्रिभ्यः परमं गता । इति तस्या वचः श्रुत्वा कञ्चिन् स्मिन्वा मुनिस्तदा ॥ १२ ॥  
 तामह बाले स्वलोकादागतोऽस्म्यधुना त्वहम् । अयोध्यायां गौधवस्य पुत्राणां तु पृथक् पृथक् ॥ १३ ॥  
 मेहे संभोक्तकामोऽप्य निगतोऽस्मि विहायवा । एनभिर्मन्ननरं कातिपुर्वाः सैन्यानि वै वहि ॥ १४ ॥  
 दृष्ट्वा कैवा हि सैन्यानि मतीति हृदि चिन्तितम् । ततः पाथमुवाचक्षुन्वा तव चक्ष स्वयंवरम् ॥ १५ ॥  
 तदा विनिश्चितं चित्तं मया रामः स्वयंवरे । अत्रैवास्ति क्षागतश्च तं पश्याम सत्रालकम् ॥ १६ ॥  
 नैवास्ति क्षागतश्चेदं नहि याभ्यामपतः परम् । स्वयंवरो विना रामं न भविष्यति सान्मजम् ॥ १७ ॥  
 पश्याम्यश्वैव तं रामं पृथाग्ने गमनं मम । निश्चिन्त्येवं समायान्तस्तनोऽदृष्ट्वा ग्धूतवम् ॥ १८ ॥  
 कथं रामो नागतोऽत्र चेति पृष्ट्वा नृपा मया । नृपामिप्राथमाकर्ण्य तदा खिन्नं मनो मम ॥ १९ ॥  
 समद्रीपवति रामं वधुशालकमयुतम् । स्वयंवरमनाहुप त्वन्वित्रा निश्चितं नृपैः ॥ २० ॥  
 जघुताऽहं प्रमद्व्रामि माकेनस्यं ग्धूनमम् । मन्दभाग्याऽसि बाले त्व स्तुपा राघवमत्पतेः ॥ २१ ॥  
 यतो जाताऽसि नैवात्र विचित्रा कर्मणा गतिः । इत्युक्त्वा बालिकां पृष्ट्वा नारदो गन्तुमुद्यतः ॥ २२ ॥  
 ततः संप्राथयामास नारदं बालिकम् मुदुः । खिन्नचित्ताऽनुपूर्णाधीस्तानास्या स्फुरिताधरा ॥ २३ ॥  
 रामाचितननुर्मुग्धा यतर्थागददम्बता । येनाहं मुनिपथांश्च स्तुपा भीरापवरस्य च ॥ २४ ॥  
 भविष्यामि तथा कार्यं न्यथा त्वां शरणं गता । इत्युक्त्वा मुनिवर्यस्य पादयोः स्थप्य सा शिरः ॥ २५ ॥  
 चकार करुणं बाला तदा तां मुनिरवनीत् । मा चिन्तां कुरु रंभाकं मुमुक्षुश्च बालिके ॥ २६ ॥

ययस वैर कर लिया ॥ १-७ ॥ इसके अनन्तर जब सब राजाओं ने यह मुन लिखा कि राम नहीं आयेगे, तब न कञ्चुकुष्ठके यहाँ पहुँचे । उपर कञ्चुकुष्ठकी कन्या यदनमुन्दरीका अट रीवर देलकर नारदजी आनाम-  
 मायस उत्तर आय । यदनमुन्दरीने तस्त्रिंश क साव अकर नारदको पूजा की और उन मुनिके सामने जा बैठी  
 , ८-१० ॥ फिर मुनिपूर्वक नारदम पृछन लगा—स्वामिन् । आप इस समय कहाँसे जा रहे हैं और  
 मय कहीं नारदों से कहाए ॥ ११ ॥ आपक दयनस ये आज परम पवित्र हो कयी । इस प्रकार उसकी  
 वत मुनीना याहा मुसककर नारद कहन लग्य—ह बाल । इस समय ये स्वर्गनाकस आ रहा हैं और  
 नमक सब पुत्राओं यही अलग-अलग भोजन करनक लग्य अमाया जा रहा हैं । आन समय येने कार्त्तिकपुरी  
 नारदक बाहर सेना बैली । उस देलकर मुज यहा कोदुहल हुआ । नारदम एक पविकसे पृछनेपर जात हुआ  
 कि यही तुम्हारा स्वयंवर है ता यह हावा कि जहाँ तक है, रामचन्द्रजा अपन बालकी समत यहा अवश्य  
 कये होंगे । बाले, वहाँ हें दयन कर ल । यह निश्चा करक ये यहाँ आयी, किंतु रामचन्द्रजीको नहीं बैला हो  
 राजाओंसे पूछ कि राम यहाँ नहीं आये ? उन लोगों ने जा कारण बतलाया, उससे मरा मन बहुत खिन्न  
 हुआ ॥ १८-१९ ॥ मन्दहृदयक अधिपति राम तथा उनके लहकावा न बूल सका निश्चय करके ही तुम्हारे पिछाने  
 ओर-ओर राजाओंका बुझाया है ॥ २० ॥ अच्छा, अब ये भगव्याम रामचन्द्रजीकें पास जा रहा हैं । हे  
 कन्ये ! तुम अमाया हो, जो रामचन्द्रजी जैसे राजराजका पतेहू नहीं बन रहें हो । कमकी भी बड़ी विचित्र  
 बन होनी है । ऐसा कह और कन्यासे पृछकर नारदजा जाने लगे । तब वह कन्या यदनमुन्दरी सिद्ध मन,  
 हनु भरी माँसो, स्तानमुख, काँयत हुए अंधगे तथा रमाचन शरीर होकर गद्गद बाणोंसे इस प्रकार विनय  
 कन्यो हुई कहन लगी—आप कोई ऐसी पुक्ति करिए कि जिससे मैं रामकी ही पताहूँ बनूँ । मैं आपकी चरणमें  
 हूँ । ऐसा कहकर उसने अपना मस्तक मुनिराजके चरणाम रख दिया और रोने लगा । तब नारद मुनिने कहा—

भविष्यमि त्व रामस्य स्तुत्या यत्न करोष्यहम् । हृद्युव वा सा ममाद्यास्य स्वमार्गेण मुनिर्ययौ ॥२७॥  
 एतस्मिन्नेकरेऽप्याध्यापुयाः स्वन्दनमन्वितः । यूपकेतुर्न पश्यन्ममार्गमाययौ ॥२८॥  
 किञ्चित्सैन्ययुतो बालस्तमसारां निराश्रमः । यावन्सध्यादिकं कर्तुमुपविष्टस्तदा मुनिम् ॥२९॥  
 ददर्श नारदं नन्या पूजयामास साक्षरम् । ततः पश्यन् मुनये पुरातनः पुरःस्थितः ॥३०॥  
 कृतः समागतं चेति गच्छन्त्या नारदो मुनिः । सर्वं वृत्तं परिभार कथयामास बालकम् ॥३१॥  
 गच्छन्त्या सकलं वृत्तं नन्या तं नारदं मुनिम् । अत्रैव बालको वाक्यं मक्रोधः संभ्रमान्वितः ॥३२॥  
 मुने नृपाणां सर्वेषां हृदयद्विषयं राघवे । वा जना साध्य सर्वेषां ज्ञेयाऽनर्थकगी जवान् ॥३३॥  
 कपुकटादिभूषणानां सारं पश्यन्पृष्ट्वा रणे । रणे त्यक्तपणा मर्गान् जित्वा नापानयाम्यहम् ॥३४॥  
 हृद्युवन्वा स ययौ काले पञ्चमेऽहनि सैन्या । नारदोऽपि ययौ रामं दृष्टुं श्रोतमनास्तदा ॥३५॥  
 रामेण पञ्चितः प्रेम्णा भोजनार्थं निमग्नितः । जय भोजनवलाभां यूपकेतुं रघुत्तमः ॥३६॥  
 अदृष्ट्वा लक्ष्मणं प्राह यूपकेतुर्न दृश्यते । बालेषु तु भोजनार्थं लक्ष्मणात्र समाह्वयः ॥३७॥  
 तदा स बालानां गन्वा प्रपच्छ लक्ष्मणो जवान् । सा प्राह वनमध्येऽद्य किञ्चित्सैन्ययुतो गतः ॥३८॥  
 वृक्षमेतद्यथाचरन्स गत्वा रामं जगद् इ । अथ रामो भोजनादि सपाद्य मुनिना मुदा ॥३९॥  
 ययौ समायामार्गानस्तं मुनिं वाक्यमनरीन् । पञ्चपद्मदिनान्यत्र स्थेयं मद्वचनान्वया ॥४०॥  
 तथेति नारदः प्राह सभायां संस्थितः सुखम् । अथ रात्रौ यूपकेतुमट्ट्या रघुनन्दनः ॥४१॥  
 उपाहारं कर्तुंकामः पुनर्लक्ष्मणमवधीन् । आकारय यूपकेतुं नायं दृष्टो मया शिशुः ॥४२॥  
 तथेति रामवचनात्पुनर्गत्वा तु बालनीम् । पश्यन् यूपकेतुं स सा प्राह नागनस्त्विति ॥४३॥  
 ततः स विद्वलौ भून्वा रामं वृत्तं परवेदयन् । रामोऽपि नागनं भून्वा ययुष्यां विद्वलौऽभवन् ॥४४॥

हे रामाह । हे बालक ! तू मे किसी एक चीज के लिये न कर, उठ ॥ २१-२६ ॥ तू अवश्य रामकी पत्त ह बनाया । मे हउर लिए उद्यान पक्षेण । राम कह और राम हरम धेयारर नरदजा आकाशमगसे चल दिये ॥ २७ ॥ इसी समय यूपकेतु रघुवर बैठकर अयाध मे निषय और रात्रके पतौको देखन हुए तपसा नरीके किनार पहुच । २८ ॥ उस समय याहो-यो सन उनक मरुथो । उसक साथ हृद्युवन्ने लगामे स्नान किया और सभामावदन करनको उठे मेथे । नारदजीका मन्त्र । तब उनको प्रणाम करके सादर पूजन किया । हउक बाद नारद मुनिर नितारपूर्वक उस कन्या मदनमुद्रा व सारा वृत्तान कहो । उस गुरुकर आच और धवराहटमे पर्ण हउकर गुणगनन कहा ॥ २९ ३० ॥ मुन । इस समय जो सब रात्र रामसे हृदयद्विषय राखत है, वह उनक लिए अनर्थकारिणो सिद्ध होगी । ३१ ॥ कपुकण्ट आदि गताओका बल मे सपामभूतम पहुंचकर देखता है । हे मुनिरज । मे आपकी कृपास उन सबको बालकर मदनमुद्राकी लिये मानता हूँ । ३२ ॥ ऐसा कहकर गुरुकु अपना सेनाक साथ पांचवें दिन कनिनूगामे पहुच और नारदजी प्रसन्नतापूर्वक रामका भजन करनक लिए अयाधया चले गये । ३३ ॥ वही पहुंचनेपर रामने प्रेम्मे नारदजीका पवन करके भोजनका निमन्त्रण दिया । जब भोजनका समय हुआ, तब यूपकेतुको न दखकर रामने लक्ष्मणरा कहा कि इस समय यूपकेतु नहीं दिखायी देता । हे लक्ष्मण ! और-और बालकाके साथ उस छो भोजन करनक लिए मुलाओ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ रामक आजानुमार लक्ष्मण बालनके पास पहुंच और यूपकेतुको पूछा । उसने कहा कि वे अपने साथ बोलो-सा सेना लेकर वनकी गये हैं ॥ ३८ ॥ यह वृत्तान्त लक्ष्मणने जाकर रामको सुना दिया । सत्यश्रान् मुनिक साथ राम भोजन आदि करके अरने सभाभवनमे गये और वही बैठकर नारद मुनिसे कहन लगे कि साथ मेरे कहनेमे पांच-पांच दिन यही हो उठर जाइये । 'सयान्नु' कहकर नारदजा भी उठर गये । तदनुसार भोजनके समय रात्रिमे भी यूपकेतुको न देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा—यूपकेतुको बुलाओ । आज पने दिनभर उस बालकी नहीं देख पाया है । ३६-४२ ॥ 'बहुत बल्ला' कहकर लक्ष्मण फिर बालनके पास गये और यूपकेतुको पूछा । उसने कहा कि वे अभी तक

ततः सा जानकी श्रद्धा विह्वला स्निग्धमानसा । मुद्राव गदगद्रे सा सर्वे तूष्णीं कथं स्थिताः ॥४५॥  
 इति तान् प्राह वैदेही तदा सर्वेऽतिविह्वलाः । शकःकोपादागत वेगेन मन्दोषार्धं ममूषताः ॥४६॥  
 तदा तान्विह्वलान्द्रष्टुं नाभ्यः प्राह गवतम् कांतिवृत्तं युपकेतोः प्रयागादिप्रसादरात् ॥४७॥  
 तस्मिन् राधयः श्रद्धा किञ्चिन्मृगमस्तदा लक्ष्मण प्राह वेगेन जन्मनोऽद्यैव मच्छतु ॥४८॥  
 सेनया चतुर्गमिण्या जवान्कांतिं कुशादिभिः मध्येन लक्ष्मणशोकत्वा खायाहागन्विधाय मः ॥४९॥  
 सेनया चालकैरगच्छन्नुत्तमं प्रेषयन्निद्रिः । शर्म नन्वाऽथ शत्रुघ्नः शीघ्रं ह्यन्दनमस्थितः ॥५०॥  
 यथा कांतिवसीपं स पयोऽहनि मुदान्वितः एतस्मिन्नन्तरे कांतिपुण्यां तत्र स्वयंवरे ॥५१॥  
 तमायां राजशार्ङ्गाः मग्निनाम्ने मुदान्विताः । मय सा शिविकामहऽऽयथा मदनमुन्दरी ॥५२॥  
 किञ्चिन्म्लानमुक्ती दुःस्वास्परवी नाभेरितम् । कुटोषमाना तां सर्वान् दर्शयामास पार्थिवान् ॥५३॥  
 युपकेतुस्तदा वेगाद्भवा तूष्णीं यभांगणम् । मोहनत्वं तिसृन्वयथ मोहयामास तां ममास ॥५४॥  
 मोहितमोहनामणं न्यस्तां तद्वाक्यैर्भुवि । रभेन शिविकां गन्वा धृत्वा मदनमुन्दरीम् ॥५५॥  
 निज्ञाभिधानं मश्राड्य तां तुष्टामकरोत्तदा । अथ सा जग्यामाम तत्र मदनमुन्दरी ॥५६॥  
 हृमोष मानां तत्कण्ठे नवरत्नमयी शुभाम् । ततः स युपकेतुर्दिग्धे मदनमुन्दरीम् ॥५७॥  
 निवेश्य कांतिपुण्यां स व देगेत्वा श्रिगेऽभवत् । नागाह दयतां धीरास्त्वेतानीं स्वभयं त्यज ॥५८॥  
 जिन्वा सर्वान्नुपानय न्वया मन्त्राभ्यह पुनर् । ततस्त्य वचनं श्रुत्वा सा प्राह वचनं तदा ॥५९॥  
 बहवः सति राजानस्त्रयेकः स्वल्पसेनया । प्रमत्तयानानि सैन्यानि तेषां पश्य समन्वतः ॥६०॥  
 कथं युद्धं भवेदत्र सा कुरुगद्य मंगलम् । शीघ्रं मां नय मध्येन ततो रामेण सेनया ॥६१॥

बहो लोट ॥ ४५ ॥ यह युग ला वि ॥ ३ हाक रक्षमण रक्षम कहा । जब रामन यह मुना तो आत्माभोक  
 साधनार्थ व भी विह्वल हो उठे ॥ ४६ ॥ जानकीने मुन ला चहु भा विह्वल तथा स्निग्ध होकर दीवती हुई  
 रामको जाम गृहवा और कहा कि अब शीघ्र युपकेतुका आगमिष्ठ देखकर भी चुपचाप बैठे हैं ॥ ४७ ॥  
 कह भुनकर सब लोग बजड़ा उठे और भोजन स्थापनकर उगा र उनका लैवारी कर दिये ॥ ४८ ॥ इस प्रकार  
 सबका व्याकुल देखकर तारदत्तन र मन कांतिपुण्यां वृत्त गत चन्दलाग और युपकेतुके प्रस्थानको भी  
 बात कह मुनयो ॥ ४९ ॥ यह हाल मुना तो रामको धारा गन्ताय हुआ और गुरम लक्ष्मणको आज्ञा दी कि  
 मया चतुर्गमिण्या सेना लेकर जायान अभी जानेपुरी जयें । 'शत्रुघ्न मच्छा' कहकर लक्ष्मणने भोजन  
 करी कर के रत्नम ह सेना और कुरु आदि वीर कायवाक मय शस्त्रको कांतिपुरी भजा रामको प्रणाम  
 करके लक्ष्मण रथपर सवार हुए और प्रमत्त रथक प्रस्थान कर लिये ॥ ५०-५१ ॥ इस तरह असौध्यासे  
 बलकर ठक लगे दिन शत्रुघ्न कांतिपुरीग पास पहुच गये । उधर कांतिपुरीमें स्वयंवर हो रहा था ॥ ५२ ॥  
 सभ में उपम बहुतम राज हयपुत्रक व हुए थे । इतनेमें मदनमुन्दरी पालकम बंठा हुई मभाम आयी ॥ ५३ ॥  
 उस समय वह दुःखय नारदका जानीका स्मरण कर गयी थी । इस कारण उसका मुख दुःखवाया हुआ था ।  
 मभाम पहुंचकर वृद्धा वार्ता न स्व राजाओंको दितल्याया ॥ ५४ ॥ वही समय वेगके साथ युपकेतु समाभवनमें  
 पहुंच और मोहनामिका प्रयाग करके उन्होंने सारी मभामा भूँढ कर दिया । ५५ ॥ मोहनामसे मोहित  
 होकर शिविकावाहकोन भी शिविका जमीनपर गल सी । इतनेमें रथपर खंडे हुए युपकेतु शिविकाके पास  
 पहुंच और मदनमुन्दरीका हाथ पकड़कर अपना नाम बताया, जिससे वह बहुत प्रसन्न हुई और वीर मूण्णेतु-  
 र वरकर उसने उनके गलथ वह नवरत्नमयी वरमाया हाक दी । तब प्रसन्न होकर युपकेतुने मदनमुन्दरीको  
 रथमें बिठा लिया ॥ ५६-५७ ॥ तब कांतिपुरीमें बाहुर निकलकर वे एक स्थानपर रुक गये । वहापर उन्होंने  
 मदनमुन्दरीसे कहा कि अब तुम किसी प्रकारका भय न करो ॥ ५८ ॥ मैं तब राजाओंको पीतकर तुम्हारे  
 साथ अवोध्यापुरी लूंगा । युपकेतुकी बात सुनकर उसने कहा - ॥ ५९ ॥ वे राज बहुतसे हैं और तुम अपने  
 हैं, तुम्हारे साथ सेना भी थोड़ा सी है और देखो न उनकी असंख्य सेना चारों ओर पड़ी हुई है ॥ ६० ॥

युद्धं कुरु नृपैर्घोरं मृणु मदचनं प्रभो । मा साहसं कुरुष्वभ्यर्थये त्वां मुहुर्मुहुः ॥६२॥  
 इति वरुणा वचः श्रुत्वा तामाश्रम्य पुनः पुनः । उपमहारधामाय मेदनास्र म लीलया ॥६३॥  
 तदा ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा तातां वधू वलनम् । शत्रुघ्नतनयेनेति स्त्रीवाक्यैः स्यदने स्थिताः ॥६४॥  
 निपैद्युः कोटिशो योद्धुं स्वस्वसेनावृता जवान् । घण्टिकायाः मुमन्थाश्च पूर्वदरेण दधिताः ॥६५॥  
 दृष्ट्वा नैमिषागेण दृष्टुं रघुस्थितम् । युक्तं मदनमुन्दर्या विभ्रतं मानिकां हृदि ॥६६॥  
 ततस्तु मृगयुः सर्वे नानाशस्त्राणि सैनिकाः । वृषकेतुस्मदा धैरादुण्णकुन्त्य मददनुः ॥६७॥  
 कायव्याघ्रेण तन्मसर्वाभुदय दशदेतु मः । प्राक्षिप-पार्थिवान् सैन्यैर्नानावाहनमस्थितान् ॥६८॥  
 तदा स कंबुकण्ठोऽपि पूर्वैर्ममनुस्मान् । चंपिकायाः सुमन्थाश्च स्वयवरममुद्धवम् ॥६९॥  
 निमेषान्तिजकन्याया वैगतो हृण्य व्रजान् । महाक्रोधान्तिर्वयो म स्यमन्येन परिवेष्टितः ॥७०॥  
 कुर्वन् दुर्दमिवोपाश्च युद्धार्थं वृषकेतुना यूपकेनुरपि श्रुत्वा हृन्दभीतां महस्वनम् ॥७१॥  
 कान्तिपूर्युत्तमद्वाश्रुतः मरियतो रथा टण्डुल्य मदच्चापं मन्दधे शरमुत्तमम् ॥७२॥  
 ये ये वीराः पुण्ड्रारान्निगताश्च वहेः अने । तान् जघान क्षणादेव प्रेनद्वारं रुग्ध मः ॥७३॥  
 तं दृष्ट्वा यूपकेतोश्च कंबुकण्ठः पराक्रमम् । ययौ स्वयं स्यन्दनेन प्रेतमप विदार्य च ॥७४॥  
 शेषसैन्येन सयुक्तो यूपकेतुं क्रुधा जघान तद्दृष्ट्वा यूपकेतं म मया त्वं पञ्जरं कुरु ॥७५॥  
 किमेतान्मशकान् हन्वा पौरुषं मन्यसे जड । हन्तुं कवा सप्रभिवार्णयूपकेतुं जघान मः ॥७६॥  
 तान्बाणानागतान् दृष्ट्वा यूपकेतुनिर्जैः शरैः । नोद्विग्न-वा नवशरणस्तन्चार्यं पार्थिवं स्वजम् ॥७७॥  
 कवचं मुकुटं छिन्या जघान तुंगानपि पद्भ्यां नदा कंबुकण्ठो गदामादाय दृष्टुं ॥७८॥

ऐसी अवस्था में युद्ध कैसे कराये ? अब जन्म सशप न कर । मुझे पात्र अरोध्या पड़वा दो और बहुसे राय-  
 पन्द्रजकी विज्ञाप मेला लेकर आज्ञा, तब युद्ध वगे । हे जमी । तेने माय म म करना होक नहीं है । मैं  
 शर-वाह यहा किन्ती करती है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इस प्रकार मदन मरणा का वन जाकर उन्होंने उसे आश्र-  
 तन दिया और मोहलायका संवरण कर लिया । ६३ ॥ जब उन रजाज न मिनाके मुन्म मना कि शत्रु-  
 क पुन यूपकेतुने मदनमुन्दरीके हरण किया है तो अपने अपने रथापर सवार हो-होकर बड़ा-बड़ी सेना  
 लिए वेगक साथ व अड़नेको निकल पड । एक ही गपान और न किन्ताक न का ही । जब उन हाथीक मनमे  
 था, दूसरे अथ मदनमुन्दरीके हरणस उनक हाथवा और म येन की ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ फिर दया था,  
 मन्त्रके रथके पहियाका रास्ता दखन हुए व चल और घोडा ही तर जाकर उन्होंने दखा कि यूपकेतु मदन-  
 मुन्दरीके साथ बंठा है और उसक गलेमे बरमाना पड़ा हुई है ॥ ६६ ॥ हतन ही जब राजाजीर एक साथ  
 उस कीर बाणकपर किलने ही शत्रुकोका प्रहार कर दिया । तु मनु म वगेके साथ अने धनुषका टङ्गीर  
 किया । ६७ ॥ और वायव्य अश्रका प्रवार करके उन मव मज अवा रय, वाहन तथा मेला मदन उहाकव  
 दूर फेक दिया ॥ ६८ ॥ महाराज कम्बुकण्ठ भी पूर्वोक्ता मया न करके विन्यकर हम समय वैरकम अपनी  
 रायाका हरण देखकर अपना सेनाके साथ दवरनम गुरु करवा लिए ददुमका घण्ट धनन हुए निकल  
 पड । यूपकेतुने भी जब दृष्टकवी गजनी ननी तो का, मपुराव उनगे हाथार पदंख और अपने धुका मद्धार  
 करके उसपर एक ठलमे हाक संघान किया ॥ ६९- ७० ॥ इस पृष्ठ म जो-जो बाण निकलते, उनको अपने  
 शायरी यूपकेतु बराबर मारत जात थे । इसमे थ डा ही दमे वह हा मृत्कीर भर गया ॥ ७१ ॥ इस तरह  
 यूपकेतुका पराक्रम देखकर राजा कम्बुकण्ठ हतय अवन रथपर सवार होकर उन हाथीको रं दन हुए वंका हुई  
 सेनाके साथ यूपकेतुके सामने जा पहुच और क्रोधम भरकर उनकी कटा-अव न परे साथ सशप कर ॥ ७२ ॥  
 ॥ ७३ ॥ अरे जब । इन मच्छटोका मारकर क्या न अपने पौरयणो पौरय मानता है ? ऐसा कहकर कम्बुकण्ठने  
 तीन बाणांसे यूपकेतुपर प्रहार किया । ७४ ॥ उन बाणांवा अपनी और जान दखकर यूपकेतुने अपने ती बाणांसे  
 कम्बुकण्ठके बाणां, धनुष, सारथी, ध्वजा, कवच और मुकुटको काट राजा और घोडांको भी मार दिया । तब

तावन्महामथा वाणैर्यूपकेतुश्चकार ताम् । ततो वदुष्व दृढां मुष्टिं कम्बुकण्ठान्वितः ॥७९॥  
 हृदये यूपकेतोष्णा जघानाचलमग्निभाम् । तदा स यूपकेतुम् श्वशुरं स्वदनोपरि । ८०॥  
 प्वजे वचनं वेगेन सङ्गं जग्राह सम्भ्रमात् । कम्बुकण्ठशिख्येणं कर्तुं न समुपस्थितम् । ८१॥  
 दृष्ट्वा पुनश्च करे तस्य मखङ्गं सम्भ्रमान्विता । तस्माद् नन्वा माञ्जशी तदा मदनसुन्दरी ॥८२॥  
 विह्वला विगतोन्माहा वेपथी क्षुब्धलोचना । मम तानं कम्बुकण्ठमेतं इति कथं प्रभो ॥८३॥  
 मक्षिकापतनं पूर्वं शप्ते दृष्टव्यया कृतम् । सुखाग्ने पयमेव दृष्टव्यकर्मावलम्बितम् । ८४॥  
 मक्षिकापतनं हन्व्यस्तस्मै चार्थं धारयाम्यहम् । एवं मदनसुन्दर्या वचः श्रुत्वा विह्वलः सः ॥८५॥  
 करादिमुग्र्य त सङ्गं स्वशूनं चोदयन्मुदा । सेनया स पृथी यावन्पथाऽप्योभ्यां पुरीं प्रति ॥८६॥  
 तावद्दुर्दुभिनिर्षोदानग्रे शुभ्राव सेनया । पुनश्चापं दृष्ट्वा कम्बु यूपकेतुस्तदा पथि ॥८७॥  
 कस्याग्रं वाहिनी चेति चिन्तयामास चेतयि । ततः शरं मुमोर्चकं निजनाभाकिर्तुं तत्पदात् ॥८८॥  
 योजनान्तरसेनायां शरः शत्रुधनमग्निधौ । पपान तत्पदाग्रे तं दृष्ट्वा स चकितस्तदा ॥८९॥  
 शरपुच्छं यूपकेतोर्नाम दृष्ट्वाथ शत्रुहा । निश्चितवान्यूपकेतुर्भागंऽग्रे धर्तुमे ध्रुवम् ॥९०॥  
 ततश्चापे स शत्रुधनः प्वनाम कितमुत्तमम् । शरं संधाप्य विमुक्त यूपकेतुं मुमोच ह ॥९१॥  
 स शरो यूपकेतोश्च ममकादूर्ध्वतस्तदा । अपतत्पट्टभागे स तं ददर्श पितुः शरम् ॥९२॥  
 तदा दृष्टो यूपकेतुः कुवन्दुर्दुभिनि म्वनान् । गन्वा वेगेन शत्रुधनं दृष्ट्वात्पुन्य रथादधः । ९३॥  
 ननाम पितरं पत्न्या कम्बुकण्ठं प्रदर्शयन् । तदा तं मुह्यद् शान्ता मोचयामास शत्रुहा । ९४॥  
 कम्बुकण्ठमुखाच्चकृन्वा सर्वं वृत्तं सविस्तरम् । शत्रुधनः प्राधितस्तेन मुह्यदा तन्पुरीं ययौ ॥९५॥

कम्बुकण्ठ पैदल ही गदा लेकर दौड़ पड़ा ॥ ७७ । ७८ ॥ यूपकेतुने अपने बाणोंसे उनकी गदाके भी हजार टुकड़े कर दिए । उसके बाद उस गदासे यूपकेतुने नाभपर कटार धुंसा मारा । तब यूपकेतुने अपने समुक्त कम्बुकण्ठकी रथकी प्वजामे बाण लिया और सिर के टुकड़े लिए नेत्रके साथ तलवार उठायी ॥ ७९-८१ ॥ इस तरह सिर काटनका उद्योग एक हाथसे खत्म लिए यूपकेतुका देखकर मदनसुन्दरीने प्रणाम किया और आसामे आँसू भरकर कहा - ॥ ८२ ॥ हे प्रभो ! सर पितु कम्बुकण्ठका आप क्यों मारना चाहते हैं ? पहले ही सामने सबका गिर पड़ने के समान मानने मुझसे प्यारे मदनसुन्दरी के कर्मको क्यों भगवाना है ? ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ जब मेरी बात मानकर इन्होंने मत मागि । मैं आपसे यही प्रार्थना करती हूँ । यह कहती हुई मदनसुन्दरी विह्वल हो गयी , उसका उन्माद नष्ट हो गया या वह काँप रही थी और नेत्रोंमें आँसूकी धाराएँ बहाती जा रही थी । इस प्रकार मदनसुन्दरीकी बात मँजकर यूपकेतु मुक्तियों और मर्दाना पहरकर अपने सारथीकी रथ चालनेका संकेत किया । वे अपनी सेनाके साथ अयोध्यापुरीकी ओर चले ही थे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ इतनेमें आगमें दुर्दुभोका घाव मुनार्थ पड़ा । अब अपना यूप सम्हालकर सोचने लगे कि आगेसे यह किसकी मेला आ रही है । यह साचकर उन्होंने अपने नामसे अर्कित एक बाण वेगपूर्ण छोड़ा ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ वह बाण उड़ता हुआ एक योजन तक गया और जहाँ सेना पड़ी हुई थी, वहाँ पहुँचकर शत्रुधनके धरणोंके भाँगे गिरा । उस बाणकी देखकर शत्रुधन चकित हो गये । ८९ ॥ फिर बाणका बूझकर यूपकेतुका नाम देखकर शत्रुधनने निश्चय लिया कि यूपकेतु आगे आगमन ही है ॥ ९० ॥ तब तब शत्रुधनने भी अपने नामसे अर्कित एक बाण उठाकर यूपकेतुकी ओर छेड़ा ॥ ९१ ॥ वह बाण यूपकेतुके ऊपरसे हीला हुआ पड़े जा गिरा । यूपकेतुने अपने पिताका बाण देखा ॥ ९२ ॥ तब प्रमत्त होकर दुर्दुभो जैसा गर्जन करते हुए वेगके साथ शत्रुधन के पास पहुँचे । वहाँ पिताको देखते ही वे रथसे कूद पड़े और अपनी रथी मदनसुन्दरीके साथ जाकर शत्रुधनकी प्रणाम किया और प्वजामे बाँध हुए कम्बुकण्ठको दिखाया । शत्रुधनने उन्हें अपना सम्बन्धी समझकर छुड़ा दिया ॥ ९३॥ ९४ ॥ फिर शत्रुधनने कम्बुकण्ठके मुँहसे ही विस्तारसे साथ समस्त वृत्तान्त सुना । इसके बाद कम्बुकण्ठके

कालिपुर्या वदिः स्थित्वा कंबुकंठमनेन सः । आकारणार्थं लप्राय रामं दत्तान्प्रचोदयत् ॥ ९६ ॥  
 सदा ते कंबुकंठस्य सप्रधनस्यापि वेगदः आकारणार्थं श्रीराम यमुर्दूता मुदाभिरगाः ॥ ९७ ॥  
 इति श्रीशतकोटिशतमखरितांशे श्रीमदालन्दरामायणे विवाहकाण्डे मदनमुन्दरीहरणं नामाष्टमः सर्गः । ८ ॥

## नवमः सर्गः

( रामका वंशचिन्ता )

श्रीरामदास उवाच

मन्वाऽप्येष्यापुरीं दत्ता रामं वृत्तं न्यवेदयन् रामोऽपि श्रुत्वा तद्वृत्तं मीढार्यं संन्यवेदयत् ॥ १ ॥  
 ततो मुहूर्ते श्रीरामः मावेरोधानुजैः सह । पौरैर्जनपदैः सर्वैः सुहृद्भिः सेनया सह ॥ २ ॥  
 नागदेन ययौ कालिमाषां मुक्तिपुरीं प्रति । ततः श्रुत्वा कंबुकंठः शीघ्रं गमयमागतम् ॥ ३ ॥  
 स प्रमुद्रस्य त्रिनयासम्भ्रा सगृजपन्मुदा । ययकेन ततः पृज्य वरजम्भं पुरीं शनैः ॥ ४ ॥  
 वास्त्रीनृन्पगोदैश्च तूर्यदोयैर्निनाय सः । ततः कालिपुरीं गम्यन्नाः स्त्रियः प्रामादमस्थिताः ॥ ५ ॥  
 दृष्ट्वा रामं ययकेन ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । ततो रामः शनैरेस्तुं कल्पितं गृहगुणमम् ॥ ६ ॥  
 मत्वा दृष्ट्वा मुहूर्तं तु पूर्वोक्तकौतुकैः सुखम् । ययकेनेविवाहं स चकार परमोन्मदः ॥ ७ ॥  
 ततो विवाहं निर्धृत्य कंबुकंठेन पूजिताः । उन्मयश्चरश्चपादातदम्भदासीजनदिभिः ॥ ८ ॥  
 ययौ मदनमुन्दर्या रामोऽप्येष्यापुरीं विज्राम् । ततो विवेश नामगीं नेदुर्वाद्यानि वै तदा ॥ ९ ॥  
 सज्जनुर्वारनार्यश्च नुह्वुर्भाषादयः प्रामादस्थाः स्त्रियो रामं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ १० ॥  
 मार्गे नीराजितः स्त्रीभिर्विवेश निजमन्दिरम् । कारयित्वा रमापूजां ददौ दानान्यनेकधा ॥ ११ ॥  
 मुहुरा पूजयामास राभवो वसनादिभिः । ततो विमर्जयामास सर्वान्प्रश्वस्यथल प्रति ॥ १२ ॥

शार्पका करनेपर उसके साथ ही कालिपुरी गये ॥ ९४ ॥ वहाँ कम्बुकण्ठकी सन्तुहसे मन्वुज नगरके बाहर ही ठहरे और रामको बुलानेके लिए दूतोंको भेजा ॥ ९५ ॥ उसी समय मन्वुज नवा कम्बुकण्ठके इन श्रीरामको बुलानेके लिए प्रसन्नतापूर्वक चले पडे ॥ ९६ ॥ इति श्रीशतकोटिशतमखरितांशे श्रीमदालन्दरामायणे पंच रामनजपाश्वेयविरचिते'प्योल्ता'भाषातः कामर्दिन विवाहकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदास कहने लगे वे इन अयेष्यापुरीमें पहुँचे और रामका कालिपुरीका सब हाल कह सुनाया । तो गुणकर रामने सीतासे कहा ॥ १ ॥ इसके पश्चात् अच्छे मुहूर्तमें राम अपने अंतःपुरकी नारियों, पुष्पागारियों, बनगदवासीगो, समस्त सम्बन्धियों, नारद तथा सेनाके साथ आदिमुक्तिपुरी अर्थात् कालिपुरीको चले गये । जब कम्बुकण्ठने सुना कि रामचन्द्र पुरीके निकट आ पहुँच है, सब भावरपूनेके स्वागत करने लगे । यही पहुँचकर सविनय प्रणाम किया । इसके अनन्तर राम तथा ययकेद्वारा पूजन करके हाथीपर बिठाकर चोर-खीरे पुरीको चले ॥ २ ॥ रात्रिमें वेज्यादे नाचत-गाता यो और दूहड़ी आदि विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे । उधर जब नगरकी स्त्रियोने आन देखा तो राम और ययकेनुपर पुष्पवृष्टि करने लगीं । तत्पश्चात् राम जनसासेमें पहुँचे ॥ ३ ॥ ४ ॥ यहाँ अच्छा मुहूर्त देखकर पूर्वोक्त कौतुकोंके साथ बड़े उत्साहसे दूपकनूका विवाह किया ॥ ५ ॥ विवाहकी सब रीतियाँ पूरी हो जानेपर कम्बुकण्ठस पूजित हाकर कितने ही श्रुथो, घोडे, रथ, पैदल सेना, वास-दासा आदिके साथ मदनमुन्दरोंको लेकर अपनी अयाऽयापुरीको चले दिये । मन्वोजाक पास पहुँचकर व अपनी नगरमें पुनः तो विविध प्रकारके बाजे बजने लग ॥ ८ ॥ ९ ॥ येथ्याँ नाचने लगीं और मागध-बन्दीजन स्तुति करने लग । नगरवासनी महिलाएँ अंटारियोवर चढ़-चढ़कर रामपर फूल बरसाने लग्य और कुछ स्त्रियाँ मार्गमें आरती उतारने लग्य । इस उत्साहसे राम अपने बहुत गये । यहाँ उन्होंने लक्ष्मीकी पूजा की और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर विमर्जनमें आये हुए

अथ सप्त कुमाराश्च तवाद्याः स्वस्ववेद्यमनि पशुः, कोटां पृथक् स्त्रीभ्यां कुशश्चण्डिकाऽकरोत् ॥१३॥  
 चंपिकायां दुहितरः कुशाज्जना, शुभं नव कुशस्याग्रे कुमुद्वर्था भविष्यन्वष्ट शुभवः ॥१४॥  
 भविष्यति तथा कन्या नैका चंपिकायाः कन्या । इत्येव, शुभेऽन्तिद्विरिति नाम्ना राज्यं कञ्चिद्वति ॥१५॥  
 चतुर्दश सुमत्याद्याः स्त्रियः सर्वाः क्रमेण हि । तृपुत्रस्वतयास्तु कर्णैकाऽपि पृथक् पृथक् ॥१६॥  
 स द्वादशश्चतुर्षोऽत्रर्षीर्वाश्च सनेष्टमा । त्रयस्त्रिंशद्दामचन्द्री तालयामास सीतया ॥१७॥  
 कुमुद्वर्थाभाविपुत्रमहिताः शिशवः शुभाः विंशच्छामावस्ते तथा वीर्यस्तडिप्रथाः ॥१८॥  
 चतुर्विंशन्मिनाक्षायन मवाभोद्वाहित नृपैः तथा आगश्वपौत्रश्च नृपकन्या शनैकशः ॥१९॥  
 काञ्चिन्स्वयंवरैर्जैव काञ्चिद्वाक्षमयोगतः । काञ्चिद्वाक्षवैरोगेन काञ्चिद्वैवहकर्मणा ॥२०॥  
 परिणीताः पौरुषेण तामां संकथा न विद्यते । तामां हि संतति वक्तुं कः समर्थो भवेद्विह ॥२१॥  
 एवं स यूपकेनोश्च विवाहश्चाम, शुभः । सपद्य नादः श्रीमान्प्रभायां रघुनन्दनम् ॥२२॥  
 रामनाममहत्तमं सर्वोक्तं मानभाक्तनः । स्तुत्वा आगद्य पृष्ट्वा धयावाकाशकर्मना ॥२३॥

आरामदास उवाच

एवं रामेण सार्केतपुर्यां भोगाश्चिरं सुखम् । सुकामैर्वा वणेनऽथ कः समर्थो भवेन्नरः ॥२४॥  
 एक एव समर्थोऽभूद्वाल्मीकिस्त्वयमां तिरिः । शतकोटिमितं येन नानाकीडादिवयुनम् ॥२५॥  
 वर्णितं रामचरितं महामंगलकारकम् । यन्मनुजैश्च सया किञ्चिच्चद्रे परिचर्जितम् ॥२६॥  
 एव रामस्त्वयाधारा पुत्रैः पौत्रैः समन्वितः । प्रभारं पौत्रपौत्रश्च रजयामास जानकीम् ॥२७॥  
 एवं विवाहकाण्डं च शिष्यः परं परिचर्जितम् । त्वमर्थः पवित्रं च भवणान्मंगलप्रदम् ॥२८॥  
 विवाहकाण्ड परमं ये शृण्वन्त्यपि मानवाः । न स्यान्मः पुत्रपौत्रश्च वियोग ताप्नुवति हि ॥२९॥

सम्बन्धियोंका समस्त अदि दे देकर पुता की ओर सबका अपन घर जानकर अनुमाह दी ॥ १३ ॥ इसके बाद लव आदि माता तमारा अपना अपना स्थिराक साथ अपना अपना महत्ताम विहार करने लग और कुश अपनी स्त्री चम्पिका के साथ पालि करना लग ॥ १४ ॥ इस तरह कुश पुता व द कुशने चम्पिकास नी कन्यायें उत्पन्न कीं । कुमुद्वर्थासे आठ पुत्र और चम्पिकासे ८ पुत्र, कुशसे १२ पुत्र भा बादम उत्पन्न हुये । कुशका सबसे बड़ा पुत्र अतिथि अवध्यापुरी के राजा करना ॥ १५ ॥ इनके सिवाय सुमाह आदि पौरुष स्त्रियोंने कमशः आठ आठ पुत्र और एक एक कन्या उत्पन्न की ॥ १६ ॥ इस तरह राम सेताके साथ बारह सौ पौत्रा तथा तन्त्रे कुमुद्वर पौत्रराज, लव न पावन करने लगे ॥ १७ ॥ इस प्रकार कुमुद्वर्ताके भावा पुत्रो पौत्राको भी मिलाकर बीस सौ पौत्र और बीस सौ पौत्रा भई ॥ १८ ॥ जिनका रामने अच्छे अच्छे राजाभक्ति साथ दिवाह कर दिया और रामके पौत्रोका दिवाह जनक राजकुमारिका के साथ हुआ ॥ १९ ॥ उनमेंसे कुछ कुमारीयां स्वयंवरसे आयीं, कुछ गणेशविवाहमें आयीं कुछ गणेशविवाहमें आयीं और कुछसे शुभ विवाहसम्बन्ध हुआ ॥ २० ॥ इनके सिवाय पौत्राके पुत्रा यन उत्पन्न राजकुमारिका रामाक महलीय आयीं, जिनका कोई संख्या ही नहीं है । ऐसी स्थितिमें उनका संतान नाका हीन होने संकत है । ॥ २१ ॥ इस प्रकार यूपकेनका अन्तिम शुभ विवाह सम्पन्न हुआ आनंदन नगरमें समाप्त करने कर कुछ राममहत्ताममें इति शान्तिपूर्वक रामकी स्तुति करके जानकी आजा मंगल की ओर आकाशमंगल चला गया ॥ २२ ॥ २३ ॥ आरामदासन कहा— इस तरह रामने बहुत समय तक सुख भोगा, उसका वरण करनेमें कोई भी प्राणा समर्थ नहीं हो सकता । ॥ २४ ॥ बस एकमात्र तपस्वी वाल्मीकिजा उनका वणनमें समर्थ हुए थे जिन्होंने सौ करोड़ कलाकोमें नामा प्रकारको पदाओं सहित रामचरितका वर्णन किया । यह रामचरित परम महत्त्व काक है । इसका स्मरण करके ही मैं तुम्हारे समस्त कुछ बन्तमें समर्थ हुआ हूँ ॥ २५ ॥ २६ ॥ इस प्रकार राम अपनी बयोध्यापूरीमें पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र एवं प्रपौत्राक पुत्राक साथ रहते हुए सताको अह्लादित करते रहे ॥ २७ ॥ हे शिष्य ! इस तरह मैंने नी सगुनक पवित्र विवाहकाण्डका वणन किया, जो सुननेमें सर्वथा महत्त्वदायक है ॥ २८ ॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्दर्मं धनार्थी धनम् प्लुतम् । कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥ २० ॥  
 श्रीकामुकैर्नरेरेतत्पठनीयं निरुदाम् । विवाहकाण्डं परमं प्राप्नुवंत्यत्र ते वधुः ॥ २१ ॥  
 पतिकामा कुमारी येन्यन्त्याभोपत्रिपत्तिनः । विवाहकाण्डमेतद् मनोज्ञं पतिमाप्नुयान् ॥ २२ ॥  
 समर्थैरेतदेतन्मृगयाडाञ्च मार्कतः । इह स्त्रिया मुञ्च भुक्वाऽप्योमिदिवि मोदते ॥ २३ ॥  
 मधवा कण्ठ्यादेवया नारी काण्डमुत्तमम् । विवाहाच्च कदा भया विद्योम आप्नुयान् सा ॥ २४ ॥  
 समदशदिनेभ्यः कार्यं श्रीकामुकैर्महूः । अनुष्ठानं वर्षमेकं स्यादपि स्त्रियमाप्नुयान् ॥ २५ ॥  
 प्रथमे दिवसे सप्तं पटुर्द्वी न परेष्टानि । त्रयमे दिवसे सप्तान्क्रमेण संपठेत्तव ॥ २६ ॥  
 दशमे दिवसेऽथैव सप्तसंवत्सरे व क्रमान् । एव समदशदिनेऽनुष्ठानं स्मृतं पुनः ॥ २७ ॥  
 मधवा सकल काण्डं प्रथमे दिवसे पठन् । परेष्टानि द्विगुणं हि त्रयमे दिवसे क्रमान् ॥ २८ ॥  
 नववारं पठन्चेद् दशमे दिवसे ततः । अष्टवारं पठेन्नाह सप्तसंवत्सरे क्रमान् स्मृतः ॥ २९ ॥  
 एवं नरो वर्षमेकमनुष्ठानान्निष्ठप लभेत् । विमग्नवक्त्रां च कृतायां दिव्यकृपां मनोहराम् ॥ ३० ॥

विवाहकाण्डं परमं पवित्रमानन्ददं मङ्गलकारकं च ।

श्रीदं मनोज्ञं भुविर्पाकपदं वै मांः मदा मश्वरणीयमेतन् ॥ ३१ ॥

आनन्दरामायणमध्यमंश्च विवाहकाण्डं परमं हि वदाम् ।

मृष्यति नक्त्या भुवि मानवा मे लभन्ति कामान्त्रिलोकमनोहान् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहात्मनि रामचरिते तृतीये श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डे राजवक्त्रविमलकण्ठेन नाम त्वम सप्त ॥ ३३ ॥

विवाहकाण्डे सर्गः आनन्दरामायणे त्वमेव ज्ञातव्यः । पञ्चमनाम्नः स्वनामः पञ्चमः पञ्चमः ॥ ३४ ॥

आ मनुष्य विवाहकाण्डका श्रवण करते हैं, वे धरना क्या तथा पुत्र पावस कार्य भी विपुल नही हूँ ॥ २९ ॥  
 इसका सुननम धर्मार्थी धर्मका, धनार्थी धनका, काम कामका और मोक्षार्थी मोक्षका वा लता है ॥ ३० ॥ जो  
 लोग स्वार्थ के लोभ से हैं, उन्हें साधन कि निरमल इस विवाहकाण्डका पाठ किया क । इससे उन्हें स्वर्ग  
 लक्षण प्राप्त होगी ॥ ३१ ॥ अच्छे पतिवा पतनी इका रखनवाणी कुमारी यदि सन्निपूर्वक इस काण्डको सुने  
 तो मन्दर पति ॥ ३२ ॥ आ सत्य क मनुष्य इस काण्डका पढ़ना या सुनना है तो वह इस जन्ममें स्त्रीक  
 साथ गुण प्राप्त कर स्वर्गमें अप्सराओंक साथ विहार करेगा है । जो स्वर्गवा नारी इस काण्डकी सुनती है वह  
 कभी पलायनवापका दुःख नहीं पावे । जो लोग क्या चाहते हैं वे मन्त्र दिनमें एक क्षात्रिक भूमसे एक वर्ष  
 तपन अनुष्ठान कर ऐसा जन्मसे मूल मानव को स्वा प्राप्त कर सकता है । ३३ ३४ । इसका तम इस तरह  
 है पहले दिन एक सप्त, दूसरे दिन १० सप्त तीसरे दिन तीन सप्त इस क्रमसे चार दिन तो सर्गिका पाठ करे ।  
 फिर दसवें दिन अठ सप्त और बारहवें दिन सप्त नम एत एक एक इतना हुआ सप्तह दिनम पूरा कर । विवाह  
 नाच महो अनुष्ठानकी विधि बनल था है । ३५ ॥ ३६ ॥ अथवा नव पढ़ना पढ़ने राज विवाहवापका एक बार  
 पाठ कर जाय, दूसरे राज दो बार, तीसरे राज तीन बार, इस क्रमसे चाराला हुआ नववें दिन भी बार इस  
 बारका पाठ कर और बारहवें राज अठ बार बारहवें दिन सप्त बार इस नियमसे पढ़ाया हुआ सप्तह्वे दिन  
 केवल एक बार पाठ करे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इस तरह एक वर्ष तक अनुष्ठान करनेसे यह पुण्यका मुखर, अच्छी  
 भासिका और दिव्य रूपवाली मनोहर स्त्री प्राप्त है । ३९ ॥ लोगोंका चाहिए कि इस परम पवित्र, स्वादायक  
 कृतिमुलदायक तथा आनन्द दनकाल विवाहकाण्डका निरूप पठ कर ॥ ४० ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस छरे  
 विवाहकाण्डको आ मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनने ह । अनेक सब कामनाओंका प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४१ ॥ इति श्री  
 सकात्रिदिवचरिते तृतीये श्रीमदानन्दरामायणे वाचस्पत्ये ॥ ४२ ॥ रामायणपठेयविरचिते ज्योतिषा मयाटीका-  
 सहिते विवाहकाण्डे त्वमः सर्गः ॥ ९ ॥

एष विवाहकाण्डो नृणो सर्वो हि और उनमें पांच सौ चार सौ दशक कह गये हैं ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डे समाप्तम् ।



श्रीगणेशाय नमः

श्रीवत्समीकिमहाभुनिकृतशनकोटिरामचरितान्तर्मर्त-

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया आगटीकयाऽऽधीकृतम्

## राज्यकाण्डम् (पूर्वार्द्धम्)

प्रथमः सर्गः

( रामसहस्रनाम )

विष्णुदान उवाच

रामदास गुरो प्रोक्तं त्वया पूर्वं ममांतिके । विशादकाण्डं चरमसर्गेऽत्र पातकापहे ॥ १ ॥  
रामनामसहस्रं नादत्तं मदीन्मनः । सुतोक्तं सभायां स रामचन्द्रः स्तुतमिदं ॥ २ ॥  
तस्कीदृशं रामनामसहस्रं मां प्रकाशय । कथं सूतन कथितं सुनीनामग्रतः पुरा ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्पदं त्वया शिष्यं सावधानमना भूषु । रामनामसहस्रं च सुतोक्तं प्रवदामि ते ॥ ४ ॥  
यथा न्वया कृतः प्रश्नः शौनकेन उवाच कृतः । श्रुत्वा प्रहृष्टोऽहं तदाकथ्यं शौनके नैमिषे वने ॥ ५ ॥

श्रीसूत उवाच

एकदा सुखमार्गानौ पार्वतीपरमेश्वरी । अयोध्याक्षिप्रदृष्टाहू लोकलक्ष्मणतत्परौ ॥ ६ ॥  
इन्द्रादिलोकपालैश्च सेविता च परात्परौ । जग्मेतां पारपरच्छ्रुत्वा तदा चर्माननुकमात् ॥ ७ ॥

पारंगुवच

मयाय जगतां राध मईत परमेश्वर । न्यन्त्रमादान्मया ज्ञान धर्मशास्त्रपनुत्तमम् ॥ ८ ॥  
मापश्चितं तु पापानां श्रुत्वा सर्वमरीकतः । ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं वक्तुमर्हसि ॥ ९ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो रामनाम अभी अभी आप मुझसे कह चुके हैं कि पातकोंको नष्ट करने-  
वाले विशादकारमें नारदने सुतोक्त रामसहस्रनाम सभामें रामचन्द्रजीको स्तुति की थी ॥ १ ॥ २ ॥  
वह रामसहस्रनाम कैसा है और किस प्रकार आनन्दजीन पुनियोंके समक्ष उसे प्रकट किया था । सो आप  
मुझसे कहें ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य । तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर  
सुनो । मैं तुम्हें सूनाका कहा हुआ रामसहस्रनाम सूनाता हूँ । आज जिस तरह तुम मुझसे पूछ रहे हो, उसी  
तरह शौनकेन स्तुतीसे सूनाता था । उनका प्रश्न सुनकर नैमिशारण्यमें सूतजीन शौनकेसे कहा—एक समय  
काकत्सामें सरवर शिव और पार्वती गम्बहिरां डाले हुए आनन्दबुर्दक बड़े थे ॥ ४-५ ॥ सर्वश्रेष्ठ देवता शिव  
और पार्वतीकी सेवामें इत्यादि लोकपाल उपस्थित थे उस समय शिव-पार्वतीमें कोई घापिक चर्चा चल  
रही थी । समय पाकर पार्वतीने शिवजीसे कहा—हे हमारे प्रभु जगन्के प्रभु, सर्वज्ञ एवं परमेश्वर ! आपकी  
हवासे मैंने समस्त धर्मशास्त्र ज्ञान लिया । पापोंका प्रायश्चित्त किस तरह हो सकता है, सो भी पुन चुकी ।

श्रीमहादेव उवाच

मृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् । सनत्कुमारविघ्नेशसंवादं पापनाशकम् ॥१०॥  
उपविष्टं गणाध्यक्षमेकान्ते शशिपत्य च । सनत्कुमारः पप्रच्छ सर्वधर्मविदां वरम् ॥११॥

सनत्कुमार उवाच

मया च सर्वधर्मतः सर्वविघ्नविनाशन । द्विजदम्पाद्वरं धर्मं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥१२॥  
त्रिना भवन्त धर्मस्य धर्मा नास्ति जगत्त्रये ।

श्रीगणेश उवाच

साधु पृष्टं त्वया मन्त्रन्सर्वलोकोपकारकम् ॥१३॥

मया चिरं कृतं कर्म स्मरितं भवताऽनघ पुराऽहं गजरूपेण जातः पर्वतसन्निभः ॥१४॥  
ततो हृक्षान्यधुन्याद्य मुनिविद्यां समाश्रमम् । तदा मया मुनिगणा निहता बहवो बलात् ॥१५॥  
इहकारो मदान्ताद्व्याघ्रगानां समन्ततः । तदा हृष्यावहम्भेन वेष्टितः पतितोऽस्म्यहम् ॥१६॥  
निःसंतं मृतुल्य मां पतितं त्रीक्ष्य मे पिता । आराध्य जगतामीशं राम सर्वहृदि स्थितम् ॥१७॥  
प्रत्यक्षपरोक्षेण मदेतो गधुनन्दनम् । तदा प्रोवाच ममवान् भीरवः पितरं मम ॥१८॥

श्रीराम उवाच

प्रमत्तोऽस्मि महादेव किं मां प्रार्थयसे प्रभो दास्यामि यदर्माष्टं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१९॥

श्रीमहादेव उवाच

द्विजहृत्पासनादिं मम पुत्रमिमं प्रभो । निष्पापं गुरु देवेश यद्यस्ति मयि ते दया ॥२०॥

श्रीगणेश उवाच

सद्येत्युक्त्वा तदा तेन कृपयाहं निमीक्षितः । तत्पुणाल्लुब्धं चैव न्यो निर्मलज्ञानवृद्धिदः ॥२१॥  
चतुर्भिर्गणैश्चैव स्तुत्वा तं प्रणतोऽभवम् ।

धन आप मुबारक कुल करके बहूदृष्ट्यादि मद्रापाणोंका निष्कृतका कोई उपाय बनलाइए । श्रीशिवजी बोले—  
हे देवि ! मैं तुम्हें अतिशय गुरु तथा पापनाशक सनत्कुमार और गणपतिका सम्वाद सुनाता हूँ ॥ ७-१० ॥ एक  
समय जब कि गणेशजी एकान्तमें बैठे हुए थे तब सनत्कुमारने जाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—हे  
भगवन् ! समस्त धर्मोंको जाननेवाले तथा विघ्नका विनाशक हूँ प्रभो गुप्त रह्यहृत्पाका विनाश करनेवाला  
भीई धर्म ज्ञाताइय ॥ ११ ॥ १२ ॥ आपके समक्ष लोका लोकम काई भी धर्मका वक्ता पुझे नहीं दीखता ।  
गणपतिने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुमने मुझसे बहुत अधिक प्रश्न किया है । इससे तारे ससारका उपकार होगा ॥ १३ ॥  
तुमने एक ही बातसे पूछने किये हुए मेरे सब कर्मका इमरण दिला दिया है । पूजकालमें मैं गजरूपमें संसारमें  
कत्तमा था और पर्वतकी भाँति खड़ा होता था डाल डोल था ॥ १४ ॥ उस समय मैंने पहले तो बहुतसे वृक्ष  
चसादे । फिर मुनियोंकी हिला आरम्भ कर दी । मैंने मगने अपरिमय वक्ता कितने ही मुनियोंका वध कर  
वापी बन बैठा ॥ १५ ॥ १६ ॥ मेरे हाँस-हवास निकालने न रह तथा एक मृतककी भाँई मेरी आकृति हो गयी ।  
मेरी दशा देखकर मेरे पिताने संसारक महाप्रभु रामकी आराधना का, इतना प्रसन्न होकर रामचन्द्रजी मेरे पिता-  
के सम्मुख जाये और कहने लगे । रामचन्द्रजी बाल हैं महादेव ! मैं तुम्हारा ऊँच अति प्रसन्न हूँ । कालाजो,  
तुम किसलिए इस प्रकार मेरी प्रार्थना कर रह हो ? तुम्हारा कामका भाँव तात लोकमें दुर्लभ होगा तो जो मैं  
जैसे पूर्ण करोगा ॥ १७ ॥ १८ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हूँ प्रभो ! तब पुत्र गणेशका बहूदृष्ट्या लग गया है । हे देवेश !  
जबि आशकी मुसपर दया हो तो उसे निष्पाप कर दीजिए ॥२०॥ श्रीगणेशजी सनत्कुमारसे कहने लगे—इस प्रकार मेरे  
पिताकी बात सुनकर रामचन्द्रने अपना कृपाभरी दृष्टिसे एक बार मेरा ओर देखा । उनके देखते ही मैं चैतन्य हो  
गया । मेरेमें एक निर्मल ज्ञानका वस्त्रण संचार हो गया ॥ २१ ॥ तब बहुतसे गण-पणों द्वारा मैंने भगवान्की

श्रीरामचन्द्र उवाच

द्विजहत्यामहस्यस्य प्रायश्चित्तं वदामि ते ॥ २२ ॥

अथ नामसहस्रं मे हत्याकोटिबिनाशकम् । इति गुह्यं ददौ रामस्त्वं नाममहस्यकम् ॥ २३ ॥  
तस्य तद्ग्रहणादेव निष्पापोऽहं तदाऽभवम् । दशरथ्यास्मि देवानां पूज्योऽहं मुनिसत्तम ॥ २४ ॥  
सहस्रप्रेतदधीयानो राघवस्य महान्मना । नाम्नां सहस्रं लोकेषु प्रस्थापय महामते ॥ २५ ॥

सनत्कुमार उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि मणाधिप । न्यग्रमादान्मयाऽधीतं रामनामसहस्रकम् । २६ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इति विज्ञाप्य देवेशं परिक्रम्य प्रणम्य च । नदादि मत्तर्तं जप्त्वा स्तोत्रमेतद्रानने ॥ २७ ॥

अथाथ परमां सिद्धिं पुण्यपापविवर्जिताम् ।

श्रीपार्वत्युवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश तदहं सर्वकामदम् ॥ २८ ॥

नाम्नां सहस्रं मां ब्रूहि यद्यस्मि मयि ते दया ।

श्रीमहादेव उवाच

अथ वक्ष्यामि भो देवि रामनाममहस्यकम् । शृणुष्वैकमनाः स्तोत्रं गुह्यं गुह्यतरं महत् ॥ २९ ॥

ऋषिर्विनायकश्चास्य सन्तुष्टोऽहम् उरुषते । परब्रह्मान्मको रामो देवता शुभदर्शने ॥ ३० ॥

ॐ अस्य श्रीरामसहस्रनाममालामंत्रस्य विनायक ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीरामो देवता  
महाविष्णुरिति बीज गुणभृत्सिर्गुणो महानिति शक्ति मन्त्रिदानन्दविग्रह इति कीलकं श्रीराम-  
श्रीस्पर्धे अपे विनियोगः

ॐ श्रीरामचन्द्राय अंगुष्ठाभ्यां नमः । सीतापतये गर्जनाभ्यां नमः । रघुनाथाय मध्यमाभ्यां नमः ।  
भरताग्रजाय अनामिकाभ्यां नमः । दशरथात्मजाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । हनुमत्प्रभवे करतलकर-  
पृष्ठाभ्यां नमः । श्रीरामचन्द्राय हृदयाय नमः सीतापतये शिरसे स्वाहा रघुनाथाय शिखायै वषट् ।  
भरताग्रजाय कवचाय हुस् । दशरथात्मजाय नेत्रत्रयाय धौषट् । हनुमत्प्रभवे अस्त्राय फट् ।

स्तुति की और उनके चरणोंमें स्नात गया । फिर रामचन्द्रजी कहने लगे—तुम्हारे द्विजहत्याके पापसे उद्धार पानेका  
अस्त्र है तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २२ ॥ मेरे 'रामसहस्रनाम' का जप करीब ब्रह्महत्याओंका पाप भी नष्ट कर देता है ।  
ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने अपना गुप्त सहस्रनाम मुझे बताया और उसके ग्रहणमात्रसे मेरे पाप नष्ट हो  
गये । तभीसे है मुनिसत्तम ! मैं देवताओंका भी पूज्य हो गया हूँ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम भी इसी रामसहस्रनामका  
पाठ करते हुए ससारमें इसका प्रचार करो । सनत्कुमारने कहा—मैं धन्य हूँ । मुझपर आपकी बड़ी कृपा है ।  
आपहीकी दयासे मैंने रामसहस्रनाम पा लिया । मैं कृतार्थ हो गया । श्रीशिवजीने कहा—इस तरह उस सहस्र-  
नामकी जानकर सनत्कुमारने गणेशजीकी परिक्रमा की, प्रणाम किया और तभीसे नित्य इसका जप करके पुण्य-  
पापसे विवर्जित होकर वे परम सिद्धिमें प्राप्त हुए । पार्वतीजी बोली—हे देवेश ! सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले  
रामसहस्रनामको मैं भी जानना चाहती हूँ । यदि आपकी मुझपर दया रहती हो तो मुझे बताइए । शिवजी कहने  
लगे—हे देवि ! मैं तुम्हें वह पुनीत सहस्रनाम बतलाता हूँ । तुम भी सावधान मन होकर उस गुह्यसिगूह  
स्तोत्रकी सुनो ॥ २५-२९ ॥ इस रामसहस्रनाम मंत्रमय स्तोत्रके ऋषि विनायक हैं और साक्षात् परब्रह्म राम  
इसके देवता हैं ॥ ३० ॥ ॐ अस्य श्रीराम' इस मंत्रसे विनियोग करके 'श्रीरामचन्द्राय' कहकर अंगुष्ठ, 'सीता-  
पतये' कहकर तर्जनी, 'रघुनाथाय' कहकर मध्यकी अंगुली, 'भरताग्रजाय' कहकर अनामिका, 'दशरथात्मजाय'  
कहकर कनिष्ठिका, 'हनुमत्प्रभवे' कहकर दोनों करपृष्ठोंका न्यास करे । फिर 'रामचन्द्राय' कहकर हृदय,  
'सीतापतये' कहकर शिर, 'रघुनाथाय' कहकर शिखा, 'भरताग्रजाय' से दोनों बाहुयूथ, 'दशरथात्मजाय'

अथ ध्यानम्

ध्यायेदज्ञानुवाहं धृतगुणधनुषं बद्धपद्मप्रस्थं  
 पर्वण्यं चागो वमानं नयकमलप्रस्थिं नेत्रं प्रमन्नम् ।  
 रामाकारदुर्भीताशुभकमलामिललोचनं नागदाभ  
 नानालकारदीप्तं दधत्सुरजटागण्डलं रामचन्द्रम् ॥३१॥  
 वैदेहमहितं सुगन्धतले हंसं महामण्डपे  
 मध्ये पुष्पमहासने भणिमये वीगमने भस्मिदम् ।  
 अग्रे वाचयति प्रमन्नसुते तच्च मुनिभ्यः परं

ध्यातव्यं भरनादिभिः पवित्रं राम भजेच्छयाभलम् ॥३२॥

सीमर्णमन्त्रे दिव्ये पुष्पके सुविगजिते । मूले कल्पप्रणे, स्वर्णपीठे सिंहाष्टमयुते ॥३३॥  
 मृदुस्लक्ष्णातिरे तत्र ज्ञानकथा सह सस्थिदम् । रामे नीलो-पलङ्क्यामं द्विभुजं धीतवाससम् ॥३४॥  
 स्थितवक्त्रं सुखासीनं पद्मपद्मनिभेषणम् । दिगीश्वरकेशुकुण्डलैः कटकादिभिः ॥३५॥  
 आश्रयानं ज्ञानमुदाहर वीगमनमिदम् । इष्टमन्नं स्वनयोम्य ज्ञानकथा, मन्त्रपाणिना ॥३६॥  
 पतिष्ठुवामदेशाद्यैः सेवितुं लक्ष्मणादिभिः । शरीरानामग्रे रम्ये अभिषिक्तं रघूद्वयम् ॥३७॥  
 एवं कृत्वा जपेन्नित्यं रामनामसद्वक्त्रम् । हन्याकोटिपुनो वाऽपि सुकृतं नात्र संशयः ॥३८॥  
 ऐश्वर्यमः श्रीमान्महाविष्णुजिष्णुर्देवहितादिभिः । तत्र सा नायकं नम्य श्लाघतः सवसिद्धिदः ॥३९॥  
 राजीवलोचनः क्षीमोऽश्रुमयः रघुपुंगवः । रामभद्रः सदाचारः राजेन्द्रो ज्ञानकर्षणिः ॥४०॥  
 अग्रगण्यो वरेण्यश्च वरदः परमेश्वरः जनार्दनः जितामित्रः । परार्थकप्रयोजनः ॥४१॥

ये दोनों नेत्र छुए तथा 'हनुमत्प्रणवे' कहकर मुद्रा की बजाये । अब ध्यानम् जिनका वाजानु बाहु है, जो धनुष-  
 बाण धारण किये हैं, ध्यातव्य भागकर बैठ है, पद्म पद्म पहने हैं । मूल कमलरसे होइ करनेवाली जिनको  
 दोनों आँखें हैं, जिनके वासागत्र सीताजी धँडे हैं । मंता तथा राम दोनों आपसमें एक दूसरेके मुखकी शोभा  
 देखनेमें संलग्न हैं, नवीन मेघके सदृश जिनका मुख है, जिस विविध प्रकारके बालकागसे झलकते तथा लम्बी  
 लम्बी अटा धारण करनेवाले रामचन्द्रका ध्यान कर ३१ ॥ कन्दर्प, चने व मन्त्रार्ज के साथ एक सुन्दर पुष्पके  
 मण्डपमें पुष्पनिमित्त महाप्रण, जिसमें अनेक प्रकारकी मण्डियाँ रहती हैं, उसपर श्रीराम श्रीरामसे बैठे हुए हैं ।  
 उनके सामने बैठे हनुमान्जी मुनियोंकी परम सन्धकी ध्येय ॥ ३२ ॥ तथा रहते हैं । भरतादि तीनों धाता जिनकी  
 जगल-बगल धरे हैं । ऐसे श्यामस्वरूप रामका भजन करे ३३ । सुवर्णनिमित्त दिव्य पुष्पक विमान कल्पवृक्षके  
 नीचे रक्ता है । जिसमें आठ सिंह लग्न हैं । आ कोषल और निरुक्त है, ऐसी गर्हगर होताके साथ बैठे हुए  
 हैं नीलकमल सरीसे जिनके नेत्र हैं दो भूतार्ज है, पीत वस्त्र है, मुखमाला हुआ मुख है और वे आनन्दसे  
 बैठे हैं । किरीट, हार, केशूट कुण्डल और कटकादि । वे सुगन्धित हो रहें हैं । वे एक ओर ज्ञानपुद्ग धारण  
 किये हैं । दूसरी तरफ बायें हाथसे सीताके रत्नाको सहन रहते हैं ॥ ३३-३५ ॥ रसिष्ठ, वामदेव तथा  
 लक्ष्मणादिक जिनकी सेवामें तत्पर हैं । क्षीमाश्रु नगराज जिनका राज्य अधिक हो चुका है । ऐसे रघूद्वय  
 रामचन्द्रजीका ध्यान करने सर्वदा इस राममहत्त्वनामका पाठ करना चाहिए । ऐसा करनेसे यदि किसीको  
 करोड़ों हत्यायें भी लगीं हैं तो दूर हो जाना है । इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिए ॥ ३६-३८ ॥  
 ॥ ३६ ॥ अब सहस्रनाम कहते हैं -राम, श्यामान्, महाविष्णु, जिष्णु, सबको जीवनवाले), देवहितादि  
 ( देवताओंका कल्याण करनेवाले ), तत्त्वात्मस्वरूप नारवज्ज, शास्त्रज्ञ, सर्वसिद्धि ( सब प्रकारकी सिद्धियों-  
 को देनेवाले ) ॥ ३९ ॥ कमल सरीसे नेत्रवाले ध्यानम, रघुपुंगव ध्येय, रामभद्र, सदाचार, पुनीत  
 आचारवाले) राजेन्द्र, ज्ञानकीके पति ॥ ४० ॥ सदा अनेतर, वरेण्य ( सर्वश्रेष्ठ ), वरद ( करदायक )

विश्वामित्रप्रियो दत्ता शत्रुनिष्ठशत्रुतापनः । सर्वज्ञः सर्ववेदादिः शरण्यो बालिमर्दनः ॥४२॥  
 ज्ञानमन्योऽपरिच्छेदो नाम्नी सत्यव्रतः शुचिः । ज्ञानगम्यो दृढमज्ञः सारथ्यमो प्रतापवान् ॥४३॥  
 पुनिमान्नमवान् धीमो जितक्रोधोऽश्मर्दनः । विश्वरूपो विशालाक्षः प्रभुः परितृप्तो दृढः ॥४४॥  
 ईशः सङ्गधरः श्रीमान् कौमल्ययोऽनसूयकः । विपुलाक्षो महोरस्कः परमेष्ठी परायणः ॥४५॥  
 सत्यव्रतः सत्यवर्धो गुरुः परमधार्मिकः । लोकेशो लोकवपश्च लोकान्मा लोककृद्भिष्टुः ॥४६॥  
 अनादिर्भगवान् सेव्यो जितबाहो रघुदहः । गमो दयाकरो दक्षः सर्वज्ञः सर्वपावनः ॥४७॥  
 प्रद्युम्नो नीतिमान् गौमा सर्वदेवमयो हरिः । सुन्दरः पीतवामाश्च मूत्रकारः पुरातनः ॥४८॥  
 सौम्यो महर्षिः कोदण्डः सर्वज्ञः सर्वकोविदः । कविः सूर्याववरदः सर्वपुण्याधिकप्रदः ॥४९॥  
 मरुपो जितगिषद्वर्गो महोदयोऽघनाशनः । मुक्तीर्निगदिगुरुयः कात्तः पुण्यकृतसमः ॥५०॥  
 अकरमपश्चतुर्बाहुः सर्वारामो दुरासदः १०० स्मितभाषा निवृत्तान्मा म्पुनिमान् शीघ्रवान् प्रभुः ॥५१॥  
 धीमो दातो धनस्थामः सर्वायुधविशालः । अध्यात्मयोगाभास्वरः सुमना लक्ष्मणाग्रजः ॥५२॥  
 सर्वतोर्वमयः शूरः सर्ववृत्तफलप्रदः । यत्तम्यरूपो यज्ञेशो जगत्प्रणयजितः ॥५३॥

परमेश्वर, अनर्दन जितामित्र ( शत्रुओंको पराजित करनेवाला ), परायणप्रतापन ( परायणकार करना ही जितना स्वभाव प्रतापन है ), विश्वामित्रको प्रिय जाना शत्रुओंके जाननेवाले शत्रुनाशन ( शत्रुका लानेवाले ), सर्वज्ञ, सर्ववेदादि समस्त वेदके आदि कारण ), सत्यव्रत, सत्यवर्धन वालिक परमार्थ करनेवाले ), ज्ञानमन्य, परिच्छेद नाम्नी ( कुशल बना ) सत्यव्रत, शुचि, पवित्र, ज्ञानगम्य ( ज्ञानद्वारा जानने योग्य, दृढव्रत ( स्थिर बुद्धिकाले, मरदहसी, प्रतापवान्, काम्यवान्, दौर, जितक्रोध ( जिन्होंने पापको जित लिया है ), अश्मर्दन ( शत्रुको नीचा रितानवाले ) विश्वरूप ( समस्त ही जितका स्वरूप है ), विशालाक्ष ( बड़ी बड़ी भालवाले ), प्रभु समस्त जगत् ईश्वर ) परितृप्त ( सतर्क ) ॥ ४२-४४ ॥ ईश ( सब संसारके स्वामी ), सङ्गधर ( लक्ष्मण धारण करनेवाले ), श्रीमान् कौमन्य ( कौशल्यके पुत्र ), अनसूयक ( किसीसे ईर्ष्या न करनेवाले ), विपुलाक्ष ( जिनके छत्र चौड कण्ठे हैं ) महोरस्क ( जिनकी विशाल छाती है ), परमेष्ठी ( जो ब्रह्मास्वरूप हैं ), सत्यवतारसम ( सत्यवती ), सत्यव्रत ( सत्यव्रत ), गुरु ( सराप्रभु ), परम धार्मिक, लोकेश ( सब लोकोंके ज्ञाता ), लोकवपश्च ( सब लोकोंमें वपश्चर्माण ), लोकान्मा ( सब लोकोंके भाग्य ), लोककृत् ( लोकोंके रचयिता ), विष्टु ( सर यात्री ) ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अनादि ( जिनका आदि नहीं है ), भगवान् ( सर्वसम्पत्तिशाली ), सेव्य ( सेवा योग्य ), जितबाह ( मायाका जाननेवाले ), रघुदह ( रघुवर्णके उवागरकर्ता ), दाम दयाकर, दयाके स्तनिष्ठस्वरूप, दक्ष ( सब कामोंमें निपुण ), सवज्ञ, सर्वपावन ( सबको पुरात करनेवाले ), प्रद्युम्न ( प्रद्युम्नभक्त ) नीतिमान् गौमा ( सवरत्न ), सवद्वमय, हरि, सुन्दर, पीतवामा ( पीत वस्त्र धारण करनेवाले ), पुरातन मूत्रकार ( मवप्रचान मूत्रकार अर्थात् मूत्ररूपमें वर्षोंके रचयिता ), पुरातन ( सबसे प्राचीन ) ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सौम्य ( जिनका मरुत्त प्रभाव है ), महर्षि, कोदण्ड ( वनस्पति ), सर्वज्ञ, सर्वकोविद ( सब विषयोंके पूर्ण पण्डित ), कवि, सूर्याववरद ( सूर्यवक्ता अथवावर देनेवाले ), सर्वपुण्याधिकप्रद ( सब पुण्यास भी अधिक करनेवाले ) ॥ ४९ ॥ अध्या जितगिषद्वर्ग ( जिन्होंने अपने बलसे शत्रुके भय-उत्साहादि छत्रोंका जित लिया है ), महोदय ( जो सबसे उदार है ), घनाशन ( पापका नाश करनेवाले ), मुक्ती ( जिनकी सुन्दर कीर्ति है ), नादिपुण्य ( जो सबके आदि पुण्य हैं ), कात्त ( सर्वप्रद ), पुण्यकृतसम ( पवित्रविचारमयप्र ) अकरमय ( पापहित ) चतुर्बाहु ( चतुर्भुज ), सर्वविश ( सबके निवासस्थान ), दुरासद ( बड़ी कठिनाईमें शत्रु १०० स्मितभाषी ( मुस्कुराते हुए गाने करनेवाले ), विपुलाक्ष, जिनकी आत्मा स्वताम्य है, जो म्पुनिमान्, पीतवाम और सबके प्रभु हैं । दौर, दाक्ष ( उदारप्रकृति ), धनस्थाम ( धनकी नई स्वाम्यस्वरूप ), सर्वायुधविशाल ( सब शस्त्रास्त्रोंमें निपुण ), अध्यात्मयोगाभिलिख ( अध्यात्मयोगके निवास ), सुमना ( सुन्दर चित्तवाले ), लक्ष्मणाग्रज ( लक्ष्मणके बड़े भाता ), ॥ ५०-५२ ॥ सर्वोर्वमय, शूर ( महाभारत में पांडवा ), सर्ववृत्तफलप्रद ( सब वृत्तोंके फलदाता ) यत्तम्यस्वरूप

वषाध्वगुर्वर्णी धनुजिन्दुहोत्तमः । शिवलिंगप्रतिष्ठाता परमात्मा परमेश्वरः ॥ ५८ ॥  
 प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः पूर्णः परपुरुजयः । अनन्तदृष्टिगहनन्दो धनुर्वदो धनुर्वरः ॥ ५९ ॥  
 गुणकरो गुणश्रेष्ठः सच्चिदानन्दविग्रहः । आभवाद्यो महाकायो विश्वकर्मा विशाखदः ॥ ६० ॥  
 विनातान्मा दीतगगनपस्वीशो जनेश्वरः । कन्यागः प्रवृत्तिः कल्पः सर्वेशः सर्वकामदः ॥ ६१ ॥  
 अक्षयः पुरुषः साक्षी केशवः पुरुषोत्तमः । लोकाध्यक्षो महाकायो विशीषणवरप्रदः ॥ ६२ ॥  
 आनन्दविग्रहो ज्योतिर्हनुमत्प्रमुख्ययः । आजिष्णुः महतो भोजो मन्यवादी बहुधनः ॥ ६३ ॥  
 सुखदः कारणं कर्ता भववन्धविमोचनः । देवचूडाभरणेना शस्त्रधरो ब्रह्मवर्धनः ॥ ६४ ॥  
 संसारहारको रामः सर्वदुःखविमोक्षकृत् । विद्वत्तमो विश्वकर्ता विश्वकृद्विश्वकमे च ॥ ६५ ॥  
 नित्यो नित्यतकन्यागः सानाशोकविनाशकृत् । काकुत्स्थः पुण्डरीकाक्षो विश्वामित्रभयापहः ॥ ६६ ॥  
 मारीचमथनो गमो विराधवधपरिहृतः । दुःस्वप्ननाशिनो रम्भः किरीटधारि विदयाधरः ॥ ६७ ॥  
 महाधनुर्महाकायो भीमो भीमपाकमः । तत्त्वस्वरूपमन्वतमन्वतवादी सुविक्रमः ॥ ६८ ॥  
 भूतान्मा भूतकृन्त्यामी कालज्ञानी महागुहः । अनिर्विण्णो गुणधामो निष्कलकः कलकहा ॥ ६९ ॥  
 स्वभावभद्रः हनुमन्तः केशवः स्थानुरीश्वरः । भूतार्ता शत्रुनाशिनः स्वविदुः शाश्वतो ध्रुवः ॥ ७० ॥  
 कवचो कुण्डली चक्री खड्गी भक्तजनप्रियः । अमृत्युर्वन्ममद्विता सर्वोन्नमर्गोच्चरः ॥ ७१ ॥  
 अतुल्योऽयमेवात्मा सर्वान्मा गुणसागरः २०० । सदा समान्मा समगो ब्रह्मायुक्तपरिहृतः ॥ ७२ ॥  
 अजेयः सर्वभूतात्मा विश्वकसेतो महावपाः । लोकाध्यक्षो महाब्रह्मरसमो वदाक्षरमः ॥ ७३ ॥

। यज्ञके मूर्ती रूप ), यज्ञेश ( यज्ञके स्वामी ), जगत्समरणजित ( कुडुपा और वृन्दु दानोंस रहित ),  
 वषाध्वगुर्वर्ण ( ध्वस और आध्वसके गुरु ), धनुजिन्दु ( धनुषीको जितनेवाले ), परशान्तम ( सब पुरुषास श्रेष्ठ ),  
 शिवलिंगप्रतिष्ठाता ( लिविध शिवलिंगोंके संस्थापक ), परमात्मा, परमेश्वर परमाणभूत विश्वके प्रमाणस्वरूप ),  
 दुजय ब्रह्म कटिगईमे जानके योग्य ), पूर, परपुरुजय ( धनुजननाक विजता ), अनन्तदृष्टि ( अमारदृष्टि ),  
 आनन्द, धनुर्वदके जना, वन्धारे गुणकर, गुणक भण्डार ), कृष्णेश ( सब गुणास श्रेष्ठ ), सच्चिदानन्दविग्रह  
 ( सने चित आनन्द इन तीनोंके जिनका सगेर बना है ), अक्षयद्य ( सबके धनदाय ), महाकाय,  
 विश्वकर्मा विशाखद ॥ ५३ ५९ ॥ विनात आत्मकात्मा, सातगाग ( रामाहुंमगुन्त ), तपस्वका ( तपस्विधक  
 स्वामी ), जनेश्वर, कन्याग ( कन्यागस्वरूप ), प्रवृत्ति सदा प्रसन्न ), कल्प, स्थिति तथा प्रलयाकालके  
 अधिपति ), सगण, सर्वकामद अक्षय, पुरुष, साक्षी केशव, पुरुषोत्तम, साक्षाध्यक्ष, महाकाय,  
 विमोक्षणवरप्रद ॥ ५७ ॥ ५८ आनन्दविग्रह आनन्दक पत हन ), ज्योतिस्वरूप, हनुमत्के त्वासी,  
 अनिर्विण्ण, आजिष्णु ( रीतिसम्पन्न ), सहनशील, भोजी, मन्यवादी बहुधन ॥ ५९ ॥ सुखदाया,  
 कारणस्वरूप, कर्ता, भववन्धनसं छुड़ानेवाले, देवताओंके धनुष, ब्राह्मणभक्त अक्षुण्णके उद्यापक  
 ॥ ६० ॥ समारगसागरसे तारनेवाले, सदा दुखान छुड़ानेवाले, अनिर्विण्ण विद्वत्, विश्ववर्चिता,  
 विश्वकर्ता, विश्वक कताज रम्भस्वरूप ॥ ६१ ), नित्य कन्यागस्तनय, सानाशोकनाशक, ककुत्स्थ,  
 कामन्वयन, विश्वामित्रभयाहारी ॥ ६२ ॥ मारीचधर्त्री, गम, विराधवधन विण्ण, दुःस्वप्ननाशिनारक, रम्भीक,  
 किरीटधारी, दवाधिपति ॥ ६३ ॥ विशाख धनुष पाण करनवाले विशालनाय, कयाक भवनाक पराक्रम  
 सम्पन्न, सन्दाक मूर्तरूप, तन्वीक जना तन्वविषयक बना, असाकारण पराक्रमी ॥ ६४ ॥ ज्ञानमात्रके  
 सखी सबके स्वामी, समयके धारत्री, विनाशहारेश्वरी, सदा प्रसन्न, गुणधाम निष्कलक, कलकहा ॥  
 ६५ ॥ स्वभावतः कल्याणकारी, धनुनाशक, केशव, विश्वकारी, ईश्वर, प्रणिकके आदि सम्भु अर्चित-  
 नय स्वामी, नित्य, अटल ॥ ६६ ॥ कवचधारी, पुण्डरीकाक्षी चक्रधारी, खड्गधारी, भक्तजनाके प्रिय, अमर,  
 अजेय सबके विजता, सर्वेश ॥ ६७ ॥ सर्वान्त, अमर्षेयात्मा स्वर्दिभ, गुणसागर २०० । सदा सन,  
 प्रवृत्ति, समात्मा, समगामे, ब्रह्मायुक्तावमर्षित ॥ ६८ ॥ अक्षय, सर्वभूतात्मा, विश्वकसेत महाकाय,

महिष्णुः सद्गतिः शास्त्राविश्ववे निवेदयुतिः । अर्जुन उज्जितः प्रांशुर्ध्वद्रो वामनो बलिः ॥७०॥  
 धनुर्वेदो विधाता च भक्तः विष्णुश्च शक्रः । इमो मर्गाचर्मोन्निद्रो रत्नगर्भो महद्व्युतिः ॥७१॥  
 व्यासो वाचस्पतिः सर्वदर्शनसुरभदेनः । जानकाग्रहः श्रावन् प्रकटः प्रातिवर्द्धनः ॥७२॥  
 समशोऽभीष्टिषो वेशो निर्देशो जाम्बवन्प्रभुः । मदनो मन्मथो वरार्पा विश्वरूपो निरञ्जनः ॥७३॥  
 नारायणोऽग्रणी साधुजटाधुप्रानिवर्द्धनः । नैकरूपो जगन्नाथः गुरुकार्यहिन्ः प्रभुः ॥७४॥  
 जितक्रोधो जितारविः प्लवगाधिपराज्यदः । वसुदः सुभुजो नैरुमाया भव्यः प्रमोदनः ॥७५॥  
 क्षण्डाशुः सिद्धिदः कल्पः शरणागतवर्मलः । श्रुतदो गगहर्ता च मन्त्रतो मन्त्रभावनः ॥७६॥  
 सौमित्रिवन्मलो धृष्टो व्यक्तव्यक्तस्वरूपवृत् । रविष्ठो ग्रामगोः श्रामाननुकूलः प्रियरदः ॥७७॥  
 अतुलः सान्निभो धीरः अगमनविद्यादः । ज्येष्ठः सर्वगुणोपेतः शक्तिमान्महाकांतकः ॥७८॥  
 वैकुण्ठः प्राणिनां प्राणः कमलः कमलाधिपः । गोवर्धनचरो मन्मथरूपः कारुण्यसागरः ॥७९॥  
 कुम्भकर्णप्रभेता च गोपिगोपालत्वचनः ३०० । साधारो व्यापको व्यापको रेणुकेयवलापहः ॥८०॥  
 पिनाकमयनो वद्यः समर्थो गरुडध्वजः । लोकत्रयाश्रयो लोकभरिवो भरताग्रज ॥८१॥  
 श्रीधरः संयविलोकयाभां नागायणो विभुः । मनोरुपा मनोवेगी पूर्णः पुरुषपुंगवः ॥८२॥  
 यदुश्चेष्टो यदुपतिर्भूताश्च यः सुविक्रमः । तजोधरो धराधरश्चतुर्भुजमहानिधिः ॥८३॥  
 बाणधधनो वद्यः शान्तो भरतमदितः । सुदर्शनगो ममागत्मा कोमलागः प्रजागरः ॥८४॥  
 लोकोर्ध्वगः शेषशायी शिराधिधितिलवाष्मकः । आत्मज्योतिरदानात्मा महत्सर्गचिः सहस्रपाद् ॥८५॥  
 अमृतांशुवर्हागर्भो निवृत्तार्थप्रवृत्तः । त्रिकालज्ञो मुनिः सार्धो विहायसर्गादिः कृता ॥८६॥  
 वर्जन्त्यः कुमुदो भूतावासः कमलन्यासनः । आरम्यवधाः श्रोकामो वाग्हा लक्ष्मणाग्रजः ॥८७॥  
 लोकाभिरामो लोकानामर्तः सेवकप्रियः । सनातनतमा मधुदयामला राक्षसातकः ॥८८॥

व्यापकः स्वामी, मगधाह् अमृत, वदनीयः ॥ ७० ॥ महिष्णुः सद्गतिः, शास्त्रा, विश्वयात्रि परमकान्ति-  
 सत्त्वयः अनीद ( इन्द्रसे धरा ) तत्र मया । सर्वोद्गः उज्जितः, वामनः, बलिः ॥ ७० ॥ धनुर्वदविधाता, प्रह्लादः,  
 विष्णुः, शक्रः हुम्, सर्गचिः, गर्विकः रत्नगर्भः मन्मथः ॥ ७१ ॥ व्यासः, वृहस्पतिः, सभ्यः अभिमानः  
 अमुराके धातकः, जानकः जन्म, श्रामान् प्रकटः, प्रीतिवर्द्धनः ॥ ७२ ॥ समशः, अतोन्द्रियः, वेशः, निर्देशः,  
 जाम्बवान्के स्वामी मदनः मन्मथः, सर्वदारा विद्वन् निरञ्जनः ॥ ७३ ॥ नारायणः, अग्रणी, साधु जटाधुके  
 प्रतिवर्द्धनः, अनाकरूपः, जगन्नाथः दवकादगधकः, प्रभुः ॥ ७४ ॥ जितक्रोधः, लघुविजेता, सुग्रीवराज्यदायकः,  
 वसुदाता, सुभुजः विविधमायधरी, मन्त्रः प्रभावनः ॥ ७५ ॥ क्षण्डाशुः, सिद्धिदायकः, कल्पः, शरणागत-  
 वर्मलः, अगदः रोगहर्ता मन्त्रज्ञः मन्त्रभवनः ॥ ७६ ॥ कुम्भकर्णप्रभः, धृष्टः ध्यनः-अध्यन्तरूपधारी, रविष्ठः, ग्रामीणः,  
 भीमाह्, अतुलः, प्रियवर्त्तः ॥ ७७ ॥ अतुलः केवः सान्निभः धीरः, यदुविद्यार्थः निगुणः, ज्येष्ठः, सर्वगुणसम्पन्नः,  
 शक्तिमान्, ताडकाके धानकः ॥ ७८ ॥ वैकुण्ठः, प्राणिपः कः प्राणः, कर्मठः, कमलः, पतिः, गोवर्धनधारी, मन्मथ-  
 रूपधारी, कारुण्यसागरः ॥ ७९ ॥ कुम्भकर्णकः नाशकः, गोपिगोपालत्वचनः ३००, साधारो, व्यापकः,  
 व्यापको, रेणुकेय ( परशुरामके कलनाशकः ) ॥ ८० ॥ धनुषधनकः, वद्यः समर्थः, गरुडध्वजः, लोकाभिरामो आश्रयः,  
 लोकभरितः भरतके वडे अना ॥ ८१ ॥ श्रीधरः, सद्गतिः, शास्त्राग्र नागायणः, विभुः, मनारूपो, मनो-  
 वेगी, पूर्णः, पुरुषपुंगवः ॥ ८२ ॥ यदुश्चेष्टः यदुपतिः, भूतावासः, सुविक्रमः, तजोधरः, धराधरः, चतुर्भुजः,  
 महानिधिः ॥ ८३ ॥ बाणधधनः वद्यः शान्तः, भरतचन्द्रितः सर्वदर्शनः, गभीराहमा, कोमलागः, प्रजागरः  
 ॥ ८४ ॥ लोकोर्ध्वगामी, शेषशायी शिराध्वनित्यः, अमलः, कात्मज्योतिः, अदीनात्मा, सहस्रार्चिः, सहस्रवरणः  
 ॥ ८५ ॥ अमृतांशुः, महीगर्तः, त्रिपयकः, मृदुलः रश्मिः, त्रिलोकजः मुनिः सार्धः, विहायसर्गादिः कृताः ॥ ८६ ॥  
 वर्जन्त्यः, कुमुदः भूतावासः, कमलन्यासनः आरम्यवधा, श्रोकामः, वाग्हा, लक्ष्मणाग्रजः ॥ ८७ ॥ लोकाभिरामः, लोका-

दिव्यायुधधरः श्रीमानप्रमेयो जितेन्द्रियः । मृदेववद्यो जनकप्रियकुम्भप्रणितामहः ॥८९॥  
 उत्तमः सत्त्विकः सत्यः सन्ध्यामन्धस्त्रिविक्रमः । सुवृत्तः सुगमः सूक्ष्मः सुषोणः सुखदः सुहृत् ॥९०॥  
 दामोदरोऽभ्युतः शङ्को वामनो मधुराधिपः । दवकीनन्दनः शौरि शूरः कैटभमर्दनः ॥९१॥  
 सप्तनालप्रमेया च मिश्रवशप्रवर्धनः । कालध्वरूपो कालान्मा कालः कल्याणदः ४०० कलिः ॥९२॥  
 सवस्त्रो ऋतुः पक्षो क्षपणं दिवसो युगः । रात्र्यो विधिको निर्लेपः सर्वव्यापी निराकुलः ॥९३॥  
 अनादिनिघनः सर्वलोकपूज्यो निराग्रयः रमो रसज्ञः सारज्ञः लोकसारो रसात्मकः ॥९४॥  
 सर्वदुःखातिगो विद्याराशिः परमगोचरः शेषो विशेषो विगतकल्मषो रघुपुङ्गवः ॥९५॥  
 वर्णश्रेष्ठो वर्णभाज्यो वर्णो वर्णगुणोज्ज्वलः कर्ममाक्षी गुणश्रेष्ठो देवः सुखप्रदः ॥९६॥  
 देवाधिदेवो देवाधिदेवामुनमस्कृतः । सर्वदेवमयश्चक्रो शार्ङ्गपर्णी रघूत्तमः ॥९७॥  
 मनोगुप्तिरङ्कारः प्रकृतिः पुरुषोज्ज्वलः । न्यायो न्यायी नयी श्रीमान् नयो नमधरो ध्रुवः ॥९८॥  
 लक्ष्मविश्वम्भरो भर्ता देवेन्द्रो बलिमर्दनः । बाणारिभर्दो यज्ञानुत्तमो मुनिसेवितः ॥९९॥  
 देवाग्रणीः शिवध्यानतन्परः परमः परः सामगोपः प्रियः शूरः पूर्णकीर्तिः सुलोचनः ॥१००॥  
 अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो दशस्यद्विपकेसरी कलानिधिः कलनाथः कमलानन्दवर्धनः ॥१०१॥  
 पुण्ड्रः पुण्याधिकः पूर्णः पूर्वः पूरयिता रविः जटिलः कल्मषघ्नो नमभजनविभावयुः ॥१०२॥  
 जयी जितारिः सर्वादिः शमरो भवभञ्जनः । अलकरिणुराचनो रात्रिष्णुर्विक्रमोत्तमः ॥१०३॥  
 आशुः क्रन्दपतिः शब्दागोचरो रजनो लघुः । निःशब्दपुरुषो माया स्थूलः सूक्ष्मो ५०० विलक्षणः ॥१०४॥  
 आत्मयोनिस्थोनिश्च समजिह्वः सहस्रपात् । मनात्तननमः सार्वी पेशलो विजिताम्बरः ॥१०५॥  
 शक्तिमान् शस्त्रभृन्नथो गदाधरधांगभृत् । निर्गहो निर्विकल्परश्च चिद्रूपो वीतसाध्वसः ॥१०६॥  
 सनातनः सहस्राक्षः शतमूर्तिर्धनश्रमः इन्द्रगोकशयनः कठिनो द्रव एव च ॥१०७॥  
 धूर्पो ग्रहपतिः श्रीमान् समर्थोऽनर्थनाशनः अधर्मशत्रु रक्षोघ्नः पुरुहूतः पुरस्तुतः ॥१०८॥

रिमर्दन, सबकीप्रय, सनातनस्तम, मधश्यामल, राक्षसान्तक ॥ ८९ ॥ दिव्यायुधधर, श्रीमान्, अप्रमेय, जितेन्द्रिय,  
 विशर्वथ, गिताक द्वियवर्त, प्रणितामह ॥ ९० ॥ उत्तम सत्त्विक सत्य, सन्ध्यामन्ध, त्रिविक्रम, सुवृत्त,  
 सुगम, सूक्ष्म सुषोण, सुखद, सुहृत् ॥ ९१ ॥ दामोदर, अभ्युत शङ्को, वामन मधुराधिपति, देवकीनन्दन,  
 वासुदेव, शूर, कैटभमर्दन ॥ ९२ ॥ सप्तनालप्रभन्त, मिश्रवशवर्धन, कालध्वरूपो, कालान्मा, काल, कल्याणद  
 ४०० कलि, ॥ ९३ ॥ सवस्त्र, ऋतु, पक्ष, क्षपण, युग, रात्र्य विधिक, निर्लेप, सर्वव्यापी, निराकुल  
 ॥ ९४ ॥ अनादिनिघन, सर्वलोकपूज्य, निराग्रय, रम, रसज्ञ, सारज्ञ, लोकसार, रसात्मक ॥ ९५ ॥ सर्व  
 दुःखातिग, विद्याराशि, परमगोचर, गद्य, विलय, विगतकल्मष, रघुपुङ्गव, ॥ ९६ ॥ वर्णश्रेष्ठ, वर्णभाज्य,  
 वर्ण, वर्णगुणोज्ज्वल कर्ममाक्षी, गुणश्रेष्ठ, देव, सुखप्रद ॥ ९७ ॥ देवाधिदेव देवाधि देवामुनमस्कृत  
 सर्वदेवमय, चक्रो, शार्ङ्गपर्णि, रघूत्तम ॥ ९८ ॥ मन बुद्धि अङ्कार प्रकृति, पुरुष अव्यय, न्याय  
 न्यायी नयी, श्रीमान्, नय, नमधर, ध्रुव, ॥ ९९ ॥ लक्ष्म-विश्वम्भर, भर्ता, देवेन्द्र, बलिमर्दन  
 बाणारिभर्दन, यज्ञा उत्तम मुनिसेवित ॥ १०० ॥ देवाग्रणी, शिवध्यानतन्पर, परम, पर, सामगोप  
 प्रिय, शूर पूर्णकीर्ति, सुलोचन ॥ १०१ ॥ अव्यक्तलक्षण, व्यक्त, दशारवद्विपकेसरी, कलानिधि  
 कलनाथ कमलानन्दवर्धन ॥ १०२ ॥ पुण्याधिक पूर्ण पूरयिता, रवि, जटिल, कल्मषघ्नो ध्वस्त  
 करनेवाले, अग्नि ॥ १०३ ॥ जयी, जितार्ति, सर्वादि, शमन भवभञ्जन, अलकरिणु अचल, रात्रिष्णु  
 विक्रमोत्तम ॥ १०४ ॥ आशु क्रन्दपति, शब्दागोचर, रजन, लघु, निःशब्द, पुरुष, मायो, स्थूल, सूक्ष्म ५००  
 विलक्षण ॥ १०५ ॥ आत्मयोनि, अवांनि, समजिह्व, सहस्रपात् सनातननम, सार्वी, पेशल, विजिताम्बर ॥ १०६ ॥  
 शक्तिमान् कल्पभृत्, नाथ, गदाधर, रथाभृत्, निर्गह, निर्विकल्प, चिद्रूप, वीतसाध्वस ॥ १०७ ॥ सनातन



जगन्मर्षो बृहद्रर्षो धर्मधेनुर्धनराजः । हिरण्यगर्भो ज्योतिष्मान् मुक्ताष्ट मुचिक्रमः ॥ १०९ ॥  
 शिवपूजार्त श्रीमान् मरुतार्तिविकृद्गर्तो नरो नारायण इयाम कपर्दी नीललेहिवः ॥ ११० ॥  
 रुद्रः पशुपति स्थानुर्विशामित्रो द्वित्रेश्वरः । मातामहो मनमिया विविचिर्विष्टम्भरा ॥ १११ ॥  
 असौम्य सर्वभूतानां चण्डः मन्यपराक्रुधः । बलस्त्रियो महाकन्य कल्पवृक्ष कलाभा ॥ ११२ ॥  
 निदाघस्तपनो मेघ शुक्रः परवन्धवहन् वसुधवा कठयवाह प्रसप्तो विश्वभोजनः ॥ ११३ ॥  
 रामो नीलोत्पलश्यामो ज्ञानचन्दो महाशुनिः । कवन्धमयनो दिव्य कम्बुग्रोव शिवमेव ॥ ११४ ॥  
 सुशो नील सुनिष्कमः मुलम दिशिगन्धकः । प्रममृष्टोऽतिथि गूर प्रपाथा वायनाशकृत् ॥ ११५ ॥  
 पवित्रपादः पारागिर्मणिपूरो नभोगति उत्तारणो दूष्कृतिहा दुर्धर्षो दुःपहो बलः ६०० ॥ ११६ ॥  
 अमृतेशोऽमृतवपुर्धर्षो धर्मः कृपाकरः । भगो विगन्धानादिभ्यो योगाचार्यो दिव्यमतिः ॥ ११७ ॥  
 उदारकीर्तिक्रयोगो बाहुमयः सदमन्त्रयः । नक्षत्रमभी नाकेश स्वधिष्ठानः वडाश्रयः ॥ ११८ ॥  
 चतुर्वर्गकलं वणशक्तिव्रणकलं निधिः । निधानगर्भो निधार्जो निर्गणो व्यक्तवर्द्धनः ॥ ११९ ॥  
 श्रावणश्च शिवारम्भ शांती भद्रः समन्तम । भूजाया भूकद्रनिर्भरणो भूतनाहनः ॥ १२० ॥  
 अकायो भक्तकायस्थः कलशनी महारदुः । परध्वंशतिरचलो विविक्तः अविमागरः ॥ १२१ ॥  
 स्वभावभद्रो मध्यस्थः समारम्भनाशनः । वेद्यो वैद्यो विद्यहोता सर्वार्थमुनीश्वरः ॥ १२२ ॥  
 सुरेन्द्रः कारण कर्मेकरः कर्षो ह्यशोभजः धर्मोऽश्रुधर्मो धात्रीशः सकल्पः सर्वोपपतिः ॥ १२३ ॥  
 परमार्थगुरुर्दृष्टिः सुचिराभितरवलः । विष्णुजिष्णुविभुर्धर्मो यज्ञेशो पशुराजकः ॥ १२४ ॥  
 प्रभुविष्णुर्धर्मिष्णुश्च लोकान्मा लोकपालकः । केशवः केशिहा काव्यः कविः कारणकारणम् ॥ १२५ ॥  
 कालकर्ता कालशयो वासुदेवः पुरुष्टनः । आदिकर्ता वराहश्च वामनो मधुसूदनः ॥ १२६ ॥  
 नारायणो नरो हंसो विश्वकसेनो जनार्दनः । विशकर्ता महापद्मा ज्योतिष्मान्पुरुषोत्तमः ७०० ॥ १२७ ॥

सप्तमस्त, शतमूर्ति, सनमद, हन्युष्टोवशयन, कष्टिन इव ॥ १०९ ॥ सूर्य, बृहस्पति श्रीमान् धर्मर्ष, धनर्ष-  
 नाशन अघर्वशेष, रक्षोहन, पुष्टन गणपति ॥ ११० ॥ जगन्मर्ष, बृहद्रर्ष, धर्मधेनु, धनानाम हिरण्यगर्भ,  
 ज्योतिष्मान्, मुक्ताष्ट, मुचिक्रम ॥ १०९ ॥ शिवपूजार्त, श्रीमान् मरुतार्तिविकृत् वशी नर, नारायण, इयाम, कपर्दी, नीलोत्पलहिवः ॥ ११० ॥ रुद्र, पशुपति, स्थानुर्विशामित्र, द्वित्रेश्वर मातामह, मातरिष्य, विरिष्वा,  
 विष्टम्भरा ॥ १११ ॥ मन्त्राय चण्ड मन्त्रशक्त्य, बालमित्र, महाकन्य, कल्पवृक्ष, कलाभार ॥ ११२ ॥  
 निदाघ, तपन, मेघ, शुक्र, परवन्धवहान्, वसुधवा, कठयवाह प्रसप्त, विश्वभोजन ॥ ११३ ॥ राम, नीलो-  
 त्पलश्याम ज्ञानचन्द, महाशुनि, कवन्धमयन, दिव्य, कम्बुग्रोव शिवप्रिय, ॥ ११४ ॥ मुखा, नील, सुनिष्पन्न,  
 नृत्तम, निर्जगत्त्वयः अममृष्ट अतिथि, गूर प्रपाथा वायनाशकाय ॥ ११५ ॥ पवित्रपाद पारागि, मणि  
 पूर, नभोगति उत्तारण, दुर्धर्ष, दुःपह, बल ६०० ॥ ११६ ॥ अमृतेश, अमृतवपु, धर्मो, कृपाकर, भग,  
 विगन्धान्, आदिभ्य, योगाचार्य, दिव्यमति ॥ ११७ ॥ उदारकीर्ति, उदारो बाहुमय, सदमन्त्रय, नक्षत्र-  
 मानो, नाकेश, स्वधिष्ठान वन्धय ॥ ११८ ॥ चतुर्वर्गकल वणशक्तिव्रणकल निधि, निधानगर्भ निधार्जि,  
 निर्गण वरात्मवर्द्धन ॥ ११९ ॥ श्रीहन्धम, शिवारम्भ शान्त, भद्र समन्तम, भूजायो भूति, भूतनाहन ॥ १२० ॥  
 अकाय, भक्तकायस्थ कालशनी महारदु, परध्वंशति अचल, विविक्त, अविमागर ॥ १२१ ॥ स्वभावभद्र,  
 मध्यस्थ, समारम्भनाशन, वैद्य वैद्य विद्यहोता, सर्वार्थमुनीश्वर ॥ १२२ ॥ सुरेन्द्र, कारण, कर्मेकर,  
 कर्षो, अशोभज, धर्मो, अश्रुधर्मो धात्रीश सकल्प, सर्वोपपति ॥ १२३ ॥ परमार्थगुरु, दृष्टि सुचिराभितरवल,  
 विष्णु जिष्णु जिभु यज्ञ यज्ञेश यज्ञपालक ॥ १२४ ॥ इभु दिष्णु प्रसिष्णु लोकान्मा, लोकपालक, केशव,  
 केशिहा काव्य, कवि, कारणकारण ॥ १२५ ॥ कालकर्ता काव्यशय, वासुदेव पुरुष्टन, आदिकर्ता, वराह,  
 वामन मधुसूदन ॥ १२६ ॥ नारायण नर, हंस, विश्वकसेन जनार्दन विश्वकर्ता, महापद्म, ज्योतिष्मान्,

वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरचिन्तः । नारसिंहा महाभीमा वज्रदंष्ट्रो नवायुधः ॥१२८॥  
 आदिदेशो जगत्कर्ता योगीशो गरुडध्वज । गोविन्दो गोशनिर्गोम भूपतिर्भुवनेश्वरः ॥१२९॥  
 पद्मनाभो हृषीकेशो धाता दामोदरः प्रभुः । त्रिविक्रमस्त्रिभुवनेशो भक्तेशः प्रीतिवर्धनः ॥१३०॥  
 सन्ध्यामी शाश्वतस्वज्ञो मन्दिरं गिरिशो नतः । वासनो दुष्टदमनो गोविन्दो गोपबल्लभः ॥१३१॥  
 भक्तप्रियोऽम्बुतः सत्यः सत्यर्कानिर्दृतिः स्मृतिः । कारुण्यः करुणो व्यासः पापहा श्रुतिवर्द्धनः ॥१३२॥  
 बदरीनिलयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतः प्रभुः । भूतावाप्तो महाबाला श्रीनिवातः श्रियः पतिः ॥१३३॥  
 तपोवाप्तो मुदावासः सत्यवासः सनातनः । पुरुषः पुष्करः पुण्य पुष्कराक्षो महेश्वरः ॥१३४॥  
 पूर्णभूतिः पुष्पगन्धः पुष्पदः प्रीतिवर्धनः पूर्णरूपः । कालचक्रप्रवर्त्तनसमाहितः ॥१३५॥  
 नारायणः परं ज्योति परमात्मा सदाशिवः । शंखी चक्री मदी शङ्खो लांगूली मुसली हन्त्री ॥१३६॥  
 किरीटी कुण्डली हारी मखली कवची ध्वजा । योगी जेता महावीर्य शत्रुघ्न शत्रुनाशन ॥१३७॥  
 शास्ता शास्त्रकारः शास्त्रं शंकरः शंकरमुत्त । सर्वोपाधिभक्तः स्वामी सामवेदप्रिय सम ८०० ॥  
 पवन सहितः शक्तिः सम्पूर्णज्ञः समृद्धिमान् । स्वर्गदः कामद श्रीदः कीर्तिदः कीर्तिदायकः ॥१३९॥  
 भोजदः पुण्डरीकाक्षः क्षीराब्धिकृतकृतनः । सर्वान्मा सर्वलोकेशः प्रेरकः पापनाशनः ॥१४०॥  
 वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः सर्वदेवनमस्कृतः । सर्वव्यापी जगन्नाथ सर्वलोकमहेश्वरः ॥१४१॥  
 सर्वस्थित्यन्तकृदेवः सर्वलोकसुखावहः । अक्षयः शाश्वतोऽनन्त क्षयवृद्धिविजितः ॥१४२॥  
 निर्लेपो निर्गुण सूर्यो निर्विकारो निरञ्जनः । सर्वोपाधिनिर्मुक्त सनात्मात्रव्यवस्थितः ॥१४३॥  
 अविकारी विभुर्निन्य परमात्मा सनातनः । अचलो निश्चलो व्य.पा नित्यवृक्षो निराश्रयः ॥१४४॥  
 व्यापी युवा लोहिताक्षो दीप्त्वा शोभितपापणः । आजानुवाहूः मुमुक्षु सिद्धस्त्वन्धो महाभुजः ॥१४५॥  
 सम्भवान् गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वनेजसा । कालात्मा भगवान् कालः कालचक्रप्रवर्त्तकः ॥१४६॥

पुराणोक्तम् ७०० । १२० । वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः, सूर्यः, सुरचिन्तः नारसिंहः, महाभीमः, वज्रदंष्ट्रः, नवायुधः ॥ १२८ ॥ आदिदेवः, जगत्कर्ता योगेशः गरुडध्वजः, गोविन्दः, गोपतिः गोप्ता, भूपतिः, भुवनेश्वरः ॥ १२९ ॥ पद्मनाभः, हृषीकेशः, धाता, दामोदरः, प्रभुः, त्रिविक्रमः त्रिभुवनेशः महाेशः, प्रीतिवर्धनः ॥ १३० ॥ सन्ध्यामी, शाश्वतस्वज्ञः, मन्दिरः, गिरिशः, नतः, वासनः, दुष्टदमनः गोविन्दः गोपबल्लभः, ॥ १३१ ॥ भक्तप्रियः, अम्बुतः, सत्यः सत्यर्कानिर्दृतिः, स्मृतिः, कारुण्यः, करुणः व्यासः, पापहा, श्रुतिवर्द्धनः ॥ १३२ ॥ बदरीनिलयः, शक्तिः, तपस्वी, वैद्युतः, प्रभुः भूतावाप्तः, महाबालः श्रीनिवासः, श्रीपातः ॥ १३३ ॥ तपोवाप्तः, मुदावासः, सत्यवासः, सनातनः, पुष्करः, पुण्यः, पुष्कराक्षः, महेश्वरः ॥ १३४ ॥ पूर्णभूतिः, पुष्पगन्धः, पुष्पदन्तः, प्रीतिवर्द्धनः, पूर्णरूपः, कालचक्रप्रवर्त्तनः, समाहितः ॥ १३५ ॥ नारायणः, परंज्योतिः, परमात्मा, सदाशिवः, शंखा, चक्री मदी, शङ्खी, लांगूली, मुसली, हन्त्री ॥ १३६ ॥ किरीटी, कुण्डली, हारी, मखली, कवची, ध्वजा, योगी, जेता, महावीर्यः शत्रुघ्नः शत्रुनाशनः ॥ १३७ ॥ शास्ता शास्त्रकारः शास्त्रः, शंकरः, शंकरमुत्तः, शास्त्र्याः, शास्त्रिकः, स्वामी, सामवेदप्रियः, समः ८०० ॥ १३८ ॥ पवनः, सहितः, शक्तिः, सम्पूर्णज्ञः, समृद्धिमान्, स्वर्गदः, कामदः, श्रीदः, कीर्तिदः, कीर्तिदायकः ॥ १३९ ॥ भोजदः, पुण्डरीकाक्षः, क्षीराब्धिकृतकृतनः, सर्वान्मा, सर्वलोकेशः, प्रेरकः, पापनाशनः ॥ १४० ॥ वैकुण्ठः, पुण्डरीकाक्षः, सर्वदेवनमस्कृतः, सर्वव्यापी, जगन्नाथः, सर्वलोकमहेश्वरः ॥ १४१ ॥ सर्वस्थित्यन्तकृदेवः, सर्वलोकसुखावहः, अक्षयः, शाश्वतः, अनन्तः, क्षयवृद्धिविजितः ॥ १४२ ॥ निर्लेपः, निर्गुणः, सूर्यः, निर्विकारः, निरञ्जनः, सर्वोपाधिनिर्मुक्तः, सनात्मात्रव्यवस्थितः ॥ १४३ ॥ अविकारी, विभुः, निन्यः, परमात्मा, सनातनः, अचलः, निश्चलः, व्यापी, नित्यवृक्षः, निराश्रयः ॥ १४४ ॥ व्यापी, युवा, लोहिताक्षः शोभितपापणः, आजानुवाहूः मुमुक्षु, सिद्धस्त्वन्धः, महाभुजः ॥ १४५ ॥ सम्भवान्, गुणसम्पन्नः, अपने नेजसे दीप्यमानः, कालात्मा, भगवान्, कालः, कालचक्रप्रवर्त्तकः ॥ १४६ ॥

नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सनातनः । विश्वकृद्विश्वभोक्ता च विश्वगोप्ता च शाश्वतः ॥ १४७ ॥  
 विश्वेश्वरो विश्वमूर्तिविश्वात्मा विश्वभावनः । सर्वभूतमुहूर्च्छातः सर्वभूतानुत्पन्नः ॥ १४८ ॥  
 सर्वेश्वरः सर्वज्ञः सर्वदाऽऽभितव्यमलः । सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वभूताश्रयस्थितः ॥ १४९ ॥  
 अभ्यन्तरस्थसमस्तलेता नारायणः परः । अनादिनिधनः स्रष्टा प्रजापतिपतिर्हरिः ॥ १५० ॥  
 नरसिंहो हृषीकेशः सर्वात्मा सर्वदावर्णी । जगत्सम्भृष्टयैव प्रभुर्नेता सनातनः १०० ॥ १५१ ॥  
 कर्ता धाता विधाता च सर्वेषां पतिर्राश्वरः । महत्समूर्धा विश्वात्मा विष्णुविश्वरूपधरः ॥ १५२ ॥  
 पुराणपुरुषः श्रेष्ठः सहस्राक्षः सहस्रपान् । तन्त्र नारायणा विष्णुर्वामुदवः सनातनः ॥ १५३ ॥  
 परमान्धा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः । परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परान्तरः ॥ १५४ ॥  
 अरूपः पुरुषः कृष्णः शाश्वतः शिव ईश्वरः । नित्यः सर्वगतः स्थानं रुद्रः मार्त्ता प्रजापतिः ॥ १५५ ॥  
 दिव्यगर्भः सविता लोककल्लोकसुखिभुः । अङ्गावच्छेदो भगवान् श्रीभूर्जीवापतिः प्रभुः ॥ १५६ ॥  
 सर्वलोकेश्वरः श्रीमान् सर्वज्ञः सर्वताम्रः । स्वामी सुर्जालः सुलभः सर्वगः सर्वशक्तिमान् ॥ १५७ ॥  
 नित्यः संपूर्णकामश्च नैमगिकसुहृन्मुखः । कुर्याद्युषजलधिः शरण्यः सर्वशक्तिमान् ॥ १५८ ॥  
 श्रीमाधारायणः स्वामी जगता प्रभुर्गोदरः । मन्त्र्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ॥ १५९ ॥  
 रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की परान्तरः । अयोधेशो नृपश्रेष्ठः कुशचालः परन्तपः ॥ १६० ॥  
 लवचालः कजनेत्रः कजार्धः एकजाननः । सीताकाण्ठः सौम्यरूपः शिशुजीवनतन्परः ॥ १६१ ॥  
 सेतुकुन्चिकरूपधरः शर्वरीसन्तुनः प्रभुः । योगिष्येयः शिवध्वजः शास्त्रा गवणदर्पहा ॥ १६२ ॥  
 श्राव्यः शरण्यो भूतानां सर्वश्रतार्थाष्टदयकः । अनन्तः श्रीपती रामो गुणभूभिर्गुणो महान् १००० ॥  
 एवमादीनि नामानि क्षमयान्यपराणि च । एकैकं नाम रामस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १६४ ॥  
 सहस्रनामकन्दं सर्वैश्वर्यप्रदायकम् । सर्वसिद्धिकरं पूज्यं भुक्तिभुक्तिफलप्रदम् ॥ १६५ ॥

काल्पकल्पवर्त्तक ॥ १४६ ॥ नारायण, परं ज्योति परमात्मा सनातन, विश्वकृत्, विश्वभोक्ता, विश्वगोप्ता, शाश्वत ॥ १४७ ॥ विश्वेश्वर विश्वमूर्ति विश्वात्मा, विश्वभावन सर्वभूतमहत्, शाश्वत सर्वभूतानुत्पन्न ॥ १४८ ॥ सर्वेश्वर सर्वज्ञ, सर्वदा आभितव्यमल, सर्वग सर्वभूतेश सर्वभूताश्रयस्थित ॥ १४९ ॥ अभ्यन्तरस्थ, अभ्यन्तरस्थ, नारायण, पर, अनादिनिधन, स्रष्टा प्रजापति हरि ॥ १५० ॥ नरसिंह, हृषीकेश, सर्वात्मा, सर्वदावर्ण, बली, स्थान तथा जगत् विश्वरे प्रभु, नेता, सनातन १०० ॥ १५१ ॥ कर्ता, धाता, विधाता, सर्वके पति ईश्वर, महत्समूर्धा, विश्वात्मा विष्णु, विश्वरूप, अरव्य ॥ १५२ ॥ पुराणपुरुष श्रेष्ठ, सहस्राक्ष, सहस्रपान्, तन्त्र, नित्य, नारायण वामुदव, सनातन ॥ १५३ ॥ परमान्धा परब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रह, परं ज्योति, परं धाम, पराकाश, परान्तर ॥ १५४ ॥ अरूपः कृष्ण शाश्वत, शिव, ईश्वर, नित्य सर्वगत, स्वामी, रुद्र साक्षी, प्रजापति ॥ १५५ ॥ दिव्यगर्भ, सविता सङ्कृत्, विष्णु अङ्गावच्छेद, भगवान्, श्रीभूर्जीवापति, प्रभु ॥ १५६ ॥ सर्वलोकेश्वर श्रीमान् सर्वज्ञ, सर्वताम्र, स्वामी, सुर्जाल सर्वग, सर्वशक्तिमान्, प्रभु ॥ १५७ ॥ संपूर्णकाम नैमगिकसुहृन्मुखः, कुर्याद्युषजनवि सर्वशक्तिमान् ॥ १५८ ॥ श्रीमान् नारायण, स्वामी, सर्व भूतार्थके प्रभु, ईश्वर मन्त्र्य कूर्म वराह, नृपति, वामन ॥ १५९ ॥ राम, कृष्ण, बौद्ध, कल्की, परान्तर अयोधेश, नृपश्रेष्ठ वल्लभे पति, परन्तप ॥ १६० ॥ लवके पिता, सेतुकुन्चिकरूपधर, शर्वरीसन्तुन, कमन्दवन, कमन्दवन, सीताकाण्ठ सौम्यरूप, शिशुजीवनतन्पर ॥ १६१ ॥ शर्वरीसन्तुन, प्रभु योगिष्येय, शिवध्वज, शास्त्रा, रावणदर्पहा ॥ १६२ ॥ श्राव्य शरण्य, आभितार्थके अभ्यन्तरस्थ अनन्त श्रीपति राम गुणभूत निर्गुण महान् १००० ॥ १६३ ॥ यहाँ रामसहस्रनाम पूर्ण हुआ । इसी तरह और पा सन्तान्त्रे बहुतसे नाम हैं, जिनकी गणना ही नहीं की जा सकती । रामका एक-एक नाम सब प्रकारके पापोंको हरने तथा सहस्रनामका फल देनेवाला है । यह रामनाम सब प्रकारकी समृद्धियों एवं

मन्त्रात्मकमिदं सर्वं व्याख्यातुं सर्वमंगलम् । उक्तानि तव पुत्रेण विघ्नराजेन धीमता ॥१६६॥  
 सनत्कुमाराय पुरा तान्युक्तानि मया तव । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स तु ब्रह्मपदं लभेत् ॥१६७॥  
 तावदेव बलं तेषां महापतकदंनिदाम् । यावन्न श्रूयते रामनामर्पचाननध्वनिः ॥१६८॥  
 मन्त्राग्नेश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । शरणागतशानी च मित्रविद्रवामघातकः ॥१६९॥  
 मातृहा पितृहा चैव भ्रूणहा वीरहा तथा , कोटिकोटिमहस्त्राणि क्षुपगपानि यान्यपि १७०॥  
 संवत्सरं कमाञ्जलपद्मा प्रत्यहं राममग्निधीं निष्कण्टकसुखं भुक्त्वा ततो मोक्षमवाप्नुयात् १७१॥

सुत उवाच

एवं शौनक पार्वत्यै रामनाममहस्रकम् यथा शिवेन कथितं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७२॥

श्रीरामदास उवाच

यथा शिष्य त्वया पृष्टं रामनाममहस्रकम् तन्मूलोक्तं मयि स्तरं मया तेऽद्य निवेदितम् । १७३॥  
 अनेन रामं मदसि नारदः स्तुतवान्मुनिः । रामनाममहस्रं भुक्तिमुक्तिप्रदेन च ॥१७४॥

श्रीरामनाम्नां परमं महस्रकं पापापहं सौख्यविवृद्धिकारकम्  
 मवापहं भक्तजनैरुपलब्धं स्त्रीपुत्रपौत्रप्रदमृद्धिदायकम् ॥१७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वात्स्याकीये राज्यकाण्डं

पूर्वाच्चै रामसहस्रनामकथनं नाम प्रथमं सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( कल्पवृक्ष और पारिजातके पृथ्वीपर आनेका कारण )

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वया रामनाममहस्रं राघवस्य च यवानं कल्पवृक्षेर्मुले कथितं स्वर्णपीठके ॥ १ ॥

सिद्धिप्राप्त करनेवाला और भक्ति-मुक्तिका दाता है । हे पार्वति ! मैंने अभी जो सहस्रनाम तुम्हें बतलाया है, यह मन्त्रात्मक और सर्वमंगलकारक है । इसे तुम्हारे पुत्र पणेशजाने स्वयं पद्मकुमारको बतलाया था उसे मैंने आज तुमसे कहा है जो कोई इस सहस्रनामको पढ़ता और सुनता है, उसे ब्रह्मपद प्राप्त होता है ॥ १६६-१६७ ॥ महापतकहर्षी मतवाले हाथियोंका बल तभी तक रहता है, जब तक रामनामरूपी पंचानन ( सिंह ) की गर्जना नहीं सुनायी देती । १६८ ॥ जो मनुष्य ब्रह्महत्या, मद्य गुरुको शब्दापर शयन करनेवाला तथा चोर हो । जो शरणागतको मारनेवाला, मित्रके साथ विश्वासघात करनेवाला, माता पिता, भ्रूण ( गर्भस्थ संतान ) तथा वीर मनुष्यकी हत्या करनेवाला हो तथा जिसने समान्य करोड़ा पाप किये हों, वह भी यदि श्रीरामके पास बैठकर एक संवत्सर पर्यन्त प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करे तो संसारभ्रम निष्कण्टक सुख भोगकर अन्तमे मोक्ष पाता है । १६९ ॥ १७० ॥ सुतजी बोले हे शौनक ! शिवजीने पार्वतीको जिस प्रकार रामका सहस्रनाम सुनाया था वही मैंने आज तुम्हें बताया है । १७१ ॥ श्रीरामदासने कहा - हे शिष्य ! जैसे तुमने हमसे रामका सहस्रनाम पूछा वैसे मैंने तुम्हें बताया । उसी सहस्रनामसे नारदने सभासे रामजीकी स्तुति की थी । क्योंकि यह स्तोत्र भक्ति-मुक्ति स्व कुछ देनेवाला है । १७२-१७४ ॥ यह रामका सहस्रनाम पापका नाशक, सौख्यवर्द्धक, सांसारिक पापका नाशक भक्तजनोंका पालक और स्त्री-पुत्र-पौत्र तथा सम्पत्तिका देनेवाला है । १७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने रामका सहस्रनाम बताते समय कहा था कि कल्पवृक्षके नीचे

सदेहस्तेन मे ज्ञानः कन्यशुभः कथं भुवि । मयोध्यायां रामगेहे स्वर्गलोकान्समगताः ॥ २ ॥

मम मे मंशयं छिपि कृपां कृत्वा ममोपरि ।

सम्पक् पृष्टं विष्णुदाम मावधानमनाः शृणु ॥ ३ ॥

एकदा राघवं दृष्टुं दुर्वासो मुनिरभ्यगात् । शिष्यः पटिमहस्रैश्च वेष्टितोऽचिनयन्पथि ॥ ४ ॥

विष्णुर्मेनुजरूपेण रामो जातोऽत्र वंशपटम् । तथापि लोकान् रामस्य दर्शयिष्यामि पीरुपम् ॥ ५ ॥

एवं निश्चित्य साकेतं मुनिः शिष्यं विवेश ह । चित्तस्य सोऽहं कक्षांस्तः सीतागेहं पथी मुनिः ॥ ६ ॥

सीतागेहे महद्दरसन्निधौ मुनिपथमम् । दुर्वासस शिष्ययुक्तं दृष्ट्वा रं श्रेयसाणयः ॥ ७ ॥

श्रीघं निवेदयामासुर्दास्या रामं रहः स्थितम् । रामोऽपि श्रुत्वा मग्रासं मुने प्रपुञ्जगाथ सः ॥ ८ ॥

नन्वा तानानयामास सद्यः स्नातनमर्पयत् । एतस्मिन्नन्तरे रामं निष्ठुन्म मुनिमनमः ॥ ९ ॥

अत्रवीन्मधुरं वाक्यं शिष्यः सर्वत्र बहितः । अद्य सर्वमहसाणां मुपशमममापनम् ॥ १० ॥

अतो भोजनमिच्छामि मपिधेन्वनलैर्विना मिदमन्नं मुहूर्तेन मशिष्याय ममर्पय ॥ ११ ॥

मद्य मनोऽभिनयित नानापक्वान्तमयुतम् । तथा मां रूचनार्थं हि शमाः पुष्पाणि म नयः ॥ १२ ॥

अदृष्टान्यानयश्चाथ गार्हपत्यं चैवप्रक्षमि । नोच्येन्नहं ममार्थोऽस्मीत्युक्त्वा मां न्यं विमर्जय ॥ १३ ॥

तन्मुनेर्वचने श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दन । सर्वमगाकृत चेति विनयेनात्रर्चन्मुनिम् ॥ १४ ॥

तद्गमवचने श्रुत्वा तुष्टस्तं मुनिरग्रवीत् । स्नात्वा मग्नां शीघ्रं न्याम गच्छामि त्वर्गं कुरु ॥ १५ ॥

मदुक्तं मफलं कर्तुं सिद्धं यर्थं च जानकी । तथेत्युक्त्वा भुवि रामः स्नानार्थं च स्वयर्जयत् ॥ १६ ॥

तदा ते लक्ष्मणाद्यद्वयं चैव शीघ्रं जानकीं तथा । कुशं च बालकाः सर्वे तेऽभूवन् भयविह्वलाः ॥ १७ ॥

स्वर्णनिर्मितं चोकोपरं बँडे हुए भगवानका कपाल करे ॥ १ ॥ सो मुनिकर भुजे यह संदेह ही रहा है कि कल्प-  
कृत स्वर्गलोकसे रामचन्द्रजीक भवसम बँसे आया । मुनपर कृपा करके आप इस संशयका निवारण  
कीजिये । श्रीरामदासजीने कहा — हे निष्ठापुत्र, तुमने बहुत अच्छा बात पूछा है । सावधान होकर मुनो  
॥ २ ॥ ३ ॥ एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करनेके लिये सड़ हजार शिष्योस परिवेष्टित दुर्वासो मुनि  
अयोध्याको जा रहे थे । रामने ज न-ज्ञान दुर्वास ने स च कि स्वर्ग विष्णुभगवान् मनुष्यका रूप धारण करके  
मनारम आये है यह मैं जानता हूँ । फिर भी आज मगरक साधारण मनुष्योका ये उनका गौरव दित-  
लाऊंगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ एक निम्नव काके स अन्न शिष्योके स य अयोध्या नगर म प्रविष्ट हुए और सबको साथ  
लिये हुए बाठ चौक लाँचकर सीताक भवनमें जा पहुँच ॥ ६ ॥ नागरिक विष्णाल द्वारपर जिधों समेत  
आये हुए दुर्वास को दसकर लीदागेते गुराल रामचन्द्रजीको सबक दी । यह समाचार सुनते ही भगवान्  
दुर्वासो मुनिक पास आ पहुँच । उन्ने प्रणाम किया और सबको बड़े आदर समेत भवनके भीतर ले गये । वहाँ  
बैठनेके लिये उन्हें सुन्दर स सम दिया । अ सम्पर बँडे हुए दुर्वासो बड़े मधुर वाणीम रामचन्द्रजीसे कहा  
महाराज ! आज एक हजार वर्षका मेरा उपवासवन पूरा हुआ है । इस कारण मेरे शिष्योस साथ मुने भोजन  
चाहिए । इसके लिये आपको केवल एक मुहूर्तका समय मिलेगा और वह भोजन मर्ण, कामधेनु नरा अन्निको सहा-  
यतासे न तैयार किया जाय । बस, एक मुहूर्तमें मस मस इच्छाक अदृक्क भोजन मिले । जिसमें विविध प्रकार-  
के पक्कवान सन्निमित्त रह । यदि मस भवता मर्हन्त्यत्र बने रहना चाहत होओ तो शिष्योको पूजाके निमित्त  
मुने ऐसे फूल मँगवा दो, जिन्हें भवगत विभोने न देखा हो । यदि ऐसा न कर सकत हो तो माफ साक यह दो  
कि मैं ऐसा कालमें असमर्थ हूँ । यह कहकर मुने विदा कर दी । -- ११ ॥ मुनिको छातीको मुनकर ममकाणे हुए  
राम नमत पूर्वक बोले—“मुने सब कुछ आगेकार है” ॥ १४ ॥ रामकी बातसे प्रमथ होकर दुर्वासने कहा कि  
मैं सीता सरसूय स्नान करके जाता हूँ ॥ १५ ॥ हुनने कयलागुमार सब चीजोकी सेवाओंके लिए अपने आताको  
तथा सीताकी भी शं धत के लिए कह दना । ‘अच्छा’ कहकर रामचन्द्रजीने दुर्वासोको स्नान करनेके लिये

ऊचुः पस्पर सर्वे रामन्यस्तेक्षणाः शनैः । किं याचितं हि मुनिना किं समोऽग्रे कश्चिन्नि ॥१८॥  
 विना गोवह्निमग्निभिः कथमन्नं प्रदास्यति । ततो गते मुनौ रामः पत्रं सौमित्रिणा तदा ॥१९॥  
 विहृत्य बद्ध्वा बाणे तन्ममोव ग्ररमुत्तमम् । तं शरो व युवगेन शीघ्रं गन्वाऽमरावतीम् ॥२०॥  
 सुधर्मायां सुर्वैकस्तेद्रव्याग्रे यवान् ह । तं शरं मयवा दृष्ट्वा चक्रिषो भयविह्वलः ॥२१॥  
 कम्पायमिति चोक्त्वा तद्रामनम व्यलोकयन् । सुवर्णमन्त्रं बाणपुच्छस्थं पापदाहकम् ॥२२॥  
 उतो गत्वा राघवस्य शरोऽयमिति देवात् । तस्मिन्बन्धं विमुक्त्यार्थं पत्रं तन्वा पपाठ च ॥२३॥  
 एतस्मिन्नन्तरे बाणः पुन श्रीगधर्वं ययौ । विदेशं गमन्तूनां च पूर्वम्यस्थतोऽभवत् ॥२४॥  
 मयवाऽपि सुधर्मायां श्रावयाम स निर्जगन् । राममुद्राकितं पत्रं भयदिग्मयसंयुतः ॥२५॥  
 मयवस्त्वं पुनं तिस्र स्तर्गेदं स्तौ मदा श्वरे सन्निभो गम्यन्वाद्य याचितोऽस्य धुना त्वहम् ॥२६॥  
 विना गोवह्निमग्निभिश्चान्नं शिष्यैर्वृत्तेन च । वरैः षष्टिगहमेव तथाऽन्यैर्मुनिमयैः ॥२७॥  
 सहस्राब्ददुधितैर क्रोधिनाऽतिनयस्विना । दुर्वामिमां मुहूर्तान् मयाऽप्यंगीकुर्वं हि तत् ॥२८॥  
 याधिगान्यपि पुष्पाणि तेनादृष्टानि मानवैः । मयागोहृत्य सकलं स्नानार्थं ते विमज्जिताः ॥२९॥  
 अतः शीघ्रं कल्पवृक्षपारिजाती समुद्रजौ । प्रपश्यन् क्षणमां त्वमन्तिभवेन मादयन् ॥३०॥  
 मा रावणाश्चन्द्रं प्रतीक्षां त्वामिषोः कुरु । एवं संशय्य न्यूनं नृगानिद्राः सुरैः सह ॥३१॥  
 समन्याय कल्पवृक्षपारिजाती विशुद्धमः । निभनेन मुष्टिकेन श्रीगामतर्गं ययौ ॥३२॥  
 इन्द्रमागतमाशुष्यं तं प्रत्युद्गम्य लक्ष्मणः । प्रयोध्यायां तितथेन्द्र ममाभ्य रघुनन्दनम् ॥३३॥  
 कल्पवृक्षपारिजाती मयवा रघुनन्दनम् । गम्यन् तन्वा श्रामं स उपाविश दामते ॥३४॥  
 एतस्मिन्नन्तरे शिष्यं दुर्वामा मुनिमव्रवीत् । गन्वा त्वं पश्य राम तु किं केरोन्यधुना गृहे ॥३५॥

भेद दिया ॥ १६ ॥ इधर लक्ष्मणार्थिक आशा, जानकी और राम आदि वाञ्छा मयके सब भयत विह्वल हो गये और वे रामका और विनिग्य दृष्टि देखने हुए अपने मतों कहने लगे कि मुनिने वही अ मुनि वस्तुएं मानी हैं । देखो, राम सब क्या कह लगे । विना गो, पणि तथा अग्निन किसे प्रकार भोजन तैयार करके देत हैं ॥१७-१८॥ मुनिके जब जानेपर राम ताड़ने से लक्ष्मणके पास एक लिखत था । इसे अपने बाणमें बाँध कर क्षुण्णपर चढ़ाया और छोड़ दिया । बहुत बाण चढ़ते रहाने परसे राम जानकीपुर में जाकर मन्मथ नामकी देवसभामें इन्द्रके सामने गिरा । उस बाणकी इन्द्रने दया ता स भेंट होकर कहा ॥१९-२०॥ 'यह बाण किसका है ?' यह कहकर समस्त लिखे गमक नामकी देवा और पदार्थ लेकर पड़ । पक्ष से जान आला बाण रहसि फिर रामर्जके सुपौरन लौट आया ॥ २१-२४ ॥ मय और वि-मां युक्त इन्द्रने बहुत पत्र समझे बैठे हुए देवताओंका गुलाब ॥ २५ ॥ इस समय लिखा था - 'हैं इन्द्र तुम स्वर्गमें सुखी रहो । मैं साथ तुम्हारा स्मरण किया करता हूँ । हाँ, इस समय तुम्हें नमन जाना दे रहा हूँ । आज एक हजार वर्षोंके भूसे एवं उग्र क्रोधी दुर्वासा मुनि अपने साठ हजार अच्छे शिष्योंके साथ मेरे यहाँ आये हुए हैं । वे ऐसा भोजन चाहते हैं कि जो भी मणि अथवा अग्निके द्वारा न बना है । साथ ही उन्होंने शिबपूजनके लिए ऐसे पूज माँगे हैं, जिन्हें अबतक अनुष्ठान न देखा हो । देखे उनकी गाँ मंत्रकार बन गयी है । इस समय मैं उन्हें स्नान करनेका भेद दिया हूँ ॥ २६-२७ ॥ इनसे तुम सहपत्र कल्पवृक्ष और पारिजात, जो कि हरसामरमें निकले हैं, क्षणभरमें आदरपूर्वक मेरे पास भेंट दो ॥ ३० ॥ देखो, कहीं रावणका विनाश करनेवाले मेरा बाणकी धृष्टि न करने लगना ।' इस प्रकार वह पत्र देवताओं की सुनाकर इन्द्रदेव पुरात सबके साथ ममण करके कल्पवृक्ष और पारिजात ले तथा देवताओं समस्त विमानपर चढ़कर अयोध्यापुरीमें जा पहुँचें ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणने जब यह जान कि देवराज इन्द्र सा गये हैं तो उनके पास गये और आदरपूर्वक सजाव्याने रामके पास ले आये ॥ ३३ ॥ इन्द्रने पारिजात तथा कल्पवृक्ष रामकी आर्पण करके प्रणाम किया । फिर एक

अस्माकं कल्पितं किञ्चिदन्नमस्त्यथा न वा :

चितायुक्तोऽस्ति वा तूष्णीं संस्थितोऽन्यथ किं कृतम् ॥३६॥

बहिः सपादितं सर्वं मया यद्यन्नं पातितम् । रहः स्थितः अनैर्दृष्टा शीघ्रं त्वं याहि मां पुनः ॥३७॥  
 यथेन्द्रकृत्वा मुनिं शिष्यः स पर्यो रत्नमद्गृहम् । तत्र दृष्ट्वा कल्पवृक्षपारिजातौ सन्निर्वृतौ ॥३८॥  
 सन्निर्वृतेश्च रामं च हृदितं सीतयाऽन्नितम् । ततश्चूर्णं ययौ शिष्यः पराङ्मुख्यं मुनिं प्रति ॥३९॥  
 कथयामास सकलं यथाकृतं निरीक्षितम् । तच्छृत्वा शिष्यवचनं दुर्वासा विस्मयान्वितः ॥४०॥  
 ययौ शिष्यः परिवृतो विरेश्च नृपनेर्गृहम् । न मुनिं रायवो दृष्ट्वा प्रत्युद्गम्य पुनः पुरैः ॥४१॥  
 नमस्कृत्य ह्युर्वेगाददायामनमुत्तमम् । ततो मुनेः पूजनं स शिष्यस्य (घृतमः) ॥४२॥  
 चकत् सीतया साद्व लक्ष्मणारिभिरन्वितः । पाणिनामप्यनुनि नैधितान्यत्र मानवैः ॥४३॥  
 ददौ शंभोः पूजनार्थं रामो दुर्वाससे तदा । तानि दृष्ट्वा मुनिस्तूष्णीं तैश्चकारेश्वरार्चनम् ॥४४॥  
 ततः सर्वान्मुरारिष्वप्यपरिवेषणकमेणि । बोदयामास भोगवो जानकीं लक्ष्मणेन सह ॥४५॥  
 ततः सा जानकी वैद्यादिष्व्यालंकारमण्डिता । कल्पवृक्षपारिजातौ सम्पूज्य नृपूरस्वता ॥४६॥  
 पाशाणि कल्पवृक्षश्च दद्यापयामास कोटिशः । सीतां तु प्रार्थयामास कल्पवृक्षं नगोत्तमम् ॥४७॥  
 क्षीरमागधभूतं देवानां चितितप्रदं । दुर्वाससे कल्पवृक्षं सशिष्याणाञ्च तोषय ॥४८॥  
 तन्मीमांस्यं भुत्वा हेमपाशाणि कोटिशः । विशर्माः पूरयामास क्षणारकल्पवृक्षस्तदा ॥४९॥  
 तैरन्नैर्द्वेषपात्रेषु जानकीं परिवेषणम् । क्षणञ्चकार मत्तुष्टः क्षुमिलचंचिकदिभिः ॥५०॥  
 वतस्तुष्टो मुनिर्देवः शिष्यैश्चानपादगन् । चकार रघुक्षीरेण प्रापितः स मुहुर्दृष्टुः ॥५१॥  
 ततः कुन्दः शंजनो हि करशुद्धिं विशास्य सः । तांभूतं दक्षिणां चापि जयाद रघुनाथकात् ॥५२॥

आसनपर जा बैठे ॥ ३८ ॥ उधर सायूक पिनासे दुर्वासाने अपना एक शिष्य भेजा और उससे कहा-  
 “जब जाकर देखो कि राम इस समय क्या कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ मैंने जो जो बताया था, उसमें कुछ भ्रम उभर  
 है या नहीं । जयवा अभी तक किताब में ही नुस्खाब बंदे हैं । ३६ ॥ यदि भर जामानुषार काम कर  
 रहे हैं तो अवतक क्या क्या किया है । मैं जैसा कहा था, वे सब चीजें उन्होंने इकट्ठी कर ली या नहीं ।  
 नहीं छिपकर गुपचुप वह सब देखो और जीय मेरे पास नोट आओ । ३७ ॥ “अच्छा” कहकर शिष्य राम-  
 चन्द्रजीके धनमय आभूषण । बड़ी कल्पवृक्ष, परिजत, कुन्द, देवताओंकी मण्डली एवं प्रसन्न राय जया सीताको  
 देखकर फिर दुर्वासा मुनिक पास लोट गया और जंग देवा था, सब समाचार कह सुनाया । शिष्यको वाप  
 सुनकर दुर्वासाको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ४८-४० ॥ जानकीके बाद शिष्योको साथ लेकर वे रामचन्द्रजीके गुन्दर  
 मन्त्रमें पहुँचे । मुनि दुर्वासका देख देवताओंके साथ उभर रामचन्द्रजीने बड़े आदरके साथ समस्त शिष्यों  
 समेत मुनिको प्रणाम किया और बैठनेके लिये उनमें आसन देकर सीता तथा लक्ष्मणारिके साथ उनकी पूजा  
 की । मत्तुरान पारिजातके फूल नहीं देव दे ॥ ४१-४३ ॥ ही उन कूर्छोंको शिष्यपूजनके विभिन्न पुनिके हानक  
 रक्ता । दुर्वासने उन्हें एक बार विभिन्न त्रेत्रंमि देवा और नुचाव निक तथा सब देवताओंका पूजन किया  
 ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और जानकीका भावन परमेश्वरकी आज्ञा दी ॥ ४५ ॥ सब दिव्या-  
 लक्ष्मणोंको धारण किये सीताके कल्पवृक्ष और पारिजातका पूजन करके कराडो दान लाकर उनके गेब रख दिया  
 और इस प्रसन्न प्रार्थना करने लगी- ॥ ४६-४७ ॥ “हे सारनाथस्य जायमान तथा देवताओंकी अभिजाया पूर्ण  
 करनेवाले कल्पवृक्ष ! आज शिष्यो समस्त दुर्वासको साथ सम्पुष्ट कर दजिा” ॥ ४८ ॥ सीताको धारणा सुनकर  
 लक्ष्मणने कल्पवृक्षने करोडों पाशोंको विभिन्न प्रकारका आननमाधियोंसे भर दिया । उन लक्ष्मणों उमिठादि-  
 के साथ सीताके मुखके पाशों पराडा और महर्षि दुर्वास ने प्रसन्न होकर अपने समस्त शिष्योंके साथ  
 रायचन्द्रजीके द्वारा प्रवित हुनेपर भोजन करना आरम्भ किया ॥ ४९-५१ ॥ भोजन करनेके बाद उन्होंने

ततः सुगणां पुत्रो वेदशर्कः सविस्तरम् । दुर्वासा राघवं स्तुत्वा । तमाहानदनिर्घरा ॥५३॥  
 राम गर्जोदपत्रात् त्वं साऽऽजगद्दीनरः । अत्र रावणधनार्थमवर्तणोऽस्ति वेङ्कयहम् ॥५४॥  
 जनांस्तत्त्ववीर्यं कृतुं मयैतन्नाशितं तव । विना गोवह्निमगिमिर्दिष्टान्ने रघुनन्दन ॥५५॥  
 प्रयुजान्वप्यरष्टानि मानसैर्जगत्तलैः । किं राम दुर्घटं तव यस्य भूपङ्गमावतः ॥५६॥  
 कयो रक्षादिदानां न जायते समजोऽपि यः । मन्दरं मज्जमानं तु दृष्ट्वा त्वं क्षीरसागरे । ५७ ।  
 कूर्परूपेण जातोऽपि धनुं तु मन्दराचलम् । विष्कामितानि रत्नानि तदा देवैश्चतुर्दश ॥५८॥  
 तत्र स्यादश्वमाश्वेभ्य मरुं जानाम्यहं प्रथो । सक्तोऽसौ सोमः कामधेनुः कौस्तुभश्च सुधा विषम् । ५९ ॥  
 ऐरावतश्चाप्सस्तप्तः कल्पवृक्षो भिषग्वरः । उर्वःश्रवाः पारिजातो मुरा ज्येष्ठति रावणः ॥६०॥  
 चतुर्दश सुरत्नानि विभक्तानि पुरा त्वया । देवेभ्यो वानि तान्येते मोक्ष्यन्ति कृपया तव ॥६१॥  
 त्वदाकाशालिनः रावें कङ्कगयाश्च निर्वराः । पर्वणा औशनोपायास्त्वया सर्वे पृथक् पृथक् ॥६२॥  
 कल्पिता येन रामेण यत्र किं दुर्घटं तव । समाभिलषितं भोज्यं दातुं त्वत्कौतुकं मया ॥६३॥  
 अद्यावलोकितं राम जनानपि पदादिनम् । त्वं कथा सवसेकानो जनपथापि पालकम् ॥६४॥  
 अस्माकं मतिदत्ता न्व मे क्षमन्वादाधितम् । एवं वचनाविषं स्तुत्वा त प्रणम्य पुनः पुनः ॥६५॥  
 रामकामज्य दुर्वासा ययोऽग्निर्धैः स्वमाश्रमम् । अथ तान्निर्जान्प्र ह गमः कनकलोचनः ॥६६॥  
 कल्पवृक्षमारिजातीं गृह्णाम्यसम्पत्तिं दिवम् । तद्रामाचनं श्रुत्वा वाक्पतिः प्राह राघवम् ॥६७॥  
 यावत्कालं तिष्ठामि त्वं भूम्या तावन्नशात्तमः । अवाध्याया विष्टुस्तौ कल्पवृक्षपुत्रद्वयौ ॥६८॥  
 त्वां च वेङ्कण्डमाशाने दिव तौ यास्यतो हवः । तवेदि तन्मुखुराः शतितश्च पथः प्रभुः ॥६९॥

हाय पाया और रामस हाथभूत होकर ला ॥ ५२ ॥ फिर उद देवताओं के सामने हो केरवाचनों द्वारा  
 निस्तारकपुत्र रावण-जनों की स्तुति की और अ पदम पदपद हाथ कट्टन लगे ॥ ५३ ॥ ह राम हे कमलदल  
 सरीस नमस्कार भगवन् ! मे जानता हूं कि तुम कालान् जगदीश्वर ह और रावणका विनाश करनेके लिए  
 इस बरातकरकर माय हो ॥ ५४ ॥ तबरा जनाको तुम्हारा पीछे दिखलानेके लिए ही देते गो-वह्नि और  
 मणिसे न सिद्ध हुआ जल तथा कल्पवृक्ष कट्ट पृथ पृथनेक निमित्त मणि वः । ह राम ! तुम्हारे लिए यह  
 कुछ दुर्घट कार्य नही है तुम्हारा अभूषण सब इत्यादिक स्वताम्राका भी विनाश एक बटुव ईता है । जिस समय  
 मन्दराचलका हीरागमन तुमने इवत दिख ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ जब कूर्परूप करकर उठ अपनी पीठपर  
 ठठा लिया था । उस समय प्रथमात्र तुम्हारी सहायतासे ही देवताओं की क्षीरसागरस ये नौह दल निकाले थे  
 ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तिनक राम ह-रक्षमा, बन्दम कामधनु कौस्तुभ, सुधा, विर, ऐरावत, अप्सरार्थ, कल्पवृक्ष,  
 चन्द्रवहरी, जन्नेधरा, पारिजात, मुरा और अमृत ॥ ५९ ॥ ६० ॥ उम चौहो रत्नोंको तुमने चौदह  
 देवताओंको बाँट दिया और तुम्हारा ही इपाए वे सब जलान्द्रवक उनका उपभोग कर रहे हैं ॥ ६१ ॥  
 शकरीदक समस्त पत्ता तुम्हारी ही आशका पालन के ले है । इस अवतुम स्थित सब प्राणिमाक जीवनका  
 प्रयास तुम्ही करते हो ॥ ६२ ॥ तब यदि तुमने हमारे इच्छानुसार आजन्म साधनिये जुटा दीं  
 तो इससे बाई आश्रयका बात नही है । यह तो मुझ इन साधारण भगवत् कल्पवृक्षों तुम्हारा कौतुक दिखाना  
 था, छा दिया दिया । ६३ ॥ ह राम ! तुम्हें समस्त साक्षात् रक्षक, स्रष्टा तथा संसारक ज्ञातक हो ॥ ६४ ॥  
 तुम्हीं हमारे मतिदाता हो । पुरुष जो कुछ घटि हुई हो सा ज्ञात कर दो । इस तरह माना प्रकारके वाक्यों द्वारा  
 स्तुति करके दुर्वासान बारम्बार प्रणाम किया और रामकण्ठजकी मजा लेकर सब मिथ्योंको क्षाय लिये हुए  
 अपने आश्रयको चल दिए । इनक अनन्तर रावण-जनों अब स्वताम्रासे पदा—कल्पवृक्ष और पारिजातको  
 लेकर जब आप लोग भा मदन लाकका जाते जायें । इन प्रकार रामकी बात सुनकर देवगुरु पृथस्वति कहने  
 लगे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ "जबतक आप भूमण्डलमें रहेंगे, तबतक कल्पवृक्ष तथा पारिजात ये दोनों भी इस  
 कपोलाने ही रहेंगे ॥ ६७ ॥ जब आप अपने वेङ्कण्ड लककी भावे लगेंगे, तब वे भी आपके साथ अपने



पुष्पके स्थापयामास कल्पवृक्षसुरदुर्मौ । ततस्ते राघवं नरवा यशुरिन्द्रादिकाः सुराः ॥७०॥  
 स्वर्गलोकं सुसंतुष्टा राघवेणातिपूजिताः । एवं प्राप्ता कल्पवृक्षपारिजातौ सुवं दिवः ॥७१॥  
 तयोरेतत्कारणं ते प्रोक्तं पृष्टं यथा त्वया । तदारभ्य सुरतश्च पुष्पकम्भी विरेजतुः ॥७२॥  
 सार्केते सीतया रामस्ताम्यां सुसुमवाप सः । कल्पवृक्षतले दिव्यपर्यङ्गे सीतया सह ॥७३॥  
 नानाभोगाव्याघ्रचन्द्रः स बुभोज चिरं सुखम् । अतः पूर्वं मया रामाभ्यां कल्पतरोः स्थले ॥७४॥  
 सहस्रनामसंकेते प्रोक्तं शिष्य तवाग्रतः । तदारभ्य पारिजातवृक्षांशः शतशो भुवि ॥७५॥  
 पारिजातनगा जाता वर्तन्तेऽद्यापि तेऽत्र हि । नानेन सदृशं पुष्पं वर्तते रामतोषदम् ॥७६॥  
 कल्पवृक्षांशरूपाश्च शतव्यास्तत्र - मानवैः । अश्वत्थाः सेवनाद्यैश्च सर्ववाञ्छितदायकाः ॥७७॥  
 पुण्याधिक्येन सेवन्ते नोपेक्षते युगत्रये । पापाधिक्येनापि सेवां नरा वाञ्छन्ति नो कलौ ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरिततर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

चम्पिकास्वयंवरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

### तृतीयः सर्गः

( रामोपासक तथा कृष्णोपासकका परस्पर मधुर विवाद )

विष्णुदास उवाच

रामदास गुरो भूम्पां रामकृष्णौ परौ भुनौ । मया वसावतारेऽहं कथापात्रुमौ पुनः ॥ १ ॥  
 तयोरेपि च कः श्रेष्ठस्तन्वं वद ममाग्रतः । यं श्रुत्वा सर्वदा दस्य श्रोत्र्येऽहं चरितं शुभम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं विष्णुदास सावधानमनाः शृणु । रामावतारः श्रेष्ठोऽत्र विज्ञेयः सर्वदा नरैः ॥ ३ ॥  
 अस्मिन्मये पूर्ववृत्तां कथां शृणु मनोहराम् । दिवाभ्यां वादरूपेण कीर्तिता पुण्यदायिकाम् ॥ ४ ॥

वार्त्तम् । रामने सुरगुरु बृहस्पतिकी बात स्वीकार कर लो ॥ ६९ ॥ देवताओंने उन दोनोंको पुष्पक विमानमें  
 रखकर भगवान्की प्रणाम किया और राम हाथ पूजित होकर सब अपने अपने लोकको चल गये ॥ ७० ॥ इस  
 प्रकार कल्पवृक्ष और पारिजात स्वयंसे मृग्यलोकमें आय । उनके बानेका जो कारण था, वह तुम्हारे प्रश्नानुसार  
 देने कह सुनाया । तभीसे दोनों सुरतक पुष्पकमें विराजमान रह ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ अबोध्याम सीताके साथ  
 रामचन्द्रजी उन्हीं वृक्षाँके नीचे दिव्य पर्यङ्क ऊपर विहार करते हुए विविध प्रकारके सुलोकों भोगते थे  
 ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ इसलिये मैं रामराहस्यनामका कथन करत समय कल्पवृक्षके नीचे रामका ध्यान करनेकी  
 कहा था । तभीसे पारिजातके निकट अत्र पृथ्वीतलमें उत्पन्न हुए और वे आज भी इस परतलमें  
 विद्यमान हैं । इसके समान रामचन्द्रजीकी प्रसन्न करनेवाला कोई दूसरा कुल नहीं है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ कल्पवृक्षके  
 मंशसे पोषल वृक्षकी भी उत्पत्ति हुई है । उसकी कारावला करतेस सब प्रकारका कामना पूर्ण होती है ॥ ७७ ॥  
 मग्य युगोंमें पुण्य अधिक था । इस कारण लोग पोषकके वृक्षको आराधना करते थे । किन्तु कलियुगमें पापकी  
 अधिकता होनेके कारण लोग उसका पूजन नहीं करना चाहत ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरिततर्गते श्रीमदा-  
 नन्दरामायणे च० रामतेजफण्डेयविरचिते'ज्योत्स्ना'प्रवाहकाव्यमन्विते राज्यकांडे पूर्वार्द्धे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

विष्णुदासने कहा--हे गुरो ! भगवान्के बात अवतारोंमें राम-कृष्ण दो कलसार ओष्ठ माने जाते हैं ।  
 वह मैंने पहले सही बात सुना है ॥ १ ॥ अब तब हमको यह बतलाइए कि इन दोनों अवतारोंमें राम और कृष्णमें  
 कोन बड़ा है । जिसको आप ओष्ठ बतलावेंगे, मैं सर्वदा उसीका चरित्र सुना करूँगा ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा--  
 हे विष्णुदास ! तुमने ठीक प्रश्न किया है । सावधान मन हाँकर सुनो । इन दोनों अवतारोंमें मनुष्यको  
 सबको अवतार ही ओष्ठ समझना चाहिए ॥ ३ ॥ इसके लिए एक मर्तद्वर कथा आपसमें दो जाह्नवीके

अयोध्याविषये कविद्विजो रामाह्वयस्तभूत् । द्वाकायां तथा विप्रः कृष्णख्योऽभूत्परः सुखी ॥१॥  
 सकतुः संवनं चोर्ध्वं सर्वदा रामकृष्णयोः । तादेकदा माधवसौ प्रयागे मिलितौ द्विजौ ॥ ५ ॥  
 तौ स्नात्वा त्रिवेण्यां हि माधवं परिपूज्य च । कथां पौराणिकमुवाचः स्मृतोत्तरः स्थितौ ॥ ७ ॥  
 सुभ्रातुः कथास्तत्र प्रसंगादावस्य च । रामाख्यो रामभक्तः स भुत्वा राधेचमन्कथाम् ॥ ८ ॥  
 तद्वत्सं पूजयामास मुदा पौराणिक तदा । कृष्णख्यः क्रोधसंयुक्तस्तदा चवनमन्विवत् ॥ ९ ॥

किं क्लेशिनोऽयं रामस्य कथां श्रुत्वाऽतिहर्षितः ।

पूर्वितोऽपि ब्रूयाच्चासत्त्वं मृदोऽर्थाति वेषयहम् ॥१०॥

नान्यचरित्रं कस्यापि पापतं ध्रुविनोपदम् । यथा कृष्णस्य मे रम्यं नामकाङ्क्षापुरःसरम् ॥११॥

तत्कृष्णवचनं श्रुत्वा रामाख्यः प्राह सन्मनः ।

रामोपासक उवाच

रामः क्लेशो कथं प्रोक्तस्त्वया कृष्णः कथं सुखी ॥१२॥

कथं कृष्णस्य ते रम्यं चरित्रं द्रुविनोपहम् । कथं रामस्य मे रम्यं चरित्रं नेरितं त्वया ॥१३॥

यदाद्य विस्तरेणैव शृण्वन्वेदे समासदः ।

कृष्णोपासक उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राम सावधानमना, शृणु ॥१४॥

यदापि राधेवस्थाथ कृष्णस्य चरित्रं त्वहम् । क्लेशद तोषदं तर्था शृण्वन्वेदे समासदः ॥१५॥

तत्र रामस्य जन्मादौ जगः शपः पितुः पुरा । शपस्यादावपि पुनः तद्धेतो राधेन हि ॥१६॥

लंकां तद्विपत्तौ नातौ प्रारमे दुःखमदृशम् । मम कृष्णस्य जन्मादौ तद्विपत्तौ सौख्यदायकः ॥१७॥

विनाहमंगलैः कस्य पूजयामास सादरम् ।

विवादरूपमें बहल गयी थी । वह कथा परम पुण्यदायिनी है, उस सुनो । ८ एक समय अयोध्यामें राम नामका एक ब्राह्मण रहा करता था । उसी तरह द्वारकापुरीमें कृष्ण नामका विद्वान् विप्र रहता था ॥ १ ॥ वे दोनों सदा राम और कृष्णकी उपासना किया करते थे । एक समय मत्स्य में नये पक्षिण के लटपट उन दोनोंकी भेंट हुई ॥ ५ ॥ उन्होंने त्रिवेणीमें स्नान किया और देणामायनकी पूजा करके तिसा करके एक पौराणिकके पास गया सुननेकी इच्छासे जा बैठे ॥ ७ ॥ दोनों कथा सुन रहे थे । उनमें कही रामकी प्रशंसा आ गयी । उसे सुनकर वह राम कोषवाला ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और हर्षपूर्वक पौराणिककी भली भाँति पूजा की । इससे कृष्ण नामवाला ब्राह्मण मार प्रोषक होल हो गया और कहने लगा जगन्को कष्ट देनेवाले रामकी कथा सुननेसे तुम्हें क्या लाभ हुआ, जो तुम इसने प्रसन्न हो और तुमने व्यासकी ऐसी पूजा की । मेरी समझमें तो यही बात है कि तुम बड़ धूर्त हो ॥ ५-१० ॥ मुझसे और किसीका चर्चि इतना सुन्दर नहीं लगाया, जितना श्रीकृष्णका । क्योंकि उस चरित्रमें विविध प्रकारकी लीलाएँ भरी हुई हैं ॥ ११ ॥ कृष्ण नामक ब्राह्मणकी यह बात सुनकर रामोपासक मुसकाता हुआ कहने लगा कि तुमने रामचन्द्रकी कैसे दुखी बतलाया और कृष्णकी सुखी ॥ १२ ॥ तुमने कृष्णचरित्रको कैसे पापनाशक बतलाया और रामचन्द्रजीका नाश होना भी वसन्द नहीं किया । तुम इसे विस्तारपूर्वक कहो । जिससे ये समासद भी सुनें । कृष्णोपासक कहान्हे राम ! तुमने बहुत डोक प्रबल किया है । अब सावधान होकर सुनो ॥ १३ ॥ १४ ॥ मैं रामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र इन दोनोंका चरित्र सुनाता हूँ । उनमें रामचरित्र कंठा बलशब्द और कृष्णचरित्र कितना सुखकर है, सो सब समासद सुनसे जायें ॥ १५ ॥ तुम्हारे रामके जन्मके पहले ही उसके पिताका श्रावणके म्नाका श्राव मिल चुका था । उसके भी पहले उसके माता-पिताकी रावण अपनी लंकासे उड़ा ले गया था । इस प्रकार रामके जन्मके पहले उनके माता-पिताकी

रामोपासक उवाच

रे रे मृगु त्वं द्रुदे न स शणो वरोऽपितः । १८॥

यत्पथादादुपुषस्य नृस्य तनयस्यभृदः तथा मद्राममीन्या लो नीतारपि विसर्जितौ ॥१९॥  
 दद्यात्थेन तत्पितरौ जन्मादौ पौरुषं निवदम् । तव कृष्णस्य जन्मादौ पित्रोः कारागृहस्थितिः ॥२०॥  
 राजभोगनिषेधार्थं शणो यदकुलाय च । जन्मापि वदिशालायां वियोगश्च तयोरपि ॥२१॥  
 सहोदरवधभावि उद्धोर्मार्तुलेन हि । न बाहुश्च वैश्यश्च यस्य ताताभूमौ स्मृतौ ॥२२॥  
 मोरक्षकस्य तनयः प्रवासः शैशवंऽपि च ।

पतेन पोषितभावि कनीयान् बलमद्रतः एव नानाविध दुःखं तव कृष्णस्य नो मुखम् ॥२३॥

कृष्णोपासक उवाच

आत्मार्थं तव रामेण ताटिका स्त्री विदारिता । नार्थं विमोचितो बाणः पित्रोः खेदो वियोगनः ॥२४॥

रामोपासक उवाच

द्विजपत्नी निहता दृष्टा मम रामेण ताटिका । मुनिपुत्ररक्षणार्थं मुदा गताऽप्येतां शिशु ॥२५॥  
 तव कृष्णेन रक्षार्थमान्मनः एतना दना । तथाऽऽन्मार्थं प्राणिहिमा बहु तेन कृता वजे ॥२६॥  
 गोपैश्च सङ्गनिस्तस्य तथैव गोशरक्षणम् । गोवधः सर्पघातश्च सगवाजिवधस्तथा ॥२७॥  
 राक्षभवृषघातश्च चौर्यं घ्नन् वनेऽटनम् । कंचलावरणं शोणवर्जन्पोषणप्रपीडनम् ॥२८॥  
 तुतूहृष्या पीडनं निर्व्यं गोपालोच्छिष्टसेवनम् । आन्मार्थं याचितं चासं द्विजस्त्रीभ्यो वने वृद्धः ॥२९॥  
 इन्द्रध्वजपूजनं दिष्टुदाचारप्रलोचनम् । परस्त्रीगमनं ज्येष्ठनारीभिः क्रोडनं चिरम् ॥३०॥

कितना क्लेश हुआ । इसक विपरीत हमारे कृष्णके जन्मके पहले कंसने उनके माता-पिताको वैवाहिक तथा मङ्गलमयी साम्प्रदायिक पूजा की थी । रामोपासकने कहा—अरे द्रुद ! यह रामचन्द्रके पिताको कष्ट नहीं, बल्कि बरदान मिल गया । जिसके प्रधानस्वरूप निपुत्र महाराज दशरथके घरमें रामचन्द्रदि चारा भादयोका जन्म हुआ और हमारे रामचन्द्रज के डङ्गे ही रावण उनके माता-पिताको ले जाकर भी बयोधन लौटा गया था । १६-१९ ॥ जन्मके पहले ही अरे रामचन्द्रजीमें इतना पौरुष था । तुम्हारे कृष्णके जन्मके प्रथम ही उनका माता-पिता बारागारमें बन्द थे । दूसरे बदकृष्णको राजभोगनिषेधके निमित्त गृहे ही बाध प्राप्त हो चुका था । उनका जन्म भी हुआ तो जेलखानमें और वहाँ पोंड़ी ही दरमें माता-पितासे वियोग हो गया । कृष्णके कितने ही सगे भाई मामाके द्वारा पहले ही मार डाले गये । उनको जो हजिय माता-पिता मिले थी, वे न तो सत्रिय थे और न वैश्य ॥ २०-२२ ॥ तुम्हारे कृष्ण एक ग्वासेके लड़के बने । इस प्रकार वे गंशवाम्बामें ही प्रवास्य हो गये । औरत उनका रक्षा की और तुम्हारे कृष्ण बलरामसे छोटे थे । इसीलिए कृष्णको खेनक प्रहार का दुःख भिन्न, मात्र दुःख भी नहीं । २३ । कृष्णोपासक बोला—अपनी रक्षा करनेके लिए तुम्हारा रामन ताडका नामवाला एक स्त्रीका बध किया और रामके वियोगसे उनके माता-पिताको बहान् क्लेश हुआ । २४ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामन बाह्याण्योको हत्या करनेवाली स्त्री ताडकाको मारा था और शिशु ॥२५॥ यज्ञरक्षाके लिए उन्हें पिता दशरथने प्रसन्नतापूर्वक मुनिके साथ भेजा था । २६ ॥ किन्तु तुम्हारे कृष्णने कृष्ण पत्नीको मारा था । इसी प्रकार उन्होंने आन्मार्थके लिए वज्रमे और भी बहुत सी प्राणिहिंसार्थ की थी ॥२६॥ गोवधशालोका साथ था और वे गावोंकी ही रक्षा करते थे । उन्होंने गौ ( धेनुकस्तुर ) पत्नी ( वक्राकृत ) दाहि ( केसी ), राक्षस तथा वृष आदिना मारा, चोरी की, जुआ खेले और वनोंमें इधर-उधर घूमते रहे । तीस वर्षी तथा अश्वपते बचनेके लिए अपने ऊपर केवल एक कच्छक डाले रहते थे ॥ २९-३० ॥ भूख-थ्याहसे हुयी हाकर आशोका वृद्धन खाते थे । बचने लिए उन्होंने वनसे बाह्याण्योकी वियोगसे बार-बार बध किया । २९ ॥ इन्द्रध्वज-पूजन आदि वृद्धोंकी कुलपरम्परासे चलनवाली प्रथाका उन्होंने लोप किया । वे परस्त्रियोंके साथ वृद्धों

नमनस्वीदर्शनं वह्निप्राशनं दामवन्धनम् । उन्मूलनं च यमयोर्ध्वपुपितसैवनम् ॥३१॥  
 रोदनं नवनोतार्थं मुद्गमोत्रा प्रताडनम् । गोमोपिकासु चास्नेहः पूर्वस्थलविसर्जनम् ॥३२॥  
 कृता रजकहत्या च शुद्ध मद्रियवत् कृतम् । गजहत्या मल्लहत्या पुद्गं मातुलमर्दनम् ॥३३॥  
 नैष्ठुर्यमाश्रवणेषु राज्यप्राप्तिस्तथैव च । नृपाज्ञावर्जनं चापि क्रीडा दास्या कुरुपया ॥३४॥  
 पुद्गात्पराजयश्चापि रिषवे पृष्टदर्शनम् । गिरौ दग्धः परैर्ज्ञातः स्वायस्थलविमोचनम् ॥३५॥  
 अधितारनिवासश्च पलान्कीहण कृतम् । मौमासुरपरद्रव्यहरणं पाञ्चतुतः ॥३६॥  
 स्वीयगोत्रवधार्थं हि पांडुजायोपदेशितम् । घर्नैः स्तेषावनेपाश्च वृधार्थं सङ्गरः सुर्गैः ॥३७॥

कृष्णोपासक उवाच

किं त्वं जल्पसि मृण्वद्य तव रामस्य कामिनः । कस्य सा दुहिता मृदि कृतः स वर्णमङ्कुरः ॥३८॥  
 श्लिवचापस्य भंगेन शिवस्याव्यपराधितम् । आमदग्न्यमानमङ्कुरणं मुद्गलस्य च ॥३९॥  
 आज्ञां विना लक्ष्मणेन तद्वन्द्यस्रोदिताः शुभाः सदारण्यचरः स्वार्थं पशुहिंसापराधिनः ॥४०॥  
 वनाश्रमी वन्यजीवी मांसाहारी धनुर्धरः । व्याघ्रकर्मेतः शीतपर्जन्योष्णप्रपीडितः ॥४१॥  
 पादगार्मी चर्मवासा जटाशृङ्गलशान्धरी । रमधुधारी तरुच्छायश्रपी पात्रविभजितः ॥४२॥  
 राक्षसेन हता परनी तव रामस्य कानने । परन्त्यर्थं हि कृतः शोकस्तथा दास्या प्रपूजितः ॥४३॥

रामोवाच

राक्षेण भोचिता परनी कृता छायामयी पुरा । न सा दासी तु शवरी मुनिसेवनतत्परा ॥४४॥

धीर सपनेसे बड़ी स्त्रियाके साथ खेचते फिरते थे । वे नङ्गी नारियोंकी देखते थे । उन्होंने मिट्टी खाकी और फिटने ही बार दो लोगोंके जूठन तक खाये थे । रस्सीसे बाँधे गये तो समन्त-अर्जुन नामक दो वृक्षोंको उखाड़ डाला ॥ ३० ॥ ३१ ॥ पोटसे माखनक लिए रामे लगत थे और मल्ला यश दाके द्वारा बार बार पीटे भी गये । अन्तमें अपनेसे अतिशय प्रेम रखनेवाली गोपिकाओंक प्रति निडुराई करके उस पवित्र वृजधामको छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ मथुराम राजकी हत्या की और , खाने हाकर ) क्षत्रियोंके समान युद्ध किया । उन्होंने गलहत्या और मल्लहत्या करके मामाकी भी हत्या की ॥ ३३ ॥ अपनाईं साथ निडुराई करके उन्होंने राज वाया । फिर भी एक दूसरे राजाकी आज्ञामें बँधकर रहे । बादमें एक कुहप दासीके साथ जीवा की ॥ ३४ ॥ शुद्ध हुवा वो उसमें पराजित होकर शत्रुको पीठ दिखायी और पर्वतपर जाकर छिपे । शत्रुओंने अपनी समझसे उन्हें जला ही दिया था । फिर अपने स्थान मथुराकी छोड़कर समुद्रक किनारे जाकर रहने लगे । वहाँ भी बरबस बहुतेरी स्त्रियोंका हरण किया । भीमासुरके द्वयोका उन्होंने चुराया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अपने माइयो तथा पुद्गम्बियोंके भावनके लिए पाण्डवोंको उपदेश दिया । लोगोंक उन्हें स्वमन्त्रक मणिकी चोरी लगायी । एक वृक्षके लिए उन्होंने श्वेताओंके साथ संग्राम किया ॥ ३७ ॥ कृष्णोपासक कीला—क्या व्यर्थ बकवास करते हो, सुनो । मान मैं तुम्हारे कामी रामकी करनी तुम्हें सुनाता हूँ । बताओ, जिसको उन्होंने अपनी भाया बनायी थी वह वर्णसंकर कन्या थी या नहीं ? ॥ ३८ ॥ शिवजीका वनुष तोड़ करके शिवका अपराध किया । परशुरामका शान भङ्ग किया । मुद्गलकी आज्ञाके बिना ही लक्ष्मण द्वारा उन्होंने सतायें तोड़ मगवाई । जङ्गलमें हथर-उधर चूमते हुए पेट भरनेके लिए पशुहिंसा करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ बहुत दिनों तक वनमें आश्रम बनाकर रहे । वनके फल मूल तथा मांस खाने और वनुष धारण किये बहेलियाका काम करते रहे । सर्वदा बेघारे जोत-आउर तथा बेहूके सताये रहने से ॥ ४१ ॥ पैदल चलते, चमड़ा पहिनते, बड़े-बड़े नख तथा जटा-शृङ्गल धारण किये रहते थे । बड़ा-बड़ा दाढ़ी-मूँछ रखाये पैडोंकी छायामें रहकर समय बिताते थे । उनके पास एक पात्र थी त्यों रहता था कि जिसमें छा पी सकें ॥ ४२ ॥ वनमें उनकी स्त्रीको एक राक्षस चुरा ले गया । उसके लिए विविध प्रकारका विलास करते रहे और उनकी पूजा एक दासी शवरीने की ॥ ४३ ॥ रामोपासकने

जीवन्मुक्ता तत्कृपया मोक्षमाय दृष्टिव्रता । तत्र कुण्डलरत्न ताः पत्नीर्धौर्म्यंन्ययापि स्रजवः ॥४५॥  
त्रित्वाङ्गुलं बलादेव हनाः पूर्वं सहस्रशः । स्त्रीभिश्च स्त्रिया रजः कपकोतश्च नारदात् ॥४६॥  
सर्वतो कामपूर्वकं निष्ठे निष्ठाग्वर्जितः । दंभुर्मा भोषिका वृका मातृतुल्यारयोभिकाः ॥४७॥

कृष्णोपासनक उवाच

मधुना तत्र रामस्य पशुमीक्षया न निद्रितः । बंधुपराम्पिता वारा सुग्रीवस्य यथासुखम् ॥४८॥  
बानरैश्च कृता वैत्री स्पर्शितं दुन्दुमेः शवम् । निर्विकं हतो रालो साहाय्यं बानरैः कृतम् ॥४९॥  
बानरो यस्य वै यानं वृथा दाता विदारिताः । सागरो रोषिनो येन लब्ध्वा सा ज्वालिता वा ॥५०॥

रत्नोपासनक उवाच

हरिद्रेव सुदाम्ना वै कुष्मेन वैत्रिकी कृता । न ज्ञेया बानरास्तेऽपि सर्वे देवाश्चरुषिका ॥५१॥  
छापटयेन हतो येन जरासंधो निग्धकः । साहाय्यं सर्वदा यस्य कृतं गोपैर्व्रजे बने ॥५२॥  
गोपालस्य कृतं यानं कीदृशं सर्वदा बने । ज्वालिता येन सा काशी सुहृदुष्मी विरूपिता ॥५३॥  
शिवभक्तेन तमरः कृतो बाणेन सदरप । शिरेनापि कृतं पृष्ठं चैव न निद्रितो ब्रह्मः ॥५४॥  
रैः पीड्यो जितो यस्य येन शृण्वं पश्याम् । कृता विषमना चात्र पारिजतापेगादिभिः ॥५५॥

कृष्णोपासनक उवाच

तवापि ममपुत्रेण सुदृढदो रणे जितः । शिवभक्तदशास्तेन रामेण तमरः कृतः ॥५६॥  
द्विजहत्या कृता येन मुनिना निद्रितोऽपि यः । तथा मितं जितो यस्य दंभुर्जेन विभोषणः ॥५७॥  
परमेष्ठिन्या पत्नी पुनर्येनाभिता सुखम् । निद्रुपैश्च कृतं पत्न्या सांगा काधा न पूरिता ॥५८॥

कहा—हमारे रामने अपनी छायामयी पत्नीको राजसके हाथसे छुड़ाया था । जिसकी तुम दासी कह रहे हो, वह दासी नहीं, बल्कि मुनियोंकी सेवामें तत्पर बानरी थी ॥ ४४ ॥ रामचन्द्रजीकी कृपासे वह जीवन्मुक्त हो गयी और उसे मोक्ष मिल गया । किन्तु तुम्हारे कृष्णको परितोषकी आज्ञा थी उनके सङ्गण भाग रहे हैं ॥ ४५ ॥ कृष्णकी हवारों स्त्रियोंको भर्त्सनसे दण्डितोंके हाथ से गये थे । कुण्डल दूरे स्थित थे । उनकी एक स्त्री ने तो उन्हें दान दे दिया था और बादमें उसी समयसामान नारदसे उन्हें लीदा ॥ ४६ ॥ सब स्त्रियोंकी कामपूर्तिके लिए उन्हें घस रत भर बावना पड़ना था । दोनों भाइयोंने उन बड़ी स्त्रियोंके साथ श्रौंदा की थी, जो मालाके धमक थी ॥ ४७ ॥ कृष्णोपासनक कह—तुम्हारे राम दंभुर्जके भयसे रत रत भर जगा करते थे । बड़े भारीकी हथी लाशकी रामने बड़ी हँसी-मुँहके साथ पृथ्वीके दे दी थी । बानरोंके साथ उन्होंने मैत्री की और दुन्दुभा नामक राजसके हाथकी स्पर्श किया । बालि बेकारके बिना किसी अपराधके मार डाला । बानरोंने उनकी सहायता की ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तमर ही उनकी सवारिका काश देते थे । बिना किसी प्रयोजनके उन्होंने रात रात गूँगीको काटकर गिरा दिया । सागासे पुन ज्वाला और साँकी सुन्दर लज्जदुरी जल्ला ही ॥ ५० ॥ रामोपासनक को यह—तुम्हारे कृष्णने एक बरिह काष्ठका सुदामाके साथ निव्रता की थी । जिन्हें तुम बानर कह रहे हो, वे बानर नहीं, बल्कि बानरका हरीर धारण करके सब देवता रामकी सेवाको माये थे ॥ ५१ ॥ तुम्हारे कृष्णने कष्ट करके व्यर्थ जरासंधका शव करवाया था । बनेमें सदा गोपगण उनकी सहायता करते रहते थे ॥ ५२ ॥ उन्होंने मोषोंको अपनी लबासे बगर्भ और सदा बनेमें उधर-उधर भेजते रहे । उन्होंने काशी बगरीको जल्ला डाला और अपने लगे माले स्वामीको कुण्डल कर दिया ॥ ५३ ॥ शिवभक्त बाणामुर्के साथ उन्होंने गुड किया और स्वर्ण शिवकी भी उनके साथ गुड करना कहा । मिथुवान्ने उनकी पूज निन्दा की ॥ ५४ ॥ लज्जोंने उनके पीत्रको जीतकर अपने बहनें कर लिया और पारिजतादिकी बने समय बानरी स्त्रियोंमें भी उन्होंने भेदभाव किया ॥ ५५ ॥ कृष्णोपासनकने कहा—तुम्हारे रामके बैठनें भी तो अपने समस्त बर्ष किया और रामने द्विजभक्त राजसके साथ गुड किया था ॥ ५६ ॥ उन्होंने ब्रह्महत्या तक कर दासी और मुनि बगर्भने उनकी बन्नी हरहु निन्दा की । अपना काम उनकीके लिए रामने राजसके भाई विभीषणकी छोड़कर निव

यानारुढा कृता यात्रा वेश्याः स्पृष्टास्तथा रहः । इतिव्रतायां सीतायां दोषारोपः कृतोऽपि च ॥६९॥  
पुत्रं हंतुं कृता यात्रा शूद्रसिंहवधौ कृतौ । पत्नीसत्ताऽऽश्रिता येन पस्याशा पालिता नृपैः ॥७०॥

रामोपासक उवाच

अते कृष्णस्य ते शापाद्र्यच्छेदो ऋभूद्विज । अग्निना लोपिता यस्य नगरी द्वारका शुभा ॥६१॥  
स्वगोश्रम्य बधस्त्वन्ते मद्यपानादि यत्कुले । दर्शनं कर्जुनायान्ते येन मित्राय नार्पितम् ॥६२॥  
स्वस्थानं गमनं येन कृत्वमेकाकिना तथा । स सतोऽपि कृतस्त्वन्ते व्याधेनाप्येन पत्रिणा ॥६३॥

कृष्णोपासक उवाच

तव रामेण समरः पुत्रेणापि कृतो महान् । तथा सीता मया त्यक्ता चेति लोकं प्रवार्य च ॥६४॥  
बाल्मीकेराधर्मं गत्वा दृष्टी सीतासुतौ रहः । पिण्याकेन तथेकुधा पिंडदानादिकं कृतम् ॥६५॥  
दंडके उव रामेण स्वपित्रे भ्रमताऽर्पितम् । तथैरावणभृक्तायाः स्पृष्टः स मयका स्पले ॥६६॥  
तथाऽसत्यच्छेदनार्थं महान् यत्नः कृतो मुहुः । स्वमित्रिण्य श्रेयस्युत्पत्त्यर्थं सन्नतोऽपि च ॥६७॥  
कारितो पमराजेन पूर्वजेन लवादिभिः । पुष्पास्वादनमात्रादिपन्न्याः सिद्धा तथा कृता ॥६८॥  
मम कृष्णेन बालत्वे लीलया पूतना हता । हतास्तृणामुराद्याश्च शृतोऽङ्गुरया गिरिस्तथा ॥६९॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण बालत्वे लीलया शटिका हता । मारीचाया हतायापि पर्वतास्तारिता जले ॥७०॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णस्वरूपेण मोहिका मोहिता । अजे । मोहिता राधिका श्रेष्ठा मदनस्यापि मोहिनी ॥७१॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण देवानां मोहिताः स्वीयरूपतः । देवपत्न्यो रदो रात्रौ मारुतुन्या विचित्रिताः ॥७२॥

हताया ॥ ५७ ॥ दूसरेके घरमें रहो हुई स्त्रीको लाकर घरमें रख लिया । फिर उसी स्त्रीके साथ निकुराई की । बहुत मो स्त्रियाँ कामयाबीके लिये पतुंनों, किन्तु उनकी कायना उन्होंने पूर्ण नहीं की ॥५८॥ सवारोपर बलकर तीर्थयात्रा की । एकान्तमें वेश्यागमन करके पतिव्रता सोतापर हठमूठका दोषारोप किया ॥ ५९ ॥ उन्होंने अपने पुत्र लव तकको मारनेकी आज्ञा द दी और सम्बुक्त शूद्र तथा सिंहका वध किया । ६० । रामोपासकने कहा—हे द्विज ! अन्तमें तुम्हारे कृष्णका आह्वानके आपसे वश नष्ट हुआ था । उनकी द्वारिका-पुरीको समुद्रमें लव कर लिया ॥ ६१ ॥ उन्होंने मद्यपान करवाकर अपने कृदुम्बियोंका खस किया । अन्तिम समयमें अपन अतिमित्र मित्र अर्जुनको भी दर्शन नहीं दिया ॥ ६२ ॥ उन्होंने अकेले ही यहसि मोलोककी यात्रा की । एक बहेलियेके साधारण बाण द्वारा उन्होंने अपना अन्त किया । ६३ ॥ कृष्णोपासक बोला—तुम्हारे रामने अपने पुत्रके साथ महान् संग्राम किया था । “मैंने सीताका परित्याग कर दिया है” ऐसा संसारको दिसलाते हुए मो बाल्मीकिके आश्रमपर आकर भुषकेसे सीताको और अपने बेटेको देख आये । पिण्याक और शूद्रोंके फलसे अपने पिताको पिम्बवान दिया । ६४ ॥ ६५ । सब दण्डकारण्यमें हथर-उथर धूम रहे थे, सब भी इन्हीं फलोसे पिताका आठ किया था । ऐरावत द्वारा भंगे हुए मयको उठाकर पुष्पोत्तममें ले आये ॥ ६६ ॥ असक्त्य काटनेके अपराधपर रामने एक महामय किया । मन्त्रियोंको श्रेष्ठ आयुकी प्रतिके निमित्त अपने बेटे बेटेको पमराजसे लड़ दिया और केवल फूल कुंव सेनेसे स्त्रियोंको भी उन्होंने दण्ड दिया ॥ ६७ । ६८ । हमारे कृष्णने बाल्यकालमें खेल-खेलमें ही पूतनाको मार डाला । तृणाशुर आदि देवोंको मारकर गोवर्धन गिरिका उगलियोंपर उठा लिया ॥ ६९ ॥ रामोपासकने कहा हमारे रामने बाल्यकालके समय खेल-खेलमें शटिका तथा मारीचादि कितने ही राक्षसोंको मार डाला और पानीमें पत्थर तैराया ॥ ७० ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे शत्रु कृष्णने अपने सुन्दर रूपसे

ततः कृतार्याः स्वराद्यतो जातास्तु गोपिकाः । तद्भूलोन्मिष्टस्वरसं दासी रामस्य भक्तितः ॥७३॥  
धीत्वा यस्यैव वरतो ब्रजे सा राधिका अभूत् । अतो मे राघवो धन्यो यस्यैका दयिताऽयं हि ॥७४॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन परम्यथ सहस्राणि हि धोडश साष्टोचरशतान्यत्रोद्धाहिताश्च विधानतः ॥७५॥

रामोपासक उवाच

मम रामस्वरूपेण सर्वास्ता मोहिताः स्त्रियः । मातृवन्मोहितास्तेन वीरेण पुरुषार्थिना ॥७६॥  
कृष्णेन रत्तिकामेन मोहिता गोपिकाः स्त्रियः ।

\* कृष्णोपासक उवाच

मजेन्द्रो मम कृष्णेन लीलया निहतो दिज ॥७७॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण नारैर्द्ररिपुरशपदो हवः ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापेन यमुना खडिता त्वभूत् । ७८॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापेन खडिता जाह्नवी त्वभूत् ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन वै स्वर्गादानीतः सुरपादयः ॥७९॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण स्वर्गादानीतो सुरपादयौ ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन स्वपुरोर्मातुश्चापि सुता मृताः ॥८०॥

सुजीविताः समानीताः सप्त ताम्भ्यां निवेदिताः ।

वज्रको समस्त गोपियोंको मोहित कर लिया और राधाश्यामवासी उस सुन्दरीको मुग्ध कर लिया था, जो अपने असाधारण सौन्दर्यसे कामदेवकी भी लज्जाती थी ॥ ७१ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने अपने सौन्दर्यसे देवर्षियोंको मोहित किया था । वे सब रात्रिके समय एकांतमें रामके पास पहुँचीं । किन्तु उन्हें रामने अपने माताके समान माना और वरदान देकर कृतार्थ किया । वे ही जन्मांतरमें गोपिकाएँ हुईं । उस समय रामचन्द्रके मुखसे सायबूलके निकाले हुए पोंगको पीनेवालों दासी दूसरे जन्ममें राधा हुई । इससे मेरे रामचन्द्र प्रभु हैं । क्योंकि वे एकपत्नीयताधारी हैं ॥ ७२-७४ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णचन्द्रजीने सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंके साथ विविध विवाह किया था ॥ ७५ ॥ रामोपासकने उत्तर दिया कि हमारे रामचन्द्रजीने अपनी सुन्दरतासे सप्ताश्वती समस्त नारियोंको मोह लिया था, किन्तु स्त्रियोंके भावसे नहीं—अपितु माताके भावसे । क्योंकि हमारे राम वीर और पुरुषार्थी थे ॥ ७६ ॥ कृष्णने गोपियोंकी नारियोंपर मोहिनी डाली थी अपने कामवासनाकी पूर्तिके लिए । कृष्णोपासकने कहा—हे दिव्य । हमारे कृष्णने खेल खेलमें कुबल्यापीड हथियोंको मार डाला था ॥ ७७ ॥ रामोपासक बोला—मेरे रामने अष्टावक नामक राजाको खेल-खेलमें मार डाला था । कृष्णोपासकने कहा—मेरे कृष्णने अपने प्रतापसे यमुनाकी धारा क्षिप्त कर दी थी । ७८ ॥ रामोपासकने कहा—मेरे रामके प्रतापसे रंगा क्षिप्त हो गयी थी । कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्ण अपने पराक्रमसे कल्पवृक्ष ले आये ॥ ७९ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे

रामोपासक उवाच

मम रामेण साकेतं सप्त मर्याः सुजीविताः ॥८१॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन पौरुष्याद्विप्रस्य जीविताः सुताः ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण सचिवः सुमत्रो जीविताः पुनः ॥८२॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन द्रौपद्याः संधितं हि फलं तरो ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण वैदेयाः संधितं तुलसीदलम् ॥८३॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापञ्च जनान्संदर्शितः पुरा दुर्वाससाऽनयाञ्चा सा भोपिकानां कृता वृजे ॥८४॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापञ्च जनान् मन्दर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽनयाञ्चा सा कृता रामस्य तत्पुरि ॥८५॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन रूपाणि बहून्वशं कृतानि हि ।

रामोपासक उवाच

बहूनि राघवेणापि स्वरूपाणि कृतानि हि ॥८६॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन मिश्राय दत्तं स्वर्णमयं पुरम् ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण मिश्राय दत्ता स्वर्णमयी पुरी ॥८७॥

कृष्णोपासक उवाच

धर्म्यग्रहे कुरुक्षेत्रे स्नानं कृष्णेन मे कृतम् ।

रामचन्द्रजीने अयोध्यामें बड़े बड़े स्वर्गसे कल्पवृक्ष तथा धारिजातकी मंगा लिया था । कृष्णोपासक बोला— हमारे कृष्णजी अपने गुरुजीके मरे हुए सात पुत्रोंको ममपुरीसे लक्ष्म और ऊहें जीवित करके अपने गुरुजीको दे दिया था । रामोपासकने कहा—हमारे रामचन्द्रजीने अयोध्यामें मरे हुए सात भनुष्योंको जीवित कर दिया था ॥ ८० ॥ ८१ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णने द्रौपदीके मननानुसार बिना फलवाले वृक्षमें भी फल लगा दिया था । रामोपासक बोला—हमारे रामने भी सक्ताके कहनेपर तुलसीदलके दो टुकड़ोंको जोड़ दिया था ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ कृष्णोपासक कहन लगा—हमारे श्रीकृष्णजीने जंगलमें दुर्वासिके अश्र मंगितेपर उनकी पाँच पुरी की थी ॥ ८४ ॥ रामोपासक बोला—हमारे रामने भी अयोध्यामें दुर्वासिके अश्र मंगितेपर उनकी इच्छा पूर्ण की थी । इससे हमारा रामका प्रताप सब संसार देख चुका है । ८५ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने अनेक रूप धारण किये थे । रामोपासकने कहा—हमारे राम भी ज्वरसे लौटकर अयोध्या आनेपर अनेक रूप धारण करके सबसे एक साथ मिले थे । कृष्णोपासक बोला—श्रीकृष्णने अपने मित्र सुदासकी सुवर्णकी मगरों दे डाली थी । रामोपासकने कहा कि हमारे रामने भी अपने मित्र विशीरणाको सोनेकी रंका दे दी थी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने सूयग्रहणपर कुरुक्षेत्रमें जाकर स्नान किया था । रामो-



राज्यकण्डम् २७५

अथैवम् कुरुक्षेत्रे रामेणाप्यवगाहितम् ॥८८॥

मे रामस्य वचश्चेकं मन्यमेव च मन्यथा । ते कुरुक्षेत्रे घनेऽपि वचनान्दत्तवानि हि ॥८९॥  
 रामस्य मे शङ्कवेकः सन्निर्दलनक्षमः । विष्णुस्तत्र कृष्णस्य चद्रोऽपि मार्दवाः ॥९०॥  
 एका ह्रीं नम रामस्य ते कृष्णस्य वन्द्येभ्यः । कन्याऽप्या विना नान्या इत्या रामस्य वै मम ॥९१॥  
 स्त्रीणां कन्यां विना बह्वीः सुखाः कृष्णस्य ते द्विज । रमन्ति गतिमप्यदत्ते माकेने ममगुण्ये ॥९२॥  
 मन्धेऽप्यदत्ते पथिने ते स्थितिः कृष्णस्य वै तर । कथुवर्ष मे रामस्य कृष्णस्यैकोऽप्यनस्य ॥९३॥  
 गौमणिः पुष्पकं वृषी कटके मुनिनाऽर्पिते । एतन्मृतेऽर्धुपुत्रतुल्यो नमोऽप्य ॥९४॥  
 एतानि मम रामस्य नव रत्नानि मते हि । यत्किञ्च पार्श्वेऽपि रत्नत्रयं नव ॥९५॥  
 कृष्णस्य मनि मो विश्वं तं तं ईदृषिश्च वृथा । ममदीपेऽग्रे भयो मम पूर्वाशरं दित ॥९६॥  
 ईशश्च अमरीशश्च सप्तमेव द्वय ममगुण्य । यता न मम रामेन मृत्युं कृष्णं विचिन्वय ॥९७॥  
 यस्य चाप इति कोऽपि वक्ष्यामि तव । विद्रष्टुं यत्नं यत्नं नित्यं द्विजोऽपि मम ॥९८॥  
 यस्य सिंहासनं उग्रं चक्रं चाक्षरद्वयम् । यस्य पानं पुष्पकं तस्य पुत्री तौ दिवः समौ ॥९९॥  
 अथादि पान्यते यस्य दत्तं दत्तं द्विजोऽपि मम । ममनाथपुत्रस्यैव मम रामस्य मे नृपः ॥१००॥  
 तव कृष्णेन किं दत्तं वद मम मेऽपि मम । वरात्पुत्रं निधं वदुष्यति मे रामस्यैव मम ॥१०१॥  
 तारकं मे रामनाथं कन्यां सुदुर्जनान्मदा । मृत्युं मुखास्त्राणां ध्वं द्विजोऽपि मम ॥१०२॥  
 अतश्च त्वं शिष्यं सर्वत्र मर्यादामुमान् । स्वीयान्मुहुः शिष्यपतिं प्येयं रामोऽपि मम ॥१०३॥  
 त्वं प्राणिमोक्षार्थं वद तत्पुत्रं नदत्तं । राममेति रामेति नाम भूयाऽमुदायते ॥१०४॥  
 यथा ममहिमा चोक्तं त स्वीयधुनः मुहुः । वान्मोक्षेऽप्यन एव पूर्वतन्वार्ति कृतम् ॥१०५॥

राज्यकण्डे कहा कि हमारे रामजी की ली पुत्रलक्ष्मी स्त्रिय नाम ॥ ८८ ॥ पर राम सद सत्य बचन बोले हैं, किन्तु तुम्हारे इ शकी वृद्धा भी जाने लगी है मम ॥ ८९ ॥ पर रामका एक वाक्य सुनकर मम मन में निद्रा पड़ी है, किन्तु तुम्हारे हाथों व जने विलन बाण निकल रहा है ॥ ९० ॥ हमारे रामका वैभव एक ह्रीं लोका है और तुम्हारे कृष्णकी बहुत सी शिष्या हैं, वन्धोका शय्याक मतिरित हमारे रामकी कोई और शय्या नहीं है, सर्वत्र तुम्हारे कृष्णका वृत्त में एको मर्यादा है, जो बिना मर्यादा है । हमारे राम सरपूके तन्त्रभयोभागे रहते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसका विद्वान् तुम्हारे कृष्ण पश्चिमा समुद्रक चितारे रहते हैं । मम रामके लीन भ है और तुम्हारे कृष्णक कवन एक भाई है ॥ ९३ ॥ हमारे रामके पास नमोऽपि गौ, मणि, पुष्पक, कल्पवृक्ष, पारिजात धुनि अमरत्व हाथ में हुए राक्षस, ऐरावत वरम उत्पन्न वनस्पति कुवी व ली रत्न कदा विद्यमान रहते हैं । हे विष्णु ! तुम्हारे कृष्णक पास दो मणि तथा पारिजात वृक्ष वे ही लीन रहते हैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ तब तब कदा एक कृष्णका वी वर्य मृति करने हों ? रामकण्डका मातृ कावोके स्वामी एवं रामाका वी वान्दित है ॥ ९६ ॥ राम ईश का है और जगदाश वी, उनम रामा विद्यमान है । तब मेरे रामके अतश्च कृष्णकी मम ममता । उनके पास मन्द है और अश्व सत्य है । वे वृद्धाकी इच्छा पूरा करनेका वरा तन्त्र रहते हैं ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ चितक पास निद्रासन है, जो वरम एवं लव है, चितक पुष्पक विद्यमानकी वराते हैं और चितके सरल पुष्पक दो वृद्ध हैं । चितका लव दिया हुआ रामनाथपुर नाम की विद्यमान है, तुम्हारे वर्यो कि तुम्हारे कृष्णका वी वर्य रामका दा है जो जगत्क विद्यमान है । साक्षात् चितकी वी मम पर रामका वजन करते हैं ॥ ९९ ॥ १०० ॥ वर्याव वर्यानुक प्राणिमोक्ष शिष्यी पुत्र-धूमकर रामशरक वष गुणाका करते हैं । एतान्द सत्सत्के लव मम मम कहते हैं — रामका वान कर भया, यसका वजन करो ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ मृत्यु अर्थात् मम मम चितके निमित्त ही जगकी वृद्धावस्था का वी रामनाथका वर्याव करते हैं ॥ १०३ ॥ चितके नमकी ऐसा ममता है, वे उन रामकी स्तुति करते हैं । इति

जनकोटिमित श्रेष्ठ यस्मिन् रामायण द्विज । कृष्णार्दानो चरित्रे हि सन्ति सनर्गदानि हि ॥१०६॥

श्रीरामराम उवाच

एव तयोर्विचरन् द्विजोश्च परस्परम् । बध्वाकाशजा राजा नां तौ सर्वे च सुभ्रुवः ॥१०७॥

रामस्तथा स्तुतिः केषामपि कर्तुं घटेन न इति तां जेवर्गं क्षणीं श्रम्य मर्षं राममदः ॥१०८॥

चक्रजम्बुवनान्दुर्लभां ददति मम नादिकाः । तं रामोपामकं सर्वे वर्षभुः पुष्पवृष्टिभिः ॥१०९॥

त्रिजरा अपि ते सर्वे त्रिमन्त्रा मुदाश्रिताः । तं रामोपामकं प्रीत्या वर्षभुः पुष्पवृष्टिभिः ॥११०॥

तदा कृष्णोपामकं म लज्जया नतमस्तकं । तं रामोपामकं नत्वा प्राथयामास वै मुदः ॥१११॥

तदा रामोपामकोऽपि न नत्वाऽर्द्धाभ्यर्च्य दृष्टम् । उवाच भभ्रुव वाक्यं शृणु कृष्ण द्विजोत्तम ॥११२॥

न नन्दयुवोः पृथगस्मिन् रामो न रामनोऽन्यो वयमुदवसनुः ।

तथाऽप्ययोध्यापुष्पाद्व्याले मलक्षणे धावति मे मत्तपा ॥११३॥

यतः स्तुतो मया रामः कृष्णस्य निदत्तं कृतम् । तवैष्यरा द्विजश्रेष्ठ वेत्ति तौ द्वौ नमाविति ॥११४॥

राम एवायं कृष्णश्च कृष्ण एवात्र रामवः । उभयोर्नान्तरं विप्र कौतुकाच्च मयेरितम् ॥११५॥

मानयन्त्यतरं यौ ना तयोः श्राममकृष्णयाः ।

परस्परं स निरये पतिष्यति न संशयः । स्वदुर्बलसिन्धुस्यै श्वेषर्षा गन्धर्वः स्तुतः ॥११६॥

इन्पुष्पा मांस्त्वयिन्वा तं रामः कृष्णादयं द्विजम् । नृभी तस्यो मयापश्ये ममावद्विः सुपूजितः ॥११७॥

तवर्त्ता माघमामाने स्वं स्वं देशं प्रजगमनुः । तस्माच्छ्लिष्टावतरेषु न राममदज परः ॥११८॥

अनुस्त मत्र भावेन तस्यैव चरितं शृणु । यदन्यदणयाम्भ्रं महापगन्तकाकम् ॥११९॥

इति श्री जनकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदनन्दरामायणं रज्जकाण्डं तृतीयः

श्रीरामकृष्णोपामकयोर्विवान्दो राम स्तुतोः सर्गः ॥ ३ ॥

बहुत दिन पहले आत्मानिने रामायण बनस्य था ॥ १०५ ॥ जिसकी मालमात्रः श्री कलौड है और तुम्हारा समस्त कृष्णचरित्र उससे सम जाता है ॥ १०६ ॥ अतः राम और कृष्ण नैजम राम व दासी इस प्रकार परस्पर विवाह कर रहे थे, तभी आकाशवाणी हुई - "रामक साथ स्तुति करनेवा रामो र विमो न रही है" । उस उन दोनों तथा अन्य लीपोंने सुना । इस प्रकार राम आकाशवाणी सुनकर वनी बैठे हुए समस्त सभासद रामकी अय-धन्यकार वरत हुए तालियाँ बजान लगे और उस गान परस्पर परस्पर बो ॥ १०७-१०९ ॥ इतना ही नहीं, अन्तगण भी विमानोंपर आ-आकर अपने रामायणकर पूरा बरसान लगे । तब अन्तगण नतमस्तक होकर कृष्णोपामकने रामोपामकता प्रणाम करके जा-जाकर दिनका के ॥ ११० ॥ १११ ॥ राम, रामकने भी उसे प्रणाम करके छातीसे लगा लिया और कहा— ॥ ११२ ॥ हे द्विजोत्तम ! न कृष्णम पृथक् राम है, न राम-मे पृथक् कृष्ण है । फिर भी अयोध्या नगर के राज्य में भागद्वित्र आकाशवाणी गयस्य हा भजनकी मेरी दृष्टि हुआ है ॥ ११३ ॥ इसी कारण अब मैं रामका स्तुति का और कृष्णको निन्दः । यह सब केवल तुम्हारी ईर्ष्यासे कहा-सुनी हुई । वही तो वास्तवमें मे दोनोंका समान समनता है ॥ ११४ ॥ राम ही कृष्ण है और कृष्ण ही राम है । इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है । अभी मैं जा कुछ कहा, वह सब कौतुकमय था ॥ ११५ ॥ का अनुभव राम और कृष्णम अन्तर मानता है उसे तरकामा होता पड़ता । इसमें कोई संशय नहीं है । केवल तुम्हारा मत दूर करनेके लिए अभी आकाशवाणीन भी रामकी स्तुति की थी ॥ ११६ ॥ ऐसा कह तथा कृष्णनामक द्विजकी सान्त्वना देकर सभासदोंने पूजित क ता हुआ राम विप्र सभ में उपवास बैठ गया ॥ ११७ ॥ माघमास अत्यन्त ही अत्यन्त न दाँतों अपन-अपन दण्डका लोट गय । इस लिये मैं कहता हूँ-हे शिष्य ! समस्त भक्तारोमे रामायणके सहस्र कोई भी अवतार नहीं है ॥ ११८ ॥ अतएव तुम उन रामका भजन करो और रामकी वह कथा सुनो जा आगे चलकर मैं सुनाऊँगा ॥ ११९ ॥ इति श्रीशम्भु तिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदनन्दरामायणं रज्जकाण्डं तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

## चतुर्थः सर्गः

( रामका मौ धियोको वरदान एवं मृतकामुपशमन )

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः शिष्य समामस्थो जनैर्वृतः । ददर्श द्राक्षावल्लीनां मंडपे काकपुत्रमम् ॥ १ ॥  
 उभयोर्नेत्रपोरेकनेत्रमृत्तिसमन्वितम् । अनिदीनं कुरुं व्यग्रदृष्टं दीर्घम्वरं चलन् ॥ २ ॥  
 मृदुमृदुश्च पश्यन्मात्मानं अक्षपूरकम् । तं दृष्ट्वा वन्द्यपाणिः स्मृत्वा कोपं पुरा कृतम् ॥ ३ ॥  
 उवाच काकं भोगमः तुम्हमगच्छ मेऽन्तिकम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा द्राक्षावन्त्यश्च मरुपात् ॥ ४ ॥  
 शीघ्रमृष्टीय काकस्तु रामादे सदसि स्थितः । राघवं पश्यन्दीर्घवं स चकार मृदुमृदुः ॥ ५ ॥  
 तदा तं राघवः ब्रूह कन्दुपपिष्टमानसः । नेत्रचिन्ता वगन्म्याद् काकपाथम्ब मौ प्रति ॥ ६ ॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा काकः प्राहावनीपतिम् कृपावलाकन रश्मि नटयाम्बु नव मर्षदा ॥ ७ ॥  
 किं वरंमौल्यर्थंरिह्य सुखदायकं । तन्मयाकवचनं श्रुत्वा रश्मस्तं वादयममवात् ॥ ८ ॥  
 द्रोणान्वेषु यद्वृत्तं मयिष्यं नमोऽस्य न । श्रुत्वा त्वं च ममत्वं तन्नेत्रत्रिपरेऽस्तु नम् ॥ ९ ॥  
 भाविकादांणि सदात्रि काकत्वं वाचं । चरन् नृणां पश्यन्तु ते मया शकुनाश्च श्रितम् ॥ १० ॥  
 स्थिरत्वे स्थिरकार्याणि मने स्वमयिन्दरात् । भविष्यन्ति हि कार्याणि ममणां शकुनं मयिनि ॥ ११ ॥  
 पश्यन्तु सकला भूमा जनाः कार्यानिदने । श्रमे गृहप्रदेशे तु वामभागे न वेदतिः ॥ १२ ॥  
 ममन्त दक्षिण भग्न पादः ते समन्तं ददा । लोद्यानामस्तु शकुनं महामंगलकारकम् ॥ १३ ॥  
 प्रतदशार्हपिठाय यदि ममर्षो भवन्त ते । साञ्ज्मु तदि मनिभेषां प्रेतानां मम वात्स्यतः ॥ १४ ॥  
 अन्वकाळे मानसस्य बाजिर्न नैव प्राप्तम् । प्रेतदशार्हपिठस्याप्यश्राज्जायतु सन्नराः ॥ १५ ॥  
 प्रेतस्य वशजः कश्चिद्यत्नोत्तमश्च वाञ्छितम् । तत्ते स्वशार्हदिदिशः तु स पदा हरिष्यति ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहत—हे राघव ! एक दिन कटुनर मनुष्य मे । घरे हुए रामचन्द्रजी तबामे बैठे थे । तभी अंगुष्ठा हलामे । कम एक कोएक दया । तब वह एक ही नमसे दानों सेमोका काम ले रहा है । कीआ भवनी भाकृतित भातदव, शम्भुजी । उर पश्यन्तु और चन्दर दीवना है ॥ १-२ ॥ रामचन्द्रजीने देखा कि यह घर वा मरा कंदर पन रहा है और काककाव करके बालता भी जाता है । उसकी यह दशा देखकर दमक हुआम ददा भाया और भाव पट्टा । किसे हुए कामका धरण करके कोएत बोले—हे काक । मू । मर पास आ । यह नुनकर कोआ देव त म म । तो उहा और रामके भागे आकर बैठ गया । सभा में वह रामकी दण्डत हुआ जर शम्भुजी च दन लगा ॥ ३-४ ॥ रामने कोएत कहा—तू अपने वेवाके सिवाय जो कुछ भी कर सावता चह, मयि न ॥ ५ ॥ इस प्रकारकी बात सुनकर पृथ्वीवर्त रामसे कोआ कहने लगा—हे राम । मेरे ऊर दम तदु पदा भावकी कपटहि बनी रहे ॥ ६ ॥ कवल इस लोकमें सुख देनेवाले अन्य वरदानोंका तकर मे क्या कहूँ ॥ ७ ॥ कोएका बात सुनकर रामचन्द्रजीने कहा—किसी इंगान्तरमे भा हुनवाला भूत, अविध्य और नरमानकी सब बातें तुम्हारा आँखोंके सामने रहेंगी ॥ ८ ॥ होवाने मयी । भविष्यके सब कयोंका तुम मर वरदानके पाल लगे । मनुष्य कहीं जाये समय सदा तुम्हारा शकुन देखा करगे ॥ ९ ॥ जब तुम बैठ रहोगे, तब देखनेवाले पथिकका काम रुक जायगा और रश्मि चलने दोने ता उनका कार्य काम पुन हो जायगा । इस प्रकार लोक तुम्हारा कहून देखेंगे ॥ १० ॥ रामप्रवेश या गृहप्रदेशके समय तुम जिसकी दाहिनी ओरसे निकल जाओगे, वह परम पद्मलधारक बनून होगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ प्रेतके दशार्हपडकी जब तक तुम नहीं छू लोगे, तब तक उस प्रेतकी रूपति करापि नहा हागा ॥ १४ ॥ यदि प्रेतके दशार्हपिडकी नहीं छुओगे तो उसके घरवाले भाग समझेगे कि भभी प्रेतके इच्छा पूरी नही हुई है । प्रेतका कोई वंशज, तुम जिनजिव बाजोंकी बाँधी छुओगे,

तदा पिंडं स्पृशन् न च नोरेन्मा स्पृश सर्वथा । अन्यमंकं वरं दधि लिपिमात्रे तु पुस्तके ॥१७॥  
 यत् तिष्ठित्वेवैश्व विष्णुं तत्र मद्रात् । कुर्वन्तु पदचिह्नं ते सर्वत्र जगत्त्रये ॥१८॥  
 न्यपदं पुष्पकं दृष्ट्वा तत्रा जातु विष्णुतप् । निन्दितं पार्वभागेषु लेखकैः पुष्पकस्य यत् ॥१९॥  
 इति दत्ता वसन्त रामस्तु गङ्गासमीप्सितान्नम् । काष्ठोऽपि तुष्टः धीरापं नन्दोऽपि मनमदा ॥२०॥  
 एवं जानाचरित्रं हि चकार रघुनन्दनः । एकदा गतौ राज्ञौ पारिजातरोधः ॥२१॥  
 निद्रिभो हस्यपेक्षं जातकथं श्रुत्वा चिन्ता एतस्मिन्ननरे तस्यां शत्रौ ते समरप्रकाः ॥२२॥  
 द्रुपदाक्षपि दाम्यश्च दामाद्याः सकलास्तदा । ययुर्वै कीर्त्तनं शत्रुं कापि रामस्य शक्तिवः ॥२३॥  
 एषा तु समरं वेगान्कामवागप्रपीडिताः । पीताणां शननायकता यथात्तकारभूषिताः ॥२४॥  
 शम्भुपदसंप्राप्ता ह्येवमुभयोधगः चटाननाः शुकघाणाः कमलाक्षो मनीद्वयः ॥२५॥

शानकौशेयवसना रुक्मचतुर्निःस्वनाः ।

परस्परं ताः संमथ्य प्रथमे दधमि स्थिताः । ययुः स तो पुष्पके श्रीगधवं गृह्मि स्थितम् ॥२६॥  
 काचिन वीजयामास आगमं व्यजनेन हि । कचिद्वधर रामश्च स्वकरं पुष्पकजिकाम् ॥२७॥  
 काचिनापु रराज न कचिन्दधम न कथमा । पाशं निहीयन्नयन्त्या वा दधमं विलापिनी ॥२८॥  
 दधमं चन्दनं काचिन्काचिद्विद्यमानपुलकम् । काचिन्पद्मस्तनैश्च काचिद्रामफलदिवम् ॥२९॥  
 एतस्मिन्ननरे कचिन्पद्मनाशनं कर्मैः । रामस्य कर्तुमुमुक्षा तत्पदं पालिताः प्रपृष्टा ॥३०॥  
 नैरामः प्रपृष्टोऽभूत्पृष्टः पृष्टः प्रपृष्टः केन मे स्पर्शितः पदश्चक्षिभ्यं पुपाविशत् ॥३१॥  
 नास्ति दर्श आगतः मनश्च यत् । इत्याः । पीता प्रमदाः सर्वा रुक्मालङ्कारमहिताः ॥३२॥  
 रामं समुन्धितं दृष्ट्वा प्रपेपुस्तास्तदा भुवि । स्वशिर्षि निधाया तुष्टुर्दिविषोक्तिभिः ॥३३॥

उनकी अपुनी समझकर जब "म" कहता, जब जाना उस प्रपृष्टा सद्गति प्राप्त होगी । तब भी उसके दधमपिष्टका तथा "म", जब उसका प्रथम जग पूरा हो जाए । तब दधम वरदान प्राप्त भी देता है कि जो सत्त्व गुणवत् पदम पद भूत जाय, वे रजोग्गुणहारे परका चिह्न बना दिया करे ॥ २५-२८ ॥ पुष्पकके पास आता । पुष्पक परका चिह्न दधम नाम समझ जाता कि वही परका भूत है । २९ ॥ दधम प्रपृष्ट दधम को "म" कहकर दधमकर्म मुक्त । दधम पूरा हो गये । कोजा भी भवत भवता प्रणाम करके घट्टी से उड़ गया । ३० ॥ दधम दधम सत्त्वको विविध प्रकारका नाम दे दिया । ययुर्वै । एक दिन रात्रिके समय पारिजात वृक्ष नज आकर आगम के चिह्न नाम अरेजे नवर्त्तन पदपद हो रहा । उसी रात्रिके जितने भी दधम परका भूत है । वरदान मिलने की रामको देता है कि वह वरदान दे । ३१-३३ । उसी समय पीता वाक्य भी न देता विविध प्रकार के वरदान प्राप्त । वाक्य विवत्त वाक्य वाक्य पदित होकर राक्षसोंकी पास जा पहुँची । ३४ ॥ वे सब राक्षसों के पास भवते, ययुर्वै-मन सभावन उनको स्तन दे, काचिनाकी शक्ति उनका सुत था । जानकी उसके समान । उनकी नयिका थी, दधमकी नई उनके पति थे और मृगयोके समान उनको नेत्र थे । ३५ ॥ वे सब पीले दधम कारण किये । रामके लपट रुक्मसु करके बोल रहे थे । सत्त्वकी उमर भी बहुत छोटी थी । वे सब पुष्पक समान एतन्तमे साथ हुए रामचन्द्रजीके पास जा पहुँची । ३६ ॥ वही राक्षस कोई राजा । ऐसा जगत्तानी और कोई जगत्त शायद फुल्लको माता लेकर उनके उठनेकी प्रतीक्षा करने आता । राम न पारिजात चिह्न काट निर्माण जगत्त भरी भागे थी किन्तीने पारिजात उठाया, किन्ती दूसरी विलासितान चन्दन चिह्न, किन्ती दिव्य एकशान और कोई नामा प्रकारके फल लेकर रामचन्द्रजीके पास जाकर प्रणाम करने लगी । ३७ ॥ इसी बीच एक स्थान रामचन्द्रजीका पैर दवानेकी उपास दे देवारे उनका पैर उठाया । ३८ ॥ इससे वे चिन्तित पदे और संवने लगे कि सीता तो इस समय जगत्त है सब यह कीन पैर उठा रहा है । यह विचार करते करते चकिर भासते वे उठ बैठे । ३९ ॥ जब अपने सामने उरस्थित उन को आगियात जगत्त उठि पड़ी । जब रामने

ताः सर्वा रापवः शब्द किमर्थमिदं वृषके । रायं गमनायः सर्वास्तप्यं मां कटवतीं स्त्रियः ॥३४॥  
 ननु त्ववचनं श्रुत्वा विलज्जन्तः पुरास्त्रियः । अवाङ्मुखाः सन्निताहं वन्युर्ध्वं येन सघनतः ॥३५॥  
 तासु काचित्पदा राव नगरज्जाग्रदिवः । नरं प्रजनि प्रभवो पदर्थमागता वधम् ॥३६॥  
 उपैक्षणीया नो राव वर्यं सर्वाः स्त्रियश्चरा । इति तं वादमिश्राय शृत्वा स रघुनन्दनः ॥३७॥  
 प्रभवोन्मथुरं वाक्यं शृणुष्वं प्रवरोत्तमाः । एकान्तार्थं प्रवर्णेनैव दिव मातृनुन्याः स्त्रियो मव ॥३८॥  
 इतराः सकला मीतारदित्येह जन्पनि । गन्तुं च निजमेतानि मा माप्स्यन्ति जन्तु मपि नृपे ॥३९॥  
 राजवं क्षामति भो नार्यः क्षमित्वा नोऽपराधितम् । इति ता रामराश्वत्थीः कामवाणप्ररोदितः ॥४०॥  
 ताहिनाथ त्रिणेपेव निपेतुर्मोक्षिता इति । पतितास्ता त्रिगोत्र्याश्च सर्वा गमोऽतिविद्रुताः ॥४१॥  
 ता उवाच पुनः शीघ्रं शृणु राश्वथैः कृतान्वितः । शृणुष्वं मे वचो नार्यः गच्छन्त्या वना सह ॥४२॥  
 युष्माकं न भवेत्पटितं न ह्योऽपि मे भवेत् । नतः शृणु मे वाक्यं यागे पूर्वं सपात्रिणि ॥४३॥  
 गुरवे कृतमजार्थं सीतायः शतमूर्तयः । ता तं फलेन युष्माभिर्द्वारे क उतं रिम् ॥४४॥  
 करिष्यामि न मदेहः कृष्णरूपेण वै सुखम् । नानानृपाणां युष्माभिर्ध्वजं दारिद्र्यमदः ॥४५॥  
 भामसुखं युष्माकं नदतिरिति वै यदा । तदा सर्वा मोक्षमाप्तिं हता तं जघनीसुखम् ॥४६॥  
 करिष्यामि विशदार्थं युष्माभिर्द्वारकापुरि । स्थापादनाहमन्त्यान्ध्वनोऽभ्याः प्रवर्तं स्वदम् ॥४७॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तृष्टास्ता पुरवोपिताः । नृपा राम वदुः सर्वाभ्युत्थी स्वं ध्वं गृहं गति ॥४८॥  
 ततः श्रोस्ता त्रिमूर्त्यामीरामो दान्ताः मनाहृत्या रष्ट्रा कामपि नो दान्तां गमो दामाप्तदाहवत् ॥४९॥  
 तेष्वप्येकं न दृष्ट्वा स दान्तालात्ममाह्वयत् । तानप्यदृष्ट्वा रामस्तु रक्षकाश्च समाह्वयत् ॥५०॥

देखा कि वे सब पुरवासिनी स्त्रियाँ वृषके अनङ्कार पहले हैं । जावान राजकी उठा हुआ देखकर उद्भूत प्रणाम किया और अपना मस्तक पृथीपर रखकर शिखर प्रकारसे अङ्गदानकी स्तुति करने लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उससे राजने पूछा कि तुम सब यही इतना रविम किम जित आयी हो ? मुझ सब-सब बनना दो ॥ ३४ ॥ रामकी बात सुनकर वे पुरवासिनी स्त्रियाँ सन्वित हुईं इन्हें माया नाच करने पुरचाय सबी रह गयी ॥ ३५ ॥ किन्तु उससे एक शिखर होकर कहा—हे वधा । आप सब जानते हुए भी हमसे आनेका कारण पूछ रहे हैं ? हम जिन जित आया है, आप वह सब जानते हैं ॥ ३६ ॥ हे राम ! अब आप हमारा उपकार न कीजिये । इस प्रकारकी बातोंसे राम उनका वीरभाव समझ गये और मोक्षी भावसे समझाने हुए कहने लग- १ म-दरिणी । मैं लक्ष्मीवन्द्यामी हूँ । मेरे लिए इस अन्धके कोताके सिवाय समारकी ध्व नारिणी माताके सन्तान है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तुम सब अपने-अपने घरोंको जाती जाव । मेरा आ है । मेरे ऊपर तुम सब पाव न माओ ॥ ३९ ॥ अब सब वे प्रकाश नासक हैं तत्काल एकाचनयं नहीं हो सकता । कामो, मेरे तुम्हारा व्यवसाय जग किया । यह मुना तो कामरूपसे पीड़ित वे स्त्रियाँ रावके वाक्यरूपी बाणसे विड और मूर्छित होकर पृथीपर गिर पड़ी । उनका इस प्रकार गिरा देखकर गणपन्दी बहुत विचल हो गये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ वे कृपावरक उनसे कहने लगे—हे स्त्रियो । मैं तुम्हारा धनाभाव जानता हूँ, किन्तु केवल एक वारकी गतिन तुम लोगोंकी इच्छा नहीं भोगी और मेरा धन का भंग हो ज गया । इसलिए मेरी बात सुनो—अब ननु नित्य गते यज्ञमे तेने कोताकी भी वृषणकी स्तुति राव दी है । उन्हीके फलसे दानमे मैं दान्य हारद वृत्ति दिनातक तुम सबके साथ संदा करेगा ॥ ४२-४३ ॥ तुम सब उस समय अनेक दाताओंकी वरिणी हुंकर जन्म लीगी । अब भीनायुत तुम लक्षों बुरा है ज पना सब मैं वही पढ़ेकर उस मातांग और नृप उससे उद जंग । तुम सबका विवाह करका-पुत्रोंमें होगा । उस समय तुम्हारा मलय सोलह हजारसे भी ऊपर रहेगा और मैं भी हो रहेगा ॥ ४४-४७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने जगदाश्वकी प्रणाम किया और वृषवाच अपने-अपने घरोंको लौट गयीं । उन पितृव्य विदा करने राजपन्दीने दक्षिणोंको बुलाये, किन्तु

वेष्टप्येकं न दृष्ट्वा स गवदध्वानिर्विस्मिनः । विमानाद्वाग्धारां सौमित्रि वै समाह्वयत् ॥५१॥  
 उर्मिला रामराक्ष्य तच्छ्रुत्वा च चालयत्पतिम् । उर्मिलाचालनाच्छाप्र प्रवृद्धोऽभूत्स लक्ष्मणः ॥५२॥  
 रामराक्ष्यं सोऽपि ध्रुत्वा रतिशालावहिर्ययो । दन्तं प्रत्युत्तरं राम ययौ वेगेन लक्ष्मणः ॥५३॥  
 एतस्मिन्नगरे रामो मेदन् नगगद्गदिः । शुश्राव स्नातृन् पार किमिदं चेति विस्मिनः ॥५४॥  
 ततो दृष्ट्वा स सौमित्रं पर्वं वृत्तं न्यवेदयत् । लक्ष्मणो रामराक्ष्य तच्छ्रुत्वा दत्ताभिजितस्तदा ॥५५॥  
 श्रेष्ठ्य दूतान्कीर्तनस्थानादह्वयामास वेगनः । रामदूतास्तदाचुन्मन् कथं आरामकीर्तनम् ॥५६॥  
 अवमग्न विहायास्त गन्तव्यं स्वामिन प्रति नेषेय केचिदनुष्ठे पात्रनीया तु संतर्कः ॥५७॥  
 प्रमोहावाऽद्य चास्माभिर्नो चेजः पातक स्पृशेत् । केचिदनुग्दिं तस्य कीर्तनं मङ्गलप्रदम् ॥५८॥  
 स्वाग्पाक्षामगदोषघ्नं कथं न्यक्त्वा प्रगम्यताम् । केचिदनुः कीर्तनस्थानं भ्रूवाऽस्मान्म सुखी भवेत् ५९  
 इति सदिग्धचित्तास्ते न नदा राघव ययुः । ततो लक्ष्मणदूताम्भे रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥६०॥  
 ततः किञ्चित् क्रोधयुक्तः सौमित्रि प्राह राघवः । मर्कान्तेनममामकाकाहं दण्डयितुं क्षमः ॥६१॥  
 तथाप्येतच्च बोधय हि किञ्चिच्छितां कर्तव्यदम् । इत्युक्त्वा तां तु रुदती पुनः ध्रुत्वा वदिः प्रभुः ॥६२॥  
 विमानं प्राह गच्छाद्य वदिः पुर्याः स्त्रिय प्रति । वधेति गमवाक्येन ययौ नन्नगगद्गदिः ॥६३॥  
 यत्र माऽतिविलासं स्त्री करोति सगृह्यते । तामजननिभां नार्गे रुदती राघवोऽब्रवीत् ॥६४॥

राम उवाच

किं ते दुःखं वदन्नाद्य का त्वं रोदिषि वै कथम् इति रामरचः भ्रुत्वा सा राम राक्ष्यमब्रवीत् ॥६५॥  
 धिरकालं करोम्यत्र रोदनं रघुनन्दन त्रय भुत न्वया राम किञ्चिन्पुण्यसयान्मुनेः ॥६६॥

यहाँ कोई दासी नहीं दिखायी दी । सब सेवकोंको बुलाया । उनमेंसे भी कोई नहीं बाला । तब गहरेदारीको पुकारा, किन्तु उनमेंसे भी कोई नहीं बाला । जिससे रामचन्द्रजीको बड़ा विरमद हुआ और विमानके ऊपरवाली छेटीसीसे लक्ष्मणको पुकारा । रामचन्द्रकी आज्ञान् उपस्थित की मुनायी दी । और उगन तुरन्त लक्ष्मणको बुलाया । जागनेपर लक्ष्मणने भी रामकी आज्ञा मुनी और तब तक उनकी बातकी प्रत्युत्तर देकर तुरन्त रतिशालाके बाहर आकर वेगसे रामचन्द्रजीकी ओर चले ॥ ४८-५३ ॥ इधर रामचन्द्रजीने नगरके बाहर किसी स्त्रीका रोदन सुना : "हे गह रुग है !" यह कहकर वे बड़े विन्मित हुए ॥ ५४ ॥ तब तक लक्ष्मण भी आ पहुँचे और रामने उन्हें सब बुलात सुनाया । लक्ष्मणने तुरन्त अपने दूतोंको उस स्थानपर जानेकी आज्ञा दी, जहाँपर कीर्तन हो रहा था । लक्ष्मणके दूतोंने वहाँ पहुँचकर रामके दूताने कहा—बल्लो, रामचन्द्रजी कबसे तुम सबको बुला रहे हैं । उन सबने जवाब दिया कि बिना रामकीर्तन समाप्त हुए मधूरा छोड़कर हम सब कैसे आये । उनमेंसे किसीने कहा कि सेवकोंका धर्म है, स्वामीकी आज्ञाका पालन करना । ५५-५७ ॥ यदि उनकी आज्ञा न मानगे तो हमको पातक सगेगा । उनमेंसे कोई बोल उठा कि यह रामकीर्तन तो विविध प्रकारके पातकोंको नष्ट करनेवाला है । सब इतको छोड़कर चली आयेने ॥ ५८ ॥ कुछ लोगोंने कहा कि जब वे हमको कर्तनमें भाग्य मुनये तो प्रसन्न होये ॥ ५९ ॥ इस प्रकार मममज्जसमे पड़कर वे लोग रामके पास नहीं आये । इधर लक्ष्मणके दूतोंने रामके पास आकर उनका हाल सुनाया । ६० ॥ तब किञ्चित् क्रोधयुक्त रामने लक्ष्मणसे कहा कि यद्यपि मैं कीर्तन सुननेमें सब सेवकोंको दण्ड नहीं दे सकता ॥ ६१ ॥ किन्तु यह भी उचित नहीं है कि मैं उन सबको कुछ शिक्षा भी न दूँ । इतना कहकर रामने फिर वह नगरके बाहरवाला रोदन सुना ॥६२॥ तब उन्होंने विमानको आज्ञा दी कि नगरके बाहर कोई स्त्री रो रही है तुम उसके पास चलो । 'बहुत मज्जा' कहकर विमान चल पड़ा और सगूँरे तटपर जा पहुँचा, जहाँपर वह स्त्री विलाप कर रही थी । अञ्जनके समान उस काली-काल्टी स्त्रीको देखकर रामने पूछा—॥ ६३ ॥ ६४ ॥ तुम्हें क्या कह है ? तुम कीव हो और क्यों इस प्रकार रो रही हो ? रामकी बात सुनकर उस नारीने कहा—॥ ६५ ॥

निर्मिता विधिना पूर्वं निद्राजाम्नीं स्वहं प्रभो । दशं तेन मय स्थानं कृमकर्णं चिरं सुखम् ॥६७॥  
 यावत्कालं स्थिता राम स त्वया निहतो म्ये ततो मष्टनिवासाऽहं गता शीघ्रं विधिं प्रति ॥६८॥  
 तेन त्वां प्रेतित्वा राम ततः प्राप्ता निवर्णं पुनरे । सोमाचारभयादस्यां नगर्यां न गतिर्मह ॥६९॥  
 तत्रैव सस्थिता राम शीघ्रं च सरयुतटे । मे स्थानं वद रामाद्य यत्र स्वास्थ्याम्यहं सुखम् ॥७०॥  
 ततस्या वचनं श्रुत्वा मयसो वाक्यमब्रवीत् । स्मृत्वा दूतकृतं पूर्वं तदा क्रोधेन चोदितः ॥७१॥  
 निद्रे मृणु पदो मेऽद्य ते स्थानं कीर्तयाम्यहम् । राधात्मानो नरा मूर्ख्या ये मृण्वन्ति हि कीर्तनम् ॥७२॥  
 पुराणभवनं वैश्यठनं पूजनं जपम् । तपो ध्यानं च होमादि यद्यत्र कुर्वन्ति पापिनः ॥७३॥  
 तेषु च तिष्ठ मद्राक्यार्जुनदेवनरेष्वपि । अडे बालेऽद्य गुर्दिण्यामुखा मोक्षरोऽश्विने ॥७४॥  
 तथा विद्यार्थिनि भ्राते व्रति जगत्कामुके । एतेषु ते स्थलं दत्तमेतान्मोक्षय महरात् ॥७५॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सा तुष्टा प्रणमय हम् । ययौ गमः स्वनगरीं सुखं निद्रां चकार वै ॥७६॥  
 तदारम्भं पुरोक्तं दामं निद्राऽकरोन्मुखम् । राधात्मनाम्नो निद्रा बाधते पुण्यकर्मसु ॥७७॥  
 तदारम्भं मेवकेषु नरेष्वप्यवनांतले । निद्राप्रस्थेषु पुण्यात्मा मइमेवपि कश्चन ॥७८॥

शुभ्राश्च तर्कार्तनादि चकार पूजनादिकम् ।

श्रीरामदास उवाच

अथान्यां सप्तवर्षाणि कथां मीतापशुक्ररीम् ॥७९॥

कृमकर्णस्य पुत्रस्य निकुम्भस्य च गुर्विणी । प्रभून्पथं पितुर्महं गता द्राघोत्तरं त्रिणा । ८०॥  
 रात्र्यादितथै जाते तस्यां जातस्तु पौंड्रक । मायापुर्वां सप्तभिराः अतद्वयकरः पुन ॥८१॥

हे प्रभो यह बहुत समयकी बात है कि जब बह्मज मुझे बनाए था । मेरा नाम निद्रा है जोर बह्मजने मुझपर दया करके कृमकर्णका देहस रहनका दिया । तब मैं बड़े आनन्दसे उसमें रहने लगी ॥ ६९ ॥ ६७ ॥ लेकिन आपने उसे भी मार डाला । मर रहनका एक झण्डा था, उस भा आपने उजाड़ दिया । ऐसा व्यवस्थापन रक्षो-कल्पती हुई मैं बह्मज पास गया और ऊह अपनी गाथा सुनायी । उन्होंने मुझ आपके पास मेला और मैं इस जगह जा पहुँची । स गारकायिक मयस इस नगराव घुसनेका साहस नहीं हुआ । इसलिए इसा सरयूके किनारे बेड़ी बेड़ी बिलाप किया करता हूँ । हे राम ! अब आप कृपा करके मर रहनके लिए कोई स्थान बतला दीजिए, जहाँ मैं रह सकूँ ॥ ६८-७० ॥ इस प्रकार उसकी बात सुनकर रामचन्द्रकी बहुत दूतकी बातें सोचकर कुछ गुस्मा आ गया और निद्रासे बात—॥ ७१ ॥ हे निद्रा ! मुना, मैं तुम्हें तुम्हारे रहनेके लिए स्थान बतलाता हूँ । जो पानी मृणुप मर कांतन मुने जार्य और ये पुराणभवन, वैश्यठ, पूजन, जप, ध्यान आदि जो कुछ भी करने रहें, उनमें गुप्त लपका क्या बसाआ जो लाभ होत प्रकृतिक हो, न चाहे देखता हों वा मनुष्य, अह, बाहक, गमिणी स्त्री, प्रभोत्तर भोजन करनेवाल, विद्यावी और चके हुए मनुष्योंमें तुम रहो । जो कोण उगाधा आगत हो, उन लोगोंमें मैं तुम्हें रहनके लिए स्थान देता हूँ । मर करवानस तुम इन्होपर अपना मोहजाल फैलाओ ॥ ७२-७४ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वह प्रसन्न हुई और उससे चक्रान्तकी प्रणाम किया । जबर रामचन्द्र की अपनी नगरीमें लौट आये और रातभर बूढ़ मच्छों तरह सोये ॥ ७५ ॥ तभीसे ऊपर कहे हुए लोकोंमें निद्रा गिरस करने लगी । इसलिए यदि पापी मनुष्य कोई पुण्यकर्म करने लगता है, तब उसे निद्रा मत्ताती है ॥ ७७ ॥ तभीसे पृथ्वीमण्डलमें निद्रासे सेवकोपर बपना मोहजाल फैलाया । सहस्रों निद्रानु मनुष्योंमें कही एक मनुष्य भी मुरिबलसे ऐसा मिलेगा, जो अरुण-नीलन आदि शुभ कर्म करनेकाल पुण्यात्मा हो ॥ ७८ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—मर मैं सीताके मतसे मरी एक दूसरी क्या सुना रहा हूँ ॥ ७९ ॥ कृमकर्णके पेटे निकुम्भकी गमिणी स्त्री बचवा पैदा करनेके लिए किसी दूसरे द्विमें रहनवाने अपने पिताके घर गयी थी ॥ ८० ॥ जब रामके साथ युद्ध करके रावण बल समेत गड़ हो

श्रौणानदीनद्ये चर्मोद्धारणः क्षीरमाशरे । महायान्दोहदहनसोद्वेजविन्वा विभीषणम् ॥८२॥  
 शताननेन चै सार्धं लक्षारण्य धकार च । ततो विभीषणे गच्छ गन्वा सर्वं न्यवेदयत् ॥८३॥  
 सोताविर्मण्डल्यां चै रामो लक्षां ययौ हृतम् । निहन्य रावण सेना युद्धे गमे त्रिनेत्र चम् ॥८४॥  
 विर्मण्डलान् ता लक्षां हन्वा च पीण्डक ददौ । अथैकदा समामप्यं स्वयं च विभीषणः ॥८५॥  
 ययौ विषण्णः सन्निवृत्तः सन्निवृत्तः सन्निवृत्तः । नन्वा राम माधुनत्रयोन्मूल्यन् कपित्वापरः ॥८६॥  
 उवाच सख्यैः पुनः लक्ष्याः प्रभवत्तु गिरः । गच्छ रावणपशाध ग्राहि मां शङ्खप्रवणम् ॥८७॥  
 मूर्तुर्लक्ष्यकणन आतः पुत्रः पुत्रः पुत्रः । दर्शन्यको वृद्धपुत्रे बालकमव चयिनः ॥८८॥  
 मक्षिकाभिः स्वयमनजलस्य विदुषिर्महः । गोदृष्टा नरकः श्रुत्वा न्यक्तुर्नमस्कृत्यपम् ॥८९॥  
 तस्या तोष्य ज्ञाण नदरेगानिर्गतिः । पातालस्य राक्षसैश्च लंकारां यमुपागतः ॥९०॥  
 मया तेन तु यमस्य कृतं युद्धं महामयम् । मां जिह्वा म पूर्णं थावन्दाह मचिवे, स्त्रिया ॥९१॥  
 ययुत्रो गुमपागं भूमजेन पलायिनः । दर्शन्यमार्गेण लक्ष्या योजनोपरि ॥९२॥  
 मत्री बाहुविर्गम्य विमरन्वर्गं समागतः । मूर्तुर्लक्ष्यः समुत्पन्नस्तुम्भे विवर्द्धितः ॥९३॥  
 मूलकासुरनाम्नाऽन्यः पणं रुपतिं गतोऽधुना । सगर तेन मायुक्तमार्गो त्वां तु विभीषणम् ॥९४॥  
 हन्वा लक्ष्यपूर्णं प्राप । ततो गच्छामि स्वयम् । धनिना निदो येन निदम पकल कुलम् ॥९५॥  
 त राम सगरे हस्तदृष्ट्य गच्छामि ह विदुः । आगमिष्यति सोऽत्रापि त्वां योद्धुं ययुनन्दन ॥९६॥  
 हदानो शङ्कते च प्र वक्तुमिच्छति । तत्रस्थं पकलं वृत्तं श्रुत्वा रामोऽतिविस्मितः ॥९७॥  
 लक्ष्मणं ग्राह्यं वेमेन वानिचान् जगतां तले । स्वस्वगन्धर्विष्यान्मवान्दूर्गकान्वाधुना ॥९८॥

मया ना इस शब्द पीण्डक नामका एक जन्तु है ॥ ८२ ॥ श्रौणानदी के तटपर मायापुरी नामकी नदी-  
 में एक सौ सन्तानों का राज्य रहता था । उसमें २०० नृपति थे । पीण्डकने उस राज्यकी सहायतासे विभीषण-  
 की परास्त कर दिया और शतानन रावणके साथ एकसाथ राज्य स्वयं करने लगा । उस समय विभीषण  
 रामके पास गया और उन्होंने अपना सब धन चोर कर लिया ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ गिरकी उस दुःखमयी कहानीकी  
 सुनकर राम सखी और विभीषणके साथ पलायन करने दिया । वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस सौ पुँहवाल रावण  
 तथा पीण्डकका मारा और फिर विभीषणका उनके निशानेपर विद्यमान अवस्था खोजी । इसके बाद  
 एक दिन राम अपनी रुमाय घंटों थे । जब अपनी स्त्री, पुत्र तथा मित्रोंके साथ विषण्ण भावसे बैठे हुए विभी-  
 षणने कहा - हे राम, हे रावणपताक ! मैं क्षात्रकी शरणमें चला, मरी रुमा काजिए ॥ ८४-८५ ॥ बहुत दिनों-  
 की बला है, जब मूल नदीमें कुम्भकर्णक एक पुत्र हुआ था । कुम्भकर्णने वृत्ता द्वारा उस लड़केको उछलले  
 छोड़का दिया । वही धनुर्मात्रिकने उसके मुँहमें मधुकी एक एक बुँद टपकाकर उसका रक्षा की । वह हम समय  
 बड़ा हुआ है । जब अपने लोगोंके मुँहसे यह सुना कि रावण भर पिता तथा वृद्धिवाला नाम लिया है  
 ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ तब उस तपस्वी द्वारा उसने वृत्ताकी मन्त्र करके वर प्राप्त कर लिया । वरक प्रभावसे गवित  
 होकर बालादवासी राजाको सहायतासे उसने सदापर चढ़ाई का दी । मैं छ महीने तक उसके साथ  
 घमासान युद्ध किया । अन्तमें उसने इसे परास्त करके सदापर अधिकार कर लिया । ऐसा अवस्थामें मैं  
 काधी रातकी अपने पुत्र, स्त्री एवं मित्रोंके साथ एक सुन्दरक गमनमें भागा ॥ ९०-९२ ॥ एक योजन दूर  
 भाग आनकर ठहर गया जब रात्रि अन्तमें हो गयी । तब आने बड़ा और भाणके पास जा पहुँचा । वह मूल  
 नक्षत्रमें पैदा हुआ तथा वृत्ताके जीने उसका पालन पोषण हुआ है । इसीलिए लोग उसे मूलवामुन कहते हैं ।  
 युद्ध करते-करते एक बार उसने मुँहसे कहा था कि हम रामभूमिमें पहले तुमको मारकर सदापर अधिकार कर लेने-  
 के बाद मैं उस रावणके पास आऊँगा, जिनमें मैं बिना तब मैं वृत्ता मदुर किया है ॥ ९३-९४ ॥ तथा मधुमिमें  
 रामको मारकर मैं अपने पिताकासे उच्छ्रान्त हो आऊँगा । हे ययुनन्दन मैं अद्वैतिक जानता हूँ, कीध हो वह आप-  
 से भी युद्ध करनेके लिए आवेगा ॥ ९६ ॥ ऐसा अवस्थामें आप भी उचित समझ ली कर । विभीषणका हाक



तथेति रामवचनाद्गताध्यायनदा । लङ्घयन्नेति वेगेन गन्ता रताः समागतः ॥१०॥  
 प्रोचुः समाया श्रीराम तूराणां वनना जे ते । केचिन्नृपा बालर्षेति तदायां तथुनन्त ॥१००॥  
 केचिन्न पालर्षे-याज्ञां तर नन्कनण भृण । चपकाया मुमन्याश्च स्वययाममुद्रयम् ॥१०१॥  
 दुःखं हृदयमस्यं यसदद्याये गर्व व हि । पूाकेतुगणानभिजवर्मस्थला पुनः ॥१०२॥  
 म्मुन्क मदनमुन्दर्या दुःखं कास्पुद्रव नृगाः । अन्तां न पालर्षेत्यद्य तर गधव मन्त्रयो ॥१०३॥  
 गान्तिना यैरनयाहा ते सुर्यायाथा नृपेनमाः । स्वकोटिर्वर्ष्युक्ताः समायाताः मदस्यधः ॥१०४॥  
 तदुद्भवचनं श्रुत्वा रामो गर्जवलोचनः । प्राह माणघातांस्ते स्मूरयति रागधवाः ॥१०५॥  
 यादी इत्या कोषकणि तान्गच्छामि तनस्वहृषः । इन्दुकरा नुदिने रामः सेनया बहुभिर्मेरात् ॥१०६॥  
 मूलकायुधानाथेषादी पुर्वा प्रदियरी । विचिन्मन्ययुते पुर्वा यूपकेतु न्यवेशयत् ॥१०७॥  
 कुशावाः यत्त पालास्ते गमेण मद निर्वपू । विमाने मकत्वा सेनां स्थापयामास गधनः ॥१०८॥  
 तावत्ते पायिकाः सर्वे नानावाहनमस्त्रिणाः । वेष्टेनाः स्वस्वमन्यैश्च तन्वा गम्य पुरः स्थिताः ॥१०९॥  
 शान्गम, स्थापयामास विमाने मैन्यमयुतम् । अष्टादशपरमैर्नः कविभिः कपिगद् ययो ॥११०॥  
 आरुहोह विमानाग्र्य कपिमी गधराज्ञया नतः सीतां विज राम स्वय स्थित्वा तु यूपके ॥१११॥  
 पश्यन्नावाविधान् देशान्यरी लङ्का विहायसा । यात्राकाळे यथा वानरवताऽऽपीतथा पुनः ॥११२॥  
 नतो रामं समायातं श्रुत्वा स मूलकागुः । यरी लङ्काविहर्षेदुषु राघवेण वर्त्कीयसा ॥११३॥  
 दशकोटिविना सेनां विभ्रन् न वरदपिता । तनस्ते राधमाः पद्भिर्निहन्तुः प्लवागां सुदुः ॥११४॥  
 वानरा राक्षसाश्चापि निहन्तुमन्द्रवर्गः । एव वभूव तदुद् तुमुन् दिनमपकम् ॥११५॥

मुन्कर राम बड़ विस्मित हुए । १०॥ नून लङ्कासे उन्हीन कहा 'क ससारम जितन राव है, उनक पास  
 दुन अजर बाध बलवा को । १०॥ लङ्कासे रामक आज, नुमार दुन बने। दुनोने बाध लौकर रामसे कहा-  
 हस लोभ सब राजाओंक पास है अथ । उनम कुछ राव तो आभी आभका पालन कर रहे है और कुछ  
 नहीं । ११॥ १००॥ इसका कारण यह है कि आभीका ओर गुप्तिक समयवक समय उनके हृदय को सोच  
 उपवा था, वह अब तक उपा रावों बना है । फिर पुन १०१ के उन्का हृदय बलव विदोष हो चुका  
 है । १०२॥ १०२॥ जब के मदनमुन्दरीकी उस अनयो मभाका राद करत हैं तो उनका पलेज टुकड़े-टुकड़े  
 हो जाता है । इन्ही कारणोसे वे आभी आभका पालन नही करना चाहत ॥ १०३॥ जिन मुखार बादि  
 नृपनिधान आभका आभका पालन किया है, वे अपन दम्बन समय नयोधा आ रहे है ॥ १०४॥ कून्पी  
 रात मुनकर रामचन्दने कहा—के नोन राव वनर हमार साथ ईर्ष्याभाव रखने हैं ? मन्तु, पहले  
 कुम्भकाके बड़ मूलकागुको बाकर जब कोरापर भी चढ़ाई करेगा । इस प्रकार निराद करके रामने  
 मुख दिन और मुद्रनम अपनी निगल सेवा तथा स्वमण करत आदि आताओंके साथ मूलकागुको माग्नेके  
 लिए आपोषदासे प्रमदान कर दिया १०५, १०६॥ पुर्गेके बाहर जाकर उन्हीन कुछ सेनाके साथ यूपकेतुकी  
 मयोन्नाकी रसाक लिए लौढ़ दिया और बाकी कुछ आदि सात सहकाको आने साथ से गये ।  
 रामने रात्राक समय सारी सेनको पुर्वाक विमानपर बिठा लिया ॥ १०७॥ १०८॥ रामने रावके  
 कून्पाको रज की अपनी अपनी सेनाके साथ बाकर रामसे मिल गये ॥ १०९॥ उन लोगोंकी भी  
 रामने विमानमे बिठा लिया । इस यात्रामें मुखर मठाहृषय चन्दरीके साथ बाय थे ॥ ११०॥ उनको भी  
 रामने पुन्यकपर बिठाल लिया । इसके अनन्तर सीताको हाडकर राम विमानपर बैठे । आकाशमार्गे  
 बनक सीताकी बेलुके हुए वे लङ्काकी ओर बढ़े और अल्प समयमें ही निर्दिष्ट स्थानपर पहुँच गये । उपर  
 जब मूलकागुने यह समाचार सुना ता रामचन्दके साथ मुख करनेके लिए दस करोड़ सेना लेकर लङ्काके  
 राहवाके घेरावध बा डठा ॥ १११ ११२॥ उस समय लङ्काके दरवाजे बहुत बड़े घमण्डमें था । फिर क्या  
 कहा जा, राक्षसगण वानरीको आहोहे मारने लगे । वानरमुखने कहावक बहुत-बड़े टुकरी दया पुनोसे

तत्र ये ये मृता युद्धे शनरास्त्रान्समाकृतिः । द्रोणावलं समनीय जीवयामास पूर्वम् ॥११६॥  
 दत्तः ता राक्षसा मुना चतुर्धाहायसेविता । तान्कष्टान् राक्षसेन्द्रः स दृष्ट्वा कोपयुतस्तदा ॥११७॥  
 मन्त्रिणश्रोदयामास तथा सनापनेन चक्रे । तानागतान् रणभुव रामदाराः सहस्रशः ॥११८॥  
 अनाभीभिर्हस्तपञ्चैर्भिन्दिपालमृगुण्डिभिः । पार्श्वैः पट्टिणैः शूलैः कुतैः सङ्घैर्विमर्दयन् ॥११९॥  
 तेष्वपि ताजैस्त्वमालैश्च हितालैश्च दृक्पन्नमैः । शूलैः शिलाभिः शराभिरागान् समर्दयन् रणे ॥१२०॥  
 पुनर्युद्धं भद्रचार्यानुमुक्तं रामहर्षणम् । मत्तमान् मन्त्रिणः सर्वान्पिता सनापतीन्पि ॥१२१॥  
 रामदाराः क्षणमेव चक्रुः सयमरागान् । तान् मवान्निहतान् भ्रूया कोपेन मृत्कामुरः ॥१२२॥  
 सप्त द्विपरवे कियन्वा किञ्चिद्वन्मन्युनो दयो नमागत नृपा दृष्ट्वा यद्युयाद्वि महस्रशः ॥१२३॥  
 वरपुः क्षुरजानश्च चक्रुर्दुर्भित्तिस्तनान् । तान्मवान् मधुमेन्द्रः स च ताः क्षुब्धं मूर्च्छितान् ॥१२४॥  
 तान् मूर्च्छितान् पान्दुरा पादुं तेन पुनर्धनुः । मुनयश्च मद्विग्नश्च राक्षसास्तथा चक्रे ॥१२५॥  
 तान्मवान्मुच्छिन्नं बाणश्चकार मृत्कामुरः । मृ आत्ममित्रिणो दृष्ट्वा कुपय्या बालका ययुः ॥१२६॥  
 ततो बभूव तुमुल युद्धं सङ्क्रमदपणम् । ननः क्रुशः स्वबाणोर्विलकापी मृत्कामुरम् ॥१२७॥  
 प्राप्तिपददुमभ्ये स पवण पुनरुन्निवः । ततोऽभिचामिक होमं स्वशस्त्रार्थमुनमम् ॥१२८॥  
 कर्तुं निवेद्य स गुहां दृष्ट्वा द्वापायनेकशः । ततो विभीषणः प्राह होमभूमि निर्गदय च ॥१२९॥  
 राघव कल्पवृक्षाघः समिधतं धेनुर्वहितम् । होमं क्रमोन्मयं दृष्टः प्रेषयन् कपीन्पुनः ॥१३०॥  
 होमे समाप्तंऽजेयः स मन्त्रिण्यति महामुनः । एतस्मिन्ननरे ब्रह्मा ययौ रामं सुर्ययुतः ॥१३१॥  
 नन्वा तं राघवश्चापि पूजयामास सादरम् । तदाऽऽह राघवं नम्रा वरस्वरमै मयाऽपिबिः ॥१३२॥

प्रहार करवा आरम्भ कर दिया । इस तरह मान चिन तक उन दोनों सेनाओंमें बसामान युद्ध होता रहा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ उस समयमम जा जो काल मरते थे वो हमारा वो द्रोणावल पंथवाले औषध लेकर उन्हें जीवित कर दिया करत थे ॥ ११६ ॥ मधुमे राज राक्षसोंका एक चौकाई सेना रङ्ग पथी गेय सब मार जाने पड़े । मृत्कामुरने जब देखा कि अब बाँधेम राक्षस अब रण गते हैं तो युद्ध हाकर अपने मन्त्रियों, सेनापद्यों और सेनाको भेजकर उसने बड़ा बरतताके साथ पन्नना लखवा । तबत अब रामदलक दोरीन दया कि राक्षसोंका और भी सेना आ गयी है और वे अपनी माणों, मजदारों, बालका आदिसे मेरी सेनाको मारकर हर किये इ रहे हैं तब वेभी ताल, लमल, द्विपाल आदि दूजे तथा पवनकी बड़ी बड़ी चट्टानोंको लेकर फिर नुपुल युद्ध करने लगे और थोड़ी ही देरप मन्त्रों, सेनापति तथा सेनाको समस्त पटुवा दिया ॥ ११७-१२१ ॥ जब मृत्कामुरने मना कि वह सेना भी ताक दो लगी तो मधुमे कोपके समसमा उठा और स्वयं एक दिव्य रथपर सवार हो तथा धर्म की भवा साथ लेकर लड़नेका बल पडे । रामके पणर्वर्णों राजाओंत जब उसे मरनेको तैयार पड़ा तो वे हजारों रात्रे भी परिकर औषध औषध गैदान्मे आ गये ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उन माणों दृष्ट्वाको घनघोर मज्जाके साथ उस राक्षसर राणवर्ण प्राप्त कर दो, नेकिट मृत्कामुरने क्षणभरमे उन सेनाको मुच्छित कर दिया । १२४ ॥ जब राजाओंका मुच्छित देखा तो रामनन्दका आजमे सम्म आदि मन्त्रों अपना-अपनी सेनाके साथ लड़नेके लिए आ उठे । मन्त्रों भी बेहाश हो गये तो वृष आदि वल्क जाकर लड़ने लग ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ वृष आदिके पहुँचतपर वही सीधप युद्ध हुआ । कुछ देर बाद कुशने अपने बाणोंसे मृत्कामुरका उठाकर फेंक दिया और वह मृत्कामु काजारम जा गिरा । किन्तु तुरन्त उठ खड़ा हुआ और उत्तम रथप तथा नय प्राप्त करनेकी इच्छासे एक काररम पुन पना, इ रथप कर दिया और वहाँ आभिचारिका क्रियाके अनुसार हुन आदि करने लगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ जब विभीषणने हुनके दुरीको देखा तो आहवाको मण्डलाय कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए रामचन्द्रके पास जाकर इस प्रकार कहने लगे—हे राम वह दुष्ट कन्दराम वृद्ध हुन कर रहा है, जनएव कि जानराके भेजिए । यदि नहीं हुन पणपन्न-हो गया तो फिर वह कितनेसे भी नहीं बाँता या सकेगा । इसी बीचमें बहुतसे देवताओंके साथ

यदा वीराज मे मृत्युर्भवत्विति पुरा मम । अनेन याचितं राम तपोन्तेऽङ्गीकृतं मया ॥१३३॥  
 अतोऽस्य पुरुषान्मृत्युर्न भविष्यति राघव । सीहस्तान्मरणं चास्य विद्धि त्वं रघुनन्दन ॥१३४॥  
 अन्यत् किञ्चित् प्रवक्ष्यामि काष्णं मरणेऽस्य हि । एकदा शोकयुक्तेन पुराऽनेन द्विजाग्रतः ॥१३५॥  
 सीताचंडीनिमित्तेन जानी मे हि कुलध्वजः । इति वन्निष्ठुर वाक्यमुक्तं तन्मुनिभिः श्रुतम् ॥१३६॥  
 तेष्वेकस्य मुनिः क्रोधाद्दी शप्यं हि राक्षसम् । या चंडीति त्वयोक्ता साऽर्थैव स्वां मारयिष्यति ॥१३७॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तं जघान स राक्षसः । तज्जीत्या मुनयः सर्वे तृष्णाभूतः स्थिता पुरा ॥१३८॥  
 तस्मात्तन्मुनिवाक्येन ममापि वरदानतः । सीताहस्तान्मृनिश्चास्य भविष्यति न संशयः ॥१३९॥  
 अतः सीतां समानीय तयैव जहि राक्षसम् । इत्युक्त्वा राममार्मय्यं पयौवेधा निजं पदम् ॥१४०॥  
 रामोऽपि ब्रह्मवचनं श्रुत्वा प्राह विभीषणम् । मूलकासुरहोमाय न कार्यं विघ्नमद्य हि ॥१४१॥  
 सीतायामत्र यातायां विघ्नं कार्यं प्लवंगमैः । इत्युक्त्वा गच्छं प्राह रामः पुष्पकमस्थितः ॥१४२॥  
 अयोध्यां गच्छ शीघ्रं त्वं वायुपुत्रेण मद्गिरा । नामवाक्यं वंदेहीं स्वपुष्टे तां निवेश्य च ॥१४३॥

समन्तस्तां दृष्ट्व्यः पथि गन्तुं मारुतिः ।

तथेति रामवचनमुरगीकृत्य सादरम् । तानुभौ राघवं नत्वाऽयोध्यां शीघ्रं प्रजग्मतुः ॥१४४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे

शतनारीवरप्रदानं मूलकासुराख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः । ४ ॥

## पञ्चमः सर्गः

( राम-सीताविरहः )

श्रीरामदास उवाच

अथ भूमिसुताऽयोध्यापुर्यां सा हृदि गच्छवम् । स्मरंस्वामीनद्विरहाद्व्याकुला नाप शं क्षणम् ॥ १ ॥

ब्रह्माजी वहाँ आ गये ॥ १२९-१२९ ॥ रामन उनको प्रणाम करके विचित्र पूजन किया । थोड़ा देर बाद ब्रह्मजी रामसे कहा-हे रघुनन्दन ! बहुत दिनोंका वात है । मूलकासुर घोर तपस्या कर रहा था । अन्तमे योगनेपर मैंने उसे यह वाक्यन दिया था कि तूमे किसी वीरके मारनेसे नहीं मरोगे ॥१३२॥१३३॥ अतएव पुरुषके हाथसे इसकी मृत्यु न होगी । यह किसी स्त्रीके हाथों मारा जा सकेगा । १३४ । एक कारण यह भी है कि एक बार लोकाकुल होकर मूलकासुरने एक ब्राह्मणमंचलीके समक्ष कहा था कि चंडी सीताके कारण ही मेरे कुलका नाश हुआ है । इस निष्ठुर बातको सुनकर एक ऋषिने उसको शाप दे दिया कि जिस सती-साध्वी सीताके लिए तू ऐसे अपमानजनक मन्त्रोंका प्रयोग कर रहा है, वही सीता तूझ भी शीघ्र ही मारेगी ॥ १३५-१३७ ॥ मुनिका शाप सुनकर मूलकासुरने उसे तुरन्त मार डाला । फिर उसके घरसे श्रेष्ठ ऋषि चुनचाप बंधे रह गये । मेरे कहनेका मतलब यह है कि उस ऋषिके शाप तथा मेरे वरदानसे सीताके हाथों ही इस अपमकी मृत्यु होगी । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १३८-१४० ॥ रामने ब्रह्माजी वाते सुनकर विभाषणस कहा कि आज मूलकासुरके यज्ञमें विघ्न डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । अब सीता यहाँ आ जायें, तब वाक्मरोको उसके यज्ञमे विघ्न डालनेकी आज्ञा दी जायगी । फिर राम गच्छसे कहने लगे-तुम जाओ और सीताका अपनी पीठपर बिठाकर यहाँ से जाओ ॥ १४१-१४३ ॥ चलते समय रास्तेमें हनुमानजी दृष्टसे उनको रक्षा करते रहेंगे । रामचन्द्रकी आज्ञाको सादर स्वीकार करके वे दोनों वहाँसे अयोध्याके लिए चल पड़े १४४ । इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्गं श्रीमदानन्दरामायणे ५० रामतेजपाण्डेयचरितसंज्ञोत्तनाभावादीकारहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा-उधर रामचन्द्रजीके चले जानेपर सीता अयोध्यामें श्रीरामका स्मरण करती हुई उनके बिलोपसे व्याकुल रहा करती थीं । क्षण भरके लिए भी उनके हृदयको चन नहीं मिलती थी ॥ १ ॥

प्रासादे सा कदा तस्यै कदा प्रासादमूर्धनि । कदा द्वाक्षामदपथः कदा सन्वस्तभूषणा ॥ २ ॥  
 कस्तूरीणां कदा नृत्यं दर्शं जनकान्मजा । कदा जयार्थं रामस्य कार्तवीर्यमपूजयन् ॥ ३ ॥  
 कदाऽऽकरोच्च तुलसीशिवस्थानान् प्रदक्षिणाः । मन्मथानि विप्रेभ्य पाठयमान जानकी ॥ ४ ॥  
 गोमयेनाजनेय सा कुड्यां कन्वाऽर्च्य जानकी । अकरोन्मन्यद् पुच्छवृद्धिं स्वांगुलिमावृतः ॥ ५ ॥  
 छतस्त्रीयसूक्तस्य जयार्थं राघवस्य सा । दुर्गायाः पूजनं निरूप्य भकार नियतव्रता ॥ ६ ॥  
 गणेशं मातुर्निष्कम्भं स्थण्डिले स्थाप्य प्रेमः । चक्रं दृष्ट्वा द्वागणिं गणेशं संचयन्जलम् । ७ ॥  
 कार्तवीर्यस्य यंत्राणि स्थापयामास जानकी । भक्तके राघवेन्द्रस्य पूजयामास मवदा ॥ ८ ॥  
 कदा सुमीभूषणा सा न्यक्तालङ्कारमण्डना । जलघ्रांतिके निद्रा नाप तद्विह्वलितना ॥ ९ ॥  
 कदा निरीक्ष्य प्रासादे काकमादं विदेहजा । यदि शीघ्रं राघवस्य दर्शनं मे भविष्यति ॥ १० ॥  
 तदि त्वं गच्छ वेगेन नो चेदत्र स्थितो भव । तन्मार्गं वचनं श्रुत्वा काकमूढस्य वेगनः ॥ ११ ॥  
 तेन किञ्चिन्मयाश्रिता वचनं ग्राह्य जानकी । शृणु त्वं राववाग्यानि मां स्पर्शं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥  
 कदा चंद्रं निशि ग्राह्यं स्वशृणु शान्तले । श्रीरामं मां शृणुस्याथ स्वकर्तुं मुखकारणैः ॥ १३ ॥  
 शुक्लपक्षे द्वितीयायां सीताऽलङ्कारमण्डिता । स्नान्वा प्रासादं शयनमर्वाभिः परिचरिता ॥ १४ ॥  
 अपश्यच्छाश्विनं हर्षादेनं रामोऽयं पश्यति । अन्तरेणाद्य रामस्य सुयोगो मां भवेदिति ॥ १५ ॥  
 रागे यते कदा सीता हविद्राक्जलदिकं । नान्मानं भूषयामास हविषन्वपिनं विना ॥ १६ ॥  
 खंदनं पुष्पमालाश्च पुष्पशय्यां विदेहजा । नांशीचक्रा श्रीरामचित्रहान्तलीहिता ॥ १७ ॥  
 शकुनान् सा ददर्शाथ श्रीरामदर्शनेच्छया । तुष्टाऽभूच्छकुनैः श्रुत्वा शीघ्रं रामममागमः ॥ १८ ॥

वे कभी अटारीपर कभी छतपर और कभी अंगुली की साहीब अपने बस्त्राभूषण उतारकर बैठो रहती थीं ॥ २ ॥ कभी वेद्यामंत्रोंके नृत्य देखकर जो बहलाना चाहता और कभी रामचन्द्रको निजदकामनाम कार्तवीर्य भगवान्का पूजन करती थी ॥ ३ ॥ तुम ही गणेश माविके वृक्षोंको प्रदक्षिणा करती थीं ब्राह्मणा द्वारा मन्थु-सूतका पाठ करवाती थी ॥ कभी पृथ्वीपर गोबरके हनुमानजीकी प्रतिमा बनकर पूजन करती और हर रोज एक भगुल उत्तकी पुच्छ बनाया करता थी ॥ ४ ॥ ५ ॥ रामचन्द्रकी जयके लिए ब्राह्मणा द्वारा ही ही का पाठ करवाती और दुर्गाजीकी पूजा करती थी ॥ ६ ॥ गणेश, मातुर्निष्कं शिव, हनुको जलम पिष्टकर करवाते बाद कर लेती ॥ फिर लिहकीसे उत्तपर जलधारा डाला करती थीं ॥ ७ ॥ रामचन्द्रजीके भक्तपर कार्तवीर्यके यंत्र स्थापित करके सदा सर्वदा उनका पूजन करती थी ॥ ८ ॥ कभी स्थण्डिलीय वेगो वेगो अपने अस्कारोंको फेंक देती और सखियाँ उन्हें जीतारके पास ले आकर मुलायकी बहा करतीं, फिर भी निद्रा नहीं आती थी ॥ ९ ॥ कभी अटारीपर बैठ हुए कोएकी देखकर सीता कहने लगती—‘यदि नृप गच्छ रासचन्द्रके दर्शन हुंनैवाति हो ता ऐ कोए । त अहंम उठ जा, नही तो बैठ’ सीताको मान नुनकर कोआ उठ जाता ॥ उससे सीताके हनुको बहुत कुछ दास देव खाया करता था ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके बाद सीता पवनसे कहती—‘हे पवन ! तुम वहुने रामचन्द्रका स्पर्श करके पुष्टं स्पर्श करो ही बडा उपकार हो’ ॥ १२ ॥ रात्रिके समय कभी-कभी चन्द्रमस विनय करती—हे चन्द्रदेव ! तुम अपनी टहो किरणोंसे रामचन्द्रके करीरका स्पर्श करके उन सुखवागिनो किरणोंको मरेर डालो ॥ १३ ॥ शुक्लपक्षकी द्वितीयाकी सीता विविध प्रकारके वस्त्र और आभूषणोंको पहनकर सखियोंके साथ प्रासादके ऊपर जाती और इस वादनासे चन्द्रदेवका दर्शन करती कि राम आज जहाँ कहीं भी होंगे, चन्द्रमाका दर्शन अवश्य करेंगे । ईश्वर चाहेगे हो जीऊ हो हमारा और उनका मित्र होगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ जबसे रामचन्द्रजी गये थे, तबसे उन्होंने अपने करीरमें न हन्दी लगायी, न आँखोंकाजल दिया और न किसी प्रकारके वस्त्राभूषण पहने ॥ १६ ॥ औररामचन्द्रके विरहानरुत पंडित सोलाने चन्दन, पुष्प, फूलोंका लताएँ, फूलकी लज्जा आदि कुछ भी वहीं मजूकीकर किया ॥ १७ ॥ रामके दर्शनोंकी इच्छासे ही सदा शकुन उड़ाया करती थीं । यदि

मवेदिति ससीयुक्ता ददौ सर्वान्पुष्पकराः । कदा पश्यदं सोता न यया शपथं विना ॥१९॥  
 नैका दस्यौ कारि सीता स्वाम्यने द्वर्तनं जहौ । न मिहान्न न नाम्बुज न शीतं केशवधनम् ॥२०॥  
 अंगीचकार श्रीगमश्मिहान्नलोदरा । मक्षपणं म नष्टेन गुरुरेणाकरोन्कदा ॥२१॥  
 माकरोन्सम्मितं वक्ष नोदराप्यऽन्नं ददौ मा । अन्याभिर्भोगैः नानूनं गुरुष्टमवन्कदा ॥२२॥  
 पर्यङ्के अयनं नीता नाकरोद्राश्वं दिना । गुरुं न ददशेन्यं शुभं विष्टयादम् ॥२३॥  
 न दधौ वसनं चित्रं न चित्रां कंचुकीं दधौ । न वप्यौ दान्द्वज मा देहन्पणभूमिषु ॥२४॥  
 न वप्यौ वरपुं स्नातुं यया नोपवनं वनम् । प्राहम न यया सीता न तथा पुष्पवार्तिकाम् ॥२५॥  
 न चकार स्वतो दूरे मागम्यानि विरेहजा । वक्ष्मि दित्रवर्त्मन्मनोत्थामास जानकी ॥२६॥  
 नियमानकरोन्नाना देवीनां च तथैव प्रथक् । निर्मथं जनधन्यं तथैव निम्नं विरेहजा ॥२७॥  
 चरकानां पदं मास्तमर्पयामि हनुमते । पण्डितां गणगजं प दास्यामि पूष्पान्वितान् ॥२८॥  
 मिहान्नेनापि नैवंय ते दास्यामि गणधिव । दमे न्यां बालदानं च दशशामि प्रमोद मे ॥२९॥  
 चण्डिके तां प्रदास्यामि रक्त जिह्वोद्वज न्वहम् । मृष्टवन्म मायमपुष्कं बलिद्विपममन्त्रितम् ॥३०॥  
 क्षीघ्रं रामो जपं प्राप्य शिशुभियांतु वै पुगम् । मंदवारं करिष्यामि वच नोपोषणान्वहम् ॥३१॥  
 नोपपोषयामि मधुरं नोपपोषयाम्यहं धृष्टम् । सायमेकं करिष्यामि जनान्येवं सविष्णुगान् ॥३२॥  
 कृष्णपक्षे तृतीयायां चतुर्थ्यां वा महेश्वरि । किञ्चिन्किञ्चिन्मामि मांमि तिलवृद्धिं निपाय च ॥३३॥  
 गुहेनाह तिलन्मोक्षये वाचस्त्र्यंशमदर्शनम् । भविष्यते कुशलैश्च लक्ष्मणार्थं च वपुमि ॥३४॥  
 मन्त्रं नवगर्भं च सखीभिश्च करोम्यहम् । एकस्मिन्नेव दिवसे नवभिः प्रमुदस्ये ॥३५॥

लव न मन्त्र उठ जाता हो बड़ा हर्ष हुआ था । वे समझता कि लव ही रामचन्द्रजीका दशन होगा । इसी क्षणीमें सखियोंको वे मिठाईयां बाँटना बी । जबकि राम पादश गये, तबसे वे किसाके घर नहीं गयी ॥ १८ ॥ १९ ॥ तभीसे सीता वही सखियों नही बैठकी, गजराये उबटन नहीं लगायी, चियाई नहीं खाती, नाम्बुज नहीं चढ़ती और अपने वेशवा भी नहीं मँगाती थी । जबसे राम गये, तबसे उन्होंने किसी वृक्षक साथ सम्भाषण नहीं किया ॥ २० ॥ २१ ॥ तथा किसीसे दुरवृत्तकर नहीं बाली, ऊपर बैठ उठाकर किसीको कोर नहीं निहारता, लकी किसी एकदने उठ नही दास दाया और कभी भी उलकी आगमाको चैन नहीं मिली ॥ २२ ॥ समस्त विद्वत् पंडित सौतान कभी गणपति भजन नहीं किया और विष्टये भीने पड हुए, अपने मुखमण्डलक शांति नहीं देया । न उन्होंने कथा रहूँ बिरहे करके रहने और न रहूँ बिरहो चाली ही घातन की । तबसे वे कथा दस्तारक चोखदवर नहीं पडा हुई ॥ २३ ॥ २४ ॥ लवून्म न करनेको नहीं गये और किसी वन या उपवनमें सीर करने नहीं गयी । किसी शीत तथा पुष्पवार्तिकामे भी नहीं गयी ॥ २५ ॥ तबसे उन्होंने कोई मांगलिक कार्य नहीं किया । अनेक प्रकारकी मन्त्र देदेकर उन्होंने साहसियोंको प्रमत्त किया और कितने ही लवके सब करक अनेक देवियोंको उन्नत की । इस तरह बहुतसे सतीके करके वे अपने उन मन्त्रियोंको विनार्त रहीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ सदा से लव मनीसी मानती थी—हे ईश्वर ! कोर भवन या यदि रामचन्द्रजी विजयी होकर अपने हाइयों और नाना ममेत नष्ट प्रमोदवा वापस आयेगा तो हुआ । वे बड़ा मनी भावा बनवाकर आपको पहनाऊंगा । मण्डपजी । आपको पूरी कोर लड़क्या भाग्य करे । अनेक प्रकारके पक्वान बनवाकर आपको समर्पण करेगा । हे लव ! मेरे ऊपर प्रसन्न होंगी । यदि राम लौट आएँ तो आपके लिए बलिदान कहेंगे । हे चण्डिके ! मैं आपको विविध प्रकारके रत्नदिहूँ अथवा तथा बलिद्विपके साथ अपनी जीभका रक्त चढ़ाऊँगी । लव मन्त्रधारका सत कहेंगी । एक मर्हने एक मिठाई और या न खाऊँगी ॥ २८-३२ ॥ हे महेश्वरी ! हनुवतको मुनीया तथा कंचुकीको दोदे पाड़े मुझ साथ लिये लाऊँगी । वह वत तब तक चलता रहेगा, जब तक मुझे लक्ष्मणारि आतामोके साथ श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन नहीं मिले ॥ ३३ ॥ हे चण्डिके ! यदि मुझे

रविवारे करिष्यामि रवेऽहं पूजनं तव । इत्थं दिने दिने सीता नियमानकरोचदा ॥३६॥  
 आश्वपौरर्घ्यदानं च कारयामास जानकी । न सा सुखाय रात्री तु दिवा वा वरचरिणी ॥३७॥  
 एव दिने दिने सीता श्रीगमविग्राहुरा । न क्षमाय क्वापि देशे श्रीगमापितमानसा ॥३८॥  
 एव सा उषिलाद्याश्च चणिकाद्यापि वै स्त्रियः । स्वस्वस्वामिब्रियोगाभिज्वलिना व्याकुलाः क्षणम् ॥३९॥  
 न सुप्तं क्वापि वै प्रापुः स्वकांतापितमानसाः । सर्वास्ता नृदुर्नारिणो मणिभूमीं पृथीरुभः ॥४०॥  
 काचिभर्तयति क्रीडामयूषं न मुदा तदा । शुक्रं न पाठयन्त्यन्या १७७२स्यं कुतूहलात् ॥४१॥  
 लालपेक्षकुलं नान्धा नालापयनि मानिकाम् । अपगाऽनीव मत्तमा नैव सेलति सारसैः ॥४२॥  
 मेजिरे न विलासं ता रेमिरे नैव मदिरे । मर्खाभिरुचिरे नालं वीणावाद्यं न शुभ्रतुः ॥४३॥  
 कल्पद्रुमप्रसूतं यद्रवतन्तुसुधोपमम् । मदारकुसुमामोदं न पपुर्मधुरं मधु ॥४४॥  
 योगिन्य एव ता श्रुधा नासाग्रन्यस्तलोचनाः । अलक्ष्यग्यानमधानाः स्वनस्यापितमानसाः ॥४५॥  
 चद्रकांतमणिच्छन्ने स्रग्द्वारिकणटवैः । क्षणं रातायने स्थित्वा जलपत्रेक्षणं कचिन् ॥४६॥  
 रचयन्ति क्षणं क्षय्या दीर्घिका मोचिनीदलैः । वीज्यमानाः मर्मीभिस्ताः क्षीतलैः कदलीदलैः ॥४७॥  
 इत्थं पुनसमां रात्रिं दिनं ता मेतिरे सदा । कथं विद्वान्णां कृत्वा विह्वलाः मन्त्रगाः स्थिताः ॥४८॥  
 एतस्मिन्नवरे सीता निगमैश्च वतादिभिः । ममानीनावाज्जनेश्वराऽडलीयतुः पुरीम् ४९॥  
 प्राक्पुरञ्च भृजो वामः सीताया नयनं तथा । सुचिह्नं मन्यमाना मा किंचित्पुष्टाऽभवत्तदा ॥५०॥  
 अप ती कं पनोद्भूतगह्वरी सदनि स्थितम् । अयोध्यायां वृषकेतुं वृषं कथयतो जवात् ॥५१॥  
 तच्छ्रुत्वा वृषकेतुः स हृत्त मीतां न्यवेदयत् । सा तु तुष्टमनाः सीता तस्मिन्नेव दिने शुभे ॥५२॥

सीता नेरे प्रभुका दर्शन मिल जाय तो मैं अपना सहलियोंके साथ मकरानका चत करेगी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे  
 मुरं भगवान् ! प्रत्येक रविवारको मैं आपका विधिवत् पूजन करूँगी । इस प्रकार रामके वियापवान् दिनोम  
 सीता प्रतिदिन अनेक प्रकारकी भोगी गाना करती थी ॥ ३६ ॥ वे वाद्यगाने अस्वंगन बजाती रहती थी ।  
 रात-दिन कभी नहीं सोती थी । इस तरह रामके वियोगसे दुःखिनी सीता कहीं भी सुख नहीं पाती थी  
 ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इसी तरह उषिला और चणिकादिक स्त्रियाँ भी अपने-अपने स्वामियोंके वियोगरूपी  
 जलिनसे दण्ड होकर व्याकुल रहती थी । वे समस्त स्त्रियाँ अपने महलोंकी मणिगयी भूमियोगर  
 लोट-लोटकर दिन काटती थीं । उन्हें समाजके किसी भी प्रेक्षण मानन्द नहीं मिलता था ॥ ३९ ॥ ४० ॥  
 उनमेंसे न कोई श्रीरामपर नचाती, न विजरेसे बैठे हुए तनका पहारी, न पाले हुए नेवलको प्यार करती,  
 न मैना पहाती और न कोई रंग सारसोंके साथ खेलवाड ही करती थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उन्होंने किसी सुलका  
 उपमान नहीं किया । महलमें उन्होंने आनन्द नहीं लिया । वे न अपने सहलियोंके साथ हँसी-दिल्लगी  
 करती थी, न वीणा वज्रानों और न मुनती थी ॥ ४३ ॥ कल्पवृक्षके पुष्पसे उत्पन्न कुसुमकी समृतसरीली  
 भुगन्धिका को उपयोग नहीं करती थीं । ४४ ॥ वे नाटिका योगियासे समान अपनी दृष्टि नासाग्रभागम  
 रोजकर रात-दिन अपने-अपने पतियोंका ध्यान किया करती थीं । उन्होंने अपना-अपना मन अपने-अपने  
 पतियोंकी वरपण कर दिया था ॥ ४५ ॥ वे अराखमें लगे हुए छन्दकार मणिके समीप, जिनमें सदा  
 रातके समय आलकी च रा बहा करती थी, वहाँ बैठकर कुछ देर खड़ीको निहार करती थी ॥ ४६ ॥ कभी  
 कमलके पलकी शय्यापर सोनी और हलियासे कनक पत्तिका पद्या झलवाती थी ॥ ४७ ॥ इस प्रकार एक-  
 एक रात्रिको पुनः समान मानकर बड़े सन्तपसे विह्वल हँकर क्षम्य बिताती थीं । जब सीता इतनी  
 कठिन यंत्रणा पाग रही थी, तब समय गरुड और हनुमानजी वहाँ आ पहुँचे । तबसा सीताको बायीं बाँध  
 तथा मुँहा फड़कने लगी । इस शुभ शकुन मानकर वे अपने मनमें कुछ प्रसन्न हुई ॥ ४८-५० ॥ थोड़ी देर बाद  
 गरुड और हनुमान्जी राजसभामें बैठे हुए वृषकेतुके पास पहुँच और उन्होंने रामका संदेश सुनाया । ५१ ॥  
 उसे सुनकर वृषकेतुने सीताको बतलाया और रामके आज्ञानुसार सीता उसी दिन कुछ वाद्यगाने, पुरोहितों

रामचन्द्रपादाङ्गुलिं गच्छन् वेगवत्तरम् अग्निहोत्रं पुराणस्य सन्निविष्टं पुणेधमा ॥५३॥  
 पतिं विनाऽग्निना नाग्नी मीमांसुस्तस्य न प्रजेन । मदीयाऽहं न विज्ञेयः मीमांसो विहायमा ॥५४॥  
 मये प्राप्ते प्रवामोऽपि क्षाणामुक्तोऽग्निनिधिः सह । पतिना गृहीतानां च न दोषः कथ्यतेऽत्र हि ॥५५॥  
 भूमिर्गर्भाक्षयार्थं न हेतुश्चरितं चरेत् । ननः स गृह्यायाम् माकृतिर्मा व्यसंतः ॥५६॥  
 पश्यतो विविधान् देशान् मीमांसकां ययौ मुदा । ददर्श कल्मषाधः पुण्यकस्थं रघूत्तमम् ॥५७॥  
 ननाम चित्ता संख्या माऽवच्छेदं स्वभाविषात् । तां दृष्ट्वा गघनः प्राह सोमे नैऽप्य ह्यनं कथम् ॥५८॥  
 विवर्णमभ्यष्टिप्ते कृशाश्च एतिलक्ष्यते । तटामवचनं श्रुत्वा जानकी सन्मिरानमा ॥५९॥  
 विलम्बती विनोदेन राघवं प्राह मादरम् । स्वाभिमुख्यद्विहादेतत्सर्वं त्वं विद्धि राघव ॥६०॥  
 न निद्रासि न आसि नाहनासि न निरास्यदम् । व्यासस्य हं केवलं त्वं योगिनोव वियोगिनी ॥६१॥  
 निद्रादविद्रनयना स्वप्नेऽपि न तवाननम् । आनदि सर्वथा यन्मे मंदभाष्या विलोकये ॥६२॥  
 स्वदाननश्च निनिधिं विविधं भूषणं । भूषणं । उद्दिनोऽपि न चालोकि तपं वै स्ववतुकायमा ॥६३॥  
 त्वदात्मपममात्म कल्पयन् किल काकलाम् । कोऽपि मयाऽऽकृणो नालङ्घ्योर्णकथंया ॥६४॥  
 नाना यथाश्च निवमा जयार्थं तव राघव । कुर्वन्मा मम वैवाभून्मुखां त्वद्विरहाग्निना ॥६५॥  
 ततो विहरस्य श्रीरामस्वामलिङ्गं पुनः पुनः । करार्थांस्तन्तुनोऽष्टपुः वर्षी चित्राचराभृतम् ॥६६॥  
 अथावशरिणे राघः स्नान्वा स्नातां विदेहनाम् । अश्वरिषां शस्त्ररिषामस्त्राहानविसर्जने ॥६८॥

तथा अग्निका साथ लेकर गहड़पर जा बैठी ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ यह एक नियम है कि स्त्री बिना अग्निके अपने  
 गर्वकी संभाको लीकर कहीं नहीं जाती । अग्निका साथ ने लेने यह दाय नहीं रहता ॥ ५४ ॥ दूसरे एक  
 जगह नागच यह भी बताया है कि यदि किसी प्रकारके स्त्रियोंका व्यवहार हो जाय तो अग्निको साथ लेकर  
 यह प्रवास भी कर सकता है । यदि उस समय यह वृत्तिसे विमुक्त हो तो उसको ऐसा कर्मपर कोई दाय नहीं  
 लाता ॥ ५५ ॥ सरस्वतीकविवागिनियो मया उल्लेखोंके चाहिए कि वे देवताओंका अनुकरण न कर । अन्तु,  
 स ना गहड़पर सवार हुई । हत्यारम सनाको रण करने लग्य और मउरा रास्तक अलक दशाकी देखनी हुई  
 मछुआकी करक लगी । इस प्रकार बहुत मोघ लड़ाई पढ़कर उन्होंने दया कि रामचन्द्रजी वहाँ करधाराक  
 नीच बैठे हुए हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ वहाँ पहुँचाने उतरकर उह । ५८-६० का प्रणाम किया । रामने कह्य-संत ।  
 मैं देखता हूँ कि तुम्हारा मुह कुम्हलया हुआ है और शरीर दुर्बल हो गया है । रामकी बात सुनकर मुम्कराली  
 हुई सोता लज्जाके साथ कहने लगी—हे स्वामिन् ! यह सब आपका विरहका प्रभाव है ॥ ६१-६२ ॥ मुझ ने  
 सोच काती है, न जाय हो पाती हूँ और न जासों पाती हूँ । आपसे विमुक्त होकर योगिनोके समान सदा  
 आपका ध्यान किया करता हूँ ॥ ६३ ॥ निद्राकी वृत्ति नहीं और स्थानम आपकी ही मुक्तिके रस्ता करती  
 है । उसीसे इनका आनन्द मिथ्या है ॥ ६४ ॥ आपके मुक्तका प्रतिनिधित्वरूप चन्द्रा की उदित होता है  
 ता मुझे अच्छा नहीं लगता, स्नानका दूर करनेका कामना भी उसकी बात निहारनेको मन नहीं करता  
 ॥ ६५ ॥ यद्यपि तुम्हारी ही बीबीका सख कोकिलको रोम होनी है, किन्तु वह भी मूनेको इच्छा नहीं होनी ।  
 उसकी बोल जानीको मूनेके समान लगती है ॥ ६६ ॥ यद्यपि तुम्हारे लज्जाके रूपके समान ही मधुर चूने  
 मीथसे मिली वायु भी है किन्तु उमका भी मैंने कभी आनितन नहीं किया ॥ ६७ ॥ आपकी निजके लिए मैं  
 विविध प्रकारके प्रता और उपशान्तिको करता रहूँ । आपकी विरहाभित्तिसे संतप्त होनेका कारण कभी मुझे  
 गुल नहीं मिला । ६८ ॥ इसके अन्तर हैमकर रामने बार-बार सोताको अपने छातीसे लगाया, स्नानम्पर्क  
 किया और होठोंको चुमा । ६९ ॥ इनके बार-बार होने दिव रामने स्नाय किया, सोताको भी स्नान करवाया  
 और सब अस्त्रविद्या शस्त्रविद्या एवं उनके आवाहन तथा विसर्जनकी रीति विस्मरली । कहनेका तात्पर्य यह कि  
 उन्होंने सोते ही समयव भीषाकी समस्त धनुस्दली निष्काश दी । रामका आज्ञासे लक्ष्मणने स्व तैयार

शिशुयामास सकला धनुर्विद्यां सविस्तराम् । रामाज्जवा लक्ष्मणोऽपि रथं सिद्धं चक्रार स' ॥ ६२ ॥  
 दारुकाः सारथिर्यस्मिन् ब्रह्माण्यस्त्रायन्नेकशः । गदायथं तु यत्रास्ति यत्रास्ति गरुडो ध्वजे ॥ ७० ॥  
 यामेभन् शैव्यश्च सुग्रीवस्तथा चैव बलाहकाः । मेघपुष्पश्च चत्वारो बाधुमास्तुग्गोचरा ॥ ७१ ॥  
 यत्र छत्रं चरं दिव्यं हेमदंडं विराजते । यस्मिन् शुक्ले धामने द्वे यस्मिन्कीलादिरुक्मज्जम् ७२ ॥  
 तं रथं रावयो दृष्ट्वा ज्ञानको वाक्यमब्रवीत् । सीते स्थित्वा स्यदनेऽस्मिन् जहि त्वं मूलकासुरम् ७३ ॥  
 तथेति रामवाक्याच्छ्रयां सीता प्रचोदयत् । माममी साऽपि तं नन्वा परिक्रम्य पुनः पुनः ॥ ७४ ॥  
 आरुगेहं रथं वेगाद्घोरा धर्धरनिःस्वना । ण्डस्मिन्ननरे रामप्रेरिता ज्ञानरोषयाः ॥ ७५ ॥  
 लक्षां गत्वा पूर्वश्वं हवनाच्च प्रचालयन् । ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रीराघवं पुनः ॥ ७६ ॥  
 ययौ स्थित्वा रथे योद्धुं कोपेन मूलकासुरः । मार्गे भुवि पपाताम्य मुकुटः स्खलितो भुवि ॥ ७७ ॥  
 आनिवर्त्यसुरो रणभुवं जवात् । सीताछायाऽपि सैन्येन ययौ मालक्षणादिभिः ॥ ७८ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकाण्डे पूर्वाध्याये सीताकिरहो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( रामके द्वारा राज्यका विभाजन )

श्रीरामदास उवाच

अथ छाया दण्डकुन्त्य शार्ङ्गं तन्त्रं महद्भुजः । ययौ रणभुवं वेगात्तां ददर्शसुरोऽपि नः ॥ १ ॥  
 कगलदंष्ट्रानयना विद्युत्पिशाचिरोरुहाम् । तालजघां शूर्पपादां दरिद्रकपां घनप्रभाम् ॥ २ ॥  
 लोमशां प्रललच्चिह्नां विदीर्णास्यां महच्छिराम् । तां दृष्ट्वा कौभङ्गिः स भीतः प्राह स्खलद्विरा ॥ ३ ॥  
 का त्वं समागताऽस्यश्च किमर्थं योद्धुमिच्छसि । मम सर्वं वदस्व त्वं मदमे मा स्थिरा भव ॥ ४ ॥

नित्या ॥ ६५ ॥ ६९ ॥ उस रथका दारुक सारथी था, विविध प्रकारके जन्त्र शस्त्र एवं गदा-यथ उसमें रखे थे और रथक ऊपर गरुडसं अंकित पताका फहरा रही थी ॥ ७० ॥ उसमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले चार घोड़े जुते हुए थे ॥ ७१ ॥ उसपर बड़िया छत्र लगा था और सुरणक दण्ड लगे दो सफेद चमर रखे थे । उस रथमें जगह-जगह सुवर्णको कंकड़ें लगी हुई थीं ॥ ७२ ॥ इस प्रकार इस सुसज्जित रथका देखकर रामने सीतासं कहा - सीता भव नुम इस रथपर बैठकर मूलकासुरका सारो ॥ ७३ ॥ सीताने रामकी बात बर्झाकार का और अपनी दामल छत्राकी प्रेरित किया । उस समय सीताछायापिणी सततान बार-बार रामकी प्रदक्षिणा की और धर्धर वाद करत हुए रथपर जा बैठी उसी समय रामके द्वारा प्रेरित वानर लक्ष्मण पहुंचे और उन्होंने मूलकासुरको हवनकर्मसं विचलित कर दिया । फिर लोटकर वे वानर रामके पास पहुंचे और सब समाचार सुनाया । ऊपर मूलकासुर बुझित होकर रथपर आ बैठा और संग्रामके लिए तैयार पड़ा । जात-जात रास्तेमें एक जगह उसका मुकुट माथसे खिसककर जमीनपर गिरा और वह स्वयं भी फिसलकर गिर पड़ा ॥ ७४-७७ ॥ फिर भी वह लौटा नहीं, उसी गवक साथ रणभूमिमें पहुंचा । इधर सीता भी रथपर बैठी और अपने लक्ष्मणादि वीर सैनिकों के साथ रणभूमिमें और चल पड़ी ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा-इसके अनन्तर उस छायापिणी सीताने अपने घनुषका विकराल टंकीर किया और संग्रामभूमिमें जा डटी । तब मूलकासुरने भी उन्हें देखा । १ ॥ उस समय सीताके वड़े बड़े दांत, बराबरी कीर्ति, विजयके समान पोतवणक केशपाश, तालकी नाई लम्बी चौड़ी जाड़े, सुपकी तरह चौड़े पैर, कन्दराके समान भयावना तथा मयक समान काला मुँह, लम्ब्याकी जंघा और बड़ा भारी माया था । उन्हें देखकर कृष्णकर्णके बटने घबराकर कहा-॥ २ ॥ ३ ॥ तुम कौन हो ? यहाँ बुद्ध करकेके लिये क्यों आयी हो ? इन बातोंका



यदि जावितुमिच्छासि न भयम् । अथ तदा तदा विमानं गृह्णामि ॥ ५ ॥  
 तमुवाच तदा छाया गिरा निर्देहनी गिरात् । मूलकापुराणां योनां योनां च ॥ ६ ॥  
 यन्मिमिक्षां नृजं महं तदा तदा प्रविष्टा । मन्त्रपात्रिणं विदुः पूर्वं नृजं दानमि ॥ ७ ॥  
 तस्यानुष्ठानं गमिष्यामि नृजं हन्वाप्य गन्तव्यम् । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ ८ ॥  
 ततः मोक्षं विदुः तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ ९ ॥  
 ददुर्वाचनः सर्वं पुष्पकान्तमास्थितः । मानसां गन्तव्यं कल्पवृक्षतले स्थितः ॥ १० ॥  
 हृष्यमाणिक्यपथके दामोमिः परिर्वजितः । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ ११ ॥  
 युद्धं ददुर्वाचनं तन्महापुत्रकान्तमास्थितः । मूलकापुराणां योनां योनां च ॥ १२ ॥  
 छित्त्वा स्ववाणजालं स्नानं पुनर्वाणान्मुमुक्षुः सा । चतुर्भिस्तुमान् हन्वा युद्धं कुरु च धनुः ॥ १३ ॥  
 मा विमोद विभिर्वाणैस्तदा यद्गतां महानुरः । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १४ ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १५ ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १६ ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १७ ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १८ ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १९ ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ २० ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ २१ ॥

उत्तर दो ओर यदि तुम्हें मरने का प्रिय हो तो मरे अथवा न मरे । जिसका लक्षणक लिए मूलका  
 पुस्तक नहीं है । यही हा दर बाद सीता आकाशम गमक साथ विमानपर बैठे हुई दिखायी पड़ी ॥ ४ ॥ ५ ॥  
 वही हंस अपना मनोहार वाणीय पवनका भा मयता हुई सीता कहने लगी । ह मूलकापुर । इस समय  
 उस रूप कारण रिय से चण्डिका रागा है । तमक करण तुम्हारा साथ तुम्हें नष्ट हो गया था और तम  
 हंस ही गया था, वही सीता मे है । तमने मर पक्षान्त । तम हंसका मर डाला है ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसने बरस  
 आग तुम्हें मारकर मे उलक आग में डाल दिया । इनका बहक म तान अपना मनुष्य उठाया और तमने  
 राव बाणों से मूलकापुर पर प्रहार किया ॥ ८ ॥ तमने अनन्तर उस दायन भा अपना धनुष बहालकर सावाक  
 ऊपर कई बाण चलाये । उन दायन उस तुम्हें युद्धका दायनक लिए मे बहुतन राज तथा मानर पुष्पक  
 विमानपर बैठे थे जिसका हनुमन्त ने सदावनी वृत्ति जीवित कर दिया था ॥ ९ ॥ १० ॥ हा दर बाद मानरीय  
 दत्ता त्रि राव हाताके साथ मे अनुष्ठान छायामे स्वर्णनटन नाचनपर बैठे ॥ १० ॥ बहिर्वा पला सल रही  
 है और उनका बाणपथ तकिरा लगी हुई है ॥ ११ ॥ रामचन्द्रना वृत्ति वन्दन छायामे सावा तथा  
 मूलकापुरका युद्ध दायन रहे । सीता मूलकापुरका औरसे बाय बाणों की श्रमगत साथ काटकाटकर अपने  
 दायका उसका ऊपर छाना जा रही । चार बाणों में सातान मूलकापुरक दायन तुम्हें पड़ी और तमने उसका  
 बाणका मुकुट, धनुष तथा कवच काट डाला ॥ १२ ॥ १३ ॥ ऐसी अवस्थामे वह वैद्य दीडता हुआ गया और एक  
 दूसरे रूपपर सवार हुंकर फिर सीतामे युद्ध करनेक लिए भा डटा ॥ १४ ॥ वही पदुवन ही उसने सीतापर  
 बह्मपथ छोड़ा । तमने मेधात्मका प्रयोग करके उसके बह्मपथका बलि कर दिया ॥ १५ ॥ फिर उसने सीता  
 पर पर्वताव छोड़ा । सीताने पर्वताव छोड़कर उसका निवारण किया । इसके अनन्तर वेणु सार उसने  
 तमने कलापा । सीताने मरुताव छ डकर उसे बर्ध कर दिया । १६ ॥ १७ ॥ इस प्रकार सीता और  
 मूलकापुरमे सात दिन अव्यन्त महान् युद्ध होता रहा । तमने कुचिठ हाकर सातान मूलकापुरका बाण करनेके  
 लिए अपना एक महान् बरस बलाया । जिससे पुष्पा दायनगत लगी और कुरुद अपनी मर्दाका काविकट  
 बर्धनी लहरे उछालने लगी ॥ १८ ॥ १९ ॥ इसी दिशाएं धूमके बलाव हो गयी और तम बर्धनीकवाणिगी

निनेदुर्द्वयाधानि देवाद्याकाशमाश्रिताः । वषट्तेः कुमुदछायां गमनीनां मुहुमुहुः ॥ २२ ॥  
 ततो निवर्त्य सा छाया ययी मीनान्कि पुनः । नन्वा गम च दीनां च सातादहं लयं यया ॥ २३ ॥  
 तदा निनेदुर्द्वयाधानि ननुतुश्चाप्सरोमयाः । तुष्टुमुममिव यश्च जगुमीव नटादयः ॥ २४ ॥  
 ततः सुगमैः सर्वैश्चैषाः आगमयं ययी । नन्वा गम च मीनां च तुष्टुम जनकीं मुदा ॥ २५ ॥

बह्विनाच

वनकवाग्मजे गणवप्रिये जनकभारगुरे भक्तपालिके ।  
 दशगन्धान्मजप्राणजह्नुमे तव पदाधुजातिः शिरोऽस्तु मे ॥ २६ ॥  
 मूलकामुग्धातिनि गमरञ्जिते रमसेचिते ।  
 राममोहनि स्वदनाश्रिते स्वल्पदाधुजातिः शिरोऽस्तु मे ॥ २७ ॥  
 गममञ्जकाभिष्टिते रमे रामरञ्जिते गमलालिते ।  
 गममंस्तुते गमरञ्जिते स्वल्पदाधुजातिः शिरोऽस्तु मे ॥ २८ ॥  
 लोकपावनि शोरने वरे भूमिकन्दके लाकपालिके ।  
 पयलोचने धरात्मजे परे स्वल्पदाधुजातिः शिरोऽस्तु मे ॥ २९ ॥  
 कंजलोचने नागगमिनि स्वयम्भूषणे रम्यरूपिणि ।  
 रुक्मभूषिते मौक्तिकशक्तिने स्वल्पदाधुजातिः शिरोऽस्तु मे ॥ ३० ॥  
 तत्पुद्गलने विश्रवामिनि नमवमि सर्वदा स्वयमेवकान् ।  
 मुनिविभूतं सदा दुःखदायिके स्वल्पदाधुजातिः शिरोऽस्तु मे ॥ ३१ ॥

सीताके उस महान् अश्वत्थ बातकी जगत् मूलकामुग्धा मुहूर्तकी आरम्भ करने कर दिया ॥ २० ॥ उसका पद  
 रवाने राजद्वारपर जा गिरा । हम सबके लक्ष्मी के हेतु । प्रणाम कर गया ॥ २१ ॥  
 तब देवताओं ने प्रसन्न होकर अपनी दुःसुखी बजरी जगत्-मात्रा विभूत की प्रणाम के आह्वान से आगे और  
 राम तथा सीतापर उन्हीने मुष्टिमुष्टि की ॥ २२ ॥ हम सब साक्षात् प्राणजह्नुमस्तु शिरोऽस्तु गमके समीप  
 मुहूर्तकी । वहाँ वह राम तथा सीताकी सीताकी प्रणाम करके उन्हीने स्वल्पदाधुजाति की गया ॥ २३ ॥ उस  
 समय फिर देवताओं ने अपने मण्डपाद्य शत्रुये ओर आश्रितों ने चरणों । मन्त्र कर्तव्यवादिकोंने सीता-  
 की स्तुति की और नटान उनका यज्ञागत किया ॥ २४ ॥ बादा दन दन बहती महान् दक्षिणोक्त साथ  
 रामचन्द्रके पास पहुँच और उनका नवा मीनाका प्रणाम करके हम सब रम्यरूपिण जगत्-मात्रा कहने कहा-हे  
 वनकात्मजे ! हे सुवर्णहस्त दमकनेवालो भद्रमूर्ध्निधारी ! सत्तु हे गमरञ्जिते ! हे भोक्ता पालन करनेवाली  
 माँ ! हे रामचन्द्रकी प्रियसा ! हम ऐसा आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलकी ओर  
 बना रहे ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे मूलकामुग्धातिनि ! हे रामरञ्जिते ! हे रामचित्ते ! हे रामकी दुग्ध कन्देवाला ।  
 हे रथपर आरुढ़ होकर दुष्टोंका दण्ड कर देनेवाली सत्तु ! हम आज्ञा दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे  
 चरणकमलकी ओर बना रहे ॥ २७ ॥ हे गमक साथ दिव्य निहाननपर बैठनवाला ! हे लक्ष्मी ! हे राम-  
 चोचिते ! हे रामलालिते ! हे राममंस्तुते ! हे रामरञ्जिते ! हे रामरञ्जिते ! हे रामरञ्जिते ! हे रामरञ्जिते ! हे रामरञ्जिते !  
 तुम्हारे चरणकमलकी ओर बना रहे ॥ २८ ॥ हे लोकपावनि ! हे श्री ! हे भजे ! हे वरे ! हे भूमिकन्दके !  
 हे लोकपालिके ! हे पयलोचने ! हे धरात्मजे सीते ! हम आज्ञा दो कि हमारा मस्तक सर्वदा  
 तुम्हारे चरणकमलकी ओर बना रहे ॥ २९ ॥ हे कंजलोचने ! हे नागगमिनि ! हे स्वयम्भूषणे ! हे  
 रम्यरूपिणि ! हे रुक्मभूषिते ! हे मौक्तिकशक्तिने सत्ते ! हम आज्ञा दो कि हमारा मस्तक  
 सर्वदा तुम्हारे चरणोंकी ओर बना रहे ॥ ३० ॥ हे कमल सराव मुखवाली सीते ! हे विनयसने  
 तुम सब अपने मस्तकी रक्षा करती हो । ऋषियोंको दुःख देनेवाले राजाओंको दुःख देनेवाली  
 हे सीते ! तुम ऐसा कुछ करो कि जिससे हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलकी ओर बना रहे ॥ ३१ ॥

न्वन्मुक्षेक्षणाद्वक्ष्यन् पतिः प्राप मक्ष्य गमसन्निधे ।  
 न्वन्मुक्षेक्षणाद्वक्ष्यन् पतिः प्राप मक्ष्य गमसन्निधे ॥३२॥  
 कुशलमिति जलकृष्टानने जलकृष्टानने पापदाहिके ।  
 मधुसूतसुधने नृपुष्टने न्वन्पद वृत्तलिः क्षिणोऽस्तु मे ॥३३॥  
 प्रणम्यन्ते ते विभक्ताने तेऽध्वः शुभो विंशतिभिः ।  
 अथ वै न्वन्पद वृत्तलिः क्षिणोऽस्तु मे ॥३४॥  
 प्रणम्यन्ते ते विभक्ताने तेऽध्वः शुभो विंशतिभिः ।  
 सर्वत्रातिं लभन्ति मेऽत्र नास्ति न्वन्पद वृत्तलिः ॥३५॥

इति स्तुत्याऽर्पयन्त्या वस्त्ररुक्मण्डनैः । र्मन्तां राम च मरूज्य गणधेनापि पूजितः ॥३६॥  
 प्रययौ रामममन्द सन्त्यक्त क जगोरमद् । ततो विर्भाषय प्राह लक्ष्म्यां न स्वया पुनः ॥३७॥  
 ममामरमिदानीं त्व मां कृतं प्रीतिं प्रीतिं । नयेते प्रतिक्रियाय तदाय च मृत्युन्दनः ॥३८॥  
 विमानेन ययौ लंकांमध्ये मित्रं प्राप । ततो विर्भाषण शब्दे लक्ष्म्यां स्वश्रेष्ठयतु ॥३९॥  
 तदा महोत्सवस्यार्थान्तरात् । तदा मरूज्य गणधेनापि पूजितः । ततो विर्भाषणो राम र्मन्तां तद्विभवादिभ्यः । ४०॥  
 दक्षैरामाणी रत्नैः पूजयाम स गदर । तदाय च मरूज्य र्मन्तां रामाय रामः ॥४१॥  
 तदा कपिलवाराहमूर्तिः राम पूजितम् । रामन्तां रोचदन्तान् रोडपि रामाय तां ददौ ॥४२॥  
 मनसा कपिलेनैव पुनः मर्दिमान्तिव । विष्कालं तदागम्य लब्ध्वा ययनना तु या ॥४३॥

हैं हमसाथिये तुम्ह देखते = ॥ ३१ ॥ राधा शशाङ्क कलकल कर कहत हो गयी । तुम्हारी आँखोंकी गोभा देखकर  
मृगी लालित हो जाती है । इस प्रकार पदरत्न कावच को देखीन । हम तुम्हें आशावाद दो कि हमारा मस्तक  
महा तुम्हारे चरणकमलका प्रसरण रहे ॥ ३२ ॥ हे तुम्हें लवणों माला । हे कमलके समान मुखवाली ।  
हे कमलके समान आँखोंवाली । हे तुम्हें का लज्ज करनशाला । हे मँडे स्वरवाली ! हे तूपुर सहा मधुर स्वर-  
वाली सीधे ! हमें आशावाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका घोंसला बना रहे ॥ ३३ ॥ हे  
मुकुटाह्वर मरे मुखवाली सते । तुम्हारे नाभिक बदन मन्दिर है । विष्णुलोकके समान तुम्हारे लाल ओष्ठ  
हैं । आज तुमने संग्रामभूमिमें मृतक : का मार डाला । इसमें मलाशोक उद्धर हो गया ॥ ३४ ॥ श्रीरामदासने  
कहा या प्राणिकालके समान भोजन । तुम्हें तुम्हें सब मय इन नीचोंको पाठ करता है, उसकी समस्त  
कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्य समयमें उस कामन्दजीक मनाप रवाना हो जाता है ॥ ३५ ॥ इस तरह  
सद्गुरु स्तुति के एक विविध प्रकारके लक्षणोंपर राम और सीताको पूजा की । रामने भी कृष्णजीके विधि-  
बन्ध पूजन किया ॥ ३६ ॥ तत्पश्चात् रामने आज्ञा पाकर समस्त दशनाम के साथ प्रह्लाद अपने लोकको लौट  
गये । तब विभीषणने भगवान्से प्रार्थना की कि पहले वह सब लक्षणों मारनके लिए लंकामें आये थे तो  
पिताको आज्ञा न मानकर काष्ण आनन माँघ प्रवेग रही किया था ॥ ३७ ॥ किन्तु अबकी बार आप मेरे घर  
पधारकर पुत्र कृतार्थ के जिह । रामने वह प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपने पुत्रके विमानपर बैठकर  
लंकामें रूपते मित्र विभीषणके भवनमें पधार । वहाँ पहुँचकर रामने विभीषणका अभिषेक करके लंकाके  
राजमहिषसनपर बिडाला । उस नगर लंकामें उड़ा कुम्हर बनवाया गया । इसके बाद विभीषणने राम, सीता  
तथा लक्ष्मणादिका विविध रत्नों और कन्याभूषणोंमें मन्कार किया । तत्पश्चात् उन्होंने अपना सारी सन्धति  
रामको अर्पण कर दी ॥ ३८-४१ ॥ उस समय विभीषणको सारी सम्पत्तिमेसे रामको कपिलवासाहुकी मूर्ति  
बखशी गयी । जिसका पूजा रावण स्वयं करता था । विभीषणने रामको वह मूर्ति दे दी ॥ ४२ ॥  
उस मूर्तिके विधिवत ऐसा पुजा माना है कि कपिल भगवान् जानते मन्त्रज्ञानसे उस मूर्तिको रचना की  
थी । बहुत जितने तक कपिल मुनिने स्वयं उसको पूजा की । इसके बाद वह इसके हाथ स्थ गयी ।

तं लिख्य रावणेनैव प्रमाणीता निर्जा पूर्णम् । यां सदा पूजयाम लकार्या रावणधिरम् ॥४४॥  
 विभीषणेन सा दत्ता राक्षसाय दुपन्मयी । तां मुनि स्थापयामास विमाने रघुनन्दन ॥४५॥  
 ततः र्मलाऽथ रामेण देवैर्वर्लकैर्देवा उल्लेख निष्ठा मन्त्रा शिक्षावृक्षमुत्तमम् ॥४६॥  
 दर्शयामास रामाय यत्र पूर्वं स्थिता स्वयम् । ततो वामकरेणैव रामस्य हि कानिष्ठिकाम् ॥४७॥  
 घृत्वा दक्षिणहस्तस्य पीता वक्षसं नडमम् । स्तनाभ्यङ्गदकं पूर्वं यत्र यत्र हृदं धत्ते ॥४८॥  
 रामं नीत्वा तत्र तत्र दर्शयामास जानकी । ततश्चां त्रिजटां नीत्वा प्रश्नैर्गमरणादिभिः ॥४९॥  
 कुम्भादतिमुष्टां रामाग्रे मातां वक्ष्यमसीत् रमणः रक्षिता पूर्वं गक्षसीग्रहर्भतिनः ॥५०॥  
 मनुज्या सावर्नीयेय सर्वदा रामे न्वरा । इत्युक्त्वा मरमाह्वने त्रिजटाकरमर्पयत् ॥५१॥  
 ततो वामस्थलमौता यथा रामेण सा कृतैः । तत्र निक्षिप्त्वादीनि दृष्ट्वा नामास्थलानि हि ॥५२॥  
 पुष्पकस्थो यथा रामो विभीषणममन्त्रितः । निष्पत्त्य याचय लकार्या मन्त्रयेशयत् ॥५३॥  
 रामः करे धनुर्धत्वा लकार्यां पणिस्तदा प्रक्षिपेत्तमं देवाङ्गमयाम्भाम सुन्दरम् ॥५४॥  
 ततो विभीषणं प्राह वचनं रघुनन्दन । राक्षसेष्टम । चाप रक्षार्थं भ्रातृन् तत्र ॥५५॥  
 ततो रामो विमानेन यथा शूद्र निहारमा । विभीषणं च रक्षार्थं तस्यैवानुमतेन च ॥५६॥  
 मन्त्रापरैस्ताऽप्यन्वेष्टां दूत्योर्भीर्भी मन्त्रिष्यति । अमुं यथा यथा दत्तं नदं मुद्राण विभीषण ॥५७॥  
 मम नाम्नाकितं तीक्ष्णं तत्र प्रणाम्य रक्षाम् । नक्षत्राणां क्षणहन्ता देवैर्वा धर्षयिष्यति ॥५८॥  
 मुद्राणहस्तं त्वां कश्चिच्च विपुर्वेद्यिष्यति । इत्युक्त्वा तं तदौ राण विभीषणकरे प्रभुः ॥५९॥  
 प्रणमाम मुद्रां रामं बाणदम्भो विभीषणः । ततो रामो विमानेन पश्यत् देशान मरौरमान् ॥६०॥

जब रावणने इन्द्रो सगम करके उक्त वरार्जन किया । तब रावण उस मुनिको इन्द्रसे छीन लाया और बहुत समय तक उसका पूजन करता रहा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ आज उसे ही विभाषणने रामको सर्वण कर दिया । रामरथ पर प्रसन्न उसे अपने पुष्पक विमानपर रखवा ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् अपने पति रामको एवमणात्रि दत्तों तथा उक्त अदि वस्तुओं साथ सदा तम शिखरा वृक्षके नीचे पहुँचो, जहाँ रावणक हर ले जानेपर बहुत दिन तक रह चुका था । तब मुनिकर मोचने वनस्थाय कि यह चही स्थान है । अहाँ आपसे विमुक्त होकर मैं बहुत दिनों तक यही स्थान पर आस्तित्व राखकर रहित हुआकी उँगली पकड़कर सीता अणिकवाटिकामे इधर उधर घूमती हुई उन स्थानीको देखने लगी, जहाँ स्नानादि कृत्य करते थी । यवती धृवती साता विजटाव स्नानपर पहुँची और विनय प्रकारक मन्त्राभरणोंने त्रिजटाका सत्कार किया ॥ ४६-४९ ॥ उक्त त्रिजटा प्रसन्न हो मरौ त्रा विभीषणकरे मंत्रों सगम सताने कहा—जिस समय राक्षसियाँ अपना भगानक मुद्र विमान पर मुझे ररानी लोकार्थी थी । तब यह त्रिजटा हो मेरी रक्षा करती थी । हे सरमे मैं तुमसे विनयपूर्वक कहती हूँ कि सर्वथा तुम मेरी सन्तुष्ट इसका सम्मान करना । इतना कहकर सीताने त्रिजटाका हाथ राम के हाथोंन पकड़ दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इस तरह घुम-फिरकर राम संभ्रातृ साथ डेरेपर पहुँचे और लकार्या मन्त्रीको राजश्री देखमान करके निम्न छोटकर विभीषणको अपने साथ लिये हुए ही प्रयोध्याको प्रन्थान कर दिया । अन्त में विभीषणके प्रार्थना करनेपर रामने उसकी रक्षाके लिए अपना वनुष लठकर बड़े दण्डके साथ लकार्याके चारों ओर घुमाया और इस प्रकार करने लगे हे राक्षसेष्ट । मेरे तुम्हारी रक्षाके लिये यह वनुष घुमाया है । मेरे चतुर्वी यह देव शत्रुके लिए दुस्तर होगी । तुम्हें यह बाण भी दे रहा हूँ इसे सहज करो ॥ ५२-५३ ॥ इसमें मेरा नाम लिख हुआ है । यह मुद्रा तुम्हारे प्राणोंका रक्षक होगा । एक बात और भी है । यह यह कि तुम इस बाणको लिय हुए मेरे वनुषको इस रेखाको लांघोगे तो तुम्हें यह कोई कष्ट नहीं पहुँचावगी ॥ ५४ ॥ मेरा बाण जब लिये रहोगे, उस समय कोई शत्रु भी तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करेगा । इतना कहकर रामने अपना बाण विभीषणको दे दिया ॥ ५५ ॥ बाणको हाथोंमे लेकर विभीषणन रामको प्रणाम किया । इसके अनन्तर राम पुष्पक विमानपर

पूजितो दानमानैश्च नृपैः स्वतर्गि यवी । नदा निनेदुःखानि ननुतुश्चाप्यसौगन्धाः ॥६१॥  
 मन्वृजगाम श्रीरावं दूषकेतुः सन्ध्याम् । प्राचादशिक्षगच्छाः पौरनाथैः सहस्रशः ॥६२॥  
 सातो राम निरीक्ष्यश्च वरपुः पुष्पवृष्टिभिः वना विवेश श्रीगमः । यथा नं पार्थिवैः सह ॥६३॥  
 विवेश स्त्रीयगैर्ह मा आनकी तुष्टमानना । गेहे कापलवजहर्मान रामो न्यवशुपद् ॥६४॥  
 एकदा राघवस्तुष्टः अनुत्थाय हि तां दरी संताडयिष्यत् । सन्ध्यां स्वर्मांश्च नियमारिकान् ॥६५॥  
 मङ्गल्ययामास सर्वोन्मांश्चकार यथायेधि । उवाच न्ययनेकानि सर्वेषां माऽकरोन्मुदा ॥६६॥  
 एकदा मुनयः सर्वे यमुनातीरवासिनः । आजगम् राघव दृष्टुं भयाक्षुण्णक्षयः ॥६७॥  
 कृत्वाऽग्रे तु मुनिश्रेष्ठ भार्गवैः स्वयत्नं द्विजा । अमर्यादाः सशिष्यास्ते रामादभयकांक्षिणः ॥६८॥  
 तान् पूजयिन्वा परया भक्त्या स्तुतुं कुडाद्रहः । उवाच मधुः वचनं हपेयन् मुनिमण्डलम् ॥६९॥  
 करवाणि मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् । धन्याऽस्मि यदि पूष मां प्रीत्य दृष्टमिदमगताम् ॥७०॥  
 मुदुष्कर वा यन्कार्यं भवतां तत्करोम्यहम् । मन्त्रायन्त मां अन्य ज्ञायणां दर्शनं हि मे ॥७१॥  
 तत्तु त्वा मरमा दृष्टव्यमनो वचयममर्षिन् । मधुना मां महादेव्यः पुनः राम कृते पुनः ॥७२॥  
 आमादनीय धर्मान्मा देवत्राक्षणपूजकः । तस्मै तु मे महादेवो दत्तो गन्तव्यनुचमम् ॥७३॥  
 तं प्राहानेन यं हपि म तु भर्माभविष्यति । गच्छन्मनुना तस्मै भार्गवो कुर्यान्नमी स्मृता ॥७४॥  
 तस्मां तु लवणो नाम गन्धर्वा भ्याम्विक्रमः । प्राहोदृष्टव्यं दूर्ध्वगो देव्यश्चण्डिसक ॥७५॥  
 मधुः स तव हस्तेन मृतः पूष यत्नस्तदा । मधुगता नामाऽभ्यन्तं पुनस्तदनुचम ॥७६॥  
 पण्डितः लवणेनाद्य वचं त्वां शरणं गताः । तत्तु त्वा गन्धर्वोऽप्यह मा भार्गवो मुनिपूजकः ॥७७॥

बैठे और अनेक देवोंको देखने हुए अशोकगङ्गाको चले पड़े ॥ ६७ ॥ राम तथा उनके साथीसब भट्टाहा रीकार करने हुए व अरुनी नगरमें पहुँचे । रामके वहाँ पहुँचनेपर नामा प्रकारके अनेक देव और जन्मजात नानी ॥ ६९ ॥ पुष्पकेतु बहुतसे लागोंको साथ मिले हुए रामकी भगवता का करने पड़े । अमर्यादतिशक्तिमा मरियोन कोटेश्वर सदकर माता और रामका दर्शन कर करके उनपर पुनः सी कृति की । तब बाद राम अनेक महिमाशोक साथ अपने समाधवनमें गये । सातो अपने महलामें चली गयी । बादमें रामचन्द्रजी ने वहाँ गिरिलवारान्ध भक्तिसे स्थापना की ॥ ६२-६४ ॥ एक दिन रामचन्द्रजीने अमर्य हाकर बहुत भक्ति करवाकर देव । संगत रामने विष्णुकमलम जिन वती और निरमाका मनीषा माता से, रामका वने विविध विध ने ममेन सम्पन्न करके उनका उद्यापन भी पत्रके साथ किया ॥ ६५ ॥ एक दिन उनको तटपर गन्धर्वान सब करि लवणापूर नामक रामममे अरुमल हाकर रामके पास आये ॥ ६६ ॥ तब नामा भगव चरन चरित्त अत्यन्त अत्यन्त यत्ना और ह्वारोष प्रदिक सम्पन्न एकत्रिन हाकर रामके पास जा पहुँचे ॥ ६८ ॥ रामने उन नामाका विवेचन पूजित किया और उनका प्रमत्त करने हुए इस प्रकार करने लगे— ॥ ७० ॥ मुनिगण आग गग शिष्य भार्गव मेरे पास आये है । आपकी जा आज है, उस पूजा यत्न करने से नाना है । मैं अत्यन्त वन्द्य मानता हूँ । मैं आप सब मुझे इत्यन्तके लिए भेंट यहाँ पहुँचे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ यदि कोई भवन्त हाकर नाम माता से मेरे करनके लिए बराबर प्रस्तुत हूँ । क्योंकि वायुण मन्त्र जल देवता सहज है । आपका जिन रानी अत्यन्त वन्द्य सेनको आशा दीजिए ॥ ७३ ॥ इस प्रकार रामकी नाम मुनकर उरगमे करवत नामक प्रदि गन्धर्वा हाकर कहने गये—हैं राम । बहुत दिन हुए, मधु नामका एक मन्त्र देता रहा था । वह व हाणका पुत्रक एवं वडा धर्मता वा उसकी इस सन्तुदवतान प्रमत्त हाकर गिरवत ने इस एक विष्णु दिना और कहा— ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ तुम इस विष्णुसे जिसे मागगे, वह अत्यन्त हा जगता गवमक छोड सारे वन्द्यकर्णकी कुम्भीनमी नामका पार्थी थी । उससे लवण नामके एक राजाका उद्धारि हूँ । जो ७६ मन्त्र पूजना दूषण तथा देवताओं और वन्द्योंके लिए दुष्कराया है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ मैं अत्यन्त आगे मधुना नामक नामको दर्शन था । इसलिये कापका मधुमुदन नाम था । मधुके समान ही मांय लवणापूरसे अनुभाकर हम आपको शरणमें लाये

लवणं नद्याधिधामि गच्छतु विगतज्वगः । इत्युक्त्वा प्राह रामोऽपि शत्रुघ्नं सदसि स्थितम् ॥७८॥  
 अद्य त्वामभिषेक्षामि मधुरागज्यकारणात् । तद्रामवचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नो वाचयमब्रवीत् ॥७९॥  
 नाङ्गीकरोम्यहं राज्यं त्वं मा निजपदात्प्रभो । न दूरं कुरु राजेन्द्र माधवामीनि ते मुहुः ॥८०॥  
 तत्तम्य वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य रघून्ममः । तथैव भगवन् प्राह न मौड्यद्वोचकार तत् ॥८१॥  
 ततो रामः सुबाहुं च युपकेतुं द्विजैर्भूषैः । अभिषिक्त्यामवीक्षाकषं शत्रुघ्नं पूरुतः स्थितम् ॥८२॥  
 इत्था तस्मै शरं दिव्यं निजनामाङ्कितं शुभम् । अनेनैव हि बाणेन लवणं लोककटकम् ॥८३॥  
 इनिध्यामि क्षणादेव शत्रं देवपरिधया । स तु संपूज्य तं शूलं गेहे गच्छति काननम् ॥८४॥  
 मक्षणाथ हि जंतूनां धातुं कर्तुं समुद्यतः । स तु नाथानि मदुर्न पावद्वनचरो भवेत् ॥८५॥  
 नावदेव पुद्गारि निष्ठु त्वं घृतकायुकं । योन्म्यने स त्वया कूटस्तदा बाणेन घानय ॥८६॥  
 अनेनैकेन बाणेन क्षणादेव ममिष्यति । त इत्था लवणं क्रूरं तद्वने मधुमक्षिते ॥८७॥  
 निर्माय मधुगनाम्नीं नगरीं यमुनातटे । तस्यां स्थाप्य सुबाहुं च पर्नीभ्यां बालकैः सह ॥८८॥  
 युपकेतुं च विदिशानगरे शत्रुनिपूदन । सस्थाप्य दयिताभ्यां च मेन्वेन बालकैः सह ॥८९॥  
 ततो यमान्तिकं याहि शीघ्रं शत्रुनिपूदन । अश्वानां पचमाहर्षं स्थानां च तदधेकम् ॥९०॥  
 राजानां षट्सतान्पेव पत्नीनामधुनश्रयम् । आगमिष्यान्ति त्वन्पश्चादग्रे साधय राक्षसम् ॥९१॥  
 आगते त्वयि पश्चाद्वि नृपान् जेतु पुनस्त्वहम् । गतुमिच्छामि तस्मात्तव शीघ्रमागच्छ मां प्रति ॥९२॥  
 इत्युक्त्वा सृष्टपर्वधाय शत्रुघ्नं रघून्न्दनः । प्रपयामास तौ वैप्रैरार्शीभिरभिनन्दितः ॥९३॥  
 शत्रुघ्नोऽपि नमस्कृत्य रामं मधुवनं यथा । निनाय पूजनार्थं तां मूर्तिं सोऽश्वत्थमनः प्रियाम् ॥९४॥  
 अग्रे समेष्य शत्रुघ्नं ततः श्रीरघुनन्दनः । सुबाहुयुपकेतुं तौ स्वस्वसौभ्यां च बालकैः ॥९५॥

॥ मुनिश्रेष्ठ ज्येष्ठमकी यात सुनकर रामने कहा है कर्णियों आप लोग मत डरें ॥ ७९ ॥ ७७ ॥ आप सब अपने-अपने आश्रमकी जाते जायें । मैं उस दुष्ट लवणामुरको मारूँगा । उनसे इतना कहकर राम शत्रुघ्नसे बोले — शत्रुघ्न । आज मैं तुम्हारा अभिषेक करूँ तुम्हें मधुरा राज्यका भोजेगा । उत्तरमें शत्रुघ्नने कहा — हे राजेन्द्र । मुझे राज्य नहीं चाहिए । मेरे ऊपर क्या करके आप मुझे अपने चरणसे दूर न कीजिए । इसके बाद रामने वही बात भगवत्से कही और उन्होंने भी अस्वीकार कर दिया ॥ ७८-८१ ॥ तब रामने सुबाहु और युपकेतुको नैवार करके अनेक साहायोंके साथ उनका अभिषेक किया और सामने बैठे हुए शत्रुघ्नका सपने नामसे आहुत बाण देते हुए कहा कि आजोंके लिए कटकस्वरूप लवणामुरको तुम इसी बाणसे क्षण भरमें इसी तरह मार डालोगे, जैसे इन्द्रने वृषानुरको मारा था । वह लवणामुर सदा घरमें उस विशूलका धूमन करके अहलमें पशुओंको मारतक लिए चला आया करता है । सो तुम ऐसा ही समय उसके घर पहुँचो, जब वह वनकी भक्षा गया हो । उनके द्वारपर तबतक बैठे रहो, जबतक वह वनसे न लौट आवे । जब वह आवे तो उसे भीतर जानेका अवसर मत दो, द्वारपर ही छेड़-छाड़ करके कुछ शुरु कर दो । वह भी तुरन्त कोधातुर होकर लड़ने लगेगा तब तुम इसी बाणसे उसे क्षणभरमें मार डालोगे । उस दुष्ट लवणानुरको मारकर मधुवनमें ॥८२-८३॥ यमुना तटके तटपर मधुरा नामकी नगरी बना तथा उसमें स्त्री-अन्धों समेत सुबाहुको बिठाकर विदिशा नगरीमें वन्चो तथा सेनाके साथ जाकर युपकेतुकी राजगद्दीपर बिठा देना । यह सब काम करके है मधुनिपूदन । तुम फिर मेरे पास लौट आओ । तुम आगे-आगे जाओ, तुम्हारे पीछे पाँच हजार घोड़े, द्वाँई हजार रथ, छः सौ हथियार और लाख हजार पैदल सैनिक तुम्हारी सहायताके लिए भेजा है । जब तुम वहसि लौट आओगे, तब मैं एकबार फिर राजाओंको जोहानके लिये यात्रा करूँगा ॥ ८८-९२ ॥ इतना कहकर रामने शत्रुघ्नका भावा सौघ और अनेकज आणवोर्ड देकर उन साहायोंके साथ भेज दिया ॥ ९३ ॥ शत्रुघ्न भी रामको प्रणाम करके मधुवनकी ओर चल पड़े । साथमें रासकी दो हुई वह कपिल वाराहकी मूर्ति भी लेते गये । रामने अब किसीके साथ

श्रेयसामाप्तं सैन्यैश्च दार्पादामैश्च गोधनैः शत्रुघ्नोऽपि तथा चक्रे यथा रामेण शिक्षितः ॥९६॥  
 हत्वा तं लवणं वेगान्मधुगमकरोत्पुर्णम् शकानान् जनपदांश्चक्रे माधुगन्दानमानतः ॥९७॥  
 मथुरायां सुबाहु तं म्याप्य स्त्राम्यां सुतादिभिः । स्त्राम्यां पुत्रैर्वृषकेतुं विदिशानगरे तथा ॥९८॥  
 तस्याप्यसैन्यैः शत्रुघ्नो मथुरायां कियदितम् । स्थित्वा सुबाहुं मूर्तिं तदा तुष्टो ददौ सुखम् ॥९९॥  
 अद्यापि मथुरायां सा मूर्तिस्तत्रैव वर्तते शत्रुघ्नोऽप्येततः सैन्यं शीघ्रं रामांतिकं ययौ ॥१००॥  
 सर्वं वृत्तं रावणाय कथयामास मादगन् । अथ कदा मं भवतः कंकेपीनन्दनो महान् ॥१०१॥  
 बुधाजिता मातुलेन साहजोऽगान्ममैनिकः । रामाज्ञया गतस्तत्र हत्वा मध्वर्चनायकान् ॥१०२॥  
 तिस्रः कीद्रीः पुरे द्वे तु निषेधे गघनन्दनः । पुष्करं पुष्करावण्यां पूर्वमेवामिषेचितम् ॥१०३॥  
 अयोध्यायां राघवेण स्थापयामास सैन्या स्त्राम्यां पुत्रेर्दामदाम्राज्ञाद्यैः परिवर्धितम् ॥१०४॥  
 ततो बृहते भरतस्त्वक्षं तक्षशिलाद्वये । नगरं स्थापयामास राघवेणाभिषेचितम् ॥१०५॥  
 अयोध्यायां पूर्वमेव महावगलपूर्वकम् स्त्राम्यां पुत्रादिभिस्तक्षस्तस्थौ तक्षशिलाद्वये ॥१०६॥  
 उभौ कुमारी सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमां दिशम् । गन्वा मल्लान्निनिजिन्य दुष्टान्सर्वावकारिणः ॥१०७॥  
 पुनरागत्य भरतो रामसेवापरोऽभवत् । ततः प्रीतो गघ्रघ्नो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥१०८॥  
 द्वावगदचित्रकेतू महामध्वपगक्रमां । मय मिषेचितौ धीरौ स्त्राम्यां पुत्रवर्त्तयता ॥१०९॥  
 द्वयोर्द्वे नगरे कृत्वा गज्राधधनश्वनके । स्थापयित्वा तपोः पुत्रौ शीघ्रमागच्छ मां पुनः ॥११०॥  
 रामाज्ञां स पुष्कृत्य गज्राधवलवाहनैः गन्वा हत्वा त्रिपुनः पथान् गज्राधः क्रुद्धनामकः ॥१११॥  
 घनरत्ने चित्रकेतू स्थापयामास देहजी । म्वस्वस्त्राम्यां शलकैश्च दासीदासैर्वर्त्तान्वितौ ॥११२॥  
 सौमित्रिः पुनरागत्य रामसेवापरोऽभवत् । अथ रामः सभाह्वय गणकान् परिपूज्य च ॥११३॥

आगे आगे शत्रुघ्नको और गछ नियाग बागडरो संगे मृदाहु एर दूधस्तूनी उपज्जमगधक सेनाक साथ भज दिया । वही पहुँचकर शत्रुघ्नन टंक बैठा ही किया, जेना रामन कहा था । इस प्रकार शीघ्र ही उन्होंने लवणामुक्तो मारकर मथुरा नगरी बसाया । मथुरावासियों को अनेक प्रकारका तन मान देकर मथुराका कुछ दिनोंमें ही उन्होंने एक सुन्दर नगर बना के । मथुराके एक विशाल मैनाक नाम सुबाहुका वहाँकी गद्दीपर बिठाला और स्त्री तथा पुत्रो समेत बुधने पुत्र । अपने साथ लेकर विदिशा नगरका प्रस्थान कर दिया ॥ ९४-९८ ॥ वही पहुँचकर मृषकेतुका गद्दीपर बिठाया । इसके बाद फिर मथुरा लौट आये और कुछ दिन वहाँ रहे । एक दिन प्रसन्न होकर शत्रुघ्नन बड़े कपिलकाश्याकी मूर्ति सुबाहुका दे दी । आज भी मथुरामें वह मूर्ति विद्यमान है । इसके अनन्तर शत्रुघ्न सेनाक साथ रामक पास गया और वही पहुँचकर उन्होंने रामकी मथुराका सब समाचार सुनाया । १०० ॥ १०० ॥ एक समय ॥ गघनन्दन भरत अपने मामा बुधाजित्के बुलावेपर रामकी आज्ञासे बहुतसे सैनिकोंके साथ समिदास गया । वही गन्धर्वोंका भारा और तीन करोड़ नागरिकोंको विमान करके रा पुरी बसाया । वहाँपर पूर्वमेव अभिषिक्त पुष्करका राजगद्दीपर बिठाया । तदनन्तर कितने ही दासी-दास तथा स्त्री-पुत्रोंका साथ लेकर पुष्कर वहाँ रहने लगे ॥ १०१-१०६ ॥ इसके बाद भरतने तक्षको तक्षशिला नामका नगराव अभिषिक्त करके बिठाया । यह सब काम करके भरत बयोध्या लौट आये और फिर पहुँचके तरह रामचन्द्रजीकी सेवा करने लगे । इसके बाद एक दिन प्रसन्न होकर रामने लक्ष्मणसे कहा—लक्ष्मण ! तुम जितने दोनो पुरोंको साथ लेकर पश्चिम दिशाकी ओर जाओ, वहाँ सब लोगोका अपकार करनेवाले दुष्ट मानवों को बतकर अगद तथा चित्रकेतु इन दोनों पेटोंको, जितका अभिषेक मैं पहले ही कर चुका हूँ, वहाँकी गद्दीपर बिठा दो । वही ही पुरी बसाकर गज-वाजि तथा घनसे परिपूर्ण करके मेरे पास लौट आओ ॥ १०५-११० ॥ रामकी आज्ञा स्वीकार करके लक्ष्मण दोनो पुरोंको साथ लेकर बृहदेरी मैनाक साथ वही पहुँच और बातको सतब

अवनीं जेतुमुद्युक्तो मुहूर्तं तानपृच्छत । तत्तत्प्रेमैर्गर्क्यर्दो मुहूर्तः परमः शुभः ॥११४॥

त थूत्वा तान पुनः पूज्य सर्वान् रामो व्यसज्जयन् ।

ततो रामोऽब्रवीद्वाक्यं लक्ष्मण पुनः स्थितम् ॥११५॥

अवनिस्थाजपान् जेतुं सांख्यं गच्छासि पार्श्वदे । विमानेनैव गच्छामि सेनां चोदय सन्वयम् ॥११६॥

नानाशस्त्राणि यंत्राणि वाहनानि सप्ततनः । स्थापयस्व विमानेऽद्य सनच्चरः जनशोचराः ॥११७॥

धनधान्यतृणादीनां सग्रहं कुरु पुष्पके । पुणो गोमं सुमित्रोऽस्तु मेन्येन परिवर्धितः ॥११८॥

एवमाज्ञाप्य सौमित्रि श्रीरामो जानकीगृहम् । ययौ चकार सौमित्रियथा रामेण शिशितः ॥११९॥

इति श्रीभक्तकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय राज्यकाण्डे

पूर्वाह्णे राज्यविभागो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

( रामकी मास्तवर्षपर विजय )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो ह्य सीतां स्वोद्योगमनदच्छतैः । अवनिस्थाशृगान् जेतुं पुत्राभ्यां चन्धुभिर्नृपैः ॥ १ ॥

तद्रामजनने श्रुत्वा जानकी प्राह लज्जिता । नहं त्वद्विम्बं सोढुं समर्था रघुनन्दन ॥ २ ॥

त्वयाऽहमवनीं द्रष्टुं शक्स्यामि जगतां प्रभो । नधेन्नुक्त्वा रघुश्रेष्ठो लालयामास जानकीम् ॥ ३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सर्वो उर्मिलाद्याः स्त्रियश्च नाः । कुशस्य च लवस्यापि पत्न्यः श्रुत्वाऽवनेर्जयम् ॥ ४ ॥

कर्तुं राममद्युद्योगं पुत्राभ्यां चन्धुभिर्नृपैः । जानकीं प्राथयामासुर्यास्यामोऽद्य त्वया सह ॥ ५ ॥

स्वस्वकान्तवियोगं च सोढुं नैव क्षमा नयम् । सीता तानां वचः श्रुत्वा राघवं श्राव्य तद्वचः ॥ ६ ॥

रघुओको परामर्श करते राजाश्वपुरभ अङ्गदका तथा वनरराजपुरमे विष्णुकेतुको विद्याल दिय और बहूँसे लौह-कार लक्ष्मण फिर रामको सेनामे लग गये । इसके अनन्तर रामने उद्यातिपियोंको बुलाकर उनकी पूजा की और पृथ्वीविजय करनके लिए शुभ मुहूर्त पूछा । इन गणकोन भी रामको बहुत ही बढ़िया मुहूर्त बताया ॥ १११-११४ ॥ मुहूर्त सुनकर रामने फिर उनकी पूजा की और विदा कर दिया । फिर रामने लक्ष्मणसे कहा-मैं पृथ्वीपर रहनेवाले समस्त राजाओंको जीतनके लिए विमानसे जाता करूँगा । तुम जाकर सेनाको तैयार करके भज । विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और सक्काको संख्यामे अच्छी-अच्छी ताप लेकर मेरे विमानमे रखनाओ । अन्नके लिए वन घान्य तथा घास आदिका डोकसे प्रवन्ध करने गुणक विमानमें रखवा दो । अयोध्यापुरीकी रक्षाके लिए कुछ सेनाके साथ लुमन्थ यहाँपर ही छोड़ दिये जायेंगे ॥ ११५ ॥ ॥ ११६ ॥ इस प्रकार आज्ञा देकर राम अपने निवासमे चले गये और लक्ष्मण रामके आज्ञानुसार सेना आदिकी तैयारीमे लग गये ॥ ११७-११९ ॥ इति श्रीभक्तकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे ६० रासतेज-पाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वाह्णे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास फिर कहने लगे इसके पश्चात् राम एकान्तमे सांतासे बाले कि मैं अपने पुत्रों तथा बान्धवों-को साथ लेकर पृथ्वीके राजाओंको जीतनेके लिए जाऊँगा । इस प्रकारकी बात सुनी सी लज्जित होकर सीताने रामसे कहा-है रघुनन्दन मैं आपका विरह नहीं सहन कर सकूँगी । मैं भी इस पृथ्वीतलको देखनेके लिए आपके साथ-साथ चलूँगी । रामने सीताका माँग स्वीकार कर ली ॥ ११-३॥ यह खबर धार-धारे उर्मिलादिक स्त्रियों तथा कुछ लव आदिकी पत्नियोंके पास पहुँची और उन्होंने सीतासे प्रार्थना की कि आप हमको भी अपने साथ ले चले । हम भी अपने-अपने पतिपोंका वियोग सहन करनेमे असमर्थ हैं । सीताने उनकी बातें सुनीं तो रामसे



रामाह्वया तदा सर्वोपेतोपयन्ती वचोऽवति । आगतव्यं मया माकं युष्माभिर्निश्च न हि ॥ ७ ॥  
 गच्छन् स्वोपगोदानि सर्वास्तुष्टा गतज्जगत् । एवं सीतारचः प्रस्था तदा ताः कञ्चलोचनः ॥ ८ ॥  
 सीतां नन्वा ययु मयः मनुष्टा मु उदात्तता । स्वस्वगोदानि द्यौर्न रुक्मवत्पुर्गन स्तनाः ९ ॥  
 अब गमस्तु तां गत्रि निनाय मोनया नृपम् । महे मुहूर्ते भुन्वा य वन्दिमान मनोऽमम् ॥ १० ॥  
 गमः प्रबुद्धस्तु जयान्कृतार्थोपाधिमन्त्रिवः । स्नात्वा निष्पायधिं कृत्वा कृत्वा ह्रमोः प्रपूजनम् ॥ ११ ॥  
 कर्था पीराणिर्धो भुन्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः । कृत्वोद्योगाधेयानं च संपूज्य गणनायकम् ॥ १२ ॥  
 कृत्वाऽऽभ्युदयिकं भ्रातृ पुनश्च दत्तं मयिस्वरम् । कामयेन कल्पवृक्षं पुष्पकं च सुगुहम् ॥ १३ ॥  
 मणिद्वयं वृषकं पूज्य मयः कृत्वा तु भोजनम् । घृत्वा वस्त्राणि शस्त्राणि वदूष्वा मानः प्रणम्य च ॥ १४ ॥  
 यथा स शिविकाहटः पुष्पकं वन्धुभिर्नृपः । पुत्राभ्या मयिर्व सन्यः सेवकैर्वादिनादिभिः ॥ १५ ॥

यानमारुह्य सर्वः सीताद्यास्ताः स्त्रियः शुभाः ॥ १६ ॥

सीतल्याद्या मातश्च तन्पुत्रान यथासुखम् । यत्राकाण्डे यथा शिष्य विमानरचना पुग ॥ १७ ॥  
 ते वणिता मया तद्वदभूताऽऽर्च्यन्तु पुनः । तदा निनेदूर्वाद्यानि तत्पुर्मागधादयः ॥ १८ ॥  
 तन्पुत्रार्चनार्थं नदा गान प्रचक्रिरे । अब गमोऽवर्गधान गच्छ एवंदिनं प्रति ॥ १९ ॥  
 तथेन्युक्त्वा पुष्पकं तद्यथाशक्त्याधर्मना । तन्वा रामं सुमयाऽपि नर्था पुर्या यथागुहम् ॥ २० ॥  
 पूजयेत् नृपाः सर्वे भुन्वा रामं समगनम् । प्रपूज्यम् राघवदं श्वद्वकर्मपुटः ॥ २१ ॥  
 प्रणेमुक्ते रमानाथ मानोपायनवर्णयः । पूजयाम् आगम नान्वा राजर्षे निजं निजम् ॥ २२ ॥  
 रामाह्वया र्मसन्गाश्च तन्पुत्रान नृपंत्तमाः । स्वकोशादीनि राम य समर्प्य स्थिरमानवाः ॥ २३ ॥  
 मागधान् समतिक्रम्य विमानेन रघुनमः । पश्यन्नानाविधानं दशान् भूर्गकीर्तः पुरं ययौ ॥ २४ ॥

सलाह की । फिर रामक आज्ञाानुसार स ता राजका प्रस्थान करता हुई कहन लगी - तुम लोग भी मेरे साथ चलो । अब कोई चिन्ता मत करो और अपने अपने महलोंमें जाकर हमारे साथ चलनेकी तैयारी करो । इस तरह सीताकी बात सुनकर कमल मर खे नवीयानी उन विजयें साताकी प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक सुनहल नृपुणोंका सकार करती हुई अपने महलोंका चली गयी ३ ६ । तब तब रामने सा राज साध बहु रात्रि सुखपूर्वक बितायी । रात में मुहूर्तमें उन्होंने कई जनाके नृपम नान्वा ता जयें । तब सीता पीतादि क्रियायें की और स्नानादि नियमक करनेक पश्चात् शिविका १० धिज्ज पुन विग ॥ १० ॥ ११ ॥ बादमें पीराणिकी कथाएँ सुनी, अनेक प्रकारके शान दिये और अनेक उपचारोंन गणनायक पूजा की ॥ १२ ॥ तब आभ्युदयिक भ्रातृ तथा धृताधाद करक कामयेन कल्पवृक्ष, पुष्पक पारिजात वृक्ष तथा बाँधों मणियोंका पूजन किया । इसके बाद अपनी समस्त माताओंका प्रणाम करके वरद पद्मे, अनेक प्रकारके गन्ध बाँधे और वन्धुओं तथा कितने ही राजाओंके साथ पाल्कीमें सवार होकर पुष्पक द्वारा एक पाल जा पड़े ॥ १३-१४ ॥ वहाँ अपने पुत्रों, मन्त्रियों, सेनाओं, सेवकों तथा बहनों संगत विमानोंर दहन सातादि क्रिया और कोपण्यादि साताई सवार हुई । रामदासने कहा-हे शिष्य 'राजाक घरमें मैं जिस प्रकार मानकी रचना कह आया हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ एक उसी तरह इस मानका भी रचना य । उनकी य रात समय अनेक प्रकारक जात्रे बने और मण्डल तथा बन्दीजनान स्तुति की, वेण्याय लायी और गादकेने गन गाये । इसके अनन्तर रामने विमानको पूर्व दिशाकी ओर चलनका आज्ञा दी ॥ १८ ॥ १९ ॥ सब पुत्राक रामक आज्ञानुसार आकीशमार्गसे उड़ता हुआ चला । रामका प्रणाम करके सुगन्ध अन्धकारपूर्ण आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ २० ॥ अब पूर्व देशके लोगोंने सुना कि राम आय है ता वहाँक बड़े-बड़े राजे हाथ जोड़कर उनके पास गये ॥ २१ ॥ सामने पहुँचकर उन्होंने प्रणवान्का प्रणाम किया और अनेक प्रकारक भेटे उनकी सेनामें उपस्थित की और विविध पूजन किया ॥ २२ ॥ इसके बाद उन्होंने अपना समस्त राज आदि रामको अर्पण कर दिया और उनकी आज्ञासे

तैनातिपूजितो गमः शनैः शनैः दर्शयाम् । यथावच्छिन्नदेनेव द्राविडं देशमुत्तमम् ॥२५॥  
 कृष्णागारेप्रदेशांश्चान् पश्यन् गमः शनैः शनैः । कांतिं ययौ विमानेन कञ्चुकंठोऽपि राघवम् ॥२६॥  
 पूजयामास विश्ववन्द्योद्गाद्य, सुहृदं निजम् । आगारं महादेशं तथा तृचोत्तमण्डलम् ॥२७॥  
 उमन्तिक्रम्य श्रीरामस्वयम्भुः पूजितो नृपे । ययौ स केरलान् देशान्त्रं कर्णाटकं ययौ ॥२८॥  
 पूजितो विजयवर्धनपि विजयापुरवाग्निना । कौस्तुभस्थान्द्रागं जित्वा महागङ्गं ययौ श्रुः ॥२९॥  
 दुर्गं दर्शयितुं नाम चकार स्ववशं भणार् । यथान्यान्यपि दुर्गाणि स्वाधीनान्पक्रोद्विष्टः ॥३०॥  
 कृत्वा विमर्देशं च दशान् विध्यान्नाश्रितान् । पश्यन् ययौ स रेवायास्तीरेणैकाग्रमीश्वरम् ॥३१॥  
 मालवस्थान्द्रागं जित्वा ययौ गमः पञ्चगङ्गां । उद्यवाहुं रणे जित्वा ययौ हृदयपत्तनम् ॥३२॥  
 जित्वा प्रतीपं श्रीगमः स ययौ हस्तिनापुरम् । एतस्मिन्मन्त्रे मोमरंभ्रजस्ते श्रयो नृपाः ॥३३॥  
 पुरुषास्तथाऽगच्छन्पुनर्मन्येन वै पुनर् । रामेण संगतं कर्तुं नानाबाह्वनमस्थितः ॥३४॥  
 ययुर्ववर्धः क्षत्राणि पुष्पकस्थं रघून्ममम् । युद्धं बभूव तं, साकं त्रिदिन रोषहर्षणम् ॥३५॥  
 तदार्याद्रक्तपूगो सा जङ्घरी पापनाशिनी । चतुर्थ दिवसे राघवस्तान् जित्वा तन्पुरं ययौ ॥३६॥  
 सुगेणं वानराणां च वैद्यं वानरसेनया । गजहृदेपुरे स्थाप्य तंस्त्रीन्मोमान्प्रयोद्धवान् ॥३७॥  
 कागमुदकेष्वनान् कृत्वा सुग्रीवश्च रघून्ममः । ययौ स मधुरां द्रष्टुं सुवाहुंरिपालिनाम् ॥३८॥  
 दृष्ट्वा सुवाहुं राज्यस्य विदिशानगरं ययौ । पुष्पकेतुं तत्र दृष्ट्वा राज्यस्य तेन वन्दितः ॥३९॥  
 कुरुक्षेत्रं पुष्करं च दृष्ट्वा रामो विहायमा । मरुचं समतिक्रम्य ययौ गुर्जामुत्तमम् ॥४०॥  
 प्रभासं च वृत्तो गत्वा महदेशं ययौ ततः । गजाननगरं दृष्ट्वागदं राज्यपदम्वितम् ॥४१॥  
 धनस्नैरिष्यत्केतुं दृष्ट्वा राज्यपदस्थितम् । अन्तर्तमं ययौ रामस्तत्रस्थैः परिपूजितः ॥४२॥

कपल) ल्याक स, य पुष्पक विमानपर सवार हुकर रामक सज्ज सज्ज सजे ॥ २३ ॥ सगव देशका लोचकर  
 राम रास्तक अनेक देशीकी देखी हुा भूविर्कोति नामक राजाकी राजधानीमें पहुँच ॥ २४ ॥ तन्से पूजित  
 होकर विमान द्वारा धार धार दर्शन दिशाकी फल और सयुक्तदसे चलकर द्रविड देशमें जा पहुँचे ॥ २५ ॥  
 कृष्णा नदीके आसपासवाले देशकी देखन हुा राम कांतिशाम जा पहुँच । वही कञ्चुकण्ड नामके राजाने  
 उनका आदरगन्तिकर किया और फिर बहोव आगार महादेश और तृचोत्तमण्डली लोचकर ॥ २६ ॥ २७ ॥  
 बहुकि राजाओं में पूजित हुअ हुा केरल देशका गये वही विजयपुरम रहनव ल विजय नामके राजासे पूजित  
 हुअर कोपम्यदशमे रहनगले राजाओंका योग्य कर मरार, हुम हुम ॥ २८ ॥ २९ ॥ वही देवगिरि नामके  
 किलका क्षणभरमें ज्ञाने अर्चन करक और भा बहुतस विमानों अथवा कन्धेम कर लिया ॥ ३० ॥ इयक आन्तर  
 विरह दशम जाकर विदेशाचरक असगरसवाल राजाका देखन हुा रेवातले ओकागधर पहुँचे । वही मालव  
 देशक राजाओंकी ज्ञातकर पञ्चगङ्गा तथा कर्णापर गजा उद्यवाहुक जोनकर हेरपनगरमें गये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥  
 उसके समपवर्ती राजाओंका ह कर प रामचन्द्र हस्तिनापुरा पहुँच । तमें सोमवंशी सोम राज तथा  
 पुष्करा नामक राजा चौदह ॥ ३३ ॥ मकर राजचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये आ पहुँचा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वही  
 पहुँचत ही पुष्पक विमानपर बैठे हुए पद्मक ऊपर उन आगीर शम्भकी वार् शारम्भ कर दी । तब उनके  
 साथ रहने तीन दिन तक लामहृषण युद्ध लिया । उस साथ जातकी रत्नसे पूर्ण हो गयी थी । चौथे दिन  
 रामन् उनका परास्त करके उनकी पुरापर अधिक र कर लिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हस्तिनापुराके वानरोंके नैष्ठ  
 सुपेणकी महापर विडाकर सोमवंशी राजाओंका जलम हुम दिया और वहीसे सुवाहु पाँचप जित मयूरा दुरीको  
 देखनके लिये गये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सुवाहुका राज्यमहपर आसीन देखकर विदिशा नगरकी गये, वही  
 पुष्पकेतुन रामका विधिवत आदर सत्कार लिया वहीसे कुरुक्षेत्र पुष्कर शार्ङ्गि सौवीका देखकर आकाशमागस  
 रामकन्दकी मदसेका लोचन हुए गुम्गात गये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ फिर प्रभासक्षेत्र जाकर मन्त्रदेत गये । वही  
 एजश्वपुरमें बहूदका राजासनपर रखकर धनरत्न नामक नगरक राजासनपर बैठे हुए विषकेतुको देखा ।

प्रययौ पुष्करं द्रष्टुं राज्यस्य पुष्करावतीम् । ततो रामो विमानेन ययौ तक्षशिलाह्वये ॥४३॥  
 तर्क्षं दृष्ट्वा पदस्थं तं ययौ भरतमातुलम् । युवाजिना पूजितः स रामो राजीवलोचनः ॥४४॥  
 ययौ विहायता शीघ्रं शकदेशं मनोरमम् । जिन्वा यवनदेशस्थाश्वरान् मर्कान् रघूत्तमः ॥४५॥  
 पश्यन्नात्राविधान् देशास्ताम्रदश्च ययौ ततः । ततो मायापुरीं गन्वा कलापग्राममावयौ ॥४६॥  
 नरनारायणौ दृष्ट्वा चोपास्यौ रघुनन्दनः । उपामकं नारदं च वर्षं भान्तमञ्जकं ॥४७॥  
 ताक्षत्वाऽर्च्यं रघुश्रेष्ठस्तत्रस्थैः परिपूजितः । भारतेर्गणैश्च दत्त्वा तत्पदे स्थाप्य स्वानुगम् ॥४८॥  
 भारतं पृष्ठतः कृत्वा पुष्पदेशं मनोरमम् । योजनानां सहस्रैश्च नवभिः परिविभूतम् ॥४९॥  
 अग्रे ददर्श श्रीरामो हिमालयमहाचलम् । योजनानां महस्राभ्यां गम्य विपुलमुत्तमम् ॥५०॥  
 त्रिसप्ततिसहस्रैश्च दीर्घः प्रोक्तस्तु योजनैः । तत्र नानाकौतुकानि ददर्श रघुनन्दनः ॥

दर्शयामास वैदेह्यै विमानस्थो मुदान्वितः ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे  
 भारतवर्षजयो नाम सुप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( रामद्वारा जम्बूद्वीप-विजय )

श्रीरामदास उवाच

अथ ह स किंपुरुषं नाम वर्षं नवसहस्रयोजनविस्तीर्णं स्वीयानादिभिर्द्वारामूर्तिदेवनोपास्य-  
 विराजमानपवनसुतोपासकमधिष्ठितमुपजगाम ॥ १ ॥ तत्र ह वाच दर्शितनार्कौतुकस्तद्वर्षमुप-  
 समूहपरिवेष्टितः पुष्पकसमधिष्ठितो नववारास्वनपुरःसरः पुनोऽनुमगार ॥ २ ॥ अथ हेमकूटं नाम  
 पर्वतमतिकमनीयं द्विसहस्रयोजनविपुलमेकाशीतिमहस्रयोजनदीर्घं नानाधातुविराजितं समुन्नत-

इसके बाद आनर्त देशको गये । वहाँवालोंने रामका अन्तर्गत्तरह सत्कार किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ वहाँसे पुष्करावती-  
 के राज्यासनपर बैठे हुए पुष्करको देखने गये । फिर तक्षशिलाकी राजधानीमें सिंहासनपर बैठे हुए तक्षको देख-  
 कर भरतके ननिहाल गये । वहाँ पहुँचनेपर राजा युवाजित्ने रामका पूजन किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसके  
 बाद आकाशमार्गसे सुन्दर शकदेशको गये । वहाँ यवनदेशमें रहनेवाले राजाओंको जीतकर अनेक प्रकारके  
 देशोंको देखते हुए ताम्रदेशको गये । फिर मायापुरी हाते हुए कलापग्रामको गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहाँ सबके  
 उपास्य नरनारायणका दर्शन करके नारदका दर्शन किया । फिर भारतसंज्ञक देशमें गये । वहाँ संग्राम  
 करके भारतनरेशको मार डाला और अपने किसी सेवकको वहाँका राजा बनाकर नौ हजार योजन विस्तृत  
 पुष्पदेश ( पूना ) को गये ॥ ४७-४९ ॥ इसके अनन्तर महापर्वत हिमालयके पास गये, जो एक हजार  
 योजन है । वहाँ रामने अनेक प्रकारके कौतुक देखे । फिर विमानपरसे ही सीताभी भी वहाँका कौतुक  
 दिखाया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्ड्य-  
 विरचित"ज्योत्स्ना"भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर राम नौ हजार योजन विस्तृत किंपुरुष नामक देशको गये ।  
 वहाँ बहुतसे वेवताओं तथा हनुमान्जोंकी मूर्तिक साथ रामकी अनादि मूर्ति स्थापित थी ॥ १ ॥ उस  
 देशमें अनेक प्रकारके कौतुक देखते हुए वहाँके राजाओंसे परिवेष्टित होकर पुष्पक विमानपर बैठे बैठे आगे  
 बढ़े ॥ २ ॥ जाते-जाते अतिशय कमनीय हेमकूट पर्वतपर पहुँच, जो दो हजार योजन विस्तृत

शिरसि राजमानं पुष्पकमधिष्ठितो रघुनाथ उपजगाम । ३ । अथ तृतीयं वर्षं नाम मरुमहस्य-  
योजनपरिमितं क्षमिहोषाम्यग्रह्णादोषासकविगतमजमनिकमनीयं दशम्यजनयं समनुययो । ४ ॥  
तद्वर्षवामिनृपप्रवृन्दतुमुलमयाममन्यादितजयश्रीरिपुकोशादिपूतिमनुपदयितमार्गवैकनीगजिनजनक-  
जम्बूदिशमानकानुचध्वजपताकानोरगघटकिंकिणीविशजवानपुष्पकममधिष्ठितः श्रीरघुनन्दन उपज-  
गाम ॥ ५ ॥ अथ निषय राव पर्वतं द्विमहस्ययोजनविपुलं चतुस्त्रिंशन्महस्ययोजनदीर्घमनिकमनीयं स  
रघुनन्दनो नयनगोचरं चकार । ६ ॥ अथ सुवर्णाद्रिसमन्ततश्चतुर्दिक्षु समानमानमिलावृतं नाम  
चतुर्थं वर्षं चतुस्त्रिंशन्महस्ययोजनपरिमितं स रघुनाथक उपजगाम ॥ ७ ॥ तत्र ह वात्र मेरोराभय-  
भूने मेरोर्दक्षिणदिक्स्थिते मेरुमहापर्वतेऽतिविगजमाने समुन्नतजटवृक्षमनिविशालं जम्बूदीपारूपसूचकं  
सफलमपूर्वमतिकमनीयं स रामचन्द्रोऽवनिदृष्टिमे दर्शयामास । ८ ॥

ततो मेरुपार्श्वमतो मेरोराश्रयभूते सुपार्श्वपर्वते विगजमानकदम्बवृक्षमनिसमुन्नतमनिविपुल-  
मतिकमनीयं पुष्परजितं स रघुनाथको नैश्रविषयं चकार । ९ ॥ अथ मेरोरुत्तरगन्तराश्रयभूते  
कुमुदनाम्नि पर्वते विगजमानमनिसमुन्नतं वटवृक्षमनिविशालमनिस्थितं स कीमन्यानदनो नृपममूह-  
विगजितो जनवज्रार्थं दर्शयामास ॥ १० ॥ अथ मेरुपूर्वतन्मन्याश्रयभूते मदपर्वते विगजमानमति-  
विशालमनिसमुन्नतमनिस्थितं सहकारवृक्षमतिकमनीयं सुपकमनुपपटुल्यफलभागविभक्तं पश्यन्त्य  
रघवंशभूषणो जनकः जनिः ॥ ११ ॥ तत्रैलावृते विगजमानमरुषणं पात्यरुद्रोपासकं स रघुनाथको  
दयितामहायः शिरसा मगनास ॥ १२ ॥ तद्वर्षवामिनृपप्रवृन्दतुमुलमयाममन्यादितजयश्रीरिपुकोशादिपूतिमनुपदयितमार्गवैकनीगजिनजनक-  
रघुनाथकः पूर्वादशमनुजगाम । १३ ॥ अथ स राधमादनपर्वतं द्विमहस्ययोजनविपुलं चतुस्त्रिंशन्मह-  
स्ययोजनदीर्घं नयनगोचरं चकार ॥ १४ ॥ अथ भद्रार्थं नाम पञ्चमं वर्षमेकत्रिंशन्महस्ययोजनदीर्घं  
हयग्रीवोपास्यभद्राशोषासकमधिष्ठितं स रघुनाथक उपजगाम । १५ ॥ तत्र काचिन्संग्रामस्तद्वर्ष-  
विगजमाननृपममूहेभ्यः कश्चिच्छरणागतप्रवृत्तकयुगलावनिपतिभ्यः स्वकरभारान्त्वममादः स

तथा इत्यभी हजार योजन लम्बा था, जिसपर अनेक प्रवरकी घानों विद्यमान थीं । जिसके ऊँचे-ऊँचे शिखर  
आकाशसं स्पर्श कर रहे थे । ३ ॥ उसके आगे नामर दशह गज, जो सुसिद्ध भगवान्‌के चक्र प्रह्लादका बसाया  
हुआ था । ४ ॥ उस देशके राजाजोह नयन संग्राम करके राम के नाम प्रशंसा करते हुए शत्रुओंकी क्षम्यता  
मपने लक्ष्य म करने सोतावने मार्गम निन्ध प्रक क नुक् नि नि नि नि ही ध्वजा पताका, तोरण,  
घटा और किंकिण स मण्डित पुष्पकमानास ५ ॥ तत्रैलावृते ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर दो हजार  
योजन विस्तृत तथा दो हजार योजन लम्बा अति सुन्दर निषय पर्वत पर ॥ ६ ॥ उसके आगे पार्श्व  
ओर सुवर्ण पर्वतोपे परिर्वेष्टित इलावृत्त नामक वृक्ष दशमं पदे । जो चीवारिस्त हजार योजन लम्बा-  
थोड़ा था ॥ ७ ॥ वहाँ माताका समस्त पर्वत दक्षिण ओर तत्र ऊँच और अतिशय विशाल जम्बू-  
दीपको सूचित करनेवाले एक बड़े भाले जानके वृक्षका निशान । ८ ॥ इसके अनन्तर पश्चिमकी ओर  
सुपार्श्व पर्वतपर खड्ग आगे वारम्भ वृक्षके दक्ष, जो बहुत ऊँचा जोह लम्बा हुआ था । ९ ॥ इसके अनन्तर  
मेरुके उत्तर ओर कुमुद नामक पर्वतपर अतिशय विशाल सहस्रशत एक वटवृक्ष सीताकी दिखाया ॥ १० ॥  
मेरुके उत्तर ओर उसके पासवाले मंदर पर्वतपर स्थित सुवर्ण पर्वत छोटे, सुवर्ण पर्वत तथा चक्र भगवर फलोके  
ऊँचे एक भाजनृपको देना ॥ ११ ॥ उस इलाकृष्मे चक्रभगवत्‌के पूज्य कृष्णशत्रुको सीताके साथ रामने  
प्रणाम किया ॥ १२ ॥ उस देशके निवासी राजाअने हाथ जोड़कर रामको प्रणाम किया और राम कहति  
जाने वृत्त दिशाकी ओर वृत्त ॥ १३ ॥ तदनन्तर ले गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन  
थोड़ा तथा चीलीस हजार योजन लम्बा था ॥ १४ ॥ तदनन्तर भद्रार्थ नामक पंचमं देशमें पहुँचे, जो एक-  
शीस हजार योजन लम्बा था और वहाँ हयग्रीवके उपास्य भद्रार्थ भगवान्‌ रहते थे ॥ १५ ॥ उस देशके बहुतसे

जनकजात्रानिरुपययी पतिपुत्र्य पश्चिमाभिमुखः ॥ १६ ॥ अथ मेरोः पश्चिमदिक्स्थितं माल्यवतं  
पर्वतं द्विमहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुर्विंशत्सहस्रयोजनदीर्घमनिकमन्ताय स जनकजात्रजनो नयनगोचरं  
चकार ॥ १७ ॥ नन्पश्चिमनः केतुपाल नाम पट्ट वर्ष एकत्रिंशत्सहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुर्विंशत्स-  
हस्रयोजनदीर्घं कामदेवोपास्यलक्ष्म्युपासिकाममधिष्ठितमनोहरं स रामचन्द्रोऽनुव्रजाम ॥ १८ ॥  
तदूर्ध्वपक्षमुत्सुकुटावनमपरागपूजितशरणाविंदयुगलः स रघुकुलदीपकः सीतया पुष्पकम्बोऽ-  
निमुदमवाप ॥ १९ ॥ अथ मेरोरुत्तरतः स नीलपर्वतं द्विमहस्रयोजनविस्तीर्णं नवतिसहस्रयोजनदीर्घं  
रघुकुलतिलको नयनविषयं चकार । २० ॥ अथ रम्यकं नाम मममं वर्ष नवमहस्रयोजनपरिमितं  
मत्स्योपास्यमनूपासकविमानमधिष्ठितः स रघुनन्दन उव्रजाम ॥ २१ ॥ मध्वर्ध्वरनिपातैः स्वको-  
शादिपूजितः स रघुनायकः र्मन्ताऽनुपमं पुण्डोऽनुममम् ॥ २२ ॥ तस्योत्तरतः श्वेतपर्वतं द्विमहस्र-  
योजनविस्तीर्णमकाशानिमहस्रयोजनदीर्घमनिकमन्ताय स स्वलोचनविषयं चकार । २३ ॥ अथ  
हिरण्यं नामाष्टमं वर्ष नवमहस्रयोजनपरिमितं कुम्भोपास्यार्थोपासकमधिष्ठितमनिकमन्ताय स  
समनुययी । २४ ॥ तदूर्ध्वपक्षमिन्दुदपितारिणे भूपनमणिनेत्रोदारिणजानकीचरणारविंदयुगलवीक्षमाणः  
स रघुनन्दनो मुदमवाप ॥ २५ ॥ तस्योत्तरतः शृङ्गवन्नं पर्वतं द्विमहस्रयोजनविस्तीर्णं त्रिमहस्र-  
योजनदीर्घं स रघुनन्दनो ददर्श ॥ २६ ॥ अयोत्तकुरुवर्षं नवमं नवमहस्रयोजनपरिमितं  
वागदोषास्यभूम्युपासिकाममधिष्ठितमनोहरं स रामचन्द्रमनुययी ॥ २७ ॥ तदूर्ध्वपक्षमिन्द्र-  
पितत्वचवनूपमदावनममपिमुक्तचिराजितपदचलरुददंढः स रघुनायको मुदमवाप । २८ ॥ अथ  
रामो लवं जम्बूद्वीपनि कृष्णार्मानि निश्चिन्य किमहिमं तदधिकारे विजय नाम स्वमन्त्रिणं  
स्थापयामास ॥ २९ ॥ तेषां जम्बूद्वीपानर्गलवर्षाणां तथा सर्वद्वीपानर्गलवर्षाणां यानि यानि आमावि-

राजाओंके साथ राम व मध्याम किया और बहुतोंका शरणम आ जानवा खाया प्रदान किया तदनन्तर लवन  
कर लेते हुए बहुतों लौटकर पश्चिम दिशाकी ओर चड़े ॥ १६ ॥ इसके बाद पट्ट पर्वतक पश्चिम माल्यवान् पर्वतपर  
पहुंचे, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा चौकोस हजार योजन लम्बा था ॥ १७ ॥ इसके आगे केतुपाल नामक  
छठ देशमें पहुँचे, जो इकतास हजार योजन विस्तृत एवं चौकोस हजार योजन लम्बा था और वहाँ कामदेवकी  
उपासिकाएँ रहती थी ॥ १८ ॥ अब उस देशक राजाओंने अपना मुकुटविभूषण मत्स्यक रामचन्द्रजीके चरणोंपर  
रख दिया तो सोना तथा रामकी बड़ी प्रमत्ता हुई ॥ १९ ॥ फिर मेर पर्वतके उत्तर ओर विराजमान नील  
पर्वतको देखा, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा नन्व हजार योजन लम्बा था ॥ २० ॥ इसके अनन्तर रम्यक  
नामके सातवें देशमें पहुँचे, जो नी हजार योजन विस्तृत था । वहाँ मत्स्यभगवान्के बहुतस उपासक लोग  
रहा करने थे ॥ २१ ॥ वहाँके राजाआने अपना राजा आदि दकर रामकी पूजा की और रघुनाथजी सीताजी  
समक्ष करते हुए भाँचे बडे ॥ २२ ॥ उनके उत्तर ओर गमने श्वेत पर्वतका देखा, जो दो हजार योजन  
विस्तृत तथा द्वादसी हजार योजन लम्बा था ॥ २३ ॥ इसके बाद हिरण्य नृमके जाठवें देशमें पहुँचे, वहाँ  
कृष्णज कुम्भ भगवान् तथा सुतं नागजक उपासक लोग रहा करने थे ॥ २४ ॥ उस देशके राजाओंकी स्त्रियोंन  
बडे मानहार चरणोंमें मन्तक रखकर प्रणाम किया तो रामचन्द्रजीकी बड़ी प्रमत्ता हुई ॥ २५ ॥ उसके उत्तर  
वो हजार योजन विस्तृत तथा त्रिहत्तर हजार योजन लम्ब शृङ्गवान् नामक पर्वतका देखा ॥ २६ ॥ इसके  
अनन्तर नवें देश उत्तर कुम्भ पहुँचे, जो हजार योजन लम्बा-चौडा था । वहाँ विजय करके वागदू भगवान्के  
उपासक तथा भूमिकी उपासिका स्त्रियाँ रहा करती थी ॥ २७ ॥ अब उस देशके राजे संघामभूमिमें भयसे  
काँपकर रामके चरणोंमें लोट गये, तब रामकी बड़ी प्रमत्ता हुई ॥ २८ ॥ इसके बाद रामने जम्बूद्वीपके  
राजाको मार डाला और मनमें यह निश्चय किया कि यहाँसे लौटकर अयोध्या पहुँचनेपर लवको जम्बूद्वीपका  
अभिपक्ष बनाऊंगा । तबतक कुछ दिनोंक लिए अपने विजय नामके मन्त्रीको वहाँको रेल भाल करनेक लिए  
छोड दिया ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीपके अन्तर्गत जितने राज्य थे, वे सब विजय नामक राजाके जीनोंके नामसे प्रसिद्ध

तानि प्रियव्रतनृपपौत्रनामश्रुतानि सन्ति । तेषु ये ये नृपा जायन्ते ते तद्वर्षनामश्रुतिना एव  
 भवन्त्यतः सर्वेषां पृथक् नामानि मयाऽत्र नीक्ष्यन्ते ॥ ३० ॥ एवं जम्बूद्वीपमायामविस्ताराम्यां  
 लक्ष्ययोजनपरिमितमनिकमनीयं समवर्तुर्नृपं पृथक् पत्रोपमं नववर्षमण्डितं स रघुनाथकः स्ववशं चकार  
 ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वताग्रेऽष्टपुर्योऽष्टदिक्पालानां सन्ति । तन्पालकाः मुरगघाशत्रह्रियमनिर्ऋतिवरुणवायु-  
 कुबेरेऽग्नौ सर्वे समाज्ञा पतिपालयन्ति चेति निश्चिन्त्य स रघुनाथकस्तान् प्रति जगाम ॥ ३२ ॥  
 सा अष्टपुर्यः पृथक् पृथक् सार्धद्विहस्तयोजनपरिमाणेनायासविस्तारतो ज्ञातव्याः ॥ ३३ ॥  
 मेरुलक्ष्ययोजनमुन्नतो मूर्ध्नि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले वायुलक्ष्ययोजनविततश्चायः पौड्य-  
 सहस्रयोजनमितो भूम्यां प्रविष्टश्चतुर्शतिसहस्रयोजनमितो भूम्यां चतुर्विंशत्तुरगुपपद्दृश्यते ॥ ३४ ॥  
 तत्र मेरुपर्वतग्रेऽष्टदिक्पालगुणीनां मध्ये ब्रह्मपुरी दक्षराहस्रयोजनमायामविस्तारतो ज्ञातव्या ॥ ३५ ॥  
 सर्वे वर्षमर्यादाभूताष्टपर्वता दशावहस्रयोजनममुन्नता ज्ञातव्याः । ३६ । वर्षदीर्घता पर्वतसमाना  
 ज्ञातव्या ॥ ३७ ॥ जम्बूद्वीपम्योपद्वीपानष्टौ द्वेक उपदिशति ॥ ३८ ॥ मयरात्मजायान्वेषणं मदीं  
 मदीं परितो निस्तनद्भिरुपकल्पितान् ॥ ३९ ॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणकः  
 मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यं मिहलो लङ्का चेति ॥ ४० ॥ तेषु लकां विना मयसु यदा यद्यन्मर्षीषं  
 तदा तत्र तत्र सन्तः तत्रस्थानुपद्वीपपालकान् आरामचन्द्रः स्ववशं चकार । ४१ ॥ भारतेला-  
 वृतवर्षाभ्यां रिता सप्तसु नवैष्वमरुपाका नद्यो गिर्यश्च सन्ति । तेषां विस्तारं को वक्तुं क्षमः ॥ ४२ ॥  
 अथेलालवसस्थिता मूल्यनद्य एवाभ्यन । ४३ ॥ अरुणोदाजवनदीषयोदधिधृतमधुगुडान्नांषर-  
 क्षम्यासनाभरणमंठा नदास्तदा पश्च मधुधानाद्यस्त्वथा सीतालकनंदाचक्षुर्भेदोति मेरोरपश्चतुर्दिशु  
 पविता जाह्नवीभेदाश्चत्वार एवमिलाष्टनद्यः ॥ ४४ ॥ तागु सीता पूर्वमसुद्रं चक्षुर्भेदा पश्चिममसुद्रं  
 मद्रोषरमसुद्रमलकनदा दक्षिणस्यां दिशि भारते वर्षं जलनिधिं प्रविशति ॥ ४५ ॥ भारतेऽस्मिन्

वे । जहाँका जो राजा था, उसीके नामसे वह राज्य विख्यात था । इस जिये सबका अलग-अलग नाम मैं  
 नहीं बतला रहा हूँ ॥ ३० ॥ इस प्रकार एक लाख योजन लम्बी चौ., अतिशय सुन्दर एवं बहुलाकार कमल-  
 पत्रक समान विराजमान जम्बूद्वीपका उद्घाटन होत लिया ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वतके आगे बाह्र राजपाटोका आठ  
 गुरियाँ हैं । वे सब भी मेरी आज्ञाका राजन कर । इस विनायक रामचन्द्रकी आज्ञा बढ़े ॥ ३२ ॥ वे माटों  
 पुरियाँ आग-अग्नि अढ़ाई अढ़ाई हजार योजन लम्बी चौड़ा है । मेरु पर्वत एक लाख योजन उँचा है और  
 उसकी चोटापर बत्तीस हजार योजन लम्बी चौड़ा मैदान है । नाच मस्ती हजार योजन विस्तार है और सोलह  
 हो हजार योजन बड़ गृध्राक भीतर सम या हुआ है । चोटासो हजार योजनको लम्बाई चौड़ा विना बहुत  
 पर्वत धमुरकी फूलकी तरह दीखता है ॥ ३३ ॥ ३४ । मेरु पर्वतके आगे पूर्वोक्त आठ पुरियोंमें बह्मपुरीकी लबाई-  
 चौड़ाई विस्तारमें जोक इस हजार योजन है । ३५ ॥ जिन-जिन पर्वतोंपर व आठो पुरियाँ हैं, वे प्रत्येक  
 पर्वत लख-दस हजार योजन उँच है ॥ ३६ ॥ प्रत्येक पुरीका विस्तार पर्वतके विस्तारकी तरह ही समझना चाहिए  
 । ३७ ॥ जम्बूद्वीपके भी बाठ उपद्वीप हैं ॥ ३८ ॥ जिस समय महाराज सगरके साथ हजार पुत्र समुद्रके खोज रहे थे,  
 तब उन्हीमें ही इन द्वीपोंकी रचना का था । ३९ । उन आठो द्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं । स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल,  
 आवर्त रमणक, मन्दरहरिण पाञ्चजन्य, मिहल और लङ्का ॥ ४० ॥ इनमेंसे लङ्काको छोड़कर जेथे सब द्वीपोंमें  
 आकर वहाँके राजाओंको रामने अपने बशम कर लिया । ४१ । भारत और इलाकतोंको छ डकर सातों देशोंमें  
 कमन्ध्य पर्वत और नदिवा है, जिनका दिग्गार बतलानम कोई समर्थे नहा है । ४२ । इलाकत द्वीपम जो  
 मुख्य मुख्य नदियाँ हैं, -तब ही हम बतलाते हैं । वे हैं—॥ ४३ ॥ अरुणावा, जमुनी, दूय, घी, मधु, गुड, अथ,  
 कम्प, कम्प, आसन और आभरणसंज्ञक नदियाँ हैं । इनमें पाँच नदियाँ तो ऐसी हैं, जिनमें तदा मधुको धारा  
 बहती रहती है । मेरु पर्वतसे सीता, अलकनदा, चक्षु, मद्रा तथा जाह्नवी ये पाँच नदियाँ निकली हैं

वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवः ॥ ४३ ॥ तद्यथा मलयो मंगलप्रस्थो मंजाकसिकूटः ऋषभः कुटकः  
सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेंकटो महेंद्रो वारिधरो विन्ध्यः शक्तिमानृषगिरिः वारियात्रो  
द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिश्चेत्यन्ये च  
शतसहस्रशः शैलास्तेषां नित्यप्रभवा नदा नद्यश्च संत्यसरुयाताः ॥ ४७ ॥ चद्रवशा ताम्रपर्णी  
अवटोदा कुतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावती तुंगभद्रा कृष्णा वेणा भीमरथी  
निर्विन्ध्या पयोध्नी तापी मही सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिंधुः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिः  
अधिकुन्धा त्रिसामा कौशिकी मंदाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोषस्वती सप्तवती  
सुषोमा शतद्रुश्चन्द्रभागा मरुषन्वा वितस्ता अमिकनी विश्वेति महानद्यः । ४८ । एव शिष्य  
रघुनायको नायकः सोपद्वीपं जम्बुद्वीपं स्वयञ्च कृत्वा लक्षयोजनविस्तीर्णं जम्बुद्वीपपरिलोपमं  
समुत्क्षाल्य पुष्पकस्थः प्लक्षं नाम द्वितीयं द्वीपं ददर्श ॥ ४९ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्तरे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

पूर्वार्धे जम्बुद्वीपजयो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

## नवमः सर्गः

( राम द्वारा प्लक्षादि छः द्वीपोंकी विजय )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो ययौ श्रीमान् प्लक्षद्वीपं मनोरमम् । द्विलक्षयोजनमितं समवर्षसमन्वितम् ॥ १ ॥  
उपास्यो यत्र वै सूर्यो ब्राह्मणाश्च क्षुधामकाः । द्वीपाख्याकुञ्च यत्रास्ति प्लक्षवृक्षो हिरण्मयः । २ ॥  
यथाऽऽरामाद्बहिर्ज्ञेयाः परिस्ताभं समन्ततः । जम्बुद्वीपाच्च क्षारोदाद्बहिर्द्विपस्तथा त्वयम् ॥ ३ ॥

॥ ४४ ॥ उनमेंसे सातों पूर्व समुद्रमें, चतुर्भद्रा पश्चिम समुद्रमें और मल्लकलन्दा दक्षिण समुद्रमें जाकर मिलती है  
॥ ४५ ॥ भारतवर्षमें भी बहुत-सी नदियाँ और पर्वत हैं । ४६ ॥ मलय, मंगलप्रस्थ, मंजाक, त्रिकूट, ऋषभ,  
कुटक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेंद्र, वारिधर, विन्ध्य, शक्तिमान्, ऋषगिरि, वारियात्र,  
द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि ये पर्वत हैं । इनके  
अतिरिक्त और भी बहुत से पर्वत हैं, जिसकी तलहटीसे बहुतसे नद और नदियाँ निकली हैं । जैसे—॥ ४७ ।  
पञ्चवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कुतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुंगभद्रा, कृष्णा,  
वेणा, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, तापी, मही, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती । सिंधु और शोण ये दोनों  
महानद हैं । वेदस्मृति, ऋषिकुन्धा, त्रिसामा, कौशिकी, मंदाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू,  
रोषस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुषन्वा, वितस्ता, अमिकनी और विश्वा ये महानदियाँ हैं  
॥ ४८ । हे शिष्य ! इस प्रकार उपद्वीपों समेत जम्बुद्वीपको अपने वशमें करके राम एक लाख योजन विस्तृत  
स्वर्णसमुद्र, जो कि जम्बुद्वीपको लाईके समान था उसे पार करके पुष्पक विमान द्वारा प्लक्ष नामके एक  
दूसरे द्वीपमें आ पहुँचे ॥ ४९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्तरे श्रीमदानन्दरामायणे प० रामोऽपक्षयविर-  
चित्तज्योत्स्ना भाषाटीकासमन्विते आनन्दरामायणे राज्यकाण्डे पूर्वार्धे अष्टमः सर्गः । ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—इसके बाद श्रीमान् रामचन्द्र भतिषाय मनोरम प्लक्षद्वीपको गये, जो दो लाख  
योजन विस्तृत था और उसमें सात देश थे । १ ॥ वहाँ सबके बाराध्य देवता सूर्य और देवाराधक ब्राह्मण  
थे ; वहाँ सुवर्णका एक बड़ा सा प्लक्ष ( पाकड़ ) का वृक्ष था और उस प्लक्षके ही कारण उसका प्लक्षद्वीप नाम  
पड़ा था ॥ २ ॥ जिस तरह किसी बगीचेके चारों ओर साईं बना दी जाय, ठीक उसी तरह उसको चारों ओरसे

येनोः पूर्वदिशायां वै तत्र वर्षं शिवऋषम् । आदौ ययौ रामचन्द्रः क्षणादेव विहाय सा ॥ ४ ॥  
 नदी यत्रारुणा नाम्नी सर्वपापप्रणाशिनी । नस्यां ज्ञान्वा रघुश्रेष्ठः शीघ्रं तद्वर्षं ययौ ॥ ५ ॥  
 तेन वर्षाधिपेनैव युद्धमार्मान्मुदारुणम् । तं जित्वा पञ्चनामैश्च तैश्च पार्थिवमत्तमैः ॥ ६ ॥  
 पूजितो रघुनाथस्तु वज्रकुटाचलं ययौ । वज्रकुटं महाश्रेष्ठं द्वयोः सागरयोः स्थितम् ॥ ७ ॥  
 परम्परं वर्षयोश्च सीमाभूतं ददर्श यः । तं गिरिं पृष्ठतः कृत्वा वर्षं पश्यन् ययौ ॥ ८ ॥  
 नृम्णानदीजले स्नान्वा ययौ यावयमेश्वरम् । तेन सपूजितो गमन्तवस्तद्वर्षपार्थिवैः ॥ ९ ॥  
 सहितः पुष्पकेनैवमुपेन्द्रमेनपर्वतम् । दृष्ट्वा कृत्वा पृष्ठतस्तु सुनद्रं वर्षमाययौ ॥ १० ॥  
 आंगीर्ष्मानदीतोये स्नान्वा य रघुनाथकः । वर्षाधिपेन कौशैः संपूजितः पार्थिवैः सह ॥ ११ ॥  
 ज्योतिष्मन्तं गिरिं गत्वा तं कृत्वा पृष्ठतः क्षणम् । शान्तिवर्षेऽथ सावित्रानदीतोये विगाद्य च ॥ १२ ॥  
 तद्वर्षेऽथ नृप जित्वा तथा तद्वर्षं स्थितान् । नृपान् जित्वा क्षणादेव सुवर्णपर्वतं ययौ ॥ १३ ॥  
 ततो गत्वा क्षेमवर्षं सुप्रभातानदीजले । स्नान्वा रामः क्षेमयेन स्वकौशैः परिपूजितः ॥ १४ ॥  
 द्विग्वयष्टीवनामानं गिरिं शय्यं विलम्ब्य च । वयःमृते तन्मृषेण पार्थिवैः परिपूजितः ॥ १५ ॥  
 शतभगानदीतोये चकार स्नानमादयान् । मेघमालं गिरिं त्यक्त्वा पृष्ठतः पुष्पकेन हि ॥ १६ ॥  
 वर्षेऽथये तन्मृषति क्षणजित्वा रणे प्रभुः । मन्यधरा नदीतोये स्नान्वा य रघुमत्तमः ॥ १७ ॥  
 सुचन्द्रारुणं नृपं प्लक्ष्मद्रापेशं तीक्ष्णमर्जरः । कृत्वा वै स्वपदाक्रान्तं तेन तद्द्वीपपार्थिवैः ॥ १८ ॥  
 वणिक्कुटं गिरिवरं समतिक्रम्य वै क्षणम् । इक्ष्वासोदनामानं द्दिलक्षयोजनं वरम् ॥ १९ ॥  
 तीर्त्वा तं सागरं भीमं प्लक्ष्मस्य परिक्षोपमम् । तथा च शाल्मलीद्वीपं चतुर्लक्षमितं ययौ ॥ २० ॥  
 द्वीपारुण्याकुच्चं यत्रास्ति शाल्मली द्वीपपादपः । यत्रोपास्यश्चमोमोऽस्मि तत्रस्थास्तदुपासकाः ॥ २१ ॥  
 विस्तारद्वीपमानानि दीर्घनायाः स्मृतानि च । तत्र क्रमेण वर्षाणि कथ्यन्ते पूर्ववन्मया ॥ २२ ॥

स्वर्ण-रामुद घेरें हुए था । ३ ॥ मेरुपर्वतकी पूर्ब और प्लक्ष्मद्रापेश शिवजीक नामका एक देश था । रामचन्द्रजी  
 जयभगवत के कशभागेसे वहाँ पहुँचे । ४ ॥ वहाँपर सब प पोंका नाश करनेवाली अरुणा नदी बहती थी । जिस-  
 से उन्होंने स्नान किया और उस देशके राजाके पास गये । ५ ॥ उस राजाके साथ रामको पयश्चर युद्ध छिड़  
 गया । पीछे अहोन्तक घमामान युद्ध होनेके पन्नाह बहाँका राजा रामके बलमें आ गया और उसने उनकी पूजा  
 की ॥ ६ ॥ फिर वहाँसे वज्रकुटाचलपर गये । वह पर्वत दो सागरोंके बीचमें स्थित होकर दोनो देशोंकी सीमा-  
 का काम कर रहा था । उसको लौघकर यवयस नामक देशका गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ वहाँ उन्होंने नृम्णा नदीमें  
 स्नान किया और यवयस देशवाले राजाके पास गये । उसने रामकी पूजा की । इसके बाद रामने वहकि  
 भी बहुतसे राजाओंको अपने पुष्पक विमानपर बिठा लिया और आगे उपेन्द्रसेन नामक पर्वतपर पहुँचे ।  
 उसे देखकर वे सुप्रभात देशको गये । ९ ॥ १० ॥ वहाँ आगरसे नदीमें स्नान करनेके पश्चात् वहकि राजासे  
 मिले । उसने बहुतसे धनका व्यय करके रामचन्द्र तथा उनके साथवाले राजाओंका मत्कार किया । ११ ॥  
 फिर ज्योतिष्मान् नामक पर्वतको लौघकर वे शान्तिदेशको गये । वहाँ सावित्री नदीमें स्नान करके उस  
 देशके राजाको परास्त किया और उसके आगे सुवर्ण पर्वतपर गये । वहाँसे क्षेमदेशमें पहुँचे । वहाँ रामने  
 सुप्रभाता नामकी नदीमें स्नान किया और क्षेमदेशके राजाने रामका शिधिर्वस् पूजन किया ॥ १२-१५ ॥ इसके  
 पश्चात् चतुर्धरा नदीमें स्नान करके मेघमाल नामके पर्वतको लौघे हुए राम समय देशमें पहुँचे । वहाँके  
 राजाकी क्षणमात्रमें जीनकर सत्यधरा नदीमें स्नान किया । फिर सुचन्द्र नामक राजा जो प्लक्ष्मद्रापका  
 शासक था उसे भगवत युद्धमें हराकर वहाँके बहुतसे राजाओंको अपने साथ लेकर इक्ष्वासोद नामके पर्वतपर  
 समुद्रको पार किया । वह प्लक्ष्मद्रापकी लाईके समान दो लाख योजन विस्तृत था । वहाँसे चलकर शाल्मली  
 द्वीपमें पहुँचे, जो चार लाख योजन विस्तृत था । १९-२० ॥ वहाँ एक विशालका शाल्मली ( सेमर ) का



सेरोः पूर्वदिशाभ्यः सर्वत्र क्रम इत्यनेन सुगोचरं सीमानन्दं तथा गणकं शुभम् ॥२३॥  
 देववर्षं पश्चिमदिशामाप्यायनमनुभूयम् । अविज्ञानं मम च नम वर्षाणि वै क्रमात् ॥ २४॥  
 अनुमती मिनीवाली तथैव च सरस्वती । कुहूश्च रजनी नन्दान् गता नद्यः प्रकीर्तिता ॥२५॥  
 अतमंगो वामदेवो कुहूश्च कुपुन्द्रश्च । पुष्पवर्षः पञ्चनद्यः सहस्रभूतिहन्तमः ॥२६॥  
 स्वरसः पर्वता समं ज्ञेयाः सीमासु वै क्रमात् । एतेषु ममवर्षेषु वर्षानाम् विजिज्ञेयः सः ॥२७॥  
 जिन्वा द्वीपेश्वरं रामः सुवाहूँ मृगसायकौ । सुगन्धं च चतुर्लक्षमिनीं तीर्त्वा पयोनिधिम् ॥२८॥  
 कुशद्वीपमष्टलक्षमिनीं रामो ययौ भगवान् । यत्रोपास्यो जानवेदाः सर्वपां द्वीपवासिनाम् ॥२९॥  
 द्वीपाख्याकुच यत्रास्ति कुशस्तवः सुरैः कृतः । तत्र क्रमेण वर्षाणि रक्ष्यन्ते मम वै मया ३०॥  
 वसुं च वसुदानं च तथा दृढरुचिं शुभम् । नाभिगुप्तं तथा सन्ध्याव्रतं विदित्तमुत्तमम् ॥३१॥  
 वामदेवं समयं च वर्षं ज्ञेयं क्रमेण हि । मधुकुल्या मधुकुल्या मिश्रविंदा नदी शुभा ॥३२॥  
 भूतिविंदा देवमर्षा तथा चैव धृतच्युता । मन्त्रमाला क्रमवत् नद्यः ममसु वै क्रमात् ॥३३॥  
 वतुःशृङ्गश्च कपिलधित्रकूटो मनोरमः । देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविणश्चक ईरितः ॥३४॥  
 एते सीमासु वर्षाणां गिरयः भवन् वै क्रमात् । एतेषु ममवर्षेषु मन्थितान्यायिवीर्यवानाम् ॥३५॥  
 गधवः सगरैः जिन्वा लब्ध्वा चानुत्तम यशः । कुशद्वीपपतिं जिन्वा महासेनं तुतोष सः ॥३६॥  
 अष्टलक्षमिनीं तीर्त्वा घृतोद सागरोत्तमम् । त्रैचद्वीपं ययौ रामः पुष्पकेणानिमास्वता ॥३७॥  
 कुशद्वीपाच्च स ज्ञेयो द्विगुणो द्वीप उत्तमः । द्वीपाख्याकुच यत्रास्ति कौश्वनामा गिरिर्महान् ॥३८॥  
 यत्रोपास्योऽस्मयो देवो हरिश्चन्द्रद्वीपवासिनाम् । तत्रापि मम वर्षाणि रक्ष्यन्तेऽत्र क्रमेण हि ॥३९॥  
 शर्म मधुरुहं मधुपृष्ठं चैव मनोहरम् । सुधमानं च भ्राजिषु लोहितानां वनस्पतिम् ॥४०॥

वृत्त था । इसीलिए वह देश म हमने द्वीपके नामसे विख्यात था वहाँ चन्द्रदेव मन्दक आराध्य  
 देवता है और वहाँके निवासी चन्द्रमाकी ही उपासना करने हैं । पीछे जिन द्वीपोंका जो विस्तार  
 कहा आये हैं, उन्हींके अनुसार नदु भी विस्तृत था । वहाँके जो देश हैं, अब हमको बतलाता है  
 ॥ २१ ॥ २२ ॥ येसके पूर्व ओरसे लेकर क्रमशः सब देशोंका नाम कहता है । जैसे—सुरावन, सीमानन्द, रम-  
 णक, दंशवर्ष, पारिभाद्र, आप्यायन और अविज्ञात ये सात देश उस द्वीपमें हैं ॥ २१ ॥ २४ ॥ वहाँपर अनुमती,  
 मिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्द और राका ये नदियाँ हैं ॥ २५ ॥ शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, कुपुन्द,  
 पुष्पवर्ष, सहस्रभूति और स्वरस ये उस देशके सात पर्वत हैं जो उसकी सीमाका काम कर रहे हैं । इन  
 सातों देशोंके राजाओंको रामने जीत लिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर उस द्वीपके अधीश्वरको जीतकर  
 चार लाख योजनके लक्षण नाम्ने-चौड़े मृगामुद्रको लीजकर वे मुवाहूँके पास पहुँचे ॥ २८ ॥ फिर सगमाग्रमें  
 राम आठ लाख योजन विस्तृत समुद्रको लांघकर कुशद्वीप गये । उस द्वीपके समस्त निवासी अग्निके  
 उपासक हैं ॥ २९ ॥ द्वीपके नामका स्पष्ट करनेके लिए वहाँपर एक कुणका जंगल देवताओं द्वारा लगाया हुआ  
 है । अब वहकि जो सात देश हैं, उनको बतलाते हैं— ३० । वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत,  
 विदित्त और सातवीं वामदेव नामके देश हैं । उन सातों देशोंमें मधुकुल्या, मधुकुल्या, मिश्रविंदा, भूतिविंदा,  
 देवमर्षी, धृतच्युता तथा मन्त्रमाला ये सात नदियाँ हैं । वतुःशृङ्ग, कपिल, धित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा,  
 द्रविण और चक ये सात पर्वत उस द्वीपमें हैं ॥ ३१-३४ ॥ इन सातों देशोंके राजाओंको रामने जीतकर  
 कुशद्वीपके अधिपति महासेन नामके राजाको भी उन्हींमें जीत लिया । इससे रामको प्रसन्नता हुई । ३५ ॥ ३६ ।  
 फिर आठ लाख योजन विस्तार घृतोद नामके सागरको पार करके वे अपने देशीयमान पुष्पक विमान द्वारा  
 त्रैचद्वीप गये ॥ ३७ ॥ कुशद्वीपको अपञ्च । ३८ द्वीप मुगुना लम्बा-चौड़ा है । वहाँ उस द्वीपका नाम सार्वक  
 करनेके लिये एक विशाल नील पर्वत है ॥ ३९ ॥ वहाँके समस्त निवासी वरुणके उपासक हैं और विष्णुभगवान्

एतानि मम व्यापि हृत्पदान्तराणि हि । दर्दमावो भोजनश्च तयोः खर्हणो महान् ॥४१॥  
 नन्दश्च नन्दनश्चेष्टः सर्वलोभश्च एव । हृत्पदाभ्यां चला प्रोक्ता मीमांसा परमाः शुभाः ॥४२॥  
 अमृतं अमृतौघा च तथा चैतन्मया गुणाः । सर्वलोभश्च रम्यः शूलिरूपवती तथा ॥४३॥  
 पञ्चत्रयता सुपुष्पा ईश्वरकृतं मम कर्तितः । समस्तेषु नन्दश्च स्नानान्धातकनाश्रुताः ॥४४॥  
 एतेषु ममवर्षेषु पाण्डुराभ्यो निजं प्रभु । कर्मभारं धृष्टरथश्च तैः सर्वः परिपूजितः ॥४५॥  
 कीचर्दीपपतिं युद्धे जित्वा च राज्ञोचनम् । हृत्पदप्रस्थतुरगं कोशाद्यैस्तेन पूजितः ॥४६॥  
 स्तुतो मागधवर्षेण नितरां सुदधाम मः । ततस्तीन्वा तु क्षीरोदं कीचर्दीपममं मुदा ॥४७॥  
 शकर्दीपं यथा रामो द्वाविंशल्लक्षममितम् । दीपक्याकृच्च यत्रास्ति शकवृक्षोऽतिरञ्जनः ॥४८॥  
 यत्रोपाभ्यो वायुरूपी हरिस्तर्द्धापवाभिनाम् । तत्रापि मम वर्षाणि कथ्यन्ते पूर्वजन्मजा ॥४९॥  
 पुगेजवं नाम वर्षे तथा कृच्च मनोजवम् । परमान महच्छुभं भूषानीकं मनो मय् ॥५०॥  
 बहुरूपं चित्ररूपं विशाधार तथा स्मृतम् । एवं ममसु वर्षेषु नद्यथापि त्रयीम्पदम् ॥५१॥  
 अतथा च तथाऽऽयुर्दां चोभयसृष्टिरेव च । तथाऽपगजिता पुष्पा शुभा पञ्चपदी स्मृता ॥५२॥  
 सहस्रश्रुतिरन्या सा प्रोक्ता निजधृतिमनया । परं ममसु वर्षेषु मम नद्यः शुभानदाः ॥५३॥  
 उरुशृङ्गो बलभद्रमथान्यः शनकेश्वर । सहस्रस्रोतोऽन्यः प्रोक्तो देवपालो महानयः ॥५४॥  
 ईशानाः पर्वताः मम मीमांसेते शर्कान्तः । एवं ममसु वर्षेषु तत्र तत्र नृपोत्तमं ॥५५॥  
 पूजितो रघुनाथः म आकर्दीपपतिं गणे । सुन्दराम्य नृपं युद्धे समाहोभिर्महाबलम् ॥५६॥  
 तिन्वा सप्तजनस्तेन वादयाम म द्वादशम् । तन्वा तं दक्षिमणोदं द्वाविंशल्लक्षममितम् ॥५७॥  
 चतुःषष्टिलक्षमितं पुष्करदीपमाभ्यो । मेखलावचस्य मध्ये पर्वतः ककणोपमम् ॥५८॥  
 मानसोत्तराचलाग्रं तं दर्शं भृङ्गद । द्वे वर्षे तत्र वै प्रोक्ते पूर्व रमणक शुभम् ॥५९॥

बह्वि देवता हैं । उस दीपम भी बड़े-बड़े बातें दशा हैं । उन सबका नाम है—॥ ३९ ॥ आभ, भृङ्गद, मेघपृष्ठ, सुषामा, ध्राविज, स्वातिनाग और वनस्पति ॥ ४० ॥ ये ही कोनराज सात देव हैं । सर्वमान, भोजन, उपसर्जन, नन्द नन्दन, सर्वलोभ और गुण । इन सबका नाम भी है । उस दीपका धरे हुए हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अमृत, अमृतौघा, आरंका, अमृत, वृत्तिकर्षण, पवित्रता और पुष्पा व पवित्र नदीयाँ उन सातों दशाम बहुतों हैं । जितने स्नान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इन सातों देवताओं राजाओं से रासने लक्षण-बलात् का लिया । और उन राजाओं के समको पूजा की ॥ ४५ ॥ स. मन्तर रामने श्रीबहोवके अष्टोत्तमको मयाभ्युक्ति से पराजित किया और उनमें अर्धरक्ष, पाश, रथ, कंट आदिका उपहार पाकर पूजित हुए ॥ ४६ ॥ वहीपम ब. नन्दने राजा की पूजा की । स. रामनन्दजी परम प्रसन्न हुए । इसके बाद क्षीरोदनायक समुद्रको पार करके कोश्वर्द्धापवाभिनाम है । चतुःषष्टिलक्ष । जबकि लगभग विष्णु भावकीपमें गये । जहाँपर हीपके नामकी चर्चित । मन्त्रों की एक छटा भी । ५१ ॥ ५२ ॥ वहीपम कायुरूप धारण करनेवाले विष्णुभगवान्के उपासक रहते हैं । वही ५३ ॥ नन्द है । जिसे कह रहे हैं ॥ ४९ ॥ पुगेजव, मनोजव, परमान, भूषानीक, चित्ररूप, बहुरूप और विशाधार ये ही सब देव हैं । अतथा, आयुर्दा, उभयसृष्टि, अपगजिता, पञ्चपदी । सहस्रश्रुति तथा निजधृतिमनया । उन सातों दशोंमें बहुतों हैं । उरुशृङ्ग, बलभद्र, शनकेश्वर, सहस्रस्रोत देवता, महानय और ईशान ये सब देव । उन देवोंको सीसापर स्थित हैं । उन सातों देवोंके राजाओं से रामका पूजाकी और सुन्दरामन शान्तु पगे अर्धस्वयंके उन्होंने सात दिन पर्यन्त युद्ध करके हरा दिया ॥ ५०-५६ ॥ इसके बाद उसने भी रामजी पूजा की । रामक इस मुकुटसे इसमें होकर देवताओंने दुन्दुभी बजाई । नन्दन, नन्द, नन्दन, नन्दन । ५७ ॥ चतुःषष्टिलक्ष नामक समुद्रको पार करके चौसठ लाख भोजन विष्णु पुष्करदीपम पर्वत । जिसके मध्यमे मेखलाके सुमान मानसाचल

अपरं तद्वातकीन्यारूपानं ते कुरुणोपयम् नद्वर्षणी नमो जित्वा ततो द्वापेंधवं नृपम् ॥६०॥  
 उन्नरांगह्वये रामः परां मुदमवाय मः । ददर्श पुष्करं तत्र द्वापराकाङ्क्षकं व्रम् ॥६१॥  
 कम्बलासनस्य यज्ञोप वस्त्राणः परमासनम् तत्र कर्मसयं स्त्रिंशं वस्त्राणि जनोऽर्चयन् ॥६२॥  
 वर्षयोर्बहुला नद्यः पापनिवृत्तनक्षमाः दक्षतटसमानेन प्राशुर्होयः स परेतः ॥६३॥  
 तस्मिन् गिरी पूर्वाभागे पुगे मध्वतः ह्रुमा । देवभार्गोति नाम्ना सा मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥६४॥  
 गिरी तस्मिन् दक्षिणस्यां दिशि संवमनी पुरी । यस्याज्जस्य सा ज्ञेया मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥६५॥  
 पश्चिमे वरुणस्याध पुगे निम्लोचनी स्मृता । उन्नम्यां तु कौशेरी पुगे खपाता विभावरी ॥६६॥  
 मिथ्याः पुण्यंस्त्रिंशं ज्ञेया मेरुस्थाम्य शुभावहाः यथा नृपस्य स्थानानि खनेकानि तथा त्रिमाः ॥  
 सर्वे योऽपर्वतास्ते त्रिर्लिंगाश्च पृथक् स्मृताः । द्विदद्वययोजनैश्च प्राञ्चवर्गं ते वदाम्यहम् ॥६८॥  
 सर्वेषां दक्षसादृश्ययोजनैः प्रोच्यते, यत् । त्रिर्लिंगं वा तु शुद्धोद पुष्कार्द्वापममितम् ॥६९॥  
 सीतायाः कौतुकार्थं हि स जगाम नृपजमः । उद्दिशार्थं म्यावलोकानवस्थानां नृणामपि ॥७०॥

ततोऽग्रे भूमिं मार्घमसलश्रोतस्मार्द्धकोटि ( १५७५००-० ) परिमितं कञ्चिन् प्राणिमहितां  
रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७१ ॥ तैः सर्वभूमिनिव मिभिः सपूजितो रघुनन्दनो मैथिलान्नानार्पमग्नं जगात्  
॥ ७२ ॥ मैरुचन्वार्णिष्ठश्रोतस्कोट्यष्ट ( १५७४००० ) योजनपरिमितं मेहमान-  
मात्तगचलयोरतगले माने ज्ञातव्यम् ॥ ७३ ॥ ततोऽग्रे आदयं तापसां कावर्नी भू स देवैर्गंधिष्ठितां  
र्चकोनचन्वार्णिष्ठश्रोतस्कोट्यष्ट ( ८३१००००० ) परिमितं दृष्ट्वा देवैः सपूजितः श्रीरामचन्द्रो  
मुदमवाप ॥ ७४ ॥ ततोऽग्रे लंकाकालीरुपर्वतं मार्द्धेडादशका दृ ( १२५०००००० ) परिमितं विस्ती-  
र्णवितथा भूमिप्राकारोपमं केताष्ठाश्लघ्यं स रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७५ ॥ पश्मिन्नष्टदिक्षु द्विरदप-  
तयः श्वश्रवः पुंडरीकः पृथ्वरघूडः कुमुदो वामनः पुष्पादनेऽपराजितः सुवर्नीक इत्यष्टौ दिग्गजाः

स्वर्ण विद्यमान है, उसे रामने देखा । उस द्वीपमें एक प्रचण्ड दशरूप-पर्वत। सम्पन्न दश और दुर्गम घातको ये दोनों देस उस द्वीपके कच्छुक समान । । रामने उन देशोंके राजाओं तथा पुष्करद्वीपके स्वामी उत्तराणको जोत लिया, जिससे उन्हें बड़े प्रसन्न हुए । इसके अनन्तर उस द्वीपके नामको सार्थक करनेवाले पुष्कर महावरको देखा ॥ ५०-५१ ॥ कच्छुक द्वीपके एक राजा आसन है । यहाँपर कममय शङ्खाकी मूर्तिका प्राग पूजित है ॥ ५२ ॥ उन राजा के पास एक बहुत बड़ा सभ्य बहुतसी नदियाँ बहती हैं । बड़े पर्वत दस हजार राजनिक संगमों से युक्त । सम्पन्न राजा इनकी देवघातीपुरी है । पश्चिम ओर बहतीकी विष्णुघाती नामकी पुनः । । राजा के पुत्रों के अङ्कगुण है ॥ ५३-५६ ॥ ये पर्वतपर दशराजोंका जा गुप्त है, उनका नाम है दशराज । जहाँ राजा एक बड़े, भनक स्थान होता है, उसी तरह इनके विपरीत भनक नाम का है ॥ ५७ ॥ उनके असमय दिग्गज सोमापर्वत है । वे सब अत्यन्त-अत्यन्त ही राजा के राजा हैं । इस तरह सब विष्णुवन्दन करने राजा उनको उँवाई है । राजा का नाम महाद्वीप के राजा है । राजा का नाम करके सीताके कौतुक था वह कहिये कि उस द्वीपके निवासियोंका अपने देशों के राजा के राजा के राजा हैं ॥ ५८-६० ॥ उँई करोड़ भद्र न त आख योजन विस्तृत अभास राजा के राजा भनक राजा के राजा हैं ॥ ६१ ॥ जहाँके निवासिगण सोमागमकी पूजा को कार से लोग करते बड़े भद्र । यह और मनमत्तराजनों कीचम देव करेष्ट गड़े सत लाख एकलादीय हृदय राजन परिमित अन्तर है । इसके अनन्तर रमने श्राष्ट्रके समान चमकता काचनमयी धूमि हरी गद्दी कि उवला गद्दी है । जिसका विस्तार आठ कराह इतनागमन लाख राजन है । जहाँके ही निवासियोंने रामकी पूजा की और वे प्रसन्न हुए । इसके अनन्तर साडे बारह कराह राजन परिमित विस्तारण तथा उँचे लोकलोक नामके पर्वतको देखा, जिसे कि आजतक कोई नहीं लाई सका है ॥ ७३-७५ ॥ जहाँकी

सकललोकस्थानहेतवः ॥ ७६ ॥ तस्मिन्नेव गिरिवरे भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिः  
सकललोकहिताय आसन् ॥ ७७ ॥ ततः परस्ताद्योगेश्वरानि विशुद्धाष्टुदाहरन्ति ॥ ७८ ॥ एव पञ्चा-  
शत्कोटिगुणिता भूमालोका जयः ॥ ७९ ॥ एवं पञ्चविंशतिकोटिमितां भूमिं लोकालोकमध्यवर्तिनीं  
सुष्ठुनन्दनः स्ववशां कुन्वाऽऽकाशपथा परिक्लृप्त्य सर्वान् द्वापान् पूर्ववत्पश्यन् जम्बुद्वीपं भारत-  
वर्षमप्यगतां ह्यां राजधानीमयाध्यां मष्टद्वीपनुपपम्बिर्वाहताऽनुययी ॥ ८० ॥ ततो रामोऽप्योष्या-  
निकटं गन्वा हृतैः स्वागमनं सुमंत्रं सूचयामास ॥ ८१ ॥

समायातं रामचन्द्र श्रुत्वा स मंत्रिमनमः । अयोध्यां भूषयामास पताकाध्वजतोरणैः ॥ ८२ ॥  
वारणेन्द्रं पुष्करन्द्यं पौरैर्ज्ञानवर्धः सह । मन्थुद्रस्य रामचन्द्र नन्वाऽप्योष्यां निवाय यः ॥ ८३ ॥  
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननुन्धाप्सरेगणाः । हृष्टुर्भुर्मागधाद्याश्च नटा गान प्रचक्रिरे ॥ ८४ ॥  
रामायमनमाकर्ण्य पौन्यार्यः सुभूषिताः । प्रामादस्त्रिखगकूडा ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ ८५ ॥  
राजद्वारं विमानेन अनेः स रघुनन्दनः । गृह्णन् पौरोपायनानि स्त्रीभिर्नोगत्रिनः पवि ॥ ८६ ॥  
ययी यानाद्वरुह्य सुमायां नित्र आगम । तस्थौ मधन्ततः सर्वैर्नृपैश्च परिदेष्टिनः ॥ ८७ ॥  
ततः स्थलानि सर्वेषां वस्तुमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । दक्षिणादादि सम्पाद्य कृतकार्यममन्यत ॥ ८८ ॥  
आत्मानं सकलान्पूर्वाभ्यनान् जित्वा समुद्रतान् । तनर्स्तैः समर्द्धापस्थैः पार्थिवैः परिपूजितः ॥ ८९ ॥  
रामः स्वभ्रातरं विप्रैर्भर्तुं भारताधिपम् । चकार पार्थिवैर्युक्तो लक्ष्मणानुमतेन सः ॥ ९० ॥  
आदावेद वसिष्ठेन दत्तं भरतनाम तन् । विचिन्त्येदं मात्रि वृत्तं ज्ञानकर्मणि निश्चिनम् ॥ ९१ ॥  
पूर्वमाज्ञापितं स्वायत्तेवकं भग्नस्य च । रथणे तं रामचन्द्रः कार्यान्तरमकल्पयत् ॥ ९२ ॥

ज्यों रिसाजोंमें क्षेम, पुष्परीक, पुष्करपूड, कुमुद, वामन, पुष्पदन्त, अपराजित और मुप्रलोक वे सभी  
लोकोंको अपने मिरपर धारण करनेवाले आठ दिग्गज विद्यमान हैं ॥ ७६ ॥ इसी पर्वतकं ऊपर परममन्त्रा-  
पुरुष और महाविभूतिपति भगवान् रामरत्न मगरके हितकी कामनामें रहा करने हैं ॥ ७७ ॥ इसके आगे  
विशुद्ध योगेश्वरीकी ही कृति है, ऐसा लाभ कहते हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार सब मिठाकर पचास करोड़गुना  
विस्तृत भूमाल है उसमेंसे पंचमकी अपने वशाय करके राम आकाशमार्गसे उड़कर रामनक विविध द्वीपो-  
की देखते हुए जम्बुद्वीपके भाग्यवर्गस्थ अन्ध्या नामकी अपने राजधानीमें सातो द्वीपके राजाओंके साथ  
बापस आये ॥ ७९ ॥ अयोध्याके समीर पञ्चवर्ग रामन एक दूत द्वारा समन्त्रकी अपने आगमनकी सूचना दी ।  
सुमंत्रने रामका आगमन समा तो पताका, ध्वजा तथा तारपादिकसे खोचपाकी समजिस्त करवाया ॥ ८२ ॥  
फिर एक बड़े भारी हाथोंकी आगे करके पुन्यामी जनोके साथ रामके समस्त पहुँच और उन्हे प्रणाम करके  
अयोध्या लाये ॥ ८३ ॥ उस समय अनेक प्रकारके बड़े दाँदे अमराएँ नाचीं गायकोले गाने गाये और  
बन्दोजनोले मृत्ति की ॥ ८४ ॥ रामका आगमन सुन्दर अयोध्याकी स्त्रियाँ भीति भीतिकं वस्त्राभरण पहनकर  
अपने कोठोंपर चढ़ गयीं और वहाँसे फूलोंका वर्षा करने लगी ॥ ८५ ॥ रामचन्द्रजी धीरे-धीरे पुरवासियोंकी  
मेढें स्वीकार करते हुए पुष्पक विमान द्वारा अपने राजद्वारपर पहुँच । रामने तिनयोन रामकी आरती  
उतारी ॥ ८६ ॥ राजद्वारपर पहुँच ता पुष्पक विमानसे उतरकर सभाभवनमें गये और अपने मिहसनपर  
बैठे । उनके साथ जा राज आग ये, वे भी मिहसनके चानो ओर बैठ गये ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर  
सब मेहसानोकी ठहरनेक लिए स्थान धन्यानेके निमित्त लक्ष्मणसे कहकर राम दक्षिणादादि कार्योंमें  
लग गये । इस प्रकार पृथ्वीपर रहनेवाले उद्भूत राजाआका परास्त करके रामने अपनेकी कृतकृत्य समझा ।  
इसके अनन्तर उन सातो द्वीपके राजाआने फिरसे रामकी पूजा की ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणसे  
सलाह लेकर रामने भरतको भारतवर्षका अधिपति बना दिया ॥ ९० ॥ इस भावी बातको सोचकर ही  
वसिष्ठने भरतका नाम भरत रक्खा था ॥ ९१ ॥ पहले जिस सेवककी रामचन्द्रजीने भारत देशकी रक्षाके

जम्बूद्वीपतिं रामश्चकार स्वसुतं लवम् । लवोऽपि विजयं स्वीयसचिवं चाक्रगेन्मुदा ॥९३॥  
 तवस्वपि च वपेषु यातायार्तं पुनः पुनः । चकार विजयेनैव पुनः कार्यार्थमादरात् ॥९४॥  
 शत्रुघ्नो यौवराज्ये स्वे मतेनाभिषेचिनः यौवराज्यपदे स्वीये कृत्वा रामः कुशं सुतम् ॥९५॥  
 चकार लक्ष्मणं मुख्यं सचिवेषु सुमन्त्रिणम् । समद्वीपपतिः श्रीमान्स्वयमासीद्रघूत्तमः ॥९६॥  
 स्वस्वकार्येषु सर्वे ते ग्रामान् तत्परमानयाः । ततः सर्वांचूपान्बुज्य ददावाज्ञां रघूद्वहः ॥९७॥  
 ततस्ते राघवं दत्त्वा ययुः स्वं स्वं स्थलं मुदा । ततो भारतवर्षस्य पदामशं मदा मुदा ॥९८॥  
 चकार भरतः श्रीमान् भरताधिपतिः प्रभुः । जम्बूद्वीपपदामशं य चकार लवस्त्वया ॥९९॥  
 समद्वीपपदामशं रामचन्द्रः कुशं च । लक्ष्मणेन गद्वैवापि स्वयमेवाक्रोत्प्रभुः ॥१००॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धं  
 कृशादिषड्वीपविजयदशमं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

### दशमः सर्गः

( रामका संन्यासी, शूद्र तथा गृध्रको दण्डदान )

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः सारमेयदीर्घगवं मुष्टुः । राजद्वाराद्वहि भ्रुत्वा समास्थो दूतमनवीत ॥१॥  
 कथं दीर्घस्वरेणैव स्वाऽद्य क्रोशति पश्यताम् । तथेति रामदूतोऽपि गत्वा राजसभाद्वहिः ॥२॥  
 न्यवारयन्सारमेयं राजद्वारात्स्वपर्वणैः । रामं कृत्वाऽश्रवाद्वाक्यं तूष्णीं स्वा क्रोशति प्रभो ॥३॥  
 मया निवारतो दूर गतः स गवर्णांतक । ततो द्वितीयदिवसे तच्छब्दान् राघवोऽशृणोत् ॥४॥  
 हृतेन पूर्वकच्चापि सारमेयो निवारितः । तनस्सर्ताये दिवसे तद्रावानशृणोत्प्रभुः ॥५॥  
 तदाविचकितः ग्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् । स्वाऽयं दिनत्रयं बन्धो कथं क्रोशति संततम् ॥६॥

लिए नियुक्त किया था, उसे दूसरे काममें लगा दिया ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर अपने लव नामक बेटेको जम्बू-  
 द्वीपका अधिपति बनाया । लवने विजय नामके उस सेनकको मंत्री बना दिया, जिसे कि रामचन्द्रजीन कुछ  
 दिन तक भरतखण्डकी देखभाल करनेके लिए नियुक्त किया था ॥ ९३ ॥ लव विजयके साथ कार्यवशा नवों  
 द्वीपोंमें बराबर आशा-जड़ा करते थे ॥ ९४ ॥ भरतने अपनी जगह शत्रुघ्नका युवराजपदपर अभिषेक कर  
 दिया । रामने कुशको मुद्रराजके पदपर अभिषिक्त करके लक्ष्मणको अपना सर्वथेष्ट मंत्री बनाया । किन्तु  
 सातो द्वीपोंके अधिपति राम स्वयं थे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ये सब लोग अपने-अपने कार्योंको वही तत्परताके साथ निभाते थे ।  
 इसके अनन्तर रामने साथ आये हुए राजाओंको अपने देश जानिका आज्ञा दी और वे रामचन्द्रजीकी प्रणाम  
 करके अपने-अपने देशको चल गये ॥ ९७ ॥ भारतवर्षका शासन भरतजी प्रमत्ततापूर्वक करते थे । जम्बूद्वीपका  
 शासन लव करते थे और भरत, कुश तथा लक्ष्मणसे सलाह लेकर रामचन्द्रजी सातों द्वीपोंका शासन कर रहे  
 थे ॥ ९८-१०० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित-  
 'ज्योत्स्ना'शाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय रामचन्द्रजी सभामें बैठे थे । सहसा कई बार एक कुत्तेके रोनेकी  
 आवाज सुनी तो दूतसे बोले— १ १ । देखो तो हतने ऊँचे स्वरमें कुत्ता क्यों चिल्ला रहा है । रामके आज्ञानुसार  
 दूत कुत्तेके पास गया । उसे घमकाकर वहाँसे हटा दिया और रामने जाकर कहा—हे राक्षसाशक्त ! उस  
 भौते दूर भगा दिया है, अब वह नहीं चिल्लायेगा । दूसरे दिन फिर रामने उसी प्रकार उस कुत्तेका रोदन  
 सुना तो दूतसे भगवाया ॥२-४॥ तीसरे दिन फिर उसका रोदन सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा—आज तीन दिनसे

किं दुःखं सारमेयाय प्रहृष्य मन्पुरस्त्वया । तथेति लक्ष्मणो दूतान्नवीन्सभ्रमन्वितः ॥७॥  
 समामाकारणीयः स्यात् पुष्पाभिस्त्वद्य मादगम् । तथेति रामदूतात्ने सारमेयं वचोऽब्रुवन् ॥८॥  
 आकाशितोऽपि रामेण त्वमेहि राघवातिक्रम । त्वद्वचं फलितं चाद्य पूर्वपुण्योदयेन हि ॥९॥  
 रामदूतवचः श्रुत्वा तुष्टः स्यात्तान्यनोऽमर्षात् । देवगृहे यत्रवाटडोमशालानु वै स्यात् ॥१०॥  
 पुन्दावने समीपां च मठे पारिषमद्गृहे । गोष्ठ पुण्यस्थले पुण्ये मीर्यं देशालयेऽपि च ॥११॥  
 पक्षस्थाने रतिस्थाने स्नानमन्ध्यामथलादिषु । गन्तु नार्हा वयं पापयोनिस्था वाक्यनां प्रभुः ॥१२॥  
 तत्रस्ते विस्मयाविष्टास्तद्वाक्यं राममब्रुवन् । गणरत्नद्वयः श्रुत्वा विहस्य सम्भ्रमेण च ॥१३॥  
 आनीयतां पादुके मे न्विति दूतान वचोऽब्रवीन् । नतर्त्तरारिते दिव्ये पादुके कृत्य पादयोः ॥१४॥  
 रत्नदण्डं करे धृत्वा शूनैः सर्वैः समन्वितः । मुद्रिकाग्नद्वारेण मणिद्वयविगञ्जितः ॥१५॥  
 शुकटेनाचर्तसेन केयूगम्यां समन्वितः । नृपुगम्यां कंकणाम्यां कुण्डलाम्यां मुण्डोमितः ॥१६॥  
 पदकैः भूस्वलाभिश्च वरदस्त्रैर्विगञ्जितः । राजद्वाराद्वहिर्देशे सारमेयानिकं ययौ ॥१७॥  
 कृत्वा दण्डम्यकषेऽथ किञ्चिद्रक्तः स्थितः प्रभुः । कृत्वा वामजान्वभ्यो म्यां जंघां रामः स दक्षिणाम् ॥१८॥  
 अत्रवीत्सारमेयं तं किञ्चित्कृत्वा स्मिताननम् । वदमे वद किं दुःखं सारमेय त्वयस्मि पतु ॥१९॥  
 मद्रान्ये सदसा माऽस्तु दुःखं केषां कदापि च । इति रामगिर श्रुत्वा सारमेयः पुनः पुनः ॥२०॥  
 नमस्कृत्वा राघवेन्द्रं छिन्नपादोऽब्रवीन्मुदा । मदर्थं श्रमिनोऽस्यत्र चिरं जीव दयानिधे ॥२१॥  
 निरपराधो यतिना प्राण्याऽवाह प्रसाहितः । छिन्नपादोऽस्मि राघेन्द्र स्वामद्य शरणं यत ॥२२॥  
 तद्वाक्यं राघवः श्रुत्वाऽऽकारयामास दण्डिनम् । रामाज्ञया यतिश्चापि विह्वलो राघव ययौ ॥२३॥  
 दृष्ट्वा यतिं तं श्रोतारमस्तदा वचनमब्रवीत् । स्वामिन किमर्थं पुष्पाभिर्जङ्गलः पादोऽस्य वै शुनः ॥२४॥

यह दुस्ता क्यों राजदरबारके समझ बाकर रता है। मर सामन ब्याकर पूछा कि उसे किस बातका कह है। लक्ष्मणने भी धवसाकर दूतको आज्ञा दी कि जाओ और भारपूर्वक उस कुत्तेको सामने से आओ। "बहुत अच्छा" कहकर दूत कुत्तेके पास पहुँचे और उससे कहने लगे—॥ ९-८ ॥ आप पूर्वसंचित पुण्यसे नृपुंगुरा भाम्योदय हुआ है। चला, श्रीगमचन्द्ररा नृपहृदय रत है। ९॥ दूतोंकी बात सुनी तो प्रमथ हाकर कुत्ता कहने लगा—देवास्य, यज्ञशाला, हवनगृह तुम्हारा जगिषा, सभा, मठ राज-भवन, योशाला, पंचम तीर्थ रसाईघर, रतिस्थान तथा स्नान-मन्थारि कार्तिके स्वामोपर से जानेके ल्योम्ह हैं। क्योंकि मेरा जन्म पापयोनिमें हुआ है। तुम आकर रामसे कह दो ॥ १० ॥ ११॥ इतनी सुनकर वे दूत वड़े विस्मित हुए और जंगल उमने कहा था, जाकर रामको बुला लिया। राम उसकी बात सुनकर देख पड़े और दूतोंसे कहा कि हमारा खयाल ले आओ। इतनी आज्ञाका पालन किया। रामने कहा कि पहिला, एक रत्नवटित छड़ी हाथमें ली और सब लोगोंके साथ उस कुत्तेको ओर खने। उस समय रामचन्द्रके हाथोंमें अंगुठियाँ थी, रत्नान्वित हार गलम था, मस्तकपर मृदुत तथा कानोंमें कुण्डल प्रसू रहे थे, भुजाओंमें बिजायड और कटूण था। गलेमें हार तथा सिकटियाँ शोभन हो रही थी। इनके सिवाय और भी कई प्रकारके माधुषण और सुन्दर कम्ब मुजोभित हो रहे थे। इस तरह सज-धजकर राम कुत्तेके पास आ पहुँचे ॥ १२-१७ ॥ वहाँ पहुँच तो छड़ी वगलमें दबा ली और बाएँ पुण्यको हनिक मोड़कर कुछ तिरछे खड़े हो गये ॥ १८ ॥ पुनकारकर राम कुत्तेसे बोले हे तगरसर तुम्ह जो कुछ कह हो वह मुझे बताओ ॥ १९ ॥ क्योंकि मैं चाहता हूँ कि मेरे राज्यमें किसीको किसी प्रकारका कह न हो। इस तरह प्रभुकी बात सुनकर कुत्तेने रामको अनेकश प्रणाम किया और हथित होकर कहने लगा—हे दयानिधे! आपने मेरे लिए कहा कह किया, जो यहां पधरे। हे महाराज! मैंने कोई अपराध नहीं किया था। फिर भी एक संन्यासीने पत्थरसे मुझे ऐसा मारा कि जिससे मेरा पैर टूट गया। इसीसे इसी होकर मैं आप की शरणमें आया हूँ। २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ उसकी बात सुनकर रामने उस संन्यासीको बुलवाया।

तद्रामवचनं श्रुत्वा यतिः प्राह शृणुममम् मिथार्थं भवतो मायं मिसाश्वं स्पृशितं मय ॥२५॥  
 शुनाऽनेन राघवेन्द्र मध्याह्नं क्षुधिनस्य च । मयाऽनः क्रोधचित्तेन शुनेऽस्मै अपराधिने ॥२६॥  
 धर्षितुं चोपलः क्षिप्तोऽनेन मित्तं पदं शुनः । तद्यनेवचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः ॥२७॥  
 शानहानः पशुभार्यं मत्स्यं स्वीयं निर्गदय च । स्पृशितस्त्वा तस्य दोषो नैवायं वेद्ययद् यने ॥२८॥  
 स्वमेवास्वस्थापराधी सरष्टं मादुमर्हसि । हन्युस्त्वा मार्गमेवं न राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥२९॥  
 यद्विश्रायं तेऽपराधी तव हस्तेऽपिनो मया । यं त्वमिच्छसि वै कर्तुं तस्मै दण्डं सुखं कुरु ॥३०॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मारमेयाऽब्रवीत् प्रभुम् । शिवालयाधिपत्ये च स्थापनीयो यति प्रभो ॥३१॥  
 तथेति रामचन्द्रोऽपि शिचिकायां निवेद्य तम् । सखसचन्दनार्थं च सम्पूज्याथ यतिं मुदा ॥३२॥  
 वायघोर्पनैर्नैनायैरुत्तमैश्च शिवालपम् । नैनां शिवालमस्थाधिपत्ये संस्थापयन्प्रभुः ॥३३॥  
 वदाऽध्यानाद्यनिर्देवं फलितं चैत्यमन्यत । ततो रामो जनैर्पुनः स्वां ममां सविदेशं ह ॥३४॥  
 तत्सर्वं कर्तुं कं दृष्ट्वा पीपाः प्रोचू रघूनमम् । कथं शुनाऽद्य यतये शिषेदृक्माधिना प्रभो ॥३५॥  
 अन्नार्थं अमनस्स्य यनेर्देवं पदं मदन् । नैनानिर्मारुपं सञ्जातं यतये शिक्षितं न तद् ॥३६॥  
 तत्पौरवचनं श्रुत्वा राघवस्तान् वचोऽब्रवीत् । प्रहस्यः श्वा तु पुष्पाभिरैः सन्देहं हरिष्यति ॥३७॥  
 तथेति मार्गमेवं तु पश्यन्तुर्नागराश्च वत् । तान्प्रोवाच मारमेयः मृणुष्व यन्मयोप्यते ॥३८॥  
 कृषिगजानवाभ्यर्षोपचलसम्मानकाणिः । शिवालमदारमदानग्रामाधिकारिणः ॥३९॥  
 अनाथस्त्रीवल्लभनहाणिः कूरान्स्वनाः । गोविघ्नशिवचित्तम्ब हारिणोऽन्यापकारिणः ॥४०॥

रामके आज्ञानुसार वह संवत्सी भा वि पूर भावने रामक नाम आया । ॥ २३ ॥ रामने उसको प्रणाम किया और कहने लगे—बहान् स्वामीजी । आपने किस कारणसे इन कुत्तों को पैर लाड़ डाला ? ॥ २४ ॥ उसने उत्तर दिया कि मैं मिसा लिये गमनेसे आ रहा था । नवी हमने मेरा मिसाश्व छू दिया । वह मद्यगद्गुका समय था । मैं भूमा था । इसके उस अपराधसे मुन राग आ गया और इसको समतलकी इच्छामें मैं एक फणर फंकार मारा । वह इसके पैरमें लगा, जिससे इसका पैर टूट गया । ॥ २५ ॥ यति की बात सुनकर राम उसमें कहने लगे— ॥ २६ ॥ २७ ॥ यह एक जानविहीन पशु है । यदि हमने अपना मत्स्य पदार्थ लेनकर आपको छू दिया तो मैं इसमें इसका कोई दोष नहीं समझता । यह तो इसके स्वाभाविक प्रवृत्ति है । इसलिए क्षमा हो इसके अपराधी है । यतिके प्रति इनका कटका कुत्तेमें कहने लगे—वह सगरामी तुम्हारा अपराधी है । मैं इसे तुम्हें सोपता हूँ । तुम जो दण्ड चाहो, इसे दे सकते हो ॥ २८ ॥ २९ ॥ रामका ज्ञान सुनकर कुत्तेने कहा—हमें किसी मित्रास्य को महन्त्र बना दिया जाय । ॥ ३० ॥ रामने उसकी बात स्वीकार कर ली और मुन्दर वस्त्र, चन्दन तथा माला आदिसे यतिको सजाभिन करके एक दालकीमें बिठाया और विविध प्रकारके दाज यजान हुए उत्सवके साथ एक क्षिप्रदयमें ले गये और उसे बहाना मन्त्र बना दिया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इस समय अज्ञानतावश यतिने अपना भाग्यादय समझा । कुछ देर बाद रामचन्द्रजी अपने सखियों समेत राजसभामें लौट आये ॥ ३३ ॥ इस प्रकारका कौतुक देखकर यतिने ही उन्मुख नागरिकोंसे रामसे कहा—हे प्रभो ! इस कुत्तेने यतिको इस प्रकारका दण्ड क्यों दिया ? यतिन हा पश्चराम उसकी हाग नैड दी और जब आपने कुत्तेको उसके क्रियेका दण्ड दनक लिए कहा तो उसने दण्डक स्थानपर यतिको महन्त्र बनवा दिया । ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस प्रकार नागरिकोंकी बात सुनकर रामने कहा कि आप ज्ञान उस कुत्तेसे ही पूछ लें कि उसने ऐसा क्यों किया । वह जान लोगीकी शङ्काका भया भति समझान कर दण । ॥ ३६ ॥ रामक आज्ञानुसार उस लोकोने कुरोसे पूछा तो उसने कहा—मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे यादवान होकर आप लोग मुन । ॥ ३७ ॥ यन्मं उन्मन्न अन्न रक्षानेवाले, शिवालप, मड, कगीना शानग्राम इन स्थानोंके भक्षित, अनाथ स्त्री तथा बालकोंके धनका अपहरण करनेवाले, गालीनालीज करनेवाले, गोविघ्न तथा शिवके लिए अर्पित धनका अपहरण करनेवाले, धन्याय करनेवाले, राजाके धरपर पहुँच हुए राजकका भगवान् दूसरेका धन हड़पनवाले, प्रार्थितक

नृपगेहे प्रविशन्तां याचकानां निवारिणः । परद्रव्यपहर्ताः । प्रायश्चिन्नाधिकारिणः ॥ ४१ ॥  
 विप्रभोजनद्रव्यस्य होमद्रव्यस्य हारिणः । बहुद्रव्यापहर्ताश्चैते । सर्वेऽप्यज्ञान्यदि ॥ ४२ ॥  
 गच्छन्ति वै शुनो योनिं मन्त्रमेतद्रक्षा यम । मया गृहाधिपत्याम कन्या योनिः शुनः स्वयम् ॥ ४३ ॥  
 अतो यथाऽद्य यतये शिषितुं पदमर्चयेत् । इति गृहाध्यमाकर्ण्ये जागरादिछन्नमग्नयाः ॥ ४४ ॥  
 ते ययुः स्वीयगेहानि यस्याश्वाऽपि विजम्बलम् । इदानीं स यतिर्जानं शुनो योनौ ररकिन्विषत् ॥ ४५ ॥  
 आप मखाशुभा मुक्तिं मुक्तादी र्नीयकिन्विषम् । न हेयोऽयं यतिः शिष्य माकिनेऽद्र मृतस्त्विति ॥ ४६ ॥  
 स्थलान्तरे मृतश्चायं गतः कार्यार्थमन्मनः । अयोध्यायां मृतानां च पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ४७ ॥  
 क यतिः सारमेयश्च क स आ क मतिश्च सा । गृह्णा कर्मणश्चात्र गतिरुया गृह्णामासः ॥ ४८ ॥  
 क यतिः सारमेयः क न्यायश्चेन्मं समापनेः । आसीत्सत्यः सर्वेचात्र ज्ञानपायमन्मुत्प्रेक्षणात् ॥ ४९ ॥  
 अर्थकदा तु साकेल्यमिनो भृशुरस्य च । पञ्चत्वं पञ्चवर्णीयः पुनः प्राप्ताः शिशुः प्रियः ॥ ५० ॥  
 तदा विप्रः मपन्तीकस्तन्प्रतमरुणोदये । तावद्वा मयाभीयं करोदोन्मैः स्वर्गैर्दुः ॥ ५१ ॥  
 अवर्षीत् पुनश्चोकेन व्यथितः प्रोधमंयुतः । मीनमालिभ्य गजेन्द्र कथं न निद्रितोर्भम हि ॥ ५२ ॥  
 न्वद्राज्येऽधर्मनः कस्य मृतो मे बालकः प्रियः । स्वर्गोऽधर्मोऽप्यतान्यान्व भानोऽधर्मो न वसपहम् ॥ ५३ ॥  
 नृपे पापिनि प्रियन्तो वरा क्षत्रवायुषः मृतम् । यस्य राज्ये जनेः सर्वेऽप्यधर्मः कियते हवि ॥ ५४ ॥  
 सोऽपि तेयो नृपस्यैव पतन्नेषां न शिषितम् । अन्तेऽधार्मिणो राजो राज्ये मंस्य शिशुर्मृतः ॥ ५५ ॥  
 उपायं चिन्तयन्वाप्य जीवनेऽद्य जवान्मृष । नोषेदावा चितिं चारोदावस्तनयेन हि ॥ ५६ ॥  
 स्मर वृत्तं भवणस्य हेतोर्येऽजनकाय ने जानं शापादिकं पूर्वं तद्ददवापि ते भवेत् ॥ ५७ ॥

शिष्ट दिव्य धनको ग्रहण करनेवाले । गृहणभावजनक लिए जुटाई सामग्रियोंसे चारी करखाते और बड़ेमानी करके अधिक धन इकट्ठा करनेवाले लोग । सरकार दूमेरे जमाने कतेक गोल्डम जन्म पाते हैं ॥ ३४-४२ ॥ इस प्रसङ्गमें मैंने जो बात बड़ी है, वह सब सत्य है । मैंने स्वयं गृहाधिपत्यके कारण ही कुत्तेकी गोति पायी है ॥ ४३ ॥ इस संयास को उसकी करनाका फल होने से लिए, मैंने उसे यह पद दिलाया है । इस प्रकार उसकी बात गुनकर सारे पुत्रालियाजसे स देह निवृत्त हो गया और सब लोग अपने-अपने धराको चले गये । कुत्ता भी अपने स्थानकी चला गया । उस संन्यासी ने गृहाधिपत्यके मर्ममें आकर आ पाप किया, उनमें जन्मान्तरमें उसे कुत्तेकी गोति मिली ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वह कुत्ता जिसने कि रामचन्द्रजीके यही दावा किया था उसे कुछ दिनों बाद शुभ गति मिली, किन्तु वह दिन जो अपने पापोंसे कुत्ता हुआ था । अथर्व्यामें न सरकार किसी दूमेरे म्यानपर सरा । इस लिए उसे मुक्ति नहीं मिली । जो लोग अपाध्याय गरीर त्याग करते हैं । वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं । कर्मकी गति यही विनियम होती है । कहीं वह कुत्ता हाकर भी मुक्त हो गया और वह पति होकर भी मुत्ता हो गया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ कहीं कुत्ता और कहीं भन्यासी । रामने उन दोनोंका किसीना अच्छा न्याय किया । सब ही यह है कि रामके राज्यमें किसीका गृह देखकर न्याय नहीं किया जाता था । बल्कि जो भ्याय्य बात होती, वही होती थी ॥ ४९ ॥ एक समय अयोध्यामें एक ब्राह्मणके पंचवर्षीय बालककी मृत्यु हो गयी ॥ ५० ॥ सबका हौत हा से ब्राह्मणस्यकी मन्त्रके शतको लेकर राजद्वारपर आये और बड़े आर-आरसे रोते लगे ॥ ५१ ॥ गुनगोळसे मुर्झा होकर उस ब्राह्मणने कहा हे राम ! पीताको मोदमे लेकर तुम अब भी आनन्दके ताब पड़े स रहे हो ? ॥ ५२ ॥ कुम्हारों राज्यमें किसीके अवयस मेरे बन्धको मृत्यु हुई है । इसमें तुम्हाग कोई अधम है अथवा रिती दूसरका । यह मैं नहीं जानता ॥ ५३ ॥ मैंने ऐसा मूना है कि राजके अधम होनेसे ही उसका राजभ सकल मृत्यु होती है जिस राजाके राज्यमें अधम होता है, उसका भी कारण राजा ही होता है । क्योंकि वह अपने प्रजाका अच्छी तरह शिक्षा नहीं देता । इससे यह निश्चित है कि तुम अवर्षी हो । इसी लिए मेरे बालककी मृत्यु हुई है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अनर्थ है राज्य । इसके लिए ही मैं कोई उपाय करो, नहीं तो हम दोनों ( स्त्री-पुरुष )



वतो विप्रप्रिया प्राह सागां प्रोक्ष्यम्परेण हि । क्वं न्य एनिमान्निभ्य निद्रिनऽग्निं मुञ्च शुभे ॥१८॥  
 स्वमप्यमि पुत्रवती मे दुर्गं स्यान्मनः कुरु । उपायं कुरुयथाय भर्त्राऽप्य जीवने शिशोः ॥१९॥  
 इति तदंशनीवाक्यं श्रुत्वा सर्वे पुगीक्ष्मणः । आसन्नव्यग्रनिश्चास्तं प्रतमाश्रये मन्थिताः ॥२०॥  
 सीतारामानपि तयोर्वाक्यं श्रुत्वाऽपि निद्रितौ । विनिर्गन्तौ रणिभ्रातावहिरस्वदूदःसुदुःखितौ ॥२१॥  
 निवार्य रंदिगीतानि राजद्रोहं तयोः पुनः । वेगेन जम्बतुः पट्टिः सीतारामौ गतभिर्यौ ॥२२॥  
 दृष्ट्वा सीतां च रामं च तौ शोकं चक्रन्मुग्धदुः । नाशायाम्य रामचन्द्रस्तदाऽऽह गद्रदाश्वरः ॥२३॥  
 मा शोकं कुरुतभोर्भौ मद्वि गृणुतस्मिरति । कृत्योपायं हि युवराः पुत्रं स जीवयाम्यहम् ॥२४॥  
 न जीदितश्रेयुवयोः पुत्रमर्हपये कुशम् । मित्र मन्थाभिर्षां चोर्भौ पश्यतस्मिह मेऽय हि ॥२५॥  
 ततः सीता विप्रपत्नीम आस्थाह गिरं शुभाम् । रामेण ते प्रतिदानं कुशदानेन मामिह ॥२६॥  
 अहमप्यस्य ते रश्मि तव दुःस्वस्य शान्तिने । न जीवि-श्रेयामेष स्याज्य स्याच्छिष्युः प्रियः ॥२७॥  
 तर्हि त्वदुदु.त्वशान्प्रथमपेदेऽह लव प्रियम् । नाभ्यां कुशलशङ्कां न्व पुत्रदुःखं न्यत्रिष्यामि ॥२८॥  
 भजिष्यसि न्व कर्मोपयन्तः शोकं वृक्षस्य सा । ततः प्राह द्वित्रं रामस्त्व पत्न्याऽत्र स्थितिं भव ॥२९॥  
 मा कुष्ठप्र मुहुः खेदं त्यज्युव विप्रियाम्यहम् । इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनैव तन्द्राण्यौ यव शिशोः ॥३०॥  
 निधाय कृमिदुर्गन्धदुग्धमृगप्रशोभये । स्वयं स्नान्वा निर्व्याधिं चाक्रान्तिस्त्रयानमः ॥३१॥  
 ततः समासन्धितः सन् वसिष्ठ प्राह राषवः । राज्यं श.मर्त्ति धर्मेण नशय वै शिशुः कथम् ॥३२॥

अपने प्रिय पुत्रके साथ चित्तम जयकर भज्य रहा जे वें ॥ २९ ॥ धनपक गृह-तका स्मरण कर । जिस प्रकार तुम्हारे पिता द्वारा अपने पुत्रपक दुःखक दुःख । हार उपक मी रापन दशरथकी साथ दकर अनन प्राग त्याग दिये थे, वही दणा हमारा भी होगा ॥ २७ ॥ इसकी अनन्तर ब्रह्मपान करारक साथ सीताकी सहायित करके कहा—हे शुभे । तुम दोनों पत्निका भातिगन करके आनन्दक साथ सा रहा है ? तुम या पुत्रवती हो । इस कारण भर दुःखका आरक्षण दकर भर सन्धता जिलानक स्थि भवन पात द्या । शास्त्र कोई उपाय करवाभा ॥ २८ ॥ २९ ॥ इस प्रकार उस विप्रवम्पताक मानस मुनकर वहाँक सब पुरवासी आमुल हो उठे और उस सबका चारो ओरस धरकर रज्जु हा गया ॥ ३० ॥ उधर राम तथा सीता दोनों ब्राह्मणका मामोंसे विह्वल होकर रतिशान्ताग बहुर निकल आए । नाच आकर रामन वन्दायन का स्तुति तथा गान-बजानवालोंक दान-दान राक दिये और वरक सब दौड़ते हुए उन दोनोंक पास पहुँच । उस समय उस दुःखम सीता तथा रामका मुख वृन्त्या गया था ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ महाराज राम तथा सीताकी बखबर से दोनों ओर भी जोर-जोरसे चिल्ला चिल्ला कर गान लगे ॥ उनका आधासन बन हुए गहर कण्ठस रामन कहा कि आप लोग दत्तक भ्रातृक न हा, मे जा कुछ वह रहा है उस मुन । मे कोई उपाय करके तुम्हारे पुत्रको जीवित करेगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ बाद तुम्हारे बटका जीवित न कर सकूँगा तो मे अपना पुत्र कुश आपको दूँगा । मेरा दानका सन्त समझकर आप विचार कर ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर सीताने विप्रपत्नीक पास जाकर कहा—हे भामिनी । तुम मुन रहा है कि रामने क्या प्रतिज्ञा की है ? तुम्हारे मतपक लिए मे भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि रामचन्द्रजी आपक वन्दे का जीवित न कर सकें तो मे अपने छोट पुत्र लवका दे दूँगी । उन दोनों पुत्रक गानस तुम्हारा पुत्रगाक दूर हो जायगा ॥ ३६-३८ ॥ अन्त गन मत्त कर । तुम्हें या पुत्र न गिया तो अभी जा मुल मे भजन रहो हूँ, वह तुम्हको प्राप्त होगा । इसके अनन्तर रामने ब्रह्मपस कहा कि आप प्रयना पत्नीक साथ यहाँ बैठ और किसी प्रकारका खेद न करें मे शपथक बटका जीवित करेगा । इसने कृष्ण रामन लक्ष्मणस कहकर एक तेलसे मरी हुई नौका मेंवायी । जिससे शन रहूँगा मेरी, उसमह दुर्गन्ध न निकल या काँड़े न पड़े । इस निचारसे उस शपथको उसने रखवा दिया और स्वयं छिन्न होकर सन्धतादि निरस्त करनकी चले गये । इसके अनन्तर समाधि बैठकर रामन भरत कुरुमुख वसिष्ठके कहा 'क जब मे धर्मपुत्रक राज्यशासन कर रहा हूँ तब

बालकमे दध्नां प्राप्तमश्रीपायं विचिन्त्यताम् । इति याददुःखं रामः प्रोवाच तावदम्बरात् ॥७३॥  
 नारदः प्रययां वार्षां रणान् तत्त्वमां जवत् । श्रुत्वा द्रुम्याथ तं रामः परिपूज्य पथाविधि ॥७४॥  
 सत्रान्य सकलं वृत्त पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् । त्वयापापोऽत्र बकव्यः शिशोश्चाप्यप्रजीवने ॥७५॥  
 पुत्राभ्यां हि प्रतिजान द्विजाय मानसा मया । किमर्थं मम राज्येऽवो मृतस्त्रीदहनं वेद्यहम् ॥७६॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवः श्राह नारदः । राम त्वद्विषयेऽधर्मं न काऽप्याचरते जनः ॥७७॥  
 भूम्यां सर्वत्र द्रष्टव्यं त्वया गत्वाऽद्य मद्दिगम् । यद्यप्यहं विजानामि भूम्यां वृत्तं च जानतः ॥७८॥  
 तथापि जनशिक्षार्थं स्वामेव प्रेषयाम्यहम् । त्वं दृष्ट्वाऽधमनिरतं जनं शिक्षय सादरम् ॥७९॥  
 अधर्मोऽदमेनायं जीवयिष्यति वै विशः । मथेति राघवश्चोक्त्वा विमर्ज्य नारदं मुनिम् ॥८०॥  
 मोक्षया नामरैः सर्वेभ्रातृभिर्गुह्या महः । पुत्राभ्यां भन्विभिर्गुह्यैः पुष्पकं चारुगेहं सः ॥८१॥  
 एतस्मिन्नन्तरेऽग्रेऽभून्महान्कोलाहलमन्दा । तं श्रुत्वा चकितो रामः स ददर्श समन्ततः ॥८२॥  
 तावददर्शं पुरतः पौरैः मनेष्टिनां स्त्रियम् । अधमप्यपरं गृह्णन्तश्च ममागतम् ॥८३॥  
 राम दृष्ट्वा पुष्पकस्य कर्त्री माक्षणीं पुरः । दानस्वर्गेण प्रोवाच हस्त्राभ्यां हृदि तावत् ॥८४॥  
 राघवः महाबाहो ते राज्यं गतमर्तुका । अहं जनाऽस्मिन् नदीपान्मां दृष्ट्वा न्व न लज्जसे ॥८५॥  
 मञ्जुनारं जीवयन् नोचेच्छापे उदामि ते । इति तस्या वचः श्रुत्वा राघवः विश्रमानसः ॥८६॥  
 अश्वीन्मभूरं वाक्यं माक्षणीं तोषयन्मुहुः । कोपं समश्च रम्भोरु ते भर्तारं प्रजीवये ॥८७॥  
 अर्ज्यं न हेतोर्गच्छामि न्वं मदगेहे सुखं वपः । इत्युक्त्वाऽऽश्वास्य तां रामस्त्वत्पुत्रापिपूर्ववत् ॥८८॥  
 तैलद्रोणयोः स्थापयित्वा सुमित्रं वाक्यमश्वरीन् । भागमिष्याम्यहं यावत्तावत्कर्म्यापि नो शक्यम् ॥८९॥

इस बाह्यणके जन्मकी अवकाश पृथु कभी हुई ॥ ६०-२ ॥ इसका लिये क ई प्राय माचना चाहिये । इस प्रकार  
 रामने गुरु दक्षिणसे प्रश्न किया ही था कि इसलिये अवकाशमानता क्यों कजात हुए नारदजी उस सभाभवनाय  
 आ पहुँच । रामचन्द्रजीन उठकर नारदको पूजा की ओर सारा वृत्तान्त कह सुनाया । इसके पश्चात् वे बोले-  
 हे मुनिगुरु आप ही इस निद्रगुप्तके जीवनकी कोई उपाय बनलाइय । हमने तथा सातान बहुत प्रतिज्ञा की है  
 कि यदि हम बालककी मै जीवित न कर सका हा अपन डोली पुत्र पुत्र तथा सब उस निद्रको अपन कर दूँगा ।  
 मेरे राज्यमें इस प्रकार अकाल मृत्यु कैम हुई, यह मुझ मारुम नहीं हो रहा है ॥ ७३-७५ ॥ इस प्रकार  
 रामके वचन सुनकर नारदने कहा—हे राम ! तुम्हारे राज्यमें बाई भा मनुष्य किसी प्रकारका अधर्म नहीं  
 करता । फिर भी मेरे कथनानुसार आपको यह उचित है कि आपन राज्यभरमें घूमकर देख । यदि कहीं कोई  
 किसी तरहका अधर्माचरण करता हुआ देखे तो उसे आप दण्ड दे । इस प्रकार अधर्मका मूलोच्छेद करनेपर  
 यह बाह्यणबालक जन्मि हा जायगा । रामने भी ना दको सलाह मान ली । नारद मुनिको सादर विदा  
 करके राम सीता, कुछ नगरवासों जना, अपने १० लाक्षा, पुरु वसिष्ठ दोनों पुत्रों तथा मन्त्रियोंकी साथ लेकर  
 पुष्पक विमानपर आरुढ़ हुए ॥ ७५-८१ ॥ उमें समय आर्यक आर्यन जोरोंका बालाहल सुनाई पड़ा ।  
 उसे सुनकर राम और भी विस्मित हुए और चला आर निहारन लग्य । तबतक उन्होंने देखा कि एक  
 स्त्रीको चारों ओरसे बहुतसे पुरुषोंकी पर हुए हैं । उनका आने पृथ्वीपुरकी तरफमें एक और शव लड़ा  
 हुआ आ रहा है । स्त्रीन जब रामको पुष्पक विमानपर बैठे देखा तो अपने हँसोस छाया प टकर कहने लगी—हे  
 राम ! हे राम ! तुम्हारे राज्यकालमें दिव्या होकर मै यहाँ आया है । मुझ इस दुःखी शवकर तुम्हें साथ  
 नहीं आती ? मेरे पतिभा पृथु तुम्हारे ही अधर्मने हुई है । इस कारण जसे वने, वैसे मेरे पतिको जियेगा ।  
 मही ली मै शपथ दे दूँगी । इस प्रकार उस स्त्रीकी बात सुनकर रामने निद्र होकर मोड़ी बाणसे आश्वसन  
 देते हुए उत्तर दिया—हे रम्भोरु ! तुम कायका दण्डयन करके जान डूँगी । मै तुम्हारे पतिको जिला दूँगा ।  
 मै भी इसी कामके लिए आ रहा हूँ । तुम आकरके साथ मेरे भवनमें चकर रह । इस तरह उसे समझा-  
 सुझाकर रामने उस शवकी भी पहलके समान डेलकी नोकाम रखवाया और सुमन्यको वचन कर दिया कि

त्वया रक्षो ज्वालनीयं रक्षणीयं प्रयन्नतः । सर्वानपि त्वया भूम्यां आध्य दृन्दुमितिःस्वनैः ॥९०॥  
 ए कस्यापि शर्वं दग्धं कापि कार्यं जनैस्त्रिभिः तवेति गधर्वं चोक्त्वा दूनैः संश्रान्य उदधः ॥९१॥  
 सुवन्तः सकलान् भूम्यान् माकेने न्यवमन्मुखात् । रामोऽपि पुरुषकेनैव पश्चिमां चोत्तरां विधत् ॥९२॥  
 पूर्वामपि श्वनैः पश्यन् दक्षिणाभिमुखो पर्या । एतस्मिन्नन्तरं योष्यापुर्वां पञ्च श्वानि हि ॥९३॥  
 समानीतानि तैलस्य द्रोण्यां तान्यपि पूर्ववत् । सुवन्तः स्थापयामास श्रीगमस्याज्ञयाऽऽदरात् ॥९४॥  
 तेषु पञ्चश्वेष्वेव चैकं मधुपुरि स्थितम् । क्षत्रियस्य च तज्ज्ञेयं सनानीतं मुहुजनैः ॥९५॥  
 प्रयागस्य द्वितीयं च श्वं त्रैयस्य तन्मृतम् । पूर्वं वयमि पञ्चान्याममानीतं हि तज्जनैः ॥९६॥  
 हस्तिनापुरमस्य नक्षत्रायां श्वमानीतम् । तैलकास्य तज्ज्ञेयं समानीतं हि तज्जनैः ॥९७॥  
 श्वं चतुर्थं तज्ज्ञेयं हरिद्वारस्थितं द्विजं । तैलकास्तुपायाश्च समानीतं हि तज्जनैः ॥९८॥  
 उज्जयिनीस्य पञ्चमं च श्वं श्वयं महामते । चर्मकासदुहितायाः समानीतं हि तज्जनैः ॥९९॥  
 एवं पञ्च श्वान्यामन् पूर्वैर्द्वे ब्राह्मणस्य च । मया योष्यापुर्वापञ्च श्वान्येव स्थितानि हि ॥१००॥  
 रामोऽपि दृढकं पश्यन् स वध्राम समन्ततः । यस्यां विध्याचलं धीमान् रेवायाग्विस्तृतम् ॥१०१॥  
 तत्र वृक्षे संवमानं धूमं शानुमधोमुखात् । शूद्रं निर्गन्धं स्वर्गोच्छं न इतुं मधुपस्थितः ॥१०२॥  
 तदा तं राघवः प्राह भो शूद्रं मृणुं मद्वचः । ब्रह्मणादिविभिर्वर्षेभ्यः कार्यं न चेत्यतः ॥१०३॥  
 शूद्रैश्च द्विभ्यश्च मदा कार्याऽनिवर्त्तितः । द्विजकुर्ये स्वयां चात्र कृतं पापं मनोऽह ॥१०४॥  
 इदानीं त्वां हनिष्यामि जीवयिष्यामि तान्मृतान् । तुष्टोऽहं त्वां स्वनपया वर वरय वालिनम् ॥१०५॥  
 इति रामवचः श्रुत्वाऽधोमुखो गमपादजः । उवाच भयभीतः मन्नग्या गर्भं मुहुर्मुहुः ॥१०६॥  
 राम राघवदर्पेण यदि तुष्टोऽमि मां प्रभो । तर्हि ते वर्याम्यद्य येन शूद्रगतिर्भवेत् ॥१०७॥

मन्त्रक मै लौट न आऊँ । तबन्क तुम किसी भी शयका जनिमन्कार न करन देना ॥ ८२-८९ ॥ साध ही मेरे  
 कायमे यह दुगी पिटवा दो कि तबन्क मै लौट न आऊँ । तबन्क कोई भी शय न उलायत आय । सुमन्त्रने  
 राक्षसी आजा स्वीकार करके दुगो दुगा पिटवा राक्षसों यह आजा सब ओंओको सुनवा दो और  
 आनन्दपूर्वक राज-काज देखते हुए रहने लगे । तब राघवचन्द्रजी गुणर विमानर बैठकर पश्चिम तथा  
 उत्तरकी दिशाओंको घीरे-घीरे अच्छी तरह देखन हुए दक्षिण दिशाकी ओर बढ़े । इसी बीच अयोध्यामें  
 बीच रात्र और आकर एकत्र हो गये । उग्रे भी भूमन्त्रने पूर्ववत् तैलकी लौकादे चण दिवा ॥ ९०-९४ ॥  
 उन लौकादेसे एक शय मधुपर गधर्व रहनेवाले एक शयका था । जिस उरव मुहुजन रामके दरबारमें से  
 भागे थे । दूसरा शय आगनिवासी एक तैलका था । थोड़ी ही भयम्भामे उसका मृग्यु हो गयी थी । इसी  
 लिए उसके घरवाले रामके पास से भागे । तीसरा शय हस्तिनापुरनिवासी एक तैलका था । उसे  
 भी उसके घरवाले रामके पास से भागे थे । चौथा शय हरिद्वारनिवासी एक लौकाका पुत्रवधुका था । पाँचवाँ  
 शय उज्जयिनीनिवासी एक अमागकी उरकीका था और उसका घरवाले उसे अयोध्या से भागे थे । इस प्रकार  
 ये पाँच शय तथा पूर्वके दो ब्राह्मणके मय मिलकर अब छत्र म मान कर एकत्र हो गये ॥ ९५-१०० ॥ राघ-  
 वचन्द्रजी भी दण्डकावण्यमें अच्छी तरह धूमकर रेवानदीमें परिशुन दिग्दर्शनकी ओर बढ़े । वहाँ उन्होने  
 देखा कि एक बूढ़ उलटा रंगा है और नीचे आगकी लूनी चपक रही है । वह बूढ़ पुत्री बीता हुआ मुँह बाये  
 लटका हुआ है । इस प्रकारकी उय तपस्या करके स्वर्ग चाहनेवाले उस शूद्रको राम मानके लिए संसार ही  
 गये और उसके पास जाकर रहने लगे-हे बूढ़ ! ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्गोंके लिए ही तपस्या  
 करनेका विधान है, बूढ़के लिए नहीं । --हे भो सर्वदा इन तीनों वर्गोंकी सेवा करनी चाहिए । करें नह !  
 तुम पापीने अपने धर्मका उल्लंघन करके द्विजोंके समान कर्म किया है । १०१-१०४ ॥ उस समय मैं  
 तुझे शरकर उन लौकाको जीवित करूँगा जो तरे घबकिहूँ । आचरणसे अकारणमृत्युके शरस बने हैं ।  
 मैं तेरी इस तपस्यासे प्रसन्न हूँ । बोल, तेरी क्या कामना है ? इस प्रकार राघवी बाणी सुनकर भयभीत हो

मयापि येन कीर्तिः स्यात्तं वरं दातुमर्हसि । इति शूद्रवचः श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽज्वरीद्वचः ॥१०८॥  
 मम रामेति वन्द्यम तच्छुद्धैः सर्वदेव हि जपनेषं कीर्तनीयं चिंतनीयं मुहुर्मुहुः ॥१०९॥  
 भविष्यति सतिस्तेषामनेन वन्द्यो भव तवानेनोपकारेण कीर्तिः शूद्रेषु वै भवेत् ॥११०॥  
 इति रामवचं श्रुत्वा पुनः शूद्रोऽज्वरीद्वचः । शूद्राः कर्त्ता मदाधियो भविष्यति रघूत्तम ॥१११॥  
 व्यग्रचित्ता भविष्यति कृपिकर्मादिभ्यः प्रभो । तदा तेषां कृतां बुद्धिर्जपादिषु भविष्यति ॥११२॥  
 अगस्त्यदुःखोऽयं यतो देवो विचार्य च । त्वत्स्य वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽज्वरी पुनः ॥११३॥  
 परवन्दनकालेषु रामरामेति सर्वदा । शूद्रा वदन्तु सर्वत्र तेन तेषां यतिमवेत् ॥११४॥  
 तवापीय कथाकीर्तिः स्मरिष्यति मर्गप्रज्ञाः । त्वं मया निहतस्त्वद्य वैकुण्ठं प्रति यास्यमि ॥११५॥  
 पुनर्वयाये श्रीगम्य वरमन्यं स्वकारणम् । अस्मिन् जने मदा तिष्ठ संहातश्चरणमंयुक्तः ॥११६॥  
 अंशतश्चेत् पूर्वमेव दर्शनं मम ये नराः । कश्चिन्नति ततः पथाद्ये नरास्तत्र दर्शनम् ॥११७॥  
 कुर्यान्ति सद्गतिं भक्त्या मोक्षमेव व्रजन्ति ते । मदर्शनं विना मन्योऽप्यप्यन्यविचारतः ॥११८॥  
 तेषामुद्धरणं राम कुरु मद्वचनात् प्रभो । तथोवाच तदा रामः भक्तिं तस्मै ददां इति ॥११९॥  
 इति कृत्वा सुमंतुष्टं कृत्वा शूद्रं रघूत्तमः । जीवयामास विशादीन्मम साकेनमभ्यितान् ॥१२०॥  
 तदारम्यात्र शूद्रेस्तु विष्णुदामावनीतके । परवन्दनकालेषु रामरामेति कीर्त्तयेत् ॥१२१॥  
 तं कृत्वा रघुवीरः स परिश्रुत्य मुदान्वितः । सीतां नानाकौतुकानि दर्शयन्स्वर्गं परी ॥१२२॥  
 एतस्मिन्नंतरे मार्गे शूद्रोऽकौ निरोधिनौ । विवदमानीं रामेण चान्तातं द्रष्टुमगतौ ॥१२३॥  
 तानुवाच रघुश्रेष्ठः किमर्थं हि युष्मदुर्मा । विवदमानीं मश्रादीं मां ब्रूयन्त्यद्य निम्नरात् ॥१२४॥

और तीसरा मन्त्रक निचे हुए बार बार प्रणाम करके उस शूद्रन कहा—हे गवशके अधिमानका दूर करनेवासे  
 राम । यदि वास्तवमें आप मेरे ऊपर प्रमथ है तो मुझ वह वादान दाजिय कि जिससे शूद्रजातिका भी  
 सद्गति प्राप्त हो, साथ ही मेरा भी उद्धार हो जाय । इस तरह शूद्रकी दास्यपूर्ण बात सुनकर रामचन्द्रजी  
 बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे— ॥ १०५-१०८ ॥ 'राम' इस पवित्र नामका जो शूद्र मदा जप, कीर्तन तथा  
 चिंतन करने रहने, उन लोगोंका सद्गति प्राप्त होगी और तुम भी इस तत्त्वज्ञान से साडकर मेरा चिंतन करो ।  
 तुम्हारे इस उपकारसे मुझमें तुम्हारी कर्त्ति होगी । इस प्रकार रामचन्द्रजीके द्वारा वर पाकर शूद्रन कहा—  
 हे रघूत्तम ! आगे महाप्रसाद कांक्षयुग आनवाग है । उसमें शूद्रजातिक लोग बड़े मूल्य होंगे । वे सर्वदा  
 अपनी खेती-बारीक काममें ही व्यस्त रहने । ऐसा अवस्था में उभ जप तथा कीर्तन करनेका अवसर हो नहीं  
 मिलता । इन गुप्त कर्मोंका जोर उनको कुछ कैसे जायगा । अतएव उनको अनुरूप कोई वरदान दाजिए ।  
 उसकी यह बात सुनी तो प्रसन्न होकर रामन कहा कि वे लोग एक-दूसरेको प्रणाम-आशं पके समय 'राम-राम'  
 ऐसा कहें । इससे उनको उद्धार हो जाय । ॥ १०९-११३ ॥ उस शूद्रममाश्रम तुम्हारी वडा कीर्त्ति  
 होगी । आज तुम हमारे हाथों सरकर श्रेष्ठध्यामका प्राप्त हो जाओ । इसके अनन्तर उसने रामसे यह वर  
 मांगा कि आप सीता तथा लक्ष्मणक साथ सर्वत्र हम परतगर निवास करें ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ जो लोग गद्दी  
 आकर पहले मेरा दर्शन करनेके पछान् आपका दर्शन करें, उनको मोक्षपद प्राप्त हुआ करे । इसका सिवाय  
 जो लोग भ्रमवश विना मेरा दर्शन किये ही आपका दर्शन कर लें उनका भी उद्धार हो जाय । रामन 'तथास्तु'  
 कहकर भक्तिका वर दिला और उसे पारकर उन अकाल मुग्धोंमें धरे हुए लाल का रजित किया, जो बाहुल्य-  
 क्षत्रियादि सात प्रणी अवस्थामें भर पड़े थे ॥ ११७-१२० ॥ हे विष्णुदास ! तभीसे इस पृथ्वीपरमें शूद्रलोग  
 आपसमें प्रणाम-आशंयक अवसरपर 'राम राम' कहा करने है । शूद्रकी मारकर हृदयपूर्वक राम-  
 चन्द्रजी सीताकी गमनके अनेक मनोहर दृश्योंको दिखाने हुए अयोध्याके लिए लौट पड़े । उसी बीच एक  
 गुप्त और उत्क परस्पर विवाद करते हुए रामके दर्शनोके लिए उनके सम्मुख आये । रामने उन्हें देखकर

तद्रामवचनं श्रुत्वा तदोन्मुखोऽग्रणीः प्रभुम् । मया पूर्वं कृतं रामं नगोपरि गृहं बने ॥१२५॥  
 तत्कालेन मया त्यक्तं तत्र गृध्रोऽस्मि सस्थितः । नानेन दीयते मया मम गेहं स्थूलम् ॥१२६॥  
 तदुन्मुखः श्रुत्वा गृध्रमाह गृध्रदहः । किमर्थं दीयते नास्व त्वया गृध्रं गृहं बने ॥१२७॥  
 तदा गृध्रोऽग्रणीद्राक्ष्यं राक्षसं दीर्घनिःस्वनः । मया पूर्वं कृतं रामं नगोपरि गृहं बने ॥१२८॥  
 तत्कालेन मया त्यक्तं तदोन्मुखः किमस्ति नृप । किमस्मिन्नापि त्वत्कृतं तत्राह सस्थितः पुनः ॥१२९॥  
 इवाप्यं स्पष्टं नैव मया मन्वा गेहं ममेति च । माऽधर्मं कुरु राजेंद्र त्वद्वशेषं पानकी ॥१३०॥  
 तावुवाच स्थुभ्रं पुराण्यो हि यदा गृहम् । कृतं नम्यात्र कः साक्षी तदा तौ नेति चोचतुः ॥१३१॥  
 विमानस्थास्तदा सर्वाग्रायवः प्राह सस्मिनः । इदमप्यत्र नम्यामि दुर्यटं मां पुरःस्थम् ॥१३२॥  
 कथं न्यायोऽयं नैव कार्यः कस्मै गेहं प्रदायनाम् । तद्रामवचनं श्रुत्वाऽमन्मर्षेऽनिविस्मिताः ॥१३३॥  
 तदोन्मुखं विभुः प्राह कृतं गेहं त्वया कदा । उन्मुखः प्राह भूधरेषु यदा जाता तदा कृतम् ॥१३४॥  
 तदुन्मुखः श्रुत्वा गृध्रं गमोऽग्रणीकवच । गृध्रः प्राह यदा येन महानारेऽवनिस्तदा ॥१३५॥  
 पुनश्च कृतं विद्वि पुन गेहं मया विभो । तद्गृध्रवचनं श्रुत्वा तदा तं प्राह राक्षसः ॥१३६॥  
 कथं विनाऽऽश्रयेणार्थान्महानारे नगम्यताम् । वोकाऽश्रयवटः मोर्षिपचूतपृथग्भवत्वा स्मृतः ॥१३७॥  
 तस्माद्गृध्रा स्वया गृध्रं स्वध्वनेऽनेन निश्चिनम् ।

मयाऽपि तत्र वाक्येन धिक् त्वां दृष्टपतत्रिणम् ॥१३८॥

इत्युक्त्वा राक्षसो हनून् गृध्रं पर्वतोपरि । त्रिगुलाग्रेषु चारोप्य प्रपणामास मयं यदम् ॥१३९॥  
 धन्यः स गृध्रो विभो यो रामाग्रं यस्य नैव मृतिः । अभून्दर्शनमपि यस्य देहविमर्शने ॥१४०॥

कहा कि तुम लोग क्यों लड़ रहे हो ? मुझे विस्मयपूर्वक कारण बनलाओ ॥ १२१-१२४ ॥ रामकी बात सुनकर उन्मुखने कहा कि मैंने एक वृक्षपर रहनेके लिए एक घोंसला बनाया था । कारणतब उसी समय उसे छोड़कर मुझे त्यागकरगएतो क्या आता तब और यह गृध्र उतरने रहने लगा । जब मेरे जानेकेपर यह पुनो मेरा घोंसला नहीं बने रहा है । इस प्रकार उन्मुखकी बात सुनकर रामने गृध्रसे कहा कि तुम इसका घोंसला इसे क्यों नहीं लेते ? गृध्रने लजबका कहा—हे राम ! रहने मेरे उस वृक्षपर यह घोंसला बनाया था । कुछ दिनोंके लिए मैं बाहर चला गया तो यह उन्मुख उसमें रहने लगा । फिर यह जब उसे छोड़कर कहीं चला गया तो मैं वाकर अपने घरमें रहने लगा । यह अर्थ हमसे मटाई कर रहा है । हे राम ! इसको जानोमैं अक्षर कहीं आप मयम न कीजियेगा । क्योंकि आपके वशन कभी कोई पानकी नहीं हुआ है ॥ १२५-१३० ॥ उन दोनोंसे रामने कहा कि तुमने उस घोंसलको बनाया था, इसका कार्य जाता है सकल हो ? इस प्रकारके प्रश्न होनेपर वे दोनों चुप हो गए । क्योंकि उन दोनोंके पास कोई बवाह नहीं था । ऐसी दशामें मुस्कगते हुए रामने विमानपर बैठे हुए लोगोंसे कहा कि यह बिकट समस्या जाने या भरी है । इस अवस्थाका कैसे निवारण हो ? किसको यह घोंसला दिया जाय ? इस तरह रामकी बात सुनकर सब लोग चौंकासे रह गये । किसको कोई भुक्त नहीं सुनो ॥ १३१-१३३ ॥ फिर रामने उन्मुखसे कहा कि तुमने कब अपना घोंसला बनाया था । उसने उत्तर दिया कि मैंने अपना विकासस्थान उस समय बनाया था, जब इस पृथ्वीकी रचना हुई थी । इस प्रकार उन्मुखकी बात सुनकर रामने गृध्रके आश्रय देखा । गृध्रने उत्तर दिया कि मैंने उस घोंसलेको आपने वृक्षपर उसी समय बना लिया था, जब पृथ्वी अन्तर्गत थी—उसका उद्धार ही नहीं हुआ था । गृध्रसे रामने कहा कि जब पृथ्वीकी उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, तब यह आपका वृक्ष किसके सहारे बढ़ा था, गृध्रोम तुमने अक्षयवट भी नहीं बताया जो किसी तरह रह भी जाता है । इसलिए मैं तुम कहता हूँ कि तुम्हारी बात झूठ है । तुम उन्मुखका अर्थ सता रहे हो । तुम जैसे दृष्ट पक्षाकी धिक्कार है ॥ १३४-१३६ ॥ इतना कहकर रामने पुनो द्वारा गृध्रको वृक्षपर बढ़ाकर उस अपना परम घर दे दिया । यह गृध्र चर्य था, जिसका मृग्य रामके सम्मुख हुई और रामका रक्षण करते हुए उसने अपने आपोका परिचय किया । इस प्रकार उसे

दृष्ट्वा गौहमुन्मुक्ताय ययौ रामो निर्जा पुरीम् । विवेश नगरीं नृत्यवाद्यगीतपूरःसरम् ॥१४१॥  
 शिशुं विप्रं क्षत्रियं च वैश्यं चापि चतुर्थकम् । तैलकारं पञ्चमं च लोहकारस्तुषां तथा ॥१४२॥  
 चर्मकारदुहितरं सप्तैतान् हि सुजीवितान् । दृष्ट्वा रामः समावातानात्मानं द्रष्टुमादरात् ॥१४३॥  
 तुलोष नितरां पत्न्या तैः सर्वैः संस्तुतो मुहुः । ततः सपूज्यः तान् सर्वान् विसमर्जं रघूद्वहः ॥१४४॥  
 तदा महीन्स्रजश्चासीदयोध्यायां समन्ततः । एवं नानाचरित्राणि चकार रघुनन्दनः ॥१४५॥

इति श्रीमत्तकोटिरामचरितसंगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्धे

यत्तिषूद्रगृध्रशिक्षोपकरणं नाम दशमः सर्गः । १० ॥

## एकादशः सर्गः

( चार विप्रकन्याओंको रामका वरदान )

श्रीरामदास उवाच

अयैकदा रामचन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ । सीतया बन्धुभिः सैन्यैर्हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ॥१॥  
 पश्यन् वनानि सर्वाणि मृगयारसिको भृशम् । कौतूहलसमाविष्ट आसेटम्पूहसंश्रुतः ॥२॥  
 वषानद्गूढपादश्च नीलोष्णीधी हरिच्छदः । नीलगोधांगुलित्राणो धनुष्पाणिः शरी नृपः ॥३॥  
 अश्वारूढः सङ्गचर्मधारी भूषे पदानिभिः । वेष्टितः कवची रामो विवेश गहनं वनम् । ४॥  
 सीतया जालरंभ्रैश्च वारं वारं निरीक्षितः । स रामो बन्धुवर्गेश पुत्राभ्यां नृपसत्तमैः ॥५॥  
 क्रीडां तदाऽकरोच्च कुञ्जेषु मृगयन्मृगान् । इन्धतां इन्धयामेषो मृगो वेगान्पलायते ॥६॥  
 इति जल्पन् स्वभृत्येषु स्वयमुत्पत्य इति च । गांधारेषु च रम्येषु वनेषु विपुलेषु च ॥७॥  
 उल्लङ्घितमहाश्रोता युवा पञ्चास्यविक्रमः । इतस्ततः पुनर्याति कचिन्पश्यन् वनम्यलीम् । ८॥

राज देकर घोसला तलुकाको दे दिया और वहाँसे अपनी अयोध्या नगरीकी ओर चल पड़े। अयोध्यामें पहुँचे तो क्या देखा कि वहाँ नाच-गान हो रहे हैं। ब्राह्मणका लड़का, मधुरपुरवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तेली एवं लोहारकी पताङ्ग तथा चमारकी लड़की ये सब जीवित होकर रामके दर्शनोंको सहे हैं। उनको जीवित देखकर सीता समेत राम अत्यन्त प्रसन्न हुए। वहाँ पहुँचे तो लोगोंने रामकी स्तुति की और रामने भी उनका सत्कार करके उनके नामोंको भोज किया। उस समय अयोध्या भरमें चारों ओर उत्सव हो उत्सव सीखता था। इस तरह राम अनेक प्रकारका लीलायें करते रहते थे । १३६-१४५ ॥ इति श्रीमत्तकोटिराम-चरितसंगते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्ड्यविरचित 'ज्वात्स्ना' भाषाटीकासमन्विने राज्यकाण्डे पूर्वार्धे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके बहुत दिनों बाद रामचन्द्रजी एक समय शिकार खेलनके लिए सीता तथा भ्राताओं और बहुतसे हाथी-घोड़े आदिकी साथ लेकर वनमें गये। मृगयाके आनन्दसे आनन्दित होकर वे बहुतसे वनोंको देखते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। उस समय उनके साथ शिकार सेलानेवाले भीलोंका एक बहुत बड़ा दल था। रामचन्द्रजी जूता पहने थे, नीले रङ्गकी पगड़ी भस्मकपूर बँधी थी हरे कपड़े पहने हुए थे और नीले ही रङ्गकी गोवांगुली उँगलियोंमें बँधी थी। हाथमें धनुष-बाण धारण किये थे । १-३ ॥ वे घोड़ेपर सवार थे, तलवार और डाल बगलमें झूल रही थी। वहुतसे पैदल चलनेवाले राजे उनके साथ थे और उनके शरीर पर कवच पहना था। इस प्रकारका वेश धारण किये वे गहन वनमें जा पहुँचे। उस समय सीता मालकीकी खिड़कियोंसे रामकी ओर निहार रही थीं और रामचन्द्रजी अपने भ्राताओं और मित्रोंके साथ कुञ्जोंमें मृगोंको दूँहते हुए हर्षपूर्वक मृगया कर रहे थे। कभी-कभी 'मारो-मारो, यह मृग वेगसे भागा जा रहा है' इस प्रकार चिल्ला पड़ते। यदि कोई उसे मारनका नहीं पहुँच पाता तो वे उसे स्वयं मार दिया करते थे। एक

निरपोहीनसंश्वस्तलीनकेकिकूलाकुलाम् । इतिर्गोपमयस्तां धावञ्छापददिङ्मुखात् ॥ ९ ॥  
 कचित्केशवकुन्दरक्षित्वा गवावर्मापनाम् । सङ्गमर्थः कचिद्दुर्धर्षो दधानामिव दतिनाम् ॥ १० ॥  
 कचिन्कोटरमविष्टशुकां नदविनादिनाम् । मृग निष्टमुशमिष्टुद्रितां च कचिन् कचिन् ॥ ११ ॥  
 शार्दूलनमनिभिन्नरोहिद्रकारुणां कचिन् । पावस्वत्तमारातमुम्बिन्धमहिषागणैः ॥ १२ ॥  
 अपराधांजरक्षोणिं सूचयन्तामिव कचिन् । कचिद्बुधधनच्छायां वनगुप्पमुगधिनीम् ॥ १३ ॥  
 कचिद्दनायुद्धारभूयदसमनोगणाम् । अर्पन्ति मृगनिषेकनागर्भांमहाद्विलाभम् ॥ १४ ॥  
 वृत्तस्याजगर्गव्यामां कचिच्चिन्मुक्तसर्पापणाम् । कचिच्चदानलज्जालाशिखादिपाममहीकदाम् ॥ १५ ॥  
 ज्वलन्निकुञ्जनिगञ्जदृक्कथाप्रमददाम् । व्यमुचस्तु शुनां मूचं शशकेषु कचिन् कचिद् ॥ १६ ॥  
 पञ्चलेषु च विश्रांतः पुनर्धाने वनातरम् । ततो मध्याह्नममघे निवाद्य मयसस्तटे ॥ १७ ॥  
 कारयामास सेनायाः पीनायाश्च रघुतमः । स्वयं सुदऽकरोन्कोटामाखेटजुहपंथतः ॥ १८ ॥  
 दुद्रक्ष पृगट्टेषु मुक्त्वा वण जघान तान् । एवं खेलात्त गजेन्द्रं म्यग्रगर्गे च वै द्विज ॥ १९ ॥  
 तत्र कोलाहलवस्त्रः पञ्चस्यो निगंतो वनात् । य केमरा महावेगस्तीक्ष्णद्यूा भयावहः ॥ २० ॥  
 स्फुरद्वनमार्कांतदुर्गमार्गमहोत्तमः । कदाचिद्गगनाकूटः कदाचिद्भूमिभ्रमलः ॥ २१ ॥  
 न स्याल्लक्ष्यता याति चन्विनां पृष्ठगामिनाम् । कचिद्दर्शयथ याति दर्शनामोचराः कचिन् ॥ २२ ॥  
 वक्रमोतोऽतिमर्धेर कटर्काद्रुमपंकुलम् । शृङ्गवाधममार्कीर्णं पर्वतेश्च भयकरम् ॥ २३ ॥  
 श्रविष्टो विषमारण्यं गमस्तम्य पदानुमः । दृग्दृग् ततो गन्वा देशदेशं च निर्जनम् ॥ २४ ॥

बाढीको छोड़कर दूसरोंमें और दूसरोंको छोड़कर संभरीम, इन तरह बार बार इसर उधर वनस्थलीमें दौड़ रहे थे ॥ १-८ ॥ उस समय वहाँ वृक्षोंपर रहनवाँस मयूरक परिवार भार दण्ड वृक्षाक छादगाम छिर आर, हरिणयो चकित नवाम इसर-उधर लहरत हुई भाग जाती, बनसे जाब कालाहृतम प्रग्त होकर अपनी सीढ़से निकल पगल कने अपन विराम निकलकर मयंगण पुष्कर मारत थे और कला वीगुराको भयम लनकर मुनाई दता थी । वहाँ गेंडोंके समान शोभाको घाटण लिये हुए हाथी भाव रहे थे, वहाँ काटरमें बँडे हुए लोन अनेक एक रकी कोटिनी बोल रहे थे । वहाँ शराक पंशक निमान दिम्बाई दन थे और वही किमी सिंहक द्वारा मार गव हरिणक रुधिरसे मूर्च्छा रक्तवण हा गयी थी । वहीकी भूमि बड़े-बड़े स्तनात्रालो भसासे अतः पुरके आंगनसदृश था, म परला थी और वहीके वृक्षो पन वृक्षाक छायात छायामय हो गयो थी । वहाँ वनपुष्पकी मारिषम बहु स्थली लवणवनयी हो रही था और वही प्राकृतिक रीतिक स्तामण्डल बन गया था । उसपर जो भीरे मीणा रहे थे, वे उमर सारण सदृश जन पडते थे । वही मीनक शरीरसे आवा कनगी छूटकर झिलक मुखपर लगी थी । इस प्रकार बड़े-बड़े मर्षोंकी किले दिम्बाई पडती थी । ९-१४ । कहीं मुँह बने हुए बड़े-बड़े जनगर हन बँडे थे । कही सानेका कंपुत्रिभ दिम्बायी केली थी । कहीपर दानानन लगनके कारण चलने हुए निद्र-जोमसे व्याध पक आदि बड़े-बड़े जस्तु निकल निकलकर भाव रहे थे । रामके साथ भाये हर शिकारी लवणाशपर कुत्ते दौड़ा रहे थे । कोई तलैया मिल जानपर वे लोग वहाँ कुछ देर विश्राम करके आगे दूसरे वनमें चले जात थे और मध्याह्नक मयय किमी बड़े सरोवरपर सीता आदिक साथ आवास करते थे ॥ १५-१७ ॥ वीहरे वहर उठकर फिर शिकारा मत जाने थे । रामचन्द्रजो किसी भी मृगको देखकर उनके पीछे दौड़ पडते और उन बाणोंसे मार डालते थे । इस प्रकार रामचन्द्रजो मृगया कर ही रहे थे, तभी दूसरी ओरसे 'मिह आवा-सिह आवा' यह कलाहुल हान लगा । सिंह इसम ऊबकर और भा वेगव चला । उनके बरे बड़े दान थे । देखनेमें बड़े बड़ा भयवना मात्तम पडता था । वह बरे कालसे दुर्गम मार्गका मैं करता हुआ इन लोगोंकी और मड़ला मा रहा था । वह वही स्तना मारकर आकाशमार्गसे चरवा और कभी पृथ्वीपर दौड़ता चलता था ॥ १८-२१ ॥ अतिशय वेगसे भागनके कारण उसका पीछा करनेवाले लोग कभी उसे देख पाते थे—कभी नहीं । इस तरह भागता हुआ वह एक ऐसे दुर्गम स्थानपर पहुँच गया, वहाँ एक देवा-

एकाकी हयमारुहो विवेश गिरगङ्गाहम् सर्वं व्याधाश्च दूताश्च लक्ष्मणाश्च चक्षवः ॥२६॥  
 रामादर्शनमश्रीता वध्रमुत्ता हतस्ततः । अथ रामः कैमरेण अधान श्रितपत्रिणा ॥२६॥  
 ततः स दिव्यरूपेण नन्वा ग्राह रघूत्तमम् । पुरा विद्याधरवाह मया भुक्ता पतिव्रता ॥२७॥  
 मुनिपत्नी दृष्टेनैव तया शशस्त्वह क्रुधा । सिंहवन्निग्रहो यस्मात्तया मयि कुतोऽद्य हि ॥२८॥  
 अतस्त्वं मद्विरा सिंहा भयार्थं महावने । तदा मया प्रायिता सा पुनर्मामाह राघव ॥२९॥  
 निराद्रावशस्पर्शाच्छापाभ्युक्तिर्मवेचच । अतोऽद्य न्वच्छस्पर्शाच्छापाभ्युक्तधिरादहम् ॥३०॥  
 इत्युक्त्वा राममामय स स्वर्गं प्रययौ मुदा । ततः स रामचन्द्रोऽपि तुरगस्थो मुदान्वितः ॥३१॥  
 तत्र तस्थौ क्षणं यावत्तावत्तद्विरिगह्वरे । गुहाद्वारे शिलामैका ददर्श योजनायताम् ॥३२॥  
 मदतीं तां शिलां दृष्ट्वा रामो विस्मिनमानसः । धनुष्कांठ्याऽक्षिपद्दूरं गुहायां मविवेश ह ॥३३॥  
 क्षिपद्दूरं सतो गत्वाऽग्रे प्रकाशं ददर्श सः । तत्र द्रोण्यां पवनस्य तपस्यस्यः स्त्रियः प्रभूः ॥३४॥  
 ददर्श रामश्चत्वारः किञ्चिदंतरांस्थिताः । अस्थिचर्मावशिष्टश्च देहैर्दृग्गोचराकृतः ॥३५॥

धर्मः सर्वायिताश्चेति ज्ञातवान्मा रघूत्तमः ॥३६॥

निजरूपाणि चत्वारि कुत्वादी तत्पुर स्थितः । अक्षरीन्मधुर वाक्यं भिन्नरूपेण ताः पृथक् ॥३७॥  
 वरयस्वं वरान्नार्यः प्रमन्नोऽहं रघूत्तमः । ननस्ता राममभ्यर्शन्मांस्तक्कादिधातुभिः ॥३८॥  
 शूरिवानि शरीराणि ददृशुर्नयनेर्निर्जैः । श्रुत्वा तद्रामवाक्य नास्तदा स्वपुरतोऽक्षिभिः ॥३९॥

मेका नल्ला बह रहा था बहुतसे कंठोंले वृक्षोंकी छाड़ियाँ उसके आसपास गयीं । चांगे बांससे पर्वत-  
 की दीवारें लड़ी थी और भाँड़य तथा व्याप्त आदि हिंसक जीव उसमें भरे पड़े थे । ऐसी अवस्थामें भी  
 राम उसके पीछे-पाछे दौड़ने चल जा रहे थे । उस समय रामचन्द्रजी अपने नाभियोंसे बिल्टुडकर बहुत दूर  
 निर्जन जगहों उसमें माघ निकल गये । अन्तमें वह गिरु पर्वतकी एक शिखर कन्दरामें घुस गया और  
 रामचन्द्रजी भी घोंडेपर चढ़ हुए उसके साथ कन्दरामें घुस गये । इधर रामके लक्ष्मणादि आता, उनके  
 दूत तथा शिकार सेलानेवाले बहलिये घबराकर रामकी इधर-उधर खोजने लगे ॥ उसी समय रामने सिंहकी  
 एक विकराल बाणसे मारा ॥ २२-२६ ॥ तब वह एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिणत हो और उनको प्रणाम करके  
 कहने लगा हे राम मैं पहल विद्याधर था । मैं एक बार एक पतिव्रता मुनिपत्नीके साथ हुआ भोग  
 किया । जिससे कृपित होकर उसने मुझे शाप दे दिया कि तुझे सिंहके समान वरवग मेंगे आबरू उतारी है,  
 इसलिए मेरा बाणसे तू अधो मिट्ट हो जा । इस प्रकार शाप वा जानपर मैंने उसमें विनयी की तो उसने  
 कहा कि काजसे बहुत दिनों बाद जब रामचन्द्रजी तुझे अपने बाणसे मारेंगे तब तू सरस्पर्श होने ही शापसे  
 मुक्त हो जायगा ॥ सो बहुत समय बाद आपकी दयामें आज उम शापसे मुक्त हो गया । इस तरह अपना  
 पूर्ववृत्तात् सुनातेके बाद उसमें रामसे आज्ञा माँगी और अपने आँकको चला गया । रामचन्द्रजी अपने घोंडे-  
 पर बैठे ही बैठ घोंडी देर वही ठहर तो उन्होंने क्या देखा कि उस गुहाद्वारपर बाजनी लम्बा चौड़ी एक  
 शिला लगी हुई है । इतना बड़ा शिला देखकर राम विस्मित हुए और अपने धनुषकी कीरसे उसे दूर हटा  
 दिया । तब व उसकी भीतर घुसे । कुछ दूर आगे जानेपर उन्हें कृल प्रकाश सा दिखायी पड़ा । और आगे  
 बढ़े तो उन्होंने क्या देखा कि चार स्त्रियाँ तपस्या करती हुई बैठी हैं उनके गनीरमें हड्डो और बमडेक  
 शिवाय पाँसका नाम भी नहीं था । उनका स्वास चल रहा था । इनसे उनका यह ज्ञान हुआ कि ये स्त्रियाँ  
 अभी मरीं नहीं, प्रयुत जीवित हैं । ऐसी अवस्थामें रामने अपना चार गरीर बनाया और सबके सम्मुख  
 जाकर कहने लगे—‘ हे नारियो ! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर माँग लो । मैं राम तुम लोगोंकी तपस्या-  
 से प्रसन्न हूँ ।’ इसके अनन्तर रामने अपने हाथों उनका करारका स्पर्श किया । जिसमें उनकी मूर्खी  
 देहमें रक्त-भासादिष्टा संसार हो गया ॥ २७-३६ ॥ गर्गर भर जानेपर उन सबोंने अपने नेत्रोंसे  
 रामको देखा । उस समय प्रत्येक स्त्रीके सामनेवाले राम काटि सूर्यकी दीप्तिके समान देदीप्यमान



नार्यो विलोकयामासुः सर्वाः आसृष्टाश्चक्रुः । क ॥ ४० ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 ह्वाह्वान्नुवेपेण सर्वाणां पुनः शिरात् । न ॥ ४१ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 अतिविस्मयमापन्नास्तदाचुस्मन् पृथक् पृथक् । के ॥ ४२ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 सूर्यं देवा दानवा वा सम्यगे क्वाधृता पुरः । अन्ताम ॥ ४३ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 अस्माकं दुःशरीराणि कमनीयानि वै कथम् । ज ॥ ४४ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 इति ताम्ना वक्रः भुञ्ज राघवस्ता वक्रोऽज्ज्वलम् । प्र ॥ ४५ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 समर्पयपतिः श्रीमान् सूर्ययशमवुड्ब । मृ ॥ ४६ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 चतुष्कोट्या शिलां मृक्या वृष्मशक्तिभागात् । स्व ॥ ४७ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 मया कृतानि युष्माकं वातेसा दुर्दमिहतः । म ॥ ४८ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 समाप्तिं वगन् दातुं युयं नवा मयाऽयं हि । न ॥ ४९ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 यत्पुष्टं तन्मवा चोक्तं का युयं कथयतां मम । तिम ॥ ५० ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 तद्राश्वचक्रं भुञ्ज दन्दुर्भनेहनस्त्रिभान् । शि ॥ ५१ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 ऊचुः सर्वास्तदा राममानन्दोऽपुड्बलोचनाः । व ॥ ५२ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 सहस्राणि नृपाणां च वेण्यानां क वक्राः पुनः । य ॥ ५३ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 लक्ष्मीभिर्विवाहांश्च सखानकादिने न्वदम् । क ॥ ५४ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 यानि यानि जहार श्रीरत्नानि मृगनन्दन । अ ॥ ५५ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 अचलां स्वद्विनान्यश्च श्रीः समानेपुमादरात् । पु ॥ ५६ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर

हो रहे थे और घनुष-बाण तथा तलवार निपटे हुए थे । ३९ ॥ ४० ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 सवार होकर एक-एक स्तम्भसे उन बाणोंके सम्मुख लड़ रहे थे और उन सब रिपुओंका भा समान स्वरूप था और एक  
 ही तरहकी वेप-मुषा थी । ऐसे रामका देखकर उन रिपुओंका बड़ा अ भ्रम हुआ और वे कहने लगी—“आप  
 लोग कौन हैं ? घाड़पर सवार होकर क्यों आप आ रहे हैं ? आप सब देवता हैं या दानव ? आप कहीं  
 जायेंगे ? कृपया हम यह भी समझाइये कि आप हमसे क्यों बात करना चाहते हैं ? हम आपके का यह बाण-कार्य  
 मगोर-इत प्रकार सुन्दर कैसे हो गया ? यह दुष्ट दुन्दुर्भे जाति है या मर गया ? ” ४१-४४ ॥ इस प्रकार  
 उनका बात-मनकर रामने उन सबसे कहा ‘सूर्ययशमवुड्ब और साता होशोंका अर्थ है राम नामका  
 मैं एक राजा हूँ । इस समय अपने एक ही रूपको चार भाग में विभक्त करके तुम सबके सम्मुख उपस्थित  
 हुआ हूँ । मैं यही जङ्गलमें निकल आया था और इसी कन्दराम में एक सिंहकी मारा है । फिर  
 तुम्हारे गुफा द्वारपर एक लम्बा-चोटी शिला दग्या । उसे अपने धनुषका कागसे दूर हटाकर तुम्हारे समीप  
 आया और अपने हाथके स्पणसे तुम्हारे जंघों परीक्यों परिय तथा नुदर बना दिया है । दुन्दुभी रामसको  
 बालिक मार डाला । रावणका विनाश करने में तुम सब मन उस वंश के भी मार डाला है । ४५-४८ ॥ केवल  
 तुम्हें करवाने इनका इच्छास मैंने तुमसे संभोधन किया है । अब जहाँसे आग जानेका हमारा कोई कार्यक्रम नहीं  
 है । इससे अपनी बर्बादिया बगलकी लोट जाऊँगा । तुम हमसे जान्छ पृथक्, मेने उसका उत्तर दे दिया ।  
 अब यह बताओ कि तुम कौन हो ? दुन्दुर्भेको तुमने क्या पूछा ? तुम्हारा क्या कामना है ? इच्छित वर मुझसे  
 माँग लो ।” अब उन सबने रामको सुनते यह सुना कि दुन्दुभी मार गया गया और हमारे द्वारपर लगी हुई  
 शिला भी हट गयी है तो वे बहुत प्रसन्न हुए और आनन्द प्रगुणित होकर उठो कह रहे राम । बहुत दिन  
 हुए यह दुन्दुर्भी राक्षस हम चार सहजानी धुड़िले तथा लम्बे हजार लज्जों तथा बँगोंकी कन्धियोंको  
 डेर लाया था । उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं एक ही दिन एक लाख स्त्रियोंके साथ विवाह करूँगा ।  
 इसी विचारसे वह अन्ध-अन्ध, कन्धाधार भगवतन प्रिया करता था । ४९-५४ ॥ हे मृगनन्दन यह जिन  
 पुरुषोंको लाता था, उन्हें इसी कन्दराम आकर दरवाजपर एक इतनी बड़ी शिला लगा दिया करता

वनन्तेऽग्रे नृपाणां च वैश्यानां बालिकाः प्रभो । वायुपर्णाशनाः सर्वाः श्राविष्णुर्वर्तमानमाः ॥६७॥  
 तत्तापो वचनं श्रुत्वा भिक्षुरूपं पुनः प्रभुः । ता उवाच त्रयः सोऽहं विष्णुरेव न सशयः ॥६८॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा पुनश्चा गणमब्रुवन् । दर्शयस्व निजं विष्णुरूपं चेन्मन्यवागमि ॥६९॥  
 ततस्वा दर्शयामास विष्णुरूपं निजं प्रभुः । तानि चत्वारि रूपाणि एगवन्त्यं तच्छूतमः ॥७०॥  
 ततस्वाः पुरतो विष्णुं दृष्ट्वा मेधुः स्वमन्तर्कः । ततो विष्णुः स ताः प्राह नः सन्देहो गतो न वा ॥७१॥  
 ता ऊचुर्दर्शनात्तेऽयं भवकलेशा गता हि नः । किमास्तु तत्र सन्देहस्त्वज्ञानजनितः प्रभो ॥७२॥  
 ततः पुनः क्षणाद्रामो रूपं ता दर्शयन्मुदा । एकमेव हि सर्वार्थं मध्ये जनकजापनिः ॥७३॥  
 ततो रामोऽमर्षीताः स वरं वरयतामिति । ता ऊचुः कामवाणेन षोडशै राघवं मुदा ॥७४॥  
 भव भर्ता त्वमेवायं माधवविधिना वने ।

अस्माभिर्यत्र कुरुष्वत्र सुखं क्रीडा चिरं प्रभो ॥७५॥

ततो नय पुरीं स्वर्गां नस्त्वं भास्वद्विचित्रं । नत्तार्मां वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥७६॥  
 एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति न वक्ष्ये मम वै मृगा । ततस्वा वल्लभा श्रुत्वा निषेत्तुर्जगतीतले ॥७७॥  
 पुनस्ताः प्राह रामः स शृणुष्व वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण गूयं क्रीडां भजिष्यथ ॥७८॥  
 मित्रविदा नात्रजिनी मद्राज्या लक्ष्मणाह्वया । एवं नामानि युष्मार्कं सविष्यति तदा मया ॥७९॥  
 सविष्यति विशद्वाथ सर्वार्थां नात्र समयः । तदा नानाविधान् मोगान् भजष्व वै मया सह ॥८०॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा किञ्चित्तृप्तनाः स्त्रियः । रामं प्रोचुः पुनर्वार्क्यं त्वमग्रे गन्तुमर्हसि ॥८१॥  
 तामिः शर्नस्ततो गमो ययौ तुरगमस्थितः । षोडशोपरि नः सर्वाः सहस्रं षोडशाः शुभाः ॥८२॥

या कि जिस आपके सिवाय किसी अन्य व्यक्ति में हृदयका सामर्थ्य नहीं था, वह हम लोगोंका इस कन्दराम को लेकर कहो चला गया है। तब हम ब्रह्मर्षी, सर्वेश्वर और वंशाब्दोंकी कन्याएँ वहाँ पड़ो हुई हैं। वायु तथा वृषाका प्रतिष्ठा हमारा भाजन है और श्राविष्णुमगवान्के चरणाम हमने मन लगा दिया है। इस प्रकार उनकी बात सुनकर सबके समक्ष एक-एक स्वरूपमें खड़े श्रीरामचन्द्रजाने कहा कि जिन विष्णुम तुमने अपना मन लगा रखा है, वह मैं ही हूँ। रामका बात सुनकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि तुम यह सब कह रहे हो तो अपना विष्णुरूप हम दिखाओ। इसका अनन्तर भगवान्ने अपने उन चारों स्वरूपोंको अपनेमें समेट लिया और विष्णुरूपमें सबका दर्शन दिया। जब उन्होंने विष्णुभगवान्को अपने सम्मुख देखा तो मन्तक लुकाकर प्रणाम किया। विष्णुभगवान्ने उनमें पूछा कि अब तो तुम्हारा सन्देह निवृत्त हुआ? उन्होंने कहा कि आपके इन पुरातन दर्शनासे मया सब कलेश दूर हो गया तो फिर अज्ञानसे जाग्रमान सन्देहक विषयम क्या कहना है ॥ ५२-६२ ॥ क्षणभरके बाद वे फिर रामके स्वरूपसे उनमें सम्मुख खड़े दिखाई दिये और उनसे बाल कि तुम आत्माकी वा इच्छा ही, वह वर मांगो। तब कामवाणसे षोडश हाकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो हम लोगोंके साथ माधव विवाह करके हमारे पति बनिये और अधिक समयतक अन्तर्द्वारक हम कन्दराम हम लोगोंके साथ विहार कीजिए। उनके यह प्रार्थना सुनकर रामने कहा कि ऐसा तो नहीं हो सकता। क्योंकि मैं एकपत्नीव्रतवासी हूँ। मैं कभी खूड नहीं आया, तुमसे सब कह रहा हूँ वह बात सुन लो व स्त्रियाँ मूर्खता हाकर पृथीवर गिर पड़ीं ॥ ६३-६७ ॥ ऐसे दर्शाने राम उनका समझाते हुए कहने लग—इस प्रकार अब और न होकर भरी बात सुनो। अभी तो नहीं द्वापर गुणम कृष्णरूपसे मैं तुम लोगोंके साथ विहार करूँगा। मित्रविदा, नात्रजिनी, मद्रा तथा लक्ष्मणा इस प्रकार तुम लोग का नाम पड़गा और उस समय तुम सबका विवाह मेरे साथ होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है। उस समय तुम सब मर साथ नाना प्रकारके सुख भोगांगे। रामकी बातोंको सुनकर उनका मन कुछ सन्तुष्ट हुआ और कहा कि अब आप चले तो आ सकते हैं। राम उन चारों कन्याओंके साथ चोरे-चोरे भाग बड़े। एक योजना आगे जाकर गण्डका नदीके किनारे एक झाड़ में

वदन्तं गण्डकीतीरे वृक्षपण्डे रघुदत्तः । निर्मलिनदृशः शुष्काम्बुपम्पा हम्भर्यावनाः ॥७३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितसंग्रहे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्धे  
द्विजकन्याचतुष्टयवरदानं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

## द्वादशः सर्गः

( सोलह हजार ललनाओं तथा कालिन्दी आदि चार स्त्रियोंको रामका वरदान )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः धनैः सर्वाः स्पृष्ट्वा निजकरेण ताः । कुन्दा तारुम्यपूर्णैश्चपूरिताः प्राह सादरम् ॥ १ ॥  
पूर्ववन्मकुलं पुनं सर्वाः मथान्व्य विस्तरान् । वरं वरयतां शीघ्रमिन्युक्त्वा च रक्षसमः ॥ २ ॥  
हतं तं दुन्दुभिं श्रुत्वा हर्षोन्कुलानना स्त्रियः । पूर्ववद्विष्णुरुषाणि महत्त्राणि हि बोद्धव्य ॥ ३ ॥  
सन्दर्शिनानि रामेण तारयति च स्थितानि हि । रामरूपाणि ता रघुा बान्धा विष्णु परापरम् ॥ ४ ॥  
तं वरान्दरपामासुस्त्वन्नो भर्ता मय प्रभो । ततो राममुक्त्वाऽऽकुन्दा चैकपत्नीव्रतस्थितम् ॥ ५ ॥  
परस्परं ता मम्मन्व्य शोचु भर्ता मृगीदृशः । मया वृत्रम्बुधा चायं न्वया वृत्रस्तथा मया ॥ ६ ॥  
एवं तासु च पर्वीसु वदन्तीषु रघून्मयः । श्रुत्वा तद्वचनं शिष्य तदा चित्तं जविषारयत् ॥ ७ ॥  
इमा वदन्ति किं पर्वी मां श्रुत्वाऽपि व्रतस्थितम् । बलात्कारेण मां भोक्तुं मन्त्रयन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥

अक्षरद्वयमधवादयः सुरा ये च मिदमुनयः पुरातनाः ।

तैऽपि योगवलिनो विमोहितः लीलया तदवलाभिरञ्जितम् ॥ ९ ॥

योषिता नयनतीक्ष्णमापर्वैर्भ्रूलतामुद्वेचापनिर्गतेः ।

षन्विना मकरकेतुना इतः कस्य नो पतितो मनोमृगः ॥१०॥

तावदेव रद्वचित्तता मृणा तावदेव गणना कुलस्य च ।

तावदेव तपसः प्रगल्भता तावदेव नियमव्रतादयः ॥११॥

उप सोलह हजार स्त्रियोंको देखा । वे सब आँखें मूँढ़े थीं, नयन्यासे उनका प्ररीर मूँछ गया था और यौवन नष्ट हो चला था ॥ ६५-७३ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये १० रामतेजपाण्डेयनिरचिते ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके अनन्तर रामने ज्ञान हाथके स्पर्शसे उन सबको यौवनमग्नपूर्ण कर दिया तो वे भी पहनेवाली चारों स्त्रियोंके समान अपना वृत्तान्त बता गयीं । रामने उनसे कहा कि तुम्हारी जो वृत्त हो, वह वरदान मुझसे माँग लो । उन्होंने भी जब दुन्दुभीके मरनेका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुईं । इसके अनन्तर रामने उन्हें भी अपना विष्णुरूप विला तथा सोलह हजार रामरूप धरकर प्रत्येक स्त्रीको अलग-अलग दर्शन दिया । स्त्रियोंने इस प्रकार रामरूपको देखकर उन्हें सर्वश्रेष्ठ विष्णुमग्नता जाना । १-४ ॥ उन्होंने भी पहनेवालियोंकी तरह रामसे शार्थना की कि आप मेरे पति बनें । जब उनको रामने अपनेको एकपत्नीव्रती बतलाया तो वे आपसन सलाह करके कहने लगीं कि जैसे मैंने इनको पसन्द किया है, उसी तरह तुमने भी तो किया है । सब आओ, हम सब मिलकर कोई ऐसा प्रव्रत करें कि जिससे हमारी कामना पूर्ण हो जाय । इस प्रकार जब रामने उनकी सलाह सुनी तो अपने हृदयमें विचार करने लगे कि एकपत्नीव्रतमें स्थित देखकर भी वे स्त्रियाँ बरबस मेरे साथ संयोग करना चाहती हैं ॥ ५-८ ॥ मृगा वन, इन्द्रादिक देवता एवं जितने पुरातन सिद्ध-मुनि हो गये हैं, वे सब योगी होकर भी कामिनियोंकी वदमुत लीलासे मुग्ध हो गये थे ॥ ९ ॥ स्त्रियोंके नेत्ररूपी शायकको अनुपारी कामदेव जिसके ऊपर छोड़ता है तो किसका मनरूपी



भीरमवस उवाच

कराम् रास्यापि पुष्पाई नान्यं श्रोम्यापि किंचन । इत्युक्ताः पुनरुचुम्भाः किं त्वं वदामि राघव ॥२५॥

ता उचुः

दिव्यौषधं ब्रह्मभियो रमावने मिद्धिनिधिः साधुकृता वरांगनाः ।

मन्त्रमया ह्यमजले च धर्मतो नेमे निषेधाः सुभिया मयागवाः ॥२६॥

कार्यं तु देवाद्यदि निद्रिमामतं तस्मिन्नुपेक्षां च च मांति नीतिगाः ।

यम्मादुपेक्षा न पुनः कस्यदा तस्यान्न दीर्घीकृण प्रशमते ॥२७॥

सांद्धानुरागाः कुञ्जजन्मनिर्मलाः स्नेहार्द्रचिन्ताः सुगिताः स्वयञ्चराः ।

कथाः सुरूपाः परिपूर्वपौत्रना पन्था लभन्तेऽत्र वरास्तु नेतरे ॥२८॥

क वरं भूमिर्षोदयः कर्षकपत्नीवत् वव । तस्मादस्मानिहानी त्वं वा निराकर्तुमर्हसि ॥२९॥

माधवेव विराहेन मान्यथा मोऽस्तु ज्ञावितम् । श्रन्वा वाचयं तु तत्तानां राघवः प्रहृता पुनः ॥३०॥

मो मृगादयः कश्च न्यउरो धर्मो धमरिचभूतैः । धर्मधार्थ्यं कामध मोक्षधैतत्तुष्टयम् ॥३१॥

बधोक्तं मफलं ज्ञेयं विपरीतं तु निष्फलम् । तस्मान्मयोक्तं यत् पूर्वमेकपत्नीवत् निजम् ॥३२॥

आस्वन् जन्मनि वन्नाई त्यक्तुमिच्छामि भोः शिवः ।

एवं भुत्वाऽऽश्रमं तस्य ताः सर्वास्त्य परस्परम् ॥३३॥

करालरान् प्रमुखास्व जगदूर्गतिं तत्रऽवलाः । अन्येभ्यमग्निं रामस्य हृदौ तु जगदृष ताः ॥३४॥

एवं तामिर्वेष्टमानमस्मान् धीदृश राघवः । अन्यर्धानमगात्प्र तामां बन्धे भुमात् प्रहृः ॥३५॥

किं कुरैति शिवः मया हन्तर्धानं गते मयि । एवं तामां कीर्तकं हि गुप्तरूपे ददर्श कः ॥३६॥

इसकी प्रवृत्तासे स्वयं प्राप्त हुआ । २२ ॥ २३ ॥ विश्व प्रकाशक योगोका उपयोग करने को इसमें लक्ष्य नहीं है कि वह मर्यादालोक ही भ्रमके लिये स्वयं बन जायक । उनका बात सुनकर बकाये हुए रामचन्द्रजी कहने लगे कि सिवाय वर मोक्षके ये नुस्खाने एक बात भी नहीं पुरोग । रामके ऐसा कहनेपर उन दिव्योदि कहा— हे राघव । आप कह क्या रह है ? ॥२४॥२५॥ दिव्य भोवति, ब्रह्मको जाननेसे सम्बन्ध रखनेवाली कवि, राजाव, सिद्धिके सजाने, निषेध, अच्छी कलावे, अच्छा क्या और अश्र-जल पाकर सम्जनजन कभी नहीं छोड़ते ॥ २६ ॥ जो कोई काम वैराग्य सिद्ध हो सकता है । नोतिम वत उसकी कभी उपेक्षा नहीं करते । फिर उसकी उपेक्षा करनेसे कोई लाभ नहीं हो तो उसकी उपेक्षा ही क्यों की जाय । अथवा बाइजूर कहानेका क्या लाभकता ? ॥ २७ ॥ गढ़े प्रेमयुक्त, अच्छे कृत्तमें उत्पन्न, जिनका पित्त एतहम बाइ हो गया हो, जो अच्छी-बच्छी बातें करती ही, जो वरके काम स्वयं ही पटुचा हो, जिनका मन्दर स्वरूप ही और जिनका योश्र भी पूरी तरह उपक बाय हो । ऐसे मित्रमाका जो लग पान है, वे कथ है । साधारण श्रेणीक लोग ऐसी दिव्योंको नहीं बने ॥ २८ ॥ कहाँ हम जैनी मन्दरी नियाँ और कहाँ आपका एकपत्नीवत् । इस कारण हब फिर भी कहते हैं कि आप हमारा निरादर न कीजिए ॥ २९ ॥ बिना आपके साथ गन्धर्व नियाहू किसे हब लोग नहीं बो सुकेंगी । उनका बात सुनकर रामने कहा । भीरम बावे—हे वृगके समान मेजोवाली मित्री ! तुम कहे यह कह रही हो कि कामको पाप देखकर धर्मका परित्याग कर दो । बर, बर, काम और धर्म ये कर पार्य हैं । यदि एकके साथ एकका अच्छी तरह सम्बन्ध किया जाता है तो वह सफल हुमा है । अन्यथा निष्फल हो जाता है अथवा विपरीत कल हमने जाता है । कल जो मेरे अपने एकरलीकता कारण बालापा है, उसका परित्याग नहीं कर सकता । इस प्रकार रामका बाइय जानकर वे आपसमें एक दूसरेका मुँह मिठाये लगी ॥ ३०—३१ ॥ तदनन्तर हाम छोककर शिवोने रामका वर पकड़ लिया, किन्तु कुछ मित्रोने हब की पकड़े रचा ॥ ३२ ॥ इस वच्छ अब लोगोसे अपनीकी पिरा हुआ देखकर राम कहाँ ही उत्तवीन हो बने ।

अदृष्टा राघवं सर्वास्ताः क्षणात्ममदोत्तमाः दृष्ट्वा तदद्भुतं कर्म विष्मयाविष्टमानसाः ॥३७॥  
 वित्रस्तहृदयाः सर्वाः कुलस्य इव कातराः । संभ्रातनयना दीनाः हृन्मृगुक्ताः परस्परम् ॥३८॥  
 व्याप्तं च हृदयं तासां तदैव विरहाग्निना ज्वलज्ज्वालाग्नेर्नैव मुखिर्गर्भं सार्द्रकाननम् ॥३९॥  
 स्यजैर्द्रजालिकां भार्या कांतं दर्शय मन्त्रम् । ध्यान्मान नर्मणा धृक् प्राग्ग्रासे मक्षिकाऽपनत् ॥४०॥

स्त्रिय कचु

हं कष्टं दर्शितं कस्माद्वाचा किं रचितं त्विदम् ।

ज्ञातं महत्तमं तार्यं दातुं नमन्व सभागतः ॥४१॥

कच्चित्तो निर्दयं धैतः कच्चिदस्मान् परीक्षसि ।

कच्चिद्रुष्टोऽसि हे कांत कच्चिन्मुष्णामि नो मनः ॥४२॥

कच्चिन्नो ग्रन्थयोऽयमासु कच्चिदस्मासु नो रतिः

कच्चिद्विनोदयसि नः कच्चिन्मायाविशारदः ॥४३॥

कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टुं त्वं वेत्सि विज्ञानलाघवम् । कच्चिद्विनपरार्थं हि न्वमस्मासु प्रकुप्यसि ॥४४॥

कच्चिद्दुःखं न जानामि परेषां विप्रलम्भजम् । त्वदर्शनं विना नूनं हृदयेऽधर माप्रतम् ॥४५॥

न जीवामोऽय जीवामः पुनश्च दर्शनाशया । अस्मांस्तु नयन्तं हि यत्र नाथ गतो ह्यसि ॥४६॥

मर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यं भज मर्वथा । पश्यन्तं न हि पश्यति कस्यचित्पञ्जना जनाः ॥४७॥

इत्थं विलप्य ताः सर्वाः प्रतीक्ष्य च बहुभुजम् ।

रामं द्रष्टुं बने सर्वा बभ्रमुक्ता हतस्वन ॥४८॥

वृक्षान् बनेचरान् रामो दृष्टोऽयमाकं शनिर्न वा ।

एवं सर्वास्तु पप्रच्छ रामविश्लेषमज्जराः ॥४९॥

रे रे पिप्पल वृक्षाणामधिपस्त्वं त्रीहि नः । रामो दृष्टोऽयं वा नैव वर्षं त्वां शरणं गताः ॥५०॥

किर श्री रे क्या कहती हैं, यह देखनेके लिए राम गुलामोंमें वहाँ लगे-लगे देख रहे थे ॥ ३४ ॥ ३६ ॥ क्षणभरमें रामको बलशित दलचर के बहुत चकरायीं । किर व्याकुल होकर हरिणियों को नाई चञ्चल नेपासे इधर-उधर देखती हुई आपसमें कहने लगीं । ३७ ॥ ३८ ॥ इस समय उसका हृदय विरहाग्निमें पूर्ण हो गया था । उनकी उस विरहाग्निकी ज्वालासे उस अङ्गलमें श्री खोली ढेरके लिए कम्पाकी धारा बहने लगी ॥ ३९ ॥ वे बोलीं— हे कान्त इस ऐन्द्रजाल ( उग्रहारी ) मायाका परिणाम करके हमें अथ दर्शन दीजिए । हमने आपसे हंसी की और पहले ही ग्राममें मक्खी गिरनेके समान इतना बड़ा विघ्न आकर उपस्थित हो गया ॥ ४० ॥ किसने दुःखकी बात है । हे विधाता । तुम्हारी क्या इच्छा है ? हे चित्तचोर । जान पड़ता है कि तुम हम सबको संताप देनेके लिए ही यहाँ नाये व । ४१ ॥ तुम्हारा हृदय हा निष्ठुर है या हम लोगोंकी परीक्षा ले रहे हो । हमसे नाराज हो या हमारा चित्त चुरा रहे हो ? ॥ ४२ ॥ क्या हमारे ऊपर तुम्हारा विश्वास नहीं है ? क्या हमसे प्रेम नहीं करते हो ? हम लोगोंके साथ छठोली तो नहीं का रहे हो ? क्योंकि तुम मायाजाल फैलानेमें भी बड़े निपुण हो ॥ ४३ ॥ तुम किसीके चित्तमें पुरानेका काइ वैज्ञानिक एवं मूढम साधन जागते हो । बिना किसी अपराधके हमसे इनने क्यों रुठ गये हो ? ॥ ४४ ॥ हमसेको धोखा देनेमें जो दुःख होता है, क्या तुम उसे नहीं जानते ? बिना तुम्हारा दर्शन पाये हम लोग नहीं जा सकेंगे और यदि जीयगी भी तो तुम्हारे दर्शनोंकी ही इच्छासे, धन्यवा नहीं । हे नाथ ! हमें भी वहाँ हो ले चन्दिये, जहाँ आप गये हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ क्या करके हमें दर्शन दीजिए । सज्जनजन कसो किसीका दुःख नहीं देख सकते ॥ ४७ ॥ इस तरह बहुत दरसक विलाप करके उन्होंने उनके आनेकी प्रार्थना की । तब भी जब वे नहीं आये तब वे उनको दूँदनेके लिए वनमें इधर-उधर घूमने लगीं ॥ ४८ ॥ रात्रिके प्रत्येक वृक्ष और बनेने पशुओंसे वे रामविदहिणिया यह

भो भो तुलसि नो नाथस्त्वया रामो निरीक्षितः । वद शङ्खशृङ्ग त्वं नो वने रामो निरीक्षितः ॥५१॥

त्वं कोकिल सदा शब्दान् करोषि परमान् शुभाञ्च ।

यदाद्य जानकीकातस्त्वयाऽरुण्ये निरीक्षितः ॥५२॥

भो कश्यपः कश्यप त्वं स व पृच्छामहे कथम् । दीनानाथो रमानाथः सीतानाथस्त्वयेक्षितः ॥५३॥

पिब त्वमुत्तरं देहि सदा शब्दान् करापि हि । पातनः श्रोतवितः सीतापातेर्दृष्टोऽथवा न वा ॥५४॥

भो वसन्त मदोन्मत्त नृवारपत्तपः प्रभुः ।

सप्तर्षीपतिः भीमान् रामोऽरण्ये निरीक्षितः ॥५५॥

शुक नः कथयाद्य त्वं प्रसूदृष्टोऽथ वा न वा ।

वद पुण्ये सरिच्छृङ्गे किं तूष्णीं संस्थिताऽधुना ॥५६॥

नः प्रभुः सप्तर्षीपानां प्रभुश्च निरीक्षितः ।

भो वायो कथयाद्य त्वं सीतारामो निरीक्षितः ॥५७॥

श्रीरामदास उवाच

एवं ता रामविश्लेषसभांताः क्षुशुचुर्वने । ततश्चा गङ्गातीरं गत्वा गीतं प्रचक्रिरे ॥५८॥

त्रिषु ऊचुः

किं प्रभो त्वया जानकी यदा तेन रक्षमाऽरण्यमध्यतः ।

स्वस्थं हृत्वा गीतमोतटात्तच्छृणु त्वया नैव शोचितम् ॥५९॥ १॥

त्वद्वियोगस्तप्तमानसाः सर्वतो वने शोकमग्नाः ।

एकदा प्रभो देहि दर्शनं देहि नो वरान् माप्नुवन् रतिः ॥६०॥ २॥

भो वाछामो राघव त्वच्छो रतिमय यद्वदत भूमरजाम्भो वरदानम् ।

तद्वन्नस्त्वं पूरय कामान्तरदानैर्वाछामम्भो सेवन्ममप्रये जननेऽपि ॥६१॥ ३॥

पूछनी जाती थी कि तुमने हमारे पति रामजी का स्थान कहाँ नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ वे कहते थे कि हे नृकोके राजा विष्वक्सेन ! हम बताओ कि तुमने रामजी का कहाँ देखा है ? हम आपको शरणम है ॥ ५७॥ हे तुम्हारी बेबी ! तुमने तो रामजी नहीं देखा है ? हे वानरगण इस वनमें तुमने कहाँ रामजी को नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ हे कश्मिरी ! तू बड़ी मोठा पाणा बोलता है, अब जहाँ नाथ मैं हम यह बता द कि तूने वनमें कहाँ रामचन्द्रजी का नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ हे कदम्ब नुजम हम सब मित्रों को नहीं गूछना चाहती है कि तूने सीतापति रामजी को कहाँ नहीं देखा ? ॥ ५९ ॥ अरे शिब ! तू सदा पोकहा-पोकहा बोलता रहता है । अब हमें यह बता कि तूने कहाँ जानकीवल्लभ रामजी देखा है ? देखा हो तो बतला दे ॥ ५९ ॥ हे मत्तभाई बजराज ! मनुष्याम हावाक समान भ्रष्ट रामचन्द्रजीकी तो तूने नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ हे शुक ! तू ही बता दे कि इस वनमें कहाँ रामजी देखा है ? हे दक्षिण नदी ! तू क्या चुप है, मरुद्गादक अकाश्वर और हम लोगोंके प्रभु रामचन्द्रजी का तो तूने नहीं देखा है ? यदि देखा हो तो बता दे । हे वायो ! कहो, तुमने इस वनमें कहाँ सीतापति रामजी देखा है ? ॥ ५९ ॥ ५७ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हम प्रकार रामके नियोगसे वनकी सी होकर वे मित्रों विलाप करता हुई चल्ती-चलती गङ्गातीर तक किनारे जाकर इस तरह प्रार्थनापरे गायन गाने लगी—॥ ५८ ॥ हे प्रभु ! जब रात्रि वनमें सभावा हरण करके अपनी राक्षसानी लट्ठाको ले गया था, तब क्या उनके लिए आपने कोई मान नहीं किया था ? ॥ ५९ ॥ हे नाथ ! आपके नियोगसे हमारा हृदय जला आ रहा है । जोकरने मरुद्गादक हमें इस वन में इस वनमें आ पहुँची है । हे प्रभो ! हमें एक बार अपना दर्शन दे दें और एक वरदान दे दें । हमें प्रेम नहीं करना चाहते तो न करिए ॥ ६० ॥ २ ॥ हे राघव ! जहाँक हमें सब कामों का समाधान नहीं हो । अब उसकी इच्छा भी नहीं रह गयी । जिस प्रकार भयानक दुःख का, जो आपने देखा था, उसी

अस्माभिर्यत्नचलभावादपराह तन्मयं न्व मा स्मर पूर्वं कुरुणातः ।  
 तः प्रणामे दर्शनहेतोस्तनुमज्जे निष्ठति त्नां पदगच्छन्वात्मा त्रिपसेज्य ॥६१॥४॥  
 ओ ओ राघव मा रुह त्वं क्रोधं मा मउ दार्षाष्वय ।  
 पर्येन न हि पर्येतान्ध र्वाज्ञावो न हि त्वत्तः कामम् ॥६२॥५॥  
 देहि त्व निजदर्शनकामं जन्मप्रपेक्ष्य नो वरदानम् ।  
 पाहि त्व क्षण क्षुपयाना सर्वाभ्याम् नः प्रणामायः ॥६३॥६॥  
 राम त्वं किं निर्दयदयस्त्वमि नः किं नापान्यथ स्त्रीजनकरुणा हृदये ते ।  
 इत्थं क्रोध त्वत्पदयुगले पतितानु कर्तुं विष्णो नाहमि वन्दो मय नोऽय ॥६५॥७॥  
 बाले दौने स्त्रीजनविमले तनये त्वं नो कुर्वन्तान्य बहुविधका यमिसनः ।  
 क्रूर क्रोध त्वं त्यज वन्दो भव नोऽय वर वर करकपलैस्त्वा प्रणमामः ॥६६॥८॥  
 हे भव राघव रमेश्वर रावणारे मौलापने रिपुनिपूदन कञ्जनम् ।  
 त्व देहि राम निजदर्शनमय विष्णो दुःखार्णवात्पान्तर नय कामिनीनः ॥६७॥९॥  
 अन्याद्वयवसेवनमयेषामो जन्मवार रुह दयां करुणाममुद्र ।  
 नोवैतवाद्य विहासितजाधिरानि न्यदयाम एव निवत महनाऽय नद्याम् ॥६८॥१०॥

आनन्ददास उवाच

नारीर्गान राधवथापि श्रुत्वा प्रत्यक्षोऽभूत्कामिनीनामवाप्रे ।  
 दृष्ट्वा राम तः स्त्रियथानिदुष्टाः प्रोक्नुष्ठास्यान् प्रणेष्टुः शिरोभिः ॥६९॥११॥  
 नारीर्गाने मानवथापि श्रुत्वा पशन् कामज्वाप्तुयान्निश्चयेन ।  
 तस्मादेतन्सवदा कोवेनायं स्त्रीकार्क्ष्यं प्रापठ छन्दोचित्रम् ॥७०॥१२॥

४६१ ररदान देकर हमारे को कामना पूरा कर । हम किन्हीं अगल जन्ममें ही आपके सेवा करना चाहती हैं ॥६१॥४॥ हमने करुणावश अथवा घनज्जाल काई अपराध किया है तो उस आप भूल जायें । मेरे प्राण आपके दर्शनार्थ आकूल हैं । इस समय हम आपके दर्शन की ही भोख मग्न रहा है ॥६२॥५॥ हे राघव ! आप मर्यादा न हो और दारिद्र्यपर काय न दिखलाय । हम सब आपसे कामवासनाका पूर्ति नहीं चाहती ॥६३॥६॥ इस समय आप हमें अपना दर्शन और दूसरे जन्मके लिये वरदान दें । हम सब आपको प्रणम में हैं । आप हमारी रक्षा करके हमारा निस्तार करेंगे । हम आपको प्रणाम करते हैं ॥६४॥७॥ हे राम ! क्या आप जाने निर्दयो हैं कि ओ हम त्रिफोको हम प्रकार दुःख देखकर या आपके द्वयमें क्या नहीं जाती ? ते विष्णो ! आपके पैरोंमें पड़ी हुई हम अबदाआवर आपको हम प्रकार काय नहीं करना चाहिए । हमपर क्या करके हमें वरदान दायिए ॥६५॥८॥ बुद्धिमात्र लाभ वञ्चोपर, गरीब स्त्रियाँ पर मुवा यपवी सन्तानपर इस प्रकार क्रोध नहीं दिया करने । इस कारण आपन क्रूर कायका प्रत्याहार कीजिए । हम सब राम जोड़कर प्रणाम करती हैं, हम वरदान दायिए ॥६६॥९॥ हे नाय ! हे राघव ! हे रमेश्वर ! हे रावणारे ! हे मौलापते ! हे रिपुनिपूदन ! हे कञ्जनम् । हे विष्णो ! हे राम ! अपना दर्शन देकर आप हम कामिनीयोंको दुःखसमरसे वर काजिए ॥६७॥१०॥ हे करुणाके समुद्र ! अब दया कीजिए । हम दूसरे जन्ममें आपको सेवा करनेकी इच्छा है । हम आपसे बहुत प्रियता मीगता है । यदि ऐसा नहीं करगे तो आपके विरहदुःखसे दुःखित हम सब स्त्रियाँ इसी गण्डकी नदीमें कूदकर अपने प्राण त्याग दया ॥६८॥११॥ रामदासने कतु — इस प्रकार वन कामिनीयोंका विलाप सुनकर रामचन्द्रजी उनके सामने पकड़ हा गये । रामकी प्रत्यक्ष देखकर ये स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुई और विकसित वदन हाकर वर बारप्रणाम करने लगी ॥६९॥१२॥ प्रत्येक मनुष्य इस गरीबीयकी पुनकर अपनी अभिकर्षित कामनार्थ पूर्ण कर सकता है । इसलिए लोगोंकी चाहिए कि सदा इस गरीबीयकी



अथ रामो ददौ तान्यो वरास्तास्तोषयन् प्रभुः । पूर्वं भृगुर्ध्वं भो नार्यः पुरा कथावाग्र्ये मया ॥७१॥

महुस्त्रीहेतुना हवममूर्तयः षोडशाभिनाः ।

तामां दानेन मनुष्यास्तै विषा मां मदाप्सुवन ॥७२॥

फलं सहस्रगुणितं तवास्तु रघुनन्दन । व्रतस्तन्कथनथाहं द्वापरे कृष्णरूपधृक् ॥७३॥

करोमि पाणिग्रहण युष्माकं द्वारकापुरि ।

गूर्यं नानानृपाणां च भवज्जं बालिकास्तदा ॥७४॥

भीमासुरस्तदाप्य वै हुद्भिस्तु भविष्यति । भीमासुरश्च युष्माकं पूर्ववन्म हरिष्यति ॥७५॥

तदा सर्वा मोक्षयामि हत्वा तं जगतीसुतम् ।

ततो मया सुखेनैव क्रीडन्मं हि यथामर्चि ॥७६॥

एव तां रामावाक्य तच्छ्रुत्वा प्रभुर्दिनामनाः ।

आनन्दोन्फुल्लनयनाः

सुखमापुर्वगाङ्गनाः ॥७७॥

एवन्मिमंतरे रामं पश्यन्तो लक्ष्मणादयः । शनैस्तत्रापयुस्तत्र पदांकितपथा प्रभुम् ॥७८॥

षोडशसौमहस्राणां मध्ये दृष्ट्वा रघून्मम । परं विस्मयमाप्नुस्ते प्रणेमुर्जगदीश्वरम् ॥७९॥

श्रुत्वा रामसुखात्मवं यथ वृत्तं सांभृतम् । सर्वं मन्तुष्टमनस्तस्थुः धाराघवाग्रतः ॥८०॥

ततो रामाश्रया दृताः शतधाऽथ सहस्रशः ।

बाहनान्पानयामासुः सैरासकस्यलान्मुदा ॥८१॥

तेषु ताः स्त्राः सुमध्याप्य बाहनेषु रघून्ममः ।

शनैः सेनानिधासे स ययौ मीर्तातिके प्रभुः ॥८२॥

ततस्तां जानकीं नेष्टुः सीतां वृत्त रघून्ममः । यथा वृत्तं तथा सर्वं कथयामास कौतुकात् ॥८३॥

ततस्ताः पूजयामास दक्षराभरणरसाः । ततो रामः स कासारं सेनावाक्स्थलातिके ॥८४॥

के श्लोकोंका पाठ किया करे ॥ ७० ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर उनको वरदान देते हुए रामचन्द्रजी कहने लगे—हे स्त्रियों ! बहुत दिनोंकी बात है कि मैंने एक समय बहुत-सी स्त्रियोंका पानका इच्छासे व्यासजीके सम्मुख सृषर्षकी सोलह स्त्रियां बनवाकर ब्राह्मणोंको दान दिया था । इससे प्रसन्न होकर उन विप्रोंने हमसे कहा—हे रघुनन्दन ! तुम्हें इस दानका सहस्रगुना फल प्राप्त होगा अर्थात् सोलहके बरसे सोलह हजार स्त्रियां प्राप्त होंगी । अतएव उनके आशीर्वादानुसार द्वापरम कृष्णका रूप धारण करके ॥ ७१-७३ ॥ मैं तुम सबोंका द्वारकापुरीमें पाणिग्रहण करूँगा उस जन्ममें तुम जनक राजाओंकी कन्याएं होगी । दु-दुकी राजस निकली कि बालिने मार डाला है, उस जन्ममें भीमासुर होगा और इस जन्ममें समान ही तुम्हारा हरण करेगा ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उस समय मैं भीमासुरका मारकर तुम सबोंको छुड़ाऊँगा और तबसे कुछ कुछ शान्त होमारे साथ बिहार करोगी ॥ ७६ ॥ इस प्रकार रामके वाक्य सुनकर उनका चेहरा खिल उठा और वे अत्यन्त आनन्दित हुई ॥ ७७ ॥ इसी समय रामकी सौजते हुए उनके पैरोंके निजान देखते-देखते लक्ष्मणादि साथी भी वहीं आ पहुँच । अब उन्होंने सोलह हजार स्त्रियोंके बीचमें रामकी देखा की बड़े विस्मित हुए और जगदीश्वर रामकी उन लोगोंने प्रणाम किया । ७८ ॥ ७९ ॥ जब रामने उन स्त्रियोंका वात्सल्यपूर्ण वृत्तान्त बतलाया तो वे बहुत प्रसन्न हुए और रामके साथ बैठ गये ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे हजारों बाहन आये । जिनपर उन स्त्रियोंको बिठाकर रामचन्द्रजी शिविरकी ओर चले, वहाँ कि सीताजी बैठी थी ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वहाँ पहुँचकर उन सब स्त्रियोंने सीताको प्रणाम किया और रामने उनका आ सच्चा-सच्चा हाल पा, सो कह सुनाया । ८३ ॥ इसके बाद सीताने अनेक वस्त्रों बाहरवासे उनकी छतार किया । चौड़ा घेर कर रामने अपने शिविरके पास ही एक उत्तम सरोवर देखा, जो कन्या

ददर्श सुमहच्छ्रेष्ठं स्पन्दयितुमर्थां पतिम् । यत्नपादपमध्यस्थं सुगार्धसलिलं शुभम् ॥८५॥  
 विशालं विक्रान्तोत्तमधुमसम्पुत्रतम् । पार्श्वनीरत्रमयुक्तं छन्नं मयकनैरिव ॥८६॥  
 स्वच्छन्दमुत्तलन्मन्त्र्यं स्वच्छं मानुमनो यथा । चलन्जलवराङ्गिन्नीविगजिविगजिवम् ॥८७॥  
 अन्तर्गोशरणकूरं खलानामिदं मानसम् । कचिच्छंतालदुर्गम्यं कृपास्पेक्षं मन्दिरम् ॥८८॥  
 नावाविद्वज्जस्रवार्तिं क्षमयत दिशाम्भुम् । उदारामिव सर्वस्वैरापन्नानिहरे महत् ॥८९॥  
 तपयंतु हिमाश्मोभिः स्थापदान्भूपितनिव । हस्तं त्रयमनापं हिमाद्भुमिव चाद्विकम् ॥९०॥

तं वृष्टाभूत्सुमत्तुष्टः सीतया रघुनन्दनः ।

तत्र स्नात्वा सुखं रामः कृतपाष्याद्विक्रियः ॥९१॥

शुक्त्वा वन्धुजनैः सर्वैरासेदगणसंहृतः । उग्राम मरुतस्तीरे स्मृताः मकथयन्कथाः ॥९२॥

ततः सरासिने चाणं कृत्वा रात्रीं स्थितात्तरी ।

व्याभाः संधानमास्थाय रुक्मः ककुमा पयः ॥९३॥

एव स्थितेषु क्षीणेषु धने विस्तार्य वायुरा । निक्षार्चं निर्गतं पूयं शूकगर्भा सरस्वते ॥९४॥

चरित्वा सारसीकंदान् पपात व्याधमकुलं । गच्छा निद्रास्तदा कण्डा व्याधैश्च बहो हताः ॥९५॥

क्षणेनैव वरदास्ते चिद्राः पेरुर्मेहीनजे ।

तान्हत्वा तुमुलं नादं चक्रुर्व्याधाः मुदपिताः ॥९६॥

धावन्तोर्जिषु मुदा तत्र मिलिता यत्र भूषतिः । तान्महाप मर्त्यभूषः सेनावायं ययौ शुनः ॥९७॥

एवं सप्तदिनान्यथ स्थित्वा रामा वनं सुखम् ।

शुक्त्वा नावाविशान् भोगान् सीतया सरपुरा यया ॥९८॥

महाराजस समुद्रको यात्र कर रहा था । उसको उस पार्श्व में वृक्षावली लगी हुई थी, स्थान-स्थानपर घाट बन हुए थे और पवित्र जल भरा था ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ उसके लम्बाई चौड़ाई का माप नहीं था । सिले हुए कमल के पूजापर गौर गुञ्जार रहे थे, फले हुए पुरस्कृत खड़े बड़े पत्त मरुतों के समान सुन्दर लग रहे थे ॥ ८६ ॥ सरजन आणके मनकी तरह स्वच्छन्दतापूर्वक मछी उगी रहने लगी थी । जलचर प्राणीयाँ इधर-उधर चलने लगी । कारण बार-बार उसमें लहर उठ रही थी ॥ ८७ ॥ सल मनुष्यक इंसक समान उसमें किन्नर ही घाँटियाँ भर थे । कहीं-कहीं कंगूस आणके चारों तरफ़ सवार भर थे, इससे जनम प्रविष्ट होता दुम्बर लगने लगी थी ॥ ८८ ॥ दिनरात कितनी ही ऐसा आश्रय लेकर अपना आकाशदूर कर रहा था । इससे वह सारावर कितनी ऐसी तन्द्रावक समान मानुष पहती थी जो अपना सुकवि भुट कर गरुडों तथा बा मयाउ जनाके (क्षाम तत्पर हो ॥ ८९ ॥ अग्न उठ जलसे वह उसी तरह धनेन जावासी प्यास बुझा रहा था, जैसे चन्द्रमा दिन अन्क पराश्रमके दुःखी जनोका समस्त पाँहा रात्रि हरस लिया करता है ॥ ९० ॥ उस सरावकी दलदल उठा तथा रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए । उसमें स्नान किया, मछील्ल कारणका निरुत्तिपाय का और भोजन किया । फिर सारे शिकारियों का साथ लेकर उपा तड़ाणके समीप देरा डाल दिया और अन्क तरहकी पहानियाँ पहने-कहने समय काटने लगे ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ जब रात्रिका समय हुआ तो वह विजय अन्क सामान लेकर चारों ओरसे उस तड़ाणकी घेर लिया और रामचन्द्रजी अपना बहुत बान् ठेक करके एक वृत्तके ऊपर जा बैठे ॥ ९३ ॥ जब कि व्याध अल भिछाकर सरपराके साथ सरोवरके चारों तरफ़ बड़ मर और ठाक आधा रातका समय हुआ, तब बनेलै शूकरा-का एक युव आ पहुँचा ॥ ९४ ॥ तालाबमें उत्पन्न कन्द लेकर वह शूकरभूष दहलियके ऊपर दूट पड़ा । उस समय बहुतसे शूकरोंको रामचन्द्रजीन भार डाला और बहुतोंको वहेन्द्रियान समाप्त कर दिया ॥ ९५ ॥ जलचरों के सारे शूकर भार डाले गये । इनकी सारनके अनन्तर व्याधने प्रसन्नताका कोलाहल मचाया ॥ ९६ ॥ सब लहेलिये मारे खुशक दोस्त हुए उस स्थानपर पहुँच जहाँ रामचन्द्रजी बैठे थे । तब राम उन सबोंको साथ

ततो विप्रान्नुषान् वैश्यान् ममाह्वय रघूनमः ।  
 या यस्य दृष्टिता नागी या यस्य पुत्रपुत्रिका ॥९९॥  
 तस्मै तस्मै ददौ तां तामेयं मया उपमर्जयन् ।  
 उखलकम्भूषाद्यैः शोभयित्वा पृथक् पृथक् ॥१००॥  
 ते विप्राद्याः पुनर्जाता मेनिरे निजबालिकाः ।  
 सतः स्वं स्वं पुरं नीत्वा सृष्टा वैश्याः प्रमोदिता ॥१०१॥

दृशुर्वैश्यापुत्रैस्तामां यकः सुमंगलम् । रामप्रसादानाः प्राप्नुः पतिमगमुन् स्त्रियः ॥१०२॥  
 ताश्चापि द्विजपुत्र्यस्तु पितृणामेव सवसु ।  
 निन्तुः स्त्रीयापुष तत्र ब्रतचषोदिभिः सुखम् ॥१०३॥  
 विवाहकान्तिकमणिक्रान्ता उद्वाहिका द्विनै ।  
 जन्मान्तरण ता मवाः कृष्णः पद्मीः करिष्यति ॥१०४॥  
 अथ रामः स्वाहोत्रं पुत्रम् मयुरां पुराम् । विवाहार्थं मातया म परं रज्जानपदययी ॥१०५॥  
 तत्र वैवाहिकं कर्म मयाच रघूनन्दनः । तस्यो तत्र क्षिप्यकाल मयुरायां यथामुखम् ॥१०६॥  
 एकरा ज्ञानक्षीणवत्कालिदाः मङ्गले शुभे । निशायां हेमय्यके मयः सुभाष गधवः ॥१०७॥  
 एतस्मिन्नन्तरे दार्पिर्दामान् रघु विनिद्रितान् ।  
 स्त्रीरूपेणाह कालिदां गमात्रि मंशुश्चन्द्रनैः ॥१०८॥  
 ततो रामः प्रबुद्धाऽधुददशे पुनतः स्थिताम् ।  
 सूर्यस्य तनयां पुण्यां कालिदां कञ्जलोचनाम् ॥१०९॥  
 दिव्यलङ्कारवस्त्राढ्यां दिव्यन् पुग्गजिताम् । नीलोत्पलदलरामां हेमकुम्भपयोधराम् ॥११०॥  
 स्मिताननां मुग्धोक्त किंकिणाजालमालिकाम् ।  
 केयूरकुण्डलाढ्यां तां प्रोत्कृतधनां वराम् ॥१११॥

सीतकीको धार लेकर अपने निद्रिको लोट करे । इस प्रकार सत दिन वनम रहते हुए अनेक तरहके सुखोंका उपयोग करके राम अपनी अयाध्यापुरीका लोट पड़े ॥ १०० ॥ १०१ ॥ इसके अनन्तर दुग्धुवी द्वारा हस्त की सूर्य उन कन्याओंको जो जिसकी पुत्रा थी, उन उन राजाओं, ब्राह्मणों तथा वैश्योंको बुलाकर वे दी और उन बालिकाओंको वस्त्राभूषणादिसे अलङ्कृत करके विदा कर दिया ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ वे ब्राह्मणादिक अपनी कायाओंका पुनर्जन्म मानकर रामके आज्ञानुसार अवन-अवन पगोकी ने गये और कुनों तथा वैश्योंने अच्छी बरोंके साथ उनका विवाह कर दिया । रामचन्द्रजीको प्रणाम उन सबको पतिके साथ विहार करनेका सुख प्राप्त हुआ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ उनमेंसे जो ब्राह्मणकी ब लिकाय थी, वे विवाहकाल अत्यंत ही अनेके कारण विवाह न करके सही पिलाके घरपर वस-उपवासादि करके अपना जीवन यापन करने लगीं । क्योंकि उनको यह विश्वास हो गया था कि दूसरे जन्ममें स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रजी मेरे पति होंगे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ कुछ दिनों बाद मुवाहुका विवाह करनेके लिये रामचन्द्रजी सीताके साथ मयुरापुरी गये ॥ १०८ ॥ वहाँपर विवाहका सारा कार्य सम्पादन करके कुछ दिन मयुराव ही रहे ॥ १०९ ॥ एक दिन सीताके कहनेसे रामचन्द्रजी यमुनाके तटपर लगे । उस समय वहाँके सब दसों और दासियोंको निद्रित बनकर एक स्त्रीका रूप धारण किये यमुना स्वयं रामके पास गयी और चोरसे उनका पेर पकड़ा ॥ ११० ॥ १११ ॥ उसके ऐसा करनेपर रामचन्द्रजी आग गये और सामने मूर्गकी पुत्री तथा कमलके समान नेत्रोवाली कल्पिन्दीको देखा ॥ ११२ ॥ उस समय उसको शरीरमें दिव्य वस्त्राभूषण बड़े थे । वरोंमें सुन्दर मूपुर छनछना रहे थे । नील कमलकी पंखियोंके समान उलकत रङ्ग था और सुवर्णकलशके समान उसके स्तन थे ॥ ११३ ॥ मृत्कराता हुआ मुख

तां तादृशीं प्रभृद्गुणं तूष्णीं व्यचिन्तयत् । घन्यो विधाता येनैयं कालिंदी रचिता पुरा ॥११२॥  
इत्याश्चर्यमना भूयः तस्मादर्थं व्यलोकयत् । अथ रामः स तां प्राह वदामनकारणम् ॥११३॥  
सा प्राह तं विलज्जती सर्वं त्वं येन्मि राघव । ततो रामोऽब्रवीद्वक्त्यं चैकपत्नीमतं मम ॥११४॥

इह अन्यनि कालिदि न्वं याहि स्वस्थलं जवात् ।

यावन्मीना प्रवृद्धा न जायेत तावदेव हि ॥११५॥

सा रामव कथुरेणैव मित्रमर्पयता भूवि । मूर्च्छामवाप तत्रैव तां दृष्ट्वा सोऽब्रवीत् पुनः ॥११६॥  
उच्छिष्टोच्छिष्ट कालिदि गृणु म्य वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण त्वा करिष्याम्यहं क्षियम् ॥११७॥

विवाहेनैव मच्छाद्य तदा भोक्ष्यामि मनुष्यम्

इति श्रुत्वा रामवाक्यं किञ्चित्पुष्टमना नदी ॥११८॥

नवा रामं पयो तूष्णीं रामध्यानपराऽभवत् ।

ततो रामोऽपि सैन्येन सीतया स्वधुर्मं ययौ ॥११९॥

एवं स कैवल्यगरे राम स्त्रीवधुरेहर्जः ।

चरितान्यकरोन्नाना पापघनानि श्रवादिना ॥१२०॥

इति श्रीमत्कौटिल्यकचरितमालायां श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे  
षोडशसहस्र श्लोकानि द्वाविंशत्यध्यायव्यवहारेण समाप्ताः ॥ १२ ॥

या, बेलके लम्बेकी नाई उसकी जंघाएँ थीं विकर्णी नेगर बुद्धल खादि ब्राह्मण मयली छटा दिखत रहे थे ॥ १११ ॥ इस प्रकारकी एक अपरिचित नारीको अपने सामने देखकर राम थोड़ी देर तक यह सोचते रहे कि विधाता घन्य है, जिसने कालिन्दी जैसी नारीकी रचना की है ॥ ११२ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए वे उसका सीन्धूर देखते रहे । इसके अनन्तर उससे कहने लग-तुम क्यों आतेका कारण बताओ ॥ ११३ ॥ रामकी बात सुनकर लक्ष्मणानी हुई कालिन्दीने कहा - हे रामव ! तुम नव वृद्ध आते हो । फिर रामने कहा कि हे कालिन्दी ! इस जन्ममें मैंने एकवर्त्त्यन धारण कर रक्खा है । इसलिए सीता आग आय, इसके पहले ही तुम यहीसे पत्नी जाओ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ रामके ये वाक्य श्रवणके समान उसका हृदयम लगे, जिससे वह वहींपर झुँकित होकर गिर पड़ी । फिर रामने कहा कालिन्दी ! उठो-उठो, मेरी बात लो सुनो । इससे पुण्यमें मैं कृष्ण हुकर तूम्हें अपनी रक्षा बनाऊँगा, आज तुम लोट जाओ । अन्तान्तरमें तुम मेरे साथ बिहार करके सुखी होओगी । इस प्रकारकी बात सुनकर लक्ष्मणानी कुछ सन्तोष हुआ ॥ ११६-११८ ॥ तदनन्तर रामकी श्रुताम करके उसका ध्यान करती हुई वह लोट गयी । उधर राम भी अपनी सेवा तथा सीताके साथ असीमया चल गये ॥ ११९ ॥ इस तरह रामचन्द्रजी साकलपूरीम अपने पुत्रों तथा सीताके साथ अनेक श्लोकों किया करते थे, जिनका श्रवण करतेस समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १२० ॥ इति कविकोवि-  
राजकविशतमते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय पं० रामतजवाडवाधिरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासम्पन्निकले राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

॥ इति राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ।

श्रीसीतापतये नमः

श्रीबाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत—

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## राज्यकाण्डम् (उत्तरार्द्धम्)

त्रयोदशः सर्गः

( राम द्वारा राज्यभरमें हास्यपर प्रतिबन्ध )

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा समाजानिः सुहृद्भिः सदयि स्थितः । वीजितधामरेणैव लक्ष्मणेनातिशोभितः ॥ १ ॥  
एतस्मिन्नन्तरे तत्र परैः कश्चित्स्वर्गस्थितः । दशरुजानां नृन्यादि दृष्ट्वा हास्यं चकार सः ॥ २ ॥  
सहास्यं राघवः श्रुत्वा सस्मार पूर्वचेष्टितम् । लंकारां युद्धसमये रावणस्य शिरोंमि खातु ॥ ३ ॥  
रामबाणान्मृतिं लब्ध्वाऽस्माभिश्चेति विहस्य च । श्रीगमं वन्दनं कर्तुं पतन्ति स्म प्रभुं पुनः ॥ ४ ॥  
तेषां विकालनां दृष्ट्वा दंतादीनां रघूत्तमः । ममभक्तुं हि पुनर्यान्ति शिरस्येतानि खादिति ॥ ५ ॥  
रामो भीत्या पुनस्तानि खे शिरस्यक्षिपच्छरैः । एकोत्तरशतान्मेव वारं वारं स्वरान्वितः ॥ ६ ॥  
सदृश राघवः स्मृत्वा किं दृष्ट्वास्वस्य वै शिरः । समागतं मभामध्येऽत्रेति पार्श्वेऽप्यलोकयत् ॥ ७ ॥  
मायाविनो राक्षसाश्च सत्यत्रेति विचिन्त्य च । एव यदा यदा हास्यं स गुथाव रघूत्तमः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी बोले—एक दिन रामचन्द्रजी अपने मित्रोंके साथ सभामें बैठे थे । उस समय रामपर चेंबर चल रहे थे और लक्ष्मण रामके पास बैठे हुए थे । इसलिए रामकी सोचा कईगुना अधिक दिखायी दे रही थी ॥ १ ॥ इसी समय सभाका कोई नागरिक वैद्याश्रमका नृत्य देखकर जोरोंके साथ हँस पड़ा ॥ २ ॥ उस हास्यको सुना ही रामको उस समयको एक बात याद आ गयी, जब वे लंकारमें रावणके मस्तकोंको अपने बाणोंसे काटकर आकाशमें उड़ा देने थे तो वे मस्तक यह समझकर कि रामके बाणोंसे ये तो कुट्टि ठिकाने जायी है । इस भावसे हँसते हुए ऊपरसे फिर नीचे आकर रामके चरणोंमें लोटते हुए वन्दना करने लगते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनके दोनों आदिकी विकलता देखकर रामको यह ख्याल होता था कि ये मस्तक मुझे खाने आ रहे हैं । इस लिए उन्हें फिर बाणों द्वारा आकाशमें उड़ा दिया करते थे । यह उपन्यस रामको एक दो बार नहीं पूरे एक ही एक बार करने पड़े थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसी बातको स्मरण करके रामने सोचा कि कहीं रावणके मस्तक ही तो इस सभामें आकर उड़ाया नहीं मार रहे हैं । इस भावसे उन्होंने अपने आस-पास विस्मयभरे नेत्रोंसे देखा । ७ ॥ क्योंकि उनका ख्याल था कि राक्षस मायावी होते हैं, शायद यहाँ भी आ जायें तो क्या आश्चर्य है । इस तरह राम जब कभी किसीका हास्य सुनते

तदा तदा पूर्ववत् स्मृत्या वार्षे व्यलोकयत् । ततो रामः श्रुत्वा चित्ते चिन्तयामास सादरम् ॥ ९ ॥  
 यदा यदा श्रूयतेऽत्र हास्यं केनापि यन्मृतम् । तदा तदा दशान्वयस्य शिरेः हास्यं स्मराम्यहम् ॥ १० ॥  
 मन्थाविनो राक्षसास्ते मां विस्मार्थं पुनश्चिन्तयन् । मामनुभव पाप्मनि स्त्रिणि मन्था स्वचेतनि ॥ ११ ॥  
 अन्यथा निदिन हास्यं नानिशास्त्रेषु मर्यादा । प्रतो हास्यं वर्तयामि मर्षेण भूनिवामिनाम् ॥ १२ ॥  
 इति निश्चिन्त्य हृदये लक्ष्मण वाक्यमब्रवीत् । दूर्दमि घोषयस्वाश्रुं पुर्यां राट्टेऽवनीतने ॥ १३ ॥  
 स्मिताननो नमः कश्चिन्मागी वाऽथ सुहृन्व वा । माता वा तनयो बंधुः न मे द्रव्या मर्षेदिति ॥ १४ ॥  
 नधेनि मयवाक्यमस्म घोषयामास रुन्द्भिम् । पौग जनपदाः सर्वे भून्वा शिवाश्चरि प्रभोः ॥ १५ ॥  
 रामदण्डमयात् सर्वे न चक्रुस्ते स्मिताननम् । वार्गगनान्नुपसीते नटगोतुप्रवर्तने ॥ १६ ॥  
 स्त्रोभिः मुहूर्तिभिर्वैश्व विनोदानुस्मयान् वरान् । भांगल्लयानि च कर्मणि हास्यकारीणि नाचरन् ॥ १७ ॥  
 वगस्तथकलाभिष कानुकानि हि यानि च । नृगघोषादिमाङ्गल्यकमाणि विचित्राः कथाः ॥ १८ ॥  
 मायन्मगेऽमयान् सर्वान् वात्रापहोन्मवान् शुभान् । कृतकानुस्मयार्थं विवाहादिषु कर्मसु ॥ १९ ॥  
 एतांश्चिरकथाश्चापि न चक्रुश्च कदा जनाः । ययो नापश्यन्काकार्याद्विना सदपि कः प्रभुम् ॥ २० ॥  
 पुराणार्त्तानिहायश्च न पठन्ति स्म केनन । गर्भाधाने पुत्रजन्मनामर्द्धादिपुनसवान् ॥ २१ ॥  
 पौग जनपदाः सर्वे मप्रहोपनिवामिनः । एतानि हास्यकारीणि नानाकर्मणि भूतले ॥ २२ ॥  
 रहस्यपि न चक्रुस्ते रामदण्डमयान् कदा । एवमार्त्तान्मेकं तदा भूम्पः कदापि हि ॥ २३ ॥  
 स्मितानने कस्य नागीन्न चक्रुर्मटनादिकम् । तदोन्महदेवनाथ नानाकर्मणिदेवताः ॥ २४ ॥  
 इन्द्राय कथयामासुस्तदुच्यते जगतीयवम् । इन्द्रादीनां सुगणो च कर्मायूजनादि हि ॥ २५ ॥  
 नार्त्तयदा जगत्या हि तदेद्रोऽकथयद्विधिषु । तदा सुमन्त्रिभिः प्राह न रामाग्रे वरु हि नः ॥ २६ ॥

तो जगत्का ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो आया करता था और अपने अगल-बगल निहारने लगते थे । इस समय रामने उस हास्यकी सुनकर क्षणभर दिवार किया और लगाप कहने लग्य—॥ ८ ॥ ९ ॥ जब कभी मैं किसीका हास्य सुनता हूँ तो मुझे राक्षसकी हँसी स्मरण आ जाता करती है और यह क्याल होता है कि ये आमासी राक्षस जिनका कि मैंत बार डाला है, बोला देकर मुझे खानेके लिए लिए लो मही आ गये हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ दूसरे नोतिशास्त्रमें भी हास्यकी निन्दा की गयी है । इसीलिए आजसे मैं भूलकर रहनेवालोंको हँसनेको मनाही करता हूँ । इसके बाद लक्ष्मणसे बोले कि मेरे राज्य तथा पृथ्वीतल परम दुर्गी पिटवाकर कहना दो कि कोई स्त्री पुरुष, केरा भिन्न, स्वयं सीता तथा मेरे बेटे या भाई भी न हों । जो इन आज्ञाके विपरित चलेंगा, उसे दण्ड भुगतना पड़ेगा ॥ ११-१४ ॥ लक्ष्मणने रामक आज्ञा सुनकर आगे और दुंदुभी बजवाकर रामकी यह आज्ञा धारित कर ली । जिनने पुरवासी भयका देशवाला थे, उन्होंने प्रभुकी इस सिताम्बनि की सुनकर दण्ड भयसे हृषणके लिये हँसना छोड़ दिया । देशवाओंके नृत्य, गान, नाटक, स्त्रियों या मित्रोंके साथ हँस-दिल्लीगी आदि ऐसे सब कार्य बन्द कर दिये गये, जिनमें हँस आनका अन्धशा रहता था ॥ १५-१७ ॥ उस समय बौद्धिक नदकर नाने आदिकी कथा, दुर्दही-नगाड़े आदिके बात, गप्पा, गज हाव-सरिक उत्सव, विवाह आदि मङ्गल कार्यों की हँसी आनवाले खल-कूद और वप शप आदि बातोंको बन्द कर दिया और बिना किसी विषय कामक कोई रामकी मन्नासे भी नहीं आता था । १८-२० । आगेमें पुराण-इतिहास आदिका भी पठना छुड़ दिया । गर्भाधान, पुत्रजन्म, नामकर्म आदि उत्सवमें हँसी न आने देनेका पूरा पूरा ध्यान रक्खा जान गया । मतलब यह कि सारे पुरवाओं एवं देशवासों हास्य त्यागकर कामोंको नहीं करते थे । रामके दण्डभयसे कोई एकान्तमें भी नहीं हँसता था । यह अवस्था एक बड़ा बड़ा अन्तोरहो । इस बीचमें भूतलनिव निधोमेने किमका भी पुष्पमण्डल धुम्कलता हुआ नहीं दीखा और किसीने भी अपना नृपकार आदि नहीं किया । ऐसी अवस्थामें किसीने भी कर्माङ्गदेयता और बहुलसे उस्ताहृदयता एकचित्त होकर इन्द्रके पास गये ॥ २१-२४ ॥ उन्होंने पृथ्वीतलके उस समाचारको कह सुनाया । अब इन्द्रने सुना कि हम देवताओं-

नैरोपदेष्टुं योग्यः स नमसि अनकम्पु यः । पुत्रस्या कार्यं साधयामि येन कोऽपि हितं भवेत् ॥ २७ ॥  
 इत्याप्यास्य सुरान् सर्वान्विधिर्भूमण्डलं ययौ । अयोध्यायाश्च सोमायां द्यूता वेधाः सुविप्रतम् ॥ २८ ॥  
 स्वयं विशेषं तन्वप्ये द्यूता पाशान् जहास यः । एतस्मिन्परे कश्चिन्काहुष्यादहः पुमान् ॥ २९ ॥  
 कुम्भा विष्णुलहास्यं जगत् दीर्घं जहास यः । ततः स अरवाहश्च ययौ द्यूते प्रभोः पुगेष् ॥ ३० ॥  
 काहुषारविमथार्थं तत्र स्मृत्वा स्मितं हृदि । चतुष्पत्तस्य सोऽप्युत्सर्जनं मयर्थो निरोधितुम् ॥ ३१ ॥  
 भारवाहस्य हार्यं तद्वाज्रदूतोऽपि शुश्रूषे । राजदूतो जहापोत्सर्जनं मयर्थो निरोधितुम् ॥ ३२ ॥  
 राजदूतः सर्मा यत्वा भारवाहस्य यन् स्मितम् । हृदि स्मृत्वा जहापोत्सर्जनं च्छुन्वा नै ममामरः ॥ ३३ ॥  
 सभायां महतुः सर्वे हन्तुन्वा नापनोऽपि यः । उत्सर्ज्येतां सदापि वरमिहामने स्थितः ॥ ३४ ॥  
 रामो विचारयामास किमर्थं हमितं मया । यच्चिस्मितं सदा दण्डं बीगन् जानपदाभिजान् ॥ ३५ ॥  
 अहं करोमि सोऽप्यहं सभायां हसितुः कथम् । दण्डयिष्यति मां कोऽपि किमां योगं वदति हि ॥ ३६ ॥  
 अस्माकमेव सिद्धाऽस्ति सर्पदा राघवस्य ना । न कथं हसितवाप्य सर्वेरा पुनः स्फुटन् ॥ ३७ ॥  
 सिद्धां कतिपयि विभोः कोऽस्य निद्रिनि वदति ते । मानयिष्यते नातस्ते मयापि शिखितं पुनः ॥ ३८ ॥  
 अर्थतन्त्रं यत्तं योग्यमिति राघवस्त्वयन्वयन् । पुनर्जहास भीगमस्तन्निरोद्धुं न स क्षमः ॥ ३९ ॥  
 ततो रामाऽधरीन्वीरान् ममास्थानसंस्मिनामयः । किमर्थं हसिता युष पेक्षो हार्य ममापि हि ॥ ४० ॥  
 जघामतं सभाबध्ये दीराः प्रोनुर्गुणमयम् । द्यूता स्मृद्दहाम्य हि तेनाभ्यासं मनागमम् ॥ ४१ ॥  
 तद् पीरयन्तं श्रुत्वा दूतमाह रघुसमः । त्वया किमर्थं हमितं सोऽन्वीरपुनः पुनः ॥ ४२ ॥

के कर्मों का पूजनार्थि मत्काय पुनः होने जा रहे हैं तो ब्रह्मांक पास आकर बहू बात बतानी । जघाम तब कि राघव-दमाके आगे हम लोगमें कुछ भी शक्ति नहीं है ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं उन्हें उपदेश नहीं दे सकता । क्योंकि वे मर डेरा है । इसलिये मैं किसी युक्तिसे अपना कायसाधन कर्मों कि जिससे आप लोगों का कल्याण हो ॥ २७ ॥ इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर ब्रह्माजी दृष्टान्तके और चतुष्पत्त अयोध्याकी सीमापर एक विनाश विष्णु वृक्षको देखकर वे स्वयं उसका भीतर प्रविष्ट हो गए और उस राक्षस नाम-काशिकाले लोगोंको देख-देखकर आगेसे हंसने लगे । उसी समय एक लम्बदहारा लकड़ीका बाण साधारण रखत हुए वहाँ आ पहुँचा । उसे भी देखकर राघवके भीतर बैठे हुए ब्रह्माजी हँसे ॥ २८ ॥ २९ ॥ चौपलका हमारे सुनकर लकड़हारा दूने आगेसे हुआ और लकड़ीका बीछा स्थिर हुए अयोध्या नगर में जा पहुँचा । राक्षस उस चौपलकी हँसोवाली बात याद आ गयी और दहारा आकर हंस पड़ा । नाकिन क्षण भर बाद उसे रामकी जगहोका समान हो आया, जिससे बेकारा जड़ित हो उठा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ लकड़हारेको हँसना बन्द कर और (१-पर कड़ा सिपाही भी जान्नी हँसी नहीं रोक सका । ३२ ॥ सिपाही सभामें गया तो उसे वहाँ लकड़हारेका हँसो बाद आ गया, जिससे बहू हँस पड़ा । सिपाहीको हँसते देखा तो मन्नाम बैठे हुए लोग भी अपना हमारे नहीं रोक कर और वे भी हँसने लगे ॥ ३३ ॥ समय सभामें लोगोंका हँसते देखकर रामचन्द्रमा भी हंसने लगे । ३४ ॥ तब रामचन्द्रजी गुरमठ हँसी रोककर सोचने लगे—और लोग हँसे को हँसे, मैं क्यों हँसा ? अब मैं छारे धूम्रवाचिकों का इस कामसे रोक रहा हूँ और दण्ड दता हूँ । तब मैं क्यों हँसा ? मुझे क्यों दण्ड देना ? और वे गुरवाली क्या कहेंगे ? यही मैं कि राम दूसरोंके ही सिखा वेन हैं, प्रजाके बान्ह हा दण्डविधान करत है और स्वयं जो मजमें जाता है तो कर डालते हैं । सब लोगोंके लिए तो हँसनेकी मनाही कर दी है, किन्तु स्वयं हँसते मन्त्रोंके सामने उठाकर हँसत हैं ॥ ३३-३७ ॥ इसका परिणाम यह होगा कि वे जसिप्यते बेटी बात नहीं समझेंगे । यह सब विचारकर राघव यह उद्वेग कि मैंने नहीं भागे पूरक की है । लेकिन क्षणपर बाद ही रामकी फिर हँसी आ गयी । पूरी चेष्टा काके भी वे हँसनेसे नहीं रोक सके ॥ ३८ ॥ तब रामचन्द्रजी सभाके लोगोंसे कहने लगे—आपलोग किम बातपर हँसे ? आप लोगोंको हँसते देखकर मैं भी हँस गया । आपने बैठे हुए गुरवालीको उतर दिया कि आपके सिपाहीको हँसते देखकर हँसे

भारवाहस्य हास्यं तन् स्मृत्वा प्रहमितं मया । तद्दूतवचनं श्रुत्वा भारवाहं तदा प्रभुः ॥४३॥  
 दुर्गतनीयं तदस्मि तस्माद् दधुनन्दनः । मा भीतिं भक्तमसत्त्वं सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥४४॥  
 तद्धं किमर्थं हमितं त्वयाऽद्य कथयस्व माम् । म भारवाहश्चकितः शुष्ककंटोष्ठनालुकः ॥४५॥  
 वैपमानः स्खलद्वाचा राघवं वाक्यमब्रवीन् । प्रयोष्यायाश्च सीमायामश्वान्य मयाऽद्य हि । ४६॥  
 दधुः प्रहमितं राजन् तद्धं हास्यं तथा कृतम् । तदपूर्वं तद्विदं स प्रभुः श्रुत्वा मुविस्मितः । ४७॥  
 दूतानुवाच आगमस्त्वनेन महं वेदयः । युयं मन्वाऽद्य द्रष्टव्यं किं मन्य कथ्यते न वा । ४८॥  
 अनेन भारवाहेन ते नथेति त्वर्गान्विताः । गन्वाऽश्वान्यमर्षाप हि दृष्टुं स्नेह्येन मुहुः ॥४९॥  
 तदाश्चर्याच्च ते दूताः प्रहयतोऽतिप्रेमनः । अश्वान्यमहितं रामं गन्वा सर्वे न्यवेदयन् ॥५०॥  
 तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघवधानिचिस्मितः । राज्यं ममैतदुद्धिदं मे जिज्ञासेऽनुमयात् ॥५१॥  
 इति निश्चिन्त्य मनसि दूतांश्चाज्ञापयन्तदा । त्रिद्युतो चलपत्रः स ममाज्ञाभगकाङ्क्षः ॥५२॥  
 तद्रामवचनादेव शतशोऽथ महस्रशः । कुटारपाणयः शीघ्रमश्वान्य ददुर्बुध्नदा । ५३॥  
 हास्यमानं नगं दधुः मे सर्वेऽर्थाश्च विस्मिताः । कुटारैस्तं तदा छेत्तुमुद्यता राघवाश्रया ॥५४॥  
 तांश्छेत्तुकामान् सकलान् ग्रामान् स्वनिकटं विधिः । दूतान्मन्वाटगामापोवर्त्मश्चन्दनिर्गतैः । ५५॥  
 उपलेशिच्छन्नमिन्नाशास्ते दूता लोहितोकिताः । कोलाहलं प्रकुर्वता रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥५६॥  
 नगोजिनिधिस्मितो रामः पुनर्दूतान् महस्रशः । प्रेषयन्माय न छेत्तुं धनुवणसिधारिणः ॥५७॥  
 तेऽपि गन्वा नम तेन ताडिता उगलदंष्टम् । छिन्नागा राघवं वेगान्स्त्रवे वृत्तं न्यवेदयन् ॥५८॥  
 ननो रामोऽतिमक्रुद्धः सुमत्रं सुनया युतम् । प्रेषयामास न वृक्षं छत्तुं बुद्धिपूरःसम् ॥५९॥

हंसो आ गया । ॥ ३९-४१ ॥ परकाशित की बात सुनकर रामने सिताहंससे पूछा कि तुम क्यों हंसते ? उसने कहा कि एक लकड़हारेका हाथ दखकर तुम हंस आ गये । दूसरी बात सुनकर रामने दूतों द्वारा लकड़हारेका पकड़वा मगाया और उससे कहा कि ऐसा प्रकारका भय न करके मुझ यह बतलाओ कि तुम काजालय क्यों हम धरे ॥ ४२-४४ ॥ वहाँ से रामकी बात सुनकर चौकन्ना हो गया । उसके कद, मोठ और ताल सुन गये, शरीर कांपन लगा और मगाये हुए स्वरसे उसने उत्तर दिया कि जयोष्वाके समीप ही एक पीपलका वृक्ष है । मेने बाजार आने समय उस वृक्षको हंसो सुना और हंस पड़ा । नगरमें आया तो यहाँ भी एकाएक वह बात याद आ गयी और जेहा करक भी मे हंसको नहीं रोक सका । उसकी यह बात सुनकर मुस्कराते हुए रामचन्द्रजाने दूतोंको आज्ञा दी कि तुम लोग इसके साथ जाकर देखो कि यह जो कह रहा है, वह ठीक है या नहीं ॥ ४५-४८ ॥ उस भारवाहकी साथ-साथ दूत चले, पीपलक समीप गये और उधकी हंसो सुनी तो रबय खूर हंसे और लोटकर रामकी वहाँका सच्चा वृत्तांत सुना दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ दूतोंकी बात सुनकर राम बहुत विस्मित हुए और सोचने लगे कि हमारे राज्यमें यह एक बड़ा दुश्चिह्न उत्पन्न होकर मर गासनको हँस चुस्त कर देना चाहता है । इस प्रकार विचार करके रामने दूतोंको आज्ञा दी कि इस पीपलके वृक्षका नाट डालो । क्योंकि वह मेरी आज्ञा चढ़ कर रहा है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ रामके आज्ञानुसार मकड़ों हमारी अग्नि कुडार ल लेकर उस वृक्षकी ओर चले पड़े । उस समय भी उस वृक्षका हंसते दखकर सब उस काटनका उद्यत हो गये । उनका देखकर बड़ा उस वृक्षपरसे ही पत्थरके टुकड़े फक फेककर मारने लगे । इस उस्कातमें मितने ही आगका गहरी चोट जायो । शीघ्रसे उत्तका शरीर भीषण गया और चिल्लाते हुए उन्होंने रामके पास पहुँचकर वहाँका हाल बतलाया । ५३-५६ ॥ सो सुनकर रामकी ओर की आँखें हुआ और फिर हुआगे दूतोंका वह वृक्ष काटनेके लिए भजा । धनुष बाण एवं तलवार धारण किये ५७ व दूत जब वृक्षके पास पहुँच तो फिर मर्याने पत्थर फक फेककर मारा, जिससे भिन्नमस्तक हो उन सबने लोटकर रामकी यह समाचार सुनाया । ५८ ॥ ५९ ॥ सब रामने क्रुद्ध होकर बहुत सी सेनाके साथ



सुमन्त्रो राघवं मन्त्रा सैन्या नं मगं ययौ । मयदशधपाशैर्लग्ने गन्तुं न म भयः ॥६०॥  
 ततो राघवभीत्या स धनैः सैन्धवेन मन्पुरः । ययौ नावन्नगोद्धृतं राघवेन्द्राङ्गोऽप्ययम् ॥६१॥  
 सुमन्त्रं पतितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । अयोध्यायां च तत्र तदङ्गमिवाभवत् ॥६२॥  
 सुमन्त्रं पतितं ध्रुवा पुत्राभ्यां हृत्पन्दनः । सैन्धवेन त्रैलोक्यं मयः प्रयुज्जं नं नगं पुनः ॥६३॥  
 ततस्तस्कोत्तुकं ध्रुवा पौरनार्यः महत्प्रशः । आमादशिवराजदा उच्चैर्यस्य स व्यलोकयन् ॥६४॥  
 तर्जन्या दर्शयामासुः योऽभ्यन्धयेति ता मिथः । चान्द्रहस्तं भूरोः स्वर्गस्य त्रिदीप्तोर्ध्ववारयन् ॥६५॥  
 कुत्रिगानलकान्नेत्रपतितान् कम्पलवैः । स्त्रियो निर्गर्ष आमादगोपुङ्गवानमंश्चिरात् ॥६६॥  
 निश्चार्यभ्रान्तनयमाचान्योन्यं दर्शयन्तगम् । एव मन्त्रगार सर्वं चरितं चाभवत्तदा ॥६७॥  
 अमुष्मोऽयं पुराद्यावत्सैन्येन निगमो बहिः । नावन्नदृशवाहः स संवेदता एव ते पथि ॥६८॥  
 ताडिता अपि धूनेन नौतम्भुस्तुरगोत्तमाः । कुशस्थाय लघुस्फारि रथगहास्तथैव च ॥६९॥  
 ताडिता रुक्मदर्शैश्च नौतम्भुः पथि मरिचतः । आश्चर्येण च तद्वृत्तं राघवाय न्यवेदयन् ॥७०॥  
 रामोऽपि श्रुत्वा चकितस्तदा चिन्तेऽपि च ययन् । विचारः कर्माधोऽयं ह्यविवरोऽयं नोचितः ॥७१॥  
 अन्त्यत्र कारणं किञ्चिद्वृत्तं योऽयं पुरे हितः । जानन्नपि समावाहः स्वयं सर्वं तथापि मः ॥७२॥  
 मानुषं भारमाभिन्य पुरोहितमथादयन् । सोऽपि समात्तवाञ्छं धं नमं प्रययौ शुकः ॥७३॥  
 प्रत्युद्गम्य शुकं रामो दक्षारामनमृतमम् । ततः सम्पूज्य विधिवन् सर्वं कृत्वा न्यवेदयत् ॥७४॥  
 तच्छ्रुत्वा राघवं प्राह वमिष्ठो मुनिमशमः । वल्मीकिभ्यश्च प्रष्टव्यो येन ते चरितं कृतम् ॥७५॥  
 सत्पुंगवैर्वचनं ध्रुवा चान्द्रार्किं च समाज्जयन् । मोऽपि समात्तवा ह्योऽयं ययौ धाराधयन् व्रति ॥७६॥

मुम्भुतकी मूलकाटनके लिए राजा । समस्त रामकी प्रणाम करके उग्रधायकी आर वडे । किन्तु वृक्षमे बोरी  
 दरवर हो थ । इतनच कण्ठका उर्दी होन लगी । जिसमे उस वृक्षक पासतक नही पहुच सके ॥ ६६ ॥ ६० ॥  
 तकिन रामके धासे भयत दीडे न मोदका आग हो । बदन भग और उग्रमे दरावर पन्थरोकी वृष्टि होती  
 रही । जिसमे वे आगक होकर गिर पड ॥ ६१ ॥ मुम्भुतकी गिरा दगा तो सनामे पड कोल हल होन लगा ।  
 सार अयध्याजामियाका पट्ट एक अनशना स सात मन्त्रम परो । ६२ ॥ मुम्भुतकी घायल मुना तो रामने  
 अपने दोनो पुत्राके साथ एक बड़ी गना भेरी ॥ ६३ ॥ इस बातकी मुना सो नगरकी बहुत-स मित्रा  
 जयनो-अवर्ण अटारिधोपर बहकर मरतक लड द हल, उस वृक्षका दलत लगी और गुंके प्रकाशका निवारण  
 करनेके लिए अपना बायी हाथ भीशपर रख-रखकर एक वृक्षकी दग-पर उमलिरि, मे बहु वृक्ष दिखाने  
 लगी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ नेवने सामन आये हुए केनोकी हटाने हुई वे मित्रा सकलको छनो, कगुरी  
 और अटारिधोपर अधिक-से अधिक सामने एकत्र हो गयी ॥ ६६ ॥ मित्रनोकी आये उस वृक्षका निहारने-  
 निहारत मोदका बाजमे बाजिल हु गयी । इस तरह उस समय सारा नगर विस्मित हो रहा था । ६७ ॥  
 उधर मनुष्य अपनी सेना लेकर चले । नगरमे बाहर निकले ही थे कि उनके रथवामे धाड़े रास्तमे बैठ गये  
 और कोषकाशके बार-बार मरनेपर भी नही उठे । वही दशा पुन और लवक भी रथको हुई । उनके घेरे  
 भी रास्तमे बैठ गये और कितने ही बड खानपर भी नही उठे तो वे सब कोटकर माझर्यके साथ राघके पास  
 पहुँचे और यह हाक बसाया ॥ ६८-७० ॥ यह मुना हो वे मनमे विचारने लगे कि इस विषयमे पुनंतया  
 विचार करके काम करनेकी आवश्यकता है । आज यदिचारिताम काम नही फटनेका है ॥ ७१ ॥ इसमे कसम्य  
 कोई कारण है । बात पहल पुराहितको बुलाकर पूछ लना जरूरी है । यद्यपि रामकन्नकी सब कुछ जानते थे,  
 फिर भी मनुष्यधारेमे उन्होंने पुन द्विषको बुलवाया । रामके आज्ञानुसार तुरन्त गुरुजी राजसभामे जा पहुँचे ।  
 तब राज गुरुके जाने वये और एक उत्तम आसनपर बिठाकर पूजन करनेके अनन्तर सारा वृत्तान्त यह  
 सुनाया ॥ ७२-७४ ॥ यह सब सुनकर गुरु बसिष्ठने कहा कि इस विषयमे आप वाल्मीकिजीसे पूछ-ताछ करें  
 तो ज्ञप्ति होगा । क्योंकि उन्होंने ही आपके चरितकी बनाया है ॥ ७५ ॥ गुरुके आज्ञानुसार रामने वाल्मीकि

प्रत्युद्गम्य मुनिं रामो दशकामनमुत्तमम् । नत्वा समूह्य विधिवत् सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥७७॥  
 ततो विहस्य वाल्मीकिः श्रोत्राच्च रघुनन्दनम् । सर्वं वक्षेमि भवान् राम किमर्थं मां तु वृणुमि ॥७८॥  
 त्वं घेत्पृच्छामि रामाश्च मानुषं भावमाश्रितः । तर्हि ते कथयाम्यद्य मृणुष्य रघुनन्दन ॥७९॥  
 त्वयाऽत्र वर्जितं हास्यं त्वद्भिषा मकलैर्जनैः । हास्यकाणि कर्माणि संन्यक्तान्यवनीतये ॥८०॥  
 विवाहादिसमुत्साहाः कथाशार्तादिकौतुकम् । मङ्गलोत्साहगीतानि नृत्यं यज्ञादिमन्त्रिकाः ॥८१॥  
 यात्राः संवत्सरोत्साहास्त्यक्ता गवायनानके । यद्यद् कस्य तोषकाणि हास्यकारि च तन्मरैः ॥८२॥  
 एकवम्बत्सरं नात्र क्रियते रघुनन्दन उन्माददेवताः । मयास्तथा कर्माङ्गदेवताः ॥८३॥  
 इन्द्रादिलोकपालाश्च दृष्ट्वा स्वीयं प्रयत्नम् । क्षुभं भूम्पां तनो राम मद्रुच कथयन्विधिम् ॥८४॥  
 ततो विधिवन्नुन्मादममर्षस्त्वा निवेदितुम् । नयि कृतेनमाभ्यर्च्य मोऽभ्यर्च्य सप्रवेशितः ॥८५॥  
 हितार्थं निर्जगणो य मोऽद्य निष्ठति पिप्पलः । अजिक्कयुदलान राम छलुकामन् मयागतान् ॥८६॥  
 सन्मुखैर्वचनं श्रम्य राघवः काथमायधौ । भद्रमेवाय गच्छामि भार पश्यामि भक्षणः ॥८७॥  
 कथं नाम रघुमष्टः स्वशिष्या परिवर्तयेत् । इत्युक्त्वाह्वापयामास स्वीयां सेनां नरा मधुः ॥८८॥

ततस्त बोधयामास वाल्मीकिमुत्तमनमः ।

क्रोधं त्यज रघुर्धेष्ट मृणुष्य वचनं मम । मस्विदानन्दरामस्यमादन्दधर्तितं तव ॥८९॥  
 मयाऽस्मि वर्णितं रामतत् किञ्चिन्पुत्रयोर्ममत्वात् । त्वयाऽपि यत्तदमरे भूतं गच्छानटे पुनः ॥९०॥  
 यस्य मध्ववणाद्देवानन्दरूपो मधेन्नरः । हास्यं वक्षेयमि त्वं चेत्तर्हि ते चास्त त्रिरम् ॥९१॥  
 न जनाः कीर्तयिष्यति सुखरूपं स्मितं विना । अन्यत् किञ्चित् प्रवक्ष्यामि प्रभो वृत्तं तदाग्रतः ॥९२॥  
 छतकोटिमिव देऽत्र चरितं यन्मया कृतम् । पुनः त्वया विविक्तं यत् सर्वं रघुनन्दन ॥९३॥

का वृत्तवाचा : यह सन्दर्भ गान ही व वाल्मीकि रामके मिलनके चले पद ॥ ७६ ॥ तहाँ पहुँचनेपर रामने उठ-  
 कर उनको अवधाना की ओर एक नुस्तर आसनपर बिट्कर पूजन दिया । फिर जो कुछ वृत्तान्त बताना  
 था, सो बताना ॥ ७७ ॥ यह सब सुनाता हुआ रामकर वाल्मीकिने कहा— हे राम ! आपसे कुछ छिपा नहीं है,  
 आप सब जानते हैं । फिर हमसे क्यों पूछते हैं ? ॥ ७८ ॥ हाँ यदि गानवभावका आश्रय लेकर आप हमसे  
 पूछते हैं तो बताना ही, मुनिर् ॥ ७९ ॥ आपने अपने राज्यमें कौनको मराना कर दा है । इससे सब लायोन  
 ऐसे गुप्त कार्यका कर्ता बन्द कर दिया है, जो हुंसा-खशास ही सम्भव ही रहता है ॥ ८० ॥ विवाह, कथावार्ता,  
 खेल-सम जो नाच गान यज्ञादि सत्कियाएँ, यात्रा और साँव सत्क उन्मत्त आदि कथ-कथनी कर रहे हैं ।  
 कहनेका मतलब यह कि जितने कार्य हृदयकी आनन्दित करनेवाले हैं, वे सब आज एक पल-बन्द हैं । इसमें  
 व्याकुल होकर समस्त उन्माददेवता, कर्माङ्गदेवता तथा इन्द्रादि लोकपाल भूमण्डलपर चले गये पूजाकी वृत्त  
 होते देख कर आपके पास गये और उन्हें अपना दुःख सुनाया ॥ ८१ ८२ ॥ इसके बाद बहोजो बारसे कुछ  
 कहने-सुननेमें अवसर्य होकर उस पीपल वृक्षमें गुप्तस्वरसे प्रविष्ट हो गये ? । देवताओं की कल्याणकामनामें  
 वे आज भी उसमें बँडे हुए हैं जो कोई उस वृक्षकी काष्ठीके लिये जाना है, वे उसपर पत्थर बरसाने हैं  
 ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ पुनिराज वाल्मीकिने मुखसे यह हास सुनकर रामका प्रश्न आ गया और उन्होंने कहा कि आप  
 मैं स्वयं जाकर कहाका पराक्रम देखना हूँ । रघुवक्ता एक ओर सत्रिय अपने अ देशमें किसी प्रकार का उलट-  
 फेर नहीं कर सकता । इतना कहकर रामने अपना सेना मैजार करनेकी आज्ञा दी ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ तब वाल्मीकि  
 समझाने लगे—हे रघुधेष्ट ! इस प्रकार क्रोध न करके मेरी बात सुनिये । आप सत्सात् मस्विदानन्दरामस्य महा  
 हैं और आपका चरित्र लोगोंकी आनन्दित करनेवाला है । उस मैने ही बतानाकर आपके पुत्रोंके मुखसे  
 यज्ञपालाई सुनवाया था, उसे आपने भी सुना है । फिर जिसके सुनने वाक्यमें अनुद्य आनन्दमग्न हो जाता है,  
 ऐसे पुनीत चरित्रको लोग यदि आप न होनेका नियम रखने लगे तो नहीं गुन सकते । क्योंकि कथा सुनकर  
 आनन्दकी प्राप्ति लोग इसे बिना नहीं रह सकेंगे । इसके सिवाय हे प्रभो ! मुझे आपसे कुछ और भी कहना

भागाद्भारतवर्षानर्भेताद्रामायणम् प्रभो । सारं सारं प्रगृह्याथ यद्यहम्य मनोरमम् ॥ ९४ ॥  
 कथानकं तेन तेन व्यासेन मुनिनाऽत्र हि । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥ ९५ ॥  
 कुतन्वन्त्येऽपि भुनक्तुः पटुशब्दादीन्वनेकशः । अत्रे सर्वे कश्चिन्निरास्यन्ति सारं रम्यं प्रगृह्य च ॥ ९६ ॥  
 ततोऽत्र शोककथं च यन्मया इदं के वने । चतुर्दशवर्षाश्च केकेषीदुष्टभावनः ॥ ९७ ॥  
 कृतं चरित्रं मीमांसा विगृह्यादि च गद्यव । तत्र किञ्चिच्छेषभूतं हि चतुर्विंशत्सहस्रकम् ॥ ९८ ॥  
 तावन्मात्रं वदितुं शक्तिः यद्वर्त्मना के । कृतं स्थितिः । तन्मयं सकलं ज्ञात्वा भावि ह्यत्र रघूत्तम ॥ ९९ ॥  
 शोकस्तदुपयोगश्च पूर्वमेव मनेनितः । युद्धं प्रमाने धीमन्स्य शोकमैवापराधके ॥ १०० ॥  
 रतिनिर्गतायां धीमत्याऽऽनन्दगमायण मदा । युद्धं ज्ञेयं भाग्यं हि रतिर्भागीवतं स्मृतम् ॥ १०१ ॥  
 शेषभूतं चतुर्विंशत्सहस्रं शोक उच्यते । तत्र भाविष्येणतदानन्दचरितं तत्र ॥ १०२ ॥  
 अतकोटिभिरं पूर्वं यन्मयैव विनिर्मितम् । नवकाण्डमिति रम्यं पटुशब्दसहस्रकम् ॥ १०३ ॥  
 नवीनगणनं सर्वं कश्चिन् स्थापयति भूतले । तत्र भाविष्येणतदानन्दचरितं तत्र ॥ १०४ ॥  
 अष्टोत्तरशतैः सर्वैर्निर्मितं मेरुणाश्रिताम् । तत्र कीर्तनमात्रं नो सुदुष्यति भूतले ॥ १०५ ॥  
 नवकाण्डभूतं रम्यं दृष्ट्वा रत्नद्विहेतवे । एतद्दि रक्षाविष्कति यात्रकचन्द्रदिवाकौ ॥ १०६ ॥  
 यदा तत् स्मरितं पूर्वं व्यासज मुनिना तत्र । अतकोटिभिरं गद्यचरितं यन्मया कृतम् ॥ १०७ ॥  
 तदा किञ्चिद्विदितं दृष्ट्वाऽहं तूष्णीमेव संस्थितः । मदिष्यति कलौ मन्दमन्दयोऽप्यायुषो नराः ॥ १०८ ॥  
 न यमर्षा मम ग्रन्थं विम श्रोतुं कदापि हि । अतो व्यासेन मुनिना मन्त्राण्यं वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ १०९ ॥  
 सप्तसप्तविंशत्सहस्रं पद्या तुष्टि गतः प्रभो । मनस्वरा प्रार्थयाम्यद्य नवकाण्डमिति त्विदम् ॥ ११० ॥  
 आनन्दरामचरितं न विरूपय तस्य च । वर्जयिष्यमि चेद्भाष्यं तदा दुःखमय प्रभो ॥ १११ ॥

है। मैंने जो सौ करोड़ श्लोकोंमें आपके चरित्रका वर्णन किया है, उसे हे रघुनन्दन ! आप कुछ समय पहले कई भावोंमें बाँट चुके हैं । ८९-९३ ॥ उसमें मैंने जो भाग भारतवर्षके लिये सुनाया, उसके सार अतकोटि श्लोक जा कथानक अर्थात् वे, गूढ़नेमानसे समझमें आ जाते वा कानोंको प्रिय लगते थे, उन्हींके आधारपर व्यास-देवने अष्टादश पुराणों तथा उपपुराणोंको बना दिया है। इनके अतिरिक्त भी बहुतसे श्रेष्ठ उन्हींकी सहायतासे वर्णनाएँ आदि कितने ही शास्त्र बनाएंगे ॥ ९४-९६ ॥ कुछ ही समय बीतनेके बाद कीकेशीकी वृथासे आपकी भीड़ कर्षणवर्षतः जो दुःख भोगने पड़े थे, सोताक विग्रह आदिका दुःख जो बीबीस हजार श्लोकोंसे कुछ कम है, उसने ही चरित्रकी योग्य मुक्त वाचनोक्तिका बनाया हुआ मानग। इस भावी स्मृतिगतको समयसमय ही मैंने आपके उत्तरे शोककथ चरित्रको विगद्य उत्साहके साथ लिखा है। सब लोगोंको बार्तिये कि सबसे युद्ध-चरित्र तथा ईश्वरके बाद शोक-चरित्रका वर्णन करें। युद्धचरित्रका महाकाव्य महाभारत, रति-चरित्रका श्रीमद्भागवत तथा बाकी बीबीस हजार श्लोकोंका मतलब शोकचरित्र माना गया है। आपके भावी वर्णनके प्रभावसे आपका यह आनन्दरामायण, सौ करोड़ श्लोकोंवाला मेरा बनाया रामचरित्र, भी काण्डोवाला द्वादश सहस्रात्मक रामचरित्र एवं एक सौ भी श्लोकोंवाली रामायण ये सब पृथ्वीतलमें कहीं न कहीं रहेंगे ही। आपके भावी वर्णनसे एक मुख्य कर्तव्यमाला, जिसमें १०८ सर्ग हैं, सुमेरुकी मत्तकासदृश अण्डसे लगी है, इसका कोई भी अण्डन नहीं कर सकेगा। इस भी काण्डोवाले चरित्रको जोर आपकी इसप्रताके लिए तबतक सम्हालेंगे, जब तक कि तत्सारमें सूर्य-रश्मि विद्यमान रहेंगे ॥ ९७-१०६ ॥ मेरे बनाये सौ करोड़ श्लोकोंवाले रामचरित्रका स्पष्टन करके जब व्यासजीने १८ पुराण बयाने थे, तब उससे किसी प्रकारका कल्याण देखकर ही मैं चुप रह गया था। उस समय मेरे विचारमें आया कि जो धूलकर कलियुगमें साग मन्दबुद्धि तथा मत्पानु होंगे। इस कारण वे मेरे इतने बड़े ग्रन्थों कभी नहीं सुन सकेंगे। व्यासजीने मेरे काण्डसे कथाएँ प्रलग्न करके जो पुराणोंको बनाया, सो बहुत अच्छा किया। उसमें

भविष्यति शेषवद्धि चैतच्छावि मनोद्वम् । अगन्ते कथयाम्यथ येन ते शिक्षितं भुवि ॥११२॥  
 भविष्यति सृष्टा नैव येन तृष्टान्तु देवताः । भविष्यति जनाश्चापि मम्या मन्त्रकृति भवेत् ॥११३॥  
 जना हर्षन्तु सर्वत्र दानानां दानत विना । आप्यमान्छात्र वसेन कदा कौतुकदर्शनात् ॥११४॥  
 हास्य लक्ष्मीमूचकं हि हस्मिन् भोग्यदारकम् । दास्यन् हस्मिन् चैतदस्यान्तर्लुप्तं न किञ्चन ॥११५॥  
 नारी स्मिगानना यस्मिन् मेरे तन्मन्दिर इष्टम् । लक्ष्म्याऽपि स्थापने तत्र निश्चयं रघुनन्दन ॥११६॥  
 स एव पुत्रो धन्यो यस्य स्याच्च स्मिगाननम् । स एव पुत्रो निधो यस्यास्य कोधमयुतम् ॥११७॥  
 प्रमदा निरिना सापि यस्याः क्रोध्युतं युतम् । गर्दभन्पत्रहास्यं हि सर्वदा ते सुनीश्वराः ॥११८॥  
 उत्तस्वा शार्धदास्येनमानय त्वं वचो मम । न कगेति विधिर्गर्भे त्वी तात् वेति राघव ॥११९॥  
 जानयिष्यामि शरणं त्वाहं अनुगमनम् । एवं चान्मर्माकिञ्चनमर्गाकृत्य रघूत्तमः ॥१२०॥  
 एवमेस्त्विति सं प्राह सुते तठ कथनीयम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा चान्मर्माकिञ्चनमर्गाकृत्य रघूत्तमः ॥१२१॥  
 शिष्यं संप्रैष्य ब्रह्मणामानयायाम पिप्लवन् । अक्षाः सर्वे समुत्तम्युपेयुस्ते नगरी प्रति ॥१२२॥  
 ययी सैन्येन अनुगतो रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् । रामगुर्वो ममागर्ता पिहुरग्रे निवेदतुः ॥१२३॥  
 गमाजया भारवाद्भक्तो र्त्नार्चमर्जनः । कुनेट्रेण मुधावृष्टिः सुमन्त्राद्याः सुजीविताः ॥१२४॥  
 सुमन्त्राद्या रामदत्ताम्यभरणं राघवं ययुः । नन्वा रम्यमुमन्त्रः स रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् ॥१२५॥  
 इतः सुर्यैयाविद्रः श्रमार्धं प्रणमम म । गर्भं नम्याऽर्च्यार्च्यमपि ययुराधिनम् ॥१२६॥  
 तन्ममस्व रघुभेष्टं स्वस्यान्याः सर्वदा वचम् । पुराऽस्माकं द्विषर्थे हि स्यात् रामवनीकले ॥१२७॥

मुझे मर्जी प्रमथता है । अतएव आज आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि हम जो काण्डवाने आनन्दगमायनकी कोषा न दिगारिए । यदि आप भद्रके लिए लगे होंगे, सदा राक दाय तो दया करके होगा । मेरी रामायण लिखी कावकी नहीं रह जायगी । इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ कि कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे आपके आदेशमें भी बिना दशासका कलह न पड़ और दानता तथा मनुष्य की प्रमथ रहे और मेरी कविता भी सत्य हो जाय ॥ १०७-११३ ॥ लोग ऐसा सही किन्तु उनके साथ न दिगार्यो द । किसी कौतुकको देखकर यदि लोगोंको हँसा जा जाय तो कदस पुत्र होकर हँस ॥ ११४ ॥ क्योंकि हमें लक्ष्मीमूचक है, हमें सबको मुस दनेवाला वस्तु है और हमें मालमयी मानी गयी है । कहतेवा सब यह कि हमें लक्ष्मी देखकर कोई बाध है ही नहीं ॥ ११५ ॥ जिस घरमें मुक्तानों दुई नारी रहता है, वह घर दवभंदरके समान पवित्र होता है और लक्ष्मी वहाँपर ही निवास करती है । हे रघुनन्दन ! हममें किसी प्रकारका संशय नहीं है ॥ ११६ ॥ नही पुरुष धन्य है, जिसका सुमण्डल सदा हमला हुआ दीवे और नही पुरुष धन्य है, जिसका मुस सदा कोधमें युत रहे ॥ ११७ ॥ वह स्या भी निन्द्य है, जो सदा गरुधुक्त मुँह कनाये रहती है । बड़े-बड़े सुनिगम आदि हस्त (१) सदासे निन्द्य कर आया है ॥ ११८ ॥ वसन्त मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी यह बात मान लीजिए, बहुत किसी तरह अभिमान व करके आपको भद्रने पित के समान मानते हैं ॥ ११९ ॥ मैं स्वयं जाकर बच्चाकी अपका सन्तान में ऊँठा ये आपसे जमा पाँगे । रामने कालीक के वाक्यगौरवको सम्झकर उनकी बात मान ली और कहा कि जैसा आप कहते हैं, वैसा ही होगा । रामकी स्वीकृति सुनकर कालीक परम प्रमथ हुए और अपना एक मिथ्य भेजकर उस पीपलपरसे ब्रह्मजीको बुलाया । यह ही आनेपर शत्रुधन तथा लव-कुश के जो घोड़े अबतक रास्तेमें बँडे थे, वे उठ खड़े हुए और अपोष्ठाको वापस मल दिये । शत्रुधन और लव-कुश भी अपनी सेना लिये हुए भाड़े और रामके पास जाकर बैठ गये ॥ १२०-१२३ ॥ रामकी आज्ञासे हमने लवकुशको छोड़ दिया । हमने आकर अफूल्के वर्षा की । जिसने सुमन्त्रादि जो घोड़ा मूर्च्छित पडे थे, वे गयेत हो गये ॥ १२४ ॥ इसके अनन्तर युक्तों छोटनेके लिए गये हुए लोग रामके पास आये । सुमन्त्र रामके पास जाकर बैठ गये । घोड़ी देर बाद बैरावोंके साथ-साथ हम और ब्रह्मा भी रामकी समामें आये और बैठ गये । रामकी प्रणाम

अवताराय बहवो धृता नो रिपवो हताः । संजानुरो वेदहर्ता मत्सररूपेण दास्तिः ॥१२८॥  
 तथाऽस्माकं सुधां दातुं मज्जतं मंदराचलम् । द्यूा म कूर्मरूपेण स्वया एवो धृतो निरिः ॥१२९॥  
 मन्मथीरि स्पर्द्धमानं हिमण्याशं निहन्म च । त्वया वाराहरूपेण जलात्पृथ्वी समुद्धृता ॥१३०॥  
 प्रह्लादवचनात्सम्भावाविर्भूय त्वया पुनः । नरविहस्वरूपेण हिमण्यकशिपुदंतः ॥१३१॥  
 तथा राज्यं हन द्यूा पुनः तु मथवस्त्वया । बलिर्वात्मनरूपेण पातले विनिवेशितः ॥१३२॥  
 नृपैरवर्मनिरर्तय्वा ध्यामी सुधं पुनः । त्वयैकविंशद्वारं हि जामदग्न्यस्वरूपिणा ॥१३३॥  
 पितृवैर पुरस्कृत्य निःसृजो पृथिवी कृता । दशम्यकुम्भकर्णो तौ रश्मरूपेण राक्षसौ ॥१३४॥  
 पत्नीवैर पुरस्कृत्य त्वया द्यूा हनानिह । उद्धारितौ तौ स्वर्गणौ द्विवारं देवसाधनः ॥१३५॥  
 एकवारं पुनस्त्वमे त्वं तावेवोद्धरिष्यसि । तद्वत्प्रवचनं भुत्वा वसिष्ठो मुनिमचमः ॥१३६॥  
 सर्वे जानस्यपि अनान्धानुं एप्रच्छ तं विधिम् ॥१३७॥

इति श्रीमत्कालिकाचरितभाष्ये श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे  
 उत्तरार्धे रामहस्तप्रतिरोधी नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

### चतुर्दशः सर्गः

( राक्षसीकक्षी जन्मगाथा तथा बहुतेरे मंत्रोक्ता निरूपण )

श्रीरामदास उवाच

कौ गणै देवधत्तौ तौ कथमुद्धारितौ वद । पुनः द्विवारं रश्मेणाग्रे कथं वोद्धरिष्यसि ॥१॥  
 तद्वसिष्ठवचः भुत्वा विधिः प्राह विहस्य तम् । सर्वं वेत्ति भवान् लोकान् वापितुं वा हि पृच्छसि ॥२॥  
 वदा वदाम्यह सर्वं गणयोः आपकारणम् । एकदाऽपि महाविष्णुर्वैकुण्ठे रमया ररः ॥३॥  
 संस्थितश्च तदा द्वारि विष्णुं द्रष्टुं सुनेतरी । नासन्निधीकुमारौ हि समाजग्ममुगदरात् ॥४॥

करनेके पञ्चाङ्ग ब्रह्माने कहा—मैं जो कुछ अपनाच किया है, सो समा करे । हे रघुश्रेष्ठ ! आपका कर्तव्य है कि आप हमारी रक्षा कर । पहले भा आपन हमारी रक्षा करनेके लिए पृथ्वीतलपर कितने ही अवतार भेकर हमारे मन्त्रशोको मारा है । वेदको बुरानेवाले शस्त्रासुरका आपन मत्सरका रूप धारण करके मारा था ॥१२८-१२९॥ हम सबको अमृत मिलानेकी उच्छाते, समुद्रमंथनके समय जब भन्वराचल डूबा जा रहा था, तब कूर्मरूप धारण करके उसे अपनी पीठपर रखा था । “यह पृथ्वी जेरी है” इस प्रकार कहकर जोग मारनेवाले हिमण्याकको मारकर आपने वाराहरूप धारण करके जलमंथकी हुई पृथ्वीका उद्धार किया ॥ १२८ ॥ १३० ॥ प्रह्लादके बचनेसे आप सम्भ्रंस प्रकट हुए और हिमण्याकशिपुका संहार किया । जब दैत्योंने इन्द्रसे राज्य छीन लिया था, तब आपने वामनरूप धारण करके भीस मंत्री और बलिको पाताल लोक में डाल दिया ॥१३१ ॥ १३२॥ जब इस पृथ्वीतलमें परमो राजाशोको अस्वाभाव देखा तो परमुरामका रूप धारण करके पितृवैरके बजाते पृथ्वीको क्षतिपविहीन कर दिया । राक्षस और कुम्भकर्णकी आपने पत्नीवैरके ब्रह्माने यमपुर पहुँचाया । दो बार आपने देवताओंके साथसे अपने गणोंकी रक्षा की है और अविध्यमे फिर एक बार उनका उद्धार करेंगे । ब्रह्माकी बातको सुनकर सब कुछ जानते हुए भी वसिष्ठने ब्रह्माजीसे पूछा—॥ १३३-१३७ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये प० रामस्तंजण्डयविरचिते ‘ज्योत्स्ना’ भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

वसिष्ठजी कहन लगें—वे दोनों कौनसे गण थे, जिनको देवताओंका साथ प्राप्त हुआ था और आपने उनका उद्धार किया था और फिर भी उद्धार करेंगे, सो कहिए ॥ १ ॥ इस प्रकार वसिष्ठकी बातसुनकर ब्रह्माने हँसकर कहा—आप सब कुछ जानते हैं, किन्तु मुझे लाभ प्राप्त करानेके लिए मुझसे पूछ रहे हैं तो मैं भी उन गणोंके साथका कारण बतलाता हूँ । एक समय महाविष्णु एकान्तमें

समागतौ देववैद्यौ तौ द्रष्टुं हास्यच्छकी । जयविजयनाम्नौ तयोमये प्रथमतः ॥ ६ ॥  
 ताभ्यां वैद्यौ तदा प्रोक्तौ विष्णुस्त्रिपुरति वैरुहः । नायं कालो दर्शनस्य तच्छ्रुत्वा प्रोचतुः सुरी ॥ ७ ॥  
 मधुना इष्टुमिच्छाको विष्णुं कथयतां गणौ । दायधियोगगमनं पूर्वां मृणुत चेति ॥ ८ ॥  
 तस्योर्वचनं श्रुत्वा तौ पुनः प्रोचतुर्गणौ । न गच्छाको यदाविष्णुमया लब्ध्वा रतः स्थितम् ॥ ९ ॥  
 एवं त्रिवार ताभ्यां तौ प्रोक्तौ नेष्टुश्चतुर्गणौ । तदाऽपि नोकृपारौ तौ प्रोचतुः क्रोधमूर्च्छितौ ॥ १० ॥  
 भावबोर्वचनं नैव ध्रुवाभ्यां हि श्रुतं गणौ । यत्त्रिवारं तस्मादेव पूर्वां जन्मव्रतं भुवि ॥ ११ ॥  
 लभयश्च न सर्वेदस्त्वच्छ्रुत्वा वचनं तयोः । गणावपि तयोः श्रापं ददतुर्देववैद्ययोः ॥ १२ ॥  
 विनाशराधनः श्रापो यस्मादसत्तु चादयोः । एकवारं पूर्वां चापि जन्मानवस्तु वै हवि ॥ १३ ॥  
 एवं परस्परं श्रापं लब्ध्वा द्वाहेति चक्रशु । तदा कोलाहलधासीदाह्वयामाय तान् हवि ॥ १४ ॥  
 तत्पत्न्यमकलं इत्थं प्रोचुस्ते अगदीधरम् । यन्नास्ते यदात्रिभुं प्रार्थयामः श्रुतदगन् ॥ १५ ॥  
 पेन ग्रीष्मं विद्वन्निः स्थापन्नो वद महेश्वर । तदा प्रोवाच तान् विष्णुर्बुध्निः श्रीय शुभाऽत्र हि ॥ १६ ॥  
 मयि भक्त्या विरोधिन्या जायते नात्र संशयः । मयजन्मानरेणैव मद्रक्त्या जायते गतिः ॥ १७ ॥  
 पुष्पाकं रोचते या सा भक्तिः कार्याऽञ्जनीतले । तद्विष्णोर्वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्जगदीश्वरम् ॥ १८ ॥  
 नोऽस्तु मक्त्या विरोधिन्या श्रेष्ठं ते दर्शनं पुनः । नयेत्युक्त्वा रमानाद्यस्थानं सर्वान् स व्यमर्जयत् ॥ १९ ॥  
 ते जन्मानि ततः प्रापुर्जनस्यै ह्यनिमग्नम् । जपो जानो हिरण्याक्षो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ २० ॥  
 आतोऽत्र विजयः पूर्वो तौ हतौ विष्णुना धृग । वाराहकृपिणाऽनेन हिरण्याक्षो विदारितः ॥ २१ ॥  
 मरसिहस्वरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः । ततः पुनर्जन्म तौ हि द्वितीयं प्रप्तुर्बुध्नि ॥ २२ ॥

लक्ष्मण के साथ बैठे थे । उसी समय उनके दर्शनार्थ भक्तिरत्नकुमार वहाँ जा पहुँचे ॥ २-४ ॥ तब देववैद्योंको देखकर जय-विजय नामक दोनो द्वारपाल उनके सामने पहुँच और कहने लगे—इस समय भगवान् एकांतमें हैं । अतएव आप लोग दर्शन नहीं कर सकते हैं । यह सुनकर वे दोनों देवता बाल—विष्णुभगवान्से जाकर कहेंगे कि हम अभी इसी समय आपका दर्शन करना चाहते हैं । देवताओंको बाल सुनकर जय-विजयने कहा कि हम अभी उनके पास नहीं जायेंगे । वे लक्ष्मण साथ एकान्तमें बैठे हैं ॥ ५-८ ॥ इस तरह तीन बार भक्तिरत्नकुमारोंके कहनेपर भी जब जय-विजयने उनकी बात नहीं मानी तो क्रोध होकर उन्होंने आपसे बातें कर कहा कि तब बार लक्ष्मणसे मेरी बातका उल्लेखन किया है, इसलिए मुझे तीन बार विष्णुलोकमें जन्म लेना पड़ता । उनके इस बातको सुनकर तब विजयने भी भक्तिरत्नकुमारोंको शाप देने हुए कहा कि बिना अवशय हमने हमको शाप दिया है । अतएव तुम दोनोंका जो एक बार दुष्टीलोकपर जन्म लेना पड़ेगा ॥ ९-१२ ॥ इस प्रकार आनन्दसे शाप पाकर वे चारों दुष्टीलोक पर वसनाले लगे और श्रीकृष्णभगवान्को लाहुरूप में बयां तब विष्णुभगवान्ने उनकी अवतल पास बुलाया ॥ १३ ॥ भगवान्ने तबका वृत्तान्त सुना । इसके अनन्तर आदर्शपूवक उन चारों भगवान्से प्रार्थना की—॥ १४ ॥ हे महाशय ! जन्म दुष्टीलोक प्राप्ति इस शापसे मुक्त हो जायें, हम आपसे उपाय वचनायें । विष्णुभगवान्ने उन्हें समझाते हुए कहा कि द्वादशभोजन, शांति हों तुम लोग शांति सुन हो जायेंगे । किन्तु यहाँ दो हैं । एक यह कि तुमनाम द्वारी भक्तिसं विरोधभाव रक्ता । दूसरे उपायस हप्ताने यदि कष्ट दुष्टीलोक राधका चला रत । यदि यही भक्तिक विरुद्ध रहेंगे तो ग्रीष्म भुक्ति मिल जायगा और भक्तिसे साथ चलाग तो भगवान् जन्म लेना पड़ता । उन दोनोंके जो वचन अन्त्य अन्त उसे सुन ली । इस प्रकार विष्णुकी वत्त सुनकर लक्ष्मणसे उनसे दिया कि हम आपको भक्तिके विरुद्ध भाव रक्ता, जिससे शांति मुक्त हो जायें । भगवान्ने भी “अच्छी बात है” यह कहकर उन लोगोंको विदा कर दिया । १५—१८ ॥ तदनन्तर वे लोग मृगयुक्तकम आकर जन्म । उनमें जब हिरण्याक्ष नामका तथा विजय हिरण्यकशिपु राक्षस होकर जन्म । इसके अनन्तर वाराहरूप धारण करके विष्णुभगवान्ने हिरण्याक्षको मारा और मरसिहस्वरूप धारक हिरण्यकशिपुका सहार किया ॥ १९ ॥ २० ॥ दूसरे जन्ममें

जयो आतो रावणोऽत्र कुम्भकर्णस्तपाडपरः । जातो विजयनाभा हि रामेणानेन तौ इतौ ॥२२॥  
 तानदिनीकुमारी हि एक ऐरावण स्मृतः । मैरावणश्च स्वपर एव तौ अनित्यवधः ॥२३॥  
 पातालं चरदानाच्च रामहन्तामृतिं गर्ता । अग्रे जयः शिशुपालो भविष्यति न संशयः ॥२४॥  
 विजयो दन्तवधश्च भविष्यत्यदर्नातले । द्वापरे कृष्णरूपेण शिशुपालं हरिः स्वयम् ॥२५॥  
 भविष्यति दन्तवधं तथैव ह्युत्तिमवधम् । एवं जन्मत्रयं प्रापाद्भुक्त्वा तौ भगवद्गणौ ॥२६॥  
 जयविजयनामानौ पूर्ववन् स्थास्यतः गृध्री । दन्तदेशेऽप्य र्वं विष्णोर्वकुण्ठे दुःस्वर्जितौ ॥२७॥  
 तानदिनीं देवर्ष्यौ पूर्ववदिति तौ स्थितौ । एवं मुने त्वया पूष्ट तन्मया परिवर्णितम् ॥२८॥  
 भगवद्गणयोः प्रापकाण्य च पुगतनम् । एव राघव चाग्रे स्व द्वापरे वरमे शुभे ॥२९॥  
 जरत्संधादिर्वारैश्च कसार्थरपि भूतलम् । स्थितं दुष्टाञ्चावतीर्य कृष्णरूपेण लीलया ॥३०॥  
 सर्वान्हुत्वा तोषयुक्तं करिष्यमि मर्दानलम् । तान् चौदान्बुद्धरूपेण कलावग्रे विज्ञेयसि ॥३१॥  
 वर्णसकरमालङ्घ्य कलेरुते रघून्मम । कल्पिरूपेण सकलान्संहरिष्यमि लीलया ॥३२॥  
 एव दशावताराश्च तथान्वेऽपि सहस्रशः । त्वया हितार्थमस्माकं धृताश्रमे परिण्यसि ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्तुवन्न भगवन् सवालित्य गृह्यतमः । मन्त्रिष्वेभ्यामने प्राह स्वदर्भं च मुनेर्गिरा ॥३४॥  
 हास्यमाशान्तिं किञ्चि जनाः कुरीतु ते सुखम् । यथा वाल्मीकिना प्रोक्तं तथा वा विस्तगस्तु वै ॥३५॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तदा दुष्टाः सुगन्धः । भवन्त्य च राज्ञीकिं समाप्य गृह्यतन्दनः ॥३६॥  
 महावतागतः पूर्व त्वया मन्त्रिभिर् कृतम् । कथं ज्ञातं त्वया पर्व केन स्वामुपदेशितम् ॥३७॥  
 पूर्वजन्मनि कस्त्वं हि किं पुण्यं हि त्वया कृतम् । तन्ममं विस्तरेणैव कथयस्वाद्य मां शति ॥३८॥

ये दोनों गणेश और कुम्भकर्ण हाकर जन्म और भगवानने रामका रूप धारण करके उन्हें भाग्य ॥ २१ ॥ २२ ॥  
 दोनों भविष्यनाकुमारी से एक ऐरावण एवं दूसरा मैरावणके रूपसे धरतीपर आया और पाताललोकमें रामके  
 हाथों उन दोनोंको मृत्यु हुई । अगले जन्ममें जब शिशुपाल तथा विजय दन्तवधके नामसे जन्मेग । द्वापरमें  
 भगवान् कृष्णरूपसे उन दोनोंका संहार करगे । इस तरह भगवत्के प्राप्ताश्रमोंमें से लोग तीन जन्ममें अपनी  
 कर्तव्यका फल प्राप्तकर फिर पहनेकी तरह जय विजयके नामसे भगवान्के हाथोंमें हो जायेंगे, जब उन्हें  
 फिर कोई केश नहीं होगा ॥ २३-२७ ॥ तबसे अश्विनीकुमार भी आनन्दके साथ स्वर्गलोकमें निवास  
 करेगे । हे मुनिराज ! आपने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया । इसका सारांश यह निकला कि उन  
 दोनों भगवद्गणोंके लिए एक प्राचीन शाप कारण था । उसमें कोई नयी बात नहीं थी । हे राघव ! जब  
 द्वापर युगमें भी पृथ्वी, जब कम तथा जरत्संध आदि दुष्टोंके अन्धकारोंमें छकटा जायगी, तब आप कृष्ण अवतार  
 लेकर दुष्टोंका संहार करने हुए पृथ्वीका भाग उतावग । उसी प्रकार कल्पियुगमें बुद्धका रूप धारण करके  
 आप चौदान्को पराजित करगे ॥ २८-३१ ॥ हे रघुन्मम कल्पियुगके अन्तमें जब समस्त संसार कणस्रक्षुर हो  
 जायगा, तब आप बहिरुत्पन्न धारण करके सबका संहार करगे । इस तरह इस कथा, हजारों अवतार आपने  
 हम लोगोंके कान्य पाये लिया है और भविष्यमें भी तब ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीरामदास बोले—इस तरह स्तुति  
 करते हुए भगवान्को रामने हृदयमें लगा लिया और अपनी आलस्ये निडाकर कहा कि वाल्मीकिने कव्यनारुसार  
 मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम्हारे सुखके लिये लोग हैंगे पर जो कुछ करे, मुझे कोई आपत्ति नहीं है । वाल्मीकिने  
 जो कहा है, उसके अनुसार मेरी प्रजाके लोग काम करगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ रामकी इस बातको सुनकर भित्तने देवस  
 ने, वे सब प्रसन्न हो गये । इसके पश्चात् रामने वाल्मीकिसे कहा कि मेरे अवतारोंसे पहले ही आपने मेरा चरित्र  
 रामायण बना डाला है । सो भविष्यकी बात आपको कैसे मालूम हुई ? उन्हें किसने बताया भी ? ॥ ३६ ॥ ३७ ॥  
 पूर्वजन्ममें आप कौन थे और आपने कौनसे पुण्यकार्य किये थे, मेरे मुँहसे कहिए । इस प्रकार रामके प्रश्न

उद्गमवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः । सभायां राघवं सर्वं वक्तुं समुपचक्रे ॥३९॥

वाल्मीकिवचनं

सम्यक्पुष्टं स्वयां राम सावधानमनाः शृणु । राम स्वस्वाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ॥४०॥

यन्प्रमादादहं राम मन्मार्थिन्मवाप्सवान् । शृणु राघव मलम्बं कथा मे पर्वजन्मनः ॥४१॥

पपात्रीरे द्विजः कश्चिच्छंखो नाम महायशः । गुणैः सिद्धिं गणश्चागाच्छदी गोदावरीं प्रति ॥४२॥

सीत्तर्ना भीमार्थी पुण्यां कोनारे कटकाविले । निजले विजने धीरे वैशाखे तापकषितः ॥४३॥

वनं चोपविशेशासौ मध्याह्नसमये द्विजः । तदा कश्चिद्दुराचारी व्याधश्चापधरः शठा ॥४४॥

निर्धूषः सर्वभूतेषु कालांतक इवापरः । तं कुण्डलधरं विप्रं दोषित भास्करोपमम् ॥४५॥

सर्वेन मरिष्यित्वा तु जगद् कुंडलादिकम् । उपानहो तच्छत्रं च वस्त्राणि च कनण्डलुम् ॥

पश्चाद्विन्यास्य तं विप्रं गच्छेन्महा म मूढधीः ॥४६॥

तथा स यच्छल्पयि शर्कराविले सुर्याश्रुतमे अनवजिते स्तरे ।

संनमसादस्तृणोपिते स्थले क्वचिच्च वस्त्रोपरि संस्थितोऽभवत् ॥४७॥

स वै द्रुतं तापतप्तोऽपि निपुन्हादेति वादी प्रजगाम विप्रः ।

दृष्ट्वा मूर्तिं तं चतुर्विचमनस मध्यं गते पूर्णि यदाऽतितीव्र ॥४८॥

व्याधस्य जाता भस्मिहृष्टी वै तस्मै ददामासि च पादरक्षे ।

स्वीयेन धर्मज्ञ तु तस्करेण वने गृहीत सकल च तन्मे ॥४९॥

वीथेन च स्वधर्मेण पवृश्रुजंत वनान्तरे । तदीपमेव तन्ममं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥५०॥

सन्मादुपावहो दास्ये हृद्दुःखापनुषमे । तेन श्रेयो मवेयञ्च तद्भवेन्मम पापिनः ॥५१॥

जीर्णो चोपानहावेनो हस्वी स्तश्च पदोभयं । न चाभ्यामसि मे कार्यं तस्मात्तस्मै ददाम्यहम् ॥५२॥

करनेपर वाल्मीकिजीने वनसाला प्रारम्भ किया । उन्होंने कहा—आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर गनिये । हे राम ! आपके नामकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जिसके प्रभावसे आज मैं ब्रह्मर्षिपदपर बैठा हूँ । अच्छा, पहले अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त ही बतलाता हूँ । कम्पा सरोवरके पास कोई एक महान् यशस्वी ब्रह्म नामका ब्राह्मण रहता था । उसने दुरुके पाससे सिद्धि प्राप्त की और कुछ दिनों बाद गोदावरी नदीपर गया । उमे पार करके भीमरथी नदी पार किया और एक ऐसे निर्जन वनमें पहुँचा, जहाँ जलतक मिलना कठिन था । वह वंशाखका महाना था । मारे शर्माके उसका जी बेचैन था । दोपहरके समय धककर वह उमी वनमें बैठ गया । उसी समय धनुष-बाण क्रिये एक दुष्ट व्याध उसके पास आ पहुँचा । ३८-४४ । वह दूसरे यमराजके समान भयानक और निर्दयी था । उसने उस सूर्यके समान तेजस्वी ब्राह्मणको तलवारसे मारमारी करके उसके कुण्डलादि आभूषण, जूते, छतरी, वस्त्र तथा कमण्डलु आदि छीन लिये । इसके बाद उसने "जाओ" कहकर छोड़ दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बेचारा ब्राह्मण कङ्कड़-पत्थर तथा सूखे तापस जलती हुई बालुकाव्याप्त मार्गसे चलने लगा । जब उसके पैर ज्यादा जलन लगने लगे तब तो विसा नृण आदिपर पैर ठंडा करके आगे बढ़ता था । चलते-चलते थक पैर बहुत जलने लगे तो वह गमला बिछाकर एक स्थानपर बैठ गया ॥ ४७ ॥ थोड़ी देर बाद चढ़कर उस कटकावली घूमने परके जलसे हाताकार करवा हुआ वह फिर आगे बढ़ा । उस ब्राह्मणकी जलती कुण्डरीमें इस तरह दृष्टित देखकर व्याधके मनमें आया कि मैं इसका सारी वस्तुएँ ली छान ली हूँ । न ही, इसे इसके जूते छोड़ा दे । इसकी मर कोजे छँ नकर मैंने अपने धर्मका पालन किया ही है । हे राम ! वनमें आते आतेवाले पथिकोंके सम्मान छान लेना, उन कोनेक धर्ममें सम्मिलित है । उस चीरने सोचा कि इसके जूते इसे दे डालूँ तो इसका क्लेश दूर हो जायगा और उससे जो पुण्य होगा, सो मुझ





एवं शुभ्रयन्त्या हि भर्ता वेद्यदा सह । जगाम सुमहान्कालो दुःखिताया महीतले ॥७०॥  
 अपरस्मिन्दिने भर्ता माहितं मूलकान्वितम् । अमक्षयच्छुद्धकर्मा निवृत्तायांस्तिलमिश्रितम् ॥७१॥  
 तमप्यधमशिक्षा तु चमयच्च नपरेवयम् । अपश्यदाकणो रोमो व्यजयन भगदरः ॥७२॥  
 स दहमानो रागेण दिवागच्छं तु भूरिमः । यावदाक्रेते गृहे विस्त तावद्वेण्या च मस्थिता ॥७३॥  
 गृहीत्वा सकल विष पश्चात्प्रोवासा मन्दरे । अन्यस्य पात्रमामाद्य तस्यौ शोराऽतिनिर्भृता ॥७४॥  
 ततः स दीनवदनो व्याधिराधामूर्ध्ना हवः । उक्त्वान्मुरुदन्धमार्गं रुद्रा व्याकुलमात्रमः ॥७५॥  
 परिपालय मां देवि वेदवामन मुनिपुत्रम् । न मयोपकृतं किञ्चित्तत्र सुन्दरि पावनि ॥७६॥  
 यो मार्गं प्रणतं पातो नानुवन्नेन मृत्योः । स पटो भवतीत्यत्र दश जन्मानि मम च ॥७७॥  
 दिवागच्छं महामागे निन्दितः साधुभिर्जनैः । पापानिमित्तास्यामि न्या माप्नीयन्मम वै ॥७८॥  
 अहं कायेन दग्धोऽस्मि सदा निपुणभाषणः । एवं ब्रूयाण भर्तारं कृताञ्जलिपुटऽब्रवीन् ॥७९॥  
 न दैन्यं भवता कार्येन व्रीडा कृतं मां प्रति । न चापि त्वयि मे क्रोधो वर्तते मुमनामपि ॥८०॥  
 पुण कृतानि पापानि दुःखानि भवन्ति हि । तानि यः क्षमते माप्नोति पुरुषो वा स उत्तमः ॥८१॥  
 यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि । तदुज्जन्मया न मे दुःखं न विषादः कार्यचन ॥८२॥  
 इत्येवमुक्त्वा भर्तारं मा सुभ्रग्वशलयन् । आसीत् जनकाद्विनं वन्मृग्यो वरवर्णिनी ॥८३॥  
 सीरोदवामिनं विष्णु मनुदेहं व्यचिन्तयन् । शोधयन्ती दिवागच्छीं पुगीपं मृगमेव च ॥८४॥  
 नखेन कर्षती मर्तुः कुर्मन्देहाच्छनैः शनैः । न मा स्वपिति रात्रौ तु दिवा वा वरवर्णिनी ॥८५॥  
 मर्तुर्दुःखेन भतमा दृष्ट्विनेदमथावरीक्षुः । देवाश्च पातु भर्तारं पित्रो मे च विश्रुताः ॥८६॥  
 कुर्वंतु रोगहीन मे भर्तारं हनकन्मयम् । चरित्कार्यं प्रकाशयामि रक्तं सांसं मुखोद्भवम् ॥८७॥

सोसा और दोनोंकी आज्ञाका पालन करता रहता था । यद्यपि वेद्या उसे अपर्ण सेवा करनेसे रोकती, फिर भी बहुत मानती और तुम दोनोंकी पवित्रताम तत्परिण लगी रहती थी । इस तरह सेवा करते करते उस दुःखियाके बहुत दिन बीत गये । एक दिन गन्धर्वने निर्गमध्वज कुछ ऐसी कर्ज ली थी, जिससे केवल होव क्या और कुछ दिनों बाद उसने अतिदक्ष आमन्दर रोगका उपचार कर लिया ॥ ६९-७२ ॥ उस रोगके स्वप्न रात-दिन चलने लगा । जब एक शाम स्पर्शित था, तब तक देण्या रहा । बादमें घरकी रङ्गी-सही पूंजी पुराकर निकल मागी और रिसा दूमागवे मर जा वेगे । ऐसे अवस्थाम रोता हुआ स्तम्भ अपने स्नेह कहने लगा—॥ ७३-७५ ॥ हे देवि ! मुझे धैर्य मत, तबसे निरुर पुण्यकी रक्षा करो । हे सुन्दरि ! हे पावनि ! मैंने जीवनभरम मुम्हारा काई उपकार नहीं किया है । ताम्र कहता है कि जो पापी मानवको भार्याका विरादर करता है, वह सचन जन्म तक नपुनक लका जन्म लेता है । अन्धे पुण्य ऐसे मनुष्योंकी रात-दिन निन्दा करते हैं । तुम जैसी स्त्री मादवा नरका अपमान करके कुछ निष्ठा नीच योगिनम जाला पड़ना ॥ ७६-७८ ॥ क्योंकि मैं सदा मुम्हारे ऊपर कृतित रहता और दली बात बोला करता था । इस प्रकार दीनभावसे प्रार्थना करने हुए पातरु स्त्रीन हाथ जेकर कहा— हे कान्त ! आप किसी प्रकार दुखी न हों और उन बीली बातोंके लिए पश्चात्ताप न कर । मुझे मुम्हारेपर उनका लिए काई निष्ठा या काज नहीं है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अपने पूर्वजन्मके किय हुए पाप हो दुःखदरम प्राप्त होन है । जो स्वयं या पुण्य उन दुःखोंको सह लेता है, वे उत्तम हैं । दुःख परिनाम पूर्वजन्मम जो पाप किय थे, उनको भागत हुए मुझे किसी तरह का दुःख या विषाद नहीं है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ इतना कहकर उसने अपने पतिके कारख भेवाया और पिता तथा भालाओंके पाससे धन माग लाकर सेवा करने लगा । वह उस गमी पतिके कारखे कारखानेवासी विष्णुमन्त्राका निवास जानती हुई रात-दिन मल-मूत्र उठाकर सेवा करती रही ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ पतिके कारखने बड़े हुए कोढ़को लखूनसे निकालती रहती थी । इस प्रकार सेवा करनेसे रात-दिन कभी उसे सोनेतक की छुट्टी नहीं मिलती थी । स्वामीके दुःखसे दुःखित होकर वह देवताओंकी मनाती, पितरोंसे विमती करती

सुदृन्त मन्दिपोषेन मर्तुराग्रेग्यहेनवे । मोदकानपि दास्यामि विष्णेशाय महान्मने ॥८८॥  
 मन्दबारे कश्मिष्यामि मर्द्वदृष्टयेषणम् । नोपमोक्ष्यामि मधुरं नोपमोक्ष्यामि वै धृतम् ॥८९॥  
 तैलाभ्यङ्गविहीनः उहं तदा यद्यस्यामि भूमे । जीव यय रेगदीनो भर्ता मे शशदां जनम् ॥९०॥  
 एवं सा म्याहरदेवी वामरे वामरे मने । तदा पागन्मृनिः कश्मिभ्रान्मा देवकाह्वयः ॥९१॥  
 वैशाखमासे घर्मानः स ययौ तस्य वै गृहे । तदा ते आर्यया श्रोतुं वेगोद्यत गृहमागतः ॥९२॥  
 तेन ते रोगहानिः स्वाप्तस्यातिथ्यं करोम्यहम् । यदाह पयमि स्व मां नोचेन्नैव करोम्यहम् ॥९३॥  
 शान्वा न्वां घर्मविशुद्धं भिषग्व्याज्रेन वचिन्तम् । तस्य निधं तु वै कर्तुं दनाऽऽहार्त्तं पुगन्मया ॥९४॥  
 तस्य पत्नी तदा तुष्टा पूजयामास सा मुनिम् । पादावनेजस कृत्वा तज्जल मुनिं तेऽहम् ॥९५॥  
 पातुं तुभ्यं ददौ तीर्थं त्वामुक्त्वा मेघजं त्विति । पानकं च ददौ तभ्यं घर्मानयि महान्मने ॥९६॥  
 दिव्यान्नैर्मोजयामास सुगन्धन्वजने ददौ । त्वयाऽनुमात्रिणा माय घर्मनापं मयास्यद् ॥९७॥  
 स घातकदिने घृते मुनिर्घातान्नं ययौ । अथ चान्नेन कालेन मन्त्रिणोऽहं वर ॥९८॥  
 त्रिकटु मुख अधान्मा मर्ताऽहुलिमत्पटपत्न । कक्रेन हन्तपत्तिभ्यां मालिनाभ्यां दृढ तदा ॥९९॥  
 वे रक्तेऽहुलितपट्टं तस्मिन्मन्त्रेनिकोमलम् । त्वदपि म्यामुक्ति तस्याः पञ्चान्वत्स्व गतः पूगः ॥१००॥  
 मयायां सुमनोहायां स्मरन्तां पुश्लीं हृदि । मृतं चित्वा मर्तारं भाषां कश्मिष्यामि तव ॥१०१॥  
 चिकीन्वा बलये स्वे त्वां गृहीन्वा चन्दनं बहु । अकं चित्तिनेन माध्यां मध्ये कृत्वा घात तदा ॥१०२॥  
 समाहितव ह्नुजाभ्यां ते पार्श्वे चारिल्लय पदयोः । मुखे मुखं निजं कृत्वा हृदये हृदयं तथा ॥१०३॥  
 गुष्टे कृत्वा तु गुह्यं रवमेवं सा राममानसा । दाहयामास कृन्वाणी मर्तुरेह रुजान्वितम् ॥

आत्मना मद् तन्वद्भी त्वालित जानवेदमि । १०४॥

एवं यग सा ललना पतिव्रता ददहमने मुनिमिदं वद्भी ।

विमुच्य देह महमा जगाम घर्नि नमस्कृत्य सुगतेनोक्तम् ॥१०५॥

बीर चण्डिकाके समीप यह प्रार्थना करता-हे दीव ! य द मर पान्दव जग प्रच्छ हो जायें तो मैं पतिव्रता  
 एक बीर मांससे भिला हुआ भजन आरका सम्पन्न करूँगी । जो देव जी अर्च्य हो जायें तो मैं वर्णमण्डको  
 लट्टू बहाऊँगी और पञ्चक मन्त्रिवाक्य बन करूँगी । मैं मिट्टई मन्त्रा उड़ दूँगी, जो भी नहीं जानेंगी,  
 बीरमे तेरा बीर उबटन ल्याता स्वागत दूँगी और मर्तुज जनीयपर से उवा । लेकिन मेरे पतिदह रोगमुक्त हो  
 जायें और संवत्सा बय आवित रह ॥८५-८६॥ इस तरह वह निज मानव माना कातो थी । इसा बीर एक दिन  
 महान्मा देवमा कश्मि मन्त्रा उनके घर पहुँच । यह नैशापका महीना था । स्वम्भको स्त्री पतिके पास आकर  
 कहल लगी कि एक कोई बेश रक्ताक मेरा घर आ गया है । यह अवश्य किसी उपादसे आपका रोग मष्ट कर  
 देगा । आप यदि आज्ञा द तो मैं उसको सेवा करूँ, नहीं तो नहीं ॥ ८१-८३ ॥ स्वम्भ ( तुम ) ने सेवा  
 करनेकी आज्ञा दे दी । स्वम्भे ससन्न मनसे दहनकी पूजा की । उनके चरण जोकर उस जलको माथे बहाया  
 और घोडा-सा जल दवाके उपादसे स्वम्भ ( तुम ) को भी पिला दिया । फिर उन दहन कश्मि को उसने पानी  
 पिलाया । अर्ध-अर्धे पकवान बनाकर जीवन कराया और तुम्हारे कहनेसे उनकी पत्नी भी कलकर उनका  
 सन्ताप दूर किया ॥ ८४-८६ ॥ गतभर देवकदि उनका घर रहे और मर्दरे तुमने गाँवको बने गये । बीर  
 दिन बाद स्वम्भको ( तुमको ) सन्निपात हो गया । स्वम्भे त्रिकटु ( तीक्ष्ण, पिष, रोक्क ) का काटा बनाकर  
 स्वम्भके ( तुम्हारे ) मुखमें दिया, हृदयमें ककके प्रकीपसे दंत जड़ गये और तुमने स्त्रीको एक डँगली  
 काट की । तुम्हारे मुखमें यह कामल उदली पक हो रही और तुम्हारी मृग्यु हो गयी ॥ ८८-९० ॥  
 मरणाकालमें हत्यापराध दहे हुए उसी तुमने मरणाका स्मरण करनेकरते तुमने प्राण त्याग दिया । जब  
 उस उजोने जाना कि तुम्हारी मृग्यु हो गयी है तो अपने दोनों कण्ठ बँधकर बहुत-सी चन्दनकी लकड़ी  
 जलीदी और उसको चिता बनायी । फिर हानों भुजाओंसे जुजाएँ पैरसे पैर, मुखसे मुख तथा हृदयसे



न्यायजन्मान्तये आते कृणः पुत्रस्त्वहं ततः । पद्मर्गाजउरोद्भूतस्त्वगप्ये रघूनन्दन ॥१२०॥  
 अहं पुन किमतेषु किरातैः सह वर्द्धितः । जन्ममात्रं विजयं मे शूद्राचार्यतः सदा ॥१२१॥  
 शूद्रायां बहवः पुत्राश्चोत्पन्ना संजायन्तान्मनः । ततश्चाग्रेभ्यः सगन्ध्य र्छागोऽहमभवं पुन ॥१२२॥  
 धनुर्बाणधरो नित्यं जीवानामतकंपमः । एकदा मुनयः यम दृष्ट्वा महानि कानने ॥१२३॥  
 स्वतेजसा प्रकाशतो ज्वलनार्द्धमवधायः । तानन्वधाय लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान् ॥१२४॥  
 गृहीतुकामस्तथाहं निष्ठुतां निष्ठुतामिति । अत्रह मुनयोऽपृच्छन् किमायामि द्वि जायम ॥१२५॥  
 अहं तानमव किंचिदादातु मुनिमनसाः । पुत्रदागदयः सति बहवो मे वृथाक्षिताः ॥१२६॥  
 तेषां संरक्षणार्थाय चगामि गिरिकानने । ततो मामृषुरभ्यग्राः पृच्छन्त्वा कुटुम्बकम् ॥१२७॥  
 यो यो मया प्रतिदिनं कियते पापमचयः । सृप गद्गागिनः किं वा नेति नेति पृथक् पृथक् ॥१२८॥  
 वयं स्थास्यामहे शिवदागमिष्यामि निश्चयान् । यन्मप ब्रह्महत्यायां यन्पाप मद्यपानतः ॥१२९॥  
 तेन पापेन लिप्तामो यदि मच्छामहे वयम् । यन्मप हेमनीर्याय गुरुदागमयाच यद् ॥१३०॥  
 तेन पापेन लिप्तामो त्वामपृष्ट्वा चनेचर । चेन्नृजया वयं भवे इत्यने पृष्ट्वो यदिः ॥१३१॥  
 समर्थजनिने पाप ब्रह्मस्वहत्याकर यन् । नन पापन लिप्तामो यदि मच्छामहे वयम् ॥१३२॥  
 एवं तच्छपर्यन्तानाविधिः प्रत्यक्षमागतः । नये-पृक्त्वा गृहं गत्वा मुनिभिर्विद्वदीशितम् ॥१३३॥  
 अपृच्छं पुत्रदत्तार्दीर्स्तस्मिन्कोऽहं रघूनम । पतन तयैव मर्मरं यत् तु कलभागिनः ॥१३४॥  
 तच्छ्रुत्वा जातनिर्वदो विचार्य पुनरागतः । मुनरो यत्र निष्ठुनि कुरुग-पूर्णपात्रयाः ॥१३५॥  
 मुनीनां दर्शनादेव शुद्धानः करणोऽभवम् । धनुर्गादि परिन्वज्य द्रष्टुं तन्वृत्तितोऽम्बुहृद् ॥१३६॥

निमाया । आधिका जीवन बितानक पश्चात् मैं पद्मर्गा की निसे कृणका पुत्र होकर जन्मा । मैं उस समय किरातो ही में रहा और उन्हीके साथ रहन लगा । केवल जन्म मेरा ब्राह्मणके धीयमे हुआ था । किन्तु कर्म मेरा सर्वथा शूद्रोचित था ॥ ११७-१२१ ॥ एक कूड़ासे मेरा विवाह हुआ और उसमे कई पुत्र उत्पन्न हुए । कुछ दिनों बाद मैं चोरोस जा मिथा और घुप-बाण प्रभृति काके समानी जीवक लिए यमराज सहज भवान्क चोर हो गया । एक बार मैंने एक विकराल जटू-रूप सज्ज करियोका दत्ता ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ जल्दही हुई मणि तथा सूर्यके समान इनका प्रकाश था । उनके देखने का उनके कपड़ु करने हीनर्गक लिए मैं ओरोसे दीड़ पड़ा और "छहरी उह-न" कहकर चिन्ता में लगा । तब कृष्णाने कहा—अरे द्विजामस ! क्यों रोष का रहा है ? ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ मैंने उनसे दिया कि आपसे कुछ भेनक लिये । क्योंकि मेरे परिवारसे सब प्राण भूख बैठे हैं । उहोका पालन-पोषण करनेक लिए मैं वन वन घूम रहा हूँ । सब सन्तपियोन हमसे कहा—अपने कुटुम्बियोसे जाकर पूछो कि मैं यो नित्य यह पावरी कामाई कर रहा हूँ । तुम लोग मल्ल-मलग बतलाओ कि उस पापका फल भी भाग्यो या नहीं ? ॥ १२६-१२८ ॥ यह विश्राम रखो कि जबल्क तुम लौटकर नहीं आओगे सब नक मैं यहाँ ही रहूंगा । जो पाप ब्रह्महत्या करनेमे और जो पाप मद्य-दीन्य म्मत हैं, हुमलोग उन्ही पापोके भागी हो, जो जिना गुम्हारे आये पहुँचि जायें । जो बार लोग चुराने का गुल्मलोके साथ अपमिचार करनेस होता है, हुमलोग उन पापोन भागी हों, यदि तुमसे बिना पूछे यहाँस जाये ॥ १२९-१३१ ॥ संसर्गजनित अथवा ब्रह्मणका घन हृदय लेनसे जो पापक जगता हो हम सब उस पापके भागी हों, यदि यहाँसे पीड पीछे हटें ॥ १३२ ॥ इस तरह उनके विविध प्रकारको कसम लागेकर मुझे विश्राम हुआ और अपने घर गया । वहाँ जेहा उन कर्तव्योस कहा था, उसी तरह बरक लोभोको इकट्ठा करके मैं पुन-स्वी कर्तव्ये पूछा । उन्हीने उत्तर दिया कि तुम जो पाप कर रहे हो उससे हमें कोई फलनक नहीं । हम यो केवल फल चाहते हैं ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ उनको बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं लौटकर फिर वहीं आया, जहाँ दयासे परिपूर्ण हृदयवाले मे सत्यवि बँडे मेरा रास्ता देख रहे थे ॥ १३५ ॥ उन मुनियोके दर्शन ही से मेरा हृदय परिवर्तित हो गया । तुरन्त धनुष-बाण आदि वस्त्रास्त्र फेंककर मैं उनके चरणोस दण्डवत् झोट गया ॥ १३६ ॥

रक्षोघ्न मां मुनिश्रेष्ठाः पतितं नरकाणवे । अन्यथे पतितं दृष्ट्वा मामृचुर्मुनिवत्तमाः ॥१३७॥  
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मद्रं ते मफलः मन्ममागमः । उपदेश्यामहे तुभ्य किञ्चित्तेनैव मोक्षयसे ॥१३८॥  
 परस्परं समालोक्ष्य द्रुवृत्तोऽयं द्विजाधमः । उपदेश्य एव महत्तत्त्वथापि शरणं गतः ॥१३९॥  
 रक्षणीयः प्रयन्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः । शृणु कथां राम ते नाम व्यस्यस्नाक्षरपूर्वकम् ॥१४०॥  
 मुनयो मामुपदिदिशुर्मन्कृपापूर्वमानसाः । एकस्मिन्मयाऽर्चयं मरेति जप सर्वदा ॥१४१॥  
 आगच्छामः पुनर्वाचनावदुक्तं सदा जपं शृणु कथां प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥१४२॥  
 अहं यथोपदिष्टस्तेनैव तथाऽस्त्ववमजया । जपलेखायमनया वाद्यं विष्णुनानन्दम् ॥१४३॥  
 साक्ष्यार्थं तपमस्तत्र दंडोऽग्रे स्थापितो मया एवं बहुविधे काले गते निश्चलरूपिणः ॥१४४॥  
 सर्वमङ्गविहीनस्य बलमीकोऽधून्ममोपरि । दण्डोऽग्रे न जगो रम्यो बभूव मणयोबलान् ॥१४५॥  
 ततो युयमहस्माने श्लेषः पुनरागमत् । मामृचुर्निर्गमस्वेति नृकृत्वा तूष्णीमुत्थितः ॥१४६॥  
 बलमीकाभिर्गतथाहं नीदामादिव मास्कृतः । मामप्याह मुनिगणा बाल्मीकिस्त्वयि पुनीश्वरः ॥१४७॥  
 बलमीकास्तमवो यस्माद्विहीनं जन्म तेऽभवत् । शृणु कथां ते यदुद्दिष्टां गतिं शृणु कृत्वा तम ॥१४८॥  
 अहं ते रामनाम्नश्च प्रभावादीदृशोऽभवम् । एकदा सम्भ्रुवचमाऽयं विधिः श्रुतवान्भव ॥१४९॥  
 पतितं वेदवाक्यं च कैलासे पामे शुभे । अनेन विधिना तच्च कथितं नारदाय हि ॥१५०॥  
 नारदा कथयामास वेदवाक्यं मेमात्र तन् । ततः कींच हव दृष्ट्वा व्याधेन तममातटे ॥१५१॥  
 शोचन्तीं सान्त्वयन्कींचीं समाख्यान्निर्गमस्तदा । द्वात्रिंशदक्षरैः प्रोक्तः श्लोकः श्लोकान्वयमागतः ॥१५२॥

और कहने लगा—हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं नरक के महासमुद्र में गिर गया हूँ । मेरी रक्षा करिए ॥ १३७ ॥ इस तरह मुझे आगे पड़ा देखकर उन्होंने कहा—“उठा । उठा । आज हम आनेका समाप्त नष्टहोने का बड़ा ही कल्याणकारी हुआ । हम तुम्हें कोई ऐसा उपदेश देंगे, जिससे हम सब आपसे कुछ जानेंगे ।” इसके बाद उन लोगों ने परस्पर संवशा करने लगा—नियम तो यह है कि गदाधर ने मनुष्यका ही उपदेश देना चाहिये । यह साक्षात्पापम एक असाधारण दुराचारा है । फिर भा दण्डपाकी जगद आता है । इसलिए इसे कोई उपदेश देकर इसकी रक्षा करना न हिये । हम प्रकार निश्चय करने दे राम । उन्होंने आपका उल्टे अक्षरोंके नाम ( मरा ) का उपदेश दिया और हमसे कहा कि तुम प्रकाश ममम 'मरा' नामका जप करने रहो जब तक हमलोग उधरसे लौटकर न आएं, तब तक तुम बराबर इस नामका जप करने रहना । ऐसा कहकर वे दिव्यदृष्टि कृपागण वहाँसे चले गये ॥ १३८-१४२ ॥ जैसा उन्होंने बकलगा था, ईक उमी तरह मैं एकदम मनसे जप करने लगा । मरा मरा उस जपमें इतना रम गया कि मुझ अपने शरीरकी भी मूर्ति नहीं रही ॥ १४३ ॥ साक्षीके गिरा मैंने अपने सामने एक दण्ड गाड़ दिया था, इस तरह निश्चय भावसे भजन करने करते बहुत दिन बीत गए और बलमीकी ( दीशकी ) ने मेरे शरीरपर सिट्टीका छेद लगा दिया । मेरे तपोबलसे वह सागनेका गड़ा हुआ दण्ड एक सुन्दर वृक्ष बन गया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ एक हजार युग बीतनेके बाद वे सप्तकृपागण फिर लौटे और मेरे द्विदंडके समीप जा कर होकर उन्होंने पकाग और कहा कि “निकलो” । उसे सुनकर मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ । जिस समय द्विदंडके समीपसे मैं निकला, उस समय मेरी शोभा बेसी ही थी, जैसी कि कुहोंके समीपसे निकल कर भूनागायणकी होती है । तब मुझसे मुनिगणोंने कहा कि बलमीक ( बिमीटे ) से तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है । इसलिए तुम पुनश्चर बलमीकि जा गये हो ॥ १४६-१४८ ॥ इतना कहकर वे कृपा दिव्य ( आकाश ) भागसे चले गये आपके रामनामके प्रपात्रसे मैं ऐसा कृषि हो गया । एक बार क्षीरवर्णके मुखने इन ब्रह्मजके चेहरे से चकर निकाले हुए आपके चरित्रकी सुना था ॥ १४९ ॥ तब इन्हीं ( ब्रह्म ) ने उसे अपने बेटे नारदकी बाराग और इन्हींने वह मारा चरित्र हमें सुनाया । कुछ समय बाद एक व्याधे द्वारा मारे गये कीचक मुखने इन्हींकी बलात्कृत मुखे जो शोक हुआ, वही शोक बलीस भकरोबाले श्लोकके रूपमें मेरे मुखमें निकल पड़ा ( श्लोक यह है—मा निषाद प्रतिष्ठा स्वमगम)

ततोऽपि विधिनाऽनेन चरितं ते प्रवर्णितम् । सनागत्य तु संक्षेपादपिता मे वरा अपि ॥१५३॥  
 ततोऽस्य वक्त्रो वाक्यात्कृतवर्चश्चरितं तव । आनन्ददायकं रम्यं शतकोटिप्रतिस्तम् ॥१५४॥  
 एव त्वया यथा शृष्टं तथा सर्वं निषेदितम् । एवं वान्मीकिवाक्यं सर्वं जानन्नपि प्रभुः ॥१५५॥  
 पृष्ट्वा भोतुं जनान्सर्वान् श्रावयामास राघवः । एतास्मभन्तरे रामं वाचयतिः प्राह सादरम् ॥१५६॥  
 राम किं चरितं मेयं तवानन्दस्वरूपिणः । यस्य नामाद्यवर्णेश्च वन्द्यमात्रोऽयं नीयते ॥१५७॥  
 लौकिका वैदिका चापि अकारायास्तु षोडश । स्वगस्तथैव वर्णाश्च शतुस्त्रिंशच्छ्रुमावदाः ॥१५८॥  
 ककाराद्याः क्षकाराता मन्त्ररूपाः शुभावदाः । एवं वर्णाश्च पञ्चाशद्ये कीर्त्यते नरैर्भुवि ॥१५९॥  
 ते न्व क्षमाद्यवर्णाश्च सर्वं ज्ञेया रघूत्तम । तत्र नामाद्यवर्णं न्यास्य सर्वं चराचरम् ॥१६०॥  
 चराचराणां सर्वपां यानि नामानि तानि त्व । तेषु वर्णपरम्बेन नामान्दय वदामि ते ॥१६१॥

संक्षेपाच्चव पञ्चाशत्तानि शृण्वन्तु सजनाः ।

ओमनन्ता १ नन्दमय २ शृष्टापूर्तफलप्रदः ३ ॥१६२॥

ईश्वरश्च ४ तथोत्कृष्ट ५ आध्वरेता ६ ऋतभरः ७ ।

ऋग्युक्तश्च ८ लृगर्थैव ९ लृपक १० अरु ११ एव च ॥१६३॥

ऐश्वर्यद १२ ओजदश्च १३ तथैवादार्यचंचुरः १४ ।

अंतरात्मा १५ चार्द्धगर्भ १६ स्तयैव करुणाकरः १७ ॥१६४॥

खड्गो च १८ गतिदर्वच १९ घनश्याम २० स्तयैव च ।

उणन २१ अमिताशेषदुष्कृतश्च २२ तथैव हि ॥१६५॥

छत्री २३ जगन्मय २४ अथैव अपरूपी २५ अटेश्वरः २६ ।

टण्कारिधनु २७ हानवन्धो २८ हयमहमन्करः २९ ॥१६६॥

दुणुल्लुनिनपापश्च ३० णकर्णश्च ३१ तथैव हि ।

तपोरूप ३२ स्थय ३३ अथैव दक्षो ३४ धन्वी ३५ तथैव च ॥१६७॥

शाश्वतो. समा. ॥ कर्तृशक्तिभुनावक्रमणी काममाहितम् ॥ } ॥ १५०-१५१ ॥ इसके अनन्तर इन ब्रह्माजाने  
 आकर मुझे संक्षेपरूपसे आपका चरित्र सुनाया और वरदान भी दिया । तब इन्हींके कहनेसे मैंने सी  
 करोड़ श्लोकोंमें आपका चरित्र रचा ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ आपने जैसे पूछा वह सब पुरातन मैंने कह सुनाया ।  
 यद्यपि रामचन्द्रजी इन सब बातोंको जानते थे, किन्तु संसारक लागकर सुनानके लिये इन्होंने वान्मीकिजैसे  
 इस प्रकारके प्रबन्ध किये थे । इसके बाद ब्रह्माजी बोले— ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ हे राम ! आप जैसे आनन्दस्वरूप-  
 के चरित्रका कोई कहूँ एक गान करेगा । जिसके नामके पहले ही अक्षरमें संसारके सारे शब्द आ जाते हैं ।  
 लौकिक तथा वैदिक अकारादि सोलह मन्त्र और वक्तासे लेकर अकार पर्यन्त चौत्तिस वर्णों में पचास अक्षर,  
 जिन्हें कि संसारी लोग जानते हैं । वे सब आपके नामके पहले ही अक्षरमें आ जाते हैं, आपके नामके पहले  
 अक्षरमें सारा विश्व व्याप्त है ॥ १५७-१६० ॥ इस प्रकार संसारमें जितने नाम लिये जाते हैं । उन्हें वर्णक्रमसे  
 मैं आपको बतला रहा हूँ । संक्षेपमें वे पचास नाम हैं । उनकी हज्जन लोग सुनते जायें—अकारसे 'अनन्त' ।  
 वाकारसे 'आनन्दमय' । इकारसे 'इष्टापूर्तफलप्रद' । ईकारसे 'ईश्वर' । उकारसे 'उत्कृष्ट' । ऊकारसे 'उध्वरेता' ।  
 ऋकारसे 'ऋतभर' । ॠकारसे 'ऋग्युक्त' । लृसे 'लृप्त' । लृसे 'लृपक' । एसे 'एक' । ऐसे 'ऐश्वर्यद' । ओसे  
 'ओजद' । औसे 'औदार्यचंचुर' । अंसे 'अंतरात्मा' । अःसे 'अर्द्धगर्भ' तथा कसे करुणाकर ॥ १६१-१६४ ॥  
 खसे 'खड्गो' । गसे 'गतिद' । घसे 'घनश्याम' । डसे 'उणन' । चसे 'चमिताशेषदुष्कृत' । छसे 'छत्री' । जसे  
 'जगन्मय' । झसे 'हयस्वी' । झसे 'अटेश्वर' । टसे 'टण्कारिधनु' । ठसे 'हानवन्ध' । डसे 'हयमहमन्कर' ॥ १६५ ॥  
 ॥ १६६ ॥ ठसे 'दुणुल्लुनिनपाप' । णसे 'णकर्ण' । तसे 'तपोरूप' । थसे 'स्थय' । दसे 'दक्ष' । धसे 'धन्वी' ॥ १६७ ॥

नष्टोदरणधाराश्च ३६ तथैव परमेश्वरः ३७ ।  
 तथा फलमदर्शय ३८ तथा बलिवरप्रदः ३९ ॥१६८॥  
 भगवान् ४० मधुघाती च ४१ तथा यज्ञफलप्रदः ४२ ।  
 रघुनाथश्च ४३ लक्ष्मीशो ४४ वशिष्ठश्च ४५ तथैव हि ॥१६९॥  
 शरणाः ४६ षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नश्च ४७ तथैव हि ।  
 सर्वेश्वरो ४८ हयग्रीवः ४९ क्ष्मा ५० नामानि ते त्विति ॥१७०॥

पंचाशद्वर्णचिह्नानि चैभिर्वर्णैर्वर्णत्रयम् । व्याप्तं श्रीराम सर्वत्र एवर्णेन घटः स्मृतः ॥१७१॥  
 एवर्णेन एतो ज्ञेयस्त्वेवं वर्णात्मकं जगत् एकैकस्य च वर्णस्य भेदैर्नामानि ते पृथक् ॥१७२॥  
 नाहं समर्थोऽपारब्ध्यातुं पञ्चाशोऽपि न च क्षमः यत्र शेषः सारस्वतो वर्णने कुठितस्त्वयूत ॥१७३॥  
 एवं ते तदिमा राम कोऽत्र वर्णयितुं क्षमः । तथापि धन्यो वाल्मीकियेन ते चरितं कृतम् ॥१७४॥  
 सतकोदिमितं राम तवैव कृपया श्रमो ।

श्रीरामदास उवाच

इत्युक्त्वा स गुरुर्देवं राघवेणापि पूजितः ॥१७५॥

पृष्ट्वा रामं ययो स्वर्गं सत्तल्लोकं ययौ चिचिः । वाल्मीकिश्चापि प्रययौ चित्रकूटं निजाश्रमम् ॥१७६॥  
 तदारभ्य जनाः सर्वे चक्रुहास्य मुदैव ते । मांगल्यकामाण्युत्साहिकर्माणि जगतीतले ॥१७७॥  
 चक्रुः सर्वे पूर्ववच्च नातिहास्य प्रचक्रिरे । स्वाभिर्नराः सुसन्तुष्टाः क'डाहास्यादि चक्रिरे ॥१७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे  
 वाल्मीकिजन्मतस्तन्मन्त्रवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

यस्य 'नष्टोदरणधारा' । यस्य 'परमेश्वर' । यस्य 'फलप्रद' । यस्य 'बलिवरप्रद' । यस्य 'भगवान्' । यस्य 'मधुघाती' ।  
 यस्य 'यज्ञफलप्रद' । यस्य 'रघुनाथ' । यस्य 'लक्ष्मीश' , यस्य 'वशिष्ठ' । यस्य 'शरणा' । यस्य 'षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न' ।  
 यस्य 'सर्वेश्वर' । यस्य 'हयग्रीव' । यस्य 'क्ष्मा' ॥ १६८-१७० ॥ ये ही पचास नाम पचासों अक्षरीक  
 आधार हैं और इन्हींसे आकाश, वातावरण, मनुष्य ये तीनों लोक व्याप्त हो रहें हैं । एवणसे घटका बोध  
 होता है और पर्वणसे पट जाना जाना है । घट और पट इन दोनों शब्दोंके ही अन्तर्गत समस्त जगत् है ।  
 एक-एक वर्णके भदसे सम्पूर्ण नामोंके वर्णन करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ मैं ही नहीं,  
 यदि पंचास अर्थात् पञ्चाशकों अक्षरोंका अक्षरालंकार पड़े तो वे भी असमर्थ हो रहेंगे । जिसकी महिमाका वर्णन करनेपर  
 एक महान् मुखवाले जेबजी भी असमर्थ हो गये, उसका वर्णन कौन कर सकेगा । फिर भी वाल्मीकिजी  
 क्या हैं, जिन्होंने सो करोड़ अक्षरोंके आधारके धरितका वर्णन किया है ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ हे श्रमो ! जो कुछ  
 वाल्मीकिजीने किया है, सो सब आपकी कृपा है । श्रीरामदास कहते हैं कि इतना कहकर समस्त देव-  
 गणोंके साथ देवगुरु बृहस्पति स्वर्गलोकको चले गये और ब्रह्माजी भी रामसे पूछकर अपने सत्स्थलको छोड़  
 गये । वाल्मीकिजी अपने आश्रम चित्रकूटको चल दिये ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ उसी समय सब लोग आनन्दके  
 साथ हँसने-खिलने और संसारमें पहलेकी तरह मंगलप्रयत्न तथा उत्साहमय सारे कार्य करने लगें । सबसे लोग  
 अक्षयसाके साथ परस्पर हँसी-दिल्लगी करने लगे । फिर भी अतिहास्य कोई नहीं करता था ॥ १७७ ॥ १७८ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचो रामलक्ष्मणकण्ठेयविरचिते 'व्याख्या' भाषाटीकासहिते  
 राज्यकाण्डे उत्तरार्धे अतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥



## पञ्चदशः सर्गः

( राज और राजराज्यकी विशेषतायें )

श्रीरामदास उवाच

रामगज्ये मदानन्दः सर्वाणाम्जीवनान्भुवि । न र्थान्कुत्रापि कन्दर्ध्यायै निदामय तदा ॥ १ ॥  
 राज्यमासीदमापन्न मसृद्रवन्गहनम् प्रपिभिर्हृष्टपुष्टं च राज्यं हाटकभूषणम् ॥ २ ॥  
 संजुष्टमिष्टापूर्तानां धर्षणां नित्यकर्तृभिः मदा यंपन्नगम्य च मुनिरं क्षेत्रमकुलम् ॥ ३ ॥  
 सुदेश सुवर्ज सुखं सुशुभ बहुगोधनम् । देशः जनानां च गजिभिः परिगजितम् ॥ ४ ॥  
 सुगुणाय च वै ग्रामाः सुनविर्नादगतिनाः । सुपुष्टकृतिभेद्यतः सुसदाकलपादवाः ॥ ५ ॥  
 सुपद्मार्निककाभारा राजन्ते यत्र भूमयः । मदाभा निम्नगता नरेर मन्त्रि न मानवाः ॥ ६ ॥  
 कुलान्येव कुलीनानि न चान्वायधनानि च । निम्नरो यत्र नार्णि न पिठन्मु च कर्हिचिन् ॥ ७ ॥  
 नयः कुटिलगामिन्यो न यत्र विषये प्रजाः । तमोयुक्ताः क्षत्रा यत्र बहुकेषु न मानवाः ॥ ८ ॥  
 रजोपुजः स्त्रियो यत्र न धर्मवद्व्या नराः । धर्मगन्धो यत्रास्ति ततो नैव च भोजनान् ॥ ९ ॥  
 अनयस्यास्पदं यत्र न च वै राजद्रूपः । दण्डः पशुकुटिलगान्धवन्नगजिषु ॥ १० ॥  
 आतपत्रेषु नान्यत्र कचिन् कोपोऽपराधजः । अन्यत्राक्षकद्वन्द्वेभ्यः चैव च पार्श्वेयनम् ॥ ११ ॥  
 आसिका एव दृश्यन्ते यत्र पार्श्वपाणयः । दृश्यन्तः स्वामध्या एव दृश्यन् ॥ १२ ॥

श्रीरामदास बाने—हे शिष्य रामचन्द्रजीक राज्यमें समाप्त के सब राजोंका सदा अनन्द ? अनन्द रहता था । उस समय न कहीं चांग होता, न सट्टा लगड़ा होता, न काह किसीको निन्दा करता और न कोई किसीसे करता था ॥ १ ॥ राजा था उस समय शत्रुओंसे रहित और विषय प्रकारके बाहुन तथा सेनासे परिपूर्ण था । रामराज्यमें कृष्णगण हृष्टपुष्ट और राज्यक रहनेवाले राज सात-चाँदाके गहनोसे रुंद रहने थे । इष्टापूर्त आदि घासिक कृत्य हान रहने थे और सार सत्त घान्यसे परिपूर्ण रहा कन्त थे ॥ २ ॥ ३ ॥ गाव यह है कि उस समय मभरत राजा सुख था, प्रजा प्रसन्न थी और रहान्तहून उसका था । कौआके चरनेको सुन्दर वास उपगत था । न, यनक अधिकता था । सारा देश दवाल्पासे भरा पड़ा था ॥ ४ ॥ उस राज्यक सब गाँवमें यज्ञक सुन्दर पुष गड हुए थे । प्रजाक सब लोग छन घान्यसे परिपूर्ण रहने थे और अन्धे-अन्धे कुन्ते तथा रुद पर दनवान कृषम वर्गोचाम सारा राज्य भरा गहना था ॥ ५ ॥ सदा बहुनवालों कितना ही मर्दों राज्यकी भूमिपर बह रहा थी । ऐस ही कुछ स्थान बच नही कि मनुष्योंका निवास नही था । बाकी सारा पृथ्वी मनुष्याय भरा था ॥ ६ ॥ उस समयके सभी मनुष्य कुलीन थे । अन्याय नही होता था और धर्मकी कमी नही रहती थी । उस समय विषयोम विभ्रम ( लज्जा ) दीखता था, किन्तु परिश्रमोंमें विभ्रम ( लज्जा भूल ) नही रहता था ॥ ७ ॥ उस समय दण्डमें कुटिल ( टूटा बँडा ) बहुनवालों नर्दों था, किन्तु प्रजा कुटिलता ( दृष्टता ) से मथना बचा दृई थी । कृष्णपक्षकी रात्रिमें केवल तम ( अन्धकार ) था, मनुष्योंमें तम ( ताश्म गुण ) नही दीखता था । योना सार मनुष्य उस समय सात्त्विक थे ॥ ८ ॥ स्त्रियों रजोयुक्त ( रजस्वला ) होती थीं, पुरुष रजोयुक्त ( गजस गुणयुक्त ) नही थे । उस समय राज्यके लोग पैसेसे (अन्ध, अन्धे नही) थे, किन्तु अन्ध (अन्ध) से कोई अन्ध नही था । अर्थात् सब लोग जाने-धीनमें सबी दीखते थे । उस समय राजपुरुषों ( अधिकारियों ) में अन्याय नही दीखता था । दण्ड केवल कुल्हाकी, मुगल तथा पत्तों ही में दीखता था । प्रजापर राजाको दण्डप्रयोगकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी ॥ ९ ॥ १० ॥ सन्ताप ( धाम ) केवल छनगियोंपर रहता था । रामराज्यका प्रजाम सन्ताप मानसिक दुःख नही रहता था । केवल रथ हाँकनेवाले सारथियोंके हादम गात्र ( घोड़े या बैलकी शस ) रहता था, किन्तु प्रजाके किसी मनुष्यको पात ( काँतीका दण्ड ) मिलता नही देखा गया । जटता ( ठंडक ) की बात केवल जलमें रहती थी ।



स एव कद्रुमूर्तिश्च प्रैक्षितः शिषुभीषणे । विधेदेवाप्तनर्त्तं तु स्तुवन्ति च भजन्ति च ॥२८॥  
 अक्षान्यः स हि पाष्यानां सुसुम्यो वसुनाधिकः । प्रथमं विप्रदधो दत्तनोऽजस्ररूपवृक् ॥२९॥  
 मरुद्गुणानगणयन्तुर्निर्वासोपयन् गुणैः । पयोऽयधरो यन्तु नरोऽयधरोऽपि ॥३०॥  
 अगर्वानिव गन्धर्वाण्यधकं निजगोर्नामः । रत्नयुक्श्चामि तद्गुणं स्वर्गमोदयम् ॥३१॥  
 नागा नागास्तिरश्चक्रुस्तस्य राज्ये चलायमः । दनुज मनुजाचारं कृत्वा न तु विपान्तर ॥३२॥  
 जाता गुह्यचरा यस्य गुह्यकाः पश्चिमी सृषुः । ममेदस्यामहे राज्यं सुगम्भां स्वस्ववैभवेः ॥३३॥  
 ययं ततस्त्रद्विषये सुरागामोऽपि दुर्लभः । इत्युक्त्वा गन्धचक्रं मे मयः प्रायाः शिष्यविरै ॥३४॥  
 अशिक्षयन्क्षितिपतेरिह यस्य तुङ्गमान् । अशुभश्चाशुभमिह पादपाने पथि स्थितः ॥३५॥  
 अगत्रान्यस्य तु मजासगस्यस्यु ययमपः । अक्षयदन्तिनो दृष्ट्वाऽन्यकान्येऽपि दानिनः ॥३६॥  
 सदोऽजिरे च योद्धारो योद्धारश्च ग्णाजिरे । न शर्मन्ते जयः काश्चि न शर्मः केनचिन्कचिद् ॥३७॥  
 न नेत्रविषये जाना विषये यस्य भूभुजः । मदा नष्टपदा इत्यस्तथा जष्टावदः प्रजाः ॥३८॥  
 कलवानेक एवास्ति त्रिदिवेऽपि दिर्वाकामा । तस्य शोर्णाभृतः शोण्यां जयः सर्वे कलासथाः ॥३९॥  
 एक एव हि कामोऽस्ति स्वर्गं मोक्षयद्भव न्नः । माह्वेन हृद्य मयः सर्वे कामा हि नङ्गवि ॥४०॥  
 तस्योपवर्तनेऽप्येको न भूता मोत्रभिन्काचिन् । स्वयं स्वयमदामाज्ञा मोत्रभिन्काचिन्तनः ॥४१॥  
 सयी च तस्य विषये कोऽप्यार्थान् न केनचिन् । त्रिदिवे अपानाथः पयो पक्षे अपिप्यते ॥४२॥  
 नाके नवग्रहाः मनि दशास्त्रम्यानवग्रहाः । हिमयमथः दान्ताकैश्चक एव मकाजने ॥४३॥  
 हिरण्यमर्भाः सर्वेषां तर्फीगणामेहलयाः । मयाश्च एहः मरुके नतनं मयः शुमान् ॥४४॥

एव निषेदेन उनकी स्तुति और भजन करने के लिये सागर ( इन्द्राण्यन्त विषय ) के लिए भी अक्षान्य थे । वसु ( वन ) की अधिकतासे वे अप्रसन्न हो भी थे । उनको के नाशान स्वरूप थे और अश्विनीकुमारके समान रुद्रा सुन्दर रूप धारण किये रहते थे ॥ २८-२९ ॥ वे अपने समाचारण पराक्रमसे प्रान्तमण्डल भी थे । कितने ही सद्युगमसे वे छलास तृषिताकी समस्त कर नर । वे मन्त्रतः पक्ष धारा ( शिरोमणि ) थे और अपने कीतके साधुसंख्योत गन्धर्वाका भी मन्त्र पत्र कर दिया था । संसारभरक यक्षनाकस स्वर्गके समान कमलाय गमक कितनी रक्षा करने थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ एतत्तत्तक हाथी रामके दृष्टिसमूहसे पराजित हो गये थे । सारी दुनियाके राजन यशुपका वयं वरा दत्त कर राज्य मेधा कर रहे थे ॥ ३२ ॥ उनके गुप्तचर राज्यके मनुष्योंमें घुसकर अपना मन्त्र विद्वत्करणक लिए राजकी ( पक्षिभट दिव्य ) से भी बानी मार चुके थे । इन्द्रादि देवता रामके समीप जाकर कृतार्थ थे—'गोत्र' । हमारे पास जः वरु वैभव है, वह सब लवाकर हम आपकी सेवा-गुह्या करनेको प्रस्तुत हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हम मया मय 'ममे' पाद मनु दन्ताकी भा जर्न चलना सिखाते थे, जिसके पर्वतके समान ऊँचे बड़े-बड़े हाथियोंका अत्ररुदानिता ( मन्त्र मदप्रवाह संयवा दानशीलता ) देखकर संसारके कृपण मनुष्य भी दाना बन गये थे । जिसका राजनमाके बुद्धिमान परिश्रम और सेनाके बड़े-बड़े योद्धा शास्त्र तथा रस्त्रसे कभी पराजित नहीं हुए थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उन रामके राज्यमें जैसे राज नहीं नहीं दीसता था, वैसे ही प्रजामें कभी किसी प्रकारकी विपत्ति भी नहीं दिखायी देती थी ॥ ३७ ॥ देवताओंके स्वर्ग जैसे राज्यमें केवल एक कलावान् चन्द्रमा था, किन्तु रामके राज्यमें मय मन्त्र कलाके चण्डाल थे । मयाम केवल एक कामदेव था, सो भी मन्त्रज्ञ । अर्वात्त बिना मन्त्रिका । किन्तु रामराजके सारे मनुष्य पापापाय कायदेव ( जैसे सुन्दर ) थे । रामके राज्यमें श्रीरज्जय भी कोई न पवित्र । जानिसे बहिष्कृत ) मनुष्य नहीं मिल सकता था, किन्तु स्वर्गमें देवताओंके राजा स्वर्ग गोचरिन् ( इन्द्र ) थे ॥ ३८-४१ ॥ राक्षसज्यों कोई सयी ( अपरोगी ) नहीं मृत गया, किन्तु स्वर्गमें चन्द्रमा एक पक्षम भव होन पड़े हैं ॥ ४२ ॥ स्वर्गमें सर्वदा नौ ग्रह रहते हैं, किन्तु रामका राज्य अनवग्रह ( वानो आपकी

मदपुत्राः प्रसिद्धा बहुशामन्पूर्वात्मः । मदपुत्रा यथा स्वर्भूस्तन्पुत्रादि मदपुत्राः ॥४५॥  
 एकैव यथा वैकुण्ठे तीयते विष्णुबलभा । तस्यागणां सृष्टेष्वात्मकतपसा पृथक् पृथक् ॥४६॥  
 अर्नतयश्चलद्वापा न राजपुरुषाः कर्त्तव्य । गृहे गृहेऽत्र धनदा नाक रकोऽन्यकापतिः ॥४७॥  
 एव रामो महान् श्रेष्ठः शौरीयगुणगोभनः । मौभाप्यशोभो रुपाढ्यः शोयोदायगुणान्वितः ॥४८॥  
 विजितानेकममरः श्राममाप श्यागणः । र्त्तातारजितवर्माग उग्रः परपुत्रजयः ॥४९॥  
 अनेकगुणमपूर्णाः पूर्णचन्द्रनिभमुतेः । सनतावसृष्टिभक्तमूर्धनः धिनिर्णमः ॥५०॥  
 प्रजापालनमपन्नः कोशप्रार्णानभृगुरः । शर्वनाकानचगुणयुगलप्यानतन्पुत्रः ॥५१॥  
 विश्वेश्वरकपालपपरिक्षिप्तदिनक्षप । शीतलमलालिनपदम्पकीडापरिकोपितः ॥५२॥  
 अशाम राज्यं धर्मेण बन्धुपुत्रममन्वित । रामे श्रामनि साकेतपुर्वा राज्यं सुखेन वै ॥५३॥  
 हृष्टाः पुष्टाः प्रजाः सर्वाः कलवंतोऽमवन्नगाः । श्रामन्मदा सुकुसुमैर्विभवाः पौरुषदा तृणाश्च ॥५४॥  
 एकपन्नाश्रवाः सर्वे पुमामन्मम्य मण्डले । नारीषु कर्त्तव्यनैवामीदपन्निवर्धमिणौ ॥५५॥  
 अतधीनो न विप्रोऽभून्न शूरो नैव बाहुजः । वश्योऽनभिज्ञो नैवामीदधोऽर्जनकर्मसु ॥५६॥  
 अनन्यकृतयः शूरा दिजगुभूषणं प्रति । तस्य राष्ट्रं समभवन्मितामस्य भूपतेः ॥५७॥  
 अविष्कृतमद्यचर्याभित्राष्ट्रे मरुचारिणः । निर्यं गुरुकुलार्थीना वेदग्रहणभरगः ॥५८॥

लडाई-सागड़ेसे रहित । य । स्वर्गमें केवल एक हिरण्यगर्भ ( विष्णुभगवान् ) रहते हैं, किन्तु रामराज्यके प्रत्येक घर हिरण्यगर्भ से अर्थात् उनमें गुर्गों चरें हुए थे । स्वर्गमें केवल एक सन्नाभ अशुमान् ( सूर्य ) है, किन्तु रामके राज्यमें प्रत्येक व्यक्ति अशुमान् ( केशके कपड़े पहननेवाले ) और तातकी बीज बड़े, विजने ही चोड़ बाँधनेवाले लोग विद्यमान थे । जिन तरह स्वर्गमें अच्छी-अच्छी अम्बरगर्भ हैं, उसी तरह रामके राज्यमें भी बहुत-सी अच्छी-अच्छी अम्बरगर्भ रहती थीं । ४५-४६ । ऐसा कहा जाता है कि स्वर्गमें केवल एक विष्णुकी प्रिया पद्मा ( लक्ष्मी ) है किन्तु रामके राज्यमें सबहोसे या अधिक पद्मपति ( पद्मसंस्पर्क स्वये रहनेवाले ) लोग थे । रामके राज्यमें कर्षा किसी प्रकारका प्रकाश नहीं पडा और ऐसे रामगुण नहीं थे, जो काल्पितविहीन रहे हों । स्वर्गमें कपल वृक्ष धनद ( सेन दमके व्यवहारी ) हैं किन्तु रामके राज्यमें अतन्पुत्र धनद थे ॥ ४६ । ४७ । इस तरह रामचाह अनेक मन्त्रगुणोंमें पुत्र और सर्वश्रेष्ठ थे । रामचन्द्र सौभाग्य, स्वर्ग शौर्य और शौरीय आदि गुणोंसे युक्त थे । अनेक युद्धोंमें उन्होंने विजय पायी थी और संसारकी दृग्दृष्टताको उन्होंने लक्ष्मणके हाथों सौंप दिया था । उनके श्राममागड़े सातजी बैठे रहती थीं । इस कारण उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी । वे सबसे उग्र तथा शत्रुओंके नगरको विजय करनेमें सिद्धहस्त थे । अनेक गुणोंमें एकत्रित होमते थे धर्म हो चुके थे और पूर्ण चन्द्रमाके समान उनकी वाग्दत्ति थी । सर्वदा स्वमूर्ध ( राजा ) जान करनेसे उनके केज घीते रहने थे और सब राजओष श्रेष्ठ माने जा चुके थे ॥ ४८-५० ॥ प्रजाका पोषण करनेमें वे पणतया उत्तुङ्ग रहते थे और स्वजानके धनसं कर्त्ताओंका प्रसन्न रहते थे । वे सदा शिवके आनन्द तत्पर रहते थे । वे सर्वदा विजयाका कथाई कहन मनेते दिन रात विनान थे । सीता उनके पंर सोया करती थी । उनके साथ विविध प्रकारका कोढ़ाते करनेसे राम प्रसन्न रहते थे ॥ ५१ ५२ ॥ उन्होंने भाइयों और पुत्रोंके साथ रहकर अच्छी तरह राज किया । रामके शासनकालमें प्रजा सुखी तथा हृष्ट-पुष्ट रहती थी और वृक्ष फल-फूलसे लदे रहनेके कारण क्रूर रहने और सन्धियोंको मृत्ती रखते थे ॥ ५३ । ५४ ॥ उनके राज्यमें सब पृथक् एकपत्तनवती थे और विप्रोंमें भी कोई ऐसी नहीं थी, जो अपने पालिपट्टधर्मका ध्यान न करती हो ॥ ५५ ॥ उस समय कोई ऐसा शत्रुण नहीं था, जो बिना रक्षा हो और कोई अनिष्ट भी ऐसा नहीं था, जो छोड़ा न रहा हो । कोई ऐसा वंश्य नहीं था, जो धन कमानेकी कला-से अनभिज्ञ हो । राजा रामके शासनकालमें राज्य धर्मके शूर और किसी प्रकारकी कृति न करके एकमात्र द्विजों ( ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ) की सेवामें लगे रहते थे । उनके राज्यमें ब्राह्मणोंको राजा करते हुए

अन्येऽनुलोमजन्मानः प्रतिलोमभरा मणि । स्वधारण्यस्यो द्रष्टुं कृताश्चर्यं न तस्यतुः ॥५९॥  
 अनपस्यो न तद्वाष्टं धनहीनस्तु कोऽपि न विरुद्धमेव नो कश्चिदकालमृतिमाह्व ॥६०॥  
 न श्रुता नैव वाचादा वचका नो न द्विसुखा । न पार्वडा नैव मडा न रडा नैव शीडिकाः ॥६१॥  
 अभिषोषा हि सर्वत्र स्रज्वाद्ः पदे पद । सर्वत्र सुभगालावा मुता मगलर्णोत्तमः ॥६२॥  
 वीणावेषुप्रचाराश्च मृगाधुरम्बनाः । सोमवानं विनऽन्यत्र पानगोष्ठ्या न कर्णगा ॥६३॥  
 मांसाश्लिनः पुरोडाश नैवज्यत्र कथंचन न दूरोदग्निो यथाधर्मिणो न च तस्कगः ॥६४॥  
 पुत्रस्य पित्रोः पदयोः पूजन देवपूजनम् । उपवासो व्रत तीर्थ देशनाराधन परम् ॥६५॥  
 नारीणां मनुष्ययोः स्वर्चन सदचःश्रुतिः । यश्चरति सततं निजमत्रजमादरान् ॥६६॥  
 समर्चयति मुदिता भूयाः शमिदास्तुजम् । होतवर्णोऽयवर्णो वषयेने गुणगौरवः ॥६७॥  
 वरिचस्पति भूवोऽपि त्रिकाल भूमिदेवताः । सर्वत्र सर्वं विद्वान्मः समर्चन्ते मनोरथैः ॥६८॥  
 विद्वद्भिष तपानिष्ठास्त्वपोनिर्घृज्जिनेन्द्रियाः । जिनेन्द्रैर्षताननिष्ठा क्षान्तिमिः चित्रलिभिः ॥६९॥  
 मंत्रपूतं महाहै च विधियुक्तं सुमस्कृतम् । वादवानां मन्त्राणां च हृयनेऽर्हानिष्ठ हरिः ॥७०॥  
 वागीकृष्टडागाभावागमणां परे परे । सुविमिद्वन्वसंमार्गः कर्णो यत्र भूरिशः ॥७१॥  
 तद्वाष्टं दृष्टपुष्टाश्च दृष्टवन्ते सर्वज्ञानयः । भविष्यन्तेवामपन्ना विना मृगधूमनिकान् ॥७२॥  
 यस्य राज्ये पशुकास्तु च वन्य आर्न राष्ट्रके । पशवस्तस्मैक एव शुभ्रः स्वर्गं गतो महान् ॥७३॥  
 चतुर्दन्तो रामराज्ये सदन्नागाः सहस्रशः । इन्दुधर्मावुभावेव शोभेते गगनागणे ॥७४॥  
 रामराज्येऽश्व नारीणां सौमंस्तथा मनेकशः । वृषोऽस्त्वैकः स कृतास्तु भीषते परमः मितः ॥७५॥

बुरुकुलमें रहकर केराध्ययन करते थे । ५९-६० ॥ अनुलोम आतिथि उत्पन्न स्त्रीगोत्रे यह कभी नहीं चला कि वे अपने दर्जेसे ऊँचे पद रहें । रामके राज्य काई सत्तानविहान तथा निघन नहीं था और कोई ऐसा भी नहीं था, जो अपनी मर्त्यादाके विरुद्ध आचरण करनेवाला हो । उनके राज्य कोई मन्त्राधुरम्बना नहीं बन सका । उस समय से कोई शत्रु, न चक्रवाती, न चंचक, न हिसक, न पत्थरपट्टे, न शीक, न स्त्रीविह्वल और न घूर्त ही था ॥ ५९-६१ ॥ पद पदपर वेदवर्णि तथा शास्त्रमन्त्रोंवा वाद-विवाद मुनारा देता था । वारो और अच्यो-अच्यो बातें हमी-खर्णोंके मालगोन, वीणा वगी तथा पृष्ठाका मीठा स्वर मुनार्ग देता था । सोमवानके सिवाय और किसी माउक वस्तुके खाने-पीनेकी बात नहीं मुनारी देती थी । यज्ञके अतिथि दूसरे समयपर मांस खानेवाले मनुष्य, ब्रह्मर्षि, अश्वर्षी और चौर वही भी नहीं थे ॥ ६२-६४ ॥ एक लिए माता-पिताके पदपूजन ही देवपूजन, उपवास व्रत, देवनाग्ययन और तीर्थ था । नारीके लिए आने-जानेके चरण पूजन और उनकी बातें वेदवाक्य सहज मानना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म माना जाता था । सदा छंटा पाई बड़े-छेईकी पूजा करता था । सबक प्रत्यक्ष मनमें अपने आत्मिकको सेवा करता था । नीच जातिका मनुष्य अपनेसे ऊँचे वर्णवालेका पुण-गौरव बखानता था ॥ ६१-६३ ॥ सब लोग ब्रह्मणकी पूजा करते और विद्वानोंके मनोन्मत्त पूजकरनेकी उद्यत रहते थे । विद्वान्में तपस्वी, तपस्वीके जिनद्विष तथा जिनद्विषसे जो जानी मनुष्य श्रेष्ठ माना जाता था और जानीये भी संन्यासी उच्च पदपर माने जाते थे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ सदा मंत्रसंवित्र किया हुआ हवि विप्रोंके मुत्रागिने देता रहता था ॥ ७० ॥ बाली, कूप सडाग तथा बदन्यपर रानीका रगवानेवाले और पवित्र इन्धोंको एकत्र करके पञ्चादि शुभ कार्य करनेवाले विशने ही वर्मात्मा कहा करते थे ॥ ७१ ॥ रामके राज्यमें सब जातिके मनुष्य दृष्टपुष्ट दिखायी पड़ने थे । शिकारी तथा सैनिकोंके सिवाय सब लोग बराहनीय कामोंमें लगे हुए थे । उनके राज्यमें लक्ष्मीकी चंचलता केवल वलाकामे रहती थी, राष्ट्रमें नहीं । स्वर्गमें केवल एक ऐरावत हाथी बड़ा, चतुर्दन्त और रवेत वर्णका है । किन्तु रामके राज्यमें हजारों हाथी चार दाँतवाले तथा श्रेष्ठ वर्णके थे । स्वर्गमें केवल सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश करती हैं, किन्तु रामराज्यकी स्थियोंके केकाय ( बाँके ) बैसे-बैसे अनेक चन्द्रमा-सूर्य चमकते दिखाई देते थे ॥ ७२-७४ ॥ मुना

सहस्रं रामराज्ये कृषिकर्मणि योजिताः । एणोऽस्त्येकचद्रलोके कृष्णवर्णो मनोरमः ॥७६॥  
 सहस्रं शिशूनां हि क्रीडायां संप्रनेकशः । अप्सरास्तु वरा स्वर्गे गीयते सा तिलोत्तमा ॥७७॥  
 गेहे गेहे सति नार्यः सर्वस्त्वत्र तिलोत्तमाः । रुक्मभूषणभूषाद्या गतिन् पुरनिःस्वनाः ॥७८॥  
 सहस्राक्षोऽस्त्येक एव महान्स्वर्गः प्रगीयते । रामराज्ये चामराणि महत्ताक्षीष्यनेकशः ॥७९॥  
 सुधापानं त्वेकमेव स्वर्गेऽस्ति परमं वरम् । तद्वन्नानासाक्षा च पानमत्र गृहे गृहे ॥८०॥  
 सुधापानेन सहृष्टा यथा स्वर्गसुरोत्तमाः । दयिताऽधरपानेन तथाऽत्र सुखिनो जनः ॥८१॥  
 सागरेष्वेव सा दृष्टा सर्वादा सर्वदा नरैः । रामराज्येऽत्र चालेषु सर्वादा सर्वदेक्ष्यते ॥८२॥  
 विचरति गवाक्षदाः भूयते पार्थिवाः पुरा । पौरा जानपदाः सर्वे विचरन्त्यत्र ते गजैः ॥८३॥  
 पूर्वं भुवं शिशूनां हि चुंबनं दिवसे मुहुः । रामराज्येऽनिशं नारीचुवनानि मुहुर्मुहुः ॥८४॥  
 क्रीडापरिमलद्रव्यैः फाल्गुनं सा श्रुता पुनः । क्रीडापरिमलद्रव्यैः पौराश्चक्रः सदाऽत्र ते ॥८५॥  
 एवं सद्रामराज्यं हि महामगलसंयुतम् । आसीदनुपमेयं च श्रवणान्मंरालप्रदम् ॥८६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदामन्दरामायणे कात्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तरार्धे रामराज्यधर्पणं नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

## षोडशः सर्गः

( रामका लव-कुश तथा भ्राताभौको राजनीतिक उपदेश )

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवा श्रीमान्समाहूय कुशं लवम् । लक्ष्मण भरतं चापि ऋत्रुघ्नं रहसि स्थितः । १ ॥

भाता है कि कैलासपर एक ऐसा बेल है, जो अतिशय मयल वर्णका है । किन्तु रामराज्यमें वैसे वैसे कितने ही बेल हल जोतनेका काम करते थे । पन्द्रलाकमें एक ऐसा मृग है, जो बड़ा सुन्दर और कृष्ण वर्णका है । किन्तु रामराज्यमें लड़कोंको खेलनेके लिए वैसे-वैसे कितने ही मृग रूहा करते थे । सुनते हैं कि स्वर्गलोकमें कोई तिलोत्तमा नामकी बड़ी सुन्दरी अपना है ॥ ७५-७७ ॥ किन्तु रामराज्यमें घर-घरकी स्त्रियाँ तिलोत्तमाके समान सुन्दरी तथा सुवर्णके भूषणोंसे भूषित होकर चलते समय नूपुरका कनसुन गवद करती चलती थीं ॥ ७८ ॥ सुनते हैं कि स्वर्गमें केवल एक सहस्राक्ष ( एक है, किन्तु रामके यहाँ मनेको सहस्राक्ष चमर चलते थे । स्वर्गमें केवल अमृत पान करनेकी वस्तु है और रामराज्यमें घर-घर विविध प्रकारकी रसमयी पेय वस्तुएँ विद्यमान रहा करती थीं ॥ ७९ ॥ ८० । मित तरह अमृतको पीकर देवता स्वर्गमें प्रसन्न रहते हैं, उसी प्रकार स्त्रीके अघरोष्ठका पान करके अशोष्णके सब मनुष्य प्रसन्न रहते थे ॥ ८१ ॥ आजतक संसारके मनुष्योंने केवल समुद्रकी भर्याश देखी थी ( वानी यह अपनी सोमाके बाहर जाता नहीं देखा गया ), किन्तु रामके राज्यमें छोटे-छोटे बच्चोंमें भी भर्यादा दिखायी देती थीं ॥ ८२ ॥ सुनते हैं कि पहले राजा ही लोग हाथियोंपर सवार होकर इधर-उधर घूमते-फिरते थे, किन्तु रामके राज्यमें सारे पुरुषासो और देशवासी हाथियोंपर सवार होकर घूमते फिरते दिखायी देते थे ॥ ८३ ॥ सुनते हैं कि पहले लोग बच्चोंको ही बार-बार घूमते थे किन्तु रामके राज्य स्त्रियोंको भी लोग बड़े आनन्दके साथ दिन रातमें खेलेको बार घूमते थे ॥ ८४ ॥ सुना जाता है कि पहले फाल्गुनके महीनेमें ही रङ्ग तथा सुगन्धित वस्तुएँ एक-दूसरेपर छाड़ते हुए लोग काम खेलते थे, किन्तु रामके राज्यमें लोग सर्वदा वैसे खेल खेलते थे । ८५ ॥ इस प्रकार रामका राज्य महामङ्गलमय अनुसमेय और नाममय सुननेसे ही कल्याणदायक हो रहा था ॥ ८६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदामन्दरामायणे पंच रामतेजपाब्देयकृतं ग्योत्स्ना नामाष्टाकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

श्रीरामदासने कहा कि एक बार श्रीमान् रामने एकान्तमें लव, कुश, ऋक्षमण, भरत तथा ऋत्रुघ्नको

राजनीतिं विस्तरेण शिक्षयामास साधुम् । मृणु वत्स कुशद्य त्वं युयु मर्ते लवादिक्ताः ॥ २ ॥  
 मृणुनात्र स्वस्थचित्ता राजनीतिं वदाम्यहम् । कुश त्वं पृथिवीपालो भविष्यसि गते मयि ॥ ३ ॥  
 वैकुण्ठं मृणु वस्माद्दं सात्वधानमना भव । अनृतं नैव वन्द्यं नृपेणा चिरर्जविना ॥ ४ ॥  
 नातिकामी न वै क्रोधी राजा यः सुखमहंति । परदारनिष्ठाज्यः सर्वथा पार्थिवेन हि ॥ ५ ॥  
 मत्स्यं शौचं दद्यात् क्षातिरर्जुनं मधुरं वचः । द्विजगोयनिमद्भक्तिः यस्मिन्ने शुभदा गुणाः ॥ ६ ॥  
 निद्रालस्यं मद्यपानं ह्यनं चाराग्ननाग्निः । अतिक्रीडाऽऽतिमृगया सप्त दोषा नृपस्य च ॥ ७ ॥  
 पुत्रवन्धालनीयाश्च प्रजा नृपतिना भुवि । पृथाशः कामाश्च राजा प्राद्याः सदैव हि ॥ ८ ॥  
 ज्ञेयं चारैः सदा वृत्तं पृथिव्याः पार्थिवेन वै । पाराष्ट्रे सदा दद्यात् नानावेषविरूपिताः ॥ ९ ॥  
 पञ्च पंचायता औ औ प्रेषणोऽथ नृपेण हि । न विद्वसेन्पारकीयजने दूते नृगोचराः ॥ १० ॥  
 दण्डो मेदस्तथा मासं दामं कालोचिनं चरेन् । स्वकार्यं माघयेषुकस्या काले ग्रामं नृपोऽयम् ॥ ११ ॥  
 मनसा विहितं कार्यं कथनीयं न कम्पयितुम् । कृत्वा कार्यं दर्शनीयं जनान्मत्रिजनानपि ॥ १२ ॥  
 मासे मासे स्वकोशस्य पगमर्शं नृपोत्तमैः । गृह्णीयः सर्वदैव विश्वमेतैर्वकेषु न ॥ १३ ॥  
 वर्षे वर्षे नगर्याश्च प्राकाशस्य नृपोत्तमैः । परिमार्शं पगमर्शः कार्यो यन्विजनैः सह ॥ १४ ॥  
 चतुर्मासेषु सस्राणां मार्ग्याणां पार्थिवोत्तमैः । पगमर्शः सदा कोष्ठागारादीनां प्रकाशयेत् ॥ १५ ॥  
 पञ्च पक्षे शाण्डानां तुरगाणां तथाऽष्टमि । दिव्यैर्मर्ममन्त्रेण वस्त्राणां पार्थिवोत्तमैः ॥ १६ ॥  
 पगमर्शः सदा कार्यः पिकादीनां विभिर्दिनैः । सीमानाग्ननानां च क्षण्यातैश्च नृपोत्तमैः ॥ १७ ॥  
 परामर्शः सदा कार्यस्तथा ज्ञानपदस्य च । मासे मासे स्वर्मन्त्रस्य वापीनामयत्नेन हि ॥ १८ ॥

बुलाया ॥ १ ॥ ऊर्हे विस्तारपूर्वक राजनीतिकी शिक्षा देने हुए कहने लगे—हे वत्स कुश तथा भविष्यदिक  
 भ्राताभ्यो ! तुम लोग स्वस्थचित्त होकर मुनः । मैं तुम्हें राजनीतिकी शिक्षा दे रहा हूँ । हे कुश ! मेरे वैकुण्ठ  
 चले जायेपर तुम राजा अभ्यंग । इहलिये तुम विजय रात्रिमें मेरी शिक्षाको सुन स्वप्ना । जिस रात्राको  
 चिरकाल तक इस समारम्भ जोड़ित रहना हो, उस चाहिये कि वह नृत्य कला न बाले । २-४ ॥ औ राजा  
 कामो और श्रीकी मही होना, वही सुखस रत्न मयता है । राजाका चाहिये कि वह दूसरको स्वास्ते प्रेम न  
 करे ॥ ५ ॥ सत्य, शौच ( पवित्रता ), दया, क्षमा स्वभावस कोमलता, मोक्ष वाते, शास्त्रानुसन्त  
 तथा सज्जनोपर श्रद्धा, ये सात गुण राजाके लिए परम कल्याणकारी है ॥ ६ ॥ निद्रा, मालस्य,  
 मद्यपन, ह्यन ( जुआ ), वेण्याभोग प्रेम, उग्रादा मन्त्र द और अतिक्रि कार सेवता, ये राजाके सात  
 दोष है ॥ ७ ॥ राजाको चाहिये कि वह राज्यकी प्रजाको पुत्रक समान पालन करे और उसमे आपका पक्षध  
 कर सर्वदा लेता जाय ॥ ८ ॥ राजाका यह वर्तव्य है कि वह गुणवरी द्वारा राज्य भरका समाचार मालुम  
 करता रहे । दूसरे राजाके राज्यकी भी गति विधि देखनेके लिए वेध बदलकर पाँच पाँच या दस-दो दूत  
 नियुक्त कर दे अपने दूतोंके सिवाय किसी और व्यक्तिपर विश्वास न करे ॥ ९ ॥ १० । समय-समयपर  
 जैसा उचित समझे, मास-दाम आदि नीतिशोका प्रयोग करता रहे । समय पाकर युक्तिके साथ अपना  
 कार्य सधम करे । ११ ॥ औ कार्य अपने मनमें मान, वह किसीसे न कहे । स्वयं चुपचाप करता रहे ।  
 नौकरोंके विष्वासपर राजकाज न छोड़ दे । १२ ॥ महाने महीन अपने स्वभावकी देख-भाल स्वयं करे ।  
 नौकरोंके ही विश्वासपर न छोड़ दे ॥ १३ ॥ साल-मासपर साद बदन मर्मिके साथ नगरकी आदि  
 आदिकी भी जाँच करे ॥ १४ ॥ चार चार महाने अपने शस्त्रों, मार्गों तथा कोठार आदिका निरीक्षण  
 करता रहे ॥ १५ ॥ एक एकमे या जाडवे राज हाथ छोड़े आदि देवे । महाने-महीने कपड़ोंकी देख-  
 रेख करे ॥ १६ ॥ प्रति तीसरे दिन अपने यहाँ पावे हुए सुगन्धोपल आदि पिण्डियोंकी देखे और हर  
 छठवें महीने अपने सीमापर नियुक्त अधिकारियोंकी निगरानी करे । सर्वथा अपने राज्यमें रहनेवाले  
 मनुष्योंपर शान रखे । महाने महाने सेवाकी देखभाल करे और छठवें महाने राज्यके कुर्त-बावली आदि

कार्यः पुष्पवाटिकानां मासे मासे नृपोत्तमैः । परामर्शः स्वयं मत्वाऽथ वा मन्त्रिजनोत्तमैः ॥१९॥  
 वर्षे वर्षे समुद्योगः पण्यसैरथवा त्रिमिः । मासैर्नृपेण स्वे गृहे कार्यः सैन्येन यत्नतः ॥२०॥  
 देवानां भाषणानां च गुरुणा यतिनां तथा । अयंनोषो नैव कार्यः पार्थिवेन कदाऽपि हि ॥२१॥  
 द्रव्यादाय सदा पश्येन्स्वव्ययं तु निरीक्षयेत् । आदायस्य चतुर्थांशैर्व्ययः कार्यो नृपोत्तमैः ॥२२॥  
 मृतीयांशेन वा कार्यस्त्वर्धांशेन कदापि न ह्यहः । कार्यं मन्त्रिणस्य नानिकोपं समाचरेत् ॥२३॥  
 नातिमान्या मन्त्रिणस्य वर्षेर्नीयाः कदापि न । न विरोध्याः कदा राज्ञा दुर्गैरालम्ब्यैव च ॥२४॥  
 आकुशणां पट्टणानां दुर्गाणां गिरिवामिनाम् । अगण्यवामिनां मिथं तुषट्पापनिशामिनाम् ॥२५॥  
 सिन्धुतीरस्थितानां च नानादेशनिवासिनाम् । वर्षान्तरस्थितानां च द्वीपांतरनिवासिनाम् ॥२६॥  
 द्वीपे द्वीपे तृध्वर्षवामिनां पार्थिवोत्तमैः । परामर्शः सदा कार्यभारैः पक्षांतरेण हि ॥२७॥  
 पद्मप्रादुग्गर्भैः काश्यायाम्भारिभिः । अकभूतादिवैषंश्च तथा कार्षटिकोपमैः ॥२८॥  
 वणिग्पूषधरैर्दूर्तैर्दुर्तं वंशं नृपोत्तमैः । तत्र तत्राधिपाः सर्वेऽद्देऽद्दे कार्यास्तु नूननाः ॥२९॥  
 एक एव चिरं राज्ञा न स्यान्व्यः सेवकः कचिन् । परमेष्ठ्यानि घेद्यनि द्रष्टव्यं स्ववलं सदा ॥३०॥  
 पराक्रान्तो दूतः स्वीयगृहे विलोकयेत् । पृष्टश्चेक्ष्व दण्ड्यः स परदूतं न शिष्ययेत् ॥३१॥  
 पादतो मोचनीयाः सम्मानेन मुपोत्तमैः । स्वसीमारक्षिणो दूताः शिष्यणीया मुहुर्मुहुः ॥३२॥  
 परदूतः कथं मुक्तः स्वीयगृहे पुरेऽथवा । अपारम्य सूक्ष्मदृष्ट्या द्रष्टव्यं चेति पार्थिवैः ॥३३॥  
 अश्वेभ्यः पार्श्वगौ च पश्चाद्भागस्य रक्षकम् । सेनापतिं मन्त्रिणं च स्वीयं प्रतिनिधिं तथा ॥३४॥  
 धृतं चामादृतं च दूतं निष्कटर्तितम् । दानमानैस्तोषयेच्च सदा राज्ञा सुवृद्धिना ॥३५॥  
 देशकालं बलं कीदृशं निजोत्तमैर्हं नृपोत्तमैः । आदौ बृद्ध्या निरोध्याथ रिपोश्चापि परीक्षयेत् ॥३६॥

देसे ॥ १७ ॥ १८ ॥ महीने महीने बगोचोमे स्वयं जाकर देखभाल करे वा मन्त्रियोंको भेज दे ॥ १९ ॥  
 साल-साल भर काद, छठे अथवा तीसरे महीने मेनक हाथ-हाथ राजा अपने राज्यमें रीग करे । इस बातका सदा ध्यान रख कि दलमात्रा, अहणो, यतियों तथा मुसलमनोंमें किसी प्रकारका असंतोष न फैलने पाये ॥ २० ॥ २१ ॥ धनका आय-व्यय स्वयं देख और आयका अनुयोगमात्र व्यय करे । किसी बिकट समयमें आ जानेपर आयका मृतीयांश खर्च करे, किन्तु व्ययका आषा खर्च कभी भी न होने पाये । मन्त्रियोंको सदा प्रसन्न रखे न विशेष कोष करे और न किसीसे विशेष प्रेम ही रखे । दुर्गकी रक्षा करनेवालोंके साथ कभी विशेष न करे ॥ २२-२४ ॥ खानोक पास रहनेवाले, राजधानीसे दूर किसी नगरमें रहनेवाले, दुर्ग तथा सर्वतन्त्रिवासी अंगलमें रहनेवाले, समुद्रके टापुओंमें निवास करनेवाले समुद्र-तटपर रहनेवाले, विदेशोंमें रहनेवाले, द्वीपान्तरके निवासियों तथा किसी भी देशके रहनेवाले लोगोंको प्रत्येक वसमें राजा देख भाल करता रहे ॥ २५-२७ ॥ धनरूपवाने, सम्यक्सेवेपचारी, अनपूत, वणिक् तथा नलाका बेग बनाकर दूसरेके राज्यमें घुसनेवाले गुप्तचरोंसे अन्य राष्ट्रका समाचार मालूम करता रहे । उन दूसरे-दूसरे देशोंमें प्रति वर्ष नये-नये अधिकारी बदलता जाय ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजाका यह उचित है कि किसी प्रदेशका अधिकारी बनाकर किसी नौकरको उपादा त्रिनों तक उस प्रदेशमें न रहने दे । दूसरे राजाओंकी सेना तथा अपना सैन्यबल बराबर देखता रहे ॥ ३० ॥ यदि किसी दूसरे राष्ट्रका गुप्तचर अपने राष्ट्रमें दिखायी दे जाय तो उसे किसी प्रकारका दण्ड न दे । दूसरे राज्यके दूतको दण्ड न देना नीतिशास्त्रका नियम है । यदि दूसरे देशका दूत मिला जाय तो राजाको चाहिए कि उसे सम्मानपूर्वक छोड़ दे । अपने सीमाप्रांतमें रहने वाले निजी दूतोंको बराबर शिक्षा देना रहे । यदि दूसरे राष्ट्रका दूत मिला जाय तो राजाको चाहिए कि सूक्ष्मदर्शसे इस बातपर विचार करे कि उस देशके राजाने किस लिए मेरे राष्ट्रमें अपना दूत भेजा है ॥ ३१-३३ ॥ जो अपने आगे चलनेवाले हों वा पाछे चलते हों, उनकी तथा सेनापति मना, अपने प्रतिनिधि, सारथी, बमर दुलानेवाले तथा पास रहनेवाले लोगोंकी दान-मानमें प्रसन्न रखे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ देश, काल,



मित्रमित्रा नृणाः सर्वे तथा स्वसुहृदो नृणाः । सुहृदा सुहृदेष्वपि मित्रमित्राग्ररोधयेत् ॥३७॥  
 मित्रमित्रबलं दृष्ट्वा मित्रमित्रबलं तथा । बलं स्वसुहृदो चापि स्वसुहृन्सुहृदो बलम् ॥३८॥  
 आदौ नृपैः परीक्षयाव मितोर्ध्वेन निर्गच्छयेत् । के स्वीयाः पार्थिवा राष्ट्रे पात्रकावा नृपस्य के ॥३९॥  
 सुहृदः स्वनृपाणां च बलं तेषां निर्गच्छयेत् । द्रष्टव्या रिपवः स्वीया मित्राणि रिपवश्च यः ॥४०॥  
 दृष्ट्वा रिपुषां मित्रमित्राः कार्या राज्ञा हि मैत्रिकी । परस्परं सन्तु, पान्थो न पान्थश्चेत् पराधयेत् ॥४१॥  
 पान्थं सन्तु बलं दृष्ट्वा सन्तुमित्रबलं तथा । पान्थं सन्तुमुहर्षेण्य दृष्ट्वा पान्थं सन्तुयेत् ॥४२॥  
 परराष्ट्रे चारुनेत्रैर्दयो दुर्गाणि चर्चताः । अग्न्यानि दृष्ट्वा मार्गाभ्यन्तराणां अज्ञाश्रयाः ॥४३॥  
 शत्रुणाः स्वपुत्रे पूर्वदुयोगश्च तन्मयेत् । परराष्ट्रेऽपि पुत्र्या हि गन्तव्यं पार्थिवैः सुखम् ॥४४॥  
 यत्राग्रे गमनं स्वीयं तेषां राज्यं न तन्मदा । पूर्वं गन्तुं निजेच्छा चेत्तिष्ठिषेदुत्तरे ध्वजम् ॥४५॥  
 उपारमिबुद्धः कार्यः सेनावाणो नृपेण हि । अत्रैव चोत्तरं हि नृपेण शत्रुस्य सादरम् ॥४६॥  
 क्रोधादान्ते गतं दृष्ट्वा गच्छेन्पूर्वं स्वयं नृपः । एव चरतः कदा याम्ये पथिमे वा पागिदृष्टि ॥४७॥  
 परराष्ट्रे रौरणीवश्चार्जुनं तु वेदयेत् । परराष्ट्रे गमनं यस्यां दिशि तस्या नृपस्यैः ॥४८॥  
 रौरणीयां ध्वजः शोच्यैः सेनासामन्त्र्याचरेत् । यन्त्रणायापुमानां च बाह्यानां बलस्य च ॥४९॥  
 राज्ञा दृष्टिः कदा कार्या कार्या पान्थादिमग्रः । राष्ट्रे दूर्गे पुरे क्रीडे पत्तने निर्वले इने ॥५०॥  
 जनाश्रयाः शुभा कार्याः कृत्वा कोऽप्ययं वदुः । प्राकारार्थेऽथ दुर्गाभ्यं च जनार्थं यो व्यवहः कुरु ॥५१॥  
 न श्रेयः स नृपो राज्ञा श्रेयं रक्षणमात्मनः । धनार्थं यो व्यवहो भ्रातः सोऽग्रे श्रेयस्तु संवदः ॥५२॥  
 आपदर्थं धनं रक्षारान्नक्षत्रैरपि अहमज्ज मत्तवं रक्षेद्दार्तरपि धनैरपि ॥५३॥  
 पश्यमुद्रामितं द्रुपं राज्ञा दासो निर्गच्छयेत् । नावलोक्ष्यं यथाकालं व्यवहो हरिश्चोदितमित्रम् ॥५४॥

बल, कोल और अपनी उम्माह देखकर अच्छी तरह विचारे और लड़के भी बल आदिका निरीक्षण-परीक्षण  
 करे । फिर अपनी बल, मित्रबल, मित्रके मित्रका बल और अपने महर्षके महर्षी का बल देखकर राजा के चार्हिदे  
 कि अपने सन्तुका केन्द्रबल देख । अब इस बातपर विचार कर कि कौन राजे अपनी साथ देनेवाले हैं और  
 कौन सन्तुका ॥ ३६-४० ॥ इसके बाद उसे चार्हिद कि सन्तुको के जन्मे मित्रता करे । दूसरेके सन्तुकी बहूके  
 गो रक्षा हो न करे और यदि रक्षा करे भी गो सन्तु जन्मे तरह देख-संभार ॥ ४१ ॥ यदि सन्तुकी सेवा  
 किसी प्रकार करने पास का ही जाय तो उसकी रक्षा कर । सन्तुक मित्रकी सेवा एवं सन्तुक सुहृदता सेवाकी  
 भा रक्षा करे ॥ ४२ ॥ दूसरेके सन्तुक कुपवाणों मित्रता करके वहाँके बघातों, नदियों, बगी, दुष्टके रास्ती,  
 गुप्तचरके सारतो तथा जलाशय आदिपर दृष्टि रखकर अच्छी तरह समझ ले । पहले अपने राज्यकी रक्षाकी  
 पूर्ण प्रवृत्ति करके ही किसी दूसरेके राज्यपर घटाई करे । ४३ ॥ ४४ ॥ जहाँ अपनेको जाना हो, वह जन्मी  
 बात कभी किसीका बा न बनये । यदि दुर्वका और शत्रु करना हो तो उत्तरकी तरफ लपका भेजे और  
 सेनाके ठहरनका मित्रि आदि भी उत्तरकी ओर हो बनवये । सेना भी उत्तरकी ओर ही चले, किन्तु  
 जाया कति मार्ग जाकर दुर्वकी ओर मुड़कर राज्यको जहाँ जाना हो, वहाँ जाय । इसी तरह कभी अपनेको  
 दक्षिणकी ओर तथा कभी पश्चिम दिशाकी ओर भेजे ॥ ४५-४७ ॥ किसी दूसरे राजाके राष्ट्रमें जायेकी  
 गाइकर गुप्तचरों द्वारा वहाँका हाल-बाल पालूम करे । अपने राज्यमें अभी और बड़ा पादे, जिस बाघ  
 अपनेको जाना हो ॥ ४८ ॥ मित्रि आदि भी उसी तरह बनवये । राजाका चार्हिदे कि अपने सन्तु गोप-  
 चन्दक आदि पन्थ तथा पन्थ सन्तुष कहन और सेनाका सदा बहाता हुआ चन-चन्थ आदिका भी बली  
 प्रकार संग्रह करता रह । अपने राष्ट्र, किलाओ, बाजारों, जवनां लाल राजधानी तथा मित्र बननेसे सन्तु बल  
 लाने कारके बड़े-बड़े जलाशय बनवा दे । जो घर भाम-पानकी आई, किने, यन्त्राव आदिमें लाने हो,  
 उसे लाने न सक्त । उसे तो अपने रक्षाका सन्तुष माने । परमकार्यमें जो व्यव हो, उसे जानेके लिए धन्य  
 माने ॥ ४९-५२ ॥ आपत्तिसे अपनेके लिए बनकी रक्षा करे, बनके भी भेद समझकर सीकी रक्षा

न सेनारहितं राजा । स्वयं कृत्वा ह्यहिः । नैकाकी विचरेद्ग्रामे नैकाकी कदापि मरिचो ॥५५॥  
 नैकाकी कदापि वै स्वयं न पद्मया विचरेद्ग्रहिः । न गच्छेत्परमेष्ठेण चारं चारं नृपोत्तमः ॥५६॥  
 न विवसेद्द्वारपाल जलदं रजकं तथा । भीतयस्त्राणे मुद्रय हि नृपः सम्यक् परीक्षयेत् ॥५७॥  
 तच्चित्तवैटिकां प्राद्यांतरा दृष्ट्वा परादिना परदत्तं जलं ग्राह्यं राज्ञः ऽक्षिभ्यां विलोकय च ॥५८॥  
 फलाग्निं परदत्तानि पराक्षेप्त्वा विरोचनमः । दूर्गस्थितेनृपैर्भाष्यं न तेषां निकटे धरेत् ॥५९॥  
 सभां गच्छा प्रगतव्यं द्विवारं त्वेकदाऽथवा । उद्ययाम सभामध्ये स्वयं राज्ञा न वै चिरम् ॥६०॥  
 स्वद्वेष्टा स्माराद्राग्राह्यः कार्यो नृपोत्तमैः । पादो प्रभायं न स्वयं सभायां नृपसत्तमैः ॥६१॥  
 न बाहुवन्धनं जान्वाः कृत्वा स्वयं नृपोत्तमैः । नानिस्मिन्न कदा कार्यं सभायां पापिद्योत्तमैः ॥६२॥  
 सभायां समजैर्वस्त्रैः गन्तव्यं कदा नृपैः । गणिका गणका वैद्या गायक्य वन्दिनो नटः ॥६३॥  
 पण्डिता धर्मशास्त्रज्ञास्तार्किका वैदिका द्विजाः । मदा पाल्या नृपणैः दानमानैरहर्निशम् ॥६४॥  
 न चिरमसेकापितम् तोषयेत्तं धन्यादिभिः । प्रजानां गौरवं कार्ये दृण्डयेच्च युवा प्रजाः ॥६५॥  
 धनेशुपुक्ता प्रजाः तवा नैव कार्याः कदाचन । राज्यद्वारस्थितेनृपैः सप्तः ते पार्थिवोत्तमः ॥६६॥  
 मुक्तकचुकवन्धाश्च विमुक्तकचिबन्धनाः । सम्पदपु न्यस्तजम्बाः प्रेषणीया नृपोत्तमम् ॥६७॥  
 राजाज्ञया नृपं नेत्राऽऽपने चोपविशेत्केशाद् । नृपैर्भाण्डलिकैः सर्वैः स्थातव्यं पुरतोऽथवा ॥६८॥  
 सभाम्बु हन्तो पादो च राजन्यस्तविलोचनैः । न हसेद्राजपूरतो न जृम्भेत्तुल्येभ्युह ॥६९॥  
 तथा न धावनं कार्यं सर्वेर्भाण्डलिकैर्नृपैः । आगमे गमने सर्वैर्वन्दनापो नृपो मुहुः ॥७०॥  
 नान्यपुर्नरैः भवदेद्राजमाश्लिष्ये पार्थिवेतरैः । कञ्चुकेन विना राजा सभायां नोपमविशत् ॥७१॥

करे और स्त्री तथा खन भी बढ़कर अपना राजा कभी चाहिए ॥ ५३ ॥ अपने आपमें एक स्वयं  
 या किमोक्ष पाना हो तो लेकर छाड़ । किन्तु समय पड़नपर यदि कराहाके खचकी आवश्यकता पड़ जाय  
 तो खर्च कर दे, स्वयंका मुंह न देव । अपने नगरके बाहर बिना सेनाक छोड़ न जाय । अपने ग्राममें भी  
 अकेला न धूमकिये और न कहीं अकेला बैठे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ कहीं अकेला न उठे न पैदल चले और बार बार  
 किसीक घर न जाय । द्वाग्याल, पानी दन्वाले सेवक और धावा इन पर कभी भी विश्वास न कर । कपडा मुलकद  
 धाये तो राजाका चाहिए कि अपनी बुद्धिसे खूब अच्छा तरह उसका परीक्षा करके ही पहने । पानका  
 बीडा खानेकी धाये तो पहने केन किसे दूसरा मिठाकन स्वयं दूसरा बीडा खाय । पान पानकी  
 आये तो अच्छा तरह उसका पाछा करके अपना आखा टावकर पिय ॥ ५६-५८ ॥ दूसरेके लिये फलोंकी भी  
 अच्छी मोलि परीक्षा कर ल । जो राजा मिलने जाय, उनके दुसरे हो न चंचल कर । न स्वयं उनके पास जाय  
 और न उन्हें अपने पास आने दे । अनिदिन एक या दो बार सभामें जाय और आये पहरेसे अधिक कहीं  
 न उठे । अपनेसे द्वेष करनेवालोंको नगरसे बाहर कर दे । सभामें कभी बैन पैदल न बैठे और न पड़नकी  
 सिफाडकर हा वंज करे । राजाको चाहिए कि सभामें कभी ज्यादा न हँस ॥ ५९-६२ ॥ सभामें कभी भैन  
 कपडे पहिनकर न जाय । गणिका, गणक ( गानिका ), वैद्य, पायक, वन्दोत्तम, नट, पंडित, धर्मशास्त्री,  
 सैनिक, वैदिक तथा ब्राह्मण इनका दान मान आदिसे सदा सम्मान करता रहे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ नैपुण्य कभी भी  
 विश्वास न करे । उसे हमसा खये-पसे दकर प्रसन्न रखे । सब लोगोंका सम्मान करता हुआ राजाको स्वयं वंज  
 न दे ॥ ६५ ॥ हम बातका सदा ध्यान रखे कि प्रजाके लालाका किसी प्रकारका वंज न होने पाये । राजद्वार-  
 पर रहनेवाले हुनोका चाहिए कि जो राजा मिलने जाये, उनके लज्जाद उतरवाकर पतले सुनवा दे । जो  
 कुछ अन्य तद्वत् उनके पास हो, उनके जलन रखवा दे । फिर अपनी तरह देख भावकर राजासे मिलनकी मोता  
 धाने दे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जो कोई राजा मिलने जाय वह राजाका प्रणाम करके संकेतित आसनपर बैठे । जो  
 भाण्डलिक राजा हो, उनके लिये राजाह सामन हुनो डाला जाय । वे राजाके सामने हाथ पैर सवेदकर  
 राजाकी ओर निहान्त हुए बैठे । राजाके सामने न हँसे, न गम्हई ले और न बार-बार छीके ॥ ६८ ॥ न बार-बार

सुमनसा वाणोदो नैव हन्यो नृपोत्तमैः । नतिर्वन्तो मृगी राज्ञा हन्यन्त्या विधिने कदा ॥७२॥  
 न निद्रितश्च हन्तव्यः पितृषीं बनेचरः । तथा स्वशरणं पाशो विश्रान्तो वा कदाचन ॥७३॥  
 कीडावन्तो बने प्राणी नैव हन्यो नृपोत्तमैः । भीमाचागनहृदिषु संस्थाप्य सुमदा चरेत् ॥७४॥  
 राशौ मित्रेण सहितमूर्णमेव नृपोत्तमः । आप्ताय कश्चनेनैव सनाच्छाप बहिर्धरेत् ॥७५॥  
 पुरदारविषयानां च शरालादि निर्गमयेत् । जनानां आपितं सर्वं भोतव्यं हि शुभशुभम् ॥७६॥  
 एवं हयं प्रगन्धमयशः श्रेयसेद्वितम् । राशौ राशौ पुनः बुद्ध्या भोतव्यं मकलेरितम् ॥७७॥  
 न कार्यः कलहो मेहे गृहकुल्य मभास्थितः । न वाद्यमणुषात्र हि न तूष्णीं ह्रीवन् चरेत् ॥७८॥  
 न कङ्कयेच्च शिरो राज्ञा सभायां स्वकरेण वै । धृक्ता गिराभु-कर्म न त्यजेद्वैर्यमात्मनः ॥७९॥  
 पलमयं न मशामाद्राज्ञा कार्यं कदाचन । न विप्लो निद्रा पृष्टिर्द्वन्द्वयोः कदाचन ॥८०॥  
 मोदयेन शरेद्राज्ञा नदी मुन्या कदापि हि । सेतुं विना नदी राज्ञा नोत्पीर्या हि कदाचन ॥८१॥  
 नोत्पीर्या नौकया राज्ञा नदी कापि मुनादिभिः । कार्यं नैव ब्रह्मकीर्त्या नोदायो स्वमूर्तः सह ॥८२॥  
 न स्थेयं इदमप्ये हि तथा नैव चतुःपथे । न ताडयेन्नडा पत्नी तथा पुत्र न ताडयेत् ॥८३॥  
 स्तम्भुद्राङ्गितपत्रेण विना केषां पुण्ड्रहि । न निर्गमः प्रकृत्यपमर्थवागमनं नृणाम् ॥८४॥  
 कर्तुमाज्ञावनीयं न मृदापत्राङ्गितं विना । नश्ये नृष्टन चौरैः पथि कार्यं नृपोत्तमैः ॥८५॥  
 न कार्यं पुण्डनं राज्ञा विना तार्धं कदाचन । परस्मान्ने गृहे नैव स्नातव्यं पार्थिवोत्तमैः ॥८६॥  
 न पादेन स्पृशेज्ज्वाप न पादेन शरं स्पृशेत् । नतिर्कडे-य रिकाभिर्द्विजवांश्च न वै चरेत् ॥८७॥  
 न तिष्ठेद्द्वारदेशे वै न स्थानव्यं नृपेभ्यः । राज्ञा मार्गे न वै स्थेयं न खेदं नृपतिर्भजेत् ॥८८॥  
 तोयानयनमार्गे हि स्त्रीणां स्नेयं नृपेण न । धान्यं समर्थं कर्तुं वै दण्डयेद्यवमायिन ॥८९॥

बुके । जब राजाके सामने जाय और जोड़, तब बराबर रजाका प्रणाम कर ॥ ७१ ॥ ७० ॥ राजाके सामने  
 ओर-ओरसे बल न करे । राजाको चाहिए कि वह सम म कनक पारण धिने बिना न बैठे । जब शिकार  
 खेलने जाय तो नहीं हाथी तथा गमिली मृगाका शिकार करना न करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जो जीव पानी की  
 रहा ही, जो सोया हो और जो बाग करके बराना जग्य आया हो, ऐसे जीवोंका शिकार कभी न करे ।  
 शिकार खेलने जाय, तब बाणों दिशाओंमें कुछ मार्गोंका निशान न करके शिकार लेले । राजाके समय अपने  
 किसी मित्रके साथ कम्बल ओढ़कर महलमें बाहर निकले ॥ ७३-७४ ॥ पुण्ड्राके कटक में सब हुए माला-  
 दण्ड आदि हल । राजामें लोग जो अटपटा बात कहें या, ऊपर साथवात मनसे बुने । इस प्रकार प्रत्येक  
 राजाको स्वयं जाय या अपने विश्व मन्त्र मित्रका भव दिग कर, जो हर राजामें लोगोकी बसे गुनता  
 रहे । घरमें लड़ाई लगा न करे, सभामें कोई करम काम-काज न कर । घरमें सम्बन्ध रखनेवाली कोई बात  
 भी न करे । सभामें चुनचाप बैठे भीर बुके नहीं । सभामें निरन सज्जनावे । कबुका उक्त्यं सुनकर धैर्य न  
 छोड़े । राजाको चाहिए कि कभी संशयभूयस्य बातें नगी और बाणों कभी अपनी पीठ न रिल्लये ॥ ७५-७७ ॥  
 राजाको चाहिए कि कभी अपने बालकवाक साथ नोकापर चढ़कर नदी न पार करे । अपने कलहोंके साथ  
 नोकापर बैठकर जलकोड़ा न कर ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ बाजाय या किता बीराहपर न बैठे । अपनी स्त्री और  
 पुत्रको न समकाये । राजाका मुख लगा पत्र देकर लोगोंको जय न मारदे बाहर जाने दे । यही नियम  
 मगरके भीतर जानेवालोंके लिए भी रहने । बनी तथा राजाके भीरी करनेवालोंको ऐसा भीका न मिलने  
 पाये, जिससे वे चोरी कर सक । ७३-७४ ॥ तार्धके लिये किया दूसरी अवध राजा पुण्डन न  
 करये । कोई पर्यकास या पट्टेच नो घरमें स्नान न कर, बल्कि किसी तार्धको चला जाय । कबुच और  
 बाणको पैरसे न छूए । औरह पनीसो यदि न लेन । बाहुणोंके साथ आदा बाद-बिबाद न करे ।  
 अपने द्वारपर तथा खाली जमीनपर न बैठे । रास्तेमें भी कभी न बैठे और किसी तरङ्का खेद न करे  
 ॥ ७६-७८ ॥ जिस रास्तेमें मित्रों पानी भरने जाती-याती हो, वही कभी न बैठे । भकोंको बसे पावने

दृष्ट्वा किञ्चिन्महर्षं तु स्वीयराष्ट्रे हि भुभृता । न्यूनः कार्यः करभारः किञ्चिद्दशसुखाय च ॥९०॥  
 नातिशायं कदा कार्यमौदार्यं दर्शयेज्जनान् । द्रव्यं गृहीत्वा राजा हि भौचनीया न तस्कराः ॥९१॥  
 सुखं दृष्ट्वा न वै कार्यो राज्ञा न्यायः कदापि हि । न न्यायश्च परैः कार्यः स्वयमेव प्रकारयेत् ॥९२॥  
 अर्तानां सकलं वृत्तं श्रोतव्यं सादरं नृपैः । आर्त्त आकारणायो हि निकटे कृपया नृपैः ॥९३॥  
 आत्मानं मानयेन्मैव वैद्यं च मणिकं नटम् । पण्डितं वैदिकं वीरं गायकं कृतधर्मिणम् ॥९४॥  
 यज्ञो दानं जपो होमः सन्ध्या ध्यानं शिवार्चनम् । स्नानं पुराणश्रवणं मक्त्या कार्यं नृपोत्तमैः ॥९५॥  
 न मादकं वस्तु सेव्यं न कञ्चुकादिकमाचरेन् । न यात्रा स्वपदा कार्यं समद्रीपाधिपेन हि ॥९६॥  
 फलाहारश्च कर्तव्यो राज्ञा एकादशीदिने । निर्जलश्रीपवासश्च न कार्यः पृथिवीभृता ॥९७॥  
 येन यद्याचितं राज्ञे भूसुरेणार्पयेष्व तत् । तस्मै त्रिष्राय राज्ञा हि नृपा भूसुरदेवता ॥९८॥  
 उत्साहे बन्धनान्मोच्या ये ये क्रोधान्पुरश्चिताः । निजान्नाभंगतां दृष्ट्वा क्षेमं स्वीयं हृतं शिर ॥९९॥  
 स्वीयदूतापमानो यः स स्वीयशिर्येन्नृपः । स्वीयदूतस्य सम्मानो राज्ञा ज्ञेयः स आत्मनः ॥१००॥  
 एवं कुञ्ज मया प्रोक्ता राजनीतिः सविस्तरा । दिनचर्या मया यद्वक्तव्यते त्वं तथा कुरु ॥१०१॥

इति श्रीमहाकविश्रीरामचरितमते श्रीमदानन्दरामायणे राजकाण्डे राजनीतिविक्षेपः

नाम षाडशः सर्गः ॥ १६ ॥

## सप्तदशः सर्गः

( कुशकी पुत्री हेमाका स्वयम्बर )

श्रीरामदास उवाच

एकदा कुञ्जकन्याया हेमायाश्च स्वयम्बरम् । अयोध्यायां चकाराथ रामश्चातिमहोत्सवैः ॥ १ ॥  
 समाहूता नृपाः सर्वे नानाद्वीपातिरस्थिताः । समाजग्मुः सुवेषाश्च सभायां तस्थुरासने ॥ २ ॥

विक्रान्तके लिए बनिषोको दण्ड देता रहे । यदि अपने राष्ट्रमें महंगी बड़ जाय तो राजाको चाहिये कि देशको सुखी रखनेके लिए करभार कुछ हल्का करदे ॥ ९६-९८ ॥ कभी अतिगठता न करे और रुपये लेकर धोरोको न छोड़े । राजाको यह उचित है कि भुँदइसा न्याय न करे न्याय करनेका भार दूसरोके ऊपर न डालकर स्वयं करे । यदि कोई दुखी राजाके पास अपना दुःख सुनाने पहुँचे तो राजाको चाहिये कि दुखियोंके सारे दुःख आदरपूर्वक सुने । दुखिया मनुष्यसे किसी प्रकारकी घणा न करके उसे अपने पास बुलये और उसकी दुःखमयी कहानी सुने । किसी तरहका धमण्ड न करे वैद्य, ज्योतिषी, नट, पण्डित, वैदिक, वीर, गायक और धर्मिन्ना इनका आदर करे । यज्ञ, दान, जप, हाम, सन्ध्या, शिवार्चन, स्नान और पुराणश्रवण आदि शुभ कार्य भक्तिपूर्वक करता रहे ॥ ९१-९९ ॥ राजाको चाहिये कि प्रत्येक एकादशीको केवल फलाहार करके रहे और कभी भी निर्जल उपवास न करे । राजाके समीप पहुँचकर ब्राह्मण जो मांगे, सो दे । क्योंकि ब्राह्मण देवताके समान होता है । शोधरवा जिन-जिन लोगोंको जेलमें डाल दिया गया हो, कोई उत्साहकाल समय आनेपर उन्हें छोड़ दे । यदि किसीके द्वारा आज्ञा भंग हो रहा हो तो अपना सिर कट गया समझे । अपने दूतका अपमान अपना अपमान और अपने दूतका सम्मान अपना सम्मान जाने । हे कुश इस प्रकार मैंने तुम्हें सारी राजनीति बतला दी । रह गयी दिनचर्याकी बात, सो मैं जता करता हूँ वैसे ही तुम भी करते चलो ॥ ९६-१०१ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे बालमोकोये पंचमोऽध्यायः पवित्रचित्तं ज्योत्स्नाभाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे रामने एक समय कुशकी पुत्री हेमाका स्वयम्बर बड़े छुगधामके साथ ठाना । इसमें द्वीप-द्वीपाभ्यन्तरे अनेक राजे अच्छे-बुरे बस्त्राभूषणसे सुसज्जित होकर आये और सुन्दर-सुन्दर

यपुर्देवाः सगन्धर्वाः पुनयोऽपि समाययुः ॥ ३ ॥

तदा सभायामानीता हेमालङ्कारभूषिता । आरुह्य शिबिकायां तु रुक्मवय्या वरानना ॥ ४ ॥  
 मन्वन्मन्वयो बाला विश्वती सा स्वयम्बरा । ददर्श नृपनीन्मन्वांस्यपुत्रान्मन्वितान् ॥ ५ ॥  
 तद्भ्रूपापविनिर्मुक्तैस्तन्कटाभवनविभिः । सभिमतस्ते नृपा मवे के वयं न विदुस्तदा ॥ ६ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्रावन्निनायसुतो महान् । चित्रांगदो सभायाश्च तां जहार कुशान्मजात् ॥ ७ ॥  
 दृष्ट्वा कार्पाण्तरन्ध्रान्नामादोन्मेगवचरः । मोहनाश्रेण सकलान्वीरान् रुन्वातिमोहितान् ॥ ८ ॥  
 श्वे निवेष्ट्य तां हेमां हेमामां चंगवसाः । चित्रांगदो बहिर्गन्वा कोशमात्रे स्थितोऽमरत् ॥ ९ ॥  
 किं तूष्णीं पीरन्नेया मयेव कुशराजिका । इति निश्चिन्त्य मेधावी तस्यौ चित्रांगदो महान् ॥ १० ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे पुरा हाहाकारो महानभूत् । नीता रक्षा चोद्यवाहोः पुत्रेणातिवलीरता ॥ ११ ॥  
 नृपाः सर्वे महत्सस्युः समाया विन्नमानसाः । उपमहर्षिते तेन मोहनाश्रेण विमन्त्रयात् ॥ १२ ॥  
 चित्रांगदेन चोदुं ते स्वर्मेन्वर्निषेयुर्नृपाः । बहिः माकेननगरान् कोशदारक्तलोचनाः ॥ १३ ॥  
 वृष्णीधेनोश्चरादुः स ददर्श पुत्रकौतुकम् । एतस्मिन्नन्तरे सर्वे तत्र च वार्ष्णिशेखराः ॥ १४ ॥  
 मवेष्ट्य कोटिष्ठः प्रसर्ववर्षोश्चरादुजम् । तदा चित्रांगदो वीरो वायव्याश्रेण वार्ष्णिवान् ॥ १५ ॥  
 गमने भ्रामयामास साहनाथैः समन्वितान् । ततो रामाज्या सह सवाया निर्ययुः पुगात् ॥ १६ ॥  
 उत्सवाथं समायाताः स्वचराज्यान् बालकाः । अङ्गदाया निजैः सैन्यैः सल्लाः सप्तैर ययुः ॥ १७ ॥  
 तदा चभूव तमुनं पुट्टं सल्लामहर्षणम् । चित्रांगद रत्नगुप्ते नानाशस्त्राणि रापवाः ॥ १८ ॥  
 चित्रांगदः स्ववर्णार्पयिष्व। शस्त्राणि तानि हि । निजवर्णगुपकेतुं चकार विग्रहं सभात् ॥ १९ ॥  
 तथा चकार विग्रहं पुत्राद् पुष्करं तथा । तस्य चित्रकेतुं च सङ्गदं बलवचरः ॥ २० ॥

आसनोपर बैठे । वह बाद राजाको हा तक रहा सो, बकि रक्ता, गन्धर्व, शूचि-मुनि, विद्याधर, मान, शिखर सो आ-आकर उस उत्सवमें सम्मिलित हुए थे । इन सबके आ जानेपर एक सुवर्णका पालकीमें बैठे समुसी सन्दरी हेमा हाथोंमें नवरत्नासे बना माना लिय आ पहुंचा । सभाके प्राङ्गणमें पहुँचकर उसने वहाँपर बैठ हुए समस्त राजाको तथा राजपुत्रोंको आर वचनसे बोला ॥ १ ॥ हेमान जोरुको वनपुत्र छूटे हुए कटाक्ष-की बाणसे घायल होकर सबके सब राज भवन में एक भुक्त गये । उनको यह भी ज्ञान न रहा कि हम कौन हैं । उसी समय अश्वनिशके राजा अग्रवाटिकापुत्र चित्रांगद कुशकी पुत्रीका हरण करके ले आया । उसने दवा कि राम आवि सब नृा अदन वर्गोंमें अग्रत है । वस उमन एक महानरव छोडा । जिससे वही निबन्धनमें आये हुए राजे मोहित हो गये । तब वह सुवर्णके समान नेत्रस्विनी हेमाको रथपर बिठाकर भग ले गया और वहाँसे एक कोमकी दूरीपर जाकर रुका । उसने अपने भवन में आ कि चोरोकी तरह हेमाको लेकर आग जाना लोक नहीं है । इसलिए वही वह ग्दुर गया ॥ १० ॥ उपर सारी पुरीमें वह हाहाकार मच गया कि राजा उपवाटुकी पुत्र चित्रांगद हेमाका हरण कर ले गया ॥ ११ ॥ चित्रांगदक द्वारा मोहनाश्रक सवरण हो जानेपर सब राज हाथमें आकर उने और अपनी अपनी सेना लेकर कवम साल-लान आये विये अगोदरासे बाहर निकले ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर हं बैठ हुआ राजा उपवाटु अपने पुष्का कीटुक रक्त रहा था । उसी समय सब राज चित्रांगदक पास पहुँचे और उसका रथ बागे औरमें घेरकर शत्रुकी वशी करने लगे । तब चित्रांगदने वायव्य सश्र चलाया । जिससे सब राजे अपनी सेना तथा बाहनके साथ आकाशमें उड़ने लगे । इसके अनन्तर रामकी भ्रातामें सब आदि सत्तो बंद नगरमें निकल गये । उनके अतिरिक्त उत्सव-में आये हुए राजकुमार भी अपनी-अपनी सेना लेकर अपनेकी चल दिये । उस समय चित्रांगदके हाथ रौंगड़े बने कर देनेवाला तमुन पुट्ट होने लगा । रत्नगुप्तके वे बालक चित्रांगदपर विविध प्रकारके अश्व-आश्र कगने लगे ॥ १४ ॥ १५ ॥ अपने बाणोंसे प्रहार करने हुए चित्रांगदने अपने लक्ष्योंसे आगबरमें पुष्केटुका रथ चला कर डाला । उस वीर आत्मेने सोको ही देखे सुबाहु, पुष्कर, तथा चित्रकेतु तथा आंगदकी भी विरथ कर

उद्दृष्ट्वा कौतुकं तस्य ज्ञात्वा तनयसः फलम् । लवश्चिच्छेद वार्णाधैस्तदनु दिव्यमुगमम् ॥२१॥  
 ततो लवः स्ववार्णाधैरुग्रबाहुसुतं मुदा । चकार व्याकुलं शीघ्रं तद्दृष्ट्वा लवचेष्टितम् ॥२२॥  
 उग्रबाहुर्गर्भो योद्धुं लवेन येमवसरः । लवस्तमपि वार्णाधैश्चकार विरथं सणात् ॥२३॥  
 उग्रबाहुस्तदा वीगेऽन्ये रथे चारुगोह सः । ववर्ष निश्चितैर्वाणैर्मूर्छयामास तं लवम् ॥२४॥  
 लवं निमृष्टितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । तदा ययौ कुशो योद्धुमुग्रबाहुनृपेण वै ॥२५॥  
 कुशमागतमाज्ञाय हस्तदायास्तदा पुनः । रथस्था युगुभूम्नेन उग्रबाहुनृपेण वै ॥२६॥  
 पुनस्तानद्गदादींश्च चकार विश्रान्नुपः । तदा कुशः स्ववार्णाधैरुग्रबाहुं नृपं सणात् ॥२७॥  
 चकार विरथं वीरश्चिच्छेद तस्य कार्मुकम् । उग्रबाहुस्तदा व्यग्रो बभूव चक्रितस्तदा ॥२८॥  
 तं घृत्वा स कुशस्तोषादादयामास दुन्दुभीम् । अयोश्चबाहुं यमुनं निन्ये भीगमसन्निविष्टम् ॥२९॥  
 रामस्त मोचयामास मत्वा तं मुहदं वम् । तदा रामो विजयिने कङ्कणं मुनिनाऽर्पितम् ॥३०॥  
 ददौ कुशाय प्रीत्या स पुनः कुम्भजन्मजः । कुशस्तदाऽतिशुशुभे वरकङ्कणमण्डितः ॥३१॥  
 तदा कुशो मुनिं प्राह नत्वा तं कुम्भजन्मवम् । त्वया लब्धं कुनखेदं कङ्कणं वर मां मुने ॥३२॥  
 तप्तस्य वचनं श्रुत्वाऽयस्मिः प्राह कुशं मुदा । पुरेन्द्रगिषो वत्स बहवः सागरेण हि ॥३३॥  
 कृताः स्वौतर्निवासश्च तदाऽहं नाकर्णार्थिनः । कुन्दा स्वचुल्लकेऽग्निं तं पीतवर्णीलयेव हि ॥३४॥  
 ततो पुनः द्वीपयोर्हि मर्यादो मध्यवर्तिनाम् । दृष्ट्वा पुनर्नकिपेन आर्धितो हतशत्रुणा ॥३५॥  
 मृगवन्ध्यामरं भीमं सजीवं मुक्तवानहम् । तदाऽग्निनाऽर्पितं मर्त्यं कुश तत्कङ्कणं वरम् ॥३६॥  
 नानारत्नविचित्रं च रवितेजोवराजितम् । तद्रामायार्पितं पूर्वं मया तेन त्वार्पितम् ॥३७॥

दिया : इस कौतुकको देखकर लवने समझ लिया कि यह सब चमत्कार उसकी तपस्याका है । यह विचार-  
 कर लवने अपना बाणवद्योम चित्रागदक उस उत्तम वयुधको काट डाला और इतनी आग्रहासे बाणवद्या को  
 कि चित्रागद व्याकुल हो गया ॥ १९-२२ ॥ ऐसी अवस्थामें उग्रबाहु चित्रागदका रिता, स्वयं लवके साथ  
 युद्ध करनेके लिये रणमें उतर पड़ा, किन्तु लवत थोड़ा ही दूरमें समा भी रथ ध्वस्त कर दिया । तब उग्रबाहु  
 तुरन्त एक दूसरे रथपर बैठकर युद्ध करने लगा और अपने तील बाणोंका मारस लवको मूर्छित कर दिया ।  
 उसे मूर्छित दशाकर संध्याभूमिमें हाहाकार मच गया । तभी तबसे हुए युद्ध करनेके लिये रामका दूसरा पुत्र कुश  
 भी आ पहुँचा । कुशका आया देखकर वे अङ्गद आदि रघुवर्षी । राजकुमार रथोपर बैठ बैठकर उत्साहपूर्वक  
 उग्रबाहुसे युद्ध करने लगे । किन्तु उग्रबाहुने अपने युद्धकी शक्त से ही दूरमें अङ्गद आदि सभी राजकुमारके  
 रथोंको नष्ट कर डाला । उगरे अपने आहाओपर प्रहार करते देखकर वृषाणे उग्रबाहुको क्षमधरमें विरथ  
 कर दिया और उसका धनुष काट डाला । उग्रबाहु उस समय आश्रयके साथ व्यग्र हो उठा ॥ २३-२७ ॥  
 तब कुशने क्षणभ्रम उठ बाणवद्याको बन्दी बना लिया और अपनी विजयदुन्दुभी बजवा दी । चित्रागद तथा  
 उग्रबाहुको अपने साथ लेकर कुश रामचन्द्रजीके पासमें गये ; वहाँ पहुँचनेपर उग्रबाहुको अपना मित्र समझ-  
 कर रामने छुड़ा दिया और विजयी कुशको अग्रस्त्य श्रुतिके सपक्ष अग्रस्त्यका ही दिया हुआ कङ्कण दिया । उस  
 कङ्कणके पहिनेसे कुशकी शोभा और भी बढ़ गई ॥ २८-३१ ॥ इसके बाद कुशने अग्रस्त्यकृषिसे कहा—  
 हे मुने आपसे यह कङ्कण कहाँ पाया था ? मैं हमसे कहिए ॥ ३२ ॥ कुशको बात सुनकर अग्रस्त्यने कहा—  
 हे वत्स । आजके बहुत समय पहले इन्द्रके बहुरे मत्स्य समुद्रके मत्तर घर बनाकर रहा करते थे । इन्द्रके  
 प्रायण करनेपर मैंने समुद्रको सन्तुल्य भरकर पो लिया । जब इन्द्रने अपने सारे सन्तुल्यको मार डाला, तब दो  
 हाथोंके मध्यकी लोचोंकी नष्ट बचकर इन्द्रने मुगसे समुद्रको फिर पूर्णबत् बना देनेकी प्रार्थना की ॥ ३३-३५ ॥ तब  
 मैंने पत्रके मार्गसे फिर समुद्रकी सजीव करके बहा दिया । उसी समय समुद्रने मुझे उपहारके रूपमें यह कङ्कण  
 दिया था ॥ ३६ ॥ अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित तथा सूर्यके तेजकी नई तेजोमय यह कङ्कण मैंने रथको दे

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा कुशस्तं प्राह वै पुनः । त्वस्य जीवनोपायं वद मामद्य यो मुने ॥३८॥  
 कुशस्य वचनं श्रुत्वाऽगस्तिस्तं प्राह सादरम् । विमृच्छितो यदा पूर्वं भरतः पथि पार्थिवैः ॥३९॥  
 मूर्च्छितः पतितश्चास्ति एषो म्पिशुरर्हयः । मुद्रकाश्रमसो वल्क्यस्तदाऽऽनीताः शुभाग्रहाः ॥४०॥  
 सीमित्रिणा तदाऽद्य त्वं मुद्रताश्रमनः पुनः । महोदधौ समानीय जीवनैर्न लवं जवान् ॥४१॥  
 अथवा त्वं हनूमतं प्रेषयस्वाश्रमं मुनेः । एवं यावच्च स मुनिः कथयामास त कुशम् ॥४२॥  
 तावच्चद्ववचनं श्रुत्वा मुनेर्महर्षिणा क्षणात् । समानीयाश्रमादस्त्रीमुद्गलस्य तपोनिधेः ॥४३॥  
 तामिस्त्वं जीवयामास लवः सैन्यसमन्वितम् ।

विष्णुदास उवाच

गुरो उर्यैव च मुनेर्मुद्गलस्याश्रमे कथम् ॥४४॥

मृतसंजीवनीवज्यादिका वल्क्योऽत्र निमंताः । कथं ना हि समीपस्था विस्मृत्य द्रोणपर्वतम् ॥४५॥  
 प्रेषितोऽञ्जनिपुत्रः स तेन जाववता पुनः । जमु मत्स्यशयं छिधि कृपां कृत्वा मुनीश्वर ॥४६॥

श्रीरामदास उवाच

यदा मातुर्विमोक्षार्थममृतस्य सगाधिपः । कलशं स्वमुखे धृत्वा नाकलोकान्तमगमयत् ॥४७॥  
 तदा तत्कलशाद्देगाद्विदुस्तत्रापतरपुरा । तद्देवोर्मुद्गलस्यापि मुनेस्तपःप्रभावतः ॥४८॥  
 आसन् वल्क्यश्च तस्यैव आश्रमे हि द्विजोत्तम । नैका वेद शुभा कर्त्ता श्रविशान्त वनेचरः ॥४९॥  
 द्रोणाचलं स्वतस्तेन प्रेषितो वापुनन्दनः । इति त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् ॥५०॥  
 इदानीं मृषु शिष्य त्वं शुभा तां प्राक्तनीं कथाम् । ततो लयादिकाः सर्वे यमुस्ते स्वपुर्णं मुदा ॥५१॥  
 नत्वा मुनिं च रामादींस्तत्पुं श्रीराघवाग्रजः । तत्र महोत्सवधार्माभ्युपार्णं तत्त्वदर्शनात् ॥५२॥  
 ततो दृष्ट्वा लव रामो जीवितं वायुजेन हि । समालिख्य दृढं प्रेम्णा परं तोषमवाप सः ॥५३॥

दिया और रामने इसे आज तुम्हें दिया है ॥ ३७ ॥ मुनिकी बात सुनकर कुशने कहा— अब हम कोई ऐसा उपाय ढूँढलाहए, जिससे लव जीवित हो जाय । ३८ ॥ वह इस समय शत्रुओंके अस्त्रोंसे घायल होकर रणभूमिमें पड़ा हुआ है । कुशकी प्रार्थना सुनकर अगस्त्यने कहा— उस समय जब कि जनकपुरके मागम राजाओंने भरत-को मूर्च्छित कर दिया था, तब मुद्गल ऋषिके आश्रमसे कल्याणदायिनी लताएँ लक्ष्मण द्वारा आयी थीं उसी प्रकार आज तुम मुद्गलके आश्रमसे वह लता लाकर लवका भी जिवित कर ला ॥ ३९-४१ ॥ अथवा हनुमान्जीका भेष दो । ये ही वह लता ले आयी । मुनिकी आज्ञा सुनत ही हनुमान्जी। चल पडे और पाड़ा ही दरम मुद्गल-ऋषिके आश्रमसे वह लता लाकर रस रा और उ-ही लताओंसे कुशन सणमागम सेना समेत लवको जीवित कर लिया । इतनी कथा सुनकर विष्णुदासने कहा— हे गुरो ! वे मृतसञ्जावर्ती लताएँ मुद्गल ऋषिके आश्रमपर आकर कैसे उग गयीं । फिर जब वे इतनी समीप थीं, तब लक्ष्मणका मूढ़ाक समय आम्बवान्ने हनुमान्जीको द्रोणाचलपर क्यों भेजा-हे मुनीश्वर ! मरे ऊपर कृपा करके मेरी इस शकाका समाधान कीजिये ॥ ४२-४६ ॥ श्रीरामदासने कहा— जिस समय अपनी माताको छुड़ानेके लिए गरुड स्वर्गसे बोधम अमृतकलश लेकर चले तो मुद्गल ऋषिके आश्रमपर आते ही कलशमसे अमृतक एक दूध बह्नी गिर पड़ी । इसीलिए और ऋषिके तपोवनसे उसी स्थानपर वे मृतसञ्जावर्ती वल्क्यरिणी उग गयीं । वनचर आम्बवान् इस स्थानकी लताओंको जानते ही नहीं थे । इसी कारण हनुमान्जीका द्रोणाचलपर भेजा था । ४७ ॥ ४८ ॥ गीता तुमने प्रश्न किया, मैंने उसका उत्तर दे दिया । अच्छा, अब अपनी पुरानी कथापर आ जाओ—उसे समाधान मनसे सुनो । उस औषधिसे जीवित लव आदि वीर लौटकर सहर्ष अपनी अयोध्यापुरीमें आ गये ॥ ४९-५१ ॥ राक्षसी सभामें पहुँचकर लव आदिने वसिष्ठजीकी प्रणाम किया और रामके सामने बैठ गये । लवकी देखने से उस रीज पुरीभरमें बड़ा उत्साह था । जब रामने देखा कि हनुमान्जीके पुरुषापसे लव जीवित होकर

ततो गमो वायुजाप ककणे रत्नमण्डिते । ददौ परमसनुष्टम्भाभ्यां स शुशुभे कपिः ॥५४॥  
 ततो ललाप भोगमस्त्वपर कंकण वरम् । ददावतामिना दत्तं पूर्वं यद्वन्ममडितम् ॥५५॥  
 लवस्तेनानिशुशुभे शककणमण्डितः । लवस्तदा मुनिं प्राह नन्वा तं कुम्भसम्भवम् ॥५६॥  
 स्वयां लब्धं कृतधेदं कंकणं वद मां पुनः । ततस्तद्वचनं धुन्वाऽपगमितः प्राह लव मुदा ॥५७॥  
 एकदा ददृकान्वेषेऽहं स्नातुं हि शतः सरः । तस्मिन्स्नान्त्वा निम्नविभिं कृत्वा तत्र स्थितः क्षणम् ५८  
 एतमिन्नतरे तत्र स्नात्स्वर्गो ममपगतः । दिव्यं विमानमरुदः शनवीपरिवेष्टितः ॥५९॥  
 दिव्यमन्त्रावरणो दिव्यमन्त्रादिवर्धितः । स स्वर्गो स्वान्सभायातो यावत्तावत्सरोवरम् ॥६०॥  
 शवं विनिर्गतं श्रेष्ठं स्फुरितं हि मयंकम् । दुर्गन्धमहितं दृष्टं प्राप्तं तत्परममनन्दम् ॥६१॥  
 अकृष्णं विमानमपाम् स्वर्गो तच्छवं दयौ । शिखा तच्छवमानं वै मलयामाम सादरम् ॥६२॥  
 ततः पीत्वा जलं स्वर्गी विमानं चारुगोह सः । निमग्नं तच्छवं चापि पुनस्तमिन्मरोवरे ॥६३॥  
 स्वर्गेण शतुकामं तदृष्ट्वाहं चाग्निरिच्छितः । अमुकं मयुरं वाक्यं वै रं दिव्यस्वरूपधृक् ॥६४॥  
 क्षणं तिष्ठान्तरं देहि कानुकं मे मयेक्षितम् । इदमस्ते शतदारः कथं स्वर्गनिवामिनो ॥६५॥  
 इति मद्रचनं भूत्वा स स्वर्गो प्राह मां तदा । सम्पन्नं पृष्टं स्वयां ममन् मृगं सर्वं मयोच्यते ॥६६॥  
 सुदेवाक्यो हि वैदमां नृपादिशामवपुग । मयुरो धनदुग्धौ श्वेतोऽहं पार्थिवोऽभवम् ॥६७॥  
 नैव दानं मया नस्मिन् जन्मन्पत्रं कृतं कदा । स्वीयमज्जमरोऽहं प्रापः पापकर्मणः सदा ॥६८॥  
 ततोऽध्वरी त्वहं राज्यं कृत्वा तं सुगणानुजम् । वार्यके तु वनं प्राप्तपस्त्रीयं समाचरम् ॥६९॥  
 एकदा स्नातुमुद्युक्तो निमग्नोऽहं सरोवरे । ततो मृगो दिवं प्राप्तस्तद्वहं स्वीयतपोवलाद् ॥७०॥

सामने बैठे है तो प्रेमपूर्वक माघनिकी छानेसे लग्न निगा और बड़े प्रसन्न हुए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्जीको रत्नास सचित्र दा कंकण दिये । जिन्हें बहुततम हनुमान्जी बहुत सुन्दर दोलने लगे । फिर रामजीने एक दूसरा कंकण त्रिसे अग्रजजीने दिया था, वह लवजीने दिया । उस बहुतमूर्ख कंकणकी पहि-  
 ननसे लव भी सतिशय नशाभिन हुआ । तब लवने मगधराज का प्रणाम करके कहा— ॥ ५४—५६ ॥ हे मुनिराज ! यह कंकण आपको कहाँ मिला था ? सो हमें बतलाइए । इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर अगस्त्य परम प्रसन्नतापूर्वक कहन लगे ॥ ५७ ॥ एक बार मैं दण्डकारण्यमें एक सरोवरपर स्नान करने गया । वहाँ स्नान-नित्यकर्म आदि कर लेनेपर मैं डी बरके लिए बैठ गया ॥ ५८ ॥ इसी बीच आकाशमार्गसे एक स्वर्गीय प्रणी सैकड़ों स्त्रियोंसे घिरा हुआ दिव्य विमानपर आरुढ़ होकर वहाँ आया ॥ ५९ ॥ वह दिव्य मातृका आदि शरण मिले हुए दिव्य गन्धसं चकित था । उस स्वर्गीय प्राणी ही सरोवरसे एक मयानक द्रवित तथा दुर्गन्धपूर्ण शव निकलकर तटपर आ गया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वह स्वर्गीय प्राणी अपने विमानमें उतरकर उस शवक पास पहुँचा और उसके माथको उसका बड़े प्रेमसे लाया । फिर जल दिया और अपने विमानपर आ बैठा । ऊपर जब फिर देख गया । उस गमनानुगत स्वर्गीय के पास पहुँचकर मैंने उससे कहा— हे दिव्यस्वरूपधारिन् ! थोड़ी देरके लिए एककर मेरी बातोंका उत्तर देने जाओ । मुझारे इन कर्मको देखकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ है । अच्छा हमें यह बताओ कि इस प्रकार स्वर्गीय प्राणी होकर भी नृप पुरी क्यों खाते हैं ? ॥ ६२-६५ ॥ मेरी बात सुनकर उसने उत्तर दिया । हे ब्रह्मन् ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सुनो, मैं सब बतलाता हूँ । पूर्वममवम त्रिभुं दशके अर्धपति मृदेव नामके एक राजा थे । उनके श्वेत और मुरख नामके दो पुत्र थे । जिनमें प्रवेत मैं था और राज्य भी मेरे ही हुयेदि था ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस कथ्यसे राज्यपत्यसे भल होकर मैंने कोई दान नहीं किया । हुमेगा पापकर्मसे रक्त रहा ॥ ६८ ॥ मेरे कोई सन्तति नहीं थी । इसलिये बूढ़ावस्थामें अपने छोट भाई सुग्यकी मैंने राज्यपत्यपर बिठा दिया और जगलमें जाकर कठोर तपस्या करने लगा । एक बार स्नान करनेके लिए एक सरोवरमें डूबने लगाकी तो वही डूबकर घर गया । मरनेके बाद अपनी तपस्याके प्रभावसे मैं स्वर्गलोकमें पहुँचा । तपस्याके फलस्वरूप वहाँ



तपस्यश्च फलं स्वप्नं ममावन्वयमपदः । अदृष्टा भक्षितुं किञ्चिन्मया पृष्टं सुराधिपः ॥ ७१ ॥  
 वर्तन्ते विविधास्तत्र मम भोगाः सुदुर्लभाः । कथं नास्मीद्वयधाम् कथं मेऽत्र सुखं भवेत् ॥ ७२ ॥  
 इति मद्बचनं श्रुत्वा मामिन्द्रः प्राह सस्मितः । नैव दानं न्वया भूर्मा कृतं राज्यमदनं हि ॥ ७३ ॥  
 अदत्तं लभ्यते नैव नृप पुण्यैः कदेनरैः । अनस्यं प्रप्यहं मत्वा विमानेन सरोवरम् ॥ ७४ ॥  
 मध्वयस्व शवं पुष्टं मिष्टान्नैः पापितं च यत् । चिरकालं भवेत्तत्तं क्षयं यास्यात् नैव तद् ॥ ७५ ॥  
 इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा स पृष्टश्च पुनर्मया । दिव्यान्नानि कथं चाहं प्राप्नुयां तद्वदस्व माम् ॥ ७६ ॥  
 इति मद्बचनं श्रुत्वा सदेन्द्रः प्राह मां पुनः । अधुना दण्डकारण्यं व्रतते हानमानुषम् ॥ ७७ ॥  
 विष्वद्वर्तिनपधाम्भार्यमगस्तिः । सुरयाचिनः यदा यास्यति पन्न्या वै मुक्त्या काशीं हि दण्डकम् ॥ ७८ ॥  
 सरस्यस्मिन्नुदा स्नात्वा स्थितं पश्यमि तं भुनिम् । तदा तस्मै कंकणं स्वं देहि तोर्यः परिप्लुतम् ॥ ७९ ॥  
 तेन कंकणदानेन दिव्यांधः प्राप्स्यसे नृप । इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा तदारभ्य विरं भुने ॥ ८० ॥  
 अत्रामत्यं क्षपाहारः क्रियते च सदा मया । एतावत्कालवर्षं नान्न कश्चिन्मयेक्षितः ॥ ८१ ॥  
 मया दृष्टस्त्वमेवात्र वैशि स्वी कुम्भमभवम् । अद्य न्वया तारिताऽहं दानं स्वांकुरु मे त्विदम् ॥ ८२ ॥

अगस्त्य उवाच

इत्थं स्वर्गोऽसमाप्नुक्त्वा ददौ कंकणमुज्ज्वलम् । मद्यं सार्द्रं ततः स्वर्गं पयी स्वर्गीं मुदा पुनः ॥ ८३ ॥  
 तदारभ्य शवं तोयासद्दहिलस्य पयी कदा । दिव्यान्नानि तु संप्राप नाकलाके ययाभुसत् ॥ ८४ ॥  
 इति यत्कंकणं लब्धं मया तव पुनः वने । अपितं राक्षसायेदं तेन तस्मापि तेषंपतम् ॥ ८५ ॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्त्यवचनं श्रुत्वा लवः पप्रच्छ तं पुनः । किमर्थं दण्डकारण्यं तद्वभूव विजनं वद ॥ ८६ ॥

अगस्त्य उवाच

इत्थाकुर्वंशसंभूतोऽभून्नृपो विष्वदक्षिणे । नाम्ना दण्डकेति ख्यातः पापकर्मरतः सदा ॥ ८७ ॥

सब चीजें तो निश्चयान थीं, लेकिन खानेक लिए कुछ नहीं था। तब मेन इन्द्रसे कहा—हे देवेन्द्र ! यहाँ मेरे भागनेक लिए तो और सब कुछ है, किन्तु खानेक लिए कुछ भी नहीं मिलता। बताइए, इस तरह मे क्याकर सुखी रह सकूँगा ॥ ६९-७२ ॥ मेरा बातका सुनकर मुष्कराते हुए इन्द्र कहने लगे—तुमने राज्यमद वध पृष्नीपर कोई बात नहीं किया था। बिना दिव्य कुछ भी नहीं मिलता। इसलिए तुम प्रतिदिन विमानसे जाकर उस मिष्टान्नसे परिपुष्ट अपने शरीरको खा जाया करा। बहुत बहुत दिनों तक यह न होकर अयोका ल्यों बना रहेगा ॥ ७३-७५ ॥ इस प्रकार इन्द्रको बात सुनकर मैंने कहा—यह बतलाइये कि मुझे स्वर्गोप अन्न किस तरह प्राप्त होगे ? मेरा बात सुनकर इन्द्रने उत्तर दिया कि अभी तो दण्डकारण्य मनुष्यविहीन है। जब विष्वध पर्वतको वृद्धि रोकनेके लिए अगस्त्यजी देवताओंके प्रार्थना करनेपर काशी छोड़कर दण्डकारण्यको जाये, तब तुम उसा शरीरमें स्नान करके अपना कंकण उन ऋषिको दे देना ॥ ७९-७९ ॥ उस कंकणके दानसे तुम्हें स्वर्गोप अन्न मिलने लगेगा। अतएव इन्द्रके आज्ञानुसार मैं बहुत दिनोंसे जाकर यह सब खाया करता हूँ। इतने दिन बीत गये, किन्तु यहाँ मुझ कोई नहीं दिखाया पड़ा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ आज तुम्हो दीख रहे हैं। इससे ज्ञात होता है कि तुम अगस्त्य ऋषि ही हो। आज तुमने मेरा उद्धार कर दिया। अब कृपा करके मेरे दानको स्वीकार करो ॥ ८२ ॥ अगस्त्यने कहा कि इस तरह कहकर उस स्वर्गीय प्राणीने अपने कंकण उतारकर हमें दिये और असन्न मनसे विमानपर सवार होकर स्वर्गलोकको चला गया। तबसे वह सब उस सरोवरमें कभी नहीं उतराया और वह स्वर्गी स्वर्गलोकमें विष्वध मन्त्रोंको पाने लगा। हे लव ! मैंने जिस कङ्कणको उस समय दण्डकारण्यमें पारा था, उसे रामको दिया और रामने आज आपको दे डाला है। श्रीरामदासने कहा—हब लवने अगस्त्यसे पूछा कि उस वनका दण्डक यह नाम क्यों पड़ा ? अगस्त्य कहने

एकदा म वनं गतो मृगयार्थं स्वसेनया । ततो दृष्ट्वा मृगं राजा मृगपृष्ठे प्रदृष्टुवे ॥८८॥  
 एकाकी इयमाहूतो देशार्हशान्तरं ययौ एवं हि मच्छतम्भस्य मृगोऽदृश्योऽभवत्तदा ॥८९॥  
 ततः सोऽनितुषाक्रीतः प्रययौ वै जलाशयम् । तत्र पान्था उन्न स्तच्छं म राजा समन्तदे ॥९०॥  
 अशान्वा स्वगुणेषेति मृगोऽश्रममाययौ । तत्र तान् विहानां ताम्रजम्बां मृगोः सुताम् ॥९१॥  
 दृष्ट्वा चान्नानर्ता राजा सोऽपून्कामविमोहितः । तन्मता प्रार्थयामास रम्यर्थं माऽत्र रीन्नुप ॥९२॥  
 स्ववशा नृप नैवाहं तानाधानाऽस्मि मां प्रनम् । बहिर्भुगुस्तव गुरुमनस्त्वां वेदुम्यहं नृप ॥९३॥  
 यदि मामिच्छसि त्वं हि नहिं न स्थगुरु भृगुम् । प्रार्थयिन्वा मज सुखं मां वन्तो न्य विवाप च ॥९४॥  
 हन्पुक्तोऽपि तया गत्रा दंउरतां कामपीडितः । भुक्त्वा सुखं बलादेव जगाम नगरीं निजाम् ॥९५॥  
 ततोऽञ्जकका मां बाला दृष्ट्वा तानं ममागतम् । गावन्तो मकलं वृक्षं श्रवयामास विह्वला ॥९६॥  
 तद्वृत्तं स मुनिः श्रुत्वाऽञ्जलीं कृत्वा जलं कृषा । मज्जर्वन्स्वगुती बाला मां वयन् रक्तलोचनः ॥९७॥  
 दंहेन सह दंडस्य गज्यं वै धनयोजनम् । भवन्त्य भगादृग्धं मद्भाक्याच्च समं नतः ॥९८॥  
 इनीदकं तथा चास्तु तथा नष्टचराचम् । इति तच्छरणमाकुर्यं तात सम्प्रार्थ्य बालिका ॥९९॥  
 प्रार्थयामास शापस्य सषाऽधिं विनयान्विता । ततो मृगुः सुतामाह यदा यास्यति कुंभजः ॥१००॥  
 मुनिः काश्यास्थश्च दैत्यं तदाऽयं मजलो भवेत् । देवस्तथाऽत्र दासं हि कुरिष्यति मुनीश्वराः ॥१०१॥  
 अरण्यं दददतादि जाते तस्मान्सदा नराः । त्रमु देशं वदिष्यन्ति दंडकारण्यमत्र हि ॥१०२॥  
 यदा भविष्यत्पद्मेऽत्र रामागमनमुत्तमम् । भविष्यन्ति तदाऽत्र तानाक्षेत्राणि दण्डके ॥१०३॥  
 रामप्रसादात् क्षेत्राणि भविष्यन्ति ततो जनाः । रामक्षेत्राणिऽसदा वदिष्यन्ति हि दण्डकम् ॥१०४॥  
 मुनिरामप्रवादाच्च देशोऽयं पूर्वभुजः । भविष्यन्मुत्तम पुण्यः सौख्यदश्च मनोरमः ॥१०५॥

लक्ष्ये—इत्यादिबोधन उपरान्त दण्डक नामका एक देश वर्णन राजा या । वह सदा पापकर्मम रत रहा करता था ॥ ८८-८९ ॥ एक बार वह निकार मज्जनक लिए अपनी सेनाके साथ वनमें गया । वहाँ एक मृगके पीछे राजाने अपना घोड़ा दौड़ाया । वह अफला ही उस मृगके पीछे पीछे आगता हुआ देशान्तरमें आ पहुँचा और वहाँ वह मृग गायब हो गया । इसके बाद बहुत प्यास। वह राजा एक अलाशयक तटपर गया । वहाँ जल पिया, किन्तु उस पद नहीं जल हुआ कि मैं अपने गुरु भृगुके आश्रमपर पहुँच गया हूँ । वहाँ भृगुजी कन्या था । जिसका कि अभी राजावसे नशा हुआ था उस चन्द्रमाक सदृश सुनवाली ( चन्द्रानंता ) कन्याको देखकर राजा काममाहित हो गया और उसके सनाप जाकर उनके लिए प्रार्थना की । कन्याने उत्तर दिया कि हे राजन् । मैं स्वाम्य नहीं हूँ । इस समय मेरे ऊपर विभिन्न अधिकार हैं और भृगु ( मर पिता ) इस समय कहीं बाहर गये हुए हैं । मैं आपको जानता हूँ ॥ ८८-९३ ॥ यदि आप मुझे चाहते हैं तो अपने गुरु ( भृगु ) से जाकर कहें और मुझे अपनी पत्नी बनाकर आनन्दके साथ भाग कर । उसका ऐसा कहनेपर भी राजाने एक न सुनी और हुआ उसकी माय भाग करके अपनी मगराकी लोट गया । इसके अनन्तर जब उसके पिता भृगु घर आये तो विस्मय करती हुई उस अरजन्क कायान गारा समाचार कह सुनाया । इस वृत्तान्तको सुनते ही भृगु मार कायके जाल हुआ गया और मज्जन्तम जल भरकर कन्याको सान्त्वन दन हुए उन्होंने माय दिया कि दण्डकक साथ साथ उसका ही योजन राज्य चारा औरस जलकर सम्म हो जाय ॥ ९४-९८ ॥ उतनी जगहपर जल भी न रहे और न कोई जीव ही निवास करे । इस प्रकार माय सुनकर कन्याने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि अपने इस मायकी अवधि भी निवृत्त कर दीजिये । कन्याके प्रार्थना करनेपर भृगुने कहा कि जब भगवत्प नृप कन्या छानकर विष्णुके उत पार चले जायेंगे । उस समय वह स्थान सज्ज हो जायगा और वहाँ बड़े-बड़े श्रद्धा निवास करेगी । राजा दंडकके दुराचारसे उस देशको ऐसी दशा हुई है । इसीलिए लोग उसे दण्डकारण्य कहा करेंगे ॥ ९९-१०२ ॥ तभी चलकर जब रामचन्द्रजी उस देशमें जायेंगे तो उसमें कितने ही शेष वन जायेंगे और सबसे लोण उसी दंडकारण्यकी रामक्षेत्रके नामसे पुकारेंगे । १०३ ॥ १०४ ॥ भगवत्प

रेशेभ्यः सकलेभ्यश्च सुपुण्यं दण्डकं भवेत् । दण्डकेन समो देशो न भूतो न भविष्यति ॥१०६॥  
 इति तं बालिकाशुक्ला भृगुस्तम् हिमालयम् । ययौ तं मुनये दत्त्वा विधिना मुनिसंवृतः ॥१०७॥  
 भृगोः शोभाञ्च दण्डेन द्रष्टुं तद्राज्यमुत्तमम् । शनयोजनमानं तदभवद्वि समततः ॥१०८॥  
 यद्रामाश्रयनाभ्यं च ततः स्वस्थं न भूव तत् । पूर्वदण्डकारण्यं वराचरासमाकुलम् ॥१०९॥  
 इति त्वया यथा पृष्टे तया लब्धं मयादत्ते । कंकणस्य दण्डकस्य विचित्रे त्वां कथानके ॥११०॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्तिमुखाच्छ्रुत्वा लब्धस्तुष्टोऽभवत्तदा । तत्त्वा मुनिं च श्रीरामसेवायां तन्परोऽभवत् ॥१११॥  
 अथ रामश्चोत्सवनं तस्मै चित्रांगदाय ताम् । हेमां ददौ विवाहेन महामंगलपूर्वकम् ॥११२॥  
 पारिरर्हं ददौ कोटिमित्तं वारणादिकम् । महान्महोत्सवश्चासौदयोभ्याम् प्रदीर्घदे ॥११३॥  
 ततो विमर्जयामास चोग्रवाहुं नृपं प्रभुः । धृतयः पथिवाश्चापि ययुः स्वं स्वं स्थलं प्रति ॥११४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे बाह्याकीर्ण्ये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे

हेमाश्रयवरो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

## अष्टादशः सर्गः

( राम द्वारा ब्राह्मणीको रामनाथपुर राज्यका दान )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्त्वयोभ्यार्थं रजयामास जानकीम् । जगोप मेदिनीं कृत्स्नां सममागमेखलाम् ॥ १ ॥  
 राममुद्रां विना कस्य साकेने क्षुब्धभारिणः । नैवासीन्सुप्रवेष्टश्च रामराज्ये कदाचन ॥ २ ॥  
 नैवासीन्निर्गमश्चापि विना मुद्रां कदा बहिः । राममुद्राकिर्तं पत्रं गृहात्वा ते नृपोत्तमाः ॥ ३ ॥  
 ममनागमने चकुर्भूम्हां कुत्राप्यकुण्डितः । राममुद्रास्वरूपं च ते वदामि शृणुष्व तत् ॥ ४ ॥

मुनि तथा रामचन्द्रकी कृपासे वह देश फिर उग्रोकाक्षों हो जायगा और वहाँके लोग सुखी ही जायेंगे । फिर वहाँ सुन्दरता दिखायी देने लगेगी । वह पृथ्वीके समस्त देशोंसे पवित्र देश माना जाने लगेगा ॥ १०५ ॥ उस बालिकासे भृगुन कहा—भविष्यमे लोग कह्य कि दण्डकारण्यके समान न कोई देश हुआ है और न होगा ॥१०६॥ ऐसा कहकर भृगुने उसे एक मुनिकी और विद्या और सत्य ब्रह्मसे ऋषियोंके साथ समझा करनेकी हिमालय-पर्वतपर चले गये । इस प्रकार भृगुके शोभसे दण्डकका भी रोजन राज्य जल भुक्तार राम हो गया ॥ १०७ ॥ ॥ १०८ ॥ हुण्णर और रामके आगमनसे वह फिर पूर्ववत् हो गया और उसमें विविध प्रकारके जीव जन्तु आकर निवास करने लगे । इस प्रकार ४ पद ॥ मुनेने हमसे जो प्रश्न किये, मैं दण्डकारण्य तथा इस कंकण-विषयक कथानक वह सुनाया ॥ १०९ ॥ ११० ॥ श्रीरामदासन कहा—इस तरह अगस्त्यकी बात सुनकर लब्ध परम प्रसन्न हुए और अगस्त्यजीका प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रकी सेवाभ्य लग गये ॥ १११ ॥ इसके अनन्तर रामने उत्सवके साथ उस हेमा कन्यका विचित्र ससमारोह विवाह करके निशाग्रदकी दे दिया । चन्द्रोने कन्याके विवाहमें दहेजस्वरूप बहुतसे हाथ-पैड आदि करोड़ोंके सम्पत्तिका दान दिया । इसके बाद महाराज उग्रवाहुका विदा किया और निमंत्रणमें आये हुए राजे तथा ऋषियण अपने अपने स्थानकी लौट गये ॥ ११२-११४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे १७ रामतेजपाण्डंगविरचितं ज्योत्स्ना-माध्याटकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

श्रीरामदास बाले—इसके बाद रामचन्द्र सीताकी प्रसन्न करते हुए सप्तसागर मेखालावासी पृथ्वीकी रक्षा करते रहे । रामके राज्यमें कोई भी शस्त्रधारो मरुष्य बिना राममुद्रा-अंकित पत्र लिये नहीं बाहर या और बिना पुत्राके कोई बाहर भी नहीं जाने पाता था । राममुद्रासे चिह्नित पत्र लेकर संसार भरके राजे जहाँ चाहते

तिर्यग्मुखं पञ्चदश रेखाः प्रकल्पयेत् । पीता श्यामिका पंक्तिस्तुर्दिक्षु प्रकाशयेत् ॥ ५ ॥  
 पंक्तिर्द्वितीया शुभ्रैव हातव्या च तथाऽष्टमी । त्रयश्चेकदिगाम्य चतुर्थायां प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥  
 चक्षुष्माणपदान्येव कृष्णानि हि समाचरेत् । आरम्भश्चोत्तम्या हि समाभिर्दक्षिणे स्मृता ॥ ७ ॥  
 पश्चिमाभिमुखा स्थाप्या मुदा तत्रात्मसम्भूता । पूर्वस्येन सदा स्थेयं तदा कर्त्रा विनिश्चयात् ॥ ८ ॥  
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमे । अष्टमं नवमं चैव तथैकादशमुच्यते ॥ ९ ॥  
 तमश्चतुर्ध्यां पंक्तौ हि चतुर्थं षष्ठसप्तमे । तथैकादशमं ज्ञेयं पञ्चमायाः क्रमोऽधुना ॥ १० ॥  
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमे । नवमैकादशे चापि षष्ठायाश्च क्रमोऽधुना ॥ ११ ॥  
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमम् । नवमैकादशे चापि सप्तमो सङ्ख्याऽमिता ॥ १२ ॥  
 नवम्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं हि सप्तमं चापि नवमं दशमं स्मृतम् ॥ १३ ॥  
 तथैव द्वादश चापि दशम्याश्च क्रमोऽधुना । चतुर्थं च तथा षष्ठं सप्तमार्कं तथाऽमिते ॥ १४ ॥  
 एकादश्याश्च प्रथमं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं च नवमान्येव दशमार्कं तथाऽसिते ॥ १५ ॥  
 द्वादश्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं च सप्तमं चापि दशमं नवमं तथा ॥ १६ ॥  
 दशमार्कं तथा प्रोक्ता कृष्णा कृष्णना त्रयोदशी । एव मुद्रया पूरयित्वा राजा रामेति वै स्फुटम् ॥ १७ ॥  
 सितवर्णं गणनाममुद्रया हि निर्गमयेत् । एवं गममुद्रिकायाः स्वरूपं ते मण्योदितम् ॥ १८ ॥  
 एवं मुद्राङ्कितां रामां शिला विधेय्य आदरात् । ददौ साद्यापि भूम्या हि रामनाथपुरेऽस्ति हि ॥ १९ ॥

विष्णुदास उवाच

किञ्च भूतुरेभ्यश्च राघवेण समर्पिता । रामनाथपुरे पूर्वं स्वीयमुद्राङ्किता शिला ॥ २० ॥  
 तत्त्वं विस्तरंयेव कथयस्वाद्य मां गुणे । आश्चर्यं च त्वया प्रोक्तं श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखान् ॥ २१ ॥

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं श्रुत्वा विप्रा अङ्कितदापिनम् । हर्षाद्ब्रह्मपुग्भ्याम्ते दाक्षिणात्या द्विजोत्तमाः ॥ २२ ॥

काले जाते कहीं भी उन्हे रोक नहीं थी, जब मैं तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बताना हूँ, सो मुनो ॥ १-४ ॥  
 काल रंगकी खड़ी-बेड़ी पन्द्रह रेखाएँ खींचे । उनमें चारों ओरकी गूँगी पंक्ति देने लड़के रंगे ॥ ५ ॥ दूसरी  
 और आठवीं पंक्ति सर्वहूँ ही रहने दें ; इसके बाद ईशानकोणसे लेकर तीसरी रेख तक आगे कहीं जानेवाली  
 पंक्तियाँ काँध रंगसे लिखें । जिस बट उत्तरकी तरफसे पारम्भ करके दक्षिणमें समाप्त करनी चाहिए ॥ ६ ॥  
 मुद्राका मुख सदा सामने अपनी पश्चिमाभिमुख बनाये और स्वयं पूर्वकी ओर मुख करके बैठे : = । पहली,  
 दूसरी चौथी, छठवीं, सातवीं, आठवीं, नवीं, द्वादशी और पौनर्वी रेखाएँ चौकियाँ तथा पहली, दूसरी, चौथी,  
 छठवीं, नवीं, द्वादशी तथा सातवीं चौकी गूँग रंग काले रङ्गकी रहनी । फिर नवीं रेखाकी पहली, दूसरी,  
 चौथी, छठी और आठवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहनी । ६-११ फिर द्वादशी रेखाकी पहली, दूसरी, चौथी,  
 छठी, आठवीं, नवीं तथा दशवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहनी । बारहवीं रेखाकी पहली, तीसरी, दूसरी, चौथी,  
 छठी, सातवीं, आठवीं, नवीं दशवीं, बारहवीं तथा तेरहवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहनी । इस प्रकार अपनी  
 मुद्रिमें उपर्युक्त कोष्ठकोंको पूर्ण करनेसे 'रामा राम' यह शब्द साफ साफ संकेत वर्षोंमें लिख जायगा  
 ॥ १२-१७ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बतलाया । इस प्रकारकी मुद्रासे विहित किया रामने  
 ब्राह्मणोंकी दानस्वरूप दी थी जो आज भी रामनाथपुरमें रहनेवाले ब्राह्मणोंके पास विद्यमान है । १८ ॥ १९ ॥  
 विष्णुदासने पूछा कि रामने रामनाथपुरवासे उन ब्राह्मणोंको बहु अपनी मुद्रासे अङ्कित गिला, किस लिये दी  
 थी ? यह सब कथा विलम्बपूर्वक हमें बतलाइये । आपने यह आश्चर्यमयी बात कह दी । इसका पूरा विवरण  
 मैं आपके ही मुँहसे सुनना चाहता हूँ । २० ॥ २१ ॥ श्रीरामदास कहने लगे कि एक समय रामचन्द्रकी यह

ययुस्ते राघवं द्रष्टुमयोष्यायां मुदान्विताः । २३॥

गन्धर्वराजगेहे स भोजनं कर्तुमुद्यतः । स्नान्वा तत्र सुहृद्गेहे मीनपा बन्धुभिः सुखम् ॥ २४॥  
 पुत्राभ्यां भोजनं कर्तुमायते संस्थितोऽभवत् । गन्धर्वराजः शिरासं पूजयामास मादरम् ॥ २५॥  
 परिवेषितानि पात्राणि मुहूर्त्ताभिरुदा जगत् । दिव्यान्नैर्मधुरैश्चैः पक्वान्नैर्विविधैरपि ॥ २६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे विप्रा रामनाथपुरदिक्ताः । सुहृद्गेहे गतं रामं भुञ्चन् तत्र कपुर्मुदा ॥ २७॥  
 गन्धर्वराजद्वारस्थैर्दूतैः शिरासं वाप हि । भूमराणामागमनं तदा शीघ्रं निवेदिनम् ॥ २८॥  
 तद्भूतवचनं श्रुत्वा राघवश्चामिमम्भ्रमात् । शत्रुद्रुम्य स्वयं विप्रान्ननाथं शिगमा प्रभुः ॥ २९॥  
 गन्धर्वराजगेहे तार्क्ष्यान्वा दृष्ट्वाऽऽपनावि हि । स्नातुमाज्ञापयन्महान् भोजनार्थं रघूत्तमः ॥ ३०॥  
 तदा ते मन्त्रपण्यमुदिष्टाः सर्वे परस्परम् । भोजनपूर्वमेवैतं याचनीयं स्ववाञ्छितम् ॥ ३१॥  
 केचिद्भुक्षता विप्रा निर्वैद्यं च रघूत्तमे । नोपेक्षाऽस्ति मर्दवायं ददाति द्विजवाञ्छितम् ॥ ३२॥  
 मन्त्रमेवायं रामस्य द्विजवाञ्छितपूरणम् । तत्र तान्मन्त्रमाणांश्च रामो दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः ॥ ३३॥  
 शतं मयाऽभिलषितं युष्माकं मुनिपुङ्गवाः । राज्ञेच्छया समायताः किमर्थं श्रमिन्ना द्विजः ॥ ३४॥  
 कथं न प्रेषितः सिध्यस्तदाक्येनैव वै मया । शिरासं विष्यन् युष्माकं पुरितां क्षणमावता ॥ ३५॥  
 एवं तान्ब्राह्मणानुक्त्वा लक्ष्मणं प्राह रामवतः । मया ब्रह्मपुरस्याद्य विप्रैरभ्यो राजवर्षितम् ॥ ३६॥  
 शिलायां लिख्य मन्नाम दानं दत्तमिदं न्विति । तथ्येति रामवाक्येन लक्ष्मणश्चातिमम्भयात् ॥ ३७॥  
 रघुङ्कारान्तमाहूय शिलायामनयतामिति । शीघ्रमज्ञापयामास ते जगद्वैराग्यचराः ॥ ३८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे विप्राः प्रोचुस्ते राघव मुदा । कृत्वाऽशनं लेखनीयां शिलां पश्चाद्रघूत्तम ॥ ३९॥  
 किमर्थं क्रियते राम त्वरा लेखनकर्तॄणि । परिवेषितानि पात्राणि त्रयं चापि क्षुधादिताः ॥ ४०॥

इणमा सुनकर कि वे ब्राह्मणोंको कामना पूर्ण करते हैं । दक्षिण देशके रहनेवाले बहुतसे ब्राह्मण हजारोंकी संख्यामें एकत्रित होकर रमते मिलने गये । उद्यर राम प्रसन्न मनसे गन्धर्वराजके भवनमें भोजन करने गये हुए थे । सीता तथा भ्रातृओंके साथ उन्होंने यहाँ ही स्नान किया था और जगने दोनों बेटोंके साथ भोजन करने बैठे थे । गन्धर्वराज मादर रामका पूजन किया ॥ २४-२५ ॥ गन्धर्वराजके घरकी स्त्रियों तथा मित्रों गोप्यतासे दिव्यान्न तथा विविध प्रकारके पक्वान्न आदि परमेश्वर प्रारम्भ किया ॥ २६ ॥ इसी समय रामनाथपुरके निवासी विप्राण रामके द्वारपर जाये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि राम अपने सम्बन्धोंके घर गये हैं । बस, वे लोग भी गन्धर्वराजके यहाँ जा पहुँच और द्वारवालोंने रामको यह खबर दी कि रामनाथपुरके ब्राह्मण जाये है । दूतकी बात सुनकर स्वयं राम मुरन्त उठे और उन लोगोंके पास जाकर इणाम किया और उन्हें गन्धर्वराजके घरमें ले गये । आसत्पर्य विडाकर उनसे स्नान भोजन करनेके लिये कहा ॥ २७-३० ॥ उस समय उन सबोंने संवत्सर करके निश्चय किया कि भोजन करनेके रहने ही हम लोग अपनी माँग उपस्थित कर दें । उनमेंसे कुछने कहा कि इतनी जरूरी बात है, राम क्यों राघवोंको उपक्षा नहीं करते । बल्कि वे सदा ब्राह्मणोंका याचना पूरी करनेको तैयार रहते हैं । इन रामका यही वचन है कि ब्राह्मणोंकी माँग पूर्ण किया करें । इस प्रकार परस्पर सलाह करते हुए ब्राह्मणोंका दखकर रामने कहा कि हम आप लोगोंकी इच्छाको जान गये हैं । आप लोग राजकी इच्छासे मेरे पास जाये हैं । सो इसके लिए आपने इतना परिश्रम क्यों किया ? ॥ ३१-३४ ॥ आप अपने किसी मित्रको ही भोजन दिये होने तो मैं अणघरमें आपकी इच्छा पूर्ण कर देना ॥ ३५ ॥ इस तरह उन ब्राह्मणोंसे कहकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि आज मैंने ब्रह्मपुरका राज्य ब्राह्मणोंको दान दे दिया है । एक शिखर मेरा नाम लिख ओ और उसमें यह भी लिखवा दो कि मैंने ब्राह्मणोंको ब्रह्मपुरका राज्य दान दे दिया है । "बहुत अच्छा" कहकर लक्ष्मणन मुरन्त पत्थर सोदनेवाले सन्तगसोंको बुलवाया और एक बड़ी शिला ढोंकायी । दूत लक्ष्मणके आज्ञानुसार मुरन्त चम पड़े ॥ ३६-३८ ॥ तब तब विधेने रामसे

कृतेषां वचनं धन्या फलभारान्वांचविनान् । पुष्पान्स्थापयामास विप्राणां वरमादरात् ॥ ४१ ॥  
 उवाच मधुरं वाक्यं राघवः स्मितपूर्वकम् । फलार्नीमानि भो विप्रा मध्वयच्च यथासुखम् ॥ ४२ ॥  
 लेखयित्वा शिलायां हि यदा मृदां करोम्यहम् । तदाऽश्ननादिकं कर्म सर्वमन्यत्करोम्यहम् ॥ ४३ ॥  
 क्षणं वित्तं धनं चित्तं क्षणिकं च स्वर्जीवितम् । यमोऽतिनिर्दृष्टः सोऽस्ति धर्मः क्षीप्रमवधरेत् ॥ ४४ ॥  
 शतं विहाय भोक्तव्यं महस्र स्नानमाचरेत् । लब्धं त्यक्त्वा तु दानव्यं कौटिं त्यक्त्वा शिवं भजेत् ॥ ४५ ॥  
 कौटिर्विघ्नानि गीतायां दण्डकोटानि आह्वयाम् । शतकोटानि जायन्ते दाने विघ्नानि भूमुखाः ॥ ४६ ॥  
 अतः कार्या त्वरा दाने सर्वदा तु नरोत्तमैः । निद्रायाः पूर्वकाले तु निद्रायाः परममथा ॥ ४७ ॥  
 भोजनान्पूर्वकाले तु भोजनान्परममथा । क्षणे क्षणे मार्ताभक्षा जायन्तेऽत्र द्विजोत्तमाः ॥ ४८ ॥  
 तस्मान्कार्या त्वरा दाने मुनिर्या प्रथमे क्षणे । कृता क्षणेनापरे माऽन्येतदेव मतं मम ॥ ४९ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र हृत्कारैः शिलां धरा । यमानीना मण्डक्रीजा नवहस्ता ममन्ततः ॥ ५० ॥  
 तस्यान्ते लेखयामासुर्हृत्काराः स्फुटाक्षरैः । सूर्यवशोऽर्चयन्नाथ ममद्वीपेभ्यरेण हि ॥ ५१ ॥  
 त्रेतायां दाशरथिना रामराज्ञा द्विजोत्तमान् । यथा ब्रह्मपुत्रस्यैव राज्यदानं कृतं मृदा ॥ ५२ ॥  
 यावत्तपति स्ते भानुर्वायदस्यत्र मे कथा । पारम्यवर्तते वायुस्तावदानं ममास्त्विदम् ॥ ५३ ॥

सम्मान्योऽयं धर्मसेतुर्द्विजानां काले काले पालनो यो भवतिः ।

सर्वानेतान् मायिनः पार्थिवं द्रान् भूयो भूयो याचते रामचन्द्रः ॥ ५४ ॥

एवं विलेख्य श्रीरामः शिलायां निजमुद्रिकाम् । रामनामांकितं वायुपुत्रेणारुपमं यदा ॥ ५५ ॥

आंजनेयस्य आरेण चित्रा जाता तदङ्किता । राजारामेति तस्यान्ते ददृशुश्च स्फुटाक्षरम् ॥ ५६ ॥

कहा कि आप पहले भोजन कर लीजिये, तब शिलालेख लिखवाइयेगा है राम । आप लिखमकी इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं ? पाशोम सामग्रियां परामा जा चुकी है और हम लोग भी भुख है । ३९ ॥ ४० ॥ उनकी बात सुनी तो रामने बीसके बात विविध प्रकारके फल योग्यकर उनके सम्मने रखवा दिये और कहा-हे विप्रगण ! आप लोग सुखमे यह फल खाइए । हम तो जित्ना लिखवाकर और उसपर अपनी मुद्रा प्रहित कर देनेके बाद ही भोजन करेंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वनक्षणस्वायी है, चित्तवृत्त क्षणिक है, अपना जीवन भी क्षणभंगुर है और पमराज वका निर्दयी है । इसलिये जियने साध हो तक, पाणिक काम पूरा कर हास ॥ ४४ ॥ सौ काम सामने हों तो उन्हें त्यागकर पहले भोजन करना चाहिए, महत्त्व कामोको त्यागकर पहले स्नान करना चाहिए, लाल कामोको त्याग करके घड़ने दान करना चाहिए एवं करोड़ों कामोको छोड़कर पहले शिवका भजन करना चाहिए ॥ ४५ ॥ हे विप्रो ! गीताका पाठ करना समय परावृत्ति विपर, गणस्नानम दण करोड़ विघ्न और वाय-कर्ममें ही करोड़ विघ्न आकर उपस्थित होते है ॥ ४६ ॥ इसलिये सज्जनोंको चाहिए, कि दानमे यमदा ही धनदा करें । निद्राके पूर्वकालमे, निद्राम उठनके बाद, भोजनके पहले और भोजनके बाद लण क्षणमे बुद्धि बदल करती है । इसीलिए प्रथम भक्षणम जैसी अपनी बुद्धि हो गयी हो उसके अनुसार रामकर्म हीन कर हासनी चाहिये । यह मेरा निजी मत है । ४७-४८ । उसी समय हलगर्जने भी हाथकी लम्बी-चीड़ी गण्डकी नदीकी एक प्रच्छा-यी शिला ल्याकर रामके सामने रख दी ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर सस्तरासोने साफ-साफ सस्तरासे उस शिलापर सादकर लिखा कि 'सूर्यवशमे उत्पन्न और सप्तद्वीपक अचोक्षर महाराज पनरपका पुत्र मैं राजा राम प्रमप्रतापुत्रक ब्रह्मपुत्रका राज्य दान करक साहाय्योकी दे रहा है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ यद्य तक कि आकाशमे सूर्य दलना सदन रहे, जब तक सस्तरा मेरा नाम रहे और जब तक कि पवन चल्ता रहे, तब तक मेरा यह दान दान माना जाय ॥ ५३ ॥ मेरे जाने ओ राजे होनेवाले हैं, उनसे मैं राम बार-बार यहो बात मागता हूँ कि 'साहाय्योके इस धर्मसेतुकी आप लोग सदा रक्षा करते रहिएगा' ॥ ५४ ॥ इस प्रकार लिखवाकर रामने हनुमन्तको द्वारा उसपर अपनी रामनामांकित मुद्रा लगावायी ॥ ५५ ॥ हनुमानकोक बारसे शिलापर रामकी मुद्रा खुद गयी और उसमे "राजा राम" यह शब्द साफ

रामनाथेन पदं पुरदानं द्विजोत्तमान् । रामनाथपुरं चेति तदारभ्य प्रयां गतम् ॥५७॥  
 तस्य ब्रह्मपुरमिति नाम प्राथमिकं स्मृतम् । रामनाथपुरं चेति तस्यैवाण्याजपरा स्मृता ॥५८॥  
 शिलामारमितं द्रव्यं दक्षिणार्धं निधाय सः । तां शिलां पूज्य विप्रेभ्यः श्रीरायः सीताया ददौ ॥५९॥  
 ततोऽग्नवीक्ष्यपुत्रं भोजनानन्तरं त्वया । विमानेन शिलां नेया रामनाथपुरं द्विजैः ॥६०॥  
 कषुकण्डं ततः पत्रं लेखयामास राघवः । ब्राह्मणानां त्वया कार्यं साहाय्यं सर्वदेति वै ॥६१॥  
 ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे ददुराशीः सहस्रशः । अकारं भोजनं रामस्ततस्तैः परिवेष्टितः ॥६२॥  
 ततः सर्वे विमानेन ययुर्विप्राः पुरं प्रति तान्मुष्टा सारुतिश्चापि विमानेन ययौ पुनः ॥६३॥  
 एवं अकारं दानानि समशीघ्रान्तरेषु हि । सहस्रशो रामचन्द्रस्तेषां सख्या न विद्यते ॥६४॥  
 रामनाथपुरस्थास्ते विप्राः कालान्तरेण वै दुष्टराज्यभयादग्रे तां शिलां भयविह्वलाः ॥६५॥  
 तदाके प्रविपिष्यन्ति ततः कष्टं भजन्ति ते । मर्तुकान् द्विजान्मुष्टा तटाकान्मारुतिः पुनः ॥६६॥  
 बहिर्निष्कास्यति शिलामग्नं कालान्तरेण हि ।

विष्णुदास उवाच

किं कष्टं भूतुरानग्रे भविष्यति स्वजीविते ॥६७॥  
 यतस्ते त्यक्तकामाश्च भविष्यन्ति वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

अग्रे कश्चिद्दुष्टराजा भविष्यत्यवनीतले ॥६८॥

स ताभिषेच्य विप्रांश्च तद्राज्यहरणेच्छया बदिष्यति कलौ राजा पुष्पाकं दानमर्पितम् ॥६९॥  
 यदि रामेन तदानपत्रं मे दृष्टिगोचरम् । कर्णीयं न चेच्छीघ्रं यावत्कालं पुणेद्भवम् ॥७०॥  
 पुष्पाभिर्वस्तु यद्भुक्तं तत्सर्वं दीयतां मम । नोदेत्पर्वान्वधिष्यामि भूतुराणां यदस्त्वहम् ॥७१॥  
 ततस्ते नाशनाः सर्वे भुन्वेद् वृषनेरन्वा । भयभीता मंत्रयित्वा नृपं प्रोत्तुस्त्वरान्विताः ॥७२॥

साकं शिवायी देने लगा ॥ ५६ ॥ रामने ब्राह्मणोंको वह पुर दान दिया था, इसीसे उसका रामनाथपुर नाम पड़ गया । ५७ ॥ पहले उसका ब्रह्मपुर नाम था । अबसे रामने उसको दान दे दिया, तभीसे रामनाथपुर उसकी संज्ञा हुई । ५८ ॥ उस शिलाकं तोल भर द्रव्य दक्षिणाके निमित्त रखकर सीताके साथ रामने उन विप्रोंको पूजा की और वह शिला उनको दे दी ॥ ५९ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्जीसे कहा कि भोजन कर लेनेके बाद इन ब्राह्मणोंके साथ जाकर यह शिला रामनाथपुरमें पहुँचा आना ॥ ६० ॥ इसके बाद रामने कषुकण्डको एक पत्र लिखवाकर उन ब्राह्मणोंको दिया : जिसमें लिखा था कि आप सदा इन ब्राह्मणोंकी सहायना करते रहें ॥ ६१ ॥ तदनन्तर प्रसन्न मनसे विप्रोंने आशीर्वाद दिया और रामने इन सबके साथ बैठकर भोजन किया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर वे सब विप्र पुष्पक विमानपर बैठकर अपने आपसको बल और रामसे पूछकर हनुमान्जी को विमानपर बैठकर उनके साथ-साथ गये ॥ ६३ ॥ इस तरह सत्तो ठायीं रामने हजारों दान किये । ठीक तरहसे जितनी सही संख्या नहीं जानी जा सकती ॥ ६४ ॥ रामनाथपुरमें रहनेवाले वे विप्र भविष्यमें दुष्ट राजाओंके भयसे उस शिलाको ताम्बावर्ण फेंक देंगे, जिससे उनको बड़ा कष्ट प्राप्त होगा । जब वे मरनेपर उत्सारु हों जायेंगे तो हनुमान्जी उस शिलाको फिर निकालेंगे ॥ ६५ ॥ विष्णुदासने पूछा कि ब्राह्मणोंको आगे चलकर अपने जीवनमें कौन-सा कष्ट उठाना पड़ेगा । ६६ ॥ ६७ ॥ जिसके लिये उन्हें वह शिला त्यागनी पड़ेगी, सो कहिये श्रीरामदासने कहा कि पृथ्वीतलमें आगे चलकर एक कोई दुष्ट राजा होगा ॥ ६८ ॥ वह कलियुगी राजा उन ब्राह्मणोंको मारकर उनका राज्य छीननेकी इच्छासे कहेगा कि यदि रामने तुमको यह राज्य दान करके दिया है तो वह दानपत्र दिखाओ । नहीं तो इतने दिनों तक इस राज्यकी जितनी आज्ञा तुम लोगोंने ली है, वह सब लाकर दे दो । नहीं तो मैं सबको मार डालूँगा । क्योंकि ब्राह्मणोंके लिए मैं

मासेनैकेन पत्रं ते हर्षयिष्यामहे वयम् । ततो ह्युचोच तन्माजा तेऽपि तूष्णीं पुरं ययुः ॥७३॥  
 तटाकस्य तटं भिक्षा प्रवाहाः सुतशस्तवः । मोचयामासुः सर्वत्र नातं तस्य जलस्य ते ॥७४॥  
 ददृशुः सकला विप्रास्तवस्तौ प्राणसंकटम् । शान्ता तत्र निगहामा जिघेदुः समस्तटे ॥७५॥  
 राघवं परमात्मानं चिन्तयामासुगदरान् । एवं मासे न्वनिकान्ते वर्षं शान्त्वान्मनो नृसत् ॥७६॥  
 भयार्पणार्थस्यक्तुकावाद्यास्तस्मिन् प्रलाशये । उदा तेषां शिवः पुत्राश्रकः कोटाहल भृशम् ॥७७॥  
 तान्सर्वान्सांत्वयामासुर्नानार्नान्युत्तरं द्विजाः । स्वयं ह्मात्वा द्विजाः सर्वे ददृशुः सान्त्वयन्ते कथम् ॥७८॥  
 चक्रुः प्रदक्षिणाः सप्त तटाकायौत्तमाननाः । ऊचुर्दीर्घस्वरेणैव प्रवदुः संपुटाः ॥७९॥  
 हे राम जानकीकांत त्वहानादीदृशी गतिः । ज्ञाताऽहमाकं मृताश्रयत्वं सर्वान्पश्य रघूनम ॥८०॥  
 पुरोद्भवं तु यदुद्भव्यं पूर्वजैर्भुक्तमेव तन् । एतावन्कालपयन्त्यमममिश्राधुना कृतः ॥८१॥  
 तत्ररक्षेयमस्मरुयात्तमवस्तुष्यस्याम जीवितम् । ह्युक्त्वा त्राकणाः सर्वे निमीन्य नयनानि ते ॥८२॥  
 चिन्तयामासुः स्वीयेष्टा देवता मरणोत्सुकाः । एतस्मिन्मरणे तु त्र देवागारे हनूयतः ॥८३॥  
 बाणान्मूर्तेः प्रकटः संबभूवाङ्गनोमुतः । दीर्घस्वरेण तान् प्राह भूमुरान्मममादृतिः ॥८४॥  
 ह्य मा जीवितान्यय न्यत्राप्य त्राह्यगोचराः । आगतो राघवस्याह दामाश्च नेनमुद्भवः ॥८५॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा द्विजास्ते विस्मयान्विताः । उन्मील्य नयनान्यग्रे ददृशुर्वापूनन्दनम् ॥८६॥  
 दीर्घकादु महाभोर पिङ्गकेशविराजितम् । जरठ पर्वताकारं रामनामप्रमाणम् ॥८७॥  
 तं दृष्ट्वा ते द्विजाः सर्वे प्रणेमुर्दृष्टवान्माः । कथयामासुस्त सर्व स्वीये वृत्त सविष्टारम् ॥८८॥  
 ततः स मासुर्विबेगाभ्यसस्तां शिलां बहिः । निष्कास्य विप्रवर्यैर्स्तेः शिलां पृक्वा स्वयं कपिः ॥८९॥

यमराज हूँ ॥ ६९-७१ ॥ राजाकी ऐसी बात सुनकर बाहूण मथमात हो लयो परस्पर लल हू करके उससे बोले कि एक महीनमे मैं आपका बहु दानपत्र खाजकर दिखाऊँगा । यह मुनकर राजन्त ब.शणाको छोड़ दिया और वे धुपचाव लोटकर अपने-अपने घर चले गये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वही पटुनकर उन्होंने उस लालका बाँध छोड़ दिया । जिससे सँवड़े सोते वह निकले और चारों ओर फँदकर वहनपर भी नहागका ज. लहा चुका । जब बाह्याणने देखा कि अब प्राण संकटम का गया है तो सन्नक सब उसीके एक ऊँच काररन उपवास करने हुए बैठ गये और परमात्मा रामचन्द्रजीका ध्यान करने लग। इस प्रकार एक महान बार जानेपर जब उन विप्रोंने सोचा कि अब बहु दुष्ट राजा हमको मर डलेगा तो ममस अपने प्र.ग र.गनक लिए तैयार हो गये । उस समय उनके घरकी स्त्रियाँ तथा बच्चे आश्चर्यक दु.मित हानक कारण सबक सब विल्ला-चिन्सकर रोने लगे ॥ ७४-७५ ॥ तब उन्होंने शिवा बच्चाका मन्नक प्रकारका नातिमजी बात सुनाकर सान्त्वना दी । स्वयं उन विप्रोंने स्नान करके नाना प्रकारके दान दिये । फिर उन्होंने उस लालाकको साथ परिक्रमा की और उत्तरकी ओर मुख करके सड़े हो गये हाव जाहकर ऊँच स्वरसे वे कहने लगे हे राम ! हे जानकीकान्त ! तुम्हारे दिखे हुए वानसे आज हमारी यह दुर्दशा हो रही है हे रघून्तम ! अब तुम हम लालाको मरा हुआ समझो ॥ ७८-८० ॥ पूर्वकालमें हमारे पूर्वजोंने जो धन इस राज्यसे पाया, वह सब उन्ही लालाके लबे कर दिया । अब हम कहसि प्रसन्न घन लाकर इस राजाका दे. उनका धन जुटाना हमारी शान्तिके बहुर है । अतएव हम अपने शरीरको त्याग देंगे । इतना कहकर उन मरणाशुल विद्याम नेम मूर्ख लिये और अपने इष्टदेवका ध्यान करने लगे । उसी समय पासके देवालयमें प.प.णमय. मूर्तिसँ हनुमानजी प्रवर हूँ और नार.जोरसे चिन्सकर कहने लगे — ॥ ८१-८४ ॥ हे ब.हूणो ! तुम लौट अपने प्राण मत त्यागो । रामचन्द्रका सबक छञ्जनीपुत्र मैं हनुमान् भागया । इस प्रकार उनकी बात सुनकर विरिम्त का.मे उन सबोंने नेम खोलकर हनुमान्जीको देखा ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय उन हनुमान्जीका सम्भा.तया मवानक हाथ पा, पीले-पीले केश थे, बूकी अवस्था की, पर्वताकार शरीर था और वे निरन्तर रामनामका उच्चारण करते आते थे ॥ ८७ ॥ इनकी देखा लो प्रसन्न नितसे उन बाह्यणोंने प्रणाम किया और विस्तारपूर्वक अपने



लगाम दुष्टराजानं दशैशमाय तौ शिला । रघुसुत कता इष्टु विप्र राजाऽति सिद्धः ॥९०॥  
 तं तदा रोषयाभाय शूराग्रं गण्डजो नृभू । तस्मिन्नाव नदीके ह नत्र विप्राः स्थिताः पुनः ॥९१॥  
 नृपं मोचयितुं ये ये राज्ञाः समानतुः । तस्मिन्नाव नदीके ह नत्र विप्राः स्थिताः पुनः ॥९२॥  
 द्विजहृत्पापशमनाद्घृतापशमनं । तस्मिन्नाव नदीके ह नत्र विप्राः स्थिताः पुनः ॥९३॥  
 राज्यदानेन रामस्वीकार्यं लोकांश्चरति पुनः । तस्मिन्नाव नदीके ह नत्र विप्राः स्थिताः पुनः ॥९४॥  
 उदरमपारंवेति नाम्ना मृतः प्रसिद्धिमतः ।

स्नानं दिता तस्मिन्नाव नदीके ह नत्र विप्राः स्थिताः पुनः ॥९५॥

ततः प्राह पुनर्विप्राः नृमांस्तुष्टमनः । भूयसां कृत्वा गुहां यत्ना तत्रैव स्थापिताः शिला ॥९६॥  
 न भयं वोऽस्तु मो विप्रा युष्माकं साधनमस्मिह । तस्मिन्नाव नदीके ह नत्र विप्राः स्थिताः पुनः ॥९७॥  
 इन्द्रमुक्त्वा गुणरूपोऽभून्मर्षायभून्मर्षी द्विजप्रभः ।

तौ शिलां स्थापयाम तुभूम्भ मेऽतीत्यस्ततः ॥९८॥

ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे जम्मुः स्व स्व गृहे प्रति । तदाऽऽरभ्य न केनापि तेषां राज्यं हृतं कदा ॥९९॥  
 एवं शिष्य मया प्रोक्ता कथा भाव्य तत्रागतः । पूज्यमानं तस्मिन्नाव नदीके ह नत्र विप्राः स्थिताः पुनः ॥१००॥  
 अद्यापि तत्र तैर्विप्रास्तद्राज्यं भुञ्जते सदा ।

ये ये जाता नृपा भूयसां रामाणां मानयन्ति ते ॥१०१॥

एव नाना कौतुकानि रावयेण कृतानि हि । गुणरूपो भूयसां कृत्वा गुहां यत्ना तत्रैव स्थापिताः शिला ॥१०२॥

इति श्रीशतकोटि रामचरितम् । आनन्दविरचितम् । पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ।

रामचरितम् । पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः । पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ।



सारा वृत्तान्त कह मुनाया ॥ ८८ ॥ इसक अनन्तर हुमायूँ ने हिम उतार कर वस निकालकर अपने  
 जागे रख दी और ब्राह्मणों से उस दुष्ट राजा के लिये नदीके किनारे एक गुहा का निवास बिल्लित  
 उस शिलाको देखकर राजा बहुत चकराया ॥ ८९ ॥ ९० ॥ तब तो हुमायूँ ने गुहा के निकट एक  
 सरोवरक तटपर ल गये और गुहापर बड़ा दण्ड मारकर हुमायूँ को सिंगहा उनके पास आये,  
 हुमायूँजीने अपनी लम्बी पूछके डारकर हुमायूँ से कहा कि तूने मेरी गुहा को लूटकर मेरी  
 मान्जीने उसी सरोवरपर हारण किया ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसक अनन्तर प्रसन्न मनसे ब्राह्मण लौटकर  
 अपने-अपने घरोंको चले गये तबसे इसी राजा उनक राज्यता हारण नही किया ॥ ९३ ॥  
 शिवालयकी स्थापना की ॥ ९४ ॥ उस सरोवरमें स्नान करनेसे मनुष्यको दीर्घज, दीवक और मानसिक ये  
 तीनों लाभ दूर हो ज ते है ॥ ९५ ॥ इसके बाद गुहामें जने उन सरोवरको विजय कह — पृथ्वी एक गुफा  
 बनाकर उसमें यह शिला रख दी ॥ ९६ ॥ इससे तुमको निराश प्रकारका भय नहीं है । मैं सदा तुम्हारे  
 पास रहूँगा । तुम सब सर्वदा भगवान् रामदास स्मरण करत रहा । इतना कहकर सबक समझ हुमायूँजी  
 अपनी उसी पाषाणमयी प्रतिमामें स्नान हा गये ॥ ९७ ॥ इस कि हुमायूँजीने ब लाया था, विप्राओं गुहा लाकर  
 बड़े यत्नसे यह शिला उसीके किनारे रख दी ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ इसक अनन्तर प्रसन्न मनसे ब्राह्मण लौटकर  
 अपने-अपने घरोंको चले गये तबसे इसी राजा उनक राज्यता हारण नही किया ॥ १०० ॥  
 हे—हे शिष्य ! मैंने भाषी वृत्तान्त तुम्ह कह मुनाया । अज भ वेह ब्राह्मण उस राज्यका उपभोग कर  
 रहे हैं । पृथ्वीतलपर जितने राजे हुए, वे बराबर रामकी आज्ञाका मानते आते हैं । इस प्रकार अवश्यदाये राम  
 अपने पुत्रों, सीता तथा भाइयोंके साथ नाना प्रकारके कौतुक करत रह ॥ १०१-१०२ ॥ इति श्रीशतकोटिराम-  
 चरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः । पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ।

## एकोनविंशः सर्गः

( रामकी दिनचर्या )

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य वदाम्यद्य रामाज्ञः शुभावहः । दिनचर्या राज्यकाले कृता लोकान् हि शिषितुम् ॥ १ ॥  
 प्रभाते गायकगीतैर्विधितो रघुनन्दनः । नववाद्यनिनादाश्च सुखं शुभाव सीतया । २ ॥  
 ततो ध्यात्वा शिवं देवीं गुरु दशार्थं सुगन् । पुष्पगीर्वाणि मानव देवतापत्नानि च ॥ ३ ॥  
 नानाक्षेत्राण्यरण्यानि पर्वतान्मातृगणस्तथा । नदांश्चैव नदोः पुण्यास्तनः सीता ददर्श सः ॥ ४ ॥  
 प्रणमन्ती समुत्थाप्य घृत्वा सीताकर प्रभुः । मञ्चकाद्वतीयाथ दामोभिः परिवेष्टितः ॥ ५ ॥  
 वह्निः कसां क्षनैर्गत्वा सम्पाद्यावश्यकं प्रभुः । ययौ पुनः स दामीभिः कांडाशालां पशुतमः ॥ ६ ॥  
 कृत्वा शौचविधिं रामो दन्तशुद्धिं चकार स । ततः स्नानं कदा मेहे सगरां वाष्करोत् प्रभुः ॥ ७ ॥  
 आरुह्य शिविकायां स भूसुरैर्यानिमन्वितैः । वेष्टितः सरयुं गत्वा पानं मुक्त्वा गृहे प्रभुः ॥ ८ ॥  
 पञ्चथामेव क्षनैर्गत्वा सरयुं प्रणिपद्य च । सरय्या, पुनतः स्थाप्य नारिकेल सदक्षिणम् ॥ ९ ॥  
 ततांचूलं पुनर्नत्वा स्तुत्वा सम्पक् प्रसाद्य च । स्नान्वा यथाविधानेन ब्रह्मघोषपुरःसरम् ॥ १० ॥  
 प्रातः सन्ध्यां ततः कृत्वा ब्रह्मयज्ञं विधाय च । दत्त्वा दामान्यनेकानि ययौ मेहे रथेन हि ॥ ११ ॥  
 कम्पवन्धैर्वेष्टितेन रौप्यरत्नमयेन च । सुस्नातघ्नतुरगयुक्तेन ज्वनितेन च ॥ १२ ॥  
 गृत्वा होमं विधानेन शिवं सम्पूज्य सादरम् । कौस्तुभां च तुमित्रां च कीर्केपीं च समर्चयत् ॥ १३ ॥  
 कामधेनुं कल्पवृक्षं पारिजातं तु पुष्करम् । विनामणि कौस्तुभं च पूज्य मीनायुनो हरिः ॥ १४ ॥  
 मुनिपुङ्खं वटं बिल्वमश्वत्थं तुलसीं तथा । शमीं पल्लवं दुर्वां च राजवृक्षमपूजयत् ॥ १५ ॥  
 मानुं सम्पूज्य स नत्वा सम्पूज्य द्वारदेवताम् । गोमृषाक्षरणांश्च रथं शस्त्राणि भूगुरान् ॥ १६ ॥  
 कोट्टागाराणि कोक्षाश्च पाकशालामपूजयत् । मिहामने तथा छवं चाधरे कपजने तथा ॥ १७ ॥

श्रीरामदास ब.ले—हे शिष्य ! मुनो, अब मैं रामचन्द्रजीकी दिनचर्या बताता हूँ । जिसे वे सबको गिना देनेके लिए किया करते थे । राम प्रतिदिन प्रातःकाल गायकों गीत तथा बाजोंके मोठे स्वर सुनकर सीताके साथ जागते थे । इसके अनन्तर शिव, देवी, गुरु, देवताओं, दशरथ, पवित्र लिंगों, माताको, देव-मन्दिरों, अनेक प्रकारके झण्डों, अण्डों, पवनों, सरोवों, नदों और नदियोंका स्वरण करके सीताको बेलने थे ॥ १-४ ॥ प्रणाम करती हुई सीताको उठाकर राम उनका हाथ पकड़ हुए भवमें उतगते थे । फिर बहुत-सी दासियों-के बिने हुए जाते और आवश्यक कार्योंका संग्रहण करते थे । इसके बाद दासियोंके साथ-साथ कांडाशालाको जाते और वहाँ शौचविधि करनेके पश्चात् दन्तशुद्धि करते थे । इसके अनन्तर कसां घरपर और कसां सरयुमें जाकर स्नान करते थे ॥ ५-७ ॥ जब सरयुस्नानको जाते तो पालकापर सवार हो तथा बहुतसे ब्राह्मणोंसँ परि-वेष्टित होकर जाते और तटपर पहुँचते ही पालकीसँ उतर जाते एवं पैदल चलकर सरयुके भाग पानदक्षिणा-युक्त नारियल रखकर प्रणाम और प्रार्थना करते थे । फिर ब्राह्मणोंके वेदघोषके साथ स्नान करते थे । इसके बाद प्रातःकालीन सन्ध्या तथा ब्रह्मयज्ञ करके ब्राह्मणोंकी विविध प्रकारके दान देते और रथपर सवार होकर ब्रह्मणोंको लौटते थे ॥ ८-११ ॥ उस रथमें स्नान-स्नानपर मुखर्षसूत्रके बन्धन छोड़े रहते और श्वेतावर्णके वस्त्र पहनते रहते थे । सरयुमें सारथी तथा घोड़े नहाये रहते थे और उस रथमेंसे एक प्रकारकी शक्ति निकलती रहती थी ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर विधानपूर्वक हुक्म करके राम सादर शिवजीका पूजन करने और कौस्तुभा, तुमित्रा और कीर्केपीकी पूजा करते थे ॥ १३ ॥ फिर कामधेनु, कल्पवृक्ष, पारिजात, पुष्पकविमान, विनामणि, कौस्तुभ आदिकी सीताके साथ-साथ राम पूजा करते थे । पश्चात् अगस्त्य, वट, बिल्व, पीपल, तुलसी, शमी, पलाश, दुर्वा, राजवृक्ष तथा सूर्यभगवाद्की पूजा करके द्वारदेवताको नमस्कार और पूजन करते थे । तदनन्तर

संपूज्य मुहूर्तं रामः पूजयामास मन्त्रकम् । दीपिकां दर्पणं पूज्य पुस्तकादीनपूजयन् ॥१८॥  
 पुनः नपूज्य स्वगुरुं पूर्वं त्रिप्रेतं पूजितम् । उच्चासनस्थितं नन्वा कथां शुभाय तन्मुखात् ॥१९॥  
 पुत्रार्थां वन्धुभिः पन्था पण्डितैः पण्डितैः । ततः मन्त्रार्थिनो रामः सीतया स मुहुरमुहः ॥२०॥  
 विष्ठादिभिर्भोषाहारं चकार स्वस्थमानसः । कर्मधेनुर्द्रव्यधानैः कल्पवृक्षममुहूर्तं ॥२१॥  
 मणिद्वयनिर्मितं च बहीं रत्नान्कर्तुरपि । ततो मुक्त्वा हि तांभूतं विभ्रट्टामां मिश्रयन् ॥२२॥  
 बभूवा कटे दिव्यवस्त्रैः शम्भोर्विदधत् सः । एतस्मिन्मन्त्रे पूर्वं मन्त्रो यथा भिषक् ॥२३॥  
 गणकोऽपि राघवणं प्रत्युद्गम्यानिमानिना । निषेत् राघवमेव पूजयामास तौ प्रभुः ॥२४॥  
 ततो भिषक् सुखं स्थित्वा राघवग्रं नदत्तवा । ददर्श दक्षिणकूले नाडीं राघवस्य सादरम् ॥२५॥  
 तन्मुद्राकंकणाद्यैः शोभितस्योज्ज्वलस्य च । कल्पार्थांशुमृते वा धमती जीवमाक्षिणी ॥२६॥  
 तन्नेष्टुया सुखं दूतं ददाते च भिषगुर्यैः । प्रपन्नो वैद्यार्यैः स मन्त्रमुद्रया कल्लोकयन् ॥२७॥  
 रामकर्म विदम्याह गत्रचाचरितः धमः । तद्वेद्यचमनं धृत्वाऽकरोद्रामः सिमानवनम् ॥२८॥  
 ततो वैद्याय तांभूतं ददौ रामः मदक्षिणम् । ततः स गणकः प्राह विनार्पं सुम्पुटाक्षम् ॥

पञ्चाङ्गपत्रं चित्रं च राघवग्रं स्थितः मूर्ध्निः ॥२९॥

विज्जेश्वरो ब्रह्मदर्शयन् सुगं भानुः सखी भूमिभूतो बुधः दूधः ।

गुरुश्च शुकः अनिरादुर्केनरः मरुं श्रुता मंगलदा भवतु ते ॥३०॥

लक्ष्मीः स्यादवका निधिभक्षणो वातातथाऽऽवृष्टिः पञ्चत्रं कृत्वापमचयहरं योगो विद्योद्यारहः ।  
 सर्वाभीष्टकरं तथैव काण पचागमेनऽकृष्टं श्रान्त्य प्रनिवात्यरे द्विजमुत्तान्द्रुपदकरं मंगलम् ॥३१॥  
 स्वस्ति श्रीगणेशायाम्नि निधिश्च दशमी भिता । अनुवारः मुनक्षत्रं पुण्याख्यं स्वयं वर्तते ॥३२॥

वृष, मन्त्र, हस्त, राघ, शास्त्र, वायुज, कडार, काय, वाक्काया, गिरासन, छत्र, चमर, स्वयम्, मुकुट, मन्त्र, वायिका और दर्पणको पूजा करके पुस्तकादिकोंका पूजन करत थे ॥ १४-१८ ॥ फिर ऊँचे आसनपर बैठे अपने गुरुकी पूजा और नमस्कार करके उनके पुत्रम कथा सुनत थे ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर अपने भ्राताओं, पुत्रों और पण्डितोंसम साथ बार बार नीलाक प्रदत्त करनेपर बाह्यो क सब स्वयम् मनसे कामसे, कल्प-पुत्र और इतनी मणियोंस साथ तभी मणितार बनाये मन्त्रका पावन करके पान पाने थे । तदनन्तर मुन्वर कपडे पहिन तथा नित्य धर्मसे समर करने के मानि मानिने अन्य तरंग धारण करत थे । इनके बार पहलसे ही बुताये हुए बीच तथा अनेकिया जान । उनका आज देखकर राम उठ चढ़े होते और सो पन आरे बदकर स्वागत करके उन्हें लाते एवं अनिशय सम्मान करत थे । वे आकर सामने बैठ जाते और राम उनकी पूजा करते थे ॥ २०-२४ ॥ इसके बाद बीच मानन्दपूर्णक बैठकर रामके आज्ञाभुमार रहत, बुधा तथा कल्ल आदिसे सुगोपित उनके दाहिने हाथकी नाडी देखता था । हाथक अंगुली नीचेवाली जी जीवमाक्षिणी नामकी नाडी है, उसे देखकर वैद्यगण प्राणीके मूलद्वय जान लिया करते हैं । इसलिए वह बीच अपनी मुखम कुट्टिसे देखता और कानसे कहता कि 'रामको ज्यादा मेहनत किये है न ?' बीचकी बात सुनकर राघ मुस्करा देते थे ॥ २५-२८ ॥ इसके बाद राम दक्षिणके मास वैद्यजोंको पान देने थे । तदनन्तर श्रोत्रियोंकी स्वच्छ आसने और विशेषे पुनर्जित पञ्चांग फेंकाकर रामके सामने बैठते और इस प्रकार मङ्गलाचरण तथा पञ्चांग-अवगता बाह्यस्व सुनते थे । विज्जेश्वर ( गणगजों ), ब्रह्मा, महता, समस्त देवता, सूर्य, शनि, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक, राहु, केतु आदि शारे यह आसके मंगलदाता हों ॥ २९ ॥ ३० ॥ त्रिविके सुननेसे लक्ष्मी लक्ष्म होती है, चारके भक्षणस आयु बढ़ती है, गजभक्षण पुण्ड्रुत चारोंके समूहको गृह करता है, योग अपने प्रियजनके विवेकने बचाता तथा करण सब प्रकारकी मन कामना पूर्ण करता है । अतएव बाधुणके मुखसे प्रतिदिन इनका श्रवण करना चाहिए । क्योंकि यह प्राणियोंका सब प्रकारसे कल्याण करता है ॥ ३१ ॥ स्वस्तिश्री रामचन्द्रजैः । आज शुक्लपक्षका दशमी तिथि है, रविनाक्षर है, पुष्यनामक मुनकाव है

ऐन्दयोगो महात्माश्च वराह्यं वरुणं शुभम् कर्कशतोऽप्य नन्दोऽपि द्वितीयस्ते रघुनम ॥३३॥  
 मामोऽप्य नैवमागोऽपि समन्तात्तस्य प्रत्यक्षम् ॥ ३४ ॥ सप्त दशमं सप्तमं च चिरं निद्रावनीतले ॥३५॥  
 सर्वेऽपि सुखिनः सन्त सर्वे सन्त निद्रावनीतले ॥ ३६ ॥ ततोऽपि पटवस्तुमा दक्षिणदुःखमाप्नुयान् ॥३७॥  
 एव ज्योतिर्विदो भीतं पश्चात्तु रघुनन्दनम् ॥ अन्ता मे दक्षिणां दद्यात् सतांशुर्लभनाम सः ॥३८॥  
 ततो गमं यथी वेतन्मादाशरी मीढगात् गमयेत् ॥ यथापत्यन्पुण्यदागन्त्वेदयत् ॥३९॥  
 रामगान्धर्वकलेभ्यश्च दत्त्वाऽद्विभक्त्यर्थं ततः ॥ पुनरप्यप्यदयत्तस्य दत्त्वाऽद्विभक्त्यर्थं करे ॥ ४० ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामं नापि न प्रयत्नी जगन् ॥ मुक्तं दक्षिणपादं स्वमन्त्रधनमञ्जितम् ॥४१॥  
 त्वाद्यर्थे ददग्राथ सप्तमं रघुनन्दनः ॥ ततो मे सुखिने च कालो वनशोभितम् ॥ ४२ ॥  
 क्रमशः सप्तमं च सप्तमं सप्तमं सप्तमं ॥ सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं ॥४३॥  
 सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं ॥ सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं ॥४४॥  
 एवं सुखं निरीक्ष्य ततोऽपि ततोऽपि ॥ ततो वयो यपमणिभूषणं प्रभोः पुरः ॥४५॥  
 तस्या रामं दत्तमप्ये तस्मिन्वाकापमप्यन ॥ ततो रामः क्रिदिकायां निवन्ता गेहाद्विर्धयो ॥४६॥  
 ददर्श मागधारीश्च बहिःकसस्वितान् प्रभुः ॥ ततस्ते मागधा रामे नत्वा दीर्घस्वरेण वै ॥४७॥  
 सूर्यवशभवान्मरन्तिपान्सर्वण्यंस्तदा ॥ ततस्ते वान्दमः सर्वे तुष्टं रघुनन्दनम् ॥४८॥  
 नानातुक्तचारित्र्यं गङ्गादिप्रवाहिने ॥ ततस्ते चाग्रेण गानं प्रचक्षुर्मदितननाः ॥४९॥  
 तदा वेद्याश्च नमस्तुर्नानाप्रसन्नम् ॥ ततस्ते नमस्तुर्नानाप्रसन्नम् ॥५०॥  
 ततो निन्देदुर्गंशानि नववाद्यस्तथा ॥ ततस्ते नमस्तुर्नानाप्रसन्नम् ॥५१॥  
 शरणेद्राश्च तुमान् शिविकाश्च रथास्तथा ॥ नानातुक्तचारित्र्यं वरुणैः तमन्विताम् ॥५२॥

ऐन्दयोग है और कर्क राशिमें बैठा कन्दमा आगकी र शिव दूसरा रथानपर है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह चैत्रका  
 महीरा है, सप्तमं क्रतु है आप न नन्दपूर्वक राज्य कर और बहुत दिनातक इस पृथग्वक्त्रपर ॥ ३५ ॥ सब गुना  
 हों, सब नीयोग हों, सब रूप सप्तमं दिन दक्ष और कोई जिम्मा प्रकटमा दुःख न देव ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इस  
 प्रकार ज्योतिर्विदों के पक्षे रघुनन्दन का मत और उस नमस्तुर्नानाप्रसन्न दक्षिणा देकर विदा क ते थे ॥ ३८ ॥ इसके बाद  
 केके साथ माली वीरकी शक्तिरूप पनाका मान्यता न न नमस्ते नन्दन करता था ॥ ३९ ॥ उन मागधारीको  
 वही उदरस्थित सब जेम्मेन उदरस्थित राज स्वयं भी पटवस्तु था ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर लाई आया । यह पृथग्वक्त्र  
 कौतुहलसे समजित दक्षणा रामका दिशाना था ॥ ४१ ॥ सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं  
 और कमलके समान नैवांशु न अपना नृप देखने थे ॥ ४२ ॥ तद्दुःख छोटी सी नासिकासे युक्त, भय दृष्टा,  
 गोलाकार, अन्तः अन्तः कृपणों तदा मागधारीके गुणों के अतिशय आभासमान एवं तेजोमय था ॥ ४३ ॥ दोनों  
 कपोल उत थे, सुन्दरनी विदली अपर्ण तेन एक रे बायेमे वही थीं । वे सुन्दरों और नन्दों से सुशोभित मुगुट  
 मस्तकपर धारण किये थे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार अपना मुखमण्डल देकर राम पटवस्तु प्रसन्न होते थे । इसके पश्चात्  
 एक स्वेक आता, जिसके हाथों में सप्तमं हुई उस रहता थी । वह पूजादी रामक सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं  
 करके दूतोंके वं चमे प्रभुके सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं  
 निकलते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बाहरके मागधारी को जेम्मेन कटे रहने थे । उह राम देखने थे और जह राम  
 को वे देखते तो रणाल करके जेम्मेन सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं सप्तमं  
 ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वे उनके किये रावणवच आदि चरित्रों का विचार वर्जन करने थे । तदन्तर चाग्रेण प्रसन्नमुख  
 होकर गाना गाते और नट तथा वेद्याय नानाप्रकट मागधारीके मागधारी नमस्ते लाती थीं । किसने ही हाथ  
 विभोद करने लाते जिससे कि राम प्रसन्न थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इसके बाद किसने ही प्रकारक वाज वजने  
 लाते थे । तब राम दूसरे आगमते सीमासे पहुँचने थे ॥ ५१ ॥ वही बहुतसे हाथी, घोड़े, पालकियाँ और

सद्यः रथकक्षायां नृपान्प्राप्तस्सहस्रजम् । सवागना-दर्शनार्थं ददर्श रघुनन्दनः ॥५१॥  
 ततः पञ्चमकक्षायां पुरकं पुष्पवाटिकाः । दृष्ट्वा ददर्श भोगयः शङ्काहृष्टान्सहस्रजम् ॥५२॥  
 ततः स षष्ठकक्षायां पञ्चकक्ष्याहस्रजम् । दृष्ट्वा ददर्श भोगयः प्रवृद्धकरमम्पुटान् ॥५३॥  
 ततः सप्तमकक्षायां वयो गमः शर्मा प्रति । शिबिकयाश्चान्नीर्षं सनैः निहामन वयो ॥५४॥  
 सभ्यं कृत्वा नमस्कृत्य नोपानैः स भूतैः प्रभुः । निहामनमाक्रोहं वरच्छत्रमुद्योभितम् ॥५५॥  
 दधत् कञ्चं सौमित्रिश्चापः मस्तकदा । सङ्गमो व्यञ्जनं रथं पदके वायुनन्दनः ॥५६॥  
 सुप्रोरो जलपात्रं च दगदर्शं निर्मीषणः । दधत् हस्ते शम्भुतपात्रं स पालिनन्दनः ॥५७॥  
 वल्लकोशं भाण्डार्थं दधत् वेगवन्तरः । तस्यो सिंहासने रामः स पृष्टाकोपवर्द्धनः ॥५८॥  
 वस्थौ पृष्ठं लक्ष्मणश्च मरुतः सस्यपादवके । सङ्गमोऽक्षौ वामपार्श्वे पुरतो वायुनन्दनः ॥५९॥  
 बाधम्यकोणे रामस्य सुप्रोरोः सन्निधौऽभवत् । ईमान्प्राप्तसेन्द्रः च आग्नेय्यावङ्गदः स्थितः ॥६०॥  
 नैर्ऋत्यां ज्ञादवाश्चापि दीराः सर्वं समन्ततः । राघवश्च नृपाः सर्वे स्थिताः सम्प्रदूपाजयः ॥६१॥  
 पार्श्वयोस्ते राघवस्य प्रोत्तरस्थाने मुनीश्वराः । पुनो जनतुः सर्वा वारवेष्टयाः सहस्रजः ॥६२॥  
 उग्रो वीरास्ततो दृताः समायां संस्थिताः क्रमात् । निषेदुर्हन्तवः स्ये रामपुत्री निषेदतुः ॥६३॥  
 राक्षसिना निषेदुस्ते तथा रामाक्षया नृपाः । ये ये मूक्या निषेदुस्ते तव । गैराः सुहृन्जनाः ॥६४॥  
 पश्योऽन्वे ते स्थिता एव न निषेदुः प्रभोः पुरः । तेषां मध्ये रामचन्द्रः सुशुभेऽनुपमस्तदा ॥६५॥  
 सेवकाया न निषेदुः सुमन्त्र एव संस्थितान् । एवं स्थित्वा समायां स कृत्वा कार्पाण्यनेकशः ॥६६॥  
 नानाकार्येषु बन्धुंश्च पुत्रावाहाप्य राघवः । दृष्ट्वा नानाकौतुकानि पूर्ववद्गृहमापयौ ॥६७॥  
 तदा निषेदुर्वाद्यानि गोमुखादीन्यनेकशः । श्रुत्वा वाद्यनिनादाश्च जानकी सम्प्रमात्सुरः ॥६८॥

राम जाड़े रहने थे । जिनमें अनेक प्रकारके जालद्वार जाड़े रहते और अन्धे कपड़ोंका जोरदार पडा रहना था । ॥ ६० ॥ इसके बाद उस आँगनमें बाह्यमें जाड़े हुए उन राजाओं, पुरवासियों और मित्रोंको देखते थे जो वहाँ रामकी प्रतीक्षामें पहुँचे ही थे उपस्थित रहना करते थे । ॥ ६१ ॥ फिर पार्श्वी चौकमें पुष्पकविमान, पुष्पवाटिका तथा अन्य पारण किसे हजारों विप्राहियोंको देखते थे ॥ ६२ ॥ फिर छठी चौकमें जाकर हाथ जोड़े हुए हजारों पादसवार वीरोंको देखते थे । ॥ ६३ ॥ इसके बाद सातवीं चौकमें पहुँचकर अपनी राजसभामें जाते थे । वहाँ रासकीसे उतरकर सिंहासनके पास जाते थे ॥ ६४ ॥ दाहिना ओर सिंहासनको प्रणाम करके जाने : जाने : सौहृद्योंसे कहकर सिंहासनपर बैठते थे । वह निहामन छत्रसं युद्योभित रहना था ॥ ६५ ॥ रामके बैठ जाने-पर लक्ष्मण छत्र लेते, भरत चमर लेते, पद्मा जन्मुखजी लेकर लड़ते और हनुमानजी रामकी चरणपादुका लिये रहते थे । इनके सिवाय सूर्यचन्द्रमसी सारी, विष्णुएक सुन्दर-सा दर्पण, बङ्गर साम्बुलका पात्र और वस्त्रकी सम्पूरा आम्बवान् लिये रहने थे । राक्ष पीठपर लकियत लगाकर सिंहासनपर बैठते और उनके कंसे लक्ष्मण, दाहिनी ओर भरत, बायीं ओर जन्मुख, सामने पद्मकुमार, बाधम्य कोणमें सुवीर, ईशान कोणमें विभीषण और आग्नेय कोणमें बङ्गर लड़े हुए थे । ॥ ६६-६७ ॥ नैर्ऋत्य कोणमें आम्बवान् रहते और बहुतसे पुरवासी वारों ओर जाड़े रहने थे । रामचन्द्रजीके जाने सब राजे हाथ जोड़-जोड़कर जाड़े रहा करते थे ॥ ६८ ॥ रामके दाहिने कार्ये दोनों ओर एक छत्रे जासनपर मुनिपण बैठते थे । सामने हजारों वैश्यायें जायती थी ॥ ६९ ॥ इसके बाद वीरवज्र ओर फिर दूतगण लड़ रहा करते थे । समस्त जगत्भर तथा दोनों राजकुमार भी जाकर अपने-अपने जासनपर बैठ जाते थे ॥ ७० ॥ रामके पिता तथा चाचे रामके जाल-द्वार बैठते थे । जो गगनके मुख्य निवासी थे वे तथा मित्रगण भी बैठते थे ॥ ७१ ॥ इनके सिवाय और लोग रामके सामने नहीं बैठते थे, उन्हें लड़े ही रहना पड़ना था । उन सबके बीचमें रायकी एक अनुपम शोभा होती थी । ७२ ॥ सेवक आदिमसे कार्य ही नहीं बैठता था । उनमेंसे केवल सुमन्त्र बैठते थे । इस प्रकार कमाने बैठ और बाना प्रकारके राजकार्य करने जाइयों और बेटोंको कितने ही अथ सौधकर विविध प्रकार-

प्रनुद्वम्य तोपहस्ता तन्मतीक्षां चकार सा । रामोऽपि पूर्वलोकान्ममकक्षास्वनुक्रमात् ॥ ६९ ॥  
 प्रविशन्मकलानाजो ददौ तांस्तान्स्वनोपपत् । ततोऽग्रे बन्धुभिर्गेहं पुष्याभ्यां संविवेश सः ॥ ७० ॥  
 ददर्श जानकीं रामः पीतकीशेयवारिणीम् । साऽपि रामं ययौ सीता कञ्जयाऽवनवानना ॥ ७१ ॥  
 वक्त्रनेत्रकटाक्षैश्च मोहयन्ती रघूत्तमम् । नामालङ्कारमयुक्ता वस्त्रपुरनिस्वना ॥ ७२ ॥  
 ततो रामो जलं स्पर्ष्ट्वा घृत्वा सीताकरं मुदा लक्ष्मणादीन्परिमज्ज्यं सीतागेहं विवेश सः ॥ ७३ ॥  
 बहिर्दृष्टं ध्रुतं वाऽपि यद्यन्कीर्तकमुत्तमम् । तन्मयं जानकीं प्राह तेषयामास तां मुहुः ॥ ७४ ॥  
 ततः सर्वान् समाहूय भोजनाय ममुद्यतः । स्नानं कृत्वा स मध्याह्न कर्म चक्रे रघूत्तमः ॥ ७५ ॥  
 वर्षयित्वा पितृंश्चापि नैवेद्यान् शम्भवे ददौ । वैश्वदेवं ततः कृत्वा बलिदानं रिषाय सः ॥ ७६ ॥  
 दत्त्वा भूतबलिं चापि पितृंश्चापि स्वधेति च । बहिर्भ्यक्त्वा काकबलिं त्वनिधीन्पूज्य मादरम् ॥ ७७ ॥  
 यतींश्च ब्राह्मणान्पूज्य हैमपात्रेषु गघर्वा । परिवेष्टितेषु जानक्या विषदासु धृतेषु च ॥ ७८ ॥  
 तैः सर्वभोजनं चक्रे स्तुवाभिर्भोजितो मुदा । कश्चुदि ततः कृत्वा भुक्त्वा तांष्वलमुत्तमम् ॥ ७९ ॥  
 ददौ तेष्यो दक्षिणांश्च विप्रैर्यो गृणायकः । गत्वा शतपदं रामो निद्राशालां ययौ यनैः ॥ ८० ॥  
 एतस्मिन्मतरे भीता भुक्त्वा रामान्निद्रं ययौ । बीजयामास आगमं मञ्जुकस्य पुरस्थिता ॥ ८१ ॥  
 चकार निद्रां भीरानो मञ्जुके सीतया सह । ता दास्यो बीजयामासुर्दिक्ष्यालङ्कारभूषिताः ॥ ८२ ॥  
 ततः प्रनुद्रा सा सीता प्रनुद्रोऽभूद्रमापतिः । मारिभिः सीतया कीर्त्ता तथा बुद्धिबलेन हि ॥ ८३ ॥  
 नानाकृत्रिमैर्न्यैषाकरोदन्यैरपि प्रभुः । ततो द्राघायण्डपाथो जलप्रवाहिकीर्तुकम् ॥ ८४ ॥  
 दृष्ट्वा पक्षिकुलान्मर्वाण्यञ्जरस्थान्ददर्श सः । गत्वा मोषानमार्गेण ग्रामादाग्रं पुरीं निव्रात् ॥ ८५ ॥

के कीर्तुक देखनेके बाद पहिलेकी तरह अपने घरको लौट आत थे । ६९ ॥ ७० ॥ उस समय गोमुखादि बाने  
 बजने लगते थे । उन बानोंकी सुनकर सबदासी हुई सीता हाथमें जलकी काली लेकर रामके जाने-  
 की प्रतीक्षा करने लगती थी । राम जो पहलकी तरह साता चौक लाँचकर ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ चम्पन हुए सब  
 लोगोंको प्रसन्न करने आते थे । फिर भाई तथा पुत्रोंके साथ आगे बढ़त हुए वह आ प्रपन्न आत थे  
 । ७० ॥ पहुँची पीले रङ्गके रेशमी कपड़ पहन सौन्दर्यको देखन और सीता भी लज्जाके मारे सिर  
 मुकाये अपने तिरछ नेत्रकटाक्षोंसे रामका मुख बगती हुई सामने आती थी । "स समय साताके अलङ्कारों  
 और तपुगोके अतक प्रकारकी मनकार सुनायी पड़ती थी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इसके बाद राम जल लेकर हाथ-  
 पीर धोत, कुल्ला करने और सीताका हाथ अपने हाथमें पकड़कर उठत थे । तब लक्ष्मण आदिकी विदा करके  
 सीताके सहज्यमें आत थे । ७३ ॥ वहाँपर बाहर जा कुछ कीर्तुक देख रहत वह सब एक-एक करके सीताको  
 सुनाने हुए उन्हें प्रसन्न करने थे ॥ ७४ ॥ इसके बाद सब लोगोंकी भोजनका बुलावा भेजत और स्वयं स्नान  
 करके मध्याह्नकालीन कर्म करत थे ॥ ७५ ॥ पितरोंका तर्पण करके जिवजोंके लिये नैवेद्य अर्पण करते थे । फिर  
 बालवैश्वदेव करत और काकबलि आदि दत्त थे ॥ ७६ ॥ तदनन्तर भूतबलि देकर दितरोंकी 'स्वधा' शब्दका  
 उच्चारण करके तृप्त करत, काकबलि बाहर निकाल देते और उसके बाद आग्रपूर्वक वनिषियोंका सत्कार  
 करते थे ॥ ७७ ॥ ब्राह्मणों और वतियोंका पूजन कर लेनेके पश्चात् सामने निद्राशालाम पहुँच जाते थे । ७८-८० ॥ इसी बीच सीता  
 भी भोजन करके रामके पास पहुँच आती और वहाँ मञ्जुके ऊपर बैठे हुए रामके पास बैठकर पंखा सज्जे  
 करती थी ॥ ८१ ॥ बादमें राम सीताके साथ लज्जापर शयन करते थे, तब दासियाँ ऊपर पंखा  
 छलने लगती थीं ॥ ८२ ॥ कुछ देर शयन करनेके बाद सीता उठ जाती और राम भी आग जात थे । उस  
 राम सीताके साथ बुद्धिबलसे कुछ देरतक चौसर आदिके खेल खेलते थे । फिर आग्रकी बाड़ीके नीचे जाते

वनागमान्विता दृष्टा इदृशीभ्याऽतिरजिताम् । शनैर्पर्या प्रभुर्गोष्ठं नानधेनुर्ददर्श सः ॥८६॥  
 तां सम्प्रेष्य गृहं यान्तां स्वदात्रीष्वभिवेष्टिताम् । द्वारानि च ययौ रामरात्रौ ते लक्ष्मणादयः ॥८७॥  
 चक्रुः प्रणामं भीरवर्षेभ्यः सहैव शनैः शनैः । बाधित्वलां ययौ रामो दृष्ट्वा तत्र स बाधिनः ॥८८॥  
 गजशालासुष्ठुशाला दृष्ट्वा रामः शनैः शनैः । ददर्श सुस्रजान्तां च व्याघ्रशालां प्रभुर्ययौ ॥८९॥  
 दृष्ट्वाऽथ त्रिविक्रशालां माहिषेयीं त्रिकोक्यं च । महिषाद्वयशालां च रथशालां ददर्श सः ॥९०॥  
 आकृष्य स्पर्धने रामः शनैः सर्वैरेहिर्ययौ । सप्तकक्षाः समुल्लङ्घ्य तत्रस्थः पूर्ववज्जनैः ॥९१॥  
 सर्वयुक्तश्चाहतां तां श्रेष्ठां कक्षां ददर्श सः । तत्र रथानि श्रेष्ठानि द्रुतानीः शुकटस्थिताः ॥९२॥  
 तुणकाष्टादियमानि दूरस्थानान्यवश्यतः । ततो नवमकक्षयां ददर्श रघुनन्दनः ॥९३॥  
 अल्लपापीन्द्राणस्थान् तुणगस्थाननेकशः । रथयन्ति हि ये सर्वे स्वीयं गेहं त्वहर्निशम् ॥९४॥  
 एवं स नवकक्षाय समुल्लङ्घ्य रघुनमः बहिः स नवनो दृष्ट्वा परिष्ठाः सज्जन्ता नव ॥९५॥  
 शनैः पर्यवस्योभ्यां तां राजमार्गे मुदान्वितः । शीघ्रं ययौ पुनर्द्वारं ददर्श द्वाररक्षकान् ॥९६॥  
 नवकक्षास्थयोभ्यासः समुल्लङ्घ्य शनैः प्रभुः । परिष्ठाश्च नरावश्यं चोयवह्न्यादिपुरिताः ॥९७॥  
 ततो नानावनाशमकीतुकानि रघुतमः । पश्यन्म वन्धुपुत्रैश्च सरय्यास्तीरमाययौ ॥९८॥  
 तत्र स्थित्वा सुनीकायां कीटां कृत्वा क्षिप-स्रजम् । नद्यास्नटे मभायां स तर्प्यः सैन्यपुनः प्रभुः ॥९९॥  
 यथापि वारवश्यानां परवक्ष्यमानि राघवः । क्षिपन्कालमतिक्रम्य ययौ शीघ्रं ततः पुनर् ॥१००॥  
 ततः शनैः समीं गत्वा पूर्वकिंशोरचारकैः । लक्ष्मणाद्यैः सेवित्रश्च तस्यां सिंहासनोपति ॥१०१॥  
 ततः कृत्वा हनेकानि नानाकषयांश्च राघवः । आह्वाप्य बन्धुपुत्रांश्च पूर्वजम् गृहं ययौ ॥१०२॥

कीटार जाई देखत ये ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ फिर पोखरीमें पाने हुए पोलयका देखत ये । तत्रात्र न तोडाके मार्गमें सुषोम्न प्रातरावर पड़ जाते और वहाँमें बनी और बसीबासी बनकुल, बाबागो तथा गान्गोसे अतिरजित अपनी अयाध्यापुरीको देखत ये । फिर बार-बार गीतालास जात और वहाँको बीओका देखा करते ये ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ इसक अनन्तर दसिपो समस्त सीताकी घर नई दन और मय काहरका आर जाठ ये । वहाँ लक्ष्मण जाई आता रात्रका सविमल प्रणाम करत ये ॥ ८९ ॥ फिर उनका साथ लेकर ७ म धारे-धारे अश्वशालाका जाते । वहाँ धाहीका देखकर ॥ ९० ॥ रामशाला और सुष्ठुशालाका देखत हुए अल्लपापी तथा वारवशालाका अल्लोहन करते ये ॥ ९१ ॥ फिर त्रिविक्रशाला और माहिषीशालास जाकर त्रिविक्राओं तथा मैलाको देखतक बाद रथशाला देखत ये ॥ ९२ ॥ तत्रात्र एक रथपर सवार होकर शनैः शनैः बहुरकी तरफ जाया करते ये । बादमें महलके सातों बीकाका लापत एव पहलक तरह उपस्थित सब लंगो देखत हुए जाठरें फाटकबाले आगनमें पहुँचत ये । वहाँपर लक्ष्मणास काम आनवास किनत ही बन्धु तथा बहन-सी साथ रखी रहती थी ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ उन्हें देखकर दूतोंक निवाससम्पत्ति तथा तुण-बाष्ट दिके सुवृधवनका देखनेके अनन्तर नव आगनमें पहुँचत ये ॥ ९५ ॥ वहाँ यह देखत ये कि हासन शम्भु लिये बाँडे और हाथपर लवार होकर सिंहाही रात-दिन अपने अपने स्थानोंकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ९६ ॥ इस प्रकार नया कक्षाओंका जाँचकर कोटके बाँटों और अन्दरें बरी बाहरकी नौ साइरोका देखत ये ॥ ९७ ॥ इसके बाद राजमार्गमें चमकर अशोण्याको देखत हुए शीघ्र पुनर्द्वारपर पहुँचत और वहाँपर रहनेवाले द्वाररक्षकोंकी देख-रेख करते ये ॥ ९८ ॥ फिर अशोण्याकी नौ कक्षाओंको जाँचकर जन और आगनस परिपूर्ण नौ परिष्ठाएँ और अनेक बाल-बगीचेके कीतुक देखते हुए अपने चाइयो और पुत्रोंके साथ सरयूके तीर पहुँचत ये ॥ ९९ ॥ १०० ॥ वहाँ एक अच्छी नौकापर बैठ तथा कुछ देखतक तीर करके सेन के सिबिरमें जाते और सैनिकोंको साथ समानें बैठते ये ॥ १०१ ॥ वहाँ कुछ समय तक देखाओंके नृप देखकर पुरमें लोट जाया करते ये ॥ १०२ ॥ तदनन्तर समाने जाते और पूर्वमें जो वह थाये हैं, उन सबके साथ सकृद्वारदि आनाओंसे सेवित होकर सिंहासनपर बैठते ये ॥ १०३ ॥ वहाँ अनक कार्योंकी करनेके पश्चात् मइनों और पुत्रोंको अपने-अपने घर जाने-

सायकाले ततः संध्यां कृत्वा हुत्वा यथाविधि । गंधार्घ्यैरुपचारैश्च शिवं सम्पूज्य भक्तिनः ॥१०३॥  
 कृत्वोपहारं विप्रैश्च पुत्रार्घ्यां चतुर्भिः सह । शिविकायां पुनः स्थित्वा देवपायननेषु च ॥१०४॥  
 साकेतस्थेषु श्रीगमो गन्वान्वा शिवादिकान् । जानाविधान्देवमघान् फले पुर्वैरपूजयन् ॥१०५॥  
 देवालयेषु सर्वेषु सुगणां तेषु राघवः । मृण्ममानाकीर्तनानि वास्य नर्तनाभ्यधि ॥१०६॥  
 पश्यन्मानाकीर्तुकानि परां मुदमवाप सः । बाहनाहूढदेवानामपश्यत्कीर्तुकानि च ॥१०७॥  
 सतो ययौ ब्राह्मणेन हृद्मार्गेण राघवः । रत्नदीपप्रकाशैश्च विप्रैश्च निव्रजमदिरम् ॥१०८॥  
 ततो नानाकथाभिश्च वार्ताभिः पुत्रचन्द्रभिः । साध्यामां निशां नीत्वा रतिगृहे विवेश सः ॥१०९॥  
 एतस्मिन्नदरे तत्र सीताऽग्रे रतिमन्दिरे । पुत्रसंस्थादिसम्पाद्य तन्वतीकां चकार सा ॥११०॥  
 तावदायांतमालोक्य मदमोन्वाय जानकी । धृत्वा हस्ते राघवेन्द्र रतिशालां निनाय सा ॥१११॥  
 सर्वाविसर्ज्य दासीश्च श्रुत्वा जालज्यनेकशः । समततो दिष्टुञ्चाय तस्थौ रामः स पचके ॥११२॥  
 ततस्तां मैथिलीं धृत्वा पचके सन्पवेशयन् । नाना क्रीडां विधायाश्च तस्थौ रामः स पचके ॥११३॥  
 ततस्तुष्टं रमानाथं जानकी लज्जित्वाऽनवीन् । राम राजावप्राप्त किंचिन्पृच्छामि मे पर ॥११४॥  
 कुत्रजन्मानन्तरं हि कथं गर्भो मया न वै । धार्यते कारणं त्वस्य किमस्ति तद्वदस्व माम् ॥११५॥  
 तत्सीतावचनं श्रुत्वा सस्मित प्राह राघवः । हे गर्भे कत्रनयने सम्यक् पृष्टं त्वया मम ॥११६॥  
 तत्सर्वं ते वदाम्यस्य तच्छृणुष्व सुमध्यामे । किमर्थं च बहुन् पुनस्त्वन्न त्वं वीक्षसि मिये ॥११७॥  
 सद्गते बहवः पुत्रा न योग्यास्त्वत्र वै भुवि । कर्तृकस्य दुर्गचारान्कुलस्य लाजिनं भवत् ॥११८॥  
 अतएव ममैच्छा न बहुपुत्रेषु मैथिलि । मदिच्छया त्वया गर्भो धार्यते न कदाचन ॥११९॥  
 पुत्रस्त्वकः प्रतीक्ष्यो हि यः कुत भूययेद्गुणैः । किं जाता बहवः पुत्रा दुष्टास्ते कुमयो यथा ॥१२०॥  
 श्री आतां देकर स्वयं श्री आपने घर चले जात थे ॥ १०३ ॥ सायंकालके समय विविधपूर्वक उत्सवा और हवन  
 करके पुष्प-चांदन-मालादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीको पूजा करने से ॥ १०३ ॥ फिर भोजन करके पुनो तया  
 राधिबोध-साय पालकोंमें बैठकर देवताओंके मन्दिरको जाते थे ॥ १०४ ॥ साकेतपुरी ( अयोध्या ) के सब  
 मन्दिरराम जाकर शिवादिक देवताओंको नमस्कार करके फल-फूलसे पूजन करने से ॥ १०५ ॥ उन्हीं  
 देवालयोंमें सोड़ी बैठ तक हरिकीर्तन सुनने तथा भण्डिकाओंका नृत्य देखने से ॥ १०६ ॥ इस प्रकार विविध  
 कीर्तुकाको देखकर राघु बहुत प्रसन्न होते थे । तदनन्तर देवताओंका सवारोक कोनक देखते थे ॥ १०७ ॥ इसके  
 बाद सवारीपथ बदकर रत्नके बने दीपकोंके प्रकाशमें चलते हुए राजमार्गमें अगल पर जाते थे ॥ १०८ ॥  
 फिर पुनो तथा भ्राताओंके साथ कुछ दूरतक इसर उपरको जात करते और देह पहरे रात बीतनेके बाद  
 रतिशालामें प्रविष्ट होते थे ॥ १०९ ॥ उधर सीता अपना रतिशालामें फूलोंको शय्या बिछाकर रामके आनेकी  
 प्रतीक्षा करती रहती थीं ॥ ११० ॥ वे रामको आते देखतो ही तुरन्त भावें बदली और उनका हाथ पकड़कर  
 रतिशालाके भीतर ले जाती थी ॥ १११ ॥ वहाँ संताका सेवान उपरिपत दासियोंको बिदा करके राघवचन्द्र  
 कमरेकी सारी स्त्रियोंको खोलकर शय्यापर बैठने से ॥ ११२ ॥ इसके बाद सीताका हाथ पकड़कर उन्हें भी  
 बैठते और विविध क्रीड़ा करके सीताको प्रसन्न करने लग जाते थे ॥ ११३ ॥ इस प्रकार प्रसन्न रामको देख-  
 कर एक दिन सीताने लज्जित भावसे कहा— हे राजीववन्दाश राम ! मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि कुलके  
 जन्म लेनेके बाद फिर मेरे गर्भ क्यों नहीं रहता ? इसका कारण क्या है ॥ ११४-११५ ॥ इस प्रकार सीता  
 का प्रश्न सुनकर मुस्कुराते हुए राम कहने लगे—हे कथञ्चनानी सीते ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं  
 सब कारण बतलाता हूँ ॥ ११६ ॥ हे सुमध्यामे ! पुन सावधान होकर सुनो । हे मिये ! पहले मुझे यह बतलाओ  
 कि तुम अधिक पुत्र क्या चाहती हो ? ॥ ११७ ॥ इस संसारके अच्छे कुलमें अधिक पुत्र होना ठीक नहीं है ।  
 बहुतरे पुत्रोंमें यदि एक पुत्र भी दुराचारी निकल गया तो मार कुत्तर लाज्जित सब बाधा है ॥ ११८ ॥ इसलिये  
 हे मैथिलि ! तुम अधिक पुत्रको इच्छा नहीं है । मेरी इच्छा न रहनेके कारण ही तुम्हें गर्भ नहीं रहता ॥ ११९ ॥



इवेवास्मां वदन्निह यथा नेत्रे भुजौ यथा यथा नौ प्रक्षिप्तौ च यथाऽहं नक्षत्रमवस्थाय ॥१२१॥  
 तथापि जगौ ह्यौ पुनौ माऽप्येवमुपेक्षितम् ॥ १२२॥ प्राह पुनः सीता न जगता दृष्टिना मा ॥ १२२॥  
 एकाऽपि काण्ये तत्र किमस्ति ननुदृश्य मन् ॥ नन्वाश्वत्थने श्रुत्वा जगती प्राह राक्षसः ॥ १२३॥  
 स्वच्छन्द्या च मया कर्म ईयऽत्र जगत्तः के ॥ नन्वास्मात् नृपः कऽत्र मया द्यौः प्रदीपितवान् ॥ १२४॥  
 यस्य पश्यै रक्षया कार्ये शिख्या ममन नः ॥ को नोऽत्र जगत्तः दृष्टिं नृपः न नो मदान् ॥ १२५॥  
 मथाननामी वर्या विनाटे यद्वै र मन् ॥ अनन्तरं यद्वै दृष्टं कथायां र ना पिये ॥ १२६॥  
 कुशादीनां तु याः कथाभ्याम्ने कर्तव्यं वः निकाः ॥ किं यावन्मदभ्याने माहं प्राप्ताऽपि भूते ॥ १२७॥  
 आम्भानं विष्मृताऽप्यथ त्रैलोक्यजननीमिति ॥ यद्वै विदं स्त्राम्प द्यवने तनयस्यज ॥ १२८॥  
 पौरुषं द्यवते यच्च तच्च सर्वं समाश्रज ॥ अत्र स्त्रागृह्या ये च ने पुनर्दृष्टिनाम्नव ॥ १२९॥  
 पृथ्व्या नद्वयः पुत्रा यमकाऽपि गयां तनेन ॥ इति यद्वचनं माने माम न्य विद्व नो यम् ॥ १३०॥  
 शक्रः स तेनयो धन्यः कुत यस्तस्येति जन् ॥ कुम्भेनृपाश्च ने पुनः जगता दृष्टमागताः ॥ १३१॥  
 इति यद्वचनं सीते वरिष्ठ तन्मृत्तं पुनः ॥ अन्त्ये काण्ये वरिष्ठ यस्याश्च यद्वयः सुताः ॥ १३२॥  
 मया नैवापिताम्भत्र तच्छाण्ड्य सुविस्मिने ॥ विनादानं वदाम्यथ माऽप्यथा कुरु मङ्गलः ॥ १३३॥  
 बहुपुत्रं च मागीणां नारुण्य व्याप्यने न हि ॥ मन्वते न न तस्मिन्नेतिर्ना बहुमन्वातिः ॥ १३४॥  
 न मयाऽप्रापिता सीते पुनः विद्वति मे पिये ॥ यदीच्छाज्जिह्वं बहूनां ने तनयानां विद्वजे ॥ १३५॥  
 तर्हि वै द्यापरे कृष्णकपेन द्याकापुनि ॥ दत्तं पुनान् यदास्यामि नदा तेषां सुखं भव ॥ १३६॥

केवल एक ऐसे पुत्रकी इच्छा करना चाहिए कि जो अपने सभी वक्त गुप्तस कुम्हार विभूषित कर सकें। कोहों-  
की तरह उष्य जन्म लनवाले बहुत दृष्ट पुत्रोंमें क्या लाभ ॥ १२० ॥ वस, ये दोनों चिरञ्जिवा रहें। ये मरे  
तो मेम, दो भूना चन्द्र मूर और हमारे लका पदमणके सदृश हों। तुम्हारे दो बेटे तो ही हो गये हैं, अब और  
सन्तान न हो वही अक है। फिर सात न बड़ा—अबिल हमारा कोई कन्या बना नहीं हुई ॥ १२१ ॥ १२२ ॥  
इसका क्या कारण है ? साँ इसका कहिये साँव का यह प्रश्न सुनकर रामन कहा कि यदि तुम्हारे कन्या हाता  
लें मे किसकी बला ? सतारम कोन ऐसा है, या मरा जायता बन सक ? हमारे बागवत कोन राखा है, जो  
साँतो डोंपोका अभीभर है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ जिसका वर को पुत्र करणक मुदाकर प्रणाम कर सका। संसारमें  
कोन ऐसा वर मिल सकता है कि विवाहमें जिसका पैर में अवन हायस घना। इस कारण मैंने पुत्रकी इच्छा  
नहीं की ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ निरा कुल भद्रिके जो क सार्ने उत्पन्न हुई है, वे क्या तुम्हारी नहीं है ? हे साँ ! यौवन  
क मदस नृम दागल भी नहीं हो गयी हो ? ॥ १२७ ॥ जाताना लाकाकी माता हुकर भी ऐसी ऊटपटांग  
बाध कर रहा हो। इस संसारमें जिनका स्वास्व दलना है, वह सब तुम्हारे ही अंगमें आवमान हुआ है ॥ १२८ ॥  
संसारमें जिसका भी पुण्यरूप है, वह पर अंगमें उत्पन्न हुआ है। यही जितने पुण्यरूप हैं, वे सब तुम्हारे  
लहक और लड़कियाँ हैं ॥ १२९ ॥ साँवोमे जो यह बात कही गयी है कि 'एक ही नहीं, मनुष्यको कई पुत्र  
अप्यक्त करनेकी इच्छा रखनी चाहिए। सम्भव है कि उनमेंसे कोई ऐसा सज्जन निकल आए, या ग्याम  
प्राप्त करके कुलका उद्धार करे।' यह एक लापाला बात है। वह कोई भेड़ उक्ति नहीं कहा जा सकती  
॥ १३० ॥ मरत रायम तो अपने कुलका विस्तार करनेवाला केवल एक पुत्र ही। दूधित मागवत लनवाले  
काँटेकी तरह अप्यक्त सेकड़ों बेटास कोई लाभ नहीं ॥ १३१ ॥ मैं जिस बातका कह रहा हूँ, बहुतस विद्वाना-  
ने उसे श्रेष्ठ माना है। दूसरा कारण था बतलाता हूँ कि मैंने तुमसे कई पुत्र क्यों नहीं उत्पन्न किये।  
ह मुन्निश्चित मैं विनोदवत इस बातको कह रहा हूँ। इसे ध्याय मत माने बना, ठाकसे समझना  
॥ १३२ ॥ बहुत पुत्रोंके हानसे स्वाका तल्लाई नहीं रह जाती। बहुत सन्तान हानसे तुम्हारे यौवनका  
नष्ट हो जाता ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ यही सोचकर मैंने अनिक्त सन्तान नहीं उत्पन्न की। यह कुछ खूब  
अनवा है विद्वत। फिर भी बहुत सन्तान पानेकी ही तुम्हारी इच्छा है तो उत्तरमें कुप्यारूप में तुम्हें

कन्यामपि तदैका तेऽह दास्यामि न मरुघः । तदा ते बहुपुत्रं च तारुण्यं स्वास्यते न हि । १३७ ।  
 अत स्त्रीणां महत्तानि शोडशैकशानं पुनः । तथा मुख्यास्त्वष्ट नार्यस्त्वया मह करोम्यहम् ॥ १३८ ॥  
 तदा बहुनां पुत्राणां स्नुषाणां त्वं सुखं भज । अह चापि बहुस्त्रीणां तदा सौख्यं भजामि वै ॥ १३९ ॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तदा सीता स्मिन्नानना । शयनं हर्षिता प्राह वाकचातुर्यं कृतः प्रभो ॥ १४० ॥  
 एतल्लब्धं त्वया राम येन रत्नयमोहं माम् । एवं प्रोक्ता मया शिष्यं दिनचर्यां समापतेः ॥ १४१ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमद्वन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तरार्द्धे रामदिनचर्यावर्णनं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

## विंशः सर्गः

( भगवानके विविध अवतार )

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा वसिष्ठ हि प्रमाते यात्रवील्लवः । किंचित्से प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर । १ ॥  
 सर्वं यद्यपि जानामि वाल्मीकेश्वर प्रसादतः । तथापि लोकान्सकलान् ज्ञातुं पृच्छामि तेऽद्य हि ॥ २ ॥  
 यदाऽस्मामिनिंशार्था हि सर्वेर्निद्रा विधीयते । तदा संभूयते कर्णे भस्त्रवरकस्म वै ध्वनिः ॥ ३ ॥  
 अमुं मत्संशयं छिधि पर कीर्तुहलं गुरो । लरस्येति वचः श्रुत्वा वसिष्ठस्तमयावचीत् ॥ ४ ॥  
 बहुयश्च मल्लहन्त्याश्च रावणो न कृतः पुरा । येन देहेन सोऽद्यापि लंकायां ज्वलते लव ॥ ५ ॥  
 रावणो रामहस्तेन बन्धान्मुक्तिं मनः क्षणात् । रामचित्तनपुण्येन वैरबुद्ध्या कृतेन च ॥ ६ ॥  
 आत्मना सकलं पापं तेन दग्धं पुरैव हि । देहेन न कृतं तस्य देवानां नमनं पुरा ॥ ७ ॥  
 सम्मार्जनादिकं कर्म देवागारेऽपि नो कृतम् । न कृता तीर्थयात्रा हि तेन देहेन भक्तितः ॥ ८ ॥

दस खेदे दूंगा । उस समय तुम बहुत सन्तानका भी मुख भोग लेना । १३५ ॥ १३६ ॥ उस समय मैं तुम्हें एक कन्या भी दूंगा । इसमें कोई संशय नहीं है । किन्तु इतना अचपल होगा कि अधिक सन्तान होनेसे तुम्हें रा यौवन हल जायगा ॥ १३७ ॥ इसी कारण मुझे सोलह हजार एक सौ स्त्रियोंके साथ विवाह करना पड़ेगा और तुम्हारे साथ आठ मेरी मुख्य स्त्रियाँ भी होंगी ॥ १३८ ॥ उस समय तुम बहुतसे पुत्रों और बहुओंका सुख भोगोगे और मैं भी बहुतसी स्त्रियोंका सुख भोग दूंगा ॥ १३९ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर स ताने मुसकाकर कहा—हे प्रभो ! तुमने बातचीत करनेका इतना अनुराग कहाँसे लाया ? जिससे इस तरह मेरा मनोरंजन कर रहे हो । इस तरह रामने बहुत देर तक आपसमें बातें कीं और दोनों एक दूसरेका आश्रितान करने आचरी रातके समय सो गये । हे शिष्य ! मैंने इस प्रकार तुम्हें रामचन्द्रकी दिनचर्या सुनायी । १४० ॥ १४१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमद्वन्दरामायणे पाण्डुरामतजशास्त्रिकृत'ज्योत्स्ना' पाषाणिकासहित राज्यकाण्डे उत्तरार्धे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक दिन सदैरे लवने वसिष्ठसे कहा कि हे मुनीश्वर ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ उसे आप बताइए । १ । यद्यपि वाल्मीकिजीकी कृपासे मैं सब कुछ जानता हूँ । फिर भी संसारी लोगोंकी आन प्राप्त करानेके लिए आज आपसे पूछ रहा हूँ ॥ २ ॥ जब कि रात्रिमें हम लोग सोते हैं, तब कानमें चौकरीकी तरह किसकी ध्वनि सुनायी देती है ॥ ३ ॥ मेरे इस संशयका निवारण करिए । इसका मुझे बड़ा कीर्तुहल है । लवकी बात सुनकर वसिष्ठने कहा— ४ ॥ रावणने जिस दहसे बहुतसी बहूहरपाए की थीं हे लव ! वह देह आज भी लंकामें जल रही है ॥ ५ ॥ रामके हाथों वध हुने, रामका स्मरण करने और उसके साथ वैरबुद्धि रखनेसे रावण क्षण भरमें मृत हो गया । आत्माके सारे पापोंको वह पहले ही जला

न देहेन न निष्कारं तपश्चर्पात्रिनं कृतम् । न देहः भस्मिन्स्वस्य शीतोष्णमहनादिभिः ॥ १॥  
 एतादृशस्तस्य देहो बहुमात्रणक्षिप्तकः । लङ्कायां ज्वलनेऽद्यापि निष्कारां भूयनेऽत्र सः ॥ १०॥  
 ज्वालानां भस्मवच्छब्दो यः पृष्टो मां त्वया लव । ज्वलशब्दादिते नैव भूयनेऽत्र जनैः भदा ॥ ११॥  
 चित्तायां यस्य चाद्यापि वायुपुत्रेण प्रवृद्धम् । कण्ठमावशनं नोत्वा लङ्कायां क्षिप्यते मृदुः ॥ १२॥  
 यदा तत्पापशान्तिः स्यात्तदा मग्नीभविष्यति । अन्यत्वे कारणं तन्मि तच्छृणुष्व शिरो लव ॥ १३॥  
 देहान्ते रावणेनापि तामास पात्रिनो वर । वरेण येन लोकानां स्मरणं मे भविष्यति ॥ १४॥  
 म त्वया मे वरो देयस्तच्छृत्वा राघवोऽब्रवीत् । त्वद्देहज्वलिनि ज्वालाशब्दः सर्वे जना ह्रवि ॥ १५॥  
 भविष्यन्ति समद्वीपेषु तेन ते स्मरणं भदा । भविष्यति हि सर्वेषां प्रकाण्डाग्निंशमिनाम् ॥ १६॥  
 एव चत्वा दशास्य स वरं तामे लयं पर्या । एवं यत्नं त्वया पृष्टं तन्मर्वं कथितं भया ॥ १७॥  
 गुरोर्गति वचः श्रुत्वा तं नत्वा स लवोऽपि च । स्वर्गेऽगममर्देहः प्रयवो शिविरास्थितः ॥ १८॥  
 एकदा चन्धुभिर्गोदं पुराभ्यां सीतया सह । मुनिमिर्गुह्या ताम् संस्थितः प्राह इषितः ॥ १९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

मृष्यंतु मुनयः सर्वे सर्वे मृष्यंतु बन्धवः । पृथो मीता मन्त्रिणश्च सर्वाः मृष्यन्तु मातरः ॥ १०॥  
 यथा यथाऽवतारेऽस्मिन् सुखं भुक्तं हि मीतया । न तथाऽन्येषु सर्वेषु अवतारेषु वै कदा ॥ २१॥  
 अवतारास्तु बहवः शतशोऽत्र मया पृताः । नानाकार्याणि वै कर्तुं तेषां संख्या न विद्यते ॥ २२॥  
 सप्तावतारास्तोषेव श्रेष्ठान्मया मया पृताः । ईदृशं न सुखं तेषु कदा भुक्तं मया ह्रवि ॥ २३॥  
 अस्मासुरो महादैत्यः पूर्वं जानो महोदधौ । येन वेदा दृताः सर्वे सन्त्यलोकात् कुत्रे ध्रुमे ॥ २४॥  
 तदर्थं मत्स्वरूपेण अवतारो मया धृतः । न हन्वा क्षणमात्रेण विष्णुरूपे मया धृतम् ॥ २५॥

सुख या, किन्तु शरीरसे उसने कभी दवताओंकी सम्प्रकार भां नहीं किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ न कभी देवमन्दिरकी सम्प्रदाई को, न उस शरीरसे ताथेयाया को, न अपने शरीरसे कोई निष्कारम तपश्चर्पा की और न शीत उष्णकी हो सहन करके शरीरसे परिश्रम किया । स हामीकी हत्या करनेवाली उसकी देह मात्र भी लङ्कामें जल रही है । उसका कद प्रत्येक मनुष्यको मुनाई देता है । ज्वालाकी घरघकाहटका मिनाव धौंन्नीकी तरह मुनाई पड़ता है ॥ १० ॥ दिनक समय मनुष्योके बालाहकमें बहु गरम नहीं सुन पड़ता । जान भी हनु मान्दवीकी रोज सी बार लकड़, उसकी चिताम डालनी पड़ती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ जब उसके पाप नष्ट होवें, तब कही उसका शरीर जलगा । हे लव लव ! मैं एक समय कारण भी बनलता हूँ सो मुनो । १३ ॥ अपने देहान्तक समय रावणने रामसे यह वरदान माँगा था कि आव हमें कोई ऐसा वर दीजिए, जिससे संसारके लोग मेरा भी स्मरण किया करें ॥ १४ ॥ रामने कहा कि तुम्हारी देह जलानेवाली आवका चक् चक् शब्द शान्ती होषोंके हृद एक व्यक्तिको मुनाई पड़ना रहेगा । इसीसे सबको तुम्हारी याद आती रहेगी ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकारका वरदान पाकर वह रामक शरीरमें लीन हो गया । इस तरह तुमने हमसे जैसा प्रश्न किया, वो सब कह मुनाया ॥ १७ ॥ गुह्यकी बात मुनकर लशका सन्देह निवृत्त हो गया और वे पालकीमें बैठकर अपने घर चले गये ॥ १८ ॥ एक दिन सब माद्यों, पुरों संगता तथा गुरुके साथ रामचन्द्रजी बैठे थे । प्रसन्नवशा हृषित होकर राम कहने लगे — ॥ १९ ॥ समस्त ऋषि, मेरे सब चाई, दोनों भेटे, सीता, समस्त मन्त्री और माताएँ सब लोग मेरी बात मुने । २० ॥ मैंने इस अवतारमें संगताके साथ जितना सुख भीया है, उतना किसी भी अवतारमें नहीं मगा ॥ २१ ॥ विविध प्रकारके कार्यमाधन करनेके लिए मैंने इतने अवतार लिये, जिनकी कोई संख्या नहीं है ॥ २२ ॥ फिर भी मेरे साथ अवतार मूल्य है, लेकिन उन सातोंमें भी मैंने इतना आनन्द नहीं पाया ॥ २३ ॥ जानसे बहुत दिनों पढ़ने महोदधिमैं एक काङ्क्षामूर नामका दैत्य हुआ था जो सत्यलोकसे चारों देवोंको बुझा ले गया था । उसके लिये मैंने मत्स्वरूप कारण किया और उसे मारकर फिर विष्णुरूपधारी बन गया ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस मत्स्व तथा विषय ( वपार ) दोनोंमें कोई विशेष सुख नहीं था ।

किं सुखं दृष्टवान्मर्त्यं हि निर्योगोऽपि महिः ॥ १२६ ॥ अतश्चैवमवतारे न स्थितं हि त्रिं मया ॥ १२६ ॥  
 ततः समुद्रमगने मज्जनं मन्दराचलम् । दृष्ट्वा कृत्वा कर्मरूपं रूपपुष्टं पर्यतो धृतः ॥ १२७ ॥  
 तच्चापि महितं कर्तुं मया त्रिं धृतम् । हि त्रिचरितम्भ्यां हि सुखं तत्र भवेज्जले ॥ १२८ ॥  
 ततो दृष्ट्वा मामने हि मज्जनं पृथिवी मया । क्रोडरूपं महद्गुप्ता दृष्ट्वाशमवनिर्मुक्ता ॥ १२९ ॥  
 मम पृथ्वीति ममधीं हिमपक्षो दया दत्तः । किं तुष्य पशुशेन्यां हि महिनायां भवेज्जले ॥ १३० ॥  
 अतश्चैवमवतारे न लब्धं न सुखं मया । प्रह्लादवचनामन्ममाश्रयमिदं स्वरूपधृक् ॥ १३१ ॥  
 अजनीर्णस्त्वहं भूम्यां त्रिगणकशिष्टः शृणु मया तदा हतः कोपात्तद्व्यमनिमास्वरम् ॥ १३२ ॥  
 यद्व्यान्निवृत्तं कोऽपि प्रह्लादाच्च विनाऽपरः । न मानवः स्थितो भूम्यां तत्र वार्ता सुखस्य का ॥ १३३ ॥  
 तदाऽतिक्रोधरूपेण सिंहयोऽप्यी तं किं सुखम् । मयाऽणुभूतं त्रिपुण्ड्रं मुखेच्छान्निमाप न ॥ १३४ ॥  
 ततो बलेमहिमार्थं सर्वरूपं तु वापयाम् । धृष्टा कृत्वा त्रिपक्षाश्च भूमेः पातालम् : कुतः ॥ १३५ ॥  
 तत्र किं मुनिदेहेन वने मौल्य भवेन्मम । न यत्रास्ति यथायोग्य देहमर्प्यतिसुन्दरम् ॥ १३६ ॥  
 तत्र का सुखवार्ताऽस्ति भूम्यां मे ब्रह्मचारिणः । अन्धदेव महमा नाकलोर्कं गतं मया ॥ १३७ ॥  
 पुनर्दिशोऽवनेनैव आसदन्त्यमरूणि । पञ्चमिहनिवारं हि त्रिःशत्रा पृथिवी कृता ॥ १३८ ॥  
 महस्यार्जुननामा म महार्वांगो हतस्त्वं । तच्चापि क्रोधमयूक्तं मुनिरूपं मया धृतम् ॥ १३९ ॥  
 सुखवार्तां पुनीनां हि का तत्र वनचारिणाम् । जन्मेऽप्य जन्मना तेन तपश्चर्य मया कृता ॥ १४० ॥  
 किं सुखं तपस्तप्तत्र वने मे जनमुत्तरम् । एवं पदं धृत्वाः पूर्वमरताग मया धृतिः ॥ १४१ ॥  
 न जाता सुखवार्ताऽपि तत्र कापि मुनिश्रमाः । दृष्ट्वाऽप्य कृष्णरूपं लोकुलेऽत्र कौम्यदम् ॥ १४२ ॥

इसीलिये उस अवलम्बमें उस रूपमें मैं उतरा दिशोनक नहीं रहा ॥ १२६ ॥ इसका बाद समुद्रमग्नयनके समय जब मैंने मन्दराचल पर्वतको डूबने देखा, तब पूर्व ( वज्र ) का रूप धारण करके उस पर्वतको अपनी पीछपर धारण किया ॥ १२७ ॥ उस समयको भी अच्छा न समझकर मैं अधिक दिशोनक उस रूपमें नहीं रहा । भला अगर वह अस्ति तब जन्ममें रहकर मैं भूमा कैसे तो सकता था ? ॥ १२८ ॥ तदनन्तर पृथ्वीको समुद्रमें डूबनी देखकर मैंने क्रोड ( गुस्सा ) रूप धारण करके दृष्टको अपनी पीछपर रखकर उतारा ॥ १२९ ॥ इस पृथ्वीपर मेरा गडग है । अतएव यह पृथ्वी मेरा है । इस प्रकार क्रोध धारण करने द्विरुपाज्ञ सामक समुद्रका मैंने संहार किया । पशुपतिमें रहकर भी इस की ई विरोध सुख नहीं मिला । इसलिए उस रूपको भी अच्छी ही त्याग दिया, फिर ब्रह्मदेव कण्ठान्ता नृनिद्ररूप धारण करके जन्मसे निकलना पड़ा ॥ १३० ॥ १११ उस समय अन्तार लकन मैंने क्षणमात्र हिमपर्वतपुत्री समाप्त कर दिया । मेरा वह रूप बड़ा तेजस्वी था ॥ १३२ ॥ उनके भरसे प्रह्लादके मित्राथ मेरे पास जानरी मामर्त्य निमार्थ नहीं थी वलाओ, ऐसी योनिव मैं क्यों कैसे रह सकता था । उस समय मेरा बड़ा क्रोधपूर्ण रूप था, दूसरे सिंहकी योनि थी । उस योनिही मैंने अनुभव कर लिया । इच्छा थी कि इस रूपमें मैं कुछ आनन्द पाऊँ, लेकिन नहीं पा सका ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ तपश्चात् बलिकी नीचा दिश लेके लिए मैंने बहुत ही छोटा वामनका रूप धारण किया और तब मैंने सारी विश्वकी नापवर बलिकी पाताल लोकमें भेज दिया । १३५ ॥ उस समय भी एक ही मुनिका मेरा, दूसरे वसोप रहना, तीसरे शमार भी जितना चाहिए उतना सुन्दर नहीं था ॥ १३६ ॥ वनपरको दसाप पृथ्वीपर रहकर सुख कहाँ था ? इसी लिए उस रूपको भी मोघ त्यागकर मैं स्वर्गलोचली लोट गया ॥ १३७ ॥ फिर मैंने ब्रह्मदेवसे परशुरामका अवतार लेकर इसकीस बार पृथ्वीको क्षत्रियभूय कर डाला । उसी समय महावीर महाभुवनका बध किया । उस समय भी एक नाथी मुनिका रूप धारण करना पड़ा था ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ वल्ले रहनेवाले मुनियोंकी मला कब सुख मिल सकता था । यह समझकर मैंने उस जन्ममें भी तपस्या ही की ॥ १४० ॥ उस तपस्वी जीवनमें वनेमें रहकर मुझे क्या सुख मिला होगा इसका आप लोग भी अनुमान कर सकते हैं । इस तरह मैंने छः

नेदृष्टं तत्र मोक्षयामि सुप्तं मृगं विस्मयम् । कारागृहस्थितिः दिशोऽर्जन्मादायैव मे भवेत् ॥४३॥  
 मातृपितृविहीनश्च तदा स्थापयामि शैशवे । एतच्छीरे मन्दगेहे वृद्धिं गच्छामि गोकुले ॥४४॥  
 गोपवेष्टस्य किं सौख्यं गोपुते भवतो मम । क्षांगोनागाश्वाभ्यादि बह्वैष्यन् निहन्म्यहम् ॥४५॥  
 देवपत्नीवशम्कुर्यां वार्षागमनादिकम् । नानार्थपादि दुष्कर्म कृत्वाऽहं गोकुले ततः ॥४६॥  
 मधुरायां हनिष्यामि लगजं कमलामुलम् । तत्र दास्या रविं कुर्यां नैष्ठुर्यं गोपिकादिभु ॥४७॥  
 बह्वृका गोपिकाः सर्वा रामो बन्धुर्मज्जिष्यमि । मन्यन् च बालयवनमयान्मे हि पराभरः ॥४८॥  
 न पराभवतो दुःखं किञ्चिदस्ति जगत्त्रये । ततोऽहं स्वल्पं न्यक्तवा तटाके सागरस्थ च ॥४९॥  
 स्थापयामि स्वल्पकालं हि चिन्तकालं न मे स्थितिः । न स्थलं मत्पदेऽपि हि न राज्यं मे भविष्यति ॥५०॥  
 किंवा राज्येन किं मौल्यं वराह्याश्चरन्तिनः । छकादिराज्यभोगाश्च भविमन् जन्मनि मे व हि ॥५१॥  
 बहुर्लणधेकदेहस्तदाऽयं मे भविष्यति । तदा कामां मुञ्च दयं दुःखं कामां तदा मया ॥५२॥  
 एव यदा व्यग्रचित्तमामां रजनकमणि । तत्र का सुखवानांऽस्ति निश्रया भ्रमतो मम ॥५३॥  
 पटिकायां च पट्टिभूषणघनामृदाणि हि । पचन्मप्यष्टदिशाऽङ्गोहेहानि तदा मम ॥५४॥  
 श्रेणामि गंतुं नैवामि कालो मातृक्रेष्यते । विप्रदटीमयी रात्रिस्त्वेवं मे मा भविष्यति ॥५५॥  
 वदा मे भ्रमतो रज्ज्वी कुतो निद्रा कुत सुखम् । वदा मयेऽपि शत्रुदिः किञ्चिच्चिटो तदाऽऽनुगम् ॥५६॥  
 वस्येच्छाऽप्यत्र दुःखं हि मे नृ नेन नरेण हि । कर्मव्याः पश्यः पश्यो दृश्यं नक्तं ततः ॥५७॥  
 एवं भवेत् मे मौल्यं द्वापरे कुरुगजन्मनि । भविष्यन्परतस्तत्र ममाभिर्विप्रगायतः ॥५८॥

अवतार लिये ॥ ४१ ॥ लेकिन उस छहोंमें मुझे मुलका नाम भी नहीं मिला । जहाँ द्वार युवमें इस पक्षीपर  
 गोकुलमें कुछरुमें मे अवतार नंगा ॥ ४२ ॥ लेकिन ऐसा मुझ उस अवतारमें भी नहीं पा सकूँगा । मुनिर,  
 उस अवतारका विरह्य विस्मागूर्वक आज लोगोको बन्नासा है । जन्मके पहले ही मेरे माता-पिता कारागारमें  
 रहे ॥ ४३ ॥ बंजर जन्ममें हो माता-पितासे विमुख होकर एक अन्य ध्याति ( नन्द ) के घर गोकुलमें रहकर  
 पार्श्व । उस गोपवेष्टस गोओके पीछे पीछे घूमनेमें मुझ क्या मुझ मिलेगा ? फिर गो ( बन्धावुर ), रजो ( रूतना ),  
 नाग ( कारिया ), अश्व ( बेनी ) तथा गरी ( बकागर ) को मारंगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ देवर्षिपदेके चन्द्रालस परस्त्रीवसन  
 आदि ( पाप ) करेगा । फिर गोकुलमें चोरी आदि दुष्कर्म कर देनेके बाद यथरा जाकर हाथी कुवलगापंडके  
 साथ ममा कसको मर्दगा । वहाँ मुझे गोपिकाके साथ निगाई करके दामी ( दुबडी ) के साथ विवास भी  
 करना पड़ेगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ जिन गोपिकाओ मैंने भोगा होगा, भविष्यमें बलरामजी उन्हें मोनेगे । फिर  
 बाल्यवनके समय मुझे परास्त भी होना पड़ेगा । ४८ ॥ पराजयमें बहुत ससारमें और कोई दुख नहीं हो  
 सकता । फिर समुद्रके किनारे अपना निवासस्थान बनाकर कुछ दिनों तक वहाँ ही रहेगा । वह निश्चित है  
 कि उस अवतारमें भी मैं अधिक दिनतक संसारमें न रहेगा । मच्छ देवाके विवालयमान न रहनेके कारण  
 मेरे पास कोई राज भी नहीं रहेगा । ४९ ॥ ५० ॥ राज्यरहित होकर दूसरेको आज्ञामें रहनेमें क्या क्या  
 मुझ मिल सकता है ? उस जन्ममें गजाओको उपभोग्य कन्तुरे छोर बमर आदि भी मेरे पास नहीं रहेगे  
 ॥ ५१ ॥ बहुत सो निमोके लोक मरा अकल मरीर रहेगा । उस समय रात-दिन वही चिन्ता रहा करेगी कि  
 इनमेंसे किसे मुझ दे और बिना दुःख । तदा मुझे इनका अनुहार करना पड़ेगा । मला रातभर एक घरसे  
 दूसरे घरकी दीड़ घरमें मुझे क्या मुझ मिल सकता है ? ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उस समय एक बगीमें बीच में कलीह  
 बरोका चक्कर लगानेपर भी अद्वैत घर छूट जायेगे और वही सोचना पड़ेगा कि पूर्वोदयका समय हो रहा  
 है, अब किसीके यहाँ जानेका समय नहीं है । इस तरह तीस बगीकी राते बतगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उस समय  
 रातभर घूमनेमें निद्रा तथा मुक्त कोकर मिल सकेगा ? हाँ, जब रात कुछ बड़ी होगी तो जाते बड़ी  
 आधी बड़ी सोनेके लिये समय मिल जाय ॥ ५६ ॥ जिस समुद्रको संसारमें दुख भोगनेको इच्छा हो,  
 वह कई स्थितियोंको रत मे और फिर दूरे उसका फल ॥ ५७ ॥ साथ यह है कि मुझे उस अवतारमें भी कुछ मुझ

ततो दैन्यान्यश्चकर्मसक्तान्दृष्ट्वा पुनस्तद्वद् ॥ कलात्रये सुदूरुष धविष्याम्यतिमोहनम् ॥५९॥  
 निजवाक्यैर्मतिष्णेषां दैन्यानां यश्चकर्मतः ॥ परिवर्त्य कियत्कालं स्थास्यामि जगतीतले ॥६०॥  
 तदाऽहं मौनमाश्रिन्य मलिनः केशलुञ्चकः ॥ युगदिजीवधारी च सर्वेषामुपदेशकृत् ॥६१॥  
 अहिंयनघनं सर्वान् दर्शयिष्याम्यहं जनान् ॥ तज्जन्मन्यसिदुःखं मे केशयूकामलादिना ॥६२॥  
 ततोऽग्रेऽहं धविष्यामि कल्मषरूपं महत्कलेः ॥ भ्रंते रष्ट्रा जनानां च सर्वत्र वर्णसंकरम् ॥६३॥  
 भून्वाऽत्र विप्रदेहेन खड्गधारी हयस्थिनः ॥ सहारं क्षणमात्रेण दृष्टानां हि करोम्यहम् ॥६४॥  
 सोऽवतारो मादिचिरं मम स्थास्यति भूतले ॥ न नत्र सुखलेशोऽपि मे भविष्यति भूसुराः ॥६५॥  
 प्रवर्तयिष्यति पुनस्ततोऽग्रं तत्र कृतं युगम् ॥ पूर्ववच्च पुनस्तत्र क्षवतारान्करोम्यहम् ॥६६॥  
 एवं नवावतारेषु न भुक्तं हि सुखं मया ॥ अतस्त्वस्मिन्नवतारे सुखं ब्रूत यद्येच्छया ॥६७॥  
 नानेन सदृशः कश्चिदवतारोऽस्तीतले ॥ पूर्वं भूतो मयाग्रेऽपि न भविष्यति वै कदा ॥६८॥  
 समलोकाधिपन्यं च नारी सीता च वर्तते ॥ यत्रैवौ बालकौ पुत्री महार्थरी वनुर्धरी ॥६९॥  
 यत्र स्वते शंखश्च त्रैलोक्यजयिनः शुभाः ॥ कर्मधेन्वादिरत्नानि सप्त यत्र समान्तिके ॥७०॥  
 साक्षादयं वेदरूपो बसिष्ठस्त्वस्मि मे गुरुः ॥ आर्यावर्ते पुण्यदेशेऽयोध्यायां वसतिर्मम ॥७१॥  
 राज्यभोगादिभोगानां भक्ताऽहं त्वत्र नोऽपरः ॥ यत्र सन्पवनं मेऽस्ति यत्रैकदयिताव्रतम् ॥७२॥  
 यत्रैकैव धाणेन मया बाल्यादिका हताः ॥ यत्रैकैव हि सीताया मम श्रुत्या न चापरा ॥७३॥  
 यत्राप्रतिहताज्ञा मे त्रैलोक्ये हि मुनीश्वराः ॥ यत्र यानं पुष्पकं तु यत्र दूतोऽञ्जनीसुतः ॥७४॥  
 सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ च यत्र मित्रे ममान्तिके ॥ कोदण्डमदृश चाप यत्र मेऽस्तिनिपुदनम् ॥७५॥  
 ह्यैवंसे यत्र जन्म ततो दशरथो वरः ॥ कौसल्या यत्र जननी यत्राहं स्ववशः सरा ॥७६॥

महीं मिलेगा । अन्तमें ब्राह्मणके मापसे मेरे उस अवतारकी समाप्ति होगी । ५८ । इसका अनन्तर कालमें दोपों को यज्ञकर्म करते देखकर मैं अतिशय मनोमंहेका क्रोध अवतार भूंगा ॥ ५९ ॥ अपनी बालीसे उन कुट्टीकी मति घन्नकी ओरसे फेरकर कुछ दिनों तक मैं संसारमें रहूंगा ॥ ६० ॥ उस समय मैं मौनग्रव धारण करके मंजे-कुचेंसे कपड़े पहने और कितने ही जूँ बादि जीवोंको शरीरमें धासे हुए सारे संसारके लोगोंको उपदेश दूंगा । सबको अहिमाश्रुतका अभिनय दिखाऊंगा । उस जन्ममें बाल्यमें पड़े हुए गुरे, कपड़ोंके फाँकर तथा मरमल आदिसे महान् दुःख उठाना पड़ेगा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ फिर कालियुगके अन्तमें सब लोगोंको वर्णसंकर होत देखकर मैं कल्मष अवतार भूंगा ॥ ६३ ॥ उस जन्ममें एक निमक पट्टी उत्पन्न हो और घोंडेपर सवार होकर क्षणमात्रमें दुष्टोंका संहार कर दानूँगा ॥ ६४ ॥ हे ब्राह्मणों ! वह अवतार भी विरम्यायी नहीं होगा । अनएव उसमें मा मे कुछ सुख नहीं भोग सकूँगा ॥ ६५ ॥ उसके बाद फिर सत्ययुग का जन्मगा और मैं पहूँलेकी तरह विर अवतार लेता रहूँगा ॥ ६६ ॥ इस तरह नौ अवतारोंमें कुछ सुख नहीं मिलेगा । किन्तु इस अवतारमें मैं अपने इच्छानुसार सुख भोग लिया है ॥ ६७ ॥ इस अवतारके समान कोई अवतार जगतीतलमें न हुआ है, न होगा ॥ ६८ ॥ जिसमें सगलें दोषोंका प्रभुत्व, सीता जैसी स्त्री, कुल-लव जैसे महार्थर और वनुर्धरी पुत्र, संगीतों लोगोंको जीतनेवाले ब्राह्म और कामधेनु आदि सात रत्न दिद्यमान हैं । ६९ । ७० ॥ जहाँ वेदक साखान् स्वरूप बसिष्ठ जैसा गुरु हैं । माश्वितं जैसे पवित्र देशमें निवासस्थान है, राज्यभोगक प्रतिदिन करानेवाला और कोई नहीं है, जहाँ सम्यक्का धत है, जहाँ बटल एकप-मोत्रत है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जहाँ केवल एक बाणसे धातुका मारनेकी सामर्थ्य है, जहाँ सीताकी और हमारी एक कल्या है ॥ ७३ ॥ जहाँ मुनिगण यैरक डोक जहाँ चाहें सहाँ आ जा सकते हैं । जहाँ कि पुष्पकविमान जैसा मशरी है ॥ ७४ ॥ सुग्रीव और विभीषण जैसे मित्र हैं, शत्रुओंका मार करनेवाला कोदण्ड जैसा धनुष है ॥ ७५ ॥ सूर्यवंशमें जन्म हुआ है, वनरज्य मेंसे पिता और कौसल्या जैसी

सुमेषासदृशो यत्र मे श्वश्रूः स्नेहवधिना । विद्वहः श्वशुरो यत्र विशादो यत्र माधिनः ॥७७॥  
 लक्ष्मणो यत्र मे मन्त्री सरयुर्वच मे नदी । पार्श्वगा शङ्खदायाश्च चतुर्दन्तो गजो महात् ॥७८॥  
 द्विजेच्छागुम्पं यत्र त्रयं मेऽङ्कुष्ठेन सदा । इदं वैदुष्टं रङ्गं गृहं यत्रानिवासुम् ॥७९॥  
 चित्तमणिगलकारी हृदये यत्र वर्तते । एकादशं महस्याणि वर्षस्यापुश्चिरं मम । ८०॥  
 अनघं मे विरभेदं केषामप्यवनीभूताम् । एव सदा मयि भुक्तमिदं जन्मनि भूगुणः ॥८१॥  
 नास्मा वाप्युर्वरिताऽस्ति सुमेच्छा मम भूतके । जनण्यायतारोऽयं पूर्णरूपान्मया धृतः ॥८२॥  
 भूतमाव्यावतारा वे तेषां देव मया धृताः । यदन तु यत्र पूर्वं स्मृतया कन्धुना मया ॥८३॥  
 तच्च लोकोपदेशार्थं भूभागदणाय च । जनोपदेशः कीदृक् स कुतश्च प्रदाम्यहम् ॥८४॥  
 पितुर्दोषो मामनीय यद्यप्यनिश्चयप्रदम् । पुत्रेऽप्युपदेशार्थं मया वाक्यं पितुः कुतश्च ॥८५॥  
 न तदा किं मृषा कृतं पितुर्वचसि वल मयि । तथापि लोकशिक्षार्थं तदाहम् पालित मया ॥८६॥  
 न हन्तव्या मया कोशाद्दृष्टा किं कैकर्या तदा । तथा मा जयमा चापि मे गच्छे विद्वन्कारिणी ॥८७॥  
 किं तदा कुठिगा कृत्तिः कैकेयीमथराषधे । स्त्रीदन्त्या नैव कर्तव्या चेति सर्वान्मुनिशिक्षितम् ॥८८॥  
 सत्यन्ममाहवाक्यं तु पालनीयं स्वमानवत् । स्वमुत्तमार्थं यथोऽप्यस्य न कर्तव्यो जर्नगिति ॥८९॥  
 उपदेष्टुं मया नैव कैकेयीमथरे हने । न वृद्धिमा कर्तव्या परमज्यं न कर्तव्येन । ९०॥  
 अहमुपदिशाम्य जगन्मनुर्दो न म । मृते पितर्यपि ह्येव न तद्राज्यं वदाम्यया ॥९१॥  
 राज्यासक्ता नरा भूयसा भोगामक्ता भवन्तु न । उपदेष्टुं जनानि नयनं पूर्वं वन गतः । ९२॥  
 मातृपितृमुह्युत्रस्नेहामक्ति न कारयेत् । इत्थं मयापदिशरा न्यक्तः स्नेहस्तदा द्विधाः । ९३॥

माता है, उहाँ कि मैं सदा स्वाध्यास रहना हूँ ॥ ७६ ॥ स्नेहका उदाहरण मया जगत्मास है, विश्व में  
 सत्त्व है, विश्वासि में निवासिता मुह है । ७७ ॥ लक्ष्मण जगत्मास है, मया जगत्मास है, अङ्गुलि की  
 अङ्गुलि है, बड़ा भारी चतुर्दन्त हाथी है ॥ ७८ ॥ द्विजेच्छा इच्छा गुण कर्मा तथा अङ्कुष्ठ इत है  
 चतुर्दन्त समान सुन्दर भवन है । ७९ ॥ चित्तमणि जगत्मास सदा हृदय में रहता है, जहाँ मया  
 हजार वर्षों की लम्बा आयु है ॥ ८० ॥ पितुर्दोषो राजा है, ताना न भुक्त । यह मस्तक है । यहाँ  
 जो गुण है, सो वरा भन्दन मिल सकता है ? हे विश्व ! इस मयास में निज गुणोंका भोग किया है, सो  
 वला दिया ॥ ८१ ॥ अनघ मेरे हृदय में किसी प्रकारका भी सुख भोग की वागना जगत्मास नहीं रह गयी है ।  
 इसीलिए मैं पूर्णरूपसे इस भवताम्का धारण किया था । भूत नरा भोग करने जगत्मास में अशक्ती रह  
 गयी थी, उनका समस्त यह भवताम्का दिया है । जो वागनात्मक मया तथा भुक्त मया वनकी वागना की की  
 यह दुःख भोगनेके लिए नहीं । बल्कि दुनियाँके लोगका उपदेश देनेके लिए की थी । उससे मैं संसारो  
 अनाका कीन-ता उपदेश दिया है, सो भी बतला रहा है । ८२-८४ । यहे बातशय परिधमसाध्य ही, फिर  
 भी पिताकी बात माननी चाहिये । यह उपदेश देनेके लिए मैंने उस समय पितृका आज्ञाका पालन किया  
 था ॥ ८५ ॥ मया पितृकी बात टालनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं था ? था, पर ओज्जिध के लिये उनकी बात मान  
 ली थी ॥ ८६ ॥ क्या उस समय दुष्ट कैकेयी तथा राजादिलक्ष्मे विद्वन्कारिणी वापिनी मन्वराके वध करने-  
 का पराक्रम मुझमें नहीं था ? था, पर उनको दण्ड न दकर मैंने संसारको यह शिक्षा दी कि स्त्रीका वध कभी  
 की न करना चाहिए और अपनी सोचकी माँकी आज्ञाकी भी उसी तरह पालन करना चाहिए, जैसे लोग  
 अपनी सगी माताका करते हैं । दूसरे मुझे लोकेको यह भी उपदेश देना था कि अपने मयके लिए वरयिका वध  
 न करना चाहिए । इसीसे कैकेयी और मन्वराको नहीं पारा ॥ ८७-८९ ॥ अपने माँकी शिक्षा न करे और  
 दूसरेका राज्य न हड़पना चाहें । यह उपदेश देनेहुँके लिये मैंने चरनगर भाग्य नहीं उठाया, उहें मही मारना  
 चाहा । पिताके स्वर्गवासो हो जानेपर भी मैंने उस राज्यको नहीं हड़का दिया । ९० । ९१ ॥ राज्यमें आसक्त  
 लोग सर्वथा बिलासी न हो जायें, यह उपदेश देनेके लिए हाँ मैं वनकी गया था । ९२ ॥ माता, पिता, पिता,

सुख दुःखं मनं ज्ञेयं सुखं दुःखं न मानयेत् शोकः कायो विषयी न चेति लोकान् प्रदर्शितम् ॥९४॥  
 राज्यमौग्यं मया न्यक्त्वा भुक्ताः कनेशास्त्रादा वने । तामाशौर्ना रिपूणां च दुष्टानां हि वधो भुवि ॥९५॥  
 जनैः कथं मदा चेति ह्यपदेष्टुं मया वने । यदत्र निहतास्तत्र रक्षणा मुनिहिंसकाः ॥९६॥  
 स्त्रीभयः सर्वदा त्याज्यस्वेकाकी च तन्ध्वरेत् । नासक्त निजचित्तं हि स्त्रेषु वापे नरैः कदा ॥९७॥  
 इत्थं मयोपदिशता यानाशय तदा वने । त्रियोदो दशिनो लोकान् वक्तो भिक्षा न जानकी ॥९८॥  
 कदापि जायते विद्याः सत्यं चेदं त्रयाम्यहम् । आनन्दे रक्षणं कार्यं कार्यो दुष्टस्य निग्रहः ॥९९॥  
 मयोपदिशता चेत्थं जनान्मुग्धं प्रगल्भी । रक्षितो निदनी शान्तिरावणावितरे इति ॥१००॥  
 कीर्तिः कार्यो जनेष्वत्र मयोपदिशता न्विति । पापण्यमार्तिना नीरे किमाकाशगतने मे ॥१०१॥  
 यद्यपि शुद्धं स्वे चित्तं विरुद्धं च जनयु यत् । न्यक्तस्य तन्निग्रहं चापि मयोपदिशता न्विति ॥१०२॥  
 जनानशयान् सुखाऽपि लक्षावो दिव्यदानतः । लोकाववादमोन्या सा पुनः स्यक्ताऽत्र जानकी ॥१०३॥  
 स्वयमेवात्र यन्त्यक्तं बुद्धं ज्ञान्वा हि उन्मुखा । अगोकार्यं जनैर्बुद्ध्या मयोपदिशता न्विति ॥१०४॥  
 जनानशयान् मीता पुनः स्यक्ता मया शुभा । एकपत्नीत्रयादाऽन गजकर्माप्यनेकशः ॥१०५॥  
 अश्वमेधादियज्ञश्च मदाचारो अस्मत्तरः । स्नानमभ्यासश्च यथन्मया प्र क्रियते मदा ॥१०६॥  
 तन्मया जनशिक्षार्थं मुक्तस्वस्य किं सम । कर्मातिशयं यो विद्याः मदानन्दरूपिणः ॥१०७॥  
 अहं मदाऽऽनन्दमयः सुखात्मा सुखदो नृणाम् । अवतारपरन्वेन सुखं दुःखं मयाऽर्कथं ॥१०८॥  
 यदत्र भवतामग्रे कीनुकार्यं न मथ्यः । उपायकालो तेषां भवताः स्वयं मया ॥१०९॥

पुत्र आदिके मन्त्रोंमें अधिक आग्रह न हो जाना चाहिए । यह उपदेश देना हुआ मैंने लक्ष्मी परित्याग कर दिया था ॥ ९४ ॥ सुख दुःख दोनों का समान समझना चाहिए । सुख न विनाश होपित हो, न दुःख घबडाये । यह उपदेश दत्तके लिए हो भक्तों के समझने के ठीक से मन्त्रों को अपनाया था । काम-जान आदि दुष्ट शक्तियों का मानना चाहिए ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ यह उपदेश दत्तके लिए हो मैंने वनमें रहकर बहुतसे मुनिहिंसक राजाओं को मारा था ॥ ९७ ॥ त्रयोदश में अधिक आसक्त होता ठीक नहीं बल्कि उनका गल्लू त्यागकर दूर रहता हुआ तपस्या कर ॥ ९८ ॥ उह उपदेश दत्तके लिए मैंने वनमें मन्त्रों का नजकर उनसे विरह उभाया था । शास्त्रवत् माना हमस पृथक् कर्मा नहीं हो सकते ॥ ९९ ॥ हे व बुद्धि । यह सब बात मैंने सर्वथा सत्य कहा है । मनुष्यमात्रका चाहिए कि जो दुःख, जनका रक्षा कर और दुष्टों का नष्ट कर ॥ १०० ॥ सुखान और विमोक्षणका रक्षा वरके दुष्ट को न और शत्रुओं का मन्त्र कर स्मरणका मैंने यही उपदेश दिया है ॥ १०१ ॥ इस मन्त्रवत् मनुष्यका चाहिए कि यह जानना न उका विचार करे । इसलिये मैंने सद्बुद्ध को भी पक्ष परीक्षा के भवता परित्याग कर दिया था ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ अथवा यदि किसी पवित्र वस्तुका पाप और दादन सा हो तो वह हृदय है तो उसको फिरसे बर्तन कर लेना चाहिये । यह उपदेश देतेके लिए हो मैंने पृथक् त्याग हुई था मन्त्रों के फिर स्वर कर कर लिया । उर्मा प्रकार एकपत्नीपुत्र, अनेक तरहके शत्रुकार्य आग्रहपाद रज, तवाचर, जय, तप, स्नान, सज्ज आदि जितना भी काम हम करन है, सो सब लोगोंकी उपदेश दत्तके लिए ही कर रहे हैं ॥ १०४-१०५ ॥ वैसे तो समारी मायाहमसे भक्तों मदा आनन्दस्वरूप, वनसे परे, सदा आनन्दमय, सुखात्मा और समस्त मनुष्योंके सुखदाता मुझ रामके लिए इन सब बातोंसे क्या मतलब ? ये सुख दुःख जो बताये, वे अवतारक मायापर आय लोगोंके कीनुके लिए कहे हैं, हममें कोई नश्य नहीं है । अपन भक्तोंके सत्संधार्थ विशेष-गुणसम्पन्न वे अवतार गिनाये, वस्तुमें मेरे लिए सब अवतार बराबर हैं । किन्तु अपनी बुद्धिसे भली चर्चा



विशेषगुणवानुक्तः सन्ति सर्वे समा मम । सम्प्रयुद्धया विचाराच्च नरिष्टः सकलेश्वरम् ॥ ११० ॥  
 द्वाचदारौ जलचरौ तथा वनचरौ च द्वौ । द्वौ तौ च वल्कलधरौ एको वैश्यश्च गोपकः ॥ १११ ॥  
 एकस्तु मलिनश्चापि परश्च क्षणिकमनया । एवं भूता भविष्याश्चावतारास्तोषदा न मे ॥ ११२ ॥  
 अयं सर्वविशिष्टोऽत्र ह्युपासकजनप्रियः अवतारस्त्वहं वैश्व सेयनान्ममलप्रदः ॥ ११३ ॥  
 चरित्राध्यतिरम्याणि पानकधनानि चैव स्यान् । कुतान्यस्मिन्नवतारे भवणान्मुक्तिदानि हि ॥ ११४ ॥  
 सदा वना मजन्त्यत्र क्षरतारमयं मम । भक्ता येऽस्यावतारस्य ते मेऽतीव प्रिया मदा ॥ ११५ ॥  
 एवं सर्वभिद् विप्रा आनन्देन मयोदितम् । दोषमारोपयन्त्यस्मिन्नवतारेऽपि ये जनाः ॥ ११६ ॥  
 ते मद्द्रेष्या नरकेषु पतन्ति सह पूर्वजैः ।

श्रीरामदास उवाच

एवमुक्त्वा रामचन्द्रः सम्पूज्य हि मुनीश्वरान् ॥ ११७ ॥

विस्तृज्य सकलान्तीर्थां रंजयामास राघवः । एव शिष्य मया प्रोक्तमवतारप्रवणनम् ॥ ११८ ॥

इति श्रीभक्तकोटिरामचरितात्मने श्रीरामदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे  
 अवतारवर्णनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

## एकविंशः सर्गः

( रामका अपने दासको वरदान देते हुए दो रूप धारण करना )

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकी दृष्टुं सप्तर्षीपांतरस्त्रियः । मुनीनां पाशिवानां च सुहृदो व्यवसायितम् ॥ १ ॥  
 सामान्यक्षत्रियाणां च वैश्यानां च सहस्रशः । चैत्रस्तानमिषेषैश्च द्यूवाहनमस्थितरः ॥ २ ॥  
 दृष्ट्वा समामतास्ताश्च जानकी मज्जगामिना । प्रन्युद्गम्यनयामाम स्नायालामनिसादरात् ॥ ३ ॥

विचार करके मैं इस निम्नोपर पढ़ना हूँ कि समस्त अवतारों में यह रामवतार सर्वश्रेष्ठ है । १०७-११० ॥  
 दो अवतार जलचर रूपके, दो वनचर, दो वल्कलधारी, एक वैश्यवर्णका गायरूप, एक मलिनवर्ण-  
 वाला और एक क्षणिक ये भूत तथा भावधरक रूप अवतार मर मनक नहीं हैं—इनमें मैं प्रसन्न नहीं हूँ ॥ १११ ॥  
 ॥ ११२ ॥ मैं जहाँतक जानता हूँ, समस्त अवतारों में उपासक जनताका प्रिय तथा सचनस मङ्गलप्रद यही  
 रामावतार है ॥ ११३ ॥ इस अवतारमें मैंने जितने काम किये हैं वे सब अतिशय रम्य, पातकोका नष्ट करनेवाले  
 तथा सुननेसे मुक्ति देनेवाले हैं ॥ ११४ ॥ भक्तोंका चाहिये कि मर इसी अवतारका भजन कर जो लोग इसको  
 उपासना करते हैं, वे मुझे सदासे अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ११५ ॥ हे विप्रा ! यह सब कहकर मैंने आनन्दक साथ आप  
 लोगोंको बुलाया । जो लोग मेरे इस अवतारमें जो दोष आरोप करते हैं, वे मर शत्रु होकर अपने पूर्वजोंके साथ  
 नरकाग्नमें गिरते हैं ॥ ११६ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—इस एक एका बात करके राममें उन मुनीका पूजन किया  
 और सबको विदाई दी । ११७ ॥ तत्पश्चात् सातोंका प्रसन्न करनेवाला बात करने लग । हे शिष्य ! मैंने इस  
 तरह तुम्हारे समक्ष सभी अवतारोंका वर्णन किया । ११८ ॥ इति श्रीरामदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः  
 राज्यकाण्डे उत्तरार्धे अवतारवर्णनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

श्रीरामदास कहते लगे—एक बार सोताकी देखनेके लिये सातों द्वीपोंकी स्त्रियों जिनमें मुनीयोंकी, राजाओं-  
 की, मित्रोंकी, व्यवसायियोंकी ॥ १ ॥ सामान्य क्षत्रियोंके क्षत्रियोंकी तथा वैश्योंका द्वाराका संख्यामें तारिफ  
 चैत्रस्तानके ध्याजसे अनेक प्रकारके बाहुनोपर सवार हाड़कर अयाभ्या आयीं ॥ २ ॥ उन्हें मर्ती देखकर रामके  
 प्रमान मन्दगतिसे चलनेवाली सीता शीघ्र उनके आगे पड़ची और आदरके साथ अपनी स्नोतालामें ले गयीं ॥ ३ ॥

पूजयामास ताः सर्वा नानालंकारभूषणैः । ताः सर्वाः पूजयामासुः सीतां सिंहासनस्थिताम् ॥ ४ ॥  
 दिवपाल कारवस्त्राद्यैर्नानादेशोद्भवंवरैः । परिवार्य ततः सीतां तन्धुः सर्वाः स्त्रियश्च ताः ॥ ५ ॥  
 भ्रुवा सीतामुत्पन्नमचरित्राणि महामुखाः । तास्तुष्टाः श्रोतुमुग्रकास्तत्पाणिग्रहणं शुभम् ॥ ६ ॥  
 स्मितास्यास्ताः स्त्रियः सर्वास्तदा मोक्षुर्बिदेहजाप् स्वत्पाणिग्रहणांस्तदं श्रोतुं वाछामहे वयम् ॥ ७ ॥  
 तन्धुर्वं विस्तरेणाद्य इत्तुमहमि जानकि । इति तर्भा वचः भ्रुवा लज्जया जानकी नदा ॥ ८ ॥  
 स्या सर्वो नोदयामास तुलसी रुक्मभूषिताम् ।

तुलस्युवाच

शृणुष्वं सकला नार्यः पाणिग्रहणमुत्तमम् । ९ ॥

जानक्याः कथयाम्यथ महामगलदायकम् । वन्दोपायं हि सत्संपादयन्नाम्पुण्यवर्द्धनम् ॥ १० ॥  
 साकेतद्रष्टुर्नन्दनेन स मुनिर्धात्रा युवेनाश्रमं स्व गत्वा विनिहत्य राक्षसबलं तेनैव यज्ञं निजम्  
 संपाद्यातु स्थम्भितश्च मिथिलामार्गं हरेरग्निगः संपर्शद्विनकल्मषा ममकरोद्भार्या मुनेर्माधिजः ॥ ११ ॥  
 गत्वा गाविजमंयुतश्च मिथिलां श्रान्ता समापरित्यज्वापाधः पतितं निरीक्ष्य च त्रिषु स्वोपं मुनेराहृता ।  
 तं नत्वा मिथिजेश्वरस्य च धनुः कृत्वा त्रिसदं भृगान्मन्त्राहस्तविसर्जिता निजगले मलां दर्भा राघवः ॥ १२ ॥  
 व-भूतां च निजं विधाय मिथिलापुर्यां विवादान् गुमान् पितृभ्यां सह भार्यया रघुपती राजाऽनिसंयुजितः  
 त्यक्त्वा नां मिथिलां ययी निजपुत्रीं मार्गे क्रुधा त्रिष्टतो दुर्दर्पं जमदग्निं व्रत्य धनुषा मोषाहमृच्छीलया ॥ १३ ॥  
 एवं नार्यश्च सीताया विवाहः कथितो मया । पुष्पाभिः कौतुकान्पृष्टो यः सर्वमगलप्रदः ॥ १४ ॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्त्रियश्च ताः भ्रुवा परमां मुदमाप्सुयुः । ततस्ताः पूजयामासुः पुनः सीतां मुदान्विताः ॥ १५ ॥

संज्ञाने अनेक तरहके भूषणों से उनकी पूजा की और उन सबगण भी सिंहासनपर बिठनाकर दिव्य अलङ्कारों से सीताका पूजन किया । इनके अनन्तर वे सब सीताका चारों ओर घेरकर बैठ गये । ४ ॥ ५ ॥ सीताके मुखसे रामके सह्यां चरित्र सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सीताके मुखसे ही सीताका विवाहसम्बन्धी वृत्तान्त सुननेकी इच्छा प्रकट की । ६ ॥ वे मुकुटगता हुई सनत्कु कहने लगे कि हम आपके विवाह-समारोहका वृत्तान्त सुनना चाहती हैं । ७ ॥ हे राजा ! वह सारा हाल विस्तारपूर्वक हमका सुनाइए । इस प्रकार उनका प्रश्न सुनकर सीता लज्जयायश वृत्त नही बोली और अपनी सहेली तुलसीकी ओर कि सुवर्णमय आभूषण पहने बैठी थी, संकल किया और उनकी कहने लगा—आप लोग सीताके महलमय विवाहका वृत्तान्त सुने ॥ ८ ॥ ९ ॥ आप स्वर्गोका प्रसन्न करनेके लिए उस महामङ्गलदायी और सुननेसे पुण्य बढ़ाने-वाले विवाहका मैं संक्षेपसे वर्णन करना हूँ ॥ १० ॥ अगस्त्यापुराण विधामित्र राम और लक्ष्मणको साथ लिये हुए अपने साथमें पहुँचे । वहाँ राम लक्ष्मणन राक्षसोंकी प्रबल सेनाका सहार किया और मुनि विधामित्रके यज्ञ कर लेनेके बाद रथपर बैठकर मुनिके साथ दोनों भाई मिथिलाकी ओर चले । रास्तेमें विधामित्रने रामके चरणोंका स्पर्श कराकर गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याको शापसे मुक्त कराया ॥ ११ ॥ फिर मुनिके साथ जनकपुर पहुँचे । स्वयम्भरके समान रामने सभामें मुनि विधामित्रका आज्ञासे शिवके अनुग्रहकी प्रशंसा किया और क्षण भरमें उसे तोड़कर तीन टुकड़ कर डाले । फिर सीताके हाथोंकी चरमालाको रामने अपने गलेमें धारण किया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर रामने मिथिलापुरीमें ही अपना और अपने सब भाइयोंका विवाह किया । फिर पत्नी, पिता, माता आदिके साथ जनकसे पूजित होकर राम मिथिलासे अवधारणकी चले । रास्तेमें कौषी परशुराम मिले और उनके योग्य अनुग्रहों कह कर रामने उनके दुर्दर्पको दूर कर दिया ॥ १३ ॥ हे नारियों ! सुनने केद्वारा वह सीताके जिस सर्वमङ्गलप्रद विवाह-वृत्तान्तको पूछा था, सीता ने कह सुनाया ॥ १४ ॥ श्रीरामदास कहते हैं कि इस प्रकार सीताके विवाहका वर्णन सुनकर वे स्त्रियाँ बहुत

सीतया पुत्रिताः सर्वास्तां नन्वाभ्यञ्ज्य जानकीम् । चैत्रस्नान समाप्याथ जगत् स्व स्व स्थलं प्रति ॥१६॥  
अथैकरा गुणोत्पादाभावे संस्थितो लवः । शृण्वन्पुण्यं पप्रच्छ भोतुं सर्वान् जनान्गुरुम् ॥१७॥  
गुणे ते प्रष्टुमिच्छामि सर्वं यद् मुनीन्तर । पुनर्केन च सर्वत्र पत्रे पत्रे पृथक् पृथक् ॥१८॥  
एकत्र लिख्यते श्रीति रामेन्येकत्र लिख्यते । किमर्थं मानर्वेज्जन्तु सन्मते कथयस्व मात् ॥१९॥

इति तद्वचने श्रुत्वा गुरुर्न शक्यमब्रवीत् ।

वसिष्ठ उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया इत्थं लोकमदेहदुर्गमम् । २०॥

श्रीरामचरितं पूर्वं स्वासेन मुनिना पृथक् । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥२१॥  
कृतान्यन्येषां मुनिभिः षट्शस्त्रादीन्यनेकशः । श्रीरामचरितादेव इलोकमात्रमपीह यत् ॥२२॥  
सर्वमस्तीति तद्विबुधादावेकत्र श्रीति च । विविच्यैकत्र गमेति तन्मध्ये परिलिख्यते ॥२३॥  
जनया संज्ञया सर्वे वाच्यन्त्यत्रे जना मुनि । श्रीराम मध्ये लिखितं श्रीरामचरितादिदम् ॥२४॥  
कृतमस्ति पृथक् मिथं पुरा व्यासादिभिस्त्रिविधं । एतन्मात्रकाण्डात्तल्लेखनार्थं विलिख्यते ॥२५॥  
आरामेति पृथक् पत्रे सर्वत्र वसन्तीतले । अन्वये कारणं वन्धि तच्छृणुष्व शिष्यो लव ॥२६॥  
अष्टुर्लं लिखितं पञ्चाङ्गान्तो प्रातिगोऽपि हि । यत्र तच्छानिष्टुर्द हि भवतिवति मनीषया ॥२७॥  
श्रीरामेति च सर्वत्र पत्रे पत्रे विलिख्यते । यदकिं श्रीरामेति नाम्ना यत्र तु लेखकैः ॥२८॥  
श्रेयं तच्छानिष्टुर्द हि गतदोषस्तु लेखकः । भवत्यत्र जगत्या हि सत्यं लव वदाम्यहम् ॥२९॥  
इति श्रुत्वा पुनर्वाक्यं वसिष्ठं प्रविषत्य च । लवः स यत्तपन्देहस्तृष्णीयामोन्मुदाचिह्नतः ॥३०॥  
एकरा रघुनाथस्तु मन्त्रकोपरि संस्थितः । मुखात्पाञ्चुलस्य रत्नं प्रथमं दोषकारकम् ॥३१॥  
त्यक्तुर्काशी न दर्शय पात्रं निष्ठीवनस्य मः । नर्प्यातिकं स्थिता दासी नाम्ना च गुण्येति च ॥३२॥

अतः वृद्ध और उन्होंने फिर से सीताका पूजन किया ॥ १५ ॥ माता ने भी फिर उसका पूजन किया और वे सीताको प्रणाम करके और उनसे आज्ञा लेकर चंचलमान समाप्त हो जानेपर अपने-अपने घर चले गयी ॥ १६ ॥ इसके बाद एक दिन गुप्त बसिष्ठ बैठे पुण्यकी कथा सुना रहे थे । रामचन्द्रजी और लव भी बैठे हुए थे । कथा सुनते-सुनते लवने सब आदमीको ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अभिप्रेम कहा—॥१७॥ हे गुरु ! मैं जानते कुछ पूजना चाहता हूँ, सो बताइए । प्रश्न ऐसा बना आता है कि सब पुस्तकाके पन्ने-पन्नेमें एक कोर 'श्री' और दूसरी कोर 'राम' ऐसा लिखा जाता है । लोग ऐसा क्यों करते हैं ? यह कथना हमें बला दीजिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर वसिष्ठने कहा—हे लव ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । इससे बहुतोका सन्देह दूर हो जायगा ॥ २० ॥ पहले व्यास मुनिने श्रीरामचन्द्रके चरित्रारम्भक अष्टादश पुराण और अष्टादश ही उपपुराण बनाये ॥ २१ ॥ उसी तरह और-और अधिपते षट्मात्र आदि बनाकर तैयार किये । सब प्रदोंके सभी श्लोक श्रीरामचरितसे बन है । इसी बातको ज्ञानानेके लिए प्रत्येक पन्नेमें 'श्री' लिखकर 'राम' लिखा जाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस संकलसे सत्तरक शृण्वन्पुण्यक देखकर यह समझने कि वे सब सब श्रीरामचरितसे अन्तर्गत हैं । हे लव ! श्रीराम लिखनेका एक कारण यह है, जो बना चुका । दूसरा भी बतलाता है—हे लव ! सो भी सुन लो ॥ २४-२६ ॥ अज्ञानतासे जो भववत्त वन्दन जो कोई मन्द अशुद्ध मिला गया हो, वह पन्ना अन्दरत गूढ़ हो जाय । इस विचारसे जो पन्नेमें लेखकगण श्रीराम लिखते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ ऐसा करनेसे अशुद्ध या गूढ़ हो जाता है और लेखकको कोई दोष नहीं लगता । हे लव ! मैं तुमको यह सब सच्ची बात बतला रहा हूँ ॥ २९ ॥ इस प्रकार समाधान सुनकर लवका सन्देह निवृत्त हो गया और वे चुपचाप बैठ गये ॥ ३० ॥ एक बार राम धन्यकर बैठे थे । सुनते साम्बूल था । साम्बूलका प्रथम रस खोवकारक होता है, इस स्थानसे उन्होंने पूजना चाह्य । किन्तु निष्ठीवनपात्र ( मोमालदान ) नहीं दिखायो पड़ा । रामक पास ही कहीं गुण्णा नामकी दासी रामकी इच्छा

तादृशं राममालोक्यं पार्श्वं दूरं चिलोक्य च । कुन्वा पार्श्वं स्वहस्ताभ्यामंत्रलावेव तद्रमम् ॥३३॥  
 रामेण मुक्तमाग्याच्च जग्राह वेगवभरा । ततः सा प्राशुनं रामोच्छिष्टं दासी चकार तद् ॥३४॥  
 महाप्रसादं तं मन्वा देवाल्लब्धं विविन्ध च । तदाऽतिनुष्टः श्रीरामस्तस्यै तत्कर्मगाऽभवीत् ॥३५॥  
 परमम् चरं दामि यत्ने मनसि वर्तने तद्रामवचनं श्रुत्वा दासी प्राह रघूनायकम् ॥३६॥  
 एकदन्तीव्रतं तेऽस्ति माप्रतं निवृद्धं जन्मनि जमातिरे त्वया ममं वाछामि रघुनायकम् ॥३७॥  
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा रामवो वाक्यमब्रवीत् । यदाऽग्रे कृष्णारूपेण गोकृष्णैश्चनराभ्यदृष्टम् ॥३८॥  
 तदा गधेति नाम्नी न्व गोपिकासु भविष्यसि । तदा मया चिरं क्रीडां त्वं योक्ष्यसि न सशयः ॥३९॥  
 तदा ममानिप्रीता त्वं गोपिकासु भविष्यसि । इति दासी रामचन्द्राद्वरं लब्ध्वा तुनोष मा ॥४०॥  
 अन्वच्छृणु विष्णुदास रामचन्द्रकथानकम् । यन्प्रोच्यते मया तेऽग्रे महत्कौतुककारकम् ॥४१॥  
 एकदा राघवः श्रीमान्ममाग्रामान्तोपरि । मन्विनो बन्धुभिः पूर्वमन्विभिः पुत्रासिभिः ॥४२॥  
 गन्धिमन्त्रने कश्चिद्वल्लभां ममाग्र्या युवा दण्डधरः श्रेष्ठः कमण्डलुकरः शुचिः ॥४३॥  
 ऐणकृष्णाजिनधरः काषापवमनो व्रती तं दृष्ट्वा राघवः श्रमानवगीर्षं वरामनत् ॥४४॥  
 प्रभुद्वयस्य तं नत्वाऽऽमने समुपवेश्य च । पूजयामास विधिना धेनुमग्रे निवेश्य च ॥४५॥  
 ततः सम्पूजितं विप्रं राघवो वाक्यमब्रवीत् । अद्य धन्याऽऽभ्यहं विप्रं यतन्ने दर्शनं मम ॥४६॥  
 कार्यमाज्ञाप्यतां किञ्चिदर्थं भवताऽऽगतम् । तद्रापवचनः श्रुत्वा प्रसन्नासी वचोऽब्रवीत् ॥४७॥  
 वाक्मीकिना प्रेषितोऽहं यस्मात्तच्छृणु राघव । यदुक्तामो महायज्ञं मं बाल्योकिर्षहासुनिः ॥४८॥  
 स्वापाकागमितुं मां त्वच्चिरं वरावतरम् । प्रेषितवान्ततन्व हि मां तया बन्धुभिः सह ॥४९॥  
 प्रस्थानं कुरु राजेन्द्र मुहूर्तमवद्य वर्तने । एवं वदति श्रीराम भूमुरे मदामि स्थिते ॥५०॥

रामजी गये, किन्तु पात्र दूर था । इसलिए भण्णकी बुकनेके लिए उसने अपनी बज्जली फेंका दी । ॥ ३१—३३ ॥ रामजी भी बहुत प्रसन्न हुए उसकी हायसे बुक दिया । दासी उसको लेकर तुरन्त आठ गयी । उसने मनमें सोचा कि यह महा प्रसाद है और भगवन् आज मुझे मिल गया है । उसने इस अवसरसे राम जीसे प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा — ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ श्री दासा ने ऐसा जा इच्छा की, वह वर मांग ले । रामजी बात सुनकर उसने कहा — इतना जमान आप एकका वरता है । इसलिए हे रघुनायक मैं तुम्हारे जन्ममें आपको से वरदान सहवास करना चाहती हूँ । ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उसकी यह बात सुनकर रामने कहा कि जगत् जन्ममें मैं कृष्णरूपसे गोकृष्ण अवतार में, सब तुम राधा नामसे विष्णुएत एक गोवल्ली होओगी । उस समय बहुत दिना तक तुम मेरे साथ नंदका सब भोगी, इसमें कोई संकय नहीं है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ बहुत सागरा गोविन्दों ने तुम मुझे भवने दिया होओगी । दासी इस तरह रामचन्द्रजीसे वरदान पारकर प्रसन्न हो गई । ॥ ४० ॥ श्री राघुनायक रामचन्द्रजीकी एक दूसरी कथा भी मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूँ । वह बड़ा कीर्तनक है । ॥ ४१ ॥ एक समय राम मन्त्राग्रे मिहगवनपर आहूयी, पुत्रों तथा भविष्योंके साथ बैठे थे ॥ ४२ ॥ उसी समय एक युवा बड़ाचारी दण्ड धरण किये और हाथमें कमण्डलु तथा पवित्र मृगचन लिय और वागाव वस्त्र धारण किये वहाँ आ पहुँचा । उसे देखते ही श्रीमान् रामचन्द्रजी आसनसे उठ खड़े हुए । थोड़ा आगे बढ़कर उसे प्रणाम किया और एक मन्त्रे आसनपर बिठवाया । फिर गोदान देकर उन्होंने उसका पत्रा का । ॥ ४३—४५ ॥ पूजन कर लेनेके पश्चात् रामने कहा—हे विप्र ! आज आपके दर्शनसे मैं आनेका मन्त्र समझता हूँ ॥ ४६ ॥ अच्छा, अब आप मुझे वह आगा दीजिए कि जिसके लिए आप यहाँ आये हो । रामजी यह बात सुनकर बड़ाचारी कहने लगा । ॥ ४७ ॥ श्री बाल्योकिजीने मुझे आपके पास भेजा है । वे एक महायज्ञ करना चाहते हैं । इसीलिए आपको बुलानेके लिए हमे भेजा है । हे राजेन्द्र ! आज बड़ा अच्छा मुहूर्त है । अतएव सीता तथा अपने आस्तामके साथ आप शीघ्र प्रस्थान कर दीजिए । इस प्रकार वह

समाययौ ब्रह्मचारी द्वितीयो ग्राधिवाश्रमात् । तं दृष्ट्वा पूर्वदृष्टामः प्रपुष्टम्य द्विजेभ्यम् ॥५१॥  
 आसनेऽप्ये चोपवेश्य पूजयामास गार्गम् । तन्मन्त्रपुनः स्थित्वा स द्रवच्छ रघुचमः ॥५२॥  
 यदर्थं श्राप्तेनोऽसि त्वं तन्ममाज्ञापयन् एत । तद्रामवचनं श्रुत्वा ब्रह्मचारी बभौऽब्रवान् ॥५३॥  
 राम त्वां ग्राधिजेनाहं श्रेयसाऽस्मि जज्ञेन हि । यन्तुक्तानो महयज्ञं विश्वामित्रोऽग्निं राघव । ५४ ।  
 त्वं तेनाकाशनिश्चामि प्रस्थानं कुरु मन्त्रम् । ब्रह्मचारिणोऽनङ्गाकषण्णयोः स रघुचमः ॥५५॥  
 भुञ्चा विदम्य प्रोवाच द्विजार्घ्यां वै तथेति च । तदाश्रयं उन्मः प्रादुः प्राचुस्ते तु परम्पराम् ॥५६॥  
 कथमयोमयोः सर्वं रामो गच्छति तन्मर्षा । केचिद्वृत्तं राघवाय किमशक्यं तथोऽत्र हि । ५७ ।  
 यथा स्त्रीणां वने पूर्वं यथाऽऽम्नाहं हि दर्शनम् । यथा गतोऽग्निं लकायाः पुनः भरतदर्शने ॥५८॥  
 भिक्षुरूपेण रामेण सर्वेषामपितं पृथक् । तद्वदपि द्विरिष्टा भुञ्चा गन्वा च तन्मन्त्री । ५९ ।  
 किमाश्रयमिदं चाद्य किमशक्यं परात्मनि । एव वदन्तु पौत्रेषु लक्ष्मण प्राह राघवः ॥६०॥  
 अद्यैवाहं गमिष्यमि मे जनानन्तरं वदिः । वामोर्गेहानि नेयानि वदिः सेनां प्रचोदय ॥६१॥  
 आह्वापनीयं वाद्यानां स्पर्शनं कर्तुं हे रोवकान् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेष्टुक्त्वा स लक्ष्मणः ॥६२॥  
 कारयामास वाद्यानां स्पर्शनं दूर्तश्च सश्रमान् । सर्वं प्रचोदयामास वदिर्वामोर्गुहाण्यपि ॥६३॥  
 नेतुमाज्ञापयामासुर्दूताग्ने निन्युहादगन् । नतो रामोऽपि विप्राभ्यां गृहं गत्वा विदेहजाय् ॥६४॥  
 सर्वं वृत्तं निवेद्याश्च कृत्वा विप्रहि भोजनम् । मातां च कर्मिणीं पृष्टे वंभुनाऽऽगेहयन् प्रभुः ॥६५॥  
 पुष्पके पौत्रागेश्च कर्मिणीं पूमिलादिकाः । सपारोदय-ह्युगामः स्वयं तर्ष्या गजोपदि । ६६ ॥  
 लक्ष्मणाद्या गजेभ्यश्च ते समाकृतमुत्तदा । निनेदुश्चाथ वाद्यानि नन्तुर्वाग्योपिनः ॥६७॥

ब्राह्मण बहुत ही रहा था कि इनमेंसे एक दूसरा ब्रह्मचारी विश्वामित्रक आश्रमसे आ पहुँचा । पहलेका तरह रामने उसका भी स्वागत किया । ४८-५१ ॥ उस एक दूसरे आसनपर बिठाकर उन्होंने उसको भी उल्लो तरह पूजा की । इसके अनन्तर उसके भाँ आगे बैठकर उन्होंने कहा कि जिस कारण लिए आपने बहुत किया हो, मुझे आज्ञा दीजिए । रामकी आज्ञानुसार ब्रह्मचारीने कहा - ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे राम ! मुझे विश्वामित्र-जीने आपके पास भेजा है । वे एक भूषण करना चाहते हैं । उसमें उन्होंने आपका पुण्य है । इसलिये आप भी प्रस्थान कीजिए । रघुचम राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंके सन्देश सुनकर मुनिराए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उन दोनोंसे कहा - अच्छा चलेग । इस बातका पुनः सभाके लोगोंको बड़ा विषय हुआ । वे परस्पर कहने लगे— ॥ ५६ ॥ राम इन दोनोंके साथ जाकर कैसे उन दोनों यज्ञों में सम्मिलित हो सकेंगे । जिसने कहा कि रामके लिए अगवध कौन सा काम है, वे क्या नहीं कर सकते ? ॥ ५७ ॥ जैसे वनमें उन्होंने उन हुआसे त्रियोंको हजारों स्फोष दर्शन दिया था । जिस प्रकार लकासे लौटकर अनेक भयानक समय सम्यक् मनुष्यसँ मिले थे । ५८ ॥ उन्नी तरह इस समय भी राम अपना दो हथ वनाकर दोनों जगह चले जायेंगे ॥ ५९ ॥ इच्छे आश्रम करनेकी बात हो कौनसी है, जिसका आत्मा इनने ऊँचे दरपर पहुँच गयी है और जो साक्षात् परमात्मा है, उसके लिए अगवध कोई काम नहीं है । इस तरह जाग आपसमें बातचीत कर रहे थे, वही रामने लक्ष्मणसे कहा— ॥ ६० ॥ लक्ष्मण ! आज ही भोजन करनेके पश्चात् हमलोग बाहर चले जायें कनाह यदि भोजन दो और सेवा भी नगर करवाओ ॥ ६१ ॥ बात खजानेके लिए सेवकोंको आज्ञा दे दो । रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने "तुवास्तु" कहा । ६२ ॥ तत्काल उन्होंने दोनोंको बुझी बजावकी आज्ञा दी । लक्ष्मणके आज्ञानुसार सेवक सब सामान ठाँक कर लगे । इसके अनन्तर राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंके साथ लोकाके महलोंमें गये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ जनकोजों को भी निमन्त्रणका समाचार सुनवा और दोनों ब्रह्मणोंके साथ भोजन किया । फिर बन्धुओंके साथ सीताको हाथीपर सवार कराया । बाकी पुरवाहिनी नारियोंको पुष्पक निमानपर एवं उमिलादिकी हाथीपर बिठाया । उन सबका सवारियाँपर बिठाकर स्वयं भी एक हाथीपर सवार हुए और सरयणादि भी हाथीपर बैठे । उस समय विद्विष प्रकारके वाद्य बजने लगे और

तुष्टुर्मागधायाश्च प्रजगुः सुम्भरं नराः । एवं एतत्कर्मैः रामस्यादा मामोमृहाणि सः ॥६८॥  
 तां रात्रिं समनिक्रम्य प्रधाने रघुनन्दनः । क्त्वा निष्पत्तिं कृत्वा मज्जरुदोऽभवन्पुनः ॥६९॥  
 क्रौञ्चद्वयं ततो गन्धाऽग्रे द्वौ मार्गौ निर्दिष्टौ च । सप्तमे द्वे निजरे देहे चकार रघुनन्दनः । ७०॥  
 सदा द्वयोर्मार्गयोश्च गन्धर्वी गीतया । पुनश्च । वन्धुभिर्घनैः द्वौ मार्गौ सकला जनाः ॥७१॥  
 ददशुः पुष्पके द्वे च द्वौ जाते प्रसवार्थिनः । जन्ती । प्रज्ज्वरा श्वेकः सत्त्वं गुरुं ययौ ॥७२॥  
 विश्वामित्राश्च ता यः श्रममेष मुदा यतः । म । श्वेकः सत्त्वं गुरुं ययौ ॥७३॥  
 बान्धीकैरञ्जर चान्यः श्रममेष यथा मुदा । एवं मे । सत्त्वं गुरुं ययौ ॥७४॥  
 निजानि ददशुम्भत्र । सत्त्वं गुरुं ययौ ॥७५॥  
 सत्त्वं गुरुं ययौ ॥७६॥  
 तयोर्मार्गौ विधायाश्च पौष्पौ पुनः पुनः । सत्त्वं गुरुं ययौ ॥७७॥  
 यत्र द्वे निजदेहे वै कृते तत्र रघुनन्दो समागत्य पुनश्चक्रे निजदेहं चकार सः । ७८॥  
 बान्धीकीयो मज्जचारी विश्वामित्राश्च । भिन्नदेहे श्वेकस्य मज्जतमो सदा द्विजौ ॥७९॥  
 सत्त्वं गुरुं ययौ ॥८०॥  
 तदा निजेदुर्वायानि रघुनन्दोऽपि नः । पौरुषार्थो विमानम्भा वरपुः पुष्पवृष्टिभिः ॥८१॥  
 तुष्टुर्मागधायाश्च प्रजगुः मज्जदयः । एवं नानाकान्तुकानि पश्यन्मर्गे शनैः शनैः । ८२॥  
 ययौ निजगृहं रामः समाप्तो मविवेश ह । सीताऽपि निजगृहं मा मविवेशो मिलादिभिः ॥८३॥  
 एवं मृगुर रामेण कौतुहलं महान्ति च । मयानुपगणे यान्यत्र कृतानि च सदृशशः ॥८४॥  
 बान्धीकिना विस्तरेण वर्णना ने हि कृत्स्नशः । सारं सारं मया तेभ्यः सगृह्याथ कथानकम् ॥८५॥

मेधार्थे नाचने लगी ॥ ६४-६७ ॥ बन्धीजन रामको विस्तारवली सुनाने तथा नटगण माठे मोठे स्वरोंसे गाने  
 लगे । इस प्रकार अपने राजमवलम्ब ग्रहण करके राम रास्तेमें बने हुए रथपर पहुँच ॥ ६८ ॥ वह रात्रि  
 रामसे वहाँ बिलायी । सबसे उठे ता स्नानादि निष्पत्तियों को छोड़ फिर हाथीपर बैठकर चल दिये  
 ॥ ६९ ॥ दो कोश आगे जानकर अर्धम विश्वामित्र तथा बान्धीकि आश्रम के रास्ते ऊपर होते थे, वहाँसे  
 उठते मेना सप्तम अगता दो स्तम्भ बना रिता ॥ ७० ॥ उस समय दोनों राज्यमें राम सेना, सीता तथा पुष्पवधू  
 आदिये युक्त होकर चले । उस समय जितने भी मनुष्य गाय थे, वे सब एकत्र हो दिखायी दिये ॥ ७१ ॥  
 पुष्पक विमान भी दो द्वे गदा और दोनों ब्रह्मचारि शोभ्य एक रामको विश्वामित्रके आश्रमकी ओर ले चला,  
 दूसरा बान्धीकिके आश्रमकी ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उस समय मनुष्यसे लेकर सापके कुत्ते तक दो हो होकर  
 दिखायी दे रहे थे । वे लोग अपने दो जमीनोंको देख देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ७४ ॥ इस प्रकार वे दोनों राम  
 अपनी-अपनी सेना, सीता और वन्धुओंके साथ दोनों आश्रमोंकी चले । जब कि आश्रमपर पहुँच तो दोनों  
 ऋषियोंने अगयार्थ करके उनकी पूजा की । ७५ ॥ इस प्रकार पहुँच-पहुँचकर उस दोनोंका यज्ञ समाप्त हो जाने-  
 पर फिर वे दोनों राम वल्लभों लक्ष्मणोंके लोटे । ७६ ॥ ७७ ॥ जाने समय जिस रथपर रामने अपना  
 दो स्तम्भ बनाया था, वही रघुनन्दन फिर गद हो गया । विश्वामित्रका ब्रह्मचारी तथा बान्धीकिका ब्रह्मचारी  
 वे दोनों भी एक ही एक ही गये । ७८ ॥ ७९ ॥ वे तरह पुष्पकविमान और सेना भी एक हो गयी । इस प्रकार  
 श्रीरामचन्द्रजी आनन्दपुत्रके अपने अयोध्या नगरमें प्रविष्ट हुए ॥ ८० ॥ उस समय भी ताता प्रकारके बाजे  
 बजे और वेश्याएँ नाची । गुरु गन्धर्व । नाचनेवाले तुलसी तिमिरसे रामपर फूलोंको बर्षा की, बन्धीजनोंने तुलसी  
 की और गानेवालोंने अञ्जलि अञ्जलि गाने लगे । इस प्रकार रामने तरह-तरहके कीतुक देखते हुए घीरे-घीरे  
 ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वे अपने भवनमें लगे और पत्नी परचकर राजमहलमें चले । सीता उमिला आदिके  
 साथ महलके भीतर गयी ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ रामने बताया प्रकारके जिन महान् और अलौकिक कार्यों-  
 को किया था, उनका आश्रमोंमें विस्तृत वर्णन किया है और मैंने इससे सारमात्रमात्र लेकर सब कथा सुनायी

तवाग्रे कथ्यते शिष्य सक्षेपेणाज्ञया प्रमोः । न चन्दोर्ध्वं यदर्थं च रामेणाज्ञापितस्त्वरम् ॥८६॥  
 वक्तुं स्वचरितं पुण्यं रम्यमानन्ददायकम् । वाक्यं पञ्चभिः शब्दैः संवादमात्रयोः ॥८७॥  
 यः पूर्वं विरचितवान् स्वीयकालेऽत्र सूतदा । यथा रामस्य कथितं पूर्वं रामावतारतः ॥८८॥  
 एवं संवर्णितं कृत्स्नं गोप्यं यच्च हृतं रहः । न वाक्यमोपेयमः कश्चिन्कवेर्भूतो भविष्यति ॥८९॥

इति श्रीशक्तज्योतिरामचरितसंग्रहे श्रीमदानन्दरामायणे अष्टमोऽध्याये ॥

राक्षोहर्यानं तथा गमाज्ञेनां देहद्वयकृदणं गम्यद्विंश. सर्ग ॥ २९ ॥

द्वाविंशः सर्गः

( सीना द्वारा दूया तुल्यपत्र पृथः डालमें जोड़ना )

श्रीरामदास उवाच

इदानीं रामचन्द्रस्य लीलाशीतुम्भम् । अन्यद्रुमः लघ्वर्त्तते हि स्यात्तच्छृणु सत्तिरम् ॥ १ ॥  
एकदा राघवस्तस्यै सभायादाय गच्छति । वन्धुभिर्पवित्रैश्च दीर्घजनिपदैः सह ॥ २ ॥  
पुत्राभ्यां च सहजिष्व मित्रमन्त्रिजनैः सह । एतैर्भद्रजनां भूमिकीर्त्या मुह्यता चरैः ॥ ३ ॥  
द्राक्षाकलादिभिः पूर्वाभ्यां पुत्रैः सुभूमिभिः । कर्ण्डकाः प्रेषिताश्च रत्नार्थं सत्तमः ॥ ४ ॥  
ताः सर्वा राघवो दृष्ट्वा प्रेषयामास जलौघे । मुक्तामयं गिरिमीमांसां ब्रीडान् लब्ध्वा मुह्यता ॥ ५ ॥  
दृष्ट्वा कर्ण्डिकाः सन्निवेशयामुदयच्छदा । तस्यैव समग्रान्मनसं दृष्ट्वा रम्यं गिरिजनकम् ॥ ६ ॥  
करेणादाय पद्मं च राघवाय पण्डिता । सा वन्धुमन्त्र्यं जगद्भिराचार्यं मुदाम्बिता ॥ ७ ॥  
कर्ण्डिकां पूर्वमन्त्र्यं समाल्लस्यति सहजा । रत्नार्थमासां गेदपुसं च कर्ण्डिकाः ॥ ८ ॥  
तद्वृत्ता रामचन्द्रोऽपि स्वहान्तामनःस्थितः । निचले हि रथमसंशयं हृदयान्वितः ॥ ९ ॥  
सातदेहं कृतं कर्म योग्यं सुखं स्मृतं न ह । शनैः शनैः शनैः शनैः शनैः शनैः ॥ १० ॥

[illegible]

श्रीरामदासने कहा : 'एव मं भूमिं रामको गृहं दूना गम्य ओष उत्त' च द भूमिनां ह्ये । उसे आदर-पूर्वक सुनी ॥ १ ॥ एक समय रामचन्द्रजी मिट्ठानगर के हुए थे । उस समय उनके सनस्त भ्राता, मन्त्री, पुरवासी, दोनो पुत्र सम्बन्धी तथा मित्र आदि भी उपस्थित थे । उन सब उनके सुहृद् राजा भुशिकीर्तिने दुताँ द्वारा अंगूर आदि विविध प्रकारके फलोंमें भरी हुई बहुत सी मिट्टी के बर्तन ॥ २-४ ॥ उनको देखकर रामने उसे भीतर सीताके पास भेजवा दिया । उस समय सीता जगत् सज्जनोंक साथ कीड़ाघवमर्ष थीं ॥ ५ ॥ उन मिट्टारियोंको देखा तो बड़ी हस्तुकात्के साथ खोज-पावक कुछ मिट्टारियाँ देखीं, किन्तु उनके भीतर कमलका फूल भरा दाख पड़ा ॥ ६ ॥ तब प्रसन्न मनमें सीताने उनमेंसे एक कमलका फूल निकाला और रामको अर्पण किये बिना ही सूँघ लिया ॥ ७ ॥ नन्दनगर मिट्टारियोंका पहुँचको गरड़ होक करका घरमें रखवा दिया ॥ ८ ॥ सभामें बैठे बैठे ही रामको यह बात मालूम हो गयी । उन्होंने बार-बार इसपर विचार किया ॥ ९ ॥ तब उन्होंने सोचा कि सीताने यह ठीक नहीं किया, जो मेरे सूँघ बिना ही कमल सूँघ

अग्रेऽप्येवं त्रियः सर्वाः करिष्यन्त्यत्र ईं भुवि । संनार्दश्रुतमार्गेण गम्मादिच्छां करोम्यहम् ॥११॥  
 एव मनसि निधिन्य तनः य इष्यन्न्दनः नार्जयेत् गृहं गत्वा पूर्वज्जानकीं मुदा ॥१२॥  
 गच्छामास विविदेर्नानाकाङ्क्षादिहोर्मुक्तं । मं तर्जयि पेटिका सर्वा नरकाग्रे महानशः ॥१३॥  
 आनीय ददयामास कलशुष्पादिहोर्नराः । गमेऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वाः समुद्रं वा प्रयत्नं पृथक् ॥१४॥  
 प्रेषयामास गच्छता गेहेषु दश पञ्च च । पञ्चादानीं पेटिकाश्च नानाचक्रविचित्रिताः ॥१५॥  
 मान्तरां मकलानां च गृहेष्वपि तथा पुनः । पुत्रयोः सुहृदां चापि मन्त्रिणां च दुर्गेष्टथा ॥१६॥  
 पौर्याणां चापि गेहेषु सेवकाणां गृहेष्वपि । दामीत्यत्र मुदा दत्ता पेटिकाः सम पञ्च च ॥१७॥  
 सीतार्थं शनशो दत्त्वा मुदा तभ्यो गच्छन्ममः । कल्याणि दश पञ्चाष्ट काण भुक्त्वा ततः परम् ॥१८॥  
 एतद्दत्तं मुमुक्षुष्यान्ने रिमज्ज पदं पुनः । सतायै शनशो दत्त्वा स्तवसंगोचकस्ततः ॥१९॥  
 अज्ञात इव तद्वृत्तं गोपयामास चेतसि । अर्थकदा जनकज हविर्दिन्यामुपेयमम् ॥२०॥  
 कृत्वाऽपरे दिने स्नान्वा गयी वृन्दावनान्तिकम् । तुलसीं पूजयित्वा तां सा चकार प्रदक्षिणाः ॥२१॥  
 एतस्मिन्नन्तरे सीता निगदागं श्रमान्विता । त्यक्त्वा प्रदक्षिणाभ्याने किञ्चिदेव चचाउ सा ॥२२॥  
 चलितायाश्च सीतायाः पल्लवेन हि दामनः । पत्रमेकं तुलस्याश्च पथान् भुवि ईं तदा ॥२३॥  
 तन्वन जानकीं दृष्ट्वा द्वादश्यां वृत्तिम शुभम् । शान्त्याऽप्येव कृत्यते भयभागाऽद्वयतदा ॥२४॥  
 ततः सा तत्करणीयं गृहीत्वा परमुत्तमम् । तन्वा द्वादशेन सीता चित्तेव परमादरात् ॥२५॥  
 ततः प्रदक्षिणां कृत्वा शार्धवित्वा भूर्भुवः । तुलसीं सा ययी गेहं गच्छामास राघवम् ॥२६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र नारदश्च मयाययी । वीणाशयस्वनेनैव कुर्यन्कीर्तनमुत्तमम् ॥२७॥  
 बाल्य मां दीनमिति तद्यवेति पुनः पुनः । बाल्य मां दीनमिति मनु पञ्चदशाक्षरम् ॥२८॥

लिया । १७ ॥ यदि मैं इस समय ना नर जाता हूँ तो सीतके दिवाये इस मार्गपर चक्रकर मय मन्त्रियाँ ऐता  
 ही करने लगती । इसलिये मैं नाकी हत्या करवा देता हूँ । १८ ॥ उसी निम्नव करके राम बुधवार सीताके  
 घर पहुँच ॥ १९ ॥ वहाँ सीताकी तरह विविध प्रकारक काङ्क्षाको मुक्त करने इच्छान सीताका प्रसन्न किया । सीताने  
 श्री चक्र सब पिटारियाँ मंगवाकर राक्षक आगे रख दीं । व सब न ना प्रकारक काङ्क्षा कुत्तोसे भरी थीं । राघव  
 भी उन्हें अलग अलग खालकर दत्ता । २० ॥ २१ ॥ इनसे अच्छे मिटारियाँ भाङ्ग्योकर यही विजया दी ।  
 इसके बाद सब सीताओक पास मजा । उसी तरह दोनो पुत्र सखीयों, पत्नियों गुणजनों, पुरवारियों,  
 सबको तथा शालियोंके घर भी पांच रोज न न मान पिटारियाँ जिनकारी । इसके अन्तर में सीता पिटारियाँ  
 सीताका दी और इनमेंसे स्तव भा दस पाँच पेट निकालकर लाये ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसके बाद कमल  
 आदि अष्टछन्द फुलीक, पुष्पवत् विप्लव करके देक दी एक सीताका दिव और स्वयं भी दिव ॥ २४ ॥  
 किन्तु सीताने रामकी आज्ञा विद्य विना ही जा कुछ मुँह लिखा था उस बातको जानते हुए भी राम  
 जनमान देखे बन रह । इसके अनन्तर एक दिन सीताने एकादशीका व्रत किया २० ॥ दूसरे दिन ये  
 वृक्षवन ( तुलसीका बगीची ) में गया । वहाँ तुलसीका पूजा करके प्रदक्षिणा करने लगी ॥ २१ ॥ उस  
 समय एकादशीका व्रत करनेसे उन्हें थकावट सी लगती थी । उसमें प्रदक्षिणाका मार्ग छोड़कर वे दूसरी ओर  
 चलने लगीं ॥ २२ ॥ चपल चलते सीताके कपड़ोंका पल्ल लयानसे तुलसीका एक पत्र छूकर पृथीपर  
 गिर पड़ा ॥ २३ ॥ द्वादशके दिन उस विरेधनको देखकर सीताने सोचा—‘ओह ! मैं क्या भारी अप्रस  
 कर होखी’ यह सोचकर वे कुछ मयभीत सी हो गयीं ॥ २४ ॥ इसके पश्चात् सीताने वह पत्र उठा  
 लिया और उसे प्रणाम करके आदरसे उसी वृन्दावनमें देक दिया ॥ २५ ॥ ऐसा करनेके बाद प्रदक्षिणा  
 करके बारम्बार प्रार्थना की, फिर महदमे जाकर रामचन्द्रजीका स्तारज्जन करने लगीं ॥ २६ ॥ इसी  
 समय दीना बजाये और श्रुतिकर्तन करते हुए नारदजी वहाँ आ पहुँचे ॥ २७ ॥ व आते ही ‘मुन सीत-



कीर्तयामास स मुनिर्वारं चारं मुदान्वितः । क्लृप्तकंठस्वरेणैव महापातकनाशनम् ॥ २९॥

॥ पालय मां दीनं गधव पालय मां दीनम् ॥ इति मन्त्रः

न मुनि गधवी दृष्ट्वा प्रपृष्टमथाथ भक्तिवः । नन्दऽऽमने मनिः ॥ २९॥ नन्दः सादरम् ॥ २९॥

गतः प्रक्षालय तस्यादां सीतया नन्दनन्दनः । धेनु निषेधे गधये, दूजक तं मुनिपुंगवम् ॥ ३१॥

हेमपात्रं भोजनार्थं हुनेत्ये निषेधे च । पवित्रेणार्थं और नन्दनः ॥ ३२॥ नाम आभकीम् ॥ ३२॥

सीताऽपि कामधनुस्त्वयाऽस्त्रानि दिशुष्य मा । हेमपात्रं यतो दानाय ॥ ३३॥ परिश्रमम् ॥ ३३॥

कर्तुं कंकणमञ्जोरकिंकिणीन् पुष्पदन्ता । वा द्यु नन्दः ॥ ३४॥ दां गच्छ श्रीराघवं तदा ॥ ३४॥

राम राज्ञीवपथाथ नाह सीताममर्षितः । दिव्यकौण्डिनं च ॥ ३५॥ कर्त्तव्यमि गच्छतम् ॥ ३५॥

नन्दमुनेर्वचन श्रुत्वा सीताऽऽसीत्तु चकिता तदा । प्रहृतः च रामाऽपि रश्मिमेण मुन नदा ॥ ३६॥

एवञ्च कारण व्यग्रः सर्वकर्ता स्वयं प्रभुः । किं कारणं यद् मुने विमर्षयतयार्षितः ॥ ३७॥

अमैस्त्वं भोजनं नाथ करोषि मुनेपुङ्गव । इति रामवचः श्रुत्वा नारदो राक्षसप्रवीणः ॥ ३८॥

नारद उवाच

सीतयाऽद्य कृतं पप किञ्च देव्यि न वै प्रभो । यदि न्य नैव जानामि तद् शृणु वदामि त ॥ ३९॥

द्वादश्यां तुलसीपत्रमनयाऽद्य निकृषितम् । पद्यमस्य तर्हि पश्य गत्वा वृन्दावने प्रभो ॥ ४०॥

संकमेषु चतुर्दश्याद्वादश्याः पानपरंमु । तुलसी न हरेन्मयस्योभृत्स्वगारापगच्छके ॥ ४१॥

नष्टे सूर्येन्दुग्रहणे प्रसूतिमगणे तथा । तुलसी ये निकृषति तं त्रिदति हरेः क्षिरः ॥ ४२॥

द्वादश्यां तुलसीपत्रं धार्मीपत्रं तु कार्तिके । कुनाति यो नरो मच्छन्निनायानतिगदितान् ॥ ४३॥

अकाले तुलसीपत्रं छेदयत्पः क्षिपः पुमान् । पत्रमेकं नमस्तुत्यासमनाहूर्मनीपिणः ॥ ४४॥

एवं तु वचन सर्वमोनाभिर्हि प्रकाशयत । पुरुषाणामयं दीपस्तत्र स्त्रीणां कथाऽत्र का ॥ ४५॥

की रत्ना करा । हे राघव । मरा पालन कर । इस मन्त्रान्तर्गत नास्तिक पञ्चदशाक्षर मन्त्रका सहस्र उच्चारण करने लगे ॥ २९ ॥ २९ ॥ 'पालय मां दीनम्, गधव पालय मां दीनम्' यह पञ्चदश अक्षर मन्त्रका स्वरूप है । राम नारदको दखन ही उठ खड़े हुए । इन्होंने आज बहुतकर प्रणाम किया और आसनपर विराजित । तब सादर पूजन किया ॥ ३० ॥ सीताक साथ नामने मुनिक पैर धाव और गादाम दिया । इसके पश्चात् उनके सामने मुखरु पात्र रख्य और शेष परोसकर । ये संवत्स कहा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सीता मा कामधनुसे उन्मुख अर्जुन अर्जुन म मम पालन के लिये कल्पित मन्त्रान्तर्गत शृंगरा चानि करती हुई चली । सीताको चलती देखकर नारदने राक्षसे कहा । गध । हे राजावपथाथ ॥ मैं आज सीताक हाथों परसे हुए दिव्यास्त्र मही लाऊंगा ॥ ३३-३४ ॥ मुनिको जान मुनकर सीता चकरा गयी और रुब कुछ करतवाले स्वयं प्रभु रामने भी अनजान बनकर विस्मित हो स्वयंभावसे बूझा—क्यों मुनिगज । आज आप सीताक हाथका अस्त्र क्यों नहीं ग्रहण करने ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर नारदने कहा—॥ ३५-३६ ॥ आज इन्होंने एक बड़ा पाप किया है । सी वधा आपकी नहीं मरुम है ? प्रश्न मैं हूँ मुनाता हूँ ॥ ३७ ॥ आज द्वादश्याका इन्होंने तुलसीपत्र तो छेदा है । यदि आप मेरी वचन नच न मानन हो तो स्वयं चरकर देख लीजिये ॥ ४० ॥ संक्रान्ति, चतुर्दशी, द्वादशी, प्रतिदिन सवेरे सांझके समय, भुज और मङ्गलके दिन तथा दोपहरके बाद, सूर्य-चन्द्रग्रहणके समय, वरमे सम्पत्ति होनेपर या किसीका देहास्त होनेपर जो लोग तुलसीका पत्र तोड़ते हैं, वे माको तुलसीका पत्र न तोड़कर भगवान्का सिर काटते हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जो द्वादशीको तुलसीपत्र तोड़ता है या कार्तिकमासमें अश्विनेकी पत्नियां तोड़ता है, वह अशुभ निन्दित मरकमे जाता है ॥ ४३ ॥ जो लोग अश्वि-मयमें तुलसीका एक भी पत्र तोड़ते हैं । विद्वान् लोग ऐसीको बहाम्बुधारा कहते हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकारका वचन समस्त मुनियोने कहा है । फिर अब पुण्योके लिये ऐसा नियम बना हुआ है जो स्त्रियोके लिये क्या

एतन्निर्मितं भीरुम सीतया परिवेपितैः । यगन्नेर्भोजनं माद्य कविष्यामि प्रवस्थितः ॥४६॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह न पुनः पुन न्वमेव सीतां मे पूतां कर्तुमिदार्हमि ॥४७॥  
 वरदानं प्रत वाऽपि वेन पूता भवेन्मृणान् । न्यामहं प्रार्थयाम्यथ स्त्रीय पल्लवमृतमम् ॥४८॥  
 प्रसूय शिरसा चापि नमस्कृत्य पुनः पुनः । तत्रामवचनं श्रुत्वा नारदो शाक्यममरीन् ॥४९॥  
 मलहन्यादिपापानां निःकृत्यै मुनीध्वजैः । प्रायश्चित्तानि चोक्तानि सति नानाविधानि च ॥५०॥  
 द्वादश्यां तुलसीपत्रं छेदनाद्यप्रशोभये । प्रायश्चित्तं मया नैव दृष्टं राघवसत्तम ॥५१॥  
 उपायस्त्वेक एवात्र वर्तते रघुनन्दन । पानिग्रनम्रलाभ्योना एतं तुलसी पुनः ॥५२॥  
 योजयिष्यामि मेऽत्रोऽद्य तद्वि पूता भविष्यति क्षणादेव न मन्देहः सत्यमेव वचो मम ॥५३॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा रामः सीतां व्यलोकयन् । तदा सीताऽवर्षादक्ष्य शृणु ब्रह्ममुनोत्तम ॥५४॥  
 अघाहं योजयिष्यामि पत्रं तुलसी पुनः । पानिग्रस्यधर्मेनैव तयाम्रे पश्य कीनकम् ॥५५॥  
 इन्पुक्त्वा जानकीं देवीं न्यात्रमन्नपूर्तिम् । पाकस्थाने पुनर्नीत्वा स्थापयामास वेगवतः ॥५६॥  
 ततो वृंदावनं सीता ययौ नृपुत्रिभ्यना । नारदो रामचन्द्राद्या ययुर्वृन्दावनं प्रति ॥५७॥  
 तदा ता उर्मिलायाश्च चण्डिकायाः स्त्रियो ययुः । लक्ष्मणाद्या बभूवश्च कुप्रथाय लवस्तथा ॥५८॥  
 तेषां मध्यगता सीता तदा वृंदावनविभवा । नन्वा तां तुलसीं भवन्द्या प्राह वाचनं मन्त्रीयुता ॥५९॥  
 भो भो तुलसि मद्वाक्यं शृणुष्याथ सुशीमने । पानिग्रनम्रं पूर्णं माय यद्यस्ति पावनम् ॥६०॥  
 तस्मैस्व त्वं पत्रस्य त्वयि सन्धिर्भविष्यति । एवमुक्त्वा जानकीं मा यावन्पश्यति वै पुरः ॥६१॥  
 सावन्पत्रं तुलस्यां मन्त्रधि नैव गतं नदा । तदा विष्णुणा सा सीता बभूव चकितामपि च ॥६२॥  
 तदा देवाः सगंधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नराः । गुह्यता अप्रयः सर्वे तद्द्रष्टुं कीनृकं ययुः ॥६३॥  
 एतः सीतां विष्णुर्वा तां दृष्ट्वा सु नारदो मुनिः । एकांते जानकीं नीत्वा बोधयामास मादरम् ॥६४॥

कहता ॥ ४६ ॥ इसी कारण आज प्रतेका कारण करतक समय से सीताका परोसा अथ नहीं ख ऊँगा ॥ ४६ ॥  
 इस प्रकार नारदकी बात सुनकर रामन बजा ह पुन । तब पुनो नालाय पवित्र कर दो । ४७ ॥ यह वरदान  
 तथा प्रत जिस उपायसे पवित्र हो सक, वैसा कर । एतदर्थ मे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ और मस्तक  
 नुकाकर पुन पुन नमस्कार करता हूँ । रामका त्रितय मुनकर नारदने कहा— ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ब्रह्महत्यादि  
 पापसे छुटकारा पानेके लिये तो मुनाचरणे अनक प्रकारक प्रायश्चित्त बल्य ये है ॥ ५० ॥ किन्तु द्वादशीको  
 तुलसापत्र सोखेस हो पालक हुना है । उसरा प्रायश्चित्त तो मेरा नहीं दसा हो नदी ॥ ५१ ॥ हे रघुनन्दन ।  
 इस विषयमे केवल एक उपय है । उह यह कि माता अन्न पानिग्रनके बलसे यह पत्र फिर नृतमे जोड़ व हो  
 य सज्जमायमे पवित्र हो सकी है । इममे न ई म देख नहीं है । मे जो कह रहा हूँ सा सत्य है । ५२ ॥ ५३ ॥  
 नारदके ऐसा कहनेपर र भने सीता की ओर देखा । तै गाने कहा — हे द्रष्टुं पूताम प्रत पुन नारद । ॥ ५४ ॥  
 सभी मे आपके सामने हो अपने पानिग्रनके बलसे उस तुलसीपत्रका बालमे जोड़ हुंगी भाव यह कीनृक देखें  
 ॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर सीता यह सज्जमाय वेगके साथ लीटा ले गयी और रक्त दिया ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर वे वृन्दा-  
 वनमे गयी । नारद और राम भी वहाँ पहुँचे ॥ ५७ ॥ उर्मिलायिका स्त्रियो तथा लक्ष्मणादि बन्धु एवं लव कुम  
 आदि पुत्र भी वृन्दावनमे पहुँचे ॥ ५८ ॥ उन सबके बोधार्थ सीताके उस तुलसीके वृक्षको प्रणाम किया और  
 भक्तिपूर्वक कहने लगी— ॥ ५९ ॥ हे सुशीमने तुमहि । मेरी बात सुनो । यदि तुममे पानिग्रतका बल हो तो  
 यह दूटा हुआ पत्र फिर तुम्हारे अङ्गमे जुड़ जाय । ऐसा कहकर सीताने सामने पत्र देखा तो यह जुटन मड़ी,  
 धो धो पडा पा । उस समय अन्नपके साथ-साथ सीताको बर विदाय हो हुवा ॥ ६०-६२ ॥ समस्त देवता,  
 गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर, गुह्यक तथा ऋषियगण यह कीनृक देखनेको एकत्रित हो गये थे । ६३ ॥ जब सीताको  
 इस प्रकार पुणित देसा तो नारद मुनि उन्हें एकान्तमे से गये और आवरणवक समझाया । नारदने

शृण्वन्न कारणं मीने सर्वं त्वां प्रवदाम्यहम् । पतिव्रताभिर्नार्तिभिर्विना स्वपतिना मुदा ॥६५॥  
 पुष्पादीनां सुगन्धोऽपि नाभ्यासः कदम्बन । मेऽनन्तदिनः पूर्वं मुदा नाभ्यसमम् च ॥६६॥  
 तद्वृक्षध्वं गमचन्द्रं मयेयं सचिनऽयं हि । वदितुं तल्लक्ष्मणं तत्र पतितं भुवि ॥६७॥  
 त्वद्वस्त्रवस्त्राग्रं विधां कर्तुं नवाय दि । गमक्यान्तर्गतं तावत् दोषांशः कृतमवधि ॥६८॥  
 मया मीने समक्याय मा कौशं यज मां प्रति । नाशणमृत्कर्मणं तेन न्व मयं शिक्षितम् ॥६९॥  
 नोचेन्नदक्षिणपथा म्रियः सर्वोः पति विना । जग्मे तन्निष्पन्नं नानाभागान्मुदान्विताः ॥७०॥  
 इदानीं मृणु मद्राक्यं येन श्रोतयसाग्रः । एतन्मयं च तुल्लक्ष्मणं दृष्ट्वा मन्त्रिभ्यश्चिष्यति ॥७१॥  
 पुन्दावने पुनर्मया न्वं मृदि यन्मयोऽपने । विना पद्मपुगन्धरायां मयाय दे गमितम् ॥७२॥  
 पतिव्रत्यं मया मयत्र तद्वनसुन्दमादलम् । तुल्लक्ष्मणी माऽमाप्ता नु नाचवाप्नोतु वै न्वियम् ॥७३॥  
 अनेन वचनेनायं तत्पद्मं मन्त्रिभ्यः स्तुपान् । तुल्लक्ष्मणः श्रवमाश्रयं पूर्ववत् च मविष्यति ॥७४॥  
 वतस्त्वं वादि तुलसी विधां भज मां मे । इत्युक्त्वा सीतया शीघ्रं तुलसीं नागदो ययौ ॥७५॥  
 सीताऽपि तुलसीं नत्वा शृण्वन्मु सकलेष्वपि । समदृष्ट्वा सुनीतां च देशादीनां वचोऽब्रवीत् ॥७६॥  
 विना पद्मपुगन्धरायां घट्टे रक्षतम् । पतिव्रत्यं मयाऽन्यत्र तर्ह्येतत्तुलसीदलम् ॥७७॥  
 तुल्लक्ष्मणः सविमानोऽनु नोचेन्नानोऽनु वै न्विदम् । एव रदति जानकया वक्तव्ये पयःसमेन वत् ॥७८॥  
 प्राप्तं मन्त्रिभ्यः पूर्ववच्च पश्यन्मु सकलेष्वपि । तदा नितद्व्याघाति देवानां रघवस्य च ॥७९॥  
 देवनाथो विमानाग्रे मन्त्रिणाः पुष्पवृष्टिभिः । वरपूजां नत्वा तामं विना उचूर्जयस्वनान् ॥८०॥  
 तदा सीतां समातिष्ठ राघवं मुदितावनान् । भद्रं तुष्टमनः श्रीमान् वमनादाभूषिताः ॥८१॥  
 हे सीते कञ्जनयने सुनीतामपि मोदिनि । नेदं मया शिक्षितं ते सर्वस्वीणां मुशिक्षितम् ॥८२॥  
 धर्मसंस्थापनार्थाय साधुनां पालनाय च । दृष्टानां च विनाशाय मयेदं रूपमाश्रितम् ॥८३॥

कदा-हे सीते । इस पत्रक न तुलसी जा कारण है वह मैं बतलाता हूँ । पतिव्रत पतिवाको च 'हूँ' कि यदि उनके पतिने नहीं, तो मैं मान्य न किया तो तो स्वयं भी पुण्यार्थिका मन-न न न । जानने इस रोज राणके सुचे विना हा कमरका पूरा सुचि दिया था ॥ ६५-६६ ॥ रागका यह जाने मान्य हा गंगा था । इससे उन्होंने यह मया रकी है । तुलसीका पत्र भी उन्होंने अच्छासे पढ़ गया था ॥ ६७ ॥ भावको शिक्षा देने ही के लिए उन्होंने ऐसा किया है । रामको इच्छा देखकर ही मैंने आपका दीवराप दिया है । सो समाकर्त । मेरे ऊपर कृपित न हो । नारीजातिको शिक्षा देने के लिए ही उन्होंने यह बोवक रचकर आपको उपदेश दिया है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ व यदि तमा न करेगे तो आपको बचने मार्गक अमुमार संसारकी समस्त विषयी अपने-अपने पतिको मलय करके स्वयं विविध प्रकारके पीतिका उपभोग करने लगती ॥ ७० ॥ सुनिष्ट, अब मैं बतलाता हूँ कि किस तरह वह पत्र वृक्षय उदेगा ॥ ७१ ॥ आप फिर पुन्दावने जाकर कहें कि उस कमरका पूरा सुचनके सिवाय यदि मेरा पतिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह पत्र नष्ट जाय और यदि मैं अपने धर्मको सुरक्षित न रख सका हूँ तो न उडे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ आपव इस वचनसे तरकाव यह मुडकर पहिलेकी तरह हुग-भग हो जायगा ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मीस्वर्णपति मीने अब चर्च किया प्रकारका विवाद न करें । ऐसा कहकर गारदजो सीतके साथ जाय उस कृष्ण वास गये ॥ ७५ ॥ सीता भी जर समस्त परिवारके सभी लोग तथा लारे देवता एकत्र हुकर सुन हिं च, तब उन्होंने कहा - ॥ ७६ ॥ यदि उस कमलका मुग्ध सेनके अतिथि मया पतिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह तुलसीदल अपने स्वयं पर नष्ट जाय, अन्यथा नहीं जुड़े । सीतके ऐसा कहने ही श्रवमाश्रय यह पत्र नष्ट हो करहु वृक्षय मुड गया ॥ ७७ ॥ सब लोग लारे यह कौतुक देख रहे थे । धर्मके जुटने ही देवताओंने बापे लजाये और देवताओंने पुष्पवृष्टि की एवं बाइलोंने एक स्वरसे कयजयकार किया ॥ ७८-८० ॥ इसके बाद रामने सीताको हृदयन लग लिया और प्रत्यक्ष मनमें कहा कि हे मुनिशेके धा मनको मोहनेवाली सीत ! यह मैंने तुम्हेंको भला समस्त नारीजातिको शिक्षा दी है । धर्मको

पानिग्रन्थे शब्दा संगमिः पालनीय प्रियेति च । मया ने विभिन्न मांते मा विपादं मज प्रिये ॥८४॥  
 इत्याश्चर्य्य मुहुर् नानां कथा नमनिदपि कम् । विमर्शयन्वा योगमः मुग्दीन्मम पूजयन् ॥८५॥  
 ततः सर्वान्नमदादीन् ज्ञानको परिशेषणम् । वेमन्वरा मृदिना स्नेदविद्वक्तिना नना ॥८६॥  
 ततः सर्वे नारदश्च धकुर्भोज्यमुनमम् । ततो मुग्दाऽपि नावृत्तं रापं तुष्टाय नमदः ॥८७॥

श्रीनारद उवाच

धीरामं मुनिविश्राम जलमद्गम हृदयामम मौनान्जजनम्यमनावनरात्रारामं घनश्यामम् ।  
 नारीमस्तुतकान्दिदीनतामिदं प्रियतभूशाल राम त्वां शिरसा मन्त प्रणमामि च्छेदितमनालम् ॥८८॥  
 नान राक्षसहन्तरं शरधर्तारं जलनाथरं वलीमदनमागरवन्धननानाकीर्तुककर्तारम्  
 पीगनन्दननारीतोषकस्तुरापुनयज्ञान् राम त्वां शिरसा मन्त प्रणमामि च्छेदितमनालम् ॥८९॥  
 धोकांत जगतीकांत स्तुतमद्भक्त बहुमद्भक्तं सद्भक्तहृदयेप्सितपूज्यश्याम नृपनाकांतम् ।  
 पूज्यं तापनिधि मित्रमुविश्रदायनमच्छीलं राम त्वां शिरसा मन्त प्रणमामि च्छेदितमनालम् ॥९०॥  
 सौतारजिनिवेश धाम्पूज्यश मुरलोकेज प्रबोद्धागणवपमर्दनदुश्चातुकुलकेभम् ।  
 किष्किधाकुतमुशीव प्लवगवृन्दाविशमन्पाल राम त्वां शिरसा मन्त प्रणमामि च्छेदितमनालम् ॥९१॥  
 श्रीनाथं जगतीनाथ जगतीनाथ नृपतीनाथ भूतेशमुरनिर्गमन्मगगन्धर्वादिकमन्नाथम् ।  
 कोदण्डधृतगूर्गारान्ध्रिमप्रमे कृतभूशाल राम त्वां शिरसा मन्त प्रणमामि च्छेदितमनालम् ॥९२॥  
 रामेश जयतामस जम्बुद्वीपेश नललोकेभं वन्द्यैकैकृतमन्त्रवर्धितमीतात्माहितवर्माशुम् ।  
 वृषीश हनभूमर ननयोर्गीत उगूर्गाल राम त्वां शिरसा मन्त प्रणमामि च्छेदितमनालम् ॥९३॥

स्थापना करने मउजमोका रक्षा तथा दुशान विनाश करनेक निदहा मेन पहु अवगत लिवा है ।  
 प्रियवाक अवता बुद्धिसे पानिग्रन्थ घमको रक्षा करत चाहि। यह मेन मुहु उपदेश दिया है । इससे कहों  
 कुरित न हो जनी ॥ ८४-८५ ॥ इस प्रकार शान्तद्वार सनाकी अवशमन देकर रामने उह फिर दूधित कर  
 दिया और उन भये हुए उवत असा पूज्य कहा ॥ ८६ ॥ फिर न देरि पुनियोका लय लेकर सहस्रम भय ।  
 एही मन्दीम सीताने माजल पत्थ ॥ ८७ ॥ इस अन्तर सबान भोजर कि ॥ फिर ताभुल स्वाकर  
 नमद रामको स्तुति करत ॥ ८८ ॥ ततः ८९ ॥ स उन रापका ममका ताकर प्रणम करता है जो  
 पुनिर्यक विश्रामनवान के निवृत्तकर पुनर भाग दे, ९० का आनन्द दनवा, स ताका प्रणम रखनवाले,  
 सूर्य, सनाकिन राज राम, मधर नर राम ९१ ॥ ९२ ॥ तना आदिन चरित, विद्वाम प्रवित्र  
 उन भुवाक रामका, जिन्हने उर भार मान ९३ ॥ वृषीका एक वंशभ गिर दिवा था, मै प्रणम करता हूँ  
 ॥ ८८ ॥ मन्क राक्षमोके धान नराय, इन्द्रोणध १ नायक मधर, वालिक १ मर, रामुद्रम सेतु बधिन  
 और भक्त प्रवरक कोनक करनेवाले १ गुरवांशिक अलन्दः १, नारिणोक प्रमथकर्ता और मयम  
 कम्पूरीका विलक लगानवान अर रामको मै प्रणम करता हूँ ॥ ८९ ॥ लक्ष्मीके पति, जगत्पति, अच्छे वच्छ  
 पत्थस बन्दित, तिनके सटुनमे भक्त है, मा मान पर क मन पूर्ण करनेवाले तथा गृधोका पुयो सीताके  
 पति है विश्रामियका मुक्ति से तिनका श्रेष्ठ न्तम हो गया है, एमे महाम साह तालके वृषीका काटन  
 रात आप रामको मै मस्तक तथाकर प्रणम करता हूँ ॥ ९० ॥ सीताका प्रमथ करनेवाले ममस्त विश्वके  
 ईश, गृधोके ईश देववृन्दके अचिरति, १ उगूर्गाल १ व शरका उवृर करनेवाले, भवणक विनाशकारी,  
 रावणक आना विरोधका लक्ष्म वृतीनेमान १ तावको निष्कन्दका अध्याति बनानेवाले, मानरीके  
 बधिपति सुपावक भयो धाति रक्ष करनेवाले और मन्त तनर वृषीको कटनवाले रामको मै प्रणम  
 करता हूँ ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीके नाथ, जगर्ग नाथ, उगूर्ग नाथ, राजाधोक राजा, विप्र, कगुर, देवता, पञ्च  
 तथा गन्धर्बोके नायक, धनुष और तरकस लेकर नयमन सहनव से राजा राम जिन्हने महान् तलवृषीको  
 काट गिराया था, मै उनको प्रणम करता हूँ ॥ ९२ ॥ ईश, जगनके ईश, जम्बुद्वीपके ईश, समस्त लोकपालाके

चिद्रूपं त्रितमद्रूपं नतसद्विषयं नतमद्रूपं समद्वीपजवर्षजकामिनिसतीराजितपृथ्वीपम् ।  
 नानापाथैरनानोपापनमस्यक्तोपितमद्रूपं रामं त्वां शिरसा मन्तव्यं प्रणमामि ऋद्धेदितमणालम् ॥९४॥  
 सत्सर्वं हुरिभिर्गणं कविभिः स्तव्यं हृदि मेधायै नानापाथैरनानोपापनमस्यक्तोपितमद्रूपं रामं त्वां शिरसा मन्तव्यं प्रणमामि ऋद्धेदितमणालम् ॥९५॥  
 पूपात् पनसन्नीलं नृपमद्रूपं कालमद्रूपं पीताम्बुजनिवरोत्पललोचनमन्त्रीमोचिनमणालम् ।  
 भीषीनाकुतपयाम्बादनमस्यक्तोपितमद्रूपं रामं त्वां शिरसा मन्तव्यं प्रणमामि ऋद्धेदितमणालम् ॥९६॥  
 हे राजन् नवभिः श्लोकैर्भुवि पापघ्नं नवकं त्वय्य मे बुद्ध्या कृतमुत्तमनूतनमेतद्राधयन्मन्यानाम् ।  
 स्त्रीपौत्रान्नादिकहेमप्रदमस्मन्महोदधाल रामं त्वां शिरसा मन्तव्यं प्रणमामि ऋद्धेदितमणालम् ॥९७॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

एवं स्तुत्वा स्मान्नाथं राघवं मन्त्रवत्सलम् । प्रपन्नाज्ञां प्रभोः प्राप्य प्रययौ नारदो मुदा ॥९८॥  
 ममरा मुनयः सर्वे जन्मृन्ने स्वश्रुतानि वै । त्वं श्रीरामचन्द्रेण नररूपधरेण च ॥९९॥  
 कौतुकानि विचित्राणि कृतानि उगतीतले । कम्बान्वत्र क्षमो वक्तुं विस्तरेण द्विजोत्तम ॥१००॥  
 तेषु यद्यद्यद्वाधयेण स्मृतिं निवह वै मम । तनःप्रकथ्यते शिष्यं तवाग्रे राघवाकुश ॥१०१॥

इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदामन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तराद्धे सप्ततया नृदसोपक्रमन्धिन्यम् द्वाविंश सर्गः ॥ २२ ॥

प्रभु वाल्मीकिसे नमस्कृत, प्रसन्न सीताके द्वारा लालित, वानीश पृथ्वीश, भूमाशहारी, योगीन्द्रादि नमस्कृत, जगतोके पालक और विशाल तालवृक्षको काट गिरनेवाले रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ । ॥ ९१ ॥ चिद्रूप, अच्छे-अच्छे राजाओंको भी परास्त करनेवाले, अच्छे-अच्छे दिव्यात्मासे नमस्कृत, बड़-बड़ राजाओंसे नमस्कृत, सप्तद्वीप तथा समस्त देशमें उत्पन्न नारिदोंसे नीराजित, पृथ्व के पालक, अनेक राजाओंके हाथ बनेक प्रकारके उपहार देकर प्रणम किये गये राजा राम जिन्होंने विशाल तालके वृक्षोंको काट गिराया था, उन रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९४ ॥ जो मुनियोंके सेव्य, मन्त्रियोंसे गौर, हृदयमें धारण करने योग्य, बनेक गर्दितों हाथ विविध प्रकारके सर्व पराण तथा काव्योंमें मन्कुल एवं माकेत-निवासिनी कौसल्याके पुत्र हैं और गन्वादि ब्रम्होंमें जिनका मस्तक अन्वभूत है, सत्त तालके वृक्षोंको काट गिरानेवाले भाव रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९५ ॥ पूपात्, मेघके समान पयामस्वरूप, महाराज दशरथके अच्छे पुत्र, पापोंके लिये कालस्वरूप संतापति, मन्दर, कमलकी नाईं आलोचने प्रबल काम्यके गालसे अपने मन्त्रोंको सत्काल सुझानेवाले पतिके बिना अर्पण किये कमलका फूल मुख लेनेपर सीताको भलीभाँति शिक्षाके दत्ता, विशाल तालके वृक्षोंको काट गिरावने उन रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९६ ॥ हे राजन् संसारके प्राणिमोंका पाप नष्ट करनेवाले इन नौ श्लोकोंमें मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति की है । मेरे वरदानसे यह स्तुति स्वीकृत आदि सब वस्तुओंको देनेवाली होगी । विशाल तालके वृक्षोंका भेदन करनेवाले रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार मन्त्रवत्सल, स्मान्नाथ, राघव, रामचन्द्रका स्तुति करके और उनसे आज्ञा लेकर नारदजी प्रसन्नापूर्वक बहोसे चला हुए ॥ ९८ ॥ सब सब देवता तथा मुनिगण भी अपने अपने स्थान-को चले गये । नररूपधारी रामचन्द्रे ऐसे-ऐसे कितने ही कीमूक किये हैं । हे द्विजोत्तम ! विस्तारपूर्वक उनकी वर्णन करनेके लिए इस संसारमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ ९९ ॥ १०० ॥ उन चरित्रामेसे स्वयं रामचन्द्रजीने जो जो चरित्र हथे स्मरण कराया है वह सब उनकी आज्ञासे मैंने तुम्हारे भाई कहा है ॥ १०१ ॥ इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदामन्दरामायणे १० रामोत्तरपाण्ड्यैकशत'ज्योत्स्ना'भाषा-टीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तराद्धे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

## त्रयोविंशः सर्गः

( आनन्दरामायणकी महिमा )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः स वैदेया एन्ध्रभिस्त्रययादिभिः । वकार राज्य धर्मेण लोकव्यपदां वृजः । १ ।  
 एतस्मिन्नन्तरेऽयोध्यापुर्या धीमघ्नायकम् । नर्वकदाऽमवीर्षुदतो हे राम कन्त्रलोचन ॥ २ ॥  
 करोमि तव सेवां न तपश्चर्यां करोम्यहम् । इदस्वाशां मम त्व हि गच्छामि निजमन्दिरम् ॥ ३ ॥  
 तथेति राघवेणोक्तः स ययौ निजमन्दिरम् । तत्र गत्वा शुचिर्भूत्वाऽऽनन्दरामायणं शुभम् ॥ ४ ॥  
 पठित्वा नवरात्रं तु तनून् पूर्णं बहिर्ययौ । एतस्मिन्नन्तरे एकदेशे पीरा मृतं नृपम् ॥ ५ ॥  
 दृष्ट्वा तस्य सुतं गालं तान्वा कर्तुं हि मन्त्रिणम् । चक्रान्ते निश्चयं तत्र केचिद्गुर्यं शुभः ॥ ६ ॥  
 केचिद्गुर्यं नैव कार्यो मन्त्री खलस्त्वयम् । एवं विवदमानास्ते चक्रुर्वै निश्चयं तदा ॥ ७ ॥  
 करिणी निजगुण्डाग्रमालया यं ररिष्यति । सोऽस्तु मन्त्री निश्चयेन तनस्तां करिणीं वरः ॥ ८ ॥  
 वसुलङ्कारभूषाद्यः शोभयामासुगदरात् । तच्छृण्व्यायां रत्नमालां दत्त्वा तां प्रमुचुस्सदा ॥ ९ ॥  
 ततश्चै नवपद्यानि वादयामासुगदरात् । तदा सा करिणीं ग्रामाह हिस्तूणं ययौ सूनैः ॥ १० ॥  
 अयोध्यायाः पथाऽयोध्यां ययौ देशान् विलप्य सा । तन्गृष्टे मकलाः पीरा नानावाहनमस्थिताः ॥ ११ ॥  
 ययुस्तूर्णं कौतुकेन कोटिशो मृदिताननाः । ततः सा कारिणी गन्वाऽयोध्यां हृष्टास्थितं तदा ॥ १२ ॥  
 तं दृष्ट्वा वरयामास येन पारायणं कृतम् । आनन्दरामचरितस्याहो तत्कौतुकं महत् ॥ १३ ॥  
 नभूव सकलान् लोकान् तनस्तं मालयां कृतम् । करिण्या मन्त्रिणं चक्रुस्ते पीरा ये समागताः ॥ १४ ॥  
 तं नित्युः करिणीमस्थं एन्धीपुत्रममन्त्रितम् । स्वदेशे मन्त्रिणं चक्रुस्तदद्भुतमिवाभरत् ॥ १५ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर सत्तारसे मन्दिर राम जब सीता, पुत्री श्रीर आशाओंके साथ धर्मपूर्वक राज्य कर रहे थे : १ ॥ उसी समय एक दूतने अयोध्यापुरीमें रामके पास आकर कहा कि हे कमललोचन राम ! अब आपकी सेवा न करके मैं तपस्या करना चाहता हूँ । मुझे आज्ञा दीजिए तो अपने घर जाऊँ ॥ २ ॥ ३ ॥ रामन उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वह अपने घर चला गया । वहाँ पवित्र मनसे उसने नौ रात्रि तक इस कल्याणदायक आनन्दरामायणका पाठ किया और बादमें घरसे बाहर निकला उसी समय एक देशका राजा मर गया था ॥ ४ ॥ ५ ॥ उसका पुत्र बालक था । तो उसके लिये किसीको मंत्री बनानेकी आवश्यकता पड़ी । अब पुरवासियोंमें मंत्रणा होने लगी कि किसीको मंत्री बनाया जाय । कोई किसीको कहता कि अधिक मनुष्य अच्छा है, उसे मंत्री बना दिया जाय । किन्तु उसको बात काटकर दूसरा कहता कि नहीं, वह बड़ा दुष्ट है । उसे मंत्री नहीं बनाया जा सकता । इस तरह परस्पर हल्ला करने करते यह निश्चय हुआ कि ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजाकी हृषिनी अपनी सूँड़में माला लेकर जिसके बसेमें बाल दे रही थी कि राजकुमारका मंत्री बनाया जाय । तदनुसार अच्छे-अच्छे वस्त्र-आभूषण आदि पहिनाकर हृषिनीको समज्जित किया गया और उसकी सूँड़में एक माला देकर उसे छोड़ दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके बाद वे लोग हृषिनीसे बाजे बजाने लगे । वह हृषिनी धीरे-धीरे नगरसे बाहर निकली ॥ १० ॥ वहाँसे चलकर वह अयोध्या पहुची । उसके पीछे जनक प्रकारके काहनोपर सवार होकर मागरिक लोग भी कौतुकवश बड़े वेगके साथ प्रसन्न मनसे अयोध्या तक चले आये । उस हृषिनीने बाजारमें छोड़े उस मनुष्यके गधेमें माला बांध ली जिसने नौ रात्रि तक आनन्दरामायणका पाठ किया था । उन लोगोंके लिये यह एक असाधारण कौतुकका बात हुई ॥ ११-१३ ॥ तब माला पहिने हुए उस दूतको छोड़ते राजकुमारका मंत्री चुन लिया । उसी हृषिनीपर बिठाकर एन्धीपुत्र समेत उसे अपने देश ले गये और राजकुमारके

ततः परस्परं श्रुत्वा राजदूताः सहस्रशः । नानादेशेषु सर्वत्र सत्केनेर्जाः तदा सुख ॥१६॥  
 राजसेवां परिम्वज्ज्य जमुष्णे स्वगृहाणि हि । ततः सर्वे स्वगृहानन्दरामायणस्य च ॥१७॥  
 केचिन्पलापणं चक्रुः केचित्तच्छूयणं मुदा । केचित्तत्पठनं राज्ञाय केचित्तकुशं कर्तनम् ॥१८॥  
 केचित्तच्छूयणं व्याख्यातयेव तन्निष्ठमानसाः । कश्चुः सकला इताः कोटशा जगतीवले ॥१९॥  
 तदा केन केन लब्धं केन लब्धं महद्गनम् । केन गजपदं लब्धं केन लब्धं पुरं क्व ॥२०॥  
 केन प्राणाधिक्यं केन लब्धं कृषिर्वरा । केन वृत्तिं शुभा लब्धं केन स्वर्गो भवोरमः ॥२१॥  
 केन लब्धं तु पानातं केनैका विविधाः शुभाः । लब्धं केचित्तत्पदं लब्धं स्वर्गं मनोहरम् ॥२२॥  
 केचिदिन्द्रपदं प्रापुः केचिदग्निपुरं वना । केचित्ते धर्मराजस्य शार्ङ्गं वा निश्चितरवि ॥२३॥  
 वरुणस्याथ बायोश्च इवमस्येभ्यस्य च । लाञ्छानं जगद्विनाशं दृष्ट्वास्तदङ्गुलिभिरामकम् ॥२४॥  
 केचिज्जाम्बुदलोकं केचित्त्रुषपदं गता । केचित्ते भस्मलोकं च पृथुष्टं चरिषि केचन ॥२५॥  
 एवं यथा यस्य पृथग्य दृष्टवान्यजनस्य च । अनन्दरामचरितपाठश्रावणतमन्त्र ॥२६॥  
 तथा तस्य गतिजानां सद्य एवाननामके । तदा कोऽपि न कम्पार्श्वगुदगी दृष्टान्तस्त्वपि ॥२७॥  
 त्यक्त्वा सेवां यमस्ताञ्च राघवस्यापते गताः । रामं पृष्ट्वा गताः केचिदपृष्टुं च गताः परे ॥२८॥  
 एव सर्वत्र देशेषु दृष्टवानोऽथरचदा । एतदा राघव द्रष्टुं गन्तु सर्वे नृपाधिपाः ॥२९॥  
 सैन्याभ्यास्त्राग्यामामु र्गोपानि तु ध्रुवक्षयकम् । यदा कुवापि सन्त्यानि ददृशुर्न नृपाधिपाः ॥३०॥  
 आः किमेतदिति प्रोक्त्वास्तमुद्विष्टः सुनार्दामः । दयुस्ते राघव द्रष्टुं विष्मयावद्विधानताः ॥३१॥  
 तावाधनान्पुत्रान् शान्वा गान्पुरा गन्तुमादरात् । आकारयन्धर्मसैन्यानि न तदा शेष लक्ष्मणः ॥३२॥  
 धन्वि-मन्वर विष्टा स्यात् । यह पदमा एक अर्धभुज प्रकारक यह तथा ॥ १४ ॥ क १२ ॥ फिर क्या था, जब  
 रामके पुत्रोंका यह खबर मिली तो जयन्त्रापुरक तथा अन्योन्य दशाक हेजाग दून प्रकृतितुल्यक अपना अपना  
 मोकरी छाड़कर घर चले गये । घरपर कुछन अनन्दरामायणका पाठ करना प्रारम्भ किया ॥ १६ ॥ १७ ॥  
 कुछ इसी दूसरेके सुलस सुनने लग, कुछ इसका परायण करने लग और कुछ लोग इसक कर्तनमें लग गये  
 ॥ १८ ॥ कुछ लोग इसकी व्याख्या करने लग और कुछन बाग आरम अपना पितृपुत्र दृष्टकर इसी  
 अनन्दरामायणमें लगा दी । इस तरह राजमज्ज्यछावर अनन्दरामायणका आश्रय करकेप्राप्तोके सन्धा  
 ससारके करारके व्यवसाय हो गयी ॥ १९ ॥ ऐसा करतास कुछन कम मिल, कुछन बहुत अधिक सन्धा  
 मिली, किसीको राज्यपर प्राप्त हुआ और किसीका बन्धनता घर मिला ॥ २० ॥ कुछन धर्मका अधिकार  
 मिला, किसीको बन्धन सती मिला, किसीका सुन्दर भावका मिली और किसीका मवारम स्वराज्यक  
 प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ किसीका पाताललोक मिला और कुछ लोगका विविध प्रकारक अच्छे अच्छे लोक प्राप्त हुए  
 और कुछ लोगोंका सुलोक मिला ॥ २२ ॥ कुछ लोगोंका इन्द्रपद प्राप्त हुआ, कुछ आग्निपुरको गये, कुछ  
 धर्मराजके लोक तथा कितन ही लोग निश्चितिकारका बन गये ॥ २३ ॥ कुछ जललोकको, कुछ ध्रुवलोकको,  
 कुछ बन्धनलोकको, कुछ भुवनालोकको, कुछ ब्रह्मलोकको तथा कुछ लोग बन्धुलोकमें भी पहुँचे ॥ २४ ॥ २५ ॥  
 इस तरह अनन्दरामायणक पाठस उन इतनी तथा अन्य राजाको भी वे हा लक प्राप्त हुए जिनका नेसा  
 पुष्य था । इस प्रकार पृथ्वीलोकमें सर्वत्र शुभ गति प्राप्त हुई उस समय अथवा तथा दशालक्षम भी  
 कोई सिपाही नहीं रहा । २६ ॥ २७ ॥ सब रामका भा स, त्याग दशमकर बन गये थे । उनमेंसे कुछ लोग तो  
 रामसे पूछकर गये थे, कुछ जिना पूछे-जोष ही बन गये ॥ २८ ॥ इस तरह उक्त समय सारा देश  
 दृष्टविहीन हो रहा था । एक बार संसारके जितने अच्छे-अच्छे राजा थे, न सब रामचन्द्रजीके मरण अनके  
 जिये संसार हुए । उन्होंने जब ताब बलकक लिए सेवा पुत्रापी आ पता चला कि ताता है ही नहीं  
 । २९ ॥ ३० ॥ यह खबर पाकर राजा अन कही-आहु न, क्या हुआ ? विष्मयवशसे वे अपने-अपने  
 विषी और पुत्रोंका साथ लेकर अन्ध-अन्ध भग ॥ ३१ ॥ जब अन्धराम लक्ष्मणजी यह सन्धाद मिली तो

ततो निवेदयामास तदुक्तं राघवाय तः । तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्यासीदिस्मयाविष्टमानसः ॥३३॥  
 सुहृज्जनैर्युतं बन्धु लभ्यणं प्रेष्य पार्श्ववान् । स्वपुत्रीमानयामास ते नेमू रघुनायकम् ॥३४॥  
 ततश्चेतम्बुः सदसि सेनावृत्तं न्यवेदयन् । रामोऽपि कथयामास स्वसेनावृत्तमादराद् ॥३५॥  
 तदा विहस्य भ्रमरामः समाहूय निजं गुरुम् । पृष्टवान्मम सैन्यानि नृपाणां चापि वै गुरो ॥३६॥  
 किं जातानि क्व वै सन्ति तददस्व सविस्तरम् । तद्वामदचनं भुत्वा कुत्वा प्यानं क्षणं गुरु ॥३७॥  
 तदा प्राह ममामध्ये विहस्य रघुनन्दनम् । राम राम महाबाहो सर्वं वेन्ति त्वमेव हि ॥३८॥  
 यदि वृन्क्षसि मां राम तर्हि सर्वं वदाम्यहम् । श्रुतकोटिमितं रामचरितं तव पावनम् ॥३९॥  
 राजर्षीकिना कृतं पूर्वं तन्मध्ये रघुनन्दन । आनन्दरामचरितं नवकाण्डमन्वितम् ॥४०॥  
 तस्य भवणपाठाद्यैः सर्वसैन्येषु ये नराः । ते गतास्त्वत्पदं केचित्केचित्श्लोकांतरादिषु ॥४१॥  
 न तंति भुवि सैन्यानि सस्य राम वचो मम । नवकाण्डमिति तच्च रम्यमानन्ददायकम् ॥४२॥  
 तस्यैतच्छ्रवणादिदि फलं रघुकुलोद्भव । येन ते हीनजातस्या द्वाश्व मुक्तिगामिनः ॥४३॥  
 सारकाण्डभावेन संसारान्मुच्यते नरः । यात्राकाण्डेन यात्राणां लभ्यते मानवैः फलम् ॥४४॥  
 यागकाण्डेन यज्ञानां लभ्यते फलमुत्तमम् । विलासकाण्डभ्रवणादप्सरोभिर्विमोदने ॥४५॥  
 जन्मकाण्डेन ज्ञानोति नरः पुत्रादिमततिम् । विवाहकाण्डभ्रवणाद्वा वि रम्यां स्त्रियं लभेत् ॥४६॥  
 राज्यकाण्डेन राज्यं हि मानवैर्भुवि लभ्यते । काण्डं मनोहरं भुत्वा लभ्यते मानसंभितम् ॥४७॥  
 पूर्णकाण्डभावेन पूर्णं पदं लभेत् । सर्वं हान्मानवैः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं श्रुत्वा ॥४८॥  
 सच्चिदानन्दरूपे ते लीनो भवति मानवः । एवं राम त्वया प्रष्टुं तन्मयं कथितं मया ॥४९॥  
 यदग्रेऽथ चिकीर्षां ते तत्कुरुष्व रघूत्तम । इति राम वसिष्ठस्तु यावत्प्राह नृपाग्रजः ॥५०॥

उन्होंने राजाआजी अगवाना करनेके लिए सेना बुलवायी तो उन्हें भी पैना नहीं मिली ॥ ३२ ॥  
 लभ्यमाने रामने यह सुनान्त सुनाया तो राम भी चौपकसे खु गये ॥ ३३ ॥ अन्तमें रामने जो  
 अपने परिवारके लोगोंकी भजकर राजाआजी अगवाना कराया । राजाआने अपनी-अपनी सेनाका  
 समाचार सुनाया । जो सुनकर रामने आदरपूर्वक अपना पा सब हाल कहा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर  
 रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठको बुलवाया और हंसकर उनसे कहा हे गुरो! हमारा सना इन  
 राजाआकी सेना कहाँ चली गयी है, सो विस्तारपूर्वक बतलाइए । रामकी बात सुनकर वसिष्ठने  
 कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! आप स्वयं सब बातोंको जानते हैं ॥ ३६-३८ ॥ फिर भी यदि हमसे  
 पूछ रहे हैं तो बतलाता हूँ बहुत दिनों पहले महर्षि भार्गवीने सो करोड़ श्लोकोंमें आपके वाचन चरित्रका  
 वर्णन किया था । इसका मध्यम नौ काण्डोंका आनन्दरामायण है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसका भ्रवण तथा पाठ  
 करनेमें आपको सेनाके सारे सैनिकोंसे कुछ तो आपके परमपद ( वैकुण्ठ ) की ओर कुछ अन्यान्य  
 लोकोंको चले गये हैं । ४१ ॥ हे राम ! आप मेरी इस बातको सच मानिए । इस समय संसारमें कोई भी  
 सेना नहीं है । नौ काण्डोंवाला आनन्ददायक एवं रमणीक वह आनन्दरामायण है ॥ ४२ ॥ इसका भ्रवण  
 करनेसे सब जातिवाले लोग भी मुक्तिपद प्राप्त कर सके हैं ॥ ४३ ॥ सारकाण्डके भ्रवणसे प्राणी संसारसे मुक्त  
 हो जाता है । यात्राकाण्डके भ्रवणसे शीश्योंकी यात्राका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ यागकाण्डसे यज्ञोंकी शुभ  
 फल प्राप्त होता है । विलासकाण्डके भ्रवणसे प्राणी स्वर्गकी अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ ४५ ॥ जन्म-  
 काण्डके भ्रवणसे पुत्रादि सन्तति पाता है । विवाहकाण्डकी सुननेसे मनुष्य संसारमें सुन्दरी स्त्री पाता है ॥ ४६ ॥  
 राज्यकाण्डके सुननेसे प्राणी राज्यपद पाता है और मनोहरकाण्डके सुननेसे अपनी कमिलावाके अनुसार सब  
 वस्तुयें पा जाता है ॥ ४७ ॥ पूर्णकाण्डके भ्रवणसे पूर्णपद प्राप्त होता है और समस्त आनन्दरामायण भ्रवण  
 करके मनुष्य सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मामें लीन हो जाता है । हे राम ! आपने मुझसे जो पूछा, सो सब मैंने



शरद्भूम्यां हि किं जातं तच्छृणुष्व सविस्तरम् । गतिं श्रुत्वा तु पुनर्नां जानादेशेषु ये नराः ॥५१॥  
 तेऽपि सर्वे तदानन्दरामायणश्रवादिभिः । जानातिमानसस्थान्ते ययुः स्वर्लोकमुपमम् ॥५२॥  
 शून्यं दुष्टा निर्वं लोकं यमी विधिममन्त्रितः । केलासे शक्रां यन्त्रा सर्वं कृतं न्यवेदयत् ॥५३॥  
 शिवः श्रुत्वा निहस्पाद्य यमेव केन दुर्गता । पर्याप्तं कृपमरुद्धः साकेतं वेष्टितीक्ष्णतः ॥५४॥  
 शिवमागतमाज्ञाय प्रणुद्धम्य गृह्यहः । शिरामिन् शिव देव्या निवेशय पूजयं स्वधात् ॥५५॥  
 ससीतो ब्रह्मणश्चापि सुरार्णां च यमस्य च । एतस्मिन्मन्त्रे ब्रह्मा राधवं प्राह वै तदा ॥५६॥  
 राम राजीवपत्राद्य यम पश्य निरुद्यमम् । शून्यां हयमनीं जातुऽऽनन्दरामायणश्रवात् ॥५७॥  
 शून्योऽज्ञातोऽस्तिभूलोकः सेऽनकाशो न दृश्यते । सर्वेषां तत्र वै वस्तुमग्नं किञ्चिद्विचारय ॥५८॥  
 इति तस्य वचः श्रुत्वा समारूढ रघूणमः । शकुन्तलं वन्द्य गार्भ्यांकितस्मं कृतं न्यवेदयत् ॥५९॥  
 सोऽपि श्रुत्वा विहस्याद्य राधवं वाक्यमद्रवात् । येन मन्त्रावितानाशो न भविष्यति वै हवि ॥६०॥  
 तथा सुखं च सर्वेषां नेन तच्छृणु राधव । तथेति राधयथोक्त्वा तदा वचनमब्रवीत् ॥६१॥  
 समजन्मार्जितं पुण्यं समार्जनममुद्रवम् । यस्य स्यात्तस्य चानन्दरामायणकथार्कचः ॥६२॥  
 भविष्यति न सर्वेषां भवन्त्र कदाचन । इति रामवचः श्रुत्वा सर्वे स्मृतुश्मानसाः ॥६३॥  
 ययुः स्वं स्वं पदं देवाः स्व स्वं देशं नृपा ययुः । तदारभ्य विष्णुदाम शनकाटामतु शुभे ॥६४॥  
 रामायणे शिवेनाक्तमानन्दारुणामेह शुभम् । रामायणं कश्चिन्नुच काभद्रं स्मरति मानवः ॥६५॥  
 न भूम्यां सकला लोका वेत्स्यन्ति वापरं कलां । समजन्मार्जितं पुण्यं येषां वेत्स्यति ते नराः ॥६६॥

कह चुनाया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ भविष्यम ज्ञान जो कुछ करना चाहत हो, सा वरत बनिए । इस प्रकार बसंत  
 रामसे कह ही रहे थे, तब तक पृथ्वीमरदनम क्या हुआ सो कहते हैं । उन दूताका गति सुनकर हस्तरावे जितने  
 मनुष्य थे ॥ ५० ॥ वे सब आनन्दरामायणक पठन और श्रवणसे अत्यन्त प्रकारके विमानापर बहुत-बहुतकर जप्तम  
 स्वर्गलोकको चल गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अपने लोकका शून्य दल यमराज ब्रह्माको साथ लेकर लकराकीके पास  
 पहुँच और प्रणाम करके उन्हें सारा वृत्तान्त कह चुनाया ॥ ५३ ॥ शिवजी यह समाचार सुनकर बहुत, पानकी  
 और यमराजको साथ ले तथा बहुतसे देवताओंसे बंछित होकर अयोध्यामें रामके पास गये ॥ ५४ ॥ जब  
 रामको यह समाचार मिला कि शिवजी आते हैं तो त्रेमूर्त्यक भगवानी करके गायत्रीक साथ शिवजीको एक  
 दिव्य सिंहासनपर बिठाकर उनको पूजा की ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा तथा शिवारि देवताओंकी भी  
 पूजा की । बाकी हर बार ब्रह्मान रामसे कहा—॥ ५६ ॥ हे राजीवपत्रा राम तबथा निरुद्य एव  
 यमराजको जोर निहारिए । आनन्दरामायणके श्रवणसे इनका हयमनी पुर्ण मूना हो गयी है ॥ ५७ ॥  
 भूलोक खाली हो चुका है और स्वर्गमें उन सबके रहनेके लिए कुछ जगह ही नहीं रह गयी है । जब उनको  
 रहनेके लिए कोई और स्थान सार्चिये ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शिवजीकी बात सुनकर रामने कानूनकी चुनाया  
 और उनको यह समाचार सुनानेके लिये बाल्मीकिक पास भजा ॥ ५९ ॥ कानून गय और बाल्मीकिका पुत्र  
 साथ । रामके मुखसे यह वृत्तान्त सुना तो गार्भ्यांकित हुंकर कहते लगे—जिस तरह संसारमें मेरी कविताका  
 भाव न हो ॥ ६० ॥ और सब साग प्रसन्न भी रह एसा कोई उचित उपाय साधकर करिये । रामने उनकी  
 बात मान ली और बोले—॥ ६१ ॥ मेरा पूजन करत-करत जिनके पास साठ जन्माका पुण्य एकत्रित होगे,  
 उनको ही शिव आनन्दरामायण सुन्नेकी होगी ॥ ६२ ॥ भविष्यम सधारण लागका रुचि ही यह और नहीं  
 होगी । इस प्रकार रामकी बाणी सुनकर सबका मन प्रसन्न हो गया ॥ ६३ ॥ तब दन्तगव अपने-अपने लोकको  
 तथा राजा लोग जयजयपन दशोंका लोट मये । तभीसे हैं विष्णुदाम । बलकाटिरामचरितान्तर्गत यह  
 आनन्दरामायणके विषयमें ऐसा हो गया कि कहीं-कहीं कोई ही कोई मनुष्य आनन्दरामायणको जानने लगा  
 ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ वापर और कलिये तो बहुत ही कम साग इसे जाननेवाले होंगे । क्योंकि इस समयसे यह  
 नियम बन गया है कि रामचन्द्रके पूजनसे बात कमोंके पुण्य जब एकत्रित होंगे, तब आनन्दरामायणके

तद्रामचरणाङ्गुष्ठां वभूव पूर्ववत्सदा । नाभूत्कस्य कदा मेधाऽऽनन्दरामायणं प्रति ॥६७॥  
सहस्रेषु नरः कश्चित्सप्तवन्मसु पुण्यवान् । आनन्दरामचरितं वेद स्तोत्रं न चापरः ॥६८॥

इति श्रीमत्काटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय राज्यकाण्डे  
उत्तराद्ध आनन्दरामायणमहिमावणम् नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

### चतुर्विंशः सर्गः

( रामकी रामकी उपदेश, सुमन्त्रका वैकुण्ठगमन और प्रजाको रामकी शिक्षा )

श्रीरामदास उवाच

एकदा संस्थितं राम सभायां सेवकोऽजयीत् । राज्ञराज महाराज रविवश्रंकमण्डन ॥ १ ॥  
सुमन्त्रस्तेऽतिबुद्धः स मन्त्रो नाक गतः प्रभा । त्वत्पत्न्यस्तन गन्तु त्वामाशु पृच्छन्ति राघव ॥ २ ॥  
सद्बुधवचने भुक्त्वा चाकतः । सुखमानसः । शीघ्रं सुमन्त्रगद् स पर्यो यानन राघवः ॥ ३ ॥  
सुमन्त्रवन्मण्डु तस्यायुःसहस्रां ददशं सः । जन्मकान्त्रसहस्राणि यव नवगुणानि च ॥ ४ ॥  
नवनवतिरपाणि मातास्त्वकादमेव । इह । एकावश्रदिनाथास्तकानाः सेषा दिना नव ॥ ५ ॥  
श्रोतव्यं रामचन्द्रः स तदा प्राह गुरु प्रातः । कृतं पुनः तु लक्षायुः सहस्रं द्वापरे स्मृतम् ॥ ६ ॥  
शतवर्षं कर्त्तुं प्रोक्तं सहस्राण दशव च । त्रतायां कायतं चायुस्तन्मद्राज्ये मृषा कृतम् ॥ ७ ॥  
यमेव मामवज्ञाय मरणं लब्धुमस्यता । दिनाननव उपाणि सात मे मन्त्रिणः कथम् ॥ ८ ॥  
यमेव नीलस्त्वयैव यम बद्ध्वा नयाम्यहम् । सुमन्त्रं शोचयाम्यद्य यदय मे त्व पराक्रमम् ॥ ९ ॥  
इत्युक्त्वा गरुडारूढः कोदण्ड कलयन् कर । वंगन रघुनयः स पर्यो तयमनीं पुरीम् ॥ १० ॥  
तावन्शर्गे सुमन्त्रं तं पाञ्चवदं यवानुगः । गच्छन्त राघवो दृष्ट्वा तान्तर्वर्तिशयन्मृदुः ॥ ११ ॥  
सुमन्त्रं शोचयामास स्तिगरूपधरं प्रभुः । तदा त राघवं प्रोचुश्चापराद्ध तवाद्य किम् ॥ १२ ॥

लोगोंके, राजा लोगों और राजा लोग इस जानन । तबसे रामके कहनानुसार किसीको दुर्द्ध आनन्दरामायणकी और नहीं गयी ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ बराबर हजारोंमें कहो एक-आध मनुष्य हैं सात जन्मोंका पुण्यवान् हमारे और नहीं आनन्दरामायणको जान पायेगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीमत्काटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये २३ रामचरणान्दमरान्तर्गते ज्योत्स्नाभावाटकासहित राज्यकाण्ड उत्तराद्ध त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

श्रीरामदास कहते लग—एक बार राम अपनी सभामें बैठ थे । तभी एक सेवकने आकर कहा—हे राज-राज । हे सूर्यवशके छट्छारस्वयं महाराज आपके दूध मन्त्रा सुमन्त्रस्वयं चले गये । उनकी रिजयां सती होकर पालिका अनुसरण करतके लिये आपकी आज्ञा चाहता है ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकारका कन्दास सुनकर राम एक रथपर सवार होकर सुमन्त्रके घर गये ॥ ३ ॥ वहाँ उन्होंने उनकी जन्मकुण्डला मंगलकर देखा, जिससे ज्ञात हुआ कि ९९९९ वर्ष ग्यारह महाना सुमन्त्रका आयु थी । जिसमें सब तो बातें भय, केवल नौ दिन बाकी रह गये थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा जानकर रामने गुरु वीरठका बुलवाकर उनसे कहा कि सत्यमुखमें मनुष्यकी आयु लाख वर्षोंकी, द्वापयुग हेतारकी, कालयुगमें ही सर्वको तथा त्रेतयुगमें दत्त हजार वर्षकी कहि गयी है । सो यमराजने मेरे राज्यमें मेरा मयमान करके उस निमसका दस्त्वदन किया है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऐसा बातें होता है कि वह मेरे द्वारा दण्ड पाना चाहता है । पर मन्त्राकी आयुद जमा नौ दिन बाकी है सो यम उसे यहाँसे बग ले गया । मैं आज यमका दायकर लाता हूँ और सुमन्त्रकी जिजाता हूँ । परा पराक्रम देखिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर राम गरुडपर बैठ और पनुषका टङ्कार करत हुए यमको संयमनी पुरीको चल दिये । तब तक चरते ही वे उन्होंने पाञ्चवद सुमन्त्रको ल जात हुए कुछ यमदूतोंका देखा । देखते ही रामने यमदूतोंका मारकर स्तिगरूपधारा सुमन्त्रको छुड़ा लिया । तब यमदूतोंने विनयपूर्वक

अस्माभिश्चेदशो दशो यतोऽस्माकं कृतस्त्वया । तदा नान्नायकः प्राह दिनान्यान्पुनर्वाच्य हि ॥१३॥  
 वर्तन्ते शेषभूतानि कथमद्यैव नीयते । अविष्पन्ति दिनान्यग्रे यदा नव यमानुगाः ॥१४॥  
 तदाऽऽनेयः सुमेनायं न निषेधं करोम्यहम् । इति रामवचः श्रुत्वा तमनुस्ने यमानुगाः ॥१५॥  
 अपूर्वमवजन्म सुमन्त्रस्यास्य राघव । भानुर्योऽपि बहिष्कृत्य मुनं हन्तौ विनिर्गतौ ॥१६॥  
 पूर्वं ततोऽस्य दशमे दिवसे दैवयोगतः । उदग्दीन्यधोऽङ्गानि पदानि शनैः शनैः ॥१७॥  
 विनिर्गतानि भीरव सुमन्त्रं रक्षितो बुर्यः । यस्माज्जन्मन्वयं तस्मान्सुमन्त्राख्याप्य मार्पिना ॥१८॥  
 अतः पूर्वदिनारभ्य संख्ययाऽऽयुः प्रपूजितम् । अस्य त तदिनारभ्य संख्यया दिवसा नव ॥१९॥  
 शेषभूताश्च भवता कीर्त्यन्ते ये रघूत्तमाः । अतोऽस्माकं नापराधः संदिग्धं जन्म वास्य हि ॥२०॥  
 वृषाऽयं नीयते राम इया शिष्याऽपि नः कृपा । इति तेषां वचः श्रुत्वा रामः प्राह यमानुगान् ॥२१॥  
 अस्य सौत्यदिनो ज्ञेयोऽप्रथमो हि यमानुगाः । यस्मिन् दिने सुप्रयतिर्भवत्काल्य मातृकाय ॥२२॥  
 उन्माददिवसो ज्ञेयः स एव जानकं तथा । तस्मिन्नेव दिनेऽप्यत्र कूर्मं पित्रा द्विजोत्तमैः ॥२३॥  
 ज्योतिर्विदा जन्मपत्रे स एव लिखितो दिनः । अतः शेषदिनाः मन्यं ज्ञेयान्स्याप्युचो नव ॥२४॥  
 अतो युष्माभिर्मान्त्र्यं नेपोऽयं दशमे दिने । पुनरागत्य सान्निभ्यान्मे निषेधं करोमि न ॥२५॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तूष्णीमेव यमानुगाः । माधुनेयाश्च छिन्नांगा पयराजं धनैर्ययुः ॥२६॥  
 रामोऽपि परिवर्त्यथ ययौ म्वनगरीं प्रति । स्त्राभिर्नार्गजितो मार्गं विवेश मन्त्रिणो बृहद् ॥२७॥  
 तावत्सर्वान्प्रमुदितान्मुपश्रेण समन्त्रिणान् । ददर्श रामचन्द्रः स तावद्दृष्ट्वा रघूत्तमम् ॥२८॥  
 प्रणामां सुमन्त्रः स पूजयामास राघवम् । ततो रामो ययौ गेहं मरुं प्रमुदिताननाः ॥२९॥  
 दिनानि नव शेषापुञ्जित्वा दानादिकं सुधीः । चकार प्रत्यहं प्रकृष्या सुमन्त्रो राघवाज्ञयाः ॥३०॥

कहा—हमने आपका नवर अपराध किया था, जिसके लिए आपने हमें ऐसा दण्ड दिया ? रामने कहा कि अभी इसके जीवने के नौ दिन बाकी है ॥ १०-१३ ॥ तब तुम आज जो हम क्यों भिये जा रहे हो ? जब हमके दिन पुरे हो जायें, तब आकर मानन्दपूर्वक ले जाना । तब मैं भी कुछ नहीं रोऊंगा इस प्रकार रामभी बाकी सुनकर हमके अनुचर कहल लगे—॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राघव ! हमका जन्म भी एक अपूर्व प्रकारसे हुआ था । पहिले दिन माताको धीनिसे हमके दोनों हाथ तथा मुख बाहर निकल आया था । तदनन्तर हममें दिन धार-धारे इसक ओर आहु निकल गये ॥ १६ ॥ १७ ॥ मन्त्रे तन्नामे यस्मिन्दिने हमको रक्षा कर ली थी । अतएव इसका सुमन्त्र नाम पड़ा था ॥ १८ ॥ इसके पूर्व दिनमें अर्वाङ्ग जिस दिन इसका हाथ तथा मस्तक बाहर आया, उस दिनसे लेकर आज तक हम इसकी आयु समाप्त हो गयी । आप जो हमके नौ दिन बाकी बतलाते हैं, वे संदिग्ध हैं । हमारा कुछ दोष नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥ आप अपने इसे छीने लिये जात हैं, हमका स्वयं आपका भाग भी है । उनकी बात नमकर यमदुतांसे रामने कहा—॥ २१ ॥ हे यमानुचर ! वह अन्तका दिन अर्वाङ्ग जिस दिन माताके गर्भमें इसका अचञ्छी तरह अन्य हुआ है, वैही जन्मका दिन माना जायगा ॥ २२ ॥ जिस दिन इसका जन्मका उत्सव बनाया गया है, वास्तवमें वही जन्मदिन है । उसी राज हमके पिता तथा ज्योतिषियोंन इसका जन्म लिखा है । इसलिए अभी इसके नौ दिन बाकी है ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम लोग आज और दसवें दिन आकर इसे ले जाना । तब मैं तुम लोगोंका नहीं रोऊंगा ॥ २५ ॥ रामकी बात सुन और शिष्यभङ्ग होकर बाँचोम बाँसू चरे हुए वे दूत यम-लोकको लौट गये ॥ २६ ॥ राम भी लौटकर अरोण्या चले आये । वहाँ स्थितोंने उनकी आगती उनारी और राम सुमन्त्रके घर गये ॥ २७ ॥ वहाँ सब लोगोंकी सुमन्त्रके साथ प्रणाम देखा । सुमन्त्रने रामको देखते ही प्रणाम किया और उनकी पूजा की । इसके बाद राम अपने भवन गये । तबसे सब लोग गरम प्रणम रहे ॥ २८ ॥ २९ ॥ सुमन्त्रने अपने जीवनके केवल नौ दिन बाकी जानकर रामके आज्ञानुसार बुरे दान-पुण्य

जब है यमदूताय साधुनेत्राः समानताः । उष्णीषाणि कर्तुः क्रोधादास्फास्य ह्रुदि बाधवन् ॥३१॥  
 कर्त्तुं करोष्यधिकारं तवाशाकारिणां त्विमां । इष्टाश्रम्या न लज्जा ते जायते हृदये यम ॥३२॥  
 तत्कदाश्चार्क राघवेण सुर्मशो मोक्षितः पथि । दिनानि बभूव शेषायुः पूर्वार्धमधुना वयम् ॥३३॥  
 दैहस्थानं जले कर्मो न जीविष्याम्य यो यम । तद्दूतवचनं श्रुत्वा प्रज्ज्वल्य यमधरा ॥३४॥  
 प्राह स्तानघ रामं वदस्वा दण्डं करोम्यहम् । चोरनीयानि सैन्यानि देवेन्द्रं सूच्याम्यहम् ॥३५॥  
 ह्युक्त्वा स्वरितो मन्वा हनमिदं न्यसेत्थम् । पुनरिदं यमः प्राह महाशयं क्रियतां मम ॥३६॥  
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रो यममब्रवीन् । किं प्रांगोऽपि यमाश्रयं विष्णुना योद्धुमिच्छसि ३७॥  
 यच्छतूष्णीं संययन्तीं तामस्य किं करिष्यामि । मद्रिया हि पुन दत्तौ मया नौ सुरपादपौ ॥३८॥  
 एवं तद्वचनं श्रुत्वा बहिल्लोकं ययौ यमः । अग्रिना चाक्षिप्यैव निर्मलं वरुण तथा ॥३९॥  
 वायुं कुवेरमाश्वारं रविं चन्द्रं बुधं मरुम् । शुक्रं जनेश्वरं राहुं केतुं भूमिभुजं ध्रुवम् ॥४०॥  
 प्रार्थयामास युद्धाय साहाय्यं क्रियतामिति । उतगभीन्द्रवन्मये दूर्ध्नां यमं हि ते ॥४१॥  
 ततो गत्वा विधिं चापि पातालान्तर्वासिमिः । ममर्ष्टास्वामिनश्च यमः मप्रार्थयन्नुपज् ॥४२॥  
 तैज्यपुत्रं करिष्यामः साहाय्यं राघवाग्रतः । ततः क्रोधमनाविष्टः स्वयैन्द्रेण यमन्विनः ॥४३॥  
 रामेण सङ्गरं कर्तुमयोष्यां स यमो ययौ । स्वगणैः सह वेगेन महाभद्रिषमन्धितः ॥४४॥  
 ययोष्यां देहपात्राण नवद्वारविराजिताम् । नवप्राकारमहिनां स्रवर्णायन्त्रसंयुताम् ॥४५॥  
 नवविः परित्याभिश्च समन्तात्परिवेष्टिताम् । दृढरन्तकपाटव्यां रत्नमिश्रिविराजिताम् ॥४६॥  
 परपूरेष्टितां रम्पां रविहोदिममघमां । नवाघासद्वन्द्वैश्च पताकाज्जडोमितम् ॥४७॥

बारम्ब कर दिया ॥ ३० ॥ उधर वे यमदूत यमके आगे पहुँचे और अपने पगडो बसोनसे रूम कर कहने लगे—  
 ॥ ३१ ॥ हे यमराज ! तुम सोचें अपने अधिकारकी रक्षा करत हो ? अपने अजाकारों तब सेवकोंकी यह रक्षा  
 कैसाकर तुम्हें लाज नहीं आती ? ॥ ३२ ॥ गरतेये रामने मागकर मुमन्त्रको दुहा दिया । क्योंकि उसके  
 बीषणके नौ दिन बाकी थे । राम वह नौ दिन पूरा कर नयेपर मुमन्त्रको आने देंगे ॥ ३३ ॥ अब  
 हम साथ चलते हुक्कर अपने प्राण दे देंगे । इस प्रकार दूतोंकी बात सुनकर यमराज मारे प्रेयके कात हो  
 गये ॥ ३४ ॥ उन्होंने दूसरेमें कहा—यवहाओ दत्त, आज हाँ रामको बांधकर मैं उनकी इस दृष्टताका इष्ट  
 दूँगा । तुम जाकर सेना तैयार करो । तबतक मैं इन्द्रको सूचित करता आऊँ । ३५ ॥ ऐसा कहकर यमराज  
 तुरंत इन्द्रके पास गये । उन्हें सारा हाल सुनाया और सहायता करनेकी प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ यमराजकी बात  
 सुनकर इन्द्रने कहा—यमराज ! क्या तुम भगल हो गये हो, जो विष्णुभक्तकायके साथ युद्ध करना चाहते हो ?  
 ॥ ३७ ॥ क्याप अपने संवमकी नगरीको गौट गाओ । रातका तुम क्या करोगे ? उनसे उठकर मैंने अपने  
 शेषोंसे परिजाल और कन्यापुत्र इन दोनों देवदूतोंको उठाकर दे आया था ॥ ३८ ॥ ऐसा बचन सुनकर यम  
 क्षमिकोफ गये, उनसे सहायता माँगी तो अग्निने भी वैसा ही उत्तर दिया । इसके अनन्तर निर्मल, वरुण,  
 ॥ ३९ ॥ वायु, कुबेर, ज्ञान रवि कन्द बुध मरु, शक्र शनि, राहु, केतु तथा भृगुलोक गये ॥ ४० ॥  
 सर्वथ उन्होंने सहायताकी प्रार्थना की, किन्तु उस प्रत्यक्षे यमराजकी सबने इन्द्रके समान ही शुष्क उत्तर  
 दिया ॥ ४१ ॥ तब यमराज लौटकर ब्रह्मके पास गये । पतालमें रहनेवाले राजाओं तथा सप्तर्षीके राजाओंसे  
 भी आकर सहायताकी प्रार्थना की । ४२ ॥ किन्तु उन्होंने भी कहा कि रामके विरुद्ध मैं तुम्हारी सहायता नहीं  
 करूँगा । इसके बाद आचारविष्ट होकर यमराज अपनी ही सेना लेकर रामके साथ युद्ध करने ययोष्या चले ।  
 उस समय उनके समस्त गण भय से और यमराज एक बड़े भारी घेसपर सवार थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वहाँ पहुँच-  
 कर उन्होंने बागों छोड़ते यह अंगोष्ठा नगरको घेर लिया । जिसमें नौ बड़े बड़े फाटक थे और नौ ही  
 काइर्ण कड़ी थी । जिसकी दूरी बन्दूकें और ताँपें रखी थीं । जिनमें रत्नहटित कपट रंगे थे और रत्न ही की  
 दीवार बना हुई थी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिनके उत्तर सत्रू बहु रही थी और करोड़ों दूरसे प्रजापति आई जिसका

यमेन वेष्टिता दृष्टा पुरी रामो महाप्रभाः । लवश्चापयायास गच्छ योद्धुं यमेन हि ॥४८॥

लवस्तदा रथासुदो दुन्दुभीनां महास्वनेः ।

अयोध्याया बहिर्गत्वा चकार सङ्गं बहून् ॥४९॥

तदा लवशराधातुच्छिन्नदेहा यमगुणाः । निपेतुः अणवाग्रं कोटिहो रणभूमिषु ॥५०॥

तान्सर्वान्निहतान् दृष्ट्वा यमो महिषमस्थितः । चकार तुमुलं युद्धं लवेन क्रोधभासुरः ॥५१॥

स्वबाणोर्वैर्ममः शीरं रथं स्रुतं बलं धनुः ।

कवचं मुकुटं चापि चिच्छेद म लवस्य च ॥५२॥

तदा लवश्चातिकुद्धः स्वयैव्येन स्थित पुनः । चकार मङ्गरं घोरां यमेनानिधयंकरम् ॥५३॥

तदाऽपरा विमानस्था ददृशुर्गुदकांतुकम् । ततो लवः स्वबाणोर्वैर्महिषं मूर्छितं हवि ॥५४॥

कृत्वा तं काड्याभामं शतराजैर्ममं जवान् ।

ततो यमोऽप्येनिकुद्धो यमदण्डं मुञ्चोच तम् ॥५५॥

तं दण्डं मोचित दृष्ट्वा ब्रह्मास्र मन्दधे लवः । ब्रह्मास्रमागतं दृष्ट्वा यमदण्डो न्यवर्तत ॥५६॥

तदा यमोऽपि विकलः पलायनपरोऽभवत् । ब्रह्मास्रं तस्य पृष्ठं तद्यथा कालानलप्रमम् ॥५७॥

तदा दृष्ट्वा रविः शीघ्रं स्त्रीयां भिन्नां प्रकल्प्य च ।

रथे मूर्तिं ययौ वेगान् प्रार्थयामास तं लवम् ॥५८॥

रे रे बाल वमं शशि चोपसंहारयाद्य हि । त्वयोन्मृष्ट ब्रह्मास्रं त्वमेवास्रविदां वरः ॥५९॥

त्व मे वंशसमुद्भूतम्वयं मे तनयो यमः कथं स्वप्नज त्वय न्व यमं हन्तुमिच्छसि । ६०॥

चेदेको मूर्ध्वर्ता पातः सर्वे मूर्त्वा भवन्ति न ।

शत्रुं रणान्पतिं ब्रष्टं वीरान्तं रक्षयन्ति हि ॥६१॥

प्रकथा या । उसने जाना प्रकारके बहुत बने थे और वह पुरी बहुत-सी पटाकाओं तथा रज्जुओंसे बलकृत थी ॥ ४७ ॥ यमराजसे घिरी अयोध्याकी दखकर रामने लवसे कहा—तुम यमराजसे युद्ध करनेके लिए जाओ ॥ ४८ ॥ तब दुन्दुभीके विकराल निनादके साथ लव रथपर आसढ़ होकर अयोध्याके बाहर जाये और यमराजके साथ मयङ्गुर युद्ध किया ॥ ४९ ॥ उस समय लवके बाणोंने निहून होकर यमके करोड़ों अनुयायी क्षणमात्रमें घरासायी हो गये ॥ ५० ॥ उन सबोंको मरा देखकर पाप्यमे तपनमाये हुए यमराजने स्वर्ग स्वर्गके साथ तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५१ ॥ यमराजने अपने विकराल बाणोंकी बरसि शीघ्र लवके रथ, सारथी, धनुष, कवच तथा मुकुटको काट डाला ॥ ५२ ॥ तब अत्यन्त क्रुपित लवने एक दूसरे रथपर आसढ़ होकर यमराजके साथ महाभयंकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५३ ॥ उस समय समस्त देवता अपने विमानोंपर आसढ़ होकर समरक्षेत्रमें जाये और वह युद्ध देखने लगे । इसके अनन्तर लवने अपने बाणोंकी बरसि यमराजके भैसेको मूर्छित कर पृथ्वीपर लीटा दिया और वगके साथ बाण चलाते हुए दो बाणोंकी बरसि यमराजपर प्रहार किया तब यमराजने अतिशय क्रुद्ध होकर लवपर यमदण्ड छोड़ा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ यमदण्डको दखकर लवने घृष्टारूप भला दिया, जिससे यमदण्ड लोट पड़ा । तब यम विकल होकर पाप निकले और कालानलके समान लहाराउनके पीछे-पीछे चला ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उस ब्रह्मास्त्रको देखकर सूर्यने समझा कि इससे वम नहीं बच सकता । मेरा बेटा अवश्य मारा जायगा तब सूर्यदेव स्वर्ग रथपर आसढ़ होकर लवके पास जाये और प्रार्थना करने लगे ॥ ५८ ॥ सूर्यने कहा—अरे अरे हे लव ! इस अस्त्रकी लीटाकर यमकी बचाओ । तुम्होंने इसे चलाया है और तुम्हीं इसका निवारण भी कर सकने हो । तुम ब्रह्मविद्या जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हो ॥ ५९ ॥ तुम हमारे वंशमें उत्पन्न हुए हो और यम भी मेरा ही पुत्र है । क्या अपने पूर्वज यमकी ही तुम नाम डालना चाहते हो ? ॥ ६० ॥ यदि एक लडका मूर्ख हो गया तो क्या उसके साथ सब मूर्ख हो

इत्यादिनावाचनैः प्रार्थितो रविणा यदा ।

तदा लघोऽपि मंदार चक्राश्रयस्य प्रक्षणः ॥६२॥

ततो लवं पुरस्कृत्य यमेन तपनः पुरीम । निवेश रघुनाथस्य दर्शनार्थं मुदान्वितः ॥६३॥

तदा के देववाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः । लव ववर्षुरमरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६४॥

पौरुषार्थो लव मार्गे ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । गोपुरादालयस्थाश्च ददशुस्त मुहुर्मुहुः ॥६५॥

नेदुर्नानासुराद्यानि ननृतुर्वर्गयोषितः । तुन्दुवुर्मागधायाश्च जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥६६॥

एवं नानाममुन्मार्हैः स्त्रीभिर्नीराजितः पथि ।

यसौ स विजयी बालः प्रणनाम रघूत्तमम् ॥६७॥

रविमागतमाज्ञाय प्रत्यूहम्य रघूत्तमः । नन्वा रथि करे पृथा समायां सधिवेश ह ॥६८॥

ततः सिंहासने बाहु निवेश्य स्वीयपूर्वजम् । पूजयामास श्रीरामः षोडशैकान्धारकैः ॥६९॥

तदाऽज्रर्वाद्भविं रामः समायां पुरतः स्थितः ।

पूर्वजान् च क्षमस्वाद्य यत्नत्वेनापराधितम् ॥७०॥

तद्ग्रापवचनं श्रुत्वा रामं प्राह रविरतदा । त्वन्नामिकमलाद्ब्रह्मा समुद्भूतो रघूत्तम ॥७१॥

मरीच्याद्या विधेः पूरा मरीचैः कश्चपः सुतः ।

कश्यपान् च ममोपदिः पीत्रपीत्रस्त्वह तव ॥७२॥

धमस्व मम पुत्रेण यद्यमेनापराधितम् । एव संप्राप्य श्रीरामं चामने संन्यवेष्टयत् ॥७३॥

यमेन कारयामास रघुनाथाय वन्दनम् । तदा समाययुर्देवा नेष्टुः सर्वे रघूत्तमम् ॥७४॥

रामोऽपि सकलान् देवान् पूजयामास सादरम् ।

ततो रामाज्ञया चेन्द्रः सुधावृष्ट्या रणे मृतान् ॥७५॥

क्षीप्रहृत्थापयामास सर्वान्वीरान्सबाह्वनैः । ततो रामो यमं प्राह यावद्राज्यं करोम्यहम् ॥७६॥

पार्थिवे । श्रीर लोह संग्रामभूमिसे भागे हुए शत्रुकी भी रक्षा ही करते हैं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार कितनी ही बातोंमें सूर्यके प्रार्थना करनेपर लवने सह्याश्रयका सम्बरण कर लिया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर लवको आश करके यमराजके साथ-साथ सूर्य राक्षसद्वका दर्शन करनेके लिए हर्षपूर्वक अयोध्या नगरीमें गये ॥ ६३ ॥ उस समय देवताओंने अपने जाने देनासे, लवपर पुत्रोंकी वर्षा का और अप्सरायें माचने लगीं ॥ ६४ ॥ पुरवासिनी शिष्य भी रास्तेमें कोठपरसे फूल चरमाती हुई बार-बार लवकी निहार रही थी ॥ ६५ ॥ उस समय विविध प्रकारके बाजे बजे, गणिकाय नाचने लगी और मागध, गन्धर्व तथा किशोरमण स्तुति करने लगे ॥ ६६ ॥ इस तरह अनेक उत्सवोंने साथ रास्तेमें आरती उतरवाता हुआ वह विजया बाणक जय रामके पास पहुंचा और प्रणाम किया ॥ ६७ ॥ रामने सूर्यभगवान्का आगमन सुनकर उनकी अगवाजी की, प्रणाम किया और हाथ पकड़कर सभाभवनमें ले गये ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर अपने पूर्वज सूर्यको रामने सिंहासन पर बिठलाया और षोडशोपचारसे उनकी पूजा की ॥ ६९ ॥ फिर रामने सूर्यभगवान्से कहा—आप हमारे पूर्वज हैं । अतएव लवने जो कुछ अपराध किया हो, सो क्षमा कीजिये ॥ ७० ॥ रामकी ऐसी बात सुनकर सूर्यने भयवान्से कहा—हे रघूत्तम । आपहो के नामिकमलसे सह्याजी उत्पन्न हुए थे और उनसे भराचि आदि उत्पन्न हुए मरीचिसे कश्यप हुए और कश्यपसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ । अतएव मैं आपके पीत्रका पीत्र हूँ ॥ ७१ ॥ हमारे पुत्र यमने जो अपराध किया है, सो क्षमा करिय । इस प्रकार विनय करके सूर्यने रामको आसनपर बिठलाया और यमसे प्रणाम करवाया । इसके बाद समस्त देवतायुद्ध वहाँ आ पहुंचे और उन्होंने रामचन्द्रकी वन्दना की ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ रामने भी सादर सब देवताओंकी पूजा की । इसके बाद रामकी आज्ञासे इन्द्रने संग्राममें धरे हुए लोगोपर समृतकी वर्षा की और वाहनसमेत समस्त वीरोंकी उठ-

तावत्स्या तु पूर्णापूर्वरो नेयो न चेतरः ।

तत्रामवचनं भ्रूया तथेष्ट्याह यमस्तदा ॥७७॥

ततः मासे सुदशमे दिने स्त्रीभिर्विगाद्य माः । सुमन्त्रो राघव कथा तदग्रे शीघ्रिणं जही ॥७८॥

ततः स दिव्यदेहाभिः स्वस्त्रीभिर्दिव्यदेहयुक् ७९॥

सुमन्त्रः पूजितः सर्वे विमाने वसिष्ठो वभौ । राधाग्रं यमणादेव सुरैः सर्वत्र वेष्टितः ॥८०॥

ततः दृष्ट्वा रवी रामं यमेन स्वस्थं ययौ ।

ययौ सुमन्त्रः स्वस्त्रीभिर्वकुण्ठं निर्जता दिवम् ॥८१॥

रामः सुमन्त्रपुत्रेण नक्तिकयादि सुमन्तुना । कस्यिन्वा यथाशक्त तन्पदे तं व्यवेशयन् ॥८२॥

ततो रामो लक्ष्मणेन पृथिव्या धोषयन्मुहुः ।

गजन्वस्तां दन्दुभिर्वा पाकाप्यजशोभिनाम् ॥८३॥

तथेति लक्ष्मणधापि दूतानाञ्चापयन् । दूतान्तेऽथ मज्जाकटाः समदीपान्तरेषु दि ॥८४॥

रामाज्ञां श्रावयामासुर्जनान्दुन्दुभिनिःस्वनैः । अर्णायुर्भूतः कश्चिन्नेवरो राघव प्रणि ॥८५॥

योगनिकाः स्थापनीया मेहे ग्रामे पृथक् पृथक् ।

निष्पन्नैर्मित्तिकं कर्म न त्वाह्य वै कदाचन ॥८६॥

नावमान्या भूसुराश्च द्वेपः कार्ये न कस्यचित् । इत्थं कथ्य मदा देव दण्डन वाच तत्कराः ॥८७॥

द्यास्तीया दुराचारान्वया ये जना भूयि । वन्दनीया मदा वाता वन्दनीय सदा पिता ॥८८॥

पूजनीयाः सदा देवा कार्ये धर्मो निरन्तरम् ।

चैश्वर्यानं सदा कार्यमयोप्यायामधापि वा ॥८९॥

रामतीर्थेषु सर्वत्र कार्या धर्मा विशेषतः ।

द्वारका तदा गन्वा कार्यं वंशावमज्जनम् ॥९०॥

ऊर्जे द्वारपा वञ्चनपदे स्नातव्यं विधिपूर्वकम् । गन्वा प्रयागं प्रत्यर्च्य कर्तव्यं माघमज्जनम् ॥९१॥

कर सदा किया । तदनन्तर रामने यमराजसे कहा कि जवनक से पृथ्वीपर शासन करता रहूँ, तबतक तुम उन्हीं मनुष्योंको अपने लोकमें ले जाओ जिनकी आयु पूर्ण हो गयी हो और किसीको नहीं । रामकी बात सुनकर यमराजने कहा कि “ऐसा ही होगा” । ७५-७७ । इस- पञ्चान् दशव दिन स्थियोंको साथ लेकर सुमन्त्रने रामको प्रणाम करके उनको सामने ही प्राण त्याग किया । ७८ । सुमन्त्रकी स्त्रियोंने भी उसी समय प्राण त्याग दिया और उन स्थियोंके साथ दिव्यदेह धारण करके सुमन्त्र सब जगोसे पूजित होत हुए विमान- पर बैठकर मरिचक लोभित हुए । रामने समस्त मरनेसे वे समस्त देवताओंके साथ दिव्यलोकको गये । ७९ । ८० । इसके बादान् सूर्य भी रामसे आज्ञा लेकर उसके साथ लौट पड़े । रामने सुमन्त्रके पुत्र सुमन्त्रके हाथों सुमन्त्रकी निष्का करवाकी और पिताके असनपर उसी पुत्रको बिठाया । ८१ । ८२ । तदनन्तर रामने कदम्ब- की पृथ्वीतलमें इस बातकी घोषणा करनेकी आज्ञा दी । ८३ । लक्ष्मणने भी “बहुत अच्छा” कहकर पुन्दुभी इजानेवालोंको आज्ञा दे दी । वे हाथीपर तयार हो तथा शार्ङ्गों छोड़ोष जा नकर दगाड़े बनाते हुए रामकी आज्ञा सुनाये लगे । उन्होंने कहा—राजा रामचन्द्रका आदेश है कि यदि मेरे राज्यामें कोई मनुष्य बिना आज्ञा पूर्ण हुए ही मरे तो उसे मेरे पाद ले जाया जाय । ८४ । ८५ । य-पर तथा गरीबोंमें दुराजों- की आननेवाले पौराणिक रखे जाय । कोई मनुष्य अपने निष्पन्नैमित्तिक कर्मोंको न छोड़े । ८६ । बाह्यणोंका कोई अपमान न करे, कोई किसीके साथ देवभाव न रखे, कोई किसीके दण्डको न ले और चोरोंको दण्ड दे । ८७ । जो लोग दुराचारी हों, उनपर कदा शासन किया जाय । धर्म कर्म सदा होता रहे । अयोध्यामें अपना किसी अन्य ऐमहीधमें जाकर लोग वैवस्वान किया करें । ८८ । ८९ । विशेषतः

चातुर्मास्यव्रतादीनि कर्तव्यानि व्रतानि हि । पर्वण्येषु तुलसी पूजनीया हि सर्वदा ॥९२॥

न निगम्योपोऽत्र स्वतैश्च कदाचन ।

न निप्रयाञ्चा कर्तव्या मृषा क्वापि कदाचन ॥९३॥

यदीच्छेत्स ततो देवं सर्वस्य ब्राह्मणाय वै । प्राप्ते गृहे कचिन्नर कलह तु समाचरेत् ॥९४॥

तदा गुरुर्नन्दनीयः कर्त्तव्यं धनं सदा । प्रातःस्नानं सदा कार्यं होतव्या विधिनाऽप्ययः ॥९५॥

कार्यो जपः शक्यस्य ध्येयो निन्य मदेशाः । एकांते हि तपः कार्यं द्वात्रिंशमप्ययनं तदा । ९६॥

त्रिभिर्गोनानि कार्याणि चतुर्भिर्विचरेत्पथि ।

परदारविस्मयाज्वा नावलोचयान्यकामिनी । ९७ ।

परसङ्ख्याः स्रुता कार्या न नरैश्च कदाचन । तीर्थं विना पुण्यकाले न स्नानं न्य गृहेऽपि ॥९८॥

न देव्या गणका वैद्यास्ते पापयात्र पुरे पुरे । न वेदशागमनं कार्यं न दापि स्पृहयेद्भुदि ॥९९॥

नित्यकर्म यथाकाले कर्त्तव्यं सदा नरैः ।

नाचमान्या हि गुरुवः परनिन्दा न कारयेत् ॥१००॥

जलाशया वने कार्या शौरर्णवा भगाः पथि । धर्मज्ञात्वा पृथक्कार्या न तत्रां वीक्षयद्भृषु ॥१०१॥

अशमयापि कार्याणि पुरे प्राप्ते वने तथा । प्रकुर्वन्तु वने रक्षां मागस्थानां वनेचराः ॥१०२॥

मयं साऽस्तु वने क्वापि निशार्था मार्गशामिनाम्

वैदेभ्यस्तु कमे शब्दो नेतव्यो कदाचन ॥१०३॥

पादयोः पादुके घृत्वा तीर्थं देवं गुरुं प्रति । ग्राष्टु वृन्दावनं होमशालां गच्छेत् सर्वदा ॥१०४॥

पारायणानि व्रतानां वेदानां च सदा नरैः ।

कर्त्तव्यानि तु निष्कामं धामकार्याणि करयेत् ॥१०५॥

लोग धर्मकर्म करते रह । द्वारकापुरीमें जाकर लोग वैशाखमान कर ॥ ६० ॥ कार्तिक मासमें काशीका पञ्चगक्रामे और प्रतिवर्ष भाषमासमें अग्रयण अवसर स्नान करें ॥ ९१ ॥ चातुर्मास आदिका सत्र करते रहे । हर एक घरके आँगनमें तुलसीकी पूजा हार्ता रहनी चाहिए ॥ ९२ ॥ घर रात्रयमें कभी कोई आये हुए अतिथि-का अनादर न करे । कभी कोई किसी ब्राह्मणकी माँग खरब न करे ॥ ९३ ॥ यदि वह चाहता हो तो ब्राह्मणके लिये अपना सर्वस्व दे डाले । किसी घर या गाँवमें कोई लड़ाई झगडा न करे ॥ ९४ ॥ सदा गुरुकी वन्दना करे, उनसे सर्वज्ञ धर्मपद सुनता रह, निरा प्रातःस्नान कर और विप्रिवर्क अग्निहोत्र करता रहे ॥ ९५ ॥ नित्य शिवलीला ब्यास और जप करता हुआ एकात्म्य तपस्या करे । दी व्यक्ति साथ बैठकर अध्ययन करें, तीन मनुष्य साथ बैठकर गार्ध-बजाय और चार मनुष्य साथ हाकर टहलने निकले । दूसरोंकी स्त्रीसे प्रेम न करे, दूसरोंकी स्त्राको देखे भी नहीं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ दूसरोंकी लक्ष्मीका धनको इच्छा न करे, किसी पर्वकाकके समय घरमें स्नान न करे, बल्कि किम्बा तीर्थम्यानवर पाल जाय ॥ ९८ ॥ वयोविषी तथा बंछके साथ कोई विगाद न करे । यदि किसी दूसर गाँवमें भा रहते हों तो उनका पालन करे । न कोई वेपथगमन करे और न दाहोमें त्रेस कर ॥ ९९ ॥ ठं क समयपर लोग अपने नित्यकर्म करते रहें । गुरुजनोका सम्मान कभी न करे और न दूसरोंकी निन्दा ही कर । वनामें अलगाध इनवाये । अलग-अलग धर्मशास्त्रों सम्पाये । कभी नङ्गो स्त्रोको न देखे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ पुर, घाम और वनोंमें जहाँ-तहाँ अशमय खोने । कनकर मनुष्य वनमें पहुँच हुए पाँवकोको रखा करे ॥ १०२ ॥ रात्रिके समय भी चक्रेवालोको वनमें किसी प्रकारका भय न रहे । केवल वैश्योसे कर लिया जाय और लोपोसे नहीं ॥ १०३ ॥ पाँवमें जूता पहिनकर किसी शीर्षस्थान केवला तथा गुरुके पास न जाय । गोशाला तथा तुलसीकी बगीचीमें भी गृता पहिनकर न जाय ॥ १०४ ॥ धर्मवर्गों और वेदोका पारायण सर्वदा सत्र लोग निष्कामभावसे करते रहें ॥ १०५ ॥



पतयो वन्दनीयाश्च भोजनीयाः गृहे गृहे । पतये कमण्डलवः कौचीनं पादुकां तथा ॥१०६॥

रुग्णदण्डः मदा देवाः मदा तोषाः सुभाषणैः ।

न रोदयेद्वर्षं स्त्रीणां दिनं निद्रां न कारयेत् ॥१०७॥

रुग्दिन्यां न भोक्तव्यमुपोषां च चतुर्दशी ।

कृष्णवक्षसरा तस्यां रात्री कार्यं शिवाचनम् ॥१०८॥

नानामहोत्सवाद्यश्च यथाविधिपुत्रमरम् । मर्यादां कृष्णवक्षस्य पशोर्वाप्या शुभानि चिह्निः ॥१०९॥

देवालयेषु कर्तव्या पतयो भक्तिपूर्वकः । नानापञ्चाक्षर्यवेद्यान्देवभ्यश्च समर्पयेत् ॥११०॥

धेनुदानं वाजिदानं गजदानं प्रकारयेत् । भूमुरेभ्यः प्रदेशानि गृहदानानि सादरम् ॥१११॥

गृहे गृहे सदा कार्यं धेनुविप्रप्रजम्भम् ।

रमन्ते चन्दनं देयं छात्राणि ध्यजनाणि च ॥११२॥

शानकं जलकुम्भाश्च कायं पादावनजनम् । इधं तत्र हि जर्षां देयं विप्रैश्च सादरात् ॥११३॥

कार्तिके दीपदानानि शर्मा जाम्बवानि च । तुलसीसेवनं धार्वाज्यामाश्रित्य भाजनम् ॥११४॥

गीतनृत्यादिकर्णं विष्णोऽग्रे निरन्तरम् ।

त्रिपुरारेः समोप हि पौर्णिमायां हि कार्तिके ॥११५॥

करणायो महादाहो घृताक्तवर्तिकादिभिः । माषदेवानि काष्ठानि कवलधित्रिनास्तथा ॥११६॥

चैत्रे तर्जुलदानं च तथा रश्माकवन्ति च । उर्वारकानि दद्यान् चन्दनं रविनक्षत्रम् ॥११७॥

आदर्शदानं करनूरीदानं जार्वाफलस्य च । पलाकपूरदानानि मनुमानि प्रकारयेत् ॥११८॥

पदाऽञ्जनं न स्पृशेच्च न पादं पपयेन्पदा । द्वाभ्यांकराभ्यां कर्तुं मत्तकस्व न कारयेत् ॥११९॥

दातव्यः करमारो हि विना विप्रैर्नृपाय हि ।

नोपेक्ष्यते यो राजश्च जनेदण्डः कदाचन ॥१२०॥

माननीयाश्च सद्गुराः पोष्याः पान्थाः सर्वत्र हि । सुहृदस्तोषणीयाश्च मित्रं कोप न कारयेत् ॥१२१॥

महात्माभोकी सद्गुरु की जाय और घर घर भाजन कराया जाय । उन्हे कमण्डलु, कौचीन, चरणपादुका आदि दान दिया जाय ॥ १०६ ॥ उन्हे ब्राह्मणकी छड़ी भी द और भठा मन्त्र बातें प्रसन्न कर । कभी कभी भवनी स्त्रीको दुखित न कर और दिनभर श्रम न कर । एकादमीका अन्नका आहार न कर और कृष्णकाकी चतुर्दशीका भी यह किया करे । उस रातिये लाग उत्साहसे शिवजीका पूजन करे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ कृष्णवक्षकी अष्टमीका भी यह सब लोग किया करे । क्योंकि यह बड़ा शुभ तिथि है ॥ १०८ ॥ देवालयेमें अस्त्रपूर्वक पूजन करके विविध प्रकारके नैवेद्य देवताओंको समर्पित किये जायें ॥ ११० ॥ लाग सष्य सम्यपर धेनुदान, वाजिदान, गजदान आदि दान आबरुपूर्वक ब्राह्मणका दिया करे ॥ १११ ॥ घर घरमें सदा तीर्थों तथा विप्रोंका पूजन होता रहना चाहिये । वरान्त ऋतुमें चन्दन, छत्र तथा पत्रका दान करे ॥ ११२ ॥ पानी पीनेके लिये लोटा, जल भरनेके लिए बड़ा, पैर धानके लिए झारी, इहो, छत्र और नीवूका दान ब्राह्मणोंको दे ॥ ११३ ॥ कार्तिक मासमें दीपदान, रात्रिकी जागरण, तुलसीका सेवा और मोवलेकी छयामें भोजन करे ॥ ११४ ॥ निरन्तर विष्णुभगवान्के सामने गावें-गायें । कार्तिकका पूर्णिमाको शिवजीके सामने चैत्रे जाती बली आदिका महाराज करे ॥ साथ मासमें लक्ष्मीयाँ सब रत्न निरखे कम्बलका दाव करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ चैत्रमें ताम्रूल तथा केलेके फल दान काके अगर, चन्दन, इहो और महुआ आदि दे ॥ ११७ ॥ वैशाखमें महोत्सवमें शीका, करनूरी, जायफल, इलायची तथा कपूरका दान करे ॥ ११८ ॥ वैशे बड़े धार्मिकों न कुछ पैरसे पैर न रगडे, दोनों हाथोंसे सिर न खुलवाये ॥ ११९ ॥ ब्राह्मणके अतिरिक्त सब लोग राजाको राज्यकर देते रहें । राजाके लिये यक्षकी उपासना न करे ॥ १२० ॥ अपने-अपने शत्रुकी हानि न करे

न कर्तव्यो विपुलां च विश्वामश्च कदाचन ।

कार्पण्यं नैव कर्तव्यं दानकर्तुं सर्वदा ॥१२२॥

न घृतेन कदा कार्या क्रीडा दारिद्र्यवृत्तिनी ।

न भोजन्या कदा चर्ता मद्यानी च नरोत्तमैः ॥१२३॥

तीर्थयात्रा सदा कार्या कृच्छ्रकादि ममाचरेत् । कार्यं लिगार्चनं निर्यं कोटिलियानि आवृजे ॥१२४॥

कर्तव्यानि नरैर्भक्त्या सर्वदापि च कारयेत् । लघुकृद्दानमहाकृद्दाननिरुद्दानमप्यपरेत् ॥१२५॥

दानानि पुष्पकानां च कर्तव्यानि निरन्तरम् ।

दानानि च कार्याणि देवपारेषु वा गृहे ॥१२६॥

साधूनां पूजनं कार्यं नमस्कार्यः सदा रविः । ग्रामे ग्रामे वायुपुत्रप्रतिमाः सर्वदा पूज्यम् ॥१२७॥

मिदूराकाश्च तैलाक्ताः पूजनीया निरन्तरम् । चतुर्धर्मा गणराजस्य पूजनानि प्रकल्पयेत् ॥१२८॥

अपवेदगणराजाय मोदकान्पूजपरिधानम् ।

पञ्च खाद्यानि मिदूरूर्वादीन्पर्वयेन्मदा ॥१२९॥

सदाऽऽज्यमर्च्य कर्तव्या स्तान्नपाठान्प्रकारयेत् ।

गीतायाः पठनं वदानप्रापयेन्मदा ॥१३०॥

वृद्धैश्च शान्तिस्तुतानि पुष्पस्तुक्तान्यन्यैकम् । पुष्पं पुरुषस्तुक्तं च श्रावकादीनि च पठेत् ॥१३१॥

सदा धर्मं मतिः कार्या कार्या धनस्य संग्रहः । दुष्टवृद्धाः सदा त्पाज्या पातक परिमार्जयेत् । १३२॥

ज्ञानस्य चपलं वायुः क्रुणु ज्ञयो यमो महान् ।

दारुणा नारकी पीडा स्मरन्त्या इति सर्वदा ॥१३३॥

गतस्तातो मृता माता गतश्च प्रपितामहः । पितामहो गतश्च गमनं स्वं निरीक्षयेत् ॥१३४॥

गतं यथाऽथ चाल्त्वं तारुण्यं च गतं यथा ।

यथा गच्छति वादकश्च स्मरन्त्यं यमशासनम् ॥१३५॥

और लोकरोंका सदा पालन करता रहे । अपने जन्मदाताको प्रसन्न रखे । मित्रपर कोप न करे । १२१ ॥ कभी भी शत्रुपर विषवास न कर और दुश्मादि कर्मों पर भी कृपाता न करे । कभी जुगनू न खेले । क्योंकि यह दारिद्र्यता-को पास बुझानेवाला रोग है । अच्छे लोग कभी भोगोंको बहुत भी न सुन ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ सदा तीर्थोंको यात्रा करे और कभी कभी पृथ्वीवाग्द्वयपर अर्चन भी भीया करे । प्रतिदिन शिवलिंगका पूजन करे और जानकमठसम पूजा करे शिवलिंग बनकर उनकी पूजा करे ॥ १२४ ॥ वन पड़े तो सदा ऐसा करे । लघुकृद्, महाकृद् एवं अतृप्ता इन तीनों देवोंको बराबर करता जाय ॥ १२५ ॥ निरन्तर पुस्तकदान करे । घरमें अथवा देवालयेमें जाकर प्रतिदिन कर्तव्य करे ॥ १२६ ॥ सब स्थान साधुओंका पूजन और प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करे । गाँव-गाँवमें हनुमानजीका मूर्तियाँ रखवा जायें ॥ १२७ ॥ देवस मिलकर मिदूर लगाकर निर्य इनकी पूजा की जाय । प्रत्येक चतुर्धर्मी निर्यको गणेशजीका पूजन बिना जाय ॥ १२८ ॥ मादक तथा पूजनपूरी आदि पक्वान्न बनाकर गणेशजीका अर्पण करे और लिङ्ग-ूर्वा आदि भी चढ़ाये ॥ १२९ ॥ प्रतिदिन आत्मज्ञान-सम्बन्धी अर्वा, स्तान्नपाठ, गताका अधरपन तथा वेदोंका अधरपन-अध्यायन करता रहे ॥ १३० ॥ निर्य शान्तिस्तुत तथा श्रावस्तुत आदिका पाठ किया करे ॥ १३१ ॥ सदा अपनी बुद्धि धर्ममें स्थित रखे और धर्मका संग्रह करता चले । दुष्ट वृद्धोंका शिरच्छाग करे और हिय दुष्ट पापीसे छूटनेका उपाय करता रहे ॥ १३२ ॥ वायुको चपल तथा यमराजको महाकृद् समझे । नरकी दुःख पीडाओंका सदा स्मरण करता रहे ॥ १३३ ॥ यह सचता रहे कि पितामह, वन पड़े, माता मर गया, पितामह और प्रपितामह भी चल गये, अब हमारा बारी है । जिस तरह व लकाल गुजर गया, तृष्णाई होत गयी, उसी तरह यह पृथ्वी-

गता दंष्ट्रा यत्ने नेत्रे श्लथ्या जाता त्वमग्र हि । कृष्णकेशाः मित्रा इ ता मृत्पुर्जयः पुरःस्थितः ॥१३६॥  
दाने विलसो नो कार्यः कार्यं विधुं तु निर्मलम् । तुपश्च चनं देयं मां कार्यं पात्नरक्षयेत् ॥१३७॥

एवं भीरामदूनास्ते समर्द्धीपानरस्थितान् ।

भ्रातृयिन्वा राघवाज्ञां महादुर्भिक्षिः स्वनैः ॥१३८॥

अयोध्यां स्वां ययुः सर्वे रामं दूतं न्यवेदयन् ।

मंभ्राविता तवास्माभिश्चाज्ञा मर्जान् जनान्मुहुः ॥१३९॥

सप्तद्वीपेषु सर्वत्र दुर्दुमीनां महास्वनैः । दत्तेशां वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽभयपदा ॥१४०॥

एव रामेण भूम्प्रां हि चरित्राणि महानि च । आचरितान्मेकांश्चि कप्ताभ्यश्च वदिष्यति ॥१४१॥

एव शिष्य मया प्रोक्तं राज्यकाण्डं मनोरमम् ।

चतुर्विंशत्युपमैश्च

महामङ्गलकारकम् ॥१४२॥

राज्यकाण्डं नृपा यत्र पठन्ति भक्तिवन्धगाः । न ते राज्यान्पश्रिष्टा भवन्ति हि वदन्ति ॥१४३॥

राज्यकाण्डं महापुण्यं महामांगल्यदायकम् । ये शृण्वन्ति तत्र भूम्प्रां ते मांगल्यं भवति हि ॥१४४॥

एकैकरचितैः सर्गैरेकैकेन ध्येन च । समचत्वारिंशदिनैः श्रुत्वा सुमाददम् ॥१४५॥

आधिपत्यं मराः प्राप्य राज्यकाण्डं पठन्ति ये ।

आधिपत्यान्पश्रिष्टा न भवन्ति कदाचन ॥१४६॥

राज्यकाण्डं पठित्वा तु रामे वादे जगो भवेत् । गुणश्च अवयः शीघ्रं यत्पन्थेनच्छुवादिना ॥१४७॥

आनन्दरामायणमध्यमार्धं ये राज्यकाण्डं मनुजाः पठन्ति ।

राज्याभ्युना राज्यश्च लभन्ते भवन्ति अष्टा न तु ते वदन्ति ॥१४८॥

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं तत्रापि काण्डेषु विचित्रमुत्तमम् ।

भीरुज्यकाण्डं परमं सुमौख्यदं मदाऽनिभक्त्या श्रवणोपमादगत् ॥१४९॥

यस्या भी बालो जायगो, यह सोचकर उसके कठोर भासनका स्मरण करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ दांत टूट गये, झींझोसे कम सुमने लगा, शरीरके चरदं टूले पड़ गये और काले-काले बाल खेत हो गये । तब यह समझे कि जब मृगु सामने आकर खड़ा है ॥ १३६ ॥ दांतमें विलम्ब न कर और अपना चित्त निर्मल रखते । भूसीकी तरह समझकर घनका दान करे । कज्जम बनकर उसकी रक्षा न करे ॥ १३७ ॥ इस तरह सातों द्वीपोंमें रहनेवालोंको रामकी आज्ञा सुनाकर वे दूत रामके पास लौट गये और उनको सब समाचार सुनाते हुए कहने लगे हैं राघव ! हमने सप्तद्वीपके निवासियोंकी दुर्दुमीकी गर्जनाके साथ आपका आज्ञा सुना दी । उनकी बात सुनकर राम प्रसन्न हुए ॥ १३८-१४० ॥ इस प्रकार रामने इस पृथ्वीतलपर कितने ही बड़े-बड़े काम किये । उन सबकी पूरी तरह बतलानवाला कौन है ? ॥ १४१ ॥ हे शिष्य ! इस पीलित मैने तुम्हें चौबीस सर्गोंमें महा मङ्गलकारक मनोहारी राज्यकाण्ड सुनाया ॥ १४२ ॥ प्रतिस्तर होकर राजा लोग यदि इस राज्यकाण्ड, पढ़ेंगे-सुनेंगे तो वे कभी भी अपने-अपने राज्यसे श्रुत न हान ॥ १४३ ॥ यह राज्यकाण्ड बड़ा पवित्र और महामङ्गलदायक है । जो मनुष्य पृथ्वीतलपर इसे सुनगा, उनका सदा कल्याण होगा ॥ १४४ ॥ प्रतिदिन एक एक सर्ग बहता हुआ और पूरा होनेपर एक एक कम करता हुआ यदि इसका अनुष्ठान करे तो यह सब प्रकारकी सिद्धियां प्रदान करता है ॥ १४५ ॥ कहींका आधिपत्य पाकर जो इसका पाठ करते हैं, वे अपने वाचिवायसे कभी भी अष्ट नहीं होते ॥ १४६ ॥ राज्यकाण्डका पाठ-पूजन आदि करनेसे शत्रु शीघ्र अपनी तरफमें आ जाते हैं ॥ १४७ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस राज्यकाण्डको जो लोग पढ़ते हैं वे यदि राज्यसे अष्ट हो गये हों तो फिर राज्यविकली हो जाते हैं । फिर कभी वे उसमें अष्ट नहीं होते ॥ १४८ ॥ पढ़ने को आनन्दरामायण ही उत्तम है, फिर उसके सब काण्डोंमें यह राज्यकाण्ड उत्तम है । यह हर तरह सुखदायक



श्रीमन्नामवे नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरिनान्तर्गतं-

# आनन्दरामायणम्

‘उद्योत्स्ना’ऽभिषया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## मनोहरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( लघुरामायण )

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि यत्तत्त्वं वक्षुमर्हसि । वदवाक्यं पुरा प्रोक्तं नारदेन महात्मना ॥ १ ॥  
रामायणं वाल्मीक्ये संक्षेपञ्चेति वेऽकथि । सावदेवार्थमादाय श्लोकरूपं वदस्व माम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्पक् पृष्ट त्वया वक्ष्ये सावधानमनाः शृणु यन्मृष्टं च त्वया सर्वं तद्वदामि तवाग्रतः ॥ ३ ॥  
नारदाद्देववाक्यं यथा वाल्मीकिना श्रुतम् । सावदेवार्थमादाय तेन वाल्मीकिना पुरा ॥ ४ ॥  
शतश्लोकमितं रामचरितं पापनाशनम् । शतकोटिभित्तार्णं स्वकवितायां मनोरमम् ॥ ५ ॥  
आदावेवोक्तमेवास्मि तत्तवाग्रे वदाम्यहम् । शतकोटिमितं स्मर्यं लघुरामायणाद्धयम् ॥ ६ ॥  
कूञ्जन्तं रामं रामेति मधुरं मधुराश्रयम् । आरुह्य कविताशाखां वंदे वाल्मीकिशिरः ॥ ७ ॥  
वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनवारिणः । शृण्वन्नरभकथ्यनाद को न यासि परी गतिम् ॥ ८ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो । मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि वेदवाक्योंका सारांश लेकर संक्षेपमें नारदजीने यहूँ वाल्मीकिसे कौन सो रामायण कहाँ थी ? उसी शर वस्तुको श्लोकरूपमें बनाकर वाल्मीकिने आपको सुनाया था, वह हमसे भी कहिए । १ ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वरुण ! तुममें अच्छा श्रवण किया है जब सावधान होकर सुनो तुमने जो प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हारे आगे कह रहा हूँ ॥ ३ ॥ जब वाल्मीकिजीने नारदके मुखसे वेदवाक्योंसे संकलित रामचरित सुन लिया सब उसी अर्थको लेकर उन्होंने सी श्लोकोंमें पापनाशक लघुरामायणकी रचना की और अपने रामायणके आदिमें उन्होंने उसी लघुरामायणको स्तान दिया । वही ही श्लोकोंवाला लघुरामायण आज मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूँ ॥ ४-६ ॥ कवितारूपिणी शाखापर बँडकर सीछे सीछे अक्षरोंमें रामनामका गान करनेवाले वाल्मीकिरूपी कोकिलको मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥ कवितारूपी वनमें विहार करनेवाले तथा मुनियोंमें सिंह-सदृश वाल्मीकिरूपी रामकथाविणी गर्जनाको सुनकर संसारमें कौन ऐसा प्राणी है, जो उत्तम गतिको न

रः पिबन्मतत रामचरितसूत्रमागमम् । अमुपस्तं मुनिं वदे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ९ ॥  
 गोष्पदीकृतवारीशं मशदीकृतराक्षसम् । रामायणमहामालागमं वदेऽनिलात्मजम् ॥ १० ॥  
 भञ्जनीनन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् । कर्पाक्षमक्षरं वदे लङ्काधपङ्कम् ॥ ११ ॥

उत्तरं ह्य विभोः मन्त्रिन मलीलं पः शोकवह्निं जनकान्मजापाः ।

आदाय तेनैव दग्धं लंकां नमामि तं प्रजितिराजनेश्वरम् ॥ १२ ॥

मनोजवं मारुतुन्मयेवं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।

वानात्मजं वानरगुणपुङ्गवं श्रीरामदूतं मनसा स्मरामि ॥ १३ ॥

गमाय मद्राय रामचन्द्राय वैधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ १४ ॥

जितं मगवता तेन हरिणा लोकधारिणा । अनेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणान्विता ॥ १५ ॥

इति मंगलाचरणम्

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्बिदां वरम् । नारदं पण्डितप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुमवम् ॥ १ ॥

को न्यस्मिन्माप्रतं लोके गुणवान्कथं वीर्यवान् । धर्मदक्ष कुतश्च मत्पराकरो दृढव्रतः ॥ २ ॥

वाग्बिदेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः । विद्वान्कः कं समयश्च कथं कः प्रियदर्शनः ॥ ३ ॥

ग्राम्यवान्को जितक्रोधो मुनिमान्कोऽनसूयकः । कस्य विश्वपति देवाश्च जातगोवस्य सपुत्रो ॥ ४ ॥

एतद्विच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे । महर्षे त्वं समर्पेऽग्निं शानुमेषं विवं नरम् ॥ ५ ॥

भुज्या चैतद्विलोक्योक्तो बाल्मीकीर्नाम्नो वयः । श्रूयतामिन्पुत्राय च महर्षो वाक्यमनरीतम् ॥ ६ ॥

बहवो दुर्जमार्थने ये त्वया कीनिता गुणाः । मुने वक्ष्याम्यहं वृद्ध्या तैर्युक्तः श्रूयतां वरः ॥ ७ ॥

ज्ञात होता है ? कोई नहीं ॥ ८ ॥ जो निरन्तर रामचरितरूपी अमृतसागरका पान करत हुए भी कभी नहीं तृप्त होने आते, ऐसे कल्मषरहित श्रीवाल्मीकि मुनिको मैं प्रणाम करता हूँ । विशाल सपुत्रको जिन्होंने गौके खुर बूढ़ने गोश्व बनाया, राक्षसोंको मच्छहृत् ममला और जो इस रामायणलापका महामालाके रत्न हैं, उन हनुमानजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ अञ्जनाके मृदुल, जानकाक शोकनाशक, वानराके प्रभु, अक्षयकुमारके संहारकारी तथा लंकाके लिए पापायने कीर मारुनिता में वन्दना करता हूँ ॥ ११ ॥ जो सल वेषध सपुत्रको जलराशिको लानकर लङ्का पहुँचे, वहाँ सीताके शाकल्यों अग्निको लेकर जिन्होंने उसीम से लंकाका मत्स्य कर दिया, उन अञ्जनीनन्दनको मैं हाथ जट्टकर प्रणाम करता हूँ ॥ १२ ॥ जिनमें मनक समान वन है, वायुक सहस्र स्वर है, जिन्होंने इन्द्रियाँ जीत ली हैं, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ है, ऐसे वायुने पुत्र, वानरसभके मुखिया और श्रीरामके दूत हनुमान्को मैं मनमें स्मरण करता हूँ ॥ १३ ॥ राम, रामचन्द्र, रामचन्द्र, विशालाश्वरूप, रघुवशके नाथ, जगन्मलय और सीतापति रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥ भगवान्, संसारके पालक, अज, और विश्वरूप उन रामने निर्गुण होकर भी सगुणस्वरूपसे सारे संसारका अपने वशमें कर लिया है ॥ १५ ॥

इति मङ्गलाचरणम् ।

विद्वानोमें श्रेष्ठ, तपस्या और स्वाध्यायमें सलस्य मुनिश्रेष्ठ नारदसे तपस्वी वाल्मीकिने पूछा— ॥ १ ॥ इस संसारमें इस समय गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ कुतश्च, सत्यवान् और अपने प्रसन्न रहने कोन है ? ॥ २ ॥ कोन ऐसा है, जो सत्त्वचित्तयुक्त है ? कोन सब प्राणियोंके हितमें लगा हुआ है और कोन ऐसा है जो विद्वान् समय तथा देखनेमें सुन्दर है ॥ ३ ॥ कोनमा ऐसा पुरुष है जो अश्वमज्जी, कीशको वशमें किये हुए तथा लज्जका है और दूसरेमें ईर्ष्या नहीं करता ? संसारभूमिमें जिसके कुपित होनेपर देवता भी भयभीत होजायें, ऐसा कोन है ? ॥ ४ ॥ यह मैं सुनता चाहता हूँ । उस जादनेक लिए मुझ बड़ा कौतूहल है । हे महर्षि । आप उक्त प्रकारके पुरुषको जान सकन है ॥ ५ ॥ बिलोकीके ज्ञाता नारद वाल्मीकिको बात सुनकर बोले—अच्छ, सुनो । इस तरह संबोधन करते महर्षि नारद कहने लगे— ॥ ६ ॥ हे मुने । आपने जिन गुणोंका वर्णन किया है, वे बहुत ही दुर्लभ हैं । फिर भी मैं अच्छी तरह विचार करके

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रवः । निष्कामा मदावायो ह्युत्तिमान्भूतिमन्त्रशी ॥ ८ ॥  
 बुद्धिमान्मतिमान्बार्मा श्रीमान् शत्रुनिवर्हणः विपुलांशो महाबाहुः कम्पुग्रीवो महाहनुः ॥ ९ ॥  
 महोरम्को महेश्वर्यो गृहजगुर्दिमः । आजानुबाहुः सुश्रेयाः सुनयटः सुविक्रमः ॥ १० ॥  
 समः समविभक्तांगः स्तिग्धवर्णः प्रवपवान् । धीमद्व्या विज्ञानाज्ञो लक्ष्मं यान् शुभलक्षण ॥ ११ ॥  
 धर्मरुः सत्यमन्धश्च प्रजानां च हिते शनः । यज्ञश्री जन्मपन्नः ह्युचिर्वैश्यः समाधिमान् ॥ १२ ॥  
 प्रजापतिमयः श्रीमान् धाता गिणुनिवृत्तः । रक्षितः ज्ञानलोकस्य धर्मस्य पाशरक्षिता ॥ १३ ॥  
 रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता । वेदवेदांगतन्त्रज्ञो धनुर्वेद च निष्ठितः ॥ १४ ॥  
 सर्वेशान्त्रार्थतन्त्रज्ञः स्मृतिमान् प्रतिमानवान् । मयेलोकप्रियः साधुर्दोनाम्ना विचक्षणः ॥ १५ ॥  
 सर्वदाऽभिगतः मङ्गिः समुद्र इव दिग्बुभिः श्रवः स्याममर्थव मर्दव प्रियदर्शनः ॥ १६ ॥  
 स च सर्वगुणोपेतः कौमन्वानन्दवर्धनः । समुद्र इव गांशोपै धैर्येण हिमवानिव ॥ १७ ॥  
 विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः । कलाग्निपदजः प्राधे क्षम्य पृथिवीममः ॥ १८ ॥  
 धनदेन समस्त्यागे मन्वे धर्म इवापराः । तमेव गुणवम्पन्नं रामं मन्यपराकमम् ॥ १९ ॥  
 ज्येष्ठ ज्येष्ठगुणयुक्त प्रियं दशरथः सुतम् । प्रकृतानां हिते युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥ २० ॥  
 यौवराज्येन मयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतेः । तस्याभिप्रेक्ष्य मम गन्दुष्टा भार्या च कैकयी ॥ २१ ॥  
 पूर्वं दत्तवरा दूरी वग्मेनमवाचत । विद्यामन् च रामस्य भग्नस्याभिप्रेवजम् ॥ २२ ॥  
 स सन्धवचनाट्टाज्ञा धर्मपाशन मयत् । निशमयामास सुत राम दशरथः प्रियम् ॥ २३ ॥

उन गुणों में युक्त मनुष्यको बतलाना है । ८ ॥ जिसके विराट् में आराम कुछ करना चाहता है । उन्हीं लोग राम कहते हैं । वे भाग्यवान्, मदावाय, नवम्बा, धर्मशाल और जितन्द्रिय हैं ॥ ९ ॥ वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, बलवान्, श्रीमान् और शत्रुओं के विनाशक हैं । उनका मुख लम्बा-चोटा कम्पा है । लम्बा-लम्बी भुजाएँ हैं । गलकी तरह उनकी माका है और विष्णुजगड़े हैं ॥ १० ॥ उनका विशाल छाता है । वे हाथों में विष्णु घनुष धारण कर रहे हैं । उनकी पसलियाँ उभर रही हैं । वे शत्रुभाष्य समन करने की प्रबल शक्ति रखते हैं । जानु (पुटनी) तक पहुँचनेवाले उनके हाव हैं, मन्दर गांधी हैं, बहिर्बल्लाट है, सराहनीय पराक्रम है, बराबर और मृदुल उनका गले, मन्दाहुत्रिजा हव है और उनका प्रताप भी साधारण नहीं है । उनकी मूर्द्ध छाना है, बड़ा-बड़ा आँख है । वे लक्ष्मणमय हैं और उनमें सभी गुण लक्षण विद्यमान हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ वे धर्मज्ञ और समग्र (अर्थात् प्रतिज्ञा का निमालेवाल) हैं । वे सदा प्रजा के हित में रह रहते हैं । वे धर्मवान्, ज्ञानमय, पवित्र, लज्जा और समाधिमान् हैं ॥ १२ ॥ वे राम प्रजापतिके समान श्रीमान्, जगत् के पालक एवं कर्तृश्रेष्ठ विनाशक हैं । वे गमस्त संसारकी तथा धर्मका सर्वथा रक्षा करते हैं । १३ वे धर्मक रक्षक हैं और निज जनता की रक्षा करते हैं । वे वेद-वेदाङ्ग के सारे तन्त्रोंको जानते हैं और घटुवरसे एक असाधारण प्रतिभा रखते हैं ॥ १४ ॥ वे संपूर्ण शास्त्रों के अर्थ तथा तत्त्वोंको जाननेवाले, समृद्धिमान् प्रतिभाशाली, सबको प्रिय, साधु, कष्टनाशक और पण्डित हैं ॥ १५ ॥ जैसे समुद्र लहरोंसे मिलता है वैसे ही वे सदा मज्जना में मिलते हैं और उनका दर्शन सबको सुख-दायी होता है ॥ १६ ॥ वे राम सर्वगुणमय, कौमन्विक आनन्द बढ़ानेवाले, समुद्र के तुल्य गम्भीर तथा हिमालय के समान धैर्यशाली हैं ॥ १७ ॥ वे वीर्य एवं बलम विष्णुज सदृश हैं । चन्द्रमा के सदृश सबको उनका दर्शन प्रिय है । वे ज्ञान के कालान्तिक सदान और सामान्य पृथ्वी के समान हैं ॥ १८ ॥ स्वामी कुबेर के सदृश, सत्यमं वृद्धे धर्मराज के समान तथा सब गुणोंसे युक्त हैं । सब पुरातन बड़े प्रज के हित में संलग्न एवं प्रजाप्रिय उन स्वयंपराक्रम रामका राजा दशरथ प्रजा के हित के लिए घटुवरान् बननेका निश्चय किया । श्रीराम के अभिषेक की तैयारी देखकर पूर्वकाल में वरप्राप्त दशरथकी प्यारी रानी कैकेयीने उसी समय अपने पतिसे रामके निर्वासन तथा वरस के राज्य-अभियेकका वर माँगा ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ तदनुसार

स जगाम वनं वीरः प्रतिश्रामनुपालयन् । पितुर्वचननिर्देशार्ककेत्याः प्रियकाङ्क्षान् ॥ २३ ॥  
 तं ब्रजत प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह । स्नेहादिनवसपन्नः सुमित्रानन्दवर्द्धनः ॥ २४ ॥  
 भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् । रामस्य दयिता भार्या निन्ध प्राणममा हिता ॥ २५ ॥  
 जनकस्य कुले जाता देवमायायेव निर्मिता । सर्वलक्षणमवसा नागीणामुत्तमा वधः ॥ २६ ॥  
 भीताऽप्यनुगतान् राम शशिन रोहिणीं यथा । पौरैरनुगतो दूर पित्रा दशरथेन च ॥ २७ ॥  
 शृङ्गवेरपुरे छतं गग कूले वरमर्जयन् । गुह्यमाया धर्मात्मा निपादाधिपतिं प्रियम् ॥ २८ ॥  
 गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया । ते वनेन वन गन्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ॥ २९ ॥  
 चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शोभनान् । रम्यमावमथ कुन्दा रमणीया वन व्रथाः ॥ ३० ॥  
 देवगन्धर्वमकाशास्तथ ते न्यववन्सुखम् । चित्रकूट गते रामे पुत्रशोकातुम्हादाः ॥ ३१ ॥  
 राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् । गते तु तस्मिन् भग्नो वमिष्टमसुखैर्द्विजैः ॥ ३२ ॥  
 निशृज्यमानो राज्ञाय नैच्छद्वाज्य महाबलः । स जगाम वनं चोरो रामपादप्रवादकः ॥ ३३ ॥  
 गन्वा तु सुमहान्मानं रामं मन्यपराक्रमम् । अथावद्भ्रातरं राममार्यमावपुरस्कृतः ॥ ३४ ॥  
 त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽमर्षात् । गमाऽपि परमोदारः सुमुक्तः सुमहायशाः ॥ ३५ ॥  
 न चेच्छन्पितुरादेशाद्वाज्यं रामो महाबलः । पादुके चास्य राज्ञाय न्याम दत्त्वा पुनःपुनः ॥ ३६ ॥  
 निवर्तयामास ततो मरुतं मरुताग्रजं । स काममनवाप्यैव रामपादानुस्मृशन् ॥ ३७ ॥  
 तन्दिप्रामऽकरोद्वाज्यं रामागमनकांक्षया । गते तु भग्नो श्रीमन्सत्यमन्धो जितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥  
 रामम् पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च । तदागमनमेकाग्रो दण्डकान्प्रविवेश ह ॥ ३९ ॥

मन्दवचनरूपी प्रथमक वन्दनम वंद्य हुए राजा दशरथन अपन प्रिय पुत्र रामको निर्वाचित कर दिया ॥ २३ ॥  
 वीर राम गत धौकेवीको भला और पिताको प्रतिज्ञाका पालन करनक निमित्त उनकी आज्ञा मानकर  
 वनका चल दिये ॥ २४ ॥ सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले स्नेह और धिनयसाथ प्रिय भ्राता लक्ष्मणने  
 भाईको वन जान देता तो उन्हेंने भी स्नेहवश उनक साथ दिया ॥ २५ ॥ सुमित्रानन्दन लक्ष्मण भली  
 भाँति भ्रातृत्व निमात थे और रामके भार्या सीता मदेव रामका प्राणक समान प्रिय समझती हुई उनके  
 हितमें मग्न रहती थीं । वह जनकके कुलम उत्तम देवमायासे निर्मित, सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त एवं सब  
 तारीखोंमें एक उत्तम नागी थी ॥ २६ ॥ २७ ॥ जिग तरह रोहिणी चन्द्रमाका अनुगमन करती है सीताने  
 भी रामका उसी प्रकार अनुगमन किया । उस समय पुरवाणी तथा हिता दशरथ था आड़े दूरतक रामके  
 साथ गये ॥ २८ ॥ गंगाके किनारे शृङ्गवेरपुरमें पहुँचकर रामने सारथी ( सुमन्त्र ) को बिदा किया और  
 निपादाके राजा धर्मात्मा एवं प्रिय मित्र निपादाकाजम भय की । २९ ॥ निषाद, लक्ष्मण और सीताके साथ-साथ  
 राम एक वनके बाद दूसरे वन तथा वही बड़ी नदियोंको पार करके १०० दूरी में आकर चित्रकूट वनमें  
 एक सुन्दर आश्रम बनाकर रहने लगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ देवताओं तथा गन्धर्व आदिक सबान से तोनो वही  
 आनन्द रह रहे थे रामके वन जाने हो पुत्रविश्राम शोकात् राजा दशरथ पुत्र रामके लिए विलाप करने करते  
 अपन प्राण त्याग दिये । उनके दहावसानके अनन्तर बलिहारी मृग्य मुग्य ब्राह्मणोंने राज्य पट्टण करनेके लिए  
 भरतसे बहुत कहा, किन्तु और भरत राज्यके प्रति अलिच्छा प्रकट करने रामको मनानके लिए वमकी चल दिये  
 ॥ ३२-३४ ॥ भरतने पराक्रमी रामचन्द्रजीस प्रार्थना करने हुए कहा — हे धर्मज्ञ : आप ही अयोध्याके राजा  
 बनें । परमोदार सुमुख और कीर्तिगात्री रामचन्दन पिताकी आज्ञाका पालन अपना धर्म समझकर राज्यसे  
 अलिच्छा प्रकट की और भरतके समझाकर राज्यके लिये अपनी पट्टणा दौ और सीतनका बार बार अनुरोध  
 किया ॥ ३५-३७ ॥ इस प्रकार रामने भरतकी लोटाया और अपनी कामना सफल होउ न देख भरत भी  
 रामके चरणोंका स्पर्श करके अयोध्या लौट आये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर रामके आगमनको प्रतीक्षा करते हुए  
 भरत नदिप्राममें रहकर करने लगे । भरतने वन जानेपर सत्यसय, श्रामान् एवं जितन्त्रिय



प्रतिपद्य तु महाहर्षं रामो गजदले च ॥ ४१ ॥  
 सुनीक्ष्णं चाप्यगस्त्य च ह्यगस्त्यश्चापरा तथा अगस्त्यवचनात् ॥ ४२ ॥  
 खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयमायका इत्यगस्त्य रामस्य वन वनचरैः सह ॥ ४३ ॥  
 शृपरोऽस्थगमनपूर्वं वधाषामराक्षसाम् । न तेषु प्रतिशुश्रूत राक्षसानां वधाश्च ॥ ४४ ॥  
 प्रतिज्ञातश्च रामेण च धर्मसंपत्तिं गतानाम् । कुर्यात्तामरेनकन्याता वडकाग्न्यवामिनाम् ॥ ४५ ॥  
 तेन तत्रैव दमता जनप्रानन्विता वनीः । तत्रैव गृहेणवा राक्षसां कामरूपिणी ॥ ४६ ॥  
 सतः शूर्पणखायाक्याद्यूकान्त भवेत्तानां नर निगिरम् चैव दूषण चैव राक्षसम् ॥ ४७ ॥  
 निजघातं गणे रामस्तेषां चैव पतानुगतम् । वन वानमन्त्रियमता जनस्थाननिवापनाम् ॥ ४८ ॥  
 राक्षसां निहतान्याममहस्याणि चकुरन् नरो जनिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ ४९ ॥  
 महायं धरयामास मारीचं नाम राक्षसम् । तस्मिन्, मुरहृशं मार्गचेन स रावणः ॥ ५० ॥  
 न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते । अतस्तु तद्वाक्य रावणः कालचोदितः ॥ ५१ ॥  
 जगाम महमारीचस्तस्याश्रमदं नदा । तेन सायाविना दूष्यपवाह्य नृपत्मजौ ॥ ५२ ॥  
 जहात मार्चं रामस्य हत्वा गृध्रं जटायुम् ॥ गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हतां श्रुत्वा च मैथिलाम् ॥ ५३ ॥  
 राघवः शोकमगमो विलसत्पादुलेट्टिवः । तस्मिन्नेव वाक्येन गृध्रं दग्ध्वा जटायुम् ॥ ५४ ॥  
 मार्गमाणां वने मारीचं राक्षसं स ददश ह । वदन्त्य नाममपेगं निहृतं घातदर्शनम् ॥ ५५ ॥  
 तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वमेतश्च मः । स चाप्य कथयामास श्रुत्वा धर्मचारिणाम् ॥ ५६ ॥  
 श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति गदध्व । कोऽस्थगच्छन्महानेकाः शरीरां शत्रुमुदतः ॥ ५७ ॥  
 कथं वा पूजितं सम्यग्ग्रामो दशमघातमज । पपातीरे हनुमता गह्वरो वानरगण इ ॥ ५८ ॥

राम वहीं निज तमरवासिभोज । भेद आनंदवकर दण्डकारण्यका चल पड ॥ ५१ ॥ ५० ॥ कमलकं सहज  
 मेवावाले रामने उस मता पदम प्रकाशित ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥  
 सुतं ध्या, अगस्त्य तथा अगस्त्यके मार्गं उपदिष्टमिति । वही ही दशम । कीदृशे दृष्ट्वा द्रव्यनुप, तलवार, तरकस  
 तथा बाण सहज किये और वनमन्त्रिक स व निराप करन लगे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ एक दिन वहीक सब अपि  
 राक्षसोंके वधका अनुरोध कर करि गिरा पादुका आनंद वदन्त्यर रामने दण्डकारण्यनिवासी वन अग्निके  
 समान सेजरकी श्रुतिधोके समस्त पृथ्वी पर राक्षसोंका वध करनेका प्रतिज्ञा की ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वही  
 ही रामने जनस्थाननिवासिना तथा कामरूपी राक्षस। शूर्पणखाकी नाककान काटकर कुत्स्य किया  
 ॥ ४६ ॥ तदनन्तर रामने गृध्र तथा जटायु को मारि हित कर, त्रिभिन्ना तथा दूषणार्द्र राक्षसोंका मारा  
 और जनस्थाननिवासी चौदह हजार राक्षसोंका वध करके पट्टा दिया इस प्रकार अपनी जातिका सहार  
 होत मृतकर रावण क्रोधसे मूर्छित हो गया और अपने महाबलाके लिए मारीच नामक राक्षसको बुलाया ।  
 मारीचने अनेक प्रकारसे समझात हुए करके रामने वनमन्त्रिकोंके साथ विरोध करना ठीक नहीं है, किन्तु  
 कालप्रोक्त रावणने इसका एक भी बात नहीं माना और उसका साथ रामके आश्रमपर पहुंचा । वही वह मायावी  
 मारीच मृग बनकर राजा दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मणको दूर भगा ले गया ॥ ४७-५२ ॥ इसी बीचमे रावण  
 जटायु नामके सिद्धकी मन्त्रकर रामका पता लगाकर हनुमत् देवा । सिद्धका मारा हुआ देख एवं सीताका  
 हरण सुनकर राम स वल संगत हुये विलस करके वन की ओर उभी शाश्वतवास जटायुको अपने हाथोंसे  
 जलाकर परम पद पहुंचाया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ वनम सीताका हनुमत् देव रामने एक अद्भुतभयङ्कर तथा विचित्र  
 कथवाले कथन्य नामक राक्षसको दखा ॥ ५५ ॥ महाबाहु रामने उस मारकर जटा दिया जब वह स्वर्गको  
 जात गया तो उसने धर्मचारिण शत्रुताका पता पताया ॥ ५६ ॥ और कहा-है राघव ! वह धर्मनिपुणा श्रमणा  
 नामकी शबरी है, आप उसके पास जाइए तदनुसार महापदजम्बी एवं शत्रुविनाशकारी रामचन्द्रजी शबरीके  
 पास गये ॥ ५७ ॥ शबरीने रामका वडा आदर किया । वहीसे पन्नासरपर जाकर राम हनुमान्जीसे मिले ॥ ५८ ॥

हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समगतः सुग्रीवाय च तत्पर्वं शोभद्रामो महाबलः ॥६९॥  
 आदिनक्षत्रघातुं सीतायाश्च विद्वेषतः । सुग्रीवश्चापि तन्मर्वं ध्रुवा रामस्य वानरः ॥७०॥  
 चक्रार मरुषं रामेण प्रतर्धनाग्निवाहिकम् । रत्ना वानरराजेन वरानुकथनं प्रति ॥६९॥  
 रामायावेदितं सर्वं प्रथयाद्दुर्गमननं च । मानहानं च रामेण तदा बालिवश्च प्रति ॥६२॥  
 बालिनश्च पक्षं तत्र कथयामास वानरः । सुग्रीवः शङ्खितधामीभिर्युग्मैश्चैव राघवे ॥६३॥  
 राघवप्रणयार्थं तु दुन्दुभेः कावमुत्तमम् । दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतमभिभम् ॥६४॥  
 उत्क्रमयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य च स्थि महाबलः । पाशोऽगुपुन चैव संपूर्णं दक्षयोजनम् ॥६५॥  
 विमोहं च पुनस्तालान्मसकं न महेगुणा । गिरि रसावले चैव जनयन्प्रथमं तदा ॥६६॥  
 ततः प्रीतमनास्तेन विधस्तः स भर्हापनिष् । किष्किन्धां राममहितो अगाम च गुहां प्रति ॥६७॥  
 ततोऽभर्जद्वारिवरः सुग्रीवो हर्मपिगलः । तेन तादेन सहता निजेताम हरीधरः ॥६८॥  
 अनुमान्य तदा तारा सुग्रीवेण समागतः । निवृत्तान च तत्रैव शूरेणकन राघवः ॥६९॥  
 ततः सुग्रीववचनाद्भ्रवा बालिनमाहव । सुग्रीवमेव तद्वाक्ये राघवः प्रत्यपादयन् ॥७०॥  
 स च सर्वान्ममातीयं वाटशब्दानरपथः । दिङ्म प्रस्थापयामास दिट्कुर्जनकात्मजाम् ॥७१॥  
 ततो गृध्रश्च वचनान्मपातेर्हनुमान्यली । श्रुत्वाजनविष्णोणं पुण्यं च लवणाणवन् ॥७२॥  
 तत्र लङ्का समामास पुरीं रावणरालिनाम् । ददर्श सीतां प्यारणीमशोकवनेकां गताम् ॥७३॥  
 निवेदयित्वाऽभित्तान प्रवृत्तिं च निवेद्य च । ममाश्वास्य च वेदहां मर्दयामास नोरगम् ॥७४॥  
 पञ्च सेनाप्रगान्धवा मम मन्त्रिमुत्तानपि । शृण्वन् विनिष्पिप्य ग्रहणं समुत्तममनु ॥७५॥

हनुमान्शोक कहनरर राम सुग्रीवस मिल ओर महाबली रामचन्द्रस न उम अरना तारा हाल कह सुनाया ॥ ६९ ॥ रापने भा नृपवसे अरना सब गुनान्त कहा ओर सावाहरणका हाल विमोहकसे वर्णन किया । सा मुत्तकर सुग्रीवने प्रमत्तचित्तसे अभिबोले स दो दक्षर रामसे दिवता की ओर वानरराज सुग्रीवने श्री बालिके साथ वषण वरका हाल दतकाया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ दुर्गतिन गुणावने सब नसता तथा प्रेमपुवक रामसे वपना सब हाल कहा । यह गुनकर रामने बालिको मारतका मण किया । ६२ ॥ जब सुग्रीवने बालिके मत्तकर वपन किया । पय कि उसे सन्देह था कि वे बालिका मार सकें या नहीं ॥ ६३ ॥ तत्पश्चात् सुग्रीवने रामकी परीक्षा लेनके लिए पर्वतके समान लम्बा चोटा दुन्दुभ राक्षसका कहल दियाया ॥ ६४ ॥ महाबाहु रामने मुत्तकराकर उसे देखा और उस राक्षसको डडरका पय अ ॥ ६५ ॥ उत्तरर राम मानत दू वक दिया ॥ ६५ ॥ फिर सात ताणके पृष्ठाको एक ही काणसे काट तथा उर्वत और दमनकको भेदकर - य वक हृदयमें यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न कर दिया कि हम बालिको मारनस समथ है । ६६ ॥ रामने पराक्रमको देखा तो विस्मय करके सुग्रीव वही प्रसन्नतापुवक रामके साथ किष्किन्धा नामके पर्वतकी गुफाके द्वारपर पहुँचा ॥ ६७ ॥ वहाँ पहुँचकर सुवर्गके समान पीतवर्ण वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने धर गर्जन की । उस भयङ्कर गर्जनको सुनते ही बन्दरोंका राजा बालि किष्किन्धाके बाहर निकल आया । ६८ ॥ उन समय ताराको खान न मानते हुए और उसका मनाकर करके बालि सुग्रीवके साथ युद्ध करनेके लिए आया और एक ही काणसे उसे रासन यमपुर पहुँचा दिया । ६९ ॥ सुग्रीवसे की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार ध्वनवद्ध होनेके कारण रामने बालिकी मृन्दुके पश्चात् किष्किन्धाका राज्य सुग्रीवको द दिया ॥ ७० ॥ इसक अनन्तर कपिराज सुग्रीवने सीताका पता स्थानके लिए दसो दिगामोम व समे बरगको भेजा ॥ ७१ ॥ सम्पत्ता गिद्ध द्वारा सीताका पता पाकर महाबली हनुमानने सी याजन विन्पुन आरसन्दक लीधकर पार किया ॥ ७२ ॥ रावणसे सुरक्षित लङ्काम आकर हनुमानने अशाक वनमें बैठो तथा रामका वपन करती हुई सीताको देखा ॥ ७३ ॥ तब हनुमान्जीने सीतासे रामका सारा समाचार एवं सन्देश कहा । सीताको आश्वासन देकर रणमें पाँच सेनापतियों, साठ मन्त्रिपुत्रों और परमवार मलयकुमारको मारकर स्वयं बह्मपादनें वंश पड़े

मन्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा वैशाम्पायनान् । महेन्द्राक्षगान्भीरो मन्त्रिणस्तान्पटञ्जया ॥ ७६ ॥  
 सती दग्धा पुगी लङ्कां क्रान्ते सीता च मैथिलीम् । राधापथ्यमाख्यातुं पुनरायानमहाकपिः ॥ ७७ ॥  
 सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् । न्यवेदयदमंयात्मा दृष्ट्वा सीतेति तत्पतः ॥ ७८ ॥  
 ततः सुग्रीवमहितो गन्वा सीतं महोदधेः । समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यमभिर्भैः ॥ ७९ ॥  
 दर्शयामास चात्मानं समुद्रः तर्हिनां पतिः । समुद्रवचनाच्चैव नमं सेतुमकारयत् ॥ ८० ॥  
 तेन गन्वा पुगीं लङ्कां दग्धा रावणमादधे । रामः सीतामनुप्राप्य परी व्रीह्यामुपागमत् ॥ ८१ ॥  
 तानुवाच ततो रामः पुरुषं जनमगदि । अमृष्यमणा सा सीता शिवेऽथ शूलन प्रति ॥ ८२ ॥  
 सतीऽग्निश्चनान्मीतां ज्ञात्वा विभक्तकल्मषाप् । कर्मणा तेन मरुता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ८३ ॥  
 सदेवपिपासा तुष्ट राधरस्य महान्मनः । वभी रामः सुमंतुष्टः पूजितः सर्वदेवतैः ॥ ८४ ॥  
 अभिषिच्य तु लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् । कृतकृत्यश्चदा रामो विजयरः प्रनुमोद ह ॥ ८५ ॥  
 देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् । अयोध्यां परित्यजो रामः पुष्पकेन सुहृद्वृतः ॥ ८६ ॥  
 भरद्वाजाश्रमं गन्वा रामः सत्यपराक्रमः । भरतस्यातिके रामो हनुमन्न व्यमर्जयत् ॥ ८७ ॥  
 पुनराख्यायिकां जल्पन्सुग्रीवमहितश्चदा । पुष्पकं तस्ममाह्वय नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥ ८८ ॥  
 नन्दिग्रामे जटां हित्वा स्नातृभिः सहितोऽनघः । गमः सीतामनुप्राप्य गन्धं पुनरायानान् ॥ ८९ ॥  
 न पुत्रमरण केचिद्दृश्यति पुरुषाः कश्चित् । नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यति पतिव्रताः ॥ ९० ॥  
 महत्सुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुखाधिकः । निगमयो दमो गन्ध दुर्भिक्षमपयजितः ॥ ९१ ॥  
 ना चारिर्ज भय किञ्चिन्नाप्यु मज्जति जनदा । न चानत्र भयं किञ्चिन्नापि ज्वरकृतं तथा ॥ ९२ ॥  
 न चापि बुद्धयं तत्र न तस्यरभय तथा । नगराणि च गृहाणि धनधान्ययुतानि च ॥ ९३ ॥

॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इसके बाद बह्मक बरदानसे ग वृद्धगजान भरतको मुक्त दायकर हुमानुजे रावणके मन्त्रियों  
 तथा बड़े बड़े राक्षसोंको मारा । तदनंतर सीताको निवासस्थानका छेड़ मारी लङ्का आकर रामको सीताका  
 वृत्तान्त मुक्तके लिये लौट आये ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ वही हनुमान्ने भरतमा रामचन्द्रोंके पास जाकर उनकी  
 प्रदक्षिणा की और लङ्काका मारा वृत्तान्त सुना दिया । ७८ ॥ तदनन्तर राम मुष्पक साथ समुद्रतटपर गये  
 और मूर्खके समान अपने तेजकी चलाए समुद्रको अभिषि किया ॥ ७९ ॥ तब नरिराक्ष पति समुद्र हाथ  
 जोड़कर रामके समक्ष आया और उसकी सलाहसे रामने नर दान मनु नगर करवाया ॥ ८० ॥ उस सेतुसे  
 लङ्कासे पहुँचकर रामने रावणका मारा फिर सीताको पाकर अजन लज्जित हुए ॥ ८१ ॥ उस समय  
 रामने भरती समामे सीताका कुछ बहुत बचन कहे । तब महात्म अमर्ष होकर परम सती सीता अभिनम  
 प्रविष्ट हो गयी ॥ ८२ ॥ तदनन्तर अगिके कथन सुमार रामने सीताको निवास समझा । राक्षक इस  
 कर्मसे सचराचर जिनको दहता तथा क्रुदि सब लोग प्रमत्त हुए । प्रमत्त छुट्ट राम देवताओंसे पूजित हाकर  
 बहुत शोभित हुए ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ तदनन्तर लङ्काय राक्षसयष्ट विभीषणका राजतिलक डकर राम सन्ताप-  
 से मुक्त, कृतकृत्य एवं अनन्दिन हुए ॥ ८५ ॥ वही देवताओंने करवाकर वातरे तथा प्रियजनोके साथ  
 पुष्पक विमानसे अयोध्याको लौट पड़े ॥ ८६ ॥ भरद्वाजक आश्रम प्रयाग पहुँचकर सत्यपराक्रम रामने  
 हुमानुको चरणक पास भंजा ॥ ८७ ॥ फिर पश्चिम बार्ता राव करके हुए सुग्रीवक साथ पुष्पकविमानपर बैठे  
 राम नन्दिग्रामको चले ॥ ८८ ॥ वही पहुँच तो आइरोंके साथ जटा त्यागकर निजस्थ रामने सीताको पाकर  
 पुन राव्य प्राण किया ॥ ८९ ॥ रामके राज्यमें शांति हुई, पुष्ट मन्त्र मुखा, धार्मिक, नीराय तथा दुर्भि-  
 क्षादिके भरसे रहित रहने से उस समय जिनके सामन रिद्धके पुत्रकी मृत्यु नहीं होती थी । उस  
 राज्यकी स्त्रियों सीताप्रवर्ती एवं पतिव्रता होने की ॥ ९० ॥ ९१ ॥ इस समय अनिका भय जन्म इतरका  
 भय, बाधुसुत्रकी भय, ज्वरारिका भय पटली चिन्ता तथा और आनिका भय नहीं रहता था । सब नगर  
 और शारे राष्ट्र चक्रवर्त्यपूर्ण से ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ इस राज्यमें समुद्रकी भीति सब लोग सर्वत्र सुखी रहते थे । सी

नित्यप्रसुदिताः सर्वे यथा कृत्स्नमे तथा । अथ मेघशतैर्गिद्धा तथा बहुमुखणैः ॥९४॥  
 सर्वा कोट्ययुतं दत्त्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति । जमरुदेयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महापद्माः ॥९५॥  
 राजवज्रान् शतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः । सानुवर्ग्यं च लोकेऽस्मिन्स्वे स्वे लोके निधोक्ष्यति ॥९६॥  
 दशवर्षमहस्त्राणि दशवर्षशतानि च । रामो राज्यमुपासिन्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥९७॥  
 इदं पत्रिध एषस्त्वं पुण्यं वेदैश्च संमितम् । यः पठेद्वापन्नमिन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९८॥  
 एतदारुणानमायुष्य पठन् रामायणं नरः । मपुत्रपौत्रः भवति, श्रेष्ठ्य स्वमे महीयते ॥९९॥

पठन् द्विशो वाग्युपमन्वमीयात्स्यात्क्षत्रियो भूमिपनिवर्धयान् ।

वणिग्जनः पण्यपनिवर्धमीयाज्जनधः शूद्रोऽपि महस्त्वमीयात् १००॥

एवं क्षिप्य नारदेन मुनिना यरुच धीमता । बान्धोक्तये वदन्कपैर्याचनमात्रं विवदिनम् ॥१०१॥  
 तावदेवार्थमादाय श्लोकवद्धं मनोरमम् । बान्धोकिना कृतं पूर्वं लघुरामायणमभिधम् ॥१०२॥  
 शतश्लोकमिदं स्वीयकवितायां च नमसा । तत्राग्रे कथिता सर्वं श्रवणान्पुण्यवर्द्धनम् ॥१०३॥  
 ब्रह्मदक्षवरेणैव सर्वे ज्ञान्वा मयै मुनिः । शनकोर्गिभिरा रामक्रोडां श्लोकेभ्यश्च दत्तः ॥१०४॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे अनन्तरकाय लघुरामायणं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( कौसल्यादि माताओंका वैकुण्ठवास )

आनन्द उवाच

अर्थकदा समापन्ने पौरा ज्ञानपदादयः । ज्ञान्वा राम परत्मान् एप्रच्छन्निषान्विताः ॥ १ ॥  
 राम राम महागज किंचिदुपदिशन्त्य नः । विषयमक्तचिन्तानां ज्ञानं येन भविष्यति ॥ २ ॥  
 इति तेषां वचः श्रुत्वा राघवः गम्भिरोऽब्रवीत् । निरन्तरं हृषदशो पुष्पाभिः श्रूयन्ते न हि तू ॥ ३ ॥  
 ग्रहणे ग्रहणे रात्रौ मदूर्ध्वं किञ्चनै सदा । अन्तु तच्छ्रुत्वा तत् पूर्वदिनानां सकलजर्जनः ॥ ४ ॥

अन्तरिम यज्ञ करके लूटण युक्त अन्तर्क वर्गित गीर्ण विविध प्रकार विद्वान् ब्रह्मणोका दत्तर राम हुनारों राजाओंक संशयो स्थापना करके च रो पणोंको प्रदान अपने अन्तर निगुण करने ॥ ९४-९६ ॥ स्मारक हुनार वर्ष तक गडग करके राम अपने अज्ञानताका चले जायंग ॥ ९७ ॥ पत्रिध पापनाशक पुण्यकारा तथा वेदसमस्त इस रामचरितका जो प्राणा पद ॥ यह समस्त पापमै मुक्त हो जायंग ॥ ९८ ॥ यह रामायणकी कथा आगु-यदिनी है , इसको पढ़नेसे मनुष्य पद्म धोत्रोस प्राप्त होकर अपनेके वार राज्य तकसे वृद्धि होत है ॥९९॥ इस लघु रामायणकी पढ़नेसे ब्राह्मण विद्वान् होत है, क्षत्रिय भूमिका स्वामी होत है, वैश्य व्यापारमें सफल होता है और गृह महन्त्र पाता है ॥१००॥ इस प्रकार है शिष्य ' बुद्धिमान् नारदने वेदवाक्योंक आधारपर बाल्मीकि जीसे जिसना रामचरित कहलाया ॥ १०१ ॥ इतना ही अर्थ लेकर बाल्मीकिने पहले १०० श्लोकोंसे श्लोकवद्ध करके अपनी कवितामें इस लघुरामायणकी रचना की । सो मैंने तुम्हारे आगे कहा । इसे सुननेसे पुण्यका वृद्धि होती है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ सुनिगाज बन्धीजिने शत्रु जाके हिंसा हुए वरदानके प्रभावसे सब मृच्छ जानकर गो करोड़ कलाकाम रामचरितका वर्णन किया ॥ १०४ ॥ इति आनन्दकोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः ॥ अन्तरकाय लघुरामायणं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन रामानुज स्वामीने तथा जन्मदशमियोने रामको परमात्मा समझकर विलयपूर्वक कहा ॥ १ ॥ हे राम ! हे महाराज ! हम आपका कुछ उपदेश दीजिए । जिससे हम विषयसक्त मनबालोंके भाजन प्राप्त हो सकें ॥ २ ॥ उनकी बात सुनकर मुग्धता हुए रामने कहा—क्या नित्य आप लोग हमारे उपदेशोंका नही सुनते ? ॥ ३ ॥ रात्रिक समय पहर-पहरपर मैं दूत उपदेश देते

अथ तद्वचनं निशायां वृद्धिर्वचम् । श्रुत्वा विचार्य पञ्चान्मां प्रष्टव्यं यत्तु रोचते ॥ ५ ॥  
 सथेति रामवचनान्मर्गे गन्वा निजं निजम् । गेहं ते स्वस्थचिन्ताश्च स्वस्त्रीभिर्मन्त्रकादिषु ॥ ६ ॥  
 इतश्चक्रे दलकर्णां रात्रौ तदभ्युदयनिद्रिताः । नात्रचं गमद्वाथ सार्द्धमासे सर्दापकाः ॥ ७ ॥  
 धृतशस्त्रा दण्डहस्ता नानावाहरमस्थिताः । गतेषु दुन्दुर्मान्धृन्वरा तथा बाधान्यनेकशः ॥ ८ ॥  
 धृत्वा पृथक् पृथङ्नानायासेषु संशुक्रानि हि । राजमार्गेषु सर्वत्र दीर्घशब्दानुदीर्यम् ॥ ९ ॥  
 हे जनाः श्रूयतां सर्वे किं मोहेन विनिद्रिताः । नेष निद्रा सर्वाचानां कदाऽनर्घा भविष्यति ॥ १० ॥  
 स्वस्थचिन्तास्वयं सर्वे धृत्वा न श्रूयतां वचः । नरद्वाराण्ययोध्यायामेकं तु लघु वर्तते ॥ ११ ॥  
 रमण्यये मयं नेति कारणाद्द्वारभक्तैः । दीयन्ते वा न दीयन्ते कवाटादीनि वै तदा ॥ १२ ॥  
 मार्गला भृमलादीनि मन्त्रि द्वारेषु भो जनाः । कुम्भार्जो महोभ्रो धाम्पाधारां स्थितस्त्विनि ॥ १३ ॥  
 श्रूयते न कदा एह केनापि भूवि मां प्रतप । एव मन्यसि नोपेक्षा रोगशान्त्यै प्रकुर्यते ॥ १४ ॥  
 गुमरुपास्तस्य दनाः साकंने विचरति हि । न ह्यायते कदाऽप्याभिर्नागरा इव संस्थिताः ॥ १५ ॥  
 आगतश्चेत्परो दूनस्यैके दूरे तदा क्षणात् । भेदं कृत्वा तु सर्वत्र दुर्गपालो निरुन्यते ॥ १६ ॥  
 इत्थं धनं यदाऽप्याभिस्तनस्त्वस्यां मदघशः । वर्तन्ते पादनाश्च नानावेषधरा जनाः ॥ १७ ॥  
 जीरन्वयं चिरं राजा एव मन्यसि नां मयम् । प्रयोध्यायां जायते हि तच्छलं को वदित्वति ॥ १८ ॥  
 एभिर्दूतैस्तस्मात्तु आत्मारामस्य चात्र हि । करणीयं ममोः किं हि सच्चिदानन्दरूपिणः ॥ १९ ॥  
 तेषां मयं तु युष्माकं दुर्वलाणां सदाऽस्ति हि । यत्रापुत्रो दुर्वलोऽयं चन्यर्थं दीयते जनेः ॥ २० ॥  
 दतो बलिस्तु सिद्धस्य कदा केन श्रुतोऽत्र न । अतो मूयं हीनवन्तः किं निशायां विनिद्रिताः ॥ २१ ॥

रहते हैं, सो क्या बात नहीं जानते ? यम्तु, जो समय गया सो गया । आज सब लोग रातको जगनसे मेरे दूतोंको जाने मूने और उनपर विचार कर । इनके बाद जो आप लोगोंको डण्डा हो मो फूटण ॥ ५ ॥ ६ ॥  
 "तथायम्" कहकर वे सब जगन जगन घर गये और अपना अपना निद्रा क साथ पलङ्ग पर पड़े जागते हुए रामक दूतोंके घरपर कान लगाय रह । उह घंटे रात आतनपर हाथोप दीयक लिये, दण्ड तथा अन्येक प्रकारके शस्त्र धारण किये, एक हाथोपर दुन्दुभी तथा विविध प्रकारके चात्र बसाने हुए गलियो तथा राजमगापर घुमन और उन बाबाको धार निनाद करन हुए व दूत आये और कहने लग — ॥ ५-९ ॥  
 हे गुम्फालियो नजर नुम मोहनिद्राये पड़े सो रहे हो ? यह नींद अच्छी मल्लो है । इससे कभी क्या घातो अनर्थ हो जायगा । आज तुम लोग स्वस्थ चिन्ता में न जाय मूना । इस अवस्थासे तुम मो द्वार है और एक छोटा सा दसवां द्वार भी है । १० ॥ ११ ॥ रामक राजा कोई भय नहीं है । इस कालसे द्वारपाल कभी द्वार बन्द करन हैं, कभी नहीं भी बन्द करवे । १२ ॥ इन द्वारोंम न कोई अर्गसादण्ड है और न जंजरे ही लगी है । सुनल हू कि नगरक दलिल और कोई एक काला चोर रहता है, किन्तु इस नगरमे आज तक उस किमान नहीं देखा । यह जान हुए म रामशान्तिके विषयमे उपेक्षा न करना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ उसके दून गुमरायमे अवसर मे घुमने रहन है । यदि हम लोग असावधान रहे और उसका एक भी दूत मिले मय आया तो वह डण्डाके भीतर हमारा भेद लेकर सब गुम्फालोंको मार डालगा । १५ ॥ १६ ॥ हमने यह भी मूना है कि उस चारके हजारों दूत नाना प्रकारके वेष धारण करके घुमने हैं ॥ १७ ॥ हमारे राजा राम चिन्तित हैं । जिनके प्रभावसे उन कानूनोंके इतना करनपर भी कोई भय नहीं है । उन रामके बलका जगन जीन कर सकता है ॥ १८ ॥ ननुके दून इन आत्माराम और सच्चिदानन्दरूप रामका बग कर सकते हैं ? ॥ १९ ॥ हाँ, उन दूतोंमे यदि कुछ भय है तो यह तुम्हरे जैसे दुर्वलोको है । ससारी लोग दुबल जीव बकरेका ही बलिदान करते हैं ॥ २० ॥ आज तक कहीं यह नहीं सुना क्या किसीमे सिद्धी बलि दी हो । इन प्रकार बिबल हांकर भी तुम लोग दलको मोने हो ? ॥ २१ ॥

कदा कृत्वाऽत्र ते मेदं चोरपञ्चानयति हि । स कालो ज्ञायते नैव तस्माच्चिद्रा शुभा न हि ॥२२॥  
 स्वस्थचित्तास्थकनिद्रास्त्वस्यां पुर्यामर्हतिशम् । द्रुय भूत्वा सदा स्वप्नं शिवा धायः स्वमग्निधी ॥२३॥  
 कवचानि शरीरेषु सदा धार्याणि यो जनाः । धैर्यं धृत्वा न भैतव्यं यो जागर्ति निरन्तरम् ॥२४॥  
 अयोध्यायां न तस्यास्ति चांगदपि कदा मयम् । नैव हि स्मरणीयं हि सदाऽस्माकं वचः शुभम् ॥२५॥  
 सावधानाः सावधानाः सावधानाः सदा जनाः । भवध्वं चात्र माकेतपुरि स्थाहि निरन्तरम् ॥२६॥  
 इत्युक्त्वा ते राजदूताः कृत्वा दृढमिति स्वनान् । वादय मासुर्वाद्यानि सज्जमानि महानि च ॥२७॥  
 एव सर्वत्र पुर्यां ते विचेरु रामसेवकाः । एवं निशार्पा तद्दर्शमिव किञ्चिदवगत् ॥२८॥  
 पौराणा बोधिताः प्रापुञ्जान तस्य विचारतः । ततः प्रभाते ते सर्वे योगं जानपदादयः ॥२९॥  
 समायां रायवं नत्वा तुष्टाः प्रोचुः पुरः स्थिताः । राम राजीवपद्मासु त्वद्दूतवचनानि हि ॥३०॥  
 धूयन्तेऽत्र सदाऽस्माभिर्न विचारस्तदा कुतः । अद्यास्माभिर्निशार्पा हि त्वद्दूतवचनं शुभम् ॥३१॥  
 श्रुत्वा कृतो विचारो हि हृदि घुट्टया तदाज्ञया । लब्धं ज्ञानं प्रयोऽस्माभिस्त्वज्ञानं तद्गतं हि नः ॥३२॥  
 नेदानीमुपदेशं हि त्वत्तो वीक्षाम राघवं । इति नेपा वचः श्रुत्वा तान् रामः प्राह सस्मितः ॥३३॥  
 कथं तस्य हि तज्ज्ञानं किं भवं किं विचिन्तितम् । तन्मेऽग्रे कथनीयं हि विस्तरेण यथाक्रमम् ॥३४॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा जनाः प्रोचुर्मुदाम्बिताः । शृणु राम महापादो यन्लब्धं ज्ञानमुन्यते ॥३५॥  
 मोक्ष एव निष्ठा ज्ञेया निद्रा भ्रातिस्तु कथ्यते । ज्ञेय भ्रातिः सर्पाचानाऽनर्थो मृत्युर्ग्रमिष्यति ॥३६॥  
 अयोध्येयं स्वीयदेहस्तत्र छिद्राणि नैव नव । लघु तन्मस्तके ज्ञेयं दन्ताया द्वारसकाः ॥३७॥  
 पक्ष्मौष्ठादीनि द्वारेषु कपाटार्नावृतानि च । प्राणाश्च ते राजदूताः पुर्यां निन्दमरुति हि ॥३८॥

न जाने कब ये तुम्हारा भेद लेकर उस चोरको यहाँ बुला लावे । उस समयको कोई बात नहीं सकता । इसलिए इस प्रकार सीता ठीक नहीं है ॥ २२ ॥ तब सब निद्रा त्यागकर रात दिन इस पुरीमें जाग्न रहो और अपने पास एक तीक्ष्ण खदग रखो ॥ २३ ॥ अतः उपर कवच कारण बना, हृदयमें योग रखो, किसीसे डरो नहीं । जो इस तरह जागता है ॥ २४ ॥ उस वृत्त अचोक्षामे तब कारण कोई डर नहीं है । हमारे इन हितकर वचनोंका कभी भूलना मत ॥ २५ ॥ हे अद्याद्यावाभिया ! फिर भी तुमसे कहता हूँ सावधान । सावधान ॥ इस पुरीमें सदा सावध न होकर रहना ॥ २६ ॥ इनका कहकर वे दूत दुन्दुभी तथा अन्यान्व गङ्गालय वायु भजार लगे ॥ २७ ॥ इस शीतले दूत रातभर सारी अण्ड्यामें घूम घूमकर थोड़ी-थोड़ी देरमें तीन-तीन बार लोगोंको वही बात सुना-सुनाकर सजग करते रहे ॥ २८ ॥ दूतोंकी बताया जातापर विचार कर-करके वे सब नगरनिवासी जानो हो गये । सब नागरिक और जनपदवासी समाये रामके पास पहुँचे और प्रणाम करके कहने लगे हे राजीवपद्मासु राम ! जैसे तो हम निश्चय आपके दूतोंकी बातें सुनते थे । किन्तु सर्पातक उसपर विचार नहीं किया था । आज रात्रिमें उनको बातें सुनकर हमने उनपर आपके आज्ञानुसार विचार भी किया है । प्रभो ! अब हमारा अज्ञान नष्ट हो गया और ज्ञान प्राप्त हो गया है ॥ २९-३२ ॥ हे राघव ! अब मैं आपसे उपदेश नहीं गुनना चाहता । इस तरह उनकी बात सुनकर मुष्कराते हुए राम कहने लगे- ॥ ३३ ॥ अच्छा हमें यह तो बताओ कि वह ज्ञान तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ और तुम लोगोंने उसपर किस प्रकार विचार किया है । मैं विस्तारमें कहूँ मुनाओ ॥ ३४ ॥ रायका प्रश्न सुनकर वे लगे प्रश्नप्रनासे कहने लगे हे राम ! ना ज्ञान प्राप्त हुआ है, मैं तुमसे कहने हूँ । सुनिश्च ॥ ३५ ॥ मोक्ष दाहि है और भ्राति निद्रा है । यह भ्राति कभी अच्छी नहीं मनी जा सकती । इसके फेरमें पड़नेसे अनर्थ पड़ूँ होगा कि एक न एक दिन मृत्यु घर दवावगी ॥ ३६ ॥ अयोध्या अपना शरीर है । इसमें मुँह-कान आदि तो द्वार हैं और दसवां द्वार मस्तकमें है । जिसे लोण सङ्ग्रह कहते हैं और दाहि आदि इन द्वारोंके रक्षक हैं ॥ ३७ ॥ आँखोंकी पलकों और और जोड़ आदि इनके दरवाजे हैं । प्राण ही राजदूत है । जो सदा इस पुरीमें चक्कर लगाते

आत्मा श्रेयस्वव गता जीवधेन्द्रियदेवता । श्रेयाश्च देहनगरे पीताम्बर मयूकम् ॥३०॥  
 कानो श्रेयो महावीरः विदोपाया मदाश्च ये । कालम्ब सेवका श्रेया नागरा इव सम्भिताः ॥३१॥  
 दुर्बलास्तेऽत्र जीवाद्यास्तेषामेवाम्बि नञ्जयम् । किं मोहे पतिता आत्मा कान्धवशानपन्ति ते ॥३२॥  
 न ज्ञायते मृन्मृकालस्तम्भाद्भ्रान्ति शुभाऽत्र न । ज्ञानमेव महाबुद्धो वैराग्यतांशुगता स्वमेः ॥३३॥  
 सच्छील कवचं शयं धैर्यं मक्तिर्दृढा न्वयि । आत्मज्ञानेन जागर्ति न तस्मात्ति भयं कदा ॥३४॥  
 सावधानं सावनिष्ठ भवितव्यं सदाऽत्र हि । वाद्यानि दचनान्येव माधनं बोधदानि वै ॥३५॥  
 सदा भूताभि दृश्ये नानि बुद्ध्याऽवलोकयेत् । मोहभयः प्रभानोऽप्यमिदानीं स्वप्नुरः स्थितः ॥३६॥  
 स्वमेशान्मा ममेयं ते निवायस्थानपीरितम् । तवाग्रे ये स्थिताः सर्वे वयं त्वां मुक्तिमामताः ॥३७॥  
 किमिदानीं ते शृणुष्वोपदेश्यं स्वपाऽद्य किम् । तव कीर्तनमात्रेण नग मुक्तिं लभन्ति हि ॥३८॥  
 वयं न्वदन्तिकाः सर्वे मुक्ता एव न मञ्जयः । इति तेषां वचः श्रुत्वा मस्मिन्तः पादु तान्मयः ॥३९॥  
 सम्यग्बुद्ध्या परिज्ञातं मुने स्थेयं सदा जनाः ।

नान्यथा स्वमतिः कार्याऽऽत्मनो राम पृथक् स्थितम् ॥४०॥

इत्युक्त्वा सकलान्नामो ययो मीतामृहं मुदा । पीतया गतमोक्षान्ने चान्मान येनिरे पम् ॥४०॥  
 एव गमेष मोः शिष्य दूतवाक्यं सुबोधिताः । पैराः सर्वे यथा तच्च मया ते विनिवेदिनम् ॥४१॥  
 एकदा कैकर्या रामनामस्य प्रणिपत्य मा । अवशीन्मभुर वाक्यं विनया-पुगतः स्थिता ॥४२॥  
 राम राजावप्राश्च मया यदपराधिनम् । पुगाऽहानास्वया सन्व सन्नत्यं वै कृपानुदा ॥४३॥  
 अहं ते शरणं प्राप्ता मामुद्रर जगन्पते । किञ्चिदुपदिशस्व न्व येनाज्ञानं विनश्यति ॥४४॥

रहते है ॥ ३८ ॥ इनमें आत्मा राजा है और ज व लया इन्द्रिया इस नगरक निवास है ॥ ३९ ॥ काल महान्  
 चार है और वात पित्त कफ आदि उसक सेवक लो देशमें नागरिकोंकी तरह रहते है ॥ ४० ॥ इस नगरमें  
 जीव आदि नागरिक स्वयं है । जतम्ब उन्हीकी चोरका विशेष भय रहता है । परि ने नागरिक मोक्षप्राप्त  
 होकर भ्रममें पड़ जाय लो अवस्था बाकर ये चोरके सेवक अवश्य रूपमें स्वामी कायका बुद्धा लावय ॥ ४१ ॥  
 मृ युका समय किसीको मानुस नहीं है । इस कारण नास्ति रहता ठाक नहीं है । हमके लिये जान स्वयं है  
 और बैराग्यको उगकी लोको पर समझों चाहिए ॥ ४२ ॥ सदाचार वचन है और आपमें हर भक्तिता हेतु  
 ही धैर्य है । जो मनुष्य आ मशानपूर्वक लिये आगता रहता है उसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं रहता ॥ ४३ ॥  
 मदा सब लोगोंका जाननिष्ठ होना चाहिए, यही मावधान रहनेका मन्त्र है । साधुओंन ज्ञानदायक बातोंक  
 समान उन रूतोंके बाते है ॥ ४४ ॥ सब लोगोंको चाहिए कि उन बातोंको प्रथम रखने और अपनी  
 बुद्धिहिमे दन । इस प्रकार है राम ' आज हमारे मोहनाशका प्रभाव आपके सामने व्यप्यित है ॥ ४५ ॥  
 आपही आत्मा हैं और यह मया आपका निवासस्थान है । आपके सामने हम जितने राग उपस्थित हैं,  
 सब मुक्त हो गये है ॥ ४६ ॥ और आपसे क्या वृत्तता है और नग हमारे लिये आपकी उपदेश देना है ? हमारा  
 लो यह विश्वास है कि आपके नामकी उन्नमात्रसे प्राणी मुक्त हो जाते है ॥ ४७ ॥ आपके समीप पहुँचे हुए हम  
 सब लोग मुक्त है । इससे कोई मन्दरु नहीं है । इस तरह उनका काल सुनकर मुनकाने हुए राम बाले— ॥ ४८ ॥  
 तुम लोगोंने अपनी बुद्धिमें सब कुछ समझ लिया है । सब मानसपूर्वक रहो । कभी अपनी बुद्धिमें यह बात  
 न आने देना कि राम मुझसे अलग है ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर राम प्रसन्नतापूर्वक मीताके महलमें चले गये ।  
 जिन पुरवासिगोद किसी प्रकारका अज्ञान भा, अब यह सब नष्ट हो गया और ये आत्मज्ञानों बन गये ॥ ५० ॥  
 हे शिष्य ! जिस तरह रामके हुतासे उनका प्रक मानुस हुई, वह सारा कथ पने कह सुनाओ । ५१ । एक  
 समय कैकरी रामके पाल लयी और प्रणाम करके मोठे-मीठा बातोंमें कहने लगी— ॥ ५२ ॥ हे कमलपत्रको  
 समान नमोस्तु राम ! मैंने उस समय अज्ञानवश जो अपराध किया था उसे क्षमा कर दो । क्योंकि तुम  
 कृपानु हो ॥ ५३ ॥ मैं जगन्नाथ ! हे वृष्णारी शरणमें आयी हूँ । मेरा उद्धार करो और मुझे कोई ऐसा उपदेश

तत्तथा वचनं धृत्वा रामो राजावलोकनः । उवाच कैकेयी वक्त्रं मयि प्रहसन्निव ॥५५॥  
 न त्वया मेऽपराधं हि मच्छन्दोऽहं सम्यक् । स्थित्वा त्वाम्ये सा प्रह वरय आदि यन्पुरा ॥५६॥  
 न्य च कैकेयि शुद्धमि न्वपि क्रोधो न मेऽस्ति वै शस्त्रां नीत्वोपदेशं हि कारयिष्यति लक्ष्मणः । ५७॥  
 इदुक्त्वा तां चिमन्तर्गध लक्ष्मणं गच्छोऽनरोत्तु । शिविकास्थां हि कैकेयी यः प्रभाते गिरि मम ॥५८॥  
 त्वया ज्ञेया ब्रह्म पुण्याः मरुवाश्च तटे प्रति । अविमृष्टसंस्थानं वर्तते यत्र तत्र हि ॥५९॥  
 अविमृष्टानि कर्त्तव्या कैकेयी शिविकास्थिताम् । अविवाक्यानि आख्याणि मुहूर्तं मम वाक्यतः । ६०॥  
 आनेन्यस्य तदर्थेयं कैकेयी मम मतिधी । इति तटामवचनं धृत्वा स लक्ष्मणोऽपि च ॥६१॥  
 तथेयुक्त्वा तदा रामं तूष्णीं तस्थौ नदगतः । अथ प्रभाते मौमंत्रिर्गत्वा मरुमन्दिरे । ६२॥  
 शिविकायां स कैकेयी समाकृता सुदान्विताम् । दासीभिः सेवकैश्च वैष्टिनां वैत्रराजिभिः । ६३॥  
 तां निनाय षडिः पुर्याः मरुवाश्च तटे वरे । अविमृष्टानि कर्त्तव्या स्वपयामास लक्ष्मणः । ६४॥  
 मुग्धानां कैकेयी विग्रामे ज्ञान्वा दक्षिणेऽन्तगा । दृष्टुः शिविकापृष्ठे लक्ष्मणम्लान्यवायन् । ६५॥  
 अनिमृष्टाश्च पश्चाद्या ये ते ज्ञेया द्विजारयः । दानादाः पण्डिता नृते श्रोत्रिणा न प्रतिष्ठिता । ६६॥  
 ततो दत्तान्तिर कृत्य मुक्ताजालानि लक्ष्मणः । ऊर्ध्वं कृत्वा स्वहस्ताभ्यां कैकेयी वाक्यमवर्गात् । ६७॥  
 पठ्य कैकेयि मातृत्वमविगृह्य पुनःस्थितम् । रामेण मेमिताऽपि न्यमुपदेशमदरात् । ६८॥  
 तन्मात्रिणवचः श्रुत्वाऽऽश्चयमुक्ताऽथ कैकेयी । प्रतापिताऽहं रामेण किमत्र ग्रैव्य मादरात् ॥६९॥  
 इति तर्कान्कुर्वता सा तस्थौ तूष्णीं भूय तदा । तावच्छ्राव सा मे मे स्वविवाक्यानि वै मुहुः ७०॥  
 तानि श्रुत्वाऽथ कैकेयी तदा चिन्तेऽविचारयत् । मे मे निवृत्तिं मुदुश्चात्र किमर्थं वचनानि हि । ७१॥  
 अक्षयः सखा वदन्त्यत्र मुदोऽर्थस्त्वत्र वर्तते । ततो निमान्य कैकेयी नेत्रं पश्यन्वा भूय हृष्टः ७२॥

दो, जिसका मेरा अज्ञान नष्ट हो जाय ५४ ॥ इस प्रकार कैकेयीकी बात सुनकर मोक्ष देमो इत्यत इत्य राम  
 कहने लग्य -- ५५ ॥ हे माता ! तुमने हमारा कोई अपराध नहीं किया है । उस समय हमारी ही इच्छासे  
 समझताने तुम्हारे मुखसे बेटाकर यह सब प्रस्तावित था ॥ ५६ ॥ ' हे कैकेयी ' तुम मुझे ही, तुम्हारे ऊपर मे- हृदय-  
 मे कुछ भी राख रहा है । कष्ट लक्ष्मण तुम्हें कभी ये आकर उपदेश दिया नये ॥ ५७ ॥ एसा कहकर उस विदा  
 कर दिया अ- लक्ष्मणस कता कि हमारे कथन-नुसार काल कैकेयीको तगरके बाहर मरुवाटपर लगी कि भेड  
 रहती है, यही न ज जो और उन भेड के मुगस हू पाप्य उपदेशमप वाक्य मुखवर कैकेयीका यही मर  
 पास ने अ थी । इस प्रकार रामका भाता सुनकर लक्ष्मणने वैसा करना हीकर कर दिया और चुपचाप  
 रामका समगल वै ५८ ॥ इसके अनन्तर सपर लक्ष्मण जा भारतके भवनम पहुच ॥ ५९ ६० ॥ यहाँ कैकेयीको  
 पालकीय विडाकर राम रामो तथा लक्ष्मण आदिके साथ उस अ- ( ६१ ॥ ६२ ॥ ) वर कि सर- लक्ष्मण  
 पायक के साथ गी रह्य, तब प्रत्येक वाहगाने समझ कि कैकेयी स्तब्ध करके लोट रह्य है । तब राम पास,  
 मुगस, इ- लक्ष्मण दक्षिणा लटक लिये दीह वर । लक्ष्मणने उद्देशका । क्योंकि वर वर वर राम पूर्व,  
 पय और व- अदि थ । उसस कोई भी वाक्यण ऐसा न था, जा प्रतिष्ठित अविम रह्य हो । ६३-६५ ॥  
 जब लक्ष्मणके मना करवपर था उन लक्षण पे डी नहीं छोडा तब विवश होकर उन्होने ने की डाता उन्ह  
 हटताया और धार्मिकको लक्ष्मण जाने पर्दका अपने हृ पसे उन कर कैकेयीसे कहा -- ॥ ६६ ॥ ' हे माँ कैकेयी !  
 सामने मेहोका मुगसकी ओर देखो । रामका प्रजा, आरयपूर्वक तुम्हें इन्गीसे उपदेश लनके लिये भेजा है  
 ॥ ६८ ॥ लक्ष्मणकी बात सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह अपने मनमे सोचने लगी ' रामन यहाँ भेज  
 कर मुझ योवा तो नहीं दिया है ।' इस प्रकार मरहन्तरहके तर्क वितक करती हुई कैकेयी क्षणपर चुप-  
 चाप येडा रहा । एसा उसने कई बार भवोके मुगसे ' मे मे ' की कथि मुने ॥ ६९ ॥ ७० ॥ सो सुनकर  
 कैकेयान अपने मनमे सोचा कि भेड बार बार ' मे मे ' बयो करती है । इसमे कोई न कोई मुड थाय धुसा हुआ



सर्वं ज्ञत्वा मनाज्ञाना मुनोप निवर्गं तदा । ततः सिद्धिमान्ना प्राप्ता लक्षणं पुरतः स्थितम् ॥७२॥  
 लक्ष्यं ज्ञानं मया च तत्त्वमसीदद्यत्वं प्राप्तिं । इति तस्माद्यच्चः श्रुत्वा दुःखं ज्ञानान्निमुन्य मः ॥७३॥  
 दानान्द्रुग्गतान्वैशदह्य रत्नं प्रति । वैकुण्ठस्य नद्यामायं योनागेह विवेश मा ॥७४॥  
 तत्र दृष्ट्वा समर्पितं सीतया रत्नदन्तम् । चक्षुष्यान्तं साक्षिभिर्यत्रेण्योप करेण हि ॥७५॥  
 मीनाहमघुतादर्शं पश्यन्तं समुत्तेन्दितः । तं जप्ता पाया मन्त्रादा वैकुण्ठं वाक् समर्पयाम् ॥७६॥  
 राम ते कृपा । लक्ष्मणे च कश्चित्पुत्रः ॥ ७७ ॥ अद्भुतं मे मनो मे हृदयदानी न प्रयोजनम् ॥७८॥  
 उपदेशेन ते गमं मया मुक्ताः स्मिन् रत्नम् । तन्मया च न श्रुत्वा मर्षितं प्रदत्ता विभुः ॥७९॥  
 कथं ज्ञानं दत्त्वा जनं विचार्य चक्षुः कृत्वा । तत् सर्वं शिखरेणैव नमस्कृत्य रत्नं कैलासम् ॥८०॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा वैकुण्ठं प्रादि गच्छाम् । शृणु राम तद्वचनं केन तव वदाम्यहम् ॥८१॥  
 मयाऽधिवचनाभ्येव तत्राभियुक्तमिदं । श्रुत्वा मे मे त्रितये मया हृदये मन्त्रितं क्षणम् ॥८२॥  
 मे मे त्रिति ममेनाश्च आचरन्ति मुहूर्तैः । श्रुत्वा मे मे त्रितये मया चंद्राय तद्वि मे मया ॥८३॥  
 मे मे प्रकृष्टवने निव्यं पशुपुत्रपुङ्गवम् । मनो यक्षु नोपरंशाद्यं मामताभिरुच्यते ॥८४॥  
 वक्ष्ये चोपरंशाद्यं निषेधे मा प्रकर्तव्यते । जनोऽहं न कदाहं मे प्रवदामन्यत परम् ॥८५॥  
 मे माना मे सुतशाय मे यं गुणं कुरु वरम् । मे राज्यं मे माननाय मे सर्वव्यापुनस्त्वयम् ॥८६॥  
 मे श्रीरामिदं कर्तुं मे दिव्यामण्यं वरम् । मे मय्यग प्रिया दामो पुत्रादीन्पशुभा धनितः ॥८७॥  
 यादृश्यं मे म निशितं वा त्यक्तव्येति मायना । योऽयामासुवचनैः शीघ्रैः रघुः श्रुत्वा ॥८८॥  
 अन्धश्रुत्वा नरान्तर्गताधान्यो बोधयति हि । ममेवमुक्तं मदऽयमभिः पूर्वज-मनि वर्तितम् ॥८९॥  
 दहस्त्वतो हार्दिलन्धो मूढमामिमं मलिङ्गु मा । सर्वतः साऽत्र स्थलक्या नागीकार्यं कदाचन ॥९०॥

है । इसका मत उसका आदि मन्द कर ले आगे धारा इस तक नींद करके सोचने लगी ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उसका  
 मारा भद्र जग ही न-पर वह बहुत प्राप्ति हुई । तद्भुतं मे मनो मे हृदयदानी न प्रयोजनम् ।  
 अब रामने पास में चला । उसकी बात सुनकर रामने कहा कि तूने जो बातें मुझे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥  
 हुए दोनों जानसे दृष्टाया और मन्त्रादा ली है । वैकुण्ठकी सीताके महलोमें पहुंचा दिया और वह भीतर  
 चला गया ॥ ७५ ॥ वहीं पहुंचकर बंजारा ने विचार में सीताके पास में दृष्टाया एक निविष्ट प्रकारकी  
 दासी लाव रहा है ॥ ७६ ॥ सीता दृष्टाया ली । तन्मया च न श्रुत्वा मर्षितं प्रदत्ता विभुः ।  
 है । वैकुण्ठमें पहुंचने पर । रामका प्रणाम ली । और कहने लगी- ॥ ७७ ॥ है राम । आपका कृपा मेने वहाँ  
 बांधी द्वारा मन्त्रादा ली । मया मन्त्रादा ली । अब तूने आगे उदरको आवश्यक्ता  
 नहीं रहा । है तब मे मन्त्रादा ली । इस प्रकार कथाकी बात सुनकर मुहुरात है राव बोले-  
 ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ मुझे ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? तब तूने तारपूर्वक मुझे वतलाया । ८० ॥ रामके हृदय प्रथमको  
 सुनकर कैकुण्ठ कह- ॥ ८१ ॥ मुने मन्त्रादा ली । तब ज्ञान प्राप्त हुआ है, तो सुनाती हूँ ॥ ८२ ॥ उस  
 मन्त्रके समूहों पास पहुंचकर मैंने उन्मत्त मुने के हृदय में 'मे-मे' का शब्द सुना । फिर बांधी देर तक  
 हृदयमें विचार किया । तब मैंने निन्दित किया कि मेने 'मे-मे' कहके मुझे यह सुनाती है कि संसारके लोग  
 जो सर्वदा अपने साधवर्गों, ब्रह्मर्षि, पशु कर्दिन- ॥ ८३ ॥ मेरा-यह मेरा है । ऐसी बुद्धि के अर्थमें पहुंचकर अपना  
 सर्वस्व गह कर लाते हैं । यह ठीक है । इसलिए है राम । अबसे मे इस ममताके बन्धनमें कभी भी  
 नहीं पड़ूंगी ॥ ८४-८५ ॥ अभी पर तूने मे- ॥ ८६ ॥ यह भाई है, यह मेरा सुन्दर घर है, यह मेरा राज्य  
 है, यह मेरी सोच है, यह सोचला लक्ष्मी, यह मेरा प्रिय है, ये दिव्य मेरे भल्लकार हैं, यह मेरी प्रिय दासी  
 मयरा है, मे मर बन्ध है अति ममता, उदरको ली । रामके लिये उन मन्त्रों में मुने स्पष्ट उपदेश दिया  
 है कि ममता त्याग दो ॥ ८६-८८ ॥ तब नींदरित्त तारके मन्त्रान्म लोकोको सो वे यही उपदेश देती रहती  
 है कि पूर्वजन्मकी ममताबुद्धि ही मुने इस क्षणको पहुंचाया है और यह वैकुण्ठ लींद मिल है । अतएव तूने

मेमेमन्या मतिर्जाला याऽस्माकं सकला जनाः । मेमेवुदगा हि युष्माकं गतिः सर्व भविष्यति ॥९१॥  
 एव ता मोभयन्त्यत्र जनान्मयचनेः । सदा । न तदाभिर जन्मेवुदगा कदा चित्ते विचार्यते ॥९२॥  
 ताया वाक्शेषद्वयेन प्रमदन्तः राघव । मेमेवुदगाता प्रचम्बतो मुक्तऽस्यह निवृत् ॥९३॥  
 मे दहन्तिनि रावुद्वयः सप्तः सप्तऽप्रादि नदा किं उपमन्त्यत्र सवरे दूःखदायके ॥९४॥  
 अस्त्वय वा न्य यातु ददा वास्तवम् ॥ कः पुनः कस्य को भ्राता मयं अत्र न वशया ॥९५॥  
 अहमेव पा नदा मनां मल पर न हि । मयः सवुदगायने चैव मायेव नव राघव ॥९६॥  
 तथा वुद्वुदकारं राग चैव मया प्रभा इदमत्र वनः शुभा श्रीरामः प्राह मस्मिन् ॥९७॥  
 सम्पक् विचारित वुदगा स्वभावऽप्यवदन्तमम् । मन्त्रे नानुत्तरं नष्टं ज्ञेयं नृणां भव ॥९८॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा कैकेयी शोषतुलता । ज्ञेयमिदं नृणां सा नन्या मीनां रघुनमम् ॥९९॥  
 ययी भरतगोहं हि नामला कवाप मात्वभूत् । एव त्रिभुव मया शोक्तमविवाक्योपदेशतः ॥१००॥  
 यथा ज्ञान हि कैकेयै ज्ञान तन्मधिन तव । इदानीं मृगु यन्वान्पते वदामि कुतूहलम् ॥१०१॥  
 सुमित्रा त्वेकदा रामं सीतया गृहमि स्थितम् । निराश्व नन्या तं प्राह राम राजावलोकन ॥१०२॥  
 किंचित्ते प्रार्थयन्त्यद्य किंचिदुपशिश्वनाम् । नन्या वचनं श्रुत्वा तामाह रघुनन्दनः ॥१०३॥  
 का त्व चेति वदार्हं मा पथादुपशिश्वामि वै । तन्त्रे नष्टं नृणां भववुदगा इति मय्यभिचार्य चा ॥१०४॥  
 इवा मामन्य मयः प्रहसन्मोक्षं दाह वै तदा । नृणां भववुदगा इति मय्यभिचार्य चा ॥१०५॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सुमित्रा शिष्यमानना । नृणां भववुदगा इति मय्यभिचार्य चा ॥१०६॥  
 काश्च पृष्टा राघवेण किं वा देयं मपोक्षम् । काश्च देयं चापुष्टा वा मानसी राक्षसी तथा ॥१०७॥  
 मानुषी चेत्पह मत्वा यदि राम वदामि वै । तर्हि नानाशरीराणि ध्रियन्ते नटवन्मया ॥१०८॥

जोगन्ता बाहिए कि इस समयका परिस्थिति बरत, इसका अभाव कर न कर ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ 'यसु मेरा है' इस बुद्धि में अब नि प्रोक्त मन्त्रा जोगन्ता हमारा बुद्धि है वला गति दुम्हारी भी होंगे ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ अपने वचनों से मैं मवदा सब लोगका उपदेश दती रहती हूँ । किन्तु ममारों लोग उनका वातोपर विचार नहीं करते ॥ ९२ ॥ हे राघव ! आपको क्या सोच उन नृणां के वदने परा ममता बुद्धि नष्ट हो गया है । इसलिए अब मैं मुक्त हो गयी हूँ ॥ ९३ ॥ 'यह दह परा है' इस वचन से आसक्त था । वह दह दहानी आसक्ति नष्ट हो गया तब और यह ही वचन मया है । यही वचन विसक्त बड़ा है, वचन किराती मान है ? सब सच्चिदात्मनय वृत्तका दह है । इसमें कोई सत्य नहीं है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ मैं ही मन्त्र हूँ । मुझमें बरे कुछ है ही नहीं । हे राघव ! संसारमें जो कुछ विचार्यो पष्ट रहा है, वह सब मन्त्रों का ही है ॥ ९६ ॥ मैं इस अवसर परागका पानीके वृत्तवृत्तों तरह नान्य समझ लाता हूँ । इस प्रकार कैकेयीको वचन मुनकर मुनकर हूँ, वचन बोले—॥ ९७ ॥ ठीक है, तुमने भेड़ोंकी वातपर बहुत अच्छा विचार किया है । अब जाना और मुझसे अपने मत में देती । हे कैकेयी ! अब तुम जाकर मुक्त हो गयी ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ इसका ज्ञान मुनकर प्रसन्न मन कैकेयी वेदाभिमानसे रहित होकर सीता तथा रामको प्रणाम करके अपने बेटे भरतके भवनमें चली गयी और उसने वह किली वरुणों आसक्त नहीं हुई । इस प्रकार भद्राकी वातसे कैकेयीको किस तरह ज्ञान प्राप्त हुआ था, सो वृत्तान्त कह सुनाया । अब मैं तुम्हें एक ओर वृत्तहल परा वृत्तान्त सुनाता हूँ ॥ १००-१०१ ॥ एक दिन राम सोताक साथ किसी एकान्त स्थानमें बैठे थे । तब तब सुमित्रा वहाँ आ पहुँची और कान लगी । हे राजावलोकन राम ! मैं तुमसे विनय करती हूँ कि मुझे भी कुछ उपदेश देना । उसका वचन सुनकर रामने कहा—वहने कुछ बहुत बतलाओ कि तुम कीन हो ? अपने घर जाओ और स्वस्वबुद्धिसे विचार करके कल मेरे पास आकर बताओ । उस समय मैं तुम्हें ऐसा उपदेश दूँगा, जिससे तुम बहुत प्रसन्न होओगी ॥ १०२-१०३ ॥ इस तरह रामका आदेश सुनकर वह आश्चर्य भरे मनसे उसी बातको सोचती हुई चुपचाप चली गयी ॥ १०४ ॥ वह राघवने लगी कि

तदा केन मानुषीन्वयनरजाभ्यां दृष्टेच्छ मे । तदाहं मानुषी नैव न चैवान्या कदाचन ॥१०९॥  
 मानुषी राक्षसी चेतीमानि सामानि नानि न । देहादिकञ्च पश्यते देहस्य नखराः स्मृतः ॥११०॥  
 देहादिकारिण काल्यन्या याऽह इयं ०० नैवदा । अगमि मर्ता भूयसा कऽह येति वेजिन ॥१११॥  
 इदानीं तु मया ज्ञात यथा विष्णुस्तथा स्वहम् । नानारूपाणि मोऽप्यत्र मन्त्रादीनि दधानि हि ॥११२॥  
 तथा नानारूपरूपाणि धार्यन्तेऽप्रापि वै मया । एवमेव हि वक्तव्यं तर्हि मे तस्य चामरम् ॥११३॥  
 स्वयशोऽस्ति महाविष्णुस्तदं विष्णुवत्ता मया । अतो विष्णोः कन्ता चाहं मन्त्रमेव मयापः ॥११४॥  
 विष्णोर्मे नैव भेदोऽस्ति यथा गङ्गाकाशे दृष्टे । गर्ककाशे च तद्वच्च विष्णुमेवादमस्मि हि ॥११५॥  
 अहमेव यदा विष्णुस्तदा किं चावग्रेषितम् । उन्मथ्यं त गमाय जीवन्मुक्ताऽहमस्मि वै ॥११६॥  
 एव सुमित्रा सचिष्य मयाज्ञाना मुदन्विता । अनिरुध्य निजा नीमा प्रशाने राघवं ययौ ॥११७॥  
 मन्दा राघव तदा प्राह मया गार्गी विविचि तद । का नर एता मया पूर्व तस्यं नक्त गधव ॥११८॥  
 स्वयो नान्यथ प्रष्टव्यं त्वद्विद्याऽह कदापि न । अन्यन्वा मा पथा मेने जिते स्वे हृदि मद्रितम् ॥११९॥  
 तत्सर्वं भावयित्वा तं जीवन्मुक्ताऽभवत्तदा । सुमित्रो गधोऽप्राह मन्त्राय दया विधितितम् ॥१२०॥  
 जायन्मुक्ताऽपि चाश्च त्वं गन्तुं मेहं सुखरम् । नर सुमित्रा मनुष्या गन्तोऽप्युत्तमम् ॥१२१॥  
 सीता चापि पृथक् जीन्वा गयी नरपथमग्निं यव । त्वं शिष्य मया शोक काण्ड येति विचारतः ॥१२२॥  
 जीवन्मुक्ता सुमित्रा मा बभूव सुचनिर्भग । अन्यच्च ते वदाश्च तच्छृणुष्व द्विजोत्तम ॥१२३॥

रामन हमन यही पूछा है न कि मे कोन हूँ ? तो उसका क्या उत्तर है । आखिर मे देवी हूँ, दलवी हूँ, राक्षसी हूँ या मानुषी हूँ ? यदि रामसे जाकर कह दूँ कि मे मानुषी हूँ, तो भी नहीं बनता । क्योंकि ऐसा कहना हम नाटकक पात्रका तरह जेकर रूप धारण करने वाला है । इससे निश्चय हुआ कि मे न मानुषी हूँ, न और ही कुछ । पूर्वजिन मानुष राक्षसी अदि जातो गन्तारु एक देहकी हूँ और यह देह नाशवान् बदलने है । इससे यह मानूस जाना है कि जब मगरमे पुरुष हो मे वारं हूँ और पुरुषागर तरह तरहके रूप धारण करती हूँ । लेकिन यह जो मे है वना २१०० नर जायत ॥ १० - १११ ॥ वही, सब यह जान हुआ । जिस तरह भगवान् जनक रूप धारण करके इस पूरुषमन्त्रको अनेक देह धारण करके मे भी हूँ । ये भी मन्त्र-रूप अदि किसने भगवान् धारण करके आन जे न ? तब हा मम मम तरह विविध प्रकारके रूप धारण करके भगवान् मे भी करता जाता हूँ । फिर हमन और विष्णुभक्तकाय अंतर है क्या है ? ॥११२॥ ११३॥ जन्तु यही है कि विष्णु स्वर्धीन है और मे विष्णुभक्त नही जर्बन हूँ । अतएव वह निश्चय हुआ कि मे विष्णुभक्त-मानुषी एक कला हूँ ॥ ११४ ॥ अब यह भी निश्चय हो गया कि हममे और भगवान्मे कोई भेद नही है । जिस तरह गङ्गाका अन्त गङ्गाके प्रवाहमे रहना हुआ गङ्गाजल रहना है, उसी तरह भस्मे आकर भी गङ्गाजल ही रहता है । इसका सार यह निकल कि हममे और भगवान्मे कोई भेद नही है । हम और भगवान् एक ही है । अब मे स्वयं विष्णुभगवान् हूँ तो आपको क्या कहा जो जाकर रामसे पूछूँ ? मे तो जीवन्मुक्त हूँ ॥११५॥ ११६॥ इस प्रकार विचार करनेसे इनका अज्ञान नष्ट हो गया । वह जिन विचारक सबरे प्रसन्नतापूर्वक रामके पास पहुँचो । ११७ ॥ वही रामकी प्रणाम करके सुमित्रा कहने लगी-कल आपने मुझसे जो पूछा था कि मे कोन हूँ ? जो विचार करनेपर मुझे मानूस हुआ कि मे मानुष नही हूँ ॥ ११८ ॥ अब मुझे आपसे कुछ भी नही पूछना है । क्योंकि मे आपसे पूछूँ हूँ ही नहीं । ऐसा कहकर रात्रिही उन्होंने अपने हृदयमे जेना विचार किया था सो कह सुनाया । वह सब सुनकर वह वास्तवमे जीवन्मुक्त हो गयी । यह सीकर रामने कहा- हे माता ! तुमने बहुत ठाक विचार किया है ॥ ११९ ॥ १२० ॥ अब तुम जेवन्मुक्त हो गयी । जाकर आनन्दमे अपने घरमे निवास करो । इससे सुमित्राका मोह नष्ट हो गया और मे राम तथा मया दोनोंको अलग अलग प्रभाव करके स्वमग्नक यही चला गयी । हे शिष्य ! इन विचारसे कि मे कोन हूँ, सुमित्रा जीवन्मुक्त हो गयी और उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा । हे द्विजोत्तम ! मे मुझे एक और वृत्तान्त बतलाता हूँ, जो सुनो



देहवृद्धिर्देहा मष्टा तदा किं शेषमस्ति हि सुखदुःखं तु देहाय न मे किञ्चिद्वृत्तम् ॥ ११ ॥  
निष्ठान्वयं वा पततु देहो भोगाश्रयः प्रभो , अहं स्वर्गं गच्छत्य पृथगुपाधितः स्मृतः ॥ १२ ॥  
यथा कृष्णे गीर्वाणो दृश्यतेऽप्युपाधितः । स्वलोप्यते कदा भिष्यन्नर्थावधारणे ॥ १३ ॥  
इति वन्मातृवचनं श्रुत्वा रामः स्मितवान्नतः । कीमन्पश्यन् राम उवाच मुन्याऽस्मत्पुत्र मया ॥ १४ ॥  
मम्ययि च रितं चित्तं दासदास्यं मयि स्यात् । गच्छति तु मुनिं मेहे त्विमां बुद्धिं ददां कुरु ॥ १५ ॥  
किमयं न मया पूर्वं युष्मद्वचननेन हि । उपदेशः तु नमस्त्वय नमस्ते न्य निवेशय ॥ १६ ॥  
उद्देशा गुरुर्हो यो युष्माकं जनयस्त्वहम् । कथं युष्माकं मातुस्तह चोपदिशामि मे ॥ १७ ॥  
स्त्रीणां पतिगुरुर्हो यः सर्वभिनान्यो गुरुः कदा । कार्यस्तस्याः सया नैव युष्माकं आश्रयोपदेशिन् ॥ १८ ॥  
पौत्राणां च गुरुस्तान्मया सर्वभगुरेहितः । अतस्तेन मतिं नया हनवाक्योपदेशिन् ॥ १९ ॥  
पगर्भ्यरेव युष्माकमुपदेशः कृतो मया । गच्छतु मेहे पुत्र निष्ठ मदा मां पतिं नतः ॥ २० ॥  
उग्रामवचनं श्रुत्वा कीमन्पुत्रा तुष्टमानसा । राम न वा पर्यायेहं मनुष्या मस्थिता मुनयः ॥ २१ ॥  
एव ना रावचन्नेण वेधिता यादव शुभ्रः । स्वभाषुः क्षये पर्याः स्वदेहात्समुत्तुः सुपत्नः ॥ २२ ॥  
रामसाक्षिश्चमात्रेण स्मितवान्रमाश्रिताः । तस्मै न्यस्तु वकुण्ठ गच्छतेर्गच्छ मन्त्रिताः ॥ २३ ॥  
शिष्य तासां महद्गुरुणासां रामादिभिस्त्रिभिः । पश्यन्ते कदापि न कर्म क हर्षाति ॥ २४ ॥  
एव शिष्य मया प्रोक्ता तासां पूर्वगतस्त्वय । उद्देशास्तथा तासां प्रोक्ताश्च वचने मया ॥ २५ ॥  
इति आश्रितकौटिल्यामवतितानर्गु आश्रितान्द्रामाश्रयः । अतस्तेन मतिं नया हनवाक्योपदेशिन् ॥ २६ ॥

— **THE** —

[illegible]

## तृतीयः सर्गः

( रामपूजाका विस्तार )

विष्णुदास उवाच

कथं श्रीगणेशाय रामोपासकमानवैः । कार्या वै मानसी पूजा बहिःपूजा तथा शुभा ॥ १ ॥  
 कथं श्रीपायना प्राप्ता गुरो श्रीगणेशाय च । का श्रेष्ठोपायना चात्र कः श्रेष्ठोऽत्र गुरुस्तथा ॥ २ ॥  
 के के मन्त्रा गणेशस्य भक्तानां विद्विदायकाः । निधिम्नोपदा नस्य किं किं ततोपवर्द्धनम् ॥ ३ ॥  
 कः श्रेष्ठोऽत्र चरो देवो यस्य ग्रन्था उपामना । तन्मते विस्तरेणैव गुरो त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्पक् पृष्टं स्वयं शिष्य सावधानमनाः शृणु । सर्वं तद्विस्तरेणैव स्वदग्धे कल्पने मया ॥ ५ ॥  
 आदौ गुरु परीक्षया तच्चिह्नैश्च द्विजोत्तम । उपदेशस्तत्तत्तस्मादप्राप्तार्थं विधानतः ॥ ६ ॥  
 गुरोर्ध्वं च चिह्नानि तत्रादौ प्रयदास्पम् । क्रोधी कुप्टी महारोगी मलिनो निर्धूणो जडः ॥ ७ ॥  
 अपण्डितो निन्दकश्च लोभुषो विषयातुरः । दांभिको गर्वमयुक्तः पापात्मा दुष्टवशजः ॥ ८ ॥  
 घातो परद्रोहकर्ता परद्रव्यापहारकः । अज्ञितान्मा वेदवाद्यः परदारतः सदा ॥ ९ ॥  
 परदारोपकण्डव कृपणश्चाजिनेन्द्रियः । वेददेवद्विजानीनां यत्निर्यगवापि ॥ १० ॥  
 तुलसीवद्विर्याणां द्वेषा योग्यो गुरुर्न हि । वेना मकलधर्माणां शास्त्रेषु परिनिष्ठितः ॥ ११ ॥  
 सन्धवाङ् मिनभुगज्ञानी कलाशब्दितवशजः । मन्कर्मनिष्ठो धर्माणामुपदेशा सुबुद्धिदः ॥ १२ ॥  
 योगास्पामकलाभिज्ञो योगकान्तमदर्शनः । कृतकर्मा तीर्थक्षेत्री धर्मधर्मविवेचकः ॥ १३ ॥  
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा ज्ञानप्रस्थाश्रमी यतिः । श्याश्रमाचारमनिष्ठो बुद्धिमान्विदितोन्द्रियः ॥ १४ ॥

विष्णुदास ने कहा—हे गुरो ! इस संसारमें रामका उपासना करनेवालाको रामका मानसी पूजा किस प्रकार करनी चाहिए ? ॥ १ ॥ और फिर गुरुके नामसे उपासना किस प्रकार ग्रहण करनी चाहिए ? सम्पूर्ण उपासनाओंमें सर्वश्रेष्ठ उपासना कौनसी है और श्रेष्ठ गुरु कौनसा होता है या भी बतला दीजिए ॥ २ ॥ साथ ही यह भी बतलाइए कि रामके कौन कौनसे ऐसे मन्त्र हैं जिनसे भक्तोंका आनन्द प्राप्त होता है । कौन-कौन-सी त्रियायें ऐसी हैं, जिनसे भक्तोंका मन मन्त्र होता है ॥ ३ ॥ इस संसारमें कौन श्रेष्ठ देवता है, जिसकी उपासना की जाय । हे गुरो ! यह सब आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ ४ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मारी बातें विस्तारपूर्वक कहता हूँ । संवधान होकर मुनी ॥ ५ ॥ लोगोंको चाहिये कि पहले गुरुकी परीक्षा करके उनके चिह्न समझें । इसके अन्तर किंसा पवित्र तीर्थमें उनसे विविध उपदेश ग्रहण करें ॥ ६ ॥ प्रकटवक्त्र पहले मैं तुम्हें गुरुके लक्षण बतलाता हूँ । जो क्रोधी, कुप्टी, महारोगी, रागी ( जिसको भून-बैतल आदि लगत हो ), मेल कुपेला, निर्दयी, जड ॥ ७ ॥ अपण्डित, अन्ध, बुरा न जाननेवाला, निन्दक, लोभू, विषयी, पाखण्डी, अभिमानो, पापी, दुष्ट कुलमें उत्पन्न ॥ ८ ॥ विश्वासघाती दूसरेसे दोह करनेवाला, दूसरेका घन अपहर्ण करनेवाला, अजितारमा ( जिसने अपनी आत्माको नहीं जाना है ) वेदसे बहिष्कृत ( नास्तिक ), दूसरेको स्त्रासे प्रेम करनेवाला ॥ ९ ॥ दूसरेपर दोषारोप करनेवाला, कृपण ( कंजूस ) तथा वेद, देवता, शास्त्र, सन्त, तीर्थ, गौ, तुलसी, अग्नि और सूर्य इनसे द्वेष करनेवाला हो ऐसीको भूलकर भी गुरु नहीं बनाना चाहिए । जो सब धर्मोंका ज्ञाता, शास्त्रोंपर विश्वास करनेवाला ॥ १० ॥ ११ ॥ सब बोलनेवाला, गिताहारी, जात्री, कलाचिद् शास्त्रणके बंशमें उत्पन्न अशुद्ध कामोभ लगा हुआ, धर्मका उपदेश अच्छी बुद्धि देनेवाला ॥ १२ ॥ योगाभ्यासकी कलाओंका ज्ञाता, योगी, सबकी समान दृष्टिसे देखनेवाला, केवल उपदेश न देकर स्वयं कर्म करनेवाला, तीर्थसेवी, धर्म अधर्मकी विवेचना करनेमें निपुण ॥ १३ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, ज्ञानप्रस्थाश्रमी, योगी,

शमी कृपासुर्षद्वाक् सुमुखः सौम्यदर्शनः । अनिष्टश्च समयोगी शांतात्मा परतोषकः ॥१५॥  
 भोदार्यवान् ज्ञाननिष्ठः शुचिस्त्वक्कण्ठिग्रहः । इत्यादिगुणयुक्तो यः स गुरुः परमोत्तमः ॥१६॥  
 तस्य सेरां निरं कृत्वा सेवया तं प्रसाद्य च । तस्मादुपासना प्राप्ता सुनिर्घे विधिपूर्विका ॥१७॥  
 उपासनास्त्रयः सन्ति सांख्यिकी राजयोगी तथा । ज्ञानयोगी च तृतीया सा गदिताश्च निगद्यते ॥१८॥  
 भूतदेवतकृष्णोदपिशाचानामुपासना । सा ज्ञेया तामसी घोरा देवानां सांख्यिकी स्मृता ॥१९॥  
 यक्षाणां राक्षसानां च सा ज्ञेया सा तु राक्षसी । शैवा योगश्च गणेशः शाक्ताश्च वैष्णवास्तथा ॥२०॥  
 अवतारास्त्रयमरुधाताः पञ्चानां मन्त्रि भूतजे । तेषामुपासना प्राप्ता गुणेशस्याद्भिर्वालिभिः ॥२१॥  
 पञ्चानामवतारेषु विष्णोरेव वदाम्यहम् । चतुश्चत्वारिंशन्मिमतानवतारान्महत्तमान् ॥२२॥  
 पुरुषोत्तमो विविधैव कृतो नारायणस्तथा । हनोज्ज्व दत्तात्रेयश्च कुमारो कश्यपस्तथा ॥२३॥  
 हयग्रीवस्तथा मन्त्र्यः कूर्मो वराह एव च । नार्गमहो वामनश्च जामदग्न्यस्तथैव च ॥२४॥  
 रामः कृष्णस्तथा बौद्धः कल्किर्यहो हरिश्चनया । शाल्विन्धोद्वारकश्च पृथुर्धन्वंतरिश्चनया ॥२५॥  
 मोहिनी नारदो व्यासः कपिलः केशवस्तथा । माधवाश्च गोविन्दो मधुसूदन एव च ॥२६॥  
 त्रिविक्रमः श्रीधरश्च पञ्चनामस्तथा स्मृतः । दामोदरस्तथा मकरपंथः प्रद्युम्न एव च ॥२७॥  
 अनिरुद्धोऽञ्जयश्च अश्वत्थश्च जनार्दनः । उपेन्द्रश्च हरीकेशस्तथैव ज्ञेया महत्तमाः ॥२८॥  
 मत्स्याया अवताराश्च दशतेरपि चोत्तमाः । द्वापयताम्रश्रेष्ठि रामकृष्णो महत्तमौ ॥२९॥  
 ताम्रामपि वरः पूरः मन्यमंथो रघूत्तमः । एकपत्नीयनो बालस्त्वैकशणो नृपोत्तमः ॥३०॥  
 सप्तद्वीपपतिः श्रीमद्भुवचामामंडितः । एवं शांकोरामनाञ्च प्राप्ता श्रीगणेशश्च च ॥३१॥  
 गुरुपदिष्टविधिना सुमुहूर्ते शुभम्यले । अथवा तत्तदेवानां प्राप्ता तज्जन्मपत्तिषी ॥३२॥

जिस आश्रममें हो उनके निषमोका बालन करनवाला पुष्टिमन्त्र, इष्टिवाका पञ्चम रखनेवाला, ॥ १५ ॥  
 समाजाल, कालान् मधुरमाया, अज्ज् पुनवला, सौम्यदर्शी, कम सातेवाला, सदा उत्तममें भगवा हुआ,  
 शान्तात्मा, दूसरीका प्रसन्न करनेवाला तत्तत्, ॥ १६ ॥ उदार ज्ञानविष्ट पवित्र और दान आदि ग्रहण करनेवा  
 पराङ्मुख, इन गुणोंसे विभूषित पुरुष ही उत्तम गुरु होगा है । १५ ॥ ऐसे गुरुका बहुत विशेषण सेवा  
 करके उसे प्रसन्न करे । तब किसी अच्छे तीर्थमें उसमें विधिपूर्वक उपासनाका उपदेश ग्रहण करे ॥ १७ ॥  
 उपासना भी तीन प्रकारकी होती है । सांख्यिकी, राजयोगी और तामसी । इनमें तामसी उपासना निन्दित  
 मानी गयी है ॥ १८ ॥ भूत, वंताल, कृष्णान्ध और पिशाच आदिनी योग उपासना तामसी कही गयी है ।  
 देवताओंकी उपासना सांख्यिकी कही जाती है ॥ १९ ॥ वही और राक्षसकी उपासना राक्षसी उपासना  
 कहलाती है शिव, सूर्य, गणेश, ब्रह्मा तथा विष्णु इन तीनों देवोंके समस्त अवतार हैं । सांख्यिकी आदिमें कि  
 गुरुके मुखसे इन्हों पांच देवामें किसी एककी उपासना ग्रहण कर ॥ २० ॥ २१ ॥ ऊपर कहे गये देवताओंमें से  
 यहाँ विष्णु अवतारके बड़े बड़े बीसालिख अवतार बतला रहा है ॥ २२ ॥ पुरुषोत्तम, गरुड नारायण, हंस,  
 दत्तात्रेय, कुमार, कश्यप हयगव, मन्त्र्य, कूर्म वराह ताम्र, वामन परशुराम, ॥ २३ ॥ २४ ॥ राम कृष्ण,  
 बौद्ध, कल्कि, पञ्च, हरि, बालविष्णु, उदारक पृथु, धन्वंतरि मोहिनी, नारद व्यास, कपिल, वैष्णव, माधव,  
 गोविन्द, मधुसूदन, ॥ २५ ॥ २६ ॥ त्रिविक्रम श्रीधर, पञ्चनाम, दामोदर, मकरपंथ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अश्वो-  
 ज्ज्व, अश्वत्थ जनार्दन, उपेन्द्र और हरीकेश ये श्रेष्ठ अवतार माने गये हैं । इन अवतारोंमें भी मत्स्य-कूर्मादि  
 दस अवतार भी माने जाते हैं और इन दसोंमें भी राम और कृष्ण भी माने गये हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥  
 इन तीनोंमें भी सत्यव्रतिन रामचन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं । क्योंकि ये एककलौत्रतो और एक बाणधारी और सब  
 राजाओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ ये सातों द्वीपोंके अधिपति, श्रीमान्, छत्र और चमरसे सुशोभित हैं । ऐसा शपथ-  
 कर सबको चाहिए कि गुरुके द्वारा उपदिष्ट विधिके अनुसार अच्छे मुहूर्त तथा पवित्र स्थानमें  
 श्रीरामचन्द्रजीकी उपासनाका मन्त्र लें । अथवा ऊपर लिखाये देवताओंमेंसे जिसपर निश्चयी शक्ति हो, उसीको

चैत्रे मामि दिने पक्षे नवम्यां रामजन्मनि । उपासनात्तन्तरं हि रामं मक्या प्रपूजयेत् ॥ ३३ ॥  
 एवं यस्यावतारस्य गृहीतोपासना नरैः । तैस्तस्य जन्मदिवसे कार्यं पूजा महोत्सवैः ॥ ३४ ॥  
 अतो दशावताराणां शिष्य जन्मदिनानि ते । प्रोच्यन्तेऽत्र मृणुष्व स्वं धेनु तन्पूजयेन्नरः ॥ ३५ ॥  
 चैत्रे तु शुक्लपञ्चम्यां भगवान्मनिरूपधृक् । ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरिः ॥ ३६ ॥  
 चैत्र शुक्लनवम्यां तु हरिर्वाग्वहुरुचुक । वैशाखेऽभुवत्तुर्दश्यां शुक्लपक्षे नृकेशरी ॥ ३७ ॥  
 मामि माद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां वायनस्त्वभूत् । वैशाखे जामदग्न्यस्तु तृतीयायां सिते न्वभूत् ॥ ३८ ॥  
 चैत्रशुक्लनवम्यां तु मध्याह्ने राघवस्त्वभूत् । कृष्णपञ्चम्यां श्रावणे हि कृष्णेऽभून्मधुरागुणि ॥ ३९ ॥  
 पौषशुक्ला सप्तमी या बुधजन्मतिथिस्तु सा । माघशुक्लतृतीया तु कल्किनः सा तिथिः स्मृता ॥ ४० ॥

अहो मय्ये वामनो गणेशौ मन्मथः क्रोडापराक्षे विभागे ।

कूर्मः सिंहो बुधकल्की च सायं कृष्णे रात्रौ कालमाय्ये च पूर्वे ॥ ४१ ॥

एवं तज्जन्मकालश्च शान्ता तेषामुपासकैः । उत्सवः परमः कार्यमनदेवप्रपूजने ॥ ४२ ॥  
 निन्यपूजा प्रकृतव्या मक्या तेषामुपासकैः । विशेषजन्मदिवसे कार्यं तन्पूजने मुदा ॥ ४३ ॥  
 गुरोर्गृहीतो यो मन्त्रस्त नित्यं हृदये जपेत् । राममन्त्रास्त्यनेकाश्च शतवर्णान्महो मनुः ॥ ४४ ॥  
 पञ्चाक्षरं कश्चापि द्विचत्वारिंशदक्षरः द्वात्रिंशदक्षरश्चाथ सप्तविंशक्षस्तथा ॥ ४५ ॥  
 पञ्चविंशदक्षरश्च चतुर्विंशक्षस्तथा एकविंशदक्षरश्च त्रिदशदक्षरस्तथा ॥ ४६ ॥  
 अष्टादशदक्षरश्च षोडशाक्षर एव च । पञ्चदशदक्षरश्च चतुर्दशक्षरस्तथा ॥ ४७ ॥  
 त्रयोदशाक्षरश्चापि द्वादशाक्षर एव च । एकादशाक्षरश्चापि तथा मन्त्रो दशाक्षरः ॥ ४८ ॥  
 नवाक्षरगेऽष्टवर्णस्तथा समाक्षरमनुस्तथा । षडक्षरो राममन्त्रस्तथा पञ्चाक्षरगे मनुः ॥ ४९ ॥

जन्मतिथिपर उसको उपासना ग्रहण करे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ रामक उपासना ग्रहण करनेवालोंका चाहिए कि येनमासके शुक्लपक्षमें नवमी ( रामजन्म ) के दिन उपासना ग्रहण करे । उसके बाद अन्तिपूर्वक रामका पूजन करे ॥ ३५ ॥ इस तरह जिस अवधारक उसमन्त्र ग्रहण करती हो, उसके जन्मदिवसपर महान् उत्सवके साथ पूजा करना चाहिए ॥ ३६ ॥ हे शिष्य ! अब मैं तुम्हें दशो अवतारोंके जन्मदिवस बतलाता हूँ । जिसमें योगको अपने उपास्य देवताका पूजन करना चाहिए ॥ ३७ ॥ चैत्र शुक्ल पञ्चम को भगवान् नर भलवास्तन लिया था । ज्येष्ठ शुक्लपक्षकी द्वादशको भगवान् कूर्मरूप धारण किया था । चैत्र कृष्ण नवमीको भगवान् वायन रूप धारण किया था । वैशाख शुक्ल चतुर्दशको भगवान् जामदग्न्य रूप धारण किया था । ३८ ॥ ३९ ॥ माद्रपद शुक्ल द्वादशको वामनरूप धारण किया था । वैशाख शुक्ल तृतीयाको ये परशुराम बने थे । ४० ॥ चैत्र शुक्ल नवमीको मध्याह्नकालमें भगवान् राघव अवतार लिया था । अत्र पर कृष्णपक्षकी अष्टम को भगवान् मधुराम कृष्णरूपसे अवतार लिया था । ४१ ॥ पौष शुक्ल सप्तमीको बुधजी जन्मतिथि होता है । माघ शुक्ल तृतीयाको कल्कि भगवान्की जन्मतिथि होता है । ४२ ॥ दोपहरके समय माघ, राम और कल्कीका जन्म हुआ था । मत्स्य वाराह इन दोनोंका जन्म दिनके दोसरे पहर हुआ था । कूर्म, नृसिंह, बुध और कल्कीका अवतार सन्ध्याके समय हुआ था और श्रीबृहस्पतिजीका जन्म अग्री रातको हुआ था । ४३ ॥ इस प्रकार भगवन् अपने उपास्य देवताका जन्मकाल जानकर उस समय महान् उत्सव मनाते हुए उनकी पूजा करनी चाहिए ॥ ४४ ॥ उपासकोंको उचित है कि नित्य अपने आराध्य देवताका पूजा करे । विशेषकर उनके जन्मदिवसको उत्सव और पूजन अवश्य करना चाहिये ॥ ४५ ॥ गुरुमें जो मन्त्र मिले, हृदयमें सर्वदा उसका जप कर रहा रहे । राममन्त्र भी अनेक प्रकारके हैं । उनमेंसे एक ही अक्षरोका, एक पचास अक्षरोका, एक सत्ताईस अक्षरोका, एक बीस अक्षरोका, एक बीस अक्षरोका, एक सत्ताईस अक्षरोका, एक चौबीस अक्षरोका, एक इक्कीस अक्षरोका, एक बीस अक्षरोका, ॥ ४६-४७ ॥ एक अठारह अक्षरोका, एक सैकड़ अक्षरोका, एक पन्द्रह अक्षरोका, एक बीस अक्षरोका, एक तेरह अक्षरोका, एक बारह अक्षरोका, एक ग्यारह अक्षरोका, एक दस



चतुर्वर्णात्मकश्चापि तथा वर्णप्रधानकः । द्रव्यक्षो राघमन्त्रश्च मनुस्मृत्याधरोऽपि च ॥५०॥  
 एवं नानाविधा मन्त्राः क्षतशोऽथ मद्रजशः । गुरोर्भवेको गृहीन्गाऽथ जपेन्स्त्रीताम्रमणिधौ ॥५१॥  
 उपासनाविधानं च रामोपायकमानरैः । यथा मन्त्रस्वरूपं हि विश्वं यत्र साक्षतः ॥५२॥  
 अपुना मानसी पूजाविधानं च मनोरञ्जने । यदृष्टुं सुतीक्ष्णाय कथितं कुम्भजनमवा ॥५३॥  
 सुतीक्ष्णस्त्वैकदाऽगम्यं दृष्ट्वा रहसि मन्त्रपत्रम् । प्रपन्नं पश्यन् मनसा प्रायाच विनयान्वितः ॥५४॥

सुतीक्ष्ण उवाच

हृदये मानसी पूजा कीदृशी च वद प्रभो । उपकारैः कतिविधैः पूजयेत् राघुनेन्दनः ॥५५॥

जगत्पुत्र उवाच

रामं पद्मविद्यालक्षं कालाभ्युदयमयमम् । कर्मनाशत्र सुखाधीनं चिन्तयेच्चित्तपुष्करे ॥५६॥  
 रामादिकल्पं विषं वैराग्येण मुनिर्बलिः । कुन्ता कपारं च दानं भक्त्यन्वये मुक्तये ॥५७॥  
 प्रातः सुदयपुष्पैश्च रत्नैश्च शमितान्नतः । त्रिविक्रदेशपाशिनश्च क्वचन पूजां समारमेत् ॥५८॥  
 नाभिकुन्दसमुद्भूतं कदलीकुम्भोपमम् । यदृष्ट्वा चित्तमथ च श्यायेद्गुह्यदयश्चक्रम् ॥५९॥  
 तत्पद्मं गमनाग्नौ कुन्तं कृत्वाऽहं मयमे । शारङ्गेश्वरं मोनाग्निसमूहलानुगततरम् ॥६०॥  
 तत्सोपरे न्यसेदेव पठेन्नमयेज्जालम् । तन्मन्त्रे राघवं श्यायेत्सुवज्रोदयमयम् ॥६१॥  
 इदीवरनिभं शतं त्रिंशद्वर्णं सुवचनम् । उद्यद्वाचितमद्भुतं कृष्णकण्ठं विराजितम् ॥६२॥  
 सुनसं सुकिरीटं च सुकपोलं शुचिस्मितम् । विज्ञानमुद्रं दिभुजं कंबुगीवं सुकुन्तलम् ॥६३॥  
 नानारत्नमण्यैर्द्वन्द्वहारैर्भूषितमवपम् । त्रिभु-पुञ्जश्रीकांठं यक्षपुष्पकरं हरिम् ॥६४॥

अक्षरोका, एक नौ अक्षरोका एक बाठ अक्षरोका, एक सात अक्षरोका, एक छ अक्षरोका, एक पांच अक्षरोका, एक चार अक्षरोका, एक तीन अक्षरोका, एक दो अक्षरोका और एक एक अक्षरका राममंत्र है ॥ ४७-५० ॥ एक तरह से एक प्रकारक राममंत्र है । उसका रक्षो चतुष्टय कि उनका जिसों को एक प्रकारको गुरुसे ग्रहण करे और श्रीरामचन्द्रको पास बैठकर उसका जप करे ॥ ५१ ॥ रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि उपासनाकी विधि और मन्त्रका अध्ययन मन्त्रका रक्षण समझ लें ॥ ५२ ॥ अब मैं यहाँ रामकी मानसी पूजाका विधान बतला रहा हूँ । जिसे कि द्वादश वन्द्य आदर्यवद्वाय सुतीक्ष्ण अपिका बतलाया था ॥ ५३ ॥ एक दिन जगत्पुत्रजी एकात्म्य बैठे थे । उस समय मुनिकमल आकर दरम भक्तिस जगत्पुत्रको प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहने लगे ॥ ५४ ॥ गुरुदेवन कहो—हूँ प्रभो । उपासकोका मानसी पूजा कैसे करनी चाहिये । इस पूजामें किन किन उपचारोंसे रामका पूजन किया जाता है, सा भाव बताकर, ५५ ॥ जगत्पुत्रने कहा कि उपासका चाहिए कि पहले वह अपने हृदयस्थी कमलपर बैठे हुए रामका इस प्रकार ज्ञान करे—जिनके कमलको तरह विशाल नेत्र हैं । काल मयकं समान नील वर्ण हैं । मुष्कराता हुआ मुख है और वे आनन्दपूर्णक बैठे हैं । ५६ ॥ उपासकका यह भी मतलब है कि रामदेव आपसे कल्पित विलको वैराग्यसे निर्गत कर से । सब अवयवस मुक्त हानके लिए रामकी उपास करे ॥ ५७ ॥ सबरे शरीरको पवित्र करके तन्माको सर्वथा छोड़कर कित्ता एकाग्र स्थानमें स्थान और पूजन करे ॥ ५८ ॥ नाभिकुम्भसे निकले हुए कदलीकुम्भक समान आठ दलीयाने और चिकने हृदयस्थी कमलका प्रधान करे ॥ ५९ ॥ उस कमलको रामनामसे विकसित करके बीचमें मूर्ति, सार एवं अग्निमण्डलसे द्वा अधिक प्रकाशमान तन्त्रका प्रधान करे ॥ ६० ॥ उसकेपर रत्नमय उज्ज्वल श्रीको रखनेकी भावना करके उसके बीचोबीच कराड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान रामका ज्ञान करे । ६१ ॥ कमलका बाई जितका विशाल काल है । दमकती हुई कीप्तिसे प्रकाशित कुण्डल जिनके कर्णोंमें पड़े हैं ॥ ६२ ॥ जिनकी सुन्दर नासिका है, जो सुन्दर किरीट धारण किये हैं, जिनका सुन्दर कपोल है, मोठी मुसकान है, वे विज्ञानबुद्धा धारण किये हैं, जिनकी दो भुजाएँ हैं, जिनके समान शीशा हैं, उनके कानों और चक्रोंसे हुए कैलाश है, जो अनेक रत्नोंसे पूरी दिव्य माला पहने हैं, जिनका कभी भी

वीगसनस्य सतानतरुमूलनिवासिनम् । महासुगन्धलिङ्गाङ्गं वनमालविराजितम् ॥६५॥  
 वामपार्श्वे स्थिता सीता चामाकम्बमप्रभाम् । लीलापद्मधरा देवी चारुशर्मा शुभामनाम् ॥६६॥  
 पद्मंती स्निग्धया दृष्ट्या विष्ट्या कल्पविराजिताम् । छत्रचापमहस्तेन लक्ष्मणेन सुसेवितम् ॥६७॥  
 हनुमत्सुखनित्यं वानरैः परिवारितम् । स्तुयमानः ऋषेयैः सेवितः सरतादिभिः ॥६८॥  
 सनन्दनादिभिश्चान्यैर्धोनिर्दुर्दैः स्तुतं सदा । सवशास्त्राथकुशलं योग्यं योगसिद्धिदम् ॥६९॥  
 एवं ध्यात्वा रामचन्द्रं मणिद्वयमुद्योमितम् । शुद्धेन मनसा रामं पूजयेत्सर्वतः हृदि । ७०॥  
 इति ध्यानम् ।

आवाहयामि विश्वेशं ज्ञानविबुधं त्रिभुम् । श्रीमल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतौ परम् ॥७१॥  
 राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महापते । रत्नमिदामनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥७२॥  
 श्रीरामागच्छ मगवन् रघुवीर रघूत्तम । ज्ञानकया सह राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा ७३॥  
 रामचन्द्र महेष्वास रावणाधिक राघव । यात्रिपूजा समाप्तेऽहं तवैव सन्निभो भव ॥७४॥  
 रघुनन्दन राजर्षे राम राजीवलोचन रघुवंशज मे देव श्रीगमाभिमुखो भव ७५॥  
 प्रसीद ज्ञानकीनाथ मुपसिद्ध सुरेश्वर प्रसन्नो भव मे राजन् सर्वशः मधुसूदन ॥७६॥  
 शरणं मे जगन्नाथ शरणं भक्तप्रसन्न वन्दो भव मे राजन् शरणं मे रघूत्तम ॥७७॥  
 श्रीलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनाथक । पार्थ गृहाण राजर्ष नमो राजीवलोचन ॥७८॥  
 परिपूर्ण परानन्द नमो रामाय वेशमे । गृहाणाथ मेरा दत्तं कृष्ण विष्णा जनार्दन ॥७९॥  
 ॐ नमो वासुदेवाय तन्वजानस्वरूपिणे । मधुपर्कं गृहाणम राजागजाय ते नमः ॥८०॥

विनाश नहीं होता, जो विष्णुपुत्रके समान समस्त हुए वर्णोंके आगे पहने है, वीरासनसे बटे है, कल्पवृक्षके नीचे निवास करने है उत्तम सुगन्ध जिनके शरीरभरम मन्त्र छूट है और जो वर्मान्ता धारण किये हुए है ॥६५॥ ६५॥  
 जिनके बायें बगलमें सीताजी बंठा है, उनका भी सुवर्ण कर सह लज है, व हाथमें लालासुन्द लिये है, सुत्रपर मन्द मुस्कराए है, मुन्दर चढ़ा है और प्रसन्न, हृत्स रात्रका निहारत हुई कल्पवृक्षके नाच बंठा है हाथमें छत्र और चमर लेकर लक्ष्मणजी र मकी सेवा कर रहे हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ हनुमान आदि वानरोस व नित्य घरे रहते हैं । कितने ही ऋषि स्तुति करते हैं और भक्त आदि आता उनका सेवा कर रहे हैं, सनन्दन आदि कितने ही पायी उनका स्तुति कर रहे हैं । व राम समस्त शरीरका भव ज्ञानन्म कुशल है । यागाक राको भी वे जानते हैं और यागाभिद्धक देता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ कोन्नुमतय विष्णुमणि इन दोनों माणसेस सुगोभित रामचन्द्रका ध्यान करके शुद्ध मनसे लोचनित्वा जीविके अनुसार सदा हृदयमें उनका पूजन करे ॥ ७० ॥ संसारक ईश, ज्ञानकाय बल्लभ, कोप-शक पुत्र, प्रहृष्टस पर और प्रपुत्रपथरा औरमका मे जावाहन करता हूँ ॥ ७१ ॥ हे राजावाक राजा रामचन्द्र हे महापते । मे आपसे रत्नमय मिहासन देता हूँ, उसे स्वीकार कर ॥ ७२ ॥ हे श्रीराम, हे मगवन् हे रघुवीर ! हे रघूत्तम ! हे रामचन्द्र । आप ज्ञानकाशक साथ आइये और इस हृदयासनवर बाँटें ॥ ७३ ॥ हे रामचन्द्र हे महान् पुरुष धरण करनेवाले ! हे रावणाधिक ! हे राघव ! जब तक मे पूजन समाप्ति न करूँ, तब तक आप मेरे पास रहिए ॥ ७४ ॥ हे रघुनन्दन ! हे राजर्ष ! हे राजावलोचन राम हे रघुवंशज ! हे देव ! हे श्रीराम ! आप मेरे सम्मुख प्रकट हो ॥ ७५ ॥ हे ज्ञानकीनाथ ! हे मुपसिद्ध सुरेश्वर आप मेरेपर प्रसन्न हो, हे राजन् ! हे सर्वश ! हे मधुसूदन ! आप मेरेपर प्रसन्न हो ॥ ७६ ॥ हे जगन्नाथ ! मे ज्ञानकी शरणमें हूँ । हे भक्तप्रसन्न, आप मेरे बरदाता हो । हे रघूत्तम ! मे आपकी शरणमें हूँ ॥ ७७ ॥ हे जगन्तु हे त्रेलाभदपावन ! हे रघुनाथक ! आपका प्रणाम है । हे राजर्ष ! इस पद्मकी ग्रहण कारण । हे राजावलोचन राम ! आपकी प्रणाम है ॥ ७८ ॥ परिपूर्ण परमानन्द कल्पवृक्षारी रामकी प्रणाम है । हे कृष्ण ! हे विष्णु ! हे जनार्दन ! मेरे दिने हुए नर्त्यका आप ग्रहण करें ॥ ७९ ॥ तन्वजानके साक्षात् स्वरूप वासुदेवकी प्रणाम है । हे राजराज ! आपकी प्रणाम है । आप मेरे

नमः सन्याय शुद्धाय वृष्ण्याय ज्ञानरूपिणे । गृहापाचमनं देव सर्वलोकैकनायक ॥८१॥  
 ब्रह्मांडोदरमध्यैस्तीर्थैश्च रघुनायक । स्नाययिष्याम्यहं भक्त्या त्वं गृहाय जनार्दन ॥८२॥  
 संतप्तकाचनप्रस्थं पीताम्बुमिव हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥८३॥  
 श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव । प्रहसन् मोक्षरीपं गृहाय रघुनायक ॥८४॥  
 किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमेखलाः । प्रदेयकीर्तुमं हारं रत्नकंकणनूपुरान् ॥८५॥  
 एवमादीनि सर्वाणि भूषणानि ग्रहूय । अहं दास्यामि त्वे भक्त्या संगृहाण जनार्दन ॥८६॥  
 कुंकुमागरुकस्तूरीकपूगेन्मिश्रचन्दनम् । तुभ्यं दास्यामि विश्वेश श्रीराम स्वीकुरु प्रभो ॥८७॥  
 तुलसीकुन्दमन्दारजातिपुन्नागचरपकैः । कर्दवकम्बोरैश्च कुसुमैः शतपत्रकैः ॥८८॥  
 नीलांबुजं विज्वलैः पुष्पमाल्यैश्च राघव । पूजयिष्याम्यहं भक्त्या संगृहाण नमोऽस्तु ते ॥८९॥  
 वनस्पतिर्मदिव्यैर्गन्धाढ्यः सुमनोहरैः । रामचन्द्र महीशान् भक्त्यैः प्रणिगृह्णाम् ॥९०॥  
 ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमो रामाय वेधसे । गृहाय दीपकं राज्ञैर्लोकपतिमिरापदम् ॥९१॥  
 इदं दिव्यान्नममृतं रसैः पङ्क्तिर्विगजितम् । श्रीराम राजराजेन्द्र नैवेद्यं प्रतिगृह्णाम् ॥९२॥  
 मागवल्लीदलैर्गुल्मं पूर्णाफलममन्वितम् । तांबूलं गृह्णतां राघव कर्पूरगदिममन्वितम् ॥९३॥  
 मङ्गलार्थं महोपाल नोराजनमिदं हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥९४॥

अथ नामकाराष्टकमन्त्राः

ॐ नमो भगवते श्रीरामाय परमान्मने । सर्वभूतात्मन्दाय परीताय नमो नमः ॥९५॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीराम रामचन्द्राय वेधसे । सर्ववेदात्मन्दाय समीताय नमो नमः ॥९६॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीविष्णवे परमान्मने । परात्पराय रामाय नमोताय नमो नमः ॥९७॥

किये हुए इस पूजनका महान् करिए ॥ ८० ॥ सर्व गुण वृष्ण्य और ज्ञानस्वरूप भगवान्‌को प्रणम है । हे देव ! हे सर्वलोकैकनायक ! मेरे दिये हुए इस आचमनको आप ग्रहण करें ॥ ८१ ॥ ब्रह्माण्डमें जितने तीर्थ हैं, उनके अन्तसे मैं आपको स्नान कराऊँगा । सो आप स्नान कर ॥ ८२ ॥ हे हरे ! अच्छी तरह तपाये हुए सुवर्णके समान इस कंठास्वरको आप ग्रहण कीजिए । हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है ॥ ८३ ॥ हे श्रीराम ! हे अच्युत ! हे यज्ञेश ! हे श्रीधरानन्द ! हे राघव ! हे रघुनायक ! उत्तरीय वस्त्रके साथ दिये हुए मेरे इस यज्ञपवीतका आप ग्रहण करें ॥ ८४ ॥ किरीट हार, केयूर, रत्नजटित कुण्डल, मखला, माला, कीर्तुषका हार, रत्नजटित कंकण, नूपुर, इस प्रकार सब तरहके आभूषण मैं आपनो भक्तिपूर्वक दूँगा । सो आप ग्रहण करिए ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ कुसुम, अरुण कस्तूरी तथा वपुःस मिश्रित चन्दन हे विश्वेश ! हे श्रीराम ! हे प्रभो ! मैं आपको दूँगा । सो आप स्वीकार करें ॥ ८७ ॥ तुलसी, कुन्द, मन्दार, जूही, पुन्नाग, चम्पक, कदम्ब, करवीर तथा ज्ञानपत्रके फूल, नीलकमल, विज्वल और पुष्पमाल्योसे मैं आपका पूजन करूँगा । उसे आप ग्रहण करें । मैं आपको प्रणम करता हूँ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ वनस्पतिके दिव्य रसों और सुगन्धसे मिश्रित दिव्य धूप आपको आश्रापन कराऊँगा । हे रामचन्द्र ! हे महोपाल ! आप इसे ग्रहण करें ॥ ९० ॥ संसारके सारे व्योतिर्भय पदार्थोंके पति हे राम ! हे वेध ! आपको नमस्कार है । हे राजन् ! तू तो लोकका भवकार नष्ट करनेवाले इस दीपकको आप ग्रहण करिए । छः रसोंमें युक्त तथा अमृतके समान सुस्वादु यह दिव्यान्न तैयार है । हे श्रीराम ! हे राजराजेन्द्र ! आप इस नैवेद्यको ग्रहण करिए ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ पानके पत्तोंसे जाड़े हुए, सुगरी तथा कर्पूरदि मसालोंसे युक्त इस साम्बूयको आप ग्रहण कर ॥ ९३ ॥ हे महोपाल ! हे हरे ! मङ्गलक निमित्त दिये हुए मेरे इस नैराजनको आप ग्रहण करें । हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है ॥ ९४ ॥ अब आठ नामकार बनलाते हैं । भगवान्, श्रीराम, परमान्मा, सब प्रणियोंके भग्न रहनेवाले, सिद्धांक माय रामचन्द्रजीको प्रणाम है ॥ ९५ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्र, नैवेद्य और सब वेदात्त जननेवाले संसारके पति रामको प्रणाम है ॥ ९६ ॥ भगवान् विष्णु, परमात्मा, परात्पर एवं तै ताके साथ विद्यमान रामको प्रणाम है ॥ ९७ ॥

ॐ नमो भगवते श्रीगुणाधाय शक्तिणे । चिन्मयानन्दरूपाय समीताय नमो नमः ॥१८॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीराम श्रीकृष्णाय चक्रिणे । विशुद्धज्ञानदेहाय समीताय नमो नमः ॥१९॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीवासुदेवाय श्रीविष्णवे । पूर्णानन्दरूपाय समीताय नमो नमः ॥२०॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीराम रामभद्राय वेधमे । सर्वलोकप्रणवाय समीताय नमो नमः ॥२०१॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीरामायामिनेजसे । ब्रह्मानन्दरूपाय समीताय नमो नमः ॥२०२॥

इति नमस्काराष्टकमन्त्रः ।

नृत्यगीतादिवाद्यादिपुराणपठनादिभिः । राजेपचारैर्विर्लैः सन्तुष्टो भव राघव ॥२०३॥  
 विशुद्धज्ञानदेहाय रघुनाथाय विष्णवे । अन्तःकरणमशुद्धिं देहि मे रघुनन्दन ॥२०४॥  
 नमो नारायणानन भोगाय कृष्णनिधे । मामुद्धर जगन्नाथ योगान्तरसागरात् ॥२०५॥  
 रामचन्द्र महेश्वर शरणागतनपर । यदि मां सर्वलोकेश तापत्रयमहानलात् ॥२०६॥  
 श्रीकृष्ण श्रीहर श्रीग श्रीराम श्रीनिधे हरे श्रीनाथ श्रीमहाविष्णो श्रीगुप्तिह कृपानिधे ॥२०७॥  
 गर्भजन्मजराव्याधिघोरसंसारसागरात् । मामुद्धर जगन्नाथ कृष्ण विष्णो जनार्दन ॥२०८॥

श्रीराम गोविन्द मुहूर्द कृष्ण श्रीनाथ विष्णो भगवन्ममने ।

ग्रीडारिषड्दर्शनमहामयेभ्यो मां प्रादि नारायण विश्वमूर्ते । १०९॥

श्रीरामारघुन वधेश श्रीधरानन्द राघव । श्रीगोविन्द हरे विष्णो नमस्ते जानकीपते ॥११०॥

ब्रह्मानन्दकवित्तं त्वन्नामस्मरणं नृणाम् । त्वन्पदाचूतमद्भुतिं देहि मे रघुवल्लभ ॥१११॥

नमोऽस्तु नारायण विश्वमूर्ते नमोऽस्तु ते शाश्वत विश्वयोगे ।

त्वमेव विश्वं सचराचरं च त्वामेव सर्वं प्रवदति सन्तः ॥११२॥

नमोऽस्तु ते कारणकाण्डाय नमोऽस्तु कैवल्यकनकप्रदाय

ममो नमस्तेऽस्तु जगन्मयाय वेशान्तवेद्य नमो नमस्ते ॥११३॥

भगवान्, श्रीगुणाधाय, शक्ति, चिन्मयानन्दरूप और सीतापति राजका प्रणाम है । १८ ॥ भगवान्, श्रीरामकृष्ण चक्र, विशुद्ध ज्ञानदेहारी, सत् के साथ रामकी प्रणाम है । १९ ॥ भगवान् श्रीवासुदेव-  
 म्बर, विष्णु पूर्णानन्दरूप सीताके साथ रामकी प्रणाम है ॥ २०० ॥ भगवान्, श्रीरामभद्र, वेद्य  
 ( ब्रह्मा ) और सब लोक शरणदाता सीत, क हाथ रामकी प्रणाम है ॥ २०१ ॥ जो अनन्त तेजवारी भगवान्  
 रामचन्द्रजी हैं । उन ब्रह्मानन्दके एकमात्र रूपधारी सीतारु साथ रामकी प्रणाम है ॥ २०२ ॥ हे राघव !  
 मेरे नृत्य, गीत, वाद्य तथा पुराण पठन आदि सबमें राजाचित उपकारसे आप प्रसन्न हो । २०३ ॥  
 विशुद्ध ज्ञानरूप देह कारण करनेवाले श्रीगुणाधायका प्रणाम है । हे रघुनन्दन ! आप हमें अन्तःकरणकी  
 शुद्धि प्रदान करिए । २०४ ॥ हे नारायण ! हे अनन्त ! हे श्रीराम ! हे कृष्णनिधे ! आपको प्रणाम है ।  
 हे जगन्नाथ ! हमारा घोर संसारसागरे उद्धार करे ॥ २०५ ॥ हे रामचन्द्र ! हे महेश्वर ! हे शरणागत-  
 सत्वर ! हे सर्वलोकेश ! हम तापत्रयरूपी महानरमे बचाइए ॥ २०६ ॥ हे कृष्ण ! हे श्रीग ! हे श्रीराम !  
 हे श्रीनिधे ! हे श्रीनाथ ! हे महाविष्णो ! हे श्रीगुप्तिह ! हे कृपानिधे ! गर्भ, जन्म, जरा तथा व्याधिस्वरूप  
 घोर संसारसागरसे मुक्त उबारिए । हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जनार्दन ! ॥ २०७, २०८ ॥ हे श्रीराम !  
 हे गोविन्द ! हे मुहूर्द ! हे कृष्ण ! हे श्रीनाथ ! हे विष्णो ! हे भगवन् ! आपको नमस्कार है । हे नारायण ! हे  
 विश्वमूर्ति ! ग्रीडारिषड्दर्शनके महामयसे मेरी रक्षा करिए । २०९ ॥ हे श्रीराम ! हे अर्घुन ! हे योगेश ! हे  
 श्रीधरानन्द राघव ! हे गोविन्द ! हे हरे ! हे विष्णो ! हे जानकीपति, आपका नमस्कार है । ११० ॥ हे रघु  
 वल्लभ ! आपको नामस्मरण ब्रह्मानन्दक विज्ञानको उत्पन्न करता है । आप हम अपने चरणकमलकी सद्भुक्ति  
 प्रदान करिए ॥ १११ ॥ हे कारणोंके भी कारण ! आपको नमस्कार है । हे कैवल्यफल प्रदान करनेवाले उभो !  
 आपको प्रणाम है । हे जगन्मय ! हे वेशान्तवेद्य ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ११२ ॥ हे परमेश्वर !

नमो नमस्ते मरुताग्रजाय मनोऽस्तु वक्षप्रतिपालनाय ।

अनन्त यज्ञेय हरे सुहृद गोविन्द विष्णो भगवन्मुगरे ॥११४॥

श्रीवल्लभानन्त अगन्निवास श्रीराम राजेन्द्र नमो नमस्ते ।

श्रीजानकीकांत विशालनेत्र राजधिराज स्वयि मेऽस्तु भक्तिः ॥११५॥

तप्तजाम्बूनदेनैव निर्मित रत्नभूषितम् । स्वर्णगुप्तं रघुश्रेष्ठं दास्यामि स्वोदरु प्रभो ॥११६॥

हृषिकर्णिकामध्ये सीतया सह राघव । निवसन् रघुश्रेष्ठ सर्वेश्वरपतेः सह ॥११७॥

मनोवाक्यजनित कर्म यद्वा शुभाशुभम् । तन्मत्वं प्रीतये भूयान्नमो रामाय शक्तिने ॥११८॥

अपराधमहस्तापि किर्यतेऽहर्निशं मया । दामोऽयमिति मां मन्वा क्षमस्व रघुपुंगव ॥११९॥

नमस्ते जानकीनाथ रामचन्द्र महीपते । पूर्णानन्दस्वरूप त्वं गृह्णाण्यस्य नमोऽस्तु ते ॥१२०॥

एवं यः कुरुते पूजां बहिर्वा हृदयेऽपि च । सकृन्पूजनमात्रेण राम एव भवेन्नरः ॥१२१॥

किं पुनः सततं ब्रह्मण्येवं पूज्य स्थितो हि नः । सर्वान्कामानवाप्नोति चेह लोके परत्र च ॥१२२॥

एवं सुतीक्ष्ण ते प्रोक्तं यथा पृष्ठं त्वया मम । हृदये मानसीरुजाविधानं राघवस्य च ॥१२३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य सुतीक्ष्णाय मुनयेऽपस्तिना पुरा । यन्प्रोक्तं तन्मया सर्वं तव प्रोक्तं सविस्तरात् ॥१२४॥

शिष्याधुना बहिः पूजाविधानं च मयोच्यते । नर प्राणः समुन्धाप कृत्वा शीचादिकाः क्रियाः ॥१२५॥

स्नान्वा स्रष्टादिकं कृत्वा देवपूजां सप्तारमेत् । तीर्थे देवालये वाऽपि गोष्ठे पुष्पस्थलेषु च ॥१२६॥

नद्यास्तटे देवगोहे तुलसीमन्दिनी तथा । लिप्त्वा भूमिं गोमयेन ततो यवानि लेखयेत् ॥१२७॥

सितरक्तहरिपीतनीलकृष्णादिमयैः । नानावर्णैश्चित्रितानि तत्र पूजां सप्तारमेत् ॥१२८॥

हे एजडा प्रतिपालन करनेवाले । आपको नमस्कार है, नमस्कार है । हे अनन्त ! हे यज्ञेय । हे हरे ! हे सुकुन्द ! हे विष्णु ! हे मुरारे ! हे भावल्लभ ! हे अनन्त । हे अगन्निवास । श्रीराम ! हे राजेन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे श्रीजानकीकांत ! हे विशालनेत्र ! हे राज धिराज । आपसे मेरी भक्ति हो ॥ ११३-११५ ॥ तपाये हुए सुवर्णसे निर्मित और रत्नासे विभूषित यह सुवर्णगुप्त में आपको अर्पण करता हूँ । हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार कर ॥ ११६ ॥ हृदयरूपी कमलके बीच-बीच सीता तथा रामसे आपरणाके साथ उसपर बैठिए ॥ ११७ ॥ मन, वचन अथवा शरीरसे मेने जो शुभ वा अशुभ कर्म किया हो, वह सब आपकी प्रसन्नताका कारण बने । हे अनुवर्धारी राम ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ११८ ॥ हे रघुपुंगव ! रात-दिन मैं हजारों प्रकारके पत्तक करता हूँ । मुझे अपना दास समझकर आप क्षमा कर दें ॥ ११९ ॥ हे जानकीनाथ ! हे महीपते ! हे रामचन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे पूर्णानन्दस्वरूप । मैं आपको अर्पण देता हूँ, इसे आप ग्रहण करें ॥ १२० ॥ इस रीतिसे जो मनुष्य हृदयके भीतर या बाहर पूजन करता है वह केवल एक बारके पूजनसे साक्षात् राम हो जाता है ॥ १२१ ॥ फिर उसके लिए क्या कहना, जो रात-दिन उससे लीन रहता हो ! वह प्राणी इहलोक और परलोक, दोनोंकी अभीष्ट कामनाएँ प्राप्त कर लेता है । हे मुनीश्वर ! मुझे हमसे जैसे पूछा, उस प्रकार मैंने आपकी पूजाका सारा विधान कह सुनाया ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ श्रीरामदासन कहता - हे शिष्य ! इस तरह सुतीक्ष्ण मुनिके लिए भगवन्तः कृपिने उस समय जो विधान ब्रह्मण्येय था, सो मैंने विस्तारपूर्वक तुम्हें बतला दिया ॥ १२४ ॥ हे शिष्य ! अब मैं बाह्यपूजाका विधान बतला रहा हूँ । उससे आपको चाहिये कि प्रातःकाल उठे और शीचादि-से निवृत्त होकर स्नान संख्या आदि करे । फिर किसी तीर्थ, देवालय, गोक ला वा बंदिश स्थानमें देवपूजा प्रारम्भ करे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ ऊपर बताया है स्थानोंके सिवाय किसी नद्यावहनर, देवमन्दिर तथा तुलसीके पास गोबरसे जोरकर लफेद, लाल, हरे, पीले, नीले, काले, इस तरह नाना प्रकारके रंगोंसे चित्र-चित्रित पद्म बनाकर पूजन प्रारम्भ करे ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ एक आसन एक हजार आठ श्रीरामनामका बनता है । एक आसन आठ

अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामलिंगात्मकासनम् वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामलिंगान्मकासनम् ॥१२९॥  
 अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामभद्रासनं हि वा । वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामभद्रासनं शुभम् ॥१३०॥  
 बहून्यन्यानि शतशः सति लक्ष्म्यासनानि हि । तेषां मध्यादेकमेवामनं संस्थाप्य चित्रितम् ॥१३१॥  
 पीठोपरि कृतं वस्त्रं पद्मादिप्यपि वा कृतम् । आसनोपरि जानक्या राघवादीन्निवेशयेत् ॥१३२॥  
 आसने सर्वतोभद्रमध्ये पद्मोपरि न्यसेत् । सीतया राघवं रथ्यं वरविहामने धियम् ॥१३३॥  
 रामस्य पृष्ठभागे च लक्ष्मण स्थापयेत्ततः । रामस्य दक्षिणे पार्श्वे भरतं विन्यसेच्छुभम् ॥१३४॥  
 रामस्य वामपार्श्वे हि शत्रुघ्नं विन्यसेच्छुभम् । पुरतो रामचन्द्रस्य वायुपुत्रं तु विन्यसेत् ॥१३५॥  
 रामस्य वायुदिग्भागे सुग्रीवं स्थापयेत्ततः । ईशान्यां रामचन्द्रस्य विन्ध्यस्य च विभीषणम् ॥१३६॥  
 रामस्य दक्षिदिग्भागे विन्यसेद् भवं ततः । नैऋत्यां रामचन्द्रस्य जावन्तं तु विन्यसेत् ॥१३७॥  
 पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राग्दिक्केयाऽर्चने न्विद । सर्वशास्त्रेष्वेवमेव निर्णयः कथ्यते सुधीः ॥१३८॥  
 लक्ष्मणस्य करे देयं छत्रं मुक्ताविराजितम् । भरतस्य करे देयं चाभार रुक्ममण्डितम् ॥१३९॥  
 शत्रुघ्नस्य करे देयं न्यजनं चित्रितं शुभम् । हनुमानः करे देयं रामस्य पादुकाद्वयम् ॥१४०॥  
 सुग्रीवस्य करे देयं जलपात्रं मनोहरम् । करे विभीषणस्यापि देयं धुकुम्भुत्तमम् ॥१४१॥  
 देयं तपिलपात्रं च वालिनन्दनमन्करे । जावन्तः करे देयो वसुकोशो महत्तमः ॥१४२॥  
 नवायतनमेवं हि स्थापयेद्राघवस्थ च । अथवा पञ्चापतनं स्थापयेदामनोपरि ॥१४३॥  
 सीतया रामचन्द्रं च मध्ये पृष्ठे तु लक्ष्मणम् । भरतं सन्यपार्श्वे च शत्रुघ्नं वामपार्श्वके ॥१४४॥  
 पुरतो वायुपुत्रं च पूर्वोर्कहपचारकः एव संस्थापयेद्भक्त्या रामं भद्रासनोपरि ॥१४५॥  
 अथवा सीतया रामं मध्ये स्थाप्य ततः परम् । रामस्य पृष्ठे सीमित्रि रामात्रे वायुनन्दनम् ॥१४६॥  
 स्वार्थ्यं पूजयेद्भक्त्या रामं घृतशरासनम् । अथवा सीतया रामं लक्ष्मणं परिपूजयेत् ॥१४७॥

सी रामके नामसे अङ्कित करके बनाया जाता है । एक हजार आठ नामोंसे अङ्कित करके एक श्रीराम-भद्रासन बनता है । दूसरा एक सौ आठ नामोंसे अङ्कित करके श्रीरामभद्रासन बनता है ॥ १२९ ॥ १३० ॥  
 इसी तरह बहुतसे और भी छोटे-छोटे आसन बनते हैं । उनमेंसे एक-एक एक आसन बनाये ॥ १३१ ॥ इस आसनकी रचना वस्त्र बिसाकर पढ़पर करे । उसके ऊपर जानकी तथा राम आदिको बैठाये ॥ १३२ ॥  
 सर्वतोभद्रके मध्यमें बने हुए कमलके ऊपर रहने एक सुन्दर गिरासनपर राम तथा सीताको बिठाये ॥ १३३ ॥  
 रामके पीछे लक्ष्मणको स्थापित करे । रामके दाहिने बगल भरतको स्थापित करे और रामके पार्श्वमें शत्रुघ्नको बिठाये । रामचन्द्रजीके आगे हनुमानजीको स्थापना करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ रामके वायव्य कोणमें सुग्रीवकी स्थापना करे । ईशानकोणमें विभीषणको स्थापित करके अग्निकोणमें अक्षरको तथा नैऋत्यकोणमें चाम्बवान्की स्थापना करे ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ पूज्य और पूजक इन दोनोंके लिए प्राची दिशा ही पूजन करनेमें श्रेष्ठ है ।  
 षष्ठितोका कहता है कि समस्त शास्त्रोंमें इसी प्रकारका निर्णय किया गया है ॥ १३८ ॥ लक्ष्मणके हाथमें मोतियोंसे गुसम्बित छत्र दे । भरतके हाथमें सुवर्णसे पण्डित चमरा दे ॥ १३९ ॥ शत्रुघ्नके हाथमें चित्रित न्यजन ( पत्ता ) दे और हनुमान्जीके हाथमें रामकी दोनों पादुकाएँ दे ॥ १४० ॥ सुग्रीवके हाथमें मनोहर जलपात्र और विभीषणके हाथमें उत्तम गीगा दे ॥ १४१ ॥ अक्षरके हाथमें सुन्दर ताम्बूलपात्र दे, चाम्बवान्के हाथमें कपड़ोंकी पेटी दे । इस तरह श्रीरामचन्द्रजीके नवायतनकी स्थापना करे ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ मध्यभागमें सीताके साथ रामचन्द्रजीको बिठाये, पीछे लक्ष्मणको, दाहिने बगल भरतको बायें बगल शत्रुघ्नको तथा सामने हनुमान्जीको पूर्वोक्त उपचारोंके साथ बिठाये । इस तरह सुन्दर आसनपर रामकी स्थापना करे । इसे ही रामावायतन कहते हैं ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ अथवा सीताके साथ-साथ रामको मध्यमें बिठाकर रामके पीछे लक्ष्मण और आगे हनुमान्जीकी स्थापना करके अनुवर्ती रामका पूजन करे । अथवा सीताके साथ राम और लक्ष्मणकी पूजा

सीतानुगौ विना पूजा रामस्यैकस्य नाचरेत् । कुता वेदिविदकभी सा भवदत्र न संशयः ॥१४८॥  
 नवायनपूजा सा भेदा तेषां शुभमदा । या पूजायतनी पूजा श्रेया सा मध्यमाऽत्र हि ॥१४९॥  
 त्रिदैवत्या तु या पूजा कनिष्ठा सा निमग्नये । अनिकनिष्ठा पूजा सा द्विदैवत्या स्मृता हि सा ॥१५०॥  
 कोदण्डं वामहस्ते च तृतीरं वामपार्श्वके । निजनामाद्भितं बाणं दधानं दक्षिणे करे ॥१५१॥  
 एवं भीरावर्चं स्थाप्य ततः पूजां ममारमेद् आत्मनो वामभागे च अलङ्कुर्मन्त्रिधाय हि ॥१५२॥  
 आत्मनो दक्षिणे भागे पूजापात्रं निवेशयेत् । आत्मनः पुरतः पादं स्थापयेद्विष्णुर्न वरत् ॥१५३॥  
 प्राङ्मुखः सुखमासीनो धृतपद्मासनः शुचिः मौनी श्रुताश्रुतमोमालो निश्चलमानसः ॥१५४॥  
 बद्धप्रधिष्ठितः शुद्धवस्त्रो पृथग्विभक्तः । बुद्धदागतीमृदुचिलको मुद्रिकांकितः ॥१५५॥

नन्वादी गणगजं च निधिवारादि कीर्तयेत् ।

धूमिशुद्धिं भूतशुद्धिं न्यासी कृत्वा यथाक्रमम् । शोषणीपात्रमेकं तु जलपूर्णं प्रकाशयेत् ॥१५६॥  
 दूर्वागन्धाक्षतपुष्पैस्तन्पात्रं परिपूरयेत् । प्रोक्षयेत्तेन नीरेण पूजाद्रव्यं महान्मना ॥१५७॥  
 पाषाणार्चनार्थं तु शीणिपात्राणि विन्यसेत् । गणगजं पूजयित्वा सम्पूज्य हरुणं ततः ॥१५८॥  
 पञ्चजन्यं पूजयित्वा मोक्षयेत्तज्जलैरपि पूजाद्रव्यं पूर्ववत् स्थापमानं च धूर्तं तथा ॥१५९॥  
 चेतुश्चक्रकवधिराजमुद्राः प्रदर्शयेत् शैली दारुमयी लंही लेखा लेख्या च मैकरी ॥१६०॥  
 मनोमयी मणिधरा प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता । अथ स्थापयेद्दामचन्द्रं सर्गात् पुनः स्थितम् ॥१६१॥  
 द्विध्वजं चतुर्भोर चापबाणधृतायुधम् । दिव्यलङ्कारमयं च यौनकीशेखरमयम् ॥१६२॥  
 स्तनद्वयं तश्चतुर्न भस्मेन समन्वितम् । हनुमन्सेवितपद्मं सिद्धमनविराजितम् ॥१६३॥  
 स्थितछत्रसमायुक्तं दिव्यकामरवीश्रितम् । निशीपणममायुक्तं सुग्रीवपरिवर्धितम् ॥१६४॥

करे ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ सीता और लक्ष्मणक बिना मकेल रामको पूजा कभी न करे यदि ऐसा पूजा का जाता है तो बहू पाप निम्न करनेवाली ही हुआ करती है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १४८ ॥ नवायनपूजा सबसे श्रेष्ठ और पञ्चायतन पूजा मध्यम होती है ॥ १४९ ॥ त्रिदैवका पूजा कनिष्ठ कहा जाता है । यह पूजा तो अत्यन्त कनिष्ठ होती है जिसमें केवल दत्तात्रेयको पूजा की जाती है ॥ १५० ॥ जिनके बाव हाथों में धनुष और बाण बल तरकश है, अपने नामसे अद्भुत बाण दाहिने हाथ में है ॥ १५१ ॥ इस तरहके रामचन्द्रको स्थापना करके पूजा प्रारम्भ करे । पूजा करते समय वाममायमें एक कलश में अन्नपत्र रख लेना चाहिए ॥ १५२ ॥ अपने दाहिने दक्ष पञ्चायन रखना चाहिए और बाएँ विष्णु पाद रखना उचित है । १५३ ॥ ज्ञानको चाहिए कि ज्ञानव्यप्रेक्षक पूर्वकी ओर मुख करके पश्चात्तमसे बड़े ओर निम्न अन्न करके गुल्फोंकी माला लिये, शिखाम प्रणि दिये, हाथोंमें पवित्री तथा शरीरमें पवित्र वस्त्र धर्य किये, द्वारकाकी शृद्ध मूर्तिकाका तिलक लगाकर ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ पहले गणेशका प्रणाम करे । फिर लक्ष्मण निधिवार आदिका उच्चारण करके धूमिशुद्धि, भूतशुद्धि तथा अन्नरास करवाव करके शोषणीपात्रमें अन्न करे । दूर्वा, गन्धाक्षत, पुष्प वदि उसमें डाले और पञ्चणीपात्रके जलसे पास रखी हुई पूजनसामग्रियोंका प्रोक्षण करे । पाद, अर्घ्य एवं आचमनके लिये सामने तीन पात्र रखे । फिर गणेशजी, दत्तात्रेय पाञ्चजन्य गजका पूजन काके उसके जलसे अपना, पूजन-सामग्री तथा गुल्फोंका प्रोक्षण करे ॥ १५६-१५८ ॥ इसके अनन्तर भुवनी, जल, चक्र, गरुड एवं राममुद्राका प्रदर्शन करे । परशुरकी, काष्ठकी, चूना-ईंटकी रङ्गवे कनी, चित्रकारी का हुई, शालूकामरी, मानसी और मणिमयी के अठ घण्टारकी प्रतिमाएँ होती हैं । ऊपर कलसादी क्रियाएँ कर लेनेके बाद उपवासकी चाहिए कि सीताके साथ बंटे हुए इस प्रकारके रामका ध्यान करे जिनके दो भुजाएँ हैं, जो तृतीर तथा चतुर्विंशत बादि विविध प्रकारके शस्त्र धारण किये हैं, उनके शरीरमें दिव्य अलङ्कार पड़े हैं और वे काला कीर्तय दम्ब धारण किये हैं ॥ १६०-१६२ ॥ लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न उनके साथ हैं, हनुमान् उनके चरणकी सेवा कर रहे हैं और राज वस्त्र सिंहासनपर बंटे हैं ॥ १६३ ॥ ऊपर लपेट छत्र लगा है, दिव्य चक्र चल रहे हैं, विनीवय और सुपीर

जाम्बवता तमायुक्तमङ्गदेन परिष्ठुतम् अयोध्यावासिनं राममेवं हृदि विचिंतयेत् ॥१६५॥  
 सीताराम समागच्छ मद्रे त्वं स्थिरो भर गृहाण पुत्रो महर्षां कुतमावाहन त्वं ॥१६६॥  
 हिरण्यमयं रत्नयुक्तं नानाविधविचित्रितम् मिहामनं स्रवस्त्र च क्षामनार्थं ददामि ते ॥१६७॥  
 चन्दनागुरुसंघु कर्जलैस्तीर्थसमुद्भवैः पादं गृहाण धीराम मया दत्तं प्रमोद मे ॥१६८॥  
 पुष्करादिषु तीर्थेषु गङ्गादिषु सरिषु च । पचोय तन्मयाऽऽर्जितं दत्तमर्घ्यं गृहाण भोः ॥१६९॥  
 सुगन्धदामितं शोभं बहुतीर्थसमुद्भवम् । आचमनार्थमार्जितं गृहाण त्वं सुरेश्वर ॥१७०॥  
 हरिद्राकुङ्कुमैर्युक्तं सुगन्धद्रव्यमिश्रितम् । सुगन्धस्नेहसमिश्रमुद्भूतमवाप्तुं ते ॥१७१॥  
 कमधेनूद्भवं क्षारं नन्दिन्या दधि सुन्दरम् । कपिलाया घृतं पेषु मधु विष्णाद्रिषमवम् ॥१७२॥  
 सितोषलसमानाम् सिन्धुपुक्तं मनोहरम् । पश्चामृतं मयाऽर्जितं स्नानार्थं त्वं गृहाण भोः ॥१७३॥  
 गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती । नर्मदा सिन्धुकावरी सरयु गण्डकी तथा ॥१७४॥  
 तात्रपर्णी भीमरथी कृष्णा बेनी महानदी । गोमती सागराः सप्त पयोध्या भवनाशिनी ॥१७५॥  
 पूर्णा तारी तुङ्गभद्रा क्षिमा वेगवती तथा । पिनाकी प्रवरा सिन्धुकेणा सार्द्धं त्रयो वदाः ॥१७६॥  
 श्रुतमाला कुतमाला मही निक्षेपिका तथा । पयोध्नी प्रेमगङ्गा च चित्रगङ्गा करानदी ॥१७७॥  
 नारा चर्मण्वती वृद्धा बज्ररा च पुनः पुनः । सिन्धुक्षीरा च वैकुण्ठाऽलकनन्दा च वारणा ॥१७८॥  
 इत्यादिसर्वतीर्थेषु पचोयं वतंते शुभम् । तन्मयाऽर्जितममयाश्च स्नानं कुरु रघून्तम ॥१७९॥  
 पुनराचमनं रम्यं सर्वतीर्थसमुद्भवम् । गृहाण रघुनाथ त्वं दीयते यन्मया त्वं ॥१८०॥  
 सुवर्णवस्तुमिश्रितं पीतकीशेयसमवम् । वस्त्रपुष्पं प्रदास्यामि गृहाण रघुनाथक ॥१८१॥  
 शिदं हेयमयं रम्यं नववस्तुसमुद्भवम् । मलप्रन्थिसमायुक्तं मलयुग्मं प्रगृह्यताम् ॥१८२॥

भाग्ये लहे नञ्चना कर रहे हैं ॥ १६४ ॥ जाम्बवतके साथ साथ अङ्गरही लहे स्तुति कर रहे हैं । हम प्रकार  
 अयोध्यावासी रामका मनमें ध्यान करे ॥ १६५ ॥ और कहें—हे सीताराम ! आप मेरे सामने आकर बैठिए ।  
 मैं आपका पूजन करूँगा । मैं आपका आवाहन करना हूँ । आप आइए और मेरी पूजा स्वीकार करिए ॥ १६६ ॥  
 सुरणका बना हुआ तथा रत्नवर्चित हुआ मेसे चित्र-विचित्र मानूस पढनेवाला और सुन्दर वाजस वर्धित सिंहासन मैं  
 आपको बैठनेके लिए देता हूँ ॥ १६७ ॥ चन्दन और पुष्पसे मिश्रे हुए तीर्थोंके जलका पात्र बनाकर आपको  
 देता हूँ । इसे आप स्वीकार करें और मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ १६८ ॥ पुष्कर आदि तीर्थों तथा गङ्गा आदि नदियों-  
 से लये जलका अर्घ्य बनाकर मैं आपको देता हूँ, इसे स्वीकार करिए ॥ १६९ ॥ सुगन्धों कासित एवं कितने  
 ही तीर्थोंसे लाया हुआ अल मैं आपको आचमनके लिए देता हूँ । हे सुरेश्वर ! इस आप गृहाण कीजिए ॥ १७० ॥  
 हरिणी कुम्कुम और बहुतेसे सुगन्धद्रव्योंसे मिश्रित तथा सुगन्धमय तैल अदिते मित्रा हुआ जल मैं आपको  
 स्नान करानेके लिये देता हूँ ॥ १७१ ॥ कामधुक्ता दूध नन्दिनी गौका वही, नन्दिनी गौका घृत विष्णु-  
 पर्वतसे उत्पन्न उत्तम मधु ॥ १७२ ॥ स्रष्ट पत्थरके समान कमवती हुई चीर्नसे मिल्य पंचमृत्त मैं  
 आपको स्नान करनेके लिये देता हूँ । इसे आप गृह्य करिए ॥ १७३ ॥ गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती,  
 नर्मदा, सिन्धु, कावरी, सरयू, गण्डकी, तात्रपर्णी, भीमरथी, कृष्णा, बेनी, महानदी, गोमती, सातों  
 सागर, भवनाशिनी, पयोध्याः पूर्णा, तारी, तुङ्गभद्रा, क्षिमा, वेगवती, पिनाकी, प्रवरा, सिन्धुकेणा, स दे तीन  
 नद, श्रुतमाला, कुतमाला, मही, निक्षेपिका पयोध्नी प्रेमगङ्गा, चित्रगङ्गा, करानदी, नारा, चर्मण्वती, वृद्धा,  
 बज्रजरा, सिन्धुक्षीरा, वैकुण्ठा अलकनन्दा, वारणा इत्यादि ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ नदियोंमें जो पवित्र जल विद्यमान  
 है वह मैं आज यहाँ से लाया हूँ । हे रघून्तम आप इसीसे स्नान कीजिए ॥ १७६ ॥ सब तीर्थोंका पवित्र जल  
 मैं आपको पुनराचमनके लिये दे रहा हूँ । इस आप गृह्य कीजिए ॥ १८० ॥ सुवर्णके मूत्रोंसे बना तथा चित्र-विचित्र  
 दोखनेवाला पीत कोतय वस्त्र मैं आपको दे रहा हूँ, इसे स्वीकार करिए ॥ १८१ ॥ कुठ, सुवर्णमय,



वृष्टं कुण्डले रम्ये सुद्रिक्ताः कङ्कणे तथा । मृपूरे रत्ननामनाः केयूरे रत्नमण्डिते ॥१८३॥  
 हस्तादीन्वामान् दिव्यान्स्वर्णमाणिक्यनिर्मितान् । स्वर्णं च मयानीलमङ्कशान् गुह्यान् मोः ॥१८४॥  
 छत्रं सम्पन्नं रम्यं चामरद्वयसंयुतम् । स्वर्णं च मयाऽऽनीतं मूर्ध्नि च त्रिपुञ्जयन ॥१८५॥  
 सुगन्धं चदनं दिव्यं कुर्यात्पुरुषार्थमश्रयम् । रक्तचदनमयुक्तं गृह्यान् च मयाऽर्पितम् ॥१८६॥  
 अश्वगाधं वरान् दिव्यान्मुक्ताफलनिर्मितान् । कम्बूनां कुङ्कुमेनाञ्जनं गुह्यान् परमेश्वर ॥१८७॥  
 मालादीनि सुगन्धीनि मालाद्यादीनि वै प्रभो । मयाऽऽहूयानि पूजार्थं गुह्यान् रघुनाथक ॥१८८॥  
 वनस्पतिरमोद्भूतं गन्धं च गन्धमुल्लसम् । आग्रय सर्वदेवानां यत्र गृह्यान् राघव ॥१८९॥  
 भाज्यं विनिर्मितं युक्तं वह्निना योजिनं मया । दाप्यं गुह्यान् यो मया त्रैलोक्यनिर्दिशयद् ॥१९०॥  
 भक्ष्यमर्चने लघुक्तं स्थाय्यमधुना निवेद्यम् । अर्चयामधुन युक्तं नैवद्यं प्रणिगृह्याम् ॥१९१॥  
 मालादीनि पुष्पकानि फलानि विविधानि च । ममार्तिनां ते राम गृह्यान् रघुनन्दन ॥१९२॥  
 पूगीफलमवायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् । ज्वरीयमुष्टययुतं तान् वन स्त्रोत्रकं प्रभो ॥१९३॥  
 हिरण्यं मल्लसम्पन्नं वह्निनेत्रसमुद्भूतम् । दाप्यते दक्षिणार्धे ते गृह्यान् रघुनन्दन ॥१९४॥

इत्थं मया पण्डितकोपचागः सविस्मरं ते कविताः शिशुश्च ।

आशदनाद्यश्च हि दक्षिणांनः शेषा च पञ्चमस्तुतां हि वक्ष्ये ॥१९५॥

रचयितुमवायुक्तं कपिलाऽऽजयविमिश्रितम् । वह्निना योजिनं रम्यं गृह्यान् त्वं निरञ्जनम् ॥१९६॥  
 आती चंपकवन्दारी केरकी तुलसी तथा । रमनो मुनिकुन्दे च दानं त्वत्ति वै नव ॥१९७॥  
 एभिर्नवविधैः पुष्पैर्मन्त्रपुष्पाणि राघव । मयाऽर्पितानि गृह्यान् प्रसीद तमेश्वर ॥१९८॥  
 यानि कानि च पद्मानि जन्मान्तरकृतानि च । तानि सर्वाणि नम्यन् प्रदक्षिणं पदे पदे ॥१९९॥

रम्यं नवीनं यूनसे बना तथा । अश्वगाधियुक्तं गन्धमुल्ल मे आपकी देता हूँ । इसे आप स्वीकार करिये ॥ १८३ ॥  
 मृपट, रत्न कुण्डल, मुद्रिका, कंकज, नूपुर, मणानिर्मित ज्वीरको माला, रत्नमण्डित केयूर हस्तार्थ परम रम्य,  
 दिव्य, स्वर्ण और माणिक्य से बन अलंकार मे आभूषण के लिए लाया हूँ । इन्हें आप ग्रहण करिये ॥ १८४ ॥ १८५ ॥  
 अश्वज और चमर समुक्त छत्र मे आपके लिए लाया हूँ । हे त्रिपुञ्जयन, इसे आप स्वीकार करिये ॥ १८५ ॥  
 सुन्दर गन्धयुक्त, दिव्य कुर्यात् पुरुषार्थमिश्रित तथा माला चन्दन मिलित चन्दन मे आपके लिए लाया हूँ जो  
 आप ग्रहण करिये ॥ १८६ ॥ आनाके टुकड़ों से बनाया हुआ कम्बूरा और कुङ्कुममिश्रित अक्षत मे आपकी  
 समर्पण करता हूँ, इसे आप ग्रहण करें ॥ १८७ ॥ माला आदि सुगन्धित पुष्पक बनायी माला मे आपकी  
 पूजाके निमित्त लाया हूँ, हे रघुनाथक । इस आप ग्रहण कीजिए ॥ १८८ ॥ वनस्पतिरम्य रससं उत्तम, मन्त्र-  
 युक्त, उत्तम सुगन्धकामा और मल दानाओं के मुँहसे बोग्ध छत्र आपके लिए लाया हूँ । इसे ग्रहण करिये  
 ॥ १८९ ॥ बीसे बीसी तीन बलियोगने चंदकका लाया हूँ । हे तीनों लोकोंका अम्बकार दूर करनेवाले  
 राम ! इसे आप ग्रहण करिये ॥ १९० ॥ ज्वरीय और अश्व, द्वय, यो, चमर तथा अधुमिश्रित नैवेद्य मे  
 आपकी अर्पण करता हूँ, इसे ग्रहण करिये ॥ १९१ ॥ आश आदि खुर पके अन्ने अन्नफल मे आपकी  
 अर्पण करता हूँ, इसे ग्रहण करें ॥ १९२ ॥ गुह्यान् युक्त मानके पत्तोंस आइ। हुआ और करके ममालासे  
 युक्त ताम्बूल आप ग्रहण करें ॥ १९३ ॥ हे रघुनन्दन ! अक्षय उत्तम तथा अग्नि के लोकोसे आपमान लक्षण  
 से दक्षिणाके लिए आपकी देता हूँ, इसे आप स्वीकार करें ॥ १९४ ॥ हे वत्स ! इस तरह मैने विस्तारपूर्वक  
 आवाहनसे दक्षिणा तकके सोइत उपचारोंको कह सुनाया । अब पूजाविधि माने अतन्त्रता हूँ ॥ १९५ ॥  
 दाप्यं अर्पितगीसे युक्त, कविता तीनों पदोंसे मिश्रित पञ्च अग्निसे लपेटित रम्य वीराजय मे आपकी अर्पण  
 करता हूँ जो स्वीकार करिये ॥ १९६ ॥ मृदु, चम्पा, चन्दार, केतकी, तुलसी समकक, लम्पट और दो  
 प्रकारके मुनिकुन्द इन नौ पुष्पोंका मन्त्रयुक्त मे आपकी देता हूँ । हे परमेश्वर ! इसे स्वीकार करिये और मेरेपुत्र  
 प्रसन्न होइए ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ जन्मान्तरमें भी मैने जित किन्हीं पापोंको दिया हूँ, वे गढ़ हो जायें ।

उरमा शिष्या दृष्टया मनसा वचसा तथा । पञ्चार्थां कराम्यां ज्ञानुभ्यां साष्टांगञ्च नमोस्तुते ॥२००॥  
 आवाहनं न जानामि न जानामि विमर्जनम् । पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर ॥२०१॥  
 मंत्रहानं क्रियाहीनं भक्तिहीनं रघून्म । यत्पूजितं सदा देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२०२॥  
 एवं श्रीरामचन्द्रस्य भक्त्या कार्यं प्रपूजनम् । निरन्तरं तथा कार्यं नवम्यां च विशेषतः ॥२०३॥

विष्णुदास उवाच

गुरो भवविधैः पुष्पैस्त्वया पुष्पाञ्जलिः कथम् । निवेदितोऽत्र रामस्य पूजने तद्ददस्व माम् ॥२०४॥  
 त्वत्तो नानाविधाः पूजाः मुमुक्षां च मया श्रुताः । पूर्वं तस्मै श्रुते नैव नवपुष्पाञ्जलिः कदा ॥२०५॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः मृगु । आसीत्पुनः द्विजवरः कावेर्यां उत्तरे तटे ॥२०६॥  
 रामनाथपुरे कश्चित्सुन्दराख्योऽतिभक्तिमान् । तस्यामश्वत्थ पुत्राश्च रामचित्तनतपस्याः ॥२०७॥  
 चन्द्रोऽतिचन्द्रश्चन्द्रामचन्द्रास्यश्चन्द्रशेखरः । चन्द्रांशुजितचन्द्रश्च चन्द्रचूडोऽष्टमः स्मृतः ॥२०८॥  
 रामचन्द्रश्चाति नव गृहामाश्च नव स्मृताः । एकदा ते स्वयोध्यायां राम भक्तकुपाकम् ॥२०९॥  
 प्रष्टुं यद्युधैप्रभासे तस्मिन्नेव मरुतटे तावत्तत्र ममायाता नानादेशांतरस्थिताः ॥२१०॥  
 जलोधानां कोटयश्च नानावाहनवस्थिताः । सरस्वाती रामकीर्त्यै हि चैवस्नानसाधनान् ॥२११॥  
 तेषां समागतानां हि समदर्शतत्र वै सभूत् । समदर्शद्रामचन्द्रस्य तेषां नाभूच्च दर्शनम् ॥२१२॥  
 तदा ते मन्त्रयायास्तुर्नव विप्राः परस्परम् । कथं श्रीगणेशस्यात्र समर्पे दर्शनं भवेत् ॥२१३॥  
 खेजातं त्वनियन्त्रेण तर्हि तस्मिन् दर्शनम् यावत्स्वस्थेन मनसा राघवो न निरीक्षितः ॥२१४॥  
 तावत्तदर्शनं नैव तुष्टिं नो जनयिष्यति । तदा चन्द्रोऽत्रोज्ज्वलेष्टस्त्वत्रैव रामदर्शनम् ॥२१५॥

एक-एक पग चलकर मैं आपको प्रदक्षिणा करता हूँ ॥ २०० ॥ हृदयसे, मस्तकसे, दृष्टिसे, मनसे, वचनसे, हाथोंसे, पैरोंसे और धूलियोंसे मैं साष्टांग प्रमाण करता हूँ ॥ २०० ॥ हे परमेश्वर ! मैं आवाहन करना जानता हूँ, मैं विमर्जन करना आता हूँ । पूजन करना भी मैं नहीं जानता । यदि कुछ भ्रम हुआ हो तो क्षम्यता कर ॥ २०१ ॥ हे रघून्म ! मंत्रसे, क्रियासे और भक्तसे हीन मैंने जो कुछ पूजा की है हे देव ! वह सब परिपूर्ण हो जाय ॥ २०२ ॥ इस तरह निरन्तर भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिए और नवमीको विशेष करके ऐसा करना उचित है ॥ २०३ ॥ विष्णुदासने कहा-हे गुरो ! इस पूजनके प्रसङ्गमें आपने भी प्रकारके फूलोंसे पुष्पाञ्जलि देनेकी विधि वशी व्रतशायी है ? सो आप हमसे कहिये ॥ २०४ ॥ अवनक आपने मुझे बहुतसे देवताओंका विविध पूजन बताया, किन्तु उनमें नवपुष्पाञ्जलि आपने कहीं नहीं बतलायी ॥ २०५ ॥ आरामदासने कहा-हे शिष्य ! मुझे बहुत अच्छी प्रश्न किया है, सो तावत्तत्र मन होकर सुनो । बहुत दिनोंकी बात है, कावरी नदी के उत्तर तटपर रामनाथपुरम् अति भक्तिमान् सुन्दर नामका एक ब्राह्मण रहता था । वह रामका ध्यान करता था । रामका ध्यान करनेवाले उस भक्तके लीं बेटे थे ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ चन्द्र, अति-चन्द्र, चन्द्राभ, चन्द्रास्य, चन्द्रशेखर, चन्द्रांशु, जितचन्द्र, चन्द्रचूड और गृहाम रामचन्द्र ये उन लड़कोंके नाम थे । एक बार चैत्रके महान्तमे वे नवों लड़के भगवान् रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिये अयोध्या गये । वहाँ पहुँचकर वे सरयूके तटपर पहुँचे । तब तब खनक देशके रहनेवाले कराड़ो मनुष्य चैत्रमास स्नानके लिये अनेक प्रकारकी सकारियोंपर चढ़कर वहाँ आ पहुँच ॥ २०८-२११ ॥ उन भाये हुए लोगोकी भारी भीड़के कारण वे नवों ब्राह्मणकुमार रामचन्द्रजीका दर्शन नहीं पा सके ॥ २१२ ॥ उस समय उन्होंने परस्पर मंत्रणा की कि इस प्रकारका भाइय रामचन्द्रजीका दर्शन कैसे हो ॥ २१३ ॥ बहुत प्रयत्न करनेपर यदि थोड़ा-सा दर्शन हो भी जाय तो जबकि अच्छी तरह उन्हें न देख सकूँ तो दर्शनसे लाभ हा क्या ? ॥ २१४ ॥ उस क्षणिक दर्शनसे हमें संतोष नहीं होगा । उनमेंसे ज्येष्ठ ज्ञाता चन्द्र बोल कि हमलोग तीव्र तपस्या करके यहाँ ही रामचन्द्रजीका

वयं लोकेषु तपसा प्राप्स्यामस्तुभ्यर्त्ता वयः । तच्चन्द्रवचनं श्रुत्वा पुनः प्रोत्तुर्द्विजोत्तमाः ॥२१६॥  
 एककाले तु सर्वेषां तप्तमन्तरेण हि । कम्पादौ रामचन्द्रश्च दास्यत्यत्र प्रदर्शनम् ॥२१७॥  
 कस्य दास्यति एवाञ्च निर्विर्षं तद्भविष्यति । कस्यश्मासु रडा भक्तिविदिता सा भविष्यति ॥२१८॥  
 एनं परस्परं लोक्त्वा ते सर्वे द्विजसूनुवः । त्यक्तधारा वायुमश्वार्थकाने तन्परेण हि ॥२१९॥  
 गत्वाऽतिदूरं संमर्दात्तेषुः सर्वे तपो महत् । तन्मर्षं गच्छन्ते श्रुत्वा सर्वमाधी जगन्प्रभुः ॥२२०॥  
 तेषां स्वदर्शने दानुं नवमे दिवसे मुदा । मंत्रायामास धीरासः स्वर्गं चित्ते समास्थितः ॥२२१॥  
 एककाले तु सर्वेषां यदि दास्यामि दर्शनम् । तर्ह्येव तुष्टिः सर्वेषां भविष्यति न वैकहि ॥२२२॥  
 अनोऽद्याहं करिष्यामि न वरूपाणि निश्चयान् । एव संमन्य धीरासो लक्ष्मण प्राह सादृशम् ॥२२३॥  
 शिविकामानयस्वाद्य बहिर्गच्छान्पहं मुदा । तथेति गन्वाकथेन शिविकी लक्ष्मणश्च ॥२२४॥  
 आनयामास दूतैः स राघवाय न्यवेदयन् । तदा भित्तामकाद्रामधोर्चार्य शिविसास्थितः ॥२२५॥  
 बन्धुमित्रविर्येषु सुदन्मित्रादिभिर्दूतैः । वाहे. शनैर्योष्याया यथा रामो मुदान्वितः ॥२२६॥  
 ततस्तं जनसंघं समनिकम्ब राघवः । चकार मय रूपाणि दान्मनः परमेश्वरः ॥२२७॥  
 शिविकाःसुहृदोऽलन्तान्निमित्रान्महाह्वानान् । चकार मया राघवन्दो म भुण्मन्ममः ॥२२८॥  
 निरीक्षितुं मयायाता नात्मन् तान् जनानपि । चकार नवधा रामस्तद्वृत्तमिदमवत् ॥२२९॥  
 ततस्तैस्तैर्जनैर्मित्रैर्नरैर्वन्धुजनैः सह । नवानां भूसुराणां हि यथान्ये स्मृतयः ॥२३०॥  
 ततस्ते भूसुराः सर्वे तदैकमवये प्रभुम् । आत्मनः पुरतो गम्य ददृशुर्न पृथक् पृथक् ॥२३१॥  
 तेषुष्टमनसः सर्वे प्रणेषू रघुनन्दनम् । शि चैकाग्र्यस्ततो रामस्त्ववकस्य पृथक् पृथक् ॥२३२॥  
 नवरूपधराः सर्वान्विधानालिख सादृशम् । उन्मुक्तपुरया राचा प्रमत्तमुत्पङ्कजाः ॥२३३॥

दर्शन वा लेने । चन्द्रको इस रागको मुनिकर वे सब बाल उठे कि गरि हय सब भाई एक साथ लगरव करने लग जायें तो रामचन्द्रजी किसको पत्र ले लेंगे ? ॥ २१५-२१७ ॥ ओर किसका सबसे पहले ? इससे बहु बात भी बात हो जायगी कि हमसे किस्की भक्ति है ॥ २१८ ॥ इस तरह परस्पर बातचीत करके वे सब बाहुणबालक उस पीठमें दूर जा बैठे और म जन त्यागकर केवल जन पंत हुए एकाग्र मनसे तपस्या करने लगे । सारे सप्ताहके पाछा तया नितिल जगनके प्रभु रामचन्द्रसे यह बात छिपी नहीं रहती ॥ २१६ ॥ २२० ॥  
 नवें दिन उन्होंने अपनी सभामें उनको दर्शन देनेके विषयमें सम्बन्ध की ॥ २२१ ॥ इसका बाद भण भर अपने मनमें विचार किया कि यदि उनकी एक ही समदम दर्शन न हुआ तो वे मगुष्ट नहीं होने ॥ २२२ ॥ इस कारण आज मैं नी रूप धारण करूँगा । ऐसा निश्चय करके उन्होंने लक्ष्मणसे सादृशपूर्वक कहा ॥ २२३ ॥  
 हे लक्ष्मण ! पालकी मंत्राओं । आज मैं बाहर घूमने जाऊँगा बहुत अच्छा कह तथा तुमो द्वारा लक्ष्मणने पालकी बैगवाकर रामचन्द्रजीको इसकी खबर दी । सब मित्रात्मने उत्तरकर राम पालकी में बैठे और भार्यों, मन्त्रियों, सम्बन्धियों तथा मित्रोंके साथ घारे घारे जगोदरासे बाहर निकले ॥ २२४-२२६ ॥ उस विशाल भीड़को पत्र करके रामचन्द्रने नी रूप धारण किया ॥ २२७ ॥ भण भणके भीतर रामने पालकी, लक्ष्मणों, सब भाई, दूत तथा बाहुन समेत सब मित्रोंको नी रूपमें परिगत कर दिया ॥ २२८ ॥ केवल अपने तथा अपने भारियों ही की उन्होंने नी सका रही बगली, बहिक जो लोग वहाँ दर्शन करने आये थे, उनको भी उन्होंने नी संलग्नमें विभक्त कर दिया । यह एक विचित्र बात हुई ॥ २२९ ॥ उनके अनन्तर उन वज्रधरों, मित्रों दूतों, वन्धुमनों तथा बाहुणोंके जाने-आने रामचन्द्रजी बल्लन लगे ॥ २३० ॥ फिर गया था, उन नवों बाहुणोंने एक ही समयमें प्रभुको अपने-अपने भागे लड़े देखा ॥ २३१ ॥ इससे प्रमत्त होकर उन्होंने रागको प्रणाम किया । इसके बाद वे नवों राम अपनी-अपनी बालकियोंसे उत्तरे और उन बाहुणोंको गलेसे लगाया । फिर मोड़ी-मोड़ी रागोंमें उनसे बोले ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ उन्होंने कहा—हे बाहुणों ! आप लोगोंने क्या कह किया है ।

मो विप्रः श्रमिता यूयं युष्माकं कृतनिश्चयम् । बुद्ध्वा ययं यूयकं रूपैर्जाताः स्मो नवघाट्य हि ॥२३४॥  
 एकाकालेऽत्र तेषां सर्वेषां दर्शनं निजम् । कस्य देव तु पूर्वं हि पश्चान्कस्य प्रदीयताम् ॥२३५॥  
 इति सम्मन्त्र्य हृदयेन तयैकनमयेन हि । युष्माकं दर्शनं दर्शं वर्यध्वं वरानितः ॥२३६॥  
 रामाणां वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्धृमुजोत्तमाः । येनास्माकं मन्त्रेर्हार्तिः स वरो दीयतां तु नः ॥२३७॥  
 तसंयां वचनं श्रुत्वा रामाः प्रोचुर्द्विजन्धुनः । युष्माकं दर्शनार्थं हि नवरूपधरा वयम् ॥२३८॥  
 अद्य जाता यदस्माद्युष्माकं नामभिः सदा । नव रामाः पगं स्वार्तिं तमिष्यन्त्यवनीमले ॥२३९॥  
 अस्माकं नव यत्किंचित्प्रियं हि भविष्यति । ते तेषां नु रामाणां वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमाः ॥२४०॥  
 सन्तुष्टस्ते नृता नेमू स्वं स्वं रामं मृदुर्मदुः । तदा सर्वे जना रामान् लक्ष्मणान् भरतादिकान् ॥२४१॥  
 आत्मानं भवधा आहान्दृष्ट्वा त्रिस्मयमाश्रिताः । ततो रामाः शिविज्ञानु स्थित्वा पृष्ट्वा द्विजोत्तमान् ॥२४२॥  
 पद्माष्टन्य ययुः सर्वे मार्गे स्वेकोऽभवन्पुनः । सर्वे जातास्त्वेकरूपास्तथा ते त्रिस्मयं ययुः ॥२४३॥  
 सुतो रामो बन्धुभिश्च पूर्ववन्नगरीं ययौ । मन्वा गेहे तु सीतायै सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥२४४॥  
 अतस्ते नव विप्राणां नामभिर्जगतीमले । स्वार्तिं रामा ययुस्तत्र नव पद्यच्च तत्प्रियम् ॥२४५॥  
 यथाकीं द्वादश प्रोक्ता एकविंशद्द्वयाधिपाः । रुद्रा एकादश प्रोक्ता यथाष्ट भैरवाः स्मृताः ॥२४६॥  
 नव दुर्गा यथा तत्र तथा गमा नव स्मृताः । प्रिय द्वादश सूर्याश्च एकादश शिरप्रियम् ॥२४७॥  
 एकविंशत्प्रियं यद्ब्रह्मणेशाश्च महान्मने । प्रियमष्ट भैरवाश्च दुर्गायै तु नव प्रियम् ॥२४८॥  
 यथा यथाऽत्र रामाय नव शिष्य प्रियं सदा । तस्मात्त्रयिभिः पुष्पैरञ्जलिस्तत्प्रियो मतः ॥२४९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकांडे रामपूजाद्वयविष्णवो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

आपके कहती देखकर ही मैं अलग-अलग रूप धारण करके एक ही समयमें सबके समक्ष आया हूँ ॥ २३४ ॥  
 मैंने अपने मनमें सोचा कि ये सब सदैव एक साथ एक ही समयमें ताभ्या करने बैठे हैं ऐसी अवस्थामें मैं  
 किसे पहले दर्शन दूँ और किसे न दूँ ॥ २३५ ॥ यह विचारवार मैंने आज एक ही समय तुम लोगोंको दर्शन  
 दिया है । अब अपने इच्छानुसार वर भी माँग लो ॥ २३६ ॥ उनकी वाणी सुनकर बाह्यजोने कहा—हे प्रभो !  
 जिससे संसारमें हमारी कीर्ति हो, हमें आप वही वरदान दीजिये ॥ २३७ ॥ इस तरह उनकी बात सुनकर रामने  
 उन बाह्यजोने कहा कि आप लोगोंको दर्शन देनेके लिये मैंने नौ रूप धारण किया है । अतएव आप लोगोंके  
 नामसे ही मैं नौ रामके नामसे विख्यात होऊँगा ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ जो कोई भी नौ चीजें मुझे देगा, वे हमें  
 अतिशय प्रिय होंगी । इस तरह उनका बान सुनकर ब्रह्म मनसे उन बाह्यजोने बार-बार रामको प्रणाम किया ।  
 उधर रामके साथवाले लक्ष्मण भरत आदि लोग अपनेकी नौ स्थायों देखकर बड़े चकराये । सदनन्तर वे सब  
 राम पालकियोंमें बैठे और उन बाह्यजोने पूछकर अवस्थाके लिये सीट पड़े ॥ २४०-२४१ ॥ रस्तेमें रामने  
 उन नवीं राशिको रूप समेट लिया और फिर उनसे द्यो एक नाम हो गया । वह घटना देखकर भी लोगोंको  
 बड़ा विस्मय हुआ ॥ २४३ ॥ इस तरह राम अपने दानवोंके साथ नगरोंको गये वर पंहुँचकर उन्होंने  
 सीताको उस दिनका सारा समाचार कह सुनाया ॥ २४४ ॥ हे शिष्या ! इसी कारण राम उन नौ नामोंसे विख्यात  
 हुए और जो-जो चीजें नौ स्थायों दी जाती है, वे उन्हें दिव्य प्रिय हुआ करती हैं ॥ २४५ ॥ जैसे बारह  
 धार्मिक माने गये हैं इसकीस गणेशजी, ग्यारह छट, आठ भैरव तथा नौ दुर्गायें मानी गयी हैं उसी तरह राम  
 भी नौ माने जाते हैं ॥ २४६ ॥ बारह सदावासी चीजें सूर्यको एक दशरथका रुद्रको, इसकीस गणेशजीको, आठ  
 भैरवको और नौ वस्तुयें दुर्गाका प्रिय होती हैं ॥ २४७ ॥ २४८ ॥ इसी तरह जो चीजें नौ होंगी, रामको अत्यंत  
 प्रिय हुआ करेंगी । इसलिये नौ प्रकारके फूलोंसे अन्नब्रह्मदानका विधान मैंने बदलाया है ॥ २४९ ॥ इति श्रीशत-  
 कोटिशामबरिस्तोत्रांतो श्रीमदानन्दरामायणे श्रीरामायणमायाटीकासहिते मनोहरकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

## चतुर्थः सर्गः

( लघुरामतोमद्रका विस्तार )

श्रीविष्णुकास उवाच

स्वामिस्त्वया रामनाम्नामष्टोत्तरमहप्रकाश । मद्रमुक्तं तथा चाष्टोत्तरशतमुत्तमम् ॥ १ ॥  
 रामनाम्ना मद्रमुक्तं रामचन्द्रप्रपूजने । तत्कीदृशे तै तु मद्रे लेखनीये मनोरमे ॥ २ ॥  
 ते मां विस्तरतो ब्रूहि यथाऽहं वेष्टि तत्त्वतः । तयोर्वै ये विशेषाश्च मद्रघोस्तेऽपि मां वद ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

मृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि मद्राणां रचनाः शुभाः । यथा पृष्टा त्वया मह्यं रामनाम्नां मनोरमाः ॥ ४ ॥  
 अष्टोत्तरशतं रामलिङ्गतोमद्रमुत्तमम् । आदौ मया विस्तरेण कथ्यते तन्मिश्रमय ॥ ५ ॥  
 अत्रोपाध्या राममुद्रा रुद्रशोषामकः स्मृतः । श्रीरामलिङ्गतोमद्रमत एवोच्यते कुपैः ॥ ६ ॥  
 तिर्धगूर्ध्वं तदा रेखा द्वे तथै रेखयाधिके । तत्रादौ कृष्णपरिविस्तृतो रक्तः सितस्त्वतः ॥ ७ ॥  
 ततः पीतश्च परिवि कोणेन्दुस्त्रिपदा स्मृतः । चन्द्राग्रे मृत्स्वला कृष्णा स्मृता द्वादशपादिका ॥ ८ ॥  
 हरिता च ततो वल्ली त्रयोविंशत्पदात्मिका । ततः पीता भृङ्गला च स्मृता द्वादशपादिका ॥ ९ ॥  
 विंशत्पादमजं मद्रं रक्तं वापी सिता ततः । त्रयोदशपदा ज्ञेया लिङ्गं षट्त्रिंशत्पादजम् ॥ १० ॥  
 कृष्णत्रयुष्पदो मूर्द्धा नाभिर्युग्मपदा स्मृतः । मूलस्कंधा षट्पदजौ पार्श्वे तुर्यद्वारमके ॥ ११ ॥  
 ततो रक्तश्च परिधिर्मर्यादाकुर्योर्जपादजः । ततो मुद्रा तुर्यतुर्यभूमिपादमिता स्मृता ॥ १२ ॥  
 ततो मर्यादापरिधिर्लिङ्गमुद्राः पुनः पुनः । एवं इरा नव ज्ञेया मुद्रायाष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥ १३ ॥  
 परिधयः षोडशैव ह्यन्ते लिङ्गोर्ध्वपार्श्वके । निर्धेम् मद्रं नवपदैः पीतं वा हरितं कचित् ॥ १४ ॥  
 रक्तमद्रोर्ध्वतः शेषपादनि यानि सति हि । परोक्षं चित्रवर्णैश्च भृङ्गलायै नियोजयेत् ॥ १५ ॥

विष्णुदासने कहा—हे स्व मित्र ! आपने हमें रामनामका अष्टोत्तर सहस्रका मद्र ( भासन ) और अष्टोत्तरशत नामका मद्र रामचन्द्रकी पूजाके प्रसङ्गमें बतलाया है । उन मद्रोंको किस प्रकार बनाना चाहिए, यह हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए । जिससे कि मैं उनके तरहसे समझ सकूँ । उनको जो विशेषताएँ हों सो भी हमें बतला दीजिए । १-३ ॥ श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! उन मद्रोंकी रचनाका प्रकार जिस तरह तुमने पूछा है, सो मैं पहले अष्टोत्तरशत रामलिङ्गतोमद्रका रचनाप्रकार विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसमें राममुद्रा उपास्य है और रुद्र उपासक है । इसका कारण लोग इसे रामलिङ्गतोमद्र कहते हैं ॥ ६ ॥ यह मद्र बननेवालाको चाहिए कि सीधी और बंदी दो छो रेखाएँ सीने । उसमें पहलेकी परिवि काली, फिर काल, फिर सफेद रत्न ॥ ७ ॥ इसके बादकी परिवि वाली और फिर कागमे त्रिपद चन्द्रका आकार बनावे । चन्द्रमाके आगे काले रङ्गकी ऐसी भृङ्गला बनावे, जिसमें द्वादश पाद ( कोष्क ) विशाल हों । फिर हरे रङ्गकी तेईस पादकी वल्ली बनावे । फिर द्वादश पादकी पीली भृङ्गला रखे ॥ ८ ॥ ९ ॥ फिर खंभ पादका मद्र बनावे । तदनन्तर सफेद रङ्गकी पापीका निर्माण करे । जिसके तेईस पाद बने हों । फिर छर्व्वंश पादका लिङ्ग बनावे । फिर चार पाद । कोष्क का कान्ते रङ्गसे भरकर बनावे, फिर दो पादकी नाभि बनावे । उसके दो भुज स्कन्ध छ छ पादोंके बनावे और चार पादका पार्श्वभाग बनावे । फिर बारह पादकी मर्यादा बनावे, जो लाल रङ्गसे रहूँगे । फिर बार-बार पादोंकी मुद्रा बनावे । फिर मर्यादाकी परिवि एवं लिङ्गमुद्रा बनावे । इसी तरह नी शिव एवं बाठ मुद्राएँ बनायें ॥ १०-१३ ॥ फिर लिङ्गके ऊपर और कालमें संज्ञक परिविपीकी रचना करे । फिर नौ पादास कहीं पीले और कहीं भूरे रङ्गके मद्र बनावे ॥ १४ ॥ रक्त मद्रके ऊपर मिलने भी ध्यान हों, उनकी भृङ्गलाके लिए चित्र-

मध्यलिङ्गस्कंधयोश्च मिले नेत्रे स्मृते शुभे । पीते लिङ्गस्कंधयोश्च शृङ्खले त्रिनिपादजे ॥१६॥  
 अशोभुख हरोर्ध्वं च रक्त मद्रं द्विपदपदम् । निर्यम्भद्रे तु हरिते स्मृतेष्ट्यादशपादजे ॥१७॥  
 ततः पंक्तैरुर्ध्वभागे हरितः परिधिः स्मृतः । तत ऊर्ध्वं पीतवर्णः प्रोक्तश्च परिधिः शुभः ॥१८॥  
 एव प्रोक्ता प्रथमेयं पक्तिः सर्वत्र कार्येण । द्वितीयाया विशेषं च वक्ष्यामि न पुरेरितम् ॥१९॥  
 सप्त मुद्रा हरा ह्यर्धे परिधयश्चतुरदंश । मद्रं रक्तं षट्पदं च शेषं सर्वं तु पूर्ववत् ॥२०॥  
 तृतीयाया ततः पंक्तौ मुद्राः पञ्च शिवा रक्ताः । परिधयो दश ज्ञेया मद्रं त्रिशन्पदान्मकम् ॥२१॥  
 ततः पंक्तौ चतुर्ध्वं तु त्रीणा मुद्राश्चतुष्टयम् । परिधयोऽष्ट विज्ञेया मद्रं च नव वेदजम् ॥२२॥  
 हरिपीतयोर्मध्ये हि लोहितः परिधिः स्मृतः । पञ्चमाया ततः पंक्तौ मुद्रैका शङ्करद्वयम् ॥२३॥  
 परिधयश्च चत्वारि मद्रं नवनिपादजम् । हरिद्ररक्तपीतवर्णा परिधयश्च पूर्वतः ॥२४॥  
 षष्ठायां च ततः पंक्तौ मुद्रैका परिधिद्वयम् । नव वेदमयं मद्रं तिस्रः पश्चिमोऽपि च ॥२५॥  
 मध्येऽपि सर्वतोमद्रं वेदनेत्राग्निपादजम् । त्रिवदद्दुः भृङ्गलाञ्छ कृष्णः पञ्चपदा मताः ॥२६॥  
 एकादशपदा वल्ली मद्रं नवपदान्मकम् । चतुर्विंशन्पदा वापी पीतश्च परिधिः स्मृतः ॥२७॥  
 पदेषु षोडशेष्वेव मध्ये पञ्च यथारुचि । कर्णिका पीतवर्णा च शेष मुद्रया नियोजयेत् ॥२८॥  
 एतदष्टोत्तरशतं रामलिङ्गात्मकं स्मृतम् । तत्र मुद्रास्वरूपं च वेदवेदेदुभिः स्मृतम् ॥२९॥  
 राज्यकाण्डे उपागर्धस्य सर्गेष्ट्यादशमे पुरा । उक्तं मुद्रास्वरूपं च तथाप्यत्र तु कथ्यते ॥३०॥  
 पंक्तयोऽर्कमिताम्रश्च सर्वा ष्ठादशपादजाः । तासु पूर्वदिगारभ्य क्रमेणैव प्रपूरयेत् ॥३१॥  
 प्रथमा तप्तमी चोन्ने पंक्ती कुण्डे प्रपूरयेत् । ऊर्ध्वाभिः पञ्च एवैव पक्षयस्तत्क्रमं जुवे ॥३२॥  
 पञ्चपक्षिषु चोर्ध्वं हि प्रथमायाः प्रपूरयेत् । प्रथमं चेद्वदिगजं च कुम्भवर्णं न चापगम् ॥३३॥

विचित्र वर्णोंका बनाये ॥ १५ ॥ मध्यलिङ्गक दोनों कंधापर सुफट रङ्गके दो नेत्र रहें । लिङ्गके स्कन्धमें पीले रङ्गकी तीन-तीन पादोंवाली दो शृङ्खलाएँ रहें ॥ १६ ॥ शिवके ऊपर अशोभुखके वगपर माठ पाद (कोष्ठक) से लाल रङ्गका भाग रहेगा । अष्टादश पादका तिरछा मद्र हरे रङ्गसे बनेगा ॥ १७ ॥ पत्तिके ऊर्ध्वभागमें हरे रङ्गकी परिधि रहेगी । उसके ऊपर पीले वर्णकी परिधि रहेगी ॥ १८ ॥ उक्त रीतिसे प्रथम पंक्ति बनायी जायगी । अथ दूसरी पंक्तिकी विनियोगार्थ बतलाया है, ओ पहले नहीं बतलायी थीं ॥ १९ ॥ दूसरी पंक्तिये सात मुद्रा, आठ पाद एवं चौदह परिधियाँ रहेंगी । यह मद्र छ पैगोवाला एवं लाल रङ्गका रहेगा और तीस पादका मद्र बनेगा ॥ २० ॥ २१ ॥ चौथी पंक्तिमें तीन शिव, चार मुद्रा, आठ परिधियाँ और चार पादका मद्र बनेगा ॥ २२ ॥ हरे-पीलेके मध्यमें लाल रङ्गकी परिधि रहेगी । पाँचवीं पंक्तिये एक मुद्रा रहेगी और दो शिव रहेंगे ॥ २३ ॥ चार परिधि रहेगी और नव्वे पादका मद्र बनेगा । षष्ठी हरे-लाल-पीले वर्णकी परिधियाँ पूर्ववत् रहेंगी ॥ २४ ॥ छठी पंक्तिमें एक मुद्रा, दो परिधि, चार पादकी नौ और सोन परिधियाँ रहेंगी ॥ २५ ॥ मध्यमें तीन सौ चौबीस पादका सर्वतोमद्र रहेगा, तीन पादकी चत्वारि शृङ्खला रहेगी और पाँच पादकी कृष्ण बलियाँ रहेंगी ॥ २६ ॥ इसमें एकादश पादकी बल्ली रहेगी और नौ पादका मद्र रहेगा । बीबीस पादकी वापी रहेगी और वह पीले रङ्गकी रहेंगी ॥ २७ ॥ सोलह पादोंके बीचमें अपनी पसन्दके माफिक कमल रहेगा । उसकी कर्णिकाएँ पीले रङ्गकी होंगी । बाकी सब अवयव अपने-अपने रङ्गके अनुसार होंगे ॥ २८ ॥ यह मैं अष्टोत्तरशत रामलिङ्गनामद्र बतलाया है । इसमें मुद्राका स्वरूप १४४ रहेगा ॥ २९ ॥ यद्यपि राज्यकाण्डके उपागर्ध भागके अष्टारहवें सर्गमें कह आये है कि भी मुद्राका स्वरूप यहाँ बतला रहे है ॥ ३० ॥ इसमें कुल बारह पंक्तियाँ होती हैं और हर पंक्तियोंमें चारह पाद (कोष्ठ) होते हैं । पूर्व दिशासे आरम्भ करके उन्हें पूर्ण करना चाहिए ॥ ३१ ॥ पहली ओर सातवीं पंक्ति काले रङ्गसे रंगी रहनी चाहिए । ऊपर-नीचे पाँच-पाँच पंक्तियाँ रहेंगी । उनका क्रम बतलाते हैं ॥ ३२ ॥ ऊपरकी पाँच



लघुमुद्रान्वितं रामलिङ्गाख्यं भद्रमुच्यते मया शिष्याधुना तत्र भूषणं स्वस्थमानसः ॥५३॥  
 निर्यगूर्ध्वमेव पञ्चाशद्रेखास्तत्पदेन च । मयं समपदा ने द्वौ परिधौ पानवर्णके ॥५४॥  
 कार्यौ तत्र कोणदेशेऽप्यिन्द्रविपटशुक्लकः । शुद्धलघुपदा कुण्डा त्रयोदशपदा लला ॥५५॥  
 हरितेशोऽनुपदः कुण्डलपञ्च प्रकरयेत् । विपदं लोहितं त्रयं भद्रं वल्लभान्निकम्पितम् ॥५६॥  
 पण्डिताद्यान्मिका मुद्रा तत्रेन्द्रियदिकम्पिता । न्यक्त्वा पत्तिकोणकोष्ठं मिथुं सूर्यस्तिनलथा ॥५७॥  
 विधत्तुं कृती च ममसायाः पक्तेः पदस्यधः । मयिणः पूरयेत्तु भाति रामेति न्यपदम् ॥५८॥  
 तत्रादावप्रमुद्रा स्यात्सीमापन्थियस्तथा । रक्तलिङ्गद्वयं भद्रं तथा लिङ्गोपरि स्थितम् ॥५९॥  
 पदद्वयं पानवर्णं योर्ध्ववल्गुया नियोजनेन द्वितीये न्वकमुद्रा द्वौ परिधौ द्वौ शिरो मर्त ॥६०॥  
 भद्रं नवपदं लिङ्गवल्गुमेर्मध्ये स्यात्प्रकम् । भद्रं चान लिङ्गोपरि रक्तं त्रयपदं न्वकम् ॥६१॥  
 लिङ्गम्कम्पदं द्वे द्वे द्वारते धीधिकाऽपि च । मद्राणि कोणिज्ञेयानि पार द्वे लोहितेऽत्र हि ॥६२॥  
 त्रयोऽत्रः राक्षसोभद्रं कार्यं तत्र नृपायिका । चतुर्विधान्पदं भद्रमकंकंष्टु लने मिते ॥६३॥  
 त्रिपदोऽञ्जः पञ्चपदा शुक्ला परिधिमस्तुः । मध्ये पद्मं रक्तवर्णं रचयेत्तु विविचित्रम् ॥६४॥  
 रत्नशुक्लरक्तकुण्डलाश्रिते परिधयो मताः । एतपोऽञ्जमुद्रायां रामलिङ्गाख्यं भद्रं कम् ॥६५॥  
 गदानन्दमये राघे निज्योतिषमनापयम् । मयावधामकं निर्यं स्वस्थानं समुपस्थितम् ॥६६॥  
 चन्द्रकलं गणलिङ्गोभद्रं यद्विकल्पेन । निविकारं नास्ति तस्मिन्निवेकं साधयिष्यते ॥६७॥  
 कल्पितः स नरो राजा गणलिङ्गपुत्रः स्मृतः । रामगदाय इत्युक्ता योगिगम्पः परं भद्रः ॥६८॥  
 लीयन्ते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं परं ज्योतिष्युक्तं अन्नविदुषाम् ॥६९॥

"गम" य दा अक्षर सप्तदशक्षर स्थिते । इन चारो नामोंका चारो अक्षर गम द ॥५१॥ ५२॥ हैं शिष्य  
 भन लघुमुद्रावित रामलिङ्गोभद्र वक्तव्य है । सा राम स्वस्थचित होकर सुनी ॥५३॥ स्वर्ग और वक्रा  
 ५४॥ रेखा । मय । उनके सनी सत खनाम एतत्पदा दो पानवर्ण वनेये ॥५५॥ काणभ गम रत्न  
 काकोमि रफद रक्त दो इन्द्र वनाव । छकाका एक मुद्रा और वरह क ज्योतिष एता वनाव ॥५६॥  
 आठ पादका हः रक्त शिष्य वनाव । लाल रङ्गसे कलिका के पम हा तीन पादका भद्र वनाव ॥५७॥ साठ  
 फादकी मुद्रा और चन्द्रमा वाम्पे कणव रहता । ५८॥ क काण और दः पादका छोटकर ऊपर वनायी  
 रती मुद्रा गमनी चाहिये । इसके अनन्तर सनी पावनव तचरे काकाका क द स्थानी भद्र है तो  
 "गम" एता स्पष्ट दिखती होने लगता ॥५९॥ ६०॥ इसके अतिरिक्त अग्निमुद्रा और इसकी बाकी परिधिमा  
 लाव रङ्गस रग । इन नामोंके भद्र तथा लिङ्गक ऊपर मितपदाना पाद पानवर्णम मित चाहिये । इसम  
 कई वना तथा वल्गुया वनाते चाहिये । दूसरे म एक मुद्रा, दो परिधि दो शिष्य नी पादका भद्र, लय  
 और वल्गु मध्यम छ, भद्र वनाते । निगत ऊपरवाला भद्र बाल रहता हो और वर काष्ठकाको लाव रङ्गसे  
 रगता चाहिये ॥६१-६२॥ निगत स्वस्थानम नामा हः रक्त भद्र रते और साधनी करे हः रक्त,  
 रगता । रत्नपर तीन भद्र रहत, एक पीला और दो लाल । इसक मद्रभामसे मर्त्योभद्र वना । जिसमे चौबीस  
 काल रहेगे, नी कोष्ठकोका लता वना और शिष्य भ वनाये, ६२॥ तीन पादक अञ्ज ( कमल ) और चौव  
 पा की मुद्रा दो और परिधि रहता । मनीम रत्नवर्ण य कई रक्त कमल वनाव ॥६३॥ ६४॥ इसके अन्तमे  
 पील, सप्तद लाव और काले रक्तकी परिधि रहती । इन पाञ्चण मुद्राओंमे रामाख्योभद्र वनाता है । ६५॥  
 सदा आनन्दमय, चित् ज्योतिष्य, स्वार्चरहित और सबके अवभमक, मिये भयन का माया रगको मे  
 उपासना करता है । ६६॥ सोलह कलाकाका यद् रामलिङ्गोभद्र जो मेत वतलाता है वह विचारविहीन  
 नहीं है उसमे आ विचार है, अब उसको विवेचना करना है ॥६७॥ राजायाम इस लिङ्गका निमणि काने-  
 व ला गुरुव वन्य है । सब लोगोंकी अन्तम दान कारण रामका राम" पद नाम घरा है । योगीजनाके  
 हीति अवगत है उसका सर्वकृष्ट रज है । ६८॥ उन्हें सदाशक्त सब शेष लीन हात है और फिर



लिख्यते विन्यसे येन भावेन भगवान् द्विवः । लिख्यते स शब्देन लिखं येति द्वितीयः ॥७०॥  
 बहूनि सन्ति नामानि रामं शब्दं यदा ज्ञेतः । शब्दानि शृण्वन्कोऽपि भूमेर्नैवास्ति तेषु ॥७१॥  
 तस्मिन्पुण्यमर्चतो मद् दृढं तन्मूर्च्छितम् । तत्र पश्येत्पश्यन् सकं पामकर्मिणम् ॥७२॥  
 तन्मूर्च्छानं शम्भुस्य व्यानार्थं परिकल्पितम् । अन्यथा सर्वगणाय कथं वेदादिभेदा ॥७३॥  
 दिव्योक्तिं परमानन्दं स्वपापशतान्नयः । धर्मोक्त्यापमोक्षार्थं मुक्तयुगादि प्रविशन् ॥७४॥  
 तस्य चैतन्यचन्द्रस्य षोडशो मा कलाः पराः । चिद्व्यग्रं च द्वाभ्यां च द्वा द्विविधाभिः ॥७५॥  
 प्रकाशयन्ति गृह्णन्ति स्वजन्ति च स्वमारुतः । बुद्धिर्देहात्म्या मित्रा सभिकृष्टा शिवस्मरः ॥७६॥  
 ज्ञानो ज्ञानप्रधानो मा न ज्ञानं चक्षुरादौ । प्रमत्तं स्वजन्तुशब्दं ज्ञानानं तु सर्वेषां ॥७७॥  
 चतुर्दां इति भेदेन प्रोक्ता चत्वारिदशभिः । भवेत्तत्र न तेनात्र प्रकृतं पादविषयते ॥७८॥  
 क्रियाप्रधानः प्रमाणं पञ्चधाऽसौ स्ववृत्तिः । प्राणपानी तथा ध्यानः समानो ज्ञानकाविति ॥७९॥  
 चागादिकर्मेन्द्रियेषु क्रिया प्राणाध्यासना । श्रवणं नयनं घ्राणं स्पर्शमनेन्द्रियं तथा ॥८०॥  
 पञ्चेमानि चेन्द्रियाणि ज्ञानद्वाराणि चैव हि । वाक्पाणिपादपायुष्मन्त्राश्च कर्मेन्द्रियाणि च ॥८१॥  
 एव षोडशसंस्थानं कलातमुच्यते वृधः । ताम् सुवासु चैवन्द गायनायति विश्रुताम् ॥८२॥  
 प्रविष्टं दीप्यते प्रकाशेन चित्तं विनेष्टने । प्रनादिगमास्ततः कर्ममूलकलान्नकः ॥८३॥  
 देहादिमानिनो जीवाः फलभागाश्च पक्षिणः । यथाकर्म सुखं दुःखं स्वादन्ति स्वस्वगणितम् ॥८४॥  
 कश्चिज्जन्मसहस्रेषु ज्ञानवान् जयते यदा । तदान्मस्य रामस्य ज्ञाना मोक्षो भवत्यलम् ॥८५॥

उन्हामसे आविर्भूत होता है । १५॥ कारण उद्भूतता ज्ञानवा ॥ १६॥ अतएव इस परम व्योम कहा है ॥ १९॥ जिस शब्दसे भगवान् सिकरी गूना को जाती है । वे हा राय विज और राम इन दो नामोंसे पुकार जाते हैं ॥ ७७॥ उन महारत्ना रायक उद्भूतसे नाम है । मम रत्ना क इ प्राणी पृथ्वीके रजकणोंको धकेली गिन से । किन्तु भगवान् के नामोंकी गणना काहे भा । नही परमेश्वर ॥ १॥ उक्तमें जो सर्वतोभद्र हैं, वही हृदय आत्मता चाहिये । उसमें आठ पत्रोंका केसर और पक्षुट्टियों युक्त जो कमल है, वह रामक चिह्नक उपान करनेके लिए ही बनाया जाता है । नही तो सर्वव्यापी भगवन् कृपा वशादिभदता किस प्रकार मानी जाती ॥ ७८॥ ७९॥ चिज्ज्योतिर्मय वे परमान्मा अपनी मायाक वशात् भूत हुकर घम, अर्थ, काम और मोक्ष इत अनुवर्गोंका साधन करनेके लिए हो समीपमें आवे वे ॥ ८०॥ उम चेतन्य सन्ध्या पादका गच्छाये तब श्रेष्ठ मानी गया है । वे समारको सब वस्तुआप विज्ञान करने हैं ॥ ८१॥ ८२॥ एवमात्स हा सबका प्रभावित करता, समय परनेपर फिर फाट्ट दनों ओर कसा कसा फिर अपनाय पकट लिया करता है । यविव आत्मावालाक लिए बुद्धिमान कला है और वह सबको पास रहती है ॥ ८३॥ ८४॥ इगाले यह पक्षु अदिम रहती हुई आजप्रधान मानी जाता है । वह गच्छापादि गनारुक्त के उद्भूत, पतय का उच्छा तरह जानता है ॥ ८५॥ यह वृत्तिभेदसे बाद प्रकृतका मानी गयी है । वही उसके नियममें विनिय विवेचनकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती । आएव इस दिव्यम वास्तविक विवेचना करने हैं ॥ ८६॥ अपनी वृत्तिके अनुसार प्राणिक्या प्रधान मानी जाती है और इसके पांच भेद हैं—प्राण, अपान, दशाह, सदान तथा उदान ॥ ८७॥ वाक्, आदि कर्मेन्द्रियों की सारी कियारे प्राणाभ्या हुजा भरता है । घनण, नचन, घ्राण ( नाक ), स्पर्श और श्रोत्र ॥ ८८॥ वे हा पांच ज्ञानाधारी मानी गयी है । वाक्, पक्षि, हाथ, पाद, पाणु ( भुजा ), उग्रथ ( लिङ्ग ), वे पांच कर्माधारी है ॥ ८९॥ इमं लिङ्ग कलाओंका सोण्ड सका कहो गया है । उन सबोंन उन रमानापकी चेतन शक्ति, विद्यमान रहती है ॥ ९०॥ उन्हीक प्रवेदता यह सबार रक्षावमान होता है और उन्हीको नेष्टाते तथैव रहा करता है । वे अनादि संसारहकी बुद्ध है और सबको कर्मागुसार फल देते हैं ॥ ९१॥ देहका अभिमान करनेवासे जीव पक्षियोंकी तरह अपने प्रभुके दिने हुए मुख-दु खहरी कर्माकी भागत हैं ॥ ९२॥ हुकारों बाद जन्म लेनेके बाद कही कोई ज्ञानवान् होता है और अपनी आत्मा स्थित राजका रूप जानकर मोक्षपद-



प्रागुक्ता द्विजनमंकनत्राधिका २९० श्व रेखाः ययाः सुरभिकल्प पदेषु तायाम् ।  
 कोणांगगोत्र उपरीदुरकुलसख्यः २१ रीताश्च ते परिधयः पञ्चिकवर्णायाः ॥१०१॥  
 कोणाजम्बुसल्लताः मितकृष्णलीला गङ्गाणि भिन्नरचनान्यरुणानि तानि ।  
 मुद्राश्च नःपविष्यथ मितश्च रक्ताः सपणिश्च जनयन्ति र्नि मूर्नानाम् ॥१०२॥  
 मुद्रा तु षष्टिपदसरलिता च तत्र पर्क्षा विहाय समवापयदिवनमध्ये ।  
 ग्रन्थेककोणकेशानि चतुष्टयादि पञ्चिकव २५तुर्गणकमञ्जनाभम् ॥१०३॥  
 कृन्दा पदैकमयनस्त्वथ समपाः स्नेनानिमु द्गतरं परिभानि मारम् ।  
 रामेति द्वयसंमुखेशजपं निधान प्राणप्राणममये जपता मङ्गोदपम् ॥१०४॥  
 रचयेदादितः सम्यग्यार्थद्विशब्दानांश्च पर्वत्र राममुद्रासु मध्येषु परिधिद्वयम् ॥१०५॥  
 आदौ तन्त्रमिता मुद्रासुदेविशृङ्गिमनहननः द्वाविंशतिविंशतिशतमपदशमाप्ताः ॥१०६॥  
 षष्टचतुर्दशत्रयोदशद्वादशमृदकः नवष्टमवपदसु च त्र्यंशकाश्चाप्यनुक्रमन् ॥१०७॥  
 मर्द्रं षोडशपादं च त्रिंशन्विंशन्पदत्रयेकम् ।  
 चतुर्दश तन्त्रमितं त्रिंश त्रिंशन्विंशकम् ॥१०८॥  
 तन्त्रपदत्रिनेत्रांशुनिविंशतिशतमोऽधिकम् ।  
 षट्त्रिंशन्षोडशपदं तन्त्रे त्रिंशद्द्विंशन्विंशकम् ॥१०९॥  
 त्रिंशत्कोष्ठं क्रमादेवं मन्त्रेणाश्वत्थानुष्टये एकविंशत्पदे अष्टमेककोष्ठं च त्रयिका ॥११०॥  
 चतुर्विंशपदा कार्या परिधयन्तोऽष्टावृद्धम् । भद्रोपरि यत्र यत्र पदान्पूर्वमिति च ॥१११॥  
 त्रिंशत् भद्रशृङ्गलाघे यथेच्छ पश्येद्विधा मन्त्रे भद्रशृङ्गाः पञ्चपदत्रेकांशी कृता ॥११२॥  
 त्रिपदश्च शशी श्रेयः परिधयो वहि क्रमान् । कृष्णाकशुकलर्पिताश्चतुर्दिक्षु समन्ततः ॥११३॥  
 एतदष्टासत्रदशशतं १००८ त्रेय गणस्य भद्रकम् ।  
 यथवा मनु १४ रेखानां वृद्धिं कृत्वा प्रकल्प्य च ॥११४॥

एक दूसरा छद्म बतला रहा है ॥ १०० ॥ पहले चन्द्रको ओरसे ००१ रेखा खींचे । उसमें २१ कोष्ठकाले पीले रंगका परिधिपी बनावे ॥ १०१ ॥ काण्डे कमल बनकर मन्द, लाले और नीले रंगकी मृदङ्गला ओर लताएँ बनावे । उसमें वन सब वा क भिन्न भिन्न प्रकारक लता रहके रहेंगे । उसमें चूरी सफेद और लाल रङ्गकी मुद्राश्च मुनियोंके प्रत्यक्ष भी अङ्गुली उत्पन्न भिन्ने बिना बहो रहीती ॥ १०२ ॥ इसमें साठ कोष्ठकोकी मुद्रा बन भी जाती है किन्तु दक्षिणमुख तथा दक्षिण काण्डकी पतिथी साठी छाड़ दी जाती है । प्रत्येक कोणक चार पाद, दो पवित्र तथा छठी ओर चौकी पवित्र काल रङ्गकी रहेंगी ॥ १०३ ॥ इसके अतिरिक्त सातवीं पवित्रके नीचे एक पाद काम रङ्गका बनावे वा बहु भद्रके मारका तरङ्ग बहुत ही सुन्दर लगेगा । राम यह दो अक्षर शिवजीके जपपुञ्जका एक बड़ा लज्जना है । यदि प्राण निकलने समय इसका जप किया जाय तो बड़ा कल्याण हो ॥ १०४ ॥ आदिस लेकर बाईसवें कोष्ठक पर्यन्त भद्रको रचना करता जाय । हर एक शाय-मुद्राके अन्तर्मे दो परिधिपी रहेंगी । १०५ ॥ पत्र पञ्चभ मुद्रा रहेंगी । इनके आर बाईस, इक्कीस, बीस, अठारह, सत्तरह, सौषह, चौदह, तेरह, बारह, गारह, नौ, आठ, पाँच, छ, चार, तीस, दो, एक ये मुद्राएँ रहेंगी, ॥१०६॥१०७॥ इस मन्त्रमें बीस, तीस, छत्तीस, साठह, पचास, नौस, द्वासीस, बीस, पन्नीस, छत्तीस, द्वासीस ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इस प्रकार बीस बीस कोष्ठ च भी आर रहेंगे । इक्कीस कोष्ठका भद्र रहेंगा और नौ कोष्ठकोकी दाना बनेगी ॥ ११० ॥ चौबीस काष्ठकोमे परिधिके पास कमल बनाया जा पाद बाकी बचे हों, उन्हें अपनी बुद्धि करे । इसमें पाँच पादकी शृङ्खला रहेंगी और बारह पादकी लताएँ बनाया जायेंगी ॥ १११ ॥ ११२ ॥ तीस पादका चन्द्रमा बनेगा और उदक आस-पास चारों ओर काशी, लाल, सफेद तथा

परिधिस्तत्र लिङ्गानामेविंशधिकं शतम् । वाप्यो मद्राणि चद्रादिचतुःपाशेषु योजयेत् ॥११५॥  
 चतुर्विंशपदं लिङ्गं वाप्यष्टशतपादिका । द्वे भद्रे नव नव पदे षष्ट षष्ट पदानि च ॥११६॥  
 त्रिंशल्लिङ्गानि वाप्यन्तु सप्तविंशन्मिता मनाः । एकस्मिन् पार्श्वके लिङ्गाधिक्ये भद्रे प्रकल्पयेत् ॥११७॥  
 षष्टषष्टपदे शेषाण्यंशकोष्ठानि योजयेत् । लिङ्गं कृष्णं मिता वाप्यः शेषं सर्वं पुनोदितम् ॥११८॥  
 पदानि शेषभूतानि यत्र यत्रेह तानि च । मद्रश्चमलयोग्यानि तदर्थं विनियोजयेत् ॥११९॥  
 कृष्णरक्तशुक्लपीठा अने परिधयो मताः । छत्रं लिङ्गभूतं रामनोभद्रं परेकीर्तितम् ॥१२०॥  
 अनेन देवीं सुशीलौ रामेशीं मन्त्रस्मिन्वद् । रामस्य पूजनार्थं हि त्विदं प्रोक्तं ग्रामनम् ॥१२१॥  
 आचार्यान् तानमप्यत्र श्रुत्वा तेषां प्रसादतः । वक्ष्येऽहं रामनोभद्राकृतिं च संभृत्यपुताम् ॥१२२॥  
 प्रकृतिं रामनोभद्रं विकृतिं लिङ्गमधुनम् । अन्ये विकाराः संज्ञेया सर्वे कृतिस्त्रिधोऽप्यते ॥१२३॥  
 तिर्यग्धूर्ध्वमन्यधिकाः शनरेखाः प्रकल्पयेत् । तत्पदेषु परिधयः पन्चदन्ते गडेव तु ॥१२४॥  
 पीताः कोणेषु त्रिपदः शुक्लेन्दुः शृङ्खलाधमिता । पञ्चपदैः सादशिका वल्लुगी भद्रसंकमान् ॥१२५॥

सिन्धुषोडशसूर्यनुयुगषोडशकोष्ठकम्

कल्पयन्त्यष्टकोष्ठेषु राममुद्रां हि पूर्ववत् ॥१२६॥

अष्टौ पद्म च पञ्चमिधुवह्निचन्द्रमिताः शुभाः

तासां सीमापरिधयस्त्वेकान्तु लोहिताः ॥१२७॥

रजनीशनेत्रविधुपेक्षिषु मध्यमाश्रयः । मर्यादाख्याः परिधयो भवन्ति द्विगुणीकृताः ॥१२८॥  
 अंतिमं तु परिध्वन्ते सर्वतोभद्रकं लिखेत् । विशेषस्तत्र वापी तु चतुर्विंशपदान्मिका ॥१२९॥  
 भद्रं नवपदं पञ्च परिध्वन्तः सुकोहितम् । पीता नन्वकणिका कार्या अन्ते परिधयोऽपि च ॥१३०॥

बीलीं परिधियां रहेंगी । ११३ । यह एक हजार आठ नानोका भद्र है । अथवा चौदह रेखाओंको कल्पना करके उनकी वृद्धि कर । इसमें एक भी इक्कीस कोष्ठोंको परिधि बनगी दादा-भद्र बाई पहलेकी तरह रखें ॥ ११४ ॥ ११५ । चौदास कोष्ठोंका मिला खनया और अठारह पादकी वापी बनायी जायगी । दो भद्र जो-जो पादके रहेंगे और दस-दस पादोंके छ भद्र बनाने आवेंगे । ११६ ॥ उनमें सत्स तथा बीस पादोंके लिङ्ग रहेंगे और सत्त इस पादोंको वापी बनायी जायगी । जो कुछ बाकी पाद बच उनमें दस इस पादोंमें दस भद्रोंको रखना करे ॥ ११७ ॥ बाकी नौ का कोकी यथास्थान रखें । इसमें लिङ्ग काला और वापी सूर्यर रहेंगी । बाकी सब पहलेके भद्रोंकी तरह ज्यों रहेंगे । ११८ । बाकी जिनमें पाद है, दो सब भद्र और शृङ्खलाके काममें आ जायेंगे ॥ ११९ ॥ काल, लाल, सभद्र और पाले रङ्गको इसकी परिधियां रहेंगी । इस प्रकारके लिङ्गमें रामनोभद्रकी रचना बतलायी गयी ॥ १२० ॥ इस भद्रमें राम तथा विष्वजी दोनों घटभ होत हैं । यहाँ रामका पूजन करनेके लिये वरासन बतलाया गया ॥ १२१ ॥ अब मैं ज्ञानसम्पन्न आचार्योंको प्रणाम करके उनकी कृपासे हम्भसंयुक्त रामनोभद्रकी रचनाका प्रकार बतलाऊँगा ॥ १२२ ॥ इसमें रामनोभद्रको प्रकृति विकृत रहती है और भी कई तरहकी विकृतियाँ इसमें होती हैं ॥ १२३ ॥ गड़ी और देड़ी कुल एक ही कीव रेखाएँ खींचे । इसमें भी छ-छ पादोंकी परिधिगी रहेंगी । १२४ ॥ कोनोंमें तीन-तीन पाद बीसे रङ्गके रहेंगे । चन्द्रमा उज्ज्वल रहेगा और शृङ्खला काले रङ्गकी रहेगी । सोलह पादकी वल्लुगी बनायी जायगी । १२५ ॥ चार, सोलह, बारह छ, चार, सोलह पादके जगसे कोष्ठोंमें पूर्ववत् राममुद्राकी रचना करे । १२६ । आठ, छ, पाँच, चार, तीन एक, इस पादक्रमसे इसकी परिधियां खनैगी और एक परिधि काल रङ्गकी रहेगी । १२७ । एक दो, चार और दस इनकी द्विगुणित क्रमसे मर्यादाख्या परिधियां होंगी ॥ १२८ ॥ अन्तिम परिधिके बीचमें सर्वतोभद्र खनाना चाहिये । यहाँ यह विशेषता है कि इसमें नीच स नीचीस कोष्ठोंको वापी बनायी जायगी ॥ १२९ ॥ नौ काष्ठोंका भद्र बनया और परिधिके भीतर काल

पीतशुक्लरक्तकुण्डलवर्णा यत्र पदानि च । भद्रोर्ध्वं श्रेयभूतानि तानि युक्त्वा प्रपूजयेत् ॥१३१॥  
तिर्यग्भद्रमुन्मूलार्थैः पीतचित्रं च ते स्मृते । एतदणोलगदानं रामतोमद्रर्माग्निम् ॥१३२॥

एकं संसारशून्यं सकलमुखनिधिं सच्चिदानन्दरुन्दं

मायायोगेन विश्वात्मकमिदममलं श्रद्धाविष्ण्वीशसंज्ञम् ।

मृष्टिस्थित्यन्तरेतुं निगमकपिनुदं मनभूताम्भूतं

सर्वज्ञं सर्वशक्तिं रणहृद्भूमृत्तं रुन्मदो भावयेद्धम् ॥१३३॥

तस्या ओदेशिकेष्टस्य पादाब्जममप्रदम् । वक्ष्ये सा-शास्मितीं पवित्रं मार्गं चित्तचमस्कृतिम् ॥१३४॥  
पशूनां नस्तुगेमादि सर्वमर्थाय कल्पते । मृतस्य नग्देहस्य मृष्टिदोषावहोदिता ॥१३५॥  
एकमेवभूता माध्यं ज्ञानं यन्मध्यस्वरूपदम् । तद्विना तु पशुभ्यश्च नरो हीनतरो मनः ॥१३६॥  
प्रतिभाशान्पुण्यतमः श्रद्धावान् गुणधोषज्ञे । कोटिप्रेकः स्वयं साक्षात्तरो नागायणो भवेत् ॥१३७॥  
केनविद्रासतोपदे मृदा पटिपदाप्तिदा । रामाकिना च संकरं विविच्यते च ते उभे ॥१३८॥  
लोकाः यत्र यथाहेर्मिगन्धा तत्र प्रकल्पिताः । तेनैव गन्धना तुल्या ज्ञान्या हृन्मृदुगर्भते ॥१३९॥  
मन्त्रांडं रामतोमद्रं मुद्राभूतानि समता । समर्पणपयुक्तानि सम्मतानि तु मृगिभिः ॥१४०॥  
यस्यां स्यान्मृष्टिश्च वस्तु या मृष्टेति निगद्यते । मृष्टेन विद्रिप्तं चःच पिहितं क्षथी भवेत् ॥१४१॥  
तद्वत्सवासु चैतासु श्रद्धामुद्रितमुच्यते । तपाय्यामां सयाद्यादर्वेनन्यः संप्रसाजित ॥१४२॥  
आच्छादितोऽपिकरुहे रुद्रिकेऽन्नवैदिः किल । दीपः प्रकाशते काम लोपयेच्च न धेप्यते ॥१४३॥  
मृषाणिकनं साध्वन्मं तदाकारं पश्यते तथा जलं निगच्छन् मुद्राकारं विभावते ॥१४४॥

रङ्गका कमल स्तेवा । यत्ने रङ्गम उत्त कमरके रण क्षताये आरिग ॥ १३० ॥ यत्ने, साधन काल और कावे रङ्गको परिश्रम करना । भद्रमं चार्की चरु जितने का च हों, उत्त बुद्धिक साथ रनाम पूर्ण कर दे ॥ १३१ ॥ इसकी श्रद्धावान् तथा भद्र बीजे और विविध शक्तके होंगे ॥ १३२ ॥ मैं आशास्मिती के इस रूपका ध्यान करके ही जा कसारमं भवेत्ता है समस्त मृतका विधान है मृष्टिम् और अन्नरुन्दम् है । जिसमें अन्नो म पात योसे इस निमल विश्वकी प्रभुओंका रहता, विष्णु और शिवका नामसं प्रतिष्ठापन कर रचना है । जो मृष्ट, पालन और विनाशका हेतु है । जिसके कृष्टिमान वार वर २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००

पुत्रश्चक्रं प्रकृः सर्वोः पुः पुरुष आदिजन । इत्युक्तं कमलाभाया प्रत्यवापि हि पञ्चने १४२॥  
 एको वती सर्वभूतान्तर्गमेति अनेवद्वयः । एको देवः सर्वभूतेश्विति चैवपग भुविः ॥ १४३॥  
 पुः सृष्टाः परेतेन नैव तामिस्तुनेष मः सृष्टां मानुषां सृष्टां परं तोपमगार सः ॥ १४४॥  
 देवताश्चामुक्त्वा यं दृष्ट्वां पुरुषं तनुम् । ह्यदृष्टं मुकुतं वनेन श्रुते स्फुटम् ॥ १४५॥  
 पुरुषं न्वेवादिस्मरमानेन्यात् पुरिः इत्यम् । पुगः सृष्टः सर्वभूतेश्वरश्चः स्वरट् ॥ १४६॥  
 श्रद्धावलोमाश्रयण नर दृष्टा सृष्टः सतः । इन्द्रस्माभिरिष्टास्य श्रुतं प्रभावद्वयः ॥ १४७॥  
 मुदं कगेनि देवस्य श्रुतेद्वयः स्वकावके । इति मुद्रानिर्गन्तश्च मन्त्रशब्देऽपि श्रुते ॥ १४८॥  
 जनः सर्वेषु देवेषु सद्रूपेण कृत्स्नम् । स्वर्गोपवर्गेषु च रकारोऽभिमतं चेतरे ॥ १४९॥  
 लोके प्रविद्धिर्यः कश्चिद्भागमुदादिनो नर । अधिकारीति सन्देहे पूज्यं न्यादादिभिः ॥ १५०॥  
 तथानयाकृतोऽगोऽधिकारी शश्वभुविषु । नान्याभेगो निविज्ञां शक्यते स्ममनः पदम् ॥ १५१॥  
 तस्मिन्मैव लोपार्थो पशति यदि गति हि । तानि संश्रयन्, मन्त्रकं प्रदर्शयन्नेव बुद्धये ॥ १५२॥  
 अविद्याकामकर्माणि भोक्तृभोगी मनुजिष्य । एतानि न वर्णात् देहे कायगणके ॥ १५३॥  
 एतोऽज्ञानमविद्येति शब्दाः एकैवाचिनः । अत्र गुणयुतो नात्र दृश्यते पदम् भो द्विज ॥ १५४॥  
 निगोऽप्युक्तेऽविद्यामकामयदः स्मृतः । न तत्र न तु हेतुनान्न वर्णां ग्रहणं कृतम् ॥ १५५॥  
 कार्यमावेत्यवश्यं नाकारणे कारणमना । कावस्य कर्मणश्चात्र विद्यते शुभमरुपना ॥ १५६॥  
 अविद्या या मुच्यतेऽव विद्यते कारणमना । अमुक्तान्तु न कामोऽव कामना वा श्रुतेर्मनम् ॥ १५७॥

सुवर्णसे सामा काया जाता है तो यह उसे अपने जगत् में लाकर है । यही दशा तम निराकर अद्वितीय भी है ॥ १४४ ॥ प्रती पदमे इस जगत् में गच्छेत् । तद्वत्तु उदम पुरुषका समावेश किया । ऐसा कमल भाव कहा गया है । अन्य स्थान में भी हमें यह बात कहते हैं । उक्त भाव लक्षणा है ॥ १४५ ॥ श्रुतिका कथन है कि सब प्राणियोंको अन्तर्गत कर रहेवाला एक ही पुरुष या देव । इसका अर्थ भी इस बातकी पुष्ट करनी हुई जाती है कि वह एक ही होता है, जो सत्कारक सब प्राणियों में विद्यमान रहता है । १४६ ॥ मुद्रिकान पदमें जनक ताहकी तृप्ति की, किन्तु उससे इस शब्द की दृष्टा । फिर जब उसने इस मानुष मुद्राकी सृष्टि की, तब उसे बड़ा प्रसन्नता हुई ॥ १४७ ॥ अथवा भगवत्कर्मके लिए दवनाओंत पुरुषका शरीर बना तां ह्यसे मनुज होकर बाह्य उत्पन्न होत अन्तर्गत विद्या । जो पुरुषा शरीर को निर्मित कर दी ॥ १४८ ॥ विस्तारविह्वल मूढम मान्यका ही भुक्ति पुरुष करता है । य पदलक्षणे अत्र और प्राप्ति याकी सृष्टि का, किन्तु उत्तका दृश्य प्रमाण नहीं हुआ । और जब पुरुषका प्राप्ति कासेव ले सांभाला । उदात्त दृष्टा ही बहुत प्रसन्न हुए । हे विष्णुदास । इस प्रकार इस जगत् में प्रभावद्वय है ॥ १४९ ॥ १५० ॥ यह सब दवनाओंको प्रसन्न करता हुआ सब दृष्टा और पदार्थों को फोले पाली करव बड़ा दता है । इस प्रकार पदोंको निर्वर्ति मन्त्रास्त्र-में भी की गयी है ॥ १५१ ॥ इसलिए उसने सब देहोंमें मद्रक लक्षण पर ध्यान है । स्वा और अपवगका अधिकार भी इसी तत्त्वज्ञान दिया गया है—औरकी मद्र १५२ ॥ मन्त्रासे भी यह बात प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्यके पास राजकी मद्रका का प्रमाणवत् होता है । उसका अधिकारी सम्मान है और उसको पूजा करने है । १५३ ॥ इसी प्रकार इस राजापदकी मुद्रा में अङ्गित जीव साक्षरूपाका अधिकारी माना जाता है । अन्य दार्शनिक जात्र अवश-वचना आरम्भ नहीं जान सकते । १५४ ॥ मन्त्रा उपाधिमें कुल साठ पद है । उनका जलनक लिए जड़ी मद्रका ताहू बतलाने है । १५५ ॥ कारणसंज्ञक दहम अविद्या, काम, कर्म चोत्ता भाग और मुद्रिक के स्थान है ॥ १५६ ॥ हे द्विज । तब, अज्ञान और अविद्या इन दोनों शब्दोंका एक ही मतारब है । इससे इसमें किला गुणका दृष्टि किया जाना नहीं दीवता ॥ १५७ ॥ सातवें शरीररूपमें अविद्या, काम और कर्मका ग्रहण किया गया है । फिर भी कारण मन्त्र इन तीनोंको ग्रहण ही करना पड़ता है ॥ १५८ ॥ कारणका बाहे कई कार्य हो पा न हो, वह कारणरूपसे रहता ही है ।

अष्टत्रिंशन्पदानिह विद्यन्ते सूक्ष्मेदृके । दशोद्वेयानि पञ्च प्रज्ञा बुद्धिर्मदन्विता ॥ १६१ ॥  
 सप्तदशान्मर्कं लिङ्गं प्रविष्टं तन्मन्मनम् । पञ्चविंशश्चक्षणं पञ्च कर्मक्रियात्मकम् ॥ १६२ ॥  
 पञ्च मन्त्राण्यव्यापारः सकलानिधयान्वयानि । सप्तदश चैव धर्मोऽप्रविष्टाः शास्त्रमन्त्राः ॥ १६३ ॥  
 स्वप्नाभिमनितौ भोगौ रजश्चेति चतुष्टयम् । देवानामिन्द्रियाणां च म्भ्यानाभावोऽववृत्तिकः पदम् ॥ १६४ ॥  
 सूक्ष्मेहे षोडशैव पदानि मन्मनानि हि । मन्त्राः सप्तदश तेषामयानव्यापनयोः पदम् ॥ १६५ ॥  
 पायुन्यवस्थानयोर्ज्ञेये वाचोर्मि निकेतने । प्राणस्य मनसश्चापि बुद्धिस्थाने पदं निवति ॥ १६६ ॥  
 पदानि द्वादशे मासि भोजनभोगौ तथा गुणः । अवस्था जाग्रदिद्वेतेन कथितानि मनीषिभिः ॥ १६७ ॥  
 मुद्रामेतान्दृष्ट्वा श्रुत्वा वेद वेदान्मात्रमप्यदम् । तस्य जन्म कृतार्थं म्यान्महतो नष्टिरन्यथा ॥ १६८ ॥  
 मुद्रारूपं विशिष्यैव यन्मन्त्रां मांकिनेति च । उक्तं तदगुना किञ्चित्मक्षेपेण निरुच्यते ॥ १६९ ॥  
 रामेति लोकरमणाद्रमन्ते योगिनोऽमले । परमानन्दरदं निर्यं तेन राम इतीर्यते ॥ १७० ॥  
 रसेनैवागुना सर्वे जीवा जीवन्ति नान्यथा । इयं रमभयं लब्ध्वा भवत्य नन्दिनोऽविलाः ॥ १७१ ॥  
 विज्ञप्ता येन विश्वं सर्वं चेतयते जगन् । न तं चेतयते कश्चिन्म राम इति कीर्यते ॥ १७२ ॥  
 सत्ता येनाभिज्ञं विश्वं स देवाय प्रीतिरते । अमन्मनाप्रदः साक्षाद्राम इत्यभिधीयते ॥ १७३ ॥  
 यथा प्रविष्टो रामति मन्त्रेण व्यापनकम् । तथा लिङ्गं पदं व्यापनं निष्कलः परमान्मनः ॥ १७४ ॥  
 लीयन्ते यव धूननि निगच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं पदं व्यापनं निष्कलः परमः शिवः ॥ १७५ ॥  
 इति श्लाघविदां वाणी श्रूयते नन्ददासनाम् । अतः मन्त्राणानामानि मन्त्राणानि चानुरागिनः ॥ १७६ ॥  
 सति तेन सुन्दरभेदं रूपभेदेऽपि भवथा । तत्पदो नैव भेदोऽस्मिन् सर्वस्यैकस्य वस्तुनः ॥ १७७ ॥

उस शरीरमें काम और कर्म से योग नु ममगम रहता है । १५९ ॥ इस कारण आत्मासे अविच्छाती प्रवाहता है । आसक्तवशेन उसमें काम रहता है और न वागता हो रहता है । यह ध्यानका सिद्धांत है । १६० ॥ इस लक्ष्म देहमें कुल साठ पद हैं । पक्ष पद इन्द्रियका पाँच मन्त्राणका, बुद्धि, मन और प्रज्ञाका सबह पद शास्त्रो-  
 में कहा गया है । पाँच मन्त्र विषय ग्रहण करनेवाले इन्द्रियका, पाँच कर्मोका आका और पाँच प्राणोके व्यापनका । कुल सबह ही पद चमणायनव्यक्त है । १६१ ॥ १६२ ॥ स्वप्न अभिमानी, भोग और रज से चार दयताओं और इन्द्रियोंम प्रवृत्ति नही कर पाने । इमान्मन स्वयं शरीरम सातह ही पद माने गये हैं । किन्तु इन सबहका ही रहता । इनमें से पद अपना आनन्द आन वागता है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ पायु और स्वप्नयनका वाच, व्यापन और तदवका ही पद प्राण मन तथा बुद्धि एक एक पद ॥ १६६ ॥ ये सबह पद पाँच और भोगना पद, इन्द्रियोंमें गुण, अवस्था तथा जागृति कहा है । १६७ ॥ इस प्रकारको मुद्रा प्राप्त करके प्रज्ञा लब्ध्वा अवतानी पद पा लता है । इसको ध्यानसे जन्म कृतार्थ हो जाता है । अन्यथा नष्ट ही हो जाता है ॥ १६८ ॥ मुद्राके रूपका विवेचना करके उसके नामोंसे संकलित मुद्राओंकी सब सक्षपस्वसे बतलाते हैं ॥ १६९ ॥ संसारके प्रविष्टोंका आनन्द देनेके कारण भगवानका 'राम' नाम पढ़ा है । योगीगण इसी अमल परमानन्द पदमें आनन्द लव हैं । इस लिए भी राम 'राम' कहे जाते हैं ॥ १७० ॥ इसी रमस संसारके सब जीव जन हैं, इस सरत परकी पाकर लोग आनन्दमय हो जाते हैं ॥ १७१ ॥ जो भगवन् प्रविष्ट होकर सारे जगत्को चेतन्य कर देता है । जिन रामका चेतन्य करनेवाला कोई भी नहीं है, वह ही राम 'राम' कहे जात हैं ॥ १७२ ॥ जिन भगवन्का सत्ता सरत विभवे है । वे इसी कारण देवता कह गन हैं । वे भगवन् भगवन् भी अपनी सत्ता वनाये रक्त हैं । अतएव लोग उन्हें राम कहते हैं ॥ १७३ ॥ जिस तरह उनका राम यह नाम प्रसिद्ध हुआ । उसी तरह परमात्माके लिङ्ग और रूप भी हैं ॥ १७४ ॥ लोग लिङ्गका अर्थ इस प्रकार करते हैं—जिसमें जगत्के सब प्राणी अन्तर्से लीन होते और बुद्धिके आदिमें त्रिमसे प्रादुर्भूत होते हैं इसकी जिन संज्ञा है । वह त्रिम, सूक्ष्म निष्कल और परम कल्याणकारी है ॥ १७५ ॥ इस प्रकार तत्त्वदर्शी शास्त्रोंकी बात सुनायी पड़ती है । इससे यह

न त्रया म शिवश्च म हरिः म सुरेश्वरः । मोक्षधरः परमेश्वर म स्वगतिरिति वेदवाक् ॥१७८॥  
 दम्प्ये मे कश्चिदानन्दाः म व्याप्तः सर्ववस्तुषु । तेनानि च त्रिव भानि वस्तुमात्र प्रवृत्तये ॥१७९॥  
 आनन्देण च सर्वेषु समस्तवस्तुकीर्तनम् । अदिनस्यायमानेषु व्यपने गुणुप्रदान् ॥१८०॥  
 एतदेवैक आत्मा वा इदमकः पुनर्जनः । आर्षाक्षेनैव लोकानां पालनो मृष्टिरिच्छया ॥१८१॥  
 कृत्वाः स्रष्टुं देवानामन्नभुक्त्वा धर्मापितम् । इदं प्रायतनं तन्न सृष्टि नैव्यस्तनः परम् ॥१८२॥  
 त्रिचार्ये म्यायन् पण्डितैर्मामाहारा प्रविष्टवान् । तदाभ्यासं ब्रह्म तनं हृष्ट्यवापेद्वनो किञ्च ॥१८३॥  
 काश्यपश्चार्पितं संप्रदानं येन पश्यान् विवर्तते । इत्यादिभिर्विभिर्भोगैश्च तदेनददृश्यादिभिः ॥१८४॥  
 ब्रह्मन्समस्य नामानि चोक्तवानन्यथेता यथा । एष ब्रह्मेत्यादिशब्दैर्दोषान् चाखिल जगत् ॥१८५॥  
 प्रज्ञानेन च प्रज्ञाने प्रविष्टनेत्यनेन हि । प्रज्ञानं ब्रह्म अज्ञाने त्रिकालं पिरिति दर्शितम् ॥१८६॥  
 तदास्य सच्चिदानन्दप्रनामन्तं न सदाह । तैत्तिरीयकशास्त्रेण तत्राणं लक्षणं पुनः ॥१८७॥  
 अन्यं नूनमनन्तं सद्गुणैश्च वेदगुहादिकम् । यश्चास्य वदन्ते कामान्मरणान्मृषादेव हि ॥१८८॥  
 फलज्ञानस्य चोक्तवाप्य तुस्माद्वस्तुमात्रकः किल । क्रमोन्पत्तिर्हि गुमानां कोशोच्चकपेदनम् ॥१८९॥  
 नन्फलं तदनात्मन्त्रं स्रष्टुं दृश्यान्नात्मन्त्रं । पुच्छं ब्रह्मेति निश्चये तदसम्भवीवितः ॥१९०॥  
 मन्त्रमिदं त्रिभिर्धैर्गैर्गैर्गैश्च ततः परम् । कामयितुं तदेवेह कदाचन जगदान्मना ॥१९१॥  
 कृत्वा तस्मिन् प्रविष्टैश्च सच्चिदानन्दैश्चैव । अपानप्राणयोः परेण पञ्चाक्षरैश्च प्रजायते ॥१९२॥  
 अन्तरात्म्यं तेषां आनन्दपतिर्चाखिलान् । स्रष्टुं नुमन्तदेवैह वातादीनां प्रदर्शितम् ॥१९३॥  
 मानुषाभ्यः ब्रह्माणां आनन्दा ये शनोत्तराः । विदवन् परब्रह्मानन्दस्येति विनिश्चितम् ॥१९४॥

निम्नोक्त द्वारा कि उस अन्तरात्मन ही नाम जो परमात्मा रहन हुए भी वास्तवमें सब एक हैं। इसकी कारणों से विचित्र कोई भी अन्तर नहीं आता ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ वही ब्रह्मा, वेद शिव, वही विष्णु और वही देवराज इन्द्र है। वही अजर ब्रह्म और वही वरद तया विश्वरूपी है ॥ १८० ॥ वही सब वस्तुओं में सत्चित् और आनन्द रूपसे व्याप्त रहता है। इसका कारण सब चीज अच्छी लगती है ॥ १८१ ॥ सब वद में रामस्वामी ब्रह्मका कीर्तन विद्यमान है। भूतदेव के अमुष्म आदि, मरु, अन्य सब समयमें रामहोना कहेने सुनानी रहता है ॥ १८२ ॥ एतदेव आनन्दम लिखा है कि सर्वप्रथम परमात्मा अकाल था। तबसे यह इच्छा हुई कि हम लोक और लोकपालों की सृष्टि करें ॥ १८३ ॥ ऐसा विचार होनेपर उसने सृष्टिके लक्षण तथा अन्य इत्यादि का और उनमें पाने अन्नकी सृष्टि की ॥ १८४ ॥ तबपुनः उन्होंने अपने-अपने स्वमित्रों का विचार किया और एक सामान्य देवताओंके राजा इन्द्र बने ॥ १८५ ॥ जो कि हम परमात्मा देवता तथा समस्तों का, मैंने सोचा है वह नीच है ? इसका कारण यदि नाम बतलाया जाए "यह सत्य ही सब कुछ है" अर्थात् वास्तव उन्होंने इस प्रश्नका ही जवाब और बतलाया कि सत्, चित् आनन्दम लेकर पुनः पयन राम ही राम है। पूर्व समय तैत्तिरीयक शास्त्र में ब्रह्मका विशेष बतलाया हुए रामन सत्य, ज्ञान और अनन्तता उपाधि दी है। इस संसार में जो एक साथ साधक भोगता और स्वाभाविकता है, वह सत्य ही है ॥ इससे कि, यह से पाया गया कि परमात्मा सृष्टि ब्रह्ममयी है। सब प्राणियों का प्रयत्नान्, पंचकाशका जन और आत्माकी विभिन्नता आदि विचार कर बतलाया है कि सत् और असत्का प्रयोगप्राप्ति इन सबका मुख्य कारण ब्रह्म ही है ॥ १८६-१८७ ॥ १८८ ॥ कहकर कहा कि सत् और असत् यह क्या वस्तु है ? इस प्रश्नको हल करने हुए कहते हैं कि जो अमूर्त अकाल और अमृतका आत्मा बनकर कामनाओंका भाजना हुआ उनमें लान हो जाता है वह सत् है। जिसका अस्तित्वम प्राण और अपानकी चक्षु जायमान रहता है, उसे असत् कहते हैं ॥ १८९ ॥ १९० ॥ यह आत्मा ही सारे ससारको सन्तुष्ट करता है। वास्तविकता एकमात्र ब्रह्म अवहेतु है ॥ १९१ ॥ मनुष्यम लेकर ब्रह्मपर्यन्त तथा इसका भी आग जो आनन्दविन्दु है, वह एकमात्र परब्रह्मानन्दका ही आभास है।



स यस्मात् नरोपाधादिभ्योऽप्य चर्तते । स एक इति ज्ञात्वा पापं पुण्यं कृतकृते ॥१९५॥  
न सनाययत्तमैवं सम्यक् सर्वं प्रकीर्तितम् । यद्ब्रह्म तदेवाऽपेक्ष्यः तद्वर्त्मनि न संशयः ॥१९६॥  
छांदोग्येऽपि स वेदेति मनोएकस्य ब्रह्मणः । तेजोऽवस्थादिकं सृष्टिः यन्मूना मा भ्यनिर्हन्तिः ॥१९७॥  
जीवात्मना प्रवेशश्च व्याकृतिनामरूपयोः धनकेनाम्बुपदस्य तत्पद्मैक्यताऽपि च ॥

मदसंभावना-त- च सङ्ग-रे च सह-क्रिया ॥ १९८॥

तद्वर्तने च गुणोक्तानं ज्ञानान्मोक्षोऽपुनर्भवः ।

मन्यवद्वाभिमंथयेन्मेव सद्ब्रह्मार्कतनय । तद्रामान परं ब्रह्म सृष्टिरेवमन्यनहेतुकम् ॥१९९॥  
अन्यस्यापि ज्ञातव्या प्रदत्तप्रत्युक्तिः स्फुटमेव । मनःप्रजोद्विगाणा यन्मनः प्राणैन्द्रिय हि तन् ॥२००॥  
सर्वेषामनुभूतेः सद्ब्रह्मिणिरिदितमर्थम् । विषयो नेन्द्रियार्थानामियुक्त्वा तस्य शोधनम् २०१ ।  
सर्वदर्शो सर्वेन्द्रदेवता जयकारजम् । तदज्ञानं च देशानां गुणज्ञानमुपास्मिता ॥२०२॥  
विषयं नान्यन्मानुष्यं प्राप्य जन्म न वेद चेत् । विनाष्टिमंढरी तस्य चेति श्लोक गतः परम् ॥२०३॥  
अप्याम्बाधिदेवमिदा गियापाधतमेव च । ब्रह्मज्ञानेन पापानां हानिस्तन्प्राप्तिर्विचयम् ॥२०४॥  
मय्यसौ महिमा भूत्वा कर्तितो वयस्य मरणम् । तद्रामानि गुणैश्च नान्यथा ग्रन्थस्तुष्टिमिः ॥२०५॥  
ब्रह्मकेऽपि परा विद्या रिपया त्रयं ब्रह्मणः । सृष्टिश्चानेकदृष्टानैकता तस्मिन् सन्निवृत्ता ॥२०६॥  
लवश्चापि हि सर्वं विधं सर्वं हि गन्धयम् । तारुण्यं चतुषा चैव लहय आत्मापर्वं तथा ॥२०७॥

एसा निश्चित है । जो मनुष्य को उपोपय मूल मानता है । उस एकमेव मनुष्य को ज्ञान जनपद कर्त-  
ब्रह्म तया पाप पुण्य कृत्त जगत् नीचे रह जाता , १९५ । १९६ , तब किमी प्रकारका कल्याण नहीं मलना  
पहता । ये सब गुण जिसमें है, वह ब्रह्म है । उसको कोशिका दायकर निश्चित होता है कि वह ब्रह्म  
आत्मचन्द्रनी है । इसमें नगर महा है ॥ १९६ ॥ छा राय उपनिषद् में था कहा है कि ब्रह्मसे ही  
अप्रादिकता मूल हुई है और ऊँहाक ब्रह्मसे इस जगत् का फैलन-पैगम होता है । १९७ । जीवात्माके  
डाग हा आमाका प्रवेश होता है, किन्तु दूरक अचारवशा उसका नाम और रूपमें मन्तर पर आता है ।  
धनकेतुका उसके विज्ञान विधा की था कि उस पर था । ऊँहावर सार एकता हात हा पुनितका सर्वप्रकाश  
साधन है । जब तक मनुष्यका मन नहीं हुआ, तब तक एकता रहता है और सद्ब्रह्मक विद्यमान रहनेपर  
एकताक स्थानपर ब्रह्म आ जाता है । उस मनुष्यका ज्ञान होनेसे गुह दारा ज्ञान प्राप्त होता है और  
ज्ञान प्राप्त हातपर पुनः प्रविष्टि मीक्षण प्रप्त होता है ॥ १९८ ॥ स-वन्त ब्रह्म विद्याका स्वरूप जग  
जाता है, उसका इतना ही प्रत्यक्षतन है कि वह राम हा परब्रह्म है । ऊँहीके द्वारा इस जगत् की सृष्टि,  
पालन और प्रलय होता है । १९९ ॥ ब्रह्म ज्ञानाजाम भी इसमें और उनरक रूप में जनक प्रजन और प्रत्युक्तिवा  
हुई है । उनसे भी यही मन्त्र होता है कि मन, वायु और इन्द्रियाका जो मन, प्रण और इन्द्रिय है । वह ब्रह्म  
हा है । वह स-वन्त ब्रह्म परत जग और अज्ञान इन दोनोंमें परे है । यही सबका अनुभव है । किन्तु वह  
ब्रह्मके विषयको नहीं जाना ब्रह्म अनुभवन हा जाना जाना है । यह कहकर उसका संशोधन किया  
गया है ॥ २०० ॥ २०१ ॥ वह ब्रह्म सब कुछ ब्रह्म है सब जानता है ब्रह्मानोके विषयका कारण है  
और वह ब्रह्माका मी भी ब्रह्म रहता है । गुहका इनमना करनेसे ही ज्ञानका प्राप्ति होती है ॥ २०२ ॥  
विद्या हा मनुष्यका मनुष्य है । इस मयाममें अन्य प्रकार जिसने विद्या नहीं पायी ता यद् उसका एक  
ब्रह्म ब्रह्म विद्या है । ऐसा कहा गया है ॥ २०३ ॥ अ-वदवका भी ब्रह्म करनेवाले ब्रह्मज्ञानक विद्याका  
साधन होता है, पारोका मन्त्र होता है और अन्तमें उसे ब्रह्मका प्राप्ति होता है ॥ २०४ ॥ बुद्धिने स्वयं  
विस्तारपूर्वक ब्रह्मका महिमाका गान किया है । इसलिए जिज्ञासुका चाहिए कि वह गुहसे रामका ज्ञान  
प्राप्त कर । जैसे कराटो फन्स पहनसे भी उनका सन्तान जग नहीं प्राप्त है तबतर ॥२०५॥ गुहक उपनिषदमें  
कहा गया है कि वह और ब्रह्मका विषय जाननेके लिए गुह प्रधान है । उनसे उपनिषदने अनेक ब्रह्मसे  
सृष्टिका वर्णन किया है ॥ २०६ ॥ वह कहता है कि वह सारी सृष्टि उसी ब्रह्ममें स्थित है और ब्रह्ममें उसीमें



तद्राम परमं मया योगिगणमनामयम् अनन्तनामकपैत्रं विधाकारं स्वमायया ॥२२६॥  
 मूला सर्वेषु भूतेषु वरायुक्तं भूतचालकम् । इन्द्रमप्यस्फुटं तेषामज्ञानं स्वात्मनः सदा ॥२२७॥  
 प्रत्यक्षाने परो हेतुः सर्वेषां वरैर्ललाटः । मानसः सन्ति तेनेदं चिद्ब्रह्म न प्रकाशते ॥२२८॥  
 परं चिं खानि प्रभुगा मृष्टं नि दे मने राक नाशने मानसात्मानं असिद्धं भुम्पुदागितम् ॥२२९॥  
 सर्वोऽपि मनुजो दमोऽपि मन्त्राः पुत्रान्मनाम् किं वा स्वः कामदामोय तनाशक्ष्म काशने ॥२३०॥  
 यदि भूतान्मनामदं स्वामना मन्त्राः पुत्रान्मनाम् तदा किं वा मेवेन स्वमदन्त्यभ्रम्पुटि ॥२३१॥  
 आन्मानं चेद्विजानीयादयमर्थः । दूषणः तदा मन्त्राः कस्य कामाय छान्मनुमन्त्रेण ॥२३२॥  
 इत्याह च श्रुतिः साध्वी वृद्धदायगा । ययन् ययन्मनातिवचं स्वादात्मनश्च मानवः ॥२३३॥  
 आन्मन्येन च मन्त्रमन्त्राय कार्यं न विद्यते । इति न प्राप्नोतत्रावोऽर्जुनाय प्रोक्तसाम्बयम् ॥२३४॥  
 भोगामकः पुमान्त्वमेकाहो रक्षते न च । एतन्मपमन्त्रो यानेऽर्थाय चिन्मदा ॥२३५॥  
 स लोकेऽप्युदाय श्रुताः पुत्रो-प-मन्त्रः । जायां मन्त्रादयन्त्यादावतिमन्त्रेन मृदर्थः ॥२३६॥  
 पुत्रानु-पाद्य कर्तुं न देवताः तस्मिन् । इन्द्रमन्त्राय च यमार्थं च धने-उपा ॥२३७॥  
 अग्निं दृष्ट्वा चिन्मं न प्राप्नोति रथे मन्त्रम् । दाम्ब्रह्मोदाय मन्त्रिकाजानथदायः प्रतिग्रहम् ॥२३८॥  
 धनं याव्यगवतां ग्रामे कर्तुं न यथा । दाम्ब्रह्ममन्त्रां तु काशना स्वाम्बिन्मने ॥२३९॥  
 अनेकपुत्रपुत्रं मन्त्रं कर्तुं न यथा । मन्त्रं मन्त्रिकं न मार्गेति यदा सदा ॥२४०॥  
 राममन्त्रद्वयार्थं मुनिं स्वां पूरयन्मनः । मन्त्रं न दत्तवा मन्त्रं स्वपाऽमन्त्रं कचिन् ॥२४१॥

योगियोंक ज्ञानमन्त्र और आत्मिक मन्त्र, जिनमें अनन्तनामकपैत्र और माया द्वारा विधाकार आकारवाले बनकर सब प्राणियोंमें विद्यमान रहते हुए मन्त्रका प्रभाव करने में । जो लोग जाते वरायुक्त है, उनमें आते स्फुट या अस्फुट भावसे काममें । जो लोग भी वह ईश्वर की दास्यता ॥ २२२-२२४ ॥ इस सहायक ज्ञानमें अपनी आत्मा ही मन्त्रप्रदान करने में । मन्त्रों का ज्ञान ही आत्मिक ज्ञान का वादावाही रखती है । एता कारण है कि जन्म यह निश्चय ही मन्त्रों का मन्त्र ही है । एक प्रसिद्ध भूतमन्त्र भगवान्मने कहा है कि प्राणियोंको अग्नि मैने बाहर बनायी है । इसलिए लोग अनन्तनामका नहीं देखते ॥ २२५ ॥ सन्तानके सब मनुष्य अपने घर, स्त्री और पुत्रों दास बन रहते हैं । इसी कारण अनन्तनामका जन्म दीवती ही नहीं । २२७ ॥ यदि उनके ज्ञान न होकर सदा आत्मिकमन्त्र रत्न, विष्णुमें पते हैं और आत्मो आत्मिकी मासी बनाकर सब कार्य कर तो जन्म मन्त्रों का बात मन्त्र ही नहीं । २२८ ॥ यदि ज्ञान आत्मिकी ज्ञानपर यह समझ लें कि मैं ही वह परम पुण्य ब्रह्म है तो फिर जिसके लिए जन्म मन्त्रों का सन्तानिक ज्ञानमन्त्र भूत । यह वरदायुक्तोर्जनिपदमें कहा गया है । इसके अतिरिक्त मातामन्त्र मन्त्रमन्त्रमन्त्र मन्त्रमन्त्र कहा है कि जो प्राणी और जिस और अपनी निरवृत्ति न लागकर आत्मिकी प्रेम करता है, जो मांस ही पुत्र रहता है और आत्मिकी सन्तोष करता है । उसके लिए सन्तानमें कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता मन्त्र उस में उसका सब काम पूरा हो जाता है ॥ २२९-२३१ ॥ भाग्यमें आसक्त प्राणी पहले एक-एक इस मन्त्र नहीं सुकना । बहुत तो तीन प्रकारकी दुष्टताओंके चक्करमें पड़कर सदा मन पानेकी चेष्टा करता रहता है ॥ २३२ ॥ यह मन्त्र किमं न यदि स्वयं को अपुत्री मूलना है तो पुत्रके उत्पादनमें तत्पर हो जाता है और इसके लिए 'जन्म' चलाकर मन्त्रना है, करता है । २३३ ॥ देवताओं तथा तीर्थोंकी सेवासे यदि पुत्र उत्पन्न कर लेता है तो मन्त्रमन्त्र मन्त्रमन्त्र सदा मन्त्रके लिए पतनी इच्छासे मन ही मन रात दिन जाता करता है, फिर भी अपनी कामना नहीं पूर्ण कर पाता । यह ज्ञानमन्त्र पाठ्य तथा सत्तम क्रिया-वान् हो क्यों न हो, यदि वह मनका मन्त्र है तो मन्त्रमन्त्र मन्त्रमन्त्र मन्त्र ही रहता है । फिर यदि कोई भुम्पुदागति (मन्त्रमन्त्र) मन्त्रों है तो इसके लिए आत्मिकमन्त्रकी सर्वां किमं कामकी ॥ २३४-२३६ ॥ अनेक प्रकारके पुण्य एकाग्र होकर ज्ञाना अष्टमं पुण्य जन्म और सन्तानोंकी मन्त्रि पाता है । फिर उनकी वाशुपर चलते हुआ कर्म-कर्मों मन्त्रमन्त्र मन्त्रके दर्शनाये मुद्राओंकी भी पूर्ण करनेका उपाय करता है और

तं पूरणप्रकारं तु संक्षेपेणोच्यतेऽधुना । यथा लोकेऽऽत्तन सम्यक्कर्मदायं पूर्यतेऽसि च । २३९॥  
 निधिः प्रत्यक्षतत्त्वस्य दर्शनं यानि नान्यथा । एवमत्रापि तन्मन्त्रं साधनं यच्चतुष्टयम् । २४०॥  
 सम्पाद्य क्षेत्रे शुद्धं रामेति पदमव्ययम् । साक्षात्कृत्यमित्यर्थं यद् धृतं तन्माधनं यथा ॥ २४१॥  
 शुद्धाविद्यामयं चेति श्रोच्यते तत्त्वदर्शिनः । शास्त्रशास्त्रं च शास्त्रञ्च मिथ्याऽविद्यामयं त्रयम् ॥ २४२॥

ज्ञानोत्तरमिति मनः तस्मात्तद्वर्णमितिम् ।

चतुष्पादसाधनं कृष्णमिन्द्रियविधीयते । ग्रन्थैकं साधनं यच्च चतुःसाधनमुच्यते ॥ २४३॥  
 विवेकवैराग्यशमादिषट्कं मृगचूपा चेति प्रसिद्धमनम् ।

लक्ष्माणि ग्रन्थैकमुच्यमानि श्लोकान्यभीषां स्मृतिभूमिकाम् ॥ २४४॥

साधनानां चतुर्कं च क्षेपणान्यामपूर्वकम् । मन्यामत्र गुरोः श्रेयाश्रयणादित्रयं नतः ॥ २४५॥  
 पूर्वोत्तरमभाधौ च पुञ्ज एकादशान्मकः । एतेषां तु मयः साक्षान्प्राप्ताया मङ्गलिसंया । २४६॥  
 मृगधया तु न्यामादिषणां साक्षाद्विज्ञेयते । समन्विहन्तरत्रापि पृथगेवेति सम्मतः ॥ २४७॥  
 पूर्वत्रयाणां न विना मृगधया षड्विंशतः । धर्मः सधनमर्चश्च पदानि पूर्यन्त्यनम् ॥ २४८॥  
 सर्वाणि तानि प्रोच्यन्ते श्रद्धणात्मवचुद्वये । दर्शनेऽप्याणि तेषां तु गोलकानि सर्वेव तु ॥ २४९॥  
 प्राणाकानी मनोबुद्धौ तस्मादुर्माश्च तन्मिताः । बुद्धिर्ज्ञानं यथाऽप्योक्तं क्रिया तन्त्रयता मता ॥ २५०॥  
 उभयेन्द्रियधर्माणां मनोऽर्मा साधनाग्रहः । समन्विष्टतिसंख्यानि पदानामानि साधनैः ॥ २५१॥  
 योग्यानि लाञ्छितं सम्यक् पूर्यन्त्येव सर्वथा । तदा यन्परमं ब्रह्म रामेति पदमव्ययम् ॥ २५२॥  
 याति प्रत्यक्षतत्त्वेन कृतकृत्यो हि जायते एतत्तदा विधानेन रामतोभद्रमुद्रिके ॥ २५३॥  
 रामश्च कथितश्चाथ सर्वतोभद्रमीयत । स्वान्तो नाभिरथापि भंशयस्यापनुत्तये ॥ २५४॥

यदि उसके साथी सञ्जन गुनिसे उसे सहो गान्धर्व ने जाना तो वह अपनी सधना पूरा का कर लेता है ॥ २३९॥ २४०॥ उसको पूरा करनेका प्रकार से यहाँ बताया गया है, जैव कुमारस शब्दा ब्रामा है कि अन्धोस एक प्रकारका अज्ञान लगाकर लोग भ्रम हुए, गजलीका भी प्रकाश देख नत है । उसी प्रकार पूर्वको द्वारा बताया हुए मार्ग साधनाका सम्पादन करने प्राप्ता "राम" इस शब्द और नाशरीहत पदको प्राप्त कर लेता है । जिस तरह कि मायाया और अन्तिन यणीव २. ब्रह्म सद्ब्रह्मको प्राप्तकर साधन है । उसी तरह तन्त्रदर्शिनोने शुद्ध और विश्रमान साधन बतलाये है । साधन, य मन् और शास्त्र य तीनों मिथ्या और अविद्यामय है ॥ २४१-२४२॥ सधनम त्रितन या विद्वान् है वे सब प्राणीका जानने योग्य बुद्धिवा है । त्रितन चतुष्पाद साधन है, वे पूर्ण बहने जाते हैं और प्राय सब साधन सधनगद ही हुआ करता है ॥ २४३॥ स्मृतिको भूमिवाय मिथ्या ब्रह्म, राम, दम बादि ५ धर्म और साधनो १० का उपग्र होना ये सब धर्मके उत्तम निष्ठा बतलाये गये है । २४४॥ यत साधनोस नवसे पहली साधन इच्छाभोका व्याप करना है । फिर मन्यास, गुरुकी सेवा, श्रवण, सञ्जन, कीर्तन, पूजातर समाधि तथा एकाग्रता प्रकारक पुञ्ज हो साधन है । इन सबके साथ प्राण आदिकी संयति होती है । २४५॥ २४६॥ मोक्ष धनके लिए यहाँपर छ. प्रकारके न्यास आदि काम्य होने चाहिये । किन्तु उत्तर समाधि इससे अलग ही रहती, वह धान सब लोभ मान नुक है ॥ २४७॥ पूर्वको तीन समाधिलोके बिना मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता, इन साधनमभूगसे सब पद सरल होनिसे पूर्ण हो जाते हैं ॥ २४८॥ मुननेवालीको बोध करनेकी इच्छा उनको यहाँ बतला रहे है । उनके विचारमें कुछ बस इन्द्रिया है और नौ गोलक है । २४९॥ अन्तर्ब प्राण ऊदान, मन, बुद्धि, इन दान्द्राति इतने ही प्रकारके धर्म उत्पन्न हुए । बुद्धिसे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई । प्रार्थनद्वय अपने इच्छानुसार जो चाहे वह करे उसके लिए कोई नियम नहीं है । २५०॥ २५१॥ २५२॥ २५३॥ और कर्मेन्द्रिय इन दोनों प्रकारका इन्द्रियोके धर्मसे और प्रणके धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है । इस तरह इन सत्ताइस प्रकारके पदको साधन करके पूर्ण करना चाहिए । ऐसा करनेपर जो अव्यय पदब्रह्म रामका पद है वह प्रत्यक्ष देखने लगता है । जिसमे प्राणी कृतकृत्य हो

कलषाणं सर्वतः पुमां चित्तनाथस्य प्रस्रवणः तद्गद्गवाचकं मुख्यं मंगलानां च मंगलम् ॥ २५५ ॥  
 यत्र यद्व्यज्यते साक्षात्तन्मात्मा तदुदीयते, यद्विदेव तद्यद्व्याप्तं सर्वतोभद्रमिष्यते ॥ २५६ ॥  
 विविच्यतेऽत्रोभयं च प्रोच्यते वस्तुव्यक्तये । आधिदैवे तु यद्वदं तदादावुच्यतेऽमरम् ॥ २५७ ॥  
 अङ्गद्वयकलोकस्तु सर्वतोभद्रमुच्यते । तेनैव भद्रं सर्वेषां लोकं न मित्रं हि स्थितिः ॥ २५८ ॥  
 तत्र स्वर्णमयं वैश्वं निर्मितं प्रभुणा स्वयम् । नन्दमिति विज्ञेयं यत्र कार्यचिन्तिः स्वयम् ॥ २५९ ॥  
 न्यासेन सर्वमन्त्रानां गतानां सर्वयामिनाम् । प्राणोपादननिष्ठायां व्रतणा विन्यक्त्याने ॥ २६० ॥  
 मन्त्राणां महं ते सर्वे इति स्मृतिश्चामरः । क्रममुक्तंस्वयं पथाः श्रान्त्युत्तमनोऽमल ॥ २६१ ॥  
 आभ्यात्मे हृदये यत्नमर्वतोभद्रमीयेते । तेन भद्रेण कन्याणं सर्वेष्वयवेतिह ॥ २६२ ॥  
 तत्र यन्पुण्डरीकं तन्मन्त्रणः स्थानमुच्यते । श्रुत्वापि प्रसिद्धिर्नि वदन्नुत्तमोऽमल ॥ २६३ ॥  
 साधनमप्यमं पुक्तामस्मिन्ने तु यथाहिता । मुक्त्यदिष्टया मुक्त्या तेषां व्रतं प्रशस्यते ॥ २६४ ॥  
 परमः पुरुषो भूमौ स त्वाध्वन्योपरि । इत्यादिश्रुत्वा यन्प्रोक्तं तस्य पातोऽस्मिन्त्यपि ॥ २६५ ॥  
 माह चाहमेवाध्वनादिन्यादिसमस्यामिनाम् । गृह्णानासपि सर्वेषां देहेऽहमिति दृश्यते ॥ २६६ ॥  
 माध्वन्यभ्रम इत्यर्थमात्मैवति पुनर्वचः । एकात्मस्वरूपोऽस्मयोभेदमङ्गानिब्रूयते ॥ २६७ ॥  
 सर्वश्रुतिपञ्चवेवं व्रतं द्वैतं सुनिश्चितम् । ब्रह्मवदममृतमिष्याह चाध्वनेना श्रान्तः ॥ २६८ ॥  
 तत्त्वमेव त्वमेवेति किं दृश्यं यच्च । तत्त्वमसीति तांदीरयेद्भ्रान्तमैक्यं न भेदधीः ॥ २६९ ॥  
 एकत्वं वदयोः स्पष्टं भुम्वा यत्प्रतिपादितम् । साक्षात्मुक्तः कार्यो न ह्यो धमनेषां स एव हि ॥ २७० ॥

जाता है । इतने विचारोसे रामनोभद्रकी मुद्रासे बनायी और रामस्वरूपकी उतनाया अब मैं इस मन्त्र करनेके लिए प्रसंगवश सर्वतोभद्रका स्वरूप बतला रहा है ॥ २५१-२५४ ॥ जिस वदनाका स्मरण करनेसे प्राणियोंका सब प्रकार कल्याण होता है उसे लाभ भद्र कहते हैं । भद्र एक वस्तु है और मङ्गलका भा मङ्गलकारी है ॥ २५५ ॥ नहीं कि वह वदनासाक्षात् कामे अधिदेव या अध्यात्म रीतिसे व्यक्तमान होता है, इसीको लोग सर्वतोभद्र कहते हैं ॥ २५६ ॥ सब गरी इसकी वास्तविकताको दिखाने के लिए उन दानो प्रकारको दिखलाते हैं । अधिदैवके अन्तर्गत जो भद्र रहता है उस विषय भद्रका पहलू बतलाते हैं ॥ २५७ ॥ इस अष्टको दृष्ट करकेवाला लोक कल्याणकारी कहलाता है और उसीकी सत्तामद सत्ता भी है क्योंकि सभी लोकसे सबका कल्याण होता है और उसीके सहज सब लोकाका स्थिति बना हुई है ॥ २५८ ॥ वहाँपर प्रभुने स्वयं एक नुवणमय घर बनाया है । उसे पद या कार्यको लेना, जो चाहो सो कह लो ॥ २५९ ॥ व्यासके द्वारा जब प्रणिमी सब पाणियों तथा प्राणकी उपासन से लगे हुए प्रणियोंका वह निष्पन्न होमान समता है ॥ २६० ॥ इससे वदना भी प्राप्तमान होने लगता है । यह स्मृतिका मत है और वेद भी इसी मतको स्वीकार करते हैं । वास्तव्यम तो यह यत्रिव मार्ग श्रुति और स्मृति इन दोनोंको माध्य है ॥ २६१ ॥ अध्यात्मका जो हृदय है उसे लाभ मन्त्र भद्र कहते हैं । उस भद्रसे सब अवयवोंकी कल्याण होता है । २६२ ॥ वहाँपर जो कर्मल है, वह वदनाका स्थान है । श्रुतियाम भी यह बात प्रामाण्य है कि साधनरूपा सम्पत्तिके सम्पत्तिप्राप्ती जा योग यहाँ रहते हैं । उन लोगोंकी गुहजनोकी उपदिष्ट मुक्ति द्वारा वदना प्रकाशमान कीलने लगता है । २६३ । २६४ ॥ मन्त्र, ऊँच तथा मध्य इन तीनों स्थानोंसे वह पुरुष विद्यमान रहता है । इन श्रुतियाम जा कुछ कहा गया है, वह परोक्षमे नहीं प्रत्यक्ष ही जानना चाहिये ॥ २६५ ॥ प्रभुने स्वयं कहा है कि मूर्त आदिसे मय मैं समस्तमे व्याप्त रहता हूँ और सबानी मन्त्रोंके लीरमे भी रहता हूँ ॥ २६६ ॥ किसीको भ्रम न हो इस विचारमे 'आत्मा एव' आदि बातोंकी निर-  
 किर इहराया गया है । 'एकात्मरूपी उस आत्माक बदकी शक्तोकी निवृत्त करनके लिए सब उपनिषदोंमे उस वदनाको अद्वैत बतलाया गया है । 'ब्रह्म एव इदं भूमृत' आदि सबवे वेदमे कहा गया है ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ 'तत्त्वमेव' तथा 'त्वमेवेति' इन श्रुतियोंसे तथा 'तत्त्वमसि' इस छान्दोग्यके महावाक्यसे वदनाके एकत्वका प्रति-

यच्छ त्रिचिह्नगन्तव्ये दृश्यते आनेऽपि । अत्रैव तत्सर्वं उपस्य नारायण स्थितः ॥२७१॥

इदं सर्वं यद्यमर्त्यकमेवाहिनीयकम् । सर्वं सन्निदमिन्मादिश्रुतयो यत्रब्रुवन्ति हि ॥२७२॥

सर्वभूतेषु चान्मानं सर्वभूतानि चात्मनि सपदस्त्रात्मयाज्ञानि परमादे मनोवचः ॥२७३॥

एतदुक्तेन च धनं भूत्वा जगामरूपका । कृतकृपाः स्वयं सर्वार्थसंयत्तान्प्रादुह्यति च ॥२७४॥

अत्राकृतं अन्य भेषाय जानन्निति द्वयऽस्मिन् । किं बहुकृतन चोद्दिष्टं सक्षेपयोगमहम् ॥२७५॥

नारायणचरुन जनार्दन वासुदेव गोविन्द माधव मुकुन्द रमेश विष्णो ।

मकरपण्डित नरविह परावगन्मन्त्राधोक्तगणेश शिव रामन पाद्वि शिष्यन् ॥ २७६ ॥

येनेदं विकृतं विश्वं विग्रता येन चेतनम् । यन्निश्चयं यन्प्रविष्टं च तर्कमे सर्वान्मते तमः ॥२७७॥

इदानीं गमनोपद्रव्याहोत्तरद्वयम् च । नानाभेदाः प्रकृ पन्ने लघुमुद्रान्वितस्य हि ॥२७८॥

पूर्वोक्तंऽष्टाविंशतीनां रेखावृद्धिं प्रकल्पयेत् । पृथिवी द्वारदिकौ तत्प्रकल्पनीयकानि याञ्जयत् ॥२७९॥

प्रथमे तिथिमितीशाश्वतुर्विंशत्पदात्मकाः बाध्यः षोडशमन्त्रशान्त्रास्त्रोद्गमपदान्विताः ॥२८०॥

भद्रतन्त्रमिति चाथ द्वितीयऽर्कमिताः शिवाः । वायव्योदशमिताः सप्तोदशपदान्विताः ॥२८१॥

भद्रमर्कपदं शेषं यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । एतद्वायव्यमनोभद्रमनं च वायव्यम् ॥२८२॥

अथवाऽऽद्ये रममुद्रा रसमां वापिकाश्च परं । त्रयोदश पदाः कार्या वऽत्र चन्द्रकान्त्यकम् ॥२८३॥

द्वितीये पञ्च मुद्राश्च लिङ्गपट्टकं च वापिकाः । तन्मिताश्च भद्रकर्मपदमग्रेऽष्टमावधि ॥२८४॥

तुयेपचतुर्यनेत्रचन्द्रमण्डयाथ मुद्रिका । पण्णेचनेचन्द्रमननेत्रेन्दुशङ्काधना ॥२८५॥

भद्र पट्टपदमर्कान्त्रि पट्टपदं विंशपादकम् । षोडशां त्रिगुणपादं कर्माङ्कय विचक्षणैः ॥२८६॥

पावन किया गया है । वही मुद्रिका कारण है और उसका बीच योग्य हो शान्ति साधान् प्राप्त हो हो जाता है ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ इस जगन्मन्त्र बाह्य-आन्तर जा कुछ दया और भूला जगन्मन्त्र है, उन मन्त्रों को कहकर वह नारायण स्थित है । २८१ ॥ इस जगन्मन्त्र जो कृत है । इसमें एकमात्र वही अद्वितीय आत्मा है । "सर्वं सन्निदं ब्रह्म" आदि वाक्यों में ध्वनि भी यही बात कहता है ॥ २८२ ॥ जो प्राणी संसारकी सब वस्तुओं में सबको देखता है और सब प्राणियोंका प्रान्दिव्य आनन्दे दत्तता है । उन अ-संगीनाके लिये वह कोई संचारण बात नहीं है । यह सब भगवान्का कथन है ॥ २८३ ॥ इस प्रकारके जगन्मन्त्र में १० पदां प्रमाण होकर अपनी कृतकृत्य मानते हुए स्वयं का तरंग ही है साथ ही अथवा अथवा जिधोका भी वह स्वयंकायन विनाशक भवसागरसे पार उतार दत्त है ॥ २८४ ॥ एतद्विषय वस्तुत्वों में ही ध्वनि-ध्वनि-ध्वनि-ध्वनि ॥ विद्वान् लोग अच्छे तरह जानते हैं । अधिक कहना सुनना कथन है । मन्त्रमन्त्र इस संकेतका रूपदाता कर दिया गया है । २८५ ॥ है नारायण, अच्युत जनार्दन, वासुदेव, गोविन्द माधव, मुकुन्द, रमेश, विष्णो मकरपण्डित जगन्मन्त्र, परावगन्मन्त्र राम, गण्डर्गाभिन्नु, शिव धामन । आप इस विषयको जानें कि जगन्मन्त्र ॥ २८६ ॥ संगीती जीवोंसे प्रविष्ट होकर जिसने इस विषयको नमन किया है, जिसने उस जीव स्थित है जिसमें सब प्रतिष्ठित हैं, ऐसे सर्वान्त्रा रमको प्रणाम है । २८७ । अब लघुमुद्राके साधनाथ एक ही साठ रामनोद्वीक अनेक मन्त्र बतलाते हैं ॥ २८८ ॥ पूर्वाक्त २२ रेखाओंका कुछ कर । इसमें ही वायव्य अधिक बनाव । फिर उनमें लिङ्गो-की योजना कर ॥ २८९ ॥ प्रथम पंक्ति में १२ ईश और साठह पादका २१ पद बनाते ॥ २९० ॥ फिर दूसरी पंक्ति में १२ शिव और १८ पादका १२ पाद बनाता चाहिए । तृतीयां तरंग १२ पादका भद्र बनावे । यह रामनोद्वीक १०५ पदका है । २९१ ॥ २९२ ॥ अथवा छ मुद्रा, छ ईश और १३ पादसे छ वापिकार्थ बनावे और १६ पादका भद्र बनाव ॥ २९३ ॥ दूसरी पंक्ति में पांच मुद्रा बनावे और लिङ्ग तथा छ ही काफी बनावे । आगे आठवीं पंक्ति में लेकर चार, पांच, दो, एक, इन मन्त्रोंको मुद्राय बनावे । फिर छ, दो, दो, दो, दो, एक इस क्रमसे शिवकी रचना करे । इनमें छ पादका, बाह्य पादका, दो पादका चौंस पादका सौल्लु पादका, चार पादका कर्मका, प्रत्येक पंक्ति-याने भद्र बनाने । ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिए ॥ २९४-२९५ ॥

अथवाष्टपदे मुद्रां विधाय तन्मालिगद्गम् । रचयन्मालिके तुयं भद्रं मिश्रणादात्मकम् ॥२८७॥  
 सर्वत्र सममुद्रानु मध्ये च परिधिद्वयम् । मुद्रां मीमांस्यमाना वापरद्वां तुयंकोष्ठम् ॥२८८॥  
 लिङ्गकन्धमगता कोष्ठा र्णैरिष्टैः प्रकल्पयेत् । वह्निमग्नेरनेष्ट्यमानि वदन्तुर्वेस्ताम तु ॥२८९॥  
 भद्रशृङ्खलयोग्यानि तदर्थं । मानपाजम् । अधःपादयो दश मुद्रा मीमांस्यमान्या ॥२९०॥  
 भद्रमर्कपद मध्ये परिधा द्वे प्रकल्पयेत् । एवमग्नः परित्यज्यन्तर्धेऽष्टैश्च मुद्रिकाः ॥२९१॥  
 चतुष्पादात्मकं भद्र पञ्च मुद्राश्च पञ्चमः मर्कपादात्मकं भद्र नात्र तौ परिधी स्मृता ॥२९२॥  
 समपेऽग्निमिता मुद्रा भद्र तुयं वदाम्भकम् । द्वये त्रयोदशेशश्च वाप्यश्चापि चतुर्दश ॥२९३॥  
 भद्रं तच्चमितं तुयं नरेश दश वापिकाः । भद्रं तच्चमितं षष्ठे पञ्चेश वापिकाश्च षट् ॥२९४॥  
 भद्रं तच्चमितं शेष दधापूरं प्रकल्पयेत् । अथवाऽष्टं पञ्चदश शिवा नत्रेष्ट मुद्रिकाः ॥२९५॥  
 शिवद्वयं त्रिषट्पाद त्रिषट्पादा च भद्रिकाः । पट्त्तुयं पञ्च मुद्राः स्थुर्वाणे मिथुमितास्तथा ॥२९६॥  
 षष्ठे द्वे मुद्रिके मुद्रा मिगे मुद्रा गजेभ्यथा । शिवद्वयं वापिक च मममन्त्र भद्रद्वयम् ॥२९७॥  
 भद्रमान तन्मालिगद्गम् पट्त्तुयं इदमिति च । विमर्शे इदमिथापि प्रमेयं च प्रकल्पयेत् ॥२९८॥  
 यदा द्वौ मुद्रिके मेकां मध्याग्निं प्रकल्पयेत् । भद्रमिदं कृत्वा तद्विना रचयेद्भजे ॥२९९॥  
 भद्रं गजे तच्चकोष्ठे शेष सर्वं तु पूजयेत् । अथवा त्रिषट्पाद पञ्चदश मीमांस्यमान्याऽऽवृत्तान् ॥३००॥  
 मुद्रामध्ये विधेयं च । मीमांस्यमान्याऽऽवृत्तान् । भद्रमग्न्या न प्रथमा पट्त्तुयं च द्वितीयिका ॥३०१॥  
 द्वितीया त्रिषट्पादात्मकं त्रिषट्पादात्मकं रचयेन्मार्गयोः सम्पक् शेषं सर्वं पुणेदिनम् ॥३०२॥  
 अध्वोक्ताः श्रवणाः यथा पट्त्तुयं चतुर्षुकाः । वह्निमग्ने चन्द्रमुद्राः मीमांस्यमान्या ॥३०३॥  
 पट्त्तु स्थानेषु च शिवान्तर्धमिता स्मृताः । विशेषतः लिङ्गद्वयं त्रिषट्पाद त्रिषट् पदम् ॥३०४॥

अथवा आठ पादक मुद्रा बनाकर बांध रहा है । मालिका चतुर्षुका और तन्मालिगद्गम् भद्र बनावे ॥ २८७ ॥  
 जितनी समसंख्या मुद्रा रहे, उन सबका २८ में दो परिधि बनाने । लिङ्गकी सीमा में मुद्रा आठ चार पादकी  
 बांधी बनाने ॥ २८८ ॥ लिङ्गके कन्धके कोष्ठ में अथवा २८ में जितनी मुद्रा रहे, २८ और बांधीके  
 बीचवाने बीच काष्ठिकावा, चतुर्षुका भद्र बना । मालिका मीमांस्यमान्या ॥ २८९ ॥ अथवा  
 बांधीके दस मुद्राई और सोमाकी परिधिवाला वह द्विषट्पाद बनाने कर रहा है ॥ २९० ॥ अथवा चारह पादका  
 भद्र बनाव और दस पादिका की रचना कर । इस तरह तीन रचने केवल में २८ मुद्राओं की योजना करे  
 ॥ २९१ ॥ चार पादका भद्र बनाव और पञ्च पादिका की रचना कर । मुद्रा के बांधकर चारह पादक भद्र बनाव । विशेषता  
 बतलाने होंगी कि इनमें दो परिधिओं नहीं रहें । और चार पादका भद्र बनाया । इनमें चार पादिका और  
 चोदह बांधी बनाने ॥ २९२ ॥ २९३ ॥ चौदह पादका भद्र बनाने, नी ईश्वर, दस बांधी बनाने और २५  
 भद्र बनाने । छठमें पांच ईश, छठ बांधा, पञ्चदश भद्र, बांधा सब पूजयेन रहगा । अथवा २५ म मालिका शिव अष्टादश  
 मुद्राएँ, नौ पादक दो शिव और नौ ही पादक मुद्राएँ बनाने । चौदह छठ बांधी मुद्राएँ, पञ्चदश सात मुद्राएँ,  
 छठमें दो मुद्राएँ, सातवमें एक मुद्रा, आठवमें एक मुद्रा, दो शिव और दो बांधी रहेंगी । पट्त्तुयं आदिसे लेकर  
 सातवें स्थान तक बनेगा । २९४-२९७ ॥ इनमें भद्रका मान पञ्चवीन, छठ मालिगद्गम्, चारह पादक, सोम, दस  
 प्रकार है । बनायेबांधा चाहिए कि जगता इनको याचना करे ॥ २९८ ॥ अथवा २८ मुद्रा के बांधकर एकको लिङ्ग-  
 के मध्यमें रखे और सोलह के अकोका भद्र बनाकर सातवें त्रिषट्पाद रचाने करे । २९९ । सातवमें पञ्चवीन  
 काष्ठकीका भद्र बनावे । बांधा सब पूजयेन रखे । अथवा आदिक ताल पञ्चवीन पांच, सात तीन, मालिकाओं  
 का शिव बनावे ॥ ३०० ॥ मुद्राके मध्यमें मर्कपादा और परिधि की रचना करे । भद्रका मान पादके जितनी हो  
 रहगी और छठ, दो या चारह पाद उनमें रहे । ३०१ । दूसरा पञ्चवत्त कोष्ठको रहनी और लिङ्गके बगलमें  
 दो बांधीकी रचना कर । बांधी सब पूजयेन रहेगा । ३०२ ॥ अथवा आठसे लेकर छठ पाद बना सात, छठ,

वाप्योऽपि तन्मिताः कार्या भद्राणि वक्ष्यमाणतः तच्चकोष्ठं कला कोष्ठं तुयकोष्ठं च षट्पदम् ॥३०५॥  
 षट्पदं च कलाकोष्ठं दृष सर्वं पुरोदितम् । अथवा प्रथमाद्यावत्पञ्चसंख्यानकारिणि ॥३०६॥  
 षट् षट् पञ्च तुर्यवह्निमुद्राश्च मध्यशङ्करान् । तुर्यनेत्रक्षिनेत्राक्षिमर्षादापरिधीनथा ॥३०७॥  
 विशेषस्तु लिङ्गद्वयं दानैः षट् त्रिषट् षट् । भद्रसंख्येन्दुकलेन्दुकलाकतुरसाम्मिकाश्च ॥३०८॥  
 प्रकल्प्यारचयेद्विबुद्धया शेषं सर्वं पुनः दत्तम् । वं नानाविधा भद्रा च ह्यत्रः सन्ति भो द्विजः ॥३०९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे बालमीक्ये मनोहरकाण्डे श्रीरामदासविष्णुदास-  
 सम्पादिते लघुरामतीभद्रविस्तारो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

## पञ्चमः सर्गः

( रामलिङ्गतीभद्र तथा अनक लिङ्गतीभद्रोक्ता रचनाप्रकार )

श्रीरामदास उवाच

पूर्वोक्तश्रेष्ठमुदीये रामतीभद्रविस्तरान् । यदान्यहं तवाग्रं हि विष्णुदास शृणुष्व तान् । १ ॥  
 निर्यगूर्ध्वरक्तरत्नाः एकपट्टिमिताः शुभाः । अन्तःकृष्णरक्तशुद्धरीताः परिधयः क्रमान् । २ ॥  
 द्वादशांते रीतकृष्णरक्तशुक्लाः पुनः स्मृताः । पञ्चमः पीतवर्णादिः सर्वतीभद्रमालिखेत् । ३ ॥  
 बहिः पञ्ची द्वादशांते श्रीमापरिधयः स्मृताः । रीता वा लोहिताः कार्या मध्ये रीता परिधा स्मृतौ । ४ ॥  
 ततो मध्यमहयोर्द्वे मुद्रिके वेदवर्णके । चतुर्दशेषु चत्वारि नामानि पूर्वलिखेत् ॥ ५ ॥  
 कोणमोहेषु कोणन्दुस्त्रिषदः शुक्लवर्णकाः । एतादशेषु कृष्णा शृङ्खला पीतवर्णकाः । ६ ॥  
 दशपदा शृङ्खलाज्या बहुर्गं हरता स्मृताः । एकोनविंशत्पदा भद्रं रक्तं नवार्त्तकम् । ७ ॥

चार पाँच, तीन, दो अथवा एक मुद्रा बनाव और सामांको पराधियोंकी ओर छोड़ो स्थानोमें चार-  
 चार शिखोंका रचना करे । विजयना कहल इनका रहना कि पाँच या नौ-नौ पादोंके लिग बनगे । बापियों  
 पूर्वोक्त संख्याके अनुसार ही रहनी, लिगु चढ़नी सत्य वक्ष्यमाण संख्याके अनुसार रहना । कुछ भद्र पञ्चोत्त  
 कोष्ठकोक, कुछ सोलह कोष्ठकोक, कुछ चार कोष्ठकोक, कुछ छ कोष्ठकोक, फिर छ कोष्ठको, कुछ सोलह  
 कोष्ठकोके, इस प्रकार भद्र बनगे । बाकी सब पहलक समान हो हयें । अथवा पहली पंक्तिमें पाँचवी पंक्ति  
 पर्यन्त ॥ ३०३-३०६ ॥ छः, पाँच चार, तीन मुद्राः बनावे । अन्तमें चार, व, दो, दो, दो शिखों रचना  
 करे और मर्षादा तथा परिधियोंकी ठोकसे बन कर खन ३०७ । विशेषता इतना है कि पाँच, तीन, छ,  
 तीन, छ पादका लिग बनावे । इसमें भद्रका संख्या सोलह, सोलह तथा छ रहेगा इस तरह कल्पना  
 करके अपनी बुद्धिसे रचना करे । बाकी सब पूर्वानु रहगे । इत प्रकार हे द्विज ! इस भद्रके बहुतो भद्र हैं,  
 ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे बालमीक्ये पंच रामदेवपाण्डेयकृत-  
 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदास कहते हैं—हे विष्णुदास ! अब मैं तुम्हारे आगे पूर्वोक्त रामतीभद्रका विस्तार बतलाता हूँ ।  
 उसे तुम सावधान मनसे सुनो ॥ १ ॥ भद्र बननेके लक्षण चाहिए कि बडा और सायाँ ६१ रेखायें खींचे । अन्तमें  
 काली, लाल, सफेद तथा पीली परिधियाँ बनावे ॥ २ ॥ बाहरकी पंक्तिके आगे पीले, कृष्ण, रक्त तथा शुक्ल  
 रङ्गकी सीमापरिधियाँ रहेंगी । चाहे ती पाँचवाँ स्थान पाले रखते भ बना सकता है । बाहरके बाहरकी  
 पंक्तिमें पीले या लाल रङ्गकी परिधि रहेगा । बीचमें और दो परिधियाँ बनेगी ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके अन्तर  
 मध्यके दोनों परोंमें चार रङ्गोंकी दो मुद्राएँ बनेगी । इसके अन्तर चारों बगल पूर्ववत् चार नाम लिखने  
 चाहिए ॥ ५ ॥ कोणवाले कोष्ठकमें तीन पाद और शुक्लवर्णका इन्दु बनावे । आरह पादकी शृङ्खला बनावे  
 और उसे कृष्ण वर्णकी रहे । दस पादकी एक दूसरी शृङ्खला पीले रङ्गसे बनावे । हरे रङ्गसे उत्तीस पादकी







परविंशपदजे ज्ञेये द्वे सापीश्वर्ये मिते । द्वाभ्यां निबध्य च नेत्रे मिते शेषपदानि हि ॥४३॥

एष रक्तानि स्रवति पीनानि शिचकर्मयोः ।

स्थाने तृतीये मुद्राश्च तिस्रो द्वा त्रयसौ तनी । स्थाने चतुर्थे मुद्राश्च चत्वारसिद्धिजाः स्मृताः ॥१४॥

एवमग्रे क्रमेणैव विज्ञेयं जगतामृतं यथाते ननुयते मुदाश्चतुर्दश शिवास्तथा ॥१५॥

पञ्चदशे हि विज्ञे । एतन्मयं विद्या निम्बेव । नृणां योगेन मोः कार्त्तव्यं ह्यं शिरो च त्रिषट्पदा ॥४६॥

अश्मद्वान्मकं भट्टं मयिने च कृते गद्य । मठः ४ गो विगवृद्धिर्द्वि कर्तव्या परमावधि । ४७ ।

स्थाने वृत्तिगुणामे मरु हाव्य येरिता शरदिग्ग लिक्षानि वदिः परिधयस्ततः ॥४८॥

एव युक्त्या रचयिषे श्रेय सर्वं सुगोष्ठितम् ।

अष्टोत्तरमहस्रं च समस्मिन्भक्त विदम् । गङ्गासप्त गोष्ठि हि गङ्गाकृपानितुष्टिदम् ॥४९॥

निर्यमूखं वभासाम्भुजोत्पलम् १३३३ ॥ अमुकममरे मध्ये परिधयः समनतः ॥५०॥

तिर्यग्गुण्य दादज्ञाने नहि परोपपन्नः । यः संसाधनिषिद्धयं नान्यस्थले कदा ॥५१॥

नैऋत्येने वैशमुद्रा । अनेदर वृत्तिके सिद्धा वा मन्त्रमुद्राय द्वापमे ए चतुर्थके ॥५२॥

पञ्चमे दश गन्धश्च द्वे च परे एव द्विवचनं अष्टावश्वत्थं गन्धनामद्वं ते मयोदितम् । ५३ ।

निर्दिष्टं त्रिपूर्णांशेन कर्मण्युत्तमं नवदिनं गमयत्ययमेके पुरोदितम् ॥२४॥

तदत्र मध्ये लेखः हि मध्यमृता स्थले स्थितः । धारा कार्या दादगत परिधयश्च पूर्ववत् । ५५॥

चिर्गुण्यं शुभा कार्या वृत्तिः पश्चिमपक्षा । स्वाने तृतीया मुद्राथ निम्नो ह्यौ शक्यौ वरौ । ५५॥

षतुर्थे वेदमुद्राश्च त्रयस्त्रिंशो यन्त्राः स्मृताः । पञ्चमे पञ्च मुद्राश्च चत्वारश्च ह्यग्रे वराः । ५७।

षष्ठे स्थाने च पञ्चमः शिवाः सप्त प्रकीर्तितः । कण्ठयोगेभ्यः कार्यो ह्येव इमे च त्रिष्टुप्पदौ ॥५८॥

बनवे । बाह्य कारो दोनो पादों को ४२ वा ४३ पंक्ति बनावे ॥ ४१ ॥ छद्मीस पादसे शिव तथा  
बापो बनावे ॥ ४२ ॥ द्वितीयक ४४, ४५, ४६, ४७, ४८ ॥ बाकी काण्टेशवास पाँच कोण्टक लाल  
रङ्गसे, चार पाद मुद्राएँ दशवीं तथा पंचम पंक्ति में न मुद्रायें और दो शंकर बनावे । चौथी पंक्तिमें बाप  
मुद्रायें और तीन शिव बनावे ॥ ४९ ॥ इस प्रकार चतुर्थके बाप पर इसमें जो कुछ विशेषताये हैं, उन्हें बतला  
रहा हूँ । चौदहवीं पंक्ति में चौदह मुद्राएँ और चौदह शिव बनावे ॥ ४५ ॥ बहो प्रम पन्द्रहवीं पंक्तिमें भी  
रहगा । बाकी सब १० वृद्धि १० प्रत्यय करे । दानाक बायो घराय नौनी पादके दो शिव बनावे  
॥ ४६ ॥ अष्टमुद्राओं में रामसे ४३ वं शिवगुण कर गन्धकार प्रत्यय ४३ मुद्राके अनुसार लिङ्गकी वृद्धि  
करता आय ॥ ४७ ॥ छद्मीस पंक्तिमें बाह्य मुद्रायें बनावे । उनमें नईम लिङ्ग बनाकर बाह्यकी परिधिवा  
ली बनावे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार गुणिके साथ इस रामसाम्बद्रकी बनावे । जेय अंग पहिलेके समान हो रहेगा ।  
महामातोत्तरमहामातक रामकोभद्र रामचन्द्रजाका प्रमथ करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आसन है ॥ ४९ ॥ चौथी तथा  
तिरछी १५५ रखावे खींच और अष्टमुद्रात्मक रचना करे । उसके बीचमें भर रहगा । चारो ओरसे  
बाह्यकी पंक्तिमें छद्म परिधिवाँ रहेगी । मध्यमें मोम रनिचिरे रहेंगी और किसी पंक्ति में कुछ भी नहीं  
रहेगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इसकी दूसरी पंक्तिमें चार मुद्रायें रहेंगी । तीसरी पंक्तिमें कुछ विशेषता है, सो बतलाते  
हैं । आठवीं और चौथी पंक्तिमें क्रमशः तीन बायीं और तीन मुद्रायें बनावे ॥ ५२ ॥ पाचवीं पंक्तिमें इस  
मुद्रायें बनाकर बाकी पूर्ववत् रक्ख । यह मैं तुमको अष्टोत्तरशत रामतोमद्र बनलाया ॥ ५३ ॥ छेथी और  
तीसरी २०३ रेखाएँ बीच । फिर पूर्वोक्त रात्रिके अनुसार मद्रमयात्मक रामतोमद्रकी रचना करके उसीके  
समान समस्त लिङ्गोंकी स्थापना करे ॥ ५४ ॥ इनके मध्य पहली पंक्तिमें सफेद रंगका एक मद्र और सफेद  
रङ्गकी ही एक बापो बनावे । फिर पहिलकी तरह बाह्य पंक्तिमें बाह्य परिधिवाँ बनावे ॥ ५५ ॥ बाह्यकी  
तीसरी और सोघा परिधिवाँ बनाकर सोघरी पंक्तिमें पाँच मुद्रा और दो शिव बनावे ॥ ५६ ॥ चौथी  
पंक्तिमें चार मुद्रा और तीन शंकर बनावे । पाँचवीं पंक्तिमें पाँच मुद्रा और चार शिवकी रचना करे ॥ ५७ ॥



कृष्णवर्णभृङ्गनासु पद्मावाह विभीषणम् । वल्गुषु च जाम्बवन्तं मेघ सङ्केतुषु स्मरेत् ॥ ७८ ॥  
 द्विविधं परिधिष्वेव मुद्रायां राघवं स्थिता मुद्रायाः पश्चिमे वायु दक्षिणे दक्षः पुरः ॥ ७९ ॥  
 लक्ष्मणं मरणं वापि सङ्गमं वापुनन्दनम् । एतत्पूजकपोर्मध्ये सेया पूर्वदिग्मेव हि ॥ ८० ॥  
 मितापणेधिष्वत्रैव सुवर्णं वसिचिन्तयेत् । सर्वत्र पद्माक्षेण चित्रयेन्मूर्तवानरात् ॥ ८१ ॥  
 वहिष्पिपरिधिष्वेव चित्रेणीं वसिचिन्तयेत् । अनुदिक्पलामिमुक्ता हरा कदाच वापिङ्गाः ॥ ८२ ॥  
 कर्तव्या बान्धविमुक्ताः कार्यं वा पद्ममुक्ताः । अनुदिक्पलामिमुक्ता सर्व मन्त्रेषु मेऽकचि ॥ ८३ ॥  
 वज्रत्रये वसिष्ठाया वरुणीन्यं सुनीश्वराः । पूर्वोक्तमन्त्रे देवाद् हि सपूज्यादौ ततः परम् ॥ ८४ ॥  
 क्षमारमेद्राघनस्य धेनुं पूर्वां सन्निभशम् । पद्मस्य कर्णिकायां च सुमीनं राघवं न्यसेत् ॥ ८५ ॥  
 बहवश्चक्षुर्ध्वेव तस्यावरणदेवताः । पूजयेद्देवि सर्वत्र बुधस्तु परिकल्पयेत् ॥ ८६ ॥  
 पद्मे सङ्क्षोषमानस्य प्रकागन्धमुत्पद्ये । सर्वगोभद्रकमले चाम्परश्रीं चटं न्यसेत् ॥ ८७ ॥  
 जलपूर्णं च तस्यास्य केतकीपत्रपुरिने । ताम्रपात्रं चित्रनं च न्यस्य तद्गुणपूजिषु ॥ ८८ ॥  
 सत्रं वसु सावर्णं रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । सैनी दाहमयो लोही लेखा लेखा च मृकरी ॥ ८९ ॥  
 मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता । सर्वेषु रामचन्द्रेषु मुद्रापूर्वो न्यूनमः ॥ ९० ॥  
 वज्रकचं छिन्नं श्रेयो भद्राया राघवापदे ॥ श्रीरामलिंगगोभद्रमन एवोत्पद्ये बुधैः ॥ ९१ ॥  
 एवं मानावधा मेदा बहवः संनि वा द्विज । श्रीमदाम्भोयद्राणां देवां संस्था न विद्यते ॥ ९२ ॥  
 यथा मेदाः कियतोऽत्र तथा च विनिवेदिताः । नर्तुं दद्यात् प्रकर्तव्याः पत्रमार्थं समावृतेः ॥ ९३ ॥  
 हेमन्तमयं चैवं कार्यमत्यजमुत्तमम् । राघवार्थं महन्क्षेत्रं शीघ्रेतन्तुमयं तु वा ॥ ९४ ॥

देवताओंका आवाहन करे । इसके बाद बाहरके लिगाय घटका, बागिचमे नलका, मटोमे मुवायका, तिरछे  
 घटोमे दीका ॥ ७३ ॥ ७५ ॥ और पीले गङ्गकी भृङ्गनामोके मकरका आवाहन करे । जहाँ जलकम पीले  
 भृङ्गनाका अभाव हो तो तिरछे घटमे मकरका आवाहन करे ॥ ७७ ॥ कृष्णवर्णकी भृङ्गनाओमें विभीषणका,  
 बाल्लिमोय चाम्बरानुका और सङ्केतुओंके पद्मस्य आवाहन करे ॥ ७८ ॥ परिधिमें भीतरवाली मुद्रामें  
 सीठके साथ-साथ रामका आवाहन करे । मुद्राके पश्चिम, दक्षिण, उत्तर तथा पूर्वकी ओर क्रमशः अमय  
 भरत, सङ्गम और हनुमान्का आवाहन करे । वहाँ पूर्व-पूर्वक दोनोंके लिए पूर्वदिशा उत्तम मानी  
 गयी है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ सफेद रङ्गकी परिधिमें सुवर्णका तथा बाकी सब स्थानोंमें लारे चमरोंका आवाहन  
 करना चाहिए । बाहरकी ताला परिधिमें विभीषणीका आवाहन करे । हर, घट और वापिकाओंकी चारों  
 दिक्पालोंके अविमुख कर दे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ यह विद्या बननेवाले काचार्यने मुझे बतलाया है कि  
 अष्टक मन्त्रों हर, घट तथा वापिकाओंकी जाने सम्मुख कर वा पद्मके आकारका बना दे इसका  
 दिक्पालोंके अविमुख कर देना चाहिए ॥ ८३ ॥ पुनिगण ऐसा कहते हैं कि इन तीनों पत्रोंमें सर्वजेंठ  
 पत्र यह है कि पूर्वोक्त मन्त्रोंमें देवता कार्तिककी पूजा करके रामचन्द्रोंका विस्तृत पूजन प्रारम्भ करे ।  
 पद्मकी कर्णिकामें जोतके सहित राघवचन्द्रोंका स्थान करे । जाठ दलमें कमलमें उनके अविरा-  
 देवताओंका पूजन करना चाहिए । पण्डितोंका कथन है कि यह नियम सर्वत्रके लिए है ॥ ८४-८६ ॥  
 यदि कमलमें कोई सङ्क्षोष देखे तो उसका लिए प्रकारान्तर बतलाते हैं । सबत-मन्त्रके कमलमें चाम्बरकी  
 वागिचर चट स्थान करे ॥ ८७ ॥ केतकीके पत्रों परे हुए चटके मुँहपर काष्ठोंमें सरा एक नकासा तामेका  
 बर्तन रखे । उसके सम्मुख आचरणदलका साथ भीरामचन्द्रोंकी पूजा करे । हरणक मन्त्र परावरणी,  
 ककरी, लोहेकी, चूने-बँटकी, बालूकी, रङ्गसे रङ्गका बनयी हुई मन्त्रों केतिष्ठ बयवा अविमुखों  
 इन जाठ प्रकारोंमें जो रहे, उसकी प्रतिमा बनाकर श्रीरामका पूजन करना चाहिए ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥  
 शिवजी पञ्चक है और घट जहाँ रामजोंके पापद है । इसोमिसे विद्वान् ज्ञान इसे श्रीरामलिंगगोभद्र  
 कहते हैं ॥ ९१ ॥ हे शिव ! इस तरह श्रीरामलिंगके बहुतमें भेद हैं । जिनको कोई संस्था हो नहीं  
 है ॥ ९२ ॥ यह भेद उनमेंसे कुछ अंग बन्याये हैं । लोगोंको अवगत है कि रामको पूजाने लिए बुद्धि

अथवा पट्टकल्प्य चैव कार्यं परामनम् अथवा लेखनेनैव सर्वमात्रे द्विजोत्तमैः ॥९६॥  
 भूर्जपत्रे विलिखितं विज्ञेयान्निद्रिदं मृणाम् वा वक्रोपरि लेख्यं वा कर्तव्यं चित्रन्ततुभिः ॥९७॥  
 विनामनेन या पूजा सा पूजा निष्फला भवेत् । रामभद्रामने पूजा सा पूजाऽतिफलप्रदा ॥९८॥  
 यद्यद्रामपरं कर्म तसञ्च द्विजपुंगवैः । रामामनन्वितं ताम् पुष्कलम् संपादयेत् ॥९९॥  
 रामभद्रामनेर्हीनं यत्कर्म तस्य निष्फलम् । तस्मादेव क्रमेदेव कर्तव्यं रामपूजने ॥१००॥  
 अष्टोत्तमसहस्रं च रामलिंगात्मकं हि यत् । आननं तद्विष्णुं हि गद्यव्याप्तिलोपदम् ॥१०१॥  
 तदधो रामतोमद्रमष्टोत्तरसहस्रकम् । तदधो रामलिंगात्म्यमष्टोत्तरशतात्मकम् ॥१०२॥  
 तदधो रामतोमद्रमष्टोत्तरशतात्मकम् । तदधः पञ्चविंशच्छ्रारामभद्रामनं शुभम् ॥१०३॥  
 तदधो रामतोमद्रं षोडशात्मकमीशितम् । त्रयोदशात्मकं रामतोमद्रं तदधः स्मृतम् ॥१०४॥  
 द्वादशं च नवार्थं च सप्तमुद्रात्मकं तथा । चतुर्मुद्रात्मकं वापि सर्वत्रयापरं ह्यधः ॥१०५॥  
 एवं क्रमेण ज्ञेयानि रामभद्रामनानि हि । अष्टोत्तमेषु वा पूजा नम्याः श्रेष्ठं फलं स्मृतम् ॥१०६॥  
 लघ्वामनेषु वा पूजा तादृशं नष्फलं स्मृतम् । एवं ज्ञान्वा फलं बुद्ध्या श्रेष्ठमेषासनं धनैः ॥१०७॥  
 यन्नेनैव प्रकर्तव्यं रामोपासनं मानवैः । प्रतिवत् नवान्न च कार्यमामनमादरात् ॥१०८॥  
 एकस्मिन्धासने पूजा न वर्षादुच्यतेः शुभा । एवं शिष्टशान्तानां च भेदाः पृष्टास्त्वया पुरा ॥१०९॥  
 तत्राग्रे हि मयाख्याताः श्रीरामस्यातिशोभदाः । स्वगुणरामतोमद्रवर्णनस्य प्रसङ्गतः ॥११०॥  
 स्मरन्निना रामचन्द्रस्य किञ्चिच्छीला मयाऽयं हि । कदाच्यपि तत्राग्रं तो न्य शृणुस्व द्विजोत्तम ॥१११॥  
 प्रत्यब्दं श्रावणे मासे गुरुराक्षसदघ्ननमः । शन्वारिंशद्भूमिमुवर्गस्य पृथक् पृथक् ॥११२॥

लगाकर सदासि उनको रचना करे ॥ ९३ ॥ उत्तमका चाहिए कि मुद्राकें ताराका एक सुन्दर आसन  
 रामचन्द्रजीके लिए बनवावे । यदि सुवर्णके तारका न हो सके तो चाँदिका तारका हा बनवा ले । वह भी  
 न बन पड़े तो रेशमके सूतका अच्छा सा आसन बसवावे । यदि इनमेंसे कोई भी न बनवा सके तो किसी  
 पत्तपर आसन लिखवा ले ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ भूर्जपत्रपर लिख हुआ आसन विशेष निद्रिदायक होता है ।  
 इसके अतिरिक्त कपड़ेपर लिखवा ले या रङ्गीन मृत्से बनावा ले ॥ ९६ ॥ विना आसनके जो पूजा की  
 जाती है, वह धर्म्य होती है और रामभद्रासनके ऊपर जो पूजाकी जाती है, वह अतिशय फलदायिनी  
 हुवा करती है ॥ ९७ ॥ द्विजश्रेष्ठ ब्राह्मणोंको चाहिए कि धारामचन्द्रक प्रायश जी-जी कार्य करना हो, वह  
 रामको मानने कर्मके उनके आगे हो करे ॥ ९८ ॥ रामभद्र मानने रतिन जो काम होता है, वह निष्फल होता  
 है । इससे रामके पूजनमें आसनकी रचना अवश्य कर ॥ ९९ ॥ जो अष्टोत्तरसहस्र रामलिंगात्मक भद्र है,  
 वह रामचन्द्रजीकी अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आसन है ॥ १०० ॥ उससे कुछ मध्यम अष्टोत्तर  
 सहस्र रामतोमद्र है । उससे छोटे मध्यम अष्टोत्तरगत रामलिंगात्मक भद्र है ॥ १०१ ॥ उससे मध्यम  
 अष्टोत्तरगत रामतोमद्र तथा उससे मध्यम पञ्चविंशत् श्रीरामभद्रासन है । १०२ ॥ उससे मध्यम षोडशात्मक  
 रामतोमद्र है । उससे मध्यम त्रयोदशात्मक रामतोमद्र है ॥ १०३ ॥ उससे भी न्यून क्रमशः द्वादश रमक,  
 नवार्थक, सप्तमुद्रात्मक, चतुर्मुद्रात्मक भद्र है ॥ १०४ ॥ इस क्रमसे रामचन्द्रके आसनोंको जानना चाहिए ।  
 जितने ही श्रेष्ठ आसनपर पूजा की जाती है, वह उतनी ही अधिक फलवती हुवा करती है ॥ १०५ ॥ जितने  
 ही साधारण आसनपर पूजा की जाती है उतना ही साधारण फल भी प्राप्त होना है । ऐसा समझकर रामको  
 उपासन करनेवालोंको चाहिए कि बुद्धि लगाकर धीरे-धीरे श्रेष्ठ आसनकी ही रचना करे और श्रद्धापूर्व  
 पूजनके समय नयी-नयी किम्बकें आसन बनाया करे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ एक किस्मके आसनपर  
 एक वर्षसे अधिक समयतक पूजन करना अच्छा नहीं होता । हे शिष्य ! तुमने पहले हमसे आसनोंका  
 भेद पूछा था । तो रामका प्रसन्न करनेवाले उन भेदोंको मैंने तुम्हारे सामने कह सुनाया हैं, तुम्हारे  
 पूछे हुए रामतोमद्रके प्रसङ्गवश मुझे रामचन्द्रजीकी एक छीला गद्य या गयी है । हे द्विजोत्तम ! उसे मैं

मत्स्यं लक्ष्मिगानि कृत्वा पत्न्या वृत्तोऽर्चयेत् । अष्टोत्तरसहस्रैश्च लिङ्गैर्बद्धद्रुममम् ॥११२॥  
 तच्छ्रमोत्तमं तेषां महामोनिचिन्तनम् । तन्मध्यगतकमले चैकं लिङ्गं निवेशय च ॥११३॥  
 षोडशैरुपचारैस्तत्संपूज्य स रघुनमः । हेममुद्रां दक्षिणार्धं दत्त्वा मपूज्य भूमिम् ॥११४॥  
 तस्मै लिङ्गं मासनं तददा प्रत्येकमादरात् । एवं स कोटिलिङ्गं नि श्रयस्त्रिद्विनेददी ॥११५॥  
 एव सर्वं भावणे हि शक्तिर्षोऽकरोद्विभुः । दिव्यैरामर्गैर्वस्त्रैश्चिन्ता रामाविर्तवधुः ॥११६॥  
 हेमतनुममुद्भूतान्पङ्कजोदामनानि सः । उद्यापनं च हवनं चकार रघुनन्दनः ॥११७॥  
 विष्णुदास उवाच

अष्टोत्तरसहस्रैर्वलिङ्गवोमदधीरितम् । कथं कार्यं तस्य मेशा निस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥११८॥  
 हेमतनुममुद्भूतपङ्कजोदामन विभुः । स हेमान्यपि लिङ्गानि आकरोष वगापि हि ॥११९॥  
 दिव्यैरामर्गैर्वस्त्रैश्चिन्ता द्विजार्चनम् असक्तौ तद्वत् मिदृशैर्कथं तद्वक्तुमर्हसि ॥१२०॥  
 श्रीरामदास उवाच

शुक्लौ च पट्टकूलम्प्य कनकप्याथवा नरैः । कार्यं तदथवा वस्त्रं तनुमिश्रं प्रकारयेत् ॥१२१॥  
 लेख्यं वस्त्रेऽथवा रत्नैर्लेख्यं पद्मादिमन्थले । अशुक्लौ रत्नान्येव लिङ्गानि ताम्रजानि च ॥१२२॥  
 किंवा पारदभूतानि स्फाटिकान्योपलानि वा । दातृजानि च दर्शय गोमयेन मृदाऽपि वा ॥१२३॥  
 कृत्वा लिङ्गानि पूज्यानि स्वशक्त्या पूजयेद्द्विजान् । इदानीं लिङ्गतोमदध्वनीं ते वदाम्यहम् ॥१२४॥  
 त्रिर्भुजं रक्तरेखां च शनेऽष्टदश स्मृताः । तासां पदानामेकेन पूर्णमष्टया भवेद्विह ॥१२५॥  
 रीताः परिधयः कार्याः पट्पदान्तेऽत्र सर्वतः । युगैर्दुर्ममिनास्तेषु लिङ्गादि रचयेद्विधा ॥१२६॥  
 चतुष्काणेषु शक्तिनस्त्रिपदैः परिकल्पयेत् । तदत्र भृङ्गस्त एव च पादः कार्या च सर्वतः ॥१२७॥

तुम्हारे जाने कतु रह्य है, मुनी ॥१०८॥१०९॥११०॥ गुण मन्त्रिने आशानुसार रामचन्द्रजी प्रत्येक आयनमास-  
 में श्रीरामचन्द्र एक सुवर्णसे प्रतिदिन एक-एक लाख शिवलिंग बनाकर अशुक्ल रंगके साथ उनका पूजन करते थे ।  
 अष्टोत्तरसहस्रात्मक जो मद्र है वह उत्तम माना जाता है । अष्टोर्ध्वाशिरात्मक प्रीतिवर्द्धक मानन है ।  
 उसके मध्य विद्यमान कमलमें एक लिङ्ग बनकर ये उसका पादपचारस पूजन करने और दक्षिणाके निमित्त  
 बाह्यलोका सुवर्णमयी मुद्राका दान दिया करने थे । वह लिङ्ग तथा आपन भी उन्ही बाह्यलोको मिया करता  
 था । इस तरह श्रीरामचन्द्रजी दैनिक दिनोम एक करोड़ शिवलिंग बनाकर दान दिया करते थे ॥१११-११५॥  
 ये सर्वशायक भगवान् प्रतिगर्भ भावणसारमें इस व्रतका पालन करते थे । उन्ही समय विविध प्रकारके  
 दिव्य आभरण वा-वाकर रामराज्यके बाह्यण सुशोभित होत थे । ॥११६॥ उस समय रामचन्द्रजीने सुवर्ण-  
 तन्तुका ही आसन बनवाया और उद्यापन तथा हवन कराया ॥११७॥ विष्णुदासने कहा —अभी आपने जो  
 दो अष्टोत्तरसहस्र लिंगतोमद धनगाया है, उसके पेर किस प्रकार करने चाहिये सो बिलासगर्वक आप हुये  
 बगलामें । ॥११८॥ मैंने आशा कि रामचन्द्रजी सुवर्णतन्तुका आपन और सुवर्णके लिंग बनवाने थे । दिव्य  
 कम्पा और अप्रुपणामे बाह्यणाको पूजा करते थे । लेकिन इसमें उतनी सामर्थ्य नहीं है, उसका मत किस प्रकार  
 सिद्ध हो, यह जो हमें बतलाये ॥११९॥ ॥१२०॥ श्रीरामदासने कहा कि यदि न सामर्थ्य हो तो रेशमके या  
 कम्बलके धूँसे अथवा साधारण कपड़पर आपनकी सुवाई करा न ॥१२१॥ अथवा पत्र आदिपर रङ्गसे  
 लिखा स । यदि सुवर्णमय लिंग बनवानेकी शक्ति न हो तो चर्दो, लोहा, पारा स्फटिकपाँप, लकड़ी, चन्दन,  
 मोहर अथवा मिट्टीका लिंग बनाकर पूजन करे । जिसकी अपनी सामर्थ्य हो, उसने ही बाह्यणाको पूजन  
 करे । जब मैं पुनः लिङ्गतोमदकी रचनाका प्रकार बतला रहा है ॥१२२-१२४॥ बेंडा और लडा २१८ रेखाएँ  
 लाल रङ्गसे जोई इस प्रकार रेखा खींचनेसे पूर्णतः २१८ कोशक बन जायेंगे ॥१२५॥ इस मद्रम छ छ पाद-  
 कानी कीमे रङ्गकी परिधिवाँ बनेगी । उनमें अपनी बुद्धिमें षोडश लिंग आदि बनाये ॥१२६॥ उसके चारों  
 ओरोंमें तीन-तीन बारके चक्का बनाये । उसके आगे चारों तरफ पाँच पादकी भुँखलये अथवा बाँधी

एकादशपदा वल्ली चारी त्रिदशपादिका । अष्टादशपदेः स्रग्भुः सर्वत्रैव स्त्रितोष्कमाय ॥१२८॥  
 तत्र प्रथमपरिधेरर्थाक् लिङ्गानि योजयेत् । त्रिरेकादशमंरूपानि वाप्यस्त्रेदाधिकान्ततः ॥१२९॥  
 मट्रेऽर्काकपदेः कार्या द्वितीये लिङ्गसंदतिः । एकत्रिंशन्मिता कर्पा भट्रे नवनवात्मके ॥१३०॥  
 तृतीये नवनवेशयस्या भट्रे तु षट् पदे । तुर्ये षड्विंशल्लिङ्गानि भट्रेऽर्काकपदे मते ॥१३१॥  
 पञ्चमे तुर्यमेवञ्चा भट्रे नवनवात्मके । षष्ठे द्वादशल्लिङ्गानि भट्रे षट् षट् पदे स्मृते ॥१३२॥  
 सप्तमे लिङ्गविनतिरेकीनविंशन्संख्यकाः । भट्रेऽर्काकपदे ज्ञेयेऽष्टवे सप्तदशेश्वराः ॥१३३॥  
 भट्रे नवनवपदे नवमे मनुशकगः । भट्रे शसिकलात्मरूपे दशमेऽर्कमिताः शिवाः ॥१३४॥  
 भट्रेऽर्काकपदे ज्ञेये तथा त्वेकादशे दश । शिवा नव नवपदे भट्रे ज्ञेये मनोरमे ॥१३५॥  
 द्वादशे सप्त लिङ्गानि भट्रे चन्द्रकलात्मके । त्रयोदशे पञ्च दश भट्रेऽर्काकपदे मते ॥१३६॥  
 चतुर्दशे त्रिंशल्लिङ्गानि भट्रे नवनवात्मके । चरमे ततस्तु रचयेत्सर्वतोमद्रुतमम् ॥१३७॥  
 विडद्विपदः कोणे शृङ्खला षट्पदान्मिका । त्रयोदशपदा वल्ली चारी तन्वमितिर्मिता ॥१३८॥  
 भट्रे षोडश षोडशपदेऽन्तः परिधिर्भवेत् । तदन्तरे पञ्च पञ्च पदेः पञ्च समुद्रात् ॥१३९॥  
 विचित्र चित्रवर्णं च स्वेनेन्दुः शृङ्खलाऽसिता । चारी शुक्लाऽमिताः शून् रक्त भट्रे प्रकलयेत् ॥१४०॥  
 नीला वल्लीश्चरम्बककोष्ठाश्रिता यथारुचि । यत्र यत्र पदानीद शेषभूतानि सानि तु ॥१४१॥  
 यथायोग्यं धिया तत्र शृङ्खलार्थे नियोजयेत् । शुक्लरक्तकृष्णवर्णा ह्येते परिधयस्तथा ॥१४२॥  
 वा पूर्वोक्तपरिधिं दत्त्वा देवास्तयन्ततः । एतेषां परिधौनां चैव दान्यष्टाधिकानि हि ॥१४३॥  
 नोक्तानि पूर्वमग्न्याया ज्ञान्वेत्थ वृद्धिमाचरेत् । अष्टोऽष्टेवं हि षोडशं परिधौनां चतुष्टये ॥१४४॥  
 एतदष्टोत्तरदशसर्वं भद्रं लिङ्गोद्भवं स्मृतम् । एकस्त्वयं प्रकारो हि प्रकारगतमुच्यते ॥१४५॥

॥ १२८ ॥ गारुह पादकी वल्ली और तेरह पादकी चारी बनायी जायगी । अष्टादह पादके शंभु बनाये जायेंगे । इसी समय लिख ॥ १२९ ॥ छमस पहली परिधिके पहलें लियोंकी योजना करे । इसके अनन्तर चौरीस बापिया बनावे ॥ १२९ ॥ सप्तम्यात् भद्रमं बारह बारह पादक ३१ लिङ्ग बनावे । फिर तात्तरी पक्षिम नीली पादके २९ भद्र बनावे । फिर छः पादके दो भद्रोंकी रचना करे । चौकी पक्षिम बारह-बारह पादके २६ लिङ्ग बनावे ॥ १३० ॥ १३१ ॥ चौकी पक्षिम नीली पादके २४ लिङ्ग बनावे । छठी पक्षिम छ-छ पादके भद्रोंमें १२ लिङ्गोंकी रचना करे ॥ १३२ ॥ सातवी पक्षिम बारह पादवाली १९ लिङ्गोंकी योजना बनावे । आठवी पक्षिम नी पादक भद्रोंमें १७ लिङ्ग बनावे । नवी पादके सोलह सोलह पादान्मक भद्रोंमें १८ शब्द बनावे । दसवी पक्षिम बारह-बारह पादके भद्रोंमें बारह लिङ्ग बनावे ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ गारुहकी पक्षिम नीली पादान्मक भद्रोंमें दस लिङ्गोंकी रचना करे । १३५ ॥ बारहकी पक्षिम सोलह मानह पादान्मक भद्रोंमें सात लिङ्गोंकी रचना करे । तेरहकी पक्षिम बारह-बारह पादान्मक भद्रोंमें दस लिङ्ग बनावे ॥ १३६ ॥ षोडहकी पक्षिम नीली पादान्मक भद्रोंमें तीन लिङ्गोंकी रचना करे । अन्तमें उरम सर्वतोभद्र बनावे ॥ १३७ ॥ कोणभागमें तीन पादका एक संडेन्दु और छ पादकी शृङ्खला बनावे । तेरह पादकी वल्ली और पञ्चास बाप्यकी चारी बनावे । १३८ ॥ भद्रम सालह-सालह पादका परिधि बनावे । इसके बाद पाँच पाँच पादका कमल बनावे ॥ १३९ ॥ उस कमलका रङ्ग विचित्र-विचित्र रहगा । दस स्वेतवर्ण और शृङ्खला कासे वर्णोंकी रचना । बायी छकेर, शिव गुरुङ्ग, लाल भद्र, नील वल्ली रहेंगी और वल्ली तथा शिवके स्कन्धवाले कोष्ठक भरने इत्यादिनुसार विचित्र-विचित्र वर्णोंका बनावे । इसमें सी सी पाद शेष भद्र, वे वपन इत्यादिनुसार रङ्गसे रङ्गें बाकर शृङ्खलानिर्माणके काममें आ जायेंगे । अन्तकी तीन परिधियाँ सफेद लाल और काले वर्णोंकी रचना । १४० ॥ १४१ ॥ मयवा पहली परिधि पीले रङ्गकी बनाकर तीन परिधियाँ और बनावे । इन सब परिधियोंमें आठ पाद अधिक रहा करे ॥ १४३ ॥ किन्तु द बाद पूर्वमग्न्याकी गणना करके समझ नहीं गिनार है । ऐसा समझकर वृद्धि करे । इसके आगे चारों परिधियोंमें भी यही क्रम रहेगा ॥ १४४ ॥ यही अष्टोत्तरदश रामतोभद्रका मम है । यह एक प्रकार हुआ । अब दूसरा प्रकार



उ शने मम पञ्चाशद्रेखाः पूर्वोत्तराः स्मृताः । पश्चिमः पार्श्वः कायाः पश्चिमः च दक्षिणः ॥ १४५ ॥  
 समोदस्यया मध्यस्थिः शिखरा चोत्तरीन्द्रिया । मन्त्रमन्त्रमन्त्राः च शिखरा चोत्तरीन्द्रिया ॥ १४६ ॥  
 समाश्रितमिना त्वन्या दक्षिणपार्श्वानि भावय । शिखाश्रितमन्त्राः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १४७ ॥  
 गजेंद्रुगिरिचन्द्रा च वज्रपुत्रचक्रा जगताः कदाचन न्यष्टमिना पटवन्त्राः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १४८ ॥  
 प्रतिपत्तिमेकवार्यं लिखेत्पञ्चदशिका भवेत् । चतुर्विंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १४९ ॥  
 भद्रमन्त्राः क्रमेणैव तान्याप्यष्टदशमाणक । पूर्वपक्षा च पञ्चम्या नवम्या हि तथैव च ॥ १५० ॥  
 त्रयोदश मन्त्रमन्त्रमन्त्राः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५१ ॥  
 चतुर्दश स्मृतं भद्रं पञ्चविंशतिः स्मृतम् । त्रयोदश च पञ्चम्या चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५२ ॥  
 पञ्चदश हि पक्षा च भद्रं त्रयोदशमन्त्रम् । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५३ ॥  
 पञ्चकोषाडर्शान्वेव भद्रं षोडशपञ्चजम् । मन्त्रकोषेषु चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५४ ॥  
 पञ्चमिकोषादशमिर्जना कार्या तत्रेऽन्तरे । मन्त्रोपद्रवः स्मृतः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५५ ॥  
 भद्रं नवपदं मन्त्रोपद्रवेऽथ प्रकल्पयेत् । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५६ ॥  
 कृष्णं लिखेत्पञ्चम्या चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५७ ॥  
 शिष्टानीह पदान्येव मन्त्राश्चैव निधानम् । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५८ ॥  
 अष्टोत्तममन्त्रमन्त्रं लिखेत्पञ्चम्या चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५९ ॥  
 अष्टोत्तममन्त्रं प्रकाशं मन्त्रमन्त्रम् । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १६० ॥  
 अष्टोत्तममन्त्राः प्राग्पश्चात् पश्चिमोत्तरादङ्गु च । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १६१ ॥  
 तान् प्राग्पश्चात्पश्चिमोत्तरादङ्गु च । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १६२ ॥

अष्टोत्तममन्त्रः ॥ १४५ ॥ पूर्वोत्तरीन्द्रिया ॥ १४६ ॥ पश्चिमः पार्श्वः कायाः पश्चिमः च दक्षिणः ॥ १४७ ॥  
 समोदस्यया मध्यस्थिः शिखरा चोत्तरीन्द्रिया । मन्त्रमन्त्रमन्त्राः च शिखरा चोत्तरीन्द्रिया ॥ १४८ ॥  
 समाश्रितमिना त्वन्या दक्षिणपार्श्वानि भावय । शिखाश्रितमन्त्राः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १४९ ॥  
 गजेंद्रुगिरिचन्द्रा च वज्रपुत्रचक्रा जगताः कदाचन न्यष्टमिना पटवन्त्राः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५० ॥  
 प्रतिपत्तिमेकवार्यं लिखेत्पञ्चदशिका भवेत् । चतुर्विंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५१ ॥  
 भद्रमन्त्राः क्रमेणैव तान्याप्यष्टदशमाणक । पूर्वपक्षा च पञ्चम्या नवम्या हि तथैव च ॥ १५२ ॥  
 त्रयोदश मन्त्रमन्त्रमन्त्राः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५३ ॥  
 चतुर्दश स्मृतं भद्रं पञ्चविंशतिः स्मृतम् । त्रयोदश च पञ्चम्या चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५४ ॥  
 पञ्चदश हि पक्षा च भद्रं त्रयोदशमन्त्रम् । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५५ ॥  
 पञ्चकोषाडर्शान्वेव भद्रं षोडशपञ्चजम् । मन्त्रकोषेषु चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५६ ॥  
 पञ्चमिकोषादशमिर्जना कार्या तत्रेऽन्तरे । मन्त्रोपद्रवः स्मृतः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५७ ॥  
 भद्रं नवपदं मन्त्रोपद्रवेऽथ प्रकल्पयेत् । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५८ ॥  
 कृष्णं लिखेत्पञ्चम्या चोत्तरीन्द्रिया ॥ १५९ ॥  
 शिष्टानीह पदान्येव मन्त्राश्चैव निधानम् । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १६० ॥  
 अष्टोत्तममन्त्रमन्त्रं लिखेत्पञ्चम्या चोत्तरीन्द्रिया ॥ १६१ ॥  
 अष्टोत्तममन्त्रं प्रकाशं मन्त्रमन्त्रम् । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १६२ ॥  
 अष्टोत्तममन्त्राः प्राग्पश्चात् पश्चिमोत्तरादङ्गु च । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १६३ ॥  
 तान् प्राग्पश्चात्पश्चिमोत्तरादङ्गु च । पञ्चविंशतिः पश्चिमः चोत्तरीन्द्रिया ॥ १६४ ॥

मृङ्गला कुष्णवर्णा च पदेः पञ्चभिर्नृणा तस्याः पादद्वये कार्ये वन्त्यो हरिचर्णके । १६४ ॥  
 पृथगेकादशपदैस्ततः धीने तु मृङ्गले षड्भिः पदैरुभयतो मद्रं षोडशपादजम् ॥ १६५ ॥  
 आरक्तं च शिवा वाप्यो दद्याद्विषपादजाः कृष्णान्धष्टादशपदैर्नैव लिङ्गानि कारयेत् ॥ १६६ ॥  
 मस्तकोपरि मद्रस्य लोहने मृङ्गलं शुभे द्वाभ्यां पराभ्या च पृथक् मध्ये हरिचर्णके ॥ १६७ ॥  
 रचिता त्रिपदा रम्या वापीना मस्तकोपरि आरक्ते द्वे पदे कार्ये चैक हरिचर्णके ॥ १६८ ॥  
 उभयोः पादयोर्लिङ्गमस्तकस्य निवे पदे . एव सर्वत्र वेद्वयं परिधिः पौनवणकः ॥ १६९ ॥  
 समाशीतपदैश्चैव समादा प्रथमा तानः । प्रोच्यतेऽथ द्वितीया तु पक्तिस्त्रिपदया ॥ १७० ॥  
 शशी च मृङ्गलावल्ग्वी मृङ्गले द्वेऽथ पूर्वपदे । मद्रं त्रिपदैर्द्वयं नव वाप्यस्त्रयोदशः ॥ १७१ ॥  
 पदैरष्टात्र लिङ्गानि मद्रयोर्मस्तकेऽपि । द्वाभ्यां कार्ये मृङ्गलेऽत्र लोहिते ह्युत्तरपदयोः ॥ १७२ ॥  
 द्विपदा मृङ्गला र्धोना इति त्रिपदा स्मृता । आरक्तं च दद कार्ये वापीना मस्तकोपरि ॥ १७३ ॥  
 पूर्ववत्सकलं स्रष्टुमैकपदिपदैः शुभम् । परिधिः पौनवणश्च ज्ञाता पक्तिर्द्वितीयका ॥ १७४ ॥  
 उर्जकेन पदा पदिपदैः पक्तिश्चतुर्विधका मद्र षड्भिः पदैः प्रोक्तं समलिङ्गानि कारयेत् ॥ १७५ ॥  
 वसु वाप्यः स्मृताः शेष पूर्ववच्च प्रकीर्तितम् । समन्तवारिचर्णकैः परिधिश्च प्रकीर्तितः ॥ १७६ ॥  
 जाता तृतीया पक्तिर्द्विचतुर्विधं निगद्यते . पञ्चमन्वारिचर्णकैश्च पक्तिमद्रादता ॥ १७७ ॥  
 मद्रमर्कपदैर्द्वयं पञ्च वाप्योऽत्र कीर्तिताः । तुर्यलिङ्गानि कार्याणि मद्ररत्न मस्तकोपरि ॥ १७८ ॥  
 आरक्ता षट्पदा वष्टो पारिधास्रत्रिभिः पदैः । जाता चतुर्थपक्तिरि पञ्चमैर्कात्रभिः पदैः ॥ १७९ ॥  
 मद्रं नवपदं शेषं त्रिवाप्यो द्वौ हरी स्मृता । त्रिपदा मृङ्गला स्वका मद्रस्यापरि कीर्तना ॥ १८० ॥  
 एकोनविंशतिपदः परिधिः समकीर्तितः । ज्ञेयश्च पञ्चमा पक्तिश्चतुर्विधं मद्रद्वयैः पदैः ॥ १८१ ॥

तीन पादका मस्तक पर त्रिपदा बनावे । तीन पादका पाद रंगका मृङ्गल मृङ्गला बनावे । उसका दाहिने बायाँ हरे रंगसे व्यापक पादकी वन्त्यो बनावे । इसका च १६ पादसे पीले रंगका मृङ्गला बनावे और सोलह पादसे दोनों ओर मद्र बनावे, जिसका रंग लाल रंगका ॥ १६३-१६५ ॥ मद्रमन्तर अष्टादश पादसे स्रष्टुमैकपदि बनावे । मृङ्गल पादसे काले रंगका भी लिङ्गको रचना कर । पञ्चक मस्तकपर लाल रंगकी दो मृङ्गलादे बनावे । दो पादोंसे मलग और बीच बीचमें हरे रंगका मृङ्गला बनावे ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ जिसमें मद्र तीन पाद रंगका । बायाँके मस्तकपर लाल रंगका दो पादोंका मृङ्गला हरे रंगकी बनावे । बास-वाम तथा शिवाके मस्तकपर स्रष्टु रंगसे दो पादको मृङ्गला बनावे । इसी तरह सर्वत्र जानना चाहिये । इसकी परिधिर्वा दीत वर्णका रहेगी । इस तरह सत्तली पादोंकी पहली पक्ति समाप्त हुई । अब तिहत्तर पादोंवाली दूसरी पक्तिके विषयमें कहते हैं ॥ १६८-१७० ॥ इसमें चतुर्मा, मृङ्गला तथा वन्त्यो ये पूर्व पावनक समान रंगकी । बास पादका मद्र और सोलह पादकी भी व पिये बनावे । स्रष्टु हा पादोंसे मद्रक मस्तकपर आठ लिङ्ग बनावे जावेगा । इसी भागमें दो पादोंसे लाल रंगकी दो मृङ्गला बनावे । दो पादोंसे पीली मृङ्गला और तीन पादकी हरी मृङ्गला बनावे । बायाँके मस्तकपर कुछ मात्र पाद रंगका ॥ १७१-१७३ ॥ बाकी सब चीज पहली पक्तिसे समान ६१ पादोंसे बनेगी । दूसरी पक्तिकी परिधि पीले रंगकी रहेगी । यह दूसरी पक्ति समाप्त हो गयी ॥ १७४ ॥ उनसठ पादकी तीसरी पक्ति रहेगी । छ-छ पादोंसे एक मद्र, सत्त लिङ्ग और आठ वापिव बनावे । बाकी सब पहली पक्तिकी तरह रहेगा । इसमें सत्तलिङ्ग पादोंका परिधि बनायी जायगी ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ इस प्रकार तीसरी पक्ति समाप्त हुई । अब चौथा पक्तिके विषयमें बतलाते हैं । यह चौथी पक्ति सत्तलिङ्ग पादोंकी रहेगी । १७७ ॥ इसमें चारह पादका एक मद्र बनेगा । तीन वापिव बनावे । मद्रके मस्तकपर चर लिङ्ग बनेंगे ॥ १७८ ॥ छ पादोंसे बिम्बुल लाल रंगका वन्त्या बनावे । तीन तीन पादोंकी परिधि बनावे । इस तरह चौथी पक्ति समाप्त हुई । पांचवी पक्ति कुल इकतीस पादोंकी रहेगी ॥ १७९ ॥ इसमें भी पादका मद्र होगा, तीन वापिये बनेगी और दो शिवाके रचना की जायगी । मद्रक मस्तकपर लाल रंगकी तीन पादवाली

चतुष्कोणं समं तत्र सर्वतोभद्रमालिखेत् । तस्यपि कम एवायं त्रिपदश्च शशी मितः ॥ १८१ ॥  
 कृष्णः पञ्चपदैः कार्पाः मृगलाः सर्वतः शुभाः । पर्दंष्टादशैल्लिगं पश्चिमे तस्य पार्श्वयोः ॥ १८२ ॥  
 त्रयोदशपदैर्गोप्यो भद्रं तुर्यपदान्मके । पाम्यप्रानुत्तरेष्वेव मध्ये लिख्य वापिकाः ॥ १८३ ॥  
 भद्रं नवपदैः कार्पा वल्लये दशपदान्मिकाः । वल्लयोः म्याजे पश्चिमेऽथ क्षायन्ने हस्तिने वदे ॥ १८४ ॥  
 मध्येऽथ धुत्तिना बह्वे भद्रं यच्च नवाभकम् । तत्रोत्तरदिशाम्भां हि रक्तान्त्र मृगला मृगला ॥ १८५ ॥  
 शार्पानां मस्तके कार्ये द्वादशं च पार्श्वयोः । मिते द्वे द्वे पदैः कार्ये पश्चिमेः पञ्चशदत्रः ॥ १८६ ॥  
 रक्तमष्टदलं मध्ये कार्ये तत्राद्याभकम् । कविका पीतवर्णा च शल्याः पश्चिमः क्रमात् ॥ १८७ ॥  
 पीतशुक्लरक्तकृष्णैः सैकविंशत्यभकम् । कार्येन लिगनोभद्रं सर्वेषां कुट्टोत्तमम् ॥ १८८ ॥  
 प्रकाशान्तरमन्यच्च मृगु शिष्यं ब्रवीमि ते । त्रिपदं पदैः तत्र रेखाकविकाः चतस्रस्तकाः १९० ॥  
 शून्यं द्वायधिकैः पृष्ठं रचयेद्विगवक्तव्यः । नदाष्टमवन्तारि द्वायकमन्याभ्यनुदिशम् ॥ १९१ ॥  
 लिगमन्याभिका शार्पा प्रत्येवक्ति भवेद्विदः पदं तु रविपञ्चमं पदं दाने तु वापिकाः ॥ १९२ ॥  
 कोपस्विदुः मृगला च वल्ली च रचयेत्क्रमान् । त्रिपदेष्टादशपदैः लिगं अष्टमिन त्रिपदं ॥ १९३ ॥  
 शार्पा भद्राणि क्रमशः पदत्रिंशद्विंशत्यभकम् । विश्वपदत्रिंशं ज्ञेयं चतस्रपञ्चकेन पार्श्वके ॥ १९४ ॥  
 एकस्मिन् रचयेद्विंशद्वयं भद्रे म्याभकम् । तस्योत्तरे भवन्मवेष्टेभद्रं तत्र वापिका ॥ १९५ ॥  
 चतुर्विंशत्पदं भद्रमकमन्या ततः पदम् । पश्चिमन्ने तुर्यपदैः पञ्च मनुद्वये ॥ १९६ ॥  
 चित्रं वा लोहितं लिगनृन्त्रके कृष्णवर्णके । द्वाविंशद्वर्णा भद्रं रक्तं मृद्रेऽब्जत्रयाधिके ॥ १९७ ॥  
 एकविंशत्यभकं लिगनोभद्रमभिरितम् । प्रकाशान्तरमन्यच्च मृगु शिष्यं ब्रवीमि ते ॥ १९८ ॥

शुद्धता बनायी जायगी ॥ १८० ॥ उत्तराध परोक्षो वर्णयि कर्मागे जयस्य । इस तरह यह पांचवी पंक्ति समाप्त हुई । बागे छोटी पंक्ति ५५ सप्तह परोक्षी रहेगी ॥ १८१ ॥ इसके आगे कालास सर्वतोभद्रकी रचना करे । उसका कम इस प्रकार है । इसमें तीन पदसं सप्त पदका च द्वा वनेगा ॥ १८२ ॥ पाँच पदोंसे कार्पा और काले रङ्गकी शुद्धता बनावे । अष्टपद पादका लिग बनाकर उसके दाने बगल देख पादकी दो पार्श्वों बनावे । दक्षिण, पूर्व तथा उत्तर दिशाप्रारंभ मध्यम तत्र जागिरे बराब ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ नौ पादोंसे भद्र बनाकर दस पादोंकी रचियगी बनावे । पार्श्वमवाकं पीत वर्णियगी हर मस्तकी रचना ॥ १८५ ॥ इस पंक्ति के बीचकी शार्पा पूट जायगी और नौ पादवाने भद्रके मध्यम माल रङ्गकी शुद्धता रहगी ॥ १८६ ॥ शार्पा के मस्तकपर काल रंगका पद रहेगी और आसपासके दो पद सप्त हो रहग पाँच परिधिगी बनेगी ॥ १८७ ॥ बीचम माल और नौ पादका अपरल कमल बनगा । इसकी कविका दोनो रहेगी बीच परिधिगी क्रमशः पीली माल और काली रहगी ॥ १८८ ॥ यह मैने एकविंशतिशताभक लिगनोभद्रका कम स्तलापद । सबनक ब्रितने भी भद्र बन्याये है, उम्में सर्वतोभद्र कुट्टके मस्तक रहगा ॥ १८९ ॥ हे शिष्य । अब मैं प्रकाशान्तर मस्तका हूँ सुनो । काले और दैकी कुल १०३ रेखाये लोच ॥ १९० ॥ उम्मेंसे १०३ कोमर्ष लिगकी पंक्तिगी बनाय । इसके बागे और नी, माड, छ, चर, दा और एक मस्तकाके कोमर्ष लिगके लिये निर्धारित हुंगे । १९१ ॥ प्रत्येक पंक्तिम लिगमंशकी आझा शार्पाकी मस्तका अधिक रहगी । छ पादोंकी परिधिगी रहेगी । उसके बाद कर्पा रहेगी ॥ १९२ ॥ कालोंमें इन्नु शुद्धता तथा बली बनायी जायगी । क्रमशः तीन, पाँच और आठ पादसे २४ लिग बनावे जायंगे और अष्ट रह पादो बनेगी । फिर क्रमश छत्तीस, बीस, पञ्चोस, सोस छत्तीस और भीम भद्र बनाने जायंगे । अन्तिम पंक्ति के बगल एक स्थानपर छ छ पादके भी भद्र बनावे । उसके ऊपर सर्वतोभद्र रहेगा । बीस पादकी शार्पा बनेगी और नौ भद्र बनाने जायंगे । पश्चिमके अनन्तर सल्लहसल्लह पादके पद बनाव ॥ १९३-१९६ ॥ उन कमलोका रंग विशदवर्ण बनावे माल रहेगा । लिग और शुद्धताये काले रङ्गकी रहेगी । वनजसे हरे रङ्गकी भद्र माल और कमल तथा शार्पा सप्त वर्णकी होगी ॥ १९७ ॥ यह मैने नुन्हे एकविंशत्यभक लिगान्तर भद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया ।

बह्विकाराणां निरुद्धास्तिर्यग्गुणैः प्रकल्पयेत् । पञ्चाशीति पदानि स्युः पञ्चयस्त्र सर्वतः ॥२९९॥  
 तत्र पदं पदं पदानि स्यान्पञ्चमिथः । त्रिचर्कः । मन्त्रोच्चेन विधिना चतुःपञ्चमः क्रमात् ॥२००॥  
 तेषु च पञ्चकोष्ठेषु लिख्यन्ति रचयेद्विधा । कोष्ठेषु त्रिषट्चन्द्रमन्त्रादि शृङ्खला मता ॥२०१॥  
 ततो बह्वी ततो भद्रं वापी लिख्य क्रमं दृष्टेन । तत्र प्रथमपंक्तौ तु शृङ्खला पञ्चपादिका ॥२०२॥  
 एकपादिका बह्वी भवत्यष्टपदात्मिका । भद्रमेकपदं चार्पा त्रिषट् कोष्ठैः प्रकल्पयेत् ॥२०३॥  
 ईशानस्तन्मते कार्यं त्वं ते तद्व्यवस्थया । भवन्ति चाप्येव दश वा भद्रद्वयममीषितम् ॥२०४॥  
 द्वितीयपंक्तौ चार्पा तु त्रयोदशपादा मता । भद्रं तु षट्पदपदं द्वेष्टं पूर्वं मयीक्षितम् । २०५॥  
 अष्टौ लिख्यन्ति वाप्यस्तु मयान्न नवमस्मिताः । तूर्वायायां तुर्यपदं भद्रं द्वेष्टं तु पूर्ववत् ॥२०६॥  
 अष्टौ वाप्यः सप्तहमः क्रमशः स्युः सप्तदशपादाः । द्वेष्टं वाप्यं चान्ति मे न्युनेतिमिः कोष्ठैस्तु संस्पृशे ॥२०७॥  
 चतुर्थपंक्तौ वाप्यस्तु पञ्चमः शंकरपदम् । भद्रं द्विदशकं संघं शेषं पूर्ववद्दृष्टेन ॥२०८॥  
 चतुर्थपञ्चिधुपरि चाणान्ते परिधिमेव तु त्रयोपंक्तौ शृङ्खले न्युते पदेनैकेन बह्वी ॥२०९॥  
 द्वाभ्यां पदाभ्यां चन्द्रस्तु यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । भद्रद्वयं षट्पदपदं न्युन्यं भद्रं नवमस्मिके ॥२१०॥  
 त्रयोदशपदैर्वापी तत्र तत्र प्रकल्पयेत् । भद्रयोस्तु चन्द्रमन्त्रं षट्पदपदं शुभम् ॥२११॥  
 समुष्टानि पदान्येव शृङ्खलायां नियोजन । तस्योपरि परिधिस्मिन् चाणान्ते परिकल्पयेत् ॥२१२॥

उभयोस्तन्त्रे चार्पा त्रयोदशपदात्मिका ॥२१३॥

भद्रद्वयं षट्पदपदं द्वेष्टं सर्वं यथोदितम् । अन्तिमेष्टः पञ्चपञ्चपदैः एव मसुद्धरेत् ॥२१४॥  
 रक्तं वा निम्बवर्णं च ध्वजश्चन्द्रोदमितः मता । शृङ्खला हरिना बह्वी पीतं सङ्खल्लादयम् ॥२१५॥  
 रक्तं भद्रं ध्वजा चार्पा लिङ्गं कृत्वा प्रकल्पितम् । लिङ्गकथयताः कोष्ठाः शोभाकोष्ठाः प्रकल्पयेत् २१६॥

हे शिष्य अथ मे गृह्य प्रमाणान्तरं बतला रहा है गुणो ॥ १६८ ॥ सोधी और टेडी छिमासी-छिमासी रेखायें सोधी रेखा कागजपर इसमें चर्चा और बचाने पर्याप्त पादकी एक-एक पंक्ति में बनाई होगी ॥ १६९ ॥ उसमें छ-छ पादके बाद पांच रेखाका परिधि रहेगी । इस रेखाके चरणों पर परिधि की बतानी उसकी पंक्ति तथा कोष्ठके मपनी बुद्धिके अनुसार लिख आदिका रचना कर प्रत्येक जाहाने तीन-तीन पादका छ-छ बचाने और उसके आदिमें १) दुलावा रचना कर ॥ २००, २०१ ॥ फिर उसके बाद बह्वी, फिर छ पादकी शृङ्खला, एक पादका भद्र और अष्टादश पादकी चार्पा का निर्माण कर ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ उनका हो सगलके निब बनावे । इस प्रकार दस वापिद और दो भद्र बनग ॥ २०४ ॥ इस १ पंक्तिमें तेरह पादकी व नी बतला, मालह पादका भद्र बनगा । बाकी सब चीज पढ़ना पंक्ति समान रहेगी ॥ २०५ ॥ तसरी पंक्तिमें आठ लिङ्ग, दो वापिद और चार पादका एक भद्र रहेगा । बाकी सब चीज पूराव रहेगी ॥ २०६ ॥ अष्ट वापि, शान शिव एव मन्त्रमें तीन पादकी दो वापी बनेगी ॥ २०७ ॥ चौथी पंक्तिमें चार वापि, तीन शंकर, चारह भद्र बनेंगे । बाकी सब बह्वी पंक्ति समान रहेगी ॥ २०८ ॥ चौथी पंक्तिमें अष्ट वापि की पंक्ति में आठ लिङ्ग रहेगी । इस पंक्तिमें पूर्व पंक्ति की अपेक्षा एक कम भवता रहेगी और एक पादका बतला बतला जायगी ॥ २०९ ॥ तदनन्तर पहलेकी तरह दो पादकी काटमा बनाव । छ-छ पादका दो भद्र बनाव । बाकी दो भद्र नी नी पदके रहेंगे ॥ २१० ॥ अपने अपने स्थानपर तरह-तरह पादकी बनावे । दोनों भद्र के ऊपर छ-छ पादके दो भद्र बनाव ॥ २११ ॥ शृङ्खलाके लिये बने पादकी निपुक्त कर । उसके ऊपर पांच पादका अनन्तर पंक्ति की रचना करे ॥ २१२ ॥ छन दोनोंके बीच तेरह पादका एक वापी बनावे । गद्यमा ॥ २१३ ॥ छ-छ पादके बाद दो भद्र बनावे । बाकी सब पूर्ववत् रक्त् । अन्तिम पंक्ति में पांच-पांच पादकी कमल बनावे । समका दर्शन आल अथवा सङ्करवा रहे । पञ्चमा सफेद और शृङ्खला काल वर्णका रहेगी । इसे प्रकार बतली हो, उसकी दोनी शृङ्खलायें पीली, लाल भद्र, सफेद वापी और काला लिङ्ग रहेगा । लिङ्गके स्कन्धगत कोष्ठक वा पाके लिये रहें ॥ २१४-२१६ ॥

पदानि शेषभूतानि यत्र क च भवन्ति हि तानि तत्र यथायोग्यं धिया मम्यङ्गनियोजयेत् ॥ २१७ ॥  
 यद्वा तुर्यपरिध्वर्णवेकादशपदाख्यम् । परिधि स्यात्तयोर्मध्ये कोणे चन्द्रो यथोदितः ॥ २१८ ॥  
 पृथ्वी दशपादा स्याद्वृत्ती रयादेकविंशतिः । पृथ्वीत्याख्या रुद्रपदा भद्रं त्रिंशद्वदन्मकम् ॥ २१९ ॥  
 एकपष्टिपदवापी मम्यगुदया प्रकल्पयेत् । अथवा द्वे पदे चान्ये संयोज्य गिग्हिस्तिषु ॥ २२० ॥  
 पदेषु रचयेद्गुदया लिङ्गानां पक्षयः क्रमान् । नवाष्टरमश्रीष्वेका शेषं पूर्वं यथोदितम् ॥ २२१ ॥  
 विशेषस्तत्र भद्रेषु षडङ्गिणे षोडशान्मकम् । एकलिंगे त्रिंशदं द्वाभ्यामन्यत्र चाधिकम् ॥ २२२ ॥  
 पूर्ववत्सर्वतोभद्रं पञ्चवणास्तु पूर्ववत् । पीनशुक्लरक्तकृष्ण बहिः परिधयः स्मृताः ॥ २२३ ॥  
 एतदष्टोत्तरशतं लिङ्गतोभद्रमीरितम् । प्रकाशान्तर्मन्त्राद्ये मृषु शिष्यं श्रवीमि यत् ॥ २२४ ॥  
 तिर्यग्ध्वं गता रेखा नवाष्टलोदितः स्मृताः । तन्कोष्ठेष्वन्धिनैर्वाग्निर्कोष्ठकं रचयेद्विधा ॥ २२५ ॥  
 सर्वतोभद्रकं रम्यं परितः परिधिर्मेतः । ततो रमरमाने स्युस्तुःपरिधयः शुभाः ॥ २२६ ॥  
 तत्र चतुर्षु पार्श्वेषु कोणेषु स्त्रिपदः स्मृतः । मृषला पञ्चभिर्वल्ली स्वेकादशपदा मता ॥ २२७ ॥  
 लिङ्गं चतुर्विंशदं वापी त्र्यष्टादशा भवेत् । नव मम तथा पञ्चगुणनेत्रमिताः शिवाः ॥ २२८ ॥  
 पञ्चपक्षय एव स्युर्वापिकैकाधिका ततः । तुर्यलिङ्गानि द्वे वाप्यां त्रयोदशपदान्मिके ॥ २२९ ॥  
 षडङ्काकरमरसभद्रमख्या क्रमाकृतेन । सर्वतोभद्रके वापी युगनेत्रमिता तथा ॥ २३० ॥  
 नवकोष्ठमिव भद्रं शेषं सर्वं तु पूर्ववत् । ततोऽन्तःपरिधिः कावेस्वत्र पञ्च समुदरेत् ॥ २३१ ॥  
 खंडोऽब्जः पृथ्वी कृष्णा नीला बह्वङ्गिकाऽरुणा । भद्रवापी मिता कृष्ण लिङ्ग परिधयोऽन्तिमाः २३२ ॥  
 पीनशुक्लरक्तकृष्णा ज्ञेयाः पीनाश्च मध्यमाः । एतदष्टोत्तरशतं लिङ्गतोभद्रमीरितम् ॥ २३३ ॥

इनमें जहाँ कोई बोधक बाकी नब जग, उसे अपनी हकनाम जिस रंगसे चाहें रंग दे ॥ २१७ ॥ अथवा चौबी परिधिके ऊपर आगहमें पादके आगे एक परिधि बनावे । उसके बीचवाले कोणमें उक्त प्रकारसे चन्द्रमा बनावे ॥ २१८ ॥ इसमें पहली आगहला दस तथा दूसरी आगह पादकी बननी और भद्र तीस पादका रहेगा ॥ २१९ ॥ एकसठ पादकी बायी बननी । उन सबको अच्छी तरह मन लगाकर बनावे । अथवा और दो पादोकी योजना करके सातवें और दसवें पादमें अपनी कृष्टिसे लिङ्गोंका रचना करे । नौ, भाड, छ, तान और एक यह उनकी संख्या रहेगा । बाकी सब पूर्ववत् रहेगा ॥ २२० ॥ २२१ ॥ इन षट्ठममें छ लिङ्गवाले भद्रमें एक सोलह पादका और दूसरा बीस पादका लिङ्ग रहेगा । दाहिने अधिक लिङ्गवाले भद्रमें पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना होगी । इसके बाहरको परिधिवाँ पीन, रक्त तथा कृष्ण वर्णका रहेगी ॥ २२२ ॥ २२३ ॥ यह भीने तुम्हें अष्टोत्तरशत लिङ्गतोभद्रका प्रकार बतलाया । अब दूसरा प्रकार बतलाता हूँ मुनी ॥ २२४ ॥ लडा और वेडा कुछ नवासी रेखाएँ भीव । उसके मानवाने चार, दो तीन कोणकोमें सुन्दर सर्वतोभद्र बनावे । उसका चारों ओर परिधि रखे । इसके अन्तर छ, छ पादके बाद परिधियोंकी रचना करे ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ उसके चारों ओरके कोनोंमें सोलसीन पादक चन्द्रमा बनावे । पाँच पादसे आगहला और आगह पादकी बल्ली बनावे ॥ २२७ ॥ चौबीस पादका लिङ्ग और आगह पादकी बायी बनानी होगी । इसमें नौ, सात, पाँच, चार, दो क्रमशः शिव बनाये जायेंगे ॥ २२८ ॥ इसमें कुल पाँच पत्थियाँ रहेगी और बापियोंकी संख्या एक-एक करके बढ़ाती जायगी । इसमें चार लिङ्ग और तरह-तरह पादकी दो बापियाँ रहेगी । २२९ ॥ छ, नौ, चारह, छ, छ, इस क्रमसे भद्रकी संख्या रहेगी । सर्वतोभद्रम चार और दो बापों बनेगी ॥ २३० ॥ इनमें नौ कोष्ठका भद्र बनेगा । बाकी सब बाप पहलेके समान रहेगी । इस प्रकार भद्रकी रचना कर लेनेके बाद उसके भीतर परिधि बनाकर कमलकी रचना करे ॥ २३१ ॥ कमलका रंग सफेद रहेगा और उसकी आकृति काली रहेगी । अन्तरियाँ नीली तथा भद्र लाल रहेगा । बायाँ रुद्र लिङ्ग काला और मन्तिम परिधिवाँ नीला, रक्त, लाल तथा कृष्ण वर्णकी रहेगी । यह भी एक प्रकारका अष्टोत्तरशत लिङ्गतोभद्र बतलाया ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ अथवा

त्रिष्वर्ध्वं पञ्च पञ्च रेखाः कार्या मुक्तोद्दिताः । तत्कोष्ठेषु परिधयः षट् षट्ते अयः स्मृताः ॥ २३४ ॥  
 त्रिद्वयद्विलिख्य चतुर्विंशतिपादिका । वापी नवपादशब्दा षट्त्रिंशद्द्विदशाङ्ककम् ॥ २३५ ॥  
 भद्रं भद्रं पीतमन्यद्भद्रपाद्वे प्रकल्पयेत् । प्रथमं नवपादं स्याद्द्वितीयं षट्पदान्धकम् ॥ २३६ ॥  
 वापीपाद्वे च त्रिपदा शृंगला लोदिता भवेत् । त्रिपदाध्वे भवेदेतन्मृगला पञ्चपादिका ॥ २३७ ॥  
 एकादशपादा वल्ली त्रिपदश्चन्द्र ईरितः चतुर्विंशपदैर्जेयः लिङ्गं परममुन्दरम् ॥ २३८ ॥  
 मध्ये चन्द्रः शृंगला च त्रिपदा षट्पदा लता ।

भद्रमर्कपदैः लिङ्गमष्टाविंशत्पदान्धकम् । लिङ्गमन्यकपाद्वेस्थे पदानि पीतकानि तु ॥ २३९ ॥  
 लिङ्गं कृष्णं मिता वापी भद्रं रक्तं मिता शृङ्गी शृंगला कृष्णहस्तिता वल्ली वणास्त्रिंशत्पदानि ॥ २४० ॥  
 परिधिः पीतवर्णः स्यात्पदान्युर्वेगिनानि तु यथेष्टं रज्ज्वेदेन द्वाणां शिलिङ्गमाधनम् ॥ २४१ ॥  
 पीतशृङ्गलरक्तकृष्णा शब्दाः परिधयः क्रमात् । प्रकाशतरमन्यद्विंशत्पदानि शिष्टं प्रवीन्यहम् ॥ २४२ ॥  
 चन्द्राब्धिपदमण्डपासु सर्वतस्तत्त्वममिनम् लिङ्गपादं विन्यसेन्पदैर्जेयं परिधिं मती ॥ २४३ ॥  
 तपोस्वर्गालिङ्गपत्तिद्वयं सम्यक् प्रकल्पयेत् । अष्टादशपादं लिङ्गं वापी त्रिदशपादिका ॥ २४४ ॥  
 त्रिपदोऽञ्जः शृंगला च पञ्चपादेऽञ्जवल्ली । प्रथमा युगलिङ्गाऽन्या पंक्तिर्लिङ्गद्वयान्विता ॥ २४५ ॥  
 अष्टौ भद्रं नवपादं परं भद्रं तु षट्पदम् । परिधये त्रयस्त्रिंशत्कोष्ठैर्लेखं प्रकल्पयेत् ॥ २४६ ॥  
 भद्रमर्कपी ममममपद्वेऽष्टौ पादः शिङ्गः । पञ्चपञ्चपदैः पार्श्वौ कटिः शुभोन्निपादनः ॥ २४७ ॥  
 चतुर्विंशत् पदस्यान्यं चतुर्भद्रं नवाधिकम् । चन्द्रोऽथ त्रिपदो जेयः शृंगला द्विपदा स्मृतः ॥ २४८ ॥  
 वल्ली पञ्चपादा स्यात्कृष्णलाऽन्या त्रिपादिका । लिङ्गमन्यधमताः कोष्ठाः पीताः कार्याः शुभावहाः ॥ २४९ ॥

सोची और साखी छाल वर्णकी पाँच पाँच रेखायें खींच । उसके कोष्ठों में छः परिधियाँ और छः परिधिके आगे फिर तीन परिधि बनाव । २३४ । चौदावें पादमें तीन, दो अथवा नौ लिङ्ग बनाना होगा । अष्टारह पादकी वापी बनाये । छत्तीस, बीस, नौ इन सङ्ख्याकोक भद्र बनावे ॥ २३५ ॥ उन भद्रों के पास ही दूसरे पीत वर्णके दो भद्रोंकी रचना कर । जिसमें पहला नौ पादका और दूसरा छः पादका रहेगा ॥ २३६ । वापीके पास तीन पादकी मृगला आँसला रहने । इस प्रकार हर दण्डमें पाँच पाँच पादका आँसलाय रहने ॥ २३७ । इसमें अष्टारह पादकी वल्ली और तीन पादकी लता लगे । अष्टारह पादका त्रिपद बनना । २३८ ॥ मध्यमें एक चन्द्रमा, तीन पादकी शृंगला और छः पादकी लता रहने । वरह पादका भद्र और अष्टादश पादका लिङ्ग बनना । लिङ्गके सन्तवपर तथा वगलमें पीले वर्णके कुछ खाली कोष्ठक भी रहने ॥ २३९ । इसमें लिङ्ग कृष्ण, वापी पुण्ड्रवर्ण, छाल भद्र, उज्ज्वल चन्द्रमा वापी शृंगला, हरित वर्णकी वल्लीयें वे वर्ण रहने । २४० ॥ इसको परिधि पीत वर्णकी रहने । वापी जितने कोष्ठक बचे, उनका अपने इच्छानुसार भेदा च ह वंसा रक्त दे । पञ्चीस लिङ्ग इस भद्रके प्रधान साधन मान लिये है । २४१ । अष्टारह परिधियाँ बाला सफेद छाल तथा काली रहने । भद्र में मुहूह इसी भद्रका प्रकारान्तर बहना रहा है । २४२ । एकतालिङ्ग पादोंमें पञ्चीस लिङ्ग और छः लिङ्गके बाद दो परिधि बनावे ॥ २४३ ॥ उन दोनों परिधियोंके पहिले दो पत्तियोंमें लिङ्गोंकी रचना कर । इसमें अष्टारह पादका लिङ्ग बनना और षट् पादकी वापी बनानी जायगा ॥ २४४ । तीन पादका कमल और पाँच पाँच पादके शिख तथा वल्लीकी रचना की जायगी । पहिली पंक्तिमें धार और अन्य पत्तियोंमें दो लिङ्ग रहा करके । २४५ ॥ पहला भद्र नौ पादका रहेगा । बाकी सब भद्र छः छः पादक रहने । परिधिके बाद तीसरे पादका लिङ्ग बनना । २४६ ॥ इसके मध्य स्कन्ध सात पाद पादके रहने । छः पादका भरतक, पाँच पाँच पादका पार्श्वभाग और तीन पादकी कटि बनेगी ॥ २४७ ॥ शिखके चारों ओर नौ पादके चार भद्र बनाये जायेंगे । इसमें चन्द्रमा तीन पादका, शृंगला दो पादकी, वल्ली दो पाँच पादकी और दूसरी शृंगला तीन पादकी रहेगी । लिङ्गके स्कन्धबाले खाली कोष्ठक पीले रङ्गसे रङ्ग दिये

अन्यानि शेषभूतानि वदन्ति पर्येदिया । यथेच्छं वै परिश्रय कार्या वेदमिता बहिः । २५० ॥  
 पञ्चविंशच्छिरेर्गो प्रकारो ऽहो मयोदिता । अतिप्रिया शक्राय शान्त्या द्विजवचनम् । २५१ ॥  
 नमस्कृत्य महत्त्वम् गुरुपादमहात्म्यम् संवत्सरात्क वक्ष्ये कथामध्यात्ममग्नहाम् ॥ २५२ ॥  
 वचनिसातिसक्याक लिङ्गतोभद्रमीप्सितम् । केनचित् कात्पदं तन्कि तन्म तन्कृत्यते स्फुटम् २५३ ॥  
 लिङ्गतोभद्रमित्येतन्मिदं कथं धेनु । लिङ्गं गमकमित्याहुर्ज्ञानं ज्ञापकमित्यपि ॥ २५४ ॥  
 पीयूषनापनाद्वर्षा भद्रं भद्रममीहवात् । मायश्चन्द्राः मणिद्रा हि वर्तन्ते नापनेष्वपि ॥ २५५ ॥  
 तस्मिन् शुक्लसुत नीलमित्यादिभुतिस्तमनात् । वर्णा अपि परमिन्पुष्पमनार्थं भवन्ति हि । २५६ ॥  
 तद्वत् परमं लिङ्गं मङ्गलं मद्रवाचकम् । मङ्गलं मङ्गलानां च शिखं शान्तमिति स्फुटम् ॥ २५७ ॥  
 लीपते यत्र भूतानि निगच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं परं कथोम निष्कलः परमः शिवः । २५८ ॥  
 सत्त्वं रजस्वमोदणश्रय मायामु वेष्टितम् । मनश्चन्द्रो महापोदः शृङ्गला स्नेहवलिङ्गा ॥ २५९ ॥  
 तदिदं सर्वत्रतन्म वेष्टितं घटज्योमवन् । निर्घमृत्सर्वमहङ्कारः प्रसूनः पतन्तुवन् । २६० ॥  
 तेन स्थानानि आत्मानि लक्षाणां चतुरष्ट हि । गुणास्तेषु प्रपूर्यन्ते यथा चित्रपटा भवेत् ॥ २६१ ॥  
 आर्षादेकं पुगं तस्य तस्मिन्मायानियोगतः । कामो बहुधा भवति भवेदमिति मादगम् ॥ २६२ ॥  
 एकः सन्मिति चान्मानं स्वयमकुरुतेति च । इन्द्रो मायाभिरिति च एकभा बहुधेति हि ॥ २६३ ॥  
 ऊचुश्च भुवयः मायो मङ्गलो भवनं प्रति । नञ्जनामिति च ध्रुवान् ननोऽस्ति हि किञ्चन ॥ २६४ ॥  
 यद्यप्येवं तथाप्यस्मिन्मिदं निर्मोहनो भवेत् । यादददकृतो मायनाश्रमसर आवणः ॥ २६५ ॥  
 मिमोऽहमिति हृद्ग्रन्थी न समावस्तदाश्रयः । सन्नेनेत्रम्यंनु यानि स्वप्नो निद्रानुगो यथा । २६६ ॥

कार्यमे ॥ २५८ ॥ २५९ ॥ आर्षा विगत कोपक स्थानं वने, उन्हें अपने इच्छानुसार रङ्ग दे । बाहरकी ओर खिन्ने से आर परिश्रय बनाये । २५० ॥ यदना प्रकार मेन पञ्चास शिवके बनलाय है । हे द्विजवचन - ये दोनो घट शिवके जो परम प्रमय मन्त्रनाने है ॥ २५१ ॥ अब वे अपने गुरुके महत्त्वह्यामरण करनकमलकी प्रणाम करके सलाहकारक एक आध्यात्मिक कथा सुनाऊंगा । २५२ ॥ किमीन पञ्चविंशति लिङ्गतोभद्र-का रचना क्यों की ? अब उसका स्पष्ट तन्त्र बतलाता हूँ ॥ २५३ ॥ पहले 'लिङ्गतोभद्र' इस शब्दका अर्थ बतलते हुए बतल है कि 'लिङ्ग' गमक, ज्ञान अथवा ज्ञापक नामसे पुकारा जाता है । २५४ ॥ पीयूष (मृत) का वपन करनेसे 'वापीका वापी' मद्र नाम पड़ा है । भद्र यानी कल्याणका समीक्षण करनेसे 'भद्र' का यह नाम रखना गया है । इत्येक म यनाम एक साध्य शब्द बनलावे जात है ॥ २५५ ॥ "तस्मिन् शुक्लसुत नोमम्" अर्थात् भवितव्य कथनानुसार उपमनाके लिए वपकी थी अन्वयकता बतली है ॥ २५६ ॥ वह परब्रह्म ही लिए एवं मङ्गलवान् भव भद्र नामसे अभिहित होता है । मङ्गलका भी मङ्गल करनेवाला शिव अर्थात् शान्त कहलाता है । २५७ ॥ इत्येके समये त्रिमये सब धारणा जान हो और मृत्तिकासे उसीधेसे निकल जाये उसीको 'लिङ्ग' कहते हैं । ऐसा क्यों है ? वह परम बोध, कल्याणित तथा परम मङ्गलकारी शिव है ॥ २५८ ॥ सत्त्व, रज और तम के तीन रण मायाके जातसे वेष्टित है । हममें सब चन्द्रमा, महापोह शृङ्गला और स्नेह आत्मिका है ॥ २५९ ॥ इन सबसे कथना इसी तरह वेष्टित है, जैसे श्याम (आकाश) से घट-घट अर्थात् कल्लुके बनावे वेष्टित रहते हैं । उनपर भी लल्लुके लगन भरहुआने उसे पारो मोरसे घेर रक्खा है । २६० ॥ इसीसे योगी एव धारिणीकी उत्पत्ति हुई है । उनमें गुणाका उसी तरह समावेश ही जाता है, जैसे एक कपड़ेपर कई रङ्ग बना दिये जायें तिससे उसका रङ्ग विविध प्रकारका हो जाय । २६१ ॥ मृत्तिके पहले केवल एक तन्त्र यानी ब्रह्म था । भाग्यसे आत्मे उसमें बहुत प्रकाशकी कामनाये उत्पन्न हुई । तब उसे अकेले रहने भाग्ययोगसे अपने इच्छानुसार उस अकेले रूपसे बहुरूप रूप बना दिया ॥ २६२ ॥ २६३ ॥ इसके अनन्तर प्रतियोगे ब्रह्मकी उत्पत्तिके लिए 'सञ्जयान्' इस भूतिये इस ब्रह्मकी प्रार्थना की तब ब्रह्मकी उत्पत्ति हुई ॥ २६४ ॥ यद्यपि ये सब कार्य हुए हैं । तथापि मोहवशा इसमें ब्रह्मकी स्थिति नहीं हो सकती । जबतक

एतदर्थं विरक्तः सन् जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् । आश्रयेन्मद्गुरुं साधुं त्वग्रभूतं निरामयम् ॥ २६७ ॥  
 तेन प्रबोधितः सिद्धमात्मानं मनमात्मनि । ज्ञातीयाद्वस्त्रभावेन जगच्चित्तं स्थितं मदा ॥ २६८ ॥  
 ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे संस्थितोऽमलः । एकोऽद्वितीयः परमो नान्तः प्रज्ञादिलक्षणः ॥ २६९ ॥  
 अक्षरः सच्चिदानन्दोऽमरोऽजरः उद्यत्तमः । निर्विकारो निराकारो निरामय उदीगितः ॥ २७० ॥  
 अलिगोऽरूपः एवमावेकस्त्वगणनरूपरः । मायया लिङ्गरूपाव श्लोक इत्यभिधीयते ॥ २७१ ॥  
 पुरुषश्च प्रकृतिश्च व्यक्तोऽहंकार एव च । चतुर्लिङ्गानि प्रोक्तानि लक्षणानि शिवस्य च ॥ २७२ ॥  
 कार्यकारणभूतानामेकमेव हि पञ्चकम् । सत्त्वं रजस्वम इति त्रयमुक्तिमानि चारम्भनः ॥ २७३ ॥  
 रशेन्द्रियाणि च मनो बुद्धिर्ज्ञानं च स्मृतम् । लिङ्गानां परमेशस्य विवेकोऽत्र प्रतिष्ठितः ॥ २७४ ॥  
 इति कारणलिङ्गानि कार्यलिङ्गान्यनेकशः । शतं सहस्रमथुतं कोटिशः सति संख्यया ॥ २७५ ॥  
 सर्वाणि ज्ञापकान्येव शिवस्य परमात्मनः । वस्तुनस्तु परं तत्त्वं यज्ञातीयादिर्हीनकम् ॥ २७६ ॥  
 विचारे वर्तमाने तु तत्त्वाद्येव पथादि न । एवं सर्वं शिवो भाति न सर्वं शिव एव हि ॥ २७७ ॥  
 बिन्दुनादमकारादि सात्रयपद्मदीरितम् । आत्मैव पञ्चधा साक्षात्तया ब्रह्मेश्वरो हरिः ॥ २७८ ॥  
 विधिरुद्री एव पञ्च सद्योजानादिरूपकः । शुद्धः सार्धो नया प्राकृर्त्तजमो विश्व एव च ॥ २७९ ॥  
 सच्चिन्मूषश्च नामरूपे ब्रह्मैव केवलम् । ज्ञानं पञ्चात्मकं तान्परब्रह्मैवेदमिति श्रुतिः ॥ २८० ॥  
 प्रधानं महदहं च पञ्चतन्मात्रकं च तत् । अष्टपकृतिरित्येतच्छास्त्रेण परिगीयते ॥ २८१ ॥

ब्रह्मभाव है, तभीतक हम ससारका विस्तार है ॥ २६४ ॥ “यद्” इस अन्वित्रे भिन्न होत हों न ससार रहता है और न उसका आश्रय ही रह जाता है । तेजके विमान हो जल्का भी नाश हो जाता है । जैस कि निद्राका नाश होतके साथ ही स्वप्न भी नष्ट हो जाता है ॥ २६५ ॥ इमोऽत्र जिज्ञासका चाहिये कि वह विरक्त साक्षात् ब्रह्मस्वरूप तथा गौरी कोकरहित ब्रह्मा मद्गुरुका कारण है ॥ २६७ ॥ अब नि उमके ऊपरसे यह प्रबुद्ध हो पास और अपनी आरम्भ ही सिद्ध हो साथ, तब अपने जगत्स्वरूप चित्तका ब्रह्मभावसे दखे ॥ २६८ ॥ सब प्राणियोंके हृदयमें वह अमल ईश्वर निवास करता है । वह एक, अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ है । न उमका अन्त है और न प्रज्ञा आदि लक्षणोंसे ही वह जाना जा सकता है ॥ २६९ ॥ वह अक्षर ( कभी नष्ट न होतवाला ), सच्चिदानन्द, अक्षर, अमर और सर्वसे श्रेष्ठ सिद्धांत है । इसलिये वह निर्विकार, निराकार और निरामय कहलाता है ॥ २७० ॥ उमका न कोई रूप है, न रिरुद्ध है । वह अकला रहकर भी गणनासे दरे है । वह अपनी मायाके साथ लिङ्गरूपमें दासता है किन्तु वास्तवमें रहता है अकला ॥ २७१ ॥ पुरुष, प्रकृति, अक्षर, अहंकार, ये चित्त उस लिङ्गरूप ब्रह्मको पहचाननेके लिए बतलाते हैं ॥ २७२ ॥ प्राणियोंका कार्य, कारण, सत्त्व, रज, तम इनका भी कुछ लोग आत्माका लक्षण बतलाते हैं ॥ २७३ ॥ कुछ लोग हम इन्द्रिय तथा मन और बुद्धि, इन चारोंको भी उमके चित्त बतलाते हैं । हम प्रकार यही उम परमेश्वरके लीलाका विचार किया गया है ॥ २७४ ॥ उमर बतलाते हुए सब चित्त कार्यक है । इनके अस्तित्व कारणक भी बहुतसे लोग हैं । इन प्राणोंकी संख्या सैकड़ा, हजार, दस हजार एवं करोड़ों पर्यन्त है ॥ २७५ ॥ उस माद्वलम्बय परमात्माको तो ससारकी समस्त वस्तुएँ ही ज्ञापक हैं । लेकिन वास्तवमें वह सर्वज्ञान तत्त्व है और उसका कोई सजातीया और बिनाबीया नहीं है ॥ २७६ ॥ अच्छा तरह विचार हो न तब यहो निश्चित होता है कि वह केवल सन्तु ही है, पद आदि नहीं ॥ २७७ ॥ जिस तरह त्रिन्दुमात्रसे वह अकारादि स, सा, मा, ह्यक कहा जाता है । उसी तरह वह ब्रह्मा, ईश्वर या हरि अकला रहता हुआ भी पाँच प्रकारका है ॥ २७८ ॥ सद्योजानादि रूपधारी विधि ( ब्रह्मा ) और शिव भी पाँच ही पाँच प्रकारका है । वह स्वयं शुद्ध, साक्षी, प्राज्ञ, तैजस तथा विश्वश्रेष्ठ है ॥ २७९ ॥ नाम और रूपके अंदले वह सन्, चित् तथा आनन्द तीन प्रकारका है । किन्तु वह अनेका ही है । “ब्रह्मैवेदम्” इस श्रुतिसे भी यह सिद्ध होता है कि वह अनेका ब्रह्म ही पाँच प्रकारका हुना सा ॥ २८० ॥ प्रधान, महत्, अहंकार, पाँच तन्मात्राये और



अष्टमूर्तिस्वरूपं सद्भवशर्वादिनामभूत् । इन्द्रपृष्ठस्वरूपेण मायया भाति सर्वतः ॥२८३॥  
 ज्योतिर्लिङ्गद्विषट्कं च द्वादशादिन्यनामकम् । दशैन्द्रियमनोबुद्धिनामभिर्भाति सन् स्फुटम् ॥२८३॥  
 दशैन्द्रियाणि च प्राणपचकं भोग्यपचकम् । केनश्चतुष्कमान्मत्र एव त्रिंशमतो बुधः ॥२८४॥  
 लक्षणां चतुरर्धाति भोगायतनविस्तरः । तस्यैव कल्प्यते भ्रान्त्या कर्मभिर्गुणभेदतः ॥२८५॥  
 जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिं च भोगस्थानानि चान्मनः । भोगो भोक्ता भोजयिता सर्वं ज्ञेयं न पृथक् ॥२८६॥  
 अण्वात्मपथिदेवं च अधिभूतमिति त्रिधा । स्थूल सूक्ष्मं कारणं च सर्वं ज्ञेयं न पृथक् ॥२८७॥  
 एतज्ज्ञानं च ध्यानं च विवेकश्च विरागिना । जीवेश्वरजगद्भानमात्मैवेति न तु पृथक् ॥२८८॥  
 सर्वं सत्त्विदमिति चेदं सर्वं यदयमात्मनः । ज्ञेयं ज्ञेयं न ज्ञेयमिति अतः प्रवदति हि ॥२८९॥  
 अयं सिद्धस्य विषयो यन्मर्त्यान्मनि दर्शनम् । आरुरुक्षुः शान्तदर्शनस्त्विन्दुः सर्वतो भवेत् ॥२९०॥  
 स्वदेष्टे प्राप्नुयुषु निवर्णन्ति वशाकृतम् । तेनार्था विषयाः प्रोक्ता मुमुक्षुस्तान् विवर्जयत् ॥२९१॥  
 विविक्तसेवी लभ्यार्थान्यादि भाषयन् वचः । किं बहुक्तेन विधिना समाप्तं शास्त्रद्वयम् ॥२९२॥

इति मे गुरुणा किमप्यजडमानदान्मनस्त्वद्वय

परस्मात् इदं तदात्मकमहं न्वं चाशु नष्टं तयः ।

आप्तुं सहसोदितं महं अतः शर्वात्मव्याकृतं

येनाञ्जलिपिन्दुर्यपरतः विश्वं विशेषान्मकम् ॥२९३॥

तिर्यग्गता रेखाश्चचारिशतसमाः शुभा । तामामकं शकाष्टेषु परिधीं द्वी प्रकल्पयेत् ॥२९४॥

समिति प्रथमाज्ज्यास्तु ततो वाणां त्रिकोष्टके । तन्मध्यं रुद्ररुद्रपु पदचष्टादशैः पदः ॥२९५॥

आठ प्रकृतियों के सातत्रोमे वगलामी गयी है । २८१ ॥ उन आठ मूर्तियोंका स्वरूप सद्भवशर्वं अर्थात् नामोंसे विल्ल्यात है और मायावश से आठ वस्तुओंका नामसे भी अभिहित होता है । २८२ ॥ आठ ज्योतिर्लिङ्ग, द्वादश आदिन्य, दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन नामोंसे भा वह विश्वम स्पष्ट दिखायी देता है । २८३ ॥ दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राणवायु, भोग्यपचक और चार प्रकाशका विस्तार यह सब मिलकर यह पञ्चीस प्रकारका माना गया है । २८४ ॥ चौरास माय यातियों हूँ उसका भोगरूप धरका विस्तर है । भ्रान्तिवश या गुणकर्मक भेदसे उसमें इन सबका कल्पना की जाती है । २८५ ॥ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये आत्माके भोगस्थान हैं । भोग, भोक्ता भोजय से सब यह प्रकृत हैं और कोई नहीं । २८६ ॥ अण्वात्म, अधिदेव, अधिभूत, स्थूल और सूक्ष्मका कारण एकमात्र ब्रह्म ही है । २८७ ॥ यह ज्ञान, ध्यान, विवेक, विरागिता, जीव, ईश्वर, जगत्का भान यह सब यह आत्मा ही है और कोई नहीं । २८८ ॥ "सर्वं सत्त्विदं ब्रह्म" "यदयमात्मा" "अष्टैन्द्रियम्" ये धूमिली भी इसी बातको पुष्ट करती है । २८९ ॥ संसारको सब वस्तुओंके अपनी आत्मासे देखना, यह विषय सिद्धपुरुषोंका है । आ प्राणी सिद्धिक सिद्धरपर चढ़ना चाहता हो । उसे चाहिये कि वह दान्त, दान्त ( इन्द्रियोंका दमन करनेवाला ) और तिलिप्त बने । २९० ॥ अपने देशमें आये हुए पुरुषों के सांसारिक विषय बाँध लेते हैं । इसीसे इन्हें लोग विषय ( विशेषेण त्विन्वन्तं ति विषयाः । अयं भला-शीति शक्य लनवान ) कहते हैं । मुमुक्षु प्राणीको चाहिए कि इनका परित्याग कर दे । २९१ ॥ "एकान्त स्वानमे रते, वासं ज्ञान" इत्यादि बात भगवानने भीतानें स्वयं कही हैं । यही विशेष विधि विद्याम बतलानेकी आवश्यकता नहीं है । इदमे ज्ञानका प्रकाश होते ही शरीर आरुण समाप्त हो जते हैं । २९२ ॥ यदि किसी रुद्ररुद्रने कृपा करके जडतारहित आनन्दारमक ज्ञानरूप वस्तु के की लो 'ब्रह्म' 'हत्' सब एक हैं । यह ज्ञान उत्पन्न होतसे हृदयका अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया । एक अनिर्वचनीय प्रकाश और चन्द्रमा-सूर्य तथा पवनपर भी अधिपत्य जन्मनेवाली गविशसे सहसा यह विश्व बालीकित हो उठा, तब और किसी उपदेशकी आवश्यकता ही क्या है ? २९३ ॥ सीधे और टेढ़ी बालीकित रेखायें बराबर-बराबर खींचे । उनके उनतालीस कोष्ठकोंमें वे परिधिसे बना दे । २९४ ॥ शाल

लिंगमेकं सङ्घवाप्या तुर्यतुर्यपदान्तिके । अष्टकोष्टान्तिके भद्रं प्रोक्तं पञ्चचतुष्टये । २९६ ।  
 शृङ्खला द्विपदा चन्द्र त्रिपदा चन्द्रार्धतथा । पञ्चपादः स्मृता वृत्त्यो त्रिपञ्चेषु निर्मातव्ये । २९७ ।  
 द्विर्नाये त्रिपदभद्रः शृङ्खला वेदपादिका । वृद्धो नवपदा भद्रत्रय नवपदान्तिकम् ॥ २९८ ॥  
 त्रयोदशपदं वापीद्वयं पार्श्वे तु शृङ्खले द्विपदे रक्तवर्णे च भद्रं तुर्यपदं हरिम् । २९९ ।  
 प्रणिपार्श्वं भद्रं देवप्रथमाधस्तु योजयेत् । प्रतिपार्श्वं चतुर्दिश वापीर्ना पञ्चक तथा । ३०० ॥  
 अष्टादशपदं त्रिर्गं वापी त्रयोदशान्तिका । भद्रं गणपदेर्हंय वल्ली रुद्रपदान्तिका । ३०१ ॥  
 शृङ्खला पञ्चभिः पार्श्वैस्त्रिपदश्चंद्र ईरेतः । लिंगोपरितुना वापी नीलवल्गुया नियोजयेत् । ३०२ ॥  
 षष्ठा रगते परिधि त्रिषाव सप्तमन्तरम् । त्रिलिंगान्येकलिंगं च द्वयोः पञ्चयोः प्रकाशयेत् । ३०३ ॥  
 आदौ चन्द्रकलं भद्रं पदमर्कपदः स्मृतम् । शृङ्खलापञ्चमवेर्द्धा रुद्रकोष्टा सर्पारिना ॥ ३०४ ॥  
 वापीचतुष्टयं पूर्वं परं वापीद्वयं स्मृतम् । पूर्ववन्मकलं शेषं बाह्याः परिधयः क्रमात् ॥ ३०५ ॥  
 पीतशुद्धरक्तकुष्मा श्रेयाः सत्पदाधिका शुभाः । एतन्मर्मैन्दुर्लिंगात्म्यं पाठं सव्यमुदाहृतम् । ३०६ ॥  
 अथवाऽस्त्रिंशत्त्रिकोष्टानि वर्द्धयित्वा क्रमेण तु । षष्ठ्यंते परिधौ कार्या तत्र लिङ्गानि योजयेत् । ३०७ ॥  
 प्रथमं त्रीणि लिङ्गानि द्वितीये चैकमारितम् । चतुर्विंशत्तुलङ्कं वाप्यष्टादशपदजम् । ३०८ ॥  
 आदौ वेदमिश्रा वाप्यो द्वे वाप्यो च द्विर्नायके । आदौ नवपदं भद्रं द्विर्नायेऽर्कपदं स्मृतम् । ३०९ ॥  
 चन्द्रवल्गुपादिपूर्वोक्तं सव्ये लिंगं प्रकाशयेत् । षष्ट्यंशपदेर्हंय चतुःपार्श्वः शिरः कटिः ॥ ३१० ॥  
 अर्कमर्कपदं सङ्घवाप्या द्विपदशृङ्खलाः । पञ्चपादा स्मृता वृद्धा त्रिपदा पीतशृङ्खला । ३११ ॥  
 अर्कपदं भद्रं द्विचतुष्टयम् । चतुर्थ त्रिपदाः कोणे शिवमन्त्रकपाश्वके ॥ ३१२ ॥

कोष्ठकोके बाद पहिली परिधि बनाकर बाकं परिधियाँ पाँच गँव कोष्ठकोके बाद बनावे । उनके बीचमें एक ही द्वाकेस पादोमेंसे अष्टारह-शृङ्खला पादका एक एक लिङ्ग बनावे । फिर चार-चार पादकी दो सङ्घवापियाँ बनाकर । इसके चारों बगल कोष्ठकोष्ठान्तिकय भद्र बनावे ॥ २९५ ॥ २९६ ॥ इसके बाद दो पादकी शृङ्खला एकसे चन्द्रमा और तीन पादकी वल्गुया बनाकर इसके तीन बगलमें पाँच पाँच पादकी वल्गुयाँ बनावे ॥ २९७ ॥ दूसरी परिधि तीन पादका चन्द्रमा, चार पादकी शृङ्खला, लो पादकी वल्गुया, लो-लो पादके तीन भद्र, तरह पादकी दो वापिरी, वल्गुय दालाल शृङ्खला और चार पादमें हरे भद्रकी रचना करे । २९८ ॥ २९९ ॥ यह क्रम प्रयोग पार्श्वभागमें रहेगा । इसके पार्श्वभागमें चार लिङ्ग पाँच वापि, अष्टारह पादका लिङ्ग, तरह पादकी वापी, छ पादका भद्र, सारह पादकी वल्गुया, फिर पाँच पादकी वल्गुया और तीन पादकी चन्द्रमा बनेगा । लिङ्गक ऊपरकी बंधी न पड़े रहेगी और उसके साथ-साथ वल्गुया भी नाँची रहेगी ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥ ३०२ ॥ अथवा छ कोष्ठकोके बाद परिधि बनाकर सत्र लिङ्ग गा एक लिङ्ग दोनों पक्षियोंमें बनावे ॥ ३०३ ॥ पहले सोलह पादका भद्र बनाकर सत्र पादकी शृङ्खला और सारह कोष्ठकोमेंसे पाँच पादकी वल्गुया बनावे ॥ ३०४ ॥ पहले चार वापी और फिर दो वापकी रचना कर । बाकी सब पूर्ववत् रहेगे और बाहरकी परिधियाँ कमजोर कीली, सफर, खाल और काली रहगा । यह सप्तवन्दुलिंगात्मक पाठ मेंसे अच्छी तरह खालाया । ३०५ ॥ ३०६ ॥ अथवा इसी पीठमें दो कष्टक और बहाकर छ, क बाद दो परिधि बनावे और इस प्रकार लिङ्गोंकी योजना कर । ३०७ ॥ प्रथम पक्षिमें तीन और दूसरेमें एक लिङ्ग बनावे । इसी पीठमें चौबीस पादका लिङ्ग बनेगा और अष्टारह पादकी वापी बनावे । ३०८ ॥ आदिमें चार वापिरी और दूसरेमें दो वापी रहेगी । आदिमें लो पादका भद्र बनेगा और दूसरेमें सारह पादका भद्र बनेगा । चन्द्रमा तथा वल्गुया आदि दूर्वाङ्ग नियमके अनुसार ही रहेगे और मध्यमें लिङ्गकी रचना की जायगी । उसमें अष्टादश पाद रहेगे और चार पादमें फिर तथा कमजोर रचना होगी । सारह-सारह पादसे दो सङ्घवापियाँ बनायी जायेंगी । दो पादकी शृङ्खला बनेगी । पाँच पादकी वल्गुया बनायी जायगी । तीन पादसे पीतवर्णीकी शृङ्खला बनेगी ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥ सारह पादसे चारों ओरकी शृङ्खला बनेगी ।

नेत्रार्धे द्वे परे शुक्ले शेषाणि च वदानि हि । लिङ्गपार्श्वे एव पञ्च पञ्चैष्टं तानि पूरयेत् ॥३१६॥  
 पीतशुक्लरक्तकृष्णा बहिःपरिधयो मताः । एतन्ममदशलिङ्गैर्लिङ्गनोऽष्टमीरितम् ॥३१७॥  
 दशकं कारणानां च प्राणानां पञ्चक ममः । षोडशैवाः कला आत्मा साक्षी ममदशः स्मृतः ॥३१८॥  
 अकलिमात्मकं यद्र नृणु शिष्य मयोक्ष्यते । प्रागुदीच्या मता रेखाः पट्विंशति वक्ष्ययेत् ३१९॥  
 पदानि द्वादशशतं पञ्चविंशतिरेव च । स्वदेदुसिपदः कोणे भृङ्गना पदपदान्तिका ॥३२०॥  
 त्रयोदशपदा वल्मी भद्रं तु नवभिः पदैः । अष्टोत्तरे त्रिपदा ज्ञेया द्वितीया पौतभृङ्गना ॥३२१॥  
 त्रयोदशपदा वार्ध्या लिङ्गमष्टदशैः स्मृतम् । त्रिंश नियम्य पत्नी तु शोभा शोष्ठ्य अनुर्दश ॥३२२॥  
 तेषामुपरि पत्नी तु कोष्ठाः ममदशैः तु । पूजापत्तिः मिता त्रया परितः परेकल्पिता ॥३२३॥  
 पूजापत्त्यन्तरापत्तौ कोठा अशानिसम्प्रदाया । परिधिः स च विद्वया मंडलाः शोर्दशैः ॥३२४॥  
 परिध्यांतरकोष्ठेषु सर्वतोभद्रमालिम्बेन । विशेषध्वजं च देवो भृङ्गना पटवता मरेत् ॥३२५॥  
 त्रयोदशपदा वल्मी भद्रं तु द्वादशैः पदैः । पञ्चविंशत्पदा वार्ध्या परेभिः षोडशात्मकः ॥३२६॥  
 मध्ये नवपदैः पार्श्वे कर्णिकाकैर्मगान्वितम् । सत्रं यत्र ममोद्योगाः परितो मंडलस्य च ॥३२७॥  
 मयः परिधयः कार्यास्तत्र हाराणि कारयेत् । निर्दुः भृङ्गना कृष्णा वल्मी नीला मपूरयेत् ॥३२८॥  
 भद्रं रक्तभृङ्गनाऽन्यापौता वार्ध्या मिता स्मृता । त्रिंशानि कृत्वा वर्णानि पार्श्वेषु द्वारैश्च तु ॥३२९॥  
 परिधिः पानवर्णः स्यान्वमनं पञ्चवर्षकम् । कर्णिका च केश्याणि पौतवर्णानि कारयेत् ॥३३०॥  
 मकरांतरमन्यचे भृणु त्रिष्व मयोक्ष्यते । पूर्वोत्तरगता रेखा ममविंशतिमिताः शुभाः ॥३३१॥  
 तन्वट्विंशत्पदेष्वेव सर्वतोभद्रमुत्तमम् । अन्विनेन प्रिकंष्टुं च रचयेत्पूर्वच्छुभम् ॥३३२॥

मन्थमें चार भद्र बनने । कोणमें तीन पादका बाटमा बनेगा । शिवजीके मस्तकके पास नेत्रके लिए दो पाद साया ही छोड़ दे । जिसने पाद है, उनमेंसे लिङ्गके आसपासवाले पञ्चपाद पादकी अपन इच्छानुसार पूजा कर । ३१२ ॥ ३१३ ॥ बाहरकी सब परिधिवां पान, भृङ्गना, रक्त तथा कृष्ण वर्णकी भृङ्गना । यह उत्तरमालिगात्मक पदकी रचनाका प्रकार बतलाया गया ॥ ३१४ ॥ दस इन्द्रियोकी, पाँच प्राणोकी, एक मनकी ये सोलह कलायें होती हैं और ममहवां मान्या साक्षां माना जाता है । ३१५ ॥ हे शिष्य ! अब मैं द्वादशमालिगात्मक लिङ्गलाभद्रकी रचनाका प्रकार बतलाता हूँ, भुना । पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणकी ओर छलीस छलीस रेखाएँ खींचे ॥ ३१६ ॥ इसमें द्वादश बाहर की पञ्चवीस बाह होने । तीन पादसे लगेन्दु बनेगा और कोणकी ओर छ पादकी भृङ्गना रहेगा । ३१७ ॥ नव पादकी दश बल्लभ, नौ पादका भद्र, सद्रक उत्तर तीन पादकी पौली भृङ्गना, तेरह पादकी वार्ध्या और छत्रह पादका त्रिंश बनाकर पत्तिमें बाँट दू कात्मक शोभाके लिये रहने दें । उनका ऊपरवाला पत्तिम सत्रह कायक रहने और पार्श्व ओरसे सफेद रङ्गका एक पुकाराईक रहेगी ॥ ३१८-३२० ॥ पूजापत्तिकी भावरवाला पत्तिम भस्मा कायक रहने । ये उन पत्तिओके बीचपर परिधिका काम देते । ३२१ ॥ परिधिके पीतरवाले कोष्ठकोमें सबतोभद्रकी रचना करे । इस पदमें जो निरूपण है, उसे समझ लें । इसकी भृङ्गना छ पादका रहेगी । ३२२ ॥ तेरह पादकी बल्लरी बनेगी । बाहर पादका भद्र रहेगा । पञ्चस पादका वार्ध्या रहने और सोलह पादका परिधि बननी ॥ ३२३ ॥ बीचमें नौ पादका एक कमल बनेगा, जिसमें बहिरिका तथा केसर आदि आ रहेंगे । पञ्चलके चारों ओर सत्र, रज गम इस तीनों गुणोंकी रचना कर्णों होगी ॥ ३२४ ॥ इसमें तीन परिधिवां रहेंगी और कई द्वार भी रहेंगे । इसमें चन्द्रमल चन्द्रमा, काली भृङ्गना, मौल बल्लरी और काल भद्र रहेगा । दूसरी भृङ्गना पीत वर्णकी और वार्ध्या सफेद रहेगी । आसपास कृष्ण वर्णके बाहर द्वादश त्रिंश बनने ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥ परिधि पीले रङ्गकी और कमल पाँच रंगका बनने । उसकी कर्णिका तथा केश-पौतवर्णका रहेगा ॥ ३२७ ॥ हे शिष्य ! अब मैं इसका एक दूसरा प्रकार बतला रहा हूँ । पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण दोनों ओर सत्ताईस-सत्ताईस रेखाएँ खींचे ॥ ३२८ ॥ इसके छलीस पादोंसे सर्वतोभद्र तथा ३२४ पादसे अन्य बल्लुओकी रचना करे

परिधिनन्समंताच्च प्रकल्प्यः पीनवर्णकः । अष्टोनरगुनेर्निगमोभद्रं कथितं यथा ॥३३०॥  
 तस्य चतुर्षु पार्श्वेषु रचयेदूर्ध्वलिङ्गकम् । कोणे कोणे त्रिपदोऽब्जः शृङ्खला ममपादिका ॥३३१॥  
 वल्लीमनुषदा मद्र पट्पदं श्रीदुर्वापिका । लिङ्गं षड्विंशपदत्रं मद्रं स्याद्दर्शपकोपरि ॥३३२॥  
 लिङ्गयार्धपदान्मेव पट् पीनानि प्रकल्पयेत् । लिङ्गोपरितना र्थार्थान् ला वल्ग्योर्निषोन्नयेत् ॥३३३॥  
 चतुष्पदौर्ध्वलिङ्गशिरस्नथा परिधयो बहिः । सर्वाणि तु यथापूर्वमुक्तवर्णः सुरज्जयेत् ॥३३४॥  
 चतुर्विंशतिरालेख्या रेखाः प्राग्दक्षिणायताः । कोणेषु शृङ्खला पञ्चपदा वल्ग्यश्च पाशतः ॥३३५॥  
 पदत्रयमिगलेख्यवाधनमिर्कषुशृङ्खलाः । लघुवल्ग्यः पदं षड्भिस्तनोऽष्टादशभिः पदैः ॥३३६॥  
 कुन्दा लिङ्गानि बाण्यस्तु त्रयोदशभिस्तनः । ततो र्धार्धाद्वयेनैव पटं कुर्याद्वचश्चणः ॥३३७॥  
 तस्य पादाः पञ्चदश द्वागण्यपि तथैव च । एकार्धनिपदं मध्ये पञ्च स्वस्तिकमिष्यते ॥३३८॥  
 कोणेषु शृङ्खलाः कार्याः पदैस्त्रिभिरनः परम् । पदत्रयमिर्दिभु स्फुर्भद्राण्येर्षा समन्ततः ॥३३९॥  
 एकादशपदे वल्ग्वी मध्येऽष्टदलमालिखेत् । पदं नवपदं द्वेनलिङ्गमोभद्रमिष्यते ॥३४०॥  
 शृङ्खला कुण्डवर्णेन वल्ली नालेन पूरयेत् । रक्तेन भस्मका लङ्घी वल्ली पीतेन पूरयेत् ॥३४१॥  
 लिङ्गानि कृष्णवर्णानि श्वेतेनाप्य वापिका पीट प्यपादं श्वेतेन पीतेन द्वारपूरणम् ॥३४२॥  
 मध्ये स्फुः शृङ्खला रक्ता वल्लीनीलेन पूरयेत् । शट्पाणि पीनवर्णानि पीना पंकजकणिजा ॥३४३॥  
 दलानि श्वेतवर्णानि यद्वा चित्राणि कल्पयेत् । निम्नो रेखा बहिः कार्पाः नितरक्तासिताः क्रमान् ॥३४४॥  
 ऊर्ध्वलिङ्गोद्भवं जटलिङ्गमोभद्रमुच्यते । अन्यन्ययागिरम्य तच्छृणु शिन्वात्र कौतुकात् ॥३४५॥  
 अष्टविंशतिरेखाश्च निर्यतूर्ध्वं समन्ततः । सप्तविंशतिकोष्ठेषु पदन्ते परिधयः स्मृताः ॥३४६॥  
 कोणेषु त्रिपदत्रन्दः शृङ्खला पञ्चपादिका । बाण्यर्कपादजा भद्रपट्क षट्पट्पदात्मकम् ॥३४७॥

॥ ३२६ ॥ उसके चारों ओर पातलपत्रों की चिन्तित बनावे । पहले जो मैत्र अष्टोनरगतात्मक लिङ्गमोभद्रसतलाया है, उसके चारों बगल छान्दस लिङ्गकी रचना करे । प्रत्येक काण्डमें तीन पादका कमल बनाकर सात पादकी शृङ्खला बनावे ॥ ३३० ॥ ३३१ ॥ फिर चौदह पादकी शृङ्खला, छ पादका मद्र, तीन तीन पादका पञ्चमा और बापी तथा छत्रास पादका त्रिग वर्णिकाके ऊपर बनाया जायगा । ३३२ । लिङ्गक बगलवाले छः पाद पीले रङ्गसे रङ्ग दिये जायें । निम्नके ऊपरवाली शृङ्खला नील वल्ग्वरिणाके बीचमें नियुक्त कर दे ॥ ३३३ ॥ चौदह पादसे लिङ्ग, भस्मक तथा परिधियाँ बनावे । बाकी सब जगह ऊपर कह आये हैं । उसके अनुसार ही रहने दे ॥ ३३४ ॥ पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणकी ओर चौदह चौदह रखावे बीच । कोणमें पाँच पादकी शृङ्खला तथा नौ पादोंकी वल्ग्वरियाँ बनावे । चार पादकी छोटी शृङ्खला बनावे । छ पादकी लघु वल्ग्वरी बनावे । अष्टादह पादोंसे लिङ्ग एक लेख पादकी वापियाँ बनावे । फिर दो चौधियोंसे पीछकी रचना करे ॥ ३३६-३३७ ॥ उस पाठका पौर पाँच पादक तथा द्वार पाँच पादसे बनाकर मध्यमें हवयासी पादका कमल बनेगा ॥ ३३८ ॥ तीन-तीन पादोंसे कान्ठमें शृङ्खलायें बनावे । चारों दिशाओंमें चार-चार पादके मद्र बनेंगे ॥ ३३९ ॥ प्याण्ड पादकी दो बाण्यरियाँ बनावे । नौ पादसे मध्यमें जटहर कमलकी रचना करे । वह भी एक प्रकारका लिङ्गमोभद्र है । ३४० ॥ इनमें जो शृङ्खला कुण्ड वर्ण और वल्ग्वरी नील रङ्गसे पूर्णकी जायगी । रक्त वर्णसे लघु शृङ्खला एवं पीत वर्णसे ओष्ठ वल्ग्वरीका पूर्ण की जायगी ॥ ३४१ ॥ इसका लिङ्ग कुण्ड वर्णके और बायी सफेद रङ्गकी रहूँगी । इसकी पीठ और इसका पाद भा प्यन रङ्गसे और पीत वर्णसे इसके द्वार रने जायेंगे ॥ ३४२ ॥ मध्यमें रक्त वर्णकी शृङ्खला और नील वर्णसे वल्ग्वरी पूर्ण का जायगी । सब मद्र पीतवर्णके रहेंगे और कमलकी कणिका भी पीले रङ्गकी रहेंगी ॥ ३४३ ॥ कमलके हलोको सफेद या विज्र वर्णसे पूर्ण करे । बाहुर सीम रेखायें रहेंगी और बमज उगका वर्ण उज्ज्वल, रक्त तथा वृष्ण रहेगा । ३४४ ॥ अब हम ऊर्ध्वलिङ्गमोभद्रक जटलिङ्गमोभद्रकी रचनाका दूसरा प्रकार बतलाते हैं, उसे मन लगाकर सुनो ॥ ३४५ ॥ सीधी और क्षिरछी शृङ्खला-शृङ्खला रेखायें बीच । सत्ताईस कोष्ठक पर्यन्त छः छः पादके बाद परिधियाँ रहेंगी ॥ ३४६ ॥ कोणमें

ऊर्ध्वे भद्रे रविपदे पदैःष्टादशैः शिवाः । आत्मनोऽभिधृत्वाः सर्वे कार्पा ह्यष्ट शुभावदाः ॥३४८॥  
 त्रयोदशांशिवा वापी तन्वयं पश्चिमे स्मृतम् । ध्वे स्वेका द्वे शकले त्रैप सर्वं तु पूर्ववत् ॥३४९॥  
 निर्धामद्रे वेदपदे एकपुनोऽश्वेवल्ली । दक्षिणोत्तरनवापि वापीनां शकलाष्टकम् ॥३५०॥  
 तमघोर्लिङ्गयोर्माला मा त्रिभनेयनैः स्मृता । सर्वत्र नेत्रे द्वे त्रये दक्षिणोत्तरयोस्त्रिभिः ॥

पृथक् च-वारि भद्राणि सधोभद्रे चतुष्पदे ॥३५१॥

दक्षिणोत्तरदिग्भागे पूर्ववन्धौ च संघमेत् । इवन्ने मध्ये तु एभिः पञ्चविंशैर्त्रैलोक्यम् ॥३५२॥  
 शुक्ला द्विपदा मध्ये वल्ली पट्टपादजा स्मृता । वाप्यः पञ्चपदैर्ज्ञेया भद्रं वेदपदान्वकम् ॥३५३॥  
 शिवा वापी शिवः कृष्णः पद्मभद्रे च लोहिते । निर्धामद्रे लिङ्गमाले परिधी पीतवर्णकौ ॥३५४॥  
 नेत्रेन्दु धवली कृष्णः शृङ्खला हरिता लता । पदत्रयं हि वाप्युर्ध्वं तद्यथाशुचि पूरयेत् ॥३५५॥  
 पीतशुक्लरक्तकृष्ण बहिः परिधयः स्मृताः । अष्टलिङ्गान्मकं त्रयं लिङ्गनोभद्रमुत्तमम् ॥३५६॥  
 अथवाऽन्यौ द्वौ प्रकारौ प्रोच्येते शृणु तावपि । द्वात्रिंशच्चरमेधेवं चतुर्लिङ्गं तथाऽष्टकम् ॥३५७॥  
 युक्त्वा विरचयेन्नत्र विशेषोऽप्य निगद्यते । प्राग लिङ्गं चतुर्विंशपदमष्टैर्दुवापिका ॥३५८॥  
 भद्रं विंशपदं चान्यलिङ्गमष्टादशान्मकम् । भद्रं नवपदं शेषं यावदवधि योजयेत् ॥३५९॥  
 रेखास्त्रयष्टादश प्रोक्तश्चतुर्लिङ्गममुद्रवे । कोणेन्दुस्त्रिपदः त्रैलोक्यपदः कृष्णशृङ्खला ॥३६०॥  
 वल्ली समष्टा नीला भद्रं रक्तं चतुष्पदम् । भद्रपादौ महालिङ्गं कृष्णमष्टादशैः पदैः ॥३६१॥  
 शिवपाश्वे तु वापी च कुर्यात्पञ्चपदां मितान् । पदमेकं तथा पीतं भद्रं वाप्यस्तु मध्यतः ॥३६२॥  
 शिरशि शृङ्खला शस्त्रं कुर्यात्पीत पदत्रयम् । लिङ्गानां स्कन्धतः कोष्ठा विंशत्यो रक्तवर्णकाः ॥३६३॥

हैं न पादका चन्द्रमा रहेगी और पाँच पादकी शृङ्खला बनायी जायगी । बारह पादकी वापी और छः छः पादके छः भद्र बनने ॥ ३४७ ॥ ऊपरके दानों भद्र बारह पादके रहने और अधुनाह पादके भद्र बनाने जायेंगे । इन सबको अपने अभिमुख बनावे ॥ ३४८ ॥ तरह पादकी कुल बाणियाँ रहेंगी । तिसमें पश्चिमकी ओर तीन वापी, पूर्वकी ओर एक वापी तथा दो खण्डवापी बनायी जायगी । शेष सब पूर्ववत् रहेंगे ॥ ३४९ ॥ इसमें बेटा छः बार पादका और तीन पादकी ऊपरवल्ली रहेंगी । दक्षिण और उत्तरकी ओर खाण्डवापि रहेंगी ॥ ३५० ॥ तीन नेत्रोंसे इन दोनों लिङ्गोंको माना बनाया जायगा । दक्षिण और उत्तर दो-दो और तीन-तीन पादोंके दो नेत्र बनेंगे । चार भद्र पृथक् बनाये अर्थमें और उनमें नीचेवाले दोनों भद्र चार पादके रहेंगे ॥ ३५१ ॥ दक्षिण और उत्तरकी चार दक्षिणकी योजना को जायगी । तीन पादसे मध्यमें परिधि बनेगी और परकोष्ठ पादका कपल बनेगा । ३५२ ॥ इसमें शृङ्खला दो पादकी और मध्यमें छः पादसे वल्ली बनायी जायगी । पाँच पादकी वापियाँ बनगी और चार पादका भद्र बनेगा ॥ ३५३ ॥ इसकी वापियाँ सफेद, शिव कृष्ण, पद्म और भद्र रक्तवर्णके रहने । तिरछा भद्र लिङ्ग माला तथा दोनों परिधिपी पीत वर्णकी रहेंगी ॥ ३५४ ॥ नेत्र तथा हस्त व दोनों सदैव रहने । शृङ्खला काली और लता हरी रहगी । वापीके स्वरवाले तीन पादोंको जैसी अपनी रचि है, उस प्रकार रचकर बनावे ॥ ३५५ ॥ इसके बाहरकी परिधियाँ क्रमशः पीली, सफेद, लाल तथा काली रहगी । यह सैन पुमकी अष्टलिङ्गान्मक लिङ्गनोभद्र बनलाया ॥ ३५६ ॥ अब इसके अन्य दो प्रकार बतलाते हैं, उन्हें भी सुन लो । तैर्दस वर्णोंसे चार वा आठ लिङ्ग युक्तिपूर्वक बनावे । अब इसमें को विशेषतायें हैं, उन्हें बतलाते हैं । आदिवाली पक्षिमें चौदह पादकी भद्र रहूँ वापि रहूँ बनगी । ३५७ ॥ ३५८ ॥ दोस पादका भद्र बनेगा । दूसरा लिङ्ग अधुनाह पादका बनेगा । ती पादका भद्र बनेगा । बाकी सब पहलेके समाप्त बनेंगे ॥ ३५९ ॥ चतुर्लिङ्गान्मक भद्रमें अधुनाह गन्तार्ये तीन । इसमें पी कोणका चन्द्रमा तीन पादका और कृष्ण वर्णकी शृङ्खला रहेगी । ३६० ॥ पास पादसे तीन रक्त वर्णकी बल्लरो, चार पादसे रक्त वर्णका भद्र और चार पादके पास अधुनाह पादसे कृष्ण वर्णका महादिग बनावे ॥ ३६१ ॥ शिवके पास पाँच पादकी सफेद वापी बनावे ।

परिधिः पीतवर्णस्तु पदैः षोडशभिः स्मृतः । पदैस्तु नवभिः पञ्चावयवं चित्रं मकरिणिकम् ॥३६४॥  
 त्रिर्गुणैर्गङ्गा रेखाः कार्याः स्निग्धास्तयोदश । कोणैर्द्वित्रिपदः कार्यः शृङ्खला त्रिपदा स्मृता ॥३६५॥  
 वल्ली च पदपदा नीला रक्तं भद्रं मकरवयेत् । पदैर्द्वादशभिः सप्तष्टुतरे पूर्वदक्षिणे ॥३६६॥  
 पश्चिमार्धं महाह्रदमष्टविंशतिकोष्ठके । लिङ्गपार्श्वं तथा मूर्ध्नि सप्त कोष्ठान्तु पीतकाः ॥३६७॥  
 लिङ्गमेकं तथा गौर्यास्तिलकं श्रोत्रमण्डले । पूजयेन्मण्डले चैव तस्य गौरी प्रसीदति ॥३६८॥  
 प्रागुदीच्या गङ्गा रेखाः कुर्यादेकोनविंशतिः । स्वर्णैर्द्वित्रिपदः कोणे शृङ्खला पञ्चभिः पदैः ॥३६९॥  
 एकादशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः । वतुविंशत्यदा वापी परिधिर्विंशकैः पदैः ॥३७०॥  
 मध्यं षोडशभिः कोष्ठैः पञ्चमष्टकं स्मृतम् । श्वेतैर्द्विशृङ्खला कृष्णा वल्ली नीलेन पूरयेत् ॥३७१॥  
 भद्रारुणं सिना वापी पाते परिधिकर्णिके ।

रक्तं वा चित्रितं पथं बाष्पाः सन्वरजस्तमाः । सर्वतोभद्रकं चेद कृतव्यं सर्वकर्मसु ॥३७२॥  
 एवं लिङ्गतोभद्राणां रचनाः कथिता मया । एताः शिवपरा ज्ञेया न योग्या विष्णुपूजने ॥३७३॥  
 रामलिङ्गात्मकं योग्यं श्रीविष्णोर्हृदयस्य च । पूजने न्येक एवात्र तद्विस्तारेण कथ्यते ॥३७४॥  
 शिवस्य पूजने लिङ्गपूजास्य परिचिनयेत् । उपासिका राममुद्रा ज्ञेया तद्वद्भगवानपि ॥३७५॥  
 लिङ्गतोभद्रवच्चात्र समावासाविबुद्धिनाः । रामतोभद्रकं यच्च ज्ञेयं विष्णुपरं हि तत् ॥३७६॥  
 रमा रामेति वर्णवन्निवृत्तं भद्रकं कुतम् । भिया देवीपरं तच्च शातव्यं सर्वकर्मसु ॥३७७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये मनोहरकाण्डे रामशसविष्णुशत-

संवादे रामलिङ्गतोभद्राणां तथा लिङ्गतोभद्राणां रचनाप्रकारकथनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

एक पादकर एक पोला भद्र बनावे । मध्यमें बापी, मस्तकपर शृङ्खला, वगलमें पीले रक्तके तीन पाद और लिङ्ग, स्कन्धमें लाल वर्णके वास कोष्ठक बनावे ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥ सोलह पादोंमें पीत वर्णको परिधि और उष्ट्रके आगे ती पादोंमें विविध वर्णको कर्णिकायुक्त कमल बनावे ॥ ३६४ ॥ तीसरी ओर सीधे लेख रेखाये खींचे । कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे ॥ ३६५ ॥ पीले वर्णसे छः पादकी बल्ली और रक्त वर्णका भद्र बनावे । फिर उत्तर पूर्व दक्षिण तथा पश्चिम कोणमें बारह पादोंसे खट्वाईस कोष्ठकोमें महाह्रदका निर्माण करे । लिङ्गके वगलमें तथा मस्तकके बाढ कोष्ठकोका पाते रक्तसे रङ्गे ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ इसके मण्डलमें गौरीका लिङ्ग बनावे । जो बाणी इस मण्डलका पूजन करता है, उसपर गौरी प्रसन्न होता है । ३६८ ॥ पूर्व और उत्तरकी ओर १९ रेखाये खींचे । कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे । बाँव पादकी शृङ्खला, बारह पादकी बल्ली और ती पादोंसे भद्रकी रचना करे । चौत्रोस पादकी वापी और बीस पादकी परिधि बनावे । ३६९ ॥ ३७० ॥ मध्यमें सोलह पादका अष्टकल कमल बनावे । इस भद्रमें चन्द्रमा सफेद, शृङ्खला काली, बल्ली नीली, भद्र लाल, बापी सफेद, परिधि पीले वर्णकी, कर्णिका लाल और विविध वर्णका कमल बनावे । बाहुर सत्त्व, रज और तम रहेगा । इस सर्वतोभद्रकी सब कामोंमें बनाना चाहिए ॥ ३७१ ॥ ३७२ ॥ यह सब लिङ्गतोभद्रकी रचनाका प्रकार मेने बतलाया है । ये सब शिवकी प्रशाम ही काम देने विष्णुपूजनमें नहीं ॥ ३७३ ॥ विष्णुकी पूजाय श्रीरामलिङ्गतोभद्रका ही उपयोग करना चाहिए । प्रत्येक पूजनमें एक देवताकी ही प्रधानता रहती है । इसी बातको अब विस्तारपूर्वक बतला रहे हैं ॥ ३७४ ॥ शिवकी पूजामें लिङ्ग उपास्य रहता है । इसलिये उपासका ध्यान करना चाहिए । इसमें उपासिका राममुद्रा है और लिङ्गतोभद्रके ध्यान ही इसमें भी समावाहक किया जाता है । रामतोभद्र विष्णुपरक है ॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥ इसमें रमा राम ये वर्ण चिह्नित किये हुए रहते हैं । इसलिए कुछ लोग रामतोभद्रकी देवीपरक भी कहते हैं । अस्तु, कहनेका भाव यह है कि यह भद्र सब कामोंमें प्रयुक्त किया जा सकता है ॥ ३७७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये पंच-  
 रामदेवजवाण्डेयकुसुमज्योत्स्ना'वाषाढीकासहिते मनोहरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( रामनोमद्वये देवताओंकी स्थापनाविधि तथा रामनवमीकी कथा )

अथ सर्वतोमद्र तद्देवताश्च तिरुवन्ते । प्राणानायस्य देशकालौ स्मृत्वा रामनोमद्रदेवतास्थापनं वा रामलिंगनोमद्रदेवतास्थापनं वा रमानामनोमद्रदेवतास्थापनं वा रमानामनोमद्रदेवतास्थापनं करिष्ये इति संकल्प्य । ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रस्य वागदेवभूषिः त्रिष्टुप्छन्दः ब्रह्मादेवता मयास्थापने विनियोगः ॥ 'ब्रह्मजज्ञानं' सर्वतोमद्रमध्ये ब्रह्माणमावाहयामि ॥ १ ॥ उपरे वापीश्रीगमामे 'वाष्पायस्व' सोमाय नमः सोममावाहयामि ॥ २ ॥ ईशान्यां खड्डेदौ 'तमीज्ञानं' ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि ॥ ३ ॥ पूर्वस्यां वाप्यां 'प्रतारमिद्रं' इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि ॥ ४ ॥ आग्नेयां खड्डेदौ 'अग्निदत्तं' अग्नये नमः अग्निमावाहयामि ॥ ५ ॥ दक्षिणस्यां वाप्यां 'यमायस्व' यमाय नमः यममावाहयामि ॥ ६ ॥ नैर्ऋत्यां खड्डेदौ 'असुन्दत्तं' निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि ॥ ७ ॥ पश्चिमायां वाप्यां 'तत्त्वायामि' वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि ॥ ८ ॥ वायव्ये खड्डेदौ 'जानोनिष्ठुद्रिः' वायवे नमः वायुमावाहयामि ॥ ९ ॥ वायुमोममध्ये मद्रे 'निवेशसीक' ध्रुवं अर्ध्यां सोम आः अनिलं जनत प्रत्युष प्रभासमित्यहवभूनावाहयामि ॥ १० ॥ सोमेश्वरमध्ये मद्रे 'नमस्ते रुद्र' वीरभद्र सुदु मिमिक्षं अर्जकपादं अहिर्बुध्न्यं पिनाकेन ध्वरनाभीधर कपालिन दिक्पति र्स्याणुं रुद्रमिन्येकादश रुद्रानावाहयामि ॥ ११ ॥ ईशानेद्रमध्ये मद्रे 'वाकृष्णेन' भगं वरुण सूर्य वेदारं भानु रवि तमस्ति द्विग्यरेतस दिवाकर मित्र आदित्य विष्णुमिति द्वादशादिन्यानावाहयानि ॥ १२ ॥ इन्द्राग्निमध्ये मद्रे 'अधिवन्ता सैजसा चतुः' अश्विनीकुम राभ्य' नमः अश्विनौ देवावाहयामि ॥ १३ ॥ अग्निपममध्ये मद्रे 'समाभ्यर्णिर्गुतो' सवैहकान् देवानावाहयामि ॥ १४ ॥ यमनिर्ऋतिमध्ये मद्रे 'अमित्वं देव' यमेभ्यो नमः यमानावाहयामि ॥ १५ ॥ निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये मद्रे

अथ सर्वतोमद्र और उसके देवताओं के आवाहन तथा स्थापन की विधि बखलाते हैं । प्राणायामपूर्वक दश काल दारिका उन्धारण करके "रामनोमद्र के देवता का स्थापन, गितापद्र के देवता का स्थापन, रामनामनोमद्र के देवता का स्थापन यथा रमानामनोमद्र के देवता का स्थापन कहें ।" ऐसा संकल्प करके "ब्रह्मजज्ञानम्" आदि मंत्र की पहला हुक्म विनियोज करे । "ब्रह्मजज्ञानम्" यह मंत्र पढ़कर ब्रह्मा का आवाहन करे । उत्तर वापी के पास 'वाष्पायस्व' यह मंत्र पढ़कर सोम का आवाहन करे ॥ १ ॥ २ ॥ ईशान के खड्डेन्दु में 'तमीज्ञानं' इस मंत्र से ईश का आवाहन करे । ३ ॥ पूर्व की वापी में 'प्रतारं' इस मंत्र से इन्द्र का आवाहन करे ॥ ४ ॥ अग्निशोण के इन्दु में 'अग्निदत्तं' इस मंत्र से अग्निक का आवाहन करे ॥ ५ ॥ दक्षिण वापी में 'यमायस्व' इस मंत्र से यम का आवाहन करे ॥ ६ ॥ नैर्ऋत के खड्डेन्दु में 'असुन्दत्तं' इस मंत्र से निर्ऋतिका आवाहन करे ॥ ७ ॥ पश्चिम वापी में 'तत्त्वायामि' इस मंत्र से वरुण का आवाहन करे ॥ ८ ॥ वायव्य कीप के खड्डेन्दु में 'जानो निष्ठुद्रिः' इस मंत्र से वायु का आवाहन करे ॥ ९ ॥ वायु और सोम के मध्यवाले मद्र में 'निवेशसीक' इस मंत्र से ध्रुव, अर्ध्वर, सोम आदि आठ वसुमी का आवाहन करे ॥ १० ॥ सोम और ईशान के मध्यवाले मद्र में 'नमस्ते रुद्र' इस मंत्र से वीरभद्र, शम्भु, दारुण, अर्जकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, भूनाभीधर, कपाली, दिक्पति, र्स्याणु और रुद्र इन एकादश रुद्रों का आवाहन करे ॥ ११ ॥ ईशान और इन्द्र के मध्यवाले मद्र में 'वाकृष्णेन' इस मंत्र से भग, वरुण, सूर्य, वेदार, भानु, रवि, तमस्ति, द्विग्यरेतस, दिवाकर, मित्र, आदित्य और विष्णु इन द्वादश सूर्यों का आवाहन करे ॥ १२ ॥ इन्द्र और अश्विन के मध्यवाले मद्र में 'अधिवन्ता सैजसा' इस मंत्र से अश्विनोक्तुमारों का आवाहन करे ॥ १३ ॥ अग्नि और यम के मध्यवाले मद्र में 'समाभ्यर्णिः'

‘आर्यगौः०’ भूतनागोभ्यो नमः भूतनागावाहयामि ॥ १६ ॥ वरुणवायुमध्ये मन्त्रे नदीभ्यः  
 पौञ्चिकं गन्धर्वाप्सरसोभ्यो नमः गन्धर्वाप्सरस आवाहयामि ॥ १७ ॥ ब्रह्मसोममध्ये वाप्या  
 ‘यदक्रन्दः प्रथमं०’ स्कन्दस्य नमः स्कन्दमावाहयामि ॥ १८ ॥ ‘नमः शंभवे०’ नन्दीश्वराय नमः  
 नन्दीश्वरमावाहयामि ॥ १९ ॥ ‘भद्रं कर्णेभ्यः०’ शृङ्गाय नमः शृङ्गमावाहयामि ॥ २० ॥ ‘विश्वकर्मा-  
 हज०’ महाकालाय नमः महाकालमावाहयामि ॥ २१ ॥ महेशानमध्ये वल्लीषु ‘आदितिर्यो०’  
 ऋक्षादिभ्यो नमः ऋक्षादीनावाहयामि ॥ २२ ॥ त्र्यम्बकमध्ये वाप्या ‘श्रीश्रुते०’ दुर्गायै नमः दुर्गामा-  
 वाहयामि ॥ २३ ॥ ‘इदं विष्णु०’ विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि ॥ २४ ॥ ब्रह्माग्निमध्ये वल्लीषु  
 ‘उदीरिता०’ स्वधायै नमः स्वधामावाहयामि ॥ २५ ॥ ब्रह्मवर्ममध्ये वाप्या ‘अरसृन्धो०’ सृन्धये  
 नमः सृन्धुमावाहयामि ॥ २६ ॥ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्या ‘गणनात्वा०’ गणपतये नमः गणपति-  
 मावाहयामि ॥ २७ ॥ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्या ‘शशोदेवी०’ अन्नयै नमः अन्न आवाहयामि ॥ २८ ॥  
 ब्रह्मवायुमध्ये वल्लीषु ‘मरुतोयस्य०’ मरुते नमः मरुतमावाहयामि ॥ २९ ॥ ब्रह्मणः पादमूले  
 कणिकावः ‘स्योनपृथिवि०’ पृथ्व्यै नमः पृथ्वीमावाहयामि ॥ ३० ॥ तत्रैव ‘पञ्च नद्यः सरस्वती०’  
 पञ्चादिसर्वजदीरावाहयामि ॥ ३१ ॥ तत्रैव धाम्नोघाम्नोभर्जस्तनोवरुण० समसागरेभ्यो नमः सम-  
 सागरानावाहयामि ॥ ३२ ॥ ततः कणिकोपरि नाममन्त्रेण मेरवे नमः मेरुमावाहयामि ॥ ३३ ॥ ततः  
 पीतपद्मिनी सोमादिसन्निधौ क्रमेण आयुधानि सोममर्मापे गदायै नमः गदामावाहयामि ॥ ३४ ॥  
 ईशानसमीपे शृङ्गाय नमः शृङ्गमावाहयामि ॥ ३५ ॥ इन्द्रसमीपे वज्राय नमः वज्रमावाहयामि ॥ ३६ ॥  
 अग्निमर्मापे शक्तये नमः शक्तिमावाहयामि ॥ ३७ ॥ यमसमीपे दण्डाय नमः दण्डमावाहयामि ॥ ३८ ॥  
 निर्ऋतिमर्मापे खड्गाय नमः खड्गमावाहयामि ॥ ३९ ॥ वरुणमर्मापे पाशाय नमः पाशमावाह-  
 यामि ॥ ४० ॥ वायुमर्मापे अंकुशाय नमः अंकुशमावाहयामि ॥ ४१ ॥ पुनः सोमस्योत्तरे सदा समीपे

इस मन्त्रसे सप्तैतुक विष्णुदेवका आवाहन करे ॥ १४ ॥ यम और निर्ऋतिके बीचवाले पदमे ‘ममिष्य देव’  
 इस मन्त्रसे यमका आवाहन करे ॥ १५ ॥ निर्ऋति और वरुणके बीचवाले पदमे ‘आर्यगौ’ इस मन्त्रसे भूतो  
 और नागोका आवाहन करे ॥ १६ ॥ वरुण और वायुक मध्यमे नदीभ्यः’ इस मन्त्रमे गन्धर्वा और अप्सराओ-  
 का आवाहन करे ॥ १७ ॥ ब्रह्मा और सोमक मध्यवाली वाप्यामे ‘यदक्रन्द’ इस मन्त्रमे स्कन्दका आवाहन करे  
 ॥ १८ ॥ ‘नमः शंभवे’ से नन्दीश्वर, ‘भद्रं कर्णेभ्यः’ से शृङ्ग और ‘विश्वकर्मा’ इस मन्त्रसे महाकालका आवाहन  
 करे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ब्रह्मा और ईशानक मध्यवाली वल्लीषोमे ‘आदितिर्यो’ इस मन्त्रसे ऋक्ष आदिका  
 आवाहन करे ॥ २२ ॥ ब्रह्मा और इन्द्रके मध्यवाली वाप्यामे ‘श्रीश्रुते’ इस मन्त्रके दुर्गाका आवाहन करे  
 ॥ २३ ॥ ‘इदं विष्णुः’ इस मन्त्रसे विष्णुका आवाहन करे ॥ २४ ॥ ब्रह्मा और अग्निक मध्यवाली वल्लीमे  
 ‘उदीरिता’ इस मन्त्रसे स्वधाका आवाहन करे ॥ २५ ॥ ब्रह्मा और यमके मध्यवाली वाप्यामे ‘अरं सृन्धो’ इस  
 मन्त्रसे सृन्धुका आवाहन करे ॥ २६ ॥ ब्रह्मा और निर्ऋतिके मध्यवाली वल्लीषोमे ‘गणनात्वा’ इस मन्त्रसे  
 गणपतिका आवाहन करे ॥ २७ ॥ ब्रह्मा और वरुणक मध्यवाली वाप्यामे ‘शशो देवी’ इस मन्त्रसे अन्नका  
 आवाहन करे ॥ २८ ॥ ब्रह्मा और वायुके मध्यवाली वल्लीषोमे ‘मरुतो यस्य’ इस मन्त्रसे मरुतका आवाहन  
 करे ॥ २९ ॥ ब्रह्माके पाँके पासवाला कणिकाके नीचे ‘स्योन पृथिवि’ इस मन्त्रसे पृथ्वीका आवाहन करे  
 ॥ ३० ॥ वही ही ‘पञ्चनद्य’ इस मन्त्रसे पञ्चा आदि सब नदियोंका आवाहन करे ॥ ३१ ॥ वही ही ‘धाम्नो  
 घाम्नो’ इस मन्त्रसे सप्त सागरोंका आवाहन करे ॥ ३२ ॥ इसके बाद कणिकाके ऊपर नाममन्त्रसे मेरुका  
 आवाहन करे ॥ ३३ ॥ पीत परिमिश्र सोम आदिके पास क्रमशः आयुधोंका आवाहन करे । गदाके नाम-  
 मन्त्रसे गदाका, ईशानके समीप शृङ्गके नाममन्त्रसे शृङ्गका, इन्द्रके समीप वज्रका, अग्निके पास शक्तिका  
 यमके समीप दण्डका, निर्ऋतिके पास खड्गका और वरुणके पास पाशका आवाहन करे ॥ ३४-४० ॥ फिर वायुके



गौतमाय नमः गौतमाय नमः ॥४२॥ ईशान्यां भरद्वाजाय नमः भरद्वाजाय नमः ॥४३॥  
 पूर्वें विश्वामित्राय नमः विश्वामित्राय नमः ॥४४॥ आग्नेय्यां कश्यपाय नमः कश्यपाय नमः ॥४५॥  
 दक्षिणे जमदग्निने नमः जमदग्निने नमः ॥४६॥ नैऋत्यां वसिष्ठाय नमः वसिष्ठाय नमः ॥४७॥  
 पश्चिमे अत्रेये नमः अत्रेये नमः ॥४८॥ वायव्यां अरुन्धत्यै नमः अरुन्धत्याय नमः ॥४९॥  
 पुनः पूर्वदिक्कमेण पूर्वे विश्वामित्रमर्माये ऐन्द्राय नमः ऐन्द्राय नमः ॥५०॥  
 आग्नेय्यां कौमर्ये नमः कौमर्ये नमः ॥५१॥ दक्षिणे ब्राह्मणे नमः ब्राह्मणे नमः ॥५२॥  
 नैऋत्यां वाराह्यै नमः वाराह्यै नमः ॥५३॥ पश्चिमे चासुन्दार्यै नमः चासुन्दार्यै नमः ॥५४॥  
 वायव्ये वैष्णव्यै नमः वैष्णव्यै नमः ॥५५॥ उत्तरे माहेश्वर्यै नमः माहेश्वर्यै नमः ॥५६॥  
 ईशान्यां वैनायक्यै नमः वैनायक्यै नमः ॥५७॥ अष्टदलमध्ये सूर्याय नमः सूर्याय नमः ॥५८॥  
 वायुपूर्वाद्यष्टदिषु यथाम्यानेषु पूर्वे सोमाय नमः सोमाय नमः ॥५९॥ आग्नेय्यां मौमाय नमः मौमाय नमः ॥६०॥  
 दक्षिणे बुधाय नमः बुधाय नमः ॥६१॥ नैऋत्यां बृहस्पतये नमः बृहस्पतये नमः ॥६२॥  
 पश्चिमे शुक्राय नमः शुक्राय नमः ॥६३॥ वायव्यां अनेश्वराय नमः अनेश्वराय नमः ॥६४॥  
 उत्तरे राहवे नमः राहवे नमः ॥६५॥ ईशान्यां केतवे नमः केतवे नमः ॥६६॥  
 एता देवताः सर्वतोमद्रे प्रतिष्ठाप्य ततः परिधिभूतपत्नी सुवेगाय नमः सुवेगाय नमः ॥६७॥  
 सर्वेषु लिङ्गेषु रुद्राय नमः रुद्राय नमः ॥६८॥ सर्वासु वायुषु नलाय नमः नलाय नमः ॥६९॥  
 सर्वेषु भद्रेषु सुधीशाय नमः सुधीशाय नमः ॥७०॥ सर्वेषु तिर्यग्भेदेषु गवयाय नमः गवयाय नमः ॥७१॥  
 सर्वासु पीतशृङ्गलासु अंगदाय नमः अंगदाय नमः ॥७२॥ सर्वासु कृष्णशृङ्गलासु विभीषणाय नमः विभीषणाय नमः ॥७३॥  
 सर्वासु रत्नीषु जायवते नमः जायवते नमः ॥७४॥ सर्वेषु खड्गेषु मेधाय नमः मेधाय नमः ॥७५॥  
 सर्वासु परिधिषु द्विविधाय नमः द्विविधाय नमः ॥७६॥ मुद्रायां रामजानकाभ्यां नमः रामजानकाभ्यां नमः ॥७७॥  
 मुद्रायाः पश्चिमे पीतपरिधौ लक्ष्मणाय नमः लक्ष्मणाय नमः ॥७८॥  
 मुद्राया उत्तरे भरताय नमः भरताय नमः ॥७९॥ मुद्राया दक्षिणे अशुभनाय नमः अशुभनाय नमः ॥८०॥  
 मुद्रायाः पुरतः वायुपुत्राय नमः वायुपुत्राय नमः ॥८१॥ बहिर्निषिद्धपरिधिषु इवतपरिधौ

सोमं अङ्गुष्ठाका आवाहन कर ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सोमके उत्तर ओर गङ्गा के पक्ष गौतमका आवाहन करे ॥ ४२ ॥ ईशान काणम भरद्वाजका, पूरुष दिश्वामित्रका, आग्नेयम कश्यपका, दक्षिणम जमदग्निना, नैऋत्यमे वसिष्ठका, पश्चिमम अत्रेय और वायव्यकाणम अरुन्धत्यै का आवाहन करे ॥ ४३-४६ ॥ फिर पूर्व आदि दिशाओंमें कमल पुरेमें विश्वामित्रक सनाप एतोंका आवाहन करे ॥ ४७ ॥ अग्नेय कोणमें कौमारीका, दक्षिणमे साह्यीका, नैऋत्यमे वाराहोका पश्चिममे चासुन्दरका, वायव्यमे वैष्णवोका, उत्तरमें माहेश्वरीका और ईशान काणमे वैनायकोका आवाहन करे ॥ ४९-५७ ॥ अष्टदलक मध्यमे सूर्यका आवाहन करे, बाह्यके पूर्व आदि आठ दिशाओंमें यथाम्याने निम्नलिखित देवताओंका आवाहन करे पूर्वमे सोमका, अग्नेय कोणमे मौमाका, दक्षिणमे बुधका, नैऋत्यमे बृहस्पतिक, पश्चिममे शुक्रका वायव्यमे अनेश्वरका, उत्तरमे राहका और ईशान कोणमें केतुका आवाहन करे ॥ ५८-६६ ॥ सर्वतोमद्रेमें द्वा देवताओंकी स्थापना करके परिधिभूत पत्नियामें सुवेगाका आवाहन करे ॥ ६७ ॥ सब लिङ्गामें रुद्रका सब वायुओंमें नलाका, सब भद्रोंमें सुधीशका, सब पीत शृङ्गलोंमें अङ्गदका और सब कृष्ण शृङ्गलोंमें विभीषणका आवाहन करना चाहिए ॥ ६८-७३ ॥ तब पत्नियोंमें रामजानकासे आम्बवायका आवाहन करे ॥ ७४ ॥ उसी प्रकार सब कृष्णोंमें मेधाका, सब परिधिओंमें द्विविधका, मुद्रामें राम और जानकीका आवाहन करे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ मुद्राकी पश्चिमवाली पीत परिधिमें लक्ष्मणका आवाहन करे ॥ ७८ ॥ मुद्राके उत्तर ओर भरतका आवाहन करे ॥ ७९ ॥ मुद्राके दक्षिण ओर अशुभका आवाहन करे ॥ ८० ॥ मुद्राके पुरतें

भागीरथ्यै नमः भागीरथीया० ॥ ८२ ॥ रक्तपरिधौ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीया० ॥ ८३ ॥ कृष्णपरिधौ यमुनायै नमः यमुनाया० ॥ ८४ ॥ एवमेव रमारामभद्रेऽप्यावाहनं कार्यम् । रमारामभद्रे मुदायामेव विशेषः । आरौ रमाभावाद्य राममावाहयेत् । एवमावाहनं कृत्वा षोडशोपचारैः पूजयेत् । शेषान्नेन दिग्बलिः कार्यः ॥

इति आनन्दरामायणात्सौरासनोभद्रेवतास्थापनविधिः ।

### अथ रामनवमीकथा

श्रीरामदास उवाच

शिष्य यद्यन्विष्य तस्मै रामाय तद्ददात्पदम् । मत्सेषु चैवमावस्तु राघवस्यातिवन्तमः ॥ १ ॥  
पक्षयोः नितरधस्तु प्रियोऽस्ति राघवस्य हि सखासु त्रिदिषु श्रेष्ठा नवमी राघवप्रिया ॥ २ ॥  
सूर्यवंशममुद्रुतस्नम्मान् च भानुवासरः । प्रियोऽतिराघवस्यैव नक्षत्रेषु पुनर्वसुः ॥ ३ ॥  
चंपकः पुष्पजाती हि तुलसी चै तथैव च । अथवा नवकं चापि पुष्पाणां राघवप्रियम् । ४ ॥  
जातिश्वपकमदारी तुलसी मुनिमालती । दमनः केतकी सिन्धौ पुष्पाणां नवकं स्मृतम् ॥ ५ ॥  
तथा नवविधं चान्नं राघवस्यातिवन्तमम् । मोदको लड्डुको मण्डो पूर्णगर्भाय फेणिका ॥ ६ ॥  
बटकः पर्यटः स्वाद्यं घृतपक्वं नवं त्रिविधं । एतानि नव भक्ष्याणि राघवस्य प्रियाणि हि ॥ ७ ॥  
अथवाऽन्यथाप्यस्यामि दिव्यावनवकं शुभम् । मोदको लड्डुको मण्डो बटकः फेणिका तथा ॥ ८ ॥  
रत्नमोदनः शाकं पायसं नवकं शुभम् । अन्यश्च कृणुस्व भो शिष्य नवान्न राघवप्रियम् । ९ ॥  
एकाशीतिकुडवं च मोक्षीरं तण्डुलास्तथा । सगदद्विकुडवाथ मुद्राय भित्तुषास्तथा ॥ १० ॥  
कुडवस्त्वेक एवाथ अकेरा कुडवा नव । त्रिकुडव मनु प्रोक्तं घृतं च कुडवद्वयम् ॥ ११ ॥  
मसीचं कुडवाष्टांशमितं नारीकलं तथा । कुडवस्त्वेक एवाथ जानीयन्निश्चयैव च ॥ १२ ॥

हुमाजाका आवाहन कर ॥ ८१ ॥ नहरको सोम परिधियामसे अवेत परिधिम भागीरथी नवाजाका आवाहन करे ॥ ८२ ॥ रक्त परिधिम सरस्वतीजाका आवाहन करे ॥ ८३ ॥ काला परिधिम यमुनाका आवाहन कर ॥ ८४ ॥ रमा और रामक भद्रम भी इसी तरह आवाहन करना चाहिए । रमारामक भद्रकी मुद्रामे ही विशेषता है । चहूँ रमाका आवाहन करके रामका आवाहन करना चाहिए । इस तरह आवाहन करके षोडशोपचारके पूजन कर और बाकी बचे अन्नसे दिग्बलि दे ॥

इति रामतोभद्रेवतास्थापनविधिः ।

श्रीरामदासन कथा— हे शिष्य । रामचन्द्रजीका जो जो वस्तुये प्रिय है, अब उन्हें बसलाता हूँ । सब स्त्रीतोमें चैत्रका महोत्स रामको प्रिय है । १ । गुरुज कृष्ण इन दोनों वस्तोमें रामकी शुक्लपत्ता प्रिय है । सब तिथियोमें नवमी तिथि प्रिय है ॥ २ ॥ सूर्यवंशमें रामका जन्म द्वयः था । इसलिये उन्हें रविवार विशेष प्रिय है । सब नक्षत्रोंमें उन्हें पुनर्वसु नक्षत्र प्रिय है । ३ । फूलोंमें चम्पक तथा तुलसी प्रिय है । नौ पुष्प रामको विशेष प्रिय हैं । ४ ॥ जैसे जूड़, चम्पा, मन्दार, तुलसी, चम्पली, मालती, दमनक, केतकी और सिन्धौ इन्हीं फूलोंको एकत्र करके रामचन्द्रको अर्पित करना चाहिये । ५ । उसी तरह नौ प्रकारका अन्न भी भगवान्‌की प्रिय है । वे नवों ये हैं—मोदक, लड्डुक, मण्ड, पूरनपूड़ी, बटक, बतारफेरी, पर्यट, स्वादहा भीमें बना हुआ पक्वान्न, ये नौ भी भग्यपदार्थ रामचन्द्रजीको प्रिय हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ जब दूसरे नौ प्रकारके खाद्य पदार्थ बतलाते हैं—मोदक, लड्डुक, मण्ड, बटक, फेणिका, शात, शाक, पर्यट और पायस ये ही नौ वस्त हैं । हे शिष्य । अब रामको दूसरे प्रिय अन्न बतलाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ एषासी कुडव लीका दूध, उतना ही चावल, सदा दो कुडव छिस्का उतारी हुई मूँग ॥ १० ॥ एक कुडव चानी तीन कुडव महु, दो कुरच घी, एक कुडवका अष्टमांश काली मिर्च, एक कुडव नारियलकी गरी, एक कुडवका अष्टमांश जायत्रो, इनको मिलाकर बनाया हुआ पाक रामचन्द्रजीको प्रिय है । इसलिये स्त्रीगोको चाहिये कि ये पदार्थ बनाकर भगवान्‌की अर्पण करें । ११ ॥ १२ ॥

प्राक्षा मरिचमानेन नवाक्षं नवभिस्त्रिदश । तोषद रामचन्द्रस्य प्रकन्या कायै मदा नरैः ॥१३॥  
 लघु नवाक्षं वक्ष्यामि वैवेद्यार्थं निरंतरम् । कुडवा नव गोधीरं नहुलाः कुडवस्य च ॥१४॥  
 चतुर्भासिपिना प्राक्षाः कुडवाष्टांशमभिनाः । प्राक्षा त्रिपुरमुद्राश्च कुडवार्थं भिता स्मृताः ॥१५॥  
 पुत्रं सुद्वयम प्राक्ष्य तावन्मानं मधु स्मृतम् । तावन्मानं श्रीफल च मरिचं टंकसंमिनम् ॥१६॥  
 टंकार्थं जातिपत्रश्च नवाक्षं लघु कीर्तितम् । कुडरोऽर्कटकमितटको मायचतुष्टयम् ॥१७॥  
 लघु नवाक्षमेतच्च राधराय निवेदयेत् । निरतरं हि पूजायां राधवस्यातिहर्षदम् ॥१८॥  
 श्वजम्बुकपिन्धाश्च बीजपूरं च दादियम् । खड्गरीं नारिकेल च कदलीफलमेव च ॥१९॥  
 पनसं चेति रामाय फलानि नव सर्वदा । एतान्यतिप्रियाण्यत्र पूजायां तश्चिन्वेदयेत् ॥२०॥  
 श्रीशफल च जनीरं मार्गं स्निग्धमजकम् । जार्जीफलं मातुलुंगं तथा द्राक्षाफलं शुभम् ॥२१॥  
 उर्जुकं तथा धात्रीफलं चैतानि च नव । फलानि रामपूजायामुक्तानि मुनिभिः सदा ॥२२॥  
 नरोपचागस्तांबूलो राधराय निवेदयेत् । नामवल्लीः ककुत्थं च खडिगः मध एव च ॥२३॥  
 जार्जीपदो लवणं च जार्जीफलवरागके । एता चेति नवविधमाल्लिकः कीर्त्यते वृद्धैः ॥२४॥  
 नवरात्रेपवाराश्च राधराय निवेदयेत् । छत्रं सिद्धाम्बु यान चामरं व्यजनं तथा ॥२५॥  
 पानतांबूलश्च च पात्रं निष्ठोवनस्य च । बभ्रुकोशश्चेति राज्ञामुपचारा नव स्मृताः ॥२६॥  
 नवाय मोम्यवस्तूनि राधराय निवेदयेत् । चंदनं पुष्पमालां च द्रव्यं परिमलं तथा ॥२७॥  
 अवतंसः फलं चापि सुगधर्वलमुपमम् । ताम्बूलं कस्तुरी चापि तथा रक्ताजताः शुभाः ॥२८॥  
 एतानि मोम्यवस्तूनि राधराय निवेदयेत् । नवोपचाराः सस्याऽपि राधराय समर्पयेत् ॥२९॥  
 वर्षाङ्गुलिका रम्या विहानं चोषवर्द्धणम् । आदर्शो दीपिका तोयपात्रं प्रावरणं शुभम् ॥३०॥  
 व्यजनञ्चेति श्रद्धावाधोपचारा नव स्मृताः । नव वस्त्राणि रामाय देवान्पतिमदांति च ॥३१॥  
 पीतांबरधुनरीयं चोष्णीपं ककुत्थं तथा । उष्णीपोर्व्यस्थितं दिव्यं तथा च कटिवंधनम् ॥३२॥

॥ १३ ॥ अब मैं अर्पण करने योग्य लघु नवाक्ष बतलाता हूँ— नौ कुडव गायका दूध, एक कुडवका चतुषाण चाक्स, कुडवका अष्टमाश जिना छिम्क्रेको धुलो मूंग, जावा कुरव चीनी, मूंगके बराबर ही धो, उठना ही मधु, उठना ही श्रीफल, एक टंक कालो मिर्च, जावा टंक जार्तिपत्र, ये लघु नवाक्ष कहलाते हैं । बारह टंकका एक कुडव होता है और बार मासेके बराबर एक टंक होता है । यह लघु नवाक्ष रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए । यदि निरन्तर यह नवाक्ष राधचन्द्रजीको अर्पण किया जाय तो भगवान् अतिशय प्रसन्न होते हैं ॥ १४-१५ ॥ आम्र, जामुन, केला, बीजपूर, अनार, कनूर नारियल, केला और कटहल ये नौ फल रामचन्द्रजीको अतिशय प्रिय हैं । पूजाम इन्हे भी अर्पण करना चाहिये । कुम्हड़ा, नीबू, नारंगी, कतरु, आवफल, बिजौर, अंगूर ककड़ी तथा मोम्य ये नौ फल रामजी पूजाम आना आवश्यक हैं ॥ १६-२२ ॥ उसी तरह नौ उपचारोंके साथ ताम्बूल भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिये । ताम्बूलके नौ उपचार ये हैं—पान, सुपारी, खैर, चूना, जावित्री, मायफल, कपूर, कसर और इलायची । नौ राजोपचार भी रामचन्द्रजीको अर्पण करने चाहिए । जैसे—छत्र, सिद्धाम्बु, श्व, चमर, पंका, गिरास, पानदान, मोनाक्षान और कपड़ेकी पिटारी, ये ही रामजीके नौ उपचार बतलाये गये हैं । उसी प्रकार नौ मोम्य वस्तु भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए । ये वस्तुये इस प्रकार जाननी चाहिये—कन्दन, फूलोकी मालाएँ, रत्न आदि सुगन्धित द्रव्य, तरह-तरहके फल, उनम सुगन्धित तेल ताम्बूल, कस्तूरी और लाल बमझ, इन मोम्य वस्तुओंको रामचन्द्रजीको अर्पण करे । इसी तरह नौ उपचारपुल बध्या भी देनी चाहिये ॥ २३-२९ ॥ पलङ्ग, वहा, बहिषा चाँदनी, तकिया, लीबा, शीपक, जलपात्र, चदरा और व्यजन, ये शय्याके नौ उपचार हैं । इसी तरह अन्यन्त सुन्दर नौ कपड़े भी रामचन्द्रजीको अर्पण करे । ३० ॥ ३१ ॥ जैसे—पीताम्बर, उपरना, फाटी, कपुती, पदवाके ऊपर बँधनेवाला

मुख्यशोधनार्थं च त्रिपुलं हाकथोपयुक्तम् । तथा प्रावरण दिव्यं नव रत्नाणि भो दिज ॥३३॥  
 नव दिव्याण्यम्बुकरा देवाः श्रीगणेशाय हि । कुण्डले कंकणे माला वैद्युते नूपुरे तथा ॥३४॥  
 पदार्थं कदिसुत्रं च मृद्वला मुद्रेकेनि च । एते नव त्वलंकारा देवा रत्नाय भक्तितः ॥३५॥  
 नव गिण्यं यथा रामर्षाभेदादि महान्ति च । मरकतान्यजम्ब्याणि तथाम्रे रत्नितानि हि ॥३६॥  
 मुख्यान्त्वत्र पदार्था हि नवकैषु मया स्मृताः । एभ्यस्त्वन्य पदार्थाश्च ये ये सति महत्प्रशस्तः ॥३७॥  
 ते सर्वे राघवाशानिभक्त्या वेदास्तु पूजने । प्रत्यहं रामचन्द्रस्य त्रिकाल पूजनं नरैः ॥३८॥  
 कार्यं विधानुसारेण न कदा शक्यमाचरेत् । प्रतिपदिनमारभ्य पारम्भ्यं नवमीतिथिः ॥३९॥  
 तत्रद्विशेषतः कार्यं प्रत्यहं गणपूजनम् । विविधैर्मण्डपार्थश्च मण्डप्यं रघुनन्दनम् ॥४०॥  
 पारायणं नदग्रे हि कर्तव्यं तत्रभिदिनैः । अन्नदरमवगतिं पठतीयं तु सर्वदा ॥४१॥  
 नवम्यां राघवं गमतीर्थे वाहनमस्थितम् । जीम्बा मण्डलनृपायैर्ध्वजाद्यैर्द्वन्द्वभिरार्जुनैः ॥४२॥  
 अभिषेकस्तत्र कार्यो रुद्रसूक्तैः सुगुणपदैः । तथा पुरुषसूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ॥४३॥  
 विष्णुसूक्तादिभिः सूक्तैरभिषिष्य रघुनन्दनम् । पूजनं विष्णुरेणाद्य कृत्वा भेदं समानयेत् ॥४४॥  
 ततो दरे कान्तानि स्वयं कार्याणि वा परैः । गायकैः कर्णापाणि श्रेष्ठशभिर्नर्चनान्यपि ॥४५॥  
 ततः स्वयमप्योपशाय भक्त्या विप्रप्रपूजनम् । कार्यं वै गायकानां च पूजनं विस्तरं हि ॥४६॥  
 रात्री जाग्राण कार्यं कथाभिर्गीतनृत्यकैः । दक्षम्यां प्राक्कुरुष्यान्नात्वा मण्डप्यं राघवम् ॥४७॥  
 मध्यह्ने गणचन्द्रस्य पूजनं नासजेषु हि । कार्यं तस्य विधानं ते वदाम्यद्य मृणुष्व तत् ॥४८॥  
 एकं धूमं तु विप्रस्य विप्राष्ट च निमज्जयेत् । भूमिं गृहे विलिख्याथ गोमयेनानिबिभृताम् ॥४९॥  
 रत्नवल्क्याश्च पद्मानि नीलपांशादिवर्णकैः । तत्र समंततः कृत्वा मध्ये सिंहासनं शुभम् ॥५०॥  
 स्थाप्य तत्र महावस्त्रैरामनं परिकल्पयेत् । अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं शुभम् ॥५१॥

दिव्य वस्त्रं कपडप्रभं, रत्नाय, माला तथा दुग्धं ये नौ दिव्य वस्त्र श्रीगणचन्द्रजीकी देना चाहिए ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस तरह नौ प्रकारके दिव्य अलङ्कार भी समर्पण करे : कुण्डल, कंकण, माला, वैद्युत नूपुर, पदक, कदिसुत्र ( करचन ), मिकुश और मंशरी, ये नौ अलङ्कार रामचन्द्रजीकी अभिषेकपूर्वक देने चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इस तरह मेरे रामकी प्रमल कण्ठलावे अभिरुचि नरक ( नौ वस्तुओंका संघट्टिततन्त्रया । इसमें मेने पारपुला चोटीका ही दिग्दर्शन कर या है । इनके परिष्कित भा हजारों पदार्थ हैं पूजान इन्हे भा भक्तिपत्रक अर्पण करना चाहिए । अथवा उाचन है कि प्रतिदिन रामचन्द्रजीकी त्रिकाल पूजन कर ॥ ३९-४० ॥ अथवा जैसी मामर्ग हो, उसके अनुसार त्वलं चो कर । रामचन्द्रजीकी प्रार्थना कभी कर्णव्य तो काना हा नहीं चाहिए । प्रतिपदाले लेकर नदमा पर्यन्त प्रतिदिन विशेष पूजन करनेका विधान है । यह इस प्रकार है चित्र विविध मण्डप बनकर उसमें रामचन्द्रजीकी पूजा करके उनके आगे नौ दिनोंमें इस आनन्दसमायका पारायण करे ॥ ३९-४१ ॥ नवमीकी भण्णायकी सकारोपर बिठाकर मंगलमय मुदही नगाड़े आदि बाजे तथा श्रवण आदिके साथ परम पवित्र रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, श्रीसूक्त तथा विष्णुसूक्त आदिसे रामतीर्थमें रामचन्द्रजीक अभिषेक करे । इसके अनन्तर विष्णुसूक्तपूर्वक पूजन करके उम्ह धरपर ले आय ॥ ४२-४४ ॥ रातको स्वयं हरिकर्मन करे या और स्नानमे करावे । तदनन्तर भक्तिपूर्वक विप्रों तथा गायकीका पूजन करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कथा गीत तथा नृत्य आदि करना हुआ रात्रिभर जागरण करे । दक्षम्याकी सवेरे उठकर स्नान कर और रामचन्द्रजीका पूजन करके मध्याह्नके समय बाह्यणोके बीचमें उनका पूजन करे । हे गिण्य ! मैं उसका विधान वनजाना है सुने ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ एक बाह्यणकम्पनी तथा आठ अन्य बाह्यणोको निमज्जित करे । बरकी चमिको गोशरसे पूव कंठावयम लिखावे । फिर नील रीत आदि वर्णोंसे चारों ओर चौक पुरवाकर बीचमें शुभ सिंहासन रखे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर बड़े-बड़े दस्तोसे सिंहासनको



मानाफलानि देवानि दीयस्तांबूल उत्तमः दक्षिणां च ततो दद्याद् देवो धुक्कुर उज्ज्वलः ॥७१॥  
नीराजनं ततः कृत्वा मंत्रपुष्पाणि दीपताम् । प्रदक्षिणानमस्काराश्च कृत्वा ततः परम् ॥७२॥  
सृष्ट्यङ्गीतार्दिकं कृत्वा प्रार्थयेद्गुणायकम् । विनिमोन्य कर्त्तुं पादौ राघवो संस्थितैर्वरैः ॥७३॥

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः  
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वद्वयोरन्यत्रकोणादिषु ।  
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारामुनो जम्बवान्  
मण्यो नीलसरोजकोमलकृचिं राघवं भजे श्यामलम् ॥७४॥  
रामो हत्वा दद्यात्स्यं द्विजवचनमुक्त्वेन यात्राऽक्षयज्ञान्  
कृत्वा धुक्कुरातिभोगानवनिन्दितविशर्त्तुं गृहीत्वाऽथ मीताम् ।  
लब्ध्वा नानास्तुपास्तास्त्ववनिन्दितगतान्पार्थिवार्दींश्च जिम्वा  
कृत्वा नानोपदेशान् गन्तुनिकटे स्वीयलोकं जगाम ॥७५॥

नवकाण्डस्यः श्लोकः पठित्वाऽयं इदं पुरः । ततः क्षमाप्य श्रीरामं पूजां तस्मै समर्पयेत् ॥७६॥  
मया साधयते रामनवम्यां यन्मपूजनम् । पाशायणादिकं सर्वं नवरात्रेऽपि यत्कृतम् ॥७७॥  
सन्मर्दं नैऽर्पितं त्वद्य ममन्नो भव मे प्रभोः नवायनपूजेयं या कृता नवमीदिने ॥७८॥  
नवविघ्नेषु साऽप्ययं तेऽर्पिता राघव वै मया । त्वं गृहाण यथाशक्त्या कर्त्ता तां त्वं प्रसीद मे ॥७९॥  
एवं समर्प्य रामाय सकलं पूजनादिकम् । ततो भोजनरोज्या तान् सन्निवेदयाम्य भोजयेत् ॥८०॥  
पुनर्दत्त्वा तु शंखं दक्षिणां तु विमर्जयेत् । ततः स्वर्गं विप्रतीर्थं गृहीत्वा वै ततः परम् ॥८१॥  
यसिपादोदकं प्राश्य देवतीर्थं ततः परम् । गृहीत्वा भोजनं कार्यं सुहृन्मित्रजनैः सह ॥८२॥  
समर्पितं यद्यतये ततश्च ब्राह्मणाय हि । देयं स्वगुणैर्व सर्वं ब्रह्मभूषादिकं शुभम् ॥८३॥  
एवं सर्वं राघवस्य पते पक्षे प्रकारयेत् । यथवा सुकल्पसे हि कार्यं व्रतमिदं शुभम् ॥८४॥

इसके बाद नाना प्रकारके फल, तांबूल, दक्षिणा, सुन्दर दर्शन, नीराजन, मन्त्रपुष्प, प्रदक्षिणा, नमस्कार आदि कथाः समर्पण करे । तदनन्तर मूल्य-गीत आदि करके सब लोग सामने खड़े होकर रामचन्द्रजीस प्रार्थना करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वामभागमें सीता, साकने हनुमान्जी, पीछे लक्ष्मणजी, दोनों बगल भरत और शत्रुघ्न, बायव्य भाग कोनोंमें सुग्रीव, विभीषण, युवराज बह्मद, जम्बवान् आदि सङ्ग हैं और उनके बीचमें बैठे हुए नील कमलके समान कोमल दीप्तिस्वरूपन यवाम स्वरूपधारी रामका ये भजन करता हूँ ॥ ७४ ॥ रामन रावणको मारकर ब्राह्मणके वाक्यरूपी गौरवसे प्रेरित हो यात्रा तथा अस्त्रयज्ञ आदि किय और विविध प्रकारके भोग भोगे । फिर पाशालम्बाक जाती हुई सीताको उन्होंने पृथ्वीसे वापस लिया । इसके बाद पुष्पको-मण्डलके बड़े-बड़े राजाओंको परास्त करके हस्तिनापुरके आस-पासवाले वृक्षसे दशका जाता । उन राजाओं की कुमारियोंके साथ अपने पुत्रोंके व्याहृ किये और अन्तमें अपने परम धामको चले गये ॥ ७५ ॥ इस ही काण्डात्मक श्लोकको रामके सामने पढ़कर क्षमा माँगे और की हुई पूजा भगवान्को अर्पण कर ॥ ७६ ॥ साथ ही यह कहता था कि हे प्रभो ! मैंने इस समयतक रामनवमी तथा नवरात्र ओ पूजन पाशायण आदि किया है, वह सब आपको अर्पण है । हे प्रभो ! आप करें ऊपर प्रसन्न हो । रामनवमीके जो नौ विघ्नों में से आपको नवायन पूजा की है, वह भी आपको अर्पित है । यथाशक्ति की हुई इस पूजा को स्वीकार करके आप मुझपर प्रसन्न हो ॥ ७७-७९ ॥ इस तरह रामका सब पूजन आदि समर्पण करके विचिक्त् उन विघ्नोंको आसनपर बिठलाकर आज्ञा करायें ॥ ८० ॥ फिर तांबूल और दक्षिणा देकर उन्हें विदा करे । तदनन्तर स्वर्ग ब्राह्मणोंके चरणोदक, यक्षियोंके पादोदक एवं देवताओंके चरणोंके पुष्प-चरणजलसे आचमन करके नातेदारों, मित्रों तथा दान्यवोंके साथ खद्य भोजन करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर

मासे मासे सर्वदेव रामोपासकमानवैः । एवं मासव्रतं श्रेष्ठं राघवस्यादितोपदम् ॥८५॥  
 संति व्रतान्यनेकानि जगन्मां पुण्यदानि हि । तथाप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥८६॥  
 व्रतानामुत्तमं चैतद्धुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । अवश्यमेव कर्तव्यं रामोपासकमानवैः ॥८७॥  
 एवं विष्णु मया श्रेष्ठं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । सर्विस्तारं तत्राप्ये हि राघवस्यादितोपदम् ॥८८॥

विष्णुरास उवाच

श्रीरामनवमीमासव्रतस्योद्यापनं वद । कदा कार्यं कथं कार्यं गुरो कृत्वा कृपां मयि ॥८९॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया व्रतं मन्वधानमनाः शृणु । नन्मन्वन्मन्मासव्रतमोत्रनमुत्तमम् ॥९०॥  
 कृत्वा चोत्थापनं कार्यं चैत्रे श्रीरामजन्मनि । नवम्यां समुपोष्याथ कर्तव्यमधिरामनम् ॥९१॥  
 गृहे इन्द्रावने वाप गोष्ठे देवगृहादिषु । समार्जनं गोमयेन कार्यं वा चन्दनादिभिः ॥९२॥  
 ततः पाषाणचूर्णैश्च नानाप्रकारदिकानि हि । भुवि संलेखनीयानि नीलसीतादिवर्णकैः ॥९३॥  
 रत्ननीयानि रम्याणि ततः पत्रादिमन्यके । पुत्राक्तुगमसद्गणां मध्ये त्वेकं वरासनम् ॥९४॥  
 लिखित्वा चित्रवर्णैश्च श्रेष्ठैरेव सुश्रयेषु । उपोपरि महान् रम्यश्चित्रवर्णैश्च षडधः ॥९५॥  
 देवो द्वागणि चत्वारि कार्याणि तोरणानि च । कदलीसमयुक्तानि चेलुदण्डयुतानि च ॥९६॥  
 नानापटाकिंकिणीभिर्वर्णितान्युज्ज्वलानि च । रम्यादर्शमण्डितानि विचित्राणि शुभानि च ॥९७॥  
 चित्रपञ्चैर्वैतानैश्च मुक्ताहार्युतान्यपि । अथ तद्राममदूरधे कलशे वारिपूरिते ॥९८॥  
 ताम्रशर्बं रामचन्द्रे नवावननचिह्नितम् । सावया वृजयेद्रात्री महोत्साहपुरःसरम् ॥९९॥  
 नवपलमिश्रं मूत्रं हवीं कृत्वा प्रपूजयेत् । सौता ईर्ष्या प्रकर्तव्या शुभाऽष्टपलममिता ॥१००॥  
 राजवास्ते लक्ष्मणाद्याः पृथक् पञ्चशतैः स्मृताः । अशर्का च तदर्धेन तदर्धार्धेन वै पुनः ॥१०१॥

यतिमो तथा काह्णोको जा वृष्ठ दिया हा, नहीं अपने गुरुका जो दे ॥ ८३ ॥ इस तरह हर पक्षमें रामचन्द्र-  
 जीका व्रत करे । अपना दान, पक्षम न कर सके हा कबल भुक्त्यपक्षय यह रामव्रत करे ॥ ८४ ॥ रामकी  
 उपासना करनेवाले के लिए रामको प्रसन्न करनेवाला यह मासव्रत मेने बताया ॥ ८५ ॥ मर्यापि संसारमें  
 कतसे पुण्यदायक व्रत है किन्तु भी इस व्रत बराबर न पाई व्रत हुआ है और न होगा ॥ ८६ ॥ यह सब  
 व्रतोंमें उत्तम और भुक्ति-मुक्ति देनेवाला व्रत है । रामके उपासकोंका यह व्रत अवश्य करना चाहिए ॥ ८७ ॥  
 हे शिष्य ! इस प्रकार रामका अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला सब व्रतोंमें उत्तम व्रत मेने विस्तारपूर्वक तुम्हें कह  
 सुनाया । ८८ ॥ विष्णुदासन कहा—अब अब मुझपर कृपा करके यह बताया कि श्रीरामनवमीके व्रतका  
 उत्थापन कब और कैसे करना चाहिए । ८९ ॥ श्रीरामदास ने कहा—हे केश ! तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी  
 है इसे माधवान मन हाकर सुना । दो वर्ष पूर्वसे राघवका मासनवमी व्रत करना चाहिए । इसके बाद  
 चैत्र मासमें श्रीरामनवमीके दिन इसका उत्थापन करना चाहिए ! यह कार्य नवमीको उपवास करके किया  
 जाना चाहिए । ९० ॥ ९१ ॥ घरमें, इन्द्रावन ( तुलसीको बगीचा ) में, गंगागाम अथवा किसी मन्दिरमें  
 चन्दन वा शङ्खसे दीक्षा दिलाकर पाषाणके तूप आदिसं बनेक प्रकारके ताल-पीतल कमल आदि बनावे  
 ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ इसके बाद पत्र आदिकर पूर्वोक्त रामचन्द्राभसे किसी एक पक्षको बनावे । उसके बीचमें एक  
 सुन्दर आसन रखे ॥ ९४ ॥ आसन की अनेक प्रकारके रत्न-विराजे रत्नोंमें रखे और उसके ऊपर अतिशय  
 सुन्दर और चित्रवर्णका मण्डप बनावे ॥ ९५ ॥ उसमें चार द्वार बनाकर केलेके लम्बे तथा इक्षुदण्डके साव-  
 छात्र तोरण लगावे ॥ ९६ ॥ उसमें अनेक प्रकारके चट्टा किंकिणी आदि बज बजाकर उसका शृंगार करे ।  
 उसे चित्र-विचित्र ध्वजा, वितान, मानियाके द्वार आदिसं समुज्जत करे । इसके अनन्तर रामतोषत्रके दोषमें  
 अल्पपूर्ण कलशपर ताम्रका पात्र रखकर नवावननके चिह्नमें चिह्नित सोदा समेत रामका पूजन करे ॥ ९७-९८ ॥  
 भी पलकी सुवर्णमयी रत्नमूर्ति बनवाना चाहिए । आठ पत्रका सप्तामूर्ति बनेगी ॥ ९९ ॥ लक्ष्मण आदि-

तस्याप्यर्थं तदर्थार्थं विचिन्तयन् न कारयेत् । षोडशैरुपचारैश्च पूजोक्ता निशि जागरः ॥१०२॥  
 दशम्यां प्रातरुन्धाय स्नान्वा सपूज्य राघवम् । राघवत्रेण हवन कार्यं नवमद्वयकम् ॥१०३॥  
 तिलाद्यैः पायसाद्यैश्च नवाक्षेनाथ तत्स्मृतम् । तद्दद्यादेन क्षीरेण तर्पणं हि प्रकाशयेत् ॥१०४॥  
 तस्यापि च दशांशेन मार्जितं द्वित्रिभोजनम् । कर्ममुद्रां हर्म्यमुद्रां चयने नक्षत्रप्रकम् ॥१०५॥  
 चित्रामनघुसरोद्य सुकुरं स्रग्गरी तथा । कांस्यपात्रं भोजनस्य नवाक्षेन प्रपूरतम् ॥१०६॥  
 धूपपात्रं कांस्यमयं नवाक्षोपरि संस्थितम् । पादुके पृष्ठकं दिव्य यत्किञ्चिद्राघवस्य च ॥१०७॥  
 तांबूलं दक्षिणां चापि प्रत्येकं भूमिगण हि । अर्पयेन्मङ्गलं चैवमेव सर्वान् समर्पयेत् ॥१०८॥  
 ततो गुरुं समभ्यर्च्य प्रणम्य च पुनः पुनः । तामर्चामर्पयेन्मर्चां गुरोर्दक्षिणान्विताम् ॥१०९॥  
 ततो गुरुं प्राचयेत्त प्रणम्य च पुनः पुनः । मासे मासे नवम्यां तु सोद्यपनत्रयं मया ॥११०॥  
 यत्कृतं नव वर्षाणि तेन तुष्यतु राघवः । अग्रेऽपि यावज्जीवामि तावत्कालं करोम्यहम् ॥१११॥  
 वतानामुत्तमं चेदं तुष्टयर्थं राघवस्य च । गुरो त्वत्कृपया रामो मां प्रसीदतु मोदया ॥११२॥  
 एव सप्रार्थ्य स्वीयं तु गुरुं नन्वा विमर्जयेत् । ततः स्वयं हि भुञ्जते सुहृन्मित्रमुतादिभिः ॥११३॥  
 एवमुद्यापनं कृत्वा कार्यमग्रे कृतं पुनः । मासे मासे राघवस्य न त्प्राज्यं सर्वथा नरैः ॥११४॥  
 एकादशीव्रतं नित्यं यथा तन्निश्चये नरैः । तथा मासव्रतं चेदं नित्यमेव स्मृतं कुर्यात् ॥११५॥  
 अशक्तेन यथाशक्त्या कार्यमुद्यापनं श्रवणम् । उपोष्या नवमी शुक्ला सर्वदेव नरैर्भुवि ॥११६॥  
 नवम्यां शक्त्यपेक्षे यो भुञ्जते मृदुधीनरः । गौरवे कम्पयन्तं तस्य यावत् स्मृतो कुर्यात् ॥११७॥  
 एव शिष्यं स्वया यच्च पृष्टं तच्चे निवेदितम् । का नेऽन्या भोऽनुमिच्छामि नो वदस्व वदामि ते ॥११८॥

की मूर्तियों पांच-पांच पल चांदीकी बनवा । यदि ऐसा कर सका, सामर्थ्य न हो तो उसमें आधे वजनकी मूर्ति बनवाये और यदि वह भी न कर सके तो आधेरा आधे वजनकी मूर्तियां बनवाना चाहिए वह भी न हो सके तो उसके भी आधे वजनकी बनवाये, किन्तु कदांसा न कर । षोडश उन्नयनेमें पूजन तथा रत्निको जागरण अवश्य करना चाहिए । १०१ । १०२ ॥ दशमाको सवरे उठकर स्नान और राक्षका पूजन करके नौ हज्जार हवन करे ॥ १०३ ॥ हवन निरस, श्रवण अवस्था नवाग्रस करना उचित है । तदनन्तर हवनके शकाश दूधसे तर्पण करे । उसका भी दशांश भोजन करे और भोजनका भी दशांश ब्रह्मणोंका भोजन करावे । इसके अनन्तर हर्म्यमुद्रा तथा कर्ममुद्राके साथ वस्त्र, यज्ञादृत विवसन, उत्तरीय वस्त्र, मुकुट, हारी, भोजनके लिए नवाग्रसे पूर्ण कांस्यपात्र, धूपपात्र, इन सबके साथ कांस्यमय पात्रोंमें नवाग्रपर भवकर चरणपादुका, दिव्य आनन्दरायणकी पुस्तक, तांबूल दक्षिणा ये सब वस्तुएं प्रत्येक ब्राह्मणको दे ॥ १०४-१०७ ॥ तदनन्तर गुरुका पूजन करके उसे एक गी दे और दक्षिणा समस्त ब्रह्म पूजनमाग्यी गुरुको अर्पण करे ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इसके बाद गुरुको शारङ्गार प्रणाम करके कह—हे गुरो । महानं महान उद्यापनके साथ मैं जो नौ दणपयं तु रामयत किया है । उसमें भोगमन्त्रज्ञा प्रसन्न हो । अग्रा भी जब तक जंघिन रहेंगे, जगावर वह उत्तम वन भगवान्की प्रसन्न करनेके लिए करता रहेगा । हे गुरो ! आपकी कृपासे मुझपर साक्षा और राम प्रसन्न हों ॥ ११०-११२ ॥ इस प्रकार प्रायना करनेके बाद अपने गुरुजीका प्रणाम करके उनका विदा कर । इसके बाद सप्तर्षिकों, मित्रों और पुत्रादिकोंके साथ श्रवण भी भोजन कर ॥ ११३ ॥ इस तरह उद्यापन करके महर्षि-महीने यह व्रत करता रहे, त्यागे नहीं ॥ ११४ ॥ जिस तरह लक्ष्मी एकादशीका व्रत करते हैं । उसी तरह यह व्रतमात्र भी सदा करने रहना चाहिए ॥ ११५ ॥ यदि शिष्य सामर्थ्य न हो तो अपनी शक्तिके अनुसार ही इसका उद्यापन करे । संसारके लोकाको चाहिए कि सबदा शुभलक्षणकी नवमीको अवश्य उपवास किया करे ॥ ११६ ॥ जो मूर्ख मनुष्य भुवलयज्ञकी तकनीकी अत्र खता है । उसे एक कल्पतक रौरव नरकमें तियास करना पड़ता है । उह बात किनसे ही विद्वानाकी बड़ी हुई है । ११७ । ११८ मन्त्रमन कहा—हे शिष्य । तुमने भी पूजा, वह तेन तुमसे कहा । अब और क्या मनना चाहते हो, वह जप्ताओं तो मैं कहूँ ॥ ११८ ॥



विष्णुनाम उवाच

गुरो त्वया राघवस्य श्रीगणेशमन्त्रमम् । मये मत्से प्रकर्तव्यमिति प्रोक्तं समाग्रतः ॥११९॥  
तत्केनाचरितं पूर्वं मिद्विर्लब्धाऽथ केन हि । तन्मये विस्तरणं ह द कृत्वा कथं मये ॥१२०॥  
अन्यत्वे प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं यां वक्तुमर्हसि । अस्तु केन नरेणेव ज्ञतं कार्यं कथं मया ॥१२१॥

श्रीगणेश उवाच

मम्यद् पूर्वं त्वया शिष्य सारधानमताः मृणु । आर्त्ताभ्यां द्विजः कश्चिकेहले गच्छत-पयः ॥१२२॥  
नाभूतस्य विवाहोऽत्र निधनस्य जनस्य च । नार्त्ताभ्यां पेटमपि न माता न पिताऽपि च ॥१२३॥  
तत्सर्वको नियममार्गोद्विद्रव्य च तं मृणु । निर्वयं प्रातः समुन्वाय कृतमालानदां जले ॥१२४॥  
स्नात्वा नदीमिकतायां मिकतावदका नव । कृत्वा तत्र जनकजामहेत रघुन्दनम् ॥१२५॥  
पञ्चनिधितश्रीगणेशमन्त्रमकरगमने । मम्यमायां वेदिकायां सख्यस्य धानुनिर्मितम् ॥१२६॥  
अष्टदिक्षु वेदिकाम् गरुडवासने पृथक् । मननतो राघवस्य लक्षणादीन्वयवैश्वर्यम् ॥१२७॥  
ततः स राघवं प्राह राम राजारलोचनम् । कर्तुमशक्यं कथं गन्तुमर्हसि म-वरम् ॥१२८॥  
रघुवन्तार्त्तं स्वयं पृष्ठे निवेद्य रघुन्दनम् । किमदूर्ध्वं रक्षे हृत्पत्रदे गन्वा द्विजेतमः ॥१२९॥  
रावं तुणभुवि स्थाप्य तदग्रं पात्रमुत्तमम् । नञ्जलम् तंकां चापि सखाप्य च जवन हि ॥१३०॥  
किञ्चिदूर्ध्वं स्वयं गन्वा स्थितवान् न किमन्वणम् । रामातिष्ठ पुनर्गता पदमङ्गलमदिकम् ॥१३१॥  
मयोन्मूलिकशोचं च तस्य स्वकरोष हि । द्वाभ्यामप्यवतोयेन रामायाचमने ततः ॥१३२॥  
दनकाष्टन नदतान्मशोभ्य भोज्यपूर्वकम् । गडगर्थं जल दत्तः कवोऽपि शीतल पुनः ॥१३३॥  
समर्थाचमनार्त्तं स वञ्चनास्यं प्रमादयन् । मंमाज्यं हस्ती पादौ च रामस्य नाममा द्विजः ॥१३४॥  
त विगृह्य पुनः पृष्ठे नर्त्तनभूतः शूनं, शूनः । मिकतावेदिकायां च पूर्वस्थाने न्यवेद्यम् ॥१३५॥  
एव सीतां लक्ष्मणं च भरतं लक्ष्मणतकम् । सुग्रीवादीन् पृथक् नोन्वावदयकादीन्वयकारयन् ॥१३६॥

विष्णुनाम कहा—हे गुरो ! अभी आपने हमसे कहा है कि बहुत मरने वालों को बचाने के लिये करना चाहिए ॥११९॥  
इस प्रसंग को किसने किया था और इसमें प्रसंगसे किसके सिद्धि प्राप्त हुई थी । कृपया कृपया यह विस्तरपूर्वक  
हमें बतलाइये ॥१२०॥ हाँ, एक बात है आपसे और पूछना चाहता हूँ । बहुत यह कि आप प्रायः अस्मार्थ है वह  
यह बात क्यों करे ? ॥१२१॥ श्रीगणेशमन्त्र कहा है कि । दूसरे बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सारधान  
मन्त्रसे मृणु । एक समय रत्न ( केवल ) देवाने रामको मूर्ति में तन्त्र एक बाहुय्य रहा करता था ॥१२२॥  
दीनताके कारण व उनका व्याहृ हुआ था, न घर द्वार या और न भाला-पिता हूँ वे ॥१२३॥ किन्तु उस  
द्विद्रव्य एक नियम था, उसे मनी । बहुत प्रतिदिन सबसे उठने तो एक सुन्दर माया बनाता । फिर नदीमें  
स्नान करके आलूमें भी शेरियां बनाकर उनपर पञ्चमर्गण करके श्रीगणेशके म सनदर मन्त्रोंमें धानु-  
निर्मित नामको प्रसिद्धा नैदाकर तरुणके मसनोय आने और राम लक्ष्मण आदिको बिट लता था ॥१२४॥ १२५॥  
॥१२६॥ १२७॥ इसके बाद श्रीगणेशमन्त्र मन्त्रसे कहा—हे राम ! मैं आपका पूजन करना चाहता हूँ, इसलिए  
कृपया करके बताइए ॥१२८॥ ऐसा कहकर रामको अपनी पीठपर लादता और कुछ दूर गन्वा-तकी लाडियों-  
में से आकर किसी पास उगी हुई वगैरह बिटलता । उनके आगे जलने घना हुआ उनमें पाय और  
मूर्तिकर रत्नकर स्वयं वहीसे कुछ दूरीपर जाकर बैठता और बाँधी छेद बाद नोटकर जाता तो अपने हाथोंसे  
उनका पादप्रक्षालन और मूर्तिकारुण्डि आदि करता । फिर एक दूसरे पायके हाथ रत्न दकर रामकी दुन्ने  
कराता था ॥१२९-१३२॥ तदनन्तर बाहुकी दाँतोंसे उनके दाँत मोजकर पदों में कृपया और बाजमें  
शीतल मन्त्रसे कृत्से करता था । इसके बाद तीनोंसे उनके मुँह आदि पाँठकर हाथ पैर आदि  
पोंछता और फिर अपनी दोठार लेकर छोटे-छोटे विजलाकी बनी हुई वेदिकापर बिटल विरा करता  
था ॥१३३-१३५॥ इसी तरह सीता, लक्ष्मण, भरत, लक्ष्मण और सुग्रीव आदिको पृथक्-पृथक्

ततः पृथक् चोत्पन्नं तन्नाभ्यगान्विधाय मः । नीरेण स्नापयत् सर्वान् कृत्वा चोद्धर्तवान्दपि ॥१३७॥  
 ततो भूजादिवज्राणे वस्त्रार्थं य पृथग्दर्शो । ततः पत्रैः फलैः पुष्पैस्तर्पणस्तान्पर्यक्रमान् ॥१३८॥  
 ततः स स्थूलग्रीहीणां कुर्वीदनमनुत्तमम् । स्नात्वा माध्वाह्निकं कृत्वा पुनः सपूज्य राघवम् ॥१३९॥  
 दण्डीदनस्य नैरेण वैश्वदेव विभाय च । किंचिद्विष्णुमूर्तिपदे परस्मान्नामण्डलदिकान् ॥१४०॥  
 दत्त्वा पृथक् पृथक् निमग्नं रामाज्जपाऽक्षनम् । ततो रामं पुनः पृष्ठे समारोहयत्तदरात् ॥१४१॥  
 ततः सोपां ततः सर्वान् लक्ष्मणादीन्क्रमेण हि । पूजोपकरणं सर्वं पेटिकायां निभाय तः ॥१४२॥  
 कृत्वा तां पेटिकां कक्षजनामाश्च शनैः दत्तः । स वनागमोपवनं गत्वा रामं बचोऽमवीत् ॥१४३॥  
 रामं राजावपवाध वनागमादिकीर्तुकम् । आजकीमहितः पश्यन्नामांडजमृगादिकान् ॥१४४॥  
 ततो ययौ ग्रामहट्टं दर्शयन्कीर्तुकं विभुम् । समर्प्य ताडयामास मार्गार्थं यान् स पट्टिना ॥१४५॥  
 तेऽपि तन्कीर्तुकाविष्टा जनाः कांषं न मेनिरे । एवं नानाकीर्तुकानि दर्शयामास राघवम् ॥१४६॥  
 ततः शून्यं तुल्यगृहं रामं तानवकम् च । काष्ठनिर्मितपर्यंके काययामास निद्रितान् ॥१४७॥  
 ततो वेंगाद्वृषभ्यो गत्वा स नाभ्यगोपमः । याज्यानां तुलान्तैलघृतं श्राकं फलानि च ॥१४८॥  
 नामगल्लादलार्दीनि कमुकं कुकुमदिकम् । लम्बका लम्पनय किंचिदुद्वयं समान्वितं ययौ ॥१४९॥  
 तद्ग्रामरागिणः सर्वे ये ये हट्टे स्थिता जनाः । स्तब्धजनान्वापवमायतुररास्ते द्विजोत्तमम् ॥१५०॥  
 भारामनिष्ठं न दृष्ट्वा ददुस्तथापि त मुदा । विप्रः शून्यगृहे रामं रामार्थं दीपयुतमम् ॥१५१॥  
 प्रज्वालपागतिं कृत्वा गन्धार्थैः परिपूज्य च । वीजयामास रामादीन् पल्लवं मुदान्वितः ॥१५२॥  
 ततः स्तुत्वा मुहुर्मुहुः कृत्वा चापि प्रदक्षिणाः । चकार कीर्तनं वक्ष्यमाणैः सन्मनुभिर्द्विजैः ॥१५३॥

ले जाकर ओर्जावि पूर्ण किया करता था । १३७ । तदनन्तर राम से तः आदिक गोरमे लेक लगाकर वोट परम जलसे स्नान करवाया । तदनन्तर भाजपत्र आदिक पत्रे कपड़ेके लिए प्रदान करता और पत्र, फल, पुष्प आदि ओ कृष्ण मिल जाता, उससे कमरा उनको पूजन किया करता था ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ फिर मोटे चावरका उत्तम भात बनाता और स्नान तथा मकराह्निकालको संध्या आदि क्रियायें कर लेनेके बाद रघुनाथजीको पूजा करता और बलिर्वैश्वदेव करके बहु भातका भाग उनके सामने रखता था । तदनन्तर उससे कुछ अतिथियोंके भिक्षाकर, पुष्प मण्डलिका और पक्षियोंके लिए कुछ गोश्री तथा घीटा आदिक लिए निकलकर रामका आशीर्वाद मानपर स्पर्श भोजन दिया करता था । तदनन्तर फिर राघवको आरक्षणक पीठपर लाकर कमरा सान्त्वयनमें आदिकों तथा पूजनकी मामकी भेदाय भरकर गटा बगलमें दबाना और तबका पीठपर बैठकर वहाँसे चलाता था । इसके बाद किसी सुन्दर वेश्यामें पहुँचकर राममें कहता—हे राजाधराचन राम ! सीताके साथ भ्रम इस वेश्याका तथा वशीर्षमें रहनेवाले पशुपतिजीका अवलोकन करिए ॥ १३६-१४४ ॥ इसके बाद वह गौबाले बाजारमें जाता और वयन भगवान्की वहाँसे कीवुक दिखाता था । उस समय सीधे भगवान्के लिए रास्ता बनाते समय वह क्रियाका डण्डसे मार भा देता तो कोई बुरा नहीं मन्ता था इस तरह वह रित्य रामचन्द्रजीका न तो प्रकरके कीवुक दिखाता करता था ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ इसके बाद वह सुनी गुणमालार्थ स जाकर उन लोगोंको उत्तारता और काष्ठकी लताओंपर सुला दिया करता था ॥ १४७ ॥ तदनन्तर पुनः वह बाजारमें जाता और चावल, तेल, घी, साग, फल, फूल, पान, सुगन्धि, कुमकुम तथा कुछ वसे मीथकर अपने रामके पास लौट आता करता था ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ उस समयमें रहनेवाले जनेक प्रकारके व्यवसायोंमें नगे हुए लोग उसे अद्वितीय रामभक्त समझकर बहु जो कुछ गोयता, सो दे दिया करते थे । विप्रसूने घरमें पहुँचकर रामके अंगें उत्तम दायक अगता, फिर आरती उतारता और घूर, दीप, गन्ध आदिस उनही पूजा करके किसी पल्लव आदिकी पत्र लता करता था ॥ १५०-१५२ ॥ तत्पश्चात् वह रामकी स्तुति, जप तथा प्रदक्षिणा करके जाग कह आनेवाले बंया द्वारा हरिकीर्तन किया करता था ।

ततस्तु पावितान्नेव वस्तूनि मिश्रितानि हि । पृथक्कुत्वा तु सर्वेषां त्रीन् भागान् चकार सः ॥१५४॥  
 द्वौ भागौ स स्वनिष्ठे स्थाप्यैकं भागमुत्तमम् । मित्रगेहे न्यायभूतं नवम्यर्थं चकार सः ॥१५५॥  
 ततः स्वयं द्वारमग्रे चकार शयनं द्विजः । पुनः प्रभाते चोन्मायाचम्य गीतादिभिः प्रभुम् ॥१५६॥  
 शालपाद्यैः प्रबोधाद्य तान्पृष्टे स्थाप्य पूर्ववत् । नदीतीरं ययौ विप्रः पूजयामास पूर्ववत् ॥१५७॥  
 एवं निस्पृजनं च चकाराद्यन्मानसः । नवम्यां च विशेषेण पूजयित्वाऽथ राघवम् ॥१५८॥  
 स्वयञ्चोषोषणं कुत्वा स्वयं चक्रे सुकीर्तनम् । राघौ जागरणं चापि राघवं पूज्य वै पुनः ॥१५९॥  
 चकार कीर्तनैश्चाथ नर्तनाद्यैः स्वयं कृतैः । ततः प्रभाते श्रीरामं दशम्यां परिपूज्य च ॥१६०॥  
 प्रतिपरिनिमारम्य नवगत्रेऽथ यत्कृतम् । आनन्दरामचरितपरायणमनुत्तमम् ॥१६१॥  
 तन्ममाप्य पूजयित्वा पुस्तकं ब्राह्मणाश्वम् । निमंत्रितान् समाहूय तेष्वेकं सपन्निकम् ॥१६२॥  
 द्विजमाकारयामास ततः संचित्तुल्लाः । मित्रगेहे न्यायभूतस्तेषां कुन्वीदनं शुभम् ॥१६३॥  
 यथा संचितशकादि तथा लम्बानि यानि सः । तानि यथाणि संस्कृत्य वरास्वीदीनि चाकरोत् ॥१६४॥  
 बालुकावेदिकायां वै मध्ये पर्नायुतं द्विजम् । अष्टकोणेषु विप्रांस्तानष्ट मवेश्य वै कमात् ॥१६५॥  
 षोडशरूपचांसान् पूजयामास भक्तिनः । रमादमेषु च तनो विप्रीणेषु द्विजोत्तमः ॥१६६॥  
 चकार तैः कृतैश्चैः च मुदा परिवेषणम् । ततस्ते मे ज्ञत चकम्न द्रुम्याऽपि पुदान्विताः ॥१६७॥  
 ततो दत्त्वा सुतायुक्तं दक्षिणां तान् प्रणम्य च । विमर्जयामास विप्रांस्तान् चक्रेऽशनं द्विजः ॥१६८॥  
 एवं विप्रो मामि मामि नवायतनपूजगम् । नवम्याः पारणायाश्च दिवसे दशर्मादिने ॥१६९॥  
 चकार नवविप्रेषु यात्रां कुत्वाऽपि भक्तिनः । एष यतानि वर्षाणि नव तस्य द्वि तन्मनः ॥१७०॥  
 एकदा भावणे मासि तदग्रामे सेनया नृपः । कर्षद्वयौ तदा विप्रः स्वस्थले निशि निद्रितः ॥१७१॥

या । कुछ देर बाद उन साँपकार लायी हुई वस्तुओंका तीन भाग करके दो भाग तो अपने पास रख लेता, बाकी एक भाग अपने निकटवर्ती मित्रके इहाँ नवमाक उत्तमवर्क लिय घराहूके तीरपर रख भाया करता था । १५३-१५६ ॥ इन सब निम्न निगमोसे निवृत्तकर वह द्वारपर गायन करता और फिर सबरे उठकर पीतापाठ आदिसे भगवान्‌जी स्तुति करता हुआ लायी वराकर राम आदिको जमाता और नियम-नियमके अनुसार फिर उनको अपने कक्षपर आदकर नदीके तटपर पहुँच जाया करता और पूर्वोक्त विधिसे पूजन करता था ॥ १५६ ॥ १५७ । इस तरह आकर चरे मनसे बहुत नियम पूजन किया करता था किन्तु नवमोके उपवास करके विशेष उपकरणोंके साथ पूजन करके भर्त्ता प्रकार कीर्तन और रात्रिके समय जागरण करता था ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ फिर दशमके दिन रामका पूजन करके प्रतिपदके लेकर नवगत्र फर्नद आनन्दरामायणका पारायण करता था ॥ १६० ॥ उसे सम्पन्न करके नौ ब्राह्मणोंका पूजन करता था । तदनन्तर एक ब्रह्मणदम्पत्यो बुलाकर मित्रके घरमें डकट्टा किये हुए तण्डुलसे बहिया भाल बनाकर जो कुछ शाक आदि एकत्र होता उन भी मन्त्री साँत बना करके अच्छो तरह बालुकाकी बना हुई बेरीपर जोजमे उस सर्वत्रक ब्राह्मणको खिलायता और कौनों उन आठ विप्रोंको बिलायकर थोड़ा उपचारोसे भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता था । तदनन्तर केलेके पत्तोंको उनके आगे बिछाकर उन बने हुए अच्छोकी बड़ी प्रमदताके साथ परोचना था और वे ब्राह्मण उसकी भक्तिसे गद्गद होकर बड़े प्रेम्से भोजन करते थे ॥ १६१ १६२ ॥ इसका साथ बहिया पान तथा दक्षिण लेकर उन ब्राह्मणोंको बिदा करता । तब स्वयं भी भोजन करता था । १६३ ॥ इस तरह वह ब्राह्मण प्रतिभासकी नवमो तथा दूसरे पारणवान् दिन नौ ब्राह्मणोंमें नवायतनका पूजन किया करता था ॥ १६४ ॥ इस तरह उस ब्राह्मणके नौ वर्ष बीत गये ॥ १७० ॥ एक बार भावणके महीनेमें उसका वही एक बड़ी सेना अपने साथ लिये एक राजा था पहुँचा, किन्तु ब्राह्मण रात्रिके समय अपने घरमें पड़ा सो रहा था ॥ १७१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे इष्टिर्पादिता नृपसेवकाः । प्राप्ते गेहानि विविशुः शून्यगेद ययुर्दश ॥१७२॥  
 अथ रुदाः सद्यस्मास्ते द्वारमध्ये द्विजोत्तमम् । दृष्ट्वा विनिद्रितं शोचुर्द्विजोत्तिष्ठ ज्वेन हि ॥१७३॥  
 मार्गं देहि वयं दृष्ट्वा पादिताः स्मश्रुः बहिः शून्यगेदेऽत्र स्याम्यहम् सुखसाध्याः पसेवकाः ॥१७४॥  
 तत्तथा वचनं श्रुत्वा सभ्रमेण द्विजोऽजवीन् रामचन्द्रः मीतपात्रनिद्रितोऽस्मि स्वबन्धुभिः ॥१७५॥  
 न वर्ततेऽत्र युष्माकं स्थलं मन्यं वचो मम गच्छध्वं नगरे नानास्थलान्यन्यानि मन्ति हि ॥१७६॥  
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा राजदूताः पुनर्द्विजम् । शोचुस्ते क्षप्ति श्रीरामः सोऽपि निर्धातुं वै बहिः ॥१७७॥  
 सौतया बन्धुभिर्युक्तैः स्यत्तं नो देहि भो द्विज । पुनराह द्विजस्तान् स कथं गमं विनिद्रितम् ॥१७८॥  
 प्रबुद्धं वै करोम्यद्य निशायां राजसेवकाः । पुष्पकं प्रार्थनां स्वयं क्रियते वै मया सुदुः ॥१७९॥  
 प्रणम्य विधिवन्धु गच्छध्वं वै स्थलानम् । तत्तस्मिन्निग्रहं दृष्ट्वा तेऽतिवृष्ट्या प्रपीडिताः ॥१८०॥  
 तं विप्रं तादृशोऽवकुम्भदा प्राह द्विजोत्तमः । रामं बहिः वराम्यद्य निष्टुध्वं राजसेवकाः ॥१८१॥  
 इत्युक्त्वाऽऽचम्य श्रीराम भूमरो वारपमत्रवीन् । रामोत्तिष्ठ बहिर्दृष्टाः स्थिताः सन्त्यक्षसंस्थिताः ॥१८२॥  
 सेवां वस्तु स्थलं देहि वयं पामो बहिर्निशि । इत्युक्त्वा निजपृष्ठे तानारोहयन्त्य पूर्ववत् ॥१८३॥  
 ततः कृत्वा महाकाशं वस्त्रादीनां द्विजोत्तमः । घृत्वा कक्षे तोयकुम्भं घृत्वा वामकरेण सा ॥१८४॥  
 यष्टिं घृत्वा सव्यहस्ते कर्नेदंशच्छिद्यिषी । ते द्विजं तादृशं दृष्ट्वा श्रान्तं स मेनिर सन्ताः ॥१८५॥  
 ततो दृष्ट्वाऽतिवृष्टिं स गेहाप्राधा बहिर्द्विजः । तस्मीधूनस्वदा तस्वी गेहे सविविशुः सलाः ॥१८६॥  
 ततोऽर्पितधर्मितो विप्रश्चितयाग्रामं चेतसि । पुराणे वायुपुत्रस्य मया सारं श्रुतं बहु ॥१८७॥  
 तत्सर्वं तु मया त्वद्य किमन्यत्र प्रयोजनम् । इति निश्चिन्य विप्रः स क्रोधेन मदना वृत्तः ॥१८८॥  
 शीघ्रं घटं हवि स्थाप्य वामहस्तेन भारुतेः । पुच्छं घृत्वा प्राक्षिपत्तमाकाशे वेगवत्तरः ॥१८९॥

इसी समय वरनातसे सताय हुए कुछ राजसेवक बाह्यणक घरका लाने समझकर द्वारपर पहुँचे ॥ १७२ ॥ वे समस्त सेवक बाह्यणक द्वार पर थे । द्वारपर पहुँचते ही बाह्यणका जगाने हुए उन्होंने कहा—हे बाह्यण ! लाने क्यों, मुझ बाह्यण ! मैं बड़ी देरसे भौंग रहा हूँ । अब धूल गरम मैं अपने सेवकों और पादोंके साथ ठहराया ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ इस प्रकार उनका बात सुनकर वयडाहटक साथ बाह्यणने कहा कि इस घरमें रामचन्द्रजी अपने बन्धुओंके साथ सो रहे हैं । यहाँ आप लागाऊँ लिए जगह खाली नहीं है । मरौ इस बातको खूब मानागा । तमरत्र चले जाइए । वहाँ आप लोगको बहुत अच्छे मिस जायगा ॥ १७५ ॥ इस प्रकार बाह्यणके बचन सुनकर मित्रहियोंने कहा कि यदि इस घरमें राम है तो उन्हें भी बाहर निकाल दो और हम लोगको ठहरानेके लिये जगह खाली कर दो । बाह्यणन कहा—हे राजसेवक भव कि राम सो रहे हैं तो उन्हें कैसे जग'ऊँ । मैं आप लोगोंसे मायना करना हूँ कि दूसरी जगह चल जाइए । इस प्रकार बाह्यणका हठ देखकर उन पुष्टिपादिन राजसेवकान उले मारा । बाह्यणने कहा—बच्छा, हे राजसेवको । ठहरिए, मैं अभी रामचन्द्रजीको बाहर किये देना हूँ ॥ १८०-१८१ ॥ ऐसा कहकर उसने आचमन किया और रामके पास जाकर कहा—हे राम ! उठिए । बाहर वे कुछ घुदसवार खड़े हैं । माग उनकी रहनेके लिए यह जगह खाली कर दीजिए, हाजरीम राजोराते कहा दूसरे स्वाम्यपर चले चले । ऐसा कहकर बाह्यणने गोजकी तरह उनको अपनी पीठपर लाया ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ इसके बाद उसने कर्णोंकी एक बड़ी गठरी बनाकर बाँधिस दवायी, पानाका घड़ा बाँध हाथमें लिया और दहिने हाथमें छड़ी लेकर पीरे चले बाहर निकला । इस तरह तैयारी करके जते हुए बाह्यणको देखकर उन मित्रहियोंने समझा कि वह कोई पागल है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ विप्र बाहर निकला त देखा कि बड़े आँरोमें वृष्टि हो रही है । ऐसा अवम्यास वह बाह्यण सुनकर बारजके नीचे लड़ा हो गया और मित्रहो चं तर घुम गये ॥ १८६ ॥ कद-कदो जब तक पया हो मन ही मन सोचने लगा कि मैंने तो पुराणोंमें सुना था कि हरिमातृजीके बड़ा वर है ॥ १८७ ॥ मेरेमन में खर वरों रही हैं । ऐसा सोचकर उसने छोटी दीवारसे छेँटाकर सड़ी कर दी, बड़ी हाथके बड़े

तदा सा सारुतेधातुमयी मूर्तिः पुष्पावहा । गन्वाऽऽकाशे गर्जनां वै चकारानिमयकराम् ॥१९०॥  
 तां गर्जनां महार्चराः कावम्याम् बहिः स्थिताः । भुन्वाऽनिमयमत्रस्ता मृताः सर्वे क्षयेन हि ॥१९१॥  
 जया नागा इषाद्याश्च मृताः सर्वे नदा क्षणात् । तद्युगामे बहेवाऽपि परं पुरुषमस्त्रिमम् ॥१९२॥  
 पुत्रयमाश्च नारीणां सर्वे प्रापुः स्वयं तदा । तदा स पुरुषल्लवेको न मृतेः प्राक्षणेऽपि ॥१९३॥  
 कृपया तमचन्द्रम् सारुते, कृपयाऽपि च । नत प्रमाने ता नार्यः सर्वान्स्वपुरुषान्मृतान् ॥१९४॥  
 दृष्ट्वाऽनिविस्मय प्रापुस्त्वानिर्देव भूतो भूतिः । तदा विप्रं जीवेन त दृष्ट्वा पकेऽपि माकृतिम् ॥१९५॥  
 इतिव विस्मयविष्टाः पश्यन्तुर्न द्विजोत्तमम् । ततः स सकलं हृत नारीः सभारयतदा ॥१९६॥  
 ततस्तः प्रार्थयित्वा तं चक्रः स्वीयपुगाधिपम् । मोऽपि रमाञ्जया गज्यं चक्र तन्पुंस्य च ॥१९७॥  
 पुग्मिन्तानां नारीणां स एवामान्पनिगतदा । तन्मारुतेर्मानन हि काले काले तु पूर्ववत् ॥१९८॥  
 मयापि श्रूते तस्मिन्मगरे एनशुन्दवनम् । तच्छ्रुत्वा पुत्रयमाश्च प्रम्पलति हि योनिताम् ॥१९९॥  
 त्रियः सहस्रशुभापन् पुष्पस्त्र्येक एव सः । तदभ्य तन्महाराज्यं कथ्यते मानरोषमैः ॥२००॥  
 ततः कालान्तरेण स विप्रश्च भूतो यदा । तदा स्वपूर्वपुण्येन रिणुमायुल्लभाय सा ॥२०१॥  
 ततस्ताभिस्तु नारीभिः कान्धियायः समगत । न एव क्षियते मर्ता न न ता मोचयति हि ॥२०२॥  
 इत्था तं गर्जनाकालं पुरुषान्निवर्णे हि । गार्थयित्वा दृढमर्मां वन्द्यानां निःस्वजादिभिः ॥२०३॥  
 न श्रावयति तेषां तं ज्वनि माकृतममराम् । प्रतिकालेऽयं नत्काले तान्पुनर्जीं विहाति हि ॥२०४॥  
 यत्वा नानोन्मर्षः पूज्य तैर्मांस्त्रि ता मर्जयति । नाथा तच्छ्रम्यते राज्यं सर्वं द्विजममम ॥२०५॥  
 र्त्वागमेव मदोत्पत्तिर्जायते पुरुषस्य न । तद्रान्यनिकटस्था ये देशस्तेष्वपि यो द्विजः ॥२०६॥

जमीनमें रह करिवा और बाये होयसे हनुमान्जीको पूछ उठकर बड़े जोर और बेगके साथ जाकासमें उछालकर फेंका ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ हनुमान्जीको बहु धानुनयी मूर्ति जाकासमें पहुँचकर बड़े जोरसे मरजी ॥ १९० ॥ यह भीषण मजना उन स्त्रियाँहियो, राजकासो तथा बाहुजालोको भी मृतायें दी । उसे सुनत ही सब घबड़ा-घबड़ाकर मर गए । उन गर्जनमें जाँहूणी और बेल आदि पुरुषनामधारी जितने जीव थे उनमेंसे उक्त बाहुजालके शिष्य और कोई नहीं बचा । यहाँ तक कि स्त्रियोंके गर्भमें जो बच्चे थे, वे भी मर गये । किन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा और हनुमान्जीकी दयासे वह बाहुजाल ज्योंका त्यों सड़ा रह गया । तबसे हुआ ही उन नारियोंके, जिनके पति मलका मर गए थे अपने स्वामीको मृत देखा तावडी चकरायी । तदनन्तर जब उन्होंने उस बाहुजालके मलित तथा हनुमान्जीकी मलिकीसम्मे पड़ी देखी तो उक्त बाहुजाल के सब पूजन मगों । बाहुजाल उन स्त्रियोंको राखिका सारा हाथ कट गुनाया । १९१ १९२ ॥ इसके अनन्तर उन स्त्रियोंन प्रार्थना करने बाहुजाला उक्त मलकीका पाजा बन्द दिया । रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वह विप्र वहाँका राज करत लगा ॥ १९३ ॥ उस समय उस नरकीकी सब स्त्रियोंका यही बात थी । हनुमान्जीकी यह गर्जना कभी-कभी निराल मजगजनक समान अब सा मनाई पड़ जाया करती है । उस मुनकर जिन स्त्रियोंके उदरमें पुत्र भट्ठा है, उनका गर्भ गिर जया करता है ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ उस विप्रके राम हुजारो स्त्रियाँ थी और उनके बीचमें बहु बच्चन पुन्च था । तर्थास मोगोन उसे स्वीकार्य कहना आसम्भ कर दिया । कुछ दिनों बाद जब उस विप्रका मृत्यु हुई तो जपन पुष्पमठ पुष्पके प्रभावसे उसे विष्णुकी सादृश्य मुक्ति मिली ॥ २०० ॥ २०१ ॥ इसके बाद जो कोई रहती पुरुष मिल जाय, उस ही से स्त्रियाँ अपना रतिबन्ध निर्या करती थी और उसे किसी तरह मही छोटा थी ॥ २०२ ॥ यदि कभी हनुमान्जीका गर्जनका समय आ जाय तो वे स्त्रियाँ उस पुरुषको बिस्मसे स्त्रियाँदिया करती । जिसमें उसे वह गर्जन न पुन परे इसलिये नमारे मल मादि बाये बजाये जगती थी । जब वह समय पुनःपुनःक होत जाय तो नारियाँ अपने पतिमोका पुनर्जीवन जानकार बड़ी खुशियाको मनली और इसीके बाद जोष करती हुई अपना समस्त बिलाया करती थी । हे द्विजोत्तम ! सबसे बड़ा बहादुर स्त्रियोंका ही राज्य रहता है । स्त्रियाँ ही वहाँकी प्रजापर शासन करती हैं

मातुनेः शब्दसंस्पृष्टकथुना स्पष्टिता नराः । अञ्जका गव जायते न तेष्वर्थात्सुपौरुषम् ॥२०७॥  
 अतस्तेषामशक्तानां वीर्यक्षीणतया द्विव । भवन्ति दुहितर एवं कश्चिन्पुत्रः प्रजायते ॥२०८॥  
 आधिक्ये रजसः कन्या शुक्राधिक्ये सुतो भवेत् । नपुंसकः समन्वेन यथेन्द्रा वाम्भेदवरो ॥२०९॥  
 अन्यत्वे काण शस्त्रि न भवन्ति सुता यत् । काण शृणु नय्येड विष्णुदाम द्विजोत्तम ॥२१०॥  
 तेषु देशेषु नार्यश्च निजराज्यमदेन हि । रत्निकालेऽथ पुरुष कृत्वा कीडां भजति ताः ॥२११॥  
 न स्त्रीणां रत्निकाले ताः पृष्टं भूमिस्पृशति हि । वनएव रत्निकाले शुकं तु म्वते बहिः ॥२१२॥  
 सुश्रमलिङ्गे तथा गर्भस्थाने तन्नेत्र गच्छति । नामानयनकर्णानां द्वे द्वे रश्मि प्रकीर्तिते ॥२१३॥  
 मेहनपरमवक्राणामेकैकं रश्मिमुच्यते । दशसं मूलके प्रोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः ॥२१४॥  
 स्त्रीणां ग्रीव्यधिकानि स्युः स्वनयोर्गर्भवर्धनः । सुचिक्रममन्वेव तानि छिद्राणि सति हि ॥२१५॥  
 गर्भलिङ्गं रत्निकाले किञ्चिद्विक्रमिन् द्विव । भूत्वा मार्गं तु वीर्यस्य ददाति पुरुषस्य च ॥२१६॥  
 तन्मार्गेण गत वीर्यं चेत् सम्यक् पुरुषस्य च । गर्भस्थाने तदा पुत्रो जायते नात्र संशयः ॥२१७॥  
 स्वल्पं प्रविष्टं वीर्यं च तदा कन्या प्रजायते । रजमभाधिकन्वेन जानीष्ट्वेवं विनिश्चयम् ॥२१८॥  
 तस्माद्यदाऽथः शोते वै तद्देशेषु नरोत्तमः । रत्निकाले तस्य वीर्यमूर्ध्वं गच्छति नैव तत् ॥२१९॥  
 यदि दैवशक्तिश्चिद्गन्तं सौम्यमार्गनः । तदा दैवशक्त्यपुत्रो जायते सोऽपि वद्वत् ॥२२०॥  
 मतएव हि तद्देशे बहुकन्या भवन्ति हि । एवं ते कारणं प्रोक्तं कन्योन्वभेद्विजोत्तम ॥२२१॥  
 एवं सर्वेषु देशेषु चेन्नार्या अधिकं भलम् । अस्मि तर्हि भवेत्कन्या पुत्रः पुरुषसारतः ॥२२२॥

॥ २०३-२०५ ॥ वहाँपर विशेष करके कन्याओंको ही उत्पत्ति होता है, पुत्र तो बहुत ही कम होते हैं । हुत्मादुर्जाकी गर्भनासे मिली वायुके संगमशो उस गायक आभवाभक्त ले राज्यके लोग भी प्रायः अशक्त (नरामक) होत हैं । इसलिये वहाँके पुण्याका वायु कमजोर होता है और अधिकजान भन्दाय हो उत्पन्न होती है, पुत्र तो जायव ही कभी कहीं हो जाता हो ॥ २०६ ॥ ०७ ॥ २०८ ॥ जब कि स्त्रीके रजकी अधिकता होती है तो कन्या और पुरुषके वीर्यकी अधिकता होती है, तब पुत्र होता है । यदि पुण्याका वीर्य और स्त्रीका रज वे दोनों बराबर हो जाने है, तब नपुंसक उत्पन्न होता है । इन बातोंके सिवाय सबसे मुख्य बात तो यह है कि परमपरमको जैसी इच्छा सोही है, वही होता है ॥ २०६ ॥ हे द्विजोत्तम विशेष करके कन्याओंके उत्पन्न होनेका एक कारण और भी है उसे सुनो ॥ २०७ ॥ उस देशकी स्त्रियाँ अपने राज्यमदसे मतवाली हो पुरुषको नीच सुन्य तथा स्वय ऊपर सटकर रहि करती हैं । रत्निकालक समय वे अपनी पीठका जमीनमें नहीं लगते देतीं । इसलिये पुण्याका वीर्य बाहर ही रह जाता है । गर्भके मुख छिद्रतक वह नहीं पहुँच पाता । पुरुषके नाक, भेज और कान इनमें दो-दो छिद्र रहते हैं ॥ २११-२१२ ॥ लिंग, गुदा तथा मुखम एक-एक छिद्र रहता है । ये सब मिलाकर नौ छिद्र और दसवाँ छिद्र अज्ञातम होता है । ऐसा लोगोंने बतलाया है ॥ २१४ ॥ किन्तु त्रिविकी तीन छिद्र अधिक होते हैं । दो छिद्र दोनों स्त्रियों और एक गर्भके रास्तेमें । गर्भके मार्गवाला छिद्र सूईको नोकके समान बारीक होता है ॥ २१५ ॥ किन्तु रत्निकालमें गर्भवाला छिद्र कुछ चौड़ा होकर पुरुषके वीर्यको भीतर जानक लिये रास्ता दे देता है ॥ २१६ ॥ उस मार्गसे गया हुआ वीर्य यदि अच्छी तरह अपने स्थान तक पहुँच जाता है, तब पुत्रका उत्पत्ति होती है । इसमें कोई संशय नहीं है । यदि उस समय गर्भाशयमें कम वीर्य जाता है तो कन्याकी उत्पत्ति हुआ करता है । क्योंकि ऐसी वकाले स्त्रीका रज अधिक और पुण्याका वीर्य कम पड़ जाता है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ इससे जब वहावाले पुरुष नीच नेटते हैं, तब उनका वीर्य गर्भाशयके छिद्र तक नहीं पहुँच पाता । यदि दैवतग कभी भोजन-या वीर्य उच्छ्वस्त करपर स्त्रीके गर्भाशय तक पहुँच भी जाता है तब नपुंसक उत्पन्न होता है । २१९ ॥ २२० ॥ इसी कारण उस देशमें भीषकाश कन्याय हो जाती है । हे द्विजोत्तम ! मन इस प्रकार तुम्हें वहाँ विशेष कन्याओंके उत्पन्न होनेका कारण बतलाया ॥ २२१ ॥ यह प्रायः सब देशोंमें देखा जाता है कि जिस जगह स्त्री चल्नही होती है तो कन्या

तस्मान्पुत्रार्थिना नारी पोषणीया इदमपि न । पोषयेच्च सदाऽऽत्मानं नानास्वाद्यवसायनैः ॥२२३॥  
 भवत्येव हि वैद्याश्च पालनीयाः सदा नरैः । बलावलप्रवेशारस्तैर्होषं स्वबलावलम् ॥२२४॥  
 पुष्टदेहं निर्गेषाच्च न तेषां त्वयि च बलम् । वातेनापि पुमान्पुष्टो जायतेऽथ सर्वत्र हि ॥२२५॥  
 अतो वैद्यं विद्यां तच्च न शास्यसि इत्यावन्तम् । अतो वैद्यास्ते प्रष्टव्याः सदा भक्तिपुङ्गवराः ॥२२६॥  
 भवन्ते होषे द्वित्रे देवे वैद्येऽथ गणके गुरौ । यादृशी भावना स्वीया मिद्विर्भवति तादृशी ॥२२७॥  
 अतो वैद्योक्तमार्गेण सदा गच्छेन्नरोत्तमः । बलावलविचारेण पुत्रा एव भवन्ति हि ॥२२८॥  
 एक एव वरः पुत्रः किं ज्ञाना दश कन्यकाः । पुत्राप्तो नरकान्पुत्रमन्यकेऽप्यकुलं भणान् ॥२२९॥  
 कन्या स्वीयदृग्गचारान्क्षणाभिजपितुः कुलम् । तथा भर्तुः कुलं चापि नरके पातयेच्च सा ॥२३०॥  
 तस्मान्नरैश्च पुत्रार्थं यत्नः कार्यस्त्वहनिष्ठम् । एष्टव्या बहवः पुत्रा यथेकोऽपि गपां भजेत् ।

यत्नेन वाऽयमेवेन नालं वा वृषहन्मुजेत् ॥२३१॥

जीवतो वाक्यकृष्णान्प्रत्यष्ट भूरि भोजनान् । गयस्यां पिष्टदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥२३२॥  
 एवं शिष्य स्वयां पुष्टममर्केन कथं यतम् । कार्यं तच्च मया सर्वं धूमुरस्य कथानकम् ॥२३३॥  
 तत्राग्रे कथितं रम्यं रम्यं त्वत्तोषार्थमनुचमम् । तस्य व्रतस्य सामर्थ्यान्स दग्धो द्विजोद्यमः ॥२३४॥

तत्राग्रे तद्विपुलं राज्यं भुक्त्वा मोगान् मनोरमान् ।

मापुज्यं प्राप विष्णोश्च स्वायुषश्च सपे द्विज ॥२३५॥

एव तद्व्रतचन्द्रस्य व्रतं कोऽप्य तु नाचरेत् । सुमेन भुज्जेद्वात्र परलोकं विमुक्तिदम् ॥२३६॥  
 पुनिभिश्च सुरैर्नागैर्मन्त्रैः किन्नरैर्नृपैः । सदाऽनुभाषितं चेद् व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥२३७॥

ही जन्मलो है और एक बल हो ता पुत्रकी उत्पत्ति अधिक शक्ति है ॥ २२२ ॥ इसलिये जिन लोगोंको पुत्रकी अभिलाषा हो उन्हें चाहिए कि विवाहका उपाय मात्र लिनाकर तबका न करे । बल्कि स्वयं ब्रह्मा जीसे तथा रसायन साकर बलवान् बन ॥ २२३ ॥ लाओका यह भी उचित है कि बलावल जाननेवाले अच्छे बेलोको अपने नगरमें रखे और समय-समयपर उनसे परीक्षा करा लिया कर ॥ २२४ ॥ मरौर-को मोटा देखकर ही यह न समझ ले कि इसमें अधिक बल है । मदा ऐसा देखा गया है कि लोग बापुसे भी माटे हो मारा कत्त है । २२५ । इसीसे बेटके बिना बलावल कीक तोरस नहीं जाता जा सकता । बलएव लोकोको चाहिए कि सदा बेलोसे आदरपूर्वक अपने स्वाध्यायके विवरण बुझास करते रहे । २२६ । मंत्रमें, तोषमें, ब्राह्मणमें, वैद्यमें, देवता और परोलोको, जंतो जिलकी जाचना रहनी है, मंता ही उसे बल मिलता है । २२७ ॥ अतएव बेटा जिस तरह व्रतलाये, उसी तरह साधन यदि अच्छा तरह बलावलका विचार करके पुष्ट होके साथ रहि करेता पुत्र ही होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २२८ ॥ केवल एक पुत्रका होना अच्छा, किन्तु दस कन्याओंका होना ठीक नहीं है । यदि पुत्र होता है तो वह सम्मानमें अपने कृष्ण 'दु नामक नरकमें' डाल देता है ॥ २२९ ॥ इसके विपरीत कन्या दृग्गचार करके अपने पिता तथा पति दोनों कुलोकी क्षणभरमें नरकमें गिरा देती है ॥ २३० ॥ इसलिये लोकोका चाहिए कि मदा पुत्रके लिये बल करे । एक ही पुत्रसे नष्टोप न कर ले, बल्कि कन्याको इच्छा रखे । न बापूम उनमेंसे कौन गयामें जाकर पिष्टदान कर जाये या अन्नमय यज्ञ करे अथवा नील वृषभ ( काला मोड़ ) छारे ॥ २३१ ॥ जबतक पिता रहे तबतक उसका कहना माने । मर जानेपर प्रतिवर्ष बहुतसे दाहनोंको भोजन कराये और गयामें जाकर पिष्टदान करे । इन्हीं तीव्र कामोंसे पुत्रकी पुत्रता सर्वत्र होती है ॥ २३२ ॥ इस प्रकार हे शिष्य ! तुमने मुझसे जो पूछा था कि अशक्त प्राणी किस प्रकार व्रत करे । मैंने एक ब्राह्मणकी कथा सुनाकर समझा दिया । इस व्रतकी शार्वर्कमें यह दग्ध दाहण विपुल राज्यभी तथा तादृशरहके मनोरम मोवाका भोजनका आयु समाप्त होने-पर विष्णुजायका सायुज्य पुनिकी प्राप्ति हुआ ॥ २३३ २३४ ॥ इस प्रकार उन रत्नचक्रोंके व्रतकी कौन नहीं करेगा, जो इस लक्षमें आनन्दके साथ भुक्ति और परलोकमें मुक्ति प्रदान करनेवाला है ॥ २३५ ॥ अनेक

स्त्रीपुत्रधनदं चैतत्सर्वसौख्यप्रदं नृणाम् । इहलोके परे चापि विष्णोः सायुज्यदायकम् ॥ २३८ ॥  
 सति ब्रतान्यनेकानि स्वर्गं मर्त्ये रमानले । तथापि मामनवमोममानं ब्रतमुत्तमम् ॥ २३९ ॥  
 विष्णुरास द्वित्र्येष्ट न भूतं न भविष्यति । तस्मात्सदा नरैः कार्यं ब्रतं येदं महत्तमम् ॥ २४० ॥  
 एवं त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् । किमन्यच्छ्रोतुमिच्छास्ति तद्वद्वचं वदामि ते ॥ २४१ ॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीयं रासकाण्डं  
 आदिकाण्डे नवमीकषावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

## सप्तः सर्गः

( लक्ष्मणनामोद्यापनविधिः )

विष्णुदास उवाच

अन्यदुगुरो राघवस्य तुष्टिर्दं किं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

मृणुष्व विष्णुदास त्वं यनेष्टुं प्रयदामि च । तुष्ट्यर्थं रामचन्द्रस्य मित्यं पत्रे तु मानवैः ॥ १ ॥  
 लेखनीयं रामनामश्रुताभि नव प्रपहम् । अथवाष्टोत्तरशतं पूजनीयं सन्निस्तरम् ॥ २ ॥  
 एवं कोदमित लेख्यं लक्षं वा तु ततः परम् । हवनं हि दशशेन कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥  
 इदं विष्णुरिति श्रुत्वा तिलाज्यैः पापसेन वा । नयज्जन्नाथवा कार्यं राघवं परिपूज्य च ॥ ४ ॥  
 हवनांमे राघवादिदेवानां पूजने नरैः । आमनाथं तु भद्रं च स्थापनीयं प्रयत्नतः ॥ ५ ॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिगात्मकं शुभम् । अथवाष्टोत्तरशतं रामलिगात्मकं शुभम् ॥ ६ ॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं वा रामतोभद्रमुत्तमम् । अथवाष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमुत्तमम् ॥ ७ ॥  
 एवं होमं लेखनं च पूजनाद च परकृतम् । अर्पयेद्रघुनाथाय तत्सर्वं त्वतिभक्तिदः ॥ ८ ॥

मुनियों, देवताओं, नागों, गन्धर्वों, किन्नरों और राजाओंने कितने ही और इस व्रतका अनुष्ठान किया है ॥ २३७ ॥ यह व्रत इस लोकमें स्त्री-पुत्र धन तथा सब सुख देनेवाला है और परलोकमें विष्णुपूजवान्को सायुज्य-मुक्ति प्रदान करता है ॥ २३८ ॥ हे द्वित्र्येष्ट विष्णुदास ! वेस तो स्वर्ग, मर्त्य और रसातलमें बहुतसे व्रत हैं । किन्तु उनमेंसे रामनवमी व्रतक बराबर न कोई व्रत है और न होगा । इसी कारण लोगोंको चाहिए कि सदा इस रामनवमीके महान् व्रतका करें ॥ २३९ ॥ २४० ॥ इस तरह तुमने जो कुछ हमसे पूछा, सो कह सुनाया । अब और क्या सुनना चाहते, हो या नहीं । २४१ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये प० रामतेजपाष्टोदककृतं ज्योत्स्नाभाषाटोकासहिते मनोहरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! रामचन्द्रजीको प्रणम करनेवाली कोई और मुक्ति बनलाइए । रामदास कहने लगे—हे विष्णुदास ! मैं तुम्हें जो बतला रहा हूँ, उसे सुनो । रामकी प्रीतिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको चाहिए कि कामजपर प्रतिदिन नौ सौ या एक सौ आठ रामनाम लिखकर विस्तारके साथ उनका पूजन करें ॥ १ ॥ २ ॥ इस तरह लिखते हुए जब एक कराड़ अथवा एक लाख नामोंको लिख ले तो उनका दशाष्ट विधिवत् हवन करे ॥ ३ ॥ हवन 'इदं विष्णु' ०' इन मन्त्रसे करे । तिल, धी और खीरसे हवन करना चाहिए । यदि ये वस्तुएँ न इकट्ठी हो सकें तो नदीन अथवा रामका पूजन करके हवन करना चाहिए ॥ ४ ॥ हवनके अक्षोंमें भद्रआदि बनाकर राघवआदि देवताओंका पूजन करके अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामलिगातोभद्र अथवा अष्टोत्तरशत रामलिगात्मक भद्र बनावे । अथवा अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्र या अष्टोत्तरशत रामतोभद्रकी रचना करे ॥ ५-७ ॥ इस तरह होम-लेखन-पूजन आदि जो कुछ करे, सब भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजीको अर्पण कर दे ॥ ८ ॥



विष्णुदास उवाच

त्वया गुरो शुभं प्रोक्तं रामनामप्रलेखनम् । न तस्योद्यापनं प्रोक्तं तद्भद्रं ममाधुना ॥ ९ ॥

श्रीरामदास उवाच

भूणु शिष्य भविष्यति कथां वक्ष्यामि भूतवत् । रामनामोद्यापनस्य विस्तरेण मनोरमा ॥ १० ॥

पाण्डुपुत्रो महावीरो बंधुभिश्च युधिष्ठिरः । स्त्रिया मात्रा भद्रराज्यो वने वासं कश्मिपति ॥ ११ ॥

तं द्रष्टुं ह्यपरो कृष्णः कदा गच्छति वै वने । तं कृष्णं पूजयित्वा स तस्मै प्रक्षं करिष्यति ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

देवदेव जगन्नाथ भक्तानां वरदायक । किंचित्त्वां प्रष्टुमिच्छामि यदि तुष्टोऽसि चेत्प्रभो ॥ १३ ॥

लक्ष्मीप्राप्तिकरं पुण्यं पुत्रपौत्रवर्द्धनम् । व्रतपारुषादि देवेश राज्यभ्रष्टस्य मेऽधुना ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

शुक्लावुगुह्यतमं भोतुं यदि वाञ्छसि भूपते । तदा निगदतो मत्तः सकाशाच्छृणु सादरम् ॥ १५ ॥

रामनाम्नः परं नास्ति मोक्षलक्ष्मीप्रदायकम् । तेजोरूपं यदव्यक्तं रामनामाभिधीयते ॥ १६ ॥

तस्मात्तन्नाम जप्त्वा वै रामरूपो भवेन्नरः । एतदेव हि रामेण मारुतिं प्रति भाषितम् ॥ १७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन्काले हनुमते रामेणैवोपदेशितम् । एतद्विस्तरतो ब्रूहि सुमते हविर्गगीपते ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा रामावतारे च सीता गीता हुरारिणा । हनुमंतं समाहूय रामचन्द्रोऽजरीद्वयः ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

वायुसुनो महावीर सीतान्वेषणहेतवे । समस्तां दक्षिणांदिशं गत्वा शुद्धिं समानय ॥ २० ॥

श्रीहनुमान् उवाच

रघुनाथ जगन्नाथ दक्षिणस्यां हि सागरः । महतो राक्षसाः सन्ति तत्र अक्तिः कथं मम ॥ २१ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने रामनाम लिखनेकी जो युक्ति बतलायी वह बहुत ही उत्तम है । लेकिन उसका उद्यापन नहीं बतलाया । उसे भी सुनें अभी बतला दीजिए ॥ ९ ॥ श्रीरामदास कहने लग्ये—हे शिष्य ! मैं तुम्हें भविष्यकी एक कथा भूतकालमें समवित्त करके बतला रहा हूँ ॥ १० ॥ पांडुके पुत्र युधिष्ठिर जब राज्यसे वंचित हो गये, तब अपनी माता तथा बन्धुओंको साथ लेकर वनमें निवास करने लगे ॥ ११ ॥ उनको देखनेके लिए कृष्णचन्द्रला वनमें गये । सब उन लोगोंने बड़े आदरसे श्रीकृष्णकी पूजा की और युधिष्ठिरने कहा—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे सबको वर देनेवाले ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे देवेश ! यह तो आप जानते ही हैं कि इस समय मैं राज्यसे भ्रष्ट हो चुका हूँ । यतएव आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतलाइए । जो लक्ष्मीको देनेवाला, पवित्र और पुत्र पौत्रको बढ़ाने-वाला हो ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा—हे भूपते ! यदि आप हमसे गुप्त व्रत सुनना चाहते हैं तो मैं कहता हूँ, आप सुनिये ॥ १५ ॥ रामनामके अपसं बहुर भास और लक्ष्मीको देनेवाला और कोई उपाय नहीं है । यह तेजोरूप और अव्यक्त है ॥ १६ ॥ इसी कारण रामनामका जप करके लोग रामरूप हो जाते हैं । यही बात स्वयं रामचन्द्रजीने हनुमान्जीसे कही की ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरने कहा—हे वरिमाणपते ! रामचन्द्रने हनुमान्जीसे कब इस बातकी चर्चा की थी ? श्रीकृष्णजीने कहा—रामावतारमें जब कि रावण सीताको हर ले गया, तब रामने हनुमान्जीको बुलाकर कहा— ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे महावीर ! हे वायुसुनो ! तुम सीताजीको ढूँढनेके लिए सभी दक्षिण दिशामें भ्रमण करो और शीघ्र उनका समाचार लाओ ॥ २० ॥ आहनुमान् बोले—हे जगन्नाथ !

श्रीरामचन्द्र उवाच

माकृते रावणादीनां राक्षसानां निवारकम् । मंत्रं ददामि सुगमं येन सर्वजघ्नी भवेत् ॥२२॥

श्रीहनुमान्वाच

महाराज कृपासिन्धो दीनानां त्वं सुतारकः । उपदेशोऽभूना कार्यस्तस्य मंत्रस्य तत्त्वता ॥२३॥

श्रीरामदास उवाच

इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं रक्षस्याहस्य तत्त्वरम् । माकृतेर्दक्षिणे कर्णे भीरामेऽप्युपदेशिता ॥२४॥

तस्य मंत्रस्य सकलं पुरश्चाणमुभयम् । लक्ष्मसरूपं विधायाशु प्रवक्ष्ये दक्षिणां दिक्षम् ॥२५॥

तन्मंत्रस्य प्रभावेण नानाजलचराचरम् । दुर्गमं सागर तीर्त्वा लंकांमध्ये समाचरौ ॥२६॥

न स लेभे तत्र शुद्धिमशोकारूपवनं गतः । वृक्षमूले स्थिता सीतां दूरतोऽप्ये ददर्श सा ॥२७॥

तां दृष्ट्वा क्षीणमागत्य हर्षनिर्भरमानसः । सीतायाश्चणौ नन्वा दंष्ट्रवस्पतितो भुरि ॥२८॥

अत्यतं सूक्ष्मवपुषं बालकाकारसंयुतम् । तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा सीता वचनमब्रवीत् ॥२९॥

आगतोऽसि कुतो बाल कुत्रत्यः कस्य बालकः ।

श्रीहनुमान्वाच

सीता माता पिता रामो रामचन्द्रसमीपनः ॥३०॥

समागतोऽस्मि हनुमान् प्रसैका मुद्रिका त्वया । रामनामांकितौ मुद्रौ शुद्धकाचननिर्मितम् ॥३१॥

ज्ञात्वा रामस्य सा सीता परमं तापमाययी । तां ज्ञात्वा तोषमहितामांजनेयोऽप्यधीदृषः ॥३२॥

मातुः सुधाश्चरवि मम त्वयादिक्लेशकारिणी । अस्मिन्वनेऽतिमधुरः फलसघोऽतिदुर्लभः ॥३३॥

तवाश्रयाऽहं सीतेऽद्य करिष्ये भक्षणं ध्रुवम् ।

सीतोवाच

भो बालक महार्घार रावणोऽस्ति वनाधिपः ॥३४॥

हे रघुनाथ ! दक्षिण दिशा में तो विशाल सागर है और बहुतसे राक्षस हैं, फिर वहाँपर मेरी शक्ति कैसे काम  
 बैगी ? ॥ २१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा : हे माकृते ! रावण आदि राक्षसोंका निवारण करनेवाला मैं एक बहुत  
 ही सरल मंत्र बताता हूँ जिसकी सहायतासे सर्वत्र तुम्हारी विजय होगी ॥ २२ ॥ हनुमान्जीने कहा—  
 हे महाराज ! हे कृपासिन्धो ! आप दीनोंका उद्धार करते हैं । हे प्रभो ! हमें उस मंत्रका अच्छी तरह उपदेश  
 दीजिए । २३ ॥ श्रीरामदास कहते हैं : हनुमान्जीके इस प्रकार विनय करनेपर रामने उन्हें एकान्तमें ले जाकर  
 उनके कानमें 'श्रीराम' इस नामका उपदेश दिया । २४ ॥ हनुमान्जीने उस मंत्रका उत्तम रीतिसे एक लाख  
 बार करके दक्षिण दिशाको प्रस्थान किया ॥ २५ ॥ उसी मंत्रके प्रभावसे विविध प्रकारके जलजन्तुओंसे भरे दुर्गम  
 सागरको पार करके वे लट्का पहुँच गये । २६ ॥ वहाँ बहुत खोज करनेपर भी सीताका पता न पाकर अशाक  
 बनमें गये, तब वहाँ एक वृक्षके नीचे बैठी हुई सीताको दूरसे देखा । २७ ॥ सीताको देखकर उनका हृदय  
 हर्षसे भर आया और तुरन्त उनके पास पहुँचकर प्रणाम किया । फिर दण्डकी तरह पृथ्वीमें लाट गये ॥ २८ ॥  
 उस समय हनुमान्जीने बच्चोंके समान अपनी एक छोटी सी रूप धारण कर लीया था । उनको पृथ्वीमें पड़े  
 देखकर सीताने कहा—॥ २९ ॥ बच्चे ! तुम कहाँसे आये हो ? कहाँ तुम्हारा घर है और तुम किसके बेटे  
 हो ? हनुमान्जीने कहा कि सीता मेरी माता है और पिता श्रीरामचन्द्र हैं । इस समय मैं उन्हींके पाससे आ  
 रहा हूँ ॥ ३० ॥ मेरा नाम हनुमान् है । आज इस जंगूठीको लेजिये । यह शुद्ध सुवर्णकी बनी हुई है और  
 इसमें श्रीरामचन्द्रजीका नाम लिखा हुआ है ॥ ३१ ॥ अब सीताको यह ज्ञात हुआ कि यह मुद्रिका रामजी-  
 की है तो वे बहुत प्रसन्न हुईं । जोता माताको प्रसन्न देखकर हनुमान्जीने कहा—माँ ! मुझे बड़ी भूख लगी  
 है । इससे क्या कह हो रहा है । इस बगीचेमें मैं बहुत मोठे और दुर्लभ फल देख रहा हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यदि

न शक्तिर्न च शक्यं ते कथं त्वं भक्षयिष्यसि ।

हनुमानुवाच

श्रीरामेति परो मन्त्रः शस्त्रं मे हृदयसरे ॥३५॥

तेन सर्वाणि रक्षोसि तृणरूपाणि सांप्रतम् । इत्युक्त्वाऽथ नदीयाक्षां पृथीन्वा वनभूरुहान् ॥३६॥

उन्मूलनं चकाराय भुत्वा रक्षांसि चावपुः । युद्धं च तुमुल जातं पश्चान्मन्त्रप्रभावतः ॥३७॥

इलितं राक्षसवल्गं रग्धा लंका हनुमता । पुनर्गन्वाऽशोकवन सीतां नत्वा च मारुतिः ॥३८॥

तदलंकारमादाय रामचन्द्रं समाययौ । रामायालंकृतिं दत्त्वा तस्यौ तत्पादसन्निधौ ॥३९॥

रामोऽलंकृतिमादाय उच्छ्रुत्वा मुदितोऽभवत् । रामनामप्रभावोऽयं महाराज युधिष्ठिर ॥४०॥

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र रामनामजपं कुरु ।

युधिष्ठिर उवाच

कथं जपो विधेयोऽस्य पुरश्चरणकं फलम् ॥४१॥

कथमुद्यापनं चैव सर्वमाख्याहि यत्नतः ॥४२॥

श्रीकृष्ण उवाच

अथवा पुस्तके लेख्यं स्मरणं हृदयेऽथवा । कोटिमंखपापरिमितमथवा लघुसंमितम् ॥४३॥

मंत्रा ज्ञानाविधाः सन्ति अतश्चो राक्षसस्य च । तेष्वस्त्वेकं वदाम्यद्य तव मंत्रं युधिष्ठिर ॥४४॥

श्रीशब्दमाद्य जयशब्दमध्य जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःसप्तकृत्वो रघुनाथनामजपो निहन्याद्विजकोटिहस्याः ॥४५॥

अनेनैव च मन्त्रेण जपः कार्यः सुमेधसा । लक्ष्मंख्ये कृते तस्मिन्नुद्यापनविधिं चरेत् ॥४६॥

आप आज्ञा दें तो मैं थोड़ेसे फल तोड़कर खा लूँ। सीताने कहा—है महावीर बालक। इस बघोचेका मालिक रावण है ॥ ३४ ॥ तुममें कुछ भी शक्ति नहीं मानूँ मर रह गयी है। तब तुम किस तरह फल लाओगे ? हनुमान्जीने कहा कि मेरे हृदयमें 'श्रीराम'के नामका एक प्रबल शस्त्र है। उसके प्रभावसे लक्ष्मणके सब राजस मेरे सामने तिनकेके बराबर है। ऐसा कह और सीताजीकी आज्ञा पाकर हनुमान्जी जंगलमें घुस पड़े और पेड़ोंको उखाड़ उखाड़कर फेंकने लगे। वह समाचार सुनकर बहुतसे राक्षस जा गये और उनके साथ तुमुल युद्ध हुआ। किन्तु अन्तमें श्रीरामनाममन्त्रके प्रभावसे हनुमान्जीने उन सब राक्षसोंको भार डाला और लक्ष्मणगीको भी अलाकर राख कर दिया। फिर लौटकर अशोकवनमें गये। वहाँ सीताको प्रणाम किया ॥ ३५-३६ ॥ फिर उनका अलंकार लेकर रामचन्द्रजीकी ओर लौट पड़े। रामके पास पहुँचकर उन्होंने वह अलंकार रामको दिया और उनके चरणोंके पास बैठ गये ॥ ३६ ॥ रामने वह अलंकार हाथमें ले लिया और सीताका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुए। हे युधिष्ठिर ! यह सब रामनामका माहात्म्य है ॥ ४० ॥ इसलिए हे राजन् ! तुम भी रामनामका जप करो। युधिष्ठिरने कहा हे कृष्ण ! इस रामनामके जप करनेका क्या विधान है ? इसका पुरश्चरण कैसे किया जाना है और उद्यापनकी क्या विधि है ? यह सब आप हमें अच्छी तरह समझाइए। श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा हे राजेन्द्र ! आपको चाहिए कि स्नान करके किसी पवित्र स्थानपर बैठे और तुलसीकी मालापर रामनामका जप करे। अथवा किसी पुस्तकपर लिखे या हृदयमें स्मरण करे। अपनी संख्या एक करोड़ अथवा एक लाख होनी चाहिए। ४१-४३ ॥ वैसे तो रामचन्द्रजीके अनेक मन्त्र हैं, किन्तु उनमेंसे एक उत्तम मन्त्र मैं तुमको अल्लाहा हूँ ॥ ४४ ॥ पूर्वमें श्रीराम शब्द, मध्यमें जय शब्द और अन्तमें दो जय शब्दोंसे मिला हुआ ( श्रीराम जय राम जय जय राम ) राममन्त्र यदि इक्कीस बार जप जाय तो वह करोड़ों इन्द्रजित्वाओंके पापोंको नष्ट कर देता है। ४५ ॥ बुद्धिमान् पाषण्डको चाहिये कि

जपाच्छतगुणं पुण्यं रामनामप्रलेखने । लभे लभे पृथक्पुण्यमुद्यापनमनुचमम् ॥४७॥  
 उद्यापनविधानं च संक्षेपेण वदामि ते । पूर्वेषु कृतार्थां स्याद्राश्रीं सहस्रिकान्तरे ॥४८॥  
 रामलिङ्गात्मके भद्रे रामनौमद्वेदेऽथवा । अष्टोनमस्सहस्रात्म्ये अष्टोनमस्तुनेऽथवा ॥४९॥  
 धान्यराशीं मध्यदेशे कलशं स्थापयेत्ततः । तन्मुखे स्वर्णपात्रं वै कञ्चस्त्रापशोभिते ॥५०॥  
 सीतालक्ष्मणसंपुर्णां राघवप्रतिमां शुभाम् । आभूषणपल्लवपेन्तां मौवर्णीं प्रतिमां यजेत् ॥५१॥  
 राजती वा ताम्रमयी विष्टशास्त्रं न कारयेत् । उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्सुमयाहितः ॥५२॥  
 रामनामांकितं द्वैमपत्रं तन्पुरतोऽर्चयत् । कथां श्रुत्वा च विविचदेवदेवं क्षमापयेत् ॥५३॥  
 सपराधं च क्षणं भद्राक्तिनिर्गतं हि माम् । दीनानाय कृपामिन्धो त्राहि समारसगरात् ॥५४॥  
 राक्षो जागरणं कृत्वा गीतवार्धश्च मंगलैः । ततः प्रभातसमये स्नान्वा होमं समाप्तामेत् ॥५५॥  
 दशांशेनैव होमः स्यान्नदशांशेन तर्पणम् । रात्र्यन पयसा कार्यं राममंत्रेण यन्मतः ॥५६॥  
 तस्यापि च दशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । आचार्याय भवन्मां वा सालंकारां सवासमाम् ॥५७॥  
 भक्त्याऽर्पयेन्ममगुवर्णं व्रतमपनिहेतवे । अन्त्यानपि द्वित्रास्तोष्य राज्यं लक्ष्मीं ममाप्नुयाम् ५८॥  
 पुत्रार्थं लभते पुत्रं धनार्थं लभते धनम् । नानादानानि तीर्थानि प्रदक्षिणतरीणि च ॥५९॥  
 तानि सर्वाणि लक्षांशमभ्यास्य भवन्ति च । निष्कामो वा सकामो वा यः कुर्याद्भक्तिमपूतः ६०॥  
 तस्य सर्वेऽपि लक्षांशमभ्यास्य भवन्ति च । लिखिन्वा पुष्पाकं वापि वरं रामायणस्य च ॥६१॥  
 एवमुद्यापनं कार्यं श्लोकमन्त्रयादभोजनः । पूर्ववद्वनं कथं तदशांशाच्च तर्पणम् ॥६२॥

इसी मन्त्रका रूप को छोड़ कर दूसरी मन्त्रका संज्ञा (कलश हो यात्रा एवं उद्यापन कर ॥ ४६ ॥) उसकी व्याख्या  
 सोचना अधिक पुण्य रामनामके लिखनेमें है । माधवका चाहिय कि जब जब रामनामकी लेखनका पूरा एक  
 लाख हो जाय, तब तब उद्यापन करे ॥ ४७ ॥ अब संक्षेपमें उद्यापनकी भी विधि बतलाता है । जिस दिन  
 उद्यापन करना हो, उस दिन एक दिन पहले उपवास करे और रात्रिके समय उद्यापनके लिये बनसी हुई  
 मण्डपिकामें या रामलिङ्गात्मक भद्र तथा राक्षताभद्र, अष्टोनमस्सहस्रात्म्य वा अष्टोनमस्तुनात्म्य भद्रम धान्यराशि  
 स्थापित करके उसके मध्यमें कलश रखे । कलशके मुखपर एक स्वर्णपात्र रखकर उसपर सुन्दर कपड़ा  
 ओढ़ावे और सीता-लक्ष्मणके साथ साथ रामकी कृप्य प्रतिमा न्यापित करे । प्रतिमा कमसे कम एक मासे  
 सोतेकी होना चाहिये ॥ ४८-४९ ॥ यदि नुवर्गका प्रतिमा न बन सके तो धाँदी या लोहेकी बनवा ले । किन्तु  
 कच्ची करना ठीक नहीं है । प्रतिमा स्थापन करनेके अनन्तर पांडरा उपचारोंमें उसकी पूजा करे ॥ ५२ ॥  
 रामनामसे अंकित सुवर्णपात्र प्रतिमाके सामने रखकर उसका भी पूजा करे और मगवायकी कथा सुनकर लला-  
 प्रार्थना करे ॥ ५३ ॥ फिर बहे—हे दीनानाय हे कृपायनाय ! हे कृपामिन्धो मैं बड़ा अपराधी हूँ, किन्तु  
 क्षमा कर दो । मुझे इस संसार-सागरमें उधारिए ॥ ५४ ॥ रातभर गान और जात्रे जात्रिके साथ जागरण  
 करे और सबरे उठे तो स्नान आदि निम्नकर्माँमें निवृत्तकर होम करे ॥ ५५ ॥ जितना जप करके पुण्यसंग्रह  
 किया गया हो, उसका दशांश द्वयन और द्वयनका दशांश तर्पण करना चाहिये । तर्पण गौके दूधसे करनेका  
 विधान है ॥ ५६ ॥ तदनन्तर तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन कराये और वन पूर्ण करनेके लिए आचार्यको  
 बस्त्राभूषणसं अङ्कित एक भवन्मा गौ दे ॥ ५७ ॥ आचार्यके आतिथ्य जो ओर-ओर ब्राह्मण आवे हों, उन्हें भी  
 प्रसन्न करे । ऐसा करनेसे प्राणोंको राज्य एक लक्ष्मिक प्राप्त होना है ॥ ५८ ॥ जो पुत्र चाहते हों, उन्हें  
 पुत्र जोर जो बन चाहते हों, उन्हें धनकी प्राप्ति होती है । संसारमें मिलने शान, तीर्थ, प्रदक्षिणा तथा उपस्कार्य  
 हैं, वे सब इस रतके ललाणके बराबर हैं जो मनुष्य निष्काम या सकाम भावसे भक्तिपूर्वक यह बन करता  
 है, उसकी सब कामनाये पूर्ण हो जाती हैं । यदि इस आनन्दरामायणकी पुस्तक लिखकर किसी विद्वान्  
 ब्राह्मणकी भी नाय तो उसका पुण्यका तो किसी तरह वर्णन हो नहीं किया जा सकता ॥ ५९-६१ ॥ इसके  
 उद्यापनका विधान एक इस प्रकारका हुआ । दूसरा प्रकार यह है कि आनन्दरामायणकी जितनी श्लोकसंख्या है,

हस्यापि च दशांशेन कुर्यात्त्रक्षणभोजनम् । पूर्वश्लोकेन वाऽन्वेन हवनादि प्रकीर्तितम् ॥६३॥  
 अथवा ग्रन्थश्लोकानां दशांशहवन स्मृतम् । अथवाऽग्रे बह्वमणगीत्या वै अकृतस्य च ॥६४॥  
 श्लोकं निष्कास्य वै ग्रन्थादाचरेद्वचनादिकम् । अथवा रामगायत्र्या राममंत्रस्तु वाऽऽचरेत् ॥६५॥  
 हेमपत्रे त्वेक एव लेख्यः श्लोकः शुभारम्भः । अत्रेष्टित्वा पूर्वमन्त्रं ह्रस्वपत्रे सविस्तरम् ॥६६॥  
 राममूर्तेः पुनः स्याप्य सर्वं तद्गुण्वेदेयम् । श्रीरामचरितम् कृत्वा स्वेष्टमुद्यापनं नरैः ॥६७॥  
 अत्रैवमेव कर्तव्यं कविनाकल्पोत्तुपे । देवान्भक्तजानानां वृक्षाणां वापिह्रस्वयोः ॥६८॥  
 सर्वापणानां पणानां चिह्नार्थं गोपिनां नृणां च । काव्यानां च कवीनां च पद्यादीनां च सर्वथा ॥६९॥  
 राजप्रासादवासत्वां नामकर्म विशिष्टरते । विना कर्णोपदेशेन स्थावराणां विधानकम् ॥७०॥  
 कृत्वा नामकर्मणश्च कार्यमुद्यापनं नतः । लघुपुष्पे, पूजनादि यद्यच्छ्रीराघवस्य च ॥७१॥  
 सतीपार्श्वं कृतं तस्य कायमुद्यापनं वरम् । एव राजन् प्रया मर्ये तवाग्रे विनिवेदितम् ॥७२॥

रामनामप्रभावेण स्वीयं राज्यं लभिष्यसि ।

श्रीरामदास उवाच

पुधिष्टिरस्तु तच्छ्रुत्वा कल्पिते यथाविधि । ७३॥

मानत्रयेण तत्पुंश्च राज्यप्राप्तिर्भविष्यति । अन्ते च परमं स्थानं लभिष्यसि मनोर्वलात् ॥७४॥  
 एव कथा भविष्या च तवाग्रे विनिवेदिता । रामनामस्य विधानमिमं नरः शृणोति यः ॥७५॥  
 परमभक्तियोगेनः पुत्रपौत्रजनसुखम् । सुखि भुक्त्वा प्राप्नुयात्परमं मोक्षपदं तु यः ॥७६॥  
 नित्यं व्याख्या श्रीरामांश्च कथय्यात्यन्तिमक्तिनः । आनन्दगमचरितव्याख्याऽन्यस्य विस्तरात् ॥७७॥  
 सर्गस्य चार्धसर्गस्य पादसर्गस्य वा तथा । नवश्लोकमित्तं चापि श्लोकवात्रस्य वा तथा ॥७८॥

उसके दशांशले हवन करे । हवनका दशांश प्राज्ञभोजन कराये । यह उद्यापनका दूसरा प्रकार हुआ । नव तीसरा प्रकरण चलता है । आगे बतलाये जानेवाले कर्मके अनुसार इस प्रकरणसे उक्त श्लोक निकालकर हवन आदि करे । अथवा रामगायत्रे या राममंत्रसे हवन आदि कर ॥ ६२-६५ ॥ मृगणके पत्रपर केवल एक श्लोक या पूर्वकांश्च विष्णुन रीतिसे कई श्लोक लिखकर उसकी पूजा करे और अंतमें उसे पुरुषो भक्ति कर दे । जयवा रामचन्द्रजीके विषयकी कई एक कविता बनाकर उद्यापन करे, ६६ । ६७ ॥ जिन श्लोकों कविताका फल मानकी इच्छा हो, उन्हें ही उद्यापन अवश्य करना चाहिए । कई रत्नाकर, गणेशालय तथा अष्टशाला बनवाने समय, वृक्ष लगाने समय, मरने या दूधकी प्रतिष्ठाके समय, किसी पुरुष या स्त्रीके विवाहके समय यह उद्यापनविधि अवश्य करनी चाहिए । इनके अनिवार्य कविता या काव्य बनानेके समय और रामदासादिके निर्मलकाल भी उद्यापन करना अभिप्रेत है । उद्यापनके अनन्तर रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये ऐसा कि दीर्घ चलता आये है, उसके अनुसार एक लाख पुण्यांश रामकी पूजा करे । इसके सिवाय श्री श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये जो जो साधन बतलाये गये हैं उन्हें उद्यापनके समय अवश्य करे । इस प्रकार से राजन् ! मैंने आपके समक्ष उक्त कर्मकी विधि बतलायी ॥ ६०-७२ ॥ यदि ऐसा करेंगे तो इसमें कोई संशय नहीं है कि रामनामके प्रभावसे आप मरने जाये हुए राज्यको फिर वापस पा जायेंगे । श्रीरामदास कहते हैं - ७३ कृष्णचन्द्रजीकी बतलायी हुई रीतिके अनुसार पुधिष्टिर तीस मास तक इस कृतका विधान करनेसे अपना राज्य फिर पा जायेंगे और सभी मंत्रके बन्धे बन्धनसे परमप्राप्तको प्रस्थान करेंगे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ हे विष्णुदास ! मैंने तुम्हें यह भविष्यकी कथा बतलायी है । जो मन्दार भविष्यपूर्वक इस रामनामकी महिमाका वर्ण करता है वह संसारमें अत्रिचक्र रत्न है तबलक पृथक्पृथक् आदि सासारिक मन्त्रोंको भोगता है और अन्तमें मोक्षपद प्राप्त करता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ रामचन्द्रका चाहिये कि प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीके सामने इस आनन्दरामरण अवदा किनी हमारे रामचरितकी अन्तिमर्षक विचारसे व्याख्या किया करे ॥ ७८ ॥ यह आवश्यक नहीं कि भगवान् ग्रन्थके अधिक अंशकी हो । यह चाहे एक सर्गकी,

श्लोकार्धं श्लोकपादं वाऽऽनन्दरामायणस्थितम् ये पठन्ति नरा नित्यं ते नरा मुक्तिमग्निनः । ७९॥

येऽनन्धमूले मुनिवृक्षमूले तथा तुलस्याश्च सर्गापदेशे ।

पुष्पस्थले भास्करभृगुरग्रे श्रीरामचन्द्रस्य पुरः सदैव ॥८०॥

तथा सभायां द्विजवृन्दमध्ये नद्याम्नटे वा रघुनायकस्य ।

आनन्दरामायणमादरेण पठन्ति धन्या भुवि मानवास्ते । ८१॥

रामायणं लिखित्वा तु दातव्यं भृगुराय हि । ममग्रं वा कांडमेकं सर्गो वाऽनिसुपुष्पयदः । ८२॥

सर्गस्त्वेकः श्रुत्यहं हि लिखित्वाभृगुराय हि सख्यं देवशानंदरामायणममुद्भवः ॥८३॥

अशक्तेन तव श्लोकाः सदा देया विलेख्य च श्रेष्ठ्यर्थं रामचन्द्रस्य विप्रेभ्यः परिपूज्य वै ॥८४॥

नित्यदानमेतदेव कर्तव्यं सर्वदा नरैः, नित्यं सुवर्णमुद्राया दानेन यत्फलं मृतम् ॥८५॥

तत्फलं श्रुत्यहं सर्वदानेन लभ्यते नरैः । नानेन सदृशं दानं रघवस्यातिशेषदम् । ८६॥

तस्माद्वदयमेवैतदानं कार्यं निरंतरम् श्रीरामचन्द्रायैव नवपूजकैश्च । ८७॥

नामवल्लानन्दनैस्तान्मृतैः सोपचारकैः, पृथङ्मनभृगुरग्रेऽप्यो नित्यं सदक्षिणः । ८८॥

अशक्तेनैक एवापि देयस्तावत् उत्तमः । न तावत्तममं दानं किंचिदस्ति जगत्त्रये ॥८९॥

ताम्रतलः शुद्धिदः प्रोक्तस्ताम्रतो मंगलप्रदः । ताम्रतलः श्रीरामो वनेपताम्रतो गद्याप्रियः । ९०॥

तस्मान्प्रयत्नतस्तस्या देयस्तावत् उत्तमः । सदा राम पूजयेच्च सदा राम विचिंतयेत् । ९१॥

श्रीरामस्मरणं नित्यं कार्यं मकर्या मुदुर्बुद्धः यस्तः च यथा गमनाय हस्ती पूजनयन्तरी । ९२॥

श्रीरामचरितान्येव श्रोतुकामा च पञ्चरुतिः गमनीयानि गणेशान् रामभेदाणि यानि च । ९३॥

यदघ्नी गतुकामो तु गमपूजोत्सवान् व्रजान् । सद्रन्तुकामो यन्नत्री स धन्यः पुरुषः मृतः ॥९४॥

साथ सर्गकी, सर्गके चतुर्गणकी, जो प्रलोकोको, केवल एक प्रलोकोको, आपने प्रलोकोको, आपने या चौपाई प्रलोकोको जैसे बने ध्यानमा अवश्य करता जाय । जो लोग नित्य ऐसा करते हैं, वे मनुष्य अवश्य मुक्तिके भागी होते हैं । ७८ । ७९ । जो लोग दीपस्क नील, अमर्या वृक्षके नील, नृत्साक पाम, किसी पवित्र स्थानमें, मूर्गदेव या ब्राह्मणके सामने अथवा रामचन्द्रजी के समक्ष किया सभामें, ब्राह्मणोंको मण्डलीम या तरीके तदपः जो लोग आनन्दरामायणमें लिखे हुए चरित्रका पाठ करते हैं वे मनुष्य धन्य हैं । ८० । ८१ ॥ समग्र एक काण्ड अथवा एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर यदि किसी ब्राह्मणकी दिया जाए तो भा बड़ा पुण्य हुंका है । रामके उपासकको चाहिये कि नित्य एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर उसको पूजा करे और किसी ब्राह्मणको दान दे दे ॥८२॥८३॥ यदि पूजा सर्ग लिखनेमें असमर्थ हो तो तब केवल जो प्रोक्त हो लिखकर उसको पूजा करे और रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये विप्रको दान दे दिया करे । ८४ । सर्गकी चाहिये कि लोग दान के चवकरम न पहकर सर्वदा इसोका दान दिया करे । नित्य सुवर्णको मुद्रा दान करनेमें जो फल मिलता है, वही फल केवल एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर दान देनेसे प्राप्त हुंका है । रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला हमने बतकर और कोई भी दान नहीं है । ८५ ॥ ८६ ॥ बतपुत्र निरंतर अवश्यमेव हमका दान करना चाहिए । अथवा रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिए जो सुवर्ण अथवा अन्य वस्तुओं और दक्षिणके साथ ही पानके पत्ते की ब्राह्मणोंको दान दिया करे । यदि ऐसा न कर सके तो केवल एक ताम्रतलदान दिया करे । क्योंकि होतो लोकोंने ताम्रतलदानके बराबर और कोई भी दान नहीं है । ताम्रतल शुद्धि देनेवाला, मङ्गलप्रद, लक्ष्मीको बढ़ानेवाला और रामचन्द्रको प्रिय है ॥ ८७-९० ॥ इसीलिये लोगोको चाहिये कि प्रयत्न करके उत्तम ताम्रतलका दान करे, सदा सब लोग रामकी पूजा करे रामका ध्यात करें और रामका स्मरण करें । जिनकी वंशोमें रामनाम विराजमान है, जिनके हाथ रामकी पूजामें लगे हुए हैं, जिनके कान रामका गुणानुवाद मनुनेमें लगे हैं, जिनके पाँव रामेश्वर रामतीर्थ और रामक्षेत्रम जात रहते हैं और जिनके तब रामपूजनोंसब देखतेमें लगे

राम रामेति रामेति ये वदन्ति जना ह्यपि महामातृकिमस्नेह्य मुक्तिं याति न संशयः ॥ ९५ ॥  
रामचन्द्रेति मन्त्रोऽस्ति चागस्ति वशवर्तिनी । तथापि निरये घोरे पतनीन्यङ्गुलं महत् ॥ ९६ ॥

श्रीरामनामाभूतमंत्रयोऽयमबोद्धो चेन्मनसि श्रविष्टा ।

हस्ताहलं वा प्रलयात्मकं वा मृत्योर्भूतं वा विश्वनाशकं वा ॥ ९७ ॥

आमने च तथा निद्राकाले बोधनकर्मणि । क्रीडने गमने निष्यं राममेव विचिन्त्येन ॥ ९८ ॥  
अश्लीलः कीर्त्तनीर्धननीयः मदा नरैः । गोपश्च रमो क्षुपरेऽप्यो राम एवाजीनले ॥ ९९ ॥  
स्वर्गे सुराणामभूतं यस्य ऽस्ति एवम शुभम् । रामनामाभूतं भूम्या अयं नाप्नोति र्वं कदा ॥ १०० ॥  
गोपीचन्दनस्त्रिमासो राममुद्राङ्कितो नरः । रामनामोऽप्यथ कश्च तुलसीकाण्डमाङ्कितः ॥ १०१ ॥  
शंखचक्रमृदापद्मधारको राममनसः । यस्म्ययं स नरो धन्यो नेनश्च कदाचन ॥ १०२ ॥  
स एव पुरुषोऽप्यो यो रामनाम मदा वदेत् । स एव पुरुषा निष्यस्यथ गर्भं स्मरेन्न यः ॥ १०३ ॥  
ये नराः शिवमङ्कितं कृत्या निदन्ति राघवम् । एवं च स्वाम्नेऽपि नरा हंसावर्त्तनले ॥ १०४ ॥  
राम एव इमे जेय शिव एव रघूनमः । उदारीर्नारिणश्च मेरुद्वि नारकी नराः ॥ १०५ ॥  
रामशङ्करयोश्च भिन्नं येन मानितम् । अजामादस्तनवश्च नम्य जन्म कृशा गतम् ॥ १०६ ॥  
शशोश्च हृदयं रामो रामश्च हृदयं शिवः । नैवानरं कन्यानीयं कृतकारिण्यर्धनरैः ॥ १०७ ॥  
रामेति द्वयक्षरं नाम ये वदन्ति त्वदनिगम् । न कस्यापि भयं तेषां जीवनमुक्तयः ते नराः ॥ १०८ ॥  
राममुद्राङ्कितं दृष्ट्वा नरः ते धर्माङ्कितः । पद्मयन्त्रे दक्ष दिशः सिद्धं दृष्ट्वा गता यथा ॥ १०९ ॥  
ललाटं गुण्ठरेणे च कृत्याङ्गे जठरे तथा । हृदये हृत्पयोर्धे हि मन्त्राङ्के त्वनि र्वं नर ॥ ११० ॥

रहते हैं, वे मुख्य धर्म हैं ॥ ९१-९४ ॥ जो लोग इस मन्त्रार्थ राम-राम मन्त्र नाम जपते हैं वे महापातकों ह्रात हुए भी मुक्तिका प्राप्ति होते हैं ॥ ९५ ॥ जिनके पास 'रामचन्द्र' यह भग्न है और बाणी अत्यन्त वशम है, फिर भी वे लोग घोर नरकम पड़ते हैं, यह महान् आश्चर्य की बात है ॥ ९६ ॥ श्रीरामनामका अभूतमन्त्र-बीजकी सज्जा करने। यदि मनमें बँट गया तो हस्ताहल विष, प्रलयात्मक और मृत्युके पुत्रम भी पुन जलस काई भय नहीं रह जाता ॥ ९७ ॥ लोगका तो ख डिए कि उडन, डेडन, सन लान, पन सनन, कुदने या कहीं जाने जाउ समय एकमात्र रामका स्मरण करे ॥ ९८ ॥ मदा उन्हीक गुणा उवाड पुन उन्हीक करिअका कीर्त्तन कर और उन्हीका गुण गाये ॥ ९९ ॥ रामम जिस प्रकार अमृत परम मङ्गलकार है : उन्हीक सहज भूमण्डलपर कदा भी न नष्ट हुनवाला रामनामकारी अनृत है ॥ १०० ॥ जो पुरुष योगचक्रन लगाते, राममुद्राम अङ्कित रहते, रामनामका उच्चारण करे मृत्यु (वास) की माया पहनत, लस, चय, बदा और पयका चिह्न चरण कान और मनमें सब समय रामक स्मरण करने हैं । ऐसे शर्णा जहाँपर रहते हैं, वह स्वर्ग और वे मनुष्य बनते हैं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ वही पुरुष सब गत्याय अगुमा बन सकता है, जो मदा रामनामका जप किया करता है और वही पुरुष निन्दाका भाजन है, जो कदा रामचन्द्रजीका स्मरण नहीं करता ॥ १०३ ॥ जो मनुष्य शिवजीकी भक्ति करके रामचन्द्रजीका निन्दा करत है, उन्ही इस भूमण्डलम गवा सम्पन्नता चाहिये ॥ १०४ ॥ राम ही शिव है और शिव ही राम है । इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है । जो प्राणी इनमें कोई भेदभाव मानता है, वह नरकगामी होता है ॥ १०५ ॥ इस समागम जिसने राम और शिवमें कोई भेद माना तो बकरीके गलक स्तनक समान उसका जीवन नृपा गया ॥ १०६ ॥ शिवजीके हृदय राम है और रामके हृदय शिवजी है । लोगोंको चाहिए कि विविध प्रकारके कृतकर्म परकर इनमें कोई भेद न माने ॥ १०७ ॥ जो लोग रात दिन 'राम' ये दो अक्षर बहा करत हैं, उन्ही कितना भय नहीं रह जाता और वे प्राणी आकषुक्त हो जाते हैं ॥ १०८ ॥ राममुद्राके चिह्निन मनुष्यको देखकर दमके हुन उसी तरह दसी दिशाओंमें जाग जाते हैं, जैसे सिंहको देखकर हाथी भाग खड़े हुन हैं ॥ १०९ ॥ अतएव लोगोंका यह परम कर्तव्य है कि गोपीचन्दनसे अङ्कित राममुद्रा धारण करें । क्योंकि राममुद्रा महान् श्रेष्ठ वस्तु है और इस प्रकारके

राममुद्रा धार्ण्या गोपीचन्दनविह्वला । राममुद्रा मदाश्रेष्ठः सर्वदोषनिर्मुक्तनी ॥१११॥

सदा देहे नैर्भाया गोपीचन्दनविह्वला राममुद्रास्मिन् यदेहे त पाप स्पृशने न हि ॥११२॥

स्तुतिः सर्वत्र रामस्य स्नात्रैः कार्या त्वर्दानशम् । शार्वाङ्गैश्च नर्वाङ्गैश्च स्वबुद्ध्या रचितैर्गणैः ॥११३॥

स चाग्निरर्वा जलनाऽथविष्णुश्च यस्मिन्प्रतिश्लोकमवदूकन्यपि

नामान्धनवस्व यशोऽङ्गिना नि पञ्चदशानि गायन्ति गूणानि साधवः ॥११४॥

कवित्वमन्यशुद्ध च रामनाम्नाङ्कितं च यत् । नञ्जयमनिशुद्ध च भवणान्पलकपहम् ॥११५॥

यस्मिन् रामस्य कृष्णस्य चित्राणि मङ्गानि च । कश्चिन्ने नन्वप्ययमं सदा येष महत्तमैः ॥११६॥

मृणु छिप्य नवाश्रेष्ठपद्मस्य किञ्चिद्वीर्यपदम् । कविताविषय यच्च सर्वमन्त्रैर्हनाशकम् ॥११७॥

अश्वन्धाम्ना बलिर्धामो हनुमांश्च विभीषणः । कुबः परशुरामश्च सर्वमे चिरजीविनः ॥११८॥

एवं यद्वचनं शिष्य प्रोच्यते सर्वदा युधेः । तदग्रे सर्वदा मन्य ज्ञेय कल्मषुगेऽपि च ॥११९॥

येषु मन्त्रवत् भूम्यां वर्ततेऽत्र नरेषु हि । अश्वन्धामांशभूतास्ते ज्ञेयाश्च पुरुषा युधि ॥१२०॥

न्यायोपाजितद्रव्येण राज्यं कुर्वन्ति धर्मतः । बल्यश्वभूतास्ते ज्ञेया मन्त्रवः जगतीयले ॥१२१॥

रामस्तुतिं कवित्वे ये चित्रं वर्णयन्ति च । ज्ञामांशभूतास्ते ज्ञेया मानवा जगतीयले ॥१२२॥

ये ये वीरास्त्वथ भूम्यां वायुपुत्रांश्चरन्ति । ते ते ज्ञेया नरान्धनस्य विजयावेत्यचरकाः ॥१२३॥

ये ये शान्ता रक्षभक्ताः मन्यत्र मानवा भुवि । विभीषणांशभूतास्ते ज्ञेयाश्च मकरजर्जराः ॥१२४॥

ये धर्मव्यती पोद्धारः मन्यत्र मानवा भुवि । कृपाचार्यशभूतास्ते ज्ञेयाः सर्वं युधे सदा ॥१२५॥

ये वीराः क्रोधयुक्तास्तेऽत्र सर्वजगतीयले । जामदग्न्यशभूताश्च सदा ज्ञेया नरोत्तमैः ॥१२६॥

दोषोंको नष्ट करती है। अतएव लम्हा, गुहजन, शोभो कुक्षि, उत्तर, उत्तर, राजा भूताओं और अश्वत्थक इन स्थानोंमें जो राममुद्राओंको स्मरण करना चाहिये ॥ ११० ॥ १११ ॥ ये मुद्रा स्मरण करना परमावश्यक है। क्योंकि जिसके माग्यस्य राममुद्रा विद्यमान रहता है उसे किम् प्रकारका पापक नष्ट लगव ॥ ११२ ॥ उपालकोको यह भी उचित है कि विविध प्रकारके स्वर्गों द्वारा रामचन्द्रजीं नमस्कार करना। तत्पश्चात् प्राचीन हो, नवीन हो या जपनी बुद्धिसे बनाये गये हों ॥ ११३ ॥ रामक पणमें अङ्गित मन्त्रालय गुणानुवादमन्त्रावली वक्तोंका प्रवाह प्राणियोंके महान् पालकोंका भी होता है। जन्तु जगद्गुरु, गाय और मनुज कर्त रामक नाममें अङ्कित कविता चाहे अतिशय अशुद्ध हो, फिर भी उसे अतिशुद्ध मानना चाहिये। उसके गुणनेसे एक तरहक पापक नष्ट हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ जिस कवितामें राम और कृष्णके महान् चरित्रोंका वर्णन किया गया हो, वह अत्यन्त पवित्र होता है। बड़े लोगोंका चाहिए कि सदा ऐसा कविताका पान करें ॥ ११६ ॥ श्री रामदासजी विष्णुदासमें बहुत इच्छा है कि अब वे मुझमें आगे सब प्रकारके सन्दर्भका निवृत्त करनेवाला एक गुप्त कविताका विषय बह रहा है ॥ ११७ ॥ अश्वन्धामा, बलि, धाम, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम ये सप्त चिरजीवी हैं ॥ ११८ ॥ प्रायः पण्डित लोग इस बातका कहना करते हैं। हमें इस कल्मषुगेमें भी सत्य ही मानना चाहिए ॥ ११९ ॥ इस पृथ्वीपर जितने लोगोंके पास मन्त्रवत् विद्यामान है, उनका अश्वन्धामाका अंशतः मानना चाहिए ॥ १२० ॥ जो राजे न्यायोपाजित द्रव्यसे धर्मवर्धक राज्य करते हैं, उनका इस समयमें बलिंके अंशसे उत्तरप्र समझना चाहिये ॥ १२१ ॥ जो लोग कविता करते हुए रामको स्तुति करने या उसके चरित्रोंका वर्णन करते हैं, जगतीयत्वमें उन मनुष्योंके नामके अंशसे उत्तर मानना चाहिये ॥ १२२ ॥ इस भूमण्डलमें जो जो वीर हैं वे सब हनुमान्ज के अंशज हैं। ऊपर बतलाये हुए गुण ही उनके प्रकारके मनुष्योंके चिरजीवित्वकी सूचना देने रहते हैं ॥ १२३ ॥ इस पृथ्वीमें जितने मानव रामभक्त हैं, उन्हें सब लोभ विभीषणके अंशसे उत्पन्न समझें ॥ १२४ ॥ इस संसारमें जो वीरोंके साथ युद्ध करनेवाले लोग हैं, उन्हें कृपाचार्यके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२५ ॥ इस पृथ्वीमण्डलमें जितने क्रोधी वीर हैं, उन सब लोगोंको



चिरंजीवीति न्यासः कः कथं हेयो जनैर्दुर्वि । तस्य स्वरूपं बहूनि मावधानमनाः शृणु ॥ १२७ ॥  
 ये जीर्वाण्या कदिन्यानि करिष्यन्त्यवनीतले । व्यामोक्षभूतास्ते ज्ञेयाः पंडिता मानवास्त्विह ॥ १२८ ॥  
 ये रामचंद्रं कुण्डं च शिवं स्तुभ्यस्तुवंति हि । वर्णयति चस्त्रिणि ते ज्ञेयाः व्यानमूर्तयः ॥ १२९ ॥  
 ये राजानं च गणिकां नारीं राज्ञः सर्वा तथा । नरं स्तुवंति स्तुभ्यः ते न ज्ञेयाः व्यानमूर्तयः ॥ १३० ॥  
 यावद्भूम्यां तु रामस्य चस्त्रिणि स्तुवीउ हि । तावत्तु स्मृतौ व्यामोक्षतो मुक्तिरमिष्यति ॥ १३१ ॥  
 किं कलं कस्य पाठकश्च पदुन्नरीमि तवधुना । शृणु स्वस्थमना विस्तरेणोच्यते च यत् ॥ १३२ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकाण्डे रामनामलघोद्यानाद्विचर्जनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ८ ॥

## अष्टमः सर्गः

( वेदादिकोंको फलश्रुति )

श्रीरामदास उवाच

शिरोऽग्राहनिभमुक्ता गायत्री परिकीर्तिका वेदाक्षगर्भा तुल्या या ज्ञेयैर्न मुनिभिः पृथगा ॥ १ ॥  
 चतुशतेन गायत्र्याः समित् परिकीर्तितम् । पाठशतं यत् एकं पदुन्नरं तदुन्नरम् ॥ २ ॥  
 तथोपनिषदः पुण्यं माधवपञ्चमख्यया प्रोच्यते पुण्यं लोके पुण्यं मुक्ताभिः पाठः ॥ ३ ॥  
 सहितापाठनः प्रोक्तं द्विगुणं पदपठनः । त्रिगुणं क्रमपाठे व्याज्जटापाठे तु पदुन्नरम् ॥ ४ ॥  
 महाभारतपाठस्तु वेदतुल्यः प्रकीर्तितः । पुराणानां तदर्धेन स्मृतानां च तथोच्यते ॥ ५ ॥  
 भारते भगवद्गीता तथा नामगदसूक्तम् । गायत्र्याश्च समं श्रेष्ठं पुण्यं पापक्षयेऽपि च ॥ ६ ॥  
 पाठेन यत्फलं प्रोक्तमर्थतानाच्चतुर्गुणम् । पदुन्नरेभ्यः श्रवणं च पुण्यं दशगुणं स्मृतम् ॥ ७ ॥

परशुरामके अंगुष्ठ उद्भव समझता जायित ॥ १२६ ॥ निरञ्जवाकी अब सका इत संसारन कंस पहुँचावता चाँद्री । इसके लिए इसका स्वकी चतुशते है । गुण सावधान होकर गुण ॥ १२७ ॥ जो जो लोग संस्कृत वाणीने की ता करणे, ये पण्डित पुण्य गायत्री अंगुष्ठ उद्भव मान जावैने ॥ १२८ ॥ जो लोग रामचंद्र, कृष्णचंद्र तथा शिवजी स्तुति में कया उन्नत चस्त्रिणि बखान कर उनको व्यासकी साक्षात् मुक्ति सम्पत्ता चाहिये ॥ १२९ ॥ जो लोग राजा, गणिका, स्त्री राज नभस तथा किसी व्यक्ति विशेषकी स्तुति करते हैं, वे व्यासकी मूर्ति नहीं माने जा सकत ॥ १३० ॥ इस पृष्ठद्वार प्रार्णा बचतक रामकी स्तुति करता है, तबतक वह स्थान गृह्य है और अन्तमे मुक्तिपद प्राप्त करता है ॥ १३१ ॥ किसी ग्रन्थको पाठ करनेसे क्या फल होता है, अब मैं इस बातको बतलाऊँगा । हे शिष्य । तुम स्वस्थ मन होकर सुनो, मैं विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ ॥ १३२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे ८० रामतेजवाण्डेपरिचरित-ज्योत्स्नाभाषाटीकासहित मनोहरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदास कहने लगे-वेदको शिरोऽग्राहनिसे गुप्त भी अक्षोबाली गायत्री कही गयी है ॥ १ ॥ बार भी गायत्रीके द्वारा पात्रमान नामक महासूक्त है, जिसमें छः ही मन्त्रोंका समावेश किया गया है ॥ २ ॥ गायत्रीकी अक्षरसंख्याके अनुसार उपनिषदोंके पाठसे पुण्य प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ सहितापाठको अपेक्षा दुगुना पुण्य पदपाठ करनेमें है । क्रमके पाठ करनेमें त्रिगुना पुण्य है और जटाके पाठसे छगुना पुण्य होता है ॥ ४ ॥ महाभारतका पाठ वेदपाठ सदृश होता है । पुराणोंका पाठ आधे वेदपाठका पुण्य देनेवाला है और उससे भी आधा पुण्य स्मृतिपोंके पाठसे होता है ॥ ५ ॥ महाभारतके अन्तर्गत भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम, वे दोनों गायत्रीके समान पुण्यदायक एवं कामकायकारी माने गये हैं ॥ ६ ॥ पाठसे जितना पुण्य होता है, उससे बीगुना पुण्य उसका अर्थ समझनेसे होता है और अच्छे-अच्छे भक्तोंको सुनानेसे दशगुना पुण्य प्राप्त होता

भूमिदाने यथा लोके सङ्गदानादप्युच्यते । तस्य दानं दण्डगुणं ततोऽपि प्यात्फलप्रदम् ॥ ८ ॥

आनन्दराय उवाच

कर्त्तव्यं दानं प्रकृतम् सुखमस्य भवति । कथं वा पात्रादप्येति ज्ञात्वा भवेत्ततोऽपि ॥ ९ ॥

आनन्दराय उवाच

वसन् सुखकुलं यस्तु निश्चिन्ताश्रीर्था ॥ १० ॥ अर्थात् साक्षात् पूर्णं स यथाकलमने फलम् ॥ १० ॥

शिव्यायाध्यायकम् विमलितं यत्नः ॥ ११ ॥ यथा ॥ ११ ॥ यथा ॥ ११ ॥ यथा ॥ ११ ॥

पदपदे ॥ १२ ॥ यथा ॥ १२ ॥ यथा ॥ १२ ॥ यथा ॥ १२ ॥ यथा ॥ १२ ॥

ततोऽप्युत्तिष्ठन्पुण्यं ॥ १३ ॥ यथा ॥ १३ ॥ यथा ॥ १३ ॥ यथा ॥ १३ ॥

अथापि विपुलं ॥ १४ ॥ यथा ॥ १४ ॥ यथा ॥ १४ ॥ यथा ॥ १४ ॥

अथोप्यपि न ॥ १५ ॥ यथा ॥ १५ ॥ यथा ॥ १५ ॥ यथा ॥ १५ ॥

प्रज्ञायामि ॥ १६ ॥ यथा ॥ १६ ॥ यथा ॥ १६ ॥ यथा ॥ १६ ॥

यथा ॥ १७ ॥ यथा ॥ १७ ॥ यथा ॥ १७ ॥ यथा ॥ १७ ॥

यथा ॥ १८ ॥ यथा ॥ १८ ॥ यथा ॥ १८ ॥ यथा ॥ १८ ॥

यथा ॥ १९ ॥ यथा ॥ १९ ॥ यथा ॥ १९ ॥ यथा ॥ १९ ॥

यथा ॥ २० ॥ यथा ॥ २० ॥ यथा ॥ २० ॥ यथा ॥ २० ॥

यथा ॥ २१ ॥ यथा ॥ २१ ॥ यथा ॥ २१ ॥ यथा ॥ २१ ॥

यथा ॥ २२ ॥ यथा ॥ २२ ॥ यथा ॥ २२ ॥ यथा ॥ २२ ॥

यथा ॥ २३ ॥ यथा ॥ २३ ॥ यथा ॥ २३ ॥ यथा ॥ २३ ॥

यथा ॥ २४ ॥ यथा ॥ २४ ॥ यथा ॥ २४ ॥ यथा ॥ २४ ॥

यथा ॥ २५ ॥ यथा ॥ २५ ॥ यथा ॥ २५ ॥ यथा ॥ २५ ॥

यथा ॥ २६ ॥ यथा ॥ २६ ॥ यथा ॥ २६ ॥ यथा ॥ २६ ॥

यथा ॥ २७ ॥ यथा ॥ २७ ॥ यथा ॥ २७ ॥ यथा ॥ २७ ॥

यथा ॥ २८ ॥ यथा ॥ २८ ॥ यथा ॥ २८ ॥ यथा ॥ २८ ॥

यथा ॥ २९ ॥ यथा ॥ २९ ॥ यथा ॥ २९ ॥ यथा ॥ २९ ॥

यथा ॥ ३० ॥ यथा ॥ ३० ॥ यथा ॥ ३० ॥ यथा ॥ ३० ॥

यथा ॥ ३१ ॥ यथा ॥ ३१ ॥ यथा ॥ ३१ ॥ यथा ॥ ३१ ॥

यथा ॥ ३२ ॥ यथा ॥ ३२ ॥ यथा ॥ ३२ ॥ यथा ॥ ३२ ॥

यथा ॥ ३३ ॥ यथा ॥ ३३ ॥ यथा ॥ ३३ ॥ यथा ॥ ३३ ॥

यथा ॥ ३४ ॥ यथा ॥ ३४ ॥ यथा ॥ ३४ ॥ यथा ॥ ३४ ॥

यथा ॥ ३५ ॥ यथा ॥ ३५ ॥ यथा ॥ ३५ ॥ यथा ॥ ३५ ॥

यथा ॥ ३६ ॥ यथा ॥ ३६ ॥ यथा ॥ ३६ ॥ यथा ॥ ३६ ॥

यथा ॥ ३७ ॥ यथा ॥ ३७ ॥ यथा ॥ ३७ ॥ यथा ॥ ३७ ॥

यथा ॥ ३८ ॥ यथा ॥ ३८ ॥ यथा ॥ ३८ ॥ यथा ॥ ३८ ॥

यथा ॥ ३९ ॥ यथा ॥ ३९ ॥ यथा ॥ ३९ ॥ यथा ॥ ३९ ॥

यथा ॥ ४० ॥ यथा ॥ ४० ॥ यथा ॥ ४० ॥ यथा ॥ ४० ॥

यथा ॥ ४१ ॥ यथा ॥ ४१ ॥ यथा ॥ ४१ ॥ यथा ॥ ४१ ॥

यथा ॥ ४२ ॥ यथा ॥ ४२ ॥ यथा ॥ ४२ ॥ यथा ॥ ४२ ॥

यथा ॥ ४३ ॥ यथा ॥ ४३ ॥ यथा ॥ ४३ ॥ यथा ॥ ४३ ॥

उपनिषाधत्तवः स्मृतेश्चमष्टादश कृताः । शिक्षा कल्पे व्याकरण निरुक्त छन्द उज्जोतिषश्च ॥ २३ ॥  
 इत्थंगानि तु वेदस्य योऽन्योऽपि न कलं शृणु । पश्चात्पठ्यन्त्यर्थं तत्पठे पाठका कलम् ॥ २४ ॥  
 शिक्षा श्रान्तु वेदस्य कल्पः पाणी प्रकाशनी । दूरं दूरं गच्छ भोक्तं निरुक्तं श्रौतसंज्ञाते ॥ २५ ॥  
 उज्जोतिष नयनं प्रादुर्बुद्धं पादातिनि ध्यायन् । निरुक्तं कल्पे कल्पे उज्जोतिषि पठे ॥ २६ ॥  
 सङ्क्षेपेन प्रकुर्यात् कलं तेषां चतुर्गुणम् ॥ २७ ॥  
 संहितापाठोऽप्युप्यर्थात्तु लभे कलम् ॥ २८ ॥  
 ज्ञानिकप्रश्नोपनिषत् न किञ्चिदप्यर्थो न च । वेदोपरि गच्छेत्तु न च शिक्षा ॥ २९ ॥  
 न वेति गणितं यस्तु ज्ञेयो न चतुर्विधः । ज्ञानं न हि विदुः स न चतुर्विधः ॥ ३० ॥  
 इत्येवमपि च कदा शास्त्रं योऽनर्थोऽपि द्वितीयः । अर्थोऽपि न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३१ ॥  
 द्विचिच्छायाऽपि योऽपि योऽपि पठेत् । ज्ञानं न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३२ ॥  
 अर्थोऽपि ज्ञानं न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३३ ॥  
 ज्ञानाधिक्येन न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३४ ॥  
 स न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३५ ॥  
 न हि ज्ञानं न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३६ ॥  
 परं वादिनोऽपि ज्ञानं न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३७ ॥  
 वेदादिवर्षविद्यानमर्थज्ञानाय च । ज्ञानं न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३८ ॥  
 ज्ञानाधिक्येन तत्पठे वेदादिवर्षज्ञानं कलम् ॥ ३९ ॥

प्रमाणम् । ८ श्रीरह विद्याय ॥ आनुवाद, अनुवाद, मन्त्रं और अर्थज्ञानम् ॥ १३-२२ ॥ वे चार उपनिषाद हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और उज्जोतिष ये छ वंदर छत्र हैं । इनके अध्ययनका जो फल होता है, उसे मुनी । इनका पाठ करनेसे संहितापाठका भावा फल मिलता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ शिक्षा श्रान्तु वेदस्य कल्पः पाणी प्रकाशनी, दूर दूर गच्छ भोक्तं निरुक्तं श्रौतसंज्ञाते ॥ २५ ॥ उज्जोतिष नयनं प्रादुर्बुद्धं पादातिनि ध्यायन् । निरुक्तं कल्पे कल्पे उज्जोतिषि पठे ॥ २६ ॥ सङ्क्षेपेन प्रकुर्यात् कलं तेषां चतुर्गुणम् ॥ २७ ॥ संहितापाठोऽप्युप्यर्थात्तु लभे कलम् ॥ २८ ॥ ज्ञानिकप्रश्नोपनिषत् न किञ्चिदप्यर्थो न च । वेदोपरि गच्छेत्तु न च शिक्षा ॥ २९ ॥ न वेति गणितं यस्तु ज्ञेयो न चतुर्विधः । ज्ञानं न हि विदुः स न चतुर्विधः ॥ ३० ॥ इत्येवमपि च कदा शास्त्रं योऽनर्थोऽपि द्वितीयः । अर्थोऽपि न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३१ ॥ द्विचिच्छायाऽपि योऽपि योऽपि पठेत् । ज्ञानं न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३२ ॥ अर्थोऽपि ज्ञानं न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३३ ॥ ज्ञानाधिक्येन न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३४ ॥ स न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३५ ॥ न हि ज्ञानं न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३६ ॥ परं वादिनोऽपि ज्ञानं न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३७ ॥ वेदादिवर्षविद्यानमर्थज्ञानाय च । ज्ञानं न चतुर्विधः स न चतुर्विधः ॥ ३८ ॥ ज्ञानाधिक्येन तत्पठे वेदादिवर्षज्ञानं कलम् ॥ ३९ ॥

वेदार्थज्ञानतुल्याया द्वितीयायाः फलं भृशम् । प्रत्यक्षं तु लभते गायत्रीशतजं फलम् ॥४०॥  
 ये तु पशोगिनः पाशदुष्टान्य स्नेह्यते भवति हि । तेऽप्यर्थफलदा ज्ञेया व्यवधानाच्च पादशः ॥४१॥  
 वेदोपनिषदामर्थे शान्ताविक्रयाय चैव्यद्वेदः । प्रदीप सर्वविद्यानां यो जिहान्नायविस्तरात् ॥४२॥  
 वेदार्थज्ञानतुल्यं तु फलं तस्य तर्कीनिहम् । केऽलं जीवितायार्थं नृपः पठेन्न्यायविस्तरम् ॥४३॥  
 हेतुवादरसो ब्रह्मानज्ञायां नैव यः पठेत् । स भृशलो भवेदेव यद्विदुः क्षाप्यम्यया ॥४४॥  
 वर्षाणि तत्र नन्द्या वृथासाधनान्यनः । पुराणं वैष्णवं मास्त्र्यं कीर्म भामरानु तथा ॥४५॥  
 आदिन्यं मरुड स्कान्द मार्कण्डेयमष्टमम् । ब्रह्मज्ज्ञादित्तैस्यानि ब्रह्मवर्तमेव च ॥४६॥  
 भविष्योत्तरमास्त्र्यं पाञ्च वामनमेव च । वाराहं चैव वासुदेव छष्टादशानि नै त्विति ॥४७॥  
 महापुराणान्येतादि रामायणभवानि हि । रामायणान्पुराणानि व्यासेन खण्डितानि हि ॥४८॥  
 मतः पुराण नामाभूदेतेषां जगतीन्त्रे । आदौ कृतानि यान्यत्र तेषां जेष्ठमुत्तमचक्रः ॥४९॥  
 महाशब्दः प्रोच्यते हि वैष्णवं दिगु पृथ्विपु । पुराणात्ता न सर्वेषां फलं शिष्यं त्रीम्यदम् ॥५०॥  
 वेदतुल्यफलं पाठे श्रवणे च तदुत्तमम् । अर्थश्रयणतथास्य पुण्यं दशगुणं स्मृतम् ॥५१॥  
 वक्तुः स्याद्दिगुणं पुण्यं व्याख्यानपुण्यं शताधिकम् । अन्यान्यपुराणानि मति तेषां फलं शृणु ॥५२॥  
 विष्णुधर्मोत्तरं शैवं बृहन्नारदमेव च । भगवत्पुराणं च लघुनारदम् च ॥५३॥  
 भविष्यत्पर्वपुं स्यात्तन्त्रं भगवत् तथा । अष्टमं नारसिंहं स्यात्पुराणं रेणुकाभिधम् ॥५४॥  
 दशमं तन्त्रमात्रं स्याद्वायुशोकं तथैव च । नदिप्रोक्तं द्वादशं सप्तमं वायुशुक्लाभिधम् ॥५५॥  
 समनाग्दसवादस्तथा । हंसपुराणकम् विनायकपुराणं च बृहन्नारदमेव च ॥५६॥  
 पुण्यं विष्णुसहस्रं स्यादिति सष्टादशानि वै । एतान्युपपुराणानि पुराणार्थफलानि च ॥५७॥

फल मिलता है ॥ ४० ॥ जब ज्ञान बढ़ जाता है तो उसे व्यापसे आप वेदका अर्थ ज्ञात हो जाता है । भीमासा-  
 शास्त्रके दो प्रकार हैं । एक कर्मपरक दूसरा ब्रह्मपरक ॥४१॥ इन दोनोंमें पहले अर्थात् कारका मार्ग बतलानेवाले  
 भीमासाका अध्ययन करनेमें ब्रह्मपरकका पुण्य प्राप्त होता है और दूसरे ब्रह्मपरक भीमासाको पढ़नेसे जो  
 पुण्य होता है, उसे सूची । उत्तर भीमासाका अध्ययन करनेवाले, प्र जो जितने अक्षरोंको पढ़ता है, प्रत्येक अक्षरसे  
 उसे सौ गायत्रीके अर्थका पुण्य प्राप्त होता है । ४० ॥ ऐसे लाभ बड़ हैं । जययोगी विद्वान् होता है और श्रव्योको  
 उत्पत्ति उन्हीं व्याससे जाता है ॥ ४१ ॥ जो भृशपु वेदों और उपनिषद्के अर्थोंमें विद्याभोक्त प्रदीपस्वरूप व्याख-  
 शास्त्र पढ़ते हैं, उन्हें वेदार्थके नये नूतन फल मिलता है । विष्णु जी कहे हैं जो भिक्तिके जिस व्याखशास्त्रका अध्ययन  
 करता है और केवल हेतुद्वारे सत्य रहकर ब्रह्मजित्तै साक निर्मित नहीं पढ़ता । वह सुडा मनुष्य व्यासके  
 जितने अक्षर पढ़े रहता है, उसमें ही वर्यो तब गुराण हो-हुकर जन्म लेता है । इसमें कोई संशय नहीं  
 है । अब पुराणोंका गिनान है । वायव्य पराशर, कर्म, भामरानु, ॥ ४२-४५ ॥ आदिन्य, मरुड स्कान्द, मार्कण्डेय,  
 पञ्च, ब्रह्माण्ड, निग, ब्रह्मवैवर्त, भविष्यत्तर, अमृत्य, पञ्च वामन, वाराह और वायु ये अष्टादश महापुराण हैं  
 ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ये सभी महापुराण रामायणसे ही उत्पन्न हुए हैं । किन्तु व्यासजीने रामायण और पुराण इन  
 दोनोंमेंसे बहुतसे अंग काट दिए हैं ॥ ४८ ॥ इसी कारण इनका पुराण यह नाम पड़ा है । सबसे पहले  
 जो पुराण बनाये गये, उनका जेष्ठमूषक महाशब्द है । हे शिष्य । अब मैं तुम्हें पुराणोंके पाठका फल  
 सुना रहा हूँ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पुराणोंका पाठ करनेसे ब्रह्माडका फल मिलता है और उन्हे सुननेमें उससे आधा  
 फल मिला करता है । किन्तु पुराणोंके अर्थका अध्ययन करनेमें उसमें दशगुना अधिक फल होता है ॥ ५१ ॥ वक्ताको  
 दशगुना और व्याख्या करनेवालेको सौगुना पुण्य होता है । इनके अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी हैं । अब  
 सबका नाम सुनो— ॥ ५२ ॥ विष्णुधर्मोत्तर, शैव, बृहन्नारद, भगवत्पुराण लघुनारद भविष्यत्का छह पर्व,  
 वायव्य, नारसिंह, रेणुका ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इसकी नस्वसार वायु द्वारा कहा हुआ ग्यारहवीं, नदी द्वारा कहा  
 हुआ बारहवीं वायुवत्, मय और नारदका सन्वाय, हंसपुराण, विनायकपुराण, ब्रह्मज्ज्ञाद और पवित्र

भारतं वेदतुल्यं स्वादर्थतोऽधिकमुच्यते । तत्रापि भगवद्गीता विष्णोर्नाममहत्त्वम् ॥५८॥  
 दशाधिकफलं मोक्षं भारतादापि सर्वशः । श्रोताऽर्च्यं कलमाज्जितं भक्तिनाः शृणुषुषुषः ॥५९॥  
 भारतं न्वितिहामअ गमायणममुद्रयम् । यद्देवशठपुत्र्यं दञ्जयेव रामायणस्य च ॥६०॥  
 पाञ्चनदद्वैतधनो व्यासपात्रुध दशाधिकम् । नान्मरिचिता कुत यच्च अतश्चोदमविश्वम् ॥६१॥  
 तत्सर्वेषमादिभूतं महासंगलकारकम् । रामायणादत्र नाना भक्तिरामायणानि हि ॥६२॥  
 शेषमृतं चतुर्विंशसहस्रं प्रथमं स्मृतम् । तथा च योगं विष्णुमध्यात्ममाख्यं तथास्मृतम् ॥६३॥  
 बायुपुत्रकृतं चापि नादोक्तं तथा पुनः । लघुरामायणं चैव बृहदारामायणं तथा ॥६४॥  
 अमस्त्युक्तं महाश्रेष्ठं साररामायणं तथा । देहगरामायणं चापि वृत्तरामायणं पुनः ॥६५॥  
 मत्सरमायणं रम्यं भारद्वाजं तथैव च । शिरारामायणं कौव भारतस्य च जैमिनेः ॥६६॥  
 आत्मधर्मं श्वेतकेतुःकृपेऽर्च्यं जटायुषः ॥६७॥

रवेः पुलस्तकेदेव्याश्च सुहृदं मंगलं तथा । माथिजं च गौरीं च सृष्टीं च विभीषणम् ॥६८॥  
 तथऽऽनन्दरामायणमेतन्मंगलकारकम् । तत्र सहस्रतः पति श्रंरामचरितानि हि ॥६९॥

कः समर्थोऽस्ति तेषां हि सारं वाचकं सर्वस्तराजं

इत्येकोऽभिप्राये विभक्त्या चैव चैव ॥७०॥

सर्वेष्वप्यानंदमंजु परिष्टु श्रोत्र्यमे निदम अथ पाठेन यन्मुष्यं तच्च शिष्यं ब्रह्मम् ॥७१॥  
 शुककोटिमिरं श्रुत्वा दण्डम लभ्यते जने । एतदस्य तदद्वैतं हि ज्ञेयं विषयं शुभमदम् ॥७२॥  
 भवणाद्विगुणं पठे व्यासपात्रुध दशाधिकम् । तस्मादेतन्महाऽऽनेदमत आन्यं नरोत्तमैः ॥७३॥  
 नानेन सहस्रं किंचिद्वृतं नाथे भविष्यति सर्वेष्वपि च शस्त्रिणु पाञ्चरात्रागमोऽधिकः ॥७४॥

विष्णुपुराणसे अष्टादश उपपुराण हुए । इनका पाठ करनेसे पुण्यपाठका अर्धाफल मिलता है ॥ ५५ ॥  
 ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ महाभारत तो मत्स्यपुराण समान है । उसमें कही हुई भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम ये दोनों महाभारतसे भी दमगुना अधिक फलदायी हैं । जो श्रोता भक्तिपूर्वक उन्हें सुनता है, वह आधा फल पाता है । महाभारत रामायणसे भी अधिक दुगुना फलदायी है । वेदके पाठसे जो पुण्य होता है, वही फल रामायणके पाठसे है । ५८-६० । मूल-महाभारत, महाभारत, रामायण, कौटिल्य (शुभाशुभ) की रामायण, नारदरामायण, लघुरामायण, बृहदारामायण, अमस्त्यजीक रचनी महाभारत साररामायण, देहरामायण, वृत्तरामायण भारद्वाजरामायण, शिरारामायण, कौवरामायण, भरतरामायण, जैमिनिरामायण आदि बहुतसी रामायणें हैं ॥ ६२-६६ ॥ इनके अतिरिक्त आत्मधर्मकी, जटायुकी, श्वेतकेतु करिकी, पुत्ररत्नकी, देवर्षीकी, दिग्भामिनीकी, मुतीक्ष्णकी, सुग्रीवकी, विभीषणकी और यह महाभारत आनन्दरामायण, दमस्त्य रामचरितकी वर्णन करनेवाली हजारों रामायणें दनी हैं ॥ ६७-६९ ॥ उन सबको समित्कार संग्रह बनानेमें कोई भी समर्थ नहीं हो सकता । कास्मीकिजीके सौ करोड़ श्लोकात्मक रामायणमें ही इन सबका निर्माण हुआ है ॥ ७० ॥ किन्तु अगर जिनको हुई सब रामायणोंमें यह आनन्दरामायण ही श्रेष्ठ है । ऐसा लोगोंने कहा है । इसके पढ़नेमें क्या पुण्य होता है, सो हे शिष्य ! मैं तुमको इसका महात्म्य बतला रहा हूँ ॥ ७१ ॥ पूर्वोक्त शतकोटिमहामहक कास्मीकिरामायणके सुननेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका आधा पुण्य इस आनन्दरामायणके पाठसे होता है । इसको सुननेसे दुगुना और व्याख्या करनेसे दसगुना पुण्य होता है । इस कारण लोगोंको चाहिए कि इस आनन्दरामायणका अध्ययन करें ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इसके अठार पात्रुध कोई अन्य न बचतक हुआ है और न

भगवद्गीतया तुल्यं कर्म तस्याखिलस्य च । भर्तृव्यकर्मवत् सर्वकर्तृत्वे निश्चितम् ॥७५॥  
 तत्कार्यं यः पठेन्प्राज्ञो दशार्थं फलमाप्नुयात् । सङ्कर्तृनिमित्तं तच्च शतशतफलदं स्मृतम् ॥७६॥  
 यः करोति स्वयं काव्यं कल्पयित्वा स्वयंकथाम् । तच्छ्रुत्वा कश्चिन्मतेन तदर्थेना च दोषभाक् ॥७७॥  
 पौराणीं सारणीं चापि तथा रामायणस्थिताम् । तथा महापुराणस्थां कथां प्रयति यः स्वयम् ॥७८॥  
 रामभक्तोऽपि लभते शक्रलोकप्रियात्मनाम् । प्रत्यक्षं यस्मैकं रामस्वरूपं भवेद्भूयम् ॥७९॥  
 रामभक्तः पुराणेश्वरः कथां प्रयति यः पुनः । दयापमृतिः स लभते बृहस्पतिमन्त्रोक्तताम् ॥८०॥  
 दीदित्वेषोपितः शिष्यः शरमश्च ज्ञानाश्रमः । सङ्करवाणः पुनः स पुनर्ये स्वीकृतिः ॥८१॥  
 एवं भूषणमंशभूतनर्मते विचरति हि अधर्मादयः स्रष्टे चित्तजोदितः सदा ॥८२॥  
 अतः श्रीरामभक्तश्च कश्चित्त्वैतन्नतुतिः कृता । सपि मन्त्राः सदा श्रद्धां कृतीनां पुष्पहृद् ॥८३॥  
 भगवाणश्च श्लाघेन फलदात्री स्मृताऽत्र हि । निश्चित्ये भक्तकृतां चित्तानां ते स्वयः स्मृताः ॥८४॥  
 तत्तद्व्याकृतं काव्यं रामवर्णनमंभूतम् । भक्त्यन्य मन्त्राश्च भोक्तुः कर्म स्मृतम् ॥८५॥  
 निर्मातुस्तु मवेन्पुण्यं सधुश्रद्धाशरीरिनः । गोपि भक्त्यन्तर्यामिनि स्यात्तु विद्याशक्तिः ॥८६॥  
 स्वस्वभावाकविद्वानां कलाग्ने कर्मयोगः । न चित्तं चित्तं चापि पदान्वयसमन्विता ॥८७॥  
 अर्थप्रमाणमहिता सर्वमान्या न येन । तन्नतुतिः पुनः कुर्यात्तु विद्याशक्तिः ॥८८॥  
 निष्फलान्तरुमः प्रोक्तस्तदर्थेना च दोषभाक् । उन्मत्तेन तु यः कुर्यात्तु विद्याशक्तिः ॥८९॥  
 स हि श्रयोति प्राप्नोति वर्षाभ्यक्षरसंख्यया । वेदोक्तार्थानुसारेण सदा सदा स्मरकाः स्मृताः ॥९०॥

मरिच्यम होता । सब शास्त्रोंमें पाञ्चरात्रके आगमको विशेष महत्त्व दिया गया है । उसका पाठ करनेसे भगवद्गीता पाठके मुख्य फल प्राप्त होता है । महाभारतमें कथानकोका और जिनका भन्दे भन्दे भगवद्गीतामें बताया है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उन काव्योंको जो मनुष्य पढ़ता है, उसे रामायणक पाठका दश, शत पुण्य प्राप्त होता है । अन्य जनोंके बनाने काव्योंका अध्ययन करनेमें मानाश फल मिलता है । ७६ ॥ जो मनुष्य काव्यकी कल्पना करके स्वयं काव्य बनाता है, उसका परिश्रम दाय जाता है और उसका पाठ करनेवाला भी दायका भागी बनता है ॥ ७७ ॥ जो कवि पुराणों, महाभारतमें राजाश्रम तथा उपव्रजणोंमें निजी हुई कथाओंका संग्रह करता है । वह रामभक्त होकर इन्द्राश्रम निवास करता है । वह प्राणी जितने अक्षरोंको लिखे रहता है, उतने ही वर्णतक इन्द्राश्रम रहता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जो रामभक्त पुराणोंसे कथामेंका संग्रह करता है, वह साक्षात् भगवद्वक्के समान पूज्य होता हुआ वैष्णविक लक्ष्म निवास करता है ॥ ८० ॥ अपनी लच्छकोका लच्छा, पोषा पुत्र, जिह्वा बगैचा, ललाट तथा मङ्गल्यका रचना, अपना निजी पुत्र, इतने सन्तुष्ट मान गये हैं । ८१ ॥ वे लोग अशमन मनुष्यों अर्थान् अधर्मात्मा आदि जो सात चित्तजो बतलाये गये हैं, उनके साथ पृथ्वीमण्डलपर विचरते हैं ॥ ८२ ॥ अन्तर्गत सङ्कर्तृ रामभक्तोंने अपनी कवितामें श्रीरामकी स्तुति की है । इन्हींमें लोग उनकी भी कविताओंका शिर कर, बारम्बार पुन और पढ़ ॥ ८३ ॥ रामभक्तोंकी कविता महाभारतका शतपथ फल देनेवाली होती है । जो लोग किसी रामभक्तकी बनायी कविताका निरुद्ध करत हैं वे एक प्रकारके गधे हैं ॥ ८४ ॥ सङ्कर्तृमायक अनिश्चित और और भाषाओंमें रामके चरित्रवर्णन युक्त कवितामें आता-जाता महाभारतक सहस्र अंशका फल देनेवाले होती हैं ॥ ८५ ॥ अन्तर्गत शब्दोंमें की हुई कविता कविको शतश फल दती है । सङ्कर्तृमें कविता करनेवाला प्राणी भ्राताका अंश होता है ॥ ८६ ॥ अपनी-अपनी भाषामें कविता करनेवाले कथांशर मयवा संस्कृतमें रचना करनेवाले कविगोत्रोंमें जिनकी कविता पद और अक्षर संयुक्त हो, जिसमें अर्थ तथा प्रमाण दोनों विद्यमान हों, वे ही शाय हैं, और नहीं । जो कवि अपने स्वाध्के लिए किसी मनुष्यकी स्तुतिमयी कविता करता है, उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है अन्य उत्साह अध्ययन करनेवाला प्राणी भी दायका भागी बनता है । जो कवि उन्मत्तवश द्विजोंका वर्णन करता है, वह कवितामें लिखे हुए जितने अक्षर हैं, उतने वर्णतक भगवत्की योगिनी

तेषां च स्मृतयो नाम नानाविधेभ्यस्तथा । तत्र केचिदेकैश्च समन्वयविक्रमाः ॥१०१॥  
 अर्थविक्रमेषु मन्त्रेषु केचिदप्युपन्यासाः स्मृतयः । अर्थविक्रमेषु च नामानि नामधेयानि भवेत्पुनः ॥१०२॥  
 ब्राह्मणादीनां गुरुभ्यो वा शान्तव्यं यतिभ्यश्च । तेषां च नामानि च विक्रमवशात्तथा च ॥१०३॥  
 कदा क्व कथं कर्म केन कर्तव्यमिति स्मृतम् । यन्मन्त्रस्तत्र नामानि नामानि च दोषभयमवेत् ॥१०४॥  
 अदेष्टे यत्कृतं यत्कृतमकालेनाविज्ञातम् । शब्देभ्यस्तद्वद्वदर्थं शब्दवशादेष्टव्यं भवेत् ॥१०५॥  
 तस्मादाद्यव्यक्तं तत्र विप्रज्ञां च विज्ञेयतः । स्मृतयश्च नामानि च विप्रज्ञेयानि नामानि च ॥१०६॥  
 श्रुत्वेदम्योपवेदः श्रुत्वाद्युर्वेदा हि वैदिकः । परेषु मन्त्रादिषु च शब्दवशादेष्टव्यं भवेत् ॥१०७॥  
 जीविकार्थमप्यन्यो हि पठितव्यो हि ज्ञातव्यः । प्रमाणं रोमिणं सर्वेषामुपचारेण जीवयेत् ॥१०८॥  
 ब्रह्महत्याभयं पापं तस्य नश्यति च धुम् । परः स यस्मै पुण्यं चतुःकल्पायुःसमुद्भवम् ॥१०९॥  
 एवं पुण्यं भवेत्तस्य नश्यतांशुयुक्ततः । यन्मन्त्रस्तत्र नामानि नामानि च नामानि च ॥११०॥  
 सौम्यवर्णकलमानेति नामानि नामानि च नामानि च । नामानि च नामानि च नामानि च ॥१११॥  
 इह लोके कल तस्य पालेहे न वेत्ति । न वेत्ति न वेत्ति न वेत्ति न वेत्ति ॥११२॥  
 कस्तेन न कृता धर्मः कां च राजानं मोक्षयति । यन्मन्त्रस्तत्र नामानि नामानि च नामानि च ॥११३॥  
 यतश्चीश्च यतश्चीश्च यतश्चीश्च यतश्चीश्च । यतश्चीश्च यतश्चीश्च यतश्चीश्च यतश्चीश्च ॥११४॥  
 तद्वक्तव्यं कुरुते लभते नामानि नामानि च नामानि च । नामानि च नामानि च नामानि च नामानि च ॥११५॥  
 धर्मव्यापारं तु मां शान्तां शान्तां शान्तां शान्तां । शान्तां शान्तां शान्तां शान्तां शान्तां शान्तां ॥११६॥

[illegible]

चिन्वेकमन्व कर्तव्यो द्रव्यदाने विशेषतः । अन्नस्य तु येनः पात्रं पानीयस्य विधायितः ॥१०७॥  
 द्रव्यदाने तु कर्तव्यं विशेषतः पात्रधीक्षणात् । मन्त्राणां च ये द्रव्यं न दत्तुं धर्मपुरतो विपन् ॥१०८॥  
 पात्रापात्रविचारणं मन्त्राग्रे दानमुत्तमम् । यथा पुण्यं यथा पात्रं यथा दानं कल्याधिकम् ॥१०९॥  
 ज्ञानाधिक्याद्भवेत्पुण्याधिक्यान्पात्रं श्रेयस्य च । दानमन्त्रस्य च तत्र मन्त्रापात्रयोः न सर्वथा ॥११०॥  
 रामदेवी वर्जनीयो दर्शनालक्षणः स पु । मन्त्रस्य च दानं दत्तुं नान्यथा ॥१११॥  
 पात्रान्तरेधिकं दद्यान् दानं यद्विधीतिम् । विद्वदादयेन यद्दानं न तद्वानं स्मृतं क्वचिः ॥११२॥  
 वैश्वकालविशेषेण मन्त्रस्य विशेषतः । दानस्य कल्याणदिष्टमधिकं न्यूनमेव च ॥११३॥  
 विप्रशुल्कं तु यो मृदो न दद्याद्भक्तिसंभवम् । विद्याविमोहस्य सुगौरवस्य सम्बन्धया ॥११४॥  
 दिव्यवर्णाणि नैवात्र स्वयां कार्यन् सन्त्रयः । यत्तु ज्ञानवता कर्म क्रियते पुण्यदायकम् ॥११५॥  
 अधिकं तत्फलं प्रोक्तमज्ञानिभूतकर्मणः । यथा यथाऽधिकं ज्ञानं तथैव विचार्यतां तथा ॥११६॥  
 यत्तु ज्ञानरता कर्म क्रियते पापक्षयकम् । अन्त्युनकन्दं हि दत्तुं नित्यं पात्रकात् ॥११७॥  
 यथा यथाऽधिकं ज्ञानं पात्रदानिभ्यस्तथा । यथाऽपि मन्त्रिद्वौर्जस्यस्य च कृत्वा दद्यात् ॥११८॥  
 ज्ञानाग्निर्दुष्टकर्माणि भस्मयान्मुक्तये नृणां । यथा विप्रस्य यथा हेम्ना न ह्यवगन्त जायते ॥११९॥  
 पुण्याधिकं तथा विप्रस्य ज्ञानिममेव ज्ञानेन । पुण्येन दत्तं पुण्यं पापं नश्यत् च जायते ॥१२०॥  
 पापेन पापवृद्धिश्च पुण्यं स्वल्पं च जायते । ज्ञानं ह्यस्मिन् विचारोऽयं दुर्ज्ञेयः स्थूलदृष्टिभिः ॥१२१॥  
 तथाप्येव विचार्य भ्यान्तत्त्वज्ञानानुसारतः । यस्तु सन्त्यधिकारेऽपि ज्ञानेन पठन्तऽपि सा ॥१२२॥

धनुर्वेद और वण्डनीति, ये दोनों आश्रमोंकी जविराये हैं ॥ १०३-१०५ ॥ किन्तु धर्मियोंकी वे वेदपठका फल देती हैं । अन्तर नतकालों हुई मन्त्र मन्त्रिभ्यो म ज्ञानके अनुसार ही पुण्य होता है । इसलिये लोगको चाहिए कि विशेष करके द्रव्यदानके विषयमें विचार करे, धर्मकी अप्रदान और प्यासेकी पानी विद्याना श्रेष्ठ धर्म है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ द्रव्यदान दान समय पत्रका विचार करना आवश्यक है क्योंकि दुष्ट गोमें भी दूष होता है और सपक पटम पट्टे जानकर दूष या विष बन जाता है ॥ १०८ ॥ इस तरह पात्र और अपात्रका विचार करके सन्पात्रसं दान देना अच्छा है । दानका पात्र जितना ही अच्छा होगा, उतना ही अधिक पुण्य होगा ॥ १०९ ॥ इस पात्र और अपात्रका विचार, ज्ञानकी अधिकता, पुण्यका बाधकता तथा परिश्रमकी अधिकता रखकर किया जाता है । जो मनुष्य रामका भक्त है, वही पात्र है और जो रामभक्तिसे रहित है, उसका अपात्र जानना चाहिए । जो मनुष्य रामसे दूष रखता हो, उसका दर्शन और उसके सम्पादन आदि कदापि न करे । जो मन्त्र भक्तका सायक ग है, वह अर्वाच मनुष्य भी पवित्र हो जाता है ॥ ११० ॥ १११ ॥ अपनी जालसे अधिक जो मन्त्र दिया जाता है वही दान दान है और कमजान साय जो दान दिया जाता है, वह दान दान नहीं है ॥ ११२ ॥ देवकाल एवं पात्र अपात्रका विचारताके अनुसार अधिक या न्यून फल कहा गया है ॥ ११३ ॥ जो मनुष्य मन्त्रका परिश्रमिक नहीं रता, वह उन वैश्वकी सम्पादके अनुसार दिव्य वषों तक विद्याका विमि बना रहता है । इसमें किसी प्रकारका संज्ञय नहीं करना चाहिये । ज्ञानवान् मनुष्य जिन पात्रका कर्मका करना है अज्ञानान्तर को अपत्या उसे अधिक फल मिलता है जैसे-जैसे ज्ञानकी मात्रा बढ़ता जाती है वैश्व-वैश्व उदक पाप नष्ट होने जाते हैं ॥ ११४-११५ ॥ ज्ञानी मनुष्य यदि कोई पाप करता है तो अज्ञानिया द्वारा जिये पात्रकी अपत्या उस पापका भी न्यून ही फल मिलता है ॥ ११७ ॥ जैसे-जैसे ज्ञान होता जाता है वैश्व-वैश्व पाप अपन अपन नष्ट होते जाते हैं । जिस तरह जलही हुई अग्नि लकड़ियोंका गलाती है, उसी तरह ज्ञानाग्नि समस्त कर्मोंको भस्म कर डालती है । जिस तरह अग्निके सयोगमें कचनका कार्ति अधिक हो जाता है, उसी तरह ज्ञानियोंका भक्त करनेसे पुण्यकी मात्रा बढ़ती जाती है । पुण्यस पुण्य बढ़ता है और पाप कम होता जाता है ॥ ११८-१२० ॥ पापसे पापकी वृद्धि होती है और पुण्य कम होता जाता है यह वक्ता ही भूम विचार है और स्थूलदृष्टिवालोंके लिए तो और



प्रयत्न नैव कुर्यात् न नरो जायते पशुः । ज्ञात्वा ह्यस्य चित्तं पुनरपि विप्रस्य वर्धते ॥ १२३ ॥  
 इति संक्षेपतः योक्तव्येनृषु रामस्य । उक्तं च तस्मै न कथयन्वाप वा ॥ १२४ ॥  
 धर्मास्तु बहवः सन्ति तथा पावनम् । तेषु न भवति नृपस्य । इति नैव कुर्यात् ॥ १२५ ॥  
 कर्तव्यानि जनैस्तानि सम्पश्युर्द्वयविप्रस्य च । तर्पयन्तश्च शोकात्स्वपुत्रस्य ॥ १२६ ॥  
 ग्रहणीयं प्रयत्नेन न ह्यभक्ताव दास्यते । सुन्दरस्य च सौम्यस्य शयनाम् ॥ १२७ ॥  
 इति शतकोटिरामचरितानामुक्तं कामदामोदनाय । रामचरितम् आदि । ७२ अर्धशतकम् ।  
 सर्वेषां वदन्तीति फलकृतिर्नाम । ७३ । ८ ।

### नवमः सर्गः

रामकाण्डे नवमः सर्गः ।

१२३-१२७ ।

गुरोऽन्यद्रामचन्द्रस्य विशेषेण च पूजनम् । रामचन्द्रस्य प्रकृतव्यक्तं च तत्त्वस्य माम् ॥ १ ॥

१२३-१२७ ।

मृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि कल पुष्पपत्रं पुष्पम् । रामचन्द्रस्य पूजनार्थं विशेषतः ॥ २ ॥  
 माधस्य शुक्लपद्मस्य च पुष्पं च पञ्चमी । पुष्पार्थं श्रीमन्मन्त्री रामचन्द्रस्य जगत्त्रये ॥ ३ ॥  
 तदारभ्य साधनामद्वयं राम महोत्तमम् । पूजयेत्तत्परी वापदेवस्य कृष्णपद्मजम् ॥ ४ ॥  
 माघकृष्णचतुर्थ्याञ्च नवमी मधुशुक्लजा । यावत्तत्त्वफलहरः चैवार्थाति दिनानि हि ॥ ५ ॥  
 सीतारामस्य नित्यं हि केचित्कुर्यान्ति पूजनम् । पौर्णिमांताः स्मृताश्चात्र मामाः सर्वत्र भो द्विज ॥ ६ ॥  
 प्रत्यहं बाह्मरूढं कृत्वा राम महोत्तमः । भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्महाबाह्वपुःसरैः ॥ ७ ॥

भा० कठिन है ॥ १२३ ॥ यह सब हात हुए भी तत्त्वज्ञानके अनुसार इसका विचार करना ही चाहिए । जो मनुष्य अविकारी होता हुआ भी जनक के प्रयत्न न होकर, वह पशु मानव जन्म पाता है । ज्ञान अथवा अध्ययनसे विप्रका पुष्प उदया है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ २ ॥ जनक ! तुम्हें जो कुछ पूजा, मैंने उसे संक्षेपसे कह सुनाया । लोगोंको चाहिए कि इसका अनुष्ठान राम और पुष्पके, मिश्र कर लिया करे । १२४ ॥ पुष्प और पाप ये दोनों बहुत प्रकारके हैं । पापदोषों से मदनमयपर पापों प्रायश्चित्त बतलाये हैं । १२५ ॥ लोगोंको चाहिए, कि उत्तम । अपनी बुद्धिसे अच्छी तरह अध्ययनकर करे । सब धर्मोंका तार एव रहस्य मैंने तुम्हारे कार्य कह सुनाया । इस यत्नके साथ ग्रहण करना चाहिए । इस भक्तिविहिन प्रार्थनाको न दकर उसे दना चाहिए जो शुद्ध, साधु एवं रामभक्त हो । १२६ ॥ १२७ ॥ इति श्रमस्तथाऽप्यन्यतरितार्गतश्चैवमवान्व-  
 रामायणे पञ्च रामतज्जवाष्ट्यकृत उवाच । भाषायां संहितं मनोहरकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो ! रामचन्द्रजीका विशेष पूजन किस समय करना चाहिए । वह समय आप मुझे बतलाइये ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! सुनो, मैं तुम्हें रामको पूजाका परम पुनीत समय बतलाता हूँ । रामचन्द्रजीका पूजन करनेके लिये वह समय बहुत ही उपयोगी होता है । माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथि बड़ी ही पवित्र तिथि है । श्रीपञ्चमी उसका नाम है । इसी नामसे वह तीनों ओरमें विस्तृत है ॥ २ ॥ ३ ॥ तबसे लेकर अथवा वैशाखके कृष्णपक्षकी पञ्चमी न आ जाय अर्थात् द्वादशी महीनेतक महान् उत्सवोंके साथ रामचन्द्रजीका पूजन करे ॥ ४ ॥ माघके कृष्णपक्षकी चतुर्थीसे चैत्रके शुक्लपक्षकी नवमी तक अर्थात् इसमासके दिन केवल फलाहार करके रहे ॥ ५ ॥ जो लोग नित्य सीतारामका पूजन करते हैं, उनके लिये पुर्णिमान्त ही माना जाता है ॥ ६ ॥ प्रतिदिन बाह्मपर बड़े हुए रामको भेरी-दुन्दुभी आदि बाजे-गाजे, बैरावोंके तुल्य, छत्र, चमर, तोरण, विविध प्रकारकी पुष्पवर्षा, नाना प्रकारके स्तोत्रपाठ, तरङ्ग-उरङ्गके सुगन्धित

वारस्तीर्णा नृप्यर्गतेऽष्टवचामानन्दः । नानावसुमधार्घ्यैर्नानास्तोत्रादिसाधनैः ॥८॥  
 नानापरिमलद्रव्याञ्जलीनां शोचनदिभिः । नानामांगलयन्मृतामंजलीभिः सुशोभनैः ॥९॥  
 नानासुसुमङ्गानां तैलानां च शम्भरम् । रत्न च वारतायश्च जलपन्त्रैः करे घृतैः ॥१०॥  
 मृदुर्मृदुः मिषनाशैस्तथा स्वाणां सुमन्त्रैः । द्विजानां वेदधोर्षश्च धूर्पनीराजनदिभिः ॥११॥  
 सहकाराराममध्ये नोन्मैवं परमोन्मैवः । यदकारवृक्षवद्वेदोलके न निवेशयेत् ॥१२॥  
 नाम्नेन वा पुष्पकेण शेषयानेन दन्तिना । श्वेन गरुडेनापि तथा सिंहामनेन च ॥१३॥  
 तथा शिविकया वापि वायुगुणेन वा तथा । गार्भेर्वर्गभिर्नेत्रैश्च सदा नैवो रघुनमः ॥१४॥  
 आश्रयभाराममध्ये वल्लीपुष्पनमान्त्रणे । अश्वि चन्द्रनैलिन्त्या विकीर्णं कुसुमानि च ॥१५॥  
 आञ्जलय नानावस्त्रैश्च शोभनायाऽऽनिः शुभा । हेमनेहासनम्बैश्च कृत्वा दोलकमुनमम् ॥१६॥  
 चूलवृक्षस्य शाखायां तं च दृष्ट्वा भृङ्गलदिभिः । तत्र श्रौतामनोभद्रे रामचन्द्रं प्रपूजयेत् ॥१७॥  
 नानानवविधैः पुष्पैः पौडकपञ्चमैः । नरैश्च गौर्या वायुमुग्रवार्धैः समान्वनम् ॥१८॥  
 आंदोलयेदोलकं तं शिशुशालकाच्छतैः । नलिन्या वाग्देव्यास्तदाऽग्रे शनशो मुदा ॥१९॥  
 गायत्रीया गायत्र्याश्च नर्तितव्या नटादयः । चर्मायाणि चाद्यानि ज्वालनीयाः सुपुष्पाः ॥२०॥  
 पीवनीयश्चामराक्षः सीतया रघुनन्दनः । तटैर्मैः चार्तमन्त्रैश्च कारयित्वा महान्मर्चैः ॥२१॥  
 पुनः पुन्य पूर्ववच्च समानातो गृहं प्रति । मरूजनीचः श्रृंगारमः कुमदापार्तिकादिभिः ॥२२॥  
 एवं नित्यं सार्धमानद्वयं रामं प्रपूजयन् । चूनवृक्षतले नीत्वा पूजयेच्च सविस्तरम् ॥२३॥  
 यदा रामश्च सीता च बहिर्नेया निजगृहान् । तदा तयानयनाथः कन्यूर्यागुलिनाऽसिताः ॥२४॥  
 देयश्च पिद्वो वस्त्राभ्यर्दुर्दृष्टिनाशनाः । एवं दोलापूजनं च शिष्य ते कथितं मया ॥२५॥  
 विशेषं शृणु तवापि कथ्यते यो मयाऽधुना । वसन्तपूजनान्पूर्वदिवसे गणनायकम् ॥२६॥  
 माघशुक्लचतुर्थ्यां हि पूजयोद्विघ्ननाशनम् । माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणः ॥२७॥

शर्पणका अंजलीदान, विविध प्रकारके पुष्प, चूल्हा, तैल, चन्दन, चन्दनसे परस्पर वेष्टाओके पिच्छकारी छोटने, स्त्रियोंके सुन्दर गायन, ब्रह्मगोक वेदघोष, वृष, नगराज, जार, कर्ता हुआ आसक बगीचम ले जाय और वहाँ भगवानको आसनवृक्षसे पट्टे हिंडालपर बिठाल ॥ ८ ॥ ९ ॥ हाथसे, पुष्पकसे, शेषकी सवारीसे, घोड़ेसे, रथसे, गरुडसे, सिंहासनसे, शिविका द्वारा तथा वायुपुत्र द्वारा इन ती सबारायापर रामका ले जाना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ आश्रयवृक्षके बगीचे जिसमें कि बल्लारियों तथा पुष्प, वृक्ष लग हो, पृथ्वीको चन्दनसे लीपकर फूल बिखरे ॥ १५ ॥ नाना प्रकारके वस्त्रोंसे लीककर उस पुष्पावा आसन परे । सुवर्णका सिंहासन बनाकर भृङ्गला आदि-के द्वारा आसके वृक्षसे सूल्य डालकर रामका बिठाल और सर्वतोभद्र बनाकर उनकी पूजा करे ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर विविध तथा नौ प्रकारके फूलों एवं पाटश उपचारसे सीता, बन्धु तथा सुग्रीव आदि मित्रोंके साथ भगवान्का पूजन करके बच्चोंकी तरह उम झूलेकी धारे धीरे रस्सी खींचकर बुलाये । उनके आगे स्केकों बेलमार्गे नक्षत्रों, गायकोंसे गाने गवाये, नटोंसे नृत्य कराये, विविध प्रकारके धावे बजवाये और नाना प्रकारके सुपन्दीप आदि जलाये ॥ १८-२० ॥ सीता तथा रामपर चमर आदि हाँक और रामभर्तोंको बुलाकर कीर्तन आदि कराये ॥ २१ ॥ इसके बाद पूर्वोक्त विधिक अनुसार फिर पूजन करके रामचन्द्रजीको घरपर ले आये । घर पहुँचनेके बाद भी कलश, हाथ तथा मारती आदिसे रामकी पूजा करे ॥ २२ ॥ इस तरह प्रतिदिन पाई महीने तक आश्रवृक्षके नीचे भगवान् रामका पूजन करे ॥ २३ ॥ जब राम और सीताकी धरसे बाहर आना हो तो उनकी आँखोंके नीचे करतूरीकी काली चिन्दी लगा दे ॥ २४ ॥ इसको लगानेसे लोगोंकी दुईष्टि उनपर नहीं पड़ेगी । हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने तुम्हें दोलापूजनका प्रकार बतलाया । २५ ॥ इसमें भी जो

ये हुंति पूजयिष्यन्ति तेऽन्याः स्मृगुगुह्याय । माघमासे चतुर्थी तु तस्मिन्काल उपोषितः ॥२८॥  
 अर्चयित्वा विष्णुगर्जे तामां तत्र कायेन । चतुर्थी कुन्दनाभ्यां कुन्दपद्मैः प्रपूजयेत् ॥२९॥  
 माघशुक्लपंचमी मा संया भीषणो शुभा नमो नित्यं रत्ननाथस्मरन्तु रि पाउचयेत् ॥३०॥  
 माघशुक्लचतुर्थी तु वरमागम्य च श्रिया । पञ्चम्यां कुन्दकुमुदैः पूजां कुर्यान्मिष्टदये ॥३१॥  
 नीत्वा शयं चतुर्धनले दोलकगन्धिवम् । सीतारामं पूजये च देहे वाऽथ प्रपूजयेत् ॥३२॥  
 प्रपूजे मधुमासे तु प्रतिपद्यदिने री । कुर्यात्पावप्रकाशार्थं मन्त्रैः पिबेदेवताः ॥३३॥  
 बंधयेद्दोलिकाभूमिं सर्वदुःखोपशान्तये । बहिराऽपि मुद्रैश्च नम्रणा सकरेण च ॥३४॥  
 अतस्त्वं पाहि मां देवि भूते भूतिप्रदा भव । चैत्र ममि मदापुण्यं पुण्ये तु प्रप्तेपद्मिने ॥३५॥  
 यस्तत्र भयं स्पृष्ट्वा स्नानं कृण्वन्निरोचयः । न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाशयो व्याधयो नृप ॥३६॥  
 वृत्ते तुषारसमये मितपञ्चदश्याः प्रान्तर्मनममये नमृर्गच्छने च ।

मघाशय चतुर्मुने मह चंदनेन मन्य हि विप्रपुरुषोऽथ ममाः मुनी भ्यात् ॥३७॥

चतुर्मुने नमंतस्य माकद कुमुदं तत्र मन्दनं दिग्गजं सर्वदामार्चमिदये ॥३८॥  
 पञ्चम्यां माघमासेऽपि चतुर्थं मचन्दनं प्रागर्चय तत्रैकं वा तलकदो भविष्यति ॥३९॥  
 चतुर्थपञ्चम्यनेन कोकिलारवावत्तरः । भविष्यति मानवानां कलकलै मनीरमः ॥४०॥  
 सीताराम चतुर्थैस्त्वया कामलपत्रैः पूजयेत्पद्मैः मकरैः दं ककरैश्च महोन्मदैः ॥४१॥  
 चैत्रकृष्णप्रतिपदि चतुर्थं सचन्दनम् पीत्वा मदीयं देव सीतारामं प्रपूजयन् ॥४२॥

विशेष बातें हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। वसन्तपूजा में एक बात बतानी पड़ती है। ॥२५॥ २६॥ माघशुक्ल चतुर्थीको गणपतिका पूजन तथा उपवास बताना चाहिए। ॥२७॥ २८॥ माघशुक्ल और गणपतिका पूजन करता है, वह प्राणी देवताओं तथा असुरोंका भी पूजना करता है। ॥२९॥ ३०॥ माघशुक्ल चतुर्थीको माघमासका गणेशगर्जेका पूजन और ॥३१॥ ३२॥ माघशुक्ल पंचमीको माघमासकी चतुर्थीको भी पूजन करके पञ्चम्यां कुन्द कुमुद अथवा समृद्धिके लिये पूजन करे ॥३३॥ ३४॥ विशेष अच्छा तो यह ही कि रामचन्द्रजी या रामपूजे जीवों में बाघ और सूनेमें बिठाकर पूजन करे। यदि ऐसा न कर सके तो पशु ही पूजन करने ॥३५॥ चैत्रमास लगते ही प्रतिपदाको सुशोभनके समय मानवपक्ष का माघे विषाकर गतिशोक तर्पण करे और सब प्रकारके दुःखकी कान्तिके निमित्त होलिकाभूमिकी मन्दता मरणादृष्टा वन्दन के इन्द्र, ब्रह्मा तथा महादेव कापकी मन्दना की है ॥३३॥ ३४॥ अतएव दे देवि, तुम मेरे लिए भी चतुर्दशदिना तक जाओ। परम पवित्र चैत्रके महीनमें पुण्य तथा और प्रतिपदाका जो मन्त्र पञ्चम्य दान को दूकर स्नान करता है, उसे न किसी प्रकारका पक्षक मरना है जो न निर्मल प्रसादका आनंद उगमि ही सताती है ॥३५॥ ३६॥ जाड़ेके दिन होत जाते और वसन्त ऋतुव अन्तर चतुर्दशपञ्चम्य पञ्चमास प्रत्यक्ष चन्दनके साथ आमका वीर पड़े तो हे विप्र ! भद्रप्राणी माघ भर वसन्तमासे रहता है ॥३७॥ दौकी चाड़से लक्ष्य 'चतुर्मुने वसन्तस्य' यह मंत्र पढ़ता जाय, जिसका मन्त्र है कि हे महेश्वर तुझ में वसन्तऋतुके अविम भागमें तुम्हारा पूल चन्दनके साथ कम बाने चाट चुनू कि मरी मद अभिर्वाधन कामनाये पूरा हो जाय ॥३८॥ माघमासकी वसन्त पञ्चमीका भी चन्दनक हाथ की चाड़ता चाहिये। ऐसा करके उसका स्वर कोकिलके समान मँडा हो जाता है ॥३९॥ उस दिन आश्वपुष्यका प्राजन करनेसे पञ्चम्य चतुर्थीका स्वर कोबलके स्वरकी तरह मँडा हो सकता है ॥४०॥ प्रतिदिन सत्त शयन करनेको मूलेय बिठाकर बाघके और तथा कोबल वल्लभों से साक्षात् पूजन करे ॥४१॥ चैत्रकृष्णकी प्रतिपदाको चन्दनके साथ आमका



प्रत्यहं धर्मघटको चक्षुसैष्टितानमः । आश्विनस्य गृहे देवः शीतामलजलः शुचिः ॥६१॥  
 तांबूलफलधान्यैश्च दक्षिणामिः ममन्वितः । एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवस्मरकः ॥६२॥  
 अस्य प्रदानासफलाः सर्वे सन्तु मनोऽर्थाः । अनेन शिधिना यस्तु धर्मैर्मुक्तं प्रयच्छति ॥६३॥  
 प्रदायानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः । तृतीयायां चैत्रशुक्ले सीतारामौ प्रपूजयेत् ॥६४॥  
 कुंकुमागुरुकूर्पूरमणिवस्त्रमुगधर्कः । ममोपशुपदीपैश्च दमनेन विशेषतः ॥६५॥  
 आदोलवेणतः सीतारामौ च दोलकस्थिता । वसन्तमममामाद्य तृतीयायां द्विजोत्तम ॥६६॥  
 सीतामया च तदा स्त्रीभिः सीतामयायनवनम् । कार्यं महांमवेनेन गुप्तं पुत्रमुखैस्तुभिः ॥६७॥  
 विशेषं चात्र वक्ष्यामि तृतीयायां द्विजोत्तम । तृतीयायां तु नार्गमिः शुक्लपक्षे मघी शुभे ॥६८॥  
 स्नान्वा मृग्यदुर्गं हि कार्यं चित्रविचित्रितम् । तत्राष्टादश धान्यानि वापयेत्तदनंतरम् ॥६९॥  
 पुष्पपुष्पाक्षतुर्भास्त्रं वापयेत्सर्वतस्ततः । जलपत्राणि कर्पाणि चित्राभ्यापि विलेखयेत् ॥७०॥  
 तूर्ध्वद्वारिणं कार्याणि पूर्ववन्मण्डपादिकम् । यथा आगमपूजायामुक्तं तदन्वकारयेत् ॥७१॥  
 दुर्गोपरि घटं स्थाप्य सज्जलं पुष्पगुप्फितम् । दोलकं च नतो न्यस्य घटपृष्ठे महच्छुभम् ॥७२॥  
 काचनीं राजनीं मूर्तिं सीतायाः परिकल्प्य च । रामस्यापि शुभां मूर्तिं कृत्वा तौ पूजयेत्ततः ॥७३॥  
 दोलकोपरि संस्थाप्य माममेकं प्रपूजयेत् । केचिच्छिडपात्र पादय्या शिवेन च प्रपूजनम् ॥७४॥  
 वदन्ति हनयस्तत्र निर्णयं शृणु शशपते । रामस्य हृदयं शंभुः श्रीरामो हृदयं स्मृता ॥७५॥  
 शंकरस्य तथा गौरीहृदयं जानकी स्मृता । जानक्या हृदयं गौरी शिवा नैरातिर कदा ॥७६॥  
 रामस्य च शिवस्यापि सीतागिरित्रयोन्मथा । ये मानयति वै भेदं तेषां वायस्तु शीरे ॥७७॥  
 अतश्चैत्रतृतीयायां सीतारामौ प्रपूजयेत् । अशुक्लौ तावन्नैव मूर्तौ कार्यं वा काष्ठनिर्मिते ॥७८॥

यदा बाधकर जलपारा देनेका प्रबन्ध करे ॥ ६० ॥ उन दिनों प्रतिदिन एक घण्टे उठता और निर्मल जल भरके उसका मुँह कपड़ेके बाधकर तांबूल, फल, धान्य तथा दक्षिणा आदिके साथ किसी सुगन्ध ब्राह्मणके घर दे आया करे । यह यद्वा विष्णुशिवमय घटदान करनेसे घर सब मनोारथ सकल हो जायें । दान करते समय यह कहना जाय । आ घणो इस रत्नमय धनुर्मुक्ता दान करना है, उस प्रदादानका फल प्राप्त होता है । इससे कुछ संशय नहीं है ॥ ६१-६४ ॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीयाको दुर्गा, अर्जुन, कर्पूर, मणि, बस्त्र तथा सुगन्धित मालाओं विप्रकर दमनकक फूलसे सात रामका पूजन करे ॥ ६५ ॥ इसका बाद मूलेपर बिठाकर प्रसाद मिलावे । जिसका पुत्रमुख आदि पाता है, व क्षिमां समन्तमासमें लेकर तृतीया तक एक महान् उत्सवके साथ सीतामयायन व्रत करे ॥ ६६ ॥ तृतीयासे कुछ दिनपचार्य है, सो गुप्त कल्पता है । उस चैत्रशुक्लकी तृतीयाको स्नान करके घटिका एक चित्र-विचित्र दुर्ग बनावे । उसमें बहुत-से प्रकारके धान्य बोये । बहीपर बन्द-बन्द फूलोंके वृक्ष लगाए और उसमें नाना प्रकारके जलजन्तुओंकी रचना करे ॥ ६७-७० ॥ उस दुर्गके पहलेकी तरह मण्डप आदि बनावे । जसा कि पहले आगमपूजा के प्रकरणमें बताया जाये है ॥ ७१ ॥ उस दुर्गके ऊपर बस्त्रसे पूजा और पुरसे गुम्फित घटका स्थापन करे । घटके पांछ सुन्दा रखकर सुवर्ण या चाँदीकी सीताजीकी मूर्ति मनवाय और रामचन्द्रजीकी भी गुन्दर प्रणाम बनवाकर दोनोंकी पूजा करे । इस प्रकार मूलेपर बिठाकर एक मास तक पूजन करे । हे शिष्य पात्रंजीके साथ शिवजीकी पूजा करे, कुछ लोग ऐसा कहते हैं । अब इस विषयका निर्णय मुझ सुनाता है । रामचन्द्रजी शिवजीके हृदय हैं और शिवजी रामके हृदय हैं ॥ ७२-७५ ॥ उसी तरह गौरी सीताजीका हृदय हैं और सीताजी गौरीका हृदय हैं । इन दोनोंमें कोई अंतर नहीं है ॥ ७६ ॥ राम, शिव और सीता तथा गिरिजाजी जो लोग किसी प्रकारका भेदभाव मानते हैं, वे तीस मन्त्रमें बाँस करते हैं ॥ ७७ ॥ इसीप्रकार चैत्रकी तृतीयाको सीतारामका पूजन करना चाहिए । यदि सामर्थ्य न हो तो सुवर्ण या चाँदीकी प्रतिमा न बनवाकर काष्ठ अथवा काष्ठकी बनवाये ॥ ७८ ॥

वाषाणनिर्मिते चापि मनीं कार्ये यथागुहम् अन्यहं मंगलद्वयैः भवेच्छीभिः प्रपूजयन् ॥७९॥  
 मामेकं न नागमिः स्नानं हि शीतलाभिधम् । अवश्यमेव कर्तव्यं मीनातीर्थे विशेषतः ॥८०॥  
 यत्र यत्र गमनं तत्र तत्र गच्छेत्तत्र तत्र मन्दारीयं तत्र तत्र ज्ञेयं मीनाकृतं शुभम् ॥८१॥  
 चैत्रशुक्लतृतीयायामाग्नौ सप्तम्यर्जिता । यद्यन्तर्जया रक्षाशुक्ला तावन्निम्नम् ॥८२॥  
 शीतलामनकं मनसः स्तोत्रं मीनाभ्यमन्त्रेण चैव शुद्धतृतीयायामभ्यर्चयति तथापि च ॥८३॥  
 तृतीयायां तु नागीभ्यस्तथाभ्यस्य प्रकारयन् अन्यत्र दिग्मे स्वाभिर्जलाभ्यस्य न कारयेत् ॥८४॥  
 अन्यहं चोन्मत्ताः कदाः सोतायां पुनः शुभाः नृवाभिर्नोन्नतं च कार्यं मन्त्र्या दिने दिने ॥८५॥  
 सुराभिर्नानां देशानि वायुनामि शुभाणि च । निरन्तरं पूजनाथे यदि शुक्तिर्न व्रजत ॥८६॥  
 तदा कार्यं चैकदिने सुधमार्गं प्रपूजयन् । सुराभिर्नानां देशं हि अन्यहं भोजनं यत् ॥८७॥  
 नानाप्रकारेण सपुनः धुतपयससपुनः अन्नकामश्च वस्त्राणि रुचुक्यादि च यत्कुरुष्व ॥८८॥  
 भर्तृगोपुण्यशुद्धयर्थं नागभिर्देवपुनः । एव मन्त्र्या मायसात्रं शीतलास्नानमुत्तमम् ॥८९॥  
 अक्षर्यायां तृतीयायां पूजयिन्दा विशेषतः विजन्तुवाभिर्नोन्नतं च ॥९०॥ भोजनादिकम् ॥९०॥  
 शुक्लपन्ना निजा पुण्यं तस्यै सर्वं विमर्शयेत् । यत्र स्वागां यत्र पोक्तं यत्र पत्न्यं द्विनोन्नत ॥९१॥  
 अन्योद्धरणं उच्छर्ज्य तत्राग्रे भूषु चोन्नतम् । अत्राकरोद्धर्ज्यमिन्तु चैत्रशुक्लतृतीयादिन ॥९२॥  
 मीनागमां पूजयित्वा महारण्यमप्युक्तम् । यत्राकरोद्धर्ज्यमिन्तु चैत्रशुक्लतृतीयादिन ॥९३॥  
 चैत्रे मासि कितपुण्यां न ने शाकपत्राचुपुः । यामशोककर्मभीष्टं यमुष्मासमपुद्धयम् ॥९४॥  
 पिबामि शोकमहमो मामशोकं सदा कुरु । पुनर्वसुवृथापेना चैत्र मासि पिताष्टमीम् ॥९५॥

सावधानता, यत्नपूर्वक व्यवस्था, धनव्याय जा मरणा है । इस तरह रति बनवाकर गुणगुण  
 विविध मङ्गलमय इष्टोक्त श्रियाक साथ पूजन कर ७९ ॥ एक महाना स्त्रियोंके साथ शोकाक नामक  
 स्नान करे । यदि माताता इस कामर स्नान करे तो विजय अच्छा है । ८० ॥ जहाँ अहाँ रामतीर्थ है वहाँ-  
 वहाँके रागके वासनागम सातना बनाए सातना के सी विद्यमान रहता है ॥ ८१ ॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीया-  
 से लेकर पञ्चमक वैशाखका अष्टम तृतीया न काय, तबतब निरन्तर सोतातीर्थम जाकर शीतलास्नान कर  
 ॥ ८२ ॥ स्त्रियोंकी भी चाहिये कि सोताजाको प्रणम करके स्निग्ध भाव कर । चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीया तथा  
 अष्टम तृतीयाकी श्रियाक साथ शनारव लेवना शर्ज्य कराना चाहिये । इसक सिद्धांत और किसी रोज  
 स्त्रियाक साथ बैठ लगानकी विद्यात नहा है । ८३ ॥ ८४ ॥ प्रतिदिन मनसे साधनाय शीताक स्नान तबह-  
 तरतक उत्सव करना चाहिए । निरन्तर भक्तिपूर्वक श्रियाका पूजन करना भी श्रेयस्क है । ८५ ॥ साहसिक  
 स्त्रियोंकी इन विशेष नागन दत्ता भी उन्नित है । यदि निरन्तर पूजन करनेकी सम्मर्थ्य न हो तो केवल  
 एक ही दिन शोहागन श्रियाकी पूजन करे और अन्य विविध पंचवाश गुण अच्छा उच्छा भोजन करावे  
 ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ नाना प्रकारके वस्त्र आभूषण आदि भी वे श्रिया अत्रापे रिया करे, जो अपने पतिकी  
 आयुवृद्धि करना चाहती हो । इस तरह एक इहोना शीत-नाम्नान करनेके बाद उच्छा तृतीयाकी विशेष रातिसे  
 पूजन करके तब साहासिक श्रियाकी ताना प्रणामक भोजन वस्त्र आदि र ८८-९० ॥ इसके बाद अपने  
 गुरुकी पत्नीका पूजन करके उसे भी वस्त्र-आभूषण आदि प्रदान कर । हे द्विजालभ ! इस तरह मैने तुम्ह  
 श्रियाको रिया एक नामकी व्रत बनवाया । ९१ ॥ अब मैं कुछ विशेष बातें बतलाता हूँ, जो गुना चैत्रशुक्ल  
 अष्टमीकी अशोककी कलियोंसे सीता और रागया पूजन करके आ लाग आक अशोककी कला पोसकर पुन-  
 र्बन्तु नामक वस्त्रम पोत है । उन्हें कभी किसी प्रकारका शाक नहीं बनना पड़ता । उस कलीका पान करने  
 समय "त्वामशोककराभीष्ट" इत मन्त्रका पाठ करने रहना चाहिए । मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है - हे  
 अशोक ! तुम्हारा जैसा नाम है, उसी प्रकार तुम लोगोंको शोकमहत भी करने हो । इसी कारण चैत्रमासम  
 उत्पन्न तुम्हारी कलिकाका मैं भी रहा हूँ । तुम मुझे सदा शोकमहित किये रहता । जो लता पुनर्वसु तकव तथा

प्राकस्तु विधिवन्स्नान्वा वाजपेयकनं लभेत् । चैत्रे नवम्यां प्रक्षपते दिवा पुण्ये पुनर्वसौ ॥९६॥  
 उदरे गुरुगौराश्वोः स्वीचवस्थे शृङ्गचक्रे । मेघे पूषणि मघासे लग्ने कर्कटकाद्वये ॥९७॥  
 आश्विमासमहाविष्णुः कौमल्यायां परः पुमान् । तस्मिन्दिने तु कर्त्तव्यमुपवासवनं नरैः ॥९८॥  
 तत्र आश्विनां कृष्णार्द्रपुनाथपूरे जनेः । चैत्रशुद्धा तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ॥९९॥  
 मैत्रे मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् । केवलादि मर्देशपोष्या नवमीश्रद्धमंग्रहात् ॥१००॥  
 तस्मान्नवमीमना सर्वैः कार्यं वै नवमीवतम् । आश्विननवमी प्रोक्ता कोटिद्वयग्रहादिका ॥१०१॥  
 उपोषणं ज्ञागणं पितृनुहिष्य तृपणम् । तस्मिन्दिने तु कर्त्तव्यं ज्ञानप्राप्तिप्रार्थनाभिः ॥१०२॥  
 सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्यर्थकसाधनः । अशुचिरपि पापिष्ठः कृन्वेद् व्रतमुत्तमम् ॥१०३॥  
 पूज्यः स्यान्मर्त्यभूतानां यथा राममर्थव सः । यस्तु रामनवम्यां वै भुंक्ते मोहान् मृदधीः ॥१०४॥  
 कुंभीपाकेषु घोरेषु पक्ष्मले नात्र मशयः । शकुन्वा रामनवमीव्रतं सर्वत्रनोचमम् ॥१०५॥  
 अग्न्यन्याति कुरुते न तेषां फलमाभवेत् । आचार्यं चैव सपूज्य शृण्वान्प्राथयेन्निशि ॥१०६॥  
 श्रीरामप्रतिमदानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम भक्त इव वै भव प्रीत श्रीरामोऽस्ति न्यमेव च ॥१०७॥  
 स्वगृहे चानमे देशे दानस्योज्ज्वलमडपम् । शत्वचकहन्मज्जः प्राद्वारे समलकृतम् ॥१०८॥  
 गहनमच्छद्वेगैश्च दक्षिणे समलकृतम् । महापद्मादर्थं पश्चिमे मुविभूषितम् ॥१०९॥  
 पद्मस्थितं नीलं च कौन्तेयं समलकृतम् । मण्डपे दत्तचतुर्दशानां वैदिकाधुनकसाधनम् ॥११०॥  
 अष्टात्तमहर्षेश्च गौतमिन्महक मुनिः । अस्याथ रामनवम्यां वैदिकस्य भक्तुत्तमम् ॥१११॥  
 ततः सकलस्येदेव राममेव वसन् द्विज । अस्यां रामनवम्यां च रामायणनवम्यः ॥११२॥

तुलसीदास दुक्त चैत्रशुद्धा की अष्टमा की व्रत वरदा विजयक स्नान करने उक्त स्नानपत्र यज्ञका फल प्राप्ति  
 होता है । चैत्रशुद्धा की नवमीका तब कि पुनर्वसु पक्षका या उचित पक्षार्थि तथा चन्द्रमा की साय-साय रात्रि ग्रह  
 उच्च स्थानमें उदये, भूरा मघा राशिपर, मकरस्थली, जमे मघा मघा राशि भागवान् राम कोमलप्राप्त उत्पन्न  
 हुआ है । इसलिए लोगोंका उस राज उद्देश्य करने चाहिये ॥ ९२-९८ ॥ रामायण उक्ति है कि इस तिथिका  
 अपराधपुण्यमें जाकर रात्रिभर जागरण कर । चैत्रशुद्धा नवमी यदि पुनर्वसु नवमसे पुक्त हो हो  
 वह महापुण्यवती मानी जाती है । यदि पुनर्वसु नवमसे नवमी तो है तो भी व्रत करना ही चाहिए क्योंकि  
 सत्य नवमी इस प्रकारका है नग्नह किया गया है, ९९ ॥ १०० ॥ इसीलिए यह लोगोंका अच्छी तरह  
 नवमीका व्रत करना चाहिये । यह रामनवमी करने का मुख्यप्रणाली भी अधिक पुनाय माना जाती है ॥ १०१ ॥  
 मित लोगोंकी प्रह्लादप्रार्थना ९८ ॥ १०२ ॥ वही कि उस दिन इन्द्राय, जागरण तथा पितृशकी कृत्त करनेके  
 उद्देश्यसे व्रत कर ॥ १०३ ॥ क्योंकि सब लोगोंके लिए यह व्रत भुक्ति और मुक्तिका साधक है । यदि  
 कोई मनुष्य अशुचि या पापी हो तो इस व्रतका करनेसे वह उगा प्रकार सब प्राणियोंका पूज्य हो जाता है,  
 जैसे रामचन्द्रकी स्वयं सबके आराध्यदेव हैं । जो मनुष्य रामनवम्यां भोजन करता है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥  
 वह बहुत समय तक कुम्भपाक अदि घर नरकोम पड़कर मड़मा है । सब उपाय अत्र इस रामनवमीका  
 व्रत न करके जा जाणा और और व्रतोंको करना है, इस व्रत व्रत करनेका फल नही मिलता, व्रतके विन  
 रात्रिको आवापकी पूजा करके प्रार्थना कर—हे द्विज नम आत्र मे भक्तिमें श्रीरामचन्द्रजीकी प्रतिमाका  
 दान करेगा । हे आचार्य ! आप मर उर प्रमद हो ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ तदनन्तर अपने घरके  
 किनी उत्तम स्थानपर बसिया मण्डप बनावे । उसका पूर्वद्वारपर मलमक एवं हनुमान्जीकी स्थापना  
 करे ॥ १०९ ॥ दक्षिण द्वारपर गहड़ धनुष तथा बाणका व्यवस्था करे । उत्तर दिशामें कमल तथा  
 स्वस्तिकका स्थापना करके उसे अलङ्कृत करे । बायें द्वार हाथकी लम्बी चौड़ा धरी बनावे । वरीपर  
 महोत्तरद्वार रामलिंगात्मक रामचन्द्रजीकी रचना करे ॥ ११० ॥ १११ ॥ इसके अनन्तर हे द्विज !  
 श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करता हुआ संकल्प करे कि इस रामनवमीको श्रीरामचन्द्रजीकी आराधनामें तत्पर

उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रयत्नतः ॥११३॥  
 श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते । प्रीतो रामो हरत्तशु पापानि सुवहूनि मे ॥११४॥  
 अनेकजन्मसमिद्वान्यभ्यस्तानि मदीति च ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमानतः ॥११५॥  
 निर्मितां द्विभुजा दिव्यां वामाङ्कस्थितज्ञानकीम् विभ्रतीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां मनोरमाम् ॥११६॥  
 वामेनाश्रुकरेणारागहर्षमास्थित्य सन्धिनाम् विहामने राजते च पलद्वयविनिर्मिते ॥११७॥  
 अशक्तो यो महानव्र स तु विज्ञानुमारत । फलेन वा तदर्घ्येन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥११८॥  
 सौवर्णं राजतं वापि कारयेद्रघुनन्दनम् पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ घृष्टछत्रकराभौ ॥११९॥  
 चापद्वयमसमायुक्त लक्ष्मण चापि कारयेत् मातुरकगतं राममिद्वनीलसमप्रभम् ॥१२०॥  
 पञ्चामृतस्नानपूर्वं मध्पूज्य विधिवत्ततः अशोककुसुमधुंक्तमर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः ॥१२१॥  
 दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च । राक्षसानां विनाशाय दैन्यानां निधनाय च ॥१२२॥  
 परित्राणाय साधुना जातो रामः स्वयं हरिः । गृहाणाज्यं मया दत्तं आद्युभिः सहितोऽनघ ॥१२३॥  
 दिव्यं विधिवत्कुत्वा रात्रीं जगारणं चरेत् ततः प्रातः समुत्थाय स्नानमध्यादिकाः क्रियाः ॥१२४॥  
 समाप्य विधिवद्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमंत्रेण मन्त्रवित् ॥१२५॥  
 पूर्वोक्तमण्डपे कुडे स्थण्डिले वा समाहितः लोकिकार्ग्यो विधानेन शतमष्टोत्तरं शनैः ॥१२६॥  
 साज्येन पायसेनेव स्मरन् रामभजनन्यधीः । ततो भक्त्या सुमनोष्य ह्याचार्यं पूजयेद्बुद्धिजः ॥१२७॥  
 ततो राम स्मरन् दद्याद्देवं मन्त्रसूदीरपन् । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलकृताम् ॥१२८॥  
 चित्रवस्त्रयुगाब्जद्वजां रामोऽहं राघवाय वै । श्रीरामप्रीतये दास्ये सुष्टो भवतु राघवः ॥१२९॥  
 इति दत्त्वा विधानेन दद्याद् दक्षिणां भुवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१३०॥

होकर मे आठ प्रहसनक अवसान करके यह स्वर्णमयी प्रतिमा रामचन्द्रजीका प्रसन्नताके लिये किसी बुद्धिमान् रामभक्तको दूगा । उससे ध्यान रखकर जो प्रसन्न हो और मरे उस महापापीको हर ने, जो मेने अनेक जन्मोंके अन्त्यागवण किये हो तदनन्तर एक पल नवगनी बनी रामकी प्रतिमा, जिसमें दो भुजाएँ बनी हों, वाम-जाम सीताजी और दाहिना भुज में जानमुद्रा विराजमान हो ॥ ११३-११६ ॥ वे चारों हाथों देवोंका आश्रयन किये हो एक बाँराकी बनी चौकोर बैठे हों ॥ ११७ ॥ जो प्राणी सर्वथा असमर्थ हो वह अपना विज्ञानुसार एक पल अथवा पल अथवा अपने प्रो आधे पल मुखण वा चंदीकी प्रतिमा बनवाये । रामके नाम हो छत्र और चमर लिये भक्त तथा शत्रुन खड़े हों और दो गज्य वारण किये लक्ष्मणजीका प्रतिमा बनाये । बा-बा-गोदमें विराजमान ब्रह्मराजमणिको प्रभाव समान प्रभाशाली रामकी पंचामृतसे स्नान कराकर विधिवत् पूजन करे और वामाङ्क पुष्पयुक्त अथवा प्रदान करे अथवा दत्त समय 'दशाननवधार्थाय' आदि मन्त्र पढ़ना जाय । जिसका अर्थ इस प्रकार है ॥ ११८-१२१ ॥ रावणको मारने धमका व्यापन, राक्षसोंका विनाश और पापुओंकी रक्षाके लिए स्वयं विष्णु भगवान्ने अवतार लिया था । सब घानाझाके मय आप मेरे इस अन्तरको स्वीकार करिए ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ यह सब विधि दिवान् दिनको कान्के र-प्रियर जानरण करे तब-तबकर स्नान संघा आदि क्रियायें करके विधिवत् पूजन करे । फिर भक्तको जाननवाला यजमान पूज्यपत्रों हास करे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ यह हवनविधि पूर्वोक्त मण्डपमें अथवा स्थण्डिल में किया जाय और लोकिक अग्निमें विधानपूर्वक एक सौ आठ आहुतियाँ धीरे-धीरे दी जायें । इसका नामधोम घृत और खारजा रहता आवश्यक है हवन करते समय अपने चित्तको इधर उधर न दोड़ाकर रामका स्मरण करने रहता चाहिए ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ तदनन्तर 'इमां स्वर्णमयीं' इस मन्त्रका उच्चारण करता हुआ प्रतिमा करे कि सब तरहसे अलंकृत यह सुवर्णमयी रामकी प्रतिमा श्रीरामचन्द्रजीका प्रसन्न करनके हनु में दान करुगा । इससे श्रीरामजी प्रसन्न हो ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ इस



एवं शिष्य चैत्रमासे नवम्यां भूभुजाय हि । दानं देयं शयनमप्य राजसमुत्तिष्ठतश्चे ॥१३१॥

अथ्यदिशेणं ररुषामि चैत्र मासि भृगुष्व नन । चैत्रस्य शुक्ल कन्दश्वी देवदस्य मृतपय ॥११२॥

पूजयेन्मारवो भक्त्या आश्रयश्चनले स्थितम् । चैत्रमस्य शुक्लपामेकदश्यां तु वैदर्भ्यः ॥३३॥

आदोलनीयो देवेदः सलक्ष्मीश्चे महोत्सवः, आदोलनीयो देवेदः सलक्ष्मीश्चे महोत्सवः ॥१३४॥

चौधायनार्दिभि ओक्तः कृत्यः प्रतिबन्धम् ।

ऊर्ध्वं प्रतर्धं दोला श्वावने संतुष्टनम्, संव च दमनागावयकुसुमो ब्रह्मन्धः । १३६ ।।

रहिविचिचो गिरिजा गणेशः कणो विशाखो दिनकृन्महेशः ।

दुर्गास्तोत्रो विषदति: स्मरन् शतं उदी च तिथिषु प्रयुज्या ॥१३६॥

अथ चैरर्पणमाया भक्त्या रावं प्रपूजयेत् । सांन्या दोलकस्थं वै दमनेन महोत्तमम् ॥१३७॥

सैत्री शिवायुता येन्द्रानदा पुण्य महानिधिः ज्ञेया सर्वाधिका मा हि भवानदानत्रयादिषु ॥१३८॥

स्वाभिर्देयं विव्रयस्त्र तस्याः साक्षात्प्राप्तकम् । साक्षात्प्राप्तं विव्रयस्त्रैः पूजयित्वा मन्त्रेणैः ॥१३९॥

मन्त्रे वाक्के गुप्तं अपि व रेषतेषु चान्नह । तथाश्चमेषजं पुष्पं स्नानध्यादादिमिलमेत् ॥१४०॥

सुब्रह्मण्यकृतार्थः साकल्याराशिलानमुमान् । दम्भेनाद्यवैजयन्ति तदक्षयं स्पृष्टवान् ॥१५॥

चंद्रमालोद्यापन ख निर्धो नम्यां म्युन बुध. १०७२॥

अथ वैशाखकृत्थायां पञ्चम्यां पश्चात्तम्यः स चरन्तीं प्रहृष्टाश्च होलकथ्यो तु वृद्धिभिः ॥१४३॥

उद्यत्पत्नं तत्र कार्यं सदाफलमभाप्नुना , चेदाखि कृणवसे तु वतुःपत्निं ममृणोष्य च । १४४ ।

[illegible]

निशाया च प्रकर्तव्यमधिवामनमुत्तमम् । शुची देशे मङ्गपादि कृत्वा पूर्वोक्तवच्छुभम् ॥ १४५ ॥  
 रामलिंगान्तके भद्रे धान्यराशौ महानमम् । यजल कलशं स्थाप्य नामपात्रं तु तन्मुखे ॥ १४६ ॥  
 स्थाप्य वस्त्रं दोलकस्थं रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । हैमो वाराजो वापि दोलकस्त्रिपलः स्मृतः ॥ १४७ ॥  
 हैमो पलमिता राममूर्तिः कार्या मनोरमा । तारन्मिता कृष्णमूर्तिः सांतायाश्चार्पणं कारयेत् ॥ १४८ ॥  
 नानोपचारैः संपूज्य राशौ जागरणं चरेत् । नृपयोगीश्वरमालाद्यैः पुष्पाणश्च वादिभिः ॥ १४९ ॥  
 प्रभाते तं पुनः पूज्य रामं मीताभमन्वितम् । मन्त्रं हवनं कार्यं नित्यज्वपायमादिना ॥ १५० ॥  
 र्पणं राममंत्रेण छोरणेन प्रकाशयेत् । ततो गुरु मण्डीकं मपूज्य वचनादिभिः ॥ १५१ ॥  
 रामाय प्रार्थयेद्भक्त्या प्रबद्धकरलपुटः । सार्द्धं रामद्वयं राम वसन्ते तत्र पूजनम् ॥ १५२ ॥  
 दोलकस्थस्य जानक्या तथाशक्त्या मया कृतम् । प्रगादानेन श्रीरामं मामुद्धर मरणवान् ॥ १५३ ॥  
 एवं संप्राप्त्य श्रीरामं तामर्चां मुनिमनुजाम् । दद्यान्स्वर्गाय भक्त्या न प्रणम्य पुनः पुनः ॥ १५४ ॥  
 पंचसप्ततिघुमानि छष्टविंशन्निवानि वा । तत्र दान्यधराशक्त्या भोजयेद्गुरुणा सुखम् ॥ १५५ ॥  
 ततः स्वयं मुष्टिनिर्घ्नः कार्यं च भोजनं कुर्यात् । अथ सोऽपि यथाशक्त्या वसन्तं सकृदपि ॥ १५६ ॥  
 करोतु रामनुष्टयं वसन्तपूजनं चरम् । अथ शिष्ये न्ययं पृष्टं विशेषजं च पूजनम् ॥ १५७ ॥

सीतारामस्य तस्मिन्नेव दण्डस्थस्य लेभया ।

॥ १५८ ॥ अत्रात्र

गुरो ने प्रष्टुमिच्छामि यत्नं वद नदिमाराज ॥ १५८ ॥

कया कामनया कस्य कार्यं पूजनमुत्तमम् । तन्मयं यथयस्यच मयि कृत्वा पूर्णं कुर्याम् ॥ १५९ ॥

ध्यायन् रामं दशरथ

सम्पक् पृष्टं स्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । मेऽनर्चयकामस्तु यत्नेन नमनस्यद्विष ॥ १६० ॥

इदमिद्विषकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतान् । देवीं मायां तु श्रीकामस्ते वक्तामो विभवास्तु ॥ १६१ ॥

कहते एक धर्मधारी धान्यराशिका स्थापन करके उसमें सजल कलश रखे और उनका नामपात्र तब तक सजल करे । फिर मूलपद कपड़ा बिछाकर रामजी की चमड़े की ओर उनका पूजा कर वह जूना नान पन्थ मन्त्रों, श्रीराम तथा रामका ध्यान, एक पल नृपजी और मन्त्र प्रणाम करे । राम वसन्तके मुखपद मन्त्रों की प्रतिमा भवनात् च हरे ॥ १४६-१४७ ॥ एक जनपद नाना प्रकारके उपचारों से पूजा करके रातभर जागरण और उस समय नृपजी की मङ्गपादिका करके ॥ १४८ ॥ सबदे फिर रामजी पूजा करके निद्रा, या हाथ छोर आदि सत्त्व हवन और दानमन्त्रों उच्चरण करता कुछ दूध दूधम र्पण कर । सप्तपञ्चाशत् सप्तम्योक्त गुरुको दण्ड अमल जल दिना पत्रा ॥ १५० ॥ १५१ ॥ उनके बाद हाथ जड़कर रामकी प्रार्थना करना हुआ वह—ह राम ! मेरा गुरु महानाक दण्ड अमल जल के साथ आपकी पूजा को है । मर इस कायस आप प्रसन्न हो और भवतः प्रणम मया उद्धर कर ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ इस तरह प्रार्थना करके अनन्तर प्रतिमा समस्त वह पूजा अपन सुकृत द दे और उन्हें बार बार प्रणाम करे ॥ १५४ ॥ इसमें बाद वेद सो, बहुमल भवता काना शक्तिक अमर इसमें अर्पणक काहणिको भोजन करावे ॥ १५५ ॥ इसके पश्चात् अपने सम्पूर्ण धर्म और मित्राक साथ साथ स्वयं भी भोजन करे । कोई प्राणा यदि भगन्त हो तो उन अपने शक्तिक अनुतार हो वह इन और वसन्तच्छुभे रामचन्द्रजीका पूजन करना चाहिए । हे शिष्य ! तुमसे पुत्रसे रामजी पूजाके विषयम जा प्रश्न किया था । सो मैंने दोलकस्थ राम तथा साक्षात् पूजनके विषयको सब ध्यान कह सुनाया । विष्णुदासन कहा—हे गुरो ! मैं आपसे कुछ और पूजना चाहता हूँ । वह आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए । यदि आप ऐसा करेंगे तो सबी कया होगी । दया करके आप हमें यह बतलाइए कि किस कामनासे किस देवताका पूजन करना चाहिए ॥ १५६ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वत्स ! तुमसे बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सावधान मनसे सुनो । श्री वचना सदानज बढ़ाना हो, उसे बहुमलवर्तिका पूजन करना चाहिए ॥ १५७ ॥ इन्द्रियको कोई

॥ १५९ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वत्स ! तुमसे बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सावधान मनसे सुनो ।

श्री वचना सदानज बढ़ाना हो, उसे बहुमलवर्तिका पूजन करना चाहिए ॥ १५७ ॥ इन्द्रियको कोई

वसुकामो वसन् रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् । प्रभादिकामस्त्वदिदि स्वर्गकामोऽदिनेऽनुतान् १६२॥

विद्वान् देवान् राज्यकामः साध्यान्मसाधको विशाम् ।

आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पृष्टिकाम इत्या गजेन्द्र १६३॥

प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदणो लोकमानसं । रूपप्रियकामो मन्थरान् स्त्र्य क्षामोऽजगर उदयोम् १६४॥

आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् । यज्ञ यज्ञेश्वरकामः क्रोशकामः प्रचेरयम् ॥ १६५ ॥

विद्याकामस्तु गिरिश दापयार्थयुमां सर्गम् । धर्मार्थ उत्तमश्लोक गतुं गन्धर्व विनन्दनेन ॥ १६६ ॥

रक्षाकामः पुण्यजनामोज्ज्वलामो मरुद्गणान् । राज्यकामो मनुदेवान् निकर्ति न्वभिचरन्नेन १६७॥

कामकामो यजेन्सोमकामः पुरुष एवम् । उकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥ १६८ ॥

शीघ्रेण भक्तियोगेन यजेत श्युनन्दनम् । रामेण मदगो देवो न भूतो न भविष्यति ॥ १६९ ॥

रुद्रमान्सर्वप्रयत्नेन रामचन्द्रं प्रयुजयेत् । तस्याश्वत्थनामधर्पाद्युद्धम्वत्र सादिकम् ॥ १७० ॥

पर श्रुत्वासापञ्च विस्मारेण वदाम्यहम् । रुक्म रत्नं रथो रामा रक्षामो रजः रतः ॥ १७१ ॥

रथा रणो रमा रक्तं रजको रमराकटो , रज रोषो रत्नी रक्षी रज्यं रजस्वला तथा ॥ १७२ ॥

एवामदीन्यनेकानि भेष्टान्येवात्र मां हि त्र । रुक्म पात्रं महर्हं च रत्न रथं मरुत्तमम् ॥ १७३ ॥

रथो यानं वाहिष्ठ च रामा यस्मा इदं जगत् । रक्षामो देवमण्यो रजः तन्मुदुनमम् ॥ १७४ ॥

रजः साक्षान्परमाणुनित्यः सोऽयं प्रकीर्त्यते । रभा रभाकरी ज्ञेया रणो जयकरः स्मृतः ॥ १७५ ॥

कामना पूर्ण करनेकी अभिलाषा हो तो इन्द्रकी, मत्स्यनकी इच्छा हो तो उज्जयिनीकी, श्रुतवृद्धकी इच्छा हो तो मायादेवीकी, उकावृद्धकी अभिलाषा हो तो नूरुभगवत्की, वनवृद्धकी इच्छा हो तो आठो वसुओंकी, पराक्रमका अभिलाषा हो तो मरुद्गणवाणकी, अन्न आदिकी इच्छा हो तो अदितिकी, स्वर्णकी इच्छा हो तो अदितिके पुत्रों अर्थात् देवताओंका ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ राज्यकी इच्छा हो तो इलाको, प्रविष्टा पाहुनेवालेकी कोकमताओकी, सौन्दर्यकी अभिलाषा हो तो गन्धर्वोंकी, स्त्रीका कामना हो तो उर्वशी आदि सप्तराओंकी और आधिपत्यकी इच्छा हो तो सब देवताओंका पूजा कर । जिसे यज्ञ पानेकी इच्छा हो उसे यज्ञ करना चाहिये । कोमकी इच्छा हो तो वरुणकी, विद्याकी इच्छा हो तो गिरिका र मरुत्तमोंकी इच्छा हो तो पार्वती जीका, धर्मकी अभिलाषा हो तो उत्तमश्लोक ( विष्णु भगवान् ) का और वशविस्तारका इच्छा हो तो पितराकी पूजा करना चाहिए ॥ १६३-१६६ ॥ आरमरक्षाकी इच्छा हो तो पुण्यजनाको यजेवृद्धकी अभिलाषा हो तो मरुद्गणोंकी राज्यकी इच्छा हो तो मरुद्गणोंका आधिपत्यकी विरा करनी हो तो राक्षसोंकी, वनोद्विजित काम पूर्णकी इच्छा हो तो चांद्रमाका, विद्याम हातेकी अभिलाषा हो तो परम पुरुष परमेश्वरकी, अकाम या सतामभावसे मोक्षकी कामना रखत हो तो उसे चाहिए कि तत्र भक्तियोगसे श्युनन्दन रामचन्द्रकी पूजा कर । रामचन्द्रजीके समान न कोई देवता हुआ है और न हो व होगा ॥ १६७-१६९ ॥ अतएव हर तरह प्रयत्न करके रामचन्द्रजी पूजा करे । उनके नामके बादिम वर्षों 'र' की सामर्थ्यसंसारमें जितनी वस्तुएं रकारादि हैं, वे सब अतिशय श्रेष्ठ मानी गयी हैं । इन वस्तुओंको जब मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ । जैसे-रुक्म ( सुवर्ण , रत्न, रथ, रामा स्त्री ), राजस ( विद्यापूर्ण आदि ), रजन ( चांदी , रज ( धूलि ), रक्षा, रण, रमा ( लक्ष्मी ), रक्त, रजक ( घोड़ी ), राग, रामठ ( हीन ), रजा, रोग, रवि ( सूर्य , रात्रि, रज्य, रजस्वला आदि अनेक नाम श्रेष्ठ मान गये हैं । ऊपर बताया हुआ रुक्म ( सुवर्ण ) पीतवर्णकी बहुमूल्य घाट है । रत्न देखनेमें सुन्दर लगता है और कठिनार्द्धक घाट होता है । रथ एक श्रेष्ठ सवारी है । रामा ( रानी , बहु वस्तु है, जिससे जगत् उत्पन्न हुआ है । राजस ऐसे समानक होते हैं, जिसे देवता भी भयभीत रहा करते हैं । रजठ ( चांदी ) भी एक दुर्लभ वस्तु है । रज ( धूलि ) साधारण परमाणु और नित्य है, रजा रक्षाकारा है । रण ( संशय ) विजयादायक होता है ॥ १७०-१७५ ॥

रमा सा दुर्लभा मय प्र सन्तेऽस्मि रक्तगा वरा । रजको निमलकरो रामः प्रीतिः सुखप्रदा ॥१७६॥  
 रामटः शुद्धिदोषस्य रुचिदश्च प्रकीर्तितः । राज्य मोग्यकरं श्रेष्ठ पुत्रदा सा रजस्वला ॥१७७॥  
 एवं यद्यदा गच्छ तस्य ह्येष्टं भुवि स्मृतम् । रामायणमेषां श्रव्याद्विष्णुरास मयेरितम् ॥१७८॥  
 अन्वच्छिद्य शृणुष्व त्वं धन्यया कथयते तव । यथा प्रोक्ता रामनाममुद्रा तत्र मया धृता ॥१७९॥  
 वंशानाम्यस्य देवस्य नाममुद्रा प्रजायते । रामनाम धित्वा नाममुद्रिकानां स्फुटाक्षरम् ॥१८०॥  
 न कदा हृदये शङ्कयेन्न च महदद्भुतम् । अत्र प्रभावो रामस्य न्व विद्धि द्विजपुत्रव ॥१८१॥  
 अतएव रामनाम कश्यप विद्वेत्तमः मदा । स्वयं जप्त्वापदिशति जन्तुनां मुक्तिहेतवे ॥१८२॥  
 म भाष्यमममनं नरं यस्मात्स्वेन्मनुः । स एव तारकस्तत्र राममयः प्रकथ्यते ॥१८३॥  
 तारकाख्यस्यैव रामनाममयी न चेतनः । अत एवातकालेऽपि मनुकामनस्य च ॥१८४॥  
 कर्णे मयेव देवेशरामनामोपदिश्यते । अन्तकाले नृणां रामस्मरणं च मुहुर्महः ॥१८५॥  
 इति कुर्वन्पुण्ड्रेश मन्त्रवा मुक्तिहेतवं । अन्यथापि श्रवणार्हं सदा लोकेर्महर्षिर्बुधः ॥१८६॥  
 रामनामैव मुख्यार्थं श्रवस्य पश्चि कोऽन्ये । रामनाम्नः परो मंत्री न धृतेन भावयति ॥१८७॥  
 रामनाम्ना जपो निर्व्यं कियते शृङ्खलापि च । पावन्या नारदेनापि रामपुत्रादिभिः सदा ॥१८८॥  
 रमयति जनान् रामो रमते न मदात्मनि । राक्षसानां मारणाद्वा रामनाम महत्तमम् ॥१८९॥  
 रमान्महादृक्काशे हि त्वकारोऽवानिममवः । महर्लोकान्मकराश्च त्रिवर्षात्मकमुच्यते ॥१९०॥  
 रकारेण निर्जं भक्तं मवाच्येः परिरक्षति । अकारेणानिर्माक्यं हि स्वभक्तस्य करोति यत् ॥१९१॥  
 मनोरथान्मकारेण ददाति स्वजनस्य यत् । अथवा निजभक्तस्य मरणादि मुहुर्महः ॥१९२॥

रमा लक्ष्मी ) इस संसारमें दुःख है । रक्तवर्ण एक असाधारण स्त्रीनिर्मा विद्यमान रहा काशी है । रजको ( रंग ) मलको धोकर साफ करता है । राम प्रीतिकार नाम है जिसने सारे संसारको अपनी मुद्राय कर रक्खा है ॥१७६॥ रामट (हीन) अन्नको पवित्र करनेवाले और एक इच्छिकर सन्तु है । राज्य मोग्यकार होता है । रजस्वला स्त्री पुत्रदायिनी होती है । इस तरह जिसने भी रकारादि वर्णों का नाम है, वे सब श्रेष्ठ माने गये हैं । हे विष्णुरास ! जप करे तुम्हें बताना है, इन सबके श्रेष्ठ होनेका कारण वही रामके आश्रय वणकी समानता है । १७७ । १७८ । हे गोप, अब दूसरी बात तुमसे कहना है, उस धृता । जिस तरह पहले मैं तुम्हें रामनामकी मुद्रा बताना आया है वैसे नाममुद्रा और किम देवताकी नहीं है । रामनामके बिना किसी नाममुद्राम इस प्रकार ( रजरास ) जैसा स्फुर मंदार नहीं बनता । यह एक अद्भुत वस्तु है । हे द्विजपुत्रव ! इससे तुम रामका ही मभाव जानो । १७९-१८० । इमोऽपि कारण म विष्णुनाथजी रामनामका जप करके प्राणियोंका मुक्त होनेका उपदेश स्वयं दिया करते हैं ॥ १८२ ॥ जो मन्त्र ससारक्षी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्य को तार तके उसी राममन्त्रका तारक मन्त्र है । १८३ ॥ एकमात्र यह रासका नाम ही तारक है । इसीलए सर्वत्र किसीके मरत समय उसके नामसे रामनामका ही उपदेश दिया जाता है । पुत्रपुत्र प्राणीकी मुक्तिके लिए उससे बार-बार यहाँ कहा जाता है कि 'राम' का स्मरण करो । सबको से मानेवाले लोग राम नामका ही कीर्तन करते हैं । रामनामके श्रेष्ठ कोई मन्त्र न आज तक हुआ है और न होगा ॥ १८४-१८७ ॥ स्वयं शिवजी भी निज रामनामका ही जप किया करते हैं । उसी तरह हनुमान्जी, नारद तथा पावनेंजी भी सदा रामनामका जप करती हैं । १८८ ॥ भक्तोंके हृदयमें विहार करने या निज रमण करत अथवा राक्षसोंका मंहार करनेके कारण ही रामनाम सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ॥ १८९ ॥ 'राम' इस शब्दमें रकार रसान्तर स्वरसे, मकार भूमण्डलसे एवं सकार महर्लोकसे आया है । इसी कारण यह त्रिवर्णरमक राममन्त्र है । १९० ॥ वे श्रीरामचन्द्रजी रक्त रंग के द्वारा भक्तियोंसे अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं । अकारसे निज भक्तोंकी अतिमय सौख्य प्रदान करते हैं । मकारसे अपने भक्तोंकी कामना पूर्ण करते हैं अथवा मकारसे बार-बार अपने भक्तोंकी मरण आदि बाधाएँ दूर करते रहते हैं ।

निवारयति तत् छीघ्रं रामनाम वरं ततः अयमेव सदा जप्यो रामेति द्रवक्षरो मनुः ॥ १७३ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वारुभीकीये मनाङ्गकाण्डे  
उत्तरार्द्धे विशेषकालपरत्वेन पूजाविस्तारो नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

## दशमः सर्गः

( अयोध्यामें चैत्रमासकी महिमाका वर्णन )

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया पूर्वं ये ये प्रश्नाः कृताः शुभाः । श्रीरामविषये ते ते मयोक्ताः परमादरात् ॥ १ ॥  
इदानीं ते पुनः श्रोतुमिच्छाऽस्ति तां वदस्व माम् । यद्यन्पृच्छामि सो वत्स तत्सर्वं ते वदाम्यहम् ॥ २ ॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं गुरोर्वचः श्रुत्वा विष्णुदासोऽब्रवीन्पुनः ।

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वयाऽयोध्यायां चैत्रमासफलं मत् ॥ ३ ॥

प्रोक्तं तद्विस्तरेणाद्य कथयस्व ममादिकम् । किं दानं किं फलं तत्र कमुद्दिश्य चरेद्भवत् ॥ ४ ॥  
को विधिश्च कदारंभः सर्वं विस्तरतो वद । यत्सरस्वामं रामग्रीधे स्नातव्यं चेति कीर्तितम् ॥ ५ ॥

श्रीरामदास उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ शुभः प्रश्नः कृतस्त्वया । अधुना चैत्रमासस्य महिमा प्रोच्यते मया ॥ ६ ॥  
मासार्त्ता प्रथमो मासश्चैत्रमासः प्रकीर्त्यते । मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्टफलप्रदः ॥ ७ ॥  
दानयज्ञव्रतसमः सर्वपापप्रणशनः । धर्मसारः क्रियामारस्तपःसारः सदा र्जचितः ॥ ८ ॥  
विद्यानां वेदविद्येव मंत्राणां प्रणवो यथा । भूरुहाणां सुरतरुणानां कामधेनुवत् ॥ ९ ॥

इसलिए रामनाम सर्वश्रेष्ठ मंत्र है । अतएव लोगोको चाहिए कि 'राम' इस दो अक्षरके मंत्रको सदैव जपते रहें ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंच रामतज्जापाण्डेयकृता-  
'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदास बोले—इस तरह हैं शिष्य ! अबतक तुमने हमसे रामविषयक जो-जो प्रश्न किये, मैंने उनका उत्तर आदरपूर्वक दिया ॥ १ ॥ अब तुम्हें जो कुछ सुनना हो, सो कहो । हे वत्स ! हमने तुम जो भी पूछोगे, वह सब मैं तुम्हें बतलाऊंगा ॥ २ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपने गुरुके इन वचनोंको सुनकर विष्णुदास फिर बोले । विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आप अयोध्यामें चैत्रमासका बड़ा फल कह आये हैं । अब उसे विस्तारपूर्वक कहिए । उसमें क्या दान करना चाहिए, उसके करनेसे क्या फल होता है और किस उद्देश्यसे वह व्रत किया जाता है । इस व्रतको करनेकी नया विधि है । इसे कब आरम्भ करना चाहिए । यह सब आप मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइए । सरभूके रामग्रीधमें स्नान करना चाहिए, यह जो आप कह चुके हैं । इसका भी विधि-विधान बता दोजिए ॥ ३-५ ॥ श्रीरामदासने कहा—ठीक है, हे महाबुद्धिमान शिष्य ! तुमने बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है । अब मैं चैत्रमासकी महिमा बतला रहा हूँ ॥ ६ ॥ सब मासोंमें चैत्रमास वर्षका सर्वप्रथम मास माना गया है । यह मास सब प्राणियोंका माताके समान हितकारी है और सबको अभीष्ट फल देता है ॥ ७ ॥ यह समस्त दानों यज्ञों और व्रतोंके समान फलदायक है । यह सब धर्मोंका सार, समस्त क्रियाओंका सार और सब प्रकारकी समस्याओंका सार है ॥ ८ ॥ यह मास सब विद्याओंमें [ वेदविद्याके समान, सब मन्त्रोंमें प्रणव ( अकार ) मन्त्रके समान, वृक्षोंमें पारिजातके समान, गोश्रांमें काम-

शेषवस्त्वनामानां रक्षिणीं पुरुडो यथा देवानां तु यथा विष्णुवर्णानां वाङ्मनो यथा ॥१०॥  
 प्रागवन्निप्रयत्नानां मार्येव सुहृदां यथा । आपगानां यथा मृगा तैजसां तु रविर्धया ॥११॥  
 आयुधानां यथा वज्रं घातूनां कांचनं यथा । वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा ॥१२॥

पुण्येषु च यथा पद्मं सगरां माननं यथा ।

मासानां धर्महेतूनां चैत्रमासस्तथा स्मृतः । जनेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ॥१३॥  
 चैत्रस्नाने च निरुते माने प्रागम्णोदयान् लक्ष्मीसहायो भगवान्प्रीतिं तस्मिन्कर्मफलम् ॥१४॥  
 जन्तूनां प्रीणनं यद्ददध्वन्तेव हि जायते नृजन्त्रे च स्नानेन विष्णुः प्रीणत्यमंशयः ॥१५॥  
 यध्वंस्नाननिरगान् जनान् दृष्ट्वा सुमोदते । तारताऽपि विष्णुकाशे विष्णोर्लोके मर्हयते ॥१६॥  
 मकृत्स्नान्वासीनमस्ये सूर्ये प्रातः कृताह्निकः । महापार्ष्णिमुकोऽर्घ्या विष्णुवापुन्यमानुषान् ॥१७॥  
 स्नानानार्थं चैत्रमासे यः पादमेकं चलेद्यदि । सोऽश्वमेधापुनानां च फलं प्राप्नोत्यसदृशः ॥१८॥  
 अथवा कृदचित्तप्तुं कुर्यात्सकल्पमात्रकम् । सोऽपि कतुश्च न पुण्यं लभन्त्येव न सद्यः ॥१९॥  
 यो गच्छेद्गुणायाम् स्नानं कौनगते रशे । सर्ववधविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमानुषात् ॥२०॥  
 त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्मांडान्तर्गतानि च । तानि सर्वाणि भाशिष्य मतिं वासजनेऽल्पके ॥२१॥  
 तारतुल्यानि पापानि गर्जन्ति यमशामने । यावन्न कुरुते ऋतुर्वत्रे स्नानं उवाचप ॥२२॥  
 तीर्थादिदेवताः सर्वाश्चैत्रे भासि द्विजोत्तम । वदिजेन यमाश्रित्य यदा सनिहिताः शिशो ॥२३॥  
 सूर्योदये समागम्य यावत् पङ्कटिकावधि । निष्ठति चाज्ञया विष्णोर्नगरां दिनकाभ्यया ॥२४॥  
 तथैतन्मूर्ध्नि स्नानं शार्पं दद्यात् मुदारुणम् । स्वस्थानं याति सो शिष्यः कस्माच्छानं सभाधरेत् ॥२५॥

छेत्रके समास, सर्पोंमें ज्ञेय-नागके समान, पक्षिधामें पुरुडके समान, देवताधामें विष्णुधमवान्के समान और वर्णोंमें वाङ्मनके समान छेष्ट है ॥ १॥ १०॥ मंसायकी प्रिय वस्तुओंमें प्राणकी समान, मिश्रीमें मार्यकी तरह, रक्षिणीय गङ्गाकी तरह, तेजस्विनीमें नु की नाई, मगरोंमें वज्रकी तरह पातुओंमें सुवर्णकी तरह, वैष्णवोंमें रुद्रभगवान्के समान, रत्नोंमें कौस्तुभ मणिकी तरह पूजाय कल्पयते तरह मानार्थोंमें मानकौस्तुभकी तरह घने-हेतुक सब मागोंमें यह चैत्रमास सर्वोच्छेष्ट है । ममायमें विष्णुक प्रति प्रीति बतानेवाला और कोई मास नहीं है ॥ ११-१३॥ जब कि मान पानपर सूर्य हो, ऐसे चैत्रमासमें अरुणोदयके पड़ने स्नान करनेसे लक्ष्मीके साव-साथ विष्णुधामात् भी प्राप्त होते हैं ॥ १४॥ जन्तु तह मंसाय के प्राणी अन्नमें ज चित नवा प्रसन्न रहन है । उसी तरह चैत्रमासमें स्नान करनेसे विष्णुभगवान् वृत्त हान है । इसमें कोई मास नहीं है ॥ १५॥ जो मनुष्य विष्णुकी चैत्रमासमें मरण देसकर उसका अनुप्राप्तन करता है ता कहे हा म उमर सब पाप छुट ज रहे और वह प्राणी विष्णुजीनय सम्मान पाता है ॥ १६॥ जब कि सूर्य मान राशेपर हां, ऐसे समय कबल एक बार अतःकालके समय स्नान और निर्यकर्म करनेवाला प्राणी बड़ बड़ पापोंमें मुक्त होकर विष्णुभगवान्की सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ १७॥ चैत्रमासमें स्नानक निमित्त जो मनुष्य एक पग भी चलेता है वह दस हजार कल्पमें यज्ञका फल पाता है । १८॥ जो प्राणी जिन चिन्तमें चैत्रमासका सकलमाय करता है, वह भी सैकड़ों यज्ञ करनेवा फल प्राप्त कर लेता है । इसमें कोई गणय नहा है ॥ १९॥ सोमाय सूर्यके समय जो प्राणी एक क्षण विमन्त मार्ग भी चैत्रमासमें लिए चलेता है, वह सब बन्धनोंसे छुटकर विष्णुकी सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ २०॥ त्रैलोक्य या ब्रह्माण्डके अन्तर्गत चित्त प्राणी तथ है वे सब उस समय वृद्धोंके योगमें जलन विद्यमान रहन है ॥ २१॥ जब तक प्राणी चैत्रमासमें किसी प्रलयायमें प्यान नहीं करता, तर्पितक यमराजक आज्ञानुसार सब फलक गरजत है । २२॥ हे शिशु! सभी तीर्थ और सब देवता चैत्रमासमें अपने बाहर आकर ठहर जान हैं । २३॥ सूर्योदयसे लेकर छः बड़ी दिन चने तक विष्णुभगवान्के आज्ञानुसार सब देवता मनुष्योंके कल्याणार्थ जम्के बाहर बंटे रहने हैं । २४॥ उस समय भी यदि कोई स्नान नहीं करता तो

न हि चैवममो मायो न कृतेन सम दूषणम् । न च वेदममं शास्त्रं न तीर्थं गमया समम् ॥२६॥  
 न जलेन सम शानं न सूर्यो मायया समम् । न हि चैवममं लोके पवित्रं क्वचो विदुः ॥२७॥  
 तस्यास्य चैवमायुः शेषशायिप्रियः मदा । अत्रनेन मयेषस्तु पांडालव स जल्पते ॥२८॥

यथा गृहं मरुगुणोपपन्नं परिच्छिद्यं हानमगोभने तथा ।

वयं च कन्या मकुर्वन्तु न भर्षयुक्ताऽपि तेषां च तेषां भोजोऽपि ॥२९॥

शकं तु यदुपपन्नमेव हानं न शोभने मरुगुणोपपन्नम् ।

यथा लज्जामेष विना मया नैवमेष हाना लज्जया च शिष्यः ॥

तथाऽन्यथासंयुक्तो हि धर्मश्चैवम हानश्च वृषैव बानि ॥३०॥

पुष्पमममममनेन येन केनापि चेहिता । चैवममस्य यो धर्मः कर्तव्य इति निश्चयः ॥३१॥

न नदननोः पृथगपि गमो न गमनोऽपि वसुदेवपुत्रः ।

अन्यथाप्यपुनरात्मकस्य श्रेष्ठे तु कार्यं विधिवत्प्रवृत्तम् ॥३२॥

अजकीकृतमृदिष्य मीनवस्थे दिशकर । प्रानः स्नाना जपेष्टापमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥३३॥

चैवममो हि सकलः सत्ताराद्वरैश्चनः । यद्यकर्षं हि हन्मव तमृदिष्य चरेन्नरः ॥३४॥

अजकीकृतं हि राम चैव मीनवने मदा । प्रानः स्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु राघव ॥३५॥

चैवमम मीनमे यावो प्रानः स्नानपरायणः । अयं तेऽहं मदास्यामि गृहाय मनुजानक ॥३६॥

मयायाः सतिः मरुगुणोऽपि जगदा नदाः । अनेगुण मदा दत्तमयं ममवत् प्रमादय ॥३७॥

मयाया देवताः मया अययो ये च केनसाः । न गृह्णतु मया दत्तं प्रमादमवर्ण्यदानवः ॥३८॥

उसै दावण काय देकर न दवता भयन स्वातकर चने नाते है । अतएव है शिष्य । इस समय ब्रह्म स्नान करना चाहिए । २६ ॥ चैवक समान कोई माय नहीं है, सत्यगुणक समान कोई पुण नहीं है, वेदक समान कोई शास्त्र नहीं है, तीर्थक समान कोई गम नहीं है, जलदानक समान कोई शान नहीं है, सूर्यको समान कोई मायया नहीं है, तस्यास्य चैवमायुः शेषशायिप्रियः मदा । अत्रनेन मयेषस्तु पांडालव स जल्पते ॥२७॥ इसीलिए यह चैवममो मायो न कृतेन सम दूषणम् । न च वेदममं शास्त्रं न तीर्थं गमया समम् ॥२८॥ यथा गृहं मरुगुणोपपन्नं परिच्छिद्यं हानमगोभने तथा । वयं च कन्या मकुर्वन्तु न भर्षयुक्ताऽपि तेषां च तेषां भोजोऽपि ॥२९॥ शकं तु यदुपपन्नमेव हानं न शोभने मरुगुणोपपन्नम् । यथा लज्जामेष विना मया नैवमेष हाना लज्जया च शिष्यः ॥३०॥ तथाऽन्यथासंयुक्तो हि धर्मश्चैवम हानश्च वृषैव बानि ॥३१॥ पुष्पमममममनेन येन केनापि चेहिता । चैवममस्य यो धर्मः कर्तव्य इति निश्चयः ॥३२॥ न नदननोः पृथगपि गमो न गमनोऽपि वसुदेवपुत्रः । अन्यथाप्यपुनरात्मकस्य श्रेष्ठे तु कार्यं विधिवत्प्रवृत्तम् ॥३३॥ अजकीकृतमृदिष्य मीनवस्थे दिशकर । प्रानः स्नाना जपेष्टापमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥३४॥ चैवममो हि सकलः सत्ताराद्वरैश्चनः । यद्यकर्षं हि हन्मव तमृदिष्य चरेन्नरः ॥३५॥ अजकीकृतं हि राम चैव मीनवने मदा । प्रानः स्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु राघव ॥३६॥ चैवमम मीनमे यावो प्रानः स्नानपरायणः । अयं तेऽहं मदास्यामि गृहाय मनुजानक ॥३७॥ मयायाः सतिः मरुगुणोऽपि जगदा नदाः । अनेगुण मदा दत्तमयं ममवत् प्रमादय ॥३८॥ मयाया देवताः मया अययो ये च केनसाः । न गृह्णतु मया दत्तं प्रमादमवर्ण्यदानवः ॥३९॥

त्रयमः पापिनो शास्त्रा वम न्ने समदर्शनः । गृहाणान्ये मया दत्तं यथोक्तमक्षो भव ॥३९॥  
 इति चार्थे मयप्याथ पश्चात्स्नानं समाधत्ते ॥ ४० ॥  
 जानकीकांतमभ्यर्च्य प्रयुनैर्मधुर्ममैः । श्रुत्वा रामकथां दिव्यामेतन्माधप्रशंसिनीम् ॥४१॥  
 कोटिजन्मार्जितान्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् । चैत्रे यः कांस्यभोजी हि तथा चाश्रुनयन्कथः ॥४२॥  
 न स्नानश्चाप्यदाना च नरकमेव विंदति । यथा माधः प्रयागे ह स्नानवपः पुण्यमिच्छता ॥४३॥  
 कार्तिकेऽपि यथा काश्यां पञ्चगङ्गाजले स्मृत । द्वारकायां यथा प्रोक्तो वैशाखो माधवप्रियः ॥४४॥  
 अयोध्यायां रामतीर्थे तथा चैत्रे प्रकीर्तितः । प्रयागे माममात्रेण वन्फलं प्राप्यते नरैः ॥४५॥  
 अयोध्यायां रामतीर्थे सकृन्स्नानेन तत्फलम् । वैशाखद्रोदशमे पुण्यं यद्रोमतीजले ॥४६॥  
 तत्पुण्यं सरयुतोषेऽयोध्यायां प्राप्यते नरैः । चैत्रे म मि त्रिभिः स्नानैः रामतीर्थे न संशयः ॥४७॥  
 कार्तिके चैवगङ्गायां यैः स्नानं द्वादशान्दकम् । अयोध्यायां रामतीर्थे चैत्रे पक्षेण तत्फलम् ॥४८॥  
 अयोध्यायां यदाऽमावस्तदा रामकुतानि च । जगन्त्यां यानि तीर्थानि तत्र स्नानं विधीयताम् ५० ॥  
 चन्द्रायोध्यापरी तान्ति स्नानार्थं मयूर्ध्वं च । रामतीर्थं न यत्रास्ति तदा तीर्थेषु कास्येद् ॥५१॥  
 तैलाभ्यंगं दिवास्वापस्तथा च कांस्यभोजनम् । अष्टशनिष्टा गृहे स्नानं निषिद्धस्य च मक्षणम् ॥५२॥  
 चैत्रे तु वज्रवेदपी द्विभुक्तं नक्तभोजनम् । चैत्रे मासे तु मध्याह्ने श्रान्तां च द्विजन्मनाम् ॥५३॥  
 पादावनेजनं कुर्याच्चवृत्तं तु श्रान्तमम् । मार्गेऽध्वगानां यो मर्त्यं प्रवादानं च चैत्रके ॥५४॥

अवि मेर इस अर्घ्यदानको ग्रहण करते हुए प्रसन्न हैं । ३८ । हे पण्डितोंपर आसन करनेवाले समदेवता । आप समदर्शी हैं । पर इस अर्घ्यदानको ग्रहण करिए और यथाचित्त फल दीजिए ॥ ३९ ॥ इस तरह अर्घ्य समर्पण करनेके अनन्तर स्नान करें । तदनन्तर कण्ठे वस्त्रमकर और कोई काम करना चाहिए ॥ ४० ॥ इसके बाद वसन्त ऋतुमें उत्पन्न फूलोंमें जानकीकान्तका पूजन करें और चैत्रमासको प्रार्थना करनेवाली कथाये सुने ॥ ४१ ॥ ऐसा करनेमें कराही जन्मक एकत्रित पातक नष्ट हो जात है । जो मन्थ्य चैत्रमासमें किसीके वाक्यमें भोजन करता है और मन्थो मन्थो कथाने नहीं सुनता, न किसी पवित्र तीर्थमें स्नान करता है और न दान ही देता है, उसे नरकके सिवाय और किसी गतिका प्रश्न नहीं होती । जिस तरह कि पुण्यप्राप्तिके लिए लोग माघमासमें प्रयागस्नान करने हैं । ४२ ॥ ४३ ॥ अंत कार्तिकमासमें काशीको पञ्चगङ्गामें स्नान करते हैं, वैसे वैशाखमासमें द्वारकाजामें स्नान करने हैं, उसी तरह रामपसाको चाहिए कि चैत्रमासमें अयोध्या-स्नान आवश्यक करें । एक महान्त प्रयागमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल अयोध्याके रामतीर्थमें केवल एक बारके स्नानसे मिल जाता है । बारह बार वैशाखमासमें द्वारकाका गोमती नदीमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल अयोध्याके सरयूजलमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है । किन्तु वह फल एक मिलता है, जब चैत्र मासमें तीन बार रामतीर्थमें स्नान किया जाय ॥ ४४-४७ ॥ बारह बारस तक कार्तिकमें काशीको पञ्चगङ्गामें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल केवल एक पक्षतक अयोध्याकी सरयूजीमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है । ४८ ॥ पाण्डित्य के लिए अयोध्या दुर्लभ तीर्थ है, पापगण सभी एक क्षण करते हैं, पक्षतक प्राणी अयोध्यापूरीका दर्शन नहीं कर लेता । ४९ । यदि किसी भावक भक्तको अयोध्या प्राप्त न हो सके तो रामचन्द्रज ने जिन तीर्थोंका निर्माण किया हो वहीपर स्नान करें ॥ ५० ॥ जहाँ कि न अयोध्या है, न सरयूजा हैं और न कोई रामतीर्थ ही है । वही जो कोई भी तीर्थ हो, उसीमें स्नान कर ले ॥ ५१ ॥ तेल लगाना, दिवसे सोना, कांस्यपात्रमें भोजन करना, चात्पाईपर सोना, घरमें स्नान करना, किसी प्रकारका निषिद्ध भोजन, रात्रिके समय भोजन तथा दिवसे दो बार भोजन इन सब बातोंको चैत्रमासमें छोड़ देना चाहिए । चैत्रमासमें जो प्राणी दोपहरके समय बके हुए श्रावणोंके रैर होता है, वह मानो सर्वोत्तम सब करता है । जो प्राणी चैत्रमासमें राह चलतेवालोंको जल पिशाता है और रास्तेमें



मार्गे छायां तु यः कुर्यान्म स्वर्गं च मदायते । मलिनं माललाकां हि उग्रं च छायाभिस्तृणैः ॥५५॥

व्यजन व्यजनाकांक्षो दानमेतत्तु चैवके ।

जलं छत्रं तु व्यजनं दानं मीने विशिष्यते । चैत्रं मार्गं तु मन्त्राव न्यायाव कुरुष्वने ॥५६॥

मदस्वोदककुम्भं तु चानको भुवि जायते । चैत्रं देव जन चान्न इषा नृणा मने रता ॥५७॥

आदर्शदानं तांबूलगुडदानं प्रकार्येन । गोत्रमनुवरं दानं दानं दद्यादन्वयं च ॥५८॥

घृतयुक्तं कांस्यपात्रं दानमित्तुरामय च । तथा श्रीकन्ददानं च दानं चात्र कलशाय च ॥५९॥

सूक्ष्मवस्त्रसंचकपोः पानपात्रं कमण्डलुम् । पतानां दण्डदानं वै तैलदानं मठेषु च ॥६०॥

जीर्णोद्धारं मठानां च घटानां कर्णं तथा । प्रासादकरणं चैव बाघाक्यादिकं तथा ॥६१॥

मार्गस्थानी छत्रदानं मध्याह्नं इति धिपूजनम् । कर्मपात्रं यन्मना च एषो ग्रामं तु गतापि ॥६२॥

एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । कलशं शकं तु मूलं च चंद्रं पुष्पं तु चन्दनम् ॥६३॥

उशीरः शीतलं द्रव्यं कपूरं कस्तूरी शुभा । दीपदानं धेनुदानं गेहदानं तथा स्मृतम् ॥६४॥

गोरमानीं वृथगदानं पतिव्रातणमोजनम् । मुद्राभिर्नापूजनं च शमनामप्रलेखनम् ॥६५॥

पुस्तकानां तथा दानं तथा कुकुमकंपरे । जनाकलं लवणाय जलपित्रीशरांगके ॥६६॥

धानकीं नागरं धूपं बीजपूरं कलिगन्धम् । जवारं पद्ममूर्ध्वं कपित्थं मातुलंगकम् ॥६७॥

कम्भाडदानमागमकरणं माधेशोधनम् । तथोशनसदानं च राजवाजेभवं तथा ॥६८॥

एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । यानि चैत्रं तु वर्ज्यानि तानि ते प्रवदाम्यहम् ॥६९॥

सर्वाणि चैव मार्गानि शीघ्रं मार्गायकं तथा । राजमाणाश्च चापि चरस्नानी प्रवर्जयेत् ॥७०॥

परान्नं च परद्रोहं परदारगमं तथा । ताथेयानि सर्वे चैत्रस्नानी प्रवर्जयेत् ॥७१॥

द्विदलं विलतलं च तथा ऽन्नं शल्यदूषणम् । मावदृष्टं शब्ददृष्टं चैत्रस्नायी तु वर्जयेत् ॥७२॥

छायाका प्रवन्ध करना है, वह स्वर्गनाम आकर सर्वोच्चार्थक द्वारा पुत्रित होता है । इस मासमें जोशको चाहिए कि जो मन्त्र पढ़ा जाता है, उसे पढ़ा दे । जो छायाका इच्छुक हो, उसे छाया दे । जो पानी चाहता हो, उसे पानी जिलाये । यह दान विशेष करके चैत्रमासके लिए बड़ा ही उपयोगी है । जो मनुष्य चैत्रमास आनेपर जिसा गुहम्वा बाह्यणका जलपत्रा धनदान नहू टना, वह परकर पातक होता है । इसीलिए चैत्रमासमें जल अन्न तथा सुन्दर शब्दका दान देना चाहिये ॥ ५२-५७ ॥ इनके अतिरिक्त दर्पणका दान, ताम्बूल और गुडका दान, गहूँ, तारो दण्ड, चाकल, घास भर हुए कांस्यपात्रका दान, ऊँखके रसका दान, बलका दान, आमका दान, महेंद्र कपड़ और पलंगका दान, जल पीनका दान, कमण्डलु तथा संन्यासियोंके लिये कण्डरान, मठोंमें तलका दान, मठोंमें जीर्णोद्धार, घटाघर बनवाना मकान बनवाना, कुर्मी बाइली आदि बनवाना मार्गमें कमजोरोंके लिये छत्रदान, दीपहरक समय अतिथियोंका पूजन, दलियोंका कमण्डलु-दान और गोओको गोप्रासदान व चैत्रमासके दान बनलाये गये हैं । इनके अतिरिक्त चैत्रमासमें ये दान और वस्तुलाये गये हैं । जैसे—फल शक, मूल, कन्द पुष्प, चन्दन ॥ ५८-६३ ॥ लस, इसी तरह और-और ठण्डो बीजे, कपूर, कस्तूरी, दीपदान धेनुदान गृहदान, मारसदान, दलियों और बाह्यणका पाजनदान, सोहार्गिन स्त्रियोंका पूजन, शमन मका लेखन, पुस्तकदान, पुष्पकुम्भ और केसरका दान, आयफल, सौंण, चाबियों । ६४-६९ ॥ घातकी, नागरमोथा, धूप, बीजपूर, ताम्बूल, उम्फार नीबू, कटहल, कंथा, कूटमाण्डदान, मगी, लंगवाना, रास्ता साफ करवाना, जूनका दान, हाथ एवं घाटका दान, ये सब दान चैत्रमासके लिए कहे गये हैं । अब मैं तुम्हें यह बतलाता हूँ कि चैत्रमासमें किन-किन वस्तुओंका परित्याग करना चाहिए ॥ ७०-७९ ॥ चैत्रस्नान करनेवालेको सब प्रकारके मार, मधु, कांजो एवं राजमाग आदि वस्तुओंका परित्याग कर देना चाहिए ॥ ७० ॥ दूसरेका ब्रह्म, दूसरेसे झगड़ और दूसरी स्त्राके साथ समागम, चैत्रस्नायी इन कामोंको सर्वदाके लिये छोड़

देवदेवादिजनानां च पुरुषोत्तमिनां तथा । स्त्रीराजमहतां निदां चैत्रस्नानी विवर्जयेत् ॥ ७२ ॥  
 माण्ड्यगममिषं चूर्णं फले जर्वागमा मयम् । धान्ये मसूरिका प्रोक्ता घान्नं पर्युषितं तथा ॥ ७३ ॥  
 मल्लचपमन्त्रसुप्तः पञ्चावल्यां च भोजनम् । चतुर्थेकाले भुञ्जीत कुर्यादेवं सदा व्रती ॥ ७४ ॥  
 सवत्सराष्टपदं तैलभ्यंगं तु कारयेत् । चैत्रस्नानी नरोऽन्यत्र तैलाभ्यंगं न कारयेत् ॥ ७५ ॥  
 अलानु चापि वृताकं कूष्मण्डं पृथ्वीफलम् । श्लेष्मानकं कलिंगं च कपित्थं चैव वर्जयेत् ॥ ७६ ॥  
 राजस्वलां त्यज्य श्लेष्मपतितग्रानकैः सह । दित्रिदिहृवेदवागैश्च न वदेन्मर्वदा व्रती ॥ ७७ ॥  
 पलादु लशुनं चैव छत्राकं गृजनं तथा । नालिकापूरकं शिर्षु चैत्रस्नानी विवर्जयेत् ॥ ७८ ॥  
 एभिः स्पृष्टं श्वपार्कं च स्रतकान्नं च वर्जयेत् । द्विषाचिर्तं च दम्बान्नं चैत्रस्नानी विवर्जयेत् ॥ ७९ ॥  
 एतावन्मन्त्रवेत्तिन्यं व्रती सर्वत्र तेष्वपि । कुन्डुशर्षं च प्रकुर्वीत स्वशक्त्या राममुद्यमे ॥ ८० ॥  
 कमान्दूष्मांडवृहताउत्राकं मैलकं तथा । श्रोकलं च कलिंगं च फलं धात्राभवं तथा ॥ ८१ ॥  
 नारिकेलमश्वत्थं च पटोलं बदरीफलम् । चर्मवृन्ताककं बल्लीशाकं तुलामिर्चं तथा ॥ ८२ ॥  
 आकान्थेता न पर्ज्यानि क्रमान्प्रतिपदादिषु । धात्र्यफलं रवी तद्वद्वर्जयेन्मर्वदा गृही ॥ ८३ ॥  
 एभ्योऽन्यद्व्रजयेत्किञ्चित्प्रामर्शानये नरः । दन्वा व्रतोऽपि विषादं मलयन्मर्वदेव हि ॥ ८४ ॥  
 फल्गुर्नार्वाणमारभ्य यावच्चैत्रो तु पूर्णिमा । चैत्रस्नानं तु तावद्वि नरः कार्यं च मक्तिनः ॥ ८५ ॥  
 जयवा मीनगो मानुर्याश्चावन्प्रकारयेत् । दशमीं फाल्गुनीं शुद्धां समारभ्य षष्ठीः शिवी ॥ ८६ ॥  
 यावद्भवेत् दशमी तान्स्नानं प्रकारयेत् । स्नानस्यैव व्रतो भेदाः शिष्ये ते समुदीरिताः ॥ ८७ ॥  
 चैत्रशुक्लतृतीयायां यावद्दशम्यममवा । तृतीया शुक्लपक्षस्य दशम्येति स्मृताऽत्र वा ॥ ८८ ॥

हे । क्योंकि ये तीर्थक सब पुण्योक्तो तह कारनवान् जन्वान हैं । ७१ ॥ दाह, तिलका तल, कंकड़-पत्थर  
 मिला हुआ जल, भावने दूषित और शब्ददूषित जलारा चैत्ररात्री मनुष्य न जाय । ७२ ॥ देवता वेद,  
 ब्रह्मण गुरुजन, गायत्री, स्त्री, राजा और अपनमे बड़ाका निन्दका भा परिवारा कर दना चाहिए । ७३ ॥  
 प्रणिपात अहंका माम, मम मरस्थका चूर्ण कलास जभार नावू, धान्यास मसूर और गुडा अन्न ये सब  
 मासतृच हात है इसलिये इनका न खाय । कलास, गृष्णीवर जवन, पलादो भाजन और लोद पदमे भजन  
 करता हुआ व्रती मनुष्य इन निषमाका बराबर पालन कर ७४ ॥ ७५ ॥ कवळ संवत्सरका सम निवाली  
 प्रतिपदाका रात्रि रमे तल लतागे और किसी समय नहीं ॥ ७६ ॥ लीज, भग, कुम्हड़ा, छाटा प्रण्ठा, रिसड़ा,  
 तलवृत्र तथा कीया इन वस्तुओका न खान चाहिए । ७७ ॥ कवळ परितर राजस्वला, चण्डाल द्विजद्वया तथा  
 वेदसे कहि कृत मनुष्यास बत भा न कर । ७८ ॥ पाज, गहनूत, छत्राक ( भईकोर ), गान्धर, मूले तथा  
 सहितन इन वस्तुओका भी चैत्ररात्रि मनुष्य न खाय । ७९ ॥ ऊपर बतलाये पातलो, कुन तथा रीणस में पृष्ठ  
 एवं सुतक के अन्नका भी परित्याग कर दन चाहिए । दावाका वकाया और जला हुआ जल भा चैत्ररात्री  
 मनुष्य न खाय ॥ ८० ॥ ऊपर बतलाये च.ज न खाय और अपनसे वन पड़तो रामचन्द्रका प्रसन्न करने  
 लिए कृच्छ्रावा हावण आदि व्रत भी करे ॥ ८१ ॥ कुम्हड़ा, भंटा भुइफ ड, मूली, बल, तरवृत्र, आवलका मल  
 नारियल, लोआ, परवल, वैर, चर्मवृन्ताक, बल्लीशाक और तुलसी, इन्ह कमरा प्रतिपदा आदि तिथियाका  
 न खाय । उसी तरह रविवारका आशफल ( आंवला ) न खाय ॥ ८२-८६ ॥ इनके अतिरिक्त भी रामको प्रसन्न  
 करनेके लिए अपनी तरफसे कुछ वस्तुओका परित्याग करे । किन्तु व्रतसमाप्तिके अनन्तर ब्राह्मणको उस वस्तु-  
 का दान दकर खाय तो कोई हर्ज नहीं है ॥ ८७ ॥ फाल्गुनकी पूर्णिमासे लेकर चैत्रकी पूर्णिमा पर्यन्त मतिपूषक  
 चैत्रस्नानका व्रत करना चाहिए । ८८ ॥ जयवा जबतक सूर्य मंन राशिपर रहें, तबतक व्रत करता रहे  
 फाल्गुन कृष्णपक्षकी दशम्यात लेकर चैत्रशुक्लकी दशमी तक स्नान करना चाहिए । इस तरह है शिष्य ! इस  
 चैत्रस्नानके भेद मेम तुमको बतलाये ॥ ८९ ॥ ९० ॥ चैत्रशुक्लकी तृतीयासे लेकर वीशास शुक्लपक्षकी

हावन् श्रीतला गौरी स्नातव्या मुखलक्ष्मणे । भीतार्ताः तु नारीभिः पूजनीया च जानकी ॥९०॥  
 वर्नीया वा तु चैत्रस्य वितप्योद्भवा तथा । नैश्वर्यशुक्लपक्षे वा तृतीयाऽथव्यमङ्गिका ॥९१॥  
 नारी वा प्रीतिन्यागीश्वरतन्त्रानवगपणा अरुणधा क्रोन्धनपोम्निधनीर्न्यादिने कदा ॥९२॥  
 त्रिप्रसन्न तिथयः पुष्पाधैत्रमासे महत्तमाः । तथापि हि विशेषोऽत्र निर्धानां श्रव्यते यथा ॥९३॥  
 चैत्रमासे कृष्णपक्षे पंचमी दशमी तथा । एकादशी द्वादशी च शिवरात्रिस्त्वप्य तथा ॥९४॥  
 एताः शुभचैत्रकृष्णे यदापादकनाशनाः । इदानीं चैत्रमस्य पितृपक्षोद्भवा शुभाः ॥९५॥  
 वर्ण्यन्ते निययः श्रेष्ठा नगणां दिनकाम्यया । सर्वस्मरप्रतिपदवारस्य वसमीदिनम् ॥९६॥  
 यावत्तावच्छुभाः सूर्याः स्नानदानाधिकर्मणि । यन्कृतं च वर्णयति स्नातदानवनादिकम् ॥९७॥  
 द्वितीयायां च त्रयोक्तं द्विगुणं नात्र सशयः । यत्कृतं च तृतीयायां सकन्या स्नानादिकं वरैः ॥९८॥  
 द्विगुणं तत्तृतीयायां चैत्रमासे नृपेभ्यः । एवं सर्वान् तिथयः यद्व्यासवर्षा शुभाः ॥९९॥  
 एव विशेषो ज्ञानस्यो यथाश्वादिभूषणान् । यथा सीरं दधि त्रैलोक्यं दधाम्बु नवर्ननकम् ॥१००॥  
 नवर्नानावृष्टं यद्वनथाऽत्र विविचिन्तयेत् । चैत्रमस्य कामानां तत्र पथः सिता वारः ॥१०१॥  
 सितपक्षे कर्मण्यं यावत्सा नवमी तिथिः । तावदेकैकगः श्रेष्ठा भवन्तु नवमी वरा ॥१०२॥  
 यस्यां ज्ञानं रामतन्त्रं धर्ममध्यापनाय हि । तस्मात्तिष्ठन्तु मां कृता कर्मविमुक्तधमा ॥१०३॥  
 तस्यां दत्तं दत्तं ज्ञानं यन्किञ्चिच्च कृतं शुभम् । सर्वं तदर्थं विद्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥१०४॥  
 प्रतिपदिनमारभ्य नवमचतुर्दशयेन । प्र-०४ शुद्धीरस्य पूजं चैत्रं करयन् ॥१०५॥  
 सर्वस्मरप्रतिपदि स्वजाः सौधोपरि स्थिताः । दिव्यदत्तं च सन्ध्यं चाहुताश्च मनोऽगमाः ॥१०६॥

लक्ष्मणनारायण तत्काल संवत्सरे शतला गौरीका निवास रहता है । इसलिए प्रियश्रीका मुखलक्ष्मण लिए  
 सोतालाभय जाकर स्नान पूजा सत्कारोंका पूजन करना चाहिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ नैश्वर्यशुक्लपक्ष तृतीया तथा  
 वैशाखशुक्लकी तृतीया ये दोनों तृतीया अरुणमसकालका शुभा है ॥ ९८ ॥ अतएव ता नारायण स्नान  
 गौरीका पूजा कर रहे हों, उसे कहिये कि इन दोनों तिथियोंको स्मरणमें लाने लगाने । इनके मिश्रण और  
 किसी अन्य दिनमें पूजा करना भजित है ॥ ९९ ॥ चैत्र का चैत्रकृष्णकी पौनी तिथियां पूर्णिमा । फिर मां कृतम  
 को विशेषता है, उसमें ही शुभका मुनासा है ॥ १०० ॥ चैत्र कृष्णपक्षका पंचमी दशमी एकादशी, द्वादशी,  
 त्रयोदशी, अमावस्या, ये चैत्र कृष्णपक्षकी तिथियां सही पूर्णिमा और अष्टमि पक्षका नाश करनेवाली कही  
 गया है । अब मैं चैत्रकृष्णपक्षकी शुभ तिथियां प्रिया बताऊँ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ इसमें प्रत्येकका बड़ा कल्याण  
 होगा । यह सारा वरविधान है । सप्तस्मरमने प्रिया प्रतिपदमें लेकर राम, परमात्मिका तिथियां हैं,  
 ये सब स्नान दान आदि कर्मोंमें शुभ कहा गया है । उनमें भी प्रतिपदको स्नान दान आदि कामका का फल  
 आनंद कह्य गया है उसमें द्वितीया द्विगुणत फलदायक हुना है । द्वितीयाको जो फल कहा है, उससे  
 तृतीयामें द्विगुणित फल हुना है । इस तरह नवमी तिथि पर्यन्त सब तिथियां शुभ हैं । इनमें इतना प्रकारका  
 विशेषता है कि जैसे उल्का एक प्रथम गडगडकर आखिरी पौनर्वसु फलमें में ठा होता है । जैसे गोसे  
 दूध होता है, दूधसे दही तैयार हुना है, दही से मक्खन निकलता है और मक्खनसे घी तैयार हुना है । उसी  
 तरह यही तिथियोंका भी विशेष हुना है । पहले ता पञ्च मासोंमें चैत्रमास ही श्रेष्ठ है । उनमें भी कृष्णपक्ष  
 श्रेष्ठ है और शुक्लपक्षमें भी प्रतिपदमें लेकर नवमा तकका तिथियां श्रेष्ठ है । उनमें भी नवमा तिथि सर्व-  
 प्रधान तिथि है ॥ ९६-१०२ ॥ नवमी तिथिमा कर्मोंकी रचना करके मिया रामका जन्म हुआ था,  
 इसीसे यह तिथि हमसब कर्मोंकी लक्ष्म करवानेवाली माना जाती है ॥ १०३ ॥ उसमें जो कुछ दान दिया जाता,  
 हुषन किया जाता, सब किया जाता अथवा जो कोई भी सब कर्म किया जाता है सब फल असफल होता है ।  
 इसमें प्रत्येक कार्य करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १०४ ॥ इसलिए सा तब, चाहिये कि प्रतिपदा दिवसे लेकर मौ  
 पक्षिक अमावस्य करके रामचन्द्रजीका पूजन करे ॥ १०५ ॥ चैत्रकृष्णकी प्रतिपदाको पक्षमासे अंतर दिव्य पक्ष

रामजन्मसूचनार्थं प्रान्यथै गणवस्य च । गृहे गृहे नरैः कार्याः पूजनीयाश्च भाक्तेनः ॥१०७॥  
 गृहे देवालये वाऽथ गेष्टे इन्द्रावने श्रमे । समाजनाहिकं निर्व्यं कार्यं चन्दनवारिमिः ॥१०८॥  
 तत्र पापपचनेश्च नानापञ्चादिकानि हि । लेत्रनीयानि भूम्यां तु नीलपीतादिवर्णकैः ॥१०९॥  
 प्रष्टुं च गृहसामर्थ्यं रामतोभद्रमुत्तमम् । शतारुण्यं वा लिखेद्द्रुमधवाऽन्यन्मनोरमम् ॥११०॥  
 तत्पुष्पपरि मङ्गलं रम्याधिवर्णश्च मण्डपः । देवो द्वााराणि चत्वारि कार्याणि तोष्यानि च ॥१११॥  
 कदलीप्लवगुक्तानि ह्यशुक्लपङ्कजानि च । नानावष्टाकिक्लिणीभिर्ध्वनितान्युज्ज्वलानि च ॥११२॥  
 रम्यादशमैडितानि विवित्राणि शुभानि च । नानाचित्रवितानैश्च मुक्ताहारैर्युतानि च ॥११३॥  
 तस्यां षोडशमार्गैश्च प्रतिष्ठा काचनोद्भवा ॥११४॥

द्विभुजा रामचन्द्रस्य मूर्तिलक्षणलक्षिता । चतुर्दिशनिर्माणैश्च प्रतिष्ठा रजतोद्भवा ॥११५॥  
 कौशल्यशकाः शुभा कार्या पूजनाया मनोरमा । यथाधिकानुपायेण पूजयेन्मत्स्यहं नरः ॥११६॥  
 भोगमृदगन्धैश्च शोभनैर्न्यासैश्च कर्मणः । नानापञ्चाभिनवैरुपचारैः सुपूजयेत् ॥११७॥  
 प्रतिपदि नमस्कृत्य यावत् नवमीदिनम् । गमायण तादृशं पठनीयमिदं शुभम् ॥११८॥  
 षष्ठं चाल्मीकिनः शोभनं श्रवणान्ममलजदम् । आनन्दमयं च रम्यं पठनीयं मनोरमम् ॥११९॥  
 नव कांडानि नवभिर्दिनेषु पठन्तरः । दिवसे दिवसे कांडं पठनीयं मयन्नरः ॥१२०॥  
 अथवा प्रत्यहं सर्गाः पठितव्यास्तु द्वादश । शतमन्त्रैः कदा मध्येऽधिकः सोऽपि पठेन्नरः ॥१२१॥  
 अष्टोत्तरशतैः सर्गे रामकीर्तनमालिका । मेघयुक्ता पठेद्देवं रामाग्रै नवभिर्दिनैः ॥१२२॥  
 सर्वार्थार्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् । रामायणस्य पठनाच्चत्फलं नवरात्रके ॥१२३॥

और मान्य आदिसे अलंकृत होजाय रामजन्मकी सूचक तथा रामको प्रसन्न करनेके लिए घर-घर स्थापित करके भक्तिपूर्वक इनका पूजन करना चाहिए ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ यत्र, देवालयमें गोशालामें तथा तुलसीकी बगीचा-में उक्त दिनों चन्दनके जलका मिश्रण करना चाहिए ॥ १०९ ॥ इसके बाद पत्थरके चूर्णसे नील-पीत आदि वर्णोंवाले कमल आदि बनाने चाहिए । तदनन्तर अष्टाक्षरसहस्रनामके रामतोभद्र या बालारमके अथवा ओं अमरंको अथवा उस भद्रका स्तुति कर १०१ ॥ ११० ॥ उसके ऊपर अतिशय सुन्दर चित्र-विविध वर्णोंका मण्डप बनावे । उक्त मण्डपमें चतुर्भुज बनाये और तबने-रामायण तारणको व्याख्या करे ॥ १११ ॥ अहाँ-तहाँ कमलें रखके तथा हस्तपद्म रख करे । उनमें तरह-तरहके छत्र और विजिणों आदि लगा दे, जिनकी मधुर दर्शन सुगंधी पड़ना रहे ॥ ११२ ॥ जहाँ-तहाँ सुन्दर और यत्न-से अंगे लगा दे विविध प्रकारके चित्र लगावे तादृशरूपकी चन्दन छत्र लगावे और मंत्रियोंके हाथ लटकावे । उसमें सुवर्णमय एवं रत्नमण्डित मंजरी रखना कर और इसपर अक्षर-प्रतिष्ठा काटोके में रामायण लिखावे । फिर उसपर सोनह मासेकी काचनमयी प्रतिष्ठा स्थापित करे ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ रामचन्द्रका वह सुवर्णमयी प्रतिष्ठा सब सुलक्षणोंसे लक्षित होनी चाहिए । इसके अनन्तर चौबीस दिनों रजन्मकी प्रतिष्ठा कीसत्याकी बनावे और उसकी पूजा करे । जैसा अग्रज सामर्थ्य हो, तब अनुसार प्रतिदिन पूजन करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ उनके सामने भेरी, मृदंग, नुदही आदि न न बजावे और नाचगाय । नाता उक्त-नाम नरहो और उपचारोंसे पूजन करे ॥ ११७ ॥ प्रतिपदा तिथिसे लेकर नवमी तिथि पर्यन्त इस आनन्दनामायणका पाठ करे ॥ ११८ ॥ इसका बाह्यार्थ मूर्तिसे मान किया है । यह नुतन-मंगलप्रद और मनोरम है । रम्यसे इसका पाठ आवश्यक है ॥ ११९ ॥ इसके नौ कांडोंको नौ दिनोंमें समाप्त करना चाहिए । पाठ करनेवालेको चाहिए कि प्रत्यहपूर्वक प्रतिदिन एक-एक न इसका पाठ करे ॥ १२० ॥ यदि ऐसा न हो सके तो प्रतिदिन बारह सर्गोंका पाठ करे । ऐसा पाठ करनेसे एक सर्ग वाकी बचाया । उसे बीचमें किसी राज पूरा कर देना चाहिए ॥ १२१ ॥ इस तरह अष्टोत्तरशत सर्गात्मक इस रामकीर्तन-मालिकाका नौ दिनोंमें रामचन्द्रजीके समक्ष पाठ करना चाहिए ॥ १२२ ॥ सब

श्लोक वा श्लोकपाद वा यद्वाभाषणार्थमवस् । नवरात्रे कृष्टिंस्ति चेत्ते ते मोक्षमग्निः ॥१२४॥  
 एवं हि मन्यहं कार्यं कौण्डिन्यासमपूजनम् । यदुवाचा तु नागीजं तत्र कार्यं प्रपूजनम् ॥१२५॥  
 सपुत्रद्विजराधायां विशेषांपूजनं स्मृतम् । यद्वाचनद्वारायुतं चित्रभोजनभोजनम् ॥१२६॥  
 एव कृत्वा विधिं सर्वं नवरात्रौ च विज्ञेयः । पूजयित्वा रामचन्द्रं वाहनाच्छुभम् ॥१२७॥  
 येतेमृदंगधोर्वैद्यः तूर्यद्वन्द्वमितिःस्वनेः । रात्र्योक्तनृत्येषु गायकानां च गायनेः ॥१२८॥  
 एव ज्ञानामस्तुसार्द्धमंदिनं सप्तशोविनम् । चामरशोभयमानं च पुष्पकैः संस्थितं वरम् ॥१२९॥  
 रात्र्योर्धार्मिकं नीत्वा रश्मामृतघट्टदैः । स्नाययेदुपुर्वीरं हि पुण्यतोर्ध्वगतः वरम् ॥१३०॥  
 छट्पुर्कर्विष्णुसुर्कः सहस्रैर्वाग्भिरनु वा । सांगल्परुद्रध्वजसिन्धुर्जलस्रजिरेवयेत् ॥१३१॥  
 सांगल्परुद्रध्वजेषु पुष्पैः तन्मंगलाभिषम् । प्रोक्ष्यते मंगलस्नानं तत्पश्चेत्तुल्यं नृणाम् ॥१३२॥  
 तत्पश्चात्पुत्रीधं तु तीर्थमप्ये विनिश्चिपेत् । तत्र सर्वजनेः श्रेष्ठं स्नातव्यं तदनन्तरम् ॥१३३॥  
 नक्षत्रावमृषस्त्रैर्यन्त्रकलं प्राप्यते नरैः । तन्मङ्गलं रात्र्यन्तरस्य मण्डलस्नानकालात् ॥१३४॥  
 पुष्करादितु तीर्थेषु मङ्गलायास्तु मग्निम् च । प्राप्यते पञ्चमं स्नानान्मङ्गलं स्नानद्वयं यत् ॥१३५॥  
 एवं रथं तु मंथनाय नीतपुर्कं प्रपूज्य च । पुनः पूर्वोक्तवाद्यादि मंगलमनवेदपुष्टम् ॥१३६॥  
 गृहे रामं पुनः पूज्य रामायणकृतं वरम् । पञ्चायण ममाप्याय पुष्पकं पूजयेच्छुभम् ॥१३७॥  
 नानेत्सर्वैर्दिनं नीत्वा कार्यं ज्ञानाय निश्चि । दक्षिणैः प्रातःकृत्वा च भोजयित्वा द्विजान् बहुदा ॥१३८॥  
 पूजयित्वा पुनः सर्वं गुरुषु तन्निवेदयेत् । नतः स्वयं मुदन्मित्रैः कुर्याद्भोजनधुनयम् ॥१३९॥  
 एवं कृतं समाख्यातं चैवमप्य नवरात्रके । अहमन्तवरात्रे हि श्रेष्ठं चैत्रं महत्तमम् ॥१४०॥  
 नवरात्रेऽपि सा रामनरमी परमार्थदा । तन्ममाना विधिना न्या चैवमाप्ते शुभग्रहा ॥१४१॥

तीर्थोंमें और तब दालीमें जो पुष्प है, वह फल नवरात्रमें इस रामायणक वर करनेमें है ॥ १२३ ॥ नवरात्रमें जो लोग एक श्लोक कथवा श्लोकके एक वाक्यका जो पाठ करन, देखो और भा ॥ होमे ॥ १२४ ॥ इस तरह प्रतिदिन कौण्डिन्या और रामका पूजन करना चाहिये । उन समय पुत्रवन्ता भक्तके पुजनका विधान है ॥ १२५ ॥ इस सब सत्पर पुत्रवन्त काङ्क्षणोंके भी पुजनका विधान मन्त्र-ज्ञ जाना गया है । पुजनक बाद उक्त विधिसे चण्डालके वस्त्र, बल्लकुर और तरह-तरहके भोजन दे ॥ १२६ ॥ इस विधिसे नवरात्रमें विराजकर स्वयं, भित्तिके बाहुक्या आकृष्ट रामका पूजन करके धरो, मृग, गुरहा, दुर्दुर्वा आदिके कभीर निनाद, पण्डितोंके नृत्य, गायकोंके गायन आदि माना प्रसारके आवाहम मन्त्रि, मुहर छरहे मुनीभक्त, धर्मसे बलकृत, ऐतक विनायक आदि रामचन्द्रजीके रामतीर्थपर ले जाकर पञ्च पत्रक घड़ा तथा पवित्र जलसे स्नान करावे ॥ १२७-१३० ॥ स्नान करावे समय छट्पुर्क, विष्णुसुर्क अथवा मङ्गलवाक्याका पाठ करना जय । बहने ही जलमें विविध प्रकारके मङ्गलमय द्रव्य मिला ले ॥ १३१ ॥ इस तरह मङ्गलमय मिने जलसे स्नान कालेको मङ्गलस्नान कहते हैं । यह चैत्रमासमें किया जाता है और बहो कठिनाईमें लोगोंको ऐसा नृलोग प्राप्त हुआ है ॥ १३२ ॥ उस स्नानके पश्चात्पुनर्को रिमो न मंके जाय दे और पूजाके जितन साथ मन्त्रिचित हुए हों, वे सब उस तीर्थमें जाकर स्नान करें । सभी प्राणीका मङ्गलमयक का प्राप्त हुआ है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ पुष्कर आदि तीर्थों तथा नङ्गा आदि पवित्रोंमें स्नान करावे न। फल मिलता है, वह फल यज्ञस्नान करनेवालेको प्राप्त होता है ॥ १३५ ॥ इस तरह सीता समेत रामको स्नान कराकर उनका पूजा करे और पूर्वोक्त राजे-रात्रिके साथ फिर उन्हें अपने घर ले जावे ॥ १३६ ॥ बरबर रामको लाकर उनकी पूजा करे । तदनन्तर आरुद्रमासका आरुद्रमास समाप्त करके पुस्तककी पूजा करे ॥ १३७ ॥ माना प्रकारके उत्सव मनाया हुआ दिन विनामे और रात्र-भर आयुष्म करे । दशमोंको सहारे उठे और विष्णुकृतसे विराजकर रहूँगे काङ्क्षणका मानन करावे ॥ १३८ ॥ इसके बाद पुनर्को पूजा करके उन्हें सब सम्पुर्ण दान दे । तत्पश्चात् तत्पश्चिमों और वित्रोंके साथ स्नान करे ॥ १३९ ॥ चैत्रके नवरात्रमें इस तरह उठ करनेका विधान बतलाया गया है । इसीलिए लोगोंके चैत्रके

अतः परं प्रवक्ष्यामि चैत्रोद्यापनक विधिम् । यच्छ्रुत्वा भक्तं सर्वं चैत्रस्नानं तु जायते ॥१४२॥  
 चैत्रे मासि मिते पक्षे वा चैत्रे एकादशी तिथिः । सर्वानु विधिषु श्रेष्ठा चोपोष्या वदकारिभिः ॥१४३॥  
 श्रेष्ठा सा एकादशी ज्ञेया मुख्यं तु पञ्चपूजनम् कार्यं दण्डोदनं दत्त्वा जलकुंभः प्रदीयताम् ॥१४४॥  
 तिस्रश्च तिथयः श्रेष्ठार्थेन मासं महत्तमाः । त्रयोदशी तथाधुना पूर्णिमायां सर्वत्र च ॥१४५॥  
 यामु स्नानञ्च दानं च सर्वथाछिन्दयिष्यते । येन स्नानं चैत्रमासे न स्नानं नवरत्रके ॥१४६॥  
 तस्मै चान्यदिने स्नान्ना चैत्रस्नानफलं न मेव । तानु श्रेष्ठः पूर्णिमा हि सर्वपापकनाशिनी ॥१४७॥  
 तस्यामुद्यापनं प्रोक्तं चैत्रस्नानफलप्रये । उपोष्य च चतुर्दश्यां पूर्ववन्मण्डपादिकम् ॥१४८॥  
 कृत्वा तस्मिन् धान्यराशी कलशं वारिपुरितम् । स्थापयित्वा तदुपरि हेमपात्रं सुविस्तृतम् ॥१४९॥  
 पञ्चरत्नयुतं स्थाप्य चमूणाच्छादयेच्च तत् । तस्मिन्गङ्गायुतं गम्य मौन्ये विधिपूर्वकम् ॥१५०॥  
 आलम्बित्वाशुपुत्रेण सूर्यवेणुं समन्वितम् । विभीषणासदृश्यां नृ जम्बवन्महिनं तथा ॥१५१॥  
 वृजयेद्देवदेवं परमं गुह्यं नुत्तमा । उपचरैः षोडशभिर्नातामह्यपदन्वितैः ॥१५२॥  
 राशौ जागरणं कुर्याद्भोजनाद्यादिमर्त्यैः । तस्मै पूर्णिमायां च सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ॥१५३॥  
 शिश्नन्मितानर्थकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत् । ततस्तान्भोजयेद्विशन्नाहमाज्जनादिना मयी ॥१५४॥  
 भोजो देवा इति ह्वात्वा गुरुशपितमग्निम् । शीघ्रं देवदेव देवासां च पूषक् पूषक् ॥१५५॥  
 दक्षिणां च यथाशक्त्या प्रदद्याच्च ततो नमेत् पुनर्देवं समस्यर्च्य देवांश्च तुलसीं तथा ॥१५६॥  
 ततो मां कपिला तत्र पूजयेद्विभिना यतः । गुरुग्रन्थोपदेशात् वस्त्रालकाग्रमण्डनैः ॥१५७॥  
 सपत्नीकं समस्यर्च्य ततो विप्रान् क्षमापयेत् । पुष्पमालादादेवंशः सुप्रमन्नोऽस्तु वै मम ॥१५८॥

नवरात्रको बहुत ही श्रेष्ठ माना है । १४० ॥ नवरात्रम सो रामनवमी परमार्थदायिनी है इसके समान गुप्तप्रद तिथि चैत्रमास भरमे कोई भी नहीं है ॥ १४१ ॥ इसके अनन्तर चैत्रके उस उद्यापनका विधान बतलाते हैं, जिसके करनेसे चैत्रस्नान सकल हो जाता है ॥ १४२ ॥ चैत्रमासक त्रयोदशीम जो एकादशी पहली है, वह सब तिथियोंमें श्रेष्ठ होती है । इसलिए चैत्रयत करनेवालोंको यह एकादशीयम अवश्य करना चाहिए । १४३ । इसी तरह चैत्र गुप्तपक्षको द्वादशी भी श्रेष्ठ है । इस राज वही बातें हमका पूजन करके जलसे पूर्ण घटेका दान करना चाहिए ॥ १४४ ॥ चैत्रमास भरमे तीन तिथियाँ श्रेष्ठ हैं । जैत-द्वादशी, त्रयोदशी और पूर्णिमा ॥ १४५ ॥ इनमें स्नान-दान करनेमें ये तिथियाँ सब कामलाआका पूर्ण करती हैं । जिनमें चैत्रस्नान नहीं किया और जो नवरात्रस्नान भी नहीं कर पाया, वह अन्तिम दिन अथवा पूर्णिमाको स्नान करके चैत्र स्नानका फल प्राप्त कर लेता है । क्योंकि चैत्र भरकी सब तिथियोंमें पूर्णिमा तिथि श्रेष्ठ है और सब पातकोंको नष्ट करती है । १४६ ॥ १४७ ॥ अतः चैत्रस्नानका फल पानके लिए इस पूर्णिमामें भी उद्यापन करना चाहिए । इसका विधान यह है कि यमुनाको उपवास करके पूर्ववत् मण्डप आदि बनाये और उसमें धान्यराशि तथा वर्णपूर्ण कपडा रखकर उसके ऊपर एक बड़ासा स्वर्णपात्र रखें ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ उसमें पञ्चरत्न डालकर बर्चस डाल दें । नरनन्दर सीता, लक्ष्मण आदि भ्राताओ, हनुमान्जी, सुग्रीव, विभीषण, ब्रह्मा तथा जम्बवान् सहित रामकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करके गुरुका आज्ञासे वेश वेश रामकी षोडश उपचारों एवं विविध भक्षण पदार्थोंसे पूजन करे ॥ १५० ॥ १५१ ॥ रात्रि भर जागरण करता हुआ गाय-बजावे और सबरे हाथ सगनीक हाथोंसे अथवा जैसा सामर्थ्य हो उसके अनुसार बाहुओंको बुलाकर सीत-पूड़ी आदि भाजन करावे ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ इसके बाद 'अतो देवा' इस मन्त्रके द्वारा बिल और घीमें हुवन करे । इस हुवनसे देवदेव राम तथा अन्योन्य देवताओंको प्रनम्र किया जाता है ॥ १५५ ॥ यह सब करनेके बाद हाथोंको मयागन्धि दर्शना देकर प्रणाम करे । फिर सज्जत देवताओं तथा तुलसी देवीके फिरसे पूजन करके विधिपूर्वक कपिला गोका पूजन करे और नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण दकर स्नानके उपदेश सपत्नीक गुरुको पूजा कर ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ यह सब करनेके बाद ब्राह्मणोंसे क्षमाप्रार्थना करता हुआ

ब्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया । तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चास्तु संततिः । १५९ ॥  
 मनोरथास्तु सफलाः संतु नित्यं ममार्चनात् । देहांते वैष्णवं स्थानं मम चास्त्वतिदुर्लभम् । १६० ॥  
 इति कमाप्य तान् विप्रान् प्रसाद्य च निसर्जयेत् । तामर्चां गुरवे दद्याद्भस्मपुक्तां सदा व्रती । १६१ ॥  
 ततः सुहृत्प्रियैर्युक्तः स्वयं भुञ्जीत भक्तिमान् । एवमुच्चापनविधिवैत्रस्नानफलाप्तये ॥ १६२ ॥  
 सविस्तरञ्च कर्तव्यवैत्रस्नानपरायणैः । एवं यः कुरुते सम्यक् चैत्रस्नानव्रत नरः । १६३ ॥  
 सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुमायुज्यमानुयात् । सर्वव्रतैः सर्वतार्थैः सर्वदानैश्च सफलम् ॥ १६४ ॥  
 तत्कोटिगुणितं पुण्यं सम्यगस्य विधानतः । देहस्थितानि पापानि नाशमायाति तद्भयात् ॥ १६५ ॥  
 क्व वास्यामो वदत्येवं यच्चैत्रव्रतकृत्तरः । तस्मादवश्यमेवैतच्चैत्रस्नानं समाचरेत् ॥ १६६ ॥  
 श्रीचैत्रव्रतकथनं पठन्ति भक्तया ये वै तद्भक्तिप्रयतिवैष्णवान्वदति ।  
 ते सम्यक् व्रतकरणात् फलं लभन्ते तत्सर्वं कलुषविनाशनं लभन्ते ॥ १६७ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीभट्टानन्दरामायणं वात्मीकीये मनोहरकाण्डे  
 आदिकाण्डे चैत्रमहिमवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

## एकादशः सर्गः

( चैत्रस्नानका महात्म्य )

विष्णुदास उवाच

किमर्थं सर्वमासेषु चैत्रमासः स्मृतो वरः । तत्कारणं वदस्वाद्य गुणे संतोषहेतवे ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य महाबुद्धे सम्पक् पृष्ठं त्वया मम । प्रश्नप्रार्थनया विष्णुर्यदा भूष्यां द्विजीत्तम ॥ २ ॥  
 अदोषायालकस्याथ राहो दशरथस्य हि । कौसल्यायास्तु भार्याया जठरत्रिगो बहिः ॥ ३ ॥

कहें कि आप लोगोंकी कृपासे बरेश रामचन्द्रजी हमपर सदा प्रसन्न रहें ॥ ११८ ॥ मैंने सात जन्म तक जो पाप किये हों, वे इस व्रतसे नष्ट होजायें और मेरी सन्तति स्थायी हो ॥ ११९ ॥ इस व्रतके प्रभावसे मेरे सब मनोरथ सफल हों और देहांत होनेपर हम अतिपाप दुर्लभ वैकुण्ठ धाम प्राप्त हो ॥ १२० ॥ इस तरह समायाचना करके उन ब्राह्मणोंको प्रसन्न करता हुआ विदा कर और रत्न नया प्रतिमा समेत व्रजनको सब वरपुत्रों गुरुको दान दे दे ॥ १२१ ॥ इसके बाद मातदारों और मित्रोंके साथ भोजन करे । इस तरह चैत्रमासका फल प्राप्त करनेके लिए उद्यापन करनेका विधान है ॥ १२२ ॥ जो लोग चैत्रमासके व्रतमें लगे हों, उन्हें विस्तारसे यह उद्यापन करना चाहिए । तो मनुष्य अच्छी तरह चैत्रस्नानका व्रत करता है, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुभक्तानुको सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है । समस्त व्रतों, सब तंत्रों और समस्त दानोंसे जो फल प्राप्त होता है, उसका करोड़ोंगुना अधिक फल इस चैत्रमासके व्रतसे प्राप्त होता है । इसके भयसे चैत्रव्रतके देहमें रहनेवाले समस्त पापक नष्ट हो जाते हैं । वे पाप कहत हैं कि अब हम कहाँ जायें ? अतः चैत्रव्रत करनेवाले मनुष्योंको चैत्रस्नान अवश्य करना चाहिए । १२३-१२६ ॥ जो लोग इस चैत्रव्रतकी कथाको पढ़ते या विप्र तथा संन्यासी वैष्णवोंको सुनाते हैं, वे अच्छी तरह व्रत करनेका फल पाते हैं और उनके समस्त पापक नष्ट हो जाते हैं ॥ १२७ ॥ इति श्रीभट्टानन्दरामायणं वात्मीकीये प० रामचैत्रमासवैष्णवज्योत्स्ना-मावाटीकासहिते मनोहरकाण्डे वधमः सर्गः ॥ १० ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरुदेव ! सब मासोंमें यह चैत्रमास क्यों श्रेष्ठ माना गया है ? तो मेरे सन्तोषके लिए कहिए ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे महाबुद्धिमान् शिष्य ! तुमने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है । मैं

चेत्रे मासि मित्रे पथे नवम्या परमे दिने । पुनर्वसुर्नक्षत्र प्रोच्यस्थे ग्रहपंचके ॥ ४ ॥  
 भव्याङ्गे प्रकटो जातः श्रीगणेशो राजवयनि । आनन्दश्च तदा जातः सर्वत्र जगतीतले ॥ ५ ॥  
 देवदुर्मुखो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाश्वत्थः । राजवयनि वायानां संधा नेदुः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥  
 ननुतुर्वारिणायञ्च जगुर्गतिं मनोरमम् । तदा सर्वं हि भूमिस्था जना द्रष्टुं शिशु शुभम् ॥ ७ ॥  
 प्रपपृर्नृपञ्च वालं च्छ्वा मुदमवाप्नुयुः । न नाविमानभास्वता दिवि देवाः यवासवाः ॥ ८ ॥  
 मिलिता राघवं द्रष्टुं कौमल्याजगुरुद्वयम् । नखा रुद्रश्च दूर्यधश्च देवेन्द्रादियुतः शुभाः ॥ ९ ॥  
 उन्सवान् विदधुः सर्वं तदा ध्यागमजन्मनि । एवमुन्माहवसये देवा हर्षादिवि स्थिताः ॥ १० ॥  
 नमस्कृत्वा रामचन्द्रं तृण्डुविविधैः स्तवैः । प्रोचुस्तदा शुभाः सर्वे हर्षादिव रघूत्तमम् ॥ ११ ॥  
 अयं धन्या सयं देव मुक्ताश्वासुरजाद्वयात् । यन्निमित्तं त्वया देव सवतारः कृतो भुवि ॥ १२ ॥  
 अस्माकं हर्षकालोऽयं नैवदव कृपानिधे । तस्मादयं मदा पुष्पः श्रेष्ठः काष्ठो भविष्यति ॥ १३ ॥  
 त्वं चाप्यंगीकृत्व य देवस्मै सुबहून् वरान् । इति तेषां वचः श्रुत्वा देवानां राघवः शुभम् ॥ १४ ॥  
 तुतोष निवरा तेषु देवेषु भगवान्हरिः ।

श्रीराम उवाच

सम्पदं प्रोक्तं मुगः सर्वे तन्त्रैलोक्योपकारकम् ॥ १५ ॥

मयद्भिः प्रार्थितोऽहं तु हर्षकाले मत्तमे । शृणुष्वं वचनं मेऽद्य यत्रर्षान्प्रोच्यते यथा ॥ १६ ॥  
 सर्वणमेव मामानां श्रेष्ठथाय भविष्यति । वैशाखांशकार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्मासः परः च ॥ १७ ॥  
 माघमासाऽथ वायं चैत्रमासो भविष्यति । चैत्रमासे कृतं दत्तं दुर्गं स्नानार्थं विचिंतिनम् ॥ १८ ॥  
 सर्वे कोटिगुणं प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः । यच्छ्रद्धया स्वमेधेन यद्रोगेधेन वै फलम् ॥ १९ ॥  
 यत्फलं सोमयागेन तत्तन्त्रे स्नानमात्रतः । सर्वग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ॥ २० ॥

उसका उत्तर देता है । मुनो-आ २ । अयोध्या नगरीके पालक महाराज दशरथको रानी कौमल्याके वदनेसे चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथीको पुनर्वसु नक्षत्रमें जब कि पाँच ग्रह केन स्थानमें बैठे थे, तब मछाल्लके समय अवधका दशरथके घरमें श्रीरामचन्द्रजी अवतरे । उस समय जगतनरमें सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ३-५ ॥ देवताआने इन्दुमयी बजायी और पृथ्वीवृष्टि की, राजाके महलोंमें आग-अग्नि विविध प्रकारके बाले बजे ॥ ६ ॥ वैश्याय नाचने और गाने लगे । उस समय पृथ्वीमण्डलके इन्द्र प्रमत्त उस वचनेको देखनेके लिए आये और उस देव वक्षकर नई प्रसन्न हुए । उसी तरह नाना प्रकारके विमानोपर चढ़-चढ़कर इन्द्र आदि देवता भी एकत्र होकर कौसल्याके गमसे उत्पन्न रामको देखनेके लिए आये । उस समय ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य तथा इबन्द्र आदि देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीके जन्मका उपलक्ष्यमें विविध उम्भव किये । इस तरह उत्साहके समय आकाशमें विद्यमान इयत्ता रामको प्रणाम करके ना । प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे । समय पाकर देवताओंने रामसे कहा— ॥ ७-११ ॥ हे देव ! अब हम लोग धन्य हैं । अब हम लोग राजाओंके भयसे मुक्त हो गये । क्योंकि इमीन्द्र आपने अवतार लिया है ॥ १२ ॥ हे देव ! हे कृपानिधे ! यह हम लोगोंके लिए महान् हर्षका समय है । इसीके कारण यह पवित्र समय सर्वश्रेष्ठ माना जायगा ॥ १३ ॥ अब भी इस बातको अङ्गीकार करते हुए इस समयको बहुतसे वरदान दीजिए । उनकी ऐसी आज्ञा सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी उन-पर बहुत प्रसन्न हुए और कहा—हे देवताओं ! आपलोगोंने बड़ी अच्छा बात कहा है और तीनों श्रेष्ठोंके उपकार करनेवाले विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की है । इससे मैं बहुत प्रसन्न होकर कहता हूँ ॥ १४-१६ ॥ यह मास सब भासोंमें श्रेष्ठ होगा । वैशाखसे कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकसे माघ श्रेष्ठ है और माघमें भी यह चैत्रमास श्रेष्ठ होगा । इस मासमें किया हुआ दान, हवन, स्नान और ध्यान यह सब कार्य करोड़गुना फल देगा और अयोध्यामें तो उससे भी विषय फल प्राप्त होगा जो फल सभमेघसे होता है, जो फल गोमेघसे होता है



चेत्रे मासि मित्रे गमे नवम्या परमे दिने । पुनर्वसुर्नक्षत्रं प्रोच्यस्थे ग्रहपंचके ॥ ४ ॥  
 भव्याङ्गे प्रकटो जातः श्रीगमो राजवयनि । आनन्दश्च तदा जातः सर्वत्र जगतीतले ॥ ५ ॥  
 देवदुर्मुखो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाश्वत्थः । राजवयनि वायानां संधा नेदुः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥  
 ननुतुर्वारिणायञ्च जगुर्गतिं मनोरमम् । तदा सर्वं हि भूमिस्था जना द्रष्टुं शिशु शुभम् ॥ ७ ॥  
 प्रपपृर्नृपञ्च वालं च्छ्वा मुदमवाप्नुयुः । न नाविमानभास्वता दिवि देवाः यवासवाः ॥ ८ ॥  
 मिलिता राघवं द्रष्टुं कौमल्याजगुरुद्वयम् । नखा रुद्रश्च दूर्यधश्च देवेन्द्रादियुतः शुभाः ॥ ९ ॥  
 उन्सवान् विदधुः सर्वं तदा ध्यागमजन्मनि । एवमुन्माहवसये देवा हर्षादिवि स्थिताः ॥ १० ॥  
 नमस्कृत्वा रामचन्द्रं तृण्डुविविधैः स्तवैः । प्रोचुस्तदा शुभाः सर्वे हर्षादिव रघूत्तमम् ॥ ११ ॥  
 अयं धन्या सयं देव मुक्ताश्वासुरजाद्वयात् । यन्निमित्तं त्वया देव सवतारः कृतो भुवि ॥ १२ ॥  
 अस्माकं हर्षकालोऽयं नैवदव कृपानिधे । तस्मादयं मदा पुष्पः श्रेष्ठः काष्ठो भविष्यति ॥ १३ ॥  
 त्वं चाप्यंगीकृत्व य देवस्मै सुबहून् वरान् । इति तेषां वचः श्रुत्वा देवानां राघवः शुभम् ॥ १४ ॥  
 तुतोष निवरा तेषु देवेषु भगवान्हरिः ।

श्रीराम उवाच

संयक् प्रोक्तं मुगः सर्वे तन्त्रैलोकयोपकारकम् ॥ १५ ॥

मयद्भिः प्रार्थितोऽहं तु हर्षकाले मत्तमे । शृणुष्वं वचनं मेऽद्य यत्रर्षान्प्रोच्यते मया ॥ १६ ॥  
 सर्वणमेव मामानां श्रेष्ठथाय भविष्यति । वैशाखांशकार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्मासः परः च ॥ १७ ॥  
 माघमासाढ्याय चैत्रमासो भविष्यति । चैत्रमासे कृतं दत्तं दुर्लभं स्मार्तं विचित्रितम् ॥ १८ ॥  
 सर्वे कोटिगुणं प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः । यच्छ्रुत्वा स्वमेधेन यद्गोमेधेन वै फलम् ॥ १९ ॥  
 यत्फलं सोमयागेन तत्तन्त्रे स्नानमात्रतः । सर्वग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ॥ २० ॥

उसका उत्तर देता है । मुनो-आ २ । अयोध्या नगरीके पालक महाराज दशरथको रानी कौमल्याके वदनेसे चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथीकी पुनर्वसु नक्षत्रमें जब कि पाँच ग्रह केन स्थानमें बैठे थे, तब मछाल्लके समय अवधका दशरथके घरमें श्रीरामचन्द्रजी अवतरे । उस समय जगतनरमें सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ३-५ ॥ देवताआने इन्दुमयी बजायी और पृथ्वीवृष्टि की, राजाके महलोंमें आग-अग्नि विविध प्रकारके बाले बजे ॥ ६ ॥ वैश्याय नाचने और गाने लगे । उस समय पृथ्वीमण्डलके इन्द्र प्रमत्त उस वचनेको देखनेके लिए आये और उस देव वक्षकर नई प्रसन्न हुए । उसी तरह नाना प्रकारके विमानोपर चढ़-चढ़कर इन्द्र आदि देवता भी एकत्र होकर कौसल्याके गमसे उत्पन्न रामको देखनेके लिए आये । उस समय ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य तथा इन्द्र आदि देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीके जन्मका उपलक्ष्यमें विविध उम्मेद किये । इस तरह उत्साहके समय आकाशमें विद्यमान इयत्ता रामको प्रणाम करके ना । प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे । समय पाकर देवताओंने रामसे कहा— ॥ ७-११ ॥ हे देव ! अब हम लोग धन्य हैं । अब हम लोग राजाओंके भयसे मुक्त हो गये । क्योंकि इमीन्द्र आपने अवतार लिया है ॥ १२ ॥ हे देव ! हे कृपानिधे ! यह हम लोगोंके लिए महान् हर्षका समय है । इसीके कारण यह पवित्र समय सर्वश्रेष्ठ माना जायगा ॥ १३ ॥ अब भी इस बातको अङ्गीकार करते हुए इस समयको बहुतसे वरदान दीजिए । उनकी ऐसी आज्ञा सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी उन-पर बहुत प्रसन्न हुए और कहा— हे देवताओं ! आपलोगोंने बड़ी अच्छा बात कहा है और तीनों श्रेष्ठोंके उपकार करनेवाले विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की है । इससे मैं बहुत प्रसन्न होकर कहता हूँ ॥ १४-१६ ॥ यह मास सब भासोंमें श्रेष्ठ होगा । वैशाखसे कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकसे माघ श्रेष्ठ है और माघमें भी यह चैत्रमास श्रेष्ठ होगा । इस मासमें किया हुआ दान, हवन, स्नान और ध्यान यह सब कार्य करोड़गुना फल देगा और अयोध्यामें तो उससे भी विषय फल प्राप्त होगा जो फल सभमेधसे होता है, जो फल गोमेधसे होता है



कुटुम्बमेव हस्ते सख्यार्थेनियताम् । लक्ष्मणस्त्री तु मन्मता तनुमौ रामतन्वरी ॥३५॥  
 पुत्रान्वाप्तमष्टुः शौ वृद्धो पुत्राधमुद्यती । स्वदापमहिताथैवुपायं कर्तुमुद्यती ॥३६॥  
 निदासारुणे पुर गन्वा देवती मोहनी शुभाम् । स्वयेश्वदेवतामम्बा प्रवरातीरवासिनीम् ॥३७॥  
 दृष्ट्वा देव्याम् तौ सेवां नित्यं तत्र प्रचक्रतुः । गते बहुविधे काले वादा या महालया ॥३८॥  
 प्रसन्ना त द्विजं भूत्वा प्राह तदावशानये । हे नान्द महाबुद्ध गच्छायोध्यापुरीं मत्ति ॥३९॥  
 एव वै सख्युपाये रामतीर्थे महामये । चैत्रमासि वसन्तीं यदा स्थान्मर्मानगा रविः ॥४०॥  
 चैत्रस्नानं मासमेकं कुरु तत्र द्विजोत्तम । पानकमकलं तपक्त्वा पुत्र प्राप्स्यस्यस्यनु नमस् ॥४१॥  
 इति देव्या वचः श्रुत्वा द्विजावतावरस्तदा । यथा मार्गे हृदि स्थाप्य योष्यन्तुयां पुरीं शुभाम् ॥४२॥  
 चित्ता परया व्याप्तः कथं भर्तुं हि शक्यते । मयाऽयोध्यापुरी दूरमिताः कष्टं च ज्ञेयम् ॥४३॥  
 इति चित्तायुतो मार्गे कश्चित्तिष्टन्पदविम्बुलम् । मार्गमात्रं करे धृत्वा वृद्धश्चैव ययौ दिजः ॥४४॥  
 एवं गोदावरीतीरं गत्वा स्नान्वा द्विजोत्तमः । राममूर्तिं पुरः स्थाप्य पूजयामास मत्तितः ॥४५॥  
 तावन्मम प्रसन्नोऽभूद्रामो देव्याः प्रसादतः । द्विजं प्राह गच्छेष्टो मो नृसिंह द्विजोत्तम ॥४६॥  
 माऽयोध्यां स्वमिनो गच्छ शृणु मवचनं शुभम् । इनः पूर्वं श्रुत्वा हि याजनद्वयसमितम् ॥४७॥  
 प्रतिष्ठानामिधं क्षेत्रं गोदाया उत्तरे तटे । तत्रास्ति रामतीर्थं हि मन्मताम्ना च मया कृतम् ॥४८॥  
 तत्रैव गच्छ विप्रेन्द्र स्नान्वा श्रीं हि मार्जया । चैत्रमासे वसन्तीं यदा स्थान्मर्मानगा रविः ॥४९॥  
 तदा कुरु विष्णुपण पूजयेन्वा च मा शुभम् । रापस्य पुत्रलाभो भविष्यति न संशयः ॥५०॥  
 हन्युक्त्वा रघुवास्तु तत्रैवांतरधायतः । पत्रं संग्राह्य रामः प्रसन्नोऽभूद् द्विजाय हि ॥५१॥  
 तस्मान्स वै रामदत्तो नाम्ना सर्वत्र कीर्तते । तद्रामवचनद्विषः प्रतिष्ठानपुरं ययौ ॥५२॥  
 मासमेकं च वै स्थित्वा चैत्रस्नानं चक्रे ह । पूर्वोदये समुत्थाय कृतशौचादिरत्तिक्रियः ॥५३॥

लक्ष्मणस्त्री म., माता और पिता से यती; अर्थात् अन्तः परात्मनः से ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ किन्तु वृद्धावस्था में वे  
 पुत्रका अभिषेक करके उठने अपना दाव माग करने के लिए उपाय करना प्रारम्भ किया ॥ ३५ ॥ इसके लिए वे  
 प्रवरा की तीर पर रहनेवाली अपनी दृष्टि का अम्बा माह्वन के पास गये ॥ ३६ ॥ उनका दम्भ करके उन्होंने बहुत  
 दिना तक देवता आराधना का कृ० दिना की देवता प्रसन्न होकर कहने लगी—हे महाबुद्धिमान् नृसिंह ! तुम  
 भर्ता मयाप्यपुरी जाओ । वहाँ महाबुद्धिमान् सरजूतीर के जन्म जय प्रसन्न कृत्य के समस्त नृप मातराक्षर  
 भाव, सब एक महान् चैत्र स्नान करा । ऐसा करने से तुम्हारे सब पापों का नाश हो जायगा और तुम्हें पुत्रकी  
 प्राप्ति होगी ॥ ३७-४१ ॥ देवता यह बात सुनकर वे अयोध्यापुरीका पथ पर चलने लगे । उन्हें यह बात  
 चित्त पर कि अयोध्यापुरी तो यहाँ से बहुत दूर है और मुझ अपना जीवन भी भारी हो रहा है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥  
 ऐसा सोचते हुए वे कमावठ आते, कभी गिर पड़ते और कभी अपनी स्त्रिका हाथ पकड़कर वे मेरे वृद्ध पिता  
 चलते थे ॥ ४४ ॥ इस तरह कितना प्रकार के मोक्षधर के सततक पड़ते । वहाँ उन्होंने स्नान किया और सामने  
 रामकी मूर्ति रखकर भक्तिपूर्वक पूजन करने लगे ॥ ४५ ॥ तबतक देवता आशावर्द्धसे रामचन्द्रजी प्रसन्न  
 होकर सामने भागे और कहने लगे—हे द्विजोत्तम नृसिंह ! अब तुम अयोध्या माग जाओ । यहाँ से केवल शान्त  
 योजन दूर गोदावरी के उत्तर तट पर प्रतिष्ठान नाम के स्थान है । वहाँ मेरे नामसे प्रसिद्ध रामतीर्थ है ।  
 मैं ही उसका स्थापना का हूँ ॥ ४६-४८ ॥ तुम वहाँ जाओ और चैत्रमास में जब सूर्य भाग राखिपद  
 भावे, सब धार्मिक साध स्नान करके मेरा विषय पूजन करो । ऐसा करने से तुम्हारे सब पापों का नाश हो  
 जायगा और तुम्हें पुत्रका प्राप्ति होगी । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ऐसा कहकर रामचन्द्रजी  
 वहाँ ही अन्तर्धान हो गये । जिस गङ्गा नामक सरावर के तट पर राम प्रसन्न हुए थे, वह स्थान रामचन्द्रजी  
 नामसे विख्यात हुआ । रामके कथनानुसार वह महादेवता अपनी धार्मिक साध उस प्रतिष्ठानतीर्थकी गये

स्नात्वा तस्मिन् रामतीर्थे सरयुसगममन्विते । रामचन्द्रं स्वर्णगिरीं पूजयामास भक्तिः ॥५४॥  
 प्रदक्षिणाः स्वर्णगिरेश्वकरं नव प्रणमम् । नवपुष्पैश्च नैवेद्यैः पूजयामास राघवम् ॥५५॥  
 पद्मशुक्लतृतीयायां यावद्वैशाखसमयः । तृतीया गीतला गौरी स्नानं चक्रे च भार्यया ॥५६॥  
 एवं भार्यं व्रतं कृत्वा स द्विजस्तुष्टमानसः । प्रज्जकं प्रति मार्गेण ययौ लक्ष्म्या समन्विता ॥५७॥  
 यावन्मार्गे द्विजोऽमञ्जलावदृष्टस्त्रिभिर्नरैः । पिशाचैः सुतृपकारेणानुदायं सभार्यया ॥५८॥  
 ययौ स्वनगरं रम्यं गोदानाभिविगतिमयम् । चैत्रस्नानप्रभावेण जलस्पर्शान्मुनस्त्वहम् ॥५९॥

तस्मान्मया ते कथितं वरं हि स्नानं सधौ ते सरयुजले वै ।

साकेतपुर्यां नरनामतीर्थे भुक्तिप्रदं मोक्षदमुत्तमं च ॥६०॥

विष्णुदास उवाच

कथं पिशाचयोन्यास्ते भुक्ता विप्रैश्च वै प्रभुः । कस्मात्पापाच्च तेषाम् पैशाची योनिरभाश्रिताः ॥६१॥  
 तत्सर्वं विस्तरेणैव श्रोतुमिच्छामि त्वमुवाच ।

श्रीरागदास उवाच

मृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि रम्भानाम्नी वराऽप्यमः ॥६२॥

चैत्रे स्नात्वा वरायोध्यासरयुनिर्गले जले । मारुतैश्चकृत्वा चक्रुःस्थालंकारमण्डिता ॥६३॥  
 गृहीत्वा सरयुतीर्थं रत्नकांचननिर्मिते । पञ्चे गमेश्वरं सेतौ द्रुपुं मनेन सा जरात् ॥६४॥  
 ययावाकाशमार्गेण पिशाचा यत्र ते प्रभुः । तदाद्रवस्त्रचांचनपाण्डिदुभिः प्रोक्षिताश्च ते ॥६५॥  
 क्रूरस्वभावमुत्सृज्य वाश्वर्यं परमं ययुः । पूर्वजन्मानुस्मरणमभूत्तेषां तदा नृप ॥६६॥  
 विस्मयाविष्टचित्तास्ते तां दृष्ट्वाऽप्यरमं दिवि । बहुधा शार्ङ्गयाषासुस्तान्वा पश्यन् संतप्या ॥६७॥

॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वहाँ रहकर उन्होंने एक मास धर्म-तत्त्व वेद-स्नान किया । उनका यह निमेष था कि प्रतिदिन सुबहो-  
 दयमें पहले सोकर उठ जात और निरपकृत्यसे निबटकर सरयुसङ्गमपर विद्यमान तीर्थमें स्नान करते और  
 भक्तिपूर्वक स्वर्णगिरिपर रामचन्द्रजीको पूजा किया करते थे ॥ ५३, ५४ ॥ प्रतिदिन वे उस स्वर्णगिरिकी नी  
 चरिक्का करते और सो पुष्पों और विविध प्रकारके तैवेद्योंसे रामका पूजन करते थे । वह वत उनका  
 सबसक चरता रहा, जबसक वैशाखके शुक्लपक्षका तृतीया नहीं आयी । तृतीयाके आनेपर उन्होंने ही तलापौरी  
 नामक स्नान किया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस तरह एक मास तक व्रत करके प्रसन्नचित्तसे वे माहात्म्यदेवता अपनी  
 पत्नीके साथ कमलपुरको चले ॥ ५७ ॥ जाते-जाते रात्रिमें उनको तीन पिशाच मिले । वे तीनों बड़े भूषे वे  
 मेरे पिता-माताने उनका उद्धार किया और अपने नगरको बड़े । उसी चैत्रमासके प्रभातसे वे उनका पुन होकर  
 अम्भा ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इसीलिए मैंने चैत्रमासमें अष्टाध्यायक वसिष्ठाजीके भुक्ति-भुक्तिप्रद सरयुजलमें स्नानका  
 विधान बतलाया है ॥ ६० ॥ विष्णुदासने कहा—वे तीनों पिशाच कितने तन्दु उस पिशाचपात्रसे छूट और  
 किस पायसे वे पिशाचगोत्रमें पड़े थे । यह वृक्षान्त सा विस्तारपूर्वक मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ ।  
 श्रीरागदास कहने लगे—हे शिष्य ! मुनी, यह कथानक भी मैं कहना हूँ । रम्भा नामकी एक सुन्दरी अक्सर थी  
 ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ उसने चैत्रमासमें अयोध्याके सरयुजलमें स्नान किया । उसका कपड़े झींग गये और मुस्कान  
 उसके होठोंपर खेल रही थी और उसके अंगमें पड़े हुए विविध प्रकारके आभूषण अपनी घसाधारण गोदा  
 दिया रहे थे ॥ ६३ ॥ स्नानके अनन्तर उसने रत्न और कांचनसे बने हुए पात्रमें रामेश्वर शिवको स्नान करानेके  
 लिये सरयुजल परा और मोन होकर आकाशमार्गसे रामेश्वरको चल पड़ी । जाते-जाते वह उस स्थानपर  
 पहुँची, जहाँ वे तीनों पिशाच रहते थे । रम्भाक सोने वस्त्रसे पानीकी कई कुँदें गिरकर इन पिशाचोंपर  
 पड़ी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इससे उनका क्रूर स्वभाव छूट गया और उन्हें पूर्वजन्मकी सब बात याद आ गयी ॥ ६६ ॥  
 तदनन्तर वे तीनों विस्मित होकर बहुत तरहसे शर्दना करने लगे । रम्भाने संस्रमें उनसे पूछा—॥ ६७ ॥

कस्माद्यपि पिशाचा हि ज्ञानास्तन्कल्पतां मम । उति तन्करकृन्संतापेरितान्ते प्रयस्तदा ॥ ६८ ॥  
 तेषु द्वौ वर्तमानौ हि कथयामासमुध ताम् । शृणु भविषि चार्ता हि पूर्वजन्मनि भूमुरात् ॥ ६९ ॥  
 विज्ज्ञायां ममुपनी श्रीविद्यादृग्दर्शनाः । उगाधध्वयन कर्तुं कविसागयणाह्वयम् ॥ ७० ॥  
 शुभ्रपया तोषयिन्ना शुभ नवैव मस्थतुः । नासायणमुतां चाकृडाया चन्द्रनिभादनाम् ॥ ७१ ॥  
 दृष्ट्वा परम्परं मैत्र्यं इच्छन् प्रार्थय तां स्त्रियम् । आवास्यां च हि या भृक्ता तज्ज न गुरुगा चिरात् ॥ ७२ ॥  
 आवास्यां च ददौ शपथं तस्यै चाप्यशुभकृपा । मुक्तां चापि कुमारीय पिशाचवत् सर्वविषय ॥ ७३ ॥  
 नतोऽस्माभिस्त्रिभिस्तं तु मुनिं नन्वा पुन पुनः । प्रापस्यानन्ततो लब्धमनन्तशृङ्खल मनोभये ॥ ७४ ॥  
 चैत्रमासे नृसिंहाकारः कश्चिद्विद्वश्च कानने । ददति स्नानजं पूषय तदोद्गमे भविष्यति ॥ ७५ ॥  
 एवं ज्ञाता पिशाचा हि यस्य त्वद्वक्त्रविदूषिः । प्रोक्षिताः स्मोऽस्य नैर्जाता पूर्वजन्मस्मृतिः शुभा ॥ ७६ ॥  
 तत्तत्पां वचनं श्रुत्वा ज्ञान्या शायस्य मोक्षणम् । सान्वायन्वा कर्णाय शीघ्रं मे नृहरिः स्त्रिया ॥ ७७ ॥  
 आगमिष्यति मा चितां कुरुतेति वसंगता । ययौ रामेश्वर शीघ्रं पूजायन्वा गता दिवम् ॥ ७८ ॥  
 चैत्रमासे सतिशक्ते मये स नृहरिर्द्विजः । मार्यदा मदितो रष्टः पिशाचैर्जनैः पिता मम ॥ ७९ ॥  
 स्थित्वा दूरं च ते सर्वे तमचर्तुंदार द्विजम् । नैजं वृत्तं सुमनसि हि शायस्यापि विमलणम् ॥ ८० ॥  
 तच्छ्रुत्वा नृहरिर्विप्रस्तान्प्रीडाच मुदा न्यत । मा मेनस्य पिशाचवत्प्रायश्चित्तं समुद्विजेत सः ॥ ८१ ॥  
 राक्षसो मोचितः पूर्व मोचयिष्याम्यहं तथा ।

पिशाच उवाच

कः शशुध कदा मुक्तो राक्षसः कः परिवस्तरम् ॥ ८२ ॥

कुमारी इस पिशाचकी वही बात हुई हो सः कहो । उस प्रकार रामाके हाथोंका निकल पाकर उन दोनोंमेंसे दो बीजे—हे भविषी ! मुनी पुनर्जन्म हम दोनों विरता नाम्नी स्त्री द्वारा हर पक्षी नामक साहाय्यसे उत्पन्न हुए थे । अवस्थानुसार हम दोनों विद्या पढ़नेके लिए नारायण नामक एक गुरुके यहाँ गये । वहाँ उनको सेवा करते हुए रहने लग । गुरुजीकी एक सुन्दरी कन्या थी । उसकी मनोहारिणी मुष्कान थी और चन्द्रमा के समान मुख था । ६८-७१ । उस राक्षस हम दोनोंके समक्ष निवृत्ता कर ली और समय पाकर बहुत अनुनय विनय करके हम दोनोंके साथ भाग किया । बहुत दिनों बाद यह बात गुरुजीको ज्ञात हो गयी ॥ ७२ ॥ उन्होने क्रोधित होकर हम लता उस कन्याको साथ लेने हुए कहा कि हम कुमारके साथ तुम दोनों पिशाच हो जाओ । ७३ ॥ इसके बाद हम तीनोंने उन मुनीश्वरकी बार-बार प्रणाम करके किसी तरह भापके अलका वनमें पाया । माँ भी मृत हो ॥ ७४ ॥ उन्होंने कहा कि चैत्रमासमें कोई नरसिंह नामका आहुण इस वनमें मार्गगा और वह शपथ नैवमनका पण्य तुम्हें प्रदान करेगा तब कुमार उद्धार होगा । ७५ ॥ इस तरह हमलोगोंका यह विश्व वधान मिली । अजहम अरके चम्पवित्तुस प्रोक्षण हो गये । इस कारण हमें पूर्वजन्मकी सब बातें याद आ गयीं ॥ ७६ ॥ इस प्रकार उनको बातें सुनकर रामाने संकल्प ही कहा कि तुम लोग रहे रहो । अब जो वही तुम्हें साहाय्य अवती राक्षसका इस वनमें भागवाले है ॥ ७७ ॥ तुमलोग किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो । इतना कहकर रामा रामेश्वर चली गयी । वहाँ उसने गिरीकी पूजन किया और साक्षात् मार्गमें ही लोटकर चली गयी ॥ ७८ ॥ चैत्रमास वनतर नागह अथवा भार्याके साथ उस वनमें पहुँच और उन पशु बीको डला । ७९ ॥ वे दोनों पिशाच नृसिंहके पास न आकर थोड़े दूरपर खड़े हो गये और अपने पूर्वजन्मका कृपाए एवं आपसी मुक्ति पावना उपाय कह सुनाया ॥ ८० ॥ उनकी बात सुनकर मेरे पिताजीने कहा—तुम लोग धन्य हो नहीं । जिस प्रकार शम्भुनामक साहाय्यने उस राक्षसकी पिशाचयोनि से मुक्त किया था उसी तरह मैं भी तुम लोगोंको इस योनिसे मुक्त कर दूँगा । उनकी बातें कहकर पिशाचोंमेंसे एकने कहा कि राक्षस विप्र कौन वे और वह राक्षस कौन था ? यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक भाव हमें

कथयस्व द्विजश्रेष्ठ कथां कथा तु कौतुकान् ।

नृमिह उवाच

मृणुष्वं कथयिष्यामि यद्वृत्तं च पुगलनम् ॥८३॥

शिवकांचीपुरीमध्ये कश्चिदेवः शुचित्रनः संभुजः स चित्रं कालं मस्थी स च स्वभार्यया ॥८४॥

स कस्मिंश्चिदने विपश्चैकादशविंशतिके । वैरागिकमुखात्तत्रमाममाहात्म्यवर्तिनीम् ॥८५॥

कथां धोतुं समायानुत्तन भुज्वा महत्कथम् । अपोष्यायां हि चैत्रस्य स्नानान्कैवल्यदायकम् ॥८६॥

ततो बहुगते काले सम्मग्नं तां कथां शुभाम् । ज्ञात्वा मयाग्नं चैत्रं स्वपुत्रभिर्मेतन्मदा ॥८७॥

भार्यया सहितो विप्रः शनैर्मार्गेण वै यया । तां तां तां आहूया रम्यां यावदग्रे स गच्छति ॥८८॥

राजबुद्धो हि भिल्लेन कर्कशाख्येन कानने । गृहीत्वा मय्यत्र चापं धर्ययिन्वा च भूमुरम् ॥८९॥

छन्दुठ कर्कशः क्रुरो वस्त्रेणकेन नं द्विजम् । सुमोक्ष नस्य पाथेयं गृहीत्वा सकलं शुभम् ॥९०॥

द्विजोऽपि प्रार्थयामास कर्कशं च पुनः पुनः । वस्त्रादिकं गृहाण त्वं मर्यापिष्टं ददस्व माम् ॥९१॥

तत्तस्य वचनं श्रुत्वा मुक्त्वा गदस्त्रपथनम् । सर्वं ददस्व पाथेयं नानाविधमनुनमम् ॥९२॥

तस्मिन्ददर्श स व्याधो दश रत्नाफलानि वै । ययकान्यनिशुक्लाणि तनभित्तेऽविचारयन् ॥९३॥

एतै फलैर्न मे कार्यं जानामि ब्राह्मणोत्तमम् । तर्हि दास्याम्यहं दानं तुभ्याकर्तं च सखिकम् ॥९४॥

इति निश्चित्य स व्याधो दश रानि द्विजन्मने । गृहीत्वाऽमक्षयद्विप्रः प्राग्गमे भार्यया मथौ ॥९५॥

सद्रंभाफलशनेन कर्कशस्य तदा शुभा जाना बुद्धिः धणादेव सान्त्विकी क्रुत्वा गता ॥९६॥

एवं पिशाचाः सकलान्ततः परं भिन्नाय तस्मै तु शुभा मतिर्धभूत् ।

समागतं चात्र कुतः स पृष्टवान् विप्रः स वै प्राह वने च कर्कशम् ॥९७॥

शम्भुउवाच

काचः पुर्याः सपापानो गम्पतेऽप्योष्यकां पुरीम् । चैत्रमासेऽवगाहार्थं सरयूनिर्मले जले ॥९८॥

बतलाइए । हे द्विजश्रेष्ठ हमपर इतना कथा कहिए । नृमिह कहने लगे—अच्छ मुनो । मे एक पुरावन कथा तुम लोगोको सुनाऊंगा ॥ ८१-८३ ॥ शिवकांचीपुरीमें पवित्रप्रणकारी एक ब्राह्मण रहता था । उसका नाम कम्भु था । वह बहुत दिनों तक अपनी स्त्रीके साथ उस नगर में रहा । ८४ ॥ एक दिन वह ब्राह्मण बिसी वनमें एकावर रामक शिवके सपोष वैरागिकके मुखसे चैत्रमाम माहात्म्यकी कथा सुनने गया । वहाँ पहुँचकर उसने चैत्रमासमें अयोध्यास्नानका बड़ा फल सुना ॥ ८५ ॥ बहुत दिनों बाद उस कथाका स्मरण करके वह चैत्रमास लगनके पहले ही अपनी आनके लिए अपने घरसे निकल पड़ा । उसने अपने साथ अपनी स्त्रीकी भी ले लिया था । वह धीरे धीरे अयोध्याकी ओर चला । राहमें गगाजी पड़ी तो उन्हें पार किया । वहसि गाँधी दूर भागे गया । ही था कि वनमें कर्कश नामका एक भौंटा बनुराजण लिये हुए मिला । उसने ब्राह्मण-देवताका घमकाकर सब कुछ छीन लिया और केवल एक कपड़ा पहनाकर छाड़ दिया । वहाँ तक कि उसने इन लोगोंका पवित्र पाथेय भी ले लिया ॥ ८६-८७ ॥ तब ब्राह्मणन उसमें शायना की कि घरे कपड़े-वस्त्रें सब कुछ ले लो । लेकिन रास्तेमें खानकी चन्तुआँवाली वह पोटला वापस दे दो ॥ ८८ ॥ ब्राह्मणकी बात सुनकर ककणने वह पोटली खोली और देखा कि उसमें बहुतसी खान पानेकी चीजें थीं हैं ॥ ८९ ॥ उस व्याधने उसमें दस केलेके फल भी देखे । वे फल कच्चे और मूँते हुए थे । उन फलोंको देखकर उसने मनमें सोचा कि इन फलोंकी तो हमें कोई बयासमकला है नहीं, फिर हम क्यों न खा दें ॥ ९० ॥ ऐसा निश्चय करने उसने केले कापस दे दिये और उस सपत्नीक ब्राह्मणने चैत्रमासके प्राग्भमं वे कलक फल खाये ॥ ९१ ॥ उस रत्नाफलके दानसे कर्कश व्याधके हृदयमें शुभ बुद्धिवा प्रादुर्भाव हो गया जिससे उसकी क्रूरता गह हो गयी और सान्त्विकता आ गयी ॥ ९२ ॥ हे पिशाचा ! जब उस भौलकी मति पवित्र हो गयी तो उसने

इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । किं लभ्यते हि स्नानेन तन्मे वद सविस्तरम् ॥१०९॥  
 पुनः प्राह स विप्रेन्द्रः कर्कशं मत्कृतः कलम् । स्नानेन मधुमासे हि गृध्रायः प्रसादति ॥११०॥  
 प्रसादात्सकलान्भोगान् लभते मानवा भुवि । अंते मोक्षोऽपि मोक्षि लभ्यते नात्र संशयः ॥१११॥  
 इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । मोक्षस्वरूपं कथय कृपां कृत्वा ममोपरि ॥११२॥  
 तत्तम्य वचनं श्रुत्वा पन्नी प्राह द्विजोत्तमः । पश्य पश्य वरराहे कौतुकं महद्द्रुमम् ॥११३॥  
 यद्द्रुमाफलदानेन चैत्रे मासि वगानने । अयं कं भिक्षुजानीयः कं प्रयत्नयेदृशः शुभः ॥११४॥  
 मोक्षस्वरूपज्ञानार्थं तस्मादानं प्रशस्यते । इत्युक्त्वा तां शिष्यां विप्रः कर्कशं प्राह मादरम् ॥११५॥  
 साधु साधु महाव्याधः सम्यक्प्रयत्नः कुतस्त्वया । इदानीं प्राच्यते मोक्षस्वरूपं तन्निशामय ॥११६॥  
 स मोक्षस्त्वं हि जानीहि यतो नास्ति पुनर्भवः । इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः ॥११७॥

तस्य प्रामिर्यथा स्यान्मे तन्मे वद द्विजोत्तम ।

मृग्य कर्कशं तत्प्रामिर्यथा व्याचक्ष्वदामि ते । ११८॥

दाग्ध्रगृहादीनां प्रीतिं मुक्त्वा जनार्दनम् दिवरात्रं चिन्तयित्वा सर्वदेहस्य बालकम् ॥११९॥  
 आत्मानं बहुपुण्यार्घनिर्मलीकृत्य मानसम् तन्स्वरूपे यदा निष्ठेन्य मुक्तो नेत्रगे जवः ॥१११०॥  
 एवं वदति विप्रेन्द्रे व्याधो मुक्त्वा शर घनुः । शुभरादौ जगन्नन्वा प्राहि प्रादोने वै वदन् ॥११११॥  
 प्रेषाच्च द्विजवर्ये स व्याधो मामुद्धरेति च । तन्स्मिन्नगरे तत्र गच्छतो योदर्शनः ॥१११२॥  
 दुद्राव दीर्घशब्देन यत्रामंस्ते श्रयो वने । आर्यान् राघवं दृष्ट्वा चक्रुस्ते तु पश्यायनम् ॥१११३॥  
 तावज्जवेन तान् धर्तुं निकटं राक्षसो ययौ । स दृष्ट्वा निकटं शुभ्रमुर्विको मज्जन् निजाम् ॥१११४॥

उन ब्राह्मण देवतासे पूछा कि आप किस कार्यसे इधर आ पहुँचे ? ॥ ११७ ॥ रामभुने उत्तर दिया कि मैं कांची-पुरसे आया हूँ और अयोध्या जा रहा हूँ । वहाँ चैत्रमासमें स्नान करूँगा ॥ ११८ ॥ इस तरह ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने कहा कि चैत्रस्नानसे क्या लाभ होता है ? यह आप विस्तारपूर्वक हम बतलाइए ॥ ११९ ॥ ब्राह्मण भक्तिपूर्वक कर्कशको चैत्रमासके स्नानका फल बतलाने लगा । उसने कहा कि चैत्रस्नानसे भगवान् रामचन्द्र प्रसन्न होते हैं ॥ १११० ॥ संसारिक प्राणी उन्हींकी कृपासे सब प्रकारके सुखको भोगते हैं और अन्तमें उन्हें मोक्ष भी मिलता है । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ११११ ॥ इस तरह विप्रका बात सुनकर कर्कशने कहा कि कृपा करके आप हमें मोक्षका स्वरूप बतलाइए ॥ १११२ ॥ इस प्रकार कर्कशका प्रश्न सुनकर ब्राह्मणने अपनी पत्नीसे कहा—प्रिये ! देखो तो कितने आश्चर्यकी बात है । चैत्रमासमें केलके फलोंके वानसे यह मोक्ष कैसे-कैसे प्रश्न कर रहा है । इसकी बात अपनी स्त्रीसे कहकर ब्राह्मण प्रेमपूर्वक कर्कशसे कहने लगा— ॥ १११३-१११४ ॥ हे महाव्याध ! तुम्हारा प्रयत्न बहुत ठीक है । अब मैं तुम्हको मोक्षका स्वरूप बतला रहा हूँ । तुम सावधान मनसे सुनो ॥ १११५ ॥ मोक्ष उस कहते हैं, जिस पाकर प्राणीको फिर जन्म न लेना पड़े । इस तरह ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने फिर कहा—उसकी शर्तित मुझे जिस तरह हो सके, वह उपाय बतलाए । रामभु ब्राह्मणने कहा—हे कर्कश ! जिस तरह तुम्हें मोक्षकी शर्तित हो सकनी है । वह उपाय मैं बतलाता हूँ सुनो ॥ १११७ ॥ १११८ ॥ जो मनुष्य स्वा, पुत्र, गृह आदिका शौनिका पत्न्याद्यग करके रात-दिन सब प्राणियोंके संचालक भगवान् जनार्दनका ध्यान करता है और बहुतसे पुण्योंसे अपने चित्तको निर्मल करके उन्हींके स्वरूपमें ली लगाने रहता है । वही प्राणी मुक्त होता है और कोई नहीं ॥ १११९ ॥ ११११० ॥ ऐसा कहने-पर कर्कशने अपना अनुग्रह-वाण फेंक दिया और वाकं साथ रामभुके परापर गिर पड़ा और कहने लगा—हे ब्राह्मणदेवता ! हमारी भक्षा करो । उसी समय एक राक्षस दौड़ता हुआ उस स्थानपर आ पहुँचा, जहाँ वे दोनों बैठे वार्तालाप कर रहे थे । राक्षसको आते देखकर वे दोनों भागे । राक्षस भी उन्हें पकड़नेके लिए

कुन्तोच्छां प्राप्तेदधस्मिन् रामपुत्रं स्मरन् हसन् । भवितुं रामनाम्ना च यतोय मधुमसि वै ॥११५॥  
 तस्मैकाद्रक्षमथापि जना पूज्यतः सति । ततः सगल्लो दूरं स्थित्वा संभु व्यजिज्ञात् ॥११६॥  
 वामुदरं हृनिश्रेष्ठं धेगाद्रक्षमदेवतः । दृष्ट्वा ते गतोऽन्त्यध जना पूज्यन्तिर्मम ॥११७॥  
 इति तत्कृतकं दृष्ट्वा रक्षसः प्रद स टितः । कम्पाने राक्षसस्य हि जना जगत् वदाऽनुना ॥११८॥  
 राक्षसः प्राह चेमेव सद्यः पुनं निजं वदा जनस्थाने पुन चाह विप्रः कर्मवशाद्भुवः ॥११९॥  
 प्रतिव्रह्मणः शशी दुर्गार्थं यवनीं सदा । जन्मिन्मित्रं चैव सदा भाषां मनीं शुभा ॥१२०॥  
 स्नानार्थं गमनीयं ना मामपृष्ट्वा गृहायती । मा मागे च मया दृष्टा धृत्वा मर्गे चत्तां शुभा ॥१२१॥  
 श्रोक्ता कोबन्धया गृहे ममपृष्ट्वा कयास्वसि । सा प्राह भवभाषा तु रामतीर्थं गम्यते ॥१२२॥  
 मधुमसोऽग्राहयं न मया दृष्टुं कृतम् । एवं कुर्यापि तदाक्षयनाडिना मा मया गन्तात् ॥१२३॥  
 मेषिता स्वगृहं मर्माक्षयः कालान्तरे गते । मृताऽहं च सदा नतो यमलोके ययातुगेः ॥१२४॥  
 चित्रगुप्तोऽपि दृष्ट्वा मां विदुः कुर्यापि पुनः पुनः । यमार्जं म वै प्राह धर्मवर्मा रक्षसिर्जैः ॥१२५॥  
 यो यमराजः शशोऽयं चैव नानिवायकः । बुद्ध्यादीं गच्छमां योनिं निरयान् मोक्षमदति ॥१२६॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा यमः प्रादान्गाम्निदा । यो यदा राक्षसो योनिदीयतां निजने वने ॥१२७॥  
 शशिनेऽस्यै च यदाक्षयस्यै च यमपुत्रे । दशमे गच्छमां योनिं त्यक्त्वा चात्र गता यमपु ॥१२८॥  
 तदाक्षय वने च हं ह्युत्तमपरिपोडितः । पञ्चाशद्वत्सहस्राणि वर्षाण्यत्र स्थितमिह ॥१२९॥  
 किं यथा सुकृतं पूर्वं कृतं यस्याद्वेदे तव । संगतिश्चात्र वै जना मधुमसो गतिपदः ॥१३०॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा संभुर्ध्याना धुनं हृदि । श्रान्त्वा तन्मुकुतं पूर्वं राक्षसाय न्यवेदयत् ॥१३१॥  
 मृणु राक्षसं यन्पूजं कृतं वै मुकुतं न्वया । नस्याञ्जना संगतिर्मे वने निर्माणुं शुभा ॥१३२॥

चित्रगुप्तः सन्तानं पट्टं च मया । उम 'सकटं दत्तकं' इत्यनेन रामपुत्रं दत्तं वा स्मरन् करकं अथवा सुप्रीकां बल-  
 त्तं राक्षसाः मुकुतं पेट ॥१३॥ रामनाम्ना स्मरन्मन्त्रतः जलकं पट्टं से उम राक्षसवा अपरं पूज्यमका स्मरणं  
 हो भाषा । इसलिए कह दूर ही खड़ा होकर आश्रय ले बैठने लगा—हं मुनिराज ! इस पार पदासरेह-  
 से जाय मेरी रक्षा दलिए । मैं आजकी शरण हूँ । आश्रय जन्मिन्मित्रके मुझे अपने पूज्यजन्मका स्मरण हो  
 जाता है ॥ १११-११७ ॥ इस प्रकारका कौतुक दत्तकर बाह्यः । उस राक्षससे कहल-पहले तुम हमें यह अन्त-  
 कायो कि इस राक्षससेहका विदुः सत्यं प्रत्यक्ष दुर ॥११८॥ गच्छमां अपनं पूज्यजन्मका हाल बनाना प्रारम्भ किया ।  
 उसने कहा—इसके पहले मे जन्मे यमान पराजित एक चत्तां था ॥ ११९ ॥ उम सत्य मे जैसे जैसे दान  
 सेता शुभा दुराचार और व्यसन मे जाना गेयन किया गहा था । एता समय मेरी स्त्री दिना मुझसे पूजे हो  
 चैवत्यान करनेके लिए रामतीर्थको चत्तां गता । मेने उम रामतीर्थ दत्त ता पकड़ लिया और उससे कहा—  
 बरी रक्ष ! बिना हमसे पूछे तू कहीं जा गहा है ? भयभजन होकर हमने उत्तर दिया कि मे चैवत्यान करनेके  
 लिए रामतीर्थ (अयोध्या) जा गहा है ॥ १२० ॥ उम तैमा करने समीन बाद तन्मन्त्रं यमता बुनीलिये चल पड़ी ।  
 ऐसी निष्कपट बात सुनकर श्री दैव के बहुत भय और पर लीटा दिया । कुछ दिन बाद पेरी मृणु दुर  
 और यमके दूत एक एक कर पुने लयलोभ मे गये ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ चित्रगुप्तने मुझे देखा ती बहुत चिन्तना और  
 धर्मकाकर यमार्जने मया—हं यमार्जने । इस पातन ऊमनी मर्गे का चैवत्यानस राक्षस था । अतएव यह  
 पहले राक्षसी यमिको योग्यकर दत्तक मया का अधिकारी है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ इस प्रकार चित्रगुप्तको बाह  
 सुनकर यमार्जने अपने अ-कृतो को ७ था दी कि एने दिना निजने वनमे मज्जर्गे योनि दे दो । उमके आश्र-  
 गुप्ता यमदूत मुझ से वनमे दुराचार और दय । तभीसे भूले-प्यासे रहकर मेने पैरीस हजार वर्ष बिताये है  
 ॥ १२७-१२९ ॥ मुझ ने मागुद कि दिन कोन ना पुण्य किया जा, त्रिवक् पञ्चाक्षरे दान निर्जट वनमे आज जैसे  
 सज्जनक दत्तगतिपद उमने प्रत्यक्ष दुर ॥ १३० ॥ उमको बाह सुनकर जन्मे दत्तककर अपने दत्तक उमके  
 पूर्व मुकुतका दत्तक किया और वहुने मगाना ॥ १३१ ॥ हे राक्षस ! तुमने पूर्वजन्ममे जो मुकुत किया था, वह



एकादश्यां चैत्रशुक्ले कृत्यान्वश्चादभोजनम् । तावन्तो दक्षिणापुक्तः कट्या बन्धं त्वया घृतः ॥१३३॥  
 द्वादश्यां प्रातरुन्वाय गत्वा स्नानं त्वया कृतम् । पाननः स हि तावन्तो त्विमुन्या गौतमीतटे ॥१३४॥  
 दक्षिणामहिनीं दृष्टः स केनापि द्विजेन वै । गृहीत्वा स हि द्वादश्यां न ज्ञातश्च त्वया पुनः ॥१३५॥  
 तावन्तदानाद्वरचैत्रमासे जाना वने मेऽयं हि गमनिस्ते ।

तस्मान्मर्धो राक्षस मानर्वह तावन्तदान कर्णायमेवम् ॥१३६॥

इत्युक्त्वा राक्षस शमुचैत्रमाहात्म्यमुक्तम् । उवाचैत्रमासं श्रुत्वा पृथक् कर्कशं वाक्यमब्रवीत् ॥१३७॥  
 यो कर्कश महाबुद्धे भृगुश्च वचनं भव । आगच्छ त्वं सर्वेभ्यः सयाऽयोध्यापुरीं प्रति ॥१३८॥  
 सरयूस्नानमात्रेण मधो पाषाद्विभोक्ष्यसे । इत्युक्त्वा कर्कशं शमुम्नः प्रोवाच राक्षसम् ॥१३९॥  
 यो राक्षस त्वमत्रैव माममात्रं स्थितो भव । अपोध्यायां प्रवेक्ष्य राक्षसानां न विद्यते ॥१४०॥  
 अतोऽहं मधुमसे हि स्नान्वाऽनेन पथा पुनः । यदागच्छामि कीर्त्तित्वा चोद्विग्न्याम्यहं तदा ॥१४१॥  
 मा सर्वेहोऽस्तु ते त्वित्ते शपथं वराभ्यहम् । यन्पापं ब्रह्महत्यायास्तथा गायन्तिनिन्दनाद् ॥१४२॥  
 नोद्विग्नत्वा हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । मद्यपि न च यन्पापं हेमम्नेयादिकं च यत् ॥१४३॥  
 नोद्विग्नत्वा हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । यन्पापं ब्रह्महत्यायास्तथा चैत्रे क्षम्यमानम् ॥१४४॥  
 नोद्विग्नत्वा हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । इत्याह शपथं हि राक्षसं दययन् द्विजः ॥१४५॥  
 यावन्वश्यति सर्वत्र तावज्जातं हि कीर्तकम् । व्याधाय चैत्रमासस्य माहात्म्यस्योपदेशतः ॥१४६॥  
 तवः कलिनो जाता परिणो दक्षयोजनम् । पूर्वः पूर्णर्दिनप्राञ्च मौगधः परनो वरौ ॥१४७॥  
 नद्यस्तोप बहन्त्यश्च ननुतुर्वहिणा वने । तद्दृष्ट्वा कर्कशश्चापि चैत्रमाहात्म्यकीर्तनात् ॥१४८॥  
 दुर्वनं सुवर्नं जातं चैत्रर्ध्वपथमन्यत । तवस्ते हि त्रयस्तस्माद्वनान्मार्गेण निर्गताः ॥१४९॥

यै कहला रहा है उस के प्रभावसे हमारे तुम पर साक्षात्कार हुआ है । एक बार तुमने चैत्रशुक्ल एकादश्यांको किसीक यहां भोजन किया, तावन्त दक्षिणा ली और एक बरतम रखकर उसे तुमने अपनी नगरमें लगट लिया ॥१३३॥ द्वादश्यांको तुम सबने उठ और गङ्गातट के काने चले गये । वह कबरम लिपटी हुई दक्षिणा और तावन्त ब्रह्मसे गोतमी नदीके तटपर गिर गया । उस किसी साहायने उठा लिया, किन्तु उसके नियममें तुम्हें कुछ ख्याल नहीं था । १३ - १३५ चैत्रमासमें उस दक्षिणा और तावन्तके दानसे ही आज इस निर्जन वनमें हमसे साक्षात्कार हुआ है । देखो, चैत्रमासके दानका किन्तु बड़ा माहात्म्य है । अतएव इस मासमें तावन्त दान अवश्य करना चाहिए ॥ १३६ ॥ इस तरह उस राक्षसको चैत्रमासका माहात्म्य सुनाकर शमुने कर्कशसे कहा—हे महाबुद्धिमान कर्कश । मेरी बात मानो और आज ही मेरे साथ अपोध्यापुरीकी चले दो ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ चैत्रमासमें सरयूस्नानमें गये तुम सब पाषाण मुक्त हो जाओगे ऐसा कर्कशसे कहकर शमुने उस राक्षससे कहा कि तुम सर्वत्र भर इना भ्रमण पर हो । क्योंकि अथर्वानुसारमें राक्षसके नही जा सकत ॥ १३९ ॥ १४० ॥ इस कारण जब मैं चैत्रमासमें वरके उद्यममें लौटूंगा और वहाँ आऊंगा, तब तुम्हारा उद्धार करूँगा ॥ १४१ ॥ तुम इसमें कुछ समय मत करो । मैं बहुत लाला हूँ कि साहाय्यहत्या करने तथा गो एवं मुनियेकी मार करनेसे जो पातक होता है, वह पातक मुझ लगे यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना आऊँ । यद्यपि और सुवर्ण पुराणमें जो पातक दाना है यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना आऊँ तो मुझे वे पातक लगे जो पाप ब्रह्महत्या तथा चैत्रमासमें स्नान करनेसे लगता है वह मुझे लगे । यदि बिना तुम्हारा उद्धार किये बिना आऊँ । इस तरह विविध प्रकारके शपथें लाकर शमुने उस बहाराक्षसका आश्वासन दिया । इसके बाद जब व्याघ्रन चारों ओर दृष्टि डाल कर देखा तो चैत्रस्नानका माहात्म्य सुननेके कारण उस वनके दस भोजन तक उसे सब कुछ कन्तूसे स्मर दिताया गये और सुनिश्चित वायु चलने लग ॥ १४२-१४७ ॥ उस वनकी सब नदियाँ घनघोर निनाद करना हुआ जल बहने लगा और मयूरमण्डल

दृष्टेः क्षैरयोऽप्यादः पृथक्पृथक्स्थितम्भर्ताम् न चच्छब्दो मत्तान् ज्ञानं निहमात्मसम्भवः ॥१५०॥  
 धावन्त्यग्रे तु मार्गस्यः पृष्ठे धावन्त्यग्रे केयस्य । एवं तौ गच्छन्ति नित्यं प्रार्थं कन्दकारिणी ॥१५१॥  
 मार्गरोधकर्तुं दृष्टौ तौ दृष्ट्वा सुभुवर्गान् । पश्य कर्कशं रिदना न चेत्स्नानं पदं पदं ॥१५२॥  
 सम्भवतीति वै सुदृष्ट्वा चैवस्नानं न लवयेत् । कश्यपि पिपादे र्गन्तितां गतायां रामचिन्तने ॥१५३॥  
 चैवस्नाने महादाने विद्वानि संभवन्ति हि । एवं वदन्ति विप्रेन्द्रे नौ दृष्टौ करेभिर्हका ॥१५४॥  
 चैत्ररामश्रवान् पूर्वजन्मस्मृत्वाऽतिविस्मिता भूत्वा वै त्राहिवाद्यानि कुन्दा दार्षे महाम्बम् ॥१५५॥  
 शरणं द्विजवर्याय जग्मतुः शश्वत्समये मर्त्याय शश्वत्सम्याहि पृष्ट्वा तु तत्कृत्यान्वितः ॥१५६॥  
 क्षिप्रं दृष्ट्वातिर्हि प्रामा नृत्कृत्पतां मम इति विप्रवचः श्रुत्वा केयस्य वाक्यमन्तरीतम् ॥१५७॥  
 सेती रामेश्वरक्षेत्रे पूर्वजन्मन्यहं द्विजः । निदकः सर्ववशाणां पावण्डकन्दकनगरः ॥१५८॥  
 कदाचिर्जयमसौ तु तत्र श्रीरामपंशके । त्वयै जनममूढं च श्रुत्वा पौराणिकीं कथाम् ॥१५९॥  
 पौराणिकेन कथिता चैवपादान्मण्डनिकायम् । कृतवान् निदने चाहं चारं चारं पुनः पुनः ॥१६०॥  
 तन्मन्कृतं निदने च कश्चिद्विरम्यन् प्रियतमः शूत्राव मरुतं दृष्ट्वा तत्र शम्भोऽम्बहं तदा ॥१६१॥  
 कुरा जातिं त्वं गच्छ यदा चैवशरीरेनम् । भवेत्यति महत्स्य शापशान्तिस्तदा न च ॥१६२॥  
 एवं प्रोक्तं मया सर्वं पूर्वज-माने शम्भुम् । तेन शापेन ज्ञातोऽस्मि कथं भवकारकः ॥१६३॥  
 चैत्ररामश्रवाज्जाता पूर्वजन्मस्मृतनुत्तमा । इदानीं रक्ष मां विप्र त्वं चतुर्भिर्हृदयैः ॥

इति मिहस्य पृष्ठं तु शापवचः श्रुत्वा द्विजः ॥१६४॥

कस्मिन्च मानसं गतोऽस्मि दृष्ट्वाती चदम्बाय महापमपान् ।

स चापि मानसवरः समस्तं वृत्तं निजं चाकथयन् च जाणम् ॥१६५॥

नाचते लगी । वैष्णवार्थिक ज्ञानमयं माहात्म्यम वनका यह मुसमा दलकर ककशांने भा चैवमासका सब मागोर खेड  
 माग । उदा नर वे ताना उस वरिण मागोर अ ॥१५०॥ १५१ । वे वनमलीकी शाभा देखते  
 हुए चले आ रहे थे । तदनक उन्होंने मिह और हाथका महान् गजन मुता ॥१५०॥ आग भाव हाथी माग ज  
 रहा था और उसे पदम मिह स्वदत्ता जाता था । लगे हुए वे शरीर उमा मागोर भा पहुँच, जहाँसे वे तानो  
 मयाप्या जा रहे थे ॥१५१॥ उन दृष्ट्वाका राम्या शक्य दलकर शम्भु ककशांन कहा-दत्ता ककशा ! चैवस्नान  
 करनेवालेके पद-पदपर विद्वान् आते हैं । किन्तु लगीका चाहिए कि विद्वान्-वाचात्रास हरकर पड़े न हट । काशी-  
 वासक, पुत्र-पुत्राक विवाहम, गोनापाठम राम्या कान्त करन्म चैवस्नानम और मुता आदि महत्कान्तम बड़े-बड़े  
 विद्वान् आया करते हैं । शम्भुगक उस ककशाका सुनकर उस दानो दुष्टी (ह या और मिह) का अपने पूर्वजन्मका  
 स्मरण हो आया । जिसमें मरी रहण करो-मरी रक्षा करो इस तरह बहुत हुए वे चित्तलान लग ॥१५२-१५५॥  
 वे उस सम्भुनामक काष्ठमकी सरलमे गये । शम्भु भा उपपर द्यानु होकर उनसे पूछने लगे कि तुम लोगोको  
 यह दुष्टमनि क्यों पिन्ने ? यह कुतान्त हम सुनाओ । इस तरह विप्रका प्रथम सुनकर सिहने कहा-  
 ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ इसके पूर्ववाले जन्ममें मैं रामेश्वरशायका निवास एक ब्राह्मण था । मैं सब घमोका  
 निन्दक था और पावण्डमे भरो जाने किया करता था ॥ १५८ ॥ एक बार चैत्रके महानेमें श्रीरामतीर्थमे एक  
 ब्राह्मणक मुझसे पूछा चैवमासका माहात्म्य सुन लिया और उसकी सरपूर निन्दा की । मेरी उन निन्दाकी बातोंको  
 पाप ही बँड हुए किसी तपस्वी ब्राह्मणन सुन लिया और उसने उसा समय मुझे बाप देने हुए कहा—तूने  
 चैवमासको निन्दा की है । इसलिये तू किसी कृत्तलमे जाकर जन्म ले । जब कि एक वनमे तू किसी  
 ब्राह्मणक मुखसे चैवमासका माहात्म्य सुनगा, उस समय तेरे मापकी कान्ति होगी ॥ १५९-१६२ ॥ हे विप्र ।  
 इस तरह मैंने आपको अपने पूर्वज-मका ज्ञानान कह सुनाया । उसाके बापसे मे महापयदाधिनो इस सिहकी  
 योग्यतामे आ पड़ा है ॥ १६३ ॥ आज आपको मुझसे चैवमासके रामनाम सुननेसे मुझ मरे पूर्वजन्मकी बातें  
 स्मरण हो गयी । हे विप्र । अब मुझे इस सिहवाणिस बचाइए ॥ १६४ ॥ इस प्रकार सिहको बच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पूर्वजन्तं मया कृतम् । रामनाथपुरे चाहं कावेर्या उत्तरे तटे ॥१६६॥  
 विप्रः परमदुर्जनः सर्वशास्त्रपगह्मण्यः । लक्ष्मीभरमदाकृतः पण्यस्त्राभोगकारकः ॥१६७॥  
 एकदा सुहृदा चाह भोजनार्थं निमग्नितः । आद्याहे मधुमासे हि शुक्ले श्रीनरर्मादिने ॥१६८॥  
 मया भुक्तं सुहृद्गोहे नवम्यां द्विजमचम । तेन शपेन जलोपस्थि करिजानी न मंशयः ॥१६९॥  
 सर्वदा प्रतिमासेऽपि नवम्यां न हि भोजनम् । कार्यं विशेषतो रामनवम्यां निदिनं च तत् ॥१७०॥  
 इदानीं न हि जानामि केन पुण्येन तेऽत्र वै । संगतिश्च रते ज्ञाना सर्वेषां परमानिहन् ॥१७१॥  
 इति तस्य वचः श्रुत्वा शशुष्यानिऽविचारयत् । ज्ञत्वा मानसपुण्यं नु प्रोवान् कर्मिणं द्विजः ॥१७२॥  
 शृणु मानस वक्ष्यामि यत्पुण्यं न त्वया कृतम् । पूर्वजन्मनि तन्मयं येन मे मगतिर्नि ॥१७३॥  
 जाता त्वामुद्दिष्यामि मा चित्तां कुरु सर्वथा । रामनाथपुरे रम्ये कावेरीतटशोभिने ॥१७४॥  
 रामायणकथा चैव धृत्वा श्रीनरर्मादिने । रत्ननीये त्वया स्नानं दृष्ट्वा रामेश्वरः शिवः ॥१७५॥  
 तेन पुण्येन ते जाता मगतिर्मम कानन । इदानीं शृणु मिह न्य गृणोतु च कवी महान् ॥१७६॥  
 साकेते मधुमासे हि स्नान्वाऽनेन यथा पुनः । यदा गच्छामि तां कांचीं युवामुद्धारयाम्यहम् ॥१७७॥  
 मा सर्वहोऽत्र कर्तव्यः क्षपथैः प्रजर्षाम्यहम् । मन्तोपार्थं युवाम्मां हि प्रोच्यन्ते क्षपथा मया ॥१७८॥  
 पार्श्वीगमनात्पथ तथा मित्रवधादिकम् । पुरां नोद्धृत्य गच्छामि तदि तन्मयि लिष्टु ॥१७९॥  
 अक्षयवह्णान्पापं यत्स्मृतं माहनिदनान् । पुरां नोद्धृत्य गच्छामि तदि तन्मयि लिष्टु ॥१८०॥  
 हस्तुक्त्वा द्विजवर्यः न स्त्रिया भिल्लेन सपुनः । कार्तिहो वने स्थाप्य गच्छन्मार्गे शुनैः शुनैः ॥१८१॥

सुनकर बाह्यणने हाथीने कहा कि तू म किस पापसे इस दुर्घटानिमे आये हो ? तब हाथीने अपने पूर्वजन्मका हाल सुनात हुए कहा-हे विप्र ! मैं भी अपने पूर्वजन्मका कृतान्त सुगता हूँ, गुनिण । उस जन्ममे मैं कावरी नदीके उत्तरी तटपर रामनाथपुर नामक नगरमे बड़ा दुख्तारी, सब हाथीमे पराटपुत्र, पलके मदसे भतवाला और बेध्याम्यत बाह्यण था । एक बार चैत्रमासी नक्षत्राका मेर किसी मित्रन आदम्य भोजन करनक लिए मुझे निमन्त्रण दिया ॥१६४-१६५॥ तबनुसार ह द्विजश्रेष्ठ ! नक्षत्राक दिन मेन विषमे यही भोजन किया । उनी पापसे इस हाथीकी दानिम का पडा हूँ ॥१६६॥ क्योंकि शास्त्राका यह विधान है कि प्रत्येक मासकी नवमाकी किसी के यहाँ भोजन न कर । यदि ऐसा न हो सक तो चैत्रशुक्ल रामनवम की तो अवश्य इस बातपर ध्यान दे ॥१७०॥ मैं नहीं जानता कि किस पुण्यने इस समय सब प्रकारके वनमाको हरनेवाला बाष्पा ससंन प्राप्त हुआ ॥१७१॥ उसका यह बात सुनकर ब्रह्मन् सपामर अपने मनमे ध्यान किया और उसके पुण्यको जानकर कहन लग-हे मातंग ! सुनो, तुमन जो पुण्य किया है सो मैं तुम्ह बतलाता हूँ । उसीक प्रभावसे आज हमस पट हुई है ॥१७२॥ ॥१७३॥ अब तुम पक्षपाओ मत, मैं तुम्हारा हर तरहसे उद्धार करूँगा । उस जन्ममे तुमने रमणीक कावरीके तटपर स्थित रामनाथपुरमे श्रीरामनवमीकी रामकी कथा सुनी थी । उस दिन तुमने रामनवमे स्नान और रामचर चित्रका दर्शन भी किया था ॥१७४॥ ॥१७५॥ उना पुण्यसे आज इस वनमे हमसे पट हुई है । अब हे मातंग और राहू ! सरो बात सुनो मैं इस समय चैत्रमासका स्नान करनक लिए मयाध्या जा रहा हूँ । स्नान करके जब मैं कांचीकी ओर लौटूँगा, तब यहाँ आकर तुम दानोका उद्धार करूँगा ॥१७६॥ ॥१७७॥ मागे बातपर किसी प्रकारका संदेह मत करना । तुम्हारे विश्वासके लिए मैं शपथ खाता हूँ, सुनो ॥१७८॥ यदि मैं तुम्हारा उद्धार किय बिना जाऊँ तो परस्वागमन करन और मित्रको मातनसे जा पासक लगता है, मैं उस पातकका मागी बनूँ ॥१७९॥ आ पाप बाह्यणका धन हड़पने और माताका निन्दा करनेमे हाता है, उन सब पापका मागी बनूँ, यदि तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ ॥१८०॥ इतना कहकर उस श्रेष्ठ बाह्यणने अपनी स्त्री तथा उस भोलका साथ लिया और वहाँसे जयंभ्याके लिए पक पड़ा । उसने हाथी तथा सिंहको उस वनमे ही छोड़ दिया ॥१८१॥

ददर्शन्यपथा यान्तं श्रेष्ठं कार्पटिकोत्तमम् । बहन्तं रत्नलिङ्गाय श्रेष्ठं भागीरथीजलम् ॥ १८२ ॥  
शम्भुः पप्रच्छ तं नन्वा नम्रं कार्पटिकोत्तमम् । कुतः समागतं त्रिप्र गम्यते काधुना वर ॥ १८३ ॥

कार्पटिक उवाच

प्रयागाद्रागतं विद्धि मां त्वं भूमुरयत्तम । मधुमासेऽवगाहार्थमयोध्यां प्रति गम्यते ॥ १८४ ॥  
इदानीं त्वं निजं वृत्तं वद ब्राह्मणयत्तम । कुतः समागतं त्रिप्र गम्यते काधुना वर ॥ १८५ ॥  
इति तद्वचनं श्रुत्वा शम्भुः शोभाष तं तदा । शिवकाव्याः मयायातमयोध्यां प्रातः गम्यते ॥ १८६ ॥  
चैत्रमासेऽवगाहार्थं गम्यते कथितं मया । इति शम्भुवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोत्तमः ॥ १८७ ॥  
पप्रच्छ द्विजवर्याय कौतुकाविष्टमानसः । शिवकाव्यां शंभुनामा कथिद्विप्रोऽग्नि भो द्विज ॥ १८८ ॥  
तस्यैव वचनं श्रुत्वा पुनः शम्भुस्तमत्रयात् । बहवः शंभुनामना वरन्ते द्विज तत्र हि ॥ १८९ ॥  
कस्त्वया पृच्छयते तस्य वद गोत्रापनामना । इति त्रिप्रवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोऽब्रवीत् ॥ १९० ॥

भारद्वाजकुलान्पन्न

चक्रगाधूपनामकम्

महादेवमुतं सर्ववेदशास्त्रविशारदम् । प्र क्षणं शंभुनामानं ज्ञानीपे त्वं न वा वद ॥ १९१ ॥

एवं महाकार्पटिकेन सर्वं गोत्रापनायादिकमादरेण ।

प्रोक्तं यथा तत्र म भूमुरोऽपि ज्ञान्वा निजं मयमथावदत्तम् ॥ १९२ ॥

भो भो कार्पटिकश्रेष्ठ किमर्थं त्वं हि पृच्छसि तद्वदस्य सविस्तारं मा शंकां कुरु चात्र हि ॥ १९३ ॥

कार्पटिक उवाच

शृणु त्रिप्र प्रवक्ष्यामि यदर्थं पृच्छयसे मया । यदाऽहं गतवान् गंगायागरं द्रष्टुमादरात् ॥ १९४ ॥  
सीताकुण्डमसीपे हि देशे कैरटनामके । दृष्टोऽहं मार्गमध्वे च पिशाचिनोऽग्ररूपिणा ॥ १९५ ॥  
मां हन्तुं निकटं प्राप्तं तं दृष्ट्वाऽहं तदा द्वितः । द्वांगामकीर्तनं दीर्घं कृतवान् भयकम्पितः ॥ १९६ ॥  
कीर्तनाद्रामचन्द्रस्य म पिशाचः पलायनम् । मनः कृत्वा दूरदेशे स्थित्वा शुभाय कीर्तनम् ॥ १९७ ॥

रास्तेमें शम्भुने एक कार्पटिकी विप्रको देखा, जो रामचन्द्र शिवक लिए गंगाजा का उत्तम जल लिये जा रहा था ॥ १८२ ॥ उस दानकर शम्भुने पूछा - हे विप्र ! इस समय तुम कहाँसे आ रहे हो और कहीं जाओगे ? ॥ १८३ ॥ उसने उत्तर दिया - हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस समय मैं प्रयागमें आ रहा हूँ और चैत्रमास करनेके लिए यत्रोत्था जा रहा हूँ ॥ १८४ ॥ अब आप अपना वृत्तान्त बतलाने शुरू करिए कि कहाँसे आये है और कहाँ जायेंगे ? ॥ १८५ ॥ ब्राह्मणका प्रश्न सुनकर शम्भुने कहा कि मैं शिवकाव्य से आता है और यत्रोत्था जा रहा हूँ ॥ १८६ ॥ हय भी चैत्रमास करना है । इस प्रकार शम्भुकी बात सुनकर ब्राह्मणने कहा कि हे द्विज ! शिवकाव्याम कोई शम्भु नामका ब्राह्मण रहता है ? ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ ब्राह्मणकी बातके उत्तरमें शम्भुने कहा कि शिवकाव्याम बहुतसे शम्भु नामक ब्राह्मण हैं ॥ १८९ ॥ आप किस शम्भुको पूछते हैं ? जिसे पूछते हो, उसका गोत्र और उपनाम बतलाइए । शम्भुका बात सुनकर उस ब्राह्मणने कहा कि बिल्हे में पूछता हूँ, वे भारद्वाज कुलमें उत्पन्न हुए हैं और चक्रगाध उनका उपनाम है । वे महादेवके पुत्र हैं । वे मन्त्रवेदों और शास्त्रोंकी जानते हैं ; उन शम्भुको आप जानते हैं या नहीं, मैं बतलाइए ॥ १९० ॥ १९१ ॥ इस तरह ब्राह्मणके मुखसे अपना गोत्र और उपनाम बारी सुनकर शम्भुने कहा - हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम शम्भुकी मर्ी पूछ रहे हो, मुझे विस्तारपूर्वक बतलाओ । इसमें किसी प्रकारका सन्देह मत करो ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ कार्पटिकने कहा - हे विप्र ! जिसलिए मैं उन्हें पूछ रहा हूँ सो बतलाना है । जब कि मैं गंगासागरका दर्शन करने गया था तो सीताकुण्डके समीप कैरट देशमें मुझे एक उग्ररूपधारी पिशाचने देख लिया ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ वह रास्तेके लिये बिल्कुल मेरे पास आ पहुँचा । मैं उसे देखकर जोर-जोरसे रामनामका कीर्तन करने और अपने कर्पिते लगा ॥ १९६ ॥ रामनामके कीर्तनसे वह भाग खड़ा हुआ और मेरे पाससे थोड़ी दूरपर रुककर कीर्तन

तस्माज्जाता पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्य शुभावहा । ब्राहि आहीति मां प्राह मया पुटः स वै पुनः ॥ १९८ ॥  
 कस्मान्पिशाचदेहं न्व जानस्तद्वद सन्धयम् । इति मे वचनं श्रुत्वा पिशाचः प्राह मां पुनः ॥ १९९ ॥  
 कार्वापूर्या द्विजधाटं दुष्टिनामा पुन स्थितः । नास्नदानं मया पूर्वं कृतं स्वल्पमपि कर्त्तव्यम् ॥ २०० ॥  
 तस्मान्पिशाचदेहं न्व प्रापं कर्पटि लोचनम् । इति तस्य वचः श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः स वै मया ॥ २०१ ॥  
 कथं पिशाचयान्याम्लुते मुक्तिश्च भविष्यति मनः पुनः स मां प्राह यदि मे वचनं श्रुतिः ॥ २०२ ॥  
 चैत्रे ददौ ममोद्देशादन्नदानं कर्त्तव्यमिति । भविष्यति ममोद्देशात्स्वल्पान्नात्र सशयः ॥ २०३ ॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः स वै मया । वर्तते क सुतस्ते हि किंतामा वद मां प्रति ॥ २०४ ॥  
 तस्मत्तेन यथा प्रोक्तं भागद्वज्जाय चिह्ननम् । तत्प्रोक्तं च मया सर्वं निकटे तव भो द्विज ॥ २०५ ॥  
 पिशाचं हि पुनश्चाहमुक्तवान् तद्वदाम्यहम् । रामेशार्थं भो पिशाच नायतं जाह्नवीजलम् ॥ २०६ ॥  
 मया काष्ठमध्ये हि यदा गच्छामि दक्षिणाम् । निर्गं कालेन कार्वा हि प्रवेश्यमि यदा तदा ॥ २०७ ॥  
 तत्र पुत्राय वृत्तं हि कथयिष्याम्यहं तव । इति मद्वचनं श्रुत्वा यन्तेन परमं गतः ॥ २०८ ॥  
 पिशाचः प्राह मां विप्र स्तुत्वा नन्वा पुनः पुनः । अवश्यमेव वक्तव्यं मे वृत्तं राम सुतव ॥ २०९ ॥  
 यथा दृष्टं त्वया पांच यथोक्तं च मया तव । अन्यत्तु कथयतां मस्मै मम पुत्राय सादरम् ॥ २१० ॥  
 मयुर्दर्शेऽन्नदानस्य मादमा भूषते दिनि । शतम्भं हि ममोद्देशेनान्नदानं सर्वो कुरु ॥ २११ ॥  
 एवमुक्त्वा स पिशाचः प्रपद्य मां चकार ह । न अपि स्मरणं कृत्वा मम पुत्राय तद् द्विज ॥ २१२ ॥  
 भविष्यति वृथा सर्वथापि नव मदासने । इति मद्वचनं श्रुत्वा सान्त्वयित्वा च तं पुनः ॥ २१३ ॥  
 निर्गतोऽस्मि सर्वो म्नातुमयोऽपरां रां दुमादरात् । कृत्वाऽप्योऽप्यपुगेमध्ये चैव स्नानं महाफलम् ॥ २१४ ॥  
 यदा गच्छामि तां कार्वां तदा तस्मै वदाम्यहम् । अतएव मया प्रहृष्टवत् शुर्द्धिजातयः ॥ २१५ ॥

सुतने लया ॥ १९३ । उस कालमेंके श्रवणमें उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण आ गया और आशंक सभ्य 'ब्राहि नाहि कहकर निकल आया । मेरा हमसे पूछा कि तुम क्या इस पिशाचकी रीतने जानते हुए हो, सो मुझे भीतर बताया । मेरी बात सुनकर पिशाचन कहा— ॥ १९८ ॥ १९९ । यदि । पिशाचको कार्वापूर्यासे द्विजनामका कालाग था । उस जन्ममें उसे वही पट्टा था अन्नदान नहीं किया था ॥ २०० ॥ इसी कारण इस पिशाचदेहको प्राप्त हुआ है । उसकी बात सुनकर मैंने कहा— जिस जगहमें, जहाँ पिशाचयन्त्रिसे मुक्त होलागे ? यह सुनकर उसने कहा कि यदि चैत्रकी अमावस्या की मेरा पुत्र मेरे लिए अन्नदान करे तो तत्क्षण में उद्धार हो जाय इसमें कोई शक्य नहीं है । ॥ २०१ ॥ २०२ । इस प्रकार उसका बात सुनकर मैंने पूछा कि तुम्हारा यह लक्ष्य कहाँ रक्ता है ऐसा हम बतायाओ ॥ २०३ । इस बाद उसने मुझे सब परिचित्य बताया दिया, जो उसने आपसे कहा है । ॥ २०४ ॥ फिर मैंने कहा— हे पिशाच ! मैं हम कालिदास गंगालाल सिन्धे रामेश्वर शिवेश्वर चरण आ रहा हूँ । जब दिनों बाद जब मैं दक्षिण दिशाको जाऊँ लौटूँ तो कार्वापुत्री अवश्य जाऊँगा । वहाँ पाँचकार तुम्हें न कटता न चरता न च भोजन न करेगा । ऐसा बात सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और मुझे बारबार प्रणाम करके उसने कहा— हे विप्र ! मेरा वृत्तान्त मेरे पुत्रसे बताया कहिएगा ॥ २०६ ॥ २०७ । आपने मने जो वचन कहा है, ज कुछ मैंने आपको बताया है और इसके अतिरिक्त जो जो उचित समझिए, वह मैंने उसे कहा है । ॥ २०८ ॥ सुनता हूँ कि स्वल्पस्वल्प अन्नदान करनेका बड़ा महाफल है । इसीलिए पुनः चैत्रमासमें । ॥ २०९ ॥ अन्नदान करी । ऐसा कहकर उसने मुझे शपथ दिलायी कि यदि आप स्थान करके मेरे सम्पर्कमें मेरे पुत्रसे नहीं कहेंगे तो है महाफल आपका साथ व्यर्थ ही आपका । इसकी बात सुनकर मैंने बारबार उसे मान्यता दी और चैत्रमास करनेके निमित्त अयोध्या चल पड़ा । महाकालिका चैत्रमासका स्नान करनेके अनन्तर जब मैं कार्वा जाऊँगा तो उसके पुत्रका पिशाचका संदेश मुझे देगा । इसीलिए मैंने आपसे सम्पर्कके विषयमें पूछाहूँ की है

शोकं गोत्रादिभिरिह वर्णते चेददस्व माम् । इति शंसुः पितुर्वृत्तं तावत् सृष्टं मज्जताम् ॥२१६॥  
आशामितश्च भिन्नेन रिपुः प्रोवाच नं पुनः । भो भोः कर्षट्किभेष्ट न मनोऽस्मि नरोऽधमः ॥२१७॥  
यस्त्वया वृष्टयते शत्रुः नोऽहं विदि न मशयः । मया पुत्रेण न कृतं स्वशितुर्मक्षिदायकम् ॥२१८॥  
जमदानादिकं कथं धिक्किभेष्टं कृया मयः । इदानीं तव वाक्येन दाक्याम्यन्न मया रितुः ॥२१९॥

एवं शम्भुः कर्षट्किभ्यो बोधयामासोऽप्यथा रम्यां दूरीं वै ददर्श ।

ते प्रणेमुन्ता दपनीषां धमिह्मन्तः शंसुश्चावदन्कर्मणं मः ॥२२०॥

शंभुश्चाव

पश्य पश्य महाभिक्षु महायोध्यायुगे शुभाय । यस्यास्मात् समयावा दृश्यते कोटिशो जनाः ॥२२१॥  
जनीधानां च निश्चायं श्रयते मैत्रशब्दवत् । नानाध्वजपताकाश्च रज्यते चेन्द्रनाभम् ॥२२२॥  
यथा वाद्यप्रतिधाय श्रूयते हि मनोहरः । अश्विदोत्राग्निधर्मैर्विख्यातं पश्य नमोऽङ्गणम् ।

कैलासगिरिमाश्रयानि पश्य योधानि कर्कश ॥२-३॥

मरप्रतोलीपगिरिमाश्रयानि कृतमेष्वलम् । उग्रहृदयार्थं विदधन्नाकशतयक्रुताम् ॥२२४॥  
अश्रलिहमहामी समुवर्णकलजोऽज्जलाम् । पश्यामासोऽप्युग्रं श्रेष्ठं मरपुत्रीरनादिनाम् ॥२२५॥  
हाटकाडाटिता रत्नसूचिनैर्था कषाटके । मृमशूर्नचिह्नैः श्रेष्ठैर्मणैर्नाभं लक्ष्यते ॥२२६॥  
दाधुवसानैर्मण्डना यथाकांचनपुञ्जनः । शृङ्खलावपुःशो लक्ष्यते पथिकान् जनान् ॥२२७॥  
अधःकुशाशो सुवना जेतुमैकामरवर्ताम् । शम्भुश्चलन्त्याजेन सन्नदंवाद्य लक्ष्यते ॥२२८॥  
पवित्रेऽभिरुन्महाक्षेत्र निवसन्ति तिर्यहिनाः । ब्रह्मेष्टद्वारमिः मरदवाग्ने कषरोऽधमः ॥२२९॥  
कुवेरस्पर्द्धया यत्र चिन्त्यन्ति वसुमन्त्रयान् । दानु मोक्त जनाः सर्वे स्वधर्मनिगताः मदा ॥२३०॥  
मेहे मेहे मदानन्द एवार्मायत्र वै पुत्रे । येषां पञ्चालयनि रम्य चरणान्वायवदिकाः ॥२३१॥

इस तरह अपने पिताजी तावत सुनकर शम्भु भक्ति से जो गया । २१९-२२५ । उसकी यह दया इसका उच्च भील और साहस्यने उसे बहुत कुछ आश्वासन दिया । होमम आनाट सम्मान बड़ा-ही कापाटकधम ! जिस शम्भुके बारेमें आप पूछ रहे हैं, वह मैं ही हूँ । मर बराबर अवम और कोई नहीं हो सकता । मुझ समान एवम अपने पिताको पुत्र के लिए कुछ भी अग्रहार नहीं किया । मेरे जन्मका विवरण है : मैं अब आपके कर्मन-नुसार इस संवसार में अवगत अग्रदान दूँगा । २२६ । २२७ ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ ऐसा कहकर शम्भु चल बहा और रम्य अवाध्या नगरका दुर्म दसकर मय पुत्र, उच्च पदिक एवं भीलने प्रणाम किया और शम्भुने कवशमें कहा - हे महार्पण ! हम अथ एतर्पणी की देवा जिसमें काम करनेके लिए करोड़ों मनुष्य आये हुए हैं ॥ २२० ॥ २२१ ॥ महान् जनसमुदायवा इति मया जनेके समाप्त सुनायी दे रही है । उद्यती हुई विविध प्रकारकी पताकायें इन्द्रवनुषके समान दृश्य गयी हैं । बाणोंकी सजावट इतनी सुनोया इती है । अग्निहोत्रके घूमस सारा बाकाशमण्डल मर गया है । हे कर्मण ! यहाँ कैलासगिरि के समान उज्ज्वल और ऊँचा अट्टनिकायें दीख रही हैं । २२२ । २२३ । २२४ । २२५ । २२६ । २२७ । २२८ । २२९ । २३० । २३१ ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ २३६ ॥ २३७ ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ २४० ॥ २४१ ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ २४४ ॥ २४५ ॥ २४६ ॥ २४७ ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ २५० ॥ २५१ ॥ २५२ ॥ २५३ ॥ २५४ ॥ २५५ ॥ २५६ ॥ २५७ ॥ २५८ ॥ २५९ ॥ २६० ॥ २६१ ॥ २६२ ॥ २६३ ॥ २६४ ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ २७० ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ २७३ ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ २७६ ॥ २७७ ॥ २७८ ॥ २७९ ॥ २८० ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ २८३ ॥ २८४ ॥ २८५ ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ २८८ ॥ २८९ ॥ २९० ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ २९३ ॥ २९४ ॥ २९५ ॥ २९६ ॥ २९७ ॥ २९८ ॥ २९९ ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥ ३०७ ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥ ३१८ ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥ ३२१ ॥ ३२२ ॥ ३२३ ॥ ३२४ ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥ ३३० ॥ ३३१ ॥ ३३२ ॥ ३३३ ॥ ३३४ ॥ ३३५ ॥ ३३६ ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥ ३४० ॥ ३४१ ॥ ३४२ ॥ ३४३ ॥ ३४४ ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥ ३४७ ॥ ३४८ ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ ३५१ ॥ ३५२ ॥ ३५३ ॥ ३५४ ॥ ३५५ ॥ ३५६ ॥ ३५७ ॥ ३५८ ॥ ३५९ ॥ ३६० ॥ ३६१ ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ ३६८ ॥ ३६९ ॥ ३७० ॥ ३७१ ॥ ३७२ ॥ ३७३ ॥ ३७४ ॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥ ३७७ ॥ ३७८ ॥ ३७९ ॥ ३८० ॥ ३८१ ॥ ३८२ ॥ ३८३ ॥ ३८४ ॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥ ३८७ ॥ ३८८ ॥ ३८९ ॥ ३९० ॥ ३९१ ॥ ३९२ ॥ ३९३ ॥ ३९४ ॥ ३९५ ॥ ३९६ ॥ ३९७ ॥ ३९८ ॥ ३९९ ॥ ४०० ॥ ४०१ ॥ ४०२ ॥ ४०३ ॥ ४०४ ॥ ४०५ ॥ ४०६ ॥ ४०७ ॥ ४०८ ॥ ४०९ ॥ ४१० ॥ ४११ ॥ ४१२ ॥ ४१३ ॥ ४१४ ॥ ४१५ ॥ ४१६ ॥ ४१७ ॥ ४१८ ॥ ४१९ ॥ ४२० ॥ ४२१ ॥ ४२२ ॥ ४२३ ॥ ४२४ ॥ ४२५ ॥ ४२६ ॥ ४२७ ॥ ४२८ ॥ ४२९ ॥ ४३० ॥ ४३१ ॥ ४३२ ॥ ४३३ ॥ ४३४ ॥ ४३५ ॥ ४३६ ॥ ४३७ ॥ ४३८ ॥ ४३९ ॥ ४४० ॥ ४४१ ॥ ४४२ ॥ ४४३ ॥ ४४४ ॥ ४४५ ॥ ४४६ ॥ ४४७ ॥ ४४८ ॥ ४४९ ॥ ४५० ॥ ४५१ ॥ ४५२ ॥ ४५३ ॥ ४५४ ॥ ४५५ ॥ ४५६ ॥ ४५७ ॥ ४५८ ॥ ४५९ ॥ ४६० ॥ ४६१ ॥ ४६२ ॥ ४६३ ॥ ४६४ ॥ ४६५ ॥ ४६६ ॥ ४६७ ॥ ४६८ ॥ ४६९ ॥ ४७० ॥ ४७१ ॥ ४७२ ॥ ४७३ ॥ ४७४ ॥ ४७५ ॥ ४७६ ॥ ४७७ ॥ ४७८ ॥ ४७९ ॥ ४८० ॥ ४८१ ॥ ४८२ ॥ ४८३ ॥ ४८४ ॥ ४८५ ॥ ४८६ ॥ ४८७ ॥ ४८८ ॥ ४८९ ॥ ४९० ॥ ४९१ ॥ ४९२ ॥ ४९३ ॥ ४९४ ॥ ४९५ ॥ ४९६ ॥ ४९७ ॥ ४९८ ॥ ४९९ ॥ ५०० ॥ ५०१ ॥ ५०२ ॥ ५०३ ॥ ५०४ ॥ ५०५ ॥ ५०६ ॥ ५०७ ॥ ५०८ ॥ ५०९ ॥ ५१० ॥ ५११ ॥ ५१२ ॥ ५१३ ॥ ५१४ ॥ ५१५ ॥ ५१६ ॥ ५१७ ॥ ५१८ ॥ ५१९ ॥ ५२० ॥ ५२१ ॥ ५२२ ॥ ५२३ ॥ ५२४ ॥ ५२५ ॥ ५२६ ॥ ५२७ ॥ ५२८ ॥ ५२९ ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥ ५३४ ॥ ५३५ ॥ ५३६ ॥ ५३७ ॥ ५३८ ॥ ५३९ ॥ ५४० ॥ ५४१ ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥ ५४४ ॥ ५४५ ॥ ५४६ ॥ ५४७ ॥ ५४८ ॥ ५४९ ॥ ५५० ॥ ५५१ ॥ ५५२ ॥ ५५३ ॥ ५५४ ॥ ५५५ ॥ ५५६ ॥ ५५७ ॥ ५५८ ॥ ५५९ ॥ ५६० ॥ ५६१ ॥ ५६२ ॥ ५६३ ॥ ५६४ ॥ ५६५ ॥ ५६६ ॥ ५६७ ॥ ५६८ ॥ ५६९ ॥ ५७० ॥ ५७१ ॥ ५७२ ॥ ५७३ ॥ ५७४ ॥ ५७५ ॥ ५७६ ॥ ५७७ ॥ ५७८ ॥ ५७९ ॥ ५८० ॥ ५८१ ॥ ५८२ ॥ ५८३ ॥ ५८४ ॥ ५८५ ॥ ५८६ ॥ ५८७ ॥ ५८८ ॥ ५८९ ॥ ५९० ॥ ५९१ ॥ ५९२ ॥ ५९३ ॥ ५९४ ॥ ५९५ ॥ ५९६ ॥ ५९७ ॥ ५९८ ॥ ५९९ ॥ ६०० ॥ ६०१ ॥ ६०२ ॥ ६०३ ॥ ६०४ ॥ ६०५ ॥ ६०६ ॥ ६०७ ॥ ६०८ ॥ ६०९ ॥ ६१० ॥ ६११ ॥ ६१२ ॥ ६१३ ॥ ६१४ ॥ ६१५ ॥ ६१६ ॥ ६१७ ॥ ६१८ ॥ ६१९ ॥ ६२० ॥ ६२१ ॥ ६२२ ॥ ६२३ ॥ ६२४ ॥ ६२५ ॥ ६२६ ॥ ६२७ ॥ ६२८ ॥ ६२९ ॥ ६३० ॥ ६३१ ॥ ६३२ ॥ ६३३ ॥ ६३४ ॥ ६३५ ॥ ६३६ ॥ ६३७ ॥ ६३८ ॥ ६३९ ॥ ६४० ॥ ६४१ ॥ ६४२ ॥ ६४३ ॥ ६४४ ॥ ६४५ ॥ ६४६ ॥ ६४७ ॥ ६४८ ॥ ६४९ ॥ ६५० ॥ ६५१ ॥ ६५२ ॥ ६५३ ॥ ६५४ ॥ ६५५ ॥ ६५६ ॥ ६५७ ॥ ६५८ ॥ ६५९ ॥ ६६० ॥ ६६१ ॥ ६६२ ॥ ६६३ ॥ ६६४ ॥ ६६५ ॥ ६६६ ॥ ६६७ ॥ ६६८ ॥ ६६९ ॥ ६७० ॥ ६७१ ॥ ६७२ ॥ ६७३ ॥ ६७४ ॥ ६७५ ॥ ६७६ ॥ ६७७ ॥ ६७८ ॥ ६७९ ॥ ६८० ॥ ६८१ ॥ ६८२ ॥ ६८३ ॥ ६८४ ॥ ६८५ ॥ ६८६ ॥ ६८७ ॥ ६८८ ॥ ६८९ ॥ ६९० ॥ ६९१ ॥ ६९२ ॥ ६९३ ॥ ६९४ ॥ ६९५ ॥ ६९६ ॥ ६९७ ॥ ६९८ ॥ ६९९ ॥ ७०० ॥ ७०१ ॥ ७०२ ॥ ७०३ ॥ ७०४ ॥ ७०५ ॥ ७०६ ॥ ७०७ ॥ ७०८ ॥ ७०९ ॥ ७१० ॥ ७११ ॥ ७१२ ॥ ७१३ ॥ ७१४ ॥ ७१५ ॥ ७१६ ॥ ७१७ ॥ ७१८ ॥ ७१९ ॥ ७२० ॥ ७२१ ॥ ७२२ ॥ ७२३ ॥ ७२४ ॥ ७२५ ॥ ७२६ ॥ ७२७ ॥ ७२८ ॥ ७२९ ॥ ७३० ॥ ७३१ ॥ ७३२ ॥ ७३३ ॥ ७३४ ॥ ७३५ ॥ ७३६ ॥ ७३७ ॥ ७३८ ॥ ७३९ ॥ ७४० ॥ ७४१ ॥ ७४२ ॥ ७४३ ॥ ७४४ ॥ ७४५ ॥ ७४६ ॥ ७४७ ॥ ७४८ ॥ ७४९ ॥ ७५० ॥ ७५१ ॥ ७५२ ॥ ७५३ ॥ ७५४ ॥ ७५५ ॥ ७५६ ॥ ७५७ ॥ ७५८ ॥ ७५९ ॥ ७६० ॥ ७६१ ॥ ७६२ ॥ ७६३ ॥ ७६४ ॥ ७६५ ॥ ७६६ ॥ ७६७ ॥ ७६८ ॥ ७६९ ॥ ७७० ॥ ७७१ ॥ ७७२ ॥ ७७३ ॥ ७७४ ॥ ७७५ ॥ ७७६ ॥ ७७७ ॥ ७७८ ॥ ७७९ ॥ ७८० ॥ ७८१ ॥ ७८२ ॥ ७८३ ॥ ७८४ ॥ ७८५ ॥ ७८६ ॥ ७८७ ॥ ७८८ ॥ ७८९ ॥ ७९० ॥ ७९१ ॥ ७९२ ॥ ७९३ ॥ ७९४ ॥ ७९५ ॥ ७९६ ॥ ७९७ ॥ ७९८ ॥ ७९९ ॥ ८०० ॥ ८०१ ॥ ८०२ ॥ ८०३ ॥ ८०४ ॥ ८०५ ॥ ८०६ ॥ ८०७ ॥ ८०८ ॥ ८०९ ॥ ८१० ॥ ८११ ॥ ८१२ ॥ ८१३ ॥ ८१४ ॥ ८१५ ॥ ८१६ ॥ ८१७ ॥ ८१८ ॥ ८१९ ॥ ८२० ॥ ८२१ ॥ ८२२ ॥ ८२३ ॥ ८२४ ॥ ८२५ ॥ ८२६ ॥ ८२७ ॥ ८२८ ॥ ८२९ ॥ ८३० ॥ ८३१ ॥ ८३२ ॥ ८३३ ॥ ८३४ ॥ ८३५ ॥ ८३६ ॥ ८३७ ॥ ८३८ ॥ ८३९ ॥ ८४० ॥ ८४१ ॥ ८४२ ॥ ८४३ ॥ ८४४ ॥ ८४५ ॥ ८४६ ॥ ८४७ ॥ ८४८ ॥ ८४९ ॥ ८५० ॥ ८५१ ॥ ८५२ ॥ ८५३ ॥ ८५४ ॥ ८५५ ॥ ८५६ ॥ ८५७ ॥ ८५८ ॥ ८५९ ॥ ८६० ॥ ८६१ ॥ ८६२ ॥ ८६३ ॥ ८६४ ॥ ८६५ ॥ ८६६ ॥ ८६७ ॥ ८६८ ॥ ८६९ ॥ ८७० ॥ ८७१ ॥ ८७२ ॥ ८७३ ॥ ८७४ ॥ ८७५ ॥ ८७६ ॥ ८७७ ॥ ८७८ ॥ ८७९ ॥ ८८० ॥ ८८१ ॥ ८८२ ॥ ८८३ ॥ ८८४ ॥ ८८५ ॥ ८८६ ॥ ८८७ ॥ ८८८ ॥ ८८९ ॥ ८९० ॥ ८९१ ॥ ८९२ ॥ ८९३ ॥ ८९४ ॥ ८९५ ॥ ८९६ ॥ ८९७ ॥ ८९८ ॥ ८९९ ॥ ९०० ॥ ९०१ ॥ ९०२ ॥ ९०३ ॥ ९०४ ॥ ९०५ ॥ ९०६ ॥ ९०७ ॥ ९०८ ॥ ९०९ ॥ ९१० ॥ ९११ ॥ ९१२ ॥ ९१३ ॥ ९१४ ॥ ९१५ ॥ ९१६ ॥ ९१७ ॥ ९१८ ॥ ९१९ ॥ ९२० ॥ ९२१ ॥ ९२२ ॥ ९२३ ॥ ९२४ ॥ ९२५ ॥ ९२६ ॥ ९२७ ॥ ९२८ ॥ ९२९ ॥ ९३० ॥ ९३१ ॥ ९३२ ॥ ९३३ ॥ ९३४ ॥ ९३५ ॥ ९३६ ॥ ९३७ ॥ ९३८ ॥ ९३९ ॥ ९४० ॥ ९४१ ॥ ९४२ ॥ ९४३ ॥ ९४४ ॥ ९४५ ॥ ९४६ ॥ ९४७ ॥ ९४८ ॥ ९४९ ॥ ९५० ॥ ९५१ ॥ ९५२ ॥ ९५३ ॥ ९५४ ॥ ९५५ ॥ ९५६ ॥ ९५७ ॥ ९५८ ॥ ९५९ ॥ ९६० ॥ ९६१ ॥ ९६२ ॥ ९६३ ॥ ९६४ ॥ ९६५ ॥ ९६६ ॥ ९६७ ॥ ९६८ ॥ ९६९ ॥ ९७० ॥ ९७१ ॥ ९७२ ॥ ९७३ ॥ ९७४ ॥ ९७५ ॥ ९७६ ॥ ९७७ ॥ ९७८ ॥ ९७९ ॥ ९८० ॥ ९८१ ॥ ९८२ ॥ ९८३ ॥ ९८४ ॥ ९८५ ॥ ९८६ ॥ ९८७ ॥ ९८८ ॥ ९८९ ॥ ९९० ॥ ९९१ ॥ ९९२ ॥ ९९३ ॥ ९९४ ॥ ९९५ ॥ ९९६ ॥ ९९७ ॥ ९९८ ॥ ९९९ ॥ १००० ॥

ते द्विजाः कस्य नो वद्या अयोध्यानगरीम्विताः । औदार्ये कल्पतरुो गांभीर्ये मागग इव ॥२३२॥  
 क्षमया क्षमया तुल्या जगमा निगमा इव । दैन्यप्रादमदाम्भाधियापामस्यमहर्षयः ॥२३३॥  
 निवसन्ति द्विजा यत्र वद्याः सर्वमहीभुजाम् । चतुर्वर्गफलैः पेत चतुराश्रममुज्ज्वलम् ॥२३४॥  
 चातुर्वर्ण्यमिदं वास्ते चतुराश्रममागमम् । कुमिकाटपतङ्गानां विना ज्ञानममाभिभिः ॥२३५॥  
 अत्र निर्वाणपदवी सुलभाश्रित वनेचर । एतःपानघटान् भोक्तु तरंगानंकुशानिव ॥२३६॥  
 विभक्तिं सरयुतोषं निःश्रेणिमोगमोक्षयोः । पश्य स्फाटिकमोषाननिविष्टमुनिनस्तुताम् ॥२३७॥  
 सरयूनदीमुत्तरीयां कृतामिव पुण्ड्रिका । इन्द्रनीलमहातुंगप्रनोलीचरुदर्शनः ॥२३८॥  
 रामचन्द्रस्य दिव्योऽयं प्रामादस्तुङ्गनागणः । प्रनोली यस्य घटिना काश्मीररूपलैरलम् ॥२३९॥  
 सीतापाश्व महानेव प्रामादो रत्नतोयणः । नानागन्धैर्मण्डितश्च हेममन्भविराजिनः ॥२४०॥  
 स्फाटिकैरुपलैश्चित्रः मयूरीशमंथिनः । रामतोर्ध्वमपीपेऽयं मीनशामस्य वै पर ॥२४१॥  
 प्रामादो विमनो माति तप्तकाचजनिर्मितः । पताकाभिर्निचित्रामिः कलशैः सुविराजितः ॥२४२॥

उत्पन्नजावनदरत्नकुम्भः

प्रवालवैद्यैर्निबद्धभूमिः ।

हेमप्रनोलीरचिनः स एव प्रामादवर्षोऽस्ति हि लक्ष्मणस्य ॥२४३॥

चातुर्यं यत्र विश्रान्त मञ्जरीं विश्वकर्मणः । मोक्षमस्तरोजः प्रामादो हेमतोयणः ॥२४४॥  
 तथा त्रैदीप्यमानोऽयं रत्नभित्तिनिर्मितः । प्रामादो दृश्यते रम्यः शत्रुघ्नस्य शुभाग्रहः ॥२४५॥  
 स्फाटिकैर्मितिभिश्चित्रः प्रोच्चः कनकरेखितः । प्रामादो वायुपुत्रस्य दृश्यतेऽयं महोज्ज्वलः ॥२४६॥

य एव मुक्ताफलजालशोभी सुर्यनाकः खगराजकेतुः ।

कुशस्य रम्यस्त्वयमात्रिरास्ते प्रामादकुम्भं क्रिमु बालमूर्धः ॥२४७॥

सदा आनन्द छाया रहता है । जहाँक निवासो ब्राह्मणोंके पैर छुन्नादि देवता भी घोषा करते हैं, तब व  
 भय किसके वन्दनीय न होंगे । यहाँक निय उत्तरनाम कलशकुम्भ, गन्धोयनाम समुद्र, अमाम पृथ्वी, जग-  
 मोमे मद तथा द रिद्धधरणी बहुत न समुद्रक शाश्वतम अवस्थके सदृश हैं । तलारके सब रात इनको मस्तक  
 मुकाकर प्रणाम करता है । इनको घर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो पदार्थोंमें स किसीकी भी कमी नहीं  
 रहती । ये आनन्दके साथ ज्ञानार्थ, मोक्षार्थ, कामप्रम्य एवं सन्ध्याम, इन चारो आश्रमोंका उपयोग करने हैं  
 ॥ २३१-२३४ ॥ महापार चारों वेदोंके अनुसार चार वर्गके लोग निवास करते हैं । हे वनचर यहाँ ज्ञान और  
 समाधिके बिना ही काट-पतङ्ग आदिकाक लिए भी मृत्क नृत्त्य है । यहाँ पापसुखी घड़ोंका जल पानिके  
 लिए योग और मोक्षकी निसेनी बनकर सरयुका जल मभिन्न हो रहा है । देखो न स्फटिक मणिकी बनी  
 सोविशेषर मुनिगण बैठे हुए स्तुति कर रहे हैं । अयोध्याका उत्तर दिशासे इन्द्रनीलमणिसे बने मार्गके समान  
 सुन्दर सरयू नदी बह रहा है ॥ २३५-२३८ ॥ यह रामचन्द्रका दिव्य और ऊँचा प्रासाद है, जिसमें ऊँच  
 बगुने बने हुए हैं । इसके आस-पासके मार्ग कर्मयोगके फलयोग बने हैं ॥ २३९ ॥ इस ओर सीताका महाप्रजन  
 दिखाई पड़ता है । जिसमें रत्नके तोरण और सुवर्णके स्तम्भ लगे हुए हैं ॥ २४० ॥ जहाँतहाँ स्फटिक मणिक  
 पत्थर लगे हैं, जिससे यह चित्रविचित्र मानुष पर रहा है । रामलावक पास ही सीता-रामका एक दूसरा  
 भवन सुवर्णसे बना है । उसमें भी विचित्र प्रकारको पताकाए लगी हैं और सुन्दर कलश सुशोभित हो रहे हैं  
 ॥ २४१ ॥ २४२ ॥ जिसमें उपारे सुवर्ण तथा रत्नके कलश हैं सुन्दर प्रवाल और वैदूर्यमणिकी दीवारें बना  
 हैं । इसको भी आस पास सुवर्णके मार्ग बने हैं । यह भालक्ष्मणजोंका भवन है ॥ २४३ ॥ यह सामनेका भवन  
 जिसके बनानेमें विष्णुकुमारकी सारी चातुरी समाप्त हो चुकी है, श्रीमरुतजोंका भवन है । इसमें भी सुवर्ण  
 तोरण लगे हुए हैं ॥ २४४ ॥ रत्नोंसे बनी दीवारवाला यह रम्य प्रासाद शत्रुघ्नजोंका है ॥ २४५ ॥ वासिष्ठा  
 ऊँचा और स्फटिक मणिसे बनी दीवारका यह सुवर्णमय प्रासाद वायुपुत्र अर्जुनमानुजीका है ॥ २४६ ॥

प्रामादोऽयं लवस्यात्र बहुगन्धविराजितः । यत्र चित्राण्यनेकानि मोहयन्ति मृगोद्भासम् ॥ २४८ ॥

चक्षुषि जातरागाणि योगिनामपि मानसम् । विन्द्यस्नग्न्निविन्धासः शानकुंभश्रुवो षडिः ॥ २४९ ॥

रेवशतीव सत्तन रन्ममानुपहाप्रभाम् । रन्मप्रासादसंगुक्तमगोप्यां पश्य सुप्रभाम् ॥ २५० ॥

यद्गणं क्षालयतो नदीपं स्पर्शजैर्लः सोऽयमनर्प्यगन्तः ।

अभ्रकपटैर्ममयैः स्वकृते वरगजितोऽयं सलु चित्रकैर्लोः । २५१ ॥

दिव्यप्रवालपरिदेहे कपाटे यत्र चञ्चले । प्रामादोऽयमगदस्पृह रुक्मभिन्निरिनिमित्तः ॥ २५२ ॥

गरुडोद्गमपटितप्रतोलीपरिशोभितः । प्रामादः पुष्करम्यायं नयनानन्दतो नृणाम् ॥ २५३ ॥

विशुद्धजायुनददिव्यभूमिर्लसन्पातकश्चिदशामिवयः ।

प्रामाद एषः परमो मनोज्ञस्तमस्य वीरस्य महान् दिभानि ॥ २५४ ॥

यस्याधिभूमिं नवगन्धमिहाम्बुभिः पश्ये विजिनामयोऽपि ।

लोकश्चतुर्थो न हि दृश्यतेऽनः पदं पश्यत्यस्य किमाविराम्ने ॥ २५५ ॥

अधोवमलकगिणां घटा दागयितुं किमु । उद्गमचग्नो यत्र रन्ममिहो विराजते । २५६ ॥

सोऽयं हेमभित्तिमयः प्रामादः प्रान्तनः शुभः । सुवाहो पश्य मे प्रिहृगन्ममानुविर्गाजितः । २५७ ॥

स्नग्न्मगलस्फटिकर्णालकाश्च निर्मितः । प्रामादोऽयं वृक्षकैर्लोर्महान् दोषिवरः शुभः । २५८ ॥

कल्लाररुन्धलः क्षौणैरगविन्दैः सनन्तैः । विराजितं पापहरं गमनीयं प्रवृत्तते ॥ २५९ ॥

इदन्धलं रविदलेनिवृद्धा यस्या भूमयः । हार्ति गोष्ममनसं निषण्णमोक्षोन्मूर्तः । २६० ॥

अमन्दकुरुविदानीं विन्यामैर्यत्र चक्षुषिभिः । मयन्ति शुकचेनापि मृदुदाडिमयकया । २६१ ॥

एवं पश्य सुभां रम्यां पलाकाभिविगजिताम् । मिश्रपोष्यां मुक्तिपुर्णं द्वितीयममरावतीम् ॥ २६२ ॥

जिसमें म तिथीकी सालरानी है, सुदर्शन चक्र एवं गरुडके चित्रमें चित्रित पलाकायें बहुत रहीं हैं, बाग्यसूयकी तरह सुन्दर यह भवन नृणका है ॥ २४८ ॥ बहुतरे रत्नसे विराजित यह लवका दिव्य भवन है, जिसमें बने हुए विष स्थियोंका मन मोह लेते हैं ॥ २४९ ॥ जहां कि शक्तिगोपी का आग पहुंचकर रागमयी बन जाती है, जिस नगरीको भवनोंमें विविध प्रकारके रत्नोंकी पञ्चाकारी की हुई है, जिसकी बाहरकी भूमि सुवर्णमयी है, जिसकी बटारियां मृदुलकटको तरह दशांशमान हो रही हैं, उस अमरपादरीको देखो । जिसके प्राणणको मोहा हुई यह सगु नदी बराबरमान है । भाकणकी पूनमान बरदान पान शीत कलशोंसे सुशोभित यह पुरी साक्षात् विषकेतु गन्धर्वकी पुरीके समान सुन्दर देख रही है ॥ २४९-२५१ ॥ दिव्य प्रवाल मणिसे बने हुए कपाट जिसमें लगे हैं और सुवर्णकी दावारें बनी हैं यह आनन्दका भवन है । गरुडमणिकी जिहसे प्रतोलियां बनी हैं, नयनोंका मानन्द दनवाला यह भवन लुकरका है । जिसका कण विशुद्ध सुवर्णकी बनी है और सुन्दर पलाकायें जिसमें फहरी रहीं हैं, यह परम मनोज्ञ प्रामाद की रचना है ॥ २५२-२५४ ॥ इधर दलो, नवरत्नमय सिंह विद्यमान है । इस नवरत्नमय मणिकी बड़ी महिमा है । रुक्म प्रभावम कामन भगवान्ने तीन वेगसे तीनों लोकोंको मान लिया था । चौथा कई लोक हो नहीं बना था, जिसे नापते ॥ २५५ ॥ जिसके घरमें ऊपरकी वेर उड़ ये नवरत्नका सिंह विराजमान हो तो अध ( ५५ ) स्त्री सतवाल हाथियोंका उसे कुछ भी भय नहीं रह जाता ॥ २५६ ॥ हेमभित्तिमय रत्नक जिसरत्न विराजित यह प्रामाद सुवर्णका है ॥ २५७ ॥ रत्न प्रवाल, स्फटिक और नील काष्ठीयोंसे निर्मित यह प्रामाद पुष्करका है ॥ २५८ ॥ कल्लार उरग, कोण, अरविन्द तथा शतपत्रसे विराजित समस्त पापीको हरनेवाला यह गमनीय दिव्यकापी पद रखा है ॥ २५९ ॥ जिसकी भूमि चन्द्रकान्त मणिसे बनी है । अमर्य दपकन हुए ऊँड़ जलका बूँदाके गिरनस शीघ्र-मृत्युका सन्ताप दूर हो जाता है । दयकले हुए कुरुविन्द मणिके लगे रहनेसे वहाँ गुप्तोंको मृग और अनारके फलका भय ही जाता है ॥ २६० ॥ २६१ ॥ इस प्रकारकी सुन्दर, रम्य और पलाकाओंसे विराजित दूसरी



यत्र कार्त्तिकम्बरघटाः प्रदीप्तीकृतसि स्थिताः । रामं द्रष्टुमनन्तान्न शक्ताः सूर्या इवानधुः ॥२६३॥

नर्मिह उवाच

एवमुक्त्वा कर्कशेन पन्था कार्पटिकेन च । सहितश्च तदा शंभुम्भी पूर्णं संविवेश सः ॥२६४॥

शमर्त्तायै नमो गन्वा कृत्वा क्षौमादिकं विधिम् उपोष्य दिनमेकं हि शीर्षश्चाह चकार सः ॥२६५॥

अमात्रास्यां शुभां चैत्रे प्राप्तां ज्ञान्वा द्विजोत्तमः । मुक्यर्थं स्वपितृश्रुते अन्नदानं यथाविधि ॥२६६॥

तत्त्वैत्रमासे रजनीश्रमक्षये दत्तं पितृर्षष्टुभदे मनोहरम् ।

विशेषेण चासं पथिकस्य वाक्पत्रस्याम्मान्पिशाचः सुरमश्च निस्थितः ॥२६७॥

अयोध्यायां ततः शङ्खः कृत्वा चैत्रेऽवमगहनम् । उद्यापनविधिं चापि यथोक्तं च चकार सः ॥२६८॥

कर्कशोऽपि मधो स्नान्वा मुक्त्वा पापीयभूधरम् । अयोध्यानगरीमध्ये साधुशृङ्गावमचिचरम् ॥२६९॥

श्रीरामचिन्तनं कुर्वन्निनायायुष्यमक्षयम् । ततः प्रायः हरेर्लोकयोध्यामरणेन सः ॥२७०॥

शंभुश्चापि मधो स्नानं कृत्वा कांचीपुरीं पुनः । गतुं प्रतस्थे श्रीराम तवाऽयोध्यां पुनः पुनः ॥२७१॥

भार्यया सहितः शंभुस्तेन कार्पटिकेन च । ययौ पूर्वजं मर्गजं यत्र तौ करिकाहर्ता ॥२७२॥

स्यादितौ शपथः कृत्वा अनेस्तत्र मत्सगमन् । दत्त्वा दिनद्वयं पुण्यमुभाभ्यां मधुमासजम् ॥२७३॥

दत्त्वा स्वीयांजलीं तोयं सयोर्मुक्तं चकार सः । ततस्तौ करिमिहो च दिव्यमान्यं मुलेपितौ ॥२७४॥

दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोकं गतावभौ । ततोऽग्रे द्विजवर्गः सः ययौ मार्गेण भार्यया ॥२७५॥

स यत्र राक्षसः पूर्वं स्थापितः शपथक्षणे । तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं मार्गं प्राह द्विजोत्तमः ॥२७६॥

अपि काश्याह्वये रम्भे मृगु मे वचनं शुभम् । या त्वया शीतला गौरी स्नाता वै सरयून्तले ॥२७७॥

तस्यैकदिवसस्याद्य देहि पुण्यं शुभाग्रहम् । राक्षसाय हि मद्वाक्याद्गृहीतं जलमत्रलो ॥२७८॥

अध्यायतीतुरांक सुमान ददीप्यमान इस अयोध्यापुरीका दखो ॥ २६२ ॥ जहाँ कि प्रहलीक मस्तकपर विराजमान सुवर्णक भवन ऐस दीप्त रहे हैं, जैसे अमल सूर्य एक साथ रामचन्द्रजीका दर्शन करने आ गये हों ॥ २६३ ॥ नर्मिहने कहा—इस तरह कहकर अपनी पत्नी, कार्पटिक तथा कर्कशके साथ-साथ शम्भु अयोध्या पुरीमें प्रविष्ट हुआ । २६४ ॥ पहले रामजीपर पहुँचकर उसने शीर खादि कराया और एक दिनका उपवास करके तपश्चाह किया ॥ २६५ ॥ अब चैत्रकृष्ण अमावास्या तिथि आधी ला उसने अपने पिताकी मुक्तिके लिए विधिवत् अन्नदान किया ॥ २६६ ॥ तब चत्रमासमें अमावास्या का शम्भुने कार्पटिकके कथनानुसार जो अन्नदान किया, उसके पुण्यम तन्नाम उसका पिता पिशाचयोनिसे मुक्त होकर स्वर्गको चला गया ॥ २६७ ॥ तदनन्तर शम्भुन अयोध्यामें चैत्रस्नान और शास्त्राक्त विधिसे उसका उद्यापन किया । कर्कश भी चैत्रस्नान करके सब पपासे मुक्त हो गया और साधुवृत्तिसे उसने अयोध्यामें ही बहुत दिन बिताये ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ अन्तमें रामका स्मरण करने-करने उसने शरीर त्याग दिया । अयोध्यामें मरनेसे उसे विष्णुलोककी प्राप्ति हुई ॥ २७० ॥ शम्भुने भी स्नान करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीकी बारम्बार प्रणाम करके काशीपुरीकी जानकी देवारी की ॥ २७१ ॥ अपनी स्त्री और उस कार्पटिकको साथ लेकर शम्भु उसी मार्गसे छोड़कर उधर चला, उहाँ कि अयोध्या आने समय सिंह और हाथीको छोड़ दिया था । २७२ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने शुभम अन्न दिया और चैत्रस्नानके पुण्यसे दो दिनका पुण्य देकर उन दोनोंकी उस योनिसे मुक्ति कर दी । इसके अनन्तर वे दोनों हाथी और सिंह दिव्यमान्यसे अलंकृत हो और दिव्य विमानपर आरोह होकर विष्णुलोकको चले गये । इसके बाद शम्भु अपनी स्त्रीके साथ आगे चला ॥ २७३-२७५ ॥ बात जात गइ उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ कि जते समय शपथ करके उस राक्षसकी बानसे छोड़ दिया था । वहाँ राक्षसकी सामने देखकर शम्भुन अपनी स्त्रीसे कहा—हे काशिके ! जो तुमने वीरतन्त्र मोहका कृत किया है । हाथमें जल लेकर उसके एक दिनका पुण्य इस राक्षसको दे दो ॥ २७६-२७८ ॥

इति संश्रुयः श्रुत्वा पद्मनेत्रा कृशोदरी । काशीनाम्नी द्वित्रयनी ददौ पुण्यं निज तदा ॥२७९॥  
 ततः स राक्षसभेष्टस्त्यक्त्वा देहं मलीमपम् । दिव्यं विमानमारुह्य गन्धा भार्यायुत द्विजम् ॥२८०॥  
 दिव्यमारवापरध्वो हरिलोकं जगाम सः । प्रहृष्टापि प्रियायुक्तो मधुमान निवर्णयन् ॥२८१॥  
 कयो कांक्षीपुर्तो भेषा जनान् वृत्तं निवेदयन् । भो पिशाचा यथा वृष्टं भवद्विषं कथानकम् ॥२८२॥  
 तत्सर्वं च मयाऽऽख्यातं राक्षसोद्धारणादिकम् ।

श्रीरामराज उवाच

इत्युक्त्वा नृदगिर्विप्रो दृष्टीन्वा स्वाजलौ जलम् ॥२८३॥

रदौ दिनद्वयस्यास्य पुण्यं चैत्रकृतं निजम् । ततः शोभाय भार्या तु रम्ये चन्द्रमये मिये ॥२८४॥  
 वा स्वया श्रीरत्नागौरी स्नाता श्रीशङ्करे चरे । तीर्थे तस्य दिनैकस्य देहि पुण्यं शुभानने ॥२८५॥  
 पिशाचिन्यै समुद्रतुं मा विचारोऽस्तु वे इदि । इति मर्त्यवचः श्रुत्वा रम्या पद्मवतीवना ॥२८६॥  
 कृशोदरीनाम्नी मम माता ददौ पुण्यं निज तदा । ततः पिशाचास्ते सर्वे मुक्ताः शीघ्रं शुभारहाः ॥२८७॥  
 निजरूपाणि वै प्रापुः प्रणेमुर्नृदगिं जवान् । गन्वा स्तुत्वा पुनरन्वा नृमिह त प्रियायुतम् ॥२८८॥  
 आपृच्छन् जग्मिरे सर्वं रसगुणैरभयं प्रति । शुद्ध्यापि सुतां स्वीयां तां दत्तावतिद्विपिता ॥२८९॥  
 तपोर्ज्वेष्टाय शिष्याय कनिष्ठयावतां सुताम् । श्रीशोदरसमुत्पत्तां ददाम्यतिमां वराम् ॥२९०॥  
 ततस्तौ सखियौ त्रिमौ जग्मतुर्भौ नृद निवर्ता । स्वस्वपितृश्चाश्रमं हि तथास्तां चितरावपि ॥२९१॥  
 दृष्ट्वा पुत्रौ समापावौ सखियां तेषमायतु । नृदनिश्च प्रियायुक्तोऽङ्गत्रयं प्रति समावपी ॥२९२॥  
 चैत्रस्नानेन तन्पुत्रौ रामदामाभिषेकवदम् । जानन्वतस्तौ देहान्ते जग्मतुर्वेत्तव पदम् ॥२९३॥  
 एवं शिष्यं मधुस्नानमहिषा चद्रमिनेरै । देवैः सिद्धेश्वरगधर्वैः सदाऽनुमन्त्रिताऽस्तं हि ॥२९४॥  
 तस्मान्मपावतस्य हि स्नातृर्धर्मं मानवोत्तमैः । रामतीर्थं च सर्वत्र रामचन्द्रं प्रपूजयेत् ॥२९५॥

इतः प्रत्येक संश्रुती मात्रा पुनःकर उस राजा नाम्नी द्वित्रयनाय कपना पुण्य उसका दे दिया ॥ २७९ ॥ इसके प्रभावसे उस राजासने अपने वह अवम देह त्याग दे और दिव्य विमानपर चढ़कर साहस्य तथा साहस्य-पत्नीको प्रणाम करता हुआ दिव्ययुक्तको चला गया । शम्भु भा चैत्रमासक माहात्म्यका वर्णन करता हुआ काकापुत्रोका बल बढ़ा । हे पिशाचवर्ग ! आप लोगों ज. कथा पूछा, तो राजासांक उद्धारस सम्बन्ध रखनेवाले सब बात कह मुताबी । रामदामन कहा-नासा कहकर लोमहृन् अजनाय जल लिये और अपने चैत्रस्नानके पुण्यमस दो दिनका पुण्य उस दे दिया । फिर अपना स्वास कहा कि तुमने चरम जो शास्त्रा गौरिका स्नात किया है । उसमें एक दिनका पुण्य इस पिशाचिनीका दे दो ॥ २८०-२८१ ॥ इससे इसका उद्धार हो जायगा । इसपर कुछ विचार मत करो । इस प्रकार स्वार्थको मात्रा पुनःकर उस कमलनयनाने अपना पुण्य दे दिया । तब श्रीम ही ने सब पिशाचमोक्षिते मुक्त होकर ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ अपने-अपने रूपको ग्रहण हो गये । इसके अनन्तर उन्होंने नृसिंहको प्रणाम किया, शरम्भार उनका स्तुति की और उनसे पृथक्कर अपने गुरुके आश्रमको चल गये । गुरुन भी अतिमय इष्टित हाकर अपना कन्या उन्हें दे दी । उनमेंसे ज्येष्ठ आताको ज्येष्ठ कन्या तथा करिष्ठको एक दूसरी सखी कन्या समर्पित की ॥ २८८-२९० ॥ इसके अनन्तर वे दोनों अपना-अपनी स्त्रीको साथ लेकर पिताके आश्रमपर गये ॥ २९१ ॥ उनके माता-पिता भी स्वके साथ आने सेटको आने देखकर प्रसन्न हुए । नृसिंह भी अपनी भार्याके साथ अजक मगरको चल गये ॥ २९२ ॥ चैत्रस्नानके पुण्यसे उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रामदास है और वह मेहू । कुछ दिनों बाद मेरे माता-पिताका देहात हो गया और वे विष्णुलोकको प्राप्त हुए ॥२९३॥ हे शिष्य ! इस प्रकार चैत्रस्नानकी महिमाका कितने ही अनुष्ण, रेवता, सिद्ध तथा पञ्चवीन अनुष्ण किया है ॥ २९४ ॥ इस कारण कन्ये अनुष्णको चाहिए कि चैत्रमासमें अवश्य

एवं त्वया यथा पूर्णं तथा सर्वं निवेदितम् । मया काऽन्या स्पृहा तस्मिन् श्रोतुं न दद वचस्यहम् ॥ २९ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनाहरकांडे  
चैत्रम्नानमाहात्म्ये एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

## द्वादशः सर्गः

( श्रीरामचन्द्र द्वारा अर्जुनभावका प्रदर्शने )

विष्णुदास उवाच

गुरोऽन्वक्षामचन्द्रस्य चरित्रं वद मां प्रति । मृण्यतो मे मुद्गनास्ति तृप्तिः श्रोतुं स्पृष्टवते ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ट त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । एकदा हयमारुहो पुत्रवभुवलेः सह ॥ २ ॥  
वनं ययौ विहारार्थं रामचन्द्रो मुदान्वितः । तत्र दृष्ट्वा मृगं श्रेष्ठं तं हन्तुं स्पृहयन् नन्दनः ॥ ३ ॥  
बाणमारुह्य तत्पृष्ठे ययौ वेगेन सादरम् । वनादूर्नातरं रामा मृगस्य च पदानुगः ॥ ४ ॥  
एकाकी हयमारुहो विदेय गहनं वनम् । पश्चाद्दुर्गस्थिताः सर्वे लक्ष्मणाद्या बलैः सह ॥ ५ ॥  
रामोऽपि निजबाणेन मृगं हन्य चनेऽचरत् । निर्जलेऽतिवृषाक्रान्तः क्षुधाव्याप्तीऽप्यभून्मदा ॥ ६ ॥  
ततो रामो वृक्षनले क्षणं तस्थौ भ्रमान्वितः । तावत् क्षणं काचिद् दृष्ट्वा गमं मुदान्विता ॥ ७ ॥  
रूपं ज्ञात्वा राजचिह्नं प्रणम्य पुनःस्थिता । तां दृष्ट्वा राघवोऽप्याह वाक्यं श्रवणे मे शृणु ॥ ८ ॥

लक्ष्मणाद्याः स्थिता दूरं क्षुत्तृड्भ्यां पाण्डितोऽस्म्यहम् ।

किंचिदन्नं कुरुष्वन्न येन मेऽद्य सुखं भवेत् ॥ ९ ॥

तदामवचनं श्रुत्वा श्रवणी वाक्यमब्रवीत् । इतोऽविदुरे आरामं दुर्गाम्नि सरसस्तटे ॥ १० ॥

शौमवारेऽद्य नार्थश्च बहवोऽत्र समागताः । तत्र त्वं च मया राम यदि यास्यसि साप्रतम् ॥ ११ ॥

स्नान करके रामतीर्थोंमें जाकर रामचन्द्रजीका पूजन करने ॥ २९८ ॥ तुमने जो पूजा, मैंने अब कुछ कह सुनाया । अब क्या सुननेका इच्छा है, तो कहो । मैं सुनाऊँ । २९९ । इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतजपाण्ड्यकृत ज्योत्स्ना भगवद्गीतासहित मनाहरकांड एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरो ! अब रामचन्द्रजीका माई और चरित्र सुनाइए । क्योंकि रामचरित्र सुनते-सुनते मुझ तृप्ति नहीं होती । जिसना ही सुनता है, सुननेका इच्छा बढ़ता जाती है । १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत ही अच्छी बात कहा है, अब सावधान मनसे मेरी बात सुनो । एक बार जोड़बंद सवार होकर रामचन्द्रजी अपने भाइयों, पुत्रों तथा सनासे साथ मृगयाविहार करनेके लिए वनमें गये । वहाँ एक अच्छा-सा मृग बैसा और उसे पारनेके लिए नुपपर बाण चलाकर उसके पीछे-पीछे दौड़ चले । जाते जाते वे गहन वनमें पहुँच गये । फिर भी राम एक वनसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे वनमें मृगके पंछे पाछे दौड़ते चले जा रहे थे । लक्ष्मण भाई साथी सेनाक साथ-साथ बहुत पाछे छूट गये— २-५ ॥ अन्तर्ग बली बुर जाकर रामने उस मृगको मारा । वह स्थान निर्जल था और उन्हें सुख-व्यास जोराँसे लगी थी ॥ ६ ॥ वहाँ ही वे एक वृक्षके नीचे बैठ गये । उसी समय किसी शबराने रामको देखा और उनको बंश-भूषादि पहचान लिया कि वे कोई राजा हैं । वह रामके पास जा तथा प्रणाम करके सामने बैठ गयी । उसे घेसकर रामने कहा—हे शबरी ! तू मेरी बात सुन ॥ ७ ॥ ८ ॥ मेरे लक्ष्मण आदि साथी पाछे छूट गये हैं । मैं भूख-व्याससे बहुत दुखी हूँ । तू कोई ऐसा उपाय कर कि जिससे मेरा दुःख दूर हो जाय ॥ ९ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर शबरीने कहा—हे राम ! वहाँसे बाँझो दूरपर ताशानके

उदि तत्र विचित्रान्नेस्तुष्टिं प्रपूजयितुं श्रुत्वा । ततस्तत्र वचनं धृत्वा श्रवणे प्राह शिवः ॥११॥  
 महामन्त्रेण सिद्धामि प्रतीक्षार्थं कुक्ष्यं च लक्ष्म्य लक्ष्मणादीनां सैन्यस्य वनवासिनि ॥१२॥  
 गच्छ त्वदेव तां दुर्गां श्रीं कृतं निवेदय । तद्वाच्यं च न भुञ्ज्यात् तन्मन्त्रेण च श्रान्तिना ॥१३॥  
 श्रोतवा श्रवणी प्राह भुञ्ज्यात् वचनं मम गमां गभीरपत्राञ्चो मूर्ध्नि कर्तुमागतः ॥१४॥  
 अविदूरे पृथग्गणे सुधाकांतः स्थितोऽस्ति हि । तैसां प्रपूजनाऽप्यथ सुखार्थं श्रान्तनः ॥१५॥  
 पुष्पांकु कथितं पुष्पं तस्य गच्छाम्यहं पुनः । श्रवणोऽप्यहं भुञ्ज्यात् तां ताम्यः मन्त्रमाश्रिताः ॥१६॥  
 अभिनय निर्मलांशुः करीं तां सुदुर्गुः । परस्परं तदा द्रौच्यं वापेः शत्रो मृदा ॥१७॥  
 धन्योऽयं दिव्योऽस्माकं यास्मिन् राघवदत्तनम् । सर्वेऽस्मिन् वरान्नेत्रं तोरयायो रघुनमम् ॥१८॥  
 आदौ दुर्गां पूजयित्वा नैवेद्यं तं निवेद्य च । ततः समर्थं कृत्वा य मोक्षाय च यः ततः ॥१९॥  
 इति मन्त्रेण तां ताम् कृत्वा लक्ष्म्यादिनाः । पञ्चकौशेयवामिन्यो वरदाया मृगलोचनाः ॥२०॥  
 वप्रसन्नप्रवैश्यानां सुतायां यापि वेगता । नैवेद्यतर्पणां दुर्गां ययुर्गुणैः स्तवनाः ॥२१॥  
 एतस्मिन्नतरे देवी स्वालयस्य समन्तः । कपाटानि दृष्ट्वा तृणामामाद्रीन्द्रजा ॥२२॥  
 ततस्तां द्वारमावाप्य द्वारं बद्धं निर्गच्छ च । वप्रमुः सर्वद्वाराणि न मार्गं लेभिरे स्त्रियः ॥२३॥  
 तदा प्रवर्तमानाः सर्वा द्वारदेशे स्थिताः जगम् । तत्र देवालयाच्छब्दो निर्गतः शुभ्रः श्रियः ॥२४॥  
 महामेश्वर मीनाऽस्मिन् गतः मालाभदेवः । ये भिन्ने धान्येन्यत्र मां मीनां गधर इव ॥२५॥  
 ते कोटिकल्पवर्धनं पश्यन्ते गेहेषु हि । जतो मूय हि सो तार्यो मन्त्रार्थं च जगत्प्रभु ॥२६॥  
 दोषघ्नं वरान्नेत्रं तच्छेषेण त्वहं ततः । तुष्टा ममामि दृष्ट्वा च धुधितं तं रघुनमम् ॥२७॥  
 इति तार्यो वचः भुञ्ज्यात् देव्याभ्यां विष्णुपान्त्रिणाः । दृष्ट्वा दुर्गां जगामिन्यः श्रवणी वरदानुगाः ॥२८॥

द्विजारे एक दुर्गा मन्दिर है ॥ १० ॥ आज मन्त्रालयार है । इसलिए वहाँ बहुत-सा शिवसे भावो होगी । यदि मेरे साथ वही चलें तो आपका माना प्रकारके विचित्र वस्त्र खानका भिन्न । जिससे आप शिवधर्ममें तुल्य हो जायेंगे । गवरीको सलह मुनकर रामने उत्तर दिया कि मैं यहाँ कुछ आदि की प्रतीक्षा करता हूँ वरुण हैं । हे वनवासिनि । तू ही जाकर उन शिवशक्ति मेरा हाल सुना दे । रामके आज्ञानुसार शिवसे तुल्य चल पड़ी ॥ ११-१४ ॥ उसने कई पट्टकर उन शिवशक्ति का कमलके समान नवीनसे जगत्तु रामका बड़ा बिकार चलन आये था । वे पास ही पटक न च भुजगामे बैठे हैं । उनसे आज लोगोको यह सदेश सुनानेके लिये भुज भेजा है । १५ ॥ १६ ॥ अब आराम जा कुछ कर, वह आकर मैं रामकाजीको सुना दूँ । गवरीको बात सुनी तो विष्णु भगवसे उन्होंने लवका कायवाद दिया और कहा— ॥ १७ ॥ १८ ॥ द्वारे लिए आजका दिन बन्द है जिसमें योगमन्त्र-उपवास दर्शन प्राप्त होते और हम सबका-सबका शक्तिसे उन्हें सन्तुष्ट करेंगे ॥ १९ ॥ हम वहाँ दुर्गा का पूजा करके उनको नैवेद्य द्यावेंगे । उसके बाद रामको भोजन कराकर शिव भोजन करेंगे ॥ २० ॥ यह मुनकर मुवर्धक जनकारास मन्त्रकृत, पैसे काहे पढ़ने, मुन्दर मुन एव दुर्गाके समान देव शक्ति के व हृदय, शक्ति, शक्ति तथा भूदक धर्मका शिवसे तुल्य हृदयोमे नैवेद्यके साथ भेकर नुपुरही बनाकर शक्ति करना दूँ चल पड़ी ॥ २१ ॥ २२ ॥ उधर दुर्गाशक्ति बापों कोसे मन्दिरका काटक बन्द कर लिया और भीतर वाच्य बंद पड़ी ॥ २३ ॥ हे शिवजी मन्दिरम पहुँची वा द्वार बन्द पाया । एक एक करके वे सब शरीर पर धूम अयी । लेकिन कितने तरफसे भी उन्हें भीतर जानेका मार्ग नही मिला ॥ २४ ॥ ऐसी अवस्थासे वे विष्णु होकर वहाँ बैठ गयीं । चारों देर बाद मन्दिरके भीतरसे यह बापों सुनाये दी, जिसे उन शिवसे सुनाया ॥ २५ ॥ मैं हा लाता हूँ और राम साथ ही शिव है । जो हमसे और शिवसे, रामसे तथा शिवसे नैवेद्य प्राप्त है, वे करोको अवल पर्वत और नरकम सदन है । इस कारण हे शिवजी । वही मुझसे बन्दे मन्त्रे जगसे मेरे शत्रु रामको प्रसन्न करो । उनसे आ बने, जो काकर मेरी पूजा करो । इससे मैं प्रसन्न हूँगी । अच्छा, अब तुम लोग जाती । रामकाजी मन्त्रे-वासे बैठे हैं ॥ २६-२८ ॥

ततः सा अश्वी ताव्यो दशयामाम राघवम् । ता नेत्रपंकजैः भर्वा शृङ्गा नम्रा रघून्मयम् ॥३०॥  
 दिव्यशक्तानि पुरः स्थाप्य देवसाध्वैर्जलान्पयि । तनुस्त्रिं प्रार्थयामासुः स्त्रियः सर्वा पुरःस्थिताः ॥३१॥  
 स्वपादेषु तागिता राम वर्यं नार्यः सहस्रशः । वषटीं प्रेष्य गहने वनेऽत्र परमादरात् ॥३२॥  
 अस्त्रानि स्त्रीकुरुवन्व देव्या स्त्रीं प्रेषिता नि हि । तन्नामो वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह सस्मितः ॥३३॥  
 देव्या किमुक्तं यो नार्यः कथयाम्य ममाद्य तन् । ताः श्रेष्ठं राघवं नार्यो दुर्गावाक्यं सविस्तारम् ॥३४॥  
 दुर्गावाक्यं शृणुष्वद्य स्वहमेवमत्र जानकी । रामः सारधान्महादेवो नात्र मेदः कदाचन ॥३५॥  
 मानवस्यत्र मेदः ये गौरवेषु वनंति ते । मनो रामं तोषयिष्याददुच्छिष्टं त्वहं ततः ॥३६॥  
 मोक्षयामि नार्यो गच्छन्तं तुभानं रघुनन्दनम् । देव्येन्य भाषितं राय तनुस्त्रिं समुपागताः ॥३७॥  
 अग्रे त्वं पूर्वपुण्यैर्नो भुक्त्वान्नं रघुनन्दन । तनुस्त्रिः प्राह श्रीरामो विहस्य मुदिताननः ॥३८॥  
 यदि देवीवचः सत्यं तर्हि गहने वने । सीतारूपेण सा दुर्गा मां समाधातु सत्वरम् ॥३९॥  
 पुष्पन्नारीममृदात्तु काचिन्नारी गिरीश्वराम् । गन्वा मदचनं दुर्गा आवयन्वद्य कोतुकात् ॥४०॥  
 तद्वचनं श्रुत्वा स्वेका स्त्री लोकादवकात् । गत्वा दुर्गां राघवाक्यं आवयामास सादरम् ॥४१॥

दुर्गा भुक्त्वा रामवाक्यं तथेन्मुक्त्वा तु तां स्त्रियम् ।

किञ्चिन्कपाटमुदाटय मानारूपेण निर्ययी ॥४२॥

ततः पुनर्दृष्ट्वा कपाटं जानकी जवाम् । तोषपात्रं करे धृत्वा यशो रामं स्मितानना ॥४३॥  
 नमस्कृत्वा रामचद्र वत्पार्श्वं सरिषिताऽभवत् । तदा ताः सकला नार्यस्तभूवन् विस्मिता इति ॥४४॥  
 ततो रामो वगन्नानि विश्वर्षाणां तथा पुनः । सत्रिशाणां च नारीणां भोक्तुं स्नानार्थमुपतः ॥४५॥  
 ततः श्वरासने बाणं संधाय जगदीश्वरः । भुवं भित्वाऽप्य पातालाज्जालं तत्र समानयत् ॥४६॥

इस तरह देवीकी बात सुनकर ये सब वज्रगायिनी स्त्रियें विस्मित हुकर शवरीके पीछे-पीछे चली ॥ ३२ ॥  
 वहीं जाकर शवरीने उन सब स्त्रियोंको रामचन्द्रजीका दर्शन कराया । उन नारियोंने कमल सरोवर नेत्री-  
 वाले रामको देखा और प्रणाम किया । इसके बाद दिव्य भोजन सामने रखकर पुष्पोंके पानीमें जल भरकर  
 रक्षा और उन सब स्त्रियोंने एक स्वरसे भगवान्स प्रार्थना की— ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे राम ! आपने शवरीके द्वारा  
 अपने जानेका संदेश भेजकर हम लोगको तार दिया है ॥ ३२ ॥ सामान्य दुर्गाजीके द्वारा भेजवाये इन स्त्री-  
 वचनोंको आप स्वीकार करें । उनकी बातोंको सुन तो सुनकर राम बाले-हे नारियें ! दुर्गाजीने हमारे  
 विषयमें क्या कहा था, सी तो बतलाओ । स्त्रियाँ विस्तारपूर्वक दुर्गाजीके द्वारा कही गयी ये बतलाता हुई कहने  
 लगी—उन्होंने कहा था कि राम साक्षात् इहेश्वर हैं और मैं जानकी हूँ जो लोग हम दोनोंमें किसी प्रकारका  
 भेद मानते हैं, वे गैरव्यवहार करते हैं । इसलिए तुमलोग वहुने रामको भोजन कराके प्रसन्न कर आओ ।  
 उनमें जो कुछ वचन सी मैं मधुर स्वीकार करूँगी । हे स्त्रियाँ ! अब तुमलोग उन भूमे रामजीके पास  
 जाओ । इस तरह देवीकी बात सुनकर हम सब आपके पास दौड़ आयी ॥ ३३-३७ ॥ अब हमारे पूर्वसंचित  
 पुण्योंके प्रभावसे इस अन्नको प्रदूषण करिए । इसके अनन्तर होकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा— ॥ ३८ ॥ यदि  
 देवीकी बात सच है तो वे सीतारूपमें यहाँ भरे पास आवें ॥ ३९ ॥ तूममेंसे कोई स्त्री जाकर घेरा यह सन्देश  
 दुर्गाजीको सुना आवे । ४० ॥ रामके आज्ञानुसार उनमेंसे एक स्त्री बीशरी हुई दुर्गाजीके पास पहुँचा  
 और रामका संदेश कह सुनाया ॥ ४१ ॥ उस स्त्रीके मुँहसे इस प्रकार रामका संदेश सुनकर दुर्गाजीने  
 पीछाछा दरवाजा खोला और सीतारूपमें बाहर निकल आया । ४२ ॥ उन्होंने मन्दिरके दरवाजेको  
 ध्वजस्तंभ बन्द किया और हाथमें जलपात्र लेकर सुनकराली हुई रामकी ओर चल पड़ी ॥ ४३ ॥ वहीं  
 पहुँचकर उन्होंने रामको प्रणाम किया और उनकी वचनमें जाँचें । गङ्गा कीपुत्र देवकर सब स्त्रियाँ बहुत  
 विस्मित हुई ॥ ४४ ॥ इसके बाद राम उन जाहूणों, सत्रियों तथा वीर्याकी स्त्रियोंका अन्न खानेके लिए स्वयं  
 करनेको उद्यत हुए ॥ ४५ ॥ एतदर्थं रामने अपने अनुपपर बाण चढ़ाया और पृथ्वीको धोकर पाताल-

दत्त सुहृन् रामचन्द्रः कृत्वा मायाद्विकृतम् । यावद्भोक्तुं मनश्चक्रे तावत्तैऽपि समापयुः ॥४७॥  
 कृत्वाघाः सर्वमन्यैश्च रामराजिषदानुगाः । ते मये जानकी दृष्टा विस्मयं परमं ययुः ॥४८॥  
 ततस्तैः शशगीवाक्षशम्भवे भुक्त्वा कृष्णादिकाः । मनबोद्धा रामचन्द्रं मेजिरे चन्द्रशेखरम् ॥४९॥  
 सीतां गिरेश्वर्यां चापि मेजिरे ते विनिश्चयात् । ततो रामः कुशार्थम् सुदा सैन्येन सीतया ॥५०॥  
 धुक्त्वा सीन्वा जलं स्वच्छं राक्षसं स्त्रीः प्राह सादरम् । वरपथं वराभाष्यो युष्माकं यत्तु रोचते ॥५१॥  
 वद्राजपथनं भुक्त्वा स्त्रियः प्रोचू रघूत्तमम् । येनास्माकं महेच्छीतिस्त्वं ररं दानुर्महसि ॥५२॥  
 ततः प्राह रामचन्द्रस्वा नारीपुष्टमानयः । मम नामास्तु युष्माकं शप्तेति जगतीवले ॥५३॥  
 युष्माकं मयि सद्भक्तिः पुरुषेभ्योऽपि चाभियः । भविष्यति सदा त्वयो वरेण मम निश्चयात् ॥५४॥  
 देवे त्रिवे कृपायां च धर्मे भक्तिर्निरुपति । मदा पुनः पतिनाथ सर्वध्वं सधवाः स्त्रियः ॥५५॥  
 वागम्ये सकृन्ने सर्वकर्मसु च पुरःसराः । युय भवध्वं सर्वत्र त्रिवेर्णापुनमस्तुताः ॥५६॥  
 मम वागानुकुलं त्वयो मन्वाप्नेदं भविष्यति । इति रामवचः भुक्त्वा स्त्रियः प्रोचू रघूत्तमम् ॥५७॥  
 जन्मातिरेजपि त्वं गम दक्षिणं देहि नः पुनः । तन्माणां वचनं भुक्त्वा राघवो राक्षसव्रज्यात् ॥५८॥  
 द्वापरं कृष्णरूपेण युष्माकं दक्षिणं मम । भविष्यति वने यद्ये त्वमयात्माप्रमंगवः ॥५९॥  
 दिशश्चाम्यस्तदा युवं भविष्यथ स्त्रियो वने । इयं तु शशरी कर्त्री विशम्भैव भविष्यति ॥६०॥  
 महर्षिनार्थमुत्तमायेनामभ्याः पतिर्वेदा । स्तम्भे वदन्का महादण्डं स करिष्यति वै पुरे ॥६१॥  
 उदेयं मद्रवमना वने राक्षसि मां प्रति । भिन्नवेदेन क्वरी कौतुकं तद्भविष्यति ॥६२॥  
 तदा युय स्त्रियः सर्वास्तिदृष्ट्वा कौतुकं महत् । भूषाञ्च मद्रवमना मां व्याख्या सर्वदा हृदि ॥६३॥  
 जते मल्लोरुमासाय मोक्षय सुमधुनमम् । रायेति तां क नाम मम निव्य हि सदा ॥६४॥

सोनसे जल निकाला ॥ ४६ ॥ उससे स्नान किया और मद्रव-हूतान्तके विगासोसे कुरस्त पायो । तब जैसे ही भोजन करनेको तैयार हुए, तैसे ही कुछ आदि धो लेनाके साथ राम स्वान्तर आ पड़ेके । उ-होने वहाँ जानकी-को देखा तो उनके आश्चर्यका टिकना नहीं रहा ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ फिर शशरीके मुखस ज-होने सब समाचार सुना, तब इन लोगोका विश्वास हुआ कि रामचन्द्रको साक्षात् जित ही है ॥ ४९ ॥ और सीतानी साध त् पावती है । उत्पन्नात् रामच-वाने कुछ आदि राखडा तथा मेनाके साथ भोजन किया, रक्छ जल पिना और उन स्त्रियासे कहा—हे स्त्रियो ! अब तुम लगी हो जो दृष्ट्य हो, वह वर मांग लो ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उस तरह रामकी बात सुनकर स्त्रियो बोली कि जिससे ममासे हमारी मुक्ति हो, कोई देना वादत कीजिये ॥ ५२ ॥ श्रीरामच-न्द्रोंने प्रसन्न होकर उन नारियस कहा कि जो नाम हमारा है, वही तुम्हारा भी “राम” बहुत नाम विरगात होगा ॥ ५३ ॥ हे स्त्रियो ! हमारे वरदानके प्रभास पुरुषोकी अप्रभा मारिगीकी हमारेमें विशेष भक्ति रहनी ॥ ५४ ॥ देवता, ब्राह्मण, इन्द्रिया एवं धर्मम तुम्हारी विशेष रुचि रहा करेगी । तुम जैसे सबका स्त्रियो सदा पवित्र रहेंगी ॥ ५५ ॥ अपने मन्त्रकवर तीन बेनी धारण करनेवाली स्त्रियो किसी मङ्गलमय कार्य लपन करने आदि सब कार्योंमें जागे जागे चलेगी ॥ ५६ ॥ मेरे वापसे इस शरीरको रखना हुई है । कतएक यह तीर्थ मेरे ही नामसे विरगत होगा । इस तरह रामके द्वारा वरदान पक-उन स्त्रियोने कहा—हे राज ! आज मन्वा-न्तरम भी हम लोगोको अप्रभा दर्शन दीमिगा । उनकी बात सुनकर रामने कहा—हापरसे अब मागनक प्रसन्न हो कुरगकरसे ये तुम लोगोकी रक्षन हुआ ॥ ५७-५८ ॥ उस समय अब वनमें कुछ हुये मिश्रीकी, सब तुम सब ब्राह्मणका स्त्रिय रहेंगी । यह मन्त्रो भी उस समय द्विजपत्नी होगी ॥ ५९ ॥ मेरे दर्शनके लिए जानकी उसी इस नाराका अब इसका पति करनेव बाँधकर दण देवा तो यह अप्रभा मन मुझे सर्वत्र काके अन्य कससे मेरे समीप चली जायेगी । उस समय यह कौतुक देखकर तुम सब बड़े विस्मित होगी । और अबसे मुझसे अपना मन लगाकर सर्वत्र मेरा काम करोगी ॥ ६०-६३ ॥ अन्तमें मेरे

पुष्पाभिर्जपनीयं वै तेनास्तु गन्धिरुषमा । इति दध्वा वरांस्ताम्यः सीतामह पुरःस्थिताम् ॥ ६५ ॥  
 सुखं याद्वि स्थल स्वीयं तथैव्यक्त्वा विदेहता । राघवं प्रणम्य स्त्रीपुङ्गवा ययी वैश्रवणं पुनः ॥ ६६ ॥  
 देवालयगता भूत्वा दुर्गास्थं दध्वा मा । तदानीविष्णुर्वं प्राप्नुवा तयो निजचेति ॥ ६७ ॥  
 तास्तां दुर्गां प्रपूजयाम् नार्यो जग्मुः स्वकं निजम् । रामोऽपि चन्द्रपुत्रागैर्वयी निजपुर्णं प्रति ॥ ६८ ॥  
 ततो गेहे कृशः सीतां वप्रच्छ वनचेष्टितम् । दृष्टवत्स यथा वृत्तं तदा सीता न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥  
 ततस्ते लक्ष्मणाश्वश्च मेनिरे राघव हम् । सीतां मातन्महादुर्गां मेनिरे गनविभ्रमाः ॥ ७० ॥  
 एवं क्षिप्य जनानां च रामेण वरमन्मना । ईतबुद्धिः सडितः च वे कृत्वा तु कौतुकम् ॥ ७१ ॥  
 एवं वरेण राघवस्य रामा नः यत्र कथ्यते । तावामपि वनुश्वाय स्मृतौ रामेति द्वयस्यः ॥ ७२ ॥  
 नान्यो मन्त्रोऽस्ति जारिणा शूद्राणा चापि भो द्विज । सर्वस्यो मन्त्ररसेभ्यो रामस्याय मनुर्वरः ॥ ७३ ॥  
 प्राप्ते मये महापापे वाचायां मयेऽहं नरैः । रामेति द्रव्यमयः को-र्वने जगतीतले ॥ ७४ ॥  
 कृत्वा पापं महाजोरं पथाचपेन भो नर । मरुद्वेति मर हि को-र्वने दुष्टमास्तुरान् ॥ ७५ ॥  
 रामेति मन्त्रराजोऽयं रामेन भोजने तथा शयने काष्ठेन रात्रौ स्थिते कार्यान्तरे नरैः ॥ ७६ ॥  
 जपनीयः सर्वदेव संख्यगोरमगौरपि । चतुर्वर्णं मदा जप्यधुराश्रमयासिभैः ॥ ७७ ॥  
 नारय मन्त्रस्य कलौऽस्ति जगद्यै कालरुषिणः । तस्माज्जनेजपर्ययः सर्वदा मनुकृत्यः ॥ ७८ ॥  
 राममन्त्रो मुने यस्य देवो मुद्राकितस्तथा । राममुद्राकितं वस्त्र यस्य तं नेष्टुमेष्टमः ॥ ७९ ॥  
 राममुद्राकितं वस्त्रं समुद्रं वस्त्रमृच्यते । सर्ववस्त्रेषु तच्छ्रेष्ठं पवित्रं पापनाशकम् ॥ ८० ॥  
 समुद्रं वसनं वेदे विभ्रत मानवीजमम् । कुत पाप न लियेत पश्यत्रमिवावसा ॥ ८१ ॥  
 समुद्रवस्त्रसंपुक्तं दृष्ट्वा मुनि नरोत्तमम् । यमदत्ताः पलायते सिंह दृष्ट्वा मृगा यथा ॥ ८२ ॥

शोकका प्राप्त करके तुम सब उत्तम मुख योगी । मेर 'राम' इस तावत मन्त्रको तुम जप सदा जपता रहना,  
 इससे तुम्हें उत्तम रति प्राप्त होगी । इस तरह उन जिनमेंही वन्दन देकर सामने बैठी हुई मातावास कहो  
 कि अब आप आत्मन्त्रसे अपने मन्दिरका आहूत, 'तपस्तु' कहकर व भी उन स्थितिके साथ मन्दिरकी ओर  
 चली गयी ॥ ६४-६६ ॥ देवालयमें पहुँचकर उन्होंने फिर मन्त्रको समस्त देवोंका रूप धारण कर लिया ।  
 उस समय वे स्थितों ओर भी विस्मृत हुई ॥ ६७ ॥ इसका बाद उन स्थितों देवोंकी पूजा की और  
 अपने-अपने घरोंका चली गयी । राम भी अपने बन्धुओं पुत्रों एवं सदा आदिकी साथ लेकर आयावसा  
 चल दिये ॥ ६८ ॥ घर पहुँचकर कुशने मोक्षसे यह वृत्तांत पूछा । तब आत्मन्त्र इस तरह सब कह पुत्राय कि जैसे  
 उन्होंने अपनी जानों सब कुछ दत्ता है ॥ ६९ ॥ तबरा लक्ष्मण आदिने सन्देह रहित होकर रामकी भद्रेश्वर और  
 सोताकी महादुर्गा माना ॥ ७० ॥ हे शिष्य ! अपने मन्त्रका ईश बुद्धिको दूर करनेके लिए ही रामन वनमें  
 इस प्रकारका कौतुक किया था ॥ ७१ ॥ रामका द्वर्जोंके वरदानस ह । 'स्वयं' रामा कह गयी है । उन लीनोंके  
 लिए भी 'राम' यह दो शब्दोंका मन्त्र वतलाया गया है ॥ ७२ ॥ मित्रों और शत्रुओंके लिए इसके सिवाय और  
 कोई मन्त्र नहीं है । सब मन्त्रोंमें यह राममन्त्र सर्वश्रेष्ठ है ॥ ७३ ॥ किसी प्रकार भक्त बोधा या भक्त मान्य  
 ह्याम इसी नामका उच्चारण करने है ॥ ७४ ॥ महाभारत पढ़ करके ये जो प्राणी पञ्चतान्त्रपूर्वक 'राम' इस  
 मन्त्रका कीर्तन करता है, उसको सुख ही जन्तो है ॥ ७५ ॥ जंगलोंका यह है कि नहीं जाने समय, भोजन  
 करते समय, सोने समय विगत कृत समय प्रवसा कोई भी कार्य करने समय और सायकालका, यदि वे  
 किसी वर्ण तथा किसी आश्रमके हों, राम इस मन्त्रका जप करने रहें । क्योंकि यह बड़ा उत्तम मन्त्र है  
 ॥ ७६-७८ ॥ जिसके मुखमें राममन्त्र है, जिसका शरीर रामनामसे अकित है और जिसकी देहपर राममुद्रा-  
 स अंकित वस्त्र पहना रहता है, उसे यमगात्र नहीं शय जाने ॥ ७९ ॥ राममुद्राके अंकित वस्त्र समुद्र वस्त्र कहलाता है ।  
 यह वस्त्र सबसे श्रेष्ठ, पवित्र और पापनाशक होता है ॥ ८० ॥ इस समुद्र वस्त्रधारों प्राणोंकी किसी प्रकारका  
 वस्तक नहीं लगता । जैसे कमलके पत्तोंपर जलका असर नहीं होता ॥ ८१ ॥ समुद्र वस्त्र धारण किये हुए मनुष्यकी

पुनैकदा तु मुनयः संमन्योन् रघून्ममम् । राम मेव महाबाहो कलावशे द्विजोत्तमाः ॥८२॥  
 वयमपिना मंदधियो मदिष्यत्यधनीनके निजजाट्यपूर्वधे दारादूढारं भ्रमं हि ॥८३॥  
 कुतोऽवकाशः स्मरणे तव तेषां मदिष्यति । अनन्तेषां हितार्थाय त्वां याचामोऽयं राघव ॥८४॥  
 तेषां हितार्थं किंचित्प्रमुखाय वक्तुमर्हति । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा मुनीनां रघून्मन्दनः ॥८५॥  
 तत्राद्यं वाक्यं सत्पुण्यान्मुनीन्प्रहसन्मयम् । मम्यमुक्तं मुनेर्भूषणं शृणुन् वचनं मम ॥८६॥  
 मम मुद्राङ्कितं वस्त्रं कलां धार्य जनैः सुखम् । मम मुद्राङ्कितं वस्त्रं विश्रुतं मानसोत्तमम् ॥८७॥  
 न स्पृष्ट्वैवाङ्कितं किञ्चिन्मृतं चपि नरेण हि । शङ्क्यकमदापन्नममुद्राङ्कितं शुभम् ॥८८॥  
 वस्त्रं धार्य नरैर्भक्त्या मुद्रपैदाङ्कितं तु वा । शङ्कादिश्रवणैर्गुप्तं सदा वस्त्रं मम प्रियम् ॥८९॥  
 मन्मुद्रपङ्कितं वापि वस्त्रं मत्तोपदं स्मृतम् । स्नान्वा धार्य सदा तत्त्वं जपकाले विशेषतः ॥९०॥  
 मलमूत्रोन्मर्जने च शयने कण्ठने तथा । अशुभं च तथे वृद्धौ हृष्टे राजसभायु च ॥९१॥  
 पथि दुर्जनसमर्थे मुद्रावस्त्रं न धारयेत् । न च भोजनकालेऽपि विहारे नैव धारयेत् ॥९२॥  
 स्नानकाले श्रुते तीर्थे पूजायां चित्तमर्पयेत् । होमे दाने जपे कृच्छ्रं चांशुपणवतादिषु ॥९३॥  
 नित्यकर्मसु काम्येषु तथा नैमित्तिकेऽपि । तथा तत्रसु मन्मुद्रावस्त्रं धार्य मदीयं हि ॥९४॥  
 मम मुद्राङ्कितं वस्त्रं विश्रुतं मानसोत्तमम् । अहं मोक्षं प्रदत्तवामि मयं मन्य मुनीश्वराः ॥९५॥  
 एव श्रुत्वा राघव कथं मुनयस्ते मुदन्ति वा । राम पृष्ट्वाऽऽश्रमं स्वं तत्र गच्छते मुद्रिनामनाः ॥९६॥  
 तस्मान्मदा मममुद्रावस्त्रं धार्य न भुञ्जीते । रामेति द्वयश्रुते मतो यन्नीयं तु सर्वदा ॥९७॥  
 राममुद्रा शुभा धार्या गोपीनन्दनसमुता । सदाऽत्र मानसैर्भक्त्या रामतापार्थमादरात् ॥९८॥

शेषकर ममके दूत उसी तरह आगत है, जैसे मिहका शेषकर मृग भाग जाते हैं ॥ ८२ ॥ एक बार बहुतसे मुनि एकत्र होकर रामसे बोले - हे महाबल ! अगर चलकर कलिदुग्धमं चक्षुष्य बड़े मन्दबुद्धि होंगे और पद पालनेके लिये शयन रहने हुए दारद्वार घूमने ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ उनका आपका स्मरण करनेके लिए अवकाश कैसे मिलेगा । अतएव उनका कल्याणार्थ हम अपने यह भिक्ष माग रहे हैं कि उनके हितके लिये कोई उपाय बतला दीजिए । उन मुनिश्रीकी बात सुनकर रामचन्द्रजी प्रसन्न मनसे बोले कि आपने बहुत उत्तम प्रश्न पूछा है । अथवा सुनिए ८५-८६ । उन लोगोंका चाहिए कि सदा मेरी मुद्रासे अङ्कित वस्त्र धारण करें । जो मेरी मुद्रासे अङ्कित कपड़े पहन रहेंगे, उनसे यदि किसी प्रकारका पातक भी हो जायगा तो वह उनका नहीं लगना इसलिए वे सदा शङ्क, गदा और पथमे अङ्कित कपड़े पहन । यह भी न हो सक तो बसल मेरे नाम ही से चिह्नित कपड़े पहने । जब आदिसे चिह्नित वस्त्र भी मुझ बड़े प्रिय हैं ॥ ८८ ९० ॥ राममुद्रासे अङ्कित वस्त्र मुझे प्रसन्न करता है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि स्नान करके ऐसे ही कपड़े पहने और जबकि समय इसके लिए विनाश कराने के ॥ ९१ ॥ मलमूत्र त्यागते समय, विछोनेपर, मलते समय, अपवित्राश्रयाम, किसी दुर्गन्धके घरनपर, बाजारमें, राजसभामें, शरतेम और दुर्जनके सङ्गमें इस मुद्रावस्त्रको कभी भी न पहन । भोजन करने समय और स्त्रीके साथ विहार करते समय भी इसे न पहने ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ स्नान करनेके अनन्तर, व्रतमं तार्थमें पूजा करते समय, पितृश्राद्ध करने समय, होम, दान, जप आदि करने समय, चाण्डालगण आदि भक्तमें, नित्यकर्म करते समय, काम्य कर्ममें, कोई नैमित्तिक कर्म करते समय और तपस्या करते समय मेरी मुद्रासे अङ्कित वस्त्र अवश्य पहनना चाहिए ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ हे मुनीश्वरों ! यह बात विष्णुकुल सत्य है कि मेरी मुद्रासे अङ्कित वस्त्र पहननेवालोंको मैं स्वयं मुक्ति देता हूँ ॥ ९६ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वे सब बहुत प्रसन्न हुए और रामसे आका लेकर अपने अपने आश्रमोंको चले गये । ९७ ॥ इसीलिये लोगोंको यह चाहिए कि हमेशा राममुद्रासे अङ्कित कपड़े पहन और 'राम' इस दो अक्षरके मंत्रका जप करें ॥ ९८ ॥ गोपीचन्दनसे राममुद्रा



पूजा सदा राघवस्य कार्पाऽत्र मानवैर्भुवि सदा स्नानं रामनीधे नरैः कार्यं प्रयत्नतः ॥१००॥  
 सदा रामायणं चेद् श्रवणीयं नरैर्भुवि चिन्तनीयः सदा रामो जन्ममृत्युनिवारकः ॥१०१॥  
 स्तोत्रव्यः कीर्तनीयश्च वन्दनीयोऽत्र गद्यवः । न किञ्चिदणुमात्रं हि विनारामं सदाऽऽचरेत् ॥१०२॥  
 हनुमत्कवचं दिव्यं पठित्वाऽऽदौ नरैर्भुवि । ततः श्रीरामकवचं पठनीयं हि सर्वदा ॥१०३॥  
 पठन्ति रामकवचं हनुमत्कवचं विना । अरण्ये रोदनं तैस्तु कुतमेव न संशयः ॥१०४॥  
 स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रं सर्वभीतिनिवारकम् । श्रीरामकवचं नित्यं पठनीयं नरैर्भुवि ॥१०५॥

विष्णुदास उवाच

गुरोर्द्धं श्रेतुमिच्छामि हनुमत्कवचं शुभम् । तथैव रामकवचं वद कृत्वा कृपां मयि ॥१०६॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु हनुमत्कवचं रामकवचं च वदामि ते ॥१०७॥

इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे पार्वतीकोमे मनोहरकाण्डे  
 आदिकाव्ये रामणाट्टतन्त्रदर्शनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

## त्रयोदशः सर्गः

( हनुमत्कवच तथा रामकवच )

श्रीरामदास उवाच

एकदा सुखमासीनं शकरं लोकशंकरम् । पश्यन्तु गिरिजाकांतं कर्पूरधवलं शिवम् ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच

ममवन् देवदेवेश लोकनाथ जगत्प्रभो श्लोकाकुलानां लोकानां केन रक्षा भवेद्भ्रुवम् ॥ २ ॥  
 सप्राप्ते संकटे घोरे भूतप्रेतादिके भये दुःखदावाग्रिसतप्रचेनसा दुःखभागिनाम् ॥ ३ ॥

धारण करें । इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होंगे । ६६ ॥ संसारमें मनुष्योंकी चाहिए कि सदा रामचन्द्रजीकी पूजा करें और प्रयत्न करके रामतीर्थमें स्नान करें ॥ ६७ ॥ सर्वदा इस आनन्दरामायणका पाठ करने हुए जन्म और मृत्युका दुःख दूर करनेवाले रामचन्द्रजीका ध्यान करते रहें । जन्हींकी स्तुति करें और जन्हींका गुणानुवाद गावें कहतेका भाव यह है कि रामचन्द्रक भजनक मित्राय कोई और काम न करें ॥१०१॥१०२॥ पहले हनुमत्कवचका पाठ करके श्रीरामकवचका पाठ किया करें । १०३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका पाठ किये बिना ही श्रीरामकवचका पाठ करते हैं, वे मानो अरण्यरोदन करते हैं इसमें कोई संशय नहीं है । १०४ ॥ सब स्तोत्रोंमें उत्तम तथा सब प्रकारके भयका निवारण करनेवाले श्रीरामकवचका पाठ सांसारिक मनुष्योंको अत्यन्त करना चाहिए ॥ १०५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! हम आपके मुखसे हनुमत्कवच और रामकवच सुनना चाहते हैं । मेरे ऊपर कृपा करके बतलाइए ॥ १०६ ॥ रामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं हनुमत्कवच और रामकवच इन दोनों कवचोंको कहूँगा । तुम सावधान होकर सुनो ॥ १०७ ॥ इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामनेज्याण्डेयविरचित'उपोत्सना भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक द्वार संसारका कल्याण करनेवाले शिवजी बैठे हुए थे । उसी समय पार्वतीजीने कहा—हे ममवन् । हे देवदेव ! हे लोकनाथ ! हे जगत्प्रभो ! जो लोग किसी प्रकारके शोकसे व्याकुल हों उनकी किस प्रकार रक्षा की जा सकती है ? जो लोग घर संग्राम, महान् संकट, भूत प्रेत आदिकी बाधाओं अथवा दुःखरूपी दावानलसे जल रहे हों, उनके उद्धारार्थ कौन उपाय किया जा सकता है ? । १ ३ ।

मृगु देवि प्रवक्ष्यामि लोकानां हितक्षाम्यया । विभीषणस्य रावेण प्रेम्णा दत्तं च पशुम् ॥ ४ ॥  
 कवचं कविनाथस्य वायुपुत्रस्य धीमतः । गुह्यं तत्ते प्रवक्ष्यामि विशेषच्छृणु सुन्दर ॥ ५ ॥  
 लघुदादित्यसंकाशमुदात्तभुजत्रिकमम् । कंदर्पकोटिलान्घ्र्यं सर्वविद्यान्धारदम् ॥ ६ ॥  
 श्रीरामहृदयानन्दं मन्त्रकल्पमहीरुहम् । अमर्यं वरदं दोर्घ्यं कलये माह्वान्मजम् ॥ ७ ॥  
 हनुमानं जनीसुतुर्वायुपुत्रो महारथः । रामेष्टः काल्पानुमयसुः पिशाक्षोऽपितत्रिकमः ॥ ८ ॥  
 उदबिम्बवर्णमैव सीताशोकविनाशनः । लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा ॥ ९ ॥  
 एवं द्वादश नामानि कपीन्द्रस्य महान्मनः । स्वापकाले शोभे च यात्राकाले च यः पठेत् ॥ १० ॥  
 तस्य सर्वमयं नास्ति शोचं च वितपी भवेत् । राजद्वारे गह्वरे च भव नास्ति कदाचन ॥ ११ ॥

उल्लस्य मित्रोः सलिलं मलालं यः शोकवह्निं जनकन्मजायाः ।

अदाव तेनैव ददाव तर्कां नयामि तं प्राणलिङ्गजनेयम् ॥ १२ ॥

अनयो हनुमते सर्वग्रहान् भूतमविष्यद्वर्तमानान् समीपस्थान् सर्वकालदुष्टबुद्धीनुच्चाट्य  
 परबलान् क्षोभय मम सर्वकार्येणि साधय माधव अँहाँ हीँ हूँ कट्ट । वे वे वे अँश्विरसिद्ध  
 अँहाँ अँहीँ अँहूँ अँहँ अँहोँ अँहः स्वाहा । परकृतयश्चमन्त्रपगाहकारभूतप्रेतापिशाचवृष्टिष्ववविघ्न-  
 दुर्जनचेष्टाकुविद्यामर्षोद्दिग्गमानि विवारय निवारय बन्ध बन्ध लुठ लुठ विलुं च विलुं च किलि किलि किलि  
 सर्वकृपयाणि दुष्टबाध अँकट्ट स्वाहा । अँअस्य श्रीहनुमन्करचस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीगमचन्द्र श्रविः ।  
 श्रीहनुमान् परमत्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । मारुतात्मज इति वीजम् । अत्रनीधतुरिते शक्तिः ।  
 लक्ष्मणप्राणदातेति कीलकम् । रामदूतयेत्यस्त्रम् । हनुमान् देवता इति कुवचम् । पिशाक्षोऽपित-  
 त्रिकम इति मन्त्रः । श्रीरामचन्द्रप्रणवा रामचन्द्रप्रार्थनार्थं मम सकलकामनामिदं यत्तु अपे विनि-  
 योगः । मर्धागुलिन्पासः । अँहाँ अजर्नस्तुताय अगुष्टाभ्यां नमः । अँहाँ रुद्रमूर्तये तजनीभ्यां नमः ।  
 अँहूँ रामदूताय मध्यमाभ्यां नमः । अँहँ वायुपुत्राय अनामिकभ्यां नमः । अँहाँ वाग्मनवाय कनिष्ठ-  
 काभ्यां नमः । अँहः नमस्तन्निवारणाय परबलकापृष्टाभ्यां नमः । एवं हृदयार्थगन्यासं कृत्वा ।

अथ वयातम्

स्वायैद्रालदिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पापरं

शोभहादेवजोने कहा है देवि । मैं मन्वाको कल्याणकामनासे तुम्हें यह हनुमत्कवच बतलता हूँ, जिसे  
 रामने विभीषणको दिया था । यद्यपि यह एक गुप्त वस्तु है, फिर भी मैं तुम्हें बतलाता हूँ । हे मुन्दरो ।  
 सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ उदयकालीन सूर्यके समान प्रकाशवान्, लम्बी भुजाओं और अनुपम पराक्रमवाले, करोड़ों  
 कामदेवके समान सुन्दर, सब विद्याओंमें विहारद, श्रीरामजीके हृदयके माकन्द बेनचाले, भक्तोंके लिए  
 कल्पवृक्षके समान मधुरहित एवं वरदाता हनुमान्जीकी मैं हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ ॥ ६ ॥ ७ ॥  
 हनुमान्, अजङ्गनीपुत्र, वायुपुत्र, महाबलवान्, रामके प्रिय, कर्तुनके मित्र, पीली माँसावाले, अन्तर्बल-  
 वाली, समुद्रको क्षमिनेवाले, हाताका शोक नष्ट करनेवाले, लक्ष्मणक प्राणदाता, रावणका अभिमान दूर करने-  
 वाले, इन बारह नामोंको जो मनुष्य सीते या आगतं समय अथवा कहीं जाते समय पढ़ता है, उसे  
 कहीं किसी प्रकारका भय नहीं रह जाता और स्याममे उसकी विजय होती है । राजद्वार-कन्दरा आदि किसी  
 भी स्थानमें उसे किसी प्रकारका भय नहीं रहता । जिसने समुद्रको जलराशिको सेल सेलमें क्षोभकर होताको  
 शोकविपी नागको लेकर उससे सारी लका जसाकर राल कर बली, ऐसे हनुमान्जीको मैं हाथ जोड़कर  
 प्रणाम करता हूँ ॥ ८-१२ ॥ इस प्रकार प्रणाम करनेके अनन्तर 'अनयो हनुमते सर्वग्रहान्' यहति लेकर  
 एवं 'हृदयार्थगन्यासं कृत्वा' उसके अन्धोंका उच्चारण करता हुआ विनियोग और अंगन्यास आदि करे । प्रातः-

देवेन्द्रप्रभुनं प्रशस्नरहमं देदीप्यमानं रुचा ।

सुग्रीवादिममस्वशानमग्रुतं सुव्यक्ततन्त्रप्रियं

सम्कारणलोचनं पवनजं पीताम्बरालंकृतम् ॥ १ ॥

उद्यन्मार्गैश्चकोटिप्रकर्षविभुतं आरुचोरामनम्

मीजीयज्ञोपवीताभरणरुक्मिशिखं शोभितं कुण्डलीकम् ।

भक्तानामिष्टं तं प्रणम्युनिजने वेदनादप्रभोर्दं

व्यथेदेवविषेऽस्मिन् एतन्मकुलपतिं गोपदीभूदवार्धिम् । २ ।

वज्रागं पिङ्गकेशाख्यं स्वर्णकुण्डलमंडितम् । निगूरमुपगमस्य पारावारपराक्रमम् । ३ ॥

स्फटिकाभं स्वर्णकान्तिं द्विभुजं च कुलाञ्जलिम् । कुण्डलद्वयमंशोभि सुवर्णभोजं हरिं भजे । ४ ॥

सख्यदहस्ते मदायुक्तं तामहम्ने कमण्डलुम् । उग्रदक्षिणदोर्दण्डं हनुमनं विचिंतयेत् ॥ ५ ॥

अथ मंत्रः

ॐ नमो हनुमते शोभिताननाय यशोऽलंकृताय भजनीयभैरवभूताय रामलक्ष्मणानन्दाय  
रूपिसैन्यप्रकाशरपरितोषाटनाय सुग्रीवमायकारणपरोच्चाटनकुमारवृद्धचर्यभंभीरश्वरोदय हौं सर्वदृष्ट-  
ग्रहनिवाणाय स्वाहा । ॐ नमो हनुमते ऋदि एहि एहि सर्वग्रहभूतानां आकिनीडाकिनीनां  
विषमदुष्टानां सर्वेषामाकर्षयाकर्षय मर्दय मर्दय ऐश्य ऐश्य मर्त्यान्मायय मारय शोषय शोषय  
प्रज्वल प्रज्वल भूतमण्डलविज्ञाचमण्डलतिरमगाय भूतज्वरप्रेतजडान्तुथिकज्वरमक्षराक्षमपिशाच-  
छेदनक्रियाधिष्णुज्वरमहज्वरान् छिधि छिधि वि वि विवि भक्षिगुले श्रिगेऽभ्यन्तरे क्षक्षिगुले गुन्मशूले  
पित्तशूले नगराक्षमकुलप्रचलनागकुलवेपनिविष झट ने झटिति ॐ ह्रीं फट् घे घे स्वाहा । ॐ नमो  
हनुमते पवनपुत्र वैद्यानमुखवापदष्टिहनुमतेऽस्मै आत्राफुरे स्वाहा । स्वगृहे द्वारे पट्टके  
तिष्ठ तिष्ठति तत्र रोगगय राजकुलभर्या नास्ति तस्योत्पचारणमात्रेण सर्वे ज्वरा नश्यन्ति ।  
ॐ ह्रीं ह्रीं हूं फट् घे घे स्वाहा ।

कालक मूढ सरीखा जिनका तेजस्वी स्वरूप है जो राक्षसोंका अभिमान दूर करनेमें समर्थ है और जो  
देवताओंमें एक प्रमुख देवता माने जाते हैं । जिनका प्रशस्न रत्न तामा ल'काम फेंका हुआ है ।  
जो अपनी जपधारण शोभासे दर्शनमान्य हो जाते हैं । सुग्रीव भादि बड़ बड़ बान्तर जिनके साथ है ।  
जो मुदगत तत्त्वक प्रेमी है । जिनकी अंग अतिशय लाललाल है । पीले वस्त्रोंसे अलंकृत उस हनुमान्-  
जीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ १ ॥ उदय होत हुए करे डो सुषोंके समान जिनका प्रकाश है । जो सुन्दर  
बोरासनसे बँडे हुए हैं । जिनके शरीरमें साजा मस्तकसे आदि पडे हैं और उनको किरणोंसे जो ओर भी  
जाभासम्पन्न दोस्त रहे हैं । जिनके कानोंमें पडे हुए कुण्डल अपना मरोहर भोभा दिखा रहे हैं । भनोंकी  
कामना पूर्ण करनेवाले, नृनिजानान दान्दित, बड़े मन्त्रोंकी आवा सुनकर प्रदक्ष हातेवाले, बानरकुलके  
अग्रणी और सनुओंकी ओके खुर भर नलकाला बना देवाले हनुमान्जीका ध्यान करना चाहिये ॥ २ ॥ वज्रके  
समान कठोर जिनका शरीर है, मस्तकपर पीला केश नुकीभित हो रहा है और कामोंमें सुवर्णके कुण्डल पडे  
हैं, ऐसे हनुमान्जीका मैं अतिशय आग्रहक साथ ध्यान करता हूँ । क्योंकि उनके पराक्रमरूपा समुद्रकी कोई  
बाहू नहीं है ॥ ३ ॥ स्फटिकमणिके समान ममका सुवर्ण सरीखी जिनका कान्ति है, दो भुजायें हैं, जो हाथ  
जोड़े खडे हैं, दोनों कानोंमें पडे हुए सुवर्णके कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं ऐसे कमलके समान सुन्दर मुखवाले  
हनुमान्जीका मैं ध्यान करता हूँ । ४ ॥ जिनको द हिनो भुजायें मदा है, साथ हाथमें कमण्डलु है और जिनकी  
दाहिनी भुजा कुछ ऊपर उठी हुई है, ऐसे हनुमान्जीका ध्यान करता चाहिये । ५ ॥ अथ मन्त्रः—“ॐ  
नमो हनुमते” यहूषि लेकर 'हा, हा, हा, फट् घे घे स्वाहा' यहाँ तक हनुमत्कवचमन्त्र कहा गया है ।

अब हनुमानकथन आरम्भ होता है । १ ॥ १ ॥ तब कोन-हनुमान् पूर्वे जिहकी रक्षा कर पश्चात्तमे दक्षिण दिशाकी रक्षा कर और मध्यमे । २ ॥ २ ॥ मध्यमाये, दक्षिण दिशाकी । ३ ॥ ३ ॥ समुद्रकी पार करवाले हनुमान् पार जिहकी रक्षा कर, वरुण विष्णु ब्रह्मा । ४ ॥ ४ ॥ नीचड़ी आर विष्णु मत्त रक्षा कर, मध्यभागकी रक्षा कर । ५ ॥ ५ ॥ मध्य प्रकाश आर विष्णुसे लङ्काकी मन्त्रालये रक्षा करें, सुग्रीवके मन्त्री मस्तककी रक्षा कर । ६ ॥ ६ ॥ मन्त्रालय रक्षा कर, कोट्टक मध्यभागकी रक्षा कर । ७ ॥ ७ ॥ छायाका अपहरण करनेवाले हुन रक्षा कर मन्त्रालयकी रक्षा कर । ८ ॥ ८ ॥ कभीरुकी मन्त्रालय रक्षा करें, भीरामचन्द्रजीके सेवक कामके मन्त्रालय रक्षा कर, नागिक की मध्यभागका अन्धान् गुरु रक्षा कर, हनुमान् सुलकी रक्षा करें । ९ ॥ ९ ॥ रुद्रप्रिय शक्यकी रक्षा कर, १० ॥ १० ॥ श्रिया रक्षा कर । ११ ॥ ११ ॥ जिहकी रक्षा करें, मन्त्रालय मन्त्र ओहनुमान्जी विष्णुकागकी रक्षा करें, १२ ॥ १२ ॥ रक्षा कर करवाले रक्षा कर, करवाले आमुधका काम सेनेवाले हाथकी रक्षा करें, नलके आमुध घावण करवाले रक्षा कर, करवाले रक्षा करें, करवाले रक्षा करें । १३ ॥ १३ ॥ मुद्राका अपहरण करनेवाले रक्षा कर । १४ ॥ १४ ॥ मन्त्रालयकी रक्षा कर । १५ ॥ १५ ॥ रक्षा कर । १६ ॥ १६ ॥ रक्षा कर । १७ ॥ १७ ॥ रक्षा कर । १८ ॥ १८ ॥ रक्षा कर । १९ ॥ १९ ॥ रक्षा कर । २० ॥ २० ॥ रक्षा कर । २१ ॥ २१ ॥ रक्षा कर । २२ ॥ २२ ॥ रक्षा कर । २३ ॥ २३ ॥ रक्षा कर । २४ ॥ २४ ॥ रक्षा कर । २५ ॥ २५ ॥ रक्षा कर । २६ ॥ २६ ॥ रक्षा कर । २७ ॥ २७ ॥ रक्षा कर । २८ ॥ २८ ॥ रक्षा कर । २९ ॥ २९ ॥ रक्षा कर । ३० ॥ ३० ॥ रक्षा कर । ३१ ॥ ३१ ॥ रक्षा कर । ३२ ॥ ३२ ॥ रक्षा कर । ३३ ॥ ३३ ॥ रक्षा कर । ३४ ॥ ३४ ॥ रक्षा कर । ३५ ॥ ३५ ॥ रक्षा कर । ३६ ॥ ३६ ॥ रक्षा कर । ३७ ॥ ३७ ॥ रक्षा कर । ३८ ॥ ३८ ॥ रक्षा कर । ३९ ॥ ३९ ॥ रक्षा कर । ४० ॥ ४० ॥ रक्षा कर । ४१ ॥ ४१ ॥ रक्षा कर । ४२ ॥ ४२ ॥ रक्षा कर । ४३ ॥ ४३ ॥ रक्षा कर । ४४ ॥ ४४ ॥ रक्षा कर । ४५ ॥ ४५ ॥ रक्षा कर । ४६ ॥ ४६ ॥ रक्षा कर । ४७ ॥ ४७ ॥ रक्षा कर । ४८ ॥ ४८ ॥ रक्षा कर । ४९ ॥ ४९ ॥ रक्षा कर । ५० ॥ ५० ॥ रक्षा कर । ५१ ॥ ५१ ॥ रक्षा कर । ५२ ॥ ५२ ॥ रक्षा कर । ५३ ॥ ५३ ॥ रक्षा कर । ५४ ॥ ५४ ॥ रक्षा कर । ५५ ॥ ५५ ॥ रक्षा कर । ५६ ॥ ५६ ॥ रक्षा कर । ५७ ॥ ५७ ॥ रक्षा कर । ५८ ॥ ५८ ॥ रक्षा कर । ५९ ॥ ५९ ॥ रक्षा कर । ६० ॥ ६० ॥ रक्षा कर । ६१ ॥ ६१ ॥ रक्षा कर । ६२ ॥ ६२ ॥ रक्षा कर । ६३ ॥ ६३ ॥ रक्षा कर । ६४ ॥ ६४ ॥ रक्षा कर । ६५ ॥ ६५ ॥ रक्षा कर । ६६ ॥ ६६ ॥ रक्षा कर । ६७ ॥ ६७ ॥ रक्षा कर । ६८ ॥ ६८ ॥ रक्षा कर । ६९ ॥ ६९ ॥ रक्षा कर । ७० ॥ ७० ॥ रक्षा कर । ७१ ॥ ७१ ॥ रक्षा कर । ७२ ॥ ७२ ॥ रक्षा कर । ७३ ॥ ७३ ॥ रक्षा कर । ७४ ॥ ७४ ॥ रक्षा कर । ७५ ॥ ७५ ॥ रक्षा कर । ७६ ॥ ७६ ॥ रक्षा कर । ७७ ॥ ७७ ॥ रक्षा कर । ७८ ॥ ७८ ॥ रक्षा कर । ७९ ॥ ७९ ॥ रक्षा कर । ८० ॥ ८० ॥ रक्षा कर । ८१ ॥ ८१ ॥ रक्षा कर । ८२ ॥ ८२ ॥ रक्षा कर । ८३ ॥ ८३ ॥ रक्षा कर । ८४ ॥ ८४ ॥ रक्षा कर । ८५ ॥ ८५ ॥ रक्षा कर । ८६ ॥ ८६ ॥ रक्षा कर । ८७ ॥ ८७ ॥ रक्षा कर । ८८ ॥ ८८ ॥ रक्षा कर । ८९ ॥ ८९ ॥ रक्षा कर । ९० ॥ ९० ॥ रक्षा कर । ९१ ॥ ९१ ॥ रक्षा कर । ९२ ॥ ९२ ॥ रक्षा कर । ९३ ॥ ९३ ॥ रक्षा कर । ९४ ॥ ९४ ॥ रक्षा कर । ९५ ॥ ९५ ॥ रक्षा कर । ९६ ॥ ९६ ॥ रक्षा कर । ९७ ॥ ९७ ॥ रक्षा कर । ९८ ॥ ९८ ॥ रक्षा कर । ९९ ॥ ९९ ॥ रक्षा कर । १०० ॥ १०० ॥ रक्षा कर ।

अधश्चमूलेऽर्कवारे स्थित्वा पठति यः पुमान् । अचलां श्रियमाप्नोति मंत्राग्ने विशयं तथा ॥१५॥  
 बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयन्मरोगताम् । सुदृढं वाक्पुङ्गव च हनुमन्मरणाद्भवेत् ॥१६॥  
 माय वैरिणां मद्यः शरणं सर्वमप्यदाम । श्लोकस्य हरणे दध्मं वदेत् तं रणदारुणम् ॥१७॥  
 लिखित्वा पूजयेद्यस्तु सर्वत्र विजयी भवेत् । यः करे द्वायेष्वित्य स पुमान् श्रियमाप्नुयात् ॥१८॥  
 स्थित्वा तु बन्धने यस्तु जपं कारयति द्विजैः । नक्षत्रान्भुक्तिमाप्नोति विगदान् तथैव च ॥१९॥

ईश्वर उवाच

मान्निदोभ्रणारविंदयुगलं कौपीनमौजीधरं कांचिश्रंणिधरं दृढलवमनं यज्ञोपवीताजिनम् ।  
 हस्ताभ्यां धृतपुष्पकं च त्रिलपद्मागवलिं कुण्डलं यज्जालं विक्षिप्तं प्रमन्नवदनं श्रीवायुपुत्रं भजे । २०॥  
 यो वारानिधिमन्त्रपञ्चलापिवीर्यलंघ्य प्रतापान्वितो वैदेहीघनशोकनापहरणो त्रैकुण्ठभक्तप्रियः ।  
 अधाद्यजित्वाभ्रसेश्वरमहादर्पापहारी त्वमे मोऽयं वानरपुङ्गवोऽवतु सदा योऽस्मान्ममीताम्भजः ॥२१॥

वज्रांगं पिंगनेत्रं कनकमयलसकुण्डलाकांतगण्डं  
 दम्भोलिस्तंभसारं प्रहरणमुदरार्धभुजगभोविनायम् ।  
 उग्रशलागूलसप्तप्रचलचलधरं भीममूर्तिं करीन्द्रं  
 प्यायेत् रामचन्द्रं प्रवरदृढकरं सच्चसारं प्रमन्नम् ॥२२॥  
 वज्रांगं पिंगनेत्रं कनकमयलसकुण्डलं शोभनीयं  
 सर्वापिदयदिनाथं करतलविधृतं पूर्णकुम्भं दृढं वा ।  
 भक्तानामिष्टकारं विदधति च सदा सुप्रमन्नं द्वागश्च  
 त्रैलोक्यप्राप्तुकामं सकलभूतिं यत्नं राघवदत्तं नमामि ॥२३॥

श्री मनुष्य रविवारको दोपलके नीचे बैठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, (उसे) बचल लक्ष्मी प्राप्त होती है और वह विजयी होता है । १५ । बुद्धि, बल, पण, धैर्य निर्भयता, अरोगता, दृढ़ता और वाक्पुङ्गव, ये सब हनुमान्जीके रथानसे प्राप्त हो सकते हैं ॥ १६ ॥ जो सब वैरियोंको मारनेवाले और सब संपत्तियोंके निधान है, जो शोकका क्षयरण करनेमें अतिशय कुशल है, ये उन रणदारुण हनुमान्जीको प्रणाम करता है ॥ १७ ॥ श्री मनुष्य लिखकर इस कवचका पूजन करता है, वह सत्र विजयी होता है और जो अपनी मुखाग्नियोंमें हुयेला बांधे रहता है, उसे लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ यदि प्रणी कितो तरह बन्धनमें पड़ गया हो, वह बाह्यणों द्वारा इस कवचका जप कराये तो तरुण भवनमें मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥ शिवजी बाल सुय और कद्रमाक समान आभासम्पन्न जिनके चरणकमल हैं, जो कौपीन और मौजी धारण किये हैं, जो कांची श्रेणियों को पहने हैं, वस्त्र धारण किये हैं यज्ञोपवीत तथा मुण्डकमें अलग मुनीमिष्ट रहा है, जो हाथमें पुस्तक लिखे हैं और धमकता हुआ हार जिनके वक्षःफलपर मुनीमिष्ट हो रहा है ऐसे प्रसन्न मूलवाले वायुपुत्रको मैं प्रणाम करता हूँ । जो समुद्रको एक सामारण लहंगा क्षयकर लीध गये, जिन्होंने सोताके महाजीक और तापको हार लिखा, विष्णु भगवान्को अलिके प्रेमी, संग्राममें अक्षरकुमार आदि उद्दंड राक्षसोंके दर्पको दूर करनेवाले वानर पुंगव तथा वायुके पुत्र हनुमान् हमारी रक्षा करें । जिनका वज्रके समान शरीर है, पोलै-रैलो आँखें हैं, सुवर्णमय कुंडलोंसे जिनका कपोलभाग भरा हुआ है, नजरतोंके समान जिनका भजनंत शरीर है, राक्षसका मारनेके लिए जिन्हें कुरुरक्ष णक्ष मिल गया था, उन पुंछ ऊपर उठाये सात पर्वतोंको लखे और भयङ्कर रूपवारी हनुमान्जीका प्रणाम करना चाहिये । साथ ही तब आरामचन्द्रजीका भी स्नान करना उचित है, जो सब सत्त्वोंके सार है और सदा प्रसन्न रहते हैं । २०-२२ ॥ वज्रके समान कठिन जिनकी देह है मुनर्जके कुंडल जिनके कानोंमें गड़े हैं, जो सब माधूयणोंके स्वामी हैं, जिन्होंने अपनी हुयेलीसे पूर्णकुम्भको धारण कर रक्खा है, जो मत्तोंको कामना पूर्ण करते हैं, जो सर्वदा प्रसन्न रहते हैं और हीनों लोकोंकी रक्षा करनेका कामना रखते हैं, समस्त मुचन

कामे करे वैरिभिर्दं वहांतं सैलं परं मृदुलहाटकंम् ।  
 दधानमादृष्टाय सुपर्णवर्णं भजे ज्वलन्कुंडलमांजनेयम् ॥२४॥  
 पथरागमणिकुंडलन्विता पारुषीकृष्णकपोलमंडलम् ।  
 दिव्यदेहकदलीचनीतरे भावयामि पद्ममानन्दनम् ॥२५॥  
 यत्र यत्र रघुनाथकर्तारं तत्र तत्र कृतमस्तकानतिम् ।  
 काप्सरारिव निष्पूर्णलोचनं मारुतिं नमस्त राक्षसानिकम् ॥२६॥  
 मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां नमिषुम् ।  
 नाताम्रजं धामरघुधामुत्तमं श्रीगामदूर्तं शिरसा नमामि ॥२७॥

विवादे दिव्यकले च घृते रात्रकुले रणे । दक्षिणं पटेद्रात्री मितहागे जितेन्द्रियः ॥२८॥  
 विजयं लभते लोके मानवेषु नरेषु च । भूते प्रेते महादुर्गेऽप्यप्ये मागर्मप्लवे ॥२९॥  
 सिंहव्याघ्रधये चंघ्रे शरशस्त्रास्त्रपानने । भृंग्यलार्धवने चैव कामागृहयिष्वधने ॥३०॥  
 क्रोषे स्तम्भे बाहिवक्त्रे भेदे घोरे मुद्राकणे । शोके मदारणे चैव भ्रमग्रहनिचक्षणम् ॥३१॥  
 मर्ददा तु पटेन्नित्यं जयमाप्नोति निश्चितम् । भूर्जे वा वयने रत्ने श्रीधरे वा तान्त्रपत्रके ॥३२॥  
 त्रिशंभिना वा मध्या वा विलिख्य धारयेन्नरः । पञ्चमत्रिलोहैर्वा गोपितः सर्वतः शुभम् ॥३३॥  
 करे कट्यां बाहुभूले कंठे शिरसि धारितम् । सर्वान्कामनवाप्नोति सत्यं श्रीरामभाषितम् ॥३४॥  
 अपराजितं नमस्तेऽस्तु नमस्ते रामर्तुजित । प्रस्थानं च करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥३५॥  
 ह्युक्त्वा यो वजेदुष्मां देवं तीर्थान्तरं गणम् । आगमिष्याति श्रीं सः क्षेमहृयो गृहं पुनः ॥३६॥

इति वदति विशेषाद्राघवं राक्षसेन्द्रः प्रमुदिनवरचितो रावणस्यानुजो हि ।

रघुवरपदवर्णं वदयामास भूयः कुलमहितकुतार्थः सुर्मद मन्यमानः ॥३७॥

भुवनत्र विराजमान रत्न रामदूत हनुमान्जीकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥ जो वीरों हाथमें शत्रुओंको मारने  
 वाला परमंत लिये हैं, जिनके कण्ठमें भृङ्गलालाका हार और देहोपमान मृगवर्णका कुण्डल बानोंमें पड़ा हुआ है,  
 मैं ऐसे हनुमान्जीकी प्रणाम करता हूँ ॥ २४ ॥ कुण्डलमें जड़ हुए पुष्कराक्ष मणिकी कान्तिसे जिनका कपोल  
 पाटल वर्णका हो गया है, केलेके वनमें खड़े और दिव्य रूप धारण किये हनुमान्जीका मैं प्यार करता हूँ  
 ॥ २५ ॥ प्रह्लादजी रामकी कथा सुनी है, वहाँ शायी भका तथा हाथ जातकर जो खड़े रहने हैं और बाँसूमें  
 बिनके नेत्र धरे रहने हैं, राजमाका अन्त कामेवाक उन हनुमान्जीकी प्रणाम करो ॥ २६ ॥ मनके समान  
 जिनका वेग है जिन्होंने इन्द्रियोंकी जीत लियी है और जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ है, ऐसे वायुपुत्र एवं वानरधूयके  
 मुलिया श्रीरामदूतकी मैं भरतक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥ किसीसे बहम करते समय, बुद्धि भेलते  
 समय कण्ठ लाल सुन्दर, राजकुलम, मयाममें और रात्रिम मितहाार हाकर त्रिनन्दिनतापूर्वक दस बार जो  
 हस्त करचका पाठ करता है, वह सब मनुष्यों और जन्मोपर विजय प्राप्त कर लेता है । भूत, प्रेत महादुर्ग,  
 अरुण्य और सागरमें बड़े जानवर, सिंह व्याघ्र आदिका घर आ जानेर, बाण तथा अस्त्र जन्मके तिरनेवर,  
 जजोरेसे बँध जानेवर, कारागृहमें बन्द हो जानेवर जिसके कृपित होनेपर, अग्निकी जलमें पड़ जानेवर  
 किसी दारुण क्षयमें, शोकके भयमें, महायंगलमें और महागलसका निवारण करते समय इन सब समयोंमें  
 इसका पाठ करना चाहिए ऐसा करनेसे उसकी विजय होती है । भूर्जवन्धर, लाल कण्ठवर, रोगनी बरुन्धर,  
 तालपत्रवर ॥ २८-३२ ॥ त्रिशंभु अपना रयाहीसे लिय एवं पञ्च, सप्त तथा त्रिलोहसे बनी ताबीजमें  
 रत्नकर हाथ, कमर, भुजा, कण्ठ या अस्तककर दो मनुष्य इसे बाँधता है, उसकी सब कामनाये  
 पूर्ण होती हैं । यह रामका कहा बचन कभी झूठ नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कभी भी पराजित नहीं  
 होनेवाले और रामसे पूजित है हनुमान्जी । मैं आजकी प्रणाम करता हूँ । मैं जिस कामसे बाहर जा

तं वेदशास्त्रपरिनिष्ठितशुद्धबुद्धिं धर्मप्रदं सुगुणीन्द्रजुतं कर्णोद्गमम् ।

कुण्डलवचं कनकपिंगलटाकलापं व्यासं नमामि शिरसा तिलकं मुनीनाम् ॥३८॥

य इदं प्रातरुत्थाय पठेत् कवचं सदा । आपुराणैर्मयमंजानैस्तस्य स्तव्यः स्तवो भवेत् ॥३९॥

एवं गिरीन्द्रजे श्रीमद्भुक्तकवचं शुभम् । स्वया पृष्टं मया प्रीत्या विस्तरादिनिवेदितम् ॥४०॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिवमुखाच्छ्रुत्वा पार्वती कवचं शुभम् । हनुमन्तः सदा भक्त्या पथाङ्ग वन्दनाः सदा ॥४१॥

एवं शिष्य त्वयाऽप्यत्र यथा पृष्ट तथा मया हनुमत्कवचं चेद् तथाये विनिवेदितम् ॥४२॥

इदं पूर्वं पठित्वा तु रामस्य कवचं ततः । पठनीयं नैर्मलक्या नैकमेव पठेत्कदा ॥४३॥

हनुमत्कवचं चात्र श्रीरामकवचं विना । ये पठन्ति नराध्यात्र पठनं तद्गृहा भवेत् ॥४४॥

तस्मात्सर्वैः पठनीयं सर्वदा कवचद्वयम् । रामस्य ज्ञानपुत्रस्य मद्भक्तेश्च विशेषतः ॥४५॥

इति हनुमत्कवचम्

अथ रामकवचम्

इदानीं रामकवचं शृणु शिष्य वदामि ते । परं गुह्यं पवित्रं च सर्वगोष्ठितपूरकम् ॥४६॥

सुतीक्ष्णस्त्वैकदाऽमर्शितं प्रोवाच रहसि स्थितम् ।

भगवन् परमानन्द तत्त्वज्ञ कल्पानिधे । गुणे त्व मां वदस्वद्य स्तोत्रं रामस्य पावनम् ॥४७॥

आजानुवाहूमर्षिर्ददत्तापनायमाजन्मशुद्धरमहापदसुप्रभादम् ।

श्यामं गृहीतशङ्खापमुदाररूपं तम सराममभिराममनुष्मसामि ॥४८॥

शृणु वक्ष्याम्यहं सर्वं सुतीक्ष्ण मुनिमत्तम । श्रीरामकवचं पुण्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥४९॥

रहा हूँ, यह काम पूरा हो जाय ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर जा जिसो दूसरे गाँवको जाता है, वह कुण्डलपूर्वक अपना काम पूरा करके शीघ्र लौटता है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीके कहनेपर रावणके भ्राता विभीषण परम प्रसन्न हुए । उन्होंने रामके चरणोत्तरी वन्दना की और मर्षास्वादा भगनेका घन्य माना ॥ ३७ ॥ समस्त वेदों और शास्त्रोंमें जिनकी बुद्धि प्रविष्ट है, देवता तथा मुनिगण जिनकी वन्दना करते हैं, ऐसे शुभदाता हनुमान्जी और जिनके शरीरकी त्वचा कृष्णवर्णकी है, सुवर्णके समान पालो जिनको जटा है, ऐसे मुनियोंके अपनी श्रोत्र्यासनीको भी मस्तक झुकाकर प्रणाम करना है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य सच्चे उठकर सदा इस कवचका पाठ करता है, उसे आपु आरोग्य और सन्तान आदि सब वस्तुय प्राप्त हो जाती है और सब लोग उसकी स्तुति करने लग जाते हैं ॥ ३९ ॥ हे गिरीन्द्र ! जैसा तुमने प्रश्न किया, उसके अनुसार मैंने तुम्हें हनुमत्कवच बतलाया ॥ ४० ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! इस तरह शिवजीके मुखसे हनुमत्कवच सुनकर पार्वतीजीन उसी दिनसे तन्मयताके साथ उसका पाठ आरम्भ कर दिया ॥ ४१ ॥ जैसे तुमने पूछा, मैंने भी तुमका हनुमत्कवच कह सुनाया ॥ ४२ ॥ पहले इसका पाठ करके ही भक्तिपूर्वक श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिये । अकेले किसी भी कवचका पाठ न करे ॥ ४३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका पाठ किये बिना रामकवचका पाठ करेंगे, उनका वह पाठ व्यर्थ हो आयगा ॥ ४४ ॥ इस लिए सब लोगोंको चाहिए कि सदा दोनों कवचोंका पाठ किया करें । रामके चक्र तो इस बातपर विशेष ध्यान रख ॥ ४५ ॥ हे शिष्य ! अब तुमकी रामकवच बतलाता हूँ । यह भी परम श्रेष्ठ, परम पवित्र और सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला कवच है ॥ ४६ ॥ एक बार सुतीक्ष्णने अपने गुरु भगवन्को एकात्ममे देखकर कहा है भगवन् ! हे परमानन्ददाता, हे तत्त्वज्ञ ! हे कल्पानिधे ! आज हम श्रीरामचन्द्रजीका कोई पुनीत स्तोत्र सुनाइए ॥ ४७ ॥ भगवन्ने कहा कि आपुपर्यन्त जिनकी चाह है, कमलदलके समान जिनके विशाल नम्र हैं, जन्मसे ही जिनका प्रसन्नमुख है, जिन्होंने धनुष और बाणको धारण कर रक्खा है, जिनका उदार हृदय है, ऐसे अभिराम रामका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ४८ ॥ हे मुनिसन्त

अद्वैतानन्दचैतन्यगुह्यमर्चकलक्षणः । बहिरतः सुनीक्ष्णाय रामचन्द्रः प्रकाशते ॥५०॥  
 सत्त्वविषादिनो निरय रमते चित्सुखात्मनि । इति रामपदेनामी परमशक्तिमिधीयते ॥५१॥  
 जय रामेति यन्मात्रं कीर्तयन्नभिनययेत् । सर्वपापैर्दिनिर्मुक्तो याति रिपुः परं पदम् ॥५२॥  
 श्रीरामेति परं मन्त्रं तदेव परमं पदम् ।

तदेव तावत् विद्धि जन्ममृत्युमथापहम् । श्रीरामेति वदन् ब्रह्ममावसाप्नोन्ममंशयम् ॥५३॥  
 अस्य श्रीरामकरचक्षुः प्रगल्भ्यश्रुतिः मनुष्यकन्दः पातालक्ष्मणोपेतः श्रीरामचन्द्रो देवता  
 श्रीरामचन्द्रप्रसादमिदं श्रुत्वा जपे विनियोगः ।

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वाभीष्टफलप्रदम् । नीलजाम्बवकाश्च विद्युदण्डाश्चराचूतम् ॥५४॥  
 कोमलांग विशालाक्षं ध्रुवानमनेगुन्दरम् । सीतामौमित्रिमहितं जटामुकुटधारिणम् ॥५५॥  
 सासितूष्णधनुर्वाणपाणिं दानवमर्दनम् । सदा चोरभये राजभये शत्रुभये तथा ॥५६॥  
 प्यास्वा रघुरतिं युद्धे कालानलमपममम् । चीरकृष्णाक्षिनधरं भस्मोद्गन्तविग्रहम् ॥५७॥  
 आकर्णाकुष्ठमश्वकोदण्डभुजमडितम् । रणे गिरून् शत्रुणादीर्घास्त्रमार्गणवृष्टिभिः ॥५८॥  
 मरुतं महावारमुग्रमेद्रगन्धिनम् । लक्ष्मणार्यमहं वीरैर्घृतं हनुमदादिभिः ॥५९॥  
 सुग्रीवार्चमंदावीरैः कैलशैर्भक्तैर्घृतैः । वैशान्करालहृकारं भृशं शत्रुघ्नद्वारवहारैः ॥६०॥  
 नदद्भिः परिवादद्भिः समरे रावण प्रति । धीराम शत्रुघ्नपान्थे हन मर्दय स्वादय ॥६१॥  
 भूतप्रेतपिशाचादीन् श्रीरामास्तु विनाशय । एवं ध्यात्वा जपेत्तामकरचं सिद्धिदायकम् ॥६२॥  
 सुतीक्ष्णं पञ्चकवचं शृणु वक्ष्याम्यनुत्तमम् । श्रीरामः पातु मे पूर्ध्वं पूर्वं च पृथ्वंश्चतः ॥६३॥  
 दक्षिणे मे रघुररः पश्चिमे पातु पावनः । उत्तरे मे रघुपदिर्भासं दशरथात्मजः ॥६४॥

सुनीक्षण ! सुनिष्ठ, मैं आज सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाला रामकरचक्षुः बतलाऊँगा ॥ ५१ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! इस संसारके बाहर-भीतर सब स्थानोंमें मैं अद्वैत, आनन्दस्वरूप, गुह्य और सत्तागुणमय रामचन्द्रजी प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ५० ॥ परमात्माके तत्त्वकी जाननेकी इच्छा रखनवाले लोग जिसके चित्सुखरम आनन्द छूटते हैं, वे ही परब्रह्म 'राम' इस नामसे पुकारे जाते हैं ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य 'जय राम' इस मंत्रका कीर्तन करता है, वह सब पापास दूर कर विष्णुप्राणवातुके परम पदकी प्राप्ति होता है । ५२ ॥ श्रीराम यह सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है, यह परमपद है, यह मृत्युभय आदिको दूर कर देता है और मैं 'राम' कहता हुआ प्राणी परब्रह्मकी प्राप्ति होता है । इसमें कोई संशय नहीं है । विनयागके बाद सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला धरम बतला रहा है । जिनका नील मंत्रक समान प्रणाम गरीब है, जो बिजलीके समान चमकने हुए पीने चमकते धारण किये हुए हैं, जिनके कोमल अङ्ग हैं, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, जो अतिशय मृदुर और युवा हैं, जिनके माथे साना और लक्ष्मण विद्यमान हैं, जो जटामुकुट धारण किये हैं, तलवार, तरकस, धनुष-राण हाथमें लिये हैं और जो दानवोंका संहार करते हैं । मनुष्यका चाहिए कि राजभय, चोरभय और शत्रुभयका भय आ जाय तो कालानलके समान क्रुद्ध रामचन्द्रजीका ध्यान करे । जो पीताम्बर तथा कृष्णमृगचर्म धारण किये हैं और अलिसे जिनका शरीर धूसरित हो रहा है ॥ ५३-५७ ॥ कानसक जिन्होंने धनुषकी डारी खींच रखी है मयागभूमिमें रावण आदि राक्षसोंपर जो तोड़ग बाणवृष्टि कर रहे हैं ॥ ५८ ॥ इन्द्रके रथपर बैठे जो महावीर शत्रुघ्न संहार करनेमें लगे हुए हैं और जो लक्ष्मण हनुमान्जी आदि वीरोंसे घिर हुए हैं ॥ ५९ ॥ जिनके साथ मृगचर्म आदि मोड़ा हाथमें पाषाणसङ्घ भीर बड़े-बड़े वृक्ष लिये बाणोंका संहार कर रहे हैं । ऐसे हैं राम ! इसका भारो—इसको जानाओ और भूल प्रेत, पिशाच आदिको नष्ट कर दो । इस प्रकार रामचन्द्रजीका ध्यान करके सिद्धिदायक रामकरचक्षुःका जप करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ भगवत्पत्नी कहते हैं कि हे सुतीक्ष्ण ! मैं अक्षिपय उत्तम पञ्चकवच कहता हूँ । श्रीराम मेरे अस्त्रक और पूरु दिशाओं रक्षा करें । दक्षिणकी ओर रघुवर तथा



भ्रुवोर्दृषादलदवायस्तयोर्मध्ये जनार्दनः । ओत्र मे पातु राजेशो दृष्टो राजीवलोचनः ॥६५॥  
 प्राण मे पातु राजपिंगेद मे जानकीपतिः । कर्णप्रले खरध्वंसो मार्ज मे रघुवल्लभः ॥६६॥  
 जिह्वा मे वाक्पतिः पातु दंतवन्त्रयो रघून्ममः । ओष्ठी श्रीरामचन्द्रो मे मुखं पातु परात्परः ॥६७॥  
 कंठ पातु जगद्गुरुः स्कन्धौ मे रावणांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदय हरिः ॥६८॥  
 सर्वाण्यंगुलिपर्वाणि दस्तौ मे राक्षसांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदय हरिः ॥६९॥  
 स्तनौ सीतापतिः पातु पार्श्वौ मे जगदीश्वरः । मध्य मे पातु लक्ष्मीशो नाभि मे रघुनायकः ॥७०॥  
 कौमन्धेयः कटि पातु पृष्ठं दुर्गतिनाशनः । गुह्यं पातु हर्षाकेशः सरिथनी सन्धिविक्रमः ॥७१॥  
 ऊरु शार्ङ्गधरः पातु बाहुनी हनुमन्निग्रहः । जघ्ने पातु जगद्गुरुपी पादौ मे तटिकांतकः ॥७२॥  
 सर्वाणि पातु मे विष्णुः सर्वमधीननामयः । ज्ञानेन्द्रियाणि प्राणार्दीन्पातु मे मधुसूदनः ॥७३॥  
 पातु श्रीरामभद्रो मे शब्दादीन्विषयानपि । द्विषदादीनि भूतानि मत्सर्वधानि यानि च ॥७४॥  
 जामदग्न्यमहादर्पदहनः पातु तानि मे । सौर्यविज्रपूर्वजः पातु वामादीनीन्द्रियाणि च ॥७५॥  
 रोमांकुशण्यशेर्षाण पातु सुप्रोवराज्यदः । बाह्मनोबुद्धयहकारं ह्योनाहानकृतानि च ॥७६॥  
 जन्मान्तरे कृतानीह पापानि विविधानि च । तानि सर्वाणि दम्बाश्च हर्षकेदहसुदनः ॥७७॥  
 पातु मां सर्वतो रामः शार्ङ्गनाथधरः सदा । इति श्रीरामचन्द्रस्य कवच वचनमिति ॥७८॥  
 गुह्याद्गुह्यतम दिव्य सुतोक्ष्ण मुनिमत्तम यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा समाहितः ॥७९॥  
 स याति परमं स्थानं रामचन्द्रप्रसादतः । महापातकपृक्तो वा गोघ्नो वा भ्रूणहा तथा ॥८०॥  
 श्रीरामचन्द्रकवचपठनाच्छुद्धिमाप्नुयात् । मयहन्यादिभिः पार्ष्ण्यैर्न्यते नात्र संशयः ॥८१॥

पश्चिमकी पावन ( पवनपुत्र ) रक्षा कर । ऊपरकी और उपरति और लडाटकी दणरयात्मज रक्षा करें । दूरदिकके समान ज्योत जनार्दन श्रीशिवके मध्यभागकी रक्षा कर । कानोको राजेन्द्र मालाकी राजीवलोचन ॥ ६३-६५ ॥ नाककी राजपि, मंडस्थलकी जानक पति, कर्णभूमकी खरध्वंस और रघुवल्लभ ललाटकी रक्षा करें ॥ ६६ ॥ उमो प्रकार जिह्वाकी रक्षा वाक्पति, दन्तवन्त्रेका रघुन्मम दाते हुंठा और मुखकी रक्षा परात्पर भगवान् करें ॥ ६७ ॥ कंठकी जगद्गुरु दोनों कन्धा रावणांतक और मेरी दोनों भूमाओंकी रक्षा शालिको मारनेवाले धनुर्बाणधारी राम करें ॥ ६८ ॥ मेरी सब उंगलियों और दोनों हाथोंका रक्षा राजसामंतक, वक्षस्थलकी काकुत्स्थ और हरिभागवान् मेरे हृदयका रक्षा कर ॥ ६९ ॥ दाया स्तनाका सीतापति, पारवमायकी जगदीश्वर, मध्यभागकी स्कन्धपति और नाभिकी औरगुनराज रक्षा करें ॥ ७० ॥ कयरकी कौमन्धेय, पीठकी दुर्गतिनाशन, गुप्तभागकी हरीवश और सन्धिविग्रह भगवान् हृष्टियोंकी रक्षा कर ॥ ७१ ॥ बाहूंचर भगवान् दोनों घुटनोंकी, हनुमानजीके प्रिय दोनों आनुभागका, जगद्गुरु दायाँ बायाँ और ताड़काका नाश करनेवाले मतवान् मर पेशकी रक्षा कर ॥ ७२ ॥ विष्णुभगवान् मेरे सब अङ्गोंकी, अनामय मेरे शरीरकी, सन्धियोंकी और मधुसूदन भगवान् मेरे प्राणादि तथा ज्ञानेन्द्रियोंकी रक्षा कर ॥ ७३ ॥ श्रीरामभद्र मेरे शब्दादि विषयोंकी रक्षा कर । मुखसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने दो ईरक बन्तु ( मनुष्य ) हों, उनको रक्षा महान् दर्पको नष्ट करनेवाले परशुनाथ भगवान् करें । सौर्यविज्रपूर्वज ( राम ) मेरी बाक् आदि इन्द्रियोंकी रक्षा कर ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ सुराजकी राख देनेवाले श्रीरामचन्द्रको मेरे सारे रोगरूपोंकी रक्षा करे । मन, बुद्धि, अहङ्कार, माद एव अज्ञानसे किय हुए इस जन्म तथा जन्मन्तरके पापोंका जलाकर घट्ट करत हुए शिवजीका धनुष छोड़नेवाले धनुर्बाणधारी धाराम मेरी सब और रक्ष कर । हे मुनिस्तम मुनिश्रेष्ठ । यह वज्रसदृश रामकवच गुरुसे भी गूढ़ है । जो प्राणी इसे पढ़ता, सुनता या वृत्तियोंकी सुनता है, वह रामचन्द्रकी कृपासे परम भगवत्की प्राप्ति करता है । वह चाहे महापातकी, गोघाती वा भ्रूणहत्याकारी ही क्यों न हो ॥ ७६-८० ॥ इस श्रीरामकवचका पाठ करनेसे प्राणा शुद्ध होकर ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे भी मुक्त हो जाता है । इसमें कोई संशय नहीं है ।

भोः सुतीक्ष्ण यथा पृष्टं त्वया मम पुरा शुभम् । तथा श्रीरामकवचं मया ते विनिवेदितम् ॥८२॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया पृष्टं श्रीरामकवचं वरम् । हनुमत्कवचं चापि तथा ते विनिवेदितम् ॥८३॥

वायुपुत्रस्य रामस्य कवचेऽत्र न रैर्भुवि । विना सीताकवचेन पठनीयं न वै कदा ॥८४॥

आदौ पठित्वा कवचं वायुपुत्रस्य धीमताः । पठनीयं ततः सीताकवचं सौख्यवर्द्धनम् ॥८५॥

ततः श्रीरामकवचं पठनीयं महत्तमम् । एवमेव हि मन्वाश्च जपनीयास्तथाः क्रमात् ॥८६॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि सीतायाः कवचं शुभम् । तथान्यान्यपि वैदेह्याः स्तोत्रादीनि वदस्व तत् ॥८६॥

सीतायास्तोपद् भूम्यां तत्सर्वं विस्तरेण च ।

श्रीमहादेव उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा रामदामोऽब्रवीद्वचः ॥८८॥

इति श्रीमदानन्दरामायणं वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे कवचद्वयवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

## चतुर्दशः सर्गः

( सीताकवच आदिका निरूपण )

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि सीतायाः कवचं शुभम् । पुरा प्रोक्तं सुतीक्ष्णाय पृच्छते कुंभजन्मना ॥ १ ॥

एकदा कुंभजन्मान् सुतीक्ष्णः प्राह वै मुनिः । रहः स्थितं गुरु दृष्ट्वा प्रणम्य भक्तिपूर्वकम् । २ ।

सुतीक्ष्ण उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि सीतायाः प्रीतिदानि हि ।

यानि स्तोत्राणि कथाणि तानि त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

अगस्त्यकाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वन्तः सावधानमनाः शृणु । आदौ वक्ष्याम्यहं त्वय्य सीतायाः कवचं शुभम् ॥ ४ ॥

॥ ८१ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! जैसा तुमने मुझसे पूछा था, मैं श्रीरामकवच सुन्ने सुना दिया । ८२ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! तुमने हमसे श्रीरामकवच और हनुमत्कवच पूछा था, तो मैंने कह सुनाया ॥ ८३ ॥ रामकवच तथा हनुमत्कवचका पाठ सीताकवचके बिना न करना चाहिए ॥ ८४ ॥ पहले बुद्धिमान् वायुपुत्रके कवचका पाठ करके मुझ बढ़नेवाले सीताकवचका पाठ करना चाहिए ॥ ८५ ॥ उसके बाद सर्वश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रकवचका पाठ करना चाहिए । इस तरह इन तीनों कवचोंका एक साथ पाठ करे । ८६ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं सीताकवच तथा सीताके अन्यान्य स्तोत्रोंको सुनना चाहता हूँ, सो आप मुझसे कहिए ॥ ८७ ॥ जिसे सीताजी प्रसन्न हो सकें, वह सब स्तुतियाँ विस्तारपूर्वक कहें । श्रीमहादेवजीने कहा कि इस प्रकार विष्णुदासकी बात सुनकर रामदास बोले । ८८ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः ।

श्रीरामदास कहते लगे—हे शिष्य ! अब मैं सीताकवच बतलाता हूँ, जिसे अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णसे कहा था ॥ १ ॥ एक बार जब कि अगस्त्यजी एकान्तमें बैठे थे, सुतीक्ष्णने आकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा—हे गुरो ! मैं सीताजीको प्रसन्न करनेवाले स्तोत्र और कवच सुनना चाहता हूँ । आप कृपा करने

या सताऽर्चनितश्च ॥ ५४ ॥ अत्राद्येन संगोदना पद्माञ्जनुरधेः सुता नन्दगता या मातुर्नृजोद्धवा ।  
या रत्ने लयम गता उन्न नर्धं ता उन्न र गत उन्न या ना मृगच्छवता शशिमुखी मां पानु रामप्रिया ॥ ५५ ॥

अस्य श्रीर्षावकाशकः । अत्राद्येन संगोदना पद्माञ्जनुरधेः । श्रीपाता देवता । अनुष्टुप्छन्दः । रामेति  
शब्दम् । जनकनेत्रेति शक्तिः । अत्र ननेनेति शक्तिः । पद्मञ्जनुरधेः । मातुर्नृजोद्धवा । कवचम् ।  
मूलकासुरघातिर्निति मन्त्रः । श्रीर्षावकाशकः । मन्त्रकामरासिद्धयर्थं जपे विनियोगः ।  
अथ जंगलिन्यामः । ॐ श्रीं श्रीं श्रीं अमुष्माभ्यां नमः । ॐ श्रीं रामाय तज्जनीभ्यां नमः । ॐ श्रीं  
जनकजये मध्वमाभ्यां नमः । ॐ श्रीं अत्रनेत्रये अनामिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीं पद्माञ्जुनायै  
कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीं मातुर्नृजोद्धवायै कवचमाभ्यां नमः । ॐ श्रीं हृदयाद्यगन्धायः कार्यः ।

अथ ध्यानम्

सीता कमलपत्राभी विश्वपुञ्जमममाम् । द्विभुजा मुहुषासंगी पीनकीशेयवामिनीम् ॥ ५६ ॥  
मिहामुने रामचन्द्रशमभगमिनीं वरम् । गताञ्जुनसंयुक्तां कुण्डलद्वयधारिणीम् ॥ ५७ ॥  
शृङ्गारकणकेन्दुशतान् पुष्पाभिराम । मीमते रत्नचन्द्राभ्यां निटिले रत्नकेन च ॥ ५८ ॥  
मयगन्धनेनाप प्राणदातरोमिता शृणुम् । दामिद्र्यं कान्तल दिव्यं कृत्स्नं कुसुमनि च ॥ ५९ ॥  
मिश्रनी सुगमिद्रव्य सुगन्धम्वेहममम् । मिमन्ततां मीमन्तं मदाङ्कुशुम् करे ॥ ६० ॥  
मिश्रनीमपरे हस्ते मातुर्नृजमनुवमम् । मयहासां च विचोर्ता चन्द्रादनलोचनाम् ॥ ६१ ॥  
कलानाथममानाभ्यां कलकण्ठमनोगमाम् । मातुर्नृजोद्धवां देशी पद्माञ्जुदिनां शुभाम् ॥ ६२ ॥  
मैथिली रामदयितां दाम्पिणीं पतिव्रतिनाम् । एव ध्यात्वा जनकजी हेमकुम्भपरोधगाम् ॥ ६३ ॥

सीतायाः कवचं दिव्यं पटनीयं शुभाङ्कम् ॥ १४ ॥

श्रीमतीनां पूर्वतः पानु दक्षिणेऽवतु जानकी । प्रताप्या पानु वंदेही पानुर्दीन्यां च मैथिली ॥ १५ ॥  
अथः पानु मातुर्नृगी ऊर्ध्वं पद्माञ्जुऽवतु मध्येऽवनिमुना पानु मध्वतः पानु मां रमा ॥ १६ ॥

कहिए ॥ १५ ॥ ३ । अगस्त्यजान कहा—इ वाम नृपम बहुत अच्छ प्रश्न किया है, सावधान होकर सुनो ।  
पहले मैं सीताजीका कवच सुनाता हूँ ॥ १४ ॥ जो सीता पूज्याये उन्नत हुई और मिथिल नेत्रोंके द्वारा पाली-  
पासी गयीं, जो मातुर्नृजसे उन्नत होकर पद्माञ्जु नामक राजाकी पुत्री कही गयीं, जो समुद्रके रत्नोंमें लीज  
हुई और बार बार लहरी गयीं, ऐसी चन्द्रादनी, मृगनामा और रमणी प्रेयसी सीता मेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥  
“अस्य श्री” से लेकर “एवं हृदयच्छास्त्रात्” यह तक विनिरोग तथा अङ्गन्यासका विधान बतलाया गया  
है । इसके बाद ध्यान है । जिसका अर्थ इस प्रकार जानना चाहिए—कमलकी पञ्चद्विके समान जिनके नेत्र  
हैं, विश्वपुञ्जके समान जिनका दाहिना है, जनक की पुत्रीये है और जो पताम्बर पहन हैं । जो मिहामुने  
रामके वामभागमें बसे हैं, कानोंमें कुण्डल पहन हैं शृणुमः शृङ्गामणि भुजाओंमें केयूर तथा कमरमें करधनी  
पहन हैं, जिनके समस्तभागमें सुगन्धम्वेहममम् सुगन्धम्वेहममम् सुगन्धम्वेहममम् सुगन्धम्वेहममम् सुगन्धम्वेहममम्  
हुआ है नाकमें मातुर्नृजके आकारका सुन्दर आभूषण पड है ॥ ६-९ ॥ हरिजा, कज्जल, कुंकुम, विविध प्रकारके  
फूल तथा तरह तरहके सुगन्धित द्रव्य और इन आदि वस्तुओं पर हैं, जिनका मुखकाता हुआ मुखमण्डल है,  
पीर वर्ण है, जो एक हाथमें मन्दारक फूल रखे है, दूसरा हाथमें उत्तम मातुर्नृज विराजमान है, जिनकी मृदु  
मुखान है, विश्वके समान आत्मा है, मुँहके लेशोंके समान जिनके नेत्र हैं, चन्द्रमाके समान मुख है, कवच  
के समान जिनकी माटा साणी है, जो मातुर्नृज (विचोर्ता मीमन्त) से उत्पन्न होनेवाली पद्माञ्जु नृपतिकी  
पुत्री और रामकी भविनी है, जिन्हें दक्षिणी पक्ष अन्न रहो है, सुवर्णकलशके समान जिनके स्तन हैं, ऐसी  
सीताका ध्यान करके इस दिव्य सीताकवचका पाठ करना चाहिए ॥ १०-१४ ॥ पूर्वकी ओर सीता मेरी रक्षा  
करें, दक्षिणकी तरफ जानकी रक्षा करें, पश्चिमकी वंदेही रक्षा करें, उत्तरकी मैथिली रक्षा करें ॥ १५ ॥ निबन्ध

स्मितानना शिरः पातु पातु सार्धं नृपान्मजा । दद्यात्तु भ्रगोर्ध्वे सगन्धौ नयनेऽवतु ॥१७॥  
 कपोले कर्णमूले च पातु श्रीरामवल्लभा । नागाग्र सार्वभौमो पातु पातु यवर्धं तु मञ्जरी ॥१८॥  
 रामसौ पातु रक्षाणी पातु जिह्वां पतिव्रता । दानं पातु भगमाया विवृक्त कण्ठप्रसा ॥१९॥  
 पातु कंठ सीम्परुषा मूढधी पातु मुखाचिता । भुजौ पातु वरगोहा कर्ण कर्णमण्डिता ॥२०॥  
 मस्तकं रक्तमस्ता पातु कुक्षी पातु लघूदरा । यक्ष पातु गमगन्ती यक्ष्य गवत्सोदिनी ॥२१॥  
 पृष्ठरेखे रक्षिगुताऽवतु मां सर्वदेव हि । दिव्यप्रदा पातु नाभि कंठ मन्त्रमोदिनी ॥२२॥  
 गुह्यं पातु रत्नगुप्ता निधं पातु हृदिप्रिया । ऊरु पातु रक्तैरजानुभिः । प्ररक्षापिणी ॥२३॥  
 जघे पातु मदा सुश्रुगुल्फौ चामरवीजिता । पादौ लज्जमुता पातु पादगान्धिका कर्णविका ॥२४॥  
 पादगुली मदा पातु मम नृपुत्रविभवा । गोपाण्यवरु मे निम्ब रंगकौशेयवासिनी ॥२५॥  
 गर्भौ पातु कालरुषा दिने दानैरुत्तरा सर्वरक्षितु मां पातु मूलकापरधासिनी ॥२६॥  
 एवं सुतीक्ष्ण सीतायाः कवचं ते मयेतिम् । इदं प्र तः मयूनाय स्नाना निम्ब वटैः नृपः ॥२७॥  
 जानकी पूजयित्वा च सर्वान्कामानवाप्नुवानु । धनार्थो वाप्तुं यदव्ययं पुत्रा नी पुत्रमवाप्नुवान ॥२८॥  
 श्रीकामार्थो शुभो भारी सुखार्थो मौन्यमवाप्नुवान् । अष्टवारं जपनीयं श्रीरामा कावचं यदा ॥२९॥  
 अष्टम्यो विप्रवर्येभ्यो नमः प्रीत्याऽर्पयेन्मया । फल्गुशशिदार्शन्यानि यानि तानि पृथक् पृथक् ॥३०॥  
 सीतायाः कवचं चेह पुण्यं पातु रक्षावधम् । ये पठन्ति नमः सकन्या ते वन्द्या मानवा भूवि ॥३१॥  
 पठन्ति रामकवचं सीतायाः कवचं विना । नदा विना लक्ष्मणस्य कारयेन वृथा स्मृतम् ॥३२॥  
 सम्प्राप्त्यदा सर्वज्ञानं कवचानां चतुष्टयम् । आदौ तु चाप्युक्तं लक्ष्मणस्य ततः परम् ॥३३॥  
 ततः पठेच्च सीतायाः श्रीरामस्य ततः परम् । एवं यदा ज्ञानाय कवचानां चतुष्टयम् ॥३४॥

इति सीताकवचम् ।

जानकी, मातुली, उपर पद्माक्षजा, मध्यभागकी अन्तिमुता और चरों ओर रमा रक्षा करें ॥ १६ ॥  
 स्मितानना मुखकी, नृपान्मजा अस्तककी, भौहोके बीचम पद्मा और मर जगती मृगशी रक्षा कर ॥ १७ ॥  
 श्रीरामचन्द्रजीकी प्रेयस कपाल और कर्णमूला रक्षा करें सार्वभौम, नाजिकाक अयभाकी, राजसी, पुष्पकी,  
 रामसौ वार्णाकी, पतिव्रता जिह्व की, मदा माया हीनका, नन्दकप्रसा विवृक्तकी, सीम्परुषा कण्ठका मर विता  
 कर्णोंकी, वरारोहा बाहुकी और कंठमण्डिता हाथोंकी रक्षा कर ॥ १८-२० ॥ रक्तमस्ता माण्डोकी लघूदरा  
 कुक्षिकी रामपरी रक्षा यन्त्रकी, गवत्सोदिनी पार्श्वभगकी और रक्षिगुता सदा मेरे नृपदशका रक्षा कर ।  
 दिव्यप्रदा मेरी नाभिका और नाक्षत्रमोहिन कर्मकी रक्षा कर ॥ २१ ॥ २२ ॥ रत्नगुता गुताकी और हृदिप्रिया  
 सिरकी रक्षा कर । रमाक मर दानो वृटनाकी और विषमपिणी जानुपाणकी रक्षा कर ॥ २३ ॥ मृग जानकी,  
 चामरवीजिता गुल्फकी तथा कुशाग्रका जगत्के मख भङ्गाकी रक्षा कर ॥ २४ ॥ मृगरक्षितया वरकी कुक्षियों-  
 की और पीताम्बरधारिणी मेरी रक्षा कर ॥ २५ ॥ सादिक समय कालरुषा, दिनकी दानैरुत्तरा और  
 सब समय मूलकापरधासिनी मेरी रक्षा करे ॥ २६ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! इन प्रकार मेने मुझे सीत कवच रत्नाया ।  
 जो प्राणी सबरे स्नानके बाद निम्ब इसका पाठ करके जायका जोका पुत्रा करता है, वह अपनी सब इच्छायें  
 पूर्ण कर लेता है । इनको चाहनेवाला मन और पुत्रकी अभिलाषा सम्मनवाप्ता पुत्र पाता है ॥ २७ ॥ २८ ॥  
 स्त्रीकी कामनावाला सुखरी रही और सब चाहनेवाला सोय पाता है । उपासकका चाहिए कि सदा जाठ  
 बार सीता-कवचका जप करे । जाठ बाहुओंकी फल्गुशशि आदि वस्तुयें पृथक्-पृथक् दाव दे ॥ २९ ॥ ३० ॥  
 यह सीतकवच बड़ा शक्ति और पापीका नाशक है । जो लोग बलिद्वयक इसका पाठ करते हैं, वे  
 प्राणी ससारसे बन्द हैं ॥ ३१ ॥ जो लोग सीता तथा लक्ष्मणकवचका पाठ करते हैं, उनका यह पाठ व्यर्थ हो  
 जाता है ॥ ३२ ॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा इन चारों कवचोंका पाठ करे । इसका नाम इस प्रकार है-  
 पहले हनुमान्जीका, फिर लक्ष्मणका, इसके बाद सीताका, तदनन्तर श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिए

पर सुतीक्ष्ण सीतायाः कवचं ते मयेतिम् । वनः परं मृगेष्वन्यन्मीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् ॥३५॥  
 यस्मिन्महोत्तराक्षं सीतानामानि सन्ति हि । अष्टोत्तराक्षं सीतानाम्नां स्तोत्रमनुत्तमम् ॥३६॥  
 वे पश्यति नरास्तत्र तेषां च सकलौ मयः । ते धन्या मानवा लोके ते वैकुण्ठं प्रवर्ति हि ॥३७॥

अथ श्रीसीतानामष्टोत्तराक्षमन्त्रस्य अगन्तिश्रुतिः । अनुष्टुप् छन्दः । रमेति बीजम् ।  
 मातुलुंगीति शक्तिः । पञ्चाक्षजेति कीलकम् । अवनिजेत्यक्षम् । जनकचेति कवचम् । मूलकासुर-  
 मर्दिनीति परमो मन्त्रः । श्रीसीतारामचन्द्रबीम्बधे सकलकामनासिद्धयर्थे जपे विविधयोगः ।  
 अर्धांगुलिन्यामः । ॐ सोदायै अंगुष्ठार्घ्या नमः । ॐ शर्मयै नर्जनीर्घ्या नमः । ॐ मातुलुंग्यै  
 मध्यमाङ्ग्या नमः । ॐ पञ्चाक्षजायै अनादिकाङ्ग्या नमः । ॐ अक्षनिजायै कनिष्ठिकाङ्ग्या नमः ।  
 ॐ जनकजायै कर्तलकरपृष्ठाङ्ग्या नमः । अथ हृदयादिन्यामः । ॐ सीतायै हृदयाय नमः ।  
 ॐ शर्मयै शिखरे स्वाहा । ॐ मातुलुंग्यै शिखर्यै वषट् । ॐ पञ्चाक्षजायै नेत्रत्राय वषट् ।  
 ॐ जनकान्तजायै अस्त्राय कट् । ॐ मूलकामुरमर्दिन्यै इति दिग्बधः ।

अथ सीताष्टोत्तराक्षनाम स्तोत्रम् ।

वामाङ्गे रघुनाथस्य रुचिरे वा यस्मिन्ना शोभना वा त्रिषाधिविधानस्यनयना वा त्रिप्रणालानना ।  
 विद्युन्पुञ्जविगजमानवमना भक्तार्तिमन्त्रवन्दना श्रीमद्राघवपदपद्मयुगलन्यस्तोत्रना आङ्कत ॥३८॥  
 श्रीसीता वानकी देवी वैदेहा राघवप्रिया । रमाऽवनिमुता राधा राक्षसान्तप्रकारिणी ॥३९॥  
 रत्नगुप्ता मातुलुङ्गी मैथिली भक्तलोपदा । पञ्चाक्षजा कञ्जनेत्रा स्मिताख्या नूपुरस्वना ॥४०॥  
 वैकुण्ठनिलया मा श्रीकुण्डिका कामधुरणी । नृपान्तजा हेमवर्णा सृङ्गलङ्गी सुभाषिणी ॥४१॥  
 कुशाग्रिका दिव्यदा च लवमाता मनोहरा । हनुमद्वन्दितपदा मुग्धा केयूरधारिणी ॥४२॥  
 अशोकवनमध्यस्था रावणादिकमोहिनी । विमानमस्थिता सुभ्रुः सुकेयी रश्मिनाम्बिता ॥४३॥

॥ ३३-३४ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं—हे सुतीक्ष्ण ! हम तरह सेने तुम्हें सीताकवच सुनाया । इसके अनन्तर  
 सीताजीका एक दूसरा स्तोत्र सुनाता है ॥ ३५ ॥ जिसमें एक ही वाक्य साक्षात्कार के नाम गिनाये गये हैं । इसलिये  
 इसका नाम "सीताष्टोत्तराक्षनाम" रखा गया है ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य इसका पाठ करते हैं, उनका जन्म  
 सफल हो जाता है । वे मनुष्य धन्य हैं और वे अन्तमें वैकुण्ठलोककी जाने हैं ॥ ३७ ॥ "अथ श्री" यह शक्ति  
 "मूलकासुरमर्दिनी" सहित तक विविधयोग तथा आख्यास आदिका विधान बतलाया गया है ॥ अथ व्यासम् ॥  
 जो एक सुन्दर सिंहासनावर रामके सामागन बैठी है, मुनके नेत्रोंकी शक्ति जिनके नेत्र हैं, जो चन्द्रवदनी हैं,  
 जो बिजलीके समझकी तरह दमकनेवाले कपड़े पहने हैं, जो अपने भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेमें कुछ भी कसर  
 नहीं रखती, जिनके नेत्र श्रीरामचन्द्रजीके चरणमें लगे हुए हैं, वे सीता हमारी रक्षा कर ॥ ३८ ॥ अथ वह नि  
 शतनाम बतला है । जैसे—(१) श्रीसीता, (२) जनका (३) देशी, (४) वैदेही अर्थात् विदेह जनककी पुत्रा,  
 (५) राघवप्रिया, (६) रमा (७) अवनिमुता ( पृथ्वीकी कन्या ) । (८) राधा, (९) राक्षसान्तप्रकारिणी ( राक्षसों-  
 का नाश करनेवाली ), (१०) रत्नगुप्ता, (११) मातुलुङ्गी (१२) मैथिली, (१३) भक्तलोपदा ( भक्तोंको प्रसन्न  
 करनेवाली ) (१४) पञ्चाक्षजा ( पञ्चाक्षरमन्त्रक रागकी करी ) (१५) कञ्जनेत्रा ( कमलके समान नेत्रोंवाली ),  
 (१६) स्मिताख्या ( जिनका मुखगता हुआ मुख है ), (१७) नृपान्तजा, (१८) वैकुण्ठनिलया ( वैकुण्ठलोकमें  
 निवास करनेवाली ), (१९) मा ( २० ) श्री, ( २१ ) मुनिदा, ( २२ ) कामधुरणी ( अपने भक्तोंकी हृदय दूरी  
 करनेवाली ), (२३) नृपान्तजा, (२४) हेमवर्णा, (२५) सृङ्गलङ्गी ( जिनका कोमल कङ्क है ), (२६) सुभाषिणी  
 ॥ ३९-४१ ॥ (२७) कुशाग्रिका ( कुशाकी माता ) ( २८ ) दिव्या ( लंकासे लौटनेपर रामके कट्टे बाधय सुन्दर  
 कपड़े पहनेवाली, २९ ) लवमाता, ( ३० ) मनोहरा, ( ३१ ) हनुमद्वन्दितपदा ( हनुमान्जीने जिनके चरणोंकी  
 चन्दना की पी ), ( ३२ ) मुग्धा ( ३३ ) केयूरधारिणी, ( ३४ ) अशोकवनमध्यस्था ( अशोकवनमें निवास करनेवाली )

राजोदया सत्वरूपा तामसी बह्वामिनी । हेमसुगायकचिता बान्धवकाधमवासिनी । ४४॥  
 पतिव्रता महामाया पीतकौट्यवासिनी । मृगनेत्रा च विरोष्टी धनुर्विद्याविशारदा । ४५॥  
 सौम्यरूपा दशरथस्तुता चामरकोजिना मुग्धबाहुहिना दिव्यरूपा त्रैलोक्यपालिनी । ४६॥  
 अवपूर्णा महालक्ष्मीर्धौलंज्वा च सरस्वती । शान्तिः पुष्टिः क्षमा गौरी प्रभाऽयोध्यानिशामिनी । ४७॥  
 वसन्तश्रीतला गीगा स्वानमतुष्टमानसा रमानाममदसंस्था हेमकण्ठमण्डिता । ४८॥  
 सुरार्चिता वृत्तिः क्षान्तिः स्मृतिर्मेधा विभावरी । लघूदरा वरारोहा हेमकण्ठमण्डिता । ४९॥  
 द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा राघवतोषिणी । श्रीरामसेवनरता रत्नसाष्टकपाणिनी । ५०॥  
 रामवामागमंस्था च रामचन्द्रैकरजनी सन्वृजलसंक्रोडाकाणिनी राममोहिनी । ५१॥  
 सुवर्णतुलिना पुष्पा पुष्पकर्तिनीः कलचरी । कमलपट्टा कम्बुकण्ठा रभेरुर्गजवासिनी । ५२॥  
 रामपिण्डमना रामवदिता रामरन्ध्रताः श्रीरामवदचिह्नाका रामरत्नेनि भविणी । ५३॥  
 रामपर्यङ्कशयना रामाग्निधामिनी चरा । कामधेन्वसमस्तुष्टा मातुर्भुवकरे धृता । ५४॥  
 दिव्यचन्दनसम्प्रा श्रीमूलकासुरमर्दिनी । पद्ममष्टोत्तरशतं सीतानाम्ना सुपुष्पदम् । ५५॥  
 ये पठन्ति नरा भूम्यां ते चन्द्राः स्वर्गवासिनः । मष्टोत्तरशतं नाम्नां सीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् । ५६॥  
 जपनीयं प्रपन्नेन सर्वदा भक्तिपूर्वकम् । सति स्तोत्राण्यनेकानि पुष्पदानि महानि च ॥ ५७॥

[३१] रावण विक्रमाहिनी, [३६] विमानमयिता [३७, सुभ्र ३८] मुनेश, [३९] रमानाचिता [४०, रमानाया  
 [४१] सत्वरूपा [४२] तामसी, [४३] बह्वामिनी (अग्निमं निशम करनेवाली), [४४] हेमसुगा-  
 सत्वरूपा (सुवर्णक सुगम जिनका मन काम करनेवाली था) [४५] बालमायकाधमवासिनी (बालमार्ग के पथ के  
 मायकम निवास करनेवाली) । ४२-४४॥ [४६] पतिव्रता [४७] महामाया, [४८] पीतकौट्यवासिनी  
 (रेशमी पीठाम्बर धारण करनेवाली), [४९] मृगनेत्रा, [५०] विरोष्टी, [५१] धनुर्विद्याविशारदा (धनु-  
 र्विद्यामें निपुण) [५२] सौम्यरूपा [५३] दशरथस्तुता [५४] चामरकोजिना [५५] मुग्धबाहुहिना, [५६]  
 दिव्यरूपा, [५७] त्रैलोक्यपालिनी [५८] अवपूर्णा [५९] महालक्ष्मी, [६०] श्री, [६१] रजता,  
 [६२] सरस्वती, [६३] शान्ति, [६४] पुष्टि [६५] क्षमा [६६] गौरी, [६७] प्रभा, [६८] आर्या, [६९]  
 निवासिनी, [७०] वसन्तमानसा, [७१] गीरा [७२] स्वानमतुष्टमानसा वसन्तकृष्ण सीतला लीला  
 वतके अवसरपर स्वान करनेसे सन्तुष्ट होनेवाली [७३] रमानाममदसंस्था, [७४] हेमपुष्पवरोधर, [७५]  
 सुरार्चिता, [७६] वृत्ति [७७] क्षान्ति [७८] स्मृति, [७९] मेधा, [८०] विभावरी, [८१] लघूदरा,  
 [८२] वरारोहा [८३] हेमकण्ठमण्डिता ॥ ४८-४९॥ [८४] द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा (जिसने अपने सब  
 मायुष्य एक कालाणीको द दिया थे), [८५] राघवतोषिणी, [८६] श्रीरामसेवनरता, [८७] रत्नसाष्टक-  
 पारिणी, रत्नके बने कर्णपूज्यपहननेवाली ॥ ५०॥ [८८] रामवामास्था, [८९] रामचन्द्रैकरजनी,  
 [९०] सरयुजलसंक्रोडाकाणिनी सन्वृजलसंक्रोडाका जलमं शिखार करनेवाली, [९१] राममोहिनी, [९२] मरण  
 तुलिता, [९३] पुष्पा [९४] पुष्पकर्तिनी, [९५] कलचरी, [९६] कमलपट्टा, [९७] कम्बुकण्ठा, [९८]  
 रम्भोद, [९९] गजवासिनी, [१००] रामपिण्डमना, [१०१] रामरन्ध्रता, [१०२] रामवदचिह्नाका  
 श्रीरामवदचिह्नाका, जिनके हृदयमें श्रीरामचन्द्रका चरित्रका चिह्न विद्यमान है, [१०३] रामरामविधाणि  
 (सदा राम राम कहनेवाली) [१०४] रामवर्णकशयना, [१०५] रामाग्निधामिनी (रामके पैर में च. य.),  
 [१०६] कामधेन्वसमस्तुष्टा, [१०७] मातुर्भुवकरिता, [१०८] दिव्यचन्दनसंस्था मूलकासुरपादनी  
 (दिव्य चन्दनपर स्थित एवं मूलकासुरका नाश करनेवाली) ये एक ही आठ सीताजीके नाम हैं  
 पुष्पदाम्नी हैं ॥ ५१-५५॥ जो लोग इस मष्टोत्तरशतनामका पाठ करते हैं, वे स्वयं और स्वयंभू  
 होते हैं । यह स्तोत्र सर्वोत्तम है ॥ ५६॥ इसलिए लोगोंने चाहिए कि सदा भक्तिपूर्वक इसका पठ  
 किया करें । यद्यपि बहुतसे बड़े-बड़े और-और पुष्पदायक स्तोत्र हैं, किन्तु हे भूभूर ! ये सब एक

कानेन सहस्रमीह तानि सर्वाणि भृशम् । स्तोत्राणामुत्तमं चंदं भुक्तिभुक्तिप्रदं लुणाम् ॥५८॥  
 एवं सुतीक्ष्ण ते प्रोक्तमष्टोत्तरशतं शुभम् सीतानाम्नां पुण्यदं च शरणाभ्यंगलप्रदम् ॥५९॥  
 नरैः प्रातः ससुन्धाय पठितव्यं प्रधानम् । सीतापूजनकालेऽपि सर्वत्रोद्धितदायकम् ॥६०॥  
 अन्यत्सीतातोषदानि व्रतादीनि मत्तानि च । यानि संन्यस्य ते शिष्य गानि मन्थवदाभ्युदम् ॥६१॥  
 नारीभिस्तु सदा कार्यं सीतायास्तुष्टिहेतवे । वसन्तशीतलागौरीस्नानं तथैव तु तत्कृते ॥६२॥  
 यत्र सीताकृतं तीर्थं रामतीर्थं न वदने । तथा लक्ष्म्याश्च गौरीश्च मन्थवन्धादियोविताम् ॥६३॥  
 तीर्थेषु च सदा कार्यं तदभावे नदीषु च । यत्र यत्र रामतीर्थं तद्वामे जानकीकृतम् ॥६४॥  
 येष तीर्थं तु सर्वत्र नैकं तेन तु राघवम् । वसन्तशीतलागौरीस्नानं सीताभ्यवर्द्धनम् ॥६५॥  
 न कुर्वन्त्यथ या नार्यः स्नानं नरः समजन्मगु । भवन्ति विधवाण्युष्मान्मदा स्नानं समाचरेत् ॥६६॥

सुतीक्ष्ण इति च

भो गुरो सीतलागौरीस्नानम्योद्यापनं कथम् । स्त्राभिः कार्यं वदन्नाथ मविस्तारं शुभावहम् ॥६७॥

अगस्त्यस्याथ

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सुतीक्ष्ण शृणु मादम् । चैत्रमासे मिते स्त्राभिस्तुतीषायाः सदाऽत्र वै ॥६८॥  
 कार्यं तु शीतलागौरीस्नाने त्रिशदिनानि हि । ईशान्वाम् मिते पक्षे द्वितीयाष्टम्युपेक्ष्य च ॥६९॥  
 श्रीमिश्र विधिना कार्यं निश्चायामभिराम्यनम् । सूत्रेणैव प्रकृतव्यं मण्डपादिकमुत्तमम् ॥७०॥  
 तत्र स्थापनीयं मन्थवेष्टे तन्मण्डपे एकजोपरि । धान्यरार्धं तोयपूर्णं स्थापनीयो घटः शुभः ॥७१॥  
 तन्मुखे ताम्रपार्श्वं च स्थापनीयं तु विस्तृतम् । आच्छाद्य पात्रं कीशधरसंज्ञं तन्मनोरमम् ॥७२॥  
 तस्मिन्सोत्तरामयोश्च द्वे मूर्तौ रुक्मनिर्मिते स्थापनीये पूजनीये । पौंडरीक्यचारुर्ध्वः ॥७३॥  
 नवमाधात्मको रामः सीताऽष्टमापनिर्मिता । निवृत्तकृपाऽथवा कार्ये द्वे मूर्तौ गजतम्य वा ॥७४॥

करावर नहीं हो सकते । यह स्तोत्र सब स्थावरो में उत्तम तथा भुक्ति-भुक्तिदायक है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥  
 हे सुतीक्ष्ण ! इस तरह मेरे मुखसे सीताजीका अष्टोत्तरशतनाम कहा, जो पुण्यदायक और सुननेसे  
 मङ्गलदाता है ॥ ५९ ॥ लोगोंका चाहिये कि रात्रि सवेर उठकर और सीताका पूजन करके अवश्य  
 इतका शठ करे । ऐसा करनेसे उनका कामनाय पूर्ण हो जायगा । इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे ऐसे व्रत  
 बादि हैं, जिनसे सीताजी प्रसन्न हो सकती हैं । हे शिष्य ! उन्हें आज मैं कुछ बतलाया हूँ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ सीताजी-  
 को प्रसन्न करनेके लिए मित्रोंको चाहिए कि आनाके द्वारा स्थापित किसी भी तीर्थमें जाकर सीतलागौरीका  
 स्नान करे ॥ ६२ ॥ यदि आस पास कोई सीतातीर्थ न हो तो छद्मी, गोरी तथा सरस्वती आदि किसी भी  
 देवीके तीर्थमें उक्त व्रत करे । यदि वह भी न हो तो किसी नदीके तटपर जाकर व्रत करे । जहाँ-उहाँ  
 रामतीर्थ है, उसके बाग़बाग़में सीतातीर्थ अवश्य रहता है । वहीँपर भी अकेला रामतीर्थ नहीं रहता ।  
 वसन्तशीतला गौरी नामक व्रत मित्रोंका सीधायक बढाता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ जो स्त्रियाँ इस व्रतको नहीं करती,  
 वे सात जन्म तक बह विधवा रहकर जीवन बिताती हैं । इससे मित्रोंको सदा सीतलागौरीका स्नान करना  
 चाहिए ॥ ६५ ॥ सुतीक्ष्णने कहा-हे गुरो ! इस सीतला गौरीका स्नान करनेके अनन्तर इसका उद्यापन कैसे  
 करना चाहिए । तो मुझे आप विस्तारपूर्वक बताइए ॥ ६७ ॥ अगस्त्यजीने कहा-हे शिष्य सुतीक्ष्ण !  
 तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, मुनो । चैत्रशुक्ल सुतीथासे लेकर रात्रि दिन तक सीतलागौरीका स्नान करे  
 और नवमास शुक्ल द्वितीयावसे उद्यापन करके रात्रिके समय पूर्वोक्त विधिक अनुसार मण्डप आदि बनावे  
 ॥ ६८-७० ॥ उसमें अष्टोत्तरशतनामक रामनामस्तोत्र, अष्टोत्तरशतनामक या और कम संख्याका मंत्र  
 बनाकर उसके मध्यमें कमलपर धान्यनाश रखकर जलसे भरा घट स्थापित करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ कलपाके  
 मुखपर एक बड़ा-सा ताम्रपात्र रखे और उसको रेशमी वस्त्रसे ढाँक दे ॥ ७३ ॥ उसपर सुवर्णकी बनी हुई सीता

गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यवसनादिकम् । सर्वं पृथगष्टविधं जानक्यै तु निवेदयेत् ॥७६॥  
 ततः स्नानां वायनानि वस्त्रालंकारश्चतुभिः । कुकुमादिपूतितानि देशानि विविधानि च ॥७७॥  
 देशानि कांस्यपाशाणि पक्वाण्यपूरितानि च । त्रयस्त्रिंशत्तथा याऽष्टौ स्त्रीभिर्देयानि शक्तितः ॥७८॥  
 त्रयस्त्रिंशच्च धुग्मानि भोजयेच्च प्रयत्नतः । अथवाऽष्टौ यथाशक्या भोजनीयानि पट्टयेत् ॥७९॥  
 रात्रौ जगरणं कार्यं शीतवाद्यादिगन्तैः । प्रातःकाले तृतीयायां स्नान्वा सम्पूज्य जानकीम् ॥८०॥  
 हामध्यापि प्रकर्तव्यः भीतामन्त्रेण यत्नतः । निलाब्धैः पायसैश्चापि महत्स्नाप्यष्टभूसुरैः ॥८१॥  
 सुदहीनं नवान्नं च ज्ञेयमष्टाक्षमुत्तमम् । तन्मीनातोपरं ज्ञेयं तेन वा जुहुयात्सुखम् ॥८२॥  
 ततः स्वयं सुहृन्मित्रैर्भाक्तव्यं च यथाशुक्लम् । एवमुद्यापनविधिस्तत्राग्रे विनिवेदितः ॥८३॥

श्रीरामदास उवाच

अगस्तिना सुनीक्ष्णाय यदिदं कथितं पुरा । तत्सर्वं च त्वया पृष्टं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥८४॥

श्रीगुहास उवाच

कथं रमानामभद्रं कार्यं स्त्रीभिः प्रपूजने । तत्सर्वं विस्तरेण च कथयस्व मयाश्रितः ॥८५॥

श्रीरामदास उवाच

यथा श्रोतं मया शिष्य रमानामभद्रमुत्तमम् । कार्यं रमानामभद्रं तथैव सकलं शुभम् ॥८६॥  
 किञ्चिद्दिशेषस्तत्राग्रे नृपुण्यं कथयाम्यहम् । लिङ्गस्वल्पेण कर्तव्या वापिकाश्चैव पूर्ववत् ॥८७॥  
 मुद्रायामेव किञ्चिच्च त्रिशोऽस्ति गृण्यतम् । नकारश्च मकारश्च पूर्ववद्भेदधः ॥८८॥  
 ऊर्ध्वं रमेत्यक्षरे ड रचनीये तु पूर्ववत् । एवं कृत्वा रमानाम श्वेत्वरणे निरीक्षयेत् ॥८९॥  
 एतद्भगवानामभद्रं देवानां पूजनादिषु । नाताक्रमेण सरेषु कर्तव्यं च प्रयत्नतः ॥९०॥  
 विना रमानामभद्राद्यानि देवाः कृतानि हि । पूजनादीनि कर्माणि तानि ज्ञेयानि मानवैः ॥९१॥

और नामकी दो मूर्ति रखें और पादक्षपचारसे उनका पूजा करे ॥ ७४ ॥ मूर्तियोंमें जो माते सुवर्णसे रामकी और बाँठ मासे सुवर्णसे सीताकी मूर्ति बनवावे । यदि ऐसा न हो सके तो अपनी शक्तिक अनुसार चाँदीकी दो प्रतिमाएँ बनवा ले ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप नैवेद्य तथा आठ प्रकारके वस्त्र आदि सीताको अर्पण करे ॥ ७६ ॥ इसके बाद वस्त्र-अलंकार आदि वस्तुयें तथा कुमकूम आदिके साथ विविध प्रकारके वायन दे ॥ ७७ ॥ सदनन्तर तरह-तरहके पक्वान्धे भरकर तैलीय, आठ अथवा तीन कांस्यपाश अर्पण करे ॥ ७८ ॥ इसके बाद तैलीय सहायणदम्पती, आठ सहायण अथवा जैसी अपनी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार सहायणदम्पतीओंको आवाहन करवे ॥ ७९ ॥ रात्रिमें गोम बाछ आदि महल्लभ्य कार्य करता हुआ जागरण करे । तृतीयको प्रातःकाल स्नान करके जानकीजीका पूजन करे और तिल, धो तथा खीरसे बाँठ सहायणोंके साथ तातामन्त्रसे हाम करे ॥ ८० ॥ ८१ ॥ मूँयका छोड़कर अन्य नौ प्रकारके अन्न सीताजीको बहुत प्रिय है यदि हो सके तो जल्दीसे हवन करे ॥ ८२ ॥ इसके बाद अपने हित मित्रादिके साथ सुखपूर्वक भोजन करे । इस तरह उद्यापनविधि मैंने तुमसे कहो ॥ ८३ ॥ श्रीरामदासने कहा—गुप्तहारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह सब बातें कह दीं, जो सुनीक्ष्णको आस्त्वजीने बतलायी थीं ॥ ८४ ॥ विष्णुदासने कहा कि जब स्त्रियाँ पूजन करने लगीं तो रमानामभद्रकी रचना किस प्रकार कर । यह आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए ॥ ८५ ॥ श्रीरामदासने कहा—पहले मैंने जो रमानामभद्र रचनाका विधि बताया है, ठीक उसी तरह रमानामतोभद्रकी भी रचना होगी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ इसकी मुद्राम बाँड़ीसी विरोधता है । सो मैं तुमको बतलाये देता हूँ, सुनो । चाकार और मकार ये दोनों पहलेकी ही तरह निम्न भागमें बनावे ॥ ८८ ॥ ऊपर रचा इन दो अक्षरोंकी भी पहले की ही तरह रचना करे । ऐसा कर लेवेके बाद रमा इस नामका भद्रके एवम् भाग्य उभड़ा देखे ॥ ८९ ॥ देवी आदिकी पूजाके अवसरपर अथवा और-और प्रकारके शुभ कर्ममें प्रयत्न करने इस रमानामतोभद्र-



वक्तुमन्यत्र तस्माद्भि कर्तव्यं यत्नतस्मिदम् । कृता रमानामभद्रं या पूजा मानवैर्भुवि ॥९२॥  
 सा देव्यै तोयदा ज्ञेया तस्मान्कार्या प्रपत्नतः । पूर्वोक्तानि देवतानि तान्येवात्र विचिन्तयेत् ॥९३॥  
 आब्रूहेच्च मुद्रायां जानकीं रघुनन्दनम् । अन्यच्छृणुष्व भी शिष्य सीतारामप्रपूजने ॥९४॥  
 रमानामतोभद्रं च कार्यं वा मानवैर्भुवि । तत्त्वापि पूर्ववन्मन्त्रं कर्तव्यं मानवैर्भिया ॥९५॥  
 इदं सीतारामयोश्च पूजनार्थं प्रकल्पयेत् । रामनाम्ना रमानाम्ना इदं भद्रं महत्तमम् ॥९६॥  
 यत्र द्वयोर्नामनी च रमा रामेति चोत्तमे । रमानामतो भद्रं च तस्माच्छ्रेष्ठं प्रकारयेत् ॥९७॥  
 रमानामनोभामान्येव देवान्यत्र विचिन्तयेत् । एवं शिष्य त्वया पृष्टं यद्यत्तत्तन्मयोदितम् ॥९८॥

का तेऽन्यास्ति स्पृहा श्रोतुं वदतां तद्वदाम्यहम् ।

विष्णुदास उवाच

कवचं लक्ष्मणस्यापि पठनीयमिति स्मृतम् ॥९९॥

पुरा गुरो न्वया तच्च मां वदस्व सविस्तरात् । भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ॥१००॥

श्रीरामदास उवाच

एवमेव सुतीक्ष्णेन पृष्टं च कुंभजन्मना । पुरा तद्विस्तरेणाद्य तवाग्रे कथयाम्यहम् ॥१०१॥

सुतीक्ष्ण उवाच

गुरो न्वया पुरा प्रोक्तं कवचं लक्ष्मणस्य च । पठनीयं वर्ततेति तन्मामद्य प्रकाशय ॥१०२॥

भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ।

अगस्त्य उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया क्वम सावधानमनाः शृणु । आरीर्मांभि त्रेकवचं कथ्यतेऽत्र मया शुभम् ॥१०३॥

इति श्रीमहाकविश्रीरामचरितमंगलं श्रीआनन्दरामायणे वारणीकीये मनीहूरकाण्डे

सीतारामकवचादिनिर्णयं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

की रचना करे ॥ ९० ॥ बिता रमानामतोभद्रक देवापूजन आदि जितना भी कृत्य किया जाता है, वह सब कार्य ही आधा करसा है । जनएव रमानामतोभद्रकी स्थापना अवश्य करनी चाहिये । रमानामतोभद्र-म लाग जो पूजन आदि करते हैं, वह सफल होता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसरो देवी प्रसन्न होती है । इस कारण यत्नपूर्वक ऐसा करना चाहिए । पूर्वम जितन देवता कह साये हैं, वे सब इस भद्रमे भी रहेगे ॥ ९३ ॥ हाँ, यह बात अवश्य है कि इस भद्रमे राम और सीताका अङ्गुलन करे । हे शिष्य ! सीतारामके पूजनके विषयम और भी कुछ विगण बातें हैं । उन्ह कहता हूँ मनो ॥ ९४ ॥ कोई भी पूजन करते समय रमानाम-तोभद्रकी स्थापना अवश्य करे । उस भद्रमे पूर्वोक्त रीतिके अनुसार ही सब बातें रहेगी ॥ ९५ ॥ सीता और रामकी पूजाके निमित्त हस्तको स्थापना की जाती है और केवल रमानामतोभद्र अथवा केवल रामतोचद्रसे यह भद्र श्रेष्ठ है ॥ ९६ ॥ इस भद्रमे रमा और राम इन दोनोंके नाम आ जाते हैं । इसीलिए यह भद्र सर्वश्रेष्ठ माना गया है ॥ ९७ ॥ रामतोभद्रमें कहे हुए ही देवता इस भद्रमे रहेगे । हम तरह हे शिष्य ! तुमने हमसे जो पूछा, वह मेरे मुमसे कहा ॥ ९८ ॥ अब वया तुमनेका इच्छा है सा बताओ, मैं कहूँ । विष्णुदास बोले- आपन कहा था कि लक्ष्मणके कवचका भी पाठ करना चाहिए । तो उसे भी बताइए ॥ ९९ ॥ १०० ॥ श्रीरामदास- ने कहा कि इस तरह सुतीक्ष्णने भी अगस्त्यजीसे प्रश्न किया था तो उन्होंने सुतीक्ष्णमे जो कुछ कहा था, वहा मैं मुमसे कह रहा हूँ ॥ १०१ ॥ सुतीक्ष्णने कहा है गुरो । आपने एक बार हमसे कहा था कि लोगोंकी लक्ष्मणकवचका भी पाठ करना चाहिए । तो कृपा करके आप हमें लक्ष्मणकवच बताइए । उसके साथ साथ भरत तथा शत्रुघ्नकवच भी बतला दीजिए । अगस्त्यने कहा-हे बत्स ! तुमने बहुत उसम प्रश्न किया है । साथ-साथ लेकर सुनो । पहले मैं लक्ष्मणकवचका ही वर्णन कर रहा हूँ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे पृ० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासाहते मनीहूरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः । १४ ॥

## पञ्चदशः सर्गः

( लक्ष्मण-भरत तथा शत्रुघ्नकवच )

सौमित्रि रघुनाथकस्य चरणद्वेक्षण उदामलं विभ्रन्तं स्वकरेण रामशिरसि छत्रं विनिर्भ्रं वरम्  
 विभ्रन्तं रघुनाथकस्य सुमहन्मोदोदवातामने ॥ १ ॥  
 ॐ अस्य श्रीलक्ष्मणकवचमन्त्रः । अस्म्यशक्तपिः । अनुष्टुप्छन्दः । श्रीलक्ष्मणे देवता ।  
 षोडशैति बीजम् । सुमित्रानन्दन इति शक्तिः । रामानुज इति श्रीलक्ष्मणः । रामदास इत्यश्वत्थम् ।  
 रघुवंशज इति कवचम् । सौमित्रिणिनि मन्त्रः । श्रीलक्ष्मणप्राम्थ्यं सकलमनोजेमिलपितृमिदृशैर्जपे  
 विनिर्भोयः । अधांगुलिन्याम् । ॐ लक्ष्मणाय अंगुष्ठार्घ्या नमः । ॐ शेषाय तर्जनाभ्यां नमः ।  
 ॐ सुमित्रानन्दनाय मध्यपाभ्यां नमः । ॐ रामानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामदासाय  
 कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ रघुवंशजाय कर्णलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयाद्यगन्यासः ।  
 ॐ लक्ष्मणाय हृदयाय नमः । ॐ शेषाय शिखिसे व्रजहा ॐ सौमित्राय शिखार्यै व्रजहृत् । रामा-  
 नुजाय कवचाय हुम् । रामदासाय नेत्रत्रयाय त्रीपट् । रघुवंशजाय अस्त्राय फट् ।  
 ॐ सौमित्रये इति दिग्बन्धः ।

अथ सप्तार्च लक्ष्मणकवचम्

रामपृष्ठस्थितं रम्यं रत्नकुण्डलधामिणम् । नीलोत्पलदलदयाम् रत्नकङ्कणमण्डितम् ॥ २ ॥  
 रामस्य मस्तके दिव्यं विभ्रन्तं छत्रमुनमम् । वीरं पीताम्बरं मुकुटेनानिशोभितम् ॥ ३ ॥  
 तूणीरे कर्णके चारि विभ्रन्तं च विमलाननम् । रत्नमालाधरं दिव्यं पुष्पमालाविर्भाजितम् ॥ ४ ॥  
 एवं ध्यात्वा लक्ष्मणं च पादपरन्दनलोचनम् । कृच जप तीर्थं हि तमो भक्त्याऽप्य मानवैः ॥ ५ ॥  
 लक्ष्मणः पातु मे पूर्वं दक्षिणं राघवानुजः । प्रयाच्यां पातु सौमित्रिः पातु दीच्यां रघूत्तमः ॥ ६ ॥  
 अधः पातु भद्राश्रीश्चोर्ध्वं पातु नृपनामजः । मध्ये पातु रामदासः सर्वतः सत्यपालकः ॥ ७ ॥  
 स्थिताननः शिरः पातु भाल पादूमे शशवः । अश्वमेधे धनुर्धारी सुमित्रानन्दनोऽक्षिणी ॥ ८ ॥  
 कपोले राममन्त्री च सर्वदा पातु र्ब नमः । अंगुष्ठे मदा पातु कवचधृजखड्गनः ॥ ९ ॥

कमलसजीव कह्यो—मे उन लक्ष्मणजीको धन्यता करता हूँ जो सदा रघुनाथजीके दोनों चरणकमल  
 देखा करते हैं, जो अपने हाथसे रत्नचक्रजीक शिखर छत्रकी छाया किंच रहते हैं । जो कन्धेपर रामचन्द्रजीका  
 धनुष धारण किये रहते हैं । जो सर्वदा जानकीजीकी आज्ञाका पालन करतमें तत्पर रहते हैं और कमलके  
 समान जिनकी आँखें हैं ॥ १ ॥ “अस्य श्री” से लेकर ॐ सौमित्रये इति दिग्बन्धः” यहाँ तक विनियोग और  
 मंगलवाक्यकी विधि दन्तत्रयी सही है । उनके अंग लक्ष्मणजीका ध्यान है—जो रामचन्द्रजीके पाये बँडे हैं,  
 जिनका मनोहर स्वरूप है, तर्जनी, मध्य अंगक कानोंके बीच रहे हैं, नीले कमलके समान जिनके मुखका  
 भाभा है और जिनके हृदय में वसुधैवकुटुम्बक का ध्यान गहुरा है ॥ २ ॥ और लक्ष्मण रामके ऊपर दिव्य छत्र लगाये हुए हैं,  
 सुन्दर पीताम्बर धरते हैं और मुकुटमें जो अनन्त मोक्षायमान दीख रहे हैं ॥ ३ ॥ जो तूणीर तथा धनुष धारण  
 किये हैं, मुस्कयता हुआ जिनका मुखान्दित है, रत्नोंकी माला जिनके गलेमें पहनी है, जिनका दिव्य वेष है और  
 जो कर्णोंकी मालातीसे और भी सुन्दर दीख रहे हैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीपर दृष्टि लगाये लक्ष्मणजीका  
 ध्यान करके लोगोंको जागिए कि भक्तिपूर्वक लक्ष्मणकवचका पाठ करें ॥ ५ ॥ लक्ष्मणजी मेरे पूर्वप्राणकी रक्षा  
 करें और दक्षिणप्राणमे राघवानुज पश्चिम ओर सौमित्र तथा उत्तर प्राणकी रघूत्तम रक्षा करें ॥ ६ ॥ विचले  
 भालमें रघुवीर, ऊपर नृपनामज मध्यमें रामदास और चारों ओर सत्यपालक रक्षा करें ॥ ७ ॥ शिखी स्थितान-

नासाय मे मदा पातु मुदिजानशर्द्धनः । रामश्चर्येक्षणः पतु मदा मेऽत्र मुख भुवि ॥१०॥  
 भीतावाक्यकरः पतु मम बाणी मदाऽत्र हि । वीर्यरूपः पातु त्रिहृत्पन्नः पातु मे हि तान् ॥११॥  
 चिबुकः पातु गण्डोन्नतः कटु पातु सुगर्भकः । कर्णौ पातु निगर्भितौ पङ्कजलाननः ॥१२॥  
 कर्णौ कर्णधारी च च न न रक्ततपोऽवतु । दक्षिण पातु त्रिनिद्रा मे वक्ष पातु त्रिनेन्द्रियः ॥१३॥  
 पादौ गण्डपुटस्थः । हृष्टदेश मनोमयः नाभि रत्नारनभिमनु कटु च हृत्पमेखल ॥१४॥  
 मुख पातु महामकरः पातु निमि हरिप्रियः । ऊरु पातु त्रिष्णुकरः सुमुखोऽतनु जनुनी ॥१५॥  
 नासोटः पातु मे जघे मुखौ नृशम्भसः । गदाधराशोऽन्वान पादमणि मुलाचनः ॥१६॥  
 चित्रकतुषिता पातु मम पार्श्वगुलः मदा गोपाणि मे मदा पातु रीतिशममुद्रवः ॥१७॥  
 दशमधस्तुतः पातु निशायी मम सादरम् । भृगोऽधरा पातु दिगमे दिग्मे सुदा ॥१८॥  
 सर्वकलेषु र्माभिर्निद्राऽवतु मेदिना । एव र्माभिर्विकारच मुतोऽक्ष कथितं मया ॥१९॥  
 इदं प्रातः समुन्धाय य पटुयत्र मानवा । न चन्गाभाना लाके तर्प च मफलो भवः ॥२०॥  
 र्माभिरेः कञ्चम्यास्य पटुनाञ्जवरेन हि । पुनर्वा लभो पुत्रान वनर्था धनमाप्नुयान् ॥२१॥  
 पत्नीकामो लभेऽपत्नी गोधनाना तु गोधरम् । धान्यार्थं प्राप्नुयादन्व गच्छार्थं गच्छमाप्नुयात् ॥२२॥  
 पठित रामकवच र्माभिर्विकारच विद । पुनर हंगो नान्नन्नेर दत्तान न नारः ॥२३॥  
 केवलं रामकवच पठित मानवैरदि तेषां । सुननुदा न वदतुनदवः ॥२४॥  
 अतः प्रयन्तव्येद र्माभिर्विकारच नरः । पटुनाय मवदथ परैर्वाञ्जितान्कपू ॥२५॥

ततः, अर्थात् राम उचितवसन भोजन वाचन अनुवागे और आचार सुमित्रानन्दन रक्षा करे ॥ १० ॥ कर्णकी  
 रामगन्धा रक्षा रक्षा करे ॥ ११ ॥ कर्णोका जलन पवन्कका सुनकी पण्डित करमवाले लक्ष्मणजी रक्षा  
 करता रहे ॥ १२ ॥ मुखिका आनन्द भूतगवान मम गोपाण अवनगको रक्षा करे । रामको आन निद्रा  
 हृष्टपण सबदा मर मुखको रक्षा करे ॥ १३ ॥ मन्त्रो आज्ञाको पठन लक्ष्मणजी रक्षा करे । सर्वदा मेरी  
 बाणीको रक्षा करे । सोमशम्भो जो जिह्वा के मया प्रसन्नता से लक्ष्मणजी रक्षा करे ॥ १४ ॥  
 राक्षसोंके बधकरी मर चिबुककी रक्षा करे । कर्णोंका पण्डित करमवाले पण्डित रक्षा करे, शत्रुओं जीतने  
 वाले मर कर्णोंको रक्षा कर और कवच करे । रक्षा करे ॥ १५ ॥ कर्णोंकी रक्षा करे ॥ १६ ॥ कर्णोंकी  
 पारण करमवाले हाथको रक्षा करे, लाट लाट लक्ष्मणजी रक्षा करे । निद्रा मे गच्छ लक्ष्मणजी मेरी  
 कोखकी रक्षा करे और विनी दुष्ट लक्ष्मणजी मेरे पक्षाय की रक्षा करे ॥ १७ ॥ रामचन्द्रजीके पीछे बैठनेवाले  
 लक्ष्मणजी मेरे गृध्रमागको रक्षा करे, सम्भार न भिरावत नारा न भिरावत मुण्डमरी मखन्या ले मेरी  
 कर्णको रक्षा करे ॥ १८ ॥ कर्णको रक्षा करे । लक्ष्मणजी रक्षा करे । लक्ष्मणजी रक्षा करे । रक्षा करे  
 विद्याके सदन रुमवाले लक्ष्मणजी कुटन की तथा सुन्दर कवच को मर आनुभवा रक्षा करे ॥ १९ ॥ सर्पके  
 राजा मेरी जवाओंको लक्ष्मणजी मर शुभानका, लक्ष्मणजी मर देगेता तथा सुन्दर आँखोंवाले लक्ष्मणजी  
 मेरे समस्त शत्रुओंकी रक्षा करे ॥ २० ॥ चित्रकेपुके पिता मेरे परक उग्रचित्त मेरी मुण्डमरी मखन्या ले मेरी  
 लक्ष्मण मर राक्षसों रक्षा करे ॥ २१ ॥ राक्षसों समस्त राक्षसोंके पुत्र भरी करे और विनीक समय भूगाल  
 भारी लक्ष्मणजी मेरी रक्षा करे ॥ २२ ॥ इन्द्राजिन मवनाद का मारनगने सबदा मेरी रक्षा करे  
 रहे । हे सुतोषण, इस लक्ष्मण मर लक्ष्मणकवच कह मुनया ॥ २३ ॥ जो लक्ष्मण सबदा लक्ष्मण  
 पाठ करता है, व मन्त्र बध है और उनका जन्म रुकता है ॥ २४ ॥ लक्ष्मणजीके इस कवचका पाठ करे  
 पुनर्वा पुत्र तथा धनार्थ धन पाता है । इससे कोई सफल नहीं है ॥ २५ ॥ पत्नीका कामगोपाला प्राणा परकी,  
 गोधन बहनेवाले गोधन, वाञ्छा इच्छा माँगे और रक्षणकी इच्छा रखनेवाला राक्षस पाता है ॥ २६ ॥  
 बिना लक्ष्मणकवचका पठनिय रामकवचका पाठ इस तरह व्यर्थ जाता है, जिस तरह घाक बिना देवदत्त  
 कहाया जाय ॥ २७ ॥ केवल रामकवचका पाठ करे लक्ष्मणजी विशेष प्रसन्न नहीं होत ॥ २८ ॥ इतलिय

अतः परं भरतस्य कवचं ते वदामहम् । सर्वपापहं पुण्यं तदा श्रीगमनक्तिदम् ॥ २६ ॥  
कैकेयीनयनं सदा रघुरत्नपद्मेश्वरं श्यामलं समद्वीपपतेरिन्दुहृतनयान्तरम् वक्ष्ये रतम्  
श्रीमीताभवमन्यपाशेनिरुद्धे स्थित्वा वरं य मरं घृत्वा दक्षिणं त्करेण भरतं न वीक्षयत् भजे ॥ २७ ॥

ॐ अस्य श्रीभरतकवचमंत्रस्य अगम्यकृपेः । श्रीभरतो देवता अनुष्टुप्छन्दः । अक्षरं  
इति बीजम् । कैकेयीनदन इति शक्तिः । भरतखड्गेश्वर इति कीलकम् ।  
रामानुज इत्यस्त्रम् । समद्वीपेश्वर इति कवचम् । रामेश्वर इति मन्त्रः । श्रीभरतप्रीत्यर्थं  
सकलमतोरथमिद्वयं जपे विनियोगः । अथागुलित्यामः ॐ भरताय अगुण्याय नमः ।  
ॐ कैकेयीनदनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भरतखड्गेश्वराय व्रनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामानुजाय  
कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॐ श्रवाय शिरसे स्तुतम् ॐ कैकेयीनदनाय त्रिपदाय वन्द्यम् । ॐ  
भरतखड्गेश्वराय कवचाय ह्रीम् । ॐ रामानुजाय त्रैलोक्याय वीम् । ॐ समद्वीपेश्वराय अक्षाय  
फट् । रामेश्वराय चेति दिग्बन्धः ।

अथ सन्ध्याय न भरतकवचम्

रामचन्द्रमन्यपाशैः स्थितं कैकेयजासुदम् । रामाय चामरेणैव बीजयन्तं मनोरमम् ॥ २८ ॥  
रत्नकुण्डलकेयूरकंकणादिविभूषितम् । पीताम्बरपरोधानं वनमालाविराजितम् ॥ २९ ॥  
माण्डवीधौतचरणं रघुनान्पुत्रान्वितम् । तालोत्पलदलश्यामं द्विजराजमभातनम् ॥ ३० ॥  
आजानुवाहं भरतखड्गस्य प्रतिपालकम् । रामानुजस्मिताख्यं च शत्रुघ्नपरिवर्द्धितम् ॥ ३१ ॥  
रामन्यस्तेश्वरं सौम्यं विद्युत्पुञ्जममप्रभम् । रामभक्तं महावीरं वदे त भरतं शुभम् ॥ ३२ ॥  
एवं ध्यात्वा तु भरतं गमयादेश्वरं हृदि । कवचं पठनीयं हि भरतस्येदमुत्तमम् ॥ ३३ ॥  
ॐ पूर्वतो भरतः पातु दक्षिणे कैकेयीसुतः । नृपात्मजः प्रतीच्या हि पातुः शीघ्रं रघूत्तमः ॥ ३४ ॥  
अधः पातु श्यामलांगशोर्ध्वं दशरथात्मजः । मध्ये भारतवर्षेशः सर्वतः सूर्यवशजः ॥ ३५ ॥

लोगोंकी चाहिए कि प्रयत्न करके सब प्रकारकी कामना पूर्ण करनेवाले इस लक्ष्मणकवचका पाठ अवश्य करें ॥ २५ ॥ हे मुनि राज ! अब मैं तुम्हें श्रीभरतजीका कवच बताऊंगा, जो पापोंकी हरनेवाला, पवित्र एवं श्रीरामचन्द्रकी भक्ति देनेवाला है ॥ २६ ॥ मैं उन भरतजीकी चन्दना करता हूँ, जो श्रीरामचन्द्रजीकी ओर निहार रहे हैं । जिनका श्याम स्वरूप है । जो सातो द्वीवोंके अधिराज रामचन्द्रजीकी आज्ञामें तत्पर रहते हैं । जो रामकी दाहिनी ओर बैठकर दाहिने हाथसे सुन्दर चमर हाँक रहे हैं । उन भरतजीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ २७ ॥ "अस्यधो" से लेकर "रामाश्रयाय चेति दिग्बन्धः" तक अग्न्यास आदिकी विधि बतलायी गयी है । इसके बाद ध्यान है—श्रीरामचन्द्रजीकी दाहिनी ओर बैठकर रामवर चमर चलाते हुए सुन्दर रत्नजडित कुण्डल, केयूर तथा कंकण आदिसे विभूषित, पीताम्बर धारण किये, वनमालासे अलङ्कृत, जिनके चरण माण्डवी धोती है, रणना और रघुसे विराजित, तालकमलके समान श्यामस्वरूप एवं चन्द्रमाके समान मुखवाले ॥ २८-३० ॥ जानुपर्यन्त भुजाओंवाले, भरतखण्डके प्रतिपालक, रामके छोटे भ्राता, शत्रुघ्नसे परिवर्द्धित, मुकुटादिकृत मुखवाले, रामकी ओर दृष्टि लगाये हुए, सौभाग्यस्वरूप, विद्युत्पुञ्जके समान प्रभाशाली, रामभक्त एवं महापराक्रमी भरतजीका ध्यान करके थोड़ी देरतक रामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करें उसके बाद इस भरतकवचका पाठ करें ॥ ३१-३३ ॥ पूर्वकी ओर भरत मेरी रक्षा करें, दक्षिणकी तरफ कैकेयीपुत्र और पश्चिमकी ओर नृपात्मज मेरी रक्षा करें । उत्तरकी ओर रघूत्तम मेरी रक्षा करें ॥ ३४ ॥ नीचे श्यामल अङ्गुलीवाले, ऊपर दशरथात्मज, मध्यमें भारतवर्षके प्रभु चारों ओर सूर्यवर्गमें उत्पन्न होनेवाले

शिख्यर्क्षिता पातु भाल पातु हरिप्रियः श्रुयोर्मध्यं जन्कजावचपैकन्यसोऽवतु ॥३६॥  
 पातु जन्कजापाता मम नेत्रे मदाऽरु हि । करे त्वे मांडरीकानः कर्णयुक्ते स्मिताननः ॥३७॥  
 नागाग्र मे सदा पातु त्रिकेपीशेषवर्धनः । दन्त मे हृष्ये पातु पातु पार्श्वौ जटाधरः ॥३८॥  
 पातु पुष्कगन्तौ मे जिह्वा दंतान् प्रक्षामयः । चिबुकः कवचलधरः कटे पातु वगननः ॥३९॥  
 स्कन्धौ पातु त्रिवर्णानिभुजौ हस्तधनवद्विभः । ऊर्ध्वं कवचधरो च नवान् लङ्घधरोऽवतु ॥४०॥  
 कुक्षौ रामानुज पातु । वक्षः श्रीरत्न-ल्लभः पार्श्वे राघवपार्श्वधरा । पातु हृत् सुभाषणः ॥४१॥  
 जटारं च धनुवरा नाभिं शङ्खगोचरात् । नष्टं पद्मेक्षणः पातु गुह्यं रमेकमानसः ॥४२॥  
 रामवित्रः पातु लिङ्गानुर धीमममैवकः । नाडग्रामस्थितः पातु ज्ञानुनी मम सर्वदा ॥४३॥  
 श्रीरामसादृकाधारो पातु जघे मदा मम शुक्लौ श्रीरामयन्त्रौ च पारो पातु गुग्गुविनः ॥४४॥  
 रामाङ्गाणलकः पातु मर्मांगान्यत्र सर्वदा मम पादागुनी । पातु मूर्ध्वगदिभूषणः ॥४५॥  
 रोमाणि पातु मे रम्यः पातु रात्रौ सुधर्मम नृणां रक्षकः । दिवसे दिवशतु मम सर्वदा ॥४६॥  
 सर्वकालेषु मां पातु पौत्रजन्यः मदा भुवि । एव श्रीरामवन्देदं सुतीक्ष्णं कवचं शुभम् ॥४७॥  
 मया प्रोक्तं त्वयामे हि मदार्यगदकाङ्कम् स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रमिदं त्वेव सगुण्यदम् ॥४८॥  
 पठनीयं मदा भक्त्या रामचन्द्रस्य हर्षदम् । पठित्वा भक्त्येव कवचं रघुनन्दनः ॥४९॥  
 पथा याति परं तोष तथा कवचवचेन न । तस्मै देतुमदा जर्ण कवचानामनुत्तमम् ॥५०॥  
 अग्न्याश्च पठनान्धन्यैः सर्वान्कामानवाप्नुयात् । विद्याकामो लभेद्विद्यां पुत्रकामो लभेत्पुत्रम् ॥५१॥  
 एतन्नीकामो लभेत्पत्नीं धनार्थी धनमाप्नुयात् । यद्यन्मनोभिः कल्पितं तन्मन्त्रवचपाटनः ॥५२॥

भरत मरु रक्षा कर ॥ ३५ ॥ तदक पिता मर मन्त्रवचक रक्षा कर ह रप्रथ मर ललाटका रक्षा करे जानकीको  
 आजाय नाराय रहनकाले भरतजी भोडुके मणमगारी रक्षा कर ॥ ३६ ॥ नागाको माताके समान मानन  
 वाले भरतजी मेरा छात्राको रक्षा कर । मण्डर्षक त्रिस्तम मर कथापकी रक्षा करे दुग्कान मुख-  
 मण्डलवाले भरतजी मर कर्णमण्यक रक्षा कर ॥ ३७ ॥ कै. १८५ के आनन्दको वटानकाये मर नागाधकी,  
 उग्र अङ्गवाने मुखकी और अग्रापी भरत मेरी वणाका रक्षा कर ॥ ३८ ॥ मण्डरक पित विद्वाकी, प्रभासय  
 शीनोकी, वल्कलधारी चिबुर्का और गुन्दर मुखवाले अरु मरे कण्ठक रक्षा कर ॥ ३९ ॥ शत्रुही नाहनवाले मर  
 कन्धोकी, शत्रुधनवर्धन भजाओकी, कवचधरा हाथारी और लङ्घधारी नागाया रक्षा करें ॥ ४० ॥ रामके  
 छोट भाला रदरकी, श्रीरामनन्दन लक्ष्मणनकी, रामक दास वैद्यनाथ भरतका गणेशिकाकी और सुन्दर भाषण  
 करनेवाले पृष्ठभणकी रक्षा कर ॥ ४१ ॥ शत्रुवारे जटारकी शङ्खकर न भिक्षो, कमण्डल सदान नरकावाले कमरकी  
 और एकमात्र रामनामका स्मरण करनेवाले मरे गुह्यभागकी रक्षा कर ॥ ४२ ॥ रामक मेघ लिङकी रक्षा करें,  
 श्रीरामके सेवक अहमागकी और नन्दिराममे रहनका न भरत सर्वदा मर ज्ञानुभागी रक्षा करे ॥ ४३ ॥ श्रीरामकी  
 बाहुकाको धारणकरनेवाले मेरी जंघाओकी, श्रीरामकभुजानी गुग्गुभागाका तथा गुग्गुविन भरतजी मरे पगकी  
 रक्षा करें ॥ ४४ ॥ रामकी आज्ञा पालन करनेवाले सर्वदा मर मत्र अक्षारी और रघुवन्दक उत्तम भूषण मेरे  
 पैरकी त्रैलोक्यकी रक्षा कर ॥ ४५ ॥ रम्य नृपाधारी शङ्खधर मर मित्र नौगादी, र किश समस्त गुन्दर बुद्धिवाले  
 और दुर्गाधारी भरत दिवसे समस्त सब दिनाओकी रक्षा करें ॥ ४६ ॥ पाञ्चजन्य सब समय मर रक्षा करत रह ।  
 हे सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार मेन तुम्हें श्रीभरतजीका कवच कह मुनागा । यह वडा म दुर्लभाई, सब मनोबोये उत्तम  
 और भली भाँति पुण्यदाता है । ४७ । ४८ ॥ लोकोको च हिन् वि अ रामकक्षत्रीको आनन्द देनेवाले इस भरत-  
 कवचका पाठ करके ही रामकवचका पाठ किया करे । इस कवचक पठने रामचन्द्र जितन प्रसन्न होत हैं,  
 उतने प्रपने कवच अर्थात् रामकवचका पाठ मुनकर नही प्रमत्त होते । इस कारण लोगोंको बाहिये कि सब  
 कवचोंमे श्रेष्ठ इस कवचका पाठ अवश्य कर ॥ ४६ ॥ ५० ॥ इस कवचका पाठ करनेसे प्राणो सब कामनाओको  
 प्राप्त कर लेता है । विद्याकी कामनावाण विद्या, पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुत्र, पत्नी चाहनेवाला पत्नी और

लभ्यते मानचैत्र सत्यं सत्यं नदाभ्यहम् । तस्मात्सदा जपनीयं रामोपासकमानवैः ॥५३॥

अथ अनुष्णकवचम्

अथ अनुष्णकवचं सुतीक्ष्णं मृणु मादरम् । सर्वकामघदं रम्यं राममङ्गलवर्द्धनम् ॥५४॥

अनुष्णं धृतकामुकं धृतमहानुगीरवाणोत्तमं पश्ये श्रीरघुनन्दनस्य विनयाद्वामे स्थितं सुन्दरम् ।

रामं स्वीयकरेण तालदलजं घृवाडनिविजं वरं सूर्याभे न्यज्जलं सभास्थितमहं तं जीवयतं भजे ॥५५॥

ॐ अस्य श्रीशत्रुघ्नकवचमंत्रस्य अशस्तिः अपि । श्रीशत्रुघ्नो देवता । अनुष्णकवचं । सुदर्शन इति बीजम् । कैकेयीनन्दन इति शक्तिः । श्रीमन्वानुज इति कीलकम् । भरतमन्त्रोत्पत्तम् । श्रीरामदाम इति कवचम् । लक्ष्मणांशुज इति मंत्रः । श्रीशत्रुघ्नप्रीत्यर्थं सकलमनःकामनापिद्वयार्थं जपे विनियोगः । अर्थागुलिन्पासः । ॐ शत्रुघ्नाय अगुष्ट्याम्वा नमः । ॐ सुदर्शनाय सर्वनीम्वा नमः । ॐ कैकेयीनन्दनाय मध्यमाय्या नमः । ॐ भरतानुजाय अनामिकाय्या नमः । ॐ भरतमन्त्रिणे कनिष्ठिकाय्या नमः । ॐ श्रीरामदासाय कतरलकरपृष्ठाय्या नमः । एवं हृदयादिन्यासः । लक्ष्मणांशुजैति दिग्बन्धः ।

अथ ध्यानम्

रामस्य संस्थितं वामे पार्श्वे विनयपूर्वकम् । कैकेयीनन्दनं रम्यं मुकुटेनातिरजितम् ॥५६॥

रत्नककणकेपूरवनमालाविराजितम् । रशनाकुंडलधरं रत्नहारमनुपुरम् ॥५७॥

व्यज्जनेन रीजयतं जानकीकान्तमादरात् । रामनपस्नेक्षणं वीरं कैकेयीशेषवर्द्धनम् ॥५८॥

दिभुजं कंजनपनं दिव्यपीताम्बरान्वितम् । सुधुजं सुन्दरं मेघदपामलं सुन्दराननम् ॥५९॥

रामवाक्ये दत्तकर्णं रक्षोघ्नं खड्गधारिणम् । धनुर्वीरधरं श्रेष्ठं धृततूणीरमुत्तमम् ॥६०॥

सभायां संस्थितं रम्यं कस्तूरीनिलकांकिनम् । मुकुटस्थावतसेन शोभितं च स्मिन्नाननम् ॥६१॥

रविवंशोद्भवं दिव्यरूपं दशरथान्मजम् । मधुरावासिनं देवं लवणभ्रुरमर्दनम् ॥६२॥

एवं पश्चात् तु शत्रुघ्नं रामपादेक्षणं हृदि । पठनीयं वरं चेदं कवचं तस्य पावनम् ॥६३॥

पूर्वं स्वयत् शत्रुघ्नं पानु वाक्ये सुदर्शनः । कैकेयीनन्दनः पानु प्रतीक्ष्य सर्वदा भव ॥६४॥

धनार्थं धन प्राप्त करता है । इस तरह उसे जिस किसी वस्तुकी इच्छा होती है, वे सब इस कवचके पठने प्राप्त ही जाते हैं । ५१ ॥ ५२ ॥ यह बात मैं विस्तृत सब कह रहा हूँ—भूढ़ कुछ भी नहीं । रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि सदा इस कवचका पाठ किया करे । ५३ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! अब मैं तुम्हें शत्रुघ्नकवच बताऊँगा । तुम आदरपूर्वक सुनो । यह शत्रुघ्नकवच भी सब कामनायें पूर्ण करने और रामकी सङ्गति बढानेवाला है ॥ ५४ ॥ अनुष्ण धारण करनेवाले बड़ा-सा तरकस धारण किये, श्रीरामचन्द्रजीके पास कामभागमें लहे, अपने हाथसे त इका पंखा झलते हुए, सूर्यके समान अक्षिभय विविध उस पंखेकी दीप्ति है, ऐसे शत्रुघ्नजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५५ ॥ 'अस्य श्री' से लेकर 'लक्ष्मणांशुजैति दिग्बन्धः' तक अङ्ग-न्यास आदिकी विधि बतलायी गयी है । इसके आगे ध्यान है—रामके पास कामभागमें विनयपूर्वक सहे कैकेयीके जानन्ददाता, सोम्यस्वरूप, मुकुटसे अतिरंजित, रत्नजडित कंकण, नेत्रूर तथा वनमालासे अलंकृत सिकड़ी और गुण्डल धारण किये रत्नहार तथा सुन्दर नूपुर पहने, आदरपूर्वक रामचन्द्रजीकी पंखा झलते और रामकी ओर निहारत हुए कैकेयीका जानन्द बढानेवाले वीर, उनके दो भुजायें हैं, कमल जंघे नेत्र हैं, दिव्य पीताम्बर पहने, सुन्दर भुजावाले, मेघके सदृश श्यामल तथा सुन्दर मुखवाले, रामकी बातीमें काश लगाने, राजशेकी धारनेवाले, खड्ग धारण किये, धनुष और बाणसे सुनजित बड़ा सा तूणीर धारण किये, सभामें स्थित, रम्य, कस्तूरीका तिलक लगाये, मुकुट और गुण्ड-रत्ने सुशोभित, मुस्कयते मुखवाले, सूर्यके समान जापमान, दिव्यरूपधारी, दशरथके पुत्र, मधुरावासी सबणभ्रुरका मर्दन करनेवाले और श्रीरामके चरणोंमें

शतद्वीप्या रामचन्द्रः पान्वधो भरतानुजः । रविवशोद्भवधोर्ध्वं मध्ये दशार्थान्मजः ॥६५॥  
 सर्वतः पातु मामत्र कैकेयीपोषवर्द्धनः । श्यामलाग शिरः पातु मान् श्रीलक्ष्मणीश्रजः ॥६६॥  
 भ्रुवोर्मध्ये सदा पातु मुमुक्षोस्वभावनीलले । ध्रुवकीर्तिपतिर्मेरे कपोले पातु राघवः ॥६७॥  
 कर्णौ कुण्डलकर्णोऽव्याकामाग्र नृपवश्रजः । मूत्र मम यूना पातु गणी पातु म्फुटाक्षरः ॥६८॥  
 जिह्वां सुवाहूनातोऽव्याघ्रपकेतुपिना द्विज नृ । चिबुकं रम्यचिबुकः कटं पातु सुमाधवा ॥६९॥  
 स्कन्धौ पातु महानेजा भुजा गघनवाक्यकृत् । कर्ग मे कर्कणधरः पातु खड्गा नखन्मम ॥७०॥  
 कुक्षिं रामपियाः पातु पातु वक्षो रघुनमः । पार्श्वे सुराचनः पातु पातु पृष्ठिं वगाननः ॥७१॥  
 अटं पातु रसोदकः पातु नाभि सुन्दोवनः । कटं भक्तमर्त्री म गुह्य श्रीरामसेवकः ॥७२॥  
 रामाश्रितमखाः पातु त्रिगामूरु मिमनाननः । कोदण्डपणिः पान्वत्र जानुनी मम सर्वदा ॥७३॥  
 गममित्रः पातु जघं गुल्फा पातु सन्तपः । पार्श्वे नृपतिपूज्योऽव्याकृत्युमान्पादां गुनीमप ॥७४॥  
 शान्वमानि समस्तानि हृदयार्गवः सदा मम । शेषः शिरःपार्श्वोऽव्याट्टार्थी पातु सुधार्मिकः ॥७५॥  
 दिवसे मायसधोऽव्याट्टोत्तने शरमन्करः । गमने कटकटोऽव्यान्मवदा लवणानक ॥७६॥  
 एवं शत्रुघ्नकवचं मया ते मयुर्दीर्घिनम् । ये पठन्ति नराण्यन्वच नरः श्रीरामभक्तिनः ॥७७॥  
 वनपुष्पस्य चरं चेद् कवचं मंगलप्रदम् । पठन्त्यै नरेभ्यस्तथा पुनर्पात्रमवर्द्धनम् ॥७८॥  
 मस्य स्तोत्रस्य पाठेन यं यः कथं नरोऽर्षियेन । तं तं लभेन्निश्चयेन सत्यमेतद्वचो मम ॥७९॥  
 पुत्रार्थी प्राप्नुयान्पुत्र धनार्थी धनमाप्नुयान् । इच्छाकामं नृ कामार्थी प्राप्नुयान्पठनादिना ॥८०॥  
 कवचस्यास्य भूम्या हि शत्रुघ्नस्य गितिथयात । नमोऽदेनममदा मकन्या पठतोय नरैः शुभम् ॥८१॥

नेत्र लगाये हुए शत्रुघ्नकी का आनन्द करने हम उनमें शत्रुघ्नकवचका पाठ करना चाहिये ॥६५-६७॥ पूर्वकी ओर शत्रुघ्न, दक्षिण तरफ सुगमन की ओर पश्चिम ओर कैकेयीनन्दन हमारी रक्षा करें ॥ ६४ ॥ उत्तरमें रामचन्द्र, नीचे भरतके छोटे भ्राता, ऊपर मृगशत्रु की ओर मध्यम दशरथः मज मेरे रक्षा कर ॥ ६५ ॥ कंठके को आनन्द देनेवाले मेरी चारों ओर रक्षा कर ॥ श्यामल व हनुमान शत्रुघ्न भरतका और लक्ष्मणके अंशज मेरे कलाटकी रक्षा करें ॥ ६६ ॥ सुन्दर मुखवाले सदा मेरे भौतिक मकरमागकी ध्रुवकीर्तिके पति मेरीका तथा राघव दोनों कपोलोंकी रक्षा करें ॥ ६७ ॥ कानामें कुण्डल बाण करनेवाले मेरे कानका नृपवंशज नाभिकाके अग्रभागकी मुखारूपधारी शत्रुघ्न मेरे मुखकी एवं मूत्र अक्षर बोलनेवाले मेरी बाण की रक्षा कर ॥ ६८ ॥ सुवाहूके पिता कर्णोंकी, पुष्पकेतुके पिता दाँतोंकी, सुन्दर चिबुकवाले मेरे चिबुककी और सुन्दर वतें करनेवाले सर कण्ठकी रक्षा करें ॥ ६९ ॥ महाशत्रुमुखी कर्णोंकी रामका अज्ञा बालन करनेवाले भुजका, कर्कणधारी मेरे हाथोंकी और खड्गकी बाण करनेवाले शत्रुघ्न नखकी रक्षा करें ॥ ७० ॥ रामके विष मेरे उदरकी, रघुलज वलाम्बककी, सुरचित पार्श्वभागकी और वरानन पूरमागकी रक्षा करें ॥ ७१ ॥ रक्षार्थ उठकी, मुलीचन नाभिकी, भरतके भव्य कटिभागकी और श्रीरामसेवक गुह्यप्रदशकी रक्षा करें ॥ ७२ ॥ जिन्होंने अपना मन रामको अर्पित कर दिया है वे शत्रुघ्न नाभिकी मुखवाले ऊधवाका और हाथोंमें वनपुष्प धारण करनेवाले सर्वदा मेरे जानुओंकी रक्षा करें ॥ ७३ ॥ राममित्र बाँधोंकी, सुन्दर नृपूर पहननेवाले गुल्फकी, नमतिपूज्य पैरोंकी और श्रीमान् मेरी उँगलियोंकी रक्षा करें ॥ ७४ ॥ उदार भद्रवाले शत्रुघ्न सदा मेरे समस्त अङ्गोंकी रक्षा करें ॥ रमणीय आकृतिवाले मेरे लोमोंकी, रात्रिके समय सुराचक, दिवसके समय सत्यसंध, राजनके समय सुन्दर बाण धारण करनेवाले, ममनके समय सुन्दर बाण धारणनेवाले और सब समय लवणामुरकी मारनेवाले शत्रुघ्न मेरी रक्षा करें ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ इस तरह मेने कुछ शत्रुघ्नकवच का सुनाया ॥ जो लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे सुखमागो होंगे हैं ॥ ७७ ॥ यह कवच बड़ा सुन्दर, मंगलप्रद तथा पुनर्पात्र बढ़ानेवाला है ॥ ७८ ॥ इन स्तोकका पाठ करनेवाला प्राणी जो-आ वस्तुमें चाहता है, उन्हें अवश्य पाता है ॥ मेरी बात सच मानो ॥ इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ७९ ॥ पुत्र चाहनेवाला पुत्र, धन चाहनेवाला धन तथा जो प्राणी जो

आदौ नरैर्मालिनेष पठित्वा कवचं शुभम् । ततः शत्रुघ्नकवचं पठनीयमिदं शुभम् ॥८२॥  
 पठनीयं भरतस्य कवचं परमं ततः । ततः सौमित्रिकवचं पठनीयं सदा नरैः ॥८३॥  
 पठनीयं ततः सीताकवचं भाग्यवर्द्धनम् । ततः श्रीरामचन्द्रस्य कवचं सर्वशोचनम् ॥८४॥  
 पठनीयं नरैर्भक्त्या सर्ववर्त्तिनदायकम् । एवं पठ् कवचाभ्यञ्ज्य पठनीयानि सर्वदा ॥८५॥  
 पठनं षट्कवचानां भेष्टं मोक्षकथाधनम् । स्नात्वाऽत्र मानवैर्भक्त्या कार्यं यः पठनं सदा ॥८६॥  
 अशक्तेनापि चत्वारि पठनीयानि मादृशम् । इदमप्यथ मौमित्रेः सीताया राघवस्य च ॥८७॥  
 इमानि पठनीयानि चत्वारि कवचानि हि । चतुर्णां कवचानां च पठने मानवस्य च ॥८८॥  
 न यद्यत्रात्रकाशश्चैनदा श्रीणि पटेश्वर । मारुतेष्वथ सीतायामनुया श्रीगणकस्य च ॥८९॥  
 त्रयाणां कवचानां च न पाठ्यसमे यदा । पठनार्थं मानवस्य तदा द्वे कवचे स्मृते ॥९०॥  
 मारुतेष्वथ रामस्य सीताया राघवस्य वा । तैकमेव षट्कवात्र श्रीरामकवचं शुभम् ॥९१॥  
 अवकाशे कवचानां षट्कमेव सदा नरैः । पठनीयं क्रमेणैव कर्तव्यो नालसः कदा ॥९२॥  
 यदाऽवकाशो नास्त्येव तदा तेषां सुखमपे । यथा विशेषः प्रोक्तोऽयं न सर्वेषां मयैरितः ॥९३॥

इति शत्रुघ्नकवचम् ।

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य स्वमा यद्यनृष्टं ननन्दयोरिति । अन्यन्किञ्चिन्नरक्षामि नन्दनपुत्राश्च मादृशम् ॥९४॥  
 शीतः प्रवयः श्रीगणः सदा मेघोऽत्र मानवः । वीणावाद्यादिभिर्भक्त्या नृगन्धर्वाणि समाचरेत् ॥९५॥  
 दशरथनन्दनेति सर्वमुक्त्वा ततः परम् । मेघउपासेति वै चोक्त्वा तथा रविकुलेति च ॥९६॥  
 मन्दनराजामेति हार्विशाश्च त्रयस्त्रयम् । मनुः सदा जयनीयो वीणावाद्येन सुस्वरम् ॥९७॥

दशमयनन्दन मेघश्याम रविकुलमण्डन राजाराम इति मनुः ।

कीर्तनेऽस्य मनोर्नैव कार्यो न्यासो जपे स्मृतः । एवं सर्वेषु मर्षेषु चोद्भूयं मानवैर्धुवि ॥९८॥

भा. चाहता है, तो उस मिलता है ॥ ८० ॥ इस भूमण्डलमें शत्रुघ्नकवच बड़ा उत्तम है । अतएव मनुष्यको सर्वप्रथम इसका पाठ करना चाहिए ॥ ८१ ॥ लोगोंको चाहिए कि पहले हनुमत्कवचका पाठ करके इस शत्रुघ्न-कवचका पाठ करें । ८२ ॥ इसके बाद भरतकवच और भरतकवचके बाद सौमित्रकवचका पाठ करें ॥ ८३ ॥ इसके बाद भाग्यको बढ़ानेवाले सीताकवचका पाठ करके श्रीरामकवचका पाठ करें ॥ ८४ ॥ इस तरह सब वांछित फल देनेवाले छः कवचोंका प्रतिदिन पाठ करते रहें ॥ ८५ ॥ इन छहों कवचोंका पाठ अथ और मोक्षका साधन है । ऐसा सम्झकर लोगोंको सर्वदा इनका पाठ करने रहना चाहिए ॥ ८६ ॥ यदि ऐसा न कर सके तो हनुमान्जी, लक्ष्मण, सीता तथा रामके कवचका पाठ करें । यदि इन चारोंके पाठ करनेका समय किसी प्राणीको न मिले तो हनुमन्जी, सीता तथा रामके कवचका ही पाठ करें ॥ ८७-८८ ॥ यदि तीन कवचके पाठ करनेका भी अवसर न मिल सके तो हनुमान तथा राम इन दोनों कवचोंका ही पाठ करें । किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखते कि ऊपर बतलाये कवचोंमेंसे किसी एकका अवकाश रामकवचका ही पाठ करके न रह जाय ॥ ९० ॥ ९१ ॥ जब समय मिले, तब सुनों कवचोंका क्रमशः पाठ करें । आलस्यवश दास न दे ॥ ९२ ॥ यदि किसी विशेष अवधानके कारण कुछ भी समय न मिल सके, तबोंके लिए यह परिहार बतलाया गया है । यह सब सम्भव और सबके लिए लाभ नही है ॥ ९३ ॥ रामदासने कहा-है मिया । तुमने हमसे जो पूछा, वह सुनाया । अब और कुछ बाने बतला रहा हूँ, उन्हें आदरपूर्वक सुनो ॥ ९४ ॥ लोगोंको यह भी चाहिए कि एदा गीत-कविता आदिसे रामचन्द्रजीका गुण गाज करें और शीघ्र आदि कायाकलाप भक्तिपूर्वक पाचें ॥ ९५ ॥ पहले 'दशरथनन्दन' ऐसा कहकर 'मेघश्याम' फिर 'रविकुलमण्डन' ऐसा कहकर 'राजाराम' कहते हुए 'दशरथनन्दन मेघश्याम रविकुलमण्डन राजाराम' इस मन्त्रका कोहन और जप किया करें ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ईश



रामजयेति चोक्त्वा तु विशागं चाथ सुस्वरम् । रामेति द्वेऽधरे न्वन्ते सोक्त्वा वीणास्वरेण च ॥१०९॥

चतुर्दशाक्षरश्राव्यं कीर्तनार्थं मयेतिनः ॥११०॥

राम जय राम जय राम जय राम इति मनुः ।

मंत्रशास्त्रेषु ये मंत्रास्ते जगर्धे प्रकीर्तिताः । इमे मंत्राः कीर्तनार्थं ज्ञातव्या मानवोत्तमैः ॥१०१॥

एतेषामपि चेद्वक्त्या मंत्राणां च जपः कृतः । तदा मर्म्मोपविश्यति तेषां पापानि त्रैलोक्यात् ॥१०२॥

अन्धान् मंत्रान् प्रवक्ष्यामि तान् शृणुष्व द्विजोत्तम । राजीवलोचनेन्युक्त्वा मेघश्यामेति वै ततः ॥१०३॥

तथा मीतारंजनेति राजारामेति वै ततः । एकोनविंशद्वर्णश्च राममंत्रस्तथ स्मृतः ॥१०४॥

राजीवलोचन मेघश्याम मीतारंजन राजाराम इति मंत्रः ।

अयं मंत्रः सुस्वरेण कीर्तनाद्यो मुहुर्मुहुः । वीणास्वरेण सपुष्कश्यामने गमनेऽपि च ॥१०५॥

श्रीसुन्दर्यै जयशब्दमप्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःसप्तकृत्वा शृणुताश्च नाम जपं निदहन्पाद्द्विविकोटिहन्त्याः ॥१०६॥

श्रयोदशाक्षरश्राव्यं राममंत्रः शुभाग्रहः । जानीयः कीर्तनीयः सर्वदाऽयं मुहुर्मुहुः ॥१०७॥

श्रीगम जय राम जय जय राम इति मनुः ।

अयं मंत्रः सुस्वरेण तथा वीणास्वरादिना । कीर्तनीयो मुदा मन्त्र्यैर्मंत्रशास्त्रेऽप्ययं स्मृतः ॥१०८॥

तस्मान्ममदा जपनीयः सर्वमदिप्रदायकः । अष्टादशाक्षर मंत्र न्वन्य शृणु शुभाग्रहम् ॥१०९॥

उक्त्वा मीतारंजनेति मेघश्यामेति वै ततः । कीर्तयानुनेन्युक्त्वाश्च राजारामेति वै ततः ॥११०॥

मीतारंजन मेघश्याम कीर्तयानुन राजाराम इति मनुः ।

अष्टादशाक्षरश्राव्यं कीर्तनीयो महामनुः । वीणास्वरागमनश्च कलकठन सुस्वराः ॥१११॥

रविवाकूलजानं वन्दे चेति प्रकीर्त्यं च । सुरभूमुरेन्युक्त्वा अग्रे गीतं चेति ततः परम् ॥११२॥

मन्त्रका जप करते मन्त्र श्राव्य आदि कारकी कोई आवश्यकता नहीं प्रहृतः । इसी तरह अली मतलबसे जानवान् मन्त्रोंके भी विशेषमें जानना चाहिए ॥ १०८ ॥ 'रामजय' ऐसा तीन बार कहकर वीणाके स्वरसे 'राम' इस दो अक्षरवाले उच्चारण करने का है । यह च ईशान्मन्त्र नाम के मन्त्रको कर्तव्य करनेके लिए बतलाया है । 'राम जय राम जय राम राम जय राम' यह मन्त्र है । मन्त्रशास्त्रसे जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जप करनेके लिए हैं । किन्तु ये मन्त्र कीर्तन करनेके लिए भी लिखे गये हैं ॥ १११ ॥ यदि भक्तिपूजक इनका जप भी किया जाय तो अणभरमें जप करनेवाले को सब पापके जल आयसे ॥ ११० ॥ हे द्विजोत्तम । मुझ से और भी बहुतसे मन्त्र बतलाइंगे । 'राजीवलोचन' ऐसा कहकर 'मेघश्याम' तथा 'मीतारंजन' और 'राजाराम' ऐसा कहे । यह चतुर्दश अक्षरोंका मन्त्र है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ राजीवलोचन मेघश्याम मीतारंजन राजाराम' यह मन्त्र है । अली तरह मांडे स्वरसे बारम्बार इन मन्त्रका कीर्तन करता रहे । चलते फिरते उठते बैठते सदा इस मन्त्रका कीर्तन करे ॥ १०१ ॥ आदिमें 'श्री' उसके बाद 'जय' फिर दो जयके बीचमें 'राम' बक्कीस बार नाम जपनेवाला मरुत्य करोड़े महाहत्याके पापके नष्ट कर देता है ॥ १०६ ॥ यह त्रयोदशाक्षर राममंत्र बड़ा कल्याणदायक है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि बारम्बार इस मन्त्रका जप और कीर्तन करते रहे ॥ १०७ ॥ 'श्रीराम जय राम जय जय राम' यह मन्त्र है । लोगोंका उचित है कि इस मन्त्रको वीणा आदिके स्वरके साथ साथ प्रतिपूर्वक कर्तव्य करे । मन्त्रशास्त्रमें भी इस मन्त्रका उल्लेख है ॥ १०८ ॥ इसलिए सर्वदा इस मन्त्रका जप भी करना चाहिए । क्योंकि यह सब प्रकारको सिद्धियोंको देनेवाला है । अब मैं एक और अष्टादशाक्षर मंत्र बतला रहा हूँ । वह भी बड़ा माण्यकारी है ॥ १०९ ॥ 'मीतारंजन' ऐसा कहकर 'मेघश्याम' फिर 'कीर्तयानुन' कहकर 'राजाराम' कहना चाहिए ॥ ११० ॥ 'मीतारंजन मेघश्याम कीर्तयानुन राजाराम' यह मन्त्र है । इस अष्टादशाक्षर महामन्त्रका कीर्तन करना चाहिए । कीर्तन वीणाके स्वरके साथ तथा कोकिलके समान मोठे स्वरोंमें होनेसे विशेष लाभदायक होता है ॥ १११ ॥ 'रविवाकूलजानं

ममदशसुवणम् राममंत्रस्तव्यं शुभः । कीर्तनीयः सुस्वरं हि शोणादाद्यस्त्रादिका ॥११३॥  
रविवरकुलजान वन्दे सुमधुरमोक्षम् इति मनुः ।

विष्णुदाममृण्मन्त्रान् राममंत्रान् शुभायहः । येन स्मरणमात्रेण मदन्तर्धं कृतं भजेत् ॥११४॥

कीमन्पासुतेन्युक्त्वाथ रामेति द्वेऽक्षरे तथा नया मीठारंजनेति मेवदशमेति च ततः ॥११५॥

गोदशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः शुभायहः । वीणास्वरपूर्वकश्च कलकटेन सुस्वरः ॥११६॥

कीमन्पासुतराम मानारजन् मेवदशम इति मनुः ।

गोदशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः सदा नमैः । गर्वपापक्षयकरः सर्ववर्षाधिपदायकः ॥११७॥

दशरथनन्दनमि पूर्वमुक्त्वा ततः परम् । मधुदशमिति चोक्त्वा भीतेति द्वेऽक्षरे तथा ॥११८॥

भजेनेति ततश्चोक्त्या राजारामेति च ततः । विंशाक्षरपञ्चम्यं महापातकनाशनः ॥११९॥

दशरथनन्दन मेघदशम मन्तारजन् राजाराम इति मनुः ।

अर्थ विंशाक्षरो मन्त्रः कीर्तनीयः सुखप्रदः । वीणस्वरममेतश्च महापुण्यप्रदः स्मृतः ॥१२०॥

वदे रघुवीरमिति चोक्त्वा चैव ततः परम् । उक्त्वा सांज्ञाकान्तमिति रणधीरमिति क्रमात् ॥१२१॥

चतुर्दशाक्षरश्चायं राममंत्रः शुभायहः । कीर्तनीयो जनेभ्यः सदा महामंगलकारकः ॥१२२॥

वदे रघुवीरं वीणाकांतं रणधीरम् इति मनुः ।

अथ राम अथ राम संकीर्त्यं सुस्वरं ततः । जय जयान् संकीर्त्यं रामेति द्वेऽक्षरे पुनः ॥१२३॥

चतुर्दशाक्षराय हर्षायः कथितो मनुः । कीर्तनीयो जनेभ्यः सदा महामंगलकारकः ॥१२४॥

अथ राम अथ राम जय जय राम इति मनुः ।

मनुः मीठागधवेति पञ्चवर्णान्वितः स्मृतः । जयन्त्येवः कीर्तनीयो वीणावाणेन सुस्वरः ॥१२५॥

मीठागधव इति मनुः

मन्त्र" इसका उच्चारण करने के "मृदुमृदुर" ऐसा कहकर 'न तत्' का उच्चारण करे ॥११३॥ तब वह सुन्दर वर्णों-  
से बस शुभ राममंत्रका रचना को सफे है । न मात्रो चाहिए कि शोण आदि वाजोंके साथ मीठे स्वरसे  
इस मंत्रका कीर्तन किया करे ॥ ११३ ॥ "रविवरकुलजान वन्दे सुमधुरमोक्षम्" यह मंत्रका स्वरूप है । राम-  
दास कहते हैं कि ये विष्णुदास । अब मैं भी और कहूँ तो शुभ मंत्र सुन्दर बता रहा हूँ, सुनो । जिनके  
स्मरणमात्रसे बड़े बड़े पाप भूल जाते हैं । ॥ ११४ ॥ 'कीमन्पासुत' ऐसा कहकर 'राम' इसका उच्चारण  
करे । तदनन्तर 'मीठारंजन' और उसके बाद 'मधुदशम' कहें । ॥ ११५ ॥ यह पारशाक्षर मंत्र बड़ा शुभ है ।  
इसीलिए लोगोका चाहिए कि मंडा आराजस बाणा आदि वाशक माधन्याय इसका कीर्तन करे ॥ ११६ ॥  
"कीमन्पासुत राम से राजंजन मधुदशम" यही मंत्रक स्वरूप है । इस पारशाक्षर मंत्रका श्रेष्ठ सर्वज्ञ कीर्तन  
करे । क्योंकि यह समस्त पापोंका नाशक और सब प्रकारका अधिलक्षित कामनामोक पूर्ण करनेवाला महाभंत्र  
है ॥ ११७ ॥ "दशरथनन्दन" ऐसा कहकर पहले 'मधुदशम' और उसके बाद "राजा" इन दो अक्षरोंको  
कहकर 'रञ्जन' ऐसा कहने हुए "रामराम" कहें । यह बीस अक्षरोंवाला राममंत्र बड़े-बड़े पातकोंका  
नाशक है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ "दशरथनन्दन मेघदशम सन्तारजन् राजाराम" यही इस मंत्रका स्वरूप है ।  
जन्तोंको चाहिए कि सब प्रकारका सुख देनेवाले इस विंशाक्षर मंत्रका बड़े स्वर तथा वीणा आदि वाजोंके  
साथ कीर्तन करे । क्योंकि यह बड़ा पुण्यदायक मंत्र है ॥ १२० ॥ "वन्दे रघुवीरम्" ऐसा कहकर "वीणाकाण्डम्"  
तथा "रणधीरम्" ये शब्द कहें ॥ १२१ ॥ बड़े परम पवित्रायक चतुर्दशाक्षरामय राममंत्र है । लोगोको जानित  
है कि महामंगल करनेवाले इस मंत्रका मतिपूर्वक कानन करें ॥ १२२ ॥ "वन्दे रघुवीरं वीणाकांतं रणधीरम्"  
यह इस मंत्रका स्वरूप है । "जय राम जय राम" ऐसा कहकर "जयजय" ऐसा कहते हुए "राम" के दो  
अक्षर कहें । "जय राम जय राम जय जय राम" यह इस मंत्रका स्वरूप है । चतुर्दशाक्षर मंत्रमें यह तीसरा  
मंत्र है । लोगोको चाहिए कि महाराजकाका नश करनेवाले इस मंत्रका कीर्तन किया करें ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

भजेति द्वेऽक्षरे पूर्वं सीताराममिति क्रमात् । मानसेति ततश्चोक्त्वा भजेति द्वेऽक्षरे पुनः ॥१२६॥  
ततो राजाराम इति मंत्रः पञ्चदशाक्षरः । कीर्तनीयो मनुष्याय वीणावाद्येन सुख्यः ॥१२७॥

भज सीताराम मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

श्रीसीताराममित्युक्त्वा वन्दे चोक्त्वा ततः पुनः । श्रीराजाराममिति च कीर्तयेन्सुखं मुहुः ॥१२८॥  
द्वादशाक्षरमश्रोष्य कीर्तनीयः सदा ज्ञेयः । वीणावाद्यादिना पुष्पः सर्ववाञ्छितदायकः ॥१२९॥

श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम् इति मनुः ।

गवणमर्दनेऽप्युक्त्वा रामेऽप्युक्त्वा ततः परम् । राघवसि ततश्चोक्त्वा वाली चेति ततः क्रमात् ॥१३०॥  
मर्दनेति पुनश्चोक्त्वा रामात् द्वेऽक्षरे पुनः । स्मृतोऽष्टादशवर्णश्च द्वितीयोऽप्य मनुः शुभः ॥१३१॥

राघवमर्दन राम राघव वालीमर्दन रामेति मनुः ।

अयं मंत्रः कीर्तनीयः सर्वदा मानवोचमैः श्रीसीताराममिति च मानसेति ततः परम् ॥१३२॥  
यजेति द्वेऽक्षरे चोक्त्वा राममिति द्वेऽक्षर पुनः । रामासात् द्वेऽक्षरे च मश्रोऽयं परमः शुभः ॥१३३॥  
चतुर्दशाक्षरश्चायं चतुर्थस्य मयोग्नः कीर्तनीयः सुखीऽयं वीणावाद्यपुरःसरः ॥१३४॥

श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

सीताराम जयेत्युक्त्वा राज रामोति वै ततः अयं दशाक्षरो मंत्रः कीर्तनीयोऽप्य सुख्यः ॥१३५॥  
सीताराम जय राजाराम इति मनुः ।

श्रीसीताराममिति च वद राममिति क्रमात् । जय रामं ततश्चोक्त्वा अष्टोदशाक्षरो मनुः ॥१३६॥  
कीर्तनीयः सदा मर्त्यैः सर्वफलकनाशनः । वीणावाद्यादिना मन्त्रं द्वितीयोऽप्य मनुः स्मृतः ॥१३७॥  
श्रीसीतारामं वद राम जय रामम् इति मनुः ।

मां पाश्वतीति चोक्त्वादीं दीनं राघव चेति द्वि स्वल्पदयुगलीनं वै जेत्येष षोडशाक्षरः ॥१३८॥

‘सीतारामव’ यह पंचदशलिखित राममंत्र है । पुनश्च छोटे स्वर और वीणा आदि वाद्योंके साथ इस मंत्रका कीर्तन और जप करे ॥ १२४ ॥ “सीतारामव” यह इस मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘मज’ यह शब्द कहकर ‘सीतारामम्’ कहे । उसके बाद “मानस” यह शब्द कहकर ‘भज राजारामम्’ ऐसा कहें । यह पंचदशाक्षराम्त्रक राममंत्र है । इसे जो जप या छोटे स्वर तथा वीणा आदि वाद्योंके साथ कलन करे ॥ १२६-१२८ ॥ “भज सीताराम मानस भज राजारामम्” यह इस मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘श्रीसीतारामम्’ ऐसा कहकर ‘वन्दे’ कहे और उसके बाद ‘श्रीराजारामम्’ कहकर इस मंत्रका कलन करे । यह द्वादशाक्षराम्त्रक मंत्र है । ‘श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम्’ यह इस मंत्रका स्वरूप है । लोगोंको उचित है कि सब प्रकारकी कामनाओं पूर्ण करनेके लिये इस मंत्रका जप और कीर्तन करे ॥ १२९ ॥ पहले ‘राघवमर्दन’ फिर “राम” उसके बाद “रामव” फिर “वालीमर्दन” तदनन्तर “राम” ऐसा कहें । अष्टादशाक्षर मंत्रोंमें यह दूसरा मंत्र है । ‘राघवमर्दन राम राघव वालीमर्दन राम’ यह इस मंत्रका स्वरूप है । मन्त्रजनोंको चाहिए कि सर्वदा इस मंत्रका जप किया करे । पहले “सीतारामम्” उसके बाद “मानस” फिर ‘भज’ और उसके पश्चात् “राजारामम्” ऐसा कहें । यह बड़ा पवित्र मन्त्र है ॥ १३०-१३४ ॥ चतुर्दशाक्षरात्मक मंत्रोंमें यह चौथा मन्त्र है । इसका जो वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन तथा जप करना चाहिए । श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम्” यही इस मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘सीताराम जय’ फिर ‘राजाराम’ ऐसा कहें । यह दशाक्षर राममंत्र है । लोगोंको चाहिए कि सोई स्वरसे इस मंत्रका जो कीर्तन किया करें ॥ १३५ ॥ ‘सीताराम जय राजारामम्’ यही इस मंत्रका स्वरूप है । पहले “सीतारामम्” फिर “वन्द रामम्” और इसके बाद “जय राम” ऐसा कहें । यह त्रयोदशाक्षर राममंत्र है । संसारके प्राणियोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ नियम इस मंत्रका कीर्तन करे ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ “श्रीसीतारामं वन्दे रामं जय रामम्” यह मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘मां पाश्वतीति

कीर्तनीयो मनुर्मर्त्यैः सर्वपातककृतनः । वीणावाद्यस्वरेणोच्चैः कलकंठेन सुस्वरः ॥१३९॥

मां पाक्षतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनमिति ।

द्वितीयोऽयं मया प्रोक्तो मंत्रो वै षोडशाक्षरः । १४०॥

जय जयेति वै चोक्त्वा राघवेति ततः परम् ममाक्षरमनुयायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४१॥

जय जय राघव इति मनुः ।

जयजयेति संकीर्त्य तथा रघुवरेति च । अष्टाक्षरमनुयायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४२॥

जय जय रघुवर इति मनुः ।

त्वं मां पालयेन्मुक्त्वा सीतारामेति वै पुनः । नवाक्षरमनुयायं मनुयायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४३॥

वीणावाद्यस्वरेणैव महापातकनाशनः ॥१४४॥

त्वं मां पालय सीतागम इति मनुः

सीताराम जयेन्मुक्त्वा मनुः षडक्षरः स्मृतः कीर्तनीयः सदा मर्त्यैर्वीणावाद्येन सुस्वरः । १४५॥

सीतागम जय इति मनुः ।

श्रीसीतारामेति मनुर्ज्ञेयः पञ्चाक्षरः शुभः । कीर्तनीयः सदा मर्त्यैर्वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१४६॥

श्रीसीताराम इति मनुः ।

सीतारामेति मनुश्चतुर्वर्णात्मकः स्मृतः ।

सीतागम इति मनुः ।

श्रीरामेति त्र्यक्षरश्च रामेति द्व्यक्षरो मनुः ॥१४७॥

श्रीराम इति मनुः । राम इति मनुः ।

राकारो बिंदुना युक्तश्चैकवर्णात्मको मनुः । अयं सदा जपनीयः कीर्तनीयो न वै कदा ॥१४८॥

रां इति मनुः ।

रामजयेति चोक्त्वाऽऽदी सीतारामेति वै ततः । राघवेति ततश्चोचन्वा मंत्रस्त्वैकादशाक्षरः ॥१४९॥

किर 'दीनं राघव' इसके बाद 'त्वत्पदयुगलीनम्' ऐसा कहे । यह षोडशाक्षर मन्त्र सब प्रकारके पापोंको काटनेवाला है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा वादि बाजों और कोकिला जैसे कीड़े तथा ऊँचे स्वरसे इस मन्त्रका कीर्तन करें ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ "मां पाक्षतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनम्" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । षोडशाक्षर मन्त्रोंमें यह दूसरा मन्त्र है । १४० ॥ पहले 'जय जय' ऐसा कहकर "राघव" कहे । यह सप्ताक्षर मन्त्र है । लोगोंको इसका भी कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४१ ॥ "जय जय राघव" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "जय जय" कहकर "रघुवर" कहे । यह अष्टाक्षर मन्त्र है । लोगोंको इसका भी जप करते रहना चाहिए । १४२ ॥ "जय जय रघुवर" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "त्वं मां पालय" ऐसा कहकर "सीताराम" ऐसा कहे । यह नवाक्षर मन्त्र है । लोगोंको इस मन्त्रका भी जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिये । क्योंकि यह बड़े बड़े पापोंका नाशक है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ "त्वं मां पालय सीताराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम जय" यह षडक्षर राममन्त्र है । संसारके लोगोंको चाहिए कि वीणा वादि बाजोंके साथ इस मन्त्रका भी कीर्तन करें । "सीताराम जय" यह मन्त्रका स्वरूप है । "श्रीसीताराम" यह पञ्चाक्षर राममन्त्र है । यह भी महाम् पातकोंका नाशक है । इसलिए लोगोंको इसका जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ "श्रीसीताराम" यह मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम" यह चतुर्वर्णात्मक राममन्त्र है । "श्रीराम" यह त्र्यक्षर राममन्त्र है । "राम" यह द्व्यक्षर मन्त्र कहा गया है ॥ १४७ ॥ "श्रीराम" और "राम" यह मन्त्रका स्वरूप है । राकारको बिंदुयुक्त ( रा ) कर देनेसे एकाक्षर राममन्त्र हो जाता है । लोगोंको

राम जय सीताराम राघवेति मनुः ।

दशरथनन्दनेति रघुकुलेति वै ततः धूपणेति तत्रश्लोकत्वा कौमल्येति तत्र परम् ॥१५०॥

विश्रामेति तत्रश्लोकत्वा पंकजलोचनेति च रामेति द्वेऽक्षरे चापि एकाविंशाक्षरे मनुः ॥१५१॥

अयं सदा कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वरः प्रोक्तः पानकविश्वम्पी सर्वदा छिन्द्यायकः ॥१५२॥

दशरथनन्दन रघुकुलधूपण कौमल्यविश्राम पंकजलोचन रामेति मनुः

सीताराम जय-युक्त्वा राघवेति ततः परम् । रामेति द्वेऽक्षरे चापि मन्त्रस्वेक एवाक्षरः ॥१५३॥

कीर्तनीयः सुस्वरोऽयं मन्त्रो वीणावाद्येन च । महापानकविश्वप्रोक्तः सर्वदा छिन्द्यायकः ॥१५४॥

सीताराम जय राघव रामेति मनुः ।

एकादशाक्षराय मन्त्रः प्रोक्तो मन्त्रोऽयं द्विः द्वितीयः परमः श्रेष्ठो महापानकनाशनः ॥१५५॥

पञ्चवटीस्थितेन्युक्त्वा रामजयजयेति च दशरथनन्दनेति रामेति द्वेऽक्षरे तथा ॥१५६॥

एकविंशाक्षराय कीर्तनीयो महामनुः । कलकण्ठेन मन्त्रेण महापानकनाशनः ॥१५७॥

पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनन्दन रामेति मनुः ।

दशरथसुतेन्युक्त्वा पालं वदे विविति क्रमात् राम घननीलमिति मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥१५८॥

द्वितीयोऽयं मन्त्रो प्रोक्तः कीर्तनीयो मनोरमः वीणावाद्यस्वरेण च महापुष्पविश्वर्द्धनः ॥१५९॥

दशरथसुतपालं वदे राम घननीलमिति मनुः ।

कोदण्डखड्गेन्युक्त्वा दशशिरमर्दनेति च । कौमल्यासुत रामेति सीतारजन चेति वै ॥१६०॥

राजारामेति वै चोक्त्वा ऐकोनविंशवर्णकः । कीर्तनीयो मनुश्राय वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१६१॥

कोदण्डखड्गेन दशशिरमर्दनेन कौमल्यासुत राम सीतारजन राजारामेति मनुः ।

बाहिए कि इस एकाक्षर मन्त्रका कवल जय कर, कीर्तन नहीं ॥ १५० ॥ 'राम' यह एकक्षर मन्त्रका स्वरूप है । पहले 'राम जय' कहकर 'सीताराम' और इसके बाद 'राघव' ऐसा कहें । यह एकादशाक्षरमन्त्रक राममन्त्र है । ॥ १५१ ॥ "राम जय सीताराम राघव" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । पहले "दशरथनन्दन" फिर "रघुकुल" फिर "धूपण" फिर "कौमल्यविश्राम" फिर "पंकजलोचन" और इसके बाद 'राम' ऐसा कहें । यह अट्ठाईस अक्षरोंका राममन्त्र है ॥ १५० ॥ १५१ ॥ लोगोंको वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे सदा इस मन्त्रका जप और कीर्तन करना चाहिए, क्योंकि यह सब प्रकारका पातक नष्ट करनेवाला और अभीष्ट कामनाओंका पूरा करनेवाला मन्त्र है । "दशरथनन्दन रघुकुलधूपण कौमल्यविश्राम पंकजलोचन राम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम जय" ऐसा कहकर 'राघव' और उसके बाद 'राम' ऐसा कहें । यह एकादशाक्षर मन्त्र है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ यह भी सब प्रकारका पातक नष्ट करनेवाला है । "सीताराम जय राघव राम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे इसका जप और कीर्तन करें । क्योंकि यह प्रकारकी कामनाय इससे पूर्ण हो जाती हैं ॥ १५४ ॥ "पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनन्दन राम" यह इस एकाविंशाक्षर राघवमन्त्रका स्वरूप है । "दशरथनन्दन रघुकुलधूपण कौमल्यविश्राम पंकजलोचन राम" यह इस एकाविंशाक्षर राममन्त्रका स्वरूप है । "कोदण्डखड्गेन" ऐसा कहकर "दशशिरमर्दन" इसके बाद "कौमल्यासुत राम सीतारजन राजारामेति" और "राजाराम" कहें । यह मन्त्र एकोनविंशाक्षरमन्त्रक है । इसका भी वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे

कोदण्डमञ्जनेन्युक्त्वा रावणमर्दनेति च । कौसल्याविश्रामेति ततः परम् ॥ १६२ ॥  
सीतारञ्जनेति ततो राजारामेति वै ततः । मन्त्रविशालम्भार्थं मनु प्रोक्तः शुभपदः ॥ १६३ ॥

कोदण्डमञ्जन रावणमर्दन कौसल्याविश्राम सीतारञ्जन राजारामेति मनुः ।

कोदण्डमञ्जनेन्युक्त्वा वालीताडन चेति वै । ललाटादनेति ततः । पाशाग्रमरणेति च । १६४ ।  
रावणमर्दनेन्युक्त्वा रविकुलेति वै ततः । भूषणेति तत्रोक्त्वा कौसल्याविश्रामेति ततः परम् ॥ १६५ ॥  
विश्रामेति तत्रोक्त्वा सीतारञ्जन चेति वै । २ राजारामेति वै चोक्त्वा पञ्चाशदशमो मनुः । १६६ ॥  
अयं सदा कीर्तनीयो वंशवाद्येन सुख्यः । मन्त्रः । हि त्रिष्टुप् महापावननाशनः ॥ १६७ ॥

कोदण्डमञ्जन वालीताडन ललाटादन पाशाग्रमरण रावणमर्दन रविकुलभूषण

कौसल्याविश्राम सीतारञ्जन राजारामेति मनुः ।

एवं नानाविधा मन्त्राः सन्नि शिष्य मदम्बुशः । सदसर्पद्वयेन कम्पान् दत्तुं मयेन समः । १६८ ॥  
एते सर्वे कीर्तनाया शीघ्रं घेन सुख्यः । इमे मन्त्रा अपनीया न शेषा मानगोचरम् । १६९ ॥  
मन्त्रशास्त्रेषु ये प्रोक्तानि जप्यन्ते सर्वे । ते मन्त्राः शिष्याणां कीर्तनीयास्त्रिमेष्ट्युताः १७० ॥  
एतान् मन्त्रान् पुरस्कृत्य प्रचक्षते विधिः शम्भुः । रचनीयाः कुट्टनद्विर्नाम पाणिनादगन् ॥ १७१ ॥  
ये ये नोक्ता मया मन्त्राणां पुण्या मय्येवम् । जपन्ते तेनैव देवैः सन्ते तेनैव देवैः त्रयने हरिः ॥ १७२ ॥  
मन्त्रैः पञ्चमैः कार्यैश्च स्तुतिभिः कीर्तनादिभिः । प्रार्थनैर्वा कल्पितैर्वा रामो मेवः मदानरः ॥ १७३ ॥  
येन केन प्रकारेण कार्यं राघवानितनम् । पापघातिः स्रजं हृष्या भीमवन्तिनेन हि ॥

भवस्यैव न मदेहः पारकेन यथा कुटी ॥ १७४ ॥

दमेन वातिभक्त्या वा निष्कामाद्वा सकामतः । यद्यत्र राघवो गीतस्तेन वापि हुनं भवेत् ॥ १७५ ॥

स्वरसे कीर्तन करना चाहिए ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ 'कोदण्डमञ्जन दशकिरमर्दन कौसल्याभूत राम सीतारञ्जन राजाराम' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । 'कोदण्डमञ्जन' कहकर 'रावणमर्दन' इसके बाद 'कौसल्याविश्राम' और 'सीतारञ्जन राजाराम' कहे । यह सप्तविंशत्यम्यक शुभ राघवमन्त्र है ॥ १६९ ॥ १६९ ॥ "कोदण्डमञ्जन रावणमर्दन कौसल्या विश्राम सीतारञ्जन राजाराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । 'कोदण्डमञ्जन' कहकर 'वालीताडन' और इसके बाद ललाटादन पाशाग्रमरण 'रावणमर्दन' 'रविकुलभूषण' 'कौसल्याविश्राम' और 'सीतारञ्जन राजाराम' ऐसा कह । यह पञ्च दशाभ्याम्यक राघवमन्त्र है । इसे भी जोणा आदि वादोंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए । यह मन्त्र सत्य राममन्त्रोक्त श्रेष्ठ है और बड़े बड़े पातक नष्ट कर देता है ॥ १६९-१६९ ॥ 'कोदण्डमञ्जन वालीताडन ललाटादन पाशाग्रमरण रावणमर्दन रविकुलभूषण कौसल्याविश्राम सीतारञ्जन राजाराम' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । हे शिष्य ! इस प्रकार हजारों राममन्त्र हैं । जिन्हें कोई हजारों वर्ष तक कहुना जाय, फिर भी पूरी तोरसे नहीं कह सकना । १६७ ॥ ऊपर बतलाये सब मन्त्रोंकी सीमा आदि वादोंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए । धन्य मनुष्योंको यह भी जान लेना चाहिए कि ये सब मन्त्र जपनेके लिए नहीं बल्कि कवन कामके लिए हैं । इनके अतिरिक्त मन्त्रकार्योंमें जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जपनेके लिए हैं, बल्कि कामके लिए नहीं । बुद्धिमान् कवियोंको चाहिए कि इन्होंने मन्त्रोंके आधारपर विविध मायाओंमें विविध प्रकारके प्रबन्धोंमें रचना कर ॥ १६८-१७० ॥ मैंने जिन जिन मन्त्रोंको नहीं बतलाया है उन्हें भी बुद्धिमान् लोग चहे वा अगच्छ कथ्यमाना सकते हैं । जब मन्त्रोंकी रचना करनेमें कोई दोष नहीं होता, बल्कि ऐसा करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं । १७१ ॥ मन्त्र, प्रसन्न, काव्य, स्तुति, कीर्तन ये सब प्राचीन हों वा अरुण भीमसे नये बनाये गए हों, उनका कानन करना चाहिए । किन्तु भी प्रकारमें रामका स्मरण करना जरूरी है । क्योंकि राघव ही न जन्मते गरी पञ्चाशति उवा तन्म अण्धरमें बल जाता है । जैसे फूलकी कुटीमें आग भजन है तो तन्म अण्धर उगे जलका मन्त्र कर देता है । १७२-१७४ ॥ दमसे, भक्तिसे, निष्काम वा सकाम जिस किसी तरह भी राघवनामका कानन करनेमें वाप अल अल है ॥ १७५ ॥

यथा बह्विस्तूलाणि स्पर्शिनः कामनां विना । कामेन वा दहत्येव सणात्तद्वन्न संशयः ॥१७६॥

मन्त्रैः प्रबन्धैः काव्यैश्च नानाचारित्र्यवर्णनैः

अत्यशुद्धैः स्तुतो रामः कल्पितैरपि स्वेच्छया । तैश्च तुष्टो भवत्यत्र श्रीरामो नात्र संशयः ॥१७७॥

विनाश्रयेण रामस्य यत्कृतं स्तवनादिकम् । तेनापि तुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥१७८॥

आश्रयेणापि वा निन्दा कृता श्रीरावजस्य च । सा भवेन्नकार्येन नात्र कार्या विचारणा ॥१७९॥

किं शास्त्रैश्च पुराणैश्च पठितैः पाठितैरपि । यदि रामे रतिर्नास्ति तर्भवन्मानवस्य किम् ॥१८०॥

रामप्रीतिपुतस्यात्र भूर्जस्यापि नरस्य च । तद्वापाकृतस्तुत्याद्यैः प्रमत्तो जायते हरिः ॥१८१॥

रामचन्द्रस्य प्राप्त्यर्थं यत्कृतं मानवैर्भुवि । तेनानितुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥१८२॥

रामो मेयश्चिन्तनीयोऽत्र रामः स्तव्यो रामः सेवनीयोऽत्र रामः ।

ध्येयो रामो वंदनीयोऽत्र रामो दृश्यो रामः सर्वभूतान्तरेषु ॥१८३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनीष्यैः

लक्ष्मणादीनां कवचादिनिर्दण्डेण नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १४ ॥

## षोडशः सर्गः

( हनुमन्पताकागोपणं व्रत )

श्रीरामदास उवाच

एवं यद्यप्यद्या पृष्टं तन्मया परिवर्णितम् । किमन्यच्छ्रोतुकामस्त्वं तद्वदस्व वदामि ते ॥ १ ॥

विष्णुदास उवाच

रामायणं नरः श्रुत्वा किं विधानं सशचरेत् । तच्च वद महाभाग यद्यस्ति तत्सर्विस्तरम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

रामायणे श्रुते दद्याद्रथं हेममयं सुयोः । चतुर्भिर्वाजिभिर्बुक्तं तथा सौमयताकया ॥ ३ ॥

जिस तरह बड़ीसे बड़ी हईकी राशिकी अग्नि जला डालती है, उसी तरह किसी कामनासे या विना कामना होके रामका कीर्तन तत्क्षण पापराशिकी भस्म कर देता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७६ ॥ मन्त्र प्रबन्ध तथा विविध प्रकारके चरित्रासे पूर्ण काव्योंसे या अपने बनाये अतिअशुद्ध पदोंसे ही रामका कीर्तन किया जाता है तो भी भगवान् प्रसन्न होते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७७ ॥ विना किसी आधारके भगवने काव्योंसे रामकी स्तुति करतेसे रामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं । यदि रामका आधार लेकर काव्य बनाना जाय और उसमें भगवान्की निन्दा की जाय तो वह नरकका ही साधन होता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ यदि राममें प्रीति नहीं है तो बहुतेरे शास्त्रों और पुराणोंके पठन-पाठनसे कुछ भी लाभ नहीं होता ॥ १८० ॥ राममें प्रीति रखनेवाला मनुष्य चाहे भूर्ज ही हो किन्तु वह यदि अपनी रूटी-फूटी भाषामें भगवान्का गुण गाता है तो उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १८१ ॥ इनके अतिरिक्त रामचन्द्रजीकी प्राप्तिके लिए जो कुछ भी उपाय किये जाते हैं, उनसे भगवान् अतिसय प्रसन्न होते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १८२ ॥ इसलिए लोगोको चाहिए कि सदा रामका गुण गाये, उनका स्मरण करें, सेवा करें, ध्यान करें, और ससारके प्रत्येक प्राणीमें भगवान्की अलौकिक उपोत्तिका वर्णन कर ॥ १८३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचदशोऽध्यायः पञ्चदशः सर्गः ॥ १४ ॥

श्रीरामदास बोलें—हे शिष्य ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा, सो मैंने कह सुनाया । अब क्या सुनना चाहते हो, सो कहें ॥ १ ॥ विष्णुदासने कहा—आनन्दरामायण सुननेके अनन्तर लोगोको क्या-क्या विधान करना चाहिये, सो आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस रामायणको सुननेके अनन्तर

एतैश्चैव समायुक्तं किञ्चिन्नीनादनादितम् । संपादितैश्च सम्पद्यै चेतुं दद्यात्पथम्विनीम् ॥ ४ ॥  
 व्याख्यान् भोजयेत्पशान् शतमष्टोत्तरं सुधीः । एवं कृते विधाने तन्महाकाव्यं कलप्रदम् ॥ ५ ॥  
 रामायणं भवेन्नूनं नात्र कार्यं विचारणा । यस्मिन् रामस्य संस्थानं रामायणमष्टोत्थने ॥ ६ ॥  
 एवं त्वया यथा पृष्टं मया कृते निवेदितम् ।

विष्णुदास उवाच

किञ्चिद्व्रतं हनुमतस्त्वं मां वक्तुमिहाहंसि ॥ ७ ॥

श्रीरामदास उवाच

यदा रामश्चिकूटद्रौ नागपाशैस्तु पीडितः । नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मर चिन्तासुतम् ॥ ८ ॥  
 तदाऽसौ कारयको वीरः समागन्व रणागणे । प्रणाममकरोत्तस्मै रामायामित्वैजसे । ९ ॥  
 निवार्य यक्षगास्त्रं तन्मेषनादसमीरितम् । तुष्टान् रघुवीरं तं ससैन्यं च सलक्ष्मणम् ॥ १० ॥  
 उवाच प्रणिपत्याथ रामभद्रं स्वगेश्वरः ।

गरुड उवाच

आश्चर्यमिदमन्यतं यद्ववानस्परद्वि माम् । ११ ॥

सति वीरे महारुद्रे सगणे श्रीहनुमति सुग्रीवे च नले नीले सुषेणे जम्बवत्यपि । १२ ॥  
 अक्रवे दधिवक्त्रे च तारे च ताले तथा । मेदे मणि महतीषे किं मेऽवास्ति प्रयोजनम् ॥ १३ ॥

श्रीराम उवाच

भवद्भ्रीविमुपासनां विदुनाथ भुजङ्गमाः एतेषु सन्सु वीरेषु क्रियु सैन्यमपीडयन् ॥ १४ ॥

गरुड उवाच

रामदेव महाबलौ कपीनां चरित शृणु । आत्मनोऽपि समाविष्टान्मा कुरुष्वान गर्हणम् ॥ १५ ॥  
 साक्षत्वं भगवान्विष्णुर्लक्ष्मीस्तु जनकान्मजा । सौमित्रिः कणिरत्रोऽयं रुद्राश्च कपयः स्मृताः ॥ १६ ॥

बुद्धिमान् भक्त्युत्पन्नो उच्यते द्वे किं बहु चर धोहो जुते श्रीर रेवामी पताकासे मुग्धोपित रय कयावाचक  
 ब्रह्मणको दान दे । विविच प्रकारस अलकन गौता दान करे । इसके बाद एक सौ आठ बाह्याणोंको भोजन  
 कराये । श्री प्रण, आनन्दर, मावण सुनकर ऐसा करता है, उसे इस महाकाव्यके श्रवण करनेका फल प्राप्त  
 होता है । इसने कोई संग्रह नहीं करना चाहिए । जिसमें श्री रामचन्द्रजी का निवास हो, वही रामायण है  
 अथवा जिसमें राम विद्यमान रहें, वह रागायण है । ३-६ । इस तरह तुमने मुझसे जैसा प्रश्न किया, मैंने  
 संतुष्टा उत्तर दे दिया । विष्णुदासने कहा—हे, रुरो ! अब मुझे हनुमान्जीका भी कुछ बात बतला दीजिए  
 ॥ ७ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय राम चिकूट पर्वतपर नागपाशमें बँध गये थे, उस समय  
 उन्होंने नारदके कथनानुसार गरुडका स्मरण किया । उसी समय गरुडजी वहाँ जा पहुँचे और उन्होंने  
 संग्रामभूमिमें भगवान्को प्रणाम किया ॥ ८ । ९ । हृदयन्दर मेषनाद द्वारा प्रेरित नागपाशका निवारण  
 करके समस्त सेना और लक्ष्मण सहित रामकी स्तुति की । फिर प्रणाम करके गरुडजी भववान्  
 रामचन्द्रजीसे कहने लगे—हे प्रभो ! यह सोचकर मुझे आश्चर्य होता है कि श्रीहनुमान्जीके रहते  
 हुए भी मुझ दासको आपने स्मरण किया ॥ १० ॥ ११ ॥ हनुमान्जीके अतिरिक्त सुषेण, नल, नील,  
 सुषेण, आम्बवान्, अक्रव, दधिवक्त्र, तार, ताल, मेदे आदि वीर थे । इन वीरोंके रहते हुए श्रीमान्को  
 मुझे स्मरण करनेकी आवश्यकता क्यों पड़ी ? । १२ ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—आपके भयसे  
 सब सर्प भाग गये, किन्तु ये लोग यहाँ रहकर भी स्वयं उनके पाशमें बँध गये थे ॥ १४ ॥ गरुडजी बोले—मैं  
 आपको बानरोंका चरित्र सुनाता हूँ, सुनिए । यद्यपि यहाँ बहुतसे आत्मीय बानर बँटे हैं फिर भी मैं कहूँगा ।  
 इन लोगोंके चाहिए कि मेरी बातको अपनी निन्दाके रूपमें न मानें ॥ १५ ॥ आप साक्षात् विष्णु भगवान्



सुग्रीवो वीरभद्रोऽयं शशुरेव स्मृतो नलः । विद्धि दाशरथे नूनं गिरिशो नील एव च ॥ १७ ॥  
 महापशाः सुवेगोऽयं जायवाश्चाप्यर्जकपात् । अहिर्बुध्न्यम्वगदोऽयं दधिवक्त्रः पिनाकधृक् ॥ १८ ॥  
 असुताजिह्वयं कारः स्थाणुश्च तरुणो मनः । मैत्रो भर्गवतुः साभान् हनुमान् भगवान् स्मृतः ॥ १९ ॥  
 अवतीर्णा महारुद्रान्त्वर्धं स्पृष्टन्दनं अयम् । सर्वे देशेषु नानावर्तमभ्यतः ॥ २० ॥  
 हुत्वा च कपिरूपाणि श्रवतेरुर्महातले । सर्वेऽपि कपिर्वा प्रामाः कारणं तद्व्रजिनि ते ॥ २१ ॥  
 पुरा देवासुरैः विधोर्मयिता ह्यधयोऽभवत् । नावापीडाकराः सर्वा लृणात्रिम्फोटकादयः ॥ २२ ॥  
 तैरेव व्याधिभिः सर्वं पीडितं जगतीतलम् । कपयोऽपि नृपालाश्च ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ २३ ॥  
 ऊचुश्च जगतां नाथ ब्रह्माणं कमलाढ्यम् । त्राहि त्राह जगन्नाथ व्याधिभ्यो जगतीमिमाम् ॥ २४ ॥  
 पीडितां दारुणैर्दोषैर्वर्जराग्रैश्च महोन्मर्षणैः । त्रिदोषजैर्जरीभृतां विभ्रमव्याकुलाकृताम् ॥ २५ ॥  
 औषधानि न निद्वयन्ति संश्रयत्राणि चैव हि । पीडयन्ति महारोगा मनवास्त्राशकारिणः ॥ २६ ॥

एतत्तं कथितं सर्वं ब्रह्मन्च पुरतः सुधीः ॥ २७ ॥

तत्तेषां वचनं श्रुत्वा रुद्रान्मप्रार्थयद्विधिः । तेऽपि श्रुत्वा ब्रह्मवाक्यं रुद्रः एकादशमलाः ॥ २८ ॥  
 समाश्वास्य शिगिचि ते वीरभद्रादयः सगाः । तद्भूय वानरध्वज सुग्रीवप्रस्था इमे ॥ २९ ॥  
 पर्यटन् पर्वताश्रानि मण्डलानि च मयः । नन्दवन्तो जगतां सुभुक् जैः सुदरुणैः ॥ ३० ॥  
 स्वेडितैः कीडनैस्तेषां व्याधयो न जयान्नुभूः । तनस्तु मकलां दृष्ट्वा वानरैर्वै शृता भुवम् ॥ ३१ ॥  
 तुनोप भगवान्त्रया ददौ तेभ्यो वरान् बहुन् ।

ब्रह्मवाच

गृध्णाम्यपि च मुद्राऽस्तु मृतमजीवनी कला ॥ ३२ ॥

आज्ञाऽस्तु सर्वजगति वेगोऽस्तु मन्मथः समः । दम्भान्ममरति ये मन्यन्ति पूजयन्ति भवत्तनुः ॥ ३३ ॥

हैं, श्रीसीतार्जा लक्ष्मी, लक्ष्मण शंख भण्ड ॥ १७ ॥ ये सब वानर भद्रगण मनुष्य वीरभद्र जी। नल साक्षात् शिव-  
 जीके अंजज शंभु हैं। हु दाशरथ्ये जे नील धरा मरुज के अंग गिरिजा ॥ १८ ॥ इसका नाम महापशास्की सुवेग  
 महापशा, आम्बवान् अर्जकपात्, अ हृद अहिर्बुध्न्यः, अहि नल पिनाकधृक् तार, असुताजित्, तरुण स्थाणु,  
 मैत्र भर्गवतु ओर हनुमान् साभान् शिव है ॥ १९-१९ ॥ ये वीरभद्र रुद्र आदिके निगम्यन्त होकर सब वेगोमें  
 अनेक पर्वतोपर रहत थे ॥ २० ॥ किन्तु अब वानरक, कप धरण करके इस गृधोत्तलपर आवे है। ये सब  
 वानर क्यों हुए, इसका कारण भी मैं आपकी बतला रहा हूँ ॥ २१ ॥ एक समय देवताओं तथा देवीयों मिल-  
 कर संनुद्धका मन्थन किया, उससे अनेक दुष्ट देवताओं, नृप और विरम्फोट आदि बहुतसे रोग उत्पन्न  
 हुए ॥ २२ ॥ उन रोगोंमें तीनों लोक भरतमें पड़ गया ऐसा अवस्वाम बहुतसे कपि और देवता एकत्र  
 होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गए और कहते लग- हु जगन्नाथ । इन दाहक व्याधियोंमें इस विषयकी रक्षा करिए  
 ॥ २३ ॥ २४ ॥ संसारक प्राणियोंको ज्वर आदि बहुतसे रोगों और बल, पित्त तथा फफू इस तीन दोषोंने  
 घेर लिया है। इनकी शान्तिके लिए जिस किनी ओषध तथा संश्रयत्र आदिका प्रयोग किया जाता है, वह  
 भी सफल नहीं हो पाता। मनुष्योंका नष्ट करने लगे सब देव उन्हें सतासे रहते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥  
 है ब्रह्मन् । इस तरह मैंने लोगोको कुछ आपका कह मुनव ॥ २७ ॥ उनकी ऐसी बात सुनकर  
 ब्रह्माजीने रुद्रोंसे प्रार्थना की। ब्रह्माजीकय मनुष्य व वीरभद्र आदि एकादश रुद्रगण ब्रह्माको सान्त्वना  
 देकर मुगध प्रभृति वानर होकर बड़े बड़े पर्वत तथा जंगलोंमें मण्डल बंधकर घूमते हुए अपने दाहक  
 शस्त्र तथा कीडन उन व्याधियोंको नष्ट करने लगे ॥ २८-३० ॥ इसके बाद समस्त पृथ्वीको वानरोंसे वष्टित  
 देखकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए और बहुतसे वरदान दिये। ब्रह्माजीने कहा कि तुम लोगोंकी मुद्राओंमें अमृत  
 संजीवनी नामकी कला विद्यमान रहेगी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तुम्हारा वेग मनके समान होगा। जा लोग तुम्हारे

पताका त्रिविधाः कृत्वा चित्रतोरणमयुताः । भक्ष्यभोज्यानि स्वाद्यानि तेषां पेयं च सर्वशः ॥३४॥  
 युष्मानुद्दिश्य ये मन्त्र्या जुहन्ति हि हुताग्ने । इति पुण्यतमं कर्त्तास्तेषां सिद्धिर्बलं संशयः ॥३५॥  
 पायसेनैव साज्येन तर्पेत्तिलमपि वा । यजति भवतां पुत्रं ते याति परमं परम् ॥३६॥  
 एवं वै रुद्रमल्लिलं माघा वैश्यान्मरीस्तथा । मानस्तोकेति वा मत्री मनोज्योतिरधापि वा ॥३७॥  
 भवतां यजनं चात्र सायज्या वा पक्षीर्नितम् । एवं ये मानवा लोके विधानं परिकुर्वते ॥३८॥  
 यथापि सुकन्या सुवासीनास्त्वन्ते धात्वक्षयं पदम् ।

गहड़ उवाच

इति राम पुण्यतमं कपीनां कथितं मया ॥३९॥

एषु कर्तव्यं सर्वेषु हनुमान्मद्रनायकः ॥४०॥

विधानं तत्र कर्त्तव्यं यथास्ते हनुमन्नुतः । गोपुरे हनुमन्मूर्तिः शिलायां च प्रतिष्ठिता ॥४१॥  
 तत्र सर्वं प्रकर्त्तव्यं विधानं सुरसचमः ।

श्रीराम उवाच

केन केन प्रकारेण क्रियते कविपूजनम् ॥४२॥

पताकाः कीदृशीस्तत्र कति कार्यी विद्वज्जर । इदं कति सख्याक किं द्रव्यं कीज्योऽत्र वै ॥४३॥  
 किं दानं केन विधिना तन्मन्त्राचक्ष्व सुमतः ।

गहड़ उवाच

जनसारे समुत्पन्ने प्राप्ते वा पतनेऽपि वा ॥४४॥

प्रसवत्यौषधं नैव मणिमन्त्रपुरःक्षिप्तः । विधानं तत्र कर्त्तव्यमेकदश्यां विधौ नृप ॥४५॥

प्रसक्तकाले समुत्थाय कुवशीचो द्विजोषमः । स्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये तिलामलकमस्कृतः ॥४६॥

एकादश द्विजान् श्रेष्ठान्शोषवासान्निमन्त्रयेत् । जागरस्तंष्टु कर्त्तव्यः सर्वोपस्कासयुतः ॥४७॥

आदौ तु भण्डपं कृत्वा सर्वत्रापि मुशोमितम् । पुष्पमण्डपकामध्ये मण्डपे स्थःपयेद्भगान् ॥४८॥

शरीरकी पूजा और स्मरण करने । विभिन्न रङ्ग की पताकाये, चित्र विभिन्न कारण, तरह तरह के भक्ष्य भोज्य तथा पेय पदार्थ आपके उद्देश्यसे जो आत्ममें हुन करके उगक एवसिद्धि प्राप्त होगी । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३४-३५ ॥ जो लोग धर्म मिलाकर खाना-पान करने के हैं उनका परम पद प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार "एवं वै रुद्रमल्लिल" इस मन्त्रसे अथवा "वैश्यान्मरी" या "मानस्ताके" इस मन्त्र तथा "मनोज्योति" इस मन्त्र अथवा माघशामन्त्रसे आपके लिए हुन करनेका विधान है । जो लोग संसारमें इस विधिका पालन करते हैं, वे सब प्रकारकी अपाधिको सुख होकर अक्षय पद प्राप्त करते हैं । गहड़जीने कहा है राम । यह मैंने बानरोंका एक प्राचीन इतिहास कह सुनाया ॥ ३७-३८ ॥ इन चारही खाने हनुमान्जी सबके मुक्तिवा हैं । इसलिए ऊपर बलये हुए सब विधान उसी स्थानपर करने चाहिए, जहाँ कि हनुमान्जीकी मूर्ति विद्यमान हो । अथवा गोपुर या किसी पक्कणखण्डपर हनुमान्जीकी मूर्ति स्थापित करके पूर्वलिखित विधिसे पूजन करे । श्रीरामचन्द्रजीने पूछा-है पक्षिराज । किन्तु किस प्रकारसे कविपूजन करना चाहिए ॥ ४०-४२ ॥ इनकी पूजामें कैसी पताका बनवाये, कितनी श्रावुलियाँ दे, किन्तु मन्त्रका जप करे और किस-किस विधिसे क्या दान करे ? से सुनत ! वे सब जाते हुन बतलाए । गहड़ने कहा है प्रभो ! जिस समय रामोण या माघरिक मनुष्योपर महाभारी वैसी विपत्ति आ पड़े । मणि-मन्त्र आदिका प्रभाव कोई काम न करे तो एका-दशी तिथिको यह विधान सम्पन्न करे ॥ ४३-४५ ॥ किसी उन्मत्त ब्राह्मणकी चाहिए कि यह प्रसक्तकाल उठे । शरीरमें तिल और आंवले लगाकर पवित्र जलसे स्नान करे । इसके अनन्तर उपास करे हुए आखू ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और सब सामग्रिये एकत्रित करके उन लोगोंके साथ रातभर जागरण करे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पहले चारों ओरसे सुशोभित मंडप तैयार करवाये और उसमें फूलोंका एक छोटा-सा मन्दिर बनाकर बीचमें

पंचामृतैस्तु स्नपनं रुद्रैः पञ्चैकलप्यन् । ततस्तु कुपुर्मैः पूजा शनपत्रादिभिः शुभैः ॥४९॥  
 चन्दनं च मकरं रुद्रैः लेपनं वरम् । दशांगधूरमादयः हापैर्नीराजयेच्चतुः ॥५०॥  
 नैवेद्यं विविधं दद्यान्नाचूडेनैव मधुनम् । एकादशं पत्राकाम्बु पटैः सुपरिकल्पयेत् ॥५१॥  
 या या यस्मै मनुहिष्ठा पत्राका च सुशोभना । तस्य तस्यैव रूपं तु तस्यामेव प्रकल्पयेत् ॥५२॥  
 एव कृते विधाने च सुपत्राकासुतोर्णैः । श्रावःकाले तु राजेन्द्र जागराति द्विजोत्तमः ॥५३॥  
 कृतस्नानो नद्यानाये होमं कुर्यान्महाहितः । पारसेन तु साज्येन तथैव तिलमर्पिणः ॥५४॥  
 अयुतं हवनं कुर्यात् पूजः पत्रा प्रकल्पयन् । पत्राका हनुमद्दारे तस्यैव च निधाययेत् ॥५५॥  
 राजद्वारे तु सौम्यांघ्रीं सौपेणोपात्तये न्यसेत् । नलनीलवर्णके च शिवद्वारे तु विन्रसेत् ॥५६॥  
 सारस्यं नरसस्यापि मैदस्यं दण्डस्यं च । प्राणद्वदिभ्यश्चिन्तु मार्गेषु स्थापयेद्ध्रिया ॥५७॥  
 जलस्थाने जायवंतीं दाधिवक्त्रीं चतुष्पथे । स्थापयन्मर्मां दिव्यां महावाद्यादिममलैः ॥५८॥  
 द्वारवेशे वनानां च रुद्रमूर्तिं विन्रयेत् । चित्रितां पञ्चार्णवैश्च प्राणसूरैश्च वेष्टयेत् ॥५९॥  
 प्रत्यहं कारयेद्विद्वान् भक्त्या ब्राह्मणवर्णेणम् । दद्याद्दण्डं निष्कन्दिगम्भी मालकाराणि भूरिशः ॥६०॥  
 छत्राणि कम्पवैश्च पादुकाश्च विष्टेयम् । धेनुं पारस्विनीं दद्यादाचार्याय सवन्मकाय ॥६१॥  
 सदसिणां सवस्त्रां च मालकां गुणान्विताम् । द्विजं च महिषीं दद्यात्तस्यैव पृथ्वीगते ॥६२॥  
 अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च मनः प्रान्त्यानि भूरिशः । लवणं मधुनं देव तैलं च सगुडं तथा ॥६३॥  
 सुदधादानानि भूर्गणि लवाणि विविधानि च । पत्रकृन्वा विधानं च राजा क्षेमयशस्तुयात् ॥६४॥  
 रुद्र एवात्र निर्दिष्टो जपः सर्वैः सुलक्षणः । अथवा हाने शस्त्रं मानस्योक्तं इति स्फुटम् ॥६५॥

इति हनुमत्पत्राकाभिधानं प्रथम् ।

इति श्रीशतकोटिरामचरितानामेव श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे

हनुमत्पत्राकाभिधानं प्रथमोऽंशः समाप्तः ॥ १६ ॥

शतकोटी स्थापित करे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उस राजाको पञ्चामृतमें स्नान कराने और गन्धपत्र आदिक 'गुह्योक्ते'  
 विधिसे पूजन करे । कपूर मिल हुए चन्दनका लेपन, दण्डा घूरका आभरण और नीराजन करे । फिर  
 छाम्बूलके साथ विविध प्रकारके नैवेद्य समर्पित करे और रुद्र वस्त्रास ग्यारह पत्राका देवाय । जो  
 पत्राका जिस छत्रके लिए निर्धारित की गयी है, उसमें उसका चित्र बनवाये ॥ ४९-५२ ॥ ये विधियाँ करनेके  
 अनन्तर सुन्दर पत्राका आदि समर्पित करे । यह सब छत्र सवरे उठे और नदीके जलमें स्नान करके सावध,  
 नतापूर्वक तिल और घी मिले सौम्य अर्चनपुण्डमें दस हजार अर्चनयाँ दे । इसके बाद फिर उन सबको पूजा  
 करे । हनुमान्जीके द्वारपर हनुमान्जी की पत्राका गण्ड पर मुग वक्का पत्राका, घाषण ( बाजार ) में गुयेणको  
 और शिवद्वारपर नल-नीलका पत्राका स्थापित करे ॥ ५३-५६ ॥ पत्राका लाल, तरल, मैद और वाङ्मयकी  
 पत्राकाको घासके बाहर चारों दिशाओंमें स्थापित करे ॥ ५७ ॥ जलस्थानपर आम्बशान् और चोराहपद  
 धविषपत्रकी पत्राकाको विविध वस्त्रों की धनिकें साथ स्थापित करे । मधुगोंके द्वारदेगपर पाँच बर्गोंके  
 चित्रित रुद्रमूर्ति बनाये और प्राणसूत्रास उमें परिवेष्टित करे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ समस्तद्वार लोगोंको बाहिए कि  
 प्रतिदिन ब्राह्मणोंको अच्छी तरह भोजन कराये और क्रन्दिगोंकी विविध आभूषण और वस्त्र दान दे ॥ ६० ॥  
 छत्र, पादुका तथा दूध इनवाले सवन्मा गो आचार्यको दे । उस गौके साथ पर्वत दक्षिणा, अलंकार, वस्त्र आदि  
 भी दे । उस यज्ञमें जो ब्राह्मण ब्रह्मा बना है, उसे एक भैरवका दान दे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसके अतिरिक्त और  
 जिसने ब्राह्मण हों, उन्हें भी सत्पादान और छत्र आदि दे । जो राजा इस विधानसे रुद्रयज्ञ करता है, उसका  
 सब प्रकारसे कल्याण होता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इस विधानमें रुद्रमन्त्र बचवा "मानस्योक्ते" यह मन्त्र जयना  
 कायकारी होता है ॥ ६५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितानामेव श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये १० रामदेव-  
 पाण्डेयकृत 'मनोहर' नामाष्टीकासहिते मनोहरकाण्डे बीसवाँ सर्गः ॥ १६ ॥

## सप्तदशः सर्गः

( श्रीरामचन्द्रोपदिष्ट साररामायण )

श्रीरामदास उवाच

विष्णुदास स्वया यद्यन्वृष्टं तत्तन्मयेरितम् । रामाज्ञया तव प्रीत्याऽऽनन्दचारित्र्यमुत्तमम् ॥ १ ॥  
 रामेर्णैव ममऽस्येन तत्रोपदिष्टमादरात् । त्वय्यस्ति रामसंप्रीतिस्तस्माद्रामेण मे द्विज । २ ॥  
 आशुपितं पूजनानि पुरा तव तपोबलात् आनन्दरामचरितं ममेदं मंगलप्रदम् ॥ ३ ॥  
 विष्णुदासाय विप्राय कथयस्वेति वै गृह्युः । त्वदर्शं पूजनानि मे दर्शनं दत्तवान्निजम् ॥ ४ ॥  
 नक्षेत्रशतलोकसाररामायणेन च पुरा मे ग्रथितेनत्र रामेण स्मारितोऽप्यहम् ॥ ५ ॥  
 श्रीरामोपदिष्टेन महामंगलदेन च नवाधिकशतलोकसाररामायणेन च । ६ ॥  
 यद्यन्मया विस्मृतं च धृतं पूर्वकथानकम् यम तच्चापि स्मारितं वाल्मीकिमुखनिर्गतम् । ७ ॥  
 ततो मया विष्णुदाम राघवस्य तथा तव । शृण्वेतिमिदाद्रामचरितान्मविविच्य च । ८ ॥  
 सारं सारं च कथितं महामामूल्यकारकम् ।

विष्णुदास उवाच

त्वयैतत्कथितं चेदमानन्दमन्तकं मम ॥ ९ ॥  
 श्रीरामचरितं रम्यं मम तोषार्थमुत्तमम् । इतकोटिमितातन्त्रिकं कथितं च विविच्य च । १० ॥  
 अथवा भाग्यसुखार्थमपिादुक्तं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

शतकोटिमितं कुरुष्व मया रामायणं शुभम् ॥ ११ ॥  
 विविच्य ज्ञानदृष्ट्याऽत्र तवेदमुपदेशितम् । विद्वेषात्स्मारितं चापि साररामायणश्रवात् ॥ १२ ॥  
 रामोपदेशिताद्रम्यात्तस्ते कथितं मया ।

विष्णुदास उवाच

शतकोटिमिते रामचरिते पातकापहे । १३ ॥  
 कति काडानि सर्गाश्च तन्मां वक्तुं त्वमर्हसि ।

श्रीरामदास कहा है विष्णुदास ! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, सो मैंने कह चुनाया । यह समस्त आनन्दरामायण रामचन्द्रजीकी आज्ञासे अथवा यूँ कहो कि साक्षात् रामचन्द्रजीत ही मेरे मुखसे कहा है । तुम्हारे हृदयमें रामकी भक्ति है । इसीलिये उस दिन पूजनके अन्तमें तुम्हारे तपोबलसे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे तुमको आनन्दरामायण सुनानेकी आज्ञा दी थी । उन्होंने कहा था - यह आनन्दरामायण बड़ा मंगलकारी ग्रन्थ है, तुम इसे विष्णुदासकी सुनाओ । तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर ही मैं पूजनके अन्तमें तुम्हें अपना दर्शन दे रहा हूँ । १-४ ॥ रामचन्द्रजीक स्मरण करानेपर ही मैंने एक सौ भी श्लोकोंमें रामायणका सार सुनाया था । त्रिनविंश कथानकोको मैं सुन गया था । वे भी वाल्मीकिजीके मुखसे निकले रामायण द्वारा स्मरण होते गये ॥ ५-७ ॥ इसके बाद मैंने रामचन्द्रजीकी आज्ञासे रामायणके मुख्य-मुख्य अंश लेकर कहा है । विष्णुदास बोले कि आपने मुझे आनन्द देनेके लिये यह रम्य आनन्दरामायण कहा है तो कृपा करके अब यह भी कतलाह कि सी कपोल सज्जात्मक रामायणसे आपने कहाँ कहाँसे क्या-क्या अंश लेकर कहा है? ॥ ८-१० ॥ अथवा भारतखण्डसे कौन-कौन अंश लिये हैं ? श्रीरामदास कहने लगे—पूरी रामायण सी करीब श्लोकोंकी है ॥ ११ ॥ ज्ञानकी दृष्टिसे विवेचना करके मैंने तुम्हें इसका उद्देश दिया है । हमें तो रामायणके शारक अक्षर

श्रीरामचन्द्र उवाच

नव लक्षणि कांदानि शतकोटिमिते द्विज ॥१४॥

सर्गो नवतिरुवाच ज्ञानव्या मुनिकीर्तिताः । कोटानां च शत श्लोकमानं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥१५॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि यथा श्रोतावशेन द्वि । उपदेष्टुं मदर्थं द्वि साररामायणं शुभम् ॥१६॥

नरोत्तमश्च श्लोकवर्णिन च मनोहरम् । तस्य वदन्तुना पुण्यं यः कौतूहलं मम ॥१७॥

श्रीरामदास उवाच

सम्बद्धं पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । साररामायणं तेऽद्य प्रोक्ष्यते रामकीर्तिम् ॥१८॥

आविर्भूत्वा रजनान्ते मरुते आत्थिः श्रिया । मां प्रोवाच गुरुवंतु प्रयत्नपुत्रपुत्रकजः ॥१९॥

( अथ साररामायणम् )

श्रीरामचन्द्र उवाच

रामदास शृणुश्वाथ यन्मां प्रोच्यते नव । चरितं सकल स्वीयं यथा तस्य भविस्वरम् ॥ १ ॥

विष्णुदासाय शिष्याय मद्भक्तिनिरताय च । कथयामि तथाऽन्यच्च ज्ञानाद्गृष्टं यथाश्रुतम् ॥ २ ॥

यथा भारतखंडान्तर्माणे चापि स्वयेश्विनम् । स्मरणार्थं त्वहं किञ्चिन्नरं वक्ष्यामि मादरम् ॥ ३ ॥

पार्वतीशिवसंवादः । सूर्यचन्द्रार्धपार्थिवः । मन्वित्रोर्हरणं लंकां रावणेन विमर्जेनम् ॥ ४ ॥

दशरथविवाहश्च कैकेयं द्विवर्षणम् । कैकेयं द्विजशपथश्च वरदानकराय च ॥ ५ ॥

राजः शायो वैद्यपहत्या शृष्यभृगार्धमुग्रमः । ऋष्यभृजमुनेस्तेजःप्रतापद्वहिताऽपिनम् ॥ ६ ॥

पायसं तद्विभक्तं च गृध्री भागं गिरौ नयन् । अन्तर्यामी नृपास्त्यम्भसासायन्मुदोढदाः ॥ ७ ॥

सनो भूम्भश्च ब्रह्मणा मे प्रार्थनं मधुगर्जना । नैत्रे मामि ममोन्वत्तिर्वैभुभिश्च हन्मता ॥ ८ ॥

चालकीडा मन्कृता च यतवधमनो मम । वेदाभ्यासी यमिष्टाश्च तीर्थयात्रा च वधुभिः ॥ ९ ॥

करनसे ही बहुत-सी जाने याद आ गये थी । उन्हींको रामका अज्ञाय होने मुझे मुनाया है ॥ १२ ॥ १३ । विष्णु-दासने पूछा उस जनकीरिसंग्रहनामक रामायणमें कितने काण्ड और कितने सर्ग हैं ? सो कृपा करके हमें बतलाइए । श्रीरामदासने कहा—हे द्विज ! सी कराइ साररामनामक रामायणमें कुल भी पचास काण्ड तथा नवसे अस्त्र सर्ग हैं ॥ १४ ॥ कुल मिलाकर उस रामायणमें सी कराइ बराक है १५ । विष्णुदासने कहा—हे गुरु । अब मैं आपसे बहुत माया मुनता चाहता हूँ, जिसे स्वयं रामचन्द्रजीन आपकी बतलाया था ॥ १६ ॥ जिसमें एक सो नौ श्लोक हैं । कथया अब मुझे वह मुनाइए । उसकी सुननेके लिए मेरा हृदयमें बड़ा कौतूहल है ॥ १७ ॥ श्रीरामदासने कहा—हो शिष्य । तुमने बहुत बकशा प्रती किया है । भावधन हाकर मुनी । आज मैं तुम्हें वह साररामायण सुनाऊँगा, जिसे श्रीरामचन्द्रजीन सुझन कहा था ॥ १८ ॥ एक दिन जब कि मेरा पूजन समाप्त हो गया था, तब भगवान् अपने लीनो भ्रान्तोंके साथ मेरे समक्ष आये । उन्होंने प्रमत्त होकर यही सार-रामायण कहा था ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे रामदास ! मेरे चरित्रोंका जो सार अंश है, सो तुमसे कह रहा हूँ । इसे विष्णुनामसे तुम विष्णुदास नामके अवन शिष्यको सुनाता । क्योंकि वह मेरी भक्तिये नियत है । इन चरित्रोंके चरित्रिक तुमने अवन जानने जा कुछ देखा सुना हो या भारतखंडमें देखा हो, वह सब भी उसे मुना देना । स्मरण रखनेके लिए कुछ चरित्र मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ॥ १-३ ॥ गिव पार्वती-संवाद, आधे मूर्खगज राजाओंका चरित्र, मेरे मातापिताका हरण, रावण द्वारा उनका लंका भेजा जाना, वसिष्ठविवाह, कैकेयको दो वरदान देना, कैकेयके लिए बाल्मिकीका भार, वरदान देनेवाले विप्रको राजाका काय, वैद्यपहत्या, ऋष्यभृजका लंकेका उद्योग, शृष्यभृजके प्रेम वसे अभिषेक्षा महारज दशरथको पायस मिलना ॥ ४-६ ॥ उसके द्विसे लगा-त्पर उनका एक भाग एक गृध्रीका पर्वतपर लेकर चली जाना, रनिषोका गर्भिणी होना, भूमिके साथ दह्याका साकर मेरी स्तुति करना, मंषराकी उत्पत्ति, जैमिनासने अपने सब भाइयों तथा हनुमान्जीके साथ मेरी उत्पत्ति, मेरी की हुई बालकीलायें, मेरा यज्ञोपवीतसंस्कार, वसिष्ठके पास वेद-व्ययन

विधमित्राद्भुविद्या ताडिकामर्दन रणे । प्राग्भो रणदीप्तायाः सुबाहोर्मर्दन मत्से ॥१०॥  
 मारीचक्षेपण चापि महत्प्रयोद्धरणं मया । स्वयंवरं च ज्ञापय मुनिपत्न्याः सविस्तरम् ॥११॥  
 नौकापेन हि गङ्गायां मदशिक्षालनं कृतम् । धीमं धनुर्जामदन्यन्यस्तं भयं सभाशणे ॥१२॥  
 सीतोन्यत्तिष्ठ सीताया लङ्कागमननिर्गमौ । वंशनी मे विवाहाश्च आमदन्यपराजयः ॥१३॥  
 दीपावल्प्रसवश्चापि मृपैः पयि महारणः । जीवन भरतस्यापि मञ्जापि मुनिनेरितम् ॥१४॥  
 वृन्दाशयः पितुः पुण्यं कैकेयीपूर्वकर्म च । नतो मरिनचर्या च गर्भाधानमहोत्सवः ॥१५॥  
 नारदाग्रे प्रतिष्ठा मे यौवराज्यार्थमुद्यमः । कैकेयीवर्दानेन दंडके गमनं मम ॥१६॥  
 दर्शनं शुहकस्यापि सीतावाक्यं च माहुरीम् । भारद्वाजश्चमोक्षयोर्दर्शनं च गितौ स्थितिः ॥१७॥  
 काकाक्षिभेदनं चापि राक्षस्य वरणं वुरि । दर्शनं भरतस्यापि भरतस्य विसर्जनम् ॥१८॥  
 सीतावास्तिलकोऽरण्येऽनसूयामृषणार्पणम् । विराधमर्दनं मागं नानाऽश्वमविलोकनम् ॥१९॥  
 अगस्त्येऽश्वय गृध्रस्य दर्शनं साध्वमर्दनम् । विरूपणं शूर्पणखायाः खरादीनां प्रमर्दनम् ॥२०॥  
 सीतादेहविभागाश्च मारीचस्य वधो मया । सीताया हरणं लंका संगमश्च जयपुषः ॥२१॥  
 इन्द्रेण पायसं दत्त सीतायै गिरिजेश्वरम् । चक्रवर्त्मर्दनं मागं शवर्या पूजितस्त्वहम् ॥२२॥  
 ततः सख्यं कपीन्द्रेण शिरशः क्षेपण मया । छेदनं सप्तगङ्गायां मर्षेण मालिका हुता ॥२३॥  
 बालेर्षातो मया तत्र सीताशुद्ध्यर्थमुद्यमः । हनुमताऽन्धितरणं लकायां जानकीधनम् ॥२४॥  
 मंदोदरीमनुपत्तिर्वनपाश्चादिमर्दनम् । लङ्कादाहश्च देहान्तं कर्तुं मिद्वोऽभवत्कपिः ॥२५॥  
 जांबूनदंष्ट्रश्चास्त्राकयाऽरण्येस्तारणं पुनः बहुबुद्धादर्शनं च सेतुबंधस्तनः परम् ॥२६॥  
 विभीषणाभिषेकश्च चित्रनाथकथा शुभा । गंधमादनैश्चारुपानं संगरश्च ततः परम् ॥२७॥

आगमनोंके साथ तार्थपात्र, विष्णुमन्त्रसे धनुर्विद्याकी प्राप्ति, ताडिकामर्दन, रणदीप्ताका प्रारम्भ, मन्त्रभूमिमें सुबाहुका मर्दन मारीचका समुद्रपार फेंका जाना, मेरे द्वारा महत्प्रयाका उद्धार, सीतास्वयंवरमें गमन, महत्प्रयाके ज्ञापकी विस्तृत कथा ॥१०-११॥ गंगामें त्रिषद द्वारा मंदोदरी धोया जाना, परशुरामजीके द्वारा लाकर रखे हुए मङ्कुरजीका वनपु मेरे द्वारा तोड़ा जाना, सीताकी उत्पत्ति, सीताका लंका जाना और वहाँसे फिर वापस जाना, मेरा हथी मेरे भ्राताओका विवाह, परशुरामकी पराजय, ॥१२॥ १३॥ बापावलीका उत्सव, रास्तेमें राजाओके साथ मद्दान संगम, भरतका पुनर्जीवन, वृन्दाका ज्ञाप मेरे पिताके पुण्य, कैकेयीके पूर्वकर्म, मेरी दिनचर्या गर्भाधानमहोत्सव, ॥१४॥ १५॥ युवराज न वनके लिए नारदके समक्ष मेरी प्रतिष्ठा, मुझे युवराजपदपर अभिषिक्त करनेकी तैयारियाँ कैकेयीके वर्दानसे दण्डकवनगमन निषादके साथ वार्तालाप, गङ्गाजीके लिए सीताकी कुल मनोनिर्वा, भारद्वाज और वान्मोकि ऋषिक दर्शन, चित्रकूट पर्वतपर निवास, जयन्तके नेमभोजन, अयोध्यामें महाराज वस्त्ररथका मृग्य, भरतजीका वंशव और विसर्जन ॥१६-१८॥ वनमें मेरे द्वारा सीताके माथमें तिलक लगाया जाना, अनुसूया द्वारा भूषणार्पण, विराधमर्दन, अनेक आश्रमोंके दर्शन, ॥१९॥ अगस्त्य और गृध्रके दमन, शूर्पणखाका विरूपकरण, बजर आदि राक्षसोंका संहार, सीताके मारीचका विभाजन, मेरे द्वारा मारीचका वध, सीताहरण, रावण-जयपुष्पगम, इन्द्र द्वारा सीताके लिए पायस प्रदान, चक्रवर्त्मर्दन, मंदरी द्वारा पूजित होकर मुग्धीवके साथ मिश्रता, दुन्दुभीके अस्थि-को फेंकना, सात तालोंका भेदन सपेदारा मालिकाहरण, मेरे द्वारा मालिका संहार, सीताका पता पानके जलोजली तैयारियाँ, हनुमानजी द्वारा समुद्रतथन, लंकामें जानकीजीका दर्शन मन्दोदरीकी उत्पत्ति-कथा, बलीकवनमें हनुमान्जीके द्वारा राक्षसोंका मारा जाना, लङ्कादाहन, हनुमान्जीका मरीर त्याग करनेका वायोजय, ॥२०-२४॥ जाम्बूनद वृक्षकी शाखाका वृत्तान्त, पुनः सिन्धुसतरण, बहुबुद्धादर्शन, सेतुबंधन, विभीषणका अभिषेक, चित्रनाथकी कथा, गन्धमारन पर्वतस्थ विभीषणकी वृत्तान्त, राम-रावणसंवाद, काक-

कालनेमिवधञ्चाथ तथैरावणमर्दनम् । मैरावणमर्दनं च मया मंचकभञ्जनम् ॥२८॥  
 कुम्भकर्णवधश्चापि मेघनादस्य मर्दनम् । ततो होमस्य विश्वंसस्ततो रावणमर्दनम् ॥२९॥  
 सीताया दिव्यदानं च स्वपुरीषमनं मम । रणदीक्षासमाप्तिश्च राज्याभिषेचनं मम ॥३०॥  
 उत्पत्ती रावणादीनामिन्द्रजेतृपराक्रमः । मानमगो रावणस्य वालिसुग्रीवजन्मनी ॥३१॥  
 वायुपुत्रजन्मकर्म वरदानं हनुमतः । छापोऽपि वायुपुत्राञ्च क्षणस्तेश्च विसर्जनम् ॥३२॥  
 इति सारकाण्डम् ॥ १ ॥

गंगायात्रासमुद्योगः सरयुभेदनं ततः । मया स्ववाणरेखा च सीतावाक्यविसर्जनम् ॥३३॥  
 कुम्भोदरस्य वाक्येन पृथ्वीयात्रा मया कृता । कुमारीवरदानं च सुरभी केन भेर्षिता ॥३४॥  
 चिन्तामणेः शिवान्तामस्ततोऽयोध्याप्रवेशनम् ।

इति यात्राकाण्डम् ॥ २ ॥

आरंभो वाजिनेचरस्य पृथ्व्यां यात्री विमोचितः ॥३५॥

नुराग्य सत्सैन्याय मार्गदानं तु गंगया । पृथ्वीप्रदक्षिणां कृत्वा वाटेऽश्वस्य प्रवेशनम् ॥३६॥  
 तपसातटशाला च कुम्भोदरप्रदर्शनम् । अष्टोत्तरशत नाम्नां मम स्तोत्रं गुनीरितम् ॥३७॥  
 दिनचर्याश्वजारोपावबभूधोन्मको मम । सीतादानं च हनुमुक्ती रामतीर्थादिवर्णनम् ॥३८॥  
 ततो यज्ञसमाप्तिश्च दश यज्ञा विशेषतः ।

इति यागकाण्डम् ॥ ३ ॥

ततो यम स्तवराजः क्रीडाशालाप्रवर्णनम् ॥३९॥

पक्षिणां नवकं स्तोत्रं शानक्या वर्णनं मया । देहगमायणं पर्य्यै मया कथितमुपमम् ॥४०॥  
 दिनचर्या पुनर्मे हि सीतालङ्कारवर्णनम् । एकवासानां च विस्तारो जलकीडा च सीतया ॥४१॥  
 माध्याह्निकं भोजनादि मम कर्मप्रवर्णनम् । द्विजपत्न्यै भूषणानां दानं जनकजाकृतम् ॥४२॥  
 राज्ञौ नानास्थलेष्वत्र क्रीडाश्च विविधाः स्त्रियः । हवमपोऽश्वमूर्तीनां न्यासान्ने दानमर्पितम् ॥४३॥

नेमिवध, ऐरावणमर्दन, मैरावणवध, मंचकभञ्जन, कुम्भकर्णवध, मेघनादमरण, होमाञ्छर्वस तथा रावणवध, ॥ २८-२९ ॥ सीताकी वाग्य मयोज्या पुनरागमन, रणदीक्षाकी समाप्ति, मेरा राज्याभिषेक, रावण आदि-की उत्पत्ति और मेघनादके पराक्रमकी कथा, रावणका मानभंग, वालि-सुग्रीवके जन्मकी कथा, वायुपुत्रके जन्म कर्मका वृत्तान्त, हनुमान्जीके लिए वरदान, हनुमान्जीके लिए शाय और अगस्त्यकृतिका विसर्जन, इतनी कथायें सारकाण्डमें कही गयी हैं ॥ १ ॥ ३०-३२ ॥ गंगायात्राकी तैयारी, सरयुभेदन, मेरे द्वारा वाणकी रेखा खिचना, कुम्भोदरके वाक्यसे मेरी पृथ्वीयात्रा, कुमारीको वरदान, मेरे लिए ब्रह्मा द्वारा सुरभी-दानका वृत्तान्त ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ शिवजीके पाससे चिन्तामणिकी प्राप्ति और फिर जयोध्या वापस आना, ये इतनी कथायें यात्राकाण्डमें कही गयी हैं ॥ २ ॥ अश्वमेध यज्ञका आरम्भ, पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए घोड़ेका छोड़ा जाना, गङ्गाजीका मेरी सेना तथा घोड़ेके लिए रास्ता देना, समस्त पृथ्वी घूमकर घोड़ेका वापस आना, कुम्भोदर द्वारा तपसा-की तटशालाका अवलोकन, कुम्भोदर द्वारा कहा हुआ मेरा शतनामस्तोत्र, ॥ ३५-३७ ॥ मेरी दिनचर्या, श्वजारोपण अवभृथोत्सव, सीतादान, रामतीर्थ आदिका वर्णन, यज्ञसमाप्ति और दश यज्ञोंका वर्णन, ये इतनी कथायें यागकाण्डमें कही गयी हैं ॥ ३ ॥ इसके बाद मेरा स्तवराज क्रीडाशालाका वर्णन, ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ नौ पक्षियोंका स्तोत्र, मेरे द्वारा जलकीकी शोभाका वर्णन, मेरे द्वारा सीताके लिए देहुरामायणका वर्णन ॥ ४० ॥ मेरी दिनचर्या, सीताके जलद्वारोंका वर्णन, एकवासोंका विस्तार और सीताके साथ जलकीडा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर भोजन यदि मेरे मध्याह्निकालीन कर्मोंका वर्णन, सीताजीके द्वारा विप्रपत्नीके

ततो निजैरङ्गनीभ्यो वरदानं यवार्घ्यवत् । गुणरूपै वरदानं विमलायै वरार्पणम् ॥४४॥  
सीतायाः प्रत्ययार्थं च दिव्यदानं यथा मुदा । कुरुक्षेत्रेऽगस्तिपत्न्या संशये जानकीव्रतः ॥४५॥  
इति विलासकाण्डम् ॥ ४ ॥

सीताया दोहदार्थं हि लीलाऽऽज्ञातदिष्ट कृता । सोमलोन्नयनादीनि नानाकर्माणि वै ततः ॥४६॥  
विसृजितश्च जनको बाल्मीकेगणधरं यथा । सीताया इ निजे रूपे कुरु मद्रूपवर्गीत्वात् ॥४७॥  
अंगुष्ठलोभ्यो लिखितः कैकेय्या शरणे महान् । लोकानां रजकस्यापि क्षयरादादिदेहना ॥४८॥  
अथा रक्तसोपुक्ता त्वक्ताऽऽनीतश्च वङ्गश्च । गुमरूपेण पुत्रस्य कुरु गत्वा तु जातकम् ॥४९॥  
इत्यपहा यथा गत्वा कृताः श्रीमद्भारंगदे । वार्षाकिना लवणां च तदा पुनः कृत परः ॥५०॥  
तयोः कुरु तु इतिना राजरक्षाविमर्शणम् । कमलानां च हरणे लवस्य विजयो महान् ॥५१॥  
राजपणस्य भवन् पुत्रास्याभ्यां यथाऽऽचरे । मुदं लवकुरु चाय जलैस्तस्यामिववनम् ॥५२॥  
यस्य मुदं हुतेनाय सीतायाः क्षयपरततः । सोतभ्या मरणं चापि विप्रत्या भूतले पुनः ॥५३॥  
ततो यज्ञमयासिश्च बन्धुपुत्रजनिस्त्वतः । बालकीडोषनयनं वेदानां ग्रहणं क्रमात् ॥५४॥  
बालानां शुभचिह्नानि सीतायाः पुत्रलालनम् । मर्जेनां व्रतवधाश्च द्वेषां यात्रान्ततः परम् ॥५५॥  
इति अन्मकाण्डम् ॥ ५ ॥

भूरिकीर्तः पत्रिकया तन्पुत्रं समनं यम । स्वपुत्राऽऽभ्यान्पुम्प्रीणां दर्शनार्थं तदा यम ॥५६॥  
वरितोऽयं मृतः सर्वस्वदा राजममोगणे । क्रमेण वर्णनं चापि पार्थिवानां हि नदया ॥५७॥  
कुरुक्षेत्रे चम्पिकया रत्नमालाविभर्जनम् । क्रमेण वर्णनं चापि पार्थिवानां मुनन्दया ॥५८॥  
सुमत्या रत्नमालाया लवकण्ठे विमर्जनम् । उत्ताडोऽयं विवाहस्य नानामप्यनपूर्वकः ॥५९॥  
गमनं हि स्तुवाभ्यां च सीताया त्वपुत्री यम । निद्रा जलदेनीनां बालकानां प्रमोचनम् ॥६०॥

लिये भूषणदान, बहुत सी स्त्रियोंके साथ रात्रिके समय जंगल और लुचर्यमयी कोकल स्त्रियोंका साथ, वेकपान्मियोंके लिए मेरा वरदान, गुणवती और चिह्नकाके लिए वरदान ॥ ४२-४४ ॥ सीताके विचारार्थ मेरी वपुष, कुरुक्षेत्रके जगस्यकी पत्नीके साथ बातचीतमें आजकाके विजय इतनी कमाने विलासकण्ठमें मिलित है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सीताकी ममेकालीन एकका पूर्ण करनेके लिए वनेके जारिजे विहाय, सोमलोन्नयन कादि विविध संस्कार, मेरे द्वारा राजा जनकोका वास्मिकिक बाध्यमपर भेजा जाना, मेरे कहनेसे सीताका दो रूप कारण करना, ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सीताके अद्भुत अंगुष्ठके अनुसार कंकरी द्वारा रावणका पूरा स्वप्न बनाया जाना, अपनी प्रजाके कलिपक्ष लोनों और एक घातोंके मुक्तसे अपनी मित्रा पुनकर मेरे द्वारा सीताका चरितमाल और उनकी मुदा काटकर भेजवाना, गुमरूपसे बालनादिके बाध्यमपर पहुँचकर। बन्धेका जलकर्ष-संस्कार करना, मङ्गायाके सदर मेरे द्वारा सी बाध्यमेव यम सम्पदित होना, बालमालि द्वारा जल-विन्दुकोसे रूप बाध्य दूसरे पुत्रकी सृष्टि होना, फिर उन दोनों बन्धेका वास्मिकिक द्वारा रामदाःमपरसे अभिमन्त्रित होना कमलहरण करते समय लवकी एक बड़ी विजय ॥ ४८-५२ ॥ यमभूमिसे लवपुत्रके मुक्तसे मेरा रामविजयव्रण, उनके साथ मेरे लोनोंकोका मुद और बन्धेके कहनेसे लवको स्नाय कन्याया जाना, मेरे साथ कृत्तका संग्राम, सीताकी वपुष, पृथ्वीसे प्रवेश करती हुई सीताकी मेरे द्वारा पुनः प्रदूष करना, वमकमार्ति, मेरे मातृकोकी पुत्रोत्पत्ति, बन्धेकी बालकाडा, बन्धेका उपनयनसंस्कार, बन्धेका वेदाध्ययन, बालकोके गुण चिह्नका वर्णन, सीता द्वारा पुत्रका लालन-पाजन, सब पुत्रोका व्रतवध ( उपनयनसंस्कार ) ॥ ५३-५५ ॥ ये इतनी कथामें अन्मकाण्डमें हैं ॥ ५ ॥ भूरिकीर्तकी पुत्रोके स्वयमरका समाचार पाकर मेरा प्रम्यान, उस पुत्रोकी स्त्रियों की मेरे दर्शनके लिए व्यग्रता, वह कि सब राजाओंका मेरी बन्धना करण, मेरा द्वारा सब राजाओंको लोभा और वधमकर वर्णन, वास्मिकका पुत्रके गलेमें रत्नमाला बाधना, सुमति द्वारा लवके कण्ठमें बाध्यप्रक्षेप, विविध सम्मानपूर्वक विवाहोत्सव, होना और अपनी पुत्रभुषोंके साथ रामका वयोभ्याकी कीटना, जन्मेकी द्वारा



सर्वेषां तु विवाहाश्च पृथक् पुत्रगृहाणि हि । कान्तिपुर्याश्च मदत्सुन्दरीहरणं ततः ॥६१॥  
यूपकैतोर्विवाहश्च पौत्राणां गणना ततः । पौत्राणां गणनाच्चापि सर्वैः सौकर्यं कृतो मम ॥६२॥

इति विवाहकाण्डम् ॥ ६ ॥

सहस्रनामस्तोत्रं मे कल्पवृक्षसुगुप्तम् । तस्मान्नीलौ मया स्वर्गाद्भुव ईर्ष्यासेवणम् ॥६३॥  
मत्कुम्भोपासकयोश्च संवादश्च परस्परम् । काक्याय वरदानं च शतस्त्रीणां वगर्पणम् ॥६४॥  
स्थानान्युक्तानि निद्राये कृतः कोधोऽनुमादिषु । शनशात्पर्णे रावणस्य पौंड्रकस्य वधोऽपि च ॥६५॥  
सीताया विरहो जातो हतश्च मूलकासुरः । सीतायाश्च स्तुतिः केन लकायां च प्रवेशनम् ॥६६॥  
लक्ष्म्याः पतिवधार्थं भ्रामयिन्वा पुनी मतः लाभः कपिलवाराहयूतेर्दत्ता च वंचने ॥६७॥  
लवणामुरघातश्च मधुरायां निवेशनम् । पुत्राणां राज्यभोगाश्च समद्वीपजयो मया ॥६८॥  
यतिशूद्रगृध्रसिद्धौ मत्प्रप्तसुजीवनम् शूराणां वरदानं च द्विजस्त्रीणां वगर्पणम् ॥६९॥  
रोदधस्त्रीमहत्पातां वराश्च मृगया मम कालिंशे वरदानं च पिप्पलं छेत्तुमुद्यमः ॥७०॥

इति राज्यकाण्डं पूर्वार्धम् ॥ ७ ॥

राज्यलोकेर्वचनाद्वाम्यं कृतुमाज्ञापितं जनान् । आपोऽग्निनीकुमाराभ्यां गणयोश्च परस्परम् ॥७१॥  
ब्रह्मणा मऽवताराणां वर्णनं च पृथक्कृतम् । जन्मत्रयं च वान्मीकेर्वरदानस्मृतिर्मम ॥७२॥  
मद्राज्यवर्णनं वाथ हेमायाश्च स्वपंचरम् । त्रिशांगदेन संग्रामः कथा कंकणयोस्तथा ॥७३॥  
लवस्य जीवदानं च रामयुद्धा सविस्तारं । रामनाथपुरदानं विप्रैर्दृष्टं च माकृतिः ॥७४॥  
दिनचर्या मम ततः स्वल्पसंततिकारणम् । कर्णध्वनेः कथा चापि मेऽवतारेष्वयं वरः ॥७५॥  
एवंपार्श्वे श्रीरामेति लेखनस्य च कारणम् । सुगुणायै वरदानं द्वे रूपे च मया दत्तम् ॥७६॥  
तुलसीपत्रसंधिश्च रामायणध्वनेः फलम् । सुषत्रजीवदानं च संग्रामश्च यमेन हि ॥७७॥

बच्चोका लियह और मेरे द्वारा उनका उद्धार ॥ ५९-६० ॥ सब बच्चोंका विवाह, सब बालकोंके लिए अलग-अलग गृहनिर्माण, कान्तिपुरीसे मदत्सुन्दरीका हरण, यूपकनुका विवाह मेरे पोतों और पोतियोंकी गणना, सब लोगोंके साथ मेरा सौन्दर्यवर्णन, ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ये इतनी कथायें विवाहकांडमें कही गयी हैं ॥ ६ ॥ मेरा सहस्रनामस्तोत्र, मेरे द्वारा कल्पवृक्ष और पारिजातका स्वर्गसे उद्योतना लाया जाना, मेरे और कुष्णके उपासकका संवाद, कोणके लिए मेरे द्वारा वरदान, सौ त्रिषाक के लिए वरदान, अपने अनुचर माखिर काय, निद्राके लिए स्थानकयन, शतमुख नावण तथा पौंड्रकका वध, मेरा और सीताका विरह, मूलकासुरका वध, मद्रा द्वारा सीताकी स्तुति और मेरा कंकामे प्रवेश, ॥ ६३-६६ ॥ लंकाको चारों ओर घनुरकी रेखा बनाकर अपनी पुरीको प्रस्थान, बन्धुके लिए कपिलवाराहका भूतिपात्र दान, लवणामुरका वध, मधुर में प्रवेश, पुत्रोंके लिए राज्यविभाजन, मेरे द्वारा सातों द्वीपोंकी रजय यति-शूद्र और गृध्रका न्याय, सप्त प्रेताका पुनर्जीवन शूरांको वरदान, द्विज स्त्रियोंके लिए वगर्पण, संह्रह हजार स्त्रियोंके लिए वरदान, मृगयाव्रजन, कालिंदीके लिए वरदान, पोषल वृक्ष काटनेके लिए उद्योग ॥ ६७-७० ॥ ये इतना कथायें राज्यकाण्डके पूर्वार्द्धमें वर्णित हैं ॥ ७ ॥ मेरे द्वारा हास्यमय प्रतिबध, वान्मीकिके परामर्शानुसार लोगोंको ईमनेक लिए मेरे द्वारा आज्ञा दिया जाना, अग्निनीकुमारों और मेरे गणसे परस्पर आपसदान, ब्रह्मजोंके द्वारा मेरे अवतारोंका वर्णन, बालमीकिके वरदानसे तीन कल्पोंतकका स्मरण रक्षता, मेरे राज्यका वर्णन, हेमाका स्वपंचरमर्णन, त्रिशांगदेके साथ संग्राम, दोनों कंकणोंको कथा, लवकी जीवदान, सविस्तार रामयुद्धका वर्णन, रामनाथपुरका दान, विप्रों द्वारा हनुमान्जीका दर्शन ॥ ७१-७४ ॥ मेरी दिनचर्या, स्वल्प सन्तुष्टिका कारण, कर्णध्वनिकी कथा, अन्य अवतारोंमें एक विशेष वरदान, पौण्ड्रक पत्नेकी वगर्पणे "श्रीराम" यह लिखनेका कारण, मगूणाको वरदान, मेरा ही रूप वारण करना ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तुलसीपत्र-

समर्द्धीषेयु सर्वत्र धर्मशिक्षा मया कृता ।

इति राज्यकाण्डमुत्तरार्धम् ॥ ७ ॥

नारदीकं शतश्लोकैश्चरितं मम पञ्चनम् ॥७८॥

पौराणामुपदेशश्च मन्त्रातृणां पराश्रयतः । मन्तःपूजा बहिःपूजा नगरपथस्त्वहम् ॥७९॥  
रामलिंगतोमद्राणां नानाभेदा विचित्रिताः । मामनरम्या विस्तारः कथा स्वारज्यमर्मभक्ता ॥८०॥  
मम नामलेखनस्योद्यापनं दानविस्तारः । विमर्जीविम्वविस्तारा देवादीनां ध्रुनेः फलम् ॥८१॥  
सार्द्धमामद्वयं नाम ते व्रतं विविचिस्तरः । गौरीव्रतस्य विस्तारो दोलके मम पूजनम् ॥८२॥  
नवम्यां मूर्तिदानं च मदनोत्सवविस्तारः । काम्यदेवताविस्तारो रक्षागणनो गुणः ॥८३॥  
मम नाम्नश्च भदिमा मन्त्रामार्य उदाहृतः । चैत्रव्रतस्य विस्तारो गणसादिगतिः स्मृता ॥८४॥  
अद्वैतं दधित्वं लोकान्नारीणां च वरार्पणम् । मन्मुद्रावस्यमहिमा कवचं मे हनुमतः ॥८५॥  
सीताया लक्ष्मणादीनां कवचानि पृथक् पृथक् । शान्तलाघवनमाहात्म्यं तस्य बोध्यापनं तथा ॥८६॥  
रामनामतोमद्रं च मंत्राश्च कर्तव्याश्च । पदाकारोष्णं नाम व्रतं माह्विनोपदम् ॥८७॥  
पयोपदिष्टमंतच्छे साररासापणं त्वयि । हनुमता सुरसेनैर्गर्जुनस्पात्र खडगम् ॥८८॥

इति मनोहरकाण्डम् ॥ ८ ॥

वाल्मीकिना सोमवंशवृत्तचरितेनम् । पुत्रपौत्रभिषेकश्च प्रस्थानं हस्तिनापुरम् ॥८९॥  
ततो भटान्संगश्च पुत्रयोश्च जयो मम । वज्रणा प्रार्थना मेऽत्र वाल्मीकेश्च कुशस्य च ॥९०॥  
रिपुस्त्राणां प्रार्थनया सीता पुत्रं न्यवारयत् । ततो दिवंश्च वाक्येन वैकुण्ठं मन्तुमुद्यमः ॥९१॥  
सोमवशीद्धवापाय दत्तं वै हस्तिनापुरम् । आजमीडाभषेकश्च मवज्ञं च विसर्जनम् ॥९२॥  
कुशस्य वसनं स्वीयपुत्रि राज्यं शशाम मः । मपेम्बधुः कुमुदित्या दाम्बजसमुद्भवः ॥९३॥

की सन्धि, रामायणभरुणका फल, ममभक्तों के लिए जीवनदान, यमराजक साथ संधान, सप्तद्वीपमें सर्वत्र मेरा धर्मशिक्षाका प्रचार किया जाता, ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ये इतनी कथाएँ राज्यकाण्डक उत्तरार्धमें वर्णित हैं ॥ ७ ॥ नारद द्वारा सौ श्लोकोंमें मेरे पञ्चन चरित्रका वर्णन, पुरवासियों के लिए उपदेश दूसरों द्वारा अपनी माताओं के लिए उपदेश, मन्तपूजा, बहिःपूजा, रामलिंगनामद्रक अनेक भद्र, मामनरम्याका विस्तार, स्वारज्यको उत्पत्ति की कथा, मेरे नामलेखनका उद्यापन, दाना विस्तार विमर्जाविम्वका विस्तार बंदक धारणका फल ॥७९-८८॥ बहई महानेके लिए व्रत, तिथिका विस्तार, गौरीव्रतका विस्तार, दोलकमें मेरी पूजा, नवमीका मूर्तिदानकी विधि, मदनोत्सवका विस्तार, काम्य देवताओंका विस्तार, रक्षादि अक्षरोंके गुणगणन मेरे नामकी महिमा, मेरे नामके लिए उदाहृत चैत्रव्रतका विस्तार, राक्षसादि गतिजोना बर्णन, लक्ष्मीको अद्वैत स्वक्यका दर्शन, स्त्रियोंके लिए वरापण, मेरी मुद्रा, मेरे नामसे अद्भुत वस्तुकी महिमा, हनुमन्कवचका वर्णन ॥८९-८९॥ राम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नकवच, शान्तलाघवनमाहात्म्य, सीतालाघवका उद्यापन, रामनामतोमद्र मंत्रका काशंन, पदाकारोष्ण और हनुमान्पूजाको अक्षत करनेवाले व्रतका वर्णन ॥ ८९ ॥ ९० ॥ इस तरह मैंने तुम्हें सारराशायण सुना दिया । इसी रामायणके अन्तर्गत हनुमान्पूजाका द्वारा अर्जुनके शरमेतुके खण्डनकी भी कथा वर्णित है ॥ ९० ॥ इतनी कथाएँ मनाहूकाण्डमें वर्णित हैं ॥ ८ ॥ वाल्मीकिवर्णित सोमवंशके राजाओंका वृत्तान्त, दोनों पुत्रोंका अभिषेक, हस्तिनापुरक स्थानका वर्णन, दोनों पुत्रोंके साथ मेरा महासंश्रम, मेरी विजय, सह्याजीके द्वारा मेरी, वाल्मीकिका तथा समकुणकी मूर्ति, रिपुस्त्रियोंकी प्रार्थनासे सीताका अपन पुत्रोंको मुक्त करनेके रोकना, सह्याके बाधवसे मेरी वैकुण्ठगमकी तैयारी, सोमवंशियोंके लिए हस्तिनापुरका राज्यदान, आजमीदका राज्यअभिषेक, सब लोगोंकी विहई, ८९-९२ ॥ लवपूजाका अपनी राक्षसोंमें पहुँचना और वहाँ शासन करना, कुमुदितसे सन्तानत्पत्ति, लक्ष्मण एवं सुग्रीव आदि वालरो तथा

वरदानं लक्ष्मणाय वानरैर्मयस्तथा मया । अयोध्यासंस्थितानां च सती देहविसर्जनम् ॥९४॥  
 वानरास्ते सुग जाताः सीता जाता रमा मम । लक्ष्मणः वज्रगो जातः शत्रोऽभूद्भरतस्तदा ॥९५॥  
 सुदर्शनं च शत्रुघ्नो विष्णुरूपधरस्त्वहम् । तदोर्मिलादिकानां च प्रयाणं मर्ययोपिताम् ॥९६॥  
 नीराजनं सुरस्रीभिस्तोषां सतिगतिः पदम् । शत्रुघ्ना संस्तुतवाहं गरुडारोहणं मम ॥९७॥  
 पुष्पवृष्टिर्मयि तदा वैकुण्ठे भवनं मम । वैकुण्ठे रमया स्थित्वा देवानां च विसर्जनम् ॥९८॥  
 सूर्यवंशानुक्रमश्चानन्दरामायणस्य च । कांडसंख्या सर्गसंख्या ग्रंथसंख्या फलश्रुतिः ॥९९॥  
 रामायणश्रवणस्योद्यापनं च महत्तमम् । प्रयदानमनुष्ठानं प्रकाराः च च वै ततः ॥१००॥  
 अनुष्ठानोद्यापनं च शत्रुघ्नस्य च विस्तरः । सवाहस्य पूर्णतापि युवयोर्गुरुशिष्ययोः ॥१०१॥  
 आशुकाछेदनं देव्याः कलास्य पठनस्य च । रामायणस्य महिमा चैकश्लोकेन वै त्विदम् ॥१०२॥

मम ध्यानं वेशदेव्योः संवादस्यापि पूर्णता ।

इति पूर्णकाण्डम् ॥ ९ ॥

एवं मया रामदास साररामायणं तव ॥ १०३ ॥

स्मरणार्थं चरित्राणं संक्षेपेण निवेदिनम् । इदं गोप्यं स्वयां कार्यं महन्पुण्यप्रदं स्मृतम् ॥१०४॥  
 अतकोटिमितग्रन्थात्सारं सारं मयोदिनम् । कः समः सकलं वक्तुं विना वाक्सीकिना मुदि ॥१०५॥  
 स एव धन्यो वाक्सीकिर्येन मन्वचरितं कृतम् । साररामायणमिदं मे वदन्त्यत्र मानवाः ॥१०६॥  
 तैम्प्यो भुक्तिश्च मुक्तिश्च द्वित्रिदास्याम्पहं मुदा । कुन्स्म रामायणं श्रोतुं पठितुं वा नरोत्तमान् ॥१०७॥  
 अथक्कथो यदा नास्ति तर्दत्तसंपदंभरः । अन्यद्यद्यन्मया कर्म कृतं पूर्वं शुभाशुभम् ॥१०८॥  
 कुन्स्मच्छन्दापनमुवाभिर्गमिष्यसि निधयम् । स्ववृष्टिमोचरं कुन्स्मं चरितं मे वरिष्यसि ॥१०९॥  
 विष्णुदामाय शिष्याय च त्वमधुना सुखम् ॥११०॥

अयोध्यावासियोंके लिए वरदान अपनी देहका त्याग, वानरोंका भयना शरीर छोड़कर फिर देवता बनना, सीताका लक्ष्मी बन जाना, लक्ष्मणका सेवरूप हो जाना, भरतका पाचजन्य ग्राह्य होना, शत्रुघ्नका सुदर्शन धनुष हो जाना और मेरा विष्णुरूप धारण करना, उर्मिला आदि स्त्रियोंका प्रयाण, देवाङ्गनाओं द्वारा सब लोगोकी आरती, शिवजी द्वारा मेरी स्तुति मेरा गरुडारोहण मेरे ऊपर पुष्पवृष्टि, मेरा वैकुण्ठभवन, वैकुण्ठमे लक्ष्मीके साथ विराजमान होकर देवताओंका विसर्जन, ॥ ९३-९८ ॥ सूर्यवंशी अनुक्रमणिका, ज्ञानन्दरामायणकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या, रामायणश्रवणका महाफल, श्रवणविधि, अनुष्ठानके पाँच प्रकार, ॥ ९९ ॥ १०० ॥ अनुष्ठान, उद्यापन, शत्रुघ्नका विस्तर, तुम दोनों गुरु शिष्योंके संवादकी पूर्णता, देवीका आणकाछेदन, इसके पाठको कलाएँ, रामायणक एक-एक श्लोकके पाठकी महिमा, मेरा ध्यान और शिव-पार्वतीके संवादकी समाप्ति, ये इसकी कथाएँ पूर्णकाण्डमें कही गयी हैं ॥ ९ ॥ हे रामदास इस तरह मैंने तुम्हें संक्षेपमे साररामायण बताया है । इससे तुमको मेरे चरित्रोका स्मरण करनेमें बड़ा सहायता मिलेगी । यह बड़ी पुण्यदायक रामायण है । इसलिए इस सदा गुप्त रखना । सी करोड़ संख्यावाली रामायणका सार भव लेकर ही इसे मैंने तुमको बताया है । वाक्सीकिने शिष्याय भोज और कोन है, जो पूरे तीरसे रामायणका वर्णन कर सके ॥ १०१-१०५ ॥ वे वाक्सीकिजी काव्य हैं, जिन्होंने अच्छी तरह मेरे चरित्रोका वर्णन किया है । जो लोग इस साररामायणका पठ करते हैं । उन्हें मैं भुक्ति और मुक्ति सब कुछ देता हूँ । यदि किसी सज्जनको पूरे रामायण पढ़ने या सुननेका अवकाश न मिले तो उन्हें इस साररामायणका ही पाठ कर लेना चाहिए । इनके अतिरिक्त भी मैंने जो गुप्त अनुभूति कर्म किये हैं, वे मेरी इच्छासे तुम्हें मेरे चरित्र वर्णन करते समय अपने-आप स्मरण होते जाएंगे । मेरे सारे चरित्र तुम्हारे दृष्टि-पोचर होंगे । १०६-१०९ ॥ अब तुम इसे अपने शिष्य विष्णुदासको ज्ञानन्दके साथ सुनाओ ॥ ११० ॥

श्रीरामदास उवाच

एवं श्रीरामचन्द्रेण यथाञ्च कथितं मया : साररामायणं रम्यं तदिदं ते निवेदितम् ॥१११॥  
इदं रम्यं पवित्रं च महापातकनाशनम् । सर्वदा मानवैर्जप्यं मुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥११२॥  
कृत्स्नं रामायणं श्रुत्वा यत्फलं प्राप्यते ततः । तदस्य पठनादेव सत्यं सत्यं वचो यम ॥११३॥  
वस्माद्भूमिः सदा जप्य सर्वेषां शान्तिकारकम् । पुत्रपौत्रप्रदं सौख्यं महत्सौख्यप्रदं नृणाम् ॥११४॥  
रामायणमग्निं शतशः सन्ति शिष्यावनीतले । सथाऽप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥११५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे मनोहरकाण्डे रामदास  
विष्णुसंवादे श्रीरामचन्द्रोपदिष्टं साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः । १७ ॥

## अष्टादशः सर्गः

( हनुमान्जीके द्वारा अर्जुननिर्मित धरसेतुमंजव )

श्रीविष्णुदास उवाच

कपिञ्जलोऽर्जुनश्चेति मया पूर्वं भूतं गुरो । तन्नामकारणं मां त्वं विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥१॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । द्वापरान्तं भाविकथां त्वां वदामि क्षमन्कृताम् ॥२॥  
एकदा कृष्णरहितोऽर्जुनः स्वन्दनसंस्थितः । यथावरण्ये विचरन्मृतवार्धं हि दक्षिणाम् ॥३॥  
एकाकी वृत्तसंस्थाने स्थित्वा तच्छ्रुत्यमाचरन् । हत्वा वने मृगान्धन्वी मध्याह्ने स्नातुमुद्यतः ॥४॥  
यसौ रामेश्वरं सेतौ धनुष्कोट्या विमास च । मध्याह्नकृत्यं संपाद्य पुनः स्वन्दनसंस्थितम् ॥५॥  
अग्रेस्तटे विचचार किञ्चिद्वसमन्वितः । एतस्मिन्नतरेऽप्ये पर्वतोपरि संस्थितम् ॥६॥  
ददर्श मासति वीरः सामान्यकपिरूपिणम् । राम रामेति जल्पतं विंगलोमधरं शुभम् ॥७॥

दास बोले—जित तबहु रामचन्द्रजीने मेरे समस्त साररामायणका वर्णन किया था, सो मैंने कत सुनाया ॥१११॥ यह साररामायण दिव्य, पवित्र और महान् पातकोंको नष्ट करनेवाला है । लोगोंको चाहिए कि भुक्ति और मुक्ति देनेवाले इस रामायणका पाठ करें ॥११२॥ पूरी रामायणके सुननेसे भी फल प्राप्त होता है, वही फल इस साररामायणके भी श्रवण करनेसे प्राप्त हो जाता है । मेरी बात सच थी है । ११३ ॥ इसीलिए लोगोंको सर्वदा इसका पाठ करते रहना चाहिए । क्योंकि यह सबको शान्ति प्रदान करता है । यह पुत्र, पौत्र, स्त्री तथा महान् सुखोंका दाता है ॥११४॥ हे शिष्य ! जैसे तो इस पृथ्वीतलमें संकड़ों रामायण हैं, किन्तु इसके समान अमूर्तक न कोई रामायण हुई है और न आगे होगी ॥११५॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये प० रामतेजपाण्ड्यकृष्णज्योत्स्नाभावाटीकासहिते मनोहरकाण्डे साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरो ! मैं कभी आपके मुखसे अर्जुनका कपिञ्जल यह नाम सुन चुका हूँ । उनका यह नाम क्यों पड़ा, सो कृपा करके आप हमें बतलाइए ॥ १ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! तुमने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । यद्यपि यह कथा द्वापरके अन्तकी है, फिर भी तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २ ॥ एक दिन कृष्णजीकी छोड़कर अकेले अर्जुन वनमें शिकार खेलने गये और घूमते घूमते दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥ ३ ॥ उस समय सारथीके स्थानपर वे स्वयं वे और घोड़ोंकी हाँकते हुए चले जा रहे थे । इस तरह वनमें घूम-घूमकर दोपहरके समय तक उन्होंने बहुतसे वनजन्तुओंको मारा । इसके बाद स्नान करनेकी तैयारियाँ करने लगे ॥ ४ ॥ स्नान करनेके लिये वे सेतुज्ज्वल रामेश्वरके धनुष्कोटितीर्थमें गये, वहाँ स्नान किया और कुछ गरसे सगुड़के ऊपर घूमने लगे । तभी उन्होंने एक पर्वतके ऊपर साधारण धावरकी स्वल्प धारण करके हनुमान्जीकी बैठे देखा । उस समय हनुमान्जी रामनाम जप रहे थे ।

तमर्जुनोऽर्वाडाक्यं किं नापस्मि कपे नव । तदर्जुनवचः श्रुत्वा विहस्य कपिरब्रवीत् ॥८॥  
 यन्मृगायाश्च रामेण शिलाभिः शतशोजनम् । बह्वीष्य सागरे सेतुम् मां त्वं विद्धि वायुजम् ॥९॥  
 इति तद्दर्शयितुं वार्ष्णेयः श्रुत्वाऽर्जुनस्यदा । गर्वाद्धिदस्य प्रोवाच मारुतिं पुनः स्थितम् ॥१०॥  
 भूया शमेण सेतुर्वर्ध भग्नः पूर्वं कृतस्त्वयम् । कथं तेन शरैः सेतुं कृत्वा कार्यं कृतं न हि ॥११॥  
 तदर्जुनवचः श्रुत्वा मारुतिः प्राह तं पुनः । मय्यन्यकपिभारं न शरसेतुः पयोनिधौ ॥१२॥  
 न्युत्तिष्ठतीति मत्वा त नाक्रोद्ध पुनन्दनः । तत्कपेर्वचनं श्रुत्वाऽर्जुनो मारुतिमब्रवीत् ॥१३॥  
 कपिमारुतस्य सेतुजले मानो भविष्यति । धनुर्विद्या चन्द्रिनः का तदा धनरत्नतम ॥१४॥  
 अधुनाऽहं करिष्यामि शरसेतुं तवाग्रतः । त्वं तमोपति नृप्यादि कुरुष्व शत्रु यथासुखम् ॥१५॥  
 धनुर्विद्या यथाय त्वं कपे पश्यतुमर्हसि । तदर्जुनमिदं श्रुत्वा तमाह सस्मितः कपिः ॥१६॥  
 मयाग्रंगुष्ठभारेण शरसेतुस्त्वया कृतः । चेन्ममः स्फात्ममुद्रे हि तदा कार्यं त्वयाऽत्र किम् ॥१७॥  
 तत्कपेर्वचनमाकर्ण्य मोऽर्जुनः प्राह तं पुनः । यदि ममः शरसेतुस्त्वया कृतस्तर्ह्यहं कपे ॥१८॥  
 विश्राम्यत्रानतं मयं त्वं चाप्यद्य पण वद । यन्प्रतिज्ञां कपिः श्रुत्वाऽर्जुन वचनमब्रवीत् ॥१९॥  
 मया स्त्रांगुष्ठभारेण शरसेतुश्चेन्न लोपितः । तर्हि त्वदध्वजपङ्क्त्योऽहं तव महाशयसाधरे ॥२०॥  
 तथाऽस्ति त्वयर्जुनः प्राह दण्डहन्व महद्भुजः । निपते अस्मज्जलैः सेतु दृढतरं पनम् ॥२१॥  
 शतशोजनविस्तीर्णं सागरस्याध्वेतः स्थितम् । तं सेतुं मारुतिर्दृष्ट्वाऽर्जुनाग्रंगुष्ठभारतः ॥२२॥  
 अकरोन्सागरे भग्नं क्षणमात्रेण लीलया । तदा देवाः सर्गधराः किन्तिराग्यराश्रयाः ॥२३॥  
 विद्याधराश्चाप्सरसः सिद्धाद्या गगनस्थिताः । मारुतिं शरसेतुस्याग्रे वक्ष्युः पुष्पकृष्टिभिः ॥२४॥  
 सत्कर्मणाऽर्जुनस्यापि चितां कृत्वाऽग्निरोधमि । निवारितोऽपि कपिना वेद त्वत्कुं समुद्यतः ॥२५॥

दीप्ते रङ्गके रोए उनके आरोंपर बड़े अच्छे लग रहे थे ॥ ५-७ ॥ उन्हें देखकर अर्जुनने पूछा—हे बानर ! तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? अर्जुनका प्रश्न सुना तो हंसकर हनुमान्जी बोले कि जिनके प्रनामने सम्बन्धमाने समुद्रपरमौ लोचन निम्न सनु बनाया था, मैं वही बाधुपुत्र हनुमाय हूँ ॥ ८-९ ॥ इस तरह सर्वभर तबल मुनकर अर्जुनने भी पूर्वसे हंसकर कहा कि रामने ध्येय इतना कह दिया । उन्होंने बाणाला सेतु बनाने क्यों नहीं अपना काम पूरा किया ॥ १० ॥ ११ ॥ अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्जीने कहा हम जैसे बड़े बड़े बालरोंक बाजसे यह बाणका सेतु दृढ़ जाता, यही सोचकर उन्होंने ऐसा सही किया ॥ १२ ॥ १३ ॥ अर्जुनने कहा—हे बानरसन्तत यदि बानरक बोझसे सेतु दृढ़ मानेका भय हो तो उस धनुर्धारिका धनुर्विद्याकी ह्म क्या विजयता रही ॥ १४ ॥ अभी इसी समय मैं अपने कोशस्थ बाणोंका सेतु बनाये दता हूँ, तुम उसका ऊपर आनन्दसे नाचा-कूदो ॥ १५ ॥ इस प्रकार सारे धनुर्विद्याका नमना भी तबल आनन्दका ऐसी बात मनकर हनुमान्जी मुसकरान हुए कहने लगे कि यदि घेरे पैरोंके आंगक दक्षते हो आपका बनाया सेतु दृढ़ जाय तो क्या कश्चिगत ? ॥ १६ ॥ १७ ॥ हनुमान्जीकी बात सुनकर अर्जुनने कहा कि यदि तुम्हारे शरसे सेतु दृढ़ जायगा तो मैं चिता लगाकर उसकी आगमें जल भरूँगा । अरुण जब तुम भी कोई बाज लगाओ अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्जी कहने लगे कि यदि मैं अपने अंग्गक ह्म धारम नुस्सारे बनाये सेतुको न हुआ सन्तुष्ट तो तुम्हारे रथको ध्वजक पक्ष बैठकर जीवनपर मुम्हारी सहान्वता करूँगा ॥ १८-२० ॥ “अच्छा, यही सही” ऐसा कहकर अर्जुनने अपने धनुषका टकोर किया और अपने बाणोंके सङ्ग्रहमें बहुत थोड़े समयमें एक मुट्ठ सेतु बनाकर तैयार कर दिया ॥ २१ ॥ उस सेतुका विस्तार तो लोचन था और वह वागरके ऊपर ही उतरा रहा था । उस सेतुको देखकर हनुमान्जीने उनके सामने ही अपने अंगुष्ठके भारसे दबा दिया । उस समय गन्धर्वोंके साथ-साथ देवताओंने हनुमान्जीपर फूलोंकी वर्षा की ॥ २२-२४ ॥ हनुमान्जीके इस कर्मसे सिन्न होकर अर्जुनने

एतस्मिन्मन्त्रे कृष्णस्तं प्राह बहुरूपधृक् । ज्ञात्वाऽर्जुनमुखात्सर्वं पूर्ववत् पणादिकम् ॥ २५ ॥

उभाभ्यां पद्मचरितं पूर्वं तस्य प्रथा गतम् ।

साभित्त्वेन विना कर्म सत्यं मिथ्या न बुध्यते ॥ २७ ॥

साभित्त्वेनाधुना मेऽत्र पुनर्भाष्यं कर्म पूर्ववत् ।

कर्तव्यं तदहं दृष्ट्वा सत्यं मिथ्या वदाम्यहम् ॥ २८ ॥

तद्दोर्बचनं श्रुत्वा द्वावन्तुस्तथेति च । तदर्थकार मांडीवी असेतुं हि पूर्ववत् ॥ २९ ॥

सेनोरतर्गतं चक्रं श्रीकृष्णश्चाकरोत्तदा ।

ततः स्वांगुष्ठमारेण कपिः सेतुं मर्षाडयत् ॥ ३० ॥

सेतुं दृढं कपिर्जातरा पादजानुकरादिभिः ।

बलेन पीडयामास स सेतुस्त्वथचाल न ॥ ३१ ॥

सदा तूष्णीं हनुमान्त संव्रणमास चेतमि । पूर्वं मर्षांगुष्ठमारान्सेतुश्चाङ्घ्रौ विलोपितः ॥ ३२ ॥

हस्तादिभिः कथं नायविद्वानो न विलुप्यते ।

कारणं बहुवेवाश्र बहुनाप हरिस्त्वयम् ॥ ३३ ॥

अस्तीत्यहं विजानामि स्मृतं पूर्ववरादिकम् ।

मद्गर्वपरिहारोऽयं कृष्णेनानेन कर्मणा ॥ ३४ ॥

कुतोऽस्त्यत्र क कृष्णाग्रे मन्मर्कटमुपौरुषम् । इति निश्चिन्त्य मनसि कपिः सोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

जितं स्वयां बटोर्योगाच्च साहाय्यमाचरे ।

नाय बहुस्त्वयं कृष्णः सेतुचकमनेशकृत् ॥ ३६ ॥

स्वन्माहाय्यार्थमायातः सत्यं ज्ञातो मयाऽर्जुन ।

अनेन रामरूपेण त्रेतायां मे वरोऽदितः ॥ ३७ ॥

समुद्रके तटपर ही चिता तेंगर की और हनुमान्जीके रोकनेपर भी वे उसमें कूदनेको उद्यत हो गये ॥ २५ ॥ इसी समय एक बह्मचारीका रूप धारण करके श्रीकृष्णचन्द्रजी वहाँ आय और उन्होंने अर्जुनसे चित्तमें कूदनेका कारण पूछा । अर्जुनके मुत्तसे ही सब बात मालूम करने कहा कि तुम लोगोंने उस समय जो बाजी लगायी थी, वह निःसाह थी । क्योंकि उस समय तुम्हारी बातोंका कोई साक्षी नहीं था । साक्षीके बिना साँच झूठा कोई ठिकाना नहीं रहता । इस समय मैं तुम्हारे समय साक्षीके रूपमें विद्यमान हूँ । अब तुम लोग किंच पहने-की तरह कार्य करो तो मैं तुम्हारे कर्षोंको देखकर विजय-मराजयका निर्णय करूँगा ॥ २६-२८ ॥ बह्मचारीजी बात सुनकर दोनोंने कहा—ठोक है और फिर अर्जुनने पूर्ववत् सेतुकी रचना की ॥ २९ ॥ सबकी बाएँ सेतुके नीचे कृष्णचन्द्रजीने अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया । सेतु तेंगार हानपर हनुमान्जी पूर्ववत् अपने अंगूठेके भारसे उसे डुबाने लगे ॥ ३० ॥ जब हनुमान्जीने सबकी बार सेतुकी मजबूत देखा तो वैरों, छुटनों तथा झूठोंके बलसे उसे दबाया, किन्तु वह भी भर भी नहीं डूबा ॥ ३१ ॥ पुनःपुनः हनुमान्जीने सोचा कि पहले तो मैंने अंगूठेके ही बोझसे सेतुको डूबा दिया था तो फिर यह हाथ-पैर आदि मरे पुर शरीरके बोझसे भी क्यों नहीं डूबता । इसमें वे बह्मचारीजी ही कारण हैं । ये साक्षात् कृष्णचन्द्रजी हैं और मेरे गर्वका परिहार करनेके लिए ही इन्होंने ऐसा किया है । वास्तवमें है भी ऐसा ही । भला, इन षण्मायुके सामने हम जैसे मानवकी सामर्थ्य ही क्या है । ऐसा निश्चय करके हनुमान्जीने अर्जुनसे कहा कि आपने इन बह्मचारीकी सहायतासे मुझे परास्त कर दिया है । वे कोई बटु नहीं, साक्षात् भगवान् हैं । इन्होंने सेतुके नीचे अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया है ॥ ३६-३७ ॥ हे अर्जुन ! हमें यह बात मालूम हो गयी है कि ये आपकी

दास्यामि दर्शनं तेऽहं शायरे कृष्णरूपधृक् । तत्सत्यं वचनं चाथ कृतं त्वत्सेतुदेतुतः ॥३८॥

इत्यर्जुनं कपिर्माविद्वन्वीरान्वदप्रतः ।

बहुरेवाभवन्कृष्णः पीतवामा धनप्रभः ॥३९॥

सदर्शनोर्ध्वरोमाऽभूत्प्रणनामाञ्जनीसुतः ।

आलिङ्गिनोऽपि कृष्णेन स मेने ककुतस्थताम् ॥४०॥

अतः ययौ यथास्थानं श्रीकृष्णस्याज्ञया तदा । सागरेण स्वकल्लोलैः खरसेतुर्विलोपिता ॥४१॥

तदाऽर्जुनो गर्वहीनो मेने कृष्णेन जीवितः ।

कृष्णस्तदाऽर्जुनं ग्राह त्वया गमेण स्पर्द्धितम् ॥४२॥

हनुमता धनुर्विद्या तवातोऽथ मृषा कृता ।

यत्प्रतापमिति शिरा न्वयाऽपि वायुनन्दन ॥४३॥

रामेण स्पर्द्धितं यस्मात्तस्मादर्जुन संजितः । अतः परं वीरगर्वम्भवं मां भक्त निरन्तरम् ॥४४॥

इत्युक्त्वा मारुतिं पृष्ठाऽर्जुनेन तन्पुर ययौ ।

अतः कपिष्वजश्चेति जनैर्गर्जुन ईर्यते ॥४५॥

इति भाविकया गृष्टा त्वया साऽपि मयोदिता ।

किमग्रे श्रोतुकामोऽसि तन्पृच्छस्व वदामि ते ॥४६॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽधुना राघवस्य वैकुण्ठारोहणोत्सवम् ।

मां वदस्व सविस्तारं येनाहं तीक्ष्णमनुयाम् ॥४७॥

श्रीरामदास उवाच

पूर्वकांडं तावाग्राहं वदिष्यामि शृणुष्व सत् ।

सहायताके लिए ही यहाँ आये हैं । यही रूप धारण करके जेलामें रामने हमें वरदान दिया था कि आपके अन्तमें मैं तुम्हें कृष्णरूपसे दर्शन दूँगा । आपके सेतुके बहाने उन्होंने अपना वरदान भी आज पूरा कर दिया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हनुमान्जी अर्जुनसे ऐसा कह ही रहे थे कि इन्होंने भगवान् अपने बटरूपको त्यागकर कृष्ण बन गये । उस समय वे पोसे वस्त्र पहने थे और नवनीरदके समान उनका श्याम शरीर था । उन कृष्णचन्द्रको दर्शन करते ही हनुमान्जीके रोंगटे खड़े हो गये और उन्होंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया । जब श्रीकृष्णने हनुमान्जीको तठाकर अपने हृदयसे लगाया, तब हनुमान्जीने अपनेको कृतकृत्य मान लिया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णक साक्षानुसार अक्र सेतुसे निकलकर अपने स्थानको चला गया और अर्जुनका बनाया सेतु भी समुद्रकी तरंगोंमें लुप्त हो गया ॥ ४१ ॥ इस तरह अर्जुनका गर्व नष्ट हो गया और उन्होंने समझा कि कृष्णने हमें जीवित रख लिया । कुछ देर बाद श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे कहा कि तुमने रामके साथ स्पर्धा की थी । इसलिए हनुमान्जीने तुम्हारी धनुर्विद्याको व्यर्थ कर दिया था । इसी प्रकार हे वचनसुत ! तुमने भी रामसे स्पर्धा की थी । इसी कारण तुम अर्जुनसे परास्त हुए । तुम्हारा गर्व नष्ट हो गया । अब आनन्दके साथ मेरा भजन करो । ऐसा कह और हनुमान्जीसे गूँछकर श्रीकृष्ण अर्जुनके साथ हरितनापुर चले गये । हे शिष्य, इसी कारण अर्जुन कपिष्वज कहे जाते हैं ॥ ४२-४३ ॥ यद्यपि तुमने हमसे यह भविष्यकी कथा सुनी थी, फिर भी मेने कह सुनाया । अब आगे क्या सुनना चाहते हो सो बताओ । मैं तुमको सुनाऊँ ॥ ४५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरु ! अब मैं रामचन्द्रजीके वैकुण्ठारोहणका वतावत सुनना चाहता हूँ । सो आप विस्तारपूर्वक हमें बताइए, जिससे हमारे हृदयको सन्तोष हो । श्रीरामदासने कहा—मागे मैं तुमसे पूर्वकांड कहनेवाला हूँ । उसमें भगवान्के वैकुण्ठारोहणका वृत्तान्त तुम्हें अच्छी तरह सुननेको मिलेगा ॥ ४७ ॥

यस्मिंश्च रामचन्द्रस्य वैकुण्ठारोहणोत्सवम् ॥४८॥  
 इदं मनोहरं काण्डं मया ते समुदीक्षितम् ।  
 ये शृण्वन्ति नरा भूम्यां तेषां रामे रतिर्भवेत् ॥४९॥  
 मनोऽभिलषितान् कार्मास्ते लभन्ते न संशयः ।  
 पुत्रार्थो प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थो धनमाप्नुयात् ॥५०॥  
 इदं रम्यं पवित्रं च श्रवणान्मगलप्रदम् ।  
 पठनीयं प्रयत्नेन रामसद्भक्तिवर्द्धनम् ॥५१॥  
 आनन्दरामायणमध्यसंस्थ मनोहरं काण्डमिदं विचित्रम् ।  
 पठति शृण्वति गृणन्ति मर्त्यास्तै स्त्रीयकामानखिलान् लभते ॥५२॥  
 इदं पवित्रं परमं विचित्रं नानाचरित्र त्वतिपुण्यदं च ।  
 सुदा नरैः श्राव्यमिदं सुदा भीतीतापतेर्भक्तिविवृद्धिकारि ॥५३॥

इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे रामदासविष्णु-  
 दाससंवादे हनुमता शरसेतुभंगो नाम अष्टादश सर्गः ॥ १८ ॥

मनोहरकाण्डे सर्ग आनन्दरामायणेऽष्टादश शतव्याः ।  
 एकत्रिंशच्छताः श्लोका रामदासमुनिना पापनुदः प्रोक्ताः ॥ १ ॥

अथ मनोहरकाण्डे प्रकरणानुक्रमः ।

लघुगमायणम् ॥ १०४ ॥ वैकुण्ठारोहणम् ॥ १५५ ॥ रामपूजा ॥ २७५ ॥ लघुरामतोमद्रम् ॥ ३०९ ॥ रामलिंगतोमद्रम् ॥ ३७७ ॥ नवमीव्रतम् ॥ २४१ ॥ रामनवम्युद्यापनम् ॥ १३२ ॥ वेदा-  
 दिकाव्यपूजा ॥ १२७ ॥ विशेषकालपूजा ॥ १९३ ॥ चैत्रमहिमावर्णनम् ॥ १६७ ॥ पिशाचमृक्तिः

॥ ४८ ॥ मैंने तुम्हें यह मनोहरकाण्ड सुनाया है । जो लोग इस काण्डको सुनते हैं, उन्हें रामचन्द्रजीकी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ वे अपना मनोऽभिलषित फल प्राप्त कर लेते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है । इसको सुननेवाला यदि पुत्र चाहता हो तो पुत्र और धनार्थो धन पाता है ॥ ५० ॥ यह काण्ड बड़ा रम्य, पवित्र और सुननेसे मङ्गलदायक है । इसलिए लोगोंको प्रयत्न करके इसका पाठ करना चाहिए । इसके पाठसे रामके चरणोंमें भक्ति बढ़ती है ॥ ५१ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत यह मनोहरकाण्ड बड़ा विचित्र है । जो लोग इसका पठन-श्रवण तथा मनन करते हैं, वे अपना सारी कामनाएँ पूर्ण कर लेते हैं ॥ ५२ ॥ यह काण्ड परम पवित्र, विचित्र, मगवान्के विविध चरित्रोंसे भरा हुआ और भक्तिमय पुण्यदायक है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि रामकी भक्ति बढ़ानेवाले इस मनोहरकाण्डका अवश्य श्रवण करें ॥ ५३ ॥ इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामसेतुभङ्गेयकृत 'ज्योत्स्ना' श्रव्यश्लोकासहिते मनोहरकाण्डे अष्टादश सर्गः ॥ १८ ॥

इस मनोहरकाण्डमें कुछ अठारह सर्ग हैं और इसमें रामदास मुनिने पापनाशकारी एकतीस सौ श्लोक कहे हैं । १ ॥ मनोहरकाण्डका प्रकरणानुक्रम—लघुरामायणमें १०४ श्लोक, वैकुण्ठारोहणमें १५५, राम-पूजामें २७५, लघुरामतोमद्रमें ३०९, रामलिंगतोमद्रमें ३७७, नवमाश्रममें २४१, रामनवमीउद्यापनमें १३२,



। २९६। अद्वैतवर्णनम् ॥ १०७ ॥ कवचद्वयम् ॥ ८८ ॥ सीताकवचम् । १०३ ॥ लक्ष्मण-भरत-  
शत्रुघ्नकवचानि ॥ १८२ ॥ हनुमत्पताकारोपणम् । ६५ ॥ सारसामायणम् ॥ १५२ ॥ शरसेतुमङ्गः  
॥ ५३ ॥ इति प्रकरणानि । एवं मिलित्वा मनोहरकाण्डे श्लोकसंख्या ॥३१००॥ इयं मंत्रवृत्तादि-  
रहिता संख्याऽस्ति ।

वैष्णविकाव्यपूजामें १२७, विशेषकालकी पूजामें १९३, जैत्रमहिमावर्णनमें १६७, विगाथमुक्तिमें २९६,  
अद्वैतवर्णनमें १०७, हनुमत्कवच तथा रामकवचमें ८८, सीताकवचमें १०३, लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नकवचमें  
१८२, हनुमत्पताकारोपणमें ६५, सारसामायणमें १५२ और शरसेतुमङ्गमें ५३ श्लोक कहे गये हैं और ये ही १८  
प्रकरण वर्णित हैं । सब मिलाकर ३१०० श्लोक इस काण्डमें हैं । किन्तु यह संख्या मन्त्र और वृत्त आदि-  
की संख्या छोड़कर बतायी है ।

॥ इति आनन्दरामायणे मनोहरकाण्डं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ।



श्रीसीतापठके नमः  
श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत—

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्



## पूर्णकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( सीमवंशी राजाओंकी कथाका विस्तार )

श्रीरामदास उवाच

अथ श्रासति राजेन्द्रे रामे सीताभिगञ्जिते । समापामेकदा दूतं सुपेभस्य गजाह्वयात् ॥ १ ॥  
समाश्रयो तं विक्रलो रामं नन्वाऽवर्षाद्वचः । रामं राजावपश्चात् सोमवन्शोद्धवर्नृपैः ॥ २ ॥  
सवेष्टितं गजपुरं नलार्थश्चिन्तार्थविभिः । तद्दूतवचनं श्रुत्वा राषभोऽर्धव विस्मितः ॥ ३ ॥  
वसिष्ठं प्राह मद्राज्ये न कदा पार्थिवसिमाः । समागता मया योद्धुं किमिशनीं हि श्रूयते ॥ ४ ॥  
किं कारणं गुरो सत्र विचारय सर्वेस्तरम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तं गुरुः प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥  
प्रष्टव्यमथ वाल्मीकिं येन ते चरितं कृतम् । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणं प्रष्टुं समाहूयाथ तं मुनिम् ॥ ६ ॥  
सीतया पूजनं कृत्वा रामो वृत्तं न्यवेदयत् । वाल्मीकिस्तु तदा प्राह राम किंचिद्विद्वस्य सः ॥ ७ ॥  
किं त्वं न वदसि राजेन्द्र विनोदान्मां तु पृच्छसि । शृणुष्व तदि मे वाक्यं सर्वं शृण्वन्तु ते प्रियाः ॥ ८ ॥  
एकादश सहस्राणि वत्सराणि तथा पुनः । एकादश समाश्रापि मासास्त्वकादशत्र वि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—जब कि रामचन्द्रजी सीताके साथ सुख भोगते हुए अयोध्याका राज कर रहे थे । उन्हीं दिनों सुपेभका एक घबड़ाया हुआ दूत द्वास्तिनापुरसे आ पहुँचा । उसने भगवान्‌की प्रणाम करके कहा—हे राजावपश्चात् राम । सोमवंशी राजे नल आदिन द्वास्तिनापुरका चारों ओरसे घेर लिया है । दूतकी यह बात सुनकर रामचन्द्रजी बड़े विस्मित हुए ॥ १-३ ॥ वे गुरु वासिष्ठसे बोले—हे गुरुवर ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? आज तक तो कभी ये राज मेरे साथ युद्ध करने नहीं आये थे ॥ ४ ॥ कृपा करके आप इसपर सावस्तर विचार करिए । रामकी बात सुनकर वासिष्ठजीने कहा कि यह बात आप वाल्मीकिजीसे पूछें । क्योंकि उन्होंने ही आपके चरित्रकी रचना की है । यह सुनकर रामने लक्ष्मणका भेजकर वाल्मीकिताको बुलवाया ॥ ५ ॥ ६ ॥ वाल्मीकिने जानेपर सीताके साथ-साथ रामने उनकी पूजा की और द्वास्तिनापुरका सब समाचार कह सुनाया । वाल्मीकिने हैसकर कहा—क्या आपको ये बातें नहीं मालूम हैं ? मालूम हैं । किन्तु कौतुक वश आप हमसे पूछ रहे हैं । अच्छा, आपको वही इच्छा है तो सुनिए । आपके त्रियजन भा सावधानीके साथ मेरी बात सुनें ॥ ७ ॥ ८ ॥ ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष, ग्यारह महीना, ग्यारह दिन, ग्यारह घंटा और ग्यारह पलका समय

एकादश दिनान्यत्र षट्काश्चापि सन्मिताः । एकादश फलान्येव ते राज्यं निश्चितं मया ॥१०॥

शुश्रूकोदिमिने काण्डे पुर्य तेऽवधारतः ।

तन्मध्येऽत्र क्षत्रीयानि सदस्यानि तथा सेमाः । अतीताः शेषभूताश्च मासाः शेष दिनादिकम् ॥११॥  
 षष्ठादष्टादिनैर्न्यूनमग्रं वर्षं प्रमोऽत्र यत् शेषभूतं सङ्गरेण परिपूर्णं भविष्यति ॥१२॥  
 अयं कालोऽवतारस्य समाप्तेस्ते समागतः गत्वा भागीरथीं पुण्यां पर्वतेनावनीतलम् ॥१३॥  
 प्रापित्वा तत्र राजेन्द्र तस्यां स्नात्वा यथाविधि स्तुतो ब्रह्मादिकैः सर्वैः पदं स्थाप्य गमिष्यति ॥१४॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा रामो वाक्यमनवीत् एतावत्कालपर्यन्तं नलायाः कुत्र संस्थिताः ॥१५॥  
 कुतोऽयुना ममायातास्तन्मयं विस्तराद् ॥ तद्वा मयचनं श्रुत्वा चान्द्रीकिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥  
 मृणु गम महाबाहो सर्वं ते कथयाम्यहम् । अत्रिर्मुनिः पुनः गमं पुनिमायां कृते युगे ॥१७॥  
 वैशाख्यामेकदा सोमं दृष्ट्वा नातोमुखायमम् । युषोच वीर्यं भूम्यां स तस्मान्मुचो बभूव ह ॥१८॥  
 सोमस्य दर्शनाज्जातः सोमरूपः स बभूव ह । सोऽरण्ये जाह्नवीनरं चकार तप उत्तमम् ॥१९॥  
 एतस्मिन्समये तत्र कश्चिदस्ती समापयो । निहतः पक्षिभिस्तत्र तद्दृष्ट्वा कौतुकं महत् ॥२०॥  
 सोमो विचारयामास पक्षिभिर्निहतः कर्म । अस्या भूम्याः प्रभावोऽयं पुर तत्र चकार सः ॥२१॥  
 हस्तिनाशान्पुरं जातं तस्मात्तदहस्तिनापुरम् । तत्र पौरैः कृतो राजा सोम एव रघूवम ॥२२॥  
 तस्य जातो पुत्रः पुत्रस्यायुषी जगतामलम् । सद्दीपं स्ववशं कृत्वा सुरलोकं प्रजग्मनुः ॥२३॥  
 तत्र त्रित्वा तुगन्सर्गान्मुखीभिश्च मयुतां शुकरा देवान्धर्मलोके निवासं चकतुर्मुदा ॥२४॥  
 तपोर्ददौ वरान्प्रसादा युवां महत्प्रममवौ । युवाभ्यां मोक्षितम्वद्य देवमघपुनरुवदम् ॥२५॥  
 युवाभ्यां तर्षाहं वन्मि वराश्छृणुत बालकौ युष्मदंशे नृपाः केचिदग्रे त्रिगुरुपोष्वतः ॥२६॥

भाषको राज्य करनेके लिए मैंने निर्धारित किया था ॥ १० ॥ १० ॥ ये बातें मैं आपके अवतारके पहले ही अपने गतकोटिसंसारमयक रामायणमें लिख चुका हूँ । वे ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष चलेंगे ही गये । अब ग्यारह महीना और ग्यारह दिन तथा चड़ी-चल आदि हो बाकी बच है ॥११॥ सब मिलाकर अष्टादश दिवस ग्यून एक वर्ष बाकी है । यह समय मंग्र मंग्र समाप्त होगा ॥ १२ ॥ आपके अवतारका समय समाप्त हो रहा है । अब आप अपने पूर्वज अर्षात् भगौरय द्वारा लायो हुई गङ्गामें विधिवत् स्नान करके ब्रह्मादिक समस्त देवताओंसे संस्तुत होकर अपने परम धामका आरोग्य ॥ १३ ॥ १४ ॥ चान्द्रीकिर्की बात सुनकर रामन कहा कि अवतक ये मम आदि राजे कहाँ थे ? ॥ १५ ॥ इस समय कहाँसे आ गये हैं, यह सब आप हूँ विस्त रतुर्बक बतलाइए । रामका बचन सुनकर वात्मीकि बोले-हे राम ! हे महाबाहो ! मैं सब कुछ कहता हूँ, सुनिए । बहुत दिन हुए, सत्ययुगमें अत्रि ऋषिने वैशाखकी पूर्णिमाका अन्तमाका मुन एक वर्षक समान सुन्दर देसकर अपना वीर्य राम दिया और उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १६-१७ ॥ चन्द्रमाको दलनस यह पुत्र उत्पन्न हुआ था । इसलिए वह सोम कहलाया और बनमें जाकर गङ्गाजोंके तटपर ठाम तप करने लगा ॥ १८ ॥ उसी समय वहाँ एक हाथी आ गया । उस हाथीको कुछ पक्षियोंने मिलकर मार डाला । यह महावीरुके देखकर सोमने अपने मनमें सोचा कि यहाँके पक्षियोंने हाथीका मार डाला है । यह अवश्य इस भूमिक ही प्रभाव है । ऐसा विचार करके सोमने उसी स्थानपर एक नगर बसाया ॥ २० ॥ २१ ॥ उसी स्थानपर पक्षियोंने हाथीका विनाश किया था । इस कारण उसका हस्तिनापुर नाम पड़ गया । हे रघूवम ! यहाँके पुरव सियोंने आपह करके सोमको ही यहाँका राजा बनाया । २२ ॥ सोमके पुत्र नामका पुत्र हुआ । फिर क्या था, पुत्र और सोमने मिलकर सब द्वीवोंको अपने अधीन कर लिया और कुछ दिनोंके अनन्तर स्वर्गलोकको गये ॥ २३ ॥ उन्होंने स्वर्गमें देवताओंको आतकर छोड़ दिया और वे सस्योक वहाँ रहने लगे ॥ २४ ॥ उन सोमोंको बहाने अनेक वरदान दिये । बहाने

अन्यैः पराजिताः सप्त पुरुषा न भवन्ति हि । इति दश वा वरं ब्रह्मा ययौ निजपदं प्रति ॥२७॥  
 ततः सोमाय दौहित्री दत्ता । यथावती शुभा । इन्द्रेण तत्र तौ सोमबुधौ श्वरं विधत्तौ चिरम् ॥२८॥  
 बुधदय तनयो भूम्नो नाम्नाग्न्यातः पुरुखाः । अकार राज्यं धर्मेण तथा वदन्तिनापुरे ॥२९॥  
 तस्य पुत्रश्च नन्धोऽभूद्रन्यपुत्रोऽन्य उच्यते । अल्पपुत्रो नल भीमान् दिवशालान् जेतुमुद्यतः । ३०॥  
 राज्ये पुरुखादीन् श्रीन् स्यात्प निजपूर्वजान् । ममद्वीपनृपयुक्तः प्रययौ मेरुमुन्नतम् ॥३१॥  
 आदौ जिन्वा स बह्विदि यय निन्वाश्च निरुक्तिम् प्रययौ वरुण जेतुं गवणादिभिरन्विणः ॥३२॥  
 इतस्मिन्नंतरे राम तूर्णं मैत्र्येण रावणः । प्रययौ नाकलोकं हि सुगान्द्रादिकान् रणे ॥३३॥  
 जिम्बा निनाय स्वां लंकां सोमो पुद्गाय पा-मज्ज । निर्धयौ मुहुराः सर्वान्नेन्द्रान् मोचयितुं सुरान् ३४॥  
 तदा निवारयामास ममा सोमं स्वराज्यतः । निष्पृधून्वा तृषेपेण गवणं हि इतिष्यति ॥३५॥  
 एवं माऽद्य रावणं यदि वरुणस्मै मया र्जितः । तद्वाग्राचन भुन्वा ययौ मोघोऽवरावर्तीम् ॥३६॥  
 भूम्नो मलस्तनो गम्या वरुण पवनं तथा । जिन्वा इवेरमीशान् कृत्कार्यममन्यत ॥३७॥  
 आत्मानं च ततः स्वर्गे चैव जेतुं समुद्यतः । एवं तलेन भ्रमता गत तद्य च कृत बुगम् ॥३८॥  
 त्रेतायुगसमामो स ददर्श सकलं बलम् । तत्रादृष्ट्वा रावणं स दृष्ट्वा बुधोऽवर्तौ न्विति ॥३९॥  
 देवान्बलशालान् कुन्वा लंकां स्वां स गतः पूगः । तत्र माये तु भ्रमनो बलकर नगुरु सुतः ॥४०॥  
 बुधदयस्य आनीकगहनन्मुनो बगुदः स्मृतः । तस्य पुत्रो लघुभुजः सुरधस्तन्सुतः स्मृतः ॥४१॥  
 अजमीढस्तु तन्पुत्रस्त्वेव चन्द्रोऽभवत्पथि । ततः स मथयामास नलो मंथिजनैः सह ॥४२॥  
 किमर्थमिदलोकं तं गन्तव्यमधुना यदि । भुवि देवाः समानोता लङ्कायां गवणेन हि ॥४३॥

कहा-तुम दोनों परे बंशज हो। तुमने मेरा महिम्न सभार दशनाओंको जीतकर भी छाड़ दिया है। इसलिये मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ कि तुम्हारे बंगम तल पर द के भावे सात पुत्र तक बिलने गाने होगे वे किसीसे भी पराजित नहीं होगे। इस प्रकार वरदान देकर ब्रह्मा अपने स्थानका चल गये ॥ २५-२७ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रने यथावत) नामकी अपनी मुद्रसे नन्दिनी सामको दलो। इस तरह वे सोम और बुध जानन्दके साथ बहुत दिनों तक स्वर्गलोकमें रहे ॥ २८ ॥ बुधरा पुत्र इस संसारमें पुरुखा न मों विख्यात हुआ। उसने धर्मपूर्वक हस्तिनापुरमें राज्य किया ॥ २९ ॥ उसका पुत्र गत्य हुआ। गत्यका पुत्र अक्षर और अन्नका पुत्र तल हुआ। बले इन्ना प्रबल होर था कि उसने दसा दिवस लोका जीतनेकी इच्छा की। सेनाकी तैयारी करके वह हस्तिनापुरमें पुरुखा आदि तीन पूर्वजोंको छोड़कर सभी द्वीपोंके राजाओंके साथ उन्नत शिकरवाने मेरु-पर्वतपर चढ़ गया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वही पटंचदर उसने बहुत आगिको, फिर यमकी ओर उनके बाद निरु-क्षिको जीतकर रावण आदि देवोंके साथ वरुणको जीतनेके लिए गया ॥ ३२ ॥ उसी समय रावण अपनी सेनाके साथ स्वर्गलोक पहुंचा और इन्द्रादि देवताओंको संग्राममें जीतकर अपनी लंकाको वापस चल गया। तब सोम अपने मित्रों तथा पूर्वजोंके साथ लेकर रावणस मुद्र करने तथा इन्द्रादि देवोंको मुझानेके लिए चल पडा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उसी समय ब्रह्माजीने आकर सामको रावणपर चढ़ ई कानेसे लोक दिया और कहा कि स्वर्ग विष्णुचतुर्वान् अनुपगत रूप धारण करके रावणका संहार करेंगे। तुम आज रावणके पास मत जाओ। ब्रह्माकी बात मानकर सोम लंका न जाकर समरावतपुती गया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर वही सोम मरुत्पते इस पृथ्वीपर भवतीर्ण हुआ और अपने पराक्रमसे कुबेर एवं ईशानको परास्त करके उसने अपनेकी कृतकृत्य माना ॥ ३७ ॥ कुछ दिनों बाद इन्द्रको जीतनेके लिए बल स्वर्गलोकमें आ पहुंचा। इस तरह उनके घूमते फिरते सत्ययुग बीत गया ॥ ३८ ॥ त्रेतायुगके समाप्त हो अनन्तर चलने सब बीरोंकी लो देसा, जिन्नु रावण मही मिला। अन्तमें मरने फिर सब देवताओंको यथावे किया। अन्तपर भी आधिपत्य जमाया। सभी चलकर चलके नष्ट, मरुत्पके जातोकर, जातोकरके बगुद, बगुदके लघुभुज, लघुभुजके सुरध, सुरधके अजमीठ पुत्र हुआ और इस प्रकार बलकी सन्तति बज। एक दिन मरने अपने मांथियों-

अस्माकं सेवकः सोऽस्ति दशास्यः करमादः । निजं पुत्रं प्रमत्तव्यमनुना चिरकालतः ॥४४॥  
 दिग्गथादयं सर्वे ज्ञातिनाः मम चिरं निवहन् । पुरुरवादिनास्ते नः पूर्वजाः सति वा मृताः ॥४५॥  
 नास्माभिश्चिकालं हि तद्रूपं भ्रमकः श्रुतम् । अतः स्वीयं पुत्रं गन्दा द्रष्टव्यास्तेऽत्रिपूर्वजः ॥४६॥  
 चेन्मोमपुत्रयोर्नाकं गन्तव्यं दर्शयेच्छया । तर्हि ताम्यां पुत्रा देवाः किं जेता रावणेन हि ॥४७॥  
 किं ताम्यारहिता इवा जिताश्चेति न वैशयहम् । तत्र भवन्मकलं कृतं विदितां हस्तिनापुरे ॥४८॥  
 भविष्यति ततो यदि कर्त्तव्यं त- रं मया । अति निश्चितं यं नलः शनैः स्वनगरं ययौ ॥४९॥  
 एवमिन्मन्तरे राम स्व जतोऽत्यन्तमलम् । हन्तव्यं तं रावणं देवा मोचितास्ते दिवं गताः ॥५०॥  
 समद्वोपांतरमथा ये नृगाम्ने रावणकृताः । पुरुरवादिनाः स्त्रीश्च निष्कारपात्र गङ्गाह्वये ॥५१॥  
 सुपेयः स्थापितः पूर्वं वानरैः सहितमन्या । ततः पुरुरवाद्याम्ने स्वकालेन मृतास्त्वह ॥५२॥  
 इदानीं ते समायाताः मोनयंलोकस्य नृपाः । नस्त्राद्याः मम स्वपुत्रं समद्वीपनृवोत्तमाः ॥५३॥  
 स्वतकृताः स्ववपुषा ये च डीर्घावरकिन्नाः । नृगाम्नेषां पूर्वजाश्च स्वमैर्न्यस्ते नृवोत्तमाः ॥५४॥  
 बलिनः कौटिभः सर्वे ममायाता गङ्गाह्वये । भविष्यति स्वपुत्रं तैश्च ममरः सोमवशजैः ॥५५॥  
 रुद्रा मया सुर्ययुक्तः समगन्धर्व तर्वातिरुम् । पश्योम्ने प्रणामांश्च नलाद्यैः कागयिष्यति ॥५६॥  
 कुन्वा कः प्रार्थयति तेऽपि न्वा वैकुण्ठमण्यपति । एव राम तवेन्तारं तवाग्रे कथितं तथा ॥५७॥  
 यन्पृष्टं मां त्वया पूर्वं नलादीनां कथानकम् । विनाहकाडमारुह्य रम्यं रामायणं शुभम् ॥५८॥  
 समग्रं हि मया राम पुण्यं श्रावितं तव पुत्रारूपाधनुना सर्वं शृणुष्व रघुर्नदन ॥५९॥  
 इत्युक्त्वा कुशलवयोश्चकाशतां सुनिश्चयः । निवहन्तान्काण्डानि चत्वारि जगतुः शिशू ॥६०॥

वे मन्त्रणा की कि जब रावण सब देवताओंको पकड़कर पृथ्वीमण्डपर ही ले आया है, सब हम स्वर्गलोककी वषी चले । ३६-४३ । रावण हमारा सेवक है, सब हमें कर देता है । हम लोगोंको घुमते-घुमते भी बहुत दिन हो गये है । इसलिये अब अपने पुत्रोंको लोट करके आगिये । जिनकी रिजाओंमें घुमते फिरते हमलोग बहुत समय तक आबित रहे, किन्तु पुरुरवा आदि हमारे पुत्र ज वित है या मर गये । मुझ उनकी कुछ भी खबर नहीं है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अतएव चर, अतएव राजवंताओं वायस चले । वहाँका हाल-चाल देख और अपने लोनों पूर्वजोंकर दर्जन करें ॥ ४६ ॥ तर्हि नलादीनां । यान ही नहीं जानत है कि सोम और पुष भी तो और और देवताओंके साथ रघुम द्वारा बन्दी नही बना निव गये । हस्तिनापुर सजनेसे ये बात भी जान हो जायेंगी । उसके बाद जा करना उचित होगा, सा दिया जायगा । ऐसा निश्चय करके वह अपने नगरको लौटा ॥ ४७-४८ ॥ इसी समय हे राम ! आगम्य अवतार हो गया । आगम्य रावणको मार डाला और देवताओंको छुड़ा दिया । जिसने व सब देवता स्वतकृताकी चले गये ॥ ५० ॥ मानों द्वापाम रहनेवाले राजाओंकी भाषन अपने वषाम कर लिया, वे पुरुरवा आदि तन राज भे आकर वषाम हो गए । तब आपने उनको हस्तिनापुरमें निकालकर वाङ्मयोक साथ सुगणको उसका गर्दगर बिछाए दिया । कुछ दिनों बाद समय आनेपर पुरुरवा आदि भी मर गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इस समय नल आदि मादवंशी रात उन सत्त राजाओंके साथ यहाँ मा रहे हैं । जिनका कि आपने अपने वषाम कर लिया था और अब तक वे किसी दूसरे द्वापमें रखा करते थे । वे राज अहेले नही बन्धित अपने पूर्वजों तथा करेड़ों के विनाश सेन के साथ हस्तिनापुरपर चढ़े आ रहे हैं । उन सोमवंशियोंके साथ आपका युद्ध करना पड़ेगा ॥ ५३-५५ ॥ इस समय सब देवोंके साथ ब्रह्माजी वाकर नल आदिसे आदका प्रणाम करवायम् ॥ ५६ ॥ इसके बाद रुद्रा आपकी विविध स्तुति करके अपने साथ आपको वैकुण्ठलोक ले जायेंगे । हे राम ! इस तरह देने आपको आज्ञाते उन नल आदि भन्तवशी राजाओंका पुत्रात विस्तास्पृष्टक बताया ॥ ५७ ॥ हे 'पुनन्दन ! बहुत दिन हुए, जब मैं विवाहकांड- से लेकर सारी रामायण आपको सुनायी थी । अब आप अपने पुत्रोंके मुखमें वह पुनीत कथन सुनिह ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इतना कहकर वाङ्मोकिने कुश और लक्ष्मी रामचरित्र सुनानकी आज्ञा दी और वे विवाहकांड-

तत्सर्वं राववः भूम्या पसां युद्धवशात् सः । विदुः सर्वं जनाश्चापि वैकुण्ठारोहणं प्रभोः ॥५१॥

इति शतकोटिरामचरितगतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये अदिकाव्ये मनोहृत्काण्डे  
सोमवंशानुसङ्गादिस्तारो नाम प्रथमः सर्गः ॥ ८ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( रामका सोमवंशियोंसे युद्धके लिए प्रस्थान )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्तदा ब्रह्म वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् । आमन्त्रय्य त्वया तत्र मुनिभिस्तु गज्राह्वयम् ॥ १ ॥  
तथेति स मुनिः प्राह राघवं भक्तवत्सलम् । ततः स लक्ष्मणं शीघ्रं राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥  
पत्राणि प्रेषयन्वाद्यं कुमारान् राजसंस्थितान् । स्वस्वाज्ये मन्त्रिणश्च कृत्वाऽशमभ्यतो बलः ॥ ३ ॥  
एवमेव प्रलेख्यानि जम्बूद्वीपपतीन्व्रजान् । तथा शोषपर्वीधरपि दूतास्तस्त्विह नः ॥ ४ ॥  
तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा तदा चक्रे यथोदितम् । गदवेण ममायुधे वाल्मीकिगुरुमभिधौ ॥ ५ ॥  
ततः ब्रह्म पुनः श्रीमान् राघवो लक्ष्मणं ब्रूयात् । वासोमेधानि मेघानि बहिर्मम रघूदर ॥ ६ ॥  
युद्धतो वृत्तते शो वै सेनां चोदय सादरात् । आयुधान्पथं यत्राणि जीर्णानि च बहूनि हि ॥ ७ ॥  
पूर्वजैर्निहितान्येव कोशागारेषु वै सदा । तानि निष्कामनीयानि तेषां कालोऽद्य वर्तते ॥ ८ ॥  
अन्तःपुराणि सर्वाणि बहिर्नेयानि मेऽद्यतः । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य सांताप्यग्रेऽनुगच्छतु ॥ ९ ॥  
कोशागाराणि सर्वाणि बहिर्नेयानि नाहनैः । इत्यथश्वरथपदात्ता नेपाः सर्वे बहिस्त्वया ॥ १० ॥  
इत्याह्वय्य रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं निनयान्वितम् । मन्त्रिणौ नैगमाश्चैव अविष्ट चेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥  
अभिपेक्षयामि सरतं समद्वीपवतैः पदे । लक्ष्मणो मां विना नैव भूम्यां वासं करिष्यति ॥ १२ ॥

के बादवाले काण्डोंको कथाओंको सिंग जुद्धकर गान लगे ॥ ६० ॥ यह सब कथाएँ सुनकर रामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और सर्वसाधारणके लोगोंको भा भगवान्की स्वर्गारोहणसम्बन्धी बातें ज्ञात हो गयीं ॥ ६१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितगतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ भाषाटीका-सहिते पूर्णकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदास बोले—इतनी कथा सुनकर रामचन्द्रजीने वाल्मीकिसे कहा कि आप भी हस्तिनापुर अवश्य आइएगा ॥ १ ॥ महीं वाल्मीकिने मन्त्रवत्सल रामसे कहा—“बहुत अच्छा” । इसके बाद राम लक्ष्मणसे कहन लगे कि सब गज्योक मिह्रासनपर बैठे हुए कुमारोंके पास पत्र लिख दो कि वे अपने अपने मन्त्रियोंके ऊपर राज्यका भार छोड़कर अपना सेनाके साथ यहाँ आ जायें ॥ २ ॥ ३ । उन्हें प्रकारक पत्र जम्बूद्वीपवाले तथा द्वीपान्तरनिवासी राजाओंके पास लिख दो और दूतोंको कहा कि उन्हें जय पत्र अर्पण कर ॥ ४ ॥ “तथास्तु” कहकर लक्ष्मणजीने भी वंसा ही किया, जेवा कि रामचन्द्रजी ने अपना वाल्मीकि तथा गुरु दमिष्ठके सम्मुख कहल था ॥ ५ ॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणसे कहा कि हमारे लम्बू-कनक आदि सामान बाहर ले चलो ॥ ६ ॥ कल बड़ा अच्छा सुन है । सेनाको भी शीघ्र नेपा- हों जानकी आज्ञा दे दो । बहुतसे शस्त्र जीर्ण हो गये हैं, जिनको ग्रे पूर्वजोंने धरोनि बन्द कर दिये हैं उनका निकाल लो । क्योंकि आज उनके उपयोगका समय आ पहुँचा है ॥ ७ ॥ ८ ॥ जल पुरकी जितनी शिबरी है, उनको भी बाहर ले जाओ । अग्निहोत्र लेकर सीता भी मेरे साथ चले ॥ ९ ॥ मेरे जितने खजाने हैं उनको हाथी घोड़े तथा रथकी सज्जामतासे बाहर ले जाओ ॥ १० ॥ इस तरह लक्ष्मणजीको आज्ञा देकर मन्त्रियों, विद्वानों तथा बसिष्ठजीसे कहा कि अब मैं सातों द्वीपोंके राजापरतके पदपर भरतजीको बिठाऊंगा । क्योंकि मेरे दिना लक्ष्मण इस भूमिफल-

एवं वदति राजेंद्रे पौरस्त्ये मयविह्वलाः । दुःखा इव छिन्नमूला दुःखार्ताः पतिता मुनि ॥१३॥  
 मूर्छितो भगवन्वापि श्रुत्वा रामाभिभाषितम् । गर्हयामास राज्यं स प्राह दुःखाद्रघुनामम् ॥१४॥  
 मत्प्रेन तु ज्ञापे नाहं त्वां विना दिवि वा हवि । कांक्षे राज्यं रघुश्रेष्ठ ज्ञापे त्वयाप्योः प्रभो ॥१५॥  
 अहं योग्यं वरं राज्ञमभिविचिन्स्व रम्यं । अयोध्यायां कुशं वीरं समद्वीपपतेः पदे ॥१६॥  
 अस्यधुरगुरुकृपया जम्बुद्वीपपतेः पदे । लघोऽभिषेचितः पूर्वं स एव तेषु गच्छतु ॥१७॥  
 भरतेनोदितं श्रुत्वा रतिनास्ताः समीक्ष्य च । प्रजा वै मयमविह्वला रामविह्वलेपकातराः ॥१८॥  
 वमिष्ठो भगवान् राममुवाच सद्यं वचः । पश्यतामादरात्सर्वाः पतिता भूतले प्रजाः ॥१९॥  
 तायां मानानुबं राम प्रसादं कर्तुमर्हसि । श्रुत्वा वमिष्ठवचनं ताः समुत्थाप्य पूज्य च ॥२०॥  
 सस्नेहोऽधुनायन्ताः किं करोमीति चाब्रवीत् । ततः प्राञ्जल्यः प्राचुः प्रजा भक्त्या रभूदहम् ॥२१॥  
 गन्तुमिच्छसि वैकुण्ठं त्वमस्माकं नय प्रभो । यत्र गच्छसि त्वं राम शत्रुगन्धर्वाभ्यो वयम् ॥२२॥  
 अस्माकमेव परमां प्राप्तिर्धर्मोऽश्मद्वयः । तत्रानुममने गम हृदता नो दृष्टा मतिः ॥२३॥  
 पुत्रदारादिभिः सार्द्धमनुयायीऽयं सर्वथा । तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन ॥२४॥  
 शान्त्वा तेषां मनोदाह्यं कारुण्याद्रघुनायकः । भक्तं पौरजनं दीने वादमित्यब्रवीद्वचः ॥२५॥  
 कृन्तनं निश्चयं राक्षस्तस्मिन्नेवाहनि प्रभुः । कुशं तमभिषेक्तुं वै चोदयामास लक्ष्मणम् ॥२६॥  
 सौमित्रिश्चापि गुरुणा विप्रैः पौरजनेभ्यस्तदा । शोभयित्वा स्वनगरीं कुशं तमग्यवेचयत् ॥२७॥  
 अभिषेके कुशस्यार्मान्महोत्साहो गृहे गृहे । रामावरोधे शुभदान्यमुन्मादस्तदाऽभवत् ॥२८॥  
 तदा सिंहासनारूढं छत्रचामरशोभितम् । प्रजाः कुशं पतिं प्राप्य प्रणमं चक्रुरादरात् ॥२९॥

पर नहीं रह सकते ॥ ११ ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके पैना कहनेपर ये सब पुरवासी घरसे कटे हुए नृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े । रामकी बात सुनकर भरतजी भी मूर्छित हो गये । होश आनेपर उन्होंने राज्यकी भरपूर निष्ठा की और दुःखित होकर उन्होंने रामचन्द्रजीसे कहा—मैं आपको चरगाकी कृपाय आकर कहता हूँ कि आपके बिना मैं पृथ्वी अथवा स्वर्गलोकका भी राज्य नहीं चाहता ॥ १३-१५ ॥ हे राजन् ! हे राघव ! आप और कुशको इस जम्बुद्वीपपतिके आसनपर बिठाकर दोजिए ॥ १६ ॥ उत्तरकुश नामके देशमें जम्बुद्वीपपतिके दरबार हो आपने स्वका बहुत दिनों पहले ही अभिषेक कर दिया है वह अपने पदपर चला जाय ॥ १७ ॥ इस प्रकार भरतकी बात सुनकर वहाँके जितने प्रजाजन हैं, वे सब रामके वियोगरूपा दुःखमें विह्वल और अशुभीत हो गये ॥ १८ ॥ उनकी यह दशा देखकर दयानु भगिन्नजीने रामसे आदरपूर्वक कहा— हे राम ! देखिए, ये सब कितने दुःखी हैं । जब जिस तरह इनकी सन्तोष हो सके, वही काम करिए । वमिष्ठजीकी बात सुनकर रामने उन लोगोंको उठाया, उनका उत्कार किया और पूछा कि मैं क्या करूँ, जिससे आप लोग जोर प्रसन्न हो सकेंगे । यह सुना तो सब लोग हाथ जोड़कर पश्चिम्पूर्वक रामचन्द्रजीसे कहने लगे—हे राज ! आप कब यदि वैकुण्ठलोकको जाना चाहें हों तो हम भी अपने साथ लेते चलिए, हम सब भी आपके साथ-सम्य चलेंगे ॥ १९-२२ ॥ इससे बहकर हमको और कोई साथ नहीं होगा हम लोगोंके लिए यह अक्षय्य वनकाय है । हे राम ! आपके साथ चलनेके लिए हमसे हृद निश्चय कर लिया है ॥ २३ ॥ आज हम सब अपने परिवारके साथ आपके साथ वैकुण्ठलोकको, तपोवनको, स्वर्गको अथवा अयोध्याको जायेंगे ॥ २४ ॥ रामचन्द्रजीने जब मत्स्य और पुरजनोंकी हतनी दृष्टा देखी तो साथ ले चलनेकी स्वीकृति दे दी ॥ २५ ॥ इस तरह निश्चय करके रामने उसी दिन कुशका अभिषेक करनेके लिए लक्ष्मणसे कहा और रामके आशानुसार गुप्त, विप्र एवं पुरवासियोंके साथ लक्ष्मणने उसी दिन कुशका राज्याभिषेक कर दिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ कुशका अभिषेक करते समय अयोध्याके घर घरमें महान् उत्सव मनाया गया । विशेषकर रामके अन्तःपुरकी तरिपेने उत्सव मनाया ॥ २८ ॥ जब कि छत्र और चमर आदिसे सुसज्जित होकर कुश सिंहासनपर

सदा कृषो नृपो विमान्धनं बहुतरं दर्श । प्रजास्त पूजयामासुवच्चलकारसादनैः ॥३०॥  
 यतः प्रापुजन्त्यर्चाः प्रजाः स कुलभूषतिः । भवदामाय विर्मादन्कोटिभ्यः स कुशेश्वरः ॥३१॥  
 अथ रामाज्ञया ज्ञाथ सोमिषि मोक्षदा मह । अन्नःपुगणि सर्वाणि निनाय जगद्गर्हः ॥३२॥  
 मातावाहनसंस्थानि नृत्यवाद्यादिमग्नैः । कले गतः स्वयं बन्धुपुत्राद्यैः सर्वतो दृढः ॥३३॥  
 हनिभिर्जयमुर्द्वश्च स्तुतो मंगलनिःस्वनैः । प्रयोधराया दद्विः पार्ययेवा मन्त्रध्वस्तुतः ॥३४॥  
 रथस्त्रधामराधिवीजिअ धर्ममृदा । विजित कामोमेद्वानि नरा राक्षो जय ॥३५॥  
 अननुर्वारिवार्वथ सदा धर्मरथवाहनः । नरः पौर्यः सादरोवावांडालान् ॥३६॥  
 निन्पुस्तो माग्नेयानान् पुर्वाः पौर्यधनुषद्वत् । कामन्पक्षिकुली गवास्तःपुर्वा स इद्वियुः ॥३७॥  
 नामीन्कोटिभ्य नदा पुर्वा अनशून्या बभूव सा । अयेऽप्यनगरा पुण्या गवद्वृक्तकपिन्यरत् ॥३८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे सर्वे द्वापान्तरनिधामिन । जयद्रोपातिरस्वाथ पयुः सर्वपुत्रोपानवाः ॥३९॥  
 कोटिभ्यो रापय नेमुनको नेमु कुशेश्वरत् । उपालनानि गवाय कृष्णव च पृथग् पृथक् ॥४०॥  
 दध्या संपूजितामामास तस्वः सदा हरीतमासः । ततोऽहं शिवशकेतुः पृथग् पृथक् एव च ॥४१॥  
 सुरादृष्टुपकेतुश्च ययुः सर्वं निजवर्तः । साकंवाः मपुत्रश्च सर्वाजाम्ने स्तुवादिभिः ॥४२॥  
 प्रयेषु रापिकादीश्च सीतादीश्चैव सादगत् । रामेणान्विगि ॥ सर्वं सीताया मोक्षिता अपि ॥४३॥  
 तस्वः सर्वे सदायां ते स्वस्वपद्वतः । गद्वं नदापनान् नृपात्मनां गयो पृथं न्यवेदयत् ॥४४॥

[illegible]



पुनः पप्रच्छ तान्मन्त्रान्मन्त्रिणान् रघुनन्दनः । युष्माकं पूर्वज्ञाः सर्वं समाधाता गजान्वये ॥४५॥  
 भवतां गोपने युद्धं यदि नैः पूर्वज्ञैः सह । आगन्तव्यं तर्हि सर्वं मया सह गजान्वयम् ॥४६॥  
 नोपेन्द्रद्विर्गन्तव्यमित एव निजम्बन्धम् । निर्वन्धोऽयं न मे तेषां सर्वैः पार्थिवमन्त्रमैः ॥४७॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा वृषा राघवमब्रुवन् । राम राम महावीर्यं वरं सर्वं त्वधानुगतः ॥४८॥  
 स्वयैव वीर्यवानः सर्वं त्वान्मन्त्रं पोषिता वयम् । वीर्याः क्षत्रियवंशीया रणे नानप्रहाप्तिनाः ॥४९॥  
 तवाज्ञया वधानोऽयं पितृपुत्राश्च त्वाश्रिते । नाम्नांस्त्वं विद्धि राजेन्द्र स्वामिकां यैः पराङ्मुखान् ॥५०॥  
 इति तेषां वचः श्रुत्वा तानादिग्य स राघवः । मण्डूक्याभार्णवमैः मुखं मुखाय सीतया ॥५१॥  
 वनः प्रभाते श्रीरामो गन्वा न गगनदीप्तिम् । स्नात्वा दानादि वै दत्त्वा सीतया विधिपूर्वकम् ॥५२॥  
 कृत्वा तां मय्यु पुण्यां गन्तुं पप्रच्छ नै मुहुः । वट्टामचक्षते श्रुत्वा मय्यु राममब्रवीत् ॥५३॥  
 एतावन्कालपर्यन्तं स्थिता नृदृशनेच्छया । अहमद्य त्वया राम यास्यामि न्यन्पदं त्वित ॥५४॥  
 तपस्या वचनं श्रुत्वा नामाह राघवः पुनः । यावन्कथा मम ह्युभा स्वाम्यन्यत्राधनाश्रिनी ॥५५॥  
 तावन्ममभरूपाऽत्र वयं लोकाधनाश्रिनी । तथेति रामवचनादशरूपं निधाप मा ॥५६॥  
 साकेलेऽथ पूर्णरूपं ययौ रामेण न्यपदम् । अथ तमः मरुताऽपौ परिक्रम्य निजां पुरीम् ॥५७॥  
 साष्टांगं तां नमस्कृत्य गन्तुं पप्रच्छ पूज्य ताम् । श्रयोऽप्येभ्य नमस्तेऽस्तु त्वयाऽहं रक्षितस्मिन् ॥५८॥  
 आशीं ददस्व पृच्छामि स्वस्वले गन्तुमुद्यत । क्षमस्व नऽप्यगधास्व पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥५९॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा पुरीं राघवमब्रवीत् । एतावन्कालः पर्यन्तं स्थिता नृदृशनेच्छया ॥६०॥  
 यास्ये त्वया समर्था न मोदुं त्वद्विग्रहं त्वहम् । तनय्या वचनं श्रुत्वा पुरीम्नाह रघूत्तमः ॥६१॥

ये बड़े । और-और राम भी वहाँ रक्षा करने हुए तो राम ने उनकी अपनी विचार सुनाया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर राम ने उन राजाओं से कहा कि आपको पूजा है इत्यादि पुरी में कुछ ही दिन तक रहे ॥ ४५ ॥ ना यदि आत्माओं-को भी कुछ करना हो तो मेरे साथ ही गन्तु पुरी चलिए । ४६ ॥ यदि न इच्छा है तो आप लोग अपनी अपनी राजधानी को लौट आइये , मैं आत्माओं से किसी परमात्मा का यह नहीं करना चाहता ॥ ४७ ॥ इस प्रकार राम की बात सुनकर उन राजाओं ने कहा-हे राम ! हे महाबली ! हम सब आपके मनभावों हैं । आपने ही हम लोगों का अभ्युदय किया है । आपको ही बल में हम पन हैं । बार क्षत्रियों के वंश में मेरा जन्म हुआ है । इस कारण आप यदि आज्ञा दें तो हम अपने पित्र्यादि लोकों में यात्रा में अवश्य मारेंगे । हे रामन्द्र ! आप कभी भी ऐसा न मझिना कि हम स्वयः (अपने) के काम में पराङ्मुख होंगे । ४८-५० ॥ इस प्रकार उनको वचन सुनीं तो राम ने उन सब राजाओं की इससे लगे, विविध प्रकार के वस्त्र-आभूषणों से उनको पूजा की और जाकर आनन्दपूर में सीता के साथ लगन किया ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर सबरे सीता के साथ राम कटुजी के मरुत के मरुत जाकर स्नान दान किया । इसके बाद उन्होंने प्रणाम करके सन्तुली में अपने लिए वस्त्र बाद जानकी आगत मार्गः । राम की प्रार्थना सुनकर सन्तुल कहा—॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जबतक आपको उसी लोक की इच्छासे मैं जीवनी यां किन्तु हे राम ! जब आप जा रहे हैं तो मैं भी आपको श्रीचरणों के साथ चढ़ूँगा ॥ ५४ ॥ सन्तुली ने न पुनः राम से कहा—जबतक मैं दासों को कुछ करने-वाली बेरी पुनीत कथा इस समाज में विद्यमान है, तबतक मैं अपने इस भी यहाँ रहूँगी दुई सबके पाद पूज करती रहूँगी । राम के कहने पर सन्तुली ने तब तक अपना एक अश्रुता धराया, जिससे वह जवाबदायि रह गयी और पूर्णरूप से राम के साथ चल पड़ी । सन्तुली ने तब तक अपना दास्य पुनीत की पत्रिका का और साष्टांग प्रणाम एवं पूजन करके वरमधाम जात्रा को जाता सीनी और कहा—हे अम्ब प्रिये ! तुमने मेरी रक्षा की है । मैं अब अपने नेकुल्लव जात्रा की सीता जात्रा में मैं अपना भी साथ करूँगी और पुन आधादि दा कि फिर कभी मैं तुम्हारा स्नान कर सकूँ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार राम की बात सुनकर अश्रुतापुनीत कहा कि इतने दिनों तक मैं आपका दर्शन कर सका हूँ । आपके चले जाने पर मैं



तत्पृष्ठे भरतश्चापि सन्नुन्नश्च ततो ययौ । ततः कुशो लवश्चाथ ततः सोऽप्यमदो ययौ ॥७८॥  
 ययौ ततश्चित्रकेतुः पुष्करश्च ततो ययौ । तनस्तक्षः सुवह्वश्च युषकेतुस्ततो ययौ ॥७९॥  
 ततः सीता ययौ शीघ्रपुर्मिला च ततः परम् । माडर्वा श्रुतकीर्तिश्च स्तुषाः सर्वाः क्रमाद्ययुः ॥८०॥  
 तनुस्ते मन्त्रिणः सर्वे शिबिकः सन्धिना ययुः । ततो ययुर्वानरश्च कोटिशः पर्वतोपमाः ॥८१॥  
 ततो ययुर्नृपाः सर्वे कोटिशो वारगन्धिताः । ततो नृपाणां मैन्यानि ययुर्वानिन्धितानि हि ॥८२॥  
 ययुस्तवस्ते यन्त्राणां शकटाः कोटिशो वराः । शनघ्नीखड्गचर्मादिपूरिताः शकटास्तदा ॥८३॥  
 ततो वारणमूढपाश्च नववाद्यसमन्विताः । ततश्चोष्ट्राः सुवणानां ततः पृष्ठे सरादयः ॥८४॥  
 एवं रामः शनैर्मार्गं चामराद्यैः सुवीजितः । सीताया आलम्ब्यैव वीक्षितश्च मुहुर्मुहुः ॥८५॥  
 ययौ शनैः शनैः श्रीमान्स्तुतो मामश्ववन्दिभिः । पश्यन्नुन्यान्पश्यन्मरसां शृण्वन्स गायनान्यर्थाव ॥८६॥  
 सेनानिवेशस्थानानां यात्राकाण्डे यथोदिता मया पूर्वं सुरचना तद्वदासीत्पुनस्त्विह । ८७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणं गाल्मीकीये आदिकाव्ये पूर्णकाण्डे  
 रामदासविष्णुमवादे रामप्रस्थानं नाम द्वितीयः सर्गः । २ ॥

## तृतीयः सर्गः

( रामका सोमशिशियोंके साथ युद्ध )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः शनैर्मार्गे नानादेशान्विलम्ब्य च एकादशदिनैः प्राप सेनया तद्बलाह्वयम् ॥ १ ॥  
 राममागममाज्ञाय सुपेणो वैगवस्तरः । प्रन्दुशयो म्वकृद्विधिविशलक्षममन्वितैः ॥ २ ॥  
 नत्वा रामं च सीतां च सर्वं वृत्त न्यवेदयेत् राम राम महाबाहो द्रवापाचव वै मया ॥ ३ ॥

भावार्थः— कुश, अङ्गद, चित्रकेतु, पुष्कर, तक्ष और इनके पीछे राजकुम सुवह्व चले जा रहें थे । राज पुत्रोंकी सेनाके पीछे सीता उमिला, माडर्वा, श्रुतकीर्ति और इनके पीछे उनकी पत्नीद्वय चली जा रही थीं । उनके पीछे रामके मन्त्रिगण पालकियोंपर बैठ चले जा रहें थे । उनके पीछे पर्वतक समान बड़े-बड़े आकारवाले वानर और उनके पीछे विविध प्रकारकी सवारियोंपर सवार सब राज चले जा रहें थे । उनके पीछे उन राजाओंकी सेनामें घोषादय सवार हाकर चली जा रही थी । उनके पीछे कितनी ही बैलगाड़ियोंपर लड़े हुए शीश आदि यन्त्र चल जा रहें थे ॥ ७७-८३ ॥ उनके पीछे मूल्य-मूला हाथी अनेक प्रकारके बाघ लादे हुए चले जा रहें थे और उनके पीछे एक बहुत बड़ा हाथी चल रहा था जिसपर राजकी पताका सुशोभित हा रही थी । उनके पीछे सुवर्णसे लड़े हुए ऊँट और उनके पीछे और-और सामान लादे हुए गधे तथा सव्वर आदि चल रहें थे ॥ ८४ ॥ इस तरह राम और वारे चले जा रहें थे । उनके ऊपर चमर व्यजन आदि चल रहें थे और सीताजी अपनी सवारीके सरीखीमें द्वार द्वार रामकी निहार रही थीं । ८५ ॥ मागध-वन्दीजन आदि विविध प्रकारकी मूर्तियों कर रहें थे और कितनी ही अप्सराओंके नृत्य-नाच हो रहें थे ॥ ८६ ॥ राम-चन्द्रजीके पड़ाव ठीक उसी तरह इस समय भा थे, जैसे कि पीछे यात्राकांडमें बतलाये जा चुके हैं ॥ ८७ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणं पूर्णकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २

इस तरह धीरे-धीरे चलते हुए राम अपनी सेनाके साथ अनेक देशोंको लाँघते हुए ग्याह् विनमे इस्तिनापुर पहुँच । १ ॥ रामके पहुँचनेका समाचार पाते ही सुपेण वीर लाल सैनिकोंको लेकर आ पहुँचा । २ ॥ रामके समक्ष पहुँचकर उससे सीता रामका प्रणाम किया और कहन लगा—हे महाबाहो राम ! आपके

चतुर्दशदिने युद्धं कृतमेषिः सुसुक्कम् । अनुनाम्नं मयायात सर्वेने स्थास्यन्ति भूतले ॥ ४ ॥  
 सुषेणस्य वधः श्रुत्वा ममप्याश्रमयन्प्रभुः । अथ रामः स आहूय्याश्वोत्तरे परमे तटे ॥ ५ ॥  
 सेनानिवासमकरोद्ददत्ते रिपुवार्हिनीम् । तां निश्चां समतिक्रम्य द्वितीये दिवसे ततः ॥ ६ ॥  
 शोदयामास युद्धाय वानरान् रघुनन्दनः । ततस्ते वानराः सर्वे आहूय्यामवप्युच्य च ॥ ७ ॥  
 राम सीतां नमस्कृत्य निर्ययुः समरं मुदा । ततस्ते वानराश्चक्रुः सिंहनादान्मयकरान् ॥ ८ ॥  
 वादयामासुर्वाद्यानि दृष्टुः शत्रुवार्हिनीम् । नलाशस्त्रेऽपि श्रौण्मसेनां दृष्ट्वाऽनिविस्मिताः ॥ ९ ॥  
 चकित्वा मयसीताश्च निर्ययुः संगरं जगन् । ततस्ते वानराः सर्वे गंगामुत्तम्य वेगतः ॥ १० ॥  
 दृषत्किं सर्वैर्नृपैः शिन्वादिमुष्टिभिः पदैः । निजघ्न्युः शत्रुवीर्यास्त्रे कर्तयतो मृगमयम् ॥ ११ ॥  
 नलशेराश्च ते सर्वे शस्त्रैर्वीर्यैः कर्षीश्वरान् । निजघ्न्युः समरे वेगाद्वभूव तुपुनो रणः ॥ १२ ॥  
 अथ तैर्वानरैः सर्वे बलाद्वधैः प्रपीडिताः । पराङ्मुखाः कृताः सर्वे स्थाने नरमैर्निकाः ॥ १३ ॥  
 सान् दृष्ट्वा ने ननायाश्च रणाङ्गीरान् पराङ्मुखान् । निहतजङ्घपि शीर्षाचोदयस्यपकीरतदा ॥ १४ ॥  
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जयार्दीपनिवासिनः । तथा द्वीपान्गोद्रवा ये मुदाश्च पुगोदिताः ॥ १५ ॥  
 पयुर्मुखाश्च समुद्रा नानाबाहदमस्थिताः । तन्मयानागतान्दृष्ट्वा ययुः श्रौण्ममैर्निकाः ॥ १६ ॥  
 जयार्दीपान्तरस्थाश्च तथा द्वीपतिग्मस्थिताः । पुरानश्च नृपाः सर्वे नानाबाहदमस्थिताः ॥ १७ ॥  
 सुग्रीवश्चागदश्चाश्च हनुमाश्च विभीषणः । जायगाश्च सुषेणश्च मयातिर्महत्स्वजः ॥ १८ ॥  
 शुहको भूर्गिकर्णश्च कम्पुकठः प्रगावदान् । तथाऽन्ये जनकाश्चाश्च ययुः सग्रामभूतलम् ॥ १९ ॥  
 लढोभयोर्महानागीर्मैत्र्ययोर्वीर्यनिःस्वनः । नरवाद्यानि च नेदुरुभयोः सैन्ययोः पृथक् ॥ २० ॥  
 तदा बभूवादयो देवाः शिवेन सहिताश्च स्त्रे । सवृधनाथ सोमन देवेन्द्रेण युता मुदा ॥ २१ ॥  
 नानाविमानमारुढा ददशुर्बुद्धकौतुकम् । अथ चन्द्रादयो देवाश्चकुर्मन्त्रं परस्परम् ॥ २२ ॥

प्रतापसे मेने बौरहू दिनो तक इन लोगोके साथ भयकर युद्ध किया है । अब आप भी जान्ये हैं तो ये दुष्ट बचकर कहाँ जायेंगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ सुषेणकी बात सुनकर रामने भी उसे आश्वामन दिया और गङ्गाके उत्तरी तटपर अपना सेनानिवास बनवाया ॥ ५ ॥ वहाँसे ही शत्रुको सेना देखी । रात बीत जानेपर सबरे ही रामने वानरोंको युद्धके लिए बिठा किया । रामकी आज्ञासे वे लाग सीता तथा रामकी आज्ञास्य कर्के बड़ी प्रसन्नतासे गङ्गाजीको पार करके संग्रामभूमिमें आ पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने भयकर सिंहनाद किया, विविध प्रकारके मारु बाजे बजाये और शत्रुकी सेनापर घावा खोल दिया । रामकी सेनाकी देखकर वे नल आदि राजे बड़े विरिमत हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ वे तुरन्त अपनी सेनाके साथ युद्धके लिए आ डटे । इसके अनन्तर वे सब वानर परपरके बड़े-बड़े लण्ड और वृद्ध ले-लेकर रामचन्द्रजीकी जयजयकार करते हुए शत्रुपक्षके बाँगी-का संहार करने लगे ॥ १० ॥ ११ ॥ उधर नलकी सेनाके भी बाँर अपने लोखे शस्त्रोंसे वानरोंको मारने लगे । इस तरह कुछ देर तक प्रतापसाम युद्ध हुआ और वानरोंन अपनी पूज्य बाबागवर्गोंसे शत्रुओंके लुपके लुटा दिवें । जिससे नलके सेनिकोंकी बहसि पीछे हटना पडा ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस तरह अपने बाँरीकी भागते देखकर नल आदिने और-और राजाओंका प्रोत्साहित किया । १४ ॥ इससे जम्बूद्वीपके अन्यान्य द्वीपोंके राजे जिनकी गणना पीछे कर जाये हैं, वे सब अनेक प्रकारके वाहनोपर आरुह हो-होकर बड़ी तैयारीके साथ मिश्रल पड़े । उन लीगोंकी युद्धभूमिमें उपस्थित देखकर रामकी सेनिक आ डटे ॥ १५ ॥ १६ ॥ उधर जम्बूद्वीप तथा अन्यान्य द्वीपोंके राजे उपस्थित थे । इधर सुग्रीव, अहूद, हनुमान् विभीषण, कामववान्, सुषेण, सम्पाती मकरध्वज, भूर्गिकर्ण, कम्पुकठ तथा जनक आदि कीर लड़नेके लिए संग्राम-भूमिमें डटे हुए थे । उस समय दोनों ओरके सैनिक बहुत जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहे थे और विविध प्रकारके बाजे दब रहे थे ॥ १७-२० ॥ उस समय शिव, बुध, सोम और इन्द्र आदि देवताओंकी साथ सेकर

महाभयं समुपपन्नं प्रलयोऽहं मयि ध्याते । ब्रह्मदनशराश्वने सोमवंशोद्भवा नृपाः ॥ २३ ॥  
 रामो विष्णुरयं साक्षात्कथं जयपराजयौ । मविष्यन्तः कथं युद्धाभितृनिरुमयोरपि ॥ २४ ॥  
 भविष्यन्ति उपायः कः कार्यो युद्धानवाग्ने । तदा मेका सुगताहं किंचिद्दृष्ट्वा त्वय रणम् ॥ २५ ॥  
 करिष्यामस्तयोः सख्यं राममोमजयौस्त्विह । इत्युक्त्वा मकलान्वेधा ददर्श ग्णाकीतुकम् ॥ २६ ॥  
 तथोमयोः सैन्ययोश्च वसुधुवैश्रानिःस्वनाः । यत्रोन्धवद्विज्यालाभिष्यांसा दशदिक्षोऽभवन् ॥ २७ ॥  
 यत्रोन्धनानागटिकाभिर्निजनुस्ते परम्परम् । शत्रुधनो मेस्तथा जम्मुः शकटस्थाभिरादगत् ॥ २८ ॥  
 तथा वीरा निजनुस्ते वीर्यैः सङ्घैः एवैवैः । परम्परं तोमरैश्च मिदिषालैश्च सुदरैः ॥ २९ ॥  
 परैर्धैश्चक्रवर्णैश्च कुर्वैः शूलैश्च पट्टिजैः । तदा जघान पितरं पुत्रः पुत्रं तथा पिता ॥ ३० ॥  
 पितामहस्तथा पौत्र पौत्रश्चापि पितामहम् । प्रयोन्धं कुलजात्पादपादिकं मश्रान्प वै मुहुः ॥ ३१ ॥  
 तथा गणे प्रपौत्रं च जघान प्रपितामहः । तथा वीरं प्रपौत्रोऽपि जघान प्रपितामहम् ॥ ३२ ॥  
 मातामहं तु दीदिविष्मादा चाणैरग्राहयत् । तथा जालमहश्चापि दीदिवि च रणेऽहनत् ॥ ३३ ॥  
 एवं परम्परं धार्माद्युद्धं गच्छोमहर्षणम् । तत्र दे दे तत्र धीरः सगरे रामसेवकाः ॥ ३४ ॥  
 तान्सर्वान् जीवयामास तदा पञ्चनन्दनः । द्रोणावर्त्येपर्याभिश्च वार वार स्वयैर्निहान् ॥ ३५ ॥  
 विपुर्मन्ये मृता ये ते मृता एव तु नोन्धिताः । पथ तदा सोमवशनुग्राम्ने क्षीणतां ययुः ॥ ३६ ॥  
 तदा लोहितवर्णा सा बभूव सुरनिम्नगा । अरुपममिता सेना नलादीनां तदा रणे ॥ ३७ ॥  
 निपातिता शस्त्रार्थैर्नृपैः सा दरसंगरैः । एवं बभूव ममरः कण्ठमार्गं हस्तिनापुरे ॥ ३८ ॥  
 तत्रस्ते सोमवशस्या नृपाः किंचिदल्लर्दुताः । निशङ्गा विगमोन्माहा निर्ययुः सगरं स्वयम् ॥ ३९ ॥  
 तानामर्गाम्भदा वीक्ष्य कुशाघा बालकादय ते । रामदीर्घा ययुस्त्वयं ग्धस्थो रणभूतलम् ॥ ४० ॥

अपने बाहुमपर लैके हुए ब्रह्माजी आकाशमण्डलमें आ पहुँचे और उन लोगोका वह भवानक युद्ध देखने लगे । कुछ देर बाद चन्द्रमा आदि दैवताओंने आपसमें कहा कि यह बड़ा भयावह समय आ पहुँचा है , ऐसा लगाता है कि आज प्रलय हो जायगा । इधर ये सोमवशने राज ब्रह्मसे वर प्राप्त किये हुए हैं इसलिए किसीमें पराजित नहीं होने , उधर रामरूप धारण किये साक्षात् विष्णुसमवात् लक्षण आये हैं । ऐसी अवस्थामें जय-वराजय कस ही सकता है ? और यदि यह झगड़ा ते कर नका विचार किया जाए तो कैसे हो । २१-२४ ॥  
 उनकी बात सुनकर ब्रह्माजी बोला कि हम दोनो दैवतोंका युद्ध दलगत इन नजोय मन्त्रि करवा दोगे । ऐसा कहकर ब्रह्माजी युद्धकीतुक देखने लगे । उस समय गंगा देगाओसे जाययन्दक आदिकी भयंकर गर्जना सुनायी पड़ रही थी । इन धर्मोके मुखसे निकलें अरुणा लवटें से इती दिक्क वय न हो गयीं । २१-२७ ॥  
 दैवकी शक्तिगोशे आपसमें एक दूसरेकी मार रहा था । दूसरी ओर वीरावली मस्तिगपर रस्सों हुई लार् अरुणा अ ग उगल रही थी । दोनों पक्षोंका बार कावमों पट्टिका आदिसे लड़ रहे थे । उस समय युद्धके मदसे मतवाले हुंकर पिता पुत्रको, पुत्र पिताको, पौत्र पितामहको तथा पितामह पौत्रका अपना ग्राम-कुल आदि बहलाकर मार रहा था , प्रपितामह प्रपौत्रको, प्रपौत्र प्रपितामहको, दीदिव मातामहको और मातामह दीदिवको निशङ्कभावसे मार रहा था ॥ २८-३३ ॥ इस तरह परम्पर रामहटक युद्ध हो रहा था उस समय संशाम-भूमिमें जान्ना रामके सत्तिक मन्त्रे थे , उन्हें हृन्नादों द्रोणावर्यका हजोवनी वदसे आशित कर लिया करते थे ॥ ३४ ॥ किन्तु गह्वरी नेनामें जो धरे, वे धरे ही रह गये । इस कारण वे सब सोमवशी राजे धीरे-धीरे क्षण्यल हो गये । ३५ ॥ उस संशामस रुधिरको गंगा बहु चली और रामके मैत्रिकोने मल आदि राजाओकी वारह पथ सेनाका संहार कर डाला । इस तरह छः महीने तक हस्तिनापुरमें बहु महासंग्राम होता रहा । ३७ ॥ ३८ ॥ अन्तमें वे सोमवशी राजे अपनी पोड़ी-सी सेना लेकर स्वयं सदायभूमिमें आये ॥ ३९ ॥ उनको आये देखकर कुश आदि बालक रण-

नतं ययौ कुशः शीघ्रं नष्टकं स ययौ लवः । आनीकमगदय तथा च वसुदं नृपम् ॥४१॥  
 चित्रकेतुर्वयौ शीघ्रं तथा लघुभूतं नृपम् । ययौ च पुष्करः शीघ्रं तपुकाः सुखं ययौ ॥४२॥  
 मज्जीकं सुबाहुच गृध्रकेतुर्वयौ दम्प । गृध्रकेतुर्हि तत्सैन्यं चकारमोक्षरं सुरैः ॥४३॥  
 बाणध्यात्रेण निधेयं लवस्तं तदानीं ययौ । तदा ते सप्त वीराश्च नलप्रथाः पर्वता इव ॥४४॥  
 सुभूतं तपुसोरस्य बालकैः सह संगरे । न विरेचुर्बलेहीनाः स्वधर्मीनमगोपयाः ॥४५॥  
 कुशो दिव्याध बाणैस्त नतं संशममूर्धनि । तदा नलः प्रविशामाः स्वबाणैस्त व्यतर्जयत् ॥४६॥  
 वतः कुशः स्वबाणैर्धनं तस्याश्चान्त्रजं धनुः । छत्रं मार्गधनं जिह्वा नतं बाणैरताडयत् ॥४७॥  
 नष्टकं चापि दिव्याध स्वबाणैर्धनं तस्याः । नष्टकश्च लव बाणैस्तदा वयादुल्लमावनेत् ॥४८॥  
 नष्टकं निजबाणैर्धनं तस्याः दिव्यं लवः । एव आनीकर बाणैरसदः संशमादयत् ॥४९॥  
 मलादय आनीकरः परिप्रेणागदं तदा । ततो आनीकरं बाणैरगरोऽपानयद्बुधे ॥५०॥  
 चित्रकेतुः स्वबाणैर्धनं मोक्षेन वसुदं नृपम् । चित्रेण स्वधनादेमाचदङ्गनमिश्रावयत् ॥५१॥  
 तथा लघुभूतो बाणैर्हि दिव्याध पुष्करम् । तदा स पुष्करः कोषाद्बाणैर्लघुभूतं रणे ॥५२॥  
 विशिचित्रोपमं कृशं वादयामास दुन्दुभिम् । सुन्धथापि तस्य स वक्त्रं यदुद्दिष्टिः ॥५३॥  
 तनस्त्रक्षः स्वबाणैर्धनं सुरथ गगनादधे । मरुदं श्रमिषामास गुष्कपर्णं यथा मरुत् ॥५४॥  
 अजर्मीदम्भदा सर्वान्पूर्वजान् न्यकुलीकृतान् । वीर्यं गमन्यत्राद्यैर्मन्त्रैर्वचं अरुद्दिष्टिः ॥५५॥  
 सुबाहुस्तं स्वबाणैर्धनं तस्याः दिव्यं तदा । अजर्मीदस्ततोऽन्वे स रणे स्थिता ययौ पुनः ॥५६॥  
 हुमोच वचनाच्च न कशादीनां रणे कुधा । तं दृष्ट्वा गृध्रकेतुस्तं वज्रगानं हुमोच तः ॥५७॥  
 तदा ते कोटिचः सर्पाः वपुस्तं कपनं क्षणात् । वक्त्रः च नलः तपान्द्रष्टुं शक्तस्तपुसमम् ॥५८॥

पर तकार होकर रमछाँसद जा डटे ॥ ४० ॥ उस समय न-रके सम्पुन कुल, नष्टकके लवक लव, बाणीकस्के लामने मङ्गद, वसुदके सम्पुन चित्रकेतु, लघुभूतके लामने पुष्कर, सुखके वमको तपुका, मज्जीकके जायने मुबाहु और बल नामके राजाके लामने गृध्रनृ जा पहुँच । गृध्रकेतुन कोड़े ही समयमें लवका सेनाका नाश कर दिया ॥ ४१-४३ ॥ लवने अपने बाणमें अन्धमें उन को हुए मंत्रिकोको चारे समुद्रमें फेंक दिया । ऐसी अदृष्टासे वरुणको चारों कोड़े के लव आदि सप्तो वीर गमजीके आस्कीके साथ युद्ध करने लगे । यह सब करते हुए जो वे पाते उन्ही तरह आदि सप्त रहे थे, जिस तरह हानो और पलोमें विहीन कुल हों ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ कोको देर बाद हुजने क्षण क्षणमें मरुको बाणम कर दिया । लव नल की दूने वेगके साथ कुलगा लगा । किन्तु सीका शक्ति करने क्षणों क्षण नलके वक्त्र, बाँटे, आजा, बन्ध, छत्र और साधकी नष्ट करके उसके असीमपर की प्रहार किया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ऊपर लवने अपने बाणमपुसे नष्टकको और नष्टकने अपने बाणसे लवको आकुल कर दिया ॥ ४८ ॥ अन्धमें लवने क्षण क्षणमें नष्टकके रथको काट डाला । इसी तरह लव दाने आलोकरपर प्रहार किया और आनीकरने परिष बलाकर मङ्गदपर प्रहार किया । लवने मङ्गदने अपने बाणोंसे आनीकरको वज्रगाना कर दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इसी प्रकार चित्रकेतुने अपने बाणोंसे वसुदको उनके रथसे उठाकर दूर फेंक दिया । यह एक बड़ी कोलुकमया घटना थी ॥ ५१ ॥ ऊपर लघुभूतने अपने बाणोंसे पुष्करपर प्रहार किया और पुष्करने क्षण क्षण हुकर अपने बाणोंसे लघुभूतको एक तसवारको तरह उसके रथम ही बंद दिया जो व अपनी पिचपकुन्धी बजाया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर लवके अपनी बाणधर्मासे सुखको रथ वनेत नष्ट दिया, मरु दूने पलोको मनु मचा देना है ॥ ५४ ॥ उसी समय अजर्मीदने सब देखा कि लवके वीर पुन उसके पूर्वजोंका वधन म्हा रहे हैं तो वह इन लामोपर चार बाणधर्मा करने लगा ॥ ५५ ॥ इसी वीर मुबाहुने अजर्मीदके रथको काट डाला और वह दूसरे रथपर आसु होकर फिर संशम-बुधमें जा डटा ॥ ५६ ॥ बाहे ह उनने कुल आदि की मरुके लिए वज्रगानका प्रयोग किया । उसके वपुसुर वज्रगानको देखकर दुरकेतुने वज्रगान बलाया ॥ ५७ ॥ जिससे क्षणपरमे उन रथोंने सब बाहु की ली । ऊपर

सुमौष पद्मरात्रस्य निवृत्त्यर्थं ततोऽञ्जविह । तदा कुशः प्रसुमौष राक्षसाञ्च भगवदम् ॥५९॥  
 ननुकञ्च तदा वेगाद्ब्रह्मं तं व्यसर्जयत् । तदा कोपाहवक्ष्यपि मेघाञ्च तं व्यसर्जयत् ॥६०॥  
 तदा लघुश्रुतथापि पवनार्थं सुमौष सः । तदा स हनुमान् शीघ्रं व्यादाय विकटाननम् ॥६१॥  
 प्रपिबन्मरुतं वेगान्ननाद जलदस्वनः । एवं तच्च महायुद्धं पुष्पकारामस्थितौ ॥६२॥  
 सीतागमौ मृदा युक्तौ लक्ष्मणार्धदर्शयुः । एवं युद्धं श्वप्सामान्सैकादश दिनान्यभूत् ॥६३॥  
 एकादशे दिने मार्गे गतास्तेऽस्मिन्समीरिताः । एवमेकादशैर्मार्गैकादश दिनैरपि ॥६४॥  
 त्रेतायुगमयैर्दिव्यैः समार्तिं संगरस्य च । अदृष्ट्वा यः कुशो वेगाद्ब्रह्माञ्च संदधे तदा ॥६५॥

इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे रामदास-  
 विष्णुदाससंवादे सोमवंशोद्भवतृणाणां युद्धवर्णनं नाम षोडशः सर्गः । ३ ॥

## चतुर्थः सर्गः

( सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंमें मंत्री )

श्रीरामदास उवाच

महाञ्च संदधानं तं दृष्ट्वा वेधाः सुरा सह । सोमेन च बुधेनापि विमानेन ययौ ध्रुवम् ॥१॥  
 विमानादवरुणाथ तदा महा कुशं ययौ । कुशं तं प्रार्थयामास श त्वमञ्च विसर्जय ॥२॥  
 पालयस्व वचो मेऽद्य भाके सोमाय वै मया । द्वापरार्तं वरो दक्षस्त्वजेयथ रणाजिरे ॥३॥  
 भविष्यन्ति नलाद्याश्च सर्वे पुष्पकुलोद्भवाः । पुरा न्विति सुराग्ने हि कस्मिद्विचकारणांतरे ॥४॥  
 अतस्त्वं कुश माऽञ्च मे नलाग्रेषु विसर्जय । तद्वज्रवचनं श्रुत्वा कुशो वाक्यमथाब्रवीत् ॥५॥  
 अधुना क्षणमात्रेण सर्वान्द्रव्यान्करोम्यहम् । नोषेत्कथय रामाय तस्याह्नां भानयाम्यहम् ॥६॥

रथपरसे नलने जब पद्मरात्र देखा तो महाब्रह्मका प्रयोग किया ॥ ५९ ॥ उसकी निवृत्तिके लिए कुशने बड़े ही प्रयत्नक महाब्रह्मका प्रयोग किया ॥ ६० ॥ उसी समय नलने ब्रह्मपत्र चलाया जब माने कोषके लगे उसपर मेघात्रका प्रयोग कर दिया ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर लघुश्रुतने पवनारत्र छोड़ा । इसी समय हनुमान्जीने अपना मुख फँसाकर सब हवा पी ली और मेघकी तरह बीभत्स स्वरमें गरने । ऊपर विमानपर बैठे हुए पुष्कर, रास तथा सीताजी उस महायुद्धको देख रही थीं । इस सभ्य वह युद्ध पाँच महीना म्यारह दिन चला ॥ ६१-६३ ॥ म्यारह ही दिनके लगभग मयोध्यासे हरितनापुर जानेमें लगे थे । सब मिलाकर त्रेतायुगके दिनोंके हिसाबसे उस युद्धमें म्यारह महीने और म्यारह दिन लगे ॥ ६४ ॥ तबजब कुशने देखा कि अब कोई धन्य उपाय नहीं है तो महाब्रह्मका संधान किया ॥ ६५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये ६० राम-  
 तेजकाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदासने कहा-जब ब्रह्मने देखा कि कुश ब्रह्मात्रका प्रयोग करने जा रहा है तो मैं बहुतसे देवताओं और बुध तथा सोमको साथ लिये हुए विमानपर बैठकर पृथ्वीतलपर आये । यहाँ पहुँचे तो विमानसे उतरकर कुशके पास गये और प्रार्थना की कि तुम इस ब्रह्मात्रका प्रयोग मत करो ॥ १ ॥ २ ॥ आज मेरे कहनेसे मेरी बात मान लो । क्योंकि एक बार मैंने स्वर्गलोकमें इन सोमवंशियोंको परदान दिया था कि द्वापर तक संवत्सभूमिमें तुम किसीसे भी पराजित नहीं होओगे ॥ ३ ॥ जाये चलकर कुम्हारों वंशमें नल आदि बड़े शतापशाली राखे होंगे ॥ ४ ॥ इस कारण है कुश ! तुम इन नल आदि राजाओंपर ब्रह्मात्रका प्रयोग न करो । ब्रह्माकी बात सुनकर कुशने कहा कि मैं अभी क्षणमात्रमें इन दुष्टोंको भस्म किये देता हूँ । यदि कल्प कुछ कहना चाहते हों तो आकर रामधन्वजोंसे कहिए, मैं उनकी बात मानूँगा ॥ ५ ॥ ६ ॥

पदा त्वया परो दक्षस्तदा किं विदितं तव । नार्साच्छीराममामर्ष्यं ह्यनुता शार्ध्यसं सुधा ॥ ७ ॥  
 त्वयि चेद्वर्तते किंचित्सारं धर्तुं रणमया । तर्हि कुक्ष्य साहाय्यं नलादीनां सुरैर्धृतः ॥ ८ ॥  
 रथया रणे सगरोऽयं वयं पश्यतु राघवः । सीताऽपि पुष्पकाम्पीना जालरंघ्रैश्च पश्यतु ॥ ९ ॥  
 एवं कुक्ष्य वचनं श्रुत्वा लज्जयुतो विधिः । सोमेनाथ कुपेनादि नलाद्यान्प्राद वेगतः ॥ १० ॥  
 रे रे मृडाः मृणुषं मे वचनं हि भगानुषः । माक्षामारायण रामं पुत्रं योद्धुं समुद्यताः ॥ ११ ॥  
 केनेवं शिथिला बुद्धिः सर्वेषां धानकारिणी । गच्छन् चरणं राम नोवेष्टं मरिष्यथ ॥ १२ ॥  
 ममारु जनकः साक्षाद्गोविन्दं विष्णुर्न मशयः । इति धिक्कुक्ष्य हान्वेधाः कुक्षं वचनमभवीत् ॥ १३ ॥  
 यावधास्वाभ्यर्हं रामान्पुनस्त्वां कुक्ष्यालक । तावच्चेन्मीक्ष्यसे बाणं तर्हि मां इतरानसि ॥ १४ ॥  
 इत्युक्त्वा तं कुक्षं वेधा नल यैः वगिवेष्टितः । पयो रामं सुरैर्धृतः पुरस्कृत्य वृषन्वजम् ॥ १५ ॥  
 शिवभागवतमाशाय पुष्पकाद्रघुनन्दनः । शत्रुद्रम्य शिवं नत्वा प्रणनाम ततो विधिम् ॥ १६ ॥  
 ततस्तान्पूजयामास शिवादीन्प्रघुनन्दनः । तदा सभायां रामस्य तिष्ठन्वेधा नलादिभिः ॥ १७ ॥  
 प्रणामान्करयामास सोमेन च कुपेन च । ततस्तान्महामोरथाय रामचन्द्रः करेण हि ॥ १८ ॥  
 श्रुत्वा तेषां हि नामानि विधेरास्यान्पृथक्पृथक् । ततः पप्रच्छ वेगेन नलाणं पुरतः स्थितम् ॥ १९ ॥  
 सर्वे किमर्थमानीतास्त्वत्रैते सोमरंशजाः । वद त्वं कारणं शीघ्रं सत्यमेव ममाग्रतः ॥ २० ॥  
 सद्रामवचनं श्रुत्वा रामं वेधा वचोऽभवीत् । राम राम महाबाहो पालयस्वाद्य मे वचः ॥ २१ ॥  
 शत्रुसैतान्पानिष्य वददानान्मम प्रभो । द्वापरार्थमजेयत्वं द्रवमस्ति मया पुरा ॥ २२ ॥  
 ममास्त्रं सन्दधानं निवाग्य कुक्षं सुतम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य रघुनाथकः ॥ २३ ॥  
 सभायामाह मलाणमजेयत्वं त्वयोदितम् । क मत्तं चाद्य समारतिकमर्थमिह चागताः ॥ २४ ॥  
 अब जागने जनको बरदान दिश या तर क्या रामकी सामर्थ्यका आपका ध्यान नहीं था ? तब ही रामको कुछ समयसे वही, अब मृट मृटकी प्रार्थना करने लाय है ॥ ७ ॥ मैं कहता हूँ कि यदि आपमें कुछ शक्ति हो तो स्वनामोंको साथ लेकर आप नल आदिकों महामता करिए । मैं आपके साथ चलनेसे मुक्त करे और रामचन्द्रजी सभा सभा गुप्तक विमानके मगोखसे मेरा और आपका सर्वय दक्ष ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस प्रकार कुक्षकी बात सुनी तो ब्रह्माना लज्जित हो गये और नल आदिकों फटकारते हुए कहने लगे—अरे मृटो ! जान पड़ता है कि तुम लोगको आयु समाप्त हो गयी है, जो साक्षात्परायणस्वरूप रामचन्द्रजीसे मुक्त करने लाये हो ॥ १० ॥ ११ ॥ सर्वनाथ उपस्थित करतवालों यह दुबुद्धि तुमका किसन दी है ? अब यदि अपना कल्याण चाहते हो तो रामकी शरणमें जाओ, नहीं तो एकएक करके तुम सब मार डाले जाओगे ॥ १२ ॥ मेरे पिता विष्णुभगवान् ही तो रामरूपसे इस पृथ्वीतरूप में अवतरे हैं । इस तरह अब लोगोंको खीट-फटकार करके ब्रह्माजी कुक्षसे कहने लगे कि मैं रामके पास जा रहा हूँ । जबतक उनके पाससे न खीट आऊँ, तबतक आपका प्रहार न करना । ऐसा करोगे तो मानो उनका नहीं, नुस्तन मेरा वध दिया ॥ १३ ॥ १४ ॥ ऐसा कुक्षसे कहकर ब्रह्माजी शिवजीको आह करके नल आदिके साथ-साथ भीरामचन्द्रजीके पास गये । जब रामने सुना कि शिवजी जा रह है तो पुष्पक विमानसे उतरकर उनका स्वागत और प्रणाम करके ब्रह्माजीकी भी अभिवादन किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर रामने शिवजी आदिकों विधिवत् पूजा की और सब लोग सभाप्रबन्ध गये । वही ब्रह्माने सोम और कुपसे भीरामको प्रणाम करवाया । तब रामने उनको अपने हाथोंसे उठा लिया और ब्रह्माजीके मुखसे उनका नाम सुना । कुछ देर बाद रामने ब्रह्मा से पूछा कि आप इन सोम-वर्षियोंको यही किस लिए लाये हैं ? जो इसका शास्त्रविक कारण हो, यह मुझे बतलाइए ॥ १७-२० ॥ रामको बात सुनकर ब्रह्माने कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! आज आप मेरा बाढ़ मानकर इन नल आदि राजाओंको रक्षा कीजिए । मैं इन लोगोंको यह बरदान दे रक्खा हूँ कि द्वापरपर्यन्त तुम लोग किसीसे पराजित नहीं होओगे । २१ । २२ ॥ उपर कुक्ष मेरा शत्रु ( ब्रह्मास्त्र ) का सुन्धान करके जाई है । उन्हें भी



नृदामपचनं भुत्वा रामः प्राह विधिः पुनः । सर्वेषां पुनो मेऽस्ति परं न तु तथाग्रतः ॥२५॥  
 त्वं तु मे जनकः साक्षादनन्तां प्रार्थयाम्यहम् । ततो रामः पुनः प्राह विद्वस्य चतुर्गन्धनम् ॥२६॥  
 न भोऽप्यसि बभौ मेऽयं कुशोऽयं पौनस्त्ययः । प्रायः कुपारा इदानीं वाक्यमग्रे सन्नन्धि न ॥२७॥  
 अन्धकारि मृगुध्वं न यच्छास्त्रोऽप्युच्यते वचः । लालयेन्मैत्रं वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेन् ॥२८॥  
 प्राप्ते तु पौडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेन् । अल्पे बालकाः सर्वे कृपायाः स्वार्थतन्त्राः ॥२९॥  
 न भोऽप्यसि बभौ मेऽयं तान्गन्धः प्रार्थयस्व हि । ततः प्राह पुनर्जना रणक्रोधान्कुशो मया ॥३०॥  
 वाचयं शयं मनुजं च नैवायं बदन्ति प्रभो । ततः प्राह विधिं रामः पुनर्जाक्यं विनोदयन् ॥३१॥  
 विधे त्वं गच्छ बालमीकिं स त्वां युक्तिं वदिष्यति । ततः स रामवाक्येन बालमीकिं पुनर्युक्ते स्थितम् ॥३२॥  
 हृनिभिर्मुनिशालायां पूर्वं सर्वैः स्थित विधिः । तलायैः सहितो गन्वा वृत्तं सर्वं न्यवेदयत् ॥३३॥  
 विधिमादाय बालमीकिर्ज्ञात्वा राममनोयतम् । स्त्रीमन्त्रत्रोदितार्थेने भवन्तु मुनिनम्रिन्वति ॥३४॥  
 नन्दादीनां स्त्रियः सर्वाः प्रार्थयन्तु विद्वज्जाम् । कुशोऽपि जानकीवाक्याच्छान्तिमेष्यति बालकः ॥३५॥  
 तथेति ते नन्दाद्याश्च दूतान् प्रेष्याथ पादरम् । जानीर स्वकलत्राणि सतशस्तु तदा जवात् ॥३६॥  
 जानकी प्रेषयामासुस्त्राः सर्वाः पार्थिवस्त्रियः । उपायनानि मृगया जानकी प्रययुर्जवान् ॥३७॥  
 ददृशुर्जानकी नारीशलापां स्वमनीश्वराम् । स्त्रुषाभिः सेविनपदां पर्यङ्के निद्रितां मुदा ॥३८॥  
 ततः स्त्रीः समागताः मीना दृष्ट्वा चामरजीवेता । मयकादवक्रमाय घृताश्वेषिवहगा ॥३९॥  
 त्वपृष्ठे मंचकं कुन्वा मरिचिताऽर्ज्यान्मर्मावृता । स्त्रुषाभिर्गीत्रि रम्यां प्रणेशुम्नां परस्त्रियः ॥४०॥  
 तस्मां मीमन्तरस्तौ च प्रभया पदपकजं । त्रिजनुम्ने मोनायाश्चित्रगगविचित्रिने ॥४१॥  
 उपायनानि संगृह्य ताम्य सा जनकात्मजा । समान्तिम्य निवेदयथ ताः प्राह सुस्वरं वचः ॥४२॥

आप रोक दीजिए । बह्मकी बात सुनकर रामन बहू हि आपन जब इनकी अवय कर दिया था, तब फिर  
 ये लोग संशयपूर्ण हो छोटकर यहाँ पर पास गया आज है । ॥ २३ ॥ २४ ॥ रामकी यह बात सुनकर बह्मा कहने  
 लगे—सब लोगोंके लिए तो मेरे पास बन् है, किन्तु आपके लिए मेरे पास कुछ भी सामर्थ्य नहीं है ॥ २५ ॥  
 आप मेरे पिता हैं, इसी नाते मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । फिर राम बाले कि कुल युवावस्थामें है ।  
 ससारम प्रायः दखा जाता है कि कुमार लोग बुद्धका बाल नहीं मानते ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अतिरिक्त  
 आश्वमेधी कहा गया है कि पाँच वर्षकी अवस्थातक बच्चका दुआर करे, दस वर्षकी अवस्था तक इराये-  
 चमकाये, किन्तु सोलह वर्षका हो जाअपर बटक साथ मित्रताका व्यवहार करना चाहिए । इसी कारण मैं  
 स्वार्थी बालक मेरी बात नहीं मानेंगे आप स्वयं जाकर उनसे प्रार्थना कीजिए । बह्माने कहा कि संप्राप्त-  
 बलित कोवके कारण आप तो यह हमसे सीधी बात भी नहीं करता । फिर विनादवश रामने बह्मसे कहा  
 कि आप बालमीकिके पास जाएँ । मैं आपको कोई युक्ति बगलयेँगे । रामके कथनानुसार बह्मा नल भारिकी  
 अपन साथ लेकर बालमीकिके पास गये । बालमीकिजी इस समय रामके साथ पृथक् विमानपर ही रहा करते  
 थे । इससे उनके पास पहुँचनेमें विशेष समय नहीं लगा । वही जाकर बह्माने बालमीकिको सब वृत्तांत कह सुनाया  
 ॥ १८-३३ ॥ रामका मनोगत अविश्राय जानकर बालमीकि बह्माजीसे कहा कि अपनी स्त्रियोंको कृपाय ये लोग  
 जीवनदान वा सकते हैं । उसका उपाय यह है कि मन्त्र आदिका स्त्रियाँ सीताके पास जाकर अपने पतिजोंके  
 जीवनकी पीछ माँगे । यदि सीता प्रसन्न हो गयी तो कुल भी मान आयगा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ बालमीकिके कथन-  
 अनुसार बल आदिने अपनी स्त्रियोंको लिवा लानेके लिए सैकड़ों दूत भेज मोर वे तुरन्त उनको लिये हुए जा  
 पहुँचे । इसके अनन्तर वे स्त्रियाँ विविध प्रकारके उपहार लेकर सीताके पास गयीं । वहाँ पहुँचकर उन स्त्रियों-  
 ने देखा कि सीता अपनी स्त्रियोंमें धिरी हुई बैठी आपकी वे रही है और बलेश्वर उनकी सेवामें तत्पर हैं  
 ॥ ३६-३८ ॥ जब सीताने उन स्त्रियोंको देखा तो तत्प्रायः बगलमे कर ली और उठ बैठी । उस समय उन स्त्रियों  
 ने उनकी प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उन राजदनियाँकि सीमन्तरनकी प्रभासे सीताके पैर चित्रविचित्र

किमर्थमागता त्वं वा मेनटगमिनः पाम् । कथयन्त्यं वक्ष्यामिष्टः । नदीऽथ करोम्यहम् ॥४३॥  
 तदा साः कथयामासुः सर्वं वृत्तं परिस्तरम् । देहि ककुण्ठाशानि कुतं युद्धाभिवारय ॥४४॥  
 तथेति जानकी चोक्त्वा क्षान्त्वा राममनोगतम् । नारीहस्ताभ्यामधीयार्थेन निजैर्गवेषयति ॥४५॥  
 आरुह्य द्विद्विकायां सा ताभिर्धुक्ता कुशं पथी । तदा तं मानवगामाय शोधं न्यज कुशाधुना ॥४६॥  
 निवर्त्तन्व रणदक्षं मृणु मे वचनं जिहो । तथेति जानकीशक्त्यादिहम्याथ वृत्रमन्दा ॥४७॥  
 आवा तैर्धूमिर्धुक्तः सेनया संन्यस्रतः । पुष्पकं प्रययौ यौना नृपस्त्रीपरिदेहिता ॥४८॥  
 कुशाद्याम्बो कुमागश्च सभायां शयनं ययुः । ततो वान्माहिना मया नलायैः सहितमन्दा ॥४९॥  
 सनिर्जगः सभां गन्वा तस्यो श्रंगधर प्रतः । कुशाग्रान्तेऽपि रीमाम प्रणम्य तस्य सनिधौ ॥५०॥  
 तत्पुष्तेनलिगिताथ शोभिर्नारी गता अपि । तदा रामोऽनर्वादावयमम्राण्य मदमि स्थितम् ॥५१॥  
 रणाभशनिता बालाः किमर्थं तव वाञ्छितम् । न मे गजये छत्रपतिर्द्वितीयोऽत्र मविष्यति ॥५२॥  
 करणीय नलायैः किं तद्वदस्व मविस्तरम् । तदाऽऽसनादुत्थितः स. वेधा राधाग्रतः स्थितः ॥५३॥  
 उवाच सधुरं वाक्यं ममयां मधुनन्दनम् । राम राम मदानाहो भूभारश्च त्वया हतः ॥५४॥  
 चिरकालं कुत राज्यं वैकुण्ठं पादयाधुना । कुरु मम्य वचो मेऽथ तदस्व द्वाप्तिनापुरम् ॥५५॥  
 नलादिस्वस्वयोध्यायां कुशो राज्यं प्रशमयतु । तदा रामो विधिं प्राह समाप्तेन स रोचते ॥५६॥  
 वैकुण्ठं चो गविष्यामि गौमया बन्धुभिश्चुतः । दधनैर्बहस्यमणि प्रोक्तमायुर्गुणैऽत्र हि ॥५७॥  
 तन्मया र्वादसामर्थ्यान्कृतमयः वेषं मृषा । पञ्चदश महस्त्राणि समस्तवकारदशं तु ॥५८॥  
 त्वैकादशं मामाश्च गता मे दिवया अपि । शेषमायुःश्च किञ्चिन्मे तच्छ्र पूर्णं मविष्यति ॥५९॥

प्रकारके दीव रहे थे ॥ ४१ ॥ इसके बाद सत्तान उनकी भेंट पर कार को और उनकी दृष्टि से लगाकर कहने लगे कि तुम लोग यहाँ किस कामसे बाग हो ? जयश इच्छा पकट कर। तुम या कुछ भी चाहोगा मैं उसका प्रबन्ध कर दूँगी । ४२-४३ ॥ अब उन रानिधान युद्धतन्त्रणा सब गुनागुना करत हुए कहा हे देवी ! आप आप मेरी बरतती हुई बहुत रक्तक लिए कुशको युद्ध कान्त राक दीजिए ॥ ४४ ॥ सत्तान मन ही मन रामकी इच्छा जान ली । उन्होंने सोचा-वे चाहते हैं कि मित्रों के हाथ नर आदिकों के बन्दान दिव । यह सोचकर उन्होंने उन रिशकोंसे कहा-अच्छी बात है । इसका अन्तर मे तुम्हारे पादों पर लगा दूँ और कुशक बात या पहची और कहा-कट दुरु । अब तुम अपने शायकी परदराव कर दो ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तब बात मानकर सवामधूमिसे लौट बस । जानकीकी बात सुनकर कुश मुक्ताये और अपने बन्धु-बान्धवों तथा सेनाको साथ लेकर लौट गये । सीता कुलक तथा उन रिश्याली अपने साथ लिये अपने पुष्पक विमानपर जा पहुँचों । यहाँ पहुँचनेपर कुश आदि बालक सभाम रामचन्द्रजीके पास बने गये । इनके अनन्तर ब्रह्माजी भी वात्सीकि तथा बल आदिक १५० लेकर सभाम रामचन्द्रजीके पास पहुँचे । कुल आदि बालक भगवान्की प्रणाम करते एक ओर बहे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ रामने उनकी अवत हृदयसे लवा लिवा और रिश्योंने उनकी आरती उतारी । कुछ देर बाद रामने ब्रह्माजीसे कहा कि आपके इच्छा अनुसार कुल आदि बालक ती सवामधूमिसे लौट आये । अब अपनी क्या इच्छा है । इससे मेरे राज्यमें कोई दुमगा छत्रपति राजा नहीं रहेगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अब आप यह भी बतला दीजिए कि मल आदिका क्या करना चाहिए । रामने यह बात सुनते ही ब्रह्माजी उठकर रामके आगे जा बैठे और कहने लगे-हे राम ! हे महाबाही ! आपने पृथ्वीका भाव छतार लिया । बहुत दिनोंतक पृथ्वीपर राज्य या किया । अब चलकर वैकुण्ठधामकी रक्षा करिए और मेरी आज्ञा साथ करनेके लिए मल आदिकों हस्तिनापुरी से बालिए । ५३-५४ ॥ कुल मान्दके साथ जयोष्णका रख्य करे । तब रामने ब्रह्मासे कहा कि यहाँ बात मुझे भी जेब रही है ॥ ५५ ॥ कल है सीता तथा अपने बान्धवोंके साथ वैकुण्ठधामका चल दूँगा । इस युगमें बन्धुपका आयु दस हजार वर्ष निर्वाणित की गयी है । किन्तु है ब्रह्माजी । मैं अपनी सामर्थ्यसे उर नियमका व्यव करके आर्यह हजार आर्यह वर्ष और आर्यह

इदंवाचां घटिकायां सोऽहं वैकुण्ठमाश्रये । ततो विधिं कुशः प्राह नलाद्या यदि मां विधे ॥६०॥  
 दास्यति करभारं मे तर्हि विष्टु च प्र ते । मदाह्नां पालयन्वेते तव नाक्यात्सुरक्षिताः ॥६१॥  
 छत्रहीनाः सुरां त्वया वसन्तु हस्तिनापुरे । तद्वाक्यं स विधिं श्रुत्वा पुनः प्राह कुशः प्रति ॥६२॥  
 छत्रमाज्ञापयस्वैतांस्तवाज्ञावशावर्तिनः । दास्यति करभारं त्वां मम वाक्यं हि पालय ॥६३॥  
 तथेति स कुशः प्राह विधिं किञ्चिन्स्मृताननः । अथ ते सोमवंशस्था नृपाः सर्वे विधिं तदा ॥६४॥  
 प्रोचुर्वपं त्वया स्त्रीभिर्वास्यामो दिवमद्य वै अजमादोऽद्य नृपनिर्भवत्स्व गजाद्वये ॥६५॥

तथेति तान् विधिश्चोक्त्वा सभायां ममुपाविशत् ।

अथ मयाऽजमीढाय मातृणैरभिषिञ्च्य च । गजाद्वये तं राजानं चकार राघवाज्ञया ॥६६॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे  
 सोमसुर्ववंशजयो मंत्रीकरणे नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

### पञ्चमः सर्गः

( रामका मियों तथा राजाओंको बिदा करना )

श्रीरामचन्द्र उवाच

अथ रामं सुषेणश्च सुग्रीवश्च विभीषणः । वानराः प्रार्थयामासुर्वपं राम त्वया दिवम् ॥ १ ॥  
 यास्यामो नात्र जीवामस्त्वया राम विना भुवि । ददस्वाज्ञां त्वया गतुं तथाह राघवोऽपि सः ॥ २ ॥  
 विभीषण त्वया स्थेयं लंकायां मम वाक्यतः । प्रचरिष्यति यावन्मे रामनामावनीतले ॥ ३ ॥  
 त्वं गच्छाद्येव मे वाक्यान्मयेति स विभीषणः । नन्वा राम ययी लकां राघवेणातिमानितः ॥ ४ ॥  
 ततः प्राह ब्राह्मवर्तं राघवः पुरतः स्थितम् । हे जाम्बवंस्त्वया स्थेयं पाददुभूम्पां कथा मम ॥ ५ ॥

महीने इस संसारमें रहा ॥ १७ ॥ १८ ॥ योडी-सी आदु जेय बचो यो, सा भी कल पूरी हो जायगी ॥ १९ ॥  
 ठीक बारह बड़ी बाद में वैकुण्ठधामक लिए चय दूंगा । तदनंतर कृष्णने ब्रह्माजीसे कहा कि यदि नल  
 आदि राजे मुझे करभार दें और भरे आजानुसार चलें तो मैं आपकी आज्ञासे इनको हर तरहसे सुरक्षित  
 रखूंगा । इनको छत्र धारण करनेका अधिकार नहीं रहेगा । अर्थात् छत्रविहीन होकर ये लोग आनन्दके साथ  
 रह सकेंगे । कुशकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा कि आप इन्हें छत्र धारण करनेका आज्ञा दे दीजिए । हाँ, ये  
 सदैव आपकी आज्ञाका पालन करते हुए करभार दते रहेंगे ॥ ६०-६४ ॥ मुगन ब्रह्माकी बात स्वीकार कर ली ।  
 इसके अनन्तर उन सोमवंशी राजाओंने ब्रह्मासे कहा कि हमलोग अपनी दिव्ये लिये हुए आपके साथ  
 स्वर्गको चले चलेंगे । अब इस हस्तिनापुरीका राजा यह अजमाद बनेगा ॥ ६५ ॥ ब्रह्माने भी उनकी बात  
 स्वीकार कर ली और सभासे बैठ गये । इसके बाद रामकी आज्ञासे ब्रह्माने ब्राह्मणों द्वारा अजमोदका राज्या-  
 भिषेक कराके हस्तिनापुरीका राजा बना दिया ॥ ६६ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे  
 वाल्मीकीये पंचमः रामतेजपाण्ड्यकृतज्यात्मना साधाटोकावहित पूर्णकाण्ड चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा-इसके बाद सुषेण, सुग्रीव, विभीषण तथा अन्यान्द वानरोंने भगवान्से प्रार्थना की-  
 हे राम ! हमलोग भी आपके साथ स्वर्गको चलेंगे । आपके बिना हमारा इस पृथ्वीपर जोवित रहना  
 कठिन है । कृपया हमें भी अपने साथ चलनेकी आज्ञा दीजिए । यह सुनकर रामने कहा-हे विभीषण ! तुम मेरे  
 कहनेसे तबतक लंकामें ही रहो, जबतक संसारमें मेरे नामका प्रचार होता रहे । तुम आज ही लंका चले  
 जाओ । विभीषणने भी भगवान्की बात मान ली और प्रणाम करके लङ्काको प्रस्थान कर दिया । चलते समय  
 भगवान्ने विभीषणका बहुत सम्मान किया ॥ १-४ ॥ इसके अनन्तर जाम्बवान्से बोले-हे जाम्बवान् ! जबतक  
 इस संसार मेरी कथा प्रचलित रहे, तब तक तुम इसी लोकमें रहो । आपरके अन्तमें फिर तुम हमारा दर्शन

प्रचरिष्यति नावञ्च द्वापरान्ते पुनर्मम । चरिष्यति दर्शने ते गच्छत्यैव सुखं वस ॥ ६ ॥  
 स्वया कर्तुं न्याहाय्यं लकायां मे वनेऽपि च । वनमन्त्रं भृगुमे भूत्वा द्वापरे कथयिष्येऽपि ॥ ७ ॥  
 तथेति गमवचनाद्वामं सीतां प्रणम्य यः । जाराम्भिर्ययौ श्रीमि गद्यवेणानिपूजितः ॥ ८ ॥  
 रामः प्राह हनुमन्त्रं श्रुत्वा निष्ठु यथाशुचम् । यदा मेनौ पणम्ये हि द्वापानिर्जनुनेन वै ॥ ९ ॥  
 चरिष्यति शरीः सेतुं कर्तुं मे दर्शनं तदा । न्व लभिष्यामि गच्छत्य सुखं वस भद्रम् माव ॥ १० ॥  
 तद्वामवचनं श्रुत्वा नन्वा गमं च लक्ष्मणम् । सीतां प्रणम्य हनुमान् गमनायोपचक्रमे ॥ ११ ॥  
 ततो रामो निजान्कण्ठान्नवमन्त्रविभूषितम् । हार ददौ तथा सीता त ददौ बाहुभूषणे ॥ १२ ॥  
 ततो नन्वा रामचन्द्रं मार्त्तनेत्रः प मारुतिः । शक्तिरूप ययौ वेगान्त्रोपुत्रे तु हिमपर्वतम् ॥ १३ ॥  
 ततोऽद्भुत गमचन्द्रः पूज्य वस्त्रादिमण्डनैः । प्रणमामास किङ्किणी भृंगवेरं तु गूढकम् ॥ १४ ॥  
 पातालं प्रेषयामास गायत्री मकरध्वजम् । वस्त्रादिभिस्तोषयित्वा सुदृढः स्वगन्धनानि हि ॥ १५ ॥  
 ततो रामः समाहूय यूपकेतु महाबलाः । वस्त्रादिभिस्तोषयित्वा विदिशानगरं प्रति ॥ १६ ॥  
 प्रेषयामास सैन्येन सीतां नन्वा रघुनन्दनम् । जानकीं च ययौ वेगान्त्रोपुत्रैः परिवारितः ॥ १७ ॥  
 एवं रामः सुब्रह्म तं मधुरं प्रेषयच्चदा । एव गमः पुष्करं च प्रेषयामास बालकम् ॥ १८ ॥  
 सैन्येन पुष्करावन्ध्यां तथैव लक्ष्मिणाह्वये । ततोऽद्भुत गजाश्वं च प्रेषयामास राक्षसः ॥ १९ ॥  
 धनरत्नं चित्रकेतुं स्त्रीपुत्रवल्गवादनैः । प्रेषयामास श्रीरामस्तोषितं वसनादिभिः ॥ २० ॥  
 ततो लब्धं समाहूय सीतां रघुनन्दनः । वस्त्रालंकारयानार्घ्यस्तोष्य स्त्रीपुत्रसंयुतम् ॥ २१ ॥  
 उत्तरेषु कुरुष्वन् प्रेषयामास सैन्या । कामधेनुं ददौ सीता लवाच प्रयते हुदा ॥ २२ ॥  
 ततः कुशं समाहूय रामः स्त्रीपुत्रसंयुतम् । प्रेषयामास साकेतं सैन्येन पार्थिवैर्मुतम् ॥ २३ ॥

करागो । तुम भा आज हा प्रस्थान कर दो और आनन्द के साथ किसी स्थान पर निवास करो ॥ ५ ॥ ६ ॥  
 तुमने लका और वन में मेरा जो रहना सीखा है उसी प्रकार प्रभावसे द्वापर में तुम मेरे भृगु के रूप में निष्पन्न होओगे ॥ ७ ॥ रामकी आज्ञा स्वीकार करके जाम्बवान् सीताजी तथा रामको प्रणाम करके चल दिवें । चलते समय रामने उनका भी अच्छा तरह सम्मान किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर हनुमान्जीसे रामने कहा—हे बन्धु ! तुम भी आनन्द के साथ इसी लोक में निवास करो । द्वापर युग के अन्त में जब तुम्हारी वरुण के साथ सेतुविषयक होइ होगी, उस समय तुम मेरा दर्शन करोगे । अब जाओ और मेरा भजन करते हुए आनन्द के साथ रहो ॥ ९ ॥ १० ॥ रामकी यह बात सुनकर हनुमान्जीने राम-सदृश तथा सीताको प्रणाम किया और चलनेकी तैयारी कर ली ॥ ११ ॥ चलते समय जमान जतने जेलसे एक रत्नमाला उतारकर हनुमान्जीको दी और सीताने अपना बाहुभूषण उतारकर दे दिया ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् हनुमान्जीने श्रीमि अशुभरकर भगवान्को प्रणाम किया और पार्श्वमा करके तपस्या करनेके लिए हिमवान् पर्वतपर चले गये ॥ १३ ॥ इसके बाद रामने अद्भुतकी विविध प्रकारके वस्त्र आभूषण दिये और उन्हें किङ्किणी भेंट दिया । निषादराजकी शृंगवेरपुर भेंट दिया ॥ १४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजीने मकरध्वजकी पाताळपुरी भेंट । मकरध्वजकी चलते समय रामने विविध प्रकारकी घट दी । इनके अतिरिक्त और-और मित्रोंकी भी आदर-सत्कार करके अपने-अपने स्थानको भेंट दिया ॥ १५ ॥ पाताळ के बाद रामने यूपकेतुकी मुलगा और विविध प्रकारके वस्त्र-भूषण देकर विदिशानगरीका भेंट दिया । यूपकेतुने भी राम तथा सीताको प्रणाम किया और अपनी सेना तथा परिवारकी साथ लेकर चल पड़े ॥ १६ ॥ १७ ॥ इसी तरह रामने सुब्रह्मको मपुरा भेंट दिया । पुष्करकी भी उनकी सेनाके साथ पुष्करावली तथा लक्ष्मकी लक्ष्मिणा भेंट दिया । फिर अद्भुतकी तुस्तिनापुरी-के लिए और चित्रकेतुकी स्त्री-सेना तथा बाहनोंके साथ उनकी राजधानीको भेंट दिया । चलते समय विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषणसे रामने इनका भी सत्कार किया ॥ १८-२० ॥ तदनन्तर राम और सीताने अश्वकी बुलाकर कितने ही प्रकारके वस्त्र-भूषण प्रदान किये और उनको स्त्री तथा पुत्रके साथ उन्हें उत्तररूप देखने

दत्तार्घ्याणि शस्त्राणि क्रौडह नन्दो जन्मत् । नानाधानानि वस्त्राणि रामश्चिनामणिं ददौ ॥२४॥  
 मर्त्यापुत्रं कुशं तोष्य राघवो वाक्पयमवतीत् । वनं गच्छ मुत्र निष्ठु भूमिं धर्मेण पालय ॥२५॥  
 ब्रह्मद्विपक्षपक्षवर्गस्य ध्यातुं शक्यं विचार्य विचार्य । मम मनसा लभस्व पुनर्वत्स शशालक ॥२६॥  
 इत्युक्त्या तपस्व्यान्वाह ब्रह्मर्षिः कण्वः । मया मे मातृनामोऽयं रक्षणीयस्त्वहर्निशम् ॥२७॥  
 तद्वापवचनं श्रुत्वा नृपः पत्रं गृह्यमानम् । नात्र पूजितो वाक्यमवमोऽस्माकं शतधिकः ॥२८॥  
 अम्येव नात्र संदहः सन्त्य शक्तिं गृह्यमानम् । तद्वत्स्य पालय ॥ अमो वरः तद्वत्कशोऽप्ययम् ॥२९॥  
 रक्षिष्यति महाऽस्मत्कं कुशश्चालयसकम् ॥ इति वदन् राघवं नन्वा मयं मे पार्थिवोत्तमाः ॥३०॥  
 रामेण पूजिताः सन्त्यकं तस्मात्तदावाहने । वदः कुशं पुष्कलं स्यम्यमन्त्रमन्त्रिणाः ॥३१॥  
 कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥३२॥  
 तदा रामस्य राज्ञः मया गेयं पुनः । कुशः गच्छ धीमता वरः हृदयं नादरम् ॥३३॥  
 पूर्वैर्मनुस्मृत्यं माधवः नात्रमर्धमिमां । कुशोऽपि तद्वत् राज्ञो रजकोऽभवत् ॥३४॥  
 मया गेयं पुनः तदा गेयं नन्वा मया । तद्वत्स्य पालय ॥ अमो वरः तद्वत्कशोऽप्ययम् ॥३५॥  
 रक्षिष्यति महाऽस्मत्कं कुशश्चालयसकम् ॥ इति वदन् राघवं नन्वा मयं मे पार्थिवोत्तमाः ॥३६॥  
 मूर्ध्नि लीलात्तदापि वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥३७॥  
 तदा रामस्य राज्ञः मया गेयं पुनः । कुशः गच्छ धीमता वरः हृदयं नादरम् ॥३८॥  
 पूर्वैर्मनुस्मृत्यं माधवः नात्रमर्धमिमां । कुशोऽपि तद्वत् राज्ञो रजकोऽभवत् ॥३९॥  
 मया गेयं पुनः तदा गेयं नन्वा मया । तद्वत्स्य पालय ॥ अमो वरः तद्वत्कशोऽप्ययम् ॥४०॥

भोज दिया । जिस समय राम ने कुश को बुलाया और उसे अपने पास बुलाया, तब राम ने कुश को बुलाया ॥ २१ ॥ २२ ॥ इसके बाद रामने कुशको बुलाया और उसे अपने पास बुलाया, तब राम ने कुश को बुलाया ॥ २३ ॥ अम्येव नात्र संदहः सन्त्य शक्तिं गृह्यमानम्, मया गेयं पुनः तदा गेयं नन्वा मया । तद्वत्स्य पालय ॥ अमो वरः तद्वत्कशोऽप्ययम् ॥ २४ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ २५ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ २६ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ २७ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ २८ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ २९ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३० ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३१ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३२ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३३ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३४ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३५ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३६ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३७ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३८ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३९ ॥ कुशोऽपि तद्वत् नन्वा मूर्ध्नि लीलात्तदापि । वसिष्ठेन रक्षे ध्वजं पुणं गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ४० ॥

तेऽपि नत्वा कुशं स्वं स्वस्थं तत्रमुत्प्रेषयामाः । करभारं ददुस्वस्मै तदाज्ञावशवर्तिनः । ४२ ॥  
मन्थरमलकौ द्वौ नौ देवान्पूर्यां बहेरुतां प्राणतुर्जन्य साकेने वृत्तानां न पुनर्भवः ॥ ४३ ॥  
अथ रामोऽब्रवीन्मर्षान्वानगन् जाह्नवीतटे । मयि भूमिनाः मरं युष वानरमन्त्रमाः ॥ ४४ ॥

द्वापराग्रे पुनः सर्वे व्रजे गोपा भविष्यथ ।

पुष्पाभिः सहिता धीन्या कर्मिषाम्पञ्चनादिकम् ॥ ४५ ॥

सदाऽनवीतम सौमित्रि रामः प्रीत्या पुरःस्थितम् महान् श्रमः कृतः पूर्वं सेवायां मम दण्डके ॥ ४६ ॥  
भव त्वं द्वापरे ज्येष्ठः शुभ्रर्षा तौ कर्मोपदम् । नग्नान्नागधवः प्राह आभान्पौरान्कपीनपि । ४७ ॥  
सचनित मया मार्गं प्रयतेति दधान्वितः ततो ददौ कलपृष्ठपरिजातौ सुगन्धिपम् । ४८ ॥

ततस्तं पुष्पकं प्राह कुवेरं सह सादरम् ।

मन्त्रछाद्यैव तथेन्युकन्वा रामं नत्वा तु पुष्पकम् ॥ ४९ ॥

सीतां पृष्ट्वा ययौ शीघ्रं गधवेणानिमग्नितम् ततः प्राह रघुश्रेष्ठश्रीमिलां मां हवीं तथा । ४९ ॥  
भूतकीर्तिं मनाह्वय चान्मर्षाकेश मुनेः पुरः पुष्पाभिर्भर्तृदेहेभ्य निजदेहादि वेगतः । ५० ॥  
श्रीऽश्वी दग्ध्वा स्वर्गलोकं गन्तव्य मम ये कुरुः । तथेति गधव प्रोचुस्तदा ताश्चोर्मिलादिकाः । ५१ ॥  
रामं नत्वा ययुः सर्वोः स्व म्य नद्वयमगृहम् । अथ रामोऽपि तां गन्धिं सीतया रुक्ममन्त्रके । ५२ ॥  
कपिभिः शिवदत्त द्यावन्मृग्यैश्च संगणः । मौमित्राद्याः परमोभिः शिशियरे परया मुदा । ५३ ॥

इति श्रीशङ्खकोटिरामचरितोत्तमं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे

सर्वेषां विसर्जितं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

पूजन अर्पण करके बिना किया ॥ ३८ ॥ वे राम भी पुष्पाको प्रणाम करके अपने अपनी नगरीको चले गये और वहाँपर कशक अज्ञान रहते हुए पूर्ववत् करभार दत्त रह ॥ ३९ ॥ देववश वह रामनिन्दक घोवो तथा दासी मन्थरा ये दोनों व्याघ्रपरोम न मखर अथ दशके बाहर मरे । इसी लिए उन्हें फिर मन्त्र लना पड़ा । वैसे ला लाय परामे जो लोग मरने है, उन्हें फिर माताय गर्भम नहीं जाना पड़ता ॥ ४० ॥ कुवेर सब लोगोंको बिदा करके रामने सब वानरोसे कहा—ह वानरगण ! तुम सबने मेरे लिए बड़ा कष्ट उठाया और मेरे साथ शरीर न फिरते रह । आज चलकर द्वापरम् तुम सब गोय होओगे । उस समय मैं तुम्हारे साथ भाजन तथा विविध प्रकारका लालने करेगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इसके बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि उस समय तुमने दण्डकवनम मेरी सेवा करने समय बड़ा कष्ट उठाया था । अब द्वापर युगम तुम मरे ज्येष्ठ आता चलराम होओगे और मैं स्वर्ग नुसरोगे सेवा करेगा । इससे अमन्तर रातते उन भ.नु.श वानरो तथा पुरवासियोंसे कहा कि तुम लोग मेरे साथ चलो । तत्पश्चात् रामम अप्पवृत्त और परिजात ये दोनों वृक्ष इन्द्रको दे दिये फिर पुष्पक विमानसे कहा कि तुम आज ही जाकर आदरपूर्वक कुबेरकी सवारीका काम करो । यह सुनकर पुष्पक राम तथा सीताको प्रणाम करके चले पड़ा । चलते समय भावानने उसका भी अच्छा तरह आदर-सत्कार किया । बारम्बारिके समक्ष रामने माण्डव ( भरतपत्नी ), उमिला ( लक्ष्मणकी स्त्री ) तथा युतर्क ति ( कबुजकी पत्नी ) से कहा—तुम सब अपने अपने पतिक शरीरके साथ कल अपना शरीर चित्ताकी अग्निमे जलाकर रागलोक चला जाना । उमिला आदिने भगवान्के आज्ञा स्वीकार कर ल्य ॥ ४२-४९ ॥ वे रामको प्रणाम करके अपने-अपने तम्बुओमे चली गयीं । इसके अनन्तर राम उस रातमे सीताके साथ एक सुवर्णमय मन्थरका गये । शिव-सहस्र आदि देवता भी ऋषियोंके साथ वहाँ हो ठहरे रहें और लक्ष्मण आदि श्रेष्ठ लोग भी वहाँ पर ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति शङ्खकोटिरामचरितोत्तमं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( रामका वैकुण्ठारोहण )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः मधुनाय प्रमत्ते सीतया सह । अजर्मादं समाहूय मञ्जुलं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥  
 अथाह मातया स्वीये एद मच्छामि बन्धुभिः । वानरैः सकलैः परैस्त्वया चेपं तु यज्जगत् ॥ २ ॥  
 वक्ष्येपूडादिकं सर्वं प्रेषणीयं कुशं प्रति । यन्वर कोटकानं तन्मया मास्यति वै दिवम् ॥ ३ ॥  
 अनस्त्वं तं कुशं गन्वा सर्वं वृत्तं निबंदय । करोत्तुल्यकार्याणि कुशोऽस्माकं मविस्तरम् ॥ ४ ॥  
 मा कोनु कुशोऽस्माकं स्वेदं तत्त्वं निवारय । इति गमवचः श्रत्वा साश्रुनेत्रस्तयेति मः ॥ ५ ॥  
 अजर्मादभ्यर्ता प्राह ननाम रघुनायकम् । अथ रामः कुनैः परैः स्नान्वा मार्गार्थीजले ॥ ६ ॥  
 कुन्वा निन्यविधिं पूजं हुन्वा वह्निं मविस्तरम् । ददौ दानान्यनेकानि गङ्गासंकृतमम्बतः ॥ ७ ॥  
 ततः प्रास्थानिकं कर्म चकार स यथाविधि । वह्निं विमर्जयामास वैकुण्ठं प्रति राघवः ॥ ८ ॥  
 तदा रामस्य पद्मा सा गता दक्षिणद्वस्ततः । धूर्तिरूपधरा वेदा वैकुण्ठपादपुष्पदा ॥ ९ ॥  
 त्रिपदा प्रपदेनैव भोगमास्याद्विनिर्यता । नन्वा रामं ययौ शान्तिः क्षमा मेधा धृतिर्दया ॥ १० ॥  
 तेजो बलं यशः शौर्यं पथी सर्वं तदा पुरः ततः पीता वानराश्च सर्वे मार्गार्थीजले ॥ ११ ॥  
 स्नान्वा निरुप्य वायुं च निजदेहानि तन्पनुः । अथ रामो मुदा गङ्गां स्पृष्ट्वा दर्भातनोपरि ॥ १२ ॥  
 दर्भपाणिः स्थितस्तृण्यीधुनराभिमुखः स्त्रिया शान्तसर्वे ददृशुस्ते देवा निष्णुं पुरःस्थितम् ॥ १३ ॥  
 चतुर्ध्वजं मालकाति पीतकीशेषघाणिम् कोम्तुमाकिताहंशं श्रीवर्माकोपशोभितम् ॥ १४ ॥  
 सीता बभूव सा लक्ष्मीर्विष्णोर्वाभाक्रमस्थिता । शेषो बभूव सीमित्रिः कपाभिरनिभासुरः ॥ १५ ॥

श्रीरामदासने कहा — हमने रामचन्द्रजी सीताके साथ वानर उठे तो अजमे रका मञ्जुकर जीठी बातोंसे समझाकर कहने लगे कि आज मैं सीता बन्धुओं समस्त वानरों और प्रजापतियोंके साथ अपने परमधामकी यात्रा करूंगा ॥ १ ॥ २ ॥ मेरे जितने भी मातृ-कनान आदि बन्धुगृह हैं, उन्हें तुम्हें पास भेज देना । वही जीवसे लेकर कीट पक्ष्य सब प्राणी मेरे साथ वैकुण्ठ जायेंगे । मर चले जानवर तुम तुम्हें पास चले जाना और मेरा सब समाचार कह सुनाना और यह भी कह देना कि तुम हमारी ओधवदीकें कियाअकें खूब अच्छी तरह सम्भाल करे । यदि मेरे परमधाम जानके कारण कुछ किमा प्रकारका भेद करने लगे तो तुम उसे अच्छी तरह समझा देना । रामकी बात सुनकर अजमोड़ने उगड़ामे आसू भरकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और भगवानकी इनाम किया । इसके अनन्तर रामने स्वयं साथ गङ्गाजाम स्नान किया, निन्यकृत्य किये, हुवन किया और गङ्गातटपर स्थित बाहुओंको तरह-तुहक दान दिए । ३-७ ॥ इसके बाद राजासे सम्बन्ध रखनवाले जितने कर्म थे, वह सब किये । चलते समय हुवनकी अग्निको वैकुण्ठजाक भेज दिया ॥ ८ ॥ उक्त समय रामस्वचारी विद्युत्की लक्ष्मी शान्तिकी सीता रामके दक्षिण भागने वैकुण्ठधामका चला गयी । उस समय सब वेद अपने मूर्तकयमे वैकुण्ठजाकय जा पहुँचे ॥ ९ ॥ रामके प्रणयाम करने ही शान्ति, क्षमा, धृति और दया आदि गुण चले गये ॥ १० ॥ उठा गरुड तेज, बल, यश और शौर्य आदि भी कूच कर गये । इसके अनन्तर सब पुरवासियों तथा वानराने भी गङ्गाजाम स्नान और प्राणायाम करके अपने शरीरका परिस्वयण कर दिया । इसके बाद सीताके साथ रामने गङ्गाजम्बका स्पर्श किया और कुशासनपा बैठे ॥ ११ ॥ १२ ॥ हाथमें कुशा लेकर वे उत्तरार्क और मुख करके बैठे । उसी समय राम देवताओंके समुत्तम विष्णुभगवान्के रूपमें परिणत हो गये ॥ १३ ॥ उन भगवान्के चार भुजायें थीं । नालकमलके समान श्याम शरीर था । वे अपने शरीरपर पीले वस्त्र धारण किये हुए थे । कोम्तुममणिते उनका हृदय सुशोभित हो रहा था और भीषण अक्षी जितार चला ही दिया रहा था ॥ १४ ॥ गङ्गाजीके तटपर रामके सामागमें बैठी हुई सीता लक्ष्मीके

स्रष्टो कथं भवतः श्राविष्णोः मन्वन्तरं शप्ते करे वभूशथ शत्रुघ्नश्च सुदर्शनम् ॥१६॥  
 देवेषु विविधः सर्वे वनाग्ने क्षयागता । चांडालहमिकांटाणा अगोस्वापुस्त्राणिनः ॥१७॥  
 प्राप्नुस्ते दिव्यदेहानि विमाने मन्थिता बहूः । तदा निनर्वाद्यानि देवानां गगनागणे ॥१८॥  
 श्वर्दुर्द्वयमथ पुष्पहृदिमिगदगाव । नन्दुर्न दम्पयो जगुर्गन्धर्वकिमराः ॥१९॥  
 प्रणनाम तदा ताक्षर्यः श्राविष्णु रविशमुम् । देहानि मृनुनुः सर्वे श्रीभिः सोमादिकाश्च वे ॥२०॥  
 इतिदेहानि चास्मिन् तदा ना उमिनादिका । इदानीं जहूः सर्वा रम्ये मार्गाग्यानरे ॥२१॥  
 अथ ता देवकन्यथ रत्नर्षेः मास्यन्तः । विष्णुं नीगजवामासुर्लक्ष्मीयुक्तं महाभुजम् ॥२२॥  
 विष्णुस्ततोऽत्रवीहकं रथम मञ्जुल शनैः । प्रदोष्यावामिनः सर्वे निर्जङ्गमादयः सुभा ॥२३॥  
 एते समगता ब्रह्मर्षी स्थानं पद्मभुजा । तद्विष्णोर्यत्नं धृत्वा तदा प्रज्ञाऽभिधायः ॥२४॥  
 यल्लोकादुपरिष्ठाच्च लोकभ्यां नानिकाञ्चुभान् । एते यांतु जनाः सर्वे श्वर्दुर्द्वयमहोदधिताः ॥२५॥  
 ततः प्राह पुनर्विष्णुस्त्वोवाधां मृताश्च वे ।  
 अथ नेऽपि मयायांतु लाशान्मनानिकाञ्चुभान् ॥२६॥

तथैव स विधिः प्राह महाविष्णुं सुदर्शनः । नन्दने दिव्यदेहाश्च मर्कटपुत्राणिनः ॥२७॥  
 नानाविमानमन्धाश्च दिव्यवस्त्रविभूषिताः । दिव्यलक्ष्मणयुक्ता दम्पत्योभिरिन्द्रेणिनाः ॥२८॥  
 नानागुणवशाद्यैर्दिव्य वामर्षीजिह्वा । विरेनुमोदने चन्द्रदत्ता रविमासुराः ॥२९॥  
 ततो मत्तादयो देवाः प्रभेमुर्विष्णुवादयन् । हृष्टवृत्तिविधैः स्तोत्रैर्देवैर्भुर्नाथराः ॥३०॥  
 तदा तुष्टाश्च श्रुत्वा विष्णुं त्रैलोक्यपलकम् । वनशालां दधानं न दिवाचन्दनचार्चनम् ॥३१॥

रूपमें और लक्ष्मण कपोत मुखाभन जय भगवान्‌क स्वरूपमें परिणत हुआ ॥ १५ ॥ भरतजी मलक रूपमें परिवर्तित होकर विष्णुभगवान्‌क दाहिने हाथमें जा विराजत । शत्रुघ्नजी विष्णुजी सुदर्शनचक्र बनकर बायें मुखाभ बहुत जमा लिया ॥ १६ ॥ यहाँपर जितने धातु हैं, वे सब खत भस्म में अपने अंशरूपमें दत्त आकर शरीरमें प्रविष्ट हो गये । चाण्डाल, लहरी कुम्भकार पर्यन्त सभी अवाध्यानिवासों अपने-अपने शरीरको छोड़कर दिव्य देह धारण करके विष्णुभगवान्‌ गणोद्भूत होत लगे । उस समय गगनागणमें दत्तनाओंके विविध प्रकारके आगे बज रहे थे ॥ १७ ॥ देवाजीय प्रेमपूर्वक नमस्कार कर रही थीं । अस्तरार्थ नाच रही थीं और गन्धर्वगण तरङ्गनरङ्गक गायन वा रहे थे ॥ १८ ॥ उन्हीं समय गरुडन आकर सुपसहस्र पैदायमान भगवान्‌को दण्डवत् प्रणाम किया । ऊपर हाथ बाँधे राजाश्रोतों भी अपनी मित्रों समेत अपने-अपने शरीरको छान दिया ॥ २० ॥ इन लोगों परम धाम चने जानकर बाद उभित, चाण्डाल तथा धनवान्‌नित अपने-अपने रतिके शरीरका आलिंगन करके चिनमों उलकर तरेर छड़ दिया ॥ २१ ॥ ऊपर समस्त देवताओंकी स्त्रियों हजारों रत्न-मय होकर आकर कन्याके समान विष्णुभगवान्‌की आरती उतारा ॥ २२ ॥ कुछ दूर बाई विष्णुभगवान्‌ने कहा कि मेरे साथ जो अवाध्याक सब पुरनारी तथा शिखरानि धरके प्राणी बहुत आये हैं, इनके लिए कोई स्थान बतलाइए । विष्णुभगवान्‌को बात सुनकर ब्रह्माजी बोले कि आपने दशान्से ये पवित्र प्राणी मेरे लोकसे यह ऊपर एक सात्त्वानिक लोक है-वही है आकर निवास करें ॥ २३-२४ ॥ इसने बाद विष्णु भगवान्‌न फिर कहा कि इनके अतिरिक्त भा जे प्राणी अवाध्याक शरीर त्याग करे वे सब सात्त्वानिक लोक प्राप्त कर ॥ २५ ॥ कहाने भगवान्‌की यह बात भा श्रुति कर जो । इसके अनन्तर ने सब अवाध्यावासी दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकारके विमानोंपर जा बैठे । उस समय वे सोच अच्छे-अच्छे पहने-करके बहने थे और कितनी ही नुत्तरा कमरा । उनके शरीरमें सुगन्ध बस रहा थी । उनपर दिव्य कमर पड़ रहे थे । नृसिंहे सकात देवदम्पत्य तथा श्वरमुखा मार्गवा सब प्रकारको देवाये कर रही थी ॥ २७-२८ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताश्रेष्ठ विष्णुभगवान्‌को प्रणम किया और बड़े-बड़े कृषि वेदकी श्रुतिश्रोते भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥ अब लोगो के बाद श्रीशरीरको त्रैलोक्यभरत विष्णुभगवान्‌की स्तुति करने लगे । उस



शंभुनाच

१५१ कलयाधर भवनाशन दृगितापह माधव स्वर्गाभिनि नररूपिण पद्मेधरम् ।  
 पालक जननायक मवहारकं त्रिपुरारकं त्वां भजे जगद्गुरुं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३२॥  
 धूम्रव वनमालिनं धनरूपिण धारणाधरं श्रीहरिं त्रिगुणान्धक तुलसीधरं नन्दस्वरम् ।  
 १५२ शरभप्रदं मधुमरकं ब्रह्मपालकं त्वां भजे जगदाधरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३३॥  
 त्रिभुज मधुरास्त्रिनं रजकान्तकं गजमन्त्रकं मन्त्रुनं वक्रमरकं शृङ्गवानकं तुङ्गादेनम् ।  
 १५३ वन्द्य वन्दनार्जुनं बलिपङ्कजं सुपालकं त्वां भजे जगद्गुरुं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३४॥  
 केवल कलयाधरं कविमरकं मृगशर्दिनं सुन्दरं द्विजपालकं शिनिजर्दिनं दनुजाधनम् ।  
 १५४ शालकं स्वर्भादिनं क्षपिपतिनं मुनिचितिनं त्वां भजे जगद्गुरुं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३५॥  
 शरभ जलशायिनं कुशपालकं रथदाहनं मधुननं त्रिषण्डकं त्रिषधुसुरं लवशालकम् ।  
 १५५ श्रीधरं मधुप्रदं भवनाश्रितं गरुडध्वजं त्वां भजे जगदाधरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३६॥  
 गङ्गाधरं गुरुपुत्रदं चदनीं वरं कलयाभिधिं मन्त्रपं जनलोपदं सूर्यपूजितं अतिभिः स्तुतम् ।  
 १५६ कन्द जनमृत्किदं जनरजनं नृपनन्दनं त्वां भजे जगद्गुरुं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३७॥  
 विद्वानं विभज्जोषनं माणमालिनं वरदानमुद्य श्रीधरं शूलशयकं बलउभयं गजैरायकम् ।  
 १५७ शालिन्दं जननायकं शरधारिणं गजगमिनं त्वां भजे जगदाधरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३८॥  
 क्षीरक्षेत्रं कम्पाननं कपलादृशं पदपङ्कजं कपामलं रत्नभाणं अशिमोक्षदं करुणाणरम् ।

समय भगवान् वनमाला धारण किया है और उनके हाथ में दिव्य चन्दनका लव किया हुआ था ॥ ३१ ॥  
 श्रीशरभजी ने कहा रघुनन्दन तुलसी, शरभ, शरभ, मधुनाच आज्ञास्वरूप मुक्त करनेवाले, पावनशालकार, लक्ष्मीके  
 पति, जलमाला परमधर, सखर पालक, भक्तोंका नररूपवाने, धरद्वारा नररूप, पावनमहाराजकारी नररूप  
 वाली है जगद्गुरु रघुनन्दन ! मैं आपका प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ त्रिभुज वनमालाधारी, मधुनामक  
 राक्षसका मारनेवाले, रजकपालक भक्तोंको मोदक ममान आशुका, तुलसीका रक्षा करनेवाले, सत्त्व, रज  
 और तम इन तीनों गुणोंमें मुक्त मुक्तमार्के पति, मन्दस्वरूपन गङ्गाका विस्तार करनेवाले, नररूपधारी  
 जगद्गुरु है रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३३ ॥ द्विभुजवर्गे मृगम निवास करनेवाले,  
 रजजमारी गजास्तकारी, सज्जनोष संस्तुत, क्षमाकर, नृपाल और कलशकी मारनेवाले, वन्द्यवर्गे वसुदेवके  
 पुत्र कलयाधरमें बलिक पञ्चम जानेवाले देवताओंके पावन, नररूपधारा है जगद्गुरु रघुनन्दन ! मैं आपका  
 भजना करता हूँ ॥ ३४ ॥ केवल, कलयाधरमें घिरे हुए, क्षपि पावनका मारनेवाले, मृगधरधारी मारीषको  
 मारनेवाले, सुन्दर, बाह्यणीक रक्षक राक्षसोंका महार मारनेवाले, लवदा बालमयधर, लवका मारनेवाले,  
 क्षयधरमें पूजन, मुनिधो द्वारा चिन्तित और नररूपधारी है जगद्गुरु रघुनन्दन ! मैं आपका भजन  
 करता हूँ ॥ ३५ ॥ संसारका नाश करनेवाले, जितक कुछ जैसे परमेश्वरी बालक हैं, रथजिदकी सवारा  
 है, मधुस्वरूप जितको नमस्कार करती है, तिसकी शयक विमान विषय प्रिय है, जो ब्रह्माण्ड प्रतिपद्य प्रेम  
 रहन है लव नामकी जिनका बालक है जो लक्ष्मीका रक्षण करने है, जिन्होंने मधुनामक है वही महार  
 किया था जो भरतके बड़े भ्राता है और जितको परमेश्वरी बालक विद्वान् वर हुआ है, ऐसे नररूपधारा है  
 जगद्गुरु रघुनन्दन ! हम आपका भजन करते हैं ॥ ३६ ॥ जितकी तो विषय प्रिय है, जो यमलोकमें गुरुपुत्रकी  
 लोटा लगे व, जो वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, जो नररूपक समृद्ध हैं जो सब नररूप अपने धर्मोंका रक्षा करते हैं,  
 जो अपने धर्मोंको प्रसन्न रखते हैं, रत्नधारण जिनकी पूजा करने हैं पालने वेर जितकी स्तुति करने है, जो  
 शय प्रसारक भोग प्रदान करते हैं और जो अपने भक्तकी मृत्ति प्रदान करते हैं, महाराज जगत्पतेके पुत्र है  
 जगद्गुरु रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३७ ॥ विद्वान्स्वरूप, विद्वान्स्वरूपी मणियोंकी मन्त्र धारण  
 करनेवाले, मन्त्र-पुत्र, श्रीधर, धर्म प्रदान करनेवाले, गजिदधर, नररूपधारी, शालिन्दना जननायक, शर  
 भारी, गजगमि, नररूप धारण करनेवाले है जगद्गुरु रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३८ ॥ मधु

सत्पतिं नृपबालकं नृपवदितं नृपनिधियं श्रीं भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३९॥  
 निर्गुणं मधुगान्धर्वं नृपमण्डनं वनिवर्द्धनचन्द्रवंतं पुरुषोत्तमं परमेश्वरं धिक्कामिणम् ।  
 ईश्वरं हनुमन्नुतं कमलाधिपं जनगर्भाक्षिणं श्रीं भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥४०॥  
 ईश्वरोक्तमेतदुत्तमादाश्च्युतनामकं यः पठेत्प्रति मानयन्त्यश्च भक्तिमोक्षवन्दोदये ।  
 स्वल्पदं निजवन्धुदाम्मुन्युनधिरमेव नो मोऽस्तु ते पदसेवने बहुवन्द्यो मय वाक्यतः ॥४१॥  
 इति स्तुत्वा महाविष्णुं श्रीरात्रिं मित्रिवापदिः । प्राकृष्टं गन्धर्वं सहस्रं सहस्रं पुरीषं ॥४२॥  
 वैकुण्ठरोहणस्याय कान्तिं वान्मोक्षिना कृतः । एकादशं महत्त्वं यमास्त्रिकादशैश्च ॥४३॥  
 तथैकादशं मायाश्च दिनान्येकादशैश्च च । तथैकादशं नाडीश्च पलान्येकादशैश्च च ॥४४॥  
 भक्तानि तेषां भूम्यां हि जन्मास्तस्य राक्षसः । वन्द्यश्च तेनः स्त्री तिथिर्भवागिवाऽद्य हि ॥४५॥  
 पुण्येऽहि स्वपदं गन्तुं स्वर्गं कुरु मेश्वर । तदा विद्वन्मित्राविष्णुर्धन्मोक्षं मुनिपुङ्गवम् ॥४६॥  
 समालिख्य मुनीन्पृष्ट्वा तस्मै मम सहस्रं पुरीषं । धनं च देवगणेषु स्तुतं च नारादादिषु ॥४७॥  
 पुण्यैर्वन्द्येषु देवेषु प्रवर्तन्स्वयं च । नानाविधानां च मयैव परिचरितः ॥४८॥  
 ययौ विष्णुः स वैकुण्ठं लोकलयाद्वन्द्यैः शर्म । वैकुण्ठे स्वयं विष्णुः विमलश्चित्रादिकान् ॥४९॥  
 तस्मै तस्मैऽऽनन्दमयः परिपूर्णमनोमयः । एतद्गुहाद्वयपदः शेषतस्तुतिभूषणः ॥५०॥  
 अपोष्वावामिनः सर्वं ययुः मातामनकपदम् । तस्मै मुनयः सर्वे ययुः सर्वं स्वस्थं प्रति ॥५१॥  
 रामवाक्यान्माऽजर्मादः सास्त्रयासास तं कुशम् । रामारोहणं दम्भारं कथयामास तं कुशम् ॥५२॥

धारण किये, कमलक समान मुखवान, कमलक भाति न्योयाने, कमलक ही सगंध धरणकमलवाने, श्याम  
 वर्ण, मृदुके समान देहीप्रमान, चन्द्रमाकी मुख दानवान, कलसाक मण्ड एक बल्ल प्रभु राजाभाके रक्षा,  
 राजाभाके वन्दित, राजाभाके प्रिय और नररूपधारा २ जगदाश्वर रघुनन्दन । ये भाग्यवान भजन करता है  
 ॥ ३९ ॥ निर्गुण हुंते हुए भी सगुणस्वरारा, राजाभाके मूलभूषण बुद्धवदन्तका, परम पूजनीय, मृक-  
 राकर बालस्वान, जगत्क प्रभु, हुमानजम नररूप धनाक मेश, महान गति और नररूपधारा है  
 जगदाश्वर रघुनन्दन ये भाग्यवान भजन करता है ॥ ४० ॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए शिवजीने मन्त्रमें  
 कहा कि प्रातःकाल सुयोदक समय जो कोई व्यक्ति भज करे हुए इस मन्त्रामन्त्रायका पाठ करेगा, वह  
 मेरे आर्जोवर्तसे अत्यन्त बन्धुभा तथा स्वपुत्रादिकाक साथ यही भाकर बहुत कालतक आपके चरणोंकी  
 सेवाका सुयोग पावगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् निवर्तन कहा—है रामान यह आप जगद्ध  
 गुरुपर आश्रित ही करीक वात्माकिवन आरक रघुनन्दराहणाय यह समय अपने रामावामने निर्वाचित  
 किया है । इस समय गारह हजार गारह रूप, गारह महाता, गारह दिन, गारह माह तथा गारह पल  
 पूरे हो रहे है । आज यंत्र भूषणयन्त्र पञ्चमा निर्दिष्ट है ॥ ४२-४५ ॥ इस पवित्र दिवसका भव परमधाम  
 आनेक लिए आ जाता करिए । उस समय प्रभु नुक्ताय । उन्होंने मुनपुङ्गव वात्माकि कथिका हृदसे लगाया,  
 कथियोसे आता मीना और गुरुक उतर मकार हा गया, तब देवताओंके विविध प्रकारके वस्त्र बनाये,  
 नारद आदि महर्षिओंने स्तुति की, देवताओं भगवन्वर पुत्र बरसान कगे और अप्सराय जाकने लगीं  
 ॥ ४६-४८ ॥ इस तरह गुरुवर वैदकर भगवान् राम सब लगाक दमनदेखते वैकुण्ठनाकाको पसे गये । उस  
 वाममे पहुंचकर वे अपने मित्रावर वंद और गार आदि देवताओंका बिदा कर दिया । वे आनन्दमय  
 महाप्रभु हर प्रकारसे परिपूर्ण मन्त्राय हुकर लक्ष्मीक साथ आनन्दपुत्रक वंदी गहन लगे । उस समय गुरु  
 भगवानक चरणोंकी सेवा करने थे और तत्पश्चात् भगवान् देवकी प्रसापर मान थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वे सब  
 अपोष्वावामा अववाकके कथयामाया सास्त्रनिक लक्ष्मीक विरचे । इसके अनन्तर भगवान्का स्वर्ग-  
 रोहण दसमक लिए भावे हुए अथवा अथवा अपने आश्रमोंका चल गया ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रजीके कथनी-  
 नुसार हस्तिनापुरके राजा अजमल अपोष्वाव कुशक पास गया और भगवान्का परमधामयाग-सम्बन्धी

कुशेन मानितः सोऽपि ययौ स्वाय रजःपङ्क्तयश्च । तन्वा कुमुदनीं तस्यां कुशः पुत्रान्म निर्मये ॥५३॥  
 एवं श्रीगणेशाय नमः । स्वर्गोद्धारकस्तु कम् । ये मृग्यान् नरा मन्वा तेऽपि स्वर्गं प्रयाति हि ॥५४॥  
 वैकुण्ठोद्धारकस्तु कम् । नित्यं पठन्तु यः । सोऽन्ते गच्छति वैकुण्ठं रामचन्द्रप्रसादतः ॥५५॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे अष्टमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

( सूर्यवधवर्णन )

श्रीरामदास उवाच

एवं त्वया यथा शृष्टं स्वर्गोद्धारकस्तु कम् । श्रीरामस्य मया चैतत्तवाग्र इयं निवेदितम् ॥ १ ॥  
 किमन्यच्छ्रोतुमिच्छामि त्वं नान्यद् वद वदाम्यहम् । एव सुगोर्वचः श्रुत्वा विष्णुदामस्तमववीन् ॥ २ ॥  
 विष्णुदास उवाच

कुशतः सूर्यवधोऽयं सुगो पूर्व त्वयोक्तः । कृष्णाय श्रोतुमिच्छामि सूर्यवधं सविस्तरम् ॥ ३ ॥  
 श्रीरामदास उवाच

विष्णोरात्म्यं कथिता एकपण्डिताः पुनः । एकपाठित्वा घृष्टं तान्वदामि सविस्तरम् ॥ ४ ॥  
 श्रीरामस्य कुशः पुत्रोऽतिविश्रितः पुत्रः कुशस्य सः । निषधस्थानतः पुत्रो निषधस्थानमग्रे नमः ॥ ५ ॥  
 बभ्राजतो पुद्गराकः समधन्वा तु तत्सुतः । देवानां कस्तत्सुताऽभूद्देवानां कस्तुतो महान् ॥ ६ ॥  
 अहीनः प्राचपतः सार्वः पायावस्तत्सुतः स्मृतः । पायावस्य बलः पुत्रः स्थलः पुत्रो बलस्य हि ॥ ७ ॥  
 स्थलस्य वज्रनाभस्तु खगणस्तस्य कान्त्यने । खगणाङ्गघृष्टिजानो विधूतेश्वरनयः शुभः ॥ ८ ॥  
 जाता हिरण्यनाभस्तु तस्य पुष्यः प्रकाश्यत । पुष्पाक्षः ध्रुवसन्धिस्तु ध्रुवसन्धः सुदर्शनः ॥ ९ ॥  
 सुदर्शनाक्षमवपस्तस्माच्छाघः प्रकाश्यत । शोघाज्जाना मरुः पुत्रा मनोश्च प्रभुनः सुतः ॥ १० ॥  
 प्रभुनस्य च साधाई सधेः पुष्टस्तु मपणः । मपणस्य महस्वायः विश्वनाथश्च तन्सुतः ॥ ११ ॥  
 सप्त वातं वतलायो और समसा दिवा कि आप किआ प्रकारका शक न कर ॥ १२ ॥ कुशाद आ अजमोदका  
 मरपूर आदर-साकार किया । कदं दिवा अजाधाम रहकर वे हस्तिनापुरं को चले गये । कुछ दिनों  
 बाद कुशको कुमुदनी नामको एक दूसरा भाग प्राप्त हुई । उससे कुशक बहुतत्र पुत्र हुए ॥ ५३ ॥ इस  
 प्रकार भगवान् के स्वर्गोद्धारक-वार्ताको आ लोग भाँकितूँक सुनते हैं, वे भी स्थगलाक प्राप्त करत हैं ॥ ५४ ॥  
 आ प्राणी वैकुण्ठोद्धारक इस सर्वका नित्य पठ करत है, वह रामचन्द्रका कृपासे अन्तम वैकुण्ठ  
 धामको प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे अष्टमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—हे विष्णु ! तुमने जिस तरह हमसे भगवान् के स्वर्गोद्धारक वृत्तों पर पूछा, वह  
 मैंने कह सुनाया । अब तुम क्या सुनना चाहते हो सा कहा । वह भी मैं बतलाऊँगा । इस तरह शुकजी बाह  
 सुनकर विष्णुदास कहने लगे—ह सुनवर ! आपने सुगोर्वच सूर्यवधक वर्णन किया, सो मैंने सुना । अब यह  
 जानना चाहता हूँ कि कुशके भागे कौन-कौन राज हुए । यह हूँ विस्तारपूर्वक बतलाऊँ ॥ १ ॥ श्रीरामदास  
 बाले—हे शिष्य ! विष्णुभगवान् से लेकर एकसठ राजाओं के चरित्र मैंने पहले सुनाया है । उनके बाद ओ  
 एकसठ राजे और हुए हैं, उन्हें मैं विस्तारपूर्वक बतलाऊँ ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीक पुत्र कुश, कुशके पुत्र  
 अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके नभः ॥ ५ ॥ नभके पुष्पकोक, पुष्पकोकके क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक,  
 देवानीकके अहीन, अहीनके पायाव, पायावके बलः, बलके पुत्र स्थलः ॥ ६ ॥ ७ ॥ स्थलके वज्रनाभ, वज्रनाभके  
 खगण, खगणके पुत्र विधूतः, विधूतके हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभके पुष्य, पुष्यके ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिके  
 सुदर्शन, ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुदर्शनके अग्निवर्ण, अग्निवर्णके पुत्र शोभः, शोभके मरु, मरुके पुत्र प्रभुनः,

तस्मात्प्रसेनजि-प्रोक्तस्तस्माज्जातस्तु तक्षकः । बृहद्वल्लभक्षकाश्च तस्माज्जातो बृहद्रथः ॥१२॥  
 तस्मादुरुक्रियः प्रोक्तो वत्सवृद्धस्तु तन्मुतः शम्भुवृद्धस्य व्योमस्तु व्योमाद्वास्तुः प्रकीर्त्यते ॥१३॥  
 भानोः पुत्रो दिवाकस्तु सहदेवश्च तन्मुतः सहदेवाभ्यनो वीगे वीरस्य तनयः शुभः ॥१४॥  
 बृहदश्व इति ख्यातस्तस्य पुत्रस्तु भानुमान् । भानुमनः प्रतीकाशः सुप्रतीकश्च तन्मुतः ॥१५॥  
 सुप्रतीकस्य पुत्रोऽभून्मरुदेव इति स्मृतः मरुदेवाभ्यनक्षत्रः मुनक्षत्राच्च पुष्करः ॥१६॥  
 पुष्करस्यार्तिरश्वश्च सुतया अंनं गच्छतः । सुतयाभ्यनयो मित्रो मित्रजितस्तुतः शुभः ॥१७॥  
 बृहद्राज इति ख्यातस्तस्य बर्हिः समुता वृष्टे । वृष्टेः कृतजयः पञ्चमस्य पुत्रो रणजयः ॥१८॥  
 रणजयाभ्यजयस्तु संजयाच्छक्य ऊच्यते शक्यपुत्रस्तु शुद्धोदः शुद्धोदाल्लामलः स्मृतः ॥१९॥  
 प्रसेनजिह्वागलस्य तन्पुत्रः क्षुद्रकः स्मृतः क्षुद्रकाट्टणकः प्रोक्तो रणकाभ्युथः स्मृतः ॥२०॥  
 सुधासनयो जातस्तनयस्य सुतो महत् । नाम्ना मुमित्र कामा पूर्णं वंशजननः परम् ॥२१॥  
 पूर्वमुक्तो मरुरिति नाम्ना यो नृपनिर्मेया कलापशममाश्रित्य हिमार्द्रा वट्टिकाश्रमे ॥२२॥  
 स तपधिरकालं हि करोन्त्यत्र समाधिमान् । कृते युगे इनः प्रते सूर्यवंशं कम्पिष्यति ॥२३॥  
 एव मया समाख्यानः सूर्यवंशा मनेश्वरम्, विष्णोश्चरम्य कविना एकपष्टितमा मया ॥२४॥  
 एकपष्टिनृपाश्चाग्रे मध्ये रामो विगजते । त्रयोविंशोत्तमस्तत्र श्वः विष्णोर्मेयोदिताः ॥२५॥  
 एवं यथाऽवया पृष्ट शिष्य दशानुकीर्तिभु । तन्मया कथितं सर्वं श्रवणापुण्यवर्द्धनम् ॥२६॥

विष्णुशम उवाच

गुरो मया श्रुतं कस्यचिन्मुनेर्मृतः पुनः । रामायणं सविस्तरं तच्चेदं नैव भासते ॥२७॥  
 तस्मादत्रांतरं प्रोक्तं त्वया सर्वत्र मां गुरो । सदेहोऽनेन मे जातवत् न्वं छेचुमिद्वार्हसि ॥२८॥

श्रीरामदास उवाच

पुनः पुनः कल्पभेदाज्जाताः श्रीराघवस्य च । अवताराः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः कचिन्कचित् ॥२९॥

॥ १० ॥ प्रद्युतके संधि, संधिके पृथ मर्षण, मर्षणक महत्त्व न, महत्त्वानके विश्रवह ॥ ११ ॥ विश्रवाहके प्रसेनजिन्, प्रसेनजिन् वैतक्षक तक्षकके बृहद्रथ बृहद्रथक उरुक्रिय उरुक्रियक वत्सवृद्ध, वत्सवृद्धके व्योम, व्योमके भानु ॥ १२ ॥ १३ ॥ भानुके पुत्र दिवाक, दिवाकके सहदेव, सहदेवके नोर, वीरके पुत्र बृहदश्व, बृहदश्वके भानुमान्, भानुमान्के प्रतीकाश, प्रतीकाशके पुत्र नृप्रर्णक ॥ १४ ॥ १५ ॥ सुप्रतीकके मरुदेव, मरुदेवके मुनक्षत्र, मुनक्षत्रके पुष्कर, ॥ १ ॥ पुष्करक अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षके सुतया, सुतयाके पुत्र मित्र, मित्रके मित्रजित् ॥ १७ ॥ मित्रजित्के बृहद्राज, बृहद्राजक बर्हि, बर्हिके कृतजय कृतजयके पुत्र रणजय ॥ १८ ॥ रणजयके संजय, संजयके शक्य शक्यक शुद्धोद शुद्धोदके लाङ्गल ॥ १९ ॥ लाङ्गलके पुत्र प्रसेनजित् प्रसेनजित्के क्षुद्रक क्षुद्रकके रणक, रणकके मुमित्र ॥ २० ॥ मुमित्रके तनय वीर तनयके पुत्र मुमित्र हुए । वर, गह्वर ही तक चलकर सूर्यवंश पूरा हो जाता है । २१ ॥ पूर्वमं हम मरु नामक राजाका नाम गिना आये हैं । वे हिमालयपर वट्टिकाआश्रममें तप कर रहे हैं । सम्ययुग आतपर वे फिर सूर्यवंशका विस्तार करेंगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस तरह मैंने विष्णुभागवानस लेकर एकसठ राजाओं तक मूलवंशका वर्णन किया ॥ २४ ॥ एकसठ राजाओंके मध्यमें भगवान् रामचन्द्रजी विशाजमान है और उनके आगंवाले एकसठको लेकर कुल एक सौ लेईस राजे हुए ॥ २५ ॥ इस तरह हे शिष्य ! मैंने सुन्दे सूर्यवंशका विवरण कह सुनाया । इसके सुननेसे पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ २६ ॥ विष्णुदासन कहते हैं नृप ! मैंने किसी मुनिसे सुनाया कि रामायण इससे भी विस्तृत है, किन्तु पूरी रामायण इस संसारमें विद्यमान नहीं है । फिर आपसे जो रामायण सुनायी है, वह जो सब रामायणोंसे भिन्न है, यह एक प्रकारका भन्देह मेरे हृदयमें उत्पन्न होना है । क्या करके आप इसका निवारण करिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीरामदासने कहा कि कल्पभेदसे रामके कितने ही अवतार हुए हैं और

कृतोऽस्ति राघवेणैव न सर्वे सदृशाः कृताः । रामायणान्यपि तथा पुरा वाल्मीकिनैव हि ॥३०॥  
 अनेकान्यत्रेणैव कीर्तितानि सविस्तरात् । शतकोटिसिता तेषां सर्वेषां गणना कृता ॥३१॥  
 तस्मान्नया न सदेहः कार्यः शिष्यात्र बुद्धिमन् । यन्मया कथितं ते हि तस्यैव विद्धि मान्यथा ॥३२॥  
 शाराङ्गरतखंडातर्गताद्रामायणान्धुस । नारदादिपुराणानि व्यासेनात्र कृतानि हि ॥३३॥  
 तेषु भक्तकथितं चेदं सम्यग्विस्मयितं द्विज । तत्र ज्ञातो यथा शिष्य सदेहोऽत्र कथांतगत् ॥३४॥  
 भविष्यति तथाऽन्येषामग्रे यदि कदा क्वचित् । नारदादिपुराणेषु दर्शनीयं हि तैर्जनैः ॥३५॥  
 एषा मदुक्तं सर्वेषु पुराणादिषु ण्डितं । न्यक्तव्याः स्वायम्भवेहाः सन्य ज्ञेयं मयैरितम् ॥३६॥

इति शतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दराभायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये पूर्णकाण्डे

सूर्यवंशवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( आनन्दराभायणकी सर्गानुक्रमणिका )

श्रीविष्णुदास उवाच

पुरोऽधुना वदस्व न्व यन्मया पृच्छयते तव । अनुक्रमणिकासमं तथा पाठादिभिः फलम् ॥ १ ॥  
 काँहसरख्यां सर्गसरख्यां इलोकसरख्यां सविस्तरम् । उद्यापनं ग्रन्थदानफलं वै शकुनेक्षणम् ॥ २ ॥  
 अनुष्ठानविधानं च श्रोतुं कालविनिर्णयम् । काण्डानां च पृथक् संख्यां सर्वं त्व वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

अनुक्रमणिकासर्गः प्रोन्यतेऽयं मयाऽधुना । यस्याः संश्रवणान्मोक्तं सर्वप्रथमं शुभम् ॥ ४ ॥  
 सर्गोऽत्र प्रथमे प्रोक्तं कौमल्यायाः स्वयंवरम् । रामादीनां सुजन्मानि द्वितीये कीर्तितानि हि ॥ ५ ॥  
 सीताम्बयवरं प्रोक्तं तृतीये मिथिलापुरि । भृशशापादिकथनं चतुर्थे मृदुलेन हि ॥ ६ ॥

इन अवतारोंमें कुछ न कुछ भेद पड़ हो गया है । यद्यपि रामकी जीवन् प्रत्येक रामायणमें वर्णित हैं, किन्तु इन सबमें कुछ न कुछ भेद है । स्वयं वाल्मीकिजीने जो शतकोटि पद्यात्मक रामायण बनायी है, उसमें भी अन्तर विद्यमान हैं । इस कारण है शिर । तब किसी प्रचारकी सन्देह न करके मैंने जो कुछ कहा है, उसे सब मानो ॥ २१-३२ ॥ भरतम्बण्डके अन्तर्गत विद्यमान रामायणके भागके ही आधारपर व्यासजीने नारदादि विविध पुराणोंका रचना की है । उसी खण्डके सहारे मैं भी इस सर्गपर आनन्द-रामायणकी वर्णन किया है । जिस तरह आज तुम्हें भरा यह कथा सुनकर सन्देह उत्पन्न हुआ है, उसी तरह यदि आगे चलकर और किसी आता वक्ताको सन्देह हो तो उसे चाहिए कि उन नारद आदि पुराणोंको देखकर सन्देह निवृत्त कर लें ॥ ३३-३५ ॥ पण्डितोंको भी उचित है कि सब पुराणोंका खेन और उनमें भेदों को जाते देखकर अपना सन्देह मिटा लें और समझ लें कि मैं जो कुछ कहता हूँ, वे बातें सच हैं या नहीं ॥ ३६ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दराभायणे वाल्मीकीये षष्ठे राश्लेजपाण्डववृत्त व्यासने भाषा-टीकासहिते पूर्णकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा-हे गुरु । अब आप हमें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका तथा इसकी पठका फलें बताइए ॥ १ ॥ साथ ही इसकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या और श्लोकसंख्या आदि भी विस्तरपूर्वक कहिए । इसका उद्यापन, ग्रन्थके दानका फल, शकुनेक्षणविधान, अनुष्ठानविधि, इसके श्रवणका समय और काण्डकी संख्या आदि भी कहिए ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा-अब मैं तुम्हें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका बताता हूँ । जिसके श्रवणमात्रसे समस्त रामायणके श्रवणका फल मिल जाता है ॥ ४ ॥ सारकाण्डके पहले सर्गमें कौमल्याका स्वयंवर, दूसरेमें राम आदिका जन्म, तीसरे सर्गमें जनकपुरमें सीताका स्वयंवर, चौथे

दशमधूर्वजन्म कैकेयाश्चापि ८ मे । वनप्रयाण रामस्य श्रेष्ठं दत्ते मर्तिरतम् ॥ ७ ॥  
विषादावगमाच्चैवधादिमममेऽकथि १ किं विधाने वा विधाने गान्धर्वमे कृतं ८ ॥  
नवमे जानकीमुद्रिलंका दग्धात्मना दशमे से माशम्भय २ अत्र संयोगमः ९ ॥  
एकादशे गवणदिवधाः प्रोक्ताश्च गद्य-गनु । सीतया काशीं गन्तुं हास्यं च रूपो दिव्यः ॥ १० ॥  
त्रयोदशे राघवस्य विक्रमश्च हनुमानः समस्तं स रक्तहं हि प्रसीदति यने ॥ ११ ॥  
अष्टमाके प्रथमे सर्गे श्रेकोत्पलिः प्रकीर्तिता रामायणे ३ अत्र विज्ञेयं तद्गुह्यतः ॥ १२ ॥  
तृतीये सीतया गमो यात्रार्थे प्राथितो मुदा । चतुर्थे गमनक्रम्य प्रस्थानं च ह्वयं प्राप्ते ॥ १३ ॥  
पञ्चमे पुनिवासेन यात्री गतुं निनिश्चयः । षष्ठे श्रीराघवे देवदेवोद्योगाद्या परिष्कारः ॥ १४ ॥  
प्रोक्ता दक्षिणार्धार्थीनां यात्रा रामस्य पश्यमे । तीर्थार्थिनं पश्चिमाध्यायस्ये नवमस्य च ॥ १५ ॥  
यात्रोल्लापदेशस्य एतस्य नवमेऽङ्काधि । यात्राकाण्डसमाप्तं तु यागकाण्डमुदीर्यते ॥ १६ ॥  
सर्गेऽत्र प्रथमे राज्ञः राजोपकरणं गुरुः । द्वितीये रामचन्द्रस्य यागाशौचस्य वर्णिताः ॥ १७ ॥  
पूर्वप्रदर्शिता प्रोक्ता तृतीयेऽष्टमवर्जिनः । कुम्भादरामस्य यागतोऽत्र चतुर्थके ॥ १८ ॥  
पञ्चमे गमनाम्ना वै हर्षलंगडतं गुहा । षष्ठेऽलेखे हि सर्वेषां प्रतिमेषु प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥  
अज्जारोपरिधानं च सप्तमे समुद्राहतम् । अष्टमेऽनकुदस्नानं राघवस्यात्र वर्णितम् ॥ २० ॥  
नवमे वाचिमेषस्य समाप्तिः कीर्तिताऽत्र सा । यागकाण्डे दशमं हि चित्राकारमुदीर्यते ॥ २१ ॥  
प्रथमे शूचीरस्य अनवगजोऽत्र कीर्तितः । द्वितीयं रत्निजालायां जानक्याश्चापि वर्णनम् ॥ २२ ॥  
तृतीये राघवेणोक्तं देहगमायणा स्त्रियै । दिनचर्याभूषणानि जानकराघ चतुर्थके ॥ २३ ॥  
अन्यत्रयना कोडा पञ्चमे योगमाहिकम् । द्विजस्य पश्ये प्रसादे षष्ठेऽलंकारमण्डनम् ॥ २४ ॥

सर्गस्य मुख्य कथाका मिलता तथा कृतालीन आदि वि ३ ॥ १५ ॥ १६ ॥ पांचवें सर्गमें दशरथ और केकेयोके पूर्वजन्मका कृपाएत है । छठे सर्गमें रामका वनगमन और सातवम विराघ-जटायु-मारोच आदिका वध तथा आठवें सर्गमें किष्किण्या पवनेश्वर वायुवध वर्णित है ॥ ७ ॥ ८ ॥ नवें सर्गमें सीताको खोज और लंकुद्धहन, दसवें सर्गमें सेतुबन्धनस्य तथा काशी विश्वनाथके आगमनका वर्णन है ॥ ९ ॥ एकादश सर्गमें रामके द्वारा राघव आदिका वध तथा बारहवें सर्गमें सीताके साथ रामकी अरोह । सोढन और राज्य अधिकका वर्णन है ॥ १० ॥ तरहवें सर्गमें राम और हनुमानजीके पराक्रमका वर्णन है । इन तीनों सायकाण्ड समाप्त हो जाता है ॥ ११ ॥ अब यात्राकाण्ड रहन है । इसके पहले सर्गमें नात्म कट्ट । यात्राका उद्भव दूसरे गमय रामायणका विभाजन वर्णित है ॥ १२ ॥ तीसरे सर्गमें सीता द्वारा यात्राका प्रारंभ और चतुर्थ सर्ग में जू की आर रामकी यात्राका वर्णन है ॥ १३ ॥ पांचवें सर्गमें कुम्भादर मुनिको सनाहुस आश्रय कर उत्तर वर्णन है । छठे सर्गमें पूर्व देशके यात्राका वर्णन है । १४ ॥ सातवें सर्गमें दक्षिण भारतके लच्छोंका राजा और भ्रातृ संगे आगे प्रवेशक सब सीतोंको यात्राका वर्णन है ॥ १५ ॥ नवें सर्गमें उत्तर प्रदेशके तीर्थोंका यात्राका वर्णन है । इस यात्राक पर वही समाप्त हो जाता है । अब यागकाण्ड शुरू दिया वर्णन है ॥ १६ ॥ इसके पहले सर्गमें यात्राका सामयिको सविस्तर वर्णन है । दूसरे सर्गमें रामचन्द्रको द्वारा यागरम्भ, तीसरे सर्गमें यज्ञाय अभ्यकी गृहीप्ररतिगा, चौथे सर्गमें राम और कुम्भादर मुनिका संवाद है ॥ १७ ॥ १८ ॥ पांचवें सर्गमें रामका अष्टाल-रजातनाम स्ताव है । छठे सर्गमें अश्वमेध यज्ञका जादवालो रामकी दिनचर्याका वर्णन है । १९ ॥ सातवें सर्गमें अज्जारोपरिधान आठवें अक्षयस्नान और नवें सर्गमें अश्वमेध यज्ञकी समाप्ति वर्णित है ॥ २० ॥ इस, वही यागकाण्ड समाप्त हो जाता है । अब चित्राकारका प्रारम्भ होता है ॥ २१ ॥ इसके प्रथम सर्गमें रामस्तवराज और दूसरे सर्गमें जानक्याकी रत्निजालका वर्णन है ॥ २२ ॥ तीसरे सर्गमें सीताको राघवे देहरासायन सुनायी है । चौथे सर्गमें सीताका स्त्रिय विद वर्णन है ॥ २३ ॥ पांचवें सर्गमें अश्वमेधी की दावे और आर्थिक हरणका विवेचन है । छठे सर्गमें बाह्यानर्पण के लिए सीता द्वारा अलङ्कारदानका वर्णन है ।

मूर्तीनां सममे दानं देवसीणा वगन्वथा । गुणवन्था पितृन्नाथा वन्दानमथाष्टमे ॥२५॥  
 कुरुक्षेत्रस्य पात्रापां नवमे जानकोजयः । विलासकाण्ड समाम हि जन्मकाण्डमुदीर्यते ॥२६॥  
 आरामे दोहदक्रांडा सीतायाः प्रथमेऽकथि द्वितीये विविधाः क्रीडाः तृतीयेऽनन्तरात् ॥२७॥  
 रजकस्योदितं भुञ्जा सीतायासमृतीयके जन्मकर्म चतुर्थेऽथ कुरुक्षेत्रे लवस्य च ॥२८॥  
 सर्गेऽत्र पञ्चमे प्रोक्ता रामरक्षा सुखावहा । षष्ठे लवस्य कमलहरणे जय ईरितः ॥२९॥  
 युद्धादिकौतुक प्रोक्तं पुत्रयोः सप्तमे विभोः । सीतादिच्यं च तस्यामोऽष्टमे प्रोक्तोऽत्र मंडपे ॥३०॥  
 जन्मोपनयनादीनि बालानां नवमेऽकथि जन्मकाण्ड समाम हि विवाहाख्यमुदीर्यते ॥३१॥  
 स्वयंवराथे गमनं रामस्य प्रथमेऽकथि स्वयंदं चापिकाया द्वितीये समुदाहृतम् ॥३२॥  
 स्वयवरं तुमस्याथ तृतीये पत्नीर्निर्गतम् । कुरुक्षेत्रे लवस्यापि विवाहो द्वौ चतुर्थके ॥३३॥  
 गन्धर्वनामकन्यानां मोचनं पञ्चमेऽकथि । षष्ठे तायां विवाहानां निधयः समुदाहृतः ॥३४॥  
 विवाहा द्वादशे प्रोक्ताः सर्वाणां सप्तमेश्च हि । अष्टमे युषकेऽथ तृणितोऽथ पराक्रमः ॥३५॥  
 प्रोक्तो भदनमुन्दर्या विवाहो नवमे महान् । पूर्णं विवाहकाण्डं च राज्यकाण्डमुदीर्यते ॥३६॥  
 रामनाममहम् च नवमे प्राथमिकेऽकथि । द्वितीयेऽत्र ममाजीनो रामेण गुरपादर्पो ॥३७॥  
 रामकृष्णोपासकयोः सवादथ तृतीयके । शत्रुघ्नायां च निद्रायां वरदान तथा पुनः ॥३८॥  
 रामविशेषपरिहः सीतायाः पञ्चमेऽकथि । मृगकामुरयावथ षष्ठे राज्यानि चैवैवम् ॥३९॥  
 जयो भगवन्मंडस्य रामेण सप्तमे कृतः । जम्बूद्वीपत्रयः प्रोक्तोऽष्टमे रामस्य विस्तरात् ॥४०॥  
 पद्मीपानां जयः प्रोक्तो नवमे राघवस्य च । यनिशूद्रपृथग्विधा रामेण दशमे कृता ॥४१॥  
 चतुःक्षीणां वरदान रामेणैकादशे कृतम् । खीरोदशयहस्याणां द्वादशेऽथ वरपणम् ॥४२॥  
 अधन्धहसित हास्यमुक्तेराज्ञा त्रयोदशे । चतुर्थे बान्धवकिना मजन्मवधर्मनिम् ॥४३॥

॥ २५ ॥ सप्तमं संगम मल्लिकार्जुन दान और देवप्रियशोक वन्दानका विधान है । अष्टम संगम गुणवन्ता और पितृन्नाथके वन्दानका वर्णन है । २५ । नवम संगम कुरुक्षेत्रकी पात्रापा जानकोजयका वर्णन है । बस, यहाँ ही विलासकाण्ड समाप्त हो जाता है ॥ २६ ॥ अब गतमें जन्मकाण्डका वर्णन करना है—सहज सर्गमें दोहदक्रांडा तथा दूसरे संगमें विविध प्रकारका क्रीडा प्रो और सीताका स्वयं सव्यारका विधान है ॥ २७ ॥ तृतीय संगमें सीतात्याग तथा चौथे संगमें कुरुक्षेत्रका जन्म-कर्म वर्णित है । पाँचव संगमें रामरक्षा रत्नांगका विधान है । छठे संगमें लवका कमलहरण और उनका विजय वर्णित है । २८ ॥ २९ ॥ सप्तम संगमें युद्धादिक वीर्यका विधान है और अष्टम संगमें सीताकी वधका वर्णन है ॥ ३० ॥ नवम संगम बालकाके जन्म और उपनयनका विधान है । बस, जन्मकाण्ड यहाँ हो समाप्त हो जाता है । अब महान विवाहकाण्ड प्रारम्भ होता है ॥ ३१ ॥ इसके प्रथम संगमें रामके गमनके वर्णन है । दूसरे संगमें चापिकाके विवाहका वर्णन है । तीसरे संगमें पुमदिके विवाहका वर्णन है । चोथे संगमें कुन और लवके विवाहकी बातें हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ पञ्चम संगमें गन्धर्वों तथा नगोंकी कन्याओंके लुप्तानका हाल है । षष्ठ संगमें इन लोगोंके विवाहकी बात एककी हो जाती है ॥ ३४ ॥ सप्तम संगमें मङ्गल विवाहका वर्णन तथा अष्टम संगमें युषकेतुके पराक्रमका वर्णन है ॥ ३५ ॥ नवम संगमें भदनमुन्दराके विवाहका वर्णन है । बस विवाहकाण्ड यहाँ ही समाप्त हो जाता है । अब राज्यकाण्ड चलता है ॥ ३६ ॥ राज्यकाण्डके प्रथमसंगमें राममहामनाम तथा दूसरे संगमें रामके द्वारा स्वर्गसे कल्याण और गरिजात नामक नृपोंके राज्यकी बातें हैं ॥ ३७ ॥ तीसरे संगमें रामकृष्णके उपासकोंका सम्वाद, चौथे संगमें निद्राके लिए वन्दान, पाँचवें संगमें सीतारामका विगोप और मृगकामुन्दका वध, छठे संगमें राज्यकार्यका वर्णन है ॥ ३८ ॥ ३९ । सातवें संगमें रामके द्वारा चतुःक्षेत्रकी विजय और नव संगमें जम्बूद्वीपविजय, दश संगमें रामके अन्य छ. द्वीपोंकी जीतनेका वर्णन है । दसवें संगमें सम्यासी, शूद्र तथा गृध्रकी शिक्षाका वर्णन है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ अन्तरहव संगमें रामके

पंचदशे रामराज्यवर्णनं चिन्तरान्कनम् । वर्णिता गवर्ननिः श्रावणेणात्र पौडशे ॥४४॥  
 सप्तदशेऽत्र कथितं कुश इत्याम्यवचम् । अष्टदशे गवतःपुत्र दत्त द्वित्रयनाम् ॥४५॥  
 एकोनविंशे रामस्य दिनचर्येति श्रुता । गवां विंशेऽवतारे तुल्येष्टे प्रोक्तस्तत्र मदान् ॥४६॥  
 एकविंशे शपथेन हार्ये दत्तो रणे मुदा । नानया तुल्योऽत्र द्वात्रिंशे सञ्चितं शुभम् ॥४७॥  
 त्रयोविंशे स्मृताऽऽनन्दरामागणकधृतिः । यमजिज्ञा चतुर्विंशे यमजिज्ञा च भूतले ॥४८॥  
 राज्यकांडं समाप्तं हि मनोहरमुरीयने । सर्वेऽत्र प्रथमे प्रोक्तं ननुमापायणं शुभम् ॥४९॥  
 नागराणां च मानुषासुपदेशं द्वितीयके । रामपुत्रोपमनदि वेष्टाः च शृतीयके ॥५०॥  
 रामनोपद्रविसप्ततुर्थे मयुदासिनः । रामस्निगतोपद्रवाणां मदाः प्रोक्ताश्च पचमे ॥५१॥  
 नवमीशतविस्तरः षष्ठे दोनतः च सत्कथा । योगद्वयान्तां लक्ष्म्याशयनादिनि सप्तमे ॥५२॥  
 वेददीना हि सर्वेषामष्टमे कर्मभारिणम् । गार्हमासद्वये पूजा कथिता नवमे विंशे ॥५३॥  
 दशमे चैत्रमासस्य महिमा मयुदासिनः । एकादशे मयुद नान्यवर्षां निर्गमिता ॥५४॥  
 अर्द्धेनं दशिनं राज्ञा द्वात्रिंशे स्यादुदयश्च । यशुदस्य रामस्य कथने द्वे त्रयोदशे ॥५५॥  
 सीतायाः कथनं दीनं प्रोक्तान्तरं चतुदशे । पंचदशे कथयानं नहुन्यता स्मृतानि हि ॥५६॥  
 वनं हनुमनः प्रोक्तं पचाशत्य हि पौडशे । प्रोक्तं सप्तदशे यागगणपतिसुखम् ॥५७॥  
 अष्टादशे शरमनोः मृडनं च हनुमता । त्रार्धं मनोहर काण्डं पूजकाण्डमष्टोत्तरये ॥५८॥  
 बाल्मीकिना मोक्षवर्तिनारः पचमेऽकथितः । रामचन्द्रस्य ज्ञानं द्वितीये इस्तिनापुरम् ॥५९॥  
 स्वर्गोपमं कृतयोर्षु द्वे प्रोक्तं तृतीयके । सोमशराशतपापत्रिकी च चतुर्थके ॥६०॥  
 कुशादीनां च यथेय पचमेऽत्र विगर्जनम् । वैकुण्ठाहणे षष्ठे गद्गारां शयनस्थ च ॥६१॥  
 सप्तमे स्वर्गवशायनृपाणां वर्णनं कृतम् । अनुक्रमणिकागमे प्रोक्तं षष्ठमष्टमो महान् ॥६२॥  
 हाग वार विम रोको नन्दानिमित्त, शरह्वे सगम सौम्य मित्रोक्त वरदान वारका वृत्ता, शरह्वे सगमे दोषलके  
 कृतकी ईर्ष्या, चौरह्वे का-वर्गानि सार जन्मका वृत्तान्त है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ पन्द्रहवें सर्गमें रामके राज्यका सविस्तर  
 वर्णन और सोरहवें सर्गमें रामकी वही राजनीतिका वर्णन है ॥ ६५ ॥ तत्पश्चात् सर्गमें कुशकी कथाका स्वयम्बर,  
 यदारहवें सर्गमें ब्राह्मणोंके लिए रामकायपुरके गणपका दान ॥ ६४ ॥ पन्द्रहवें सर्गमें रामकी दितचर्या और दोषवर्ष  
 सर्गमें सब अवनगोम रामावतारकी घटना कही गयी है ॥ ६६ ॥ पचासवें सर्गमें दासीके लिये रामका वरदान,  
 अर्द्धमवें सर्गमें सीता द्वारा दूट तुल्यविषयकी पुत्र जोरनेकी कथा है । नवमवें सर्गमें अ-नन्दगदा-गणकी ध्वजफल,  
 चौबीसवें सर्गमें यमका शिक्षा एवं कर्मविष्णुका भजन है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ षष्ठ, ७ उरकाट यही ही समाप्त  
 हो जाता है । अब मनोहरकांड प्रारम्भ होता है । इसका पहल-वर्ग ननुगमायाग, दूसरे सर्गमें महरवर्तिनयो  
 कथा समाप्तोक्त लिए उपजेगान्त, तीसरे सर्गमें रामपूजा और यमसभाका सविस्तर वर्णन है ॥ ४६ ॥  
 ॥ ५० ॥ चौथे सर्गमें रामतोषणका विस्तार, पांचवें सर्गमें रामनिगठभद्रकी जिज्ञास, छठे सर्गमें नवमीशतका  
 विस्तार, सातवें सर्गमें राज रामगणपतिका उक्तापन है । ५१ ॥ ५२ ॥ आठवें सर्गमें वैन्दिक मुनिकेका कल और  
 नव सर्गमें हाई महीने तक रामके पुजका विधान है ॥ ५३ ॥ दसवें सर्गमें चैत्रमासमें पूजन करनेकी  
 महिमा, शारहवें सर्गमें चैत्रमाससे सबको सद्गति पानेका उपाय और शरह्वे सर्गमें रामन बहुरम स्थितकी  
 अर्द्धम पदकी व-वर्णना है । पन्द्रहवें सर्गमें राम वना हनुमान्जीका कथन और चौदहवें सर्गमें राम के स्वयं  
 सारिका वर्णन है । पन्द्रहवें सर्गमें रामका धाना-आन कथन आदिका वर्णन है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ सोरहवें सर्गमें  
 हनुमान्जीका पलाकारोपलवत है । सप्तदश सर्गमें माररामावण कथा वर्णन है । अठारहवें सर्गमें हनुमान्जीका द्वारा  
 कर्तुनक बनाके शरकेनुकी कथन वर्णन है । दान, मनाहरकाट यही ही समाप्त हो जाता है । अब पूजकाण्डके  
 विषय गिनाते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ पूजकाण्डके प्रथम सर्गमें मोक्षार्थी राजाओंकी कथावर्णन, दूसरे सर्गमें रामचन्द्रजी-  
 की इस्तिनापुरके लिए वाचा ॥ ५९ ॥ नागरे सर्गमें दूर और सामनेगी राजाओंका गुड और चौथे सर्गमें राम-



ग्रंथश्रुतिकथादीनि नवमे कीर्तितानि हि । नवमं पूर्णकाण्डं सङ्पूर्णं नवमं त्विदम् ॥६३॥  
 अनुक्रमणिका चेयं मया शिष्य प्रवर्णिता । ग्रन्थाः भवणमात्रेण रामायणश्रुतैः फलम् ॥६४॥  
 रामायणपुस्तकस्य नित्यं कार्यं प्रपूजनम् । विदेष्टुं पूजनमपि शृणु शिष्य वदामि ते । ॥६५॥  
 सारकाण्डं विभीः स्थाने लक्ष्मणाये द्वितीयकम् । नवाः सप्तगन्धेन्यं शेषाणि स्थापयेत् क्रमात् ॥६६॥  
 सप्त काण्डानि विधिवत्तेषां पूजनमाचरेत् । अथवा राज्यकाण्डस्य पूर्वार्धं रामस्तदस्थले ॥६७॥  
 राज्यकाण्डस्योत्तरार्धं सीतास्थाने निवेशयेत् । लक्ष्मणाये सारकाण्डं शेषाण्यग्रे क्रमण तु ॥६८॥  
 एवं संस्थाप्य काण्डानि तेषां पूजनमाचरेत् । नवायननपूजायाः फलमेतेन कीर्तितम् ॥६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितारण्ये श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये पूर्णकाण्डे

अनुक्रमणिकावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ८ ॥

## नवमः सर्गः

( ग्रन्थकी फलश्रुति )

आरामचन्द्र उवाच

सारं यात्रा च यागाख्य विलासाख्यं तु जन्मकाण्डं । सहाख्यं हि राज्याख्यं श्रीमनोहरपूर्णकं । १ ।

काण्डान्यनुक्रमेण आनन्दरामायणे नव । पञ्चदश सारकाण्डं सप्त । सारकाण्डेऽपि च ॥२॥

यात्राकाण्डे नव शेषा यागकाण्डेऽपि च नव । नव सप्त सहा विलासाख्ये जन्मकाण्डेऽपि च नव ॥३॥

नव शेषा विवाहाख्ये चतुर्विंशत्यं राज्याख्ये । मनोहराख्ये सातव्या सर्गा अष्टादशात्र चै ॥४॥

पूर्णकाण्डे नव शेषाः सर्गाः पापहरा नृणाम् । एवं नवोत्तरशतं १-९ सप्त । शेषाः शुभावहा ॥५॥

वंशो और सूर्यवंशो राजाओंकी मित्रताका वर्णन है । ६० ॥ पाँचवें सर्गमें रामचन्द्रजीके द्वारा कुश आदिके विसर्जनकी कथा है । छठें सर्गमें राजाओंके तदपर रामकी परमदामयानका वर्णन है ॥ ६१ ॥ सातवें सर्गमें सूर्यवंशो राजाओंका वर्णन है और आठवें सर्गमें आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बतलायी गयी है ॥ ६२ ॥ नवम सर्गमें आनन्दरामायणके श्रवणका फल यदि वर्णित है । वस्तु, पूर्णकाण्ड यही समाप्त हो जाता है, हे शिष्य, इस प्रकार मैं तुमको समस्त आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बता दौं । इस अनुक्रमणिकामात्रके सुननेसे समस्त रामायण सुननेका फल प्राप्त हो जाता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ भक्तोंको चाहिए कि निश्चय इस रामायणका पूजन करें । अब इतना पूजाम जो विशेषताएँ हैं उन्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ ६५ ॥ सारकाण्डको भगवान् रामचन्द्रजी, दूसरे काण्डको लक्ष्मण तथा तीसरे काण्डको सीता समझकर स्थापित करें । इस तरह सात काण्डोंमें क्रमशः नवायननकी स्थापना करके पूजन करें अथवा राज्यकाण्डके पूर्वार्धभागको रामके स्थानमें तथा उत्तरार्धको सीताके स्थानमें स्थापित करके पूजन करना चाहिए और सारकाण्डको लक्ष्मणकी जगहपर स्थापित करके पूजन करें । इसी तरह शेष काण्डोंको क्रमशः भरत आदिके स्थानमें स्थापित करके पूजन करना चाहिए । इस तरह इस रामायणकी पूजा करनेसे रामनवायनन-पूजनका फल प्राप्त होता है ॥ ६६-६९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितारण्ये श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये पंचमः रामतेजपाब्देयकृत-अष्टोत्तनाश्रयाष्टोकाख्ये पूर्णकाण्डोऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य । सार, यात्रा, याग, विलास, जन्म, विवाह, राज्य, मनोहर तथा पूर्णकाण्ड ये हो इस रामायणके नौ काण्ड हैं । सारकाण्डग बाल्मीकिजीने तरह सर्ग, यात्राकाण्डमें नौ सर्ग, जन्मकाण्डमें नौ सर्ग, विवाहकाण्डमें नौ सर्ग, राज्यकाण्डमें चौदावें सर्ग, मनोहरकाण्डमें अठारह सर्ग और पूर्णकाण्डमें पाँचोंको हरण करनेवाले कुल नौ सर्ग हैं । इस तरह इस आनन्दरामायणमें कुल मिलाकर एक ही नौ ( १+९ ) सर्ग हैं ॥ १-९ ॥

सारकाण्डे पंचविंशच्छतं श्लोकाः सविंशकाः । यात्राकाण्डे सप्तशतं धनत्रिंशच्चरं स्मृताः ॥ ६ ॥  
 यागकाण्डे षट्शतं च पञ्चविंशच्छतं शुभाः । विद्याकाण्डे षट्शतं च सप्तशतं सम्मृताः । ७ ॥  
 जन्मकाण्डे सप्तशतं सविंशच्छतं प्रकीर्तिताः । विद्याकाण्डे पञ्चशतं कानिनाः सप्तशतं च । ८ ॥  
 सप्तविंशतिं राज्यकाण्डे मुषड्विंशच्छतं स्मृताः । एकत्रिंशच्छतं श्लोकाः प्रोक्ताः काण्डे मनोहरे । ९ ॥  
 पूर्णकाण्डे पञ्चशतं सप्तममतिमिथिनाः । आनन्दरामचरिते सप्तममणि हि द्वादश ॥ १० ॥  
 द्वैशते च द्विपञ्चाशच्छ्लोका नृपा मनोपिभिः । एव सिद्धय मया प्रोक्त यथा पृष्ट त्वया पुरा ॥ ११ ॥  
 रामस्य तोषचरितं श्रवणारपानकापहम् । पूर्णकाण्डमिदं शेषं श्रवणानुपुण्यवर्धनम् ॥ १२ ॥  
 सारकाण्डाभवादेव समस्तानुब्यने नरः । यात्राकाण्डेन यात्राणां लभ्यते मानयः फलम् ॥ १३ ॥  
 यागकाण्डेन यज्ञानां लभ्यते फलमुत्तमम् । विद्याकाण्डाभवादिभिरपि विमोदने ॥ १४ ॥  
 जन्मकाण्डेन प्राप्नोति नरः पुत्रादिमन्तनिम् । विद्याकाण्डाभवादिभिरपि लभ्यते भुवि ॥ १५ ॥  
 राज्यकाण्डेन राज्यं हि मानयैर्भुवि लभ्यते । काण्डे मनोहरं धनं लभ्यते मानसस्मितम् ॥ १६ ॥  
 पूर्णकाण्डाभवादेव विष्णोः पूणपदं लभेत् सर्वं विष्णुः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं त्विदम् ॥ १७ ॥  
 सत्त्विकानन्दस्वरूपं न कोनो भवति मारुतः । गणापते नरः श्रुत्वा कायमुद्यापनं नरो ॥ १८ ॥  
 रामायणे भूते दद्याद्दत्तं देवमयं सुर्याः । चतुर्णां हि भूतानां तथा क्षीमस्तदाकृपा ॥ १९ ॥  
 यत्रैश्वर्यं समागच्छति किञ्चिन्नात्मनोऽपि न । मर्यादास्तस्य मध्यमं धेनुं दद्यात्पथास्वर्गताम् ॥ २० ॥  
 ब्राह्मणान्भोजयेन्नाद्यात्तममपि नृपः । स्वकां च धनं तु नृपः क्षत्र्यं फलपदम् ॥ २१ ॥  
 रामायणं भवन्तं नान्यं कदा विचारया । यद्विष्णुसम्यक् सत्त्वं लभ्यते रामायणमथाव्यये ॥ २२ ॥  
 नरः प्रातः सन्ध्यादानन्दरामायणं पठेत् । यः स रामायणादिति जहलान् दिवि दुर्जमान् ॥ २३ ॥

सारकाण्डमे २५३० श्लोक, यात्राकाण्डमे ७२५ श्लोक, यागकाण्डमे ६२५ श्लोक, विद्याकाण्डमे ६७८ श्लोक,  
 जन्मकाण्डमे ८०२ श्लोक, विद्याकाण्डमे ५५३ श्लोक । ५-८ ॥ राज्यकाण्डमे २६०२ श्लोक, मनोहरकाण्डमे  
 ११०० श्लोक और पूर्णकाण्डमे ५७७ श्लोक । इस आनन्दरामायणमे कुल मिलकर १२३५२ श्लोक हैं  
 ॥ ९ ॥ हे गिण्ड ' तुमने हमसे क्या पूछा, मैं रामचन्द्रजीका प्रसन्न करन और पापीका नष्ट करनेवाले  
 रामचरितका कह चुनाया । यह पूर्णकाण्ड पुष्पको बड़ा मन्त्र है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ सारकाण्डके सुननेसे प्राणी  
 इस संसारसे मुक्त हो जाता है । यात्राकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणी सब साधकों यात्राका पुण्य प्राप्त करता  
 है ॥ १३ ॥ यागकाण्डके सुननेसे प्राणी यज्ञोक्त करणका फल पाता है और विद्याकाण्डके सुननेसे स्वर्गको  
 अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ १४ ॥ जन्मकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणी सत्त्व प्राप्त पाता है और विवाह-  
 काण्ड सुननेसे सुन्दर स्त्री मिलता है ॥ १५ ॥ राज्यकाण्डके सुननेसे संसारका राजा प्राप्त होता है, मनोहरकाण्डको  
 सुननेसे अपनी इच्छित कामना पूर्ण होता है और पूणकाण्डका सुननेसे प्राणी साक्षात् विष्णुपञ्चाननाका  
 पूणपद पाता है । जो प्राणी समस्त आनन्दरामायण सुन लेता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ वह सत्त्विकानन्दस्वरूप  
 भगवान्मे स्थित हो जाता है । जो लोग यह रामायण सुने, उन्हें इसका उद्यापन भी करना चाहिए ॥ १८ ॥  
 रामायण सुन लेनेके बाद श्रोता मुक्तानन्दको एक ऐसा स्वर्णरथ दे, जिसमें चार घोड़े जुन हो और ऊपर  
 रेशमी यज्ञका कहरा रही हो ॥ १९ ॥ उसमें विविध प्रकारके दान लगे हों और किञ्चिन्नादेका भीड़ा भवति  
 निकल रही हो । इसके बाद एक दुवार गौ दे ॥ २० ॥ इसके पश्चात् १०८ ब्राह्मणोंका भोजन कराये ऐसा  
 करनपर वह महाकाम्य पूर्ण फलशायी होता है । इसमें किता प्रकारका सत्त्व न करना चाहिए । जिसमें मगवान्-  
 का निवास हो, उसे 'रामायण' कहते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ जो प्राणी स्वयं उठकर इस आनन्दरामायणका पाठ  
 करता है तो देवताओंको भी दुर्लभ उसका कामना पूर्ण होता है ॥ २३ ॥ चैत्र शुक्ल नवमका रामचन्द्रके अवसर

चैत्रमासे विने यः कृत्वा रामजन्मनि । शतमापसुवर्णेन चतुष्टयं विधाय च ॥२४॥  
 एकविंशति मर्षैः यः कृत्वा तद्वत्वा नरेः । चतुष्टयं सचिव आनन्दरामायणे निवेदम् ॥२५॥  
 मोक्षद्वारा निमित्तं रामायणे चतुष्टयं चतुष्टयम् । तं दत्तं चतुष्टयं चतुष्टयम् सुविशोधितम् ॥२६॥  
 वेष्टितं चतुष्टयं चतुष्टयं चतुष्टयम् शुभम् चतुष्टयं चतुष्टयम् रूपं पूजितं दक्षिणां चतुष्टयम् ॥२७॥  
 मन्त्राहं चतुष्टयं चतुष्टयं चतुष्टयम् नमः चतुष्टयं चतुष्टयम् नमः चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥२८॥  
 एवं यः कुरुते दानं नमः पुण्यं चतुष्टयम् । कर्त्तव्यं नमः चतुष्टयम् कुरुते चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥२९॥  
 दानेन पुण्यं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥३०॥  
 चावशुगणहन्ता चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥३१॥  
 रम्यं चावशुगणहन्ता चतुष्टयं चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥३२॥  
 रामायणमिदं चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥३३॥  
 रामायणमिदं चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥३४॥  
 आनन्दमयं चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥३५॥  
 आनन्दमयं चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥३६॥  
 येषां चावशुगणहन्ता चतुष्टयं चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥३७॥  
 मयमेव चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥३८॥  
 एवं कुरुते चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥३९॥  
 अष्ट कांडानां चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥४०॥  
 अथवा कुरुते चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥४१॥  
 दशमं दशमं चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् । चतुष्टयं चतुष्टयम् चतुष्टयम् चतुष्टयम् ॥४२॥

पर सो मास हुमानुजकी भूति बनवावर उसका अभयम इवकास मास अथवा जेसा बनवा मासि हा, उसके अनुसार म.सत्तन. भूति बनवावा चतुष्टय । इसका जननपर । ख.द.दकर या बचन हुयसे यह ग्रन्थ लिखकर इसमें विविध प्रकारक चित्र बनव और अच्छे तरह सजाव कर । फिर राजशाक साथ इस रामाणकी रम्यता कवरन दृष्टम बोधकर हनुमान्का कीचपर चतुष्टय ॥२६-२८॥ फिर रावट के समय इसका कथा कहन-वाल विविध शस्त्राक ज.त. चतुष्टयका पूजा कर । उस अच्छे-अच्छ कवर पहनव और वह हनुमान्की प्रतिमा तथा पुस्तक उस ब्राह्मणका दान द.द. ॥ २८ ॥ इस त-ह दान करनेका जो फल होना है, वह मे तुमका मतलाता हूँ । मूरवटण लगनेपर कुछप्रथम एक क.त. डभार मुण्डन करनका जो फल प्राप्त होता है उससे तुमका पुना अधिक फल इस प्रकार आनन्दरामायणका दान करनेका जो फल हो । इस कारणपर इस आनन्दरामायणमे जितन अक्षर है उतन हजार पुण्यक प्राण वैकुण्ठक.त.म. आनन्द करना है । इसका बाद सात जन्म तक विप्रक घरमे इसका जन्म होना है और इसका ब.त.व. एक क.त. रामा ब्राह्मण होना है ॥ २६, ३१ ॥ यह आनन्दरामायण पावन. क.त. सन्तोष.क.त. पुण्य.क.त. चतुष्टय.क.त. ज.त. हा इसका अर्थण करते है वे अपने पुत्र.पुत्र तथा मित्रास क.त. भा. विमुक्त न.हो.द.न. ॥ २८ ॥ ३३ ॥ जो ३० रामायणका अन्तिमपूजक सुनने है वे अपनी स्त्रियोंस क.त. भा. विमुक्त न.हो.द.न. ॥ जो इसकी ३० रामायणका अ.क.त. फल.क.त. व. क.त. लक्ष्मणका तरह सुखी रहता हुई क.त. भा. अपने अपने रीतस विमुक्त न.हो.द.न. ॥ ३४, ३५ ॥ इ.द.विगत.व. परवाले कियो गवि, दशा-स्तर अथवा तार्थदायका सब हो तो उन्हें मुण्डन.क.त. चतुष्टय.क.त. जिन्. इस आनन्दरामायणका पाठ करना चाहिए ॥ ३६ ॥ जिनका अपने किसी भाव.क.त. क.त. रामायण.क.त. हा और उसे श.प.न. पूर्ण करना चाहत हो तो वे प्रथमपूजक इस आनन्दरामायणका.क.त. क.त. ३७ ॥ दूसरे राज.क.त. एक कांड, दूसरे राज.क.त. बहुत और दूसरा इन द.स कांडका पाठ कर । न.पर.इ.त.पहल, पु.म.ग. और लासरा इन तीनका काण्डो.हो, इस क्रम-से कड़ा हा हुआ न.वे रोज त.व.काण्ड.क.त. पाठ कर । ३८, ३९ ॥ फिर भा.व. राजे कांड कांड, सातने दिव

अथवा पृथक् काण्डेषु सर्गशुद्धिभ्यः क्रमात् । एवमेकदिनानुष्ठानसमाप्तेश्वरेद्वयम् ॥४३॥  
 अथवा प्रथमे सर्वस्वेऽह एव पठेत् । द्वौ सर्गौ च द्वितीयेऽह्नि शुद्धिस्वेव क्रमेण हि ॥४४॥  
 नवोत्तरशते प्राप्ते दिने इत्यन्तं निवृत्तं पठेत् । पुनः अष्टोत्तरशतमप्येव सप्तदिनोत्तरैः ॥४५॥  
 सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं कार्यैकमाधत्तम् । अथवा प्रथमे चाह्नि सर्गं प्राथमिकं पठेत् ॥४६॥  
 द्वितीयेऽह्नि द्वितीयश्च तृतीयेऽह्नि तृतीयकम् । नवोत्तरशते प्राप्ते दिने च चर्म पठेत् ॥४७॥  
 दशोत्तरशते प्राप्ते द्वादशोत्तरशतमिधम् । पठेन्नर्तकदंगैश्च शिष्य सप्तदिनोत्तरैः ॥४८॥  
 सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं साधारणं नृणाम् । पञ्चानुष्ठानभेदाश्च मयैव परिकीर्तिताः ॥४९॥  
 अनुष्ठानमप्यसौ हि होमः कार्यो यथाविधि । पृथक् श्लोकं समुच्चार्य स्वाहांतं पायसं फलेः ॥५०॥  
 नवाश्वेनाथवा कार्यो होमो द्वित्यरैः सह । प्राज्ञगान्धर्वो ज्ञेयश्च अनुष्ठानदिनैर्वितान् ॥५१॥  
 एतत्प्रातः समुत्थायानन्दरामायणं सुभम् । ये पठन्ति तदा भवन्त्यने सुखं प्राप्नुवन्ति हि ॥५२॥  
 द्वादशमपि चैतद्वै पठनीयं प्रयत्नतः । पञ्चदशं नवदिनैः सायं तथा सुप्तावहम् ॥५३॥  
 कांडं सर्गोऽथवा श्लोकस्त्वानन्दारामस्य प्रत्यहम् । नराः दीनश्चैव तेषां सप्त निरर्थकम् ॥५४॥  
 पुत्रार्थं रतिशालायां भृगोर्नि पुरुषः क्षिप्त्वा । निवायः ततश्चक्रेऽपुत्री पुत्रमाप्नुयात् ॥५५॥  
 नवराशिषु व्रीहीणां घ्नात्वा कार्यं तु विनश्येत् । पूर्वाफलानि चत्वारि पूर्वेण कांडमुच्यते ॥५६॥  
 द्वितीयेन हि सर्गस्तु तृतीयेन फलेन हि । वजनोऽप्यत्र च विज्ञेयश्चतुर्थेन फलेन च ॥५७॥  
 श्लोके ज्ञेयः पूर्वराशेः सर्वेषां गणने रता । सर्वत्रांत्वेन श्लोकेन विपरीतं फलं स्मृतम् ॥५८॥  
 एवं सर्वदर्शनीयः शङ्कनश्च सुभोऽनुभूतः । एवं शिष्य स्वयां यद्यन्पूजं तत्तन्मयोदितम् ॥५९॥

सात काण्ड, छठे दिन छ काण्ड इस क्रमसे घटाता हुआ सप्तह दिनमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे । वैसे न कर सके तो पहले रोज पहला, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे नौ रोजमें नौ काण्ड समाप्त करे । फिर दसवें रोज आठवां काण्ड, ग्यारहवें रोज सातवां काण्ड, इस क्रमसे घटाता हुआ सप्तह दिनोंमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४०-४२ ॥ अथवा अष्टोत्तर कांडमें सर्गशुद्धिके क्रमसे पाठ करता हुआ सात महीनोंमें अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४३ ॥ ऐसा भी न कर सके तो पहले रोज पहला सर्ग, दूसरे दिन दूसरा सर्ग, तीसरे दिन तीसरा सर्ग, इस क्रमसे एक सौ सौ दिनोंमें पूर्ण करके फिर उसी क्रमसे घटाये । इस अनुष्ठानमें भी सात ही महीनेका समय लगता है । इस अनुष्ठानको करनेसे एक कार्यकी सिद्धि हो सकती है । अथवा पहले रोज पहला सर्ग, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे पाठ करता हुआ एक सौ नवें दिन अन्तिम सर्गका पाठ करे ॥ ४४-४७ ॥ फिर एक सौ दसवें दिन एक सौ आठवां सर्ग, एक सौ ग्यारहवें दिन एक सौ सातवां सर्ग, इस क्रमसे पाठ करता हुआ सात महीनेमें इसे समाप्त करे । इस तरह मैंने अनुष्ठानके पांच भेद बताये । अनुष्ठान समाप्त हो जानेपर शिषिभू हवन करना चाहिए । होम करते समय ग्राहणोंके साथ बैठकर आनन्दरामायणके एक-एक श्लोकका उच्चारण करता हुआ स्तौत्र, फल वधवा नवें जन्मसे हवन करे । हवन हो जानेपर जितने दिनोंका अनुष्ठान किया हो, उतने ग्राहणोंको भोजन कराये ॥ ४८-५१ ॥ जो लोग सबरे उठकर इस रामायणका पाठ करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं । द्वारवासीको तो अवश्य इसका पाठ करना चाहिए । नौ दिनोंमें इसका सुप्तावह पारायण पूर्ण करना चाहिए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जो लोग इस रामायणके एक काण्ड, एक सर्ग अथवा एक श्लोकका भी पाठ नहीं करते, उनका जन्म निरर्थक है ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य अपनी स्त्रीके साथ रतिशालामें पुत्रप्राप्तिके लिए इस रामायणका ध्यान करता है, वह यदि पुत्रविहीन हो तो अवश्य पुत्र प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ अब प्रजनकी रीति बताते हैं । अन्नकी नौ रागियें बनाकर अपने कार्यका ध्यान करे । इससे आठ चारों दिशाओंमें चार पूर्वाफल ( सुपारी ) रखे । पहली सुपारीमें कांड, दूसरीमें सर्ग, तीसरीमें दशक तथा चौथी सुपारीमें श्लोकका स्थापन करे । पूर्वकी राशिके सबकी मणना करनी चाहिए । सब जगह जो अन्तिम श्लोक निकले, उससे विपरीत फल होता है ॥ ५६-५८ ॥ फल

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं नवोत्तरं सर्गार्थं मथेरितम् ।  
 कांडानि यन्मित्रव कीर्तितानि ते हे विष्णुदासायहरं मनोहरम् ॥६०॥  
 दिने दिने पापत्रयान्गुर्वधरः पठेत् श्लोकमपीह भक्त्या ।  
 विमुक्तसर्वापचयः प्रयाति रामस्य सालोक्यमनन्यलभ्यम् ॥६१॥  
 आनन्दरामायणमेतदुत्तमं दे रामदासस्य मुखेन कीर्तितम् ।  
 श्रीराघवेणैव जनाधनाशनं नानाचरित्रैर्वैरकौतुकैर्युतम् ॥६२॥  
 धन्यः स बाल्मीकिमुनिः कवीश्वरो रामायणं वै शतकोटिनमितम् ।  
 कुरु पुरा येन सविस्तरं शुभं यस्माच्च सारं कथितं मया तव ॥६३॥  
 आनन्दरामायणमेतदुत्तमं श्रीजानकीकांडनकौतुकैर्युतम् ।  
 शृण्वन्ति गावन्ति चदन्ति वाऽपराङ्मुखेन परायणमादराच्च ये ॥६४॥  
 लभन्ति पृथानतिर्बुद्धिमत्तरान्स्त्रीश्चापि पौत्रान्परमान्मनोहरान् ।  
 धनानि धान्यानि पशूश्च माल्याः श्रीरामचन्द्रस्य पदं प्रयाति ते ॥६५॥  
 आनन्दमंजं पठतश्च नित्यं श्रोतुश्च भक्त्या लिखितुश्च रामः ।  
 अतिप्रमत्तश्च सदा सर्वपे सीतासमेतः श्रियमातनोति ॥६६॥  
 आनन्दरामायणजह्नुवीर्यं पाशापहंत्री मलिनस्य जंतोः ।  
 आनन्दरामायणकामधेनुस्त्रियं जनानामतिकामदोन्धी ॥६७॥  
 रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यं ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि संस्तुतं च ।  
 श्रद्धान्वितः पठति शृण्वान्स नित्यं विष्णोः प्रयाति सदनं स विशुद्धदेहः ॥६८॥  
 नवोत्तरश्चतैः सर्गैः रामकीर्तनमालिकाम् । कुरवा कण्ठे सुखं तिष्ठ शिष्येमां त्वं मयोदितम् ॥६९॥

श्रीशिव उवाच

आनन्दरामचरितमिदं स्वीयपुरोर्मुखात् । श्रुत्वा स विष्णुदासस्तं ननामार्च्यं पुनः पुनः ॥७०॥

प्रकार लोगोंको चाहिए कि शुभाशुभ फल जानना हो तो इस अनुसूचीसे जान लें । हे शिष्य ! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया ॥ ५९ ॥ इस तरह हमने तुमको एक सी नी सगीवाली यह उत्तम रामायण सुनायी । इसमें समस्त पापोंको हरनेवाले नौ कांड कहे गये हैं ॥ ६० ॥ दिनों दिन पाप करनेवाला मनुष्य भी यदि इस रामायणके एक श्लोकका भी पाठ करता है तो उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह रामके चरणोंकी सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ६१ ॥ इस आनन्दरामायणको श्रीरामदासने सुनाया है, जिसमें रामचन्द्रजीकी अनेक कीर्तुकामयी कथाएँ वर्णित हैं ॥ ६२ ॥ कवीश्वर बाल्मीकि ऋषि धन्य हैं कि जिन्होंने सी करोड़ श्लोकोंमें विस्तारपूर्वक रामचरितका वर्णन किया है । उसीका सारांश मैंने तुम्हें सुनाया है ॥ ६३ ॥ जो लोग श्रीसीताजीकी कीड़ाओंसे मुक्त इस आनन्दरामायणका सादर ध्वनन और गायन करते अथवा औरोंको सुनाते हैं, वे बड़े बुद्धिमान् लोग पुत्र, स्त्री, विशाल धन, अन्न तथा उत्तम पशुओंको प्राप्त करते हैं और अन्तमें रामचन्द्रजीके चरणोंकी प्राप्ति होते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ जो प्राणी निरव इस आनन्दरामायणका पाठ करते, सुनते अथवा लिखते हैं । उनपर रामचन्द्र परम प्रसन्न होकर सीताके साथ उनके हृदयमें विराजमान रहते हुए सब तरहसे उनका कल्याण करते हैं ॥ ६६ ॥ यह आनन्दरामायणरूपिणी गङ्गा पापियोंके समस्त पाप हरती है और आनन्दरामायणरूपिणी यह कामधेनु मत्तोंकी सब कामना पूर्ण करती है ॥ ६७ ॥ यह आनन्दरामायण अति मनोहर और ब्रह्मादि देवताओंसे भी संस्तुत है । जो श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे लोग विशुद्धकाम होकर अन्तमें विष्णुभगवान्के लोकको पाते हैं । हे शिष्य ! एक सी नी सगीवाली इस रामकीर्तनरूपिणी मालाको धारण करने तुम जहाँ चाहो, सुखसे रहो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपने गुरु श्रीरामदासके मुखसे इस

रामदासः स्वशिष्यायानन्दरामायणं प्रिये । एवमुक्त्वा मुनिः संध्यां कर्तुं गोदां गमिष्यति ॥७१॥  
एवं देवि तवाग्रंऽथ मयाऽपि परिकीर्तितम् । आनन्दरामचरितं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥७२॥  
रामकीर्तनमालायां मेरुस्थाने त्वयं नहान् । सर्गो मया ते काचितः श्रवणान्मगलप्रदः ॥७३॥

श्रीपार्वत्युवाच

यदा वाल्मीकिना देव कृतं रामायणं वरम् । तदा क रामदासः स संवादोऽभिस्त्वयाऽकथि ॥७४॥  
क तदा विष्णुदासोऽपि संशयो मेऽत्र जायते ।

श्रीशिव उवाच

त्रिकालया ज्ञानदृष्ट्या मुनिनाऽत्र कथांतरे ॥७५॥  
उभयोर्मात्रिसंवादः सोऽपि पूर्णं प्रवर्णितः । यथा रामस्य चरितं रामान्पूर्वं प्रवर्णितम् ॥७६॥  
संदेहोऽत्र न्यया नैव कार्यः पर्वतकन्यके । रामदासमुखेनैतद्रायदर्शनेन वर्णितम् ॥७७॥

आनन्दरामायणमादरेण श्रीरामचन्द्रेण मुनेर्मुखेन ।  
तद्रामदासस्य मुदैव चोक्तं भक्तिप्रदं मुक्तिदमेतदत्र ॥७८॥  
आनन्दरामायणमादरेण पुत्रे प्रजाने पठनीयमेतत् ।  
विवाहकाले व्रतवन्धकाले श्राद्धे पठेत्पर्वणि पशाले च ॥७९॥  
आनन्दरामायणमादरेण कारागृहस्थस्य विमुक्तये च ।  
उत्पातजातये भयनाशनाय प्रभोः कृपार्थं पठनीयमादरात् ॥८०॥  
आनन्दरामायणमादरेण शृणोति वा श्रावयते च भक्त्या ।  
स स्वीयकामानखिलानवाप्स्य वैकुण्ठलोके खलु गच्छति स्वैः ॥८१॥  
आनन्दरामायणतोऽधिकानि न सन्ति तीर्थानि हरेः स्थलानि ।  
वेद्याणि दानान्यपि पुण्यदानि तथा पुगणान्यथ कीर्तितानि ॥८२॥

प्रकार आनन्दरामायणकी सुननेके बाद विष्णुदासने इस ग्रन्थका पूजन करके बारम्बार प्रणाम किया ॥७०॥  
हे प्रिये ! रामदास अपने शिष्यकी यह आनन्दरामायण सुनाकर सन्ध्या करनेके लिए गोदावरीके तटपर  
चले गये ॥ ७१ ॥ हे देवि ! जिस तरह रामदासने अपने शिष्यकी यह आनन्दरामायण सुनायी थी । उसी  
तरह मैंने भी पुण्यवद्धक इस उत्तम रामचरित्रका वर्णन कर दिया है ॥ ७२ ॥ रामके गुणोंका गान करने-  
वाली अनेक संवमाख्याएँ हैं । उनमें यह आनन्दरामायण सुनेके समान विराजमान है । इस रामायणमें भी  
जो सर्गोंकी माला है, उसमें यह सर्ग सुनेकी तरह है । इसका श्रवण करनेसे सर्वथा मङ्गल होता है ॥ ७३ ॥  
श्रीपार्वतीजीने कहा — हे देव ! जब श्रीकालमीकिजीने यह रामायण बताया थी, तब रामदास और विष्णुदास  
कहाँ थे ? जिनका संवाद आपने मुझे सुनाया । यह मेरे हृदयमें एक महान् संवेष्ट उत्पन्न हो गया है । श्रीशिवजी  
बोले—हे पार्वती ! वाल्मीकिजीने अपनी त्रिकालदर्शिता दृष्टिसे इस भावी संवादको पहले ही जान लिया था ।  
इसी कारण संवाद होनेके पहले ही उसका वर्णन कर दिया । जैसे उन्होंने रामजन्मसे पहले रामायण लिख री  
थी । हे पर्वतकन्यके ! तुम इस विषयमें किसी प्रकारका संदेह न करो । रामदासके मुखसे साक्षात् रामचन्द्रजीने  
स्वयं इस चरित्रका वर्णन किया है । उभ मुनिके मुखसे स्वयं रामचन्द्रजीने आदरपूर्वक इस रामायणकी कहा है ।  
इसीलिए यह इस संसारमें भुक्ति और मुक्ति देनेवाली वस्तु बन गयी है ॥ ७४-७८ ॥ लोगोंको चाहिए कि पुत्र  
होनेपर, विवाहमें, व्रतवन्धकालमें, श्राद्धमें तथा किसी मङ्गलमय कार्यके समय आनन्दरामायणका पाठ अवश्य करें  
॥ ७९ ॥ यदि कोई मनुष्य कारागारमें हो और उसे छुड़नेकी आवश्यकता आ पड़े अथवा किसी उत्पात तथा  
भयको शांत करना हो अथवा भयनाशकी कृपा प्राप्त करनी हो तो आदरपूर्वक इसका पाठ करना चाहिए ॥ ८० ॥  
जो मनुष्य आनन्दरामायणका आदरपूर्वक पाठ करते या सुनते-सुनाते हैं, वे अपनी समस्त कामनायें पूर्ण करके  
अन्तमें वैकुण्ठलोको जाते हैं ॥ ८१ ॥ आनन्दरामायणसे बढ़कर तीर्थ, भगवन्मन्दिर, क्षेत्र, दान तथा पुराण

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं श्रोतुं मया ते गिरिजे सविस्तरम् ।  
 त्वं स्तितवस्वावहर् निरन्तरं मनोहरं लप्स्यमि राधवे भक्तिम् ॥८१॥  
 आदौ हस्ताः स्वास्यं द्विजवचनगुरुत्वेन यात्राय यज्ञान्  
 कृत्वा ब्रुवन्नातिभोगानयन्तितलविश्रुतां गृहीत्वाऽथ सीताम् ।  
 लब्ध्वा नानास्तुपास्तान्स्वयान्तालमनान्पार्विकादींश्च नित्वा  
 कृत्वा नानोपदेशान् गङ्गपुरनिकटे स्वीयलोकं जगाम ॥८४॥  
 ग्रामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान्पृष्ठे सुग्रीवासुतः  
 शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वापय्यकोणादिषु ।  
 सुग्रीवश्च विभीषणश्च दुराद् तत्रासुतो जाम्बवान्  
 मध्ये नीलकमलकामलरुचिं रामं भजे ज्यमलम् ॥८५॥  
 आनन्दरामायणहारकोपमं ये पूर्णकाण्डं चरमं नरोत्तमाः ।  
 पठन्ति शृण्वन्ति हरेः परं पदं गच्छन्ति पूर्णोप्सितमालभन्ति ते ॥८६॥  
 आनन्दरामायणमेतदुत्तमं जप्यं पवित्रं श्रवणीयमादरान् ।  
 यन्मङ्गलातामपि मङ्गलप्रदं स्मरामि नित्यं प्रणमामि सादरम् ॥८७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे गोण्डामण्डलान्तर्गतसिंह-  
 संवादे तथा रामदासविष्णु सप्तम्यादे प्रोक्तश्रुतिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

आदिका श्रवण, इनमेंसे एक भी नहीं है ॥ ८२ ॥ हे गिरिजे ! मैंने विस्तरपूर्वक यह उत्तम आनन्द-  
 रामायण तुम्हें सुना दिया । तुम इस पापापहारी चरित्रका निरन्तर मनन किया करो । ऐसा करनेसे  
 तुम्हें सुन्दर भवब्रुक्ति प्राप्त होगी और तुम्हारा बुद्धि दमकी और दीड़ पड़ेगी ॥ ८३ ॥ रामने  
 पहले रावणका वध किया । फिर ब्राह्मणके पचनका सम्मान करते हुए तीर्थोंकी यात्रायें की और बहुतसे  
 यज्ञ किये । फिर विविध प्रकारके भोगोंका भोग करके पातालमें जातो हुई सीताको उवाच । तदनन्तर  
 पृथ्वील्लके अनेक राजाओंकी जातकर बहुतसा पताझूट आये । तत्पश्चात् लोगोंको विविध प्रकारका उपदेश  
 देकर वे हस्तिनापुरीय समीप गंगातटमें अपने परम धामकी चले गये ॥ ८४ ॥ जिन रामचन्द्रजीके वाम  
 भागमें सीता, आगे हनुमान्जी, पीछे लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा भरत, दाईं-बायें एवं वायव्य आदि कोणोंमें सुग्रीव,  
 विभीषण, अङ्गव तथा जाम्बवान् निराजमान हैं । उन सबके मध्यमें नीलकमलको नाई सुग्रीवित ययामर्षण  
 श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ ८५ ॥ जो लोग हारकी भीति सुन्दर इस अन्तिम पूर्णकाण्डका पाठ करते  
 या सुनते हैं, वे परम पदको प्राप्त होते हैं और उतको सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ ८६ ॥ लोगोंको चाहिए  
 कि इस पवित्र आनन्दरामायणका आदरपूर्वक कीर्तन तथा श्रवण किया करें । क्योंकि यह मङ्गलका भी मङ्गल-  
 दाता है । इसी कारण मैं तो नित्य इसका आदरपूर्वक स्मरण और नमन करता हूँ ॥ ८७ ॥ इति ध्योतकोटि-  
 रामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे गोण्डामण्डलान्तर्गतसिंह (टिकरिया) ग्रामनिवासि पं० रामदत्तात्मज पं०  
 रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

॥ इति पूर्णकाण्डं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

समाप्तोऽयं ग्रन्थः